हिंदी शब्दसागर

प्रथम भाग

["अ" से "ईहित" तक, शब्दसंख्या—१८०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास, बी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट	रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह	जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन	रामचंद्र वर्मा



संपादकमंडल

संपूर्णानंद	कमलापति त्रिपाठी
मंगलदेव शास्त्री	धीरेंद्र वर्मा
कृष्णदेवप्रसाद गौड	रामधन शर्मा
हरवंशलाल शर्मा	शिवनंदनलाल दर
शिवप्रसाद मिश्र	सुधाकर पांडेय
भोलाशंकर व्यास (सह० संयो०)	करुणापति त्रिपाठी (संयोजक, संपादकमंडल)

सहायक संपादक

त्रिलोचन शास्त्री	विश्वनाथ त्रिपाठी

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

हिंदी शब्दसागर के सपादन का सपूर्ण तथा इसके प्रकाशन का पचहत्तर प्रतिशत व्ययभार भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया ।

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण (दूसरी बार)

शकाब्द १९०७ स० २०४२ वि० १९८६ ई०

मूल्य नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ६३३)७५
मूल्य..... २५० रु० ०० पैसे

शभुनाथ वाजपेयी द्वारा
नागरी मुद्रण, वाराणसी
मे मुद्रित

प्रथम संस्करण की भूमिका

किसी जाति के जीवन मे उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दो का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। आवश्यकता तथा स्थिति के अनुसार इन प्रयुक्त शब्दो का आगम अथवा लोप तथा वाच्य, लक्ष्य एवं द्योत्य भावों मे परिवर्तन होता रहता है। अतएव और सामग्री के अभाव मे इन शब्दो के द्वारा किसी जाति के जीवन की भिन्न भिन्न स्थितियों का इतिहास उपस्थित किया जा सकता है। इसी आधार पर आर्यजाति का प्राचीनतम इतिहास प्रस्तुत किया गया है और ज्यो ज्यो सामग्री उपलब्ध होती जा रही है, त्यों त्यों यह इतिहास ठीक किया जा रहा है। इस अवस्था मे यह बात स्पष्ट समझ मे आ सकती है कि जातीय जीवन मे शब्दो का स्थान कितने महत्व का है। जातीय साहित्य को रक्षित करने तथा उसके भविष्य को सुचारु और समुज्वल बनाने के अतिरिक्त वह किसी भाषा की सपन्नता या शब्दबहुलता का सूचक और उस भाषा के साहित्य का अध्ययन करनेवालो का सबसे बडा सहायक भी होता है। विशेषत अन्य भाषा भाषियो और विदेशियो के लिये तो उसका और भी अधिक उपयोग होता है। इन सब दृष्टियों से शब्दकोश किसी भाषा के साहित्य की मूल्यवान् सपत्ति और उस भाषा के भडार का सबसे बडा निदर्शक होता है।

जब अंगरेजो का भारतवर्ष के साथ घनिष्ठ सबध स्थापित होने लगा, तब नवागतुक अंगरेजो को इस देश की भाषाएँ जानने की विशेष आवश्यकता पडने लगी; और फलत वे देशभाषाओ के कोश, अपने सुभीते के लिये बनाने लगे। इस प्रकार इस देश मे आधुनिक ढग के और अकारादि क्रम से बननेवाले शब्दकोशो की रचना का सूत्रपात हुआ। कदाचित् देशभाषाओं मे से सबसे पहले हिंदी (जिसे उस समय अंगरेज लोग हिंदुस्तानी कहा करते थे) के दो शब्दकोष श्रीयुक्त जे० फर्गुसन नामक एक सज्जन ने प्रस्तुत किए थे, जो रोमन अक्षरो मे सन् १७७३ मे लदन मे छपे थे। इनमे से एक 'हिंदुस्तानी अंगरेजी' का और दूसरा 'अंगरेजी हिंदुस्तानी' का था। इसी प्रकार का एक कोश सन् १७९० मे मदरास में छपा था जो श्रीयुक्त हेनरी हेरिस के प्रयत्न का फल था। सन १८०८ मे जोसफ टेलर और विलियम हटर के समिलित उद्योग से कलकत्ते मे एक 'हिंदुस्तानी अंगरेजी कोश' प्रकाशित हुआ था। इसके उपरात १८१० मे एडिनबरा मे श्रीयुक्त जे० बी० गिलक्राइस्ट का और सन १८१७ मे लदन मे श्रीयुक्त जे० शेक्सपियर का एक 'अंगरेजी हिंदुस्तानी' और एक 'हिंदुस्तानी अंगरेजी' कोश निकला था, जिसके पीछे से तीन सस्करण हुए थे। इनमे से अंतिम संस्करण बहुत कुछ परिवर्धित था। परतु ये सभी कोश रोमन अक्षरों मे थे और इनका व्यवहार अंगरेज या अंगरेजी पढे लिखे लोग ही कर सकते थे। हिंदीभाषा या देवनागरी अक्षरो मे जो सबसे पहला कोश प्रकाशित हुआ था, वह पादरी एम० टी० एडम ने तैयार किया था। इसका नाम 'हिंदी कोश' था और यह सन् १८२९ मे कलकत्ते से प्रकाशित हुआ था। तब से ऐसे शब्दकोश निरतर बनने लगे, जिनमें या तो हिंदी शब्दो के अर्थ अंगरेजी में और या अंगरेजी शब्दो के अर्थ हिंदी मे होते थे। इन कोशकारो मे श्रीयुक्त एम० डब्ल्यू० फैलन का नाम विशेष रूप से उल्लेख करने योग्य है, क्योंकि इन्होंने साधारण बोलचाल के छोटे बडे कई कोश बनाने के अतिरिक्त, कानून और व्यापार आदि के पारिभाषिक शब्दो के भी कुछ कोश बनाए थे। परतु इनका जो 'हिंदुस्तानी अंगरेजी कोश' था उसमे यद्यपि अधिकाश शब्द हिंदी के ही थे, फिर भी अरबी फारसी के शब्दों की कमी नही थी, और कदाचित् फारस के अदालती लिपि होने के कारण ही उसमे शब्द फारसी लिपि मे, अर्थ अंगरेजी मे और उदाहरण रोमन मे दिए गए थे। सन् १८८४ मे लदन मे श्रीयुक्त जे० टी० प्लाट्स का जो कोश छपा था वह भी बहुत अच्छा था और उसमे भी हिंदी तथा उर्दू शब्दो के अर्थ अंगरेजी भाषा मे दिए गए थे। सन् १८७३ मे मु० राधेलालजी का शब्दकोश गया से प्रकाशित हुआ था जिसके लिये सरकार से उन्हें यथेष्ट पुरस्कार भी मिला था। श्रीयुक्त पादरी जे० डी० बेट ने पहले सन् १८७५ मे काशी से एक हिंदी कोश प्रकाशित किया था, जिसमे हिंदी के शब्दों के अर्थ अंगरेजी मे दिए गए थे। इसी समय के लगभग काशी से कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी का हिंदी कोश प्रकाशित हुआ था, जिसमे हिंदी के शब्दो के अर्थ हिंदी मे ही थे। बेट के कोश के भी पीछे से दो और सशोधित तथा परिवर्धित सस्करण प्रकाशित हुए थे। सन् १८७५ मे ही पेरिस मे एक कोश का कुछ अश प्रकाशित हुआ था, जिसमे हिंदी या हिंदुस्तानी शब्दो के अर्थ फ्रासीसी भाषा मे दिए गए थे। सन् १८८० मे लखनऊ से सैयद जामिन अली जलाल का 'गुलशने फैज' नामक एक कोश प्रकाशित हुआ था, जो था तो फारसी लिपि मे ही, परतु शब्द उसमे अधिकाश हिंदी के थे। सन् १८८७ मे तीन महत्व के कोश प्रकाशित हुए थे, जिनमे सबसे अधिक महत्व का कोश मिरजा शाहजादा कैसरबख्त का बनाया हुआ था। इसका नाम 'कैसर कोश' था और यह इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था (दूसरा कोश श्रीयुक्त मधुसूदन पडित का बनाया हुआ था जिसका नाम 'मधुसूदन निघटु' था और जो लाहौर से प्रकाशित हुआ था। तीसरा-कोश श्रीयुक्त मुन्नीलाल का था जो दानापुर मे छपा था और जिसमे अंगरेजी शब्दों के अर्थ हिंदी मे दिए गए थे। सन् १८८१ और १८९५ के बीच मे पादरी टी० केपन के बनाए हुए कई कोश प्रकाशित हुए थे, जो प्राय स्कूलो के विद्यार्थियों के काम के थे। १८९२ मे बाँकीपुर से श्रीयुक्त बाबा बैजूदास का 'विवेक' कोश निकला था। इसके उपरात 'गौरीनागरी कोश', 'हिंदीकोश', 'मगलकोश' 'श्रीधरकोश' आदि छोटे छोटे और भी कई कोश निकले थे, जिनमे हिंदी शब्दो के अर्थ हिंदी मे ही दिए गए थे। इनके अतिरिक्त कहावतो और मुहावरो आदि के जो कोश निकले थे, वे अलग हैं।

इस बीसवी शताब्दी के आरभ से ही मानो हिंदी के भाग्य ने पलटा खाया और हिंदी का प्रचार धीरे धीरे बढने लगा। उसमें निकलनेवाले सामयिक पत्रो तथा पुस्तको की सख्या भी बढने लगी और पढनेवालों की भी सख्या मे उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। तात्पर्य यह कि दिन पर दिन लोग हिंदी साहित्य की ओर प्रवृत्त होने लगे और हिंदी पुस्तकें चाव से पढ़ने लगे। लोगो मे प्राचीन काव्यो आदि को

पढ़ने की उत्कंठा बढने लगी। उस समय हिंदी के हितैषियो को हिंदी-भाषा का एक ऐसा वृहत् कोश तैयार करने की आवश्यकता जान पड़ने लगी, जिसमे हिंदी के पुराने पद्य और नए गद्य दोनो मे व्यवहृत होनेवाले समस्त शब्दों का समावेश हो, क्योकि ऐसे कोश के विना आगे चलकर हिंदी के प्रचार मे कुछ बाधा पहुँचने की आशका थी।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने जितने बडे बडे और उपयोगी काम किए हैं, जिस प्रकार प्राय उन सबका सूत्रपात या विचार सभा के जन्म के समय, उसके प्रथम वर्ष मे हुआ था, उसी प्रकार हिंदी का वृहत् कोश बनाने का सूत्रपात नही तो कम से कम विचार भी उसी प्रथम वर्ष मे हुआ था। हिंदी मे सर्वांगपूर्ण और वृहत् कोश का अभाव सभा के संचालको को १८९३ ई० में ही खटका था और उन्होंने एक उत्तम कोश बनाने के विचार से आर्थिक सहायता के लिये दरभगानरेश महाराजा सर लक्ष्मीश्वर सिह जी से प्रार्थना की थी। महाराजा ने भी शिशु सभा के उद्देश्य की सराहना करते हुए १२५) उसकी सहायता के लिये भेजे थे और उसके साथ सहानुभूति प्रकट की थी। इसके अतिरिक्त आपने कोश का कार्य आरभ करने के लिये भी सभा से कहा था और यह भी आशा दिलाई थी कि आवश्यकता पड़ने पर वे सभा को और भी आर्थिक सहायता देंगे। इस प्रकार सभा ने नौ सज्जनो की एक उपसमिति इस सबध मे विचार करने के लिये नियुक्त की, पर उपसमिति ने निश्चय किया कि इस कार्य के लिये बडे बडे विद्वानों की सहायता की आवश्यकता होगी और इसके लिये कम से कम दो वर्ष तक २५०) मासिक का व्यय होगा। सभा ने इस संबध मे फिर श्रीमान् दरभगानरेश को लिखा था, परतु अनेक कारणों से उस समय कोश का कार्य आरभ नही हो सका। अतः सभा ने निश्चय किया कि जबतक कोश के लिये यथेष्ट धन एकत्र न हो तथा दूसरे आवश्यक प्रबध न हो जांय तबतक उसके लिये आवश्यक सामग्री ही एकत्र की जाय। तदनुसार उसने सामग्री एकत्र करने का कार्य भी आरभ कर दिया।

सन् १९०४ मे सभा को पता लगा कि कलकत्ते की हिंदी साहित्य सभा ने हिंदी भाषा का एक बहुत बडा कोश बनाना निश्चित किया है और उसने इस सबध मे कुछ कार्य भी आरभ कर दिया है। सभा का उद्देश्य केवल यही था कि हिंदी मे एक बहुत बडा कोश तैयार हो जाय, स्वय उसका श्रेय प्राप्त करने का उसका कोई विचार नही था। अत सभा ने जब देखा कि कलकत्ते की साहित्य सभा कोश बनवाने का प्रयत्न कर रही है, तब उसने बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक निश्चय किया कि अपनी सारी सचित सामग्री साहित्य सभा को दे दी जाय और यथासाध्य सब प्रकार से उसकी सहायता की जाय। प्राय तीन वर्ष तक सभा इसी आसरे मे थी कि साहित्य सभा कोश तैयार करे। परतु कोश तैयार करने का जो यश स्वयं प्राप्त करने की उसकी कोई विशेष इच्छा न थी, विधाता वह यश उसी को देना चाहता था। जब सभा ने देखा कि साहित्य-सभा की ओर से कोश की तैयारी का कोई प्रबंध नहीं हो रहा है, तब उसने इस काम को स्वय अपने ही हाथ में लेना निश्चित किया। जब सभा के सचालको ने आपस मे इस विषय की सब वार्ते पक्की कर लीं, तब २३ अगस्त, सन् १९०७ को सभा के परम हितैषी और उत्साही सदस्य श्रीयुक्त रेवरेंड ई० ग्रीव्स ने सभा की प्रबधकारिणी समिति मे यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि हिंदी के एक वृहत् और सर्वांगपूर्ण कोश बनाने का भार सभा अपने ऊपर ले, और साथ ही यह भी बतलाया कि यह कार्य किस प्रणाली से किया जाय। सभा ने मि० ग्रीव्स के प्रस्ताव पर विचार करके इस विषय मे उचित परामर्श देने के लिये निम्नलिखित सज्जनो की एक उपसमिति नियत कर दी—रेवरेंड ई० ग्रीव्स, महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी, पडित रामनारायण मिश्र बी० ए०, बाबू गोविंददास, बाबू इद्रनारायण सिंह एम० ए०, छोटेलाल, मुशी सकटाप्रसाद, पडित माधवप्रसाद पाठक और मैं।

इस उपसमिति के कई अधिवेशन हुए जिनमे सब बातो पर पूरा विचार किया गया। अत मे ९ नवबर, १९०७ को इस उपसमिति ने अपनी रिपोर्ट दी, जिसमे सभा को परामर्श दिया गया कि सभा हिंदी-भाषा के दो बडे कोश बनवावे जिनमे से एक मे तो हिंदी शब्दों के अर्थ हिंदी मे ही रहें और दूसरे मे हिंदी शब्दो के अर्थ अँगरेजी में हों। आजकल हिंदी भाषा में गद्य तथा पद्य मे जितने शब्द प्रचलित हैं उन सबका इन कोशों मे समावेश हो, उनकी व्युत्पत्ति दी जाय और उनके भिन्न भिन्न अर्थ यथासाध्य उदाहरणों सहित दिए जायें। उपसमिति ने हिंदी भाषा के गद्य तथा पद्य के प्राय दो सौ अच्छे अच्छे ग्रथों की एक सूची भी तैयार कर दी थी और कहा था कि इनमें से सब शब्दों का अर्थसहित सग्रह कर लिया जाय, कोश की तैयारी का प्रबंध करने के लिये उसकी एक स्थायी समिति बना दी जाय और कोश के सपादन तथा उसकी छपाई आदि का सब प्रबध करने के लिये एक सपादक नियुक्त कर दिया जाय।

समिति ने यह भी निश्चित किया कि कोश के सबध में आवश्यक प्रबध करने के लिये महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी, लाला छोटेलाल, रेवरेंड ई० ग्रीव्स, बाबू इद्रनारायण सिंह एम० ए०, बाबू गोविंददास, पडित माधवप्रसाद पाठक और पडित रामनारायण मिश्र बी० ए० की प्रबधकर्तृ समिति बना दी जाय, और उसके मत्रित्व का भार मुझे दिया जाय। समिति का प्रस्ताव था कि उस प्रबधकर्तृ समिति को अधिकार दिया जाय कि वह आवश्यकतानुसार अन्य सज्जनो को भी अपने मे समिलित कर ले। इस कोश के सबंध मे प्रबधकर्तृ समिति को समति और सहायता देने के लिये एक और बडी समिति बनाई जाने की समति भी दी गई जिसमे हिंदी के समस्त बडे बडे विद्वान् और प्रेमी समिलित हो। उस समय यह अनुमान किया था कि इस काम मे लगभग ३००००) का व्यय होगा जिसके लिये सभा को सरकार तथा राजा महाराजाओ से प्रार्थना करने का परामर्श दिया गया।

सभा की प्रबधकारिणी समिति ने उपसमिति की ये बातें मान लीं और तदनुसार कार्य भी आरभ कर दिया। शब्दसग्रह के लिये, उपसमिति ने जो पुस्तकें बतलाई थीं, उनमे से शब्दसग्रह का कार्य भी आरभ हो गया और धन के लिये अपील भी हुई, जिससे पहले ही वर्ष २३३२) के वचन मिले, जिसमें से १९०२) नगद भी सभा को प्राप्त हो गए। इसमें से सबसे पहले १०००) स्वर्गीय माननीय सर सुदरलाल सी० आई० ई० ने भेजे थे। सत्य तो यह है कि यदि प्रार्थना करते ही उक्त महानुभाव तुरत १०००) न भेज देते तो सभा का कभी इतना उत्साह न बढ़ता और बहुत सभव था कि कोश का काम और कुछ समय के लिये टल जाता। परतु सर सुदरलाल से १०००) पाते ही सभा का उत्साह बहुत अधिक बढ़ गया और उसने और भी तत्परता से कार्य करना आरभ किया। उसी समय श्रीमान् महाराज ग्वालियर ने भी १०००) देने

को वचन दिया। इसके अतिरिक्त और भी अनेक छोटी मोटी रकमो के वचन मिले। तात्पर्य यह कि सभा को पूर्ण विश्वास हो गया कि अब कोश तैयार हो जायेगा।

इस कोश के सहायतार्थ सभा को समय समय पर निम्नलिखित गवर्नमेंटो, महाराजो तथा अन्य सज्जनों से सहायता प्राप्त हुई—

सयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंट	१३०००)
भारत गवर्नमेंट	५०००)
मध्यप्रदेश की गवर्नमेंट	१०००)
श्रीमान् महाराज साहब नेपाल	२०००)
,, स्वर्गवासी महाराज साहब रीवाँ	१८००)
,, महाराज साहब छत्रपुर	१५००)
,, महाराज साहब बीकानेर	१५००)
,, महाराजाधिराज वर्दवान	१५००)
,, महाराज साहब अलवर	१०००)
,, स्वर्गवासी महाराज साहब ग्वालियर	१०००)
,, स्वर्गवासी महाराजा साहब काश्मीर	१०००)
,,महाराज साहब काशी	१०००)
डाक्टर सर सुदरलाल	१०००)
स्वर्गवासी राजा साहब भिनगा	१०००)
कुंवर राजेंद्रसिंह	१०००)
श्रीमान् महाराज साहब भावनगर	५००)
,, महाराज साहब इदौर	५००)
,, स्वर्गवासी राजा साहब गिद्धौर	५००)
डाक्टर सर जार्ज ग्रियर्सन	१५०)

इनके अतिरिक्त और बहुत से महानुभावो से १००) अथवा उससे कम की सहायता प्राप्त हुई।

शब्दसग्रह करने के लिये जो पुस्तकें चुनी गई थी, उन पुस्तको को सभासदो मे बाँटकर उनसे शब्दसग्रह कराने का सभा का विचार था। बहुत से उत्साही सभासदो ने पुस्तकें तो मँगवा ली पर कार्य कुछ भी न किया। बहुतो ने तो महीनो पुस्तकें अपने पास रखकर अत मे ज्यो की त्यों लौटा दीं और कुछ लोगो ने पुस्तकें भी हजम कर ली। थोडे से लोगो ने शब्दसग्रह का काम किया था, पर उनमे भी सतोषजनक काम इने गिने सज्जनो का ही था। इसमे व्यर्थ बहुत सा समय नष्ट हो गया, पर धन की यथेष्ट सहायता सभा को मिलती जाती थी, अत दूसरे वर्ष सभा ने विवश होकर निश्चित किया कि शब्दसग्रह का काम वेतन देकर कुछ लोगों से कराया जाय। तदनुसार प्राय १६-१७ आदमी शब्दसग्रह के काम के लिये नियुक्त कर दिए गए और एक निश्चित प्रणाली पर शब्दसग्रह का काम होने लगा।

आरभ मे कोश के सहायक सपादक पडित बालकृष्ण भट्ट, पडित रामचद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन और बाबू अमीरसिंह के अतिरिक्त बाबू जगन्मोहन वर्मा, बाबू रामचद्र वर्मा पडित वासुदेव मिश्र, पडित रामवचनेश मिश्र, पडित व्रजभूषण ओझा, श्रीयुत वेणी कवि आदि अनेक सज्जन भी इस शब्दसग्रह के काम मे समिलित थे। शब्दसग्रह के लिये सभा केवल पुस्तकों पर ही निर्भर नही रही। कोश मे पुस्तको के शब्दों के अतिरिक्त और भी अनेक ऐसे शब्दो की आवश्यकता थी जो नित्य की बोलचाल के, पारिभाषिक अथवा ऐसे विषयों के शब्द थे जिनपर हिंदी मे पुस्तकें नहीं थी। अतः सभा ने मुंशी रामलगनलाल नामक एक सज्जन को शहर मे घूम घूमकर अहीरो, कहारो, लोहारो, सोनारों, चमारों, तमोलियो, तेलियों, जोलाहों, भालू और बदर नचानेवालो, कूचेबदो, धुनियो, गाडीवानो, कुश्तीबाजों, कसेरो, राजगीरो, छापेखानेवालों, महाजनो, बजाजो, दलालो, जुआरियो, महावतो, पसारियो, साईसो आदि के पारिभाषिक शब्द तथा गहनो, कपडो, अनाजो, पेडो, बरतनो, देवताओ, गृहस्थी की चीजो, पकवानो, मिठाइयो, विवाह आदि की रस्मो, तरकारियों, सागो, फलो, घासो, खेलो और उनके साधनो, आदि आदि के नाम एकत्र करने के लिये नियुक्त किया। पुस्तकों के शब्दसग्रह के साथ साथ यह काम भी प्राय दो वर्ष तक चलता रहा। इस सबध मे यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि मुंशी रामलगनलाल का इस सबध का शब्दसग्रह बहुत सतोषजनक था। इसके अतिरिक्त सभा ने बाबू रामचद्र वर्मा को समस्त भारत के पशुओ, पक्षियो, मछलियो, फूलो और पेडो आदि के नाम एकत्र करने के लिय कलकत्ते भेजा था जिन्होने प्राय. ढाई मास तक वहाँ रहकर इपीरियल लाइब्रेरी से 'फ्लोरा और फॉना आफ बृटिश इडिया सीरिज' की समस्त पुस्तको मे से नाम और विवरण आदि एकत्र किए थे। हिंदी भाषा मे व्यवहृत होनेवाले अँगरेजी, फारसी, अरबी तथा तुर्की आदि भाषाओं के शब्दो, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियो की जीवनियो, प्राचीन स्थानो तथा कहावतो आदि के सग्रह का भी बहुत अच्छा प्रबध किया गया था। पुरानी हिंदी तथा डिंगल और बुदेलखडी आदि भाषाओ के शब्दो का भी अच्छा सग्रह किया गया था। इसमे सभा का मुख्य उद्देश्य यह था कि जहाँ तक हो सके, कोश मे हिंदी भाषा मे व्यवहृत होने या हो सकनेवाले अधिक से अधिक शब्द आ जायें और यथासाध्य कोई आवश्यक बात या शब्द छूटने न पावे। इसी विचार से सभा ने अँगरेजी, फारसी, अरबी और तुर्की आदि भाषाओ के शब्दो, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियो और स्थानो के नामो आदि की एक बडी सूची भी प्रकाशित कराके घटाने बढाने के लिये हिंदी के बडे बडे विद्वानो के पास भेजी थी।

दो ही वर्ष मे सभा का अनेक बडे बड़े राजा महाराजाओ तथा प्रातीय और भारतीय सरकारो से कोश के सहायतार्थ बडी बडी रकमे भी मिलीं, जिससे सभा तथा हिंदीप्रेमियो को कोश के तैयार होने मे किसी प्रकार का सदेह नही रह गया और सभा बडे उत्साह से कोश का काम कराने लगी। आरभ मे सभा ने यह निश्चित नही किया था कि कोश का सपादक कौन बनाया जाय, पर दूसरे वर्ष सभा ने मुझे कोश का प्रधान सपादक बनाना निश्चित किया। मैंने भी सभा की आज्ञा शिरोधार्य करके यह भार अपने ऊपर ले लिया।

सन् १९१० के आरभ मे शब्दसग्रह का कार्य समाप्त हो गया। जिन स्लिपो पर शब्द लिखे गए थे, उनकी सख्या अनुमानत १० लाख थी, जिनमे से आशा की गई थी कि प्राय १ लाख शब्द निकलेंगे, और प्राय यही बात अत मे हुई भी। जब शब्दसग्रह का काम हो चुका, तब स्लिपें अक्षरक्रम से लगाई जाने लगी। पहले वे स्वरो और व्यजनो के विचार से अलग अलग की गईं और तब स्वरो के प्रत्येक अक्षर तथा व्यजनो के प्रत्येक वर्ग की स्लिपें अलग अलग की गईं। जब स्वरो की स्लिपें अक्षरक्रम से लग गईं, तब व्यजनो के वर्गों के अक्षर अलग अलग किए गए और प्रत्येक अक्षर की स्लिपें क्रम से लगाई गई। यह कार्य प्राय. एक वर्ष तक चलता रहा।

जिस समय कोश के सपादन का भार मुझे दिया गया था, उसी

समय सभा ने यह निश्चित कर दिया था कि पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित रामचंद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन तथा बाबू अमीर सिंह कोश के सहायक संपादक बनाए जायँ और ये लोग कोश के संपादन में मेरी सहायता करें। अक्टूबर, १९०९ में मेरी नियुक्ति काश्मीर राज्य में हो गई जिसके कारण मुझे काशी छोड़कर काश्मीर जाना आवश्यक हुआ। उस समय मैंने सभा से प्रार्थना की कि इतनी दूर से कोश का संपादन सुचारु रूप से न हो सकेगा। अतः सभा मेरे स्थान पर किसी और सज्जन को कोश का संपादक नियुक्त करे। परंतु सभा ने यही निश्चय किया कि कोश का कार्यालय भी मेरे साथ आगे चलकर काश्मीर भेज दिया जाय और वहीं कोश का संपादन हो। उस समय तक स्लिपें अक्षरक्रम से लग चुकी थीं और संपादन का कार्य अच्छी तरह आरंभ हो सकता था। अतः १५ मार्च, १९१० को काशी में कोश का कार्यालय बंद कर दिया गया और निश्चय हुआ कि चारों सहायक संपादक जंबू पहुँचकर १ अप्रैल, १९१० से वहीं कोश के संपादन का कार्य आरंभ करें। तदनुसार पंडित रामचंद्र शुक्ल और बाबू अमीर सिंह तो यथासमय जंबू पहुँच गए, पर पंडित बालकृष्ण भट्ट तथा लाला भगवानदीन ने एक एक मास का समय माँगा। दुर्भाग्यवश बाबू अमीर सिंह के जंबू पहुँचने के चार पाँच दिन बाद ही काशी में उनकी स्त्री का देहांत हो गया, जिससे उन्हें थोड़े दिनों के लिये फिर काशी लौट आना पड़ा। उस बीच में अकेले पंडित रामचंद्र शुक्ल ही संपादन कार्य करते रहे। मई के आरंभ में पंडित बालकृष्ण भट्ट और बाबू अमीर सिंह जंबू पहुँचे और संपादनकार्य करने लगे। पर लाला भगवानदीन कई बार प्रतिज्ञा करके भी जंबू न पहुँच सके, अतः सहायक संपादक के पद से उनका संबंध छूट गया। शेष तीनों सहायक संपादक महाशय उत्तमतापूर्वक संपादन कार्य करते रहे। कोश के विषय में संमति लेने के लिये आरंभ में जो कोश कमेटी बनी थी, वह १ मई, १९१० को अनावश्यक समझकर तोड़ दी गई।

कोश का संपादन आरंभ हो चुका था और शीघ्र ही उसकी छपाई का प्रबंध करना आवश्यक था, अतः सभा ने कई बड़े बड़े प्रेसों से कोश की छपाई के नमूने मँगाए। अंत में प्रयाग के सुप्रसिद्ध इंडियन प्रेस को कोश की छपाई का भार दिया गया। इस कार्य के लिये आरंभिक प्रबंध करने के लिये उक्त प्रेस को २०००) पेशगी दिए गए और लिखापढ़ी करके छपाई के संबंध में सब बातें तै कर ली गईं।

अप्रैल, १९१० से सितंबर, १९१० तक तो जंबू में कोश के संपादन का कार्य बहुत उत्तमतापूर्वक और निर्विघ्न होता रहा, पर पीछे इसमें एक विघ्न पड़ा। पंडित बालकृष्ण भट्ट जंबू में दुर्घटनावश सीढ़ी पर से गिर पड़े और उनकी एक टाँग टूट गई, जिसके कारण अक्टूबर, १९१० में उन्हें छुट्टी लेकर प्रयाग चले आना पड़ा। नवंबर में बाबू अमीर सिंह भी बीमार हो जाने के कारण छुट्टी लेकर काशी चले आए और दो मास तक यहीं बीमार पड़े रहे। संपादन कार्य करने के लिये जंबू में फिर अकेले पंडित रामचंद्र शुक्ल बच रहे। जब अनेक प्रयत्न करने पर भी जंबू में सहायक संपादकों की संख्या पूरी न हो सकी, तब विवश होकर १५ दिसंबर, १९१० को कोश का कार्यालय जंबू से काशी भेज दिया गया। कोश विभाग के काशी आ जाने पर जनवरी, १९११ से बाबू अमीर सिंह भी स्वस्थ होकर उसमें संमिलित हो गए और बाबू जगन्मोहन वर्मा भी सहायक संपादक के पदपर नियुक्त कर दिए गए। दूसरे मास फरवरी में बाबू गंगाप्रसाद गुप्त कोश के सहायक संपादक बनाए गए। जंबू में तो पहले सब सहायक संपादक अलग अलग शब्दों का संपादन करते थे और तब सब लोग एक साथ मिलकर संपादित शब्दों को दोहराते थे। परंतु बाबू गंगाप्रसाद गुप्त के आ जाने पर दो दो सहायक संपादक अलग अलग मिलकर संपादन करने लगे। नवंबर, १९११ में जब बाबू गंगाप्रसाद गुप्त ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया, तब पंडित बालकृष्ण भट्ट पुनः प्रयाग से बुला लिए गए और जनवरी, १९१२ में लाला भगवानदीन भी पुनः इस विभाग में संमिलित कर लिए गए तथा मार्च, १९१२ से सब सहायक संपादक संपादन के कार्य के लिये तीन भागों में विभक्त कर दिए गए। इस प्रकार कार्य की गति पहले की अपेक्षा घट तो गई, पर फिर भी उसमें उतनी वृद्धि नहीं हुई जितनी वांछित थी। जब मई, सन् १९१० में 'अ' 'आ' 'इ', और 'ई' का संपादन हो चुका, तब उसकी कापी प्रेस में भेज दी गई और उसकी छपाई में हाथ लगा दिया गया। उस समय तक मैं भी काश्मीर से लौटकर काशी आ गया था, जिससे कार्यनिरीक्षण और व्यवस्था का अधिक सुभीता हो गया।

सन् १९१३ में संपादनशैली में कुछ और परिवर्तन किया गया। पंडित बालकृष्ण भट्ट, बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन तथा बाबू अमीर सिंह अलग अलग संपादन कार्य पर नियुक्त कर दिए गए। सब संपादकों की लेखशैली आदि एक ही प्रकार की नहीं हो सकती थी, अतः सबकी संपादित स्लिपों को दोहराकर एक मेल करने के कार्य पर पंडित रामचंद्र शुक्ल नियुक्त किए गए और उनकी सहायता के लिये बाबू रामचंद्र वर्मा रखे गए। उस समय यह व्यवस्था थी कि दिनभर तो सब सहायक संपादक अलग अलग संपादन कार्य किया करते थे और पंडित रामचंद्र शुक्ल पहले की संपादित की हुई स्लिपों को दोहराया करते थे, और संध्या को चार बजे से पाँच बजे तक सब संपादक मिलकर एक साथ बैठते थे और पंडित रामचंद्र शुक्ल की दुहराई हुई स्लिपों को सुनते तथा आवश्यकता पड़ने पर उसमें परिवर्तन आदि करते थे। इस प्रकार कार्य भी अधिक होता था और प्रत्येक शब्द के संबंध में प्रत्येक सहायक संपादक की संमति भी मिल जाती थी।

मई, १९१२ में छपाई का कार्य आरंभ हुआ था और एक ही वर्ष के अंदर ९६—९६ पृष्ठों की चार संख्याएँ छपकर प्रकाशित हो गईं, जिनमें ८६९६ शब्द थे। सर्वसाधारण में इन प्रकाशित संख्याओं का बहुत अच्छा आदर हुआ। सर जार्ज ग्रियर्सन, डाक्टर रुडाल्फ हार्नली प्रोफेसर सिलवान लेवी, रेवरेंड ई० ग्रीव्स, पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी, मिस्टर रमेशचंद्र दत्त, पंडित श्यामविहारी मिश्र आदि अनेक बड़े बड़े विद्वानों, पंडितों तथा हिंदीप्रेमियों ने प्रकाशित अंकों की बहुत कुछ प्रशंसा की और अँगरेजी दैनिक लीडर तथा हिंदी साप्ताहिक बंगवासी आदि समाचारपत्रों ने भी समय समय पर अच्छी प्रशंसात्मक आलोचना की। ग्राहकसंख्या भी दिन पर दिन बहुत ही संतोषजनक रूप में बढ़ने लगी।

इस अवसर पर एक बात और कह देना आवश्यक जान पड़ता है। जिस समय मैं पहले काश्मीर जाने लगा था, उस समय पहले यही निश्चय हुआ था कि कोशविभाग काशी में ही रहे और मेरी

अनुपस्थिति मे स्वर्गवासी पडित केशवदेव शास्त्री कोशविभाग का निरीक्षण करें। परतु मेरी अनुपस्थिति मे पडित केशवदेव शास्त्री तथा कोश के सहायक सपादकों में कुछ अनवन हो गई, जिसने आगे चलकर और भी विलक्षण रूप धारण किया। उस समय सपादक लोग प्रवधकारिणी समिति के अनेक सदस्यो तथा कर्मचारियो से वहुत रुष्ट और असतुष्ट हो गए थे। कई मास तक यह झगडा भीषण रूप से चलता रहा और अनेक समाचारपत्रो मे उसके सवध मे कडी टिप्पणियाँ निकलती रही। सभा के कुछ सदस्य तथा वाहरी सज्जन कोश की व्यवस्था और कार्यप्रणाली आदि पर भी अनेक प्रकार के आक्षेप करने लगे, और कुछ सज्जनो ने तो छिपे छिपे ही यहाँ तक उद्योग किया कि अवतक कोश मे जो व्यय हुआ है, वह सव सभा को देकर कोश की सारी सामग्री उससे ले ली जाय और स्वतत्र रूप से उसके सपादन तथा प्रकाशन आदि की व्यवस्था की जाय। यह विचार यहाँ तक पक्का हो गया था कि एक स्वनामधन्य हिंदी विद्वान् से सपादक होने के लिये पत्रव्यवहार तक किया था। साथ ही मुझे उस काम से विरत करने के लिये मुझपर प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न रीति से अनेक प्रकार के अनुचित आक्षेप तथा दोपारोपण किए गए थे। इस आदोलन मे व्यक्तिगत भाव अधिक था। पर थोडे ही दिनो मे यह अप्रिय और हानिकारक आदोलन ठढा पड गया और फिर सव कार्य सुचारु रूप से पूर्ववत् चलने लगा। 'श्रेयासि वहुविघ्नानि' के अनुसार इस वडे काम मे भी समय समय पर अनेक विघ्न उपस्थित हुए पर ईश्वर की कृपा से उनके कारण इस कार्य मे कुछ हानि नही पहुँची।

सन् १९१३ मे कोश का काम अच्छी तरह चल निकला। वह वरावर नियमित रूप से सपादित होने लगा और सख्याएँ वरावर छपकर प्रकाशित होने लगी। वीच वीच मे आवश्यकतानुसार सपादनकार्य में कुछ परिवर्तन होता रहा। इसी वीच मे पडित वालकृष्ण भट्ट, जो इस वृद्धावस्था मे भी वडे उत्साह के साथ कोशसपादन के कार्य मे लगे हुए थे, अपनी दिन पर दिन वढती हुई अशक्तता के कारण अभाग्यवश नववर, १९१३ में कोश के कार्य से अलग होकर प्रयाग चले गए और वही थोडे दिनो वाद उनका देहात हो गया। उस समय वावू रामचद्र वर्मा उनके स्थान पर कोश के सहायक वना दिए गए और कार्यक्रम मे फिर कुछ परिवर्तन की आवश्यकता पडी। निश्चित हुआ कि वावू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन तथा वावू अमीरसिह आगे के शव्दो का अलग अलग सपादन करें और पडित रामचद्र शुक्ल तथा वावू रामचद्र वर्मा सपादित किए हुए शव्दो को अलग अलग दोहराकर एक मेल करें। इस क्रम मे यह सुभीता हुआ कि आगे का सपादन भी अच्छी तरह होने लगा और सपादित शव्द भी ठीक तरह से दोहराए जाने लगे, और दोनों ही कार्यों की गति मे भी यथेष्ट वृद्धि हो गई। इस प्रकार १९१७ तक वरावर काम चलता रहा और कोश की १५ सख्याएँ छपकर प्रकाशित हो गईं तथा ग्राहकसख्या मे वहुत कुछ वृद्धि हो गई। इस वीच मे और कोई उल्लेख योग्य वात नहीं हुई।

सन् १९१८ के आरभ में तीन सहायक सपादको ने 'ला' तक संपादन कर डाला और दो सहायक सपादकों ने 'वि' तक के शव्द दोहरा डाले। उस समय कई महीनो से कोश की वहुत कापी तैयार रहने पर भी अनेक कारणो से उसका कोई अंक छपकर प्रकाशित न हो सका जिसके कारण आय रुकी हुई थी। कोश विभाग का व्यय वहुत अधिक था और कोश के सपादन का कार्य प्राय समाप्ति पर था अतः कोश विभाग का व्यय कम करने की इच्छा से विचार हुआ कि अप्रैल, १९१८ से कोश का व्यय कुछ घटा दिया जाय। तदनुसार वावू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन और वावू अमीरसिह त्यागपत्र देकर अपने पद से अलग हो गए। कोश विभाग मे केवल दो सहायक सपादक—पडित रामचद्र शुक्ल और वावू रामचद्र वर्मा—तथा स्लिपो का क्रम लगानेवाले और साफ कापी लिखनेवाले एक लेखक पडित व्रजभूषण ओझा रह गए। इस समय आगे के शव्दो का सपादन रोक दिया गया और केवल पुराने सपादित शव्द ही दोहराए जाने लगे। पर जव आगे चलकर दोहराने योग्य स्लिपें प्राय समाप्त हो चली, और आगे नए शव्दों के सपादन की आवश्यकता प्रतीत हुई तव सपादनकार्य के लिये वावू कालिकाप्रसाद नियुक्त किए गए जो कई वर्षों तक अच्छा काम करके और अत में त्यागपत्र देकर अन्यत्र चले गए। परतु स्लिपों को दोहराने का कार्य पूर्ववत् प्रचलित रहा।

सन् १९२४ मे कोश के सवध मे एक हानिकारक दुर्घटना हो गई थी। आरभ मे शव्दसग्रह की जो स्लिपें तैयार हुई थी, उनके २२ वडल कोश कार्यालय से चोरी चले गए। उनमे 'विव्वोक' से 'श' तक की और 'शय' से 'सही' तक की स्लिपें थी। इसमें कुछ दोहराई हुई पुरानी स्लिपें भी थी जो छप चुकी थी। इन स्लिपो के निकल जाने से तो कोई विशेष हानि नही हुई, क्योंकि सव छप चुकी थी। परतु शव्द-सग्रहवाली स्लिपो के चोरी जाने से अवश्य ही वहुत वडी हानि हुई। इसके स्थान पर फिर कोशो आदि से शव्द एकत्र करने पडे। यह शव्द-सग्रह अपेक्षाकृत थोडा और अधूरा हुआ और इसमे स्वभावत ठेठ हिंदी या कविता आदि के उतने शव्द नही आ सके, जितने आने चाहिए थे, और न प्राचीन काव्यग्रथों आदि के उदाहरण ही समिलित हुए। फिर भी जहाँ तक हो सका, इस त्रुटि की पूर्ति करने का उद्योग किया गया और परिशिष्ट मे वहुत से छूटे हुए शव्द आ भी गए हैं।

सन् १९२५ मे कार्य शीघ्र समाप्त करने के लिये कोश विभाग मे दो नए सहायक अस्थायी रूप से नियुक्त किए गए—एक तो कोश के भूतपूर्व सपादक वावू जगन्मोहन वर्मा के सुपुत्र वावू सत्यजीवन वर्मा एम० ए० और दूसरे पडित अयोध्यानाथ शर्मा, एम० ए०। यद्यपि ये सज्जन कोश विभाग मे प्राय एक ही वर्ष रहे थे, फिर भी इनसे कोश का कार्य शीघ्र समाप्त करने मे और विशेपत व, श, प तथा स के शव्दो के सपादन मे अच्छी सहायता मिली। जव ये दोनो सज्जन सभा से सवध त्यागकर चले गए तव सपादन कार्य के लिये श्रीयुत् पडित वासुदेव मिश्र, जो आरभ मे भी कोशविभाग मे शव्दसग्रह का काम कर चुके थे और जो इधर वहुत दिनो तक कलकत्ते के दैनिक भारतमित्र तथा साप्ताहिक श्रीकृष्णसदेश के संपादक रह चुके थे, कोश विभाग में सहायक सपादक के पद पर नियुक्त कर लिए गए। इनकी नियुक्ति से सपादन कार्य वहुत ही सुगम हो गया और वह वहुत शीघ्रता से अग्रसर होने लगा। अत मे इस प्रकार सन् १९२७ में कोश का सपादन आदि समाप्त हुआ।

इतने बड़े शब्दकोश मे बहुत से शब्दो का अनेक कारणों से छूट जाना बहुत ही स्वाभाविक था। एक तो यो ही सब शब्दो का सग्रह करना बडा कठिन काम है, जिस पर एक जीवत भाषा मे नए शब्दो का आगम निरतर होता रहता है। यदि किसी समय समस्त शब्दो का सग्रह किसी उपाय से कर भी लिया जाय और उनके अर्थ आदि भी लिख लिए जायँ, तथापि जबतक यह सग्रह छपकर प्रकाशित हो सकेगा तबतक और नए शब्द भाषा मे समिलित हो जायँगे। इस विचार से तो किसी जीवित भाषा का शब्दकोश कभी भी पूर्ण नही माना जा सकता। इन कठिनाइयो के अतिरिक्त यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिए कि हिंदी भाषा के इतने बडे कोश को तैयार करने का इतना बड़ा आयोजन यह पहला ही हुआ है। अतएव इसमे अनेक त्रुटियो का रह जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। फिर भी इस कोश की समाप्ति मे प्राय २० वर्ष लगे। इस बीच मे समय समय पर बहुत से ऐसे नए शब्दो का पता लगता था जो शब्दसागर मे नही मिलते थे। इसके अतिरिक्त देश की राजनीतिक प्रगति आदि के कारण बहुत से नए शब्द भी प्रचलित हो गए थे जो पहले किसी प्रकार सगृहीत ही नहीं हो सकते थे। साथ ही कुछ शब्द ऐसे भी थे जो शब्दसागर मे छप तो गए थे, परतु उनके कुछ अर्थ पीछे से मालूम हुए थे। अत यह आवश्यक समझा गया कि इन छूटे हुए या नवप्रचलित शब्दो और छूटे हुए अर्थों का अलग संग्रह करके परिशिष्ट रूप मे दे दिया जाय। तदनुसार प्राय एक वर्ष के परिश्रम में ये शब्द और अर्थ भी प्रस्तुत करके परिशिष्ट रूप मे दे दिए गए हैं। आजकल समाचारपत्रों आदि या बोलचाल मे जो बहुत से राजनीतिक शब्द प्रचलित हो गए हैं, वे भी इसमे दे दिए गए हैं। साराश यह कि इसके सपादको ने अपनी ओर से कोई बात इस कोश को सर्वांगपूर्ण बनाने मे उठा नहीं रखी है। इसमे जो दोष, अभाव या त्रुटियाँ हैं उनका ज्ञान जितना इसके सपादको को है उतना कदाचित् दूसरे किसी को होना कठिन है, पर ये बातें असावधानी से अथवा जान बूझकर नहीं होने पाई हैं। अनुभव भी मनुष्य को बहुत कुछ सिखाता है। इसके सपादको ने भी इस कार्य को करके बहुत कुछ सीखा है और वे अपनी कृति के अभावों से पूर्णतया अभिज्ञ हैं।

कदाचित् यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि भारतवर्ष की किसी वर्तमान देशभाषा मे उसके एक बृहत् कोश के तैयार कराने का इतना बडा और व्यवस्थित आयोजन दूसरा अबतक नही हुआ है। जिस ढग पर यह कोश प्रस्तुत करने का विचार किया गया था, उसके लिये बहुत अधिक परिश्रम तथा विचारपूर्वक कार्य करने की आवश्यकता थी। साथ ही इस बात की भी बहुत बड़ी आवश्यकता थी कि जो सामग्री एकत्र की गई है उसका किस ढग से उपयोग किया जाय और भिन्न भिन्न भावो के सूचक अर्थ आदि किस प्रकार दिए जायँ क्योंकि अभी तक हिंदी, उर्दू, बँगला, मराठी या गुजराती आदि किसी देशीभाषा मे आधुनिक वैज्ञानिक ढग पर कोई शब्दकोश प्रस्तुत नही हुआ था। अबतक जितने कोश बने थे, उन सबमे वह पुराना ढग काम मे लाया गया था और एक शब्द के अनेक पर्याय ही एकत्र करके रख दिए गए थे। किसी शब्द का ठीक ठीक भाव बतलाने का कोई प्रयत्न नही किया गया था। परतु विचारवान् पाठक समझ सकते हैं कि केवल पर्याय से ही किसी शब्द का ठीक ठीक भाव या अभिप्राय समझ में नही आ सकता, और कभी कभी तो कोई पर्याय अर्थ के सबध में जिज्ञासु को भी और भ्रम मे डाल देता है। इसी लिये शब्दसागर के सपादको को एक ऐसे नए क्षेत्र मे काम करना पडा था जिसमे अभी तक कोई काम हुआ ही नही था। वे प्रत्येक शब्द को लेते थे, उसकी व्युत्पत्ति ढूंढते थे, और तब एक या दो वाक्यो मे उसका भाव स्पष्ट करते थे, और यदि वह शब्द वस्तुवाचक होता था, तो उस वस्तु का यथासाध्य पूरा पूरा विवरण देते थे, और तब उसके कुछ उपयुक्त पर्याय देते थे। इसके उपरात उस शब्द से प्रकट होनेवाले अन्यान्य भाव या अर्थ, उत्तरोत्तर विकास के क्रम से, देते थे। उन्हें इस बात का बहुत ध्यान रखना पडता था कि एक अर्थ का सूचक पर्याय दूसरे अर्थ के अतर्गत न चला जाय। जहाँ आवश्यकता होती थी, वहाँ एक ही तरह के अर्थ देनेवाले दो शब्दो का अतर भी भली भाँति स्पष्ट कर दिया जाता था। उदाहरण के लिये 'टँगना' और 'लटकना' इन दोनो शब्दो को लीजिए। शब्दसागर मे इन दोनो के अर्थों का अतर इस प्रकार स्पष्ट किया गया है--'टँगना' और 'लटकना' इन दोनो के मूल भाव मे अतर है। टँगना' शब्द मे ऊँचे आधार पर टिकने या अड़ने का भाव प्रधान है और 'लटकना' शब्द मे ऊपर से नीचे तक फैले रहने या हिलने डोलने का।'

इसी प्रकार दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक, वास्तुविद्या आदि अनेक विषयो के पारिभाषिक शब्दों के भी पूरे पूरे विवरण दिए गए हैं। प्राचीन हिंदी काव्यो मे मिलनेवाले ऐसे बहुत से शब्द इसमे आए हैं जो पहले कभी किसी कोश मे नही आए थे। यही कारण है कि हिंदीप्रेमियों तथा पाठको ने आरभ में ही इसे एक बहुमूल्य रत्न की भाँति अपनाया और इसका आदर किया। प्राचीन हिंदी काव्यो का पढना और पढाना, एक ऐसे कोश के अभाव मे, प्राय असभव था। इस कोश ने इसकी पूर्ति करके वह अभाव बिल्कुल दूर कर दिया। पर यहाँ यह भी निवेदन कर देना आवश्यक जान पडता है कि अब भी इसमें कुछ शब्द अवश्य इसलिये छूटे हुए होंगे कि हिंदी के अधिकाश छपे हुए काव्यो मे न तो पाठ ही शुद्ध मिलता है और न शब्दो के रूप ही शुद्ध मिलते हैं।

इन सब बातो से पाठको ने भली भाँति समझ लिया होगा कि इस कोश मे जो कुछ प्रयत्न किया गया है, बिल्कुल नए ढग का है। इस प्रयत्न मे इसके सपादकों को कहाँ तक सफलता हुई है। इसका निर्णय विद्वान् पाठक ही कर सकते हैं। परतु सपादको के लिये यही बात विशेष सतोष और आनद की है कि आरभ से अनेक बडे बडे विद्वानो ने जैसे, सर जार्ज ग्रियर्सन, डाक्टर हार्नली, प्रो० सिल्वन् लेवी, डा० गगानाथ झा आदि ने इसकी बहुत अधिक प्रशसा की है। इसकी उपयोगिता का यह एक बहुत बडा प्रमाण है। कदाचित् यहाँ पर यह कह देना भी अनुपयुक्त न होगा कि कुछ लोगो ने किसी किसी जाति अथवा व्यक्तिविषयक विवरण पर आपत्तियाँ की हैं। मुझे इस सबध में केवल इतना ही कहना है कि हमारा उद्देश्य किसी जाति को ऊँची या नीची बनाना न रहा है और न हो सकता। इस संबध मे न हम शास्त्रीय व्यवस्था देना चाहते थे और न उसके अधिकारी थे। जो सामग्री हमको मिल सकी उसके आधार पर हमने विवरण लिखे। उसमे भूल होना या कुछ छूट जाना कोई असभव बात नही है। इसी प्रकार जीवनी के सबध मे मतभेद या भूल हो सकती है। इसके कारण यदि किसी का हृदय दुखा हो या किसी प्रकार का क्षोभ हुआ हो तो उसके लिये हम दुखी हैं और क्षमा के प्रार्थी हैं। सशोधित संस्करण मे ये त्रुटियाँ दूर की जायँगी।

इस प्रकार यह वृहत् आयोजन २० वर्ष के निरतर उद्योग, परिश्रम और अध्यवसाय के अनतर समाप्त हुआ है। इसमे सब मिलाकर ९३,११५ शब्दो के अर्थ तथा विवरण दिए गए हैं और आरभ मे हिंदी भाषा और साहित्य के विकास का इतिहास भी दे दिया गया है। इस समस्त कार्य मे सभा का अवतक १०, २७, ३५।) ८३ व्यय हुआ है, जिसमे छपाई आदि का भी व्यय समिलित है। इस कोश की सर्वप्रियता और उपयोगिता का इससे बढकर और क्या प्रमाण (यदि किसी प्रमाण की आवश्यकता है) हो सकता है कि कोश समाप्त भी नही हुआ और इसके पहले ही इसके खडो को दो दो और तीन तीन बेर छापना पडा है और इस समय इस कोश के समस्त खड प्राप्य नही हैं। इसकी उपयोगिता का दूसरा वडा भारी प्रमाण यह है कि अभी यह ग्रथ समाप्त भी नही हुआ था, वरन् यो कहना चाहिए कि अभी इसका थोडा ही अश छपा था जब कि इससे चोरी करना आरभ हो गया था और यह काम अवतक चला जा रहा है, पर असल और नकल में जो भेद ससार मे होता है वही यहाँ भी दीख पडता है। यदि इस सवध मे कुछ कहा जा सकता है तो वह केवल इतना ही है कि इन महाशयो ने चोरी पकडे जाने के भय से इस कोश के नाम का उल्लेख करना भी अनुचित समझा है।

जो कुछ ऊपर लिखा जा चुका है, उससे स्पष्ट है कि इस कोश के कार्य मे आरभ से लेकर अत तक पडित रामचद्र शुक्ल का संबध रहा है, और उन्होंने इसके लिये जो कुछ किया है, वह विशेष रूप से उल्लिखित होने योग्य है। यदि यह कहा जाय कि शब्दसागर की उपयोगिता और सर्वांगपूर्णता का अधिकाश श्रेय पडित रामचद्र शुक्ल को प्राप्त है, तो इसमे कोई अत्युक्ति न होगी। एक प्रकार से यह उन्हीं के परिश्रम, विद्वत्ता और विचारशीलता का फल है। इतिहास, दर्शन, भाषाविज्ञान, व्याकरण, साहित्य आदि के सभी विषयो का समीचीन विवेचन प्राय उन्ही का किया हुआ है। यदि शुक्ल जी सरीखे विद्वान् की सहायता न प्राप्त होती तो केवल एक या दो सहायक सपादको की सहायता से यह कोश प्रस्तुत करना असभव ही होता। शब्दो को दोहराकर छपने के योग्य ठीक करने का भार पहले उन्ही पर था। फिर आगे चलकर थोडे दिनो वाद उनके सुयोग्य साथी बाबू रामचद्र वर्मा ने भी इस काम मे उनका पूरा पूरा हाथ बँटाया और इसलिये इस कोश को प्रस्तुत करनेवालो मे दूसरा मुख्य स्थान बाबू रामचद्र वर्मा को प्राप्त है। कोश के साथ उनका सवध भी प्राय आदि से अंत तक रहा है और उनके सहयोग तथा सहायता से कार्य को समाप्त करने मे बहुत अधिक सुगमता हुई है। आरभ मे उन्होंने इसके लिये सामग्री आदि एकत्र करने मे बहुत अधिक परिश्रम किया था, और तदुपरात वे इसके निर्माण और सपादित की हुई स्लिपो को दोहराने के काम मे पूर्ण अध्यवसाय और शक्ति से समिलित हुए। उनमे प्रत्येक बात को बहुत शीघ्र समझ लेने की अच्छी शक्ति है, भाषा पर उनका पूरा अधिकार है और वे ठीक तरह से काम करने का ढग जानते हैं, और उनके इन गुणो से इस कोश को प्रस्तुत करने मे बहुत अधिक सहायता मिली है। इसकी छपाई की व्यवस्था और प्रूफ आदि देखने का भार भी प्राय उन्ही पर था। इस प्रकार इस विशाल कार्य के सपादन का उन्हें भी पूरा पूरा श्रेय प्राप्त है और इसके लिये मैं उक्त दोनो सज्जनो को शुद्ध हृदय से धन्यवाद देता हूँ। इनके अति-रिक्त स्वर्गीय पडित बालकृष्ण भट्ट, स्वर्गीय बाबू जगन्मोहन वर्मा, स्वर्गीय बाबू अमीर सिंह तथा लाला भगवानदीन जी को भी मैं बिना धन्यवाद दिए नही रह सकता। उन्होने इस कोश के सपादन मे बहुत कुछ काम किया है और उनके उद्योग तथा परिश्रम से इस कोश के प्रस्तुत करने मे बहुत सहायता मिली है। जिन लोगो ने आरभ मे शब्दसग्रह आदि या और कामो में किसी प्रकार से मेरी सहायता की है वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य विद्वानो, सहायकों तथा दानी महानुभावो के प्रति भी मैं अपनी तथा सभा की कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होने किसी न किसी रूप मे इस कार्य को अग्रसर तथा सुसपन्न करने मे सहायता की है, यहाँ तक कि जिन्होंने इसकी त्रुटियो को दिखाया है उनके भी हम कृतज्ञ हैं, क्योंकि उनकी कृपा से हमे अधिक सचेत और सावधान होकर काम करना पड़ा है। ईश्वर की परम कृपा है कि अनेक विघ्न बाधाओ के समय समय पर उपस्थित होते हुए भी यह कार्य आज समाप्त हो गया। कदाचित् यह कहना कुछ अत्युक्ति न समझा जायगा कि इसकी समाप्ति पर जितना आनद और सतोष मुझको हुआ है उतना दूसरे किसी को होना असभव नही तो कठिन अवश्य है। काशी नागरीप्रचारिणी सभा अपने इस उद्योग की सफलता पर अपने को कृतकृत्य मानकर अभिमान कर सकती है।

काशी
३१-१ १९२९

श्यामसुदरदास
प्रधान सपादक



संपादकीय प्रस्तावना

निघटु: आर्यभाषा का प्रथम शब्दकोश (समाम्नाय)

वैदिक (विरल या क्लिष्ट) शब्दों के संग्रह को 'निघटु' कहते थे। 'यास्क' का निरुक्त वैदिक निघटु का भाष्य है। यास्क से पूर्ववर्ती निघटुओं में एकमात्र यही निघटु उपलब्ध है। पर 'निरुक्त' से जान पड़ता है कि 'यास्क' के पूर्व अनेक निघट बन चुके थे। इस विषय की संक्षिप्त चर्चा आगे होगी। यहाँ 'यास्क' द्वारा व्याख्यात 'निघटु' का परिचय दिया जा रहा है।

यह 'निघटु' पंचाध्यायी कहा जाता है। इसके प्रथम तीन अध्यायों को 'नैघटुक काड' कहा गया है। इन काडों के शब्दों की निरुक्त के द्वितीय और तृतीय अध्यायों में 'यास्क' ने व्याख्या की है इनमें १३४१ शब्द हैं, यद्यपि व्याख्या २३० शब्दों की हुई है निघटु के परिगणित शब्दों में संज्ञा अर्थात् नाम और आख्यात एवं अव्यय पदों का संकलन है। सबसे प्रथम पृथ्वी के बोधक २१ पर्यायवाची शब्दों का परिचय दिया गया है तदनंतर ज्वलनार्थक अग्नि के ११ पर्याय दिए गए हैं। इसी रीति से पूरे तीनों अध्यायों में पर्यायवाची अथवा समानार्थ-बोधक शब्दों का समूह है इनमें भी अनेक शब्द ऐसे हैं जो अनेकार्थक हैं। 'निघटु' में तो उनका संग्रह पर्यायरूप में ही हुआ है, पर 'निरुक्त' के निर्वचन में उनके अनेक अर्थ सोदाहरण बताए गए हैं। 'गो' शब्द की निरुक्त व्याख्या में इस शब्द के अनेक अर्थों का निर्देश है। चतुर्थ अध्याय में २७८ स्वतंत्र पदों का (जो किसी के पर्याय नहीं हैं) एकत्रीकरण किया गया है। इनमें मुख्यत दो प्रकार के शब्द हैं-- (१) वे शब्द जिनके अनेक अर्थ हैं और (२) वे शब्द जिनका व्याकरणमूलक संस्कार (व्युत्पत्ति) अवगत नहीं है। अंतिम पंचम अध्याय को दैवतकांड कहा गया है जिसमें वैदिक देवता-बोधक १५१ नाम मिलते हैं।

इस 'निघटु' के निर्माता का नामनिर्णय विवादास्पद है। इतना ही नहीं, इनमें कुछ विद्वान् अनेक पुरुषों की रचना मानते हैं। डा० लक्ष्मणस्वरूप इनमें प्रमुख हैं। डा० कोल्ड ने भी हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर निर्णय दिया है कि 'निरुक्त' के पूर्वषट्क और उत्तरषट्क-- दोनों की शैलियाँ भिन्न हैं और दोनों के निर्माता भी संभवत भिन्न रहे होंगे। परंतु राजवाडे ने डा० लक्ष्मणस्वरूप के मत का अनेक तर्कों के आधार पर खंडन किया है। ऐसे भी पंडित हैं जो 'यास्क' को ही निघटु और निरुक्त--दोनों का रचयिता मानते हैं। स्कंद दुर्ग तथा माहेश्वर आदि प्राचीन आचार्य 'निघटु' को किसी ऐसे वेदज्ञ ऋषि का ग्रंथ मानते हैं जिसका नाम अब तक ज्ञात नहीं है।

कोशविद्या के विचार से 'निघटु' ग्रंथ को विकासक्रम का प्रारंभिक और प्रथम उपलब्ध रूप कहा जा सकता है। इसमें विशिष्ट वैदिक ग्रंथ के शब्दों का संग्रह तो है पर वह समस्त शब्दों का न होकर कतिपय कठिन और दुर्बोध शब्दों का संकलन है। इस कोश में नाम, आख्यात और अव्यय शब्दों का संकलन किया गया है। यह गद्य माध्यम से हुआ है, छंदोबद्ध नहीं है। पर्यायसंकलन या अन्यसंग्रहण द्वारा इसका उद्देश्य वेद के शब्दों का अर्थ स्पष्ट करना था इसमें तिङन्त (आख्यात), सुबंत (नामपद) और अव्यय हैं।

शब्द-संकलन-पद्धति की दृष्टि से इसमें पर्यायवाची, अनेकार्थक और विरल शब्दों का संग्रह मिलता है। इन्हें हम चार विभागों में बाँट सकते हैं --(१) समानार्थक धातुरूप, (२) एकार्थक अथवा पर्यायवाची भिन्न भिन्न शब्दों का संग्रह, (३) अनेकार्थ शब्दों का संग्रह और (४) देवताओं के प्रमुख और अप्रमुख नामों का संग्रह। अज्ञात-व्याकरण-संस्कारवाले शब्द भी संगृहीत हैं।

उपलब्ध 'निघट' के अतिरिक्त अन्य अनेक निघटु भी अवश्य ही रहे होंगे। 'यास्क' के 'निरुक्त' से भी इतना स्पष्ट है कि उनसे पूर्व जिस प्रकार अनेक वैयाकरण एवं अनेक निरुक्तकार हो चुके थे उसी प्रकार उपलब्ध 'निघटु' के अतिरिक्त अन्य निघटु भी वर्तमान थे। 'यास्क' के निर्देश (१.२० तथा ७.१५) से संकेत मिलता है कि 'निघटु' शब्द अनेक निघटुओं का वाचक है। आचार्य भगवद्दत्त के वक्तव्य से अनुमान किया जा सकता है कि निघटु अनेक थे। अथर्व परिशिष्ट का ४८वाँ अंश भी कौत्सव्य द्वारा संकलित 'निघटु' ही है। 'यास्क' ने 'शाकपूणि' का उल्लेख किया है। वृहद्देवता में भी 'यास्क' के साथ साथ अनेक बार उनका नाम देखकर अनुमान किया जाता है कि दोनों ही ग्रंथ--'निघटु' और 'निरुक्त'-- उन्हीं के रचित थे। इधर पूना से 'शाकपूणि' का एक निघटु भी प्रकाशित किया गया है। इन सबके आधार पर यह कहना कदाचित् असंगत न हो कि 'यास्क' के समय तक बहुत से निघटु ग्रंथ निर्मित हो चुके थे।

'यास्क' के कथनानुसार 'निघटु' का अर्थ है--वह शब्दसमूह जो वेदों से चुनकर एकत्र किए हुए शब्दों का अर्थद्योतन करे। इस अर्थद्योतन में अनेक शब्दों का अर्थद्योतन कभी एक साथ होता है और कभी पृथक् पृथक्। इसमें सामान्यत शब्द-संकलन-विधान की निम्नलिखित विधि की संयोजना मिलती है, चाहे वे सभी विधियाँ एक निघटु में हों अथवा न हों--(१) समानार्थक धातुओं का संग्रह, (२) किसी एक सत्व अथवा पदार्थ के नाना नामधेयों एवं अव्ययपदों का संग्रह, (३) एक शब्द के अनेक अर्थों का अभिधान और (४) देवताओं के नाम।

प्रोफेसर 'राजवाडे' का कथन है कि अनेक अर्थों का एक अभिधान द्वारा कथन--इस उपलब्ध 'निघटु' में नहीं है। फिर भी ऐकपदिक कांड में कुछ अनेकार्थक शब्द भी ढूँढ़ जा सकते हैं और व्याकरण की दृष्टि से अव्युत्पन्न शब्द भी। 'ऐकपदिक' कांड में तथाकथित अव्युत्पन्न शब्द लक्षण संबंधी उपर्युक्त अंगों में नहीं आते। अत कह सकते हैं कि निरुक्तोक्त अंगों की अपेक्षा यहाँ कुछ अधिकता

है। इसका संकेत यह भी हो सकता है कि 'यास्क' के पूर्ववर्ती आचार्यों ने 'निघटु' के लिये उपर्युक्त चतुरग लक्षण आवश्यक मान लिया था, और उस प्रकार के अनेक ग्रथ उस समय वर्तमान थे।

निश्चय ही १००० ई० पू० के पहले से लेकर ई० पू० ८०० या ७०० तक अनेक वैदिक निघटु निर्मित हो चुके थे। विरल और कठिन शब्दो तथा पर्यायवाची नामो' और आख्यातो एव अव्ययो का बडे श्रम के साथ आचार्यों ने अर्थनिर्देशपूर्वक सग्रह किया था। भारतीय कोशविद्या का यह प्राचीनतम उपलब्ध रूप यद्यपि गद्यवद्ध था, तथापि परवर्ती पद्यवद्ध कोशों के लिये—विशेषत पर्यायवाची कोशो का—पथप्रदर्शक और प्रेरणादायक रहा। 'अमरकोश' जैसे ग्रथ पर भी जहाँ एक ओर निघटुकार की पर्यायवाची शैली का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है वहाँ दूसरी ओर 'निरुक्त' के काडत्रय का प्रभाव भी 'त्रिकाडकोश' या 'अमरकोश' पर कदाचित् पडा। विषय की दृष्टि से न सही, पर काड शब्द और 'तीन की सख्या' इन दोनो अशो मे अमरसिंह ने प्रभाव ग्रहण किया हो तो आश्चर्य नही।

निरुक्त के आरभ मे ही कहा गया है—'समाम्नाय समाम्नात स व्याख्यातव्य। तदिम समाम्नाय निघण्टव इत्याचक्षते।' अर्थात् समाम्नाय की (जो गुरुपरपरा से वैदिको द्वारा प्राप्त किया गया है उसकी) व्याख्या आवश्यक है। इसी को 'निघटव' (निघटु) कहते हैं। इस शब्द का विकास 'निगतव' मे हुआ है। सभवत अनेक 'निघटु' थे, इसी से वहुवचन मे प्रयोग है। प्रथम तीन अध्यायो मे 'नामपदों' और 'आख्यातपदो' की पर्यायवद्ध सूची है। चौथे अध्याय मे क्लिप्ट वैदिक शब्द हैं अपने तत्सम रूप मे और ५वें मे देवतावाचक शब्दो का सग्रह है।

लगभग दो सहस्र वर्षों बाद १८वी शती मे 'भास्करराय' नामक एक महाविद्वान् ने 'वैदिक कोश' का निर्माण किया था। उक्त कोश में वैदिक 'निघटु' के शब्दो और उनके अर्थों का पद्यवद्ध सयोजन किया गया है।

वैदिक निघटुओ की परपरा—कदाचित् आगे चलकर लुप्त हो गई। परतु अथर्ववेद के उपवेद—आयुर्वेद—मे इस नाम के ग्रथो की परपरा चलती रही। आयुर्वेद के परपराकथित अवतारी आचार्य 'धन्वतरि' द्वारा विरचित एक 'धन्वतरि निघटु' है। किंवदती-अनुसारी श्लोक मे 'विक्रमादित्य' के नवरत्नो मे इनका नाम सर्वप्रथम आता है। 'अमरकोश' की क्षीरस्वामीकृत टीका (वनोषधिवर्ग—श्लोक ५०) के अनुसार धन्वतरि को 'अमरसिंह' से प्राचीन माना जाता है। सभवत चतुर्थ शतक से पूर्व इनका काल रहा होगा। नौ अध्याय के इस ग्रथ मे पारिभाषिक शब्दो के अर्थ के साथ साथ उनके गुण दोष का भी इसमे वर्णन है श्लोकवद्ध यह 'वैद्यकनिघटु'—सभवत परवर्ती तद्वर्गीय ग्रथो का प्रेरणाधार रहा। 'माधवनिदान' (प्रसिद्ध वैद्यक ग्रथ) के निर्माता 'माधवकर' (लगभग आठवीं नवी शती) द्वारा 'पर्यायरत्नमाला' नाम से एक वैद्यक कोश भी रचित माना जाता है। 'हेमचंद्र ने भी 'निघटुशेष' नामक ग्रथ का निर्माण किया था। १८वी शती के उत्तरार्ध मे अनेकशास्त्रविद्याविशारद काष्ठा नगरीराज 'मदनपाल' ने १७७४ ई० में 'मदनपाल निघटु' (या 'मदनपाल विनोद' नामक विशाल ग्रथ बनाया था। इसमे मराठी के भी अनेक पर्यायशब्द उपलब्ध है।)

सस्कृत कोश · प्राचीन (अमरकोश पूर्ववर्ती)

वैदिक निघटुकोशो और 'निरुक्त ग्रथो' के अनतर सस्कृत के प्राचीन और मध्यकालीन कोश हमे उपलब्ध होते हैं। इस सबध मे 'मेक्डानल्ड' ने माना है कि सस्कृत कोशों की परपरा का उद्भव (निघटु ग्रथों के अनतर) धातुपाठो और गणपाठो मे हुआ है। पाणिनीय अष्टाध्यायी के पूरक परिशिष्ट रूप मे धातुओ और गणशब्दो का व्याकरणोपयोगी सग्रह—इन उपर्युक्त पाठो मे हुआ। पर उनमे अर्थनिर्देश न होने के कारण उन्हें केवल धातुसूची और गणसूची कहना अधिक समीचीन होगा।

आगे चलकर सस्कृत के अधिकाश कोशो मे जिस प्रकार रचना-विधान और अर्थनिर्देश शैली का विकास हुआ है वह धातुपाठ या गणपाठ की शैली से पूर्णत पृथक् है। निघटु ग्रथो से इनका स्वरूप भी कुछ भिन्न है। निघटुओ मे वैदिक शब्दो का सग्रह होता था। उनमे क्रियापदो, नामपदो और अव्ययो का भी संकलन किया जाता था। परतु सस्कृत कोशो मे मुख्यत केवल नामपदो और अव्ययो का ही सग्रह हुआ।

'निरुक्त' के समान अथवा पाली के 'महाव्युत्पत्ति' कोश की तरह इसमे व्युत्पत्तिनिर्देश नही हैं। वैदिक निघटुओ मे सगृहीत शब्दो का सबध प्राय विशिष्ट ग्रथो से (ऋग्वेदसहिता या अथर्वसहिता का अथर्वनिघटु) होता था। इनकी रचना गद्य मे होती थी। परतु सस्कृत कोश मुख्यत पद्यात्मक हैं और प्रमुख रूप से उनमे अनुष्टुप् छद का योग (अभिधानरत्नमाला आदि को छोडकर) हुआ है। संस्कृत कोशों द्वारा शब्द और अर्थ का परिचय कराया गया है 'धनजय', 'धरणी' और 'महेश्वर' आदि कोशों के निर्माण का उद्देश्य था सभवत महत्वपूर्ण विरलप्रयुक्त और कविजनोपयोगी शब्दो का संग्रह वनाना।

सस्कृत कोशो का ऐतिहासिक सिंहावलोकन करने से हमे इस विषय की सामान्य जानकारी प्राप्त हो सकती है। इस सबध मे विद्वानो ने 'अमरसिंह' द्वारा रचित और सर्वाधिक लोकप्रिय—'नामलिंगानुशासन' (अमरकोश) को केंद्र में रखकर उसी के आधार पर सस्कृत कोशो को तीन कालखडो मे विभाजित किया है—(१) अमरकोश-पूर्ववर्ती सस्कृत कोश, (२) अमरकोशकाल तथा (३) अमरकोश-परवर्ती सस्कृत कोश।

'अमरसिंह' के पूर्ववर्ती कोशों का उनके नामलिंगानुशासन' मे उल्लेख नही मिलता है। परतु 'समाहृत्यान्यतन्त्राणि' के ध्वन्यार्थ का आधार लेकर 'अमरकोश' की रचना मे पूर्ववर्ती कोशो के उपयोग का अनुमान किया जा सकता है। 'अमरकोश' की एक टीका मे लब्ध 'कात्य' शब्द के आधार पर 'कात्य' या 'कात्यायन' नामक 'अमर'-पूर्ववर्ती कोशकार का और पाठातर के आधार पर व्याडि नामक कोशकार का अनुमान होता है। 'अमरकोश' के टीकाकार 'क्षीरस्वामी' के आधार पर 'धन्वतरि' के 'धन्वतरिनिघटु' नामक वैद्यक निघटु (कोश) का सकेत मिलता है। 'महाराष्ट्र शब्दकोश' की भूमिका से 'भागुरि' के

कोश को भी—जिसका नाम 'त्रिकांडकोश' था—'अमर'-पूर्ववर्ती बताया गया है। यह कोश दक्षिण भारत की एक ग्रथसूची मे आज भी उल्लिखित है। 'रति' या 'रतिदेव' और 'रसम' या 'रसमपाल' को भी (महाराष्ट्र शब्दकोष की भूमिका के आधार पर) 'अमर'-पूर्ववर्ती कोशकार कहा गया है।

'सर्वानद' ने 'अमरकोश की अपनी टीका मे बताया है कि 'व्याडि' और 'वररुचि' आदि के कोशो मे केवल लिगो का सग्रह है और 'त्रिकाड' एव 'उत्पलिनी' मे केवल शब्दो का। परतु 'अमरकोश' मे दोनो की विशेषताएं एकत्र समिलित हैं। इस प्रकार 'व्याडि', 'वररुचि' (या कात्य) 'भागुरि' और 'धन्वतरि' आदि अनेक कोशकारो का क्षीरस्वामी ने अमर-पूर्ववर्ती कोशकारो और 'त्रिकाड', 'उत्पलिनी', 'रत्नकोश' और 'माला' आदि अमर-पूर्ववर्ती कोशग्रथो का परिचय दिया है।

अमरकोशकाल (रचनाकाल—लगभग चौथी पाँचवी शती)

अमरकोश की महत्ता के कुछ कारण हैं। यद्यपि तत्पूर्ववर्ती कोश ('धन्वतरिनिघटु' तथा पाडुलिपिसूची मे उल्लिखित एकाध अन्य ग्रथ को छोडकर) आज उपलब्ध नही हैं तथापि यह अनुमान किया जाता है कि प्राचीन कोशो मे दो प्रकार की शैलियाँ (कदाचित्, प्रचलित थी—(१) कुछ कोश (सभवत) नामो (सज्ञाओं) का ही और कुछ लिगो का ही निर्देश करते थे। (कदाचित् दो एक कोश धातुसूची भी प्रस्तुत करते थे।) इन्हें नामतत्र (नामपारायणात्मक) तथा लिगतत्र (लिगपारायणात्मक) कहा जाता था। द्वितीय विधा के कोशो मे लिगो का विवेचनात्मक निर्देशन ही मुख्य विषय रहता था। पर 'अमरसिंह' ने अपने कोश मे दोनो का एक साथ अत्यत प्रौढ सयोजन और विवेचन किया है। प्रारभ मे ही उन्होने तीसरे से पांचवे श्लोक तक अपने कोश मे प्रयुक्त नियमों और पद्धति का स्पष्ट निर्देश किया है। इनके आधार पर शब्दार्थ के साथ ही साथ लिंग का निर्णय भी होता है।

तीन काडों के इस ग्रथ मे क्रमश दस, दस और पाँच वर्ग हैं। उपक्रम भाग में निर्दिष्ट पद्धति के अनुसार नामपदों के लिग का आयत निर्देश किया गया है। इसी कारण इसका अभिधान 'नामलिगानुशासन' है। इसकी विशिष्टता का परिचय देते हुए स्वय ग्रथकार ने बताया है कि अन्य तत्रो से विवेच्य विषय का समाहार करते हुए सक्षिप्त रूप में और प्रतिसंस्कार द्वारा उत्कृष्ट रूप से वर्गों मे विभक्त—इस 'नामलिगानुशासन' को पूर्ण बनाने का प्रयास हुआ है। यही इसकी विशेषता है।

सुव्यवस्थित पद्धति के अनुसार काडों और वर्गो का विभाजन किया गया है। वस्तुत देखा जाय तो प्रथम दो काड इस कोश का पर्यायवाची स्वरूप प्रस्तुत करते हैं और तृतीय काड मे नाना प्रकृति के इतर नामपदो का सग्रह है। विशेष्यनिघ्न वर्ग मे विशेष्यानुसारी लिगादि में प्रयुक्त हानेवाले नामपदो का सग्रह है। 'सकीर्ण' वर्ग में प्रकृति प्रत्यादि के अर्थ द्वारा लिग की ऊहा का विवेचन हुआ है। 'नानार्थ' वर्ग मे नानार्थ नामो का 'कात, खात' आदि क्रम के अनुसार सग्रह किया गया है। चतुर्थ वर्ग अव्यय शब्दो को सकलित करनेवाला है, और अतिम वर्ग लिगादिसग्रह कहा गया है एव उसमे शास्त्रीय और व्याकरणनियमानुसारी आधार को लेकर लिग का अनुशासन मुख्य रूप से तथा गौण रूप से अन्य अनुक्त-लिग-निर्देश की क्रमबद्ध पद्धति बताई गई है।

यह कोशग्रथ मुख्यत पर्यायवाची ही है। फिर भी तृतीय काड के द्वारा, जिसे हम आधुनिक पदावली मे परिशिष्टाश कह सकते हैं, इस कोश को पूर्ण और व्यापक तथा उपयोगी बनाया गया है।

अमरकोशपरवर्ती अमरपरवर्ती काल मे सस्कृत कोशो की अनेक विधाएँ लक्षित होती हैं—कुछ कोश मुख्यत. केवल नानार्थ कोश के रूप मे हमारे सामने आते हैं, कुछ को समानार्थक शब्दकोश और कुछ का अशत पर्यायवाची कोश कह सकते हैं।

इन विधाओं के अतिरिक्त ऐसे कोश भी मिलते हैं जिनमे क्रमश एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर और नानाक्षर शब्दो का योजनाबद्ध रूप से सकलन हुआ है। 'द्विरूप' कोश भी बने हैं।

इनके अरिरिक्त 'पुरुषोत्तमदेव' का ग्रथ 'वर्णदेशना' है, जिसमे लिखावट मे स्वल्पाधिक भेदो के कारण हानेवाले वर्णविन्यास सबधी वैरूप्य का परिचय मिलता है। इन्ही का एक कोश 'त्रिकाडकोष' भी है जिसमे अमरसिंह के कोश मे छूटे हुए, पर तद्युगीन भाषा मे प्रचलित, शब्दो का सग्रह है। 'पुरुषोत्तमदेव' की ही एक रचना 'हारावली' भी है, जिसमे विरल प्रयोगवाले 'एकार्थ' और 'अनेकार्थ' शब्दो के दो भाग हैं। स्वय लेखक ने लिखा है कि इस ग्रथ मे अत्यत विरल शब्दो का सग्रथन हुआ है।

'अमरसिंह' के अनतर कोशकारो और कोशग्रथो पर अमरकोश का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। पर्यायवाची कोश बहुत कुछ अमरकोश से प्रभाव ग्रहण कर लिखे गए। 'नानार्थ' या 'अनेकार्थ' कोश भी अमरकाश के नानार्थ वर्ग के आधार पर प्राय बहुमुखी विस्तारमात्र रहे हैं। 'विश्वप्रकाश' कोश मे अवश्य कुछ अधिक वैशिष्ट्य दिखाई देता है। वह विलक्षण 'नानार्थकोश' है जो अनेक अध्यायों मे विभक्त है। प्रत्येक अध्याय मे एकाक्षर, द्व्यक्षर आदि क्रम से सप्ताक्षर शब्दों तक का सकलन है। 'कंकक', 'कद्विक', आदि भी अध्यायो के नाम हैं। 'अमरकोश' का तरह ही शब्द के अतिम वर्णानुसार कात, खात आदि रूप मे शब्दो का अनुक्रम है। उनका 'शब्द-भेद-प्रकाशिका' नामक ग्रथ भी वस्तुत इसी का अन्य परिशिष्ट है। इसके चार अध्यायो मे क्रमश 'शब्दभेद', 'वकारभेद', 'ऊष्मभेद' और 'लिगभेद' नामक चार विभिन्न भेद हैं। ऐतिहासिक क्रम से सस्कृत कोशो का निर्देश नीचे किया जा रहा है

शाश्वत का अनेकार्थसमुच्चय नामक नानार्थ कोश है। समय पूर्णत निश्चित न होने पर भी ६०० ई० के आसपास के काल मे इसकी रचना मानी जाती है। इसी को शाश्वतकोश भी कहते हैं। 'अमरकोश' के सक्षिप्त नानार्थ वर्ग का यह विस्तार जान पडता है। ८०० अनुष्टुप छदों के इस काश का छह भागो मे विभक्त किया गया है। आद्य तीन भागो मे क्रमबद्ध रूप से शब्द के अर्थ क्रम से चार चरणो (पूरे श्लोक), दो चरणो (आधे श्लोक), और एक चरण मे दिए गए हैं।

चौथे भाग में एक एक चरण में नानार्थबोधक शब्द हैं और पंचम तथा षष्ठ विभागों में अव्यय हैं।

भट्ट हलायुध (समय लगभग १० वीं शताब्दी ई०) के कोश का नाम अभिधानरत्नमाला है, पर हलायुधकोश' नाम से यह अधिक प्रसिद्ध है। इसके पाँच कांड (स्वर, भूमि, पाताल, सामान्य और अनेकार्थ) हैं। प्रथम चार पर्यायवाची कांड हैं, पंचम में अनेकार्थक तथा अव्ययशब्द संगृहीत हैं। इसमें पूर्वकोशकारों के रूप में अमरदत्त, वररुचि, भागुरि और वोपालित के नाम उद्धृत हैं। रूपभेद से लिंगबोधन की प्रक्रिया अपनाई गई है। ६०० श्लोकों के इस ग्रंथ पर अमरकोश का पर्याप्त प्रभाव जान पड़ता है। 'पिंगलसूत्र' की टीका के अतिरिक्त 'कविरहस्य' भी इनका रचित है जिसमें 'हलायुध' ने धातुओं के लट्लकार के भिन्न भिन्न रूपों का विशदीकरण भी किया है।

यादवप्रकाश (समय १०५५ से ११३७ के मध्य) का वैजयंती-कोश अत्यंत प्रसिद्ध भी है और महत्वपूर्ण भी। इसकी कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। यह वृहदाकार भी है और प्रामाणिक भी माना गया है। इसकी सर्वप्रमुख विशेषता है। नानार्थ भाग की आदिवर्ण-क्रमानुसारी वर्णक्रमयोजना जिसमें आधुनिक कोशों की अकारादि-वर्णानुक्रमपद्धति का बीज दृष्टिगोचर होता है। परंतु कठोरता और पूर्णता के साथ इस नियम का पालन नहीं है। केवल प्रथमाक्षर का आधार लिया गया है--द्वितीय, तृतीय आदि अक्षर या ध्वनि का नहीं। इसके दो भाग हैं--(१) पर्यायवाची और (२) नानार्थक। दोनों ही भाग--अमरकोश की अपेक्षा अधिक संपन्न हैं। नानार्थभाग के तीन कांडों में द्वयक्षर, त्र्यक्षर और शेष शब्दों को संकलित किया गया है। नानार्थभाग के कांडों का अध्यायविभाग--उपप्रकरणों में लिंगानुसार (पुल्लिंगाध्याय, स्त्रीलिंगाध्याय, नपुंसकलिंगाध्याय, अर्थवल्लिंगाध्याय और नानालिंगाध्याय) हुआ है। अंतिम चार अध्यायों में और भी अनेक विशेषताएँ हैं। अमरकोश की परिभाषाएँ संक्षेपीकृत रूप से गृहीत हैं। इसमें कुछ वैदिक शब्द भी संगृहीत हैं।

हेमचंद्र--संस्कृत के मध्यकालीन कोशकारों में हेमचंद्र का नाम विशेष महत्व रखता है। वे महापंडित थे और 'कालिकालसर्वज्ञ' कहे जाते थे। वे कवि थे, काव्यशास्त्र के आचार्य थे, योगशास्त्रमर्मज्ञ थे, जैनधर्म और दर्शन के प्रकांड विद्वान् थे, टीकाकार थे और महान् कोशकार भी थे। वे जहाँ एक ओर नानाशास्त्रपारंगत आचार्य थे वहीं दूसरी ओर नाना भाषाओं के मर्मज्ञ, उनके व्याकरणकार एवं अनेकभाषाकोशकार भी थे (समय १०८८ से ११७२ ई०)। संस्कृत में अनेक कोशों की रचना के साथ साथ प्राकृत-अपभ्रंश-कोश भी (देशीनाममाला) उन्होंने संपादित किया। अभिधानचिंतामणि (या 'अभिधान-चिंतामणिनाममाला) इनका प्रसिद्ध पर्यायवाची कोश है। छह कांडों के इस कोश का प्रथम कांड केवल जैन देवों और जैनमतीय या धार्मिक शब्दों से संबद्ध है। देव, मर्त्य, भूमि या तिर्यक्, नारक और सामान्य--शेष पाँच कांड हैं। 'लिंगानुशासन' पृथक् ग्रंथ ही है। 'अभिधानचिंतामणि' पर उनकी स्वविरचित 'यशोविजय' टीका है--जिसके अतिरिक्त, व्युत्पत्तिरत्नाकर' (देवसागरगणि) और 'सारोद्धार' (वल्लभगणि) प्रसिद्ध टीकाएँ हैं। इसमें नाना छंदों में १५४२ श्लोक हैं। दूसरा कोश 'अनेकार्थसंग्रह' (श्लो० सं० १८२६) है जो छह कांडों में है। एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर आदि के क्रम से कांडयोजना है। अंत में परिशिष्ट कांड अव्ययों से संबद्ध है। प्रत्येक कांड में दो प्रकार की शब्दक्रमयोजनाएँ हैं--(१) प्रथमाक्षरानुसारी और (२) 'अंतिमाक्षरानुसारी'। 'देशीनाममाला' प्राकृत का (और अंशत अपभ्रंश का भी) शब्दकोश है जिसका आधार 'पाइयलच्छी नाममाला है।'

महेश्वर (११११ ई०) के दो कोश (१) विश्वप्रकाश और (२) शब्दभेदप्रकाश हैं। प्रथम नानार्थकोश है। जिसकी शब्दक्रम-योजना अमरकोश के समान 'अंत्याक्षरानुसारी है। इसके अध्यायों में एकाक्षर से लेकर 'सप्ताक्षर' तक के शब्दों का क्रमिक संग्रह है। तदनसार 'कंकक' आदि अध्याय भी हैं। अंत में अव्यय भी संगृहीत हैं। 'स्त्री', 'पुम्' आदि शब्दों के द्वारा नहीं अपितु शब्दों की पुनरुक्ति द्वारा लिंगनिर्देश किया गया है। इसमें अनेक पूर्ववर्ती कोशकारों के नाम--भोगींद्र, कात्यायन, साहसांक, वाचस्पति, व्याडि, विश्वरूप, अमर, मंगल, शुभांग, शुभांक गोपालित (वोपालित) और भागुरि--निर्दिष्ट हैं। इस कोश की प्रसिद्धि, अत्यंत शीघ्र हो गई थी क्योंकि 'सर्वानंद' और 'हेमचंद्र' ने इनका उल्लेख किया है। इसे 'विश्वकोश' भी अभिकत कहा जाता हैं। शब्दभेदप्रकाशिका वस्तुत विश्वप्रकाश का परिशिष्ट हैं जिसमे शब्दभेद, वकारभेद, लिंगभेद आदि हैं।

मंख पंडित (१२ वीं शती ई०) का अनेकार्थ--१००७ श्लोकों का है और अमरकोश एवं विश्वरूपकोश के अनुकरण पर बना है। 'भागुरि', 'अमर', 'हलायुध', 'शाश्वत' और 'धन्वंतरि' के आधारग्रहण का उसमें संकेत है। शब्दक्रमयोजना अंत्याक्षरानुसारी है।

अजयपाल (लगभग १२वीं-१३वीं शती के बीच) के नानार्थसंग्रह नामक कोश में १७३० श्लोक हैं। इसे देखने से जान पड़ता है कि शाश्वतकोश या अनेकार्थसमुच्चय के आधार पर इसकी रचना की गई है। उन्हीं का अनुकरण भी इसमें आभासता है। प्रत्येक अध्याय के अंत में अव्यय शब्द हैं। धनंजय (ई० १२ वीं शताब्दी उत्तरार्ध के आसपास अनुमानित) की नाममाला नामक कोशकृति है। यह लघुकोश है। नाममाला नाम के अनेक कोशग्रंथ मिलते हैं। इसमें केवल २०० श्लोक हैं। कुछ पांडुलिपियों में नानार्थ शब्द नहीं हैं पर एक में तत्संबद्ध ५० श्लोक हैं।

पुरुषोत्तमदेव (समय ११५९ ई० के पूर्व)--संस्कृत में पाँच कोशों के निर्माता माने गए हैं--(१) त्रिकांडकोश, (२) हारावली, (३) वर्णदेशना, (४) एकाक्षरकोश और (५) द्विरूपकोश। 'अमरकोश' के टीकाकार 'सर्वानंद' ने अपनी टीका में इनके चार कोशों के वचन उद्धृत किए हैं जिससे इनका महत्वपूर्ण कोशकर्तृत्व प्रकट है। ये बौद्ध वैयाकरण थे। 'भाषावृत्ति' इनकी प्रसिद्ध रचना है। इन्होंने 'वाचस्पति' के 'शब्दार्णव', 'व्याडि' की 'उत्पलिनी' 'विक्रमादित्य' के 'संसारावर्त' को अपना आधार घोषित किया है। 'आफ्रेक्त' ग्रंथसूची में नौ ग्रन्थ (व्याकरण और कोश के) ग्रंथों का

पुरुषोत्तमदेव के नाम से संकेत मिलता है। इनका 'त्रिकाडकोश'——नाम से ही 'अमरकोश' का परिशिष्ट प्रतीत होता है। फलत वहाँ अप्राप्त शब्दों का इसमे सकलन है। ('अमरकोश' से पूर्व का भी एक 'त्रिकाडकोश' वताया जाता है। पर उससे इसका सबध नही जान पडता।) इसमे अनेक छद हैं और इसकी टीका भी हुई है। हारावली मे पर्याय शब्दो और नानार्थ शब्दो के दो विभाग हैं। श्लोकसंख्या २७० है। पर्यायवाची विभाग का तीन अध्यायों——(१) एकश्लोकात्मक (२) अर्धश्लोकात्मक तथा (३) पादात्मक——मे उपविभाजन हुआ है। नानार्थ विभाग में भी——(१) अर्धश्लोक, (२) पादश्लोक और एक शब्द मे अर्थ दिए गए हैं। इसमे प्राय विरलप्रयोग और अप्रसिद्ध शब्द हैं जबकि त्रिकाडकोश मे प्रसिद्ध शब्द। ग्रथकार की उक्ति के अनुसार १२ वर्षों मे बडे श्रम के साथ इसकी रचना की गई है। (१२ मास भी एक पाठ के अनुसार)। वर्णदेशना अपने ढग का एक विचित्र और गद्यात्मक कोश है। देशभेद, रूढिभेद और भाषाभेद से ख, क्ष या ह, ड अथवा ह, घ मे होनेवाली भ्राति का अनेक ग्रथो के आधार पर निराकरण ही इसका उद्देश्य जान पडता है——'अत्र हि प्रयोगे बहुदश्वाना श्रुतिसाधारण्यमात्रेण गृह्णता खुरक्षुरप्रादौ खकारक्षकारयो सिंहशिघानकादौ हकारघकारयो . . . तथ गौड।दिलिपि साधारण्याद् हिण्डीरगुडाकेशादौ हकार-डकारयो भ्रातय उपजायन्ते। अतस्तद्विवेचनाय क्वचिद्धातुपरायणे धातुवृत्ति-पूजादिपु प्रव्यक्तलेखनेन प्रसिद्धो॰देशेन धातुप्रत्ययोणादिव्याख्यालेखनेन क्वचिदाप्तवचनेन श्लेषादिदर्शनेन वर्णदेशनेयमारभ्यते। (इडिया आफिस केटेलाग, पृ० २९५)। 'महाक्षपणक', 'महीधर' और 'वररुचि' के बनाए 'एकाक्षर' कोशों के समान 'पुरुषोत्तमदेव' ने भी एकाक्षर कोश वनाया जिसमे एक एक अक्षर के शब्दों के अर्थ वर्णित हैं। द्विरूपकोश भी ७५ श्लोको का लघुकोश है। नैषधकार 'श्रीहर्ष' ने भी एक द्विरूपकोश लिखा था।

केशवस्वामी (समय १२ वी या १३वीं शताब्दी) एक का **नानार्थार्णव-सक्षेप** को अपनी शैली के कारण बडा महत्व प्राप्त है। एक एक लिंग के एकाक्षर से षडक्षर तक के अनेकार्थक शब्दो का क्रमश छह् कांडो मे सग्रह है और प्रत्येक काड के भी क्रमश स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुसकलिंग, वाच्यलिंग तथा नानालिंग पाँच पाँच अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय की शब्दानुक्रमयोजना मे अकारादिवर्णक्रम की सरणि अपनाई गई है। 'अमरकोश' मे अनुपलब्ध शब्द ही प्राय इसमे सकलित हैं। ५८०० श्लोकसख्यक इस बृहन्नानार्थकोश मे कुछ वैदिक शब्दों का और ३० प्राचीन कोशकारो के नामों का निर्देश है।

मेदिनिकर का समय लगभग १४ वी शताब्दी के आसपास या उससे कुछ पूर्ववर्ती काल माना गया है। एक मत से ११७५ ई० के पूर्व भी इनका समय बताया जाता है। इनके कोश का नाम **नानार्थशब्द-कोश** है। पर मेदिनिकोष नाम से वह अधिक विख्यात है। इसकी पद्धति और शैली पर 'विश्वकोश' की रचना का पर्याप्त प्रभाव है। उसके अनेक श्लोक भी यहाँ उद्धृत हैं। ग्रथारभ के परिभाषात्मक अश पर 'अमरकोश' की इतनी गहरी छाप है कि इसमे 'अमरकोश' के श्लोक तक शब्दश: ले लिए गए हैं। इसमे कोई खास विशेषता नहीं है।

मेदिनी के अनतर के लघुकोश न तो बारंबार उद्धृत हुए हैं और न पूर्वकोशो के समान प्रमाणरूप मे मान्य हैं। परतु इनमें कुछ ऐसे प्राचीनतर और प्रामाणिक कोशो का उपयोग हुआ है जो आज उपलब्ध नही हैं अथवा और अशुद्ध रूप मे अशत उपलब्ध हैं। (१) 'जिनभद्र सूरि' का कोश है **अपवर्गनाममाला**—— जिसका नाम 'पचवर्गपरिहारनाममाला भी है। इनका काल संभवत १२वीं शताब्दी के आस पास है। (२) 'शब्दरत्नप्रदीप'——सभवत यह **कल्याणमल्ल का शब्दरत्नप्रदीप** नामक पाँच काडोंवाला कोश है। (समय लगभग १२९५ ई०)। (३) महीप का शब्दरत्नाकर——कोश है जिसके नानार्थभाव का शीर्षक है——अनेकार्थ या नानार्थतिलक, समय है लगभग १३७४ ई०। (४) पद्मरागदत्त के कोश का नाम 'भूरिक-प्रयोग' है। इसका समय लगभग वही है। इस कोश का पर्यायवाची भाग छोटा है और नानार्थ भाग बडा। (५) रामेश्वर शर्मा की शब्दमाला भी ऐसी ही कृति है। (६) १४ वी शताब्दी के विजयनगर के राजा हरिहरगिरि की राजसभा मे भास्कर अथवा दडाधिनाथ थे। उन्होने **नानार्थरत्नमाला** बनाया। (७) **अभिधानतत्र** का निर्माण जटाधर ने किया। (८) 'अनेकार्थ' या नानार्थकमजरी'—— '**नामागदसिंह**' का लघु नानार्थकोश है। (९) रूपचद्र की **रूपमजरी——नाममाला** का समय १६वी शती है। (१०) **शारदीय नाममाला** '**हर्षकीर्ति**' कृत है (१६२४ ई०)। (११) **शब्दरत्नाकर** के कर्ता '**वामनभट्ट बाण**' है। (१२) **नामसग्रहमाला** की रचना अप्पय दीक्षित ने की है। इनके अतिरिक्त (१३) **नामकोश** (सहजकीर्ति का (१६२७) और (१४) **पचतत्व प्रकाश** (१६४४) सामान्य कोश हैं।

कल्पद्रु कोश केशवकृत है। नानार्थार्णवसक्षेपकार 'केशवस्वामी' से ये भिन्न हैं। यह ग्रथ सस्कृत का बृहत्तम पर्यायवाची कोश है। इसमे नानार्थ का प्रकरण या विभाग नही है। इसमे पर्यायो की सख्या सर्वाधिक है, यथा——पृथ्वी के १६४ तथा अग्नि के ११४ पर्याय इत्यादि। 'मल्लिनाथी' टीका मे उद्धृत वचन के आधार पर 'केशव नामक' तृतीय कोशकार भी अनुमानित हैं। तीन स्कधों के इस कोश की श्लोकसख्या लगभग चार हजार है। स्कधो के अतर्गत अनेक प्रकाड हैं। लिंगबोध के लिये अनेक सक्षिप्त सकेत हैं। पर्यायो की स्पष्टता और पूर्णता के लिये अनेक प्रयोग तथा प्रतिक्रियाएँ दी हुई हैं। इसमें कात्य वाचस्पति, भागुरि, अमर, मगल, साहसांक, महेश और जिनांतिम (सभवत हेमचद्र) के नाम उल्लिखित हैं। चतुर्थ श्लोक से नवम श्लोक तक——कोश मे विनियुक्त पद्धति का निर्देश किया गया है। रचनाकाल १६६० ई० माना जाता है। **केशवस्वामी के नानार्थार्णव कोश से यह भिन्न है।**

(१६) शब्दरत्नावली के निर्माता मथुरेश हैं (समय १७वी शताब्दी)। इनके अतिरिक्त कुछ और भी साधारण परवर्ती कोश हैं। (१७) **कोशकल्पतरु——विश्वनाथ;** (१८) नानार्थपदपीठिका तथा **शब्दलिंगार्थचद्रिका——सुजन** (दोनो ही नानार्थकोश हैं)। इनमे प्रथम में——प्रत्ययव्यजनानुसारा क्रम है और द्वितीय मे तीन काड हैं जिसमे क्रमश एक, दो और तीन लिंगो के शब्द हैं)। (२०) **पर्यायपदमजरी और शब्दार्थमजूषा**——प्रसिद्ध कोश हैं। (२१) महेश्वर के कोश का नाम '**पर्यायरत्नमाला' है——सभवतः पर्यायवाची कोश 'विश्वप्रकाश' के निर्माता**

महेश्वर से ये भिन्न हैं। पर्यायशब्दरत्नाकर के कर्ता धनजय भट्टाचार्य हैं। (२३) विश्वमेदिनी—सारस्वत मिश्र का है। (२४) विश्वकवि का विश्वनिघटु है। (२५) १७८६ और १८३३ के वीच वनारस मे सस्कृत-पर्यायवाची शब्दो की एक 'ग्लासरी' 'एथेनियन' ने अपने एक ब्राह्मण मित्र द्वारा अपने निर्देशन मे वनवाई थी। इसमे मूल शब्द सप्तमी विभक्ति के थे और पर्याय—कर्ता कारक (प्रथमा) के। परतु सभवत इसमें वहुत सा अश आधारहीनता अथवा दोषपूर्ण विनियोग के कारण सदिग्ध रहा। 'वोयलिक' का सक्षिप्त शब्दकोश भी 'ग्यलनास' के अनेक उद्धरणो से युक्त है।

इनके अलावा क्षेमेद्र का लोकप्रकाश, महीप की अनेकार्थमाला का हरिचरणसेन की पर्यायमुक्तावली, वेणीप्रसाद का पचतत्वप्रकाश, अनेकार्थतिलक, राघव खाडेकर का कोशावतस, 'महाक्षपणक की अनेकार्थध्वनिमजरी आदि साधारण शब्दकोश उपलब्ध हैं। भट्टमल्ल की आख्यातचन्द्रिका (क्रियाकोश), हर्ष का लिगानुशासन, अनिरुद्ध का शब्दभेदप्रकाश और शिवदत्त वैद्य का शिवकोश (वैद्यक), गणितार्थ नाममाला, नक्षत्रकोश आदि विशिष्ट कोश हैं। लौकिक न्याय की सूक्तियो के भी अनेक सग्रह हैं। इनमे भुवनेश की लौकिकन्यायसाहस्री के अलावा लौकिक न्यायसग्रह, लौकिक न्याय मुक्तावली, लौकिकन्यायकोश आदि हैं। दार्शनिक विषयो के भी कोश—जिन्हें हम पारिभाषिक कहते है—पाडुलिपि की सूचियो मे पाए जाते हैं।

सस्कृत कोशो की टीकाओ का महत्व

सस्कृत मे टीका, व्याख्या और भाष्य की प्रणाली विशेष महत्व रखती है। प्राय सभी प्रकार के ग्रथो मे इन टीकाओ का विशेष महत्व है। इसका कारण यह है कि अनेक टीकाओ मे मूल की अपेक्षा अधिक वातें, नूतन व्याख्या तथा खडन मडन द्वारा नव्य मतो की भी स्थापना की गई है। कोशग्रथों के टीकाकारो का कृतित्व भी बडे महत्व का है। उनमे जहाँ एक ओर नए शब्द, नवीन अर्थ और नई व्याख्याएँ हैं वहीं दूसरी ओर अनेक कोशकारो और कोशग्रथो के नाम भी मिलते हैं। अनेक तो ऐसे टीकाकार हैं जो स्वय ग्रंथकार हैं और स्वयमपि जिन्होने अपने ग्रथ की टीकाएँ भी लिखी हैं। अधिकाश ने केवल टीकाएँ वनाई हैं। 'अमरकोश' की टीकाएं सर्वाधिक और कदाचित् सर्वप्राचीन भी हैं। उनका अनुवादात्मक हिंदी आदि भाषाओं मे कोशीकरण भी किया गया है। इन टीकाओं मे अनेक पूर्ववर्ती कोशो या कोशकारो के नाम और कभी कभी उद्धरण भी मिलते हैं। अमरकोश के टीकाकार 'क्षीरस्वामी' तथा 'हेमचद्र' ने 'काव्य' कोश के नानार्थ और पर्यायवाची कोशो का सकेत दिया है। इनसे यह भी लक्षित होता है कि कभी कभी शब्द की अर्थवोधक व्याख्याएँ भी वहाँ थी—यथा—'क्षुद्र-छिद्रसमोपेत चालन तितउ पुमान्।' अथवा 'स्कधादूर्ध्वं तरो शाखा वाटपो विटपो मत।' हेमचद्र ने ३० कोशकारो या कोशो का उल्लेख किया है। टीका आदि के आधार पर—तारपाल, दुर्ग, धरणीधर धर्ममुनि, रतिदेव, रुद्र, विश्वरूप, वोपदेव, शुभाग (शुभाक), वोपालित (गोपालित), कृष्णकवि (वैभाषिक शब्दकोश) आदि नाना नाम मिलते हैं। 'राक्षस' या 'रभस' के पर्यायकोश का भी उल्लेख है।

इन कोशटीकाओं मे शब्दों की व्युत्पत्तियाँ भी हैं। 'अमरकोश' की 'रामाश्रयी' टीका मे प्रत्येक शब्द की पाणिनीय व्याकरणानुसारी व्युत्पत्ति दी गई है। कभी कभी किसी टीका मे त्रुटियाँ और कभी कभी प्रयोग भी वताए गए हैं। सव मिलाकर इन टीकाओ को कोशवाङ्मय का महत्वपूर्ण अग कहा जा सकता है। वस्तुत ये कोशो के पूरक अंग हैं। इनमे 'उक्त अनुक्त और दुरुक्त' विषयो का विचार और विवेचन किया गया है। अत संस्कृत कोशो के इतिहास मे इनका महत्व और योगदान—हमे कभी नही भूलना चाहिए।

पाली, प्राकृत और अपभ्रश का कोशवाङ्मय

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओ का वाङ्मय भी कोशो से रहित नही था। पालि भाषा मे अनेक कोश मिलते हैं। इन्हें वौद्धकोश भी कहा गया है। उनकी मुख्य उपयोगिता पालि भाषा के वौद्ध-साहित्य के समझाने मे थी। उनकी रचना पद्यवद्ध सस्कृतकोशो की अपेक्षा गद्यमय निघटुओ के अधिक समीप है। वहुधा इनका सवध विशेष ग्रथो से रहा है। पालि का महाव्युत्पत्ति कोश २८५ अध्यायो मे लगभग नौ हजार श्लोको का परिचय देनेवाला है। वौद्ध सप्रदाय के पारिभाषिक शब्दो का अर्थ देने के साथ साथ पशु पक्षियो, वनस्पतियो और रोगो आदि के पर्यायो का इसमे सग्रह है। इसमे लगभग ६००० शब्द सकलित हैं। दूसरी ओर मुहावरों, नामधातु के रूपो और वाक्यो के भी सकलन हैं। पाली का दूसरा विशेष महत्वपूर्ण कोश अभिधान प्रदीपिका (अभिधानप्पदीपिका) है। यह संस्कृत के अमरकोश की रचनाशैली की पद्धति पर तथा उसके अनुकरण पर छदोवद्ध रूप मे निर्मित है। 'अमरकाश' के अनेक श्लोकों का भी इसमे पालिरूपातरण है। इसी प्रकार भिक्षु सद्धर्मकीर्त्ति के एकाक्षर कोश का भी नामोल्लेख मिलता है।

प्राकृत भाषा मे उपलब्ध काशो की सख्या कम है। जैन भाडागारो से कुछ प्राकृत और अपभ्रश क काशो की विद्यमानता का पता चला है। परतु जव तक उन्हें देखने का अवसर नही मिलता, तव तक उनका विवरण दना ठाक नहा है।

धनपाल (समय ६७२ ई० से ६६७ ई० के वीच) विरचित 'पाइअलच्छीनाममाला' कदाचित् प्राकृत का सर्वप्राचीन उपलब्ध कोश है। इनके गद्यकाव्य—'तिलकमजरी'—के उल्लेखानुसार 'मुजराज' ने इन्हें 'सरस्वती' उपाधि दी थी। गाथाछद मे रचित, अध्यायविरहित इस कोश म क्रम स श्लोक, श्लोकार्ध और पद (चरण) एव शब्द में पर्यायवाची शब्द निर्दिष्ट हैं। 'हेमचद्र' ने अपने 'देशीनाममाला' में इसकी सहायता लेने का टीका मे उल्लेख किया है।

हेमचद्र रचित देशीनाममाला नाम से प्रसिद्ध प्राकृत का महत्वपूर्ण और विख्यात कोश कहा जाता है। देशी शब्द वस्तुत प्राकृत का पर्याय नही है, उसको सामा मे प्राकृत और अपभ्रश का—जो हेमचद्र के समय तक उक्त भाषाओ के ग्रथा म मिलते थे उन्हींका—सग्रह है। देशी से सामान्यत आभास यह होता है कि जो शब्द सस्कृत तत्सम शब्दों से व्युत्पन्न न होकर तत्तत् देश को लौकिक भाषाओ के अव्युत्पन्न शब्द थे उन्हीं को देशी कहा गया है। देशज भी उन्हीं का परिचायक है। परतु तथ्य यह नहीं है। देशी नाममाला के वहुत से शब्द देशज अवश्य हैं। परतु जिन तद्भव शब्दो की व्युत्पत्ति सस्कृत तत्सम शब्दो

से हेमचद्र संबद्ध न कर सके उन्हें अव्युत्पन्न देशज शब्द मान लिया। प्राकृत के व्याकरण नियमो के अनुसार जिनकी तद्भवसिद्धि नही दिखाई जा सकी, उन्ही को यहाँ देशी कहकर सकलित किया गया। परतु 'देशीनाममाला' मे ऐसे शब्दो की सख्या बहुत बडी है जो सस्कृत के तद्भव व्युत्पन्न शब्द हैं। चूँकि प्राकृत व्याकरणानुसार हेमचद्र उनका सबध, मूल सस्कृत शब्दो से जोडने मे असमर्थ रहे, अत उन्हें देशी कह दिया। फलत हम कह सकते हैं कि देशी शब्द का यहाँ इतना ही अर्थ है कि उन शब्दो की व्युत्पत्ति का सबध जोडने मे हेमचद्र का व्याकरणज्ञान असमर्थ रहा।

इनके अतिरिक्त दो देशी कोशो का भी--एक सूत्ररूप मे और दूसरा गोपाल कृत छदोबद्ध--उल्लेख मिलते हैं। द्रोणकृत एक देशी कोश का नाम भी मिलता है। इसी तरह शिलाग का भी कोई देशी कोश रहा होगा। हेमचद्र ने देशीनाममाला मे अपना मतभेद और विरोध--उक्त कोशकार के मत के साथ--प्रकट किया। हेमचद्र के प्राकृत शब्दसमूह मे उपलब्ध अनेक तत्पूर्ववर्ती देशी शब्दकोशकारो का उल्लेख मिलता है। हेमचद्र ने ही जिन कोशकारो को सर्वाधिक महत्व दिया है उनमे राहुलक की रचना और पादलिप्ताचार्य का 'देशीकोश' कहा जाता है। 'जिनरत्नकोश' मे भी अनेक मध्यकालीन कोशग्रथो के नाम मिलते हैं। अभिधानचितामणिमाला सभवतः वही ग्रंथ है जिसे हेमचद्र विरचित अभिधानचितामणि कहा गया और यह सस्कृत कोश है।

विजयराजेंद्र सूरि (१९१३-१९२५ ई०) द्वारा सपादित, सकलित और निर्मित--अभिधानराजेंद्र--भी प्राकृत का एक बृहद् शब्दकोश है। पर तत्वत यह जैनो के मत, धर्म और साहित्य का आधुनिक प्रणाली मे रचित--सात जिल्दो मे ग्रथित--महाकोश है। पृष्ठ सख्या भी इसकी लगभग दस हजार है। यह वस्तुत विश्वकोशात्मक ज्ञानकोश की मिश्रित शैली का आधुनिक कोश है।

निष्कर्ष

(१) जहाँ तक सस्कृत कोशो का सबध है। शब्दप्रकृति के अनुसार उसके तीन प्रकार कहे जा सकते हैं--(१) शब्दकोश, (२) लौकिक शब्दकोश और (१) उभयात्मक शब्दकोश।

(२) वैदिक निघटुओ की शब्द-सग्रह-पद्धति क्या थी इसका ठीक ठीक निर्धारण नहीं होता, पर उपलब्ध निघटु के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि उसमे नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात चारो प्रकार के शब्दो का सग्रह रहा होगा। परतु उनका संबध मुख्य और विरल शब्दों से रहता था और कदाचित् वेदविशेष या सहिताविशेष से भी प्राय वे सबद्ध थे। वे सभवत गद्यात्मक थे।

(३) लौकिक सस्कृत की कोशपरपरा मे 'अमरपूर्व' कोशकारो की दो पद्धतियाँ थी, एक 'नामतत्र' और दूसरा 'लिगतत्र'। इस द्वितीय विधा के कोशों मे सस्कृत शब्दो के प्रयोगो मे स्वीकार्य लिगो का निर्देश होता था। एकलिग, द्विलिग, त्रिलिग शब्दों के विभाग के अतिरिक्त अर्थवत्‌लिग और नानालिग के प्रकरण भी इनमे हुआ करते थे। ये कोश अनुमान के अनुसार गद्यात्मक थे।

(४) नामतत्रात्मक कोशो की भी दो विधाएँ होती थीं--एक समानार्थक शब्दसूचीकोश (जिसे आज पर्यायवाची कोश कहते हैं) और दूसरा अनेकार्थ या नानार्थ कोश।

(५) 'अमरसिंह' के कोशग्रथ मे 'नामतत्र' और 'लिंगतत्र' दोनो का समन्वय होने के बाद जहाँ एक ओर कोश उभयनिर्देशक होने लगे वहाँ कुछ कोश 'अमरकोश' के अनुकरण पर ऐसे भी बने जिनमे समानार्थक पर्यायों और अनेकार्थक शब्दो--दोनो विधाओ की अवतारणा एकत्र की गई। फिर भी कुछ कोश (अभिधान चितामणि और कल्पद्रु आदि) केवल पर्यायवाची भी बने, और कुछ कोश--विश्वप्रकाश, मेदिनी, नानार्थार्णवसक्षेप'--आदि नानार्थकोश ही हैं। 'वर्णदेशना' सदृश कोशो को छोडकर सस्कृत कोश प्राय पद्यात्मक हैं। इनमे मुख्य छद अनुष्टुप् है। कभी कभी बहुछदवाले कोश भी बने।

(६) अमरकोश' की पद्धति पर कुछ कोशो मे शब्दो का वर्गीकरण स्वर्ग, द्यौ, दिक्, काल आदि विषयसबद्ध पदार्थों के आधार पर काडो, वर्गों, अध्यायो आदि मे हुआ और आगे चलकर कुछ मे वर्णानुक्रम शब्दयोजना का भी आधार लिया गया। इनमे कभी रूपमाण शब्दसकलन भी हुआ।

(७) अनेकार्थकोशो मे विशेष रूप से वर्णक्रमानुसारी शब्द-सकलन पद्धति स्वीकृत हुई। उसमे भी अत्याक्षर (अर्थात् अतिम स्वरात व्यजन) के आधार पर शब्दसकलन का क्रम अपनाया गया और थोडे बहुत कोशो मे आदिवर्णानुसारी शब्द-क्रम-योजना भी अपनाई गई। अत्यवर्णानुसारी कोशो की उक्त योजना का आधार कही कही निर्दिष्ट वर्ग या उच्चारणस्थान होता था। इनमे कभी कभी अक्षर सख्यानुसार भी एकाक्षर, द्वयक्षर, त्र्यक्षर आदि के क्रम से शब्दवर्गों का विभाजन भी किया गया है।

(८) इन विशेषताओ के अतिरिक्त एकाक्षरकोशमाला और द्विरूपकोश नामक शब्दकोशों की दो विधाओ का उल्लेख मिला है। एकार्थनाममाला, 'द्व्यर्थनाममाला' आदि ग्रथ आज उपलब्ध नही हैं तथापि कोशकार 'सौहरि' के नाम से निर्मित वे कोश कहे गए हैं। 'राक्षस' कवि का 'पडर्थनिर्णयकोश' भी उल्लिखित है। 'पड्मुखकोश'-वृत्ति भी सभवत ऐसा ही टीकाग्रथ था। 'वर्णदेशना' गद्यात्मक कोश है। वैकल्पिक रूपो का भी एकाध कोशो मे निर्देश किया गया है।

(९) कुछ कोशटीकाओ के आधार पर कहा जा सकता है कि सस्कृतकोश के युग मे बडे कोशो के सक्षेपीकरण द्वारा व्यवहारोपयोगी लघु रूप के निर्माण की पद्धति भी प्रचलित थी। सस्कृत के वैयाकरणो मे भी 'बृहत्' और 'लघु' संस्करणो के सपादन की प्रवृत्ति मिलती है जैसे--'लघुशब्देंदुशेखर' 'बृहच्छब्देंदुशेखर' 'बालमनोरमा' 'प्रौढमनोरमा' तथा 'लघु-सिद्धात-कौमुदी'। 'रायमुकुट' कृत अमरकोश टीका मे 'बृहत्अमरकोश,' सर्वदानद द्वारा 'बृहानद अमरकोश' और 'भानुदीक्षित' द्वारा 'बृहत् हारावली' के नाम उल्लिखित हैं। ऐसा मालूम होता है कि इन्ही ग्रथो के सक्षिप्त सस्करण के रूप मे 'हारावली' और 'अमरकोश' आदि निर्मित हुए हैं।

(१०) आनुपूर्वीमूलक वैकल्पिक शब्दो के सकल भीन कही

कहीं मिल जाते है। 'शब्दार्णवसक्षेप' मे पर्यायो की प्रवृत्तिमूलक सूक्ष्म अर्थच्छाया की भेदपरक व्याख्या भी मिलती है। 'कल्पद्रुकोश' मे लिखित म० म० रामावतार शर्मा के कथन से यह भी पता लगता है कि अतिप्राचीन 'व्याडि' के कोश मे कभी कभी अर्थनिर्देशन के लिये व्युत्पत्तिपरक सूचना भी दी जाती रही है।

(११) पाली, प्राकृत और अपभ्रंश कोशो मे कुछ नवीनता लक्षित नहीं होती। इतना अवश्य है कि पाली कोशो मे बौद्धमत के पारिभाषिक शब्दो का काफी परिचय मिल जाता है और पाली के बहुत से शब्दों का अर्थज्ञान भी हो जाता है। 'पाली' का महाव्युत्पत्यात्मक कोश गद्यात्मक है।

(१२) प्राकृत कोशो मे अधिकतः देशी शब्दकोश, और देशी नाममालाएँ हैं। इनमे अव्युत्पन्न माने गए देशी शब्दो का सकलन है। कुछ मे जैन प्राकृत ग्रथो के सपर्क से जैन मत के पारिभाषिक शब्दो का आशिक परिचय मिल जाता है। 'पइअलच्छीनाममाला' नामक ग्रथ मे सभवत सामान्य प्राकृत नामपदों का अत्यत लघु शब्द सग्रह रहा होगा।

(१३) अपभ्रंश के कोश सभवत पृथक् उपलब्ध नही हैं। प्राकृत के देशी शब्दकोशो अथवा देशी नाममालाओं मे ही उनका अतर्भाव समझना चाहिए।

मध्यकालीन हिंदी कोश

मध्यकाल में विरचित हिंदी कोशो का उल्लेख मिलता है और उनका स्वरूप सामने आता है। हिंदी ग्रथो के खोजविवरणो में पचासो कोश ग्रथो के नाम मिलते हैं। इनके अतिरिक्त पोद्दार अभिनदन ग्रथ मे श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी ने १४-१५ ऐसे कोशो के नाम दिए हैं जो खोजविवरणो मे नही मिल पाए हैं। इससे ऐसा लगता है कि हिंदी साहित्य के मध्यकाल मे और उसके बाद भी छोटे बडे सैकडो कोश बने थे। उनमे अनेक सभवत लुप्त हो गए। जिनके नाम ज्ञात हैं उनमे भी अनेक लुप्त या नष्ट होते जा रहे हैं। हिंदी ग्रथों की खोज करनेवालो को जो कोश उपलब्ध हुए हैं उनमे कतिपय प्रसिद्ध कोशों का सक्षिप्त परिचय दिया जा सकता है।

ऐसा जान पडता है, इनपर सस्कृत के कोशों से सकलित विषय और उनकी पद्धति का पर्याप्त प्रभाव पडा है। अधिकाश कोशो ने मुख्य आधार के रूप मे 'अमरकोश' का सहारा लिया। उसकी उपजीव्यता का उन्होने उल्लेख भी किया है। कभी कभी (जैसे उमराव कोश मे) अमरकोश का नाम भी उल्लिखित है। पर कुछ कोशकारों ने (यथा कर्णाभरण के लेखक हरिचरण दास) मेदिनी हेमकोश आदि से भी सहायता ली है।

मध्यकालीन कोश-रचना-पद्धति की झलक अग्रेनिर्दिष्ट कुछ प्रसिद्ध कोशों के नाम देखने से मिल जाती है। 'नाममाला' और 'अनेकार्थमजरी' 'नददास के दो कोश मिलते हैं। पद्यनिर्मित इन कृतियो के नाममात्र से इनके स्वरूप का बोध हो जाता है। 'गरीबदास' का 'अनगप्रबोध' १६१५ ई० की रचना कही जाती है। 'रत्नजीत' (१७१३ ई०) के दो शब्द कोश (क) भाषाशब्दसिंधु और (ख) भाषाधातुमाला—बताए गए हैं। इनके नाम भी स्वरूपपरिचायक हैं। 'मिर्जा खाँ' का 'तुहफत् उल-हिन्द (तुहफतुल हिंद) 'खुसरो' की 'खालिकबारी'—अत्यत प्रसिद्ध कोश हैं। एक 'डिंगल कोश' भी बहुत पहले बन चुका है। इनके अतिरिक्त भी अनेक कोश बने। 'नददास' के नाम से 'नामचितामणि' नामक भी एक कोश कहा गया है। 'अमरकोश' के भी सभवत अनेक पद्यानुवाद हुए हैं।

इन ग्रथो के परिदर्शन से ज्ञात होता है कि जैसा ऊपर कहा जा चुका है, 'अमरकोश' के तथा कभी कभी अन्य कोशों के आधार पर हिंदी के मध्यकालीन पद्यात्मक कोश बने जो पर्यायवाची, समानार्थी या अनेकार्थक कोश थे। धातुसग्रह का भी एक कोश—उपर्युक्त धातुमाला—अतिम वर्णक्रमानुसारी सकलन है। मिर्जा खाँ' का कोश अनेक दृष्टियों से नूतन पद्धतियों का निदर्शन उपस्थित करता है। अपने ढग का यह प्रथम प्रयास कहा गया है। जियाउद्दीन और सुनीतकुमार चाटुर्ज्या ने इसकी बडी प्रशसा की है। मध्यकालीन हिंदी भाषा के कोशो मे शब्दो के क्रमसयोजन मे नूतन और भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि का इसमे परिचय दिया गया है, साथ ही साथ शब्दो की विस्तृत व्याख्या भी दी गई है। इसके अतिरिक्त उच्चारण मे—लिखित रूप की अपेक्षा बोलचाल के स्वरूप का अधिक ध्यान रखा गया है। 'गरीबदास' का कोश सत साहित्य के अनेक पारिभाषिक शब्दों का अर्थकोश है। हिंदी मे 'खुसरो' का कोश भी यद्यपि विशाल नही है तथापि द्विभाषी कोश की प्राचीनरूपता के कारण महत्व रखता है। इसी तरह 'लल्लूलाल' का परवर्ती (१८६७ ई०) अग्रेजी हिंदी-फारसी कोश भी उल्लेखनीय हैं। 'एकाक्षरी कोश', औपधिवरदनाममाला' आदि अनेक प्रकार के शब्द सग्रहात्मक कोशों का भी निर्माण हुआ है।

हिंदी के मध्यकालीन कोशो मे प्राचीन वर्णानुसारी विभाजन के अतिरिक्त केवल शीर्षकानुसारी विभाजन भी मिलता है, जैसे—'अथ गो शब्द, 'अथ सदृश शब्द' इत्यादि। मुरारिदान' के डिंगल कोश के अतर्गत वर्गपद्धति के साथ साथ अन्य शीर्षक भी दिए गए हैं। उक्त कोश मे शीर्षकों के रूप हैं — (१) अथ वनस्पतिकायमाह, (२) दोहा, (३) वननाम इत्यादि। इसकी एक अन्य विशेषता भी है—इद्रियों के अनुसार उपशीर्षक जैसे—'अथ द्वींद्रियानाह, त्रींद्रियानाह, चतुरिंद्रियानाह पंचेंद्रियानाह।' पुनश्च 'जलचरान् पचेंद्रियानाह' —इत्यादि। 'वायुकायमाह' कहकर वायु से सबद्ध नाना पदार्थों का सकलन है। कही कही पीडा, 'पाताल' आदि उपशीर्षक के अतर्गत भी उन शब्दो का सग्रह है जो अन्यत्र समाविष्ट नहीं किए जा सके। कहीं कहीं ऐसा भी है कि पर्यायों और जातिभेदो के लिये दूसरी पद्धति अपनाई गई है, जैसे, 'व्रिख' के अतर्गत तो वृक्षों के पर्याय दिए गए है और 'सुरव्रिख' नाम के अतर्गत वृक्षो के प्रकार गिनाए गए हैं—'सुरतर गोरक, सिसण, देवदार, मदार' इत्यादि। इसी क्रम मे वे नाम भी हैं जिनमे चौबीस अवतार, अष्टसिद्धि, नवनिधि, सत्ताईस नक्षत्र छत्तीस शस्त्रो आदि के नाम दिए गए हैं।

हिंदी के मध्यकालीन कोशग्रथो मे शब्दसकलन का कार्य मुख्यत सस्कृत के अन्य कुछ प्रसिद्ध कोशों के आधार पर हुआ है। इसके अतिरिक्त 'भिखारीदास' आदि के साहित्यिक भाषाग्रथो से भी शब्द सकलित हुए हैं। 'खुसरो' और उनसे प्रभावित कोशों के समय से ही

जनजीवन या बोलचाल के शब्दो को भी संगृहीत करने की चेष्टा मिलती है। सस्कृत कोशो की पद्धति भी—जिसके अनुसार 'घनसार-श्चद्रसव' कहकर चद्र की सभी सज्ञाओ को कपूर का पर्याय भी सकेतित कर दिया गया है—'उमराव' कोश आदि मे मिलती है। परतु 'अमरकोश' आदि के समान हिंदी कोशो मे लिंगनिर्देश की व्यवस्था नहीं हो पाई। शिवसिंह कायस्थ के भाषा अमरकोश' (अमरकोश की टीका) मे स्पष्ट ही उसे बिना प्रयोजन समझकर छोड देने का निर्देश किया गया है। कभी कभी अवश्य एकाध कोश मे यह कह दिया गया है कि दीर्घ रूप स्त्रीलिंग है और ह्रस्व पुल्लिग। अव्ययो का समावेश भी प्राय नही के बराबर उपलब्ध है यद्यपि अनेक कोशो मे सस्कृत के परिनिष्ठित पदरूपो को तत्सम भाव मे भी कभी कभी निर्दिष्ट किया गया है तथापि सस्कृत अव्ययो के सकलन मे यह प्रक्रिया छोड दी गई है। जहाँ तक ध्वनियो मे विकसित परिवर्तन को निर्दिष्ट करने का प्रश्न है—'तुहफतुलहिंद' आदि कोशो को छोडकर अन्यत्र इसका अभाव है। 'भिखारीदास' ने अवश्य ही एक स्थल पर य, ज, री, रि, श, ष, स, और त्र आदि का समस्यात्मक उल्लेख मात्र कर दिया है। पर्याय शब्द और नानार्थ के विभिन्न अर्थों की गणना भी कुछ कोशकारो ने या तो अत में पर्याय-सख्या-सूचना से अथवा प्रत्येक पर्याय के साथ अक देकर की है।

सक्षेप मे कह सकते हैं कि (१)—मध्यकालीन हिंदीकोश अधिकत पद्य मे ही बने जो सस्कृत कोशो से—मुख्यत 'अमरकोश' से—या तो प्रभावित अथवा अनूदित हैं। अधिकत ये पर्यायवाची कोश हैं। कुछ अनेकार्थक कोश भी है तथा दो एक 'एकाक्षरीकोश' भी मिल जाते हैं। कुछ 'निघटु' ग्रथ भी—जो वैद्यक से सबधित थे,—सस्कृत से प्रभावित होकर बने। (२)—इन कोशों मे नामसग्रह अधिक है। कभी कभी धातुकोश भी मिल जाते हैं। (गूढार्थ कोश भी बना था।) इसी कारण अधिकत 'नाममाल', 'नाममजरी', 'नामप्रकाश', 'नामचितामणि', आदि कोशपरक नामो का अधिक प्रयोग हुआ है। (३)—'आतमबोध' या 'अनल्पप्रबोध' आदि मे पारिभाषिक-शब्दकोश-पद्धति भी मिलती है। (४)—शब्दक्रम मे अधिकत अत्य वर्ण आधार बने हैं। शब्दविभाजन या तो वर्गानुसारी है या शीर्षकानुसारी। 'तुहफतुलहिंद' मे अवश्य ही वर्णावर्गों का विभाजनक्रम मिलता है। कुछ कोशो मे उच्चारण और वर्णानुपूर्वी का सामान्य निर्देश भी दिखाई पडता है। (५)—डिंगल के कुछ कोशो में नामपद के साथ क्रियाओ का सकलन भी दिखाई देता है। (६)—कभी कभी पर्यायगणना भी है और परिभाषाएँ भी।

लिंगव्यवस्था आदि अनावश्यक समझे जानेवाले तत्वों का त्याग करने के अतिरिक्त कोश-विद्या-सबधी कोई ऐसी नवीन बात—जो कोश-विज्ञान के विकास मे विशिष्ट महत्व रखती हो—इन कोशो में आविर्भूत नहीं हुई। उच्चारण आदि के सबंध मे कभी कभी कोशकार की पैनी दृष्टि अवश्य आकृष्ट हुई। दूसरी ओर भाषा मे प्रयुक्त होनेवाले और महत्वपूर्ण साहित्यकारो के विशिष्ट साहित्यग्रथो मे प्रयोगागत तद्भव, देशी और विदेशी शब्दो के सकलन का प्रयास उतना नही हुआ जितना होना आवश्यक था।

मध्यकालीन हिंदी कोशकार अपने सामने उपलब्ध संस्कृत कोशों के आधार पर हिंदी कोश का कदाचित् निर्माण कर देना चाहते थे। इसका एक और भी अत्यत महत्वपूर्ण एव सभावित कारण कहा जा सकता है। कोश का सर्वप्रमुख प्रयोजन होता है वाङ्मय के ग्रथो का पाठको को अर्थबोध कराना। परतु सस्कृत कोशो और तदाधारित हिंदी कोशों के निर्माताओं की मुख्य दृष्टि थी ऐसे कोशो के सपादन पर जो विशेषत कवियो और सामान्यत अन्य ग्रथकारो के प्रयोगार्थ पर्यायवाची शब्दभाडार को सुलभ बना दें। निघंटुभाष्य अर्थात् निरुक्त मे वेदार्थ-व्याख्या पर ही सर्वाधिक ध्यान दिया गया है।

सस्कृत साहित्य के रचनात्मक ग्रथो के टीकाकारो ने अर्थ बोधन के लिये ही कोश वचनो के उद्धरण दिए हैं। फिर भी संस्कृत के अधिकाश कोशकारो की दृष्टि मे कविता के निर्माण मे सहायता पहुँचाना—पर्यायवाची कोशो का कदाचित एक अति महत्वपूर्ण लक्ष्य था। इसी प्रकार श्लेष, रूपक आदि अलकारो मे उपयुक्त शब्दनियोजन के लिये शब्दो को सुलभ बनाना अनेक नानार्थ शब्द-सग्राहको का मुख्य कोशकर्म था। हिंदी के कोशकारों ने भी सभवत इस प्रेरणा को अपना प्रियतर उद्देश्य समझा। इसी कारण गतानुगतिक और सस्कृतागत शब्द-कोश की निधि को असस्कृज्ञो के लिये सुलभ करने की इतिकर्तव्यता हिंदी कोशों मे भी हुई। थोडे से कोशकारों ने आरंभ में पर्याय या अनेकार्थ शब्दो मे नए शब्द जोडे। पर उससे बहुत आगे बढने का स्वतत्र प्रयास कम हुआ। फिर भी कुछ कोशकारो ने तद्भव आदि शब्दो की थोडी बहुत वृद्धि करने का प्रयास किया। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि मध्यकालीन हिंदी शब्दकोशों मे कोशविद्या के किसी भी तत्व की प्रगति नही हो पाई। सस्कृत कोशो की प्रामाणिक प्रौढता में उसी प्रकार कुछ ह्रास हीं हुआ जैसे, रीतिकालीन साहित्यशास्त्र के हिंदी-लक्षण-ग्रथो मे सस्कृत के तद्विषयक विशिष्टग्रथो की प्रौढता का। व्युत्पत्ति का पक्ष हिंदी के मध्यकालीन कोशो मे पूर्णत. परित्यक्त था। सस्कृत कोशों मे भी यह पक्ष उपेक्षित ही रहा पर कोश के अनेक टीकाकारों ने व्युत्पत्ति पर ध्यान दिया। 'अमरकोश' की 'व्याख्यासुधा' या 'रामाश्रयी' टीका (भानुजी दीक्षितकृत) मे 'अमरकोश' के प्रत्येक नामपद की व्युत्पत्ति दी गई है। हिंदी के मध्यकालीन कोशो की न तो वैसी टीकाएँ लिखी गईं और न तद्भव शब्दो की व्युत्पत्ति का अनुशीलन ही हुआ। अत कोशविद्या के वैकासिक कौशल की दृष्टि मे कोई प्रगति नही मिलती।

सस्कृत के आधुनिक महाकोश

भारत मे आधुनिक पद्धति पर बने संस्कृत कोशों को दो वर्गों मे रखा जा सकता है। इनमे एक विधा वह थी जिसमे अंग्रेजी अथवा जर्मन आदि भाषाओ के माध्यम से सस्कृत के कोश बने। इस पद्धति के प्रवर्तक अथवा आदि निर्माता पाश्चात्य विद्वान् थे। कोशविद्या की नूतन दृष्टि से सपन्न नवकोश की रचनाशैली के अनुसार ये कोश बने। इनकी चर्चा आगे की जायगी। दूसरी ओर नवीन पद्धति के अनुसार नूतन प्रेरणाओं को लेकर सस्कृत मे ऐसे कोश बने जिनका माध्यम भी

संस्कृत ही था। इस प्रकार के कोशो मे विशेष रूप मे दो उल्लेखनीय हैं (१) 'शब्दकल्पद्रुम' और (२) वाचस्पत्य'।

प्रथम कोश—स्यार राजा 'राधाकान्तदेव बाहादुर' द्वारा निर्मित "शब्दकल्पद्रुम" है। इसका प्रकाशन १८२८—१८५८ ई० मे हुआ। इसमे पाणिनिव्याकरण के अनुसार प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति दी गई है, शब्दप्रयोग के उदाहरण उद्धृत हैं तथा शब्दार्थसूचक कोश या इतर प्रमाणो के समर्थन द्वारा अर्थनिर्देश किया गया है। पर्याय भी दिए गए हैं। धातुओ से व्युत्पन्न क्रियापदो के उदहरण भी दिए गए है। पदोदाहरण आदि भी हैं। कुछ थोडे अतिप्रचलित वैदिक शब्दो के अतिरिक्त शेप नही हैं। शब्दो की विस्तृत व्याख्या मे दर्शन, पुराण, वैद्यक, धर्मशास्त्र आदि नाना प्रकारो के लबे लबे उद्धरण भी दिए गए हैं। तत्र मत्र, शास्त्र, स्तोत्र आदि से उद्धृत करते हुए अनेक सपूर्ण स्तोत्र, तात्रिक मत्र आदि के भी विस्तृत अश उद्धरित हैं। ज्योतिषशास्त्र और भारतीय विद्याओ के पारिभाषिक शब्दो का भी तद्विद्याविशेषज्ञो के सहयोग से सप्रमाण विवरण दिया गया है। इस कोश की रचनापरिपाटी के विषय मे भी विस्तृत वक्तव्य दिया गया है। उन कोशो की सूची भी दी गई है जो उपलब्ध थे और जिनसे शब्दसग्रह किया गया है। साथ ही विभिन्न कोशो मे उल्लिखित पर अनुपलब्ध कोशो अथवा कोशकारो के नाम भी भूमिका मे दिए गए हैं। लेखक स्वयमपि संस्कृत वैदुष्य के अतिरिक्त बँगला, हिंदी, अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं का अच्छा जानकार था।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस कोश मे—जो सात खडो मे विरचित है—यथासभव समस्त उपलब्ध संस्कृत साहित्य के वाङ्मय का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त अत मे परिशिष्ट भी दिया गया है जो अत्यत महत्वपूर्ण है। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय-कोश रचना के विकासक्रम मे इसे विशिष्ट कोश कहा जा सकता है। यह पूर्णत संस्कृत का एकभाषीय कोश है। परवर्ती संस्कृत कोशों पर ही नहीं, भारतीय भाषा के सभी कोशो पर इसका प्रभाव —व्यापक रूप से—पडता रहा है।

यह कोश विशुद्ध शब्दकोश नहीं है, वरन् अनेक प्रकार के कोशों का—शब्दार्थकोश, पर्यायकोश, ज्ञानकोश और विश्वकोश का—समिश्रित महाकोश है। इसमे बहुविधीय उद्धरण, उदाहरण, प्रमाण, व्याख्या और विधिविधानो एव पद्धतियो का परिचय दिया गया है। इसमे गृहीत शब्द 'पद' हैं, सुबतिङ त हैं, प्रातिपदिक या धातु नही।

सुखानदनाथ ने भी चार जिल्दों मे एक बृहदाकार संस्कृतकोश आगरा और उदयपुर से (ई० १८७३-८३ मे) प्रकाशित किया जिसपर 'शब्दकल्पद्रुम' का पर्याप्त प्रभाव है।

इस प्रकृति का दूसरा शब्दकोश 'वाचस्पत्यम्' है, जिसका निर्माण अनेक वर्षों मे सपन्न हुआ। पूर्व कोश की अपेक्षा संस्कृत कोश का यह एक बृहत्तर संस्करण है। इसके सकलयिता थे तर्कवाचस्पति तारानाथ भट्टाचार्य, जो बगाल के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय मे अध्यापक थे।

एच उडरो ने अपनी 'वाचनिका' मे इस कोश की विशेषता बताते हुए कहा है कि "विल्सन" की 'संस्कृत डिक्शनरी' और 'शब्दकल्पद्रुम' की अपेक्षा इसका क्षेत्र विस्तृत और गभीरतर है। साथ ही तत्र, दर्शनशास्त्र, छद शास्त्र और धर्मशास्त्र के ऐसे जाने कितने शब्द हैं जो 'राथ बोथलिंग्क्' की संस्कृत-जर्मन डिक्शनरी मे नहीं हैं। इसमे यह भी बताया गया है कि 'शब्दकल्पद्रुम' का प्रथम सस्करण बँगला लिपि मे हुआ था। उस समय के उपलब्ध कोशो मे अनुपलब्ध सैकडो हजारो शब्द इसमे सकलित हैं। सामान्य वैदिक शब्द तो हैं ही साथ ही ऐसे भी अनेक वैदिक शब्द हैं जो तत्कालीन शब्दकोशो मे अप्राप्य हैं। षड्दर्शनो के अतिरिक्त चार्वाक, माध्यमिक, योगाचार, वैभाषिक, सौत्रान्तिक, अर्हत, रामानुज, माध्व, पाशुपत, शैव, प्रत्यभिज्ञा, रसेश्वर आदि अल्पलोकप्रिय दर्शनो के पारिभाषिक शब्दो का भी इसमे समावेश मिलता है। पुराणो और उपपुराणो से सगृहीत पुरातन राजाओ का इतिहास तथा प्रत्नयुगीन भारतीय भूगोल का भी इसमे निर्देश हुआ है। चिकित्साशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों और अन्य विवरणो का भी विस्तृत निर्देश किया गया है। ज्योतिष—गणित, और फलित—के पारिभाषिक शब्द भी हैं। यद्यपि वैदिक शब्दो के सकलन सपादन को कोशकार ने अपने इस कोश की विशेष महत्ता बताई है तथापि बहुत से वैदिक शब्द छट भी गए हैं और बहुसख्यक वैदिक शब्दो की व्युत्पत्ति और उनके अर्थ स्वकल्पित भी हैं। 'रायबोथलिंग्क' के बृहत्संस्कृत' शब्दकोश' के उपयोग का भी काफी प्रयत्न किया गया है।

सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि 'वाचस्पत्यम्' की रचना द्वारा पूर्वोक्त 'शब्दकल्पद्रुम' का एक ऐसा परिवर्धित और अपेक्षाकृत बृहत्तर सस्करण सामने आया जो कि रचनापद्धति की दृष्टि से अधिकाश बातो मे 'शब्दकल्पद्रुम' के आयाम को व्यापक और पूर्ण बनाने की चेष्टा करता है। 'तर्कवाचस्पति' ने निश्चय ही जितना परिश्रम किया वह असामान्य है। उनके गभीर ज्ञान, तलस्पर्शी मनीषा और व्यापक वैदुष्य का इसमे अद्भुत उन्मेष दिखाई देता है। 'शब्दकल्पद्रुम' की आधारपीठिका पाकर भी ग्रथकार ने कोशकला को 'शब्दकल्पद्रुम' की शैली मे काफी व्यापक बनाया।

'शब्दकल्पद्रुम' की अपेक्षा इसमे एक और विशेषता लक्षित होती है। 'शब्दकल्पद्रुम' मे 'पद' सुबत तिडत दिए गए हैं। प्रथमा एकवचन के रूप को कोश मे व्याख्येय शब्द का स्थान दिया गया है। परतु 'वाचस्पत्यम्' में दिए गए शब्द 'पद' न होकर 'प्रातिपदिक' अथवा 'धातु-रूप' में उपन्यस्त हैं। वैसे सामान्य दृष्टि से—रचनाविधान की पद्धति के विचार से—'वाचस्पत्यम्' को 'शब्दकल्पद्रुम' का विकसित रूप कहा जा सकता है। 'विल्सन' और 'मोनियर विलियम्स' के कोशों द्वारा अर्थबोध, शब्दार्थज्ञान एव शब्दप्रयोग की सूचना तथा व्याख्यापरक परिचय सक्षिप्त है, पर उपयोगी रूप में कराया गया है। परतु 'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' द्वारा उद्धरणो की विस्तृत पृष्ठभूमि के सपर्क में उभरे हुए अर्थचित्र यद्यपि सश्लिष्टबोध देने में सहायक होते हैं तथापि उद्धरणो के माध्यम से सबद्धज्ञान का आकार विश्वकोशीय

ही गया है । उपयोगितासंपन्न होकर भी सामान्य संस्कृतज्ञों के लिये—यह व्यावहारिक सौविध्य से रहित हो गया है ।

संस्कृत के माध्यम से छोटे बड़े अनेक संस्कृतकोश बने । परंतु कोश-विकास के इतिहास में उनका कोई महत्व नहीं माना जा सकता । संस्कृत के अनेक कोश ऐसे भी बने जो भारतीय भाषाओं के माध्यम से संस्कृत शब्दों का अर्थपरिचय देते हैं । परंतु उनमें कोई अपनी स्वतंत्र विशेषता नहीं दिखाई देती । 'विल्सन' अथवा 'विलियम्स', 'मेकडानल्ड', 'आप्टे' के कोशों का या तो इन्होंने आधार लिया अथवा थोड़ी बहुत सहायता 'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' से ली । मराठी-संस्कृत-कोश संस्कृत-तमिल-कोश, संस्कृत-तेलगू-कोश, संस्कृत-बँगला कोश, संस्कृत-गुजराती-कोश, संस्कृत-हिंदी-कोश आदि भारतीय आधुनिक भाषाओं के तत्तत् नामवाले—सैकड़ों की संख्या में कोश बने हैं और आज ये कोश उपलब्ध भी हैं । यहाँ पर ध्यान रखने की एक और बात यह है कि संस्कृत के उक्त दोनों महाकोश बंगाल की भूमि में ही बने ।

बँगला विश्वकोश भी संभवत उसी परंपरा से प्रभावित—'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' का ही एक रूप है । इसमें यद्यपि आधुनिक विश्वकोश की रचनापद्धति को अपनाने की चेष्टा हुई है तथापि वह भी मिश्रित शैली का ही विश्वकोश है । उसका एक हिंदी संस्करण भी हिंदी विश्वकोश के नाम से प्रकाशित किया गया है । बंगला विश्वकोश का पूरा पूरा आधार लेकर चलने पर भी हिंदी का यह प्रथम विश्वकोश नए सिरे से तैयार किया गया ।

शब्दकोश और विश्वकोश के मिश्रित रूप की यह पद्धति केवल संस्कृत और बंगला के कोशों में ही नहीं अपितु भारतीय भाषा के अन्य कोशों में भी लक्षित होती है । अंग्रेजी आदि भाषा के अनेक बड़े कोशों में यह सरणि है—विशेषत प्राचीन संस्करणों में । पूर्णचंद्र का उड़िया कोश भी इसी पद्धति का एक ग्रंथ है । 'हिंदी शब्दसागर' भी अपने प्रथम संस्करण में आंशिक रूप से इसी पद्धति पर चला । द्वितीय संशोधित और परिवर्धित संस्करण में भी उसके पूर्वरूप को सुरक्षित रखने की चेष्टा हुई है । परंतु लंबे लंबे पौराणिक, शास्त्रीय अथवा दार्शनिक उद्धरणों का भार इसमें न आने देने की चेष्टा हुई है । संबद्ध वस्तु अथवा पदार्थज्ञान के लिये उपयोगी विवरण को यथासंभव देने की चेष्टा की गई है ।

आधुनिक कोशविद्या : पश्चिम में

आधुनिक कोशरूप का उद्भव और विकास

पश्चिमी विद्वानों के संपर्क से भारत में जिस कोश-रचना-पद्धति का १८वीं शती में विकास हुआ, पश्चिम में पहले से ही वह प्रचलित हो चुकी थी । अत. योरप की कोश-रचना-पद्धति के विकास का ऐतिहासिक सिंहावलोकन यहाँ देना अनुचित न होगा ।[क]

ग्लॉस—रोमन धर्म और साम्राज्य की धार्मिक एवं राजनीतिक महत्ता के कारण समस्त पश्चिमी योरप में लातिन (लैटिन) सर्वप्रमुख भाषा बन गई थी । उस भाषा के ग्रंथों का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण मान लिया गया था । वह भाषा समस्त विद्या और ज्ञान की प्राप्ति का एक प्रकार से प्रवेशद्वार समझी जाने लगी थी । पाश्चात्य कोशविद्या का अंकुरण भी इन्हीं लातिन-शब्द-सूचियों से हुआ था, जिन्हें ग्लासेज कहते थे । 'ग्लासरी' शब्द भी इसी मूल से व्युत्पन्न है । ग्लासेज का अर्थ होता था शब्दसूचियाँ । 'लातिन' ग्रंथों के पढ़नेवाले—ग्रंथों के हाशिए पर उनके दुर्बोध्य और कठिन शब्दों को लिख दिया करते थे । अपनी स्मृति द्वारा अथवा अन्य विज्ञों की सहायता से—कभी सरल 'लातिन' में और कभी तदितर स्वभाषा में—इन शब्दों का अर्थ भी हलके अक्षरों में लिख लेते थे । इसी शब्द को 'ग्लास' कहते हैं ।

'रोमानिक' भूमिवासियों के लिये प्राचीन रोमन भाषा (लातिन) बहुत कठिन नहीं थी । पर दूरस्थों के लिये वह भाषा दुर्बोध्य थी । अत 'केल्टिक' और 'ट्यूटानिक' प्रदेशों के दूरस्थों की दृष्टि में उपर्युक्त 'ग्लास पद्धति' अधिक उपयोगी हुई । व्यापक रूप से और अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत आयाम में इस प्रकार की शब्दसूचियाँ बनीं । इनके माध्यम से सैक्सन, इंग्लिश, 'आयरिश', 'प्राचीन जर्मन (गाथिक)' आदि भाषाओं के ऐसे प्राचीन शब्दरूप बहुत बड़ी मात्रा में सुरक्षित रह गए हैं जिनमें तत्तद्भाषाओं के बहुत से शब्द आज अन्यत्र दुर्लभ हैं ।

कहा जाता है कि इंग्लैंड में उत्पन्न 'जोन्स दी गार्लैंडिया' ने लातिन के एक डिक्शनेरियस का निर्माण—१२२५ ई० में किया था । लातिन

क—शब्दकोशों के प्रारंभिक अस्तित्व की चर्चा में अनेक देशों और जातियों के नाम जुड़े हुए हैं । भारत में पुरातनतम उपलब्ध शब्दकोश वैदिक 'निघंटु' है । उसका रचनाकाल कम से कम ७०० या ८०० ई० पू० है । उसके पूर्व भी 'निघंटु' की परंपरा थी । अत कम से कम ई० पू० १००० से ही निघंटु कोशों का संपादन होने लगा था । कहा जाता है कि 'चीन' में ईसवी सन् के हजारों वर्ष पहले से ही कोश बनने लगे थे । पर इस श्रुतिपरंपरा का प्रमाण बहुत बाद—आगे चलकर उस प्रथम चीनी कोश में मिलता है, जिसकी रचना 'शुओ वेन' (एस-एच-यू-ओ-डब्ल्यू-ई-एन) ने पहली दूसरी शती ई० के आसपास की थी (१२१ ई० भी इसका निर्माणकाल कहा गया है) । चीन के 'हान' राजाओं के राज्यकाल में भाषाशास्त्री 'शुओ वेन' के कोश को उपलब्ध कहा गया है । यूरेशिया भूखंड में एक प्राचीनतम 'अक्कादी-सुमेरी' शब्दकोश का नाम लिया जाता है जिसके प्रथम रूप का निर्माण—अनुमान और कल्पना के अनुसार—ई० पू० ७वीं शती में बताया जाता है । कहा जाता है कि हेलेनिस्टिक युग के यूनानियों ने भी योरप में सर्वप्रथम कोशरचना उसी प्रकार आरंभ की थी जिस प्रकार साहित्य, दर्शन, व्याकरण, राजनीति आदि के वाङ्मय की । यूनानियों का महत्व समाप्त होने के बाद और रोमन साम्राज्य के वैभवकाल में तथा मध्यकाल में भी बहुत से 'लातिन' के कोश बने । 'लातिन' का उत्कर्ष और विस्तार होने पर लातिन तथा लातिन + अन्यभाषा कोश, शनै शनै बनते चले गए । 'लातिन' ग्लास-कोशों की चर्चा में इसका कुछ वर्णन किया गया है । सातवीं-आठवीं शती ई० में निर्मित एक विशाल 'अरबी शब्दकोश' का उल्लेख भी उपलब्ध है ।

शब्दों का यह लघु सग्रहकोश था। विषयवर्गानुसार वाक्यो मे प्रयोग-निदर्शन के रूप मे भाषा के आरभिक सीखनेवालो की उपयोगिता के निमित्त इसका निर्माण किया गया था। 'डिक्शनरी' शब्द का भी कदाचित सर्वप्रथम प्रयोग इसी शब्दसूची मे हुआ था। १४वीं शती के उत्तरार्ध मे भी ऐसे कुछ कोश बने।

कालातर मे अलग पन्नो पर उक्त शब्दों-अर्थों की प्रतिलिपियाँ की जाने लगी। उन्हें एकत्र भी किया जाने लगा। 'लातिन' भाषा के क्लिष्ट शब्दो का अर्थबोध कराने के लिये शब्दार्थसग्रह का यह कार्य अत्यत उपयोगी हो गया है। तत्तत् सूचियो मे समाविष्ट शब्दो को आगे चलकर ग्लासेरियम कहने लगे, जिसका अर्थ है शब्दार्थसूची। १६वीं १७वी--- मे इन्हीं 'ग्लासेरियम' के आधार पर वर्णक्रमानुसारी शब्दसारिणियाँ (टेबुल्स अल्फाबेटिकल) और क्लिष्ट-शब्दार्थ-बोधक सग्रहो का निर्माण हुआ।

अकारादिक्रम---१५वी शती से भी दो तीन सौ वर्ष पूर्व योरप की विभिन्न भाषाओ मे अनेक प्रकार के विभिन्न वर्गों के शब्दो की सूचियाँ सगृहीत होने लगी थीं।

इन शब्दसूचियों मे शब्दसकलन वर्गीकृत होता था। जिस प्रकार सस्कृत के अमरकोश आदि ग्रथो मे अपनी दृष्टि से पर्यायवाची शब्दो का वर्गाश्रित सग्रह मिलता है उसी प्रकार इन शब्दसूचियों मे शरीर के अगों पारिवारिक सबधो, मनुष्य के पदो और श्रेणियो, घरेलू एव पालित जानवरो, जगली पशुओं, मछलियो, वृक्षो, व्यवसायो, वस्त्राभूषणों, अस्त्रशस्त्रों, चर्च की सामग्रियो, रोग आदि के नामो की अर्थ-सहित सूचियाँ सगृहीत हाती थी।

इन्हें 'वोकैब्युलेरियम्' कहा जाता था। अग्रेजी का 'वोकैब्युलरी' शब्द भी इसी से निर्गत है। कागज के अतिरिक्त चमडे पर भी इनका सग्रह होता था। मूलत भिन्न दृष्टि से सकलित होने पर भी 'ग्लॉस' और 'वोकैब्युलरी' दोनो का व्यावहारिक उपयोग भाषाज्ञान मे सहायता देनेवाले उपकरण के रूप में होने लगा था। अत इन दोनो प्रकार की शब्दार्थसूचियो का प्राय एकत्र सयोजन कर दिया जाने लगा।

स्वज्ञान से अथवा दूसरो की 'ग्लॉसरी' और 'वोकैब्युलरी' से नए शब्दो को लेकर शब्दसूचियों के स्वामी उनमे नए शब्द जोड़ते रहते थे। इनकी प्रतिलिपि करके अन्य व्यक्ति भी समय समय पर इनका सग्रह प्राप्त कर सकता था। प्रतिलिपि परपरा द्वारा इनका प्रसार और विस्तार होता चल रहा था।

सर टामस् ईलियट (१५३८ ई०) का निर्मित शब्दकोश डिक्शनेरियम) विशेष महत्व भी रखता है और नूतनपथ का भी प्रदर्शक है। जे० डब्ल्यू० विदाल्स् द्वारा अग्रेजी के आरभिक लातिन पाठको की सुविधा के लिये रचित 'अग्रेजी-लातिन' का लघुशब्दकोश भी विषयानुसारी वर्गों मे ही ग्रथित है। परतु 'अग्रेजी मे लातिन' का कोश होने के कारण विशेष महत्व रखता है।

इससे भी अधिक महत्व का एक बहुभाषी लातिन शब्दकोश-- १३३६ ई० मे मार एस्टीम ने बनाया था जिसमे लातिन शब्दो के समानार्थक अग्रेजी शब्दो के अलावा यूरप की अनेक नव्यभाषाओ के भी पर्याय दिए गए थे। १५४७ ई० के बाद अग्रेजी और नव्ययूरोपीय भाषा के भी कोश बनने लगे।

प्रतिलिपीकरण के माध्यम से प्रसारित इन सूचियो मे शब्दो और वाक्याशो को उपयोगिता की दृष्टि से अकारादि क्रमानुसार व्यवस्थित करना अधिक लाभकर जान पडा। यही से इनमे अकारादि क्रमानुसारी सग्रहपद्धति का आरंभ होता है। शब्द या वाक्याश के आरभिक प्रथमाक्षर को क्रमबद्ध सूची मे लिपिक सगृहीत कर देता था। उसमे द्वितीयाक्षर अथवा आनुपूर्वी नही देखी जाती थी। अत इस पद्धति को वर्णमालानुसारी प्रथमाक्षर क्रम कह सकते हैं। यह व्यवस्था सहस्रो शब्दोवाली सूची मे अनुभूत कठिनाई को दूर कर, सुविधाजनक पद्धति को ढूंढ निकालने के सायास व्यवस्था द्वारा प्रचलित हुई। फलत धीरे-धीरे उसमे विकास होता गया और प्रथमाक्षर के साथ साथ द्वितीय, तृतीय अक्षरो पर भी ध्यान दिया जाने लगा। फिर धीरे धीरे वर्णानुपूर्वी के अनुसार आधुनिक युग मे प्रचलित पद्धति से शब्दार्थसग्रह होने लगा।

अग्रेजी कोश का उद्भव

'लातिन' की इन शब्दसूचियो ने आधुनिक कोश-रचना-पद्धति का जिस प्रकार विकास किया, अग्रेज कोशो के विकास क्रम मे उसे देखा जा सकता है। आरभ मे इन शब्दार्थसूचियो का प्रधान विधान था क्लिष्ट 'लातिन' शब्दो का सरल 'लातिन' भाषा मे अर्थ सूचित करना। धीरे धीरे सुविधा के लिये रोमन भूमि से दूरस्थ पाठक अपनी भाषा मे भी उन शब्दो का अर्थ लिख देते थे। 'ग्लॉसरी', और 'वोकैब्युलरी' के अग्रेजी भाषी विद्वानो की प्रवृत्ति मे भी यह नई भावना जगी। इस नवचेतना के परिणामस्वरूप 'लातिन' शब्दो का अग्रेजी मे अर्थनिर्देश करने की प्रवृत्ति बढने लगी। इस क्रम मे 'लैटिन अग्रेजी' कोश का आरंभिक रूप सामने आया।

दसवी शताब्दी मे ही 'आक्सफोर्ड' के निकटवर्ती स्थान के एक विद्वान् धर्मपीठाधीश 'एफ्रिक' ने 'लैटिन' व्याकरण का एक ग्रथ बनाया था। और उसी के साथ वर्गीकृत 'लातिन' शब्दो का एक 'लैटिन-इग्लिश', लघुकोश भी जोड दिया था। सभवत उक्त ढग के कोशो मे यह प्रथम था। १०६६ ई० मे लेकर १४०० ई० के बीच की कोशात्मक शब्दसूचियो को एकत्र करते हुए 'राइट व्यूलर' ने ऐसी दो शब्द-सूचियाँ उपस्थित की हैं। इनमे भी एक १२ वी शताब्दी की है। वह पूर्ववर्ती शब्दसूचियो की प्रतिलिपि मात्र है। दूसरी शब्दसूची मे 'लातिन तथा अन्य भाषाओ के शब्द हैं।

इगलैड मे सास्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना के उद्‌बुद्ध होने पर अग्रेजी राजभाषा हुई। शिक्षा-सस्थाओ मे फ्रासीसी के स्थान पर अग्रेजी का पठन पाठन बढ़ा। अग्रेजी मे लेखको की सख्या भी अधिक होने लगी। फलत अग्रेजी के शब्दकोश की आवश्यकता भी बढ गई। १५वी शती मे 'राइट व्यूलर' ने छह महत्वपूर्ण पुरानी शब्दार्थसूचियो को मुद्रित किया। अधिकत विषयगत वर्गों के आधार पर वे बनाई गई थी। केवल एक शब्दसूची ऐसी थी जिसमे अकारादिक्रम से २५००० शब्दो का सकलन किया गया था।

एम० एम० मैथ्यू ने 'अंग्रेजी कोशों का सर्वेक्षण' नामक अपनी रचना में १५वीं शती के दो महत्वपूर्ण ग्रंथों का उल्लेख किया है। प्रथम 'ओरटस' का 'वोकाव्युलरियम्' था जो पूर्व 'मेड्ला' व्याकरण पर आधारित था। दूसरा था 'ग्लाफेड्स' या 'ज्याफरी' व्याकरण पर आधारित इंग्लिश-लैटिन कोश। इसका पिसिन द्वारा १४४० ई० में प्रथम मुद्रित संस्करण प्रकाशित किया गया। उसका नाम था प्रोम्पटोरियम परव्यूलोरम सिनवलेरिकोरम्' (अर्थात् बच्चों का भंडार या संग्रहालय)। इसका महत्व--९-१० हजार शब्दों के संग्रह के कारण न होकर इसलिये था कि इसके द्वारा शब्दसूची के रचनाविधान में नए प्रयोग का संकेत दिखाई पड़ा। इसमें संज्ञा और क्रिया के मुख्यांश से व्यतिरिक्त अन्य प्रकार के शब्द (अन्य पार्ट्स् ऑव स्पीच) भी संकलित हैं। यह 'मेड्ला ग्रामाटिसिज' कदाचित् प्रथम 'लातीन अंग्रेजी' शब्दकोश था। लोकप्रियता का प्रमाण मिलता है--उसकी बहुत सी उपलब्ध प्रतिलिपियों के कारण। १४८३ ई० में 'कैथोलिकम ऐंग्लिकन्' नामक शब्दकोश संकलित हुआ था। परंतु महत्वपूर्ण कोश होकर भी पूर्वोक्त कोश के समान वह लोकप्रिय न हो सका।

इसके पश्चात् १६वीं शताब्द में 'लैटिन अंग्रेजी' और 'अंग्रेजी लैटिन' की अनेक शब्दसूचियाँ निर्मित एवं प्रकाशित हुईं। 'सर टामस ईलियट' की डिक्शनरी ऐसा सर्वप्रथम ग्रंथ है जिसमें 'डिक्शनरी' अभिधान का अंग्रेजी में प्रयोग मिलता है। मूल शब्द लातिन का 'डिक्शनरियम्' है जिसका अर्थ था कथन (सेइंग)। पर वैयाकरणों द्वारा 'कोश' शब्द के अर्थ में उसका प्रयोग होने लगा था। इससे पूर्व--आरंभिक शब्दसूचियों और कोशों के लिये अनेक नाम प्रचलित थे, यथा--'नॉमिनल', 'नेमबुक', मेड्ला ग्रामेटिक्स, 'दी आर्ट्स वोकाव्युलेरियम्, गार्डन आफ वड्स, दि प्रोम्पटारियम पोरवोरम, कैथोलिकम् ऐंग्लिकन्, मैनुअलस् वोकैव्युलरम्, हैंडफुल आव वोकैव्युलरियस्, 'दि एवेसडेरियम्, बिवलोथिका, एल्वोरिया, लाइब्रेरी, दी टेवुल अल्फावेटिकल, दी ट्रेजरी या ट्रेजरर्स आफ वर्ड्स, 'दि इंग्लिश एक्सपोजिटर, दि गाइड टु दि टंग्स, दि ग्लासोग्राफिया, दि न्यू वर्ल्ड्स आव वर्ड्स, 'दि इटिमोलॉजिकम्, दि फाइलॉलॉजिकम्' आदि। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार १२२५ ई० में कंठस्थ की जानेवाली 'लातिन' शब्दसूची के हस्तलेख के लिये जान गारलैंडिया ने इस (डिक्शनरी) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया था। परंतु लगभग तीन शताब्दी बाद सर टामस् ईलियट द्वारा प्रयुक्त यह शब्द क्यों और कैसे लोकप्रिय हो उठा यह कहना सरल नहीं है।

१६वीं शती में पूर्वार्ध के व्यतीत होते होते यह विचार स्वीकृत होने लगा कि शब्दकोश में शब्दार्थ देखने की पद्धति सुविधापूर्ण और सरल होनी चाहिए। इस दृष्टि से कोश के लिये वर्णमालाक्रम से शब्दानुक्रम की व्यवस्था उपयुक्ततर मानी गई। पश्चिम की इस पद्धति को महत्वपूर्ण उपलब्धि और कोशविद्या के नूतन विकास की नई मोड़ माना जा सकता है। एकाक्षर और विश्लेषणात्मक पदरचना वाली चीनी भाषा में एकाक्षर शब्द ही होते हैं। प्रत्येक 'सिलेबुल' स्वतंत्र, सार्थक और विश्लिष्ट होता है। वहाँ के पुराने कोश अर्थानुसार तथा उच्चारण-मूलक पद्धति पर बने हैं। वैसी भाषा के कोशों में उच्चारणानुसारी शब्दों का ढूँढना अत्यंत दुष्कर होता था। परंतु योरप की भाषाओं में अकारादि क्रमानुसारी एक नई दिशा की ओर शब्दकोशरचना का संकेत हुआ। पूर्वोक्त प्रोम्पटोरियम के अनंतर १५१९ में प्रकाशित विलियम हार्मन का शब्दकोश अंग्रेजी लैटिन कोशों में उल्लेख्य है। इसमें कहावतों और सूक्तियों का प्राचीन पद्धति पर संग्रह था। मुद्रित कोशों में इसका अपना स्थान था। १५७३ ई० में रिचार्ड हाउलेट का 'एवेसेडेरियम' और 'जॉन बारेट' का 'लाइब्रेरिया'--दो कोश प्रकाशित हुए। प्रथम में लैटिन पर्याय के साथ साथ अंग्रेजी में अर्थकथन होने से अंग्रेजी कोशों में--विशेषत प्राचीन काल के--इसे उत्तम और अपने ढंग का महत्वशाली कोश माना गया है। इससे भी पूर्व--ई० १५७० में 'पीटर लेविंस' ने एक 'इंगलिश राइमिंग डिक्शनरी' बनाई थी जिसमें अंग्रेजी शब्दों के साथ लैटिन शब्द भी हैं और सभी खास शब्द तुकांत रूप में रखे गए थे।

हेनरी अष्टम की बहन, मेरी ट्यूडर, जब फ्रांस के १२वें लुई की पत्नी बनी तब उन्हें फ्रांसीसी भाषा पढ़ाने के लिये जान पाल ग्रे ने एक ग्रंथ बनाया जिसमें फ्रांसीसी के साथ साथ अंग्रेजी शब्द भी थे। १५३० ई० में यह प्रकाशित हुआ। इस कोश को 'आधुनिक' फ्रांसीसी और आधुनिक अंग्रेजी भाषाओं का प्राचीनतम कोश कहा जा सकता है। गाइल्स दु गेज ने लेडी मेरी को फ्रांसीसी पढ़ाने के लिये १५२७ में व्याकरणरचना की जो पुस्तक प्रकाशित की थी उसमें भी चुने हुए अंग्रेजी और फ्रांसीसी शब्दों का संग्रह जोड़ दिया गया था।

रिचर्ड हाउलेट का एवेसेडेरियम १५५२ ई० में प्रकाशित हुआ, जिसे सर्वप्रथम अंग्रेजी (+लैटिन) 'डिक्शनरी' कह सकते हैं। जान बारेट का कोश (एल्वेरिया) भी १५७३ ई० में प्रकाशित हुआ। रिचार्ड के कोश में अंग्रेजी भाषा द्वारा अर्थव्याख्या की गई है। अत उसे प्रथम अंग्रेजी कोश—लैटिन अंग्रेजी डिक्शनरी--कह सकते हैं। १६वीं शताब्दी में ही (१५९९ ई० में) रिचार्डस परसिवाल ने स्पेनिश अंग्रेजी-कोश मुद्रित कराया था। फ्लोरियो ने भी दि वर्ल्ड्स आव दि वर्ड्स नाम से एक इताली-अंग्रेजी कोश बनाकर मुद्रित किया। उसका परिवर्धित संस्करण १६११ ई० में प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष रैंडल काटग्रेव का प्रसिद्ध फ्रेंच-अंग्रेजी कोश भी प्रकाशित हुआ जिसके अति लोकप्रिय हो जाने के कारण बाद में अनेक संस्करण छपे। केवल अंग्रेजीकोश के अभाववश 'फ्लोरियो' और 'काटग्रेव' के अंग्रेजी शब्दसंग्रहों का अत्यंत महत्व माना गया और 'शेक्सपियर' के युग की भाषा समझने समझाने में वह बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ।

इसी के आस-पास 'बाइबिल' का अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाश में आया। १७वीं शताब्दी के प्रथम चरण (१६१० ई० में) में जॉन मिन्श्यू ने 'दि गाइड इंटु टंग्स' नामक एक नानाभाषी कोश का निर्माण किया जिसमें अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य दस भाषाओं के (वेल्स, लो डच, हाई डच, फ्रांसीसी, इताली, पुर्तगाली, स्पेनी, लातिन, यूनानी और हिब्रू) शब्द दिए गए थे।

इन कोशों मे अग्रेजी कोश के लिये आवश्यक और उपयोगी सामग्री के रहने पर भी केवल अग्रेजी के एकभाषी कोश की ओर अधिक ध्यान नही दिया गया। प्राचीन अध्ययन के प्रति पुनर्जागृति के कारण अग्रेजी मे लातिन, यूनानी, हिब्रू, अरबी आदि के सहस्रो शब्द और प्रयोग प्रचारित होने लगे थे। वे प्रयोग 'इक हार्ड्स टर्म्स्' कहे जाते थे। वे परपरया आगत नहीं थे। इन क्लिष्ट शब्दो की वर्तनी और कभी कभी अर्थ बतानेवाले ग्रथो की तत्कालीन अनिवार्य आवश्यकता उठ खडी हुई थी। मुख्यत इसी की पूर्ति के लिये—न कि अपनी भाषा के शब्दो और मुहावरो का परिचय कराने की भावना से—आरभिक अग्रेजी-कोशो के निर्माण की कदाचित् मुख्य प्रेरणा मिली। सवप्रथम 'टेबल अल्फाबेटिकल आव हार्ड वर्ड्स' शीर्षक एक लघु पुस्तक रावर्ट काउड्रे' ने प्रकाशित की जो १२० पृष्ठों मे रचित थी। इसमे तीन हजार शब्दो की शुद्ध वर्तनी और अर्थो का निर्देश किया गया था। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि आठ वर्षो मे इसके तीन सस्करण प्रकाशित करने पडे। १६१६ ई० मे 'ऐन इगलिश एक्सपोजिटर' नामक—जॉन बुलाकर का—कोश प्रकाशित हुआ जिनके न जाने कितने सस्करण मुद्रित किए गए। १६२३ ई० मे 'एच० सी० ब्रेट' द्वारा रचित 'इगलिश डिक्शनरी' के नाम से एक कोशग्रथ प्रकाशित हुआ जिसकी रचना से प्रसन्न होकर प्रशसा मे 'जॉन फोर्ड' ने प्रमाणपत्र भेजा था। तीन भागो मे विभक्त इस कोश की निर्माणपद्धति कुछ विचित्र सी लगती है। इसकी विभाजनपद्धति को देखकर 'यास्क' के निरुक्त मे निर्दिष्ट नैगमकाड, नैघटुककाड और दैवतकाडो मे लक्षित वर्गानुसारी पद्धति की स्मृति हो आती है। प्रथम अश मे क्लिष्ट शब्द सामान्य भाषा मे अर्थो के साथ दिए गए हैं। द्वितीय अश मे सामान्य शब्दों के अर्थो का क्लिष्ट पर्यायो द्वारा निर्देश हुआ है। देवी देवताओ, नरनारियो, लडके लडकियो, दैत्यो-राक्षसो, पशु पक्षियो आदि की व्याख्या द्वारा तीसरे भाग के इस अश मे वर्णन किया गया। इसमे शास्त्रीय, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा अलौकिक शक्तिसपन्न व्यक्तियो आदि से सबद्ध कल्पनाओ का भी अच्छा सकलन है। २० साल परिश्रम करके 'ग्लासोग्राफिया' नामक एक ऐसे कोश का 'टामस ब्लाउन्ट' ने सग्रह किया था जिसमे यूनानी, लातिन, हिब्रू आदि के उन शब्दो की व्याख्या मिलती है जिनका प्रयोग उस समय की परिनिष्ठित अग्रेजी मे होने लगा था। ए० सी० काकरमैन का कोश भी बडा लोकप्रिय था और उसके जाने कितने सस्करण हुए। प्रसिद्ध कवि मिल्टन के भतीजे एडवर्ड फिलिप्स ने १६५८ ई० मे 'दि न्यू वर्ल्ड आव इगलिश वर्ड्स्, या 'ए जेनरल डिक्शनरी' नामक लोकप्रिय कोश का निर्माण किया था।

१६६० तक के प्रकाशित कोशों की निर्माण सबधी आवश्यकताओ मे कदाचित् तात्कालिक प्रयोजन का सर्वाधिक महत्व था विशिष्ट महिलाओ या अध्ययनशील विदुषियो की सहायता देना आदि म चलकर कोशनिर्माण का इस प्रेरणा का निर्देश नही १७०२ ई० से १७०७ तक 'ग्लासोग्राफिया' के अनेक ... हुए। एडवर्ड फिलिप्स का कोश भी बा... ... हो गया। एशियाकोश भी ...

भी इसी समय के आसपास छपे जिनका पुनर्मुद्रण बीसवीं शती तक भी होता रहा। जॉन करेन्सी ने भी 'डिक्शनेरियम एग्लोब्रिटेनिकन' या 'जनरल इग्लिश डिक्शनरी' निर्मित की जिसमें पुराने (प्रयोगलुप्त) शब्दो की पर्याप्त सख्या थी।

नैथन बेली—सौ वर्षो तक अग्रेजी की कोशरचना का यही क्रम चलता रहा जिनके शब्दसकलन मे विशिष्ट शब्दो की ही मुख्यता बनी रही। भाषा मे प्रयुक्त समस्त—सामान्य और विशिष्ट—शब्दों का कोश बनाने मे विद्वान् प्रवृत्त नहीं हुए थे। 'नैथन बेली' ने सर्वप्रथम ऐसे कोशके निर्माण की योजना बनाई जिसमे अग्रेजी के समस्त शब्दो के समावेश का प्रयास किया गया। इसका नाम था 'युनिवर्सल इटिमॉलाजिकल इगलिश डिक्शनरी'। इसमे अनेक विशेषताएँ थी। सकलित शब्दो के विकासक्रम का सकेत दिया गया था। साथ ही इसमे व्युत्पत्ति देने की भी चेष्टा की गई। १७२१ मे इसका प्रथम सस्करण प्रकाशित हुआ। १७३१ मे प्रकाशित दूसरे सस्करण मे शब्दो के उच्चारणबोधक सकेत भी इसमे दिए गए। अग्रेजी के कोशज्ञ विद्वानो द्वारा यह कोश अत्यत महत्वपूर्ण अग्रेजी डिक्शनरी माना जाता है। पहला कारण यह था कि डा० जानसन द्वारा निर्मित ऐतिहासिक महत्व के अग्रेजी कोश की यह आधारशिला बनी। दूसरा कारण यह था कि इसमे समस्त अग्रेजी शब्दों के यथाशक्ति सकलन का लक्ष्य पहली बार रखा गया। तीसरा कारण व्युत्पत्ति निर्देश करने और उच्चारणसकेत देने की पद्धति के प्रवर्तन का प्रयास था।

जॉनसन के अग्रेजी कोश का महत्व (१७४७–१७५५ई०)

इटली और फास एकेडमीशियनो द्वारा ऐसे प्रामाणिक कोशो की रचना का कार्यक्रम प्रवर्तित हो गया था जिनमे परिनिष्ठित भाषा के मान्यताप्राप्त प्रयोगरूपो का स्थिरीकरण और प्रमाणीकरण किया जा सके। जर्मन, स्पेनी, फासीसी और इताली भाषाओं मे ऐसे कोशो की रचना का प्रयास चल रहा था।

अग्रेजी भाषा का साहित्यिक स्वरूप—पुष्ट, विकसित, मान्य एव परिनिष्ठित होता चल रहा था। पद्य या छदोबद्ध भाषा के अतिरिक्त गद्य की रचनाओ को साहित्यिक आदर प्राप्त होने लगा था। फलत अग्रेजी भाषा का तत्कालीन स्वरूप परिनिष्ठित भाषा के स्तर पर ग्राह्य और मान्य हो गया था। अत साहित्यकार, पुस्तक प्रकाशक और प्रचारक यह महसूस करने लगे थे कि परिनिष्ठित अग्रेजी कोश का निर्माण अत्यत आवश्यक हो गया है। अनेक पुस्तक प्रकाशकों और विक्रेताओ के उत्साह और सहयोग से पर्याप्त धनराशि व्यय करके जॉनसन द्वारा अनेक वर्षो के अथक प्रयास से अग्रेजी की डिक्शनरी १७४७ से १७५५ ई० के बीच तैयार कर प्रकाशित की गई। इसी ... कन्साइज डिक्शनरी' भी १७५३ ई० मे जान वेसली द्वारा ... सामने आई। आजतक जानसन का उक्त कोश अपने ... ऐतिहासिक महत्व का माना जाता है। इसमे मूल ... के व्युत्पन्न शब्दो का विकासक्रम दिखाने के ... अर्थप्रयोगो को भी उदाहरणो द्वारा स्पष्ट

किया गया है। अंग्रेजी के उत्कृष्ट लेखकों से उदाहरणों के उद्धरण लिए गए है।

उनके इस कार्य का अंग्रेजी भाषी जनता ने बड़े हर्ष और उल्लास के साथ स्वागत किया। इसमें शब्दों का अर्थ परिभाषा के रूप में भी दिया गया है। नवकोशविद्या के इतिहास में यह उपलब्धि सर्वप्रथम और अत्यंत महत्वशाली कही गई। इसी समय चालीस विद्वान् व्यक्ति एक साथ मिलकर फ्रांस में फ्रांसीसी भाषा का कोश बना रहे थे। उसकी चर्चा करते हुए 'जेन्टिलमेन्स मैगजीन' नामक पत्र ने कहा था कि फ्रांस के चालीस विद्वान् लगभग आधी शती में जो कार्य न कर सके उसे अकेले जॉनसन ने सात वर्षों में कर दिखाया। अंग्रेज जनता ने उस कोश को राष्ट्र और भाषा दोनों के उत्कर्ष की दृष्टि से अत्यंत महत्व का बताया। अंग्रेजी शब्दों के उच्चारण, भाषाशुद्धता की रक्षा और प्रयोग का स्थिरीकरण करने में इस कोश की बहुत बड़ी देन मानी जाती है। परंतु इसमें दिए गए साहित्यिक उद्धरण—ग्रंथों से सदर्भ निर्देशपूर्वक न लेकर—कोशकार ने अपनी स्मृति से दे दिए हैं। फलत अनेक स्थलों में उद्धरणों की अशुद्धि इस कोश की एक त्रुटि बन गई। परंतु त्वरित गति से स्वल्प समय में कार्य समाप्त करने की आकांक्षा के कारण त्रुटि रह गई। पुस्तक एकत्र करना, उद्धरण प्रतिलिपि करना और उनका संयोजन करना, आदि कार्य इतना श्रम-समय-साध्य था जो सात वर्षों में एक व्यक्ति के द्वारा सर्वथा असंभव था।

इसके बाद १८वीं शती के अंत तक अंग्रेजी में अनेक कोश बने। विलियम कनिक, विलियम पेरी, टामस शेरिडन और जान वाकर ने उच्चारण आदि की समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया। इन कोशों को 'जॉनसन' के कोश का संक्षिप्त या लघु संस्करण कहा गया है। उच्चारण का ठीक ठीक स्वरूप बताने का कार्य समस्यात्मक था। उसका पूर्णत समाधान करने की चेष्टा 'जॉनसन' या बाद के कोशकारों ने की। जॉन वाकर ने उक्त दिशा में विशेष प्रयत्न किया। इन कारणों से 'जॉनसन' के कोश की कुछ आलोचना भी होती रही। पर १९ वीं शती के पूर्वार्ध से उसका संमान बढ़ गया, उसकी महत्ता स्वीकृत हो गई। उसमें नए शब्दों, अर्थों, उद्धरणों आदि के परिवर्धनकारी परिशिष्टों को, अनेक विद्वानों की सहायता से जोड़कर, उक्त कोश के संशोधित और सवर्धित संस्करण प्रकाशित होते रहे। १८१८ई० में ऐसा ही एक संस्करण प्रकाशित हुआ जो अब तक मान्य बना हुआ है।

इंग्लिस्तानियों के अंग्रेजी प्रयोगों से अमेरिकनों की अंग्रेजी को स्वतंत्र देखकर वेब्स्टर ने अमेरिकी अंग्रेजी का एक महत्वपूर्ण कोश बनाया। परंतु उनके कोश की बहुत सी व्युत्पत्तियाँ ऐतिहासिक प्रमाणों पर आधारित न होकर निज की स्वतंत्र कल्पना से आविष्कृत थी। बाद के संस्करणों में भाषाविज्ञों ने उनका संशोधन कर दिया। आज भी वेब्स्टर के इस कोश का दो जिल्दों में 'इन्टरनेशनल' संस्करण प्रकाशित होता है और कुछ दृष्टियों से इसका आज भी महत्व बना हुआ है। इस युग का दूसरा कोशकार रिचर्डसन था। उसके कोश में उद्धरणों के द्वारा शब्दार्थबोध की युक्ति महत्वपूर्ण मानी गई और अर्थबोधक परिभाषाओं को हटाकर केवल उद्धरणों से अर्थ-प्रत्यायन की पद्धति अपनाई गई। जॉनसन से भी आगे बढ़कर—१३०० ईस्वी के पूर्ववर्ती चासर, गोवर आदि कलाकारों के लेखखंडों को उसने उद्धृत किया। परंतु उद्धरणों की तिथि उन्होंने नहीं दी। व्यावहारिक दृष्टि से श्रमसाध्य, अधिक व्यय-समय-साध्य यह पद्धति—शब्दकोश से अर्थज्ञान की कामना करनेवाले पाठकों के लिये उपयोगी और सुविधाजनक न हुई। सामान्य पाठकों के लिये यह अति क्लिष्ट भी थी तथा अर्थ तक पहुँचने में समय भी बहुत लगता था। फिर भी कभी-कभी अनिश्चय रह ही जाता था। जनता में अधिक उपयोगी और लोकप्रिय न होने पर भी इस कोश से एक बड़ा भारी लाभ हुआ। प्राचीन और प्रसिद्ध लेखकों के अत्यधिक उद्धरणों का इसमें संकलन हो गया और वे स्थायी रूप में सुरक्षित भी हो गए।

आक्सफोर्ड डिक्शनरी योजना और निर्माण

१९वीं शताब्दी के मध्य लंदन की फिलालाजिकल सोसाइटी में स्वपठित निबंधों द्वारा आर्कबिशप डा० आर० सी० ट्रेंच ने अंग्रेजी के तत्कालीन कोशों की कुछ कमियों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने यह भी कहा कि नाथनबेली, जानसन तथा उनके उत्तराधिकारियों के कोश महत्वपूर्ण हैं। पर उन कोशों द्वारा शब्दों के पारिवारिक-ऐतिहासिक-विकास, अर्थ और तात्पर्य में परिवर्तन एवं विकास तथा रूपविचार के विषय में विशेष ध्यान नहीं दिया गया। शब्दों और अर्थों के प्रयोग एवं ऐतिहासिक विकास की दिशा का कोश द्वारा पूर्ण परिचय मिलना चाहिए। संक्षेप में भाषाविज्ञान और साहित्य के वैकासिक प्रयोगक्रम के साथ अर्थविकास (सिमेंटिक चेंजेज) और उत्पत्तिमूलक विकास की—कोश में वैज्ञानिक और साहित्यिक—उभयविध संगति और पूर्णता अत्यंत अपेक्षित है। इन त्रुटियों के साथ साथ पूर्वोक्त कोशों में विरल और अप्रचलित शब्दों का संकलन भी अपूर्ण था।

उन्होंने यह भी निर्देश किया कि कोशनिर्माण के वैज्ञानिक लक्ष्य की पूर्ति के लिये भाषा के प्राचीन साहित्य और वैज्ञानिक दृष्टिपद्धति का सम्यग्विनियोग और उपयोग किए बिना कोश की सर्वांगीण पूर्णता संभव नहीं होगी। यह भी संकेत किया कि इस कार्य की विशालता को देखते हुए जो अध्ययन, अनुशीलन और श्रम अपेक्षित है उसका संपादन एक दो व्यक्तियों द्वारा संभव भी नहीं है। अनेक भाषाविज्ञ, भाषावैज्ञानिक और साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों के समिलित प्रयास से ही अभीप्सित कोश का निर्माण हो सकता है।

लंदन की फ़िलालाजिकल सोसाइटी के समक्ष उन्होंने अंग्रेजी का विशाल और पूर्ण कोश बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया। उन्होंने सुझाव दिया कि बेली, जानसन, रिचर्डसन, वेब्स्टर आदि के कोशों को पूर्ण करने के लिये निर्धारित कोशपद्धति के आधार पर सामग्री का संकलन किया जाय, उनके परिशिष्ट बनाए जायँ। शब्दप्रयोग, रूपविकास, अर्थविकास, प्रयोगमूलक नाना अर्थच्छायाओं का, शब्दार्थनिर्देश के संदर्भ में, सोदाहरण उपन्यास करना चाहिए। शब्द और उससे द्योतित अर्थ के विकास का कोश में पूर्ण इतिहास दिखाना चाहिए। उक्त संस्था द्वारा संकलित सामग्री के आधार पर और

डा० ट्रेंच के निर्देशों का आधार लेकर अनेक विद्वानों द्वारा अनेक वर्षों में संकलित सामग्री की सहायता से आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी का प्रथम रूप और संस्करण प्रकाशित हुआ।

आठ सौ वर्षों के अंग्रेजी साहित्य में प्रयुक्त लिखित रूपों, अर्थों आदि का यथासंभव विकास इस कोश में दिखाया गया। प्रथम प्रयोग से लेकर उनके प्रमुख प्रयोगक्रम की जन्मकुंडली दिखाई गई। भाषा के प्रचलित अप्रचलित--प्रायः सभी शब्दरूपों और उनके अर्थांश का वैकासिक एवं ऐतिहासिक विवरण भी यथासंभव दिया गया है। अप्रचलित शब्दों के उपलब्ध अंतिम प्रयोग की सूचना देने का भी प्रयास हुआ। भाषावैज्ञानिक अध्ययन और अनुशीलन के आधार पर शब्दों की व्युत्पत्तियों का भी संयोजन किया गया। इस ऐतिहासिक कोश का महत्व था इसकी यथासंभव संपूर्णता। इसी आधार पर उस युग के भाषाविज्ञों ने इस कोश को समादर दिया और इसकी प्रशंसा हुई। इसकी सामग्री के संकलन में पचास लाख शब्द चिटें एकत्र हुई थीं और उनके संकलन का कार्य लगभग दो सहस्र उत्साही पाठकों ने किया था। इस संदर्भ में कुछ विस्तार से विवरण देने का तात्पर्य इतना ही है कि हम हिंदी के सबसे बड़े वर्तमान कोश--हिंदी-शब्द-सागर--के संपादन में भी समस्त आवश्यक एवं अपेक्षित साधनों और उपकरणों को एकत्र करने में सर्वथा समर्थ नहीं हो पाए हैं। इस विषय की चर्चा अन्यत्र की जा रही है।

इसी संबंध में यह भी ध्यान रखने की बात है कि उक्त कोश के पुनः संशोधित और परिवर्धित संस्करण का संपादन कार्य निरंतर चला आ रहा है। सौ सवा सौ वर्षों से इंग्लैंड के कोशविज्ञानविशारद विद्वानों की मंडली सर्वदा कार्यरत रहती है। अपार धनराशि का निरंतर व्यय किया जाता है। इन समस्त साधनों के योग से और संस्थाविशेष के निर्देशन में विशेष विभाग द्वारा उक्त कोश के परिष्कार, विस्तार और पुनःसंपादन का अखंड यज्ञ चल रहा है। ज्ञान विज्ञान की सभी शाखाओं के कोशप्रेमी विद्वानों की अबाध सहायता भी सदा प्राप्त होती रहती है। कोशविज्ञान, भाषाविज्ञान, साहित्यविद्या और भाषा एवं साहित्य के धुरंधर और ऐतिहासिक सुधियों द्वारा उसके पुनःसंपादन में सभी आवश्यक प्रयत्न होते चल रहे हैं। इतना ही नहीं, उक्त कार्य में देश के बहुसंख्यक जागरूक पाठकों का भी बिना पारिश्रमिक के स्वल्पाधिक सहयोग मिलता रहा है।

'फिलालाजिकल सोसाइटी' की योजना के साथ साथ अनेक अन्य छोटे बड़े कोश भी बनते रहे जो कोशविद्या की सर्वांगीणता के विचार से अपूर्ण भी थे तथा उनमें अन्य प्रकार की त्रुटियाँ या इसी ढंग से मिलते जुलते कोश बनते रहे।

उपर्युक्त अंग्रेजी कोश के आरंभिक विकास का त्वरित सिंहावलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि (१)--अंग्रेजी कोशों में सर्वप्रथम लिखित लैटिन शब्दसूचियों का सरल लैटिन और अंग्रेजी में अर्थ देने से कोशकला का प्रारंभ हुआ। यह प्रथम रूप था। (२)--दूसरे सोपान पर अंग्रेजी शब्दसूचियों का तथा लैटिन और अंग्रेजी शब्दसंग्रहों का विस्तार हुआ। (३)--तीसरे चरण में इंगलिश-लैटिन के शब्दसंग्रह का कार्य हुआ। (४)--चतुर्थ अवस्था में अंग्रेजी और इतर भाषाओं के कोश बने। (५)--पाँचवें चरण में अंग्रेजी के क्लिष्ट शब्दों के शब्दसंग्रहवाले और कोश बने। बेली द्वारा इनमें सामान्य शब्दों को जोड़ने के साथ साथ व्युत्पत्तिनिर्देश की भी चेष्टा की गई। अब शब्दप्रयोगों के उदाहरण भी संगृहीत होने लगे। (६)--छठी अवस्था में उच्च कोटि के कोशनिर्माण की चेष्टा और अर्थस्पष्टीकरण के लिये साहित्य में प्रयुक्त उद्धरणों का उपयोग प्रारंभ हुआ। (७)--इसी के साथ साथ या कुछ पहले से ही अंग्रेजी कोशों में प्रयुज्यमान भाषाशब्दों के उच्चारणसंकेत देने की भावना प्रारंभ हुई। (८)--अष्टम स्थिति वह है जब रिचर्डसन द्वारा शब्दव्याख्या छोड़कर केवल उदाहरणमाध्यम से अर्थबोध का प्रयास हुआ। और आगे चलकर अंतिम रूप से इन सबकी परिणति डा० ट्रेंच की प्रेरणा से निर्मित महाकोश में दिखाई देती है। शब्दोच्चारण, शब्द, अर्थ शब्दप्रयोग और व्युत्पत्ति संबद्ध शब्दप्रयोग के इतिहासक्रम आदि को विस्तृत और ऐतिहासिक आयामों के साथ कोश में अनुस्यूत करने की चेष्टा हुई है।

कोशविज्ञान की प्रारंभिक स्थिति में पश्चिम के कोश भी पर्याय सूचित करते हैं। धीरे धीरे विभिन्न अर्थों का भी निर्देश होने लगा। पर व्याकरण, उच्चारणसंकेत, शब्दार्थप्रयोग का इतिहास, व्युत्पत्तिनिर्देश और उदाहरण द्वारा तात्पर्यविवरण का उनमें अभाव था। संस्कृत कोशों में भी यह नहीं था। क्योंकि वे ऐसे छंदोबद्ध शब्दसंग्रह थे जो पर्यायों के माध्यम से एक या अनेक अर्थों का परिचय देते थे। परंतु संस्कृत के प्रसिद्ध वैयाकरण 'भानुजी दीक्षित' द्वारा निर्मित अमरकोश की 'व्याख्यासुधा' नामक टीका में सभी शब्दों की व्याकरणानुसारी व्युत्पत्ति देने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

पश्चिम में ऐतिहासिक और भाषावैज्ञानिक अनुशीलन की दृष्टि ने कोश के आधुनिक रूप को पूर्ण बनाने का प्रयास किया। प्रथमतः फिलिप्स के कोश में शब्दमूल का व्युत्पत्ति के प्रसंग में निर्देशमात्र हुआ। शब्दसागर के तत्सम और अनेक तद्भव शब्दों की व्युत्पत्ति इसी रूप में संकेतित मात्र है। यहीं से अंग्रेजी कोशों में व्युत्पत्तिप्रदर्शन का अति सामान्य आरंभ होता है। इससे कुछ पहले या इसी के आसपास शब्दार्थबोध के लिये पर्याय मात्र देने के स्थान पर अर्थसूचक व्याख्या लिखने की पद्धति आरंभ हो गई थी। जॉनसन से एकाध ही वर्ष पूर्व प्रकाशित मार्टिन के कोश में अर्थच्छायाओं को यद्यपि विस्तृत संदर्भ में देखने का प्रयास हुआ, तथापि व्युत्पत्तिसंकेत वहाँ लुप्त हो गया। जॉनसन के कोश में नाना अर्थच्छायाओं और उदाहरणों के साथ साथ शब्दप्रयोग के स्मृतिमूलक उदाहरण भी दिए गए। संकेतरूप में मूल शब्द के निर्देश मात्र से व्युत्पत्तिसंबंध का सूचन किया जाता था। समानार्थक फ्रांसीसी पर्याय भी दिए गए। शेरिडन और वाकर के कोश, जॉनसन की अपेक्षा अल्प महत्व के होने पर भी उच्चारणसंकेत की दिशा में अधिक प्रयत्नशील रहे। वेब्स्टर के कोश में छोटे पैमाने पर कोशकला की रचनाविधानसंबंधी पूर्वमान्यताओं के उपयोग का सर्वाधिक प्रयास हुआ। दूसरी ओर पूर्वोक्त विशेषताओं

के अतिरिक्त डा० रिचर्डसन' के कोश में लातिन के साथ फ्रासीसी, इताली, स्पेनी भाषा के शब्दों का उपन्यास यह सूचित करता है कि उस युग के कोशकारों की चेतना उद्‌बुद्धतर हो रही थी और तुलनात्मक दृष्टि का विकास होने लगा था। एक अन्य कोश में तुलनात्मक रूपों की प्रवृत्ति तो लुप्त हो गई पर अर्थव्याख्या में कुछ कुछ विश्वकोशीय पद्धति का प्रभाव लक्षित होने लगा था। १८६० के 'वेब्स्टर' के कोश में पुन लातिन, इताली, स्पेनी और फ्रासीसी शब्दरूपों में भी तुलनात्मक बोध का आभास मिलता है पर अग्रेजी कोशों की यह सीमा इन्ही भाषाओं के घेरे में पडी रही।

धीरे धीरे कोशकला के आदर्श-रचना-विधान की उपादान सामग्रियों का प्रयोग—थोडी या बहुत मात्रा में—आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी की रचना के पहले से भी हाने लगा था। पर उनमे वैज्ञानिक और ऐतिहासिक आधार सर्वथा पुष्ट और सुव्यवस्थित नही थे। वे उपादान किसी एक कोश में योजनाबद्ध क्रम से सयोजित न होकर भिन्न भिन्न कशों में विकीर्ण थे। फिर भी उनसे कोशनिर्माण के आवश्यक उपादानों की उपयोगिता सूचित और निर्देशित हो चुकी थी। पूर्व कोशों की अपेक्षा परवर्ती कोशो में प्राय अर्थप्रतिपादन की पूर्णता, यथार्थता और शुद्धता के साथ-साथ ऐतिहासिक और भाषवैज्ञानिक प्रौढ़ता बढती गई। डा० ट्रेंच की मनीषा ने समस्त पूर्वसंकेतिक उपादानों के समुचित विनियोग एव समावेश का लिंगनिर्देश किया। उन्होने सुव्यवस्थित ढग से और योजनाबद्ध रूप में उनके उपयोग की महत्ता को ठीक ठीक समझा और उनके समुचित एव व्यवस्थित विनियोग और प्रयोग से कोशरचना के कार्य को पूर्णता की दिशा में बढाने का प्रयास किया।

आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के निर्माण में उपयोजित रचना-विधान ने कोशनिर्माण की एक ऐसी भूमिका प्रतिष्ठित की जो क्रमश विकास की ओर बढ़ती चल रही है। साहित्य और भाषा के ऐतिहासिक एव वैज्ञानिक अध्ययन, अनुशीलन और अर्थविचार अथवा शब्दार्थविचार का कुशल परिशीलन उसमे लक्षित होता है। उसको पूर्णता की ओर अग्रसर करने के लिये शक्ति, सामर्थ्य, सहयोग और धन का व्यापक साधन जहाँ अपेक्षित है वहाँ विभिन्न शास्त्रज्ञों, विद्यावेत्ताओं, शब्दव्यवहार के मर्मज्ञ मनीषियों, भाषा तथा साहित्य के ऐतिहासिक परिशीलकों और शोधकर्ताओं की मेधा, मनीषा, सूक्ष्म बोध और प्रतिभा भी अपेक्षित है। यह कार्य स्वल्प समय में साध्य भी नहीं है। इसके निर्माण और विस्तार का कार्य व्यापक परिवेश और बडे पैमाने पर अखड रूप से चलते रहना चाहिए। आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी का कार्य निरतर चलता रहता है। उसके सशोधन, परिष्करण, सवर्धन आदि की प्रक्रिया और नवीनतम सस्करण की प्रकाशनसामग्री का सचालन होता चलता है। सपादकों की अनेक पीढ़ियों ने वहाँ कार्य किया। इतना ही नहीं—उसके आधार पर अनेक उपयोगी 'सक्षिप्त', 'लघु', 'पाकेट', आदि सस्करण छपते और लाखों की सख्या में बिकते रहते हैं। अन्य सैकडो हजारो अग्रेजी कोशों को—जिनमे बडे छोटे सभी प्रकार के कोश हैं—रचना में वहाँ से सामग्री और सहायता मिलती है। उसे प्रामाणिक और आप्त मान लिया गया है।

यह प्रसंग यहीं समाप्त किया जा रहा है। यहाँ इस चर्चा का उद्देश्य केवल इतना ही सकेत करना था कि भारत में जो आधुनिक कोश बने वे इन्ही पाश्चात्य कोशो की पद्धति पर चले। उनके निर्माण में पूरी सफलता चाहे न भी मिल सकी हो पर उनकी पद्धति भी वही थी जिसे हम आधुनिक कोशविज्ञान की रचनाशैली कहते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों का योगदान

सस्कृत तथा भारतीय भाषाओं के कोश

भारत मे विदेशी विद्वानों, धर्मप्रचारकों और सरकारी शासको द्वारा आधुनिक ढग से कोशनिर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ—यह कहा जा चुका है। ये कोश मुख्यत दो रूपों में बने—(१) विदेशी भाषाओं में (विशेषत अग्रेजी में) और (२) अग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में। विदेशी भाषाओं के माध्यम से भारतीय भाषाओं के जो कोश बने उनमे सस्कृत के कोशों का स्थान महत्वपूर्ण है। इनके अलावा दूसरे वे कोश हैं जो अंग्रेजी आदि के माध्यम से बने। वे या तो हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू के कोश हैं या अन्य भारतीय भाषाओं के।

१८१९ में डा० 'विलसन' का 'सस्कृत इगलिश कोश' प्रकाशित हुआ। अग्रेजी के माध्यम से प्रकाशित होनेवाले इस सस्कृत कोश को प्रस्तुत दिशा में महत्वपूर्ण पर आरभिक कार्य कहा जा सकता है। इस कृति की भूमिका से पता चलता है कि उस समय पुरानी पद्धति के कुछ सस्कृत कोश वर्तमान थे। कोलब्रुक द्वारा अनूदित अमरकोश भी वर्तमान था। वस्तुत 'विलसन' का यह ग्रथ पर्यायवाची द्विभाषी कोश कहा जा सकता है। मोनियर विलियम्स की दो कृतियाँ—सस्कृत अग्रेजी कोश और इगलिश सस्कृत कोश महत्वपूर्ण कोश हैं। उनका प्रकाशन १८५१ ई० में हुआ। इस कोश की प्रेरणा विलसन के ग्रथ से मिली। विलसन ने अपने कोश के नवीन सस्करण की भूमिका में अपना मतव्य प्रकट किया है। वे यह चाहते थे कि सस्कृत के सभी शब्दों का वैज्ञानिक ढग से ऐसा आकलन हो जिससे सस्कृत की लगभग दो हजार धातुओं के अतर्गत समस्त सस्कृत शब्दों का समावेश हो जाय। इस दिशा में उन्होंने थोडा प्रयत्न भी किया। इन दोनो के बाद महत्वपूर्ण ग्रथ आप्टे का कोश आता है जो सस्कृत अग्रेजी और अग्रेजी सस्कृत दोनो रूपो में सपादित किया गया। विलियम्स के कोश में धातुमूलक व्युत्पत्ति के साथ साथ शब्दप्रयोग का सदर्भ-सकेत भी दिया गया। परतु आप्टे के कोश में सकेतमात्र ही नहीं उद्धरण भी दिए गए हैं। पूर्व कोशो की अपेक्षा वह अधिक उपयोगी दिखाई पडा। कुछ वर्षों पूर्व तीन खडों में उनके कोश का सशोधित सवर्धित और विस्तृत सस्करण प्रकाशित हुआ है जो कदाचित् तबतक के समस्त 'सस्कृत अग्रेजी कोशों में सर्वाधिक प्रामाणिक एव उपयोगी

कहा जा सकता है। इनके अतिरिक्त भी अल्प महत्व के अनेक सस्कृत-अग्रेजी-कोश वनते रहे जिनमे कुछ प्रसिद्ध कोशो के नाम आगे दिए जा रहे हैं—(१) सस्कृत अग्रेजी कोश (सपादक—डब्ल्यू० यीट्स—१८४६) (२) सस्कृत अग्रेजी डिक्शनरी (लक्ष्मण रामचद्र वैद्य—१८८६), (३) सस्कृत डिक्शनरी (थियोडोर वेन्फे—१८६६), (४) ग्रासमैन लेक्सिकन टु दि ऋग्वेद और (५) प्रैक्टिकल सस्कृत डिक्शनरी—विद ट्रान्स्लिटरेशन, एक्सेंचुएशन ऐंड एटिमालाजिकल एनालसिस थ्रू आउट—मैक्डानल्ड, १९२४ ई०।

पूना मे केंद्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त आर्थिक अनुदान से डा० कत्रे के निदेशन मे संस्कृत का एक विशाल कोश बन रहा है। उसकी आधारभूत सामग्री का भी स्वतत्र रीति से वैज्ञानिक और आलोचनात्मक पद्धति पर आलोचन और पाठनिर्धारण किया जा रहा है। उक्त कोश के लिये शब्दो का जो प्रामाणिक सकलन हो रहा है वह प्राय सर्वांशत यथासभव आलोचनात्मक ढग से संपादित या संकलित है। डा० 'कत्रे' सस्कृत के साथ साथ आधुनिक भाषाविज्ञान के बडे विद्वान् हैं। इस कोश के शब्दसकलन और अर्थनिर्धारण मे तत्तत विषयो के सस्कृतज्ञ, प्रौढ पडितो की पूरी सहायता लेने का प्रयत्न हो रहा है। सपादनविज्ञान की पद्धति पर सपादित प्रामाणिक और आलोचित आधारग्रथो से ही यथासभव शब्दसकलन की चेष्टा हो रही है। भारतीविद्या (इडोलाजी) मे अवतक जो भी महत्वपूर्ण अनुशीलन विश्व की किसी भाषा मे हुआ है उसके सर्वांशत उपयोग और विनियोग का प्रयास हो रहा है। १७–१८ वर्षो से यह प्रयास चल रहा है जिसमे काफी समय, श्रम और धनराशि व्यय हो रही है तथा विषयज्ञ विद्वज्जनो का अधिक से अधिक सहयोग पाने की चेष्टा की जा रही है। भाषाविज्ञान की न्यूनतम उपलब्धियों का सहारा लेकर व्युत्पत्तिनिर्धारणादि की व्यवस्था हो रही है। अत आशा है, यह कोश निश्चय ही उच्चतर स्तर का होगा। अग्रेजी, जर्मन, फ्रासीसी, रूसी आदि भाषाओं के समस्त सपन्न सस्कृत कोशो की विशाल सामग्री का परीक्षापूर्वक ग्रहण हो रहा है। अत निश्चय ही उक्त कोश, अवतक के समस्त सस्कृत-अग्रेजी-कोशों मे श्रेष्ठतम होगा। क्या ही अच्छा होता यदि उक्त सस्कृत कोश के हिंदी तथा अन्य सभी आधुनिक भारतीय भाषाओ मे भी सस्करण छापे जाते।

मोनियर विलियम्स के बाद अनेक सस्कृत अग्रेजी कोश बने। परतु विलसन के नवीन सस्करण और विलियम्स के कोश के सामने उनका विशेष प्रचार नही हो पाया। विलसन के कोश का एक सक्षिप्त सस्करण भी १८७० ई० मे रामजसन ने सपादित किया जिसका काफी प्रचार हुआ। मेक्डानल की प्रैक्टिकल सस्कृत-इगलिश-डिक्शनरी अवश्य ही अत्यत महत्वपूर्ण कोश है। इसमे संस्कृत शब्दो के अर्थ का कालावधिक परिचय भी दिया गया है, शब्द के अधिक प्रचलित और स्वल्प प्रचलित अर्थो को सूचित करने का भी प्रयास हुआ है। 'वेन्फे' की भी 'सस्कृत-इगलिश-डिक्शनरी' प्रकाशित हुई। और भी अनेक छोटे बडे सस्कृत कोश निर्मित हुए। परतु विलसन विलियम्स और आप्टे—इनकी सस्कृत इगलिश कोशत्रयी को सर्वाधिक सफलता एव प्रसिद्धि मिली।

यहाँ राथ और वोथलिक्ग् द्वारा प्रकाशित सस्कृत-जर्मन-कोश के उल्लेख के बिना समस्त विवरण अपूर्ण ही रह जायगा। ओटो वोथलिक्ग् तथा 'रुडोल्फ राथ' के सयुक्त सपादकत्व मे सस्कृत का जर्मनभाषी यह कोश—सस्कृत वोर्तेरवुख—१८५८ ई० से प्रारभ होकर १८७५ ई० मे पूर्ण हुआ। यह कोश भारतीविद्या का महाज्ञानकोश है। अत्यत विशाल और सात जिल्दो के इस कोश मे प्रभूत सामग्री भरी पडी है। इसका एक सक्षिप्त सस्करण भी १८७९ से लेकर १८८९ ई० तक प्रकाशित होता रहा। वह भी सात जिल्दो मे है पर उसकी पृष्ठसख्या—आधी से भी कम है। सेंट पीटरस्वर्ग से प्रकाशित यह सस्कृत-जर्मन-कोश व्यावहारिक उपयोगिता से पूर्ण होकर भी अत्यत प्रामाणिक है। इसके पहले अनेक छोटे बडे सस्कृत कोश जर्मन, फ्रासीसी, इताली आदि भाषाओ मे वन चुके थे। १८४६ ई० मे 'थियोडोर वेन्फ' का कोश बना था जिसका अग्रेजी रूपातर १८५६ मे मैक्सम्यूलर के सपादकत्व मे प्रकाशित हुआ।

इनमे से अनेक कोश ऐसे थे जो भारत मे और अनेक विदेशो मे प्रकाशित हुए।

हिंदुस्तानी, हिंदी, उर्दू के कोश

हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू के आधुनिक कोशो का निर्माणकार्य भी पाश्चात्य विद्वानो ने व्यापक पैमाने पर किया। इन भाषाओ एव अन्य भारतीय भाषाओ के कोशो का निर्माण जिन प्रेरणाओ से पाश्चात्य विद्वानो ने किया उनमे दो बातें कदाचित् सर्वप्रमुख थी

(क) धर्म का प्रचार करनेवाले ख्रीष्ट मतावलवी धर्मोपदेशक चाहते थे कि यहाँ की जनता मे घुलमिलकर उनकी भाषा वोल और समझकर उनकी दुर्वलताओं को समझा जाय और तदनुरूप उन्ही की बोली मे इस ढग से प्रचार किया जाय जिसमे सामाजिक रूढियो और वधनो से पीडित वर्ग, ईसाई धर्म के लाभो के लालच मे पडकर अपना धर्म-परिवर्तन करे। फलत यह आवश्यक था कि हिंदी या हिंदुस्तानी, उर्दू तथा बँगला, तमिल, मराठी, मलयालम्, कन्नड, तेलगु, उडिया, असमिया आदि भाषाभाषियो के वीच ख्रीष्टीय मत के प्रचारक, उनकी भाषाएँ सीखें और उनमे धडल्ले से व्याख्यान दे सकें तथा ग्रथरचना कर सकें। परिणामत इन भाषाओं के अनेक छोटे मोटे व्याकरण और कोशों की विदेशी माध्यम से रचना हुई।

(ख) दूसरा प्रमुख वर्ग था शासको का। शासनकार्य की सुविधा और प्रौढता के लिये, शासित की भावना, सस्कृति, धार्मिक विचार, भाषा और उनके धर्मशास्त्र तथा साहित्य की जानकारी भी अनिवार्य थी। एतदर्थ भी इन भाषाओ के कोश बने।

इन दोनों के अतिरिक्त भारतीविद्या भारतीय दर्शन, वैदिक तथा वैदिकेतर सस्कृत साहित्य के विद्याप्रेमी और भाषावैज्ञानिक प्राय नि स्वार्थ भाव से सस्कृत एव अन्य भारतीय भाषाओं के अनुशीलन मे प्रवृत्त हुए तथा तत्तत् विषयों के ग्रथो की रचना की। इसी सदर्भ मे महत्वपूर्ण कोशग्रथ भी बने। सस्कृतकोशो की चर्चा की जा चुकी है। 'ए डिक्शनरी आव् मोहमडन लॉ ऐंड बगाल रेवेन्यू टर्म्स्' (४ भाग—ई० १७९५), 'ए ग्लासरी आव् इडियन टर्म्स्' (८ भाग—१७९७ ई०), बगाली सिविल सर्विस टर्म्स्' (एच्. एम् इलियट—

१८४५ ई०), 'ए ग्लासरी ग्राव् जुडिशल ऐंड रेवेन्यू टर्म्स्' इत्यादि ग्रथो का निर्माण किया गया। इनसे एक ग्रोर तो शासनकार्य मे सुविधा प्राप्त हुई और दूसरी ओर पाश्चात्य विद्वानो को भी भारतीय भाषा या सस्कृत के ग्रथो का अपनी अपनी भाषाग्रो मे अनुवाद करने मे सहायता मिली।

इन कोशो के अलावा पाश्चात्य विद्वानो अथवा उनकी प्रेरणा से भारतीय सुधियो द्वारा उसी पद्धति पर पाली, प्राकृत आदि के कोश भी बने और बन रहे हैं। राबर्ट सीजर ने पालि-सस्कृत-डिक्शनरी का १८७५ ई० मे प्रकाशन कराया था। १९२१ ई० मे पाली टैक्स्ट सोसाइटी के निर्देशन मे पाली-अंग्रेजी-डिक्शनरी बनकर सामने आई। शतावधानी जैनमुनि श्रीरत्नचद ने 'अर्धमागधी डिक्शनरी' का निर्माण किया। उसमे सस्कृत, गुजराती, हिंदी और अंग्रेजी का प्रयोग उपयोग होने से उसे बहुभाषी शब्दकाश कहना सगत है। 'पाइयसद्दमहण्णव' निश्चय ही प्राकृत का अत्यत विशिष्ट कोश है जिसका पुन प्रकाशन किया गया है 'प्राकृत टैक्स्ट सोसाइटी' की ओर से।

भारतीय आधुनिक भाषाओं मे हिंदी के विशिष्ट स्थान और महत्व की घोषणा किए बिना भी पाश्चात्य विद्वानो ने उसे हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा मान लिया तथा हिंदी या हिंदुस्तानी--दोनो ही नामों का उसके लिये--मेरी समझ में--प्रयोग किया। उर्दू को भी उसी की शैली समझा। अत हिंदुस्तानी और हिंदी के कोशो की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। नीचे इसकी चर्चा हो रही है।

हिंदी-हिंदुस्तानी के कोश

हिंदी या हिंदुस्तानी या उर्दू के कोशो का निर्माण भी इसी क्रम में हुआ। जानसन का लघुकोश 'ए लिस्ट ग्राव वन थाउजड इपार्टेंट-वर्ड्स' प्रारभिक प्रयास था। इस दिशा मे सबसे महत्वपूर्ण कार्य था विलियम हटर की हिंदुस्तानी-इग्लिश-डिक्शनरी (१८०८ ई०)। इसका मुख्य आधार था कैप्टन जोसफ टेलर की 'ए डिक्शनरी ग्राव हिंदुस्तानी ऐंड इग्लिश'। टेलर ने अपने उपयोग के लिये इसका निर्माण किया था। हटर का कोश निरतर सशोधित और परिवर्धित सस्करणो मे क्रमश १८१९, १८२० और १८३४ ई० मे प्रकाशित होता रहा। जान शेक्सपियर भी कोश का कार्य करते रहे। पर उनके कोश से पूर्व हटर का कोश तथा एम० टी० ग्रादम की कृति 'दि डिक्शनरी ग्राव हिंदी ऐंड इग्लिश' प्रचलित था। डा० गिलक्राइस्ट की डिक्शनरी 'इग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी' १७८६-९९ मे प्रकाशित हो चुकी थी। उसका सक्षिप्त रूप उन्होने ही रोबुक के सहसपादकत्व मे १८१० ई० मे प्रकाशित किया था। डा० रोजेरी ने उसी को ए डिक्शनरी ग्राव 'इग्लिश बंगला ऐंड हिंदुस्तानी' नाम से सक्षिप्ततर रूप में कलकत्ता से १८३७ ई० मे प्रकाशित कराया था। जे० बी० थामसन की उर्दू-अंग्रेजी डिक्शनरी १८३८ ई० मे प्रकाशित हुई। १८१७ ई० मे शेक्सपियर द्वारा लदन से 'अंग्रेजी हिंदुस्तानी, ग्रोर हिंदुस्तानी अंग्रेजी' कोश प्रकाशित हुआ परतु इन सबमे रोमन या फारसी लिपि का प्रयोग मुख्यत होता रहा। इसी बीच १८२९ ई० मे पादरी एम० टी० आदम का महत्वशाली कोश भी सामने आया, जो--जैसा प्रथम सस्करण की भूमिका के पृ० १ मे बताया गया है--हिंदी कोश के नाम से कलकत्ता मे प्रकाशित हुआ। इसे नागरी का प्रथम कोश कह सकते है जिसमे हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का व्यवहार किया गया। डा० हरकोर्ट्स ने भी 'ए डिक्शनरी इग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी' बनाई थी। मद्रास के डा० हैरिस ने बडे व्यापक पैमाने पर एक हिंदुस्तानी-अंग्रेजा कोश का सपादन-कार्य आरभ किया था। वे बहुत काफी कार्य कर भी चुके थे। पर इसके पूर्ण होने से पहले ही वे दिवगत हो गए। यह बहुत ही प्रामाणिक ग्रथ था। सामान्य सदर्भ की भी इसमे सहयोजना थी। इसकी सबसे बडी विशेषता यह थी कि इसमे दक्खिनी हिंदी के शब्दो का उपयोग हुआ था।

जान शेक्सपियर ने अपने कोश के निर्माण मे इसकी पाडुलिपियो का पूर्ण उपयोग किया। उन्हें इसका हस्तलेख मिला था इडिया हाउस के ग्राफिस मे। इसके शब्दो और अर्थों के सकलन मे डा० हैरिस ने भारतीय विद्वानों की पूरी सहायता ली थी।

इसके आधार पर और सकलित भाग का पूर्ण उपयोग करते हुए अपने कोशो का शेक्सपियर ने परिवर्धित सस्करण १८४८ ई० में और दूसरा सशोधित सस्करण १८६१ ई० मे प्रकाशित कराया। इस विशाल शब्दकोश के दोनो अशो मे बहुत परिवर्धन सशोधन हुआ। दोनो अश 'हिंदुस्तानी ऐंड इग्लिश डिक्शनरी' तथा 'इंग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी डिक्शनरी' एक साथ प्रकाशित किए गए। यह शब्दकोश विशेष महत्व का है। इसमे सबसे पहले रोमन वर्णों द्वारा शब्दनिर्देशन है, तदनंतर यथा, एस् = सस्कृत, एच् = हिंदी या हिंदुस्तानी, पी = फारसी सकेतो द्वारा कोश के शब्द से संबद्ध मूलभाषास्रोत का निर्देश हुआ है और हिंदी, हिंदुस्तानी, फारसी, अरबी, अंग्रेजी, पुर्तगाली, तुर्की, ग्रीक, लातिन, तामिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड, बंगला, मराठी, गुजराती आदि के सकेत हैं। तदनतर फारसी मे कोशशब्द यथास्थान दिए हुए हैं। यदि आवश्यक हुआ तो नागरी रूप भी दिया गया है। रोमन मे फिर वही शब्द है और अत मे अंग्रेजी पर्याय।

इसी युग मे डकन फोर्ब्स का कोश--डिक्शनरी हिंदुस्तानी (१८४८ ई०) का भी प्रकाशन किया गया। इसमे कोशशब्दो को फारसी और रोमन मे तथा अर्थपर्याय अंग्रेजी में दिया गया है।

'ए न्यू हिंदुस्तानी इग्लिश डिक्शनरी' का फैलन ने बडे श्रम के साथ सपादन किया और उसे प्रकाशित कराया। उसका महत्व इस वर्ग के कोशो मे सर्वाधिक माना गया। आधुनिक कोशविद्या की पद्धति से निर्मित यह ऐसा कोश है जिसमे पर्यायवाची शैली का भी योग है। इसमे उदाहृत अश एक ओर तो हिंदुस्तानी साहित्य से गृहीत हैं दूसरी ओर लोकगीतों के उदाहरण भी दिए गए हैं। इतना ही नहीं, बोलचाल की भाषा और महिलाओं की शुद्ध बोलियो का पहली बार उदाहरण के रूप मे यहाँ उपयोग किया गया है। हिंदुस्तानी शब्दो के अर्थों को बोलचाल की भाषा से ही सकलित करके देने का प्रयास हुआ है। व्युत्पत्तिमूलक अर्थो को पुराने रूपो के आधार पर दिया गया है और कुछ हिंदी शब्दो के धातुओं का भी निर्धारण हुआ है। यह कोश व्युत्पत्ति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है तथा उदाहरणों और तदाधारित अर्थनिर्देश की दृष्टि से भी अत्यत महत्व रखता है। इसका कारण यह

है कि इसमे बोलचाल की भाषा का मथन और निकट से सूक्ष्मदर्शन किया गया है। इन्होंने इंग्लिश हिंदुस्तानी का भी कोश तैयार किया। इन कोशो का विवरण सक्षेप मे नीचे दिया जा रहा है।

गिलक्राइस्ट की हिंदुस्तानी इगलिश डिक्शनरी, जो अपनी प्राचीनता के कारण बडे महत्व की है, १७८६ मे बनी थी। इसमे भूमिका देने के अलावा भाषासबधी कुछ आवश्यक बातें तथा युद्ध की कहानियाँ भी सगृहीत हैं। सज्ञा, सर्वनाम, क्रियाविशेषण, अव्यय आदि के शब्द हैं। इसमे संस्कृत तत्सम शब्दो को छोड दिया गया है परतु तद्भव, देशज एव भारत मे प्रचलित अरबी फारसी के शब्दों को ले लिया गया है। रोमन वर्णमाला के अनुसार शब्दक्रम है। शब्दो की व्याख्या कम की गई है और अग्रेजी पर्याय अधिक हैं।

जे० टी० थामसन ने दो शब्दकोश—(१) उर्दू और अग्रेजी तथा (२) हिंदी और अग्रेजी—बनाए। फालिस गुलैडविड ने परशियन, हिंदुस्तानी और अग्रेजी की डिक्शनरी निर्मित की। जे० डी० बेट्स ने ए डिक्शनरी आव हिंदी लैग्वेज (१८७५ ई० मे) बनाई।

कैप्टन टेलर का शब्दकोश (हिंदुस्तानी अग्रेजी) बना था अपने व्यक्तिगत उपयोग के निमित्त। हटर ने उसी का आधार लेकर विस्तत कोश बनाया था। कोशकार के कथनानुसार उसका शब्दसंकलन जनता से हुआ था। सस्कृत के तत्सम, तद्भव और देशज शब्दो के साथ साथ अरबी, फारसी, ग्रीक, अग्रेजी, पुर्तगाली के तद्भव शब्द भी और कभी कभी तत्सम और देशज शब्द भी उसमे लिए गए हैं। दक्खिनी हिंदी और बँगाली के शब्द भी नहीं छोडे गए हैं। शब्दो की वैकल्पिक और भूगोलमूलक भिन्नताओ का स्थान स्थान पर सकेत भी किया गया है। रीति रिवाजो का भी अनेक स्थानो पर काफी विवरण मिलता है। कुछ व्यक्तिवाचक सज्ञाओ के प्रयोग मे पौराणिक और प्राचीन कथाओ का वर्णन भी मिल जाता है।

१८१७ मे निर्मित शेक्सपियर की हिंदुस्तानी-अग्रेजी डिक्शनरी मे पर्याप्त शब्दों की व्युत्पत्ति देने का प्रयत्न लक्षित होता है। शब्दो के पूर्व ही सकेताक्षरो द्वारा भाषाओ का निर्देश हुआ है। शब्दक्रम की योजना मे फारसी लिपिमाला का अनुसरण है परतु सस्कृत से व्युत्पन्न शब्द नागरी लिपि मे हैं। इस कोश के अनेक सस्करण हुए। चतुर्थ सस्करण मे दक्खिनी भाषा के अनेक कवियो से भी शब्द सकलित हुए हैं।

इन कोशो की रचना मे धर्मप्रचार के अतिरिक्त मुख्य उद्देश्य था विदेशी शासन के अधिकारी वर्ग को भारतीय भाषा सिखाना। अत शब्दसकलन के क्रम मे बोलचाल के शब्दो को इन कोशकारो ने प्रमुखता दी और अप्रचलित या अल्पप्रचलित तत्सम या तद्भव शब्दो के अनावश्यक सकलन से कोशकलेवर को विस्तार से बचाने का उन्होने प्रयत्न किया। हिंदुस्तानी के इन कुछ कोशो मे अधिकत उर्दू शब्दो का प्राधान्य है और बेट्स तथा एकाध और कोशकारो के कोशो को छोडकर प्राय सबमें शब्द-क्रम-योजना का आधार फारसी वर्णमाला है। फैलन के कोश मे चूंकि मुख्य रूप [illegible] बोलचाल की भाषा का आधार गृहीत हुआ था, अतः जॉन टी० [illegible] ने 'उर्दू और हिंदी के सा[illegible] [illegible]ओं मे प्रयुक्त शब्दों के सकलन [illegible]

ध्यान दिया। पादरियो और अग्रेजी शासको ने निश्चय हिंदी या हिंदुस्तानी के एकभाषी, द्विभाषी, कोशो और नवीन कोश रचना-पद्धति का प्रवर्तन किया। लल्लू जी लाल जैसे लोगो ने भी त्रिभाषी कोश बनाए। श्रीराधेलाल का शब्दकोश (१८७३ ई०), पादरी बेटस का कोश से (१८७५ ई० मे) प्रकाशित हिंदीकोश और मु० दुर्गाप्रसाद का अग्रेजी उर्दू कोश (१८९० ई०)—इस दिशा के अनवरत चलते रहनेवाले प्रयास के उदाहरण हैं। १८७३ ई० से लेकर और उन्नीसवी शती के अत तक—भारत और बाहर (पेरिस आदि में) इस दिशा के कार्यों का सिंहावलोकन प्रथम सस्करण की भूमिका (पृ० १२) मे दिया गया है। अत यहाँ इतना ही कहना है कि हिंदी के नवकोशो की आद्य रचना और प्रेरणा—पश्चिम के कोशकारो द्वारा ही प्राप्त हुई। फलत हिंदी ही नही, उसकी बोलियो के भी अनेक कोश बने। व्रजभाषा का कदाचित् सर्वप्रसिद्ध कोश है श्री द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी द्वारा निर्मित—शब्दार्थपारिजात। सूर-व्रजभाषा-कोश भी डा० टडन ने बनाया है। अवधी का प्रसिद्ध नवकोश—श्री रामाज्ञा द्विवेदी द्वारा सपादित कराकर हिंदुस्तानी एकाडमी ने प्रकाशित किया है। उदयपुर से इधर एक विशाल राजस्थानी सबद कोश भी प्रकाश मे आ रहा है। इसी प्रकार मैथिली कोश भी प्रकाशित हो चुका है।

हिंदीतर भाषाओ मे कोश

(क) द्रविड भाषाएँ

भारतीय हिंदीतर भाषा के कोशो का निर्माण भी प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक बराबर चल रहा है।

तमिल भाषा मे कोशनिर्माण की परपरा बहुत प्राचीन कही जाती है। उनका प्रसिद्ध व्याकरण ग्रथ 'तालकाप्पियम्' कहा जाता है। उसी व्याकरण ग्रथ मे ग्रथकार ने सूत्र शैली मे शब्दकोश तैयार किया था। ग्रथ के लेखक ने तमिल भाषा के शब्दो को चार वर्गों मे विभक्त किया है—(१) सामान्य देशी शब्द, (२) साहित्यिक शब्द, (३) विदेशी भाषाओ से व्युत्पन्न शब्द और (४) सस्कृत से व्युत्पन्न शब्द। इसमे शब्दसग्रह वर्णानुक्रम से रखा गया है। इसका प्रकाशन यद्यपि अट्ठारहवी शताब्दी का है तथापि इसकी रचना ईसा की प्रथम द्वितीय शताब्दी मे बताई जाती है। तमिल का दूसरा कोश 'तिवाकरम' है। १२ खडो का यह कोश अमरकोश के आधार पर बना है। इसमे दस खडो मे वर्गमूलक शब्दसचय है, ११वाँ खड नानार्थ शब्दो का और १२वाँ समूहवाचक शब्दो का है।

१६७९ ई० मे प्रथम तमिल-पुर्तगाली-कोश बना और १७१० ई० में फादर बेशली ने पूर्णत अकारादि क्रम पर निर्मित 'चतुर अकाराति' नामक कोश तैयार किया। तमिल का प्रथम अग्रेजी कोश लूयर के अनुयायी धर्मप्रचारको द्वारा १७७९ ई० मे 'मलाबार ऐंड इंग्लिश डिक्शनरी' नाम से प्रकाशित हुआ। उसी का दूसरा सस्करण सशोधित रूप से तमिल मे 'इंग्लिश डिक्शनरी' के नाम से १८०९ ई० मे मुद्रित हुआ। [illegible]५१ ई० में एक त्रिभाषी कोश (अग्रेजी, तेलगू और तमिल का) प्रकाशित हुआ। इनकी [illegible]ता से अनेक तमिल कोश बनते [illegible] [illegible] और [illegible] । मे व्याकरण

और कोशो की सपन्न परपरा है। मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा तमिल का एक विशाल कोश तैयार हुआ है जो अनेक जिल्दों मे प्रकाशित है। इसकी शब्दयोजना तमिल वर्णमाला के अनुसार है। इसकी भूमिका मे तमिल-कोश-परपरा के विकास का विस्तृत विवरण दिया गया है।

इनके अतिरिक्त प्राचीन और अर्वाचीन कालो मे अनेक तमिल कोश निर्मित हुए। इनमे अनेक नवीन कोश ऐसे हैं जिनमे तमिल मे अर्थ दिया गया है, कुछ मे अग्रेजी द्वारा शब्दार्थ बताया गया है—जैसे 'तमिल लेक्सिकन' और कुछ नए कोश ऐसे भी हैं जिनमे भारतीय भाषाओं का अर्थबोधन के लिये आश्रय लिया गया है। इन्ही मे एकाध तमिल हिंदी कोश भी हैं।

दक्षिण की अन्य द्रविड भाषाओ मे भी १६वी शती के पूर्वार्ध से ही कोशों की रचना चली आ रही है। इन भाषाओ मे आज अनेक उत्तम और विशाल कोश प्रकाशित हैं या हो रहे हैं। तेलगू के त्रिभाषी कोश की ऊपर चर्चा हुई है। चार्ल्स फिलिप्स ब्राउन द्वारा १८५२ ई० मे अग्रेजी तेलगू कोश निर्मित होकर छापा गया। ए तेलगू-इगलिश डिक्शनरी का १६०० ई० मे निर्माण पी० शकरनारायण ने किया। १६१५ ई० मे आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस से भी एक तेलगू कोश प्रकाशित किया गया। विलियम ऐंडर्सन ने इससे भी बहुत पहले ही, अर्थात् १८१२ ई० मे अग्रेजी-मलयालम का कोश बनाया था। जान गैरेट का अग्रेज़ी कर्नाटकी (कनारी) कोश १८६५ ई० मे प्रकाशित हुआ। बाद मे भी एफ० किंतल द्वारा सपादित (१८६४ ई० मे) कन्नड का भी एक कोश छपा।

(ख) आर्यभाषाएँ

हिंदी के अतिरिक्त आधुनिक आर्यभाषाओं के कोशो मे बँगला और मराठी का कोशसाहित्य कदाचित् अत्यत सपन्न कहा जा सकता है। इन भाषाओ के अलावा अन्य आर्यभाषाओ मे भी आधुनिक कोशों की कमी नहीं है। पजाबी मे बहुत से पुराने कोश हैं। उडिया, गुजराती, नेपाली, काश्मीरी, असमिया आदि मे भी कोश बने हैं। पर बँगला, मराठी और पजाबी की चर्चा ही यहाँ उदाहरण रूप मे की जा रही है।

बँगला कोश

बँगला के कोशो की परपरा—बँगला भाषा का विकास होने के बाद से—बराबर चल रही है। आधुनिक ढग के कोशो मे प्रकृतिवाद अभिधान नामक विशाल बँगला कोश उल्लेखनीय है जिसका सपादन राधाकमल विद्यालकार ने किया। १८११ ई० मे यह प्रकाशित हुआ। यह शब्दकोश वस्तुत सस्कृत बँगला शब्दकोश है। इसका पूर्णत परिशोधित और परिवर्धित सस्करण १६११ ई० मे श्रीशरच्चद्र शास्त्री द्वारा सपादित होकर प्रकाशित हुआ। इसका षष्ठ सस्करण तक देखने को मिला है। कदाचित् इससे भी पहले बगला पुर्तगाली डिक्शनरी बन चुकी थी। पादरी मेनुअल ने बँगला व्याकरण के साथ बँगला-पुर्तगाली तथा पुर्तगाली-बँगला कोश (सभवत) बनाए थे। कहा जाता है कि रामपुर के पादरी केरे साहब ने १८२५ ई० बहुत विशाल बँगला-इगलिश कोश बनाया था। ईस्ट इडिया कपनी की ओर से १८३३ ई० मे बँगला सस्कृत-इगलिश-डिक्शनरी तैयार करवाई गई थी। हाउटर और रामकमल सेन का 'बँगला-इगलिश कोश भी अत्यत प्रसिद्ध है। पादरी केरे के बँगला अग्रेजी कोश मे ८०००० शब्द थे। इनके अतिरिक्त भी अनेक छोटे बडे बँगला अग्रेजी कोश भी बने। केवल बँगला लिपि और भाषा मे ही ज्ञानेंद्रमोहन दास का बँगला भाषार अभिधान (द्वितीय सस्करण १६२७) और पाँच जिल्दोवाला हरिचरण बद्योपाध्याय द्वारा निर्मित बगीय शब्दकोश दोनो उत्कृष्ट रचनाएँ मानी जाती हैं। बँगला मे उन्नीसवी शताब्दी से आजतक छोटे बडे शब्दकोशो के निर्माण की परपरा चली आ रही है। छोटे कोशो मे चलतिका अत्यत लोकप्रिय है। सैकडो अन्य कोश भी आज तक रचे गए और प्रकाशित हो चुके हैं। श्री योगेशचद्र राय का बँगला शब्दकोश भी प्रसिद्ध रचना है। इस ग्रथ मे अनेक आधारिक और सहायक ग्रथो की चर्चा है। उनमे बँगला से सबद्ध निम्नाकित कोशो के नाम उपलब्ध हैं—

(१) डिक्शनरी आव् बगाली लैंग्वेज (स० केरे—१८२५ ई०)

(२) ए डिक्शनरी आव् बगाली लैंग्वेज (स० जॉन सी० मार्शमैन—१८२७ ई०)

(३) बगाली वोकैब्यूलरी (स० एच्० पी० फास्टर—१७६६ ई०)

(४) बगाली वोकैब्यूलरी (मोहनप्रसाद ठाकुर—१८१० ई०)

(५) डिक्शनरी आव् बगाली लैंग्वेज (स० डब्ल्यू० मार्टन—१८२८ ई०)।

(६) ए डिक्शनरी आव् बगाली ऐंड इगलिश (स० ताराचद चक्रवर्ती—१८२७ ई०)।

(७) शब्दसिंधु (अमरकोश के सस्कृत शब्दो की आकारादिवर्णानुक्रमानुसार योजना तथा बँगला व्याख्या—१८०८ ई०)

ग्लासरी ऑव जुडिशल ऐंड रेवेन्यू टर्म्स नामक जानसन के अग्रेजी बँगला कोश का टाड सस्करण १८३४ ई० मे प्रकाशित हुआ एच्० एच्० विलसन का जो कोश १८५५ ई० मे प्रकाशित हुआ उसमे अरबी फारसी हिंदी, हिंदुस्तानी, उडिया, मराठी, गुजराती, तेलगू, कर्नाटकी (कनारी), मलयालम् आदि के साथ साथ बँगला के शब्द भी थे। श्रीतारानाथ का शब्दस्तोममहानिधि भी अच्छा कोश कहा जाता है।

मराठी कोश

मराठी भाषा मे कोशनिर्माण की परपरा सभवत उस यादवकाल से प्रारभ होती है जब महाराष्ट्री प्राकृत के अनतर आधुनिक मराठी का स्वतत्र भाषा के रूप मे विकास हुआ और वह प्रौढ हो गई। उस युग मे कुछ कोश बनाए गए थे। हेमाद्रि पडितो द्वारा रचित अनेक कोशो का उल्लेख मिलता है। सत ज्ञानेश्वर ने अपनी कृति ज्ञानेश्वरी के क्लिष्ट शब्दो की—अकारादि क्रम से अनुक्रमणिका बनाते हुए उसी के साथ सरल मराठी मे पर्याय शब्द दिए हैं। उसी के द्वारा मराठी से सबद्ध १२वी शती के उन कोशो का सकेत मिलता है जो आज अनुपलब्ध हैं। शिवाजी द्वारा भी उनके समय मे 'राज

'व्यवहार-कोश' बना था जिसमे मराठी, फारसी और सस्कृत—तीनों भाषाओं की सहायता ली गई थी। रघुनाथ पडितराव द्वारा ३८४ पद्यों का यह छदोबद्ध कोश ऐसा त्रिभाषी कोश है जो अपने ढग का विशेष कोश कहा जा सकता है। सस्कृत और फारसी के भी अर्थपर्यायसूचक ऐसे कोश सस्कृत माध्यम से मुगल शासनकाल मे बने थे।

आगे चलकर पाश्चात्यो के सपर्क और प्रभाव से 'मराठी इगलिश' के अनेक कोश बने। चीफ कैप्टन गोल्सवर्थ ने अग्रेजी-मराठी का एक विशाल कोश १८३१ ई० मे बनाया था। थामस कैंडी के सहयोग से उस कोश के सशोधित और परिवर्धित अनेक सस्करण छपे। मराठी के इन कोशो की परपरा १६वी शताब्दी के आरभ से अबतक चली आ रही है। कोशों की दृष्टि से मराठी भाषा अत्यत सपन्न है। अग्रेजी कोशो मे केरी, कर्नल केनेडी और गोल्सवर्थ कैंडी के मराठी इगलिश कोश महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त १६वी शती के कुछ प्रमुख मराठी कोश हैं—(१) महाराष्ट्र भाषे चा कोश (इसके प्रथम भाग का प्रकाशन १८२६ ई० से प्रारभ हो गया था), (२) रघुनाथ भास्कर गाडबोले का हसकोश (१८६३ ई०), (३) बोडकर का रत्नकोश (१८६६ ई०) और (४) मराठी भाषा का नवीन कोश (१८६० ई०)। बीसवी सदी के कोशो मे—वा० गो० आप्टे का—मराठी शब्दरत्नाकर और विद्याधर का सरस्वती कोश अधिक प्रसिद्ध है। सामान्य शब्दार्थ कोशो के अतिरिक्त मराठी-व्युत्पत्तिकोश (कृष्णाजी पाडुरग कुलकर्णी—१६४६ ई०) अत्यत प्रसिद्ध व्युत्पत्ति-कोश है। इसमे मराठी भाषा का पूर्ण प्रयोग हुआ है। मराठी मे विश्वकोश, लोकोक्तिकोश, वाक्सप्रदायकोश, (अनेक) ज्ञानकोश और शब्दार्थकोश हैं। गोविदराव काले का एक पारिभाषिक शब्दकोश भी है जिसमे अग्रेजी सैनिक शब्दों का शब्दार्थ सग्रह मिलता है। मराठी हिंदी कोश भी अनेक बने हैं। इनमे कुछ उत्तम कोटि के भी कोश हैं।

पंजाबी, काश्मीरी, नेपाली

लोदियन मिशन द्वारा १८५४ ई० मे पजाबी शब्दकोश बना था जिसमे गुरुमुखी और रोमन मे मूल शब्द थे तथा अग्रेजी मे अर्थ था। इसके बाद पजाबी कोशों का सिलसिला चलता है तथा पंजाबी के कोश बनने लगे।

इधर २०वी शती मे भाई विशनदास पुरी के सपादकत्व में प्रकाशित (१६२२ ई०) और पजाब सरकार के भाषा विभाग, पटियाला से प्रकाश्य-मान पजाबी कोश अत्यत महत्व के हैं। द्वितीय कोश कदाचित् पजाबी का सर्वोत्तम कोश है।

काश्मीरी भाषा के अपने मैनुअल मे डा० ग्रियर्सन ने व्याकरण बनाया और फ्रेजबुक के साथ साथ शब्दकोश भी सपादित (१६३२ ई०) किया था। इसके मूलवर्ता ईश्वर कौल थे और सभवत १८६० ई० के पूर्व इसकी रचना हो चुकी थी। इसके पूर्व भी १८८५ ई० में इस दिशा मे कुछ कार्य हो चुका था। टर्नर की नेपाली डिक्श-नरी यद्यपि बहुत बाद की है, तथापि उसमे कोशविज्ञान और भाषा-विज्ञान का विनियोग जिस महत्ता के साथ हुआ है वह अत्यत प्रशसनीय है।

उर्दू कोश

उन उर्दू के कोशो की चर्चा ऊपर हुई है जिन्हें विदेशियों ने बनाया। हिंदी या हिंदुस्तानी कोशो के साथ या इनका मिश्रित रूप ही प्राय रहा। कभी कभी वे अलग भी थे। इनके पूर्व और बाद में बहुत से ऐसे कोश भी बने जो फारसी लिपि मे निर्मित थे। इनमे फरहगे अस-फिया, तख्मीस्सुल्लुगात, लुगात किसोरी अधिक महत्व के और प्रसिद्ध माने जाते हैं। नत्वत इनमे हिंदी के शब्दो की सख्या बहुत ज्यादा है। पर लिपिभेद के कारण हिंदी मात्र जाननेवाले इनका उपयोग और प्रयोग नही कर पाते। 'फरहगे-ए-इस्तलाहात'—वस्तुत मौ० अब्दुलहक़ की योजना और प्रेरणा से रचित उर्दू का विशाल कोश है। इनके अतिरिक्त भी अमीर मीनाई का अमीरल् लुगात तथा करीमुल्लुगात उर्दूकोशों मे प्रसिद्ध हैं। श्रीरामचद्र वर्मा, श्रीहरिशकर शर्मा आदि ने नागरी लिपि में भी कोश बनाए। उत्तर प्रदेश सरकार ने मद्दाह द्वारा सपादित उर्दू हिंदी कोश प्रकाशित किया है जिसे अच्छा कोश कहा जाता है।

गुजराती, उडिया, और असमिया मे भी अनेक आधुनिक कोश बन चुके हैं और निरतर बनते जा रहे हैं। नवजीवन प्रकाशन मदिर का सार्थ गुजराती मजणी कोश, तथा शापुरजी दरालजी का गुजराती इग्रेजी कोश प्रसिद्ध है। असमिया मे १८३७ ई० मे ब्राउन्सन (अमेरिकी मिशनरी) ने असमिया-इग्लिश डिक्शनरी बनाई थी। हेमचद्र बरुआ द्वारा निर्मित 'असमिया-अग्रेजी कोश', विशेष प्रसिद्ध है। उडिया में भी ऐसे अनेक कोश बन चुके हैं। कहने का साराश यह है कि भारत की सभी प्रमुख भाषाओ मे आधुनिक कोशो की प्रेरणा पाश्चात्यो से मिली और भारतीयो ने उस कार्य को निरतर आगे बढाने मे योगदान किया।

आधुनिक कोश की विधाएँ :

आधुनिक कोशरचना के विविध प्रकारो की सक्षिप्त चर्चा यहाँ अनावश्यक न होगी। वर्तमान युग ने कोशविद्या को अत्यत व्यापक परि-वेश मे विकसित किया। सामान्य रूप से उसकी दो मोटी मोटी विधाएँ कही जा सकती हैं—(१) शब्दकोश और (२) ज्ञानकोश। शब्दकोश के स्वरूप का बहुमुखी प्रवाह निरतर प्रौढता की ओर बढता लक्षित होता रहा है। आज की कोशविद्या का विकसित स्वरूप भाषा-विज्ञान, व्याकरणशास्त्र, साहित्य, अर्थविज्ञान, शब्दप्रयोगीय, ऐतिहासिक विकास, सदर्भसापेक्ष अर्थविकास और नाना शास्त्रो तथा विज्ञानो मे प्रयुक्त विशिष्ट अर्थों के बौद्धिक और जागरूक शब्दार्थ सकलन का पुजीकृत परिणाम है।

शब्दकोश

हमारी परिचित भाषाओ के कोशो मे आक्सफोर्ड-इग्लिश-डिक्शनरी के परिशीलन मे उपर्युक्त समस्त प्रवृत्तियो का उत्कृष्ट निदर्शन देखा जा सकता है। उसमे शब्दो के सही उच्चारण का सकेत-चिह्नो से विशुद्ध और परिनिष्ठित बोध भी कराया है। योरप के उन्नत और समृद्ध देशो की प्राय सभी भाषाओं मे विकसित स्तर की कोशविद्या के आधार पर उत्कृष्ट, विशाल, प्रामाणिक और सपन्न कोशो का निर्माण हो चुका है और उन देशों मे कोशनिर्माण के लिये ऐसे स्थायी सस्थान प्रतिष्ठापित किए जा चुके हैं जिनमे अबाध गति से सर्वदा कार्य चलता

रहता है। लब्धप्रतिष्ठ और बड़े बड़े विद्वानों का सहयोग तो उन संस्थानों को मिलता ही है, जागरूक जनता भी सहयोग देती रहती है। अंग्रेजी डिक्शनरी तथा अन्य भाषाओं में निर्मित कोशकारों के रचना-विधान-मूलक वैशिष्ट्यों का अध्ययन करने से अद्यतन कोशों में निम्ननिर्दिष्ट बातों का अनुयोग आवश्यक लगता है—

(क) उच्चारणसूचक संकेतचिह्नों के माध्यम से शब्दों के स्वरों व्यंजनों का पूर्णत शुद्ध और परिनिष्ठित उच्चारण स्वरूप बताना और स्वराघात बलाघात का निर्देश करते हुए यथासंभव उच्चार्य अंश के अक्षरों की बद्धता और अबद्धता का परिचय देना, (ख) व्याकरण-संबद्ध उपयोगी और आवश्यक निर्देश देना, (ग) शब्दों की इतिहास-संबद्ध वैज्ञानिक व्युत्पत्ति प्रदर्शित करना, (घ) परिवार-संबद्ध अथवा परिवारमुक्त निकट या दूर के शब्दों के साथ शब्दरूप और अर्थरूप का तुलनात्मक पक्ष उपस्थित करना, (ङ) शब्दों के विभिन्न और पृथक्कृत नाना अर्थों को अधिक-न्यून-प्रयोग क्रमानुसार सूचित करना, (च) अप्रयुक्त शब्दों अथवा शब्दप्रयोगों की विलोपसूचना देना, (छ) शब्दों के पर्याय बताना, और (ज) संगत अर्थों के समर्थनार्थ उदाहरण देना, (झ) चित्रों, रेखाचित्रों, मानचित्रों आदि के द्वारा अर्थ को अधिक स्पष्ट करना। 'आधुनिक कोश की सीमा और स्वरूप' उपशीर्षक के अंतर्गत इन बातों की कुछ विस्तृत चर्चा की गई है।

'आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' का नव्यतम और बृहत्तम संस्करण आधुनिक कोशविद्या की प्राय सभी विशेषताओं से संपन्न है। पर भारतीय भाषाओं के कोशों में अभी उपर्युक्त समस्त सामग्री का पुष्ट एकत्रीकरण नहीं हो पाया है। नागरीप्रचारिणी सभा के हिंदी शब्दसागर के अतिरिक्त हिंदी साहित्य संमेलन द्वारा प्रकाश्यमान मानक शब्दकोश (जिसके चार खंड प्रकाशित हो चुके हैं) एक विस्तृत आयाम है। हिंदी कोशकला के लब्धप्रतिष्ठ संपादक श्रीरामचंद्र वर्मा के इस प्रशंसनीय कार्य का उपजीव्य भी मुख्यत शब्दसागर ही है। उसका मूल कलेवर तात्विक रूप में शब्दसागर से ही अधिकांशत परिकलित है। हिंदी के अन्य कोशों में भी अधिकांश सामग्री इसी कोश से ली गई है। थोड़े बहुत मुख्यत संस्कृत कोशों से और यदा कदा अन्यत्र से शब्दों और अर्थों को आवश्यक अनावश्यक रूप में ठूँस दिया गया है। ज्ञानमंडल के बृहद् हिंदी शब्दकोश में पेटेंवाली प्रणाली शुरू की गई है। परंतु वह पद्धति संस्कृत के कोशों में जिनका निर्माण पश्चिमी विद्वानों के प्रयास से आरंभ हुआ था, सैकड़ों वर्ष पूर्व से प्रचलित हो गई थी। पर आज भी, नव्य या आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोश उस स्तर तक नहीं पहुँच पाए हैं जहाँ तक आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी अथवा रूसी, अमेरिकन, जर्मन, इताली, फ्रांसीसी आदि भाषाओं के उत्कृष्ट और अत्यंत विकसित कोश पहुँच चुके हैं।

कोशरचना की ऊपर वर्णित विधा को हम साधारणत सामान्य भाषा शब्दकोश कह सकते हैं। इस प्रकार शब्दकोश एकभाषी, द्विभाषी, त्रिभाषी और बहुभाषी भी होते हैं। बहुभाषी शब्दकोशों में तुलनात्मक शब्दकोश भी यूरोपीय भाषाओं में ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान की प्रौढ़ उपलब्धियों से प्रमाणीकृत रूप में निर्मित हो चुके हैं। इनमें मुख्य रूप से भाषावैज्ञानिक अनुशीलन और शोध के परिणामस्वरूप उपलब्ध सामग्री का नियोजन किया गया है। ऐसे तुलनात्मक कोश भी आज बन चुके हैं जिनमें प्राचीन भाषाओं की तुलना मिलती है। ऐसे भी कोश प्रकाशित हैं जिनमें एक से अधिक मूल परिवार की अनेक भाषाओं के शब्दों का तुलनात्मक परिशीलन किया गया है।

शब्दकोशों के और भी नाना रूप आज विकसित हो चुके हैं और हो रहे हैं। वैज्ञानिक और शास्त्रीय विषयों के सामूहिक और तत्तद्-विषयानुसारी शब्दकोश भी आज सभी समृद्ध भाषाओं में बनते जा रहे हैं। शास्त्रों और विज्ञानशाखाओं के पारिभाषिक शब्दकोश भी निर्मित हो चुके हैं और हो रहे हैं। इन शब्दकोशों की रचना एक भाषा में भी होती है और दो या अनेक भाषाओं में भी। कुछ में केवल पर्याय शब्द रहते हैं और कुछ में व्याख्याएँ अथवा परिभाषाएँ भी दी जाती हैं। विज्ञान और तकनीकी या प्राविधिक विषयों से संबद्ध नाना पारिभाषिक शब्दकोशों में व्याख्यात्मक परिभाषाओं तथा कभी कभी अन्य साधनों की सहायता से भी बिलकुल सही अर्थ का बोध कराया जाता है। दर्शन, भाषाविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान और समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि समस्त आधुनिक विद्याओं के कोश विश्व की विविध संपन्न भाषाओं में विशेषज्ञों की सहायता से बनाए जा रहे हैं और इस प्रकृति के सैकड़ों हजारों कोश भी बन चुके हैं। शब्दार्थकोश संबंधी प्रकृति के अतिरिक्त इनमें ज्ञानकोशात्मक तत्वों की विस्तृत या लघु व्याख्याएँ भी समन्वित रहती हैं। प्राचीन शास्त्रों और दर्शनों आदि के विशिष्ट एवं पारिभाषिक शब्दों के कोश भी बने हैं और बनाए जा रहे हैं। इनके अतिरिक्त एक एक ग्रंथ के शब्दार्थ कोश (यथा मानस शब्दावली) और एक एक लेखक के साहित्य की शब्दावली भी योरप, अमेरिका और भारत आदि में संकलित हो रही है। इनमें उत्तम कोटि के कोशकारों ने ग्रंथसंदर्भों के संस्करणात्मक संकेत भी दिए हैं। अकारादि वर्णानुसारी अनुक्रमणि-कात्मक उन शब्दसूचियों का—जिनके अर्थ नहीं दिए जाते हैं पर संदर्भसंकेत रहता है—यहाँ उल्लेख आवश्यक नहीं है। योरप और इंगलैंड में ऐसी शब्दसूचियाँ अनेक बनीं। शेक्सपियर द्वारा प्रयुक्त शब्दों की ऐसी अनुक्रमणिका परम प्रसिद्ध है। वैदिक शब्दों की और ऋक्संहिता में प्रयुक्त पदों की ऐसी शब्दसूचियों के अनेक संकलन पहले ही बन चुके हैं। व्याकरण महाभाष्य की भी एक एक ऐसी शब्दानुक्रमणिका प्रकाशित है। परंतु इनमें अर्थ न होने के कारण यहाँ उनका विवेचन नहीं किया जा रहा है।

ज्ञानकोश

कोश की एक दूसरी विधा ज्ञानकोश भी विकसित हुई है। इसके बृहत्तम और उत्कृष्ट रूप को इन्साइक्लोपिडिया कहा गया है। हिंदी में इसके लिये विश्वकोश शब्द प्रयुक्त और गृहीत हो गया है। यह शब्द बँगला विश्वकोशकार ने कदाचित् सर्वप्रथम बँगला के ज्ञानकोश के लिये प्रयुक्त किया। उसका एक हिंदी संस्करण हिंदी विश्वकोश के नाम से नए सिरे से प्रकाशित हुआ। हिंदी में यह शब्द प्रयुक्त होने लगा है। यद्यपि हिंदी के प्रथम किशोरोपयोगी

ज्ञानकोश (अपूर्ण) को श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी तथा पं० कृष्णवल्लभ द्विवेदी द्वारा विश्वभारती अभिधान दिया गया तो भी ज्ञान कोश, ज्ञानदीपिका, विश्वदर्शन, विश्वविद्यालयमंडार आदि संज्ञाओं का प्रयोग भी ज्ञानकोश के लिये हुआ है। स्वयं सरकार भी बालशिक्षोपयोगी ज्ञानकोशात्मक ग्रंथ का प्रकाशन 'ज्ञानसरोवर' नाम से कर रही है। परंतु इन्साइक्लोपीडिया के अनुवाद रूप में विश्वकोश शब्द ही प्रचलित हो गया। उड़िया के एक विश्वकोश का नाम शब्दार्थानुवाद के अनुसार ज्ञानमंडल रखा भी गया। ऐसा लगता है कि बृहद् परिवेश के व्यापक ज्ञान-का पारिभाषिक और विशिष्ट शब्दों के माध्यम से ज्ञान देनेवाले ग्रंथ का इन्साइक्लोपीडिया या विश्वकोश अभिधान निर्धारित हुआ और अपेक्षाकृत लघुतरकोशों को ज्ञानकोश आदि विभिन्न नाम दिए गए। अंग्रेजी आदि भाषाओं में बुक आफ नालेज, डिक्शनरी आव जनरल नालेज आदि शीर्षकों के अंतर्गत नाना प्रकार के छोटे बड़े विश्वकोश अथवा ज्ञानकोश बने हैं और आज भी निरंतर प्रकाशित एवं विकसित होते जा रहे हैं। इतना ही नहीं इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन ऐंड एथिक्स आदि विषयविशेष से संबद्ध विश्वकोशों की संख्या भी बहुत ही बड़ी है। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से निर्मित अनेक सामान्य विश्वकोश और विशेष विश्वकोश भी आज उपलब्ध हैं।

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, इन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना अंग्रेजी के ऐसे विश्वकोश हैं। अंग्रेजी के सामान्य विश्वकोशों द्वारा इनकी प्रामाणिकता और समान्यता सर्वस्वीकृत है। निरंतर इनके संशोधित, संवर्धित तथा परिष्कृत संस्करण निकलते रहते हैं। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के दो परिशिष्ट ग्रंथ भी हैं जो प्रकाशित होते रहते हैं और जो नूतन संस्करण की सामग्री के रूप में सातत्य भाव से संकलित होते रहते हैं। इंगलैंड में इन्साइक्लोपीडिया के पहले से ही ज्ञानकोशात्मक कोशों के नाना रूप बनने लगे थे।

ज्ञानकोशों के भी इतने अधिक प्रकार और पद्धतियाँ हैं जिनकी चर्चा का यहाँ अवसर नहीं है। चरितकोश, कथाकोश इतिहासकोश, ऐतिहासिक कालकोश, जीवनचरितकोश पुराख्यानकोश, पौराणिक-रूपातपुरुषकोश आदि आदि प्रकार के विविध नामरूपात्मक ज्ञानकोशों की बहुत सी विधाएँ विकसित और प्रचलित हो चुकी हैं। यहाँ प्रसंगत ज्ञानकोशों का संकेतात्मक नामनिर्देश मात्र कर दिया जा रहा है। हम इस प्रसंग को यहीं समाप्त करते हैं और शब्दार्थकोश से संबद्ध प्रकृत विषय की चर्चा पर लौट आते हैं।

हिंदी कोशों की सीमा और उनके रूप

अद्यतन शब्दकोशों की विशेषताओं और उनकी विभिन्न विधाओं की चर्चा अन्यत्र हुई है। आज के कोशों में भाषावैज्ञानिक, व्याकरणिक और भाषा के ऐतिहासिक शब्दरूपों और अर्थरूपों से संबद्ध व्युत्पत्ति-निर्देश और अर्थ विकास-क्रम का कोश में समावेश उसका अत्यंत अनिवार्य अंग हो गया है, यह अन्यत्र कहा गया है। भाषा के शब्दों का भाषावाङ्मय में आद्य प्रयोग और क्रमश: उत्तरवर्ती प्रयोगों के उदाहरण भी आवश्यक होते हैं। व्युत्पत्तिलभ्य यौगिक और रूढ़—नाना अर्थों के भी सोदाहरण निर्देश—कोश की प्रामाणिकता सूचित करने के लिये समाविष्ट किए जाते हैं। एक शब्द के शब्दार्थबोध की प्रयोगसीमा में आनेवाले सूक्ष्म अर्थों की नाना अर्थच्छायाओं का पार्थक्य और विस्तार भी सोदाहरण उपस्थित किया जाता है। शब्द के नाना अर्थों और आवश्यक उदाहरणों द्वारा तत्तदर्थबोधकता का समर्थन भी कोश में रहता है। आवश्यक व्याख्याएँ दी जाती हैं। इन सबके अतिरिक्त आधुनिक प्रयोगों के नव्यतम अर्थों का निर्देश किए बिना कोश पूर्ण और अद्यतन नहीं होता।

शब्दार्थकोश का पूर्ण और नूतनतम रूप ऐसे कोश को ही कहा जा सकता है। परंतु ऐसे कोश संपन्न और विकसित देशों की साधना द्वारा ही बन पाते हैं। इनके अतिरिक्त छोटे बड़े अनेक ऐसे साधारण कोश भी हैं जो पूर्ण साधनों के अभाव में समस्त वैशिष्ट्यों से संपन्न न होकर भी व्यावहारिक उपयोग के लिये बनाए जाते हैं और यथासंभव और यथाशक्ति या आंशिक रूप में उत्कृष्ट कोशों की घटक सामग्रियों से सहायता लेते हैं। संभवत: भारत के अधिकांश बड़े कोश भी शब्दार्थकोश की अद्यतनतम पूर्णता से अभी दूर ही हैं। हिंदी के शब्दार्थकोशों में शब्द और अर्थ के प्रयोग और विकाससंबंधी प्रामाणिक उदाहरणों द्वारा ऐतिहासिक क्रम का नियोजन अभी नहीं हो पाया है। इनके अतिरिक्त शब्दों के उच्चारण-संबंधी यथार्थ निर्देश की कमी प्राय: सभी छोटे बड़े हिंदी कोशों में वर्तमान है। प्राचीन राजस्थानी, पिंगल, डिंगल, प्राचीन और मध्यकालीन ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली और दक्खिनी हिंदी, खड़ी बोली तथा हिंदी प्रदेश के विस्तृत क्षेत्र में प्रचलित आधुनिक परिनिष्ठित हिंदी के उच्चारणों का निर्देश अत्यंत आवश्यक है। हिंदी पढ़नेवाले हिंदीतर भाषाभाषियों के लिये उच्चारणनिर्देश बिना शुद्ध और सही उच्चारण करना नितांत कठिन हो जाता है। पर अबतक के बृहत् हिंदी कोशों में, यहाँ तक कि इस हिंदी शब्द-सागर के नवीन संस्करण में उच्चारणनिर्देश की योजना कार्यान्वित नहीं हो सकी।

इसके अतिरिक्त एक और बड़ी भारी कमी हिंदी कोशों में रह गई है। उसका संबंध ऊपर निर्दिष्ट शब्दप्रयोगों के ऐतिहासिक क्रमनिर्देश से है। भाषा में अनेक शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिनका पहले तो प्रयोग होता था पर कालपरंपरा में उनका प्रयोग लुप्त हो गया। आज के उत्कृष्ट कोशों में यह भी दिखाया जाता है कि कब उनका प्रयोग आरंभ हुआ और कब उनका लोप हुआ। पर हिंदी कोशों में इसका अभाव है। नागरीप्रचारिणी सभा का यह कोश इस दिशा में थोड़ा प्रयत्नशील है। व्यवहारलुप्त शब्दों के आरंभ और समाप्ति के प्रयोगसपृक्त ऐतिहासिक क्रम को सूचित किए बिना भी पुरातन-प्रयोग संबंधी संकेत-बोधक चिह्न के द्वारा लुप्तप्रयोग शब्दों का निर्देश कर दिया गया है।

इन सब कमियों को दूर करने की ओर कोशनिर्माण में प्रवृत्त संस्थाएँ और व्यक्तियों के विचार काम कर रहे हैं। पर अभी साधनाभाव के कारण प्रगति संतोषजनक नहीं है।

व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से सामान्य पाठकों के लिये बने हुए सामान्य कोशों के अतिरिक्त हिंदी में कुछ कोश और हैं जिन्हें हम शब्दार्थकोश मात्र कहते हैं। इनमें व्याकरणसंबद्ध निर्देश और

प्रचलित अर्थमात्र दिए गए हैं। हिंदी मे एकाध पर्यायवाची कोश भी बनाए गए हैं। विशिष्ट विषयो के पारिभाषिक शब्दो के अर्थकोश भारत की अनेक भाषाओ और हिंदी मे भी बन रहे हैं। इनमे बहुत से ऐसे कोश हैं जो ज्ञानकोश की सीमा के अतर्गत आ जाते हैं। इनमे विस्तृत व्याख्या और कभी कभी ऐतिहासिक परिचय भी रहता है। परतु कुछ कोश शब्दार्थ मात्र का बोध कराते हैं कभी पर्यायो द्वारा और कभी सक्षिप्त व्याख्या द्वारा। इस विधा को हम विषय शब्द-कोश कह सकते है। इनके अतिरिक्त जैसा ऊपर सकेत किया गया है, विभिन्न कवियों लेखको के ग्रथो अथवा विशिष्ट ग्रथो के भी कोश अर्थसहित बनाए जाते है। प्रथम प्रकार के कोशों मे हिंदी के सूर ब्रजभाषा कोश (डा० टडन), प्रसाद काव्यकोश (श्रीसुधाकर पाडेय) आदि को रखा जा सकता है और द्वितीय कोटि मे मानस शब्द कोश आदि को। बडे शब्दार्थ कशो मे कभी कभी विश्वकोश य पद्धति का अनुसरण करते हुए ऐतिहासिक और विवरणात्मक, परिचय भी स्थान स्थान पर दे दिया जाता है। शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्य, हिंदी शब्दसागर आदि इसी प्रकार के शब्दकोश हैं। वेब्स्टर की न्यू इगलिश डिक्शनरी भी इसी प्रकार का शब्दकोश है जिसमें विश्व कोशीय पद्धति की रचनाशैली बहुत दूर तक अतर्नियोजित है। यहाँ यह सकेत भी कर देना अनुचित न होगा कि हिंदी के शब्दार्थ कोशो मे यौगिक, सामासिक शब्दो और लोकोक्तियो, मुहावरो आदि का भी उसी प्रकार अतर्योग लक्षित होता है जिस प्रकार सस्कृत कोशो अथवा अग्रेजी कोशो मे। क्रियाप्रयोग भी हिंदी शब्दसागर मे दिखाए गए हैं। यहाँ अथवा सामान्य कोशो मे लोकोक्तियो और मुहावरो का अर्थबोध अथवा क्रियाप्रयोग शब्दविशेष के अतर्गत दिखाया गया है। परतु कुछ कोश ऐसे भी बने हैं जो केवल लोकोक्तिकोश' या मुहावराकोश कहे जाते हैं।

सामान्य शब्दार्थकोश एकभाषी या अनेकभाषी होते हैं। एकभाषी कोशों मे व्याख्यात्मक अर्थकोश होते हैं, पर्यायवाची कोश होते हैं और कभी कभी विपर्यायवाची कोश भी मिल जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि शब्दकोशो की अनेक विधाएँ विकसित हो रही हैं और उनके अनुसार अनेक प्रकार के छोटे बडे कोश निर्मित होते जा रहे हैं। शब्दानुक्रमणिकाओ को जो मात्र शब्दो की अर्थरहित सूचियाँ होती हैं, छोड देने पर भी अनेक ग्रथ के साथ सार्थक शब्दानुक्रमणिकाएँ भी मिलती हैं। इन्हें हम ग्रथविशेष के क्लिष्ट या विरल पदो का शब्दकोश कह सकते हैं।

आधुनिक कोशविद्या तुलनात्मक दृष्टि

मध्यकालीन हिंदी कोशो की मान्यता और रचनाप्रक्रिया से भिन्न उद्देश्यों को लेकर भारत मे कोशविद्या के आधुनिक स्वरूप का उद्भव और विकास हुआ। पाश्चात्य कोशो के आदर्श, मान्यताएँ, उद्देश्य, रचनाप्रक्रिया और सीमा के नूतन और परिवर्तित आयामो का प्रवेश भारत की कोश रचनापद्धति मे आरभ हुआ। सस्कृत और इतर भारतीय भाषाओ मे पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानो के प्रयास से छोटे बडे बहुत से कोश निर्मित हुए। इन कोशो का भारत और भारत के बाहर भी निर्माण हुआ। आरभ मे भारतीय भाषाओ के मुख्यत सस्कृत के, कोश अग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओ के माध्यम से बनाए गए। इनमे सस्कृत आदि के शब्द भी रोमन लिपि मे रखे गए। शब्दार्थ की व्याख्या और अर्थ आदि के निर्देश कोश की भाषा के अनुसार जर्मन, अग्रेजी, फारसी पुर्तगाली आदि भाषाओ मे दिए गए। बँगला, तमिल आदि भाषाओ के ऐसे अनेक कोशो की रचना ईसाई धर्मप्रचारको द्वारा भारत और आसपास के लघु द्वीपो मे हुई। हिंदी के भी ऐसे अनेक कोश बने। इनकी चर्चा की जा चुकी है। प्रथम संस्करण की भूमिका मे पृष्ठ १–२ पर हिंदी के आधुनिक कोशो की आरभिक रचना का निर्देश किया गया है। सबसे पहला शब्दकोश सभवत फरग्युसन का 'हिंदुस्तानी अग्रेजी' (अग्रेजी हिंदुस्तानी) कोश था जो १७७३ ई० मे लदन मे प्रकाशित हुआ। इन आरभिक कोशो को हिंदुस्तानी कोश कहा गया। ये कोश मुख्यत हिंदी के ही थे। पाश्चात्य विद्वानो के इन कोशो मे हिंदी को हिंदुस्तानी कहने का कदाचित् यह कारण है कि हिंदुस्तान भारत का नाम माना गया, और वहाँ की भाषा हिंदुस्तानी कही गई। कोशविद्या के इन पाश्चात्य पडितो की दृष्टि में हिंदी का ही अपर पर्याय हिंदुस्तानी था और वही सामान्य रूप से हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा थी। पश्चिम मे विकसित नूतन पद्धति पर बने हुए सस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओ के कोशों और उनकी उपलब्धियों के वैशिष्ट्य का रूपरेखात्मक परिचय दिया जा चुका है।

भारत की आदिमध्यकालीन कोशविद्या के ऐतिहासिक विकास की रूपरेखा से स्पष्ट हो चुका है कि आरभिक क्रम मे कोशनिर्माण की प्रेरणात्मक चेतना का बहुत कुछ सामान्य रूप भारत और पश्चिम मे मिलता जुलता था। भारत का वैदिक निघटु विरल और क्लिष्ट शब्दो के अर्थ और पर्यायो का सक्षिप्त सग्रह था। योरप मे भी ग्लासेरिया से जिस कोशविद्या का आरभिक बीजवपन हुआ था, उसके मूल मे भी विरल और क्लिष्ट शब्दो का पर्याय द्वारा अर्थबोध कराना ही उद्देश्य था। लातिन की उक्त शब्दार्थसूची से शनै शनै. पश्चिम की आधुनिक कोशविद्या के वैकासिक सोपान आविर्भूत हुए। भारत और पश्चिम दोनो ही स्थानो मे शब्दों के सकलन मे वर्गपद्धति का कोई न कोई रूप मिल जाता है। पर आगे चलकर नव्य कोशो का पूर्वोक्त प्राचीन और मध्यकालीन कोशो से जो सर्वप्रथम और प्रमुखतम भेदक वैशिष्ट्य प्रकट हुआ वह था वर्णमालाक्रमानुसारी शब्दयोजना की पद्धति।

इसके अतिरिक्त आधुनिक और पाश्चात्य कोशो की अन्य भेदकताएँ मुख्यत निम्ननिर्दिष्ट हो सकती हैं—

(१) योरप मे विशेष रूप से और भारत मे आशिक रूप से— आदिमध्यकालीन कोशकर्म मे कठिन शब्दो का सरल शब्दो या पर्यायों द्वारा अर्थज्ञापन होता था। योरप में सामान्यत एक पर्याय दे दिया जाता था और भारत मे वैदिक निघटुकाल से ही पर्यायशब्दो का अर्थबोधकपरक एकत्रीकरण होता था। इनमे दुर्बोध्य और कठिन शब्दो के सग्रह की मुख्य प्रेरणा थी। भारतीय कोशों मे बहुपर्याय सग्रह के

कारण अनेक क्लिष्ट शब्दों के साथ पर्यायवाची कोशो मे सरल शब्द भी समाविष्ट रहते थे। निघटु का शब्दसकलन भी वैदिक वाङमय के समग्र शब्दनिधि का सग्रह न होकर अधिकत दुर्बोध्य और विवेच्य शब्दो की सकलन प्रेरणा से प्रभावित है।

(२) भारत के प्राचीन कोश पर्यायवाची या समानार्थक थे। आरभिक अवस्था मे नानार्थक शब्दो का इनमे परिशिष्ट जुडा रहता था। आगे चलकर नानार्थक या अनेकार्थक शब्दलिपि का विस्तार मे आकलन होने लगा। फलत सस्कृत के अनेक नानार्थ कोशो मे मुख्यत नामसग्रह होता था और आगे चलकर लिंगनिर्देश भी होने लगा। पर्यायवाची कोशो की सग्रहयोजना वर्गपरक हो गई थी। नानार्थ शब्दो की क्रम-योजना में अत्य व्यजनाक्षर का क्रम (मूलत) अपनाया गया। पर कभी कभी आदिवर्ण का आधार लेकर वर्णमालानसारी शब्द-क्रम-योजना का प्रयास भी किया गया। पर दूसरी ओर आधुनिक कोशो मे लघु कोशो के अतिरिक्त पर्याय के साथ साथ अर्थबोधक व्याख्याएँ भी दी जाती हैं। सस्कृत मे यह नही था। टीकाएँ अवश्य यह कार्य करती थी। सस्कृत के समानार्थक कोशो की भाँति आधुनिक कोशों मे पर्याय रखने पर अधिक बल देने की चेष्टा नही होती। कभी कभी अवश्य ही सस्कृत कोशों के प्रभाव से हिंदी आदि मे भी पर्यायवाची कोश बन जाते हैं। पर वस्तुत ये कोश सस्कृत कोशो के अवशेषमात्र हैं, आधुनिक कोश नहीं।

(३) सस्कृत के प्राचीन कोशो मे मुख्यत नामपदों, अव्ययशब्दों तथा कभी कभी धातुओं का भी सग्रह होता था। व्याकरण-प्रभावित सग्रहदृष्टि का मूल कदाचित् पाणिनि के धातुपाठ और गणपाठो मे दिखाई पडता है। प्रारभ मे, अमरकाल और उसके बाद, सस्कृत कोशो का मुख्य रूप नामलिंगानुशासनात्मक हो गया। आधुनिक कोशो में रचनाविधान की भिन्नता के कारण इसे अनुपयोगी मानकर सर्वथा त्याग दिया गया। परतु व्याकरणमूलक ज्ञान और प्रयोग के लिये उपयोगी निर्देश प्रत्येक शब्द के साथ लघुसकेतो द्वारा निर्दिष्ट होते हैं।

(४) आज के शब्दकोशो का निर्माण उन समस्त जनो के लिये होता है जो तत्तद्भाषाओ के सरल या कठिन किसी भी शब्द का अर्थ जानना चाहते हैं। सस्कृत कोशो का मुख्य रूप पद्यात्मक होता था। इस कारण उसका अधिकत उपयोग वे ही कर पाते थे जो कोशपद्यो को कठस्थ कर रखते थे। प्रयोग और अर्थज्ञान के साथ साथ कोशो को कठस्थ करना भी एक उद्देश्य समझा जाता था पर आज के नवीन कोशो का यह प्रयोजन बिल्कुल ही नहीं है।

(५) सस्कृत के प्राचीन कोशों का प्रयोजन होता था कवियो, साहित्यनिर्माताओ और काव्यशास्त्रादि के पाठको के शब्दभडार की वृद्धि करना। परतु आधुनिक कोशों का मुख्य प्रयोजन है शब्दो के अर्थ का ज्ञान कराना और तत्सबधी अन्य बातो की जानकारी देते हुए उनके समीचीन प्रयोग की शक्ति बढाना।

(६) इनके अतिरिक्त शब्दोच्चारण, व्युत्पत्तिसूचन, शब्दप्रयोग का प्रथम प्रयोग और यदि कोई शब्द लुप्तप्रयोग हो गया हो तो उसका सप्रमाण ऐतिहासिक वर्णन, नाना अर्थो का सामान्य एव विशेष सदर्भ-सयुक्त विविक्त विवरण, यौगिक एव मुहावरो के शब्दप्रयोगों तथा धातुयोगो आदि के अर्थवैशिष्ट्य का सोदाहरण निरूपण भी आधुनिक कोशो मे रहता है। यह सब प्राचीन कोशो मे नही था। कोशटीकाओं मे अवश्य इनमे से अनेक बातें अशत और प्रसगत निर्दिष्ट कर दी जाती थी।

आधुनिक कोश सीमा और स्वरूप

योरप मे आधुनिक कोशो का जो स्वरूप विकसित हुआ, उसकी रूपरेखा का सकेत किया जा चुका है। योरप, एशिया और अफ्रिका के उस तटभाग मे जो अग्रेज शो के प्रभाव मे आया था, उक्त पद्धति के अनुकरण पर कोशो का निर्माण होने लगा था। भारत मे व्यापक पैमाने पर जिस रूप मे कोश निर्मित होते चले, उनकी सक्षिप्त चर्चा की जा चुकी है। इन सबके आधार पर उत्तम कोटि के आधुनिक कोशों की विशिष्टताओ का आकलन करते हुए कहा जा सकता है

(क) आधुनिक कोशो मे शब्दप्रयोग के ऐतिहासिक क्रम की रूपरेखा दिखाने के प्रयास को बहुत महत्व दिया गया है। ऐसे कोशो को ऐतिहासिक विवरणात्मक कहा जा सकता है। उपलब्ध प्रथम प्रयोग और प्रयोगसदर्भ का आधार लेकर अर्थ और उसके एकमुखी या बहुमुखी विकास के सप्रमाण उपस्थापन की चेष्टा की जाती है। दूसरे शब्दों मे इसे हम शब्दप्रयोग और तद्बोध्यार्थ के रूप की आनुक्रमिक या इतिहासानुसारी विवेचना कह सकते हैं। इसमें उद्धरणों का उपयोग दोनों ही बातों (शब्दप्रयोग और अर्थविकास) की प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं।

(ख) आधुनिक कोशकार के द्वारा सगृहीत शब्दो और अर्थों के आधार का प्रामाण्य भी अपेक्षित होता है। प्राचीन कोशकार इसके लिये बाध्य नहीं था। वह स्वत प्रमाण समझा जाता था। पूर्व ग्रथों या अर्थो का समाहार करते हुए यदाकदा इतना भी कह देना उसके लिये बहुधा पर्याप्त हो जाता था। पर आधुनिक कोशो में ऐसे शब्दो के सबध मे जिनका साहित्य या व्यवहार मे प्रयोग नही मिलता, यह बताना भी आवश्यक हो जाता है कि अमुक शब्द या अर्थ कोशीय मात्र हैं।

(ग) आधुनिक कोशो की एक दूसरी नई धारा ज्ञानकोशात्मक है जिसका उत्कृष्ट रूप विश्वकोश के नाम से सामने आता है। अन्य रूप पारिभाषिक शब्दकोश, विषयकोश, चरितकोश, ज्ञानकोश, शब्दकोश आदि नाना रूपो मे अपने आभोग का विस्तार करते चल रहे हैं।

(घ) आधुनिक शब्दकोशो मे अर्थ की स्पष्टता के लिये चित्र, रेखा-चित्र, मानचित्र आदि का उपयोग भी किया जाता है।

(ङ) विशुद्ध शास्त्रीय वाङमय (शास्त्र) के प्राचीन स्तर से हटकर आज के कोश वैज्ञानिक अथवा विज्ञानकल्प रचनाप्रक्रिया के स्तर पर पहुँच गए हैं। ये कोश रूपविकास और अर्थविकास की ऐतिहासिक प्रामाणिकता के साथ साथ भाषावैज्ञानिक सिद्धात की सगति ढूँढने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं। आधुनिक भाषाओ के तद्भव, देशी और विदेशी शब्दो के मूल और स्रोत ढूँढने की चेष्टा की जाती है। कभी कभी

प्राचीन भाषा या भाषाओं के मूलस्रोतों की गवेषणा के व्युत्पत्ति-दर्शन के सदर्भ मे महत्वपूर्ण प्रयास होता है। बहुभाषी पर्यायकोशो मे ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान के सहयोग और सहायता द्वारा स्रोतभाषा के कल्पनानिर्दिष्ट रूप अगीकृत होते हैं। उदाहरणार्थ प्राचीन भारत-यूरोपीय – आर्यभाषा के बहुभाषी तुलनात्मक कोशो मे मूल आर्यभाषा (या आर्यों के 'फादर लैंग्वेज') के कल्पित मूलरूपों का अनुमान किया जाता है। दूसरे शब्दो मे इसका तात्पर्य यह है कि आधुनिक उत्कृष्ट कोशो मे जहाँ एक ओर प्राचीन और पूर्ववर्ती वाङ्मय का शब्दप्रयोग के क्रमिक ज्ञान के लिये ऐतिहासिक अध्ययन होता है वहाँ भाषाविज्ञान के ऐतिहासिक, तुलनात्मक और वर्णनात्मक दृष्टिपक्षो का प्रौढ सहयोग और विनियोग अपेक्षित रहता है। कोशविज्ञान की नूतन रचनाप्रक्रिया आज के युग मे भाषाविज्ञान के नाना अगो से बहुत ही प्रभावित हो गई है। इस प्रभाव की दूरगामी व्याप्ति का नीचे की पक्तियो मे सक्षेपत सकेत किया जा रहा है।

कोशरचना की प्रक्रिया और भाषाविज्ञान

कोशनिर्माण का शब्दसकलन सर्वप्रमुख आधार है। परतु शब्दो के सग्रह का कार्य अत्यत कठिन है। मुख्य रूप मे शब्दों का चयन दो स्रोतो से होता है--(१) लिखित साहित्य से और (२) लोकव्यवहार और लोकसाहित्य से। लिखित साहित्य से सग्राह्य शब्दों के लिये हस्तलिखित और मुद्रित ग्रथो का सहारा लिया जाता है। परतु इसके अतर्गत प्राचीन हस्तलेखो और मुद्रित-ग्रथो के आधार पर जब शब्द-सकलन होता है तब उभयविध आधारग्रथो की प्रामाणिकता और पाठशुद्धि आवश्यक होती है। इनके बिना गृहीत शब्दो का महत्व कम हो जाता है और उनसे भ्रमसृष्टि की सभावना बढती है।

हिंदीकोश मे शब्दसंकलन . शुद्धपाठ

मुद्रित या हस्तलिखित ग्रथो से जो शब्दसकलन होता है उसमे पाठ की शुद्धि नितात अपेक्षित है। ऐतिहासिक दृष्टि से उनका महत्व तभी स्थापित हो सकता है जब पाठालोचन विज्ञान के अनुसार ग्रथ के आलोचनात्मक (क्रिटिकल) सस्करण सपादित हो और उनके माध्यम से प्राचीनतम शुद्ध पाठ उपलब्ध हो। शुद्ध और मूल पाठ तभी निर्धारित हो सकता है जब यह ज्ञात हो कि भाषा मे प्रयुक्त कौन से शब्द का कब क्या रूप था और उसके अर्थविकास का क्या क्रम था ?

पूना से प्रकाशिष्यमाण सस्कृत कोश के आधारित ग्रथो के ऐसे समालोचित पाठ का निर्धारण किया जा रहा है जो पाठालोचन के वैज्ञानिक सिद्धातो से विवेचित हो। प्रसगवश यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि हिंदी मे आदि और मध्य कालों के हिंदी ग्रथों के ऐसे सस्करण अत्यत दुर्लभ हैं जिनके पाठों का सपादन पाठालोचनविज्ञान के आधार पर हुआ हो। रामचरितमानस के पाठालोचन की चेष्टा कुछ अधिक हुई है, और उसके अपेक्षाकृत कुछ अच्छे सस्करण प्रकाशित हुए और हो रहे हैं। परतु अनेक महत्वपूर्ण साहित्यिक ग्रथ अभी जिस रूप मे उपलब्ध हैं, उनमे पाठालोचनविज्ञान की सपादनपद्धति का प्राय. अभाव है। पृथ्वीराज रासो, सूरसागर, कबीर साहित्य आदि के पूर्णतः सतोषदायक सस्करण आज भी अनुपलब्ध हैं। शुद्ध पाठ तो अप्राप्य है ही। तत्तद् ग्रथो मे कितना अश क्षेपक है एव कितना मूल है, इसका असदिग्ध प्रमाण भी अनुपलब्ध है। 'रासो' जैसे महाग्रथ के प्रामाणिक और मूल रूप का प्रश्न अत्यत विवादास्पद है। उसे जाली ग्रथ भी कह दिया जाता है और उसके निर्माणकाल का भी निर्धारण अभी नही हो पाया है। ऐसी स्थिति मे प्रकाशित ग्रथो के आधार पर सकलित शब्दसमूह और उनके प्रयोग का इतिहास विवादास्पद और प्रमाणहीन रह जाता है।

हस्तलेखो मे शुद्ध पाठ की प्राप्ति स्वत दुसाध्य कार्य है। इसके अतिरिक्त उनसे हिंदी कोशकारो का शब्दसग्रह करना और भी दुष्कर है। अपेक्षित आर्थिक साधन के अभाव मे अप्रकाशित हस्तलेखो से शब्द सग्रह करना प्राय उपेक्षित ही रहा है। कहने का तात्पर्य केवल यह कि हिंदी कोश के पूर्ण विकसित स्वरूप का निर्माण आज की परिस्थिति मे भी असभवप्राय जान पडता है।

कोश के लिये सकलित शब्दसमूह के आधार ऐसे शब्द होते हैं जो आलोचनात्मक और वैज्ञानिक पद्धति से विवेचित एव शुद्ध पाठवाले सस्करणो से सगृहीत हो। भाषाविज्ञान के ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टियो से पाठविज्ञान का घनिष्ठ सबध है। शब्दरूप और तद्बोध्य अर्थ का निर्णयात्मक स्वरूप भी भाषाविज्ञान की दृष्टि की--बहुत दूर तक--अपेक्षा करता है।

लोकभाषा से शब्दसकलन

व्यावहारिक लोकभाषा से शब्दसग्रह करना श्रमसाध्य कार्य अवश्य है परतु असभव नही है। इनके रूप का स्रोत ढूँढने और अर्थ-विकास की शृखला निर्धारित करने मे भाषाविज्ञान की अत्यधिक सहायता अपेक्षित होती है।

लोकसाहित्य का आज एक स्वतत्र अध्ययनक्षेत्र लोक-साहित्य-विज्ञान के रूप मे विकसित हुआ है। परपरागत लोकगीतो मे लोक-साहित्य का काफी पुराना अश चला आ रहा है। लोककथाओ आदि के पद्यात्मक रूपो मे शब्दरूपो की परपरा सुरक्षित मिल जाती है। परतु प्राचीन बोलियो से गद्यरूप काफी दूर हो जाता है। लोकबोलियो से एक ओर तो तत्तद् बोलियो के शब्दकोशो का निर्माण करने मे शब्दो का संकलन सहायक होता है, दूसरी ओर शब्द के रूपविकास और अर्थविकास की कडी के रूप में भी उनकी उपयोगिता होती है। हिंदी के कोशो मे तो बोलियो के बहुत से शब्दो का सकलन और भी आवश्यक हो जाता है। मध्यकालीन हिंदी के अतर्गत राजस्थानी, व्रजभाषा, दक्खिनी हिंदी, सधुक्कडी, बुदेली, अवधी, बिहारी, मैथिली, उर्दू आदि अनेक प्रातीय या क्षेत्रीय भाषाओ और बोलियो के ग्रथ समाविष्ट किए गए हैं। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से वाक्यगठन के आधार पर पूर्वी और पश्चिमी हिंदी की भाषाओ और बोलियो मे स्पष्ट अतर होने पर भी, साहित्यिक दृष्टि से, विशाल हिंदीक्षेत्र की भाषा, विभाषाओ और बोलियो के शब्दरूपो और बोध्यार्थों का आकलन और सकलन हिंदी कोशों मे अनिवार्य हो जाता है। रूपविकास और अर्थविकास की ऐतिहासिक और तुलनात्मक प्रतिपत्ति के लिये बोलियो के शब्दों का सकलन भी हिंदी और इस श्रेणी की अन्य भाषाओ के कोशों मे बहुत सहायक होता है। कहने की आवश्यकता नही कि बोलियो और लोकसाहित्य के

ग्रंथों के प्रकाशित वाङमय की अल्पता के कारण कोशकार की चेष्टा पूर्ण सफल नहीं हो पाती है। साहित्यिक भाषा के शुद्ध रूप और ज्ञान और अर्थबोधन में लोक-साहित्य-विज्ञान का सहयोग अत्यंत लाभकर होता है। लोकसाहित्य-विज्ञान का पूर्ण उत्कर्ष तभी हो पाता है जब उसकी अनुशीलना में समाजशास्त्र, संस्कृतिविज्ञान, पुरातत्वविज्ञान और भाषाविज्ञान के साहाय्य से विवेचन हो।

व्युत्पत्ति (निरुक्ति)

यह अन्यत्र कहा जा चुका है कि वर्तमान शब्दों अथवा कोश में संगृहीत शब्दरूपों का विकासक्रम और मूल शब्द से संबंध बताने में व्युत्पत्ति विज्ञान अत्यधिक सहायक होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसका घनिष्ठ संबंध भाषाविज्ञान से है। ध्वनिविज्ञान ध्वनि-विकास-विज्ञान, ध्वनि-तत्व-विज्ञान, पद-रचना-विज्ञान और अर्थविज्ञान आदि के द्वारा व्युत्पत्तिनिर्देश का वैज्ञानिक पक्ष पुष्ट होता है।

कोशकार शब्दों के जिन मानीकृत (मानक अथवा स्टैंडर्ड) रूपों का संग्रह करता है उसके निर्धारण का कार्य भाषाविज्ञान की सहायता से होता है। वैकल्पिक रूपों के परिचयन में भी भाषा-विज्ञान और तदंगभूत व्याकरणशास्त्र अत्यंत सहायक होते हैं। कोशरचना में वह प्रत्यक्ष सहायता देता है। एक ही शब्दरूप प्रयोगगत अर्थबोध की भिन्नता के कारण विशेषण और संज्ञा आदि के व्याकरणिक भेद का परिचय देता है। अतः कोश के प्रयोग की अर्थकारिता के प्रभाव से शब्दभेद का निर्धारण व्याकरण से उपजीवित होता है।

उच्चारणस्वरूप

मानीकृत कोश में संगृहीत शब्द के उच्चारणरूप की चर्चा हुई है। आधुनिक कोशों में शब्द के उच्चारणरूप की सही जानकारी कराना अत्यंत आवश्यक समझा जाता है। इसके अंतर्गत ध्वनियों के सही सही उच्चारण में भाषाविज्ञान के एक अंग ध्वनिग्रामविज्ञान—द्वारा बड़ी सहायता मिलती है। नूतन उच्चारणसंकेतों के माध्यम से उच्चरित शब्द का परिशुद्ध रूप निर्दिष्ट होता है। ध्वनिलेखन के पूर्णतः शुद्ध रूप का परिचय देने के लिये ध्वनिग्रामों का विभिन्न परिवेशों और पूर्वापर ध्वनियों के संदर्भ में उच्चरित रूप का निर्धारण आज अनेक वैज्ञानिक यंत्रों के माध्यम से किया जाता है। ध्वनियों के सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम वैशिष्ट्य का बोध कराने में इन यंत्रों का विशेष योगदान है। इनके द्वारा अक्षरों पर पड़नेवाले स्वराघात की बलात्मक न्यूनाधिकता और आरोहावरोहात्मक चढ़ाव उतार भी यंत्रों से पूर्ण रूप में परिज्ञात हो जाते हैं। तदनुसार निर्मित उच्चारण-वैशिष्ट्य-बोधक संकेतचिह्नों के द्वारा कोश के शब्द का विशुद्ध उच्चारणरूप अंकित होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भाषाविज्ञान की इस क्षेत्र में नई नई उपलब्धियों और आविष्कृतियों से कोशरचना का कार्य पुष्ट हो रहा है।

अर्थविकास

कोशों का कदाचित् सर्वाधिक महत्वशाली प्रयोजन है शब्दार्थ का ज्ञान कराना। भाषाविज्ञान का इस अंश में अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यद्यपि सिमांटिक्स अर्थात् अर्थविज्ञान को भाषाविज्ञान की अंगशाखा के रूप में महत्व अपेक्षाकृत अर्वाचीन है, और साथ ही अनेक आधुनिक विचारक इस शाखा को भाषाविज्ञान से पृथक् भी बताने लगे हैं, तथापि अभी अनेक लोगों द्वारा इसे भाषाविज्ञान का ही एक पक्ष माना जाता है। कोश के प्रौढ़ और सूक्ष्म अर्थबोधन में इस शाखा की उपजीव्यता बहुत अधिक है।

शब्दव्युत्पत्ति के निर्देशक्रम में भी केवल ध्वनिसाम्य अथवा ध्वनि-विकास-संबंधी नियमों की प्रयोगयोग्यता ही पर्याप्त नहीं है। अर्थपक्ष को छोड़कर केवल ध्वनि या रूपपक्ष का आधार लेकर चलने से कभी कभी व्युत्पत्तियाँ अत्यंत भ्रामक और अशुद्ध हो जाती हैं। अतः कोशनिर्माण में व्युत्पत्ति के द्वारा परंपरा या अर्थविज्ञान का विनियोग बड़ा ही महत्व रखता है।

इन कुछ मुख्य तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि भाषा-विज्ञान का आधुनिक कोशविज्ञान पर व्यापक प्रभाव है। कुछ बातों को छोड़कर प्रायः कोशविज्ञान के समस्त आधारिक तत्वों पर साक्षात् या परंपरया आधुनिक भाषाविज्ञान का व्यापक प्रभाव है। निघंटु के निरुक्तात्मक व्याख्यान से ही भारतवर्ष में कोशविद्या के क्षेत्र में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से व्याकरण, भाषाविज्ञान और व्युत्पत्ति शास्त्र की उपजीव्यता का संकेत मिलने लगा था। आज वह प्रभाव अधिक स्पष्टतर और व्यापकतर बन गया है।

निष्कर्ष

हिंदी शब्दसागर से पूर्व

भारत में पाश्चात्य कोशों और कोशकारों के संपर्क और प्रभाव से आधुनिक ढंग के कोशों का निर्माण प्रचलित और विकसित हुआ। हिंदी के आधुनिक कोशों की चर्चा की जा चुकी है। प्रथम संस्करण की भूमिका में भी इसका सिंहावलोकन किया गया है। इन्हें देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले के हिंदी कोशों में प्रथम था 'पादरी-आदम' का हिंदी कोश जो १८२९ में 'कलकत्ता' में छपा। इसके पूर्व के कोश पाश्चात्यों द्वारा पाश्चात्य लिपि और भाषा के माध्यम से बने। गिलक्राइस्ट, जान शेक्सपियर, टेलर, विलियम हंटर आदि पाश्चात्यों द्वारा निर्मित कोश सामान्यतः हिंदुस्तानी कोश कहे गए हैं। उनमें संगृहीत शब्दों को प्रायः फारसी, नागरी और रोमन लिपियों में रखा गया है। फैलन का कोश विशेष महत्व रखता है। क्योंकि इसमें हिंदुस्तानी साहित्य, लोकगीतों और बोलचाल की भाषा से उदाहरण उपस्थित किए गए हैं। परंतु प्लाट्स का कोश हिंदी और उर्दू के अंशों को पृथक् कर देता है। पादरी आदम का कोश ही शब्दसागर के प्रथम संस्करण की भूमिका के अनुसार हिंदी का ऐसा सर्वप्रथम शब्दकोश बताया गया है जो देवनागरी लिपि और हिंदी भाषा में प्रकाशित हुआ। इसके अलावा शब्द-सागर की भूमिका में ही बाद के हिंदी कोशों की एक सूची दी गई है। १८७३ में श्री राधेलाल हेडमास्टर का काशी से प्रकाशित हिंदी कोश पाया जाता है। इन सबकी विस्तृत चर्चा ऊपर हो चुकी है।

इन कोशों में यद्यपि पाश्चात्य-कोश-विद्या के सिद्धांतों का प्रौढ़ता

से पालन नहीं हुआ है तथापि उसी पद्धति पर चलने का प्रारभिक प्रयास शुरू हो गया था। अकारादिवरणानुक्रम इनकी सर्वप्रथम विशेषता है। परतु वह क्रम भी पुराने कोशो मे पूर्णत. व्यवस्थित नहीं था।

हिंदी शब्दसागर के पूर्व निर्मित हिंदी कोशो मे शब्दसग्रह का मुख्याधार सस्कृत शब्द ही थे। व्यवहार की भाषा मे प्रयुक्त शब्दो का भी सकलन हुआ, परतु वह अपेक्षाकृत कम ही रहा। इन कोशो मे व्याकरणपरक निर्देश और शब्दार्थबोध के लिये प्राय पर्याय दिए जाते थे। व्याख्या कही कही दे दी जाती थी, परतु बहुधा सक्षिप्त और अपूर्ण रहती थी। किसी किसी कोश मे व्युत्पत्ति देने की चेष्टा हुँ पर वह प्रामाणिक और भाषावैज्ञानिक नही है, और न उस युग में इसकी आशा ही की जा सकती थी। उदाहरण उद्धृत करने की ओर सर्वथा उपेक्षाभाव लक्षित होता है।

इन सब कारणो से हिंदी शब्दसागर से पूर्व की कोशरचना का स्वरूप और स्तर बाल्यावस्था का ही कहा जा सकता है। प्राय एक व्यक्ति के प्रयास मे निर्मित इन कोशो मे विशेष प्रौढता तत्कालीन कोशचेतना के हिंदी विद्वानो मे युगबोध के अनुरूप ही था। इनका प्रयोजन मुख्यत शब्दार्थज्ञान कराना था, और वह भी पर्याय द्वारा। इनमें सकलित अधिकाश शब्द सस्कृत, हिंदी आदि के पूर्ववर्ती कोश से ही ले लिए जाते थे और एक जिल्द मे व्यवहारोपयोगी कोश तैयार करना ही इन कोशकारो और कोशो का मुख्य प्रयोजन था।

हिंदी शब्दसागर के द्वारा हिंदी मे जिस प्रकार का महत्वपूर्ण और नूतन कोश विज्ञान की रचनादृष्टि से समन्वित भाषा के महाकोश बनाने की प्रेरणा मिली और तदनुकूल प्रयास किया गया, उसका सकेत प्रथम सस्करण की भूमिका मे प्रधान सपादक बाबू श्यामसुदरदास द्वारा किया गया है। यहाँ उनकी उद्धरणी अनावश्यक है। इस सबध मे इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि डा० श्यामसुदरदास के नेतृत्व मे और आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे मर्मज्ञ आलोचक और हिंदी साहित्यविद के सहायकत्व मे तथा बालकृष्ण भट्ट, श्री अमीर सिंह, श्री जगन्मोहन वर्मा, श्री (लाला) भगवानदीन और श्री रामचद्र वर्मा के सपादकत्व मे तथा अनेक विद्वानों, कार्यकर्ताओ के सहयोग से सपादित और निर्मित यह कोश एक महान् प्रयास। साधन और परिस्थितियो के विचार से उक्त महाकोश के सपादन मे सभा के कर्णधारो और कोश के कार्यकर्ताओ को महान् सफलता प्राप्त हुई। यह ठीक है कि पाश्चात्य भाषा के प्रौढ कोशो की तुलना मे इसमे अनेक कमियाँ रह गई हैं। फिर भी इसकी कुछ उपलब्धियाँ हैं जो स्तुत्य और अभिनदनीय हैं। यह भी कहा जा सकता है कि हिंदी शब्दसागर के अनतर बने हिंदी के सभी छोटे बडे कोशो का यही महाकोश उपजीव्य और आधार रहा। आक्सफोर्ड इगलिश डिक्शनरी के प्रथम सस्करण की रचना का कार्यारभ हो गया था। १८५७ ई० से १८७९ ई० तक उसकी तैयारी आदि होती रही, और १८८४, (१८ ११९८८४) ई० मे उसका प्रथम अग्रिम सपादित प्रारूपांश छपकर सामने आया। १८८५ ई० से लेकर १९२८ ई० तक सपादन और प्रकाशन के कार्य चलते रहे। लगभग ४४ वर्षों मे उसका प्रकाशन हुआ। उसके तैयार होने मे ७३ वर्ष लगे। पर उसकी बहुत सी आधारिक सामग्री उससे पूर्व ही डा० जानसन, रिचर्डसन और वेब्स्टर के कोशो में सकलित हो चुकी थी। उनकी सहायता मिली, यद्यपि उसे भी व्यवस्थित और सुनियोजित करने मे बहुत बडा श्रम करना पडा। हिंदी शब्दसागर का सपादन साधन और आधारिक सामग्री को देखते हुए अपने आपमे स्तुत्य और सफल प्रयास था। नव्यकोशविज्ञान की दृष्टि मे आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के स्तर से नीचे होने पर भी वह उपलब्धि बहुत बडी रही।

पूर्ववर्ती अधिकाश हिंदी कोशो की भाँति यह कोश एक व्यक्ति द्वारा निर्मित न होकर भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ अनेक सुधियो द्वारा तैयार किया गया है। शब्दसकलन के लिये केवल पुराने कोशो का ही आधार न लेकर ग्रथों और व्यवाहरयुक्त भाषा और बोलियो के प्राय समस्त उपलब्ध सामान्य और विशेष शब्दो के सग्रह का उसमे प्रयास हुआ है। प्राय प्रत्येक शब्द का मूल स्रोत देखने के प्रयास के साथ साथ विभिन्न भाषामूलक स्रोतो का निर्देश करने की चेष्टा हुई है। व्युत्पत्तियाँ यद्यपि बहुत सी ऐसी हैं जा सदिग्ध और भ्रामक अथवा कही कही अशुद्ध भी हैं तथापि उसके लिये यथासाधन और यथाशक्ति जो प्रयास है वह भी अपने आपमें बडा महत्व रखता है। व्युत्पत्तिनिर्देश का स्वरूप भी विकासक्रम के विभिन्न स्तरो मे उपस्थित नहीं किया जा सका है। फिर भी पूर्ववर्ती हिंदी कोशो की तुलना मे शब्दसागर की व्युत्पत्ति विषयक प्रगति पर्याप्त महत्व की है। हिंदी के कोशकार आज भी इस दिशा मे बहुत आगे नही बढ पाए हैं।

हिंदी शब्दसागर मे अनेकत्र उदाहरणो का सहयोग लिया गया है; परतु प्रथम शब्द के प्रयोग का ऐतिहासिक कालनिर्देश नवीन सस्करण मे भी सभव नही हो सका। इस सबध की असमर्थता का निर्देश किया जा चुका है। पर दूसरी ओर व्याकरणमूलक व्यवस्था और तदनुसार शब्द एव अर्थ के व्यवस्थित निर्देश का हिंदी शब्दसागर मे अत्यत प्रौढ विनियोजन दिखाई देता है। पर्यायनिर्देशन पर जहाँ एक ओर सस्कृत कोशो का व्यापक प्रभाव है और प्राय अधिकाधिक यौगिक पदो का उल्लेख भी सस्कृत व्याकरण पर अधिकत आधारित है वहाँ दूसरी ओर हिंदी की प्रकृति और प्रयोगपरपरा का आकलन और सकलन भी बडे यत्न और मनोयोग के साथ किया गया है। हिंदी के मुहावरो और लोकोक्तियो या प्रयोगो अथवा क्रियाप्रयोगो की प्रयोगपरपरा से आगत अर्थों की व्याख्या भी—इसमे पर्याप्त प्रौढ है।

अर्थनिर्धारण मे व्याख्यात्मक पद्धति अपनाई गई है। पर साथ ही मुख्य शब्दो के अतर्गत अधिकत पर्याय भी रख दिए गए हैं। इस कारण कभी कभी ऐसा भी लगता है कि यह कोश आधुनिक ढग का पर्यायवाची और नानार्थक कोश एक साथ बन गया है। व्याख्यात्मक पद्धति के अतर्गत व्यक्ति, विषय, वस्तु आदि का पौराणिक, ऐतिहासिक, शास्त्रीय और परपरागत अनेक प्रकार के परिचय एव विवरण यथास्थान दिए गए हैं। इस कारण यह कोश विश्वकोश, ज्ञानकोश चरितकोश और पारिभाषिक कोश के परिवेश का भी यत्र तत्र स्पर्श करता दिखाई देता है। कुछ कुछ यही दशा है आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के प्रथम संस्करण की।

शब्दों की प्रयोगसपृक्त अर्थच्छाया (शेडस आव मीनिंग) की भिन्नता को भी अनेक स्थलों पर स्पष्ट करने का प्रयास लक्षित होता है। फिर भी इस दिशा का कार्य श्रमी और श्रम अपेक्षित करता है। शब्दों के समस्त अर्थों की प्रयोगपुष्टि और प्रामाणिकता के निमित्त सर्वत्र उदाहरण नहीं हैं। जहाँ हैं वहाँ भी बहुधा ग्रंथों के नाममात्र ही निर्दिष्ट हैं। उनके प्रसगस्थल और सस्करण का उल्लेख नहीं है। अनेक स्थलों पर बोलचाल के स्वनिर्मित उदाहरण भी नियोजित किए गए हैं। सब मिलाकर इसमें शब्दसग्रह और अर्थविवृति दोनों की परिधि को यथासभव व्यापक और विस्तृत बनाया गया है। इस क्षेत्र में विभिन्न पेशे और वर्ग के जनजीवन से सगृहीत शब्दभडार की सयोजना से इस कोश का महत्व बहुत बढ गया है।

हिंदी शब्दसागर के अनतर

हिंदी शब्दसागर के प्रथम सस्करण का प्रकाशन जब हुआ तब हिंदी में अंग्रेजी आदि न जाननेवालों के सामने कोशविज्ञान के अपेक्षाकृत प्रौढ और विकसित रूप का प्रतिमान उद्भासित हुआ।

सक्षिप्त हिंदी शब्दसागर को हम हिंदी कोशों का प्रथम व्यावहारिक और प्रामाणिक सस्करण कह सकते हैं। इसमें मुख्यत सक्षेपीकरण ही किया गया है। बाद के सस्करणों में थोडा बहुत शोधन-वर्धन होता रहा। षष्ठ सस्करण में अवश्य ही व्युत्पत्ति के निर्देश में कुछ नई पद्धति अपनाई गई है। स्वल्प कुछ ही विशेष उपलब्धि है। अन्य अनेक कोश भी इस समय बने परतु ज्ञानमडल का बृहद् हिंदी शब्दकोश कुछ दृष्टि से नवीनता लेकर सामने आता है। इस कोश में सस्कृत कोशों से लेकर हजारों शब्द—मूल और यौगिक—बढ़ाए गए हैं। इनमें बहुधा ऐसे दिखाई पडते हैं जो हिंदी में अप्रयुक्त हैं। इस कोश की नवीनता है सस्कृत कोशों के अनुकरण पर पेटेवाली पद्धति का यथाशक्ति अपनाने की चेष्टा। इस पद्धति के अनुसार एक मूल शब्द के अतर्गत उससे बने अनेक व्युत्पन्न रूपों और यौगिक पदों का समावेश किया गया है। इसमें पूर्णता न होने पर भी इस सरणि का, जहाँ तक हमें ज्ञात है, कदाचित् व्यापक रूप से पहली बार हिंदी के कोश में प्रयोग हुआ है। अंग्रेजी, सस्कृत आदि के कोशों का यह पद्धति हिंदी में लाकर इस कोश ने हिंदी कोशों के निर्माण में नवीनता पैदा की। पर इसके अनुसरण में हिंदी कोशों के लिये अनेक कठिनाइयाँ आ जाती हैं। व्युत्पन्न और समाससयुक्त यौगिक पदों के मूल शब्द के अतर्गत समावेशन से आनुपूर्वी के अनुसार शब्दक्रम के स्थापन में पूर्ण व्यवस्था कठिन हो जाती है। व्याकरणिक ध्वनिविकारों और सांधमूलक ध्वनिपरिवर्तनों के कारण शब्द-क्रम योजना अस्तव्यस्त होने लगती है। उदाहरण के लिये वचन शब्द के अंतर्गत यदि 'वाचन' भी रखा जाय और इतिहास के अतर्गत 'ऐतिहासिक', 'व्याकरण के अतर्गत 'वैयाकरण' शब्द समाविष्ट हों, 'सर्व' के अतर्गत 'सार्वदेशिक', सार्वभौम आदि शब्द रख दिए जाय तो शब्द-क्रम-स्थापना की जो पूर्वापर अस्तव्यस्तता उत्पन्न होती है वह एक समस्या बन जाती है। इसका सर्वमान्य निश्चय और स्वीकरण किए बिना हिंदी कोशों में उक्त पद्धति का अपनाना कुछ कठिन हो जाता है। फिर भी ज्ञानमडल के कोश में यह प्रयास नवीन ही कहा जायगा। ऐसी या अन्य कठिनाइयों का प्रश्न भी उक्त कोश के सपादकों के सामने आया था, और उसके समाधान की एक पद्धति भी उन्होंने अपनाई है। पर जब तक वह स्वीकृत न हो, तब तक उसका ग्रहण सर्वत्र नहीं हो सकता। कोशों में गृहीत या नवसमाविष्ट शब्दों के अतिरिक्त अधिकत हिंदी शब्दसागर का ही व्यापक उपयोग किया गया है।

शब्दसागर के सहायक सपादकों में श्री रामचद्र वर्मा जी भी थे। सक्षिप्त हिंदी शब्दसागर के बाद अतिरिक्त प्रामाणिक हिंदी कोश के नाम से उन्होंने एक ग्रथ सपादित और प्रकाशित किया। सक्षिप्त-शब्दसागर के आरंभिक अनेक सस्करणों का उन्होंने सपादन भी किया था। हिंदी कोश से सबद्ध अनेक प्रश्न और सक्षिप्त शब्दसागर की अनेक कमियों की ओर उनका ध्यान जाता रहा। उनके निराकरण की चेष्टा में भी वे यथासाध्य प्रामाणिककोश के सपादन के पूर्व तक लगे रहे। प्रामाणिक हिंदी कोश के वस्तुत सभा के सक्षिप्त शब्दसागर का कुछ सुधरा हुआ रूप मात्र था। कोशकला की दृष्टि से उसमें नूतन विकास नहीं हो पाया। नालदाविशाल शब्द सागर नामक—दिल्ली से प्रकाशित एक हिंदी कोश—बडे विज्ञापन और बडे प्रचार के साथ सामने आया। हिंदी शब्दसागर को पूर्णत लेकर और मनमाने ढग से उसके अंशों, अशों को काट छाँटकर यत्रतत्र कुछ अनावश्यक नए शब्दों को जोडकर इसका ढाँचा खडा किया गया। पर शब्दसख्या की दिखावटी वृद्धि के अतिरिक्त इस एक जिल्द के 'विशाल' विशेषणवाले शब्दसागर में कोई भी ऐसी खास बात नहीं है, जो कोशरचना के स्तर को ऊपर उठा सके। ऐसी अव्यवस्थाएँ अवश्य हैं जिनके कारण हिंदी की कोश-रचना-विद्या उस स्तर से कुछ नीचे खिसक आई जिसे शब्दसागर द्वारा निर्धारित और अधिगत किया गया था।

हिंदी साहित्य समेलन द्वारा प्रकाशित और श्री रामचद्र वर्मा के सपादकत्व एव निर्देशन में निर्मित मानक हिंदी कोश—इस दिशा में एक महत्वपूर्ण दूसरा और नवीन विशाल ग्रथ है। इसके आरंभिक निवेदन में सपादक ने उक्त कोश की अनेक विशेषताओं का निर्देश किया है जिन्हें उन्होंने (१) शब्दों के रूप और अक्षरी, (२) निरुक्ति या व्युत्पत्ति, (३) शब्दों के अर्थ और विवेचन, (४) अर्थों का क्रम, (५) अर्थों का वर्गीकरण, (६) अर्थों के सूक्ष्म अतर, (७) मुहावरे, (८) उदाहरण, (९) अन्यान्य सशोधन और (१०) अंगरेजी पर्याय, इन शीर्षकों के अतर्गत निर्दिष्ट किया है। पर स्वय इन्होंने कहा है कि मानक हिंदी कोश भी सभी आधुनिक हिंदी कोशों की तरह हिंदी शब्दसागर की भित्ति पर ही आधारित है। फिर भी बहुत सी बातों और विवरणों में अनेक परिवर्तनों के कारण उक्त कृति में कोशरचना का ढाँचा बदल गया है। इसके कारण वे अपने सपादन पर गौरव का भी अनुभव करते हुए कहते हैं—'उसको बिलकुल नया, युक्तिसगत वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप दिया गया है'। उनका कथन है कि शब्दार्थविवेचन में केवल अन्य कोशों का आधार न लेकर उनके प्रयोगों के प्रचलित पक्ष का भी सहारा लिया गया है।

आधुनिक कोश नियोज्य उपादान और पद्धति

आधुनिक शब्दकोशों के बहुत से कार्य वैज्ञानिक पद्धति से होते हैं। भाषाविज्ञान के प्रयोगात्मक विज्ञान के रूप में इसमें श्रम करना पड़ता है। उत्तम कोश के लिये विषयगत वर्णन के पद्धतिसिद्धांत का सामान्यीकरण और निरंतर प्रतिमशधन अपेक्षित रहता है। भाषा-विज्ञान के वर्णनात्मक पक्ष की उपयोगिता यहाँ प्रत्यक्ष है। सकलित शब्द के विषय में निम्नलिखित बातों की सही जानकारी देना आवश्यक होता है। (१) वर्णानुपूर्वी, (२) उच्चारण रूप, (३) व्याकरणिक शब्दभेद की सूचना, (४) प्रकृति-प्रत्यय विवेक, (५) व्युत्पत्ति, (६) वर्तमान एक या अनेक अर्थ, (७) प्राचीन शब्दार्थ, (८) अपर-शब्द-सनिधि-मल शब्दयोग और उसका अर्थ, (९) अव्युत्पन्न शब्द, (१०) पर्याय और (११) अर्थों के भेद पर आधारित अर्थच्छायाएँ।

इनके अतिरिक्त शब्दार्थ की आवश्यक व्याख्या और सदर्भसंपृक्त सूचनाओं का विवरण भी दिया जाता है। यहाँ शब्दकोश द्वारा ज्ञानकोशात्मक और विश्वकोशात्मक पद्धति की विशेषता का स्पर्श हो जाता है। कभी पर्याय से, कभी लंबे कथनों द्वारा शब्दबोध्य अर्थ का भावधारा या संयुक्त भावना सूचित करना आवश्यक हो जाता है। इसके लिये अन्य शब्दों, विवरणों या चित्रों और रेखाकृतियों द्वारा ज्ञान कराया जाता है। इसी प्रकार प्रसगगर्भित अर्थ भी व्यक्त करना पड़ता है, कभी कभी अर्थप्रकाशक उद्धरणों का उपयोग भी आवश्यक हो जाता है।

हिंदी कोश में शब्दसकलन—कुछ समस्याएँ

निर्मेय कोश के अनुरूप शब्दसकलन भी बड़ी सावधानी से और विवेकपूर्वक करना पड़ता है। साथ ही अर्थसकलन भी करना पड़ता है। इसका तात्पर्य यह है कि भाषा में नवीन अर्थचित्रों और अभिव्यक्ति-दृष्टियों का आयात होता रहता है। कभी पुराने ही शब्दों से और कभी नए शब्दों या शब्दयोगों द्वारा इनका अभिव्यजन होता है। अत शब्दसकलन के साथ साथ भाषा में नवागत अर्थचित्रों, विचार-बिंबों और अर्थबोध के रूपों का सकलन, शब्दसकलन के साथ साथ भी उत्तम कोशों में सयोजित करना आवश्यक होता है। इसलिये सकलयिता और सपादक के लिये प्रबुद्धता, जागरूकता और भाषाप्रयोग के विस्तृत क्षेत्र की गहरी जानकारी अत्यत अपेक्षित होती है, उनके लिये तत्तद्विषयों का प्रौढ ज्ञान और ताटस्थ्यबोध भी आवश्यक है। कोशोपयोगी शब्द और अर्थ के सग्रह और त्याग की शक्ति और उस क्षेत्र में गहरी पैठ नितात उपयोगी होती है। तत्तद्विषय के मर्मज्ञ और कोशकार्य की बोधचेतना से समन्वित पुरुष ही अच्छे कोश के उत्तम शब्दसकलन में सहायक हो सकते हैं। वे ही इस क्षेत्र के सग्रह और त्याग का मर्म ठीक ठीक पहचान सकते हैं। जो नए एव विलक्षण—शब्द और अर्थ के प्रयोग भाषा में काफी चल पड़े हों, उनका सग्रह होना चाहिए। यदि वे मान्य हो गए हों तो उनका सग्रह अनिवार्य हो जाता है।

हिंदी कुछ विलक्षण भाषा है। यह राष्ट्रभाषा है और बड़े भारी भूभाग की व्यवहारभाषा भी है। किसी अचल की पूर्णरूपेण मातृभाषा न होते हुए भी लगभग २० करोड़ जनता के व्यवहार में इसका प्रयोग होता है। इसके अतर्गत अनेक आचलिक बोलियाँ हैं, विभाषाएँ हैं, मातृभाषाएँ हैं। ऐसी भाषा का जब व्यापक भूभाग में शिष्ट और साहित्यिक भाषा के रूप में व्यवहार होता है तब आचलिक और सीमावर्ती क्षेत्रों की बोलियों और भाषाओं के शब्दार्थों का सग्रह और त्याग दुष्कर समस्या बन जाती है। इसका समाधान कठिनतर हो जाता है। फिर भी कोशसपादकों के लिये अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर रास्ता निकालने की चेष्टा करना आवश्यक हो उठता है।

सख्यावृद्धि

शब्दसग्रह का ही दूसरा पहलू है शब्दसख्या की वृद्धि। इसमें कभी तो वैकल्पिक विकसित तद्भव या अपभ्रष्ट रूपों के कारण सख्या-वृद्धि होती है, और कभी भाषा में नवोद्भूत, नवागत, नवोद्भावित और नवायातित शब्दों के सहयोग से शब्दवृद्धि होती है। किसी भी जीवित भाषा में सामाजिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक, शैल्पिक तथा प्राविधिक आदि ज्ञान विज्ञान का विकास और विस्तार होने पर नित्य नए नए शब्द आते रहते हैं। विचार के नए कोण, नई शैली और बोध्यार्थ की अभिव्यक्ति की नूतन बोधचेतना के कारण कुछ प्रचलित या पुराने शब्दों से भी परपरागत अर्थ के अतिरिक्त कथ्य और वाच्य का बोध कराया जाता है। कभी नए शब्द, नए यौगिक-समस्त पद अथवा नवकाथित (न्यूकाएड) शब्दों के माध्यम से तद्भाषाभाषी समाज की अभिव्यजनीय विवक्षा की पूर्ति का प्रयास होता है।

नवीन शब्दों-अर्थों का प्रश्न

हिंदी जीवित भाषा है। राष्ट्रभाषा हो जाने के बाद देश और काल की सपूर्ण परिस्थितियों के अनुरूप उसकी बोधसीमा और वाच्यशक्ति के आयामों का विस्तार अपेक्षित भी है, अवश्यभावी भी। उद्योग, व्यवसाय, ज्ञान विज्ञान आदि के क्षेत्र में वतमान युग के समस्त आवश्यक अर्थरूपों और अर्थचित्रों की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिये—इसी कारण हिंदी प्रयत्नशील है। ज्ञान विज्ञान की सैकड़ो शाखाओं से पारिभाषिक, प्राविधिक और नव्य अर्थबोध के अभिधेय अथवा प्रतीकबोध्य, अर्थरूपों की अभिव्यजना का वह प्रयास कर रही है। अत हिंदी का कोशकार्य भविष्य में भी सर्वदैव तब तक निर्माण प्रक्रिया के क्रम में ही रहेगा जब तक वह जीवत भाषा बनी रहेगी। अत यथाशक्ति शब्द-सख्या-वृद्धि भी सर्वदैव अत्यत आवश्यक रहेगी।

पारिभाषिक, वैज्ञानिक, प्राविधिक एवं नानाशास्त्रीय शब्दकोशों के निर्माण में भारत सरकार की ओर से बड़े विशाल पैमाने पर कार्य हो रहा है। तत्तद्विषयों के विशेषज्ञों और हिंदीविज्ञों के सहयोग से अग्रेजी हिंदी के शब्दसग्रहात्मक कोश बन रहे हैं। 'पारिभाषिक शब्दसग्रह,' 'विज्ञान शब्दावली' (साइस ग्लासरी) और 'पदनाम-शब्दावली' आदि बन चुके हैं। डा० रघुवीर ने भी ऐसे अनेक कोश बनाए हैं।

शब्दसागर के अनतर बननेवाले निर्दिष्ट कोशों में प्राय सर्वत्र सख्यावृद्धि की चर्चा हुई है। परतु यह कार्य इसलिये अत्यत कठिन है कि पूर्वोक्त शब्दार्थ के सग्रह और त्याग का प्रश्न बड़ा ही वैदुष्य-

साद्ध, साधनसाद्धय और श्रमसाद्धय है। शब्दसागर के नवीन सस्करण मे सगृहीत नवीन शब्द अतीत के हिंदी साहित्य के स्रोत से ही अधिकाश लिए गए हैं। आधुनिक हिंदी वाङमय के अपेक्षाकृत नव्य ग्रथो से कम शब्द ही जोडे गए हैं। पारिभाषिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रकृति के नवप्रयुक्त शब्दो का इसलिये सग्रह नही किया जा सका है कि उसका सर्वसमत और प्रामाणिक रूप अभी निश्चित नही हो पाया है। वैज्ञानिक, प्राविधिक आदि सवधी हिंदी ग्रथो के विभिन्न लेखको द्वारा जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं या हो रहे हैं उनमे अत्यधिक अनेकरूपता है, सर्वमान्य एकरूपता का अभाव है। अग्रेजी शब्दो के अर्थानुवाद की भावना से लेखको द्वारा एक अर्थ के लिये अनेक शब्द चल रहे हैं। विभिन्न ज्ञान विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रो की पारिभाषिक और प्राविधिक शब्दावली भारत सरकार तैयार कर रही है। कुछ विषयो के शब्दो के रूप और अर्थ का निर्धारण होने के वाद कुछ शब्दावलियो का प्रकाशन भी किया जा चुका है।

यहाँ कथ्य इतना है कि जीवित भाषा के कोशो की शब्दसख्या मे वृद्धि और तदनुरूप अर्थविस्तार एक ऐसी क्रिया है जिसकी निरतर गतिशीलता नितात अपेक्षित है। पदार्थों के सग्रह और त्याग के मर्म को पहचान कर ही यह कार्य होना चाहिए। नवीन सस्करणो या नवीन परिशिष्टो द्वारा शब्दसख्या की वृद्धि सदा होती रहनी चाहिए। पेटेंवाली पद्धति के उपायो से यद्यपि अनावश्यक शब्द-सख्या वृद्धि से वचा जा सकता है तथापि हिंदी कोशो मे उसका प्रयोग तभी समीचीन होगा जव हिंदी के प्रौढ कोशकारो द्वारा कोई व्यवस्था सर्वमान्य हो जाय।

मानक रूप

शब्दो के ग्राह्य, मानक या परिनिष्ठित रूप के स्थिरीकरण की भी एक विशिष्ट समस्या है। वैकल्पिक अथवा तद्भव शब्दो के नाना रूप भी शब्दार्थनियोजन मे कठिनाई उपस्थित करते हैं। सज्ञा और क्रिया के नाना रूपो मे विशेष रूप का मानकत्व और मानकीकरण विवाद का विषय है। आचलिक बोलियो के प्रभाव से और काल, वाच्य, वचन, भाव, विधि आदि के कारण क्रियापदो के नाना रूप सामने आ जाते हैं। अत उनका ग्रहण सभव नहीं हो पाता। हिंदी मे सामान्य अथवा क्रियार्थक्रिया के नाकारात रूपो द्वारा क्रिया पदो की निर्मापक धातु का निर्देश किया जाता है। इन समस्याओं पर विचार करते हुए एक ओर तो सभा का कोशोपसमिति ने क्रियार्थक्रिया के रूपो को मूल मानकर उनका ग्रहण किया है; दूसरी ओर ऐतिहासिक, भौगोलिक, भाषाशास्त्रीय अथवा तद्भवता से प्रभावित सज्ञारूपों को अपनाया है। परतु व्याकरण के कारण सामान्य रूपावली को छोड देना पडा है। सज्ञाओ और विशेषणो के प्रसग मे स्त्रीलिंग के विशिष्ट रूपो का निर्देश तत्सम या तत्समाभास रूपो के कारण भी कभी कभी शब्दवृद्धि की समस्या सामने आती है। 'इतिहास', 'भूगोल' से व्युत्पन्न ऐतिहासिक, भूगोलिक शब्दो के बजाय कुछ लोग 'इतिहासिक,' भौगोलिक आदि शब्द प्रयोग करते हैं। यहाँ तत्सम रूप को ही परिनिष्ठित मानने का पक्ष प्रबल है। इसी तरह से विदेशी शब्दो के उच्चारणमूलक विभिन्न रूप प्रचलित हैं जैसे, 'इटली, इतली, इताली' अथवा 'योरप, यूरोप' आदि। हिंदी कोशकारो के लिये इनमे भी मानकीकरण करना कठिन हो जाता है।

इस प्रकार के अनेक प्रश्न कोशसपादन उपसमिति के समक्ष समय समय पर आते हैं। उपसमिति के सदस्यो ने विचार विनिमय के अनतर जो निश्चय किए हैं उसी पद्धति पर सपादन का कार्य चलता रहा। उसकी यथाशक्ति परिणति ही परिवर्धित सशोधित हो कर शब्दसागर के नवीन सस्करण के रूप मे प्रस्तुत हो रहा है।

१८।१२।६५
नागरी प्रचारिणीसभा, काशी।

करुणापति त्रिपाठी
[सयोजक, सपादक मडल]

प्रकाशिका

'हिंदी शब्दसागर' अपने प्रकाशन काल से ही कोश के क्षेत्र मे भारतीय भाषाओ के दिशानिर्देशक के रूप मे प्रतिष्ठित है। तीन दशको तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओ ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन १९२८ ई० मे मूर्त रूप दिया। तबसे निरतर यह ग्रथ इस क्षेत्र मे गभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज मे प्रकाशस्तभ के रूप मे मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्त ग्रथ के रूप मे इसका मूल्य लोगो को सहस्र मुद्राओ से भी अधिक देना पडा। ऐसी स्थिति मे अभाव की उपयोगिता द्वारा लाभ उठाने की दृष्टि मे अनेक कोशो का प्रकाशन हिंदी जगत् मे हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के बल जीवित थे। इसलिये निरतर इसकी पुन अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही। किंतु साधन के अभाव मे अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहते हुए भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मातक पीडा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बडे व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप मे डा० श्री संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एव हिंदी जगत् का ध्यान निम्नाकित शब्दो मे इस ओर आकृष्ट किया--'हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ गया है। हिंदी मे एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका बृहत् सस्करण निकालने की आवश्यकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारो का सहारा मिलता रहे।'

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा--'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोष सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण मे सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया सस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला सस्करण छपा, हिंदी मे बहुत बातो मे और हिंदी के अलावा ससार मे बहुत बातो मे बडी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वचित नही रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियो के लिये भी साधारणत पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयो का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया सस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों मे बीस-बीस हजार करके दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जायगा और आप इस काम मे अग्रसर होगे।'

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुन सपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामत्रालय ने अपने पत्र स० एफ। ४-३।५४ एच० दिनाक ११।५।५४ को एक लाख रुपया पाँच वर्षों मे प्रति वर्ष २०-२० हजार रुपए करके देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमडल का गठन किया गया जिसमे सर्वश्री डा० सपूर्णानंद, डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, आचार्य बदरीनाथ वर्मा, राहुल साकृत्यायन, अमरनाथ झा, शिवपूजन सहाय, मो० सत्यनारायण, रामचद्र वर्मा, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, मुनि जिनविजय, डा० तारापोरवाला, डा० सुब्रह्मण्य अय्यर, किशोरीदास वाजपेयी, बाबूराव विष्णु पराडकर, आचार्य नरेंद्रदेव, नददुलारे वाजपेयी, डा० सैयद हफीज, डा० रामअवध द्विवेदी तथा डा० सिद्धेश्वर वर्मा थे। साथ ही, इस सबध मे देश के विभिन्न क्षेत्रो के अधिकारी विद्वानो की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमडल के अनेक सदस्यो का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानो की राय के अनुसार इस कार्य का सयोजन करना चाहती थी, वह भी नही उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानो तथा परामर्शमडल के सदस्यो ने गभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको गभीरतापूर्वक मथकर निम्नाकित सिद्धात शब्दसागर के सपादन हेतु स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामत्रालय भी सहमत हुआ।

(१) इस कोश मे जहाँ आवश्यक हो, वहाँ परिभाषाओ और व्याख्याओ मे सगत सशोधन किए जायँ, जिससे यह वैज्ञानिक और वैयुत्पत्तिक कोश हो सके।

(२) वे शब्द, जो भाषा के अग बन चुके हैं, चाहे जहाँ से भी आए हो, मूलस्थान का बिना विचार किए रखे जायँ। पूर्वसस्करण मे

गृहीत शब्द निकाले न जायँ, प्रत्युत नए शब्द अथवा यूरोपीय और भारतीय भाषाओं और बोलियों के प्रयोग, जो प्रथम संस्करण के बाद प्रचलन में आए हों, समाविष्ट किए जायँ।

(३) विभिन्न व्यावसायिक ग्रंथों के जनसाधारण में प्रचलित विशिष्ट शब्दों को ग्रहण किया जाय और यथासंभव उनके उद्गम स्रोतों का निर्देश किया जाय।

(४) जहाँ कहीं आवश्यक और संभव हो, अर्थ को स्पष्ट करने के लिये विशेष विवरण दिए जायँ।

(५) हिंदी के उन पुराने शब्दों को भी ग्रहण किया जाय जो कभी प्रचलन में थे।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये विभिन्न पुस्तकालयों, कोशशालाओं एवं संदर्भग्रंथों का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया गया तथा अपने साधन एवं सामर्थ्य की सीमा को परखा गया और शब्दसागर के पुन: संपादन के लिये निम्नांकित तत्वों को आधार बनाकर कार्य आरंभ किया गया

शब्द मुख्य शब्द, उप शब्द, समस्त पद तीन वर्गों में विभक्त किया गया। मुख्य शब्द के अंतर्गत (क) सभी स्वतंत्र शब्द, मूल या व्युत्पन्न, (ख) वे सभी समस्त पद, जो अर्थगत या इतिहासगत वैशिष्टय के कारण पृथक् स्थान के अधिकारी हैं (जैसे, अन्नपूर्णा, अग्निवर्ण आदि)। उपशब्द के अंतर्गत (क) मुख्य शब्द के विविध और (आब्सोलीट) रूप, बिगड़े या बिगाड़े हुए शब्द, संदिग्ध शब्द या कुप्रयुक्त शब्द, और समस्त पद के अंतर्गत वे समस्त शब्द या पद जिनके अर्थों में कोई वैशिष्ट्य हो, और इनका स्थान मुख्य शब्द के अंतर्गत रहे, अंतर्भूत किए गए। मुख्य शब्द का अर्थ समाप्त होने पर समस्त पद देने की व्यवस्था की गई।

शब्दसंग्रह में निम्नांकित नियमों का पालन किया गया :

(क) व्यक्तिवाचक और स्थानवाचक संज्ञाओं में से वे ही दिए गए हैं जिनका अर्थसंबंधी ऐतिहासिक महत्व है।

(ख) क्रियाओं के विभिन्न रूप न देकर केवल धातु रूप दिए गए हैं।

(ग) ग्रंथों में व्यवहृत शब्दों का ही संग्रह किया गया है, सामान्यतया कोशों से शब्दसंग्रह बहुत कम किया गया है।

(घ) संज्ञा के विकारी रूप दिए गए हैं।

(ङ) रासो, विद्यापति आदि के ग्रंथों में अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ पाठदोष के कारण अर्थनिर्धारण में बाधा पहुँचती है। ऐसे स्थलों में, जहाँ संभव हुआ है, संदिग्ध पाठ के साथ प्रश्नचिह्न देकर नवीन या उचित पाठ का निर्देश कर दिया गया है और यथास्थान अर्थ दे दिया गया है।

(च) दादू, दरिया आदि के ग्रंथों में फारसी अरबी के शब्दों की बहुतायत है। इनका प्रयोग दो प्रकार से हुआ है—

(१) हिंदी शब्दों के साथ मिश्रित रूप में।
(२) पूरी पंक्ति या पूरे छंद में अविकल रूप में।

शब्दसागर में इनमें से प्रथम प्रकार के शब्द ही व्यावहारिक दृष्टि से संगृहीत किए गए हैं।

(छ) विदेशी भाषा के उन शब्दों का संकलन भी किया गया है जो हिंदी में पर्याप्त प्रचलित हो गए हैं। वर्तनी के संबंध में परिनिष्ठित या मुख्य रूप प्राय सर्वत्र शब्दसागर में प्रयुक्त किया गया है पर यथावश्यकता जहाँ एक से अधिक वर्तनी प्रचलित हैं, वहाँ अति आवश्यक होने पर उन्हें भी दे दिया गया है।

व्याकरणनिर्देश के प्रसंग में शब्दप्रकार या उसका उपभाग दिया गया है, जैसे, उप० (उपसर्ग), सर्व० (सर्वनाम)। शब्दों के अल्पप्रचलित या बहुप्रचलित विशिष्ट अर्थों में वैशिष्टयनिर्देशन के लिये भी व्यवस्था की गई है, जैसे संगीत शास्त्र के लिये (संगीत) और वनस्पतिशास्त्र के लिये (वन०)। प्राचीन शब्दरूपों, मुख्यतया अपभ्रंश में शब्द के पूर्वापर रूपक्रम का उल्लेख है तथा विकारी रूपों, बहुवचन आदि का निर्देश भी किया गया है।

रूपविज्ञान, जिसके अंतर्गत निरुक्ति या व्युत्पत्ति है, बड़े कोष्ठ [ ] में देने की व्यवस्था की गई है और जहाँ शब्द की व्युत्पत्ति निश्चित है वहाँ मूल रूप का निर्देश किया गया है। अन्य भाषाओं के रूपांतरित शब्दों के व्युत्पत्तिनिर्देश के संबंध में ध्वनिपरिवर्तन, वर्णलोप, विकार, विरुद्ध अर्थ या भ्रांतिमूलक योजना के आधार पर उसके मूल शब्द का उल्लेख किया गया है।

इसके साथ ही यह भी उल्लेख कर दिया गया है कि वह संस्कृत के किस शब्द का तत्सम या तद्भव रूप है। यदि वे शब्द फारसी, अरबी, अँगरेजी, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, चीनी आदि भाषाओं के हैं तो उनका भी तत्सम या तद्भव रूप निर्दिष्ट कर दिया गया है। ऐसे शब्दों के संबंध में जो रचे या निर्मित किए हुए कोशों से लिए गए हैं, जैसे, ज्योतिर्विज्ञान आदि कोश (नागरीप्रचारिणी सभा), आंग्ल हिंदी महाकोश (डा० रघुवीर), इस्तलाहाते पेशेवारां (डा० जफर रहमान) आदि का उल्लेख कर दिया गया है। देशज शब्दों के संबंध में उनके मूल और समस्त पदों का भी निर्देश है।

यह तो मुख्य शब्दों की बात हुई। उप शब्दों के संबंध में शब्द का विलुप्त या मुख्य रूप या उसके विविध रूप प्रस्तुत किए गए हैं। यदि उनके वर्तमान रूपों के कारण उनका प्राचीन रूप अज्ञात या अपरिचित है तो व्याकरणनिर्देश और व्युत्पत्ति देने के बाद 'दे०' लिखा गया है। प्रचलित मुख्य शब्द में ऐसे शब्दों का अर्थ देखना चाहिए। जहाँ उप शब्द मुख्य शब्द के अनियमित और विभिन्न रूप में ग्रहण किया गया है और यदि अर्थ में परिवर्तन नहीं है तो ऐसे उप शब्दों के लिये भी 'दे०' का ही प्रयोग किया गया है। लेखकों या कोशों के संदिग्ध और अशुद्ध, भ्रांतिमूलक शब्द जिनका क्वचित् प्रयोग ही हुआ हो, उनके अर्थ के लिये भी 'दे०' देकर मूल शब्द के साथ ही अर्थ देखने की व्यवस्था की गई है।

समस्त पदों के अंतर्गत सामान्य शब्दों के समस्त रूप यथासंभव गृहीत किए गए हैं। उनमें प्रत्येक शब्द की वर्तनी पृथक् दी गई है, चाहे वे रूप समासचिह्नों अथवा अर्थसंबंधों से संयुक्त हों। अति सामान्य समस्त पद, विशेष आवश्यक न होने पर, नहीं लिए गए हैं।

ऐसे समस्त पदों का वर्गीकरण निम्नांकित तीन रूपो मे किया जा सकता है

(क) वे समस्त पद जिनमे प्रत्येक शब्द का पूरा पूरा अर्थ निश्चित है।

(ख) वे जिनमे अर्थगत विशेषता सपृक्त है, पर सयुक्त शब्दो द्वारा जिनकी व्याख्या की जा सकती है।

(ग) वे समस्त पद, जो अपना प्रशम्न इतिहास होने के कारण विशेष अर्थ के द्योतक हो गए हैं और विशेष व्याख्या की अपेक्षा करते हैं। ये सभी समस्त पद मूल शब्द के अन्तर्गत अकारादि क्रम से शब्दसागर मे प्रस्तुत किए गए हैं।

मुहाविरो की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की गई है और उन्हें मल या प्रधान शब्द के रूप मे ग्रहण किया गया है।

व्युत्पत्तिनिर्देश के सबध मे सामान्यतया जिन सिद्धातो का परिपालन किया गया है, वे निम्नांकित है

(क) जो शब्द सस्कृति मे उपलब्ध हैं, उनकी व्युत्पत्ति सस्कृत तक ही रखी जाय। सस्कृतेतर शब्दो का मूल स्रोत निर्दिष्ट किया जाय।

(ख) हिंदी मे कहाँ से शब्द आया, इसका उल्लेख हो। यदि वह फारसी आदि से आया हो और फारसी ने सस्कृत आदि से ग्रहण किया हो तो दोनो का उल्लेख हुआ करे। उनकी सीधी व्युत्पत्ति के साथ यह लिखा जाय कि हिंदी मे यह शब्द इस अर्थ मे सबसे पहले कब से प्रयुक्त हो रहा है।

(ग) भिन्न स्रोत (मूलधातु) से आए हुए एकार्थवाचक ऐसे शब्दों की व्युत्पत्ति मे प्राय. सभी स्रोत दिए जायें।

(घ) एक शब्द के कई अर्थ हो तो उनकी विभिन्न व्युत्पत्तियो की खोज की जाय।

(ङ) व्युत्पत्ति स्पष्ट करने के लिये अपेक्षित उदाहरण सक्षेप मे दिए जायें।

(च) शब्दो की व्युत्पत्ति मुख्यत सस्कृत से दी जाय।

शब्दसागर का व्युत्पत्ति भी विचारणीय और परिवर्तनीय मानी गई है और निर्देश क पहले हिंदी या सस्कृत या अन्य का निर्देश किया गया है। उन शब्दो को, जिनकी व्युत्पत्ति अप्राप्य है और जो भिन्न उद्गम के हैं, भूखडों के सबधवशात् देशी निर्दिष्ट किया गया ह।

अप्रचलित और प्राचीन शब्दो के अर्थलेखन मे केवल निर्देश करके अर्थ आदि की व्यवस्था की गई है। अर्थों मे अनावश्यक विस्तार को रोका गया है और उसकी पुष्टि साहित्य के प्रयागो से की गई है। एसे तद्भव शब्दो का भी निर्देश किया गया है, जिनका अथ परिवर्तित हो गया है। सशोधन के सबध मे यथासाध्य उदाहरण दिया गया है। शब्दो के विविध, नवीन, अथ रखे गए है और विभिन्न ग्रथा स पूरे सकत के साथ उदाहरण दिए गए हैं।

जो अर्थ मूल मे अस्पष्ट हैं उन्हें अधिक स्पष्ट किया गया है तथा अथ की भाषा सरल रखी गई ह। शब्दाथ म व्याख्या क साथ अत्यत आवश्यक होने पर अंगरेजी शब्द भी देवनागरी लिपि म रखे गए हैं। उन शब्दों के उदाहरण यथाशक्ति दे दिए गए हैं जिनके प्रयोग में रूपगत अथवा अर्थगत विशेषता है। मुहावरो के उदाहरण भी, जहाँ आवश्यक हैं, दिए गए हैं। पुरानी हिंदी के ग्रथों, यथा रासो आदि से, शब्द और अर्थ के साथ उदाहरण भी दिए गए हैं। सभा के स्वीकृत नियमो के अनुसार मूल विदेशी शब्दो की वर्तनी भी दी गई है और व्युत्पत्ति मे शीघ्र उच्चारण सूचित करने के लिये अक्षरों के नीचे बिंदी आदि भी लगाई गई है। जिन ग्रथो से शब्दचयन किया गया है, उदाहरण भी उन्हीं से लिए गए हैं। शब्दसागर के अर्थों के उदाहरण सक्षिप्त किए गए हैं, परतु ध्यान रखा गया है कि ऐसा करने मे सदर्भ की पूर्णता खडित न होने पाए। प्रसिद्ध एव प्रचलित शब्दो के नए उदाहरण प्राय. नहीं रखे गए हैं, पर इस बात का ध्यान रखा गया है कि उदाहरण अर्थच्छाया के विशदीकरण के लिये ही हो।

समितियो और मडलो द्वारा स्वीकृत इन तत्वो के आधार पर शब्दसागर की रचना हुई। इस कार्य मे सभा को ११ वर्ष का समय लगा है तथा सैकडो व्यक्तियो ने सहयोग प्रदान किया है। इसकी अपनी एक कहानी है।

मूल सस्करण की प्रस्तावना भी इस नवीन सस्करण मे दे दी गई है जिससे मूल सस्करण का सक्षिप्त इतिहास है। इस नवीन सस्करण का सपादन सरकारी अनुदान पर आधारित था। सरकार के अपने अलग विधि विधान होते हैं और सभा का अपना विधि विधान भी है। इसलिये दोनो के ताल मेल के माध्यम से कार्य का आरभ और सचालन हुआ। यद्यपि इस कोश के सपादन कार्य को पाँच वर्ष मे ही पूरा करना था, तो भी यह कार्य लगभग ११ वर्षो मे पूरा हुआ। सभा को इस बात का खेद है कि वह निश्चित समय मे कार्य पूरा न कर सकी। किंतु उसे इस बात का सतोष है कि विलब से ही सही, यह महत्वपूर्ण काय सपन्न हुआ। इस कार्य की प्रगति का कुछ विस्तृत विवरण यहाँ उपस्थित करना अप्रासगिक न होगा।

१५ जून १९५४ को कोश कार्य आरभ हुआ और उसके कार्यालय का व्यवस्था की गई। यह कार्य १३ अप्रैल, १९५९ तक चलता रहा इस अवधि के प्रथम वर्ष मूल हिंदी शब्दसागर के ६००० शब्दो पर व्युत्पत्तिसशोधन तथा अपभ्रश, डिंगल, राजस्थानी, हिंदी आदि के नए पुराने ग्रथों स ७२,६०० शब्दो का सकलन किया गया।

दूसरे वर्ष प्रथम वर्ष के सकलित शब्दको अक्षरक्रम से सयोजित किया गया तथा ३३,३६८ नए सगृहीत शब्दो का अर्थलेखन किया गया। सगृहीत शब्दो मे ५,०६८ शब्द अनावश्यक होने के कारण निकाल भी दिए गए और १०,००० शब्दों पर व्युत्पत्तिशोधन का कार्य हुआ। मूल हिंदी शब्दसागर के ६,५११ शब्दो पर व्युत्पत्ति तथा अर्थसशोधन कार्य भी किया गया। इस वर्ष से विभागीय समस्याओ पर विचारार्थ साप्ताहिक बैठकों की व्यवस्था आरभ की गई।

तीसरे वर्ष, अर्थात् सवत् २०१३ विक्रमी मे, पुराने सगृहीत शब्दो पर अर्थलेखन काय चलता रहा। व्युत्पत्ति क क्षेत्र म १२,०३८ व्युत्पत्तियाँ पूरी की गइ। इस अवधि तक ५० करुणापति त्रिपाठी

[illegible] रहे, फिर अपभ्रंश [illegible] पर [illegible] की [illegible] हुआ। [illegible] [illegible] [illegible] रहे। [illegible] [illegible] पहुँचाई। [illegible] और [illegible] [illegible] किया गया। इस वर्ष प्राचीन साहित्य के [illegible] संकलन किया गया और उनका [illegible] हुआ। प्रथम [illegible] के संगृहीत शब्दों का [illegible] किया गया [illegible] [illegible] छोड़ दिए गए और उनकी संख्या ५५,२९७ रही।

तीसरे वर्ष अर्थात् संवत् २०१४ में ३,००० और नए उद्धरण संग्रह और अनुक्रमण किया गया। इस अवधि में २०,००० उद्धरणों की प्रतियाँ [illegible] और मूल शब्दसागर के लगभग २५,००० शब्दों पर टिप्पणियाँ प्रस्तुत की गई। शब्दसागर के संशोधन एवं संपादन का कार्य भी इस वर्ष आरंभ किया गया। इस वर्ष लगभग ४,००० शब्द तैयार हुए।

पाँचवें वर्ष मूल हिंदी शब्दसागर के ८,००० और शब्दों की व्युत्पत्तियाँ की गईं, और कोश कार्य को अंतिम रूप देने के लिये १३ श्रावण, २०१५ विक्रमी को भाषा और पद्धति संबंधी निम्नांकित निश्चय किया गया।

(१) रचना और व्याकरण की दृष्टि से पश्चिमी हिंदी की खड़ी बोली का क्षेत्र इस कोश के लिये क्षेत्र माना जाएगा। हिंदी की साहित्यिक परंपरा के अनुसार इसकी उपभाषाओं यथा ब्रज, अवधी, राजस्थानी (डिंगल छोड़कर), और मैथिली के हिंदी साहित्य में स्वीकृत ग्रंथों से शब्द लिए जायँ।

(२) प्राकृत, अपभ्रंश और डिंगल के शब्द इस कोश में ग्राह्य नहीं हैं।

(३) अर्थ प्रयोगों के आधार पर ही हों।

(४) जिन संस्करणों से शब्द लिए गए हैं भविष्य में उन्हीं से लिए जायँ। नए शब्द प्रामाणिक ग्रंथों से लिए जायँ। इनमें सभा के ग्रंथों को वरीयता दी जाय।

(५) शब्दों में क्रियाओं के धातु रूप दिए जायँ। (उनमें सर्वप्रथम खड़ी बोली की क्रिया का रूप रखा जायगा। उसके अनंतर ब्रज अवधी और [illegible] के रूप दिए जायँ। जिन रूपों के [illegible] हैं।)

(६) [illegible] आधार पर रखे जायँ।

(७) [illegible] और [illegible] शब्द अलग अलग रखे जायँ।

(८) [illegible] किया जाय।

(९) [illegible] जायँ।

[illegible] हो सका। [illegible] और [illegible] नहीं था।

[illegible] की पाँच वर्ष की अवधि तथा निश्चय इनकी समाप्ति के [illegible] किए गए इन निश्चयों के मूल में कार्य की शीघ्र समाप्ति की चिंता ही मानी जा सकती है। इस पद्धति पर कार्य किया गया और [illegible] किए हुए कार्यों में लगे श्रम का तात्कालिक लाभ की कामना से एक सीमा तक उत्सर्ग कर दिया गया। प्रचलित खड़ी बोली के शब्दों को उसमें विशेष गरिमा दी गई किंतु पूर्वनिश्चयों में इस गरिमा को अक्षुण्ण रखते हुए अतीत की भी संपदा का ध्यान मात्र रखा गया था जो किसी भी जीवित भाषा के कोश के लिये परम आवश्यक है। देर से ही सही, बाद में सभा ने इन नए निश्चयों को त्याग पूर्व निश्चयों के आधार पर यह कार्य किया है।

हिंदी शब्दसागर के लिये प्रथम २०,००० का अनुदान ५ अगस्त सन् १९५४ का, दूसरा २०,००० का अनुदान १५ नवंबर सन् १९५५ को, तीसरा अनुदान १८ फरवरी सन् १९५७ का और चौथा अनुदान २८ फरवरी सन् १९५८ का प्राप्त हुआ। इन्हीं वर्षों में सभा क्रमश १९ हजार ५ सौ ७३ रुपए, १९ हजार ३ सौ ९ रुपए ७।। आने, १५ हजार ६ सौ ५२ रुपए ।। आने तथा २७ हजार ५ सौ ४६ रुपए ८¾ आने व्यय कर चुकी थी, अर्थात् उसे कुल ८० हजार रुपए प्राप्त हुए थे जिसमें ९ सौ १८ रुपए ९७ पैसे मात्र शेष बचे थे। योजना के पाँचवें वर्ष में सरकार से कोई भी अनुदान प्राप्त नहीं हुआ अपितु सभा ने अपने पास से १९ हजार ६ सौ ८१ रुपए ३७ पैसे व्यय किए। संवत् २०१५ में भी इस कार्य पर २० हजार ६ सौ ८ रुपए १४ न० पैसे व्यय हुए। सरकार को २० हजार रुपए सभा को अनुदान स्वरूप दे देना चाहिए था किंतु वह न मिला, कारण चाहे जो भी रहा हो। अततोगत्वा कोश संपादनकार्य सं० २०१५ के अंत में १३ अप्रैल १९५९ को बंद कर दिया गया।

अवैतनिक कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त वैतनिक कार्यकर्ताओं ने हिंदी शब्दसागर में समुखांकित पद से अग्रांकित अवधि तक कार्य किया।

सर्वश्री १ डा०हेमचंद्र जोशी, निरीक्षक संपादक १-११-५४—१३-४-५९, ४ वर्ष ५।। माह, २. त्रिलोचन शास्त्री, सहायक संपादक १५-६-५४—१७-१-५६, १५-३-५७—१३-४-५९ (स्थानांतरण) ४ वर्ष १ माह, ३ उदयशंकर शास्त्री, सहायक संपादक १५-६-५४—२८-२-५७, २ वर्ष ८ माह, ४ विश्वनाथ त्रिपाठी, सहायक संपादक, १५-६-५४—१३-४-५९, ५ वर्ष, ५ रामबली पांडेय, लेखक, १६-६-५४—१५-५-५६ (स्थानांतरण), १ वर्ष ११ माह, ६. पूर्णगिरि गोस्वामी उपनिरीक्षक, १५-३-५८—१३-४-५९. १ वर्ष ९ माह; ७ स्व० चंद्रशेखर शुक्ल सहायक संपादक, ९-३-५६—१५-३-५८, १५-५-५६—१३-४-५९ (स्थानांतरण), १ वर्ष ३ माह, ८. कुबेरनाथ पांडेय, लेखक, १८-६-५५—१५-३-५८, १५-३-५६—१३-४-५९ (स्थानांतरण) १ वर्ष १० माह, ९. बलदेवप्रसाद दत्त, सहायक संपादक, १५-२-५५—१३-४-५९, १ वर्ष २ माह १०. बंधुराम यादव, नकलची, १७-६-५८—१३-४-५९, ? वर्ष; ११. श्यामनारायण त्रिपाठी, सहायक संपादक, [illegible] — [illegible], २ वर्ष; १२. [illegible] दुबे, सहायक संपादक [illegible]

२१-५-५७—१५-४-५८, १ वर्ष, १३ शालग्राम उपाध्याय सहायक सपादक, १५-१-५७—२-८ ५७, २१-५-५७—१५-४ ५८, १ वर्ष, १४ श्यामसुदर शुक्ल, सहायक, सपादक, ८-१ ५७—२१-५-५७ ४½ मास, १५ हरिमोहन श्रीवास्तव, सहायक सपादक, १५-१-५७—६-८-५७, २१-५-५७ १-१२-५७, ८ माह, १६ बद्रीप्रसाद मिश्र, सहायक सपादक, २८-२-५७—२१-५-५७ ३ माह, १७ लक्ष्मणस्वरूप त्रिपाठी, सहायक सपादक, २८-२-५७-२१-५-५७, ३ मास, १८ रामकुमार राय, सहायक सपादक, २८-२-५७—२१-२-५७, ३ मास, १९ तिलकधारी पाडेय सहायक सपादक, ११-३-५७—२१-५ ५७, २½ मास २० किशोरीदास वाजपेयी, सहायक सपादक, २४-२-५७—१५-४-५८, १ वर्ष २ मास, २१ दयाशकर द्विवेदी, सहायक सपादक, ६ ३-५७—२१-५-५७ २½ मास, २३. छन्नूराम गुप्त, टकक, ९-८-५७—१६-१०-५७, २½ मास, २४ नागेंद्रनाथ उपाध्याय, सहायक सपादक, १-८-५७—१५-४-५८, ८½ मास, २५. विष्णुचद्र शर्मा, सहायक सपादक, १-१०-५७—१५-४-५८, ६½ मास, २६ ब्रजेंद्रनाथ पाडेय, सहायक सपादक' १५-११-५७—१५-४-५८, ५ मास, २७ हरिहरसिंह, लेखक, १५-३-५८—१३-४-५९, १ वर्ष, १ मास, २८ जयशकर मिश्र, टकक, २-७-५४—१०-२-५५, ७½ मास।

ता० १३।४।१९५९ को विभाग समाप्त हो गया।

अपनी अपनी क्षमता और शक्ति के अनुसार इन सभी कार्यकर्ताओ ने कार्य किया, इसके लिये ये धन्यवाद के पात्र हैं।

कोश के कार्य का यह चरण यद्यपि स० २०१५ मे समाप्त हो गया, तो भी धीरे धीरे सभा इस कार्य को अग्रसारित कर रही थी और, कार्य की शृखला बनी रहे, इसलिये स्वय अपने पास से व्यय कर रही थी। बाकी बचे २० हजार के स्वीकृत अनुदान मे से अनेक प्रयत्न करने पर भी १९ जून, १९५९ को केवल १० हजार रुपए केंद्रीय सरकार से प्राप्त हुए। स० २०१६ मैं सभा वेतन पर १६२६ रुपया ४३ पैसा और व्यय कर चुकी थी तथा कोश के लिये संदर्भ ग्रथ क्रय करने पर १०१४ रुपया ५६ पैसा लगा चुकी थी। इस प्रकार सवत् २०१६ के अत तक १२३३० रुपया ३९ पैसा व्यय कर चुकी थी। इसी बीच श्री डा० रामधन शर्मा, विशेष अधिकारी शिक्षा मत्रालय द्वारा ३१ जनवरी सन् १९५९ से ४ फरवरी सन् १९५९ तक अब तक किए गए कोश कार्य की जाँच की गई तथा उनका महत्वपूर्ण विवरण प्राप्त हुआ। निश्चय ही इसमे वर्णित तथ्य विचारणीय थे, तथा अनेक सुदर सुझावों से पूर्ण भी। सभा ने इस पर गभीरतापूर्वक विचार किया और इस सकल्प पर दृढ रही कि उसे शब्दसागर का संशोधन और परिवर्धन करना है और इस रूप मे करना है कि भले ही वह ससार का सर्वोत्तम कोश न बन सके तो भी हिंदी के सर्वोत्तम कोश की उसकी मर्यादा सुरक्षित रहे और तब तक के कोश-रचना-शिल्प के आधार पर शेष कार्य को उसको मूल सिद्धातो के आधार पर अग्रसारित किया जाय। इसी प्रकार वह शब्दसागर की पुरानी मर्यादा का सरक्षण कर सकेगी।

सरकार ने सभा की इस चिता मे हाथ बटाया और सहानुभूतिपूर्वक सहायता के लिये वह पुन आगे बढ़ी। वह १४ फरवरी सन् १९६२ तक का समय इसमे बीत गया, उसने १०००० रुपए सभा को अनुदानस्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार १४ फरवरी सन् १९६२ तक सरकार ने अपना पूर्वस्वीकृत एक लाख रुपया का अनुदान सभा को दे दिया।

सवत् २०१८ के अत तक इतस्तत जो कार्य इस सबध मे सभा कर रही थी उसमे एक लाख के अतिरिक्त ६५८३ रुपया ७३ पैसा सभा और व्यय कर चुकी थी। तब तक सरकार इस कार्य की गुरुता को पहचान चुकी थी और उसे अधूरा छोड़ना उचित न समझ कर उसने ६५००० का नया अनुदान स्वीकार किया और ४ मार्च सन् १९६३ को उसने उसमे से ३२५०० रुपए सभा को एतदर्थ सहायता की। यहीं से सभा मे कार्य की पुन नई चेतना उत्पन्न हुई।

फिर से पुराने कार्य का पुनरावलोकन और पुनर्मूल्याकन आरभ किया गया और पुराने काम को, जिसमे से बहुत अस्तव्यस्त और जीर्ण सा हो गया था, सुव्यवस्थित और सुनियोजित करने मे लगभग दो वर्ष व्यतीत हो गए थे। सभा ने यह बड़ा मूल्यवान् समय केवल पुनर्मूल्याकन मे तथा योजनाबद्ध रूप से कार्य करने की योजना बनाने मे व्यय किया। फिर भी जिस उत्साह, निष्ठा और लगन से यह कार्य सवत् २०२१ से आरभ किया गया उसकी गति निश्चय ही सतोषप्रद रही है। निश्चित अवधि के भीतर अब सपादन का कार्य ३१ दिसबर, सन् ६५ तक समाप्त होने जा रहा है। नई कार्यविधि में शब्दसागर के आरभ के अश से ही सकलन, सशोधन, सपादन के साथ ही साथ निरीक्षण, व्युत्पत्तिनिर्देशन, अर्थचितन सशोधन तथा प्रेस कापी तैयार करने का कार्य वैतनिक अवैतनिक, दोनो प्रकार के कार्यकर्ता अधिकारी और कर्मचारी का भेद भूलकर एकरस हो हिंदी हितचितन का आदर्श मान प्राणपण से सचेष्ट होकर इस अवधि मे कार्य करते रहे। जिन वैतनिक कार्यकर्ताओ ने कार्य किया है या कर रहे हैं उनकी सूची, पद तथा कार्यावधि के साथ नीचे दी जा रही है।

१ श्रीत्रिलोचन शास्त्री, सहायक सपादक १-११-५९—३१-१२-६५, ६ वर्ष २ माह, २ श्रीविश्वनाथ त्रिपाठी, सहायक सपादक १-११-५९—१-१-६४. २-५-६०—३१-१२-६५ (स्थानातरण) २ वष ७ मास, ३ श्रीहरिहर सिंह शास्त्री, सहायक सपादक १४-२-६४—१५-४-६५, १ वर्ष १।। मास, ४ स्व० श्रीरघुनदनप्रसाद शुक्ल 'अटल', सहायक सपादक, १-२-६४—३०-९-६५, १ वर्ष ८ मास, ५ श्री लालधर त्रिपाठी प्रवासी, सहायक सपादक, २३-९-६४—३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास, ६ श्रीप्रसाद, सहायक सपादक, २३-९-६४—३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास, ७ श्रीराधाविनोद गोस्वामी, सहायक सपादक, १५-९-६४—३१-१२-६५ १ वर्ष ३।। मास, ८ श्रीशारदाशकर द्विवेदी, सहायक सपादक, ९-३-६५—३१-१२-६५, ९ मास, ९, श्रीराजाराम त्रिपाठी, सहायक सपादक, २७-७ ६५—१९-११-६५, ३।। मास १० श्रीरामवला पाडेय, सहायक सपादक, ७ ७-६४—३०-१-६५, ६ मास, ११ श्रीविजयवली मिश्र, लेखक, ४-२-६३—३१-१२-६५, २ वर्ष ११ मास, १२ श्रीरामेश्वरलाल लेखक, १५-६-६४—१२-८-६४, २ मास, १३ श्रीकेशरीनारायण त्रिपाठी, लेखक १०-१०-६४—

३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास, १४ श्रीजितेंद्रनाथ मिश्र, लेखक, १० १०-६४–३१-१२ ६५ १ वर्ष ३ मास, २५ श्रीराम मेहरोत्रा,लेखक ११-१०-६४–३०-९-६५, १वर्ष, १६ रामदयाल कश्यप, लेखक, ५-१-६५-३१-१२-६५,१ वर्ष, १७ लज्जाशकर लाल,लेखक १६-३-६५-३१ १२-६५-९।।मास, १८ श्रीमनोरजन ज्योतिषी, लेखक, २३-४-६५-२०-७-६५, ३ मास, १९ श्रीगुवलाल श्रीवास्तव, लेखक, १०-५-६५-३१-१२-६५, ७।। मास, २० श्रीवशिष्टनारायण त्रिपाठी, लेखक, १-६-६५-३०-६-६५, १ मास, २३ श्रीउदयशकर दूबे, लेखक, २०-७-६५-३१,१२-६५, ५।। मास, २४ श्रीकिशोरीरमण मिश्र, लेखक, १-६-६५-३१-१२-६५, ७ मास, २५ श्री अशर्फीराम मिश्र लेखक, १८-९-६५ ३१-१२ ६५,३ ।मास २६ श्रीश्यामाकात पाठक, लेखक, १८ ९-६५-३१-१२-६५, ३।। मास, २७ श्रीसदानद शास्त्री, लेखक, १८ ९ ६५-३१-१२-६५, ३।। मास, २८ श्रीबद्रीनारायण उपाध्याय, लेखक, ११-११-६५-३१-१२-६५, २ मास । चपरासी–स्व राम सुदर १-११-५९ से, रघुनाथ ८-८-६४-३१ १२ ६५, १।। वर्ष । वुद्धू राम (लगभग २ मास) । ३१-१२-१९६५ को विभागसमाप्ति ।

यद्यपि इन वैतनिक कार्यकर्ताओ की योग्यता और क्षमता के अनुसार उन्हें वृत्ति नही दी जा सकी है तो भी अपनी क्षमता भर उन्होंने अपने घर की तरह जिस भाँति दत्तचित्त होकर कार्य किया है उसके प्रति कृतज्ञता न प्रकाश करना कृतघ्नता होगी । हमे इस बात का खेद है कि हम अपनी साधनहीनतावश हिंदी की सेवा सभा के माध्यम से उनसे आगे ले सकने की स्थिति में नहीं हैं । तो भी सभा के प्रत्येक पदाधिकारी की मगलकामना उनके साथ है ।

सवत् २०१९ मे ३२,५००) के प्राप्त अनुदान मे से जो व्यय किया गया उसके उपरात भी २०,६४३)३३ और स० २०२० मे उसी मे से व्यय करने के उपरात १६,१२९) ८९ पैसे सरकारी अनुदान का बचा रहा। सवत् २०२१ मे हिंदी शब्दसागर पर सभा ने जो व्यय किया वह अनुदान से प्राप्त रुपये के अतिरिक्त ५,६३१)७७ था। १५ दिसबर सन् १९६५ तक सभा अपने पास से ३०,६७१)६१ व्यय कर चुकी थी और इसके अतिरिक्त ३१ दिसबर तक १,८२८, रुपया और व्यय होने का अनुमान है । इधर सरकार ने स्वीकृत अनुदान शेष ३२,५००)मे से १००००) भेजा है । इस प्रकार सरकार से स्वीकृत ६५,०००) के इस अनुदान से शब्दसागर का सपादन कार्य समाप्त हो जायगा । केवल 'स' और 'ह' अक्षरो की प्रतिलिपि मात्र शेष रह जायगी ।

इस अवसर पर सभा के भूतपूर्व प्रधान मत्री श्री डा० राजबली पांडेय और डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा को भी धन्यवाद देते हैं, क्योंकि उनका प्रयत्न भी स्मरणीय है । कोश कार्य का पर्यालोचन तथा निरीक्षण यथावश्यकता बराबर श्रीकृष्णदेवप्रसाद गौड, प० शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र', डा० भोलाशकर व्यास और मैं करता रहा हूँ, और पंडित करुणापति त्रिपाठी सयोजक के रूप मे [illegible] र गुरुतापूर्वक अपने इस उत्तरदायित्व का वहन । एक साथ बैठकर सभा के अतिथि-भवन के कक्ष मे कोश के वरिष्ठ कार्यकर्ताओ के साथ हम सबने एक एक शब्द पर चिंतन एव मनन तो किया ही है, अनेक उलझनों को यथाशक्ति सुलझाते भी रहे हैं । इस काय के लिये हम सबने सभा की सेवा मे अपने को अर्पित कर बल भर कार्य पूरा करने का यत्न किया है । इस प्रसग मे सपादकमडल मे सरकार के शिक्षा मत्रालय के प्रतिनिधि डा० रामधन शर्मा का मार्मिक सहयोग एव सुझाव बहुत अधिक सहायक हुआ है । इस अवसर पर सभा के भूतपूर्व सभापति स्वर्गीय आचार्य नरेंद्रदेव, डा० अमरनाथ झा एव प० गोविंद वल्लभ पत की स्मृति भी जाग्रत हो उठती है । जिन्होंने शब्दसागर के नवीन सस्करण के प्रति उनकी चिंता देखी है वे ही अनुमान लगा सकते हैं कि वे आज इस कार्य से कितने तुष्ट होते । सभा के सरक्षक तथा राष्ट्रपति स्वर्गीय डा० राजेंद्रप्रसाद इस कार्य के लिये कितने व्यग्र थे, यह ऊपर दिए गए उसके भाषण के अश से सहज ही जाना जा सकता है । उनका सभा पर ऋण है और वह ऋण हिंदी के हित मे किए गए ऐसे कार्यो द्वारा ही चुकाया जा सकता है ।

सभा के सरक्षक डा० सपूर्णानद जी उसके प्रत्येक सुदर कार्य के मूल मे आत्मा की भाँति हैं, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का साहस नही है । हमारे वर्तमान सभापति प० कमलापति त्रिपाठी का स्नेह और उद्बोधन ही सभा की आज की गति के मूल मे है । यद्यपि देश और समाज के कार्य मे वे व्यस्त रहते है, तो भी सभा की चिंता उन्हें बनी रहती है, और राजनीतिक हानि उठाकर भी सभा के प्रत्येक कार्य मे रुचि लेते है। इस कोश के कार्य मे उन्होने जो रुचि ली और जो योग दिया है उसकी प्रेरणा के परिणामस्वरूप ही इस कार्य का सपन्न होना सभव हुआ है।

भारत के प्रधान मत्री माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री का सभा से सबध बडा पुराना है । वे सदैव अपनी व्यस्तता मे भी सभा को उन्नत करने मे योगदान करते रहते हैं । इस सभा के वे सरक्षक हैं, और उन्होंने शब्दसागर के प्रथम खड का उद्घटन करने की स्वीकृति देकर हमे जो प्रोत्साहन दिया है, सभा निश्चय ही उसके प्रति हृदय से कृतज्ञ है और उसके कायकर्त्ता और अधिक उत्साह से हिंदी की सेवा करने के लिये कृतसकल्प ।

भारत सरकार के भूतपूर्व शिक्षामत्री श्री के० एल० श्रीमाली और वर्तमान उपशिक्षामत्री श्री भक्तदर्शन जी ने समय समय पर इस कार्य मे जो रुचि दिखाई है, और सभा की जैसी सहायता की है उसके प्रति सभा और उसके कायकर्ता हृदय से कृतज्ञ हैं ।

हो सकता है इस कार्य के सपन्न होने मे कभी कभी कुछ अप्रिय भी हुआ हो। इस अप्रियता का कारण स्वप्न मे भी किसी को कष्ट पहुँचाना नही रहा है, अपितु कार्य की त्वरित गति और निश्चित अवधि तक समाप्ति की भावना ही हमारे प्रत्येक काय के मूल मे थी । फिर भी यदि इस सबध मे कही कुछ अप्रिय हुआ तो उसका उत्तरदायित्व सहज

ही मेरे मित्रों पर, विशेषकर मुझ पर, ही है। मैं उसके लिये उन सबसे हृदय से क्षमाप्रार्थी हूँ जिनको जरा भी मुझसे ठेस पहुँची हो।

इस कोश के नवीन संस्करण के लिये जिन संदर्भ ग्रंथो से सहायता ली गई है उनके लेखको, संपादको तथा प्रकाशको के प्रति सभा कृतज्ञ है। इन ग्रंथो मे से कुछ विशेष सहायक ग्रंथो के नाम यहाँ दिए जा रहे हैं :

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी (१३ खंड)। शार्टर ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी (२ खंड)। कन्साइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी। थार्नडाइक इग्लिश डिक्शनरी। चेंबर्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी डिक्शनरी। संस्कृत वोर्टरबुख, ग्राटो वोथलिंग रुडोल्फ राथ। संस्कृत इग्लिश डिक्शनरी सर एम० मोनियर विलियम्स, प्रैक्टिकल संस्कृत इग्लिश डिक्शनरी वी० एम० आप्टे। आप्टे कृत प्रैक्टिकल संस्कृत इग्लिश डिक्शनरी (३ खंड), संपादक—पी० के० गोडे तथा सी० जी० कर्वे। मैकडानेल प्रैक्टिकल संस्कृत इग्लिश डिक्शनरी। पर्शियन इग्लिश डिक्शनरी स्टाइनगास। ऐंग्लो हिंदुस्तानी डिक्शनरी फैलन। हिंदुस्तानी प्रोवर्ब्स फैलन। नेपाली डिक्शनरी टर्नर। शब्दार्थ कल्पतरु मामिडि वेंकटार्य। अल्फरायद उल् दुर्रियत उल-तुलाब (अरबी अंग्रेजी डिक्शनरी), फरहंग आसफिया (४ खंड)। नूर उल् लुगात (४ खंड)। करीम उल् लुगात। तखमीस उल् लुगात। लुगात किशोरी। अमरकोश। हलायुधकोश। मेदिनी कोश। शब्दकल्पद्रुम (५ खंड)। वाचस्पत्यम् (८ खंड)। पूर्णचंद्र ओडिया महाकोश (७ खंड)। वाङ्गला भाषार अभिधान ज्ञानेंद्रमोहन दास (२ भाग)। चलंतिका राजशेखर वसु। विनीत जोडणी कोश (गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद), मराठी व्युत्पत्ति कोश कृष्णाजी पाडुजी कुलकर्णी। इस्तेलहाते पेशेवारॉ (आठ खंड)। राजस्थानी सबद कोश . सीताराम लालस। अवधी कोश रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'। बिहार पीजेंटस लाइफ, कृषिकोश बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्। कृषि जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली (२ खंड), अंबाप्रसाद सुमन। ब्रजभाषा सूरकोश (पाँच खंड)। तुलसी शब्दसागर · हरगोविंद तिवारी। मानस शब्दसागर बद्रीदास अग्रवाल। संस्कृत इग्लिश डिक्शनरी . डॉ० विलसन। अंग्रेजी संस्कृत डिक्शनरी सर एम० मोनियर विलियम्स। संस्कृत थियोडोर बेन्फे। पाली इग्लिश डिक्शनरी सोसायटी। अर्धमागधी कोश मुनि श्री रत्नचंद्र। जॉन शेक्सपियर हिंदुस्तानी इग्लिश डिक्शनरी ऐंड इग्लिश हिंदुस्तानी डिक्शनरी। प्रसाद काव्यकोश श्री सुधाकर पाडेय। बृहत् अंग्रेजी हिंदी कोश ज्ञानमंडल। उर्दू हिंदी शब्दकोश मद्दाह। पाइय सद्द महण्णवो हरगोविंद सेठ। अभिधान राजेंद्र (५ खंड)। पाली हाइब्रिड डिक्शनरी। रूपनिघंटु, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी। शालिग्राम निघंटुभूषणम्। अश्ववैद्यक। अश्वशास्त्र। रंगीनामा। डिंगल कोश। इन्साक्लोपीडिया ऑव् रिलीजन ऐंड एथिक्स—हेस्टिंग्ज। विश्वकोश (हिंदी तथा बँगला) संपादक—नगेंद्रनाथ वसु। तेलुगू डिक्शनरी गैलेटी। पोर्चुगीज ऐंड इग्लिश डिक्शनरी (२ खंड)। इन्फ्लुएंस ऑव पोर्चुगीज वोकेबुलरी इन एशियाटिक लाग्वेज वी० भट्टाचार्य। पर्शियन वोकेबुलरी लेवर्टन। वर्ल्ड गजेटियर ऐंड जियोग्रैफिकल डिक्शनरी। डिक्शनरी ऑव् वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स. टी० शिप्ले। लटाइनिशेज एटिमोलोगाशेज वोर्टेरबुख रिलीफ उट इन्सक्रिप्ट (२ खंड)। मुडारी इग्लिश डिक्शनरी। ऐटिमालागिशेल वोर्टेरबुख डेस आल्टिडिशेन . मानफ्रेड मायर हॉफर (६ खंड)। आल्टिडिशे ग्रामाटीक (५ खंड), वाकरनागेल। गुरु-शब्दरत्नाकर (४ खंड)। हिंदी राष्ट्रभाषा कोश। वैद्यक शब्दसिंधु। आयुर्वेदीय विश्वकोश (३ खंड)। वनौषधि चंद्रोदय (८ खंड)। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (३४-३५)।

नागरीप्रचारिणी सभा के प्रकाशन तथा कोश विभाग मे पूर्ण सहयोग के कारण ही यह कोश इतने शीघ्र प्रकाशित हो सका है और विश्वास है कि शेष खंड प्रत्येक छह छह महीने पर प्रकाशित होते रहेंगे। सभा के सहायकमंत्री श्री शंभुनाथ वाजपेयी, श्री विश्वनाथ त्रिपाठी तथा श्री वल्लभाशरण पांडेय ने प्रूफ संशोधन के कार्य मे जो सहयोग दिया है मैं तदर्थ आभारी हूँ। हमने इस बात का प्रयत्न किया है कि प्रूफ संबंधी तथा अन्य त्रुटियाँ इसमे स्थान न पा सकें किंतु कही कही संभव है कुछ प्रूफ संबंधी भूलें आ गई हो जिसका हमे आतरिक क्लेश है। हम इसे अगले संस्करण मे दूर करने का प्रयत्न करेंगे और ध्यान रखेंगे कि इस प्रकार की त्रुटियाँ भविष्य मे न हो। फिर भी नागरीमुद्रण के व्यवस्थापक श्री विष्णुचंद्र शर्मा तथा उनके सहयोगियो ने जिस तत्परता के साथ काम किया है वह सराहनीय है।

इस ग्रंथ के संपादन का ही नही, उसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत बोझ भारत सरकार ने वहन किया है। इसलिये ही यह ग्रंथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है। उनके लिये शिक्षा मत्रालय के अधिकारियो का प्रशसनीय सहयोग हमे प्राप्त है और उसके लिये हम उनके आभारी भी हैं।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदी जगत् के संमुख प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमे अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपयोग और प्रयोग किया गया है किंतु हिंदी की ओर हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, परंतु साधन की कमी तथा हिंदी के ग्रंथो के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव मे वैसा कर सकना संभव न था। फिर भी यह कहने मे हमे संकोच नही कि अद्यतन प्रकाशित कोशो मे शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओ के कोशो मे अतुलनीय है, और इस क्षेत्र मे काम करनेवाले इससे आधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हिंदी जगत् को यह भी नम्रतापूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थाई विभाग का संकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और संशोधन के लिये अद्यतन कोशशिल्प विधि से यत्नशील रहेगा।

मूल शब्दसागर से इसकी शब्दसंख्या मे दुगुनी से अधिक की वृद्धि हुई है और नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल, संत एवं सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र वाणिज्य आदि और अभिनंदन एवं पुरस्कृत ग्रंथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित

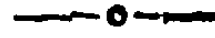
उर्दू शैली आदि से संकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खंड में प्राविधिक एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

शब्दचयन सामान्यतः सन् १९५६ तक प्रकाशित ग्रंथों से तथा सन् १९६० तक प्रकाशित महत्वपूर्ण ग्रंथों से किया गया है, उनके प्रयोग के उदाहरण भी प्रस्तुत किए गए है। शब्दसागर में दी गई व्युत्पत्तियों या अर्थों तथा दृष्टांतों में व्यापक रूप से संशोधन भी किया गया है, तथा उसमें एतत्संबंधी लगे प्रश्नचिह्नों का यथासाध्य समाधानपूर्वक प्रामाणिक परिष्कार भी किया गया है।

अंत में शब्दसागर के मूल संपादक तथा सभा के संस्थापक डा० श्यामसुंदरदास को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह संकल्प हम पुनः दुहराते है कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उनका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा, और इस क्षेत्र में वह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया संस्करण और भी अधिक प्रभोज्ज्वल होता रहेगा।

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
भौर ३ पौष, सं० २०२२ वि०।

सुधाकर पांडेय
प्रकाशन मंत्री



संकेतिका

[उद्धरणों मे प्रयुक्त सदर्भ ग्रथो के इस विवरण मे क्रमश ग्रथ का सकेताक्षर, ग्रथनाम, लेखक या सपादक का नाम और प्रकाशन के विवरणदिए गए हैं]

अँधेरे०	अँधेरे की भूख डा० रागेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण
अकवरी०	अकवरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, स० २००७
अग्नि०	अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० स०
अजात०	अजातशत्रु, जयशकर प्रसाद, १६ वाँ स०
अणिमा	अणिमा, प० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', युग-मदिर, उन्नाव
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० स०
अनामिका	अनामिका, प० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० स०
अनुराग०	अनुरागसागर, सपा० स्वामी युगलानद विहारी, वेंकटेश्वर प्रेस, बबई, प्र० स०
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)
अनेकार्थ०	अनेकार्थमजरी और नाममाला, सपा० बलभद्रप्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०
अपरा	अपरा, प० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० स०, १९५३ ई०
अभिशप्त	अभिशप्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०
अतीत०	अतीत स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध'
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स० २०१४
अर्चना	अर्चना, प० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', कला-
अष्टाग (शब्द०)	अष्टांग योगसहिता
आँधी	आँधी, जयशकर प्रसाद, भारती भडार इलाहाबाद, पचम सं०
आकाश०	आकाशदीप, जयशकर प्रसाद, भारती भडार इलाहाबाद, प० स०
आचार्य०	आचार्य रामचद्र शुक्ल, चद्रशेखर शुक्ल, वाणी वितान, वाराणसी, प्र० स०
आदि०	आदिभारत, अर्जुन चौबे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० स० १९५३
आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
आनदघन (शब्द०)	कवि आनदघन
आराधना	आराधना, सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार ससद, इलाहाबाद, प्र० स०
आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० स०, १९८४ वि०
आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
आर्यो०	आर्यों का आदिदेश, सपूर्णानद, भारतीभडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९९७ वि०, प्र० सं०
इद्र०	इद्रजाल जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
इद्रा०	इंद्रावती, सपा० श्यामसुदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
इशा०	इशा उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा० ब्रजरत्नदास, कमलमणि ग्रथमाला, बुलानाला, काशी, प्र० स०
इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, प० रामचद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवाँ स० ।
इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय', प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली,
इरा०	इरावती जयशकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, चतुर्थ स०
उत्तर०	उत्तर रामचरित नाटक अनु० प० सत्यनारायण

कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्
कहो०	कही मे कोयला, पाडेय बेचन शर्मा उग्र, गऊघाट, मिर्जापुर, प्र० स०
कबीर ग्रं०	कबीर ग्रथावली, सपा० श्यामसुदरदास, ना० प्र० सभा, काशी
कबीर० बानी०	कबीर साहब की बानी
कबीर	कबीर बीजक, सपा० हसदास, कबीर ग्रथ प्रकाशन समिति, बाराबकी, २००७ वि०
कबीर म०	कबीर मसूर (२ भाग), वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिग प्रेस बबई, सन् १६०३
कबीर रे०	कबीर साहब की ज्ञानगूदडी व रेख्ते, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद
कबीर श०	कबीर साहब की शब्दावली (४ भाग)
कबीर (शब्द०)	कबीरदास
कबीर सा०	कबीरसागर (४ भा०), सपा० स्वा० श्री युगलानद विहारी, वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बबई
कबीर सा० स०	कबीर साखी संग्रह, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १६१२ ई०
करुणा०	करुणालय, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
कर्ण०	सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
कविता कौ०	कविता कौमुदी [१–४ भा०], सपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मदिर, प्रयाग, तृ० स०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, सपा० उमाशकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग
कानन०	काननकुसुम, जयशकरप्रसाद, भारती भडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पचम स०
कामायनी	कामायनी, जयशकरप्रसाद, नवम स०
काया०	कायाकल्प, प्रेमचद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ६वाँ स०
काले०	काले कारनामे, 'निराला', कल्याण साहित्य मदिर, प्रयाग २००७ वि०
काव्य० निबंध	काव्य और कला तथा अन्य निबध, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, लीडरप्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ स०
काव्य० य० प्र०	काव्य, यथार्थ और प्रगति, डा० रागेय राघव, विनोद पुस्तक मदिर, आगरा, प्र० स०, २०१२ वि०
काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, पं० श्रीधरपाठक, इडियन प्रेस, इलाहाबाद
किन्नर०	किन्नर देश मे, राहुल साकृत्यायन, इडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०
कीर्ति०	कीर्तिलता, सं० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० स०
कुकुर०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमदिर, उन्नाव
कुणाल	कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी
कृषि०	कृषिशास्त्र
केशव (शब्द०)	केशवदास
केशव ग्र०	केशव ग्रथावली, सपा० ‑० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
केशव० अमी०	केशवदास की अमीघूट
कौटिल्य अ०	कौटिल्य का अर्थशास्त्र
क्वासि	क्वासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बबई, १६५३ ई०
खानखाना (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
खालिक०	खालिकबारी, सपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
खिलौना	खिलौना (मासिक)
खुदाराम	खुदाराम और चद हसीनो के खतूत, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, गऊघाट, मिर्जापुर, आठवाँ सं०
गग ग्र०	गग कवित्त [ग्रथावली], सपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
गबन	गबन, प्रेमचद, हस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६ वाँ सं०
गि०दा०गि०दास(शब्द०)	गिरिधरदास (बा० गोपालचद्र)
गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुडलियावाले)
गीतिका	गीतिका, 'निराला', भारतीभडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुजन	गुजन, सुमित्रानदन पत, भारतीभडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र
गुलाल०	गुलाल बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १६१० ई०
गोदान	गोदान, प्रेमचद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचद्र)
गोरख०	गोरखबानी, डा० संपा० पीताबरदत्त बडथ्वाल, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
ग्राम्या	ग्राम्या, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
घनानद	घनानद, सपा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद, वाणीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी
घाघ०	घाघ और भड्डरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद।

चंद०	चंद हसीनों के खतूत, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवाँ सं०
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल, पटना प्र० सं०
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका
चरण० बानी	चरणदास की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
चाँदनी०	चाँदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग, प्र० सं०
चिंता	चिंता, अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, १९४० ई०
चिंतामणि	चिंतामणि [२ भाग], रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग।
चिंतामणि (शब्द०)	कवि चिंतामणि त्रिपाठी
चित्रा०	चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, प्र० सं०।
चुभते०	चुभते चौपदे, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चोखे०	चोखे चौपदे, ,, ,, ,,
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला', किताबमहल, इलाहाबाद, प्र० सं०
छंद०	छंद प्रभाकर, भानुकवि, भारतजीवन प्रेस काशी, प्र० सं०
छत्र०	छत्रप्रकाश, सपा० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई०
छिताई	छिताई वार्ता, सपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
छीत०	छीत स्वामी, सपा० व्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, काँकरोली, प्र० सं० २०१२ वि०
जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, वेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद, १९०६, प्र० सं०
जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली
जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९९५ वि०
जायसी ग्र०	जायसी ग्रंथावली, सपा० रामचंद्र शुक्ल,
जिप्सी	जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
ज्ञानदान	ज्ञानदान यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४२ ई०
ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहब, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
झरना	झरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
झाँसी०	झाँसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, द्वि० सं०
टैगोर०	टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, १९५६ ई० प्र० सं०
ठंडा०	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
ठाकुर०	ठाकुर शतक, सपा० काशीप्रसाद, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १९६१
ठेठ	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्या सिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
ढोला० दू०	ढोला मारू रा दूहा, सपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०
तुलसी ग्र०	तुलसी ग्रंथावली, सपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी तृतीय सं०
तुलसी श०	तुलसी साहब की शब्दावली (हाथरस वाले), वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, १९११
तेग० (शब्द०)	तेगबहादुर
तेज०	तेजबिंदूपनिषद्
तोष (शब्द०)	कवि तोष
त्याग०	त्यागपत्र, जैनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
द० सागर	दरिया सागर, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
दक्खिनी०	दक्खिनी का गद्य और पद्य, सपा० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० सं०
दरिया० बानी	दरिया साहब की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०

दादू०	(श्री) दादूदयाल की बानी, सपा० श्री सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी
दादूदयाल ग्रं०	दादूदयाल ग्रथावली
दादू० (शब्द०)	दादूदयाल
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह दिनकर', उदयाचल, पटना प्र० सं०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०
दीन० ग्र०	दीनदयाल गिरि ग्रथावली, सपा० श्याम सुदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०
दी० ज०	दीप जलेगा, उपेंद्रनाथ अश्क, नीलाभ, प्रकाशन गृह प्रयाग
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह
देव० ग्र०	देव ग्रथावली, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
देव (शब्द०)	देवकवि (मैनपुरीवाले)
देशी०	देशी नाममाला
दैनिकी	सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९९९ वि०
दो सौ बावन०	दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता [दो भाग], शुद्धाद्वैत एकेडमी, काँकरौली प्रथम सं०
द्वद्व०	द्वद्वगीत, रामधारी सिंह दिनकर, पुस्तक भडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०
द्वि० अभि० ग्र०	द्विवेदी अभिनदन ग्रथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी
द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी
धरनी० बा०	धरनी साहब की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
धरम० शब्दा०	धरमदास की शब्दावली
धूप०	धूप और धूआँ, रामधारीसिंह 'दिनकर', अजता प्रेस लि०, पटना ४
नद० ग्र० / नददास ग्र०	नददास ग्रथावली, सपा० ब्रजरत्न दास, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
नई०	नई पौध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १८५३
नट०	नटनागर विनोद, सपा० कृष्णबिहारी मिश्र, इडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय', प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९५१ ई०
नया०	नया साहित्य नए प्रश्न, नददुलारे वाजपेयी, विद्यामदिर, वाराणसी, २०११

नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशकर प्रसाद लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम सं०
नागरी (शब्द०)	नागरीदास
नील०	नीलकुसुम, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
नेपाल०	नेपाल का इतिहास, प० बलदेवप्रसाद, वेंकटेश्वर प्रेस, बबई, १९६१ वि०
पचवटी	पचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पजनेस०	पजनेस प्रकाश, सपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन यत्रालय, काशी, प्र० सं०
पदमावत	पदमावत, सपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पदु०, पदुमा०	पदुमावती, सपा० सूर्यकात शास्त्री, पजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०
पद्माकर ग्र०	पद्माकर ग्रथावली, सपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर भट्ट
प० रा० / प० रासो	परमाल रासो, सं० श्यामसुदरदास, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
परमानद०	परमानद सागर
परिमल	परिमल, 'निराला', गगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
पर्दे०	पर्दे की रानी, इलाचद्र जोशी, भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
पलटू०	पलटू साहब की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पत, इडियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० सं०
पाणिनि०	पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसी दास, प्र० सं०, २०१२
पारिजात०	परिजातहरण
पार्वती	पार्वती, रामानद तिवारी शास्त्री, भारतीनदन, मगल भवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धात, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
पिंजरे०	पिंजरे की उड़ान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
पूर्व० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००९ वि०
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खड], सपा० मोहनलाल विष्णुलाल पड्या, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०

पृ० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासो [४ खड], सपा० कविराज मोहनसिह, साहित्य सस्थान, राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०
पोद्दार अभि० ग्र०	पोद्दार अभिनदन ग्रथ, सपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय व्रज साहित्यमडल, मथुरा, सं० २०१० वि०
प्रताप ग्र०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रथावली, सपा० विजयशकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र
प्रबध०	प्रबध पद्म, 'निराला', गगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला', सरस्वती भडार, लखनऊ, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसगली, सपा० सत सपूरण सिह, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परपरा और इतिहास, डा० रागेय राघव, आत्माराम एड सस, दिल्ली प्र० सं०, १९५३ ई०
प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिह उपाध्याय हरिऔध, हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, षष्ठ सं०
प्रिया (शब्द०)	प्रियादास
प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशकर प्रसाद भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
प्रेम० और गोर्की	प्रेमचद और गोर्की, सपा० शचीरानी गुर्टू, राजकमल प्रकाशन लि०, बबई, १९५५ ई०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९९६ वि०
प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर
प्रेमाजलि	प्रेमाजलि, ठा० गोपालशरण सिह, इडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग], पं० रतननाथ 'सरशार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०
बगाल	बगाल का काल, हरिवश राय बच्चन, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०
बाँकी० ग्र० बाँकीदास ग्र०	बाँकीदास ग्रथावली [चार भाग], सपा० रामनारायण दूगड, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
बदन०	बदनवार, देवेंद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४६ ई०
बद०	बदमाश दर्पण, तेगअली, भारत जीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०
बाँगेदरा	बाँगेदरा
बिल्ले०	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमदिर, उन्नाव, प्र० सं०
बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, सपा० जगन्नाथदास रत्नाकर, गगा ग्रथागार, लखनऊ, प्र० सं०
बिहारी (शब्द०)	कवि बिहारी
बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्रथप्रकाशन समिति, बाराबकी, २००७ वि०
बी० रासो	बीसलदेव रासो, सपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
बीसल० रास०	बीसलदेव रास, सपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
बी० श० महा०	बीसवी शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपाल सिह, ओरिएटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
बृहत्सहिता (शब्द०)	बृहत्सहिता
बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
बेला	बेला, 'निराला', हिंदुस्तानी पब्लिकेशस, इलाहाबाद, प्र० सं०
बेलि०	बेलि क्रिसन रुक्मणी, सपा० ठाकुर रामसिह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३१ ई०
ब्रज०	ब्रजविलास, सपा० श्री कृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बबई, तृ० सं०
ब्रज० ग्र०	ब्रजनिधि ग्रथावली, सपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, सं० वियोगीहरि, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, तृ० सं०
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बबई, १९५३ वि०
भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्री भक्ति सुधाबिंदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० सं०, १९८३ वि०
भक्ति०	भक्ति सागरादि, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बबई, सवत् १९६० वि०
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बबई, सवत् १९६०
भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय लखनऊ, १९४६ ई०
भा० इ० रू०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचद्र विद्यालकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३३ ई०
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशकर हीराचंद ओझा, इतिहास कार्यालय, राज मेवाड़, प्र० सं०, १९५१ वि०

भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, नवम् स० ।
भारत० नि० भा० भू०,	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचंद्र विद्यालकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० सं०, १९८० वि०
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान
भारतेंदु ग्र०	भारतेंदु ग्रथावली [४ भाग], सपा० व्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम ऐंड सस, दिल्ली, १९५३ ई०
भापा शि०	भापा शिक्षण, सीताराम चतुर्वेदी
भिखारी ग्र०	भिखारीदास ग्रंथावली [दो भाग], सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भीखा श०	भीखा शब्दावली
भूषण ग्र०	भूषण ग्रथावली, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०
भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी
भोज० भा० सा०	भोजपुरी भापा और साहित्य, डा० उदयनारायण तिवारी, विहार राष्ट्रभापा परिषद्, पटना, प्र० सं०
मति० ग्र०	मतिराम ग्रथावली, कृष्णविहारी मिश्र, गगा पुस्तक माला, लखनऊ, द्वि० सं०
मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी
मधु०	मधुकलश, हरिवश राय बच्चन, सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९
मधुज्वाल	मधुज्वाल, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९ ई०
मधु मा०	मधुमालती वार्ता, सपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
मधुशाला	मधुशाला, हरिवश राय बच्चन, सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० सं०
मन विरक्त०	मन विरक्त करन गुटका सार (चरणदास) चरणदास
मनु०	मनुस्मृति
मलूक० (शब्द०)	मलूकदास
महा०	महाराणा का महत्व, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
महाभारत (शब्द०)	महाभारत
माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बबई चतुर्थ सं०
माधवानल०	माधवानल कामकदला, बोधा कवि, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं०, १८९८ ई०
मान०	मानसरोवर, प्रेमचद, हस प्रकाशन, इलाहाबाद
मानव०	मानवसमाज, राहुल साकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०
मानस	रामचरितमानस, संपा० शंभुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० स०, १९९९ वि०
मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवश राय बच्चन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी प्र० स०, १९५० ई०
मुशी अभि० ग्र०	मुशी अभिनदन ग्र० सपा० डा० विश्वनाथप्रसाद, हिंदी तथा भापा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
मृग०	मृगनयनी, वृदावन लाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी
मैला०	मैला आँचल, फणीश्वर नाथ रेणु, समता प्रकाशन, पटना – ४, प्र० स०
मोहन०	मोहनविनोद, स० कृष्णविहारी मिश्र, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्र० स०
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र०स०
यामा	यामा, महादेवीवर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० स०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० स०
युगपथ०	युगपथ ,, ,, ,, ,,
युगांत	युगात, सुमित्रानदन पत, इंद्र प्रिंटिंग प्रेस, अल्मोड़ा, प्र० स०
रगभूमि	रगभूमि, प्रेमचद, गगा ग्रथागार, लखनऊ, प्र० स०, १९८१ वि०
रघु० रू०	रघुनाथ रूपक गीतांरो, म० महतावचद्र खारैड ना० प्र० सभा०, काशी, प्र० स०
रघु० दा० (शब्द०)	रघुनाथदास
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ
रघुराज (शब्द०)	महाराज रघुराजसिंह, रीवाँनरेश
रजत०	रजत शिखर, सुमित्रानदनपत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०
रज्जब०	रज्जब जी की बानी, ज्ञान सागर प्रेस, बबई १९७५ वि०
रतन०	रतनहजारा, सपा० श्री जगन्नाथ प्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० स०, १८९२ ई०
रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० स०,१९५३ ई०
रत्न० (शब्द०)	रत्नसार
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा काशी, चतुर्थ और द्वि० स०
रस०	रसमीमासा, स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि सं०

रस क०	रसकलश, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०
रसखान०	रसखान और घनानंद, स० बा० अमीरसिंह ना० प्र० सभा, द्वि० स०
रसखान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम
रस र०	रसरतन, सपा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा वाराणसी, प्र० स०
रसनिधि (शब्द०)	राजा पृथ्वीसिंह
रहीम०	रहीम रत्नावली
रहीम (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गौरीशकर हीराचद ओझा, अजमेर, १९९७ वि०, प्र० स०
रा० रू०	राजरूपक, सपा० प० रामकर्ण, ना० प्र० सभा, प्र० स०
रा० वि०	राजविलास, स० मोतीलाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवाँ स०
राम च०	सक्षिप्त रामचद्रिका, स० लाला भगवानदीन ना० प्र० सभा, वाराणसी षष्ठ स०
राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, सपा० मालचद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहथल) बडारामद्वारा, बीकानेर।
राम० धर्म० स०	रामस्नेह धर्म सग्रह, स० मालचद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहस्थल) बडारामद्वारा, बीकानेर।
रामरसिका०	रामरसिकावली [भक्तमाल]
रामानद०	रामानद की हिंदी रचनाएँ, सपा० पीतावरदत्त बडथ्वाल, ना० प्र० सभा, प्र० स०
रामाश्व०	रामाश्वमेघ, ग्रथकार मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३९ वि०
रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तकभडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० स०
रैं० बानी	रैदास बानी, बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद
लक्ष्मणसिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू (शब्द०)	लल्लू लाल
लहर	लहर, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, पचम स०
लाल (शब्द०)	लालकवि (छत्रप्रकाशवाले)
वर्णरत्नाकर	वर्णरत्नाकर
विद्यापति	विद्यापति, स० खगेंद्रनाथ मित्र, यूनाइटेड प्रेस लि०, पटना
विनय०	विनयपत्रिका, टी० पं० रामेश्वर भट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० स०

विशाख	विशाख, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नृ० सं०
विश्राम (शब्द०)	विश्राम सागर
वीणा	वीणा, सुमित्रानदन पत, इडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० स०
वेनिस (शब्द)	वेनिस का बाँका
वैशाली० या वै० न०	वैशाली की नगरवधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली प्र० स०
वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी
व्यास (शब्द०)	अबिकादत्त व्यास
शं० दि० (शब्द०)	शंकरदिग्विजय
शकर०	शकरसर्वस्व, सपा० हरिशकर शर्मा, गयाप्रसाद ऐंड सस, आगरा, प्र० स०
शकु०	शकुतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी
शकुतला	शकुतला नाटक, अनु० राजालक्ष्मण सिंह, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग, चतु० स०
शार्ङ्गधर स०	शार्ङ्गधर सहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुबई वैभव मुद्रणालय, स० १९७१
शिखर०	शिखर वशोत्पत्ति, स० पुरोहित हरिनारायण, ना० प्र० सभा, प्र० स०, स० १९८५
शुक्ल० अभि० ग्रथ	शुक्ल अभिनदन ग्रथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य समेलन,
शृं० सत० (शब्द०)	शृगार सतसई
शेर०	शेर ओ सुखन
शैली	शैली, करुणापति त्रिपाठी
श्यामा०	श्यामास्वप्न, स० डा० श्रीकृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
श्रीनिवास ग्र०	श्री निवास ग्रथावली, सपा० डा० श्रीकृष्णलाल, ना० प्र० सभा, प्र० स०
सतति०	चद्रकाता सतति, देवकी नदन खत्री, वाराणसी
सत तुरसी०	सत तुरसीदास की शब्दावली, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
स० दरिया, सत दरिया]	सत कवि दरिया स० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, विहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्र० सं०
सत र०	सत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासघ, हरिद्वार प्र० स०
सतवाणी० सत० सार०]	सतवाणी-सार-सग्रह [२ भाग] वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
संन्यासी	सन्यासी, इलाचद्र जोशी, भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०
सपूर्णा० अभि० ग्रं०	सपूर्णानंद अभिनदन ग्रथ, संपा० आचार्य नरेंद्र देव, ना० प्र० सभा, वाराणसी

स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० स०
सबल (शब्द०)	सबलसिंह चौहान।
सभा० वि० (शब्द०)	सभाविलास
स० शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्र० सं०
स० सप्तक	सतसई सप्तक, सं० श्यामसुंदरदास, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
सहजो०	सहजो बाई की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०८ वि०
साकेत	साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
सागरिका	सागरिका, डा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस प्रयाग, प्र० सं०,
साम०	सामधेनी, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल, पटना, द्वि० सं०
सा० दर्पण	साहित्यदर्पण, संपा० शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय औषधालय, लखनऊ, प्र० स०
सा० लहरी,	साहित्यलहरी, सं० रामलोचन शरण बिहारी, पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०
सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग
सुंदर० ग्र०	सुंदर दास ग्रंथावली [दो भाग], सं० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता, प्र० सं०
सुखदा	सुखदा, जैनेंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
सुधाकर (शब्द)	सुधाकर द्विवेदी
सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), संपा० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०, १९०२
सुनीता	सुनीता, जैनेंद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० सं०।
सूत०	सूत की माला, पंत और बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर०	सूर सागर, [दो भाग], ना० प्र० सभा, द्वितीय स०
सूर० (शब्द०)	सूरदास
सूर (राधा०)	सूरसागर, संपा० राधाकृष्ण दास, वेंकटेश्वर प्रेस, प्रथम सं०
सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि सं०
सैर कु०	सैर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरशार' नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १९३४ ई०
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वर्ण०	स्वर्ण किरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस प्रयाग, प्र० सं०
हंस०	हंसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिद, संपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
हनुमान (शब्द)	हनुमन्नाटक
हम्मीर०	हम्मीरहठ, संपा० जगन्नाथदास रत्नाकर इंडियन प्रेस लि० प्रयाग
ह० रासो / हम्मीर रा०	हम्मीर रासो, संपा० डा० श्यामसुंदर दास ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिश्चंद्र
हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १९४९ ई०
हर्ष०	हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेव शरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्र० सं०, १९५३ ई०
हालाहल	हालाहल, हरिवंश राय बच्चन, भारती भंडार प्रयाग, १९४६ ई०
हिंदी आ०	हिंदी आलोचना,
हिंदी आ० प्र०	हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्र सहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
हिं० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३९ ई०
हिं० प्रेमा० / हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यसंग्रह, संपा० डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी मानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
हिं० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरण कुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग
हिं० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं० १९४८
हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तान एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
हिम कि०	हिम किरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० स०
हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, प्र० स०

हिम्मत०	हिम्मतबहादुर विरुदावली, लाला भगवानदीन, ना० प्र० काशी, सभा, द्वि० सं०
हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० सं०
हुमायू	हुमायूँनामा, अनु० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरो का विवरण]

अ०	अंग्रेजी
अ०	अरबी
अनु०	अनुकरण शब्द
अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक
अप०	अपभ्रंश
अर्द्ध मा०	अर्द्धमागधी
अल्पा०	अल्पार्थक
अव०	अवधी
अव्य०	अव्यय
इव०	इबरानी
उ०	उदाहरण
उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ
उडि०	उड़िया
उप०	उपसर्ग
उभ०	उभयलिंग
एकव०	एक वचन
कहावत	कहावत
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र
[को०], (को०)	अन्य कोश
कोक०	कोकणी
क्रि०	क्रिया
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक
क्व०	क्वचित्
गीत०	लोकगीत
गुज०	गुजराती
ची०	चीनी भाषा
छं०	छद
जापा०	जापानी
जावा०	जावा द्वीप की भाषा
जी०, जीवन०	जीवन चरित
ज्या०	ज्यामिति
ज्यो०	ज्योतिष
डिं०	डिंगल
त०	तमिल
तर्क०	तर्कशास्त्र
तु०	तुर्की
दू०	दूहा या दूहला
दे०	देखिए
देश०	देशज
देशी०	देशी
धर्म०	धर्मशास्त्र
नाम०	नामधातु
ना० धा०	नामधातुज क्रिया
ने०	नेपाली
न्याय	न्याय या तर्कशास्त्र
प०	पंजाबी
परि०	परिशिष्ट
पा०	पाली
पुं०	पुंलिंग
पुर्त०	पुर्तगाली
पु० हिं०	पुरानी हिंदी
पू० हिं०	पूर्वी हिंदी
पृ०	पृष्ठ
प्रत्य०	प्रत्यय
प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना
प्रा०	प्राकृत
प्रे०	प्रेरणार्थक रूप
फ०	फरासीसी भाषा
फकीर०	फकीरों की बोली
फा०	फारसी
बंग०	बंगाली भाषा
बरमी०	बरमी भाषा
बहुव०	बहुवचन
बुं० खं०	बुंदेलखंड की बोली
बोल०	बोलचाल
भाव०	भाववाचक संज्ञा
भू०	भूमिका
भू० कृ०	भूत कृदंत
मरा०	मराठी
मल०	मलयाली या मलयालम भाषा
मला०	मलायम भाषा
मि०	मिलाइए
मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
मुहा०	मुहावरा
यू०	यूनानी
यौ०	यौगिक
राज०	
लश०	

ला०	लाक्षणिक
लैं०	लैटिन
व० कृ०	वर्तमान कृदत
वि०	विशेषण
वि० द्वि० मू०	विषमद्विरुक्तिमूलक
वैं०	वैदिक
व्या०	व्याकरण
शब्द	शब्दसागर
सं०	सस्कृत
सयो०	सयोजक अव्यय
सयो क्रि०	सयोजक क्रिया
स०	सकर्मक
सधु०	सधुक्कड़ी भाषा
सर्व०	सर्वनाम
स्पे०	स्पेनी भाषा
स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री०	स्त्रीलिंग
हिं०	हिंदी
Ⓟ	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
>	व्युत्पन्न
†	प्रातीय प्रयोग
‡	ग्राम्य प्रयोग
√	धातुचिह्न
*	सभाव्य व्युत्पत्ति

हिंदी शब्दसागर

अ

अ– संस्कृत और हिंदी वर्णमाला का पहला अक्षर। इसका उच्चारण कंठ से होता है इससे यह कंठ्य वर्ण कहलाता है। व्यंजनों का उच्चारण इस अक्षर की सहायता के बिना अलग नहीं हो सकता इसी से वर्णमाला में क, ख, ग आदि वर्ण अकार-संयुक्त लिखे और बोले जाते हैं।

विशेष––अक्षरों में यह सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। उपनिषदों में इसकी बड़ी महिमा लिखी है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है––'अक्षराणामकारोऽस्मि'। वास्तव में कंठ खुलते ही बच्चों के मुख से यह अक्षर निकलता है। इसी से प्रायः सब वर्णमालाओं में इसे पहला स्थान दिया गया है। वैयाकरणों ने मात्राभेद से इसे तीन प्रकार का माना है, ह्रस्व जैसे––अ, दीर्घ जैसे––आ, प्लुत जैसे––अ३। इन तीनों में से प्रत्येक के दो दो भेद माने गए हैं, सानुनासिक और निरनुनासिक। सानुनासिक का चिह्न चंद्रबिंदु ँ है। तंत्रशास्त्र के अनुसार यह वर्णमाला का पहला अक्षर इसलिये है कि यह सृष्टि उत्पन्न करने के पहले सृष्टिकर्ता की अकुल अवस्था को सूचित करता है।

अंक– संज्ञा पुं॰ [सं॰ अङ्क] [वि॰ अङ्कित, अङ्कनीय, अङ्क्य] १ संख्या। अदद। २ संख्या का चिह्न, जैसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९। उ०–रामनाम को अंक है सब साधन है सून।––तुलसी ग्रं०, पृ० १०४। ३ चिह्न। निशान। छाप। आँक। उ०––सीय राम पद अंक बराए। लखन चलहिं मगु दाहिन लाए।–मानस, २।१२३। ४ दाग। धब्बा। उ०–जहँ यह स्यामता को अंक है मयंक में।–भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ४९। ५ काजल की बिंदी जिसे नजर से बचाने के लिये बच्चों के माथे पर लगा देते हैं। डिठौना। अनखी। ६. अक्षर। उ०–अद्भुत रामनाम के अंक।––सूर०, १।९०। ७ लेख। लिखावट। उ०––खंडित करने को भाग्य अंक। देखा भविष्य के प्रति अशंक।––अनामिका, पृ० १२३। ८ भाग्य। लिखन। किस्मत। उ०– जो विधना ने लिखि दियो छठी रात को अंक। राई घटै न तिल बढ़ै रहु रे जीव निसंक।–कबीर सा०, पृ० ८०। ९ गोद। क्रोड। कोली। उ०–जिस पृथिवी से निकली सदोष वह सीता–अंक में उसी के आज लीन।––तुलसी०, पृ० ४४। १०. बार। दफा। मर्तबा। उ०––एकहु अंक न हरि भजेसि रे सठ सूर गँवार।–सूर (शब्द०)। ११ नाटक का एक अंश जिसकी समाप्ति पर जवनिका गिरा दी जाती है। १२ दस प्रकार के रूपकों में से एक जिसकी इतिहासप्रसिद्ध कथा में नाटककार उलटफेर कर सकता है। इसके रससंयुक्त आख्यान में प्रधान रस करुण और एक ही अंक होता है। इसकी भाषा सरल और पद छोटा होना चाहिए। १३. किसी पत्र या पत्रिका की कोई सामयिक प्रति। १४ नौ की संख्या (क्योंकि अंक नौ ही तक होते हैं)। १५. एक की संख्या (को०)। १६ एक संख्या। शून्य (को०)। १७ पाप। दुख। १८. शरीर। अंग। देह। जैसे––'अंकधारिणी' में 'अंक'। १९. बगल। पार्श्व। जैसे––'अंकपरिवर्तन' में 'अंक'। २०. कटि। कमर। उ०––सह सूर सामंत बद्धंति अंक।––पृ० रा०, ५१।१२०। २१ वक्र रेखा। उ०––भृकुटि अंक बंकुरिय।––पृ० रा०, ६१।२४५७। २२ हुक या हुक जैसा टेढ़ा औजार (को०)। २३ मोड़। भुकाव (को०)। २४ फंदा। गला। गर्दन। उ०–अंबरमाला इक्क अंक पहिराइ वर्‌ह्यौ इह।––पृ० रा०, ७।२६। २५ विभूषण (को०)। २६ स्थान (को०) २७ चित्रयुद्ध। नकली लड़ाई (को०)। २८ प्रकरण (को०)। २९ पर्वत (को०)। ३० रथ का एक अंश या भाग (को०)। ३१ पशु को दागने का चिह्न (को०)। ३२ सहस्थिति (को०)।

मुहा०––अंक देना = गले लगाना। आलिंगन देना। अंक भरना = हृदय से लगाना। लिपटाना। गले लगाना। दोनों हाथों से घेरकर प्यार से दबाना। परिरंभण करना। आलिंगन करना। उ०––उठी परजंक तें मयंक बदनी को लखि, अंक भरिबे को फेरि लाल मन ललकै।–भिखारी० ग्रं०, भा० १ पृ० २४५। अंक मिलाना = दे॰ 'अंक भरना'। उ० नारी नाम बहिन जो आही। तासों कैसे अंक मिलाही।––कबीर सा०, पृ० १०१०। अंक लगना = दे॰ 'अंक देना'। अंक लगाना = दे॰ 'अंक भरना।' उ०–बावरी जो पै कलंक लग्यौ तो निसंक ह्वै क्यों नहिं अंक लगावती––इति०, पृ० २६३। अंक में समाना = लीन होना। सायुज्य मुक्ति प्राप्त करना। उ०––जैसे कनिका काटि कै आहै राई। ऐसे हरिजन अंकि समाई।––प्राण०, पृ० १५८।

अंकक––संज्ञा पुं॰ [सं॰ अङ्कक] [स्त्री॰ अङ्किका] १. गिनती करनेवाला। २. हिसाब रखनेवाला। ३. चिह्न करनेवाला।

अंककरण––संज्ञा पुं॰ [सं॰ अङ्ककरण] चिह्न या छाप लगाने का कार्य। अंकन [को॰]।

अंककार––संज्ञा पुं॰ [सं॰ अङ्ककार] वह योद्धा जिसकी हार या जीत उसके पक्ष की हार जीत का निर्णय कराए।

अकगणित--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कगणित] सख्याओं का हिसाव। सख्या की मीमासा। वह विद्या जिससे सख्याओं का जोड, घटाव, गुणा, भाग आदि किया जाता है। हिसाव।

अकगता--वि० स्त्री० [अङ्क+गता] पार्श्व मे स्थित। उ०--अकगता तुम करो विश्वमगल सदा।--पार्वती, पृ० १४३।

अकज--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कज] पुत्र। सतान। उ०--विधि अकज उपदेस दिय रघुपति गुन जस गाव।--प० रा०, १।२।

अकतत्र--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कतन्त्र] सख्याओं की विद्या। अकगणित और वीजगणित।

अकति--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कति] १ ब्रह्मा। २ वायु। ३ अग्नि। ४ अग्निहोत्री [को०]।

अकधारण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कधारण] तप्त मुद्रा के चिह्नों का दगवाना। शख, चक्र, त्रिशूल आदि के साप्रदायिक चिह्न गरम धातु से छपवाना।

क्रि० प्र०--करना।

अकधारणा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कधारणा] शरीर या अक को धारण करने की स्थिति [को०]।

अकधारिणी--वि० स्त्री० [सं० अङ्कधारिणी] १ शरीर मे धारण करनेवाली। उ०--असख्य पत्रावलि अकधारिणी।--प्रिय प्र०, पृ० १०२। २ तप्त मुद्रा के चिह्न धारण करनेवाली। दे० 'अकधारी'।

अकधारी--वि० [सं० अङ्कधारिन्] [स्त्री० अङ्कधारिणी] तप्त मुद्रा के चिह्न धारण करनेवाला। शख, चक्र, त्रिशूल आदि के साप्रदायिक चिह्नों को गरम धातु से अपने शरीर पर छपवानेवाला।

अकन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कन] [वि० अङ्कनीय, अङ्कित, अङ्क्य] १ चिह्न करना। निशान करना। २ लेखन। लिखना। जैसे--'चित्राकन', 'चरित्राकन' मे 'अकन'। ३ शख, चक्र, गदा, पद्म या त्रिशूल आदि के चिह्न गरम धातु से वाहु पर छपवाना।

विशेष--वैष्णव लोग शख, चक्र, गदा, पद्म आदि विष्णु के चार आयुधों के चिह्न छपवाते हैं और दक्षिण के शैव लोग त्रिशूल या शिवलिंग के। रामानुज सप्रदाय के लोगों मे इसका चलन बहुत है। द्वारिका इसके लिये प्रसिद्ध स्थान है।

४ गिनती करना। ५ श्रेणीनिर्धारण (को०)।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अकना (पु)--क्रि० स० [सं० अङ्कन] १ निश्चित करना। ठहराना। आँकना। उ०--इहै वात साँची सदा देव अकी।--पृ० रा०, २।२११। २ ढकना। मुद्रित करना। मूँदना। उ०--समभि वासि सिरवर तिन ढक्यो। करपल्लव तिन द्रग वर अक्यो।--पृ० रा०, ६१।७१६।

अकनीय--वि० [सं० अङ्कनीय] १ अकन के योग्य। चिह्न करने योग्य। २ छापने लायक। ३ चित्रण करने योग्य।

अकपट्टी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्क+हिं० पट्टी] काठ की लवोतरी चिकनी पटिया जिसपर वालक आरभ मे अक्षर लिखना सीखते हैं। पाटी। उ०--यही पर भगवान् कृष्ण अकपट्टी पर लिखना सीखे थे।--प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३४।

अकपरिवर्तन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कपरिवर्तन] १ एक ओर से दूसरी ओर पीठ करके सोना। करवट लेना। करवट वदलना। करवट फिरना। २ गोद के वच्चे को एक वगल से दूसरी वगल करना। ३ एक अक की समाप्ति के बाद दूसरे अक का आरभ (नाटक)।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अकपलई--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपल्लव] वह विद्या जिसमे अकों को अक्षरो के स्थान पर रखते हैं और उनके समूह से उसी प्रकार अभिप्राय निकालते हैं जैसे शब्दों और वाक्यों से। इसमे इकतीस अक्षर लेकर उनकी सख्याएँ नियत कर दी गई हैं। जैसे १ से 'प' अक्षर समझते हैं।

अकपालिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अकपाली'।

अकपाली--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपाली] १ दाई। धाय। २. आलिंगन (को०) ३ वेदिका नाम का गधद्रव्य (को०)।

अकपाश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कपाश] गणित ज्योतिष मे सख्याओं को विशिष्ट ढग से रखने की एक क्रिया [को०]।

अकमाल--संज्ञा पुं० [सं० अङ्क+माला] आलिंगन। भेंट। परिरभण। गले लगना। उ०--भगति हेत भगता के चले, अकमाल ले वीठल मिले।--रै० वानी, पृ० ५७।

मुहा०--अकमाल देना=आलिंगन करना। भेंटना। गले लगाना। उ०--आजु आए जानि सब अकमाल देत हैं।--तुलसी ग्र०, पृ० १७०।

अकमालिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कमालिका] १ आलिंगन। भेंट। २ छोटा हार। छोटी माला।

अकमुख--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कमुख] नाटक का आरभिक अश जिसके द्वारा सभी अक तथा बीज रूप मे कथानक सूचित किया जाता है, जैसे--भवभूति के मालतीमाधव नाटक का प्रथम अक (सा० दर्पण)।

अकविद्या--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कविद्या] दे० 'अकगणित'।

अकशायी--वि० पुं० [सं० अङ्कशायिन्] [स्त्री० अङ्कशायिनी] अक या गोद मे सोनेवाला। उ०--अकशायी तुम बनोगे दूर होंगे नैश सशय।--क्वासि, पृ० ११६।

अकस[1]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कस] १ शरीर। देह। जिस्म। तन २. चिह्न। निशान [को०]।

अकस[2]--वि० चिह्नयुक्त [को०]।

अकाक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्काङ्क] जल। पानी [को०]।

अकावतार--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कावतार] नाटक के किसी अक के अत मे कथा को विच्छिन्न किए बिना आगामी अक के आरभिक दृश्य तथा पात्रों की सूचना या आभास देनेवाला अश (सा० दर्पण)।

क्रि० प्र०--होना।

अकास्य--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कास्य] अंक के अत मे प्रविष्ट किसी पात्र के द्वारा विच्छिन्न अतीत कथा का आगामी ससूचक अश (सा० दर्पण, दश०)।

अंकिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्किका] १ चिह्न रखनेवाली। १ गिनती करनेवाली। ३ हिसाब रखनेवाली।

अंकित--वि० [सं० अङ्कित] १ निशान किया हुआ। दागदार। चिह्नित। उ०--भूमि बिलोकु राम पद अंकित बन बिलोकु रघुबर बिहार थलु।--तुलसी ग्रं०, पृ० ४६६। २ लिखित। खचित। उ०--तव देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर। --मानस, ५।१३। ३ वर्णित। उ०--सब गुन रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी।--मानस, १।१०। ४ गिना हुआ (को०)।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अंकिनी¹--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्किनी] १ चिह्नों का समूह। चिह्नराशि। २. चिह्नयुक्त स्त्री [को०]।

अंकिनी²--वि० अंकन करनेवाली। उ०--होकर भी वह चित्र अंकिनी आप रंकिनी आशा है।--साकेत, पृ० ३६६।

अंकिल†--संज्ञा पुं० [सं० अङ्क+हिं० इल (प्रत्य०)] बछड़ा जिसे हिंदू वृषोत्सर्ग में दागकर छोड़ देते हैं। दागा हुआ साँड। साँड।

अंकी--संज्ञा पुं० [सं० अङ्की] एक प्रकार का मृदंग [को०]।

अंकुट--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुट] कुंजी। ताली [को०]।

अंकुडक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुडक] १ कुंजी। ताली। २. नागदंत। खूँटी [को०]।

अंकुर¹--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] [वि० अङ्कुरित, हिं० अंकुरना] १. अँखुआ। गाभ। अँगुसा। उ०--पाइ कपट जल अंकुर जामा। --मानस, २।२३। २. डाभ। कल्ला। कनखा। कोपल। आँख। ३ यव का नया नया अँखुआ जो मांगलिक होता है। उ०--अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा। --मानस, १।३४६।

क्रि० प्र०--आना। उगना।--जमना।--निकलना।--फूटना। --फोड़ना।--फेंकना।--लेना।

४. कली। ५ संतति। संतान। उ०--(क) 'हमारे नष्ट कुल में ये एक अंकुर बचा है, इससे हमारा वंश चलेगा।'--श्रीनिवास ग्रं० पृ० १४६। (ख) ये अंकुर हितकर कलश पयोधर पावन। --साकेत, पृ० २०३। ६. नोक। ७ जल। पानी। ८ रुधिर। रक्त। खून। ९ रोम। रोआँ।

अंकुर²--संज्ञा पुं० [फा० अंगूर] मांस के बहुत छोटे लाल लाल दाने जो घाव भरते समय उत्पन्न होते हैं। भराव। अंगूर।

अंकुरक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरक] घोंसला। खोंता [को०]।

अंकुरण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरण] अंकुर निकलना। बीज आदि का अंकुरयुक्त होना [को०]।

अंकुरना--क्रि० अ० [सं० अङ्कुरण] अंकुर फ़टना। उगना। जमना। निकलना। पैदा होना। उत्पन्न होना। उ०--उर अंकुरेउ गर्व तरु भारी।--मानस, १।२१६।

अंकुराना--क्रि० अ० दे० 'अंकुरना'।

अंकुरित--वि० [सं० अङ्कुरित] १ जिसमें अंकुर हो गया हो। अँखुआ आया हुआ। उगा हुआ। जमा हुआ। उ०--सृष्टि बीज अंकुरित प्रफुल्लित सफल हो रहा हरा भरा।--कामायनी, पृ० १८२। २. उत्पन्न। निकला हुआ। उ०--अंकुरित तरु पात उकठि रहे जे गात, बनवेली प्रफुलित कलिनी कहर के।--सूर०, १०।३०।

क्रि० प्र०--करना।

अंकुरितयौवना--वि० [सं० अङ्कुरितयौवना] वह बालिका जिसके यौवनावस्था के कुच आदि चिह्न प्रकट हो गए हों। किशोरी।

अंकुरी†--संज्ञा स्त्री० [हिं० अंकुर+ई] चने की भिगोई हुई घुँघनी।

अंकुल--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] दे० 'अंकुर'--१। उ०--अंकुल बीज नसाय के भए बिदेही थान।--कबीर बी०, पृ० १३। (ख) बीज बिन अंकुल पेड बिनु तरिवर, बिनु फूले फल फरिया। --कबीर बी०, पृ० ३५।

अंकुश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश] १. एक प्रकार का छोटा शस्त्र या टेढ़ा काँटा जिसे हाथी के मस्तक में गोदकर महावत उसे चलाता या हाँकता है। हाथी को हाँकने का दोमुहाँ काँटा या भाला जिसका एक फल झुका होता है। आँकुस। गजबाग। शृणि।

क्रि० प्र०--देना।--मारना।--लगाना।

२. प्रतिबंध। रोक। दबाव। नियंत्रण। जैसे, अंकुश में रखना =प्रतिबंध में रखना। ३. अंकुश के आकार की हाथ पैर की रेखा। उ०--अंकुश बरछी शक्ति पवि गदा धनुष असि तीर। आठ शस्त्र को चिह्न यह धारत पद बलवीर।--भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २१।

अंकुशग्रह--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश ग्रह] महावत। हाथीवान। निषादी। फीलवान।

अंकुशदंता--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुशदन्त] एक प्रकार का हाथी जिसका एक दाँत सीधा और दूसरा पृथिवी की ओर झुका रहता है। यह अन्य हाथियों से बलवान् और क्रोधी होता है तथा झुंड में नहीं रहता। इसे गुंडा भी कहते हैं।

अंकुशदुर्धर--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुशदुर्धर] अंकुश से भी जल्दी वश में न आनेवाला मतवाला हाथी। मत्त हाथी।

अंकुशधारी--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुशधारी] महावत। फीलवान [को०]।

अंकुशमुद्रा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुशमुद्रा] तंत्र शास्त्र में अंगुलियों को अंकुश के आकार की बनाई आकृति [को०]।

अंकुशा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुशा] २४ जैन देवियों में एक। चौदहवें तीर्थंकर श्री अनंतनाथ की शासनदेवी का नाम [को०]।

अंकुशित--वि० [सं० अङ्कुशित] अंकुश के प्रयोग द्वारा आगे बढ़ाया हुआ [को०]।

अंकुशी¹--वि० [सं० अङ्कुशी] १. अंकुशवाला। अंकुश से युक्त। २. अंकुश से वश में करनेवाला [को०]।

अंकुशी²--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंकुशा'।

अंकुस¹--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश, प्रा० अंकुस] १ दे० 'अंकुश'¹। उ०--महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्व।--मानस, १।२५६।

मुहा०--अंकुस देना=ठेलना। जबरदस्ती करना। उ०--क्रोध गजपाल क ठठकि हाथी रह्यो देत अंकुस मसकि कह सकान्यो। --सूर०, १०।३०५४।

२. दे० 'अंकुश'-२। उ०--कुल अंकुश आरज पथ तजि के लाज सकुच दई डेरै। सूर स्याम के रूप लुभाने कैसेहुँ फिरत न फेरे।--सूर०, (परि०) २, पृ० ७४।

३. दे० 'अंकुश' ३.। उ०--याका सेवक चतुरतर गननायक सम होइ। या हित अंकुस चिह्न हरि चरनन सोहत सोइ।--भारतेंदुग्रं०, भा० २, पृ० ८।

अंकुसा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश] एक प्रकार का अस्त्र। उ०—सूल अंकुसा छुरी सुधारी तिष्प कुठारी।—सुजान०, पृ० १५७।

अंकूर—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कूर] दे० 'अंकुर'। उ०—(क) तब भा पुनि अंकूर, दीपक सिरजा निरमला।—जायसी (शब्द०)। (ख) सौ सामत प्रमान, उग्गि अंकूर वीर रस।—पृ० रा०, ३१।६३।

अंकूरी⑨—वि० [सं० अङ्कूर + ई (प्रत्य०)] अंकुरवाला। ज्ञान के अंकुरवाला (पूर्वजन्म के सस्कार से)। उ०—अंकूरी जिव मेटे निज गेहा। नूवा नाम जो प्रथम सनेहा।—कवीर सा०, पृ० ८१।

अंकूलना⑨—क्रि० अ० [सं० अङ्कूरण, हिं० अंकुरना] जनमना। पैदा होना। उ०—सालिग्राम गडक अंकूला। पाहन पूजत पडित भूला।—कवीर सा०, पृ० १८।

अंकूष—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कूष] १ अंकुश। २ नेवले की जाति का एक जानवर। घूस [को०]।

अंकोट—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोट] दे० 'अंकोल'।

अंकोटक—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोटक] दे० 'अंकोल'।

अंकोल—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोल] एक पेड जो सारे भारतवर्ष मे प्राय पहाडी जमीन पर होता है।

विशेष—यह शरीफे के पेड से मिलता जुलता है। इसमे वेर के बराबर गोल फल लगते हैं जो पकने पर काले हो जाते है। छिलका हटाने पर इसके भीतर वीज पर लिपटा हुआ सफेद गूदा होता है जो खाने मे कुछ मीठा होता है। इस पेड की लकड़ी कडी होती हैं और छडी आदि वनाने के काम मे आती है। इसकी जड की छाल दस्त लाने, वमन कराने, कोढ और उपदश आदि चर्मरोगो को दूर करने तथा सर्प आदि विषैले जतुओ के विप को हटाने मे उपयोगी मानी जाती है।

पर्या०—अंकोटक। अकोट। ढेरा। अंकोला।

अंकोलसार—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोलसार] अंकोल के वृक्ष से तैयार किया गया विप [को०]।

अंकोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कोलिका] आलिगन। अंकवार [को०]।

अंक्य¹—वि० [सं० अङ्क्य] १ चिह्न करने योग्य। निशान लगाने लायक। अंकनीय। २ गिनने योग्य। [को०]।

अंक्य²—संज्ञा पुं० १ दागने योग्य अपराधी।

विशेष—प्राचीन काल मे राजा लोग विशेप प्रकार के अपराधियो के मस्तक पर कई तरह के चिह्न गरम लोहे से दाग देते थे। इसी से आजकल भी किसी घोर अपराधी को, जो कई वेर सजा पा चुका हो, 'दागी' कहते हैं।

२ मृदग, तवला, पखावज आदि वाजे जो अंक मे रखकर वजाए जायँ।

अंख⑨—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्ख] आँख। नेत्र। उ०—आज नीरालइ सींय पडयो। च्यारि पहूर मींही नू मीली अंख।—वी० रासो, पृ० ४८।

अंखि⑨—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि; प्रा० अक्खि] दे० 'अंख'। उ०—करि ओध अंखि सुरत्त, हवि जानि लग्गिय लत्त।—पृ० रा०, ९।१०४।

अंखिका⑨—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि] आँख। नेत्र। उ०—लजं भजं मन गतीयपुव्वता कवी कहै। सु अंखिका कुरग गत्ति भान देषिता रहै।—पृ० रा०, ११५४।

अंखे—क्रि० वि० [सं० अक्षि; (लाक्ष०)] आगे। समक्ष। आँख में। उ०— न अंखे है, न पछे है, न तले है, न ऊपर है।—दक्खिनी, पृ० ४४८।

अंग¹—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] १ शरीर। वदन। देह। गात्र। तन। जिस्म। उ०—अभिशाप ताप की ज्वाला से जल रहा आज मन और अंग।—कामायनी, पृ० १६२। २ शरीर का भाग। अवयव। उ०—भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग—भूषण ग्र०, पृ० १२९।

मुहा०—अंग उभरना—युवावस्था आना। अंग करना = स्वीकार करना। ग्रहण करना। उ०—(क) जाको मनमोहन अंग करै।—सूर (शब्द०)। (ख) जाको हरि दृढ करि अंग कर्यो।—तुलसी (शब्द०)। अंग छूना = शपथ खाना। माथा छूना। कसम खाना। उ०—सूर हृदय से टरत न गोकुल अंग छुवत हौ तेरो।—सूर (शब्द०)। अंग टूटना = जम्हाई के साथ आलस्य से अंगो का फैलाया जाना। अँगडाई आना। अंग तोडना—अँगडाई लेना। अंग धरना = पहनना। धारण करना। व्यवहार करना। अंग मे मास न जमना = दुवला पतला रहना। क्षीण रहना। उ०—नैन न आवै नींदडी, अंग न ज मै मासु।—कवीर सा० सं०, भा० १, पृ० ४३। अंग मोडना = (१) शरीर के भागों को सिकोडना। लज्जा से देह छिपाना। (२) अँगडाई लेना। उ०—अगन मोरति भोर उठी छिति पूरति अंग सुगध झकोरन।—व्यगार्थ (शब्द०)। (३) पीछे हटना। भागना। नटना। वचना। उ०—रे पतग निःशक जल, जलत न मोडै अंग। पहिले तो दीपक जलै पीछे जलै पतग (शब्द०)। अंग लगना = (१) आलिगन करना। छाती से लगाना। (२) शरीर पुष्ट होना। उ०—'वह खाता तो वहुत है पर उसके अंग नही लगता' (शब्द०)। (३) काम मे आना। उ०—'किसी के अंग लग गया, पडा पडा क्या होता' (शब्द०)। (४) हिलना। परचना। उ०—'यह वच्चा हमारे अंग लगा है' (शब्द०)। अंग लगाना या अंग लाना⑨ = (१) आलिगन करना। छाती से लगाना। परिरभण करना। लिपटाना। उ०—पर नारी पैनी छुरी कोउ नहिं लाओ अंग। (शब्द०) (२) हिलाना। परचाना। (३) विवाह देना। विवाह मे देना। उ०—'इस कन्या को किसी के अंग लगा दे' (शब्द०)। (४) अपने शरीर के आराम मे खर्च करना।

३ भाग। अंश। टुकडा। ४ खड। अध्याय। जैसे—'गुरुदेव कौ अंग', 'चितावनी कौ अंग', 'सूषिम मारग कौ अंग'।—कबीर ग्र०। ५ ओर। तरफ। पक्ष। उ०—सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अंग।—तुलसी (शब्द०)। ६ भेद। प्रकार। भाँति। तरह। उ०—(क) को कृपालु स्वामी सारिखो, राखै सरनागत सव अंग वल विहीन को।—तुलसी ग्र०, पृ० ५६४। (ख) अंग अंग नीके भाव गूढ भाव के प्रभाव, जानै को सुभाव रूप पचि पहिचानी है।—केशव (शब्द०)। ७. आधार। आलबन। उ०—राधा राधारमन को रस सिंगार

मे अग।--भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ४। ८ सहायक। सुहृद। पक्ष का। तरफदार। उ०--रौरे अग जोग जग को है। --मानस, २।२८४। ९ एक सबोधन। प्रिय। प्रियवर। उ०--यह निश्चय ज्ञानी को जाते कर्ता दीखै करै न अग। --निश्चल (शब्द०)। १० जन्मलग्न (ज्यो०)। ११. प्रत्यय-युक्त शब्द का प्रत्यय रहित भाग। प्रकृति। (व्या०)। १२. छह की सख्या। उ०--वरसि अचल गुण अग ससी सवति, तवियौ जस करि श्रीभरतार।--वेलि, दू० ३०५। १३ वेद के ६ अग, यथा-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छद। दे० 'वेदाग'। १४. नाटक मे शृगार और वीर रस को छोडकर शेष रस जो अप्रधान रहते है। १५ नाटक मे नायक या अगी का कार्यसाधक पात्र, जैसे--'वीरचरित' मे सुग्रीव, अगद विभीषण आदि। १६ नाटक की ५ सधियो के अतर्गत एक उपविभाग। १७ मन। उ०--सुनत राव इह कथ्य फुनि, उपज्जिय अचरज अग। सिथिल अग धीरज रहित, भयो दुमति मति पग।--पृ० रा०, ३।१८। १८ साधन जिसके द्वारा कोई कार्य सपादित किया जाय। १९ सेना के चार अग वा विभाग, यथा--हाथी, घोडे रथ और पैदल। दे० 'चतुरगिणी'। २० राजनीति के सात अग, यथा--स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष राष्ट्र, दुर्ग और सेना। २१ योग के आठ अग, यथा--यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि। दे० 'योग'। २१. वगाल मे भागलपुर के आसपास का प्राचीन जनपद जिसकी राजधानी चपापुरी थी। कही कही इसका विस्तार वैद्यनाथ से लेकर भुवनेश्वर (उडीसा, उत्कल) प्रदेश तक लिखा है। २३ ध्रुव के वश का एक राजा। २४. एक भक्त का नाम। २५. उपाग। २६. लक्षण। चिह्न (को०)।

अग[2]--वि० १ अप्रधान। गौण। २ उलटा। प्रतीप। ३ प्रधान। ४ निकट। समीप (को०)। ५ अगोंवाला (को०)।

अग[3]ⓤ--सज्ञा स्त्री० [सं० आज्ञा] आज्ञा। आदेश। उ०--सो निज स्वामिनि अग सुनि ग्रमिय सुप्रथ्थह वथ्थ।--पृ० रा०, ६१।७६६।

अंगकर्म--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गकर्म] शरीर को सँवारना या मालिश करना।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अंगक्रिया--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गक्रिया] अगकर्म [को०]।

अगग्रह--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गग्रह] १ एक रोग जिससे देह मे पीडा होती है। २. स्थापत्य मे पत्थरो के एक दूसरे के ऊपर फिसल न जाने अथवा उनके जोडो को अलग होने से रोकने के लिये उनके बीच बैठाया जानेवाला कबूतर की पूँछ के आकार का लोहे या ताँबे का एक टुकडा। पाहू।

अगचालन--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गचालन] हाथ पैर हिलाना। अग डुलाना।

अगच्छवि--सज्ञा स्त्री० [अङ्ग + छवि] अगो की शोभा। उ०--'अग-च्छवि से होते थे स्वय अलकृत।--पार्वती, पृ० २००।

अगच्छेद--सज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + छेद] अग कटना। अगभग। उ०--शरीर छोटे से वडा हाता है, उसका कभी कभी अगच्छेद हो जाता है।--चिद्०, पृ० २०७।

अगज[1]--वि० [सं० अङ्गज] शरीर से उत्पन्न। तन से पैदा। उ०--कु अगजों की बहु कष्टदायिता वता रही थी जन नेत्रवान को। --प्रिय० प्र०, पृ० १०३।

अगज[2]--सज्ञा पुं० [स्त्री० अगजा] १ पुत्र। बेटा। लडका। उ०--कृष्ण गेह कै काम, काम अगज जनु अनुरध।--पृ० रा०, १।७२७। २ पसीना। ३ वाल। केश। रोम। ४ काम, क्रोध आदि विकार। ५ साहित्य मे स्त्रियो के यौवन सवधी जो सात्विक विकार हैं उनमे हाव, भाव और हेला ये तीन 'अगज' कहलाते हैं। कायिक। ६ कामदेव। ७ मद। ८ रोग। ९. रक्त। खून (को०)।

अगजा--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गजा] कन्या। पुत्री। वेटी।

अगजाई--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग + हिं० जाई] पुत्री। वेटी। कन्या।

अगजात--सज्ञा पुं० दे० 'अगज'।

अगजाता--सज्ञा स्त्री० दे० 'अगजा'।

अंगज्वर[1]--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गज्वर] राजयक्ष्मा। क्षय रोग [को०]।

अगज्वर[2]--वि० ज्वरोत्पादक [को०]।

अगड खगड[1]--वि० [अनु० ध्व०] १ बचा खुचा। गिरा पडा। इधर उधर का। २ टूटा फूटा। उ०--'अयोध्या की अगड खगड वीहड और बेढगी वस्ती।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० १७४।

अगड खगड[2]--सज्ञा पुं० काठकवाड। टूटा फूटा सामान।

अगड़ाⓤ--सज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + हिं० डा (प्रत्य०)] दे० 'अग' १। उ०--तेरा अगडा पेखो रे, तेरा मुखडा देखो रे।--दादू०, पृ० ५०४।

अगढग--सज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + हिं० ढग] अगो की वनावट या रचना। उ०--अगढग औ रग भूरि भँवरी सुभ लच्छन।--रत्नाकर, भा० १, पृ० ११३।

अगण--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गण] १ घर के बीच का खुला हुआ भाग। आँगन। सहन। चौक। अजिर। उ०--(क) सदेसे ही घर भर्यउ कई अगणि कई वार।--ढोला०, दू०, ८००। (ख) आवी द्वार तजे ग्रह अगण।--राज०, पृ० १८।

विशेष--शुभाशुभ निश्चय के लिये इसके दो भेद माने गए है, एक 'सूर्यवेधी' जो पूर्व पश्चिम लवा हो, दूसरा 'चद्रवेधी' जिसकी लवाई उत्तर दक्षिण हो। चद्रवेधी आँगन अच्छा समझा जाता है।

२ यान। सवारी (को०)। ३ सचरण। गमन (को०)।

अगति--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गति] १ अग्निहोत्री। २. विष्णु। ३. ब्रह्मा। ४. अग्नि। ५. जिसके द्वारा गमन किया जाय। वाहन [को०]।

अगत्राण--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गत्राण] १. शस्त्रास्त्रो से अग की रक्षा के निमित्त पीतल या लोहे का पहिनावा। कवच। वख्तर। वर्म। जिरह। २ अँगरखा। कुरता।

अगद--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गद] १. वालि नामक वदर का पुत्र जो रामचद्र की सेना मे था। २. बाहु पर पहनने का एक गहना। बिजायट। बाजूबद। उ०--उर पर पदिक कुसुम वनमाला अगद खरे विराजै।--सूर०, १०।४५१। ३ लक्ष्मण के दो पुत्रों मे से एक। ४. दुर्योधन के पक्ष का एक योद्धा।

अंगदा[1]--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गदा] दक्षिण दिशा के दिग्गज की पत्नी।

अंगदा[2]--वि० स्त्री० अंगदान करनेवाली (स्त्री)।

अंगदान--संज्ञा पुं० [अङ्ग + दान] १ पीठ दिखलाना। युद्ध से भागना। लड़ाई से पीछे फिरना। २ तनुदान। आत्मसमर्पण। सुरति। रति। (स्त्रियों के लिये प्रयुक्त)।

क्रि० प्र०--करना = (१) पीठ दिखलाना, भागना, पीछे फिरना। (२) रति करना, संभोग करना।

अंगदीया--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गदीया] कारुपथ नामक देश की नगरी जो लक्ष्मण के पुत्र अंगद को मिली थी।

अंगद्वार--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गद्वार] शरीर के मुख, नासिका आदि दस छेद।

अंगद्वीप--संज्ञा पुं० [अङ्गद्वीप] छह द्वीपों में से एक।

अंगधारी--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + धारिन्] शरीर धारण करनेवाला। शरीरी। प्राणी।

अंगन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गन] १ आँगन। सहन। चौक। उ०--घर अंगन गायन विरकि जमुना जल बन कुंज।--पृ० रा०, २।५५६।

अंगना--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गना] १ सुंदर अंगवाली स्त्री। २. स्त्री। कामिनी। उ०--बीच परी अंगना अनेक आँगननि के।--केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १८३। ३ सार्वभौम नामक उत्तर के दिग्गज की स्त्री। ४ कन्या राशि (को०)। ५ वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन राशियाँ (को०)।

अंगनाप्रिय[1]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गनाप्रिय] १ अशोक का पेड़। २. उत्तर दिशा का हस्ती [को०]।

अंगनाप्रिय[2]--वि० स्त्रियों का प्यारा [को०]।

अंगन्यास--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गन्यास] तंत्रशास्त्र के अनुसार मंत्रों को पढ़ते हुए एक एक अंग छूना। संध्या, जप पाठ आदि के पूर्व की जानेवाली एक विधि।

अंगपाक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गपाक] अंगों का पकना या सड़कर उनमें मवाद भरना। अंग पकने का रोग।

अंगपालिका--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंकमालिका' [को०]।

अंगपाली--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गपाली] १. आलिंगन। अँकवार। २ वेदिका नामक गंधद्रव्य [को०]।

अंगप्रायश्चित्त--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गप्रायश्चित्त] स्मृतियों में कथित अशौच में दान के रूप में किया जानेवाला प्रायश्चित्त जो शरीर की शुद्धि के लिये किया जाता है [को०]।

अंगप्रोक्षण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गप्रोक्षण] अंग पोंछना। देह पोंछना शरीर को गीले कपड़े से मलकर साफ करना।

अंगफुरन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + स्फुरण, प्रा० अप० फुरण] अंग का फड़कना। उ०--अंगफुरन तें निज मतंग मन रंग पिछानत।--रत्नाकर, भा० १, पृ० ११७।

अंगबीं--संज्ञा पुं० [फा०] मधु। शहद। उ०--ताअत में ता रहें न मय औ अंगबीं की लाग।--भीर०, भा० १, पृ० ५२७।

अंगभंग[1]--संज्ञा सं० [सं० अङ्गभङ्ग] १ किसी अवयव का खंडन या नाश। अंग का खंडित होना। शरीर के किसी भाग की हानि। २ मोहित करने की स्त्रियों की चेष्टा। स्त्रियों की कटाक्ष आदि क्रिया। अंगभंगी।

अंगभंग[2]--वि० जिसके शरीर का या कोई भाग खंडित हो या टूटा हो। जिसके हाथ पैर टूटे हों। अपाहज। लँगड़ा लूला। लुंज।

क्रि० प्र०--करना। उ०--अंगभंग करि पठवहु बंदर।--तुलसी (शब्द०)।--होना। जैसे--उसका अंगभंग हो गया।--(शब्द०)।

अंगभंगि--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगभंगी'। उ०--अंगभंगि में व्योम मरोर, भौंहों में तारों के झौंर।--पल्लव, पृ० ३३।

अंगभंगिमा--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगभंगी'। उ०--मर्मोहन विभ्रम अंगभंगिमा में अपठित।--ग्राम्या, पृ० २०।

अंगभंगी--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + भङ्गी] स्त्रियों की मोहित करने की चेष्टा। स्त्रियों की चेष्टा। अदा। उ०--वह अनंगपीड़ा अनुभव सा अंगभंगियों का नर्तन।--कामायनी, पृ० ११।

अंगभाव--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गभाव] संगीत में नेत्र, भृकुटि और हाथ आदि अंगों से मनोविकार का प्रकाशन। गाने में शरीर की विविध मुद्राओं द्वारा चित्त के उद्वेगों की अभिव्यक्ति।

अंगभू[1]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गभू] १. पुत्र। २. कामदेव [को०]।

अंगभू[2]--वि० शरीर या मन में उत्पन्न [को०]।

अंगभूत[1]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गभूत] पुत्र। बेटा।

अंगभूत[2]--वि० १ अंग में उत्पन्न। देह से पैदा। २ अंतर्गत। भीतर। अंतर्भूत। ३. गौण। अप्रधान।

अंगभंग(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + भङ्ग या अङ्ग, प्रा० अंगभग] अंग प्रत्यंग। हर एक अवयव। उ०--कुंदन ओपति अंगभंग जनु चंद किरनि सिर।--पृ० रा०, १४.७४।

अंगम(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आगम] आगम। आना। अवाई। उ०--तिन रिषि पूछी ताहि वचन वारन इत अंगम।--पृ० रा०, १।२६४।

अंगमना(पु)--क्रि० स० दे० 'अंगवना'। उ०--(क) चायान राय जयचंद को विगारि पिथ्य कुन अंगमै।--पृ० रा०, ६१।१०६०। (ख) को अंगमै सु जम्म अम्म को करै संघारन।--पृ० रा०, ६१।१०६०।

अंगमर्द--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्द]। १ अंग मलनेवाला या हाथ पैर दबानेवाला नौकर। संवाहक। सेवक। २. एक प्रकार का बातरोग। हड्डियों का दर्द। हड़फूटन रोग।

अंगमर्दक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्दक] अंगमर्द। संवाहक [को०]।

अंगमर्दन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्दन] अंगों की मालिश। देह। दबाना। हाथ पैर दबाना।

अंगमर्दी--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्दी] संवाहक। अंगमर्दक।

अंगमर्ष--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्ष] अंगों की पीड़ा। वातरोग [को०]।

अंगयज्ञ--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गयज्ञ] प्रधान यज्ञ का अंगीभूत यज्ञ [को०]।

अंगयष्टि--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गयष्टि] शरीर की पतली आकृति [को०]।

अंगरक्षक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गरक्षक] [स्त्री० अङ्गरक्षिका] शासक या विशेष अधिकारी की रक्षा के लिये नियुक्ति सैनिक। बाडीगार्ड। शरीर रक्षक [को०]।

अंगरक्षणी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गरक्षिणी] शरीर की रक्षा के लिये लोहे की बनी पोशाक। वर्म। कवच [को०]।

अंगरक्षा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गरक्षा] शरीर की रक्षा। देह का बचाव। बदन की हिफाजत।

अंगरक्षिणी--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगरक्षणी'।

अंगरस--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + रस] किसी पत्ती या फल का कूटकर निचोड़ा हुआ रस। स्वरस। रांग।

अंगराग--सं० पुं० [सं० अङ्गराग] १. चदन, केसर, कपूर, कस्तूरी आदि सुगंधित द्रव्यों का मिला हुआ लेप जो अंग में लगाया जाता है। उबटन। बटना। २ वस्त्र और आभूषण। ३ शरीर की शोभा के लिये महावर आदि रँगने की सामग्री। ४ स्त्रियों के शरीर के पाँच अंगों की सजावट--माँग में सिंदूर, माथे में रोली, गाल पर तिल की रचना, केसर का लेप, और हाथ पैर में मेहँदी या महावर। ५ एक प्रकार की सुगंधित देशी बुकनी जिसे मुँह पर लगाते हैं। चौंसठ कलाओं में से एक।--वर्ण०।

अंगराज--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गराज] १ अंग देश का राजा कर्ण। २ राजा सोमपाद जो दशरथ के परम मित्र थे। इनकी कन्या शाता ऋष्यशृंग को ब्याही गई थी। इसी नाते ऋष्यशृंग ने दशरथ से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था।

अंगरुह--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गरुह] १ शरीर के रोएँ, केश आदि। २ ऊन [को०]।

अंगरेजी[1]--संज्ञा स्त्री० [फा० पुर्त० आग्लेज, इगलेज] अँगरेज लोगों की भाषा। इग्लैंड और अमेरिका के निवासियों की भाषा।

अंगरेजी[2]--वि० अँगरेजों की। विलायती।

अंगरेजीवाज--वि० [हिं० अंगरेजी + फा० बाज] कुछ कुछ अँगरेजी जाननेवाला। उ०--'बहुतेरे अंगरेजीवाज साँवले साहित्य लोग'।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५२।

अंगलिपि--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गलिपि] अंग देश में लिखी जानेवाली लिपि [को०]।

अंगलेप--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गलेप] दे० 'अंगराग'--१ [को०]।

अंगलोडच--संज्ञा पुं० सं० [अङ्गलोडच] १ एक प्रकार की घास। चिचिडा। २ अदरक या उसकी जड [को०]।

अंगवना(पु)--क्रि० स० दे० 'अँगवना'--३। उ०--एक कोटि अंगवन धरत हर उर सुध्यान वर।--पृ० रा०, ६१।१६०।

अंगवस्त्र--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + वस्त्र] पहनने का वस्त्र। पोशाक। उ०--जो जो अंग ऊपर अंगवस्त्र पहिरे हते सो तो रहे।--दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११३।

अंगवारा--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग = भाग, सहायता + कार] १ गाँव के एक छोटे भाग का मालिक। २ खेत की जोताई में एक दूसरे की सहायता।

अंगविकल--वि० [सं० अङ्गविकल] १ मूर्छायुक्त। मूर्छित। २ विकलांग [को०]।

अंगविकृति--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गविकृति] अपस्मार। मृगी या मिरगी रोग। मूर्छा रोग।

अंगविक्षेप--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गविक्षेप] १ अंग हिलाना। चमकाना। मटकाना। बोलते, वक्तृता देते या गाते समय हाथ पैर, सिर आदि का हिलाना। २ नृत्य। नाच। ३ नृत्यकालीन अंग-सचालन। कलाबाजी।

अंगविद्या--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गविद्या] १ शरीर के लक्षणों और रेखाओं को देखकर जीवन की घटनाओं को बताने की विद्या। शरीर की रेखाओं से मनुष्य के शुभाशुभ फल कहने की कला। सामुद्रिक विद्या। २ छह वेदांग।

अंगविभ्रम--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गविभ्रम] १ रोग जिसमें रोगी अंगों को और का और समझता है। अंगभ्राति। २ शृंगार रस में नायिका की विभ्रम नामक चेष्टा।

अंगवैकृत--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गवैकृत] हृदय या मन के भाव को अंगों की चेष्टा से व्यक्त करना। आकार [को०]।

अंगश--क्रि० वि० [सं० अङ्गश] अंग या विभाग के अनुसार [को०]।

अंगशुद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गशुद्धि] स्नानादि द्वारा शरीर स्वच्छ करना [को०]।

अंगशैथिल्य--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गशैथिल्य] बदन की सुस्ती। अंग का ढीलापन। थकावट।

अंगशोष--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गशोष] एक रोग जिसमें शरीर क्षीण होता या सूखता है। सुखडी रोग।

अंगसंग--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + सङ्ग] रति। सयोग। मैथुन। सभोग।

अंगसंधि--संज्ञा स्त्री० दे० 'सध्यंग'

अंगसपेख(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग + सम्प्रेक्ष] अंग नामक देश (डिं०)।

अंगसवाहन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गसवाहन] अंगमर्दन। मालिश। देह दबाना। उ०--'चार सेवक आवनूस के बेलन से उसका अंग-सवाहन करते थे'।--चद्र० (भू०), पृ० २२।

अंगसंस्कार--संज्ञा पुं० [अङ्गसस्कार] अंगों का सँवारना। देह का बनाव सजाव। उबटन, स्नान या सुगंधित द्रव्यों आदि से शरीर की सजावट।

अंगसंस्क्रिया--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगसंस्कार' [को०]।

अंगसंहति--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गसहति] अंगों का गठन। अंगों की रचना या बनावट। अंगों का सुडौलपन [को०]।

अंगसंहिता--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गसहिता] किसी शब्द में व्यंजन और स्वर के मध्य का ध्वनिसबंध [को०]।

अंगसख्य--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गसख्य] अभिन्न मैत्री। गाढी मित्रता। गहरी दोस्ती।

अंगसिहरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग = शरीर + हर्ष = कप] १ ज्वर आने के पहले देह की कँपकँपी। कप। कँपकँपी। २ जूडी।

अंगसुप्ति--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गसुप्ति] शरीर का सुन्न होना [को०]।

अंगसेवक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गसेवक] शरीर की रक्षा करनेवाला निजी सेवक। अंगरक्षक [को०]।

अगस्कध--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गस्कन्ध] रूप, वेदना, विज्ञान, सज्ञा और सस्कार नामक शरीर के पाँच स्कध (बौद्ध) ।

अगस्पर्श--सज्ञा पु० [सं० अङ्गस्पर्श] दाहकर्म करनेवाले का अशौच के चौथे दिन अस्थि सचयन के बाद दूसरो के द्वारा छूने के योग्य होना [को०] ।

अगहानि--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गहानि] दैव, भ्रम या अनवधानता से मुख्य कार्य के उपकारक अवातर का कार्यों मे हुई असावधानी या त्रुटि [को०] ।

अगहार--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गहार] १ अगविक्षेप । चमकना । मटकना । हाथ पैर हिलाना । २ नृत्य । नाच ।

अंगहारि--सज्ञा पुं० १ दे० 'अगहार' । २ रगमच । रगस्थल [को०] ।

अगहीन[1]--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गहीन] अनग । कामदेव [को०] ।

अगहीन[2]--वि० जिसको कोई एक वा अनेक अग न हो । जिसके शरीर का कोई भाग खडित वा टूटा हो । लूला लँगडा । लूज आदि । अवयवरहित ।

अगागिता--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गाङ्गिता] दे० 'अगागिभाव' [को०] ।

अगागिभाव--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गाङ्गिभाव] १ अवयव और अवयवी का परस्पर सवध । उपकारक उपकार्य-सवध । अश का सपूर्ण के साथ आश्रय और आश्रयी रूप सवध अर्थात् ऐसा सवध कि उस अश का अवयव के विना सपूर्ण वा अवयवी की सिद्धि न हो, जैसे त्रिभुज की एक भुजा का सारे त्रिभुज के साथ सवध । २ गौण और मुख्य का परस्पर सवध । ३ अलकार में सकर का एक भेद । जहाँ एक ही पद्य मे कुछ अलकार प्रधान रूप आएँ और उनके आश्रय या उपकार से दूसरे और भी आ जाएँ । उ०--अब ही तो दिन दस वीते नाहिं नाह चले अब उठि आई कहूँ कहाँ लौ विसरिहैं । आओ खेलें चौपर विसारैं मतिराम दुख खेलन को आई जानि विरह को चूरि है । खेलत ही काहू कह्यो जुग जिन फूटौ प्यारी । न्यारी भई मारी को निवाह होनो दूर है । पासे दिए डारि मन साँसे ही मे बूडि रह्यो विसरयो न दुख, दुख दूनो भरपूर है । यहाँ 'जुग जनि फूटौ' वाक्य के कारण प्रिय का स्मरण हो आया इससे स्मरण अलकार और इस स्मरण के कारण विरहनिवृत्ति के साधन से उलटा दुख हुआ अर्थात् 'विषम' अलकार की सिद्धि हुई । अत यहाँ स्मृति अलकार विषम का अग है ।

अगागीभाव--सज्ञा पुं० दे० 'अगागिभाव ।'

अगा[1]--सज्ञा पु० [सं० अङ्ग] १ पहिनावा जो घुटनो के नीचे तक लबा होता है और जिसमे वद लगे रहते हैं । अगरखा । चपकन ।

अगा[2]--सज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] दे० 'अग' । उ०--देवी गगा लहर तुरगा । तुहरे लहर परमू, भाजे आठो अगा ।--शुक्ल० अभि० ग्र०, पृ० १३८ ।

अगाकडी--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गार + हिं० कडी] अगारो पर सेंकी हुई मोटी रोटी । लिट्टी । वाटी ।

क्रि० प्र०--करना ।--लगाना = वाटी तैयार करना या पकाना ।

अगाकर(पु)--सज्ञा स्त्री० दे० 'अगाकडी' । उ०--कोस पयाए उ पाणियो ज्यहि । सात अगाकर वैठो हो खाय ।--वी० रासो, पृ० ७८ ।

अगाकरी(पु)--सज्ञा स्त्री० दे० 'अगाकडी' । उ०--रवा केरु आमोदनं दे वनाए । घने घृत्त अगाकरी खोभि लाए ।--पृ० रा० ६३।८६ ।

अगार[1]--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गार] १ दहकता हुआ कोयला । आग का जलता हुआ टुकडा । विना धुएँ की आग । निर्धूम अग्नि । उ०--धवनि धवती रहि गई वुझि गए अगार ।--कबीर ग्र०, पृ० ५७ । २ स्फुलिंग । चिनगारी । उ०--अति अगिनि झार भभार धुधार करि उचटि अगार झभार छायौ ।--सूर०, १०।५६६ ।

मुहा०--अगार उगलना = कडी कडी बातें मुँह से निकालना । ऐसी बात बोलना जिससे सुननेवाले को अत्यत क्रोध उत्पन्न हो । अगार बनना = (१) खा पीकर लाल होना । मोटा ताजा होना । (२) क्रोध मे भरना । अंगार बरसना = (१) अत्यत अधिक गर्मी पडना । (२) दैवी आपत्ति आना ।

३ कोयला (को०) । ४ मगल । उ०--चर आए ढिल्लिय नगर, दसमि सुदिन अगार ।--पृ० रा०, ६६।१६१८ । ५. लाल रग (को०) । ६ हितावली नाम का पौधा (को०) ।

अगार[2]--वि० लाल रगवाला [को०] ।

अगारक--सज्ञा पुं० [सं० अगारक] १ दहकता हुआ कोयला । आग का जलता हुआ टुकडा । २ चिनगारी (को०) । ३ मगल ग्रह । ४ भृगराज । भँगरैया । भँगरा । ५ कटसरैया का पेड , कुरटक । पियावासा । ६ एक प्रकार का तैल जो सभी ज्वरो का नाश करनेवाला होता है (को०) ।

अगारकमणि--सं० पुं० [सं० अङ्गारकमणि] मूँगा । प्रवाल ।

अगारकवार--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गारकवार] मगल का दिन । भौमवार [को०] ।

अगारकारी--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गारकारी] काठ को जलाकर वेचने के लिये कोयला तैयार करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

अगारकित--वि० [सं० अङ्गारकित] दग्ध । जला हुआ । भुना हुआ । [को०] ।

अगारकृत--सज्ञा पुं० दे० 'अगारकारी' [को०] ।

अगारधानी--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारधानी] आग रखने का वरतन । अँगीठी । बोरसी [को०] ।

अगारधानिका--सज्ञा स्त्री० दे० 'अगारधानी' [को०] ।

अगारपरिपाचित--सज्ञा पुं० दे० 'अगारपरिपाचित' [को०] ।

अगारपर्ण[1]--संज्ञा पु० [सं० अङ्गारपर्ण] चित्ररथ गधर्व का एक नाम ।

अगारपर्ण[2]--वि० दे० 'चित्ररथ'

अगारपाचित--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गारपाचित] अगार या दहकती हुई आग पर ही रखकर पकाया हुआ खाना, जैसे कवाव, नानखताई इत्यादि ।

अगारपात्री--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारपात्री] अँगीठी । अगारधानी [को०] ।

अगारपुष्प--सज्ञा पुं० [सं० अङ्गारपुष्प] इगुदी वृक्ष जिसके फूल अगार के समान लाल होते हैं । हिंगोट का पेड ।

अगारमजरी--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारमञ्जरी] वह करज जिसकी मजरी लाल होती हैं । लाल करज की बेल [को०] ।

अगारमजी--सज्ञा स्त्री० दे० 'अगारमजरी' [को०] ।

अगारमणि--सज्ञा पुं० दे० 'अगारकमणि' ।

अंगारमती--सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारमती] कर्ण की स्त्री ।

अंगारवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारवल्लरी] दे० 'अंगारवल्ली' [को०]।
अंगारवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारवल्ली] गुंजा की लता। घुंघची की बेल। चिरमटी की बेल।
अंगारवेणु—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारवेणु] लाल रंग का बाँस। बाँस का एक भेद [को०]।
अंगारशकटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारशकटी] अँगीठी। अंगारधानी। गोरसी। बोरसी [को०]।
अंगारा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारक, प्रा० अंगारअ] दे० 'अंगार'।
मुहा०—अंगारा बनना = क्रोध के कारण मुँह लाल होना। गुस्से में होना। अंगारा हो जाना = दे० 'अंगारा बनना'। अंगारा होना = क्रोध से लाल होना। अंगारे उगलना = कटु वचन कहना। जली कटी सुनाना। अंगारे फाँकना = असह्य फल देनेवाला काम करना। अंगारे बरसना = (१) अत्यंत अधिक गर्मी पड़ना। आग बरसना। (२) दैवी कोप होना। अंगारों पर पैर रखना = (१) जान बूझकर हानिकारक कार्य करना या अपने को संकट में डालना। (२) जमीन पर पैर न रखना। इतराकर चलना। अंगारों पर लोटना = (१) अत्यंत रोष प्रकट करना। आग बबूला होना। झल्लाना। (२) डाह से जलना। ईर्ष्या से व्याकुल होना। उ०—'वह मेरे बच्चे को देखकर अंगारों पर लोट गई' (शब्द०)। (३) तड़पना व्याकुल होना। उ०—शाम से ही लोटना है मुझको अंगारों पे आज। —शेर०, भा० १, पृ० ६५६। अंगारों पर लोटाना = (१) जलाना। डाह करना। (२) तड़पाना। दुखी करना। लाल अंगारा = (१) बहुत लाल। खूब सुर्ख। उ०—'काटने पर तरबूज लाल अंगारा निकला' (शब्द०)। (२) अत्यंत क्रुद्ध। उ०—'यह सुनते ही वह लाल अंगारा हो गई' (शब्द०)।
अंगारावक्षपण—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारावक्षेपण] अंगार या जलता हुआ कोयला निकालने और बुझाने का एक पात्र। चिमटा [को०]।
अंगारि—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारि] अँगीठी। बोरसी।
अंगारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिका] १ अँगीठी। २ इक्षु। ईख। ३ ईख का छोटा टुकड़ा। ४ कली। ५. पलाश की कली [को०]।
अंगारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिणी] १ अँगीठी। बोरसी। आतिशदान। २ वह दिशा जिसपर डूबे हुए सूर्य की लाली छाई हो। ३ एक लता (को०)।
अंगारित—वि० [सं० अङ्गारित] १ भुना हुआ। २ दग्ध (एक प्रकार का भोजन जो जैन मुनियों के लिये त्याज्य है)। ३ जला हुआ [को०]।
अंगारित[1]—संज्ञा पुं० पलाश की ताजी कली [को०]।
अंगारिता—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिता] १ अँगीठी। २ कली। ३ पलाश की ताजी कली। ४ एक लता। ५ एक नदी का नाम [को०]।
अंगारी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारी] १ दहकते हुए कोयले का छोटा टुकड़ा। २ चिनगारी। ३. अंगार या दहकती हुई बिना लपट की आग पर पकाई हुई रोटी। लिट्टी। बाटी। ४ अँगीठी। बोरसी।
अंगारी[2]—वि० [सं० अङ्गारिन्] सूर्य द्वारा प्रतप्त (दिशा)।
अंगारीय—वि० [सं० अङ्गारीय] अंगार या कोयला बनाने के योग्य (काष्ठादि) [को०]।
अंगार्या—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गार्या] कोयले की ढेरी [को०]।
अंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गिका] १ स्त्रियों की कुरती। अँगिया। चोली। कचुकी। छोटा कपड़ा। २ सर्प की केंचुल (को०)।
अंगित—संज्ञा पुं० दे० 'इंगित'। उ०—की कीरति अंगित काजे। —विद्यापति०, पृ० ५३३।
अंगिन्—वि० [सं० अङ्गिन्] दे० 'अंगी'।
अंगिनी—वि० [सं० अङ्गिनी] अंगवाली।
विशेष—इसका प्रयोग प्राय समस्तरूप में ही मिलता है, जैसे, अर्धांगिनी।
अंगिया—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगिका'—१।
अंगिर—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गिर] १ दे० 'अंगिरस'। २. तीतर पक्षी [को०]।
अंगिरस्—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गिरस्] १ एक प्राचीन ऋषि का नाम जो दस प्रजापतियों में गिने जाते हैं।
विशेष—ये अथर्ववेद के प्रादुर्भावकर्ता कहे जाते हैं। इसी से इनका नाम अथर्वा भी है। इनकी उत्पत्ति के विषय में कई कथाएँ हैं। कहीं इनके पिता को उरु और माता को आग्नेयी लिखा है और कहीं इनको ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न बतलाया गया है। स्मृति, स्वधा, सती और श्रद्धा इनकी स्त्रियाँ थीं जिनसे ऋचस् नाम की कन्या और मानस् नामक पुत्र हुए। इनकी बनाई एक स्मृति भी है।
२ बृहस्पति का नाम। ३. ६० संवत्सरों में छठे संवत्सर का नाम। ४. कटीला। कटीला गोंद। कतीरा।
अंगिरस—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गिरस्] १ परशुराम का एक शत्रु २ दे० 'अंगिरस'—२ [को०]।
अंगिरसी—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गिरसी] शरीर विज्ञान का ज्ञाता [को०]।
अंगिरा—संज्ञा पुं० दे० 'अंगिरस्'।
अंगिर्—संज्ञा पुं० [सं० अंगिर्] एक ऋषि जिन्होंने अथर्वण ऋषि से ब्रह्मविद्या प्राप्त की थी। अंगिरस् के गुरु सत्यवाह इनके शिष्य थे [को०]।
अंगी[1]—वि० [सं० अङ्गी] १ शरीरी। देहधारी। शरीरवाला। २. अवयवी। उपकार्य। अंशी। समष्टि। ३ प्रधान। मुख्य।
अंगी[2]—वि० स्त्री० अंगवाली (केवल समास में प्रयुक्त, जैसे, तन्वंगी, कोमलांगी आदि)।
अंगी[3]—संज्ञा पुं० १ नाटक का प्रधान नायक, जैसे सत्यहरिश्चंद्र में हरिश्चंद्र। २. प्रधान रस। नाटकों में शृंगार और वीर ये दो रस अंगी (प्रधान) कहलाते हैं और शेष रस अंग (अप्रधान)।
अंगी[4]—संज्ञा स्त्री० [डिं०] चौदह विद्याएँ।
अंगी[5]—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगिया'।
अंगीकति—संज्ञा स्त्री० [सं० अंगीकृत, प्रा० अंगीकत, हिं० अंगीकत्ति] दे० 'अंगीकृति'। उ०—जो चाचा जी में श्रीनाथ जी गुसाईं जी की अंगीकति को सबंध दृढ़ है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ६५।
अंगीकरण—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गीकरण] १ दे० 'अंगीकार'। उ०—

अस्वीकरण और अगीकरण दोनो की क्षमता अपने प्राणो मे जगानी होती है।--सुनीता, पृ० २३७।

अगीकार--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गीकार] स्वीकार। मजूर। कबूल। ग्रहण।

क्रि० प्र०--करना। उ०--जाकों हरि अगीकार कियो।--सूर०, १।३७।--होना।

अगीकृत--वि० [सं० अङ्गीकृत] स्वीकार किया हुआ। ग्रहण किया हुआ। अपनाया हुआ। लिया हुआ। स्वीकृत। मंजूर। उ०--जो न अगीकृत करें वे होइ हों रिन दास।--सूर०, १०।३४३१।

अगीकृति--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गीकृति] स्वीकृति। मजूरी। अगीकरण।

अगीय--वि० [सं० अङ्गीय] १ शरीर या अग सबधी। २ अग देश का [को०]।

अगुण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुण] वैगन। भटा [को०]।

अगुर(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अगुल'--१। उ०--अगुर द्वै घटि होत सबनि सों पुनि पुनि और मँगायो।--सूर०, १०।३४२।

अगुरि(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरि] उंगली। उ०--मुँह अगुरि दै दै मुसुकावति।--नद ग्र०, पृ० २४३।

अगुरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरी] उँगली। उ०--(क) भरति नीर सुदरी। सु पानि पत्त अगुरी। पृ० रा०, ६१।३३६। (ख) जो कोई ब्रज के रूखन के पतौआ तथा डार तोरेगो ताके हाथ की अगुरी हो तोरूँगो।--दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३००।

अगुरीय--संज्ञा पुं० [स० अङ्गुरीय] अँगूठी। मुंदरी [को०]।

अगुरीयक--संज्ञा पुं० दे० 'अगुरीय' [को०]।

अगुल--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुल] १ लबाई की एक नाप। एक आयत परिमाण। आठ जौ के पेट की लबाई। आठ यवोदर का परिमाण। उ०--साठि सु अगुल लेह्य किल्ली।--पृ० रा०, ३।२२।

विशेष--१२ अगुल का एक बित्ता और दो बित्ते का एक हाथ होता है।

२ ग्रास या बारहवाँ भाग (ज्यो०)। ३ उँगली। अगुलि। ४. अँगूठा। ५ चाणक्य या वात्स्यायन का एक नाम [को०]।

अगुलक--वि० [सं० अङ्गुलक] अगुल सबधी। जो अगुल के परिमाणवाला हो [को०]।

अगुलप्रमाण[1]--संज्ञा पुं० [स० अङ्गुलप्रमाण] अगुलियो की लबाई या चौड़ाई [को०]।

अगुलप्रमाण[2]--वि० अगुली की लबाईवाला [को०]।

अंगुलमान--संज्ञा पुं०, वि० दे० 'अगुलप्रमाण'[को०]।

अगुलि--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलि] १ दे० 'अगुली'। उ०--तडित करिग अगुलि धरम वान भग्गि प्रथिराज।--पृ० रा०, ५७।८७।

मुहा०--अगुलि करना = बदनामी करना। अगुल्यानिर्देश करना। उ०--जिहि प्रियजन अगुलि करै तिहि प्रियजन किहि काज।--पृ० रा०, ६१।१२७३।

२. दस की सख्या (को०)।

अंगुलिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिका] १ उँगली। एक प्रकार की चीटी [को०]।

अगुलिगण्य--[सं० अङ्गुलिगण्य] उँगलियों पर गिनने योग्य। बहुत कम। विरला। उ०--गोपाल का सच्चा भक्त अगुलिगण्य ही हो सकता है।--सपू० अभि० ग्र०, पृ० ३१२।

अगुलितोरण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलितोरण] त्रिपुट तिलक। तीन पतली अर्द्धचद्राकार समानातर रेखाओ का तिलक जिसे शैव लोग माथे पर लगाते हैं।

अगुलित्र--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलित्र] १ वह तत या तारो वाला बाजा जो कमानी से नहीं बल्कि उँगली मे मिजराब पहनकर बजाया जाता है, जैसे--सितार, बीन, एकतारा आदि। २ दे० 'अगुलित्राण' (को०)।

अगुलित्राण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलित्राण] गोह के चमड़े का बना हुआ दस्ताना जिसे बाण चलाते समय उँगलियों को रगड़ से बचाने के लिये पहनते हैं। उँगलियों की रक्षा के निमित्त गोह के चमड़े का एक आवरण। गोह के चमड़े का दस्ताना।

अगुलित्रान(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अगुलित्राण'। उ०--अगुलित्रान कमान बान छवि सुरनि सुखद असुरनि उर सालति।--तुलसी ग्र०, पृ० ४१५।

अगुलिनिर्देश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिनिर्देश] १ उँगली से सकेत करने का कार्य। २ बदनामी। निंदा [को०]।

अगुलिपचक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिपञ्चक] हाथ की पाँच उँगलियाँ जिनके नाम ये हैं--अगुष्ठ, प्रदर्शनी या तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका।

अगुलिपर्व--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिपर्वन्] उँगलियों की पोर। उँगली की गाँठ या जोड़।

अगुलिमुख--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिमुख] उँगली का सिरा या नोक [को०]।

अगुलिमुद्रा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिमुद्रा] १ अँगूठी जिसपर नाम खुदा हो। नामाकित अँगूठी। २ मुहर लगाने के लिये नाम खुदी अँगूठी।

अंगुलिमुद्रिका--संज्ञा स्त्री० दे० 'अगुलिमुद्रा' [को०]।

अगुलिमोटन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिमोटन] अँगुली चटकाने या फोड़ने का काम। उँगली फुटकाना [को०]।

अगुलिवेष्ट--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिवेष्ट] दस्ताना [को०]।

अगुलिवेष्टक--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलिवेष्ट' [को०]।

अगुलिवेष्टन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिवेष्टन] १. दस्ताना। हथेली और उँगलियो को ढाँकने का आवरण। २ अगुलित्राण।

अगुलिसगा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिसङ्गा] उँगलियों मे लिपट जाने वाली लपसी। यवागू [को०]।

अगुलिसज्ञा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिसज्ञा] उंगली का इशारा [को०]।

अगुलिसंदेश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिसन्देश] उँगली की मुद्रा से या उँगली चुटकाकर सकेत करना [को०]।

अगुलिसभूत--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिसम्भूत] नख [को०]।

अंगुलिस्फोटन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिस्फोटन] उँगलियों को फोड़ना या चुटकाना [को०]।

अंगुली--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुली] १. उँगली। उ०--अरुन परम अंगुली मनोहर।--तुलसी ग्रं०, पृ० ३६५। २. हाथ का अँगूठा (को०)। ३. पाँव की उँगली (को०)। ४. पाँव का अँगूठा (को०)। ५. अंगुल का परिमाण (को०)। ६. हाथी के अगले सूँड़ का उँगलीनुमा सिरा या भाग। ७. एक नदी का नाम।

अंगुलीक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलीक] अँगूठी [को०]।

अंगुलीपंचक--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलिपंचक' [को०]।

अंगुलीपर्व--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलिपर्व' [को०]।

अंगुलीमुख--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलीमुख] उँगली का सिरा या अगला भाग [को०]।

अंगुलीय--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलीय] अँगूठी। उ०--जैसे अंगुलीय में मरकत।--कुकुम, पृ० ६४।

अंगुलीयक--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलीय' [को०]।

अंगुलीसंभूत--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिसम्भूत] नख। नाखून [को०]।

अंगुल्यग्र--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुल्यग्र] उँगली का सिरा या अगला भाग [को०]।

अंगुल्यादेश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलि + आदेश] उँगली का इशारा। उँगली से अभिप्राय प्रगट करना। इशारा। संकेत।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अंगुल्यानिर्देश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुल्यानिर्देश] बदनामी। कलंक। लांछन। अंगुश्तनुमाई। बुराई। दोषारोपण।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अंगुश्त--संज्ञा पुं० [फा०] उँगली। अंगुली। उ०--अपने के सई माहवत अंगुश्त आह दस है।--कविता कौ०, भा०, ४, पृ० १६।

अंगुश्तनुमा--वि० [फा०] निंदनीय। बदनाम। कुख्यात [को०]।

क्रि० प्र०--करना--निंदा करना।--होना = निंदित होना। बदनाम होना।

अंगुश्तनुमाई--संज्ञा स्त्री० [फा०] बदनामी। कलंक। लांछन। दोषारोपण।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अंगुश्तरी--संज्ञा स्त्री० [फा०] अँगूठी। मुंदरी। मुद्रिका। उ०--जब सुलेमाँ पाय को अंगुश्तरी।--दक्खिनी०, पृ० १८४।

अंगुश्ताना--संज्ञा पुं० [फा०] १. उँगली पर पहनने की पीतल या लोहे की एक छोटी टोपी जिसमें छोटे छोटे गड्ढे बने रहते हैं। इसे दरजी लोग कपड़ा सीते समय एक उँगली में पहन लेते हैं जिससे सूई न चुभ जाय। इसी से वे सूई को उसका पिछला हिस्सा दबाकर आगे बढ़ाते हैं। २. सोने या चाँदी की एक प्रकार की मुंदरी जो हाथ के अँगूठे में पहनी जाती है। ३. उँगली की रक्षा के लिये उसमें पहनने का धातु, चमड़े, सींग आदि का खोल। अंगुलित्राण (को०)।

अंगुश्तेनर--संज्ञा पुं० [फा०] अँगूठा [को०]।

अंगुष्ट(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुष्ठ'। उ०--अंगुष्ट दस उच्चै सु भ्रम्।--हम्मीर रा०, पृ० ५।

अंगुष्ठ--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुष्ठ] १. हाथ या पैर की सबसे मोटी उँगली। अँगूठा। २. अँगूठे की चौड़ाई जो उँगली के पोरों की लंबाई के बराबर मानी जाती है [को०]।

अंगुष्ठमात्र--वि० [सं० अङ्गुष्ठमात्र] अँगूठे की लंबाई का या अँगूठे जैसा [को०]।

अंगुष्ठमात्रक--वि० [स्त्री० अङ्गुष्ठमात्रिका] दे० 'अंगुष्ठमात्र' [को०]।

अंगुष्ठा(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंगूठा'। उ०--जप दिहूँ दीनन अंगुष्ठा गाथा अधिक अपार।--कबीर सा०, पृ० ६६।

अंगुष्ठिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुष्ठिका] एक पौधे का नाम [को०]।

अंगुष्ठ्य--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुष्ठ्य] अँगूठे का नाखून [को०]।

अंगूठा--संज्ञा पुं० दे० 'अँगूठा'। उ०--उदयाचल पर दीपते प्राग, अंगूठे के बल हुए खड़े।--युगांत, पृ० ४१।

अंगूर[१]--संज्ञा पुं० [फा०] एक लता और उसके फल का नाम। द्राक्षा। दाख।

विशेष--यह भारत के उत्तरपश्चिम और पंजाब तथा कश्मीर आदि प्रदेशों में बहुत लगाया जाता है। हिमालय के पश्चिमोत्तर भागों में यह आपसे आप भी होता है। उत्तर प्रदेश के कुमाऊँ, जौनसार और देहरादून तथा आंध्र और महाराष्ट्र प्रदेश के अहमदनगर औरंगाबाद, पूना और नासिक आदि स्थानों में भी इसकी उपज होती है। बंगाल में पानी अधिक बरसने के कारण इसकी बेल वैसी नहीं बढ़ सकती। बिहार प्रदेश में तिरहुत और दानापुर में इसकी कुछ टट्टियाँ तैयार की जाती हैं।

अंगूर की बेल होती है जो टट्टियों पर फैलती है। इसकी पत्तियाँ कुम्हड़े या नेनुए की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं। इसके फल हरे और बैंगनी रंग के तथा छोटे, बड़े, गोल और लंबे कई आकार के होते हैं। कोई नीम के फल की तरह लंबोतरे और कोई मकोय की तरह गोल होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। अंगूर की मिठास तो प्रसिद्ध ही है। भारतवासी इसे 'द्राक्षा' और 'मृद्वीका' के नाम से जानते हैं। चरक और सुश्रुत में इसका उल्लेख है। पर भारतवर्ष में इसकी खेती कम होती थी। फल प्राय बाहर से ही मँगाए जाते थे। मुसलमान बादशाहों के समय अंगूर की ओर अधिक ध्यान दिया गया। आजकल हिंदुस्तान में सबसे अधिक अंगूर काश्मीर में होते हैं जहाँ से पहाड़ के नहरों में लगते हैं। वहाँ इसकी शराब बनती है और सिरका भी बनता है। महाराष्ट्र देश में जो अंगूर लगाए जाते हैं उनके कई भेद हैं जैसे--भावी, फकीरी, हबशी, साहबी आदि। अफगानिस्तान, बिलूचिस्तान और सिंध में अंगूर बहुत अधिक और कई प्रकार के होते हैं--जैसे, हैटा, किशमिशी, कलमक, हुसैनी इत्यादि। किशमिशी में बीज नहीं होता। अफगानिस्तान के लोग अंगूर को चूना और सज्जीखार के साथ गरम पानी में डुबाकर 'आबजोश' और किशमिशी को धूप में सुखाकर किशमिश बनाते हैं।

गुणदोष, शास्त्रों में स्वाद में मधुर है, मुरझा हुआ अंगूर है। वह दस्तावर है और ज्वर और प्यास को कम करता है। खाँसी के लिये भी उपयोगी है। 'ब्रांडी' आदि कई प्रकार

वैदिक ओषधियाँ इससे तैयार होती हैं। हकीमों में इसका बहुत व्यवहार है।

अगूर का मडवा या अगूर की टट्टी = (१) अगूर की बेल के चढ़ने और फैलने के लिये बाँस की खपचियों का बना हुआ मडप। (२) एक प्रकार की आतिशबाजी जिससे अगूर के गुच्छे के समान चिनगारियाँ निकलती हैं।

मुहा०—अगूर खट्टे होना = प्रयत्न करने पर भी प्राप्त न होनेवाली अच्छी चीज को बुरा बताना। उ०—अत में यह कह चलती हुई अरे ये खट्टे हैं अगूर।—खिलौना १९२७।

अगूर[1]—सज्ञा पुं० मास के छोटे छोटे लाल दाने जो घाव भरते समय दिखाई पडते हैं। दे० 'अकुर'[2]।

मुहा०—अगूर आना = घाव के ऊपर चमडे की पतली झिल्ली पडना। घाव पुरना। घाव भरना। अगूर तडकना = भरते हुए घाव पर बधी हुई मास की झिल्ली का फट जाना। अगूर फटना = दे० 'अगूर तडकना'। अगूर बँधना = घाव के ऊपर मास की नई झिल्ली चढना। घाव भरना। अगूर-भरना = दे० 'अगूर बँधना'।

अगूर[3]—सज्ञा पुं० [सं० अकुर] अकुर। अँखुआ।

अगूरशेफा—सज्ञा पुं० [फा०] एक जडी जो हिमालय पर शिमले से लेकर काश्मीर तक होती है। इसे सग अगूर, सूची, जवराज तथा गिरबूटी कहते हैं। इसकी जड और पत्तियाँ दमे और वायु के दर्द को दूर करती हैं।

अगूरी[1]—वि० [फा०] १. अगूर से बना हुआ। २. अगूरी रग का।

अगूरी[2]—सज्ञा पुं० कपडा रँगने का एक हरा रग जो नील और टेसू के फूल को मिलाकर बनाया जाता है।

अगूरी[3]—सज्ञा स्त्री० [अगूर की शराब का सक्षिप्त रूप] शराब।

अगूरी बेल—सज्ञा स्त्री० [फा० अगूरी + हिं० बेल] कपडे आदि पर काढी जानेवाली या छापी जानेवाली अगूर की लता की आकृति।

अगूष—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गूष] १ घूस नाम का जतु। २ बाण। तीर (को०)।

अगोंच—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गोञ्च] अगोछा (को०)।

अगोचन—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गोचन] दे० 'अगोंच' (को०)।

अगोछना(पु)—क्रि० स० दे० 'अँगोछना'। उ०—करि मजन अगोछि तन धूप वासि बहु अग।—पृ० रा०, १४।५३।

अगोट—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग + वर्त्म, प्रा० वट्ट] अग का गठन। शरीर की बनावट।

अगोटी—सज्ञा स्त्री० दे० 'अगोट'।

अग्य—वि० [सं० अङ्ग्य] अग का। अग सबधी (को०)।

अग्रेज—सज्ञा पुं० दे० 'अँगरेज'।

अग्रेजियत—सज्ञा स्त्री० [हिं० अग्रेज + फा० इयत (प्रत्य०)] अग्रेजो अथवा अग्रेजी का प्रभाव। अग्रेजीपन। उ०—अग्रेजियत ने हमारा दिमाग ऐसा बिगाड दिया है।—प्रेमघन०, भा० १, (भू०)।

अग्रेजी—सज्ञा स्त्री० दे० 'अँगरेजी'। उ०—अग्रेजी पढिके जदपि सब गुन होत प्रवीन। पै निज भाषा ज्ञान बिनु रहत हीन के हीन।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७३२।

अघ—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घ] अघ। पाप (को०)।

अघस—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घस्] पाप। पातक। अपराध।

अघारि—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घारि] १ पाप का शत्रु। २. सोम के रक्षक का नाम। ३ दीप्तिशील ज्योति से युक्त (को०)।

अघ्रि—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रि] १ पैर। चरण। पाँव। २ पेड की जड। मूल (को०)। ३ छद का चतुर्थ चरण (को०)।

अघ्रिकवच—सज्ञा पुं० [अङ्घ्रिकवच] जूता। उपानह (को०)।

अघ्रिज—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रिज] क्षुद्र। निम्न (को०)।

अघ्रिनाम—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रिनाम] १ वृक्ष की जड। २ पैर। पाँव (को०)।

अघ्रिनामक—सज्ञा पुं० दे० 'अङ्घ्रिनाम' (को०)।

अघ्रिप—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रिप] पादप। वृक्ष। पेड।

अघ्रिपर्णिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्घ्रिपर्णिका] सिंहपुच्छी नाम की लता (को०)।

अघ्रिपर्णी—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्घ्रिपर्णी] दे० अङ्घ्रिपर्णिका' (को०)।

अघ्रिपान—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रिपान] पैर का अँगूठा चूसने का कार्य (को०)।

अङ्घ्रिवल्लिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्घ्रिवल्लिका] सिंहपुच्छी लता। अघ्रिपर्णी (को०)।

अघ्रिवल्ली—सज्ञा स्त्री० दे० 'अघ्रिवल्लिका' (को०)।

अघ्रिस्कध—सज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रिस्कन्ध] टखना। गुल्फ (को०)।

अच[1]—वि० [सं० अञ्च] घुँघराला। घूमा हुआ। [को०]।

विशेष—केवल 'रोमाच' में प्राप्त तथा समास का अतिम शब्द।

अच[2]—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्चि, प्रा० अच्चि, अच्च, अप० अच] १ स्फुलिंग। चिनगारी। उ०—तन सट्ट सटि मुकति बोल भारथ्थी बोलै। लोह अच ढड्डत पत्त तरवर जिमि डोलै।—पृ० रा०, २७।२४। २. दे० 'आँच'। उ०—जा तें अतर गुरुमति आई। तौं कौं अच न लागै काई।—प्राण०, पृ० ३।

अचति—सज्ञा पुं० [सं० अञ्चति] १ वायु। २. अग्नि। ३ वह व्यक्ति जो गतिशील हो [को०]।

अचती—सज्ञा पुं० दे० 'अचति' [को०]।

अचन—सज्ञा पुं० [सं० अञ्चन] झुकाने या घुमाने की स्थिति अथवा कार्य।

अचना(पु)—क्रि० स० दे० 'ऐंचना'। उ०—(क) गहै इत उत्त सु गिद्धनि गिद्ध। मरालिय अचि सिवाल अतिद्ध।—पृ० रा०, ६६।१४०३। (ख) चौतेगी सहबाज बान अरि प्रान सु अचै।—पृ० रा०, २७।४३।

अचर(पु)—सज्ञा पुं० दे० 'अचल'। उ०—कौन सिरासी दीठि लगाई लै लै अचर झारै।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ९३४। २. दुपट्टा। उपरना। उ०—राजन अचर छोर करि जैत प्रससन काज। दिल्ली घर अग्गर इहै जुज्झ परयौ घर आज।—पृ० रा०, ६६।१२४७।

अचल—सज्ञा पुं० [सं०] साडी या ओढनी का वह भाग जो सिर अथवा कधे पर से होता हुआ सामने छाती पर फैला हुआ हो। साडी का छोर। आँचल। पल्ला। छोर। अँचरा। उ०—बहुरि बदन बिधु अचल ढाँकी।—मानस, २।११७। २ दुपट्टा। उपरना। उ०—लोचन सजल प्रेम पुलकित तन गर अचल कर माल।—सूर०, १।१५६। ३ किसी प्रदेश या स्थान आदि का एक भाग। उ०—वन गुहा- कुज मरु अचल

मे हूँ खोज रहा अपना विकास ।—कामायनी पृ० १५८ । ४ किनारा । तट । ५ छोर । किनारा । ६ कोर, जैसे 'नयनाचल' मे अचल । ७ तलहटी । घाटी । उ०—उसकी वह जलन भयानक फैली गिरि अचल मे फिर ।—कामायनी, पृ० २८१ ।

मुहा०—अचल जोरना = दीनता व्यक्त करना उ०-अचल जोरे करत बीनती मिलिबे को सब दासी ।—सूर० (शब्द०) । अचल देना = आंचल की ओट करना । लज्जा व्यक्त करना । परदा करना । उ०—पीतांबर वह सिर से ओढत अचल दै मुसकात । —सूर०, १०।३३८ । अचल पसारना = दे० 'अंचरा पसारना' । उ०—पुर नारि सकल पसारि अचल विधिहि वचन सुनावही । —मानस, १।३११ । अचल (मे) गाँठ देना = याद रखने के लिये आंचल मे ग्रथि देना । बराबर स्मरण रखना । कभी न भूलना । उ०—अचल गाँठि दई दुख भाज्यो, सुख जु आनि उर पैठ्यो ।—सूर०, ६।१६४ । अचल रोपना = दीनता और विनय प्रदर्शन के साथ प्रार्थना करना । अंचरा पसारकर याचना करना । निहोरा करना । उ०—चरन नाइ सिर अचल रोपा ।—मानस, ६।६ । अचल लेना = दे० 'अचल देना' । उ०—रुद्र को देखि कै मोहिनी लाज करि लियो अचल रुद्र तब अधिक मोह्यो ।—सूर०, ८।१० । अचल भरना = (१) मगलाशसा के साथ वधू या पुत्री के आंचल में अन्न, दूब, हल्दी आदि डालना । एक मगल कृत्य । (२) कामना पूरी होने का आशीर्वाद । (३) गोद भरना ।

अचला(पु)—सञ्ञा स्त्री० दे० 'अंचरा' । उ०—मन बधे अचला मिसि । —वेलि, दू० १५८ ।

अचित(पु)—वि० [सं० अचिन्त्य, प्रा० अचित] चिंतन मे परे । अचित्य । उ०—अचित पुरुष को मगल हसा गावै हो ।—धर्म० श०, पृ० ५४ ।

अचित—वि० [सं० अञ्चित] १ पूजित । आराधित । समानित । २ विशिष्ट । प्रधान । ३ भुका हुआ । घुमावदार । ४ धनुषाकार । ५ सुदर । ६ गत । गया हुआ । ७ ग्रथित । गूंथा हुआ [को०] ।

अचितपत्न—सञ्ञा पुं० [सं० अञ्चितपत्र] टेढे दल वाला कमल [को०] ।

अचितपत्राक्ष—वि० [सं० अञ्चितपत्राक्ष] कमल की तरह नेत्रवाला [को०] ।

अचितभ्रू—वि० स्त्री० [सं० अञ्चितभ्रू] वक्र भौहोवाली या धनुषाकार भौहोवाली [को०] ।

अचितलागूल—वि० [सं० अञ्चितलाङ्गूल] टेढी दुमवाला (जैसे बदर) [को०] ।

अची(पु)—सञ्ञा स्त्री० दे० 'अच' । उ०—जिने लोहची लग्गि अची न कच्च ।—पृ० रा०, २४।२६१ ।

अचुता(पु)—वि० [सं० अच्युत] जो विचलित न हो । अडिग । उ०—पारब्रह्म बारे एह लटका अचुता चुत मे लूटा ।—सत दरिया, पृ० ११३ ।

अचुर(पु)—सञ्ञा पुं० [सं० अनुचर] सेवक । दास । उ०—फुनवारी मो कीजे वासा । अचुर भेज देहि तेहि पासा ।—इद्रा०, पृ० १२७ ।

अच्छ्या(पु)†—सञ्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] कामना । इच्छा । उ०—मन अच्छ्या पूरन भई सबकी मिटयो री मदन दुख दद ।—ब्रजनिधि ग्र०, पृ० १६६ ।

अछ(पु)—सञ्ञा स्त्री० [सं० अक्ष] आंख ।—उ० इछिनि अछ वखानि कै मोहि सुनावहु एह ।—पृ० रा०, १४।१३७ ।

अछर—सञ्ञा पुं० [सं० अक्षर] १ मुंह के भीतर का एक रोग जिसमे काँटे से उभर आते हैं । २ अक्षर । ३. मत्र । टोना । जादू ।

मुहा०—अछर मारना = जादू करना । टोना करना । मत्रप्रयोग करना । उ०—मेरे अछर मारि परान लिए, सुध लाग रही भइ बावरिया ।—गीत (शब्द०) ।

अछि(पु)—सञ्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अच्छि] आंख । नेत्र । उ०—इच्छइ जु अछि बकं करन, सका लज्ज बसकरी ।—पृ० रा०, ५८।१२३ ।

अछया—सञ्ञा पुं० [सं० इच्छा, गु० इछा] लोभ । लालच । इच्छा । कामना । लालसा ।—डिं० ।

अज¹—सञ्ञा पुं० [सं० अब्ज, प्रा० * अज्ज, > अप० * अज] कमल । कमल का फूल ।—अनेकार्थ० ।

अज²—सञ्ञा पुं० [स० अञ्जस] क्रोध । उ०—मजु काम सब रूप, अज गजवध महाबल ।—पृ० रा०, १।२३० ।

अजन¹(पु)—सञ्ञा पुं० [सं० अञ्जन] [क्रि० अंजवाना, अंजाना] १ श्यामता लाने या रोग दूर करने के निमित्त आंख की पलको के किनारे पर लगाने की वस्तु । काजल । आंजन । उ०—अजन रजन हूँ बिना खजन गजन नैन ।—बिहारी० र०, ४६ । २. सुरमा । उ०—अजन आठ तिलक आभूषण सचि आयुधि बड छोट ।—सा० लहरी, (उ०, १६) ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—लगाना ।—सारना ।

३. सोलह शृगारो मे एक । ४. स्याही । रोशनाई । ५ रात । रात्रि । उ०—उदित अजन पै अनोखी देव अगिन जराय ।—सा० लहरी, ३२ । ६ सिद्धाजन जिसके लगाने से कहा जाता है कि जमीन मे गडे खजाने आदि दीख पडते हैं । उ०—यथा सुअजन अजि दृग साधक सिद्ध सुजान ।—मानस, १ ।१।७ लेप । उ०—निरजन बने नयन अजन ।—परिमल, पृ० १५८ । ८ माया । ९ अलकारो मे प्रयुक्त व्यजना वृत्ति का एक भेद जिसमे कई अर्थोवाले किसी शब्द का प्रयोग किसी विशेष अर्थ मे हो और वह अर्थ दूसरे शब्द या पद के अर्थ से स्पष्ट हो । अभिधामूलक व्यजना वृत्ति । १० पश्चिम दिशा का दिग्गज । ११ एक पर्वत का नाम । कृष्णाजनगिरि । सुलेमान पवत शृखला । १२. कद्रु से उत्पन्न एक सर्प का नाम । १३ छिपकली । बिस्तुइया । १४ अग्नि (को०) । १५. पश्चिम दिशा (को०) । १६. एक देश का नाम । १७ एक जाति का बगला जिसे नटी भी कहते हैं । आंजन । १८. एक पेड जो मध्य प्रदेश, बुदेलखड, मद्रास, मैसूर आदि मे बहुत होता है । इसकी लकडी श्यामता लिए हुए लाल रग की और बडी मजबूत होती है । यह पुलो और मकानो मे लगती है । इससे अन्य सामान भी बनते हैं । १९ एक पार्थिव खनिज द्रव्य जिसका सुरमा बनता है (को०) । २० आंख मे अजन लगाने का कार्य (को०) ।

अजन²—वि० काला । सुरमई । उ०—उडत फूल उडगन नभ अतर अजन घटा घनी ।—सूर० २।२८ ।

यौ०—अजनकेश । अजनकेशी । अजनशलाका । अजनसार । अजनहारी ।

अजन³—संज्ञा पुं० [अ० एंजिन दे० 'इंजन'। उ०—जो जान देना हो अजन से कट मरो एक दिन।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६३२।

अजन⁴—संज्ञा पुं० [सं० अर्जन, प्रा० अज्जण] उपार्जन। कमाना।

अजनक—संज्ञा पुं० [अञ्जनक] सुरमा [को०]।

अजनकेश—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जनकेश] दीपक। दीया। चिराग।

अजनकेशी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनकेशी] नख नामक सुगंधद्रव्य जिसके जलाने से अच्छी महक उठती है। हट्टविलासिनी। नखी।

अजनकेशी²—वि० स्त्री० अजन सदृश काले बालवाली स्त्री [को०]।

अजनगिरि—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जनगिरि] नीलगिरि पर्वत।

अजनता—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनता] पहचान [को०]।

अजननामिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जननामिका] पलकों पर होनेवाली फुसी। बिलनी।

अजनशलाका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनशलाका] आँजन या सुरमा लगाने के लिये जस्ते या सीसे की सलाई। सुरमचू।

अजनसार—वि० [सं० अजन + हिं० सारना] सुरमा लगा हुआ। अजन युक्त। आंजा हुआ। जिसमे अजन सारा या लगाया गया हो। उ०—एक तो नैना मद भरे दूजे अजनसार। ए बौरी कोउ देत है मतवारे हथियार (शब्द०)।

अंजनहारी—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जन + कारिन्] १ आँख की पलक के किनारे की फुसी। बिलनी। गुहाजनी। गुहाई। अजना। एक कीडा। भृगी। २ एक प्रकार का उडनेवाला कीडा। भृगी नामक एक कीडा।

विशेष—इसे कुम्हारी या बिलनी भी कहते हैं। यह प्राय दीवार के कोनों पर गीली मिट्टी से अपना घर बनाता है। कहते हैं, इस मिट्टी को घिसकर लगाने से आँख की घिलनी अच्छी हो जाती है। इसी कीडे के विषय मे यह प्रसिद्ध है कि वह दूसरे कीडों को पकडकर अपने समान कर लेता है, जैसे, भइ गति कीट भृग की नाईं। जहँ तहँ मैं देखौं रघुराई।—तुलसी० (शब्द०)।

अजना¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जना] १ कुजर नामक बदर की पुत्री और केसरी नामक बदर की स्त्री जिसके गर्भ से हनुमान उत्पन्न हुए थे। हनुमान की माता। कहीं कहीं अजना को गौतम की पुत्री भी लिखा है। २ आँख की पलक के किनारे पर होनेवाली एक लाल छोटी फुसी जिसमे जलन और सूई चुभने के समान पीडा होती है। बिलनी। गुहाजनी। ३. दो रग की छिपकली। ४ उत्तर पूर्व के दिग्गज सुप्रतीक की स्त्री (को०)।

अजना²—संज्ञा पुं० १. एक जाति का मोटा धान जो पहाडी प्रदेशो मे होता है। २. एक पहाड।

अजना³(पु)—क्रि० स० [सं० अञ्जन] दे० 'आँजना। उ०—(क) कालिंदी न्हावहि न नयन अजै न मृगमद।—पृ० रा०, २।३४६। (ख) जथा सुअजन अजि दृग साधक सिद्ध सुजान।—मानस, १।१।

अजनागिरि—संज्ञा पुं० दे० 'अजनगिरि' [को०]।

अजनाद्रि—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जनाद्रि] अजन नामक पर्वत जिसका उल्लेख संस्कृत ग्रथो मे है। यह पश्चिम दिशा में माना जाता है।

अजनाधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनाधिका] एक प्रकार की छिपकली [को०]।

अजनानदन—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जनानदन] अजना के पुत्र। हनुमान।

अजनावती—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनावती] १ उत्तरपूर्व के दिग्गज की स्त्री। २ कालाजन नामक एक वृक्ष [को०]।

अजनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनिका] १ एक प्रकार की छिपकली। २ छोटा चूहिया। ३ दे० 'अजनावती' [को०]।

अजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनी] १ हनुमान की माता अजना। उ०—दूत राम राय को सपूत पूत पौन को तू, अजनी को नदन प्रताप भूरि भानु सो।—तुलसी ग्र०, पृ० २४८। २ माया। ३ वह स्त्री जिसने चदनादि का लेप लगाया हो। ४ एक काष्ठौषधि। कुटकी। ५ कालाजन नामक वृक्ष (को०)। ६ आँख की पलक की फुसी। बिलनी।

अजनीकुमार—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जनी + कुमार] अजनी के पुत्र। हनुमान। उ०—बिगरी सवार अजनीकुमार कीजे मोंहि जैसे होत आए हनुमान के निवाजे हैं।—तुलसी० ग्र०, पृ० २५१।

अजवार—संज्ञा पुं० [फा०] मध्य एशिया की फरात नदी के किनारो पर होनेवाला एक पौधा जिसकी जड का काढा और शर्बत हकीम लोग सर्दी और कफ के रोगो मे एव रक्तस्राव बद करने के लिये देते हैं। इद्राणी।

अजर(पु)—वि० [सं० उज्ज्वल]। उज्ज्वल। उजला उ०—सित अजर रजनीय पुरनि गध्रव पग धारिय।—पृ० रा०, १।३४८।

अजरपजर—संज्ञा पुं० [अनुध्व० सं० पञ्जर] देह का बद। शरीर का जोड। ठठरी। पसली। हड्डी पसली।

मुहा०—अजर पजर ढीला होना = शरीर के जोडो का उखडना या हिल जाना। देह का बद बद टूटना। शिथिल होना। लस्त होना। अजर पजर तोड देना = अग भग करके बेकाम कर देना।

अजरपजर—क्रि० वि० अगल बगल। पार्श्व मे।

अजरि—संज्ञा स्त्री० दे० 'अजलि'।

अजल¹—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलि] दोनो हथेलियो को मिलाकर बनाया हुआ सपुट या गड्ढा जिसमे पानी या और कोई वस्तु भर सकते हैं। उ०—अजल भर आटा साईं का। बेटा जीवै माई का।—(फकीरो की बोली)।

अजल²—संज्ञा स्त्री० दे० 'अजली'।

अजल(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अन्नजल'। उ०—जब अजल मुँह सोवा समुद न सँवरा जागि। अब धरि काढ मच्छ जिमि पानी काढत आगि।—जायसी (शब्द०)

अजला—संज्ञा पुं० दे० अजल।

अजलि—संज्ञा स्त्री० दे० 'अजली'।

अंजलिक—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलिक] अर्जुन के बाणो मे से एक का नाम [को०]

अजलिकर्म—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलिकर्म] जुडे हाथो से नमस्कार करने का कार्य [को०]।

अजलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जलिका] १. एक प्रकार की छोटी चुहिया। २. लजाधुर। छुईमुई [को०]।

अजलिकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जलिकारिका] १ नमस्कार करने की मुद्रावाली मिट्टी की छोटी मूर्ति (को०)। २ लजाधुर लता।

अजलिगत—वि० [सं० अञ्जलि+गत] १ अजली मे आया हुआ। हाथ मे पडा हुआ। दोनों हथेलियो पर रखा हुआ। उ०—अजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगध-कर दोउ।—मानस, १।३।

अजलिपुट—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलिपुट] दोनो हथेलियो को मिलाने से बना हुआ खाली स्थान जिसमे पानी वा कोई और वस्तु भर सकते हैं। अँजली।

अजलिबधन—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलिबन्धन] माथे तक उठाई हुई अजलि से प्रणमन [को०]।

अजलिबद्ध—वि० [सं० अञ्जलिबद्ध] हाथ जोडे हुए।

अजली—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जली] १ दोनो हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ सपुट। दोनों हथेलियो का मिलाने से बना हुआ खाली स्थान या गड्ढा जिसमे पानी वा और कोई वस्तु भर सकते हैं। उ०—निज विस्तार समेटि अजली आनि समानी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० २१७। २ उतनी वस्तु जितनी एक अजलि मे आए। प्रस्थ। कुडव। दो प्रसृति। एक नाप जो बीस मागधी तोले या सोलह व्यावहारिक तोले अथवा एक पाव के बराबर होती है। दो पसर। ३ अन्न की राशि मे से तौलते समय दोनों हथेलियो से दान के लिये निकाला हुआ अन्न।

अजस्—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जस्] मलहम [को०]।

अजस—वि० [सं० अञ्जस] १. सीधा। सरल। २ निश्छल। ईमानदार [को०]।

अजसा—क्रि० वि० [सं० अञ्जसा] १ शीघ्रता से। तुरत। २ ठीक ठीक। यथावत्। ३ सीधे मे। साक्षात् [को०]।

अजसायन—वि० [सं० अञ्जसायन] सीधी गतिवाला। ऋजुगामी [को०]।

अजहा†—वि० [हि० अनाज+हा (प्रत्य०)] (स्त्री० अजही) अनाज का। अन्न के मेल मे बना हुआ।

अजही†[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह बाजार जहाँ अन्न बिकता है। अनाज की मडी।

अजही†[2]—वि० अनाज की। अनाज से बनी हुई।

अजाम—संज्ञा पुं० [फा०] १ समाप्ति। पूर्ति। अत। आखीर। उ०—अजाम की मजिल है बडी देखिए क्या हो।—कविता कौ०, भा ४, पृ० ५७५। २ परिणाम। फल। नतीजा।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पर पहुँचना या पहुँचाना = पूरा करना। समाप्त करना। निपटाना। प्रबध करना। उ०—काम क्या अजाम देगा दूसरा। जब नहीं सकते हमी अजाम दे।—चोखे०, पृ० ६६।

अजारना(पु)—क्रि० स० [सं० अर्जन] कमाना। सचित करना।

अजि[1]—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जि] १ प्रेरक। भेजनेवाला। २ आदेशदाता। ३ त्रिपुड [को०]।

अजि[2]—संज्ञा स्त्री० १ अगराग। २ रग। ३ जननेंद्रिय [को०]।

अंजिक—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जिक] सूर्य। रवि [को०]।

अजित[1]—वि० [सं० अञ्जित] १ अजन लगाए हुए। अजनसार। आँजे हुए। उ०—रज रजित अजित नयन घूँघट डोलत भमि।—पृ० रा०, १।७१८।

अजित[2]—वि० [सं० अञ्चित] पूजित। आराधित (डिं०)।

अजिवार—संज्ञा पुं० दे० 'अजवार'

अजिव—वि० [सं० अञ्जिव] पिच्छिल। चिकना। फिसलाहट [को०]।

अजिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जिष्ठ] सूर्य [को०]।

अंजिष्णु—संज्ञा पुं० दे० 'अजिष्ठ'।

अजिसना(पु)—क्रि० अ० [सं० अञ्जसा] शीघ्रता करना। उ०—अजिसिय हँसिय अतर गसिय मसिय सह उद्धर धँसिय।—पृ० रा०, ६७।३५७।

अजिहिषा—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जिहिषा] जाने की इच्छा [को०]।

अजी—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जी] १ पीसने का एक यत्र। २ आशिष आशीर्वाद [को०]।

अंजीर[1]—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जीर, फा० अजीर] एक प्रकार का पेड तथा उसका फल।

विशेष—यह गूलर के समान होता है और खाने मे मीठा होता है। यह भारतवर्ष मे बहुत जगह होता है। पर अफगानिस्तान, बिलूचिस्तान और काश्मीर इसके मुख्य स्थान हैं। इसके लगाने के लिये कुछ चूना लगी हुई मिट्टी चाहिए। लकडी इसकी पीली होती है। इसके कलम फागुन मे काटकर दूर दूर क्यारियो मे लगाए जाते हैं। क्यारियाँ पानी से खूब तर रहनी चाहिएँ। लगाने के दो ही तीन वर्ष बाद इसका पेड फलने लगता है और १४ या १५ वर्ष बराबर फल देता रहता है। यह वर्ष मे दो बार फलता है। एक बार जेठ-असाढ मे और फिर फाल्गुन मे। माला मे गुथे हुए इसके सुखाए हुए फल अफगानिस्तान आदि से हिंदुस्तान मे बहुत आते हैं। सुखाते समय रग बढाने और छिलके को नरम करने के लिये या तो गधक की धूनी देते हैं अथवा नमक और शोरा मिले हुए गरम पानी मे फलो को डुबाते हैं। भारतवर्ष मे पूना के पास खेड-शिवापुर नामक गाँव के अजीर सबसे अच्छे होते हैं। पर अफगानिस्तान और फारस के अजीर हिंदुस्तानी अजीरो से उत्तम होते हैं। सुखाया हुआ अजीर का फल स्निग्ध, पुष्टिकर और रेचक होता है। यह दो तरह का होता है, एक जो पकाने पर लाल होता है और दूसरा काला।

अजीर[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अजिर] आँगन। उ०—ऐन अजीर एक करु मेला।—सत दरिया०, पृ० ३।

अजु(पु)—वि० [सं० ऋजु, प्रा० अजु] सरल। स्पष्ट। उ०—पहुपजलि अजु सुरग बन।—पृ० रा०, २।३४८।

अजुवार—संज्ञा पुं० दे० 'अजवार' (को०)।

अजुमन—संज्ञा पुं० [फा०] सभा। समाज। मजलिस। मडली।

अजुल(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अजली'। उ०—मायर मध्य सुठाम करन त्रिभुवन तन अजुल।—पृ० रा०, २।६२

अजुलि—संज्ञा स्त्री० दे० 'अजलि'। उ०—मजुल अजुलि भरि भरि पिय कौं तिय जल मेलत।—नद० ग्र०, पृ० १८।

मुहा०—अजुलि करना = प्रणाम करना। उ०—दरबत अजुलि करिय मन आनद सधीर।—पृ० रा०, ६।३८। अंजुलि जोरना = हाथ

जोड़ना। उ०—अंजुलि जोरि करात करात। कहन लगे विप्रनि सौं बात।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०१।

अंजुली—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंजली'। उ०—अंजुली जल घटत जैसें तैसें हीं तन यह गयों।—सूर०, १०।३८६५।

मुहा०—अंजुली करना = आचमन करना। उ०—हरि चरन अब अंजुली कीन।—पृ० रा०, १।४३६।

अंजू—संज्ञा पुं० [सं० अश्रु] आँसू। उ०—समदर एक आँख के अंजू में।—दक्खिनी०, पृ० १६६।

अंझा—संज्ञा पुं० [सं० अनध्याय प्रा० अणज्झा, अणज्झाअ] नागा। तातील। छुट्टी। काम न करने का दिन। उ०—(क) मन को ममूमि मनभावन सो रुसि सखी दासिन को दूसि रही रंग भूकि झंझा सी। सोवै, सुख मोचै, सुक सारिका लचावै चोचै न रुचिर बानि मानि रहै अंझा सी।—देव (शब्द०)। (ख) अंझा सी दिन की भई सभा सी सकल दिसि गगन लगन रही गरद छवाय है।—भूषण (शब्द०)। (ग) काम मे चार दिन का अंझा हो गया (शब्द०)।

अंझू—संज्ञा पुं० दे० 'अंजू'।—दक्खिनी०, पृ० ७६।

अंटसंट—वि० दे० 'अट्ट सट्ट'।

अंटा—संज्ञा पुं० [सं० अण्ड, प्रा० अडअ] १ बडी गोली।

विशेष—इसका प्रयोग अफीम और भंग के संबंध मे अधिक होता है। जैसे अफीम का अंटा चढा लिया, अब क्या है?

२ सूत वा रेशम का लच्छा। ३ बडी कौडी। ४ एक खेल जिसे अँगरेज लोग हाथीदाँत की गोलियो से मेज पर खेला करते हैं। बिलियर्ड।

यौ०—अंटागटगुड। अंटाघर। अंटाचित। अंटाबंधू।

अंटागुडगुड—वि० [हिं० अंटा + गुडगुड] नशे मे चूर। संज्ञाशून्य। बेहोश। बेसुध। अचेत।

क्रि० प्र०—होना।

अंटाघर—संज्ञा पुं० [हिं० अंटा + घर] वह कमरा जिसमे गोली का खेल खेला जाय। इस खेल को अँगरेजी मे बिलियर्ड कहते हैं।

अंटाचित—क्रि० वि० [हिं० अंटा + चित] पीठ के बल। सीधा। पीठ जमीन पर किए हुए। पट और औंधा का उलटा।

क्रि० प्र०—गिरना। पडना।—होना।

मुहा०—अंटाचित होना = (१) स्तंभित होना। अवाक् होना। (२) पीठ के बल गिर पडना, जैसे, इस खबर को सुनते ही वह अंटाचित हो गया (शब्द०)। (३) बेकाम होना। बरबाद होना। किसी काम का न रह जाना, जैसे, व्यापार मे उसे ऐसा घाटा आया कि वह अंटाचित हो गया (शब्द०)। ४ नशे मे बेसुध होना। बेखबर होना। अचेत होना। चूर होना। उ०—वह भंग पीते ही अंटाचित हो गया (शब्द०)।

अंटाधार—संज्ञा पुं० दे० 'बंटाधार' उ०—'फैशन ने तो बिल और टेटल के इतने गोले मारे कि अंटाधार कर दिया और सिफारिश ने भी खूब ही छकाया।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४७६।

अंटाबंधू—संज्ञा पुं० [सं० अण्ट + बन्धक] जुए मे फेंकनेवाली कौडी जिसे जुआरी सब कुछ हारने पर दाँव पर रख देता है।

अंटी—संज्ञा पुं० [सं० अण्ट] [क्रि० अँटियाना] १ उँगलियो के बीच का स्थान। अंतर। घाई। २ धोती की वह लपेट जो कमर पर रहती है और जिसमे पैसा भी रखते हैं। गाँठ। मुर्री।

मुहा०—अंटी करना—किसी का माल उडा लेना। धोखा देकर कोई वस्तु ले लेना। अंटी चढाना = अपने मतलब पर लाना। वश मे करना। अपने दाँव पर लाना। अंटी पर चढाना = अपने दाँव मे लाना। अंटी मारना = (१) जुवा खेलते समय कौडी को उँगलियो के बीच मे छिपा लेना (२) आँख बचाकर धीरे से दूसरे की वस्तु खिसका लेना। धोखा देकर कोई चीज उडा लेना। (३) तराजू की डाँडी को इस ढंग से पकडना कि तौल मे चीज कम चढे। कम तौलना। डाँडी मारना। अंटी रखना = छिपा रखना। दबा रखना। प्रगट न होने देना।

३ एक दूसरे पर चढी हुई एक ही हाथ की दो उँगलियाँ। तर्जनी के ऊपर मध्यमा को चढाकर बनाई हुई मुद्रा। डंडैया। डडोइया।

विशेष—इसका चलन लडको मे है। जब कोई लडका किसी अपवित्र वस्तु वा अत्यज से छू जाता है तब उसके साथ के और लडके उँगली पर उँगली चढा लेते हैं जिसमे यदि वह उन्हे छू ले तो छूत न लगे और कहते है कि 'दो दाल की अंटी काला वाला छू ले'।

क्रि० प्र०—चढाना।—बाँधना। लगाना।

४ लच्छा। अट्टी। सूत वा रेशम की लच्छी।

क्रि० प्र०—करना = अटेरना। लछियाना। लपेटना। लच्छ बाँधना।

५ अटेरन। वह लकडी की वस्तु जिसपर सूत लपेटते हैं। ६ विरोध। बिगाड। लडाई। शरारत। ७ कान मे पहनने की छोटी बाली जिसे धोबी, काछी, कहार आदि नीच जाति के मर्द पहनते हैं। मुरकी। छोटी बाली। ८ जेब। खलीता (को०)।

अंटीबाज—वि० [हिं० अंटी + फा० बाज] धूर्त। चालाक (को०)।

अंठ—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्ठ = गमन] गति। चाल। उ०—घवै अंठ भारी —पृ० रा०, ३१। ११२।

अंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० अस्थि, प्रा० अट्ठि, अंठि] १ चीयाँ। गुठली। बीज। २ गाँठ। गिरह। ३ नवोढा के निकलते हुए स्तन। अँठली। ४ गिलटी। कडापन।

अंठुल(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अंठी] खुर। सुम। उ०—है अंठुल दब पग बीर अवरत्त हलाहस।—पृ० रा०, ६१।२१४५।

अंड—संज्ञा पुं० [सं० अण्ड] १ अंडा। उ०—अललपच्छ वा अंड ज्यों उलटि चले असमान।—रतन०, पृ० ६१। २ 'अंडकोश'। फोता। ३ ब्रह्मांड। लोकपिंड। लोकमंडल। विश्व। उ०—जिअन मरन फल दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जस छावा।—मानस, २।१५६। ४ वीर्य। शुक्र। ५ कस्तूरी का नाफा। मृगनाभि। नाफा। ६ पंच आवरण। दे० 'कोश'। ७ कामदेव। उ०—अति प्रचंड यह अंड महाभट जाहि सबै जग जानत। सो मदहीन दीन ह्वै बपुरो कोपि धनुष शर तानत।—सूर (शब्द०)। ८ मकानो की छाजन के ऊपर के गोल कलश जो शोभा के लिये बनाए जाते हैं। उ०—(क) अंड टूक जाके भस्मति सों ऐसा राजा त्रिभुवनपति।—दक्खिनी, पृ० ३०। (ख) बटै बर पग्ग वमद्ध निसार। तुटै बर देवल अंड अधार।—पृ० रा०, २४।२३६। १० शिव का एक नाम (को०)।

अंडक—संज्ञा पुं० [सं० अण्डक] १. अंडकोश। २. छोटा अंड। (को०)

अंडककड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डकर्कटी] दे० 'अंडकर्कटी' [को०]।

अंडकटाह—संज्ञा पुं० [सं० अण्डकटाह] ब्रह्मांड। विश्व। लोकमंडल। उ०—एहि विधि देखत फिरउँ मैं अंडकटाह अनेक।—मानस, ७।८०।

अंडकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डकर्कटी] पपीता। अंड खरबूज [को०]।

अंडकोटरपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डकोटरपुष्पा] दे० 'अंडकोटरपुष्पी' [को०]।

अंडकोटरपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डकोटरपुष्पी] नील अपराजिता। नीलवृह्ना। नीलपुष्पी। अजांत्री [को०]।

अंडकोश—संज्ञा पुं० [सं० अण्डकोश] १ लिंगेंद्रिय के नीचे चमड़े की वह दोहरी थैली जिसमें वीर्यवाहिनी नसें और दोनों गुठलियाँ रहती हैं। दूध पीकर पलनेवाले उन समस्त जीवों को यह कोश वा थैली होती है जिनके दोनों अंड वा गुठलियाँ पेड़ू से बाहर होती हैं। फोता। खुशिया। अंड। बैजा। वृषण। २ ब्रह्मांड। लोकमंडल। संपूर्ण विश्व। उ०—जा बल सीस धरत सहमानन। अंडकोश समेत गिरि कानन।—तुलसी (शब्द०)। ३ सीमा। हद। ४ फल का छिलका। फल के ऊपर का बोकला। ५ फल (को०)।

अंडकोष—संज्ञा पुं० [सं० अण्डकोष] दे० 'अंडकोश' [को०]।

अंडकोषक—संज्ञा पुं० [सं० अण्डकोषक] दे० 'अंडकोश—१' [को०]।

अंडकोस—संज्ञा पुं० दे० 'अंडकोश—२'। उ०—अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउँ जिनस अनेक अनूपा'—मानस, ७।८१।

अंडज[1]—संज्ञा पुं० [सं० अण्डज] अंडे से उत्पन्न होनेवाले जीव, जैसे सर्प, पक्षी, मछली, कछुआ इत्यादि। ये चार प्रकार के जीवों में से हैं।

अंडज[2]—वि० [सं० अण्डज] अंडे से उत्पन्न [को०]।

अंडजराय—संज्ञा पुं० [सं० अण्डज+प्रा० राय] पक्षियों के राजा। गरुड़। उ०—उदर माँझ सुनु अंडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया।—मानस, ७।८०।

अंडजा—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डजा] कस्तूरी।

अंडजात[1]—संज्ञा पुं० [सं० अण्डजात] अंडे से उत्पन्न जीव, जैसे सर्प, मछली, छिपकली, पक्षी इत्यादि [को०]।

अंडजात[2]—वि० दे० 'अंडज' [को०]।

अंडजेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० अण्डजेश्वर] पक्षिराज। गरुड़ [को०]।

अंडदल—संज्ञा पुं० [सं० अण्डदल] अंडे का छिलका या खोल [को०]।

अंडधर—संज्ञा पुं० [सं० अण्डधर] शिव [को०]।

अंडबंड—संज्ञा पुं० [सं० अकाण्डविकाण्ड, प्रा० अंड विअंड] १. असंबद्ध प्रलाप। बेसिर पैर की बात। ऊटपटाँग। अनाप शनाप। अगड़बगड़। व्यर्थ की बात। २ गाली। बुरी बात। अपशब्द। क्रि० प्र०—कहना।—बकना।—बोलना।

अंडबंड[2]—वि० असंबद्ध। बे सिर पैर का। इधर उधर का। अस्तव्यस्त। व्यर्थ का। प्रयोजन रहित। उ०—'जब उसने उन प्रश्नों के उत्तर अंडबंड दिए तो उसपर''।'—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १६७।

अंडर सेक्रेटरी—संज्ञा पुं० [अं०] वह मंत्री जो मुख्य मंत्री के अधीन हो। सहकारी सचिव। सहायक मंत्री। जैसे, अंडर सेक्रेटरी फार इंडिया (सहकारी भारत सचिव)।

३

अंडवर्धन—संज्ञा पुं० [सं० अण्डवर्धन] दे० 'अंडवृद्धि' [को०]।

अंडवृद्धि—संज्ञा पुं० [सं० अण्डवृद्धि] एक रोग जिसमें अंडकोश वा फोता फूलकर बहुत बढ़ जाता है। फोते का बढ़ना।

विशेष—शरीर की बिगड़ी हुई वायु या जल नीचे की ओर चलकर पेड़ू के एक ओर की संधियों से होता हुआ अंडकोश में जा पहुँचता है, और उसको बढ़ाता है। वैद्यक में इसके वातज, पित्तज आदि कई भेद माने गए हैं।

अंडस†—संज्ञा पुं० [सं० अन्तस् प्रा० *अंडस् = बीच में, दाब में] कठिनता। कठिनाई। मुश्किल। संकट। असुविधा।

अंडसू—वि० [सं० अण्डसू] अंडे से पैदा होनेवाला। अंडज [को०]।

अंडा[1]—संज्ञा पुं० [सं० अण्डक, प्रा० अंडअ] [वि० अंडैल] १ बच्चों को दूध न पिलानेवाले जंतुओं के गर्भाशय से उत्पन्न गोल पिंड जिसमें से पीछे से उस जीव के अनुरूप बच्चा बनकर निकलता है। वह गोल वस्तु जिसमें से पक्षी, जलचर और सरीसृप आदि अंडज जीवों के बच्चे फूटकर निकलते हैं। बैजा। उ०—अंडा पालै काछुई बिनु थन राखै पोक।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० ८१।

मुहा०—अंडा उड़ाना=(क) बहुत झूठ बोलना। बे पर की उड़ाना। (ख) असंभव को संभव कर दिखाना। अंडा खटकना = अंडा फूटने के करीब होना। जब अंडे से बच्चा निकलने में एक आध दिन रह जाता है तो उसके भीतर के बच्चे का अंडे के छिलके पर चोंच मारना। अंडा ढीला होना = (क) नस ढीली होना। थकावट आना। शिथिल होना। जैसे, यह काम सहज नहीं है, अंडा ढीला हो जायगा (शब्द०)। (ख) खुश्ख होना। निर्द्रव्य होना। दिवालिया होना। जैसे, खर्च करते करते अंडे ढीले हो गए (शब्द०)। अंडा सरकना = (क) दे० 'अंडा ढीला होना'। (ख) हाथ पैर हिलाना। अंग डोलाना। उठना। जैसे, बैठे बैठे बताते हो, अंडा नहीं सरकता (शब्द०)। अंडा सरकाना = हाथ पैर हिलाना। अंग डोलाना। उठना। उठकर जाना। जैसे, अब अंडा सरकाओ तब काम चलेगा (शब्द०)। प्राय मोटे या बड़े अंडकोशवाले आदमी को लक्ष्य कर यह मुहावरा बना है। अंडे लड़ाना = जुवारियों का एक खेल जिसमें दो आदमी अंडे के सिरे लड़ाते हैं। जिसका अंडा फूट जाता है वह हारा समझा जाता है। अंडे का मलूक = सीधा सादा आदमी। अनुभवहीन व्यक्ति। अंडे का शाहजादा = वह व्यक्ति जो कभी घर से बाहर न निकला हो। वह जिसे कुछ अनुभव न हो। अंडे सेना = (क) पक्षियों का अपने अंडे पर गर्मी पहुँचाने के लिये बैठना। (ख) घर में बैठ रहना। बाहर न निकलना। जैसे, क्या घर में पड़े पड़े अंडे सेते हो (शब्द०)।

अंडा[2]⑤—संज्ञा पुं० [सं० अण्डक] शरीर। देह। पिंड। उ०—आसन बासन मानुष अंडा। भए चौखंड जो ऐस पखंडा।—जायसी (शब्द०)।

अंडाकर्षण—संज्ञा पुं० [सं० अण्डाकर्षण] नपुंसक बनाना [को०]।

अंडाकार—वि० [सं० अण्डाकार] अंडे के आकार का। बैजावी। उस परिधि के आकार का जो अंडे की लंबाई के चारों ओर रेखा खींचने से बने। लंबाई लिए हुए गोल।

अडाकृति¹—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अण्डाकृति] अंडे का आकार। अंडे की शकल।

अडाकृति²—वि॰ अडे के आकार का। अडाकार। अड इव।

अडालु—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अण्डालु] अडे से भरी हुई मछली [को॰]।

अडिका—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अण्डिका] चार यव के परिमाण की एक तौल [को॰]।

अडिनी—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अण्डिनी] स्त्रियो का एक योनिरोग जिसमे कुछ मास बढ़कर बाहर निकल आता है। इसे योनिकद रोग भी कहते हैं।

अडी¹—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ एरण्ड] १. रेंडी। रेंड के फल का बीज। २. रेंड या एरड का पेड।

अडी²—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अण्डक या अण्डिका] एक प्रकार का रेशमी कपडा जो रद्दी रेशम और छाल आदि से बनता है।

अंडीर¹—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अण्डीर] १ वयस्क पुरुष। युवक। जवान व्यक्ति। २ दृढ व्यक्ति [को॰]।

अडीर²—वि॰ वली। समर्थ [को॰]।

अंडल—वि॰ स्त्री॰ दे॰ 'अडैल'।

अडैल—वि॰ स्त्री॰ [हिं॰ अडा + ऐल (प्रत्य॰)] जिसके पेट मे अडे हों। अडेवाली।

अत —अव्य॰ [सं॰ अन्तः] 'अतर्' के अर्थ मे समस्त पदो मे कुछ स्थितियो मे प्रयुक्त 'अतर्' शब्द का एक रूप जो पहले आता है, जैसे अत शल्य, अत सार आदि आदि [को॰]।

अत कक्ष—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्त कक्ष] घर के भीतर का कमरा जहाँ प्रसाधन, शयन, आदि की व्यवस्था हो। उ॰—'देवी अत कक्ष मे अभ्यागत के अकस्मात् प्रवेश से स्तब्ध हो गई'''।' —दिव्या, पृ॰ २१४।

अत करण—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्त करण] १ वह भीतरी इद्रिय जिसके विषय सकल्प, विकल्प, निश्चय, स्मरण आदि हैं तथा जो सुख दु खादि का अनुभव करती है।

विशेष—कार्यभेद से इसके चार विभाग हैं—(क) मन, जिससे सकल्प विकल्प होता है। (ख) वुद्धि जिसका कार्य है विवेक वा निश्चय करना। (ग) चित्त, जिससे वातों का स्मरण होता है। (घ) अहकार, जिससे सृष्टि के पदार्थों से अपना सवध देख पडता है।

२ हृदय। मन। चित्त। वुद्धि। उ॰—अत करण मे तीव्र अभिमान के साथ विराग है।—स्कद॰, पृ॰ ५६। ३ नैतिक वुद्धि। विवेक, जैसे—हमारा अत करण इस वात को कवूल नही करता (शब्द॰)।

अत करन(पु)—सज्ञा पुं॰ दे॰ 'अत करण'। उ॰—'जो आजहू तेरो अत.-करन सुद्ध भयो नही है।—दो सौ वावन॰, भा॰ २, पृ॰ १८।

अत कलह—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्त.कलह] दे॰ 'गृहकलह'।

अंत कुटिल¹—वि॰ [सं॰ अन्त कुटिल] भीतर का कपटी। खोटा। धोखेवाज। छली।

अत कुटिल²—सज्ञा पुं॰ शख [को॰]।

अत कोण—सज्ञा पुं॰ [सज्ञा अन्त कोण] भीतरी कोना। भीतर की ओर का कोण।

विशेष—जव एक रेखा दो रेखाओं को स्पर्श करती या काटती हैं तव उन रेखाओं के मध्य मे वने हुए कोण को अत.कोण कहते हैं।

अत कृमि¹—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्त कृमि] शरीरस्थ कीटाणुओं से उत्पन्न होनेवाला एक रोग [को॰]।

अंत कृमि²—वि॰ जिसमे कीडे हो (फलादि) किनहा [को॰]।

अत कोटरपुष्पी—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अन्त कोटरपुष्पी] दे॰ 'अण्डकोटर-पुष्पी' [को॰]।

अत कोप—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्त कोप] प्रकट न होनेवाला क्रोध। भीतरी गुस्सा [को॰]।

अतकोश—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्त कोश] कोशागार या भांडार का भीतरी हिस्सा (को॰)।

अत क्रिया—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अन्त क्रिया] १ भीतरी व्यापार। अप्र-गट कर्म। २ अत करण को शुद्ध करनेवाला आतरिक कर्म।

अंत पट—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्त पट] १. वह आवरण पट जो दो व्यक्तियो (वर वधू या गुरु शिष्य) को समुचित मुहूर्त के पूर्व सयुक्त करने के पहले डाला जाता है। वह परदा जो विवाह के अवसर पर वर और वधू के वीच उनको मिलाने के पहले डाला जाता है। अतरपट। २ अतर्वस्त्र। अंतरौटा (को॰)।

अत पटल—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्त पटल] १ आंखो के भीतर का अव्यक्त जालीदार परदा। २ भीतरी परदा [को॰]।

अत.पटी—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अन्त पटी] १ किसी चित्रपट द्वारा नदी, पर्वत, वन, नगर आदि का दिखलाया हुआ दृश्य। २ नाटक का परदा।

अत पद—अव्य॰ [सं॰ अन्त पदम्] विकारी शब्द के मध्य मे [को॰]।

अत पदवी—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अन्त पदवी] सुषुम्णा नाडी के मध्य की राह [को॰]।

अत पदे—अव्य॰ दे॰ 'अत पदम्' [को॰]।

अत परिधान—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्त परिधान] अतर्वस्त्र। अंत-रौटा [को॰]।

अत परिधि—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अन्त परिधि] १. किसी परिधि वा घेरे के भीतर का स्थान। २. यज्ञ की अग्नि को घेरने के लिये जो तीन हरी लकडियाँ रखी जाती हैं, उनके भीतर का स्थान।

अंत पवित्रा¹—वि॰ स्त्री॰ [सं॰ अन्त पवित्रा] शुद्ध अत करणवाली। शुद्ध चित्त की।

अत पवित्रा²—सज्ञा स्त्री॰ सोमरस जव वह छानने के लिये छनने मे रखा हो।

अत पशु—सं॰ पुं॰ [सं॰ अन्त पशु] पशुओ की गोशाला या स्थान पर रहने का सायकाल से प्रात काल तक का समय [को॰]।

अत पात—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्त पात] १ यज्ञशाला का मध्यवर्ती स्तभ या खभा (को॰)। २ व्याकरण मे किसी अक्षर का मध्य मे आना [को॰]।

अत पातित—वि॰ [सं॰ अन्त पतित] दे॰ 'अन्तःपाती' [को॰]।

अत पाती—वि॰ [सं॰ अन्त पातिन्] १ मध्यवर्ती। बीच में। २. समिलित [को॰]।

अत पाल—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्त पाल] १ अन्त पुर या रनिवास का रक्षक। २ कचुकी [को॰]।

अत पुर—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्त पुर] घर के मध्य या भीतर का भाग जिसमे रानियाँ या स्त्रियो रहती हों। जनानखाना। जनाना या भीतरी महल। रनिवास। हरम। उ॰—'दुर्ग का तो नहीं, अत पुर का भार तुम्हारे ऊपर है'।—स्कद॰ पृ॰ ५६।

अंतःपुरचर--संज्ञा पुं० [सं० अंतःपुरचर] अंतःपुर में आने जाने के अधिकारी, कंचुकी आदि [को०] ।

अंतःपुरचारिणी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःपुरचारिणी] [संज्ञा पुं० अन्तःपुरचारिन्] अंतःपुर या हरम में निवास करनेवाली स्त्री । उ०--'एक समय कुलवधू की संज्ञा थी अंतःपुरचारिणी' ।--टैगोर सा०, पृ० ३६ ।

अंतःपुरजन--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुरजन] अंतःपुर में रहनेवाली स्त्रियाँ आदि [को०] ।

अंतःपुरप्रचार--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुरप्रचार] औरतों की गप्पबाजी [को०] ।

अंतःपुररक्षक--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुररक्षक] दे० 'अंतःपाल' [को०] ।

अंतःपुरवर्ती--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुरवर्तिन्] अंतःपाल [को०] ।

अंतःपुरसहाय--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुरसहाय] अंतःपुर में कार्य करनेवाले खोजा, नपुंसक, माणवक, विदूषक आदि [को०] ।

अंतःपुराध्यक्ष--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुराध्यक्ष] अंतःपुर का रक्षक । रनिवास का अध्यक्ष [को०] ।

अंतःपुरिक--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुरिक] अंतःपुर का रक्षक । कंचुकी [को०] ।

अंतःपुरिका--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुरिका] अंतःपुर में रहनेवाली नारी [को०] ।

अंतःपुष्प--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुष्प] वह रज जो १२ वर्ष की रजस्राव की निश्चित अवधि के बीत जाने पर भी प्रगट नहीं होता [को०] ।

अंतःपूय--वि० [सं० अन्तःपूय] पीब या मवाद से भरा हुआ । जिसके भीतर मवाद हो [को०] ।

अंतःप्रकृति--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःप्रकृति] १ आंतरिक प्रकृति । भीतरी या मन का स्वभाव । अंतर्वृत्ति । मूल स्वभाव । उ०--उसी प्रकार अंतःप्रकृति में दया, दाक्षिण्य, श्रद्धा, भक्ति आदि वृत्तियों की स्निग्ध, शीतल आभा में सौंदर्य लहराता हुआ पाते हैं ।-- रस०, पृ० ३२ । २. आत्मा । ३ राज्यांग । राजा के समीपवर्ती अमात्य, सुहृद् आदि । ४ राजधानी की प्रजा [को०] ।

अंतःप्रज्ञ--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःप्रज्ञ] जिसकी आंतरिक अथवा आत्मविषयिणी प्रज्ञा प्रबुद्ध हो । आत्मज्ञानी । तत्वदर्शी ।

अंतःप्रतिष्ठित--वि० [सं० अन्तःप्रतिष्ठित] हृदय में बसा हुआ [को०] ।

अंतःप्रवाह--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःप्रवाह] वह धारा या प्रवाह जो भीतर ही भीतर बहता हो [को०] ।

अंतःप्रविष्ट--वि० [सं० अन्तःप्रविष्ट] १. भीतर घुसा हुआ । २. हृदगत । मनोगत [को०] ।

अंतःप्रांतीय--वि० [सं० अन्त + प्रांतीय] किसी भी देश के दो या उससे अधिक विभागों या प्रदेशों में संबद्ध रखनेवाला अथवा उनसे अवस्थित ।

अंतःप्राचीर--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःप्राचीर] प्राचीर के भीतर की दीवाल । भीतरी दीवार [को०] ।

अंतःप्रादेशिक--वि० [सं० अन्तःप्रादेशिक] दे० 'अंतःप्रांतीय' ।

अंतःप्रेरणा--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःप्रेरणा] भीतरी या स्वाभाविक प्रेरणा ।

अंतःराष्ट्रीय--वि० [सं० अन्त + राष्ट्रीय] जिसका दो या अधिक राष्ट्रों से संबंध हो । भिन्न भिन्न राष्ट्रों से संबंधित ।

अंतःशर[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःशर] १ वनभूमि का भीतरी भाग जहाँ शर (बेंत) उगे हों । २. एक रोग [को०] ।

अंतःशर[2]--वि० दे० 'अंतःशल्य' [को०] ।

अंतःशरीर--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःशरीर] वेदांत और योग के अनुसार स्थूल शरीर के भीतर का सूक्ष्म शरीर । लिंगशरीर ।

अंतःशल्य[1]--वि० [सं० अन्तःशल्य] भीतर चुभे काँटे की तरह सालनेवाला । गाँसी की तरह मन में चुभनेवाला । मर्मभेदी ।

अंतःशल्य[2]--संज्ञा पुं० शत्रु के वश में पड़ी हुई सेना ।

अंतःशुद्ध--वि० पुं० [सं० अन्तःशुद्ध] [स्त्री० अन्तःशुद्धा] जिसका अंतःकरण, मन या चित्त शुद्ध हो ।

अंतःशुद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःशुद्धि] अंतःकरण की पवित्रता । चित्त की स्वच्छदता । दिल की सफाई । चित्तशुद्धि ।

अंतःसंज्ञ--वि० पुं० [सं० अन्तःसंज्ञ] जो जीव अपने सुख दुख का अनुभव करते हुए भी उन्हें स्पष्ट प्रगट न कर सके, जैसे वृक्ष, तृण आदि ।

अंतःसत्व--वि० [सं० अन्तःसत्व] जिसके भीतर शक्ति या गुरुता हो । अंतःसार [को०] ।

अंतःसत्वा[1]--वि० स्त्री० [सं० अन्तःसत्वा] गर्भवती । गर्भिणी ।

अंतःसत्वा[2]--संज्ञा स्त्री० भिलावाँ । भल्लातक ।

अंतःसलिला--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःसलिला] दे० 'अंतस्सलिला' । उ०--क्या हो सूने मरु अंचल में अंतःसलिला की धारा सी । कामायनी, पृ० ६७ ।

अंतःसाक्षी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तः + साक्षिन्] भीतरी प्रमाण । आंतरिक गवाही । उ०--सूत्रों की अंतःसाक्षी इसी पक्ष में है ।--पाणिनि०, पृ० ४ ।

अंतःसार[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःसार] भीतरी तत्व । गुरुता । भीतरी सार । उ०--'ऐसे मामलों का अंतःसार हिंदुस्तानी ही लोग जानते हैं' । --भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३६२ ।

अंतःसार[2]--वि० जिसके भीतर कुछ तत्व हो । जो भीतर से पोला न हो । जो सारयुक्त हो । जिसके भीतर कुछ प्रयोजनीय या महत्व की वस्तु हो ।

अंतःसारवान--वि० पुं० [सं० अन्तःसारवत्] १ जिसके भीतर कुछ तत्व या सार हो । जो पोला न हो । जिसके भीतर प्रयोजनीय वस्तु हो । २ तत्वपूर्ण । सारगर्भित । प्रयोजनीय । काम का ।

अंतःसुख[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःसुख] बाह्य सुख से रहित आत्मानुसंधान रूपी सुख । आंतरिक सुख [को०] ।

अंतःसुख[2]--वि० जिसे आंतरिक सुख प्राप्त हो [को०] ।

अंतःसौंदर्य--संज्ञा पुं० [सं० अन्त + सौन्दर्य] भीतरी सौंदर्य । हृदय की अच्छाई । उ०--'जहाँ कोई सौंदर्य नहीं वहाँ अंतःसौंदर्य देखा जाता है' । --जय० प्र०, पृ० ३९ ।

अंतःस्थ--संज्ञा पुं०, वि० [सं० अन्तःस्थ] दे० 'अंतस्थ' [को०] ।

अंतःस्थित--वि० [सं० अन्तःस्थित] मध्य में स्थित या बैठा हुआ । भीतर बैठा हुआ [को०] ।

अंतःस्वर--संज्ञा पुं० [सं० अन्तः + स्वर] आंतरिक ध्वनि । भीतरी आवाज । हृदय का स्वर । दिल की आवाज । उ०--'गूँजते से तप्त अंतःस्वर तुम्हारे तरल कूजन में' ।--हरी घास०, पृ० ३२ ।

अंत स्वेद—संज्ञा पुं० [सं० अन्त स्वेद] वह जीव जिसके भीतर स्वेद या मदजल हो। मदस्रावी हाथी।

अंत¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्त] [वि० अंतिम, अंत्य] १ वह स्थान जहाँ से किसी वस्तु का अंत हो। समाप्ति। आखीर। अवसान। इति। उ०—वन कर अंत कतहुँ नहिं पावहिं।—तुलसी (शब्द०)। २ वह समय जहाँ से किसी वस्तु की समाप्ति हो। उ०— दिन के अंत फिरी दोउ अनी'।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द मे 'मे' और 'को' विभक्ति लगने से 'आखिरकार', 'निदान' अर्थ होता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३ शेष भाग। अंतिम भाग। पिछला अंश। उ०—'रजनी सु अंत महुरत्त वंभ'।—पृ० रा०, ६६।१६६२।

मुहा०—अंत बनना = अंतिम भाग का अच्छा होना। अंत बिगडना = अंतिम वा पिछले भाग का बुरा होना]

४ पार। छोर। सीमा। हद। अवधि। पराकाष्ठा। उ०—'अस अंवराउ सघन वन, वरनि न पारौं अंत'।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०— करना = हद करना। उ०—तुमने तो हँसी का अंत कर दिया (शब्द०)।—पाना।—होना।

५ अंतकाल। मरण। मृत्यु। उ०—(क) 'जान्यौ सु अंत प्रथिराज अप्प। चिंत्यौ जुगति दुग्गा सु जप्प'।—पृ० रा०, ६७। ४५७। (ख) 'अंत राम कहि आवत नाहीं'।—तुलसी (शब्द०)। ६ नाश। विनाश। उ०—'कहै पदमाकर त्रिकूट ही को ढाहि डारौं डारत करेई जातुधानन को अंत हौं।—पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

७ परिणाम। फल। नतीजा। उ०—(क) अंत भले का भला।—कहावत (शब्द०)। (ख) 'बुरे काम का अंत बुरा होता है' (शब्द०)। ८ प्रलय (डिं०) ९ सामीप्य। निकटता। (को०) १० प्रतिवेश। पडोस (को०)। ११ निबटारा। निबटाव (को०)। १२ किसी समस्या का समाधान या निर्णय (को०)। १३ निश्चय (को०)। १४ समास का अंतिम शब्द (को०)। १५ शब्द का अंतिम अक्षर (को०)। १६ प्रकृति। अवस्था (को०)। १७ स्वभाव (को०)। १८ पूर्ण योग या राशि (को०)। १९. वह सख्या जिसे लिखने में १२ अंक लिखने पडें। एक खरब या सौ अरब की सख्या।—भा० प्रा० लि०, पृ० १२। २० भीतरी भाग (को०)।

अंत²—वि० १ समीप। निकट। २ बाहर। दूर। ३ अंतिम (को०)। ४ सुदर। प्यारा (को०)। ५ सबसे छोटा (को०)। ६ निम्न। भ्रष्ट (को०)।

अंत(पु)³—क्रि० वि० अंत में। आखिरकार। निदान। उ०—(क) उघरे अंत न होहि निवाहू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कोटि जतन कोऊ करौ परै न प्रकृतिहिं बीच। नल वल जल ऊँचो चढै अंत नीच कौ नीच।—विहारी (शब्द०)।

अंत(पु)⁴—संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्] १. अंत करण। हृदय। जी। मन। जैसे 'तुम अपने अंत की बात कहो', 'मैं तुम्हे अंत से चाहता हूँ' (शब्द०)। २. भेद। रहस्य। छिपा हुआ भाव। मन की बात। उ०—'काहू को न देती इन बातन को अंत लै इकत कत मानि के अनत सुख ठानती'।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १५६।

मुहा०—अंत पाना = भेद पाना। पता पाना। अंत लेना = भेद लेना। मन का भाव जानना। मन छूना। उ०—हे द्विज मैं हौं धर्म लेन आयो तव अंता।—विश्र म० (शब्द०)।

अंत(पु)⁵—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्र, प्रा० अंत] आँत, अंतडी। उ०—(क) जिमि जिमि अंत खुलत लष्प दल तिन गनि तिम तिम।—पृ०रा०, ६१।२२७३। (ख) भर स्रोन धारा परै पेट ते अंत।—सुजान (शब्द०)।

अंत(पु)⁶—क्रि० वि० [सं० अन्यत्र, प्रा० अण्णत्त, अन्नत, हिं० अनत-अंत] और जगह। और ठौर। दूसरी जगह। और कही। दूर। अलग। जुदा। उ०—(क) कुंज कुंज मे क्रीडा करि करि गोपिन को सुख देहौं। गोप सखन संग खेलत डोलौं ब्रज तजि अंत न जैहौं—सूर (शब्द०)। (ख) एक ठाँव यहि थिर न रहाहीं। रस लै खेलि अंत कहुँ जाहीं —जायसी (शब्द०)। (ग) धनि रहीम गति मीन की जल बिछुरत जिय जाय। जियत कज तजि अंत वसि कहा भौर का भाय।—रहीम (शब्द०)।

अंतक¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तक] १ मृत्यु जो प्राणियो के जीवन का अंत करती है मौत। २ यमराज। काल। उ०— गिरा रहित वृक असित अजा लौं अंतक आनि गह्यौ।—सूर०, १।२०१।३ सन्निपात ज्वर का एक भेद जिसमे रोगी को खाँसी, दमा और हिचकी होती है और वह किसी वस्तु को नहीं पहचानता। उ०—व्याकुल सखा गोप भए व्याकुल। अंतक दसा भयौ भय आकुल —सूर०, १०।३११५। ४ ईश्वर जो प्रलय मे सबका सहार करता है। ५ शिव। परमेश्वर। ६ सीमा। हद्द (को०)।

अंतक²—वि० अंत करनेवाला। नाश करनेवाला।

अंतकर—वि० [सं० अन्तकर] अंत या नाश करनेवाला। सहार करनेवाला।

अंतकरण—वि० [सं० अन्तकरण] दे० 'अंतकर' [को०]।

अंतकर्ता—वि० [सं० अन्तकर्ता] दे० 'अंतकर'।

अंतकर्म—संज्ञा पुं० [सं० अन्तकर्म] मरण। मृत्यु। [को०]।

अंतकारी—वि० [सं० अन्तकारिन्] स्त्री० [अन्तकारिणी] अंत या नाश करनेवाला। विनाश करनेवाला। सहार करनेवाला। मार डालनेवाला। उ०—भक्त भय हरन असुरऽतकारी।—सूर०, १०।४१६४।

अंतकाल—संज्ञा पुं० [सं० अन्तकाल] १ अंतिम समय। मरने का समय। आखिरी वक्त। उ० —घर घर मतर देत फिरत हैं महिमा के अभिमाना। गुरू सहित सीष सभ बूडे अंतकाल पछिताना।—कबीर बी०, पृ० ३०।

अंतकृत¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तकृत] यमराज। धर्मराज। काल। उ०—भूमिजा दुख सजात रोषातकृत (रोष+अंतकृत) यातना जतुकृत यातुधानी।—तुलसी (शब्द०)।

अंतकृत²—वि० अंत या विनाश करनेवाला। अंतकर।

अंतक्क—संज्ञा पुं० [सं० अन्तक, प्रा० अंतक्क] यमराज। काल। उ०—प्रथिराज सब्ब देष्यौ सु आव। अंतक्क रूप सव गुन सहाव।—पृ० रा०, ६७।४६०।

अंतक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तक्रिया] अत्येष्टि कर्म। क्रिया कर्म। मरने के पीछे मृतक की आत्मा की भलाई या सद्गति के लिये किए जानेवाले दाह और पिंडदान आदि कर्म। हिंदुओं के षोडश सस्कारों मे अंतिम।

अतग—वि॰ [सं॰ अन्तग] १ जानकारी मे पूरा । पारगत । पारगामी निपुण । अतगामी । २ मृत । मरा हुआ (को॰) ।

अतगत—वि॰ [सं॰ अन्तगत] १ सीमा पर गया हुआ । २ समाप्ति को पहुँचा हुआ (को॰) ।

अतगति¹—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अन्तगति] अतिम दशा । मृत्यु । मरण । मौत ।

अतगति²—वि॰ अत को प्राप्त होनेवाला । नाश होनेवाला (को॰) ।

अतगमन—सज्ञा पुं॰ [स॰ अन्तगमन] १ अन तक पहुँचने या पूर्ण करने का कार्य । २ जीवन के अत तक जाने की स्थिति । मौत । मृत्यु [को॰] ।

अतगामी—वि॰ [सं॰ अन्तगामिन्] [स्त्री॰ अन्तगामिनी] १ दे॰ 'अतग' । २ मरणशील (को॰) ।

अतगुरु—सज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्तगुरु] वह शब्द जिसके अत मे दो मात्राएँ या गुरु हो । उ॰—गज अभरन प्रहरन असनि चकल अतगुरु नाम ।—भिखारी॰ ग्र॰, भा॰ १, पृ॰ १६६ ।

अतघाई—वि॰ [सं॰ अन्त+घाती, प्रा॰ अत+घाइ] अत मे धोखा देनेवाला । विश्वासघाती । दगाबाज । उ॰—साँझ ही समै तें दूरि बैठी परदानि देके सक मोहि एकै या कलानिधि कसाई की । कत की कहानी सुनि श्रवन सोहानी रैनि रचक बिहानी या बसत अतघाई की ।—कोई कवि (शब्द॰) ।

अतघाती—वि॰ [सं॰ अत+घातिन्] धोखा देनेवाला । वचक । दगाबाज ।

अतचर—वि॰ [सं॰ अन्तचर] १ सीमा पर जाने या चलनेवाला । २ कोई भी कार्य पूरा करनेवाला [को॰] ।

अतच्छद—सज्ञा पुं॰ [स॰ अन्तच्छद] भीतरी आच्छादन । अदरूनी परदा ।

अतज—वि॰ [स॰ अन्तज, अन्त्यज] जो अत मे उत्पन्न हो । सबसे बाद मे उत्पन्न होनेवाला [को॰] ।

अतजा—वि॰स्त्री॰ [स॰ अन्तजा, अन्त्यजा] अत मे पैदा होनेवाली । सबसे पीछे की । उ॰—अत भत्ति सो भत्ति अतजा भत्ति अभत्तिय ।—पृ॰ रा॰, ३१।१०१ ।

अतजाति¹—वि॰ [स॰ अन्तजाति, अन्त्यजाति] अतिम जाति का । निम्न जाति का [को॰] ।

अतजाति²—सज्ञा पु॰ जातिविभाजन मे अतिम जाति [को॰] ।

अतत—अव्य॰ [स॰ अन्तत] १ अत मे । आखिरकार । निदान । सबसे पीछे । उ॰—मिला परमार्थ मुझको अतत इस वृद्ध वय में ।—पार्वती, पृ॰ ३१८ । २ क्रम से क्रम । अशतः (को॰) । ३. भीतर (को॰) । ४. निचले या निम्न मार्ग मे । मुख्य एव मध्य के बाद मे (को॰) ।

अतत(पु)—अव्य॰ [स॰ अन्तत] अत मे । आखिरकार । उ॰—जाति स्वभाउ मिटे नहिं सजनी अतत उवरी कुबरी ।—सूर॰ (राधा॰), पृ॰५३२ ।

अततर—वि॰ [स॰ अन्ततर] अतिम के बाद का । अत के बाद-वाला [को॰] ।

अततम—वि॰ [स॰ अन्ततम] सबसे बाद का । सबसे बादवाला [को॰] ।

अतता—क्रि॰ वि॰ दे॰ 'अतत' । उ॰ —दूध भात घृत सकरपारे । हरते भूक नहि अतता रे ।—दक्खिनी॰, पृ॰ १०५ ।

अततोगत्वा—क्रि॰ वि॰ [स॰ अन्ततस्+गत्वा] अत मे जाकर । आखिरकार । निदान । उ॰—'शोकार्त हृदयवाले का अततोगत्वा ईश्वर मे अनन्य प्रौढ प्रेमप्रदर्शन उत्तम है' ।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ ४४२ ।

अंतदीपक—सज्ञा पुं॰ [स॰ अन्तदीपक] काव्यो मे प्रयुक्त दीपकालकार का एक भेद [को॰] ।

अतपाल—सज्ञा पु॰ [स॰ अन्तपाल] १ द्वारपाल । ड्योढीदार । पौरिया । दरबान । २ सीमा की रक्षा करनेवाला अधिकारी । सरहद का पहरेदार । उ॰—'सरहदो का प्रबध अतपाल करते थे' ।—हिंदु॰ सभ्यता, पृ॰ ३२६ ।

अतपुर(पु)—सज्ञा पुं॰ दे॰ 'अतपुर' । उ॰—अतपुर पैठि भानु आतुर कहुँ न बेगि, चिर निसि अक मैं निसापति डरे रहैं ।—रत्नाकर, भा॰ २, पृ॰ १२८ ।

अतवर(पु)—सज्ञा पु॰ [स॰ अन्त्र+अवलि] आँतो का समूह । उ॰—मस हड्ड रद गूद अतवर बाच गज्ज नर ।—पृ॰ रा॰, ७।१५२ ।

अतभव—वि॰ [स॰ अन्तभव] अत मे उत्पन्न होनेवाला [को॰] ।

अतभाक्—वि॰ [स॰ अन्तभाज्] किसी शब्द के अत का या अत मे होनेवाला [को॰] ।

अतभूत—वि॰ [स॰ अन्तर्भूत] दे॰ 'अतर्भूत' ।

अतभेदी—सज्ञा पु॰ [स॰ अन्तभेदी] एक प्रकार का व्यूह । मध्यभेदी व्यूह का विपरीत या उलटा व्यूह ।

अतम—वि॰ [स॰ अन्तम] अति समीप का । घनिष्ठ (मित्र) [को॰] ।

अंतमन—सज्ञा पु॰ [स॰ अन्तर्मन] आभ्यतर मन । भीतरी मन । उ॰—सुनि आनदयौ कव्वि जिय धरिय अतमन ध्यान ।—पृ॰ रा॰, ६७।२७४ ।

अतमान(पु)—सज्ञा पु॰ दे॰ 'अतमन' । उ॰—लोयन राखौ घूँघट हेरी । अतमान कौ राखे फेरी —चित्रा॰, पृ॰ १५४ ।

अतरग¹—वि॰ [स॰ अन्तरङ्ग] १ अत्यत समीपी । आत्मीय । निकटस्थ । दिली । जिगरी । उ॰—'वह अपने अतरग लोगो का परिचय भी नहीं बताती' ।—स्कद॰, पृ॰ ११६ । २ मानसिक । ('बहिरग' इसका उलटा है) ।

अतरग²—सज्ञा पु॰ १ मित्र । दिली दोस्त । आत्मीय । स्वजन । उ॰—'अनबरी आज इतनी अतरग बन गई है' ।—तितली' पृ॰ १२४ । २ हृदय । उ॰—वरदान आज उस गत युग का कपित करता है अतरग ।—कामायनी, पृ॰ १६२ । ३ राजाओ के अत पुर मे जानेवाले अधिकारी ।—वर्ण॰, पृ॰ ६ । ४. भीतरी अग । प्रच्छन्न अग । उ॰—फुनि पुच्छति इछिनि सु वहि सौत रूप मनि साल । नौ पुच्छा कैसी कहै अतरग सु बिसाल ।—पृ॰ रा॰, ६२।१०४ ।

यौ॰—अतरग मत्री = निजी सचिव । अतरग सचिव=प्राइवेट सेक्रेटरी । अतरग मित्र=दिली दोस्त । अतरग सभा = सब कमेटी छोटी कमेटी या प्रवधकारिणी । सभा जिसमे मुख्य सभा से चुने हुए लोग रहते हैं और जिनकी सख्या नियत रहती ।

अतरगिनी—वि॰ स्त्री॰ [स॰ अन्तरङ्गिणी] अत्यत समीप की । आत्मीया । उ॰—'यह सुनत ही श्री गुसाई जी कहे, जो मेरी

अंतरंगिनी सेवविनी के घर सखड़ी महाप्रसाद क्यों नाहीं लियो ?'—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १० ।

अंतरंगी¹—वि० [सं० अन्तरङ्गिन्] दिली । भीतरी । जिगरी । उ०—'हे अंतरंगी जन आज तक जो पुस्तकें प्रकाशित हुईं, वह दूसरे को समर्पित हुई थीं ।'—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ६४६ ।

अंतरंगी²—संज्ञा पुं० गहरा मित्र । दिली दोस्त । उ०—वही अंतरंगी सुरंगी निनार । वहै राज राजीव लोचन्न सार ।—पृ० रा०, २।७७६ ।

अंतरस—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरस] वक्षस्थल । सीना । छाती [को०] ।

अंतर¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर] १ फर्क । भेद । विभिन्नता । अलगाव । फेर । उ०—(क) संत भगवंत अंतर निरंतर नहीं किमपि मति-मलिन कह दास तुलसी ।—तुलसी ग्रं०, भा० २, पृ० ४८८ । (ख) इसके और उसके स्वाद मे कुछ अंतर नहीं है (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना = फर्क या भेद करना । उ०—मोहि चंद बरदाय सु अंतर मति करयो ।—पृ० रा० ५८।१२६ ।—देना । —पड़ना ।—रखना = भेदभाव रखना । उ०—ब्रजवासी लोगन सों मैं ता अंतर कछु न राख्यो ।—सूर (शब्द०) ।—होना ।

२ बीच । मध्य । फासला । दूरी । अवकाश । उ०—'यह विचारो कि मथुरा और वृंदावन का अंतर ही क्या है' ।—प्रेमसागर (शब्द०) । ३ दो घटनाओं के बीच का समय । मध्यवर्ती काल । उ०—(क) इहि अंतर मधुकर इक आयो ।—सूर०, १० ३४८७ । (ख) 'इस अंतर मे रतन दूध से भर जाते हैं' ।—वनिताविनोद (शब्द०) । ४ दो वस्तुओं के बीच मे पड़ी हुई चीज । ओट । आड़ । परदा । उ०—कठिन बचन सुनि स्रवन जानकी सकी न हिये सँभारि । तृन अंतर दै दृष्टि तरौंधी दई नयन जल ढारि ।—सूर०, ९।७९ ।

क्रि० प्र०—करना = आड़ करना । उ०—अपने कुल को कलह क्यों देखहिं रवि भगवंत । यहै जानि अंतर कियो मानो मही अनंत ।—केशव (शब्द०) ।—डालना ।—देना = ओट करना । उ०—पट अंतर दै भोग लगायो आरति करी बनाइ ।—सूर०, १०।२६१ ।—पड़ना ।

५ छिद्र । छेद । रंध्र । दरार । ६. भीतर का भाग । उ०—'दास' अँगिराति जमुहाति तकि झुकि जाति, दीने पट, अंतर अनंत आप झलकै ।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १४३ । ७ प्रवेश । पहुँच (को०) । ८ शेष । बाकी । गणित मे शेषफल (को०) । ९ विशेषता । उ०—अंतरौ एक कैमास सुनि मरन तुच्छ मारन बहुल ।—पृ० रा०, १२।१६८ । १०. निबलता (को०) । ११ दोष । त्रुटि (को०) । १२ अभाव (को०) । १३ प्रयोजन (को०) । १४ लिहाज (को०) । १५. छिपाव (को०) । १६ निश्चय (को०) । १७. प्रतिनिधि (को०) । १८ वस्त्र (को०) । १९ हृदय । अंतःकरण । जी । मन । चित्त । उ०—जिहि जिहि भाइ करत जन सेवा अंतर की गति जानत ।—सूर०, १।१३ । (ख) अंतर प्रेम तासु पहिचाना । मुनि दुरलभ गति दीन्ह सुजाना ।—तुलसी (शब्द०) । २० आत्मा (को०) । २१ परमात्मा (को०) । २२ स्थान (को०) । २३ आशय (को०) ।

अंतर²—वि० १ अंतर्धान । गायब । लुप्त । उ०—कृपा करी हरि कुँवरि जिमाई । अंतर आप भए सुरराई ।—महाभारत (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना—होना = अदृश्य होना । उ०—मोहीं ते परी री चूक अंतर भए हैं जातें तुमसों कहति बातें मैं ही कियो द्वंद ।—सूर (शब्द०) ।

२ दूसरा । अन्य । और ।

विशेष—इस अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों में मिलता है, जैसे, अर्थांतर, रथ्यांतर, कालांतर, देशांतर, पाठांतर, मतांतर, यज्ञांतर इत्यादि ।

३ समीप । आसन्न । निकट (को०) । ४ आत्मीय । प्यारा (को०) । ५ समान (स्वर या शब्द), (को०) । ६ भीतरी । भीतर का (को०) ।

अंतर³—क्रि० वि० १ दूर । अलग । जुदा । पृथक् । बिलग । उ०—कहाँ गए गिरिधर तजि मोकों ह्याँ मैं कैसे आई । सूर स्याम अंतर भए मोते अपनी चूक सुनाई ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना = दूर करना । पृथक् करना । उ०—सूरदास प्रभु को हियरे तें अंतर करी नहीं छिनहीं ।—सूर (शब्द०) ।—होना ।

२. भीतर । अंदर । उ०—(क) मोहन मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ । बसत सुचित अंतर तऊ प्रतिबिंबित जग होइ ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) चिता ज्वाल शरीर बन दावा लगि लगि जाइ । प्रगट धुआँ नहिं देखिए उर अंतर धुँधुआइ ।—दीनदयाल (शब्द०) । (ग) बाहर गर लगाइ राखौंगी अंतर करौंगी समाधि ।'—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना—भीतर करना । ढाँकना । छिपाना । उ०—फिरि चमक चोप लगाइ चंचल तनहिं तव अंतर करै (शब्द०) ।

अंतर⁴ (पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अतर' । उ०—जवादि केसर सुर । पल सुसत्त अंतर ।—पृ० रा०, ६६।६० ।

अंतर⁵ (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्र, प्रा० अंत, अप० अंतड़ी] आँत । अँतड़ी । उ०—(क) करत हक्क हक्काय । क्रमत धक्क धक्काय । चढत देत दंतर । अरू अरुझत अंतरं ।—पृ० रा०, ६।१७५ । (ख) त्रुट्टत सार धार पार ता करत अंतर । अद्दव दंत दंत एक कंठ कंठ मत्तरं ।—पृ० रा०, ५८।२४३ ।

अंतर अयण—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर+अयण] नीचे जाना । विलोपन [को०] ।

अंतर अयन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर+अयन] १ तीर्थों की एक परिक्रमा विशेष अंतर्गृही । २ एक देश का नाम । ३ काशी का मध्य भाग । उ०—अंतर अयन अयन भल, थन फल, बच्छ वेद बिस्वासी ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६४ ।

अंतरकालीन—वि० [सं० अन्तर+कालीन] दो कालविभागों के बीच का । किन्हीं दो स्थितियों का मध्यवर्ती [को०] ।

अंतरख (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अंतरिक्ख] अंतरिक्ष । शून्य । अंतर । आकाश । उ०—रूप न होता तब अकुलान रहिता सबद । गगन न होता तब अंतरख रहिता चंद ।—गोरख०, पृ० १८६ ।

अंतरगत¹ (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्गत] मन । हृदय । अंतःकरण । उ०—(क) ज्यौं गूँगे मीठे फल रस को अंतरगत ही भावै ।—सूर०, १।२ । (ख) जानराय जानत सबै अंतरगत की बात ।—घनानंद, पृ० ५६ ।

अंतरगत²—वि० अंतर्गत । भीतर आया हुआ । उ०—जैसे जननि जठर अंतरगत सुत अपराध करै ।—सूर०, १।११७ ।

अंतरगति(पु)--संज्ञा स्त्री [सं० अन्तर्गति] चित्तवृत्ति । भावना । उ०--अंतरगति रांचे नहीं, बाहर कहें उदास । ते नर जमपुर जाहिंगे सत भाषै रैदास --संत०, पृ० ६५ ।

अंतरग्नि--संज्ञा स्त्री [सं० अन्तरग्नि] पेट की अग्नि । पेट की गरमी जिससे खाई हुई वस्तु पचती है । जठराग्नि ।

अंतरचक्र--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरचक्र] १ दिशाओं और विदिशाओं के बीच में अंतर को चार चार भागों में बाँटने से बने हुए ३२ भाग । २. दिशाओं के ऊपर कहे हुए भिन्न भिन्न विभागों में चिड़ियों की बोली सुनकर शुभाशुभ फल बताने की विद्या । जिस दिशा में पक्षी बैठकर बोले उसका विचार करके शकुन कहने की विद्या । ३ तंत्र के अनुसार शरीर के भीतर माने हुए मूलाधार आदि कमल के आकार के छह चक्र । षट्चक्र । ४ आत्मीय वर्ग । स्वजन वर्ग । भाई बंधुओं की मंडली ।

अंतरछाल--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर + हिं० छाल] छाल के नीचे की कोमल छाल या झिल्ली । बोकले के भीतर का कोमल भाग ।

अंतरजातीय--वि० दे० 'अंतर्जातीय' ।

अंतरजानी--वि० [सं० अन्तर् + ज्ञानी, प्रा० अंतर + जाणि] भीतर की बात जाननेवाला । अंतर्यामी । उ०--नैन स्रवन मुख नासिका तुम अंतरजानी हो ।--केशव० अमी०, पृ० ७ ।

अंतरजामी[1](पु)--वि० [सं० अंतर्यामी] १ भीतर की बात जाननेवाला । उ०--तुम उदार उर अंतरजामी ।--मानस ७।८४। २ अंतःकरण स्थित प्रेरक । उ०--अंतरजामिहुँ ते बड़ बाहरजामी हैं राम जो नाम लिए तें ।--तुलसी ग्रं०, भा० २ ।

अंतरजामी[2](पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतर्यामी' । उ०--दया करो गुरु पूरन स्वामी । मैं नहिं जाना अंतरजामी ।--कबीर सा०, पृ० १०१४ ।

अंतरजाल--संज्ञा पुं० [हिं०] कसरत करने की एक लकड़ी ।

अंतरज्ञ-- वि० [सं० अन्तरज्ञ] १ भीतर की बात जाननेवाला । अंतःकरण का आशय जाननेवाला । हृदय की बात जाननेवाला । अन्तर्यामी । २. भेद या फर्क जाननेवाला ।

अंतरण--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरण] व्यवधान डालना । अंतरित करना । निगूहन [को०] ।

अंतरत --क्रि० वि० [सं० अन्तरत] बीच में । मध्य में । बीचोबीच ।

अंतरत--वि० [सं० अन्तरत] विनाश में आनंद से रहनेवाला । नाश में आनंद माननेवाला [को०] ।

अंतरतम--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरतम] सबसे भीतर का भाग या हिस्सा । अंतस्तल । उ०--छिपी रहेगी अंतरतम में सबके तू निगूढ़ धन सी ।--कामायनी, पृ० ६ ।

अंतरतर[1]--वि० [सं० अन्तरतर] अति समीपी । अत्यंत घनिष्ट [को०] ।

अंतरतर[2]--संज्ञा पुं० १ अंतस्तल । उ०--अपनी मलय झलक आभा से मम अंतरतर भर दो ।--अपलक । २ ईश्वर (को०) । पृ० १६ ।

अंतरदंद(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्द्वन्द्व] दे० अंतर्द्वंद । उ०--अंतरदंद चंद मनि मज्जिय --पृ० रा०, ६७।१८५ ।

अंतरद--वि० [सं० अन्तरद] हृदय को कष्ट पहुँचानेवाला [को०] ।

अंतरदाह--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्दाह] भीतरी जलन या दुःख । मानसिक ताप । उ०--अंतर दाह जु मिटयौ व्यास कौ इक चित ह्वै भाग-वत किऐं ।--सूर०, १।८६ ।

अंतरदिशा --संज्ञा स्त्री० [सं० अंतरदिशा] दो दिशाओं के बीच की दिशा । कोण । विदिशा ।

अंतरदीठि-- संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्दृष्टि, प्रा० अंतरदिट्ठि] अंतर्दृष्टि । विवेक ।

अंतरद्वार--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्द्वार] छिपा हुआ या भीतरी दरवाजा । अंतःपुर का दरवाजा । उ०--अंतरद्वार भए ठाढ़े गुनत तिया की बातैं --सूर०, १०।२६६६ ।

अंतरदृष्टि--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्दृष्टि] ज्ञानचक्षु । हिय की आँख । उ०--यह अंतरदृष्टि से भली भाँति निगाह कर लेता है कि मैं अपने कर्मों का कर्ता नहीं ।--कबीर सा०, पृ० ९६७ ।

अंतरदेशीय--वि० [सं अन्तर + देशीय] १ दो या अधिक देशों से संबद्ध । २ राष्ट्र या देश के सभी राज्यों या प्रदेशों से संबंधित, जैसे--'अंतरदेशीय पत्र' ।

अंतरधन--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्धन] छिपाकर बचाया हुआ धन । उ०--विष्णु अंतरधन हूतौ जु साथ । सो दीनौं माता के हाथ ।--अर्ध०, पृ० ७ ।

अंतरधान(पु)--वि० दे० 'अंतर्धान' उ०--पुनि पुनि अस कहि कृपा-निधाना । अंतरधान भए भगवाना ।--मानस, १।१५२ ।

अंतरध्यान[1](पु)--वि० [सं० अन्तर्ध्यान] आंतरिक मनन या चिंतन । उ०--अंतरध्यान नाम निज मेरा जिन भखिया तिन पाई ।--कबीर श०, भा० १, पृ० ७८ ।

अंतरध्यान[2](पु)--वि० [सं० 'अन्तर्द्धान' का विकृत रूप] अंतर्हित । लुप्त । उ०--(क) पटमास निमानिसि नृत्य किय । तब गोबिंद अंतरध्यान हुय ।--पृ० रा०, २।३४५ । (ख) भाग अंतरध्यान बीते पाछिली निसि जाम । --सा० ल०, पृ० १५४ ।

अंतरपट--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपट] १ परदा । आड़ । ओट उ०--उघरैहैं अंतरपट रासत अगने गुनहिं कहौं ।--घनानंद, पृ० ५४७ । २ विवाहमंडप में कुश की आहुति के समय अग्नि और वर कन्या के बीच में एक परदा डाल देते हैं जिसमें वे दोनों उस आहुति को न देखें । इस परदे को अंतरपट कहते हैं ।

क्रि० प्र०--करना ।--डालना ।--देना ।

मुहा०--अंतरपट खोलना = छिपाव हटना । मन की कहना । ओट में रहना ।

३ परदा । छिपाव । दुराव । भेद । ४ धातु या औषध को फूँकने के पहले उसकी लुगदी या संपुट पर गीली मिट्टी के लेव के साथ कपड़ा लपेटने की क्रिया । कपरमिट्टी । कपरौटी । कपरौटी ।

क्रि० प्र०--करना ।--होना ।

५. गीली मिट्टी का लेव देकर लपेटा हुआ कपड़ा ।

अंतरपतित आय--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरपतित आय] सौदा कराने की दस्तूरी । दलाली ।

अंतरपाट--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर + पट] परदा । ओट । आड़ । उ०--गुप्त रसोई मन मुख मैं होनि । तदुदिशि अंतरपाट दिखावहिं ।--कबीर सा०, पृ० ४३२ ।

अतरपुरुष--सज्ञा पुं० [सं० अन्तरपुरुष] १ आत्मा। २ परमात्मा। अतर्यामी। परमेश्वर।

अतरपूरुप--सज्ञा सं० [सं० अन्तरपूरुष] दे० 'अतरपुरुप'।

अतरप्रकाश--सज्ञा पु [पुं० अन्त प्रकाश] भीतरी प्रकाश। आत्मज्ञान। उ०--'यह भी विना अतरप्रकाश के जाना नहीं जा सकता कि भोगनेवाला कौन है और मैं कौन हूँ।--कवीर सा०, प० ९७१।

अतरप्रतीहार--सज्ञा पुं० [सं० अन्तरप्रतीहार] राजप्रासाद के भीतर आने जानेवाले प्रतीहार। अभ्यतर परिजन [हर्ष०]।

अतरप्रभव--सज्ञा पु० [सं० अन्तरप्रभव] जो दो भिन्न भिन्न वर्णों के माता पिता मे उत्पन्न हो। वर्णसकर।

अतरप्रश्न--सज्ञा पुं० [स० अन्तरप्रश्न] वह प्रश्न जो पूर्ववर्णित प्रसग मे निहित हो [को०]।

अतरप्रातीय--वि० [सं० अन्तर + प्रान्तीय] दे० 'अन्तरप्रादेशिक'।

अतरप्रादेशिक--वि० [सं० अन्तरप्रादेशिक] १. जिसका सबध अपने प्रदेश या प्रात से हो। अपने प्रात मे होनेवाला। जैसे, अतरप्रादेशिक अपराध। २ देश या राष्ट्र के सभी प्रदेशो या राज्यो मे सबध रखनेवाला।

अतरबरन--सज्ञा पु० [सं० अन्तर + वर्ण] बीच के अक्षर। उ०--या कवित्त अतरबरन लैं तुकन द्वै छंडि।--भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १६।

अतरबल--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर + बल] भीतरी शक्ति। आतरिक बल। उ०--रथ विभजि हति केतु पताका। गरजा अति अतरबल थाका।--मानस, ६। ६१।

अतरबाधा-- सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर + बाधा] मानसिक कष्ट। उ०--खेलौ जाइ स्याम सग राधा। यह सुनि कुँवरि हरप मन कीनो मिटि गई अतरबाधा।--सूर०, १०। ७०५।

अतरबानी--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्वाणी] अतर की वाणी। आत्मा की आवाज। उ०--सुनु हिरदे यह अतरबानी।--रत्न०, पृ० ७।

अतरवास(पु)--सज्ञा पुं० [स० अन्त + वास] अतपुर। रनिवास। उ०--दुरग चीतोट पहुँचो राइ। अतरवासइ गम कियो।--बीसल० रा०, पृ० ११२।

अतरवासी-- वि० [सं० अतर् + वासी] भीतर रहनेवाला। उ०--उरगाना उर अतरवासी। जाको नाम कहे अविनासी।--रत्न०, पृ० १६५।

अतरवेद--सज्ञा पु० [सं० अन्तर्वेद] दे० 'अतर्वेद'।

अतरभाव(पु)--सज्ञा पुं० [स० आन्तर् + भाव] भावातर। भिन्न भाव। उ०--कछु पुनि अतरभाव तें कही नायिका जाहि।--भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १६।

अतरभेद(पु)--सज्ञा पु० [स० अतर् + भेद] आतरिक तत्व या रहस्य। भीतरी भेद। उ०--ए रस अतरभेद प्रीय जानै त्रिय जौ रस।--पृ० रा०, ६२।१०३।

अतरमतर--सज्ञा पुं० [सं० यत्र मत्र] जादू टोना। झाड फूंक। जतर मतर।

अंतरमत--सज्ञा पु० [सं० अन्तर + मत] आतरिक विचार। निगूढ या गुह्य मत। उ०--बचन पच्छिना मिट्टया अतरमत खोला।--पृ० रा०, पृ० २६।

अतरमुख(पु)-- वि० [सं० अन्तर्मुख] भीतर की ओर उन्मुख। आतरिक ध्यानयुक्त। उ०-बरनै दीनदयाल मिलै नहिं व हूर टेरे। अतरमुख ह्वै ढूढ सुगध सबै घट तेरे।--दीन० ग्र०, पृ० २३०।

अतरय--सज्ञा पु० [स० अन्तरय] दे० 'अतराय' [को०]।

अतरयण--सज्ञा पु० [स० अन्तरयण] अयनो [मार्गो] के सान्निध्य मे सूर्य की स्थिति का काल। उ०--सूत्र 'अयनञ्च' मे अतरयण का उल्लेख है।--पाणिनि०, पृ० १७८।

अतरयन--सज्ञा पु० दे० 'अतरयण'। उ०--अयनाशो के बीच के देशों के लिये पाणिनि ने 'अतरयन' शब्द का प्रयोग किया है।--पाणिनि०, पृ० ४१।

अतररति--सज्ञा स्त्री० [स० अन्तर् + रति] सभोग के सात आसन, यथास्थिति, तिर्यक्, समुख, विमुख, अध, ऊर्ध्व और उत्तान।

अतरराष्ट्रीय--वि दे० 'सार्वराष्ट्रीय'। उ०--'हिंदुस्तानी उस अतरराष्ट्रीय सेना से मिलकर लड रहे हैं जिसने मैड्रिड की रक्षा खूबी के साथ की है।'--'आज', १९३९।

अतरवर्तिनि, अन्तरवर्तिनी--वि० [स०अन्तर्वर्तिन्] मध्यस्थ। बीच की। उ०--तिय पिय की हितकारिनी अतरवर्तिनि हूई।--भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ३३।

अतरवासक--सज्ञा पु० [स० अन्तर्वासक] कपडे के नीचे पहना जाने वाला कपडा। भीतरी वस्त्र। अँतरौटा। उ०--अंबपाली ने तीन डुबकियाँ लगाई, महीन अतरवासक उसके स्वर्णगात्र से चिपक गया।--वै० न०, पृ० ४।

अतरविश्वविद्यालय--वि० [स० अन्तर् + हिं० विश्वविद्यालय] (अ० इटर युनिवर्सिटी) एकाधिक विश्वविद्यालयों से सबध रखनेवाला। उ०--'इस साल अतरविश्वविद्यालय फुटवाल टूर्नामेंट काशी मे हुआ।'--'आज', १९५१।

अतरशायी--सज्ञा पु० [सं० अन्तरशायी] अन्तरस्थ जीव। जीवात्मा।

अतरसचारी--सज्ञा पुं० [स० अन्तरसचारी] वे अस्थिर मनोविकार जो बीच बीच मे आकर मनुष्य के हृदय के प्रधान और स्थिर (स्थायी) मनोविकारों मे से किसी की सहायता या पुष्टि करके रस की सिद्धि करते हैं। इसे केवल सचारी भी कहते हैं। [अतर' शब्द इस कारण भी लगाया गया कि किसी किसी ने अनुभाव के अतर्गत सात्विक भाव को तनसचारी लिखा है।] ये ३३ माने गए हैं। दे० 'सचारी'।

अतरसाखी--सज्ञा स्त्री० [स० अन्त साक्षी] अत साक्ष्य। गुप्त गवाही। साक्षी। उ०--सीता प्रथम अनल महु राखी। प्रगट कीन्हि चह अतरसाखी।--मानस, ६।१०७।

अतरस्थ--वि० [सं० अन्तस्थ] भीतर का। भीतरी। अदर का। भीतर रहनेवाला (जीवात्मा)।

अतरस्थायी--वि० [सं० अन्त स्थायी] दे० 'अत स्थ'।

अतरस्थित--वि० [सं० अन्तरस्थित] दे० 'अतरस्थ'।

अतरबेध(पु)--सज्ञा पुं० [सं०अन्तर्वेध] गगा और यमुना का मध्यवर्ती भूभाग। अन्तर्वेद। उ० अतरबेध कूरभ आइ। सब मेर जेर होइ लगे पाय।--पृ० रा०, १।२११।

अतरहित(पु)--वि० [सं० अन्तर्हित] दे० 'अतर्हित'। उ०--अतरहित सुर आसिष देही।--मानस, १।३५१।

अंतरहीन—वि० सं० [अन्तर+हीन] जिसमे फासला न हो। व्यव-धान रहित। उ०—उस अंतरहीन सामीप्य मे किसी न्यूनता और अवसाद की अनुभूति के लिये स्थान नहीं रह गया।—वो दुनिया, पृ० १३।

अंतरहेत(पु)—वि० दे० 'अंतर्हित'। उ०—तुम तहँ एता सिरजा आपकै अंतरहेत।—जायसी ग्र०, पृ० ३५७।

अंतरास—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरास] स्कध और वक्षस्थल के बीच का भाग [को०]।

अंतरा¹—क्रि० वि० [सं० अन्तरा] १. मध्य। बीच। २ इसी बीच (को०)। ३ समीप। निकट। ४ अतिरिक्त। सिवा। ५ पृथक्। ६ विना। ७ मार्ग मे (को०)। ८. लगभग। प्रायः (को०)। ९ यदातदा। जब तब (को०)। १० कुछ काल के लिये (को०)।

अंतरा²—संज्ञा पुं० १. किसी गीत मे स्थायी या टेक के बाद का दूसरा चरण। २ किसी गीत मे स्थायी या टेक के अतिरिक्त बाकी और पद या चरण। †३ प्रात काल और सध्या के बीच का समय। दिन।

अंतरा(पु)³—[सं० अन्तर] मध्यवर्ती। बीच का। उ०—जब लगि हरत निमेष अतरा युग समान पल जात।—सूर० (राधा०), १३४७।

अंतरा(पु)⁴—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर] फर्क। भेद। अतर उ०—सब्द सब्द वहु अंतरा सार सब्द मन लीजै।—कबीर बी०, पृ० ९२।

अंतराइ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराय, प्रा० अंतराइ] विघ्न। अंतराय। वाधा। उ०—'तब श्री चंद्रावली जी कह्यो, जो तैंने श्री ठाकुर जी के मिलन मे अंतराइ कियो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १०९।

अंतराकाश—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराकाश] १ मध्य भाग या स्थान। २ हृदय मे स्थित ब्रह्म [को०]।

अंतराकूत—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराकूत] गुप्त उद्देश्य। गुप्त आशय अभिप्राय [को०]।

अंतरागार—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरागार] भीतरी गृह। घर का भीतरी हिस्सा [को०]।

अंतरात्मा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरात्मा] १ जीवात्मा। जीव। २ आत्मा। प्राण। उ०—'वह मेरी स्त्री जिसके अभावो का कोष कभी खाली नही, उससे मेरी अंतरात्मा कांप उठती है'।—स्कद०, पृ० ३२। ३ अंत करण। मन।

अंतरादिक्—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरादिक्] दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा [को०]।

अंतरापण—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरापण] नगर के मध्य भाग मे स्थित बाजार। उ०—'श्रेणियो का माल अंतरापण मे बिकता था'।—वै० न०, पृ० २।

अंतरापत्या—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरापत्या] गर्भिणी। गर्भवती। हामिला।

अंतराभवदेश—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराभवदेश] दे० 'अंतराभवदेह' [को०]।

अंतराभवदेह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराभवदेह] मृत्यु और पुनर्जन्म के मध्य स्थित आत्मा [को०]।

अंतराय—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराय] १ विघ्न। बाधा। अड़चन। २ ओट। आड़ [को०]। ३. ज्ञान का बाधक। ४ योग की सिद्धि के विघ्न जो नौ प्रकार के हैं, यथा—(क) व्याधि। (ख) स्त्यान = सकोच। (ग) सशय। (घ) प्रमाद। (च) आलस्य (छ) अविरति = विषयों मे प्रवृत्ति। (ज) भ्रातिदर्शन = उलटा ज्ञान, जैसे जड मे चेतन और चेतन मे जड बुद्धि। (झ) अलब्ध भूमिकत्व = समाधि की अप्राप्ति। (ट) अनवस्थितत्व = समाधि होने पर भी चित्त का स्थिर न होना। ५ जैन दर्शन मे दर्शनावरणीय नामक मूल कर्म के नौ भेदों मे से एक, जिसका उदय होने पर दानादि करने मे अंतराय वा विघ्न होते हैं। ये अंतराय कर्म पाँच प्रकार के माने गए हैं—दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय।

अंतरायाम—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरायाम] एक रोग जिसमे वायुकोप से मनुष्य की आँखें ठुड्डी और पसली स्तब्ध हो जाती है और मुँह से आप ही आप कफ गिरता है तथा दृष्टिभ्रम से तरह तरह के आकार दिखाई पड़ते हैं।

अंतराराम—वि० [सं० अंतराराम] हृदय मे आनद का अनुभव करनेवाला [को०]।

अंतराल—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराल] १ घिरा हुआ स्थान। आवृत स्थान। घेरा। मडल। उ०—तुम कनक किरण के अंतराल मे लुक छिपकर चलते हो क्यों।—चद्र०, पृ० ६३। २ मध्य। बीच। उ०—वह देखो वन के अंतराल से निकले, मानो दो तारे क्षितिज पटी से निकले।—साकेत, पृ० २२१। ३ भीतर। ओट। उ०—'कुलपुत्रों को चुप देखकर किसी ने साल के अंतराल से सुकोमल कठ से कहा'।—इद्र०, पृ० १३२।

अंतरालक—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरालक] दे० 'अंतराल' [को०]।

अंतरालदिक्—संज्ञा [सं० अन्तरालदिक्] दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा। कोण। कोना।

अंतरालदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरालदिशा] दे० 'अंतरालदिक्'।

अंतरावेदी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरावेदी] खभों पर बनी हुई ओसारी या मदिर [को०]।

अंतरिंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरिन्द्रिय] आतरिक इद्रियाँ, मन बुद्धि आदि [को०]।

अंतरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरिका] दो घरों के मध्य की गली।

अंतरिक्ख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अंतरिक्ख] दे० 'अंतरिक्ष'। उ०—भुइँ उडि अंतरिक्ख मृतमडा। खड खड धरती बरम्हडा।—जायसी ग्र०, पृ० २।

अंतरिक्ष¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष] १ पृथिवी और सूर्यादि लोकों के बीच का स्थान। कोई दो ग्रहों वा तारों के बीच का शून्य स्थान। आकाश। अबर। रोदसी। शून्य। उ०—सौरभ से दिगत पूरित था अंतरिक्ष आलोक अधीर।—कामायनी, पृ० ११। २ स्वर्ग लोक। ३ प्राचीन सिद्धात के अनुसार तीन प्रकार के केतुओं मे से एक जिसके घोडे, हाथी, ध्वज, वृक्ष आदि के समान रूप हों। ४ एक ऋषि का नाम। ५ पृथिवी की आकर्षण शक्ति की परिधि से बाहर का आकाश मे स्थान।

यौ०—अंतरिक्षयान = हवाई जहाज। वायुयान। एयरप्लेन (अ०)।

अंतरिक्ष²—वि० अंतर्धान। गुप्त। अप्रकट। उ०—(क) भये ते अंतरिक्ष रिक्ष लक्ष लक्ष जात हीं।—केशव (शब्द०)। (ख) फलोदो

आडौं अंतरिक्ष अर्थात् लोप हो गया। (ग) अविलाइनो इतने समय में अंतरिक्ष था।—अयोध्यासिंह (शब्द०)।

अंतरिक्षक्षित—वि० [सं० अन्तरिक्षक्षित] अन्तरिक्षवासी। अंतरिक्ष में रहनेवाला [को०]।

अंतरिक्षग¹—वि० [सं० अन्तरिक्षग] अंतरिक्ष या आकाश में गमन करनेवाला [को०]।

अंतरिक्षग²—संज्ञा पुं० पक्षी। विहग। खग [को०]।

अंतरिक्षचर¹—वि० [सं० अन्तरिक्षचर] दे० अंतरिक्षग' [को०]।

अंतरिक्षचर²—संज्ञा पुं० पक्षी [को०]।

अंतरिक्षचारी¹—वि० [सं० अंतरिक्षचारी] दे० 'अंतरिक्षग' [को०]।

अंतरिक्षचारी²—संज्ञा पुं० पक्षी [को०]।

अंतरिक्षजल—संज्ञा पुं० [पुं० अन्तरिक्षजल] ओस। अवश्याय नीहार [को०]।

अंतरिक्षसत्¹—वि० [सं० अन्तरिक्षसत्] अंतरिक्ष या शून्य आकाश में गमन करनेवाला। आकाशचारी।

अंतरिक्षसत्²—संज्ञा पुं० १ आत्मा। २ पक्षी।

अंतरिक्षायतन¹—स्त्री० पुं० [सं० अन्तरिक्षायतन] अंतरिक्ष में निवास करनेवाले देवता [को०]।

अंतरिक्षायतन²—वि० आकाशवासी। अंतरिक्षवासी (को०)।

अंतरिखⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अंतरिक्ख] १ दे० 'अंतरिक्ष'। २ (ला०) भूला। उ०—रसदायिनी सुंदरी रमतौं सेज अंतरिख भूमि सम।—बेलि०, दू० २६७।

अंतरिच्छⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अंतरिक्ख] १ आकाश। उ०—जोजन विस्तार सिला पवनसुत उपाटी। किंकर करि बान, लच्छ अंतरिच्छ काटी।—सूर०, ६।९८। २ अधर। ओठ। उ०—अंतरिच्छ श्री वच्छ लेत हरि त्यौं ही आप आपनो घाती।—सा० लहरी, पृ० ५६।

विशेष—अंतरिक्ष का पर्याय 'अंबर' = ओठ है और अधर का अंतरिक्ष है, अत पर्यायसाम्य से अर्थपरिवर्तन हुआ।

अंतरित¹—[वि० अन्तरित] १ भीतर किया हुआ। भीतर रखा हुआ। भितराया हुआ। छिपाया हुआ।

क्रि० प्र०—करना = भीतर करना। भीतर ले जाना। छिपाना।—होना = भीतर होना। अंदर जाना। छिपना।

२, अंतर्धान। गुप्त। गायब। तिरोहित।

क्रि० प्र—करना। होना।

३ आच्छादित। ढका हुआ।

क्रि० प्र०—करना।–होना।

४. बीच में आया हुआ (को०)। ५ अलग किया हुआ। पृथक्कृत (को०)। ६ तुच्छ समझा हुआ या तुच्छ समझा हुआ या तुच्छ किया हुआ (को०)। ७ नष्ट किया हुआ।

अंतरित²—संज्ञा पुं० १ शेष। बाकी। २ स्थापत्य कला का एक पारिभाषिक शब्द [को०]।

अंतरिम—वि० [अं० इंटेरिम] १. मध्यवर्ती। दो समय के बीच का। २ अस्थायी।

यौ०—अंतरिम सरकार = मध्यवर्ती या अस्थायी सरकार [अं० इंटेरिम गवनमेंट]।

अंतरीकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अंतरिक्ख, अंतरिक्क] आकाश। अंतरिक्ष।–डिं०।

अंतरीक्ष—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरीक्ष] दे० 'अंतरिक्ष' [को]।

अंतरीछⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरीक्ष] आकाश। गगन। उ०—पारस, मनि नृप नखियाँ, करि कंचन के ग्राम। अंतरीछ उडिके गयो, नरवाहन के धाम —परमाल रा०, पृ० ३४।

अंतरीप—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरीप] १ द्वीप। टापू। २ पृथिवी का वह नोकीला भाग जो समुद्र में दूर तक चला गया हो। रास।

अंतरीय¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरीय] कमर में पहनने का वस्त्र। अधोवस्त्र। धोती।

अंतरीय²—वि० भीतर का। अंदर का। भीतरी।

अंतरुⓅ†—संज्ञा पुं० दे० अंतर'। उ०—अंत अंत रु के डवर।—रघु० रू० पृ० २४१।

अंतरैक्य—सं० पुं० [सं० अन्तर् + ऐक्य] हार्दिक एकता। आंतरिक एकत्व। उ०—लोकतत्व की सुदृढ नींव रख अंतरैक्य पर।—रजतशि०, पृ० ११३।

अंतर—वि० [सं० अन्तर] भीतर। बीच में।

विशेष—समस्त पदों में इस शब्द के अंत०, अंतर्, अंतश् और अंतस् रूप यथानियम हो जाते हैं।

अंतर्कथा¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःकथा] प्रसंग द्वारा या संदर्भ में संकेतित कथा।

अंतर्कथा²—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर् + कथा] गुप्त कथा। भीतरी बात। उ०—'साहित्यकार का जीवन, अन्तर्कथा आदि के प्रश्न कभी न पूछना चाहिए, नहीं तो रसधारा भंग हो जाती है'।—भा० शिक्षा, पृ० १२६।

अंतर्गंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गङ्गा] गुप्त गंगा। छिपी हुई या लुप्त गंगा [को०]।

अंतर्गडु—वि० [सं० अन्तर्गडु] व्यर्थ। निष्प्रयोजन। बेकार। निरर्थक। वृथा [को०]।

अंतर्गत¹—वि० [सं० अन्तर्गत] १ भीतर आया हुआ। समाया हुआ। शामिल। अंतर्भूत। अंतर्गृहीत। संमिलित। उ०—(क) 'और यह भी ध्यान हुआ कि ऐसे बड़े-बड़े वृक्ष इन्हीं छोटे बीजों के अंतर्गत हैं'।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० १२५। (ख) 'इस समय इतना भूभाग मलाबार के अंतर्गत है'।—सरस्वती (शब्द०)। २ भीतरी। छिपा हुआ। गुप्त। उ०—'यह फोड़ा कभी प्रत्यक्ष, कभी अंतर्गत रहता है'।—अमृतसागर (शब्द०)। ३ हृदय के भीतर का। अंत:करणस्थित। उ०—'उनके अंतर्गत भावों को कौन जान सकता है' (शब्द०)।

अंतर्गत²—संज्ञा पुं० मन। जी। हृदय। चित्त। उ०—(क) रुक्म रिसाइ पिता सों कह्यो। सुनि ताको अंतर्गत दह्यो।—सूर०, (शब्द०)। (ख) तुलसिदास जद्यपि निसि बासर छिन छिन प्रभु मूरतिहिं निहारति। मिटति न दुसह ताप तउ तन की यह बिचारि अंतर्गत हारति।—तुलसी (शब्द०)।

अंतर्गति—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गति] मन का भाव। चित्तवृत्ति। भावना। चित्त की अभिलाषा। हार्दिक इच्छा। मनकामना। उ०—(क) रही आन चहुँ विधि भगतन की जनु अनुराग भरी

अतर्गति ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) 'श्री पार्वती जी ने कृपा की अतर्गति जानि उसे अति हित से निकट बुलाय प्यार कर समझाय के कहा' ।—प्रेमसागर (शब्द०) ।

अतर्गर्भ—वि० [सं० अन्तर्गर्भ] गर्भयुक्त [को०] ।

अतर्गाधार—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्गान्धार] सगीत मे तीसरे स्वर के अंतर्गत एक विकृत स्वर जो प्रसारिणी नामक श्रुति से आरंभ होता है और जिसमे चार श्रुतियाँ होती हैं ।

अतर्गृह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्गृह] भीतर का घर । भीतर की कोठरी । घर का भीतरी खड ।

अतर्गृहगता—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गृह + गता] भक्तिमार्ग मे ठाकुर जी की कामवृद्धि से भजनेवाली सेविका । उ०—'और लीला के भाव मे हू देखें तो प्रभु की इच्छा होइ तब अतर्गृहगतान के साथ प्रभु रमन करत हैं ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ४४६ ।

अतर्गृही—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गृह + ई (प्र०)] तीर्थस्थान के भीतर पड़नेवाले प्रधान स्थलों की यात्रा ।

अतर्गेह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्गेह] घर या मकान का भीतरी खड [को०] ।

अतर्घट—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्घट] शरीर के भीतर का भाग । अत -करण । हृदय । मन ।

अतर्घन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्घन] मुख्य द्वार और घर के बीच का स्थान [को०] ।

अतर्घात—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्घात] दे० 'अन्तर्घन' [को०] ।

अतर्ज—वि० [सं० अन्तर्ज] अतर या भीतर उत्पन्न (जैसे, शरीर मे कीडा) [को०] ।

अतर्जगत्—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्जगत्] अतस्तल । भीतरी जगत् । मन का ससार । उ०—अधकार का आलोक से, असत् का सत् से, जड का चेतन से, और बाह्य जगत् का अतर्जगत् से सबध कौन कराती है ? कविता ही न ?—स्कद०, पृ० २१ ।

अतर्जठर—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्जठर] कोख । पेट [को०] ।

अतर्जलन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + हिं० जलन] भीतरी जलन । अत-र्दाह । उ०—जानती अतर्जलन क्या कर नहीं, दाह से आराध्य भी सुदर नही ।—रेणुका, पृ० १०० ।

अतर्जात—वि० [सं० अन्तर्जात] भीतर उत्पन्न । उ०—'कला उच्चता की अतर्जात प्रवृत्ति की शोधिका है' ।—पा० सा० सि०, पृ० ६७ ।

अतर्जातीय—वि० [सं० अन्तर् + हिं० जातीय] भिन्न वर्णों अथवा जातियों सबधी । दो या दो से अधिक जातियों के बीच का । उ०—'इन सब कथनों से सिद्ध होता है कि अतर्जातीय व्याह अवश्य होते थे' ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १५६ ।

अतर्जामी(पु)—वि० दे० 'अतरजामी । उ०—आए तुम समर्थ हो अतर्जामी सत्य कहो हम निश्चय मानी ।—कबीर सा०, पृ० २२३ ।

अतर्जानु—वि० [सं० अन्तर्जानु] हाथो को घुटने के बीच किए हुए ।

अतर्जामी(पु)—वि० दे० 'अतरजामी' ।

अतर्जीवन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्जीवन] आतरिक जीवन । बौद्धिक या वैचारिक जीवन । उ०—अतर्जीवन सत्य कर दिया तुमने ज्योतित ।—स्वर्ण०, पृ० ६१ ।

अतर्जीवी सं० [सं० अन्तर्जीवी] आंतरिक जीवनवाला । जिसकी वृत्ति आतरिक हो । विचारप्रधान । उ०—आज मुझे है महत्प्रेरणा मिली 'मनुज अतर्जीवी है ।—रजत शि०, पृ० ७० ।

अतर्ज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्ज्ञान] । १. अत करण की बात का जानना । दूसरे के दिल की बात जानना । परोक्षदर्शन । २. परिज्ञान । अत करण का अनुभव । अतर्बोध ।

अतर्ज्योति¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्ज्योतिस्] अतर्यामी । परमेश्वर

अतर्ज्योति²—वि० जिसकी आत्मा प्रकाशित हो । [का०]

अतर्ज्वलन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्ज्वलन] भीतरी ताप । आभ्यतर अग्नि [को०] ।

अतर्ज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्ज्वाला] १ भीतरी आग । भीतर की अग्नि । २ चिंता । सताप [को०] ।

अतर्दग्ध—वि० [सं० अन्तर्दग्ध] भीतर भीतर जला हुआ [को०] ।

अतर्दधन —संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्दधन] शराब चुआने का कार्य या स्थिति [को०] ।

अंतर्दधान—वि० [सं० अन्तर्धान] गुप्त । छिपा हुआ । [को०] ।

अतर्दर्शक—वि० [सं० अन्तर्दर्शक] दे० 'अतर्दर्शी' । उ०—पहले प्रकार के मनुष्य को हम मननशील कहते हैं और दूसरे प्रकार के मनुष्य को अतर्दर्शक कहते हैं । —पा० सा० सि०, पृ० १८६ ।

अतर्दशा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्दशा] १. फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन मे जो ग्रहो के भोगकाल नियत हैं उन्हें दशा कहते हैं । मनुष्य की पूरी आयु १२० वर्ष की मानी गई है । इस १२० वर्ष के पूरे समय मे प्रत्येक ग्रह के भोग के लिये वर्षों की अलग अलग सख्या नियत है जिसे महादशा कहते हैं, जैसे सूर्य की महादशा ६ वर्ष, चद्रमा की १० वर्ष इत्यादि । अब इस प्रत्येक ग्रह के नियत भोगकाल वा महादशा के अतर्गत भी नवग्रहो के भोगकाल नियत हैं जिन्हें अतर्दशा कहते हैं । जैसे सूर्य के ६ वर्ष मे सूर्य का भोगकाल ३ महीने १८ दिन और चद्रमा का ६ महीने इत्यादि । कोई कोई अष्टोत्तरी गणना के अनुसार अर्थात् १०८ वर्ष की आयु मानकर चलते हैं । २ मन स्थिति । चित्त की वृत्ति । उ०—अनेक भाव तथा अत-र्दशाएँ उसके सचारी के रूप मे आती हैं ।—रस०, पृ० ६५ ।

अतर्दशाह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्दशाह] मरने के पीछे दस दिन तक मृतक की आत्मा वायु रूप मे रहती है और प्रेत कहलाती है । इन दस दिनो के भीतर हिंदू शास्त्र के अनुसार जो कर्मकाण्ड किए जाते हैं उन्हें अतदशाह कहते हैं ।

अतर्दर्शी—वि० [सं० अन्तर्दर्शी] १. अतःकरण की वृत्ति समझनेवाला । मन के भाव जाननेवाला । दिल की बात जाननेवाला । २. आत्मनिरीक्षक । तत्ववेत्ता । ३ भीतर देखने या परखने-वाला [को०] ।

अतर्दाह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्दाह] १. आंतरिक दुख । मानसिक वेदना । उ०—अतर्दाह स्नेह का तब भी होता था उस मन मे । —कामायनी, पृ० ११६ । २. एक प्रकार का सन्निपात ।—माधव, पृ० २० ।

अंतर्दृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्दृष्टि] १. ज्ञानचक्षु । प्रज्ञा । हिए की आँख । उ०—बिना नवीन अभ्यास और अतर्दृष्टि के साहि-त्यिक कृतियो का अनुशीलन करना, प्रति दिन कठिन होता

जा रहा है।—जय० प्र०, पृ० ८६। २ आत्मचिंतन। आत्मा का ध्यान।

अंतर्देशीय—वि० [सं० अन्तर्देशीय] १ देश के भीतर का। जैसे अंतर्देशीय पत्र। २ दो या दो से अधिक देशो के मध्य का। दो या अधिक देश संबंधी।

अंतर्द्धान¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्द्धान] लोप। अदर्शन। छिपाव। तिरोधान।

अंतर्द्धान²—वि० गुप्त। अलक्ष्य। गायब। अदृश्य। अंतर्हित। अप्रकट। लुप्त। छिपा हुआ।

क्रि० प्र०—करना = छिपाना। दूर हटाना। = नजर से गायब करना। उ०—ताते महा भयानक भूप। अंतर्द्धान करो सुर भूप। —सूर (शब्द०)।—होना = छिपना। लोप होना। उ०—भई मुनि की खोज पै सो भए अंतर्द्धान।—वृद्ध० च०, पृ० १६।

अंतर्द्वंद्व—संज्ञा, पुं० [सं० अन्तर्द्वन्द्व] १ चरित्रविकास की दृष्टि से नाटक के प्रधान पात्र का आंतरिक संघर्ष। मन मे उठनेवाले भावो अथवा विचारो का संघर्ष। उ०—मानवीय प्रेम के उद्भव, उत्थान, विकास, अंतर्द्वंद्व, ह्रास आदि की कहानी कहने का यत्न किया गया है।—हिं० आ० प्र०, पृ० २४५। २ घर या देश का आपसी झगड़ा [को०]।

अंतर्द्वार—संज्ञा, पुं० [सं० अन्तर्द्वार] घर के भीतर का गुप्त द्वार। घर मे आने जाने के लिये प्रधान द्वार के अतिरिक्त एक और द्वार। पीछे का दरवाजा। खिड़की। चोर दरवाजा।

अंतर्धा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्धा] १ अपवारण। २ संगोपन। आच्छादन [को०]।

अंतर्धान—वि० [सं० अन्तर्धान] गुप्त। अदृश्य। अंतर्हित। उ०—कै हरि जू भए अंतर्धान। मोसों कहि तू प्रगट बखान।—सूर०, १।२८६।

अंतर्धापन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्धापन] संगोपन। छिपाने या तिरोहित करने का कार्य [को०]।

अंतर्धापित—[सं० अन्तर्धापित] संगोपित। छिपाया हुआ [को०]।

अंतर्धारा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्धारा] वह प्रवाह जो बाह्य लक्षणो से व्यक्त न हो। आंतरिक धारा। उ०—वन जीवन के विषम देश की निर्मल अंतर्धारा। जीवन का मृदु मर्म सींचती रही अमृत रस द्वारा।—पार्वती०, पृ० २१।

अंतर्धि—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्धि] १ दो संघर्षशील राज्यों के बीच मे पड़नेवाला राज्य। २ दे० 'अंतर्धा' [को०]।

अंतर्ध्यान—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्ध्यान] आंतरिक एवं गंभीर समाधि [को०]।

अंतर्नगर—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्नगर] राजा का प्रासाद या रईस का महल [को०]।

अंतर्नयन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्नयन] दे० 'अंतर्दृष्टि'। उ०—खोल अंतर्नयन करती नित्य शिव का ध्यान।—पार्वती०, पृ० ८३।

अंतर्नाद—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्नाद] अंतरात्मा की पुकार। हृदय की आवाज।

अंतर्निर्भरता—संज्ञा पुं० [सं० अंतर् + निर्भरता] पारस्परिक निर्भरता। एक दूसरे का भरोसा या सहारा। उ०—स्वाधीनता ध्येय नहीं, साधन मात्र है, ध्येय है अंतर्निर्भरता तथा एकता। —रजत शि०, पृ० १२१।

अंतर्निविष्ट—वि० [सं० अन्तर्निविष्ट] १. भीतर बैठा हुआ। अंदर रखा हुआ। २ अंतःकरण में स्थित। मन में जमा हुआ। हृदय में बैठा हुआ।

क्रि० प्र०—करना = (१) भीतर बैठना। अंदर ले जाना। भीतर रखना। (२) मन में रखना। जी में बैठाना। हृदयगत करना। दिल में जमाना।—होना = (१) भीतर बैठना। भीतर जाना। भीतर पहुँचना। (२) मन में धँसना। चित्त में बैठना। दिल में जमना। हृदयगत होना।

अंतर्निष्ठ—वि० [सं० अन्तर्निष्ठ] आत्मीय या विषयीगत (सब्जेक्टिव)। उ०—प्रेमचंद के लिये सब कुछ अपना ही है, जैनेंद्र का जो कुछ है अपना है। एक बहिर्निष्ठ और दूसरा अंतर्निष्ठ।—प्रेम० गोर्की, पृ० २१७। २ आंतरिक चिंतन में लगा हुआ [को०]।

अंतर्निहित—वि० [सं० अन्तर्निहित] विलीन। समाविष्ट। उ०—उधर पराजित कालरात्रि भी जल में अंतर्निहित हुई।—कामायनी, पृ० २३।

अंतर्बाष्प¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्बाष्प] दबाए गए अश्रु। रोका हुआ आँसू। निरुद्ध बाष्प [को०]।

अंतर्बाष्प²— वि० अश्रुमय [को०]।

अंतर्बोध—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्बोध] १ आत्मज्ञान। आत्मा की पहचान। २ आंतरिक अनुभव।

अंतर्भवन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्भवन] घर का भीतरी भाग। अंतर्गृह। अंतरभवन। उ०—छोड़ सभा विलास श्री अंतर्भवन निज किस विजन में।—पार्वती०, पृ० १५१।

अंतर्भाव—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्भाव] [वि० अन्तर्भावित, अन्तर्भूत, संज्ञा अन्तर्भावना] १ मध्य में प्राप्ति। भीतर समावेश। अंतर्गत होना। शामिल होना।—उ० अन्य अर्थालंकारों का उपमा, दीपक और रूपक में अंतर्भाव है। (अर्थात् अन्य अलंकार उपमा दीपक आदि के अंतर्गत हैं)—(शब्द०)। २ तिरोभाव। विलीनता। छिपाव। ३ नाश। अभाव। ४ आर्हत या जैन दर्शन में आठ कर्मों का क्षय जिससे मोक्ष होता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

५ भीतर का भाव। आंतरिक अभिप्राय। आशय। मंशा।

अंतर्भावना—संज्ञा स्त्री० [अन्तर्भावना] १ ध्यान। सोच विचार। चिंता। चिंतवन। २ गुणनफल के अंतर से संख्याओं को ठीक करना।

अंतर्भावित—वि० [सं० अन्तर्भावित] १ अंतर्भूत। अंतर्गत। शामिल। भीतर। २ भीतर किया हुआ। छिपाया हुआ। लुप्त।

अंतर्भुक्त—वि० [सं० अन्तर्भुक्त] शामिल। समाविष्ट। उ०—इन जातियों और इनकी समस्त आचार परंपरा को धीरे धीरे इन टीकाओं तथा ऋषियों के नाम पर लिखे गए नए नए स्मृति और पुराणग्रंथों में अंतर्भुक्त किया गया।—हिं० सा० भू०, पृ० १३।

अंतर्भूत¹—वि० [सं० अन्तर्भूत] अंतर्गत। शामिल।' उ०—जिनके अंतर्भूत हैं मुद्रादिक समस्त।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३२।

अंतर्भूत²--संज्ञा पुं० जीवात्मा। प्राण। जीव।

अंतर्भूमि--संज्ञा स्त्री० [अन्तर्भूमि] पृथ्वी का भीतरी भाग। भूगर्भ।

अंतर्भेद--संज्ञा पुं० [अन्तर्भेद] भीतरी मनमुटाव [को०]।

अंतर्भेदिनी --वि० [सं० अन्तर्भेदिनी] हृदय का भेदन करनेवाली। भीतर तक पहुँचनेवाली। उ०--उसकी सर्वदर्शिनी अन्तर्भेदिनी आँखों से छिपी न रह सकी।--प० रानी, पृ० ८।

अंतर्भौम--वि० [सं० अन्तर्भौम] जमीन के अंदर का। भूगर्भ में स्थित [को०]।

अंतर्मन--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्मन] भीतरी मन। मन की भीतरी चेतना। अवचेतन। उ०--(क) उस भरे पूरे वातावरण में रहने पर भी मेरा अंतर्मन वास्तव में भयकर सूनेपन का अनुभव करता रहता था।--प० रानी, पृ० ३६। (ख) अंतर्मन के भूमिकंप से ध्वस भ्रष्ट हो । शिखर सनातन गिर रहे हैं मर्त्य धूलि पर --युगपथ, पृ० ११०।

अंतर्मना--वि० [सं० अन्तर्मनस्, अन्तर्मना] १ व्याकुलचित्त। घबड़ाया हुआ। विकल। २ उदास। रंजीदा। ३. अंतर्मुखी।

अंतर्मल--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्मल] १ भीतर का मल। पेट के भीतर का मैला। पेट के अंदर की अलाइश। २ चित्तविकार। मन का दोष। हृदय की बुरी वासना।

अंतर्मुख¹--वि० [सं० अन्तर्मुख] [स्त्री० अन्तर्मुखी] १ जिसका मुख भीतर की ओर हो। भीतर मुँहवाला। जिसका छिद्र भीतर की ओर हो। उ०--यह फोड़ा अति कठोर और अंतर्मुख होता है।--अमृतसागर (शब्द०)। २ जिसकी वृत्ति बहिर्मुख न हो। अपने ही विचारों और कल्पनाओं में तल्लीन रहनेवाला। उ०--'वह अंतर्मुख और आत्मरत था' ।--मम्मा० चि०, पृ० १०।

अंतर्मुख²--क्रि० वि०, भीतर की ओर प्रवृत्त। जो बाहर से हटकर भीतर ही लीन हो।

क्रि० प्र०--करना = भीतर की ओर ले जाना या फेरना। भीतर नियुक्त करना। उ०--अकामी पुरुष इंद्रियों को हटाय अंतर्मुख कर उनके द्वारा अपनी महिमा का साक्षात् अनुभव करता है--कठ० उप० (शब्द०)।

अंतर्मुद्र¹--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्मुद्र] भक्ति का एक प्रकार [को०]।

अंतर्मुद्र²--वि० भीतर से मुहरबंद [को०]।

अंतर्मृत--वि० [सं० अन्तर्मृत] गर्भ के भीतर मरा हुआ (शिशु) [को०]।

अंतर्य--वि० [सं० अन्तर्य] भीतर का। बीच का [को०]।

अंतर्यज्ञ--संज्ञा पुं० दे० 'अंतर्याग' [को०]।

अंतर्यश्छद--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्यश्छद] भीतर का आवरण [को०]।

अंतर्याग--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्याग] मानस यज्ञ या मानसिक पूजा [को०]।

अंतर्यामी¹--वि० [सं० अन्तर्यामिन्, अन्तर्यामी] [वि० स्त्री० अन्तर्यामिनि] १. भीतर की बात जाननेवाला। हृदय की बात का ज्ञान रखनेवाला। उ०--(क) जो अंतर्यामी, वही इसे जानेगा।--साकेत, पृ० २३३। (ख) किसने तुमको अंतर्यामिनि! बतलाया उसका आना ?--वीणा, पृ०, ५८। २ अंतःकरण में स्थित होकर प्रेरणा करनेवाला। चित्त पर दबाव या अधिकार रखनेवाला। ३ भीतर तक पैठनेवाला। भीतर पहुँच रखनेवाला। उ०--बाण के सांस्कृतिक अध्ययन का अंतर्यामी सूत्र कुछ गहराई तक उनमें शास्त्र में पैठने पर हमारे हाथ आया --हर्ष० पृ० २।

अंतर्यामी²--संज्ञा पुं० ईश्वर। परमात्मा। चैतन्य। परमेश्वर। पुरुष।

अंतर्योग--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्योग] ध्यान। अखंड ध्यान [को०]।

अंतर्राष्ट्रीय--वि० दे० 'अंतर राष्ट्रीय', 'अंत रराष्ट्रीय'। उ०--उनके काम करने के घंटे और काम करने के नियम, भारत की आर्थिक व्यवस्था पर ध्यान रखते हुए, अंतर्राष्ट्रीय ढंग पर हों।--भा० वि०, पृ० ३६।

विशेष--यह शब्द संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध नहीं है।

अंतर्लंब--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्लम्ब] वह त्रिकोण क्षेत्र जिसके भीतर लंब गिरा हो।

अंतर्लापिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्लापिका] वह पहेली जिसका उत्तर उसी पहेली के अक्षरों में हो। उ०--(क) कौन जाति सीता सती, दई कौन कहँ तात। कौन ग्रंथ बरण्यो हरी, रामायण अवदात।--केशव (शब्द०)। इस दोहे में पहले पूछा है कि सीता कौन जाति थीं ? उत्तर--रामा = स्त्री। फिर पूछा कि उनके पिता ने उन्हें किसको दिया। उत्तर 'रामाय = राम को। फिर पूछा किस ग्रंथ में हरण लिखा गया है। उत्तर हुआ 'रामायण'। (ख) चार महीने बहुत चलै औ आठ महीने थोरी। अमीर खुसरो यों कहै तू बूझ पहेली मोरी।--(शब्द०)। इसमें 'मोरी' शब्द ही उत्तर है।

अंतर्लीन--वि० [सं० अन्तर्लीन] १ मग्न। भीतर छिपा हुआ। डूबा हुआ। गर्क। विलीन। २. तन्मय। ध्यान में मग्न (को०)।

अंतर्वंश--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वंश] अंतःपुर [को०]।

अंतर्वंशिक--वि [अन्तर्वंशिक] अंतःपुर या अंतर्वंश का निरीक्षक [को०]।

अंतर्वण--वि० सं० [अन्तर्वण] वन के भीतर बसा हुआ [को०]।

अंतर्वती--वि० [सं० अन्तर्वती] १ गर्भवती। अंतर्वत्नी। गर्भिणी। हामिला। २ भीतरी। भीतर की। अंदर रहनेवाली। अंतरस्थित।

अंतर्वत्नी--वि० स्त्री० [सं० अन्तर्वत्नी] गर्भवती। गर्भिणी। हामिला। उ०--निज प्रिय पति के दिव्य तेज से अंतर्वत्नी रानी।--पार्वती, पृ० ५१।

अंतर्वमि--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वमि] अजीर्ण [को०]।

अंतर्वर्ग--पुं० [सं० अन्तर्वर्ग] किसी दल या समूह के भीतर का वर्ग [को०]।

अंतर्वर्ती--वि० [सं० अन्तर्वर्ती] [वि० स्त्री० अंतर्वर्तिनी] भीतरी। भीतर का। अंदर रहनेवाला [को०]।

अंतर्वस्तु--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्वस्तु] किसी पुस्तक, पात्र, पेटी आदि के भीतर की वस्तु [को०]।

अंतर्वस्त्र--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वस्त्र] ऊपरी वस्त्र के अंदर पहनने का कपड़ा [को०]।

अंतर्वाणी--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वाणी] शास्त्रज्ञ। पंडित। शास्त्रवेत्ता शास्त्रों का जाननेवाला। विद्वान्।

अतर्वायु--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्वायु] हृदयस्थ वायु। प्राणवायु। उ०—अतर्वायु निरोध पूर्णत कर रत अविरत तप, मे।--पार्वती०, पृ० १२१।

अतर्वाष्प¹--संज्ञा पुं० [अतर्वाष्प] दे० 'अतरवाष्प'।

अतर्वाष्प²--वि० आसू से भरा। अश्रुपूरित [को०]।

अतर्वास--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वास] दे० 'अतर्वस्त्र' [को०]।

अतर्वासक--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वासक] भीतर पहना जानेवाला वस्त्र। अंतरौटा। उ०--(क) फिर चाहे आप त्रिपिटक से ही प्रमाण क्यो न दें कि बिना अतर्वासक, चीवर इत्यादि के भारत का कोई भी भिक्षु नहीं रहता था, पर वे कब माननेवाले।--आंधी, पृ० ८। (ख) तरुणी का घुटने तक लटकनेवाला अतर्वासक हवा मे फडफडा रहा था।—वैं० न०, पृ० १३६।

अतर्विकार--स्त्री० पुं० [सं० अन्तर् + विकार] शरीर का धम। मन या शरीर सबधी अनुभव, जैसे भूख, प्यास, पीडा इत्यादि।

अतर्विद्रोह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + विद्रोह] विद्रोह। गृहयुद्ध। उ०--तात! विपत्तियो के बादल घिर रहे हैं, अतर्विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित है, इस समय मैं केवल एक सैनिक बन सकूँगा, सम्राट् नही।—स्कद० पृ०, ७६।

अतर्विरोध—संज्ञा पुं० [स० अन्तर् + विरोध] आतरिक विरोध। भीतरी झगडा। उ०--आर्य साम्राज्य के अतर्विरोध और दुर्बलता को आक्रमणकारी भली भाँति जान गए है।—स्कद०, पृ० ७०।

अतर्वृत्ति--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर् + वृत्ति] मनोवृत्ति। आतरिक प्रवृत्ति। उ०—जो कविता रमणी के रूपमाधुर्य से हमे तृप्त करती है वही उसकी अतर्वृत्ति की सुदरता का आभास देकर हमे मुग्ध करती है।--रस०, पृ० ३१।

अतर्वेग--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + वेग] मनोवेग। मनोविकार। [अ० इमोशन] उ०—परतु मनोविज्ञान मे कलामीमांसा सबधी अतर्वेग जैसे मानसिक तत्व का कोई स्थान नहीं है।--पा० सा० सि०, पृ० २००। २ भीतरी ज्वर (वैद्यक)।

अंतर्वेगी ज्वर---संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेगी ज्वर] एक प्रकार का ज्वर जिसमे भीतर दाह, प्यास, चक्कर, सिर मे दर्द और पेट मे शूल होता है। इसमे रोगी को पसीना नहीं आता और न दस्त होता है। इसे कष्टज्वर भी कहते हैं।

अतर्वेद—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेदि] [वि० अतर्वेदी] १ देश जिसके अतर्गत यज्ञो की वेदियाँ हो। २ गगा और यमुना के बीच का देश। गगा यमुना के बीच का दोआब। ब्रह्मावर्त देश। उ०--तुम आज से अतर्वेद के विषयपति नियत किए गए।--स्कद०, पृ० ८१। ३ दो नदियो के बीच का देश या भूखड। दोआब।

अतर्वेदना--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्वेदना] आतरिक व्यथा। भीतरी दुःख या पीडा। उ०--क्या यह सारी अतर्वेदना इसी विलासप्रेम के कारण है।—काया०, पृ० ५२०।

अतर्वेदि—वि० [सं० अन्तर्वेदि] दे० 'अतर्वेदी' [को०]।

अतर्वेदी¹--वि० [सं० अन्तर्वेदीय] अतर्वेद का निवासी। गगा यमुना के बीच के देश मे रहनेवाला। गंगा यमुना के दोआब मे बसनेवाला।

अतर्वेदी²--संज्ञा स्त्री० गगा यमुना के बीच की भूमि या देश। ब्रह्मावर्त देश।

अतर्वेध--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेध] शरीर की गाँठ या जोड़ मे होनेवाला दर्द [को०]।

अंतर्वेशिक--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेशिक] अतःपुर का रक्षक। जनानखाने की रखवाली करनेवाला। राजाज्ञा।

अतर्वेश्म--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेश्म] भीतरी घर। गृह का भीतरी हिस्सा [को०]।

अतर्वेश्मिक—संज्ञा पुं० [अन्तर्वेश्मिक] अतःपुर का निरीक्षक। अतर्वेशिक [को०]।

अतर्व्याधि--सं० स्त्री० [सं० अन्तर्व्याधि] भीतर की व्याधि। आतरिक रोग [को०]।

अतर्व्रण--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्व्रण] शरीर के भीतर होनेवाला फोडा [को०]।

अतर्हस्त--क्रि० वि० [सं० अन्तर्हस्त] हाथ मे। हाथ की पहुँच के भीतर [को०]।

अतर्हस्तीन--वि० [सं० अन्तर्हस्तीन] जो हाथ की पहुँच के भीतर हो या जो हस्तगत हो [को०]।

अतर्हास--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्हास] भीतरी हँसी। भीतर ही भीतर हँसना। मन ही मन की हँसी। अप्रकट हास। गूढ हास।

अतर्हित—वि० [सं० अन्तर्हित] तिरोहित। अतर्धान। गुप्त। गायब। छिपा हुआ। अदृश्य। अलक्ष्य। लुप्त।

क्रि० प्र०—करना।--होना = अतर्धान होना। उ०--अहि विधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अतर्हित प्रभु भयऊ।—तुलसी (शब्द०)।--रहना = गायब या गुप्त रहना। छिपा हुआ रहना। उ०—'कुछ प्रवृत्तियाँ अतर्हित रहती हैं'।—रस०, पृ० १७५।

अतर्हृदय—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्हृदय] हृदय का भीतरी हिस्सा [को०]।

अतलघु--संज्ञा पुं० [सं० अन्तलघु] १ छद का वह चरण जिसके अत मे लघुवर्ण या मात्रा हो। २ वह शब्द जिसका अतिमवर्ण लघु हो।

अतलीन--वि० [सं० अन्तलीन] छिपा हुआ [को०]।

अतलोप—वि० [सं० अन्तलोप] (शब्द) जिसका अतिम अक्षर लुप्त हो (व्या०) [को०]।

अतवत—वि० [सं० अन्तवत्, अन्तवन्त.] नष्ट या समाप्त होनेवाला। मरणधर्मा। विनाशी। उ०--अतवत तन की माया यह सतत क्यो ठहरे।--अपलक, पृ० १०४।

अतवर्ण¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तवर्ण] १ वर्ग का अतिम अक्षर। पचम वर्ण, जैसे, ङ, ञ, ण, न, म आदि [को०]। २. शूद्र।

अतवर्ण²—वि० अतिम वर्ण का। चतुर्थ वर्ण का।

अतवह्नि—संज्ञा पुं० [सं० अन्तवह्नि] प्रलय की अग्नि [को०]।

अतवासी¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तेवासी] दे० 'अतेवासी' [को०]।

अतवासी²—वि० १. सीमात पर रहनेवाला। २. समीप रहनेवाला [को०]।

अंतविदारण--संज्ञा पुं० [सं० अन्तविदारण] सूर्य और चंद्रग्रहण के जो दस प्रकार के मोक्षमाने गए हैं उनमें से एक।

विशेष--इसमें चंद्रमा के बिंब के चारों ओर निर्मलता और मध्य में गहरी श्यामता होती है। इससे मध्य देश की हानि और शरद् ऋतु (कुआर) की खेती का विनाश वराहमिहिर ने माना है।

अंतवेला--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तवेला] अंतकाल। अंत समय [को०]।

अंतव्याप्ति--संज्ञा स्त्री० [अन्तव्याप्ति] किसी शब्द के अंतिम अकार का परिवर्तन, जैसे--'मिह' का 'मघ' [को०]।

अंतशय्या--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तशय्या] १ भूमिशय्या। २ मृत्युशय्या। मरनसेज। मरनखाट। ३ श्मशान। मसान। मरघट ४ मरण। मृत्यु। ५ चिता [को०]।

अंतश्--'अंतर' वि० [सं०] शब्द का कुछ स्थितियों में परिवर्तित रूप।

अंतश्चेतन--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस् + चेतन] मन का वह भाग (मुख्यत दबी हुई इच्छाओं आदि से युक्त) जो बाह्य अनुभूति में न आ सके। उ०--जब से चेतन मनोविज्ञान से आगे बढ़कर उपचेतन और अंतश्चेतन मनोविज्ञान की शोधें हुई हैं, तब से साहित्यिकों के लिये नई कृतियाँ प्रस्तुत करने का बहुत बड़ा क्षेत्र खुल गया है।--न० सा० न० प्र०, पृ०, १८।

अंतश्चेतन[२]--वि० आत्म चेतना या दिव्य प्रेरणा से युक्त। उ०--ऊर्ध्व मुक्त, अंतश्चेतन बन जाता जन मन।--रजत शि०, पृ० ७०।

अंतश्चेतना--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस् + चेतना] अंतश्चेतन की अनुभूति। आत्मचेतना। दिव्य प्रेरणा। उ०- रजत शिखर मनुष्य की अंतश्चेतना का शुभ्र प्रतीक है।--रजत शि०, (भू०) पृ० ३।

अंतश्छद--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस् + छद] १ भीतरी तल। २ भीतरी आच्छादन। ३ मिहराब के नीचे का तल।

अंतश्छिद्र--संज्ञा० पुं० [सं० अन्तश्छिद्र] भीतरी छेद या अंदरूनी सूराख [को०]।

अंतश्छिन्न--वि० [सं० अन्तश्छिन्न] भीतर कटा हुआ [को०]।

अंतस्[१]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्] अंतःकरण। मन। हृदय। चित्त। मानस। उ०--(क) तुहीं मानव देव दान सिधान। तुहीं कोटि ब्रह्मादि अंतस् समान।--पृ० रा०, २। २०५। (ख) काया की न छाया यह केवल तुम्हारी, द्रुम! अंतस् के मर्म का प्रकाश यह छाया है।--रस०, पृ० १६।

अंतस्[२]--वि० 'अंतर्' शब्द का समासगत रूप, जैसे, अंतस्तल, अंतस्तप्त आदि में।

अंतसश्लेप--संज्ञा पुं० [सं० अन्त सश्लेप] संधि। जोड़ [को०]।

अंतसंत्क्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तसत्क्रिया] अंतिम सत्कार अंतिम संस्कार [को०]।

अंतसद्--संज्ञा पुं० [सं० अन्तसद्] शिष्य। चेला

अंतसमय--संज्ञा पुं० [सं०अन्तसमय] मृत्युकाल। मरणकाल।

अंतस्तप्त--वि० [सं० अन्तस्तप्त] १ भीतर भीतर तपा हुआ। २ खिन्न। संतप्त [को०]।

अंतस्तल--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस् + तल] १ मन हृदय। चित्त। उ०--उठती अंतस्तल से सदैव दुर्ललित लालसा जो कि कांत।--कामायनी, पृ० १४०। २. मन का भीतरी तल या भीतरी तह। उ०--पर जो हृदय के अंतस्तल पर मार्मिक प्रभाव चाहते हैं, किसी भाव की स्वच्छ निर्मल धारा में कुछ देर अपना मन मग्न रखना चाहते हैं, उनका संतोष बिहारी से नहीं हो सकता।--इतिहास, पृ० २५१।

अंतस्ताप--संज्ञा पुं० [सं०अन्तस्ताप] मानसिक व्यथा। आधि। चित्त का संताप। आंतरिक दुःख। भीतरी खेद। उ०--असुरों के घोता पद सागर निज मर्यादा छोड़। अंतस्ताप दग्ध बड़वा सा करता करणिम क्रोड।--पार्वती, पृ० १०१।

अंतस्तुषार--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्तुषार] ओस की बूँद से युक्त [को०]

अंतस्तोय--वि० [सं० अन्तस्तोय] जल से भरा हुआ (बादल) [को०]।

अंतस्त्य--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्त्य] आँत। अँतड़ी [को०]।

अंतस्थ[१]--वि० [सं० अन्तस्थ] १ भीतर स्थित। भीतरी। २ बीच में स्थित। मध्य का मध्यवर्ती। बीचवाला। ३ 'य, र, ल, व' ये चारों वर्ण अंतस्थ कहलाते हैं क्योंकि इनका स्थान स्पर्श और ऊष्म वर्णों के बीच में है।

अंतस्थ[२]--संज्ञा पुं० स्पर्श और ऊष्म वर्णों के बीच रहनेवाले 'य, र, ल, व' वर्ण।

अंतस्थल--संज्ञा पुं०, [सं० अन्तस्थल] अंतःकरण। उ०--आज उन्होंने विवेक के प्रकाश में अपने अंतस्थल को देखा।--काया०, पृ० १६६।

अंतस्था--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्था] दे० अंतस्थ[२]।

अंतस्थित--वि० [सं० अन्तस् + स्थित] १ भीतर स्थित। भीतरी। २ हृदयस्थित। हृदय का। चित्त के भीतर का। अंतःकरण का।

अंतस्नान--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्नान] अवभृथ स्नान। वह स्नान जो यज्ञ समाप्त होने पर किया जाता है।

अंतस्संज्ञा--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस् + संज्ञा] मन या बुद्धि की वह क्रिया जो अभी तक प्रत्यक्ष अनुभव में स्पष्ट न हुई हो। उ०--उदय से अस्त तक भावमंडल का कुछ भाग तो आश्रय की चेतना के प्रकाश (कांशस) में रहता है और कुछ अंतस्संज्ञा के क्षेत्र (सब कांशस रीजन = अवचेतन) में छिपा रहता है --रस०, पृ० ६५।

अंतस्सत्ता--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस् + सत्ता] आंतरिक सत्ता। अंतःकरण। चेतना। उ०--हमारी अंतस्सत्ता की यही तदाकार परिणति सौंदर्य की अनुभूति है।--रस०, पृ० २६।

अंतस्सलिल--वि० [सं० अन्तस्सलिल] [स्त्री० अन्त सलिला] जिसके जल का प्रवाह बाहर न दिखाई पड़े, भीतर हो। उ०-- अंतस्सलिला सरस्वती (शब्द)।

अंतस्सलिला--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस्सलिला] १ सरस्वती नदी। २ फल्गू नदी।

अंतस्साधना--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस् + साधना] आंतरिक साधना। गुप्त साधना। उ०--हृदयपक्षशून्य सामान्य अंतस्साधना का मार्ग निकालने का प्रयत्न नाथपंथी कर चुके थे, यह हम कह चुके हैं।--इतिहास, पृ० ६४।

अंतस्सार--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्सार] १ आंतरिक सार। तत्व। २. ठोसपन। ३ मन, बुद्धि और अहंकार का योग। ४ अंतरात्मा [को०]।

अंतहकरण(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतःकरण'। उ०--सुंदर हरि के भजन तें निर्मल अंतहकरण।--सुंदर ग्रं०, पृ० ६७६।

अंतहपुर(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतःपुर'। उ०--(क) पूछत पूछत गयौ अंतहपुरि। हुओ सुदरसण तणौ हरि।--बेलि, दू० ५२। (ख) उठिव नृपति दीवान तें, अंतहपुर में जाय।--प० रासो, पृ० ६८।

अंतहार(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्र+हार] आँतों की माला। आँत का हार। उ०--करि अगराग चरबी बसा अंतहार आभार दिय।--सुजान च०, पृ० २३।

अंताराष्ट्रिय--वि० [सं० अन्तर्+राष्ट्रिय] दो या दो से अधिक राष्ट्रों से संबंध रखनेवाला।

अंताराष्ट्रीय--वि० [सं० अन्ताराष्ट्रीय] दो या दो से अधिक राष्ट्रों से संबंध रखनेवाला।

अंताल--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्राल] आँत। अँतड़ी।--परि फूक सु कूक, डकिकन डूक, गिद्ध गहक्क अंताल।--पृ० रा०, २।२६०।

अंतावरि--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंतावरी'।

अंतावरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र+अवली] अँतड़ियाँ। आँतों का समूह।--अंतावरी गहि उडत गीध पिसाच कर गहि धावहीं।--मानस, ३।१८।

अंतावशायी--संज्ञा पुं० [सं० अन्तावशायी] १ ग्राम की सीमा के बाहर बसनेवाला। २ प्राचीन काल में अस्पृश्य कहे जानेवाले वर्ण जैसे- चांडाल।

अंतावसायी--संज्ञा पुं० [सं० अन्तावसायिन्] १ नाई। हज्जाम। २ हिंसक। चांडाल।

अंतित(पु)--वि० [सं० अत्यन्त] दे० 'अत्यन्त'। उ०--पुच्छन सु बाल बुल्यो बलिय। करि सु चित अंतित चित। पृ० रा०, १।२७५।

अंति[1]--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ति] बड़ी बहन [को०]।

अंति[2](पु)--वि० [सं० अन्तिक,प्रा० अंतिअ] १ समीप। निकट। उ०--खडे अंति चहुवान के बैन बोले।--प० रा०, पृ० ८५। २. अंत में। उ०--जु कछु तत को मत अंति कहि कहि समझायो।--पृ० रा०, ६७।४५५।

अंति[3](पु)--दे० 'अत्यंत'। उ०--सहस मात हय पेत रहि परे पच से दंति, लुथ्थि कोस पचह प्रचर परे सु पाइल अंति।--पृ० रा०, १६।२४४।

अंतिक[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तिक] १ पड़ोस। २ निकटता। सामीप्य [को०]।

अंतिक[2]--वि० १ पास। २ निकट। समीप [को०]।

अंतिकता--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तिकता] सामीप्य। निकटता [को०]।

अंतिकस्थ--वि० [सं० अन्तिकस्थ] निकटस्थ। पास या समीप पहुँचा हुआ [को०]।

अंतिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तिका] १ अंति। बड़ी बहन। २ चूल्हा। भट्ठी। ३ एक पौधा। शातला [को०]।

अंतिकाल(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतकाल'। उ०--गुर परमादै भिष्या पाइवा, अंतिकालि न होइगी भारी।--गोरख०, पृ० ३७।

अंतिकाश्रय--संज्ञा पुं० [अन्तिकाश्रय] समीपस्थ का सहारा या अवलंबन [को०]।

अंतिज(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंत्यज'। उ०--वहि जो अहं देह अभिमानी। चारि वर्ण अंतिज लौ प्रानी।--सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३७४।

अंतिम--वि० [सं० अन्तिम] १ जो अंत में हो। अंत का। आखिरी। सबसे पिछला। सबके पीछे का। २ चरम। सबसे बढ़ के। हद दरजे का।

अंतिम यात्रा--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तिम यात्रा] महायात्रा। महाप्रस्थान। आखिरी सफर। प्रयाण। मृत्यु। मरण। मौत। मृत्यु के पीछे उस स्थान तक जीवात्मा की यात्रा जहाँ अपने कर्मानुसार उसे रहकर कर्मों का फल भोगना पड़ता है।

अंतिमांक-- स्त्री० पुं० [सं० अंतिमाङ्क] नौ की संख्या [को०]।

अंतिमेत्थम्--[अं० 'अल्टिमेटम्' का हिंदीकरण] आखिरी चेतावनी।

अंती(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र] आँत। उ०--टरै सूर अंती गरं मासदंती यहै भूमि छत्ती सु मारुध्य वत्ती।--पृ० रा०, ६६।१०४७।

अंते(पु)--क्रि० वि० [सं० अन्ते] दे० 'अनत'। उ०--अधर महल पर बैठक पायो, अंते जाय बलाय।--गुलाल०, पृ० ३८।

अंतेउर(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अंतःपुर, प्रा० अंतेउर; अंतेवर] घर के भीतर का भाग जिसमें स्त्रियाँ रहती हैं। अंतःपुर। जनानखाना। रनिवास। उ०--मीजइ फेरइ फेरिवउ जाय। गगनइ अंतेउर नीयड रे बुलाइ।--बीसल० रा० पृ० ५७।

अंतेवर(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतेउर'। उ०--रूठउ फेरी जब फेरइ जाय, गहु अंतेवर कियो बलाइ।--बी० रा०, पृ० २३।

अंतेवासि(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतेवासी'। उ०--गोपालानाथ भयो पुनि उन अंतेवासि।--घनानंद, पृ० ६०८।

अंतेवासी--संज्ञा पुं० [सं० अंतेवासी] १ गुरु के समीप रहनेवाला। शिष्य। चेला। २ ग्राम के बाहर रहनेवाला। चांडाल। अंत्यज। उ०--आचार्य और अंतेवासी अर्थात् पढ़ाने और पढ़नेवाले दोनों ही उस आदर्श से प्रेरित होते हैं।--पाणिनि०, पृ० २६८।

अंत्य[1]--वि० [सं० अन्त्य] अंत का। अंतिम। आखिरी। सबसे पिछला।
यौ०--अंत्यजन्मा, अंत्यजाति, अंत्यजातीय = अंतिम वर्ण का।

अंत्य[2]--संज्ञा पुं० वह जिसकी गणना अंत में हो, जैसे--१ लग्नों में मीन। २ नक्षत्रों में रेवती। ३. वर्णों में शूद्र और ४ अक्षरों में 'ह'। ५ एक संख्या। पद्म की संख्या। दस सागर की संख्या (१०००,००० ०००,०००,०००) दस करोड़ करोड़। ६ यम [को०]।

अंत्यक--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यक] अंतिम वर्ण का मनुष्य। अंत्यज [को०]।

अंत्यकर्म--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यकर्मन्] अंत्येष्टि क्रिया।

अंत्यक्रिया-- संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्यक्रिया] अंत्यकर्म। अंत्येष्टि [को०]।

अंत्यगमन--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यगमन] सवर्ण जाति की स्त्री का असवर्ण जातिवाले पुरुष के साथ सहवास [को०]।

अंत्यज--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यज] [वि० स्त्री० अंत्यजा] वह व्यक्ति जो अंतिम वर्ण में उत्पन्न हुआ हो। वह शूद्र जो प्राचीन युग में छूने के योग्य नहीं माना जाता था या जिसका छुआ हुआ जल द्विज उन दिनों ग्रहण नहीं करते थे, जैसे--धोबी, चमार, नट, बरुड़, डोम, मेद, भिल्ल इत्यादि।

यौ०—अन्त्यजगमन = सवर्ण जाति की स्त्री का असवर्ण जातिवाले पुरुष के साथ यौन संबंध ।

अत्यजन्मा—वि० [स० अन्त्यजन्मा] अंत्य जाति का । निम्न जातीय [को०] ।

अंत्यजा—संज्ञा स्त्री० [स० अन्त्यजा] शूद्रा । अंतिम वर्ण मे उत्पन्न स्त्री [को०] ।

यौ०—अंत्यजागमन = सवर्ण जाति के पुरुष का असवर्ण जाति की स्त्री के साथ यौन संबंध ।

अत्यजाति—वि० [सं० अन्त्यजाति] अंतिम जाति का । निम्न जाति का [को०] ।

अत्यजातीय—वि० [सं० अन्त्यजातीय] दे० 'अंत्यजाति' [को०] ।

अत्यधन—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यधन] गणना की अंतिम राशि [को०] ।

अत्यपद—स्त्री० पुं० [स० अन्त्यपद] अंतिम या सबसे बड़ा वर्गमूल । अंत्यमूल (गणित) [को०] ।

अत्यभ—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यभ] १ अंतिम नक्षत्र अर्थात् रेवती । २ मीन राशि ।

अत्यमद—संज्ञा पुं० [स० अन्त्यमद] मदात्यय रोग का एक भेद ।

विशेष—इसमे रोगी बड़ो का तिरस्कार करता है, न खाने योग्य चीजों को खाता है और उसके मन मे जो गुप्त बातें होती हैं उन्हे प्रकट करने लगता है। मदात्यय तीन प्रकार का होता है। पूर्वमद, मध्यमद और अन्त्यमद। —मा० नि०, पृ० ११५ ।

अत्यमूल—संज्ञा पुं० [स० अन्त्यमूल] दे० 'अंत्यपद' ।

अत्ययुग—संज्ञा पुं० [स० अन्त्ययुग] गणनाक्रम से युगो अंत मे आनेवाला युग । कलियुग ।

अत्ययोनि¹—संज्ञा स्त्री० [स० अन्त्ययोनि] अंतिम या निम्न योनि [को०] ।

अत्ययोनि²—वि० निम्न योनि का [को०] ।

अत्यलोप—संज्ञा वि० [स० अन्त्यलोप] किसी शब्द के अंतिम वर्ण या अक्षर का लोप (भा० वि०) ।

अत्यवर्ण—संज्ञा पुं० [स० अन्त्यवर्ण] १. अंतिम वर्ण । शूद्र । २ अंत का वर्ण 'ह' । ३. पद के अंत मे आनेवाला कोई भी वर्ण या अक्षर ।

अत्यविपुला—संज्ञा स्त्री० [स० अन्त्यविपुला] आर्या छद का एक भेद ।

विशेष—इसके दूसरे दल के प्रथम तीन गणो तक चरण पूर्ण नही होता और दोनों दलों मे दूसरा और चौथा गण जगण होता है। इसे अत्यविपुला महाचपला, अत्यविपुला जघनचपला या अत्यविपुला मुखचपला भी कहते हैं।

अत्यविराम—संज्ञा पुं० [स० अन्त्यविराम] अंत का या अंतिम विराम । उ०—गिरजाकुमार माथुर अत्यविराम रहित पक्तियो के मुक्त छद को काव्य के लिये बहुत उपयुक्त मानते हैं ।—हि० का० प्रां० प्र०, पृ० २६१ ।

अत्या—संज्ञा स्त्री० [स० अन्त्या] चाडाली । चाडाल की स्त्री । चाडालिनी ।

अत्याक्षर—संज्ञा पुं० [स० अन्त्याक्षर] १ किसी शब्द या पद के अंत का अक्षर । २ वर्णमाला का अंतिम वर्ण 'ह' ।

अत्याक्षरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्य + हिं० अक्षरी] किसी कहे हुए श्लोक या पद्य के अंतिम अक्षर से आरंभ होनेवाला दूसरा श्लोक या पद्य पढना। किसी श्लोक या पद्य के अंतिम पद के अंत्य अक्षर से दूसरे श्लोक या पद्य का आरंभ ।

विशेष—विद्यार्थियो मे इसकी चाल है। एक विद्यार्थी जब एक श्लोक या पद्य पढ चुकता है तब दूसरा उस श्लोक के अंतिम अक्षर मे आरंभ होनेवाला दूसरा श्लोक या पद्य पढता है। फिर पहला उस दूसरे विद्यार्थी के कहे हुए पद्य का अंतिम अक्षर लेता है और उससे आरंभ होनेवाला एक तीसरा पद्य पढता है। यह क्रम बहुत देर तक चलता है। अंत मे जो विद्यार्थी श्लोक या पद्य न पाकर चुप हो जाता है, उसकी हार मानी जाती है।

अत्यानुप्रास—संज्ञा पुं० [स० अन्त्यानुप्रास] पद्य के एक चरण के अंतिम अक्षर और पूर्ववर्ती स्वर का किसी अन्य चरण के अंतिम अक्षर और पूर्ववर्ती स्वर से मेल। पद्य के चरणों के अंतिम अक्षरों का मेल । तुक । तुकबंदी । तुकांत । उ०—श्रुतिकटु मानकर, कुछ वर्णों का त्याग, वृत्तविधान, लय, अत्यानुप्रास आदि नाद-सौंदर्य-साधन के लिये ही है ।—रस०, पृ० ४६ ।

विशेष—जैसे, सिय सोभा किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी ।—तुलसी (शब्द०)। इस चौपाई के दोनो चरणो का अंतिम अक्षर 'नी' है। हिंदी कविता मे ५ प्रकार के अत्यानुप्रास मिलते हैं। (१) सर्वांत्य, जिसके चारो चरणो के अंतिम वर्ण एक हो। उ०—न ललचहु। सब तजहु। हरि भजहु। यम करहु। (शब्द०)। (२) समात्य विषमात्य, जिसके सम से सम और विषम से विषम के अत्याक्षर मिलते हों। उ०—जिहि सुमिरत सिधि होइ, गणनायक करिवर बदन। करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धिराशि शुभ गुणसदन।—तुलसी (शब्द०)। (३) समात्य जिसके सम चरणो के अत्याक्षर मिलते हो विषम के नही। उ०—सब तो। शरणा। गिरिजा। रमणा (शब्द०)। (४) विषमात्य, जिसके विषम चरणो के अत्याक्षर एक हो, सम के नही। उ०—लोभिहि प्रिय जिमि दाम, कामिहि नारि पियारि जिमि। तुलसी के मन राम, ऐसे ह्वै कब लागिही ॥—तुलसी (शब्द०)। (५) समविषमात्य, जिसके प्रथम पद का अत्याक्षर द्वितीय पद के अत्याक्षर के समान हो। उ०—जगो गुपाला। सुभोर काला। वहीं यसोदा। लहै प्रमोदा (शब्द०)।

अत्यावसायी—संज्ञा पुं० [स० अन्त्यावसायिन्] [स्त्री० अत्यावसायिनी] १ हिंदुओ की प्राचीन जातिव्यवस्था के अनुसार अत्यत नीच जाति का व्यक्ति। चाडाल। मनु के अनुसार निषाद स्त्री और चाडाल पुरुष से उत्पन्न व्यक्ति। २ अंगिरा के अनुसार चाडाल, श्वपच, क्षत्ता, सूत, वैदेहक, मागध और अयोगव ये सात जातियाँ।

अत्याश्रम—संज्ञा पुं० [स० अन्त्याश्रम] अंतिम आश्रम। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास—इन चारो आश्रमो मे अंतिम। सन्यासाश्रम [को०]।

अंत्याश्रमी[1]—वि० [सं० अन्त्याश्रमिन्] अंतिम आश्रम में स्थित। सन्यास आश्रमवाला [को०]।

अंत्याश्रमी[2]—संज्ञा पुं० अंतिम आश्रम का व्यक्ति। सन्यासी [को०]।

अंत्याहुति—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्याहुति] यज्ञ या चिता की अंतिम आहुति [को०]।

यौ०—अंत्याहुति क्रिया = अंत्येष्टि कर्म।

अंत्येष्टि—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्येष्टि] मृतक का शवदाह से सपिंडन तक कर्म। क्रिया कर्म। अंत्यक्रिया। उ०—अंतिम समय में यमुना और घंटी रूपी सौभाग्य देवियाँ विजय की अंत्येष्टि का प्रबंध करती हैं।—कंकाल, पृ० १०५।

यौ०—अंत्येष्टि क्रिया = मृतक का शवदाह आदि कर्म। अंत्येष्टि। उ०—महादेवी की अंत्येष्टि क्रिया राजसमान से होनी चाहिए। —स्कंद०, पृ० ११५।

अंत्रधमि—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रन्धमि] अजीर्ण। अपच। पेट का फूलना। वायु के कारण पेट का फूलना [को०]।

अंत्र[1]—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्र] आँत। अँतड़ी। रोधा।

अंत्र[2] (पु)—संज्ञा पुं०, कहीं कहीं 'अंतर' का अपभ्रंश। जैसे 'अंत्रध्यान' में 'अंत्र'।

अंत्रकूज—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्रकूज] दे० 'अंत्रकूजन' [को०]।

अंत्रकूजन—संज्ञा पुं० [स० अन्त्रकूजन] आँतों का शब्द। अँतड़ियों की गुड़गुड़ाहट अँतड़ियों की कुड़कुड़ाहट।

अंत्रध्यान(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंतर्धान'। उ०—इम कहिय ईस हुअ अंत्रध्यान, जग्गयौ राज भौ वर विहान।—पृ० रा० ६६।१६६६।

अंत्रपाचक—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्रपाचक] एक औषधोपयोगी क्षुप जिसके छाल, सार और निर्यास का प्रयोग होता है [को०]।

अंत्रवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रवल्लिका] महिषवल्ली [को०]।

अंत्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रवल्ली] सोमवल्ली लता [को०]।

अंत्रविकूजन—संज्ञा पुं० [सं० अन्त्रविकूजन] दे० 'अंत्रकूजन' [को०]।

अंत्रवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रवृद्धि] आँत उतरने का रोग। आँत का उतरकर अंडकोश में चले जाना।

अंत्रस्रज—संज्ञा स्त्री० [स० अन्त्रस्रज्] आँतों की माला, जो नरसिंह ने धारण की थी [को०]।

अंत्राडवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [स० अन्त्राण्डवृद्धि] एक रोग जिसमें आँत उतरकर अंडकोश में चली आती है और फोता फूल जाता है।

अंत्राद—संज्ञा पुं० [स० अन्त्राद] आँत का कीड़ा। अँतड़ियों में रहकर उसे खानेवाला कृमि [को०]।

अंत्रालजी—संज्ञा स्त्री० [स० अन्त्रालजी] पीब से भरी एक प्रकार की ऊँची गोल फुंसी जो वैद्यक के अनुसार कफ और वात के प्रकोप से होती है।

अंत्रि—संज्ञा स्त्री० [स० अन्त्र] अँतड़ी। आँत।

अंत्री[1]—संज्ञा स्त्री० [स० अन्त्री] एक वनौषधि का नाम। उदरशूल या पेट की बाई में दी जानेवाली औषधि का पौधा।

अंत्री[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंत्रि'।

अंथवना(पु)—क्रि० अ० दे० 'अथवना'। उ०—जौं पच्छिम दिसि उय पुब्ब अथवै दिनकर।—पृ० रा० ६१।१००६।

अंदरसा(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अँदरसा'। उ०—लौंग कपूर खाँडघृत धारे। अंदरसे खटमिठे सिधारे।—सूर० परि० १, पृ० ५०।

अंदरी—वि० [फा०, अन्दर + हिं० ई] भीतरी अंदरूनी।

अंदरूनी—वि० [फा० अंदरूनी] भीतरी। भीतर का। आभ्यंतरिक।

अंदलीब—संज्ञा स्त्री० [अ०] बुलबुल। उ०—पूछे हैं फूलों फल की खबर अब तो अंदलीब। टूटे झड़े खिजाँ हुए फूले फले गए।—क० कौ०, भा० ४, पृ० १०८।

अंदाज—संज्ञा पुं० [फा० अंदाज] १ अटकल। अनुमान। उ०—गुप्त जी एक युग पहले का मध्यवर्गीय सतोष हमें सिखाते हैं, उन्हें आज की आग का अंदाज नहीं है।—जय० प्र०, पृ० ८। २. मान। नापजोख। कूत। तखमीना। ३ ढंग। ढग। तौर। तर्ज। उ०—इससे यह बात नहीं निकलती कि बिलकुल मेहनत न करो सब काम अंदाज सिर करने चाहिए। —श्रीनिवास ग्र०, पृ० १८५।

क्रि० प्र०—करना। —लगाना। —होना।

मुहा०—अंदाज उड़ाना = दूसरे की चाल ढाल पकड़ना। पूरी पूरी नकल करना।

४ मटक। भाव नाज। चेष्टा। ठसक उ०—अंदाज अपना देखते हैं आइने में वोह। और ये भी देखते हैं कोई देखता न हो।—शेर०, भा० १, पृ० ६०६।

अंदाजन—क्रि० वि० [फा० अंदाज + अ० अन् (प्रत्य०)] १ अंदाज से। अटकल से। तखमीनन २ लगभग। करीब।

अंदाजपट्टी—संज्ञा पुं० [फा० अंदाज + हिं० पट्टी (भूभाग)] खेत में लगी हुई फसल के मूल्य कूतना। कनकूत।

अंदाजपीटी—संज्ञा स्त्री० [फा० अंदाज + हिं० पिटना (हैरान होना)] वह स्त्री जो अपने बनाव सिंगार में लगी रहे। अपनी सुंदरता और चालढाल पर इतरानेवाली स्त्री।

अंदाजा—संज्ञा पुं० [फा० अंदाज़ह्] १ अटकल। अनुमान। २ कूत। नापजोख। परिमाण तखमीना। उ०—उपनिषद में तो ब्रह्मानंद के सुख के परिमाण का अंदाजा कराने के लिये उसे सहवास सुख से सौगुना कहा था।—इतिहास, पृ० ११।

अंदिका—संज्ञा स्त्री० [स० अन्दिका] १ बड़ी बहन। अंतिका। २ अँगीठी। बोरसी [को०]।

अंदु—संज्ञा पुं० [स० अन्दु] १ पैर में पहनने का स्त्रियों का एक गहना। पाजेब। पैरी। पैंजना। २ सांकड़ा। हाथी को बाँधने की साँकल। अलान। उ०—छुट्टे अंदु हस्ती मदजा जरान। —पृ० रा०, १२।३२१। ३ बाँधने की रस्सी या जंजीर।

अंदुक—संज्ञा पुं० [स० अन्दुक] दे० 'अंदु'।

अंदू—संज्ञा पुं० [स० अन्दू] बेड़ी। निगड। उ०—(क०) बिरदावलि बिरदाई पाय अंदू कर ढीले। तामस बुझ्झन काज बोलि मधु वचन रसीले।—पृ० रा०, ६६।१६२८। (ख) क्रीडा समदू गज्ज अंदू ग्राह फट्ट रच्चए। —राम० धर्म०, पृ० २६।

अंदूक—संज्ञा पुं० [स० अन्दूक] दे० 'अंदू' [को०]।

अंदेश[1]—संज्ञा पुं० [फा० अंदेशह्] सोच। चिंता। फिक्र। उ०—सिय अंदेश जानि प्रभु सूरज लियो करज की ओर। टूटत धनु नृप लुके जहाँ तहँ ज्यों तारागन भोर।— (शब्द०)।

अंदेश२--प्रत्य० [फा० अंदेश] सोचनेवाला। अभिलाषी। देखनेवाला। द्रष्टा। जैसे, बद अंदेश। खैर अंदेश। दूर अंदेश आदि [को०]।

अंदेशा--संज्ञा पुं० [फा० अंदेशह्] १. सोच। चिंता। फिक्र। उ०--मोमिन ये असर सियाह मस्ती का न हो। अंदेशा कभी बलंद व पस्ती का न हो।--कविता कौ०, भाग ४, पृ० ४८७। २ संशय। अनुमान। संदेह। शक। ३ खटका। आशंका। भय। डर। ४ हर्ज। हानि। ५ दुविधा। असमंजस। आगा-पीछा। पसोपेश।

अंदेस(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंदेशा'। उ०--(क) कितक रूप गुन आगरो सुनत मोहिं अंदेश।--पृ० रा०, १४।७। (ख) सो अंदेश होत मन मारें व व यो मिलवौं आना रे।--जग० बानी, भा० २, पृ० ३।

अंदेसड़ा(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० अंदेशा > अंदेस + ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'अंदेशा'। उ०--अंदेसड़ा न भाजिसी सदेसौ कहियाँ। कै हरि आयाँ भाजिसी, कै हरि ही पासि गयाँ।--कबीर ग्रं०, पृ० ८।

अंदेह(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंदेस'। उ०--पुम प्रगट्ट न कीजिये। मो तिय इय अंदेह।--पृ० रा०, ११५३।

अंदोअन(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आन्दोलन] हलचल। अंदोर। उ०--सुन अंदोअन राव दिठ। रिझाए सब साइ।--पृ० रा०, ६१।१२१६।

अंदोर--संज्ञा पुं० [सं० अन्दोल = हलचल] हलचल। शोर। हल्ला। कोलाहल। हुरलड़। हल्लागुल्ला। उ०--भहरात भहरात दवानल आया। घेरि चहु ओर करि सार अंदोर वन धरनि आकास चहुँ पास छायो।--सूर०, १०।५९६।

क्रि० प्र०--करना = शोर मचाना। उ०--चीन्हो रे नर प्रानी याका निस दिन करत अंदोर।--कबीर श०, पृ० ११९।--मचना या होना = कोलाहल होना। उ०--वहु लौलीन होइ सब धुन करत है, घट घनघोर अंदोर ह्वै।--कबीर० रे०, पृ० २५।

अंदोरा(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंदोर'।

अंदोल--वि० [सं० अन्दोलन] कंपित। हिलती डुलती। उ०--सुभ उच्च अंदोल वीच विराज। मनो स्रुग्ग आरोह सोपान साज।--पृ० रा०, ६।८३।

अंदोलना(पु)--क्रि० स० [सं० अन्दोलन] हिलाना। डुलाना। उ०--मुष पाय पानि अंदोलि वारि। अच्चयौ अप्प आतम अधारि।--पृ० रा०, ६१।१६१७।

अंदोलित--वि० [सं० आन्दोलित] आंदोलित। हिली डुली। उ०--जल अंदोलित सो भई उदै होत वर भान।--पृ० रा०, २।९०।

अंदोह--संज्ञा पुं० [फा०] १. शोक। दुःख। रंज। खेद। उ०--सिंघ विनास्यो वनिक सुत कन्या किय अंदोह।--पृ० रा०, १।३४८। २. तरद्दुद। खटका। असमंजस। संदेह।

अंद्रससत्र(पु)--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रशस्त्र] वज्र [डिं०]।

अंद्रि(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अद्रि] अद्रि। पर्वत। उ०--अंबर बरषै धरती निपजै, अंद्रि बरषदाई।--रामानंद०, पृ० १३।

अंध१--वि० [सं० अन्ध] १. नेत्रहीन। बिना आँख का। अंधा। जिसकी आँखों में ज्योति न हो। जिसमें देखने की शक्ति न हो। उ०--गुरु सिष अंध बधिर कइ लेखा। एक न सुनै एक नहिं देखा।--मानस, ७।९९। २. अज्ञानी। अजानकार। अनजान। मूर्ख। बुद्धिहीन। अविवेकी। उ०--तव आक्षिप्त तव विषम माया, नाथ! अंध मैं मंद व्यालादगामी।--तुलसी ग्रं०, पृ० ४८१। ३. असावधान। अचेत। गाफिल। ४. उन्मत्त। मतवाला। मस्त। उ०--ठौर ठौर भौरत झँपत भौर भौर मधु अंध।--बिहारी र०, ४९६। ५ प्रखर। तीव्र (को०)।

विशेष--समस्त पदों में ही प्राय प्रयुक्त, जैसे कामांध, मोहांध, क्रोधांध, जन्मांध दिवांध, रात्र्यंध, मदांध आदि।

यौ०--अंधकूप। अंधखोपड़ी।

अंध२--संज्ञा पुं० १. वह व्यक्ति जिसे आँखे न हों। नेत्रहीन प्राणी। अंधा। २. जल। पानी। ३ उल्लू। ४. चमगादड़। ५. अंधकार। अँधेरा। ६. कवियों के बाँधे हुए पथ के विरुद्ध चलने का काव्य संबंधी दोष। ७. ज्योतिष के अनुसार एक योग (को०)। ८. परिव्राजकों का एक भेद (को०)।

अंधक--संज्ञा पुं० [सं० अन्धक] १. नेत्रहीन मनुष्य। दृष्टिरहित व्यक्ति। अंधा। २ कश्यप और दिति का पुत्र एक दैत्य।

विशेष--इसके सहस्र सिर थे। मद के मारे अंधों की नाईं चलने के कारण यह अंधक कहलाता था। स्वर्ग से पारिजात लाते समय यह शिव द्वारा मारा गया। इसी से शिव को अंधकारि वा अंधकरिपु कहते हैं।

३. क्रोष्टी नामक यादव के पौत्र और युधाजित् के पुत्र।

विशेष--अंधक नाम की यादवों की शाखा इन्ही से चली। इनके भाई वृष्णि थे जिनसे वृष्णिवंशी यादव हुए जिनमें कृष्ण थे। ४ बृहस्पति के बड़े भाई उतथ्य ऋषि के पुत्र महातपा नामक ऋषि। इनकी माता का नाम ममता था।

अंधकघाती--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकघाती] अंधक नामक असुर को मारनेवाले शिव [को०]।

अंधकरिपु--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकरिपु] १. अंधक नामक दैत्य के शत्रु शिव। २ अंधकार का नाश करनेवाले सूर्य। ३ चंद्रमा। ४ अग्नि। प्रकाश। रोशनी।

अंधकशत्रु--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकशत्रु] शिव [को०]।

अंधकार--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार] १. अँधेरा।

विशेष--महा अंधकार को अंधतमस, सर्वव्यापी वा चारों ओर के अंधकार को संतमस और थोड़े अंधकार को अवतमस कहते हैं।

२ अज्ञान। मोह। ३ उदासी। कांतिहीनता। जैसे--उसके चेहरे पर अंधकार छाया है (शब्द०)।

अंधकारमय--वि० [सं० अन्धकारमय] अंधकार से युक्त [को०]।

अंधकारसंचय--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकारसञ्चय] घना अंधकार। महा अंधकार [को०]।

अंधकारि--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकारि] शिव। शंकर [को०]।

अंधकारी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धकारी] भैरव राग की पाँच स्त्रियों में से एक। एक रागिनी। दे० 'रागिनी'।

अंधकाल(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंधकाला'।

अंधकाला(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार] अंधकार। अँधेरा। उ०--ऐसे बादर सजल, करत अति महाबल, चलत घहरात करि अंधकाला।--सूर०, १० ८५५।

अंधकासुहृद्--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकासुहृद्] अंधकारि शिव [को०]।

अंधकूप--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकूप] १ वह कूआँ जिसका जल सूख गया हो और मुँह घासपात से ढका हो। अंधा कूआँ। सूखा कूआँ। अँधेरा कूआँ। उ०--यह कूप कूप भव अंधकूप, वह रक हुआ जो यहाँ भूप निश्चय रे।--तुलसी०, पृ० २८। २. अँधेरा। अंधकार। उ०--जैसे अंधौ अंधकूप मे गनत न खाल पनार। तैसेहि सूर बहुत उपदेसैं सुनि सुनि गे कै बार।--सूर०, १।८४। ३ घनांधकार। निविड तम। अंधागुप्प। उ०--अंधकूप भा आवँ, उडत आव तस छार। ताल तलावा पोखर, धूरि भरी जेवनार।--जायसी ग्र०, पृ० २२७। ४. एक नरक का नाम।

अंधकूपता--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धकूपता] अँधेरापन। मूर्खता। अज्ञान। उ०--उन्हें जगत् की अनेकरूपता और हृदय की अनेक भावात्मकता के सहारे अंधकूपता से बाहर निकलने की फिक्र करनी चाहिए।--चिंतामणि, भा० २, पृ० ५१।

अंधकोठरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध+हिं० कोठरी] अँधेरा और तंग कमरा (बोल०)।

अंधखोपडी--वि० [सं० अन्ध+हिं० खोपडी] जिसके मस्तिष्क मे बुद्धि न हो। मूर्ख। गाउदी। भोंदू। अज्ञानी। नासमझ।

अंधड़--संज्ञा पुं० [सं० अन्ध+हिं० ड़ (प्रत्य०)] गर्द लिए हुए कडे झोके की वायु। वेगयुक्त पवन। आँधी। तूफान। उ०--अंधड था बढ रहा प्रजादल सा झुँझलाता।--कामायनी, पृ० २००।

अंधतम--संज्ञा पुं० [सं० अन्धतमस्] घना अँधेरा। अँधेरागुप्प। उ०--जग के निद्रित स्वप्न सजनि सब इसी अंधतम मे बहते।--पल्लव, पृ० ५७।

अंधतमस--संज्ञा पुं० [सं० अन्धतमस्] दे० 'अंधतम'। उ०--अंधतमस है किंतु प्रकृति का आकर्षण है खीच रहा।--कामायनी, पृ० २२७।

अंधता--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धता] अंधापन। दृष्टिहीनता। उ०--चल न सकै चाल लागे दुख दैन बाल बैन, लटपटे भए नैन अंधता छई।--दीन० ग्र०, पृ० १३८।

अंधतामस्--संज्ञा पुं० [सं० अन्धतामस्] दे० 'अंधतमस' [को०]।

अंधतामिस्र--संज्ञा पुं० [सं० अन्धतामिस्र] १. घोर अंधकारयुक्त नरक। बडा अँधेरा नरक। २१ बडे नरको मे से दूसरा या १८ वाँ। २ जीने की इच्छा रहते हुए भी मरने का भय (सांख्य)।

विशेष--सांख्य मे इच्छा के विघात अर्थात् जो इच्छा मे आए उसे करने की अशक्ति को विपर्यय कहते हैं। इस विपर्यय के पाँच भेद हैं जिनमे से अंतिम को अंधतामिस्र या अभिनिवेश कहते हैं।

३ योगशास्त्र के अनुसार पाँच क्लेशों मे से एक। मृत्यु का भय। अभिनिवेश। ४ मृत्यु के बाद आत्मा का अनस्तित्व [को०]।

अंधत्व--संज्ञा पुं० [सं० अन्धत्व] अंधापन [को०]।

अंधधी--वि० [सं० अन्धधी] मूर्ख। नासमझ। मंदबुद्धि [को०]।

अंधधुंध[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्ध = अन्धकार + धूम=धूआँ अथवा अन्ध + धूनन (कंपन हलचल), सं० अन्ध+हिं०धुंध] १ अंधकार। अँधेरा। उ०--(क) अति विपरीत तृणावर्त आयो। वातचक्र मिस ब्रज के ऊपर नद पँवरि मे भीतर आयो। अंधधुंध भयो सब गोकुल जो जहाँ रह्यो सो तहाँ छपायो।--सूर०, (शब्द०)। (ख) का उलै ओट रहत वृक्षन की अंधधुंध दिसि बिदिसि भुलाने।--सूर०, १०।८६०। २ अंधाधुंध। अंधेर। अनरीति। दुराचार। अनियमित व्यापार। उच्छृंखल कर्म। उ०--समुझि न परै तिहारी मधुकर, हम ब्रजनारि गँवार। सूरदास ऐसी क्यों निबहै अंधधुंध सरकार।--सूर०, १०।३६०६।

अंधधुंध[2]--वि० विशाल। अपार। उ०--देखत मदध दसकध अंधधुंध दल बधु सो बलकि बोल्यो राजा राम बरिबड।--भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ३२।

अंधधुंध[3]--क्रि० वि० बहुत। अत्यधिक। उ०--अंधधुंध माँ बाप, रुवैं रे, बहुरि नहीं अस अवसर पाय।--जग० श०, भा० २ पृ० ११०।

अंधधू--संज्ञा पुं० [देश०] कूप। कूआँ [को०]।

अंधपरपरा--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धपरंपरा] बिना समझे बूझे पुरानी चाल का अनुकरण। एक को कोई काम करते देख दूसरे का बिना किसी विचार के उसे करना। लीक पिटौअल। भेड़ियाधँसान।

अंधपूतना--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धपूतना] दे० 'अंधपूतना ग्रह'।

अंधपूतनाग्रह--संज्ञा पुं० [सं० अन्धपूतनाग्रह] बालकों का रोगविशेष।

विशेष--इसमे वमन, ज्वर, खाँसी, प्यास आदि की अधिकता होती है। बालक के शरीर से चरबी की सी गंध आती है और वह बहुत रोता है। दे० 'पूतना'।

अंधप्रभजन-- संज्ञा पुं० [सं० अन्धप्रभंजन] ऐसी तेज हवा जिसमे कुछ न सूझ पडे। आँधी। तूफान। उ०--बहता अंधप्रभजन ज्यो, यह त्योंही स्वरप्रवाह, मचल कर दे चचल आकाश।--अनामिका, पृ० ६७।

अंधबाई(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धवायु] धूल लिए हुए वेगयुक्त पवन। ऐसी तेज हवा जिसमे गर्द के कारण कुछ सूझ न पडे। आँधी। तूफान।

अंधमति--वि० [सं० अन्धमति] उलटी बुद्धिवाला। नासमझ। मूर्ख। उ०--रे दसकध अंधमति तेरी आयु तुलानी आनि।--सूर०, ६।७६।

अंधमूषिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धमूषिका] 'देवताड' नामक पौधा।

विशेष--वैद्यक में माना गया है कि इसके सेवन से अंधापन चला जाता है।

अंधर(पु)--वि० [सं० अन्धकार, अंधार] अँधेरा। अंधकारमय। प्रकाश रहित। उ०--नखत चहूँ दिसि रोवहि, अंधर धरति अकास।--जायसी (शब्द०)।

अंधराजा--पुं० [सं० अंधराजा] शास्त्र और नीति आदि से अनभिज्ञ अविवेकी राजा।

विशेष--चाणक्य ने अर्थशास्त्र में राजा के दो भेद किए हैं-- एक अंधराजा दूसरा चलितशास्त्र राजा। चलितशास्त्र वह है जो जान बूझकर शास्त्र की मर्यादा का उल्लघन करता हो। इन दोनों में चाणक्य ने अंधराजा को ही अच्छा कहा है, जो योग्य मंत्रियों के होने पर अच्छा शासन कर सकता है।

अंधरात्री--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धरात्री] अँधेरी रात। अंधकारस वाली रात [को०]।

अंधरोप--संज्ञा पुं० [सं० अन्ध + रोष] भीषण क्रोध। अतिक्रोध। उ०-- भृकुटि के कुंडल वक्र मरोर, फुहुँकता अंधरोप फन खोल।-- पल्लव, पृ० १२१।

अंधल¹--वि० [सं० अन्ध, प्रा० अंधल] अंधा। नेत्रहीन।

अंधल²--संज्ञा पुं० अंधकार। अँधेरा।

अंधली--संज्ञा स्त्री० [प्रा० अंधल] [पुं० अंधला] अंधी स्त्री। अंधी। उ०--अँधली आखिन काजल कीया। मुंडली मांग सँवारे।-- सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ८७३।

अंधविंदु--संज्ञा पुं० [सं० अन्धविन्दु] आँख के भीतरी पटल पर का वह स्थान जो प्रकाश को ग्रहण नहीं करता और जिसके सामने पड़ी हुई वस्तु दिखाई नहीं देती।

विशेष--नेत्रपटल पर ज्ञानतंतु पीछे से आकर शिराओं के रूप में फैले हुए हैं और मुड़कर शंकु और छड़ियों के आकार में हो गए हैं। मनुष्य की आँख में इन शंकुओं की संख्या ३३,६०,००० मानी गई है। ये छड़ियाँ वा शंकु आकार और रंग का परिज्ञान कराने में काम देते हैं। यदि प्रकाश ऐसे स्थान पर पड़े जहाँ कोई शंकु न हो तो कुछ देख नहीं पड़ता। यही स्थान अंधविंदु कहलाता है।

अंधविश्वास--संज्ञा पुं० [सं० अन्धविश्वास] बिना विचार किए किसी बात का निश्चय। बिना समझे बूझे किसी बात पर प्रतीति। संभव-असंभव विचाररहित धारणा। विवेकशून्य धारणा।

अंधश्रद्धा--संज्ञा पुं० [सं० अन्धश्रद्धा] बिना विचार की श्रद्धा। विवेकहीन आस्था। उ०--अंधश्रद्धा और अश्रद्धा आदि इसी के परिणाम हैं।--जय० प्र०, पृ० ५३।

अंधस--संज्ञा पुं० [सं० अन्धस] १ पका हुआ चावल। भात। २. भोजन (को०)। ३ जड़ी बूटी (को०)। ४ सोम नामक लता (को०)। ५ सोमरस (को०)। ६ रस (को०)। ७. घृत (को०)।

अंधसैन्य--संज्ञा पुं० [सं० अन्धसैन्य] अशिक्षित सेना। दे० 'मित्रकूट'।

अंधा¹--संज्ञा पुं० [सं० अन्धक, प्रा० अन्धअ] [स्त्री० अंधी] बिना आँख का जीव। वह जिसको कुछ सूझता न हो। वह जीव जिसकी आँखों में ज्योति न हो। दृष्टिरहित जीव। उ०-- जानता बूझा नहीं बूझि किया नहीं गौन। अंधे को अंधा मिला राह बतावै कौन।--कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० १४।

अंधा²--वि० १ बिना आँख का। दृष्टिरहित। उ०--अंधा बाँटे रेवड़ी फिर फिर अपने देय (कहावत) २. विचाररहित। अविवेकी। अज्ञानी। उ०--ज्ञानी से कहिए कहा कहत कबीर लजाय। अंधे आगे नाचते कला अकारथ जाय।-- कबीर सा० स०, पृ० ८६।

क्रि० प्र०--करना। -बनना।-बनाना।--होना। भले बुरे का विचार खो बैठना। उ०--क्रोध में मनुष्य अंधा हो जाता है। (शब्द०)।

मु०--अंधा करना = (१) दे० 'अंधा बनाना'(२)र्ग क और जोश या आवेश से विवेकहीन बना देना। अंधा बनना = जान बूझकर किसी बात पर ध्यान न देना। अंधा बनाना = आँख में धूल डालना। बेवकूफ बनाना धोखा देना। अंधा मुल्ला टूटी मस्जिद = बुरे को बुरी चीज का मिलना। जैसे को तैसा मिलना। अंधा क्या चाहे दो आँखें = जरूरतमंद की अपनी जरूरत पूरी होने की कांक्षा करना। अंधे की लकड़ी या लाठी = (१) एकमात्र आधार सहारा। आसरा। (२) वह लड़का जो कई लड़कों में बचा हो। इकलौता लड़का। अंधे के हाथ बटेर लगना = किसी वस्तु का अयोग्य व्यक्ति को अप्रत्याशित रूप से प्राप्त होना। उ०--समझ लो कि तुम अपनी मिहनत से नहीं पास हुए, अंधे के हाथ बटेर लग गई --मान०, भा० १, पृ० ८२। अंधों में काना राजा या सरदार = थोड़ी सी जानकारी से मूर्खों या अनजान लोगों के बीच श्रेष्ठ बनना। अंधों का राज = विवेकहीन शासन। उ०--राव रंक अंधा सबै फिर अंधों ही का राज --दरिया, बानी, पृ० ६।

३ मतवाला। उन्मत्त। जैसे--आदमी अपने मतलब में अंधा है। ४ जिसमें कुछ दिखाई न दे। अँधेरा। प्रकाशशून्य।

यौ०--अंधा आइना = वह दर्पण जिसमें चेहरा साफ दिखाई न दे। धुंधला शीशा। अंधा कुआँ = (१) दे० 'अंधकूप' १। (२) लड़कों का एक खेल जो चार लकड़ियों से खेला जाता है। अंधा कूप = दे० अंधकूप'। उ०--तन में जो अंधा कूप है। वो ही तुम्हारा रूप है।--संत तुरसी, पृ० २५। अंधा घर = वह मकान जिसकी बाहरी रौनक खत्म हो चुकी हो। अंधा घोड़ा = उपानह। जूता (साधु फकीर)। अंधा चिराग = वह चिराग जिसकी ज्योति में प्रसार न हो। धुँधली ज्योति का दीपक। अंधा तारा = नेपचून नामक तारा। अंधा दरबार = दे० 'अंधा-राज'। अंधा दीया = दे० 'अंधा चिराग'। अंधा भैंसा = लड़कों का एक खेल जिसमें एक लड़का दूसरे लड़के की पीठ पर चढ़कर उसकी आँखें बंद कर लेता है और दूसरे लड़के उस भैंसा बने हुए लड़के के बीच से एक एक करके निकलते हैं। सवार लड़का ऊपर से प्रत्येक निकलनेवाले लड़के का नाम पूछता जाता है। भैंसा बना हुआ लड़का जिसका नाम ठीक बता देता है उसे फिर वह भैंसा बनाकर उसकी पीठ पर सवारी करता है। अंधा राज = वह राज्य जिसका प्रबंध बुरा हो। अन्यायी राज्य। अंधा शीशा = दे० 'आइना'।

कहा०--अंधा गाए बहरा बजाए = जब किसी काम के करने में अयोग्य व्यक्ति एक साथ लगे हों। अंधी पीसे कुत्ता खाय = निष्प्रयोजन काम को बड़े परिश्रम से करना। अंधे के आगे रोए, अपनी आँखें खोए = अरण्यरोदन। अंधे को दूर की सूझना = असमर्थ होते हुए भी समर्थ से बढ़कर काम करना या अनजान होकर भी जानकारों से भी अधिक समझ की बात बताना।

अंधाई--संज्ञा स्त्री० [हि० अंधा + ई] अंधापन। विवेकहीनता। उ०--भेष रता अंधा सबै अंधाई का राज।--दरिया बानी, पृ० ३६।

अंधाधुंध[1]--संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ अंधा + धुंध] १ बड़ा अँधेरा। घोर अंधकार। उ॰—अंधाधुंध भयो सब गोकुल, जो जहँ रह्यो सो तही छपायो।--सूर॰ १०।७७। २ अँधेर। अविचार। अन्याय। गड़बड़। धींगाधींगी। कुप्रबंध। मौसा। उ॰—वहाँ कोई किसी को पूछनेवाला नहीं, अंधाधुंध मची है (शब्द॰)।

अंधाधुंध[2]—वि॰ बिना सोच विचार का। विचाररहित। बेधड़क। बेहिसाब। बेअंदाज। बेठिकाने। उ॰—वह किसी कोरे स्वप्नद्रष्टा की काल्पनिक अंधाधुंध उड़ान नहीं है।--जय॰ प्र॰, पृ॰ ४।

अंधाधुंध[3]—क्रि॰ वि॰ १ बिना सोचे विचारे। बेरोकटोक। बेतहाशा। मारामार। उ॰—अंधाधुंध धर्म के मारग सब जग गोते खाता।—संत तुरसी॰, पृ॰ २२३। २ अधिकता से। बहुत यत से, जैसे—वह अंधाधुंध दौड़ा आता है। वह अंधाधुंध खाए चला जाता है। (शब्द॰)।

अंधानुकरण—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्ध + अनुकरण] बिना विचारे अनुकरण करने का कार्य।

अंधानुवृत्ति--संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अन्ध + अनुवृत्ति] दे॰ 'अंधानुकरण'। उ॰--'भारतीय इतिहास की कुछ समस्याएँ' नामक लेख मे अपनी अंधानुवृत्ति और अनगलता से 'न भूमि स्यात्‌ सर्वान्‌ प्रत्यविशिष्टत्वात्‌' का अनुवाद यों दिया है--भूमि व्यक्तिगत संपत्ति नहीं है —काव्य म॰ प्र॰, पृ॰ ४०।

अंधानुसरण--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्ध + अनुसरण] दे॰ 'अंधानुकरण'। उ॰--उन्होने भारतीय परपरा को मानते हुए भी अंधानुसरण' कहीं नहीं किया है--रस॰, पृ॰ ५।

अंधार(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्धकार, प्रा॰ अंधआर, अंधार] दे॰ 'अंधकार'। उ॰—गिरद्द उड्डी भांन अंधार रैन।—पृ॰ रा॰, २०।६५।

अंधारी[1](पु)--वि॰ [प्रा॰ अन्धार + हिं॰ ई (प्रत्य॰)] अंधकारयुक्त। अँधेरी। अँधेरिया। उ॰--अंधारी दारुन निसा, भू सपनंतर आइ।—पृ॰ रा॰, १७।७१।

अंधारी[2]—संज्ञा स्त्री॰ घोड़े, हाथी अथवा बैलों की आँखो पर डालने का पर्दा। अँधेरी। उ॰--इभ कुंभ अंधारी कुच सु कंचुकी, कवच सभु काम क कलह।—वेलि, दू॰ ६०।

अंधालजी— संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अन्धालजी] अंतर्मुख फोड़ा। अंधा फोड़ा। अंतर्मुख पिटक [को॰]।

अंधाहि[1]--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्धाहि] विषहीन सर्प [को॰]।

अंधाहि[2]--संज्ञा स्त्री॰ एक प्रकार की मछली। कूचिका [को॰]।

अंधाहिक--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्धाहिक] एक विषरहित सर्प [को॰]।

अंधाहुली--संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अध पुष्पी] चोरपुष्पी नामक क्षुप। दे॰ 'चोरपुष्पी'।

अंधिका--संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अन्धिका] १ रात। रात्रि। २ द्यूत। जूआ का खेल। ३ एक विशेष प्रकार का खेल या क्रीड़ा। ४ आँख का एक रोग। ५. सर्षपी जिसके अत्यत सेवन से दृष्टिक्षय होता है (को॰)। ६. स्त्रियों का एक भेद (को॰)।

अंधियारी--संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अन्धकार प्रा॰ अन्धआर, अन्धयार + हिं॰ ई (प्रत्य॰)] १ अंधकार। अंधेरा। २ वह पट्टी जो उपद्रवी घोड़ो, शिकारी पक्षियों और चीते आदि की आँखों पर इसलिये बँधी रहती है कि किसी का कुछ उपद्रव न करें।

अंधी[1]--संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ पुं॰ अंधा, स्त्री॰ अंधी] बिना आँख की स्त्री। जो स्त्री देख न सके।

अंधी[2]—वि॰ स्त्री॰ १ दृष्टिरहित। विवेकशून्य। विचाररहित।

यौ॰--अंधी सरकार = १ राज्य जिसका प्रबंध बुरा हो। २ मालिक जो नौकरों को ननख्वाह ठीक समय पर न देता हो।

मुहा॰--अंधी बैठना = बिना अंदाज के यहीं बात का ठीक होना। बिना अंदाज के फेंकी चीज का ठीक जगह पर बैठना। उ॰--एक बार उनकी अंधी बैठ गई तो सब जगह उसे कांड ही दिखाने लगी।—अंधेरे॰, पृ॰ १५०।

२. प्रकाशहीन। अंधकारपूर्ण। उ॰—जहाँ पुरातनयुग की एक बड़ी अंधी गुफा थी।--प्रेमसागर (शब्द॰)। ४ मतवाली। उन्मत्त।

अंधु[1]--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्धु] १. कूआँ। कूप। २ छिद्र। पुरुष की जननेंद्रिय [को॰]।

अंधु[2]—वि॰ अँधेरा। प्रकाश का अभाव। प्रकाशहीन। उ॰—सुखदाना सुनगति गूढ़ बंधु। तुम्हारी कृपा बिनु सब जग अंधु।—सूर॰, १०।१८०।

अंधुल—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्धुल] शिरीष वृक्ष। सिरस का पेड़।

अंधुला(पु)—वि॰ दे॰ 'पधला'। उ॰—पाँचे मिस्मार अंधुले, काजी मुल्ला कार। तिनों पास न मिटीयै, जो नबदे दे सोर।--संतवाणी॰, पृ॰ ७०।

अंधेर--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्धकार (अन्ध इव करोति-इति), प्रा॰ अंधयार < अन्धइयार, अप॰, पुं॰ हिं॰ अंधेर, अंधियार] १. अन्याय। अविचार। अत्याचार। जुल्म। २ उपद्रव। गड़बड़। कुप्रबंध। भौसा। अंधाधुंध। धींगाधींगी। अनर्थ।

क्रि॰ प्र॰—करना।--मचाना --होना = अविचार या गड़बड़ होना। धींगाधींगी होना। उ॰--इनकी फिरंगिनें बैठी हैं किसी की जबान तक न हिली और हम आपस मे कटे मरते हैं, क्या अंधेर है।--फिसाना॰, भा॰ ३, पृ॰ ३।

अंधेरखाता--संज्ञा पुं॰ [हिं॰ अंधेर + खाता] १ हिसाब किताब और व्यवहार मे गड़बड़ी। व्यतिक्रम। २ अन्यथाचार। अन्याय। अविचार। कुप्रबंध। ३. अविचारपूर्ण या अन्यायपूर्ण व्यवहार।

अंधेरगर्दी--संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ अंधेर + फा॰ गर्दी] बेहद अंधेर। अनाचार (बोल॰)।

अंधेरनगरी--संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ अंधेर + सं॰ नगरी] १. वह स्थान, संस्थान या स्थिति जहाँ कोई नियम या कानून न हो। अन्यायपूर्ण राज्य। २. अशांति या अव्यवस्थापूर्ण स्थान। उ॰—अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा। --भारतेंदु ग्र॰, भा॰ १, पृ॰ ६७०।

अंधेरा--संज्ञा पुं॰ [हिं॰ अंधेर + आ (प्रत्य॰)] गड़बड़। अंधेर। अनर्थ। अन्याय। उ॰—महामत्त बुधिबल की हीनाँ देखि करै अंधेरा।—सूर॰ १।१८६।

अंधेरी¹--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँधेरी'।

अंधेरी²--संज्ञा स्त्री० [?] दक्षिण भारत का एक स्थान।

अंध्यार(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार, प्रा० अंधयार] अंधियार। अँधेरा।

अंध्यारी(पु)†--संज्ञा० स्त्री० दे० 'अँधियारी'¹।

अंध्र--संज्ञा पुं० [सं० अन्ध्र] १ बहेलिया। व्याधा। शिकारी। २ वैदेहिक पिता और कारावर माता से उत्पन्न नीच जाति के मनुष्य जो गाँव के बाहर रहते और शिकार करके अपना निर्वाह करते थे। ३ दक्षिण का एक देश जिसे अब तिलंगाना कहते हैं। इसके पश्चिम की ओर पश्चिम घाट पर्वत, उत्तर की ओर गोदावरी और दक्षिण में कृष्णा नदी हैं। आंध्र देश। ४ अंध्र देश के निवासीजन ५ मगध का एक राजवंश जिसे एक शूद्र ने अपने मालिक कण्व वंश के अंतिम राजा को मारकर स्थापित किया था। अंध्र वंश का अंतिम राजा पुलोम था।

अंध्रभृत्य--संज्ञा पुं० [सं० अन्ध्रभृत्य] मगध देश का एक राजवंश। विशेष--अंध्रवंश के अंतिम राजा पुलोम के गंगा में डूब मरने के पीछे उसका सेनापति रामदेव फिर रामदेव का सेनापति प्रतापचंद्र और फिर प्रतापचंद्र के पीछे भी अनेक सेनापति राजा बन बैठे। इन सेनापतियों का वंश अंध्रभृत्य कहलाया।

अंन(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्न] दे० 'अन्न'। उ०--(क) अंन का मास अग्नि का हाड तत का भपिवा खाई --गोरख० पृ० ४१। (ख) पंच दिवस च्यारी बरन भुजत अंन अपार।--पृ० रा०, १४।१२०।

यौ०--अंनदान=अन्न दान करने का कार्य। उ०--करि सनान गंगोदकह दिय सु गाइ दस दान। दस तोला तुलि हेम दिय अंनदान अ [प्र] मान।--पृ० रा०, ६।१३१।

अंननास(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अनन्नास'। उ०--सु अंननास जीरय। सतूतय जँभीरय।।--पृ० रा०, ५६।६।

अंनी(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अनी'। उ०--दिसा बाइय साद हुस्सेन अंनी। --पृ० रा० ९ १४०।

अंनेक(पु)--वि० दे० 'अनेक'। उ०--अंनेक भाव दिप्पहिं सु दिव, दिव दिवान दुंदुभि वजइ।--पृ० रा०, १४।७३।

अंन्य(पु)--वि० दे० 'अन्य'। उ०--और बधाई ऊमरा करी आइ सुरतान। अंन्य सदन कीनी पयर पुजिय पीर ठटान।--पृ० रा०, ६।२१०।

अंन्योअन्य(पु)--सर्व दे० 'अन्योन्य'। उ०--अंन्योअन्य सहै नाम।--पृ० रा०, ३।८६।

अंब¹(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बा] अंबा। माता। उ०--कबहुँक अंब अवसर पाइ'--तुलसी ग्रं०, पृ० ४७५।

अंब²(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अम्म, अंल] दे० 'आम्र'। आम का पेड या फल। उ०--अंब सुफल छाँडि कहाँ सेमर को धाऊँ। --सूर० १।१६६।

अंब³--संज्ञा पुं० [सं० अम्ब] १ पिता। २ स्वर। ३ स्वर करनेवाला। ४. आँख। वेद। ५ ताँबा [को०]। ६. आकाश। उ०--ग्रीषम भाजै गात अंब बरसात उलट्टौं।--रा० रू०, पृ० ३४३। ७ जल। उ०--हरिचरन अंब अंजुलो कीन।--पृ० रा०, १।३६९।

अंब⁴(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अम्बु] रक्त। खून। रुधिर। उ०--अरि अंब अचन अगाधि करार।--पृ० रा०, ६१।२२३।

अंबक--संज्ञा पुं० [सं० अम्बक] १ आँख। नेत्र। उ०--नव अंबुज अंबक छवि नीकी'--मानस १।१४७।

यौ०--त्र्यंबक=शिव।

२ पिता। ३ ताँबा। ४ शिवनेत्र [को०]।

अंबखास(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'आमखास'। उ०--साबत नै शाहि अंबखास मे बुलाया। हाजिर उमराव मीर सो तमाम आया --शिखर०, पृ० ६२।

अंबजा(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजा]-कमलिनी। उ०--अलीन जुथ्य आवर। मनो विहंग सावर। चुवंत पत्त रत्त जा। उवंत जानि अंबजा।--पृ० रा० २५।३२४।

अंबडि(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अम्बर] अंबर। आकाश। उ०--तिस अंबडि कोय न सकई उहु ऊंचा अंबर अपार।--प्राण०, पृ० २०८।

अंबमौर--संज्ञा पुं० [सं० अम्ब+मुकुर, प्रा० अंब+मउर] आम्र की मंजरी। बौर। उ०--बन उपवन फुल्लहि अति बठौर। रहे जोर मोर रस अंबमौर।।--ह० रा०, पृ० १८।

अंबया--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बया] १ माता (कोपी०)।

अंबर¹--संज्ञा पुं० [सं० अम्बर] १ आकाश। आसमान। शून्य। उ०--अंबर कुंजा कुरलियाँ गरजि भरे सब ताल।--कबीर ग्रं०, पृ० ७।

मुहा०--अंबर के तारे डिगना=आकाश से तारे टूटना। असंभव बात का होना। उ०--अंबर के तारे डिगैं, जूआ लादै बैल। पानी में दीपक बरै, चलै तुम्हारी गैल (शब्द०)।

यौ०-अंबरचर=(१) पक्षी। (२) विद्याधर। अंबरचारी=ग्रह। अंबरद=कपास। अंबरपुष्प=आकाशकुसुम। अंबरशैल= ऊँचा पहाड। अंबरस्थली=पृथ्वी।

२ बादल। मेघ (क्व०)। उ०--आषाढ में सोवै परी नव ख्वाब देखै कामिनी। अंबर नवै, बिजली खवै, दुख देत दोनों दामिनी--(शब्द०)। ३ वस्त्र। कपडा। पट। उ०--नभ पर जाइ विभीषन तबही। बरषि दिए मनि अंबर सबही।--मानस, ७।११६। ४ स्त्रियों की पहनने की एक प्रकार की एकरंगी किनारेदार धोती। उ०--करपत सभा द्रुपद तनया कौ अंबर अछय कियौ। --सूर० १।१६१। ५ कपास। ६ अभ्रक धातु। अबरक। ७ राजपूताने का एक पुराना नगर (संभवत जयपुर की राजधानी आमेर)। ८ प्राचीन ग्रंथों के अनुसार उत्तरी भारत का एक देश। ९ शून्य (को०)। १० गंध द्रव्य। कश्मीरी केशर। उ०--पचीस छाव अंबर, असीम मुक्कली भर।--पृ० रा०, ६६।५८। ११ परिधि। मंडल (को०)। १२ पड़ोस। सामीप्य। पास का देश (को०)। १३ ओष्ठ। ओठ (को०)। १४ दोष। बुराई (को०) १५ हाथियों का नाश करने- वाला (को०)।

अवर³--संज्ञा पुं० १ एक सुगंधित वस्तु।

विशेष--यह ह्वेल मछली की तथा कुछ और समुद्री मछलियों की अँतड़ियों में जमी हुई चीज है जो भारतवर्ष, अफ्रीका और ब्राजील के समुद्री किनारों पर बहती हुई पाई जाती है। ह्वेल का शिकार भी इसके लिये होता है। अवर बहुत हल्का और शीघ्र जलनेवाला होता है तथा आँच दिखाने रहने से बिलकुल भाप होकर उड़ जाता है। इसका व्यवहार औषधियों में होने के कारण यह नीकोबार (कालापानी का एक द्वीप) तथा भारत समुद्र के और और टापुओं से आता है। प्राचीन काल में अरब, यूनानी और रोमन लोग इसे भारतवर्ष से ले जाते थे। जहाँगीर ने इससे राजसिंहासन का सुगंधित किया जाना लिखा है। उ०--जिनन पाम अवर है इस शहर बीच। खरीद करनहार है सब वही व।--दक्खिनी०, पृ० ७६। २ एक इत्र। उ०--तेल फुलेल सुगंध उवटनो अवर अतर लगावै रे।--भक्ति०, पृ० ३६०।

अवर⁴(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अमृत, प्रा० अमरित, अमरिअ, अप० [अवरि] अमृत। सुधा।--अनेकार्थ०, पृ० ११४।

अवर⁵(पु)--संज्ञा पुं० [अ० अमारी, हिं० अवारी] हाथी की पीठ पर का हौदा जिसपर छज्जेदार मंडप होता है। अवारी। उ०--चढ़ी चौडोल अवर। मनो कि मेघ घुम्मर।--पृ० रा०, ६६।५७।

अवरग--वि० [सं० अम्बरग] आकाशगामी [को०]।

अवरचर¹--वि० [सं० अम्बरचर] आकाशगामी [को०]।

अवरचर²--संज्ञा पुं० १ पक्षी। खग। २ विद्याधर [को०]।

अवरचारी--वि० [सं० अम्बरचारी] ग्रह [को०]।

अवरडवर--संज्ञा पुं० [सं० अम्बर + हिं० डवर] वह लाली जो सूर्य के अस्त होने के समय पश्चिम दिशा में दिखाई देता है। उ०--बिनसत बार न लागई ओछे जन की प्रीति। अवर डंवर साँझ के ज्यों बारू की भीति।--स० सप्तक, पृ० ३१२।

अवरद--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरद] कपास [को०]।

अवरपुर--(पु संज्ञा पुं० [सं० अम्बरपुर] आकाश। उ०--आरोपि प्रथ्थि अवरपुरह सत माइ सत परिय। कहि चद दद करि दैत सों धरनिधार अद्धर धरिय।--पृ० रा०, २।१५३।

अवरपुष्प--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरपुष्प] आकाशकुसुम। असंभव बात। खपुष्प। अस्तित्वहीन पदार्थ। [को०]।

अवरवानी--संज्ञा पुं० [सं० अम्बर (= मेघ) + बानी] मेघगर्जन। बादलों का गर्जन। उ०--अवरवानी भई मजल बादर दल छए।--सूर० (राधा०), ४८०६।

अवरवारी--संज्ञा स्त्री० [सं० अमरवल्लरी, प्रा० अम्मर वाली] एक झाड़ी।

विशेष--यह हिमालय और नीलगिरि पर होती है। इसकी जड़ और छाल में बहुत ही अच्छा पीला रंग निकलता है जिससे कभी कभी चमड़ा भी रँगते हैं। इसके बीज से तेल निकलता है। इसकी लकड़ी, जिसे दारुहल्द या दारुहल्दी कहते हैं, औषधियों में काम आती है तथा इसकी जड़ और लकड़ी से एक प्रकार का रस निकालते हैं जो रसवत या रसौत कहलाता है। पर्या०--चित्रा। दारुहल्द। आँबाहरदी अमाहरदी)।

अवरवेल--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्मरवल्ली] दे० 'अम्बरवेलि'।

अवरवेलि--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्मरवल्ली प्रा०, अमरवल्ली] आकाश वेल। आकाश वौर। अमरबेल।

विशेष--हकीमी नुसखों में इसे इफ्तीमून कहते हैं। सूत के समान पीली एक बेल जो प्रायः पेड़ों पर लिपटी मिलती है जिसकी जड़ पृथ्वी में नहीं होती और इसमें पत्ते और कनखे भी नहीं निकलते। जिस पेड़ पर यह पड़ जाती है उसे लपेटकर सुखा डालती है। यह बाल बढ़ाने की एक औषधि है। हकीम लोग इसे वायुरोगों में देते हैं।

अवरमणि--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरमणि] आकाश के मणि अर्थात् सूर्य।

अवरमाला--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बरमाला] मोतियों की विशेष प्रकार की माला। उ०--अवरमाला इक्क इक पहिराइ कह्यौ इह।--पृ० रा०, ७।२६।

अवरयुग--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरयुग] स्त्रियों का ऊपर और नीचे पहनने का वस्त्र [को०]।

अवरलेखी--वि० [सं० अम्बरलेखिन्] आकाशस्पर्शी। गगनचुंबी [को०]।

अवरशैल--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरशैल] अति उच्च पर्वत। बहुत ऊँचा पहाड़ [को०]।

अवरसारी--संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कर या टैक्स जो पहले घरों के ऊपर लगता था।

अवरस्थली--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बरस्थली] पृथ्वी [को०]।

अवरात-- संज्ञा पुं० [सं० अम्बरान्त] १ कपड़े का छोर। २ वह स्थान जहाँ आकाश पृथ्वी से मिला हुआ दिखाई देता है। क्षितिज।

अवराधिकारी--संज्ञा पुं० [सं० अम्बराधिकारी] अवर या परिधान का अध्यक्ष [को०]।

अवरीक(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरीष, देश० अंवरीख > अवरीक] दे० 'अवरीष'। उ०--माफ करें अवरीक बचौगे तब दुर्वासा।--पलटू०, १।१६।

अवरीष--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरीष] १ भाड़। २ वह मिट्टी का बरतन जिसमें भड़भूजे लोग गरम बालू डालकर दाना भूनते हैं। ३ विष्णु। ४ शिव। ५, सूर्य। ६ किशोर अर्थात् ११ वर्ष से छोटा बालक। ७ एक नरक। ८ अयोध्या के एक सूर्यवंशी राजा।

विशेष--ये प्रशुश्रक के पुत्र थे और इक्ष्वाकु से २८वीं पीढ़ी में हुए थे। पुराणों में ये परम वैष्णव प्रसिद्ध हैं जिनके कारण दुर्वासा ऋषि का विष्णु के चक्र ने पीछा किया था। महाभारत, भागवत और हरिवंश में अवरीष को नाभाग का पुत्र लिखा है जो रामायण के मत के विरुद्ध है।

९ आमड़े का फल और पेड़। १० अनुताप। पश्चात्ताप। ११ समर। लड़ाई। १२ छोटा जानवर। बछड़ा [को०]।

अवरीसक--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरीष] भाड़। भरसायँ (डिं०)।

अवरीक--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरीक] देवता।

अवरौकस्—संज्ञा पुं० [सं० अम्वरौक] दे० 'अवरौक [को०]।

अवल—संज्ञा पुं० [सं० अम्ल, हिं० अवल] १ मादक पदार्थ। अमल। २ खट्टा रस। अवल।

अवला(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अवला'। उ०—साँझ समय राइ बोलसी। हँसि हँसि बोल (ई) अवला मूँघ।—बी० रासो०, पृ० १६।

अवली(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अमली'—२। उ०—'आव अंवली रे अवली, बबूर चढी नग बेली रे।—कबीर ग्र०, पृ० ११२।

अवष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० अम्वष्ठ] [स्त्री० अम्वष्ठा] १ एक देश का नाम पजाव के मध्य भाग का पुराना नाम। २ अवष्ठ देश मे वसनेवाला मनुष्य। ३ ब्राह्मण पुरुष और वैश्य स्त्री से उत्पन्न एक जाति। इस जाति के लोग चिकित्सक होते थे। ४. महावत। हाथीवान। फीलवान। हस्तिपक। ५ कायस्थो का एक भेद।

अवष्ठकी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्वष्ठकी] दे० 'अवष्ठा'।

अवष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्वष्ठा] १ अवष्ठ जाति की स्त्री। २. एक लता का नाम। पाढा। ब्राह्मणी लता। ३ जूहीं (को०)। ४. अवाडा (को०)। ५ चूक (को०)।

अवष्ठिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्वष्ठिका] ब्राह्मी लता [को०]।

अवहर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अम्वर, डिं० अवहर] मेघ बादल। उ०—चातक रटै बलाहकि चचल। हरि सिणगारै अवहर। वेलि०, दू० १६४।

अवा¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्वा] १ माता। जननी। माँ। अम्मा। उ०—जों सिय भवन रहइ कह अवा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलवा।—मानस, ११६०। २. गौरी। पार्वती। देवी। दुर्गा। ३ अवष्ठा। पाढा। ४ काशी के राजा इद्रद्युम्न की तीन कन्यायो मे सबसे बडी कन्या।

विशेष—काशिराज की तीन कन्याओ को भीष्म पितामह अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये हरण कर लाए थे। अवा राजा शाल्व के साथ विवाह करना चाहती थी। इससे भीष्म ने उसे शाल्व के पास भिजवा दिया। पर राजा शाल्व ने उसे ग्रहण न किया और वह हताश होकर भीष्म से बदला लेने के लिये तप करने लगी। शिव जी इसपर प्रसन्न हुए और उसे वर दिया कि तू दूसरे जन्म मे बदला लेगी। यही दूसरे जन्म मे शिखडी हुई जिसके कारण भीष्म मारे गए।

५ ससुर खदेरी नदी।

विशेष—यह नदी फतेहपुर के पास निकलकर प्रयाग से थोडी दूर पर यमुना मे मिली है। ऐसी कथा है कि यह वही काशिराज की बडी कन्या अवा है, जो गगा के शाप से नदी होकर भागी थी।

अवा²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अव] आम। रसाल। उ०—मारू अवा मउर जिम, कर लग्गइ कुँमलाइ।—ढोला०, दू० ४७१।

यौ०—अवाझोर=तीर्थ और लगातार चलनेवाली हवा जिससे पेडो से आम के फल गिर जायँ (वं'ल०)।

अवाडा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्वाडा] माता। जननी [को०]।

अवापोली—संज्ञा स्त्री० [सं० यौ० आम्र + पौलि > प्रा० अवा + पोली= रोटी, पोतला] अमावट। अमरस।

अवावन—संज्ञा पुं० [सं० अंवा + वन] इलावृत खड का एक स्थान जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाता था। उ०—पुनि सुद्युम्न वसिष्ठ सौ कह्यौ। अवावन मैं तिय ह्वै गयौ।—सूर०, ६।२।

अवायु—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्नाय] १ माता। जननी। २ भद्र या शिष्ट महिला [को०]।

अवार—संज्ञा पुं० [फा०] ढेर। समूह। राशि। अटाला। उ०—रीढ़ वकिम किए निश्चल किंतु लोलुप खडा वन्य बिलार, पीछे, गोयठो के गधमय अवार।—इत्यलम्।

अवारखाना—संज्ञा पुं० [फा०] गोदाम। भडार। कबाडखाना [को०]।

अवारी¹—संज्ञा स्त्री० [अ० अमारी] १. हाथी के पीठ पर रखने का हौदा। २ (ऊँट के पीठ का) मोहमिल जिसके ऊपर एक छज्जेदार मडप बना रहता है। उ०—कुदन नगन जटित अवारिय।—प० रा०, पृ० ११२। ३ छज्जा। मडप।

अवारी²—संज्ञा स्त्री० पटमन। (दक्षिण)।

अवालय—संज्ञा पुं० [सं० अम्वालय] अवाला शहर। उ०—सो रूपमुरारीदास अवालय मे एक खत्री के जन्मे।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १४१।

अवाला—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बाला] माता [को०]।

अवालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्वालिका] १ माता। माँ। जननी। २. अवष्ठा लता। पाढा। पाठा। ३ काशी के राजा इद्रद्युम्न की तीन कन्यायो मे सवसे छोटी।

विशेष—इसे भीष्म अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये हरण कर लाए थे। विचित्रवीर्य के मरने पर जब व्यास जी ने इससे नियोग किया तब पाडु उत्पन्न हुए।

अवाली—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्वाली] माता [को०]।

अविका—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्विका] १ माता। माँ। उ०—अविका माता को कहिये, धाकर नीच ब्राह्मन को कहिये तातें विरुद्ध मतिकृत भयो।—भिखारी ग्र०, भा० २ पृ० २२५। २ दुर्गा। भगवती। देवी। पार्वती। उ०—वासी नरनारि ईस अविका सरूप हैं।—तुलसी ग्र०, पृ० २४१। ३ जैनो की एक देवी। ४ कुटकी का पेड। ५ अवष्ठा लता। पाढा। ६. काशी के राजा इद्रद्युम्न की तीन कन्याओ मे मझली।

विशेष—भीष्म अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये इन कन्याओ को हर लाए थे। विचित्रवीर्य के मरने पर जब व्यास जी ने इससे नियोग किया तब धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए।

अविकापति—संज्ञा पुं० [सं० अम्विकापति] शिव [को०]।

अविकापुत्र—संज्ञा पुं० [सं० अम्विकापुत्र] काशिराज की मझली कन्या अविका के पुत्र धृतराष्ट्र [को०]।

अंविकावन—संज्ञा पुं० [सं० अम्विकावन] १ इलावृत खड मे एक पुराणप्रसिद्ध स्थान जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाते थे। उ०—एक दिवस सो अखेटक गयौ। जाइ अविकावन तिय भयौ।—सूर०, ९।२। २ ब्रज के अतर्गत एक वन।

अविकालय—संज्ञा पुं० [सं० अम्विकालय] देवी का मदिर। उ०—पूजा मिसि आनिसि पुरखोतम अविकालय नगर आरात।—वेलि०, दू० ६६।

अविकासुत—संज्ञा पुं० [सं० अम्बिकासुत] धृतराष्ट्र। अंबिकापुत्र [को०]
अविकेय—संज्ञा पुं० [सं० अम्बिकेय] अंबिका के पुत्र—१ गणेश। २. कार्तिकेय। ३. धृतराष्ट्र।
अविष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बष्ठा + 'जूही'] राजवल्ली।—नंद० ग्रं०, पृ० १०५।
अंबु¹—संज्ञा पुं० [सं० अम्बु] १ जल। पानी। उ०—अंबु तू हौं अंबुचर, अंब तू हौं डिंभ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६६। २. आँसू। अश्रु। उ०—सारगमुख,ते परत अंबु ढरि मनु सिव पूजति तपति विनास।—सा० लहरी, पृ० १७३। ३ रक्त का जलीय तत्व (को०)। ४ सुगंधवाला। ५ कुंडली के बारह स्थानों या घरों में चौथा। ६ चार की संख्या, क्योंकि जल तत्वों की गणना में चौथा है। ७ एक छंद (को०)।
अंबु²—संज्ञा पुं० [सं० आम्र] आम। रसाल। उ०—जबू वृक्ष कहौ क्यो लपट फलवर अंबु फरै।—सूर० (राधा०), ३३११।
अंबुअ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुक, प्रा० अंबुअ] जल। पानी। उ०—उतपति प्रेम अगिन उपजावा। बहुरि पवन अंबुअ उपजावा।—हिं० प्रेमा०, पृ० २२९।
अंबुकटक—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकण्टक] जलजंतुविशेष। मगर।
अंबुक¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुक ?] मछली। मास। उ०—सुरा पान अंबुक भखे, नित्त कर्म विभिचार।—दया० बानी, पृ० २८।
अंबुक²—संज्ञा पुं० [सं० अम्बक] आँख। नयन। उ०—पहिले घन के अंबुक माहीं। अंजन स्याम रहा है नाहीं।—इंद्रा०, पृ० ७१।
अंबुकण—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकण] जलबिंदु। पानी का छीटा [को०]।
अंबुकिरात—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकिरात] एक जलजंतु। मगर।
अंबुकीश—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकीश] एक जलजंतु। सूस। शिशुमार।
अंबुकूर्म—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकूर्म] दे० 'अंबुकीश' [को०]।
अंबुकेशर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकेशर] नीबू का पेड़ [को०]।
अंबुकेशी—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकेशी] एक जलजंतु। ऊद। ऊदबिलाव।
अंबुक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुक्रिया] पितृतर्पण [को०]।
अंबुग¹—वि० [सं० अम्बुग] पानी में निवास करनेवाला। जलचर [को०]।
अंबुग²—संज्ञा पुं० जलचर प्राणी [को०]।
अंबुघन—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुघन] उपल। ओला। बनौरी [को०]।
अंबुचत्वर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बु + चत्वर] झील [को०]।
अंबुचर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुचर] जलचर। उ०—अंबु तू हौं अंबुचर, अंब तू हौं डिंभ।—तुलसी ग्रं० भा० २, पृ० २५६।
अंबुचामर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुचामर] शैवाल। सेवार।
अंबुचारी¹—वि० [सं० अम्बुचारिन्] जलचर [को०]।
अंबुचारी²—संज्ञा पुं० जलचर प्राणी [को०]।
अंबुज¹—वि० [सं० अम्बुज] जल में उत्पन्न होनेवाला [को०]।
अंबुज²—संज्ञा पुं०, १ जल से उत्पन्न वस्तु या जंतु। २. कमल। जलज। उ०—नव अंबुज अंबक छवि नीकी।—मानस १।१४७। ३, पानी के किनारे होनेवाला एक पेड़। हिज्जल। ईजड़। पनिहा। ४. बेंत। ५ वज्र। ६ ब्रह्मा। ७. शंख। ८. चंद्रमा (को०)। ९ सारस नाम का पक्षी (को०)।
अंबुजतात—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुजतात] ब्रह्मा। उ०—मुनि के बोल्यो अंबुज तात। सुनहु अमरगन मो तें बात।—नंद० ग्रं०, पृ० २२०।
अंबुजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० अंबुजन्मन्] कमल [को०]।
अंबुजसुत—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुजसुत] ब्रह्मा। अंबुज तात। उ०—अंबुज सुत उमया बिलोकि, वेद पढ़त खलि बीरज।—पृ० रा०, ६१।३१५।
अंबुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजा] १ एक रागिनी जिसे संगीतशास्त्र वाले मेघ राग की पुत्रवधू कहते हैं। २ सरस्वती। उ०—तु ही अंबुजा अंबुकामिन्नि काम।—पृ० रा० २४। ३ कमलिनी। उ०—ढरत रत्त एड्डिय। उपम्म कव्वि टेरिय। मनों कि रत्त रत्तजा। चिकत पत्र अंबुजा।—पृ० रा०, २५।३३०।
अंबुजाक्ष¹—वि० [सं० अम्बुजाक्ष] कमल के समान नेत्रवाला।
अंबुजाक्ष²—संज्ञा पुं० विष्णु।
अंबुजाक्षी—वि० स्त्री० [सं० अम्बुजाक्षी] कमल जैसी आँखवाली [को०]।
अंबुजात¹—वि० [सं० अम्बुजात] जल में उत्पन्न।
अंबुजात²—संज्ञा पुं० कमल। दे० अंबज।
अंबुजासन—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुजासन] वह जिसका आसन कमल पर हो। ब्रह्मा।
अंबुजासना—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजासना] वह स्त्री जिसका आसन कमल पर हो। लक्ष्मी। कमला। सरस्वती।
अंबुजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजिनी] कमलिनी [को०]।
अंबुतस्कर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुतस्कर] सूर्य [को०]।
अंबुताल—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुताल] शैवाल सेवार।
अंबुद¹—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुद] १ जल देनेवाला—बादल मेघ। उ०—विधि महेस मुनि सुर सिहात सब देखत अंबुद ओट दिये।—तुलसी ग्रं०, भा० २, पृ० २७२। २ मोथा। नागरमोथा।
अंबुद²—वि० जल देनेवाला। जो जल दे।
अंबुदेव—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुदेव] १ वे लोग जो जल को देवता मानते हैं। २. ज्योतिष के अनुसार पूर्वाषाढ का एक विभाग [को०]।
अंबुदैव—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुदैव] दे० 'अंबुदेव' [को०]।
अंबुधर¹—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुधर] जल को धारण करनेवाला—मेघ। बादल। उ०—नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई।—मानस, ५।१२।
अंबुधर²—वि० जल को धारण करनेवाला।
अंबुधार—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुधार] जलधारा। उ०—कुंतल चिहुर चुवहि ज्यों घाला। अंबुधार कैधों अलिमाला।—माधवानल०, पृ० १९०।
अंबुधि—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुधि] १ समुद्र। सागर। २. चार की संख्या (को०)। ३. जलपात्र (को०)।
अंबुधिकामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुधिकामिनि] समुद्र की स्त्री या नदी [को०]।
अंबुधिस्रवा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुधिस्रवा] घृतकुमारी। घीकुआँर। ग्वारपाठा।
अंबुनाथ—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुनाथ] १. समुद्र। सागर। २. वरुण देवता।

अंबुनिधि—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुनिधि] समुद्र। सागर।
अंबुनिवह¹—वि० [सं० अम्बुनिवह] जल ले जानेवाला [को०]।
अंबुनिवह²—संज्ञा पुं० बादल [को०]।
अंबुनेत्रा—वि० स्त्री० [सं० अम्बुनेत्रा] आँसू भरी आँखोंवाली। अश्रुपूरित नेत्रोंवाली। उ०—आसीना थी निकट पति के अंबुनेत्रा यशोदा।—प्रिय प्र०, (सर्ग १०)।
अंबुप¹—वि० [सं० अम्बुप] पानी पीनेवाला।
अंबुप²—संज्ञा पुं० १. समुद्र। सागर। २ वरुण। ३ शतभिषा नक्षत्र। ४ चकवड का पौधा। चक्रमर्द। चकौंड।
अंबुपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुपक्षिन्] जल में रहनेवाले पक्षी [को०]।
अंबुपति—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुपति] १ समुद्र। उ०—आनन अनल अंबुपति जीहा।—मानस, ६।१५। २ वरुण।
अंबुपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुपत्रा] नागरमोथा। मोथा। उच्चटा।
अंबुपद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुपद्धति] जलमार्ग। धारा। जल प्रवाह। जलप्रपात [को०]।
अंबुपात—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुपात] दे० 'अंबुपद्धति' [को०]।
अंबुपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुपालिका] पनिहारिन। पानी भरनेवाली लडकी उ०—भरे हुए पानी मृदु आती थी पथ पर, अंबुपालिका।—अनामिका, पृ० १७७।
अंबुप्रसाद—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुप्रसाद] निर्मली। निर्मली का पौधा। गँदले पानी को साफ करनेवाली ओषधि। कतक।
अंबुप्रसादन—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुप्रसादन] दे० 'अंबुप्रसाद' [को०]।
अंबुबसा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवासा] पाटल। पाडर।—नंददास ग्रं०, पृ० १०२।
अंबुभव—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुभव] कमल [को०]।
अंबुभृत्—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुभृत्] १. बादल। २ मोथा। ३ समुद्र। ४. अभ्रक।
अंबुमत्—वि० [सं० अम्बुमत्] जलयुक्त [को०]।
अंबुमती—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुमती] एक नदी का नाम [को०]।
अंबुमात्रज¹—वि० सं० अम्बुमात्रज] जल में ही उत्पन्न होनेवाला। जलीय [को०]।
अंबुमात्रज²—संज्ञा पुं० घोंघा। शंख। शंबूक [को०]।
अंबुर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुर] दरवाजे का काष्ठ। चौखट [को०]।
अंबुरय—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुरय] धारा। प्रवाह [को०]।
अंबुराज—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुराज] दे० 'अंबुपति' [को०]।
अंबुराशि—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुराशि] जल की राशि अर्थात् समुद्र। सागर।
अंबुरुह—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुरुह] कमल।
अंबुरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुरुहा] स्थल कमलिनी [को०]।
अंबुरुहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुरुहिणी] कमल। कमलिनी। कुई कोई [को०]।
अंबुरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुरोहिणी] दे० 'अंबुरुहिणी'।
अंबुल¹—संज्ञा पुं० [सं०अम्ल>प्रा० अमम्ल> अंबल,] १ अम्ल। अम्लल। खट्टा रस। उ०—पन बहु अंबुल जंबुअ मेलि।—पृ० रा०, ६३।१०६। २ आम।
अंबुल²—संज्ञा पुं० [सं०आमलक, प्रा० आमलय] आमला [को०]।
अंबुवाची—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवाची] आषाढ़ में आर्द्रा नक्षत्र का प्रथम चरण अर्थात् आरंभ के तीन दिन और २० घड़ी जिनमें पृथ्वी ऋतुमती समझी जाती है और बीज बोने का निषेध है।
यौ०—अंबुवाची त्याग = आषाढ़ कृष्णपक्ष त्रयोदशी का दिन [को०]। अंबुवाची पद = आषाढ कृष्णपक्ष का दशम दिन [को०]।
अंबुवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवासिनी] पुष्पविशेष। पाडर का फूल। पाटला [को०]।
अंबुवासी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवासिन्] दे० 'अंबुवासिनी' [को०]।
अंबुवाह—संज्ञा पुं० [सं०अम्बुवाह] १ बादल। मेघ। २ मोथा। नागरमोथा। ३. जलवाहक व्यक्ति (को०)। ४. अभ्रक (को०)। ५ सत्रह की संख्या (को०)। ६ झील (को०)।
अंबुवाहक¹—वि० [सं० अम्बुवाहक] जल ले जानेवाला [को०]।
अंबुवाहक²—संज्ञा स्त्री० १ बादल। २ मोथा। नागरमोथा (को०)।
अंबुवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवाहिनी] १ नाव का जल उलीचने या फेंकने का बरतन जो प्राय काठ या कछुए के खोपडे का होता है। २ जल लानेवाली स्त्री० [को०]।
अंबुवाही—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुवाहिन्] १ मेघ। बादल। २ मोथा। मुस्तक [को०]।
अंबुविस्रवा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुविस्रवा] घृतकुमारी। ग्वारपाठा। घीकुआँर [को०]।
अंबुविहार—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुविहार] जलक्रीडा। जलविहार [को०]।
अंबुवेतस—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुवेतस] एक प्रकार का बेत जो पानी में होता है। बडा बेत।
विशेष—यह बेत पतला पर बहुत दृढ होता है। इसकी छडियाँ बहुत उत्तम बनती हैं। दक्षिण बंगाल, उड़ीसा, करनाटक, चटगाँव, बर्मा आदि में यह पाया जाता है।
अंबुशायी—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुशायिन्] जल या समुद्र में शयन करनेवाले, विष्णु। नारायण।
अंबुशिरीषिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुशिरीषिका] एक विशेष पेड। जलशिरीष। ढाटोन। टिटिनी। [को०]।
अंबुशिरीषी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुशिरीषी] दे० 'अंबुशिरीषिका' [को०]।
अंबुसर्पिणी—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुसर्पिणी] जोंक।
अंबुसेचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुसेचनी] जल सींचने या उलीचने का पात्र [को०]।
अंबूक—संज्ञा पुं० [सं० अम्बूक] लकुच। बडहर [को०]।
अंबूकृत—वि० [सं० अम्बूकृत] निष्ठीवनयुक्त उच्चरित (भाषा या कथन) [को०]।
अंबूज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुज] कमल। अंबुज। उ०—परे सीस भार चहुआन धार। मनो इम्भ झकोर अंबूज झार।—पृ० रा०, २५।७६१।
अंबूजी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुज + हिं० ई (प्रत्य०) कमलिनी। कुमुदिनी। उ०—अनुदिन काम विलास विलासिनि, चं अलि तू अंबूजी।—सूर०, १०।२८२६।
अंबूदीप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुद्वीप, प्रा० अंबूदीअ] कबीर साहित्य में वर्णित एक द्वीप का नाम। उ०—अंबूदीप हंस को थाना।—कबीर सा०, पृ० ५।
अंबोह—संज्ञा पुं० [फा०] भीड़भाड़। जमघट। झुंड। जमाव। समूह। उ०—इक दम की पैठ लगी है यह अंबोह मजा चरखा कहिये।—राम० धर्म०, पृ० ६३।
अंब्रित(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमृत] सुधा। अमृत। उ०—पुहुप पक रस अंब्रित साँधे। केइ ये सुरंग खिरौरा बाँधे।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६३।

अंभ—संज्ञा पुं० [सं० अम्भ] अंभस् का समासगत रूप, जैसे, अंभपति, अंभसार मे।

अंभ पति—संज्ञा पुं० [सं० अम्भ पति] जलपति। वरुण [को०]।

अंभ सार—संज्ञा पुं० [सं० अम्भ सार] मोती [को०]।

अंभ सू—संज्ञा पुं० [सं० अम्भ सू] दे० 'अंभसू' [को०]।

अंभ स्थ—वि० [सं० अम्भ स्थ] जल मे स्थित [को०]।

अंभ—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्] १ जल। पानी। उ०—नौ तत्वनि को लिंग पुनि माँहि भरयौ है अंभ।—सुदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७८१। २ पितृलोक। ३ पितर। ४ लग्न से चौथी राशि। ५ चार की संज्ञा। ६ साख्य मे आध्यात्मिक तुष्टि के चार भेदों में से एक। दे० 'अंभस्तुष्टि'। ७ देव। ८ असुर। ९. एक राक्षस या असुर (को०)। १०. शक्ति (को०) ११ तेज (को०)। १२ मनुष्य। मानव (को०) १३ एक वैदिक छद (को०)। १४ आकाश। उ०—करि मत साह गोरी अचभ। आरभ चक्क भुजदड अंभ।—पृ० रा०, १९।८४।

अंभनिधि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस् + निधि] दे० 'अंभोनिधि'।

अंभस्—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्] पानी [को०]।

अंभसार—संज्ञा पुं० [सं० अम्भ सार] मोती :

अंभसू—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस् + सु] १ धूम्रं। २. भाप।

अंभस्तुष्टि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस् + तुष्टि] साख्य मे चार आध्यात्मिक तुष्टियों में से एक। जब कोई व्यक्ति माया के प्रपच मे फँसकर यह सतोष करता है कि उसे होते होते प्रकृति की गति के अनुसार विवेक आदि की अवस्था प्राप्त हो ही जाएगी तब उनकी इस तुष्टि को अंभस्तुष्टि कहते हैं।

अंभस्सार—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्सार] मोती। मुक्ता [को०]।

अंभु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अम्भु] पानी। ओप। तेज। काति। उ०—सदा दान किरवान मैं, जाके आनन अंभु।—भूषण ग्रं०, पृ० ६।

अंभो—संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्] 'अंभस् का समासगत रूप।

अंभोज¹—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोज] १. कमल। पद्म। २ सारस पक्षी। ३ चद्रमा। ४ कपूर। ५ शख।

अंभोज²—वि० जल मे उत्पन्न।

अंभोजखड—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोजखड] कमल समूह [को०]।

अंभोजजनि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोज + जनि] अंभोजजन्मा ब्रह्मा। चतुरानन [को०]।

अंभोजजन्म—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोजजन्मन्] ब्रह्मा [को०]।

अंभोजजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोजजन्मन्] ब्रह्मा [को०]।

अंभोजयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्भोजयोनि] ब्रह्मा [को०]।

अंभोजा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्भोजा] १. कमलिनी। २ जेठी मधु। मुलेठी [को०]।

अंभोजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्भोजिनी] १ कमल का पौधा। कमलिनी। पद्मिनी २ कमल का समूह। ३. वह स्थान जहाँ पर बहुत से कमल हों।

अंभोद—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोद] १ बादल। मेघ। २. मोथा। नागरमोथा।

यौ०—अंभोदनाद = मेघनाद। रावण का पुत्र। अंभोदनादहन = अंभोदनाद को मारनेवाले लक्ष्मण।

अंभोधर—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोधर] १. बादल। २ मोथा।

अंभोधि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोधि] अंबुधि। समुद्र। उ०—जयति अंजनी गर्भ अंभोधि सभूत विधु विबुध कुल कैरवानदकारी।—तुलसी ग्रं०, या २, पृ० ३९०।

अंभोधिपल्लव—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोधिपल्लव] विद्रुम मूँगा। प्रवाल [को०]।

अंभोधिवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोधिवल्लभ] मूँगा। प्रवाल।

अंभोनिधि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोनिधि] समुद्र। सागर।

अंभोयोनि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोयोनि] ब्रह्मा [को०]।

अंभोराशि—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोराशि] समुद्र।

अंभोरुह—संज्ञा पुं० [सं० अम्भोरुह] १ कमल। उ०—वदन इदु, अंभोरुह लोचन, स्याम गौर सोभा सदन सरीर।—तुलसी ग्रं०, पृ० ९९६। २ सारस पक्षी।

अंम(पु)—सर्व० [सं० अस्मत्, प्रा अम्ह] हमारा। मेरा। उ०—जं जपि ताम पेरम राव। बूझै न मत को अंमठाव।— पृ० रा०, १२।१९८।

अंमर¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अम्बर] आकाश। नभ। उ०—चालुक्क राह चालत दल अंमर घुमर घुमर वर।—पृ० रा०, १२।७६।

अंमर²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमर] देवता। उ०—सम्मरि सों लग्गे समर अंमर कौतिग एव।—पृ० रा०, १२।३२६।

अंमर³†—वि० दे० 'अमर'।

अंमर⁴†—संज्ञा पुं० [सं० अमृत, अम्मरअ] अमृत।

अंमर डमर—संज्ञा पुं० दे० 'अंबर डबर' उ०—घन अंमर डमर दिसि प्रमान। उठे जल तीनो निधान। पृ० रा०, १४।६१।

अंमरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अमरी = देवागना] देवागना। अप्सरा। उ०—अंमरिय रहसि दल दुअ विहसि। करसि वीर लग्गे सु वर।—पृ० रा०, ३१।१५४।

अंमह(पु)—सर्व० [सं० अस्मत्; प्रा० अम्मह] हमे। उ०—अंमह एत्ता दुख्ख सुनि।—कीर्ति०, पृ० ७२।

अंमृत(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अमृत] अमृत। सुधा। उ०—गगन मंडल मे ऊँधा कूवा तहाँ अंमृत का वासा।—गोरख०, पृ० ६।

अंमृत्त(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अमृत'। उ०—अंमृत्त आवहि जाहि, पप्पील रगहि चाहि।—पृ० रा, भा० २, पृ० ५६४।

अंमोल(पु)—वि० [हिं० अनमोल] दे० 'अमोल'। उ०—इसे अस्व अंमोल लिये पुडीर चद कहि।—पृ रा०, ६४।४२०।

अंम्रित(पु)—संज्ञा पु० दे० अमृत। उ०—मनहुँ कला ससि भान, कला सोलह सोवन्निय। बाल वेस ससिता समीप अंम्रित रस पिन्निय।—पृ० रा०, २०।५।

अंवटना(पु)†—क्रि० स० दे० 'औटना'। उ०—अंवटि छीर अनल पर जाई। जोरन दे तब दही जमाई।—सं० दरिया, पृ० ६।

अंश—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाग। खड। अवयव। अग। २ दाय या उत्तराधिकार का भाग। हिस्सा। बखरा। बँट। ३. भाज्य अक। ४ भिन्न की लकीर के ऊपर की सख्या। ५. चौथा भाग। ६ सोलहवाँ भाग। ७ वृत्त की परिधि का ३६० वाँ भाग जिसे इकाई मानकर कोण या चाप का प्रमाण बताया जाता है।

विशेष--पृथ्वी की विषुवत् रेखा को ३६० भागों में बाँटकर प्रत्येक विभाजक बिंदु पर से एक एक लकीर उत्तर दक्षिण को खींचते हैं। इसी प्रकार इन उत्तर दक्षिण लकीरों को ३६० भागों में बाँटकर विभाजक बिंदुओं पर से पूर्व पश्चिम लकीर खींचते हैं। इन उत्तर दक्षिण और पूर्व पश्चिम की लकीरों के परस्पर अंतर को अंश कहते हैं। इसी रीति से राशिचक्र भी ३६० अंशों में बाँटा गया है। राशियाँ १२ हैं, इससे प्रत्येक राशि प्राय ३० अंश की होती है। अंश के ६०वें भाग को कला और कला के ६०वें भाग को विकला कहते हैं। ८ कंधा। ९ सूर्य। १२ आदित्यों में से एक, जैसे--अंशसुता = अर्थात् सूर्य की पुत्री यमुना। १० किसी कारबार का हिस्सा। ११ फायदे का हिस्सा। १२ राग का मुख्य स्वर (संगीत)। १३ एक यदुवंशी राजा (को०)। १४ दिन (को०)।

यौ०--अंशवंश = धन परिवार।

अंशक[1]--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अंशिका] १. भाग। टुकड़ा। २. दिन। सौर दिवस। ३ हिस्सेदार। साझीदार। पट्टीदार। उ०--दाय या उत्तराधिकार में कई व्यक्ति हिस्सा बाँटनेवाले हों तो प्रत्येक का भाग अंश और पानेवाला अंशक कहलाता था।--पाणिनि०, पृ० ४१३।

अंशक[2]--वि० १. अंश धारण करनेवाला। अंश रखनेवाला। अंशधारी। २ बाँटनेवाला। विभाजक।

अंशकरण--संज्ञा पुं० [सं०] विभाजन। बँटवारा या विभाग करने का कार्य [को०]।

अंशकल्पना--संज्ञा स्त्री० [सं०] अंश या विभाग प्रदान करने का कार्य [को०]।

अंशतः--क्रि० वि [सं० अंशतस्] किसी अंश तक। कुछ हद तक। आंशिक रूप में। खंडों में। टुकड़ों में। खंडशः। असंपूर्ण रूप से।

अंशतीर्थ--संज्ञा पुं० [देश०] एक तीर्थ का नाम।

अंशधारी--वि० [सं०] अंश धारण करनेवाला। अंशक। उ०--प्रगट्यो कवींद्र अंशधारी नरहरि तहाँ दिरलीपति मान्यो तिन्हें गुण की प्रभाते हैं।--अकबरी०, पृ० ७५।

अंशन--संज्ञा पुं० [सं०] विभाजन। विभाग या बँटवारा करने का कार्य [को०]।

अंशपत्र--संज्ञा पुं० [सं०] वह कागज जिसमें पट्टीदारों का अंश या हिस्सा लिखा हो।

अंशप्रकल्पना--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अंशकल्पना' [को०]।

अंशप्रदान--संज्ञा पुं० [सं०] हिस्सा या अंश देने का कार्य। अंशकल्पना [को०]।

अंशभागी--वि० [सं०] दे० 'अंशभाग'।

अंशभाग--वि० [सं०] अंशी। दायाद। हिस्सेदार। [को०]।

अंशभू--वि० [सं०] पट्टीदार। साझीदार [को०]।

अंशभूत--वि० [सं०] अंशरूप। अंशमय। अंश [को०]।

अंशयिता--वि० [सं० अंशयितृ, अंशयिता] हिस्सा बाँटनेवाला दायाद। हिस्सेदार।

अंशल--वि० [सं०] १ हिस्सेदार। दायाद। २. पुष्ट कंधेवाला। बलवान्। शक्तिसंपन्न [को०]।

अंशवत्--संज्ञा पुं० [सं०] अंशुमत्। सोम का एक भेद [को०]।

अंशसुता--संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना नदी।

अंशस्वर--संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में मुख्य स्वर [को०]।

अंशहर--वि [सं०] हिस्सेदार। हिस्सा पानेवाला [को०]।

अंशहारी--वि० [अंशहारिन्] दे० 'अंशधारी' [को०]।

अंशांश--संज्ञा पुं० [सं०] १. अंश का भाग (किसी देवता का)। २ अमुख्य, अपूर्ण या गौण अवतार। अंशावतार [को०]।

अंशांशि--क्रि० वि० [सं०] विभागशः। विभागानुक्रम से [को०]।

अंशावतरण--संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अंशावतार'। २ महाभारत के आदि पर्व के ६४ से ६७ अध्यायों का अभिधान [को०]।

अंशावतार--संज्ञा पुं० [सं०] वह अवतार जिसमें परमात्मा की शक्ति का कुछ भाग ही आया हो। पूर्णावतार से भिन्न।

अंशी[1]--वि० [सं० अंशिन्] [वि० स्त्री० अंशिनी] १ अंशधारी। अंश रखनेवाला। २ शक्ति या सामर्थ्य रखनेवाला। ३. अवतारी।

अंशी--संज्ञा पुं० १ हिस्सेदार। साझीदार। २ अवयवी।

अंशु--संज्ञा पुं० [सं०] १ किरण। प्रभा।

यौ०--अंशुधर, अंशुपति, अंशुभर्ता, अंशुभृत्, अंशुस्वामी, अंशुहस्त = सूर्य।

२ लता का कोई भाग। ३ सूत। सूत्र। तागा। धागा। पतली रस्सी। ४ तागे का छोर। छोर। ५ लेश। बहुत सूक्ष्म अंश या भाग। ६ लता और विशेष रूप से सोमलता का सुतरा (को०)। ७ सूर्य। ८ एक ऋषि या राजा का नाम। ९ वेग (को०)। १० वेश (को०)। ११. आमंडन वस्त्र (को०)।

अंशुक--संज्ञा पुं० [सं०] १ कपड़ा। वस्त्र। २ पतला कपड़ा। महीन कपड़ा। ३ किरन। अल्प प्रकाश। किरणसमूह। ४ रेशमी कपड़ा। ५ उपरना। उत्तरीय। दुपट्टा। ६ धोती या अधोवस्त्र। ७ ओढ़ना। ओढ़नी। ८ मुखवस्त्र। घूँघट (को०) ९ तेजपात।

अंशुकोष्णीषपट्टिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अंशुक + उष्णीषपट्टिका] उष्णीष पर बाँधी जानेवाली अंशुक नामक महीन वस्त्र की पट्टी।--हर्ष०, पृ० १७।

अंशुजाल--संज्ञा पुं० [सं०] १ किरणसमूह। प्रकाशपुंज। २. प्रकाश की दीप्ति या चमक [को०]।

अंशुनाभि--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बिंदु जिस पर समानांतर प्रकाश की किरणें तिरछी और संकुचित होकर मिलें।

विशेष--सूर्यमुखी शीशे को जब सूर्य के सामने करते हैं तब उसकी दूसरी ओर इन्हीं किरणों का समूह गोल वृत्त या बिंदु बन जाता है जिसमें पड़ने से चीजें जलने लगती हैं।

अंशुपट्ट--संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्रविशेष। एक प्रकार का रेशमी कपड़ा [को०]।

अंशुमत--संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २. अंशुमान राजा।

अंशुमती--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक नदी। यमुना। कालिंदी २. सालपर्णी [को०]।

अंशुमत्फला—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] केले का वृक्ष और उसका फल [को॰]।

अंशुमर्दन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] ज्योतिष में ग्रहयुद्ध के चार भेदों में से एक। इस ग्रहयुद्ध में राजाओं से युद्ध, रोग और भूख की पीड़ा आदि होती है। दे॰ 'ग्रहयुद्ध'।

अंशुमान¹—वि॰ [सं॰] १. रेशेदार। २. सोम से संपन्न। सोमरस से भरा हुआ। ३. चमकीला। दीप्तिमान्। ४. नुकीला [को॰]।

अंशुमान²—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अंशुमत्] १. सूर्य। २. चंद्रमा (क्व॰)। ३. अयोध्या के सूर्यवंशी राजा सगर के पौत्र, असमंजस के पुत्र और दिलीप के पिता। सगर के अश्वमेघ का घोड़ा ये ही ढूँढकर लाए थे और सगर के ६०,००० पुत्रों के शव को इन्हीं ने पाया था।

अंशुमाला—संज्ञा पुं॰ [सं॰] ज्योतिर्वलय। प्रकाश का घेरा। तेजोवलय [को॰]।

अंशुमाली—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अंशुमालिन्] १. सूर्य। २. बारह की संख्या [को॰]।

अंशुल¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. चाणक्य मुनि। २. मुनि [को॰]।

अंशुल²—वि॰ प्रकाशपूर्ण [को॰]।

अंशुविमर्द—संज्ञा पुं॰ [सं॰] किरणों के मंद या धुँधली होने की स्थिति [को॰]।

अंशूदक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] धूप या चाँदनी में रखा हुआ जल [को॰]।

अंश्य—वि॰ [सं॰] १. बाँटने योग्य। विभाजनीय। २. विभाग। प्राप्य [को॰]।

अंस¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. भाग। अंश। खंड। अवयव। उ॰—ईश्वर अंस, जीव अविनासी।—मानस, ७।११७। २. स्कंध। कंधा। उ॰—अभयद भुजदंड मूल, अंस पीन सानुकूल, कनक मेखला दुकूल दामिनि धरखी री।—सूर॰, १०।१३८४। ३. चतुर्भुज का कोई कोण (को॰)। ४. वेदी के कोई दो स्कंध या कोण (को॰)।

अंस²(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अंश] १. कला। उ॰—तापर उरग ग्रसित तब सोभित पूरन अंस ससी।—सूर॰, १०।११९६। २. सूर्य। जैसे 'अंससुता' में। ३. अपनत्व। संबंध। अधिकार। उ॰—अब इन कृपा करी ब्रज आए जानि आपनो अंस।—सूर॰, १०।३५८७।

अंस³(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अंशु] किरण। उ॰—सित कमल बंस सी सीतकर अंस सी।—भिखारी॰ ग्रं॰, भा॰, १, पृ॰ २३४।

अंस(पु)⁴—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अश्र या अश्रु] आँसू। अश्रु। उ॰—भुज फरकनि तरकनि कंचुकि कच छुरि जु रहे ढुरि अंस।—पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ ३८३।

अंसकूट—संज्ञा पुं॰ [सं॰] साँड के कंधों के बीच का ऊपर उठा हुआ भाग। कूबड़। कुब। ककुद।

अंसटपाटी‡—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अनशन + हिं॰ पाटी] दे॰ 'खटपाटी'।

क्रि॰ प्र॰—लेना = खटपाटी लेना। क्रोध या हठ के कारण कामकाज न करना। काम धाम से विरक्त होना। उ॰—तो वाकी मा अंसटपाटी लै के परि गई।—पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ १००६।

अंसत्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. स्कंधत्राण। कंधों की रक्षा के लिये धारण किया जानेवाला लौहपट्ट। २. धनुष [को॰]।

अंसधन—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अंशधन] हिस्से का धन। उ॰—जु कछु अंसधन हुतौ जो साथ। सो दीनों माता के हाथ।—अर्ध॰।

अंसपुरसा(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अंश + पुरुष] अंशपुरुष। बलवान् व्यक्ति। उ॰—तदवार अंसपुरसा' तणी, आय वणी जग ऊपरा।—रा॰ रू॰, पृ॰ २३।

अंसफलक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] रीढ़ का ऊपरी भाग [को॰]।

अंसभार¹—वि॰ कंधों पर बोझा ढोनेवाला। बहँगीदार [को॰]।

अंसभार²—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कंधों का बोझ। बोझ जो कंधे पर ढोया जाय [को॰]।

अंसभारिक—वि॰ [सं॰] कंधों पर बोझ ढोनेवाला [को॰]।

अंसभारी—वि॰ [सं॰] दे॰ 'अंशभारिक' [को॰]।

अंसर(पु)—संज्ञा पुं॰ [अ॰ उन्सुर] तत्व। उ॰—केहैं पाँच अंसर सू फला यो तन, के माटी होर पानी व बारा तू गिन।—दक्खिनी॰, पृ॰ २०८।

अंसल—वि॰ [सं॰] पुष्ट कंधोंवाला। दृढ़स्कंध। बलवान् [को॰]।

अंससुता(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अंशु (= सूर्य) + सुता] कालिंदी। जमुना। सूर्यतनया। उ॰—सूरदास प्रभु अंससुता तट क्रीड़त राधा नंदकुमार।—सूर॰, १०।१८०२।

अंसिक(पु)—[सं॰ अंशक] अंश धारण करनेवाला। अंशसंभूत। उ॰—सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा। जिए सकल रघुपति कीं ईछा।—मानस, ६।११३।

अंसी(पु)—वि॰ [सं॰ अंशी] अंशवाला। अंशधारी। उ॰—द्वारपाल इहँ कही, जोधा कोउ बचे नहीं, काँधे गजदंत धरे सर ब्रह्म अंसी।—सूर॰, १०।३०७४।

अंसु¹(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अंशु, प्रा॰ अंसु] किरण। उ॰—सरद निसि को अंसु अगनित इंदु आभा हरनि।—सूर॰, १०।३५१।

यौ॰—अंसुपति, अंसुमान, अंसुमाल = सूर्य।

अंसु²(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अंस] भाग। अंश। उ॰—लोभा लई नीचे ज्ञान चलाचल हीं, को अंसु अंत है क्रिया पाताल निंदा रस ही को खानि।—भिखारी॰ ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ २१२।

अंसु³(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अंस] स्कंध। कंधा। उ॰—सखा अंसु पर भुज दीन्हें लीन्हें मुरलि अधर मधुर विश्व भरन।—सूर॰, १०।६२४।

अंसु⁴(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अश्रु, प्रा॰ अस्सु, अंसु] आँसू। अश्रु। उ॰—गहत बाल पिय पानि सु गुरु जन सम्भरे। लोचन मोचि सुरंग सु अंसु बहे खरे।—पृ॰ रा॰, २५।२७५।

अंसु⁵(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अश्व, प्रा॰ अस्स] अश्व। घोड़ा। उ॰—पय मर्दिहि अंसु धरै उलटा। मनो विटय देखि चलै कुलटा।—पृ॰ रा॰, २७।३५।

अंसुक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अंशुक, प्रा॰ अंसुक, अंसुग] वस्त्र। कपड़ा। उ॰—औ अंसुक जिमि फूल सलोना।—इंद्रा॰, पृ॰ १२८।

अंसुग(पु)—संज्ञा पुं॰ दे॰ 'अंसुक'। उ॰—कासमीर अंसुग दए सब जोबन पहिराय।—पृ॰ रा॰, पृ॰ १६४।

अंसुमाल(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अंशु, प्रा॰ अंसु + सं॰ प्रा॰ माल] किरण समूह। उ॰—जागिये गोपाललाल, प्रगट भई अंसुमाल मिट्यो अंधकाल, उठौ जननी सुखदाई।—सूर॰, १०।६१६।

अंस्य[1]—वि० [सं० अस्य] विभाज्य ।
अस्य[2]—वि० [सं०] कथा सबधी [को०]।
अंह—संज्ञा पुं० [सं० अंहस्] १ पाप । दुष्कर्म । अपराध । २ दुःख । चिंता । कष्ट । व्याकुलता । ३ विघ्न । बाधा ।
अंहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दान । त्याग । परित्याग । ३ रोग । ४ कष्ट । दुख [को०]।
अंहती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अंहति' [को०]।
अंहद(पु)—वि० [हि० अन + अ० हद] जिसकी हद न हो । असीम । अनत । अनहद । उ०—नाद अनाहद अहद, सुनै अनाहद कौन । —इद्रा०, पृ० १२१।
अंहस्पति—संज्ञा पुं० [सं०] क्षय मास [को०] ।
अंहिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान [को०]।
अंहिती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अंहिति' [को०]।
अंह्रि—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाँव। पैर। २ वृक्ष की जड या मूल [को०]।
अंह्रिप—संज्ञा पुं० [सं०] पादप। पेड [को०]।
अंह्रिशिर—संज्ञा पुं० [सं०] 'अंह्रिस्कंद' [को०]।
अंह्रिस्कंध—संज्ञा पुं० [सं०] गुल्फ। घुट्ठी टखना [को०]।
अँकखरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ककड या पत्थर का महीन टुकडा या चूरा । अँकटी । अँकरी । अँकरोरी ।
अँकटा†—संज्ञा पुं० [सं० कर्कर, प्रा० कक्कर या म० अंकुर, हिं० अकुर > अँकड अथवा सं० अक + काण्ड, > प्रा० *अक + अड = अकड, या देश] १ ककड का छोटा टुकडा । २ ककड पत्थर आदि का महीन टुकडा या चूरा जो अनाज मे से चुनकर निकाल दिया जाता है ।
अँकटी†—संज्ञा स्त्री० [अँकटा शब्द का अल्पार्थक प्रयोग] छोटा अँकटा ।
अँकड(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० हुङ्कार > प्रा० उकड > अँकड़] अकड । ऐंठ । उ०—अँकड जीव लव सुक सु किया था जुल्लाव । —दक्खिनी०, पृ० १४६।
अँकडा†—संज्ञा पुं० दे० 'अँकटा' (बोल०) ।
अँकडी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुर = अँखुआ = टेढी नोक; अथवा सं० अङ्कुटक, प्रा० अङ्कुडग, अकुडय] १ अँकटी । २ हुक । कँटिया । ३ तीर का मुडा हुआ फल । टेढी गाँसी । ४ बेल । लता । ५ लग्गी । फल तोडने का बाँस का डडा जिसके सिरे पर फँसाने के लिए एक टेढी छोटी लकडी बँधी रहती है ।
अँकना[1](पु)—क्रि० स० [सं० अङ्कन] दे० 'आँकना'।
अँकना[2](पु)—क्रि० अ० १ आँका जाना या कूता जाना । २ लिखा जाना या अकित होना ।
अँकना[3](पु)—क्रि० स० [सं० आकर्णन] सुनना । श्रवण करना । उ०—अवध सकल नर नारि बिकल अति अँकनि वचन अनमाए । —तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० ३६२ ।
अँकमाल(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अकमाल' । उ०—सूर स्याम वन तै व्रज आए जननि लिए अँकमाल । —सूर०, १०।१३६० ।
अँकरवरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अकर + वरी या औरी (प्रत्य०)] अँकडी । ककडी । उ०—काँट न चुभै न गडै अँकरवरी । —जायसी ग्र० (गुप्त), छद १३७ ।

अँकरा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] [स्त्री० अँकरी] १ एक खर वा कुधान्य ।
विशेष—यह रबी की फसलो मे गेहूँ के पौधो के बीच जमता है । इसे काटकर बैलो को खिलाते हैं और इसका साग भी खाते हैं । इसका दाना या बीज काला, चिपटा, छोटी मूँग के बराबर होता है और प्राय गेहूँ के साथ मिल जाता है । इसे गरीब लोग खाते भी हैं । खेसारी इसी का एक रूपातर है ।
२ ककड ।
अँकरास†—संज्ञा पुं० दे० 'अकरास' ।
अँकरी—संज्ञा स्त्री० [अँकरा का अल्पार्थक प्रयोग] छोटा अँकरा या ककडी ।
यौ०—अँकरी + पथरी = ककडी । अँकटी ।
अँकरोरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] ककडी । सिटकी । ककड या खपडे का बहुत छोटा टुकडा । अँकरवरी ।
अँकरौरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँकरोरी' । उ०—अँकरौरी सम गनौं पहारा, लेखौ समुद हिये महँ नारा ।—चित्रा०, पृ० २१५ ।
अँकवरी†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँकरोरी' ।
अँकवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० + आँकना + वाई (प्रत्य०)] १ अँकवाने की क्रिया या स्थिति । २ आँकने का पारिश्रमिक या मजदूरी । अँकाई (बोल०) ।
अँकवाना—क्रि० स० [हिं० आँकना का प्रेरणार्थक] १ मूल्य निर्धारित करना । २ कुतवाना । अदाज कराना । ३ परीक्षा कराना । जँचवाना । परखवाना । ५ चिह्न, छापा आदि लगवाना ।
अँकवार—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपालि, अङ्कमाल, प्रा० अकवालि, अकवाल] १ गोद । अक । २ छाती । वक्षस्थल ।
मुहा०—देना = गले लगाना । छाती से लगाना । आलिंगन करना । भेंटना ।—भरना = आलिंगन करना । भेंटना । गले मिलना । उ०—बनमाला पहिरावत स्यामहि बार बार अँकवार भरत धरि ।—सूर०, १०।४०६ ।—भरी होना = गोद मे बच्चा रहना । सतानयुक्त होना । उ०—वह तुम्हारी अँकवार भरी रहे, (आशीर्वाद) (शब्द०) ।
३ आलिंगन । भेंट । मिलना । जैसे—चिट्ठी मे हमारी भेंट अँकवार लिख देना ।—(शब्द०) ।
अँकवारना†—क्रि० स० [हिं० अकवार + ना] गले लगाना । भेंटना । आलिंगन करना ।
अँकवारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपालि, प्रा० अकवालि] उ०—खेलत तैं मोहि बोलि लियौ इहि दोउ भुज भरि दीन्ही अँकवारि । —सूर०, १०।३०४ ।
अँकवारी[1](पु)—संज्ञा स्त्री० १ दे० 'अँकवार' । उ०—अब के गौना बहुरि नहिं औना करि ले भेंट अँकवारी ।—संतवाणी, भा० २, पृ० ६ । २ हाथाबाँही । हाथापाई । मुठभेड । सघर्ष (लाक्षणिक प्रयोग) । उ०—वीर अगुमने भुजा पसारी । दुहु दल माँह भई अँकवारी ।—चित्रा०, पृ० १४३ ।
अँकस†—संज्ञा पुं० दे० 'अकस' ।
अँकसदीया†—संज्ञा पुं० दे० 'अकासदीया' ।

अँकाई—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्क, हिं० अंक (आँक, आँकना, अंकना) + आई (प्रत्य०)] १ कूत। अंदाजा। अटकल। तखमीना। २ फसल में से जमींदार और काश्तकार के हिस्सों का ठहराव। मूल्य निश्चित किया जाना।
क्रि० प्र०—करना। —होना।
३ आँकने का पारिश्रमिक या मजदूरी।

अँकाना—क्रि० स० [सं० अंकन] [संज्ञा—अँकाई अँकाव] १ अंदाज कराना। कुतवाना। २ परीक्षा कराना। परखाना। ३ मूल्य निर्धारित कराना। उ०—मन आग्रह करने लगा, लगा पूछने दाम। चला अँकाने के लिये वह लोभी बेकाम।—झरना, पृ० ७४। ४ चिह्न छापा आदि लगवाना।

अँकाव—संज्ञा पुं० [सं० अङ्क + हिं० आव (प्रत्य०) [क्रि०—अँकाना] कूतने या आँकने का काम। कुताई। अंदाज या तखमीना करने का काम।
क्रि० प्र०—होना।

अँकावना(पु)†—क्रि० स० दे० 'अँकवाना', अँकाना'। उ०—यह प्रेम बजार के अतर सों पर नैन दलाल अँकावते हैं।—ठाकुर०, पृ० २५।

अँकिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँख, अँखिया] आँख। नेत्र। उ०—अँखिया के नहर सूँ दीदे का पानी बर ऐसे लागे गम की बाग-वानी।—दक्खिनी०, पृ० २३७।

अँकुड़ा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] १ लोहे का झुका हुआ टेढ़ा काँटा। २ लोहे का झुका हुआ टेढ़ा छड़ जिससे चुड़िहार लोग भट्ठी से गला हुआ काँच निकालते हैं। ३ टेढ़ी झुकी हुई कील या कँटिया जिसमें तागे अँटकाकर पटवा या पटहार काम करते हैं। ४ लोहे का एक टेढ़ा काँटा जो लकड़ी आदि तौलनेवाली बड़ी तराजू की डाँड़ी के बीचोबीच लगा रहता है। ५. कुलावा। पायजा। ६ लोहे का एक गोल पच्चड़ जो किवाड़ की चूल में ठोंका रहता है। ७ लोहे का एक छड़ जिसका एक सिरा चिपटा होता है और दूसरा टेढ़ा और झुका हुआ। चिपटे सिरे को काँटे से किवाड़ के पल्ले में जड़ देते हैं और झुके हिस्से को साह के कोंढ़ों में डाल देते हैं। इसी पर पल्ला घूमता है अर्थात् खुलता और बंद होता है। ८ रेशमी कपड़ा बुननेवालों का मछली के आकार का काठ का एक औजार जिसके सिरे पर एक छेद होता है। इस छेद में एक खूँटी गड़ी रहती है जिसमें दलपमन से बँधी हुई रस्सी लपेटी रहती है। ९. गाय बैल के पेट का दर्द या मरोड़ जिसे ऐंचा भी कहते हैं। १० खूँटी। नागदंत।—(क्व०)।

अँकुड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँकुड़ा का अल्पार्थक प्रयोग] [वि० अँकुड़ीदार] १ छोटा अँकुड़ा। टेढ़ी कँटिया। हुक। २ लोहे का एक छड़ जिसका सिरा कुछ झुका रहता है और जिससे लोहार लोग भट्ठी की आग खोदते हैं। ३ हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगाया जाता है। ४ एक्के के पहिए के जोड़ों पर लगी हुई लोहे की कील या काँटी।

अँकुड़ीदार—वि० [हिं० अँकुड़ी + फा० दार] १ जिसमें अँकुड़ी या कँटिया लगी हो। जिसमें अँटकाने के लिये हुक लगा हो। हुकदार। २. एक प्रकार का कसीदा जिसे गड़ारी भी कहते हैं।

अँकुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] अंकुर। अँखुआ। उ०—अदभुत राम नाम के अंक। धर्म अँकुर के पावन द्वै दल मुक्ति-वधू ताटंक॥—सूर०, १।९०।

अँकुरना(पु)—क्रि० अ० [सं० अङ्कुरण] अंकुरित होना। अंकुर का उत्पन्न होना या निकलना। किसी वस्तु की आरंभिक उत्पत्ति या उत्पन्न होना।

अँकुराना¹(पु)—क्रि० स० [सं० अङ्कुरण] पानी में भिगोकर चने आदि को अँकुरयुक्त होने में प्रवृत्त करना। अंकुर उत्पन्न कराना।

अँकुराना²(पु)—क्रि० अ० दे० 'अँकुरना'।

अँकुराना³(पु)—क्रि० अ० [सं० आकुल] आकुल होना। व्याकुल होना। उ०—माइ चापे दय हलु नेपुर गढ इ। नेपुर भँगवइते जिव अँकुराई।—विद्यापति, पृ० २०३।

अँकुरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुर + ई (हिं०)] १ भिगोकर अंकुरित किए गए चने, मूँग, गेहूँ आदि की घुँघनी। २ वंश में एकमात्र बची हुई संतान।

अँकुवार—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुर, हिं० अँखुआ + आर (प्रत्य०)] अंकुर। अँखुआ। उ०—प्रेम बिना नहीं उपज हिय, प्रेम बीज अँकुवार—रसखान० पृ० १।

अँकुसा—संज्ञा पुं० दे० 'अंकुश'।

अँकुसी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुश, हिं० अंकुस + ई (प्रत्य०)] १ टेढ़ी करके झुकाई हुई लोहे की कील जिसमें कोई चीज लटकाई या फँसाई जाय। हुक। कँटिया। २ पीतल या लोहे का एक लंबा छड़ जिसका एक सिरा घुमावदार होता है। इससे ठठेरे भट्ठी की राख निकालते हैं। ३ लोहे का टेढ़ा छड़ जिसको किवाड़ के छेद में डालकर बाहर से अगरी या सिटकिनी खोलते हैं। यह कुंजी का काम देता है। ४ वह छोटी लकड़ी जो फल तोड़ने की लग्गी के सिरे पर बँधी रहती है। ५ लोहे का एक बित्ता लंबा सूजा जिसका सिरा झुका होता है। इससे नारियल के भीतर की गरी निकालते हैं।

अँकूर—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] १ अंक। भाग्य। उ०—जथा जोग सब मिलत है जो विधि लिख्यो अँकूर। खल गुर भोग गवारनी रानी पान कपूर।—स० सप्तक, पृ० ३४१। २ अंकुर। अँखुवा। उ०—जु बकिय भोह न तुच्छ गरूर। उठे मन मच्छ धनक अँकूर।—पृ० रा०, २१।२२।

अँकोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर या प्रा० अंकुडग] १ एक प्रकार का लोहे का काँटा जो पाल की रस्सी खींचने में काम आता है। २ एक प्रकार का लगड़। बड़ी कँटिया। कोढ़ा।

अँकोर¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कमाल या अङ्कपालि, हिं० अँकवार] १ अंक। गोद। छाती। उ०—खेलत रहौं कतहु मैं बाहिर चितै रहति सब मोरी ओर। बोलि लेति भीतर घर अपने मुख चूमति भरि लेति अँकोर।—सूर० (शब्द)। २ दे० 'अँकवार'। ३ भेंट। नजर। उपहार। उ०—सूरदास प्रभु के जो मिलन को, कुच श्रीफल मो करति अँकोर।—सूर (शब्द)। ३ घूस। रिशवत। उ०—(क) लीन्ह अँकोर हाथ जेहि जीउ दीन्ह तेहि हाथ —जायसी ग्र०, पृ० २८७। (ख) विथुरित सिरसह बरूथ, कुंचित बिच सुमन जुथ मनि जुत सिसु फनि

अनीक, नमि ममीप आई। जनु ममीत दै अँकोर, रासे जुग रुचिर मोर, कुटन छवि निरखि चोर सकुचत अधिकाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४०५।

अँकोर[2]†—संज्ञा पुं० [सं० कवल; हिं० कौर अथवा कोर (देश०)] खोराक या कलेवा जो खेत में काम करनेवालों के पास भेजा जाता है। छाक। कोर। दुपहरिया। जलपान।

अँकोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपालि प्रा० अकवालि, अथवा सं० अङ्कोलिका] १ गोद। अंक। २ आलिंगन। अँकवार। कौली। उ०—गावत हँसत रिझावत हिलिमिलि पुनि पुनि भरत अँकोरी।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४६७।

अँकोर—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कपालि या अङ्कोलिका, प्रा० अकवालि] आलिंगन। अँकवार। उ०—मुख चूमत ललचाइ कबहूँ पुनि कबहूँ भरत अँकोर।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५६६।

अँकोल(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अकोल'।

अँखडी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि, अक्ख, डिं० और प० अख+डी (प्रत्य०), अथवा हिं० आँख+डी (प्रत्य०)] १. आँख। नेत्र। उ०—मेरी इन दुखिया अँखडियों के सामने।—लहर, पृ० ७२। २ चितवन। उ०—तुझ अँखडियों के देखे आलम खराब होगा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ८।

अँखमीचनी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँख+मीचनी] दे० 'आँख-मिचौली'।

अँखमूदन(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अँखमूदनो'।

अँखमूदनो—संज्ञा पुं० [हिं० आँख+मूँदना] आँखमीचनी। आँख-मिचौली।

अँखाना(पु)—क्रि० अ० दे० 'अनखाना'।

अँखि(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अखि'। उ०—जिम सुकिया दुति वचन, दूत तरिय अँखि अग्गी।—पृ० रा०, ६१।१०११।

अँखिया‡—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि, हिं० आँखि, अँखिया, प० अख] १. आँख। नेत्र। उ०—अँखिया निरखि स्याम मुख भूली।—सूर०, १०।२४०१।

विशेष—दुलार या स्नेहयुक्त अभिव्यक्ति के प्रसंग में प्राय इस रूप का प्रयोग होता है।

२ लोहे का एक ठप्पा या कमल जिससे बरतन पर हथौडी से ठोंक ठोंककर नक्काशी बनाते हैं।

अँखियारा‡—वि० [हिं० अँखिया+रा (प्रत्य०)] आँखवाला (अंधा का विलोम)।

अँखुआ—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरक] १. बीज से फूटकर निकली हुई टेढी नोक जिसमें से पहली पत्तियाँ निकलती हैं। अंकुर। उ०—खोल खेत में आँख वही अँखुआ कहलाता मिट्टी मुह में डाल फूल अंगों न समाता।—बुद्ध० च०। २ बीज से पहले पहल निकली हुई मुलायम बँधी पत्ती। डाभ। कल्ला। कनखा। कोंपल। फुनगी।

क्रि० प्र०—आना। —उगना। —जमना। —निकलना।—फूटना। —फेंकना। —फोडना। —लाना। —लेना।

अँखुआना—क्रि० अ० [हिं० अँखुआ से नाम०] १ अंकुर फडना या फेंकना। उगना। जमना। अंकुरित होना। २. उभडना। उठाना।

अँग—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] १. शरीर। देह। अवयव। अंग। उ०—फले अँग न समात, रावन को भाग उघरि रह्यो।—नंद० ग्र०, पृ० ३३३। २ पक्ष। तरफ। उ०—अपने अँग के जानि कै जोबन-नृपति प्रवीन।—बिहारी र०, दो० २।

अँगऊँ†—संज्ञा पुं० दे० 'अँगौंगा'।

अँगऊ†—संज्ञा पुं० [सं० अग्रिम] दे० 'अँगौंगा'।

अँगडाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँगडाना+ई (प्रत्य०)] [क्रि० अँग-डाना] आलस से जम्हाई के साथ अंगों को फैलाना, मरोडना या तानना। देह के बंद या जोड के भारीपन को हटाने के लिये अवयवों को पसारना या तानना। शरीर के लगातार एक स्थिति में रहने के कारण जोडों या बंदों के भर जाने पर अवयवों को फैलाना। अँगडाने की क्रिया या भाव। देह टूटना। तन टूटना। उ०—जलधि लहरियों की अँगडाई बार बार जाती सोने।—कामायनी, पृ० २३।

विशेष—सोकर उठने पर या ज्वर आने के कुछ पहले यह प्राय आती है।

क्रि० प्र०—आना।—लेना। उ०—खुदा के वास्ते तनगर न ले तू अँगडाई। कि बंद बंद बुतें बेहिजाब चटकेगा (फ०)।

मुहा०—अँगडाई तोडना = (१) आलस्य में बैठे रहना। कुछ काम न करना। (२) किसी के कंधे पर हाथ रखकर अपने शरीर का भार उसपर देना।

अँगडाना—क्रि० अ० [सं० अङ्ग+अट्] शरीर के बंद या जोडों के भारीपन को हटाने के लिये अंगों को पसारना या तानना। शरीर के लगातार एक स्थिति में रहने के कारण जोडों या बंदों के भर जाने पर अवयवों को फैलाना या तानना। देह तोडना। सुस्ती से या थकावट में ऐंठना या ऐंडाना।

अँगधातु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गधातु] प्रस्वेद। पसीना। उ०—मुकुट उतारि धर्‌यो लै मंदिर पोंछति है अँगधातु।—सूर० १०।५११।

अँगन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गण, अङ्गन] आँगन। चौक। उ०—डहडहे बदन निरखि सिसु भूले। कंचन जलज अँगन जनु फूले॥—नंद० ग्र०, पृ० ३०२।

अँगनई—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगनाई'। उ०—और अब तरक्की करते करते सेक्रेटेरियट की अँगनई में दाखिल हो उठे थे।—नई पौ०, पृ० ८।

अँगनवाँ(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० अँगन+वाँ (प्रत्य०)] दे० 'अँगन'। उ०—खेलत रहलूँ अँगनवाँ सखी, संग साथी हो।—धरम० शब्दा०, पृ० ६४।

अँगना[1]†—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गण, अङ्गन] आँगन। चौक। उ०—पर अँगना करि टार्‌यौ मो घर सब छिन जोरे हाय।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ३८४।

अँगना[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गना] स्त्री। नारी। उ०—छटन गुटी लखि ललन की अँगना अँगना माँह।—बिहारी र०, दो० ३७३।

अँगनाई†—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गन, हिं० आँगन, अँगना+ई (प्रत्य०)] आँगन। अजिर। अँगना। उ०—रानि न जाइ रुचिर अँगनाई।—मानस ७।७६।

अँगनैत‡—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गन, हिं० आँगन, अँगना + ऐत (प्रत्य०)] आँगन का स्वामी। घर का मालिक। गृहस्वामी। गृहपति।

अँगनैया‡—संज्ञा स्त्री० [स० अङ्गन, हिं० आँगन-अँगन + ऐया (प्रत्य०)] आँगन। अँगना। उ०—मनि खभनि प्रतिबिंब झलक, छबि छलकिहै भरि अँगनैया। —तुलसी ग्र०, पृ० २७३।

अँगबदन(पु)—संज्ञा पुं० [स० अङ्ग + बन्धन, तु० फा० बद] अगबंधन। शरीर का बंधन। उ०—ज्यो अहिपति केंचुरि को लघु लघु छोरत है अँगबदन। —सूर०, १०।११५८।

अँगवलित—वि० [स० अङ्गवलित] अंगो से लिपटा हुआ। उ०—ब्रज अधिप अगवलित सुरति समय सोहती बाला —भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १३१।

अँगरँग -संज्ञा पुं० [स० अङ्गरङ्ग] शरीर की कांति या दीप्ति। उ०—तेरेही नव जोवन के अँगरँग सुभ लागत परम सुहाए।—नद० ग्र०, पृ० ३४६।

अँगरखा—संज्ञा पुं० [स० अङ्ग = देह + रक्षक = बचानेवाला, प्रा० रक्खअ, हिं० रखा] एक पुराना मर्दाना पहिनावा जो घुटनों के नीचे तक लंबा होता है और जिसमें बाँधने के लिये बंद टँके रहते हैं। बंददार अगा। चपकन।

विशेष—इसे हिंदू और मुसलमान दोनो बहुत दिनो से पहनते आते हैं। इसके दो भेद हैं—(१) छहकलिया, जिसमे छह कलियाँ होती हैं और चार बंद लगे रहते हैं। इसके बगल के बंद भीतर वा नीचे की ओर बाँधे जाते हैं, ऊपर नही दिखाई पडते, अर्थात् इसका वह पल्ला जिसका बंद बगल मे बाँधा जाता है भीतर वा नीचे होता है, उसके ऊपर वह पल्ला होता है जिसका बंद सामने छाती पर बाधा जाता है। (२) बाला वर, जिसमे चार कलियाँ होती है और छह बंद लगे रहते हैं। इसका बगल मे बाँधनेवाला पल्ला नीचे रहता है और दूसरा उसके ऊपर छाती पर से होता हुआ दूसरी बगल मे जाकर बाँधा जाता है। अत. उसके सामने के और एक बगल के बंद दिखाई पडते हैं।

अँगरखी†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगरखा'।

अँगरना(पु)†—क्रि० अ० दे० 'अँगराना'।

अँगरा†—संज्ञा पुं० [स० अङ्गार] १ अँगार। अँगारा। दहकता हुआ कोयला। २ कोयला।

मुहा०—अँगरा दरना = अनुचित कार्य की हद करना। अशोभन या अशुभ कार्य करना।

विशेष—स्त्रियाँ परस्पर कलह मे सोहागिनो के प्रति अशुभ भाव व्यक्त करती हुई 'माँग मे अँगरा दर दूँगी', प्राय ऐसा कहती हैं।

३ बैल के पैर टपकने या रह रहकर दर्द करने का एक रोग। इस रोग मे बैल बार बार पैर उठाया करता है।

अँगराई†—संज्ञा स्त्री० दे० अँगडाई'। उ०—है रात घूम आई मधुवन यह आलस की अँगराई है। —लहर, पृ० २०।

अँगराग(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अगराग'—१। उ०—नृप द्वार कुमारि चली पुर की, अँगराग सुगंध उडै गहरी।—बुद्ध च०, पृ० २४।

अँगराना(पु)†—क्रि० अ० दे० 'अँगडाना'। उ०—(क) बारवधू पिय पथ लखि अँगरानी अँग मोरि'—मति० ग्र०, पृ० ३०६। (ख) पलक अधखुली दृगनि सो अँग अगरात जम्हात। —ब्रज० ग्र०, पृ० ६३।

अँगरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [स० अङ्ग + री] कवच। झिलम। बकतर। बक्तर। उ०—अँगरी पहिरि कूँडी सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करही। —मानस, २।१६१।

अँगरी[2]—संज्ञा स्त्री० [स० अङ्गुरीय] उँगलियो को धनुष की रगड से बचाने के लिये गोह के चमडे का दस्ताना। अगुलित्राण।

अँगरेज—संज्ञा पुं० [फ्रे० आगलेज, पुर्त० इगलेज, अं० इगलिश] [वि० अँगरेजी] इगलैंड देश का निवासी। इगलिस्तान का रहनेवाला आदमी। उ०—प्रमिवर अँगरेजै घलि घलि तेजं अरिगन भेजै सुरपुर को। —हिम्मत०, पृ० ४२।

अँगरेजियत—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगरेज + फा० इयत (प्रत्य०)] अँगरेजीपन। अँगरेजी रगढग की। उ०—हममे तो भाई यह अँगरेजियत नहीं देखी जाती —रतन, पृ० ११२।

विशेष—कभी कभी शासक और शासित के बीच अँगरेज शासको की अकड या अपने को श्रेष्ठ समझने का अभिमान भी इस अर्थ मे मिला रहता है।

अँगरेजी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँगरेज + ई (प्रत्य०)] अँगरेजो की भाषा। इगलिश भाषा।

अँगरेजी[2]—दे० अँगरेज सबधी। अगरेजो का।

अँगलेट—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग, हिं० अग + लेट ?] शरीर की गठन। काठी। उठान। देह का ढाँचा। अँगेट।

अँगवना(पु)†—क्रि० स० [सं० अङ्ग से नाम०] १ अगीकार करना स्वीकार करना। उ०—दाप पतँग होइ अँगएउ आगी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३२८। २ ओढना। अपने सिर पर लेना। ३ सहना। बरदाश्त करना। उ०—अपना घर सुख छाडि के अँगवै दुख को भार।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २७। ४ उठाना। उ०—धरती भार न अँगवै पाँव धरत उठ हाल। कूर्म टूट मुँह फाटी तिन हस्तिन की चाल।—जायसी (शब्द०)।

अँगवनिहारा—वि० हिं० अँगवना + हारा (प्रत्य०)] सहनेवाला। सहन करनेवाला। बरदाश्त करनेवाला। उ०—सूल कुलिस असि अगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे। —मानस, २।२५।

अँगवाना(पु)—क्रि० स० [हिं० अँगवना। अग मे लगाना या मलना। उ०—चदन और अरगजा आन्यो अपने कर बल के अँगवान्यौ। —सूर०, १०।१२१३।

अँगवारा†—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग = भाग, सहायता + कार या हिं० वारा = वाला] १ गाँव के एक छोटे भाग का मालिक या हिस्सेदार। २ खेत की जुताई मे एक दूसरे की सहायता।

अँगसँग(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अगसग'। उ०—यह जग अँगसँग मे मतवारा, चाबे विषय भोग अनुसारा। —रत्न०, पृ० ६०।

अँगाकरि(पु)†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अगाकडी'। उ०—अबही अँगाकरि तुरत बनाई। जे भजि भजि ग्वालिनि सँग खाई।—सूर०, १०।१२१३।

अँगाना(प)—क्रि० स० [सं० अङ्ग] अंगीकार करना। स्वीकार करना। उ०—मनहुँ एक को रंग एक निज अंग अँगाए।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १८२।

अँगार(प)—संज्ञा पुं० दे० 'अंगार'। उ०—जनु अँगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाइ।—मानस, ६।५२।

अँगारा(प)—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारक, प्रा० अंगारय] आग का जलता टुकड़ा। अंगार। उ०—नभ चढ़ बरषे विपुल अँगारा।—मानस, ६।५१।

विशेष—'अंगारा' शब्द के मुहावरों का प्रायः 'अँगारा' शब्द के साथ भी प्रयोग होता है।

अँगारी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिका प्रा० अंगालिय, इंगाली] १ ईख के सिर पर की हरी पत्ती जिसे काटकर पशुओं को खिलाते हैं। २ गड़ाँसे कटे हुए ईख के छोटे छोटे टुकड़े जो पत्थर के कोल्हू में पेरने के लिये तैयार किए जाते हैं। गँडेरी। गेंडी। ३ चिनगारी। अग्निकण। उ०— खुले घाव पै ताके मानो परी अँगारी।—बुद्ध च०, पृ० १५१। दे० 'अगारी'।

अँगाली(प)—वि० [सं० अग्रणी, प्रा० अग्गाणी, हिं० अगाड़ी, अगारी] आगे। प्रथम। उ०—मुअज्जम इसम अँगाली हमेशा।—दक्खिनी०, पृ० ११८।

अँगिया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गिका, प्रा० अंगिआ] स्त्रियों का एक पहिनावा जिससे केवल स्तन ढके रहते है, पेट और पीठ खुली रहती है। इसमे चार बंद होते हैं जो पीछे बाँधे जाते हैं। छोटा कपड़ा। चोली। कंचुकी। काँचली। उ०—अँगिया नील, माँडनी राती, निरखत नैन चुराई।—सूर०, १०।१०५३।

यौ०—अँगिया का कटा या अँगिया की कटोरी = दे० 'अँगिया का घाट'। अँगिया की कटोरी या मुलकट = अँगिया का वह भाग जो स्तनों के ऊपर पड़ता है। अँगिया की खवासी या खसी = वह सीवन जो कटोरियों को आस्तीन से मिलाती है। अँगिया का घाट = अँगिया का गला या गरेबान, गले के नीचे का खुला हिस्सा। अँगिया की चिड़िया = दोनों कटोरियों के बीच की सीवन। अँगिया का ठर्रा = वह बटा हुआ धागा जो अँगिया के नीचे की गोट में लगाया जाता है। अँगिया की डोरी = कटे और पुट्ठे में शोभा के लिये टाँकी जानेवाली डोरी। अँगिया की दीवार = दे० 'अँगिया का पान'। अँगिया का पछुआ = अँगिया की पीठ की ओर के टुकड़े। अँगिया का पान = अँगिया की कटोरी का छोटा टुकड़ा। अँगिया का पुट्ठा = अँगिया की आस्तीन की चौड़ी गोट। अँगिया के बंद = पीठ की ओर का ठर्रा जिससे अँगिया कसी जाती है। अँगिया का बँगला = कटोरी की कली या फाँक जो जोड़ों पर गोखरू टाँकने से बन जाना है। दो कलियाँ होने पर बँगला और दस बारह होने पर खरबूजा कहते है। अँगिया के बाजू = अँगिया का वह भाग जो दोनों बगल छिपाता है। अँगिया की लहर = कटोरियों पर तिकोनी कटी हुई सज्जा।

अँगिया[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँघिया] झीने कपड़े से मढ़ी हुई चलनी।

अँगिरना(प)†—क्रि० स० [सं० अङ्गीकरण?] स्वीकार करना। उ०—जे अँगिरिअ तो न होइअ उदास।—विद्यापति, पृ० ४४।

अँगिराना—दे० 'अँगड़ाना'। उ०—लागि गरें अँगिरात जँभात हैं, आरस गात भरे गिरि जात हैं।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ४२।

अँगीठ(प)—संज्ञा पुं० [सं० अग्निष्ठ, पा०, प्रा० अग्गिट्ठ] दे० 'अँगीठा'। उ०—या मन को बिसमिल करूँ दीठ करूँ अदीठ। जो सिर राखूँ आपना पर सिर जलो अँगीठ।—कबीर (शब्द०)।

अँगीठा—संज्ञा पुं० [सं० अग्नि = आग + स्था = ठहरना > अग्निस्था, अग्निष्ठा, प्रा० अग्गिट्ठा अथवा सं० अग्निष्ठिका, प्रा० अग्गिट्ठिया] बड़ी अँगीठी। बड़ा आतिशदान। बड़ी बोरसी। आग रखने का बरतन।

अँगीठि(प)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगीठी'। उ०—सुंदर एक अचंभा हूवा पानी माँहि जरै अँगीठि।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ५२१।

अँगीठी—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्निष्ठिका, प्रा० अग्गिट्ठिआ] आग रखने का छोटा बरतन। आतिशदान। उ०—धरी अँगीठी स्वच्छ धूम बिन गावत अपने रंग।—भारतेंदु ग्र०, भाग २, पृ० ८३०।

विशेष—यह मिट्टी और लोहे की गोल, चौखूँटी अठपहली आदि कई आकारों की बनती है।

मुहा०—अँगीठी होना = अँगीठी के समान तप्त होना। उ०—सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु जरि बरि भई अँगीठी।—सूर०, १०।३६७२।

अँगु(प)—संज्ञा पुं० दे० 'अंग'[1]। उ०—सैल सँभार्‌यौ लला अँगुरी धरि पै अबला अँगु री न सँभार्‌यौ।—देव ग्र०, पृ० ११।

अँगुछा(प)†—संज्ञा पुं० दे० 'अँगोछा[1]'। उ०—'तब वा माली ने याको अँगुछा तो फेरि दियो'।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २२६।

अँगुछाना—क्रि० स० [सं० अँगुछा से नाम०] दे० 'अँगोछना' उ०—मनन सुनीर अन्हवाय अँगुछाय दया, नवनि वसन प्रन सोधी ले लगाइये —भक्तमाल (प्रि०), छ० ३।

अँगुठा—संज्ञा पुं० दे० 'अँगूठा'। उ०—कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत।—सूर०, १०।६४।

मुहा०—अँगुठा चटाना = दे० 'अँगूठा चटाना'। उ०—अँगुठा चटाय दफादार के रे साँवलिया।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३४०।

अँगुठी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुष्ठिका, प्रा० अँगुट्ठी] १ काँसे का ढालकर बनाया हुआ एक गहना जो पैर के अँगूठे में अनवट के स्थान पर पहना जाता है। इसका व्यवहार नीच जाति की स्त्रियों में है। २ दे० 'अँगूठी'।

अँगुरि(प)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगुरी'। उ०—कानन कुंडल चलत अँगुरि दल ललित कपोलन मैं कछु झलकैं।—नंद० ग्र०, पृ० ३५२।

अँगुरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरिका, प्रा० अंगुरिया] छोटी उँगली। उ०—गहे अँगुरिया ललन की नँद चलन सिखावत।—सूर०, १०।१२२।

अँगुरियाना—क्रि० स० [हिं० अँगुरी से नाम०] हैरान करना। तंग करना। परेशान करना (बोल०)।

अँगुरिया वेल—संज्ञा पुं० [फा० अंगूर] कालीन या गलीचे के किनारे पर की एक वेल या नक्काशी जो अंगूर की लता के ढंग पर बनाई जाती है।

अँगुरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरी] १ उँगली। उ०—तीजे मास हस्त पग होहि चौथ मास कर अँगुरी सोहि। —सूर०, ३।३। क्रि० प्र०—चटकाना = दे० 'उँगली चटकाना'। उ०—योवन के मद संग ढरे अँग अंग मुरे अँगुरी चटकावे।—देव ग्रं०, पृ० १२।

२ वरक पीटने की चाँदी। यौ०—अँगुरी की चाँदी = यह चाँदी सिल की चाँदी को खूब साफ करके बनाई जाती है। इसी को पीटकर चाँदी का वरक बनाते हैं।

अँगुली—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुली, प्रा० अंगुली] † १. अँगुली। उँगली। २ हाथी की सूँड का अगला भाग। ३ एक नदी का नाम।

अँगुष्ठ(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंगुष्ठ'। उ०—सुभग अँगुष्ठ अंगुली अविरल, कछुक अरुन नखज्योति जगमगति।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१५।

अँगुसा†—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश = टेढ़ी नोक, प्रा० अंकुसय] अंकुर। अँखुआ।

अँगुसाना†—क्रि० अ० [हिं० 'अँगुसा से नाम०] बोए हुए अनाज का अँखुआ फोड़ना। जमना। अंकुरित होना। अँखुआना।

अँगुसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँगुसा + ई (प्रत्य०)] १ हल का फाल। २ सोनारों की बकनाल या टेढ़ी नली जिससे दिए की लौ को फूँककर टाँका जोड़ते हैं।

अँगूठा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुष्ठ, प्रा० अंगुट्ठ] १ मनुष्य के हाथ की सबसे छोटी और मोटी उँगली। पहली उँगली जिससे दूसरा स्थान तर्जनी का है। तर्जनी की बगल में छोर पर की वह उँगली जिसका जोड़ हथेली में दूसरी उँगलियों के जोड़ों के नीचे होता है। उ०—हथफूल पीठ पर करके धर, उँगलियाँ मुँदरियों से सब भर, आरसी अँगूठे में देकर'—ग्राम्या, पृ० ४०।

विशेष—मनुष्य के हाथ में दूसरे जीवों के हाथों से इस अँगूठे की बनावट में बड़ी भारी विशेषता है। यह बड़ी सुगमता से इधर उधर फिरता है और शेष चार उँगलियों में से प्रत्येक पर सटीक बैठ जाता है। इस प्रकार यह पकड़ने में चारों उँगलियों को एक साथ भी और अलग अलग भी सहायता देता है। बिना इसकी शक्ति और सहायता के उँगलियाँ कोई वस्तु अच्छी तरह नहीं पकड़ सकतीं।

मुहा०—अँगूठा चूमना = १ आदर करना। विनय प्रकट करना। २ अधीन होना। ३ खुशामद करना। सुश्रूषा करना। अँगूठा चूसना = बड़ा होकर बच्चों की सी नासमझी करना। अँगूठा दिखाना = १ किसी वस्तु को देने से अवज्ञापूर्वक नहीं करना। २ किसी कार्य को करने से हट जाना। किसी कार्य को करने से अस्वीकार करना। ३ अवज्ञा करना। ४ चिढ़ाना। उ०—ऐसी उपाय गई निमुकाय, चितै मुमुकाय दिखाय अँगूठो। —सुधानिधि, पृ०। अँगूठा नचाना = चिढ़ाना। अँगूठे पर मारना = तुच्छ समझना। परवाह न करना।

२ मनुष्य के पैर की सबसे मोटी उँगली।

अँगूठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँगूठा + ई (प्रत्य०)] १ उँगली में पहनने का एक गहना। एक प्रकार का छल्ला। मुँदरी। मुद्रिका। अंगुश्तरी। उ०—औ पहिरे नगजरी अँगूठी'—पदु०, पृ० ५०।

यौ०—अँगूठी का नगीना = महत्वपूर्ण व्यक्ति या वस्तु। उ०—देखो, जैसा ईश्वर ने यह सुंदर अँगूठी के नगीने सा नगर बनाया है। —भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८७।

२ उँगली में लपेटा हुआ राछ में जोड़ने का तागा।

विशेष—जुलाहे जब पाई को राछ में जोड़ने लगते हैं तब पाई के थोड़े थोड़े तागों को ऐंठकर उँगली में लपेट लेते हैं और फिर उँगली में से एक एक तागा निकालकर राछ में जोड़ते हैं। इस उँगली में लपेटे हुए तागे को अँगूठा या अँगूठी कहते हैं।

अँगूर[1](पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंगूर'। उ०—चूसे अधर अँगूर दोउ गावन पै प्रगट निसानी सी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ८६३।

अँगूर[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] अंकुर। अँखुवा। उ०—सो पै जानै नैन रस, हिरदै प्रेम अँगूर।—जायसी (शब्द०)।

अँगे(पु)—क्रि० वि० [सं० अग्रे, प्रा० अग्गे] आगे। भविष्य में। उ०—के जैसा अँगे होनेहारा है याम।—दक्खिनी०, पृ० ७६।

अँगेजना(पु)—क्रि० स० [सं० अङ्ग = शरीर + एज = हिलना, कंपना] १ सहना। बरदाश्त करना। उठाना। उ०—रह सका काम का सुखी सुंदर, कौन सा अंग दुख अँगेजे पर।—चोखे०, पृ० २१। २ अंगीकार करना। स्वीकार करना। उ०—इक मरिबे कों छाड़ि कहा जो नाहिं अँगेज्यौ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ८०।

अँगेट(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग] अंगों की दीप्ति या कांति। उ०—(क) एड़ी तें सिखा लौं है अनूठिए अँगेट आछी।—रसखान०, पृ० १२०। (ख) साँवरे छैल की आछी अँगेट पै काम करोरिक वारियै जोहि कै।—घनानंद०, पृ० ४७।

अँगेठा†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगीठी'।

अँगेठी†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगीठी'।

अँगेरना(पु)—क्रि० स० [सं० अङ्ग = देह + ईर = जाना, अथवा सं० अङ्ग = स्वीकार या स० अङ्गीकरण, प्रा० अंगीअरण या अंगीरण] १ अंगीकार करना। स्वीकार करना। मंजूर करना। २ सहना बरदाश्त करना।

अँगोछना—क्रि० स० [सं० अङ्गोञ्छन] गीले कपड़े से देह पोंछना। शरीर पर गीला या भीगा वस्त्र रखकर मलना। गीला कपड़ा फेरकर बदन साफ करना। उ०—पीत पट लै लै के अँगोछत सरीर करु कंजन सों पोंछत भुसुंड गजराज कौ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १००।

अँगोछा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गोच्छ] [स्त्री० अँगछी] [पू० गमछा, गमछी] १ देह पोंछने का कपड़ा। तौलिया। २ ऊपर रखने के लिये एक कपड़े का टुकड़ा। इसे प्राय लोग कंधे पर रखते हैं। उपरना। उपवस्त्र। उ०—बासन ढाँकि अँगोछा डारा। , ह्वाँ से भाजन काढ़ि निकारा। —रतन०, पृ० १६८।

क्रि० प्र०—लेना = पोंछना। उ०—चरन पखारि अँगोछा लीन्हा। —कबीर सा०।

अँगोछी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गोछा + हिं० ई (प्रत्य०)] १ देह पोंछने के लिये छोटा कपड़ा २ बच्चों की छोटी धोती जिससे कमर से आधी जाँघ तक ढक जाय। यह प्राय छोटे लड़के लड़कियों के लिये होती है।

अँगोजना(पु)—क्रि० स० दे० 'अँगेजना'।

अँगोट(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग + वर्त्म, प्रा० अग + वट्ट], शरीर की गठन। देह की बनावट।

अँगोटना(पु)—क्रि० स० दे० 'अगोटन'। उ०—देखि री देखि अँगोटि कै नैननि कोटि मनोज मनोहर मूरति।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १३७।

अँगोरा[1]†—संज्ञा पुं० [देश०] मच्छर। भुनगा।

अँगोरा[2]—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गार] अँगारा। अँगार। उ०—भयउ अदग सो लाल अँगोरा। कहँ आगि मे अगिनि अँजोरा।—सं० दरिया, पृ० २३।

अँगोरी—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगारी'।

अँगौंगा—संज्ञा पुं० [सं० अग्र = अगला + अग = भाग] अन्न या और किसी वस्तु का वह भाग जो धर्मार्थ पहले निकाल लिया जाय। धर्मार्थ बाँटने या देवता को चढ़ाने के लिये अलग निकाला हुआ अंश। अँगऊँ। पुजौरा।

अँगौछना(पु)†—क्रि० स० दे० 'अँगोछना'। उ०—उत्तम विधि सौं मुख पखरायौ, ओदे बसन अँगौछि।—सूर०, १०।६०६।

अँगौछा†—संज्ञा पुं० दे० 'अँगोछा'। उ०—अँगौछे मे मास और पोथी के चोंगे मे मद्य छिपाई जाती है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ८२।

अँगौछी†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगोछी'। उ०—एक अँगौछी अपने अपने गले मे डाले आकर सत्यगुरु के चरणों पर गिरे।—कबीर म०, पृ० ५०६।

अँगौटी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गाकृति या अङ्गवर्त्म ?] अग का गठन। आकृति। बनावट। अँगोट।

अँगौडा†—संज्ञा पुं० [?] किसी देवता को अर्पण करने के लिये निकाला गया पदार्थ। देवांश।

अँगौरिया—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग = भाग] १ वह हलवाहा जिसे कुछ मजदूरी न देकर हल बैल देते है जिससे वह अपने खेत भी जोत लेता है। २ मजदूरी के स्थान पर हल बैल मँगनी देना।

अँग्रेज—संज्ञा पुं० दे० अँगरेज।

अँघड़ा†—संज्ञा पुं० [सं० अंघ्रि] काँसे का एक प्रकार का छल्ला जिसे एक वर्ग की स्त्रियाँ पैर के अँगूठे मे पहनती हैं।

अँघराई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कर जो पहले पशुओं पर लगाया जाता था।

अँघिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] झीने कपड़े से मढी हुई आटा या मैदा चालने की चलनी। अँगिया। आखा।

अँचना(पु)—क्रि० स० दे० 'अँचवना'। उ०—पुट एकै इत मद उत अमृत आपु अँचै अँचवावै।—सूर०, १०।१२४६।

अँचर(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अँचरा'। उ०—गज गति चाल अँचर गति धुजा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३४७।

यौ०—अँचर धरैया = दे० 'अँचरा पकड़ाई'।

अँचरा(पु)†—[सं० अञ्चल] १ साड़ी का वह छोर जो छाती पर रहता है। साड़ी या ओढनी का वह भाग जो सिर पर होता हुआ सामने छाती पर फैला हो। पल्ला। २ दुपट्टे या दुशाले के दोनो छोर। छोर। उ०—इव मेरी अँचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसों झगरे।—सूर०, १०।७६।

यौ०—अँचरा पकड़ाई = विवाह की एक प्रथा जिसमे वर कन्या की माता तथा उसके कुटुंब की और स्त्रियों का अचल पकड़ता है और कुछ लेने पर छोड़ता है। इस रीति को तथा उस वस्तु को जो वर को मिलती है, अँचरा पकड़ाई या अँचर धरैया कहते हैं।

मुहा०—अँचरा पसारना = (१) किसी बड़े या देवता से कुछ माँगते समय (स्त्रियों का) अपने अचल को आगे फैलाना जिससे दीनता और उद्वेग सूचित होता है। विनती करना। दीनता दिखाना। उ०—ए विधिना तो सो अँचरा पसारि माँगो जनम जनम दीजो या ही ब्रज बसिवो—छीतस्वामी (शब्द०)। (२) भीख माँगने की एक मुद्रा। कोई वस्तु लेने के लिये देनेवाले के सामने अचल रोपना। (३) दीनता और विनय के साथ माँगना।

अँचल(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अचल—१'। उ०—अँचल ध्वज अवलोकि नाही धरत थिय मन धीर।—सूर०, १०।२४४६।

अँचला—संज्ञा पुं० [सं० अञ्चल] १. दे० 'अँचरा'। २ कपड़े का एक टुकड़ा जिसे साधु लोग नाभि के ऊपर धोती के स्थान पर लपेटे रहते हैं।

अँचली(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अचल + ई (प्रत्य०)] दे० 'अँचरा', 'अँचला'। उ०—उलटन पलटत जग की अँचली। जैसे फेरै पान तमोली।—मलूक०, पृ० १३।

अँचवन(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'अचवन'। उ०—हसन को विश्राम, पुरुष दर्श अँचवन सुधा।—कबीर सा०, पृ० १५।

अँचवना(पु)†—क्रि० स० दे० 'अचवना'। उ०—परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वाति को।—तुलसी ग्र०, पृ० १०७।

अँचवनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आचमनी] आचमन करने का छोटा पात्र। आचमनी।

अँचवाना(पु)†—क्रि० स० दे० 'अचवाना'। उ०—अँचवाइ दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रह्यो।—मानस, १।९९।

अँचार(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'अचार[1]'। उ०—पापर, बरी, अँचार परम सुचि। अदरख अरु निबुअनि ह्वैहै रुचि।—सूर०, १०।१२१३।

अँचुली(पु—संज्ञा स्त्री० दे० अजली १'। उ०—जनम यहि धोखे बीता जात, जस जल मैं अँचुली मे भल सीझै।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ३७।

अँजना(पु)—क्रि० अ० [सं० अञ्ज, प्रा० अज] स्निग्ध होना। उ०—देखत रूप निरजन अँजेउ।—द० सागर, पृ० ६४।

अँजली†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अजली'।

अँजवाना—क्रि० स० [हिं० आँजना का प्रेर०] अजन लगवाना। सुरमा लगवाना।

अँजाना—क्रि० स० दे० 'अँजवाना'। उ०—आँख अँजाइ पहिरि कर चूरी, हारे मोहन गिरधारी।—भारतेंदु ग्र०, भा २, पृ० ३८१।

अँजीर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अंजिर] अजिर। आँगन। उ०—अमृत बुंद तहँ झरै निकंदा। नैन अँजीर मगन मन चंदा।——इं० सागर, पृ० ६८।

अँजुरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंजली'। उ०—जोबन मेरा जात है ज्यों अँजुरी का नीर।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६८५।

अँजुली(पु)†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँजली'। उ०—जैसे मोती ओस की, पानी अँजुली माहिं।—संतबानी०, भा० २, पृ० १६३।

अँजोर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] उजाला। उजेला। प्रकाश। रोशनी। चाँदनी। उ०—मारग हुता अँधेर असूझा। भा अँजोर सब जाना बूझा।—पदु०, ११।३६।

अँजोरना(पु)†—क्रि० स० [हिं० अंजुरी से नाम०] १ बटोरना। समेटना। उ०—करौ जो कछू धरौ सचि पचि सुकृत सिला बटोरि। पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि।—तुलसी (शब्द०)। २ छीनना। हरण करना। ले लेना। मूसना। उ०—ठाढ़ी भई छिरकि मारग मे माँझ हाट मटकी सो फोरि। सूरदास प्रभु रसिक सिरोमणि चित चिंतामणि लियो अँजोरि।—सूर (शब्द०)।

अँजोरना†—क्रि० स० [सं० उज्ज्वलन; हिं० 'अँजोर' से नाम०] जलाना। प्रकाशित करना। बालना। जैसे—'दीपक अँजोरना' (शब्द०)।

अँजोरवा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० अँजोर + वा (प्रत्य०)] उजाला। प्रकाश। उ०—जब लगि तेल दिया मे बाती, येहीं अँजोरवा बिछाय चलतू।—संतबानी०, भा० २, पृ० २३।

अँजोरा[1]†—वि० [सं० उज्ज्वल, हिं० अँजोर] उजेला। प्रकाशमान।
यौ०—अँजोरा पाख = शुक्ल पक्ष।

अँजोरा[2](पु)†—संज्ञा पुं० प्रकाश। रोशनी। उ०—दिया मंदिर निसि करै अँजोरा। दिया नाहिं घर मूसहि चोरा।—जायसी (शब्द०)।

अँजोरिया[1](पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँजोर + इया (प्रत्य०)] चाँदनी। ज्योत्स्ना।

अँजोरिया[2](पु)†—वि० उजेली। शुक्ल पक्ष की।
यौ०—अँजोरिया रात = शुक्ल पक्ष की रात।

अँजोरी[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँजोर + ई (प्रत्य०)] १ प्रकाश। रोशनी। चमक। उजाला। उ०—महिमा अमित मोरि मति थोरी। रवि सनमुख खद्योत अँजोरी।—मानस, ३।५ (क)। २ चाँदनी। चंद्रिका। चंद्रमा का प्रकाश।

अँजोरी[2](पु)—वि० स्त्री० उजियाली। उजेली। प्रकाशमय। उज्ज्वल। देदीप्यमान। उ०—(क) अँजोरी रात आने दो (शब्द०)। (ख) पदिक पदारथ लिखी सो जोरी। चाँद सुरुज जस होइ अँजोरी।—जायसी (शब्द०)।

अँजोरना(पु)—क्रि० स० दे० 'अँजोरना[1]'। उ०—सूर स्याम की बुधि चतुराई लीन्ही सबै अँजोरी।—सूर०, १०।१२४३।

अँट(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँट] लागडाँट। हठ। जिद। उ०—निकसे स्याम सदन मेरे तें इनि अँट करि पहिचानी।—सूर०, १०।२०४३।

अँटकना—क्रि० अ० [देश०] १ रुकना। अड़ना। उ०—गोरख अँटके कालपुर कौन कहावै साहु।—कबीर बी०, पृ० ६५। २. फँसना। उलझना। उ०—सूर सुनेहु ग्वालि मन अँटक्यो अंतर प्रीति जाति नहिं तोरी।—सूर०, १०।३०५। दे० 'अटकना'।

अँटकाना†—क्रि० स० दे० 'अटकाना'।

अँटना—क्रि० अ० [देश०] १ समाना। किसी वस्तु के भीतर आना। उ०—(क) दूध इस बरतन मे न अँटेगा (शब्द०)। (ख) आनंद हृदय में अँटता नहीं था।—भक्तमाल (श्री०) पृ० ५५०। २ किसी वस्तु के ऊपर सटीक बैठना। ठीक चपकना। उ०—यह जूता मेरे पैर मे नहीं अँटता है (शब्द०)। ३ भर जाना। ढँक जाना। छा जाना। उ०—कूड़े से कूआँ अँट गया (शब्द०)। ४ पूरा पड़ना। काफी होना। बस होना। चलना। उ०—(क) इतना कमाते हैं पर अँटता नहीं (शब्द०)। (ख) अकेले हम इतने कामों को नहीं अँट सकते (शब्द०)। ५(पु). पूरा होना। खपना। लग जाना।

अँटिया—संज्ञा स्त्री० [प्रा० अट्ठा, 'आँट', हिं० अंटी + इया (प्रत्य०)] घास, खर या पतली लकड़ियों आदि का बँधा हुआ मुट्ठा। छोटा गट्ठा। गठिया। पूली।

अँटियाना—क्रि० स० [हिं० 'अँटिया' से नाम० या अंटी] १ उँगलियों के बीच में छिपाना। हथेली मे छिपाना। २. चारो उँगलियों में लपेटकर डोरे की पिंडी बनाना। ३ घास, खर या पतली लकड़ियों का मुट्ठा बाँधना। ४ अँट मे रखना। अंटी मे रखना। ५. गायब करना। हजम करना।

अँटीतल—संज्ञा पुं० [देश०] ढक्कन जिन्हें तेली लोग कोल्हू मे जोतने के समय बैल की आँखों पर चढ़ा देते हैं।

अँठई†—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टपदी प्रा० अट्ठअई, अंठई] छोटे छोटे कीड़े जो प्राय कुत्तों के बदन मे चिपटे रहते हैं। किलनी। चिचड़ी।

अँठली—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्ठि = गुठली, गाँठ, अष्ठीलिका] नवयुवती के निकलते हुए स्तन।

अँठियाना†—क्रि० अ० [सं० अष्ठि प्रा० अट्ठि, 'अंठि' से नाम०] १ गुठली पड़ना। गिलटी पड़ना। गाँठ पड़ना। २ दही का थक्का जमना।

अँड(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अण्ड] अंडा। बैजा। उ०—जिन सब्द सोध सिहार साँचे अब्बल अँड उलटे सही।—रत्न०, पृ० ६।

अँडखँड—संज्ञा पुं० दे० 'अंड खंड'। उ०—कन कुरम सेस अकार अँडखँड नौ निरंजन बस रह्यो।—रत्न०, पृ० ११।

अँड़दार—वि० [हिं० अड़ना + दार (प्रत्य०)] रुकनेवाला। अड़नेवाला। उ०—ज्यों मतंग अँड़दार को लिये जात गँडदार।—मति० ग्रं०, पृ० ३१२।

अँडरना†—क्रि० अ० [देश०] धान के पौधे का उस अवस्था में पहुँचना जब बाल निकलने पर हो। रेंड़ना। गरभाना।

अँडलाना†—क्रि० अ० [हिं० अड़ना] इठलाना। शोखी दिखाना।

अँडवाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अंड या अंडा + वाई (प्रत्य०)] मुर्गी या कोई अन्य चिड़िया जो अंडा देनेवाली हो।

अँड़ाना—क्रि० स० दे० 'अड़ाना'। उ०—माया जाल में बाँधि अँड़ाया क्या जाने नर अधा।—मलूक०, पृ० २०।

अँड़िया†--संज्ञा स्त्री० [देश०] १ बाजरे की पकी हुई बाल। २ परेते पर लपेटा हुआ सूत। कुकड़ी।

अँड़ुआ¹--संज्ञा पुं० [सं० अण्ड, हिंदी अँड+उआ (प्रत्य०)] वह पशु जो बधिया न किया गया हो। आँड़ू।

अँड़ुआ²--वि० जो बधिया न किया गया हो। आँड़ू।

अँडआना--क्रि० स० [सं० अण्ड से नाम०] बैल के अंडकोश को कुचलना जिसमें वह नटखटी न करे और ठीक चले। बधियाना। बधिया करना।

अँड़ुआ बैल--संज्ञा पुं० [हिं० अड़ुआ+बैल] १ बिना बधिया किया हुआ बैल। साँड। २ बहुत बड़े अंडकोशवाला आदमी जो उसके बोझ से चल न सके। ३ सुस्त आदमी।

अँड़ुवा†--वि० दे० 'अँडआ'।

अँड़ुवारी--संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डज > अडअ > अडव > अँडउ + वारी > एक प्रकार की बहुत छोटी मछली।

अँतड़ी--संज्ञा स्त्री० [प्रा० अप० अंतड़ी] आँत। नली। दे० 'आँत'।

मुहा०--अँतड़ी टटोलना = १ भूख को समझना। उ०--जोरू टटोले गठड़ी, माँ टटोले अँतड़ी (कहावत)। २ रोग की पहचान के लिये पेट को दबाकर देखना। अँतड़ी जलना = पेट जलना। बहुत भूख लगना। अँतड़ी गले में पड़ना = किसी आपत्ति में फँसना। संकटग्रस्त होना। अँतड़ियों का बल खोलना = बहुत दिन के बाद भोजन मिलने पर खूब पेट भर खाना। अँतड़ियों को मसोसकर रह जाना = भूख की कठिन तकलीफ सहना। अँतड़ियों में आग लगना = दे० 'अँतड़ी जलना'। अँतड़ियों में बल पड़ना = अँतड़ियों का ऐंठना या दुखना। पेट में दर्द होना। उ०--हँसते हँसते अँतड़ियों में बल पड़ गए। (शब्द०)।

अँतर¹--संज्ञा पुं० [हिं० अतर] दूरी। अतर। उ०--आरोपित हार घणी थियाँ अँतर उरस्थल कुभस्थल आज।--वेलि० दू०, ६४।

अँतर²†--संज्ञा पुं० दे० 'इत्र'।

अँतरजामी(पु)--वि० दे० 'अतरजामी'। उ०--कमल नैन करुनामय सकल अँतरजामी। विनय कहा करै सूर कूर कुटिल कामी।--सूर०, १।१२४।

अँतरधान(पु)--वि० दे० 'अतरधान'। उ०--ह्वै अँतरधान हरि मोहिनी रूप धरि जाइ बन माँहि दीन्हें दिखाई।--सूर०, ८।१०।

अँतरपट(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरपट] १ ओट। आड़। उ०--सीय भीख रावन कहँ दीन्हीं। तू असि निठुर अँतरपट कीन्ही। --जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३२६। २ छिपाव। दुराव। उ०--तासौं कौन अँतरपट जो अस पीतम पीउ।--जायसी ग्र०, पृ० १३८। ३ कपड़मिट्टी। कपड़ौटी। उ०--का पूछौ तुम धातु निछोही, जो गुरु कीन्ह अँतरपट आही।--जायसी (शब्द०)।

अँतरा¹†--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरा] १ अभाव। नागा। अतर। बीच।

क्रि० प्र०--करना। --डालना। --पड़ना।

२ वह ज्वर जो एक दिन नागा देकर आता है। क्रि० प्र०--उ०--आना उसे अँतरा आता है। ३ कोना।

अँतरा²†--वि० एक बीच में छोड़कर दूसरा।

विशेष--विशेषण में इसका प्रयोग साधु भाषा में केवल 'ज्वर' शब्द के साथ और प्रातीय भाषाओं में कालसूचक शब्दों के साथ होता है; जैसे, अँतरा ज्वर। अँतरे दिन।

यौ०--अँतरे खोतरे = बीच में नागा करते हुए। दूसरे तीसरे। उ०--अँतरे खोतरे डंडै करै, तालु नहाय ओस माँ परै। दैव न मारै अपुइ [न] इ मरै।--घाघ०, पृ० ४७।

अँतराना¹(पु)†--क्रि० स० [सं० अन्तर से नाम०] १ अलग करना। जुदा करना। २ भीतर करना। भीतर ले जाना।

अँतराना²(पु)--क्रि० अ० अतर या भेद डालना। फर्क डालना। उ०--हौं हौ कहत धोख अँतराही। ज्यौ भा सिद्ध कहाँ परिछाहीं। --जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २८४।

अँतरिख(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अतरिख'। उ०--चद सुरुज औ नखत तराईं। तेहि डर अँतरिख फिरै सबाई।--जायसी ग्र०, पृ० २२६।

अँतरिछ(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अतरिच्छ'। उ०--जाकी कुरिया अँतरिछ छाई। सो हरिचद देखल नहि जाई।--कबीर बी०, पृ० १८।

अँतरी¹--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँतड़ी'।

मुहा०--अँतरी का बल खोलना = जी भर खाना। पेट भर खाना। कड़ी भूख मिटाना। अँतरियाँ जलना = जोरो की भूख लगना। अँतरियों में आग लगना = दे० 'अँतरियाँ जलना'।

अँतरीखा(पु)†--संज्ञा पुं० दे० 'अतरिक्ष'--१'। उ०-- बहुतक फिरा करहिं अँतरीखा। अहे जो लाख भए ते लीखा।--पदु०, पृ० १२०।

अँतरौटा--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरपट] महीन साड़ी के नीचे पहनने का कपड़ा। वह कपड़े का टुकड़ा जिसे स्त्रियाँ इसलिये कमर में लपेट लेती हैं जिसमें महीन साड़ी के ऊपर से शरीर न दिखाई दे। अस्तर। छनना। उ०--चोली चतुरानन ठग्यो अमर उपरना राते। अँतरौटा अवलोकि कै असुर महा मद माते (हो)।--सूर०, १।४४।

अँतहकरण(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अतहकरण'। उ०--वर नारि नेत्र निज वदन विलासा, जाणियौ अँतहकरण जई।--वेलि दू० १७२।

अँत्रिख(पु)† --संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष] आकाश। अतरिक्ष। उ०--दूजी अमर वेलि जग आई। जहाँ तहाँ अँत्रिख लपटाई। --चित्रा०, पृ० १४२।

अँथऊ†--संज्ञा पुं० दे० 'अथऊ'।

अँथवना(पु)--क्रि० अ० दे० 'अथवना'। उ०--केइँ यह बसत बसत उजारा। गा सो चाँद अँथवा लै तारा।--जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २५५।

अँदरसा--संज्ञा पुं० [फ़ा० अदर + सं० रस, अथवा सं० अन्न + रस] एक प्रकार की मिठाई। उ०--सुदर अति सरस अँदरसे। ते घृत दधि मधु मिलि सरसे।--सूर०, १०।१८३।

विशेष--यह मिठाई चौरेठे या पिसे हुए चावल की बनती है। चौरेठे को चीनी के कच्चे शीरे में डालकर थोड़ा घी देकर पकाते हैं। जब वह गाढ़ा हो जाता है तब उतारकर दो दिन तक रखकर उसका खमीर उठाते हैं। फिर उसी की छोटी छोटी टिकिया बनाकर उनपर पोस्ते का दाना लपेटकर उन्हें घी में निकालते हैं।

अदली†—वि० [प्रा० अधल] अधा । उ०—यहाँ वी अँदली आखिर कूँ वी अँदेले ।—दक्खिनी० पृ० ४३३ ।

अँदाज(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अदाज' । उ०—एक जीव जीवत हैं उमर अँदाज भर एक जे व होत हिसु होत चटपट है ।—ठाकुर० पृ० १३ ।

अँदाना(पु)—क्रि० स० [स० अद या अदि = बाँधना, बधन करना] बचाना । बरकाना । उ०—पन्दिवा नवमी पुरुब न भाए । दूइज दसमी उतर अँदाए ।—जायसी (शब्द०) ।

अँदुआ—संज्ञा पुं० [स० अन्दुक, प्रा० अदुआ] हाथियों के पिछले पैरों में डालने के लिये लकड़ी का बना एक काँटेदार यत्र ।

विशेष—यह दो धनुषाकार लकड़ियों का बना होता है जिनके मुँह एक ओर कील से मिले रहते हैं । इसे हाथी के पैर में डालकर दूसरे छोरों को भी बाँध देते हैं ।

अँदेशा—संज्ञा पुं० [फा० अदेशह्] आशका । खटका । उ०—मोह कैसा ? छोह कैसा ? गुप्त पथ का क्या अँदेशा ।—क्वासि, पृ० १० ।

अँदेस(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'अँदेशा' । उ०—जिम करमनि करि अधिक कलेस । फल अति तुच्छ मिटै न अँदेस ।—नद० ग्र०, पृ० ३०१ ।

अँदेसवा†—संज्ञा पुं० दे० अँदेशा' । उ०—तुम बिन प्रान रहैं वा नाहीं यह जिय मे हि अँदेसवा रे ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ३७४ ।

अँदोरा(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'अँदोर' । उ०—घरी एक सुठि भयउ अँदोरा । पुनि पाछे बीता होइ रोरा ।—जायसी (शब्द०) ।

अँदोल(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा० अदोल = झूलना] आनद । प्रसन्नता । उ०—चहल पहल सी देखि कै मान्यो बहुत अँदोल ।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० ३१६ ।

अँदोलना(पु)—क्रि० स० [स० अन्दोलन] हिलाना । डुलाना । उ०—लगि लिगाह स्रम अग वारि पिन्नो अँदोलि कर ।—पृ० रा०, १।५५६ ।

अँधकाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्ध + काल] अधकार । अँधेरा । उ०—सूर कचन गिरि बिचनि मनु रह्यौ है अँधकाल ।—सूर० १० । १०८३ ।

अँधवाई(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँधवाई'

अँधवाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धवायु] धूल लिए हुए वेगयुक्त पवन । ऐसी तेज हवा जिसमें गर्द के कारण कुछ सूझ न पड़े । आँधी तूफान । उ०—श्याम अकेले आँगन छाँड़े आपु गई कछु काज घरै । यहि अतर अँधवाई उठी इक गरजत गगन सहित घहरै ।—सूर (शब्द०) ।

अँधरा[1](पु)†—संज्ञा पुं० [स० अन्ध, प्रा० अधरअ] अधा । नेत्रविहीन प्राणी । दृष्टिरहित जीव ।

अँधरा[2](पु)†—वि० अधा । बिना आँख का । दृष्टिरहित ।

अँधरी[1]†—संज्ञा स्त्री० [हि० अँधरा + ई (प्रत्य०)] अधी । अधी स्त्री ।

अँधरी[2]†—संज्ञा स्त्री०[स०आधारित,प्रा० आधारिअ > आधरी > अँधरी] पहिए की पुट्ठियों अर्थात् गोलाई को पूरा करनेवाली धनुषाकार लकड़ियों की चूल जो दूसरी पुट्ठी के भीतर ऐसे घुसी रहती है कि ऊपर से मालूम नहीं देती ।

अँधला(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा० अधल] दे० 'अँधरा'—१ । उ० (क) तिवँ उद्र महि दुख सहे अँधलउ गालि असीतु ।—प्राण०, पृ० २१० । (ख) कौने भ्रम भूले अँधला ।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ६०६ ।

अँधवायु(पु)—संज्ञा पुं० [स० अन्धवायु] आँधी । उ०—तेरा सुत अँधवायु उठायो ।—ब्रज०, पृ० ३८ ।

अँधवाह(पु)—संज्ञा पुं० दे० अँधवाई' । उ०—धावहु नद गोहारि लगौ किन तेरी सुत अँधवाह उड़यौ ।—सूर०, १०।७७ ।

अँधार[1](पु)†—संज्ञा पुं० [स० अन्धकार, प्रा० अधार] अधकार । तम । अँधेरा । अँधियारा । उ०—मृगनैनी कामिनि बिना लागत सबै अँधार ।—ब्रज० ग्र०, पृ० ६६ ।

अँधार[2](पु)†—संज्ञा पुं० [स० आधार = सहारा] रस्सी का जाल जिसमें घास भूसा आदि भरकर बैल की पीठ पर लादते हैं ।

अँधारी(पु)—संज्ञा स्त्री० आँधी । तेज हवा । तूफान (डि०) ।

अँधिअर(पु)—वि० [स० अन्धकार, प्रा० अधआर] अँधेरा । अधकारमय । उ०—हिएँ की जोति दीप वह सूझा । यह जो दीप अँधिअर भा बूझा ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २०८ ।

अँधिआरा(पु)—संज्ञा पुं० [स० अधकार, प्रा० अधआर] अधकार । अँधेरा । उ०—बरषि धूरि कीन्हेसि अँधियारा ।—मानस ६।५१ ।

अँधिआरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० अन्ध + कारी] आँख बद करने का आवरण या पट्टी । अँधेरी । उ०—छलि आँखिन्ह अधिआरी मेली । धककारहि गदार सहेली ।—चित्रा०, पृ० २०२ ।

अँधियरवा(पु)†—संज्ञा पुं० [हि० अँधियर + वा (प्रत्य०)] दे० 'अँधियार' । उ०—अँधियरवा मे ठाढ़ि गोरी का करलू । जब लगि तेल दिया मे बाती, ये हीं अँजोरवा बिछाय घलतू ।—सत बानी०, भा० २ पृ० २३ ।

अँधियरिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हि० अँधियर + इया (प्रत्य०)] १ अँधेरी रात । २ अँधेरा । तम । उ०—खुलीं किवरिया मिटि अँधियरिया ।—धरम०, पृ० ३३ ।

अँधियार[1]†—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार, प्रा० अधयार] [स्त्री० अँधियारी] अँधेरा । अधकार । तम । उ०—पसरि परयौ अँधियार सकल ससार घुमडि घिरि ।—नद ग्र०, पृ० ४ ।

अँधियार[2]—वि० प्रकाशरहित । अँधेरा । तमाच्छादित । दे० 'अँधेरा' । उ०—भय उदधि जमलोक दरसै निपट ही अँधियार ।—सूर०, १।८८ ।

अँधियारक टोला—संज्ञा पुं० [स० अँधियारक + हिं० टोला] अधक नामक यदुवंशियों की एक शाखा का निवासस्थान । अधकों का निवास ।

अँधियारा[1](पु)†—संज्ञा पुं० [स० अन्धकार, प्रा० अधयार] १ अँधेरा । अधकार । तम । २ धुधलापन धुध ।

अँधियारा[2](पु)†—वि० १ प्रकाशरहित । अँधेरा । तमाच्छादित । उ०—एक अँधियारा जगत था जब मनुज अघ में निरत था ।—हस०, पृ० ११ । २ धुधला । ३. उदास । सूना ।

मनहूस। उ०—वीर कीर, सिय राम लखन विनु लागत जंग अँधियारो।—तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० ३५१।

अँधियारी²(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधियार] १. अंधकार। उ०—जब करि यत्नौं सरनौं नहि एकौ नाहि मिटी अँधियारी।—जग० श०, भा० २, पृ० १०८। २. अंधकार फैला देनेवाली आँधी। उ०—अँधियारो आई तहँ भारी। दनुज सुता तिहि तें न निहारी।—सूर०, ६।१७४। ३. दे० 'अँधिआरी'। उ०—जोवन गज अपमर मद कीन्हें। अब न रहै अँधियारी दीन्हें। चित्रा०, पृ० १६४।

अँधियारी³—वि० स्त्री० अंधकारपूर्ण। उ०—अँधियारी भादौं की रात।—सूर०, १०।१२।

अँधियारी कोठरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधियारी + कोठरी] १. अँधेरा छोटा कमरा। २. पालकी का अगला कहार जब रास्ते में पानी देखता है तब पीछेवाले कहारों को सावधान करने के लिये 'अँधियारी कोठरी' कहता है। ३. पेट। उदर। गर्भस्थान। कोख। धरन।

अँधियाली—वि० दे० 'अँधियारी'³।—उ०—आधी रात का समा, बड़ी अँधियाली रात, सब ओर सन्नाटा, इसपर बादलों की घेरघार, पसारने पर हाथ भी न सूझता।—ठेठ, पृ० ३२।

अँधुला(पु)—वि० दे० 'अँधरा'। उ०—जैसे अँधुले भ्रमत खँ कालु।—प्राण०, पृ० १८०।

अँधेर—संज्ञा पुं० दे० अँधेरा¹। उ०—वहि देसवा में निस्त पूर्निमा, कबहु न होइ अँधेर।—कबीर० श०, भा० २, पृ० ६४।

अँधेरना(पु)—क्रि० स० [अँधेर + ना] अँधेरा करना। अंधकारमय करना। तमाच्छादित करना। उ०—अरी, खरी सटपट परी, बिधु आधे मग हेरि। संग लगें मधुपनु लई भागन गली अँधेरि।—बिहारी र०, दो० ४५६।

अँधेरा¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार, प्रा० अंधयार] १. अंधकार। तम। प्रकाश का अभाव। उजाले का विलोम। उ०—मौन, नाश, विध्वंस अँधेरा शून्य बना जो प्रकट अभाव।—कामायनी, पृ० १८। २. धुंधलापन। धुंध। उ०—उसकी आँखों में अँधेरा छाया रहता है (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—छाना।—दौड़ना।—पड़ना।—फैलना।—होना।

मुहा०—अँधेरा छोटना = प्रकाश के सामने से हट जाना। उजाला छोड़ना।

३. छाया परछाईं। उ०—चिराग के सामने से हट जाओ, तुम्हारा अँधेरा पड़ता है (शब्द०)। ४. उदासी। शोक। उ०—उसके मरते ही समाज में अँधेरा छा गया (शब्द०)।

अँधेरा²—वि० अंधकारमय। प्रकाशरहित। तमाच्छादित।

यौ०—अँधेरा कुप = कूएँ की तरह अँधेरा। बहुत गहरा अँधेरा। अँधेरा पाख, अँधेरा पक्ष = कृष्ण पक्ष। बदी। अँधेरे उजाले, अँधेरे उजेले = अबेर सबेर। समय कुसमय। वक्त बेवक्त। उ०—अच्छा जमादार अँधेरे उजाले समझ लूंगा।—फिसाना०, पृ० ४८६। अँधेरे मुहँ, मुँह अँधेरे = सूर्योदय के पहले जब मनुष्य एक दूसरे का मुँह अच्छी तरह न देख सकते हों। बड़े तड़के। बड़े सबेरे।

मुहा०—अँधेरे घर का उजाला = (१) अत्यंत कांतिमान। अत्यंत सुंदर। (२) शुभ लक्षणवाला। सुलक्षण। कुलदीपक। वंश की मर्यादा बढ़ानेवाला। (३) इकलौता बेटा। अँधेरे घर का चिराग या दिया = दे० 'अँधेरे घर का उजाला'।

अँधेरा उजाला—संज्ञा पुं० [हिं० अँधेरा + उजाला] एक खिलौना जो श्वेत और रंगीन कागजों से बनता है। रात दिन का खिलौना।

विशेष—कागज को एक विशेष प्रकार से कई तहों में लपेटकर बनाया हुआ एक प्रकार का खिलौना जिसके भीतरी दो भाग सादे और दो भाग रंगीन होते हैं और जो हाथ की चारों उँगलियों की सहायता से खोला और मूँदा जाता है। इससे कभी तो उसका सादा अंश दिखाई पड़ता है और कभी रंगीन।

अँधेरा गुप—संज्ञा पुं० [हिं० अँधेरा + कूप] इतना अधिक अंधकार कि कुछ दिखाई न दे। घोर अंधकार, जैसे—इस कोठरी में तो बिलकुल अँधेरा गुप है (शब्द०)।

अँधेरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धकार] १. अंधकार। अँधेरा। उ०—झलकि चमकि तहँ रूप बिराजै मिटिगै सकल अँधेरियाँ री।—जग० श०, भा० २, पृ० १०६।

अँधेरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधेरा + ई] [पु० अँधियरिया] १. अंधकार। तिमिर। प्रकाश का अभाव। तम। अँधियारी। उ०—मालती कुंज में मिलती चंद्रिका अँधेरी जैसे।—आँसू पृ० ४८। २. काली रात। अंधकार भरी रात्रि।

क्रि० प्र०—छाना।—झुकना।—दौड़ना।—फैलना।

३. आँधी। अंधड़। ४. घोड़ों और बैलों की आँख पर डाला जानेवाला पर्दा। अँधारी।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

मुहा०—अँधेरी डालना, अँधेरी देना = (१) किसी की आँखों को मूँदकर उसकी दुर्गति करना। इसी को कंबल ओढ़ाना भी कहते हैं। (२) आँख में धूल डालना। धोखा देना।

अँधेरी²—वि० प्रकाशरहित। अंधकारयुक्त। बिना उजेले की। उ०—रजनी अँधेरी है न सूझति हथेरी रच चोर करे फेरी लखि मुख ना लुकोवै तूं।—दीन० ग्र०, पृ० १३८।

यौ०—अँधेरी कोठरी = १. पेट। गर्भ। कोख। धरन। २. गुप्त भेद। रहस्य।

मुहा०—अँधेरी कोठरी का यार = गुप्त प्रेमी। जार।

अँधोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध + पटी, प्रा० अंधवटी, अँधोटी, अँधोटी] बैल या घोड़े की आँख बंद करने का ढक्कन या परदा।

अँधोटा—संज्ञा पुं० [सं० अन्ध + पट्टक, प्रा० अंधवट्टअ] दे० 'अँधोटी'। उ०—रहट विसह एह मूढ मन दिएँ अँधोटा बैल।—चित्रावली, पृ० १७५।

अँधौरी†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अम्हौरी'।

अँध्यार(पु)†—संज्ञा पुं० दे० अँधियार। उ०—दीपक हजारन अँध्यार लुनियतु हैं।—ब्रजमाधुरी० पृ० ३०८।

अँध्यारी—¹(पु)†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँधियारी'। उ०—भई एक बार अपार अँध्यारी।—हम्मीर रा०, पृ० २०।

अँध्यारी२—वि० अंधकारयुक्त। अँधेरी। उ०—भादौं की अँधराति अँध्यारी।—सूर०, १०।११।

अँव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अंव] आम। उ०—तहाँ सु अँव तर रिप्प इक क्रम तम अंग सुरग।—पृ० रा०, ६।१७।

अँवराई†—संज्ञा स्त्री० [सं० आम्र=आम+राजी=पंक्ति; प्रा० अंव+राई] आम का बगीचा। आम की बारी।

अँवराउँ(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अँवराई'। उ०—घन अँवराउँ लाग चहुँ पासा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २७।

अँवराव(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अँवराई'। उ०—अस अँमराव सघन वन, वरनि न पारौं अंत।—जायसी (शब्द०)।

अँवली—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की गुजराती कपास जो ढोलेरा नामक स्थान में होती है।

अँववा†—संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अंव हिं० अँव+वा (प्रत्य०)] आम। आम्र। उ०—यहाँ अँववा तरे रुक एक पल विश्राम लेना।—उडा०, पृ० १६।

अँवा(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'आँवा'। उ०—व्रज करि अँवा जोग ईंधन धरि सुरति आगि सुलगाए।—सूर०, १०।३७८१।

अँवाडा—संज्ञा पुं० दे० 'आमड़ा'।

अँवारी—संज्ञा स्त्री० [अ० अमारी] दे० 'अवारी—१'। उ०—कलित करिवरन्हि परी अँवारी।—मानस, १।३००।

अँविया—संज्ञा स्त्री० [सं० आम्र, प्रा० अंव+इया (प्रत्य०)] आम का छोटा कच्चा फल जिसमें जाली न पड़ी हो। टिकोरा। केरी। अमिया।

विशेष—इसकी खटाई कुछ हल्की होती है। इसे लोग दाल में डालते तथा चटनी और अचार भी बनाते हैं।

अँविरती(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अमृतिका, प्रा० अमिरितिआ] तार का एक पुराना बाजा। अमृत कुंडली। उ०—बीन पिनाक कुमाइच कही। बाज अँविरती अति गहगही।—पदमावत, पृ० ५६२।

अँविरथा(पु)†—वि० [सं० वृथा+अँ (उच्चा०) (पु) बिरथा] वृथा। व्यर्थ। बेफायदा। फजूल। उ०—प्रेम कि आगि जरै जो कोई। ताकर दुख न अँविरथा होई।—जायसी (शब्द०)।

अँविलि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्लिका, प्रा० अविलिया] इमली का वृक्ष। उ०—कोइ अँविलि कोई महुव खँजूरी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४७।

अँवुआ(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० अंव+उवा (प्रत्य०)] आम्र। आम। उ०—मौरे अँवुआ अरु द्रुम बेली मधुकर परिमल भूले।—सूर० (राधा०), २३६१।

अँभौरी†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अम्हौरी'।

अँमर(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अवर—६'। उ०—दाहिने अतर और अँमर तमोर लीन्हें। सामुहे लपेटे लाज भोजन के थार गहें।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १६८।

अँवदा(पु)—†वि०—[सं० *अवाध, (पु) अँवधा] १ नीचे की ओर मुँहवाला। उ०—आकाशे अँवदा कुआ पाताले पनिहार।—कबीर (शब्द०)। २ औंधा। उलटा।

अँवधाना(पु)—क्रि० स० [(पु) अँवधा से नाम०] औंधा करना। उलटा करना। उ०—मूरत मनोज देखि कै हारा। निज अँवधाय सो रख्यो नगारा।—हिं० प्रेमा०, पृ० २५५।

अँवरा†—संज्ञा पुं० दे० 'आँवला'। उ०—कोई अँवरा कोई बेर करौंदा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४७।

अँवराई(पु)†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँवराई'। उ०—सत सभा चहुँ दिसि अँवराई।—मानस, १।३७।

अँवलउ—वि० [सं० प्रा० अबल] अस्वस्थ। व्यथित। उ०—सज्जण चाल्या हे सखी पडहउ वाज्यउ द्रग। कांही रली वधामणां, कांही अँवलउ अग।—ढोला०, दू० ३५१।

अँवला†—संज्ञा पुं० दे० 'आँवला'।

अँवली१—संज्ञा स्त्री० [सं० आमलकी, प्रा० आमलई] छोटा आँवला। उ०—पक गये सुनहले मधुर बेर, अँवली से तरु की डाल जड़ी।—ग्राम्या, पृ० ३६।

अँवली—(पु)२ वि० [?] उलटा। उ०—लगन लगी जब और प्रीत छी, अब कुछ अँवली रीति।—संत० सार०, भा० २, पृ० ७४।

अँवहलदी—संज्ञा स्त्री० दे० आमा हल्दी। उ—आलूचा, अमिली अँवहलदी, आल आँवरा साल अफलदी।—सुजान०, पृ० १६१

अँवा—(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'आँवा'। उ०—अँवा अगिनि जिमि अंतर जरै।—नंद० ग्रं०, पृ० १३३।

अँवारना(पु)—क्रि० सं० [हिं० वारना] न्योछावर करना। वारना। उ०—अय रामियों शरण तुम्हारी। पल पल ऊपर प्राण अँवारी।—राम० धर्म०, पृ० ३२२।

अँविरथा—(पु)†—वि० दे० 'अँविरथा'। उ०—उघर न नैन तुम्हहिं बिनु देखे। सबहि अँविरथा मोरे लेखे।—जायसी ग्रं०, पृ० ३५७।

अँस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अंस] स्कंध। कंधा। उ०—बाम भुजहिं सखा अँसे दीन्हें, दच्छिन कर द्रुम डारियाँ।—सूर०, १०।४७०।

अँसुआ(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० अश्रु, प्रा० असु, असुय] आँसू। अश्रु। उ०—तन काँप लोचन भरे अँसुआ झलके आय।—श्यामा०, पृ० १२८।

अँसुपात(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्रुपंक्ति] आँसुओं की तार। आँसू की पंक्ति या पाँत। उ०—इतनी सुनत सिमिटि सब आये, प्रेम सहित धारे अँसुपात।—सूर०, ६।३८।

अँसुवा(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'अँसुआ'। उ०—यह छवि निरखि रही नँदरानी अँसुवा ढरि ढरि परत करोटनि।—सूर०, १०।१८७।

अँसुवाना(पु)—क्रि० स० [हिं० आँसू से नाम०] अश्रुपूर्ण होना। डबडबा आना। आँसू से भर जाना। उ०—उनही बिन ज्यों जलहीन ह्वै मीन सी आँखि मेरी, अँसुवानी रहैं।—रसखान (शब्द०)।

अँहडा†—संज्ञा पुं० [देश०] तौलने का बटखरा।

अँहस—संज्ञा पुं० [सं० अहस्] दे० 'अह'।

अँहुडी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक लता जिसमें छोटी छोटी गोल पेटे की फलियाँ लगती हैं। इन फलियों की तरकारी बनती है और इनके बीज दवा में पड़ते हैं। बाकला।

अ¹—उप० संज्ञा और विशेषण शब्दों के पहले लगकर यह उनके अर्थों मे फेरफार करता है। जिस शब्द के पहले यह लगाया जाता है उस शब्द के अर्थ का प्राय अभाव सूचित करता है, जैसे, अकर्म, अन्याय, अचल। कहीं कहीं यह अक्षर शब्द के अर्थ को दूषित भी करता है जैसे—अभागा, अकाल, अदिन। स्वर से आरभ होनेवाले शब्दों के पहले जब इस अक्षर को लगाना होता है तब उसे 'अन' कर देते हैं, जैसे, अनत, अनेक अनीश्वर। पर हिंदी मे कभी कभी व्यंजन के पहले भी 'अन्' के 'न' को सस्वर 'न' करके 'अन' लगा देते हैं, जैसे, अनबन, अनरीति, अनहोनी आदि।

संस्कृत वैयाकरणों ने इस निषेधसूचक उपसर्ग का प्रयोग इन छह अर्थों मे माना है (१) सादृश्य, यथा—अब्राह्मण= ब्राह्मण के समान आचार रखनेवाला अन्य वर्ण का मनुष्य। (२) अभाव, यथा—अफल=फलरहित, अगुण=गुणरहित। (३) अन्यत्व, यथा—अघट=घट से भिन्न, पट आदि। (४) अल्पता, यथा—अनुदरी कन्या=कृशोदरी कन्या। (५) अप्राशस्त्य, बुरा, यथा—अभाग। अधन=बुरा धन। (६) विरोध, यथा—अधर्म=धर्म के विरुद्ध आचरण। अन्याय, आदि। हिंदी मे इसका प्रयोग कुछ लोग स्वार्थिक रूप मे भी मानते हैं, जैसे अलोप=लोप।

अ²—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २ शिव (को०)। ३ ब्रह्मा। ४ विराट। ५ इंद्र। ६ वायु। ७ कुबेर। ८ अग्नि। ९ विश्व। १० सरस्वती। ११ अमृत। १२ कीर्ति। १३ ललाट। १४ प्रणव (को०)। १५ यम (को०)। १६ प्राण (को०)।

अ³—वि० १ रक्षक। २ उत्पन्न करनेवाला।

अइ(पु)—सर्व० [सं० एतत्, अप० एइ, एअ] ये। उ०—करि कहरों ही पारणउ अइ दिन यूँ हीं ठेलि।—ढोला०, दूहा०, ४३०।

अइपन(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'ऐपन'। उ०—पउअनाल अइपन भल भेल।—विद्यापति, पृ० २२१।

अइया†—संज्ञा स्त्री० दे० 'ऐया'।

अइल†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अइला'।

अइला†—संज्ञा पुं० [देश०] चूल्हे का मुँह या छेद।

अइस(पु)†—वि० [सं० ईदृश, अप० अइस] ऐसा। इस प्रकार का।

अइसइ(पु)†—क्रि० वि० [सं० ईदृशो हि] ऐसे ही। इस प्रकार ही।

अइसन†—वि० [सं० ईदृश, अप० अइस] ऐसा। इस प्रकार का।

अइसना(पु)†—वि० [अप० अइश] दे० 'अइसन'। उ०—अइसना देह गेह ना सोहावये।—विद्यापति, पृ० ११०।

अइसा†—वि० दे० 'ऐसा'।

अइसिउँ(पु)—वि० [सं० ईदृशी अपि] ऐसी भी। इस प्रकार का भी।

अइहइ(पु)†—वि० [अप०] [सं० ईदृश] ऐसा। इस प्रकार का। उ०—मृगरिपु कटि सुदर वणी, मारू अइहइ घाट।—ढोला०, दू० ४६६।

अईगई(पु)†—वि० [हिं० अई+गई] दे० 'आई गई'।

मुहा०—अई गई करना='आई गई करना'। उ०—चित आन की आन कहीं चहैं पै हित जान अई गई कीजतु हैं।—ठाकुर०, पृ०३।

क्रि० प्र०—करना।

अउँध†—वि० दे० 'औंधा'। उ०—फिरहु का फूले फूले फूले। जब दस मास अउँध मुख होते सो दिन काहे भूले।—कबीर बी०, पृ० ५४।

अउँरा(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'औंरा'। उ०—कोइ अउँरा कोइ राइ करउँदा।—पदुमा०, पृ० ८५।

अउ¹—सयो० अव्य० [सं० अपर या अवर] और। तथा। उ०—जस हुथ्य भुगुति अउ मुकुति दोउ कहि नरहरि नित सम्भरिय।—अकबरी०, पृ० ७४।

अउ—²(पु)—सर्व १. यह। उ०—सारीखी जोडी आ जुडी नारी अउ नाह।—ढोला०, दू० ६। २ यह। उ०—राजा राणी सूँ कहइ कीजइ अउ वीमाँह।—ढोला०, दू० ६।

अउखतु(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'औषध'। उ०—ऐसा अउखतु खाह गवाँरा। जितु खाधे तेरे जाँहि विकारा।—प्राण०, पृ० २७४।

अउगाह(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'अवगाह'। उ०—नयन हिं जानउँ नीअरे कर पहुँचत अउगाह।—पदुमा०, पृ० ५४।

अउगुण(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अवगुण'। उ०—सजण मिल्या मण ऊमयउ, अउगुण सहि गलियाह।—ढोला०, दू० ५६०।

अउझक(पु)†—क्रि० वि० दे० 'औझक'। उ०—मारू दीठी अउझकइ जाणि खिवी घण सझ।—ढोला०, दू० ८६।

अउठा—संज्ञा पुं० [देश०] नापने की दो हाथ की एक लकडी जिसे जुलाहे लिए रहते हैं।

अउत¹(पु)—वि० दे० 'अऊत'। उ०—नानक लेखै माँगीअै अउत जणेंदी जाय।—प्राण०, पृ० २१८।

अउत²(पु)—वि० [सं० अयुक्त] अनुचित। अयुक्त। उ०—अउत होइ घरि छोड हे राय।—बी० रा०, पृ० ४६।

अउधान(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अवधान] गर्भाधान। गर्भस्थिति।

अउधू(पु)†, अउधूत(पु)†—संज्ञा पुं० दे० अवधूत'।

अउपन(पु)†—संज्ञा पुं० [प्रा० ओप्पा] सान पर घिसना। सान देना।

अउर(पु)†—अव्य० दे० 'और'। उ०—मकरध्वज वाहणि चढ्यौ अहिमकर उत्तर वाउ वाए अउर।—वेलि०, दू० २२२।

अउरउ(पु)†, अउरो(पु)†—क्रि० वि० [सं० अपर+अपि] और भी।

अउलग(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अपालग प्रा० अवलग, अप० अउलग] प्रवास। दूर गमन।

अउलगना(पु)†—क्रि० स० [अउलग से नाम०] प्रवास करना। यात्रा करना। उ०—ईहर की घर अउलगउं, जइ तूँ कहइ सु जाँह।—ढोला०, दू० २२४।

अउहेर+, अउहेरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवहेला] अवहेलना। अपमान।

अउहेरना†—क्रि० स० [हिं० अवहेर से नामधातु] अपमान करना। तिरस्कार करना।

अऊत¹(पु)—वि० [सं० अपुत्र, प्रा० अपुत्त, अउत्त] निपूता। बिना पुत्र का। निःसतान। उ०—(क) धन्य सो माता सुंदरी, जिन जाया वैष्णव पूत। राम सुमिरि निर्भय भया, और सब गया अऊत।—कबीर (शब्द०)। (ख) गये हुये माँगन को पूत। यह फल दीनों सती अऊत।—अर्ध०, पृ० ६।

अऊत²(पु)—संज्ञा पुं० अपुत्रत्व। निपुत्रता। उ०—यह ताको निस्तारिहि, उनते जाइ अऊत।—सुदर ग्र०, भा १, पृ० १८३।

अऊलना¹--क्रि० अ० [सं० उल् = जलना] १, जलना। गरम होना। २ गरमी पड़ना। दे० 'औलना'।

अऊलना²--क्रिया अ० [सं० आ = अच्छी तरह + शूल, प्रा० सूल, हिं० हूलना] छिलना। छिदना। चुभना। उ०--छत आजु की देखि कहूँगी कहा, छतिया नित ऐसे अऊलति है।--रघुनाथ (शब्द०)।

अऋण--वि० [सं०] विना कर्ज का। जिसपर कर्ज न हो। ऋणमुक्त।

अऋणी--वि० [सं०] जिसपर कर्ज न हो। ऋणमुक्त।

अएरना(पु)--क्रि० स० [सं० अङ्गीकरण; प्रा० अंगीअरण, हिं० अँगेरना] अंगीकार करना। अँगेरना। स्वीकार करना। धारण करना। उ०--दियौ सु सीस चढाइ लै आछी भाँति अएरि। जापै सुखु चाहतु लियौ ताके दुखहि न फेरि।--बिहारी०, पृ० ३८।

अओध(पु)--वि० दे० 'अंउध'। उ०--अधर मगइते अओध कर माथ। सहए न पार पयोधर हाथ।--विद्यापति, पृ० २८३।

अओधा(पु)--वि० दे० 'औंधा' उ०--अओधा कमल कांति नहि पूरए हेरहु त जुग वहि जाइ।--विद्यापति, पृ० ३९।

अकंटक--वि० [सं० अकण्टक] १ विना काँटे का। कंटकरहित। २ बाधारहित निर्विघ्न। बिना रोक टोक का। बेधड़क। उ०--समुझि काम मुख सोचहिं भोगी। भये अकंटक साधक जोगी।--मानस, १।८७। ३ शत्रुरहित। उ०--जानहिं सानुज रामहिं मारी। करौं अकंटक राज सुखारी।--मानस, २।१८९।

अकंठ--वि० [सं० अकण्ठ] १ कंठरहित। जिसे कंठ न हो। स्वरहीन। कर्कश (को०)।

अकंड--वि० [हिं० अकड] तेज। अकडदार। उ०--'इशा' यदल के काफिये रख खेडछाड के, चढ बैठ एक और वछेडे अकंड पर।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० २७८।

अकंप--वि० [सं० अकम्प] न काँपनेवाला। स्थिर। उ०--मत्य भी शव-सा अकंप कठोर।--साकेत, पृ० १९१।

अकंपत्व--सज्ञा पुं० [सं० अकम्पत्व] १ काँपने का अभाव। न काँपने की दशा। कंपहीनता। २ वंशी बजाने में उँगलियों का एक गुण। अकंपत्व। न काँपना।

अकंपन¹--वि० [सं० अकम्पन] [वि० अकम्पित, अकंम्प्य, सज्ञा अकम्पत्व] न काँपनेवाला। स्थिर।

अकंपन²--सज्ञा पुं० रावण का अनुचर एक राक्षस जिसने खर के वध का वृत्तांत उससे कहा था।

अकंपित¹--वि० [सं० अकम्पित] जो कँपा न हो। अटल। निश्चल।

अकंपित²--सज्ञा पुं० बौद्ध गणाधिपों का एक भेद।

अकंप्य--वि० [सं० अकम्प्य] न काँपनेवाला। हिलने या डिगनेवाला। अटल स्थिर। अचल।

अक¹--सज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। पातक।

यौ०--अकहीन = पापहीन। उ०--बरवस करत विरोध हठि होन चहत अकहीन।--स० सप्तक, पृ० ४७। अकबस = पापवश। उ०--तुलसी मठ अधबस विहठि दिन दिन कद मलीन।--स० सप्तक, पृ० ४७।

२. दुख। ३ गर्व (को०)। ४ चिह्न (को०)।

अक²(पु)--वि० दे० 'एक'। उ०--रही फकीर अक खुदा गुसाईं।--घट०, पृ० ८५।

अकच¹--वि० [सं०] विना बाल का। गंजा। खल्वाट।

अकच²--सज्ञा पुं० केतुग्रह।

अकचकाना--क्रि० अ० [सं० (अक० अकस्मात्) + चक् = चकितहोना] विस्मित होना। हक्काबक्का होना। उ०--(क) युवक के कहने पर बालक भी अकचकाना हुआ बैठ गया।--छाया, पृ० १०७। (ख) वह अकचकाकर अम्बपाली की ओर ताकता रह गया।--वै० न०, पृ० २५५।

अकच्छ--वि० [सं० अ - रहित + कच्छ या कक्ष = धोती, परिधान] १ नग्न। नंगा। २ व्यभिचारी। परस्त्रीगामी।

अकटुक--वि० [सं०] १ जो कटु न हो। मधुर। २ अश्रांत। अक्लांत (को०)।

अकटोटा--सज्ञा पुं० [सं० अङ्क = छाप, तिलक + देश० टोटा = कंकड, ढेला] करंड, मिट्टी से तैयार किया हुआ चंदन। उ०--अकटोटा को घसि तिलक, क्यों निर्दे लगाया।--प्रेमघन०, भा० १, पृ० १५२।

अकठोर--वि० [सं०] जो कठोर न हो। मुलायम। कोमल (को०)।

अकडम--सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तांत्रिक चक्र (को०)।

अकडमचक्र--सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अकडम' (को०)।

अकडोडा--सज्ञा पुं० [सं० अर्क + तुंड, प्रा० अक्क + तोंड] मदार का फल। मदार की ढोंढी। उ०--आवन की होंउ फैमे अकडोढ़े जात हैं।--सुदर०, ग्रं, भा० २, पृ० ४५७।

अकडत--सज्ञा स्त्री० [हिं० अकड + अंत (प्रत्य)] अकड। दर्प। घमंड। उ०--तकले की तरह वल निकल जावे। तेरे आगे जो दो करे अकडत।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६४।

अकड¹--सज्ञा स्त्री० [सं० आ = अच्छी तरह + काण्ड = गाँठ, पोर, > अकड = गाँठ की तरह कडा] ऐंठ। तनाव। मरोड़। बल।

अकड²--सज्ञा स्त्री० [देश०] १. घमंड। अहंकार। शेखी।

मुहा०--अकड दिखाना = घमंड वा शेखी दिखाना। उ०--मार खाव तो वदन झाडकर फिर भी अकड दिखाओ।--प्रेमघन०, भा० २, ३०८।

२. धृष्टता। ढिठाई। ३. हठ। अड। जिद।

अकड तकड--सज्ञा स्त्री० [हिं० अकड + तकड < तगडा] १. ऐंठन। २ तेजी। ताव। घमंड। अभिमान। उ०--'अकड़ तकड़ उसमें बहुत सारी थी'।--इशा०, पृ० ६१।

अकडना¹--क्रि० अ० [हिं० 'अकड से नाम०] १ सूखकर सिकुडना और कडा होना। खरा होना। ऐंठना। जैसे, पटरियाँ धूप में रखने से अकड गईं (शब्द०)। २ ठिठुरना। स्तब्ध होना। सुन्न होना, जैसे--सरदी से अकड जाओगे (शब्द०)। ३. छाती को उभाडकर डील को थोडा पीछे की ओर झुकाना। तनना, जैसे--वह अकडकर चलता है (शब्द०)।

अकडना[2]--क्रि० अ० [देश०] १ शेखी करना। घमड दिखाना। अभिमान करना, जैसे--वह इतने ही मे अकडा जाता है (शब्द०)। २ ढिठाई करना। ३ हठ करना। जिद करना। अडना। जैसे--सब जगह अकडना ठीक नही, दूसरे की बात भी माननी चाहिए (शब्द०)। ४ फिर पडना। मिजाज ब लना। चिटकना जैसे--तुम तो जरा सी बात पर अकड जाते हो (शब्द०)।

अकडफो--वि० [हिं० अकड + फो = फुफकारना] ऐंठ और अभिमान से भरा हुआ [को०]

अकडवाई--सज्ञा स्त्री० [हिं० अकड + वाई = वायु] शरीर की नसो का पीडा के सहित एकबारगी खिचना। ऐंठन। कुडल।

अकडवाज--वि० [हिं० अकड + फा० बाज = वाला] अकड़ दिखानेवाला। अपने को लगानेवाला। नोक झोंकवाला। ऐंठदार। शेखीबाज। अभिमानी।

अकडवाजी--सज्ञा स्त्री० [हिं० अकड + फा० बाजी] अकड़ने की प्रवृत्ति। ऐंठ। अभिमान। शेखी।

अकडा[1]--सज्ञा पुं० [सं० *अकाण्डक या हिं० अकड] चौपायो का एक छूतवाला रोग।

विशेष--जब चौपाए तराई की धरती मे बहुत दिनो तक चरकर सहसा किसी जोरदार धरती की घास पा जाते हैं तब यह बीमारी उन्हें हो जाती है।

अकड़ा[2]--वि० [हिं० अकड] अकड मे भरा। ऐंठ भरा। उ०--हिंसा गर्वोन्नत हारो मे ये अकडे अणु टहल रहे।--कामायनी, पृ० २६६।

अकड़ाव--सज्ञा पुं० [हिं० अकड़ + आव (प्रत्य०)] ऐंठन। खिचाव।

अकड़ू†--वि० [हिं० अकड + ऊ (प्रत्य०)] अकडबाज। अकड दिखानेवाला।

अकडैत--वि० [हिं० अकड + ऐत (प्रत्य०)] अकडबाज। अकडू।

अकत[1]†--वि० [सं० अक्षत, प्रा० अप० अक्खत अथवा स० अकृत, प्रा० अकत्त, हिं० अकत] समग्र। समूचा। आखा। सारा।

अकत[2]--† क्रि० वि० बिलकुल। सरासर।

अकती--सज्ञा स्त्री० दे० 'अखती'। उ०--अकती की तीज तजवीज के महेली जुरी।--ठाकुर (शब्द०)।

अकत्थ(पु)†--वि० स० अकथ्य, प्रा० अकत्थ] जो कहा न जा सके। न कहने योग्य। अकथनीय। उ०--मसि नैना लिखनी बरुनि रोई रोई लिखा अकत्थ।--जायसी (शब्द०)।

अकत्थन--वि० [सं०] जो डींग न हाँके। अविकत्थन [को०]।

अकथ--वि० [स० अकथ्य, प्रा० अकत्थ] जो कहा न जा सके। कहने की सामर्थ्य के बाहर। अकथनीय। अवर्णनीय। अनिर्वचनीय। उ०--नाम रूप दुई ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामूझि साधी।--मानस, १।२१।

यौ०--अकथ कथा; अकथ कहानी = अनिर्वचनीय आख्यान।

अकथनीय--वि० [सं०] न कहे जाने योग्य। जो कहने मे न आ सके। अनिर्वचनीय। अवर्णनीय। वर्णन के बाहर। जिसका वर्णन न हो सके। उ०--एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी।--मानस, २।६०।

अकथह[1]--सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अकडम' [को०]।

अकथह[2](पु)--वि० दे० 'अकथ'। उ०--नानक गुर मिल अकथह कथ।--प्राण०, पृ० ५३।

अकथित--वि० [सं०] जो न कहा गया हो।

अकथ्य(पु)--वि० दे० 'अकत्थ'। उ०--बाल बच पुनि आल्ह सी आनंद कियव अकथ्य।--प० रा०, पृ० १३६।

अकथ्य--वि० [सं०] न कहने योग्य। अवर्णनीय अनिर्वचनीय।

अकद--सज्ञा पुं० [अ० अक्द] इकरार। प्रतिज्ञा। वादा।

अकदन[1]--क्रि० वि० दे० 'कदन'।

अकदन[2]--वि० [सं० अ + कदन] विनाशरहित। उ०--कदन बिदन अकदन तुदा गहन अजन क्लेशाहि। दुख जनि दे अब जानि दे कत बैठी मनखाहि।-- नददास (शब्द०)।

अकदवदी--सज्ञा स्त्री० [अ० अक्द + फा० बदी] करारनामा। प्रतिज्ञापत्र।

अकबक(पु)†--सज्ञा पुं० [देश० अनु०] आशका। आगा पीछा। सोच विचार। भय। डर। उ०--ह्वै कै लोभी लाभ बस, छवि मुकुताहल लैन। कूदत रूप समुद्र मे अकबक करत न नैन।--रतन०, दो० ४५२।

अकनना†--क्रि स० [स० आकर्णन प्रा० आकण्णण] १ सुनना। कर्णगोचर करना। उ०-- पुरजन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता।--मानस १।३४४। २ आहट लेना। उ०--नगर सोर अकनत सुनत अति रुचि उपजावत।--सूर० (राधा०), २५६१। ३ कान लगाकर सुनना। चुपचाप सुना। उ०--आलस गात जानि मनमोहन बैठे छाँह करत सुख चैन। अकनि रहत कहुँ सुनत नही कछु नहिं गौरमन बालक बैन।--सूर० (शब्द०)।

अकना[1]†--क्रि अ० [सं० या देश०] ऊबना। उकताना। घबराना। उ०--दौड दौड आने से जुअरत के अकोमत क्या करे। उस बिचारे की तबियत तुम पे है आई हुइ।--जुअरत (शब्द)।

अकना[2]--सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरण] ज्वार की वह बाल जिसके दाने निकाल लिये गए हो।

अकनिष्ठ[1]--वि० [सं०] १ जो कनिष्ठ न हो। कनिष्ठ भिन्न। २. जिससे कोई कनिष्ठ न हो। सबसे छोटा [को०]।

अकनिष्ठ[2]--सज्ञा पुं० १ गौतम बुद्ध का एक नाम। २ बौद्ध देवगणो का एक वर्ग [को०]।

अकनिष्ठग--सज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध [को०]।

अकन्या--सज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो कुमारी न हो [को०]।

अकपट--वि० [सं०] कपट से रहित। निष्कपट। उ०--हरी डाल के सुखद हिंडोले मे परिवर्धित होकर, जो अकपट विकसित भाव दिखाती है कैसी आनदमयी।--प्रेम०, पृ०७।

अकबक¹—संज्ञा पुं० [हिं० अनु० अक+बक=असंबद्ध बकना] [क्रि० अकबकाना] १ निरर्थक वाक्य । असंबद्ध प्रलाप । अंड बंड । अनाप शनाप । उ०—जैसे कछु अकबक बकत है अ.ज हरि, तेसई जानि नावें मुग्ध राहू को निकसी जाय ।—केशव (शब्द०) । २ धड़धड़ाहट । चिंता । धड़क । खटका । उ०—इंद्र जू के अकबक, धाता जू के धकपक, शंभु जू के सकपक, केसोदास को कहै । जब जब मृगया लोक को राम के कुमार चढ़ै, तब तब कोलाहल होत लोक है ।—केशव (शब्द०) । ३ होश हवाश । छक्का पंजा । अक्की बक्की । चतुराई । सुध । उ०—सब पंक होत पंकजासन परम दीन, अकबक भूलि जात गरुड़नसीन के ।—चरणचंद्रिका (शब्द०) ।

अकबक²—वि० [सं० अवाक्] भौचक्का । चकित । निस्तब्ध, जैसे—'यह वृत्तात सुन वह अकबक रह गया' (शब्द०) ।

अकबकाना—क्रि० अ० [हिं० अकबक से नाम०] चकित होना । भौंचक्का हाना । घबराना । उ०—(क) सकपकात तन, धकधकात उर, अकबकात सब ठाढे । सूर उपँग सुत बोलत नाहीं अति हिरदै ह्वै गाढे ।—सूर (शब्द०) । (ख) 'रामेसरी अकबका गई, कौन सी ऐसा बात उनके मुंह से निकली जिससे वीसो के जा को आघात पहुँचा हैं' ।—नई पौध, पृ० ६६ ।

अकबत—संज्ञा स्त्री० दे० 'आकबत' । उ०—अकबति अलह सो जानि सुबुक सो बोलना ।—गुलाल०, पृ० ६२ ।

अकबर¹—वि० [अ०] श्रेष्ठतम [को०] ।

अकबर²—संज्ञा पुं० मुगल सम्राट् अकबर जिसने भारत में १५५५ ई० से १६०५ ई० तक शासन किया ।

अकबरी¹—संज्ञा स्त्री० [अ० अकबर+फा० ई० (प्रत्य०)] १ एक फलाहारी मिठाई । तीखुर और उबाली अरुई का मीके साथ फेंटकर उसकी टिकिया बनाकर, घी में तलकर चाशनी में पाग देते हैं । कहीं कहीं इसे चौरेठे से भी बनाया जाता है । २ एक प्रकार की लकड़ी पर की नक्काशी जिसका व्यवहार पंजाब में बहुत है । सहारनपुर के कारखानों में भी इसका चलन है ।

अकबरी²—वि० अकबर संबंधी ।

यौ०—अकबरी अशरफी = सोने का एक पुराना सिक्का जिसका मूल्य पहले १६ रुपए था, पर अब २५ रुपए हो गया है । अकबरी मोहर=१ एकाक्ष व्यक्ति । एक आंख का आदमी । २ अकबरी असरफी ।

अकबार—संज्ञा पुं० दे० 'अखबार' । उ०—बालदेव भी अकबार पढ़ता है' ।—मै० आँ०, पृ० २५४ ।

अकबाल—संज्ञा पुं० दे० 'इकबाल' ।

अकर¹—वि० [सं०] १ हस्तरहित । बिना हाथ का । उ—अकर कहावत धनुख धरे देखियत परम कृपाल पै कृपान कर पति है ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १५१ । २ बिना कर या महसूल का । जिसका महसूल न लगता हो । ३. दुष्कर । न करने योग्य । कठिन । विकट । उ०—भारथ अकर करतूतिन निहारि लही, यातें घनस्याम लाल तोते बाज भाये री ।—सिग्राजी ग्रं०, भा० ७, पृ० १६० । ४ क्रियारहित । निष्क्रिय ।

अकर²—संज्ञा पुं० [सं० आकर] १ खान । आकर । २ समूह । राशि । उ०—दिनकर सो है तेरे जस के अकर सो ।—भूषण ग्रं०, पृ० १० ।

अकरकरा—संज्ञा पुं० [सं० आकल्लक] एक पौधा जो अफ्रिका के उत्तर अल्जीरिया में बहुत होता है । इसकी जड़ पुष्ट और कामोद्दीपक औषधि है । इसके मुह में थूक आता है और दांत की पीड़ा भी शांत होती है ।

पर्या०—आकल्लक ।

अकरखन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आकर्षण] दे० 'आकर्षण' । उ०—किया अकरखन मन का जबहि धुनि घुंघराज । उडि उडि दौरी बाल सब तज लाज गृहराज ।—सिंगा० ग्रं०, भा० १, पृ० ७६ ।

अकरखना(पु)—क्रि० स० [हिं० अकरखन से नाम०] १ खींचना । आकर्षित करना । तानना । २ चढ़ाना ।

अकरण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कर्म का न किए गए के समान होना । कर्म का फल रहित होना । कर्म का अभाव ।

विशेष—सांख्य के अनुसार सम्यक् ज्ञानप्राप्ति हो जाने पर फिर कर्म अकरण अर्थात् बिना किए हुए के समान हो जाते हैं और उनका कुछ फल नहीं होता ।

२ इंद्रियों से रहित । ईश्वर । परमात्मा ।

अकरण²—वि० १. न करने योग्य । कठिन । २. इंद्रियरहित [को०]

अकरण³(पु)—वि० [सं० अकारण] बिना कारण । अकारण बेसबब ।

अकरणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नैराश्य । असफलता । अपूर्णता । २ आक्रोश विशेष । शाप [को०] ।

अकरणीय—वि० [सं०] न करने योग्य । न करने लायक । करने के अयोग्य ।

अकरन¹(पु)—वि० [सं० अकारण] बिना कारण । बेसबब । उ०—कर कुठार मैं अकरन कोही । आगे अपराधी गुरुद्रोही ।—तुलसी (शब्द०) ।

अकरन²(पु)—वि० [सं० अ+करण=कर्म] न करने योग्य । जिसका करना कठिन या असंभव हो । उ०—दयानिधि तेरी गति लखि न परै । धर्म अधर्म अधर्म, धर्म करि अकरन करन करै ।—सूर०, १।१०८ ।

अकरना(पु)—क्रि० अ० दे० 'अकड़ना' । उ०—मिथ्यावाद आपजस सुनि सुनि मूछहि पकरि अकरतौ ।—सूर०, १०।२०३ ।

अकरनीय(पु)—वि० दे० 'अकरणीय' ।

अकरब—संज्ञा पुं० [अ० अकरब] १ घोड़ा जिसके मुँह पर सफेद रोएँ होते हैं । और उन सफेद रोओं के बीच बीच में दूसरे रंग के भी रोएँ होते हैं । यह घोड़ा ऐबी समझा जाता है । २ बिच्छू (को०) । ३ वृश्चिक राशि (को०) ।

अकरम(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अकर्म १' । उ०—अकरम करम करै मन आपहि पीछे जिव दुख पावै ।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २६ ।

अकरमी(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अकर्मी'। उ०—महा अकरमी जीव हम सबहि लेहु मुकुताय।—कबीर सा०, पृ० ५५०।

अकरा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी। आँवला [को०]।

अकरा²†—वि० [सं० अक्रय्य प्रा० अकरय्य, अकरय] [स्त्री० अकरी] १ न मोल लेने योग्य। महँगा। अधिक दाम का। कीमती। उ०—लै आये हो नफा जानि कै सबै वस्तु अकरी।—सूर०, १०।३१०४। २ खरा। श्रेष्ठ। उत्तम। अमूल्य। उ०—आरतपालु कृपालु जो राम, जेही सुमिरे, तेहि को तहँ ठाढे। नाम प्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढे।— तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० २२६।

अकराथ(पु)—वि० [सं० अकार्यार्थ, पा० अकारियत्थ] अकारथ। व्यर्थ। निष्फल। उ०—आण राखि प्रवाधिए, श न सुनै अकराथ।—कबीर (शब्द०)।

अकराम—संज्ञा पुं० [अ० करम का ब० व०] बख्शिश। कृपा। अनुग्रह [को०]।

अकरार(पु)—वि० [हिं० अकराल] भयानक। उ०—कह्यौ प्रिया एकत सुपन पायौ अकरारिय।—पृ० रा०, ६६।२१०५।

अकरार²†—संज्ञा पुं० [अ० इकरार या करार] कौल। प्रतिज्ञा इकरार।

अकराल¹—वि० [सं०] जो भयंकर न हो। सौम्य। सुंदर। अच्छा।

अकराल²(पु)—वि० [सं० कराल] भयंकर। भयानक। डरावना। [डिं०]।

अकरास¹—संज्ञा पुं० [हिं० अकड+आस (प्रत्य०)] अँगड़ाई। देह टूटना।

अकरास²—संज्ञा पुं० [सं० अकर] आलस्य। सुस्ती। कार्यशिथिलता।

अकरासा†—संज्ञा पुं० दे० 'अकरास²'। उ०—छुट्टी मे आपउ चली गई रहीं। हमका बहुत अकरासा लागत रहा।—भस्मा० चि०, पृ० ६१।

अकरासू†—वि० स्त्री० [सं० अकर = आलस्य] गर्भवती। जो हमल से हो।

अकरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० आ = भलीभाँति + किरण (√कॄ) बिखेरना] बीज गिराने के लिये हल मे जो पोला बाँस लगा रहता है उसके ऊपर का लकडी का चोंगा जिसमे बीज डाला जाता है।

अकरी²—संज्ञा स्त्री० [?] असगंध की जाति का एक पौधा या झाडी जो पंजाब, सिंध और अफगानिस्तान आदि देशों मे होती है।

अकरी³(पु)—वि० [हिं० अकर + ई] न करनेवाला। अकर्ता। अक्रिय। उ०—अकरी अलख अरूप अनादी तिमिर नही उजियारा।—चरण०, भा० २, पृ० १४०।

अकरुण—वि० [सं०] करुणाशून्य। निर्दयी। निष्ठुर। कठोर। उ०—अकरुण वसुधा से एक झलक। वह स्मित मिलने को रहा उ०—ललक।—लहर, पृ० ३४।

अकरुर(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अक्रूर'। उ—लै अकरूर चले मधुबन कौ, सब ब्रज अति भैं भात।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० २३७।

अकर्कश—वि० [सं०] जो कठोर न हो। मृदु। मुलायम। नरम [को०]।

अकर्ण¹—वि० [सं०] १ कान से रहित। कर्णहीन। उ०—जो अकर्ण अहि को भी सहसा कर दे मंत्रमुग्ध नतफन।—प्रवध०। २ छोटे कानोंवाला। लघकर्ण (को०)। ३ सुनने की शक्ति से रहित। बधिर। बहरा (को०)। ४ पतवार विहीन। बिना पतवार का।

अकर्ण²—संज्ञा पुं० सर्प। साँप [को०]।

अकर्णक—वि० [सं०] कान से रहित। कर्णहीन [को०]।

अकर्णधार—वि० [सं०] पतवार चलानेवाले से रहित। चालकविहीन [को०]।

अकर्ण्य—वि० [सं०] वह जो कानों न सुना जाय। अश्राव्य [को०]।

अकर्तन—वि० [सं०] १ बौना। २ जो न काटे [को०]।

अकर्तव्य¹—वि० [सं०] न करने योग्य। करने के अयोग्य। जिसका करना उचित न हो।

अकर्तव्य—संज्ञा पुं० न करने योग्य कार्य। अनुचित कर्म। उ०—सिद्ध होत बिनहू जतन मिथ्या मिश्रित काज। अकर्तव्य से स्व नहू मन न धरो महराज।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ६७।

अकर्ता¹—वि० [सं०] कर्म का न करनेवाला। कर्म से अलग। उ०—चेतन ज्यों को त्यों सदा सदा अकर्ता होय।—भक्ति० पृ० २८०।

अकर्ता²—संज्ञा पुं० साख्य के अनुसार पुरुष का नाम जो कर्मों से निर्लिप्त रहता है।

अकर्तृक—संज्ञा पुं० [सं०] बिना कर्ता का। जिसका कोई कर्ता या रचयिता न हो। जो किसी के द्वारा रचा न गया हो। कर्ता-विहीन।

अकर्तृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्तृत्व का अभाव। २ कर्तृत्व का अभिमान न होना [को०]।

अकर्तृभाव—संज्ञा पुं० [सं०] कुछ न करने का भाव। कर्म से पृथकता।

अकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ न करने योग्य कार्य। दुष्कर्म। बुरा काम। उ०—यह अकर्म शास्त्र के विरुद्ध है।—कबीर सा०, पृ० ६६४। २ कर्म का अभाव।

अकर्मक¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अकर्मिका] व्याकरण मे क्रिया के दो मुख्य भेदो मे से एक। यह उस क्रिया को कहते है जिसे किसी कर्म की आवश्यकता न हो कर्ता तक ही क्रिया का कार्य समाप्त हो जाय, जैसे—'लडका दौडता है,' इस वाक्य मे 'दौडता है' अकर्मक क्रिया है।

अकर्मक²—संज्ञा पुं० परमात्मा [को०]।

अकर्मण्य—वि० [सं०] कुछ काम न करनेवाला। बेकाम। निकम्मा। आलसी। उ०—'सब ऐसे अकर्मण्य युवक को आर्य साम्राज्य के सिंहासन पर नही देखना चाहता।— स्कंद० पृ० १४०।

अकर्मण्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अकर्मण्य होने का भाव। निकम्मापन। आलसीपन [को०]।

अकर्मभोग—संज्ञा पुं० [सं०] कर्मफल के भोगने मे मुक्ति या स्वातंत्र्य [को०]।

अकर्मशील—वि० [सं०] काम न करनेवाला। आलसी। सुस्त [को०]।

अकर्मा--वि० [सं०] १ काम न करनेवाला। निकम्मा। बेकाम। कार्य के लिये अनुपयुक्त। २ कुकर्मी। बुरा काम करनेवाला (को०)। ३ स्वेच्छाचारी (को०)।

अकर्मान्वित--वि० [सं०] १ दुष्कर्मी। अपराधी। २ अयोग्य। बेकार (को०)।

अकर्मिणी--संज्ञा स्त्री० [सं०] पाप करनेवाली। पापिन। अपराधिनी।

अकर्मी--वि० [सं० अकर्मिन्] [स्त्री० अकर्मिणी] बुरा काम करनेवाला। पापी। दुष्कर्मी। अपराधी। उ०--राजा वेश्या जात भिखारी। महा अकर्मी विषय विकारी।--कबीर सं०, पृ० ४४६।

अकर्षण(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'आकर्षण'।

अकर्षना(पु)--क्रि० अ० [सं० आकर्षण] आकर्षण करना। खींचना। आकर्षना। उ०--देवकि गर्भ अकर्षि रोहिनी आप वास करि लीनों। सूर०, १०।६२२।

अकलंक[1]--वि० [सं० अकलङ्क] [संज्ञा अकलंकता, वि० अकलंकित] निष्कलंक। दोषरहित। बेऐब। निर्दोष। बेदाग। उ०--अस बिचारि रूब तजहु असंका। सबहि भाँति संकर अकलंका।--मानस, १।७२।

अकलंक[2]--संज्ञा पुं० एक जैन लेखक जिनका नाम भट्ट अकलंक देव था (को०)।

अकलंक[3]†--संज्ञा पुं० [सं० अकलङ्क] दाग। लांछन। ऐब। दाग। उ०--टाले अठान जेठानिन हूँ सब लोगन है अकलंक लगाए।--कोई कवि (शब्द०)।

अकलंकता--संज्ञा स्त्री० [सं० अकलङ्कता] निर्दोषता। सफाई। कलंकहीनता। उ०--लोभी लंपट कल कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई।--तुलसी (शब्द०)।

अकलंकित--वि० [सं० अकलङ्कित] निष्कलंक। निर्दोष। बेदाग। साफ। शुद्ध। बेऐब। उ०--तामहँ पैठि जो नीकसै, अकलंकित सो साधु।--रामच०, पृ० १५०।

अकलंकी--वि [सं० अकलङ्किन्] जिसपर कोई कलंक न हो। निर्दोष। बेऐब (को०)।

अकल[1]--वि० [सं० अ + कल] १ जिसके अवयव न हों। अवयवरहित। उ०--ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद --मानस १।५०। २ जिसके खंड न हों। सर्वांगपूर्ण। अखंड। उ०--अकल कला को खेल बनेया, अनंत रूप दिखाइया।--गुलाल०, प० ३८। ३ जिसका अनुमान न लगाया जा सके। परमात्मा का एक विशेषण। उ०--व्यापक अकल अनीह अज निरगुन नाम न रूप।--मानस, १।२०५। ४. (पु) बिना गुण या चतुराई का। कलाहीन।

अकल--[2](पु)--वि० [सं० अ + हिं० कल = चैन] बिकल। व्याकुल। बेचैन। उ०--कामिनी के अकल नूपुर, भामिनी के हृदय में भय।--अचना, पृ० ६३।

अकल[3](पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अक्ल'। उ०--मरदूद तुमे मरना सही। वाइम अकल करके कही।--संत तुरसी० प० १४।

मुहा०--अक्ल गई में होना-बुद्धि का काम न करना। अकल का छिप रहना। उ०--इन्होंने सब कुछ कहा। आपकी अकल क्या गई थी ? आपको क्या हो गया था ?'--सैर०, पृ० ४१। अकल घास चरने जाना = दे० 'अकल का चरने जाना'। उ०--'यहाँ प्लेग का बड़ा प्रकोप है, इसलिये अकल घास चरने चली गई है'।--पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ८६७। अकल गुजर जाना = बुद्धि खत्म होना। समझ काम न रह जाना। उ०--अकल जाती है इस कूचे में अय 'जामिन' गुजर पहले।--कविता कौ०, भा० ४ पृ० ५६२।

अकलखुरा--वि० [हिं० अकेल + फा० खोर = खानेवाला] १ अकेले खानेवाला। स्वार्थी। मतलबी। लालची। २ जो मिलनसार न हो। रूखा। मनहूस। ३ ईर्ष्यालु। उ०।--'अकलखुरा किसी को देख नहीं सकता'। 'अकलखुरा जग से बुरा (शब्द०)।

अकलना(पु)--क्रि० स० [सं० अकलन] जानना। समझना। उ०--बीमल नंदि इह भय अकलि, लहै न कछु निस दिन चयन।--पृ० रा० १।२०४।

अकलप[1](पु)--वि० [सं० अकल्प्य] जिसकी कल्पना न की जा सके। कल्पनातीत। उ०--मैमंत अविगत रता अकलप आसा जीति। राम अमलि माता रहै जीवत मुकति अतीति।--कबीर।

अकलप[2](पु)--संज्ञा पुं० [सं० आकल्प] कल्प पर्यंत। अनेक युगों तक। उ०--अ सन तजि अनत जिनि जावो। अकलप हिरदा बैठा खावो।--गोरख०, पृ० २३६।

अकलबर--संज्ञा पुं० दे० 'अकलबीर'।

अकलबीर--संज्ञा पुं० [सं० करवीर] भाँग की तरह का एक पौधा। विशेष--यह हिमालय पर काश्मीर से लेकर नैपाल तक होता है। इसकी जड़ रेशम पर पीला रंग चढ़ाने के काम में आती है।

पर्या०--कलवीर। वच्च। भंगजल।

अकलीम--संज्ञा स्त्री० [अ० इक्लीम] १ महाद्वीप। उ०--साह तणा छनी सबल आय वर्चे इण ठर। श्री साल्ह अकलीम में चावो गढ़ चीतौड़।--बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ९२। २ बादशाहत। राज्य। उ०--पावै जो अकलीम सात हेक सुरताणरे। नहीं जिका दे नीम ईछै लेवा आठमी।--बाँकी ग्र०, भा० ३ पृ० ५८।

अकलुष--वि० [सं०] कलुषता से रहित। निमल। शुद्ध। साफ। उ०--स्नेह सुख में बढ़ सखि चिरकाल, दीप की अकलुष शिखी समान।--गुंजन, पृ० ३१।

अकलुषित--वि० [सं०] जो कलुषित न हुआ हो। पवित्र। उ०--फिरन चाहो घरा पै मैं धरि अकलुषित पाँव। धरि हैं सेज मेरी, वास सूनो ठाँव।--बुद्ध० च०, पृ० ६।

अकलेस(पु)--वि० [सं० अखिलेश] समग्र विश्व के स्वामी। उ०--ॐ नामो सिव सबल। नमो अकलेस अकल मति।--पृ० रा०, १।१८४।

अकलैमूल(पु)--वि० [प्रा० एक्कलइ = एक ही + सं० मूल] जिसके आगे पीछे कोई न हो। अकेला। तनहा उ०--सबला अकलैमूल पातर खाउँ खाउँ करै मूखा।--सूर०, १।१८६।

अकल्क—वि० [सं०] [स्त्री० अकल्का] १ विना तलछट का। शुद्ध। २. पापरहित। निष्पाप [को०]।

अकल्कक—वि० [सं०] दे० 'अकल्कल' [को०]।

अकल्कन—वि० [सं०] दे० 'अकल्कल' [को०]।

अकल्कल—वि० [सं०] १ विनम्र। सरल। २ अहंकारशून्य। दंभ रहित। ३. ईमानदार [को०]।

अकल्कता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईमानदारी। शुद्धता [को०]।

अकल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योत्स्ना। चाँदनी। [को०]।

अकल्प—वि० [सं०] १ जो नियम और प्रतिबंध का विषय न हो। अनियंत्रित। निर्बंध। २ दुर्बल। कमजोर। ३. जिसकी तुलना न की जा सके। अतुलनीय। ४ अयोग्य। अक्षम [को०]।

अकल्पनीय—वि [सं०] जिसकी कल्पना न की जा सके। कल्पना से परे। उ०—विपुल अलौकिक कलान ते कलित वनि, रेल तार काज क्यों अकल्पनीय करते।—रसक०, पृ० ३१६।

अकल्पित—वि० [सं०] १ कल्पनारहित। अकल्पनीय। उ०—वीर-कुल वाल ह्वै न सहिहौं त्रिकाल माँहि, लोक प्रतिकूल की अकल्पित कुचाली को।—रसक०, पृ० ३२३। २ अकृत्रिम। स्वाभाविक (को०)। ३ प्राकृतिक। नैसर्गिक (को०)।

अकल्मष—वि० [सं०] पापरहित। निर्दोष। निर्विकार। वेऐव।

अकल्य—वि० [सं०] १ अस्वस्थ। रुग्ण। २ सत्य। सच [को०]।

अकल्याण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अमंगल। अहित।

अकल्याण[2]—वि० १ कल्याणरहित। अशुभ। २ असुंदर [को०]।

अकव—वि० [सं०] १ अवर्णनीय। २ अतुच्छ। ३ अकृपण। जो कृपण न हो [को०]।

अकवच—वि० [सं०] विना कवच का। कवचरहित [को०]।

अकवन(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० आक] आक का पेड़। मदार।

अकवाम—संज्ञा पुं० [अ० अकवाम कौम का बहुवचन] जातियाँ। उ०—'दोनों अकवाम मिस्ल शीर व शकर के मिल जायँ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ९०।

अकवार†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँकवार'। उ०—धरमदास से छुटल भव-सागर, सब सों भेंटि अकवार हो।—धरम० शब्दा०, पृ० ५१।

अकवारि—वि० [सं०] दे० 'अकवारी' [को०]।

अकवारी—वि० [सं०] १ निस्स्वार्थ। स्वार्थहीन। २ अकृपण। जो कजूस न हो। ३ जिसे शत्रु तुच्छ न समझे। ४ प्रबल शत्रुवाला [को०]।

अकवि—वि० [सं०] जो बुद्धिमान या सुबुद्ध न हो। मूर्ख [को०]।

अकस[1]—संज्ञा पुं० [अ० अक्स] १ वैर। अदावत। विरोध। शत्रुता। उ०—काम कोह लाई कै देखाइयत आँखि मोहि, एते मान अकस कीवे को आपु आहि को।—तुलसी ग्र०, पृ० २२२। २ लागडाँट। होड़। स्पर्धा। उ०—हानि लाहु अनखु उछाहु बाहुबल कहि वंदी बोले विरद अकस उपजाइकै।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१२। ३ ईर्ष्या। डाह। उ०—मोर मुकुट की चंद्रि-कनु यों राजत नँद नद। मनु ससि सेखर की अकस किय सेखर सतचंद।—बिहारी र०, दो० ४१६।

अकस[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० आकाश] नभ। आकाश। उ०—सकसे का जैतवार अकसे का वाई।—रा० रू०, पृ० ६७।

क्रि० प्र०—ठानना।—दिलाना।—पड़ना।—मानना।—रखना।

यौ०—अकसदीया। अकसदियता।

अकसना—क्रि० स० [हिं० अकस से नाम०] १ अकस रखना। वैर रखना। शत्रुता रखना। २ लागडाँट रखना। बराबरी करना। आँट रखना। उ०—साहनि सों अकसिबो हाथिन को वकसिबो, राव भाव सिंह जू को सहज सुभाव है।—मतिराम ग्र०, पृ० ४३५।

अकसमात(पु)—क्रि० वि० दे० 'अकस्मात्'। उ०—(क) अैसे मे इह भावई अकसमात हुअ आइ।—पृ० रा०, ६।२८। (ख) जे द्रुम नभ सो बातें करें। ते तरु अकसमात भुई परैं।—नंद० ग्र०, पृ० २७६।

अकसर[1]—क्रि० वि० [अ०] प्राय। बहुधा। अधिकतर। बहुत करके। विशेष करके, उ०—वदन पर अकसर गाते, भौं मिहदी से रँगते हैं।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २४६।

अकसर[2](पु)†—[सं० एक + सर (प्रत्य०)] अकेले। बिना किसी को साथ लिए। तनहा। उ०—धनि सो जीव दग्ध इमि सहा। अकसर जरइ न दूसर कहा।—जायसी (शब्द०)।

अकसर[3](पु)†—वि० अकेला। एकाकी। उ०—करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात। कवन हेतु मन व्यग्र अति अकसर आयहु तात।—मानस, ३।१८।

अकसरुआ†—वि० [हिं० अकसर] अकेला। बिना साथ का।

अकसवा†—संज्ञा पुं० [हिं० अकास] दे० 'आकाश'। उ०—ना हुवाँ धरती न पौन अकसवा।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४७।

अकसी†—वि० [हिं० अकस] अकस रखनेवाला। वैरी।

अकसीर[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० इक्सीर] १ वह रस या भस्म जो धातु को सोना या चाँदी बना दे। रसायन। कीमिया। उ०—हमसे हों जरों सीम की तदबीर सों क्या खाक ? दुनियाँ मे वही चीज है अकसीर सों क्या खाक।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४४। २ वह औषधि जो प्रत्येक रोग को नष्ट करे। वह औषधि जिसके खाने से मनुष्य कभी बीमार न हो। उ०—अगर अक-सीर बिन रोगी दर्द कबहूँ न जावेगा।—संत तुरसी०, पृ० ३३।

अकसीर[2]—वि० अव्यर्थ। अत्यंत गुणकारी। अत्यंत लाभकारी।

अकसीरगर—वि० [हिं० अकसीर + फा० गर] कीमिया बनानेवाला। रसायनी [को०]।

अकस्मात्—क्रि० वि० [सं०] १. अचानक। एकबारगी। यकायक। उ०—सब उतरना चाहते हैं, कुआँ मे अकस्मात् जल बढ़ जाता है, सब बहते हुए दिखाई देते हैं।—स्कंद०, पृ० १०७। २. संयोगवश। दैवयोग से। उ०—महादेवी ! आज मैंने अपने हृदय के मार्मिक रहस्य का अकस्मात् उद्घाटन कर दिया है।—स्कंद०, पृ० २८।

अकस्मात—क्रि० वि० [सं० अकस्मात्] १ अचानक। अनायास। एकबारगी। यकायक। सहसा। तत्क्षण। बैठे बिठाए। औचक। अतर्कित। अनचित्ते में। २ दैवात्। दैवयोग से। संयोगवश। हठात्। आपसे आप। अकारण।

अकह¹—वि० [स० अकथ, प्रा० अकह] न कहने योग्य । जो कही न जा सके । अकथनीय । अनिर्वचनीय । अवर्णनीय । उ०—नहीं ब्रह्म, नहि जीव, न माया ज्यों का त्यों वह जाना । मन, बुधि, गुन, इद्रिय, नहि जाना अलख अकह निर्वाना ।—कबीर (शब्द०) ।

यौ०—अकह कहानी = अनिर्वचनीय कथा । उ०—निज दल जागै ज्योति पर दल दूनी होति, अचला चलति यह अकह कहानी है । पूरण प्रताप दीप अजन की राजै रेख राजत श्री रामचद्र पानिन कृपानी है ।—केशव (शब्द०) ।

अकह²(पु)—वि० [स० अकत्थ्य] मुँह पर न लाने योग्य । बुरी । अनुचित । उ०—शील सुधा वसुधा लहिकै अकहै कहिकै यह जीभ बिगारिए ।—देव (शब्द०) ।

अकहन‡—वि० [हिं०] कहना न माननेवाला । बेकहला ।

अकहनी—वि० [हिं० अकह] न कहने योग्य । उ०—जो सब कहनी अकहनी थी' ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६४ ।

अकहुआ(पु)†—वि० दे० 'अकहुवा' ।

अकहुवा(पु)†—वि० [स० अकथ, प्रा० अकह + उवा (प्रत्य०)] जो कहा न जा सके । अकथनीय । उ०—जाकर नाम अकहुवा भाई । ताकर कही रमैनी भाई ।—कबीर (शब्द०) ।

अकाड¹—वि० [स० अकाण्ड] बिना डाली या शाखा का ।

अकाड²—क्रि० वि० अकस्मात् । सहसा । बिना कारण ।

अकाडजात—वि० [स० अकाण्डजात] होते ही मर जानेवाला । जन्मते ही मर जानेवाला ।

अकाडताडव—सज्ञा पुं० [स० अकाण्ड + ताण्डव] १ असामयिक उद्धत नृत्य । आकस्मिक उद्धत नृत्य । उ०—हरिऔध हर के अकाड ताडवो के भये, भाड के समान सारो ब्रह्माड फूटैगो ।—रसक०, पृ० ३५१ २ व्यर्थ की उछल कूद । व्यर्थ की बकवाद । वितडा ।

अकाडपात—वि० [सं० अकाण्डपात] होते ही मर जानेवाला । जन्मते ही मर जानेवाला ।

अकांडपातजात—वि० [स० अकाण्डपातजात] जन्म लेते ही मरने वाला [को०] ।

अकाडशूल—सज्ञा पुं० [स० अकाण्डशूल] आकस्मिक तीव्र पीडा या वेदना [को०] ।

अकात—वि० [स० अकान्त] जो कात न हो । जो सुदर न हो । उ०—हरिऔध कात को अकात अवलोकिहै तो, मृदुल करेजो कुल-कामिनी को छिलिहै ।—रसक०, पृ० २६५ ।

अकाउट—सज्ञा पुं० [अ०] हिसाब । लेखा । हिसाब किताब ।

अकाउटबुक—सज्ञा पुं० [अ०] हिसाब की किताब । बही खाता । लेखा ।

अकाउटेंट—सज्ञा पुं० [अ०] हिसाब जाँचनेवाला । निरीक्षक । मुनीम । लेखा लिखनेवाला ।

अकाज¹—सज्ञा पुं० [स० अकार्य; प्रा० अकज्ज] १ कार्य की हानि । नुकसान । हर्ज । विघ्न । बिगाड । उ०—हरि हर जस राकेस राहु से । पर अकाज भट सहसबाहु से ।—तुलसी (शब्द०) । २, बुरा कार्य । दुष्कर्म । खोटा काम (क्व०) ।

अकाज²—क्रि० वि० [हिं० अ + काज] व्यर्थ । बिना काम । निष्प्रयोजन । उ०—बीति जैहै बीति जैहै जनम अकाज रे ।—तेगबहादुर (शब्द०) ।

अकाजना¹(पु)—क्रि० अ० [हिं० अकाज से नामधातु] १ हानि होना । खो जाना । २ गत होना । जाता रहना । मरना । उ०—सोक विकल अति सकल समाजू । मानहुँ राज अकाजेउ आजू ।—तुलसी (शब्द०) ।

अकाजना²—क्रि० स० अकाज करना । हर्ज करना । हानि करना । विघ्न करना । नुकसान करना ।

अकाजी(पु)—वि० [हिं० अकाज + ई (प्रत्य०)] [स्त्री० अकाजिन अकाजिनी] अकाज करनेवाला । हर्ज करनेवाला । कार्य की हानि करनेवाला । नुकसान करनेवाला । बाधक । विघ्नकारी । उ०—लाज न लागति लाज अहै तुहि जानी मैं आज अकाजिनि एरी ।—देव (शब्द०) ।

अकाट—वि० [हिं० अ + काटय] जिसकी काट न हो । जिसका खडन न हो । अखडनीय (युक्ति तर्क इत्यादि) ।

अकाटय—वि० [स० अ + काटय] न काटने योग्य । जिसका खडन न हो सके । दृढ़ । मजबूत । अटल । उ०—भाई कहने को तक अकाटय तुम्हारा । पर मेरा ही विश्वास सत्य है सारा ।—साकेत पृ० २१६ ।

यौ०—अकाटय युक्ति ।

अकातर—वि० [स०] जो कायर न हो । जो भयभीर न हो । उ०—गति अनाहत तू सखा मत सहज सयत रे अकातर ।—अर्चना, पृ० ८८ ।

अकाथ¹(पु)—क्रि० वि० [स० अकृतार्थ प्रा० अकअत्थ] अकारथ । व्यर्थ । निष्फल । निरर्थक । वृथा । फजूल । उ०—रह्यो न परै प्रेम आतर अति जानी रजनी जात अकाथ ।—सूर (शब्द०) ।

अकाथ²(पु)—वि० [स० अकथ्य] न कहने योग्य । अकथनीय । अनिर्वचनीय । उ०—आपनो त्यो हीरा सो पर के हाथ दजात । दै कै तो अकाथ हाथ मैने ऐसो मन लेहु ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ७४ ।

अकादर†—वि० [स० अकातर] जो कादर न हो । शूरवीर । साहसी । हिम्मतवर ।

अकाम¹—वि० [स०] बिना कामना का । कामनाविहीन । इच्छा-रहित । निस्पृह । उ०—हमरें जान सदा सिव जोगी । अज अनवद्य अकाम अभोगी ।—मानस, १।८६ ।

अकाम²(पु)—क्रि० वि० [स० अ + हि० काम] बिना काम के । निष्प्रयोजन व्यर्थ । उ०—बिना मान नर जगत में धावत फिरे अकाम ।—(शब्द०) ।

अकाम³—सज्ञा पुं० दुष्कर्म । बुरा काम (क्व०) । उ०—गज परघौ घरनि साहन सिंगार । किन्नौ अकाम परताप पार—पृ० रा०, ५।२४ ।

अकामत—क्रि० वि० [स०] अनिच्छापूर्वक । अनचाहे [को०] ।

अकामत—सज्ञा पुं० [अ० इकामत] ठहरने का स्थान । निवास । आवास । उ०—उम्र अपनी रवाँ है तो इकामत से सरोकार । समझे अगर इसान तो दिन रात सफर हैं ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५७४ ।

अकामता--संज्ञा स्त्री० [सं०] काम या इच्छा का अभाव [को०]।

अकामनिर्जरा--संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मत के अनुसार तपस्या से जो निर्जरा या कर्म का नाश होता है उसके दो भेदों मे से एक। यह निर्जरा सब प्राणियों को होती है क्योंकि उन्हे बहुत से क्लेशों को विवश होकर सहना पडता है।

अकामहत--वि० [सं०] जो काम से प्रभावित न हो। अक्षुब्ध। शांत [को०]। जो काम से आहत न हो। [को०]।

अकामा[1]--वि० स्त्री० [सं०] (स्त्री) जिसमे काम का प्रादुर्भाव न हुआ हो। यौवनावस्था के पूर्व की।

अकामा[2]--संज्ञा स्त्री० कामचेष्टा से रहित स्त्री।

अकामी--वि० [सं० अकामिन्] [स्त्री० अकामिनी] १. कामनारहित। इच्छाविहीन। निस्पृह। जिसे किसी बात की आकाक्षा न हो। निस्वार्थ। उ०--भजामि ते पदाबुजम्। अकामिना स्वधामदम्। --तुलसी (शब्द०)। २ जो कामी न हो। जितेंद्रिय।

अकाय--वि० [सं०] १ बिना शरीरवाला। देहरहित। उ०--सत्त पुरुष एक रहै अकाया। अस तास सोइ निरगुन आया।--घट०, पृ० २७४। २ अशरीर। शरीर न धारण करनेवाला। जन्म न लेनेवाला। ३ रूपरहित। निराकार। उ०--मांगत वामन रूप धरि परसत भयौ अकाय। सत्त धर्म सब छांडि के धरयौ पीठ पै पाय।--नद० ग्र०, पृ० १८१।

अकायिक--वि० [सं० अ+कायिक] शरीर से सबध न रखनेवाला। उ०--आज अव्यभिचारिणी निज भक्ति का वरदान दो तो, निज अपार्थिव अति अकायिक स्नेह का स्मरदान दो तो।--अपलक, पृ० ४६।

अकार[1]--संज्ञा पुं० [सं०] अक्षर 'अ'।

अकार[2]--संज्ञा पुं० [सं० आकार] आकार। स्वरूप। आकृति। उ०--बिना अकार रूप नहिं रेखा कौन मिलेगी आय।--कबीर श०, भा० १, पृ० ७४।

अकार[3]--वि० [सं० अ+ हिं० कार = कार्य] क्रियारहित [को०]।

अकारक मिलाव--संज्ञा पुं० [सं० अकारक+हिं० मिलाव] ऐसा रासायनिक मिश्रण या मिलावट जिसमे मिली हुई वस्तुओं के पृथक् गुण बने रहें और ये अलग की जा सकें।

अकारज(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अकार्य] कार्य की हानि। हानि। नुकसान। हर्ज। उ०--(क) आप अकारज आपनो करत कुसगत साथ। पायं कुल्हाड़ी देत है मूरख अपने हाथ।--सभाविलास (शब्द०)। (ख) तातें न मान, समान अकारज जाको अयानु बड़ो अधिकारी, देव कहै कहिंहीं हित की हरि जू सो हितू न कहूँ हितकारी।--देव (शब्द०)।

अकारण[1]--वि० [सं०] १. बिना कारण का। हेतुरहित। बिना वजह का, जैसे, 'ससार मे अकारण प्रीति दुर्लभ होती है'।--(शब्द०)। उ०--'तात!, कहाँ थे? इस बालक पर अकारण क्रोध करके कहाँ छिपे थे?'--स्कद०, पृ० ७८। २. जिसकी उत्पत्ति का कोई कारण न हो। जो किसी से उत्पन्न न हो। स्वयंभू।

अकारण[2]--क्रि० वि० बिना कारण के। बेसबब। व्यर्थ। अनायास। निष्प्रयोजन, जैसे--'क्यों अकारण हँसते हो?' (शब्द०)।

अकारत--वि० दे० 'अकारथ'।

अकारथ[1]--वि० [सं० अकार्यार्थ प्रा० अकारयत्थ, अकारअथ] बेकाम। निष्फल। व्यर्थ। निष्प्रयोजन। फजूल। उ०--बिना व्याह यह तपस्या अकारथ होती है।--सदल मिश्र (शब्द०)।

क्रि० प्र० करना।--होना।

अकारथ[2]--क्रि० वि० व्यर्थ। बेकार। निष्प्रयोजन। फजूल। बेफायदा। उ०--स्वारथ हू न कियो परमारथ यो ही अकारथ बैस बिताई।--पदमाकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०--खोना।--गारना = व्यर्थ ही गलाना या नष्ट करना। उ०--आछो गात अकारथ गारयो। करी न प्रीति कमललोचन सो जन्म जुआ ज्यों हारयो।--सूर (शब्द०)।--जाना उ०--ते दिन गये अकारथै सगति भई न सत।--कबीर (शब्द०)।

अकारन(पु)--वि० दे० 'अकारण'। उ०--जिमि चह कुशल अकारन कोही।--मानस, १।२६७।

अकारना(पु)--क्रि० स० दे० 'करना'। उ०--करि साधन इह साज, व्याधि नासत फल धारिय। गुरु उपदेसह पाइ, सकल आसीम अकारिय।--पृ० रा०, ६।२६।

अकारांत--वि० [सं० अकारान्त] जिसके अत मे 'अ' अक्षर हो [को०]।

अकारादि--वि० [सं०] 'अ' वर्ण से आरभ होनेवाला [को०]।

अकारी(पु)--वि० [सं० अ+कारिन्] १. अनर्थ करनेवाला। अनर्थकारी। उ०--गौर मुष्य वपु स्याम गिरन सम नख्य अकारिय।--पृ० रा०, २।२८७। २ तीक्ष्ण (डिं०)। उ०--आरंभ भति फौज अकारी दिल्लीपति पूगो रहवारी।--राज रू०, पृ० ५६।

अकार्पण्य[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. कृपणता का अभाव। २ दीनता का अभाव [को०]।

अकार्पण्य[2]--वि० जो निम्नता या दीनता दिखाए बिना प्राप्त हो [को०]

अकार्य[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ कार्य का अभाव। अकाज। हर्ज। हानि। २ बुरा कार्य। कुकर्म। दुष्कर्म।

अकार्य[2]--वि० १. जिसका कोई परिणाम न हो। फलरहित। २. अकरणीय। न करने लायक।

अकार्यचिंता--संज्ञा स्त्री० [सं० अकार्यचिन्ता] अनुचित कार्य करने का सोचविचार। अपराध करने की मनोवृत्ति [को०]।

अकाल[1]--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अकालिक] १. अनुपयुक्त समय। अनवसर। अनियमित समय। ठीक समय से पहले या पीछे का समय। उ०--तूं रहि, हौं हा सखि! लखौं, चढि न अटा, बलि बाल। सबहिनु बिनु ही ससि उदय, दीजतु अरघु अकाल।--बिहारी र०, दो० २६८। २. दुष्काल। दुर्भिक्ष। महँगी। कहत। जैसे--'भारतवर्ष मे कई बार अकाल पड़ चुका है।'--(शब्द०)।

क्रि० प्र०--पड़ना।

३. घाटा। अत्यधिक कमी। न्यूनता। जैसे -- यहाँ कपड़ों का अकाल नहीं है।'--(शब्द०)। ४. अशुद्ध समय (ज्यो०)।

अकाल[२]--वि॰ १ जो काला न हो। श्वेत। २ अनवसर का। असामयिक [को॰]।

अकालकुसुम--[सं॰] १ बिना समय या ऋतु मे फूला हुआ फूल। उ॰--भयदायक खल के प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी।--मानस, ३।१८।

विशेष--यह दुर्भिक्ष या उपद्रवसूचक समझा जाता है। २ असमय मे किसी वस्तु की प्राप्ति या दिखाई पड़ना (लाक्ष॰)। ३ बेसमय की चीज।

अकाल कुष्माड--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अकाल कुष्माण्ड] १ असमय या बेमौसम का कुम्हड़ा। २ वह कुम्हड़ा जो बलिदान के काम न आए। ३ बेकार वस्तु। ४ व्यर्थ या निरर्थक जन्म [को॰]।

अकाल कूष्माड--संज्ञा पु॰ [सं॰ अकालकूष्माण्ड] दे॰ 'अकाल कुष्माड' [को॰]।

अकालज--वि॰ [सं॰] दे॰ 'अकालजात' [को॰]।

अकालजलद--संज्ञा पुं॰ [सं॰] असामयिक मेघ। असमय के बादल। उ॰--सुखदेव चौबे ने अकालजलद की तरह उसके सयम के दिन को मलिन कर दिया था।--तितली, पृ॰ १५३।

अकालजलदोदय--संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ असमय मेघों का छा जाना। २ कुहरा [को॰]।

अकालजात--वि॰ [सं॰] जो नियत समय पर उत्पन्न न हो [को॰]।

अकालज्ञ--वि॰ [सं॰] काल या समय के ज्ञान से रहित। कालज्ञानविहीन [को॰]।

अकालपक्व--वि॰ [स॰] समय से पूर्व पका हुआ [को॰]।

अकालपुरुष--संज्ञा पुं॰ [स॰ अकाल + पुरुष] परमात्मा। ईश्वर (सिख)।

अकालभृत्--संज्ञा पुं॰ [स॰] स्मृति के अनुसार १५ दासो मे से एक। दास बनाने के लिये जिसकी रक्षा दुर्भिक्ष मे की गई हो। अकाल मे मिला हुआ दास।

अकालमूर्ति--संज्ञा स्त्री॰ [स॰] पुरुष जिसकी स्थापना काल या समय मे न हो सके। नित्य। अविनाशी।

अकालमृत्यु--संज्ञा स्त्री [स॰] बेसमय की मृत्यु। ठीक समय से पहले की मृत्यु। थोड़ी अवस्था का मरना। अनायास मृत्यु। असामयिक मृत्यु। उ॰--अकालमृत्यु सो मरे। अनेक नर्क मों परे।--राम च॰, पृ॰ १६६।

अकालमेघोदय--संज्ञा पुं॰ [स॰] दे॰ 'कालजलदोदय' [को॰]।

अकालवृद्ध--वि॰ [स॰] समय से पूर्व वृद्ध होनेवाला [को॰]।

अकालवेला--संज्ञा स्त्री॰ [स॰] १, उचित या नियत समय का अभाव। २ बुरा समय [को॰]।

अकालसह--वि॰ [स॰] १ जो देर या विलब न सह सके। अधीर। २ जो अधिक समय तक आक्रमण न सह सके [को॰]।

अकालिक--वि॰ [सं॰] असामयिक। बिना समय का। बेमौके का।

अकाली--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अकाल + ई (प्रत्य॰)] नानकपथी साधु जो सिर मे चक्र के साथ काले रग की पगड़ी बाँधे रहते हैं।

अकालोत्पन्न--वि॰ [सं॰] जो समय से पूर्व उत्पन्न हुआ हो [को॰]।

अकाल्य--वि॰ [स॰] असामयिक। असमय का [को॰]।

अकाव--संज्ञा पुं॰ [स॰ अर्क, प्रा॰ अक्क] आक। मदार।

अकाश(पु)--संज्ञा पुं॰ दे॰ 'आकाश'। उ॰--टेरि कर तू गमने महि माही। मैं आकाश ह्वै चलौं तहाँहीं।--रामरसिका॰, पृ॰ ८५६।

अकास--संज्ञा पुं॰ दे॰ 'आकाश'। उ॰--रामचरन अवलबन बिनु परमारथ की आस। चाहत बारिद बूँद गहि तुलसी चढन आकास।--स॰ सप्तक, पृ॰ ४।

मुहा॰--अकाश गहना = अनहोनी या असभव बात करना। उ॰--बातनि गहौ अकास, सुनहि न आवै माँग। बोलो तो कछू न आवै ताते मौन गहिय।--सूर (राधा॰), १२७३। अकास बाँधना = असभव काम करने की कोशिश करना।

अकासकृत--संज्ञा पुं॰ [सं॰ आकश + कृत] बिजली (अनेका॰)।

अकासदीया--संज्ञा पुं॰ [स॰ आकाशदीपक] वह दीपक या लालटेन जो बाँस के ऊपर आकाश मे लटकाया जाता है। आकाशदीप।

अकासनदी(पु)--संज्ञा स्त्री॰ दे॰ 'आकाशनदी'। उ॰--उछलै जल उच्च अकास चढ़ै जल जात दिसा विदिमान मढ़ै। जनु सिधु अकासनदी अरि कै, बहु भाँति मनावत पाँ परि कै।--राम च॰, पृ॰ १०६।

अकासनीम--संज्ञा पुं॰ [स॰ आकाशनिम्ब] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ बहुत सुदर होती हैं। उ॰--कुहरा झीना और महीन, झर झर पड़े अकासनीम।--हरी घास॰, पृ॰।

अकासबानी(पु)--संज्ञा स्त्री॰ दे॰ 'आकाशवाणी'। उ॰--परसत जबहिं लाग महिपाला। भै अकासबानी तेहि काला।--मानस, १।१७३।

अकासबेल--संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ आकाश + वेल्लि] अमरबेलि। अमरबेल। आकाशबौर।

अकासवादी(पु)--संज्ञा स्त्री॰ दे॰ 'अकासवानी'। उ॰--दस हत्यी सुविहान साहि गोरी मुख दिन्नों। कर अकासवादी ततार चवकोद सदिन्नो।--पृ॰ रा॰, २७।१२५।

अकासी--संज्ञा स्त्री॰ [स॰ आकाश] १. चील नामक पक्षी।

यौ॰--धोरी अकासी या सफेद अकासी = एक प्रकार की चील जिसे क्षेमकरी भी कहते हैं। इसका सिर सफेद और शेष सारे अग लाल होते हैं इसका दर्शन शुभ माना गया है। उ॰--बाँएँ अकासी धोरी आई।--जायसी (शब्द॰)।

२ ताड के वृक्ष या फलों का रस। ताड़ी।

अकाह(पु)--वि॰ दे॰ 'अकाथ[२]'। उ॰--कबहूँ यो वियोग विथा को सहै जो जोगिन हूँ कों अकाह-सी है।--ठाकुर॰, पृ॰ १०।

अकिंचन[१]--वि॰ [स॰ अकिञ्चन] १ जिसके पास कुछ न हो। निर्धन। धनहीन। दीन। कगाल। दरिद्र। गरीब। मुहताज। उ॰--देख अकिंचन जगत लूटता तेरी छवि भोली भाली।--कामायनी, पृ॰ ४०। २ आवश्यकता से अधिक धन का सग्रह न करनेवाला। परिग्रहत्यागी। ३. जिसे भोगने के लिये कुछ कर्म न रह गए हों। कर्मशून्य।

अकिंचन[२]--संज्ञा पुं॰ १ निर्धन मनुष्य। गरीब आदमी। दरिद्र मनुष्य। २. जैन मत के अनुसार परिग्रह का त्याग या ममता से निवृत्ति जो दस प्रकार के साधुधर्मों में से एक है। ३ वह वस्तु जिसका कुछ मूल्य न हो (को॰)।

अकिंचनता—संज्ञा स्त्री० [सं० अकिञ्चनता] १ दरिद्रता। गरीबी। निर्धनता। उ०—हरिग्रीध कैसे अकिंचनता तृनावली में लसति हरीतिमा विभूतिवती महती।—रस क० पृ० ३३१। २ परिग्रह का त्याग जो योग का एक यम है।

अकिंचनत्व—संज्ञा पुं० [सं० अकिञ्चनत्व] १ निर्धनता। गरीबी २ अपरिग्रह (जैन) [को०]।

अकिंचिज्ज्ञ—वि० [सं० अकिञ्चिज्ज्ञ] जो कुछ न जानता हो। ज्ञान शून्य [को०]।

अकिंचितकर—वि० [सं०अकिञ्चित्कर] १ जिसका किया कुछ न हो। असमर्थ। २ तुच्छ। अशक्त। उ०—जो अकिंचितकर था वह भी अपरूप हो गया।'—टैगोर०, पृ० २४।

अकि(पु)†—अव्य [हिं० कि] या। अथवा। कि। उ०—(क) पातक शत्रु विनाशकरी अकि राघव की उघरी तरवार है।—श्री भक्त०, पृ० ५७६। (ख) आगि जरौ अकि पानी परौ अब कैसी करौ हिय का विधि धीरौं।—घनानंद, पृ० १२७।

अकितव—वि० [सं०] १ जो जुआरी न हो (को०)। २ निश्छल। सरल [को०]।

अकिति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अकीर्ति] अपयश। अकीर्ति। उ०—क्रम बढ्ढत बढ्ढै अकिति। अकिति बढ्ढहि वक दिज्जै।—पृ० रा०, ६१।१५६२।

अकिन(पु)—संज्ञा दे० 'यकीन'। उ०—आरति बुद अकिन जब वारा। सुरति बिसुरति गयो सब भारा।—गुलाल०, पृ० १०६।

अकिल(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अक्ल'। उ०—(क) अकिल आरसी लै के सजनी पिया को रूप निहार हो।—कबीर श०, पृ० १३५। (ख) 'मियाँ साहब ने उत्तर दिया, भाई बात तो सच है, खुदा ने हमें भी अकिल दी है'।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६७७।

यौ०—अकिल अजीरन = बुद्धि का अजीर्ण। बुद्धिहीनता। उ०—चूरन खाते लाला लोग, जिनको अकिल अजीरन रोग।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६६३।

अकिलदाढ—संज्ञा स्त्री० [हिं० अकिल + दाढ] वह दाँत जो मनुष्यों के वयस्क होने पर ३२ दाँतों के अतिरिक्त निकलता है।

विशेष—कहते हैं इस दाँत के निकलने पर मनुष्य का लड़कपन जाता रहता है और वह समझदार हो जाता है।

अकिलबहार—संज्ञा पुं० [अ० अकीलकुल बह्र] वैजयंती का पौधा या दाना

अकिलवान(पु)†—वि० [हिं० अकिल + वान] बुद्धिमान्। अक्लवाला। अक्लमंद। उ०—सखा दरद को री हरी, हरी को दरद खास। सदा अकिलवानै गनै गनै वाल किय दास।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० २०७।

अकिला(पु)—वि० [स्त्री० अकिली] दे० 'अकेला १'। उ०—(को०) अकिले घूमत तर अस अधे।—नंद० ग्रं० पृ० १४०। (ख) अकिली बन घन बसि न डेराई।—नंद० ग्रं० पृ० १४०।

अकिल्विष¹—वि० [सं०] १ पापशून्य। निष्पाप। पवित्र। २ निर्मल। शुद्ध।

अकिल्विष²—संज्ञा पुं० पापशून्य मनुष्य। शुद्ध प्राणी।

अकीक—संज्ञा पुं० [अ० अकीक] एक प्रकार का प्रायः लाल बहुमूल्य पत्थर या नगीना।

विशेष—इसपर मुहर भी खोदी जाती है। यह बबई, बाँदा और खभात से आता है। इसकी कई किस्में यमन और बगदाद से भी आती हैं।

अकीदत—संज्ञा स्त्री० [अ० अकीदत] श्रद्धा। आस्था। उ०—'मौलाना ने कृष्ण से अपनी अकीदत का इजहार किया था।'—गोदान, पृ० २५।

अकीदतमद—वि० [अ० अकीदत + फा० मद] श्रद्धावान्। श्रद्धायुक्त। श्रद्धालु [को०]।

अकीदा—संज्ञा पुं० [अ० अकीदह्] श्रद्धा। विश्वास। उ०—दर्द दिवाने बावरे अलमस्त फकीरा। एक अकदा लै रहे ऐसे मन धीरा।—मलूक० पृ० ६।

अकीधा(पु)—वि० [सं० अकृत] बिना किया हुआ। न किया हुआ। उ०—जिम सिणगार अकीधै मोहति प्री अ.गमि जाणियै प्रिया।—वेलि० दू० २२८।

अकीन(पु)†—संज्ञा पुं० [अ० यकीन] विश्वास। श्रद्धा। उ०—अकीन इमान जौहर जाहीर दोजक सवाल ना डारियै रे।—सं० दरिया, पृ० ६८।

अकीरति(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अकीर्ति'।

अकीर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अयश। अपयश। बदनामी।

अकीर्तिकर—वि० [सं०] अकीर्ति करनेवाला। अपयश देनेवाला। बदनाम करनेवाला। अपयश का भागी बनानेवाला। जिससे बदनामी हो।

अकीर्त्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अकीर्ति'।

अकुठ—वि० [सं० अकुण्ठ] १ जो कुठित या गुठला न हो। तेज। चोखा। २ तीव्र। तीक्ष्ण। खरा। उ०—गएउ गरुड जहँ बसइ भुसुंडी। मति अकुंठ हरि भगति अखंडी।—तुलसी (शब्द०)। ३. उत्तम। श्रेष्ठ। उ०—जीवत ही त्रिलोक जीवत हौ शिवलोक जीवत बैकुंठ लोक जो अकुंठ गायो हैं।—सुदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६२३। ४ कार्यक्षम। शक्तिशाली (को०)। ५ नवीन। शाश्वत। नित्य (को०)

अकुठधिष्ण्य—संज्ञा पुं० [सं० अकुण्ठधिष्ण्य] नित्य निवास। स्वर्ग [को०]।

अकुठि—वि० [सं० अकुण्ठ] दे० 'अकुठ'।

अकुठित—वि० [सं० अकुण्ठित] १ जो कुठित न हो। तेज। उ०—परम अकुठित विरोधिनी सकठता की, कुलिस सी कठिन कठोरता मैं ढाली है।—रसक०, पृ० ३१३। २. जिसे टाला न जा सके। अटल। उ०—हैं दानव दल दहन खल खडन ए। अरि-कुल कठ-कुठार अकुठित व्रत धरे।—पारिजात, पृ० ७।

अकुचना(पु)—क्रि० अ० [सं० आकुञ्चन] आकुचित होना। सकुचित होना। उ०—काहे को पीय सकुचत हौ। अब ऐस जिनि काम करौ कहुँ जो अति ही जिय अकुचत हौ।—सूर०, १०।२७३२।

अकुटिल—वि० [सं०] १. जो कुटिल या टेढा न हो। सीधा। सरल। २ साफ दिल का। निष्कपट। निश्छल। भोला भाला। सीधा साधा।

अकुटिलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुटिलता का अभाव। सिधाई। २. सादापन। निष्कपटता।

अकुठाना(पु)--[स० कुण्ठन] शिथिल होना । सुस्त होना । उ०--का सों कहों कहे को मानै अग अग अकुठाई।--धरनी० वा०, पृ० ५ ।

अकुताना(पु)--क्रि० अ० दे० 'उकताना'। उ०--पलटू कीनो कछु कहँ तनिकौ ना अकुताहि।--पलटू०, भा० १, पृ० १२।

अकुतोभय--वि० [स०] जिसे किसी से अथवा कहीं भय न हो। निर्भय। निडर [को०]।

अकुत्सित--वि० [स०] जो निंदित वा निम्न न हो [को०]।

अकुप्य--सज्ञा पुं० [स०] १ जो धातु निम्न श्रेणी की न हो, सोना या चाँदी। २ कोई भी साधारण धातु, तांबा, पीतल आदि [को०]।

अकुप्यक--सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अकुप्य' [को०]।

अकुमार१--वि० [स०] जो कुमार या बालक न हो। वयस्क। प्राप्तवय [को०]।

अकुमार२--सज्ञा पुं० इद्र [को०]।

अकुल१--वि० [स०] १ जिसको कुल मे कोई न हो। कुलरहित। परिवारविहीन। उ०--निर्गुन निलज कुवेप कपाली। अकुल अगेह दिगबर ब्याली।--मानस, १।७।६ २ बुरे कुल का। नीच कुल का। अकुलीन। उ०--अकुल कुलीन होत, पाँवर प्रवीन होत, दिन होत चक्कवै चलत छत्रछाया के।--देव, (शब्द०)।

अकुल२--सज्ञा पुं० १ बुरा कुल। नीच कुल। बुरा खानदान। २. परम तत्व। शिव। उ०--अकुल शरनि पूरी मति होय।--प्राण०, पृ० १८१।

अकुलता--सज्ञा स्त्री० [स०] कुल की निम्नता [को०]।

अकुला--सज्ञा स्त्री० [सं०] गिरिजा। पार्वती [को०]।

अकुलात(पु)--वि० [स० आकुल] अकुलता से युक्त। व्याकुल। उ०--गज्जि भग्ग प्रथिराज चित्त करयौ अकुलात।--पृ० रा०, २७।१२७।

अकुलाना--क्रि० अ० [स० आकुलन] १. ऊबना। जल्दी करना। उतावला होना। उ०--(क) 'चलते हैं, क्यों अकुलाते हो' (शब्द०)। (ख) पुनि पुनि मुनि उकसहि अकुलाहीं।--मानस, १।१३५। २ घबड़ाना। व्याकुल होना। व्यग्र या बेचैन होना। दुखी होना। उ०--(क) अतिसै देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी।--मानस, १।१८३। (ख) इन दुखिया अँखियानु कौं सुख सिरजोई नाँहि। देखैं बनै न देखतै अनदेखे अकुलाँहि।--बिहारी र०, दो ६६३। ३. विह्वल होना। मग्न होना। लीन होना। आवेग में आना। उ०--बोलि गुरु भसुर समाज सों मिलन चले, जानि बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं।--तुलसी ग्र०, पृ०, २६६।

अकुलिनी(पु)--वि० स्त्री० [स० अकुलीना] जो कुलवती न हो। कुलटा। व्यभिचारिणी।

अकुलीन--वि० [स०] १ बुरे कुल का। नीच कुल का। तुच्छ वंश मे उत्पन्न। कमीना। क्षुद्र। उ०--कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ कोऊ कहौ रंकिनि कलंकिनी कुनारी हौं।--ब्रजमाधुरी,० पृ० ३१४। २. धरती से असबद्ध। अपार्थिव (को०)।

अकुशल१--सज्ञा पुं० [सं०] १ अमगल। अशुभ। बुराई। अहित। २ बुरा शब्द। अपशब्द (को०)।

अकुशल२--वि० १. जो दक्ष न हो। अनिपुण। अनाड़ी। २ भाग्यहीन। अभागा (को०)। ३ अप्रिय (को०)।

अकुशलधर्म--सज्ञा पुं० [स०] बौद्ध धर्मानुसार प्राणियों का पाप करने का स्वभाव।

अकुसल(पु)--वि० दे० 'अकुशल-१' उ०--कहै या भाँति, चितैरनि लौं लिखिबै मैं अकुशल।--रत्नाकर, भा० १, पृ० ३१।

अकुसीद--वि० [स०] सूद न लेनेवाला। लाभ न लेनेवाला [को०]।

अकुसुम--वि० [सं०] पुष्पहीन। बिना फूल का [को०]।

अकुह--सज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो धोखा नहीं देता। ईमानदार व्यक्ति [को०]।

अकुहक--वि० [स०] दे० 'अकुह' [को०]।

अकूज--वि० [स०] चुप। कूजन रहित। शांत [को०]।

अकूट--वि० [स०] [स्त्री० अकूटा] १ जो प्राकृतिक हो। अकृत्रिम। दिव्य। अलौकिक। उ०--उतर को देइ देव मरि गएऊ। सगद अकूट मँडप महँ भएऊ।--जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २५०। २ जो व्यर्थ न हो। अमोघ (शस्त्र) (को०)। ३ जो खोटा या नकली न हो (सिक्का) (को०)।

अकूत--वि० [स० अ + हिं० कूतना] जो कूता न जा सके। जिसकी गिनती या परिमाण न बतलाया जा सके। बेअंदाज। अपरिमित। अगणित। उ०--धन्य भूमि, ब्रजवासी धनि धनि, आनंद करत अकूत।--सूर०, १०।३६।

अकूपार१--सज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। २ वह कच्छप जो पृथ्वी के नीचे माना जाता है। बड़ा कछुआ। ३. पत्थर या चट्टान। ४ सूर्य (को०)।

अकूपार२--वि० १. अच्छे परिणाम या फल से युक्त। शुभ परिणाम वाला (को०)। २ असीम। अपरिमित (को०)।

अकूफ--(पु) सज्ञा पुं० [अ० वुकूफ] ज्ञान। बुद्धि। समझ। उ०--तिल मे बास केहु नहि जाना। कोइ अकूफ हीं सो पहचाना।--सत० दरिया, पृ० ४१।

अकूर(पु)--सज्ञा पु० दे० 'अकुर'। उ०--पुनि यहँ अकूर नाहीं कर प्रेम हिलूर बरषाशी।--सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० २४१।

अकूर्च१--वि० [सं०] १ कपट या धोखा न करनेवाला। अकपटी। २ गजा। खल्वाट। ३. जिसे दाढ़ी न हो [को०]।

अकूर्च२--सज्ञा पुं० बुद्ध [को०]।

अकूल--वि० [सं० अ + कूल] १ जिसका किनारा या ओर छोर न हो। उ०--आकुल अकूल बनने आती, अब तक तो है वह आती।--लहर, पृ० १३। २ अनत। असीम। उ०--सबी मैं हो गया अकूल वा, भूल गया निज सीमा।--अनामिका, पृ० ६६।

अकूवार--सज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अकूपार' [को०]।

अकूहल(पु)--वि० [देश०] बहुत अधिक। असख्य। उ०--खेलत हँसत करत कोतूहल। जुरे लोग जहँ तहाँ अकूहल।--सूर (शब्द)।

अकृच्छ्र¹--संज्ञा पुं०, [स०] १ क्लेश का अभाव। २ आसानी। सुगमता। असकोच।

अकृच्छ्र²--वि० १ क्लेशशून्य। जिसे किसी प्रकार का सकोच या कष्ट न हो। २ आसान। सुगम।

अकृच्छ्री--वि० [स०] कठिनाई और भय या घबराहट से मुक्त। क्लेश-विहीन [को०]।

अकृत¹--वि० [स०] १ बिना किया हुआ। असपादित। २ अन्यथा किया हुआ। अडबंड किया हुआ। बिगड़ा हुआ। ३ जो किसी का बनाया न हो। नित्य। स्वयभू। ४ प्राकृतिक। ५ जिसकी कुछ करनी या करतूत न हो। निकम्मा। बेकाम। कर्महीन। बुरा। मद। उ०--नाहीं मेरे और कोउ बलि, चरन कमल बिनु ठाउँ। हौं असौच, अकृत, अपराधी सनमुख होत लजाउँ।--सूर (शब्द०)। ६ कच्चा। अपक्व (भोजन) (को०)। ७ अविकम्पित। जो विकम्पित न हो (को०)।

अकृत²--संज्ञा पुं० १ कारण। २ मोक्ष। ३ स्वभाव। प्रकृति। ४ जो पूर्ण न किया गया हो। अधूरा या अपूर्ण कार्य (को०)।

अकृतकार--क्रि० वि० ऐसे ढग से जो पहले न किया गया हो [को०]।

अकृतकार्य--वि० [स० अ + कृतकार्य = सफल] असफल। विफल। उ०--'चाबी मुझे कहीं मिली नहीं। अकृतकार्य होकर मैं बेचैन हो आई'।--सुखदा, पृ० १६६।

अकृतकाल--वि० [स०] आधि या गिरवी के दो भेदों में से एक। जिसके लिये काल नियत न हो। जिसके लिये कोई समय या मियाद न बाँधी गई हो। बेमियाद।

विशेष--धर्मशास्त्र में आधि या गिरवी के दो भेद किए गए गए हैं जिनमे एक अकृतकाल है अर्थात् जिसका रखनेवाला वस्तु के छुड़ाने के लिये कोई अवधि नहीं बाँधता। गैरमियादी (रेहन)।

अकृतचिकीर्षा (सधि)--संज्ञा स्त्री० [स०] साम आदि उपायों से नई सधि करना तथा उसमे छोटे, बड़े और समान राजाओं के अधिकारों का उचित ध्यान रखना।

अकृतज्ञ--वि० [स०] १ जो कृतज्ञ न हो। किए हुए उपकारों को जो न माने। कृतघ्न। नाशुकरा। २ अधम। नीच।

क्रि० प्र०--होना।

अकृतज्ञता--संज्ञा स्त्री० [स०] उपकार न मानने का भाव। कृतघ्नता। नाशुक्रगपन।

क्रि० प्र०--करना--होना।

अकृतधी--वि० [स०] अपरिपक्व बुद्धिवाला [को०]।

अकृतबुद्धि--वि० [स०] अनजान। अज्ञ। अपरिपक्व बुद्धि। उ०--असहाय (सहायकों--मंत्रियों--से रहित), मूढ, लुब्ध, अकृतबुद्धि और विषयासक्त (राजा) उग्र (दड) का न्याय से सचालन नहीं कर सकता'।--भा० इ० रू०, पृ० ६६५।

अकृतबुद्धित्व--संज्ञा पुं० [स०] अज्ञान। अज्ञता [को०]।

अकृतव्रण--वि० [स०] जिसे घाव या व्रण न हो [को०]।

अकृतशुल्क-- वि० [स०] १ जिसने महसूल या चुंगी न दी हो। २. जिसपर महसूल न लगा हो (माल)।

अकृता--संज्ञा स्त्री० [स०] वह लड़की जो पुत्र के अधिकारवाली मान ली गई हो।

अकृतात्मा--वि० [स०] अपरिपक्व मतिवाला। अज्ञ। असयत। उ०--'दंड का बड़ा तेज है, अकृतात्मा उसे धारण नहीं कर पाते'।--भा० इ० रू०, पृ० ६६५। २ ब्रह्म को न जानने वाला। जो ब्रह्मज्ञ न हो (को०)।

अकृताभ्यागम--संज्ञा पुं० [स०] बिना किए हुए कर्मफल की प्राप्ति।

विशेष--न्याय या तर्कशास्त्र में यह दोष माना गया है।

अकृतार्थ--वि० [स०] १. जिसका कार्य न हुआ हो। जिसका कार्य पूरा न हुआ हो। अकृतकार्य। २ जिसको कुछ फल न मिला हो। फल से वंचित। फलरहित। ३ काम में अदक्ष। अपटु। अकुशल।

अकृतार्थता--संज्ञा स्त्री० [स०] असफलता। विफलता। उ०--'असत-कर्ता कलालक्ष्मी का अपमान करती है और कलालक्ष्मी उसका बदला अकृतार्थता देकर लेती है।'--टैगोर० पृ० ४१।

अकृतास्त्र--वि० [स०] जो अस्त्र का प्रयोग करने में कुशल न हो [को०]।

अकृतित्व--संज्ञा पुं० [स०] अकर्मण्यता [को०]।

अकृती¹--वि० [स० अकृतिन्] [स्त्री० अकृतिनी] काम न करने योग्य। निकम्मा। उ०--कहाँ जायँ, क्या करें, अभागे अकृती हम ये?--साकेत, पृ० ४०७।

अकृती²--संज्ञा पुं० वह आदमी जो किसी काम लायक न हो। निकम्मा मनुष्य।

अकृतैनस् --वि० [स०] निष्पाप। निरपराध [को०]।

अकृतोद्वाह--वि० [स०] अविवाहित [को०]।

अकृत्त--वि० [स०] जो कटा न हो। जिसमें कोई काट छाँट न की गई हो [को०]।

अकृत्य¹--संज्ञा पुं० [स०] बुरा काम। अपराध।

अकृत्य²--वि० जो करने योग्य न हो। अकरणीय [को०]।

अकृत्यकारी--वि० [स०] अकृत्य करनेवाला। दुष्कर्मी [को०]।

अकृत्रिम--वि० [स०] १ अपने आप उत्पन्न। प्रकृतिसिद्ध। बे बना-वटी। प्राकृतिक। नैसर्गिक। स्वाभाविक। २. असली। सच्चा। यथार्थ। वास्तविक। ३ हार्दिक। आतरिक। जैसे--'हमारा उसके ऊपर अकृत्रिम प्रेम है।' (शब्द०)।

अकृत्स्न --वि० [स०] जो पूरा या समग्र न हो। अपूर्ण [को०]।

अकृप--वि० [स०] कृपारहित। निर्दय। निष्ठुर [को०]।

अकृपण--वि० [स०] जो कृपण या कजूस न हो। उदार [को०]।

अकृपणता--संज्ञा स्त्री० [स०] कृपणता का अभाव। उदारता [को०]।

अकृपा--संज्ञा स्त्री० [स०] कृपा का अभाव। कोप। क्रोध। नाराजी। उ०- 'पश्चिमोत्तर प्रदेश पर अधिकतर परमेश्वर की अकृपा प्रतीत होती है।'--प्रेमघन, भा० २, पृ० ५१।

अकृपालु--संज्ञा पुं० [स० अ + कृपालु] जो कृपालु न हो। कृपारहित। निर्दय। उ०--दीनबधु दूसरो कहँ पावौं? प्रभु अकृपालु,

कृपाल, प्रलायक जहँ जहँ चितहिं डोलावों ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४७ ।

अकृश– वि० [सं०] कृशतारहित । स्वस्थ । भरापूरा । उ०—जीवन मे पुलकित प्रणय सदृश, यौवन की पहली कांति अकृश ।—झरना, पृ० १० ।

अकृशलक्ष्मी¹—वि० [सं०] प्रभूत लक्ष्मीवाला । समृद्ध । सपन्न । वैभवशाली [को०] ।

अकृशलक्ष्मी²—संज्ञा स्त्री० अत्यधिक समृद्धि या ऐश्वर्य [को०] ।

अकृषीवल—वि० [सं०] जो खेतिहर न हो । गैर किसान । कृषकेतर [को०] ।

अकृष्ट¹—वि० [सं०] १ जो जुता न हो । जो खींचा न गया हो । जो जोता न गया हो [को०] ।

अकृष्ट²—संज्ञा पुं० वह भूमि जो जोती न जाती हो । परती भूमि [को०] ।

अकृष्टपच्य—वि० [सं०] [स्त्री० अकृष्टपच्या] बिना जोती हुई भूमि मे पैदा होने और पक जानेवाला । जो बिना जोते पैदा हो । उ०—फसलें दो प्रकार की थीं, कृष्टपच्य जो खेत से उत्पन्न हों, अकृष्टपच्य जैसे नीवार आदि जंगली धान्य ।—पाणिनि०, पृ० २०५ ।

अकृष्टपच्या—वि० [सं०] १ (विशेषत भूमि) जो बिना जोते हुए धान्य, फल आदि पैदा करे । २ अत्यधिक उपजाऊ । बहुत उपजाऊ [को०] ।

अकृष्टरोही—वि० [सं०] अकृष्ट या परती भूमि मे स्वत उगने या अकुरित होनेवाला [को०] ।

अकृष्ण¹—वि० [सं०] १ जो कृष्ण या काला न हो । श्वेत । सफेद २ शुद्ध । निर्मल [को०] ।

अकृष्ण²—संज्ञा पुं० निष्कलक चाँद [को०] ।

अकृष्णकर्मा– वि० [सं०] काला (पाप) कर्म न करनेवाला । निर्दोष । निरपराध । निष्पाप । पुण्यात्मा [को०] ।

अकेतन—वि० [सं०] बिना घरबार का । खानबदोश । बेठिकाना ।

अकेतु—वि० [सं०] १ जिसका कोई चिह्न न हो । आकारशून्य । २. अपरिचेय । जिसकी पहचान न हो सके [को०] ।

अकेल(पु)—वि० दे० 'अकेला' । उ०—रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु ।—मानस, १।१७० ।

अकेला¹—वि० [सं० एकल, प्रा० अयकेल्लय, एकल्लय] [स्त्री० अकेली] जिसके साथ कोई न हो, बिना साथी का । दुकेले का उलटा । एकाकी । तनहा, जैसे—'वह अकेला आदमी इतनी चीजें कैसे ले जायेगा' (शब्द०) । उ० –मैं अकेला, देखता हूँ आ रही, मेरे दिवस की सांध्य वेला ।—अणिमा, पृ० २० ।

मुहा०—अकेला चना भाड नहीं फोडता = एकाकी या अकेले व्यक्ति द्वारा बडा काम न होना । अकेला हँसता भला न रोता = एकाकी या तन्हा किसी प्रकार बात न बन पडना ।

२ अद्वितीय । यकता । निराला, जैसे—'वह इस हुनर मे अकेला है ।'—(शब्द०) ।

यौ०—अकेला दम = एक ही प्राणी । बिलकुल एकाकी । जैसे—'हमारा तो अकेला दम है, जब तक जीते हैं खर्च करते हैं ।'—(शब्द०) । अकेला दुकेला = (१) एक या दो । इक्का दुक्का । (२) एकाकी ।

अकेला²—संज्ञा पुं० निराला । एकांत । शून्य स्थान । निर्जन स्थान; जैसे—'वह तुम्हें अकेले मे पावेगा तो जरूर मारेगा' (शब्द०) ।

अकेली—वि० स्त्री० १ दे० 'अकेला—१' । उ०—अकेली भूलि परी बन माहिँ ।—सूर०, १०।१९०४ । २ केवल । सिर्फ । मात्र । उ०—इद्रिन सहित चित्त है लै गए रही अकेली हमहीं ।—सूर०, १०।२०६६ ।

मुहा०—अकेली लकडी भी नहीं जलती = अकेले कोई भी काम नहीं हो सकता ।

यौ०—अकेली कहानी = एक पक्ष की ओर से किसी ऐसे समय कही गई बात जब उसको काटनेवाला दूसरे पक्ष का कोई न हो । एकतरफा बात । एकपक्षीय वार्ता, जैसे—'अकेली कहानी गुड से मीठी' (शब्द०) । अकेली दुकेली = दे० 'अकेला दुकेला', जैसे—कोई अकेली दुकेली सवारी मिले तो बैठा लेना (शब्द०) अकेली जान = दे० 'अकेला दम' ।

अकेले—क्रि० वि० [हिं० अकेला] १ किसी साथी के बिना । एकाकी । आप ही आप । तनहा । उ०—अदेखे अकेले बिते दिन ह्वै गए, चाहे गई चित सो कहि मोऊ ।—ठाकुर० प०७ । २ मात्र । सिर्फ । केवल, जैसे—'अकेले चिट्ठी लिखने मे काम न चलेगा' (शब्द०) ।

यौ०—अकेले अकेले = अलग अलग । उ०—बिना समाजबद्ध हुए देश की दशा सुधारने का प्रयत्न अकेले अकेले व्यर्थ होगा' —प्रेमघन० भा० २, पृ० २७१ । अकेले दम = दे० 'अकेला दम', जैसे—'हम तो अकेले दम हैं, चाहे जहाँ रहें' (शब्द०) । अकेले दुकेले = दे० 'अकेला दुकेला' । उ० –किंतु जहाँ अकेले दुकेले या थोडे आदमी कोई नया धधा अख्तियार करते ... ' —भा० इ० रू०, पृ० १०२१ ।

अकेश—वि० [सं०] १ बिना केश का । केशरहित । २ अल्पकेश । थोडे केशवाला । ३ बुरे या असुदर बालोंवाला [को०] ।

अकेहरा†—वि० दे० 'एकहरा' ।

अकैतव¹—संज्ञा पुं० [सं०] कपट का अभाव । निष्कपटता । सिधाई ।

अकैतव —वि० कपटरहित । सीधा । छलहीन [को०] ।

अकैया†—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष = प्रा० अक्ख, अक्क, हिं० अक + ऐया (प्रत्य०)] वस्तु लादने के लिये थैला या टोकरा । खुर्जी । गोन । कजावा ।

अकोट¹(पु)—वि० [सं० कोटि] करोडों । असख्य । उ०—बाजे तबल अकोट जुझाऊ । चढा कोप सब राजा राऊ ।—जायसी (शब्द०) ।

अकोट²—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्गीफल का वृक्ष या सुपारी [को०] ।

अकोढई†—संज्ञा स्त्री० [सं० अकठोर = सरल, + ई (हिं० प्रत्य०)] वह भूमि जो सींचने से बहुत जल्दी भर जाती है । वह भूमि जिसमे पानी ठहरा रहता है ।

अकोतरसौ¹(पु)—वि० [सं० एकोत्तरशत] सौ के ऊपर । एक सौ एक । उ०—खँडरा खाँड जो खडे खडे । बरी अकोतर सौ कह हडे ।— जायसी (शब्द०) ।

अकोतरसौ²(पु)—संज्ञा पुं० एक सौ एक की सख्या—१०१ ।

अकोप—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोप का अभाव । प्रसन्नता । खुशी । २ राजा दशरथ के आठ मन्त्रियों मे से एक ।

अकोपन—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० अकोपना] क्रोध से रहित। अक्रोधी [को०]।

अकोप्यापणयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिक्कों का चलन। सिक्के के चलने में किसी प्रकार की रुकावट न होना।

अकोविद(पु)—वि० दे० 'अकोविद'। उ०—अज्ञ अकोविद अंध अभागी। काई विषय मुकुर मन लागी।—मानस, १।११५।

अकोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्रोड, प्रा० कोड>हिं० अकोर अथवा सं० अङ्कक्रोड, प्रा० अंककोड, अक्कोर>हिं० अँकोर, अकोर] १ आलिंगन। अंकवार। उ०—पान करत कहुँ तृप्ति न मानत पलकनि देत अकोर।—सूर०, १०। १७६१। २ भेंट। नजर। उपहार। उ०—माथा प्रान अकोर देकर सतगुरु पूरा।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ३७। ३ रिश्वत। घूस। उ०—फूले फिरत दिखावत औरन निडर भये दें हँसनि अकोर।—सूर० (राधा०), २१३१।

अकोरना(पु)—क्रि० स० [हिं० अकोर से नाम०] आलिंगन करना। उ०—मौन भलो कहि कौन सकै घन आनंद जान सु नाक सकोरें। रीझ विलोइए डारति है हिय, मोहति टोहति थारी अकोरें।—घनानंद, पृ० ५७।

अकोरी(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँकवारी'। उ०—यहि ते जो नेक लवधियाँ री। गहत सोई जो समात अकोरी।—सूर० (राधा०), ३३४५।

अकोल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अकोर] भेंट। नजर। उपहार। उ०—अर्छ रंग में रँगिया दीन्हो प्रान अकोल।—संतबानी०, भा०१, पृ० १४०।

अकोला¹—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोल] अँकोल का पेड़।

अकोला²—संज्ञा पुं० [सं० अग्र, प्रा० अग्गर, अकर>हिं० अकोर अथवा सं० कोटि प्रा० कोर> हिं० अकोर, अकोला] ऊख के सिरे पर की पत्ती। अँगारी। अकोला। अगौला। गेंडा।

अकोविद—वि० [सं०] जो जानकार न हो। मूर्ख। अज्ञानी। अनाड़ी।

अकोसना†(पु)—क्रि० स० [सं० आक्रोशन, प्रा० अक्कोस] बुरा भला कहना। गालियाँ देना। कोसना।

अकौआ†—संज्ञा पुं० [सं० अर्क, प्रा० अक्क+औआ (वा) (प्रत्य०)] १ मदार। आक। २ ललरी। घंटी। कौआ।

अकौटा†—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष, प्रा० अक्ख, अक्क, अक=धुरा+अटन=घूमना] डंडा जिस पर गड़ारी घूमती है। धुरा।

अकौटिल्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुटिलता का अभाव। निष्कपटता। सिधाई। सरलता।

अकौता†—संज्ञा पुं० [हिं० उकवत] दे० 'उकवत'।

अकौवा†—संज्ञा पुं० [हिं० अकौवा] दे० 'अकौआ'।

अकौशल—संज्ञा पुं० [सं०] कुशलता या दक्षता का अभाव। अदक्षता [को०]।

अक्क¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्क प्रा० अक्क] १. सूर्य। रवि। उ०—गतिधीर धीर वह चली सेन, रजरजित अवर अक्क ऐन।—सुजान०, पृ० १८। २. आक। मदार। उ०—दहिसी गात कुवाँरियाँ, थल जाली वलि अक्क।—ढोला०, दू० २८६।

अक्क²—संज्ञा पुं० [सं०] घर का कोना [को०]।

अक्क³—संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्का (माँ) का संबोधन रूप, जैसे—'हे अक्क।'

अक्का¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] माता। माँ।

अक्का²—संज्ञा स्त्री० [देश०] बहन [को०]।

अक्कास—संज्ञा पुं० [अ०] चित्रकार। फोटोग्राफर [को०]।

अक्कासी¹—वि० [अ०] चित्रकारी। चित्र उतारना [को०]।

अक्कासी²†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अकास] वह डाल जो नीचे झुकी हुई हो। उ०—अक्कासी आती हुई देखकर, रामलाल बोले एक डंडे से टेककर।—कुकुर०, पृ० ५५।

अक्कित्त(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अकीर्ति] अकीर्ति। अपयश। उ०—अक्कित्त राह पच्छै फिरग। चक्र तेग सद्धिय सुबुधि।—पृ० रा०, २५। ३३५।

अक्किल†—संज्ञा स्त्री० [अ० अक्ल, हिं० अकिल] दे० 'अक्ल'। उ०— मेरी बिटिया के कुछ अक्किल नहीं है। बड़ी सीधी है।—दहकते०, पृ० ७६।

अक्के दुक्के†—क्रि० वि० दे० 'इक्के दुक्के'।

अक्ख(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्ष; प्रा० अक्ख] आँख। नेत्र। उ०—जो कोई मेरे बच्चे को तक्के। उसकी फूटें दोनों अक्के (शब्द०)।

अक्खड—वि० [सं० अक्षर=न टलनेवाला। डटा रहनेवाला, प्रा० अक्खड] १ न मुड़नेवाला। अड़नेवाला किसी का कहना न माननेवाला। उग्र। उद्धत। उच्छृंखल। २. बिगड़ैल। झगड़ालू। ३ निःशंक। निर्भय। बेडर। उ०—'वही बनारसी गुंडे और अक्खड़ों की बोली ठोलियाँ उड़ती'।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११४। ४. असभ्य। अशिष्ट। दुःशील। ५ उजड्ड। अनगढ़। जड मूर्ख। ६. जिसे कुछ कहने या करने में संकोच न हो। स्पष्टवक्ता। खरा।

अक्खड़पन—संज्ञा पुं० [हिं० अक्खड+पन(प्रत्य०)] १ अक्खड़ होने का भाव। अशिष्टता। असभ्यता। दुःशीलता। उच्छृंखलता। २ जड़ता। उजड्डपन। अनगढ़पना। ३ उग्रता। कड़ाई। उध्दतपन। कलहप्रियता। ४ निःशंकता। निर्भयता। स्पष्टवादिता। खरापन।

अक्खना(पु)—क्रि० स० [सं० आख्यान, प्रा० अक्खाण, पं० आखना] कहना। बोलना। उ०—जो उपजे यहि बार मोहि प्रभु भाषन् अखिखय—हम्मीर रा०, पृ० ६४।

अक्खर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अक्षर; प्रा० अक्खर] अक्षर। हरफ। वर्ण। उ०—अक्खर आवै जाय अखर को ताहि ठिकाना।—पलटू० पृ० ११०।

अक्खरिका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षरिका] एक प्रकार की क्रीडा या खेल। उ०—'बौद्धों के 'शील' ग्रंथ में बौद्ध साधुओं के लिये जिन जिन बातों का निषेध किया गया है, उनमें अक्खरिका नामक खेल भी शामिल हैं'।—भा० प्रा० लि०, पृ० ४।

अक्ल काम न देना। (२) घबरा जाना। **अक्ल उड़ाना**=(१) हैरान करना। (२) त्रस्त करना। **अक्ल उलटी होना**=(१) मूर्ख या नासमझ होना। (२) कुछ का कुछ समझना। **अक्ल औंधी होना**=दे० 'अक्ल उलटी होना'। **अक्ल का अंधा**=अत्यंत मूर्ख। **अक्ल का काम न करना**=समझ में न आना। कर्तव्य-ज्ञान शून्य होना। उ०— महरी, हुजूर अक्ल नहीं काम करती'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १। **अक्ल का चक्कर में आना**=(१) घबराना। (२) विस्मित होना। **अक्ल का चरने जाना**=(१) समझ जाती रहना। (२) बदहवास होना। **अक्ल का चिराग गुल होना**=समझ में फर्क आना। **अक्ल का दुश्मन**=अत्यंत मूर्ख। बुद्धिविरोधी काम करनेवाला। **अक्ल का पुतला**=बहुत बुद्धिमान या ज्ञानी। उ०—बस, सारी बात यह है कि यह लोग अक्ल के पुतले हैं। कोई शै दुनियाँ के पर्दे पर ऐसी नहीं जिससे यह वाकिफ न हों।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १७। **अक्ल का पूरा**=बुद्धू। मूर्ख। (व्यंग्य)। **अक्ल का मारा**=बहुत ही मूर्ख। **अक्ल की कोताही**=बुद्धिहीनता। मूर्खता। **अक्ल की मार**=बेवकूफी। **अक्ल के घोड़े दौड़ाना**=(१) बहुत सोचना या विचार करना। (२) खयाली पुलाव पकाना। **अक्ल के तोते उड़ना**=होश ठिकाने न रहना। घबरा जाना। **अक्ल के पीछे लट्ठ लिए फिरना**=बुद्धिविरोधी काम करना। **अक्ल के बखिए उधेड़ना**=अक्ल गँवा देना। **अक्ल के होश उड़ना**=दे० 'अक्ल के तोते उड़ना'। उ०—और मुकाम बुलंद इस कदर कि अक्ल के होश उड़ते हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१३। **अक्ल को रोना**=नासमझी पर अफसोस करना। उ०—अक्ल को तो हुस्नआरा रो चुकीं'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२०। **अक्ल खर्च करना**=सोचने समझने की कोशिश करना। **अक्ल गुम होना**=होशहवास जाते रहना। **अक्ल गुद्दी में होना**=बेवकूफ या कमअक्ल होना। **अक्ल छू जाना**=थोड़ी सी समझ होना। **अक्ल जाती रहना**=दे० 'अक्ल जाना'। **अक्ल जाना**=(१) समझ न रहना। (२) घबरा जाना। **अक्ल ठिकाने रहना**=होशहवास दुरुस्त होना। उ०—अब मैं, उसको समझाऊँ कि बहन अक्ल ठिकाने किसकी है'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२०। **अक्ल ठिकाने न रहना**=होश दुरुस्त न रहना। **अक्ल ठीक करना**=शक्ति या नीति द्वारा किसी का गर्व तोड़ना। **अक्ल दंग होना**=दे० 'अक्ल हैरान होना'। उ०—'बेगम' अक्ल दंग है'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५। **अक्ल देना**=सीख देना समझाना बुझाना। **अक्ल दौड़ाना**=सोच विचार करना। जुगत बैठाना। **अक्ल पर झाड़ू फेरना**=नासमझी का व्यवहार करना। **अक्ल पर पत्थर पड़ना**=निहायत बेअक्ल होना। **अक्ल पर पर्दा पड़ना**=समझ जाती रहना। उ०—पूछा जो उनसे आपका पर्दा, वो क्या हुआ, कहने लगीं कि अक्ल पै मर्दों के पड़ गया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६४१। **अक्ल भिड़ाना**=दे० 'अक्ल दौड़ाना'। **अक्ल मारी जाना**=बुद्धि का बेकार होना। **अक्ल रफूचक्कर होना**=अक्ल का काम न करना। **अक्ल लड़ाना**=दे० 'अक्ल दौड़ाना'। **अक्ल सठियाना**=बुद्धि भ्रष्ट हो जाना, जैसे—'इस बुड्ढे की अक्ल तो सठिया गई है'—(शब्द०)।

विशेष—ऐसा कहते हैं कि साठ वर्ष बाद मनुष्य की बुद्धि जीर्ण या बेकाम हो जाती है।

अक्ल से दूर होना=समझ या बुद्धि से बाहर होना। **'अक्ल से बाहर होना**=दे० 'अक्ल से दूर होना'।

यौ०—**अक्ले इंसानी**=मनुष्य की बुद्धि। **अक्ले कुल**=(१) देवदूत। फरिश्ता। (२) मूर्ख। घामड़ (व्यंग्य)। **अक्ले सलीम**=संतुलित बुद्धि। सद्बुद्धि। **अक्ले हैवानी**=पशुतुल्य बुद्धि। पशुबुद्धि।

अक्लमंद—वि० [अ० अक्ल+फा० मंद] बुद्धिमान्। चतुर। सयाना। विज्ञ। समझदार। होशियार।

मुहा०—**अक्लमंद की दुम**=मूर्ख (व्यंग्य)।

अक्लमंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० अक्ल+फा० मंदी] बुद्धिमानी। समझदारी। चतुराई। सयानापन। विज्ञता।

अक्लम[1]—वि० [सं०] जो थका न हो। अक्लांत। उ०—लाज का आज भूषण, अक्लम नारी का।—तुलसी०, पृ० ५०।

अक्लम[2]—संज्ञा पुं० क्लम या थकावट का अभाव [को०]।

अक्लांत—वि० [सं०] १ जो थका न हो। क्लांतिरहित। उ०—भाभी की अक्लांत परिचर्या से प्राय एक सप्ताह बाद मैं ज्वरमुक्त हो गया'।—जिप्सी, पृ० ५५३। २। अम्लान. जो मुरझाया न हो (को०)।

अक्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पौधा [को०]।

अक्लिन्न—वि० [सं०] जो गीला या नम न हो [को०]।

अक्लिन्नवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक नेत्ररोग जिसमें पलकें चिपक जाती हैं।

अक्लिष्ट—वि० [सं०] १ बिना क्लेश का। कष्टरहित। २ सुगम। सहज। आसान। सरल। सीधा। ३. विवादरहित। निर्विवाद (को०)। ४ क्लांतिरहित। जिसे थकान न हो (को०)।

अक्लिष्टकर्मा—वि० [सं०] जो कार्य करते हुए न थके [को०]।

अक्लिष्टकारी—वि० [सं०] [स्त्री० अक्लिष्टकारिणी] दे० 'अक्लिष्टकर्मा' [को०]।

अक्लिष्टवर्ण—वि० [सं०] जो संदेहास्पद न हो। प्रामाणिक [को०]।

अक्लिष्टव्रत—[सं०] जो व्रत करने में न थके [को०]।

अक्ली—वि० [अ०] १ अक्ल की। बुद्धिगत। २. बुद्धिसंबंधी [को०]।

मुहा०—**अक्ली गद्दा या दुक्का लगाना**=अटकल से बात करना।

अक्लीव[1]—वि० [सं०] १ जो नपुंसक या नामर्द न हो। २. जो कायर या कम हिम्मतवाला न हो। ३ सच्चा। जो झूठा न हो [को०]।

अक्लीव[2]—क्रि० वि० निर्भयतापूर्वक [को०]।

अक्लेद[1]—वि० [सं०] जो आर्द्र या गीला न हो। २. अलिप्त (ला०)। उ०—'अरूप अश, वर्णनाभेद के रखने पर भी पूर्ववत् अक्लेद रहा'।—प्रबंध०, पृ० १६४।

अक्लेद[2]—संज्ञा पुं० गीलापन या आर्द्रता का अभाव [को०]।

अक्लेद्य—वि० [सं०] जो भिगोया न जा सके [को०]।

अक्लेश[1]--संज्ञा पुं० [सं०] क्लेश का अभाव। क्लेशहीनता [को०]।

अक्लेश[2]--वि० क्लेशरहित [को०]।

अक्षतव्य--वि० [सं० अक्षन्तव्य] क्षमा न हो सकने योग्य। जिसे क्षमा न किया जा सके। क्षमा न करने योग्य। अक्षम्य। उ०--यह सुदर ग्रथावली टीका टिप्पणी, जीवनचरित्र, भूमिका, चित्रादि सहित अक्षतव्य विलव और दीर्घसूत्रता के साथ सामने आई है'।--सुदर० ग्र०, भा० १, (भू०), पृ० २०२।

अक्ष--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अक्षा] १ खेलने का पासा। २ पासो का खेल। चौसर। ३ छकडा। गाडी। ४ किसी गोल वस्तु के बीचोबीच पिरोया हुआ वह छड या दड जिसपर वह वस्तु घूमती है। धुरी। ५ पहिए की धुरी। ६ वह कल्पित स्थिर रेखा जो पृथिवी के भीतरी केंद्र से होती हुई, उसके आर पार दोनो ध्रुवो पर निकलती है और जिसपर पृथिवी घूमती हुई, मानी गई है। ७ तराजू की डाँडी। ८. व्यवहार। मामला। मुकदमा। ९ इद्रिय। १०. तूतिया। ११ सोहागा। १२ आँख। नेत्र। उ० एक कह्या अनुमानि करि एक देखिए अक्ष। सुदर अनुभव होइ जब तब देखिए प्रत्यक्ष।--सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ८१४। १३ बहेडा। १४ रुद्राक्ष। १५ साँप। १६ गरुड। १७ आत्मा। १८. कर्ष नाम की १६ माशे की एक तौल। १९ जन्माध। २० रावण का पुत्र अक्षयकुमार। उ० --रूख निपातत खात फल रक्षक अक्ष निपाति।--तुलसी ग्र०, पृ० २८। २१ सौवर्चल या सोचर नमक (को०)। २२ कानून (को०)। २३. द्यूत (को०)। २४ ज्ञान (को०)। २५ नाप का एक मान (को०)। २६ किसी मदिर का निचला हिस्सा (को०)। २७ शिव (को०)।

अक्षक--संज्ञा पु० [स०] तिनिश का वृक्ष [को०]।

अक्षकर्ण--संज्ञा पु० [स०] समकोण त्रिभुज मे समकोण के सामने की भुजा, विशेषतया धूपघडी के लिये बनी त्रिभुजाकृत कर्ण रेखा, जिसकी छाया से समय का पता लगता है (ज्यो०)।

अक्षकाम--वि० [स०] जिसे द्यूतक्रीडा प्रिय हो। द्यूतप्रिय [को०]।

अक्षकितव--वि० [स०] द्यूत कुशल [को०]।

अक्षकुमार--संज्ञा पु० [स०] रावण का एक पुत्र जिसे हनुमान ने लका का प्रमोदवन उजाडते समय मारा था।

अक्षकुशल--वि० [स०] जुआ खेलने मे प्रवीण। द्यूतकुशल [को०]।

अक्षकूट--संज्ञा पु० [स०] आँख की पुतली। अक्षितारा [को०]।

अक्षकोविद--वि० [स०] दे० 'अक्षकुशल' [को०]।

अक्षक्रीडा--संज्ञा स्त्री० [स०] १ पासे का खेल। चौसर। चौपड। २. द्यूतक्रीडा (को०)।

अक्षचक्र--संज्ञा पु० [स०] इद्रियो का समूह [को०]।

अक्षज--संज्ञा पु० [स०] १ हीरा। २. वज्र। ३ प्रत्यक्ष ज्ञान। ४. विष्णु [को०]।

अक्षण--वि० [स०] असमय। अनवसर [को०]।

अक्षणा--क्रि० वि० [स० अक्षणा (अक्षि का तृतीया एक व०)] आँख द्वारा। उ०--सुनै न कान और की दृशै न और अक्षणा।--सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० २५।

अक्षणिक--वि० [सं०] १ दृढ। स्थिर। स्थायी। २ जो क्षणिक न हो [को०]।

अक्षत[1]--वि० [स०] क्षत या घाव से रहित। व्रणशून्य। उ०--'ब्राह्मण को कभी नहीं मारना पर सब धन को बचाकर अक्षत केवल राज से बाहर कर देना चाहिये'।--श्रीनिवास ग्र०, पृ० १०। २ बिना टूटा हुआ। अखडित। सर्वांगपूर्ण। समूचा।

अक्षत[2]--संज्ञा पु० १ बिना टूटा हुआ चावल जो देवताओ की पूजा में चढाया जाता है। २ धान का लावा। ३ जौ। ४ कोई भी धान्य (को०)। ५ हानि या अशुभ का अभाव। कल्याण (को०)। ६ शिव (को०)। ७ हिजडा (को०)।

अक्षततत्व--संज्ञा पु० [स० अक्षतत्त्व] द्यूत। द्यूत विद्या। जुआ [को०]।

अक्षतयोनि[1]--वि० स्त्री० [स०] जिसका पुरुष से ससर्ग न हुआ हो।

अक्षतयोनि[2]--संज्ञा स्त्री० १ वह कन्या जिसका पुरुष से समर्ग न हुआ हो। २ वह कन्या जिसका विवाह हो गया हो किंतु पति से समागम न हुआ हो।

अक्षतवीर्य[1]--वि० [स०] जिसका वीर्यपात न हुआ हो। जिसने स्त्री-ससर्ग न किया हो।

अक्षतवीर्य[2]--संज्ञा पु० १ शिव। २ क्षयाभाव। ३ नपुसक। पुस्त्व-विहीन (व्यग्य) [को०]।

अक्षता[1]--वि० [स०] जिसका पुरुष से सयोग न हुआ हो।

अक्षता[2]--संज्ञा स्त्री० १ वह स्त्री जिसका पुरुष से सयोग न हुआ हो। २ धर्मशास्त्र के अनुसार वह पुनर्भू स्त्री जिसने पुनर्विवाह तक पुरुषसंयोग न किया हो। ३ काकडासीगी।

अक्षत्र--वि० [स०] १. क्षत्रियरहित। २ राजाहीन [को०]।

अक्षदड--संज्ञा पु० [सं० अक्षदण्ड] धुरी [को०]।

अक्षदर्शक--संज्ञा पु० [स०] १ धर्माध्यक्ष। न्यायाधीश। न्यायकर्ता। २ द्यूत क्रीडा का निरीक्षक (को०)।

अक्षदाय--संज्ञा पु० [स०] पासे को दूसरे के हाथ मे देना [को०]।

अक्षदृक--संज्ञा पु० [स०] दे० 'अक्षदर्शक' [को०]।

अक्षदेवी--वि० [स०] जूआ खेलनेवाला। जुआरी।

अक्षद्यू--संज्ञा पु० [स०] द्यूत। जुआ [को०]।

अक्षद्यूत--संज्ञा पु० [स०] दे० 'अक्षद्यू' [को०]।

अक्षद्यूतिक--संज्ञा पु० [स०] द्यूतक्रीडा मे होनेवाला झगडा [को०]।

अक्षद्रुग्ध--वि० [स०] १ जुए के कारण तिरस्कृत। २ जुए मे असफल रहनेवाला। ३ जुए द्वारा ठगनेवाला [को०]।

अक्षद्वार--संज्ञा पु० [स०] धुरी का सूराख [को०]।

अक्षधर[1]--वि० [स०] चक्र या धुरा को धारण करनेवाला [को०]।

अक्षधर[2]--संज्ञा पु० १. पहिया। २. एक वृक्ष। शाखोट। सिहोर। ३. विष्णु। ४. चक्र या पासे को धारण करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अक्षधुर--संज्ञा पुं० [सं०] पहिए की धुरी।

अक्षधूर्त--वि० [सं०] दे० 'अक्षकुशल' [को०]।

अक्षधूर्तिल--संज्ञा पुं० [सं०] वृष। बैल [को०]।

अक्षनेपुण--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षनैपुण्य' [को०]।

अक्षनैपुण्य--संज्ञा पुं० [सं०] अक्षकुशलता। अक्षकौशल [को०]।

अक्षपटल--संज्ञा पुं० [सं०] १ न्यायालय। २ न्यायसंबंधी कागज पत्र रखने का स्थान। ३ न्यायकर्ता। न्यायाधीश। ४ अभिलेखों (रेकार्ड्स) को सुरक्षित रखने का स्थान। ५ वह कार्यालय या स्थान जहाँ आय व्यय आदि का विवरण रखा जाय [को०]।

अक्षपटलाधिकृत--संज्ञा पुं० [सं०] राजकीय अभिलेख पत्रादि का तथा आय व्यय आदि का निरीक्षण करनेवाला प्रधान अधिकारी [को०]।

अक्षपटलिक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षपटलाधिकृत' [को०]।

अक्षपराजय--संज्ञा पुं० [सं०] जुए की हार। जुए में हार [को०]।

अक्षपरि--संज्ञा पुं० [सं०] हार का पासा। पासे की वह स्थिति जिससे हार सूचित हो।

अक्षपाट--संज्ञा पुं० [सं०] १ जुआखाना। द्यूतगृह। २ अखाड़ा। मल्लशाला [को०]।

अक्षपाटक--संज्ञा पुं० [सं०] न्यायाधीश। धर्माध्यक्ष [को०]।

अक्षपात--संज्ञा पुं० [सं०] पासा फेंकने या डालने का कार्य [को०]।

अक्षपातन--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षपात' [को०]।

अक्षपाद--संज्ञा पुं० [सं०] १ सोलह पदार्थवादी। न्यायशास्त्र के प्रवर्तक गौतम ऋषि।

विशेष--ऐसा कहा जाता है कि गौतम ने अपने मत का खंडन करनेवाले व्यास का मुख न देखने की प्रतिज्ञा की थी। पीछे से जब व्यास ने इन्हें प्रसन्न किया तब इन्होंने अपने चरणों में नेत्र करके उन्हें देखा अर्थात् अपने चरण उन्हें दिखलाया। इसी से गौतम का नाम अक्षपाद हुआ।

२. तार्किक। नैयायिक।

अक्षपीड़ा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इंद्रियों की वा शरीर की पीड़ा। २ एक लता। यवतिक्त लता [को०]।

अक्षप्रिय--वि० [सं०] जुआरी। जुआबाज [को०]।

अक्षबंध--संज्ञा पुं० [सं०] वह विद्या जिससे आसपास के लोग कुछ देख नहीं सकते। नजरबंदी।

अक्षभा--संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षांश की छाया [को०]।

अक्षभाग--संज्ञा पुं० [सं०] अक्षांश का विभाग [को०]।

अक्षभार--संज्ञा पुं० [सं०] गाड़ी का बोझ [को०]।

अक्षभूमि--संज्ञा स्त्री० [सं०] जुआ खेलने का स्थान [को०]।

अक्षम--वि० [सं०] १ क्षमारहित। असहिष्णु। २ असमर्थ। अशक्त। लाचार। ३ ईर्ष्यालु (को०)।

अक्षमता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्षमा का अभाव। असहिष्णुता। २. ईर्ष्या। डाह। ३ असामर्थ्य।

अक्षमद--संज्ञा पुं० [सं०] जुआ खेलने का व्यसन या उत्साह [को०]।

अक्षमा¹--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अधैर्य। अधीरता। २. क्रोध। रोष। ३ ईर्ष्या। डाह। ४ असमर्थता। लाचारी [को०]।

अक्षमा²--वि० क्षमारहित [को०]।

अक्षमात्र--संज्ञा पुं० [सं०] निमेष। निमिष [को०]।

अक्षमापक--संज्ञा पुं० [सं०] ग्रह नक्षत्रों के निरीक्षण का यंत्र [को०]।

अक्षमाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ रुद्राक्ष की माला। २ 'अ' से 'क्ष' तक अक्षरों की वर्णमाला। ३. वशिष्ठ की पत्नी अरुंधती।

अक्षमाली¹--वि० [सं०] जो रुद्राक्ष की माला धारण करे।

अक्षमाली²--संज्ञा पुं० शिव [को०]।

अक्षम्य--वि० [सं०] जिसे क्षमा न किया जाय। क्षमा के अयोग्य। उ०--'यह तुम्हारा अक्षम्य अपराध है'।--स्कंद०, पृ० ८२।

अक्षय¹--वि० [सं०] १ जिसका क्षय न हो। अनश्वर। सदा बना रहनेवाला। कभी न चुकनेवाला। २ कल्पांतस्थायी। कल्प के अंत तक रहनेवाला। उ०--दिवा रात्रि या मित्र वरुण की बाला का अक्षय शृंगार।--कामायनी, पृ० ३६।

अक्षय²--संज्ञा पुं० १ परमात्मा। २ संन्यासी। ३ दरिद्र। ४ एक योग जिसमें किया हुआ पाप या पुण्य का नाश नहीं होता [को०]।

अक्षयकुमार(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अक्षकुमार'।

अक्षयगुण¹--संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अक्षयगुण²--वि० क्षय न होनेवाले गुणों से युक्त [को०]।

अक्षयता--संज्ञा स्त्री० [सं०] नाश या क्षय का अभाव [को०]।

अक्षयतूणीर--संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा तरकस जिसके बाण कभी समाप्त नहीं होते। उ०--'अक्षय तूणीर, अक्षय कवच सब लोगों ने सुना होगा, परंतु इस अक्षय मंजूषा का हाल मेरे सिवा कोई नहीं जानता।--स्कंद०, पृ० १७।

अक्षयतृतीया--संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ल तृतीया। आखा तीज। सतयुग के प्रारंभ की तिथि।

विशेष--इस तिथि को लोग स्नान, दान आदि करते हैं। सतयुग का आरंभ इसी तिथि से माना जाता है। यदि इस तिथि को कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्र पड़े तो वह बहुत ही उत्तम समझी जाती है।

अक्षयत्व--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षयता' [को०]।

अक्षयधाम--संज्ञा पुं० [सं०] १. वैकुंठ। २ मोक्ष [को०]।

अक्षयनवमी--संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक शुक्ल पक्ष की नवमी।

विशेष--इस तिथि को लोग स्नान, दान आदि करते हैं। त्रेता युग की उत्पत्ति इसी तिथि से मानी गई है।

अक्षयनीवी--संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थायी दान वा निधि। वह मूल संपत्ति जिसका ब्याज मात्र व्यय किया जाय। उ०--साथ ही श्रीमती ने यह इच्छा प्रकट की कि इस संबंध में हिंदी में उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन के लिये एक अक्षय नीवी की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय।--मु० द०, परिचय, पृ० २।

अक्षयपद--संज्ञा पुं० [सं०] मोक्ष [को०]।

अक्षयपुरुहूत--संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

अक्षयलोक--संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग। वैकुंठ [को०]।

अक्षयवट--संज्ञा पुं० [सं०] प्रयाग और गया में एक बरगद का पेड़।

विशेष--यह अक्षय इस लिये कहलाता है कि पौराणिक लोग इसका नाश प्रलय में भी नहीं मानते।

अक्षयवृक्ष--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षयवट'।
अक्षया--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पुण्य तिथि [को०]।
अक्षायिणी¹--संज्ञा स्त्री० [सं०] उमा। पार्वती [को०]।
अक्षायिणी²--वि० स्त्री० क्षय न होनेवाली [को०]।
अक्षायी--वि० [सं०] जिसका नाश न हो। अनश्वर [को०]।
अक्षाय्य--वि० [सं०] १ अक्षय, अविनाशी। २ सदा बना रहनेवाला। समाप्त न होनेवाला।
अक्षय्यनवमी--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अक्षयनवमी' [को०]।
अक्षय्योदक--संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध मे पिंडदान के अनतर ब्राह्मण के हाथ पर 'अक्षय्य हो' कहकर छोडा जानेवाला मधु-तिल-युक्त जल।
अक्षर¹--वि० [सं०] १ अच्युत। स्थिर। अविनाशी। नित्य। २. क्रियाशून्य [को०]।
अक्षर²--संज्ञा पुं० १ अकारादि वर्ण। हरफ। मनुष्य के मुख से निकली हुई ध्वनि को सूचित करने का सकेत या चिह्न।
क्रि० प्र०--जाना।--जोडना।--टटोलना।--पढ़ना।--लिखना।
मुहा०--अक्षर घोटना = अक्षर लिखने का अभ्यास करना। अक्षर से भेंट न होना = अपढ रहना। मूर्ख रहना। विधना के अक्षर = कर्मरेख। भाग। लिखन।
२ ओंकार। ॐ। उ०--विनु अक्षर कोई न छूटे, अक्षर अगम अगाध।--कबीर सा०, पृ० ६६०। ३. आत्मा। ४. ब्रह्म। चैतन्य पुरुष। ५ आकाश। ६ जल। ७ धर्म। ८ तपस्या। ९ मोक्ष। १० अपामार्ग। चिचडा। ११ शिव (को०)। १२ विष्णु (को०)। १३ जीव (को०)। १४ परमात्मा (को०)। १५ खड्ग (को०)। १६ स्वर (को०)। १७ शब्द (को०)। १८ समय का एक परिमाण। काष्ठा का पाँचवाँ हिस्सा (को०)।
अक्षरक-- संज्ञा पुं० [सं०] अक्षर। स्वर [को०]।
अक्षरकर--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धार्मिक ध्यान [को०]।
अक्षरक्रम--संज्ञा पुं० [सं०] अक्षरों का अनुक्रम। वर्णानुक्रम [को०]।
अक्षरगणित--संज्ञा पुं० [सं०] बीजगणित [को०]।
अक्षरचचु--संज्ञा पुं० [सं० अक्षरचञ्चु] साफ और स्पष्ट लिखनेवाला व्यक्ति। सुलेखक [को०]।
अक्षरचट्टा Ⓤ--वि० [सं० अक्षर + देश० चट्ट = चाटना] अक्षर चाटनेवाला। कोरा पढा लिखा। पठित मूर्ख। उ०--'तब रूपचद नदा ने अपने मन मे विचारी, जो यह बात परमानद सोनी कहा जाने? यह तो अक्षरचट्टा है'।--दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १६०।
अक्षरचण--संज्ञा पुं० [सं०] सुलेखक [को०]।
अक्षरचन--संज्ञा पुं० दे० 'अक्षरचण' [को०]।
अक्षरचुचु--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षरचचु' [को०]।
अक्षरच्युतक--संज्ञा पुं० [सं०] किसी अक्षर को हटा देने से भिन्न अर्थ देनेवाले अक्षरों का एक प्रकार का खेल [को०]।
अक्षरछद--संज्ञा पुं० [सं० अक्षरच्छन्द] वर्णिक छद। वर्णवृत्त (को०)।
अक्षरजननी--संज्ञा स्त्री० [सं०] लेखनी। कलम (को०)।
अक्षरजीवक--संज्ञा पुं० [सं०] लिखकर जीविका कमानेवाला व्यक्ति। लेखक। लिपिकार [को०]।
अक्षरजीविक--संज्ञा पुं० [सं०] अक्षरजीवक। लेखक [को०]।
अक्षरजीवी--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षरजीवक' [को०]।
अक्षरज्ञान--संज्ञा पुं० [सं०] लिखने और पढने की योग्यता। अक्षरबोध [को०]।
अक्षरतूलिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षर जननी। लेखनी [को०]।
अक्षरधाम--संज्ञा पुं० [सं०] १. मोक्ष। निर्वाण। २ ब्रह्मलोक [को०]।
अक्षरन्यास--संज्ञा पुं० [सं०] १ लेख। लिखावट। २ तत्र की एक क्रिया जिसमे किसी मत्र के एक एक अक्षर को पढकर हृदय, नाक, कान, आँख आदि छूते हैं। ३ वर्ण। अक्षर (को०)।
अक्षरपंक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षरपङ्क्ति] पक्ति नामक वैदिक छद का एक भेद जिसके चार पादों के वर्णों का योग २० होता है।
अक्षरपूजक--वि० सं० [सं०] पुराण आदि प्राचीन धर्मग्रथो मे लिखी बातो को पूरी तौर से माननेवाला [को०]।
अक्षरबध--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वर्णवृत्त [को०]।
अक्षरभूमिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] लिखने की वस्तु। पटिया। पाटी [को०]।
अक्षरमाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्णमाला [को०]।
अक्षरमुख¹--वि० [सं०] जो अक्षरो का अभ्यास करता हो। अक्षर सीखनेवाला।
अक्षरमुख²--संज्ञा पुं० १ शिष्य। छात्र। २. अक्षरो का आरभ अर्थात् 'अ' (को०)।
अक्षरमुष्टिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] चौसठ कलाओ मे से एक कला। मुष्टिका के विशेष आकार से अक्षरो को जानने की कला। उँगलियों के सकेत द्वारा भावव्यजना की पद्धति। उ०--'अक्षर मुष्टिका देशभाषा ज्ञान दोहृदकरण'।--वर्ण०, पृ० २०।
अक्षरयोजना--संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्णों की योजना। अक्षरविन्यास [को०]।
अक्षरवर्जित--वि० [सं०] १. अपढ। निरक्षर। २. परमात्मा का एक विशेषण [को०]।
अक्षरविन्यास--संज्ञा पुं० [सं०] १ लिपि। लिखावट। २. हिज्जे। वर्णविन्यास। वर्णक्रम [को०]।
अक्षरवृत्त--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'वर्णवृत्त' [को०]।
अक्षरव्यक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षर का स्पष्ट उच्चारण [को०]।
अक्षरश--क्रि० वि० [सं०] अक्षर अक्षर। एक एक अक्षर। लफ्ज ब लफ्ज। सपूर्णतया। बिलकुल। सब। उ०--'उसका कहना अक्षरश सत्य है (शब्द०)।
अक्षरशत्रु¹--संज्ञा पुं० [सं०] निरक्षर या मूर्ख व्यक्ति। अनपढ और जाहिल आदमी।
अक्षरशत्रु²--वि० जिन्हें अक्षर का ज्ञान न हो। निरक्षर। अक्षरशून्य। उ०--हमारा सगीत अक्षरशत्रु अपढ व्यक्तियों के हाथ मे चला गया।--सपूर्णा० अभि० ग्र० पृ० २३२।
अक्षरसस्थान--संज्ञा पुं० [सं०] लिखावट। लिखन। लिपि [को०]।

अक्षरसमाम्नाय--संज्ञा पुं० [सं०] 'अ' से 'ह' तक के वर्णों का समूह। वर्णमाला [को०]।

अक्षराग--संज्ञा पुं० [सं० अक्षराङ्ग] १ लिखावट। लिपि। २. लिखने का साधन। [को०]।

अक्षरा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भाषा। २ शब्द [को०]।

अक्षराक्षर--संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान का एक प्रकार या प्रक्रिया [को०]

अक्षराज--संज्ञा पुं० [सं०] द्यूत क्रीडा मे आसक्त व्यक्ति [को०]।

अक्षरारभ--संज्ञा पुं० [सं० अक्षरारम्भ] एक सस्कार जिसमे पहले पहल बालकों को अक्षर लिखना सिखाया जाता है [को०]।

अक्षरार्थ--संज्ञा पुं० [सं०] वर्णों का अभिप्राय। शब्दों का अर्थ। वाच्यार्थ वा यौगिक अर्थ [को०]।

अक्षरी¹(पु)--वि० [सं० अक्षर+ई] अक्षरयुक्त। वर्णवाली उ०--द्वै अक्षरी दूजी नाडी। दोय पप पान अमान।--गोरख०, पृ० २४१।

अक्षरी²--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बरसात। वर्षा ऋतु (को०)। २ किसी शब्द के लिखने या उच्चारण करने मे अक्षरों का क्रम। हिज्जे।

अक्षरेखा--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सीधी रेखा जो किसी गोले पदार्थ के भीतर केंद्र से होती हुई दोनो पृष्ठों पर लब रूप मे गिरे। धुरी की रेखा।

अक्षरौटी--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षरावर्त्तन, प्रा० अक्खरावट्टन] १ वर्णमाला। २ लेख लिपि का ढग। अछरौटी। ३ सितार पर गीत निकालने या बोल बजाने की क्रिया।

अक्षर्य¹--वि० [सं०] वर्ण या अक्षर से सबद्ध [को०]।

अक्षर्य²--संज्ञा पुं० साम का एक भेद [को०]।

अक्षवती--संज्ञा स्त्री० [सं०] द्यूत क्रीडा। पासों का खेल [को०]।

अक्षवाट--संज्ञा पुं० [सं०] १ जुआ खेलने का स्थान। पासे का फलक। द्यूतगृह। जुआखाना। २ वह वस्तु जिसपर पासा खेला जाय (को०)। ३ कुश्ती लडने की जगह। अखाडा।

अक्षवाम--संज्ञा पुं० [सं०] बेईमान जुआडी। वह जो द्यूतकर्म मे कपट करे [को०]।

अक्षविक्षेप--संज्ञा पुं० [सं० अक्ष+विक्षेप] कटाक्ष। अपाग दृष्टि [को०]।

अक्षविद्--वि० [सं०] [स्त्री० अक्षवेत्री] १ जुआ खेलने के ढग को जाननेवाला। द्यूतकुशल। २ व्यवहारकुशल [को०]।

अक्षविद्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्यूतकला। २ जुआ [को०]।

अक्षवृत्त¹--संज्ञा पुं० [सं०] राशिचक्र रूपी कोणविहीन क्षेत्र [को०]।

अक्षवृत्त²--वि० १ जुआ खेलने का आदी। द्यूतासक्त। २ जुए के समय घटित [को०]।

अक्षशाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] द्यूतक्रीडागृह। जुआखाना [को०]।

अक्षशालिक--संज्ञा पुं० [सं०] जुआघर का प्रधान अधिकारी [को०]।

अक्षशाली--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षशालिक' [को०]।

अक्षशौड--संज्ञा पुं० [सं० अक्षशौण्ड] दे० 'अक्षकुशल [को०]।

अक्षसूक्त--संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद के अतर्गत अक्ष या द्यूत सबधी सूक्त [को०]।

विशेष--यह अक्षसूक्त ऋग्वेद मडल १०, अध्याय ३ का ३४वाँ सूक्त है जिसमे १४ ऋचाएँ हैं। इनमे १, ७, ६ और १२ वीं ऋचा पासे की स्तुतिपरक हैं और १३ वीं कृषि की स्तुति मे हैं। शेष ऋचाओं मे जुए का खेल और जुआडियों की स्थिति का अकन किया गया है।

अक्षसूत्र--संज्ञा पुं० [सं०] १ रुद्राक्ष की माला। २ जपमाला जिसमे गूँथी जाय वह सूत (को०)।

अक्षसेन--संज्ञा पुं० [सं०] भारत वर्ष का एक प्राचीन राजा जिसका नाम मैत्र्युपनिषद् मे आया है।

अक्षस्तुष--संज्ञा पुं० [सं०] बहेडा [को०]।

अक्षहीन--वि० [सं०] नेत्ररहित। अधा।

अक्षहृदय--संज्ञा पुं० [सं०] १ जुए के खेल की दक्षता। २ जुए की भीतरी बातें या चालें [को०]।

अक्षहृदयज्ञ --वि० [सं०] जुए मे पूरी तौर से दक्ष [को०]।

अक्षांति--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षान्ति] १ ईर्ष्या। डाह। जलन। हसद। २ दे० 'अक्षमा' (को०)।

अक्षाश--संज्ञा पुं० [सं०] १ भूगोल पर उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव से होती हुई एक रेखा मान कर उसके ३६० भाग किए गए हैं। इन ३६० अशों पर से होती हुई ३६० रेखाएँ पूर्व पश्चिम भूमध्यरेखा के समानातर मानी गई हैं जिनको अक्षाश कहते हैं। अक्षांश की गिनती विषुवत् या भूमध्यरेखा से की जाती है। २ वह कोण जहाँ पर क्षितिज का तल पृथ्वी के अक्ष से कटता है। ३ भूमध्यरेखा और किसी नियत स्थान के बीच मे याम्योत्तर का पूर्ण झुकाव या अतर। ४ किसी नक्षत्र का क्रांतिवृत्त के उत्तर या दक्षिण की ओर का कोणातर। ५ कोई स्थान जो अक्षाशों के समानातर पर स्थित हो।

अक्षाग्र--संज्ञा पुं० [सं०] धुरा या धुरे का सिरा [को०]।

अक्षाग्रकील--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जुए और लट्ठे को जोडनेवाली खूँटी। २ पहिए को रोकने के लिये लगाई हुई खूँटी या कील [को०]।

अक्षाग्रकीलक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षाग्रकील' [को०]।

अक्षार¹--वि० [सं०] क्षारशून्य। जिसमे क्षार न हो।

अक्षार²--संज्ञा पुं० प्राकृतिक लवण या नमक [को०]।

अक्षारलवण--संज्ञा पुं० [सं०] १ वह लवण जिसमे क्षार न हो। वह लवण जो मिट्टी से न निकला हो।

विशेष--कोई कोई सेंधा और समुद्री लवण को अक्षार लवण मानते हैं और व्रतादि मे उसको ग्राह्य समझते हैं।

२ वह हविष्य भोजन जिसमे नमक न हो और जो अशौच और यज्ञ मे काम आता हो, जैसे--दूध, घी, चावल, तिल, मूँग जौ आदि।

अक्षावपन--संज्ञा पुं० [सं०] वह फलक जिसपर पासा फेंका जाय [को०]।

अक्षावली--संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्राक्ष की जपमाला [को०]।

अक्षावाप--संज्ञा पुं० [सं०] १ जुआरी। जुआ खेलनेवाला। २ द्यूतगृह का स्वामी या निरीक्षक। ३ द्यूत का निरीक्षण करनेवाला सरकारी कर्मचारी [को०]। ४ आय व्यय का गणनाध्यक्ष।--हिंदु० स०, पृ० १०५।

अक्षावापन--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षपटल' [को०]।

अक्षि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आँख। नेत्र। २ दो की संख्या।--भा० प्रा० लि०, पृ० १२०।

अक्षिकंप--संज्ञा पुं० [सं० अक्षिकम्प] पलकों के काँपने की स्थिति। आँख की फड़कन। आँख चमकाना [को०]।

अक्षिक--संज्ञा पुं० [सं०] १ एक वृक्ष। आल का पेड़। २ दे० 'अक्षक' (को०)।

अक्षिकूट--संज्ञा पुं० [सं०] १ आँख के ऊपर का ललाट का मध्य भाग। २ आँख की पुतली। ३ नेत्रगोलक [को०]।

अक्षिकूटक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षिकूट' [को०]।

अक्षिगत--वि० [सं०] १ देखा हुआ। दृष्ट। २ विद्यमान। उपस्थित। ३ द्वेष का पात्र। द्वेष्य [को०]।

अक्षिगोल--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षिगोलक' [को०]।

अक्षिगोलक--संज्ञा पुं० [सं०] आँख का डेला। आँख की पुतली।

अक्षिणी--संज्ञा स्त्री० [सं०] गैरमनकूला जायदाद या अचल संपत्ति से संबद्ध आठ प्रकार की शर्तों या सुविधाओं में से एक [को०]।

अक्षित[1]--वि० [सं०] १ क्षय न होनेवाला। जिसका क्षय न हुआ हो। २ अघट। न घटनेवाला। ३ जिसे चोट आदि न लगी हो [को०]।

अक्षित[2]--संज्ञा पुं० १ जल। २ दस लाख की संख्या [को०]।

अक्षितर--संज्ञा पुं० [सं०] पानी। जल [को०]।

अक्षितवसू--संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम [को०]।

अक्षितारक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षितारा' [को०]।

अक्षितारा--संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख की पुतली।

अक्षितावसु--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षितवसु'। [को०]।

अक्षिति[1]--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० अनश्वरता [को०]।

अक्षिति[2]--वि० अनश्वर। नाश न होनेवाला [को०]।

अक्षिनिमेष--संज्ञा पुं० [सं०] १ आँख की चमक। २ क्षण। पल [को०]।

अक्षिपक्ष्म--संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पलकों के अग्रभाग के बाल। वरौनी [को०]।

अक्षिपटल--संज्ञा पुं० [सं०] १ आँख के कोए पर की झिल्ली। आँख का परदा। २ आँख का एक रोग। माँडा (को०)।

अक्षिपाक--संज्ञा पुं० [सं०] आँख की सूजन [को०]।

अक्षिव--संज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'अक्षीव' [को०]।

अक्षिभू--वि० [सं०] १ प्रत्यक्ष। दृश्य। प्रगट। २ सत्य। वास्तविक [को०]।

अक्षिभेषज--संज्ञा पुं० [सं०] १ आँख की दवा। २ पट्टिकालोध्र नामक वृक्ष [को०]।

अक्षिमत्--वि० [सं०] आँखवाला [को०]।

अक्षिलोम--संज्ञा पुं०, [सं०] दे० 'अक्षिपक्ष्म' [को०]।

अक्षिव--संज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'अक्षीव' [को०]।

अक्षिविकूणित--संज्ञा पुं० [सं०] कटाक्ष [को०]।

अक्षिविकूशित--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षिविकूणित' [को०]।

अक्षिविक्षेप--संज्ञा पुं० [सं०] कटाक्ष [को०]।

अक्षिश्रवा--संज्ञा पुं० [सं० अक्षिश्रवस्] सर्प। चक्षुश्रवा [को०]।

अक्षिस्पंदन--संज्ञा पुं० [सं० अक्षिस्पन्दन] आँख फड़कना।

अक्षीक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षक' या 'अक्षिक' [को०]।

अक्षीण--वि० [सं०] १ जो न घटे। क्षीण न होनेवाला। जो कम न हो। २ अविनाशी। नाशरहित।

अक्षीव[1]--वि० [सं०] जो मतवाला न हो। चैतन्य। धीर। शांत।

अक्षीव[2]--संज्ञा पुं० १ सहिजन का पेड़। २ समुद्री नमक।

अक्षीव--संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अक्षीव' [को०]।

अक्षु[1]--वि० [सं०] शीघ्र। तुरंत। [को०]।

अक्षु[2]--संज्ञा पुं० एक प्रकार का जाल [को०]।

अक्षुण--वि० [सं०] दे० 'अक्षुण्ण' [को०]।

अक्षुणता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अक्षयता। २ अनुभवहीनता [को०]।

अक्षुण्ण--वि० [सं०] १ बिना टूटा हुआ। अभग्न। उ०--अक्षुण्ण अतुलता रहे सदैव अतुल की।--साकेत, पृ० २१६। २ अकुशल। अनुभवशून्य। अनाड़ी। ३. अपराजित। सफल (को०)। ४. समूचा। अन्यून (को०)। ५ लगातार। व्यवधानरहित (को०)।

अक्षुद्र[1]--वि० [सं०] १ जो क्षुद्र या छोटा न हो। २ जो नीच या तुच्छ न हो [को०]।

अक्षुद्र[2]--संज्ञा पुं० शिव का एक नाम [को०]।

अक्षुध्य--वि० [सं०] १ जिससे क्षुधा न लगे। भूख मिटानेवाला, भूख नष्ट करनेवाला। २ जिसको भूख न लगती हो। क्षुधारहित [को०]।

अक्षुब्ध--वि० [सं०] क्षोभरहित। जिसे क्षोभ न हो [को०]।

अक्षेत्र[1]--वि० [सं०] १ क्षेत्रशून्य। बिना क्षेत्र का। २ परती। अकृष्ट [को०]।

अक्षेत्र[2]--संज्ञा पुं० १ निकृष्ट या बुरी भूमि। २ ज्यामिति की विकृत आकृति। मंद बुद्धि का छात्र। उपदेश के अयोग्य शिष्य [को०]।

अक्षेत्रज्ञ--वि० [सं०] १ पथभ्रांत। भटका हुआ। २ आध्यात्मिक ज्ञान से शून्य। ३ क्षेत्र या शरीर के तत्व को न जाननेवाला। देहाभिमानी [को०]

अक्षेत्रविद्--वि० [सं०] दे० 'अक्षेत्रज्ञ' [को०]।

अक्षेत्री--वि० [सं०] बिना क्षेत्र का। बिना खेतवाला [को०]।

अक्षेम--संज्ञा पुं० [सं०] अमंगल। अशुभ। अकुशल। बुराई।

अक्षै(पु)--वि० [सं० अक्षय] दे० 'अक्षय'। उ०--अक्षै वृक्ष एक राशि बनाई। अग्रवास तहाँ रही समाई।--कबीर सा०, पृ० १५३४।

अक्षोट--संज्ञा पुं० [सं०] अखरोट का वृक्ष या फल।

पर्या०--कर्पराल। कंदराल। अक्षोड। आक्षोट। आक्षोड।

अक्षोड--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षोट' [को०]।

अक्षोडक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षोट' [को०]।

अक्षोधुक--वि० [सं०] जो भूखा न हो। क्षुधारहित। क्षुधाहीन [को०]।

अक्षोनि(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षौहिणी] दे० 'अक्षौहिणी'। उ०--जुरे नृपति, अक्षोनि अठारह, भयो युद्ध अति भारी।--सूर (शब्द०)।

अक्षोभ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्षोभ का अभाव। अनुद्वेग। शांति। दृढता। धीरता। स्थिरता। २ हाथी बाँधने का खूँटा।

अक्षोभ²—वि० १ क्षोभरहित। चचलता से रहित। उद्वेगशून्य। २. शात। स्थिर गभीर।

अक्षोभ्य¹—वि० [सं०] धीर। शात। गभीर [को०]।

अक्षोभ्य²—संज्ञा पुं० १ तत्रोक्त एक ऋषि। २ बुद्ध का एक नाम। ३ बौद्धों के मत से एक बहुत बडी सख्या [को०]।

अक्षोभ्यकवच—संज्ञा पुं० [सं०] तत्रशास्त्रोक्त एक प्रकार का कवच [को०]।

अक्षौरिम—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्रोक्त वे नक्षत्र जिनमे क्षौर-कर्म वर्जित हैं [को०]।

अक्षौहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूरी चतुरगिनी सेना। सेना का एक परिमाण। सेना की एक नियमित सख्या। इसमे १०९३५० पैदल, ६५६१० घोडे, २१८७० रथ और २१८७० हाथी होते थे। २ ग्यारह की सख्या।—भा० प्रा० लि०, पृ० १२०।

अक्ष्ण¹—वि० [सं०] अखड। व्यापक [को०]।

अक्ष्ण²—संज्ञा पुं० काल। समय [को०]।

अक्स—संज्ञा पुं० [अ०] १ प्रतिबिंब। छाया। परछाईं। उ०—नाजुक हैं, न खिचवाऊँगा तस्वीर मैं उनकी। चेहरा न कहीं अक्स के बदले उतर आए।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६९२।

क्रि० प्र०—आना।—डालना।—पडना।—लेना।

२ तसवीर। चित्र। उ०—आईनए दिल मे हैं तेरा अक्स। दिन रात मैं तुझको देखता हूँ।—शेर०, भा० १, पृ० ३०६।

क्रि० प्र०—उतारना।—खींचना।

३. फोटो [को०]।

अक्सर—क्रि० [अ०] वि० दे० 'अकसर'। उ०—आँखो मे अक्सर उनकी आँसू निकल गए हैं। क्या क्या भरे गुलिस्ताँ सावन मे जल गए हैं।—शेर०, भा० ४, १८२।

अक्सी—वि० [फा०] १ प्रतिबिंब या छाया सबधी। २. अक्स सबधी। अक्स से बना [को०]।

अक्सी तसवीर—संज्ञा पुं० [फा०] फोटो। आलोक चित्र।

अक्सीर¹—वि० [अ०] अव्यर्थ। अकसीर। उ०—जाहिद शरावे नाब की तासीर कुछ न पूछ। अक्सीर है जो हल्क के नीचे उतर गई।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५५५।

अक्सीर²—संज्ञा पुं० कीमिया। अक्सीर। एक दवा [को०]।

अखग(पु)—वि० [सं० अखण्ड] न खँगनेवाला। न चुकनेवाला। कम न होनेवाला। अविनाशी।

अखड—वि० [सं० अखण्ड] १ जिसके खड या टुकडे न हों। अटूट। अविच्छिन्न। सपूर्ण। समूचा। पूरा। उ०—ज्ञान अखड एक सीताबर। मायावस्य जीव सचराचर।—मानस, ७।७८। २ जिसका क्रम या सिलसिला न टूटे। जो बीच मे न रुके। लगातार। अनवरत। उ०—जहाँ अखड शांति रहती है वहाँ सदा स्वच्छद रहें।—प्रेम०, पृ० ३२। ३ निर्विघ्न। बेरोक। उ०—रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचड। जरत बिभीषन राखेउ दीन्हेउ राज अखड।—मानस, ५।४९।

यौ०—अखंड ऐश्वर्य। अखड कीर्ति। अखड पुण्य। अखंड प्रताप। अखड यश। अखड राज्य। अखंड वृष्टि।

अखड द्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं० अखण्डद्वादशी] अगहन सुदी द्वादशी। मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की बारहवीं तिथि [को०]।

अखडधार—संज्ञा पुं० [सं० अखण्डधार] न टूटनेवाली धार। झडी। लगातार वृष्टि। उ०—सलिल अखडधार धर टूटत किए इद्र मन सादर।—सूर० १०।८५८।

अखडन¹—वि० [सं० अखण्डन] १ खडित न होनेवाला। अखडनीय। २ समग्र। पूर्ण। ३ अखडित। अविच्छिन्न [को०]।

अखडन²—संज्ञा पुं० १ विरोध का अभाव। अविरोध। २ काल। समय। ३ परमात्मा। ४ खडन न करना [को०]।

अखडनीय—वि० [सं० अखण्डनीय] १ जिसके टुकडे न हो सकें। जिसका खंड न हो सके। जो काटा न जा सके। २ जिसके विरुद्ध न कहा जा सके। पुष्ट। अकाट्य।

अखडपाठ—संज्ञा पुं० [सं० अखण्ड+पाठ] वह पाठ जो बिना क्रम टूटे लगातार चले।

अखडर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आखण्डल] इद्र। सुरपति। उ०—नहिं सुमत कैमास राय गोयद अखडर।—पृ० रा०, ६६।२३८।

अखडल¹(पु)—वि० [सं० अखण्ड+हिं० ल (प्रत्य०)] १ अखड। अटूट। अविच्छिन्न। उ०—मनु नखत मडल मे अखडल पूर्ण चद्र सुहाय।—रघुनाथ (शब्द०) २ समूचा। सपूर्ण। पूरा। उ०—तवा सो तपत धरा मडल अखडल औ मारतड मडल हवा सो होत भोर तें।—बेनी (शब्द)।

अखडल²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आखण्डल; प्रा० अखडल] इद्र। सुरपति। उ०—जाय बृजमडल के बीच मैं अखडल ह्वाँ मरजी तिहारी मानि रह्यो वह भाँति हैं।—दीन० ग्र०, पृ० ६०।

अखड सौभाग्य—संज्ञा पुं० [सं० अखंड+सौभाग्य] जीवन पर्यंत स्त्रियों के अविधवा होने का सौभाग्य। जीवन पर्यंत अविधवा रहने की स्थिति [को०]।

अखड सौभाग्यवती—वि० [सं० अखण्ड+सौभाग्यवती] जीवन पर्यंत सुहागिनी रहनेवाली [को०]।

अखडा द्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं० अखण्डा द्वादशी] अगहन सुदी द्वादशी दे० 'अखडद्वादशी' [को०]।

अखडानद—वि० [सं० अखंड+आनद] पूर्ण आनदस्वरूप। उ०—जदपि अखडानद नदनदन ईश्वर हरि।—नद० ग्र०, पृ० ४६।

अखडित—वि० [सं० अखण्डित] जिसके टुकडे न हो। विभाग-रहित। अविच्छिन्न। उ०—सोइ सर्वज्ञ तज्ञ सोइ पडित। सोइ गुन गृह विज्ञान अखडित।—मानस, ७।४९। २ सपूर्ण। समूचा। पूरा। परिपूर्ण। उ०—वे हरि सकल ठौर के बासी। पूरन ब्रह्म अखडित मडित पडित मुनिन विलासी।—सूर०, १०।३०६६। जिसमे कोई रुकावट न हो। बाधा-रहित। निर्विघ्न, जैसे—उसका व्रत अखडित रहा (शब्द०)।

उ०—सुग्रा ग्रमीस दीन्ह वड साजू । वड परताप ग्रखडित राजू ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३२।४ लगातार । अनवरत । सिलसिलेवार । उ०—(क) धार ग्रखटित वरसत झर झर । कहत मेघ धावहु व्रज गिरिवर ।—सूर०, १०।९३६ । (ख) उमडी ग्रंखियान ग्रखडित धार ।—कोई कवि (शब्द०) ।

ग्रख—सज्ञा पु० [देश०] वाग । वगीचा (डिं०) ।

ग्रखगर—सज्ञा पुं० [फा० ग्रख्गर] चिनगारी । ग्रग्निकण । स्फुलिंग । उ०—ग्रखगर को छिपा राख मे मैं देख के समझा । 'तावाँ' तो तहे खाक भी जलता ही रहेगा ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३१८ ।

ग्रखगरिया—सज्ञा पु० [फा० ग्रखगर + हिं० इया (प्रत्य०)] वह घोडा जिसके वदन से मलते वक्त चिनगारी निकलती है ।

विशेष—ग्रश्वशास्त्र या शालिहोत्र के ग्रनुसार ऐसा घोडा ऐवी समझा जाता है ।

ग्रखज(पु)—वि० [स० ग्रखाद्य; प्रा० ग्रखज्ज] १ न खाने योग्य । ग्रभक्ष्य । उ०—झख मारत ततकाल ध्यान मुनिवर सो धारत । विहरत पख फुलाय नहीं खज ग्रखज विचारत ।—दीन० ग्रं०, पृ० २०६ । २ निकृष्ट । वुरा । खराव । उ०—वैरागी ग्रस चाल वताऊँ । तजे ग्रखज तव हस कहाऊँ ।—कवीर सा०, पृ० २२१ ।

ग्रखट्ट—संज्ञा पु० [स०] प्रियाल का पेड [को०] ।

ग्रखट्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ ग्रशिष्ट व्यवहार । २ वचपन की वात [को०] ।

ग्रखडा†—सज्ञा पुं० [स० ग्रखात] ताल के वीच का गडहा जिसमे मछलियाँ पकडी जाती हैं । चँदवा ।

ग्रखड़ैत[1](पु)†—सज्ञा पुं० [हिं० ग्रखाड़ा + ऐत (प्रत्य०)] मल्ल । पहलवान । वलवान पुरुष । उ०—जंगा जीत तपोवल जालम ग्रोप वडे ग्रखडैत ।—रघु० रू०, ६२ ।

ग्रखड़ैत[2]†—वि० ग्रखाडा मे कुश्ती लडनेवाला जोर करनेवाला । ग्रखाडिया ।

ग्रखत—वि० [स० ग्रक्षत] विना टूटा हुग्रा । ग्रक्षत । सपूर्ण । समग्र । उ०—गिणजे सद ज्यारी जिंदगाणी, उभै विरद धरियाँ ग्रखत ।—रघु० रू०, पृ० २४ ।

ग्रखतियार (पु)†—सज्ञा पु० [ग्र० इख्तयार] दे० 'इख्तियार' उ०—ग्रव नाटक करनेवालों को ग्रखतियार है कि सव नाटक हिंदी भापा मे करें चाहे हिंदी, उर्दू, मारवाडी ग्रौर व्रजभापा मे करें ।—श्रीनिवास ग्रं० (नि०), पृ० १० ।

ग्रखती †—सज्ञा स्त्री० [स ग्रक्षय तृतीया, प्र० ग्रक्खय—तइया, तीय] ग्रक्षय तृतीया । उ०—ग्रखती की तीज तजवीज कै सहेली जुरी, वर के निकट ठाढी भावते को घेर के । ठाकुर०, पृ० १७ ।

ग्रखतीज—सज्ञा स्त्री० [सं० ग्रक्षय तृतीया' प्रा० ग्रक्खय-तइया, तीय] ग्रक्षय तृतीया, । ग्राखातीज ।

ग्रखत्यार†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इख्तियार' । उ०—'हम तो ग्राज्ञाकारिणी दासी ठहरी, हमारो का ग्रखत्यार है' ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४४७ ।

ग्रखनकुमारी(पु)†—वि० स्त्री० [सं० ग्रक्षत, ग्रक्षय + कुमारिका] ग्रक्षत कुमारी । जिसका कौमार्य भग न हुग्रा हो । उ०—सुंदर सवही सौं मिली कन्या ग्रखनकुमारि । वेश्या फिरि पतिव्रत लियौ भई सुहागनि नारि ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७५५ ।

ग्रखना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ग्राखना' । उ०—ग्राद चरण की कला ग्रठारह ग्ररट गीत कवि मऊ ग्रखै ।—रघु० रू०, पृ० ६२ ।

ग्रखनी—सज्ञा स्त्री० [ग्र० यखनी] मास का रसा । शोरवा । उ०—ग्रपनी वटि वामति मास परै । हठिवास सुवासिनी ग्राभ भरै ।—पृ० रा०, ६३।१०० ।

ग्रखवार—सज्ञा पुं० [ग्र० खवर का वहु०] १ समाचारपत्र । सवादपत्र । उ०—खीचो न कमानों का न तलवार निकालो । जव तोप मुकाविल है तो ग्रखवार निकालो ।—कविता कौ० भा० ४, पृ० ६२० । २ दे० 'खवर' । उ०—हैंगे हम तोव मे वहुत ग्रखवार । कुछ मैं लिखता हूँ उनसते यार ।—दक्खिनी०, पृ० २१८ ।

ग्रखवारनवीस—सज्ञा पुं० [ग्र० ग्रखवार, फा० + नवीस] वह जो समाचार लिखता हो । समाचारलेखक । समाचारपत्र सपादक । पत्रकार ।

ग्रखवारनवीसी—सज्ञा स्त्री० [ग्र० ग्रखवार + फा० नवीसी] ग्रखवारनवीस का काम । पत्रकारिता [को०] ।

ग्रखवारी—वि० [ग्र० ग्रखवार + हिं० ई (प्रत्य०)] ग्रखवार सवधी । ग्रखवार का [को०] ।

ग्रखय(पु)—वि० [सं० ग्रक्षय, प्रा० ग्रक्खय] जिसका क्षय न हो । न छीजनेवाला । ग्रविनाशी । नित्य । चिरस्थायी । उ० —ग्रसमहि छोडि छेम ह्वै रहई । होय ग्रखीन ग्रखय पद गहई ।—कवीर (शब्द०) ।

ग्रखयकुमारी(पु)—वि० स्त्री० [सं० ग्रक्षयकुमारी] दे० 'ग्रखनकुमारी' । उ०—माह मास सीय पडे ग्रति सार । समजती धन ग्रखय कुमारि ।—वी० रासो० पृ० २१ ।

ग्रखयवट(पु)—सज्ञा पुं० [सं० ग्रक्षयवट] दे० 'ग्रक्षयवट' । उ०—सगम सिंघासन सुठि सोहा । छत्र ग्रखयवट मुनि मन मोहा ।—मानस, २।१०५।

ग्रखर[1](पु)—सज्ञा पुं० [सं० ग्रक्षर; पा०, प्रा० ग्रक्खर] ग्रक्षर । वर्ण । हर्फ । उ०—म द प ग्रखर ए मध्य तज भ ट क ग्रत मत ग्राण ।—रघु० रू०, पृ० ८ ।

ग्रखर[2](पु)—वि० दे० 'ग्रक्षर' ।

ग्रखर[3]—सज्ञा स्त्री० [हिं० ग्रखरना] ग्रखरने का भाव या स्थिति । उ०—'हाँ, सदूक खोलकर लाना कोई कठिन काम नहीं । ग्रखर तो उसे होती है जिसे कुग्राँ खोदना पडता है ।—काया०, पृ० ३० ।

ग्रखरताली†—सज्ञा स्त्री० [सं० ग्रक्षर + तल] हस्ताक्षर । हस्तलेख ।

ग्रखरना—क्रि० ग्र० [सं० खर = तीव्र, कटु] १ दुखदाई होना । कष्टकर होना । उ०—चहचह चिरी धुनि कहकह केकिन की घहघह घनसोर सुनतै ग्रखरिहै ।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० २२६ । २. वुरा लगना । खलना । उ०—'चिट्ठी लगाना सत्तीदीन की स्त्री को ग्रखरता ।'—विल्ले०, पृ० १६ ।

अखरा¹ (पु)—वि० [सं० अ=नहीं+खरा=सच्चा] जो खरा या सच्चा न हो। झूठा। कृत्रिम। बनावटी। उ०—बार विलासिनी ती के जपै अखरा अखरा नखरा अपरा के।—पद्माकर (शब्द०)।

अखरा² (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अक्षर] वर्ण। अक्षर। हरफ। उ० (क)—नीते कौन, कौन अखरा की रेफ, कंकै, कहां कहैं अर मीत गाखैं कहा कहि थाप दम।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १६६। (ख) रसवंत कवित्तन का रस ज्यों अखरान के ऊपर ह्वै झलके।—काई कवि (शब्द०)।

अखरा†—संज्ञा पुं० [देश०] बिना कुटे हुए जौ या भूसी मिला आटा जिसे गरीब लोग खाते हैं।

अखरावट—संज्ञा पुं० [सं० अक्षरावलि, अक्षरावर्त] १ वर्णमाला। अक्षरसमूह। २ वर्णानुक्रम के आधार पर निर्मित पद्यसमूह, जैसे जायसी का अखरावट।

अखरावटी (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अखरावट+ई (प्रत्य०)] दे० 'अखरौटी'—१। उ०—पंडित पढ अखरावटी टूटा जोरेहु देखि।—जायसी ग्र०, ३०३।

अखरावलि (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षरावलि] अक्षरपंक्ति। उ०—प्रकटित पृथिमी पृथु मुख पंकज अखरावलि मिसि थाइ एकत्र।—वेलि०, दू० २६३।

अखरोट¹ (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अखरावट'-१। उ०—पुराजै, सुध अखरोट पिए औ दस दाए अगाध।—रघु० रू०, पृ० १३।

अखरोट²—संज्ञा पुं० [सं० अक्षोट, प्रा० अक्खोड] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो हिमालय पर भूटान से लेकर कश्मीर और अफगानिस्तान तक होता है।

विशेष—खासिया की पहाड़ियों तथा अन्य स्थानों पर भी यह लगाया जाता है। इसकी लकड़ी बहुत ही अच्छी, मजबूत और भूरे रंग की होती है और उसपर बहुत सुंदर धारियाँ पड़ी होती है। इसकी मेज, कुरसी, बंदूक के कुंदे, संदूक आदि बनते हैं। इसकी छाल रंगने और दवा के काम में भी आती है। इसका फल अंडाकार, बहेड़े के समान होता है। सूखने पर इसका छिलका बहुत कड़ा हो जाता है जिसके भीतर से टेढा मेढा गूदा व मीठी गरी निकलती है। गूदे में से तेल भी बहुत निकलता है। डंठल और पत्तियों को गाय बैल खाते हैं। अखरोट बहुत गर्म होता है।

अखरोट जंगली—संज्ञा पुं० [हिं०] जायफल।

अखरौटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अखरावटी'।

अखर्व—वि० [सं०] १. जो छोटा न हो। बड़ा। लंबा। २. जो क्षुद्र या बौना न हो [को०]।

अखर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [को०]।

अखल—संज्ञा पुं० [सं०] गुणी एवं अच्छा वैद्य या डाक्टर [को०]।

अखलाक—संज्ञा पुं० [अ० अखलाक] १ सदाचार। उत्तम आचार। २. सुजनता। शिष्टता [को०]।

अखलि—वि० [देश० अक्खलिय] आकुल व्याकुल। उ०—दुतिया द्वै कुल उघरत धीर, उनमन मनवाँ अखलि सरीर।—गोरख०, पृ० १६१।

अखसत—संज्ञा पुं० [सं० अक्षत] चावल (डिं०)।

अखाँगना¹ (पु)—क्रि० स० [हिं० खाँगना] मारना। उ०—कहै पदमाकर अखाँग्यो तुम लकपति।—पदमाकर ग्र०, पृ० २४८।

अखाँगना² (पु)—क्रि० स० [सं० अ=नहीं+हिं० खाँग=कमी, त्रुटि] त्रुटि न करना। कोताही या कमी न करना। उ०—हमहूँ कलकपति ह्वैवोई अखाँग्यो है।—पदमाकर ग्र०, पृ० २४८।

अखा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आखा'।

अखाज (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अखाद्य'। उ०—गम्य अगम्य विचार न करही, खाज अखाज नहीं चित धरहीं।—कबीर सा०, पृ० ४६४।

अखाड (पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अखाड़ा'। उ०—छुद्र घंटि मोहहिं नर राजा। इंद्र अखाड आइ जनु साजा।—जायसी ग्रं०, पृ० ४७।

अखाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० अक्षवाट; प्रा० अक्खाडय] १. वह स्थान जो मल्लयुद्ध के लिये बना हो। कुश्ती लड़ने या कसरत करने के लिये बनाई हुई चौखूँटी जगह जहाँ की मिट्टी खोदकर मुलायम कर दी जाती है। मल्लशाला। उ०—'चौदह पंद्रह साल के लड़के अखाड़ा गोड चुके थे छप्पर की थूनियाँ पकड़े हुए बैठक कर रहे थे'।—काले०, पृ० ३। २ साधुओं की सांप्रदायिक मंडली। जमायत, जैसे—निरंजनी अखाड़ा, निर्वाणी अखाड़ा, पंचायती अखाड़ा। ३ साधुओं के रहने का स्थान। संतों का अड्डा। ४ तमाशा दिखानेवालों और गाने-बजाने वालों की मंडली। जमायत। जमावड़ा। दल, जैसे—'आज पटेवाजों के दो अखाड़े निकले' (शब्द०)। ५ सभा दरबार। मजलिस। ६ रंगभूमि। रंगशाला। परियों का अखाड़ा। नृत्यशाला। उ०—लड़ते हैं परियों से कुश्ती पहलवाने इश्क हैं, हमको नासिख राजा इंदर का अखाड़ा चाहिए।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३५४। ७ आँगन। मैदान।

मुहा०—अखाड़ा उखाड़ना = अखाड़े के काम में लोगों द्वारा रुचि न लेना। अखाड़ा न जमना। अखाड़ा गरम होना=अखाड़े में काफी लोगों का आना या भीड़भाड़ होना। अखाड़ा जमना= १ अखाड़े का काम ठीक ढंग से होना। २. अखाड़े में शामिल होनेवाले और दर्शकों की चहल पहल होना। ३. किसी जगह बहुत से आदमियों का इकट्ठा होना। ४. किसी मजलिस, सभा या गोष्ठी में चहल पहल रहना। अखाड़ा न लगना=अखाड़े का काम न होना। अखाड़ा बंद रहना। उ०—'और लड़कों को समझा दिया कि कोई आवे तो कह दे कि अखाड़ा न लगेगा'।—काले०, पृ० २७। अखाड़ा निकलना=अखाड़े से संबद्ध लोगों का सामूहिक रूप में निकलना। अखाड़ा बदना= चुनौती देना। ललकारना। अखाड़ा लगना=दे० 'अखाड़ा जमना'। अखाड़े का जवान=कुश्ती या कसरत से पुष्ट शरीर का व्यक्ति। अखाड़े में आना=लड़ने के लिये सामने आना। अखाड़े में उतरना=दे० 'अखाड़े में आना'।

अखाड़िया¹—वि० [हिं० अखाड़ा+इया (प्रत्य०)] १ अखाड़े के कामों में सधा हुआ। दंगली पहलवान। २. केवल जोड़ अपने में ही लड़नेवाला। दंगल में न लड़नेवाला। ३. किसी विषय के ज्ञान में बेजोड़।

अखाड़िया²—संज्ञा पुं० कुश्ती लड़नेवाला पहलवान।

अखाढ़Ⓟ†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'असाढ़'। उ०--मास अखाढ़ उन्नत नवमेघ --विद्यापति, पृ० १३१।

अखात¹--संज्ञा पुं० [सं०] १ बिना खोदा हुआ स्वाभाविक जलाशय। ताल। झील। २ खाड़ी। ३ मनुष्य द्वारा निर्मित जलाशय [को०]।

अखात²--वि० बिना खोदा हुआ [को०]।

अखादⓅ--वि० [हिं०] दे० 'अखाद्य'। उ०--खाद अखाद न छांडे अब लौं सब मैं साधु कहावै।--सूर०, १।१८६।

अखाद्य--वि० [सं०] १ न खाने योग्य। अभक्ष्य, जैसे, गामास आदि। २ खाने की वस्तु से भिन्न (को०)।

अखाधिⓅ--वि० [अखाद्य, प्रा० अखादिम] दे० 'अखाद्य'। उ०--की ब्रह्म ज्ञान होये मैथुन मथन करे खाधि अखाधि सनचारा।--सं० दरिया, पृ० १२१।

अखानी--संज्ञा स्त्री० [सं० अखान + हिं० ई (प्रत्य०)] एक टेढ़ी छड़ी या लकड़ी जिससे दँवरी या गल्ला पीटने के समय खेत से कटकर आए हुए डंठलों को बीच में करते जाते हैं।

अखार¹--संज्ञा पुं० [सं० अक्ष, पा०, प्रा० अक्ख = धुरी + हिं० आर (प्रत्य०)] मिट्टी का छोटा सा लोंदा जिसे कुम्हार लोग चाक के बीच में रख देते हैं और जिसपर थोपा रखकर नरिया उतारते हैं।

अखार²Ⓟ--संज्ञा पुं० [हिं० अखाड़ा] दे० 'अखाड़ा' उ०--नट नाटक पतुरिन औ बाजा। आनि अखार सबै तहँ साजा।--पदमावत, पृ० ६०१।

अखारना†--क्रि० स० [सं० अक्षालन] चारों ओर से अच्छी तरह धोना; जैसे अखारना, पखारना।

अखाराⓅ--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अखाड़ा'। उ०--तहाँ देखि अपसरा अखारा। नृपति कछू नहिं वचन उचारा।--सूर०, ६।४।

अखितⓅ--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षत'। उ०--दिय अखित सँस केदार साज।--पृ० रा०, ५८६१।

अखिद्र--वि० [सं०] जो थका न हो। खेदरहित [को०]।

अखिन्न--वि० [सं०] १ खिन्नतारहित। खेदविहीन। उ०--सचेत किया मैंने अखिन्न जिस ओर कुंडली छिन्न भिन्न।--अनामिका, पृ० १२५। २ क्लेशरहित। दुखरहित। ३ प्रसन्न। विमल। उ०--तेहिं प्रौढोक्ति कहै सदा जिन्ह की बुद्धि अखिन्न।--भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४६१४ अश्रांत। अक्लांत (को०)।

अखियात¹Ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० आख्यात] आश्चर्य। अचंभा। उ०--ए अखियात जु आउध आउध, सजे रुकम हरि छेद सोजि।--वेलि०, दू० १३३।

अखियात²Ⓟ--वि० १ प्रसिद्ध। आख्यात। उ०--अखियातों बातों बचै जरा काल डर छड्ड।--बाँकीदास ग्रं०, भा० ३, पृ० ४६। २ समग्र। सब। सपूर्ण। उ०--रिण पहियां भ्रम राख अभंग अखियात उबारै।--रा० रू०, पृ० ३८। ३ दे० 'अक्षय' उ०--पात सुजस अखियात पयपै दातव असमर वात दुवै।--रघु० रू०, पृ० १६।

अखिर Ⓟ--वि० [सं० अक्षर, प्रा० अक्खर, Ⓟअखिर + हिं० ई (प्रत्य०)] अक्षरवाला। आखर। उ०--प्यंड ब्रह्मांड सम तुलि व्यापीले, एक अखिरी हम गुरमुखि जाणी।--गोरख०, पृ० १०१।

अखिल--वि० [सं०] १. संपूर्ण। समग्र। बिलकुल। पूरा। सब। उ०--अखिल विश्व यह मोर उपाया।--मानस, ७।८७। २ सर्वांगपूर्ण। अखंड। उ०--तुमही ब्रह्म अखिल अविनासी भक्तन सदा सहाय।--सूर (शब्द०)। ३ जो अकृष्ट या बिना जोता हुआ न हो। खेती के योग्य (को०)।

यौ०--अखिल विग्रह = समग्र विश्व जिसका शरीर हो, ईश्वर।

अखिलात्मा--संज्ञा पुं० [सं०] समग्र विश्व जिसकी आत्मा हो। विश्वात्मा। ब्रह्म [को०]।

अखिलिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वनस्पति। करैला [को०]।

अखिलेश--संज्ञा पुं० [सं०] समग्र सृष्टि का स्वामी। ईश्वर [को०]।

अखिलेश्वर--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अखिलेश'। उ०--मग सती जग जननी भवानी। पूजे रिषि अखिलेश्वर जानी।--मानस, १।४८।

अखीनⓅ--वि० [सं० अक्षीण, अक्खीण] न छीजनेवाला। न घटनेवाला। चिरस्थायी। अविनाशी। नित्य। स्थिर। उ०--खसमहिं छाँडि छेम ह्वै रहई। होय अखीन परमपद गहई।--कबीर (शब्द०)।

अखीर¹--संज्ञा पुं० [अ० अखीर] १. अंत। छोर। २ समाप्ति।

अखीर²--वि० खतम। समाप्त। उ०--अखीर हो गए गफलत में दिन जवानी के, बहारे उम्र हुई कब खिजाँ नहीं मालूम।--कविता को०, भा० ४, पृ० ३८०।

अखीरी¹--वि० [अ० अखीर + ई (प्रत्य०)] दे० 'आखिरी'।

अखीरी²Ⓟ--वि० [हिं०] दे० 'अखिरी'। उ०--एक अखीरी ग्कंकार जपीला, सुंनि अस्थूल दोइ वांणीं।--गोरख०, १०१।

अखुटनाⓅ--क्रि० अ० [सं० *अ + √ क्षोट (क्षेपे), प्रा० *खोट खुट (ला०) अथवा देश०] लड़खड़ाना। उ०--अखुटत परत सु विह्वल भयो, डरत डरत सूनो गृह गयो।--नंद० ग्रं०, पृ० २३१।

अखुटितⓅ--वि० [सं० अ + कुण्ठ, प्रा० *अखुट, > अखुट, अथवा सं० अ = नहीं + √क्षोट = क्षय, प्रा० *अखोट > अखुट + इत (प्रत्य०)] लगातार। अनवरत। निरंतर। उ०--अखुटित रटत सभीत ससंकित, सुकृत शब्द नहिं पावै।--सूर०, १।४८।

अखूट--वि० [सं० अ + √खुड् = तोड़ना अथवा सं० *अखोड्य, प्रा० *अखुड्ड, अखुड्ड > अखूट] १ जो तोड़ा या खंडित न किया जा सके। अटूट। उ०--सात दीप सात सिंधु थरक थरक करै जाके डर टूटत अखूट गढ़ राना के।--अकबरी०, पृ० १४३। २ जो न घटे या न चुके। अखंड। अक्षय। बहुत। अधिक। उ०--(क) नैना अतिही लोभ भरे। सगहिं संग रहत वे जहँ तहँ बैठत चलत खरे। काहू की परतीति न मानत जानत सबहिनि चोर। लूटत रूप अखूट दाम को स्याम बस्य यों भोर।--सूर०, १०।२८८४। (ख) झूठ न कहिए साँच को साँच न कहिए झूठ। साहब तो मानै नहीं लागै पाप अखूट।--दादू (शब्द०)।

अखेटⓅ--संज्ञा पुं० [सं० आखेट] दे० 'आखेट'। उ०--मनौ कहै अखेट सो करै, विषय भोग जीवन सहरै।--सूर०, ४।१२।

अखेटकⓅ--संज्ञा पुं० [सं० आखेटक] दे० 'आखेटक'। उ०--(क) एक दिवस को अखेटक गयो, जाइ अंबिका बन तिय भयो।--सूर०, ६।२। (ख) इक दिन राव अखेटक चढ़्यो, बिरही मृग मारन रिस भरयो।--नंद० ग्रं०, पृ० १४०।

अखेटकी(पु)—वि० [हिं० अखेटक + ई (प्रत्य०)] शिकारी। अहेरी। आखेटी। उ०—पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि, अटत गहन बन अहन अखेटकी।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२०।

अखोटिक—संज्ञा पुं० [सं० आखोटिक] १ शिशिर शिखरी वृक्ष। २. कोई भी वृक्ष [को०]।

अखेद¹—संज्ञा पुं० [सं०] दुःख का अभाव। प्रसन्नता। निर्द्वंद्वता।

अखेद²—वि० दुःखरहित। प्रसन्न। हर्षित। उ०—है हरता करतार प्रभु कारण करन अखेद। यह विचारि चहुँवान के मन उपज्यो निरवेद।—हम्मीर०, पृ० ६८।

अखेदित्व—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत में लगातार भाषण देने का वाणी का एक गुण [को०]।

अखेदी—वि० [सं०] क्लांतिरहित। अथकित [को०]।

अखेलत(पु)—वि० [सं० अ + खेल = खेलना = बिना खेलते हुए] १ अचंचल। अलोल। भारी। २ आलस्य भरा। उनींदा। उ०—भारी रस भीजे भाग भायनि भूजन भरे, भावते सुभ उपभोग रस मोदगे। खेलत हीं खेलत अखेलत ही आखिन मों खिनखिन खीन ह्वै खरे ही खिन खोदगे।—देव (शब्द०)।

अखै(पु)—वि० [सं० अक्षय, पा०, प्रा० अक्खय] अक्षय। अविनाशी। उ०—मन मस्त हस्ती मिल इ हृदय रेव लूटि लै अखै भंडार।—गोरख०, पृ० २७।

यौ०—अखैपद = निर्वाण। अखैपुरुष = ईश्वर। अखैबट, अखैवर = अक्षयवट।

अखै तीज(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षय तृतीया] अक्षती की तीज। अक्षय तृतीया। उ०—अखै तीज तिथि के दिना गुरु होवे सजूत। तो भाखै यों भड्डरी निपजै नाज बहूत।—घाघ०, पृ० १४५।

अखैनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षान] चार पाँच हाथ लंबी बाँस की लग्गी जिसके एक छोर पर एक टेढ़ी छोटी लकड़ी चोंच की तरह बंधी होती है। खलिहान में जब अनाज बटकर आता है तब इसी से उलट फेरकर उसे सुखाते हैं। अखानी।

अखैबट(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षयवट' उ०—सु अखैबट बीज लों फैलि परयो बनमाली यहाँ धौं रमैया बसै —घनानंद, पृ० ११४।

अखैबर†—संज्ञा पुं० [सं० अक्षयवट, प्रा० अक्खयवड] अक्षयवट।

अखैवड(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० अखैवट'। उ०—अखय अखैवड बिगर, प्रलै सागर सिर सोंहै।—रा० रू०, पृ० ५३।

अखोट—वि० [सं० अ + √खोट, प्रा० खोट]दोषरहित। शुद्ध। निश्छल। उ०—कही अखारी बात यह कियो प्रनाम अखोट। हरनि विरह तें दुगन कों घर सरोज की ओट —मति० ग्रं०, पृ० २८८।

अखोर¹(पु)—वि० [हिं० अ = नहीं + फा० खोर] १. अच्छा। भला। सज्जन। २ सुंदर। स्वरूपवान। ३. बुराई से बचा हुआ। निर्दोष। बेऐब।

अखोर²—वि० [फा० अखोर] निकम्मा। तुच्छ। बुरा। रद्दी। आखोर।

अगोर¹—संज्ञा पुं० १ कूड़ा करकट। निकम्मी चीज, जैसे—यह सब का अखोर बाजार से उठा लाए।—(शब्द०)। २. खराब घास। भुसभाड़ घास। बुरा चारा। निकम्मी। उ०—ज्यों अखोर बृष जिन डारौ, खाट खाट ना। सबरि लिखे न।—सूर० (शब्द०)।

अखोल(पु)—वि० [हिं० अ = नहीं + खोलना] जिसे खोला न जा सके। बंधा हुआ। दृढ़। उ०—लगी कपाट अर्गलित बोल। कनक बेलि तमाल पाई, कुसुमकर उजारा।—सूर० १०।२१३२।

अखोला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अखाड़ा'

अखोह—संज्ञा पुं० [सं० क्षोभ = असमानता] ऊँची नीची भूमि। ऊबड़ खाबड़ पृथ्वी। विषम भूमि।

अखौट—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष, पा० प्रा० अक्ख = धुरा + हिं० ओट (प्रत्य०)] १ जाँता या चक्की के बीच की खूँटी जिसके ऊपर का पाट घूमता है जाँते की किल्ली। २. लकड़ी या लोहे का डंडा जिसपर गड़ारी घूमती है।

अखौटा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अखौट'।

अख्यना(पु) —क्रि० स० [हिं०] दे० 'अखना'।

अख्खर—संज्ञा पुं० [सं० अक्षर; प्रा० अक्खर] अक्षर। हरफ। वर्ण। उ०—एकै अक्खर पीव का सोई सत करि जानि। राम नाम सतगुरु कह्या दादू सो परवानि।—दादू०, भा० १, पृ० ३२।

अख्खाह—अव्य० [अ० अख्खाह्] हर्ष या आश्चर्यसूचक शब्द। उ०—'अख्खाह। आप आए बैठिए। अख्खाह! आप भी इसमें लगे हुए हैं।—(शब्द०)।

विशेष—जब कोई व्यक्ति किसी से सहसा मिलता है अथवा उसे स्वभावविरुद्ध काम करते पाता है, तब इस शब्द का प्रयोग करता है। वास्तव में यह 'अल्लाह' का बिगड़ा हुआ 'अह्' शब्द का रूपांतर है।

अखिवर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षर'। उ०—के लेपे पर अखिवर तिनि सभा सुनि पुनि कह।—कबीर ग्रं०, पृ० २२।

अख्खै(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षर'। उ०—ईति सब दुखित सु आयौ। धम्म ध्रम्म धर्म ध्याय।—पृ० रा०, ४।६।

अगज—संज्ञा पुं० [सं० अगज] शिला। पहाड़।

क्रि० प्र०—करना = १. देना। पहुँच करना। २. किसी निगलना। साफ़ निकालना।

अग़यार—संज्ञा पुं० [अ० अग़ियार] दे० 'अग़्यार'। उ०—मिलने को तुमसे दिल तो मेरा बेकरार है। पर क्या करूँ कि साथ तेरे अग़यार है।—कविता०, भा० ४, पृ० ३६३।

अगड़—संज्ञा पुं० [फा० अकड़] ऐंठ। अकड़। शेखी। उ०—सीस ऐंठन से हुए अकड़ अकड़ फिर देता क्या। मरहिल हाथ मरद के कोई तुम ना।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४२२। २. हठ। अड़ान। जिद्द (क्व०)।

मुहा०—अगड़ करना = अभिमान करना। शेखी बघारना। अकड़ दिखाना।

अख्तरशुमार--संज्ञा पुं० [फा० अख्तरशुमार] नक्षत्रों की विद्या का जानकार। ज्योतिषी [को०]।

अख्तरशुमारी--संज्ञा स्त्री० [फा० अख्तरशुमारी] १ नक्षत्रगणना की विद्या। भाग्य जानने की विद्या २ आसमान से तारों को गिन गिनकर रात काटना। बेचैनी से रात काटना। उ०—शब उसने तोड़कर मोती के सुमरन मुझसे गिनवाए। दिखाया वस्ल मे आलम नया अख्तरशुमारी का।—शेर०, भा० १, पृ० २१७।

अख्तावर--संज्ञा पुं० [फा० अख्ता + वर (प्रत्य०)] वह घोड़ा जिसे जन्म से ही अंडकोश की कोठी न हो या कृत्रिम उपाय से नष्ट कर दी गई हो।

विशेष—जन्म से नपुंसक घोड़ा ऐबी समझा जाता है।

अख्तियार--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इख्तियार'। उ०—कुछ हाथ उठा के माँग न कुछ हाथ उठा के देख। फिर अख्तियार खातिरे बेमुद्दआ के देख।—शेर० भा० ४, पृ० ५८।

अख्यार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इख्तियार'। उ०—कीजे क्या हाली न कीजे सादगी गर अख्यार। वालना आए न जब रंगीं बयानों की तरह।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५६६।

अख्यात--वि० [सं०] १ अप्रसिद्ध। अज्ञात। २ जिसे कोई जानता न हो। अविदित। ३ अख्यातियुक्त। अप्रतिष्ठित [को०]।

अख्याति--संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्रसिद्धि। प्रसिद्धि का अभाव [को०]।

अख्यातिकर—वि० [सं०] १ अपमानकर। अप्रसिद्धि करनेवाला। अकीर्तिकर। बदनामी फैलानेवाला।

अख्यान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आख्यान; प्रा० अक्खाण] दे० 'आख्यान'। उ०—अब अख्यान बखानहूँ भुवन सिंह चौहान।—रामरसिक०, पृ० ६६६।

अख्यायिका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आख्यायिका] दे० 'आख्यायिका'।

अगंज(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + √गञ्ज] न जीता जानेवाला। अपराजेय। उ०—पत्रह सहस पखान साहि। अगन अगंज को सकै गाहि।—पृ० रा०, १३।१६।

अगंड—संज्ञा पुं० [सं० अगण्ड] बिना हाथ पैर का कबंध। धड़ जिसके हाथ पैर कट गए हों।

अगत(पु)†—क्रि० वि० [सं० अग्रत प्रा० अग्गत > अगत] सामने। आगे। उ०—मेल्हन उजोर पहुँच्यो तुरत रनथभ कोट देख्यो अगत।—हम्मीर०, पृ० १७।

अगंता¹—वि० [सं० अगन्ता] चलने या गमन न करनेवाला [को०]।

अगंता²‡—वि० [सं० अग्र + गता] १. आगे बढ़ा हुआ। अगाड़ी। २ पेशगी। अगता। अग्रिम।

अगंध—वि० [सं० अगन्ध] गंधरहित। गंधहीन [को०]।

अग¹—वि० [सं०] १. न चलनेवाला। अचर। स्थावर। उ०—तव विषम माया वस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।—मानस, ७।१३। २ टेढ़ा चलनेवाला। ३ पहुँच के बाहर। [को०]।

अग²—संज्ञा पुं० १ पेड़। वृक्ष। २ पर्वत। पहाड़। उ०—गए पूरि सर धूरि भूरि भय अग थल जलधि समान।—तुलसी ग्र०, पृ० ३८१। ३. पत्थर (को०)। ४. वृक्ष। पादप (को०)। ५. सूर्य (को०)। ६ जलपात्र (को०)। ७ सात की संख्या का वाचक शब्द (को०)।

अग³(पु)—वि० [सं० अज्ञ] अनजान अनाड़ी। मूढ़।

अग⁴(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] शरीर। अंग (डिं०)।

अग⁵†—संज्ञा पुं० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग] ऊख के सिर पर का पतला भाग जिसमें गाँठ बहुत पास पास होती हैं और जिसका रस फीका होता है। अगौरा।

अग⁶(पु)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आगे'। उ०—मवत नव मत अट्ठ वरप दस तीय मत्त अग। पुर प्रविष्ट वीसल नरिंद राजत सयल जग।—पृ० रा०, १।८७२।

अगई(पु)‡—वि० [सं० अग्रिम] अगला। आगे का। अग्रिम। उ०—राजा पाहुणो लाया हो व लाई। अगइ बात वहाँ समझाय।—बी० रासो, पृ० ८६।

अगई—संज्ञा पुं० [देश०] चलता जाति का एक पेड़।

विशेष—यह अवध, बंगाल, मध्यप्रदेश और मद्रास में बहुतायत से होता है। इसकी लकड़ी भीतर सफेदी लिए हुए लाल रंग की होती है और जहाजों तथा मकानों में लगती है। इसका कोयला भी बहुत अच्छा होता है। इसके पत्ते दो दो फुट लंबे होते हैं और पत्तल का भी काम देते हैं। इसकी कली और कच्चे फलों की तरकारी भी बनती है।

अगच्छ¹—वि० [सं०] जो न चले। अगमनशील [को०]।

अगच्छ²—संज्ञा पुं० वृक्ष। पेड़ [को०]।

अगज¹—वि० [सं०] पर्वत में उत्पन्न होनेवाला। २. वृक्ष से उत्पन्न (को०)। ३ पर्वतों पर घूमनेवाला। गिरिचर (को०)।

अगज²—संज्ञा पुं० १ शिलाजीत। २ हाथी।

अगज³(पु)—संज्ञा पुं० [अ० अगज्ज] श्वेत रंग के सिरवाला अश्व। उ०—अबलक अबसर अगज सिराजी। चौधर चाल समुंद सब ताजी।—पदमावत, पृ० ५१६।

अगजग—संज्ञा पुं० [सं० अग + जग] चराचर। जड़ चेतन। उ०—अगजग उनका कण कण उनका पल भर वे निर्मम हों। झरते नित लोचन मेरे हों।—यामा, पृ० १८१।

अगजा—संज्ञा स्त्री० [सं० अग = पर्वत + जा = पुत्री] हिमालय की पुत्री, पार्वती [को०]।

अगट¹—संज्ञा पुं० [देश०] चिक या मांस बेचनेवाले की दूकान।

अगट²(पु)—क्रि० अ० [सं० एकत्र, एकस्थ, प्रा० एकट्ठ] इकट्ठा होना। एकत्र होना। जमा होना।

अगड(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्गल, प्रा० अग्गल] सिक्कड़ जिसमें हाथी बाँधे जाते हैं। उ०—चिहुँ ओर हरषी छुटें, परे अगड सुमार। गोला लगै गिलोल गुरु छुटै न तो इमरार।—पृ० रा०, ६।३२५।

अगड(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अकड़ या अ० मा० अगड] अकड़। ऐंठ। दर्प। उ०—सोभ मान जग पर किए सरजा सिवा खुमान। साहिन सों बिनु डर अगड बिनु गुमान को दान।—भूषण (शब्द०)।

अगड़धत्त—वि० [हिं०] दे० 'अगड़धत्ता'।

अगड़धत्ता—वि० [देशी] १. लंबा तड़ंगा। ऊँचा। २ श्रेष्ठ। बढ़ा-चढ़ा। उ०—एक पेड़ अगड़धत्ता। जिसमें जड़ न पत्ता।—पहेली [उत्तर—अमरबेल।]

अगडबगड¹—वि० [सं० अकृत+विकृत, प्रा० अकड+विकड, अगड विकड] अड बड। बे सिर पैर का। ऊलजलूल। क्रमविहीन।

अगड़बगड़²—संज्ञा पुं० १ अडबड बात। बे सिर पैर की बात। प्रलाप। २ अडबड काम। व्यर्थ का कार्य। अनुपयोगी कार्य। उ०—'वह दूकान पर नहीं बैठता, दिन रात अगडबगड़ किया करता है (शब्द०)।

अगडम बगडम¹†—वि० [हिं०] दे० 'अगडबगड'।

अगडम बगडम²—संज्ञा पुं० [सं० अकृतम्+विकृतम् अथवा अनु०] १ दे० 'अगडबगड'। २ टूटे फूटे सामान और काठकबाड का ढेर।

अगड़ा¹†—संज्ञा पुं० [सं० अकरण अथवा देश०] ज्वार बाजरा आदि अनाजों की बाल जिसमें से दाना भाड लिया गया हो। खुखडी। अखरा।

अगडा²—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्गला] दे० 'अगरा', 'अगला'।

अगडी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगरी २'।

अगण—संज्ञा पुं० [सं०] अशुभ गण। बुरा गण।

विशेष—पिंगल या छदशास्त्र में तीन तीन अक्षरों के जो आठ गण माने गए हैं, उनमें से चार अर्थात्—जगण, रगण, सगण और तगण अशुभ माने गए हैं और अगण कहलाते हैं। इनको कविता के आदि में रखना बुरा समझा जाता। पर यह गणा-गण का दोष मात्रिक छदों में ही माना जाता है, वर्ण वृत्तों में नहीं। उ०—इहाँ प्रयोजन गण, अगण और द्विगण को काहि।—छद०,पृ० ११०।

अगणतⓊ†—वि० [हिं०] दे० अगणित। उ०—हेक विदर पैदा हुवै अगणत मिलिया अम्र।—बाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ८५।

अगणन—वि० [सं०] असख्य। अनगिनत। उ०—प्रलय के समय में जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता-लय होता है अगणन ब्रह्मांड ग्रास करके।—अनामिका, पृ० १०१।

अगणनीय—वि० [सं०] १ गिनने योग्य। सामान्य। २ अन-गिनती। असख्य। बेशुमार।

अगणित—वि० [सं०] १ जिसकी गणना न हो। अनगिनत। असख्य। बेशुमार। बहुत। बेहिसाब। अनेक। उ०—ऐसे ही अगणित रत्नों से तुम्हें जगत ने पाया है।—साकेत, पृ० ३७०। २ जो गिना न गया हो। जो गिनती में न आया हो (को०)। ३ उपेक्षित। तुच्छ (को०)।

अगणित प्रतियात—वि० [स०] सूचना न प्राप्त होने के कारण या ध्यान आकृष्ट न होने के कारण वापस [को०]।

अगणितलज्ज—वि० [स०] लज्जा का ध्यान न रखनेवाला। निर्लज्ज [को०]।

अगण्य—वि० [सं०] १ न गिनने योग्य। सामान्य। तुच्छ। २ असख्य। बेशुमार। उ०—गूँजे गगनागण में ये अगण्य गान।—गीतिका, पृ० ८७।

अगत¹Ⓤ—वि० [स० अगति] जहाँ गति न हो। अगम्य। उ०—(क) उनकी मेहर से वे मिले सब जो अगत गाई जिनन।—संत तुरसी०, पृ० ४३।

अगत²—अव्य० [सं० अग्रत, प्रा० अग्गत] आगे चलो। हाथियों को आगे बढ़ाने के लिये महावतों द्वारा प्रयुक्त शब्द। महावत लोग हाथी को आगे बढाने के लिये 'अगत', 'अगत' कहते हैं।

अगत³Ⓤ†—स्त्री० [स० अगति] बुरी गति। दुर्दशा। दुर्गति। उ०—मन प्रकार सुख शक्र लख जन रामा हरि बिन अगत।—राम० धर्म, पृ० २४५।

अगता¹—वि० [स० अग्रत] १ आगे स्थित। अगाडी। उ०—बाएँ सो दहिने पीछे सोड अगता। अर्ध उर्ध सम घटत न बढता।—भीखा श०, भा० ३, पृ० ४०। २ अग्रिम। पेशगी।

अगता²—संज्ञा पुं० [फा० आख्त] बधिया किया हुआ घोडा [को०]।

अगति¹—संज्ञा स्त्री० [स०] १ बुरी गति। दुर्गति। दुर्दशा। दुरवस्था। उ०—ऋधि सिधि बिधि चारि सुगति जा बिनु गति अगति।—तुलसी ग्र० पृ० ३६०।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ गति का उलटा। मरने के पीछे शव की दाह आदि क्रिया का यथाविधि न होना। मृत्यु के पीछे की बुरी दशा। मोक्ष की अप्राप्ति। बधन। नरक। उ०—काल कर्म गति अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना उ०—कहो तो मारि सहारि निशाचर रावण करौ अगति को।—सूर० (शब्द०)।

३ स्थिर या अचल पदार्थ। केशव के अनुसार २८ वर्ण्य विषय हैं। इनमें से जो स्थिर या अचल हो उनकी अगति सज्ञा दी है, यथा—अगति सिंधु गिरि ताल तरु वापी कूप बखानि।—केशव (शब्द०)। उ०—कौलौं राखौ थिर वपु, वापी कूप सर सम, हरि बिनु कीन्हें बहु बासर व्यतीत मैं।—केशव (शब्द०)। ४ गति का अभाव। स्थिरता। उ०—न तो अगति ही है न गति आज किसी भी ओर, इस जीवन के झाड में रही एक भकझोर।—साकेत, पृ० २८६। ५ पहुँच या सहायता की कमी (को०)। ६ पूर्णता का अभाव या कमी (को०)।

अगति²—वि० १ जिसकी गति न हो। निरुपाय। अगतिक। उ०—इस पिता ही की चिता के पास, मुझ अगति को भी मिले चिरवास।—साकेत, पृ० २००। २ बिना सहायता का। असहाय (को०)।

अगतिक—वि० [स०] १ जिसकी कहीं गति या पैठ न हो। जिसे कहीं ठिकाना न हो। बेठिकाना। अशरण। अनाथ। निरा-श्रय। उ०—अगतिक की गति दीनदयाल।—कोई कवि (शब्द०)। २ मरने पर जिसकी अत्येष्टि क्रिया आदि न हुई हो।

अगतिकगति—वि० [स०] गतिहीन या निरुपायों का आश्रय। अशरण शरण (भगवान्) [को०]।

अगतिमय—[वि० स० अगति+मय] गतिहीन। जड। उ०—अरे पुरातन अमृत अगतिमय मोह मुग्ध जर्जर अवसाद।—कामायनी, पृ० १८।

अगती¹Ⓤ—वि० [स० अगति] १. जो गति या मोक्ष का अधिकारी न हो। बुरी गतिवाला। २ पापी। कुमार्गी। दुराचारी। कुकर्मी। ३ दे० 'अगति'।

अगती[२]--संज्ञा पुं० पापी मनुष्य। कुकर्मी या कुमार्गी व्यक्ति। पातकी मनुष्य। उ० (क) जय जय जय जय माधव बेनी। जगहित प्रगट करी करुनामय अगतिन को गति देनी।--सूर०, ९।११। (ख) देखि गति गोपिका की भूलि जाति निज गति अगतिन कैसे धौं परम गति देत हैं।--केशव (शब्द०)।

अगती[३]--संज्ञा स्त्री० चकवँड। दादमर्दन। दद्रुघ्न। चक्रमर्द।

अगती[४]†--वि० स्त्री० [सं० अग्रत] अगाऊ। पेशगी।

अगती[५]--क्रि० वि० आगे से। पहले से।

अगतीक--वि० [सं०] १ जिसपर चलना अनुचित हो। कुपथ। कुमार्ग। २ दे० 'अगतिक' [को०]।

अगत्तर†--वि० [सं० अग्रतर] आनेवाला।

अगत्ती†--संज्ञा पुं० [सं० अत्तीक] शरारती। नटखट।

अगत्या--क्रि० वि० [सं०] १ आगे से। भविष्य में। २ आगे चलकर। पीछे से। अंत में। अकस्मात्। सहसा।

अगदंकार--संज्ञा पुं० [सं० अगदङ्कार] वैद्य। चिकित्सक [को०]।

अगद[१]--वि० [सं०] १ नीरोग। चंगा। स्वस्थ। २ न बोलने या कहनेवाला (को०)। ३ न्याय द्वारा मुक्त। अभियोगमुक्त। (को०)। ४ व्याधिरहित। निष्कंटक। निर्दोष। उ०--रीझि दियौ गुरु जाहि अगद वृंदावन पद कौं।--ब्रजमाधुरी०, पृ० २५२।

अगद[२]--संज्ञा पुं० १ औषधि। दवा। २ स्वास्थ्य। रोग का अभाव (को०)। ३ अष्टांग आयुर्वेद का एक अंग। अगद तंत्र (को०)।

अगदतंत्र--संज्ञा पुं० [सं० अगदतन्त्र] आयुर्वेद के आठ अंगों में से एक जिसमें सर्प, बिच्छू आदि के विष से पीड़ित मनुष्यों की चिकित्सा का विधान है।

अगदराज--संज्ञा पुं० [सं०] १ औषधियों का राजा। चंद्रमा। उ०--एकादश अध्याय यह अगदराज की धार। पान करहु नर चित्त दै मिटै रोग संसार।--नंद० ग्रं०, पृ० २५९। २ उत्तम या अव्यर्थ औषधि (को०)।

अगदवेद--संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद [को०]।

अगदित--वि० [सं०] न कहा हुआ। अकथित [को०]।

अगन[१](पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] १ दे० 'अग्नि'। उ०--इम लगन ऊपर आविया मझ अगन लागो मेह।--रघु० रू०, पृ० ३७। २ अगिन नाम की एक चिड़िया। उ०--अगन से मेरे पुलकित प्राण, सहस्रों सरस स्वरों में कूक तुम्हारा करते हैं आह्वान।--पल्लव, पृ० १६।

अगन[२](पु)--संज्ञा पुं० [सं० अगण] दे० 'अगण'। उ०--मन यम शभ चारि हैं र स ज त अगनौ चारि।--भिखारी० ग्रं०, भा० १ पृ० १७०।

अगन[३](पु)†--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गण] दे० 'आँगन'।

अगन[४](पु)--वि० [सं० अगण्य, प्रा० अगण्ण] असंख्य। बेशुमार। उ०--(क) साँव कौं लक्षमना सहित ल्याए बहुरि दियौ दाइज अगन गनि न जाई।--सूर०, १०।४२०९। (ख) ससि अखंड मंडल जु गगन में। राजत भयौ नक्षत्र अगन में।--नंद० ग्रं०, पृ० २९२।

अगनइत(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगनेत'।

अगनत(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अगणित'।

अगनि(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] दे० 'अग्नि'। उ०--अगनि तें दीपक अनगन बरै। बहुरि आनि सब तिन में ररै।--नंद० ग्रं०, पृ० १४४।

अगनिउ(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आग्नेय] आग्नेय कोण। दक्षिण पूर्व का कोना। उ०--तीज एकादसि अगनिउ मोर। चौथ दुआदसि नैऋत बौर।--जायसी (शब्द०)।

अगनित(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अगणित'। उ०--उमा महेस विवाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती।--मानस, पृ० २६।

अगनिया(पु)†--वि० [अगणित, प्रा० अगणिय] दे० 'अगणित'। उ०--बरी, बरा, बेसन बहु भाँतिनि, व्यंजन विविध अगनियाँ।--सूर०, १०।२३८।

अगनी[१](पु)†--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] दे० 'अग्नि'। उ०--स्रवननि बचन सुनत भइ उनकैं ज्यौं घृत नाए अगनी।--सूर०, १०।४१२५।

अगनी[२]--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र] घोड़े के माथे पर की भौंरी या घूमे हुए बाल।

अगनी[३](पु)--वि० [सं० अगणित] अनगिनत। असंख्य।

अगनू(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० आग्नेय] अग्निकोण। उ०--तीज एकादसि अगनू मारी। चौथ दुआदश नैऋत बारी।--जायसी (शब्द०)।

अगनेउ(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आग्नेय, अप० अगनेउ] आग्नेय दिशा। अग्निकोण। उ०--छठएँ नैऋत दक्खिन सतैं। बसे जाय अगनेउ सो अठैं।--जायसी (शब्द०)।

अगनेत(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आग्नेय] आग्नेय दिशा। अग्निकोण। उ०--भौम काल पच्छिम बुध नैरिता। दक्खिन गुरु शुक्र अगनेता।--जायसी (शब्द०)।

अगनेव(पु)--वि० [सं० आग्नेय] अग्नि संबंधी। उ०--सीत भीत आदीत बास अगनेव कोण किय।--पृ० रा०, ६३। १९९०।

अगबान(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्निबाण'। उ०--बज्जि गहर नीसान अग्नि अगबान बिछुट्टिय।--पृ० रा०, ९।६२९।

अगम[१]--वि० [सं० अगम्य] १ जहाँ कोई जा न सके। न जाने योग्य। पहुँच के बाहर। दुर्गम। अवघट। गहन। उ०--(क) अब अपने यदुकुल समेत लै दूरि सिधारे जीति जवन। अगम सुपथ दूरि दक्षिण दिसि तहँ सुनियत सखि सिंधु लवन।--सूर (शब्द०)। (ख) है आगे परवत की पाटी। विपम पहार अगम सुठि घाटी।--जायसी (शब्द०)। २ विकट। कठिन। मुश्किल। उ०--एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जात सो नाहीं।--तुलसी (शब्द०)। ३ न मिलने योग्य। दुर्लभ। अलभ्य। उ०--सुनु मुनीस वर दरसन तोरे। अगम न कछु प्रतीति मन मोरे।--तुलसी (शब्द०)। ४ अपार। अत्यंत। बहुत। उ०--समुझि अब निरखि जानकी मोहिं। बड़ो भाग गुनि अगम दसानन सिव वर दीनौं तोहिं।--सूर०, ९।७७।५ न जानने योग्य। बुद्धि के परे। दुर्बोध। उ०--अविगत गति कछु कहत न आवै। सब विधि अगम विचारहिं तातें सूर सगुन लीला पद गावै।--सूर०, १।२। ६ बहुत गहरा। अथाह। उ०--'यहाँ पर नदी में अगम जल है' (शब्द०)। उ०--तिन कहँ मानस अगम अति जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ।--

मानस, १।३८।७ विशाल। बड़ा। उ०—कैसे बचे अगम तरु कैं तर मुख चूमनि यह कहि पछितावति ।—सूर०, १०।३६०। ८. जिसे वश में न किया जा सके। सुदृढ़। उ०—लंका बसत दैत्य अरु दानव उनके अगम सरीर।—सूर०, ६।८६।

अगम²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आगम] १ शास्त्र। 'आगम। उ०—तुलसी महेस को प्रभाव भाव ही सुगम, निगम अगम हू को जानिबो गहनु है।—तुलसी ग्र०, पृ० २३७।

यौ०—अगम निगम = आगम निगम। उ०—चितयौ चित्त दुज-राज तब अगम निगम करि कढ्ढयौ।—पृ० रा०, ३।२०।

२ आगम। अवाई। उ०—देखौ माई स्याम सुरनि अब आवै। दादुर मोर कोकिला बोलै पावस अगम जनावै।—सूर०, १०।३३१२।

अगम³—संज्ञा पुं [सं०] १ वृक्ष। २. पर्वत [को०]।

अगम⁴—वि० १, न चलनेवाला। चलने के अयोग्य। अगता। २. अजगम। स्थावर (को०)।

अगमति(पु—वि० [सं० अगम + अति] बहुत विशाल। अत्यत अगम। उ०—मोहन, मुर्छन, वसीकरन पटि अगमति देह बढाउँ।—सूर०, १०।४६।

अगमन¹—संज्ञा पुं० [सं०] गति या गमन का अभाव। न चलना [को०]।

अगमन²—क्रि० वि० [सं० अग्रवान्] १ आगे। पहले। प्रथम। उ०—(क) नाम न जानै गाँव का भूला मारग जाय। काल्ह गड़ैगा काँटवा अगमन कस न कराय।—कबीर सा०, पृ० ७३। (ख) तव अगमन ह्वै गोरा मिला। तुइ राजा लै चल बादला।—जायसी (शब्द०)। (ग) पग पग मग अगमन परत चरन अरुनदुति झलि। ठौर ठौर लखियत उठे दुपहरिया से फूलि।—बिहारी र०, दो० ४६०। २ आगे से। पहले से। उ०—पिय आगम ते अगमनहिं करि बैठी तिय मान।—पद्माकर (शब्द०)।

अगमना(पु—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'आगमना'।

अगमनीया—वि० स्त्री० [सं०] न गमन करने योग्य (स्त्री)। जिस स्त्री के साथ सभोग करने का निषेध हो। अगम्या।

अगमने(पु—क्रि० वि० [हिं०] दे० अगमन'। उ०—पौढे हुत पर्यक परम रुचि रुक्मिणि चमर डुलावति तीर। उठि अकुलाइ अगमने लीनें मिलत नैन भरि आए नीर।—सूर० (शब्द०)।

अगमनो(पु—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगमन'। उ०—निसिचर सलभ कृसान राम-सर उडि उडि परत जरत खल जैहैं। रावन करि परिवार अगमनो जमपुर जात बहुत सकुचैहैं।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६३।

अगमानी¹(पु—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + मानी] अगुआ। नायक। सरदार। उ०—(क) है यह तेरे पुत्र कौ रन अगमानी भूप। नाम जासु दुष्यत है कीरति जासु अनूप।—शकुतला, पृ० १४८। (ख) जीत्यो गयो न इद्र पै बल सों जो रिपु बस। रन अगमानी तुम किए करन ताहि विध्वस।—शकुतला, पृ० १२६।

अगमानी²(पु†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवानी'। उ०—जवतीं करने आइया हम भी यह जानी, बीवी साहब सग लै हुवे अगमानी।—सुजान०, पृ० ६६।

अगमासी(पु—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवाँसी'।

अगमी†—वि० [हिं०] दे० 'आगमी'। उ०—ना मैं पडित पढ़ि गुणि जानौं ना कुछ ज्ञान विचारा। ना मैं अगमी जोतिग जानौं ना मुझ रूप सिगारा।—दादू०, पृ० ५६६।

अगमैया(पु†—वि० [सं० अगम्य] बुद्धि से परे। न जानने योग्य। अज्ञेय। दुर्बोध। उ०—ब्रज में को उपज्यो यह भैया। सग सखा सब कहत परसपर इनके गुन अगमैया।—सूर०, १०।४२८।

अगम्य—वि० [सं०] १ न जाने योग्य। २ जहाँ कोई जा न सके। पहुँच के बाहर। अवघट। गहन। ३ विकट। कठिन। मुश-किल। ४ अपार। बहुत। अत्यत। ५ जिसमे बुद्धि न पहुँचे। बुद्धि के बाहर। अज्ञेय। दुर्बोध। उ०—गम्य अगम्य अगम दो रहई। तीन देव वहाँ लगि कहई।—कबीर सा०, पृ० ६०६। ६ अथाह। बहुत गहरा। ७ जिससे विषय भोग अनुचित हो [को०]।

अगम्यगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसने वर्जित या अपात्र पुरुष से सप्रयोग किया हो [को०]।

अगम्यरूप—वि० [सं०] जिसकी स्थिति या रूप बोध से परे हो [को०]।

अगम्या¹—वि० स्त्री० [सं०] न गमन करने योग्य। मैथुन के अयोग्य।

अगम्या—संज्ञा स्त्री० १ न गमन करने योग्य स्त्री। वह स्त्री जिसके साथ सभोग करना निषिद्ध है, जैसे—गुरुपत्नी, राजपत्नी, सौतेली माँ, माँ, कन्या, पतोहू, सास, गर्भवती स्त्री, बहिन, सती, सगे भाई की स्त्री, भाजी, भतीजी, चेली, शिष्य की स्त्री, भाजे की स्त्री, भतीजे की स्त्री, इत्यादि। २. अत्यज स्त्री। अत्यजा (को०)।

अगम्यागमन—संज्ञा पुं० [सं०] अगम्या स्त्री से सहवास। उस स्त्री के साथ मैथुन जिसके साथ सभोग का निषेध है।

अगम्यागमनीय—वि० [सं०] अगम्यागमन से सबधित [को०]।

अगम्यागामी—वि० अगम्या स्त्री के साथ सहवास करनेवाला [को०]।

अगयार—वि० [अ० गैर का बहु० व०] पराया। गैर। उ०—हो यार वही उसका जो इस जग मे सबसे अगयार बने।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५६५।

अगर¹—संज्ञा पुं० [सं० अगरु] एक पेड जिसकी लकड़ी सुगधित होती है। ऊद। उ०—चंदन अगर सुगध और घृत विधि करि चिता बनायो।—सूर०, ६।५०।

विशेष—यह पेड भूटान, आसाम, पूर्वी बगाल, खासिया और मर्तबान की पहाडियों मे होता है। इसकी ऊँचाई ६० से १०० फुट और घेरा ५ से ८ फुट तक होता है। जब यह २० वर्ष का होता है तब इसकी लकड़ी अगर के लिये काटी जाती है। पर कोई कोई कहते हैं कि इसकी लकड़ी ५०–६० वर्ष के पहले नहीं पकती। पहले तो इसकी लकड़ी बहुत साधारण पीले रग की और गधरहित होती है, पर कुछ दिनों मे धड और शाखाओं मे जगह जगह एक प्रकार का रस आ जाता है जिसके कारण उन स्थानों की लकड़ियाँ भारी हो जाती हैं। इन स्थानों से लकड़ियाँ काट ली जाती हैं और अगर के नाम

से बिकती हैं। यह रस जितना अधिक होता है उतनी ही लकड़ी उत्तम और भारी होती है। पर ऊपर से देखने से यह नहीं जाना जा सकता कि किस पेड़ मे लकड़ी अच्छी निकलेगी। बिना सारा पेड़ काटे इसका पता नहीं लग सकता। एक अच्छे पेड़ मे ३००) तक का अगर निकल सकता है। पेड़ का हल्का भाग जिसमे यह रस या गोंद कम होता है, 'दूम' कहलाता है और सस्ता अर्थात् १) २) सेर बिकता है, पर असली काली काली लकड़ी, जो गोंद अधिक होने के कारण भारी होती है, 'गरकी' कहलाती है और १६) या २०) सेर बिकती है। यह पानी मे डूब जाती है। लकड़ी का बुरादा धूप, दसांग आदि मे पड़ता है। बवई मे जलाने के लिये इसकी अगरबत्ती बहुत बनती है। सिलहट मे अगर का इत्र बहुत बनता है। चोवा नाम का सुगंधित लेप इसी से बनता है।

अगर[२]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अक्षर] अक्षर। वर्ण। हर्फ (डिं)। उ॰—उठारे सहज जोवार असुमरा लडे हरि चापडे मार लीधा उचार दघ अगर रो।—रघु॰ रू॰, पृ॰ १३१।

अगर[३]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ आगार डिं॰ अग्गर] आगार। गृह। उ॰—जे संसार अंधियार अगर मे भए मगनवर।—का॰ कौमुदी १,।

अगर[४]—अव्य [फा॰] यदि। जो। उ॰—उसे हमने बहुत ढूंढा न पाया। अगर पाया तो खोज अपना न पाया।—शेर॰, भा॰ १, पृ॰ ४१२।

मुहा॰—अगर मगर करना = (१) हुज्जत करना। तर्क करना। (२) आगा पीछा करना।

अगर[५]Ⓟ—क्रि॰ वि॰ [स॰ अग्र, प्रा॰ अग्गर] आगे। जैसे 'अगरज' मे 'अगर'।

अगरई—वि॰ [हिं॰ अगर+ई (प्रत्य॰)] श्यामता लिए हुए सुनहले सदली रग का। अगर के रग का।

अगरचे—अव्य॰ [फा॰] गो कि। यद्यपि। हरचंद। बावजूद कि। उ॰—काबा अगरचे टूटा क्या जाय गम है शेख।—कविता कौ॰, भा॰ ४, पृ॰ ९८।

अगरजⓅ—संज्ञा पुं॰ [स॰ अग्रज] दे॰ 'अग्रज'। उ॰—ताही ते अगरज भयउ सब विधि तेहि परचार।—स॰ सप्तक, पृ॰ ४३।

अगरजानी‡—वि॰ [सं॰ अग्र+ज्ञानी] पहले से ही किसी बात को समझने या जाननेवाला। आगमजानी। उ॰—ऐसे अगरजानी आदमी की बात काटने का नतीजा सारा गाँव भोग रहा है।—मैला॰ पृ॰ ३७४।

अगरनाⓅ†—क्रि॰ अ॰ [सं॰ अग्र] आगे होना। आगे जाना। अगाड़ी बढ़ना। आगे आगे भागना। उ॰—प्यारी अगरि चली, हरि धाए। पकरि न पावत पैर थकाए।—गिरधरदास (शब्द॰)।

अगरपारⓅ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अग्र ?] क्षत्रियो की एक जाति। उ॰—खत्री औ बत्रवान बघेली। अगरपार चौहान चंदेली।—जायसी, (शब्द॰)।

अगर बगरⓅ†—क्रि॰ वि॰ [हिं॰] दे॰ 'अगल बगल'।

अगरबत्ती—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अगरुवर्त्तिका] सुगंध के निमित्त जलाने की पतली सींक या बत्ती।

विशेष—इसमे अगर तथा कुछ और सुगंधित वस्तु पीसकर लपेटते हैं। इसका व्यापार मद्रास और बबई मे बहुत होता है।

अगरवाला—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ अगरोहावाला, आगरेवाला] [स्त्री॰ अगरवालिन] वैश्यों की एक जाति जिसका आदि निवास दिल्ली से पश्चिम अगरोहा नाम का स्थान कहा जाता है। अग्रवाल।

अगरसार—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अगरु+सार] अगर। ऊद।

अगरा[१]Ⓟ†—वि॰ [स॰ अग्र] [स्त्री॰ अगरी] १ अगला। प्रथम। अगुआ। उ॰—सूर स्याम तेरी अति गुननि माहिं अगरी।—सूर॰ १०।३३६। २ बढ़ा चढ़ा। बढ़कर। श्रेष्ठ। उत्तम। उ॰—हम तुम सब एक बैस काते कौन अगरी। लियो दियो सोई कछु डारि देहु झगरी।—सूर॰, १० ३३६। ३. अधिक। ज्यादा। बड़ा। भारी। ४. उग्र। ५ अग्रिम। पेशगी। अगाऊ। उ॰—बैल लीजे कजरा, दाम दीजे अगरा।—घाघ॰, पृ॰ १०७।

अगरा[२]Ⓟ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ आकर] खान। आकर। उ॰—सूरदास प्रभु सब गुननि अगरी।—सूर॰ (गाथा॰), १ ५६।

अगरा[३]—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ अंगरा] रगरा। अडबड बात। अनुचित व्यवहार। उ॰—दल्ल कहा अगरा कह कीजै। साहब वचन मानि के लीजै।—सत दरिया, पृ॰ ५।

अगराई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ अगरना] आगे होने का भाव। अग्रता। श्रेष्ठत्व। उ॰—गोविंद गुसाईं यौं ही माँगत हौं गोद गेह गिरा अगराई गुन गरिमा गगन कौं।—घनानद पृ॰ १६४।

अगरान—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] पीला लिए हुए लाल रग का घोड़ा जिसमे सफेदी विशेष न झलकती हो। उ॰—खुरमुज नोकिरा जरदा भले। औ अगरान बालसिर चले।—पदमावत, पृ॰ ५१६।

अगराना[१]Ⓟ—क्रि॰ स॰ [देशी] १ अधिक स्नेह या दुलार के कारण किसी को धृष्ट बनाना।

अगराना[२]Ⓟ—क्रि॰ अ॰ स्नेहाधिक्य मे ढिठाई करना।

अगराना[३]‡Ⓟ—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'अँगड़ाना'।

अगरासन†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अग्र+अशन] दे॰ 'अग्राशन'। उ॰—'सास को दिखाने के लिये बिल्लेसुर रोज अगरासन निकालते थे।—बिल्ले॰ पृ॰ ८४।

अगरी[१]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १ एक प्रकार की घास या पौधा जो चूहे आदि के विष को दूर करता है। देवताड। २ विष हरनेवाला कोई भी द्रव्य [को॰]।

अगरी[२]—संज्ञा स्त्री॰ [स॰ अर्गला, अर्गलिका] लकड़ी या लोहे का छोटा डडा जो किवाड़ के पल्ले मे कोढ़ा लगाकर डाला रहता है। इसके इधर उधर खींचने से किवाड़ खुलते और बद होते हैं। किल्ली। ब्योंड़ा।

अगरी[३]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अग्र] फूस की छाजन का एक ढंग जिसमें जड़ ढाल या उतार की ओर रखते हैं।

अगरी[४]Ⓟ—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अगीर्य = अवाच्य] १ अड बड बात। बुरी बात। अनुचित बात। २ ढिठाई। धृष्टता।

अगरी[५]Ⓟ—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ अगरना] अमराई हुई बात। स्नेह के कारण धृष्टता से की हुई क्रिया उ॰—मौंडुरि दइ फटकारि कै हरि करत हैं लँगरी। नित प्रति ऐसई ढग करैं हमसों कहै अगरी।—सूर॰ (शब्द॰)।

अगरु—संज्ञा पुं० [सं० अगुरु] अगर लकड़ी। ऊद। उ०—अगरु चंदन की चिता थी सेज।—साकेत, पृ० १६८।

अगरू—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अगर' [को०]।

अगरे†—क्रि० वि० [सं० अग्रे] सामने। आगे। उ०—चेला पूछै गुरु कहँ तेहि कस अगरे होइ।—जायसी (शब्द०)।

अगरेल†—वि० [हिं० अगर + ऐल (प्रत्य०)] अगर संबंधी। अगर की। उ०—रवि मेरख जावगी, घणौं आणद चट्क्की। मग वेन सूरमा, वाम अगरेल महक्की।—रा० रू०, पृ० १७३।

अगरो(पु)—वि० [सं० अग्र] १. अगला। प्रथम। २. बढ़कर। श्रेष्ठ। उत्तम। उ०—सूर सनेह ग्वारि मन अटक्यो छाँड़हु दिये परत नहिं पगरो। परम मगन ह्वै रही चितै मुख सब तें भाग यही को अगरो।—सूर (शब्द०)। ३. चतुर। दक्ष। निपुण। ४. अधिक। ज्यादा। उ०—योजन बीस एक अरु अगरो डेरा इहि अनुमान। व्रजवासी नर नारि अंत नहिं मानो सिंधु समान।—सूर (शब्द०)।

अगर्चे—अव्य० [फा० अगरचे] दे० 'अगरचे'। उ०—अगर्चे उम्र की दस दिन से लब रहे खामोश। सुखन रहेगा सदा मेरी कम जवानी का।—कविता को०, भा० ४, पृ० १७२।

अगर्दभ—संज्ञा पुं० [सं०] खच्चर [को०]।

अगर्व—वि० [सं०] गर्व या अभिमान से रहित। निरभिमान। सीधा सादा।

अगर्हित—वि० [सं०] १. जो गर्हित या निंदित न हो। २ शुद्ध [को०]।

अगल¹—क्रि० वि० [सं० अग्रत, प्रा० अग्गल] १ आगे। उ०—यकायक कहे काफिरॉ साथ चला अबू जहल आया नबी के अगल।—दक्खिनी०, पृ० ३४८।

अगल²(पु)—वि० [प्रा० अग्गल] अधिक। ज्यादा। उ०—सब तीन वरप्प अमी अगल।—पृ० रा०, ४६।५५।

अगल बगल—क्रि० वि० [फा०] १ दोनों पार्श्व में। दोनों ओर। दोनों किनारे। २ इधर उधर। आसपास।

अगलहिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया।

अगला¹—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्गल] [स्त्री० अगली] १ आगे का। सामने का। अगाड़ी का। पिछला का उलटा। जैसे—घोड़े का अगला पैर सफेद है (शब्द०)। उ०—वह अगला समतल जिसपर है देवदारु का कानन।—कामायनी, पृ० २७६। २ पहले का। पूर्ववर्ती। प्रथम। उ०—आवै औरंगसाह नूं अगली मुहरां याद।—रा० रू०, पृ० ३५०। ३ विगत समय का। प्राचीन। पुराना। उ०—रेखते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो गालिब। कहते हैं अगले जमाने में कोई मीर भी था।—कविता को०, भा० ४, पृ० १२२।

यौ०—अगले समय। अगले लोग।

४. आगामी। आनेवाला। भविष्य। जैसे—मैं अगले साल वहाँ जाऊँगा (शब्द०)। ५ अपर। दूसरा। एक के बाद का। जैसे—'उससे अगला हमारा घर है' (शब्द०)।

अगला²—संज्ञा पुं० १ अगुआ। अग्रगण्य। प्रधान। जैसे—'वे सब बातों में अगले बनते हैं। (शब्द०)। २ चतुर आदमी। चालाक। चुस्त आदमी। जैसे—'अगला अपना काम कर गया, हम लोग देखते ही रह गए (शब्द०)। ३ पूर्वज। पुरखा (बहु० व० में ही प्रयुक्त)। जैसे—जो अगले करते हैं उसे करना चाहिए (शब्द०)।

मुहा०—अगले पिछलों को रोना=पूर्वजों और औलाद के नाम ले रोना या मातम करना। उ०—'खाक अच्छा गाती है। गाती है या रोती है अपने अगले पिछलों को डायन'।—सैर कु०, पृ० २०। ४ अपने पति को सूचित करने के लिये स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त शब्द। ५. करनफूल के आगे लगी हुई जंजीर। ६ गाँव और उसकी हद के बीच में पड़नेवाले खेतों का समूह।

अगलूँणी(पु)†—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग, (राज० आगलो + ऊणी (प्रत्य०) = वाली)] आगेवाली। पूर्व की। उ०—जिण दिन ढोलउ आवियउ तिण अगलूँणी रात। मारू सुहिणउ लेहि कहउ, सखियाँ सूँ परभात।—ढोला०, ५०१।

अगवड़†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगौढ'।

अगवढ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगौढ'।

अगवन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आगमन] दे० 'आगमन'।

अगवना†—क्रि० अ० [हिं० आगे + ना] कोई काम करने के लिये उद्यत होना। आगे बढ़ना।

अगवनिहरवा—वि० [हिं० अगवना] किसी को बुलाने के लिये आया हुआ। उ०—सतगुरु पठवा अगवनि हरवा।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४६।

अगवाँई¹—संज्ञा पुं० [हिं० अगुआ] उ०—इसमाइल राजेंद्र गुसाई। सफदरजंग भये अगवाई।—सुजान०, पृ० १४१।

अगवाँई²†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगवानी] दे० 'अगवाई'।

अगवाँसी—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्रवासी] १ हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगा रहता है। २ हलवाहे को पैदावार में से अंशरूप में मिलनेवाली मजदूरी।

अगवा—क्रि० वि० [सं० अग्र] आगे। अगाड़ी। उ०—हरि जू की गैल यह मेरी पौर अगवा सी, ह्यां ह्वै कढ़े चाहीं मोहि काम घनो घर को।—ठाकुर०, पृ० २।

अगवाई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र = आगे + हिं० अवाई] अगवानी। अभ्यर्थना। आगे से जाकर लेना। उ०—अगवाई के हेतु कुँवर के सब नर नारी।—वृद्ध च०, पृ० १८०।

अगवाई²—संज्ञा पुं० [सं० अग्रगामी] आगे चलनेवाला व्यक्ति। अगुवा। अग्रसर।

अगवाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० अग्रवाट् अथवा अग्रवर्त्त (प्रत्य०)] घर के आगे का भाग। द्वार के सामने की भूमि। पिछवाड़ा शब्द का उलटा।

अगवान¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० वान (आवना आदि के मूल में स्थित द्विधातु का अंश)] १ अगवानी या अभ्यर्थना करनेवाला व्यक्ति। आगे से जाकर लेनेवाला व्यक्ति। २ विवाह में कन्यापक्ष के वे लोग जो बरात का आगे बढ़कर स्वागत करते हैं। उ०—(क) अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंद पुलक भर गाता।—मानस, १।३०५। (ख) सहित बरात राउ सनमाना। आयेसु माँगि फिरे अगवाना।—मानस, १।३०६।

अगवान²--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र+हिं० वान] १. आगे से जाकर लेना। अगवानी। अभ्यर्थना। उ०—महाराज जयसिंह जय मे सिंह के समान, निरयान समय जासु गग लीनी अगवान।--रघुराज (शब्द०)। २ विवाह में कन्यापक्ष के लोगों का बरात की अभ्यर्थना के लिये जाना। उ०—लै अगवान बरातहि आए। दिए सबहि जनवास सुहाए।—मानस, १।६६।
क्रि० प्र०--करना।—लेना।—होना।

अगवानी¹--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र+हिं० वान] १. अपने यहाँ आते हुए किसी अतिथि से निकट पहुँचने पर सादर मिलना। आगे बढ़कर लेना। अभ्यर्थना। पेशवाई। २ विवाह मे जब बारात लडकीवाले के घर के पास आती है, तब कन्यापक्ष के लोग सज धजकर बाजे गाजे के साथ आगे जाकर उससे मिलते हैं। इसी को अगवानी कहते हैं। उ०--नियरानि नगर बरात हरषी लेन अगवानी गए।—तुलसी ग्र०, पृ० १३५।

अगवानी²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्रगामी] आगे पहुँचनेवाला व्यक्ति। दूत। उ०--(क) सखी री पूरनता हम जानी। याही तै अनुमान करति हैं षट्पद से अगवानी।—सूर०, १०।४०३६। (ख) अगवानी तो आइया ज्ञान विचार विवेक। पीछे हरि भी आयँगे भारी सौंज समेक।--कबीर (शब्द०)।

अगवानी³--संज्ञा पुं० आगे रहनेवाला। अगुवा। पेशवा। उ०—विरह अथाह होत निसि हम कौं बिनु हरि समुद समानी। क्यो करि पावहि बिरहिनि पारहि बिनु केवट अगवानी।--सूर०, १०।३२७१।

अगवार¹†—संज्ञा पुं० [सं० अग्र+हिं० वार (प्रत्य०)] १ खलिहान मे अन्न का वह भाग जो राशि से निकालकर हलवाहे आदि के लिये अलग कर दिया जाता है। २. वह हल्का अन्न जो ओसाने मे भूसे के साथ चला जाता है। ३ गाँव का चमार।

अगवार²†--संज्ञा पुं० दे० 'अगवाडा'। उ०--बेऊ आये द्वारे ही हूँ हुती अशवारें और, द्वारें अगवारें कोऊ तौ न तिहि काल मैं।—पद्माकर ग्र०, पृ० २००।
यौ०--अगवार पछवार।

अगवाह--वि० [सं० अग्र+वाह] आगे पहुँचानेवाला। पहले पहुँचनेवाला। उ०--'कपित स्वर लहरी आत्मनिवेदन की सहज स्निग्ध कमनीयता के अगवाह रास्ते को अनायास ही पकड लेती'।--नई पौध, पृ० १११।

अगवैया†--वि० [सं० अग्र+हिं० वैया (प्रत्य०)] आगे आगे चलनेवाला। किसी के आगमन की पूर्वसूचना देनेवाला। उ०--अभी माघ भी चुका नहीं पर मधु का गरवीला अगवैया कर उन्नत शिर।--इत्यलम्, पृ० २०६।

अगव्यूति--वि० [सं०] जहाँ पशुओं का चरागाह न हो। बंजर [को०]।

अगसत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगस्त्य'। उ०--आकिल गुरु अगसत है, सिख समुद मन लीन।--रज्जब०, पृ० ६।

अगसर(पु)—क्रि वि० [सं० अग्रसर] आगे। पहले। उ०--अगसर खेती अगसर मार। कहैं घाघ ते कबहुँ न हार।--घाघ०, पृ० ४१।

अगसरना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अगुसरना'।

अगसार(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगसारी'।

अगसारी(पु)—क्रि० वि० [सं० अग्रसर] आगे। सामने। उ० –हस्ति क जूह आय अगसारी। हनुवंत तबै लँगूर पसारी।—जायसी ग्र०, पृ० ११६।

अगस्त¹--संज्ञा पुं० [अ० औगुस्ट,] रोम के सम्राट् औगुस्टस् के नाम पर चलाया गया अंग्रेजी का आठवाँ महीना जो भादो मे पडता है।

अगस्त²—संज्ञा पुं० [सं० अगस्त्य] १. अगस्त्य ऋषि। उ०--मधवानल वहि अगिन समानी। अगिन अगस्त साखावत पानी।--हिंदी प्रेमा०, पृ० २७५। २ अगस्त्य तारा। उ०--उदित अगस्त पथ जल सोपा। जिमि लोभहिं सोखै संतोपा।--तुलसी (शब्द०)। ३ अगस्त्य वृक्ष। उ०—फूल करील कली पाकर नम। फरी अगस्त करी अमृत सम।—सूर०, १०।१२१३।

अगस्ति(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] १ अगस्त्य तारा। उ०--उए अगस्ति हस्ति घन गाजा। तुरै पलानि चढे रन राजा।—जायसी ग्र०, पृ० ३५६। २ अगस्त्य ऋषि। उ०--हुत जो अपार बिरह दुख दोखा। जनहुँ अगस्ति उदधि जल सोखा।--जायसी ग्र०, पृ० ३४०। ३ अगस्त्य या बक वृक्ष [को०]।

अगस्तिद्रु--संज्ञा पुं० [सं०] अगस्ति या बक वृक्ष [को०]।

अगस्तिया†—संज्ञा पुं० [सं० अगस्ति] दे० 'अगस्त्य ३'। उ०--द्वैज सुधा दीधिति कला वह लखि दीठि लखाई। मनौ अकास अगस्तिया एकै कली लखाइ।--बिहारी र०, दो० ६२।

अगस्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम जिनके पिता मित्रावरुण थे।
विशेष—ऋग्वेद मे लिखा है कि मित्रावरुण ने उर्वशी को देखकर कामपीडित हो वीर्यपात किया जिससे अगस्त्य उत्पन्न हुए। सायणाचार्य ने अपने भाष्य मे लिखा है कि इनकी उत्पत्ति एक घडे मे हुई। इसी से इन्हें मैत्रावरुणि, और्वशेय, कुभज, घटोद्भव और कुभसभव कहते हैं। पुराणों मे इनके अगस्त्य नाम पडने की कथा यह लिखी है कि इन्होंने बढते हुए विंध्य पर्वत को लिटा दिया। अत इनका एक नाम विंध्यकूट भी है। पुराणों के अनुसार इन्होंने समुद्र को चुल्लू मे भरकर पी लिया था जिससे ये समुद्रचुलुक और पीताब्धि भी कहलाते हैं। कहीं कहीं पुराणो मे इन्हे पुलस्य का पुत्र भी लिखा है। ऋग्वेद में इनकी अनेक ऋचाएँ हैं।
२ एक तारे या नक्षत्र का नाम।
विशेष--यह भादो मे सिंह के सूर्य के १७ अंश पर उदय होता है। इसका रंग कुछ पीलापन लिए हुए सफेद होता है। इसका उदय दक्षिण की ओर होता है इससे बहुत उत्तर के निवासियों को यह नहीं दिखाई देता। आकाश के स्थिर तारों मे लुब्धक को छोडकर दूसरा कोई तारा इसकी तरह नहीं चमचमाता। यह लुब्धक से ३५° दक्षिण है।
३ एक प्रसिद्ध पेड।
विशेष--यह पेड ऊँचा और घेरेदार होता है। इसकी पत्तियाँ सिरिस के समान होती हैं। इसके टेढे मेढे फूल अर्धचंद्राकार, लाल और सफेद होते हैं। इसके छिलके का काढ़ा शीतला और

ज्वर में दिया जाता है। पत्तियाँ इसकी रेचक हैं। पत्ती और फूल के रस की नास लेने से विनाम फूटना, सिर दर्द और ज्वर अच्छा होता है। आँखों में फूल का रस टालने से ज्योति बढती है। इसके फूलों की तरकारी और अचार भी बनता है।

४ शिव का एक नाम [को०]।

अगस्त्यकूट--संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण मद्रास प्रांत में एक पर्वत जिससे ताम्रपर्णी नदी निकली है।

अगस्त्यगीता--संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के शांति पर्व में अगस्त्य ऋषि द्वारा कथित विद्या [को०]।

अगस्त्यचार--संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य तारे का मार्ग [को०]।

अगस्त्यतीर्थ--संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान [को०]।

अगस्त्यमार्ग--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अगस्त्यचार' [को०]।

अगस्त्यवट--संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर स्थित एक पवित्र स्थान का नाम [को०]।

अगस्त्यसंहिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] अगस्त्य द्वारा प्रणीत धर्म विषयक एक ग्रंथ [को०]।

अगस्त्यहर्र--संज्ञा पुं० [सं० अगस्त्य हरीतकी] कई द्रव्यों के संयोग से जिनमें हर्र मुख्य है, बनी हुई एक आयुर्वेदिक औषधि जो खाँसी, हिचकी, संग्रहणी आदि रोगों में दी जाती है।

अगस्त्योदय--संज्ञा पुं० [सं०] १ भाद्रपद के शुक्ल पक्ष में अगस्त्य नामक तारे का उदय। २ भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी [को०]।

अगस्थ(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगस्त्य' १। उ०--मुगता तठै कर सनमान, आया अगस्थ रे असथान।--रघु० रू०, पृ० १२४।

अगह(पु)--वि० [सं० अग्राह्य] १ न पकड़ने योग्य। हाथ में न आने लायक। उ०--अलह को लहना, अगह को गहना।--दरिया० बानी, पृ० ६७। २ चंचल। उ०--माधव जू नेकु हटकौ गाय। निसि बासर यह भरमति इत उत अगह गही नहिं जाय।--सूर (शब्द०)। ३. जो वर्णन और चिंतन के बाहर हो। उ०--कहँ गाधिनंदन मुदित रघुनंदन सो नृपगति अगह गिरा न जाति गही है।--तुलसी (शब्द०)। ४. न धारण करने योग्य। कठिन। मुश्किल। उ०--ऊधो जो तुम हमहिं बतायो। सो हम निपट कठिनई करि करि या मन को समुझायो। योग याचना जबहिं अगह गहि तबही सो है ल्यायो। सूर (शब्द०)।

अगहन--संज्ञा पुं० [सं० अग्रहायण] प्राचीन वैदिक क्रम के अनुसार वर्ष का अगला वा पहला महीना। मार्गशीर्ष। मगसिर। उ०--अगहन अम्मर देखेउ जुग जुग जीवै सोइ।--जग० श०, भा० २, पृ० ६५।

विशेष--गुजरात आदि में यह क्रम अभी तक है, पर उत्तरी भारत में गणना चैत्र मास से आरंभ होती है। इस कारण यहाँ नवाँ मास पड़ता है।

अगहनिया--वि० [सं० आग्रहायणीक] अगहन में होनेवाला।

अगहनी[1]--वि० [सं० आग्रहायणीय] अगहन में तैयार होनेवाला।

अगहनी[2]--संज्ञा स्त्री० वह फसल जो अगहन में काटी जाती है। जैसे जड़हन धान, उरद इत्यादि। उ०--जब लों पृथिवी है तब लों बोना और लोना, शादी और गमी, अगहनी और बैशाखी, दिन और रात बंद न होंगे।--कबीर म०, पृ० १६५।

अगहर(पु)†--क्रि० वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग+हिं० हर (प्रत्य०)] १ आगे। २ पहले। प्रथम। उ०--राजन दीवा रायमनि, बाईं तरफ अडोल। उमगत अगहर जूझ को, ताकत प्रति भट गोल।--लाल (शब्द०)।

अगहाट--संज्ञा पुं० [सं० अग्राह्य अथवा सं० अग्रहार] वह भूमि जो किसी के अधिकार में चिरकाल के लिये हो और जिस वह अलग न कर सके।

अगहार†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्रहार'।

अगहुँड़[1]--वि० [सं० अग्र प्रा० अग्ग+हिं० हुँड (प्रत्य०)] अगुआ। आगे चलनेवाला। उ०--बिलोके दूरि तें दोउ बीर। मन अगहुँड़ तन पुलकि सिथिल भयो नलिन नयन भरे नीर।--तुलसी ग्रं०, पृ० ३४६।

अगहुँड़[2]--क्रि० वि० आगे। आगे की ओर। 'पिछहुँड़' का उलटा। उ०--कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुँड़ परै न पाऊ।--तुलसी (शब्द०)।

अगा[1]--वि० [सं०] न चलनेवाला [को०]।

अगा[2]--क्रि० वि० [सं० अग्र] आगे। पहले। उ०--सोवत कहा चेत रे रावन अब क्यों खात दगा। कहत मँदोदरि सुनु पिय रावन मेरी बात अगा।--सूर०, ६।१४४।

अगाई†--वि० [सं० अग्र, हिं० आई (प्रत्य०)] आगे। पहले। उ०--अगाई सो सवाई।--घाघ० पृ० ७४।

अगाउनी[1](पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगौनी-१'। उ०--मुरली मृदंगन अगाउनी भरत स्वर भावती सुजागरे भरी है गुन आगरे।--देव (शब्द०)।

अगाउनी[2]--संज्ञा स्त्री० दे० 'अगौनी-२'।

अगाऊँ--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगाऊ'। उ०--न्हान समै जब मेरो लखै तब साज लै बैठत आनि अगाऊं।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १२३।

अगाऊ[1]--वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग+हिं० आऊ (प्रत्य०)] †१. अग्रिम। पेशगी। जैसे, 'उसे कुछ अगाऊ दाम दे दो' (शब्द०)। २ (पु) अगला। आगे का। उ०--धरि वाराह रूप रिपु मार्‌यो लै छिति दंत अगाउ।--सूर० (शब्द०)।

अगाऊ[2](पु)--क्रि० वि० १ आगे। पहले। प्रथम। उ०--(क) कबिरा करनी आपनी, कबहुँ न निष्फल जाय। सात समुद्र आड़ा परै मिलै अगाऊ आय।--कबीर (शब्द०)। (ख) 'उग्रसेन भी सब यदुबंसियों समेत गाजे बाजे से अगाऊ जाय मिले'।--लल्लू० (शब्द०)। २. अगाड़ी में। आगे से। उ०--(क) साखि सखा सब सुबल सुदामा देखि धौं बूझि बोलि बलदाऊ। यह तो मोहिं खिझाइ कोटि विधि उलटि बिवादन आइ अगाऊ। --तुलसी ग्रं०, पृ० ४३४। (ख) कौन कौन को उत्तर दीजै तातें भग्यो अगाऊ।--सूर० (शब्द०)।

अगाड़--संज्ञा पुं० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग+हिं० आड़ (प्रत्य०)] १. हुक्के की टोंटी या कुहनी में लगाने की सीधी नली जिसे मुँह में

रखकर धुआँ खीचते हैं। निगाली। २ खेत सींचने की ढेंकली की छोर पर लगी हुई पतली लकड़ी। ३ किसी वस्तु के आगे का भाग। अगाडी।

अगाड़ा¹—संज्ञा पुं० [हिं० अगाड़, तुल० कुमा० गाडा = खेत] कछार। तरी।

अगाडा²—संज्ञा पुं० [अग्र + हिं० आडा (प्रत्य०)] १ यात्री का वह सामान जो पहले से आगे के पड़ाव पर भेज दिया जाता है। पेशखेमा। २ आगे का भाग या हिस्सा।

अगाडा³†—वि० आगे का। आगेवाला।

अगाडी¹—क्रि० वि० [सं० अग्र प्रा० अग्ग + हिं० आड़ी (प्रत्य०)] १ आगे, जैसे—इस घर के अगाडी एक चौराहा मिलेगा (शब्द०)। २ भविष्य में, जैसे—अभी से इसका ध्यान रखो नहीं तो अगाडी मुश्किल पडेगी (शब्द०)। ३ पूर्व। पहले, जैसे—अगाडी के लोग बडे सीधे सादे होते थे (शब्द०)। ४ सामने। समक्ष, जैसे—उनके अगाडी यह बात न कहना (शब्द०)।

अगाड़ी²—संज्ञा पुं० १ किसी वस्तु के आगे का भाग। २ अँगरखे या कुरते के सामने का भाग। ३ घोडे के गराँव में बँधी हुई दो रस्सियाँ जो इधर उधर दो खूँटों से बँधी रहती हैं। ४. सेना का पहला धावा। हल्ला; जैसे—फौज की अगाडी आँधी की पिछाडी (शब्द०)।

यौ०—अगाडी पिछाडी = आगे और पीछे का भाग।

अगाडू—क्रि० वि० [सं० अग्र प्रा० अग्ग अग + हिं० आडू (प्रत्य०)] दे० 'अगाडी'।

अगाता—वि० [सं०] अच्छा न गानेवाला [को०]।

अगात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शैलपुत्री। पार्वती [को०]।

अगाद(पु)—वि० दे० 'अगाध'। उ०—प्रावसनि वत अगाद भय त नित्रलह द्रिग छिनक कर।—पृ० रा० ६१।१२६५।

अगाध¹—वि० [सं०] १ अथाह। बहुत गहरा। अतल स्पर्श। उ०—जलधि अगाध मौलि वह फेनू। सतत धरनि धरत सिर रेनु।—मानस, १।१६७।२. अपार। असीम। अत्यंत। बहुत। अधिक उ०—देखि मिटै अपराध अगाध निमज्जत साधु समाज भलो रे।—तुलसी (शब्द०)। ३ जिसका कोई पार न पा सके। समझ में न आने योग्य। दुर्बोध। उ०—अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अरूपा।—मानस, १।२३।

अगाध²—संज्ञा पुं० १ छेद। २ गड्ढा। ३. स्वाहाकार की पाँच अग्नियों में से एक का नाम [को०]।

अगाधजल—संज्ञा पुं० [सं०] गहरा तालाब या झील। ह्रद [को०]।

अगाधरुधिर—संज्ञा पु० [सं०] रुधिर का आधिक्य। अत्यधिक रक्त [को०]।

अगाधसत्व—वि० [सं०] अत्यधिक शक्तिसंपन्न [को०]।

अगाधा—वि० स्त्री० [सं०] अत्यंत। बहुत। अधिक। उ०—लाल गुलाल घलाघल मैं दृग ठाकर दै गई रूप अगाधा।—पद्माकर (शब्द०)

अगाधित्व—संज्ञा पुं० [सं०] गांभीर्य। गहराई [को०]

अगान¹(पु)†—वि० [सं० अज्ञान] अनजान। अज्ञान। नासमझ। उ०—बालक अगाने हठी और की न माने बात, बिना दिए मातु हाथ भोजन न पाइए।—हनुमन्नाटक (शब्द०)।

अगान²(पु)—संज्ञा पुं० ज्ञान का अभाव। अज्ञान।

अगामै(पु)—क्रि० वि० [सं० अग्रिम, प्रा० अग्गम्मि] आगे।

अगार¹—संज्ञा पुं० [सं० आगार] १ निवासस्थान। धाम। गृह। उ०—दुख आवत कछु अटक न मानत, सूनो देखि अगार।—सूर०, १०।३३८८। २ ढेर। राशि। समूह। अटाला। उ०—मीँजि मीँजि हाथ धुनै माथ दसमाथ तिय, तुलसी तिलो न भयो बाहिर अगार को।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७३।

अगार²—संज्ञा पुं० [सं० अग्र] आगे का स्थान। अगला हिस्सा। अग्रभाग। उ०—अग जो तुमरे मन में यह बात ता काहे को मोहि अगार दयौ।—सुजान०, पृ० ७१।

अगार³—क्रि० वि० आगे। अगाडी। पहले। प्रथम। उ०—प्रीतम को अरु प्रानन को हम देखनो है अब होत मरागे। कैधौं चलैंगो अगार सखी यहि देह तें प्रान कि गेह ते प्यारो।—कोई कवि (शब्द०)।

अगार⁴—वि० [सं० अग्रज ?] अगुआ। नेता। मुखिया। उ०—नव सिरसिनवार दे अवारिया अगार और खुटैला जुझार वीर चाहर अपार।—सुजान०, पृ० ८७।

अगारदाही—संज्ञा पुं० [सं० अगारदाहिन्] मकान को जलानेवाला व्यक्ति [को०]।

अगारि—वि० [सं० अ = नहीं + अ० गार = गड्ढा] अगभीर। कम गहरा। उ०—दिन दिन सरोवर होइ अगारि, अबहु नई बरिषड मही भरि बारि।—विद्यापति, पृ० ५२६।

अगारी¹—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगाड़ी'¹'। उ०—देखो दीठि, उठाय कुँवर पुनि भार अगारी। रावति पीटति जाति नदी की ओर सिधारी।—बुद्ध च०, पृ० ७०।

अगारी²—वि० [सं० अगारिन्] मकान मालिक। मकानवाला [को०]।

अगारू—क्रि० वि० [हिं० अगार] आगे। पहले प्रथम। उ०—जौ लौं चक्रधारी चक्र चाहत चलाइबो को, तौ, लौं ग्राह ग्रीवा पै अगारू चक्र चलि गो।—राम ग्रं० पृ० १।

अगाव†—संज्ञा पु० [सं० अग्र] ऊख के ऊपर का पतला और नीरस भाग जिसमें गाँठें बहुत पास पास होती हैं। अगौरा। अगौरी। अँगौरी।

अगास¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्र; प्रा० अग्ग + आस (प्रत्य०)] द्वार के आगे का चबूतरा।

अगास²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आकाश] आकाश। उ०—हौं सँग साँवरे के जैहौं। का यह सूर अजिर अवनी तनु तजि अगास पिय भवन समैहौं। का यह ब्रज वापी क्रीड़ा जल भजि नंदनंद सबै सुख लैहौं।—सूर० (शब्द०)।

अगासी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अकासी'। उ०—दौडे बंदर बनै मुछंदर कूदै चढै अगासी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३३३।

अगाह¹(पु)—वि० [सं० अगाध, प्रा० अगाह] १. अथाह। बहुत गहरा। उ०—अब लइ गए देइ ओहि सूरी। तेहि सौं अगाह बिथा तुम्ह पूरी।—पद्मावत, पृ० २९२। २ अत्यंत। बहुत। उ०—जो जो सुनै धुनै सिर राजहि प्रीति अगाह।—जायसी (शब्द०)। ३ गंभीर। चिंतित। उदास। उ०—जबहि सुरुज कहँ लागा राहू। तबहि कमल मन भयौ अगाहू।—जायसी (शब्द०)।

अगाह[1]ⓟ—क्रि० वि० [हि० आगे] आगे से। [illegible] से। उ०—[illegible] अगाह [illegible]।—जायसी (ग्रं०)।

अगाह[2]ⓟ—वि० [फा० आगाह] [illegible]। प्रगट। [illegible]। मालूम। उ०—जग [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] गुन [illegible] अगाह।—जायसी (ग्रं०)।

अगाही[1]—संज्ञा स्त्री० [फा० आगाह] किसी बात की पहले से सूचना या संकेत।

अगिⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि] अग्नि। उ०—[illegible] [illegible] सेत [illegible] [illegible]। अगि [illegible] [illegible] [illegible] घन [illegible]।—प०, १२।५१६।

विशेष—पुरानी हिंदी तथा [illegible] में यह समस्त रूप में मिलता है। जैसे अगिदधा, अगिदाह आदि।

अगिआं[illegible]—संज्ञा स्त्री० [सं० आज्ञा] आदेश। हुक्म।

अगिआनाⓟ—क्रि० अ० [हि०] दे० 'अगियाना'। उ०—[illegible] पवन [illegible] [illegible] जोग समाधि लगाई। [illegible] अगिनि [illegible] [illegible] अगि [illegible] [illegible]।—सूर (ग्रं० १०)।

अगिदधा[illegible]—वि० [सं० अग्नि + दग्ध] आग से जला हुआ। दग्ध। उ०—नेहि [illegible] [illegible] अगिदधा —जायसी (ग्रं०)।

अगिदाहⓟ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अग्निदाह'। उ०—[illegible] सेज करे अगिदाहू। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।—जायसी ग्रं०, पृ० १५३।

अगिनतⓟ—वि० [सं० अगणित] अनगिनत। बेशुमार। उ०—जलचरा थलचरा नभचरा [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] पानि के जीव अगिनत जी।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ०, २६०।

अगिन[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] [क्रि० अगियाना] ⓟ १ आग। उ०—[illegible] [illegible] [illegible] तेज [illegible] अगिन पवन मन।—पृ० रा०, १।२५४। २ [illegible] के आकार की छोटी चिड़िया।

विशेष—इसका रंग मटमैला होता है। इसकी बोली बहुत प्यारी होती है। लोग इसे [illegible] में [illegible] हुए पिंजड़े में रखते हैं।

३ एक प्रकार की घास जिसमें नीबू की सी सुगंधि होती है। अगिया घास।

अगिन[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० [illegible]] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भाग। [illegible]।

अगिन[3]—वि० [सं० अ = नहीं + हि० गिनना] अगणित। बेशुमार। उ०—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अगिन गिनी न जाई।—सूर (ग्रं०)।

अगिनगोला—संज्ञा पुं० [हि० अगिन + गोला] [illegible] [illegible] [illegible] आग लगा दे।

अगिनझाल[1]—संज्ञा स्त्री० [हि० अगिन + झाल] दे० 'अग्निज्वाल'।

अगिनबाव—संज्ञा पुं० [हि० अगिन + बाव = वायु] [illegible] [illegible] [illegible] या घोड़ों में, [illegible], [illegible] आदि।

अगिनबोट—संज्ञा स्त्री० [हि० अगिन + अं० बोट] [illegible] प्रकार की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। स्टीमर। धुआँकश।

अगिनहोत्रⓟ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अग्निहोत्र'। उ०—[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]।—[illegible], पृ० ३५८।

अगिनिⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि; प्रा० अग्गि] आग। उ०—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।—सूर० १।८२।

अगिनिकोनⓟ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अग्निकोण'। उ०—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।—[illegible], पृ० [illegible]।

अगिनितⓟ—वि० [हि०] दे० 'अगणित'। उ०—[illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।—सूर०, ६।१०६।

अगिनिबानⓟ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अग्निबाण'। उ०—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।—[illegible], पृ० ४६।

अगिनिबानⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + हि० बाण] १ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। उ०—[illegible] [illegible] [illegible] अगिनिबाना। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।—[illegible] ग्रं०, भा० २, [illegible] [illegible]।

अगिनीⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि] दे० 'अग्नि'। उ०—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।—[illegible] ग्रं०, पृ० ८८८।

अगिनेव—संज्ञा पुं० [सं० आग्नेय] [illegible] [illegible]। [illegible]। उ०—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]।—पृ० रा० [illegible]।

अगिया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि, अगि + या] १. एक प्रकार की घास या [illegible]।

विशेष—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

२ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

विशेष—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] तेल [illegible] [illegible] भी प्रयुक्त [illegible]।

३ [illegible]। आग।

अगिया[2]—संज्ञा पुं० १ [illegible] [illegible] [illegible]।

विशेष—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

२ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

अगिया बैताल[illegible]—संज्ञा पुं० [हि० अगिया + [illegible]] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

अगियाना—क्रि० अ० [हिं० अगिया से नाम०] जल उठना। गरमाना। जलन या दाह से युक्त होना, जैसे—चलते चलते उसका पैर अगिया गया (शब्द०)।

अगिया वैताल—संज्ञा पुं० [स० अग्नि हिं० अगिया + सं० वैताल] १ विक्रमादित्य के दो वैतालों मे से एक। २ एक कल्पित वैताल जिसके संबंध मे अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं। कहते हैं यह बड़ा दुष्ट था और बड़े आश्चर्यजनक कृत्य करता था। ३ मुँह से लूक या लपट निकालनेवाला भूत। उल्कामुख प्रेत। ४ दलदल या तराई मे इधर उधर घूमते हुए फासफरस व अग जो दूर से जलते हुए लूक के समान जान पड़ते हैं। ये कभी कभी कबरिस्तानों मे भी अँधेरी रात मे दिखाई देते हैं। ५ वह जिसका स्वभाव बहुत क्रोधी और चिड़चिड़ा हो। क्रोधी व्यक्ति।

अगियार¹†—वि० [हिं० आग + इयार (प्रत्य०)] (लकड़ी, कोयला, कंडा आदि) जिसकी आग बहुत देर तक ठहरे या तेज हो।

अगियार²—संज्ञा पुं० दे० 'अगियारी'।

अगियारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० आग + इयारी (प्रत्य०)] वह पदार्थ या वस्तु जो अग्नि मे वायु को सुगंधित करने के लिये डाली जाय। धूप देने की वस्तु।

अगियासन—संज्ञा पुं० [हिं० अगिया + सन] १. एक प्रकार का सन की जाति का पौधा। २ एक कीड़ा जिसके छू जाने से शरीर मे जलन होती है। ३ एक चर्म रोग जिसमें झलकते हुए फफोले निकलते हैं।

अगिर—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २ अग्नि। ३ स्वर्ग। ४ एक राक्षस [को०]।

अगिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र = आगे] मकान के आगे का भाग। द्वार। उ०—तुलसी सेव जाति चवि छाए। बरसाने मनमोहन आए। चारि दुआरे उन्नत भारे। करिवर वहु झूमत मतवारे। इमि देखत अगिरी छवि छाए। अत पुर महँ माधव आए —गोपाल० (शब्द०)।

अगिरौकस्—वि० [सं०] १ स्वर्ग मे निवास करनेवाला (देवतादि)। २ शोर गुल करने पर भी न रुकनेवाला [को०]।

अगिला†—वि० [हिं०] दे० 'अगला'।

अगिलाई—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि + हिं० लाय = लपट] अग्नि की ज्वाला। आग की लपट। उ०—जारति अंग अनग की आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई।—घनानंद पृ० ६४।

अगिवाँण†—वि० [सं० अग्र + वान्] प्रधान। मुख्य। अगुआ उ०—तेहिं लवोदर वीनमूँ। चउसठि जोगिनि का अगिवाँण।—बी० रासो, पृ० ३।

अगिवान—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगवान—२। उ०—आदर सयुत वोल मुक्कि मर्ती अगिवान।—पृ० रा०, १२।६७।

अगिहर†—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि + गृह, प्रा० अग्नि + हर] अग्नि का निवास। चिता। उ०—विनति करओ सहिलोलिनिरे मोहि देहे अगिहर साजि।—विद्यापति, पृ० १५८।

अगिहाना†—संज्ञा पुं० [सं० अग्निधान, अग्न्याधान] वह स्थान जहाँ आग जलाई जाती हो। आग रखने का स्थान।

अगीठा¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा।

विशेष—इसके पत्ते पान के आकार के पर उससे कुछ बड़े होते हैं। उसमे सेंम की तरह का एक प्रकार का कुछ चिपटा फल लगता है जिसकी तरह पर छोटे छोटे दाने रहते हैं।

अगीठा²—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + इष्ट] आगे का भाग।

अगीठि—संज्ञा पुं० [हिं० अगोट = आगे अथवा सं० अग्र, प्रा० अग्ग + हिं० इट्ठ] आगे का भाग। अगवाड़ा। आगे। उ०—मगल मूरति कानन पत्र हैं मैन रचना मन मानत नीठि है। काटि किधौं करनी दल गाँफ को सुन्दर नेमाद निहारि अगीठि है।—भिखारी० ग्र० भा० १ पृ० ६८।

अगीठी—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगीठा'। उ०—रागिनि उर्जै, अगीठी तापै [illegible] ।—ग्राम्य०, पृ० १८९।

अगीत¹—क्रि० [सं० अग्र. ?] आगे या आगामी। उ०—आइ अगीत पछीत गहे [illegible] नाहिं नरेंद्र के कूबन।—ठाकुर०, पृ० १।

अगीत²—वि० [सं० अ० + गीत] गीतरहित। न गाया हुआ। उ०—एक अस्फुट अस्पष्ट अगी। सुधि की वे स्वप्निल मुस्कान।—पल्लव पृ० २।

अगीतपछीत¹—क्रि० वि० [सं० अग्र पश्चात्] आगे और पीछे की ओर। आगे पाछे। उ०—रीझत की सिरिया तो रहौं सिरिया रहौं पांवर गांव तरेरे। और इतो विनती तुम सों हरि आए अगीत पछीत न घेरा।—ठाकुर०, पृ० ७।

अगीतपछीत²—संज्ञा पुं० आगे का भाग और पीछे का भाग। अगवाड़ा पिछवाड़ा।

अगीह—वि० [सं० अगृह] गृहहीन। अगेह। उ०—जब अनय लोपत नीह। धर विहरि होत अगीह।—पृ० रा०, ६१।१०७१।

अगुठित—वि०—[सं० अ + गुठित = आवृत्त] अनावृत्त। खुला हुआ। उ०—भारत की नारी उषा सी आज अगुठित, भारत की मानवता नव आभा से मंडित।—युगपथ, पृ० ८६।

अगु¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ राहु ग्रह। २. प्रकाश का अभाव। अधकार (को०)।

अगु²—वि० १ जिसके पास गाय न हो। गोहीन। २ गरीब। ३. दुष्ट। बदमाश [को०]।

अगुआ—संज्ञा पु० [सं० अग्र + हिं० उआ (प्रत्य०)] [क्रि० अगुआना। संज्ञा अगुआई, अगुआनी] १. अग्रग०। आगे चलनेवाला व्यक्ति। अग्रणी। २ मुखिया। प्रधान। नायक। सरदार। नेता। ३ पथप्रदर्शक। मार्ग बतानेवाला। रहनुमा। उ०—ततखन बोला सुआ सरेखा। अगुआ सोइ पथ जेइ देखा।—जायसी ग्र०, पृ० ५७। ४. विवाह की बातचीत चलानेवाला। विवाह ठीक करनेवाला। घटक। कौतुकी। ५. आगा। आगे का भाग।

अगुआई—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग + आई (प्रत्य०)] १. अगरणी होने की क्रिया। अग्रसरता। २ प्रधानता। सरदारी। ३ मार्ग प्रदर्शन। रहनुमाई। उ०—कियेउ निषादनाथु अगुआई। मातु पालकी सकल चलाई।—मानस, २।२१२।

अगुआना¹—क्रि० स० [हिं० 'अगुआ' से नाम०] [संज्ञा अगुआनी] आगे करना। अगुआ बनाना। सरदार नियत करना।

अगुआना[२]†—क्रि० अ० आगे होना या बढ़ना ।

अगुआनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवानी'। उ०—यह महीप मेरी अगुआनी के लिये महासागर तक आया।—श्यामा०, पृ० ७६।

अगुण[१]—वि० [सं०] १ सत्व, रज, तम आदि गुणों से रहित। धर्म या व्यापारशून्य। गुणरहित। निर्गुण। २. निर्गुणी। अनाड़ी। मूर्ख। बेहुनर।

अगुण[२]—संज्ञा पुं० अवगुण। बुरा गुण। दूषण। दोष।

अगुणज्ञ—वि० [सं०] जो गुणज्ञ न हो। जिसे गुण की परख न हो। अनाड़ी। गँवार। नाकदरदान।

अगुणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुणहीनता। गुणों का अभाव। उ०—संद्रिया में, अगुणता से नित्य उकता ही रही थी, सजन में मग्न ही रही थी।—क्वासि, पृ० ८५।

अगुणत्व—संज्ञा पुं० [सं०] अगुणता। गुणराहित्य [को०]।

अगुणवादी—वि० [सं०] अवगुण कहनेवाला। दोष निकालने या कहनेवाला। छिद्रान्वेषी [को०]।

अगुणवान्—वि० [सं०] गुणरहित [को०]।

अगुणशील—वि० [सं०] विशेषतारहित। अयोग्य। अगुणी [को०]।

अगुणी—वि० [सं०] १. निर्गुणी। गुणरहित। २. अनाड़ी। मूर्ख।

अगुताना(पु)[१]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उकताना'। उ०—तू जानि मोहिं अगुतावहु रंक जनि नावहु हो।—पलटू० बानी, भा० ३, पृ० ७४।

अगुन[१](पु)—वि० [सं० अगुण] १ सत्व रज तम आदि गुणों से रहित। निर्गुण। उ०—अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा।—मानस, १।२३। २ अनाड़ी। बेहुनर। निगुँणी। उ०—अगुन अमान जानि तेहिं दीन्ह पिता बनवास।—मानस, ६।३०।

अगुन[२](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अगुण] दे० 'अगुण' २। उ०—खल अघ अगुन साधु गुनगाहा।—मानस, १।६।

अगुनी(पु)—वि० [सं० अ + हिं० गुनना] जिसे गुना या विचारा न जा सके। जिसका वर्णन न किया जा सके। उ०—ऐसी अनूप कहैं तुलसी रघुनायक की अगुनी गुन गाहैं। आरत दीन अनाथन को रघुनाथ करैं निज हाथ की छाहैं।—तुलसी ग्र०, पृ० २००।

अगुमन(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगमन'[१]। उ०—मन हित अगुमन दिहल चलाई।—धरनी०, पृ० २।

अगुरु[१]—वि० [सं०] १. जो भारी न हो। हलका। सुबुक। २. जिसने गुरु से उपदेश न पाया हो। विना गुरु का। निगुरा। ३ लघु या ह्रस्व (वर्ण)।

अगुरु[२]—संज्ञा पुं० १ अगर वृक्ष। ऊद। २ शीशम का पेड़।

अगुवा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगुआ'। उ०—अगुवा भयउ सेख बुरहानू। पथ लाइ मोहिं दीन गियानू।—जायसी ग्र०, पृ० ८।

अगुवानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवानी'।

अगुसरना(पु)†—क्रि० अ० [सं० अग्रसरण] अग्रसर होना। आगे बढ़ना। उ०—एकौ परग न सो अगुसरई।—जायसी (शब्द०)।

अगुसारना(पु)†—[सं० अग्रसारण] आगे बढ़ना। आगे रखना। उ०—रंग के राजे दुख अगुसारा। जियत जीव नहिं करौ निनारा।—पदमावत, पृ० ७०३।

अगुठना(पु)—क्रि० स० [सं० अवगुण्ठन] चारो ओर से घेर लेना।

अगूठा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अवगुण्ठक] घेरा। मुहासिरा।

अगूठी (पु)—वि० [सं० अवगुण्ठित अथवा हिं० अगूठ] घेरायुक्त। उ०—जेहि कारन गढ कीन्ह अगूठी।—जायसी (शब्द०)।

अगूठी[२](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगूठा] कारागार। बंधन।

अगूढ[१]—वि० [सं० अगूढ] जो छिपा न हो। स्पष्ट। प्रकट। सहज। आसान।

अगूढ[२]—संज्ञा पुं० अलंकार में गुणीभूत व्यंग्य के आठ भेदों में से एक। विशेष—यह वाच्य के समान ही स्पष्ट होता है। जैसे—'उदयाचल चुवत रवी, अस्ताचल को चंद।' यहाँ प्रभात का होना व्यंग्य होने पर भी स्पष्ट है।

अगूढगंध—संज्ञा पुं० [सं० अगूढगन्ध] हींग [को०]।

अगूढगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० अगूढगन्धा] हींग। गाँधी।

अगूढभाव—वि० [सं० अगूढभाव] जिसका भाव या विचार छिपा हुआ न रह सके।

अगूता(पु)—क्रि० वि० [सं० अग्र + हिं० ऊता (प्रत्य०)] आगे। सामने। उ०—बाजन बाजहिं होइ अगूता। दुवौ कंत लेइ चाहहिं सूता।—जायसी ग्र०, पृ० २९९।

अगृभीत—वि० [सं०] १ अगृहीत। जो पकड़ा या गिरफ्तार न किया गया हो २ अपराजित। अपराभूत [को०]।

अगृह[१]—वि० [सं०] गृहविहीन। विना घर का। उ०—क्या पूछो हो पता हमारा ? हम हैं अगृह, अकाम।—अपलक, पृ० ७३।

अगृह[२]—संज्ञा पुं० गृहस्थाश्रम के बाद का आश्रम। वानप्रस्थ [को०]।

अगृहता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विना घर का होने की स्थिति या दशा। बेघरबारपन [को०]।

अगेथ—संज्ञा पुं० [सं० अग्निमन्थ] अरनी का पेड़। गनियारी।

अगेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० अगेन्द्र] पर्वतों का राजा। हिमालय।

अगेज[१]—वि० [फा० अंगेज] मिला हुआ।

अगेज[२]—संज्ञा स्त्री० सहन। अँगेज।

अगेय—वि० [सं०] जो गेय न हो या जिसका गान न किया जा सके [को०]।

अगेयान(पु)†—वि० [सं० अज्ञान] अज्ञ। अजान। अनजान। उ०—ए सखि पिआ मोर बड़ा अगेयान, बोलथि बदन तोर चाँद समान।—विद्यापति, पृ० २८।

अगेला—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० एला (प्रत्य०)] १ आगेवाली मठिया जिन्हें नीच जाति की स्त्रियाँ कलाई में पहनती हैं। इसका उलटा 'पछेला' है। २. हलका अन्न जो ओसाते समय भूसे के साथ आगे जा पड़ता है और जिसे हलवाहे आदि ले जाते हैं।

अगेह—वि० [सं०] जिसे घर द्वार न हो। गृहरहित। बेठिकाने का। उ०—अकुल अगेह दिगंबर व्याली।—मानस, १।७२।

अगैरा†—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० औरा (प्रत्य०)] नई फसल की पहली आँटी जो प्रायः जमींदार को भेंट की जाती है।

अगोई[1]ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अग्रवर्ती] अगुआ। सरदार। नायक। उ०—उदैकरन रन भयौ अगोई।—छत्र०, पृ० २१७।

अगोई[2]ⓟ—वि० स्त्री० [सं० अगोपित, प्रा० अगोइअ, हिं० अगोइ] जो छिपी न हो। प्रकट। जाहिर। व्यक्त। उ०—सतन की गति अगत अगोई।—घट०, पृ० ७२।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

अगोचⓟ—वि० [सं० अगोचर] दे० 'अगोचर'। उ०—देहुरे मझे देव पायो, वस्त अगोच लखायो।—दादू० पृ० ५३०।

अगोचर[1]—वि० [स०] १ जिसका अनुभव इद्रियो को न हो। जिसका बोध न हो सके। इद्रियातीत। उ०—मन बुद्धि वर बानी अगोचर प्रगट कवि कैसे करै।—मानस, १।३२१। २ अप्रगट। अप्रत्यक्ष। अव्यक्त। उ०—'अगोचर बातो या भावनाओं को भी, जहाँ तक हो सकता है, कविता स्थूल गोचर रूप मे रखने का प्रयास करती है। —रस०, पृ० ४१।

अगोचर[2]—संज्ञा पुं० १ ब्रह्म। २ वह वस्तु जो इद्रियो का विषय न हो। ३ वह वस्तु जिसे देखा, समझा या जाना न जा सके [को०]।

अगोचरीⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० गोचर] हठयोगियो की पाँच मुद्राओ मे से 'गोचरी' नाम की एक मुद्रा। उ०—चाचरी, भूचरी, खेचरी, अगोचरी, उन्मुनी पाँच मुद्रा साधते सिद्ध राजा।—रामानद०, पृ० ५।

अगोट[1]—संज्ञा पुं० [सं० अग्र = आगे + हिं० ओट = आड] [क्रि० अगोटना] १ रोक। ओट। आड। उ०—रही दै घूघट पट की ओट। नहसुत कील, कपाट सुलच्छन, दै दृग द्वार अगोट।—सूर०, १०।२७६६।

अगोट[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र + हिं० ओट = सहारा] आश्रय। आधार। उ०—रहिहैं चचल प्रान ए, कहि कौन की अगोट। बिहारी र०, पृ० ३९५।

अगोट[3]— वि० [सं० अ = नहीं + हिं० गोट = जोट, साथी] एकाकी। अकेला।

अगोटना[1]ⓟ†—क्रि० स० [हिं० अगोट से नाम० अथवा सं० अग्र, प्रा० अग्ग + हिं० ओट + ना (प्रत्य०)] १. रोकना। छेंकना। उ०—सतु कोट जो पाय अगोटी। मीठी खाँड जेंवाए रोटी।—जायसी (शब्द०)। २ बद कर रखना। रोक रखना। पहरे मे रखना। कैद रखना। उ०—जौ गुनही, तौं राखियै आँखिनु माँझ अगोटि।—बिहारी र०, दो० २५०। ३ छिपाना। ढाँकना। उ०—कीजै किन ब्योंत अगोटन को। है चोर यही मनमोहन को। —भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २४२।

अगोटनाⓟ[2]—क्रि० स० [सं० आकोड, प्रा० अक्कोड, हिं० 'अगोट' से नाम०] १ अंगीकार करना। स्वीकार करना। २ पसद करना। चुनना। उ०—लगत कल्प शतकोटि एक एक के गुन गनत। मन मे लेहि अगोटि जो सुदर नीको लगै।—गुमान (शब्द०)।

अगोटनाⓟ[3]—क्रि० अ० [हिं० अगोट (= रोक) से नाम०] रुकना ठहरना। अडना। फँसना। उलझना। उ०—सुनत भावती बात सुतनि की झूठहिं धाम के काम अगोटी।—सूर०, १०।१९६५।

अगोणी†—वि० [हिं० अगौनी] आगेवाली। आगे की। उ०— एता कमाम लै अगोणी भूमि आया। —शिखर० पृ० ६।

अगोता[1]ⓟ—क्रि० वि० [सं० अग्रत] दे० 'अगूता'।

अगोता[2]ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अगवानी। पेशवाई।

अगोत्र —वि० [सं०] कारणरहित। अकारण [को०]।

अगोपा—वि० [सं०] जिसके पास गाय न हो। गोधन से रहित [को०]।

अगोपिⓟ —वि० [सं० अगोप्य] प्रकट। जाहिर। व्यक्त। उ०—गोपि कहूँ तौ अग पि यहा यह गोपि अग पि न ऊभौ न वैसो।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ६१७।

अगोरई‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगोरना] १ खेत आदि की देखभाल करने की मजदूरी। २ अगोरने की क्रिया या स्थिति।

अगोरदार—संज्ञा पुं० [हिं० अगोरना + फा० दार] रखवाली करनेवाला। पहरा देनेवाला। चौकसी करनेवाला। रखवाला।

अगोरना[1]—क्रि० स० [सं० आघूर्णन = देखना या स० अग्र + रक्ष या देशी] १ राह देखना। बाट जोहना। इतजार करना। प्रतीक्षा करना। उ०—तेरी बाट अगरते आँखें हुई चकोर की।—हरि घास०,। २ रखवाली करना। पहरा देना। चौकसी करना। उ०—कुँवर लाख दुइ बार अगोरे। दुहु दिसि पँवर ठाढ कर जोरे —जायसी (शब्द०)।

अगोरना—क्रि० स० [हि०] रोकना। अगोरना। छेंकना। उ०—जउ मैं कोटि जतन करि राखति, घूघट ओट अगोरि। तउ उडि मिले बधिक के खग ज्यौं, पलक पींजरा तोरि।—सूर०, १०।२३५७

अगोरा†—संज्ञा पुं० [हिं अगोर + आ (प्रत्य०) १ अगोरने या रखवाली करने की क्रिया। चौकसी। निगरानी। २ खेत की कटाई या फसल की देंवाई के समय की वह निगरानी जो जमींदार लोग काश्तकार से उपज का भाग लेने के लिये अपनी ओर से कराते हैं।

अगोराईⓟ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगोर + आई (प्रत्य०)] दे० 'अगोरई'।

अगोरिया†—संज्ञा पुं० [हिं० अगोर + इया (प्रत्य०)] खेत की रखवाली करनेवाला। फसल रखनेवाला। रखवाला।

अगोही†—संज्ञा पुं० [स० अग्रवर्ती या अग्रवाही] वह बैल जिसके सीग आगे की ओर निकले हो।

अगोह्य— वि० [सं०] जो गोपनीय या ढँका न हो। प्रकट [को०]।

अगौडी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अग + औडी (प्रत्य०)] ईख के ऊपर का पतला भाग। अघोरी। अगाव। अगौरा।

अगौका[1]—वि० [सं०] पर्वत पर रहनेवाला [को०]।

अगौका[2]—१ शरभ। २. सिंह। ३ पक्षी [को०]।

अगौढ†—संज्ञा पुं० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग + वढ (प्रत्य०)] रुपया जो असामी जमींदार को नजर या पेशगी की तरह देता है। पेशगी। अगाऊ।

अगौनी[1]पु--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगाउनी'। उ० --देव दिखावत कचन सो तन औरन को मन लावै अगौनी --देव (शब्द०) ।

अगौनी[2]--संज्ञा स्त्री० [हिं० अगवानी] १ अगवानी । पेशवाई। २ वह आतिशबाजी जो बरात आने पर द्वारपूजा के समय छोडी जाती है ।

अगौरा[1]--संज्ञा पुं० [स० अग्र + हिं० औरा (प्रत्य०)] ऊख के ऊपर का पतला न स भाग जिसमे गाँठे नजदीक होती है। अगाव । अगौडी कौचा ।

अगौरी[1]--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगौरा'। २ दे० 'अगौली'।

अगौली--संज्ञा स्त्री० [देश०] १ ईख की एक छ टी और कडी जाति।

अगौवा पु--क्रि० वि० [हिं० अग + औआ (प्रत्य०)] आगे । उ०--विरच्यौ विकट रायमनि दौवा। घाई खाइ अरि हनै अगौवा ।--छत्र०, पृ० २१५ ।

अगौहैं पु[1]--क्रि० वि० [सं० अग्रमुख] आगे की ओर । आगे। अगाड़ी। उ०--(क) भीतर भौंन तें प्रान प्रिया सो ज्यौं चहै पैग पडै न अगौहैं ।-- बेनी प्रवीन (शब्द०) ।

अग्ग पु--क्रि० वि० | सं० अग्र; प्रा० अग्ग] अगाडी । आगे। उ०--अग्ग गयौ गिरि निकट विकट उद्यान भयकर--पृ० रा०, ६।६४ ।

अग्गई--संज्ञा स्त्री० [देश०] अवध में अधिकता से होनेवाला एक प्रकार का मझोले आकार का वृक्ष ।

विशेष--इसकी पत्तियाँ प्राय हाथ भर लबी होती हैं। यह नेपाल भूटान, बरमा और जावा मे भी पाया जाता है। इसमे पीले रग के २--३ इच चौडे फूल और छोटे अमरूद के आकार के फल लगते हैं ।

अग्गम†--[स० अगम्या] दे० 'अगम' । उ०--अग्गम बदरिया आई रसिया, पच्छम बरस गये मेह्न ।--शुक्ल, अभि० ग्र०, पृ० १५६ ।

अग्गय पु--क्रि० वि० [स० अग्र्] दे० 'अग्र' या 'आगे' । उ०--तहाँ अप्प अग्गय धर तत रथ्थ ।--पृ० रा०, ६४।१०० ।

अग्गर[1] पु--वि० [देश० अग्गल] [वि० स्त्री० अग्गरी] अगुआ । अग्रणी । उ०--गय सलषानी राव बीर अग्गर गढ रप्पे ।--पृ० रा०, १२।५८।

अग्गर पु[2]--संज्ञा पुं० [स० आगार] निवास । धाम । प्रासाद । उ०--अग्गर जेहा हूँपडा तउ पासगे मोइ ।--ढोला० दू० ३१४ ।

अग्गाल पु--संज्ञा पुं० [स० अकाल] असमय । अनवसर। उ०-कंइ तू सींची सज्जणे, कंइ वूठउ अग्गाल ।--ढोला० दू०, ३८१

अग्गि पु--संज्ञा पुं० [स० अग्नि, प्रा० अग्गि] दे० 'अग्नि । उ०--पवन अग्गि जलधर अकाश। सरिता समुद्द तिथि गिरि निवास । --पृ० रा०, १।१ ६।

अग्गिया पु--संज्ञा स्त्री० [स० आज्ञा] दे० 'आज्ञा'। उ०--अग्गिया दीन जद्दवह जाम ।--पृ० रा०, ६१।१६०७ ।

अग्गे पु--क्रि० वि० [हि०] दे० 'आगे' । उ०--वहुराइ देव कवियन प्रवल मिलन पिथ्थ अग्गे चलिय ।--पृ० रा०, ६।६३ ।

अग्नायी--संज्ञा स्त्री० [स०] १ अग्नि की स्त्री स्वाहा। २. त्रेतायुग (को०) ।

अग्नि--संज्ञा स्त्री० [स०] १. आग । तेज का गोचर रूप। उष्णता। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश आदि पचभूतो या पचतत्वो मे से एक । २. वैद्यक के मत से तीन प्रकार की अग्नि ।

विशेष--आयुर्वेद मे अग्नि के तीन प्रकार माने गए हैं। यथा-- (क) भौम, जो तृण, काष्ठ आदि के जलने से उत्पन्न होती है । (ख) दिव्य, जो आकाश मे बिजली से उत्पन्न होती है । (ग) उदर या जठर, जो पित्त रूप से नाभि के ऊपर और हृदय के नीचे रहकर भोजन भस्म करती है। इसी प्रकार कर्मकाड मे भी अग्नि तीन प्रकार की मानी गई है। यथा-- गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि । सभ्याग्नि, आवसथ्य और औपासनाग्नि--इन तीन को मिलाकर उनके छह भेद हैं जिनमे प्रथम तीन प्रधान हैं ।

३ वेद के प्रधान देवताओ मे से एक ।

विशेष--ऋग्वेद का प्रादुर्भाव इसी से माना जाता है । वेद मे अग्नि के मत्र बहुत अधिक हैं। अग्नि की सात जिह्वाएँ मानी गई हैं जिनके अलग अलग नाम हैं, जैसे--काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, धूम्रवर्णा, उग्रा और प्रदीप्ता । भिन्न भिन्न ग्रथो मे ये नाम भिन्न भिन्न दिए हैं। यह देवता दक्षिण पूर्व कोण का स्वामी है और आठ लोकपालो मे से एक है । पुराणो मे इसे वसु से उत्पन्न धर्म का पुत्र कहा है। इसकी स्त्री स्वाहा थी जिससे पावक, पवमान और शुचि ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इन तीनो पुत्रो के भी पैंतालीस पुत्र हुए। इस प्रकार सब मिलाकर ४६ अग्नि माने गए हैं जिनका विवरण वायुपुराण मे विस्तार के साथ दिया है।

क्रि० प्र०--जलना । जलाना ।--डालना ।--फूँकना ।--बालना ।--बुझना ।--बुझाना ।--भड़कना ।--भडकाना ।--लगना ।--लगाना ।--सुलगाना ।

४ जठराग्नि। पाचन शक्ति । जैसे--'अग्नि तो मद हो गई है । भूख कहाँ से लगे (शब्द०) । ५ पित्त । ६ तीन की सख्या क्योकि कर्मकाड के अनुसार तीन अग्नि मुख्य है। ७. सोना। ८ चित्रक। चीता । ९ भिलावा । १० नीबू। ११. अग्निकर्म (को०) । १२ 'र्' का गूढ प्रतीक (को०) । १३ प्रकाश (को०) ।

अग्निक--संज्ञा पुं० [स०] १ बीरबहूटी नाम का कीड़ा । २. एक प्रकार का पौधा (को०) । सर्प की एक किस्म (को०) ।

अग्निकण--संज्ञा पुं० [सं०] चिनगारी । स्फुलिंग [को०] ।

अग्निकर्म--संज्ञा पुं० [स०] १. अग्निहोत्र। हवन । २. अग्निसस्कार । शवदाह । ३ गरम लोहे से दागने का कार्य (को०) ।

अग्निकला--संज्ञा स्त्री० [स०] अग्नि की दस कलाओ मे कोई एक [को०]।

अग्निकल्प--वि० [स०] अग्नि की प्रकृति या स्वभाववाला [को०]।

अग्निकाड--संज्ञा पुं० [स० अग्नि + कांड] आग लगाना ।

अग्निकारिका--संज्ञा स्त्री० [स०] १ ऋग्वेदोक्त अग्निसूक्त जो 'अग्नि दूत पुरोदधे' से प्रारभ होता है । २. अग्निकार्य [को०] ।

अग्निकार्य --संज्ञा पुं० [स०] दे० 'प्रतिसारण' २।

अग्निकाष्ठ--संज्ञा पुं० [स०] अगर का पेड़ ।

अग्निकीट--संज्ञा पुं० [सं०] समदर नाम का कीडा जिसका निवास अग्नि मे माना जाता है।

अग्निकुड--संज्ञा पुं० [सं० अग्निकुण्ड] अग्निहोत्र के लिये निर्मित कुड [को०]।

अग्निकुक्कुट--संज्ञा पुं० [सं०] जलता हुआ तृण या पयाल का पूला। लुकारी। लुक।

अग्निकुमार--संज्ञा पुं० [सं०] १ कार्तिकेय। षडानन। २ आयुर्वेद के अनुसार एक रस जो विभिन्न अनुपानों के साथ देने से अरुचि, मदाग्नि, श्वास, कास, कफ, प्रमेह आदि रोगों को दूर करता है।

अग्निकुल--संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों का एक कुल या वशविशेष।

विशेष--ऐसी कथा है कि ऋषियों के तप मे जब दैत्य विघ्न डालने लगे तब उन्होंने वशिष्ठ की अध्यक्षता मे आबू पर्वत पर एक यज्ञ किया। उस यज्ञकुड से एक एक करके चार पुरुष उत्पन्न हुए जिनसे चार वश चले अर्थात् प्रमार, परिहार, चालुक्य या सोलकी और चौहान। इन चार क्षत्रियों का कुल अग्निकुल कहलाता है।

अग्निकेतु--संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का एक नाम। २ रावण की सेना का एक राक्षस। ३ धूम्र। धुआँ [को०]।

अग्निकोण--संज्ञा पुं० [सं०] पूर्व और दक्षिण का कोना।

अग्निक्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शव का अग्नि मे दाह। मुर्दा जलाना। २ अग्निहोत्र या अग्निकर्म [को०]।

अग्निक्रीडा--संज्ञा स्त्री० [सं०] आतशबाजी।

अग्निगर्भ[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्यकात मणि। २. सूर्यमुखी शीशा। आतशी शीशा। ३. शमी वृक्ष। ४. अग्निजार या गजपिप्पली का पौधा [को०]।

अग्निगर्भ[2]--वि० जिसके भीतर अग्नि हो। जो अग्नि उत्पन्न करे, जैसे अग्निगर्भ पर्वत्।

अग्निगर्भ पर्वत--संज्ञा पुं० [सं०] ज्वालामुखी पहाड।

अग्निगर्भा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शमी वृक्ष। २. पृथिवी। धरा। ३ महाज्योतिष्मती नाम की लता [को०]।

अग्निगृह--संज्ञा पुं० [सं०] वह गृह जहाँ हवन की अग्नि रखी रहती हो [को०]।

अग्निघृत--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि उद्दीपन करने के लिये निर्मित एक प्रकार का घृत [को०]।

अग्निचक्र--संज्ञा पुं० [सं०] १ योग मे शरीर के भीतर माने हुए छ चक्रो मे से एक।

विशेष--इसका स्थान भौंहों का मध्य, रग बिजली का सा और देवता परमात्मा माने गए हैं। इस चक्र मे जिस कमल की भावना की गई है उसके दलो (पखुडियो) की सख्या दो और उनके अक्षर 'ह' और 'क्ष' हैं।

२. अग्नि का चक्र या गोला। उ०--विमल व्योम मे देव दिवाकर अग्निचक्र से फिरते हैं।--कानन०, पृ० २४।

अग्निचय--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निचयन' [को०]।

अग्निचयन--संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञार्थ अग्नि को रखना। अग्न्याध्यान। २. अग्न्याध्यान कार्य मे प्रयुक्त होनेवाले मत्र [को०]।

अग्निचित्--संज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्री।

अग्निचूड--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि के समान लाल शिखावाला पक्षी। कुक्कुट। अरुणचूड [को०]।

अग्निज[1]--वि० [सं०] १ अग्नि से उत्पन्न। २. अग्नि को उत्पन्न करनेवाला। ३ अग्निसदीपक। पाचक।

अग्निज[2]--संज्ञा पुं० १ अग्निजार वृक्ष। समुद्रफल का पेड। २ कार्तिकेय का नाम (को०)। ४. सोना। स्वर्ण (को०)।

अग्निजन्मा--संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अग्निज' [को०]।

अग्निजात--संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अग्निज' [को०]।

अग्निजार--संज्ञा पुं०, वि० [सं०] समुद्र फल का पेड।

अग्निजाल--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निज्वाल' [को०]।

अग्निजित्--संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर [को०]।

अग्निजिह्व[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। अमर। २ विष्णु [को०]।

अग्निजिह्व[2]--वि० अग्नि के समान जीभवाला [को०]।

अग्निजिह्वा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आग की लपट। २. अग्नि देवता की सात जिह्वाएँ।

विशेष--मुडकोपनिषद् मे इनके नाम ये दिए हैं--काली, कराली, मनोजवा, लोहिता, धूम्रवर्णा, स्फुलिगिनी और विश्वरूपी। वृहत्सहिता मे अतिम दो नामों के स्थान मे उग्रा और प्रदीप्ता

३ कलियारी विष। लागली। नाम दिए हैं।

अग्निजीवी--संज्ञा पुं० [सं०] आग के सहारे काम करनेवाले जैसे --लुहार, सुनार आदि।

अग्निज्वाल--संज्ञा पुं० [सं०] शिव। शकर [को०]।

अग्निज्वाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आग की लपट। उ०--इडा अग्निज्वाला सी आगे जलती है उल्लास भरी।--कामायनी, पृ० १८१। २ धव का पेड जिसमे लाल फूल लगते हैं। ३. जलपिप्पली का पेड।

अग्निझाल--संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + ज्वाल प्रा० झाल] जलपिप्पली का पेड।

अग्नितुडावटी--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नितुण्डावटी] वैद्यक के अनुसार अजीर्ण दूर करनेवाली गोली।

अग्नितेजा--वि० [सं०] अग्नितुल्य तेजवाला [को०]।

अग्नित्रय--संज्ञा पुं० [सं०] विधिपूर्वक स्थापित गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण नामक अग्नि [को०]।

अग्नित्रेता--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अग्नित्रय' [को०]।

अग्निदड--संज्ञा पुं० [सं० अग्निदण्ड] आग मे जलाने का दड।

अग्निद--संज्ञा पुं० [सं०] आग लगानेवाला।

अग्निदग्ध[1]--वि० [सं०] चिताग्नि मे सविधि जलाया हुआ [को०]।

अग्निदग्ध[2]--संज्ञा पुं० पितृगणो का एक वर्ग [को०]।

अग्निदमनी--संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियारी क्षुप। एक प्रकार का क्षुप जिसे दमनी कहते हैं।

अग्निदाता--संज्ञा पुं० [सं०] चिता पर शव को अग्नि देनेवाला या दाहकृत्य करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अग्निदान--संज्ञा पुं० [सं०] चिता मे अग्नि लगाने का कार्य [को०]।

अग्निदाह--संज्ञा पुं० [सं०] १ आग मे जलाने का कार्य। भस्म करने का कार्य। जलाना। भस्मीकरण। २ शवदाह। मुर्दा जलाना।

अग्निदिव्य- संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि के प्रयोग द्वारा सत्यासत्य का निर्णय। अग्निपरीक्षा [को०]।

अग्निदीपक--वि० [सं०] जठराग्नि को उत्तेजित करनेवाला। पाचन शक्ति बढानेवाला।

अग्निदीपन--संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्निवर्धन। जठराग्नि की वृद्धि। पाचनशक्ति की बढती। २ अग्निवर्धक औषध। पाचनशक्ति को बढानेवाली दवा। वह दवा जिसके खाने से भूख लगे।

अग्निदीप्ता--संज्ञा स्त्री० [सं०] महाज्योतिष्मती। अग्निगर्भा [को०]।

अग्निदूत--संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ मे आवाहित देवगण। २ यज्ञकार्य। यजन [को०]।

अग्निदूषित--वि० [सं०] दग्ध। जला हुआ [को०]।

अग्निदेव--संज्ञा पुं० [सं०] १ देवरूप मे अग्नि को प्रधान माननेवाले अग्निपूजक। २ अग्नि [को०]।

अग्निदेवा--संज्ञा स्त्री० [सं०] कृत्तिका नक्षत्र [को०]।

अग्निद्वार--संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वदक्षिण कोण मे स्थित मकान का दरवाजा [को०]।

अग्निधान--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि रखने का पवित्र स्थान [को०]।

अग्निनक्षत्र--संज्ञा पुं० [सं०] कृत्तिका नाम का तृतीय नक्षत्र [को०]।

अग्निनयन--संज्ञा पुं० [सं०] हवन की अग्नि का विधिपूर्वक सम्कार करना [को०]।

अग्निनिर्यास--संज्ञा पुं० [सं०] अग्निजार वृक्ष [को०]।

अग्निनेत्र--संज्ञा पुं० [सं०] देवगण [को०]।

अग्निपक्व--वि० [सं०] अग्नि पर पकाया हुआ [को०]।

अग्निपरिक्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि मे हवन और उसकी सुरक्षा करना [को०]।

अग्निपरिग्रह--संज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्र लेना [को०]।

अग्निपरिधान--संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ की अग्नि को परदे से आवृत्त करना या घेरना [को०]।

अग्निपरीक्षा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जलती हुई आग द्वारा परीक्षा या जाँच। जलती हुई आग पर चलाकर अथवा जलता हुआ पानी, तेल या लोहा छुलाकर किसी व्यक्ति के दोषी या निर्दोष होने की जाँच।

विशेष--प्राचीन काल मे जब किसी व्यक्ति पर किसी अपराध का संदेह होता था तब यह देखने के लिये कि वह यथार्थ मे दोषी है या नहीं, लोग उसे आग पर चलने को कहते थे, अथवा उसके ऊपर जलता हुआ तेल या जल डालते थे। उनका विश्वास था कि यदि वह निरपराध होगा तो उसे कुछ आँच न आवेगी।

२ भयप्रदायक एव कठिन परीक्षा। ३ सोने, चाँदी आदि धातुओं की आग मे तपा कर परख।

अग्निपर्वत--संज्ञा पुं० [सं०] ज्वालामुखी पर्वत [को०]।

अग्निपुराण --संज्ञा पुं० [सं०] १८ पुराणों मे से एक।

विशेष--इसका नाम अग्निपुराण इस कारण है कि इसे अग्नि ने वशिष्ठ जी को पहले पहल सुनाया था। इसके श्लोकों की संख्या कोई १४,०००, कोई १५,००० और कोई १६,००० मानते हैं। इसमे यद्यपि शिव का माहात्म्यवर्णन प्रधान है पर कर्मकाड, राजनीति, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, अलंकार, छंद शास्त्र, व्याकरण, तंत्र आदि अनेक फुटकर विषय भी इसमे सम्मिलित हैं।

अग्निपूजक--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि की पूजा करनेवाला व्यक्ति, जाति या धर्म।

अग्निप्रणयन--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निनयन' [को०]।

अग्निप्रतिष्ठा--संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ, विवाहादि धार्मिक अवसरों पर कुंड या वेदी पर अग्नि को रखने की क्रिया [को०]।

अग्निप्रवेश--संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर त्याग की इच्छा से अग्नि मे प्रवेश करना। २ किसी स्त्री का पति के शव आदि के साथ चिता मे प्रवेश करना [को०]।

अग्निप्रस्तर--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि उत्पन्न करनेवाला पत्थर। वह पत्थर जिससे आग निकले। चकमक पत्थर।

अग्निवाण--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अस्त्र। वह वाण जिसमे से अग्नि की ज्वाला प्रकट हो। वह तीर जिसमे आग की लपट निकले। भस्म करनेवाला वाण।

विशेष--ऐसा कहा जाता है यह वाण मंत्र द्वारा चलाया जाता था और इससे अग्नि की वर्षा होने लगती थी।

अग्निवाव--संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + वायु, प्रा० वाव] १ घोडों और चौपायों का एक रोग जिसमे उनके शरीर पर छोटे छाले निकलते हैं और फूट फूटकर फैलते हैं। यह रोग अधिकतर घोडों को ही होता है। २ मनुष्यों का एक चर्मरोग जिसमे शरीर पर बडे बडे लाल चकते या ददोरे निकल आते हैं। पित्ती। जुडपित्ती। ददरा। ३ अग्नि की ज्वाला या लपट।

उ०--पुहीर चंद जनु अग्निवाव।--पृ० रा०, ८।१५।

अग्निवाहु--संज्ञा पुं० [सं०] १ धूम्र। धुआँ। २ प्रथम मनु के पुत्र [को०]।

अग्निवीज--संज्ञा पुं० [सं०] १ सोना।

विशेष--मनु आदि प्राचीन ग्रंथों मे सोने की उत्पत्ति अग्नि के संयोग से लिखी है।

२. अग्नि का वीजाक्षर 'र' [को०]।

अग्निभ¹--संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निसदृश नक्षत्र। कृत्तिका। २. सोना। स्वर्ण [को०]।

अग्निभ²--वि० अग्नि की तरह दीप्त [को०]।

अग्निभू--संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय।

अग्निभूति--संज्ञा पुं० [सं०] अंतिम जैन तीर्थंकर के शिष्य [को०]।

अग्निमथ--संज्ञा पुं० [सं० अग्निमथ] १ अरणी वृक्ष जिसकी लकडी को परस्पर घिसने से आग बहुत जल्द निकलती है। २ अरणी नामक मंत्र जिसमे यज्ञ के लिये आग निकाली जाती है।

अग्निमथन--संज्ञा पुं० [सं० अग्निमन्थन] दे० 'अग्निमथ' [को०]।

अग्निमणि--संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्यकांत मणि। एक बहुमूल्य पत्थर। २ सूर्यमुखी शीशा। आतशी शीशा।

अग्निमथ—संज्ञा पु० [सं०] १. यज्ञ में अरणि का मथन करनेवाला याज्ञिक ब्राह्मण। २ अरणिमथन के अवसर पर प्रयुक्त होने वाले मंत्र। ३ अरणि का काठ [को०]।

अग्निमांद्य—संज्ञा पु० [सं० अग्निमान्द्य] मंदाग्नि। जठराग्नि की कमी। पाचनशक्ति की कमी। भूख न लगने का रोग।

अग्निमान्[1]—संज्ञा पु० [सं०] विधिपूर्वक अग्नि रखनेवाला द्विज। अग्निहोत्री [को०]।

अग्निमान्[2]—वि० अच्छी पाचनशक्तिवाला [को०]।

अग्निमारुति—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्यमुनि का नाम।

अग्निमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] शुंग वंशीय पुष्यमित्र का पुत्र। मालविकाग्निमित्र नाटक में इसकी कथा है [को०]।

अग्निमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। २. अग्निहोत्री (को०)। ३ प्रेत। ४ ब्राह्मण। ५ चीते का पेड। ६ भिलावे का पेड। ७ वैद्यक में अजीर्ण नाशक चूर्ण का नाम जो जवाखार, सज्जी, चित्रक, लवण आदि कई वस्तुओं के मेल से बनता है। ८ एक रस औषधि का नाम जिससे वातशूल दूर होता है। ९ खटमल (को०)।

अग्निमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भल्लातक। भिलावाँ। २ गायत्री का मंत्र। ३ ब्राह्मण। ४ अग्नि आदि देवगण। ५ पाकशाला [को०]।

अग्नियंत्र—संज्ञा पुं० [सं० अग्नियन्त्र] आग उगलनेवाला यंत्र। बंदूक [को०]।

अग्नियान—संज्ञा पुं० [सं०] विमान। व्योमयान। वायुयान [को०]।

अग्नियुग—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में पाँच पाँच वर्ष के जो बारह युग माने गए हैं। उनमें से एक। इस युग के वर्षों के नाम क्रम से चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव और व्यय हैं।

अग्नियोजन—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञार्थ अग्नि प्रकट करने का कार्य [को०]।

अग्निरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्न्याधान' [को०]।

अग्निरजा—संज्ञा पुं० [सं०] १ वीरबहूटी कीडा। २. स्वर्ण [को०]

अग्निरहस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि की उपासना को बतानेवाला शास्त्र या ग्रंथ। २ शतपथ ब्राह्मण का दशम कांड [को०]।

अग्निरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मासरोहिणी नामक लता [को०]।

अग्निरूप—वि० [पुं०] अग्नितुल्य तेजोमय स्वरूपवाला [को०]।

अग्निरेता—संज्ञा पुं० [सं० अग्निरेतस्] अग्नि का रेतस् या तेज। सोना [को०]।

अग्निरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक मतानुसार एक रोग जिसमें अग्नि के समान झलकते हुए फफोले पडते हैं और रोगी को दाह और ज्वर होता है।

अग्निलिंग—संज्ञा पुं० [सं० अग्निलिङ्ग] आग की लपट की रंगत और झुकाव देखकर शुभाशुभ फल बतलाने की विद्या।

अग्निलोक—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि द्वारा अधिष्ठित मेरु पर्वत के शृंग के नीचे का लोक [को०]।

अग्निवंश—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निकुल।

अग्निवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की स्त्री स्वाहा [को०]।

अग्निवर्च[1]—संज्ञा पु० [अग्निवर्चस्] अग्नि का तेज [को०]।

अग्निवर्च[2]—वि० अग्नि की तरह दीप्त [को०]।

अग्निवर्ण[1]—संज्ञा पु० [सं०] इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा जो रघु के प्रपौत्र तथा सुदर्शन के पुत्र थे।

अग्निवर्ण[2]—वि० आग के रंग का। अंगारे के समान। रक्तवर्ण। लाल।

अग्निवर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीखी मदिरा। तेज शराब [को०]।

अग्निवर्तक—संज्ञा पु० [सं०] पुराणों के अनुसार एक प्रकार का मेघ [को०]।

अग्निवर्धक—वि० [सं०] जठराग्नि को बढानेवाला। पाचन शक्ति को बढानेवाला [को०]।

अग्निवर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ युद्ध में आग्नेयास्त्रों की वर्षा या प्रयोग। २ भयंकर धूप पडना।

अग्निवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ साल का वृक्ष। साखू का पेड। २ साल से निकली हुई गोंद। राल। धूप।

अग्निवासा—वि० [सं० अग्निवासस्] अग्नि की तरह शुद्ध या लाल वस्त्रवाला [को०]।

अग्निवाह[1]—संज्ञा पु० [सं०] १. बकरा। छाग। २ धूम्र [को०]।

अग्निवाह[2]—वि० ज्वलनशील (पदार्थ) [को०]।

अग्निवाहन—संज्ञा पु० [सं०] बकरा। छाग [को०]।

अग्निविंदु—संज्ञा पु० [सं०] चिनगारी। स्फुलिंग [को०]।

अग्निविद—संज्ञा पुं० [सं० अग्निवित्] अग्निहोत्री।

अग्निविद्—वि० अग्निहोत्र आदि की क्रियाओं का ज्ञाता [को०]।

अग्निविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रातःकाल और सायंकाल मंत्रों द्वारा अग्नि की उपासना की विधि। अग्निहोत्र।

यौ०—पंचाग्निविद्या = छांदोग्य उपनिषद् में सूर्य, बादल, पृथ्वी पुरुष और स्त्री संबंधी विज्ञान को 'पंचाग्निविद्या' कहा है।

अग्निविश्वरूप—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार केतु ताराओं का एक भेद। ये ज्वाला की माला से युक्त और संख्या में १२० कहे गए हैं।

अग्निविसर्प—संज्ञा पु० [सं०] शोथ या फोडे के कारण होनेवाली जलन या दर्द (को०)।

अग्निवीर्य[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ अग्नितुल्य पराक्रम। २ स्वर्ण [को०]।

अग्निवीर्य[2]—वि० अग्नि के सदृश तेजस्वी [को०]।

अग्निवेश—संज्ञा पु० [सं०] आयुर्वेद के आचार्य एक प्राचीन ऋषि का नाम जो अग्नि के पुत्र कहे जाते हैं।

अग्निव्रत—संज्ञा पु० [सं०] वेद की एक ऋचा का नाम।

अग्निशरण—संज्ञा पु० [सं०] अग्निशाला [को०]।

अग्निशर्मा[1]—वि० [सं०] बहुत शीघ्र उत्तेजित होनेवाला [को०]।

अग्निशर्मा[2]—संज्ञा पु० एक ऋषि [को०]।

अग्निशाल—संज्ञा पु० [सं०] अग्निशाला [को०]।

अग्निशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घर जिसमें अग्निहोत्र या हवन करने की अग्नि स्थापित हो। उ०—देखते थे अग्निशाला से कुतूहलयुक्त।—कामायनी, पृ० ८३।

अग्निशिख--संज्ञा पुं० [सं०] १ कुसुम या वर्रे का पेड़। २. कुंकुम। केसर। ३ सोना। ४ दीपक। ५ वाण। तीर। ६. अग्निवाण [को०]।

अग्निशिखा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अग्नि की ज्वाला। आग की लपट। उ०--अग्निशिखा बुझ गई जागने पर जैसे सुख सपने।--कामायनी पृ० १३८। २ कलियारी या करियारी नामक पौधा जिसकी जड़ में विष होता है।

अग्निशुद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अग्नि से पवित्र करने की क्रिया। आंग छुलाकर किसी वस्तु को शुद्ध करना। २ अग्निपरीक्षा।

अग्निशेखर--संज्ञा पुं० [सं०] १ कुसुम या वर्रे का पेड। २ केसर। ३ जांगली वृक्ष। ४ सोना। स्वर्ण [को०]।

अग्निश्री--वि० [सं०] अग्नि की तरह दीप्त या शोभ वाला [को०]।

अग्निष्टुत्--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो एक दिन में पूरा होता है। यह अग्निष्टोम का ही संक्षेप है।

अग्निष्टोम--संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ जो ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का रूपांतर है।

विशेष--इसका काल वसंत है। इसके करने का अधिकार अग्निहोत्री ब्राह्मण को है। द्रव्य इसका सोम है। देवता इसके इंद्र और वायु आदि हैं और इसमें ऋत्विजों की संख्या १६ है। यह यज्ञ पाँच दिन में समाप्त होता है।

अग्निष्ठ--संज्ञा पुं० [सं०] १ रसोईघर। २ अँगीठी [को०]।

अग्निष्वात्ता--संज्ञा पुं० [सं०] १ पितरों का एक भेद। २ अग्नि, विद्युत् आदि विद्याओं का जाननेवाला।

अग्निसंकाश--वि० [सं०] अग्नितुल्य वर्ण या दीप्तिवाला [को०]।

अग्निसंदीपन--वि० [सं०] दे० 'अग्निवर्धक' [को०]।

अग्निसंभव[1]--वि० [सं०] अग्नि द्वारा उत्पन्न [को०]।

अग्निसंभव[2]--संज्ञा पुं० १ स्वर्ण। २ अरण्य कुसुम। ३ कार्तिकेय। ४ भोज्यपदार्थ या भोजन का रस [को०]।

अग्निसंस्कार--संज्ञा पुं० [सं०] १ आग का व्यवहार। आग जलाना। २ तपाना। तप्त करना। ३ शुद्धि के लिये अग्नि स्पर्श कराने का विधान। ४ मृतक के शव को भस्म करने के लिये उसपर अग्नि रखने की क्रिया। दाहकर्म। ५ श्राद्ध में पिंड रखने की वेदी पर आग की चिनगारी घुमाने की रीति या क्रिया।

अग्निसंहिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निवेश ऋषि द्वारा प्रणीत चिकित्सा संबंधी एक ग्रंथ [को०]।

अग्निसखा--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निसहाय'।

अग्निसहाय--संज्ञा पुं० [सं०] १ जंगली कबूतर (क्योंकि उसके मांस से जठराग्नि तीव्र होती है)। २ वायु। हवा। ३ धूम्र [को०]।

अग्निसाक्षिक--वि० [सं०] १ जिसका साक्षी अग्नि हो। २ जिसकी प्रतिज्ञा अग्नि को साक्षी देकर की गई हो। जो अग्नि देवता के सामने संपादित हो।

विशेष--जो बात अग्नि के सामने उसको साक्षी मानकर कही जाती है वह बहुत पक्की समझी जाती है और उसका पालन धर्म-विचार से अत्यंत आवश्यक होता है। विवाह में वर कन्या की जो प्रतिज्ञाएँ होती हैं वे अग्नि को साक्षी देकर की जाती हैं।

अग्निसात्--वि० [सं०] आग में जलाया हुआ। भस्म किया हुआ। क्रि० प्र०--करना।--होना।

अग्निसार--संज्ञा पुं० [सं०] नेत्रों के लिये आयुर्वेदकथित एक औषध। रसांजन (को०)।

अग्निसुत--संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय [को०]।

अग्निसूनु--संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय [को०]।

अग्निसेवन--संज्ञा पुं० [सं०] आग तापना।

अग्निस्तंभ--संज्ञा पुं० [सं० अग्निस्तम्भ] १. अग्नि के प्रभाव को रोकने का कार्य। २ अग्निप्रभाव रोकनेवाले मंत्र। ३ अग्नि-प्रभाव-निरोधक चूर्ण या लेप [को०]।

अग्निस्तंभन--संज्ञा पुं० [सं० अग्निस्तम्भ] दे० 'अग्निस्तंभ' [को०]।

अग्निस्तोक--संज्ञा पुं० [सं०] स्फुलिंग। चिनगारी [को०]।

अग्निहोत्र--संज्ञा पुं० [सं०] वेदोक्त मंत्रों से अग्नि में आहुति देने की क्रिया। एक यज्ञ। उ०--जलने लगा निरंतर उनका अग्निहोत्र सागर के तीर।--कामायनी, पृ० ३१।

अग्निहोत्री[1]--वि०, संज्ञा पुं० [सं० अग्निहोत्रिन्] अग्निहोत्र करनेवाला। सवेरे संध्या अग्नि में वेदोक्त विधि से हवन करनेवाला। आहिताग्नि।

अग्निहोत्री[2]--संज्ञा स्त्री० यज्ञप्रयुक्त गाय [को०]।

अग्नीध्र--संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ में ऋत्विकविशेष जिसका काम अग्नि की रक्षा करना है। २ स्वायंभुव मनु के पुत्र एक राजा का नाम। ३ मनु के पुत्र राजा प्रियव्रत का बेटा। उ०--प्रियव्रत के अग्नीध्र सु भयौ।--सूर० ५।२।४। दे० 'आग्नीध्र'।

अग्नीय--वि० [सं०] १. अग्नि का समीपवर्ती। २ अग्निसंबंधी। अग्नि का [को०]।

अग्न्यगार--संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञाग्नि को रखने का स्थान। अग्निहोत्र का गृह [को०]

अग्न्यस्त्र--संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + अस्त्र] १ मंत्र द्वारा फेंका जानेवाला अस्त्र जिससे आग निकले। अग्निघटित अस्त्र। आग्नेयास्त्र। २ वह अस्त्र जो आग से चलाया जाय, जैसे बंदूक।

अग्न्यागार--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्न्यगार' [को०]।

अग्न्याधान--संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि की विधानपूर्वक स्थापना। २ अग्निहोत्र।

अग्न्यालय--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्न्यागार' [को०]।

अग्न्याशय--संज्ञा पुं० [सं०] जठराग्नि का स्थान। पक्वाशय।

अग्न्याहित--संज्ञा पुं० [सं०] आहिताग्नि। अग्निहोत्री [को०]।

अग्न्युत्पात--संज्ञा पुं० [सं०] १ आकाशीय अग्नि द्वारा उपद्रव।

विशेष--नक्षत्र, उल्का, वज्र या पत्थर, बिजली और तारा के रूप में यह पाँच प्रकार का होता है।

२ अग्निकांड। आग लगना [को०]।

अग्न्युत्सादी--वि० [सं०] जो अग्निहोत्र या यज्ञ की अग्नि को बुझ जाने देता है [को०]।

अग्न्युद्धार--संज्ञा पुं० [सं०] अरणिमंथन द्वारा आग उत्पन्न करने का कार्य [को०]।

अग्न्युपस्थान--संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि की पूजा या प्रार्थना। २ अग्निपूजा में प्रयुक्त होनेवाले मंत्र [को०]।

अग्य(पु)†--वि० [स० अज्ञ, पु० हिं० अग्य] राम विरोधी विजय चह सठ हठ वस अति अग्य ।--मानस, ६।८३ ।

अग्यॉं(पु)†--सज्ञा स्त्री० [स० आज्ञा, (पु) अग्याँ] दे० 'आज्ञा' । उ०--अग्याँ भई रिसान नरेसू ।--पदमावत, पृ० ४६३ ।

अग्याँन(पु)†--सज्ञा पुं० [स० अज्ञान,(पु) अग्याँन, अगेयान] दे० 'अज्ञान' । उ०--जोवन गुन गवित सुनि सजनी तज्यो नाहिं अग्याँन ।--पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १४८ ।

अग्या(पु)--सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अग्याँ' । उ०--जो अग्या सामत स्वामि दीनी सु मानि लिय ।--पृ० रा०, ३१।४८ ।

अग्याकारिनि(पु)--वि० स्त्री० [स० आज्ञाकारिणी] आदेश माननेवाली । सेविका । उ०--हूँ तौ तिहारी अग्याकारिनि साँचि बात मोसों कहा करी महराज ।--नंद० ग्र०, पृ० ३६८ ।

अग्यात(पु)--क्रि० वि० [स० अज्ञात,(पु)अग्यात] दे० 'अज्ञात' ।

अग्यान(पु)--वि० दे० [हिं०] 'अग्यान' । उ०--मैं अग्यान अकुलाइ, अधिक लै, जरत माँझ घृत नायौ ।--सूर०, १।१५४ ।

अग्यारी†--सज्ञा स्त्री० [स० अग्नि + कारिका, प्रा० अग्गिआरिया = होमकर्म] १ अग्नि मे धूप, गुड आदि सुगध द्रव्य देने की क्रिया । धूपदान । २ अग्निकुड ।

अग्यौन(पु)--सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगवान' २ । उ०--सुनि आवत चहुआँन, वरिय अग्यौन सलप वर ।--पृ० रा०, १४।२२ ।

अग्र[1]--सज्ञा पुं० [स०] १ आगे का भाग । अगला हिस्सा । आगा । उ०--बहुरि वरि कोप हल अग्र पर दक्ष धरि कटक को सकल चाहत डुवायो ।--सूर० (शब्द०) । २. सिरा । नोक उ०--जैसे जव के अग्र ओस कन प्राण रहत ऐसे अवधिहि के तट ।--सूर (शब्द०) । ३ स्मृति के अनुसार अन्न की भिक्षा का एक परिमाण जो मोर के ४८ अडों के बराबर होता है । ४ शृग । शिखर (को०) । ५ श्रेष्ठता । उत्कर्ष (को०) । ६. आलवन । अवलवन (को०) । ७ प्रारभ । शुरुआत (को०) । ८. समूह । भ ड (को०) । ९ पल नाम की एक तौल (को०) । १० अपने वर्ग या जाति का सर्वोत्तम पदार्थ (को०) । ११. सूर्य का घेरा या मडल (को०) ।

अग्र[2]--क्रि० वि० आगे । उ०--चली अग्र करि प्रिय सखि सोई । प्रीति पुरातन लखइ न कोई ।--तुलसी० (शब्द०) ।

अग्र[3]--वि० १ अगला । प्रथम । २ श्रेष्ठ । उत्तम । ३ प्रधान । मुख्य । ४ अधिक । ज्यादा । [को०] ।

अग्रकर--सज्ञा पुं० [स०] १ हाथ का अगला भाग । २ हाथ की उँगलियाँ । ३ सूर्य की प्रथम किरण । प्रकाश [को०] ।

अग्रकाय--सज्ञा पुं० [स०] शरीर का अगला भाग [को०] ।

अग्रग--सज्ञा पुं० [स०] अगुआ । नेता [को०] ।

अग्रगण्य--वि० [स०] जिसकी गिनती पहले हो । प्रधान । मुखिया । श्रेष्ठ । बडा ।

अग्रगामी[1]--सज्ञा पुं० [स० अग्रगामिन्] वह जो आगे चले । प्रधान व्यक्ति । अग्रसर । अगुआ । नेता ।

अग्रगामी[2]--वि० [स्त्री० अग्रगामिनी] आगे चलनेवाला । अगुआ । उ०--रहे सदा तुम तो अनुगामी, आज अग्रगामी न वनो ।--साकेत, पृ० ३९६ ।

अग्रगामी दल--सज्ञा पुं० [स०] [अँ० फारवर्ड ब्लाक] वह सस्था या सघटन जिसकी स्थापना सुभाषचद्र वसु ने काग्रेस से सबध-विच्छेद करने के बाद की ।

अग्रजघा--सज्ञा स्त्री० [स० अग्रजङ्घा] जाँघ का अगला भाग [को०] ।

अग्रज[1]--सज्ञा पुं० [स०] १ जो भाई पहले जन्मा हो । बडा भाई । ज्येष्ठ भ्राता । अनुज का उलटा । उ०--अग्रज परतिग्या करी तुव उरु तोडन हेत ।--भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ११४ । २ (पु) नायक । नेता । अगुआ । उ०--सेना अग्रज हत्यो पच भट अक्ष कुमारहि घाता ।--रामस्वयवर (शब्द०) । ३ ब्राह्मण ।

अग्रज[2](पु)--वि० १ श्रेष्ठ । उत्तम । उ०--बैठे विशुद्ध गृह अग्रज अग्र जाई । देखी वसत ऋतु सुदर मोददाई ।--केशव (शब्द०) । २ आगे पैदा होनेवाला । उ०--रोवत तै बरजे सबै मोहन अग्रज भाइ ।--सूर०, १०।५८९ ।

अग्रजन्मा--सज्ञा पुं० [स०] १ बडा भाई । २ ब्राह्मण । ३ ब्रह्मा ।

अग्रजा--सज्ञा स्त्री० [स०] बडी बहन । उ०--प्रभु कहाँ, कहाँ किंतु अग्रजा, कि जिनके लिये था मुझे तजा ।--साकेत, पृ० ३१२ ।

अग्रजात--सज्ञा पुं० [स०] १ ब्राह्मण । २ बडा भाई (को०) ।

अग्रजातक--सज्ञा पुं० [स०] ब्राह्मण [को०] ।

अग्रजाति--सज्ञा पुं० [सं०] अग्रजातक । ब्राह्मण [को०] ।

अग्रजिह्वा--सज्ञा स्त्री० [स०] जीभ का अगला भाग [को०] ।

अग्रणी[1]--वि० [स०] अगुआ । श्रेष्ठ । प्रधान । मुखिया ।

अग्रणी[2]--सज्ञा पुं० १ प्रधान पुरुष । मुखिया । अगुआ । २. वह्नि । अग्नि [को०] ।

अग्रत--क्रि० वि० [स०] आगे से । पहले से ।

अग्रदानी--सज्ञा पुं० [स०] वह पतित ब्राह्मण जो प्रेत या मृतक के निमित्त दिए हुए तिल आदि के दान को ग्रहण करे ।

अग्रदूत--सज्ञा पुं० [स०] वह दूत जो किसी के आने की सूचना आनेवाले व्यक्ति के पूर्व ही पहुँचकर दे । उ०--मै ही वसत का अग्रदूत ।--अपरा, पृ० २६ ।

अग्रनख--सज्ञा पुं० [स०] नख का अगला भाग [को०] ।

अग्रनिरूपण--सज्ञा पुं० [स०] भविष्य या भावी का कथन [को०] ।

अग्रनी(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अग्रणी' । उ०--बीटन को नायक सहायक वरूथिनी को अनुज विराग वर अग्रनी बनायो है ।--दीन० ग्र०, पृ० १३४ ।

अग्रपर्णी--सज्ञा स्त्री० [स०] अजलोमा । केवाँच [को०] ।

अग्रपा--वि० [स०] सबसे प्रथम पानेवाला [को०] ।

अग्रपाद--सज्ञा पुं० [स०] पैर का अगला हिस्सा । अँगूठा [को०] ।

अग्रपूजा--सज्ञा स्त्री० [स०] १ सबसे पहले पूजन । सर्वप्रथम अर्चना । २. सबसे अधिक पूज्यता या मान्यता [को०] ।

अग्रबीज[1]--सज्ञा पुं० [स०] १ वह वृक्ष जिसकी डाल काटकर लगाने से लग जाय । पेड जिसकी कलम लगे । २. कलम ।

अग्रबीज[2]--वि० कलम से होनेवाला [को०] ।

अग्रभाग--सज्ञा पुं० [स०] १ आगे का भाग । अगला हिस्सा । २. सिरा । नोक । छोर । ३ श्राद्ध आदि मे पहले दिया जानेवाला द्रव्य [को०] । ४. शेष अश या भाग [को०] ।

अग्रभागी—वि० [सं०] सर्वप्रथम हिस्सा या भाग पानेवाला [को०]।

अग्रभुक्—वि० [सं०] १ देवपितर को अर्पण किए विना पहले स्वयम् खानेवाला। २ पेटू। औदरिक। ३. सबसे पहले भोजन करनेवाला [को०]।

अग्रभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अग्रभूमि' [को०]।

अग्रभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घर की छत। पाटन। २ लक्ष्य या प्राप्य स्थान [को०]।

अग्रमहिषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रधान रानी। पटरानी [को०]।

अग्रमास—संज्ञा पुं० [सं०] १ उदर के भीतर मांसवृद्धि का एक रोग। २. हृदय [को०]।

अग्रमुख—संज्ञा पुं० [सं०] मुख का अग्रभाग। मुखाग्र [को०]।

अग्रयान¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेना का आगे बढना। सेना का पहला धावा। २. आगे बढती हुई सेना। धावा करती हुई फौज।

अग्रयान²—वि० अग्रगामी। अगुआ [को०]।

अग्रयायी—संज्ञा पुं० [सं० अग्रयायिन्] १. अगुआ। अग्रसर। २ प्रधान। श्रेष्ठ [को०]।

अग्रयोधी—संज्ञा पुं० [सं०] १. आगे बढकर युद्ध करनेवाला वीर। २ प्रधान योद्धा। प्रमुख वीर [को०]।

अग्रलेख—संज्ञा पुं० [सं० अग्र+लेख] दैनिक और साप्ताहिक समाचार पत्रों में सर्पादकीय स्तंभ के अंतर्गत संपादक द्वारा लिखित प्रमुख लेख। उ०—'जीवन चरित्र लिख अग्रलेख अथवा छापते विशाल चित्र' ।—अपरा, पृ० ६३।

विशेष—यह शब्द अंग्रेजी के 'लीडिंग आर्टिकल' का अनुवाद है।

अग्रलोहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिल्ली या वथुआ नामक शाक [को०]।

अग्रवक्त—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत में वर्णित चीरफाड का एक यंत्र।

अग्रवर(पु)—क्रि० वि० [सं० अग्र+पर, प्रा० वर] आगे। पहले। उ०—उमडि अग्रवर पैंयर दिन्हउ, जिय हठि प्रथम जुद्ध व्रत लिन्हउ।—हिम्मत०, पृ० ६५७।

अग्रवर्ती—वि० [सं० अग्रवर्तिन्] आगे रहनेवाला। अगुआ।

अग्रवात—संज्ञा पुं० [सं०] स्वच्छ एवं ताजा वायु [को०]।

अग्रवान्—वि० [सं०] सबसे आगे या श्रेष्ठ [को०]।

अग्रवाल—संज्ञा पुं० [हिं०] अगरवाला।

अग्रश—क्रि० वि० [सं०] आगे से ही। पहले से ही। शुरू से ही [को०]।

अग्रशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] निवास का अगला भाग। ओसारी [को०]।

अग्रशोची—संज्ञा पुं० [सं०] आगे से विचार करनेवाला। दूरदर्शी। दूरदेश, जैसे—'अग्रशोची सदा सुखी' (शब्द०)।

अग्रशोभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्कृष्ट सौंदर्य। अपूर्व शोभा [को०]।

अग्रसंख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रथम स्थान या श्रेणी [को०]।

अग्रसंधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमराज की एक पुस्तिका या पंजिका जिसमें प्राणिवर्ग का शुभाशुभ लिखा रहता है [को०]।

अग्रसंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रातःकाल। प्रभात। ऊषाकाल। २. सायंकाल का पूर्ववर्ती समय [को०]।

अग्रसर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ आगे जानेवाला व्यक्ति। अग्रगामी। अगुआ। २. आरंभ करनेवाला। पहले पहले करनेवाला व्यक्ति। ३ मुखिया। प्रधान व्यक्ति।

क्रि० प्र०—होना = आगे बढ़ना। उ०—हुए अग्रसर उसी मार्ग से छुटे तीर से फिर वे।—कामायनी, पृ० १०६।

अग्रसर²—वि० १ जो आगे जाय। अगुआ। २ जो आरंभ करे। ३ प्रधान। मुख्य। उ०—अग्रसर हो रही यहाँ फूट, बाधाएँ कृत्रिम रही टूट।—कामायनी, पृ० २३६।

अग्रसारण—संज्ञा पुं० [सं० अग्रसर] १. आगे बढ़ाना। किसी का आवेदनपत्र आदि आगेवाले अधिकारी के पास भेजने का कार्य।

अग्रसारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विना फल या पत्ते की टहनी। २. अनंत संख्याओं की गिनती करने का एक सरल तरीका [को०]।

अग्रसारित—वि० [सं० अग्रसर] आगे बढाया हुआ।

अग्रसूची—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूई का अगला भाग या हिस्सा। सूच्यग्र [को०]।

अग्रसोची—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० सोचना] आगे से विचार करनेवाली प्राणी। दूरदेश। दूरदर्शी। उ०—पहले कुछ आटे की कमी मालूम हुई किंतु अग्रसोची सदा सुखी।—किन्नर०, पृ० ७७।

अग्रस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] शीर्षस्थान। प्रथम स्थान या मूर्धन्य स्थान [को०]।

अग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. गार्हस्थ्य को न धारण करनेवाला पुरुष। २ वानप्रस्थ। ३ ज्ञानशून्य (को०)। ४ गृहशून्य या गृहहीन व्यक्ति (को०)।

अग्रहर—वि० [सं०] (वस्तु या पदार्थ) जो पहले दिया जाय। सर्वप्रथम दी जाने योग्य [को०]।

अग्रहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अग्रकर'। २ हाथी के सूँड का अगला सिरा या नोक [को०]।

अग्रहायण—संज्ञा पुं० [सं०] वर्ष का अगला या पहला महीना। अगहन। मार्गशीर्ष।

विशेष—प्राचीन वैदिक क्रम के अनुसार वर्ष का आरंभ अगहन से माना जाता था। यह प्रथा अब तक भी गुजरात आदि देशों में है। पर उत्तरीय भारत में वर्ष का आरंभ चैत्र मास से लेने के कारण यह नवाँ पडता है।

अग्रहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ राजा की ओर से ब्राह्मण को योगक्षेम के लिये किया हुआ भूमि का दान। २. वह गाँव या भूमि जो किसी ब्राह्मण को माफी दी जाय। ३ ब्राह्मण को देने के लिये कृषि की पैदावार से निकाला या अलग किया हुआ अन्न (को०)।

अग्रहारिक—संज्ञा पुं० [सं०] अग्रहार का निरीक्षक अधिकारी [को०]।

अग्रांश—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + अंश] १. आगे का भाग। २ चंद्रमा का वह भाग जो पृथ्वी पर से सदैव नहीं दिखाई पडता वरन् कभी कभी चंद्रमा की अनियमित गति या कंप से दिखाई पड जाता है।

विशेष—[illegible] है कि इसका प्राय एक नियत [illegible] पृथ्वी की ओर [illegible]। केवल कभी कभी [illegible] जाता है जिससे उसका कुछ और [illegible] दिखाई [illegible] है।

अग्रा[illegible]—[illegible] पुं० [सं०] [illegible] [को०]।

अग्रा[illegible]—[illegible] [को०]।

अग्रा[illegible]—[illegible] स्त्री० [सं०] दे० '[illegible]' [को०]।

[illegible]—संज्ञा स्त्री० [सं० [illegible]] गर्जना। उ०—अवर की [illegible]।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, [illegible]।

अग्रा[illegible]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्रानीक' [को०]।

अग्रान[illegible]—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] की स्थिति या भाव। हैरान। उ०—[illegible] सुनी सुना मैं इतना अग्रान हो गया कि [illegible] प्रतीत होने लगा।—प्रेमघन०, भा० २, [illegible]।

क्रि० प्र०—[illegible]।—होना।

अग्रानीक—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] आगे जानेवाला भाग [को०]।

अग्राम्य—वि० [सं०] १ जो गाँव का न हो। नगर का। शहरी। २ [illegible]। ३ जो पाला पोसा न हो। जंगली [को०]।

अग्राशन—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन का वह अंश जो देवता के लिये [illegible] दिया जाता है। यह अग्राशन पशुओं और [illegible] जाता है।

अग्रासन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रधान आसन। मुख्य स्थान। सबसे आगे [illegible] आसन।

अग्राह्य—वि० [सं०] १ न ग्रहण करने योग्य। अग्रहणीय। धारण [illegible] अयोग्य। २ न लेने लायक। ३ त्याज्य। छोड़ने लायक। ४ न मानने योग्य। अविचारणीय (को०)। ५. [illegible] अगोचर। परित्यजनीय (को०)।

अग्राह्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] [illegible] के कार्य में प्रयुक्त न होनेवाली [illegible] (को०)।

अग्रिम¹—वि० [सं०] १ अगाऊ। पेशगी। २. आगे आनेवाला। [illegible]। उ०—यही बात अग्रिम सूत्रों में सिद्ध करेंगे।—[illegible] (शब्द०)। ३ प्रधान। श्रेष्ठ। उत्तम। ४ सर्वश्रेष्ठ। [illegible] (को०)। ५ अगला। आगे का (को०)।

अग्रिम [illegible]—[illegible]।

अग्रि[illegible]—[illegible] स्त्री० [सं०] [illegible]। [illegible] [को०]।

अग्रिय¹—वि० [सं०] १ पहले उत्पन्न। पहले होनेवाला। २ श्रेष्ठ। [illegible]।

अग्रिय²—[illegible] १ [illegible]। २ [illegible]। ३ सर्वोत्तम [illegible]।

अग्री[illegible]—[illegible] [सं०] दे० '[illegible]' (को०)।

अग्रीय—[illegible] दे० '[illegible]' [को०]।

अग्रु—[illegible] [illegible] विवाह न हुआ [illegible]।

अग्रे—[illegible] [सं०] १. [illegible]। २ पहले से। आगे [illegible] [को०]।

अग्रेणी—संज्ञा पुं० [सं०] नेता। अगुआ। [को०]।

अग्रेदिधिषु¹—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी स्त्री से विवाह करनेवाला पुरुष जो पहले किसी और को व्याही रही हो।

अग्रेदिधिषु²—संज्ञा स्त्री० वह कन्या जिसका विवाह उसकी बड़ी बहिन के पहले हो जाय।

अग्रेसर—वि० [सं०] दे० 'अग्रसर' [को०]।

अग्रेसरिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ नेता। अगुआ। २. अपने मालिक के आगे आगे जानेवाला सेवक [को०]।

अग्रेसुर—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + ईश्वर] देवताओं में अग्रणी या प्रथम पूज्य गणेश। उ०— समरि तिण पाछे अग्रेसुर दया कृपा कर श्री लंबोदर।—राज०, पृ० ४।

अग्र्य¹—वि० [सं०] १ प्रधान। श्रेष्ठ। २ अगला। ३ कुशल [को०]।

अग्र्य²—संज्ञा पुं० १ बड़ा भाई। २ सबसे बड़ा भाई (को०)। ३ सब वेदों को अनन्यमना होकर एकरस पढ़ने में समर्थ ब्राह्मण, जो श्रद्धा के साधकों में गिना गया हो। ४ छत। पाटन (को०)।

अघनिका—वि० [सं० अघ] पापयुक्ता। पापिनी। उ०—प्रसिद्ध हौं अघनिका —भिखारी० ग्रं० भा० १, पृ० १८८।

अघ¹—वि० [सं०] १ पापात्मा। २ बुरा। बदमाश। ३ दोषी। दुष्कर्मी [को०]।

अघ²—संज्ञा पुं० १ पाप। पातक। अधर्म। उ०—सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी।—मानस १।२६।२ दोष। गुनाह दुष्कर्म। उ०—जेहिं अघ बधेउ व्याध जिमि बाली।—मानस, १।२६। ३ दुख विपत्ति। उ०—दरखि विस्व हरषित करत हरत ताप अघ प्यास —तुलसी ग्रं०, पृ० १३४। ४ व्यसन। ५ अशौच (को०)। ६ मथुरा के राजा कंस का सेनापति अघासुर जिसे कृष्ण ने मारा था।

अघओघ—संज्ञा पुं० [सं० अघौघ] पापसमूह। पापराशि। उ०— सिय निंदक अघओघ नसाए। लोक विसोक बनाइ बसाए। —मानस १।१६।

अघकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो प्रायश्चित्त के रूप में किया जाता है। अघमर्षण कृच्छ्र [को०]।

अघकृत्—वि० [सं०] पातकी। पाप करनेवाला [को०]।

अघघ्न¹—वि० [सं०] अघ या पाप का विनाशक [को०]।

अघघ्न²—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

अघट¹—वि० [सं० अ = नहीं + घट् = होना] १. जो कार्य में परिणत न हो सके। जो घटित न हो। न होने योग्य। उ०—अघट घटना सुघट, सुघट विघटन विकट, भूमि, पाताल, जल, गगन गंता।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६७। २ दुर्घट। कठिन। ३ जो ठीक न घटे। जो ठीक न उतरे। अनुपयुक्त। बेमेल। अयोग्य। उ०—भूषण पट पहिरे विपरीता। कोउ अंग अघट कोउ अंग रीता।—विश्रामसागर (शब्द०)।

अघट²—वि० [सं० अ = नहीं + घट् = हिंसा] १ जो न घटे। जो कम न हो। न चुकने योग्य। अक्षय। उ०—माटी मिलै न गगन बिलाई। अघट एकरस रहा न जाई।—दादू०, पृ० ५७३। २ जो समभाव रहे। एकरस स्थिर। उ०—(क) कबिरा यह

गति अटपटी, चटपट लखी न जाय। जो मन की खटपट मिटै, अघट भए ठहराय।—कबीर (शब्द०)। (ख) जहँ तहँ मुनिवर निज मर्यादा थापी अघट अपार।—सूर० (शब्द०)। ३ पूरा। पूर्ण। उ०—सूर स्याम सुजान सुकिया अघट उपमा दाव।—सा० लहरी, पृ० १।

अघटन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ+हिं० घटना] कम न होना। न घटना, कम न होने का भाव।

अघटित¹—वि० [सं०] १. जो घटित न हुआ हो। जो हुआ न हो। उ०—पाकर पुत्रों में प्रेम अटल अघटित सा।—साकेत, पृ० २२६। २ जिसके होने की संभावना न हो। न होने योग्य। असंभव। कठिन। उ०—हरि माया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहिं कहत कछु अघटित नाहीं।—तुलसी (शब्द०)। ३ (पु) अयोग्य। अनुचित। अनुपयुक्त। ना मुनासिब। उ०—रसना स्वाद सिथिल लपट ह्वै अघटित भोजन करतो।—सूर०, १।२०३।

अघटित²(पु)—वि० [सं० अा+घटित] अवश्य होनेवाला। अमिट। अनिवार्य। उ०—जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी।—तुलसी (शब्द०)।

अघटित³(पु)—वि० [हिं० अघट] न घटने योग्य। बहुत अधिक। उ०—अघटित सोभा यदपि तदपि मनि घटित विराजत। —गि० दा० (शब्द०)।

अघटितघटनापटीयसी—वि० [सं०] जो कभी न हुआ हो उसे भी करने में पटु या चतुर। माया का विशेषण [को०]।

अघट्ट(पु)—वि० [सं० अघटय] जो न घटे या न चुके। अक्षय। उ०—दीपक दीन्हा तेल भरि बाती दई अघट्ट। कबीर सा० स०, भा० १, पृ० ६।

अघड(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + घट, प्रा० घड, हिं० घड़] जो गढा न जा सके। निर्माण के अयोग्य। उ०—अघड घडावै उलटे चाकि।—प्राण०, पृ० १७०।

अघन—वि० [सं०] १ जो घना या ठोस न हो। तरल। २ जो अशिथिल और अविरल न हो [को०]।

अघनाशक—संज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'अघघ्न' [को०]।

अघनाशन¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अघ का नाश करे। विष्णु [को०]।

अघनाशन²—वि० पापों का नाश करनेवाला [को०]।

अघनासी(पु)—वि० स्त्री० [सं० अघ+नाशिन्] पाप का नाश करनेवाली। पापनाशिनी। उ०—वासी, अविनासी अघनासी ऐसी कासी है।—भारतेंदु ग्र० भा० १, पृ० २८२।

अघभोजी—वि० [सं० अघभोजिन्] १ देव पितर आदि के लिये न बनाकर अपने ही लिये बनाने और खानेवाला। २. पाप की कमाई खानेवाला [को०]।

अघमरषण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अघमर्षण] दे० 'अघमर्षण'। उ०—बाढ़ै पुन्य अघ अघमरषण आचरनि, मतिराम करत जगत जप नाम को।—मतिराम ग्र०, पृ० ४१२।

अघमर्षण¹—वि० [सं०] पापनाशक।

अघमर्षण²—संज्ञा पुं० १. ऋग्वेद का एक सूक्त जिसका उच्चारण संध्यावदन के समय द्विज पाप की निवृत्ति के लिये करते हैं। २. मंत्र द्वारा हाथ में जल लेकर नासिका से छुलाकर विसर्जन करने की पापनाशिनी क्रिया।

अघमर्षणकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कठिन व्रत जो प्रायश्चित्त रूप में किया जाता था।

विशेष—इसमें तीन दिन तक कुछ न खाने, त्रिकाल स्नान करने और पानी में डूबकर अघमर्षण मंत्र जपने का विधान है —(स्मृति)।

अघमार—वि० [सं०] पापों का नाश करनेवाला [को०]।

अघरूप—संज्ञा पुं० [सं० अघ+रूप] पापरूप। महापातकी। उ०—तदपि महीसुर स्राप बस भए सकल अघरूप।—मानस, १।१७६।

अघर्म—वि० [सं०] उष्णतारहित। शीतल [को०]।

अघर्मांशु—संज्ञा पुं० [सं०] हिमांशु। चंद्रमा [को०]।

अघल—वि० [सं०] पाप का नाश करनेवाला [को०]।

अघवान्—वि० [सं०] पापी। अघी।

अघवाना—क्रि० स० [हिं० अघाना का प्रे०] १ भरपेट खिलाना। भोजन से तृप्त करना। छकाना। २ संतुष्ट करना। मन भरना। उ०—कीनों घमसान समसान फर मंडल मैं घाइनु अघाइ अघवाए वीर वास मैं।—सुजान०, पृ० १३।

अघविष—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत तीव्र विषवाला साँप [को०]।

अघशंस—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुष्कर्म या पाप कहनेवाला व्यक्ति। २ दुष्कर्म की इच्छा करनेवाला व्यक्ति, जैसे चोर। ३. बुरा व्यक्ति [को०]।

अघशंसी—वि० [सं०] बुराई या पाप की वार्ता करनेवाला [को०]।

अघहर—वि० [सं० अघ+हर] पापों को हरण करनेवाला। पाप को नष्ट करनेवाला। उ०—सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अघहर सुखकंद।—भारतेंदु ग्र०, पृ० २५०।

अघहरन(पु)—वि० [सं०] अघहरण दे० 'अघहर'। उ०—अति प्रताप महिमा समाज जस, सोक, ताप, अघहरन।—नंद० ग्र०, पृ० ३२६।

अघहार—संज्ञा पुं० स० १ कुख्यात डाकू या लुटेरा। २. अपराध विषयक अपवाद या अफवाह [को०।

अघाँवरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अघाना] तृप्त होना। संतुष्ट होना। उ०—कवि ठाकुर नैन सों नैन लगे अब प्रेम सों क्यों न अघाँवरी री।—ठाकुर श०, पृ० १८।

अघा(पु)—संज्ञा पुं० हिं० दे० 'अघासुर'। उ०—बीते वर्ष कहत सब ग्वाला। आज अघा मार्यो नँदलाला।—ब्रज०, पृ० १३३।

अघा²—संज्ञा स्त्री० स० पाप की देवी। पाप की अधिष्ठात्री देवी को०।

अघाउ(पु)†—संज्ञा पुं० [प्रा० अग्घव = पूरा करना] संतुष्ट या तृप्त होने का भाव। संतोष। तृप्ति। उ०—भरत सभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०६।

अघाट—संज्ञा पुं० [देश०] वह भूमि जिसे बेचने या अलग करने का अधिकार उसके स्वामी को न हो। अगहाट।

अघात¹—संज्ञा पुं० [सं०] क्षति या घात का अभाव को०।

अघात² (पु)—संज्ञा पुं० [सं० आघात] चोट। मार। प्रहार। उ०—बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे।—मानस, ४।१४।

अघान¹—वि० [हिं० अघाना] पेट भर। खूब। ज्यादा। अधिक। बहुत। उ०—जब इन माँगी इन नहिं दीन्हीं बाढ़्यो बैर अघान।—सूर० (शब्द०)।

अघाती—वि० [सं०] घात या क्षति न करनेवाला [को०]।

अघाना¹—क्रि० अ० [सं० आघ्राण] १ भोजन या पान से तृप्त होना। पेट भर खाना या पीना। छकना। अफरना। उ०—पुरुष को भोजन स्वाद सदा मिलि पाइए। जुग जुग छुधा बुझाइ तो पाइ अघाइए।—कबीर (शब्द०)।

विशेष—सं० 'आ + घ्रा' का अर्थ अच्छी तरह सूँघना है। यहाँ 'सुगंधि सूँघकर तृप्त होना' लाक्षणिक अर्थ धीरे धीरे अथ-विस्तार की प्रक्रिया से 'अघाना' का अर्थ देने लगा।

२ संतुष्ट होना। तृप्त होना। मन का भरना। इच्छा का पूर्ण होना। उ०—नखशिख रुचिर बिंदु माधव छवि निरखहि नयन अघाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६१। ३ प्रसन्न होना। हर्ष से परिपूर्ण होना। उ०—ग्वाल दसौ ताड़का देखि ऋषि देत असीस अघाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६६। ४ (पु) थकना। ऊबना। उ०—प्रभु वचनामृत सुनि न अघाऊँ। मानस, ७।८८। ५. (पु) पूर्णता को पहुँचना। उ०—सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि।—मानस २।६३।

अघाना²—क्रि० स० संतुष्ट करना। तृप्त करना। उ०—परे भहराइ भहरात रिपु पाइ सौं करि वदन रुधिर भैरों अघाऊ।—सूर०, १।१२६।

अघायु—वि० सं० १ हिंसानिरत। २ दूसरे की अहितकामना करने वाला। पापमय जीवन व्यतीत करनेवाला। ३. सभी अवस्थाओं में पापकर्म करनेवाला [को०]।

अघारी¹—वि० [सं० अघारिन्] व्यसन या दुःख से युक्त [को०]।

अघारी²—संज्ञा पुं० [सं० अघ + अरि] १. पाप का शत्रु। पापनाशक। पाप दूर करनेवाला। उ०—तुम्हरेइ भजन प्रभाव अघारी।—मानस, ३।७। २ अघ नामक दैत्य को मारनेवाले श्रीकृष्ण या विष्णु।

अघारु (पु)—वि० [सं० अघालु] पापी। दुष्कर्मी। उ०—साखी कथ इलाह अघारु मतम दुनियाँ भार। गनीवदास शाह यों कहै दरगा पकरी यार।—कबीर म० पृ० १२७।

अघाव—संज्ञा पुं० [हिं० अघाना] अघाने की स्थिति या भाव।

अघावर¹—संज्ञा पुं० [हिं० अघा + वर (प्रत्य०)] १. अघाने या पूर्ण तृप्त होने की स्थिति या भाव। २. ऊब।

अघासुर—संज्ञा पुं० [सं०] कंस का सेनापति अघ नामक दैत्य जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।

अघी—वि० [सं०] पापी। पातकी। कुकर्मी। उ०—कूर, कुजाति, कपूत, अघी सबकी सुधरै जो करै नर पूजो।—तुलसी (शब्द०)।

अघोरन—संज्ञा पुं० [देश०] जौ का मोटा आटा।

अघोर¹—वि० [सं०] १ जो भयानक या भयंकर न हो (जैन०)। २. सौम्य। प्रियदर्शन। सुहावना।—उ०—'सब श्रीकृष्ण ने अघोर दर्शन दर्शाई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८३।

अघोर²—वि० [सं० घोर] १. घोर। कठिन। कठोर। उ०—जैसो राम चतुर घट अहहीं। सदा अघोर नाद जस अहहीं।—कबीर सा०, पृ० ३७। २ भयकर। भयानक। उ०—हवै दुर्गहि पर सोक न हरही। सो गुरु नर्क अघोरहि परही।—सं० दरिया, पृ० ७।

अघोर³—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का नाम या एक रूप। २. एक पंथ या सप्रदाय।

विशेष—उसके अनुयायी न केवल मद्य मास का व्यवहार अत्यधिक करते हैं, वरन् वे नरमास, मल मूत्र आदि तक से घिन नहीं करते। कीनाराम इस सप्रदाय के बड़े प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं।

३ अघोर पथ का उपासक। अघोरी। उ०—मति के कठोर मानि धरम को तोर करै, करम अघोर डरै परम अघोर को।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ३४।

अघोरघोररूप—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

अघोरनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] भूतनाथ। शिव।

अघोरपथ—संज्ञा पुं० [सं० अघोर + पथ] अघोरियो का पथ या सप्रदाय वि० दे० 'अघोरमार्ग'।

अघोरपथी—संज्ञा पुं० [सं० अघोरपथी] अघोर मत का अनुयायी। अघोरी। औघड़।

अघोरपथ—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का उपासक एक सप्रदाय [को०]।

अघोरप्रमाण—संज्ञा पुं० [सं०] भयकर परीक्षा या शपथ [को०]।

अघोरमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] अघोर मतावलबियो की साधना का ढग। अघोरियो का साधन मार्ग। उ०—सारूप्य मुक्ति सो तब पावै, अघोरमार्ग को जो कोई ध्यावै।—कबीर सा०, पृ० ६०५।

विशेष—अघोरमार्ग मे शिव की अघोरेश्वर रूप मे उपासना होती है। श्मशानसाधन, शवसाधन, मत्रसाधन, पचमकार सेवन, चितभस्म और रुद्राक्षधारण आदि इस मार्ग मे विहित है। तात्रिक वीराचारियो से इनके आचार विचार मिलते है।

अघोरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्र कृष्ण चतुर्दशी। भादो बदी चौदस।

विशेष—इस तिथि का शिवपूजन का विशेष महत्व है।

अघोरी¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अघोरिन्] १. अघोर मत का अनुयायी। अघोर पथ पर चलनेवाला साधक जो मद्य मास के सिवाय मल, मूत्र, शव आदि घिनौनी वस्तुओ को भी खा जाता है और अपना वेश भी भयकर और घिनौना बनाए रहता है। औघड़, कीनारामी। २ घिनौनी वस्तुओं का व्यवहार करने-वाला व्यक्ति। भक्ष्याभक्ष्य का विचार न करनेवाला। सर्वभक्षी। घृणित व्यक्ति।

अघोरी²—वि० जो घिनौनी वस्तुओं का व्यवहार करे। घृणित। घिनौना। उ०—क्यों धर्म आपहिं तुम हित चडाल अघोरी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ६२।

अघोष¹—वि० [सं०] १ शब्दरहित। नीरव। २ अल्पध्वनियुक्त। ३ ग्वाल या अहीरों से रहित।

अघोष²—संज्ञा पुं० १ व्याकरण मे एक वर्णसमूह का नाम।

विशेष—इसमें प्रत्येक वर्ग का पहला और दूसरा अक्षर तथा श, ष, स भी है, यथा—क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, श, ष, स।

२. तेरह की सख्या का सूचक शब्द क्योकि अघोष वर्ण १३ होते हैं [को०]।

अघोषित—वि० [सं०] बिना कहा या घोषणा किया हुआ।

अघोषितयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] दो राज्यों का वह सशस्त्र संघर्ष या युद्ध जिसमें कोई भी राज्य संघर्ष की पूर्वसूचना अथवा नियमित घोषणा नहीं करते ।

अघौघ—संज्ञा पुं० [सं०] पापों का समूह । पाप का ढेर । उ०— पावस समय कछु अवध बरनत सुनि अघौघ नसावहीं ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१६ ।

अघ्न्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मा । २ बलीवर्द । साँड [को०] ।

अघ्न्य²—वि० न हनने या मारने के योग्य ।

अघ्न्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौ । गाय [को०] ।

अघ्रान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आघ्राण] १. गंध लेने की क्रिया या भाव । सूँघने का कार्य । गंधग्रहण । २ गंध । महक । अरघान । उ०—नर अघ्रान तहाँ तिन्ह लागी । सत सुकृत बोले अनुरागी । —कबीर सा०, पृ० ६७ ।

अघ्रानना(पु)—क्रि० स० [सं० आघ्राण] आघ्राण करना । महँक लेना । सूँघना । उ०—असंख रवि जहाँ, कोटि दामिनि, पुहुप सेज्र अघ्रानियाँ ।—कबीर (शब्द०) ।

अघ्रेय¹—वि० [सं०] न सूँघने योग्य ।

अघ्रेय²—संज्ञा पुं० मद्य । शराब [को०] ।

अचंचल—वि० [सं० अचञ्चल] [स्त्री० अचंचला, संज्ञा अचंचलता] १ जो चंचल न हो । चंचलतारहित । स्थिर । ठहरा हुआ । उ०—भए विलोचन चारु अचंचल ।—तुलसी (शब्द०) । २ धीर । गंभीर ।

अचंचलता—संज्ञा स्त्री० [सं० अचञ्चलता] १ स्थिरता । ठहराव । २ धीरता । गंभीरता ।

अचंड—वि० [सं० अचण्ड] [स्त्री० अचंडी] जो चंड न हो । उग्रता रहित । शांत । सुशील । सौम्य ।

अचंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० अचण्डी] १ सीधी गाय । शांत गौ । २. अकोपना स्त्री [को०] ।

अचंती(पु)—वि० [सं० अचिन्तित, प्रा० अचिंतिय, अचिंतिइ] अतर्कित । आकस्मिक । उ०—का, प्री, रांगा, प्राँण करि, काँइ अचंती होंण ।—ढोला दू० ६२७ ।

अचंद्र—वि० [सं० अचन्द्र] चंद्रमा से रहित । बिना चाँद का [को०] ।

अचंभम(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचंभव' । उ०—हुअ धरा नरा नर हैमरा, उरध अचंभम अम्मरा ।—रा० रू०, पृ० २५ ।

अचंभव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अत्यद्‌भुत, प्रा० अच्चब्भुअ, अचंभव] अचंभा । आश्चर्य । विस्मय । तअज्जुब । उ०—अगम अगोचर समुझि परै नहिं भयो अचंभव भारी ।—कबीर (शब्द०) ।

अचंभा—संज्ञा पुं० [सं० अत्यद्‌भुत, प्रा० अच्चब्भुअ] १ आश्चर्य । अचरज । विस्मय । तअज्जुब । २ विस्मय उत्पन्न करनेवाली बात । उ०—एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढा सिंघ चरावै गाई । —कबीर ग्रं०, पृ० ६१ ।

अचंभित(पु)—वि० [हिं० अचंभा] आश्चर्यित । चकित । विस्मित ।

अचंभो—संज्ञा पुं० [सं० असंभव अथवा हिं० अचंभव] दे० 'अचंभा' । उ०—(क) देखत रहे अचंभो, योगी हस्ति न आंय । योगिहि कर अस जूझव भूमि न लागत पाय ।—जायसी (शब्द०) । (ख) अचंभो इन लोगनि को आवै । छाँडे स्वाद अमीरस फलको माया विष फल भावै ।—सूर (शब्द०) ।

अचंभौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचंभव' । उ०—नर्म धर्म मन वचन काय करि सिंधु अचंभौ करई ।—सूर०, ६।७८ ।

अच्—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत व्याकरण में स्वरों के लिये प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द जिसे प्रत्याहार भी कहते हैं [को०] ।

अचक¹—वि० [सं० चक्र, प्रा० चक्क = समूह, ढेर] भरपूर । पूर्ण । ज्यादा । जैसे—'जिनके घर अचक माया धरी है' ।— हिं०प्र० (शब्द०) ।

अचक²†—क्रि० वि० [सं० अ = नहीं चक् + भ्रांत होना] बिना भ्रांत हुए । बिना हिले डुले । उ०—घोड़ी लै चलु अचक बैठारि, सजन के खेत में ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६३५ ।

अचक³—संज्ञा पुं० [सं० √चक् = भ्रांत होना] घबराहट । भौंचक्कापन । विस्मय । उ०—नोम तन छाए, सुलतान दल आए, सो तो समर भजाए उन्हे छाई है अचक सी ।—सूदन (शब्द०) ।

अचकचाना—क्रि० अ० [हिं० अचक³ से नाम०] घबराना । विस्मित होना ।

अचकचाहट—वि० [हिं० अचक] घबराहट । भौचकापन । उ०— 'अपनी अचकचाहट का मुसकराहट से ढकने का प्रयत्न कर ही रहा था' ।—दहकते० पृ० २७ ।

अचकन—संज्ञा पुं० [अ० 'चिकन' का 'परिधान' से] एक प्रकार का लंबा अंगा ।

विशेष—इसमें पाँच कलियाँ और एक बालाबर होता है । जहाँ बालाबर मिलता है वहाँ दो बंद बाँधे जाते हैं । अब बंदों के स्थान पर बटन भी लगाने लगे हैं ।

अचकना पचकना—क्रि० वि० [हिं० अचक + अनु० पचक] हिचकिचाना । घबराना । उ०—अचक पचक यो धर धीरे पग सुधि भी लगी उतरने ।—मिट्टी०, पृ० ३५ ।

अचकाँ(पु)—क्रि० वि० [हिं० अचानक, अचक्का] अचानक । अचक्के में । एकाएक । सहसा । उ०—जानत हौ तुम हौ बल पूरे । पै अचकाँ आए नहिं सूरे ।—सूदन (शब्द०) ।

अचकित—वि० [सं०] जो चकित या विस्मित न हो [को०] ।

अचक्का—संज्ञा पुं० [सं० आ = भले प्रकार + चक् = भ्रांति] ऐसी दशा जिसमें चित्त दूसरी ओर हो । असावधानी की अवस्था । अनजान ।

यौ०—अचक्के में = अचानक । सहसा । एकाएक ।

अचक्र—वि० [सं०] १. बिना चक्के या पहिए का । चक्रहीन । २ स्थिर । अचल । निष्कंप [को०] ।

अचक्षु¹—वि० [सं०] १. बिना आँख का । नेत्ररहित । अंधा । २ अतींद्रिय । इंद्रियरहित ।

अचक्षु²—संज्ञा पुं० असौम्य नेत्र [को०] ।

अचक्षुदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] आँख को छोड़ अन्य आभ्यंतरिक इंद्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान ।

अचक्षुर्दर्शनावरण—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर्म जिससे अचक्षुदर्शन नामक ज्ञान न प्राप्त हो । अचक्षुदर्शन का निरोधकारक कर्म ।

अचक्षुदर्शनावरणीय—वि० [सं०] जैन शास्त्रकारों ने जीव के जो आठ मूल कर्म माने हैं उनमें से दर्शनावरणीय कर्म के नौ भेदों में से एक । अचक्षुर्दर्शन नामक ज्ञान का बाधक ।

अचक्षुविषय--वि॰ [सं॰] जो नेत्र का विषय न हो। दृष्टि से परे [को॰]।

अचक्षुष्क--वि॰ [सं॰] चक्षुविहीन। नेत्रहीन [को॰]।

अचख(पु)-- वि॰ [सं॰ अचक्षु, प्रा॰ अचक्खु] नेत्रहीन। दृष्टिरहित। उ॰--भय युत बालक प्रिय अचख सुनत अनाथ सदीव।--राम॰ धर्म॰ पृ॰ ५९।

अचगरा-- वि [सं॰ अत्यर्गल, प्रा॰ अच्चगल, देश॰] छेड़खानी करनेवाला। नटखट। शोख। चचल। उ॰--ऐसी नाहिं अचगरौ मेरौ कहा बनावति बात।--सूर॰, १०।२९०।

अचगरी--संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ अचगरा] ज्यादती। नटखटी। शरारत। छेड़छाड़। उ॰--(क) जौं लरिका कछु अचगरि करहीं।--मानस, १।२७७। (ख) माखन दधि मेरो सब खायो बहुत अचगरी कीन्हीं।--सूर॰ १०।२९७।

अचतुर--वि॰ [सं॰] १. जो चतुर न हो। २ अनाड़ी। अकुशल। ३. चार से रहित [को॰]।

अचना(पु)--क्रि॰ स॰ [सं॰ आचमन अथवा हिं॰ अचवना] १. आचमन करना। पीना। उ॰--(क) पैठि बिवर मिलि तापसिहि अचई पानि, फलु खाई --तुलसी ग्रं॰, पृ॰ ८०। २. छोड़ देना। खो बैठना। बाकी न रखना, जैसे--'तुम तो लाज शरम अचै गए (शब्द॰) उ॰--लाज कों अचै कै कुलधरम पचै कै बिथा बृंदनि सचै कै भई मगन गुपाल मैं।--भिखारी ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ६।

अचपल^१--वि॰ [सं॰] अचचल। धीर। गंभीर। उ॰--मेरे श्रमसिंचित देखोगे अचपल, पलकहीन नयनों से तुमको प्रतिपल हेरेंगे अज्ञात।--गीतिका।

अचपल^२†--वि॰ [सं॰ अ + चपल] [स्त्री॰ अचपली] चचल। शोख। उ॰--क्या काम उन्हें जो हँस बोले या शोखी मे अचपल निकले।--नजीर (शब्द॰)।

अचलपता--संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] अचचलता। स्थिरता। धीरता। गंभीरता।

अचपलाहट--संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] १ चपलता का अभाव। अचापल्य। २ † शोखपन। चुलबुलाहट।

अचपली^१†--संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ अचपल] अठखेली। किलोल। क्रीड़ा। उ॰--गुलाल अबीर से गुलजार हैं सभी गलियाँ। कोई किसी के साथ कर रहा है अचपलियाँ।--नजीर (शब्द॰)।

अचपली^२†--वि॰ स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'अचपल^२'। उ॰--जाकी छोटी नँनद बड़ी अचपली।--पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ ९२१।

अचभौन(पु)--संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'अचभा'। उ॰--कहा कहत तू नद ढुटौना। सखी सुनहु री बातें जैसी करत अतिहि अचभौना।--सूर (शब्द॰)।

अचमन(पु)--संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'आचमन'। उ॰--भोजन करि नँद अचमन लीन्हौ माँगत सूर जुठनिया।--सूर॰, १०।३४१।

अचर^१--वि॰ [सं॰] न चलनेवाला। स्थावर। जड़।

अचर^२--संज्ञा पुं॰ १. न चलनेवाला पदार्थ। जड़ पदार्थ। स्थावर द्रव्य। उ॰--जे सजीव जग चर अजर, नारि पुरुष अस नाम।--मानस १।८४। २ ज्योतिष के अनुसार वृष, सिंह वृश्चिक और कुभ राशियाँ जो स्थिर हैं (को॰)।

अचरचे^१--क्रि॰ वि॰ [सं॰ अ = नहीं + हिं॰ चरचना] बिना पूजा के। अपूजित। उ॰--ओरतो अचरचे पाइँ धरौ मां तो कहौ कौन के पेड़ भरि।--पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ २६०।

अचरज^१--संज्ञा पुं॰ [सं॰ आश्चर्य, प्रा॰ अच्चरिअ] आश्चर्य। अचभा। विस्मय। उ॰--अचरज कहा पार्थ जो बेधे तीनि लोक इक बान।--सूर॰, १।२६८।

अचरज^२--वि॰ आश्चर्ययुक्त अनोखा।
क्रि॰ प्र॰--करना। उ॰--बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम।--मानस १।११०।--मानना।--मे आना।--मे पड़ना।--होना। उ॰--वह अगाध यह क्यों कहै भारी अचरज होय।--कबीर (शब्द॰)।

अचरम--वि॰ [सं॰] जो चरम या अंतिम न हो [को॰]।

अचरा (पु)--वि॰ [सं॰ अचला] दे॰ 'अचला'। उ॰--अचरा न चरै धेन कटरा न पाई।--गोरख॰, पृ॰ १४८।

अचरा^२--संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'अँचरा'। उ॰--अचरा डारयौ बदन पै मधुर मधुर मुसिकाई।--नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ १९९।

अचरिज(पु)--संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'अचरज'। उ॰--मित्र कहत अचरिज मो हिए।--नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ ३०८।

अचरित^१(पु)--वि॰ [सं॰] १ जिसपर कोई चला न हो। २ जो खाया न गया हो। ३ अछूता। नया।

अचरित^२--संज्ञा पुं॰ कामकाज छोड़ अड़कर बैठना। धरना देना। गतिनिरोध।

अचर्ज(पु)†--संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'अचरज'। उ॰--वेनु केवल नई बँसुरी जो अनर्थ करै तो अचर्ज कहा है।--भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ८२१।

अचल^१--वि॰ [सं॰] १ जो न चले। स्थिर। जो न हिले। ठहरा हुआ। निश्चल। उ॰--जिहिं गोविंद अचल ध्रुव राख्यो, रवि-ससि किए प्रदच्छिनकारी।--सूर॰, १।३४। २. सब दिन रहनेवाला। चिरस्थायी। उ॰--लका अचल राज तुम्ह करहू।--मानस ६।२३।
यौ॰--अचल कीर्ति। अचल राज्य। अचल समाधि।
३ न डिगनेवाला। न बदलनेवाला। अटल। ध्रुव। दृढ़। पक्का। उ॰--(क) रघुपति पद परम प्रेम तुलसी चह अचल नेम।--तुलसी ग्रं॰ पृ॰ ४६२। (ख) 'उसकी यह अचल प्रतिज्ञा है' (शब्द॰)। ४, जो नष्ट न हो। मजबूत। पुख्ता। अटूट। अजेय। उ॰--(क) गरम भाजि गढवै भई तिय कुच अचल मवास।--बिहारी र॰, दो॰ ३४४। (ख) 'अब इसकी नीव अचल हो गई (शब्द॰)।

अचल^२--संज्ञा पुं॰ १ पर्वत। पहाड़। उ॰--जितना चहौं तरजनि अचल कटि कटि केहर वेस।--भिखारी॰ ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ६। २ शिव। स्थाणु (को॰)। ३ ब्रह्मा (को॰)। ४. आत्मा (को॰)। ५. शकु। खूँटी। कील (को॰)। ६, सात की संख्या का वाचक शब्द (को॰)।

अचलकन्यका--संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमवान् की पुत्री। पार्वती [को०]।

अचल कन्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अचलकन्यका' [को०]।

अचलकीला--संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी। धरित्री।

विशेष--पृथिवी का यह नाम प्राचीन विद्वानों के इस विचार पर आधारित है कि पृथिवी को स्थिर रखने के लिये उसमें जहाँ तहाँ पहाड कीलों के समान जडे हुए हैं।

अचलज--वि० [सं०] पर्वतोत्पन्न [को०]।

अचलजा--संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती [को०]।

अचलजात--वि० [सं०] दे० 'अचलज' [को०]।

अचलतनया--संज्ञा स्त्री० [सं०] उमा [को०]।

अचलत्विट्[1]--संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल [को०]।

अचलत्विट्[2]--वि० सदा समान शोभावाला। स्थिर कांतिवाला [को०]

अचलदुहिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती [को०]।

अचलद्विट्--संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों के शत्रु इंद्र [को०]।

अचलधृति--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ५ नगण और १ लघु इस प्रकार १६ लघु मात्राएँ रहती हैं, यथा--पट दस लखहिं अचलधृति मन गुनि'।--भिख रीं० ग्रं०, भा० १ पृ० १९८। उ०--लखि भव भयद छवि दुर वटु वहन। सुघनि वर लखि जिन वपु जिउ रहत (शब्द०)।

अचलन--संज्ञा स्त्री० [सं० अ = बुरा + हिं० चलन] कुचाल। बुरा आचरण। उ०--तिन्ह की नारि रमहिं पचीस सग अचलनि बहुत करहिं री।-- जग० बानी, पृ० ८२।

अचलपति--संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों का स्वामी हिमालय [को०]।

अचलराज--संज्ञा पुं० [सं०] दे० अचलपति' [को०]।

अचलव्यूह--संज्ञा पुं० [सं०] असंहत व्यूह का एक भेद जिसमें हाथी, घोडे और रथ एक दूसरे के आगे पीछे रखे जाते थे।

अचलसपत्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सपत्ति जो चल न हो। स्थिर सपत्ति। जिसे हटाया न जा सके वह सपत्ति। गैरमनकूला जायदाद, जैसे--मकान, खेत, वृक्षादि।

अचलसुता--संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती [को०]।

अचला[1]--वि० स्त्री० [सं०] जो न चले। स्थिर। ठहरी हुई।

अचला[2]--संज्ञा स्त्री० पृथिवी। धरती।

विशेष--प्राचीन लोग पृथिवी को स्थिर मानते थे। आर्यभट्ट ने पृथिवी को चल कहा पर उनकी बात को उस समय लोगों ने दबा दिया। अचला नाम का कारण आर्यभट्ट ने पृथिवी पर अचल अर्थात् पर्वतों का होना अथवा उसका अपनी कक्षा के बाहर न जाना बतलाया है।

अचलाधिप--संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों के राजा हिमालय [को०]।

अचलासप्तमी--संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ला सप्तमी। इस तिथि को स्नान दान आदि करते हैं।

अचवन(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० आचमन, अप० अचवन] [क्रि० अचवना] १ आचमन। पानी। पीने की क्रिया। उ०--अचवन करि पुनि जल अचवायो तब नृप बीरा लीन्हों।--सूर (शब्द०)। २ भोजन के पीछे हाथ मुँह धोकर कुल्ली करने की क्रिया।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अचवना(पु)†--क्रि० स० [सं० आचमन] १ आचमन करना। पान करना। पीना। उ०--सुनु रे तुलसीदास, प्यास पपीयहिं प्रेम की। परिहरि चारिउ मास जो अचवै जल स्वाति को।--तुलसी (शब्द०)। २ भोजन के पीछे हाथ मुँह धोकर कुल्ली करना। ३ छोड देना। खो बैठना। बाकी न रखना।

अचवाई(पु)--वि० [हिं० अचवना] धोई हुई। साफ। स्वच्छ। उ०--रूप सरूप सिंगार सवाई। अप्सर कैसी रहि अचवाई।--जायसी (शब्द०)।

अचवाना(पु)--क्रि० स० [हिं० अचवना का प्रेर०] १ आचमन कराना। पान कराना। पिलाना। २ भोजन पर से उठे हुए मनुष्य के हाथ पर मुंह हाथ धोने और कुल्ली कराने के लिये पानी डालना। भोजन करके उठे हुए मनुष्य का हाथ मुँह धुलाना और कुल्ली कराना। उ०--अचवन करि पुनि जल अचवायो तब नृप बीरा लीनो।--सूर (शब्द०)।

अचाक(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचानक'। उ०--जी अचाक मग भेंटती विहँसति करि बहुरंग।--श्यामा पृ० १६७।

अचाचक(पु)--क्रि० वि० [हिं० अचान + सं० √चक् = भ्रांति] बिना पूर्वसूचना के। अचानक। एकबारगी। सहसा। एकाएक। अकस्मात्। हठात्। उ०--कहीं गनीमत का मौका हाथ आया देख अचानक अपने यार वफादार को पाकर ।--प्रेमघन०, भा० २ पृ० ११४।

अचानचक(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचाचक'। उ०--परिहै वज्रागि ताके ऊपर अचानचक घरि उडि जाइ कहूँ ठौहर न पाइहै।--सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५००।

अचाक(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचाका'।

अचाका(पु)†--क्रि० वि० [सं० आ + चक् = भ्रांति] अचानक। अकस्मात्। सहसा। दैवात्। उ०--(क) दिनहिं राति अस परी अचाका। भा रवि अस्तु, चंद्र रथ हाँका।--जायसी (शब्द०)। (ख) कहै पद्माकर नहीं तो ये झकोरैं लगें औरे लौ अचाका बिन घोरे घुरि जायगी।--पद्माकर (शब्द०)।

अचाक्षुप--वि० [सं०] चक्षु के विषय से परे। अदृश्य [को०]।

अचाख(पु)--वि० [सं० अ = नहीं + हिं० चाखना] न चखा जा सकने-वाला। खाने के अयोग्य। उ०--तीखा तेज महा अचाख।--प्राण० पृ० ४०।

अचातुर्य--संज्ञा पुं० [सं०] चतुराई का अभाव। मूर्खपन। अनाडीपन [को०]।

अचान(पु)--क्रि० वि० [हिं० अचानक] अचानक। सहसा। अकस्मात्। उ०--देव अचान भई पहिचान चितौत ही स्याम सुजान के सौंहैं।--देव (शब्द०)।

अचानक--क्रि० वि० [सं० आ = अच्छी तरह + चक् = भ्रांत अथवा सं० अज्ञानात्] बिना पूर्वसूचना के। एकबारगी। सहसा। अकस्मात्। दैवात्। हठात्। औचट में। अनचित्ते में। उ०--(क)

... न जाने दिन राखी लगाए। तबहिं अवधि मैं कहत न समुझी गनत अचानक आग।—सूर०, १०।४२८८। (ख) नाचि अचानक ही उठे बिनु पावस बन मोर।—बिहारी र०, दो० ४३६।

अचानिक(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचानक'। उ०—आइ अचानिक न जु पाट लग्यो गनि अनपति।—पृ० रा० १।३८६।

अचापल१—वि० [सं०] चपलतारहित। अचंचल [को०]।

अचापल२—संज्ञा पुं० चपलता का अभाव। स्थिरता। अचपलता [को०]।

अचापल्य—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अचापल' [को०]।

अचार१—संज्ञा पुं० [फ़ा० आचार] मिर्च, राई, लहसुन आदि मसालों के साथ तेल, नमक, सिरका या अर्क नीबू में कुछ दिन रख कर खट्टा किया हुआ फल या तरकारी। कचूमर। अथाना।

अचार२(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आचार] आचरण। आचार। उ०—दंभ सहित कलि धरम सब, छल समेत व्यवहार। स्वारथ सहित सनेह सब रुचि अनुहरत अचार।—तुलसी ग्रं०, पृ० १५०।

अचार३—संज्ञा पुं० [सं० चार] चिरौंजी का पेड़। पियाल द्रुम।

अचारज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आचार्य प्रा० आचारज] दे० 'आचार्य'। उ०—ईश्वरपुरी प्रकाश भट्ट रघुनाथ अचारज। त्रिपुर गण श्री जीव प्रबोधानंद सु आरज।—भारतेन्दु ग्रं० भा० २, पृ० ३३०।

अचार बिचार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आचार विचार'। उ०—जे मद मार बिकार भरे ते अचार बिचार समीप न जाहीं।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२०।

अचारी१(पु)—वि० [सं० आचारी] अचार करनेवाला।

अचारी२(पु)—संज्ञा पुं० आचार विचार से रहनेवाला आदमी। वह व्यक्ति जो अपना नित्यकर्म विधि और शुद्धतापूर्वक करता है।

अचारी३(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आचार्य] १ यज्ञ के समय कर्मोपदेशक। वेदज्ञ। उ०—पाखंड जग सुफल ना होई कोटिन जुरे अचारी।—धरनी०, पृ० ५। २ रामानुज संप्रदाय का वैष्णव जिसका खान पान में विशेष विधानों का संपादन करना है।

अचारी४—संज्ञा स्त्री० [हिं० अचार का अल्पा०] छिले हुए कच्चे आम की फाँक जो नमक और मसाला के साथ धूप में सिझाकर तैयार की जाती है। यह सोंठ की भी बनाई जाती है।

अचारु—वि० [सं०] कुरूप। असोभन [को०]।

अचालू१—संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + चालन] अनचालू जहाज। कम चलनेवाला भारी जहाज।

अचालू२—वि० अचलायमान। चलनरहित।

अचाह१(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + प्रा० चाह] अनिच्छा। अरुचि। अप्रीति। उ०—नहिं अचाह नहिं चाहना चरनन चाहो ...—...०, भा० १, पृ० ६८।

अचाह२—वि० जिसे किसी बात की अभिलाषा न हो। बिना चाह का। इच्छारहित। निस्पृह।

अचाहा१(पु)—वि० [हिं०] [स्त्री० अचाही] १. चाहा हुआ। अवांछित। अनभिलषित। २. जिसपर रुचि या प्रीति न हो। जो प्रेमपात्र न हो।

अचाहा२—संज्ञा पुं० १ वह व्यक्ति जिसकी चाह न हो। वह व्यक्ति जो प्रेमपात्र न हो। २ न चाहने या प्रीति न करनेवाला व्यक्ति। निर्मोही। उ०—रावलि कहाँ हो किन, कहत हो काते अरी रोष तज, रोष कै कियो मैं का अचाहे को।—पद्माकर (शब्द०)।

अचाही१(पु)—वि० [हिं० अचाह] किसी बात की चाह न रखनेवाला। निरीह। निस्पृह। निष्काम।

अचाही२—संज्ञा स्त्री० न चाही गई या अवांछित बात। उ०—कवि ठाकुर लाल अचाहि करी तिहि तैं सहिए जसही नहियाँ।—ठाकुर०, पृ० २५।

अचित—वि० [सं० अचिन्त] चितारहित। निश्चित। बेफिक्र। उ०—चिंता न करु अचित रहु, देनहार समरथ।—कबीर (शब्द०)।

अचितनशील—वि० [सं० अचिन्तन+शील] चितारहित। विचारशक्तिहीन। उ०—वह भी अन्य प्राणियों की भाँति जड़ या अचिंतनशील ही रह जाता।—शैली, पृ० ५।

अचितनीय—वि० [सं० अचिन्तनीय] १ जिसका चिंतन न हो सके। जो ध्यान में न आ सके। अज्ञेय। दुर्बोध। २. आकस्मिक। अतर्किक (को०)।

अचिंता—संज्ञा स्त्री० [सं० अचिन्ता] चिंता का अभाव। लापरवाही [को०]।

अचिंतित—वि० [सं० अचिन्तित] १ जिसका चिंतन न किया गया हो। जिसका विचार न हुआ हो। बिना सोचा विचारा। २ अनभावित। आकस्मिक। ३ निश्चित। बेफिक्र। ४ उपेक्षित (को०)।

अचित्य१—वि० [सं० अचिन्त्य] १ जिसका चिंतन न हो सके। जो ध्यान में न आ सके। बोधागम्य। अज्ञेय। कल्पनातीत। २ जिसका अंदाजा न हो सके। अकूत। अतुल। ३. आशा से अधिक। ४ बिना सोचा विचारा। आकस्मिक।

अचित्य२—संज्ञा पुं० १ एक अलंकार।

विशेष—इसमें अविलक्षण या साधारण कारण से विलक्षण कार्य की उत्पत्ति कही जाती है, जैसे—'कोकिल को वाचालता विरहिनि मौन अनंत। देनहार यह देखिए आयो समय बसंत (शब्द०)। इस दोहे में साधारण बसंत के आगमन रूप कारण से मौन और वाचालता रूप विलक्षण कार्यों की उत्पत्ति है।

२ वह जो चिंतन से परे हो। ईश्वर। उ०—छठौ कमल अचित्य की बामा।—कबीर सा०, पृ० ११। ३ शिव (को०)। ४. पारद। पारा (को०)।

अचित्यकर्म—संज्ञा पुं० [सं० अचिन्त्यकर्म] वह कर्म या कार्य जो चिंतन से परे हो [को०]।

अचित्यकर्मा—वि० [सं० अचिन्त्यकर्मा] अचित कार्य करनेवाला [को०]।

अचित्यरूप—वि० [सं० अचिन्त्यरूप] जिसका चिंतन या ध्यान न हो सके ऐसे रूप तथा आकारवाला [को०]।

अचित्यात्मा—संज्ञा पुं० [सं० अचिन्त्य+आत्मा] वह जिसका स्वरूप ठीक ठीक ध्यान में न आ सके। परमात्मा। ईश्वर।

अचिकित्स्य—वि० [सं०] चिकित्सा के अयोग्य। जिसकी दवा न हो सके। असाध्य।

अचिकीर्षु—वि० [सं०] न करने की इच्छावाला। काम न करने की इच्छावाला। कार्य में अनिच्छुक [को०]।

अचिज्ज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य] अचरज। अचंभा। उ०—सतपत्र पुत्त अचिज्ज सुद्दित्त न्रिय तप्प लग्ग हुरे वच्छ भ्रग्ग।—पृ० रा०, २।६१।

अचित्¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ जडप्रकृति। अचेतन। 'चित्' का उलटा। २. रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक। विशेष—यह भोग्य, दृश्य, अचेतन स्वरूप, जडात्मक और भोग्यत्व विकार से युक्त माना जाता है। इसके भोग्य, भोगोपकरण और भोगायतन ये तीन प्रकार माने गए हैं।

अचित्²—वि० अचेतन। चेतनारहित। जड [को०]।

अचित—वि० [सं०] १ गया हुआ। २. जो सोचा न गया हो। ३. जो एकत्र न किया गया हो [को०]।

अचितवन—वि० [सं० अ=नहीं + हिं० चितवन] चितवन रहित। निर्निमेष। अपलक।

अचित्त—वि० [सं०] १ विचार या ध्यान में न आने योग्य। २. बुद्धिरहित। अज्ञ। ३ अविचारित। जिसपर विचार न किया गया हो। ४ चेतनारहित। अचेत [को०]।

अचित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान का अभाव [को०]।

अचिन्न—वि० [सं०] १ जिसमें अलगाव या भेद न किया जा सके। २ जो चिह्न न हो। जो बहुरंगा न हो [को०]।

अचिर¹—क्रि० वि० [सं०] १ शीघ्र। जल्दी। २ थोडा ही समय पूर्व। कुछ काल पहले (को०)।

अचिर²—वि० १. थोडे समय का। क्षणस्थायी। २. हाल का। ताजा। ३ नया [को०]।

अचिरज(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचरज'। उ०—ऐ परि याकी नेम मुनहिं जो। लाडिलि अचिरज लाड रहै तो।—नंद० ग्रं०, पृ० १३३।

अचिरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अचिर का भाव। क्षणिकता।

अचिरद्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षणप्रभा। बिजली।

अचिरप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली।

अचिरप्रसूता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सद्य प्रसूता गौ। हाल की ब्याई गाय [को०]।

अचिरभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत् [को०]।

अचिरम्—क्रि० वि० [सं०] दे० 'अचिरात्' [को०]।

अचिरमृत—वि० [सं०] कुछ समय पूर्व मृत [को०]।

अचिररोचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौदामिनी। बिजली [को०]।

अचिरांशु—संज्ञा पुं० [सं०] विद्युत्। बिजली [को०]।

अचिरात्—क्रि० वि० [सं०] शीघ्र। जल्दी। तुरत। २ कुछ समय पूर्व। कुछ पहले (को०)।

अचिराभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षणप्रभा। बिजली [को०]।

अचिरेण—क्रि० वि० [सं०] दे० 'अचिरात्' [को०]।

अचीतिया(पु)†—वि० [सं० अचिंतित; प्रा० अचिंतिय] आकस्मिक। असंभावित। उ०—आवी खबर अचीतियाँ विसमे जैसी वत्त।—रा० रू०, पृ० ६२।

अचीता¹—वि० [सं० अचिंतित] [स्त्री० अचीती] १ बिना सोचा विचारा। असंभावित। आकस्मिक। जिसका पहले से अनुमान न हो। २ अचिंत्य। जिसका अंदाजा न हो। बहुत। अधिक। उ०—लिखी खबर जैसी इन बीती। परी मुलक पर धार अचीती।—लाल (शब्द०)।

अचीता²(पु)—वि० [सं० अचिन्त] निश्चिंत। बेफिक्र। उ०—सुनो मेरे मीता सुख सोइए अचीता कहो सीता सोधि लाउँ कहो सी मिलाऊँ राम को।—हृदयराम (शब्द०)।

अचीर—वि० [सं०] चीरविहीन। वस्त्ररहित [को०]।

अचुवाना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अचवाना'। उ०—पुनि जल शीतल अचुवावै। ता माहि सुगंध मिलावै।—सुंदर० ग्रं० भा० १, पृ० १३५।

अचूक¹—वि० [सं० अच्युत अथवा सं० अ = नहीं + प्रा० √चुक्क=चूकना] १. जो न चूके। जो खाली न जाय। जो ठीक बैठे। जो अवश्य फल दिखावे। जो अपना निर्दिष्ट कार्य अवश्य करे। उ०—वाँकी तेग कबीर की, अनी परै द्वै टूक। मारे बीर महाबली, ऐसी मूठि अचूक।—कबीर (शब्द०)। २. निर्भ्रांत। जिसमें भूल न हो। ठीक। भ्रमरहित। निश्चित पक्का। उ०—'वह समझता है कि जिस बात को सब लोग निर्भ्रांत कहते हैं वह अवश्य ही अचूक होगी।'—(शब्द०)।

अचूक²—क्रि० वि० १ सफाई से। पटुता से। कौशल से। उ०—मूँदे तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग सुदृग मिचावनी के ख्यालन हितै हितै। नैसुक नवाइ ग्रीवा धन्य धनि दूसरी को आँचका अचूक मुख चूमत चितै चितै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ९५। २ निश्चय। अवश्य। जरूर। उ०—जहाँ मुख मुक, राम राम ही की कूक जहाँ सर्वै सुखरूप तहाँ है अचूक जानकी —हृदयराम (शब्द०)।

अचेत¹—वि० [सं०] १ चेतनारहित। संज्ञाशून्य। बेसुध। बेहोश। मूर्च्छित। २ व्याकुल। विह्वल। विकल। उ०—भौं यह ऐसोई समौ, जहाँ सुखद दुखु देत। चैत चाँद की चाँदनी डारति किए अचेत।—बिहारी र०, दो० ५१६। ३ असावधान बेपरवाह। उ०—यह तन हरियर खेत, तरुनी हरिनी चर गई। अजहूँ चेत अचेत, यह अधचरा बचाइ ले।—सम्मन (शब्द०)। ४ अनजान। बेखबर। उ०—वृंदावन की वीथिन तकि तकि रहत गुमान समेत। इन बातन पति पावत मोहन जानत होहु अचेत।—सूर (शब्द०)। ५ नासमझ। मूढ। उ०—मैं पुनि निज गुरु मन सुनी, कथा सु सूकरखेत। समुझी नहिं तसु बालपन तब अति रहेउँ अचेत।—तुलसी (शब्द०)। (पु) ६ जड। उ०—(क) असम अचेत पखान प्रगट लै बनचर जल महँ डारत।—सूर (शब्द०)। (ख) कामातुर होत हैं सदा ही मतिहीन तिन्हैं चेत औ अचेत माँहि भेद कहाँ पावैगो।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

अचेत²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अचित्] १. जड प्रकृति। जडत्व। २ माया। अज्ञान। उ०—कह लौं कहौं अचेतै गयऊ। चेत अचेत झगर थक भयऊ।—कबीर (शब्द०)।

अचेतन¹—वि०[सं०] १ चेतनारहित। जिसमें चेतना का अभाव हो। जिसमें सुख दुःख आदि किसी प्रकार के अनुभव की शक्ति न हो। जड़। 'चेतन' का उलटा। उ०—नव में एक अचेतन [illegible] जिसमें [illegible] शरीर।—[illegible], पृ० ११। २ अज्ञान (दे०)। ३. जीवरहित। निर्जीव (को०)। ४ [illegible]। मूर्छित। जैसे—'वह अचेतन अवस्था में पाया गया।' (शब्द०)।

अचेतन²—संज्ञा पुं० अचैतन्य पदार्थ। जड़ द्रव्य।

अचेतना—वि० [सं० अचेतस्] १ चेतनाविहीन। अचेत। २ चित्त-रहित। चित्तविहीन। ३ जीवरहित। निर्जीव [को०]।

अचेतान—वि० [सं०] १ ज्ञानविहीन। न जाननेवाला। २. मूर्ख। [illegible] [को०]।

अचेती—संज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + हिं० चेत + ई (प्रत्य०)] असावधानी। बेखबरी। गफलत।

अचेलक—संज्ञा पुं० [सं० अचेलक] वस्त्र न रखनेवाला या स्वल्प और वस्त्र रखनेवाले भिक्षु। भिक्षुओं का एक भेद। उ०—भिक्षुओं [illegible] कुछ अचेलक, आजीविक, निगंठ आदि भिक्षु हैं।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २३१।

अचेलपरीसह—संज्ञा पुं० [सं० अचेलपरिसह] आगम में कहे हुए [illegible] धारण करने और उनके फटे और पुराने होने पर भी चित्त में ग्लानि न लाने का नियम।

अचेष्ट—वि० [सं०] १ चेष्टारहित। २ बिना प्रयास का। ३. गति-रहित [को०]।

अचेष्टित—वि० [सं०] प्रयत्न या चेष्टारहित। २ बिना प्रयास का [को०]।

अचैतन्य¹—वि० [सं०] चेतनारहित। आत्माविहीन। जड।

अचैतन्य²—संज्ञा पुं० १. निश्चेतनता। चेतना का अभाव। २ अज्ञान। ३. चेतनाविहीन द्रव्य या वस्तु। जड़ पदार्थ (को०)। ४ होश हवास न रहना। बेहोशी (को०)।

अचैन—संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + देश० चैन] बेचैनी। व्याकुलता। विकलता। दुःख। कष्ट। उ०—खिचैं मान अपराध हूँ चलिये, बढ़ैं [illegible]। जुरत दीठि तजि रिस खिसी, हँसे दुहुन के नैन।—बिहारी र०, दो० ६५६।

अचैन—वि० [हिं० अ = नहीं + चैन = आराम] [स्त्री० अचैनी] बेचैन। व्याकुल। विकल। उ०—सौंके चितै चितवै चहुँ ओर [illegible] चपल चित अचैनी।—देव (शब्द०)।

अचैना—संज्ञा पुं० [सं० छिन्न - फटा हुआ] १ लकड़ी का मोटा कुंदा जो जमीन में गड़ा रहता है और जिसपर रखकर गँड़ासे से चारा काटा जाता है। [illegible]। निहठा। ठीहा। हँसुआ। २ [illegible] का कुंदा जिसपर रखकर बढ़ई दूसरी लकड़ी को गढ़ते छीलते या चीरते हैं। निसुआ। ठीहा।

अचौना — संज्ञा पुं० [सं० आचमनक प्रा० *आचवँनअ < अचवनअ < अचौना] आचमन करने का पात्र। पीने का बरतन। [illegible]। उ०—[illegible] दारे, [illegible] न लगत पल, [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] ज्ञान [illegible]।—देव (शब्द०)।

अचौकी—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० चौंकना = चकित होना] अच-किन। स्थिर। उ०—रहत अचौकी चित्त नित ही ध्यान सु रावरो।—ब्रज० ग्र०, पृ० ३८।

अचौन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचवन¹'। उ०—चातक उमाहै घन आनँद अचौन को।—घनानंद, पृ० १५८।

अचौनि—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचवन'।

अच्चड़†—वि० [सं० आश्चर्य; प्रा० अच्चर] अचभा। अचरज। उ०—भाए तर्णा हरनाथ महाभड आगा पख उवारण अच्चड।—रा० रू०, पृ० १३४।

अच्छद—वि० [सं० अच्छन्दस्] १ वेदाध्ययन न करनेवाला। २ वेदाध्ययन के अधिकार से विहीन। ३ छंद या पद्य से रहित। छंदविहीन। ४ छलविहीन छद्मरहित [को०]।

अच्छ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्फटिक। २ भालू। ३ स्वच्छ जल (डिं०)। ४ आभिमुख्य। समुख होना (को०)। ५ एक प्रकार का पौधा (को०)।

अच्छ²— वि० स्वच्छ। निर्मल। पवित्र। अच्छा। उ०—(क) उदधि नाकपति शत्रु को, उदित जानि बलवंत। अंतरिक्ष ही लखि पर अच्छ छुयों हनुमत।—केशव (शब्द०) (ख) मानहु विधि तन अच्छ छबि स्वच्छ राखिबे काज। दृग-पग-पोंछन कौं करे भूषन पायदाज।—बिहारी र० दो० ४।३।

अच्छ³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष प्रा० अच्छ] १ आँख। नेत्र उ०—(क) कहै पदमाकर न अच्छन प्रतच्छ होत अच्छन त आगे हू अविच्छ गाइयतु है।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) जो तव अच्छ समच्छ सकत कर पकरि कृपानी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १०१। २ रुद्राक्ष उ०—मौंजी औ उपवीत अच्छ कठा कल धारें।—रत्नाकर, भा० १ पृ० १०१। ३ अक्षकुमार नामक रावण का बेटा। उ०— रखवार हति विपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहि मारा।—तुलसी (शब्द०)।

अच्छत¹†—संज्ञा पुं० [सं० अक्षत, प्रा० अच्छत] बिना टूटा हुआ चावल जो मगल द्रव्यों में गिना जाता है और देवताओं को चढ़ाया जाता है। उ०—अच्छत अकुर रोचन लाजा। मजुल मगल तुलसि बिराजा।—मानस १।१४।

अच्छत²—वि अखडित। लगातार। उ०—राघौ हेरत जो गयो, अच्छत हिंये समाधि वह तन राघव घाघ भा, सकै न कै अपराध। —जायसी (शब्द०)।

अच्छत³(पु)—क्रि० वि० [हिं० अछत] रहते हुए उपस्थिति में। विद्यमानता में। उ०—जुद्धौ कौ करत छाजत नहीं है तुम्हैं सुनि महाराज अच्छत हमारे।—सूर०, १०।४१६४।

अच्छभल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] भालू। भल्लूक [को०]।

अच्छम(पु)—वि० [सं० अक्षम] असमर्थ। अशक्त। लाचार। उ०—सब हि समरथहि सुखद प्रिय अच्छम प्रिय हितकारि।—तुलसी ग्र०, पृ० ६२।

अच्छय(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अक्षय'। उ०—पै रच्छक रत दच्छ देखि अच्छय बर मानी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १६४।

अच्छयतृतिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अक्षय तृतीया'। उ०—अच्छय तृतिया, अच्छय सुखनिधि पिय कौ प्यारी चढ़ावै चदन।—नंद० ग्र०, पृ० ३७१।

अच्छर¹(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अक्षर, पा० अक्खर, प्रा० अच्छर] अक्षर। वर्ण। हरफ। उ०--द्वादस अच्छर महामंत्र के अविकल जापी।-- रत्नाकर, भा० १, पृ० २१६।

अच्छर²(पु)--वि० दे० 'अक्षर¹'। उ०--अच्छर ब्रह्म सुन्न द्वारा।--कबीर श०, पृ० ५८।

अच्छर³(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सर] अप्सरा। उ० --करा सहस सिंगार सवाई। अच्छर जैसी रहि अछवाई।--जायसी (शब्द०)।

अच्छरा(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरस्, पा० प्रा० अच्छरा] अप्सरा। उ०--तोरि कै छरा सो अच्छरा सी यों निचारि कहै 'तुमने कहे ते कन मुकता में पानी है'।--भूषण ग्रं०, पृ० ३२४।

अच्छरि(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अच्छरी'। उ०--घन अच्छरि अच्छ कुलच्छ करै।--पृ० रा०, २४।१६४।

अच्छरी(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरस्, पा० प्रा० अच्छरा] अप्सरा। स्वर्ग की वारवनिता। उ०--वनि नाचती सुर अच्छरी जिन भाव मोह। सिद्ध हैं।--गुमान (शब्द०)।

अच्छा¹--वि० [सं० अच्छक, प्रा० अच्छअ = स्वच्छ, निर्मल] १ उत्तम। भला। बढ़िया। उमदा। खरा। चोखा।

मुहा०--अच्छा आना = (१) ठीक या उपयुक्त अवसर पर आना। जैसे--तुम अच्छे आए, अब सब ठीक हो जायगा (शब्द०)। (२) ठीक उतरना। सुंदर बनना, जैसे--इस कागज पर चित्र अच्छा नहीं आता (शब्द०)। अच्छा करना = अच्छा काम करना। जैसे,--तुमने अच्छा नहीं किया जो चले आए (शब्द०)। अच्छा कहना = प्रशंसा करना, जैसे--कोई तुम्हें अच्छा नहीं कहता (शब्द०)। अच्छा घर = संपन्न घर। प्रतिष्ठित कुल। अच्छा दिन = सुख संपत्ति का दिन जैसे--उसने अच्छे दिन देखे हैं (शब्द०)। अच्छी काटना, गुजरना या बीतना = अच्छी तरह बीतना। आनंद से दिन कटना, जैसे--यहाँ से वहाँ अच्छी बीतेगी (शब्द०)। अच्छा रहना = अच्छी दशा में रहना। लाभ वा आराम में रहना, जैसे--तुम से तो हमी अच्छे रहे जो कहीं नहीं गए (शब्द०)। अच्छा लगना = (१) भला जान पड़ना। सजना। सोहना, जैसे--तुम्हारे सिर पर यह टोपी नहीं अच्छी लगती (शब्द०) (२) रुचिकर होना। पसंद आना, जैसे--हमें यह फल नहीं अच्छा लगता। हम तुम्हारी यह चाल नहीं अच्छी लगती (शब्द०)। अच्छे वक्त = ठीक समय से। आवश्यकता के समय। जरूरत के वक्त। अच्छे से पाला पड़ना = बेढंगे व्यक्ति से काम पड़ना। अच्छे हालों गुजरना = साधारणतः सुख से दिन बीतना।

विशेष--इस शब्द का प्रयोग व्यंग्य रूप से बहुत होता है। जैसे--'आप भी अच्छे कहनेवाले आए वा मिले'। जब कोई बात किसी को नहीं जँचती तब वह उसके कहने वा करनेवाले के प्रति प्राय कहता है कि 'अच्छे आए' वा 'अच्छे मिले'।

२ स्वस्थ। चंगा। तदुरुस्त। नीरोग। आरोग्य, जैसे--'तुम किसकी दवा से अच्छे हुए' (शब्द०)?

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अच्छा²--संज्ञा पुं० १ बड़ा आदमी श्रेष्ठ पुरुष। जैसे--मैंने अच्छे अच्छों को निकाले जाते देखा है, तुम क्या हो (शब्द०)। २ गुरुजन। बापदादा। बड़ा बूढ़ा, जैसे--दोगे क्यों नहीं? मैं तो तुम्हारे अच्छे अच्छों से लूँगा (शब्द०)।

अच्छा³--क्रि० वि० अच्छी तरह। खूब। बहुत। जैसे--तुमने यहाँ बुलाकर हम अच्छा तंग किया (शब्द०)।

अच्छा --अव्य० १ प्रार्थना या आदेश के उत्तर में (प्रश्न के नहीं) स्वीकृतिसूचक शब्द। जैसे--'(आदेश)--तुम कल आना (उत्तर)--अच्छा' (शब्द०)। उ०--फिर बोले--अच्छा याही कै कर बेचन तन।--रत्नाकर, भा० १, पृ० ७३। २. इच्छा के विरुद्ध कोई बात हो जाने पर अथवा उस होनी हुई या होनेवाली सुन या देखकर भी यह शब्द कहा जाता है। खैर। जैसे--(क) अच्छा जो हुआ सो हुआ अब आगे से सावधान रहना चाहिए। (ख) अच्छा हम देख लेंगे (शब्द०)।

अच्छाई--संज्ञा स्त्री० [हिं० अच्छा + ई (प्रत्य०)] अच्छापन। उत्तमता। श्रेष्ठता। सुंदरता। सुघराई।

अच्छाखासा-- वि० [हिं० अच्छा + खासा] पूर्णतः स्वस्थ। तंदुरुस्त। काफी अच्छा। पूरा। बढ़ा चढ़ा।

अच्छापन--संज्ञा पुं० [हिं० अच्छा + पन] (प्रत्य०)] अच्छे होने का भाव। उत्तमता। सुघराई।

अच्छाबुरा--वि० [हिं०] सुंदर या खराब। भला बुरा।

अच्छावाक--संज्ञा पुं० [सं० अच्छावाक्] १ आह्वान करनेवाला। यज्ञ करानेवाले होता, अध्वर्यु आदि सोलह ऋत्विजों में से एक। २ दे० 'ऋत्विज'।

अच्छाविच्छा--वि० [हिं० अच्छा + बीछना = चुनना] १ दुरुस्त। खासा। चुना हुआ। २ भला चंगा। नीरोग।

अच्छि(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अच्छि] नेत्र। आँख। उ०--जयविराज की अच्छि पिय इक भई सारे खत।--पृ० रा०, ६३।१४६।

अच्छित(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अच्छत'। उ०--कंचन थार में कुंकुम अच्छित तिलकु करति नंदलाल के।--छीत०, पृ० ३०।

अच्छिद्र¹--[सं०] १. छिद्ररहित। रंध्रविहीन। २ अखंडित। अक्षत। ३ फूट प्रभाद आदि से रहित। ४ सच्चा। ५. त्रुटिरहित [को०]।

अच्छिद्र²--संज्ञा पुं० १ अक्षुण्ण स्थिति या अवस्था। २ दोषरहित कार्य [को०]।

अच्छिन्न--वि० [सं०] १ छिद्ररहित। २ जो कटा न हो। अखंडित। साबित। ३ जो टूटा या विभक्त न हो। अविभक्त (को०)। ४ लगातार गतिशील (को०)।

अच्छिन्नपत्र--संज्ञा पुं० [सं०] १ सघपटक वृक्ष जिसमें पत्तियाँ बराबर रहती हैं। २. बिना कटे टूटे पंखवाला पक्षी [को०]।

अच्छिन्नपर्ण--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अच्छिन्नपत्र' [को०]।

अच्छिय(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अछत'। उ०-- देह द्रव्य लै अच्छी अच्छिय।--पृ० रा०, ११४०२।

अच्छिर(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षर'। उ०--बंधि दिनारिय दाहिमा निम्मित अच्छर नृत।--पृ० रा० (उ०), भा० १, पृ० २१२।

अच्छुप्ता--संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों की १६ देवियों में से एक।

अच्छुरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मंडल या घेरा। २. नख या रयोग [को०]।

अच्छेदिक—वि० [सं०] काटने या छेदने के अयोग्य [को०]।

अच्छेद्य—वि० [सं०] अविभाज्य। विभाग न करने लायक [को०]।

अच्छैदिक—वि० [सं०] दे० 'अच्छेदिक' [को०]।

अच्छै बिरिछ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षय वृक्ष'। उ०—सत्त पुरुष अच्छै बिरिछ निरंजन डारा।—संतवाणी०, भा० २, पृ० १८।

अच्छोटन—संज्ञा पुं० [सं०] आखेट। मृगया। शिकार [को०]।

अच्छोत(पु)—वि० [सं० अक्षत, प्रा० अच्छत?] १ पूरा। २ अधिक। बहुत। उ०—वृषभ धर्म पृथ्वी सो गाइ। वृषभ कह्यो तासों या भाइ। मेरे हेतु दुखी तू होन। के अधर्म तुम पर अच्छोत।—सूर (शब्द०)।

अच्छोद¹—संज्ञा पुं० [सं०] बाणभट्ट द्वारा कादंबरी में उल्लिखित हिमालयस्थ एक सरोवर।

अच्छोद²—वि० स्वच्छ या निर्मल जलवाला [को०]।

अच्छोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणों में वर्णित एक नदी [को०]।

अच्छोहिन(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अक्षौहिणी'।

अच्छोहिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अक्षौहिणी सेना।

अच्यत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अचित्य¹'। उ०—अच्यत च्यत ए माधो सो सब माहि समाना।—कबीर ग्रं०, पृ० १००।

अच्यता(पु)—क्रि० वि० [सं० अचिन्तित] अकस्मात्। आकस्मिक रूप से। उ०—काल अच्यता झडपसी ज्यूं तीतर को बाज।—कबीर ग्रं०, पृ० ७२।

अच्युत¹—वि० [सं०] १. जो गिरा न हो। २. दृढ। अटल। स्थिर। ३ नित्य। अमर। अविनाशी। ४. जो न चूके। जो त्रुटि न करे। जो विचलित न हो। ५ न चूने या टपकने वाला (को०)।

अच्युत²—संज्ञा पुं० १ विष्णु और उनके अवतारों का नाम। २ वासुदेव। कृष्ण (को०)। ३. जैनियो के चार श्रेणी के देवताओं में चौथी अर्थात् वैमानिक श्रेणी के कल्पभव नामक देवताओं का एक भेद। ४. एक पौधे का नाम। ५ एक प्रकार की पद्यरचना जिसमें १२ वध होते हैं (को०)।

अच्युतकुल—संज्ञा पुं० [सं० अच्युत+कुल] वैष्णवों का समाज और उनकी शिष्यपरंपरा। विशेषकर-रामानंदी संप्रदाय के वैष्णव लोग अपने को अच्युतकुल या अच्युतगोत्र कहते हैं।

अच्युतगोत्र—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अच्युतकुल'।

अच्युतज—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों का एक देववर्ग जो विष्णु से उत्पन्न कहा गया है [को०]।

अच्युतपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ कामदेव। मनज। २ कृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न [को०]।

अच्युतमध्यम—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो मार्जनी नामक श्रुति से प्रारंभ होता है और जिसमें दो श्रुतियाँ होती हैं।

अच्युतमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

अच्युतवास—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृक्ष जिसमें अच्युत अर्थात् विष्णु का निवास हो। पीपल का पेड़ [को०]।

अच्युतषडज—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो छंदवती नामक श्रुति से प्रारंभ होता है और जिसमें दो श्रुतियाँ होती हैं।

अच्युतांगज—संज्ञा पुं० [सं० अच्युताङ्गज] १ कामदेव। २ कृष्णपुत्र प्रद्युम्न [को०]।

अच्युताग्रज—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु के बड़े भाई इंद्र। २ श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम।

अच्युतात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अच्युतपुत्र' [को०]।

अच्युतानंद¹—वि० [सं० अच्युतानन्द] जिसका आनंद नित्य हो।

अच्युतानंद²—संज्ञा पुं० आनंदस्वरूप परमात्मा। ईश्वर।

अच्युतावास—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल वृक्ष [को०]।

अछभो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० असम्भव या अत्यद्भुत, प्रा० अच्चब्भुअ> अचम्भव] दे० 'अचंभो' (डिं०)।

अछक(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + चष, प्रा० चख, चक, छक,] बिना छका हुआ। अतृप्त। भूखा। उ०—तेग या तिहारी मतवारी है अछक तौलों जौ लौं गजराजन की गजक करै नहीं।—भूषण (शब्द०)।

अछकना(पु)—क्रि० वि० [हिं० अछक से नाम०] अतृप्त होना। तृप्त न होना। न अघाना। उ०—चंपक बेलि चमेलिन में मधु छाक छक्यो अछक्यो अनुकूलै। मालती मंजु गुलाब समीर धरयो नहि धीर मनोज की हूलै।—(शब्द०)।

अछग(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अछक'। उ०—परै के अछगे। न बैरीन सग्गे।—पृ० रा०, ८।५२।

अछत¹(पु)—क्रि० वि० [सं० ॐ√आक्षि, प्रा०√अच्छ] [क्रि० अ० 'अछना' का कृदंत रूप जिसका प्रयोग क्रि० वि० की तरह होता है।] १. रहते हुए। उपस्थिति में। विद्यमानता में। समुख। सामने। उ०—(क) खसम अछत बहु पीपर जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) आपु अछत जुवराज पद रामहि देउ नरेसु।—मानस, २।१। (ग) तिनहि अछत तुम अपने आलम काहें कत रहत कृस गात।—सूर०, १०।४२१५। २. सिवाय। अतिरिक्त।—लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अच्छ को बरनै पारा।—मानस १।२७४।

अछत²(पु)—क्रि० वि० [सं० अ = नहीं + अस्ति, प्रा० अच्छइ = है] न रहते हुए। अनुपस्थित। उ०—गनती गनिबे तें रहे छतहूँ अछत समान।—बिहारी र०, दो० २७५।

अछताना पछताना—क्रि० अ० [सं० पश्चात्ताप, प्रा० पच्छाताव से विषम द्विरुक्त नाम०] बार बार किसी भूल या किसी बीती हुई बात पर खेद करना। पछताना। उ०—ऐसे सोच समझ अछताय पछताय मेघों सहित इंद्र अपने स्थान को गया।—लल्लूलाल (शब्द०)।

अछन¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ + क्षण] क्षण मात्र नहीं। बहुत दिन। दीर्घकाल। चिरकाल। उ०—दैन कहहि फिर देत न जो है। सजन अछन को भाजन सो है।—पद्माकर (शब्द०)।

अछन²(पु)—क्रि० वि० [अ० (उच्चा०) + सं० क्षण, प्रा०, अप० छन] धीरे धीरे। ठहर ठहरकर। उ०—प्यारे इन घन गलियन आव। नैनन जल सों धाइ सँवारी अछन अछन धरि पाव।—रसिकबिहारी (शब्द०)।

अछना(पु)—क्रि० अ० [सं० अस् का समानार्थक √स० ग्राक्षे, √प्रा० अच्छ, अप० अछ = होना] होना रहना। विद्यमान रहना। उ०—(क) ग्रातम तुझ पासइ अछइ ओलग रूडा रखउ।—ढोला०, ११४। (ख) अछहि बेहस तबूल सो रातीं। जनु गुलाल देखै विहँ राती।—जायसी (शब्द०)।

अछप(पु)—वि० [सं० अ + *छप = छिपना] न छिपने योग्य। प्रकट। प्रकाशमान। जाहिर। उ०—कोइ ख्याल ममरत्व कर, रहे सो अछप छपाइ। मोड सधि लै ग्रायउ मोवत जगहि जगाइ।—कबीर (शब्द०)।

अछय(पु)—वि० [सं० अक्षय] दे० 'अछय'। उ०— करवत मभा द्रुपद तनया कौं अवर अक्षय कियो —सूर०, १।१३१।

अछयकुमार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षकुमार'।

अछयवृच्छ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षयवृक्ष'। उ०—तिरवेनी से नीर मँगावो अछय वृच्छ के डार हो।—धरम०, पृ० ५७।

अछर¹(पु)—वि० [सं० अक्षर] दे० अक्षर¹'। उ०—अछर अच्युत अविकार है निराकार है जोइ।—सूर०, १०।११७५।

अछर²(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सर'। उ०—मधुकर माधवि मदन मत्त मन मैंन अछर से डोलै।— श्यामा०, पृ० ११८।

अछरना(पु)—क्रि० अ० [सं० उच्छलन, पु० हिं० उछरना] उपटना। स्पष्ट होना। प्रकट होना। अंकित देख पडना। उ०—बैठि भँवर कुच नारँग लारी। लागि मुख अछरै रँगराती।—जायसी (शब्द०)।

अछरा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरा, प्रा० अच्छरा] अप्सरा। स्वर्ग की वारवनिता। उ०—ओहि भउँहहिँ सरि कोउ न जीता। अछरइँ छपी, छपी गोपीता।—जायसी (शब्द०)।

अछरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सर, प्रा० अच्छर + ई (प्रत्य०)] अप्सरा। स्वर्ग की वारवनिता। उ०—(क) मानउँ मयन मूरती, अछरी बरन अनूप।—जायसी (शब्द०)। (ख) सुता एक अछरी कै नाईं।—हिंदी० प्रेमा०, पृ० २५१।

अछरौटी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षर, प्रा० अच्छर + हिं० औटी (प्रत्य०)] वर्णमाला। उ०—रसिक पपीहा साछी आछी अछरौटी के।—घनानंद, पृ० २०५।

मुहा०—अछरौटी बर्तनी = किसी शब्द के प्रत्येक वर्ण को अलग अलग कहना। हिज्जे करना।

अछल—वि० [सं०] छलरहित। निष्कपट। सीधासादा। भोलाभाला।

अछवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० अच्छा < अच्छ + वाई (प्रत्य०)] अच्छाई। सुंदरता। उ०—रति साँचे ढरी अछवाई भरी पिंदुरीन गुराइये पेखि पगै।—घनानंद, पृ० १५।

अछवाना(पु)—क्रि० स० [हिं० अछ से नाम०] साफ करना। सँवारना। उ०—रूप सरूप सिंगार सवाई। अच्छर जैसी रहि अछवाई।—जायसी (शब्द०)।

अछवानी—संज्ञा स्त्री० [सं० यवानिका या यमानी हिं० अजवाइन] अजवाइन, सोंठ तथा मेवों को पीसकर घृत में पकाया हुआ मसाला जो प्रसूता स्त्रियों को पिलाया जाता है।

अछाम(पु)—वि० [सं० अक्षाम] १ जो पतला न हो। मोटा। बड़ा। भारी। २ जो क्षीण या दुबला न हो। हृष्ट पुष्ट। मोटा ताजा बलवान्।

अछित(पु)—क्रि० वि० [हिं अछत] दे० 'अछत'। उ०—जीव अछित जोबन गया, कछू किया न नीका।—कबीर ग्र०, पृ० १४८।

अछिद्र—वि० [सं०] १ छिद्र या रंध्ररहित। २ बेऐब। निर्दोष (को०)।

अछियार—संज्ञा पुं० [हिं० छोर = किनारा ?] एक प्रकार की गजी की साड़ी जिसमें लाल किनारे होते हैं।

अछी—संज्ञा स्त्री० [देश०] आल का पेड़।

अछूत¹—वि० [सं० अ = नहीं + छुप्त छुआ हुआ, प्रा० छुत्त] १ बिना छुआ हुआ। जो छुआ न गया हो। अस्पृष्ट। उ०—भींजे हार चीर हिय चोली। रही अछूत कंत नहिं खोली।—जायसी (शब्द०)। २ जो काम में न लाया गया हो। जो बर्ता न गया हो। नया। ताजा। कोरा। पवित्र। उ०—अस के अधर अमी भरि राखे। अबहिं अछूत, न काहू चाखे।—जायसी ग्र०, पृ० ४४। ३ न छूने योग्य। नीच जाति का। अंत्यज जाति का। अस्पृश्य। जैसे—'मेहतर, डोम, चमार, आदि अछूत जातियाँ भी अपना संगठन कर रही हैं।'—(शब्द०)।

अछूत²—संज्ञा पुं० वह जो छूने योग्य न हो। अछूत या अस्पृश्य जाति का मनुष्य। जैसे—'आर्य समाज ने तीन सौ अछूतों को शुद्ध कर अपने में मिला लिया।—(शब्द०)।

अछूतपन—संज्ञा पुं० [हिं० अछूत + पन] अछूत या अस्पृश्य होने का भाव। जैसे—'समाज उनके साथ अछूतपन का व्यवहार करता है'।—आ० अ० रा०, पृ० ८७।

अछूता—वि० [हिं० अछूत] [स्त्री० अछूती] १ बिना छुआ हुआ। जो छुआ न गया हो। अस्पृष्ट। २ जो काम में न लाया गया हो। जो बर्ता न गया हो। नया। कोरा। ताजा। पवित्र उ०—दधि माखन द्वै, माट अछूते तोहिं सौंपति हौं सहियो।—सूर०, १०।३१३।

अछूतोद्धार—संज्ञा पुं० [हिं० अछूत + उद्धार] १ अस्पृश्य जातियों के सुधार का कार्य। अछूतों से अन्य जातिवत् व्यवहार कार्य। २. अछूतों के उद्धार का आंदोलन।

अछेद¹(पु)—वि० [सं० अच्छेद्य] जिसका छेदन न हो सके। जो कट न सके। अभेद। अखंड्य। उ०—अभिन अछेद रूप मम जान। जो सब घट है एक समान।—सूर०, ३।१३।

अछेद²—संज्ञा पुं० अभेद। अभिन्नता। छल छिद्र का अभाव। उ०—चेला सिद्धि सो पावै, गुरु सौं करै अछेद।—जायसी ग्र०, पृ० १०६।

अछेदन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आच्छादन'। उ०—पाँच वासन श्वेत वस्तर कदलिपत्र अछेदना।—कबीर सा०, पृ० ५६।

अछेद्य—वि० [सं०] १ जिसका छेदन न हो सके। जो कट न सके। अभेद्य। अखंड्य। २ अविनाशी। अविनश्वर।

अछेरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य, प्रा० अच्छेर] विस्मयजनक। अपूर्व। उ०—जावै पिए जावै नहीं, एह अछेरा गल्ल।—बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ०६।

अछेद(पु)—वि० [सं० अ+छेद या अछिद्र] छिद्र या दूषणरहित, निर्दोष। बेदाग। उ०—कंचन मनिद स्वच्छ कीन्हे आभूषण सब हीरन तें मानिक को मानि अछेद को।—रघुनाथ (शब्द०)।

अछेह(पु)—वि० [सं० अच्छेद] १ अखंड्य। निरंतर। लगातार। उ०—गो बिरंगी मनु मनो, प्रानि इतीं बिन्हा घरे। आठौं जाम अछेह दृग जु बरत बरसत रहत।—बिहारी र०, दो० ४५५। २ बहुत। बहुत अधिक। अत्यंत। ज्यादा। उ०—(क) घरे हर पुन री ... फिरे अछेह उछाह।—बिहारी र०, दो० ६००। (ख) ... दीजि पिय पग परसि, आदर कियो अछेह।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ६३।

अछै(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अक्षय'। उ०—टरै मेटे नव विषम काल का, अछै अमर पद दहिए।—कबीर श०, पृ० २६।

अछोप(पु)—वि० [सं० अ+छुप] आच्छादनरहित। नंगा। नीच। तुच्छ। दीन। उ०—सेवा सजम करै जप पूजा, सबद न तिनको सुनावै। मैं अछोप हीन मति मेरी, दादू को दिखलावै।—दादू (शब्द०)।

अछोभ(पु)—वि० [सं० अक्षोभ] १ क्षोभरहित। चंचलतारहित। उद्वेगशून्य। उ०—धीर व्रती तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा।—तुलसी (शब्द०)। २ स्थिर। गंभीर। शांत। ३ मोहरहित। मायारहित। खेदरहित। उ०—जबते आतम जानिया, तब तें परधन लोभ। दे अक्षर कबहूँ नहीं उन्ह तें कौन अछोभ। कबीर—(शब्द०)। ४ निडर। निर्भय। ५ जिसे बुरा कर्म करते हुए क्षोभ या ग्लानि न हो। नीच।

अछोर(पु)—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० छोर=किनारा] अपार। अनंत। बिना ओर छोर का।

अछोह¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अक्षोभ, प्रा० अच्छोह] १ क्षोभ का अभाव। २. शांति। स्थिरता। ३ मोह का अभाव। दयाहीनता। करुणाशून्यता। निर्दयता।

अछोह²(पु)—वि० १ क्षोभरहित। २. स्थिर। शांत। ३ मोहशून्य। ४ करुणारहित। निर्दय।

अछोही(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अछोह'।

अजंगम—संज्ञा पुं० [सं० अजङ्गम] छप्पय नामक मात्रिक छंद के ७१ भेदों में से एक।

विशेष—इसमें कुल ११४ वर्ण होते हैं जिनमें ३८ गुरु और ७६ लघु होते हैं। मात्राओं की संख्या १५२ है।

अजंट—संज्ञा पुं० [अं० एजेंट] १ प्रतिनिधि। किसी दूसरे की ओर से कार्य करनेवाला। २ किसी राजा या सरकार की ओर से किसी दूसरे राजा या सरकार के यहाँ नियुक्त किया हुआ व्यक्ति, जिसका काम अपने आदेशानुसार अपने राजा या सरकार की इच्छाओं को प्रकट करना और उनके अनुसार कार्य करना है। ३ किसी सौदागर की ओर से कमीशन या कुछ द्रव्य लेकर उसका माल बेचनेवाला। गुमाश्ता। आढ़तिया।

अजंटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अजंट+ई (प्रत्य०)] १ अजंट का कार्यालय। अजंट का दफ्तर या उसकी कचहरी। २. अजंट का पद या काम।

अजंत—वि० पुं० [सं० अच्+अन्त=अजंत] वह शब्द जिसके अंत में अच् प्रत्याहार हो। वह शब्द जिसके अंत में स्वर हो। स्वरांत (व्या०)।

अजंता—संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण भारत में सह्याद्रि पर्वत की गोद में बहनेवाली वागुरा नदी की घाटी में स्थित एक स्थान जो अपने १९ कलात्मक गुफामंदिरों के लिये जगद्विख्यात है।

विशेष—मध्य रेलवे की इटारसी बंबई शाखा पर स्थित जलगाँव स्टेशन से उत्तर में फरदापुर होते हुए अजंता जाने का मार्ग है। गुफाएँ प्राकृतिक नहीं हैं, बल्कि पत्थर के ठोस पहाड़ों को काट-काटकर भारतीय कारीगरों द्वारा निर्मित हैं। वास्तु, शिल्प और चित्र इन तीनों कलाओं का चरमोत्कर्ष इन गुफाओं में दृष्टिगोचर होता है जिनका निर्माणकाल ई० पू० दूसरी शती (गुहा संख्या १०, १२, १३) से लेकर ७वीं शती तक (विहार गुहा १, २) है। आरंभिक गुहाओं में बौद्धों की हीनयान शाखा के प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। शिल्प और चित्रों में भगवान् बुद्ध की प्रधानता है। १९वीं गुहा सर्वोत्कृष्ट है। इसके भित्तिचित्रों में भगवान् बुद्ध और उनके जीवन की विविध घटनाएँ एवं विभिन्न जातक कथाओं के चित्र अत्यंत सधे हाथों से अंकित हैं। रंग ऐसे पक्के और चटकीले हैं, मानो कारीगर ने उन्हें अभी अभी समाप्त किया है। ५० फुट से अधिक प्रशस्त मंडप के ऊपर की छत तक अलंकृत है। अन्यान्य गुफाओं की चित्रसमृद्धि भी अत्यंत उच्च कोटि की है। ये गुफाएँ भारतीय स्वर्णयुग के सांस्कृतिक, कलात्मक और आध्यात्मिक उपलब्धियों की प्रत्यक्ष साक्षी हैं।

अजंतुक—वि० [सं० अजन्तुक] जंतुविहीन। प्राणीरहित। उ०—अजंतुक, जब पृथ्वी पर किसी प्रकार का जीवन न था।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८।

अजंभ¹—वि० [सं० अजम्भ] बिना दाँत का। दंतरहित।

अजंभ²—संज्ञा पुं० १ मेढक। २ सूर्य (को०)। ३. बालक की वह अवस्था, जब उसके दाँत न निकले हों (को०)।

अजंमत्त(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजमत'। उ०—अजमत्त भारी हमीर सु जानी।—ह० रासो, पृ० ८५।

अजंसी—संज्ञा स्त्री० [अं० एजेंसी] १ अजंट के रहने का स्थान। अजंट का दफ्तर या उसकी कचहरी। २ आढत। आढत की दूकान। वह दूकान जिसमें किसी दूसरे सौदागर या कारखाने की चीज बेचने के लिये रखी जाय।

अज¹—वि० [सं०] जिसका जन्म न हो। जन्म के बंधन से रहित। अजन्मा। स्वयंभू। उ०—ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।—मानस, १।५०।

अज²—संज्ञा पुं० १ ब्रह्मा। उ०—लगन बाचि अज सबहि सुनाई।—मानस, १।९१। २ विष्णु। ३ शिव। ४ ईश्वर (को०)। ५. कामदेव। ६. चंद्रमा (को०)। ७. एक सूर्यवंशी राजा जो दशरथ के पिता थे।

विशेष—वाल्मीकि रामायण में इन्हें नाभाग का पुत्र लिखा है पर रघुवंश आदि के अनुसार ये रघु के पुत्र थे।

८. बकरा। उ०—तदपि न तजत स्वान, अज, खर ज्यों फिरत विषय अनुरागे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५१६। ९. भेंड़ा। १०.

माया शक्ति। ११ जीव (को०)। १२. ज्योतिष में शुक्र की गति के अनुसार तीन तीन नक्षत्रों की जो एक एक वीथी मानी गई है, उनमें से एक, जो हस्त, विशाखा और चित्रा नक्षत्र में होती है। १३. एक ऋषि (को०)। १४ मेषराशि (को०) १५ अग्नि (को०)। १६ एक प्रकार का धान्य (को०)। १७ माक्षिक धातु (को०)। १८ सूर्य का रथ (को०)।

अज³(पु—क्रि० वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज] अब। अभी तक।
विशेष—इस शब्द को 'हूँ' के साथ देखा जाता है, स्वतंत्र रूप में नहीं, जैसे—(क) उठी कबीरा विरहिनी अजहूँ ढँढै खेह।—कबीर (शब्द०)। (ख) अजहूँ जागु अजाना होत आउ निसि भोर।—जायसी (शब्द०)। (ग) रे मन, अजहूँ क्यों न सम्हारै।—सूर० १।६३। (घ) अजहूँ मानहूँ कहा हमारा।—मानस, १।८०।'

अज⁴—प्रत्य० [फा० अज] से। उ०— लिये खाँटे ऊपर अज जान हौर दिल।—दक्खिनी०, पृ० ११४।

अजक¹—वि० वि० [सं० अ = नहीं + फा० जक = पराजय] अपराजेय। उद्धत। उ०—अजक अपीधा अनल ज्यूँ किया कीधा रणताल। —राज०, पृ० ७४।

अजक †—संज्ञा स्त्री० रोग। पीड़ा। उ०—एक जड़ी तोइ ऐसी री दुगो, मिटि जाइ अजक तिहारी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६६५।

अजक³—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुरवा के वंश का एक राजा [को०]।

अजकजा—संज्ञा पुं० [फा० अज + अ० कजा] संयोगवश। उ०—अजकजा जब शोज गए वस्ती भीतर।—दक्खिनी०, पृ० २०१।

अजकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजकर्णक' [को०]।

अजकर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] १. साल का पेड़। सालवृक्ष २. असन का वृक्ष [को०]।

अजकव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजगव'।

अजका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कम उम्रवाली बकरी। २ बकरी के गले से लटकनेवाली माँस की ग्रंथि। अजागलस्तन। ३ नेत्रों का एक रोग। अजकाजात [को०]।

अजकाजात—संज्ञा पुं० [सं०] आँख में होनेवाली लाल फुली जो पुतली को ढँक लेती है। टेंडर वा ढेंढर। नाखूना।

अजकाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का धनुष। अजगव। २ बबूल का वृक्ष। ३ काष्ठनिर्मित एक यज्ञ पात्र जो मित्र और वरुण से संबद्ध है (को०)। ४ एक नेत्ररोग। अजकाजात [को०]। ५ अजका रोग का विष [को०]।

अजखुद—क्रि० वि० [फा०]। स्वयं। आप से आप। उ०—'गुया अजखुद गाली न देकर।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १०१।

अजगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० अजगन्धा] अजमोदा।

अजगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अजगन्धिका] १ वनतुलसी का पौधा। बर्बरी।

अजगंधिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अजगन्धिनी] १ काकड़ासींगी। २ वनतुलसी का पौधा [को०]।

अजग—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का धनुष। २ विष्णु का नाम। ३ अग्नि [को०]।

अजगर—संज्ञा पुं० [सं०] १ बकरी निगलने वाला साँप। बहुत मोटी जाति का एक सर्प। उ०—(क) बैठि रहेसि अजगर इव पापी।—मानस, ७।१०७। (ख) बिन आशा बिन उद्यम कीने अजगर उदर भरै।—सूर०, १।१०५। अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम। दास मलूका कहि गए सब के दाता राम —मलूक (शब्द०)।
विशेष—यह अपने शरीर के भारीपन के कारण फुर्ती से इधर उधर टाल नहीं सकता और बकरी, हिरन ऐसे बड़े पशुओं को निगल जाता है। और सर्पों के समान इसके दाँतों में विष नहीं होता। यह जंतु अपनी स्थूलता और निरुद्यमता के लिये प्रसिद्ध है। २, एक दानव (को०)।

अजगरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अजगरीय] अजगर की सी निरुद्यम वृत्ति। विना परिश्रम की जीविका। उ०—उत्तम भीख जो अजगरी, सुनि लीजो निज बैन। कहै कबीर ताके गहे महा परम सुख चैन।—कबीर (शब्द०)।

अजगरी²—वि० १ अजगर की सी। २ बिना परिश्रम की।

अजगरी³—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधे का नाम [को०]।

अजगरीवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना श्रम की जीविका। अजगरी।

अजगलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूँग के दाने के बराबर छोटी पीड़ारहित फुंसी जो कफ और वात के प्रकोप से शरीर पर निकलती है।

अजगलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजगलिका' [को०]।

अजगव—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव जी का धनुष। पिनाक। उ०—नहीं इसी से चढ़ी शिंजिनी अजगव पर प्रतिशोध भरी। —कामायनी पृ० १०५। २ अजवीथी (को०)।

अजगाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का धनुष। २ नागों के एक गुरु। ३ एक प्रकार यज्ञपात्र। ४ अजवीथी [को०]।

अजगुत—संज्ञा पुं० [सं० अयुक्त हिं० अजुगुति] १ युक्ति विरुद्ध बात। अचभे की बात। आश्चर्यजनक भेद। असाधारण बात। अस्वाभाविक व्यापार। अप्राकृतिक घटना उ०— आई करगी भो अजगूता। जनम जनम जम पहिरे बूना।— कबीर (शब्द०)। २ अयुक्त बात। अनुचित बात। बेजोड़ बात। उ०—सरवस लूटि हमारो लीनो राज कूबरी पावै। तापर एक सुनो री अजगुत लिख लिख जोग पठावै —सूर (शब्द०)।

अजगुत²(पु †—वि० १, आश्चर्यजनक। अद्भुत। विलक्षण। २ अनुचित। अयुक्त। बेजोड़। उ०—पापी जाउ जीभ गलि तेरी अजगुत बात बिचारी। सिंह को भक्ष्य शृगाल न पावै हौं समरथ की नारी।—सूर (शब्द०)।

अजगुथ्या(पु †— वि० [हिं०] दे० 'अजगुत'। उ०—त्रिभुवन भेद कहौ अजगुथ्या।—कबीर सा०, पृ० ४१।

अजगैव¹—क्रि० वि० [फा०] अलक्षित स्थान से। गैब से। अदृष्ट से [को०]।

अजगैव²(पु—संज्ञा पुं० [फा० अज + अ० गैब] अलक्षित स्थान। अदृष्ट स्थान। उ०—दादू टरिए लोक तें, कैसी धरहि उठाइ। अनदेखी अजगैव, कैसी कहइ बनाइ।—दादू (शब्द०)।

अजगैवी(पु)--वि० [फा० अज+अ० गैबी+ई (प्रत्य०)] रहस्यपूर्णता। अलौकिकता। उ०--कहै पदमाकर त्यों तारन वितारन की विगर गुनाह अजगैवी गैर आब की।--पद्माकर ग्र०, पृ० ३२४।

यौ०--अजगैबी गोला, अजगैबी तमाचा=दैवी विपत्ति आकस्मिक कष्ट। अजगैबी तमाशा=आश्चर्य करनेवाला खेल। अजगैबी मार=दे० 'अजगैबी गोला'।

अजघन्य--वि० [सं०] जो जघन्य अर्थात् जो निम्नतम, तुच्छ और अंतिम या उपेक्ष्य न हो [को०]।

अजघोष--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें रोगी के शरीर में बकरे की गंध आती है।--(माधव०)।

अजजीव--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजजीविक' [को०]।

अजजीविक--संज्ञा पुं० [सं०] बकरे पालकर उनके विक्रयादि के द्वारा अपनी जीविका चलानेवाला व्यक्ति [को०]।

अजटा--संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामलकी। कपिकच्छू [को०]।

अजड¹--वि० [सं०] जो जड न हो। चेतन।

अजड²--संज्ञा पुं० चेतन पदार्थ।

अजड³--वि०, संज्ञा पुं० [सं० अजड] दे० 'अजड'

अजण--संज्ञा पुं० [सं० अर्जुन] राजा सहस्रार्जुन।--(डिं०)।

अजथ्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पीले रंग की जूही का पेड और फूल। २ पीली चमेली। जर्द चमेली। ३ बकरों का समूह (को०)।

अजदंडी--संज्ञा स्त्री० [सं० अजदण्डी] एक प्रकार का पौधा। ब्रह्मदंडी [को०]।

अजदर--संज्ञा पुं० [फा० अजदर] दे० 'अजदहा'। उ०--अजदर है भभूका है जहन्नुम है बला है --भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५२२।

अजदहा--संज्ञा पुं० [फा०] बडा मोटा और भारी साँप। अजगर।

अजदाह--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० अजदहा'। उ०--संत की प्रीति अजदाह की चाहिए, चले बिन फिरे आहार आवै।--पलटू०, पृ० २६।

अजदेवता--संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि। २. पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र का एक नाम [को०]।

अजधाम--संज्ञा पुं० [सं० अज+धाम] ब्रह्मलोक। उ०--(क) पद पाताल सीस अजधामा।--मानस ६।१५। (ख) पद हैं पताल दिग श्रुति अजधाम भाल बाल घन माल काल भृकुटी विलास है।--दीन० ग्र०, पृ० १५५।

अजनंदन--संज्ञा पुं० [सं० अज+नन्दन] रघुवंश के राजा अज के पुत्र दशरथ। उ०--त्याग दिया आज अजनंदन ने एक साथ पुत्र हेतु प्राण सत्य कारण अपत्य हैं।--साकेत, पृ० २०१।

अजन¹--वि० [सं०] १ जन्म के बंधन से मुक्त। जन्मरहित। अजन्मा। अनादि। स्वयंभू। उ०--सकललोक नायक, सुखदायक, अजन, जन्म धरि आयौ।--सूर०, १०।४। २ निर्जन। सुनसान। उ०--मो उर अजन पजिर मैं निज गोतिहि जमाय जागोगे।--घनानंद, पृ० १६२।

अजन²--संज्ञा पुं० [सं०] १ अयोग्य व्यक्ति। अप्रिय व्यक्ति। तुच्छ जन। उ०--हँसे खुलकर हाल बाहर अजन जन के बने मंगल। --अर्चना, पृ० २७। २ पितामह। ब्रह्मा (को०)। ३ गति गमन (को०)।

अजनक--वि० [सं०] उत्पादन न करनेवाला। अनुत्पादक [को०]।

अजननि--संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पन्न या पैदा न होने की स्थिति। उत्पन्न न होना [को०]।

अजननीय--वि० [सं०] जनन के अयोग्य। जो उत्पादनीय न हो।

अजनबी--वि० [अ०] १. अज्ञात। अपरिचित। जिसे कोई जानता न हो। बिना जान पहिचान का। नया। परदेशी। २ अनजान। नावाकिफ।

अजनबीपन--संज्ञा पुं० [अ० अजनबी+हिं० पन (प्रत्य०)] अजनबी होने का भाव। उ०--उसपर गैर भाषाओं के अजनबीपन की छाप दिखाई पडी।--चिंतामणि, भा० २, पृ० १४२।

अजनयोनिज--संज्ञा पुं० [सं०] दक्ष प्रजापति [को०]।

अजनाभ--संज्ञा पुं० [सं०] भारतवर्ष का एक प्राचीन नाम [को०]।

अजनामक--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खनिज द्रव्य [को०]।

अजनाशक--संज्ञा पुं० [सं०] भेडिया [को०]।

अजन्म¹--वि० [सं० अजन्मा] दे० 'अजन्मा'। उ०--आतम अजन्म सदा अविनासी। ताको देह मोह बड फाँसी।--सूर० ५।४।

अजन्म²--संज्ञा पुं० [सं०] जन्म का अभाव। जन्म न होना [को०]।

अजन्मा--वि० [सं०] जन्मरहित। जिसका जन्म न हुआ हो। जो जन्म के बंधन में न आवे। अनादि। नित्य। अविनाशी।

अजन्य¹--संज्ञा पुं० [सं०] शुभाशुभ सूचक सृष्टिव्यापार जैसे--भूकंप आदि।

अजन्य²--वि० १ जन्य या मनुष्य के लिये अनुपयुक्त। २ उत्पादन के अयोग्य। अजननीय [को०]।

अजप--संज्ञा पुं० [सं०] १ कुपाठक। बुरा पढनेवाला ब्राह्मण। २ बकरी, भेंड पालनेवाला। गडेरिया।

अजपति--संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्तम एवं श्रेष्ठ बकरा। २ भौम। मंगल [को०]।

अजपथ--संज्ञा पुं० [सं०] १ छायापथ। अजवीथी (को०) २ वह पथ जिसपर केवल बकरी ही चल सके। अत्यंत सँकरा मार्ग।

विशेष--अजपथ के विषय में बृहत्कथा श्लोकसंग्रह में लिखा है कि यह रास्ता इतना कम चौडा होता था कि आमने सामने से आनेवाले दो व्यक्ति एक साथ उसपर से निकल नहीं सकते थे।

अजपथ्य--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजपथ' [को०]।

अजपद--संज्ञा पुं० [सं०] अजैकपाद नामक रुद्र [को०]।

अजपा¹--वि० [सं०] १ जिसका उच्चारण न किया जाय। उ०--जपते सभक्ति अजपा विभक्त हो राम नाम।--अपरा, पृ० ४१। २ जो न जपे या भजे।

अजपा²--संज्ञा पुं० १ उच्चारण न किया जानेवाला तांत्रिकों का मंत्र। वह जप जिसके मूल मंत्र 'हंस' का उच्चारण श्वास-प्रश्वास के गमनागमन मात्र से होता जाय। हंस मंत्र। उ०--अजपा जपत सुन्नि अभिअंतरि, यहु तत जानैं सोई।--कबीर ग्र०, पृ० १५६।

विशेष—इसका देवता अर्धनारीश्वर अर्थात् शिव और शक्ति का संयुक्त रूप है। इस जप की संख्या एक दिन और रात में २१,६०० मानी गई है।

यौ०—अजपाजप, अजपाजाप = इस मंत्र का जप। उ०—अजपा-जाप उनमनी तारी।—कबीर ग्रं०, पृ० १५८। अजपामाला = अजपा जपने की माला या प्रक्रिया। उ०—त्रिकुट उनमनी मन जपत है अजपा माला।—पलटू०, भा० १, पृ० १००। २. बकरियों का पालक। गड़ेरिया।

अजपाद—संज्ञा पुं० [सं०] एक रुद्र [को०]।

अजपाल—संज्ञा पुं० [सं०] बकरी पालने का व्यवसाय करनेवाला व्यक्ति। उ०—'कृषक, अजपाल और व्यापारी लोगों के लिये शुभाशीर्वाद सूचक मंत्र हैं'।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ६२।

अजबंधु—संज्ञा पुं० [सं० अजबन्धु] मूर्ख। अज के समान मंद बुद्धि-वाला व्यक्ति [को०]।

अजब¹—वि० [अ०] विलक्षण। अद्भुत। आश्चर्यजनक। विचित्र। अनोखा। अनूठा। उ०—कारी निसि कारी घटा, कच रति कारे नाग। कारे कन्हर पै चली, अजब लगन की लाग।—पद्माकर (शब्द०)।

अजब²—संज्ञा पुं० अचंभा। अचरज [को०]।

अजबस—क्रि० वि० [फा०] एकाएक। उ०—नगे गुनजन पे अजबस गम के हात्याँ।—दक्खिनी०, पृ० १६१।

अजभक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] बबूल का पेड़ जिसकी पत्ती बकरियाँ अधिक चाव से खाती हैं।

अजम—संज्ञा पुं० [अ०] अरब के अलावा ईरान, तूरान आदि देश अथवा वहाँ के निवासी। उ०—अरब और अजम तुर्की ताजिक व रूम।—दक्खिनी, पृ० २१३।

अजमत—संज्ञा पुं० [अ० अजमत] १. प्रभुत्व। प्रताप। शान। महत्व। उ०—आपकी उल्फत ईशा की सब अजमत आज मिटाएगी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५६। २. चमत्कार।

अजमाइश†—संज्ञा स्त्री० [फा० आजमाइश] दे० 'आजमाइश'।

अजमाना†—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'आजमाना'।

अजमायु—वि० [सं०] बकरे की तरह मिमियानेवाला [को०]।

अजमार—संज्ञा पुं० [सं०] १. कसाई। २. अजमेर का एक नाम। ३. एक जाति [को०]।

अजमी¹—वि० [अ०] अजम संबंधी। अजम का [को०]।

अजमी²—संज्ञा पुं० अजम का निवासी व्यक्ति। ईरानी तूरानी [को०]।

अजमीढ—संज्ञा पुं० [सं० अजमीढ] १. अजमेर का पुराना नाम। २. पुरुवंशीय हस्तिन के ज्येष्ठ पुत्र का नाम। ३. सुहोत्र के पुत्र का नाम। ४. युधिष्ठिर की उपाधि [को०]।

अजमुख¹—संज्ञा पुं० [सं०] दक्ष प्रजापति का एक नाम [को०]।

विशेष—यज्ञ में शिव का अपमान करने पर सती के प्राणत्याग के बाद वीरभद्र ने दक्ष के यज्ञ का ध्वंस किया और उसे मार डाला। बाद में शिव की आज्ञा से उसे जीवित करने के लिये बकरे का सिर लगा दिया था। 'काशीखंड' में इसका विस्तृत विवरण है।

अजमुख²—वि० बकरी की तरह मुखवाला। बकरमुँहाँ [को०]।

अजमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी का नाम जो अशोकवाटिका में सीता की देखरेख के लिये नियुक्त थी [को०]।

अजमूदा—[illegible] [फा० आजमूदा] दे० 'आजमूदा'।

अजमोद—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अजमोदिका] अजवायन की तरह का एक पेड़ और उसका फल। बड़ी अजवाइन।

विशेष—यह [illegible] लगाया जाता है। इसके बीज या दाने मसाले और औषधि के काम आते हैं। यह अग्निदीपक, [illegible] तथा शरीर का [illegible] के लिये प्रसिद्ध है।

पर्या०—उग्रगंधा। गंधदला। शिखिमोदा। वह्निदीपिका। मर्कटी। कारवी। वनयमानी। हस्तिकारवी।

अजमोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजमोद' [को०]।

अजमोदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजमोद' [को०]।

अजय¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पराजय। हार। जय का अभाव। २. अग्नि (डिं०)। ३. विष्णु (डिं०)। ४. एक कोशकार का नाम (को०)। ५. छप्पय छंद के ७१ भेदों में से पहला जिसमें ७० गुरु और १२ लघु मिलाकर ८२ वर्ण और १५२ मात्राएँ हैं।

अजय²—वि० न जीतने योग्य। जो जीता न जा सके। अजेय। उ०—जीति को सकै अजय रघुराई। माया तें असि रची न जाई।—मानस ६।१३।

अजयपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. संगीत में भैरव राग का पुत्र।

विशेष—यह संपूर्ण जाति का राग है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। २. एक राजा का नाम। ३. जमालगोटा।

अजया¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विजया। भाँग। २. दुर्गा की एक सखी का नाम (को०)। ३. माया (को०)।

अजया²—संज्ञा स्त्री० [सं० अजा] बकरी। उ०—[illegible] धनी [illegible] अजया गज [illegible] —[illegible] (शब्द०)।

अजय्य—वि० [सं०] १. अजेय। जो जीता न जा सके। २. [illegible] अजेय (को०)।

अजर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. निर्जर। देवता (डिं०)। २. परब्रह्म। ईश्वर का एक नाम। ३. घृतकुमारी या घीकुआँर नामक पौधा (डिं०)।

अजर²—वि० १. जरारहित। जो बूढ़ा न हो। उ०—[illegible] —मानस, [illegible]। २. [illegible]।

अजर³—वि० [सं० अ + जीर्ण [illegible] (जर) = पचना] [illegible]। उ०—[illegible] —[illegible] (शब्द०)।

अजर⁴—संज्ञा पुं० [अ०] [illegible]। उ०—[illegible] —दक्खिनी०, पृ० [illegible]।

अजर⁵—संज्ञा पुं० [अ० अजिर] दे० 'अजिर'। उ०—[illegible] —[illegible], पृ० ६६।

अजरक—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निमांद्य। मंदाग्नि [को०]।

अजरद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष [को०]।

अजरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ घृतकुमारी। घीकुआर। २ विधारा। ३ गृहगोधा। छिपकली (को०)।

अजरायल[1]—वि० [सं० अजर + हिं० आयल (प्रत्य०)] जो जीर्ण न हो। जो पुराना न हो। जो सदा एक सा रहे। अमिट। पक्का। चिरस्थायी। उ०—दिना चारि में सब मिटि जैहैं। श्याम रंग अजरायल रैहैं।—सूर० (शब्द०)।

अजरायल[2]†—वि० [सं० अ = नहीं + दर = भय] १ निर्भय। वेडर। निःशंक। उ०—तस कुठार द्रग तायल राह बरात ईख अजरायल।—रघु० रू० पृ० ८६। २ बलवान्। शक्तिशाली। उ०—रीठ वागो उभय ओड अजरायला।—रघु० रू०, पृ० १८३।

अजराल—वि० [सं० अ = नहीं + जृ पुराना पड़ना] बलवान्। जोरावर।—डिं०।

अजरावन—वि० [सं० अजर + आवन (प्रत्य०)] दे० 'अजर'। उ०—भलै सु दिन भयौ पूत अमर अजरावन रे।—सूर०, १०।२८।

अजरावर(पु)—वि० [सं० अजरामर] जरा मरण से रहित। उ०—आत्मा माहि दीदार दरसता रहै यूं अजरावर होय आपु जीया।—रामानंद०, पृ० ५।

अजर्य[1]—वि० [सं०] १ जराविहीन। २ पचाने के अयोग्य। अपाच्य। ३ चिरकाल तक रहनेवाला। चिरस्थायी [को०]।

अजर्य[2]—संज्ञा पुं० मैत्री। दोस्ती [को०]।

अजलंबन—संज्ञा पुं० [सं० अजलम्बन] सुरमा [को०]।

अजल—संज्ञा स्त्री० [अ० अजल] मृत्यु। मौत। उ०—ऐ सनम तू ही मेरी शक्ल से रहता है खफा, है अजल भी तो खफा।—श्यामा०, पृ० १०२।

अजलचर—वि० [सं० अ = नहीं + जलचर] जो जलचर न हो। जो जल में न रहता हो। स्थलचर। थलचर उ०—अरु तहँ बहुत जुगनि की कह्यौ। सर्प अजलचर क्यो जल रह्यौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७६।

अजलोमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केवाँच का पेड़।

अजलोमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजलोमा' [को०]।

अजव—वि० [सं०] वेगरहित। गतिहीन [को०]।

अजवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजशृंगी' [को०]।

अजवाइन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अजवायन'। उ०—रोटी रुचिर कनक बेसन करि। अजवाइनि सैंधो मिलाइ धरि।—सूर०, १०।१२१३।

अजवायन—संज्ञा स्त्री० [सं० यवानिका] यवानी। एक पौधा। जवाइन।

विशेष—यह पौधा सारे भारत में, विशेषकर बंगाल में लगाया जाता है। यह पौधा अफगानिस्तान, फारस और मिस्र आदि देशों में भी होता है। भारतवर्ष में इसकी बोआई कार्तिक, अगहन में होती है। इसके बीज जिनमें एक विशेष प्रकार की महक होती है और जो स्वाद में तीक्ष्ण होते हैं, मसाले और दवा के काम आते हैं। भभके पर उतारने से बीज में से अर्क (अमृत का पानी) और तेल निकलता है। भभके से उतारते समय तेल के ऊपर एक सफेद चमकीली चीज अलग होकर जमें जाती है जो बाजार में 'अजवायन के फूल' के नाम से बिकती है। अजवायन का प्रयोग हैजा, पेट का दर्द, वात की पीड़ा आदि में किया जाता है।

अजवाह[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कच्छ, कठियावाड़ का एक प्राचीन नाम [को०]।

अजवाह[2]—वि० अजवाह देश का [को०]।

अजवीथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजवीथी' [को०]।

अजवीथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सूर्यादि के गमन के तीन दक्षिणी मार्गों में से एक। छायापथ। गगनसेतु। २. बकरे के चलने की राह या मार्ग [को०]।

अजशृंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० अजशृङ्गी] एक वृक्ष। मेढासिंगी।

विशेष—यह भारतवर्ष में प्रायः समुद्र के किनारे होता है। इसकी छाल 'संकोचक' है और ग्रहणी आदि रोगों में दी जाती है। इसका लेप घाव और नासूर को भी भरता है।

अजस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अयश प्रा० अजस] अयश। अपयश। अपकीर्ति। बुरी ख्याति। बदनामी। उ०—सिय बरनिय तेइ उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई।—मानस, १।२४७।

यौ०—अजस पेटारी = अपयश की भागिनी। उ०—अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।—मानस २ १२।

अज सरे नौ—क्रि० वि० [फा० अज सरे नौ] नए सिरे से। नए ढंग से [को०]।

अजसी(पु)—वि० [सं० अयशिन्] जिसकी बुरी कीर्ति हो। बदनाम। निंद्य। अपयशी। उ०—कौल कामबस कृपन विमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा।—मानस, ६।३१।

अजस्र—क्रि० वि० [सं०] सदा। निरंतर। हमेशा। लगातार। उ०—'आहुतियाँ विश्व की अजस्र लुटाता रहा।'—लहर, पृ० ५६।

अजस्रता—संज्ञा स्त्री० [सं० अजस्र + ता (प्रत्य०)] अजस्र होने का भाव या क्रिया। नैरंतर्य। उ०—'तुममें या मुझमें या हमारे प्रेम में ही अजस्रता नहीं है'।—चिंता०, पृ० ६४।

अजहत्—वि० [सं०] त्याग न करनेवाला। न छोड़नेवाला [को०]।

अजहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजहत्स्वार्था'।

अजहल्लक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजहत्स्वार्था' [को०]।

अजहल्लिंग—संज्ञा पुं० [सं० अजहल्लिङ्ग] संस्कृत व्याकरण में वह शब्द या संज्ञा जो अन्य लिंग के शब्द के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने पर भी अपने लिंग का त्याग न करे [को०]।

अजहत्स्वार्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] अलंकार शास्त्र में लक्षणा के दो भेदों में से एक।

विशेष—इसमें लक्षक शब्द अपने वाच्यार्थ को न छोड़कर उससे संपृक्त या कुछ भिन्न या अतिरिक्त अर्थ प्रकट करे। जैसे—'भालों के आते ही शत्रु भाग गए'। यहाँ भालों से तात्पर्य भाला लिए सिपाहियों से है। इसे उपादान लक्षणा भी कहते हैं।

अजहद—क्रि० वि० [फा० अज + अ० हद्द] हद से ज्यादा। बहुत अधिक। उ०—सब पखियों में मैं हूँ अजहद पाक तन।—दक्खिनी०, पृ० १७६।

अजहुँ(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अजहूँ'। उ०—तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहि तारा गयद जाके अर्धनायँ। —तुलसी ग्र०, पृ० ५०२ ।

अजहूँ(पु)--क्रि० वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज + हिं० हूँ (प्रत्य०)] अब भी अद्यपि। आज भी। उ०—किती वार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छ टी।—सूर०, १०।१७५।

अजान्त्री—सज्ञा स्त्री० [सं० अजान्त्री] नीलपुष्पी नामक पौधा [को०]।

अजाम्बिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अजाम्बिका] भाद्र कृष्ण एकादशी का नाम जो एक व्रत का दिन है ।

अजाँ—सज्ञा स्त्री० [अ० अजाँ] दे० 'अजान[3]'। उ०—तुझे ही शेख ने प्यारे अजाँ देकर पुकारा है।—भारतेंदु ग्र०, भाग २, पृ० ८५१ ।

अजा[1]—वि० स्त्री० [सं०] जिसका जन्म न हुआ हो। जो उत्पन्न न की गई हो। जन्मरहित । उ०—अजा अनादि सक्ति अविनासिनि ।—मानस, १।९७ ।

अजा[2]—सज्ञा स्त्री० १ बकरी। २ साख्य मतानुसार प्रकृति या माया जो किसी के द्वारा उत्पन्न नही की गई और अनादि है। ३ शक्ति । दुर्गा। ४ भादो वदी एकादशी जो एक व्रत का दिन है ।

अजा[3]—सज्ञा पुं० [अ० अजा] १ मृत्यशोक । मातम । २ मातमपुर्सी [को०] ।

अजाइव(पु)—सज्ञा पुं० [अ० अजायव] दे० 'अजायव'। उ०—अजव अजाइव नूर दीदम दादू है हैरान ।—दादू, पृ० ५७७।

अजाखाना—सज्ञा पुं० [अ० अजाखानह्] वह स्थानविशेष जहाँ मातम किया जाय, ताजिया रखा जाय या मर्सिया पढा जाय [को०] ।

अजागर[1]—वि० [सं०] न जागनेवाला [को०]।

अजागर[2]—सज्ञा पुं० भृगराज । भँगरैया [को०] ।

अजागलस्तन—सज्ञा पुं० [सं०] १ बकरी के गले मे लटकने वाली मास की स्तनकार छीमी। २ देखने मे उपयोगी किंतु निरर्थक वस्तु (लाक्ष०) [को०] ।

अजाच(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अयाच्य'। उ०—जाचक भए अजाच प्रजा परिजन मुद छाए ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० २५४ ।

अजाचक(पु)[1]—सज्ञा पुं० [सं० अयाचक] न माँगनेवाला। वह जिसे कुछ माँगने की आवश्यकता न हो । सपन्न व्यक्ति।

अजाचक(पु)[2]—वि० जो न माँगे। जिसे माँगने की आवश्यकता न हो। सपन्न। भरापूरा। उ०—विप्रन्ह दान विविध विधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे।—मानस, ७।१३।

अजाची(पु)[1]†—सज्ञा पुं० [सं० अयाचिन्] न माँगनेवाला। सपन्न पुरुष ।

अजाची(पु)[2]—वि० जो न माँगे । जिसे माँगने का आवश्यकता न हो । घन धान्य से पूर्ण । संपन्न। भरापूरा उ०—(क) कपि सवरी सुग्रीव विभीषन को जो कियो अजाची ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गुरुसुत आनि दिए जमपुर तै विप्र सुदामा कियौ अजाची। —सूर०, १।१८।

अजाजि—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजाजी' [को०] ।

अजाजी—सज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद और काला जीरा। जीरा।

अजाजील—सज्ञा० पुं० [अ० अजाजील] शैतान [को०]।

अजाजीव—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजजीवक' [को०]।

अजात—वि० [सं०] १. जो पैदा न हुआ हो। अनुत्पन्न। २ जन्मरहित। अजन्मा।

अजातककुत्—सज्ञा पुं० [सं०] वह बछडा जिसकी पीठ पर डिल न निकला हो। छोटा बछडा। बछवा। उ०—जव तक वछडा वडा नही हो जाता था अर्थात् उसकी पीठ पर डिल नहीं निकल आता था तव तक वह अजातककुत् और युवा होने पर पूर्णककुत् कहलाता था।—सपू० अभि० ग्र०, पृ० २४८ ।

अजातदत—वि० [सं० अजातदन्त] जिसे दाँत पैदा न हुए हो। बिना दाँत का। दतविहीन [को०]।

अजातपक्ष—वि० [सं०] विना पखवाला । जिसे पख उत्पन्न न हुए हो [को०] ।

अजातरिपु—वि० [सं०] दे० 'अजातशत्रु [को०]।

अजातव्यंजन—वि० [सं० अजातव्यञ्जन] अस्पष्ट आकृति या चिह्न-वाला। जिसकी आकृति सुस्पष्ट न हो, (पक्षी) [को०]।

अजातव्यवहार—वि० [सं०] जिसको व्यवहारिक ज्ञान न हो या जो वालिग न हो [को०]।

अजातशत्रु[1]—वि० [सं०] जिसका कोई शत्रु उत्पन्न न हुआ हो । विना वैरी का । शत्रुविहीन।

अजातशत्रु[2]—सज्ञा पुं० १. राजा युधिष्ठिर। २ शिव । ३ वृहदारण्यक उपनिषद् मे वर्णित काशी का एक क्षत्रिय राजा जो वडा ज्ञानी था और जिसने गार्ग्य वालाकि ऋषि को बहुत से उपदेश दिए थे। ४ राजगृह (मगध) के राजा विंविसार का पुत्र जो गौतमबुद्ध का समकालीन था।

अजातश्मश्रु—वि० [सं०] जिसे दाढी मूछ न निकली हो। छोटी उम्रवाला। अल्पवय [को०]।

अजातारि—सज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अजातशत्रु' [को०]।

अजाति[1]—वि० [सं०] १ जाति से निकला हुआ। जाति से वाहर। जातिरहित । पतित । पक्तिच्युत। उ०—कहहु काह सुनि रीझिहु वर अकुलीनहिं। अगुन अमान अजाति मातुपितु हीनहिं —तुलसी ग्र०, पृ० ३३। २. जो जात या उत्पन्न न हो [को०]।

अजाति[2]—सज्ञा स्त्री० उत्पत्ति का अभाव। अनुत्पत्ति [को०]।

अजाती[1]—वि० [सं० अजाति] दे० 'अजाति'। उ०—चद न सूर दिवस नहिं राती। वरन भेद नहिं जाति अजाती ।—कवीर सा०, पृ० २ ।

क्रि० प्र०—करना । जैसे—'उसको विरादरी ने अजाती कर दिया है।'—(शब्द०)।—होना।

अजाती[2]—सज्ञा पुं० जाति से अलग किया हुआ आदमी। जातिच्युत व्यक्ति।

अजाद(पु)—वि० [फा० आजाद] दे० 'आजाद'। उ०—हमैं नँदनदन मोल लिए। जम के फद काटि मुकराए, अभय अजाद किए। —सूर०, १।१७१ ।

अजादनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] जवास या जवासा का एक भेद [को०]।

अजादार--वि० [अ० अजा + फा० दार] मृत्युशोक करनेवाला । मातम मनानेवाला [को०] ।

अजादारी--संज्ञा स्त्री० [अ० अजा + फा० दार + ई (प्रत्य०)] शोक। मातम [को०] ।

अजान¹--वि० [सं० अज्ञान, प्रा० अजाण [स्त्री० अजानी] १ जो न जाने । अनजान । अबोध । अनभिज्ञ । अबूझ । नासमझ । उ०--(क) तुम प्रभु अजित, अनादि लोकपति, हौं अजान मतिहीन।--सूर०, १।१८१। (ख) भक्त अरु भगवत एक है बूझत नहीं अजान ।--कबीर (शब्द०) । २ न जाना हुआ । अपरिचित । अज्ञात । उ०--उसे दिखाती जगती का सुख, हँसी और उल्लास अजान ।--कामायनी पृ० ३० ।

अजान²-- संज्ञा पुं० १ अज्ञानता । अनभिज्ञता । उ०--(क) 'मुझसे यह काम अजान में हो गया।'--(शब्द०) । (ख) धीरे धीरे आती है जैसे मादकता आँखों के अजान में ललाई में ही छिपती ।--लहर, पृ० ७४ ।

विशेष--इसका प्रयोग इस अर्थ में 'में' के साथ ही होता है और दोनों मिलकर क्रियाविशेषणवत् हो जाते हैं । कहीं कहीं इसका स्वतत्र प्रयोग भी प्राप्त होता है, जैसे--'जान अजान नाम जो लेइ । हरि बैकुंठ वास तिहिं देइ ।--सूर०, ६।४।

२. एक पेड जिसके नीचे जाने से लोग समझते हैं कि बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । उ०--कोइ चदन फूलहिं जनु फूली । कोइ अजान बीरउ तर भूली ।--जायसी (शब्द०) ।

विशेष--यह पीपल के बराबर ऊँचा होता है और इसके पत्ते महुए के से होते हैं । इसमें लबे लंबे मौर लगते हैं ।

अजान³--संज्ञा स्त्री० [अ० अजान] वह पुकार जो प्राय मसजिद की मीनारों पर मुसलमानों को नमाज के समय की सूचना देने और उन्हें मसजिदों में बुलाने के लिये की जाती है । बाँग ।

मुहा०--अजान देना = (१) किसी ऊँचे स्थान या मसजिद का मीनार से उच्चस्वर में नमाज करने के समय की सूचना देना । (२) प्रात काल मुर्गे का बोलना । मुर्गे का बाँग देना।

अजानता--संज्ञा स्त्री० [सं०] अज्ञता । अजानपन । नासमझी । उ०--मोहि मेरे जिय की जनायबो अजानता है, जानराय जानत हीं सकल कला प्रवीन ।--घनानद, पृ० ३६ ।

अजानपन--संज्ञा पुं० [हिं० अजान + पन] (प्रत्य०)] अनजानपन । अज्ञानता । नासमझी । उ०--जो लोग औरों की निंदा सुनकर काँपते हैं वह आप भी अपने अजानपने में औरों की निंदा करते हैं' ।--श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३२६ ।

अजानि--संज्ञा पुं० [स०] १ बिना पत्नी का व्यक्ति । वह व्यक्ति जिसे पत्नी न हो । २ विधुर [को०] ।

अजानिक--संज्ञा पुं० [स०] १. गडेरिया । छागपालक । २ दे० 'अजानि' । [को०] ।

अजानी--वि० [हिं०] दे० 'अज्ञानी' । उ०--रानी मैं जानी अजानी महा पवि पाहन हू ते कठोर हियो है ।--तुलसी ग्र०, पृ० १६६ ।

अजानीय--वि० [स०] दे० 'अजानेय' । उ०--गाधार के दश नागरिकों का शिष्टदल दश अजानीय असाधारण अश्व और बहुत सी उपायन सामग्री देकर भेजा था ।--वैशाली०, पृ० १२३ ।

अजानेय¹--संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी नस्ल का घोडा [को०]।

अजानेय²--वि० अच्छी जाति का । ताकतवर। निर्भय (घोडा) ।

अजापक्व--संज्ञा पुं० [सं०] औषधि के लिये निर्मित एक प्रकार का घी [को०] ।

अजापालक--संज्ञा पुं० [सं०] गडेरिया । मेषपालक [को०] ।

अजापुत्र--संज्ञा पु० [सं०] बकरी का बच्चा । बकरा । उ०--नित्य एक अजापुत्र के भक्षण की सामर्थ्य आप में बढती जाय ।--भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ७३ ।

अजाब--संज्ञा पुं० [अ० अजाब] १ सजा । पीडा । यातना । उ०--कर अब तो रहम अजाब के बदले ।--भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०३ । २ पाप । कष्ट । प्रायश्चित्त । उ०--पलटू खुदा हक राह यही । और खाना अजाब है जी ।।--पलटू०, पृ०१०।

मुहा०--मोल लेना = व्यर्थ झझट में पडना ।

यौ०--अजाब के फरिश्ते = पापियों को दड देने के लिये नियुक्त यमदूत ।

अजामिल--संज्ञा पुं० [सं०] पुराण के अनुसार एक पापी ब्राह्मण का नाम जो मरते समय अपने पुत्र 'नारायण' का नाम लेकर तर गया ।

अजाय¹ (पु)--वि० [स० अ = कुत्सित + फा० जाय = जगह] बेजा । अनुचित । बुरा । उ०--द्वै सुत निर्धन देखि कै मातु कह्यो अनखाय । भए पुत्र द्वै रक मम, कीन्हों कत अजाय । --रघुराज (शब्द०) ।

अजाय²--वि० [स०] जायारहित । पत्नीविहीन [को०] ।

अजायब¹--संज्ञा पुं० [अ० 'अजब' का बहुवचन] अद्भुत वस्तु । विलक्षण पदार्थ या व्यापार । विचित्र वस्तु या कार्य ।

अजायब (पु)²--वि० अजीब । विचित्र । विलक्षण । उ०--अविगत रूप अजायब बानी । ता छवि का कहि जाई ।--भीखा श०, पृ० ३७।

अजायबखाना--संज्ञा पुं० [अ० अजायब + फा० खाना] वह भवन या घेरा जिसमें अनेक प्रकार के अद्भुत पदार्थ रखे जाते हैं । अद्भुत-वस्तु-सग्रहालय । म्यूजियम ।

अजायबघर--संज्ञा पुं० [अ० अजायब + हिं० घर] दे० 'अजायबखाना ।

अजायबी (पु)--वि० [हिं०] दे० 'अजायब²' । उ०--अग सुखमूल, रग रुचिर गुलाब फूल कोमल दुकुल तूलपूरित अजायबी ।--घनानद, पृ० २०६ ।

अजाया (पु)--वि० [स० अजातक] गतप्राण । मृत । मरा हुआ ।

अजार (पु)--संज्ञा पुं० [फा० आजार] १ रोग । बीमारी । उ०--कवकी अजब अजार में, परी बाम तन छाम । तित कोऊ मति लीजियो चद्रोदय को नाम ।--पद्माकर (शब्द०) । २. कष्ट । दु.ख (को०) । ३ दुर्व्यसन । लत (को०) ।

अजारा†--संज्ञा पुं० [अ० इजारा] दे० 'इजारा' । उ०--कृपण सतोष करैं नहीं लालच अक । सुपण बमीपण सूँ मिलै लिए अजारे लक ।--बाँकीदास ग्र०, भा० २, पृ० ३१ ।

अजावन (पु)--वि० [सं० अजायमान] न जनमनेवाला । उत्पन्न न होनेवाला । अजन्मा । उ०--(क) निरमल अभी क्राति अद्भुत छवि अकह अजावन सोई ।--कबीर श०, भा० ४, पृ० २६ । (ख) पुरुष अजावन रह्या जो देहा ।--कबीर सा०, पृ० १५३३ ।

अजि¹—वि० [सं०] चलनेवाला। गमन करनेवाला, जैसे—पदाजि = पैर से चलनेवाला [को०]।

अजि²—संज्ञा स्त्री० १ चलना की क्रिया या स्थिति। गति। २ फेंकने की क्रिया। फेंकना [को०]।

अजिग्राउर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजिऔरा'।

अजिऔरा⑤†—संज्ञा पुं० [सं०आर्यिका + पुर, प्रा० अज्जिया + औरा (प्रत्य०)] आजी या दादी के पिता का घर।

अजित¹—वि० [सं०] १. अपराजित। जो जीता न गया हो। उ०—इन्द्री अजित बुद्धि विषयारत मन की दिन दिन उलटी चाल।—सूर०, १।१२८। २ जो जीता न जा सके। अजेय (को०)।

अजित²—संज्ञा पुं० १ विष्णु। २ शिव। ३ बुद्ध। ४ विषघ्न ओषधि (को०)। ५ जहरीला मूसा (को०)। ६ प्रथम मन्वंतर के देवों की एक श्रेणी या वर्ग (को०)।

अजितनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के दूसरे तीर्थंकर का नाम।

अजितबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन संप्रदाय की एक देवी [को०]।

अजितविक्रम¹—वि० [सं०] अपराजित विक्रमवाला [को०]।

अजितविक्रम²—संज्ञा पुं० चंद्रगुप्त द्वितीय का एक नाम या विरद [को०]।

अजिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों वदी एकादशी का नाम जो व्रत का दिन है।

अजितात्मा—वि० [सं०] दे० 'अजितेंद्रिय' [को०]।

अजितापीड—वि० [सं० अजितापीड] अजेय मुकुटवाला। बेजोड़ मुकुट का [को०]।

अजितेंद्रि⑤—वि० [सं० अजितेन्द्रिय] दे० 'अजितेंद्रिय'। उ०—असुर अजितेंद्रि जिहि देखि मोहित भए, रूप सो मोहिं दीजै दिखाई। सूर०, १।४३७।

अजितेंद्रिय—वि० [सं० अजितेन्द्रिय] जिसने इंद्रियों को जीता न हो। जो इंद्रियों के वश में हो। इंद्रियलोलुप। विषयासक्त। उ०—कृपन दरिद्र कुटुंबी जैसे। अजितेंद्रिय दुख भरत हैं तैसे।—नंद० ग्रं०, पृ० २६१।

अजिन—संज्ञा पुं० [सं०] १ चर्म। चमड़ा। खाल। उ०—गज अजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरि कै।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४। २ ब्रह्मचारी आदि के धारण करने के लिये कृष्णमृग और व्याघ्र आदि का चर्म। उ०—अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।—मानस, २।२११। ३ चमड़े का एक प्रकार का थैला (को०)। ४ भाथी। धौंकनी (को०)। ५. छाल।

अजिनपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसके पंख अजिन की तरह सुश्लिष्ट हों। चमगादड़ [को०]।

अजिनपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजिनपत्री' [को०]।

अजिनपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़। गादुर [को०]।

अजिनफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाथी की तरह फलवाला एक प्रकार का वृक्ष [को०]।

अजिनयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] मृग। हिरन।

अजिनवासी—वि० [सं०] कृष्ण मृग का चर्म धारण करनेवाला [को०]।

अजिनसंध—संज्ञा पुं० [सं० अजिनसन्ध] मृगचर्म का व्यापारी। अजिन का व्यवसायी [को०]।

अजिर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ आँगन। सहन। उ०—घुटुरुनि चलत, अजिर महँ विहरत, मुख मंडित नवनीत।—सूर०, १०।६७। २ वायु। हवा। ३ शरीर। ४ मेढक। ५ इंद्रियों का विषय। ६ छछूँदर (को०)।

अजिर²—वि० शीघ्रगामी [को०]।

अजिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गा का एक नाम। २ वेगवती नदी [को०]।

अजिरीय—वि० [सं०] आँगन से संबधित। सहन या आँगन का [को०]।

अजिह्म¹—वि० [सं०] १. जो जिह्म या टेढ़ा न हो। सीधा। सरल। २ ईमानदार। सच्चा। खरा [को०]।

अजिह्म²—संज्ञा पुं० १ एक मछली। २ मेढक। दादुर [को०]।

अजिह्मग¹—वि० [सं०] सीधा चलनेवाला। टेढ़े मेढ़े न चलनेवाला [को०]।

अजिह्मग²—संज्ञा पुं० बाण। इषु [को०]।

अजिह्व¹—संज्ञा पुं० [सं०] मेढक। दादुर [को०]।

अजिह्व²—वि० जीभरहित। जिह्वाविहीन [को०]।

अजी—अव्य० [सं० अयि !] संबोधन शब्द। जी। जैसे—'अजी, जाने दो' (शब्द०)।

अजीकव—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का धनुष [को०]।

अजीगर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक ऋषि जो शुनःशेप के पिता थे। २ वह जो छिद्र में प्रविष्ट होता हो। साँप। सर्प [को०]।

अजीज¹—वि० [अ० अज़ीज़] प्यारा। प्रिय।

अजीज²—संज्ञा पुं० १ संबंधी। २ मित्र। सुहृद्।

क्रि० प्र०—करना = प्रिय समझना।—जानना या रखना = समान करना। प्रिय समझना।—होना = (१) प्रिय होना (२) कोई वस्तु देने में संकोच होना।

अजीजदार—संज्ञा पुं० [अ० अज़ीज़ + फा० दार] दे० 'अजीज' [को०]।

अजीजदारी—संज्ञा० स्त्री० [अ० अज़ीज़ + फा० दारी] १ मित्रता। दोस्ती। २ संबंध। रिश्तेदारी [को०]।

अजीटन—संज्ञा पुं० [अ० अडजुटेंट] सेना का एक सहायक कर्मचारी जो कर्नल या सेनापति को सहायता देता है।

अजीत¹—वि० [सं०] जो कुम्हलाया हुआ या मंद न हो [को०]।

अजीत²⑤—वि० [हिं०] दे० 'अजित'। उ०—जीति उठि जायगी अजीत पांडुपूतनि की, भूप दुरजोधन की भीति उठि जायगी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १४२।

अजीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समृद्धि। अभ्युदय। २. क्षय का अभाव [को०]।

अजीब—वि० [अ०] विलक्षण। विचित्र। अनोखा। अनूठा। आश्चर्यजनक। विस्मयकारक।

अजीब वो गरीब—वि० [अ० अजीब + फा० ओ + अ० गरीब] १ अनूठा। आश्चर्यजनक। २ दुष्प्राप्य [को०]।

अजीमुश्शान—वि० [अ० अज़ीम + उल् + शान] बहुत ही शानदार। उ०—'एक बड़ी अजीमुश्शान सुर्ख पत्थर की मस्जिद थी'।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५८।

अजीयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] कष्ट। पीड़ा। उ०—जो मुझे देवेगा अजीयत गम।—दक्खिनी०, पृ० २१८।

अजीरन१—वि० [सं० अजीर्ण प्रा० अजीरण] दे० अजीर्ण। उ०—होइ न कहूँ अनद अजीरन। तासो धरु धीरज चचल मन। —भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ६०७।

अजीरन२—सज्ञा पुं० दे० 'अजीर्ण'।

मुहा०—अजीरन होना = दुर्वह होना। कठिन होना।

अजीर्ण१—सज्ञा पुं० [सं०] १ अपच। अध्यसन। बदहजमी।

विशेष—प्राय पेट मे पित्त के बिगडने से यह रोग होता है जिससे भोजन नही पचता और वमन, दस्त शूल आदि उपद्रव होते हैं। आयुर्वेद मे इसके छह भेद बतलाए हैं —(१) आमाजीर्ण = जिसमे खाया हुआ अन्न कच्चा गिरे। (२) विदग्धाजीर्ण = जिसमे अन्न जल जाता है। (३) विष्टब्धाजीर्ण = जिसमे अन्न के गोटे या कडे बँधकर पेट मे पीडा उत्पन्न करते हैं। (४) रसशेषाजीर्ण = जिसमे अन्न पानी की तरह पतला होकर गिरता है। (५) दिनपाकी अजीर्ण = जिसमे खाया हुआ अन्न दिन भर पेट मे बना रहता है और भूख नही लगती। (६) प्रकृत्याजीर्ण या सामान्य अजीर्ण।

२ अत्यत अधिकता। बहुतायत (व्यग्य)। जैसे—'उमे बुद्धि का अजीर्ण हो गया है।'—(शब्द०)। ३ शक्ति। ताकत (को०)। ४, जीर्ण न होने का भाव। क्षयाभाव (को०)।

अजीर्ण२—वि० जो पुराना न हो। नया।

अजीर्णि—सज्ञा स्त्री० [सं०] बदहजमी [को०]।

अजीर्णी—वि० [सं०] अपच या अजीर्ण रोगवाला [को०]।

अजीर्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजीर्ण' [को०]।

अजीव१—सज्ञा पुं० [सं०] १. अचेतन। जीव तत्व से भिन्न जड पदार्थ। २ मृत्यु। मौत (को०)। ३ जैन मतानुसार जड जगत् (को०)। ४ अस्तित्वविहीनता (को०)।

अजीव२—वि० १ बिना प्राण का। मृत। २ जड (को०)।

अजीवकल्प—सज्ञा पुं० [सं० अजीव + कल्प] वह युग या काल जिस समय पृथिवी पर जीव नहो रहते थे। उ०—बहुत समय तक वह इतनी गर्म थी कि उसपर कोई जीव पैदा न हो सकता था, उस काल को अजीव कल्प (एजोइक एज) कहते हैं।—भारत० नि०, पृ० १८।

अजीवन१—वि० [सं०] जीविकाहीन। योगक्षेम की व्यवस्था से रहित [को०]।

अजीवन२—सज्ञा पुं० जीवन का अभाव। मृत्यु [को०]।

अजीवनि—सज्ञा स्त्री० [सं०] अस्तित्व का अभाव। मृत्यु [को०]।

अजीवित१—वि० [सं०] मृत। जीवनहीन [को०]।

अजीवित२—सज्ञा पुं० मृत्यु। अजीवन [को०]।

अजु㉎—अव्य० [हिं०] दे० 'और'। उ०—अति अत्र मौर तोरण अजु अबुज। कली सुमगल कलस करि।—वेलि०, दू० २३३।

अजुगत—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजगुत।'

अजुगति†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अजगुत'।

अजुगुत१㉎—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजगुत'। उ०—देखि देखि लोग हीय सब कूटा। भा अजुगुत दलगजन छूटा।—चित्रा०, पृ० १८६।

अजुगुत२㉎†—वि० [सं० अयुक्त] दे० 'अयुक्त'। उ०—तोर नयन एँ पथहु न सचर अजुगुत बहु न जाइ।—विद्यापति०, पृ० ३८७।

अजुगुप्सित—वि० [सं०] जो निंदित, घृणित या बुरा न हो। जो नापसद न हो [को०]।

अजुष्टि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ आनद या प्रसन्नता का अभाव। २. असतुष्टि। निराशा [को०]।

अजूँ㉎†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अजौं', 'अजहूँ'। उ०—नसमुझै क्यों न अजूँ समझाऊँ मूल मती हिव भाया।—रघु० रू०, पृ० १६।

अजू㉎†—अव्य० [सं० अयि] सबोधन शब्द। 'अजी!' का ब्रज रूपातर। उ०—जीतौ जौ चहै अजू तौ रीतौ घरो लै चलु नहीं तौ नहीं तो सिर अजस वै परे मरै।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ११०।

अजूजा㉎—सज्ञा पुं० [देश०] बिज्जू की तरह का एक जानवर जो मुर्दा खाता है। उ०—कहुँ कवि दूलह समुद्र बढे सोनित के जुग्गिनि पर्गैं फिरै जबुक अजूवा मे।—दूलह (शब्द०)।

अजूनी㉎—वि० [सं० अयोनि] उत्पन्न न होनेवाला। अजन्मा। उ०—अमर अजूनी थिर घनी काल कर्म सिरि नाहि।—प्राण०, पृ० १०६।

अजूब㉎—वि० [अ० अजूबह्] दे० 'अजूबा'। उ०—वाकिफ हो सो गमि लहै वाजिब मजून अजूब।—कबीर ग्र०, पृ० ३०।

अजूबा१—वि० [अ० अजूबह्] अद्भुत। अनोखा। अनूठा।

अजूबा२—सज्ञा पुं० अनूठी वस्तु। अद्भुत चीज [को०]।

अजूरा㉎१—वि० [सं० अ + जुट = जोडना] १ बिना जुटा हुआ। पृथक्। अलग। जुदा। उ०—रहा जो राजा रतन अजूरा। केह क सिहासन केह क पटूरा।—जायसी (शब्द०)। २ अप्राप्त। अनुपस्थित।

अजूरा㉎२—सज्ञा पुं० [अ० अजूरह् = पारिश्रमिक] मजदूरी। भाडा। उ०—आठ पहर रहै ढाढ सोई है चाकर पूरा। का जानी केहि घरी हरी दै देइ अजूरा।—पलटू० बानी, भा० १, पृ० ४५।

यौ०—अजूरादार = भाडे या मजदूरी पर काम करनेवाला।

अजूह㉎—सज्ञा पुं० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ, जूम, जूह] युद्ध। लडाई। उ०—ताको जु हिमाऊँ साहि हूक्र। तासो पठान सो भयो अजूह।—सूदन (शब्द०)।

अजे㉎१—क्रि० वि० [सं० अद्यापि, प्रा० अज्जवि] आज भी। अभी भी। उ० —तेणि न राखी सासरइ अजे स मारू बाल।—ढोला०, दू० ११।

अजे㉎२—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० अजय'।

अजे㉎३—वि० [हिं०] दे० 'अजेय'। उ०—मुनि मानस पकज भृग भजे, रघुवीर महा रन धीर अजे।—मानस, ७।१४।

अजेइ㉎—वि० [हिं०] दे० 'अजेय'। उ०—कियौ सबै जगु कामबस जीते जिते अजेइ। कुसुमसरहिं सर धनुष कर अगहनु गहन न देइ।—बिहारी र०, दो० ४६५।

अजेतव्य—वि० [सं०] अजेय। जो जीता न जा सके [को०]।

अजेय१—वि० [सं०] न जीते जाने योग्य। जिसे कोई जीत न सके। उ०—द्विस्वभाव अश्लेष मे ब्राह्मण जाति अजेय।—राम च०, पृ० २६०।

अजय[२]—संज्ञा पुं० सुश्रुत में कथित एक विषघ्न घृत [को०]।

अजै[१]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजय'।

अजै(पु)[२]—वि० [हिं०] दे० 'अजेय'। उ०—हौं हार्यौ करि जतन विविध विधि अतिसै प्रबल अजै।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५०४।

अजैकपाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ एकादश रुद्र में से एक। २ उक्त रुद्र द्वारा अधिष्ठित पूर्वाभाद्रपदा नाम का नक्षत्र। ३ विष्णु [को०]।

अजैव—वि० [सं०] जीव से असंबंधित। जो जीव संबंधी न हो [को०]।

अजोख(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० जोखना] जो जोखा न जा सके। अमाप। उ०—लीन्हीं जिन मोल भाय चोखे। दीन्ही तुमको विपा अजोखे।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २१५।

अजोग(पु)—वि० [सं० अयोग्य, प्रा० अजोग] १ जो योग्य न हो। अनुचित। नामुनासिब। बे ठीक। उ०—सुनि यह बात अजोग जोग की ह्वै है समुद नदी वै।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २१०। २ अयुक्त। बेजोड़। बेमेल। उ०—जोगहि जोग मिलाइऐ हम या जाग भजाग।—सूर०, १०।३५२१। ३ नालायक। निकम्मा। उ०—पती नारी का देवता है, वह कैसा ही क्यों न हो, पर तिरिया उसको अजोग और बुरा नहीं कह सकती।—ठेठ०, पृ० ४३।

अजोगी(पु)—वि० [सं० अयोगी] जोग को न जाननेवाला। जोग से रहित। उ०—मूरख कायर और अजोगी सो ये नेक न पावै। चरण० बानी, भा० २, पृ० १२६।

अजोड(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + जोडना] जिसे जोडा न जा सके उ०—निभर भरं अजोड को जोडे।—प्राण०, पृ० ६४।

अजोत†—संज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + हिं० जोत] वह भूमि जो जोतने के उपयुक्त न हो। परती भूमि।

अजोतर—वि० [हिं० अजोता] स्वच्छंद। निरर्गल। उ०—आनँद घन पिय नई घमंड सों देन दरवारची टालत अजौं अजोतर।—घनानंद, पृ० २६०।

अजोता[१]—संज्ञा पुं० [सं० अयुक्त, प्रा० अजुत्त] चैत की पूर्णिमा का दिन। इस दिन बैल नहीं नाधे जाते।

अजोता[२]—वि० बिना जोता या नाधा हुआ। स्वच्छंद।

अजोनि(पु)—वि० [सं० अयोनि] जो योनि से उत्पन्न न हो। स्वयंभू। उ०—जम जस पुरुष प्रगटे अजोनि। कर खग्ग धनुष कटि लसै तोनि।—हम्मीर रा०, पृ० ११।

अजोन्य(पु)—वि० [सं० अयोनि] अयोनिज। स्वत संभूत। उ०—अजोन्य अनायास पाए अनादू। नमो देव दादू नमो देव दादू।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २४६।

अजोरना(पु)—क्रि० स० [हिं० हिं० अँजोर से नाम०] दे० 'अँजोरना'।

अजोष—वि० [सं०] अपरितोष। अतृप्ति [को०]।

अजौं(पु)†—क्रि० वि० [हिं० अजहुँ] अब भी। अद्यापि। अब तक। उ०—सघन कुंज छाया सुखद, सीतल सुरभि समीर। मन ह्वै जातु अजौं वहै उहि जमुना के तीर।—बिहारी र०, दो० ६०१।

अज्ज(पु)[१]—संज्ञा पुं० [सं० आर्य या अज] ब्रह्म। उ०—हूँ वंदो जाकूँ सदा सबकी सुणै पुकार। अज्ज कीट पर्यंत लो भय भजन भरतार।—राम० धर्म०, पृ० २५६।

अज्ज[२](पु)—क्रि० वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज] आज। उ०—जेहा सज्जण काल्ह था तेहा नाँही अज्ज।—ढोला०, दू० २१६।

अज्ज[३]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अज्झल' [को०]।

अज्जाण(पु)—वि० [सं० अज्ञान] दे० 'अजान'। उ०—गाफिल समझ रे अज्जाण। मार्थ राख पति कूँ जाण।—राम० धर्म०, पृ० १६६।

अज्जान(पु)—वि० [सं० आजान] घुटने तक लंबा। जानु पर्यंत लंबा उ०—राजीव नयन विशाल। अज्जानबाहु रसाल।—प० रा०, पृ० ७६।

अज्जुका—संज्ञा स्त्री [सं० 'आर्यिका' का प्राकृत रूप संस्कृत में गृहीत] वेश्या। वारवधू [को०]।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल रूपकों में प्राप्त होता है

अज्जूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अज्जुका [को०]।

अज्झटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामल की [को०]।

अज्झल—संज्ञा पुं० [सं०] १ जलता हुआ कोयला। अंगारा। २ ढाल [को०]।

अज्ञ[१]—वि० [सं०] १ अज्ञानी। ज्ञान रहित। २ जड। अचेतन। मूर्ख ३ अनजान नासमझ। नादान। उ०—तैनइ आपु तैसेइ लरिका, अज्ञ सबनि मति थोरी।—सूर०, १।८७१।

अज्ञ[२]—संज्ञा पुं० मर्ख मनुष्य। जड व्यक्ति। अनजान मनुष्य। नादान आदमी। उ० अज्ञ जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि विधि मोह मिटै सोइ करहू।—(शब्द०)।

अज्ञका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्ख औरत। नादान या अनजान स्त्री [को०]

अज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मूर्खता। नादानी। नासमझी। अजानपन। अनाड़ीपन। २ जडता। अचेतनता।

अज्ञताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अज्ञता + हिं० आई (प्रत्य०)] दे० 'अज्ञता'। उ०—अहो! अज्ञताई नीति मन मैं न आइए।—भक्तमाल (श्री०) पृ० ६६।

अज्ञत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अज्ञता' [को०]।

अज्ञा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आज्ञा'।—उ० (क) होइ अज्ञा बनवास तो जाऊँ।—जायसी (शब्द०)। (ख) गुरु को सिर पर राखिए चलिए अज्ञा माँही।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० २।

अज्ञाकारी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आज्ञाकारी'। उ०—तेऊ चाहत कृपा तुम्हारी। जिनके बस अनिमिष अनेक गन अनुचर अज्ञाकारी। सूर०, १।१६३।

अज्ञात[१]—वि० [सं०] १ बिना जाना हुआ। अविदित। अप्रकट। नामालूम। अपरिचित। उ०—किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना दूती सी तुम कौन।—झरना, पृ० २८। २ जिसे ज्ञान न हो। उ०—सो अज्ञात जोवन वर बाला।—नंद० ग्रं०, पृ० १२२। ३ अप्रत्याशित। आकस्मिक (को०)।

अज्ञात(पु)[२]—क्रि० वि० बिना जाने। अनजान में। उ०—अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाता। छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता।—मानस, १।२८५।

अज्ञातक--वि० [सं०] अविदित । अप्रसिद्ध । अज्ञात [को०] ।

अज्ञातकुल--वि० [सं०] जिसके वंश कुल आदि का पता न हो [को०] ।

अज्ञातचर्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] अज्ञातवास [को०] ।

अज्ञातजोवना (पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अज्ञातयौवना] दे० 'अज्ञातयौवना' । उ०--इहि परकार तिया जो लहिए । सो अज्ञातजोवना कहिए ।।--नंद ग्रं०, पृ० १४६ ।

अज्ञातनामा--वि० [सं०] १ जिसके नाम का पता न हो । जिसका नाम विदित न हो । २ जिसे कोई न जानता हो । अविख्यात । तुच्छ ।

अज्ञातपितृक--वि० [सं०] जिसके पिता का पता न हो । नामालूम बापवाला [को०] ।

अज्ञातपूर्व--वि० [सं०] जो पहले से जानकारी में न हो । जिसका पहले से ज्ञान न हो [को०] ।

अज्ञातयौवना--संज्ञा स्त्री० [सं०] मुग्धा नायिका के दो भेदों में से एक । जिसे अपने यौवन के आगमन का ज्ञान न हो ।

अज्ञातवास--संज्ञा पुं० [सं०] छिपकर रहना । ऐसे स्थान का निवास जहाँ कोई पता न पा सके, जैसे--'विराट के यहाँ पांडवों ने एक वर्ष अज्ञातवास किया था' (शब्द०) ।

अज्ञातस्वामिक (धन)--संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जिसके मालिक का पता न हो । जैसे, मार्ग में पड़ा हुआ या जमीन में गड़ा धन ।

अज्ञाता--वि० स्त्री० [सं० अज्ञात] जिसे ज्ञात न हो । मुग्धा । उ०--अज्ञाता--की केशराशि में इन्हें न कस कस बँधवाओ । वीणा, पृ० १ ।

अज्ञाति--संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो अपनी जाति या संबंध का न हो । अन्य जातीय व्यक्ति । परजात [को०] ।

अज्ञान[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ बोध का अभाव । जड़ता । मूर्खता । अविद्या । मोह । अजानपन । उ०--अज्ञान भला जिसमें सोह तो क्या, स्वयं अहं भी कब है ।--साकेत, पृ० ३१६ । २ जीवात्मा का गुण और उनके कार्यों से पृथक् न समझने का अविवेक । ३ न्याय में एक निग्रहस्थान । यह उस समय होता है जब प्रतिवादी के तीन बार कहने पर भी वादी किसी ऐसे विषय को समझने में असमर्थ हो जिसे सब लोग जानते हों ।

अज्ञान[2]--वि० ज्ञानशून्य । मूर्ख । जड़ । नासमझ । अनजान । उ०--मैं अज्ञान कछू नहिं समुझ्यौं, परि दुख पुंज सह्यौ ।--सूर० १।१८६ ।

अज्ञानकृत--वि० [सं०] १ अज्ञान से किया हुआ । अनजाने में किया हुआ । २ अज्ञान या मूर्खतावश किया हुआ [को०] ।

अज्ञानत--क्रि० वि० [सं०] अज्ञान या मूर्खता के कारण । मोहवश । २ अनजान में । नासमझी के कारण [को०] ।

अज्ञानता--संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्बोधता । जड़ता । मूर्खता । अविद्या । नासमझी । नादानी । उ०--'इन सब बातों में बहुत सी स्वार्थपरता और बहुत सी अज्ञानता मिली हुई है' ।--श्रीनिवास० ग्रं०, पृ० २०० ।

अज्ञानतिमिर--संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञानरूपी अंधकार । मोहरूपी अँधेरा [को०] ।

अज्ञानपन--संज्ञा पुं० [सं० अज्ञान + हिं० पन (प्रत्य०)] मूर्खता । जड़ता । नादानी । नासमझी । अजानपन ।

अज्ञानी--वि० [सं०] ज्ञानशून्य । मूर्ख । जड़ । अविद्याग्रस्त । अनाड़ी । नादान । नासमझ । अबोध ।

अज्ञेय--वि० [सं०] न जानने योग्य । जो समझ में न आ सके । बुद्धि की पहुँच के बाहर का । ज्ञानातीत । बोधागम्य ।

अज्ञेयवाद--संज्ञा पुं० [सं०] परमतत्व की ज्ञानातीत स्थिति या अज्ञेयता का प्रतिपादक मत [को०] ।

अज्ञेयवादी--वि० [सं०] अज्ञेयवाद का माननेवाला । अज्ञेयवाद का अनुयायी [को०] ।

अज्म--संज्ञा पुं० [अ०] संकल्प । दृढ निश्चय । उ०--यों अज्म किया था वह शैतान ता कर देवे काबा वीरान ।--दक्खिनी०, पृ० २२० ।

अज्यास (पु)--संज्ञा पुं० [सं० अध्यास = मिथ्याज्ञान, भ्रांति] अविश्वास । धूर्तपन । ठगहाई । उ०--जग ग्रासवास अज्यास दिन विदिन प्राण उदास ।--रा० रू०, पृ० ६८ ।

अज्यासुत (पु)--संज्ञा पुं० [सं० अजासुत] बकरा । उ०--बड़े ब्रह्म औ काध जनेऊ अज्यासुत कहँ मारी ।--सं० दरिया पृ० ११६ ।

अज्येष्ठ--वि० [सं०] १ जो सबसे जेठा न हो । २. जिसे बड़ा भाई न हो (को०) । ३ जो सवश्रेष्ठ न हो (को०) ।

अज्येष्ठवृत्ति--वि० [सं०] १ बड़े भाई का कार्य या व्यवहार न करनेवाला । २ उस व्यक्ति की तरह कार्य या व्यवहार करनेवाला । जिसे बड़ा भाई न हो [को०] ।

अज्यों (पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अजों' ।

अज्र--संज्ञा पुं० [अ०] भलाई का बदला । प्रत्युपकार [को०] ।

अज्वाल--वि० [अ + ज्वाल] ज्वालाविहीन । लपटरहित । ज्वालारहित । लपटविहीन । उ०--ज्वाल उपजावन अज्वाल दरसावन मुमाल यह पावक न जावक दिढाए हौ ।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १२८ ।

अझर (पु)--वि० [सं० अ = नहीं + झरना = गिरना] जो न झरे । जो न गिरे । जो न बरसे । उ०--चलि सुकेलि घर घन अझर कारी निसी सुखदानि । कामिनि सोभा खानि तूँ, दामिनि दीपति बानि ।--स० सप्तक, पृ० २४३ ।

अझुरना (पु)†--क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरुझना' । उ०--कामिनि कनक तला लपटाना । अझुरत सझुरत संत सुजान ।--सं० दरिया पृ० १२ ।

अझना (पु)[1]--संज्ञा पुं० [सं० अध्म = जलती हुई अग्नि] आग । अग्नि । उ०--दिलखत छाडी चौंस चारिक चिन्हारी करि, बारि दियौ हिय में उदेग को अझनो है ।--घनानंद पृ० १३८ ।

अझूना (पु)[2]--वि० [सं० अजीर्ण, प्रा० अजुण्ण = अजुन्न] जो जीर्ण न हो । जो सदा एक सा बना रहे । हमेशा एक सा रहनेवाला । उ०--तुम्हें बिन साँवरे ये नैन सूने, हिये मैं लै दिए बिरहा अझूनैं ।--घनानंद, पृ० १६७ ।

अझोरी (पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० दोल = झूलना] झोली । कपडे की लंबी थैली जो कंधे पर लटकाई जाती है । उ०--बोझरी सझोरी काँधे आँतिन्ह की सेली बाँधे, मूंड के कमंडल खपर किए कोरि कै ।--तुलसी (शब्द०) ।

अटवर--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट = अधिक, फा० अंबार = ढेर] अटाला । ढेर । राशि । उ० लागि गए अवर लौं अखिल अटवर पै, द्रुपदसुता को अजौं न अखूटयौ है ।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १११ ।

अट—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] शर्त। कैद। प्रतिबंध। रुकावट। उ०—तुम तो हर बात मे एक अट लगा देते हो।—(शब्द०)।

अटक[1]—संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+टिक=चलना अथवा सं० आ+टक=बंधन, अथवा सं० हठ+क (प्रत्य०), प्रा० *अटक] [क्रि० अटकना, वि० अटकाऊ] १ रोक। रुकावट। अड़चन। विघ्न। बाधा। उलझन। उ०—करि हियाव, यह सौंज लादि कै, हरि कै, पुर लै जाहि। घाट बाट कहुँ अटक होइ नहिं सब कोउ देहि निबाहि।—सूर०। (शब्द०)। २ संकोच। हिचक। उ०—तुमको जो मुझसे कहने में कोई अटक न हो तो मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ।—ठेठ० (शब्द०)। ३. सिंध नदी। ४ सिंध नदी पर एक छोटा नगर जहाँ प्राचीन तक्षशिला का होना अनुमान किया जाता है। ५ अकाज। हर्ज। बड़ी आवश्यकता।

क्रि० प्र०—पड़ना। उ०—ह्याँ ऊधो काहे को आए कौन सी अटक परी।—सूर (शब्द०)।

अटक[2]—वि० [सं० अट] घूमनेवाला। चक्रमणशील [को०]।

अटकन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अटक'।

अटकन बटकन—संज्ञा पुं० [देश०] छोटे लड़कों का एक खेल।

विशेष—इसमें कई लड़के अपने दोनों हाथों की उँगलियों को जमीन पर टेककर बैठ जाते हैं। एक लड़का सबके पंजों पर एक एक करके उँगली रखता हुआ यह कहता जाता है—'अटकन बटकन दही चटाकन, अगला भूले बागा भूले, सावन मास करेला फूले, फल फूल की बतियाँ बाबा गए गंगा, लाए सात पिय-लियाँ, एक पियाली फूट गई, नेवले की टाँग टूट गई, खड़ा मारूँ या छुरी।' पूरब में इसको इस प्रकार कहते हैं—'उक्का बुक्का तीन तलुक्का, लौवा लाठी चदन काठी, चदन लावैं दूली दूला, भादों मास करेला फूला, इजइल बिजइल पान फूल पचक्का जा।' जिस लड़के पर अंतिम शब्द पड़ता है वह छूटता जाता है। जो सबसे पीछे रह जाता है उसे चोर समझकर खेल खेला जाता है।

अटकना—क्रि० अ० [सं० अ=नहीं+टिक्=चलना] १ रुकना। ठहरना। अड़ना। उ०—(क) तुम चलते चलते अटक क्यो जाते हो?—(शब्द०)। २ फँसना। उलझना। लगा रहना। उ०—इहीं आस अटक्यो रहतु अलि गुलाब के मूल।—बिहारी र०, दो० ४३७। प्रेम में फँसना। प्रीति करना। उ०—फिरत जु अटकत कटनि बिनु, रसिक सुरस न खियाल। अनत अनत नित नित हितनु, चित सकुचत कत लाल।—बिहारी र०, दो० ५२८। ४ विवाद करना। झगड़ना। उलझना। उ०—जब गजराज ग्राह सों अटक्यौ, बली बहुत दुख पायो। नाम लेत ताही छिन हरि जू गरुड़हिं छाँड़ि छुड़ायो।—सूर०, १।३२।

अटकर†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अटकल'। उ०—(क) जैसें तैसें ब्रज पहिचानत। अटकरही अटकर करि मानत।—सूर०, १०५० (राधा०)। (ख) अपनी अपनी सब कहैं अटकर परै न कोई।—सुदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७६०।

अटकरना(पु)—क्रि० स० [हिं० 'अटकर' से नाम०] दे० 'अटकलना'। उ०—बार बार राधा पछितानी। निकसे स्याम सदन तैं मेरे इनि अटकरि पहिचानी।—सूर (शब्द०)।

अटकल—संज्ञा स्त्री० [सं० अट=घूमना+कल्=गिनना] १. अनुमान। कल्पना। २ अंदाज। तखमीना। कूत। उ०—वह करोड़ों रुपए के अटकल अकेले दान विषय में व्यय करता है।—प्रेमघन० भा० २, पृ० २२८।

क्रि० प्र०—करना।—बैठना।—लगाना।

अटकलना†—क्रि० स० [हिं० 'अटकल' से नाम०] अटकल लगाना। अंदाज करना। अनुमान करना।

अटकलपच्चू[1]—संज्ञा पुं० [हिं० अटकल+देश० पच्चू=पकाना] मोटा अंदाज। कपोल कल्पना। अनुमान। जैसे—इस अटकलपच्चू से काम न चलेगा।—(शब्द०)।

अटकलपच्चू[2]—वि० अंदाजी। खयाली। ऊटपटाँग, जैसे—ये अटकलपच्चू बातें रहने दीजिए।—(शब्द०)।

अटकलपच्चू[3]—क्रि० वि० अंदाज से। अनुमान से। जैसे,—रास्ता नहीं देखा है, अटकलपच्चू चल रहे हैं।—(शब्द०)।

अटकलबाज—वि० [हिं० अटकल+फा० बाज (प्रत्य०)] अंदाज लगानेवाला। निराधार बात करने में निपुण।

अटकलबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटकल+बाजी] अंदाज लगाना। कल्पना करना।

अटका[1]—संज्ञा पुं० [सं० अट=खाना, उड़ि० आटिका] जगन्नाथ जी को चढ़ाया हुआ भात जो दूर देशों में भी सुखाकर प्रसाद की भाँति भेजा जाता है। जगन्नाथ जी के भोग के निमित्त दिया हुआ धन। उ०—अटका द्विशत रुपैया केरो। तुमहिं चढ़ैहौं अस प्रण मेरो।—रामरसिक०, पृ० ८५४।

अटका†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] दे० 'अटक'।

अटकाना—क्रि० स० [हिं० 'अटकना' का प्रे० रूप] [संज्ञा अटकाव] १ रोकना। ठहराना। अड़ाना। लगाना। उ०—गए तबहिं तें फेरि न आए। सूर स्याम वै गहि अटकाए।—सूर०, १०।२२७८। २ फँसाना। उलझाना। उ०—तबहिं स्याम इक बुद्धि उपाई। जुवती गई घरनि सब अपनैं गृह कारज जननी अटकाई।—सूर०, १०।३८३। ३. डाल रखना। पूरा करने में विलंब करना। जैसे,—उस काम को अटका मत रखना।—(शब्द०)।

अटकाव—संज्ञा पुं० [हिं० अटक+आव] (प्रत्य०)] १ रोक। रुकावट। प्रतिबंध। अड़चन। बाधा। विघ्न। उ०—था समर्पण में ग्रहण का एक सुनिहित भाव, थी प्रगति, पर अड़ा रहता था सतत अटकाव।—कामायनी, पृ० ८१। २ मासिक धर्म। उ०—ता पाछे कछूक दिन में सास को अटकाव भयो।—दो सौ बावन०, पृ० २९८।

अटखट(पु)—वि० [अनुध्व०] अट्टसट्ट। अंडबंड। टूटा फूटा। उ०—बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५५३।

अटखेली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अठखेली'।

अटट(पु)†—वि० [हिं० अटूट] निपट। नितांत।

अटन--संज्ञा पुं० [सं०] घूमना। चलना फिरना। डोलना। यात्रा। भ्रमण। उ०--चले राम वन अटन पयादे।--मानस, २।३१०।

अटना(पु)¹--क्रि० अ० [सं० अट् = चलना अथवा अटन] १ घूमना। चलना। फिरना। उ०--जीव जलथल जिते वेष धरि धरि तिते अटत दुरगम अचल भारे।--सूर०, १।१२०। २ यात्रा करना। सफर करना। उ०--जोग जाग जप विराग तप सुतीरथ अटत।--तुलसी ग्रं०, पृ० ५२०। ३ पूरा पड़ना। काफी होना। अँटना।

अटना²--क्रि० अ० [सं० उट = घास फूस अथवा हिं० ओट] पड़ना। आड़ करना। ओट करना। छेकना। उ०--(क) फर्टी जो घूँघट ग्राट अटै, सोइ दीठि फुरी गथिकौ जु घँमाई। --केशव (शब्द०)। (ख) नेकु अटे पट फूटन आँखि सु देखत हैं व्रज को व्रज लोगों।--केशव (शब्द०)।

अटनि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'अटन'। २ दे० 'अटनी'।

अटनी¹--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ धनुष के सिरे का वह भाग या पाँसा जहाँ प्रत्यंचा या डोरी बाँधी जाती है (को०)।

अटनी(पु)²--संज्ञा स्त्री० [सं० अटन = घूमना] अटन की क्रिया। कलाबाजी। उ०--जैसे बरत बाँस चढ़ि नटनी। वारबार करै तहाँ अटनी।--सुंदर० ग्रं०, भा० १ पृ० ६८।

अटपट--वि० [सं० अट = चलना + पत् = गिरना अथवा अनु०] [स्त्री० अटपटी। क्रि० अटपटाना] १ टेढ़ा। विकट कठिन। मुश्किल। दुरूह। २ गूढ़। जटिल। गहरा अगाध। उ०--सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।--तुलसी (शब्द०)। ३ ऊटपटाँग। अंड बंड। उलटा सीधा। बेठिकाने। उ०--अटपट आसन बैठि कै, गोधन कर लीन्हीं। धार अनत ही के देखि कै ब्रजपति हँसि दीन्हीं।--सूर० १०।४०६। ४ गिरता पड़ता। लड़खड़ाता। उ०--वाही की चित्त चटपटी धरत अटपटे पाइ।--बिहारी र०, दो० ३३।

अटपटा†--वि० [हिं०] दे० 'अटपट'।

अटपटाना--क्रि० अ० [हिं० अटपट से नाम०] १ अटकना। अटवड होना। लड़खड़ाना। घबराना। उ०--आलस ई भरे नैन, बैन अटपटात जात, ऐंडात जम्हात गात अंग मोरि बहियाँ मेलि।--सूर (शब्द०)। २ हिचकना। संकोच करना। आगा पीछा करना। जैसे--आप कहने में अटपटाते क्यों हैं ?--(शब्द०)।

अटपटी(पु)¹--संज्ञा स्त्री० [हिं० अटपट + ई (प्रत्य०)] नटखटी। अनरीति। उ०--सूधे दान न काहे लेत। और अटपटी छाँड़ि नंदसुत रहहु कँपावत वेत।--सूर०, १०।१४६८।

अटपटी²--वि० [हिं० अटपट] बेढंगी। उलटी सीधी। उ०--मधुकर छाँडि अटपटी बातें।--सूर०, १०।३५४७।

अटब्बर(पु)¹--संज्ञा पुं० [सं० आडम्बर] आडंबर। दर्प। उ०--बाँधत पाग अटब्बर की।--श्रीपति (शब्द०)।

अटब्बर(पु)²--संज्ञा पुं० [प० टब्बर = परिवार] खानदान। परिवार। कुटुंब। उ०--बब्बर के वंश के अटब्बर के रच्छक हैं तच्छक अलच्छन सुलच्छन के स्वच्छ घर।--सूदन (शब्द०)।

अटम--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट] ढेर। अंबार।

अटरनी--संज्ञा पुं० [अं० एटर्नी] १ एक प्रकार का मुख्तार जो कलकत्ता और बंबई हाइकोर्टों में मुअक्किलों से मुकदमे लेकर उन्हें ठीक करता है और उनकी पैरवी के लिये बैरिस्टर नियुक्त करता है। २ उच्च न्यायालयों में सरकारी मुकदमों की पैरवी करनेवाला वकील।

अटरिया‡(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं० अटारी + इया (प्रत्य०)] दे० 'अटारी'। उ०--पिया ऊँची रे अटरिया तोरी देखन चली।--कबीर ग्रं०, पृ० ५५।

अटरूप--संज्ञा पुं० [सं०] अड़ूसा नाम का क्षुप। वासक (को०)।

अटरूष--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अटरूप' (को०)।

अटरूषक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अटरूप' (को०)।

अटल--वि० [सं०] १ जो न टले। जो न डिगे। स्थिर। निश्चल। उ०--तुलसीस पवननंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करै।--तुलसी (शब्द०)। २ जो न मिटे। जो सदा बना रहे। नित्य। चिरस्थायी। उ०--करि कृपा दीन्ह करुनानिधि अटल मंदिर, थिर राज।--सूर (शब्द०)। ३ जो अवश्य हो। जिसका होना निश्चित हो। अवश्यंभावी। जैसे--यह बात अटल है, अवश्य होगी।--(शब्द०)। ४ ध्रुव। पक्का। जैसे--उनका इस बात में अटल विश्वास है।--(शब्द०)।

अटलस--संज्ञा पुं० [अं० ऐटलस] वह पुस्तक जिसमें पृथ्वी के भिन्न भिन्न भागों के मानचित्र हों।

अटवाटी खटवाटी--संज्ञा [अनु० अट० + हिं० खाट + पाटी] खाट खटोला। बोरिया बँधना। साज सामान।

मुहा०--अटवाटी खटवाटी लेकर पड़ना या लेना = खिन्न और उदासीन होकर अलग पड़ रहना। रूठकर अलग बैठना।

अटवि--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अटवी' (को०)।

अटविक--संज्ञा पुं० [सं०] जंगली। आटविक (को०)।

अटवी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जंगल। वन। उ०--अटवी हिंडोलने लगी, मस्ती सौरभ खोने लगी।--आकेन, पृ० ३४८। २ लंबा चौड़ा साफ मैदान।

अटवीबल--संज्ञा पुं० [सं०] वनवासियों की सेना।

अटसट(पु)†--वि० [अनु०] दे० 'अट्टसट्ट'।

अटहर(पु)¹--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट = ऊँचा ढेर, अटाला] १ अटाला। ढेर। २ फेंटा। लपेट। पगड़ी। उ०--आप चढ़ी शीश मोहिं दीन्हीं बकसीस मौ हजार शीश बारे की लगाई अटहर है।--(शब्द०)।

अटहर²--संज्ञा पुं० [हिं० अटक] कठिनाई। अड़चन अटकाव। दिक्कत।

अटा¹--संज्ञा स्त्री० [सं० अट्टा] घर के ऊपर की कोठरी या छत। अटारी। कोठा। उ०--छिनकु चलति, ठठुकति छिनकु, भुज प्रीतम गल डारि। चढ़ी अटा देखति घटा बिज्जु छटा सी नारि।--बिहारी र०, दो० ३८४।

अटा²--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट = अतिशय] अटाला। ढेर। राशि। समूह। उ०--ए री! बलबीर के अहीरन के भीरन में सिमिटि समीरन अबीर को अटा भयो।--पद्माकर (शब्द०)।

अटा³--संज्ञा स्त्री० [सं०] भ्रमणशीलता (संन्यासियों की भाँति)। भ्रमण की क्रिया। घूमना (को०)।

अटाउ(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट = अतिक्रमण करना + हिं० आउ (प्रत्य०)] १ विगाड। बुराई। २ नटखटी। शरारत। उ०—आप ही अटाउ कै ये लेत नाम मेरो, वे तो वापुरे मिलाप के सँताप कर देते हैं (शब्द०)।

अटागर--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट + आगार] समूह। अटाला। ढेर। उ०—हुआँ साँभिनी जुहार जुहार। पान अटागर काथ औ कार। —वीसल०, पृ० १८।

अटाटूट--वि० [सं० अट्ट = ढेर + हिं० अटूट अथवा सं० अट्ट + हिं० अटूट] नितांत। बिल्कुल।

अटाना¹--क्रि० स० [हिं० अटक = रोक, बाधा] रोक या बाधा आ पड़ना। उ०—आगे आइ सिंघु नियराना। पार जाइ कह गाढ अटाना।—इंद्रा०, २६।

अटाना²--क्रि० स० [हिं० अटना का प्र० रूप] किसी वस्तु को किसी वस्तु में समा देना। रखना अँटा देना।

अटारी--संज्ञा स्त्री० [सं० अट्टालिका] कोठा। दीवारों पर छत पाटकर बनाई हुई कोठरी। सबके ऊपर की कोठरी या छत। चौबारा। उ०—निबुकि चढेउ कपि कनक अटारी। भई सभीत निसाचर नारी।—मानस ५।२५।

अटाल--संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल] बुर्ज। धरहरा (डिं०)।

अटाला--संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल] १. ढेर। कूरा। राशि। अंबार। २ समान। असबाब। सामग्री। ३ कसाइयों की बस्ती या मुहल्ला।

अटाव--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट + हिं० आव (प्रत्य०)] १ वैर। वैमनस्य। द्वेष। २ शरारत। पाजीपन। दुष्टता। ३ अँटना। समाना। पूरा पड़ने का भाव।

अटित¹--वि० [सं० अटा] जिसमें अटा या अटारी हो। अटारीवाला।

अटित²--वि० [सं० अटन] घुमावदार। घूमा हुआ।

अटिहार(पु)--वि० [हिं० अटना + हार (प्रत्य०)] अँटनेवाला। पूरा पड़नेवाला। उ०—अटिहार कोई पूज्जै नहीं बल अभूत आतम करयौ।—पृ० रा०, २४।१६७।

अटी--संज्ञा स्त्री० [सं० अटी] एक चिड़िया जो पानी के किनारे रहती है। चहा।

अटूट--वि० [सं० अ = नहीं + त्रुट = टूटना] १ न टूटने योग्य। अखंडनीय। अछेद्य। दृढ। पुष्ट। मजबूत। २ जिसका पतन न हो। अजेय। ३ अखंड। लगातार। उ०—छूटै जटाजूट सौं अटूट गंगधार धौल मौलि सुधागार कौ अधार दरसत है।—रत्नाकर, भा० २, पृ० २१०।

अटेरन--संज्ञा पुं० [सं० अहिण्डन, प्रा० * अहिंडन * अइडरन * अटइरन * अटेरन, अथवा सं० अट = घूमना एकत्र करना] [क्रि० अटेरना] १. सूत की आँटी बनाने का लकड़ी का यंत्र। ओयना।

विशेष—६ इंच की एक लकड़ी के दोनों सिरों पर सूत लपेटने के लिये दो आड़ी लकड़ियाँ लगाई जाती हैं जो दोनों ओर प्राय तीन तीन इंच बढ़ी रहती हैं। इन लकड़ियों में से नीचे की लकड़ी कुछ बड़ी और ऊपर की लकड़ी पृष्ठ के बल रखे हुए धनुष के आकार की होती हैं।

मुहा०—अटेरन होना = हड्डी हड्डी निकलना। अत्यंत दुर्बल होना।

२ घोड़े को कावा या चक्कर देने का एक ढंग या तरीका। क्रि० प्र०—फेरना।

३ कुश्ती का एक पेंच।

मुहा०—अटेरन कर देना = दाँव में डालकर चकरा देना। दम न लेने देना।

अटेरना--क्रि० स० [हिं० अटेरन से नाम०] १ अटेरन से सूत की आँटी बनाना। २ मात्रा से अधिक मद्य या नशा पीना। जैसे,—क्या कहना है लाला जी खूब अटेरे हैं।—(शब्द०)।

अटोक(पु)--वि० [सं० अ + तर्क, प्रा० तक्क = टोकना] बिना रोक टोक का। उ०—(क) अह अटोक ड्योढी करी, रैठत बखत तमाम।—मतिराम (शब्द०)। (ख) मोद भरी ननदी अटोक टोना टारै लगी।—कविता कौ०, २।१०२।

अटोट(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अटूट'। उ०—चोली चारु छींट की छाजति उपमा देत अटूट।—सूर०, परि० १, पृ० ८५।

अटोप(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अटोप] दे० 'आटोप'। उ०—अलोप टोप कै अटोप चाइ चोप सो धरै —पद्माकर ग्रं०, पृ० २८४।

अट्ट (पु)--संज्ञा पुं० [सं० हट्ट = बाजार] १. हाट। बाजार। उ०—देव दपनि अट्ट देख सराहते।—साकेत, पृ० ३।

अट्ट²--संज्ञा पुं० [सं०] १ बुर्ज। उ०—अट्टों पर चढ चढकर सब ओर पथों में बढकर बढकर'—साकेत, पृ० १५२। अटारी। कोठा। ३ एक यक्ष का नाम। ४. प्राधान्य। अधिकता। अतिशयता। ५ पका हुआ चावल। भात। ६ भोज्य पदार्थ। ७ पहरा देने का ऊँचा स्थान या मीनार। ८ महल। प्रासाद। ९ रेशमी वस्त्र। १० दुर्ग में सेना के रहने का स्थान या भाग (को०)।

अट्ट³--वि० १ ऊँचा। २ शुष्क। सूखा। सुखाया हुआ। ३ उच्च स्वर से युक्त [को०]।

अट्टक--संज्ञा पुं० [सं०] १ छत के ऊपरवाला कमरा। बँगला। २. प्रासाद। महल [को०]।

अट्टट्ट--वि० [सं०] १ बहुत ऊँचा। २ बहुत जोर का [को०]।

अट्टट्ट हास--संज्ञा पुं० [सं०] बड़े जोर की हँसी। ठठाकर हँसना। क्रि० प्र०—करना।—होना।

अट्टन--संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का चक्र की आकृति का अस्त्र। २ अपमान। अवमानना। उपेक्षा। तिरस्कार [को०]

अट्टसट्ट--वि० [अनु०] १ ऊटपटांग। अंडबंड। जैसे—तुम तो सदा यों ही अट्टसट्ट बका करते हो।—(शब्द०)। २ बहुत ही साधारण या निम्न कोटि का। इधर उधर का। जैसे,—उसकी कोठरी में बहुत सा अट्टसट्ट सामान पड़ा है।—(शब्द०)।

अट्टहसित--संज्ञा पुं० [सं०] 'अट्टहास' [को०]।

अट्टहास--संज्ञा पुं० [सं०] ठहाका। जोर की हँसी। खिलखिलाना उ०- अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा।—मानस, ६। ३६। क्रि० प्र०—करना—होना।

अट्टहासक¹--संज्ञा पुं० [सं०] १ खिलखिलाकर हँसना। ठहाका। २. कुंद का फूल और पेड़।

अट्टहासक²--वि० जोर से हँसनेवाला। ठहाका मारकर हँसनेवाला।

अट्टहासी¹--संज्ञा पुं० [सं० अट्टहासिन्] शिव [को०]।

अट्टहासी²—वि० अट्टहास करनेवाला [को०] ।

अट्टहास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अट्टहास' [को०] ।

अट्टा—संज्ञा पुं० [सं० अट्ट = बुर्ज] मचान ।

अट्टाट्ट हास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अट्टट्टहास'

अट्टाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपरी मंजिल का कोठा । २ बुर्ज । उच्च स्थान । ३ प्रासाद । महल [को०] ।

अट्टालक—संज्ञा पुं० [सं०] किले का बुर्ज ।

अट्टालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अटारी । कोठा ।

अट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० अट्ट = घूमना, बढाना] १ अटेरन पर लपेटा हुआ सूत या ऊन । लच्छा । पोला । किरची । २ अंटा । उ०—जमदढ्ढ दट्टी । मनों नोन अट्टी ।—पृ० रा०, १०।२१ ।

अट्ठ—वि० [सं० अष्ट] आठ की संख्या । ८ । उ०—घन मिकार राजन करिय हुनि वराहु अनि अट्ठ ।—पृ० रा०, २४।३५१ ।

अट्ठा—संज्ञा पुं० [सं० अष्टक, प्रा० अट्ठय] ताश का एक पत्ता जिसपर किसी भी रंग की आठ बूटियाँ होती हैं ।

अट्ठाइस—वि० [अप०] दे० 'अट्ठाईस' ।

अट्ठाइसवाँ—वि० [सं० अष्टाविंशतिम्, हिं० अट्ठाइस] जिसका स्थान सत्ताइसवें के उपरांत हो । क्रम या गिनती में जिसका स्थान अट्ठाइसवाँ हो ।

अट्ठाईस—वि० [सं० अष्टाविंशति, पा० अट्ठावीस; प्रा० अट्ठाईस, अप० अट्ठाइस] एक संख्या । बीस और आठ । २८ ।

अट्ठानबे—वि० [सं० अष्टानवति, पा० अट्ठानवति, प्रा० अट्ठाणवइ] एक संख्या । नब्बे और आठ । ९८ ।

अट्ठानबेवाँ—वि० [सं० अष्टानवतितम; देश० अट्ठानबे] जिसका स्थान सत्तानबे के उपरांत हो । क्रम या संख्या में जिसका स्थान अट्ठानबेवाँ हो ।

अट्ठारह—वि० [सं० अष्टादश, प्रा० अट्ठारस, अट्ठारह] दे० 'अठारह ।

अट्ठावन—वि० [सं० अष्टपञ्चाशत्, प्रा० अट्ठावण्ण, अट्ठावन्न] एक संख्या । पचास और आठ । ५८ ।

अट्ठावनवाँ—वि० [सं० अष्टपञ्चाशतम्, देश० अट्ठावन] जिसका स्थान सत्तावन के उपरांत हो । क्रम या संख्या में जिसका स्थान अट्ठावनवाँ हो ।

अट्ठासिवाँ—वि० [सं० अष्टाशीति, अप० अट्ठासि > हिं० अट्ठासी + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सत्तासिवें के उपरांत हो । क्रम या संख्या में जिसका स्थान अट्ठासिवाँ हो ।

अट्ठासी—वि० [सं० अष्टाशीति, अप० अट्ठासि, अट्ठासीइ] दे० 'अठासी' ।

अट्ठे—वि० [हिं० आठसे] आठगुना । जैसे, पाँच अट्ठे चालीस, सात अट्ठे छप्पन ।

अठंग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अष्टांग] अष्टांग योगी । उ०—उठत उरोजन उठाए उर ऐंठ भुज ओंठन अमेठें अंग आठ हू अठंग सी ।—देव (शब्द०) ।

अठ—वि० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ] आठ । (हिंदी समास में प्रयुक्त) जैसे—अठपतियाँ, अठपहला, अठकोना आदि ।

अठएँ—वि० [हिं०] दे० 'आठवाँ' । उ०—अठएँ आठ अष्ट कँवल में, उरध निरखै सोई ।—धरम०, पृ० ७७ ।

अठइसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अट्ठाइस] २८ गाहियों अर्थात् १४० फलों की संख्या जिसे फलों के लेनदेन में सैकडा मानते हैं ।

अठई(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टमी] अष्टमी तिथि । उ०—सतमी पूनिउँ वा सत्र आछी । अठईं अमावस ईसन लाछी ।—जायसी (शब्द०) ।

अठकठ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अटपट' । उ०—अठकठ नाज बरनि नहि जाई । सर्ग मो ठक एक मोहाई ।—भीखा श०, पृ० ७४ ।

अठकपाली—वि० [सं० अष्ट + कपाल] अठगुनी बुद्धिवाला । चतुर । धूर्त । चालाक । उ०—बड़े बड़े अठकपाली हमारे सामने अपना अठकपालीपन भूल गए ।—चुभते चौ० (भू०), पृ० २ ।

अठकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अठन्नी'² ।

अठकोन—वि० [हिं०] दे० 'अष्टकोण'² । उ०—अयुम अरघ रेख मञ्ज अठकोन अमलतर ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ६६० ।

अठकौशल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अठकौसल' ।

अठकौसल—संज्ञा पुं० [हिं० आठ + अं० कौंसिल] १ गोष्ठी । पंचायत । २ सलाह । मंत्रणा । उ०—हेरत फिरत बारिवृच्छ कहलाने सबै होति अठकौसल बुरगी औ अनाका मैं ।—रत्नाकर, भा० २ पृ० ११८ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

अठखेलपन—संज्ञा पुं० [सं० अष्टक्रीडा, या *अष्टखेल, प्रा० अठ्ठखेल, अट्ठखेल्ल] चंचलता । चपलता । चुलबुलापन ।

अठखेली—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टक्रीडा या *अष्टखेल, प्रा० अट्ठखेल, अट्ठखेल्ल] १ विनोद । क्रीडा । चपलता । कल्लोल । चंचलता । चुलबुलापन । २ मतवाली चाल । मस्तानी चाल ।

क्रि० प्र० —करना ।

मुहा०—अठखेलियाँ सूझना = चुलबुलापन करना । उ०—तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेजार बैठे हैं ।—कविता कौ०, भा०४, पृ० २६३ ।

अठताल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अष्टताल] १ एक प्रकार का गीत । उ०—यो अठतालो गीत उचारै, कहै मछ प्रभु गुण इक धारै ।—रघु० रू०, पृ० २०६ ।

विशेष—इसमें आठ चरण होते हैं । प्रथम तीन चरण चौदह चौदह मात्राओं के होते हैं और चौथा चरण दस मात्राओं का रहता है जिसके तुकांत में लघु गुरु रहता है । इसी प्रकार चार चरणों का दूसरा द्वाला बनाया जाता है । इसमें चौथे और आठवें चरण का तुकांत प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पंचम और सप्तम के साथ मिलता है । प्रथम द्वाले के प्रथम पद में अठारह मात्राएँ होती हैं ।

२ दे० 'अष्ठताल' । वाद्य । उ०—बाजत बेनु बिषान बाँसुरी डफ मृदंग अठताल ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६६ ।

अठत्तर—वि० [हिं०] दे० 'अठहत्तर' ।

अठन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अठ + अन्नी = आनावाली] १ सन् १९५६ तक भारत में प्रचलित आठ आने के मूल्य का सिक्का । २. पचास पैसे का सिक्का ।

अठपतिया—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टपत्रिका, पा० अट्टपत्तिका, प्रा० अट्ठपत्तिया, अठपत्तिया] एक प्रकार की पत्थर की नक्काशी जिसमें आठ दलों के फूल बनाए जाते हैं ।

अठपहरा(पु)--वि० [सं० अष्टप्रहर] रात दिन का। आठो पहर का। लगातार। उ०--सवर तखत पर बैठ तूर अठपहरा बाजै पलटू०, पृ० ७५।

अठपहला--वि० [सं० अष्टपटल, पा० अट्ठपहल अथवा स० अष्ट+फा० पहल] आठ कोनेवाला। जिसमे आठ पार्श्व हो

अठपाव(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अष्टपाद, पा० अट्ठपाद; प्रा० अट्ठपाव] उपद्रव। ऊधम। शरारत। उ०--भूपन क्यो अफजल्ल वचै अठपाव कै सिंह को पाँव उमैठो।--भूषण ग्रं०, पृ० २५३।

अठवन्ना--संज्ञा पुं० [सं० अट=घूमना+वन्धन] वह बाँस जिसपर जुलाहे करघे की लवाई से बढा हुआ ताने का सूत लपेट रखते हैं और ज्यो ज्यो बुनते जाते हैं उसपर से सूत खीचते जाते हैं।

अठमासा[१]--संज्ञा पुं० [सं० अष्टमासिक, प्रा० अट्ठ+मासअ] १ वह खेत जो आषाढ से माघ तक समय समय पर जोता जाता रहे और जिसमे ईख वोई जाय। अठवाँसा। २ गर्भ के आठवें मास मे होनेवाला सीमत सस्कार। ३ आठ मास पर होनेवाला प्रसव।

अठमासा[२]--वि० दे० 'अठवाँसा'।

अठमासी--संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टमाश] आठ माशे का सोने का सिक्का। सावरेन। गिनी।

अठयी(पु)--वि० [हिं०] दे० 'आठवाँ'। उ०--अठयो गर्भ सु तेरो हता। --नद० ग्रं०, पृ० २२१।

अठलाना(पु)--क्रि० अ० [हिं० ऐंठ+लाना] १. ऐंठ दिखाना। इतराना। गर्व जताना। ठसक दिखाना। उ०--काहे को अठिलात कान्ह, छाँडी लरिकाई।--सूर (शब्द०)। २. चोचला करना। नखरा करना। उ०--जैये चले अठिलैये उतै इत कान्ह ! खरी वृषभानुकुमारि है।--सभु (शब्द०)। ३ मदोन्मत्त होना। मस्ती दिखाना। उ०--देखौ जाय और काहू को हरि पै सवै हरित मँडरानी। सूरदास प्रभु मेरो नान्हो तुम तरुणी डोलति अठिलानी।--सूर (शब्द०)। ४ छेडने के लिये जान बूझकर अनजान बनना।

अठवना(पु)--क्रि० अ० [सं० आस्थापन, पा० ठान=ठहराव अथवा सं० आस्थान] जमना। ठनना। उ०--मैं आवत या थान दुग की होय तयारी। करो मोरचा सवै तोपखानो सव जारी। सव जारी करि देहु सत्रु आवत है अठयो। सिंह वहादुर पास सॉडिया को लिख पठयो।--सूदन (शब्द०)।

अठवाँस[१]--संज्ञा पुं० [स० अष्टपार्श्व] अठपहली वस्तु। अठपहले पत्थर का टुकडा।

अठवाँस[२]--वि० अठपहला। अठकोना।

अठवाँसा[१]--वि० [स० अष्टमास, पा० अट्ठमास] वह गर्भ जो आठ ही महीने मे उत्पन्न हो जाय।

अठवाँसा[२]--संज्ञा पुं० १. सीमत सस्कार। २. वह खेत जो आषाढ से माघ तक समय समय पर जोता जाता रहे और जिसमें ईख वोई जाय। अठमासा।

अठवारा--संज्ञा पुं० [स० अष्ट, प्रा० अट्ठ>अठ+स० वार] १. आठ दिन का समय। पक्ष का आधा भाग। सप्ताह। हफ्ता। २. अनिश्चित दिनो तक। उ०--नहिं घन अठवारन लौं वैसी झरी लगावै।--प्रेमघन०, पृ० ५५१।

अठवारी--संज्ञा स्त्री० [स० अष्ट, प्रा० अट्ठ अठ+स० वार+हिं० ई (प्रत्य०)] वह रीति जिसके अनुसार असामी जोताई के समय प्रति आठवे दिन अपना हल बैल जमींदार का खेत जोतने के लिये देता है।

अठवाली--संज्ञा स्त्री० [हिं० अठ+वाली] १ वह लकडी का टुकडा जो किसी भारी चीज में बाँधा जाता है और जिसमे सेंगरे लगाकर पेशराज लोग उस भारी चीज को उठाते हैं। २ वह पालकी जिसे आठ कहार उठाते है। अठकरी।

अठसठ-- वि० [हिं०] दे० 'अटसठ'। उ०--अठसठ तीरथ मध के वरनन कोट गया और कासी।--कवीर श०, पृ० ७८।

अठसिल्या(पु)--संज्ञा पुं० [स० अष्टशिला, पा० अट्ठसिला] सिंहासन। उ०--देखि सखिन हँसि पाँव पखारे। मणिमय अठसिल्या वैठारे।--विश्राम (शब्द०)।

अठहत्तर--वि० [स० अष्टसप्तति, प्रा० अठहत्तरि] एक सख्या। सत्तर और आठ। ७८।

अठहत्तरवाँ--वि० [हिं० अठहत्तर+वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सतहत्तरवें के उपरात हो। क्रम या सख्या मे जिसका स्थान अठहत्तरवाँ हो।

अठाई(पु)--वि० [स० अस्थायी अथवा स० अ+स्थानिक] उपद्रवी। उत्पाती। शरीर। उ०--हैं हरि आठहु गाँठ अठाई।--केशव (शब्द०)।

अठान(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+हिं० ठानना] १ न ठानने योग्य कार्य। अकरणीय कर्म। अयोग्य या अनुचित कर्म। उ०--(क) तजतु अठान न, हठ परयो सठमति, आठौ जाम।--विहारी र०, पृ० १७०। (ख) हनुमान परोसिन हूँ हित की कहती तो अठान न ठानती मैं।--हनुमान (शब्द०)। २ वैर। शत्रुता। विरोध। झगडा। उ०--खाँ सगै करत उमगै ठानि अठान पठान चढै।--सूदन (शब्द०)।

अठाना(पु)[१]--क्रि० स० [सं० अर्ति= पीडा, प्रा० अट्टि+अट्ट से नाम०] १ सताना। पीडित करना। उ०--प्राजु सुन्यो अपने पिय प्यारे को काम महा रघुनाथ अठाए।--रघुनाथ (शब्द०)।

अठाना(पु)[२]--क्रि० स० [सं० स्थान= स्थिति, ठहराव, ठानना, प्रा० ठान] मचाना। ठानना। जमाना। छेडना। उ०--(क) जानि जुद्ध अमनेक अठायो। तहवर खाँ इहि देस पठायो।--लाल (शब्द०)। (ख) घासहरे था कुँवर जी रन रग अठाया। तिस कागज के वाँचते सूरज मुसकाया।--सूदन (शब्द०)।

अठानी(पु)--वि० [हिं० अठान+ई(प्रत्य०)] अयोग्य या अनुचित कार्य करनेवाला। उ०--द्रोन के प्रवोध दुरवोध दुरजोधन के आयु औधि दिवस जयद्रथ अठानी के।--रत्नाकर, भा० २,पृ० १४५।

अठार(पु)--वि० [सं० अष्टादश, हिं० अठारह, अट्ठार] अठारह की सख्या। दस और आठ। १८। उ०--प्रब्व अठार सवालष लष्षं, तो भारय गुर तत्त विसप्पं।--पृ० रा०, १।८७।

अठारह[१]--वि० [सं० अष्टादश, पा० अट्ठादस, प्रा० अट्ठारस, अट्ठारह] एक सख्या। दस और आठ। १८। उ०--पदुम अठारह जूथप वदर।--मानस, ५।५५।

अठारह[२]--संज्ञा पुं० १ काव्य मे पुराणसूचक संकेत या शब्द। २. चौसर का एक दाँव। पासे की एक सख्या। उ०--डारि

पासा साधु संगति केरि रसना सारि। दाँव अबके परयो पूरो कुमति पिछली हारि। राखि सत्रह सुनि अठारह चोर पाँचों मारि।—सूर० (शब्द०)।

अठारहवाँ—वि० [सं० अष्टादशम, प्रा० अट्ठारसवें, अप० अट्ठारहवें, अट्ठारहवाँ] जिसका स्थान सत्रहवें के उपरांत हो। क्रम या गिनती में जिसका स्थान अठारह पर हो।

अठासिवाँ—वि० [सं० अष्टाशीति + हिं वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सत्तासिवें के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अठासिवाँ हो।

अठासी—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टाशीति, प्रा० अट्ठासीइ, अप० अट्ठासि] एक संख्या। अस्सी और आठ। ८८।

अठिलाना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० अठलाना। उ०—रहिमन निज मन की व्यथा मनहीं राखी गोय। सुनि अठिलैहैं लोग सब बाँटि न लैहैं कोय।—कविता कौ०, भा० १, पृ० १६५।

अठिल्ला—संज्ञा पुं० [सं०] प्राकृत का एक छंद। दे० 'अरिल्ल' (छं०)।

अठेल(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० ठेलना] बलवान्। मजबूत। जोरावर (डिं०)।

अठेसा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अट्ठाइस'। उ०—विनसत सबै मया बिस चारि अठसा। सो सब पलटू देखिया हम जैसे क तैसा।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६६।

अठोठ(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] ठाट। आडंबर। पाखंड। उ०—लाज के अठोट कै कै, बैठती न ओट दै दै, घूँघट कै काहे को कपट पट तानती। डारि देती डर कर ऐंचनी न कोय करि डीठै चोरि पीठि मोरि हौं न हठ ठानती।—देव (शब्द०)।

अठोतरसो—वि० [सं० अष्टोत्तरशत प्रा० अट्ठुत्तरसत] आठ के ऊपर सौ। एक सौ आठ।

अठोतरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टोत्तरी] एक सौ आठ दानों की जपमाला।

अठोर—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० ठोर] जिसमें धार न हो। कुद। भोंतरा। उ०—अठोर धार बलरसाति। मालती छिन में बरौंडा मेघमाला पानी हरिया।—दक्खिनी०, पृ० ३०।

अठौडी—संज्ञा पुं० [सं० अष्टपदी] एक प्रकार का आठ पैरोंवाला कीड़ा जो पशुओं के शरीर में लगता है।

अठौरा—संज्ञा पुं० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ, अठ + हिं० औरा (प्रत्य०)] लगे हुए पान के आठ बीड़ों की खोंगी।

अडग(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अडिग'। उ०—तपसीरो रूप धरो अततार्ई अडग कुटी गई सीत उठाई।—रघु० रू०, पृ० १३५।

अडग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अडगा'। उ०—धक्कों की धड़ाधड अड़ग की अड़ाअड में ह्वै रही कड़ाकड सुदतो की कड़ावड़ी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३०७।

अडँगबडँग†—वि० [हिं० अड़ग + बेढग] टेढ़ा मेढ़ा। अडबड। अव्यवस्थित। उ०—अडँग बडँग कर आत्मा मेटै मांची सूध।—दरिया० बानी, पृ० ३४।

अडगा—संज्ञा पुं० [हिं० अड + अग = (अगवाला) रुकावट डालने वाला] टाँग अड़ाना। अटकाव। रुकावट। अड़चन। हस्तक्षेप। उ०—क्रुद्ध ह्वै मलेच्छनि की सुद्धि के विरुद्ध बने जाल जे कुबुद्धि तनै उद्धत अड़गा को।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १६५।

अडड(पु)—वि० [सं० अदण्ड्य + द न दंड देने योग्य] १. अदंडनीय। जिसको दंड न दे सकें। २. निर्भय। निर्द्वंद्व।

अडबर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० आडंबर। उ०—(क) मुगल की माल दीन्हा। लाल पर ज्यान दीन्हा। छीन लीन्हा अरर अडबर जहाँ जैसो।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०१। (ख) धारि कै हिमत कै सजीले स्वच्छ अंबर को, अपने प्रताप को अडबर बढ़ाए लेति।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १२८।

अडमर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आडंबर'। उ०—घन अडमर घुघरिय झलमल जल हलहार।—पृ० रा०, १४।६५।

अड—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० हठ = जिद अथवा अट्ट = समाघात = प्रतियोग] [क्रि० अड़ना, अड़ाना, वि० अड़दार, अड़ियल] हठ। टेक। जिद। अड़न। अड़ने की स्थिति।

अडकाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अटकाना'।

अडग(पु)—वि० [हिं० अडिग + अग] अडिग। न डिगनेवाला। अटल। अचल।—(डिं०)। उ०—अजाधाराधिप दशमाथ रावण अडग महा ये आर नाराय मानो।—रघु० रू०, पृ० २०।

अडगडा—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. बैलगाड़ियों और सग्गड़ों आदि के ठहरने का स्थान। २. वह जहाँ बिक्री के लिये घोड़े, बैल आदि रहते हों।

अडगरिध(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अडगरिधू'।

अडगरिधू(पु)—वि० [हिं० अडिग + पु० रिधू] स्थिर (डिं०)।

अडगोडा—संज्ञा पुं० [हिं० अड = रोक + हिं० गोड = पाँव] एक लकड़ी का टुकड़ा जिसे एक सिरे पर छेदकर नटखट चौपायों के गले में बाँधते हैं जो दौड़ते समय उनके अगले पैरों में लगता है जिससे वे बहुत तेज भाग नहीं सकते। ठगुर। ठेंगुर। ठेंगना।

अडचन—संज्ञा पुं० [देश०] १ रुकावट। अटक। बाधा। आपत्ति। कठिनाई। दिक्कत। उ०—आगे चलकर इस काम में बड़ी बड़ी अड़चनें पड़ेंगी।—(शब्द०)।

अडचल†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अड़चन'। उ०—क्रोध, भय, जुगुप्सा और करुणा के संबध में साहित्यप्रेमियों को शायद कुछ अड़चल दिखाई पड़े।—रस०, पृ० २७३।

अडट(पु)—वि० [हिं० अ = नहीं + डाँट] डाँट से न रुकनेवाला। न दबनेवाला। उ०—अडटनि टटन सुदड बप्पि थिर करत अप्पवर।—पृ० रा०, ३।५५।

अड़डडा—संज्ञा पुं० [हिं० अड़ = टिकाव + डंडा] वह लकड़ी या बाँस का डंडा जिसके दोनों छोरों पर लट्टू बने रहते हैं। यह डंडा मस्तूल पर चिड़ियों के अड्डे की तरह बँधा रहता है और इसी पर पाल चढ़ाई जाती है।

अड़डपोपो—संज्ञा पुं० [देश०] १ सामुद्रिक विद्या जाननेवाला। हाथ देखकर जीवन की घटनाओं का बतलानेवाला। २ पाखंडी। धर्मध्वजी। झूठमूठ आडंबर करनेवाला। ३ वृथालापी। बकवादी। गप्पी।

अडतल—संज्ञा पुं० [हिं० आड़ + सं० तल] १. ओट। ओझल। आड़। २. छाया। शरण। ३. बहाना। हीला। उज्र।

मुहा०--अटतल पकडना या अडतल लेना = (१) पनाह लेना। शरण में जाना। (२) बहाना करना।

अडतालिस--वि० [हिं०] दे० 'अडतालीस'।

अड़तालिसवाँ--वि० [सं० अष्टचत्वारिंशत्, प्रा० अट्ठ = अत्तालिस < हिं० अडतालिस + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सैंतालीस के उपरात हो। क्रम या सख्या मे जिसका स्थान अडतालिसवाँ हो।

अडतालीस--वि० [सं० अष्टचत्वारिंशत्, प्रा० अट्ठचत्तालीस, अट्ठतालीस] एक सख्या। चालीस और आठ। ४८।

अडतीस--वि० [अष्टत्रिंशत् प्रा० अट्ठतीस, अठतीस] एक संख्या। तीस और आठ। ३८।

अडतीसवाँ- वि० [हिं० अडतीस + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सैंतीसवें के उपरात हो। क्रम या सख्या मे जिसका स्थान अड़तीसवाँ हो।

अडदार--वि० [हिं० अड + फा० दार (प्रत्य०)] १ अडियल। रुकनेवाला। उ०-- अली चली नवलाहि लै पिय पै साजि सिगार। ज्यो मतग अडदार को लिए जात गडदार --मतिराम (शब्द०)। २ ऐंडदार। मस्त। मतवाला। उ०--दावदार निरखि रिसानो दीह दलराय, जैसे गडदार अडदार गजराज को।--भूषण ग्र०, पृ० ६।

अडन--सज्ञा स्त्री० [हिं० अटना] अडने का भाव या क्रिया। अडने की स्थिति। उ०--साधु को ऐसा चाहिए ज्यो सिमु अडन अडै।--पलटू०, पृ० ५४।

अडना--क्रि० अ० [देश० अथवा सं० हठ, प्रा० अठ > हिं० अड से नाम०] १ रुकना। अटकना। ठहरना। उ०--इहि उर माखन चोर गडे। अब कैसे निकसत सुनि ऊधो तिरछे ह्वै जु अटे।--सूर०, १०।३७३१। २ हठ करना। टेक बाँधना। ठानना। उ०--बिरहा सेती मति अडै, रे मन मोर सुजान। --कबीर (शब्द०)।

अडपायल--वि० [हिं० अड + पाँव × ल (प्रत्य०)] जोरावर। बलवान् (डिं०)।

अडबग(पु)†--वि० पुं० [हिं० अडना + सं० वक्र, प्रा० वक = टेढा] १ टेढा मेढा। ऊँचा नीचा। अडबड। अटपट। उ०--बेद को न मानै ना पुरान भेद जानै कछु ठानै ठान आपने लबेद अडबगा की।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १९६। २ विकट। कठिन। दुर्गम। जैसे रास्ता अडबग है।--(शब्द०)। ३ विलक्षण। अनोखा। अद्भुत। उ०--नहिं जागत उपाय कछु लागत कुभकरण अडबगा।--रघुराज (शब्द०)।

अडबद--सज्ञा पुं० [हिं०] दे० आडबद। उ०--दया प्रेम का अडबद बाँधो आतम खोल लगाई।--कबीर श०, भा० ३, पृ० ४६१।

अडबड†--वि० [हिं० अटपट अथवा अडबड] टेढा। विकट। कठिन। मुश्किल। दुस्तर। उ०--आगमपुरी की है सँकरी गलियाँ अडबड है चढना।--कबीर श०, भा० १, पृ० ६७।

अडबल--वि० [हिं०] अडनेवाला। अडियल। हठी।

अडभग--वि० [हिं०] दे० 'अटबग'। उ०--मुल्कों पो चढके दुश्मन घाँतल मँचाया देखो अडभँगे पन से पडको मुर्दार आया देखो। --दक्खिनी० पृ० २६६।

अडभगी--वि० [हिं०] १. टेढा मेढा। अडबड। २ विकट। कठिन। दुर्गम। ३. विलक्षण।

अडर(पु)¹--वि० [सं० अ = नहीं + दर - भय] निडर। निर्भय। बेडर। बेखौफ। उ०--अडर भेष धरि चढत जो अगा।--कबीर सा०, पृ० ३०९।

अडर†²--सज्ञा पुं० [अं० आर्डर] राजकीय आदेश। राजाज्ञा। सरकारी आदेश।

अडव--सज्ञा पुं० [सं० औडव, ओडव] वह राग जिसमे षडज, गाधार मध्यम, धैवत और निषाद ये पाँचो स्वर आवें।

अडवा --सज्ञा पुं० [सं० अड्ड = रोक, बाधा] मनुष्य का आकार जो जानवरो को डराने के लिये खेत मे खडा किया जाता है। उ०--दरिया ऐसा भेष है जैसा अडवा खेत। बाहर चेतन की रहन, भीतर जड्ड अचेत।--दरिया० बानी, पृ० ३६।

अडवोकेट--सज्ञा पुं० [अं० ऐडवोकेट] वह वकील जिसे वकालतनामा दाखिल करने की जरूरत नही होती। निचले न्यायालयों से उच्च न्यायालय तक वादी या प्रतिवादी के पक्ष मे बहस करने का कानूनी अधिकार रखनेवाला व्यक्ति। वकील। अब सब वकील ऐडवोकेट होते हैं।

अडसठ--वि० [सं० अष्टषष्ठि, प्रा० अट्ठसट्ठि] एक सख्या। साठ और आठ की सख्या। ६८।

अडसठवाँ- वि० [हिं० अडसठ + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सडसठवें के उपरात हो। क्रम या सख्या मे जिसका स्थान अडसठवाँ हो।

अडहुल--सज्ञा पुं० [सं० ओण + फुल्ल, हिं० ओणहुल्ल] जपा या जवा पुष्प। देवी फल। गुडहर।

विशेष--इसका पेड ६-७ फुट तक ऊँचा होता है और पत्तियाँ हरसिंगार से मिलती जुलती होती हैं। फूल इसका बहुत बडा और खूब लाल होता है। इसके फूल मे महक (गंध) नहीं होती।

अडाअड--सज्ञा पुं० [हिं०] अडने का क्रिया या भाव। उ०--धक्को की धधाधध अडग की अडाअड मे ह्वै रहै कडाकड सु दतो की कडाकडी।--पद्माकर ग्र०, पृ० ३०७।

अड़ाक-- वि० [हिं०] अडनेवाला। अडियल। उ०--साहब सूम, अडाक तुरग, किसान कठोर, दिवान नकारो।--इतिहास, पृ० २०३।

अडाकी(पु)--वि० [हिं० अडाक] अडनेवाला। उ०--आखेटा मजबूत अडाकी जात किया खल जेर।--रघु० रू०, पृ० ६३।

अडाड¹--सज्ञा पुं० [हिं० आड] चौपायो के रहने का हाता जो प्राय बस्ती के बाहर होता है। लकडियो का घेरा जिसमे रात को चौपाए हाँक दिए जाते हैं। खरिक।

अडाड²--सज्ञा पुं० [हिं० दे० 'अडार']।

अडाड³--सज्ञा पुं० [अनु०] टूटने या गिरने की आवाज। उ०--एक ऊँचा टीले का टीला अडाड करके फट पडा।--सैर कु०, पृ० ३८।

अडान--सज्ञा पुं० [हिं० अड + आन (प्रत्य०)] १ रुकने की जगह। २ पडाव। वह स्थान जहाँ पथिक लोग विश्राम लें।

अडाना¹--सज्ञा पुं० [हिं० अडान] खडी या तिरछी लकडी जो गिरती हुई छत, दीवार या पेड आदि को गिरने से बचाने के लिये लगाई जाती है। डाट। चाँड़। थूनी। ठेवा टेका।

अडाना[2]—संज्ञा पुं० एक राग जो कान्हड़ा का भेद है।

अडाना[3]—क्रि० स० [हिं० अडाना] १ टिकाना। ठहराना। फँसाना। उलझाना। २ टेकना। डाट लगाना। ३ कोई वस्तु बीच मे देकर गति रोकना। जैसे,—पहिए मे रोडा अडा दे।—(शब्द०)। ४ ठूँसना। भरना। जैसे,—'इस बिल मे रोडा अडा दे—(शब्द०)। ५ गिरना। ढरकाना।

अडानी[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १ बडा पखा। उ०—बहु छत्र अडानी कलम धुज, रानत राजत कनक के।—गिरिधरदास (शब्द०)।

अडानी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अडाना] १ कुश्ती का एक पेंच। अडगा। दूसरे की टाँग मे अपनी टाँग अडाकर पटकने का दाँव। २ लकडी की रोक जो खिडकी या दरवाजे के पल्लो को रोकने के लिये लगाई जाती है।

अडायती—वि० [हिं० आड या अड+आयती (प्रत्य०)] [स्त्री० अडायती (ब्रज०)] जो आड करे। ओट करनेवाला। अडैतो। उ०—क्यो न गडि जाहु गाड गहिरी गडति जिन्हें गोरी गुरुजन लज निगड गडायती। ओडी न परति री निगोडिन की ओडी दीठि लागे उठि आगे उठि होत है अडायती।—देव (शब्द०)।

अडार[1]—वि० [सं० अराल] १ अडवाला। स्थिर रहनेवाला। उ०—जग डोलै डोलत नैनाहाँ। उलटि अडार जाहिं पल माहाँ।—जायसी ग्र० पृ० ४२। २ टेढा। तिरछा।

अडार[2]—संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल = बुर्ज, ऊँचा स्थान] १ समूह। राशि। ढेर। उ०—मम पितु अन्न अडार जुहायो। क्रम क्रम ते सब जनन बटायो।—विश्राम (शब्द०)। २ ईधन का ढेर जो बेचने के लिये रखा हो। ३ लकडी या ईधन की दूकान। ४ गायो भैंसो के रहने का घेरा या बाडा।

अडारना(पु)—क्रि० स० [हिं० डालना] डालना। देना। उ०—पीउ सुनत धनि आपु बिसारे। चित्त लखै तनु खाइ अडारे।—जायसी (शब्द०)।

अडाल—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य का एक भेद। चिडियो के पख की तरह हाथ फटफटाकर एक ही स्थान पर चक्कर काटना। मयूरनृत्य।

अडाव—संज्ञा पुं० [हिं० अड] १ स्तभ। आधार। २ ऊँचाई। उ०—राजमहलूं के अडाव अरस सेती अडे।—रघु० रू०, पृ० २३८।

अडिग(पु)—वि० [सं० अ = नहीं+हिं० डिगना] जो हिले डूले नही। निश्चल। स्थिर।

अडिग्ग—वि० [हिं०] दे० 'अडिग'। उ०—धीरजवत अडिग्ग जितेंद्रिय निर्मल ज्ञान गह्यो दृढ आदू।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ३८४।

अडियल—वि० [हिं० अडना+इयल (प्रत्य०)] १ रुकनेवाला। अड अडकर चलनेवाला। चलते चलते रुक जानेवाला। उ०—मधुवन अडियल टट्टू की तरह रुक गया।—तितली, पृ० २२९। २ सुस्त। काम मे देर लगानेवाला। मट्ठर। ३ जिद्दी। हठी।

अडिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० अडना] अड्डे के आकार की एक लकडी जिसे टेककर साधु लोग बैठते हैं। साधुओ की कुबडी या तकिया।

मुहा०—अडिया करना = जहाज के लगर की रस्सी खीचना।

अडिल्ल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरिल्ल'।

अडी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अडना] १ अडान। जिद। हठ। आग्रह। २ रोक।

क्रि० प्र०—करना = हिरन की तरह छलाँग मारना।

३ ऐसा अवसर जब कोई काम रुका हो। जरूरत का वक्त। मौका। ४. पासा या चौपड के खेल मे एक ही घर मे दो गोटियो के पहुँचने पर अन्य खेलाडियो की चालो का रुकना। उ०—चौरासी घर फिरै अडी पौ बारह नावौं।—पलटू०, पृ० ३४।

अडी[2]—वि० अडनेवाला। टेकी। जिद्दी।

अडीखभ(पु)—वि० [हिं० अडी + खभ] जोरावर। बली।—डिं०।

अडिठ—वि० [सं० अदृष्ट, पा० अदृष्ट, प्रा० अडिट्ठ] १ जो दिखाई न पडे। लुप्त। २ छिपा हुआ। अतर्हित। गुपचुप।

अडुक—संज्ञा पुं० [सं०] हिरन। मृग [को०]।

अडुचल—संज्ञा पुं० [सं०] हलचल का एक भाग [को०]।

अडूलना(पु)—क्रि० स० [देश० अथवा हिं० उँडेलना] ढालना। उडेलना। डालना। गिराना। उ०—जहाँ आठ हू भाँति के कज फूलैं। मनो नीर आकास तारे अडूलैं।—सूदन (शब्द०)।

अडूसा—संज्ञा पुं० [सं० अटरूष, प्रा० अठरूस] एक ओषधि विशेष।

विशेष—इसका पेड ३–४ फुट तक ऊँचा होता है। इसका पत्ता हलके हरे रग का आम के पत्ते से मिलता जुलता होता है। इसकी प्रत्येक गाँठ पर दो दो पत्ते होते हैं। इसके सफेद रग के फूल जटा मे गुथे हुए निकलते हैं जिनमे थोडा सा मीठा रस होता है जो कास, श्वास, क्षय आदि रोगो मे दिया जाता है।

अडैच—संज्ञा स्त्री० [देश०] शत्रुता। द्वेष। मनमुटाव।

अडैता(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अडायती'।

अडैल(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अडियल'। उ०—ऐल परी गैल मैं मतग मतवारनि की, भीड अडत अडैलनि तुरगा तरजत हैं।—हम्मीर० पृ० २४।

अडोर—संज्ञा पुं० [सं० आन्दोल = हलचल] तुमुल शब्द। शोर। गुल। दे० 'अदोर'। उ०—बाजन बाजे होय अडोरा। आवहि बहल हस्ति औ घोरा।—जायसी (शब्द०)।

अडोल—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० डोलना] १ अटल। जो हिले नही। निश्चल। उ०—प्रेम अडोलु डुलै नहीं, मुँह बोल अनखाई। चित उनकी मूरति बसी, चितवन माँहि लखाई।—बिहारी र० दो० ६३१। २ स्तब्ध। ठकमारा। उ०—त्यो पदमाकर खालि रही दृग बोलै न बोल अडोल दशा है।—पद्माकर ग्र०, पृ० १५१। ३ स्थिर। ध्रुव। उ०—मुख बोल कहत अडोल है गज बाजि देत अमोल है।—पद्माकर ग्र०, पृ० ६।

अडोस पडोस—संज्ञा पुं० [सं० प्रतिवेस (= पडोस) से वि० हिं० मू०] आसपास। करीब।

अडोसी पडोसी—संज्ञा पुं० [हिं० अडोस पडोस] आसपास का रहनेवाला। हमसाया।

अड्ड(पु)—वि० [देश० अड्ड = आडे आनेवाला] बाधा। रोक। आड। उ०—काल पहुँच्यो सीस पर नाहिन कोऊ अड्ड।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० २३३।

अड्डन—संज्ञा पुं० [सं० अड्डनम्] ढाल। एक प्रकार का शस्त्र। अट्टन [को०]।

अड्डा—संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल = ऊँची जगह] १ टिकने की जगह। ठहरने का स्थान। २ मिलने या इकट्ठा होने की जगह। ३ बदमाशों के मिलने या बैठने की जगह। ४ वह स्थान जहाँ सवारी या पालकी उठानेवाले कहार भाड़े पर मिलें। ५. रंडियों के इकट्ठा होने का स्थान या कुटनियों का डेरा जहाँ व्यभिचारिणी स्त्रियाँ इकट्ठी होती हैं। ६ केंद्र। प्रधान स्थान। जैसे—वही तो इन सब बुराइयों का अड्डा है (शब्द०)। ७ लकड़ी या लोहे की छड़ जो चिड़ियों के बैठने के लिये पिंजड़े के भीतर आड़ी लगाई जाती है। ८. बुलबुल, तोता आदि चिड़ियों के बैठने के लिये लोहे की एक छड़ जिसका एक सिरा जमीन में गाड़ने के लिये नुकीला होता है और दूसरे सिरे पर एक छोटी आड़ी छड़ लगी रहती है। ९ पचास आठ तह के कपड़े का गद्दा जिसको छीपी चौकी पर बिछाकर उसी के ऊपर कपड़ा रखकर छापते हैं। १० चौखूटा लकड़ी का ढाँचा जिसपर इजारबंद वगैरह बुने जाते हैं और कारचोबी का काम भी होता है। चौकठा। ११ चार हाथ लंबी, चार अगुल चौड़ी और चार अगुल मोटी लकड़ी जिसके किनारे पर बहुत सी खूँटियाँ, जिनपर बादले का ताना ताना जाता है लगी रहती हैं। १२ ऊँचे बाँस पर बँधी हुई एक टट्टी जो कबूतरों के बैठने के लिये होती है। कबूतरों की छतरी। १३ एक लंबा बाँस जो दो बाँसों को गाड़कर उनके सिरे पर आड़ा बाँध दिया जाता है। १४ लोहे या काठ की एक पटरी जो बीचोंबीच लगी हुई एक लकड़ी के सहारे पर खड़ी की जाती है। इसी पर सुनार सोने को टिकाकर खरादनेवाले खरादते हैं। १५ खेंडसाल में काम आनेवाला बाँस की टट्टी। १६ एक लकड़ी जो रेंहट में इसी अभिप्राय से लगाई जाती है कि वह उलटा न घूम सके। १७. जुलाहे का करघा। उन लकड़ियों का समूह जिनपर जुलाहे सूत चढ़ाकर कपड़ा बुनते हैं। १८ एक लकड़ी जिसपर नवार बुनकर लपेटी जाती है।

अड्डी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अड्डा] १ एक बरमा जिससे गटगटा आदि लंबी चीजों में छेद करते हैं। २ जूते का किनारा।

अड्रेस—संज्ञा पुं० [अ० एड्रेस] १ अभिनंदनपत्र। वह लेख या प्रार्थनापत्र जो किसी महापुरुष के आगमन के समय उसे संबोधन करके सुनाया जाय। २ पता। ठिकाना। ३ भाषण। वक्तृता।

अढउल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अड़हुल'।

अढतिया—संज्ञा पुं० [हिं० आढत + इया (प्रत्य०)] १ वह दुकानदार जो ग्राहकों या दूसरे महाजनों को माल खरीदकर भेजता है और उनका माल मँगाकर बेचता है। इसके बदले में वह कुछ कमीशन या आढत पाता है। आढत करनेवाला। आढत का व्यवसाय करनेवाला। २ दलाल। गुमेंट।

अढन(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] धाक। मर्यादा। उ०—चारिउ बरन चारि आश्रम हूँ मानत श्रुति की अढन —देवस्वामी (शब्द०)।

अढर(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० ढरना] न ढलनेवाला। उ०—अढर ढुरहि गढ दरहि मेर परभर सुपरहि भर।—पृ० रा०, ५५।८।

अढवना(पु)—क्रि० स० [सं० आ + √ज्ञा = बोध कराना, आज्ञापन, प्रा० आणपन] आज्ञा देना। कार्य मे नियुक्त करना। काम में लगाना। उ०—कैसे बरजो करन को समरनीति की बात। अति साहस के काम को अढवन हियो सकात।—उत्तरचरित (शब्द०)।

अढ़वायक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अढवना] वह जो दूसरों को काम में लगाता हो। दूसरों से काम लेनेवाला। उ०—पहिलेइ रचे चारि अढवायक। भए सब अढवैयन के नायक।—जायसी ग्र०, पृ० ३०६।

अढवैया(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अढ + वा + ऐया (प्रत्य०)] दे० 'अढवायक'। उ०—भे सब अढवैयन के नायक।—जायसी ग्र०, पृ० ३०६।

अढाई—वि० [सं० अर्धतृतीय, प्रा० अड्ढाइय] दो और आधा। ढाई। उ०—मुनि कह उचित कहत रघुराई। गएउ बीति दिन पहर अढाई।—मानस, २।२७७।

अढार(पु)†—वि० [सं० अ० = नहीं + हिं० ढरना = ढलना] १. किसी की ओर न ढलने या अनुरक्त होनेवाला। २ कठोर। निर्मोही निर्दय।

अढारटकी(पु)—संज्ञा पुं० [?] धनुष (डिं०)।

अढिया—संज्ञा स्त्री० [सं० आधानिका, प्रा० आढाइया > अढइया] १. काठ, पत्थर आदि का बना हुआ छोटा बरतन। २ काठ या लोहे का पात्र जिसमें मजदूरों के लटके गारा या कपसा उठाकर ले जाते हैं।

अढी(पु)—वि० [प्रा० अड्ढाई] ढाई। दो और आधे की संख्या। उ०—तिन झूझत निरखै गयौ अढी कोस चहुआन।—पृ० रा०, ६१।२२१६।

अढ़ुक—संज्ञा पुं० [देश०] ठोकर। चोट। उ०—फोरहिं सिल लोढा सदन लागे अढ़ुक पहार। कायर कूर कपूत कलि घर घर सहस डहार।—तुलसी ग्र०, पृ० १५१।

अढ़ुकना—क्रि० अ० [सं० आ = अच्छी तरह + टक = बंधन या रोक अथवा हिं० अढुक से नाम०] १ ठोकर खाना। उ०—अढ़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे। राम वियोग विकल दुख तीछे।—मानस, २।१४३। २ सहारा लेना। टेकना।

अढैया[1]—संज्ञा पुं० [हिं० अढाई, ढाई] १ एक तौल जो ढाई सेर की होती है। पसेरी का आधा। २ ढाई गुने का पहाड़ा।

अढैया[2]—संज्ञा पुं० [हिं० अढवना] काम करानेवाला। अढवैया।

अढौना—संज्ञा पुं० [हिं० अढवना] करने के लिये कहा गया या दिया हुआ काम। उ०—छोटा सा अढौना भी करेगी तो भुनभुना कर।—गोदान, पृ० ३०।

अणक[1](पु)—वि० [सं०] कुत्सित। निंदित। अधम। नीच (डिं०)।

अणक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

अणकरता†—वि० [स० अन्, प्रा० अण + हिं० करता] अकर्ता। निष्क्रिय। न करनेवाला। उ०—करता है सो करेगा दादू साखी भूत। कौतिगहारा ह्वै रह्या अणकरता औधूत।—दादू०, पृ० ४५७।

अणकीय—वि० [सं०] कुत्सित, निंदित, नगण्य, अधम आदि से संबंधित [को०]।

अणाद(पु) संज्ञा पुं० [सं० आनन्द] आनंद। उल्लास। चित्त की प्रसन्नता (डिं०)।

अणमणा(पु)--वि० [अन्यमनस्, प्रा० अण्ण + मण] १. अप्रसन्न। दुखित। नाराज। २ बीमार। रोगी (डिं०)।

अणरता(पु)--वि० [प्रा० अण + रत्त] जो अनुरक्त न हो। अनासक्त। उ०--अणरता सुख सोवणा रातै नींद न आइ।--कबीर ग्रं०, पृ० ५१।

अणरस(पु)--वि० [प्रा० अण + रस] दे० 'अनरस'। उ०--रस को अणरस अणरस को रस मीठा खारा होइ।--दादू०, पृ० ५५४।

अणव्य--संज्ञा पुं० [सं०] चीना, साँवाँ आदि धान्य उगाने का क्षेत्र [को०]।

अणसक(पु)--वि० [सं० अन् = नहीं + शंका = डर, प्रा० अण + संक] जो डरे नहीं। निर्भय। निःशंक। निडर (डिं०)।

अणास(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० अड़स] अड़स। कठिनाई (डिं०)।

अणि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कोर। नोक। मुनइँ। २ धार। बाढ़। ३ वह कील जिसे धुरे के दोनों छोरों पर चक्के की नाभि में इसलिये ठोकते हैं जिसमें चक्का धुरी के छोरों पर से बाहर न निकल जाय। धुरकीली। धुरी की कील। ४ सीमा। हद। सिवान। मेड़। ५ किनारा। ६ अत्यंत छोटा। ७ गाड़ी के बम के अगले सिरे पर लगी कीली या वाल्टू।

अणिमाडव्य--संज्ञा पुं० [सं० अणिमाण्डव्य] एक ऋषि का नाम जो एक कील या नोकीला डंडा चुभाए रहते थे जिनके कारण उनका यह नाम लोक में प्रसिद्ध हुआ [को०]।

अणिमा--संज्ञा स्त्री० [सं०] अष्ट सिद्धियों में पहली सिद्धि।

विशेष--इस सिद्धि के द्वारा योगी अणुवत् सूक्ष्म रूप धारण कर लेते हैं और किसी को दिखाई नहीं पड़ते। इसी सिद्धि के द्वारा योगी तथा देवता लोग अगोचर रहते है और समीप होने पर भी दिखाई नहीं देते तथा कठिन से कठिन अभेद्य पदार्थ में भी प्रवेश कर जाते हैं।

२ सूक्ष्मता। ३ अणुता या अणु का भाव।

अणिमादिक--संज्ञा स्त्री० [सं०] अष्टसिद्धियाँ--अर्थात् १ अणिमा, २ महिमा, ३ लघिमा, ४ गरिमा, ५ प्राप्ति, ६ प्राकाम्य ७ ईशित्व और ८. वशित्व।

अणियाली(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अणि = धार + हिं० याली = वाली (प्रत्य०)] कटारी (डिं०)।

अणी¹(पु)--सर्व० [देश०] अरी। अनी। एरी। हेरी। उ०--डोलती डरानी खतरानी वतरानी वेवे, कुड़ियन पेखी अणी मां गरुन पावा हाँ।--सूदन (शब्द०)।

अणी²--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अणि'।

अणीय--वि० [सं० अणु + ईयस् = अणीयस्] अतिसूक्ष्म। बारीक। झीना।

अणु¹--१ संज्ञा पुं० [सं०] द्वयणुक से सूक्ष्म, परमाणु से बड़ा कण जिसका बिना किसी विशेष यत्र के खंड नहीं किया जा सकता। २ ६० परमाणुओं का सघात या बना हुआ कण। ३ छोटा टुकड़ा। कण। ४ परमाणु। ५ सूक्ष्म कण। ६ रज। रजकण। ७. संगीत में तीन ताल के काल का चतुर्थांश काल। ८ अत्यंत सूक्ष्म मात्रा। ९. एक मुहूर्त का ५,४६,७५,००० वाँ भाग।

अणु²--वि० १ अतिसूक्ष्म। क्षुद्र। २ अत्यंत छोटा। ३ जो दिखाई न दे या कठिनाई से दिखाई पड़े।

अणुक--वि० [सं०] अणु संबंधी। अतिसूक्ष्म। उ०--अणुक द्वयणुक जड़ जीव आदि जितने हैं, देखा।--अनामिका, पृ० ३८। २ एक प्रकार का छोटे दानोंवाला अन्न (को०)। ३ चतुर (को०)।

अणुतर--वि० [सं०] बहुत बारीक या सूक्ष्म। कोमल [को०]।

अणुता--वि० [सं०] दे० 'अणुक' [को०]।

अणुतैल--संज्ञा पुं० [सं०] एक औषध का तेल [को०]।

अणुत्व--वि० [सं०] अतिसूक्ष्मता। अणु जैसी सूक्ष्मता [को०]।

अणुबम--संज्ञा पुं० [सं० अणु + अं० बॉम्ब] एक विनाशक अस्त्र। दे० 'परमाणु बम'।

अणुभा--संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली। विद्युत्।

अणुभाष्य--संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मसूत्र पर वल्लभाचार्य द्वारा कृत पुष्टिमार्गीय भाष्य [को०]।

अणुमध्यबीज--संज्ञा पुं० [सं०] एक मंत्र का नाम [को०]।

अणुमात्र--वि० [सं०] अणु के समान छोटे आकारवाला [को०]।

अणुमात्रिक--वि० [सं०] १ दे० 'अणुमात्र'। २ अणु के अंग या मात्रा से युक्त [को०]।

अणुरेणु--संज्ञा पुं० [सं०] आणविक या अणु संबंधी धूल जैसी सूर्य की किरणों में दिखाई पड़ती है [को०]।

अणुरेणुजाल--संज्ञा पुं० [सं०] आणविक धूलिकणों समूह [को०]।

अणुरेवती--संज्ञा स्त्री० [सं०] दंती नामक क्षुप। करोटन का वृक्ष [को०]।

विशेष--इसकी अनेक जातियाँ होती हैं और उनके पत्ते भी भिन्न भिन्न आकार तथा रंग के होते हैं।

अणुवत--संज्ञा पुं० [सं० अणुवन्त] बाल की भी खाल निकालनेवाला प्रश्न [को०]।

अणुवाद--संज्ञा पुं० [सं०] १ वह दर्शन या सिद्धांत जिसमें जीव या आत्मा अणु माना गया हो। वल्लभाचार्य का मत। २ वह शास्त्र जिसमें पदार्थों के अणु नित्य माने गए हों। वैशेषिक दर्शन।

अणुवादी--संज्ञा पुं० [सं० अणुवादिन्] १ नैयायिक। वैशेषिक शास्त्र का माननेवाला। २ वल्लभाचार्य का अनुयायी वैष्णव।

अणुवीक्षण--संज्ञा पुं० [सं०] जिसके द्वारा सूक्ष्म पदार्थ देखे जाते हैं। सूक्ष्मदर्शक यंत्र। खुर्दबीन। माइक्रोस्कोप। उ०--बिखर गया मानव का मन अणुवीक्षण पथ से।--युगपथ, पृ० १२०। २ बाल की खाल निकालना। छिद्रान्वेषण।

अणुवेदांत--संज्ञा पुं० [सं०] एक ग्रंथ का नाम [को०]।

अणुव्रत--संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार गृहस्थ धर्म का एक अंग।

विशेष--इसके ५ भेद हैं--(१) प्राणातिपात विरमण, (२) मृषावाद विरमण, (३) अदत्तदान विरमण, (४) मैथुन विरमण और (५) परिग्रह विरमण। पातंजलि योगशास्त्र में इनको 'यम' कहते हैं।

अणुव्रीहि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार धान जिसका चावल बहुत बारीक होता है और पकाने से बढ जाता है। यह खाने मे स्वादिष्ट होता है और महँगा बिकता है मोनीचूर।

अणुह—संज्ञा पुं० [सं०] विभ्राज के एक पुत्र का नाम [को०]।

अणोरणीयान्[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् के उस मत्र का नाम जिसके आदि में ये शब्द आते हैं। वह मत्र यह है—अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहित गुहायाम्। तमक्रतु पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमात्मन'।

अणोरणीयान्[2]—वि० १ सूक्ष्म से सूक्ष्म। अत्यत सूक्ष्म २. छोटे। से छोटा।

अतक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आतक'। उ०—सक सौ सिमिटि चित्त अक से भए हैं सबै वक अरि उर पै अनक इमि छायो है।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १४१।

अतका[1](पु)—वि० [आतङ्कित, प्रा० आतकिग्र] आतंकित। भयभीत। उ०—बाढी सीत सका कौपै कर ह्वै अतका।—गग ग्र०, पृ० २३६।

अतका[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आतक'। उ०—सोहै अज ग्रोडे जे न छोडे सीम सगर की लगर लँगूर उच्च ओज के अतका मे।—पद्माकर ग्र०, पृ० २२४।

अतत—वि० [हिं०] दे० 'अत्यत'। उ०—मन पछी सो एक है पारब्रह्म को अतत'—केशव० अमी०, पृ० १३।

अतत्र—वि० [सं० अ + तन्त्र] १ अनियत्रित। २ सिद्धातरहित। ३ तत्र या ततु से रहित [को०]।

अतत्रत्व—संज्ञा भा [सं० अतन्त्रत्व] अर्थराहित्य। अर्थशून्यता।

अतद्र—वि० [सं० अतन्द्र] १ तद्रारहित। सजग। २ सतर्क [को०]।

अतद्रमा(पु)—वि० [सं० अतन्द्रिम] तद्रारहित। निरालस्य। सजग। उ०—देत छवि को है कोकनद मे नदी मे कहो नखत विराजै कौन निसि मे अतद्रमा।—पद्माकर ग्र०, पृ० ८०।

अतद्रिक—वि० [सं० अतन्द्रिक] १ आलस्यरहित। निरालस्य। चुस्त। चचल। उ०—विखरि जात पखुरी गरूर जनि करि अतद्रिका'। सुकवि दसा सब ह्वै है हरि सिर मोरचद्रिका।—व्यास (शब्द०)। २ व्याकुल। विकल। बेचैन।

अतद्रित—वि० [सं० अतन्द्रित] आलस्यरहित। चपल। निद्रारहित चचल। उ०—पहुँच नहीं पाया जनमन का नीरव रोदन, हृदय सगीत रहा उच्छ्वसित अतद्रित।—रजत शि०, पृ० ११४।

अतद्रिल—वि० [सं० अतन्द्रिल] तद्राविहीन। अतद्र [को०]।

अत'—क्रि० वि० [सं०] इस कारण से। इस वजह से। इसलिये। इस वास्ते। इस हेतु। उ०—शुचिते, पहनाकर चीनाशुक, कर सका न तुझे अत दधिमुख।—अनामिका, पृ० ११०।

अत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अति'। 'सहचरि सरँत' मयक वदन को मदनमोहिनी अत है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३९४।

अतऊर्ध्वम्—अव्य० [सं०] इसके आगे या बाद मे [को०]।

अतएव—क्रि० वि० [सं०] इसलिये। इस हेतु से। इस वजह से। इसी कारण।

अतक—संज्ञा पुं० [सं०] यात्रा करनेवाला यात्री [को०]।

अतट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत का शिखर। चोटी। टीला। २. जमीन का निचला भाग। अतल [को०]।

अतट[2]—वि० तटहीन। खडी ढालवाला [को०]।

अतटप्रपात—संज्ञा पुं० [सं०] सीधा गिरनेवाला झरना [को०]।

अतत[1](पु)—वि० [सं० अतथ्य, अथवा अतत्त्व, प्रा० अतत्त] दे० 'अतथ्य'। उ०—चित्रग गव रावर कहै अतत मत मत्री कहै।—पृ० रा०, ५६।५०।

अतत[2](पु)—वि० [सं० अतत्त्व, प्रा० अतत्त] दे० 'अतत्व'। उ०—अतत निरसन कीजिए तौ द्वैत नहिं ठहराई।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ८४०।

अतताई(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आततायी'। उ०—तपसी रो रूप घरे अतताई अडग कुटो गइ सीत उठाई।—रघु० रू०, पृ० १३५।

अतत्व[1]—संज्ञा पुं० [सं० अ + तत्त्व] असार वस्तु [को०]।

अतत्व[2]—वि० साररहित। तत्वरहित [को०]।

अतथ्य—वि० [सं०] १ अन्यथा। झूठ। असत्य। अयथार्थ। २. अनद्वत्। असमान।

अतद्गुण—संज्ञा पुं० [सं०] एक अलकार जिसमे एक वस्तु का किसी ऐसी दूसरी वस्तु के विशिष्ट गुण को न ग्रहण करना दिखलाया जाय जिसके कि वह अत्यत निकट हो। जैसे—गगाजल सित अरु असित जमुना जलहु अन्हात। हस रहत तब शुभ्रता तैसिय बढि न घटात (शब्द०)।

अतद्वत्—वि० [सं०] जो उसके समान न हो [को०]।

अतद्वान्—वि० [सं०] अतद्वत्। असमान। जो (उसके) सदृश न हो।

अतन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अतनु] कामदेव। अनग। उ०—धूम धमारिन की मची अगन अतन उमग। अरी आज बरसत घनो ब्रजबीथिन रसरग।—स० सप्तक, पृ० ३६१।

अतनु—वि० [सं०] १ शरीररहित। बिना देह का। बिना अस का। उ०—रति अति दुखित अतनु पति जानी।—मानस १।२४६। २ मोटा। स्थूल।

अतनु[2]—संज्ञा पुं० अनग। कामदेव।

अतप—वि० [सं०] १. जो तप्त न हो। ठढा। शात। २. दिखावा न करनेवाला। आडबररहित। बेकार। निठल्ला [को०]।

अतप्त—वि० [सं०] १. जो तपा न हो। ठढा। २. जो पका न हो।

अतप्ततनु[1]—वि० [सं०] रामानुज सप्रदाय के अनुसार जिसने तप्तमुद्रा न धारण का हो। जिसने विष्णु के चार आयुधो के चिह्न अपने शरीर पर गरम धातु से न छपवाए हो। बिना छाप या चिह्न का।

अतप्ततनु[2]—संज्ञा पुं० बिना छाप का मनुष्य।

अतमा—वि० [सं० अतमस्] अधकार रहित [को०]।

अतमाविष्ट—वि० [सं० अ + तम + आविष्ट (असाधु प्रयोग)] जो अधकाराच्छन्न न हो या अधकार से ढका न हो [को०]।

अतमिस्र—वि० [सं०] जो अधकार से आच्छन्न न हो [को०]।

अतरग—संज्ञा पुं० [देश०] लगर को जमीन से उखाड़कर उठाए रखने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।

अतर¹— संज्ञा पुं० [अ० इत्र] निर्यास। पुष्पसार । भभके द्वारा खिंचा हुआ फूलों की सुगंध का सार । उ०—करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि । रे गंधी, मतिअंध तूँ अतर दिखावत काहि ।—बिहारी र० दो० ८२ ।

विशेष—ताजे फूलों को पानी के साथ एक बंद देग मे आग पर रखते हैं जो नल के द्वारा उस भभके से मिला रहता है जिसमे पहले से चंदन का तेल, जिसे जमीन या माया कहते हैं, रखा रहता है । फूलों से सुगंधित भाप उठकर उस चंदन के तेल पर टपककर इकट्ठा होती जाती है और तेल (जमीन) ऊपर आ जाता है । इसी तेल को काछकर रख लेते हैं और अतर या इतर कहते हैं । जिस फूल के भाप से यह बनता है उसी का अतर कहलाता है। जैसे—गुलाब का अतर, मोतिया का अतर इत्यादि ।

अतर²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अस्त्र, प्रा० अत्त्र] दे० 'अस्त्र' । उ०—कनक पाट जनु बइठेउ राजा । सबइ सिंगार अतर लेइ साजा ।—पदुमा०, पृ० ४६ ।

अतरक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अतर्क्य' । उ०—अगम अगोचर अच्छर अतरक निरगुन अंत अनंदा ।—रै० बा०, पृ० ४५ ।

अतरज(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य] दे० 'अचरज । उ०—आजु की बात कहा कहूँ राजा, अतरज मेरे गात, परसराम की ब्रानु कुँमरि नें धरयौ एकई हात ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ९७१ ।

अतरदान—संज्ञा पुं० [अ० इत्र+फा० दान (तुल० वै० 'धान')] सोने, चाँदी या गिलट का फूलदान के आकार का एक पात्र जिसमे इतर से तर किया हुआ रुई का फाहा रखा होता है और महफिलों में सत्कारार्थ सबके सामने उपस्थित किया जाता है । उ०—सब राजा बराबर बराबर कुर्सियों पर बैठे हैं, सरोजनी नाचती है, मंत्री ने अतरदान ले रक्खा है ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १६२ ।

अतरल—वि० [सं०] जो तरल या पतला न हो । गाढ़ा ।

अतरवन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर] १ पत्थर की पटिया जिसे धोड़िए के ऊपर बैठाकर छज्जा पाटते हैं । २ वह खर या मूँज जिसे ठाट पर फैलाकर ऊपर से खपड़ा या फूस छाते हैं ।

अतरसों—क्रि० वि० [सं० *इतर+श्व] १ परसों के आगे का दिन । वर्तमान दिन से आनेवाला तीसरा दिन । उ०—खेलत में होरी रावरे कै कर परसों जो भीजी है अतर सो सो आइहै अतरसों ।—रघुनाथ (शब्द०) । २ गत परसों से पहिले का दिन । वर्तमान से तीसरा व्यतीत दिन ।

अतराफ—संज्ञा स्त्री० [अ०] तरफ का बहुवचन । उ०—उस अतराफ में था जिसे तख्तो ताज इनायत करे मलिक देवे खिराज ।—दक्खिनी०, पृ० १५९ ।

अतरिख—संज्ञा पुं० [सं० अंतरिक्ष, प्रा० अंतरिख] दे० 'अंतरिक्ष' ।

अतरौटा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अँतरौटा' । उ०—'दास' उलटीयै बेनी उलटीयै आँगी उलटोई अतरौटा पहिरे हौं उतलाई में ।—भिखारी० ग्र०, पृ० २७२ ।

अतर्क¹—वि० [सं०] तर्कहीन । असंगत [को०] ।

अतर्क²—संज्ञा पुं० तर्कहीन बात करनेवाला [को०] ।

अतर्कित—वि० [सं०] १. जिसका पहले से अनुमान न हो । २ आकस्मिक । ३ बे सोचा समझा । जो विचार में न आया हो । जिसपर विचार न किया गया हो ।

अतर्क्य—वि० [सं०] जिसपर तर्क वितर्क न हो सके । जिसके विषय मे किसी प्रकार की विवेचना न हो सके । अनिर्वचनीय । अचिंत्य । उ०—राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी । मत हमार अस सुनहि सयानी ।—मानस, १।१२० ।

अतर्स(पु)—वि० [सं० अ+त्रास, अथवा हिं० अ+फा० तर्स] निर्भय । निष्ठुर । उ०—यह जम तीन लोक का राजा बाँधे अतर्स होई ।—कबीर श०, पृ० १४ ।

अतल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ सात पातालों मे दूसरा पाताल । २. शिव [को०] ।

अतल²—वि० तलविहीन । अथाह [को०] ।

अतलता¹—वि० तलरहित । अथाह । उ०—अतल सिंधु मे लगा लगा कर जीवन की बेडी बाजी ।—झरना, पृ० ५१ ।

अतलता²—संज्ञा स्त्री० [सं०] गहराई । उ०—ये किन स्वच्छ अतलताओं की मौन नीलिमाओं मे बहते ।—प्रतिमा, पृ० १२ ।

अतलस—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो बहुत नरम होता है । उ०—अतलस लहँगा जरद रँग सारी । चोलिअन्हि बंद सँवारी री ।—सं० दरिया, पृ० १७० ।

अतलस्पर्शी—वि० [सं०] अतल को छूनेवाला अत्यंत गहरा । अथाह । अतलस्पृक् ।

अतलस्पृक्—वि० [सं०] अत्यंत गहरा ।

अतलांत—वि० [सं० अतल+अंत] जिसके तल का अंत न हो । अत्यंत गहरा । उ०—अतलांत महू गंभीर जलधि तजकर अपनी वह नियत अवधि ।—लहर, पृ० १२ ।

अतवान(पु)—वि० [सं० अतिवान्] अधिक । अत्यंत । उ०—सावन बरस मेह अतवानी । भरन परी हों बिरह झुरानी ।—जायसी (शब्द०) ।

अतवार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अत्तवार' । उ०—दरबार के दिन जो अतवार और मंगल को था, वे नदी के उस पार जाते थे ।—हुमयूँ०, पृ० ५७ ।

अतस¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ वायु । पवन । २ आत्मा । ३ अतसी के रेशों से बना हुआ वस्त्र । ४ एक प्रकार का अस्त्र । ५ एक क्षुप [को०] ।

अतस²(पु)—वि० [सं० 'अतिशय' का संक्षिप्त रूप] बहुत अधिक । अतिशय । उ०—तो पण प्रताप मेछा तणो अतस दाप बाधे अकस ।—राज० रू०, पृ० २१ ।

अतसबाजी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आतिसबाजी' । उ०—छुटत अतसबाजी रंगरंगी ।—भारतेंदु ग्र०, भाग २, पृ० ७०५ ।

अतसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अलसी । तीसी ।

अतहार¹ संज्ञा पुं० [अ० तुह्र का बहुव०] पवित्रता । उ०—मुज कूं दर बावे इज्जत अतहार ।—दक्खिनी०, पृ० २१८ ।

अतहार²—वि० [अ० ताहिर का बहुव०] पवित्र [को०] ।

अता— स्त्री० [अ० अता = अनुग्रह] अनुग्रह । दान ।

क्रि० प्र०—करना, फरमाना = देना ।—होना = दिया जाना । मिलना ।

अतावख्श—वि० [अ० अता + फा० बख्श] दान देनेवाले। दाता। उदार [को०]।

अताई[1]—वि० [अ०] १ दक्ष। कुशल। प्रवीण। २ धूर्त। चालाक। ३. अर्धशिक्षित। अशिक्षित। जो किसी काम को बिना सीखे हुए करे। पडितमन्य।

अताई[2]—सज्ञा पुं० वह गवैया जो बिना नियमपूर्वक सीखे हुए गावे बजावे। उ०—और स्वतत्र व्यसनशील वा अताई उनसे भी बढ जाते हैं।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ३५३।

अताई[3]—वि० [हिं०] दे० 'आततायी'।

अतान(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अथान'। उ०—कुज गई न बिथा गई कुसुमित ताकि अतान। बहुरि दई दूनी भई लगें अतन के बान।—स० सप्तक, पृ० २६४।

अताना—सज्ञा पुं० [?] मालकोस राग की एक रागिनी।

अतानामा—सज्ञा पुं० [अ० अता + फा० नामह] दानपत्र [को०]।

अतापता—सज्ञा पुं० [हिं० पता का अनु० वि० द्वि०] हालचाल। ठौर ठिकाना। उ०—दूसरे दिन खोज करते करते एक स्थान पर अतापता मिला।—सुनीता पृ० ४४।

अतापी(पु)—वि० [स०] तापरहित। दुखरहित। शात।

अताब—सज्ञा पुं० [अ० इताब] गुस्सा। क्रोध। उ०—लाखो लगाव एक चुराना निगाह का। लाखो बनाव एक बिगडना अताब का।—शेर०, भा० १, पृ० १२।

अतार—सज्ञा पुं० [अ० अत्तार] दे० 'अत्तार'।

अतालीक—सज्ञा पुं० [अ०] शिक्षक। गुरु। उस्ताद। अध्यापक।

अतित(पु)—वि० [सं० अत्यत] दे० 'अत्यत'। उ०—ज्यौं कोउ रूप की रासि अतित कुरूप कहै भ्रम भेचक आन्यो—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ५८१।

अति[1]—वि० [सं०] बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—अति डर तें अति लाज तें जो न चहै रति बाम।—पद्माकर ग्र०, पृ० ८६।

अति[2]—सज्ञा स्त्री० अधिकता। ज्यादती। सीमा का उल्लघन या अतिक्रमण। उ०—(क) गगा जू तिहारो गुनगान करै अजगैब आनि होति बरखा सु आनँद की अति है।—पद्माकर ग्र०, पृ० २५८। (ख) उनके ग्रथ मे कल्पना की अति है।—व्यास (शब्द०)।

अतिअत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अत्यत'। उ०—लाभ होत अतिअत किसोरी कृष्न चरन को।—व्रजनिधि ग्र०, पृ० ११।

अतिउकुति(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० अति + उक्ति, हिं० उकति] दे० 'अत्युक्ति'। उ०—सुनि अतिउकुति पवनसुत केरी।—मानस, ६।१।

अतिउक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं० अति + उक्ति] अत्युक्ति।

अतिकदक—सज्ञा पुं० [स०] हस्तिकद नाम का पौधा [को०]।

अतिकथ—वि० [स०] १ अविश्वनीय। अतिरजित। २. अश्रद्धेय। ३. सामाजिक नियमो का उल्लघन करनेवाला। ४. मृत। नष्ट [को०]।

अतिकथा—सज्ञा स्त्री० [स०] अतिरजित कथा। निरर्थक बात [को०]।

अतिकर्षण—सज्ञा वि० [स०] अत्यधिक परिश्रम [को०]।

अतिकल्प—सज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार उतना काल जितने मे एक ब्रह्मा की आयु पूरी होती है, अर्थात् ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्ष। ब्रह्मकल्प। उ०—सत्य सकल्प, अतिकल्प, कल्पातकृत।—तुलसी ग्र०, पृ० ४८५।

अतिकात—वि० [स० अतिकान्त] अत्यधिक प्रिय [को०]।

अतिकाय[1]—[स०] वि० दीर्घकाय। बहुत लबा चौडा। बडे डीलडौल का। स्थूल। मोटा।

अतिकाय[2]—सज्ञा पुं० रावण का एक पुत्र जिसे लक्ष्मण ने मारा था। उ०—भट अतिकाय अकपन भारी।—मानस, ६।६१।

अतिकाल—सज्ञा पुं० [स०] १ विलब। देर। २. कुसमय। ३ काल का अतिक्रमण करनेवाला महाकाल। काल के भी काल। शिव। उ०—काल अतिकाल, कलिकाल, व्यालादखग, त्रिपुर-मर्दन भीम कर्म भारी।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६०।

अतिकिरिट—वि० [स०] बहुत छोटे दाँतोवाला [को०]।

अतिकिरीट—वि० [स०] दे० 'अतिकिरिट' [को०]।

अतिकृच्छ्र—सज्ञा पुं० [स०] १ बहुत कष्ट। २ छह दिन का एक व्रत। विशेष—इस व्रत मे पहले दिन एक ग्रास प्रातःकाल, दूसरे दिन एक ग्रास सायकाल और तीसरे दिन यदि बिना माँगे मिल जाय तो एक ग्रास किसी समय खाकर शेष तीन दिन निराहार रहते हैं।

अतिकृति[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पचीस वर्णो के वृत्तो की सज्ञा। जैसे—सुदरी सवैया और क्रौंच। २ मर्यादा का अतिक्रम (को०)।

अतिकृति[2]—वि० जिसे करने मे अति या मर्यादा का अतिक्रमण किया गया हो [को०]।

अतिकेशर—सज्ञा पुं० [स०] कुब्जक नाम का पौधा [को०]।

अतिकोप—वि० [स०] क्रोधरहित। शात [को०]।

अतिक्रम—सज्ञा पुं० [स०] नियम या मर्यादा का उल्लघन। विपरीत व्यवहार। उ०—देवपाल का क्रोध सीमा का अतिक्रम कर चुका था, उसने खड्ग चला दिया।—आकाश०, पृ० ३६।

अतिक्रमण—सज्ञा पुं० [स०] १. उल्लघन। पार करना। हद के बाहर जाना। उ०—बाधाओ का अतिक्रमण कर जो अबाध हो दौड चले।—कामायनी, पृ० २०८। २ प्रबल आक्रमण (को०)। ३ जीतना। अधिकार करना (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अतिक्रात[1]—वि० [स० अतिक्रात] १ सीमा का उल्लघन किए हुए। हद के बाहर गया हुआ। बढा हुआ। २ बीता हुआ। व्यतीत। गया हुआ।

अतिक्रात[2]—सज्ञा पुं० बीती हुई बातो या कथन [को०]।

अतिक्रांतनिषेध—वि० [स० अतिक्रान्तनिषेध] निषेधाज्ञा का उल्लघन करनेवाला [को०]।

अतिक्रातभावनीय—सज्ञा पुं० [स० अतिक्रान्तभावनीय] योग दर्शन के अनुसार चार प्रकार के योगियो मे से एक। वैराग्य-सपन्न योगी।

अतिक्रामक—सज्ञा पुं० [स०] क्रम या नियम का उल्लघन करनेवाला। उ०—कृतियो में इस कमी के रहते हुए भी अनेक अतिक्रामक गुण हैं।—शुक्ल० अभि० ग्र०, पृ० १०।

अतिक्रुद्ध[1]--वि० [सं०] अत्यंत रुष्ट। अधिक नाराज [को०]।
अतिक्रुद्ध[2]--संज्ञा पुं० तंत्रोक्त एक मंत्र [को०]।
अतिक्रूर[1]--वि० [सं०] अत्यधिक निष्ठुर [को०]।
अतिक्रूर[2]--संज्ञा पुं० १ एक तंत्रोक्त मंत्र। २ शनि आदि क्रूर ग्रह [को०]।
अतिक्षिप्त[1]--वि० [सं०] सीमा के पार या बहुत दूर फेंका हुआ [को०]
अतिक्षिप्त[2]--संज्ञा पुं० मोच। मुरकन [को०]।
अतिखट्व--वि० [सं०] चारपाई से रहित। बिना खाट के काम चलानेवाला।
अतिगंड[1]--वि० [सं० अतिगण्ड] बड़े या फूले गालोंवाला [को०]।
अतिगंड[2]--संज्ञा पुं० १ बड़ा कपोल या गाल। २ बड़े कपोलवाला व्यक्ति। ३ एक नक्षत्र या तारा। ४ एक योग [को०]।
अतिगंध[1]--संज्ञा पुं० [सं० अतिगन्ध] १ चंपा का पेड़ या फूल। २ भूततृण। मुद्गर, बटमोंगरा आदि (को०)।
अतिगंध[2]--वि० तीक्ष्ण गंधवाला [को०]।
अतिगंधालु--संज्ञा पुं० [सं० अतिगन्धालु] एक लता का नाम। पुत्रदात्री [को०]।
अतिगंधिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अतिगन्धिका] दे० 'अतिगंधालु' [को०]।
अतिगत--वि० [सं०] बहुतायत को पहुँचा हुआ। बहुत। अधिक। ज्यादा। अत्यंत। उ०--अतिगत आतुर मिलन को जैसे जल बिनु मीन।--दादू (शब्द०)।
अतिगति--संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम गति। मोक्ष। मुक्ति। उ०--जनक कहत सुनि अतिगति पाई। तृणावर्त को हौ मुनिराई। --गि० दा० (शब्द०)।
अतिगव--वि० [सं०] १ अत्यंत मूर्ख। २ वर्णन के परे। वर्णनातीत [को०]।
अतिगहन--वि० [सं०] अधिक गहरा। प्रवेश करने में दुष्कर [को०]।
अतिगह्वर--वि० दे० 'अतिगहन' [को०]।
अतिगुण[1]--वि० [सं०] १ सद्गुणी। बहुत अच्छे गुणवाला। २. अयोग्य। निकम्मा [को०]।
अतिगुण[2]--संज्ञा पुं० सद्गुण। बहुत अच्छा गुण [को०]।
अतिगुरु[1]--वि० [सं०] अत्यंत भारी। बहुत वजनी [को०]।
अतिगुरु[2]--संज्ञा पुं० अत्यंत आदरणीय व्यक्ति। पिता माता आदि [को०]।
अतिगुहा--संज्ञा स्त्री० [सं०] पृश्निपर्णी नाम की लता [को०]।
अतिग्रह[1]--वि० [सं०] बोधागम्य। दुर्बोध [को०]।
अतिग्रह[2]--संज्ञा पुं० १ ज्ञानेंद्रियों का विषय। २. उपयुक्त या सही ज्ञान। ३ आगे बढ़ जाना। ४ अधिक ग्रहण करनेवाला व्यक्ति [को०]।
अतिग्राह--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिग्रह' [को०]।
अतिग्राह्य[1]--वि० [सं०] नियंत्रण में रखने योग्य [को०]।
अतिग्राह्य[2]--संज्ञा पुं० ज्योतिष्टोम यज्ञ में लगातार तीन बार किया-जानेवाला तर्पण [को०]।
अतिघ--संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का आयुध। २. क्रोध [को०]।

अतिघ्न--वि० [सं०] अधिक विनाश करनेवाला [को०]।
अतिघ्नी--संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी सुखद निद्रा या विस्मृति जिसमें अतीत की अप्रिय बातें भूल जाएँ [को०]।
अतिचमू--वि० [सं०] सेनाओं का विजेता [को०]।
अतिचर--वि० [सं०] अधिक परिवर्तनशील [को०]।
अतिचरण--संज्ञा पुं० [सं०] अधिक करने का अभ्यास। जितना करना हो उससे अधिक करना [को०]।
अतिचरणा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ स्त्रियों का एक रोग जिसमें कई बार मैथुन करने पर तृप्ति होती है। २ वैद्यक मतानुसार वह योनि जो अत्यंत मैथुन से तृप्त न हो।
अतिचरा--संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थलपद्मिनी नाम की लता [को०]।
अतिचार--संज्ञा पुं० [सं०] १ सीमा से आगे बढ़ जाना। अतिक्रमण करना। उ०--मेरा अतिचार न बंद हुआ उन्मत्त रहा सबको घेरे।--कामायनी, पृ० ७१। २ ग्रहों की शीघ्र चाल।

विशेष--जब कोई ग्रह किसी राशि के भोगकाल को समाप्त किए बिना ही दूसरी राशि में चला जाता है तब उसकी गति को अतिचार कहते हैं।

३ जैनमतानुसार एक विघात। व्यतिक्रम। ४ तमाशबीनी और मर्यादा भंग करने का जुर्म। नाचरंग के समाजों में अधिक संमिलित होने का अपराध।

विशेष--चंद्रगुप्त के समय में जो रसिक और रँगीले बार बार निषेध करने पर भी नाचरंग के समाजों में संमिलित होते थे, उनपर तीन पण जुर्माना होता था। ब्राह्मण को जूठी या अपवित्र वस्तु खिला देने या दूसरे के घर में घुसने पर भी अतिचार दंड होता था।

अतिचारी--वि० [सं० अतिचारिन्] [स्त्री० अतिचारिणी] अतिक्रमण करनेवाला। अतिचार करनेवाला। उ०--अतिचारी मिथ्या मान इसे परलोक वंचना से भर जा।--कामायनी, पृ० १६६।
अतिच्छत्र--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अतिच्छत्रा] भूतृण। छत्रक [को०]।
अतिच्छत्रक--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अतिच्छत्रिका] दे० 'अतिच्छत्र' [को०]।
अतिच्छादन--संज्ञा पुं० [सं०] सीमा से इस पार आगे बढ़ा हुआ होना कि आसपास की मिलती जुलती चीजें भी उसके क्षेत्र में आ जायँ [को०]।
अतिजगती--संज्ञा स्त्री० [सं०] तेरह वर्ण के वृत्तों की संज्ञा। जैसे--तारक, मंजुभाषिणी, माया आदि।
अतिजन--वि० [सं०] जो आबाद न हो। जनावासरहित [को०]।
अतिजव[1]--वि० [सं०] बहुत तेज चलनेवाला। अत्यंत वेगवान्।
अतिजव[2]--संज्ञा पुं० असाधारण गति। अतिशय वेग [को०]।
अतिजागर[1]--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बगला। नील बक।
अतिजागर[2]--वि० १ निरंतर जागते रहनेवाला। २. जागरूक [को०]।
अतिजात--वि० [सं०] पिता से आगे बढ़ा हुआ [को०]।
अतिडीन--संज्ञा पुं० [सं०] (पक्षियों की) असाधारण उड़ान [को०]।

अतितत—वि० १ [सं०] १ अत्यंत दूर फैलनेवाला। २ अपने को अधिक बड़ा दिखानेवाला। ३ आडंबरी [को०]।

अतितरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ पार करना। २ पराभूत या पराजित करना [को०]।

अतितारी—वि० [सं० अतितारिन्] पार कर जानेवाला। विजयी [को०]।

अतितीक्ष्ण[1]—वि० [सं०] अत्यंत तेज [को०]।

अतितीक्ष्ण[2]—संज्ञा पुं० शोभांजन नाम का वृक्ष [को०]।

अतितीव्र[1] संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में वह स्वर जो तीव्र से भी कुछ अधिक ऊँचा हो।

अतितीव्र[2]—वि० अत्यंत तेज [को०]।

अतितीव्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की दूब [को०]।

अतितृण्ण—वि० [सं०] अत्यधिक चोटवाला। जिसे अत्यधिक चोट पहुँची हो [को०]।

अतितृष्ण[1]—वि० [सं०] १ अधिक प्यासा। २ अत्यंत लोभी [को०]

अतितृष्णा[2]—संज्ञा स्त्री० १ तेज प्यास। अत्यधिक लोभ [को०]।

अतित्रस्नु—वि० [सं०] अत्यधिक डरनेवाला [को०]।

अतिथि—संज्ञा पुं० [सं०] १ घर में आया हुआ अज्ञातपूर्व व्यक्ति। वह जिसके आने का समय निश्चित न हो। अभ्यागत। मेहमान। पाहुन। उ०—उस अनोखे अतिथि को आतिथ्य में चुपचाप।—शकुं०, पृ० ८। २ वह संन्यासी जो किसी स्थान पर एक रात से अधिक न ठहरे। व्रात्य। ३ मुनि (जैनसाधु)। ४ अग्नि का एक नाम। ५ अयोध्या के राजा सुहोत्र जो कुश के पुत्र और रामचंद्र के पौत्र थे। ६. यज्ञ में सोमलता को लानेवाला व्यक्ति।

अतिथिक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] आतिथ्य। अतिथि की आवभगत [को०]।

अतिथिगृह—संज्ञा पुं० [सं०] वह भवन जो केवल अतिथियों के ठहरने के लिये बना हो। अतिथिशाला [को०]।

अतिथिग्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ आतिथेय। २ राजा दिवोदास की उपाधि। उ०—राजा दिवोदास अतिथियों का ऐसा स्वागत करता था कि उसे अतिथिग्व की उपाधि दी गई थी।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ५६।

अतिथिदेव—वि० [सं०] अतिथि को देवता के समान जानने और माननेवाला [को०]।

अतिथिद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] अतिथि के प्रति घृणा का भाव [को०]।

अतिथिधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] आतिथ्य प्राप्त करने का अधिकार [को०]।

अतिथिधर्मी—वि० [सं० अतिथिधर्मिन्] आतिथ्य का अधिकारी [को०]।

अतिथिपति—संज्ञा पुं० [सं०] आतिथेय। मेजबान [को०]।

अतिथिपूजन —संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिथिपूजा'। उ०—अतिथिपूजन भली भाँति हुई (था) और चलते समय मधुकर के हाथ गरम कर दिए।—श्यामा०, पृ० ७६

अतिथिपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिथि का आदर सत्कार। मेहमानदारी। अतिथिसत्कार।

विशेष—यह पंचमहायज्ञों में से एक है और गृहस्थ के किये नित्य कर्तव्य कहा गया है।

अतिथिभवन—संज्ञा पुं० [सं० अतिथि + भवन] दे० 'अतिथिगृह'।

अतिथियज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] अतिथि का आदर सत्कार जो पंचमहायज्ञों में पाँचवाँ है। नृयज्ञ। अतिथिपूजा। मेहमानदारी।

अतिथिशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिथिगृह' [को०]।

अतिथिसंविभाग—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार चार शिक्षाव्रतों में से एक जिसमें बिना अतिथि को दिए भोजन नहीं करते।

विशेष—इसमें पाँच अतिचार हैं—(१) सचित निक्षेप (२) सचित पीहण (३) कालातिचार (४) परव्यपदेश मत्सर और (५) अन्योपदेश।

अतिथिसत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] अभ्यागत अतिथि की आवभगत। मेहमान की खातिरदारी [को०]।

अतिथिसत्क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिथिसत्कार'।

अतिथिसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिथिसत्कार'।

अतिदतुर—वि० [सं०] जिसके दाँत अधिक बड़े हों या मुँह से बाहर निकले हों [को०]।

अतिदर्प[1]—वि० [सं०] अतिशय अभिमानी [को०]।

अतिदर्प[2]—संज्ञा पुं० १ अत्यधिक गर्व या अभिमान। २ एक सर्प [को०]।

अतिदर्शी— वि० [सं० अतिदर्शिन्] अधिक दूरदेश। अत्यंत दूरदर्शी [को०]।

अतिदाता—संज्ञा पुं० [सं० अतिदातृ] अत्यधिक दान देनेवाला व्यक्ति [को०]।

अतिदान—संज्ञा पुं० [सं०] १ अत्यधिक दान। २ अति उदारता [को०]।

अतिदाह—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक ताप या जलन [को०]।

अतिदिष्ट—वि० [सं०] १ जिसमें या जिसका अतिदेशन हुआ हो। २ जो अवधि, क्षेत्र, सीमा आदि से आगे बढ़ा हुआ हो। ३ प्रभावयुक्त। प्रभावित। ४ आकृष्ट। खिंचा हुआ। ५ किसी अन्य की जगह पर रखा हुआ [को०]।

अतिदीप्य[1]—वि० अतिशय प्रकाशमान [को०]।

अतिदीप्य[2]— संज्ञा पुं० लाल चित्रक का वृक्ष [को०]।

अतिदुःसह—वि० [सं०] जिसका सहना अत्यंत कठिन हो। असह्य [को०]।

अतिदुर्गत—वि० [सं०] जिसकी बहुत बुरी गति हो। अत्यंत दुर्दशाग्रस्त [को०]।

अतिदुर्धर्ष—वि० [सं०] १ जिसका दमन करना बहुत कठिन हो। २ अतिप्रबल। प्रचंड। बहुत उग्र। अत्यधिक उद्दंड [को०]।

अतिदूर—वि० [सं०] देश, काल या संबंध आदि के विचार से बहुत दूरी या अंतर पर [को०]

अतिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ या देवता अर्थात् विष्णु, शिव।

अतिदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक स्थान के धर्म या नियम का दूसरे स्थान पर आरोपण। २ वह नियम जो साधारण नियम से

कुछ विशेष स्थानों मे काम आवे। वह नियम जो अपने निर्दिष्ट विषय के अतिरिक्त दूसरे विषयो मे भी काम आए। ३ विस्तारण (को०)। ४ भिन्न तथा विरोधी विषयो या वस्तुओ मे कुछ विशेष तत्वो की होनेवाली समानता या सादृश्य। (को०)

विशेष—यह अतिदेश शास्त्र, कार्य, निमित्त, व्यपदेश और रूपभेद से पाँच प्रकार का कहा गया है। जैमिनि मीमासासूत्र के सातवें और आठवें अध्याय मे इसका विस्तृत विवेचन है।

अतिदेशन—सज्ञा पुं० [स०] अतिदेश करने की क्रिया या भाव [को०]।

अतिदोष—सज्ञा पुं० [स०] बहुत बडा अवगुण या अपराध [को०]।

अतिद्वय—वि० [स०] १ दो नो से आगे बढा हुआ। २. अद्वितीय। अतुलनीय [को०]।

अतिधन्वा—सज्ञा पुं० [स० अतिधन्वन्] १. अद्वितीय धनुर्धर या योद्धा। २ वह व्यक्ति जो मरुस्थल का अतिक्रमण कर गया हो। ३ एक वैदिक आचार्य का नाम [को०]।

अतिधर्म—सज्ञा पुं० [स०] उत्कृष्ट धर्म [को०]।

अतिधृति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ उन्नीस वर्णो के वृत्तो की सज्ञा। जैसे—शार्दूलविक्रीडित। २ उन्नीस की सख्या (को०)।

अतिधेनु—वि० [स०] अपनी गायो के कारण अत्यंत प्रसिद्ध [को०]।

अतिनाठ—सज्ञा पुं० [स०] सकीर्ण नामक मिश्रित राग का एक भेद।

अतिनाभ—सज्ञा पुं० [स०] हिरण्याक्ष दैत्य के नौ पुत्रो मे से एक।

अतिनाष्ट्र—वि० [स०] भय से परे खतरे बाहर से बाहर [को०]।

अतिनिद्र—वि० [स०] १ अत्यत निद्रालु। २ बिना निद का। निद्राहीन [को०]।

अतिनिर्हारी—वि० [स०] बहुत ही आकर्षक (गध) [को०]।

अतिनु—वि० [स०] नौका से पृथ्वी पर उतरा हुआ [को०]।

अतिनौ—वि० [स०] दे० 'अतिनु' [को०]।

अतिपचा—सज्ञा स्त्री० [स० अति + पञ्चा पाँच] वर्ष की वय पूरी करनेवाली लड़की [को०]।

अतिपथ—सज्ञा पुं० [स० अतिपन्थ] सन्मार्ग। अच्छी राह। सुपथ।

अतिपटीक्षेप—सज्ञा पुं० [स०] नाटक के अतर्गत पर्दे के उठाने या न उठाने का परित्याग [को०]।

अतिपतन—सज्ञा पुं० [स०] १ दे० 'अतिपात'। २. सीमा से बाहर उडना (को०)। ३ गिरना (को०)। ३ अतिक्रमण (को०)। ४ भूल [को०]।

अतिपतित—वि० [स०] १ अतिक्रात। २ मर्यादा से च्युत। ३ भूला हुआ [को०]।

अतिपत्ति—सज्ञा पुं० [स०] १ अतिक्रमण। २ समय का बीत जाना। ३ कार्य को पूर्ण न करना [को०]।

अतिपत्र—सज्ञा पुं० [स०] हस्तिकद वृक्ष [को०]।

अतिपथी—सज्ञा पुं० [स० अति + पथिन्] सामान्य मार्ग से उत्तम मार्ग। सन्मार्ग [को०]।

अतिपद—वि० [स०] १ पदरहित। जिसके पैर न हो। २. वर्णवृत के अनुसार अधिक पदवाली। जैसे, अतिपदा गायत्री या जगती [को०]।

अतिपन्न[1]—वि० [सं०] १ अतिक्रात। २ विस्मृत। ३ बीता हुआ [को०]।

अतिपर[1]—वि० [स०] शत्रुओं को जीतनेवाला। जिसने अपने शत्रुओ को परास्त किया हो। शत्रुजित।

अतिपर[2]—सज्ञा पुं० भारी शत्रु। बढा चढा प्रतिद्वंद्वी।

अतिपरोक्ष—वि० [सं०] १ दृष्टि से बहुत दूर। अदृश्य। २ जो गुप्त न हो प्रकट [को०]।

अतिपाडुकंवला—सज्ञा स्त्री० [सं० अतिपाण्डुकम्बला] जैन मतानुसार सिद्धशिला के दक्षिण के सिंहासन का नाम जिसपर तीर्थकर बैठते है।

अतिपात—सज्ञा पुं० [स०] १ अतिक्रम। अव्यवस्था। गडबडी। २. बाधा। विघ्न। हानि। ३ बीतना। व्यतीत होना (काल या समय)। उ०—विद्यार्जन के लिये प्राणपण से अतिपात-अर्ध आयु का किया।—अनामिका, पृ० १६६। ४ उपेक्षा। दुर्व्यवहार। (को०)। ५ विरोध (को०)। ६ लगातार होना या गिरना (को०)। ७. विध्वस। नाश (को०)।

अतिपातक—सज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र मे कहे हुए नौ पातकों मे सबमे बडा पातक।

विशेष—पुरुष के लिये माता, बेटी और पतोहू के साथ गमन और स्त्री के लिये पुत्र, पिता और दामाद के साथ गमन अतिपातक है।

अतिपातित[1]—वि० [सं०] १ स्थगित। रोका हुआ। २ पूरी तरह से तोडा हुआ [को०]।

अतिपातित[2]—सज्ञा पुं० हड्डी का पूरी तरह टूट जाना [को०]।

अतिपाती—वि० [सं० + अतिपातिन्] १. अतिपात करनेवाला। २ गति मे आगे बढ जानेवाला [को०]।

अतिपात्य—वि० [सं०] कुछ विलब से करने योग्य। स्थगित कर देने योग्य [को०]।

अतिपाप—वि० [स० अति + पाप] महापापी। उ०—कौन है मुझ सा पतित अतिपाप।—साकेत, पृ० १८१।

अतिपुरुष—सज्ञा पुं० [स०] महापुरुष। वीर पुरुष [को०]।

अतिपूरुष—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अतिपुरुष' [को०]।

अतिप्रकाश—वि० [स०] १. प्रसिद्ध प्राप्त। अत्यत प्रसिद्ध। २ बुरे कार्यों के लिये मशहूर। कुख्यात [को०]।

अतिप्रकृत—वि० [सं०] प्रकृत या सामान्य रूप से अधिक बढा हुआ [को०]।

अतिप्रबध—सज्ञा पुं० [सं० अतिप्रबन्ध] अविच्छिन्नता। निरतरता [को०]।

अतिप्रभंजनवात—सज्ञा पुं० [सं० अतिप्रभञ्जनवात] अत्यत प्रचड और तीव्र वायु जिसकी गति एक घटे मे ४० या ५० कोस होती है।

अतिप्रमाण—वि० [सं०] १. प्रमाण से परे। जो प्रमाण का अतिक्रमण कर गया हो। २ बहुत अधिक प्रमाणयुक्त [को०]।

अतिप्रवृद्ध—वि० [सं०] अत्यधिक अहंकारी। २ बहुत अधिक बढ़ा हुआ [को०]।

अतिप्रश्न--[पु० स०] अमर्यादित प्रश्न। उपयुक्त उत्तर प्राप्त होने पर भी किया गया प्रश्न। अनावश्यक प्रश्न [को०]।

अतिप्रसग--सज्ञा पु० [स० अतिप्रसङ्ग] १ अत्यधिक आसक्ति २ बहुत ही घनिष्ठ सबध। ३ धृष्टता। ढिठाई। अशिष्टता। ४ किसी नियम की अतिव्याप्ति। ५ प्रचुरता। आधिक्य। विस्तार [को०]।

अतिप्रसक्ति--सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अतिप्रसग' [को०]।

अतिप्राण--सज्ञा पुं० [स०] असामान्य जीवन। असाधारण व्यक्तित्व [को०]।

अतिप्रौढा--सज्ञा स्त्री० [स०] विवाह करने योग्य लडकी। युवावस्था प्राप्त कन्या [को०]।

अतिबरवै--सज्ञा पु० [सं० अति + हिं० बरवै] बरवै छद का एक भेद।

विशेष--इसके पहले और तीसरे चरणो मे बारह तथा दूसरे और चौथे चरणो मे नौ मात्राएँ होती हैं। इसके विषम पदो के आदि मे जगण न आना चाहिए और सम पदो के अत का वर्ण लघु होना चाहिए।

अतिबरसण(पु)--सज्ञा पुं० [स० अतिवर्षण] मेघमाला। घटा (डिं०)।

अतिबल¹--वि० [स०] प्रबल। प्रचड। बली। उ०--नारी अतिबल होत है, अपने कुल को नास।--गिरधर (शब्द०)।

अतिबल²--सज्ञा पु० [स०] १ अत्यधिक शक्ति। २ शक्तिसपन्न सेना [को०]।

अतिबला--सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्राचीन युद्धविद्या।

विशेष--इस विद्या के सीखने से श्रम और ज्वर की बाधा का भय नही रहता था और पराक्रम बढता था। विश्वामित्र ने इसे रामचद्र को सिखाया था।

२ एक ओषधि। कँगही या ककही नामक पौधा।

अतिबात--सज्ञा पु० [स० अतिवात] तेज हवा। तूफान। उ०--प्रतिमा रुदहिं पविपात नभ अतिबात बह डोलति मही।--मानस ६।१००।

अतिबालक¹--वि० [स०] बालको जैसा। बच्चो जैसा। बाल्य [को०]।

अतिबालक²--सज्ञा पु० छोटी वय का बालक। शिशु [को०]।

अतिबाला--सज्ञा स्त्री० [स०] दो वर्ष की गाय (को०)।

अतिबाहु¹--वि० [स०] १. असाधारण बाहोवाला। आजानुबाहु [को०]।

अतिबाहु²--सज्ञा + पु० १ चौदहवें मन्वतर के एक ऋषि का नाम। २ एक गधर्व का नाम [को०]।

अतिब्रह्मचर्य¹--वि० [स०] ब्रह्मचर्य व्रत का अतिक्रमण करनेवाला। ब्रह्मचर्य व्रत को तोडनेवाला [को०]।

अतिब्रह्मचर्य²--सज्ञा पु० [स०] ब्रह्मचर्य व्रत का अत्यधिक पालन [को०]।

अतिभर--सज्ञा पु० [सं०] १ बहुत अधिक बोझ। उ०--मति डिग परै दबै सब ब्रज जन भयो है हाथ पै अतिभर।--नंद० ग्र०, पृ० ३६२। २ दे० 'अतिभार' [को०]।

अतिभव--सज्ञा पु० [स०] आगे बढ जाना। पराजित करना। विजय करना [को०]।

अतिभार--सज्ञा पु० [स०] १ अत्यधिक बोझ। २ गति। चाल। ३ वाक्य की अस्पष्टता [को०]।

अतिभारग¹--वि० [स०] अधिक मात्रा मे बोझ ढोनेवाला [को०]।

अतिभारग²--[स०] खच्चर [को०]।

अतिभारारोपण--सज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार पशुओ पर अधिक बोझ लादने का अत्याचार।

अतिभारिक--वि० [सं०] बहुत भारी [को०]।

अतिभी--सज्ञा स्त्री० [स०] इद्र के वज्र की ज्वाला। विद्युत की चमक [को०]।

अतिभू¹--वि० [स०] सबको पार कर जानेवाला [को०]।

अतिभू²--सज्ञा पु० [सं०] १ विष्णु का एक नाम। २ दे० 'अतिभव' [को०]।

अतिभूमि--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अधिकता। २ श्रेष्ठता। ३ मर्यादा का अतिक्रमण। ४ अधिक विस्तृत भूमि [को०]।

अतिभोग--सज्ञा स्त्री० [स०] १ उपयुक्त या नियत समय के अतिरिक्त भी किसी वस्तु अथवा विषय का उपभोग। २ स्वत्व की भाँति किसी सपत्ति का बहुत दिनो तक उपयोग [को०]।

अतिभोजन--सज्ञा पु० [स०] आवश्यकता से अधिक खाना। पेटूपन [को०]।

अतिमगल्य¹--वि० [स० अतिमङ्गल्य] अत्यधिक शुभ [को०]।

अतिमगल्य²--सज्ञा पु० विल्व वृक्ष [को०]।

अतिमत--सज्ञा पुं० [स०] सर्वमान्य समझा जानेवाला विचार या सिद्धात [को०]।

अतिमति¹--वि० [स०] अत्यधिक घमडी। अहकारी। उ०--जौ अतिमति चाहसि सुगति तौ तुलसी करु प्रेम।--स० सप्तक, पृ० २०।

अतिमति²--सज्ञा स्त्री० १ अहकार। अत्यधिक गर्व। २ हठ [को०]।

अतिमध्यदिन--सज्ञा पुं० [स० अतिमध्यन्दिन] प्रखर मध्याह्न। खडी दुपहरी [को०]।

अतिमर्त्य--वि० [स०] १ इस लोक से परे। अलौकिक। २ मानवीय शक्ति से परे। अमानुषिक [को०]।

अतिमर्श--सज्ञा पु० [स०] अत्यधिक सपर्क। अत्यत निकट का सबध [को०]।

अतिमास--वि० [स०] अत्यधिक मासवाला। [को०]।

अतिमा--सज्ञा स्त्री० [स० अतिमान] अपरिमेय वह मन स्थिति जो आज के भौतिक, मानसिक, सास्कृति परिवेश को अतिक्रम कर चेतना की नवीन क्षमता से अनुप्राणित हो। उ०--यह अतिमा, तन मे जा बाहर, जगजीवन की रज लिपटाकर।--अतिमा, पृ० ४४।

अतिमात्र--वि० [सं०] अतिशय। बहुत। ज्यादा। मात्रा से अधिक।

अतिमान¹--वि० [स०] अपरिमेय। अति विस्तृत [को०]।

अतिमान²--सज्ञा पु० [स०] दे० 'अतिमति' [को०]।

अतिमानव—संज्ञा पु० [सं०] अलौकिक शक्ति तथा गुणों से संपन्न मनुष्य [को०] ।

अतिमानवी—वि० [सं० अतिमानव + ई (प्रत्य०)] मानव से संबंध न रखनेवाली । अलौकिक । देवी । उ०—उनकी अत्यंत हार्दिक नम्रता अतिमानवी थी ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २५६ ।

अतिमानुष[1]—वि० [सं०] मनुष्य की शक्ति से बाहर । अमानुषी । दैवी

अतिमानुष[2]—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अतिमानव' [को०] ।

अतिमाय—वि० [सं०] जो मायावी न हो । माया से रहित । वीतराग मायातिक्रांत [को०] ।

अतिमित[1]—वि० [सं०] अपरिमित । अतुल । बेअंदाज । बहुत अधिक । बेहिसाब । बेठिकाना ।

अतिमित[2]—वि० [सं०] जो तिमित या गीला न हो [को०] ।

अतिमित्र—संज्ञा पु० [सं०] अत्यंत घनिष्ठ मित्र । २ अत्यधिक शुभ ग्रह [को०] ।

अतिमिमिर—वि० [सं०] तेजी से पलकें गिरानेवाला [को०] ।

अतिमुक्त[1]—वि० [सं०] १ जिसकी मुक्ति हो गई हो । निर्वाणप्राप्त । २ निष्फल । विषयवासनारहित । वीतराग ।

अतिमुक्त[2]—संज्ञा पुं० १ माधवी लता । २ तिनिश । तिरिच्छ । ३ महुआ का पौधा ।

अतिमुक्तक—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अतिमुक्त[2]' [को०] ।

अतिमुक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] परम निर्वाण । मोक्ष [को०] ।

अतिमुशल—संज्ञा पु० [सं०] किसी नक्षत्र में मंगल अस्त हो और उसके सत्रहवें या अठारहवें नक्षत्र से अनुवक्र हो तो उस वक्र को अतिमुशल कहते हैं ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इससे चोर और शस्त्र का भय तथा अनावृष्टि होती है ।

अतिमूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में आत्रेय मत के अनुसार छह प्रकार के प्रमेहों में से एक । बहुमूत्र ।

विशेष—इसमें अधिक मूत्र उतरता है और रोगी क्षीण होता जाता है । इसे बहुमूत्र भी कहते हैं ।

अतिमैथुन—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यधिक संभोग [को०] ।

अतिमृत्यु—संज्ञा पुं० [सं०] मोक्ष । मुक्ति ।

अतिमोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सुगंध की बहुत अधिक मात्रा । २ नवमल्लिका । नेवारी । मोगरी ।

अतियव—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का जौ [को०] ।

अतियात—वि० [सं०] बहुत तेज चलनेवाला । तीव्र गतिवाला [को०] ।

अतियोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ अधिकता । अतिशयता । २. किसी मिश्रित औषधि में किसी द्रव्य की नियत मात्रा से अधिक मिलावट ।

अतिरंजन—संज्ञा पु० [सं० अतिरंजन] दे० 'अतिरंजना' ।

अतिरंजना—संज्ञा स्त्री० [सं० अतिरंजना] अत्युक्ति । बढा चढाकर कहने की रीति ।

अतिरंजित—वि० [सं० अतिरञ्जित] १ अतिरंजना से युक्त । अत्युक्तिपूर्ण । उ०—वह अतिरंजित सी तूलिका चितेरी सी फिर भी कुछ कम थी ।—लहर, पृ० ७१ । २ अत्यंत रागमय । उ०—देखा मनु ने वह अतिरंजित विजन विश्व का नव एकांत ।—कामायनी, पृ० १४ ।

अतिरक्त—वि० [सं०] १ बहुत अधिक लाल । २ अत्यधिक अनुरक्त [को०] ।

अतिरक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की एक जीभ का नाम । अग्नि की सात जीभों में से एक । [को०] ।

अतिरथ—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'अतिरथी' [को०] ।

अतिरथि(पु)—संज्ञा पु० [सं० अतिरथिन्] दे० 'अतिरथी' । उ०—अमरन करि जु न जीते जाहीं । भीषमादि अतिरथि जिंहि माहीं ।—नंद ग्रं०, पृ० २१६ ।

अतिरथी—संज्ञा पुं० [सं० अतिरथिन्] रथ पर चढकर लडनेवाला योद्धा । वह जो अकेले रथियों से लड सके । उ०—अतिरथी महारथी सरव कालानल चारा ।—राम० धर्म० पृ० १४७ ।

अतिरभस—संज्ञा पु० [सं०] असामान्य गति । अत्यधिक शीघ्रता [को०] ।

अतिरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विभिन्न प्रकार के पौधों के नाम जैसे, मूर्वा, रास्ना और क्लीतक [को०] ।

अतिराग—संज्ञा पु० [सं०] प्रबल उत्सुकता [को०] ।

अतिरात्र—संज्ञा पु० [सं०] १ ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का एक गौण अंग । २ वह मंत्र जो अतिरात्र यज्ञ के अंत में गाया जाय ३ चाक्षुष मनु के एक पुत्र का नाम । ४ मध्य रात्रि ।

अतिराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराण के अनुसार एक नाग या सर्प ।

अतिरिक्त[1]—क्रि० वि० [सं०] सिवाय । अलावा । जैसे—इसे हमारे अतिरिक्त कोई नहीं जानता (शब्द०) ।

अतिरिक्त[2]—वि० १ अधिक । ज्यादा । बढती । शेष । बचा हुआ । जैसे खाने पहनने से अतिरिक्त धन को अच्छे काम में लगाओ (शब्द०) । २ न्यारा । अलग । जुदा । भिन्न । जैसे,—जो सब में पूर्णपुरुष और जीव में अतिरिक्त है वही जगत् का बनानेवाला है (शब्द०) ।

अतिरिक्तकवला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मत के अनुसार सिद्धशिला के उत्तर का सिंहासन जिसपर तीर्थंकर बैठते हैं ।

अतिरिक्तपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह विज्ञापन समाचार या सूचना आदि जो अलग से छापकर किसी समाचार पत्र के साथ बाँटा जाय । विशेष पत्र । कोडपत्र ।

अतिरिक्तलाभ—संज्ञा पु० [सं० अतिरिक्त + लाभ] वह लाभ जो नियत या उचित मात्रा से अधिक हो ।

अतिरुचिर—वि० [सं०] अत्यधिक प्रिय [को०] ।

अतिरुचिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिजगती और चूडिन्दिका नामक दो वृत्त [को०] ।

अतिरूक्ष[1]—वि० [सं०] १ बहुत रूखा । २ क्रूर । ३ प्रेमहीन । ४ अत्यधिक स्नेही [को०] ।

अतिरूक्ष[2]—संज्ञा पु० एक प्रकार का अन्न [को०] ।

अतिरूप¹—वि० [सं०] १ आकृतिहीन, जैसे वायु। २ परम रूपवान। अत्यंत सुंदर। ३. रूप से परे, जैसे ईश्वर [को०]।

अतिरूप²—संज्ञा पुं० अद्वितीय सौंदर्य [को०]।

अतिरेक—संज्ञा पुं० [सं०] १ आवश्यकता से अधिक होने का भाव, गुण या स्थिति। २ आधिक्य। अतिशयता। उ०—प्राणों में विस्मृति है उर में सुख श्री का अतिरेक। ३ भेद। अंतर (को०)।

अतिरोग—संज्ञा पुं० [सं०] राजयक्ष्मा। क्षयी रोग।

अतिरोमश¹—वि० [सं०] बहुत अधिक बालोंवाला [को०]।

अतिरोमश²—वि० १ एक प्रकार का जंगली बकरा। २ एक तरह का बड़ा बंदर [को०]।

अतिरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] जीवन। जिंदगी।

अतिलंघन—संज्ञा पुं० [सं० अतिलङ्घन] १ दीर्घ काल तक का उपवास। २ अतिक्रमण। उल्लंघन [को०]।

अतिलंघी—वि० [सं० अतिलङ्घिन्] भूल करनेवाला (को०)।

अतिलोमश—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिरोमश' [को०]।

अतिलोमशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीलबुहना, शंखबेल नाम का पौधा [को०]।

अतिलौल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्कट इच्छा। अतिलोभ। अतिचापल्य। २ जैन सिद्धांत के अनुसार भोग के समय अधिक आसक्ति। उ०—भोगोपभोग व्रत के भी पाँच अतिचार हैं—अनुप्रेक्षा, अनुस्मृति, अतिलौल्य, अतितृष्णा और अनुभव।—हिंद० सभ्यता, पृ० २३१।

अतिवंत(पु)—वि० [सं०अत्यंत, प्रा० अतिअंत, अतिवंत] दे० 'अत्यंत'। उ०—फिरि वेपिय रवन्न मुप। अतिवंत दुषी दुप मानी मुप।—पृ० रा०, ६१।२०६५।

अतिवक्ता—वि० [सं० अतिवक्तृ] बहुत अधिक बोलनेवाला। बकवादी [को०]।

अतिवक्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवल के मत से बुध ग्रह की चार गतियों में से एक।

विशेष—इसका एक राशि पर वर्तमान काल २४ दिन का होता है और यह धन का नाश करनेवाली मानी जाती है।

अतिवय—वि० [सं० अतिवयस्] १ अतिशय वृद्ध २ पुरानी वय का। ३ कई वर्षों आगे का [को०]।

अतिवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्षमा करने योग्य अपराध। २ दंड से छुटकारा। ३ अधिक आगे बढ़ जाने की क्रिया या भाव। ४ किसी वस्तु का बहुत अधिक मात्रा में होनेवाला उपयोग या व्यवहार [को०]।

अतिवर्ती—वि० [सं० अतिवर्तिन्] १ अतिक्रमण करनेवाला। २ सबसे आगे बढ़ जानेवाला। ३ क्षम्य अपराध के दोषवाला [को०]।

अतिवर्तुल¹—वि० [सं०] अत्यधिक गोल [को०]।

अतिवर्तुल²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का अन्न। कलाय [को०]।

अतिवात—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक वेगपूर्ण वायु। प्रचंड आँधी [को०]।

अतिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ खरी बात। सच्ची बात। २. परुष वचन ३. बढ़ी चढ़ी बात। डींग। ४. औचित्य या मर्यादा का अतिक्रमण करके जाने का सिद्धांत। उ०—छोड़कर जीवन के अतिवाद मध्य पथ से लो सुगति सुधार।—लहर, पृ० १३।

अतिवादिक—वि० [सं०] अतिवाद संबंधी [को०]।

अतिवादी—वि० [सं० अतिवादिन्] १ सत्यवक्ता। खरी बात कहनेवाला। २ कटुवादी। ३ बढ़ बढ़कर बात करनेवाला। डींग मारनेवाला। ४ पर पक्ष का खंडन कर अपने मत को स्थापित करनेवाला (को०)।

अतिवास—संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध के एक दिन पूर्व किया जानेवाला उपवास [को०]।

अतिवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूक्ष्म शरीर का अन्य शरीर में प्रवेश करना २ परलोकवास। ३. आवश्यकता से अधिक पानी को बाहर निकालनेवाली नाली [को०]।

अतिवाहक—संज्ञा पुं० [सं०] सूक्ष्म शरीर को अन्य देह के अंतर्गत प्रवेश कराने में सहायक देवता। [को०]।

अतिवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बिताना। गुजारना। २ बहुत अधिक बोझ ढोना। ३. भेजना। [को०]।

अतिवाहिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ लिंग शरीर। २ पाताल निवासी।

अतिवाहित¹—वि० बिताया हुआ [को०]।

अतिवाहित²—संज्ञा पुं० दे० 'अतिवाहिक' [को०]।

अतिविकट¹—वि० [सं०] अतिशय भीषण [को०]।

अतिविकट²—संज्ञा पुं० दुष्ट हाथी [को०]।

अतिविपिन—वि० [सं०] १ घने जंगलोंवाला। २ प्रवेश में कठिन या दुर्गम [को०]।

अतिविश्रब्ध नवोढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रसमंजरी के अनुसार वह मध्या नायिका जिसे पति पर अतिशय प्रेम हो।

विशेष—यह नायिका धैर्ययुक्त, अपराधी नायक के प्रति व्यंग्य और अधीर अपराधी नायक के प्रति कटु वचन का व्यवहार करती है।

अतिविष¹—वि० [सं०] अत्यधिक विषवाला। बहुत अधिक जहरीला। विषैला (साँप) (को०)।

अतिविष²संज्ञा स्त्री० दे० 'अतिविषा'।

अतिविषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जहरीली औषधि। अतीस।

अतिविस्तार—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक विस्तार। व्याप्ति [को०]।

अतिवृंहित—वि० [सं०] दृढ़। पुष्ट। मजबूत।

अतिवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आगे बढ़ जाना। २ अतिक्रमण। ३ अतिरंजना। ४ वेग से निकलना (रक्त)

अतिवृद्ध¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अतिवृद्धा] १ बहुत अधिक बूढ़ा २ अधिक वय का [को०]।

अतिवृद्ध²—संज्ञा पुं० तंत्र में प्रयुक्त एक मंत्र [को०]।

अतिवृद्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास चबाने तक में असमर्थ अत्यधिक बूढ़ी गाय [को०]।

अतिवृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ६ ईतियों में से एक। पानी का बहुत बरसना जिससे खेती को हानि पहुँचे। अत्यंत वर्षा। उ०—अनावृष्टि अतिवृष्टि होति नहिं यह जानत सब कोई।—सू०, १०।४१६१।

अतिवेगित—वि० [सं०] १ तेजी से चलाया हुआ। २ तीव्र गति से चलनेवाला [को०]।

अतिवेध—संज्ञा पुं० [सं०] १ अधिक निकट का संबंध। २ दशमी और एकादशी का योग [को०]

अतिवेल—वि० [सं०] १. अत्यंत। असीम। बेहद। २ मर्यादा का उल्लंघन करनेवाला (को०)। ३ उद्वेलित (को०)।

अतिवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विलंब। देर। २ अनुपयुक्त समय [को०]।

अतिव्यथन—संज्ञा पुं० [सं०] तीव्र यातना अत्यधिक पीड़ा [को०]।

अतिव्यथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिव्यथन'।

अतिव्यय कर्म—संज्ञा पुं० [सं०] फजूलखर्ची का काम।

अतिव्याप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय में एक लक्षण का एक दोष। किसी लक्षण या कथन के अंतर्गत लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य वस्तु के आ जाने का दोष।

विशेष—जहाँ लक्षण या लिंग लक्ष्य या लिंगी के सिवाय अन्य पदार्थों पर भी घट सके वहाँ 'अतिव्याप्ति' दोष होता है। जैसे—'चौपाए सब पिंडज है', इस कथन में मगर और घड़ियाल आदि चार पैरवाले अंडज भी आ जाते हैं। अतः इसमें अतिव्याप्ति दोष है।

अतिशक्करी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १५ वर्ण के वृत्तों की संज्ञा। इसके संपूर्ण भेद ३२७६८ हो सकते हैं। उ०—पद्रह अतिशक्करी सहस बत्तीस सात सै अठसठि कीय।—भिखारी० ग्रं० भा० १, पृ० २३६।

अतिशय[1]—वि० [सं०] बहुत। ज्यादा। अत्यंत।

अतिशय[2]—संज्ञा पुं० प्राचीन शास्त्रकारों के अनुसार। एक अलंकार।

विशेष—इसमें किसी वस्तु की उत्तरोत्तर संभावना या असंभावना दिखलाई जाती है जैसे—'ह्वै न, होय तो थिर नहीं, थिर तो बिन फलवान। सत्पुरुषन को कोप है, खल की प्रीति समान, (शब्द०)। कोई कोई इस अलंकार को अधिक अलंकार के अंतर्भुक्त मानते हैं।

अतिशयता—संज्ञा स्त्री० [सं० अतिशयता] आधिक्य। प्राचुर्य। बहुतायत। उ०—स्वर्गिक सुख की सी आभास अतिशयता मे अचिर महान्।—पल्लव, पृ० ३२।

अतिशयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिशयता'।

अतिशयनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रलेखा नामक एक छंद [को०]

अतिशयालु—वि० [सं०] अति की ओर वा आगे बढ़ जाने की चेष्टा करनेवाला [को०]।

अतिशयित—वि० [सं०] १ अत्यधिक। २. आगे बढ़ा हुआ [को०]।

अतिशय—वि० [सं० अतिशयिन्] १ प्रधान। श्रेष्ठ। २ बहुत अधिक [को०]।

अतिशयोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ किसी बात को बढ़ा चढ़ाकर कहना। २, एक अलंकार।

विशेष—इसमें उपमान से उपमेय का निगरण लोकसीमा का उल्लंघन प्रधान रूप दिखाया जाता है। जैसे—'गोपिन के अँसुवान के नीर पनारे भए पुनि ह्वै गए नारे। नारे भए नदियाँ बढ़िकै, नदियाँ नद ह्वै गई काटि किनारे। बेगि चलो तो चलो ब्रज में कवि तोख कहै ब्रजराज हमारे। वे नद चाहत सिंधु भए अरु सिंधु ते ह्वै हैं हलाहल मारे' (शब्द०)। इनके पाँच मुख्य भेद माने गए हैं, यथा—(१) रूपकातिशयोक्ति (२) भेदकातिशयोक्ति, (३) संबंधातिशयोक्ति (४) असंबंधातिशयोक्ति और (५) पंचम भेद के अंतर्गत अक्रमातिशयोक्ति, चपलातिशयोक्ति तथा अत्यंतातिशयोक्ति है।

अतिशयोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलंकार का भेद।

विशेष—इसमें यह दिखाया जाता है कि कोई वस्तु सदा अपने विषय में एक है, दूसरी वस्तु में उसकी उपमा नहीं दी जा सकती। जैसे—'केसोदास प्रगट प्रकास सों अकास पुनि, ईस हू के सीस रजनीस अवरेखिए। थल थल जल जल अचल अमल अति, कोमल कमल बहु बरन बिसेखिए। मुकुर कठोर बहु नाहिनै अचल जस बसुधा सुधा हू निय अवरन लेखिए। एकरस एकरूप जाकी गीता सीता सुनि, तेरो सो बदन तैनो तोही विषै देखिए।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १६२।

अतिशस्त्र—वि० [सं०] शस्त्र से भी तेज या बढ़ा हुआ [को०]।

अतिशायन—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रधानता। श्रेष्ठता। २ आधिक्य। ३ आगे बढ़ जाना [को०]।

अतिशायी—वि० [सं० अतिशायिन्] १ प्रधान। श्रेष्ठ। २ अत्यधिक। आगे बढ़ जानेवाला [को०]।

अतिशायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वृत्त [को०]।

अतिशीत—संज्ञा पुं० [सं०] ठंड का अतिक्रमण। भयकर जाड़ा [को०]।

अतिशीलन—संज्ञा पुं० [सं०] अभ्यास। मश्क। बारबार मनन या संपादन।

अतिशूद्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शूद्र जिसके हाथ का जल उच्चवर्ण के लोग न ग्रहण करें। अत्यंज।

अतिशेष—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत थोड़ा बचा हुआ अंश [को०]।

अतिश्रुत—वि० [सं० अति + श्रुत] अतिप्रसिद्ध। विख्यात। उ०—माधव ब्रह्मचारी ने ज्योंही वह अतिश्रुत नाम सुना वह भचकचाकर अंबपाली की ओर ताकता रह गया।—वै० न०, पृ० २५५।

अतिश्रेष्ठ—वि० [सं०] सर्वोत्कृष्ट। सबसे उत्तम [को०]।

अतिश्व—वि० [सं० अतिश्वन्] कुत्तों से तेज दौड़नेवाला सूअर। उ०—जो सूकर अपनी द्रुतगति से कुत्तों को बहुत पीछे छोड़ देते थे वे अतिश्व पदवी के अधिकारी होते थे।—संपू० अभि० ग्रं०, पृ० २४८।

अतिसंध—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा या आज्ञा का भंग करना। विधि या आदेशविरुद्ध आचरण।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अतिसंधान—संज्ञा पुं० [सं० अतिसन्धान] १ अतिक्रमण। २ विश्वासघात। धोखा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अतिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अतिसन्धि] १ सामर्थ्य से अधिक सहायता देने की शर्त। २ एक मित्र की सहायता से दूसरे मित्र या सहायक की प्राप्ति [को०]।

अतिसंधित—वि०[स० अतिसन्धित] १ अतिक्रांत। २ धोखा खाया हुआ। जिसके साथ विश्वासघात किया गया हो [को०]।

अतिसंध्या—संज्ञा स्त्री० [स० अतिसन्ध्या] सूर्योदय के कुछ पूर्व और सूर्यास्त के कुछ बाद का समय [को०]।

अतिस(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अतसी'। उ०—साँवरी स्याम सूरति सुवर अतिस पुहुप समान वर।—पृ० रा०, २१३४७।

अतिसक्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] अत्यधिक अनुरक्ति। विशेष आसक्ति [को०]

अतिसय(पु)—वि० [स० अतिशय] दे० 'अतिशय'। उ०—रहे मोनवी साहब जहाँ के अतिशय सज्जन।—प्रेमघन, पृ० २०८।

अतिसर[1]—वि० [स०] अतिक्रमण करनेवाला। सबसे आगे बढ जानेवाला। नेता [को०]।

अतिसर[2]—संज्ञा पु० प्रयास। चेष्टा। प्रयत्न [को०]।

अतिसर्ग[1]—संज्ञा पु० [स०] अभिलाषा पूर्ण करना। देना। २ इच्छानुसार काम करने की आज्ञा देना। ३ पृथक् करना [को०]।

अतिसर्ग[2]—वि० १ स्थायी। नित्य। २ मुक्त [को०]।

अतिसर्जन—संज्ञा पु० [स०] १ अधिक दान। दान। २ उदारता। त्याग (को०)। ३. धोखा। वचना (को०)। ४ पार्थक्य। बिलगाव (को०)। ५ वध (को०)।

अतिसर्पण—संज्ञा पु० [स०] १ तीव्र गति। बहुत तेज चलना। २ गर्भाशय मे बच्चे का इधर उधर हिलना डुलना [को०]।

अतिसर्व[1]—वि० [स०] दे० 'अतिश्रेष्ठ' [को०]।

अतिसर्व[2]—संज्ञा पु० ईश्वर [को०]।

अतिसांतपन कृच्छ्र—संज्ञा पु० [सं० अतिसान्तपनकृच्छ्र] प्रायश्चित के निमित्त एक व्रत।

विशेष—इसमे दो दिन गोमूत्र, दो दिन गोबर, दो दिन दूध, दो दिन दही, दो दिन घी और दो दिन कुशा का जल पीकर तीन दिन तक उपवास करने का विधान है।

अतिसांवत्सर—वि० [स०] एक वर्ष से अधिक का [को०]।

अतिसामान्य[1]—संज्ञा पु० [सं०] जो बात वक्ता के अभिप्रेत अर्थ का अतिक्रमण या उल्लघन करे।

विशेष—न्याय के अनुसार यह ऐसे स्थलो पर प्रयुक्त होता है, जैसे—किसी ने कहा कि 'ब्राह्मणत्व विद्याचरण सपत्' । पर विद्याचरण सपत्ति कही ब्राह्मण मे मिलती है और कही नही। इस प्रकार यह वाक्य वक्ता के अभिप्रेत अर्थ का उल्लघन करनेवाला है, अत अतिसामान्य।

अतिसामान्य[2]—वि० अत्यत साधारण। मामूली। सहज।

अतिसाम्या—संज्ञा स्त्री० [स०] मधुयष्टि नामक पौधा [को०]।

अतिसार—संज्ञा पुं० [स०] अधिक दस्त होने का एक रोग।

विशेष—इसमे मल बढकर उदराग्नि को मद करके शरीर के रसो को लेता हुआ बार बार निकलता है। इसमे आमाशय की भीतरी झिल्लियो मे शोथ हो जाने के कारण लाया हुआ पदार्थ नही ठहरता और अँतड़ियो मे से पतले दस्त के रूप मे निकल जाता है। यह भारी, चिकनी, रूखी, गर्म पतली चीजो के खाने से, एक भोजन के पचे बिना फिर भोजन करने से, विष से, भय और शोक से, अत्यत मद्यपान से तथा कृमिदोष से उत्पन्न होता है। वैद्यक के अनुसार इसके छह भेद हैं—(१) वायुजन्य, (२) पित्तजन्य (३) कफजन्य (४) सनिपातजन्य, (५) शोकजन्य और (६) आमजन्य।

मुहा०—अतिसार होकर निकलना = दस्त के रास्ते निकलना। किसी न किसी प्रकार नष्ट होना। जैसे—'हमारा जो कुछ तुमने खाया है वह अतिसार होकर निकलेगा' (शब्द०)।

अतिसारकी—वि० [स० अतिसारकिन्] अतिसार से पीडित। अतिसार का रोगी [को०]।

अतिसारी—वि० [स० अतिसारिन्] दे० 'अतिसारकी' [को०]।

अतिसी(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० अतसी] तीसी। अलसी। उ०—अतिसी कुसुम तन, दीरघ चचल नैन, मानो रिस भरि के लरति जुग झखियाँ।—सूर०, १०।१३८५।

अतिसृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्कृष्ट रचना [को०]।

अतिसै(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अतिशय'। उ०—कह्यौ हरि कैं भय रवि ससि फिरैं। वायु वेग अतिसैं नहिं करैं।—सूर० ३।१३।

अतिसौरभ[1]—वि० [स०] अत्यधिक सुगधित [को०]।

अतिसौरभ[2]—संज्ञा पु० १ अत्यधिक सुगध। २ आम [को०]।

अतिसौहित्य—संज्ञा पु० [स०] अधिक मात्रा मे भोजन करना [को०]।

अतिस्थूल[1]—वि० [स०] १ बहुत मोटा। २ मोटीबुद्धिवाला। मूर्ख।

अतिस्थूल[2]—संज्ञा पुं० मेद रोग का एक भेद जिसमे चरबी के बढने से शरीर अत्यत मोटा हो जाता है।

अतिस्पर्श[1]—वि० [सं०] १ कजूस। २ नीच प्रवृत्ति का अनुदार [को०]।

अतिस्पर्श[2]—संज्ञा पु० [स०] व्याकरण मे उच्चारण करते समय जीभ और तालु का अत्यल्प स्पर्श [को०]।

अतिस्वप्न—संज्ञा पुं० [स०] १ बहुत अधिक स्वप्न देखना। २ अत्यधिक निद्रा [को०]।

अतिहत—वि० [सं०] १ पूर्णतया नष्ट किया हुआ। २ अचल। स्थिर [को०]।

अतिहसित—संज्ञा पु० [स०] हास के छह भेदो मे से एक जिसमे हँसनेवाला ताली पीटे, बीच बीच मे अस्पष्ट वचन बोले, उसका शरीर काँपे और उसकी आँखो से आँसू निकल पडे।

अतींद्रिय[1]—वि० [सं० अतीन्द्रिय] जो इद्रियज्ञान के बाहर हो। जिसका अनुभव इद्रियो द्वारा न हो। अगोचर। अप्रत्यक्ष। अव्यक्त। उ०—एक अतींद्रिय स्वप्नलोक का मधुर रहस्य उलझता था।—कामायनी, पृ० ३५।

अतींद्रिय[2]—संज्ञा पुं० १ आत्मा। २ प्रकृति। ३ मन [को०]।

अती—वि० [स०] दे० 'अति'। [को०]।

अतीचार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिचार' [को०]।

अतीत[1]—वि० [सं०] १ गत। व्यतीत। बीता हुआ। गुजरा हुआ। भूत। उ०—चिंता करत हूँ मैं जितनी उस अतीत की, उस सुख की।—कामायनी, पृ० ६। २ निर्लेप। असग। विरक्त। पृथक्। जुदा। अलग। न्यारा। उ०—धनि धनि साँई तू बडा, तेरी अनुपम रीत। सकल भुवनपति साइयाँ ह्वै कर है अतीत।—कबीर (शब्द०)। ३ मृत। मरा हुआ।

अतीत[2]—क्रि० वि० परे। बाहर। उ०—गुन अतीत अविगत अविनासी सो ब्रज मे खेलत सुखरासी।—सूर (शब्द०)।

अतीत(पु)[3]—संज्ञा पुं० वीतराग सन्यासी। यति। विरक्त साधु। उ०—(क) अजर धान्य अतीत का, गृही करै जु अहार। निश्चय होय दरिद्री, कहै कबीर विचार। कबीर (शब्द०)। (ख) अति सीतल अति ही अमल, सकल कामना हीन, तुलसी ताहि अतीत गनि, वृत्ति साति लयलीन।—तुलसी ग्र० पृ० १४।

अतीत(पु)[4]—संज्ञा पुं० [सं० अतिथि] १ अभ्यागत। अतिथि पाहुन। मेहमान। उ०—आरत दुखी सीत भयभीता। आयो ऐसो गेह अतीता।—सबल (शब्द०)। २ संगीत मे वह स्थान जो सम से दो मात्राओ के उपरात आता है। यह स्थान कभी कभी सम का काम देता है। उ०—सुर स्रुति तान बँधान अमित अति सप्त अतीत अनागत आवत।—सूर०,१।१२६६। ३ तबले के किसी बोल या टुकडे की सम से आधी या एक मात्रा के पहले समाप्ति।

अतीतना[1](पु)—क्रि० अ० [सं० अतीत] बीतना। गुजरना। गत होना। उ०—रोग-वियोग-सोक-सम-संकुल बडि वय वृथहि अतीति।—तुलसी ग्र०, पृ० ५७४।

अतीतना[2](पु)—क्रि० स० बिताना। व्यतीत करना। विगत करना। छोडना। त्यागना। उ०—कृच्छ्र उपवास सब इंद्रियन जीतही। पुत्र सिख लीन, तन जौ लगि अतीतही।—केशव (शब्द०)।

अतीति—संज्ञा स्त्री० [सं० अतीत] आधिक्य। प्राचुर्य। उ०—राजन की नीति गई पच प्रतीति गई, अब तौ अतीति सो अनीत होन लागी है।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४३२।

अतीथ[1](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अतिथि'। उ०—बधु कुबुद्धि पुरोहित लपट चाकर चोर अतीथ धुतारो।—इतिहास, पृ० २०१।

अतीथ[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अतीत'। उ०—कहै गुलाल अतीथ राम गुन गाइया।—गुलाल०, पृ० ६०।

अतीम(पु)—वि० [हिं०] दे० 'यतीम'। उ०—रहै गरीब अतीम होई तिनकी कही फकीर। सत वाणी०, पृ० १३५७।

अतीव—वि० [सं०] अधिक। ज्यादा। बहुत। अतिशय। अत्यंत। उ०—हो के रुष्ट अत अतीव मन मे पाके वृथा ताप वे।—शकु० पृ० २१।

अतीस—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा।

विशेष—यह हिमालय के किनारे सिंध नदी से लेकर कुमाऊँ तक पाया जाता है। इसकी जड कई प्रकार की दवाओ मे काम आती है और खाने मे कुछ कडवी तथा चरपरी होती है। यह पाचक, अग्निसदीपक और विपच्न है तथा कफ, पित्त, आम, अतिसार, खाँसी, ज्वर, यकृत और कृमि आदि रोगो को दूर करती है। बालरोगो के लिये यह बहुत उपकारी है। यह तीन प्रकार की होती है—(१) सफेद, (२) काली और (३) लाल। इनमें सफेद अधिक गुणकारी समझी जाती है।

पर्याय—विषा, अतिविषा, काश्मीरा, श्वेता, अरुणा, प्रविषा, उपविषा, घुणवल्लभा, शृ गी महौषध, भृ गी, श्वेतकदा, भगुरा, मृद्वी, शिशुभैषज्य, शोकापहा, श्यामकदा, विश्वा।

अतीसार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिसार'।

अतुग—वि० [सं०] जो ऊँचा न हो। ठिगना [को०]।

अतुद—वि० [सं०] जो हृष्ट पुष्ट न हो, क्षीणकाय [को०]।

अतुकात[1]—[हिं० अ+तुक+अत] तुकरहित। जिसके अंतिम चरणो का तुक या अनुप्रास न मिलता हो। उ०—प्रसाद जी हिंदी मे छायावाद के विधाता तो हैं ही, अतुकात कविता के आरभकर्ता भी वे ही हैं।—करुणा० (प्रका०)।

अतुकात[2]—संज्ञा पुं० [हिं० अ+तुक+अत] छदोबद्ध कविता जिसमे तुक या अनुप्रास न हो।

अतुर[1]—वि० [सं०] १ जो धनवान न हो। २ अनुदार [को०]।

अतुर[2](पु)—वि० [हिं०] दे० 'आतुर'। उ०—प्राण जोडे हुकुम पावै अतुर। बारै भरथ आवै।—रा०, पृ० ११६।

अतुर[3](पु)—वि० [हिं०] दे० 'अतुल'।—उ०—नव मुनि भान नरिंद सवद उम्मार अतुर वर।—पृ० रा०, ३५।१०४५।

अतुराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आतुर+हिं० आई (प्रत्य०)] १ आतुरता। जल्दी। शीघ्रता। उ०—कीरति महरि लिवावन आई। जाहु न स्याम, करहु अतुराई।—सूर०। १।१३७५। २ घबराहट। हडबडी। ३ चचलता। चपलता। उ०—नैनन की अतुराई, बैनन की चतुराई गात की गोराई ना दुरति दुति चाल की।—केशव (शब्द०)।

अतुराना(पु)—क्रि० अ० [सं० आतुर, हिं० अतुर से नाम०] आतुर होना। घबडाना। हडबडाना। जल्दी मचाना। अकुलाना। उ०—(क) तुरत जाइ लै आउ, उहाँ तें, विलव न करि मो भाई। सूरदास प्रभु बचन सुनतही हनुमत चल्यौ अतुराई।—सूर०, ६।१४६। (ख) आए अतुराने, बाँधे बाने, जे मरदाने समुहाने।—सूदन (शब्द०)।

अतुरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आतुरता'।

अतुल[1]—वि० [सं०] १ जो तौला या कूता न जा सके। जिसकी तौल या अदाज न हो सके। २ अमित। असीम। अपार। बहुत अधिक। बेअदाज। उ०—आवत देखि अतुल बलसींवा।—तुलसी (शब्द०)। ३ जिसकी तुलना या समता न हो सके। अनुपम। बेजोड। अद्वितीय। उ०—मुनि रघुपति छवि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी।—मानस ७।३२।

अतुल[2]—संज्ञा पुं० १ केशव के अनुसार अनुकूल नायक का दूसरा नाम। उ०—ये गुण केशव जाहि मे, सोई नायक जान। अतुल, दक्ष, शठ, धृष्ट, पुनि, चौविध ताहि बखान।—केशव (शब्द०)। २ तिल का पेड। ३ तिलक। तिलपुष्पी। ४ कफ। श्लेष्मा। बलगम।

अतुलनीय—वि० [सं०] १ जिसका अदाजा न हो सके। अपरिमित। अपार। बेअदाज। बहुत अधिक। २ अनुपम बेजोड। बेजोड। अद्वितीय।

अतुलित—वि० [सं०] १ बिना तौला हुआ। २ बे अदाज। अपरिमित। अपार। बहुत अधिक। उ०—बनचर देह धरी छिति माही। अतुलित बल प्रताप तिन पाही।—मानस, १।१८७।३ —असख्य। उ०—जो पै अलि अत इहै करिबे हो। तौ अतुलित अहीर अबलनि को हठि न हिये हरिबे हो।—तुलसी ग्र०, पृ० ४४४।

४ अनुपम। बेजोड। अद्वितीय। उ०—कहहिं परस्पर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघुभाई।—मानस २।२१३।

अतुल्य—वि० [सं०] १ असमान। असदृश। २ अनुपम। बेजोड। अद्वितीय। निराला।

अतुल्ययोगिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जहाँ कई वस्तुओं का समान धर्म कथन होने के कारण तुल्ययोगिता की संभावना दिखाई पड़ने पर भी किसी एक अभीष्ट वस्तु का विरुद्ध गुण बतलाकर उसकी विलक्षणता दिखलाई जाय वहाँ इस अलंकार की कल्पना कविराजा मुरारिदान ने की है। उ०—हय चले हाथी चले संग छोड़ि साथी चले, ऐसी चलाचली मे अचल हाडा ह्वै रह्यो।—भूषण ग्रं०, पृ० १३३।

अतुष—वि० [सं०] भूसी रहित। बिना भूसी का [को०]।

अतुषार—वि० [सं०] जो ठंडा न हो। गर्म [को०]।

अतुषारकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अतुष्टि—संज्ञा स्त्री० [को०] अतृप्ति। असंतोष [को०]।

अतुष्टिकर—वि० [सं०] असंतोषजनक [को०]।

अतुहिन—वि० [सं०] जो ठंडा न हो। तप्त [को०]।

अतुहिनकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अतुहिनधाम—संज्ञा पुं० [सं० अतुहिनधामन] दे० 'अतुहिनकर' [को०]।

अतुहिनरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतुहिनकर'।

अतुहिनरुचि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतुहिनरश्मि' [को०]।

अतूथ(पु)—वि० [सं० अति=अधिक+उत्थ=उठा हुआ] अपूर्व। उ०—देखौ सखि अकथ रूप अतूथ। एक अंबुज मध्य देखियत बीस दधिसुत जूथ।—सूर० परि०, ११६।

अतूल[1]—वि० [हिं०] दे० 'अतुल'। उ०—नेह उपजावन अतूल तिल फूल कैधौं, पानिप सरोवरी की उरमि उतंग है।—भिखारी ग्रं० भा० १, पृ० १०१।

अतूल[2]—वि० [हिं०] दे० 'अतुल्य'। उ०—हित हरषत करषत वमन परपत उरज अतूल।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६५।

अतूर्णाद—संज्ञा पुं० [सं०] तुरंत का जन्मा बछड़ा [को०]।

अतृपत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अतृप्त'। उ०—अतृपत सुत जु झुमित तव भयौ। भाजत भाँजि भवन दुरि गयौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २४६।

अतृप्त—वि० [सं०] १ जो तृप्त या संतुष्ट न हो। असंतुष्ट। जिसका मन न भरा हो। उ०—होकर अतृप्त तुम्हें देखने को नित्य नया रूप दिए देता हूँ पुराना छोड़ने के लिये।—झरना, पृ० ६४। २ भूखा। बुभुक्षित।

अतृप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] असंतोष। मन न भरने की अवस्था। उ०—यह अतृप्ति अधीर मन की क्षोभयुत उन्माद।—कामायनी पृ० ६१।

अतृष्ण—वि० [सं०] तृष्णारहित। निस्पृह। कामनाहीन। निर्लोभ।

अते(पु)—वि० [सं० अत्यंत] परम। अत्यधिक। उ०—अतेरूपमूरति परगटी पुनिऊँ ससि सो खीन होइ घटी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ९१।

अतेज—वि० [सं० अतेजस] १ तेजरहित। अंधकारयुक्त। मंद। धुँधला। २. हतश्री। प्रतापरहित।

अतेव—वि० [हिं०] दे० 'अतीव'। उ०—या विधा फिरैं निकुंज कुंज पुंज भामरो। कामधेनु पाय रो रहै अतेव चामरो।—भिखारी ग्रं०, भाग १, पृ० १३६।

अतोर—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० तोड=टूटना] जो न टूटे। अभंग दृढ। उ०—जनु माया के बंधन अतोर।—गुमान (शब्द०)।

अतोल—वि० [हिं० अ+तोल] [स्त्री० अतोली] १ बिना तौला हुआ। बिना अंदाज किया हुआ। जो कूता न हो। उ०—साज सहित एक घुड़िला लैयौ गैया दूध अतोली जू।—नंद ग्रं०, पृ० ३३७। २ जिसकी तौल या अंदाज न हो सके। बेअंदाज। बहुत अधिक। उ०—चलै गोल गोली अतोली सनकैं, मनो भौर भीरैं उड़ाती भनकैं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०। ३ अतुल्य। अनुपम। बेजोड। उ०—पगनि धरत मग धरनि धुजावें धरि, नावें निज ऊपर अतोल वल धारे ते।—हम्मीर०, पृ० २३।

अतोषणीय—वि० [सं०] जो तोषणीय न हो [को०]।

अतौल—वि० [हिं०] दे० 'अतोल'।

अत्क—संज्ञा पुं० [सं०] १ पथिक। २ अवयव। अंग। ३ जल। ४ बिजली। ५ परिधान। पहनावा। ६ कवच। ७ घर का कोना [को०]।

अत्त[1](पु)—वि० [सं० आत्त] प्राप्त। उपलब्ध।

अत्त[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अति] अति। अधिकता। ज्यादती। उ०—यह कन्या फली नहीं, मुद्राराक्षस की विषकन्या हो गई। अत्त भी तो बड़ी भई।—भारतेंदु ग्रंथ, भाग १, पृ० ३६७।

अत्तवार†—संज्ञा पुं० [सं० आदित्यवार प्रा० आइच्चवार,* आइत्तवार <इत्तवार <अत्तवार] रविवार। सप्ताह का पहला दिन।

अत्तव्य—वि० [सं०] खाने योग्य [को०]।

अत्ता[1]—संज्ञा पुं० [सं०] चराचर का ग्रहण करनेवाला। ईश्वर का एक नाम।

अत्ता[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जेठी बहिन। २ सास। माता। ३ मौसी। मातृष्वसा।

अत्तार—संज्ञा पुं० [अ०] १ गंधी। सुगंध या इत्र बेचनेवाला। २ यूनानी दवा बनाने और बेचनेवाला। उ०—परम पिता हमहीं वैद्यन के अत्तारन के प्रान।—भारतेंदु ग्रं०, भाग १ पृ० ४७६।

अत्ति[1]—वि० [हिं० दे० 'अति[1]'। उ०—ठिले अत्ति हैं मद मातंग माते। उमगंत तैयार तूरंग ताते।—पद्माकर ग्रं० पृ० २८०।

अत्ति(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दे० 'अत्त[2]'।

अत्ति[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी बहन [को०]।

अत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अत्ति[3]'।

अत्तिवारे(पु)—वि० [हिं अत्ति+वाले] अत्यंत साहस का काम करनेवाले। उ०—चढ़े हैं जिन्हों पै महा बज्र भारे धमंगे किलाएँ मनो अत्तिवारे। पद्माकर ग्रं०, पृ० २८०।

अत्थ(पु)—संज्ञा [सं० अर्थ प्रा० अत्थ] प्रयोजन। हेतु। उ०—एकै रिपुन के जुत्थ जुत्थ करे उलथि बिन अत्थ के।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०।

अत्थडी(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० अर्थ, प्रा० अत्थ+डी० (प्रत्य०)]धन । संपत्ति । उ०—उद्यम हूंता अत्थडी काणा सुण निण कीत ।—बाँकी० ग्र० भाग १, पृ० ५१ ।

अत्थवना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अथवना'। उ०—जो ऊगे सो अत्थवै फूलै सो कुम्हिलाय ।—कबीर सा० सं०, पृ० ७८ ।

अत्थि(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० अस्ति] अस्तित्व मे आने की स्थिति सत्ता [को०] ।

अत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ वायु । २ सूर्य । ३ पथिक [को०] ।

अत्नु—संज्ञा पु० [स०] दे० 'अत्न'

अत्यंकुश—वि० [स० अत्यङ्कुश] अकुश कोन माननेवाला । नियत्रण मे न रहनेवाला [को०] ।

अत्यंत—वि० [सं० अत्यन्त]बहुत अधिक । बेहद । अतिशय । हद से ज्यादा ।

अत्यंतग—वि०[स० अत्यन्तग] बहुत तेज चलनेवाला। तीव्रगामी[को०] ।

अत्यंतगत–वि० [स० अत्यन्तगत] जो सदा के लिये चला गया हो या पृथक हो गया हो [को०] ।

अत्यंतगति—संज्ञा स्त्री० [सं०अत्यन्तगति] पूर्णता [को०] ।

अत्यंतगामी—वि० [स० अत्यन्तगामिन्] १ अत्यधिक तेज चलने वाला । २ बहुत अधिक [को०] ।

अत्यंतता—संज्ञा स्त्री० [स०] १ आधिक्य । २ उग्रता । ३ प्रचडता [को०] ।

अत्यंततिरस्कृत अर्थ—संज्ञा पु० [स० अत्यन्ततिरस्कृत अर्थ] दे० 'अत्यंत तिरस्कृत वाच्यध्वनि'। उ०—अत्यंत तिरस्कृत अर्थ सदृश ध्वनि कंपित करना बार बार ।—लहर, पृ० ३४ ।

अत्यंततिरस्कृत वाच्यध्वनि—संज्ञा स्त्री० [स० अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य ध्वनि] एक ध्वनि जिसमे वाच्यार्थ का पूर्णतया त्याग होता है । [को०] ।

अत्यंतनिवृत्ति—संज्ञा स्त्री० स० [अत्यन्तनिवृत्ति] पूर्णतया मुक्त हो जाना । पूर्ण रूप मे पृथक् हो जाना [को०] ।

अत्यंतनिवृत्ति—संज्ञा पु० [स० अत्यन्तभाव] किसी अवस्था मे अभाव को न प्राप्त होनेवाला भाव । सदा बनी रहनेवाली सत्ता । अपरिमित अस्तित्व ।

अत्यंतवासी—संज्ञा पुं० [स० अत्यन्तवासिन्] आचार्य के समीप हमेशा रहनेवाला छात्र [को०] ।

अत्यंतसंपर्क—संज्ञा पुं० [स० अत्यन्त सम्पर्क] अत्यधिक संभोग [को०] ।

अत्यंतसुकुमार[1]—वि० [स० अत्यन्तसुकुमार] अतिशय कोमल [को०]

अत्यंतसुकुमार[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का धान्य [को०] ।

अत्यंतातिशयोक्ति—संज्ञा स्त्री० [स० अत्यतिशयक्ति] दे० अति-शयोक्ति'। उ०—अत्यंतातिसयोकति चीतौ । जहँ पूरब पर क्रम विपरीतौ ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ४० ।

अत्यंताभाव—संज्ञा पु० [स० अत्यन्ताभाव] १ किसी वस्तु का बिलकुल न होना । सत्ता की नितात शून्यता । प्रत्येक दशा मे अनस्तित्व २ वैशेषिक के अनुसार पाँच प्रकार के अभावो मे से चौथा जो प्रागभाव, प्रध्वसाभाव और अन्योन्याभाव से भिन्न अर्थात् जो तीनो कालो मे संभव न हो । जैसे—आकाशकुसुम, वध्यापुत्र, शशविषाण मे आदि । ३ बिलकुल कमी ।

अत्यंतिक—वि० [स० अत्यन्तिक] १ समीपी । नजदीकी । २ जो बहुत घूमे । घुमक्कड । ३ बहुत चलनेवाला [को०] ।

अत्यंतिन—वि० [स० अत्यन्तीन] १ बहुत अधिक चलनेवाला । २ अत्यधिक तीव्र गति से चलनेवाला । ३ चिरकालव्यापी । चिर-स्थायी [को०] ।

अत्य(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अति] दे० 'अति'। उ०—कमलपत्र दृग मत्त हैं रैन रति के अत्य । प्रीतम लखि अकि नित रहैं यहै कहति हौं सत्य ।—ब्रज ग्र०, पृ० ६३ ।

अत्यग्नि[1]—वि० [सं०] अग्नि से भी अधिक तापवाला [को०] ।

अत्यग्नि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यधिक तेज पाचन शक्ति [को०] ।

अत्यधिक—वि० [स० अति+अधिक] बहुत ज्यादा । सीमा से आगे [को०] ।

अत्यम्ल[1]—संज्ञा पुं० [स० अति+अम्ल] १ इमली का पेड । २ विषाविन । ३ बिजौरा नीबू ।

अत्यम्ल[2]—वि० बहुत खट्टा [को०] ।

अत्यम्लपर्णी—संज्ञा स्त्री० [स०] रामचना या खटुआ नाम की बेल ।

अत्यम्ला—संज्ञा स्त्री० [स०] जगली बिजौरा नीबू ।

अत्यय—संज्ञा पु० [स०] १ मृत्यु । ध्वस । नाश । २ अतिक्रमण । हद से बाहर जाना । ३ दड । सजा । ४ कृच्छ्र । कष्ट । ५ दोष । ६ प्राचीन काल का एक प्रकार का अर्थदंड या जुर्माना ।

अत्ययिक—वि० [स०] दे० 'आत्ययिक'।

अत्ययी—वि० [सं० अत्ययिन्] १ अतिक्रमण करनेवाला । २ सबसे आगे बढ जानेवाला [को०] ।

अत्यर्थ—वि० [स०] उचित परिणाम से अधिक । अत्यधिक [को०] ।

अत्यष्टि—संज्ञा स्त्री० [स०] १७ वर्ण के वृत्तो की संज्ञा । शिखरिणी, पृथ्वी, हरिणी, मदाक्राता साराक्राता और मालाधार, आदि छद इसके अतर्गत हैं ।

अत्यह्न—वि० [सं० अति+अह्न] एक दिन से अधिक समय का [को०]।

अत्याकार[1]—वि०[स० अति=बडा+ आकार] विशाल आकार का । भारी डीलडौलवाला [को०] ।

अत्याकार[2]—संज्ञा पुं० १ अवज्ञा । २ घृणा । ३ निंदा । ४ विशाल डीलडौल [को०] ।

अत्याग—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण । स्वीकार । उ०—श्रवन-सुखद भव-भय-हरन त्यागिन को अत्याग ।—भारतेंदु ग्र०, भाग १, पृ० ४१४ ।

अत्यागी—वि० [सं० अत्यागिन्] दुर्गुणो को न छोडनेवाला । विषयासक्त । दुर्व्यसनी ।

अत्याचार—संज्ञा पु० [स०] १ आचार का अतिक्रमण । विरुद्धाचरण । अन्याय । निठुराई । ज्यादती । जुल्म । २ दुराचार । पाप।३ आचार की अधिकता । पाखड । ढोंग । ढकोसला । आडबर ।

अत्याचारी[1]—वि० [सं० अत्याचारिन्] १ अत्याचार करनेवाला । दुराचारी । अन्यायी । निठुर । जालिम । २ पाखडी । ढोंगी । ढकोसलेबाज । धर्मध्वजी ।

अत्याचारी[2]—संज्ञा पुं० वह जो अत्याचार करे । अन्यायी व्यक्ति ।

अत्याज्य—वि० [सं०] १ न छोडने योग्य। जिसका त्याग उचित न हो। २ जो कभी छोडा न जा सके।

अत्यादित्य—वि० [सं०] सूर्य के पार जानेवाला [को०]।

अत्याधान—सज्ञा पुं० [सं०] १ रखने की क्रिया। २ अतिक्रमण। ३ होम की अग्नि को रक्षित न रखना [को०]।

अत्यानद—सज्ञा पुं० [अत्यानन्द] आनद का परम उत्कृष्ट आध्यात्मिक रूप। परमानद [को०]।

अत्यानदा—सज्ञा स्त्री० [सं० अत्यानन्दा] वैद्यक के अनुसार योनियो का एक भेद।

विशेष—वह योनि जो अत्यत मैथुन से भी सतुष्ट न हो। यह एक रोग है जिसमे स्त्रियाँ वध्या हो जाती हैं। इसका दूसरा नाम 'रतिप्रीता' भी है।

अत्याय—सज्ञा पुं० [सं०] १ सीमा का उल्लघन। मर्यादा का अतिक्रमण। अधिक आमदनी या लाभ [को०]।

अत्यायु—सज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का पात्रविशेष [को०]।

अत्यारूढ—वि० [सं०] बहुत ऊँचे पद पर पहुँचा हुआ। अत्यत प्रसिद्ध [को०]।

अत्यारूढि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अत्यत ऊँचा पद। २ अतिप्रसिद्धि [को०]।

अत्याल—सज्ञा पुं० [सं०] रक्तचित्रक नामक वृक्ष [को०]।

अत्यावाय—सज्ञा पुं० [सं०] राजद्रोहियो की अधिकता [को०]।

अत्याहित¹—वि० [सं०] असहमति के योग्य। अस्वीकार्य [को०]।

अत्याहित²—सज्ञा पुं० १ अरुचि। अप्रियता। २ सकट। ३ भय। ४ दु साहस [को०]।

अत्याहितकर्मा—वि० [सं० अत्याहित+कर्मन्] दुष्ट। नीच। दुराचारी [को०]।

अत्युक्त—वि० [सं०] बहुत बढा चढ़ाकर कहा हुआ। अत्युक्तिपूर्ण।

अत्युक्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अत्युक्था' [को०]।

अत्युक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ बढा चढ़ाकर वर्णन करने की शैली। मुबालिगा। बढावा। २ एक अलकार जिसमे शूरता, उदारता आदि गुणो का अद्भुत और अतथ्य वर्णन होता है। जैसे—जाचक तेरे दान तें भए कल्पतरु भूप (शब्द०)।

अत्युक्था—सज्ञा स्त्री० [सं०] दो वर्णों के वृत्तो की सज्ञा।

विशेष—इसके चार भेद कहे गए हैं। कामा, मही, सार और मधु।

अत्युग्र¹—वि० [सं०] अति प्रचड। अतिशय भयानक [को०]।

अत्युग्र²—सज्ञा पुं० हीग [को०]।

अत्युग्रगधा—सज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।

अत्युत्तम—वि० [सं०] सबसे श्रेष्ठ। अधिक उत्कृष्ट [को०]।

अत्युपध—वि० [सं०] १ परीक्षित। अदाजा हुआ। २ विश्वस्त [को०]।

अत्यूर्मि—वि० [सं०] सीमा का अतिक्रमण कर बहनेवाला [को०]।

अत्यूह—सज्ञा पुं० [सं०] १ बहुत अधिक ऊहापोह। तर्क वितर्क २ अधिक जोर से बोलनेवाला पक्षी। मोर [को०]।

अत्यूहा—सज्ञा स्त्री० [सं०] नीलिका या निर्गुंडी नामक पौधा [को०]।

अत्र¹—क्रि० वि० [सं०] यहाँ। इस स्थान पर।

अत्र²(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अस्त्र, अप० अत्र] दे० 'अस्त्र'। उ०—सोहैं अत्र जोडे जे न छोडे सीम सगर की लगर लँगूर उच्च ओज की अतका मे।—पद्माकर ग्र० पृ० २२४।

अत्र³(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अतर'।

अत्र⁴(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र] अँतडी।

अत्र⁵—सज्ञा पुं० [सं०] १ राक्षस। २ भोजन [को०]।

अत्रक—वि० [सं०] १ यहाँ का। २ इस लोक का। लौकिक। ऐहिक।

अत्रत्य—वि० [सं०] यहाँ का। यहाँवाला।

अत्रप—वि० [सं० अ=नहीं+त्रपा] निर्लज्ज। उदड [को०]।

अत्रभवान्—वि० [सं०] [स्त्री० अत्रभवती] माननीय। पूज्य। श्रेष्ठ।

अत्रय(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अत्रि'। उ०—गिरभू किना वासर पाय। अत्रय तणो आश्रम आय।—रघु० रू०, पृ० १२२।

अत्रस्त—वि० [सं०] निर्भीक। भयरहित। निडर [को०]।

अत्रस्थ—वि० [सं०] यहाँ रहनेवाला। इस स्थान का। यहाँवाला। यहाँ उपस्थित रहनेवाला। यहाँ का।

अत्रस्नु—वि० [सं०] दे० 'अत्रस्त' [को०]।

अत्रास—वि० [सं०] दे० 'अत्रस्नु' [को०]।

अत्रि—सज्ञा पुं० [सं०] १ सप्तर्षियो मे से एक।

विशेष—ये ब्रह्मा के पुत्र माने जाते हैं। इनकी स्त्री अनुसूया थी। दत्तात्रेय, दुर्वासा और सोम इनके पुत्र थे। इनका नाम दस प्रजापतियों मे भी है।

२ एक तारा जो सप्तर्षिमडल मे है। ३ सात की सख्या (को०)।

अत्रिगुण—वि० [सं० अ+त्रिगुण] त्रिगुणातीत। सत्व, रज, तम नामक तीनो गुणो से पृथक्।

अत्रिज—सज्ञा पुं० [सं०] अत्रि के पुत्र—१ चद्रमा २. दत्तात्रेय। ३ दुर्वासा।

अत्रिजात—सज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अत्रिज'। २ प्रथम तीन वर्णों मे से किसी एक से सबधित मनुष्य। द्विज [को०]।

अत्रिदृग्ज—सज्ञा पुं० [सं०] १ अत्रि के नेत्र से उत्पन्न चद्रमा ऋषि। २ गणित मे एक की सख्या [को०]।

अत्रिनेत्रज—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अत्रिदृग्ज'।

अत्रिनेत्रप्रभव—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अत्रिनेत्रज [को०]।

अत्रिनेत्रभू—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अत्रिनेत्रप्रभाव' को।

अत्रिनेत्रसूत—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अत्रिनेत्रभू' [को०]।

अत्रिप्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] कर्दम मुनि की कन्या अनसूया जो अत्रि ऋषि को ब्याही थी। उ०—अत्रिप्रिया निज तपबल आनी।—मानस, २।१३२।

अत्रिसहिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] अत्रि ऋषि द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्र [को०]।

अत्रिस्मृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अत्रिसहिता' [को०]।

अत्री¹—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अत्रिप्रिया' [को०]

अत्री²—सज्ञा पुं० [सं० अत्रिन्] राक्षस [को०]।

अत्रैय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आत्रेय] दे० 'आत्रेय'।

अत्रैगुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणों का अभाव।

विशेष—सांख्य मतानुसार इस अवस्था का परिणाम मोक्ष या कैवल्य है।

अत्वक्क—वि० [सं०] चर्मरहित [को०]।

अत्वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्रता की कमी। मंदता [को०]।

अथ—अव्य [सं०] १ एक मंगलसूचक शब्द जिससे प्राचीन काल में लोग किसी ग्रंथ या लेख का आरंभ करते थे। जैसे —(क) 'अथतो धर्मं व्याख्यास्याम'।—वैशेषिक। [ख] 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'।—ब्रह्मसूत्र। पीछे से यह ग्रंथ के आरंभ में उसके नाम के पहले लिखा जाने लगा। जैसे —'अथ विनयपत्रिका लिख्यते'। २ अब। ३ अनंतर। तदनंतर।

अथऊ—संज्ञा पुं० [सं० अस्त, प्रा० अत्थ] वह भोजन जो जैन लोग सूर्यास्त के पहले करते हैं।

अथक—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० थकना] जो न थके। अश्रांत। उ०—शासन कुमारिका से हिमालय शृंग तक अथक अबाध और तीव्र मेघ ज्योति सा चलता था।—लहर, पृ० ७६।

अथकिम्—अव्य० [सं०] और क्या। हाँ [को०]।

अथग—वि० [सं० अस्तग प्रा० अत्थग] अगाध। गंभीर। अथाह। उ०—अखंड सरोवर अथग जल हंसा सरवर न्हाहि।—दादू पृ० ६७।

अथच—अव्य० [सं०] और। और भी। इसके अतिरिक्त।

अथना(पु)—क्रि० अ० [सं० अस्त प्रा० अत्थ से नाम०] १. अस्त होना। डूबना। उ०—सूरुज उवै बिहानहि आई। पुनि सो अथै कहा कह जाई।—जायसी [शब्द०]। २ कम होना। घट जाना। समाप्त हो जाना (को०)।

अथमना—संज्ञा पुं० [सं० अस्तमन, प्रा० अत्थमण] पश्चिम दिशा। उगमना का उलटा।

अथरवन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अथर्वन्] चौथा वेद। अथर्ववेद। उ०—[क] यह परमारथ कहौ हो पंडित, रुग जुग स्याम अथरबन पढ़िया।—गोरख०, पृ० १०६। [ख] रिग, जजु, साम, अथरबन माहाँ।—जायसी ग्रं०, पृ० ४४।

अथरा—संज्ञा पुं० [सं० आस्तर] मिट्टी का एक बरतन या नाँद। विशेष—इनमें रँगरेज कपड़ा रँगते हैं, सोनार मानिक रेत रखते हैं और जुलाहे सूत भिगोते और ताने में लेई लगाते हैं।

अथरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० 'अथरा का अल्पा०] १ छोटा अथरा। २ मिट्टी का वह बरतन जिसमें कुम्हार हाँडी या घड़े को रखकर थापी से पीटते हैं। ३. मिट्टी का वह बरतन जिसमें दही जमाते हैं।

अथर्व—संज्ञा पुं० [सं० अथर्वन्] चौथा वेद।

विशेष—इसके मंत्रद्रष्टा या ऋषि भृगु या अंगिरा गोत्रवाले थे जिस कारण इसको 'भृग्वंगिरस' और 'अथर्वांगिरस' भी कहते हैं। इसमें ब्रह्मा के कार्य का प्रधान प्रतिपादन होने से इसे 'ब्रह्मवेद' भी कहते हैं। इस वेद में यज्ञकर्मों का विधान बहुत कम है। शांति, पौष्टिक अभिचार आदि प्रतिपादन विशेष है। प्रायश्चित्त, तंत्र, मंत्र आदि इसमें मिलते हैं। इसकी नौ शाखाएँ थीं—पैप्पला, दांता, प्रदांता, स्नौता, ब्रह्मदावला, शौनकी, देवदर्शनी और चरण विद्या। कहीं कहीं इन नौ शाखाओं के नाम इस प्रकार हैं—पिप्पलादा, शौनकीया, दामोदा, तोतायना, जाजला, ब्रह्मपलाशा, कौनखिना, देवदर्शिना और चारण विद्या। इन शाखाओं में से आजकल केवल शौनकीय मिलती है जिसमें २० कांड, १११ अनुवाक, ७३१ सूक्त और ४७६३ मंत्र हैं। पिप्पलाद शाखा की संहिता प्रोफेसर बूलर को काश्मीर में भोजपत्र पर लिखी मिली थी पर वह छपी नहीं। इसका उपवेद धनुर्वेद है। इसके प्रधान उपनिषद् प्रश्न, मुंडक और माडूक्य हैं। इसका गोपथ ब्राह्मण आजकल प्राप्त है। कर्मकांडियों को इस वेद का जानना आवश्यक है।

२ अथर्ववेद का मंत्र।

अथर्वण—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव। २ दे० 'अथर्व' [को०]।

अथर्वणि—संज्ञा पुं० [सं०] १ अथर्ववेद के अनुसार कर्मकांड करनेवाला ब्राह्मण। २ यज्ञ करानेवाला पुरोहित। यज्ञ का ब्रह्मा [को०]।

अथर्वन्—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक मुनि जो ब्रह्मा के पुत्र और अग्नि को स्वर्ग से लानेवाले समझे जाते हैं। २ दे० 'अथर्व' [को०]।

अथर्वन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अथर्व'। उ०—नातर वेद अथर्वन हारू।—कबीर सा०, पृ० ७७।

अथर्वनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद का मर्मज्ञ [को०]।

अथर्वनी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आथर्वणि] दे० 'अथर्वणि'। उ०—प्रापु बसिष्ठ अथर्वनी महिमा जग जानी।—तुलसी ग्रं०, पृ० २७०।

अथर्वविद्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अथर्वनिधि' [को०]।

अथर्वशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् [को०]।

अथर्वशिर—संज्ञा पुं० [सं० अथर्वशिरस्] १ एक प्रकार की ईंट जो तैत्तिरीय शाखा के समय में यज्ञ की वेदी बनाने के काम आती थी। २ एक उपनिषद् [को०]।

अथर्वशिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० अथर्वशिरस्] १ वेद की एक ऋचा का नाम। २ एक उपनिषद [को०]।

अथर्वांगिरस—संज्ञा पुं० [सं० अथर्वाङ्गिरस] दे० 'अथर्व'

अथर्वाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अथर्वणि' [को०]।

अथला—संज्ञा पुं० [अ (उच्चा०)+सं० स्थल, प्रा० थल] वह भूमि जो लगान पर जोतने के लिये दी जाय।

अथवना(पु)—क्रि० अ० [सं० अस्तमन=डूबना प्रा० अत्थमण अत्थवण] १ अस्त होना। डूबना। उ०—[क]—जो आगे सो अथवै फूलै सो कुम्हिलाय। जो चुनिए सो ढहि परै जामै सो मरि जाय।—कबीर [शब्द०]। [ख] केइ यह बसत बसत उजारा। गा सो चाँद अथवा लेइ तारा।—जायसी [शब्द०]। २ लुप्त होना। तिरोहित होना। नष्ट होना। गायब होना। चला जाना। उ०—कहत ससोक बिलोकि बधु मुख बचन प्रीति गथए हैं। सेवक सखा भगति, भायप गुन चाहत अब अथए हैं—तुलसी [शब्द०]।

अथवा—अव्य० [सं०] एक वियोजक अव्यय। जिसका प्रयोग उस स्थान पर होता है जहाँ दो या कई शब्दों या पदों में से किसी एक का ग्रहण अभीष्ट हो। या। वा। किंवा। उ०—निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होइ अथवा अति फीका।—मानस, १।८।

अथाई—संज्ञा स्त्री० [सं० *आस्थायिका अथवा *आस्थायी, प्रा० अत्थाई] बैठने की जगह। घर का वह बाहरी चौपाल जहाँ लोग इष्ट मित्रों से मिलते वा उनके साथ बातचीत करते हैं। बैठक। चौबारा। उ०—हाट बाट घर गली अथाई। कहहि परसपर लोग लुगाई।—मानस, २।१०। २ वह स्थान जहाँ किसी गाँव या बस्ती के लोग इकट्ठे होकर बातचीत और पंचायत करते हैं। उ०—कहै पदमाकर अथाइन को तजि तजि, गोपगन निज निज गेह को पर्यं गयो।—पद्माकर ग्र०, पृ० २३७। ३ घर के सामने का चबूतरा जिसपर लोग उठते बैठते हैं। ४ गोष्ठी। मडली। सभा। जमावडा। दरबार। उ०—गजमनि माल बीच भ्राजत कहि जात न पदिक निकाई। जनु उडुगण मडल वारिद पर नव ग्रह रची अथाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ६२१।

अथाग (पु)—वि० [स० अस्ताघ, प्रा० अत्थग्घ] दे० 'अथाह'। उ०—हूँकल दल गज हैवरां अमरख नरां अथाग।—रा० रू०, पृ० ५५३।

अथान—संज्ञा पु० [स० अस्थाणु = स्थिर] अचार। कचूमर। उ०—विधि पाच अथान बनाइ कियो। पुनि द्वै विधि क्षीर मो मांगि लियो।—केशव (शब्द०)।

अथाना[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अथान'। उ०—निबुआ, सूरन आम अथानो और करौंदनि की रुचि न्यारी।—सूर० १०।२४१।

अथाना[2] (पु)—क्रि० अ० [स० अस्तायं, प्रा० अत्या, अत्थाअ] डूबना। अस्त होना। दे० 'अथवना'।

अथाना[3]—क्रि० स० [स० आ + स्थापन] १ थहाना। थाह लेना। गहराई नापना। २ ढूँढना। छानना। उ०—फिरत फिरत बन सकल अथायो। कोऊ जीव हाथ नहि आयो।—सबल (शब्द०)।

अथाय (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अथाह'। उ०—अद्वै अचल अखड है, अगम अपार अथाय। ब्रज माधुरी०, पृ० २८६।

अथार (पु)—वि० [सं० आ (उप०) + स्तार < स्तृ] फैला या बिखरा हुआ।

अथावत (पु)—वि० [म० अस्तमित = डूबा हुआ] अस्त। डूबा हुआ। उ०—बेर लगी रघुनाथ रहे कित हे मन याको मैं भेद न पायो। चदहु आयो अथावतो होत अजहूँ मनभावतो क्यो नहिं आयो।—रघुनाथ (शब्द)।

अथाह[1]—वि० [सं० अस्ताघ, प्रा० अत्थाह अथवा मं० अ = नहीं + √स्था = ठहरना] १ जिसकी थाह न हो। जिसकी गहराई का अत न हो। बहुत गहरा। अगाध जैसे—यहाँ अथाह जल है (शब्द)। २ जिसका कोई पार या अत न पा सके। जिसका अदाज न हो सके। अपरिमित। अपार। बहुत अधिक। ३ गभीर। गूढ। समझ मे न आने योग्य। कठिन। उ०—(क) करै नित्य जप होम औ जानत वेद अथाह (शब्द)। (ख) रमणी हृदय अथाह जो न दिखलाई पडता।—कानन०, पृ० ७१।

अथाह[2]—संज्ञा पुं० १ गहराई। गड्ढा। जलाशय। २ समुद्र। उ०—वा मुख के फिर मिलन को, आस रही कछु नाहि। परे मनोरथ जाय मम अब अथाह के माहि।—शकुतला, पृ० ११४।

मुहा०—अथाह मे पडना = मुश्किल मे पडना। जैसे—हम अथाह मे पड़े हैं, कुछ नही सूझता [शब्द]।

अथिर (पु)—वि० [स० अस्थिर, प्रा० अत्थिर, अथिर] १ जो स्थिर न हो चलायमान। चचल। उ०—काची काया मन अथिर थिर थिर काम करत।—कबीर ग्र०, पृ० ७६। २ क्षणस्थायी। टिकनेवाला।

अथीर (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अथिर'। उ०—नहि तर्क वितर्क अधीर धीर। नहि शून्य अशून्य अथीर थीर।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ७८।

अथैंया (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अथाई'। उ०—सामी हमारे बुलबुल की अथैंया इन देखिबे आइए।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६२७।

अथोर (पु)—वि० [सं० अ + स्तोक = थोडा प्र० थोक, अप० थोक + ड [प्रत्य०] [स्त्री० अथोरी]] कम नहीं। अधिक। ज्यादा। बहुत। पूरा। उ०—भरति नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर।—भारतेंदु ग्र० २।५७७।

अदक (पु)—संज्ञा पुं० [सं० आतङ्क, हिं० अतक] डर। भय। त्रास। उ०—जसुमति बूझति फिरति गोपालहि। जब ते तृणावर्त्त ब्रज आयो तब ते मोहि जिय सक। नैननि ओट होत पल एकौ मैं मन भरति अदक।—सूर [शब्द]।

अदड[1]—वि० [सं० अदण्ड्य] १ जो दड के योग्य न हो। जिसे दड देने की व्यवस्था न हो। सजा से बरी। २ जिसपर कर या महसूल न लगे। कररहित। ३ निर्द्वंद्व। निर्भय। स्वेच्छाचारी। उ०—उदधि अपार उतरत हूँ न लागी बार, केसरीकुमार सो अदड ऐसो डांडिगो।—तुलसी [शब्द०]।

अदड[2]—संज्ञा पुं० वह भूमि जिसकी मालगुजारी न लगे। मुआफी।

अदडनीय—वि० [स० अदण्डनीय] जो दड पाने के योग्य न हो। जिसके दड का विधान न हो। अदंड्य।

अदडमान—वि० [स० अदण्डमान] दड के अयोग्य। दड से मुक्त। सजा से बरी। उ०—अदडमान दीन गर्व दडमान भेद वै। अपठ्ठमान पाप ग्रथ, पठ्ठमान वेद वै।—केशव [सब्द]।

अदड्य—वि० [स० अदण्ड्य] दड न पाने योग्य। जिसे दड न दिया जा सके। दडमुक्त। सजा से बरी।

अदत[1]—वि० [स० अदन्त] १ वेदांत का। जिसे दांत न हो। २ जिसे दांत न निकला हो। बहुत थोडी अवस्था का। दुधमुहाँ। ३ जिसने दांत न तोडा हो (चौपाया)।

अदत[2]—वि० १ बारह आदित्यो मे एक। २ जोंक [स्त्री०]।

अदत्य—वि० [स० अदन्त्य] जो दांत सबधी न हो। २ जो दांतो के अनुकूल न हो। ३ दांतो के लिये अहितकर [स्त्री०]।

अदव (पु)—वि० [स० अदब्ध] पवित्र। शुद्ध। उ०—यौं पद्माकर मत्र मनोहर जै जगदब अदब अए री।—पद्माकर ग्र० पृ० ३२५।

अदभ[1]—वि० [स० अदम्भ] १ दभरहित। पाखडविहीन। सच्चा। बिना आडबर का। २ निश्छल। निष्कपट। ३ प्राकृतिक। स्वाभाविक। अकृत्रिम। स्वच्छ। शुद्ध। उ०—मोति नग हीर, नग हीरन की कानि सों रतन खंभ पातिन अदभ छवि छाई सी।—देव [शब्द]।

अदंभ[२]—संज्ञा पुं० १ शिव । २ दंभ का अभाव (को०) । ३. शुद्धता (को०) ।

अदंभित्व—संज्ञा पुं० [सं० अदम्भित्व] दंभशून्यता । दंभ का अभाव । पाखंड या आडंबर का न होना । सात्विक जनों का एक गुण ।

अदष्ट्र[१]—वि० [सं०] दंतहीन । बिना दाँत का [को०] ।

अदष्ट्र[२]—संज्ञा पुं० १ बिना विषैले दाँत का सर्प । विषदंतहीन सर्प [को०] ।

अदक्ष—वि० [सं०] १ अकुशल । जो निपुण न हो । २ भद्दा । कुरूप [को०] ।

अदक्षिण—वि० [सं०] १ बायाँ । जो दाहिना न हो । २ प्रतिकूल । विरुद्ध । ३ बिना दक्षिणा का । दक्षिणारहित [यज्ञ इत्यादि] । ४. अकुशल अनाड़ी । अनुदार ।

अदक्षिणीय—वि० [सं०] जो दक्षिणा देने का पात्र या अधिकारी न हो [को०] ।

अदक्षिण्य—वि० [सं०] दे० 'अदक्षिणीय' [को०] ।

अदग—वि० [सं० अदग्ध प्रा० अदग्ध] १ बेदाग । निष्कलंक । शुद्ध । २ निरपराध । निर्दोप । जिसे पाप न छू गया हो । ३ अछूता । अस्पृष्ट । साफ बचा हुआ । उ०—जेते थे तेते लियो, घूँघट माहँ समोय । कज्जल वाके रेख है, अदग गया नहिं कोय ।—कबीर [शब्द] ।

अदग्ध—वि० [सं०] १ न जला हुआ । २. जिसका दाह संस्कार न किया गया हो [को०] ।

अदत्त[१]—संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जिसके दिए जाने पर भी लेनेवाले को उसके रखने का अधिकार न हो ।

विशेष—नारद ने अदत्त के सोलह भेद किए हैं—[१] भय जो वस्तु डर के मारे दी गई हो । [२] क्रोध—लड़के आदि पर क्रोध निकालने के लिये । [३] शोकावेग मे । [४] रुक्—असाध्य रोग से घवराकर [५] उत्कोच—घूस के रूप मे । [६] परिहास—हँसी हँसी मे । [७] व्यत्यास—बढावे मे आकर अथवा देखादेखी । [८] छल—जो धोखे मे उचित से अधिक दे दिया गया हो । [९] बाल—देनेवाला यदि बालक या नाबालिग हो । [१०] मूढ़—जो धोखे में आकर बेवकूफी से दिया गया हो । [११] अस्वतंत्र—जो दास के द्वारा या ऐसे व्यक्ति के द्वारा दिया गया हो जिसे देने का अधिकार न हो । [१२] आर्त—जो बेचैनी या दुख से घबड़ाकर दिया गया हो । [१३] मत्त—जो नशे की झोंक मे दिया गया हो । [१४] उन्मत्त—जो पागल होने पर दिया गया हो । [१५] कार्य—जो लाभ की झूठी आशा दिखाकर प्राप्त किया गया हो और [१६] अधर्म काम्य—धर्म के नाम पर जो अधर्म के लिये लिया गया हो ।

अदत्त[२]—वि० [सं० अदाता अथवा सं० अदत्त] जिसने दिया न हो । न देनेवाला । कृपण । उ०—कहूँ चोर कहूँ साह कहावत, कहुँ अदत्त, कहुँ दानी ।—जग० बानी, पृ० ५३ ।

अदत्तदान—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार बिना दी हुई वस्तु का ग्रहण । अपहरण । चोरी । डकैती ।

विशेष—कोई कोई आचार्य इसके तीन भेद—[१] द्रव्यादत्तदान [२] भावादत्तदान, [३] द्रव्य भावादत्तदान और कोई चार भेद—(१) स्वामी अदत्तदान, (२) जीव अदत्तदान, [३] तीर्थंकर अदत्तदान और [४] गुरु अदत्तदान मानते हैं । इससे बचने का नाम अदत्तदान विरमणव्रत है ।

अदत्तपूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुँवारी कन्या । वह लड़की जिसकी मँगनी न हुई हो [को०] ।

अदत्ता[१]—वि० स्त्री० [सं०] न दी हुई ।

अदत्ता[२]—संज्ञा स्त्री० अविवाहिता कन्या ।

अदद—संज्ञा पुं० [अ०] १. संख्या । अंक । गिनती । २ संख्या का चिह्न या संकेत ।

अदन[१]—संज्ञा पुं० [अ०] १ यहूदी, ईसाई और मुसलमान मत के अनुसार स्वर्ग का वह उपवन जहाँ ईश्वर ने आदम को बनाकर रखा था । उ०—अंजन की रेखा राजै कुच बिच चित्र साजै, एहैं बेली, रेनी, ही, उचित, अदन मैं ।—छीत०, पृ० ३९ । २ अरब सागर का एक बंदरगाह ।

अदन[२]—संज्ञा पुं० [सं०] खाना । भक्षण उ०—[क] भारती बदन बिष अदन सिव, ससि पतंग पावक नयन ।—तुलसी ग्रं० पृ० २३६ । [ख] बहुरि बीरा सुखद सौरभ अदन रदन रसाल ।—घनानंद, पृ० ३०१ ।

अदना—वि० [अ०] [स्त्री० अदनी] १ तुच्छ । छोटा । क्षुद्र । नीच । उ०—हूलाकू चंगेजो तैमूर, हमारे अदना, अदना सूर ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४७४ । २ सामान्य । मामूली उ०—करना किसी पै रहम, इक अदना सी बात पर ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २०९ ।

अदनीय—वि० [सं०] खाने योग्य । भक्ष्य ।

अदफर(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधफर' । उ०—नाउ जाजरी धार मैं अदफर भीर भुलान ।—स० सप्तक, पृ० ३४४ ।

अदब—संज्ञा पुं० [अ०] १ शिष्टाचार । कायदा । बड़ो का आदर, सम्मान । उ०—दौलते दीदार जाए पर अदब जाने न पाए ।—शेर०, पृ० ३०९ ।

मु०—अदब की जगह—वह व्यक्ति, स्थान या वस्तु जिसका लिहाज करना जरूरी होता है ।

क्रि० प्र०—करना ।

अदबकायदा—संज्ञा पुं० [अ०] शिष्ट व्यवहार [को०] ।

अदब लिहाज—संज्ञा पुं० [अ०] आदर सम्मान [को०] ।

अदबदकर—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अदबदाकर' । उ०—मैं यो तो ये काच लेता या न लेता पर अब उनकी जिद से अदबदाकर लूँगा ।—श्रीनिवास० ग्रं०, पृ० १६३ ।

अदबदाकर—क्रि० वि० [सं० अधि + वद = वचन देना, कहना अथवा अनुध्व०] १. हठ करके । टेक बाँधकर अवश्य । जरूर । जैसे—यो तो हम न जाते, अब अदबदाकर जाएँगे (शब्द०) ।

विशेष—यह शब्द केवल इसी रूप मे, क्रि० वि० के समान आता है परंतु वास्तव मे यह क्रि० प्र० है ।

अदबुद¹(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अद्‌भुत'। उ०—अदबुद रूप जाति की बानी। कबीर बी०, पृ० २५।

अदबुद²(पु)—वि [हिं०] दे० 'अधबुध'। उ०—वाके वदन करु सब कोई। बुद अदबुद अचरज बड होई।—कबीर बी०, पृ०२५८।

अदब्ब¹(पु)—संज्ञा पुं० [अ० अदब] दे० 'अदब'।—आदर अदब्ब सथ्थीन देत।—पृ० रा०, ११७२१।

अदब्ब²—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० दबना] न दबनेवाला।—अदब्ब गब्बियान के सरब्ब गब्ब को हरे।—पद्माकर ग्र० पृ० २८३।

अद्‌भुत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अद्‌भुत'। उ०—अद्‌भुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पिआस मनोमल हारी।—मानस ११४३।

अदभू(पु)—[सं० अद्‌भुत] दे० 'अद्‌भुत'। उ०—रज्जब तिनजहि इदर गुरु अदभू आदर ऐन। पहुप पत्र फल पूजिये सुर नर पावहि चैन।—रज्जब० बानी०, पृ० ८।

अदभ्र—वि० [सं०] १. बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—सुनु अदभ्र करदा, वारिज लोचन मोचन भय भारी।—तुलसी ग्र०, पृ० ५१५। २ अपार। अनत। उ०—अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता।—मानस ७।१२।

अदम—संज्ञा पुं० [अ०] १ अनस्तित्व। अभाव। लोप। २. अनुपस्थिति। ३ देवलोक। परलोक। जन्नत। उ०—अदम की राह सीधी है, बुलदी है, न पस्ती है।—शेर० भा १, पृ० १८६।

मुहा०—**अदम की राह लेना, अदम को पधारना या अदम को सिधारना=मर जाना।**

अदमआबाद—संज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ लोग मरने के बाद जाते है। परलोक [को०]।

अदमखाना—संज्ञा पुं० [अ० अदम+फा० खानह] दे० 'अदमआबाद' [को०]।

अदमगाह—संज्ञा पु० [अ० अदम+फा० गाह] दे० 'अदमआबाद'। [को०]।

अदमतामील—संज्ञा स्त्री० [अ०] समन आदि का अमल मे न आना [को०]।

अदमपैरवी—संज्ञा स्त्री० [फा०] किसी मुकदमे मे जरूरी कार्रवाई न करना। अभियोग मे पक्षप्रतिपादन का अभाव। जैसे—वह मुकदमा तो अदमपैरवी मे खारिज हो गया।

अदमफुरसत—संज्ञा स्त्री० [फा० [अवकाश न होना। अनवकाश [को०]।

अदममौजूदगी—संज्ञा स्त्री० [अ०] अनुपस्थिति। गैरहाजिरी [को०]।

अदमवसूली—संज्ञा स्त्री० [अ०] मालगुजारी आदि का वसूल न होना।

अदमवाकफीयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] अनुभवहीनता [को०]।

अदमसबूत—संज्ञा पु० [फा०] किसी मुकदमे मे सबूत का न होना। प्रमाण का अभाव।

अदमहाजिरी—संज्ञा स्त्री० [अ०] गैरहाजिरी। अनुपस्थिति।

अदम्य—वि० [सं०] जिसका दमन न हो सके। न दबने योग्य प्रचड। प्रबल। अजेय।

अदय—वि० [सं०] १ दयारहित। करुणाशून्य (व्यापार)। २ निर्दयी। निष्ठुर। कठोरहृदय (व्यक्ति) उ०—अनजानी भूलो पर भी वह अदय दड तो देती है।—पचवटी, पृ० ७।

अदया—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+दया] कोप। नाराजी दया का अभाव। उ०—अदया अलह राम की, कुरलै ऊँणी कूब।—कबीर ग्र०, पृ० २५।

अदरक—संज्ञा पुं० [सं० आर्द्रक, फा० अदरक] तीन फुट ऊँचा एक पौधा जिसकी पत्तियाँ लबी और जड या गाँठ तीक्ष्ण और चरपरी होती।

विशेष—यह भारतवर्ष के प्रत्येक गर्म भाग मे तथा हिमालय पर ४००० से ५००० फुट तक की ऊँचाई पर होता है। इसकी गाँठ मसाला, चटनी, अचार और दवाओ मे काम आती है। यह गर्म और कटु होना है तथा कफ, वात, पित्त और शूल का नाश करती है। अग्निदीपक इसका प्रधान गुण है। गाँठ को जब उबालकर सुखा लेते हैं तब उसे सोठ कहते हैं।

पर्याय—शृ गवेर, कटुभद्र, कटूत्कट, गुल्ममूल, मूलज, कदर, वर, महीज, सैकतेष्ट, अनूपज, अपाकशाक, चद्राख्य, राहुच्छत्र, सुशाकक, शाङ्ग, आर्द्रशाक, सच्छाक।

अदरकी—संज्ञा स्त्री० [स० आर्द्र की] सोठ और गुड मिलाकर बनाई हुई टिकिया। सोठौरा।

अदरख(पु)—स० पु० [हि] दे० 'अदरक'। उ०—हीग हरद मिरच छौंके तेले। अदरख और आँवले मेले।—सूर०, १०।१०१४।

अदरस¹(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अदर्शन'। उ०—भरत हरत दरसत सबहि, पुनि अदरस काहु। तुलसी सुगुरु प्रसाद बल होत परमपद लाहु।—स० सप्तक, पृ० ३४।

अदरस²(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अदृश्य'।

अदरा संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आर्द्रा'। उ०—(क) बरसै अदरा के बुँदवा, ठाढि भीजै गुजरी।—प्रेमघन०, भाग २ पृ० ३४०। (ख) अदरा माहि जो बोवउ साठी। दुख के मार निकालउ लाठी।—घाघ०, पृ० १२२।

अदराना¹—क्रि० अ० [सं० आदर] बहुत आदर पाने से शेखी पर चढ़ना। फूलना। इतराना। आदर या मान चाहना। जैसे—वे आजकल अदराए हुए हैं, कहने से कोई काम जल्दी नही करते (शब्द)।

अदराना²—क्रि० स० आदर देकर शेखी पर चढाना। फुलाना। घमडी बनाना।

अदरु—संज्ञा पुं० [सं० आदर] दे० 'आदर'। उ०—राजे बिना बुलाई गति जाऊँ, अदरु नहि होई।—पोद्दार अभि० ग्र० पृ० ६१७।

अदर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह दिन जिसकी सध्या को चद्रमा दिखाई न पडे। २ आदर्श। दर्पण [को०]।

अदर्शन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. अविद्यमानता। असाक्षात्। २ लोप। विनाश। ३ उपेक्षा [को०]।

क्रि प्र०—करना।—होना।

अदर्शन²—वि० अदृश्य। लुप्त [को०]।

अदर्शनीय—वि० [सं०] दर्शन के अयोग्य। जो देखने लायक न हो। बुरा। कुरूप। भद्दा।

अदल¹—संज्ञा पुं० [अ० अदल] न्याय। इंसाफ। उ०—अदल कहौं पुहुमी जस होई। चाटा चलत न दुखवै कोई।—जायसी (शब्द)।

अदल²—संज्ञा पुं० [सं०] हिज्जल नाम का एक पौधा [को०]।

अदल³—वि० १ विना दल या पत्ते का। पत्रविहीन। २. विना फौज का। सेनारहित। ३ भागरहित (को०)।

अदल⁴—वि० [हिं० अ+दल] जो किसी दल मे न हो। तटस्थ।

अदल⁵(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०अदल=अपर्णा] पार्वती। उ०—अदल-पति-रिपु पिता-पतिनी अब न जैहैं फेर।—सा० लहरी, पृ० ११६।

अदलखाना—संज्ञा पुं० [अ० अदल+फा० खानह्] न्यायालय। कचहरी। उ०—मेरे ही अकेले गुन औगुन विचारे विना वदल न जैहै वडे अदलखाने मे।—भिखारी ग्र०, भाग १, पृ० ७६।

अदलतिहा+—वि० [अ० अदालत+हिं० हा (प्रत्य०)] मुकदमेबाज। मुकदमा लडनेवाला।

अदल वदल—संज्ञा पुं० [अ० वदल का अनुध्व० अवल] उलट पुलट। हेर फेर। परिवर्तन। उ०—अदल वदल भूषण प्रिया यातें परत लखाइ नूपुर कटि ढीलो भयो सकसि किंकिनी पाइ।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ४५।

अदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] घृतकुमारी नामक पौधा [को०]।

अदलावदली—संज्ञा स्त्री० [हिं० अदल वदल] १ एक वस्तु लेने के लिये उसके वदले दूसरी वस्तु देना। २ एक चीज के स्थान पर दूसरी चीज रखना।

क्रि प्र०—करना।—होना।

अदली¹(पु)—संज्ञा पुं० [अ० अदल+हिं० ई (प्रत्य०)] न्यायी। इसाफवर। उ०—कप कदली मे वारि वुंद वदली, सिवराज अदली के राज मे यो राजनीति है।—भूषण (शब्द)।

अदली²(पु)—वि० [सं० अदल] विना पत्ते का।

अदलीय—वि० [सं० अ+दल+ईय (प्रत्य०)] जो किसी दल का सदस्य न हो। किसी दल से संबंध न रखनेवाला।

अदवान—संज्ञा स्त्री० [सं० अधः=नीचे+दाम=रस्सी अथवा देशी] चारपाई के पैताने की वह रस्सी, जिसे विनावट को कसी रखने के लिये करधनी के छेदो मे से ले जाकर सीरो मे तानकर लपेटते हैं। ओनचन।

अदस—संज्ञा पुं० [अ०] मसूर [को०]।

अदह(पु)—वि० [अदाय] न जलनेवाला।

अदहन—संज्ञा पुं० [सं० आदहन] खौलता हुआ पानी। आग पर चढा हुआ वह पानी जिसमे दाल, चावल आदि पकाते हैं।

अदहय—वि० [सं०] न जलने योग्य। जो जल न सके।

अदात—वि० [सं० अदान्त] १ जो इंद्रियो का दमन न कर सके। अजितेंद्रिय। विषयासक्त। २ जो वश मे न किया जा सके। दुर्दांत (को०)।

अदाँत(पु)—वि० [सं० अदन्त] विना दाँत का। जिसे दाँत न आए हो (प्राय पशुओ के लिये)। उ०—अदाँत वरदै, दो दाँत भाय। भाप जाय खसमै खाय।—कहावत (शब्द)।

अदा¹—वि [अ०] चुकता। वेवाक। दिया हुआ। उ०—जान दी, दी हुई उसी की थी। हक तो यह है कि हक अदा न हुआ।—शेर०, भा० १, ४६३।

क्रि० प्र०—करना। जैसे—उसने तुम्हारा सब रुपया अदा कर दिया (शब्द)।—होना। जैसे—तुम्हारा कर्ज अदा हो गया (शब्द)।

मुहा०—अदा करना=पालन करना या पूरा करना। जैसे—सबको अपना फर्ज अदा करना चाहिए। (शब्द)।

यौ०—अदाए जर डिगरी=डिगरी के देने या रुपए को देना। अदावदी=किसी रुपए के वेवाक करने या देने के लिये किस्त या समय का नियत करना। किस्तवदी। अदा या वेवाक करना=सब चुकता कर देना। कौडी कौडी दे डालना। अदाए मालगुजारी=मालगुजारी का देना। अदाए शहादत=गवाही देना।

अदा²—संज्ञा स्त्री० १ भाव। हाव भाव। नखरा। मोहित करने की चेष्टा। उ०—सगरब गरब खिचै सदा चतुर चितेरे आय। पर वाकी वाँकी अदा नेकु न खीची जाय।—सं० सप्तक०, पृ० २६५। २ ढग। तर्ज। आन। अदाज। उ०—इस अदा से मुझे सलाम किया। एक ही आन मे गुलाम किया।—शेर०, भाग १, पृ० ३६२।

अदाइगी—संज्ञा स्त्री० [को०] दे० 'अदायगी' [को०]।

अदाई¹(पु)—वि० [अ० अदा+हिं ई (प्रत्य०)] १ ढगी। चालवाज। चतुर। उ०—ऊधो नेकु निहारो। हम सालोक्य, सरूप, सायुज्यौ रहति समीप सदाई। सो तजि कहत और की औरे, तुम अलि वडे अदाई।—सूर० १०।३६००।

अदाई²(पु)—वि० [हिं०अ+दाया] वाम। प्रतिकूल। प्रेमवचित। उ०—कहहु मोहिं अब वाल सुहाई। केहिं अवगुन मोहि कीन्ह अदाई।—चित्रा०, पृ० ३०६।

अदाकार—संज्ञा पुं० [हिं० अद+फा० कार] अभिनेता। कलाकार [को०]।

अदाग(पु)—वि० [हिं० अ=नहीं+अ० दाग=धब्बा] १. वेदाग। निर्मल। स्वच्छ। साफ। उ०—ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग। त्याग को भूषन शातिपद तुलसी अमल अदाग।—तुलसी (शब्द)। २ निष्कलंक। निर्दोष। ३ पवित्र। शुद्ध।

अदागी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अदाग'।

अदाता¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ न देनेवाला व्यक्ति। कृपण। कजूस। २ विवाह मे (कन्या) न देनेवाला व्यक्ति को (को०)। ३ वह व्यक्ति जिसे किसी का कुछ देय न हो (को०)।

अदाता²—वि० न देनेवाला। कजूस।

अदान¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ+दान] १ अदाता। न देनेवाला व्यक्ति। कजूस। कृपण। उ०—हरि को मिलन सुदामा आयो। पूरव जन्म अदान जानिकै ताते कछू मँगायो। मूठिक तदुल वाँधि कृष्ण को वनिता विनय पठायो।—सूर (शब्द)। २ वह हाथी जिसका दान अर्थात् मद स्रवित न होता हो (को०)।

अदान²—वि० [सं० अ=नहीं+फा० दानह=जानकार] अजान। नादान। नासमझ। उ०—ये अदान जानती नही, कछु पालेहु भूल विसारी।—रघुराज (शब्द०)।

अदानियाँ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अदानी'। उ०—(क) ठाकुर कहत ये अदानियाँ अबूझ भोदू भाजन अजस के वृथा ही उपजाए तैं। —ठाकुर श०, पृ० २७। (ख) ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के जालिम दमाद हैं,अदानियाँ ससुर के।—इतिहास,पृ०३६२।

अदानी(पु)—वि० [सं० अ+दानिन्] जो दान न दे। कंजूस। सूम। कृपण। उ०—श्रवण नैन कोनहीं तौं आँसु को, निवास होत जैसे सोन भौन कोन राखत अदानी है।—रघुराज (शब्द०)।

अदाव(पु)—संज्ञा पुं० [अ० आदाब] दे० 'आदाब'। उ०—अदब आदाब सलाम जो करई।—दरिया-बानी०, पृ० ४०।

अदाय—वि० [सं०] दाय या हिस्सा पाने का अनधिकारी [को०]।

अदायगी—संज्ञा स्त्री० [फा० अदाइगी] १ चुकता करना। भुगतान करना। २ पद्धति। तर्ज। प्रणाली। उ०—सिर्फ अदायगी अँगरेजी है।—गीतिका (भू०) पृ० ५।

अदायाँ(पु)—वि० [हिं० अ+दायाँ=दक्षिण, दाहिना] वाम। प्रतिकूल। बुरा। उ०—परिया नवमी पूर्व न भाए। दूइज दसमी उतर अदाएँ।—जायसी (शब्द०)।

अदाया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+दया] दया का अभाव। निष्ठुरता। अकृपा। उ०—साहस, अनृत चपलता माया। भय अविवेक असौच अदाया।—मानस, ६।१६।

अदायाद—वि० [सं०] १ जो सपिंड न हो। २ उत्तराधिकार रहित [को०]।

अदायिक—वि० [सं०] १ दाय या उत्तराधिकार से संबंध न रखनेवाला। २ जिसका कोई उत्तराधिकारी न हो। लावारिस [को०]।

अदार—वि० [सं०] पत्नीरहित। विधुर। रँडुआ [को०]।

अदारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [को०]।

अदालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] न्यायालय। वह स्थान जहाँ बैठकर न्यायाधीश स्वत्व संबंधी झगड़ों पर विचार करता है।

विशेष—आजकल इसके दो प्रधान विभाग हैं—(१) फौजदारी और (२) दीवानी। माल विभाग को दीवानी के अंतर्गत ही समझना चाहिए।

यौ०—**अदालत अपील**=वह अदालत जहाँ किसी मातहत अदालत के फैसले की अपील हो। **अदालत खफीफा**=एक प्रकार की दीवानी अदालत जिसमें छोटे छोटे मुकदमे लिए जाते हैं। **अदालत दीवानी**=वह अदालत जिसमें संपत्ति या स्वत्व संबंधी बातों का निर्णय होता है। **अदालत मराफाऊला**=वह अदालत जिसमें पहले पहल दीवानी मुकदमा दायर किया जाय। **अदालत मराफासानी**=वहअदालत जिसमें अदालत मराफाऊल की अपील हो। **अदालत मातहत**=जिसके फैसले की अपील उसके ऊपर की अदालत में हुई हो। **अदालत माल**=वह अदालत, जिसमें मालगुजारी वा लगान संबंधी मुकदमे दायर किए जाते हैं।

मुहा०—**अदालत करना**=मुकदमा लड़ना। **अदालत होना**=अभियोग चलना।

अदालती—वि० [अ० अदालत+हिं० ई० (प्रत्य०)] १ अदालत विषयक। न्यायालय संबंधी। २ जो अदालत करे। मुकदमा लड़नेवाला।

अदावँ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ० बुरा+हिं० दावँ] बुरा दाँवपेंच। असमंजस। कठिनाई। उ०—यह ऐसा अदावँ परचो या घरी घरहाईन के परि पुंजन में। मिस कोउ न आनि चढ़ै चितवैं इनकी बतियाँन की गुंजन में।—राम (शब्द०)।

अदावत—संज्ञा स्त्री० [अ०] शत्रुता। दुश्मनी। लाग। वैर। विरोध। उ०—कीजे हमारे साथ अदावत ही क्यों न हो। —शेर० भाग १, पृ० ५२१।

क्रि० प्र०—**करना।**—**रखना।**—**निकालना।**—**होना।**

अदावती—वि० [अ० अदावत+हिं० ई (प्रत्य०)] जो अदावत रखे। कसरी। जो लाग रखे। २ विरोधजन्य। द्वेषमूलक।

अदास—वि० [सं०] जो दास या परतंत्र न हो। स्वाधीन [को०]।

अदाह[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० अदा] हाव भाव। नखरा। आन। मोहित करने की चेष्टा। उ०—एतो सरूप दियो तो दियो पर एती अदाह तैं आनि धरी क्यो। एती अदाह धरी तो धरी पर ये अखियाँ रिझवारि करी क्यो।—(शब्द०)।

अदाह[2](पु)—वि० [सं० अदाह] दाहरहित। जिसमें ताप या जलन न हो। उ०—कहा होइ ज्यों री दुख तापा। सूखे जी अदाह औ झापा।—इद्रा०, पृ० १५१।

अदाहक—वि० [सं०] न जलानेवाला। जिसमें जलाने या भस्म करने का गुण न हो जैसे—जल।

अदाह्य—[सं०] १ जो जलने योग्य न हो। २ जो चिता पर जलाने योग्य न हो। ३ आत्मा और परमात्मा का विशेषण [को०]।

अदिक्—वि० [सं०] दिशाओं से परे। दिशारहित। उ०—तुम ही घर आए हो यह जग जंजाल रूप। पर तुम हो चिर अकाल नित्य अदिक्, हे अनूप।—क्वासि, पृ० ६१।

अदिढ(पु)—वि० दे० 'अदृढ'। उ०—कछु मन दिढ कछु अदिढ लहीये, प्रौढा धीराधीरा कहिये।—नंद० ग्रं०, पृ० १४८।

अदित(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आदित्य] दे० 'आदित्य'।

अदिति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रकृति। २ पृथ्वी। ३ दक्ष प्रजापति की कन्या और कश्यप ऋषि की पत्नी।

विशेष—इनसे सूर्य आदि तेंतीस देवता उत्पन्न हुए थे। ये देवताओं की माता कहलाती हैं।

४ असीमता। ५ निर्धनता। ६ स्वतंत्रता। ७ सुरक्षा। ८ पूर्णता। ९ पुनर्वसु नक्षत्र। १० गाय। ११ वाणी। १२ उत्पन्न करने की शक्ति। १३ दूध। १४ माता। १५ द्युलोक। १६ अंतरिक्ष।

अदिति[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईश्वर का एक विशेषण। २ प्रजापति। ३ देवताओं का विश्वदेवा नामक गण। ४ काल। ५ मृत्यु [को०]।

अदितिज—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। २ आदित्य। सूर्य [को०]।

अदितिनंदन—संज्ञा पुं० [सं० अदितिनन्दन] दे० 'अदितिज' [को०]।

अदितिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। २ सूर्य।

अदिन—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा दिन। कुदिन। कुसमय। संकट या दुख का समय। अभाग्य। उ०—यो कही बार बार पाँयनि परि पाँवरि पुलकि लई है। अपनो अदिन देखि हौं डरपत जेहि विप बेलि बई है।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३५६।

अदिव्य¹—वि० [सं०] १ लौकिक । साधारण । सामान्य । २ स्थूल जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो ।

अदिव्य²—संज्ञा पुं० तीन प्रकार के नायकों में से एक । वह नायक जो लौकिक हो । मनुष्य नायक । जैसे—मालती माधव नाटक में माधव ।

अदिव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक । वह नायिका जो लौकिक हो । जैसे—मालती माधव में मालती ।

अदिष्ट¹ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अ+दिष्ट=भाग्य] अभाग्य । उ०—कन्या एक जु पाछे ...ई । सु पुनि अदिष्ट लई उडि गई ।—नंद० ग्रं०, २३६ ।

अदिष्ट²ⓟ—वि० [सं० अदृष्ट] दे० 'अदृष्ट' ।

अदिष्टीⓟ—वि० [सं० अ=नहीं+दिष्ट=भाग्य] १ अभागा । बदकिस्मत । २ अदूरदर्शी । मूर्ख । अविचारी । दुष्ट ।

अदिस्टⓟ—वि० दे० 'अदृष्ट¹' । उ०—पेम अदिस्ट गगन तें ऊँचा । ज्ञान दिस्टि सौं जाइ पहूँचा ।—जायसी ग्रं०, पृ० १२२ ।

अदिस्सⓟ—वि० [सं० अदृश्य, प्रा० अदिस्स] लुप्त । गायब । ओझल । उ०—सूरतनिप्रनाप रिपु रन अदिस्स ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २७८ ।

अदीक्षित—वि० [सं०] जिसने दीक्षा न ली हो । जो दीक्षित न हो [को०] ।

अदीठⓟ—वि० [सं० अदृष्ट प्रा० अदिट्ठ] बिना देखा हुआ । अप्रत्यक्ष । अनदेख । गुप्त । छिपा हुआ । उ०—इस मन कौं बिसमल करौं दीठा करौं अदीठ ।—कबीर ग्रं०, पृ०, २८ ।

अदीतⓟ—पुं० [सं० आदित्य] दे० 'आदित्य' । उ०—मोह महातम रहतु है, जो ...ौं ज्ञान न होत । कहा महातम रहि सकै भए अदीत उदोत ।—स० सप्तक, पृ० ३५६ ।

अदीदाⓟ—वि० [सं० अ+फा० दीदह] बिना आँख का । नेत्र-रहित । उ०—दादू देखा अदीदा । सब कोई कहत सुनीदा ।—घट०, पृ० १६८ ।

अदीठा—ⓟवि० [सं० अदृष्ट] जिसे देखा न गया हो । उ०—मारवणी कह कारणइ देस अदीठा दिट्ठ ।—ढोला०, पृ० १२५ ।

अदीन—वि [सं०] [स्त्री० अदीना] १ दीनतारहित । अनम्र । उग्र । अविनीत प्रचंड । निडर । २ उच्चाशय । ऊँची तबीयत का । उदार । उ०—निठुर, ठुकराओ न, मेरी इस अदीना याचना को ।—क्वासि, पृ० ५० ।

यौ०—अदीनात्मा=जो प्रकृत्या अदीन हो ।

अदीनवृत्ति—वि० [सं०] जो प्रकृया दीन न हो । तेजस्वी [को०] ।

अदीनसत्व—वि० [सं० अदीनसत्व] दे० 'अदीनवृत्ति' [को०] ।

अदीनात्मा—वि० [सं०] दे० 'अदीनवृत्ति' [को०] ।

अदीपित—वि० [सं०] अप्रकाशित [को०] ।

अदीब¹—वि० [अ०] १ अदब सिखानेवाला । २ सुशील [को०] ।

अदीब²— संज्ञा पुं० साहित्य और विद्या का ज्ञाता [को०] ।

अदीयमान—वि० [सं०] जो न दिया जाय । उ०—अदीयमान दुख सुख दीयमान जानिए ।—केशव (शब्द०) ।

अदीर्घ—वि० [सं०] जो बड़ा न हो । छोटा । सूक्ष्म [को०] ।

अदीर्घसूत्री—वि० [सं०] १ काम करने में विलंब न करनेवाला । २ आलस्य न करनेवाला ३ स्फूर्तिवाला [को०] ।

अदीर्घसूत्री—वि० [सं०] दे० 'अदीर्घसूत्री' [को०] ।

अदीहⓟ—वि० [सं० अ=नहीं+दीर्घ, पा० दीघ, प्रा० दीह] दे० 'अदीर्घ' । उ०—राधिका रूप निधान के पानिन आनि सबै छिति की छवि छाई । दीह अदीह सु सूक्ष्म थूल गहै दृग जागी की दौरि गोराई ।—केशव (को०) ।

अदुदⓟ—वि० [सं० अद्वंद्व, प्रा० अदुंद] १ द्वंद्वरहित । निर्द्वंद्व । बिना झंझट का । बाधारहित । २ शांत । निश्चिंत । ३ बेजोड़ । अद्वितीय । उ०—गोरन बदन पै बनत वसुधाधर सुधाधर बदन मधुराधर मदुर सी । (शब्द०) ।

अदुःख—वि० [सं०] जो दुःखी न हो । दुःख से रहित [को०] ।

अदुःखनवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि [को०] ।

विशेष—इस दिन दुःख निवारण के लिये स्त्रियाँ देवी की पूजा करती हैं ।

अदुइतⓟ—वि० [सं० अद्वैत] दे० 'अद्वैत' । उ०—अदुइत ब्रह्म विराग मत ब्रह्मज्ञान निर्लेप ।—सं० दरिया, पृ० ८० ।

अदुग्ध—वि० [सं०] १ दूधरहित । २ न दुही हुई [को०] ।

अदुर्ग—वि० [सं०] १ दुर्गरहित । २ दुर्गम न हो [को०] ।

अदुर्गविषय—संज्ञा पुं० [सं०] वह देश जिसमें किले का अभाव हो [को०] ।

अदुष्ट—वि० [सं०] १ दूषणरहित । निर्दोष । शुद्ध । ठीक । यथार्थ । वास्तविक । उ०—सो स्लेष मुद्रालंकार करिकै बारह, तरनन को नाम प्रान्यो चाहो तातें सब अदुष्ट हैं ।—भिखारी० ग्रं० भा० २, पृ० २८० । २ सज्जन । भला ।

अदू—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु । बैरी । दुश्मन । उ०—दोस्तों के लिये शादी हो अदू के लिये गम हो ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २ पृ० ७४७ ।

अदूजा—वि० दे० 'अद्वितीय' [को०] ।

अदूर¹—क्रि० वि० [सं०] समीप । निकट । पास ।

अदूर²—वि० पास का । समीपी [को०] ।

अदूर³—संज्ञा पुं० सामीप्य [को०] ।

अदूरदर्शी—वि० [सं०] जो दूर तक न सोचे । अग्रसोची । जो दूर के परिणाम का विचार न करे । अविचारी । स्थूलबुद्धि । नासमझ ।

अदूरदरसीⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अदूरदर्शी' । उ०—हेरत हिरायेसे परसपर नचिरत चूर पारत सो मारयो अदूरदरसीनि लों ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १४३ ।

अदूषण—वि० [सं०] दूषणरहित । निर्दोष । बेऐब । शुद्ध । स्वच्छ । अच्छा ।

अदूषनⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अदूषण' । उ०—मनहु मारि मनसिज पुरारि दिय ससिहि चापसर मकर अदूषन ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१४ ।

अदूषित—वि० [सं०] जिसपर दोष न लगा हो। निर्दोष। शुद्ध। उ० वह पूर्णतया अदूषित और निर्विकार है।—कबीर ग्र०, पृ० ३।

अदूषितधी—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि भ्रष्ट न हुई हो। शुद्ध बुद्धिवाला पवित्रात्मा। [को०]।

अदृढ—वि० [सं० अ+दृढ] १ जो दृढ न हो। कमजोर। अस्थिर। चचल।

यौ०—अदृढचित्त।

अदृप्त—वि० [सं०] दर्प या अभिमानशून्य। निरभिमान। सीधा सादा। सौम्य।

अदृश्य—वि० [सं०] १ जो दिखाई न दे। अलख। २ जिसका ज्ञान पाँच इद्रियो को न हो। अगोचर। परोक्ष। लुप्त। गायब। अतर्धान।

क्रि० प्र०—करना। —होना। उ०—लक्ष्मण तुरत अदृश्य उसी मे हो गए।—कानन०, पृ० १०१।

अदृष्ट[1]—वि० [सं०] १—न देखा हुआ। अलक्षित। अनदेखा। २—लुप्त। अतर्धान। तिरोहित। गायब। ओझल। उ०—यह कहिकै भागीरथी केशव भई अदृष्ट।—राम च०, पृ० ६३।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अदृष्ट[2]—सज्ञा पुं० १ भाग्य। प्रारब्ध। किसमत। भावी। जन्मातर का सस्कार। उ०—(क) केशव अदृष्ट साथ जीव जोति जैसी, तैसी लकनाथ हाथ परी छाया जाया राम की।—राम-च०, पृ० ७५। (ख) लिखता अदृष्ट था विधाता वाम कर से।—लहर पृ० ५३। २ अग्नि और जल आदि से उत्पन्न आपत्ति। जैसे—आग लगना, बाढ आना, तूफान आना।

अदृष्टकर्मा—वि० [सं० अदृष्टकर्मन्] जिसे काम करने का अभ्यास न हो। कार्य सबधी अनुभव से रहित [को०]।

अदृष्टगति—वि० [सं०] १ जिसकी चाल लखी न जाय। जो चुपचाप कार्य करे। उ०—सहज सुवास सरीर की आकरषन विधि जानु। अति अदृष्टगति दूतिका, इष्ट देवता मानु।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० २६२। २ चालबाज। कूटनीतिपरायण।

अदृष्टनर—सज्ञा पुं० [सं०] वह सधि जिसे मध्यस्थ के बिना ही दोनो पक्ष स्वीकार कर लें [को०]।

अदृष्टनरसधि—सज्ञा स्त्री० [सं० अदृष्टनरसन्धि] वह सधि जो दूसरे के साथ इस आशय से किया जाय कि वह किसी तीसरे से कोई काम सिद्ध करा देगा।

अदृष्टपुरुष—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अदृष्टनर' [को०]।

अदृष्टपूर्व—वि० [सं०] १ जो पहले न देखा गया हो। २ अद्भुत। विलक्षण।

अदृष्टफल[1]—वि० [सं०] अज्ञात फलवाला। जिसका फल न ज्ञात हो [को०]।

अदृष्टफल[2]—सज्ञा पुं० पुण्य अथवा पाप का भविष्य मे उपलब्ध होने-वाला फल [को०]।

अदृष्टरूप[1]—वि० [सं०] अदृश्य आकारवाला। [को०]।

अदृष्टरूप[2]—सज्ञा पुं० वह रूप जो दृष्टिगोचर न हो [को०]।

अदृष्टलिपि—सज्ञा स्त्री० [सं० अदृष्ट+लिपि] भाग्यलिपि। भाग्य की रेखा। उ०—लोगो की अदृष्ट लिपि लिखी-पढी जाती थी।—लहर, पृ० ७६।

अदृष्टवाद—वह सिद्धात जिसके अनुसार परलोक आदि परोक्ष बातो पर किसी प्रकार का तर्क वितर्क किए बिना केवल शास्त्रलेख के आधार पर विश्वास किया जाय। प्रारब्धवाद। नियतिवाद।

अदृष्टवादी—वि० [सं०] अदृष्टवाद को माननेवाला। भाग्यवादी। उ०—आप बडे अदृष्टवादी हैं।—आँधी, पृ० १८।

अदृष्टाकाश—सज्ञा पुं० [सं० अदृष्ट+आकाश] भाग्यरूपी आकाश। उ०—मुगल अदृष्टाकाश मध्य अति तेज से धूमकेतु से सूर्य-मल्ल समुदित हुए।—कानन०, पृ० १०८।

अदृष्टाक्षर—सज्ञा पुं० [सं०] ऐसी युक्ति से लिखे अक्षर जो बिना किसी विशिष्ट क्रिया के न पढे जाएँ।

विशेष—ऐसे अक्षर प्राय प्याज, नीबू आदि के रस से लिखे जाते हैं और सूखने पर दिखाई नही पडते। विशेषत आँच पर रखने से उभड आते और पढे जाते हैं।

अदृष्टार्थ[1]—सज्ञा पुं० [सं०] न्यायदर्शन के अनुसार वह शब्दप्रमाण जिसके वाच्य या अर्थ का साक्षात् इस ससार मे न हो। जैसे—स्वर्ग, मोक्ष, परमात्मा, आदि।

अदृष्टार्थ[2]—वि० आध्यात्मिक या गूढ अर्थ का द्योतक। जिसका विषय इद्रियो के ज्ञान से परे हो [को०]।

अदृष्टि[1]—वि० [सं०] दृष्टिहीन। अधा [को०]।

अदृष्टि[2]—सज्ञा स्त्री० १ दिखाई न पडने की स्थिति। २ क्रोध दुर्भाव आदि से युक्त दृष्टि। कुदृष्टि [को०]।

अदृष्टि[3]—सज्ञा पुं० शिष्यो के तीन भेदो में से एक। मध्यम अधिकारी शिष्य।

अदृष्टिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अदृष्ट' [को०]।

अदेख(पु)—वि० [सं० अ=नहीं+हिं० √देख] १ जो न देखा जाय। अदृश्य। गुप्त। २ न देखा हुआ। अदृष्ट। उ०—(क) ऊहै अदेख केहू नहिं देखा, कवन फन दहुँ पाय।—जग० बानी, पृ० १०६। (ख) देखेउ करइ अदेख इव अनदेखेउ विसुआस।—स० सप्तक, पृ० २८।

अदेखी[1]—वि० [अ=नहीं+देखो] जो न देख सके। डाही। द्वेषी। ईर्षालु। उ०—ए दई, ऐसो कछू करु ब्यौंत जु देखें अदेखिन के दृग दागैं। जामे निसक ह्वै मोहन को भरिए निज अक कलक न लागैं।—पद्माकर ग्र०, पृ० ६७।

अदेखी[2]—वि० स्त्री० बिना देखी हुई।

अदेखे—क्रि० वि० [हिं०] बिना देखे। अनदेखे। उ०—अदेखे अकेले किते दिन ह्वै गए चाह गई चित सो कढ़ि सोऊ।—ठाकुर०, पृ० ७।

अदेय—वि० [सं०] १ न देने योग्य। जिसे न दे सकें। उ०—मकुच बिहाइ माँगु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोही।—मानस, १।१४६। २ (वह पदार्थ) जिसे देने को कोई बाध्य न किया जा सके।

जिसके थान की लंबाई साधारण नजर या नैनसुख के थान की आधी होती है।

अद्भुत[1]—वि० [सं०] [संज्ञा अद्भुतता, अद्भुतत्व] आश्चर्यजनक। विस्मयकारक। विलक्षण। विचित्र। अनोखा। अजीब। अपूर्व। अलौकिक।

अद्भुत[2]—संज्ञा पुं० १ आश्चर्य। विस्मय (को०)। २ विस्मयपूर्ण घटना, पदार्थ या वस्तु (को०)। ३ किसी ऊँचाई की माप के ५ समभागों में से एक, जिसमें ऊँचाई चौड़ाई की अपेक्षा दूनी होती है (को०)। ४ काव्य के नौ रसों में से एक।

विशेष—इसमें अनिवार्यतः विस्मय की परिपुष्टता दिखलाई जाती है। इसका वर्ण पीत, देवता ब्रह्मा, आलंबन असंभावित वस्तु, उद्दीपन उसके गुणों की महिमा तथा अनुभाव संभ्रमादिक हैं। ५ केशव के अनुसार रूपक के तीन भेदों में एक।

विशेष—इसमें किसी वस्तु का अलौकिक रूप में एक रस होना दिखलाया जाता है। जैसे—सोमा सरवर माँहि फूल्योई सखि, राजे राजहंसिनी समीप सुखदानिए। केसोदास आस पास सौरभ के लोभ घने, आननि के देव औंर भ्रमर बखानिए। होति ज्योति दिन दूनी निसी में सहस गुनी, सूरज सुहृद चारु चंद मन मानिए। रति को सदन छुइ सके न मदन ऐसो कोमलवदन जग जानकी को जानिए।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १८४।

अद्भुतकर्मा—वि० [सं० अद्भुतकर्मन्] आश्चर्यजनक काम करनेवाला उ०—और सब लोग इनको अद्भुतकर्मा कहते हैं।—रसक०, पृ० ४२।

अद्भुतता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विचित्रता। विलक्षणता। अनोखापन।

अद्भुतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] विचित्रता। अनोखापन। उ०—चमत्कार से हमारा अभिप्राय यहाँ प्रस्तुत वस्तु के अद्भुतत्व या वैलक्षण्य से ही।—रस० पृ० ३३।

अद्भुतदर्शन—वि० [सं०] जो देखने में अद्भुत या विचित्र लगे। विलक्षण।

अद्भुतधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के नव अंगों में से एक [को०]।

अद्भुतब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के एक ब्राह्मण का अंश [को०]।

अद्भुतरस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अद्भुत'। उ०—जाको थाई आचरज सो अद्भुतरस गाव।—पद्माकर ग्रं० पृ० २३०।

अद्भुतरामायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक रामायण जिसकी रचना का श्रेय वाल्मीकि को दिया जाता है [को०]।

अद्भुतसार—सं० पुं० [सं०] खदिर वृक्ष का फल [को०]।

अद्भुतस्वन[1]—वि० [सं०] विचित्र स्वरवाला [को०]।

अद्भुतस्वन[2]—संज्ञा पुं० शिव का एक नाम [को०]।

अद्भुतालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ संसार के अद्भुत पदार्थ दिखलाने के लिये रखे जाते हैं। अजायबघर।

अद्भुतोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलंकार का एक भेद।

विशेष—इसमें उपमा के ऐसे गुणों का उल्लेख किया जाता है, जिनका होना उपमेय में त्रिकाल में भी संभव न हो। जैसे—श्रीराम को अपमानति गान सयाननि रीझि रिझावै। एक विलोकत बोलि अमोलनि बोलि के केशव मोद बढ़ावै। हावहु भाव विभाव प्रभाव सुभाव के भाँतिनि चित्र चुरावै। ऐसे विलास जु होंहि सरोज में तो उपमा मुख तेरे की पावै।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १८६।

अद्मनि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

अद्मर—वि० [सं०] अत्यधिक खानेवाला। पेटू [को०]।

अद्य[1]—क्रि० वि० [सं०] अब। अभी। आज।

अद्य[2]—संज्ञा पुं० खाद्य पदार्थ। आहार [को०]।

अद्य[3]—वि० खाने योग्य। भोज्य [को०]।

अद्यतन—वि० [सं०] [वि० अद्यतनीय] आज के दिन का। वर्तमान।

अद्यतन[1]—संज्ञा पुं० बीती हुई आधी रात से लेकर आनेवाली आधी रात तक का समय। कोई कोई बीती हुई रात के शेष प्रहर से लेकर आनेवाली रात के पहले प्रहर तक के समय को अद्यतन कहते हैं।

अद्यतनीय—वि० [सं०] आज का। आधुनिक युग का [को०]।

अद्यदिन—अव्य० [सं०] आज का दिन [को०]।

अद्यदिवस—अव्य० [पुं०] दे० 'अद्यदिन' [को०]।

अद्यपूर्व—अव्य० [सं० अद्यपूर्वम्] अब अथवा आज से पहले [को०]।

अद्यप्रभृति—क्रि० वि० [सं०] आज से। अब से।

अद्यश्वीन—वि० [सं०] आज या कल के अंतर्गत घटित होनेवाला [को०]।

अद्यश्वीना—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसका प्रसवकाल सन्निकट हो। आसन्नप्रसवा [को०]।

अद्यापि—क्रि० वि० [सं०] आज भी। अब भी। इस समय भी। अब तक। आज तक। उ०—देवयानी और ययाति के पावन चरित अद्यापि भूमंडल को पवित्र करते हैं।—श्यामा०, पृ० ६१।

अद्यावधि—क्रि० वि० [सं०] आज तक। अब तक। इस समय पर्यंत। उ०—वह मंत्र जो इसने सिद्ध किया था, अद्यावधि इसी भीत पर गहरा खुदा है।—श्यामा०, पृ० १४।

अद्यावधिक—वि० [सं०] आजकल का। आधुनिक [को०]।

अद्याश्व—संज्ञा पुं० [सं०] आज और कल का दिन [को०]।

अद्यूत्य—वि० [सं०] जो जुए से प्राप्त न किया गया हो। ईमानदारी से उपार्जित [को०]।

अद्यैव—क्रि० वि० [सं०] आज ही। इसी समय [को०]।

अद्रव[1]—वि० [सं०] जो द्रव या पतला न हो। गाढ़ा। घना। ठोस।

अद्रव[2]—संज्ञा पुं० ठोस पदार्थ [को०]।

अद्रव्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सत्ताहीन पदार्थ। अवस्तु। असत्। शून्य। अभाव।

अद्रव्य[2]—वि० द्रव्य या धनरहित। दरिद्र।

अद्रा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आर्द्रा, हिं अर्द्रा] दे० 'आर्द्रा'। उ०—(क) तपनि मृगसिरा जे सहे ते अद्रा पलुहंत।—जायसी ग्रं०, पृ० १५६। (ख) अद्रा धान पुनर्बसु पैया, गया किसान जो बोवै चिरैया।—घाघ०, पृ० ७३।

अद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत। पहाड़। २. पत्थर (को०)। ३. पेड़। वृक्ष (को०)। ४. विद्युत्। बिजली (को०)। ५. सूर्य या सूरज (को०)। ६. मेघ। बादल (को०)। ७. [illegible] (को०)। ८. एक प्रकार की माप (को०)। ९. सात की संख्या (को०)। १०. पृथु का एक पौत्र (को०)।

अद्रिकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती (को०)।

अद्रिकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपराजिता पौधा (को०)।

अद्रिकील—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] (को०)।

अद्रिकीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी। धरती।

अद्रिकुक्षि—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुफा। कंदरा (को०)।

अद्रिद्विट्—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र। [illegible]।

अद्रिज¹—वि० [सं०] पर्वत से उत्पन्न (को०)।

अद्रिज²—संज्ञा पुं० १. शिलाजीत। २. [illegible] (को०)।

अद्रिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती। २. [illegible]। ३. सिंह पिप्पली। सिंहली पीपर (को०)।

अद्रितनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती। [illegible]। ३. [illegible] के एक वृत्त का नाम। इसे अश्वललित भी कहते हैं। [illegible] न धरि भजै मन जिनको सदाहि सभ्य [illegible] (छंद०)।

अद्रिद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पहाड़ी घाटी। २. नदी का उद्गम (को०)।

अद्रिद्विष—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों का शत्रु। इंद्र (को०)।

अद्रिनंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अद्रिनन्दिनी] दे० 'अद्रिजा' (को०)।

अद्रिपति—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों का स्वामी। पर्वतों का राजा। हिमालय।

अद्रिभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम [illegible]।

अद्रिभू—संज्ञा पुं० [सं०] अपराजिता या [illegible] नामक पौधा (को०)।

अद्रिमंडन—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़। उ०—[illegible] जो भिरयो अद्रिमंडन सह ज्यो।—रा० [illegible], पृ० ३।

अद्रिराज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अद्रिपति' (को०)।

अद्रिवह्नि—संज्ञा पुं० [सं०] दावाग्नि (को०)।

अद्रिशय्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (को०)।

अद्रिशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत की चोटी। उ०—[illegible] सब हुव गए दुरग उत्पतित अद्रिशिखर।—कुमार, पृ० १३।

अद्रिशृंग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अद्रिशिखर' (को०)।

अद्रिसानु—संज्ञा पुं० [सं०] अद्रिशृंग (को०)।

अद्रिसार¹—वि० [सं०] पर्वत जैसा दृढ़ (को०)।

अद्रिसार²—संज्ञा पुं० १. लोहा। २. शिलाजीत।

अद्रिसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती (को०)।

अद्रींद्र—संज्ञा पुं० [सं० अद्रीन्द्र] हिमालय पर्वत (को०)।

अद्रीश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अद्रींद्र' (को०)।

अद्रोघ—वि० [सं०] १. सत्य। २. द्वेषविहीन। द्वेषरहित (को०)।

अद्रोह—संज्ञा पुं० [सं०] द्रोह का अभाव। [illegible]

अद्रोहवृत्ति—[illegible]

अद्रोही—वि० [सं० अद्रोहिन्] [illegible]

[illegible]

अद्वैत—[illegible]

अद्वैतवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. [illegible] का [illegible] सिद्ध [illegible] आदि की [illegible] मानता है। [illegible] समस्त प्रमेय पदार्थों का उसका परिणाम, विवर्त, आभास, [illegible] स्वीकार करते हैं। शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित 'अद्वैतवाद' इसमें सर्वाधिक प्रसिद्ध है। ब्रह्माद्वैतवाद (शांकर) वेदांत मत) शब्दाद्वैतवाद (शब्द-ब्रह्माद्वैतवाद) के अतिरिक्त 'विशिष्टाद्वैतवाद' आदि अद्वैतवाद आदि हैं। इसी के अंतर्गत प्रकार हैं—शुद्धाद्वैत, केवलाद्वैत

आदि भी। ३. शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित वेदांत दर्शन। इस मत मे 'ब्रह्म' के अतिरिक्त सभी पदार्थ असत्य हैं अर्थात् 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' के अनुसार 'एकमेवाद्वितीय ब्रह्म' अर्थात् 'ब्रह्म' ही एक और केवल अद्वैत तत्व सत्य माना गया है और 'ब्रह्म' सत्-चित्-आनंदस्वरूप। मायावाद, अध्यासवाद, विवर्तवाद, उत्तरमीमांसा, शंकरवेदांत आदि पदों से प्राय इसी दर्शन का बोध होता है।

विशेष—इस सिद्धांत के अनुयायी कहते हैं कि जैसे रस्सी के स्वरूप को न जानने से सर्प का बोध होता है, वैसे ही ब्रह्म के रूप को न जानने के कारण अध्यासवश ब्रह्म ही संसार रूप में वस्तुत दिखाई देता है। अंत मे अज्ञान दूर हो जाने पर सब पदार्थ ब्रह्ममय प्रतीत होता है।

अद्वैतवादी[1]—वि० [सं०] अद्वैत मत को माननेवाला। ब्रह्म और जीव को एक माननेवाला। शांकरवेदांत का अनुयायी।

अद्वैतवादी[2]—संज्ञा पुं० अद्वैतवाद का सिद्धांत माननेवाला व्यक्ति।

अद्वैतसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ब्रह्म और जीव के अभेद की सिद्धि। २ शांकर वेदांत का प्रकरणविशेष [को०]।

अद्वैती—संज्ञा पुं० [सं० अद्वैतिन्] दे० 'अद्वैतवादी' [को०]।

अद्वैध—वि० [सं०] १ जो दो भागों मे विभक्त न हो। अवियुक्त। २ असद् भावना से रहित। ३ खरा। उत्तम [को०]।

अद्वैध्यमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति, मित्र या राष्ट्र जिसकी मित्रता मे किसी प्रकार का संदेह न हो।

विशेष—वह जिसकी मैत्री स्वार्थपूर्ण न हो, जो स्थिरचित्त, सुशील, और उपकारी हो तथा विपत्ति मे जिसके साथ छोडने की आशंका न हो, वह अद्वैध्यमित्र है।

अधंग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्धांग'। उ०—सीस गंग गिरिजा अधंग भूषण भुजगवर।—तुलसी ग्र०, पृ० २३५।

अधंतरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अध+अतरी] मालखंभ की एक कसरत।

अध[1]—अव्य० [सं०] नीचे। तले।

अध[2]—संज्ञा स्त्री० दश दिशाओं मे से एक। पैर के ठीक नीचे की दिशा।

अध काय—संज्ञा पुं० [सं० अध = नीचे + काय = शरीर] कमर केनीचे के अंग। नाभि के नीचे के अवयव।

अध क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपमानित करना। नीचा दिखाना [को०]।

अध पतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीचे गिरना। २ अवनति। अध पात तनज्जुली। ३ दुर्दशा। दुर्गति। ४ विनाश। क्षय।

अध पतित—वि० [सं०] १ जिसका पतन हो गया हो। २ दुर्दशाग्रस्त [को०]।

अध पात—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे गिरना। पतन। २ अवनति। तनज्जुलि। ३ दुर्गति। दुर्दशा।

अध पुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनतमूल नामक औषधि। २ नीले, फूल की एक बूटी जिसे अधाहुली भी कहते हैं।

अध प्रस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] अशौचवालो के बैठने के लिये तृणों का बना हुआ आसन। कुशासन।

अधोवेद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रथम पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह करना [को०]।

अध शयन—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी पर सोना। ब्रह्मचर्य का एक नियम

अध शय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अध शयन' [को०]।

अध शिरा[1]—वि० [सं० अध शिरस्] सिर नीचे रखनेवाला [को०]।

अध शिरा[2]—संज्ञा पुं० एक नरक का नाम [को०]।

अध स्वस्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] अधोबिंदु। देखनेवालो के पैरों के नीचे माना जानेवाला एक कल्पित बिंदु [को०]।

अध[1](पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'अध'। उ०—अध अर्द्ध वानर विदिस दिसि वानर है।—तुलसी ग्र०, पृ० १७४।

अध[2]—वि० [सं० अर्ध; प्रा० अद्ध, अध] 'आधा' शब्द का संकुचित रूप। आधा। उ०—हौं जानत जो नाह तुम बोलत अध अखरान।—पद्माकर ग्र०, पृ० १६६।

विशेष—प्राय यौगिक शब्द बनाने मे इस शब्द का प्रयोग होता है। जैसे—अधकचरा, अधजल, अधबावरा, अधमरा।

अधकचरा[1]—वि० [हिं० अध + कच्चा] १ अपरिपक्व। अधूरा। अपूर्ण। २. अकुशल। अदक्ष। जिसने पूरी तरह कोई चीज न सीखी हो। जैसे—उसने अच्छी तरह पढा नहीं अधकचरा रह गया (शब्द०)।

अधकचरा[2]—वि० [हिं० अध + कचरना] आधा कूटा या पीसा हुआ। दरदरा। अधपिसा। अधकूटा। अरदावा किया हुआ।

अंधकच्चा—वि० [हिं०] दे० 'अधकचरा'। उ०—बहुधा इस तरह की बनावट और चालाकी सुखवासी लाल सरीखे अधकच्चे मनुष्यो से होती है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ६४।

अधकच्छा—संज्ञा पुं० [सं० अधिकच्छा] नदी के किनारे की वह ऊँची भूमि जो ढालुई होते होते नदी की सतह मे मिल गई हो।

अधकछार—संज्ञा पुं० [सं० अर्ध + कच्छ] पहाड के अंचल की वह ढालुई भूमि जो प्राय बहुत उपजाऊ और हरी भरी होती है।

अधकट—वि० [हिं० अध + कटना] १ आधा कटा हुआ। २ नियत दूरी या परिमाण का आधा।

अधकपारी—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्ध + कपाल हिं० अध + कपारी] आधे सिर का दर्द जो सूर्योदय से प्रारंभ होकर दोपहर तक बढता जाता है। फिर दोपहर के बाद से घटने लगता है और सूर्यास्त होते ही बंद हो जाता है। आधासीसी। सूर्यावर्त।

अधकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्ध + कर] १ अठन्नियाँ। किस्त। मालगुजारी या महसूल या किराए की आधी रकम जो किसी नियत समय पर दी जाय।

अधकहा—वि० [हिं० अध + कहना] आधा कहा हुआ। अस्पष्ट रूप से या आधा उच्चारण किया हुआ। उ०—गहकि गाँसु औरै गहे रहे अधकहे बैन। देखि खिसौंहैं पिय नयन किए रिसौंहैं नैन।—बिहारी र०, दो० ६५।

अधकी(पु)—वि० [सं० अधिक] दे० 'अधिक'। उ०—ज्यो ज्यो चूल्हे झोकिया, त्यो त्यो अधकी वास।—कबीर सा० सं०, पृ० ९३।

अधखिला—वि० [हिं० अध + खिलना] [स्त्री० अधखिली] आधा खिला हुआ। अर्धविकसित।

अधखुला—वि० पुं० [हिं० अध+खुलना] [स्त्री० अधखुली] आधा खुला हुआ। उ०—सुभग सिंगार साजे सबै, दै सखीन को पीठि। चलै अधखिले द्वार लौं, खुली अधखुली दीठि।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १२८।

अधगति (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अधोगति'। उ०—महा विपट कोटर महुं जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई।—मानस, ७।१०७।

अधगो—संज्ञा पुं० [सं० अध=नीचे+गो=इंद्रिय] नीचे की इंद्रियाँ। शिश्न या गुदा। उ०—उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु की बहु कलपना।—मानस, ६।१५।

अधगोरा—संज्ञा पुं० [हिं० अध+गोरा] [स्त्री० अधगोरी] यूरोपीय और एशियाई माता पिता से उत्पन्न संतान। यूरेशियन।

अधगोहुआँ—संज्ञा पुं० [सं० अर्ध+गोधूम+क] जौ मिला हुआ गेहूँ। गोजई।

अधघट (पु)—वि० [हिं० अध+घट] जो ठीक या पूरा न उतरे। जिससे ठीक अर्थ न निकले। अटपट। कठिन। उ०—कहै कबीर अधघट बोलै। पूरा होइ विचार लै बोलै।—कबीर (शब्द०)।

अधचना—संज्ञा पुं० [हिं० अधा+चना] गेहूँ और चने का मिश्रण जिसमे आधा चना और आधा गेहूँ हो।

अधचरा—वि० [हिं० अध+चरना] आधा चरा हुआ। अर्धभक्षित। आधा खाया हुआ। उ०—यह तन हरियर खेत, तरुनी हरिनी चर गई। अजहूँ चेत अचेत, यह अधचरा बचाइ ले।—सम्मन (शब्द०)।

अधजर (पु)—वि० [हिं० अध+जरना] दे० 'अधजला'। उ०—कोई परा भौंर होइ बास लीन्ह जनु चोप। कोई पतंग भा दीपक कोइ अधजर तन कांप।—जायसी ग्रं०, पृ० २४६।

अधजल—वि० [सं० अर्ध+जल] पानी से आधा ही भरा हुआ। जैसे—अधजल गगरी छलकत जाय (कहा०)।

अधजला—वि० [हिं० आधा+जलना] आधा जला हुआ। जो पूर्ण रूप से भस्म न हुआ हो।

अधडी (पु)—वि० स्त्री० [सं० अधर] १ न ऊपर न नीचे। अधर का। आधाररहित। निराधार। २ ऊटपटाँग। बेसिर पैर का। असबद्ध। जिसका कोई सिलसिला न हो। न इधर की न उधर की। उ०—अधडी चाल कबीर की असा धरी नहिं जाइ। दादू डाँकहि मिरिग ज्यो उलटि पडइ भू आइ।—दादू (शब्द०)।

अधधर—संज्ञा पुं० [सं० अर्ध+धार] मध्यधार। बीचोबीच। उ०—पढे गुने उपजै अहँकारा। अधधर डूबे वार न पारा।—कबीर ग्रं०, पृ० १३०।

अधन (पु)—वि० [सं०] १ धनरहित। निर्धन। कंगाल। गरीब। अकिंचन। धनहीन। उ०—तुम सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि सिवहि संदेहा।—मानस, १।१६१। २ स्वतंत्र संपत्ति रखने का अनधिकारी (को०)।

विशेष—मनु के अनुसार भार्या, पुत्र और दास स्वतंत्र संपत्ति रखने के अनधिकारी हैं।

अधनियाँ—वि० [हिं० आधा+आना+इया (प्रत्य०)] आध आने का। आध आनेवाला। जैसे—अधनियाँ टिकट।

अधन्ना—संज्ञा पुं० [सं० अर्ध+आणक=आना] [स्त्री० अधन्नी] एक आने का आधा। आध आने का सिक्का। डबल पैसा।

अधन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अधन्ना'।

अधन्य—वि० [सं०] [स्त्री० अधन्या] १ जो धन्य न हो। भाग्यहीन। अभागा। २ गर्हित। निंद्य। बुरा।

अधप—संज्ञा पुं० [सं०] भूखा सिंह। अर्धतृप्त केहरी।

अधपई—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्ध+पाद=चौपाई] तौलने का एक बाट। एक सेर के आठवें हिस्से की तौल। आधा पाव तौलने का बाट या मान। दो छटकी। दसभरी। अधपैया। अधपौवा।

अधपका—वि० [सं० अर्धपक्व] आधा पका हुआ। जो पूरी तरह पका न हो। अपरिपक्व।

अधपति (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधिपति'। उ०—खैंची कमर सौं बाँध्या पटका। अधिपति हुवा बैठि करि पटका।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३५१।

अधफड (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधफर'। उ०—टूटे पख बाज मँडराने अधफड प्रान गँवैंहौं।—कबीर श०, पृ० २२।

अधफर (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्ध+फलक=तख्ता] अंतरिक्ष। न नीचे न ऊपर का स्थान। बीच का भाग। अधर। उ०—अब अधफर ऊपर अकाश। चलत दीप देखियत प्रकाश। चौकी दै मनु अपने भेव। बहुरे देवलोक को देव।—केशव (शब्द०)।

अधबर (पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अध+देश० बर (प्रत्यय०)] अथवा हिं० अध+बाट=मार्ग] १ आधा मार्ग। आधा रास्ता। उ०—जे अनिरुध पर परें हथ्यार। अधबर कटें शिखा की धार।—लल्लू (शब्द०)। २ बीच। मध्य। अधर। उ०—उन कुल की करनी तजी इत न भजे भगवान। तुलसी अधबर के भए ज्यों बघूर के पान।—स० सप्तक, पृ० ३१।

अधबाँच—संज्ञा पुं० [हिं० अध+सं०*√वञ्च्]१ चमरावत। चमारो का जौरा। २ वह उजरत जो चमारो को चमडे की मोट बनाने के लिये वर्ष भर मे या फसल के समय दी जाती है।

अधबिच—संज्ञा पुं० [हिं० अध+बीच] मध्य। बीच। उ०—तरु तमाल अधबीच जनु त्रिविध कीर पाँति रुचिर। हेमजाल अंतर परि तातें न उडाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४०५।

अधबुध (पु)—वि० [सं० अर्ध+बुध=बुद्धिमान] अर्धशिक्षित। अधचरा। जिसकी शिक्षा पूरी न हुई हो। उ०—दिना सात लौं बाकी सही। बुध अधबुध अचरज एक कही।—कबीर (शब्द०)।

अधबैसू (पु)—वि० [सं०अर्ध+वयस्+हिं० ऊ (प्रत्य०)] [स्त्री० अधबैसी] अधेड। मध्यम अवस्था का। ढलती उम्र का। उतरती जवानी का।

अधम¹—वि० [सं०] [स्त्री० अधमा] [संज्ञा अधमाई, अधमता] १ नीच। निकृष्ट। बुरा। खोटा। २ पापी। दुष्ट। उ०—कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।—मानस १।११४।

अधम²—संज्ञा पुं० १ एक पेड का नाम। २ कवि के तीन भेदों में से एक। वह कवि जो दूसरों की निंदा करे। ३ ग्रहों का एक अनिष्ट योग (को०)। ४ कर्तव्याकर्तव्य के विचार से रहित कामी (को०)।

अधमई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अधम+हिं ई (प्रत्य०)] नीचता। अधमता। खोटापन।—मुनि मेरी अपराध अधमई कोई निकट न आवै।—सूर०, १।१९७।

अधमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधमपना। नीचता। खोटाई।

अधमभृत—संज्ञा पुं० [सं०] निम्न श्रेणी का सेवक। तीन प्रकार के सेवकों में एक [को०]।

अधमभृतक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधमभृत' [को०]।

अधमरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्यवश प्रीति को अधमरति कहते हैं। जैसे, वेश्या की प्रीति।

अधमरा—वि० पुं० [सं० अर्ध, हिं अध+मरा] [स्त्री० अधमरी] आधा मरा हुआ। अर्धमृत। मृतप्राय। अधमुआ।

अधमर्ण—संज्ञा पुं० [सं० अधम+ऋण] ऋण लेनेवाला आदमी। कर्जदार। धरता। ऋणी।

अधमांग—संज्ञा पुं० [सं० अधमाङ्ग] शरीर का निचला भाग। चरण। पाँव। पैर।

अधमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'अधमा नायिका'। २ नीच प्रकृति की स्त्री [को०]।

अधमाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अधम+हिं० आई (प्रत्य०)] अधमता। नीचता। खोटाई। उ०—परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीडा सम नहिं अधमाई।—मानस ७।४१।

अधमादूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधम कुटनी। वह दूती जो उत्तम रूप से अपना कार्य न करे वरन् कटु बातें कहकर नायक या नायिका का संदेश एक दूसरे को पहुँचाए।

अधमाधम—वि० [सं अधम+अधम] नीच से नीच। महानीच। उ०—महा विटप कोटर महु जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई। मानस ७।१०७।

अधमानायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रकृति के अनुसार नायिका के भेदों से एक। वह स्त्री जो प्रिय या नायक के हितकारी होने पर भी उसके प्रति अहित या कुव्यवहार करे।

अधमार(पु)—वि० [हिं०] आधे मारे हुए। अधमरा। उ०—गए पुकारत कछु अधमारे।—मानस ५।८।

अधमार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि के नीचे का भाग [को०]।

अधमुआ—वि० [हिं०] दे० 'अधमरा'।

अधामुख(पु)—वि० [सं० अधोमुख] मुँह के बल। सिर के बल। औंधा। उलटा। उ०—(क) स्याम भुजनि की सुंदरताई। बड़े बिसाल जानु लौं परसत इक उपमा मन आई। मनो भुजंग गगन तें उतरत अधमुख रह्यो झुलाई।—सूर (शब्द०)। (ख) स्याम बिंदु नहिं चिबुक मैं, सो मन यों ठहराइ। अधमुख ठोढी गाड की, अँधियारी दरसाई।—स० सप्तक, पृ० २५५।

अधमोद्धारक—वि० [सं०] पापियों का उद्धार करनेवाला [को०]।

अधरंगा—संज्ञा पुं० [हिं० आधा+रंग] एक प्रकार का फूल।

अधर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे का ओठ। २ ओठ।

यौ०—बिंबाधर। दयिताधर।

मुहा०—अधर चबाना = क्रोध के कारण दाँतों से ओठ बार बार दबाना। उ०—तदपि क्रोध नहिं रोक्यो जाई। भए अरुन चख अधर चबाई।—लल्लूलाल (शब्द०)।

३ भग या योनि के दोनों पार्श्व। ४ शरीर का निचला हिस्सा (को०)। ५ दक्षिण दिशा (को०)।

अधर²—संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं+धृ = धरना] १ बिना आधार का स्थान। अंतरिक्ष। आकाश। शून्यस्थान। जैसे—वह अधर में लटका रहा। (शब्द०)।

मुहा०—अधर में झूलना, अधर में पड़ना, अधर में लटकना = (१) अधूरा रहना। पूरा न होना। जैसे—यह काम अधर में पड़ा हुआ है (शब्द०)। (२) पशोपेश में पड़ना। दुविधा में पड़ना।

अधर³—वि० १ जो पकड में न आए। चंचल। २ नीच। बुरा। तुच्छ। उ०—गूढ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि। सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि।—मानस २।१६। ३ विवाद या मुकदमे में जो हार गया हो। ४ नीचा। नीचे का।

अधरकाय—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का निचला भाग [को०]।

अधरछत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अधरक्षत] ओठ का व्रण। उ०—तु है अपन्हुति अधरछत करत न पिय हिय बाइ।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १६।

अधरज—संज्ञा पुं० [सं० अधर+रज] ओठों की ललाई। ओठों की सुर्खी। ओठों की धड़ी। पान या मिस्सी के रंग की लकीर जो ओठों पर दिखाई देती है।

अधरपान—संज्ञा पुं० [सं० अधर = ओठ+पान = पीना, चूसना] सात प्रकार की बाह्यरतियों में से एक रति। ओठों का चुंबन।

अधरबिंब—संज्ञा पुं० [सं०] कुँदरू के पके फल जैसे लाल ओठ।

अधरबुद्धि—वि० [सं०] क्षुद्र बुद्धिवाला [को०]।

अधरम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधर्म'। उ०—जब जब होई धरम कै हानी। बढहिं असुर अधरम अभिमानी।—मानस १।१२१।

अधरमकाय(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधर्मास्तिकाय'।

अधरमधु—संज्ञा पुं० [सं०] अधरों का रस। अधरामृत [को०]।

अधररस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधरमधु' [को०]।

अधरस्वस्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] अधोबिंदु [को०]।

अधरांग—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के नीचे के अंग या भाग [को०]।

अधरा(पु)—स्त्री० पुं० [सं० अधर] दे० 'अधर'। उ०—सूरज बिंब से इंगुर बोरे बँधूक से हैं अधरा अरुनारे।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ११।

अधरात(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्धरात्रि] आधीरात। उ०—अधरात उठत करि हाय हाय।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २२२।

अधराधर—संज्ञा पुं० [सं० अधर+अधर] नीचे का ओठ। उ०—बर दंत की पंगति कुंद कली अधराधर पल्लव खोलनि की।—तुलसी,ग्रं० पृ० १५५।

अधरामृत—संज्ञा पुं० [सं०] ओठों का रस जो अमृत के समान मीठा माना जाता है [को०]।

अधरावलोप—संज्ञा पुं० [सं०] ओष्ठचर्वण। ओठ चबाना [को०]।

अधरासव—संज्ञा पुं० [अधर+आसव] ओठ का मादक रस।— उ०— अधरासव अधरन चह्यौ उरहु चह्यौ उर लागि। —श्यामा०, पृ० १७६।

अधरीण—वि० [सं०] १ नीच। तिरस्कृत। २ निंदित [को०]।

अधरेद्यु—संज्ञा पुं० [सं०] गत दिन के पहले का दिन। परसों।

अधरोथा(पु)-वि० [सं० अर्ध+रोमन्थ=जुगाली] [स्त्री० अधरोथी] आधा जुगाली किया हुआ। आधा पागुर किया हुआ। आधा चबाया हुआ। उ०—अधरोथी कग दाम गिरावन। थकित खुले मुख ते बिखरावन। शकुतला०, पृ० ८।

अधरोत्तर—वि० [सं अधर+उत्तर] ऊँचा नीचा। खड़बीहड़। ऊबड़ खाबड़। २ अच्छा बुरा। ३ न्यूनाधिक। कमोबेश।

अधरोत्तर—क्रि० वि० ऊँचे नीचे।

अधरोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे का होठ। २ नीचे और ऊपर के दोनों ओठ [को०]।

अधरौष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधरोष्ठ' [को०]।

अधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अधर्मी, अर्धामिष्ठ, अधर्मी] पाप। पातक। असद्व्यवहार। अकर्तव्य कर्म। अन्याय। धर्म के विरुद्ध कार्य। कुकर्म दुराचार। बुरा काम।

विशेष—शरीर द्वारा हिंसा चोरी आदि कर्म वचन द्वारा अनृत भाषण आदि और मन द्वारा परद्रोहादि। यह गौतम का मत है। कणाद के अनुसार वह कर्म जो अभ्युदय (लौकिक सुख) और नैःश्रेयस (पारलौकिक सुख) की सिद्धि का विरोधी हो। जैमिनी के मतानुसार वेदविरुद्ध कर्म। बौद्धशास्त्रानुसार वह दुष्ट स्वभाव जो निर्वाण का विरोधी हो।

२ एक प्रजापति अथवा सूर्य का अनुचर [को०]।

अधर्ममंत्रयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध जो दोनों ओर के लोगों को नष्ट करने के लिये छेड़ा गया हो।

अधर्मात्मा—वि० [सं०] अधर्मी पापी। दुराचारी। कुकर्मी। बुरा।

अधर्मास्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] अधर्म पाप। जैनशास्त्रानुसार द्रव्य के छह भेदों में से एक।

विशेष—यह एक नित्य और अरूपी पदार्थ है जो जीव और पुद्गल की स्थिति का सहायक है। इसके तीन भेद हैं— स्कंध, देश और प्रदेश।

अधर्मी—संज्ञा पुं० [सं० अधर्मिन्] [स्त्री० अधर्मिणी] पापी दुराचारी

अधर्म्य—वि० [सं०] १ धर्मविरुद्ध। जो धर्म की दृष्टि में उपयुक्त न हो। २ अवैध। अन्यायपूर्ण [को०]।

अधर्षणी—वि० पुं० [सं०] जिसको कोई दबा या डरा न सके। जिसको कोई पराजित न कर सके। प्रचंड। प्रबल। निर्भय।

अधवा—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+धव=पति] जिसका पति जीवित न हो। विधवा। पतिहीना। बिना पति की स्त्री। सधवा का उलटा।

अधवाना† संज्ञा पुं० [हिं० हिंदवाना] तरबूज।

अधवारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ का नाम जिसकी लकड़ी मकान और असबाब बनाने के काम आती है।

अधश्चर¹—वि० [सं०] जो नीचे नीचे चले।

अधश्चर²—संज्ञा पुं० सेंध लगाकर चोरी करनेवाला पुरुष। सेंधिया चोर।

अधसेरा—संज्ञा पुं० [सं० अर्ध+सेटक=सेर] एक बाट या तौल जो एक सेर की आधी होती है। दो पाव का मान।

अधस्तन—वि० [सं०] १ नीचा। नीचे अवस्थित। २ पूर्ववर्ती। पहले का [को०]।

अधस्तल—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे का कमरा। नीचे की कोठरी। २ नीचे की तह। तहखाना।

अधस्स्वस्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे की ओर का वह स्थान या बिंदु जो पृथ्वी पर के किसी स्थान या बिंदु के ठीक नीचे हो। शीर्षबिंदु से ठीक विपरीत दिशा का बिंदु जो क्षितिज का दक्षिणी ध्रुव है।

अधाँगा—संज्ञा पुं० [सं० अर्धाङ्ग] एक खाकी रंग की चिड़िया जिसकी गरदन से ऊपर का सारा भाग लाल होता है और डैने तथा पैर सुनहले होते हैं।

अधाधुध— क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अधाधुंध'।

अधाना—संज्ञा पुं० [सं० अर्ध] स्थान (अस्थायी) का एक भेद। यह तिलवाड़ा ताल पर बजाया जाता है।

अधान्यवाप—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान या उपनिवेश जिसमें धान न पैदा होता हो।

विशेष—चाणक्य के अनुसार जलयुक्त उपनिवेश में भी वही उपनिवेश या प्रदेश उत्तम है जिसमें धान पैदा होता हो। परंतु यदि धान पैदा करनेवाला उपनिवेश छोटा हो और धान न पैदा करनेवाला उपनिवेश बहुत बड़ा हो, तो दूसरा ही ठीक है।

अधामार्गव—संज्ञा पुं० [सं०] अपामार्ग [को०]।

अधार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आधार] दे० 'आधार'। उ०—जग अधार सब सृष्टि भवानी।—मानस, १।७३।

अधारणक—वि० [सं०] जो लाभप्रद न हो। [को०]

अधारिया—संज्ञा पुं० [सं० आधार] बैलगाड़ी में गाड़ीवान के बैठने का वह स्थान जिसे मोढ़ा भी कहते हैं।

अधारी¹—(पु)संज्ञा स्त्री० [सं० आधार या आधारिका] १ आश्रय। सहारा। आधार की चीज। २ काठ के डंडे में लगा काठ का पीढ़ा जिसे साधु लोग सहारे के लिये रखते हैं। उ०—ऊधोयोग सिखावन आए। शृंगी भस्म अधारी मुद्रा दै यदुनाथ पठाए।— सूर (शब्द०)। ३ यात्रा का सामान रखने का झोला या थैला जिसे मुसाफिर लोग कंधे पर रखकर चलते हैं। उ०— मेखल, सिंधी, चक्र धधारा। जोगवाट, रुदराक्ष अधारी।— जायसी ग्रं०, पृ० ५३।

अधारी²—वि० स्त्री० सहारा देनेवाली। प्रिय। सुख देनेवाली। प्यारी। उ०—की मोहिं लै पिय कंठ लगावै। परम अधारी बात सुनावै।—जायसी (शब्द०)।

अधारी³—संज्ञा पुं० [हिं० आधा + आरियसम्य] बेनिकाला हुआ बैल।

अधार्मिक—वि० [सं०] १ अधर्मी। धर्मशून्य। २ पापी। दुराचारी।

अधावट(पु)—वि० पुं० [सं०अर्ध = आधा + आवृत्त, प्रा० अध + आवट्ट, आवट्ठ] आधा औटा हुआ। जो औटाते या गरम करते करते गाढ़ा होकर नाप में आधा हो गया हो। उ०—कछु बलदाऊ को दीजै, अरु दूध अधावट पीजै।—सूर० १०।१८३।

अधि—उप० [सं०] एक संस्कृत उपसर्ग।

विशेष—यह शब्दों के पहले लगाया जाता है और इसके ये अर्थ होते हैं—(१) ऊपर। ऊँचा। पर। जैसे—अधिराज। अधिकरण। अधिवास। (२) प्रधान। मुख्य। जैसे, अधिपति। (३) अधिक। ज्यादा। जैसे, अधिमास। (४) संबंध में। जैसे, आध्यात्मिक। अधिदैविक। आधिभौतिक।

अधिक¹—वि० [सं०] [संज्ञा अधिकता, अधिकाई, क्रि० अधिकाना] १ बहुत। ज्यादा। विशेष। २ अतिरिक्त। सिवा। फालतू। बचा हुआ। शेष। जैसे—जो खाने पीने से अधिक हो उसे अच्छे काम में लगाओ (शब्द०)।

अधिक²—संज्ञा पुं० १ वह अलंकार जिसमें आधेय को आधार से अधिक वर्णन करते हैं। जैसे—तुम पूछत कहि मुद्रिके मौन होति यह नाम। कंकन की पदवी दई तुम बिनु या कहँ राम।—राम च०, पृ० १००। २ न्याय के अनुसार एक प्रकार का निग्रह स्थान जहाँ आवश्यकता से अधिक हेतु और उदाहरण का प्रयोग होता है।

अधिकई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अधिक + हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'अधिकाई'। उ०—हितनी के लाह की, उछाह की, विनोद मोद सोभा की अवधि नहिं। अब अधिकई है।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३२०।

अधिककोण—संज्ञा पुं० [सं० अधिक + कोण] वह कोण जो समकोण से बड़ा हो (ज्यामिति)।

अधिकत—क्रि० वि० [सं०] अधिकतर। विशेषकर। उ०—अधिकत वेदना यह ध्यान था, व्रजविभूषण हैं शनशः बने।—प्रिय०, पृ० १६३।

अधिकतम—वि० [सं०] परिमाण, माप, संख्या आदि में सबसे अधिक [को०]।

अधिकतर¹—वि० [सं०] किसी की तुलना में आगे बढ़ा हुआ। और ज्यादे [को०]।

अधिकतर²—क्रि० वि० ज्यादातर। बहुत करके [को०]।

अधिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधिकाना। ज्यादती। बढ़ती। वृद्धि।

अधिक तिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जो अपने समय के पश्चात् दूसरे दिन भी मानी जाय [को०]।

अधिक दिन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिक तिथि' [को०]।

अधिक दिवस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिक तिथि'।

अधिक मास—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक महीना। मलमास। लौंद का महीना। पुरुषोत्तम मास। असंक्रांतमास। शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावस्या पर्यंत काल जिसमें संक्रांति न पड़े।

विशेष—यह प्रति तीसरे वर्ष आता है तथा चांद्र वर्ष और सौर वर्ष को बराबर करने के लिये चांद्र वर्ष में जोड़ लिया जाता है।

अधिकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ आधार। आसरा। सहारा। २ व्याकरण में कर्ता और कर्म द्वारा क्रिया का आधार। सातवाँ कारक। इसकी विभक्तियाँ 'में' और 'पर' हैं। ३ प्रकरण। शीर्षक। ४ दर्शन में आधार विषय। अधिष्ठान। जैसे—ज्ञान का अधिकरण आत्मा है (शब्द०)। ५. मीमांसा और वेदांत के अनुसार वह प्रकरण जिसमें किसी सिद्धांत पर विवेचना की जाय और जिसमें ये पाँच अवश्य हों—विषय संशय, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष और निर्णय। ६ सामान। पदार्थ। ७ न्यायालय। ८ प्रधानता। प्राधान्य। ९ अधिकारप्रदान।

अधिकरणभोजक—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायाधीश [को०]।

अधिकरणमंडप—संज्ञा पुं० [सं० अधिकरण मण्डप] न्यायालय। अदालत [को०]।

अधिकरणविचाल—संज्ञा पुं० [सं०] व्यतिक्रम करते जाना। किसी वस्तु के गुण में ह्रास अथवा वृद्धि करते जाना [को०]।

अधिकरण सिद्धांत—संज्ञा पुं० [सं० अधिकरणसिद्धान्त] न्याय दर्शन में वह सिद्धांत जिसके सिद्ध होने से कुछ अन्य सिद्धांत या अर्थ भी स्वयं सिद्ध हो जायँ।

विशेष—जैसे, आत्मा देह और इंद्रियों से भिन्न है, इस सिद्धांत के सिद्ध होने में इंद्रियों का अनेक होना, उनके विषयों का नियत होना, उनका ज्ञाता के ज्ञान का साधक होना, इत्यादि विषयों की सिद्धि स्वयं हो जाती है।

अधिकरणिक—संज्ञा पुं० [सं० अधिकरणिक या अधिकारणिक] मुंसिफ। जज। फैसला करनेवाला। न्यायकर्ता।

अधिकरणी—वि० [सं० अधिकरणिन्] १ अध्यक्ष। २ निरीक्षण करनेवाला [को०]।

अधिकरण्य—संज्ञा पुं० [सं०] अधिकार [को०]।

अधिकर्द्धि—वि० [सं० अधिक + ऋद्धि] ऐश्वर्यशाली [को०]।

अधिकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ देखरेख। निरीक्षण। २ श्रेष्ठ कर्म ३ निरीक्षक [को०]।

अधिकर्मकर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिकर्मकृत' [को०]।

अधिकर्मकृत—संज्ञा पुं० [सं० अधिकर्मकृत] काम करनेवालों का जमादार।

अधिकर्मिक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल में व्यापारियों से चुंगी उगाहनेवाला अधिकारी [को०]।

अधिकर्मी—संज्ञा पुं० [सं० अधिकर्मिन्] मजदूरों आदि के कार्यों का निरीक्षण करनेवाला अधिकारी [को०]।

अधिकवाक्योक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बढ़ा चढ़ाकर कहना। अतिरंजना [को०]।

अधिकसंवत्सर—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक मास। मलमास [को०]।

अधिकांग¹—संज्ञा पुं० [सं० अधिकाङ्ग] अधिक अंग। नियत संख्या से विशेष अवयव।

अधिकांग²—वि० जिसे कोई अवयव अधिक हो। जैसे—छांगुर।

अधिकांश¹—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक भाग। ज्यादा हिस्सा। जैसे—लूट का अधिकांश सरदार ने लिया (को०)।

अधिकाश[2]—वि० वहुत ।

अधिकाश[3]—क्रि० वि० १ ज्यादातर । विशेषकर । वहुधा । २ अकसर । प्राय । जैसे—अधिकाश ऐसा ही होता है (शब्द०) ।

अधिकाई(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० **अधिक**+हिं० **आई** (**प्रत्य०**)] १ ज्यादती । अधिकता । विपुलता । विशेषता । वहुतायत । वढती । उ०—लहहि सकल सोभा अधिकाई ।—मानस, १।११ । २ वडाई । महिमा महत्व । उ०—उमा न कछु कपिकै अधिकाई । प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ।—मानस, ५।३ ।

अधिकाधिक—वि० [स०] ज्यादा से ज्यादा । अधिक से अधिक ।

अधिकाना(पु)—क्रि० अ० [स० **अधिक से नाम०**] अधिक होना । ज्यादा होना । वढना । विशेप होना । वृद्धि पाना । उ०—सुक से मुनि सारद से वकता चिरजीवन लोमस ते अधिकाने ।—तुलसी ग्र ०, पृ० २०७ ।

अधिकाभेदरूपक—सज्ञा पु० [सं०] 'चद्रालोक' के अनुसार रूपक अलकार के तीन भेदो मे से एक ।

विशेप—इसमे उपमान और उपमेय के वीच वहुत सी वातो मे अभेद या समानता दिखलाकर पीछे से उपमेय मे कुछ विशेपता या अधिकता वतलाई जाती है । जैसे—'रहै सदा विकसित विमल, धरै वास मृदु मजु । उपज्यो नहि पुनि पक ते प्यारी को मुख कज ।' यहाँ मुख उपमेय और कमल उपमान के वीच सुवास आदि गुणो मे समानता दिखाकर मुख के सर्वदा विकसित रहने और पक से न उत्पन्न होने की विशेपता दिखाई गई है ।

अधिकार[1]—सज्ञा पु० [स०] १ कार्यभार प्रभुत्व । आधिपत्य । प्रधानता । जैसे—'इस कार्य का अधिकार उन्ही के हाथ मे सौपा गया हैं' (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—चलाना ।—जताना ।—देना ।—सौंपना ।

२ स्वत्व । हक । अख्तियार । जैसे—'यह पूछने का अधिकार तुम्हे नही है' (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।—रखना ।

३ दावा कब्जा । प्राप्ति । जैसे—'सेना ने नगर पर अधिकार कर लिया' (शब्द०) ।

क्रि०प्र०—करना ।—जमाना ।

४ क्षमता सामर्थ्य । शक्ति । ५ योग्यता । परिचय । जानकारी । ज्ञान । लियाकत । जैसे—(क) 'इस विपय मे उसे कुछ अधिकार नही हैं' (शब्द०) । ६ प्रकरण । शीर्षक । जैसे—वातरोगाधिकार । ७ नाटयशास्त्र के अनुसार रूपक के प्रधान फल का स्वामित्व या उसकी प्राप्ति की योग्यता । ८ कर्तव्य (को०) । ९ निरीक्षण (को०) । १० स्थान (को०) । ११ व्याकरण मे एक मुख्य या प्रधान नियम जिससे उसके क्षेत्र मे । आनेवाले अन्य नियम भी शासित होते हैं ।

विशेप—यह अधिकार तीन प्रकार का होता है—(१) सिंहावलोकित, (२) मडूकप्लुत और (३) गगाप्रवाह के सदृश ।

अधिकार[2](पु)—वि० पु० [स० अधिक] अधिक । वहुत ।

अधिकारपात्र—वि० [सं०] अधिकार की पात्रता या योग्यता रखनेवाला [को०] ।

अधिकारविधि—सज्ञा स्त्री० [सं०] मीमासा मे वह विधि या आज्ञा जिससे यह वोध हो कि किस फल की कामनावाले को कौन सा यज्ञ या कर्म करना चाहिए अर्थात् कौन किस कर्म का अधिकारी है । जैसे,—स्वर्ग की कामना करनेवाला अग्निहोत्र यज्ञ करे, राजा राजसूय यज्ञ करे, इत्यादि ।

अधिकारस्थ—वि० [स०] अधिकार सपन्न जिसमे अधिकार निहित हो [को०] ।

अधिकारा(पु)—वि० [स० **अधिक**+**आरा** (प्रत्य०)] अत्यधिक । उ०— चढे त्रिपुर मारन कूँ सारे, हरिहर सहित देव अधिकारे ।—निश्चल (शब्द०) ।

अधिकारी[1]—सज्ञा पु० [स० **अधिकारिन्**] [स्त्री० **अधिकारिणी**] १ प्रभु । स्वामी । मालिक । २ स्वत्वधारी । हकदार । ३ योग्यता या क्षमता रखनेवाला । उपयुक्त पात्र । जैसे—'सव मनुष्य वेदात के अधिकारी नही हैं (शब्द०) । ४ नाटयशास्त्र के अनुसार नाटक का वह पात्र जिसे रूपक का प्रधान फल प्राप्त होता है । ५ एक जातीय उपाधि (को०) ।

अधिकारी[2]—वि०— स्वत्व या क्षमता रखनेवाला [को०] ।

अधिकारी[3]—वि० स्त्री० [हिं० **अधिकाई**] अधिकता । वाहुल्य । उ०—(क) जेहि कौ आपन हितकर जान्यो दीन्ह्यो मुख अधिकारी ।—जग० वानी, भा० १, पृ० ३४ । (ख) तरकारी, यामे पानी की अधिकारी ।—घाघ० पृ० ८५ ।

अधिकारी[4](पु)—सज्ञा स्त्री० [**हिं०**] जवर्दस्ती । उ०—त्यो पदमाकर मेलि मुठी इत पाइ अकेली करी अधिकारी ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३१९ ।

अधिकार्थ—सज्ञा पु० [स०] कोई वाक्य या शव्द जिससे किसी पद के अर्थ मे विशेपता आ जाय ।

अधिकार्थवचन—सज्ञा पुं० [स०] अत्युक्ति । अतिरजना [को०] ।

अधिको(पु)—वि० [सं० **अधिक**+हिं० **ई** (**प्रत्य०**)] दे० 'अधिक' । उ०—अधिकी हमको नाही चाहियत है ।—दो सौ वावन, भाग २, पृ० १०५ ।

अधिकृत[1]—वि० [स०] १ अधिकार मे आया हुआ । हाथ मे आया हुआ । उपलव्ध । २ जिस पर अधिकार किया गया हो । उ०—हृदय हुआ अधिकृत तुमसे, तुम जीते हम हारे ।—झरना, पृ० ९३ ।

अधिकृत[2]—सज्ञा पु० अधिकारी । अध्यक्ष । जैसे—महावलाधिकृत मे 'अधिकृत' ।

अधिकृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] अधिकार । स्वत्व [को०] ।

अधिकौहाँ(पु)—वि० [स०**अधिक**+**हिं० औहाँ** (प्रत्य०)] अधिकतम । अत्यधिक । उ०—जनु कलिंदनदिनि मनि-इद्रनील सिखर परसि धँसति लसति हससेनि सकुल अधिकौहैं ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४०६ ।

अधिक्रम—सज्ञा पु० [स०] आरोहण । चढाव । चढाई ।

अधिक्रमण—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिक्रम' [को०] ।

अधिक्षिप्त—वि० [सं०] १ फेंका हुआ । २ निंदित । तिरस्कृत । अपमानित । वुरा ठहराया हुआ ।

अधिक्षेप—सज्ञा पुं० [स०] १ फेकना । २ तिरस्कार । निंदा । अपमान । ३ तानाजनी । व्यग्य ।

अधिगंतव्य—वि० [सं० अधिगन्तव्य] १ प्राप्णीय । प्राप्तव्य । २ समझने योग्य । ज्ञेय [को०] ।

अधिगंता—वि० [सं० अधिगन्तृ] १ प्रापक । पानेवाला । २ समझनेवाला । अध्ययन करनेवाला [को०] ।

अधिगणन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अधिक गिनना । २ किसी चीज का अधिक दाम लगाना ।

अधिगत—वि० [सं०] १ प्राप्त । पाया हुआ । २ जाना हुआ । ज्ञात । अवगत । समझा बूझा । पढ़ा हुआ ।

अधिगम—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राप्ति । पहुँच । ज्ञान । गति । २ जैन दर्शन के अनुसार व्याख्यान आदि परोपकार द्वारा प्राप्त ज्ञान ३. ऐश्वर्य । बड़प्पन ।

अधिगमनीय—वि० [सं०] दे० 'अधिगंतव्य' [को०] ।

अधिगम्य—वि० [सं०] दे० 'अधिगमनीय' [को०] ।

अधिगव—वि० [सं०] गाय में अथवा गाय से प्राप्त [को०] ।

अधिगुण¹—वि० [सं०] विशिष्ट गुण से भूषित । सुयोग्य [को०] ।

अधिगुण²—संज्ञा पुं० [सं०] विशिष्ट गुण [को०] ।

अधिगुप्त—वि० [सं०] रक्षित । रखा हुआ । छिपाया हुआ । दबा हुआ ।

अधिचरण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के ऊपर चलना । अतिक्रमण करना [को०] ।

अधिच्छ(पु)—वि० [सं० अदृक्ष] दे० 'अदृश्य' । उ०—अच्छन के आगे ही अधिच्छ गाडयतु है ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २६६ ।

अधिज—वि० [सं०] १ जनमा हुआ । २ उच्च कुल में उत्पन्न [को०] ।

अधिजनन—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म [को०] ।

अधिजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक से अधिक जीभवाला जीव । साँप आदि । २ जीभ में होनेवाली एक प्रकार की बीमारी [को०] ।

अधिजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक बीमारी जिसमें रक्त मिले हुए कफ के कारण जीभ के ऊपर सूजन हो जाती है । यह सूजन पक जाने पर असाध्य हो जाती है । २ गले का कौआ ।

अधिजिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अधिजिह्वा' [को०] ।

अधिज्य—वि० [सं०] जिसकी डोरी खिंची हो । धनुष, जिसकी प्रत्यंचा या जिसका चिल्ला चढ़ा हो ।

अधिज्यकार्मुक—वि० [सं०] जिसके धनुष की प्रत्यंचा चढी हुई हो [को०]।

अधिज्यधन्वा—वि० [सं०] दे० 'अधिज्यकार्मुक' [को०] ।

अधित्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड़ के ऊपर की समतल भूमि । ऊँचा पथरीला मैदान । टेबुल लैंड । 'उपत्यका' का उलटा । उ०—(क) हरी भरी घासन सो अधित्यका छवि छाई ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३ । (ख) इसकी कैसी रम्य विशाल अधित्यका है जिसके समीप आश्रम ऋषिवर्य का ।—कानन०, पृ० १०५ ।

अधिदंडनेता—संज्ञा पुं० [सं० अधिदण्डनेतृ] यमराज [को०] ।

अधिदंत—संज्ञा पुं० [सं० अधिदन्त] एक दाँत के ऊपर निकलनेवाला दाँत [को०] ।

अधिदार्व—वि० [सं०] काष्ठ का । काठ से बना [को०] ।

अधिदिन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिक तिथि' [को०] ।

अधिदीधित—वि० [सं०] अत्यधिक प्रभा या कांतिवाला [को०] ।

अधिदेव¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अधिदेवी] इष्टदेव । कुलदेव ।

अधिदेव²—वि० देव संबंधी [को०] ।

अधिदैव—वि० [सं०] दैविक । दैवयोग से होनेवाला । आकस्मिक ।

अधिदैवत¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रकरण या मंत्र जिसमें अग्नि, वायु, सूर्य, इत्यादि देवताओं के नामकीर्तन में इष्टदेव का अर्थप्रतिपादन होकर ब्रह्मविभूति अर्थात् सृष्टि के पदार्थों के गुण आदि की शिक्षा मिले । पदार्थविज्ञान संबंधी विषय या प्रकरण ।

अधिदैवत²—वि० देवता संबंधी ।

अधिदैविक—वि० [सं०] १ अधिदेव संबद्ध । आधिदैविक । २ आध्यात्मिक [को०] ।

अधिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ सबका मालिक । सबका स्वामी । २. सरदार । अफसर । प्रधान अधिकारी ।

अधिनायक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अधिनायिका] १ अफसर । सरदार मुखिया । २ मालिक । स्वामी । ३ किसी प्रदेश, देश, जाति या राष्ट्र का सर्वाधिकार संपन्न शासक । तानाशाह । डिक्टेटर ।

अधिनायकतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० अधिनायक+तन्त्र] वह शासन व्यवस्था जिसके अनुसार किसी एक शासक को सारी शक्ति प्रदान कर दी जाय । तानाशाही । डिक्टेटरशिप ।

अधिनायकी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अधिनायक+हिं० ई (प्रत्य०)]अधिनायक का पद या कार्य [को०] ।

अधिनायकी²—वि० अधिनायक संबंधी [को०] ।

अधिनियम—संज्ञा पुं० [सं० अधि+नियम] लोकसभा या सर्वोच्च शासक द्वारा पारित अथवा स्वीकृत विधि, नियम, कानून । ऐक्ट । जैसे, भारतीय शासक संबंधी सन् १९३५ ई० का अधियम ।—भारतीय०, पृ० १ ।

अधिनियमन—संज्ञा पुं० [सं० अधि+नियमन] अधिनियम या विधान बनाने का कार्य [को०] ।

अधिप—संज्ञा पुं० [सं०] मालिक । २ अफसर । सरदार । मुखिया । नायक । ३ राजा ।

अधिपति¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अधिपत्नी] १ सरदार । मालिक । अधीश । नायक । अफसर । स्वामी । मुखिया । हाकिम । २ राजा । ३. मस्तक का वह भाग जहाँ की चोट प्राणघातक होती है ।

अधिपति²—वि० बौद्ध दर्शन के अनुसार अधिपति चार प्रकार के होते हैं—(१) यज्ञाधिपति, (२) वित्ताधिपति, (३) वीर्याधिपति और (४) न्यायाधिपति ।

अधिपतिप्रत्यय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन दर्शन के अनुसार वह प्रत्यय या संयम जिसके अनुसार विषय को ग्रहण करने का नियम होता है ।

अधिपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ स्वामिनी । २ शासिका [को०] ।

अधिपांशुल—वि० [सं०] धूलिधूसरित । धूल से भरा [को०]

अधिपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] परमपुरुष । परमात्मा । ईश्वर [को०] ।

अधिप्रज—वि० [सं०] बहुत अधिक संतान उत्पन्न करनेवाला [को०] ।

अधिबल—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भसंधि के तेरह अंगों में से एक । वह धोखा जो किसी को वेश बदले हुए देखकर होता है (नाट्यशास्त्र) ।

अधिविन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं० अधिविन्ना] १ अध्यूढा। पहली पत्नी। प्रथम विवाह की स्त्री। वह स्त्री जिसके रहते उसका पति दूसरा विवाह कर ले।

अधिभू—संज्ञा पुं० [सं०] स्वामी। प्रधान व्यक्ति [को०]।

अधिभूत¹—वि० [सं०] भूत संबंधी [को०]।

अधिभूत²—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्म। २ सृष्टि के समस्त पदार्थ [को०]।

अधिभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] अति भोजन। बहुत अधिक खाना [को०]।

अधिभौतिक(पु)—वि० हिं० दे० 'आधिभौतिक'। उ०—अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे, बेगि बोलि बलि बरजिए करतूति कठोरे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४५७।

अधिमंथ—संज्ञा पुं० [सं० अधिमन्थ] अभिष्यंद रोग का एक भेद।

अधिमंथन¹—संज्ञा पुं० [सं० अधिमन्थन] अग्नि उत्पन्न करने के लिये अरणी की लकड़ियों को परस्पर रगड़ना [को०]।

अधिमंथन²—वि० रगड़ से अग्नि उत्पन्न करने योग्य (लकड़ी) [को०]

अधिमंथित—वि० [सं० अधिमन्थित] अधिमंथ रोग से पीड़ित (को०)।

अधिमांस—संज्ञा पुं० [सं०] आँख के सफेद भाग में या मसूड़ों के पिछले भाग में होनेवाला रोग विशेष [को०]।

अधिमांसक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग।

विशेष—कफ के विकार से नीचे की दाढ़ में विशेष पीड़ा और सूजन होकर मुँह से लार गिरती है।

अधिमात्र—वि० [सं०] परिमाण से अधिक। बहुत ज्यादा [को०]।

अधिमास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिक मास'।

अधिमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ परस्पर मित्र। २ ज्योतिष में परस्पर मित्र ग्रहों के योग का नाम।

अधिमुक्त—वि० [सं०] विश्वासयुक्त [को०]।

अधिमुक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] मधुमाधवी नाम का पौधा [को०]।

अधिमुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वास [को०]।

अधिमुक्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार महाकाल [को०]।

अधिमुक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुक्ता। सीप। मोती का सीप [को०]।

अधिमुह्य—संज्ञा [सं०] चौबीस पूर्वजन्मों में बुद्ध का एक नाम [को०]।

अधियज्ञ¹—वि० [सं०] यज्ञ संबंधी। यज्ञ से संबंध रखनेवाला।

अधियज्ञ²—संज्ञा पुं० प्रधान यज्ञ [को०]।

अधिया¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्धिका] १ आधा हिस्सा। गाँव में आधी पट्टी की हिस्सेदारी। २ एक रीति जिसके अनुसार उपज का आधा मालिक को और आधा उसके संबंध में परिश्रम करने वाले को मिलता है। उ०—खेती करै अधिया, न बैल न बधिया।—घाघ, पृ० ८६।

अधिया²—संज्ञा पुं० [सं० अधिक] आधा हिस्सेदार। गाँव में आधी पट्टी का मालिक। अधियार।

अधियान(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] जपनी। गोमुखी। एक थैली जिसमें हाथ डालकर माला जपते हैं २ छोटी माला। सुमिरनी।

अधियाना—क्रि० स० [हिं० आधा से नाम०] आधा करना। दो बराबर हिस्सों में बाँटना।

अधियार†—संज्ञा पुं० [हिं० अधिया+आर] (प्रत्य०)] १ किसी जायदाद में आधा हिस्सा। २ आधे का मालिक। वह जमींदार या असामी जो किसी गाँव के हिस्से या जोत में आधे का हिस्सेदार हो। ३ वह जमींदार या असामी जिसका आधा संबंध एक गाँव में और आधा दूसरे गाँव में हो और जो अपना समय दोनों गाँवों के काम में लगावे।

अधियारिन(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अधियार+इन (प्र०)] १ सौत। सपत्नी। २ बराबर का दावा रखने और आधे हिस्से की हिस्सेदार स्त्री।

अधियारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अधियार+ई (प्र०)] किसी जायदाद में आधी हिस्सेदारी। २ किसी जमींदार या असामी की जमींदारी या जोत का दो भिन्न भिन्न गाँवों में होना।

अधियोग—संज्ञा पुं० [सं०] यात्रा के लिये शुभ माना जानेवाला ग्रहों का एक योग [को०]।

अधिरथ¹—संज्ञा सं० [सं०] सारथी। जो रथ को हाँकनेवाला हो। गाड़ीवान।

अधिरथ²—वि० १ रथारूढ़। रथ पर चढ़ा हुआ। २ कर्ण को पालनेवाले सूत का नाम ३ बड़ा रथ। उत्तम रथ।

अधिराज—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। बादशाह। महाराज। प्रधान राजा। चक्रवर्ती। सम्राट्।

अधिराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] साम्राज्य। चक्रवर्ती राज्य।

अधिरात(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] आधीरात। उ०—पिउ पिउ अधिरात पुकारत।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १७०।

अधिरूढ—वि० [सं०] १ आरूढ। चढ़ा हुआ। २ बढ़ा हुआ [को०]।

अधिरोपण—संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर उठाने या चढ़ाने का कार्य [को०]।

अधिरोह—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथी पर चढ़ना। २ ऊपर चढ़ना। ३ सीढ़ी [को०]।

अधिरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] चढ़ना। सवार होना। ऊपर उठना।

अधिरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीढ़ी। निसेनी। जीना।

अधिरोही—वि० [सं०] अधिरोहण करनेवाला। ऊपर चढ़नेवाला [को०]।

अधिलोक¹—संज्ञा पुं० [सं०] संसार। ब्रह्मांड।

अधिलोक²—वि० ब्रह्मांड संबंधी।

अधिवक्ता—संज्ञा पुं० [सं० अधिवक्तृ] १ न्यायालय में किसी पक्ष का समर्थन करनेवाला। वकील। २ वक्ता [को०]।

अधिवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बढ़ाकर कही हुई बात २ नाम। संज्ञा ३ पक्ष का समर्थन।

अधिवसित—वि० [सं० अधिवस+इत (प्रत्य०)] बसा हुआ। आबाद [को०]।

अधिवाचन—संज्ञा पुं० [सं०] नामजदगी। निर्वाचन। चुनाव।

अधिवास—संज्ञा पुं० [सं०] १ निवासस्थान। स्थान। रहने की जगह। २ महासुगंध। खुशबू। ३ विवाह से पहले तेल हलदी चढ़ाने की रीति। ४ उबटन। ५ अधिक ठहरना। अधिक देर तक रहना। ६ दूसरे के घर जाकर रहना।

विशेष—मनु के अनुसार स्त्रियों के ६ दोषों में से एक।

७ यज्ञारंभ के पूर्व देवता का आवाहन (को०) । ८ हठ (को०) । ९ नवाश (को०) । १० निवासी (को०) । ११. पड़ोसी [को०] । १२ आर पार जाना [को०] ।

अधिवासन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि०—अधिवासित] १ सुगंधित करने की क्रिया । २ देवता की मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा से पहले सुगंधित तेल चंदन आदि में लिप्त कर रात भर किसी स्थान में वस्त्र से ढाँककर और जल में डुबोकर रख छोड़ने की रीति ।

अधिवासभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बस्ती । वासस्थान [को०] ।

अधिवासित—वि० [सं०] १ सुगंधित । वासयुक्त । २ सुसज्जित [को०]

अधिवासी—संज्ञा पुं० [सं०] १ निवासी । रहनेवाला । २. उत्तरप्रदेश का वह कृषक जिसका नाम सरकारी कागजपत्रों में सन् १३५६ फसली और १३५६ फसली में चढ गया हो ।

अधिविन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति उसके रहते दूसरा विवाह कर ले [को०] ।

अधिवीत—वि० [सं०] लपेटा हुआ । ढका हुआ [को०] ।

अधिवेत्तव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके विद्यमान रहते दूसरा विवाह कर लेना उचित हो [को०] ।

अधिवेत्ता—संज्ञा पुं० [सं०] पहली स्त्री के रहते दूसरा विवाह करनेवाला व्यक्ति ।

अधिवेद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह करनेवाला ।

अधिवेद[2]—वि० [सं०] वेद से संबंधित [को०] ।

अधिवेदन—संज्ञा पुं० दे० 'अधिवेद[1]' [को०] ।

अधिवेदनीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अधिवेत्तव्या' [को०] ।

अधिवेदवेद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अधिवेदनीया' [को०] ।

अधिवेशन—संज्ञा पुं० [सं०] बैठक । सभा । सभा । जलसा ।

अधिश्य—संज्ञा पुं० [सं०] योग । जोड़ । मिलाई गई या जोड़ी हुई वस्तु [को०] ।

अधिशयन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी चीज पर लेटना । सोना [को०] ।

अधिशयित—वि० [सं०] १ लेटा या सोया हुआ । २ लेटने या सोने के उपयोग में आनेवाला [को०] ।

अधिशस्त—वि० [सं०] कुख्यातिप्राप्त । बदनाम [को०] ।

अधिश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १ आधार । पात्र । २ उबालना । गरम करना [को०] ।

अधिश्रयण—संज्ञा पुं० [सं०] १ आग पर चढ़ाना । आग पर रखना । २ तंदूर । भाड़ । अँगीठी । चूल्हा ।

अधिश्रयणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीढ़ी । निसैनी । निश्रेणी । जीना ।

अधिश्रित—वि० [सं०] १ आग पर रखा हुआ । २ आधार [को०] ।

अधिषवण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोमरस निचोड़ने की क्रिया । २ सोमरस निचोड़ने का साधन [को०] ।

अधिष्ठाता—संज्ञा पुं० [सं० अधिष्ठातृ] [स्त्री० अधिष्ठात्री] १ अध्यक्ष । मुखिया । प्रधान नियंता । उ०—इस भूमि का सरदार परिष्ठाता देवता प्रेम है ।—रस०, पृ० ८० । २ किसी कार्य की देखभाल करनेवाला । वह जिसके हाथ में किसी कार्य का भार हो । ३. प्रकृति को जड़ से चेतन अवस्था में लानेवाला पुरुष । ईश्वर ।

अधिष्ठात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधिष्ठाता का स्त्रीलिंग रूप ।—उ०— प्रकृति अधिष्ठात्री है इसकी, कहीं विकृति का नाम नहीं । —पंचवटी, पृ० १० ।

अधिष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] १ वासस्थान । रहने का स्थान । २ नगर । शहर । बस्ती । कस्बा । ३ स्थिति । ठहराव । पड़ाव । मुकाम । ठिकाना । ४ आधार । सहारा । उ०—समानाधिकरण में अधिष्ठान नाम और गुण की एकता की और ध्यान है जैसा कि उसका स्वभावार्थ और उसका दीर्घ भी यहीं ज्ञान है ।—रस० पृ० ६१ । ५ वह वस्तु जिसमें भ्रम का आरोप हो ।

विशेष—जैसे रज्जु में सर्प और शुक्ति में रजत । यहाँ रज्जु और शुक्ति दोनों अधिष्ठान हैं क्योंकि इन्हीं में सर्प और रजत का भ्रम होता है ।

६ सांख्य में भोक्ता और भोग का संयोग ।

विशेष—जैसे, आत्मा का शरीर के साथ और इंद्रियों का विषय के साथ ।

७ अधिकार । शासन । राज्यसत्ता । ८ स्तंभ जिसपर कुर्सी या पाया आदि बनाया जाय (वास्तु) ।

अधिष्ठानदेह—संज्ञा पुं० [सं०] वह सूक्ष्म शरीर जिसमें मरने के उपरांत पितृलोक में आत्मा का निवास रहता है ।

अधिष्ठानशरीर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिष्ठानदेह' ।

अधिष्ठित—वि० [सं०] १ ठहरा हुआ । बसा हुआ । स्थापित । २. निर्वाचित । नियुक्त ।

अधिस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] उच्च श्रेणी की स्त्री [को०] ।

अधीकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिकार' [को०] ।

अधीक्षक—संज्ञा पुं० [सं० अधि + ईक्षक] अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्यों का निरीक्षण करनेवाला अधिकारी (को०) ।

अधीत—वि० पुं० [सं०] पढ़ा हुआ । सीखा हुआ । उ०— प्रथम हि ध्यान धरत है धुनि निज शरीर । [illegible] छटा [illegible] पुनि, स्तुवं स्वाधीन ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ५२ ।

अधीतविद्य—वि० [सं०] जिसने वेदों का अध्ययन कर लिया हो या जिसका अध्ययन समाप्त हो गया हो [को०] ।

अधीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अध्ययन । २ स्मृति । ३ [illegible] [को०] ।

अधीती—वि० [सं० अधीतिन्] जिसने अच्छी तरह अध्ययन किया हो [को०] ।

अधीन[1]—वि० [सं०] १ आश्रित । मातहत । स्वीकृत । आज्ञाकारी । दबैल । वश का । ताबे का । उ०—सब सुख, सब संपति सब सुधर्म सुधर्म अधीन सदा (सब) हो ।—[illegible] ग्रं०, पृ० २५६ । २ विवश । लाचार । दीन । उ०—[illegible] सब मनुष्य बोलाती रहती । कहौ पर अधीन भयो है, निद्रा गति न आवती ।—सूर०, १ । ८७ ।

अधीन[2]—संज्ञा पुं० दास । सेवक ।

अधीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ परतंत्रता । परवशता । आज्ञाकारिता । मातहती । २ लाचारी । दीनता । [illegible] ।

अधीनना(पु)—क्रि० स० [सं० अधीन से नाम०] अधीन होना । वश में होना । उ०—[illegible] सब दर्द नाशीजो । [illegible] करु वंदु [illegible] दनिकर होतो हो ।—सूर (शब्द०) ।

अधीनस्थ—वि [सं० अधीन + स्थ] किसी के अधीन रहनेवाला [को०]

अधीमंथ—संज्ञा पुं० [सं० अधीमन्य] दे० 'अधिमंथ' [को०]।

अधीयान¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ विद्यार्थी । अध्ययन करनेवाला व्यक्ति । २ विद्यार्थी या अध्यापक रूप मे वेदो का अध्ययन पूरा करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अधीयान²—वि० पढनेवाला [को०]।

अधीर—वि० पुं० [सं०] १ धैर्यरहित । घबराया हुआ । उद्विग्न । व्यग्र । बेचैन । व्याकुल । विह्वल । २ चचल । अस्थिर । बेसब्र । उतावला । तेज । आतुर । ३ असंतोषी ।

यौ०—अधीराक्षी । अधीर विप्रेक्षित ।

अधीरा¹—वि० स्त्री० [सं०] जो धीर न धरे ।

अधीरा²— संज्ञा स्त्री० १ मध्या और प्रौढा नायिकाओ के तीन भेदो मे से एक । वह नायिका जो नायक मे नारीविलाससूचक चिह्न देखने से अधीर होकर प्रत्यक्ष कोप करे । २ विद्युत् । बिजली ।

अधीवास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पहनावा जिससे सारा शरीर ढक जाय । लबादा [को०]।

अधीश—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वामी । मालिक । सरदार । २ राजा ।

अधीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अधीश्वरी] १ मालिक । स्वामी । पति । अध्यक्ष । २ अधिपति । भूपति । राजा ।

अधीष्ट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी को सत्कारपूर्वक किसी कार्य मे लगाना । नियोग ।

अधीष्ट²—वि० सत्कारपूर्वक नियोजित । आदर के साथ बुलाकर किसी काम मे लगाया हुआ ।

अधीस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधीश' । उ०—परम अधीस वस भूमि थल देखिये ।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १६६ ।

अधीसारक—संज्ञा पुं० [सं०] वेश्याओ के पास बार बार जानेवाला व्यक्ति । चद्रगुप्त के समय मे इन्हे कठोर दड दिया जाता था ।

अधुना—क्रि० वि० [सं०] इस समय । सप्रति । आजकल । अब । इन दिनो ।

अधुनातन—वि० [सं०] साप्रतिक । वर्तमान समय का । अब का । हाल का । 'सनातन' का उलटा ।

अधुर—वि० [सं०] भाररहित । २ चितामुक्त [को०]।

अधूत—वि० [सं०] १ अकपित । २ निर्भय । निडर । ढीठ । उचक्का । उ०—शखचूड धनपति का दूता । लै भागा एक सखी अधूता (शब्द०) ।

अधूमक¹—वि० [सं०] धूमरहित [को०]।

अधूमक²—संज्ञा पुं० [सं०] जलती हुई आग जिसमे धुआँ न हो [को०]।

अधूरा—वि० पुं० [सं० अर्ध, हिं० अध+पूरा या ऊरा (प्रत्य०)] [स्त्री० अधूरी] अपूर्ण । जो पूरा न हो । आधा । असमाप्त अधकचरा ।

मुहा०—अधूरा जाना=असमय गर्भपात होना । कच्चा बच्चा होना । जैसे—उस स्त्री को अधूरा गया (शब्द०) ।

अधृत¹—वि० [सं०] १ धारण न किया हुआ । २ अनियत्रित [को०]।

अधृत²—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु के सहस्र नामो मे से एक [को०] ।

अधृति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ धृति की विपरीतता । अधीरता । उद्वेग । दृढ़ता का अभाव । घबराहट । २. आतुरता । असंयम । ४ दुःख ।

अधृति²—वि० [सं०] अस्थिर [को०]।

अधृष्ट—वि० [सं०] १ जो ढीठ न हो । २ विनम्र । लज्जाशील । ३ अजेय । ४ क्षतिरहित [को०]।

अधृष्य—वि० [सं०] १ अजेय । २ सलज्ज । गर्वयुक्त [को०]।

अधेगा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधांग' ।

अधेड़— वि० [सं० अर्ध, हिं० अध+ऐड (प्रत्य०)] वि० आधी उम्र का । उतरती अवस्था का । ढलती जवानी का । बुढापे और जवानी के बीच का ।

अधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूध न देनेवाली गाय । ठाँठ गाय [को०]।

अधेला—संज्ञा पुं० [हिं० आधा+एला (प्रत्य०)] आधा पैसा । एक छोटा ताँबे का सिक्का जो सन् १९५६ तक चलता था । जो पैसे का आधा होता है ।

अधेलिका†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अँधियार' ।

अधेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० आधा+एली (प्र०)] आधा रुपया । आठ आने का सिक्का । अठन्नी ।

विशेष—चाँदी या निकल का सिक्का जो आधे रुपए के बराबर था और सन् १९५६ तक चलता था ।

अधैर्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ धैर्य का अभाव । घबडाहट । व्याकुलता । उद्विग्नता । चचलता । उतावलापन ।

अधैर्य²—वि० १ धैर्यरहित । व्याकुल । उद्विग्न । चचल । २ उतावला । आतुर ।

अधैर्यवान—वि० [सं० अधैर्यवान्] १ धैर्यरहित । व्यग्र । उद्विग्न । घबडानेवाला । २ आतुर । उतावला ।

अधोंशुक—संज्ञा पुं० [सं० अधस्=अंशुक] १ नीचे पहनने का वस्त्र । जैसे पायजामा, धोती इत्यादि । २ अस्तर ।

अधो—अव्य० [सं० अधस् का समासरूप] दे० 'अध'। जैसे, अधोमुख अधोगति आदि मे 'अधो' ।

अधोक्षज—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम । कृष्ण का एक नाम ।

अधोगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पतन । गिराव । उतार । उ०—मूतन ही की जहाँ अधोगति गाइया ।—रामच०, पृ० ८ । २ अवनति । दुर्गति । दुर्दशा ।

अधोगमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे जाना । २ अवनति । पतन । दुर्दशा ।

अधोगामी—वि० [सं० अधोगामिन्] [स्त्री० अधोगामिनी] १ नीचे जानेवाला । २ अवनति की ओर जानेवाला । बुरी दशा को पहुँचनेवाला ।

अधोघटा—संज्ञा स्त्री० [सं० अधोघण्टा] चिचडा । अपामार्ग ।

अधोछज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अधोक्षज] दे० 'अधोक्षज' । उ०—द्रष्टी दृष्टि विकार तें रहित अधोछज जोति ।—नद० ग्र० पृ० १७८ ।

अधोजिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गले का कौआ [को०] ।

अधोटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बाजा । उ०—बाजत ताल दग अधोटी बिच मुरली धुनि थोरी ।— छी०,पृ० २६ ।

अधोतर—संज्ञा पुं० [देश०] एक देशी कपडा जो गजी गाढ़े से भी मोटा होता है । उ०—सिरी साफ बाफना अधोतर मेख कहिये ।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ७५ ।

अघोदिशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दक्षिण दिशा । २ अधोविंदु [को०] ।

अघोदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीची दृष्टि । केवल नीचे की ओर देखना । उ०—सबै अग लै अग ही मे दुरायो । अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो ।—रामच०, पृ० ६६ ।

अघोदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे का स्थान । नीचे की जगह । २ शरीर के नीचे का भाग या हिस्सा ।

अघोद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] गुदा [को०] ।

अघोनिलय—संज्ञा पुं० [सं०] नरक [को०] ।

अघोभुवन—संज्ञा पुं० [सं०] पाताल । नीचे का लोक ।

अघोभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्वत के नीचे की जमीन । नीची भूमि । [को०] ।

अघोमडल—संज्ञा पुं० [सं० अघोमण्डल] भूमि से साढे सात मील तक का ऊँचा वायुमडल [को०] ।

अघोमर्म—संज्ञा पुं० [सं०] गुह्यद्वार [को०] ।

अघोमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे का रास्ता । सुरग का मार्ग । २ गुदा ।

अघोमुख¹—वि० [सं०] नीचे मुख किए हुए । मुँह लटकाए हुए । २ औंधा । उलटा ।

अघोमुख²—क्रि० वि० औंधा । उलटा । मुँह के बल । जैसे—वह अधोमुख गिरा (शब्द०) । उ०—गरभ बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयो बिस्राम ।—सूर०, १।४७।

अघोमुखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोजिह्वा [को०] ।

अघोमूल—वि० [सं०] जिसकी जड नीचे हो [को०] ।

अघोयत्र—संज्ञा पुं० [सं० अधोयन्त्र] भभका [को०] ।

अघोरध(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अधोर्ध' । उ०—दिसि पूरब पच्छिम दाहिने बाएँ अधोरध सकल मे री फिरै ।—सेवक (शब्द०) ।

अघोर्ध—क्रि० वि० [सं० अध +ऊर्ध्व] नीचे ऊपर । तले ऊपर ।

अघोलब—संज्ञा पुं० [सं० अधोलम्ब] १ वह खडी रेखा जो किसी दूसरी सीधी आडी रेखा पर इस प्रकार आकर गिरे कि पार्श्व के दोनो कोण समकोण हो । लब । २ साहुल । सूत मे बँधा हुआ लोहे या पत्थर का वह गोला या घटे के आकार का लट्टू जिसे मकान बनानेवाले कारीगर पर्दे की सीध लेने के लिये काम मे लाते हैं ।

विशेष—इस लट्टू को दीवार के सिरे से नीचे की ओर लटकाते हैं और इस सूत और दीवाल के अतर का मिलान करते हैं । यह यत्र जल की गहराई नापने के भी काम आता है ।

अघोलिखित—वि० [सं० अधस् +लिखित] नीचे लिखा हुआ । उ०—अधोलिखित काव्य महाकाव्य की कोटि मे पूर्ण नही ठहरते ।—बीसल० रास०, पृ० ४५ ।

अघोलोक—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे का लोक । पाताल ।

अघोवदन—वि० [सं०] दे० 'अधोमुख' [को०] ।

अघोवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के नीचेवाले भाग मे पहना जानेवाला वस्त्र [को०] ।

अघोवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अधोगति' । उ०—यह दो सूत्र हमारी सस्कृति के मूल तत्व हैं और इस अधोवस्था मे भी हम उन्हे अपनाए हुए हैं ।—प्रेम० और गोर्की पृ० १५१ ।

अघोवातावरोधोदावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष । अधोवायु के वेग को रोकने से उत्पन्न उदावर्त रोग ।

विशेष—इस रोग के ये लक्षण हैं—मल मूत्र का रुक जाना, अफरा चढना, गुदा, मूत्राशय, लिंगेंद्रिय मे पीडा तथा बादी से पेट मे अन्य रोगो का होना ।

अघोवायु—संज्ञा पुं० [सं०] अपना वायु । गुदा की वायु । पाद । गोज । नीचे की हवा ।

अघोविंदु—संज्ञा पुं० [सं० अधोविन्दु] पैर के ठीक नीचे माना जानेवाला विंदु [को०] ।

अघोही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० आधा+ओही (प्रत्य०)] जानवरो की खाल का वह आधा भाग जो जानवर की लाश ढोनेवालो को मिलता है [को०] ।

अघौडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अध +औडी (प्र०)] १ आधा चरसा । चरसे या पूरे चमडे का सिझाया हुआ आधा टुकडा ।

विशेष—सिझाने के लिये चमडे के दो टुकडे करने की आवश्यकता होती है इसी से एक एक टुकडा अधौडी कहलाता है ।

२ मोटा चमडा । 'नरी' का उलटा जो प्राय बकरी आदि के पतले चमडे का होता है ।

यौ०—अधौडी अस्तर=(१) जूते के तले के ऊपर का मोटा चमडा जिसपर नरी न हो । (२ वह जूता जिसपर केवल अधौडी का मोटा स्तर हो । ऊपर से नरी का लाल चमडा न हो । ३ आमाशय । पक्वाशय । उ०—नरी अधौडी भावजी, बैठा पेट फुलाइ । दादू सूकर स्वान ज्यो ज्यो आवै त्यो खाइ ।—दादू०, पृ० २६ ।

मुहा०—अधौडी तनना=अघाना । खूब पेट भर जाना । जैसे—आज तो निमत्रण था खूब अधौडी तनी होगी ।

अधौडी तानना=खूब पेट भरकर खाना ।

अधौन(पु)—वि० [हिं० आधा+ऊन] आधा भाग या अश [को०] ।

अधौरी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बडा वृक्ष । बकली । धौरा । शेन ।

विशेष—हिमालय की तराई मे जम्मू से आसाम तक और दक्षिण भारत तथा बर्मा के जगलो मे पाया जाता है । इसकी छाल चिकनी तथा खाकी रग की होती है । छाल और पत्तियाँ चमडा सिझाने के काम आती हैं । लकडी से हल तथा नावें बनती हैं । इसकी लकडी का कोयला भी अच्छा होता है । यह चैत से जेठ तक फूलता और वर्षा ऋतु मे फलता है । फल बहुत समय तक वृक्ष पर रहते हैं । इसकी छाल से एक प्रकार का मीठा और खाने योग्य गोद निकलता है ।

अधौरी²—संज्ञा स्त्री० दे० 'अधौडी' । उ०—बाजत ताल मृदग अधौरी, कूजत बेनु रसाल ।—नद० ग्र०, पृ० ३६३ ।

अध्मान—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष । पेट का अफरा ।

विशेष—इस रोग मे पेट अधिक फूल जाता है दर्द होता है, अधोवायु का छूटना बद हो जाता है ।

अध्यडा—संज्ञा स्त्री० [सं० अध्यण्डा] अजश्रृंगी और भूमि आमलकी नामक पौधे (को०) ।

अध्यांडा—संज्ञा स्त्री० [सं० अध्याण्डा] दे० 'अध्यंडा' [को०] ।

अध्यक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वामी। मालिक। २ अफसर। नायक। सरदार। प्रधान। मुखिया। ३ मुख्य अधिकारी। अधिष्ठाता। ४ सफेद मदार। श्वेतार्क। ५ क्षीरिका। खिरनी।

अध्यक्ष[2]—वि० १ गोचर। दृश्य। २ निरीक्षण करनेवाला [को०]।

अध्यक्षर[1]—क्रि० वि० [सं०] अक्षरशः। अक्षर अक्षर। जैसे—यह बात अध्यक्षर सत्य है (शब्द०)।

अध्यक्षर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] ओम् मंत्र या शब्द [को०]।

अध्यक्षीय—वि० [सं०] अध्यक्ष से संबंधित। अध्यक्ष का [को०]।

अध्यग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का स्त्रीधन। यौतुक या दायज।

विशेष—यह अग्नि को साक्षी कर कन्या को विवाह के समय मायकेवालों की ओर से दिया जाता है।

अध्यच्छ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अध्यक्ष] दे० 'अध्यक्ष'।

अध्ययन—संज्ञा पुं० [सं०] १ पठन पाठन। पढाई। २ ब्राह्मणों के षट्कर्मों में से एक कर्म।

अध्ययनीय—वि० [सं०] अध्ययन के योग्य। पठनीय [को०]।

अध्यर्ध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वायु जो सबको धारण करनेवाली और बढानेवाली है और सारे संसार में व्याप्त है।

अध्यर्ध[2]—वि० [सं०] एक और उसका आधा। डेढ।

अध्यर्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष।

विशेष—जिस स्थान पर एक बार अर्बुद रोग हुआ हो उसी स्थान पर यदि फिर अर्बुद हो तो उसे अध्यर्बुद कहते हैं।

अध्यवसान—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रयत्न। २ दृढता। ३ अध्यवसाय। ४ प्रकृति अप्रकृति की ऐसी अभिन्नता जिसमें एक दूसरे में पूर्णतया समाहित हो [को०]।

अध्यवसाय—संज्ञा पुं० [सं०] १ लगातार उद्योग। अविश्रांत परिश्रम। निःसीम उद्यम। दृढता पूर्वक किसी काम में लगा रहना। २ उत्साह। ३ निश्चय। प्रतीति।

अध्यवसायित—वि० [सं०] जिसके लिये प्रयास किया गया हो [को०]।

अध्यवसायी—वि० [सं० अध्यवसायिन्] १ लगातार उद्योग करनेवाला। परिश्रमी। उद्योगी। उद्यमी। २ उत्साही।

अध्यवसायित—जिसने संकल्पपूर्वक किसी कार्य के लिये प्रयत्न किया हो [को०]।

अध्यवसिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अध्यवसाय' [को०]।

अध्यशन—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक मात्रा में भोजन करना। अजीर्ण। अनपच।

अध्यस्त—वि० [सं०] जिसका भ्रम किसी अधिष्ठान में हो।

विशेष—जैसे—रज्जु में सर्प, शुक्ति में रजत और स्थाणु में पुरुष का भ्रम। यहाँ सर्प, रजत और पुरुष अध्यस्त हैं और रज्जु आदि अधिष्ठानों में इनका भ्रम होता है।

अध्यस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] अस्थि के ऊपर का भाग [को०]।

अध्यस्थि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अस्थि के ऊपर निकलनेवाली दूसरी अस्थि। हड्डी के ऊपर की हड्डी [को०]।

अध्याइ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अध्याय'। उ०—अब सुनि लै द्वितीय अध्याइ। जामैं ब्रह्मादिक सब आइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २२३।

अध्यातम(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अध्यातम'। उ०—अह अध्यातम दीप जु कोई। बुध्यादिक परकासक सोई।—नंद० ग्रं०, २२६।

अध्यात्म[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मविचार। ज्ञान तत्व। आत्मज्ञान। २ परमात्मा। ३ आत्मा।

अध्यात्म[2]—वि० आत्मा से संबद्ध [को०]।

अध्यात्मज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा तथा परमात्मा से संबंध रखनेवाला ज्ञान [को०]।

अध्यात्मदर्शी—वि० [सं० अध्यात्मदर्शिन्] आत्मा और परमात्मा का ज्ञान रखनेवाला [को०]।

अध्यात्मयोग—संज्ञा पुं० [सं०] मन को अन्य विषयों की ओर से हटाकर परमात्मा की ओर केंद्रित करना [को०]

अध्यात्मरति—वि० [सं०] परमात्मा के प्रति अनुरक्त रहनेवाला [को०]।

अध्यात्मा—संज्ञा पुं० [सं० अध्यात्मन्] परमात्मा। ईश्वर।

अध्यात्मिक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आध्यात्मिक'।

अध्यापक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अध्यापिका] शिक्षक। गुरु। पढानेवाला। उस्ताद।

अध्यापकी—संज्ञा स्त्री० [सं० अध्यापक + हिं० ई (प्रत्य०)] पढाई। पढाने का काम। मुदर्रिसी।

अध्यापन—संज्ञा पुं० [सं०] शिक्षण। पढाने का कार्य।

अध्यापयिता—संज्ञा पुं० [सं० अध्यापयितृ] शिक्षक। अध्यापक [को०]।

अध्यापिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पढानेवाली। शिक्षिका [को०]।

अध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रंथविभाग। २ पाठ। सर्ग। परिच्छेद।

अध्यायी[1]—वि० [सं० अध्यायिन्] अध्ययन में लगा हुआ [को०]।

अध्यायी[2]—संज्ञा पुं० विद्यार्थी [को०]।

अध्यारूढ—वि० [सं० अध्यारूढ] १ आरूढ। चढा हुआ। सवार। २ आक्रांत। ३ अत्यधिक। ४ किसी की तुलना में उससे श्रेष्ठ। ५ नीचे या निम्नतर [को०]।

अध्यारोप—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक के व्यापार का दूसरे में लगाना। अपवाद। दोष। अध्यास। २ झूठी कल्पना। वेदांत के अनुसार अन्य में अन्य वस्तु का आभास या भ्रम, जैसे ब्रह्म में जो सच्चिदानंद अनंत अद्वितीय है, अज्ञानादि सकल जड समूह का आरोपण। ३ सांख्य के अनुसार एक के व्यापार को अन्य में लगाना। जैसे, प्रकृति के व्यापार को ब्रह्म में आरोपित कर उसको जगत् का कर्ता मानना, या इंद्रियों की क्रियाओं को आत्मा में लगाना और उसको उनका कर्ता मानना।

अध्यारोपण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अध्यारोप' [को०]।

अध्यारोपित—वि० [सं०] अध्यारोपण किया हुआ। भ्रमवश आरोपित [को०]।

अध्यावाहनिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह द्रव्य जो कन्या को पिता के घर से पति के घर जाते समय मिलता है। यह स्त्रीधन समझा जाता है।

अध्यास—संज्ञा पुं० [सं०] १ अध्यारोप। भ्रांत ज्ञान। मिथ्या ज्ञान। कल्पना। और वस्तु में और वस्तु की धारणा।

अध्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपवेशन। बैठना। २ आरोपण। ३ स्थान।

अध्याहरण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अध्याहार' [को०]।

अध्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क वितर्क। ऊहापोह। विचिकित्सा। विचार। बहस। २ वाक्य को पूरा करने के लिये उसमें और कुछ शब्द ऊपर से जोड़ना। उ०—प्रसंगानुकूल आक्षेप अथवा अध्याहार करके ही अर्थबोध होता है।—शैली०, पृ० ७३। ३ अस्पष्ट वाक्य को दूसरे शब्दों में स्पष्ट करने की क्रिया।

अध्याहृत—वि० [सं०] अध्याहार किया हुआ [को०]।

अध्युषित—वि० [सं०] बसा हुआ। आबाद [को०]।

अध्युष्ट—वि० पुं० [सं०] १ बसा हुआ। आबाद। २ साढ़े तीन। तीन और आधा (को०)। ३ साढ़े तीन वलय की सर्प की कुंडली [को०]।

अध्युष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँटगाड़ी [को०]।

अध्यूढ[1]—वि० [सं० अध्यूढ] १ उच्च। उन्नत। २ समृद्ध। ३ अत्यधिक [को०]।

अध्यूढ[2]—संज्ञा पुं० १ शिव। २ किसी स्त्री का वह पुत्र जो विवाह के पूर्व उत्पन्न हुआ हो। [को०]।

अध्यूढा—संज्ञा स्त्री० [सं० अध्यूढा] प्रथम विवाहिता स्त्री। वह स्त्री जिसके रहते पति दूसरा विवाह कर ले। ज्येष्ठा पत्नी।

अध्यूहन—संज्ञा पुं० [सं०] परत डालना (राख आदि की) [को०]।

अध्येन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अध्ययन] दे० 'अध्ययन'। उ०—दस पंच दिन अध्येन कीन्ह। दस च्यारि सार सब सीख लीन।—पृ० रा०, १।७३१।

अध्येतव्य—वि० पुं० [सं०] पढ़ने योग्य। अध्ययन करने योग्य।

अध्येता—संज्ञा पुं० [सं० अध्येतृ] पढ़नेवाला। विद्यार्थी।

अध्येय—वि० [सं०] पढ़ने योग्य। अध्ययन करने योग्य।

अध्येषण—संज्ञा पुं० [सं०] आदर के साथ किसी कार्य में प्रवृत करना [को०]।

अध्येषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] याचना। माँगना। मँगनपन। निवेदन।

अध्रि—वि० [सं०] किसी का नियंत्रण न माननेवाला। जिसे वश में न किया जा सके [को०]।

अध्रियमाण—वि० [सं०] १ जो पकड़ा न जा सके। २ मृत [को०]।

अध्रिगामणी(पु)—संज्ञा स्त्री० [डिं०] कटार। कटारी।

अध्रुव[1]—वि० पुं० [सं०] १ चल। चंचल। चलायमान। डाँवाडोल। अस्थिर। २ अनित्य। अनिश्चित। बेठौर ठिकाने का।

अध्रुव[2]—संज्ञा पुं० अनिश्चय [को०]।

अध्रुव[3]—संज्ञा पुं० [सं०] गले का रोगविशेष [को०]।

अध्व—संज्ञा पुं० [सं० अध्वन्] रास्ता। मार्ग। पथ। २ यात्रा। ३ दूरी। ४ काल। ५ साधन। ६ वेद की शाखा। ७ आक्रमण। ८ स्थान। ९ आकाश। १०। वायु। [को०]।

अध्वग—संज्ञा पुं० [सं०] १ बटोही। पथिक। यात्री। मुसाफिर। २ ऊँट। ३ खच्चर। ४ सूर्य। [को०]।

अध्वगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा [को०]।

अध्वगामी—वि० [सं०अध्वगामिन्] यात्रा करनेवाला [को०]।

अध्वनिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] पड़ाव।

अध्वनीन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] यात्री। मुसाफिर [को०]।

अध्वनीन[2]—वि० यात्रा करने योग्य। २ यात्रा में तेज चलनेवाला [को०]।

अध्वन्य—संज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'अध्वनीन'।

अध्वपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २ मार्ग का निरीक्षण करनेवाला अधिकारी [को०]।

अध्वर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ। सोमयज्ञ। २ आकाश। ३ वायु [को०]।

अध्वर[2]—वि० १ सरल। २ सावधान। ३ अबाध। ४ पुष्ट [को०]।

अध्वरकल्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काम्येष्टि यज्ञ [को०]।

अध्वरकांड—संज्ञा पुं० [सं० अध्वरकाण्ड] शतपथ ब्राह्मण का एक भाग [को०]।

अध्वरग—वि० [सं०] यज्ञ के उपयोग में आनेवाला [को०]।

अध्वरथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ यात्रा के उपयुक्त गाड़ी। २ यात्रा में कुशल दूत [को०]।

अध्वर्यु—संज्ञा पुं० [सं०] चार ऋत्विजों या यज्ञ करानेवालों में से एक। यज्ञ में यजुर्वेद का मंत्र पढ़नेवाला ब्राह्मण। उ०—करोड़ों बलोन्मत्त नृपमों के मरण यज्ञ में वे हँसनेवाले अध्वर्यु थे।—कंकाल, पृ० १५६।

अध्वर्युवेद—संज्ञा पुं० [सं०] यजुर्वेद [को०]।

अध्वशल्य—संज्ञा पुं० [सं०] अपामार्ग। चिचड़ा।

अध्वशोषि—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष। रास्ता चलने से उत्पन्न यक्ष्मा रोग।

अध्वांत[1]—संज्ञा पुं० [सं० अध्वान्त] १ हलका अँधेरा। २. छाया [को०]।

अध्वांत[2]—संज्ञा पुं० [सं० अध्व+अन्त] यात्रा या मार्ग का अंत [को०]।

अध्वाति—संज्ञा पुं० [सं०] १ पथिक। यात्री। २ कुशल व्यक्ति [को०]।

अध्वाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] मार्ग का निरीक्षक [को०]।

अध्वायन—संज्ञा पुं० [सं०] यात्रा। सफर [को०]।

अध्वेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अध्वाधिप' [को०]।

अन्—अव्य० [सं०] संस्कृत व्याकरण में यह निषेधार्थक 'नञ्' अव्यय का स्थानादेश है और अभाव या निषेध सूचित करने के लिये स्वर से आरंभ होनेवाले शब्दों के पहले लगाया जाता है। जैसे—अनागत, अनंत, अनधिकार, अनीश्वर आदि। हिंदी में यह अव्यय या उपसर्ग स्वर होता है और व्यंजन तथा स्वर से आरंभ होनेवाले शब्दों के पहले भी लगाया जाता है। जैसे, अनबन, अनरीति, अनहोनी, अनअहिवात, अनचाहा आदि।

अनंकुश—वि० [सं० अनङ्कुश] १ अंकुश या नियंत्रण से रहित। अशासित। जो वश में न हो। २ अंकुश न माननेवाला। छूट लेनेवाला (जैसे, कवि) [को०]।

अनग[1]—वि० [स० अनङ्ग] १. विना शरीर का। देहरहित। उ०—(क) अगी अनग कि मूढ़ अमूढ उदास अमीन कि मीत सही को। सो अथर्व कवहूँ जनि केशव जाके उदोत उदै सबही को।—केशव (शब्द०)। (ख) मुझको प्यारी के पास पहुँचने के लिये अनग, अर्थात् शरीरविहीन क्यों नहीं बना देते।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ४३२।

अनग[2]—सज्ञा पु० १ कामदेव। उ०—आगे सोहैं साँवरो कुँवर गोरो पाछे पाछे, आछे मुनिवेष धरे लाजत अनग है।—तुलसी ग्र०, पृ० १६५। २. आकाश (को०)। ३ मन (को०)। ४ वह जो अग न हो (को०)।

अनग अराति(पु)—सज्ञा पुं० [स० अनङ्ग+अराति] अनग का शत्रु। महादेव। शिव। उ०—तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनग अराती। मानस—१।१०८।

अनगक—सज्ञा पु० [स० अनङ्गक] मन [को०]।

अनगक्रीडा—सज्ञा स्त्री० [स० अनङ्गक्रीडा] १ रति। २ छद शास्त्र मे मुक्तक नामक विषम वृत्त के दो भेदो मे से एक जिसके पूर्व दल मे १६ गुरु वर्ण और उत्तर दल मे ३२ लघु वर्ण हो। जैसे—आठौ जामा शभू गाओ। भौ फदा ते मुक्ति पाओ। सिख मम धरि हिय भ्रम सब तजि कर। भज नर हर हर हर हर हर हर हर (को०)।

अनगद—वि० [स० अनङ्गद] काम या प्रणय का जनक [को०]।

अनगना(पु)—क्रि० अ० [स० अनङ्ग] विदेह होना। शरीर की सुधि छोटना। वेसुध होना। सुध बुध भुलाना। उ०—गागरि नागरि जल भरि घर लीन्हे आवैं। भृकुटी धनुष कटाक्ष बाण मनो पुनि पुनि हरिहिं लगावैं। जाको निरखि अनग अनगत ताहि अनग बढावैं।—सूर (शब्द०)।

अनगरग—सज्ञा पु० [स० अनङ्गरङ्ग] कामशास्त्र सबधी ग्रथ जिसमे मैथुन सबधी आसनो का विवरण है [को०]।

अनगलेख—सज्ञा पु० [स० अनङ्गलेख] मदनलेख या प्रेमपत्र [को०]।

अनगलेखा—सज्ञा स्त्री० [स० अनङ्गलेखा] प्रेमपत्र [को०]।

अनगवती—वि० स्त्री० [स० अनङ्गवती] कामिनी [को०]।

अनगशत्रु—सज्ञा पु० [स० अनङ्गशत्रु] शिव [को०]।

अनगशेखर—सज्ञा पु० [स० अनङ्गशेखर] दडक नामक वर्णवृत्त का एक भेद जिसमे ३२ वर्ण होते हैं और लघु गुरु का कोई क्रम नहीं होता। जैसे—गरज्जि सिहनाद सो निनाद मेघनाद वीर कुट्ट मान सो कृशानु वाण छडिय (शब्द०)।

अनगारि—सज्ञा पु० [स० अनङ्गारि] कामदेव के अरि या शिव।

अनगिनी—सज्ञा स्त्री० [स० अनङ्गिनी] अनग की स्त्री। रति। उ०—लीला रसरगिनि श्रीराधा, अनुराग अनगिनि श्रीराधा।—घनानद,—पृ० २४५।

अनगी[1]—वि० [स० अनङ्गिन्] [स्त्री० अनगिनी] १ अगरहित। विना देह का। अशरीर। २ अगविहीन। लूला लँगडा। अपाहिज। उ०—कहा कहौं हरि केतिक तारे पावन पद परतगी, सूरदास यह विरद स्रवन सुनि गरजत अधम अनगी—सूर०, १।८१।

अनगी[2]—सज्ञा पु० १ परमेश्वर। २ कामदेव।

अनगुरि—वि० [स० अनङ्गुरि] विना उँगलियो का। उँगलियो से हीन या रहित [को०]।

अनगुलि—वि० [स० अनङ्गुलि] अगुलिविहीन [को०]।

अनजन—वि० [स० अनञ्जन] अजनरहित। अजनशून्य [को०]।

अनझ(पु)—वि० [देश०] अनधीन। जो अधीन न हो। निर्वाध। उ०—चहुआन जोग छत्री अनझ, अन्यन कोस सितए मझ।—पृ० रा०, ५५।४२।

अनछित्त(पु)—वि० [स० अन्+छित्त] जो छेदा हुआ या कटा हुआ न हो। अच्छिन्न। उ०—अनच्छित्त अग वर अत्तताई, भई जीत चहुआन प्रथिराज राई।—पृ० रा०, २५।७७३।

अनत[1]—वि० [स० अनन्त] १ जिसका अत न हो। जिसका पार न हो। असीम। वेहद। अपार। २ वहुत अधिक। असख्य। अनेक। ३ अविनाशी। नित्य।

अनत[2]—सज्ञा पु० १ विष्णु। २ शेषनाग। ३ लक्ष्मण। ४ वलराम। ५ आकाश। ६ जैनो के एक तीर्थंकर का नाम। ७ अभ्रक। ८ एक गहना जो वाहु मे पहना जाता है। ९ एक सूत का गडा जो चौदह सूत एकत्र कर उसमे चौदह गाठ देकर वनाया जाता है। इसे भादो सुदी चतुर्दशी या अनतव्रत के दिन पूजित कर वाहु मे पहनते हैं। १० अनतचतुर्दशी का व्रत। ११ रामानुजाचार्य के एक शिष्य का नाम। १२ विष्णु का शख (को०)। १३ कृष्ण (को०)। १४ शिव (को०)। १५ रुद्र (को०)। १६ सीमाहीनता। अतहीनता (को०)। १७ नियत्व (को०)। १८ मोक्ष (को०)। १९ वासुकि (को०)। २० वादल (को०)। २१ सिदुवार (को०)। २२ अभ्रक। अवरक (को०)। २३ श्रवण नक्षत्र (को०)। २४ ब्रह्म (को०)।

अनतकर—वि० [स० अनन्तकर] बढाकर सीमाहीन कर देनेवाला। अधिक वढनेवाला (को०)।

अनतकाय—सज्ञा पु० [स० अनन्तकाय] जैनियो के अनुसार उन वनस्पतियो का समुदाय विशेष जिनके खाने का निषेध है।

विशेष—इसके अतर्गत वे पेड या पौधे माने जाते हैं जिनके पत्तो, औ फूलो की नसें इतनी सूक्ष्म हो कि देख न पडें, जिनकी सधियाँ गुप्त हो, जो तोडने से एकवारगी टूट जायँ, जो जड से काटने पर फिर हरे हो जायँ, जिनके पत्ते मोटे, दलदार और चिकने हो अथवा जिनके पत्ते फूल और फल कोमल हो। ये सख्या मे वत्तीस हैं।

अनतग—वि० [स० अनन्तग] नित्य या अतहीन जानेवाला। नित्य गतिशील रहनेवाला [को०]।

अनतगुण—वि० [स० अनन्तगुण] वहुत अधिक गुणो से युक्त [को०]।

अनतचतुर्दशी—सज्ञा स्त्री० [स० अनन्तचतुर्दशी] भाद्र शुक्ल चतुर्दशी।

विशेष—इस दिन हिंदू अलोना व्रत करते हैं और चौदह तागो के अनतसूत्र को, जिसमे चौदह गाँठे दी होती हैं, पूजन कर वाँधते हैं और तत्पश्चात् भोजन करते हैं। यह व्रत मध्याह्न पर्यंत का है।

अनतचरित्र—सज्ञा पुं० [स० अनन्तचरित्र] एक वोधिसत्व [को०]।

अनतजित्—सज्ञा पु० [स० अनन्तजित्] १ वासुदेव। २ वर्तमान अवसर्पिणी के १४ वें तीर्थंकर [को०]।

अनंततटंक—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तटङ्क] एक रागविशेष जो मेघ राग का पुत्र माना जाता है।

अनतता—संज्ञा स्त्री० [सं० अनन्तता] असीमत्व। अमितत्व। अत्यंत अधिकता।

अनततान—वि० [सं० अनन्ततान] असीम। अपार [को०]।

अनततीर्थकृत—संज्ञा पुं० [सं० अनन्ततीर्थकृत्] दे० 'अनन्तजित्' [को०]।

अनततृतीया—संज्ञा स्त्री० [सं० अनन्ततृतीया] भाद्र मास का तीसरा दिन [को०]।

अनतत्व—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तत्व] अनंतता [को०]।

अनतदर्शन—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तदर्शन] जैन मत के अनुसार केवल दर्शन या सम्यक् दर्शन। सब बातों का पूरा ज्ञान। ऐसा ज्ञान जो दिशा, काल आदि से बद्ध न हो।

अनतदृष्टि—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तदृष्टि] इंद्र का एक नाम।

अनतदेव—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तदेव] १ शेषनाग। २ शेषशय्या पर रहनेवाले नारायण [को०]।

अनतनाथ—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तनाथ] जैन लोगों के चौदहवें तीर्थंकर।

अनतपार—वि० [सं० अनन्तपार] जिसका पार या सीमा न हो। असीम विस्तारवाला [को०]।

अनतमति—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तमति] एक बोधिसत्व [को०]।

अनतमायी—वि० [सं० अनन्तमायिन्] अनंत या अपार छल या माया से युक्त [को०]।

अनतमूल—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तमूल] एक पौधा या बेल जो सारे भारतवर्ष में होती है और औषधि के काम आती है।

विशेष—इसके पत्ते गोल और सिरे पर नुकीले होते हैं। यह दो प्रकार की होती है—काली और सफेद। यह स्वादिष्ट, स्निग्ध, शुक्रजनक तथा मदाग्नि, अरुचि, श्वास, खाँसी, विष, त्रिदोष आदि को हरनेवाली होती है। रक्त शुद्ध करने का भी गुण इसमें बहुत है। इसी से इसे हिंदी में सालसा या उशबा भी कहते हैं।

पर्याय—सारिवा। अनता। गोपी। भद्रवल्ली। नागजिह्वा। कराला। गोपवल्ली। सुगधा। भद्रा। श्यामा। शारदा। प्रहानिका। आस्फोता।

अनतर¹—क्रि० वि० [सं० अनन्तर] १ पीछे। ठीक बाद। उपरांत। बाद। २ निरंतर। लगातार।

अनतर²—वि० १ अंतररहित। निकटस्थ। पड़ोसी। २ अखंडित। ३ अपने वर्ण में ठीक बादवाले वर्ण का (को०)।

यौ०—अनन्तरज। अनन्तरजात।

अनतर³—संज्ञा पुं० १ समीपता। निकटता। अंतर का अभाव। २. ब्रह्म। परमात्मा [को०]।

अनतरज—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तरज] वह व्यक्ति जिसके पिता का वर्ण माता से एक वर्ण ऊँचा हो।

विशेष—जैसे,—माता शूद्रा हो और पिता वैश्य अथवा माता वैश्य हो और पिता क्षत्रिय अथवा माता क्षत्राणी और पिता ब्राह्मण हो।

अनंतरजात—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तरजात] दे० 'अनतरज'।

अनंतरय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तर्य] अंतर का अभाव [को०]।

अनतराय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तराय] निर्विघ्न [को०]।

अनतरित—वि० [सं० अनन्तरित] १ जिसमें बीच न पड़ा हो। निकटस्थ। २ अखंडित। अटूट।

अनतरिति—संज्ञा स्त्री० [सं० अनन्तरिति] न त्यागना या अलगाना [को०]।

अनतरीय—वि० [सं० अनन्तरीय] वंशानुक्रम में ठीक बादवाला [को०]।

अनतर्हित—वि० [सं० अनन्तर्हित] १ जो अलग न किया गया हो। मिला हुआ। निकटस्थ। पास का। २ शृंखलाबद्ध। अखंडित। ३ जो छिपा न हो। प्रकट (को०)।

अनतवान्¹—वि० [सं० अनन्तवत्] नित्य। जिसकी सीमा न हो [को०]।

अनंतवान्²—संज्ञा पुं० ब्रह्मा के चार चरणों में से एक [को०]।

विशेष—पृथ्वी अतरिक्ष, अनत और समुद्र नामक ब्रह्मा के चार चरण हैं।

अनतविजय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तविजय] युधिष्ठिर के शख का नाम।

अनतवीर्य¹—वि० [सं० अनन्तवीर्य] अपार पौरुषवाला।

अनतवीर्य²—संज्ञा पुं० जैनों के तेइसवें तीर्थंकर का नाम।

अनता¹—वि० स्त्री० [सं० अनन्ता] जिसका अंत या पारावार न हो।

अनता²—संज्ञा स्त्री० १ पृथ्वी। २ पार्वती। ३ करियारी का पौधा। ४ अनतमूल। ५ दूब। ६ पीपर। ७ जवासा। ८ अरणीवृक्ष। ९ अनतमूत्र।

अनतानुबधी—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तानुबन्धिन्] जैन मतानुसार वह दोष या दुःस्वभाव जो कभी न जाय, जैसे अनतानुबधी क्रोध,—लोभ,—माया, मान।

अनताभिधेय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्ताभिधेय] वह जिसके नामों का अंत न हो। ईश्वर।

अनती—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों का गहना जिसे वे बाएँ बाजू पर बाँधती हैं [को०]।

अनत्य¹—वि० [सं० अनन्त्य] जिसका अंत या सीमा न हो [को०]।

अनत्य²—संज्ञा पुं० १. नित्यत्व। नित्यता। २ हिरण्यगर्भ का चरण [को०]।

अनद¹—संज्ञा पुं० [सं० अनन्द] १४ वर्णों का एक वृत्त जिसका क्रम इस प्रकार है—जगण, रगण, जगण, रगण, लघु, गुरु।

अनद²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आनंद'। उ०—मुनि पुर भयउ अनद बधाव बजावहिं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६।

अनदना(पु)—क्रि० अ० [सं० आनन्द] आनंदित होना। उ०—मुनि मुनिगन दुहूँ भाइन्ह बदे। अभिमत आसिष पाइ अनदे।—तुलसी (शब्द०)।

अनदी¹—संज्ञा पुं० [सं० अनन्दिन्] एक प्रकार का धान।

अनदी²(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आनदी'।

अनबर¹—वि० [सं० अनम्बर] वस्त्रहीन। नग्न। नंगा (को०)।

अनबर²—संज्ञा पुं० एक जैन साधु सप्रदाय। दिगबर [को०]।

अनभ¹—वि० [सं० अन = नहीं + अम्भस् = जल] बिना पानी का।

अनभ२ (पु)—वि० [सं० अन् = नहीं + अंह = पाप, विघ्न, बाधा] निर्विघ्न। बाधारहित। बे आँच। उ०—मोहन बाण हमार है, देखत मोहन राम। मोहन बाण तुम्हार जो हमको करत अनभ।—मदन (शब्द०)।

अनंश—वि० [सं०] १ जो पैत्रिक संपत्ति पाने का अधिकारी न हो। २ जिसका अंगभाग या खंड न हो (आकाश या ब्रह्म का विशेषण) [को०]।

अनशुमत्फला—संज्ञा स्त्री० [सं०] केला। कदली [को०]।

अन१ (पु)—क्रि० वि० [सं० अन्] बिना। बगैर। उ०—हँसि हँसि मिले दोऊ, अन ही मनाए मान छूटि गयो एही छोर राधिका रमन को।—केशव (शब्द०)।

अन२ (पु)—वि० [सं० अन्य = दूसरा] अन्य। और। दूसरा। उ०—अनजल सींचे रूख की छाया तें बरु घाम। तुलसी चातक बहुत हैं यह प्रबीन को काम।—तुलसी ग्रं० पृ० १२८।

अन३ (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्न] अनाज। अन्न। उ०—जैसे हैं गिरिराज जू तैसो अन को कोट। मगन भये पूजा करैं, नर नारी बड छोट।—सूर०, १०।८४१।

यौ०—अनधन = अन्न और संपत्ति। उ०—कहत कबीर सुनहु रे संतहु अनधन कछु अैसे न गयो।—कबीर ग्रं०, पृ० ३१०।

अनअहिवात (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन = नहीं + हिं० अहिवात] अहिवात का अभाव। वैधव्य। विधवापन। रँडापा। उ०—कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी। अनअहिवात सूच जनु भावी।—मानस, २।२५।

अनइच्छित (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनिच्छित'। उ०—राम भजत सोइ मुकुति गुसाईं। अनइच्छित आवै बरिआईं।—मानस, ७।११९।

अनइस (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] अनिष्ट। अनैस। उ०—ग्राह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फल अनइस पावा।—मानस। २।१६३।

अनइसा (पु) अनइसी (पु)—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अनैसा'।

अनऋतु—संज्ञा पुं० [सं० अन् + ऋतु] १ विरुद्ध ऋतु। अनुपयुक्त ऋतु। बेमौसिम। अकाल। असमय। उ०—(क) चातक की रट नेह सदा, वह ऋतु अनऋतु नहिं हारत।—सूर(शब्द०)। (ख) सब तरु फरे राम हित लागी। ऋतु अनऋतुहि काल गति त्यागी।—तुलसी० (शब्द०)। २ ऋतु विपर्यय। ऋतु के विरुद्ध कार्य।

अनकप (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अकंप'।

अनक१—वि० [सं०] दे० 'अणक' [को०]।

अनक२—संज्ञा पुं० दे० 'अणक'।

अनक३ (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आनक'।

अनकदुंदुभ—संज्ञा पुं० [सं० अनकदुन्दुभ] कृष्ण के पितामह और वसुदेव के पिता का नाम [को०]।

अनकदुंदुभि (पु)—संज्ञा पुं० [सं० आनकदुन्दुभि] अनकदुंदुभ के पुत्र वसुदेव।

अनकना—क्रि० स० [सं० आकर्णन, प्रा० आकण्णण, हिं० अ कनना > (वर्णव्य०) अनकना] १ सुनना। २ चुपचाप सुनना। छिपकर सुनना।

अनकरीब—क्रि० वि० [अ० अनक़रीब] करीब करीब। लगभग। प्राय।

अनकस्मात्—क्रि० वि० [सं०] जो आकस्मिक, अचानक या अकारण न हो [को०]।

अनकहनी—वि०, स्त्री० [हिं० अन + कहनी] न कहने योग्य। उ०—(क) सबके चरित्र लिखने में कुछ अनकहनी कहनी भी कह गए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १०३। (ख) यहीं बैठ कहती थी तुमने सब कहनी अनकहनी।—ग्राम्या०, पृ० २०।

अनकहा—वि० [हिं० अन + कहा] [स्त्री० अनकही] बिना कहा हुआ। अकथित। अनुक्त। उ०—सिर्फ अनकहा रहने से तो असत्य हो नहीं जाता।—सुखदा, पृ० १०७।

मुहा०—अनकही देना = अवाक् रहना। चुपचाप होना। उ०—समुझि परी पटमास बीतैंगे कहाँ हुती हौ आयो। सूर अनकही दै गोपिनि सों स्रवन मूँदि उठि धायो।—सूर०, १०।४१४६।

अनका—संज्ञा पुं० [अ० अन्क़ा] दे० 'उनका' [को०]।

अनकाढ़ा—[हिं० अन + काढ़ना] बिना निकाला हुआ। उ०—साकहिं मरैं चहैं अनकाढे।—जायसी (शब्द०)।

अनकामयमार—वि० [सं०] जो बिना इच्छा के न मरता हो। बिना इच्छा के न मरनेवाला [को०]।

अनकीय—वि० [सं०] अगवीय [को०]।

अनकुस—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश अथवा हिं० अन + फा० खुश] बुरा। खराब। उ०—बँगले में शीशे लगी खिड़कियों के बाहर घनी जाली लगी देखकर कुछ अनकुस मालूम होता था।—किन्नर०, पृ० ७।

अनक्ष—वि० [सं०] १ बिना आँख का। अंधा। २ जहाँ बहेड़ा या रुद्राक्ष का वृक्ष न हो [को०]।

अनक्षर१—वि० [सं०] १ अक्षरज्ञान से रहित। निरक्षर। २ न जाननेवाला। अज्ञ। ३ मूक। गूँगा। ४ न कहने योग्य [को०]।

अनक्षर२—संज्ञा पुं० दुर्वचन या गाली [को०]।

अनक्षर३—क्रि० वि० बिना शब्दप्रयोग किए। बिना शब्द उच्चारण किए। बिना बोले [को०]।

अनक्षि—वि० [सं०] बुरी आँख [को०]।

अनक्षिक—वि० [सं०] बिना आँख का। अंधा [को०]।

अनख१—संज्ञा पुं० [सं० अन् = बुरा + अक्ष = आँख, प्रा० अनक्ख अथवा सं० अनाकाङ्क्ष प्रा० अनाकक्ख अनअक्ख, अनक्ख हिं० अनख] १ झुँझलाहट। रिस। क्रोध। नाराजगी। अनिच्छा। असंतोष। उ०—(क) धनि धनि अनख उरहनो धनि धनि धनि माखन धनि मोहन खाए।—सूर (शब्द०)। (ख) मायँ कुमायँ न आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।—मानस १।१९।२ दुख। ग्लानि। खिन्नता। उ०—जो पै हिरदय माँझ हरी। कर कंकन दरपन लै देखौ इहि अति अनख करी। क्यों अब जियहिं जोग सुनि सूरज, बिरहिन बिरहभरी।—सू०, १०।३७९०। ३ ईर्षा। द्वेष। डाह। उ०—किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं।—मानस ३।२४। ४ कट। अनरीति। उ०—बाबू ऐसो है ससार तिहारो ये कलि है व्यवहारा। को अब अनख सहै प्रति दिन को नाहिन

रहनि हमारा।—कबीर (शब्द०)। ५ डिठौना। काजल की बिंदी जिसे डीठ (नजर) से बचाने के लिये बच्चों के माथे में लगाते हैं। उ०—अनधन देखि तिलरवा, अनख न धार। ममलहु दिय दुति मनसिज, भव करतार।—खानखाना (शब्द०)।

अनख²—वि० [सं० अ=नहीं+नख=नाखून] १ बिना नाखून का। उ०—मिहिर नजर सो मावते, राख याद मरि मोद। अनखन खनि अनखन अरे, मन सो मर्नहि करोद।—रसनिधि (शब्द०)।

अनखना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अनख से नाम०] क्रोध करना। रिसाना। रुष्ट होना। उ०—हम अनखी या बात सो लेत दान को नावँ। सहज भाव रहो लाडिले बसत एक ही गाँव।—सूर (शब्द०)।

अनखाना¹(पु)—क्रि० अ० [हिं० अनख] क्रोध करना। रुष्ट होना। रिसाना। उ०—(क) कापर नैन चढाए डोलति, ब्रज में तिनुका तोर। सूरदास यशुदा अनखानी यह जीवन धन मोर।—सूर०, १०।३१०। (ख) गई करुणा भी इक दिन ऊब। कहा अनखाकर उसने खूब।—झरना, पृ० ५९।

अनखाना²(पु)—क्रि स० अप्रसन्न करना। नराज करना। खिझाना। उ०—उठन सभा दिन मधि सैनापति भीर देखि फिरि आऊँ। न्हात खात सुख करत साहिबी कैसे करि अनखाऊँ।—सूर० ६। १७२।

अनखावना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अनखाना'। उ०—वा देखत हमको तुम मिलिहौ, काहे को ताको अनखावत।—सूर०, १०।२८१९।

अनखाहट(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अनख+आहट (प्रत्य०)] अनखने या क्रोध दिखलाने की क्रिया या भाव। उ०—मारची मनुहारिनु भरी गारचौ खरी मिठाहिं। वाको अति अनखाहटौ मुसुकाहट बिनु नाहिं।—बिहारी र०, दो० ४६८।

अनखी†—वि० [हिं० अनख+ई (प्रत्य०)] क्रोधी। गुस्सावर। जो जल्दी नाराज हो।

अनखीली(पु)†—वि० स्त्री० [हिं० अनख+ईली (प्रत्य०)] अनखवाली। बुरा माननेवाली। अनखी। उ०—कहै पदमाकर शृगार अनखीलिन की भौरी भीर भारन को भाँज दै री भाँज दै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३२२।

अनखुला—वि० [हिं० अन+खुलना] [अनखुली] १ जो खुला न हो। बद। २ जिसका कारण प्रगट न हो। गुप्त। उ०—केसर केसरि कुसुम के रहे अग लपटाइ। लगे जानि नख अनखुली कत बोलति अनखाइ।—बिहारी र०, दो० १९९।

अनखौहा(पु)†—वि० [हिं० अनख+औहा (प्रत्य०)] [स्त्री० अनखौही] १ क्रोध से भरा हुआ। कुपित। रुष्ट। उ०—रवि बंदौं कर जोरिकै, सुनत स्याम के बैन। भए हँसौहैं सबनु के, अति अनखौहैं नैन।—बिहारी र०, दो० २२८। २ चिडचिडा। जल्दी क्रोध करनेवाला। छोटी सी बात पर चिढ जानेवाला। ३ क्रोधजनक। क्रोध दिलानेवाला। उ०—निपट निदरि बोले बचन कुठारपानि, मानि त्रास औनिपन मानो मौनता गही। रोषे माखे लखन अकनि अनखौही बातें तुलसी विनीत बानी बिहँसि ऐसी कही।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६०। ४ अनुचित। खोटा। बुरा। उ०—(क) कबहूँ मो को कछू लगावति कबहुँ कहति जनु जाहु कही। सूरदास बातें अनखौही नाहिन मो पै जाति सही।—सूर (शब्द०)। (ख) राम सदा सरनागत की अनखौही अनैसी सुभाय सही है।—तुलसी ग्रं०, पृ० १९९।

अनगढ—वि० [हिं० अन+गढना] १ बिना गढा हुआ। उ०—थे चमक रहे दो खुले नयन ज्यों शिलालग्न अनगढे रतन।—कामायनी, पृ० २४७। २ जिसे किसी ने नबना या हो। स्वयंभू। उ०—ऊधौ राखिए यह बात। कहत हौ अनगढ व अनहद सुनत ही चपि जात।—सूर(शब्द०)। ३ बेडौल। भद्दा। बेढगा। ४ असस्कृत। अपरिष्कृत। ५ उजड्ड। अक्खड। पोगा। अनाडी। जैसे, अनगढ मूर्ख। ६ बेतुका। अटपट। बे सिर पैर का। जैसे, अनगढ बात।

अनगन(पु)—वि० सं० [अन्+गणन] [स्त्री० अनगनी] अगणित। बहुत। उ०—निज काज सजत सँवारि पुर नर नारी रचना अनगनी।—तुलसी (शब्द०)।

अनगना¹†—क्रि० स० [सं० अवगन=ढका हुआ] खपडा फेरना। छाजन में टूटे हुए खपडो के स्थान पर नए लगाना। टपकते हुए खपडैल की मरम्मत करना।

अनगना²—वि० [हिं० अन्+गनना] १ जो गिना न गया हो। न गिना हुआ। २ अगणित। बहुत।

अनगना³†—संज्ञा पु० गर्भ का आठवाँ महीना। जैसे—इस स्त्री का अब अनगना लगा है (शब्द०)।

अनगवना(पु)—क्रि० अ० [सं० अन्+हिं० अगवना अथवा हिं० अन+गवन=गमन] जान बूझकर देर करना। विलंब करना। उ०—मुहुँ धोवति, एडी घसति, हसति, अनगवति तीर। घसति न इदीवर नयनि कालिदी के नीर।—बिहारी र०, दो० ६९७।

अनगाना¹(पु)—क्रि० अ० [सं० अन्+हिं० अगवाना] १ विलंब करना। देर करना। २ टालमटोल करना।

अनगाना²—क्रि० स० [हिं०] सँवरना। सुलझाना (केश आदि)

अनगाना³—क्रि० स० [हिं० अनगना] अनगने या खपडा फेरने का काम कराना।

अनगार¹—वि० [सं०] बिना अगार या घर का। गृहहीन [को०]।

अनगार²—संज्ञा पु० घूमने फिरनेवाला। सन्यासी [को०]।

अनगारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिव्राजक या सन्यासी का जीवन या स्थिति [को०]।

अनगिन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनगिनत'। उ०—फूलि रहे तारे मानो मोती अनगन हैं।—कवित्त०, पृ० ६६।

अनगिनत—वि० [सं० अन्=नहीं+गणित=गिना हुआ] जिसकी गिनती न हो। अगणित। असख्य। बेशुमार। बेहिसाब। बहुत। उ०—शून्यता मम डगर में अनगिनत काँटे बो गई है।—अपलक, पृ० ८९।

अनगिना—वि० पु० [हिं० अन+गिनना] [स्त्री० अनगिनी] १. बिना गिना हुआ। जो गिना न गया हो। २ अगणित। असख्य। बहुत। उ०—मुक्ति मुक्ता अनगिने फल तहाँ चुनि चुनि खाहिं।—सूर १।३३८।

अनगैरी(पु)--वि० [हिं० अन+अ० गैर+हिं० ई (प्रत्य०)] गैर। पराया। अपरिचित। बेजाना। उ०—कह गिरिधर कविराय घरे आवैं अनगैरी। हित की कहैं बनाय चित्त में पूरे वैरी।—गिरिधर (शब्द०)। (ख) मूरख करैं सवन ते वैरू। मूरख घर राखै अनगैरू।—विश्राम (शब्द०)।

अनग्नि—वि० [सं०] १ अग्निहोत्ररहित। श्रौत और स्मार्त कर्म से विमुख या हीन। २ जिसे अग्नि की आवश्यकता न हो (को०)। ३ मदाग्नि का रोगी (को०)। ४ अविवाहिता (को०)।

अनग्नित्र—वि० पु० [सं०] [स्त्री० अग्नित्रा] जो पवित्र अग्नि का सरक्षण न करता हो [को०]।

अनग्निदग्ध—वि० [सं०] १ जो आग से न जला हो। २ चिता पर न जला या जलाया हुआ। ३ गाडा हुआ [को०]।

अनग्निष्वात्त—वि० [सं०] १ जो अग्निदग्ध न हो। २ गाडा हुआ। दफनाया हुआ [को०]।

अनघ[1]—वि० [सं०] १ निष्पाप। पातकरहित। निर्दोष। बेगुनाह। २ पवित्र। शुद्ध।

अनघ[2]—संज्ञा पु० वह जो पाप न हो। पुण्य। उ०—तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघ आगि लागे डाढन।—तुलसी (शब्द०)।

अनघरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अन् = विरुद्ध + घरी = घडी] असमय। कुसमय। अनवसर। बेवक्त। बेमौका।

अनघेरी(पु)—वि० [सं० अन् + हिं० घेर अथवा सं० अनाभीरित] बिना बुलाया हुआ। अनिमंत्रित। अनाहूत।

अनघोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० घोर] अंधेर। अत्याचार। ज्यादती। उ०—यह अनित्य तनु हेतु तुम, करहु जगत अनघोर।—रघुराज० (शब्द०)।

अनघोरी(पु)—क्रि० वि० [हिं० अनघरी] अचानक। चुपके से। उ०—जीति पाइ अनघोरी आए।—छत्र०।

अनचहा(पु)—वि० [सं० अन + हिं० चाह] नहीं चाहा हुआ। अनिच्छित। अप्रिय। उ०—अनत चह्यो न भलो सुपथ सुचाल चल्यो, नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचहो हौं।—तुलसी ग्र०, पृ० ५८८।

अनचाखा(पु)—वि० [हिं० अन+चाखना] बिना चखा या खाया हुआ। अनास्वादित। उ०—दारिउँ दाख फरे अनचाखे।—जायसी ग्र०, पृ० ४६।

अनचाहत[1](पु)—वि० [हिं० अन+चाहना] जो न चाहे।

अनचाहत[2]—संज्ञा पु० न चाहनेवाला आदमी। प्रेम न करनेवाला पुरुष। उ०—हाय दई कैसी भई अनचाहत को संग। दीपक को भावै नही, जल जल मरत पतंग (शब्द०)।

अनचाहा—वि० [हिं० अन+चाहना] जिसकी चाह या इच्छा न की गई हो। अचाहा। अवांछित। अप्रिय।

अनचिन्हा(पु)†—वि० [हिं० अन+चीन्ह = परिचित] अपरिचित। अजनबी। अनजाना।

अनचीत—वि० [हिं० अन+चीत] मन या चित के विरुद्ध। बेमन। उ०—गैया चरैं अनचीत, मुरली मन मोहि रे रहे।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३५०।

अनचीता[1]—वि० [हिं० अन+चीतना = सोचना] १ न सोचा हुआ। अपरिचित। अनचाहा। अचाहा।

अनचीता[2]—क्रि० वि० [हिं० अन+चीतना] अचानक या अकस्मात् होनेवाला।

अनचीन्ह(पु)†—[हिं० अन+चिन्ह] १ अपरिचित। बे पहिचान का। २ चीन्ह या लक्षण से रहित।

अनचीन्हा(पु)†—वि० [हिं० अन+चीन्ह] बिना पहचाना हुआ। अपरिचित। अज्ञात।

अनचेता—वि० [हिं० अन+चेतना] न सोचा हुआ। अचिंतित।

अनचेती—वि० स्त्री० [हिं० अन+चेतना] न सोची हुई (बात विषय आदि)।

अनचैन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अन+चैन] बेचैनी। व्याकुलता। विकलता।

अनचैनी†—[हिं० अनचैन+ई] (प्रत्य०)] चैन रहित। व्याकुलता से भरी। विकलतायुक्त।

अनच्छ—वि० [सं०] जो स्वच्छ, निर्मल या साफ न हो [को०]।

अनजका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी बकरी [को०]।

अनजाद†—संज्ञा पु० [फा० अंदाजह] अनुमान। अटकल।

अनजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी बकरी [को०]।

अनजान[1]—वि० [हिं० अन+जानना] १ अज्ञानी। अनभिज्ञ। अज्ञ। नासमझ। नादान। सीधा। भोला भाला। २ बिना जाना हुआ। अपरिचित। अज्ञात।

अनजान[2]—संज्ञा पु० १ एक प्रकार की लंबी घास जिसे प्राय भैंसें ही खाती है और जिससे उनके दूध मे कुछ नशा आ जाता है। २ अजना नाम का पेड।

अनजानत(पु)—क्रि० वि० [हिं० अन+जानना] न जानते या समझते हुए। उ०—(क) श्रीमद नृपअभिमान मोहवश जानत अनजानत हरि लायो।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६५। (ख) व्याकुल भयो डरचो जिय भारी। अनजानत कीन्ही अधिकारी।—सूर० १०।६४७।

अनजाया(पु)—वि० [हिं० अन+जाया = उत्पन्न] जन्म से परे। अजन्मा। उ०—बाबुल मेरा व्याह करा दो अनजाया वर लाय।—कबीर श०, पृ० १०१।

अनजोखा—वि० बिना जोखा हुआ। बिना तौला हुआ।

अनट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनृत = अत्याचार अथवा सं० अन्+दन = अनृत, प्रा० अणट्ट = उपद्रव] उपद्रव। अनीति। अन्याय। अत्याचार। उ०—(क) खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट उपाय।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०६। (ख) सहि कुबोल, साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान। तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गए सुजान।—तुलसी ग्र०, पृ० १४२।

अनडीठ(पु)—वि० [सं० अन्+दृष्ट प्रा० डिट्ठ, दिट्ठ, हिं० डीठ] बिना देखा।

अनडुज्जिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गोजिह्वा। २ अर्कमूल [को०]।

अनडुह्—संज्ञा पुं० [सं०] १ बैल। २ वृषराशि (को०)। ३. गोत्र प्रवर्तक एक ऋषि का नाम (को०)।

अनडुही—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय।

अनड्वान्—संज्ञा पुं० [सं०] १ बैल। साँड़। २ सूर्य (उपनि०)। ३ वृष राशि [को०]।

अनड्वाही—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौ। गाय [को०]।

अनणु¹—वि० [सं०] जो सूक्ष्म न हो [को०]।

अनणु²—संज्ञा पुं० मोटा अन्न [को०]।

अनत¹—वि० [सं०] न झुका हुआ। सीधा।

अनत²(पु)—क्रि० वि० [सं० अन्यत्र, प्रा० अण्णत, अन्नत्त] और कहीं। दूसरी जगह में। पराए स्थान। उ०—राम लषन सिय सुनी मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ।—मानस, २।२३२।

अनति¹—वि० [सं०] बहुत नहीं, थोड़ा।

अनति²—संज्ञा स्त्री० नम्रता का अभाव। विनीत भाव का न होना। अहंकार।

अनदेखा—वि० [हिं० अन+देखना] [स्त्री० अनदेखी] बिना देखा हुआ। उ०— देखी अनदेखी किये अँगु अँगु सबै दिखाइ। पैठति सी तन मैं सकुचि बैठी चितै लजाइ।—बिहारी र०, दो० ६१८।

अनदोष—वि० [हिं० अन+सं० दोष] दोषरहित। अदोष। निर्दोष। उ०—अनदोषे कौं दोष लगावति, दई देइगौ टारि।—सूर०, १०।२६२।

अनद्धा—क्रि० वि० [सं०] असत्यतः, अवस्तुतः या अठीकतः [को०]।

अनद्धामिश्रित वचन—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार समय के संबंध में झूठ बोलना। जैसे कुछ रात रहते ही कह देना कि सूर्योदय हो गया।

अनद्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद सरसों [को०]।

अनद्य¹—वि० जो खाने योग्य न हो। अखाद्य [को०]।

अनद्यतन¹—वि० [सं०] [स्त्री० अनद्यतनी] आज या अद्यतन के पहले या पीछे का।

अनद्यतन²—संज्ञा पुं० पिछली रात के पिछले दो पहर और आनेवाली रात के अगले दो पहर और इनके बीच के सारे दिन को छोड़कर बाकी रात या भविष्य का समय। पिछली १२ बजे रात से आनेवाली १२ बजे रात तक का समय जो बीत रहा हो।

विशेष—पिछली आधी रात के पहले के समय को भूत अनद्यतन और आनेवाली रात के बाद के समय को भविष्य अनद्यतन कहते हैं।

अनद्यतन भविष्य—संज्ञा पुं० [सं०]१ आनेवाली आधी रात के बाद का समय। २ संस्कृत व्याकरण में भविष्य काल का एक भेद जिसका अब प्राय प्रयोग नहीं होता।

अनद्यतन भूत—संज्ञा पुं० [सं०] १ बीती हुई आधी रात के पहले का समय। संस्कृत व्याकरण में भूतकाल का एक भेद जिसका अब प्राय प्रयोग नहीं होता।

अनधिक—वि० [सं०]१ जो अधिक न हो। २ सीमाहीन। असीम। ३ पूर्ण। पूरा। ४ जिससे कोई बढ़कर न हो। ५ जिसे बढ़ाया न जा सके [को०]।

अनधिकार¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ अधिकार का अभाव। इख्तियार का न होना। प्रभुत्व का अभाव। २ बेबसी लाचारी। ३ अयोग्यता। अक्षमता।

अनधिकार²—वि० १ अधिकाररहित। बिना इख्तियार का। २ अयोग्य। योग्यता के बाहर।

अनधिकारचर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग्यता के बाहर बातचीत। जिस विषय में गति न हो उसमें टाँग अड़ाना।

अनधिकार चेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना अधिकार के कोई कार्य या प्रयत्न करना [को०]।

अनधिकारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अधिकारशून्यता। अधिकार का न होना। २ अक्षमता।

अनधिकारी—वि० [सं० अनधिकारिन्] [स्त्री० अनधिकारिणी] १ जिसे अधिकार न हो। जिसके हाथ में इख्तियार न हो। २ अयोग्य। अपात्र। कुपात्र। जैसे—पंडित लोग अनधिकारी को वेद नहीं पढ़ाते (शब्द०)।

अनधिकृत—वि० [सं०]१ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न किया गया हो। २ अधिकार से बाहर। जिसपर अधिकार न हो [को०]।

अनधिगत—वि० [सं०] बिना समझा हुआ। अनवगत। अज्ञात। बेजाना बूझा।

अनधिगत मनोरथ—वि० [सं०] जिसकी इच्छा पूर्ण न हुई हो। हताश [को०]।

अनधिगत शास्त्र—वि० [सं०] जिसका शास्त्र पर अधिकार न हो [को०]।

अनधिगम्य—वि० [सं०] जो पहुँच के बाहर हो। अप्राप्य। दुष्प्राप्य।

अनधिष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] निरीक्षण का न होना [को०]।

अनधिष्ठित—वि० [सं०] १ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ। २ जो उपस्थित न हो [को०]।

अनधिष्ठित—वि० [सं०] १ अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ हो। २ उपस्थित न हो [को०]।

अनधीन¹—वि० [सं०] जो अधीन न हो। स्वतंत्र [को०]।

अनधीन²—संज्ञा पुं० स्वेच्छा पूर्वक स्वतंत्र रूप में काम करनेवाला बढ़ई [को०]।

अनधीनक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनधीन' [को०]।

अनध्यक्ष—वि० [सं०] १ जो देख न पड़े। अप्रत्यक्ष। नजर के बाहर। २ अध्यक्षरहित। बिना मालिक का।

अनध्ययन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अध्ययन न होना। अध्ययन का अभाव। २ अध्ययनकाल में बीच में पड़नेवाला विराम [को०]।

अनध्यवसाय—संज्ञा पुं० [सं०]१ अध्यवसाय का अभाव। सक्रियता। ढिलाई। २ एक काव्यालंकार।

विशेष—इसमें कई समान गुणवाली वस्तुओं के बीच नहीं बल्कि किसी एक वस्तु के संबंध में साधारण अनिश्चय का वर्णन किया जाता है। जैसे—'स्वेदरागि हों ताहि लखि सम तन हरि। ? आली बनमाली को यह'। यह अलंकार वास्तव में 'संदेह' के अंतर्गत ही आता है और इसमें कुछ चमत्कारिता भी नहीं प्रतीत होती है।

अनध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह दिन जिसमें शास्त्रानुसार पढ़ने पढ़ाने का निषेध हो।

अनगैरी(पु)—वि० [हिं० अन+अ० गैर+हिं० ई (प्रत्य०)] गैर । पराया । अपरिचित । बेजान । उ०—कह गिरिधर कविराय घरे आवैं अनगैरी । हित की कहैं बनाय चित्त मे पूरे बैरी ।—गिरिधर (शब्द०) । (ख) मूरख करै सबन ते बैरू । मूरख घर राखै अनगैरू ।—विश्राम (शब्द०) ।

अनग्नि—वि० [स०] १ अग्निहोत्ररहित । श्रौत और स्मार्त कर्म से विमुख या हीन । २ जिसे अग्नि की आवश्यकता न हो (को०) । ३ मदाग्नि का रोगी (को०) । ४ अविवाहिता (को०) ।

अनग्नित्र—वि० पु० [स०] [स्त्री० अग्नित्रा] जो पवित्र अग्नि का सरक्षण न करता हो [को०] ।

अनग्निदग्ध—वि० [स०] १ जो आग से न जला हो । २ चिता पर न जला या जलाया हुआ । ३ गाडा हुआ [को०] ।

अनग्निष्वात्त—वि० [स०] १ जो अग्निदग्ध न हो । २ गाडा हुआ । दफनाया हुआ [को०] ।

अनघ¹—वि० [स०] १ निष्पाप । पातकरहित । निर्दोष । बेगुनाह । २ पवित्र । शुद्ध ।

अनघ²—संज्ञा पु० वह जो पाप न हो । पुण्य । उ०—तुलसिदास जगदघ जवास ज्यो अनघ आगि लागे डाढन ।—तुलसी (शब्द०) ।

अनघरी(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० अन्=विरुद्ध+घरी=घडी] असमय । कुसमय । अनवसर । बेवक्त । बेमौका ।

अनघैरी(पु)—वि० [स० अन्+हिं० घेर अथवा सं० अनाग्गीरित] बिना बुलाया हुआ । अनिमत्रित । अनाहूत ।

अनघोर(पु)—सज्ञा पुं० [स० घोर] अधेर । अत्याचार । ज्यादती । उ०—यह अनित्य तनु हेतु तुम, करहु जगत अनघोर ।—रघुराज० (शब्द०) ।

अनघोरी(पु)—क्रि० वि० [हिं० अनघरी] अचानक । चुपके से । उ०—जीति पाइ अनघोरी आए ।—छत्र० ।

अनचहा(पु)—वि० [स० अन+हिं० चाह] नही चाहा हुआ । अनिच्छित । अप्रिय । उ०—अनत चह्यो न भलो सुपथ सुचाल चल्यो, नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हो ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५८८ ।

अनचाखा(पु)—वि० [हिं० अन+चाखना] बिना चखा या खाया हुआ । अनास्वादित । उ०—दारिउँ दाख फरे अनचाखे ।—जायसी ग्र०, पृ० ४६ ।

अनचाहत¹(पु)—वि० [हिं० अन+चाहन] जो न चाहे ।

अनचाहत²—सज्ञा पु० न चाहनेवाला आदमी । प्रेम न करनेवाला पुरुष । उ०—हाय दई कैसी भई अनचाहत को सग । दीपक को भावै नही, जल जल मरत पतग (शब्द०) ।

अनचाहा—वि० [हिं० अन+चाहना] जिसकी चाह या इच्छा न की गई हो । अचाहा । अवाछित । अप्रिय ।

अनचिन्हा(पु)†—वि० [हिं० अन+चीन्ह=परिचित] अपरिचित । अजनबी । अनजाना ।

अनचीत—वि० [हिं० अन+चीत] मन या चित्त के विरुद्ध । बेमन । उ०—गैया चरैं अनचीत, मुरली मन मोहि रे रहे ।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३५० ।

अनचीता¹—वि० [हिं० अन+चीतना=सोचना] १ न सोचा हुआ । अपरिचित । अनचाहा । अचाहा ।

अनचीता²—क्रि० वि० [हिं० अन+चीतना] अचानक या अकस्मात् होनेवाला ।

अनचीन्ह(पु)†—[हिं० अन+चिन्ह] १ अपरिचित । बे पहिचान का । २ चीन्ह या लक्षण से रहित ।

अनचीन्हा(पु)†—वि० [हिं० अन+चीन्ह] बिना पहचाना हुआ । अपरिचित । अज्ञात ।

अनचेता—वि० [हिं० अन+चेतना] न सोचा हुआ । अचिंतित ।

अनचेती—वि० स्त्री० [हिं० अन+चेतना] न सोची हुई (बात, विषय आदि) ।

अनचैन(पु)†—सज्ञा स्त्री० [हिं० अन+चैन] बेचैनी । व्याकुलता । विकलता ।

अनचैनी†—[हिं० अनचैन+ई] (प्रत्य०)] चैन रहित । व्याकुलता से भरी । विकलतायुक्त ।

अनच्छ—वि० [स०] जो स्वच्छ, निर्मल या साफ न हो [को०] ।

अनजका—सज्ञा स्त्री० [स०] छोटी बकरी [को०] ।

अनजाद—सज्ञा पु० [फा० अंदाजह्] अनुमान । अटकल ।

अनजिका—सज्ञा स्त्री० [स०] छोटी बकरी [को०] ।

अनजान¹—वि० [हिं० अन+जानना] १ अज्ञानी । अनभिज्ञ । अन-नासमझ । नादान । सीधा । भोला भाला । २ बिना जाना हुआ । अपरिचित । अज्ञात ।

अनजान²—सज्ञा पु० १ एक प्रकार की लबी घास जिसे प्राय भैंसें ही खाती हैं और जिससे उनके दूध मे कुछ नशा आ जाता है । २ धजना नाम का पेड ।

अनजानत(पु)—क्रि० वि० [हिं० अन+जानना] न जानते या नसमझते हुए । उ०—(क) श्रीमद नृपअभिमान मोहबस जानत अनजानत हरि लायो ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६५ । (ख) व्याकुल भयो डरयो जिय भारी । अनजानत कीन्ही अधिकारी ।—सूर० १०।६४७ ।

अनजाया(पु)—वि० [हिं० अन+जाया=उत्पन्न] जन्म से परे । अजन्मा । उ०—बाबुल मेरा ब्याह करा दो अनजाया वर लाय ।—कबीर ग्र०, पृ० १०१ ।

अनजोखा—वि० बिना जोखा हुआ । बिना तौला हुआ ।

अनट(पु)—सज्ञा पुं० [स० अनृत=अत्याचार अथवा स० अन्+ऋत=अनृत, प्रा० अणट्ट=उपद्रव] उपद्रव । अनीति । अन्याय । अत्याचार । उ०—(क) सेवत सुत अनुज बालक निर आगवत अनट उपाय ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०६ । (ख) सहि कुबोल, साँसति सकल अँगइ अनट अपमान । तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गए सुजान ।—तुलसी ग्र०, पृ० १४२ ।

अनडीठ(पु)—वि० [स० अन्+दृष्ट प्रा० डिट्ठ, दिट्ट, हिं० डीठ] बिना देखा ।

अनडुज्जिह्वा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोजिह्वा । २ अननमूल [को०] ।

अनडुह—सज्ञा पुं० [सं०] १ बैल । २ वृषभराशि (को०) । ३. गोत्र प्रवर्तक एक ऋषि का नाम (को०) ।

अनडुही—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय।

अनड्वान्—संज्ञा पुं० [सं०] १ बैल। साँड़। २ सूर्य (उपनि०)। ३ वृष राशि [को०]।

अनड्वाही—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौ। गाय [को०]।

अनणु[1]—वि० [सं०] जो सूक्ष्म न हो [को०]।

अनणु[2]—संज्ञा पुं० मोटा अन्न [को०]।

अनत[1]—वि० [सं०] न झुका हुआ। सीधा।

अनत[2]—क्रि वि० [सं०] अन्यत्र, प्रा० अण्णत, अन्नत्त] और कहीं। दूसरी जगह में। पराए स्थान। उ०—राम लषन सिय सुनी मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ।—मानस, २।२३२।

अनति[1]—वि० [सं०] बहुत नहीं, थोड़ा।

अनति[2]—संज्ञा स्त्री० नम्रता का अभाव। विनीत भाव का न होना। अहंकार।

अनदेखा—वि० [हिं० अन+देखना] [स्त्री० अनदेखी] बिना देखा हुआ। उ०— देखी अनदेखी किये अँगु अँगु सबै दिखाइ। पैठति सी तन मैं सकुचि बैठी चितै लजाइ।—बिहारी र०, दो० ६१८।

अनदोष—वि० [हिं० अन+सं० दोष] दोषरहित। अदोष। निर्दोष। उ०—अनदोषे कौं दोष लगावनि, दई देइगी टारि।—सूर०, १०।२६२।

अनद्धा—क्रि० वि० [सं०] असत्यतः, अवस्तुतः या अलीकतः [को०]।

अनद्धामिश्रित वचन—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार समय के संबंध में झूठ बोलना। जैसे कुछ रात रहते ही कह देना कि सूर्योदय हो गया।

अनद्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद सरसों [को०]।

अनद्य[2]—वि० जो खाने योग्य न हो। अखाद्य [को०]।

अनद्यतन[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अनद्यतनी] आज या अद्यतन के पहले या पीछे का।

अनद्यतन[2]—संज्ञा पुं० पिछली रात के पिछले दो पहर और आनेवाली रात के अगले दो पहर और इनके बीच के सारे दिन को छोड़कर बाकी रात या भविष्य का समय। पिछली १२ बजे रात से आनेवाली १२ बजे रात तक का समय जो बीत रहा हो।

विशेष—पिछली आधी रात के पहले के समय को भूत अनद्यतन और आनेवाली रात के बाद के समय को भविष्य अनद्यतन कहते है।

अनद्यतन भविष्य—संज्ञा पुं० [सं०]१ आनेवाली आधी रात के बाद का समय। २ संस्कृत व्याकरण में भविष्य काल का एक भेद जिसका अब प्रायः प्रयोग नहीं होता।

अनद्यतन भूत—संज्ञा पुं० [सं०] १ बीती हुई आधी रात के पहले का समय। संस्कृत व्याकरण में भूतकाल का एक भेद जिसका अब प्रायः प्रयोग नहीं होता।

अनधिक—वि०[सं०]१ जो अधिक न हो। २ सीमाहीन। असीम। ३ पूर्ण। पूरा। ४ जिससे कोई बढ़कर न हो। ५ जिसे बढ़ाया न जा सके [को०]।

अनधिकार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अधिकार का अभाव। इख्तियार का न होना। प्रभुत्व का अभाव। २ बेबसी लाचारी। ३ अयोग्यता। अक्षमता।

अनधिकार[2]—वि० १ अधिकाररहित। बिना इख्तियार का। २ अयोग्य। योग्यता के बाहर।

अनधिकारचर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग्यता के बाहर बातचीत। जिस विषय में गति न हो उसमें टाँग अड़ाना।

अनधिकार चेष्टा—संज्ञा स्त्री०[सं०]बिना अधिकार के कोई कार्य या प्रयत्न करना [को०]।

अनधिकारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अधिकारशून्यता। अधिकार का न होना। २ अक्षमता।

अनधिकारी—वि० [सं० अनधिकारिन्] [स्त्री० अनधिकारिणी १ जिसे अधिकार न हो। जिसके हाथ में इख्तियार न हो। २ अयोग्य। अपात्र। कुपात्र। जैसे—पंडित लोग अनधिकारी को वेद नहीं पढ़ाते (शब्द०)।

अनधिकृत—वि०[सं०]१ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न किया गया हो। २ अधिकार से बाहर। जिसपर अधिकार न हो [को०]।

अनधिगत—वि० [सं०] बिना समझा हुआ। अनवगत। अज्ञात। बे जाना बूझा।

अनधिगत मनोरथ—वि० [सं०] जिसकी इच्छा पूर्ण न हुई हो। हताश [को०]।

अनधिगत शास्त्र—वि० [सं०] जिसका शास्त्र पर अधिकार न हो [को०]।

अनधिगम्य—वि०[सं०] जो पहुँच के बाहर हो। अप्राप्य। दुष्प्राप्य।

अनधिष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] निरीक्षण का न होना [को०]।

अनधिष्ठित—वि० [सं०] १ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ। २ जो उपस्थित न हो [को०]।

अनधिष्ठित—वि०[सं०]१ अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ हो। २ उपस्थित न हो [को०]।

अनधीन[1]—वि० [सं०] जो अधीन न हो। स्वतंत्र [को०]।

अनधीन[2]—संज्ञा पुं० स्वेच्छा पूर्वक स्वतंत्र रूप में काम करनेवाला बढ़ई [को०]।

अनधीनक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनधीन' [को०]।

अनध्यक्ष—वि० [सं०] १ जो देख न पड़े। अप्रत्यक्ष। नजर के बाहर। २ अध्यक्षरहित। बिना मालिक का।

अनध्ययन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अध्ययन न होना। अध्ययन का अभाव। २ अध्यायनकाल में बीच में पड़नेवाला विराम [को०]।

अनध्यवसाय—संज्ञा पुं०[सं०]१ अध्यवसाय का अभाव। शिथिलता। ढिलाई। २ एक काव्यालंकार।

विशेष—इसमें कई समान गुणवाली वस्तुओं के बीच नहीं बल्कि किसी एक वस्तु के संबंध में साधारण अनिश्चय का वर्णन किया जाता है। जैसे—'स्वेदसलिल रोमांच कुश गहि दुलही अरु नाथ। हियो दियो सँग हाथ कै हथलेये ही हाथ।' ... आली बनमाली को यह'। यह अलंकार शास्त्र में 'संदेह' के अंतर्गत ही माना है और इसमें कुछ चमत्कारिता भी नहीं प्रतीत होती है।

अनध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह दिन जिसमें शास्त्रानुसार पढ़ने पढ़ाने का निषेध हो।

विशेष—मनु के अनुसार अमावस्या, अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा ये चार दिन 'अनध्याय' के हैं। इनके अतिरिक्त प्रतिपदा को भी अनध्याय माना जाता है।

२ छुट्टी का दिन।

अनध्यास—वि० [सं०] भूला हुआ। विस्मृत।

अनन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] श्वासग्रहण की क्रिया। जीना [को०]।

अनन[2]ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्न'। उ०—पिय बिन तन पन अनन घन, भूषन वमन नरत्त।—पृ० रा०, ६६।२७६।

अनन[3]ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अनन्य'। उ०—बाजय अनहद ताल पखावज उमग्यो प्रेम अनन खोरी।—भीख० श०, पृ० ५१।

अननिⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अनन्य'। उ०—राह अगनि की अननि है बिरला पावै कोइ।—रामानंद, पृ० ५४।

अननुकूल—वि० [सं०] १ जो अनुकूल न हो। २ प्रतिकूल। विपरीत। उलटा। उ० जहाँ सामाजिक अनुभूति के विपरीत या अननुकूल वैयक्तिक अनुभूति काव्य मे आ जाती है वहाँ रसाभास हो जाता है। साहित्य०, पृ० २१९।

अननुख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ख्याति, ज्ञान या बोध का अभाव [को०]।

अननुज्ञात—वि० [सं०] १ जो स्वीकृत न हो। अस्वीकृत। २ जिसको अनुज्ञा या अनुमति न दी गई हो [को०]।

अननुभावक—संज्ञा [सं०] जो समझने मे असमर्थ हो [को०]।

अननुभावकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बोध या ज्ञान का अभाव। २ अबोध। अज्ञान। अज्ञात [को०]।

अननुभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय मे एक प्रकार का निग्रह स्थान।

विशेष—जब वादी किसी विषय को तीन बार कह चुके और सब लोग समझ जायँ, और फिर प्रतिवादी उसका कुछ उत्तर न दे तब वहाँ अननुभाषण होता है और प्रतिवादी की हार मानी जाती है।

अननुभूत—वि० [सं०] जिसका अनुभव न हो। अनुभव से परे। उ०—अननुभूति पदार्थो का साहित्यकार सर्जन करता रहता है।—शैली, पृ० २१।

अननुमत—वि० [सं०] १ जिसकी अनुमति या आज्ञा न हो। २ नापसंद। अप्रिय। ३ असंगत। अयुक्त [को०]।

अननुषंगी—वि० [सं० अननुषङ्गिन्] जो अनुषंगी न हो [को०]।

अननुष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] अनुष्ठान का अभाव [को०]।

अननूक्त—वि० [सं०] १ जिसका पाठ न किया गया हो। २ अनुत्तरित। जिसका उत्तर न दिया गया हो [को०]।

अननृत—वि० [सं०] जो अनृत या असत्य न हो। सत्य [को०]।

अनन्न—वि० [सं०] चावल या खाद्य जो हीन कोटि का हो [को०]।

अनन्नास—संज्ञा पुं० [ब्रँजी० (अमे०) नानस, पुर्त० अनानाज] रामबाँस की तरह का एक पौधा और उसका फल।

विशेष—यह पौधा दो फुट तक ऊँचा होता है। जड से दो तीन इंच ऊपर डंठल मे अंकुरो की एक गाँठ बँधने लगती है जो क्रमश मोटी और लंबी होती जाती है और रस से भरी होती है। इस मोटे अंकुरपिंड का स्वाद खटमीठा होता है।

अनन्य[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अनन्या] अन्य से संबंध न रखनेवाला। एकनिष्ठ। एक ही मे लीन। जैसे—(क) 'वह ईश्वर का अनन्य उपासक है।' 'इसपर हमारा अनन्य अधिकार है, (शब्द०)। (ख) सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमत।—मानस ४।३।

यौ०—अनन्यभक्त = जो किसी एक की ही भक्ति करे। एकनिष्ठ भक्त। २ अद्वितीय। जिसके समान दूसरा न हो। जैसे—अंगरेजी के अनन्य महाकवि शेक्सपीयर की कविता।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

अनन्य[2]—संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम।

अनन्यगति—वि० [सं०] जिसको दूसरा सहारा या उपाय न हो। जिसको और ठिकाना न हो। उ०—भेवहि अगति मन वचन करम अनन्य गति हर चरन की।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१।

अनन्यगतिक—वि० [सं०] जिसे दूसरा सहारा या उपाय न हो[को०]।

अनन्यगामी—वि० [सं० अनन्यगामिन्] किसी अन्य के पास न जानेवाला [को०]।

अनन्यगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण [को०]।

अनन्यचित्त—वि० [सं०] जिसका चित्त और जगह न हो। एकाग्रचित्त।

अनन्यचेता—वि० [सं० अनन्यचेतस्] अनन्यचित्त। एकाग्रचित्त [को०]

अनन्यचोदित—वि० [सं०] जो अन्य किसी से प्रेरित न हो। स्वतःप्रेरित (को०)।

अनन्यज—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

अनन्यजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० अनन्यजन्मन्] अनंग। कामदेव [को०]।

अनन्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अन्य के संबंध का अभाव। २ एकनिष्ठता। एकाश्रयता। एक ही मे लीन रहना। उ०—इस अनन्यता सहित धन्य अपने प्यारे को आराधा।—एकांत०, पृ० १३।

अनन्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] अनन्यता [को०]।

अनन्यदृष्टि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एकाग्र दृष्टि। एकटक देखते रहना[को०]।

अनन्यदृष्टि[2]—वि० एकटक देखनेवाला [को०]।

अनन्यदेव[1]—वि० [सं०] जिसका अन्य कोई देव न हो [को०]।

अनन्यदेव[2]—संज्ञा पुं० परमात्मा [को०]।

अनन्यनिष्पाद्य—वि० [सं०] किसी अन्य से निष्पन्न या संपादित न होने योग्य [को०]।

अनन्यपरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्यपरता का अभाव। एकनिष्ठता [को०]।

अनन्यपरायण—वि० [सं०] जो अन्य (स्त्री०) मे लीन या आसक्त न हो [को०]।

अनन्यपूर्व—वि० [सं०] वह पुरुष जिसके अन्य स्त्री न हो [को०]।

अनन्यपूर्वा—वि० स्त्री० [सं०] १ जो पहले किसी की न रही हो। २ कुमारी। क्वारी। बिनब्याही।

अनन्यभव—वि० [सं०] जिसके अन्य संतान उत्पन्न न हो [को०]।

अनन्यभाव[1]—वि० [सं०] अन्य के प्रति भाव या आस्था न रखनेवाला [को०]।

अनन्यभाव[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एकनिष्ठ भक्ति या भाव। २ परमात्मा के प्रति भक्ति या निष्ठा [को०]।

अनन्यमनस्क—वि० [सं०] जो अन्यमनस्क या अन्यनिष्ठ न हो [को०]।

अनन्यमना—वि० [सं० अनन्यमनस्] १ एकाग्रचित्त। २ एकनिष्ठ [को०]।

अनन्यमानस—वि० [सं०] १ एकाग्रचित्त। २ एकनिष्ठ [को०]।

अनन्ययोग¹—वि० [सं०] जिसका किसी अन्य का योग या साथ न हो [को०]।

अनन्ययोग²—क्रि० वि० किसी अन्य के साथ या बाद मे न आनेवाला [को०]।

अनन्यविषय—वि० [सं०] एकमात्र विषय या संदर्भ से संबंध रखनेवाला [को०]।

अनन्यविषयात्मा—वि० [सं० अनन्यविषयात्मन्] एक विषय पर स्थिर रहनेवाला [को०]।

अनन्यवृत्ति—वि० [सं०] १ अन्यवृत्ति न रखनेवाला। एकाग्र। दत्तचित्त। २ जिसकी दूसरी वृत्ति या जीविका न हो। ३ समान वृत्ति या स्वभाववाला [को०]।

अनन्यसाधारण—वि० [सं०] अन्य मे न मिलनेवाला। असाधारण [को०]।

अनन्यसामान्य—वि० [सं०] जो अन्य सामान्य या साधारण जनो से अलग हो। असाधारण [को०]।

अनन्यहृत—वि० [सं०] जो अन्य द्वारा हरण न किया गया हो। सुरक्षित [को०]।

अनन्याधिकार—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिसके देखने या बनानेका किसी एक व्यक्ति या कंपनी को ही अधिकार हो। पेटेंट। इजारा।

अनन्यार्थ—वि० [सं०] जो अन्य अर्थ या विषय के अंतर्गत न हो। जो गौण न हो। मुख्य या आधिकारिक [को०]।

अनन्याश्रित¹—वि० [सं०] १ जो अन्य का आश्रित या अधीन न हो। २ स्वाधीन। स्वतंत्र [को०]।

अनन्याश्रित²—संज्ञा पुं० वह संपत्ति जिसपर ऋण न हो [को०]।

अनन्वय—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्वय या संबंध का अभाव। २ काव्य मे वह अलंकार जिसमे एक ही वस्तु उपमान और उपमेय रूप मे कही जाय। जैसे—तेरे मुख की जोड को तेरो ही मुख आहि (शब्द०)।

विशेष—केशवदास ने इसी को अतिशयोपमा लिखा है।

अनन्वित—वि० [सं०] १ असंबद्ध। पृथक्। विलग। २ अंडबंड। अयुक्त।

अनन्वै(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनन्वय] दे० 'अनन्वय²'। उ०—जहाँ करत उपमेय को उपमेयै उपमान, तहाँ अनन्वै कहत है भूषन सकल सुजान।—भूषन ग्रं०, पृ० १३।

अनप—वि० [सं०] जलहीन। बिना जल का [को०]।

अनपकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ हानि करना। २ रुपया न लौटाना [को०]।

अनपकर्म—संज्ञा पुं० [सं० अनपकर्मन्] दे० 'अनपकरण' [को०]।

अनपकार—संज्ञा पुं० [सं०] अपकार या हानि का अभाव [को०]।

अनपकारक—वि० [सं०] १ जो हानिकारक न हो। २ निर्दोष [को०]।

अनपकारी—वि० [सं० अनपकारिन्] [स्त्री० अनपकारिणी] अपकार या हानि न करनेवाला [को०]।

अनपकृत¹—वि० [सं०] जिसका अहित न हुआ हो [को०]।

अनपकृत²—संज्ञा पुं० दोष का अभाव [को०]।

अनपक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] न जाना या न हटना [को०]।

अनपक्राम—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीछे न हटना। २ पराङ्मुख न होना [को०]।

अनपक्रामक—वि० [सं०] पीछे न हटनेवाला [को०]।

अनपक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनपकरण' [को०]।

अनपच—संज्ञा पुं० [हिं० अन (प्रत्य०)+पच] अजीर्ण। बदहजमी।

अनपच्युत—वि० [सं०] १ विचलित न होनेवाला। डावाँडोल न होनेवाला। २ विश्वासपात्र। विश्वसनीय [को०]।

अनपढ—वि० [हिं० अन=नहीं+√पढ] बेपढा। अपठित। मूर्ख। निरक्षर।

अनपत्य—वि० [सं०] [स्त्री० अनपत्या] निःसंतान। लावल्द।

अनपत्यक—वि० [सं०] दे० 'अनपत्य'।

अनपत्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निःसंतान होना [को०]।

अनपत्रप—वि० [सं०] निर्लज्ज। बेशर्म [को०]।

अनपदेश—संज्ञा पुं० [सं०] वह तर्क जो ग्राह्य न हो। अग्राह्य तर्क [को०]।

अनपधृष्य—वि० [सं०] पराजित या विजित न करने योग्य [को०]।

अनपभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं०] १ जो अपभ्रंश न हो। २. शुद्ध शब्द [को०]।

अनपर¹—वि० [सं०] १ अपर या अन्य से रहित। २. जिसका कोई अनुयायी न हो। ३ अकेला। एकमात्र [को०]।

अनपर²—संज्ञा पुं० ब्रह्म [को०]।

अनपराद्ध—वि० [सं०] अपराधशून्य [को०]।

अनपराध—वि० [सं०] अपराधरहित। निर्दोष। बेकसूर।

अनपराधी—वि० [सं० अनपराधिन्] [स्त्री० अनपराधिनी] निरपराध। निर्दोष। बेकसूर।

अनपसर—वि० [सं०] १ जिसमे निकलने का मार्ग न हो। २ जो न्याय न हो [को०]।

अनपसरण—संज्ञा पुं० [सं०] निकलने के मार्ग का अभाव [को०]।

अनपाकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ वचन या इकरार पूरा न करना। २ ऋण या मजदूरी न चुकता करना [को०]।

अनपाकरणविवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ इकरार पूरा न करने का मुकदमा या अभियोग। २ ऋण या मजदूरी न देने का अभियोग [को०]।

अनपाकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा के काम न करना। इकरार के मुताबिक तनखाह या मजदूरी न देना। जैसे—मजदूरी न देना, दी हुई वस्तु लौटा लेना।

विशेष—स्मृतियों तथा कौटिल्यीय अर्थशास्त्र मे इसका प्रयोग इसी अर्थ मे है। अनपाकर्म नामकी संज्ञा दो प्रकार का है। एक

तो वेतन सबंधी और दूसरा दान सबंधी पराशर ने लिखा है कि श्रमी या भृत्य को उसके काम के बदले वेतन न देना या वेतन देकर लौटा लेने का काम 'वेतनस्यानपाकर्म' है। इसी प्रकार दिए हुए माल को लौटाना और ग्रहण किए हुए माल को देना 'दत्तस्यानपाकर्म' है।

अनपाकर्मविवाद—संज्ञा पुं० [सं०] मजदूरों और काम करानेवाले पूँजीपतियों के बीच वेतन संबंधी झगड़ा।

विशेष—नारद ने लिखा है कि कर्मस्वामी अर्थात् पूँजीपति भृत्यों को निश्चित की हुई भृति दें (ना० स्मृ० ६०२)।

अनपाय¹—वि० [सं०] अपाय का क्षय से रहित [को०]।

अनपाय²—संज्ञा पुं० अनश्वरता। २ नित्यता। ३ शिव [को०]।

अनपायनी—वि० स्त्री० [सं० अनपायिनी] विश्लेपरहित। स्थिर। दृढ़। उ०—प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहिं श्रीराम।—मानस, ७।३४।

अनपायिपद—संज्ञा पुं० [सं०] स्थिर पद। अनश्वर पद। परम पद। मोक्ष।

अनपायी—वि० [सं० अनपायिन्] [स्त्री० अनपायिनी] निश्चल। स्थिर। अचल। दृढ़। अनश्वर।

अनपाश्रय—वि० [सं०] १ जो किसी का आश्रित न हो। २ स्वतंत्र [को०]।

अनपेक्ष—वि० [सं०] १ अपेक्षा या चाह न रखनेवाला। २ तटस्थ। ३ निष्पक्ष। ४ संबंधहीन। ५ स्वतंत्र [को०]।

अनपेक्षा¹—वि० [सं०] अपेक्षारहित। निरपेक्ष। बेपरवाह।

अनपेक्षा²—संज्ञा स्त्री० अपेक्षा या चाह का अभाव [को०]।

अनपेक्षित—वि० [सं०] जो अपेक्षित न हो। जिसकी परवाह न हो। जिसकी चाह न हो।

अनपेक्षी—वि० [सं० अनपेक्षिन्] दे० 'अनपेक्ष' [को०]।

अनपेक्ष्य—वि० [सं०] जो अन्य की अपेक्षा न रखे। जिसे किसी के सहारे की आवश्यता न हो। जिसे किसी की परवा न हो। उ०—साक्षी हो अनपेक्ष्य मेरे अर्थ, सत्य कर दे सर्व-सहन-समर्थ।—साकेत, पृ० १७८।

अनपेत—वि० [सं०] १ जो गत न हो। २ अव्यतीत। जो बीता न हो। ३ जो पृथक् या अलग न हो। ४ विश्वासपात्र। विश्वसनीय। ५ निकट। समीप [को०]।

अनप्त—वि० [सं०] जो जलयुक्त न हो [को०]।

अनप्रापत(पु)—वि० [हिं० अन + सं० प्राप्त, हिं० प्रापत, परापत] अप्राप्त। उ०—अनप्रापत को कहा तजे, प्रापत तजे सो त्यागी है।—कबीर रे०, पृ० ४९।

अनप्रासन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्नप्राशन'। उ०—आजु कान्ह करिहैं अनप्रासन।—सूर० १।७०७।

अनफाँस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अन + फाँस = पाश] मोक्ष। मुक्ति। उ०—जेकर पास अनफाँस, कहु जिय फिकिर सँभारि कै।—जायसी (शब्द०)।

अनफा—संज्ञा पुं० [यूनानी, ग्री० अनफे] ज्योतिष के सोलह योगों में से एक।

विशेष—कुंडली में जिस स्थान पर चंद्रमा बैठा हो उससे बारहवें स्थान में यदि कोई ग्रह हो तो इस योग को अनफा कहते हैं।

अनबछी(पु)—वि० [हिं० अन + वाछित, प्रा० वछिय] अवांछित। अनचाही। उ०—और सकल यह बरतनि कहिए अनबछी ही आवै जू।—सुदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३११।

अनबन¹—संज्ञा पुं० [हिं० अन = नहीं + √बन = बनना] बिगाड़। विरोध। फूट। खटपट।

अनबन²(पु)—वि० भिन्न भिन्न। नाना (प्रकार)। विविध। अनेक। उ०—(क) अनबन बानी तेहि के माहिं। बिन जाने नर भटका खाहिं।—कबीर (शब्द०)। (ख) पुनि अभरन बहु काढ़ा अनबन भाँति जराव।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३४४।

अनबनता(पु)—वि० [हिं० अन + √बन] जिसमें बनत या बनाव या मेल न हो। उ०—कबीर कहते क्यों बनै अनबनता के संग, दीपक को भावै नहिं जरि जरि मरैं पतंग।—कबीर ग्रं०, पृ० ५८।

अनबना(पु)—वि० [हिं० अनबन] [वि० स्त्री० अनबनी] बुरा। खराब। बिगड़ा। उ०—बन्यो अनबन्यो समुझि कै, मोधि लेहिंगे साधु। —भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ४।

अनबनियत(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अनबन] वह जो बननेवाली न हो। उ०—गुरु बिन मिटइ न दुगदुगी अनबनियत न नसाइ।—कबीर (शब्द०)।

अनबलई(पु)—वि० [हिं० अन + √बल] बिना जलाया। जो प्रज्वलित न किया गया हो। उ०—अनबलई दव परजलई।—बीसल० रास०, पृ० ६९।

अनवाद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनबाद'। उ०—आनंदघन सुजान सुनौ बिनती जिन अनबाद करौ निहारी।—घनानंद, पृ० ५५५।

अनबिछा†—वि० [हिं० अन + √बिछ] बिना बिछाया हुआ। नंगा उ०—अपनी कोठरी में एक अनबिछे तखत पर लेटी थी।—त्याग, पृ० २१।

अनबिधा†—वि० [हिं० अन + सं० विद्ध] दे० 'अनविधा'।

अनबिधा—वि० [सं० अन् + विद्ध] बिना बेधा हुआ। बिना छेद किया हुआ।

अनबीह(पु)—वि० [हिं० अन + सं० भीत, प्रा० भीअ √बीह] निर्भय। निडर। उ०—लोहाना अनबीह लीय बारत्त समर्थ्य।—पृ० रा० ४।२०।

अनबूझ—वि० [हिं० अन + √बूझ] अनजान। नासमझ। मूर्ख। उ०—अंधेर नगरी अनबूझ राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६७०।

अनबूझा(पु)—वि० [हिं०] बेसमझाबूझा। अबूझा।

अनबूडा(पु)—वि० [हिं० अन + √बूड] न डूबा हुआ। जो गहरे न पैठा हो। उ०—अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग।—बिहारी र०, दो० ९४।

अनबेधा—वि० [हिं०] दे० 'अनविधा'।

अनबोल—वि० [हिं० अन = नहीं + √बोल] १ अनबोला। न बोलनेवाला। २ चुप्पा। मौन। ३ गूँगा। बेजबान। ४ जो अपने सुख दुख को न कह सके।

विशेष—पशुओं के लिये इस विशेषण का बहुत प्रयोग प्राप्त होता है।

अनबोलता—वि० [हिं०] [स्त्री० अनबोलती] दे० 'अनबोल'।

अनबोला†—वि० [हिं०] दे० 'अनबोलता'।

अनबोला†—संज्ञा पुं० [हिं० अन+बोल] बोलचाल या बातचीत का अभाव। अनबन। अनमेल।

अनबोले(पु)—क्रि० वि० [हिं०] बिना बोले हुए। उ०—मैं तो तुम्हैं हँसऊ खेलतहिं छाँडि गई, आई अब न्यारे अनबोले रहे दोऊ।—सूर०, १०।२७६१।

अनब्बर(पु)—वि० [सं० अन्+अब्बर= अबल] बली। बलवान। उ०—चढ्यौ चहुआन अनब्बर।—पृ० रा, ५८। ७।

अनब्याहा—वि० [हिं० अन+ब्याहा] [स्त्री० अनब्याही] अविवाहित। बिन ब्याहा। क्वाँरा। उ०—अनब्याही कहि पुरुष सो अनुरागी जो होइ। ताहि अनूढा कहत हैं कवि कोविद सब कोइ।—रसराज, पृ० १५।

अनभग(पु)—वि० [हिं० अन+भग=टूटना] अखंडित। अभग। परिपूर्ण। उ०—थरहरात उर कर कँपत फरकत अधर सुरग। परखि पीउ पलकनि प्रगट पीक लीक अनभग। पद्माकर ग्र०, पृ० १६६।

अनभजता(पु)—वि० [हिं० अन+भजना] न भजनेवाला। न चाहनेवाला। उ०—इक भजते को भजें एक अनभजतन भजहीं।—नंद० ग्र०, पृ० २०।

अनभया(पु)—वि० [हिं० अन+भया] बिना हुए। बिना सत्ता या स्थिति हुए। उ०—जागेउ नृप अनभएँ बिहाना।—मानस, १।१७२।

अनभल(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० अन=नहीं+भल] बुराई। हानि। अहित। उ०—जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा।—मानस, २।१६।

मु०—अनभल ताकना=बुराई चाहना। उ०—जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि येहु फल परिपाका।—मानस, २।२१।

अनभला(पु)—वि० पुं० [हिं० अन+भला] [स्त्री० अनभली] बुरा। निंदित। हेय। खराब। उ०—कटु कहिए गाढे परे सुनि समुझि सुसाई। करहिं अनभले को भलो आपनी भलाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७२।

अनभाउता(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनभावता'। उ०—त्यों पदमाकर सौति सँजोगनि रोग भयो अनभाउतो जी को।—पद्माकर ग्र०, पृ० १७०।

अनभाया—वि० [[हिं० अन+भावना= अच्छा लगना] [स्त्री० अनभाई] जो न भावे। जिसकी चाह न हो। अप्रिय। अरुचिकर। नापसंद। उ०—अवध सकल नर नारि विकल अति, अँकनि वचन अनभाये। तुलसी रामवियोग सोग बस समुझत नहिं समुझाए।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६२।

अनभायौ(पु)—वि० [हिं०] अप्रिय। अनिष्ट। उ०—गरुड को कहा कियो अनभायो। जातें यह इहि दह में आयो।—नंद ग्र०, पृ० २८२।

अनभाव†—संज्ञा पुं० [[हिं० अन+भाव] भाव या प्रेम का अभाव।

अनभावत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनभावता'।

अनभावता(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनभाया'। उ०—तेरे लाल मागन खायौ। ऊखल चढ़ि, सीके कौं लीन्हौ अनभावत भुइँ मैं ढरकायौ।—सूर० १०।३३१।

अनभावरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अन+भावरी] नापसंद होने का भाव या स्थिति। उ०—भावरि अनभावरि भरे करौ कोरि बकवादु। अपनी अपनी भाँति कौ छुटै न सहजु सवादु।—बिहारी र०, दो० ६३७।

अनभिगम्य—वि० [सं०] जो अभिगम्य या समझने योग्य न हो। अबोध। उ०—सदैव के लिये यह उन्हें अनभिगम्य हुआ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७५।

अनभिग्रह¹—वि० [सं०] भेदशून्य। समभावविशिष्ट।

अनभिग्रह²—संज्ञा पुं० १ भेदशून्यता। एकरूपता। समकक्षता। २ जैन मतानुसार सब मतों को अच्छा और सब से मोक्ष मानने का मिथ्यात्व।

अनभिज्ञ—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनभिज्ञा, संज्ञा अनभिज्ञता] अज्ञ। अनजान। अनाड़ी। मूर्ख। उ०—(क) मैं तब कितनी अनभिज्ञा थी प्रतिबिंबित शशि को पाकर। वीणा, पृ० ३६। २ अपरिचित। नावाकिफ। उ०—(ख) निपट अनभिज्ञा अभी तुम हो बहिन, प्रेमिका का गर्व रखती हो वृथा।—ग्रंथि, पृ० ७८।

अनभिज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अज्ञता। अनाड़ीपन। अनजानपन। मूर्खता। २ परिचय का अभाव। नावाकफियत।

अनभिप्रेत—वि० [सं०] १ अभिप्रायविरुद्ध। अनभिमत। तात्पर्य से भिन्न। और का और। जैसे—आपने इस बात का अनभिप्रेत अर्थ लगाया है (शब्द०)। २ अनिष्ट। इच्छा के प्रतिकूल। नापसंद। जैसे—ऐसी ऐसी कार्रवाइयाँ हमें अनभिप्रेत हैं—(शब्द०)।

अनभिभूत—वि० [सं०] १ जो पराजित न हो। २. अबाधित [को०]।

अनभिमत—वि० [सं०] १. मत के विरुद्ध। राय के खिलाफ। २. तात्पर्यविरुद्ध। और का और। ३ अनभीष्ट। नापसंद।

अनभिमान—संज्ञा पुं० [सं० अन्+अभिमान] अभिमान का अभाव। उ०—संपत्ति में अनभिमान और युद्ध में जिनकी स्थिरता है वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २६४।

अनभिमानुक—वि० [सं०] किसी के प्रति दुर्भाव न रखनेवाला [को०]।

अनभिम्लात—वि० [सं०] जो मुरझाया या कुम्हलाया न हो [को०]।

अनभिम्लातवर्ण—वि० [सं०] जिसका वर्ण या रंग फीका या मंद न हुआ हो [को०]।

अनभिरूप—वि० [सं०] जो सदृश या समान न हो। २ जो सुंदर न हो [को०]।

अनभिलाप¹—वि० [सं०] इच्छाशून्य [को०]।

अनभिलाप²—संज्ञा पुं० १. भूख या इच्छा का अभाव। २. रस या स्वाद का अभाव [को०]।

अनमनीय—वि० [सं० अ+नमनीय] जो नमनीय न हो। दृढ। कठोर।

अनमन्न(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनमना'। उ०—अढर ढरहि अनमन्न महि ढरहि अठार प्रकार।—पृ० रा०, ५५।१२८।

अनमस्यु—वि० [सं०] नमस्कार न करनेवाला [को०]।

अनमाँगा†—वि० [हिं० अन+माँगना] जो माँगा हुआ न हो। अयाचित।

अनमाप(पु)—वि० [हिं० अन+माप] जिसकी माप न की जा सके। अमेय। अपरिमाण। उ०—नमो निरंजन देव किन पार न पायो, अमित अथाह अतोल नमो अनमाप अजायो।—राम० धर्म०, पृ० २२२।

अनमापा(पु)—वि० [हिं० अन+मापना] [स्त्री० अनमापी] जिसकी माप न हो सके। जो मापा न जा सके। उ०—वह दर्द कि जिसकी अनमापी गहराई में।—ठंढा लोहा, पृ० ६६।

अनमाया—वि० [हिं० अन+मायना] जो अँट न सके। जो समा न सके। उ०—भेंटी मातु भरत भरतानुज क्यों कहौं प्रेम अमित अनमायो।—तुलसी (शब्द०)।

अनमारग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अन=बुरा+मारग] १. कुमार्ग। बुरी राह। २. दुराचार। अन्याय। अधर्म। पाप। उ०—अकरम, अविधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग, अनरीति। जाकौ नाम लेत अघ उपजै सोई करत अनीति।—सूर०, १।१२६।

अनमिख¹(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनिमिष'। उ०—अनमिख लोचन बाल के यातें नंदकुमार।—मतिराम ग्रं०, पृ० ४५२।

अनमिख²(पु)—क्रि० वि० दे० 'अनिमिष'। उ०—मंद मृदु मुसकानि अनमिख पेखिहौं।—मतिराम ग्रं०, पृ० ३३०।

अनमिख³(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अनिमिष'।

अनमितपच—वि० [सं० अनमितम्पच] १. बिना नाप जोख किए न पकानेवाला। २. कृपण। कंजूस [को०]।

अनमित(पु)—वि० [हिं० अन+मित] अमित। अपार। उ०—आरम कान गज आरुहे अनमित गेन उलट्टियौ।—रा० रू० पृ० १५४।

अनमित्त(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनमित'। उ०—अनमित्त मत्ति बल अप्रमाइ।—पृ० रा०, ६।१३५।

अनमित्ती(पु)—वि० [हिं० अन+मिति] दे० 'अनमित'। उ०—आगी फौज लखाँ अनमित्ती, जोधतो मारग जगपत्ती।—रा० रू०, पृ० २२५।

अनमित्र¹—वि० [सं०] १. जो अमित्र या शत्रु न हो। २. जिसका कोई अमित्र या शत्रु न हो [को०]।

अनमित्र²—संज्ञा पुं० [सं०] १. अमित्र या शत्रु का अभाव। २. अयोध्या का एक राजा [को०]।

अनमियाँ(पु)—वि० [सं० अ+नमित] न झुकनेवाला। अनम्र। उ०—पिच्छम घर सोहै वर पामे, नर वस किया अनमियाँ नामे।—रा० रू०, पृ० १२।

अनमिल(पु)—वि० [हिं० अन+√मिल] १. बेमेल। बेजोड़। असंबद्ध। बेतुका। बे सिर पैर का। उ०—(क) अनमिल आखर अरथ न जापू।—मानस, १।१५। (ख) मिल्यो यवन मदमत्त बकत कछु अनमिल बातें।—मतिराम (शब्द०)। २. पृथक्। भिन्न। अलग। निर्लिप्त। उ०—रहे अदट दट नहिं जुग जुग पार न पावै काला। अनमिल रहे मिले नहिं जग मे तिरछी उनकी चाल। कबीर (शब्द०)।

अनमिलत(पु)—वि० [हिं०] [स्त्री० अनमिलती] दे० 'अनमिल'।

अनमिलता—वि० [हिं० अनमिल+ता (प्रत्य०)] [स्त्री० अनमिलती] अप्राप्य। अलभ्य। अदृश्य। उ०—कहै पदमाकर सु जादा कहाँ कौन अब जाती मरजादा है मही की अनमिलती।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५६।

अनमिला—वि० [हिं० अन+मिलना] जो मिला न हो। बेमेल। उ०—इसी से इन अनमेल परदेशियों में विशेष मेल उत्पन्न करते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८७१।

अनमिष¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनिमिष] मछली। अनेकार्थ०, पृ० ८०।

अनमिष²(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनमिष'। उ०—अनमिष नैन सुनैन ये निरखत अनिमिष नैन।—मतिराम ग्रं० पृ० ४४७।

अनमिषनैनता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अनमिष+नयन+ता (प्र०)] पलकों के न गिरने की स्थिति या दशा। बिना पलक गिराए नेत्रों से लगातार देखने की स्थिति। उ०—तो मैं अनमिष-नैनता, मोहन मूरति नैन। अनमिष नैन सुनैन ये निरखत अन मिष नैन।—मतिराम ग्रं०, पृ० ३४३।

अनमी(पु)—वि० [सं० अ+नमित प्रा० अ+णमित्र] जो अधीन या झुका हुआ न हो। अपराजित। उ०—चारमै सूर सो करन रग, अनमी नमाइ तिन करै अग।—पृ० रा०, १।७०६।

अनमीच(पु)—क्रि० वि० [हिं० अन+मिच] मृत्यु के बिना। बिना मौत के उ०—है घनआनद सोच महा मरिबो अनमीच बिना जिय जीबौ।—घनानंद, पृ० ४८।

अनमीलना(पु)—क्रि० स० [हिं० अन+मीलना=मींचना] (आँख) खोलना। उ०—नयनन मिलि कछु अनमीलनि नैंमुक नींद को भाव सुभोयो।—(शब्द०)।

अनमुख(पु)—क्रि० वि० [अन्य+मुख] अन्य मुख से। दूसरे के मुँह से। उ०—जीकारो अनमुख जुडै आ जगत् अभिलाख।—बाँकीदास ग्रं०, भा० ३, पृ० ७८।

अनमूरति(पु)—वि० [हिं० अन+मूरति] अमूर्त। निराकार। मूर्तिहीन। उ०—अछय अभय अनुभव अनमूरति मन सजीवन नाथ।—गुलाब बानी, पृ० ५२।

अनमेष(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनिमेष'। उ०—अनमेष जपत इच्छा मघन, आनद इर भूपन तजै।—पृ० रा०, २५। १०८।

अनमेल—वि० [हिं० अन+मेल] १. बेमेल। बेजोड़। असंबद्ध। २. बिना मिलावट का। विशुद्ध। खालिस।

अनमोल—वि० [हिं० अन+मोल] १. अमूल्य। मोलरहित। बेमोल। जिसका कोई मूल्य न हो। बहुमूल्य। २. सुंदर। उत्तम। उ०—विकटी भृकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छवि है।—तुलसी ग्रं, पृ० १६४।

अनम्र—वि० [सं०] अविनीत। नम्रतारहित। उद्धत। उद्दंड। अकड़-वाला। ऐंठवाला।

अनय—संज्ञा पुं० [सं०] १. अमंगल। दुर्भाग्य। विपद। उ०—सब कुरुगन को अनय बीज अनुचित अभिमानी।—भारतेंदु ग्रं०,

अनर्गल—वि० [सं०] १ प्रतिबंधशून्य। बेरोक। बेरुकावट। बेधड़क। २ विचारशून्य। व्यर्थ। अडबंड। ३ लगातार। उ०—वहै अनर्गल अश्रुधार यह ज्यों पावस का मेह।—एकात, पृ० ४।

अनर्गलप्रलाप—संज्ञा पुं० [सं० अनर्गल+प्रलाप] अडबंड बोलना या बकना [को०]।

अनर्घ—वि० [सं०] १ अमूल्य। कीमती। बहुमूल्य। २ अल्प मूल्य का। कम कीमत। सस्ता।

यौ०—अनर्घराघव।

अनर्घक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] बाजार की कीमत से अधिक या कम कीमत पर खरीदना।

अनर्घराघव—संज्ञा पुं० [सं०] मुरारि कृत का संस्कृत नाटक [को०]।

अनर्घविक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] बाजार भाव से अधिक या कम दाम पर बेचना।

विशेष—चाणक्य ने इस अपराध मे १००० पण दंड लिखा है।

अनर्घ्य—वि० [सं०] १ अपूज्य। पूजा के अयोग्य। २ जिसका मूल्य न लगा सके। बहुमूल्य। अमूल्य। ३ कम मूल्य का (को०)।

अनर्जित—वि० [सं०] १ अर्जित या प्राप्त न किया हुआ। न कमाया हुआ। २ अप्राप्त (को०)।

अनर्जित आय—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह आय या लाभ जो वस्तु के एकाएक महँगे हो जाने पर उसको उत्पन्न करनेवाले या बेचनेवाले को हो जाय अर्थात् जिसकी संभावना पहले न रही हो।

अनर्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ विरुद्ध अर्थ। अयुक्त अर्थ। उलटा मतलब उ०—उसने ग्रंथ का अनर्थ किया है (शब्द०)। २ कार्य की हानि। बिगाड। नुकसान। उपद्रव। उत्पात। खराबी। बुराई। आपद्। विपद्। अनिष्ट। गजब। उ०—(क) अनरथ अवध अरंभेउ जब ते।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मैं सठ सब अनरथ कर हेतु—तुलसी (शब्द०)। ३ वह धन जो अधर्म से प्राप्त किया जाय। ४ भय की प्राप्ति।

अनर्थ[2]—वि० १ व्यर्थ। निकम्मा। २ अभागा। भाग्यविहीन। ३ खराब। त्रुटिपूर्ण। ४ तुच्छ। गरीब। ५ भिन्न या विपरीत अर्थवाला। अर्थविहीन। निरर्थक [को०]।

अनर्थअनर्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थअनर्थानुबन्ध] किसी शक्तिशाली राजा को लडने के लिये उभाडकर आप अलग हो जाना। यह अर्थ के भेदों मे से है।

अनर्थअर्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थअर्थानुबंध] अपने लाभ के लिये शत्रु या पडोसी को धन तथा सैन्य (कोशदंड) द्वारा सहायता पहुँचाना।

अनर्थक—वि० [सं०] १ निरर्थक। अर्थरहित। जिसका कुछ अभिप्राय या अर्थ न हो। २ व्यर्थ। बेमतलब। बेफायदा। निष्प्रयोजन।

अनर्थकर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनर्थकारी] १ बेकार काम करनेवाला। २ अर्थकर या लाभदायक न हो [को०]।

अनर्थकारी—वि० [सं० अनर्थकारिन्] [स्त्री० अनर्थकारिणी] १ विरुद्ध अर्थ करनेवाला। उलटा मतलब निकालनेवाला। २ अनिष्टकारी। हानिकारी। उपद्रवी। उत्पाती। नुकसान पहुँचानेवाला। ३ व्यर्थ काम करनेवाला।

अनर्थत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यर्थता। २ अर्थशून्यता [को०]।

अनर्थदर्शी—वि० [सं० अनर्थदर्शिन्] [स्त्री० अनर्थदर्शिनी] अनर्थ की ओर दृष्टि रखनेवाला। बुराई सोचने या चाहनेवाला। हित पर ध्यान न रखनेवाला।

अनर्थनाशी—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थनाशिन्] शिव [को०]।

अनर्थनिरनुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थनिरनुबन्ध] अर्थ के भेदों मे से एक। किसी हीन शक्तिवाले राजा को उभाडकर तथा लडने के लिये प्रोत्साहित कर स्वयं पृथक् हो जाना।

अनर्थबुद्धि—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि व्यर्थ या गई बीती हो [को०]।

अनर्थभाव—वि० [सं०] दुष्ट प्रकृति। बुरे स्वभाववाला [को०]।

अनर्थलुप्त—वि० [सं०] निस्सार विषयों से सुरक्षित या मुक्त [को०]।

अनर्थसंशय—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऐसा कार्य जिसमे भारी अनिष्ट की शंका हो। २ संपत्ति जो संकट या संदेह से मुक्त हो [को०]।

अनर्थसंशयापद—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुओं के साथ मित्रों की लडाई का अवसर।

अनर्थसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चल मित्र या आक्रंद (वह मित्र जो शत्रु या विजिगीषु के आश्रय मे हो) का मेल या संधि।

अनर्थानर्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थानर्थानुबन्ध] किसी बलशाली राजा को युद्ध के लिये उभाडकर स्वयं अलग हो जाना [को०]।

अनर्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थानुबन्ध] शत्रु का इस प्रकार नाश न होना कि अनर्थ की आशंका मिट जाय।

अनर्थापद—संज्ञा पुं० [सं०] चारों ओर से शत्रुओं का भय।

अनर्थार्थसंशय—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी स्थिति जिसमे एक ओर तो अर्थ प्राप्ति की संभावना हो और दूसरी ओर अनर्थ की आशंका।

अनर्थार्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थार्थानुबन्ध] अपने लाभ के लिये शत्रु या पडोसी राजा को धन और सेना द्वारा सहायता पहुँचाना [को०]।

अनर्थ्य—वि० [सं०] अनर्थक [को०]।

अनर्ह—वि० [सं०] अयोग्य। अनधिकारी। अपात्र।

अनलंकृत—वि० [सं० अन्+अलङ्कृत] अलंकारविहीन। उ०—आकर्षित कर रहा विश्व को अनलंकृत भी अमल कमल है, सदरता का रूप सरल है।—नागरिका, पृ० ७६।

अनलंकरिष्णु—वि० [सं० अन्+अलङ्करिष्णु] १ जो अलंकृत न हो। २ अलंकार की इच्छा न रखनेवाला [को०]।

अनल—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि। आग। २ अग्नि के अधिष्ठाता। देव (को०)। ३ पाचनशक्ति (को०)। ४ पित्त (को०)। ५ वायु (को०)। ६ अष्टवसुओं मे से पंचम वसु (को०)। ७ एक पितृदेव (को०)। ८ परमेश्वर (को०)। ९ जीव (को०)। १० विष्णु (को०)। ११ वासुदेव (को०)। १२ एक वानर (को०)। १३ एक मुनि (को०)। १४ कृत्तिका नक्षत्र (को०)। १५ पचासवाँ संवत्सर (को०)। १६ र वर्ण या अक्षर (को०)। १७ तीन की संज्ञा। १८ माली नामक राक्षस का पुत्र और विभीषण का मंत्री। १९ चीता। चित्रक। २० भिलावाँ।

अनवट२—संज्ञा पु० [सं० नयन, हिं० अयन+ओट या सं० अध+पट या देशी] कोल्हू के बैल की आँखो की पट्टी या ढक्कन। ढोका।

अनवद्य—वि० [सं०] अनिंद्य। निर्दोष। बेऐब। उ०—हमरें जान सदासिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।—मानस, १।६०।

अनवद्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्दोषिता। दोष का अभाव। उ०—सत्य की अनवद्यता से आ गए विस्तार मे।—वेला, पृ० ७४।

अनवद्यत्व—संज्ञा पु० [सं०] अनवद्यता [को०]।

अनवद्यरूप१—संज्ञा पुं० [सं०] दोषरहित रूप। वह रूप जिसमे कोई दोष न हो [को०]।

अनवद्यरूप२—वि० [सं०] निर्दोष रूपवाला [को०]।

अनवद्यांग—वि० [सं० अनवद्याङ्ग] [स्त्री० अनवद्याङ्गी] सुंदर अंगोवाली। सुडौल। खूबसूरत।

अनवद्राण—वि० [सं०] न सोनेवाला। अनिद्रित [को०]।

अनवधर्ष्य—वि० [सं०] जिसको धर्षित न किया जासके [को०]।

अनवधान—संज्ञा पु० [सं०] असावधानी। अमनोयोग। चित्तविक्षेप। प्रमाद। गफलत। बेपरवाही।

अनवधानता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ध्यानहीनता। लापरवाही। असावधानी। गफलत। उ०—उसने अनवधानता से उस प्रश्न को टाल दिया।—कंकाल, पृ० १४३।

अनवधि१—वि० [सं०] असीम। बेहद। बहुत ज्यादा।

अनवधि२—क्रि० वि० निरतर। सदैव। हमेशा।

अनवन१—वि० [सं०] अरक्षाकर। विपत्तिकारक [को०]।

अनवन२—संज्ञा पुं० अरक्षा [को०]।

अनवनामितवैजयत—संज्ञा पुं० [सं० अनवनामितवैजयन्त] भावी विश्व जिसमे विजयध्वजा बराबर ऊँची रहेगी (बौद्ध)।

अनवपूरण—वि० [सं०] असयुक्त पर चारो ओर फैलनेवाला [को०]।

अनवबुध्यमान—वि० [सं०] जो बुद्धिहीन या विकृत बुद्धिवाला न हो [को०]।

अनवभ्र—वि० [सं०] १ जो अक्षुण्ण हो। २ जो नश्वर न हो। ३ स्थायी [को०]।

अनवम—वि० [सं०] १ जो तुच्छ या क्षुद्र न हो। २ उदात्त। श्रेष्ठ [को०]।

अनवय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्वय] वश। कुल। खानदान।

अनवर—वि० [सं०] १ जो कनिष्ठ न हो। २ श्रेष्ठ। बडा। ३ जो न्यून न हो [को०]।

अनवरत—क्रि० वि० [सं०] निरतर। सतत। अजस्र। अहर्निश। सदैव। लगातार। हमेशा। उ०—अनवरत उठे कितनी उमग।—कामायनी, पृ० १६४।

अनवरार्घ्य—वि० [सं०] १ मुख्य। प्रधान। २ सर्वोत्तम [को०]।

अनवरोध१—वि० [सं०] बिना रोक या बाधा का। निरतर। अबाध। उ०—सरस ज्ञान अनवरोध करता नर रुधिरपान।—गीतिका, पृ० ७०।

अनवरोध२—संज्ञा पु० अवरोध का अभाव [को०]।

अनवलंब१—वि० [सं० अनवलम्ब] बिना अवलंब का। बेसहारा [को०]।

अनवलंब२—संज्ञा पु० स्वतत्रता। अवलब का अभाव [को०]।

अनवलंबन१—वि० [सं० अनवलम्बन] जिसे अवलब या सहारा न हो [को०]।

अनवलंबन२—संज्ञा पु० स्वतत्रता [को०]।

अनवलंबित—वि० [सं० अनवलम्बित] आश्रयहीन। निराधार। बेसहारा।

अनवलाप—वि० [सं०] वचनशून्य। मौन। उ०—हुए शीर्ण खो खोकर, अनवलाप रो रोकर।—अर्चना, पृ० १४।

अनवलेप—वि० [सं०] १ अभिमानशून्य। २ अवलेप या लेप से रहित [को०]।

अनवलोभन—संज्ञा पुं० [सं०] एक सस्कार जो गर्भ के तृतीय मास मे किया जाता है [को०]।

अनवसर—संज्ञा पुं० [सं०] १ निरवकाश। फुरसत का न होना। २ कुसमय। बेमौका। उ०—सोइ लका लखि अतिथि अनवसर राम तृनासर (सन) ज्यो दई।—तुलसी ग्र०, पृ० ३८८। ३ जसवत जसोभूषण के अनुसार वह काव्यालकार जिसमे किसी कार्य का अनवसर होना या करना वर्णन किया जाय।

अनवसादन—वि० [सं०] अवसाद या विषाद न करनेवाला। उ०—सहज रिमझिम वाद रिन रिन अनवसादन।—गीतगुंज, पृ०५८।

अनवसान—वि० [सं०] १ अत से रहित। २ मृत्युहीन [को०]।

अनवसित—वि० [सं०] १ असमाप्त। उ०—वह चली सलिला अनवसित, ऊर्मिजा जैसे उतारी।—अर्चना, पृ० १०४। २ जो अस्त न हुआ हो (को०)।

अनवसितसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अनवसित सन्धि] जगल या ऊसर जमीन बसाने के सबध मे दो पुरुषो या राष्ट्रो की सधि। औपनिवेशिक सधि।

विशेष—औपनिवेशिक सधि के विषय मे चाणक्य ने लिखा है कि यह प्राय विवादग्रस्त विषय है कि स्थलीय या जलप्राय भूमि मे उपनिवेश की दृष्टि से कौन सी भूमि उत्तम है। साधारणत जलप्राय भूमि ही उत्तम मानी जाती है।

अनवसिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छद या वृत्त [को०]।

अनवस्थ—वि० [सं०] १ अस्थिर। चचल। उतावला। अधीर। २ अव्यवस्थित। डावाँडोल।

अनवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ स्थितिहीनता। अव्यवस्था। अनियमितता। उ०—यह अनवस्था युगल मिले मे विकल व्यवस्था सदा बिखरती।—कामायनी, पृ० २७१। २ व्याकुलता। आतुरता। अधीरता। ३ न्याय मे एक प्रकार का दोष।

विशेष—इस प्रकार का तर्क और अन्वेषण जिसका कुछ ओर छोर न हो। यह उस समय होता है जब तर्क करते करते कुछ परिणाम न निकले और तर्क भी समाप्त न हो। जैसे कारण का कारण, उसका भी कारण, फिर उसका कारण।

अनवस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १ अस्थिरता। २ अनिश्चितता। ३. आचरणभ्रष्टता। ४ वायु [को०]

अनवस्थायी—वि० [स० अनवस्थायिन्] क्षणस्थायी [को०] ।

अनवस्थित—वि० [सं०] १ अस्थिर । अधीर । चचल । अशात । क्षुब्ध । २ वेठिकाना । वेसहारा । निराधार । निरवलब ।

अनवस्थितचित्त—सज्ञा पु० [सं०] अस्थिर चित्त या बुद्धिवाला [को०]।

अनवस्थिति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अस्थिरता । चचलता । अधीरता । अनिश्चितता । २ अवलवशून्यता । आधारहीनता । ३ योगशास्त्र के अनुसार समाधि प्राप्त हो जाने पर भी चित्त का स्थिर न होना ।

अनवहित—वि० [स०] असावधान । वेखवर । वेपरवाह ।

अनवह्वर—वि० [सं०] जो टेढा न हो । सीधा । ऋजु [को०] ।

अनवाँसना(पु)—क्रि० स० [स० नव+हिं० वासन [नए वरतन को पहले पहल काम मे लाना ।

अनवाँसा—सज्ञा पु० [सं० * अन्नकाडाश > प्रा० * अन्न आ अश > अनवा अस अथवा स० अण्वश] १ कटी हुई फसल का एक वडा मुट्ठा या पूला । अँोमा । २ एक अनवाँसी भूमि मे उत्पन्न अन्न ।

अनवाँसी—सज्ञा स्त्री० [स० अणु = छोटा + वश > बाँसा = नाप] एक विस्वे का $\frac{1}{800}$वाँ भाग । विस्वासी का वीसवाँ हिस्सा ।

अनवाद(पु)—सज्ञा पुं० [स० अन् = बुरा + वाद = वचन] बुरा वचन । कटु भाषण । कुवोल । उ०—कूँजरी ऊजरी वाल वहेवा सो मेवा के मोल वढावति झूठे । रूप की साठि के तौलति घाटि वदै अनवाद ददै फल जूठे ।—देव (शब्द०) ।

अनवाप्त—वि० [सं०] न पाया हुआ । अप्राप्त । अलब्ध ।

अनवाप्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] अप्राप्ति । अनुपलब्धि । न पाना ।

अनवाय—वि० [सं०] अवाध । निर्विघ्न [को०] ।

अनवेक्ष—वि० [स०] १ लापरवाह । २ उदासीन [को०] ।

अनवेक्षक—वि० [स०] दे० 'अनवेक्ष' [को०] ।

अनवेक्षण—सज्ञा पु० [स०] १ असावधानता । २ निरखने या निरीक्षण का अभाव । ३ उदासीनता [को०] ।

अनवेक्षा—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अनवेक्षण' [को०] ।

अनशन—सज्ञा पुं० [स०] १ उपवास । अन्नत्याग । निराहार व्रत । २ जैन शास्त्रानुसार मोक्षप्राप्ति के लिये मरने के कुछ दिन पहले ही अन्न जल का सर्वथा त्याग । ३ राजनीतिक दवाव डालने के लिये अन्न जल का त्याग करना ।

अनश्वर—वि० [स०] नष्ट न होनेवाला । अमिट । अटल । स्थिर । कायम रहनेवाला ।

अनसखडी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनसखरी' । उ०—बालभोग की महाप्रसाद अनसखडी तथा दूध की (सामग्री) आगे धरी ।—दो सौ वावन०, भा० १ पृ० ८ ।

अनसखरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अन = अन्न + सखरी = सस्कृत] निखरी । पक्की रसोई । घी मे पका हुआ भोजन ।

अनसत्त—वि० [हिं० अन + सत्त] असत्य । झूठ । उ०—घर जाऊँ तु सोवत हैं, फिर जाउँ तो नद पै खात वरा दधि प्यारे । सपने अनसत्त किधौं सजनी घर बाहिर होत वडे वरवारे । केशव शब्द०) ।

अनसन—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अनशन' । उ०—उसके लिये हमको अनसन करना होगा ।—मैला०, पृ० १६ ।

अनसँनमाना(पु)—वि० [हिं० अन + सनमान] असमानित । उ०—कैइक रहे ताहि अरमाने, अक्रूरादिक अनसनमाने ।—नद०, ग्र०, पृ० २२४ ।

अनसमझ—वि० [हिं० अन + समझ] नासमझ । उ०—तू इतना अनसमझ क्यो है प्रमोद ।—त्याग०, पृ० २० ।

अनसमझा(पु)—वि० [हिं० अन + समझ] १ जिसेसे न समझा हो । नासमझ । उ०—समुझे का घर और है अनसमझे का और ।—कवीर (शब्द०) । २ अज्ञात । विना समझा हुआ ।

अनसमुझा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनसमझा' । उ०—अनसमुझे अनुसोचनो अवसि समुझिये आपु ।—स० सप्तक, पृ० ५२ ।

अनसहत(पु)—वि० [हिं० अन + सहना] असह्य । असहनीय । जो सहा न जाय । उ०—गाज सो परति अनसहत विपच्छिन पै मत्त गजराजन के घटा गरजत ही ।—चरण (शब्द०) ।

अनसाना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अनखाना' ।

अनसुनी—वि० [हिं० अन + सुनना] अश्रुत । वेसुनी । विना सुनी हुई ।

मु०—अनसुनी करना = जानवूझ कर सुनी हुई वात को वेसुनी करना या टालना । आनाकानी करना । वहटियाना ।

अनसूय—वि० [सं०] असूया रहित । पराए गुण मे दोष न देखनेवाला । अछिद्रान्वेपी ।

अनसूयक—वि० [स०] दे० 'अनसूय' [को०] ।

अनसूया—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पराए गुण मे दोष न देखना । नुक्ताचीनी न करना । २ अत्रि मुनि की स्त्री ।

अनसूयु—वि० [सं०] दे० 'अनसूय' [को०] ।

अनसूरि—सज्ञा पुं० [स०] वुद्धिमान् व्यक्ति । विद्वान् व्यक्ति [को०] ।

अनसोची—वि० [हिं० अन + सोची]विना सोची हुई । उ०—प्रियतम अनसोची ध्यान में भी न आई ।—प्रिय प्र०, पृ० ७७ ।

अनस्त—वि० [स०] जो अस्त न हो । अस्त न होनेवाला । उ०—अनस्त अस्त ह्वै गम दुरुस्त रस्त छोडही ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २०६ ।

अनस्तमित—वि० [स०] १ जो अस्त न हुआ हो । २ जिसका पतन न हो [को०] ।

अनस्तित्व—वि० पुं० [स०] अविद्यमानता । सत्ता का अभाव । उ०—घू घू करता नाच रहा था अनस्तित्व का ताडव नृत्य ।—कामायनी, पृ० २० ।

अनस्थ—वि० [स०] दे० 'अनस्थि' [को०] ।

अनस्थक—वि० [सं०] दे० 'अनस्थि' [को०] ।

अनस्थि—वि० [स०] अस्थिहीन । विना हड्डी का [को०] ।

अनस्थिक—वि० [स०] दे० 'अनस्थि' [को०] ।

अनह—सज्ञा पुं० [स० अनहन्] १ दिन का अभाव । २ अदिन । बुरा दिन [को०] ।

अनहक्क(पु)—वि० [हिं० अन + अ० हक] विना हक या सत्य या ईश्वर का । उ०—हरिया एकै हक्क विन सव दिन जाहि अनहक्क ।—राम० धर्म०, पृ०, ६६ ।

अनहड(पु)—वि० हिं० अन + स० घट] १ विचित्र । २ विकट । कठिन । उ०—सीखा ब्रह्मसरूप प्रगट पर अनहड वडा तामु मिलना ।—सीखा० वानी, पृ० ७० ।

अनहद¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनहदनाद'। उ०—द्वार न धरूँ पवन न रोकूँ नहि अनहद उरझावैं।—कबीर ग्रं०, पृ० ४६।

अनहद²—वि० [हिं० अन = अभाव + अ० हद = सीमा] सीमारहित। असीम। उ०—ऊधो राखिये वह बात। कहत हो अनगदी अनहद, सुनत ही चपि जात।—सूर०, १०।३८०२।

अनहद नाद—संज्ञा पुं० [सं० अनाहत + नाद] योग का एक साधन। वह नाद या शब्द जो दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों कानों की लवें बंद करके ध्यान करने से अपने ही भीतर सुनाई देता है। उ०—हृदय कमल तें जोति विराजै। अनहदनाद निरंतर बाजै।—सूर०, १०।४०६४।

अनहद्द¹(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनहद'। उ०—(क) क्रुत व्यक्त रक्त स्त्रोतस्विनी जत्र तत्र अनहद्द भुग्र।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १८२।

अनहद्द²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनहदनाद' उ०—सहस और द्वादहो रह हे मग मे करत किलोल अनहद्द बजाई।—कबीर म०, पृ० ५७६।

अनहार(पु)—वि० [हिं० √आन + हार (प्रत्य०)] आननेवाला। ले आनेवाला। उ०—खेलत रहनों बावा चौवरिया आइ गए अनहार हो—धरम०, ३४।

अनहित(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अन + हित] १ अहित। अपकार। बुराई। हानि। अमगल। उ०—अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा।—तुलसी (शब्द०)। २ अहितचिंतक। अपकारी। शत्रु। उ०—बदउँ संत समान चित, हित अनहित नहि कोउ।—तुलसी (शब्द०)।

अनहितू—वि० [हिं० अन + हितू 'मित्र'] अहितचिंतक। अमित्र। अवधु। शत्रु। अपकारी। बुराई सोचने या करनेवाला।

अनहुआ—वि० [हिं० + हुआ] अघटित। जो न हुआ हो। उ०—अनहुआ उसे नहीं किया जा सकता।—सुखदा, पृ० ११३।

अनहूवा(पु)—वि० [हिं० अन + भूत प्रा० हूव, हुअ] अनहोनी। अलौकिक। उ०—अनहूवे की बात कछू प्रकट भई सी जान।—भूषण ग्रं०, पृ० ५८।

अनहोता—वि० [हिं० अन + होना] [स्त्री० अनहोती] १ जिसे कुछ न हो। दरिद्र। गरीब। निर्धन। उ०—'हे सखी तेरे इस अंग न को अच्छे गहने कपड़े चाहिए थे, ये आश्रम के फूल पत्ते तो अनहोती को हैं।—शकुंतला, पृ० ६६। २. अनहोना। अलौकिक। अचभे का। उ०—पलुही मैं होती अनहोती करतु है।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४४३।

अनहोनी¹—वि० स्त्री० [हिं० अन + होन,] न होनेवाली। अलौकिक। असभव। अनहोती। अचभे की।

अनहोनी²—संज्ञा स्त्री० असभव बात। अलौकिक घटना। उ०—अनहोनी कहुँ भई कन्हैया देखी सुनी न बात। या तो आहि खिलौना सब को खान कहत तिहि तात।—सूर०, १०।१८६

अनाई पठाई—संज्ञा स्त्री० [सं० √आनय + हिं० ई (प्रत्य०) + सं० √प्रस्था > पट्ठा हिं० ई (प्रत्य०)] विवाह हो जाने पर दुलहिन के तीन बार ससुराल से बाप के घर आने जाने के पीछे बराबर आने जाने को अनाई पठाई कहते हैं।

अनाकनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० दे० 'अनाकानी'। उ०—(क) नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहार। तज्यौ मनो तारन बिरद, बारक बारनु तारि।—बिहारी र०, दो० ११। (ख) कीनी अनाकनी औ मुख मोरि सुजोरि भुजा, भटू भेटत ही बन्यौ।—देव (शब्द०)।

अनाकानी—संज्ञा स्त्री० [सं० अनाकर्णन] सुनी अनसुनी करना। जान बूझकर बहलाना। टालमटोल। बहटियाना। उ०—केती अनाकानी कै जँभानी अँगिरानी पै न अतर की पीर बहराए बहरानी है।—भिखारी० ग्रं०, भा० १ पृ० १४६।

अनाकार—वि० [सं०] १ निराकार। आकाररहित। २ परमात्मा का एक विशेषण (को०)।

अनाकाल—संज्ञा पुं० [सं०] अकाल। दुर्भिक्ष [को०]।

अनाकालभृत संज्ञा पुं० [सं०] अकाल पड़ने पर दास कर्म करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अनाक्रांत—वि० [सं० अनाक्रान्त] [स्त्री० अनाक्रान्तता] जो आक्रांत न हो। अपीडित। अरक्षित।

अनाक्रांतता—संज्ञा पुं० [सं० अनाक्रान्तता] रक्षा। अपीड़ा। आक्रांतता का अभाव।

अनाखर —वि० [सं० अनक्षर] जो छील छालकर दुरुस्त न किया गयो हो। बेडौल। बेढगा।

अनागत¹—वि० [सं०] १ न आया हुआ। अनुपस्थित। अविद्यमान। अप्राप्त। २ आगे आनेवाला। भावी। होनहार। ३ अपरिचित। अज्ञात। बेजाना हुआ। ४ अकस्मात्। अचानक। सहसा। एकाएक। उ०—(क) सुनि हैं श्याम मधुपुरी जात। सकुचनि कहि न सकति काहू सो गुप्त हृदय की बात। सकित वचन अनागत कोऊ कहि जो गई अधरात।—सूर० (शब्द०)। ५ अनादि। अजन्मा। उ०—नित्य अखंड अनूप अनागत अविगत अनघ अनंत। जाको आदि कोऊ नाहिं जानत कोउ न पावत अंत।—सूर० (शब्द०)।

यौ०—अनागत विधाता।

६ अपूर्व। अद्भुत। उ०—इत रुचि दृष्टि मनोज महासुख, उत सोमागुन अमित अनागत।—सूर०, १०।२१२३।

अनागत²—संज्ञा पुं० संगीत के अंतर्गत ताल का एक भेद। उ०—सूर सति तान बधान अमित अति सप्त अतीत अनागत आवत।—सूर०, १०।६४८।

अनागतविधाता—संज्ञा पुं० [सं०] आनेवाली आपत्ति के लक्षण को जानकर उसके निवारण का पहले ही से उपाय करनेवाला व्यक्ति। अग्रसोची या दूरदेश आदमी।

अनागतार्तवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी। गोरी। बालिका। जो कन्या रजोधर्मिणी न हुई हो। अजातरजस्का।

अनागम—संज्ञा पुं० [सं०] आगमन का अभाव। न आना। उ०—सोचै अनागम कारन कंत को मोचै उसासनि आँसहू मोचै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १२१।

अनागस—वि० [सं० अनागस्] पापरहित। निर्दोष। निर्मल। उ०—सूराभक्त वह मुक्त अनागस।—मधुज्वाल, पृ० १२।

अनाघात--संज्ञा पुं० [सं०] संगीत के अंतर्गत तालविशेष। वह विराम जो गायन मे चार मात्राओं के बाद आता है और कभी कभी सम का काम देता है।

अनाचार[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ कदाचार। भ्रष्टता। दुराचार। निंदित आचरण। कुव्यवहार। २ कुरीति। कुचाल। कुप्रथा।

अनाचार[2]--वि० १ जो विशिष्ट न हो। २ जो भद्र न हो। अभद्र। ३ विचित्र [को०]।

अनाचारिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुष्टता। दुराचारिता। निंदित आचरण। २ कुरीति। कुचाल।

अनाचारी--वि० [सं० **अनाचारिन्**] [स्त्री० **अनाचारिणी**] आचारहीन। भ्रष्ट। पतित। कुचाली। दुराचारी। बुरे आचरणवाला।

अनाज--संज्ञा पुं० [सं० **अन्नाद्य**, प्रा० **अन्नज्ज > अनाज**] अन्न। धान्य। नाज। दाना। गल्ला।

अनाज्ञप्त--वि० [सं०] जिसकी आज्ञा न दी गई हो [को०]।

अनाज्ञप्तकारी--वि० [सं० **अनाज्ञप्तकारिन्**] जिस कार्य की आज्ञा न हो उसे करनेवाला [को०]।

अनाज्ञाकारिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] आज्ञा न मानना। आदेश पर न चलना।

अनाज्ञाकारी--वि० [सं० **अनाज्ञाकारिन्**] [**अनाज्ञाकारिणी**] जो आज्ञा न माने। जो आदेश पर न चले। बेकहा।

अनाज्ञात--वि० [सं०] १ अज्ञात। २। पूर्व ज्ञात से बढा हुआ [को०]।

अनाडी--वि० पुं० [सं० **अनार्य = अपठित, अशिक्षित प्रा० अनारिय** अथवा सं० **अज्ञानी प्रा० अण्णाणी**] १ नासमझ। नादान। गँवार। अनजान। उ०--अनाडी के हाथ पडा मोती की सी कपूरमंजरी की दशा है।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३९८। २ जो निपुण न हो। अकुशल। अदक्ष। जैसे--यह किसी अनाडी कारीगर को मत देना (शब्द०)।

अनाढ्य--वि० [वि० स्त्री० **अनाढ्या**] असंपन्न। द्रव्यहीन। दरिद्र। कंगाल। गरीब।

अनातत--वि० [सं०] १ जो फैला हुआ न हो। २ जो खींचा या ताना हुआ न हो [को०]।

अनातप[1]--संज्ञा पुं० धूप का अभाव। छाया।

अनातप[2]--वि० १ आतपरहित। जहाँ धूप न हो। २. ठंडा। शीतल।

अनातम(पु)--वि० [सं० **अनात्म**] दे० 'अनात्म'। उ०--मुनि शिष्य यहै मत साखहि कौ जु अनातम आतम भिन्न करै।--सुंदर० ग्रं०, भा० १। पृ० ५०।

अनातुर--वि० [सं०] [स्त्री० **अनातुरा**] १ जो आतुर या उत्कंठित न हो। २ उदासीन। ३ अक्लांत। ४ अविचलित। धीर। ५ स्वस्थ। रोगरहित। निरोग।

अनात्म[1]--वि० [सं० **अनात्मन्**] आत्मारहित। जड।

अनात्म--संज्ञा पुं० आत्मा को विरोधी पदार्थ। अचित। पंचभूत।

अनात्मक--वि० [सं०] १. जो यथार्थ न हो २ क्षणिक। ३. बौद्ध मत से जगत् या संसार का विशेषण [को०]।

अनात्मकदुःख--संज्ञा पुं० [सं०] १ अज्ञानजनित दुःख। सांसारिक आधिव्याधि। भय। बाधा। २ जैन शास्त्रानुसार इस लोक और परलोक दोनों के दुःख।

अनात्मज्ञ--वि० [सं०] आत्मज्ञान से रहित। अज्ञ [को०]।

अनात्मधर्म--संज्ञा पुं० [सं०] शारीरिक धर्म। देह का धर्म।

अनात्मनीन--वि० [सं०] १ जो अपना न हो। २ जो काम या लाभ के लिये न हो। ३ निःस्वार्थ। स्वार्थरहित [को०]।

अनात्मप्रत्यवेक्षा--संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार यह विचार कि आत्मा नहीं है [को०]।

अनात्मवाद--संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा की स्थिति को न माननेवाला सिद्धांत। जडवाद। उ०--मैंने भी तीर्थंकरों के मुख से आत्मवाद-अनात्मवाद के व्याख्यान सुने हैं।--इंद्र०, पृ० १२५।

अनात्मवान--वि० [सं०] असंयमी [को०]।

अनात्मवेदी--वि० [सं० **अनात्मवेदिन्**] जो आत्मविद् न हो। आत्मज्ञान से रहित [को०]।

अनात्मसंपन्न--वि० [सं० **अनात्मसम्पन्न**] मूर्ख। गुणशून्य [को०]।

अनात्म्य[1]--वि० [सं०] अशरीरी। अशारीरिक [को०]।

अनात्म्य[2]--संज्ञा पुं० १ अपनों या परिवारवालों के लिये स्नेहरहित व्यक्ति। २ शरीर संबंधी गर्व या मद [को०]।

अनात्यंतिक--वि० [सं०] जो नित्य न हो। २ जो अंतिम न हो। ३ पुनः आवर्तनशील [को०]।

अनाथ--वि० [सं०] [स्त्री० **अनाथा**] १ नाथहीन। प्रभुहीन। बिना मालिक का। उ०--नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मो सो।--तुलसी, ग्रं० पृ० ५००। २ जिसका कोई पालन पोषण करनेवाला न हो। बिना माँ बाप का। लावारिस। जैसे--'अनाथ बालकों की रक्षा के लिये उन्होंने दान दिया (शब्द)। ३ असहाय। अशरण। जिसे कोई सहारा न हो। ४ दीन। दुःखी। मुहताज।

यौ०--**अनाथालय**।

अनाथसभा--संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्धनगृह [को०]।

अनाथानुसारी--वि० [सं० **अनाथानुसारिन्**] [स्त्री० **अनाथानुसारिणी**] सहायतार्थ अनाथों का अनुसरण या पीछा करनेवाला। दीनपालक। गरीब को पालनेवाला। उ०--अनाथ सुन्यो मैं अनाथानुसारी। बसै चित्त दंडी जटी मुंडधारी।--केशव (शब्द०)।

अनाथालय--संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ दीन दुःखियों और असहायों का पालन हो। मुहताजखाना। लंगरखाना। २ लावारिस बच्चों की रक्षा का स्थान। यतीमखाना। अनाथाश्रम।

अनाथाश्रम--संज्ञा पुं० [सं० **अनाथ + आश्रम**] वह स्थान जहाँ अनाथ रखे जायँ।

अनाद--संज्ञा पुं० [सं०] १ ध्वनियों मे नाद अंश का अभाव। २ वे अघोष ध्वनियाँ जिनमे नादांश नहीं पाया जाता [को०]।

अनाददान--वि० [सं०] न लेनेवाला [को०]।

अनादर--संज्ञा पुं० [सं०] १ आदर का अभाव। निरादर। अवज्ञा। २ तिरस्कार। अपमान। अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। ३. एक काव्यालंकार।

विशेष--इसमे प्राप्त वस्तु के तुल्य दूसरी अप्राप्त वस्तु की इच्छा के द्वारा प्राप्त वस्तु का अनादर सूचित किया जाय। जैसे--दर

के तट लखि कामिनी अलि पंकजहि विहाय। ताके अधरन दिसि चल्यो, रसमय गूँज सुनाय (शब्द०)।
अनादरण—संज्ञा पुं० [सं०] असम्मानपूर्ण व्यवहार [को०]।
अनादरणीय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनादरणीया] १ आदर के अयोग्य। असमाननीय। २ तिरस्कार योग्य। निंद्य। बुरा।
अनादरित—वि० [सं०] वह जिसका अपमान हुआ हो। अपमानित।
अनादरी—वि० [सं० अनादरिन्] जो आदरयुक्त न हो [को०]।
अनादि—वि० [सं०] जिसका आदि न हो। जो सब दिन से हो। जिसके आरंभ का कोई काल या स्थान न हो। स्थान और काल से अबद्ध।
विशेष—शास्त्रकारों ने 'ईश्वर' जीव और प्रकृति' इन तीन वस्तुओं को अनादि माना है।
अनादित्व—संज्ञा पुं० [सं०] अनादि होने का भाव। नित्यता।
अनादिनिधन—वि० [सं०] जिसका आदि और अंत न हो [को०]।
अनादिमान्—वि० [सं० अनादिमत्] जिसका आदि न हो [को०]।
अनादिमध्यांत—वि० [सं० अनादिमध्यान्त] जिसका आदि, मध्य और अंत न हो [को०]।
अनादिष्ट—वि० [सं०] बिना आदेश का।
अनादृत—वि० पुं० [सं०] जिसका अनादर हुआ हो। अपमानित।
अनादेय—वि० [सं०] जो आदेय या ग्राह्य न हो [को०]।
अनादेश—संज्ञा पुं० [सं०] आदेश का अभाव। आदेश न होना [को०]।
अनादेशकर—वि० [सं०] जिसकी अनुमति या आदेश न हो वह करनेवाला [को०]।
अनाद्यंत[1]—वि०[सं० अनाद्यन्त]जिसका आदि तथा अंत न हो। उ०—अमरों के उस अनाद्यंत आनंदलोक में।—युगपथ, पृ० ११५।
अनाद्यंत[2]—संज्ञा पुं० शिव [को०]।
अनाद्य[1]—वि० [सं० अनादि] दे० 'अनादि' [को०]।
अनाद्य[2]—वि० [सं० अन्+√अद्>आद्य] जो खाने योग्य न हो। अखाद्य [को०]।
अनाद्यनंत[1]—वि० [सं० अनाद्यनन्त] जिसका आदि और अंत न हो [को०]।
अनाद्यनंत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।
अनाधार—वि० पुं० [सं०] आधाररहित। निरवलंब। बेसहारा।
अनाधि—वि० [सं०] चिंता से रहित [को०]।
अनाधृष्ट—वि० [सं०] १ जो जीतने योग्य न हो। अजेय। २ जो नियंत्रित या अधीन न हो। अनियंत्रित। ३ अक्षुण्ण [को०]।
अनाधृष्य—वि० [सं०] दे० 'अनाधृष्ट' [को०]।
अनाना—क्रि० स० [सं० आनयन] १ लाना। बुलाना। उ०—(क) जौ कबहूँ हठि नींद अनैये, साँवरे पिय सपने में पैये।—नंद० ग्रं०, पृ० १७१। (ख) केलि रसम मे मिथुन कौ सुखनीद अनाऊँ।—घनानंद, पृ० ३१४। २ मँगाना। उ०—लंक दीप के सिला अनाई। बाँधा सरवर घाट बनाई।—जायसी ग्रं०, पृ० १२।
अनानुपूर्व्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुक्रम में न आना। अनुक्रम का अभाव। किसी समस्त पद के विभिन्न अवयवों को विग्रहपूर्वक अलग करना [को०]।
अनापद—संज्ञा स्त्री० [सं०] विपत्ति या विपद का अभाव [को०]।
अनापशनाप—संज्ञा पुं० [देश०] १ ऊटपटाँग। अटसट। आयँबायँ। अंडबंड। २ असंबद्ध प्रलाप। निरर्थक बकवाद।
अनापा(पु)—वि० [सं० अ=नहीं+हिं०√नाप] १ बिना नापा हुआ २ असीम। अतुल।
अनापि[1]—वि० [सं०] बिना मित्र का [को०]।
अनापि[2]—संज्ञा पुं० इंद्र [को०]।
अनाप्त—वि०[सं०] १ अप्राप्त। अलब्ध। २ अविश्वस्त। ३ असत्य। ४ अकुशल। ५ अनिपुण। अनाड़ी। ६ अनात्मीय। अबंधु।
अनाप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आप्ति अर्थात् प्राप्ति न होना [को०]।
अनाप्य—वि० [सं०] अप्राप्य [को०]।
अनाप्लुत—वि० [सं०] जो स्नात या धुला न हो [को०]।
अनाप्लुतांग—वि० [सं० अनाप्लुताङ्ग] जिसका शरीर स्नानसे शुद्ध न हो [को०]।
अनाबाध—वि० [सं०] बाधा या विघ्न से मुक्त [को०]।
अनाविद्ध—वि०[सं० अनाविद्ध] १ अनविधा। अनछेदा। बिना छेद का। २ चोट न खाया हुआ।
अनाभ्युदयिक—वि० [सं०] दुर्भाग्यपूर्ण। जो मंगलमय न हो [को०]।
अनाम—वि० [सं० अनामन्][वि० स्त्री० अनामा] १ बिना नाम का। उ०—आदि अनाम ब्रह्म है न्यारा।—कबीर सा०, पृ० ८१२। अप्रसिद्ध। २ अप्रख्यात।
अनामय—वि० [सं०] निरामय। रोगरहित। नीरोग। चंगा। स्वस्थ। तंदुरुस्त। २ दोषरहित। निर्दोष। बेऐब। उ०—जय भगवंत अनंत अनामय।—मानस ७।३४।
अनामय[2]—संज्ञा पुं० नीरोगता। तंदुरुस्ती। २ कुशल क्षेम। उ०—गुरु जी ने आपका अनामय पूछकर यह कहा है।—शकुंतला, पृ० ८९।
अनामा[1]—वि० स्त्री० [सं०] १ बिना नाम की। २ अप्रसिद्ध।
अनामा[2]—संज्ञा स्त्री० कनिष्ठा और मध्यमा के बीच की उँगली। अनामिका।
अनामिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कनिष्ठा और मध्यमा के बीच की उँगली। सबसे छोटी उँगली की बगल की उँगली। अनामा।
अनामिका[2]—वि०स्त्री० [सं०] बिना नाम की। अप्रसिद्ध। उ०—जो प्रिया, प्रिया वह रही सदा ही अनामिका।—अनामिका, पृ० २१।
अनामिल—वि० [सं० अनाविल] स्वच्छ। निर्मल। उ०—ओस के धोए अनामिल पुष्प ज्यों खिल किरण चूमे।—गीतिका,पृ०६४।
अनामिष—वि० [सं०] निरामिष। मांसरहित।
अनामी[1]—वि० [सं० अनाम+हिं० ई (प्रत्य०)] अनाम संबंधी। उ०—शुद्ध ब्रह्म पद तहँ ठहराई, तो नाम अनामी धारा है।—कबीर श०, पृ० ६०।
अनामी[2]—संज्ञा पुं० परमात्मा। परब्रह्म। उ०—परे ताके रहत अनामी, स्वामी निरताइ कै।—घट०, पृ० ३७४।
अनामृत—वि० [सं०] जो मृत्युवश न हो [को०]।
अनामल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एनामेल'।

अनायक—वि० [सं०] १ नायकरहित । २ जो व्यवस्थित न हो [को०] ।

अनायत—संज्ञा वि० [सं०] १. जो नियंत्रित न हो। २ अनिवारित। ३ अनाश्रित। बेसहारा। ४ जो विच्छिन्न न हो। अविच्छिन्न। ५ संलग्न। ६ बिना लबाई का [को०]।

अनायतन¹—संज्ञा पु० [सं०] वह स्थान जो विश्रामस्थल या वेदी न हो [को०] ।

अनायतन²—वि० विश्रामस्थान या वेदी से रहित [को०] ।

अनायत्त—वि० [सं०] [स्त्री० अनायत्ता] १ अनधीन। अवशीभूत। २ स्वतंत्र। खुद मुख्तार ।

अनायास—क्रि० वि० [सं०] १. बिना प्रयास। बिना परिश्रम। बिना उद्योग। बैठे बिठाए। उ०—जोई तनु धरौ तजौ पुनि अनायास हरि जान ।—मानस ७।१०६। २ अकस्मात्। अचानक। सहसा। एकाएक। उ०—भरत विवेक बराह बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला।—मानस, २।२९६।

अनायुष्य—वि० [सं०] आयुष्य या दीर्घजीवन के लिये हानिकर [को०]।

अनारंभ—वि० [सं० अन्+आरम्भ] आरंभरहित। उ०—अनारंभ अनिकेत अमानी ।—मानस, ७।४६।

अनार¹—संज्ञा पुं० [फा०] १ एक पेड़ और उसके फल का नाम। दाड़िम ।

विशेष—यह पेड़ १५-२० फुट ऊँचा और कुछ छतनार होता है। इसकी पतली पतली टहनियों में कुछ कुछ काँटे रहते है। इसके फूल लाल होते हैं। फल के ऊपर के कड़े छिलके को तोड़ने से रस से भरे लाल सफेद दाने निकलते है जो खाए जाते हैं। फल खट्टा मीठा दो प्रकार का होता है। गर्मी के दिनों में पीने के लिये इसका शरबत भी बनाते हैं। फूल रंग बनाने और दवा के काम में आता है। फल का छिलका अतिसार, संग्रहणी आदि रोगों में दिया जाता है। पेड़ की छाल से चमड़ा सिझाते हैं। पश्चिम हिमालय और सुलेमान की पहाड़ियों पर यह वृक्ष आप से आप उगता है। इसका कलम भी लगता है। प्रति वर्ष खाद देने से फल भी अच्छे आते हैं। काबुल और कंधार के अनार प्रसिद्ध है ।

२ एक आतशबाजी ।

विशेष—अनार फल के समान मिट्टी का एक गोल पात्र जिसमें लोहचून और बारूद भरा रहता है और जिसके मुँह पर आग लगाने से चिनगारियों का एक पेड़ सा बन जाता है ।

यौ०—अनारदाना ।

विशेष—दाँतों की उपमा कवि लोग अनार से देते आए हैं ।

३ वह रस्सी जिसमें दो छप्पर एक साथ मिलाकर बाँधे जाते हैं ।

अनार²—संज्ञा पुं० [सं० अन्याय] अनीति । अन्याय ।

अनारकिस्ट—संज्ञा पु० [अं० एनार्किस्ट] वह जो राज्य में विद्रोह को उत्तेजन दे या अशांति उत्पन्न करे। वह जो राज्य या राज्य व्यवस्था अथवा सामाजिक व्यवस्था को उलट देना चाहता हो। अराजक। विप्लवपंथी ।

अनारज—वि० [हिं०] दे० 'अनार्य'। उ०—भावै देह छूटौ देश आरज अनारज में भावै देह छूटि जाहु बन में नगर में।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६४२ ।

अनारत¹—वि० [सं०] १ निरंतर। अनवरत। २ नित्य। स्थायी [को०] ।

अनारत²—संज्ञा पु० अविच्छिन्नता। निरंतरता [को०] ।

अनारदाना—संज्ञा पु० [फा० अनारदानह्] १ खट्टे अनार का सुखाया हुआ दाना। २ रामदाना ।

अनारपन—संज्ञा पुं० [हिं० अनारी+पन (प्रत्य०)] गँवारपन। नासमझी। अनाड़ीपन। उ०—ऐसो कत भौ मित्र देख जु नैन नारगी बान। नवल कुअरि दरि जान द्यौ यह अनारपन लान।—स० सप्तक, पृ० २३० ।

अनारभ्य—वि० [सं०] जो आरंभ करने योग्य न हो [को०]।

अनारी¹—वि० [हिं०] दे० 'अनाड़ी'। उ०—प्यारी न्यारी दिसि चारी चपला चमतकारी, बरनै अनारी ये कटारी तरवारी है।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० १०२ ।

अनारी²—वि० [हिं० अनार+ई (प्र०)] अनार के रंग का। लाल।

अनारी³—संज्ञा पुं० १ लाल रंग की आँखवाला कबूतर। २ एक प्रकार का पकवान। भीतर मीठा या नमकीन पूर से भरा एक प्रकार का समोसा ।

अनारोग्य—वि० [सं०] १ जो स्वस्थ न हो। २ स्वास्थ्य के लिये हानिकर [को०] ।

अनारोग्यकर—वि० [सं०] जो स्वास्थ्यकर न हो [को०] ।

अनार्की—संज्ञा स्त्री० [अं० एनार्की] १ राज्य या राजा न रहने की अवस्था। शासन या राज्यव्यवस्था का अभाव। राजनीतिक उथल पुथल। अराजकता। विप्लव। २ एक मतवाद जिसके अनुसार समाज तभी पूर्णता को प्राप्त होगा जब राज्य या शासनव्यवस्था न रहेगी और पूर्ण व्यक्तिस्वातंत्र्य हो जायगा। अराजकवाद।

अनार्जव—संज्ञा पु० [सं०] १ सिधाई का अभाव। टेढ़ापन। २ सरलता का अभाव। अनृजुता। कुटिलता। कपट।

अनार्तव¹—वि० [सं०] बिना ऋतु का। बेमौसम। अनवसर।

अनार्तव²—संज्ञा पु० स्त्रियों के ऋतुधर्म का अवरोध। रजोधर्म की रुकावट ।

अनार्तवा—वि० स्त्री० [सं०] जो ऋतुमती न हो ।

अनार्य—वि० [सं०] १ आर्य जाति से रहित। २ अश्रेष्ठ [को०]।

अनार्य—संज्ञा पु० [स्त्री० अनार्या] १ वह जो आर्य न हो। २. म्लेच्छ ।

अनार्यक—संज्ञा पु० [सं०] अगुरु की लकड़ी [को०] ।

अनार्यकर्मी—वि० [सं० अनार्यकर्मिन्] आर्योचित कर्म न करनेवाला [को०] ।

अनार्यज¹—संज्ञा पुं० [सं०] अगुरु का पेड़ [को०] ।

अनार्यज²—वि० [वि० स्त्री० अनार्यजा] १ जो आर्य से उत्पन्न न हो। २ अनार्य देश में उत्पन्न [को०] ।

अनार्यजुष्ट—वि० [सं०] जो अनार्य द्वारा आचरित या व्यवहृत हो [को०] ।

अनार्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आर्य धर्म का अभाव। २ अश्रेष्ठता। ३. लघुता। नीचता। ४ म्लेच्छता ।

अनार्यतिक्त—संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता [को०] ।

अनार्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनार्यता'।

अनार्ष—वि० [सं०] जो ऋषिप्रणीत न हो। जो ऋषिकाल का बना हुआ न हो।

अनार्षेय—वि० [सं०] जो आर्ष या वैदिक न हो [को०]।

अनालंब[1]—[सं० अनलम्ब] अवलंबहीन [को०]।

अनालंब[2]—संज्ञा पुं० अवलंब का अभाव [को०]।

अनालंबन—वि० [सं० अनालम्बन] १ निरवलंब। २ निराश [को०]।

अनालंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० अनालम्बिन] शिव का एक वाद्य [को०]।

अनालंबुका—संज्ञा स्त्री० [सं० अनालम्बुका] दे० 'अनालंभुका' [को०]।

अनालंभुका—संज्ञा स्त्री० [सं० अनालम्भुका] रजस्वला स्त्री [को०]।

अनालस्य—संज्ञा पुं० [सं०] आलस्य का अभाव।

अनालाप[1]—वि० [सं०] १ मितभाषी। कम बोलनेवाला [को०]।

अनालाप[2]—संज्ञा पुं० १ मितभाषण। २ अलाप या बातचीत का अभाव [को०]।

अनालोचित—वि० [सं०] १ न देखा हुआ। २ जो विचारित या विवेचित न हो। ३ जिसकी आलोचना न की गई हो [को०]।

अनालोच्य—वि० [सं०] जो आलोचना के योग्य न हो [को०]।

अनावरण—संज्ञा पुं० [सं०] आवरण का अभाव।

अनावर्ती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ न लौटना। २ पुनर्जन्म का अभाव। ३ मोक्ष [को०]।

अनावर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] अनावृष्टि। अवर्षा। मेघ के जल का अभाव। सूखा

अनावश्यक—वि० [सं०] जिसकी आवश्यकता न हो। अप्रयोजनीय। गैरजरूरी।

अनावश्यकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] आवश्यकता का न होना। अप्रयोजनीय। गैरजरूरत।

अनाविद्ध—वि० [सं०] १ जो विद्ध या बिधा न हो [को०]।

अनाविल—वि० [सं०] १ स्वच्छ। निर्मल। साफ। २ स्वास्थ्यकर (देश०)। ३ निष्पंक। पंकरहित। [को०]।

अनावृत—वि० [सं०] [स्त्री० अनावृता] १ जो ढँका न हो। आवरण रहित। खुला। २ जो घिरा न हो।

अनावृत्त—वि० [सं०] १ न लौटा हुआ। २ पीछे न हटा हुआ। ३ जिसकी आवृत्ति न की गई हो। ४ न चुना हुआ [को०]।

अनावृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर धारण न करना। मोक्ष [को०]।

अनावृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्षा का अभाव। अनावर्षण। अवर्षा। सूखा। उ०—मत्र जादौ मिति हरि मौं यह कह्यौ मुफलक सुत जहँ होई। अनावृष्टि अतिवृष्टि होति नही यह जानत सब कोई।—सूर०, १०।४१६१।

अनावेदित—वि० [सं०] जो ज्ञापित न हो। जिसकी विज्ञप्ति न की गई हो [को०]।

अनाश—वि० [सं०] १ निराश। २ जिसका नाश न हो। ३ जो नष्ट न किया गया हो। ४ जीवित [को०]।

अनाशक[1]—वि० [सं०] १ अनश्वर। २ नाश या हानि न करनेवाला। २ उपवास करनेवाला। २ भोजन का त्याग करनेवाला (आमरण भी) [को०]।

अनाशक[2]—संज्ञा पुं० उपवास [को०]।

अनाशकायन—संज्ञा पुं० [सं०] उपवास का व्रत [को०]।

अनाशस्त—वि० [सं०] जो प्रशंसित न हो [को०]।

अनाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आशा का अभाव। नैराश्य [को०]।

अनाशी—वि० [सं० अनाशिन्] १ जो नष्ट न हो। २ न खानेवाला [को०]।

अनाशु—वि० [सं०] मंद। सुस्त। जो तेज न हो। २ अनश्वर [को०]।

अनाश्य—वि० [सं०] अनश्वर [को०]।

अनाश्रमी—वि० [सं० अनाश्रमिन्] १ आश्रमभ्रष्ट। आश्रम धर्म से च्युत। गार्हस्थ्य आदि चारो आश्रमो से रहित। २. पतित। भ्रष्ट।

अनाश्रय—वि० [सं०] निराश्रय। बेसहारा। निरवलंब अनाथ। दीन।

अनाश्रित—वि० [सं०] १ आश्रयरहित। निरवलंब। बेसहारा। उ०—सँभालेगा हमे अब कौन? यो अनाश्रित रह सका कब कौन।—साकेत, पृ० १७७। २ जो अधिकार रहते भी ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों को ग्रहण न करे।

अनास—वि० [सं०] बिना नाक का। चपटी नाकवाला।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ३५।

अनासक्त—वि० [सं०] जो किसी विषय मे आसक्त न हो। उ०—त्यागी भी हैं शरण जिनके, जो अनासक्त गेह, राजा योगी जय जनक वे पुण्यदेही, विदेह।—साकेत, पृ० २५०।

अनासक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] मोहराहित्य। आसक्ति या अनुरक्ति का अभाव। उ०—मैं कोमल वर्ग की मोहिनी शक्ति से निर्लिप्त हूँ, और अनासक्ति का पद प्राप्त कर चुका हूँ।—मान०, भा०१, पृ० २८१।

अनासती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कुसमय। कुअवसर (डिं०)।

अनासादित—वि० [सं०] १ अप्राप्त। २ जो आक्रांत न हो। ३ जो घटित न हो। ४ अस्तित्वरहित [को०]।

अनासादितविग्रह—वि० [सं०] जिसे विग्रह या युद्ध का अनुभव न हो [को०]।

अनासाद्य—वि० [सं०] अप्राप्य [को०]।

अनासिक—वि० [सं०] बिना नाक का। नकटा।

अनास्थ—वि० [सं०] १ आस्थारहित। २ उदासीन [को०]।

अनास्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अश्रद्धा। आस्था का अभाव। २ अनादर। अप्रतिष्ठा। ३ अवज्ञा। ४ उदासीनता।

अनास्राव—वि० [सं०] बिना क्लेश का। क्लेशरहित [को०]।

अनास्वाद[1]—वि० [सं०] स्वादहीन। विरस [को०]।

अनास्वाद[2]—संज्ञा पुं० स्वाद का अभाव। विरसता। नीरसता। [को०]

अनास्वादित—वि० [सं०] जिसका स्वाद न लिया गया हो [को०]।

अनास्वाद्य—वि० [सं०] जो स्वाद या आस्वाद के योग्य न हो [को०]।

अनाह—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष। अफरा। पेट फूलना।

अनाहक(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'नाहक'। उ०—चंद्रमुखी मुनि मद महातम राहु भयो यह आनि अनाहक।—घनानंद, पृ० १०५।

अनाहक्क(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अनाहक'। उ०—अनाहक चदेल नृप, क्यों मडित महि रार।—पृ० रा०, पृ० ४०।

अनाहत¹—वि० [स०] १ जिसपर आघात न हुआ हो। अक्षुब्ध। २ अगणित। जिसका गुणन न किया गया हो।

अनाहत²—सज्ञा पुं० १ शब्दयोग मे वह शब्द या नाद जो दोनो हाथो के अँगूठो से दोनो कानो की लवें बद करके ध्यान करने से सुनाई देता है। २ हठयोग के अनुसार शरीर के भीतर के छह चक्रो मे से एक। इसका स्थान हृदय, रग लाल पीला मिश्रित और देवता रुद्र माने गए हैं। इसके दलो की सख्या १२ और अक्षर 'क' से 'ठ' तक हैं। ३ नया वस्त्र। ४ द्वितीय बार किसी वस्तु को उपनिधि या धरोहर मे देना। दोबारा किसी चीज का अमानत मे दिया जाना।

अनाहतनाद—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अनाहत'। उ०—गूँजता तुम्हारा अनाहत नाद जो वहाँ, सुनता है दास यह भक्तिपूर्वक नतमस्तक।—अनामिका, पृ० १००।

अनाहदवाणी—सज्ञा स्त्री० [स० अनाहत+वाणी] आकाशवाणी। देववाणी।

अनाहत शब्द—सज्ञा पुं० [स०] १ एक भीतरी शब्द जिसे योगी सुनते हैं। २ ओम की ध्वनि [को०]।

अनाहार¹—सज्ञा पुं० [स०] भोजन का अभाव या त्याग।

अनाहार²—वि० १ निराहार। जिसने कुछ न खाया हो। जैसे—आज हम अनाहार रह गए (शब्द०)। २ जिसमे कुछ खाया न जाय। जैसे, अनाहार व्रत।

अनाहारमार्गणा—सज्ञा स्त्री० [स०] जैनशास्त्रानुसार एक व्रत।

अनाहारी—वि० [स० अनाहारिन्] १ आहार न लेनेवाला। २ उपवास या अनशन करनेवाला [को०]।

अनाहार्य—वि० [स०] १ जो लेने या ग्रहण करने योग्य न हो। २ जो खाने योग्य न हो [को०]।

अनाहिताग्नि—वि० [स०] जिसने विधिपूर्वक अग्न्याधान न किया हो। जो अग्निहोत्री न हो। निरग्नि।

अनाहुति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ यज्ञ का अभाव। २ अविहित यज्ञ [को०]।

अनाहूत—वि० [स०] बिना बुलाया हुआ। अनामत्रित। अनिमत्रित उ०—धिक्! आए तुम यों अनाहूत।—अपरा, पृ० २०२।

अनाह्लाद¹—सज्ञा पुं० [स०] आह्लाद या आनद का अभाव [को०]।

अनाह्लाद²—वि० आह्लादरहित। सजीदा [को०]।

अनाह्लादित—वि० [स०] जो हर्षित या आनदित न हो [को०]।

अनिंगित—वि० [स० अन्+इङ्गित=हिलाना, काँपना] १ अकपित। निश्चल। उ०—काँप रही है ज्योति, अब तो तुम इसे कर दो अनिंगित, तब निवासस्थान मे अब लौ लगे इसकी अशकित।—क्वासि, पृ० २। २ अनिर्दिष्ट। इगित न किया हुआ। जिसकी ओर इशारा न हो (को०)।

अनिंद(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनिंद्य'। उ०—बैठी फिरि पूतनी अनूतरी फिरग कैसी पीठी दै प्रवीनी दृग दृगनि मिलै अनिंद।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०१।

अनिंदित—वि० पुं० [स० अनिन्दित] [स्त्री० अनिन्दिता] १ अकलकित बदनामी से बचा हुआ। २ निर्दोष। उत्तम।

अनिंदनीय—वि० पुं० [स० अनिन्दनीय] [स्त्री० अनिंदनीया] जो निंदा के योग्य न हो। निर्दोष। निष्कलक।

अनिंद्य—वि० पुं० [स० अनिन्द्य] [वि० स्त्री० अनिंद्या] १ जो निंदा के योग्य न हो। निर्दोष। २ उत्तम। प्रशसनीय। अच्छा।

अनिंद्र—वि० [स० अनिन्द्र] इद्र की पूजा या उपासना न करनेवाला [को०]।

अनि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अन्य'। उ०—दई द्रव्य हथ्थी माता सिधाय। इह शहर छडि अनि शहर जाव।—पृ० रा०, १।३३६।

अनि अनी(पु)—वि० [स० अन्य+अन्य] अन्यान्य। और और। उ०— अनि अनी मुगट बैठे सु आइ।—पृ० रा०, ६।१३५।

अनिआई(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अन्यायी'।

अनिक(पु)—वि० [स० अनेक, प्रा० अणिक्क] दे० 'अनेक'। अनन्य। उ०—निर्मल बूँद अकाश की लीनी भूमि मिलाइ। अनिक सियाने पच गए ना निरवारी जाय।—कबीर ग्र०, पृ० २५५।

अनिकेत—वि० [स०] १ स्थानरहित। बिना घर का। उ०—अनारभ अनिकेत अमानी।—मानस, ७।८६। २ सन्यासी। परिव्राजक। ३ खानाबदोश। इधर उधर घूमकर अनिश्चित स्थानों मे गुजारा करनेवाला।

अनिकेतन—वि० [स० अ+निकेतन] दे० 'अनिकेत'। उ०—गृही लोग हम अनिकेतन की क्या जानें मृग पीर।—आराध, पृ० ७२।

अनिक्षिप्तधूर—सज्ञा पुं० [स०] १ एक बोधिसत्व का नाम। २ निकाला हुआ बौद्ध भिक्षु [को०]।

अनिक्षिप्त सैन्य—सज्ञा पुं० [स०] तोडी या सेना से अलग की हुई सेना। अपसृत सैन्य।

अनिक्षु—सज्ञा पुं० [स०] जो ईख न हो। ईख जैसी लबी घास या नरकुल [को०]।

अनिगीर्ण—वि० [स०] १ जो निगला न गया हो। २ जो छिपा न हो। प्रकट। व्यक्त [को०]।

अनिग्रह¹—सज्ञा पुं० [स०] १ अनवरोध। बधन का अभाव। २ दड या पीडा का न होना। ३ वाद या तर्क मे हार का अस्वीकरण [को०]।

अनिग्रह²—वि० १ बधनरहित। बेरोक। २ असीम। बेहद। ३ पीडारहित। नीरोग। ४ जिसने दड न पाया हो। अदडित। ५ जो दड के योग्य न हो। अदड्य।

अनिच्छ—वि० [स०] आकाक्षारहित। अनिच्छुक [को०]।

अनिच्छक—वि० [स०] दे० 'अनिच्छुक' [को०]।

अनिच्छा—सज्ञा स्त्री० [स०] वि० अनिच्छित, अनिच्छुक] १ इच्छा का अभाव। चाह का न होना। अरुचि। २ अप्रवृत्ति।

अनिच्छित—वि० [स०] जिसकी इच्छा न हो। अनिप्सित। अनचाहा उ०—अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दुखद खेद।—कामायनी, पृ० १६८। २ अरुचिकर।

अनिच्छु—वि० [स०] दे० 'अनिच्छुक' [को०]।

अनिच्छुक—वि० [सं०] इच्छा न रखनेवाला। जिसे चाह न हो। अनभिलाषी। निराकांक्षी।

अनिजक—वि० [सं०] जो अपना न हो। पराया। दूसरे का [को०]।

अनित¹(पु)—वि० [हिं०] १ दे० 'अनित्य'। उ०—दारा सुत विरत अहै सबहि अनित तासो। पोद्दार० अभि० ग्र०, पृ० ४६३। २ अनंत। जिसका अंत न हो। उ०—महिमा अनित साधु गुरु समुझहु मन सुजान।—कबीर सा०, भा० ४, पृ० ४२०।

अनित²—वि० [सं०] बिना किसी के साथ। अकेला। वंचित [को०]।

अनितभा¹—वि० [सं०] कांतिहीन। तेजहीन [को०]।

अनितभा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम [को०]।

अनित्र(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अन्यत्र'। उ०—काहे कौं भ्रमत है तू बावरे अनित्र जाइ।—सुंदर० ग्र०, भा० २, पृ० ८९४।

अनित्य—वि० [सं०] [स्त्री० अनित्या] [संज्ञा अनित्यत्व, अनित्यता] १ जो सब दिन न रहे। अध्रुव। अस्थायी। चंदरोजा। क्षणभंगुर। २ नश्वर। नाशवान्। ३ जो स्वयं कार्यरूप हो और जिसका कोई कारण हो, अत जो एक सा न रहे। जैसे, 'संसार अनित्य है' (शब्द०)। ४ असत्य। झूठा। ५ अनिश्चित। संदेहास्पद (को०)। ६ व्याकरण में एक नियम जो परीक्षण, प्रयोग के योग्य या अनिवार्य नहीं होता। वैकल्पित [को०]।

अनित्यकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] यदा कदा समय समय पर किया जानेवाला कार्य, जैसे—विशेष उद्देश्य से किए जानेवाले यज्ञ आदि [को०]।

अनित्यक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनित्यकर्म' [को०]।

अनित्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अनित्य अवस्था। नापायदारी। अस्थिरता। अध्रुवता। २ क्षणभंगुरता। नश्वरता।

अनित्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनित्यता'।

अनित्यदत्त—संज्ञा पुं० [सं०] गोद लेने के पहले माता पिता के द्वारा दूसरे को कुछ काल के लिये दिया हुआ पुत्र। वह लड़का जो गोद लिए जाने के पहले कुछ काल के लिये अपने माता पिता द्वारा गोद लेनेवालों को दिया जाय [को०]।

अनित्यदत्तक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनित्यदत्त' [को०]।

अनित्यदत्रिम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनित्यदत्त' [को०]।

अनित्यभाव—संज्ञा पुं० [सं०] परिवर्तनशीलता। क्षणभंगुरता।

अनित्यसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति या असत् उत्तर के २४ भेदों में से एक।

विशेष—यदि कोई कहे कि घट का सादृश्य शब्द में है, इससे घट की भाँति शब्द भी अनित्य हो गया, तो इसपर यह कहना कि किसी न किसी बात में घट का सादृश्य सभी वस्तुओं में होगा, तो क्या फिर सभी वस्तुएँ अनित्य होंगी? इसी प्रकार का उत्तर अनित्यसम कहलाता है।

अनिद—वि० [सं०] जो देखा न जा सके [को०]।

अनिदान—वि० [सं०] जिसका कारण ज्ञात न हो। कारणरहित [को०]।

अनिद्र¹—वि० [सं०] निद्रारहित। बिना नींद का। जिसे नींद न आए। २ जागरूक। जागा हुआ।

अनिद्र²—संज्ञा पुं० १ नींद न आने का रोग। प्रजागर। २.निद्रारहित। जाग्रत। जागा हुआ [को०]। ३ जागरूक। तत्पर [को०]।

अनिद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] १ जागरूकता। तत्परता। २ दे० 'अनिद्र' [को०]।

अनिद्रित—वि० [सं०] जो सोया हुआ न हो। जागा हुआ [को०]।

अनिधृष्ट—वि० [सं०] जो रोका न जा सके। प्रतिबंधरहित। अबाध। अपराभूत [को०]।

अनिन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनन्य'। उ०—(क) अनिन कथा तनि आचरी हिरदै त्रिभुवन राइ।—कबीर ग्र०, पृ० २६। (ख) सतो अनिन सगति यह नाही।—रै० बानी०, पृ० १४।

अनिन्नता(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अनिन्न+ता (प्रत्य०)] दे० 'अनन्यता'। उ०—सेवहि इक्क अनिन्नता, कन मुक्त कब दानि।—पृ० रा०, पृ० ६३।

अनिप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनिक] [हिं० अनी=सेना+प=स्वामी] सेनापति। सेनाध्यक्ष। फौजी अफसर। उ०—मनो मधुमाधव दोउ अनिप धीर। वर विपुल विटप बानैत बीर।—तुलसी ग्र० पृ० ३४६।

अनिपात—संज्ञा पुं० [सं०] पतन का न होना। अपतन। जीवन। का लगातार बने रहना [को०]।

अनिपुण—वि० [सं०] अकुशल। अपटु। जो प्रवीण न हो।

अनिबद्ध—वि० [सं०] १ जो बाँधा न हो। अबद्ध। २ असंबद्ध। अनर्गल। बेसिलसिला [को०]।

अनिबद्धप्रलाप—संज्ञा पुं० [सं०] असंबद्ध या बेसिर पैर की बात [को०]।

अनिबद्धप्रलापी—वि० [सं० अनिबद्धप्रलापिन्] बेसिर पैर की बात करनेवाला। ऊलजलूल बात करनेवाला [को०]।

अनिबाध¹—वि० [सं०] बाधारहित। जिसे कोई बाधा न हो। स्वच्छंद [को०]।

अनिबाध²—संज्ञा पुं० स्वच्छंदता। मुक्तता [को०]।

अनिभृत—वि० [सं०] १ जो छिपा न हो। जो एकांत में न हो। २ अगुप्त। प्रकट। जाहिर। ३ धृष्ट। असकोची। बेतकल्लुफ। ४ ढुलमुल। अस्थिर। [को०]।

अनिभृत सधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अनिभृत सन्धि] यदि कोई राजा किसी दूसरे राजा की बहुत ही अधिक उपजाऊ भूमि को खरीदना चाहता हो और दूसरा राजा उस भूमि को देकर उससे सधि कर ले तो ऐसी सधि को अनिभृत सधि कहते हैं।

अनिभृष्ट—वि० [सं०] अबाधित। बेरोक। जिसपर कोई प्रतिबंध न हो [को०]।

अनिभ्य—वि० [सं०] धनहीन। निर्धन। कंगाल।

अनिमंत्रित—वि० [सं० अनिमन्त्रित] बिना न्योता हुआ। बिना बुलाया हुआ। अनामंत्रित। अनाहूत।

अनिमक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेढक। २ कोयल। ३ मधुमक्खी। ४ भौंरा। ५ कमल की केशर। पद्मकेशर। ६ महुए का वृक्ष। [को०]।

अनिमा[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अणिमा'।

अनिमा[2]—संज्ञा पुं० [अं० एनिमा] दे० 'एनिमा'।

अनिमान—वि [सं०] असीम। अथाह। अत्यधिक। अपरिच्छिन्न [को०]।

अनिमित्त[1]—वि० [सं०] निमित्तरहित। बिना हेतु का। आकस्मिक।

अनिमित्त[2]—क्रि० वि० १ बिना कारण। २ बिना गरज। बिना किसी प्रयोजन के।

अनिमित्त[3]—संज्ञा पुं० [सं०] अपशकुन। अनिष्ट [को०]।

अनिमित्तक—वि० [सं०] १ बिना कारण का। बिना हेतु का। २ व्यर्थ। प्रयोजनरहित। बेमतलब।

अनिमित्तनिराक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपशकुन या अनिष्ट का निवारण [को०]।

अनिमित्तलिंगनाश—संज्ञा पुं० [सं० अनिमित्तलिङ्गनाश] एक प्रकार का नेत्ररोग जिसमे मनुष्य अंधा हो जाता है [को०]।

अनिमिष[1]—वि० [सं०] १ निमेषरहित। स्थिरदृष्टि। टकटकी बाँधकर देखनेवाला। २ जागरूक (को०)। ३ विकसित। खुला हुआ। जैसे आँख या पुष्प [को०]।

अनिमिष[2]—क्रि० वि० १ बिना पलक गिराए। एकटक। उ०—सुंदरता से अनिमिष चितवन छू कोमल मर्मस्थल।—युगवाणी, पृ० ६२। १ निरंतर।

अनिमिष[3]—संज्ञा पुं० १ देवता। २ मछली। ३ विष्णु (को०)। ४. महाकाल का नाम (को०)। ५ एक रतिबंध (को०)।

अनिमिषदृष्टि—वि०[सं०] टकटकी बाँधकर देखना। आँख गड़ाकर देखना। जानबूझ कर या साभिप्राय घूरना [को०]।

अनिमिषनयन—वि० [सं०] दे० 'अनिमिषदृष्टि' [को०]।

अनिमिषलोचन—वि० [सं०] दे० 'अनिमिषदृष्टि' [को०]।

अनिमिषाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवगुरु। बृहस्पति।

अनिमिषीय—वि० [सं०] देवसबंधी [को०]।

अनिमेष[1]—वि० [सं०] दे० 'अनिमिष'।

अनिमेष[2]—क्रि०वि० १ बिना पलक गिराए। एकटक। २ निरंतर।

अनिमेष[3]—संज्ञा पुं० दे० 'अनिमिष'।

अनिमेषदृष्टि—वि० [सं०] दे० 'अनिमिषदृष्टि' [को०]।

अनिमेषनयन—वि० [सं०] दे० 'अनिमिषदृष्टि' [को०]।

अनिमेषलोचन—वि० [सं०] दे० 'अनिमेषदृष्टि' [को०]।

अनियंत्रित—वि० [सं० अनियन्त्रित] १ जो जकड़ा या बाँधा न हो। अबद्ध। प्रतिबंधरहित। बिना रोक टोक का। २ मनमाना। स्वच्छंद। निरंकुश।

अनियंत्रित शासन—संज्ञा पुं० [सं० अनियन्त्रित शासन] निरंकुश राज्य। स्वेच्छाचारी राज्य। एकतंत्र [को०]।

अनियत—वि० [सं०] १ जो नियत न हो। अनिश्चित। अनिर्दिष्ट। अनिर्धारित। २ अस्थिर। अदृढ़। जिसका ठीक ठिकाना न हो। ३ अपरिमित। असीम। ४. असाधारण। गैर मामूली। ५. अबाधित। जो रोका न जा सके [को०]। ६ अनियमित (को०)। ७ अकारण। कारणविहीन [को०]। ८ आकस्मिक (को०)।

अनियतपुंस्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] असती। पुंश्चली। शिथिल आचरण वाली स्त्री। व्यभिचारिणी [को०]।

अनियतवृत्ति—वि० [सं०] १ अनियमित काम न करनेवाला। जो किसी बँधे काम पर न लगा हो। २ अनिश्चित आयवाला। जिसकी कोई बँधी आमदनी न हो [को०]।

अनियतांक—संज्ञा पुं० [सं० अनियताङ्क] गणित में आनेवाला अनिश्चित या अज्ञात अंक। वह संख्या जिसका मूल्य निश्चित न हो [को०]।

अनियतात्मा—वि० [सं० अनियतात्मन्] १ चंचल बुद्धि का। डाँवाडोल चित्त का। २ जिसका मन वश में न हो। अजितेंद्रिय।

अनियम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ नियम का अभाव। नियम का न होना। व्यतिक्रम। २ अव्यवस्था। बेकायदगी। ३ अनियमितता। अनिश्चितता। अस्पष्टता (को०)। ४ अविहित कर्म या अनुचित आचरण (को०)।

अनियम[2]—वि० नियमरहित। व्यवस्थारहित। अव्यवस्थित [को०]।

अनियमित—वि० [सं०] १ नियमरहित। विधिहीन। अव्यवस्थित बेकायदा। २ अनिश्चित। अनियत। अनिर्दिष्ट।

अनियाउⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—सत्य कहहु तुम मोसों दहु काकर अनियाउ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३८।

अनियाराⓅ—वि० [सं० अणि = नोक + हिं० आरा (प्रत्य०)] [स्त्री० अनियारी] नुकीला। कटीला। पैना। धारदार। कोरदार। तीक्ष्ण। तीखा। उ०—अनियारे दीरघ दृगन, किती न तरुनि समान। वह चितवनि औरे कछू, जिहि बस होत सुजान।—बिहारी र०, दो० ५८८।

अनियारीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० अनियारा] अनीदार कटारी। उ०—गहि रोम नखि नर भूमि पर। हनि अनियारिय उभय कर।—पृ० रा० ७।१५८।

अनियुक्त—वि० [सं०] जो नियुक्त न किया गया हो। अनधिकारी। २ न्यायाधीश के साथ बैठनेवाला व्यक्ति (असेसर) जिसकी नियुक्ति अनौपचारिक होती है और जिसे मत देने का अधिकार नहीं होता [को०]।

अनियोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ संबंध का अभाव। २ अनुपयुक्त पद या आयोग [को०]।

अनिर[1]—वि० [सं०] जो प्रेरित न किया जा सके। जो ठेला न जा सके। अशक्त। शक्ति की कमी [को०]।

अनिर[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनिरवा'।

अनिरवसित—वि० [सं०] ऐसे शूद्र जो इतने नीचे नहीं माने जाते कि उनके भोजन कर लेने पर पात्र सदा के लिये त्याग दिया जाय, अर्थात् जिस पात्र में उन्होंने भोजन किया हो उसे स्वच्छ करके फिर ग्रहण किया जा सकता है [को०]।

अनिरवा—संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + नकिट, प्रा० णिग्रड, निग्रट, निग्रउ] [स्त्री० अनिरिया] बहका हुआ पशु। आवारा चौपाया जो खूँटे पर न रहे। बहेतू।

अनिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भोजन का अभाव । अति दरिद्रता । अन्नरहित दरिद्रता । २ दैवी विपत्ति, जैसे, अतिवृष्टि, अनावृष्टि [को०] ।

अनिराकरण—संज्ञा पुं० [सं०] निराकरण न करना । दूर न करना [को०] ।

अनिराकृत—वि० [सं०] जिसका निराकरण न किया गया हो । जो दूर न किया गया हो [को०] ।

अनिरुक्त—वि० [सं०] १ जो स्पष्ट रूप मे कहा न गया हो । अस्पष्ट (कथन) । २ जिसका निर्वचन (व्याख्या) स्पष्ट रूप मे न हुआ हो [को०] ।

अनिरुक्तगान—संज्ञा पुं० [सं०] १ अस्पष्ट गाना या गुनगुनाना । २ सामगान का एक प्रकार [को०] ।

अनिरुद्ध[1]—वि० [सं०] जो रोका हुआ न हो । अबाध । बेरोक ।

अनिरुद्ध[2]—संज्ञा पुं० श्रीकृष्ण के पौत्र, प्रद्युम्न के पुत्र जिनको ऊषा ब्याही थी ।

अनिरुध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनिरुद्ध] दे० 'अनिरुद्ध[2]' । उ०—अनिरुध कहँ जो लिखी जैंवारा ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३०६ ।

अनिर्णय—संज्ञा पुं० [सं०] निर्णय का न होना । अनिश्चय [को०] ।

अनिर्दश—वि० [सं०] जनन या मरण के अशौच के दस दिन बीतने के पूर्व का (समय) [को०] ।

अनिर्दशा—वि० स्त्री० [सं०] जिसको बच्चा दिए दस दिन न बीते हो ।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्राय गाय के संबंध मे देखा जाता है । ऐसी गाय का दूध पीना निषिद्ध है ।

अनिर्दशाह—वि० [सं०] दे० 'अनिर्दश' [को०] ।

अनिर्दिश्य—वि० [सं०] दे० 'अनिर्देश्य' [को०] ।

अनिर्दिष्ट—वि० [सं०] १ जो बताया न गया हो । अनिरूपित । अनिर्धारित । अनिर्वाचित । उ०—क्या उनकी कल्पना मे किसी अनिर्दिष्ट अत्याचारी या क्रूरकर्मा का सामान्य रूप ही था ?—रस० क०, पृ० २६८ । २ अनियत । अनिश्चित । ३ असीम । अपरिमित । ४ निश्चित लक्ष्य से रहित [को०] ।

अनिर्दिष्टभोग—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे के पशु, भूमि या और पदार्थों को मालिक की आज्ञा के बिना काम मे लाना ।

विशेष—इस प्रकार दूसरे की वस्तु का व्यवहार करनेवाला चोर के तुल्य ही कहा गया है । स्मृतियो मे इस दोष के करनेवाले के लिये भिन्न भिन्न अर्थदंड हैं ।

अनिर्देश—संज्ञा पुं० [सं०] निश्चित नियम या निर्देश का अभाव [को०] ।

अनिर्देश्य[1]—वि० [सं०] जिसके गुण, स्वभाव, जाति आदि का निर्धारण न हो सके । जिसके विषय मे कुछ ठीक बतलाया न जा सके । अनिर्वचनीय । अनिर्धार्य । २ जिसकी परिभाषा न हो सके । जिसकी तुलना न हो सके (को०) ।

अनिर्देश्य[2]—संज्ञा पुं० परब्रह्म की एक उपाधि [को०] ।

अनिर्धारित—वि० [सं०] अनिरूपित । अनिश्चित [को०] ।

अनिर्धार्य—वि० [सं०] जिसका निरूपण न हो सके । जिसका लक्ष्य स्थिर न किया जा सके । जिसके विषय मे कोई बात ठहराई न जा सके । अनिर्देश्य ।

अनिर्बंध—वि० [सं० अनिर्बन्ध] १ बिना बंधन का । अबाध । अनियंत्रित । बेरोकटोक । २ स्वतंत्र । स्वच्छंद । स्वाधीन । खुदमुख्तार ।

अनिर्भर—वि० [सं०] भाररहित । कम वजन का । हलका । कम [को०] ।

अनिर्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] भेद न खोलना ।

अनिर्मल—वि० [सं०] गंदा । मैला । अशुद्ध । गँदला [को०] ।

अनिर्माल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जो औषध के काम आता है । पिंडिका [को०] ।

अनिर्लोचित—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसपर सावधानी से विचार न हुआ हो । अविचारित [को०] ।

अनिर्लोडित—वि० [सं०] जिसकी पूर्णत परीक्षा न हुई हो । अपरीक्षित [को०] ।

अनिर्वच—वि० [सं० अनिर्वचनीय] दे० 'अनिर्वचनीय' । उ०—वह है, वह नहीं, अनिर्वच जग उसमे वह जग मे लय ।—गुंजन, पृ० ८३ ।

अनिर्वचन—संज्ञा पुं० [सं०] मौन । खामोशी । जोर से न बोलना । [को०] ।

अनिर्वचनीय[1]—[सं०] १ जिसका वर्णन न हो सके । अकथनीय । अवर्णनीय । उ०—अहो अनिर्वचनीय भावसागर । सुनो मेरी भी स्वरलहरी क्या है कह रही ।—कानन०, पृ० ८१ । २. जो कहने योग्य न हो । अकथ्य ।

अनिर्वचनीय[2]—संज्ञा पुं० १ माया । भ्रम । अज्ञान । २ जगत् । संसार [को०] ।

अनिर्वर्त्यमान—वि० [सं०] जो पास न आ रहा हो । न लौटनेवाला [को०] ।

अनिर्वाच्य—वि० [सं०] १ निर्वचन के अयोग्य । जिसका निरूपण न हो सके । जो बतलाया न जा सके । जिसके विषय मे कुछ स्थिर न हो सके । उ०—पावा अनिर्वाच्य विश्राम ।—मानस, ५।८ । २ जो चुनाव के योग्य न हो । निर्वाचन के अयोग्य ।

अनिर्वात—वि० [सं०] वायुरहित । शांत । उ०—वह श्रुति धारता, ज्ञान की शिखा वह अनिर्वात निष्कंप ।—अणिमा, पृ० ३९ ।

अनिर्वाण—वि० [सं०] १ न बुझा हुआ । २. न नहाया हुआ । अस्नात । अप्रक्षालित [को०] ।

अनिर्वाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूरा न होना । अपूर्णता । २ अनिष्पत्ति । असंगति । ३. आय की कमी या टोटा । साधन की अल्पता [को०] ।

अनिर्वाह्य—वि० [सं०] जो निर्वाह के योग्य न हो । जिसकी व्यवस्था कठिन हो [को०] ।

अनिर्वाह्य पण्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ या माल जिसका राज्य या नगर के भीतर लाया जाना बंद किया गया हो ।

अनिर्विण—वि० [सं०] अलज्जित । जिसने लज्जित होने योग्य कुछ न किया हो [को०] ।

अनिर्विण्ण—वि० [सं०] १ जो थका न हो । निर्वेदरहित । दु ख—रहित । २ विष्णु की एक उपाधि ।—[को०] ।

अनिर्विद—वि० [सं०] अश्रांत । अक्लांत । तरोताजा [को०] ।

अनिर्वृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'अनिर्वृति । २. दरिद्रता । शरणहीन [को०] ।

अनिर्वृत्त¹—वि० [सं०] [संज्ञा अनिर्वृति] बुरी स्थिति का। दुःखी।

अनिर्वृत्त²—वि० [सं०] दे० 'अनिर्वृत्ति [को०]।

अनिर्वृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी स्थिति। दुःख।

अनिर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ ग्लानि का अभाव। निराशा का अभाव। २ स्वावलंबन। साहस [को०]।

अनिर्वेश—वि० [सं०] बेरोजगार। दुःखी [को०]।

अनिल—संज्ञा पुं० [सं०] १ हवा। पवन। वायु। २ पवन देवता। ३ वायु के ४९ भेदों में से एक। ४ अष्ट वसुओं में एक। पंचम वसु। ५ शरीर का एक तत्व। ६ पक्षाघात। लकवा। वातरोग। ७ अक्षर य्। ४९ की संख्या का द्योतक शब्द। ८ स्वाति नक्षत्र। ९ विष्णु का नाम। १० नागौन का वृक्ष। ११ वायु रोग (को०)।

अनिलकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] १ पवन के पुत्र हनुमान। २ जैन शास्त्रों के अनुसार भुवनपति देवताओं का एक भेद।

अनिलघ्न—वि० [सं०] वातविकारों को दूर करनेवाला [को०]।

अनिलघ्नक—संज्ञा पुं० [सं०] विभीतक वृक्ष। बहेड़ा [को०]।

अनिलपर्यय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनिलपर्याय' [को०]।

अनिलपर्याय—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पलकों तथा बाहरी भाग की सूजन [को०]।

अनिलप्रकृति¹—वि० [सं०] वातप्रकृतिवाला [को०]।

अनिलप्रकृति²—संज्ञा पुं० शनि का नाम [को०]।

अनिलभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रथ।

विशेष—मानसार में बनावट या आकार के अनुसार रथ का सात भेद माने गए हैं—(१) नभस्वद्भद्रक, (२) प्रभंजनभद्रक, (३) निवातभद्रक, (४) पवनभद्रक, (५) परिषद्भद्रक, (६) इंद्रभद्रक और (७) अनिलभद्रक।

अनिलय—वि० [सं०] निवासरहित। आश्रयरहित [को०]।

अनिलवाह—संज्ञा पुं० [सं० अनिल + वाह = प्रवाह] वायु का प्रवाह। वायुमंडल। उ०—इस अनिलवाह के पार प्रखर किरणों का वह ज्योतिर्मय घर।—तुलसी०, पृ० १९।

अनिलव्याधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वायु कुपित होने से उत्पन्न रोग [को०]।

अनिलसख—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। वायु का सहायक [को०]।

अनिलसारथि—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

अनिलात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] वायु का पुत्र—१ हनुमान्। २ भीम [को०]।

अनिलातक—संज्ञा पुं० [सं० अनिलान्तक] इंगुदी का पौधा। अगारपुष्प [को०]।

अनिलापह—वि० [सं०] दे० 'अनिलघ्न' [को०]।

अनिलामय—संज्ञा पुं० [सं०] वातरोग। लकवा। गठिया [को०]।

अनिलायन—संज्ञा पुं० [सं०] वायु का मार्ग। हवा की दिशा [को०]।

अनिलहा—वि० [सं० अनीलहन्] वातरोग नष्ट करनेवाला [को०]।

अनिलाशन—वि० [सं०] दे० 'अनिलाशी' [को०]।

अनिलाशी¹—वि० [अनिलाशिन् [वि० स्त्री० अनिलाशिनी] हवा पीकर रहनेवाला।

अनिलाशी²—संज्ञा पुं० साँप। सर्प।

अनिलोड़ित¹—वि० [सं०] अनुल्लंघित [को०]।

अनिलोड़ित²—वि० [सं०] जिसपर भलीभाँति विचार न हुआ हो। अपूर्णतः परीक्षित [को०]।

अनिवर्तन—वि० [सं०] १ दृढ़। स्थिर। २ उचित। न्याय्य [को०]।

अनिवर्ती—वि० [सं० अनिवर्तिन्] [स्त्री० अनिवर्तिनी] १ वापस न लौटनेवाला। २ तत्पर। अध्यवसायी। मुस्तैद। ३ वीर। पीठ न दिखानेवाला। ४ विष्णु और ईश्वर का विशेषण (को०)।

अनिवार(पु)—वि० [सं० अनिवार्य] दे० 'अनिवार्य'। उ०—अति सूधो टेढ़ो बहुरि, प्रेमपंथ अनिवार।—रसखान०, पृ० ६।

अनिवारित—वि० [सं०] जिसे रोका नहीं गया। अबाधित। जिसका विरोध न हो। निर्विरोध [को०]।

अनिवार्य—वि० [सं०] १ जो निवारण के योग्य न हो। जो हटे नहीं। अटल। २ अवश्यंभावी। जो होकर रहे। जो अवश्य हो। ३ जिसके बिना काम न चले। परम आवश्यक। जैसे—उन्नति के लिये शिक्षा का होना अनिवार्य है (शब्द०)।

अनिविशमान—वि० [सं०] न बैठनेवाला। विश्राम न करनेवाला। गतिशील [को०]।

अनिवेशन—वि० [सं०] जिसके पास विश्राम का स्थान न हो [को०]।

अनिवृत्तिबादर—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह कर्म जिनका परिणाम निवृत्त या दूर हो जाय पर कषाय या वासना रह जाय।

अनिविष्ट—वि० [सं०] अविवाहित [को०]।

अनिश—क्रि० वि० [सं०] निरंतर। अनवरत। लगातार। अविश्रांत।

अनिश्चय—संज्ञा पुं० [सं०] संदेह। निश्चय का अभाव [को०]।

अनिश्चित—वि० [सं०] जिसका निश्चय न हुआ हो। अनियत। अनिर्दिष्ट। जिसका कुछ ठीक ठाक न हो। जिसके विषय में कुछ स्थिर न हुआ हो।

अनिषिद्ध—वि० [सं०] जो अवैध या वर्जित न हो। प्रशस्त [को०]।

अनिष्कासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्दानशीन औरत।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय यह नियम था कि पर्दानशीन औरतों से घरों के भीतर ही काम लिया जाता था और उनको वहीं पर वेतन पहुँचा दिया जाता था।

अनिष्ट¹—[सं०] १ जो इष्ट न हो। इच्छा के प्रतिकूल। अनभिलषित। अवांछित। २ बुरा। निषिद्ध (को०)। ३ यज्ञ के लिये वर्जित। जो यज्ञ के लिये प्रशस्त न हो (को०)।

अनिष्ट²—संज्ञा पुं० अमंगल। अहित। बुराई। इच्छाविरुद्ध कार्य। खराबी। हानि।

अनिष्टकर—वि० [सं०] अनिष्ट करनेवाला। अहितकारी। हानिकारक। अशुभकारक।

अनिष्टकारी—वि० [स० अनिष्टकारिन्] [स्त्री० अनिष्टकारिणी] दे० 'अनिष्टकर' ।

अनिष्टग्रह—सज्ञा पु० [स०] हानि करनेवाला ग्रह । अशुभ ग्रह [को०] ।

अनिष्टप्रवृत्तिक—वि०[स०]राष्ट्र या राज्य के अनिष्टसाधन मे तत्पर । बागी । राष्ट्रद्रोही ।

विशेष—चाणक्य के समय मे ऐसे लोगो को अग्नि मे जलाने का दंड दिया जाता था ।

अनिष्टप्रसग—सज्ञा पु० [स० अनिष्टप्रसङ्ग] १ अवाछित या अनिच्छित घटना । २ गलत वस्तु, तर्क, अथवा नियम का सबध [को०] ।

अनिष्टफल—सज्ञा पु० [स०] अवाछित परिणाम । बुरा नतीजा[को०]।

अनिष्टशका—सज्ञा स्त्री० [स० अनिष्टशङ्का] दुर्भाग्य या अवाछित की आशका । अहित होने का डर [को०]।

अनिष्टसूचक—वि० [स०] अनिष्ट या अहित की सूचना देनेवाला [को०] ।

अनिष्ट हेतु—सज्ञा पु० [स०] बुरा लक्षण । अपशकुन ।

अनिष्टानुबधी—वि० [स० अनिष्टानुबन्धिन्] एक के बाद एक विपत्ति का आना । लगातार । विपत्तियो का आगमन [को०] ।

अनिष्टापत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०]अनिष्ट या अशुभ की प्राप्ति । अवाछित घटना [को०] ।

अनिष्टापादन—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अनिष्टापत्ति' [को०] ।

अनिष्टाप्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] अनिष्ट की आप्ति अर्थात् प्राप्ति । अनिष्टापत्ति [को०] ।

अनिष्टाशसी—वि० [स० अनिष्टाशसिन्] अनिष्ट की सूचना देने वाला । अनिष्टसूचक ।

अनिष्टी—वि०[स० अनिष्टिन्] जिसने यज्ञ आदि न किया हो (को०)। २ अभागा । भाग्यहीन ।

अनिष्टोत्प्रेक्षण—सज्ञा पु०[स०]अनिष्ट की कल्पना । अनिष्ट होने की सभावना [को०]।

अनिष्ठा—सज्ञा पु० [स०] अदृढता । निष्ठा का अभाव [को०] ।

अनिष्ठुर—वि० [स०] जो कठोर न हो । जो निर्दय न हो। दयावान । कोमलचित्त [को०] ।

अनिष्ण—वि० [स०] जो प्रवीण न हो । अदक्ष । अकुशल [को०] ।

अनिष्पत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] अपूर्णता । अधूरापन । असिद्धि ।

अनिष्पन्न—वि० [स०] १ अधूरा । अपूर्ण । २ असपन्न । असिद्ध ।

अनिस(पु)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अनिश' ।

अनिसर्ग—वि० [स०] अस्वाभाविक । अप्राकृतिक [को०] ।

अनिसृष्ट—वि०[स०] १ जिसने अधिकार या आज्ञा न प्राप्त की हो । २ जिसके व्यवहार या उपयोग की आज्ञा न ले ली गई हो ।

अनिसृष्टोपभोक्ता—सज्ञा पु० [स०अनिसृष्टोपभोक्तृ] वह जो मालिक की आज्ञा के बिना धरोहर रखी हुई वस्तु काम मे लाए ।

अनिस्तीर्ण—वि०[स०]१ जो पार न किया गया हो । जो अस्वीकृत न किया गया हो । जिसमे छुटकारा न मिला हो । २ अभियोग जिसका उत्तर न दिया गया हो । जिसका खडन न किया गया हो [को०]।

अनिस्तीर्णाभियोग—सज्ञा पु० [स०] वह अभियुक्त जिसने अभियोग का खडन कर उससे मुक्ति न पा ली हो [को०] ।

अनी¹—सज्ञा स्त्री० [स० अणि = अग्रभाग, नोक] १ नोक । सिरा । कोर । उ०—सतगुरु मारी प्रेम की रही कटारी टूटि । वैसी अनी न सालई जैसी सालै मूठि ।—कबीर (शब्द०) । २ नाव या जहाज का अगला सिरा । माँगा । माथा । गलही । ३ जूते की नोक । ४ पानी मे निकली हुई जमीन की नोक ।

अनी²—सज्ञा स्त्री० [स० अनीक = समूह, सेना] १ समूह । झुड । दल । उ०—नारदादि सनकादि प्रजापति, सुर नर असुर अनी ।—सूर०, १।३७१ । २ सेना । फौज । उ०—वेपु न सो सखि सीय न सगा । आगे अनी चली चतुरगा ।—तुलसी (शब्द०) ।

अनी³—सज्ञा स्त्री० [हि० आन = मर्यादा] ग्लानि । खेद । लाग । जैसे-उसने अनो के वस कनी खा ली (शब्द०) ।

अनी⁴†—सर्वो स्त्री० [स० अयि प० अनी] री । अरी । ओ ।

अनीक¹—सज्ञा पु० [स०] १ सेना । फौज । २ समूह । झुड । ३. युद्ध । सग्राम । लडाई ।

अनीक²(पु)—वि० [स० अ = नहीं + फा० नेक, हि० नीक] जो अच्छा न हो । बुरा । खराब ।

अनीकिनी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अक्षौहिणी या पूरी सेना का दसवाँ भाग जिसमे २१८७ हाथी ५६६१ घोडे और १०९३५ पैदल होते है । २ कमलिनी । पद्मिनी । नलिनी ।

अनीक्षण—सज्ञा पु० [स०] न देखना । दृष्टिनिक्षेप न करना [को०] ।

अनीच—वि० [स०] १ जो नीचा न हो । उत्तम । आदर के योग्य । २ जिसका उच्चारण अनुदात्त स्वर में न हुआ हो । उदात्त स्वर मे उच्चारित [को०] ।

अनीचदर्शी—सज्ञा पु० [स० अनीचदर्शिन्] एक बुद्ध का नाम [को०] ।

अनीचानुवर्ती—वि० [स० अनिचानुवर्तिन्] १ नीच अथवा अशिष्ट जनों से सपर्क न रखनेवाला ।२ निष्ठावान् या विश्वसनीय पति या प्रणयी [को०]

अनीठ(पु)—वि०[स०अनिष्ट, प्रा० अणिट्ठ] १ जो इष्ट न हो । अनिच्छित । अप्रिय । २ बुरा । खराब । उ०—(क) जाउ जू जैए अनीठ बडे अरु ईठ बडे पर दीठ बडे हौ ।—देव (शब्द०) । (ख) हा हा व नाइ दयो पीठ दै बैठुरी काहू अनीठ की दीठि परैगी ।—देव (शब्द०) ।

अनीठि(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० अन + इष्टि] १ अनिच्छा । २ बुराई । ३ क्रोध ।

अनीड¹—वि० [स०] बिना घोसले का । २ आश्रयहीन । जिसका निश्चित आवास न हो । ३. अशरीरी ।

अनीड²—सज्ञा पुं० अग्नि का एक नाम [को०] ।

अनीत(पु)सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अनीति' । उ०—ऐसी और न जानिबी जग अनीत करनार । जामैं उपज्यो मरन सो ताको वेधत मार ।—स० सप्तक, पृ० ३६५ ।

अनीति—सज्ञा स्त्री० [स०] १. नीति का विरोध । अन्याय । बेइसाफी । २. शरारत । ३. अधेर । अत्याचार । ४. ईति अर्थात् विपत्ति या कष्ट का अभाव (को०) ।

अनीतिज्ञ—वि० [सं०] [illegible] अनुचित कार्य में पटु। जिसे न्याय अन्याय या नीति का ज्ञान न हो। धृष्ट [को०]।

अनीतिविद्—वि० [सं०] दे० 'अनीतिज्ञ' [को०]।

अनीतिमान्—वि० [सं० अनीतिमत्] [स्त्री० अनीतिमती] अन्यायी [illegible]।

अनीदृश—संज्ञा पुं० [सं०] भिन्न। जो ऐसा न हो। जिसमें समानता न हो [को०]।

अनीप्सित—वि० [सं०] अनिच्छित। अनभिलषित। अनचाहा। [illegible]।

अनीर्ष्य—वि० [सं०] जिसमें ईर्ष्या न हो। द्वेषरहित [को०]।

अनील—वि० [सं०] जो नीला न हो। श्वेत [को०]।

अनीलवाजी—संज्ञा पुं० [सं० अनीलवाजिन्] १ सफेद घोड़ेवाला पुरुष। २ अर्जुन।

अनीश¹—वि० [सं०] १ ईशरहित। बिना अभिभावक या मालिक का। २ जो स्वामी या मालिक न हो। ३ शक्तिरहित। असमर्थ। ४ जिसके ऊपर कोई न हो। सबसे श्रेष्ठ। ५ जो [illegible] न हो [को०]।

अनीश²—संज्ञा पुं० १ विष्णु। २ ईश्वर से भिन्न वस्तु। जीव। माया।

अनीश³—संज्ञा स्त्री० [सं०] असहायावस्था। असमर्थता। दीन [illegible] [को०]।

अनीश्वर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अनीश'। २ ईश्वर का अस्तित्व या सत्ता न मानना [को०]।

अनीश्वर²—वि० १ ईश्वर को न माननेवाला। २ दे० 'अनीश'।

अनीश्वरवाद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनीश्वरवादी] १ ईश्वर के अस्तित्व पर अविश्वास। नास्तिकता। २ पूर्व मीमांसा। मीमांसा दर्शन।

अनीश्वरवादी—वि० [सं० अनीश्वरवादिन्] १ ईश्वर को न माननेवाला। नास्तिक। २ मीमांसक।

अनीस(पु)—वि० [हिं०] १ दे० 'अनीश'¹। २ जिसका कोई रक्षक न हो। अनाथ। उ०—[illegible] दुख पाए। अति अनीस नहिं [illegible]।—तुलसी (शब्द०)।

अनीसून—संज्ञा पुं० [यू०] एक प्रकार की सौंफ जो उत्तर भारत में बहुत होती है।

अनीह¹—वि० [सं०] १ इच्छारहित। निस्पृह। उ०—एक अनीह अरूप अनामा।—मानस, १।१३। २ निश्चेष्ट। बेपरवाह। उदासीन।

अनीह²—संज्ञा पुं० अयोध्या के एक नरेश का नाम [को०]।

अनीहा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनिच्छा। [illegible]। निस्पृहता। २ निश्चेष्टता। बेपरवाही। उदासीनता।

अनीहा²—वि० [illegible]। जो [illegible] न रहे [को०]।

अनु¹—उप० [सं०] जिस शब्द के पहले यह उपसर्ग लगता है उसमें इन अर्थों का योग करता है—१ पीछे। जैसे, अनुगामी, अनुकरण। २ सदृश। जैसे, अनुरूप, अनुगुण, अनुकूल, अनु[illegible]। ३. साथ। जैसे, अनुकंप, अनुपद, अनुराग। ४ प्रत्येक। जैसे, अनुक्षण, अनुदिन। ५ बारबार। जैसे, अनुगणन अनुशीलन। गणरत्न महोदधि में इनके निम्नांकित अर्थ निर्दिष्ट किए गए हैं—वेदाध्ययन, अनुष्ठान, सामीप्य, पश्चाद्भाव, अनुवचन, साम्य, अभिमुख, हीन, विसर्ग और लक्षण।

अनु²—संज्ञा पुं० १ राजा ययाति का एक पुत्र। २ प्राचीन भारत की एक जाति [को०]।

अनु³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अणु] दे० 'अणु'। उ०—बिलस्यो चद्र वनि चकिकनि अनु अनु ह्वै मनु जाइ।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १४१।

अनु⁴(पु)—अव्य० [हिं०] हाँ। ठीक है। उ०—अनु तुम कही नीक यह सोभा। पै कुल मोड़ भँवर जेहि लोभा।—जायसी (शब्द०)।

अनुकंपन¹—संज्ञा पुं० [सं० अनुकम्पन] १ अनुग्रह। दया। २ सहानुभूति [को०]।

अनुकंपन²—वि० दया करनेवाला। कोमलहृदय। सहृदय [को०]।

अनुकंपनीय—वि० [सं० अनुकम्पनीय] दे० 'अनुकंप्य' [को०]।

अनुकंपा—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुकम्पा] [वि० अनुकंपित] १. दया। कृपा। अनुग्रह। २ सहानुभूति। हमदर्दी।

अनुकंपित—वि० [सं० अनुकम्पित] जिस पर कृपा की गई हो। अनुगृहीत।

अनुकंप्य¹—वि० [सं० अनुकम्प्य] दया के योग्य। सहानुभूति का पात्र [को०]।

अनुकंप्य²—संज्ञा पुं० १ शीघ्रगामी दूत या समाचारवाहक। २ तपस्वी [को०]।

अनुक¹—संज्ञा पुं० [सं०] कामी। कामुक। विषयी। कामी पुरुष।

अनुक²—वि० लालची। इच्छुक। २ कामवासनाग्रस्त। ३ ढालुआँ। ४ अधीन। आश्रित [को०]।

अनुकथन—संज्ञा पुं० [सं०] क्रमबद्ध वचन। कथोपकथन। वार्तालाप बातचीत। उ०—मुनि अनुकथन परसपर होई।—मानस, १।४१।

अनुकनीय—वि० [सं० अनुकनीयस्] सबसे छोटे से बड़ा। कनिष्ठतम से प्रथम [को०]।

अनुकर—संज्ञा पुं० [सं०] सहायक [को०]।

अनुकरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुकरणीय, अनुकृत] १ देखा देखी काम। नकल। समान आचरण। उ०—आज सोचता हूँ जैसे पद्मिनी थी कहती—'अनुकरण कर मेरा'।—लहर पृ० ६७। २ पीछे आनेवाला। वह जो पीछे उत्पन्न हो। उ०—आलंबन उद्दीपन के जे अनुकरण बखान। ते कहिए अनुभाव सब, दंपति प्रीति विधान।—केशव (शब्द०)।

अनुकरणीय—वि० [सं०] [स्त्री० अनुकरणीया] अनुकरण करने लायक। नकल करने योग्य।

अनुकर्ता—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुकरण करनेवाला। आदर्श पर चलने वाला। २ नकल करनेवाला। ३ आज्ञाकारी। हुक्म माननेवाला।

अनुकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] अनुकरण। नकल [को०]।

अनुकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाड़ी या रथ का तला। २. खिंचाव। आकर्षण। ३ देवता का आवाहन। ४. विलंब से किसी कर्तव्य का पालन।

अनुकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुकर्ष'।

अनुकलन—संज्ञा पुं० [सं०] अंकन। लेखन। सज्जा करना। उ०—हिंदी लिखने के लिये फारसी लिपि का इस प्रकार अनुकलन करने के कारण।—सपू० अभि० ग्रं०, पृ० १३१।

अनुकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] आवश्यकतानुसार निर्दिष्ट के अभाव में अन्य विकल्प का व्यवहार। जैसे यव के अभाव में गेहूँ या चावल के व्यवहार का विकल्प। २ कल्प (छह वेदांगों में से एक) से संबंधित ग्रंथ [को०]।

अनुकांक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुकाङ्क्षा] [वि० अनुकांक्षित, अनुकांक्षी] इच्छा। अभिलाषा। आकांक्षा।

अनुकांक्षित—वि० [सं० अनुकाङ्क्षित] इच्छित। अभिलषित। आकांक्षित।

अनुकांक्षी—वि० [सं० अनुकाङ्क्षिन्] [वि० स्त्री० अनुकांक्षिणी] इच्छा रखनेवाला। चाहनेवाला। आकांक्षी।

अनुकाम—वि० [सं०] १ प्रिय। इच्छानुकूल। २ इच्छुक। विलासी [को०]।

अनुकामी—वि० [सं० अनुकामिन्] इच्छानुसार कार्य करनेवाला। स्वेच्छाचारी [को०]।

अनुकामीन—वि० [सं०] दे० 'अनुकामी' [को०]।

अनुकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुकरण'।

अनुकारी—वि० [सं० अनुकारिन्] [स्त्री० अनुकारिणी] १ अनुकर्ता। अनुकरण करनेवाला। देखादेखी करनेवाला। नकल करनेवाला। २ आज्ञाकारी। हुक्म पर चलनेवाला।

अनुकार्य¹—वि० [सं०] जिसकी नकल की जा सके। नकल किए जाने योग्य।

अनुकार्य²—संज्ञा पुं० अभिनेता द्वारा अनुकृत व्यक्ति। वह जिसकी नकल की जाय। उ०—उन अभिनेताओं को ही दर्शक लोग अनुकार्य समझ लेते हैं।—सं० शास्त्र, पृ० ४७।

अनुकाल—वि० [सं०] सामयिक। समयानुकूल [को०]।

अनुकीरतन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुकीर्तन'। उ०—जहाँ प्रसिद्ध निषेध को अनुकीरतन प्रकास।—मतिराम ग्रं०, पृ० ४३६।

अनुकीर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १ वर्णन। कथन। २ घोषणा। उद्घोष। प्रचार [को०]।

अनुकुंचित—वि० [सं० अनुकुञ्चित] १ झुका हुआ। २ झुकाया हुआ। टेढा किया हुआ [को०]।

अनुकूल¹—वि० [सं०] [स्त्री० अनुकूला] १ मुआफिक। २ पक्ष में रहनेवाला। सहायक। हितकर। ३ प्रसन्न। उ०—होउ महेस मोहि पर अनुकूला।—मानस, १।१५।

अनुकूल²—संज्ञा पुं० १ वह नायक जो एक ही विवाहित स्त्री में अनुरक्त हो। २ एक काव्यालंकार जिसमें प्रतिकूल से अनुकूल वस्तु की सिद्धि दिखाई जाय। जैसे—आगि लागि घर जरिगा, बड सुख कीन्ह। पिय के हाथ घयिलवा भरि भरि दीन्ह। (शब्द०)। ३ राम के दल का एक बंदर। ४ सबके प्रिय विष्णु।

अनुकूल³(पु)—क्रि० वि० [हिं०] ओर। तरफ। उ०—डाहति भूप रूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला।—मानस २।३४।

अनुकूलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अप्रतिकूलता। अविरुद्धता। २ पक्षपात। हितकारिता। सहायता। ३ प्रसन्नता।

अनुकूलन—संज्ञा पुं० [सं०] अनुकूल होने का प्रभाव। उ०—अर्वाचीन काल में भी हिंदू सभ्यता ने बडी स्थिरता दिखाई है और अनुकूलन की शक्ति का भी परिचय दिया है।—हिंदू सभ्यता, पृ० ५८४।

अनुकूलना(पु)—क्रि० स० [सं० अनुकूलन से नाम०] १ अप्रतिकूल होना। मुआफिक होना। २ पक्ष में होना। हितकर होना। ३ प्रसन्न होना। उ०—फगुआ देन कह्यो मन भायो सबै गोपिका फूली। कठ लगाय चली प्रियतम कौं अपने गृह अनुकूली।—सूर (शब्द०)।

अनुकूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भगण, तगण, नगण और दो गुरु (ऽ।।+ऽऽ।+।।।+ऽऽ) होते हैं। मौक्तिक माला। जैसे—पावक पूज्यौ समिध सुधारी। आहुति दीन्ही सब सुखकारी।—केशव (शब्द०)। २ दंती वृक्ष।

अनुकूलित—वि० [सं०] सम्मानित। जिसका भव्य स्वागत हुआ हो [को०]।

अनुकृत—वि० [सं०] अनुकरण किया हुआ। नकल किया हुआ।

अनुकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ समान आचरण। देखादेखी कार्य। नकल। अनुकरण। उ०—हृदय की अनुकृति बाह्य उदार।—कामायनी पृ० ४६। २ वह काव्यालंकार जिसमें एक वस्तु का कारणांतर से दूसरी वस्तु के अनुसार हो जाना वर्णन किया जाय। यह वास्तव में सम अलंकार के अंतर्गत ही आता है।

अनुकृष्ट—वि० [सं०] १ आकृष्ण। खिंचा हुआ। २ समाहृत। सम्मिलित। ३ आरोपित। गर्भित [को०]।

अनुक्त—वि० [सं०] अकथित। बिना कहा हुआ। अनभिहित।

अनुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ न बोलना। न कहना। अकथना। २ वह बात जो उचित न हो। अनुचित बात [को०]।

अनुक्रंदन—संज्ञा पुं० [सं० अनुक्रन्दन] उत्तर में चिल्लाना। प्रतिक्रंदन [को०]।

अनुक्रकच—वि० [सं०] जिसमें लकडी चीरने की आरी जैसे दाँत बने हों। दंतिदार [को०]।

अनुक्रम¹—वि० [सं०] क्रमबद्ध। सिलसिलेवार। तरतीबवार। उ०—प्रकृति पुरुष, श्रीपति सीतापति, अनुक्रम कथा सुनाई।—सूर, १०।२८१६।

अनुक्रम²—संज्ञा पुं० १ क्रम। सिलसिला। तरतीब। २ एक के बाद एक होने की स्थिति या क्रिया (को०)। ३ दे० 'अनुक्रमणिका' [को०]।

अनुक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्रमबद्ध रूप में आगे बढना। २ पीछे पीछे चलना। अनुगमन [को०]।

अनुक्रमणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्रम। तरतीब। सिलसिला २. सूची। तालिका। फिहरिस्त। ३ कात्यायन का एक ग्रंथ जिसमें मंत्रों के ऋषि, छंद, देवता और विनियोग बताए गए

हैं। ४ अक्षरों और मात्राओं के क्रमानुसार तैयार की हुई शब्द, ग्रंथ, नाम या विषय आदि की सूची।

अनुक्रमणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुक्रमणिका' [को०]।

अनुक्रांत—वि० [सं० अनुक्रान्त] १ पारायण किया हुआ। पढ़ा हुआ। २ विधिपूर्वक संपन्न। ३ अनुक्रमणी आदि में समाविष्ट। परिगणित [को०]।

अनुक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'अनुक्रम'। २ 'अनुकर्म' (को०)।

अनुक्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] अनुकंपा। दया। उ०—दयित, क्या मुझे आर्त जान के, अधिप ने अनुक्रोश मान के, घर दिया तुम्हें भेज आपही।—साकेत, पृ० ३१२।

अनुक्षण—क्रि० वि० [सं०] १ प्रतिक्षण। २ लगातार। निरंतर।

अनुक्षत्ता—संज्ञा पुं० [सं० अनुक्षत्तृ] द्वाररक्षक अथवा सारथी का अनुचर [को०]।

अनुक्षपा—संज्ञा संज्ञा [सं० अनुक्षपम्] एक रात के बाद दूसरी रात का अनवरत क्रम [को०]।

अनुक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] उड़ीसा के मंदिरों से पुजारियों को देवोत्तर संपत्ति में से दी जानेवाली वृत्ति [को०]।

अनुख्याता—संज्ञा पुं० [सं० अनुख्यातृ] अनुसंधान करनेवाला। पता लगानेवाला [को०]।

अनुख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुसंधान। पता लगाना [को०]।

अनुगंतव्य—संज्ञा पुं० [सं० अनुगन्तव्य] १ अनुगमन किए जाने के योग्य। जैसे—मृत पति के साथ पत्नी का सहमरण। २ अनुकरण किए जाने योग्य। ३ अनुसंधान करने योग्य। जिसे खोजा जाय [को०]।

अनुग[१]—वि० [सं०] पीछे चलनेवाला। अनुगामी। अनुयायी। पैरोकार उ०—वन में अग्रज अनुग, अनुज ही अग्रणी।—साकेत, पृ० १३४।

अनुग[२]—संज्ञा पुं० सेवक। नौकर। चाकर। अनुचर। उ०—उतरि अनुज अनुगनि समेत प्रभु गुरु द्विजगन चरननि सिर नायो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४०२।

अनुगत[१]—वि० [सं०] १ पीछे पीछे चलनेवाला। अनुगामी। अनुयायी उ०—चिर अनुगत सौंदर्य के समादर में।—लहर, पृ० ६५। २ अनुकूल। मुआफिक। जैसे,—नियमानुगत कार्य होना उत्तम है (शब्द०)।

अनुगत[२]—संज्ञा पुं० १ सेवक। अनुचर। नौकर। २ संगीत में मध्यम लय या समय (को०)।

अनुगतार्थ—वि० [सं०] प्रायः समान अर्थवाला। करीब करीब मिलते जुलते अर्थ का।

अनुगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अनुगमन। अनुमरण। पीछे पीछे चलना। २ अनुकरण। नकल। ३ अंतिम दशा। मरण।

अनुगतिक—वि० [सं०] अनुमरण करनेवाला। नकल करनेवाला [को०]।

अनुगम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुगमन' [को०]।

अनुगमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ पीछे चलना। अनुमरण। २ समान आचरण। ३ विधवा का मृत पति के शव के साथ जल मरना। ४ सहवास। संभोग। ५ स्वीकरण। स्वीकार। मानना [को०]।

अनुगम्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जिसका अनुसरण अथवा अनुकरण किया जाय [को०]।

अनुगर्जित[१]—वि० [सं०] गर्जन किया हुआ [को०]।

अनुगर्जित[२]—संज्ञा पुं० गरजने जैसी प्रतिध्वनि [को०]।

अनुगवीन—संज्ञा पुं० [सं०] ग्वाला। गोपालक [को०]।

अनुगांग—वि० [सं० अनुगाङ्ग] गंगा के किनारे का (देश०)।

अनुगादी—वि० [सं० अनुगादिन्] पुनरावृत्ति करनेवाला। दूसरे के शब्दों को दोहरानेवाला। प्रतिध्वनि करनेवाला [को०]।

अनुगामी—वि० [सं० अनुगामिन्] [वि० स्त्री० अनुगामिनी] १ पश्चाद्वर्ती पीछे चलनेवाला। उ०—नहीं आप होते अनुगामी निरय के।—करुणा०, पृ० २२। २ समान आचरण करनेवाला। ३ आज्ञाकारी। हुक्म माननेवाला। उ०—मोहि जानिय आपन अनुगामी।—मानस, १।२८१। ४ सहवास या संभोग करनेवाला। ५ जैन सिद्धांत के अनुसार क्षयोपशमनिमित्त अवधिज्ञान के छह भेदों में प्रथम। यहाँ अनुगामी उसे कहा गया है जो दूसरे क्षेत्र या जन्म में भी जीव के साथ जाता है। उ०—'अनुगामी जो दूसरे क्षेत्र या जन्म में भी जीव के साथ जाता है'। हिंदू०स०, पृ० २४१।

अनुगामुक—वि० [सं०] पीछे चलने का अभ्यासी। सदा पीछे चलने वाला [को०]।

अनुगीत—संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद का नाम। दे० 'गीता'। २ गीत के बाद गाया हुआ गीत। उत्तरगीत [को०]।

अनुगीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ महाभारत के अश्वमेध पर्व के १६ से ९२ अध्याय तक का नाम [को०]।

अनुगीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आर्या छंद का एक भेद [को०]।

विशेष—इसके प्रथम चरण में २७ और द्वितीय चरण में ३२ मात्राएँ होती हैं।

अनुगुण[१]—संज्ञा पुं० [सं०] एक काव्यालंकार जिसमें किसी वस्तु के पूर्वगुण का दूसरी वस्तु के संसर्ग से बढ़ना दिखाया जाय। जैसे—मुक्तमाल तिय हास ते अधिक स्वेत ह्वै जाय।—(शब्द०)। २ स्वाभाविक विशेषता [को०]।

अनुगुण[२]—वि० १ समान गुणोंवाला। समान प्रकृतिवाला। २ अनुकूल। मनपसंद। ३ आज्ञाकारी [को०]।

अनुगुप्त—वि० [सं०] ढका हुआ। रक्षित। आवरण किया हुआ [को०]।

अनुगृह—संज्ञा पुं० [सं० अनुगृहम्] मकान के ऊपर की छत [को०]।

अनुगृहीत—वि० [सं०] १ जिसपर अनुग्रह किया गया हो। उपकृत। उ०—मैं अनुगृहीत हूँ और कहूँ क्या देवी।—साकेत, पृ० २४३। २ कृतज्ञ।

अनुगौन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुगमन'। उ०—देखा देखी प्रजहु सब कीनो ता अनुगौन।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २२०।

अनुग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १ दूसरे का दुःख दूर करने की इच्छा। उ०—कृपा अनुग्रह अंगु अघाई।—मानस, २।२९९। २ कृपा। दया। अनुकंपा। उ०—करौं अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन।—मानस, १।१। ३ अनिष्ट निवारण। उ०—मकर दीन दयाल अब, येहि पर होहु कृपाल। शाप अनुग्रह होइ जेहि, नाथ थोरेही काल। मानस—७।१०८। ४. राज्य या

राजा की कृपा से प्राप्त सहायता। सरकारी रियायत। ५ पृष्ठ भाग का रक्षक [को०]।

अनुग्रही—वि० [सं० अनुग्रहिन्] जादूगरी में पटु। बाजीगरी में निपुण [को०]।

अनुग्रासक—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रास। कौर। नेवाला [को०]।

अनुग्राहक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनुग्राहिका] अनुग्रह करनेवाला। कृपालु। सहायक। उपकारी।

अनुग्राही—वि० [सं० अनुग्राहिन्] दे० 'अनुग्राहक'।

अनुग्राह्य—वि० [सं०] कृपा का पात्र। अनुग्रह के योग्य [को०]।

अनुघटन—संज्ञा पुं० [सं०] आपस में जोड़ना। मिलाना। संबंध स्थापित करना [को०]।

अनुघात—संज्ञा पुं० [सं०] नाश। संहार।

अनुघातन—वि० [सं०] मार डालने या नाश करनेवाला। उ०—अघ अरिष्ट धेनुक अनुघातन।—सूर, १०।६८१।

अनुच(पु)—वि० [सं० अनुच्च] जो ऊँचा या श्रेष्ठ न हो। अश्रेष्ठ। निम्न। नीच। उ०—इहि विधि उच्च अनुच तन धरि धरि देस विदेस विचरतौ।—सूर०, १।२०३।

अनुचर—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० स्त्री० अनुचरा, अनुचरी] १ पीछे चलनेवाला दास। नौकर। उ०—अपनी आवश्यकता का अनुचर बन गया।—कंकाल०, पृ० २६। २ सहचर। साथी। उ०—सामने था भीतर से अनुचर मानिक युवक अब।—लहर, पृ०७२।

अनुचारक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवक। परिचारक। अनुगामी [को०]।

अनुचारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेविका। दासी [को०]।

अनुचारी—वि० [सं०] दे० 'अनुचर'। उ०—तात, भरत, शत्रुघ्न, माडवी हम सब उनके अनुचारी।—साकेत, पृ० ३८१।

अनुचिंतन—संज्ञा पुं० [सं० अनुचिन्तन] १ विचार। गौर। २ भूली हुई बात को मन में लाना। ३ लगातार चिंतन। चिंता (को०)।

अनुचित—वि० [सं०] १ अयोग्य। अयुक्त। अकर्तव्य। नामुनासिब। बुरा। खराब। उ०—जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल।—मानस, १।२७७। २. पंक्तिबद्ध किया हुआ (को०)।

अनुचिष्ट(पु)—वि० [सं० अनुच्छिष्ट] दे० 'अनुच्छिष्ट'। उ०—करुणामृत सुकवित्त युक्ति अनुचिष्ट उचारी।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ५३१८।

अनुच्छित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूर्णत पृथक् न होना। २ पूर्णत नष्ट न होना। ३ अनश्वरता [को०]।

अनुच्छिष्ट—वि० [सं०] जो जूठा या व्यवहृत न हो। शुद्ध। निर्दोष। ग्रहण करने योग्य [को०]।

अनुच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अनुच्छित्ति'। २ नियम, अधिनियम आदि का वह अंश जिसमें एक बात का विशद विवरण हो। जैसे राष्ट्रसंघ के घोषणापत्र की ७ वीं धारा का दूसरा अनुच्छेद। ३ किसी रचना या ग्रंथ के एक प्रकरण के वे छोटे छोटे अंश जिनमें संबद्ध विषय के एक एक अंग का विवेचन होता है। पैराग्राफ।

अनुछिन(पु)—वि० [सं० अनुक्षण] क्षण क्षण। प्रत्येक क्षण। लगातार। उ०—'हरीचंद' ते महामूढ़ जे उनहिं न अनुछिन ध्यावैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८०।

अनुज[1]—वि० [सं०] जो पीछे उत्पन्न हुआ हो। उ०—वन में अग्रज अनुज, अनुज ही अग्रणी।—साकेत, पृ० १३४।

अनुज[2]—संज्ञा पुं० १ छोटा भाई। उ०—राम देखावहिं अनुजहि रचना।—मानस, १।२२५। २ एक पौधा। स्थलपद्म।

अनुजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० अनुजन्मन्] दे० 'अनुज' [को०]।

अनुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी बहन। उ०—कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वौ, अनुजा तनुजा॥—मानस,७।१०२।

अनुजात—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अनुजाता] दे० 'अनुज' [को०]।

अनुजीवी[1]—वि० [सं० अनुजीविन्] [वि० स्त्री० अनुजीविनी] सहारे पर जीनेवाला। आश्रित।

अनुजीवी[2]—संज्ञा पुं० सेवक। दास।

अनुजीव्य—वि० [सं०] सेवा का पात्र। सेव्य। जैसे,—गुरु, स्वामी, माता पिता आदि। २ रहन सहन या आचार व्यवहार में अनुकरणीय। जैसे,—गुरुजन, आचार्य, वयोवृद्ध आदि [को०]।

अनुज्ञप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुज्ञापन' [को०]।

अनुज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आज्ञा। हुक्म। अनुमति। इजाजत। उ०—माँग अनुज्ञा उनसे मैंने उस उपवन के फल खाए।—साकेत, पृ० ३८६। २ एक काव्यालंकार जिसमें दूषित वस्तु में कोई गुण देखकर उसके पाने की इच्छा का वर्णन किया जाय। जैसे,—चाहति है हम और कहा सखि, क्यों हूँ कहूँ पिय देखन पावैं। चेरियै सो जु गुपाल रचे तौ चलौ री सबै मिलि चेरि कहावैं।—रसखान (शब्द०)। ३ विवाह के प्रसंग में वाग्दान (को०)। ४ अनुताप। पश्चात्ताप (को०)। ५ अनुरोध (को०)। ६ सद्व्यवहार। अनुग्रह (को०)।

अनुज्ञात—वि० [सं०] जिसे अनुमति प्राप्त हो। आदेशप्राप्त। २ स्वीकृत। सम्मानित। अनुगृहीत। ३ अधिकृत। जिसे कोई अधिकार मिला हो। ४ पृथक् किया हुआ। ५ पढ़ाया हुआ। निष्णात [को०]।

अनुज्ञातक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] सरकार की ओर से दिया हुआ कुछ वस्तुओं को बेचने का ठेका [को०]।

अनुज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अनुज्ञा'। २ प्रस्थान के लिये स्वीकृति। ३ क्षमा। त्रुटि के लिये अनुग्रह (को०)।

अनुज्ञापक—वि० [सं०] आज्ञा या आदेश देनेवाला [को०]।

अनुज्ञापन—संज्ञा पुं० [सं०] १ आज्ञा देना। हुक्म देना। २ जताना। बतलाना।

अनुज्येष्ठ—वि० [सं०] १ ज्येष्ठतम से कनिष्ठ। सबसे बड़े से छोटा। द्वितीय। २ वरीयता के क्रम से दूसरा [को०]।

अनुतप्त—वि० [सं०] १ तपा हुआ। गरम। २ दुखी। खेदयुक्त। रंजीदा।

अनुतर—संज्ञा पुं० [सं०] १ पार जाना। दूसरे छोर पर जाना। २ लड़ाई में तानना। ३ नदी पार करने का किराया [को०]।

अनुतर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्यास। पीने की इच्छा। २ अभिलाषा। आकांक्षा। ३ मदिरापान। ४ पीने का पात्र। चषक। ५ मदिरा [को०]।

अनुतर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ मदिरापान। २ मदिरा पीने का पात्र [को०]।

अनुताप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुतप्त] १ तपन। दाह। जलन। २. दुख। खेद। रंज। ३ पछतावा। अफसोस।

अनुतापन—वि० [सं०] दुख देनेवाला। पश्चात्ताप उत्पन्न करनेवाला। शोकप्रद [को०]।

अनुतापी—वि० [सं० अनुतापिन्] पश्चात्ताप करनेवाला। खेदयुक्त [को०]।

अनुत्क—वि० [सं०] [स्त्री० अनुत्का] उत्कंठारहित। अनुत्सुक। अभिलाषारहित। बिना लालसा का।

अनुत्कट—वि० [सं०] छोटा। सूक्ष्म [को०]।

अनुत्त—वि० [सं०] १ जो तर या भीगा न हो। सूखा २ अप्रेरित [को०]।

अनुत्तम[1]—वि० [सं०] १ जिससे उत्तम दूसरा न हो। सर्वोत्तम। २ जो सबसे अच्छा न हो। सर्वोत्तम नहीं। घटिया [को०]।

अनुत्तम[2]—संज्ञा पुं० १ शिव। २ विष्णु [को०]।

अनुत्तमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] घटियापन। बुराई। उ०—सुख से मन को है जो ममता, है उसमे छिपी अनुत्तमता।—सागरिका, पृ० ७२।

अनुत्तर[1]—वि० [सं०] १ निरुत्तर। लाजवाब। कायल। उ०—यहाँ से एक जिज्ञासा अनुत्तर जगेगी अनिमेष।—हरी घास०, पृ० ५०। २ प्रधान। मुख्य (को०)। ३ सर्वोत्तम (को०)। ४ दृढ़। सलग्न (को०)। ५ जो उत्तरदिशा मे न हो। दक्षिणी (को०)। ६ क्षुद्र। नीच (को०)।

अनुत्तर[2]—संज्ञा पुं० १ जैन देवताओ का एक वर्ग। २ उत्तर का अभाव (को०)।

अनुत्तरदायी—वि० [सं० अनुत्तरदायिन्] कर्तव्य और जिम्मेदारी न रखनेवाला। अपना उत्तरदायित्व न समझनेवाला।

अनुत्तरित—वि० [सं०] उत्तरविहीन। उत्तररहित। उ०—पूछा तुम कहाँ छिपे? प्रश्न रहा अनुत्तरित।—अपलक, पृ० ४८।

अनुत्तान—वि० [सं०] जो उत्तान न हो। पीठ के बल नहीं। छाती के बल लेटा हुआ। चित्त नहीं। पट [को०]।

अनुत्ताप—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धो के अनुसार दस क्लेशो मे से एक।

अनुत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुत्थित] उत्थान का अभाव। चेष्टा या श्रम का न होना [को०]।

अनुत्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उत्पत्ति का अभाव। २. विफलता। असमानता [को०]।

अनुत्पत्तिक—वि० [सं०] जो अब तक उत्पन्न न हुआ हो [को०]।

अनुत्पत्तिसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय मे जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदो मे से एक।

विशेष—यदि किसी वस्तु के प्रसंग मे कोई हेतु कहा जाय और उत्तर मे उसी के प्रसंग मे यह कहा जाय कि जब तक उस वस्तु की उत्पत्ति ही नही हुई, तब तक वह कहा हुआ हेतु कहाँ रहेगा? तो ऐसे उत्तर को अनुत्पत्तिसम कहेंगे। जैसे,-यदि वादी कहे—'शब्द अनित्य है क्योंकि प्रयत्न से उत्पन्न होता है।' इसपर प्रतिवादी कहे—'यदि शब्द प्रयत्न से उत्पन्न होता है तो प्रयत्न से पहले इसकी उत्पत्ति नही होगी। और जब शब्द उत्पन्न ही नही हुआ, तब प्रयत्न से उत्पन्न होने का गुण कहाँ पर रहेगा? जब इस गुण का आधार ही नहीं रहा, तब वह अनित्यत्व का साधन कैसे कर सकता है?

अनुत्पन्न—वि० [सं०] जो उत्पन्न न हुआ हो। जो जन्मा न हो। जो उत्पन्न न किया गया हो [को०]।

अनुत्पाद—संज्ञा पुं० [सं०] उत्पत्ति का न होना। अस्तित्व मे न आना [को०]।

अनुत्पादक—वि० [सं०] उत्पन्न करने मे असमर्थ। जिससे उत्पन्न न हो [को०]।

अनुत्पादन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुत्पाद' [को०]।

अनुत्साह[1]—संज्ञा पुं० [सं०] संकल्प और प्रयत्न का अभाव। उ०—है शीतलता भी और दाह, उत्साह तथा है अनुत्साह।—सागरिका, पृ० ७७।

अनुत्साह[2]—वि० १ दृढता या क्षमता से रहित। २ उदासीन। उत्साहहीन [को०]।

अनुत्सुक—वि० [सं०] जो उत्सुक न हो। सामान्य। शात। उत्कंठा न दिखानेवाला [को०]।

अनुत्सूत्र—वि० [सं०] १ सूत्रो का अनुगामी। २ नियमो या नीति के अनुसार चलनेवाला [को०]।

अनुत्सेक—संज्ञा पुं० [सं०] १ गर्व का न होना। घमंड न होना। २. शालीनता [को०]।

अनुत्सेकी—वि० [सं० अनुत्सेकिन्] जो उत्तेजित न हो। घमंडरहित [को०]।

अनुदक—वि० [सं०] १ जलशून्य। जल के अभाववाला (जैसे,मरुस्थल)। २ थोडे जलवाला। अल्प जलवाला। ३ जिसे कोई पानी देनेवाला न हो [को०]।

अनुदग्र—वि० [सं०] १ जो ऊँचा न हो। नीचा। २ मुलायम। ३ कोमल। दुर्बल। ४ जिसमे तेजी या धार न हो (को०)।

अनुदत्त—वि० [सं०] १ लौटाया हुआ। वापस किया हुआ। २ स्वीकार किया हुआ। ३ क्षमा किया हुआ [को०]।

अनुदर—वि० [सं०][वि० स्त्री० अनुदरा] कृशोदर। दुबला। पतला।

अनुदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १ निरीक्षण। पर्यवेक्षण। २ स्वीकार आदर [को०]।

अनुदात्त—वि० [सं०] १ छोटा। तुच्छ। जो उच्चाशय न हो। २ नीचा (स्वर)। लघु (उच्चारण)। स्वर के तीन भेदों मे से एक। वह स्वर जिसपर बलाघात न हो।

अनुदान—संज्ञा पुं० [सं० अनुदान] १ किसी कार्य के लिये कुछ प्रतिबंधो के साथ दी जानेवाली सरकारी सहायता। सरकारी विभागो द्वारा व्यय होने के लिये स्वीकृत धनराशि। २ लौटाना। प्रत्यावर्तन [को०]।

अनुदार—वि० [सं०] १ सूम। कजूस। २ संकुचित हृदयवाला। संकीर्ण विचारवाला। ३ अत्यंत उदार। महान्। ४ जिसकी दारा या पत्नी भली और अनुगमन करनेवाली हो [को०]।

अनुदित—वि० [सं०] अकथित। जो कहा न गया हो। २ जो उदित न हुआ हो। जो सामने न आया हो। ३ न कहने योग्य। निंदनीय [को०]।

अनुदिन—क्रि० वि० [सं०] नित्यप्रति। प्रतिदिन। रोजमर्रा। उ०—तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिन पावही।—तुलसी ग्र०, पृ० ६३।

अनुदिवस—क्रि० वि० [सं०] दे० 'अनुदिन' [को०]।

अनुदृष्टि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपादृष्टि। अनुकूल दृष्टि। [को०]।

अनुदृष्टि[2]—वि० कृपादृष्टि रखनेवाला। अनुकूल दृष्टि रखनेवाला[को०]।

अनुद्धत—वि० [सं०] १ जो उद्धत न हो। अनुग्र। २ सौम्य। शांत। ३ विनीत।

अनुद्धरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ न हटाना। २ स्थापना न करना। प्रमाणित न करना [को०]।

अनुद्धर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] उद्वेग का अभाव। शांति।

अनुद्धार—संज्ञा पुं० [सं०] १ बँटवारा न करना या अपना भाग न लेना। २ दे० 'अनुद्धरण' [को०]।

अनुद्धृत—वि० [सं०] १ बिना बँटा। अविभक्त। २ न हटाया हुआ। ३ अनष्ट। अक्षत। दुरुस्त। ४ अप्रमाणित। जिसकी स्थापना न की गई हो [को०]।

अनुद्भट—वि० [सं०]मृदु स्वभाववाला। अघृष्ट। २ सौम्य। अहंकारशून्य। निरभिमानी [को०]।

अनुद्यत—वि० [सं०] अतत्पर। सुस्त। काहिल। अकर्मण्य [को०]।

अनुद्यम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] उद्योग या उद्यम का अभाव [को०]।

अनुद्यम[2]—वि० उद्योग या श्रम न करनेवाला। अनुद्यमी [को०]।

अनुद्यमी—वि० [सं० अनुद्यमिन्] उद्यमरहित। आलसी। सुस्त। अलहदी।

अनुद्यूत—संज्ञा पुं० [सं०] १ लगातार जुआ खेलना। २ महाभारत के सभापर्व के अध्याय ७० से ७६ तक का नाम [को०]।

अनुद्योग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आलस्य। सुस्ती। अकर्मण्यता [को०]।

अनुद्योग[2]—वि० अनुद्योगी। अकर्मण्य [को०]।

अनुद्योगी—वि० [सं० अनुद्योगिन्] आलसी। निष्क्रिय। अकर्मण्य। सुस्त [को०]।

अनुद्रुत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल का एक भेद। द्रुत का आधा और मात्रा का एक चौथाई समय।

अनुद्रुत[2]—वि० जिसका पीछा किया गया हो। अनुगमित। अनुधावित [को०]।

अनुद्वाह—संज्ञा पुं० [सं०] अविवाह ब्रह्मचर्य। अविवाहित रहना [को०]।

अनुद्विग्न—वि० [सं०] निश्चिंत। शांत। चिंतामुक्त। आशंकारहित [को०]।

अनुद्वेग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आशंका का अभाव। भय से मुक्ति या सुरक्षा [को०]।

अनुद्वेग[2]—वि० उद्वेगरहित। अनुद्विग्न [को०]।

अनुधावन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुधावक, अनुधावित, अनुधावी] १. पीछे चलना। अनुसरण। २ अनुकरण। नकल। ३ अनुसंधान। खोज। ४ बार बार बुद्धि दौड़ाना। विचार। चिंतन। ५. शुद्ध करना। सफाई (को०)।

अनुधूपित—वि० [सं०] फूला हुआ। गर्वित। अभिमानी [को०]।

अनुध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी विषय का चिंतन। ध्यान। २. स्मरण। विचारणा। ३ शुभचिंतन [को०]।

अनुध्यायी—वि० [सं० अनुध्यायिन्] १ चिंतन करनेवाला। ध्यान में स्थित होनेवाला। २ खोया हुआ। अन्यमनस्क [को०]।

अनुध्येय—वि० [सं०] जिसका शुभ चिंतन किया जाय। जिसके प्रति अनुराग हो [को०]।

अनुध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रतिध्वनि। गूँज। उ०—अंबर से टकराकर अनुध्वनि आ गई त्वरित।—अपलक, पृ० ८७।

अनुनत—वि० [सं० अनु+नत] विनीत। अनुशासित। शीलयुक्त। उ०—चिर अनुनत सौंदर्य के समादर में गुर्जरेश मेरी उन इंगितों में नाच उठे।—लहर, पृ० ७१।

अनुनय—संज्ञा पुं० [सं०] १ विनय। विनती। प्रार्थना। उ०—अनुनय भरी वाणी गूँज उठी कान में।—लहर, पृ० ७१। २ मानना।

अननयमान—वि० [सं०] विनयशील। शिष्ट। सराधन करनेवाला। (को०)।

अनुनयी—वि० [अनुनयिन्] विनीत। नम्र। विनयी [को०]।

अनुनाद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुनादित] प्रतिध्वनि। गूँज। गुंजार।

अनुनादित—वि०[सं०]प्रतिध्वनित। जिसका अनुनाद या गूँज हुई हो।

अनुनादी—वि० [सं० अनुनादिन्] प्रतिध्वनि करनेवाला। आवाज करनेवाला। गुंजायमान [को०]।

अनुनायक—वि० [सं०] संकोची। विनम्र [को०]।

अनुनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुख्य नायिका की सहचरी। जैसे,—सखी, दासी, परिचारिका आदि।

अनुनासिक[1]—वि०[सं०] जो (अक्षर) मुँह और नाक से बोला जाय।

अनुनासिक[2]—संज्ञा पुं० १ मुख और नासिका के योग से उच्चरित वर्ण जैसे,—ङ,ञ, ण, न, म और अनुस्वार। २ नाक से बोली जानेवाली ध्वनि।

अनुनीत—वि० [सं०] १. मर्यादित। अनुशासित। [को०]। २. गृहीत (को०)। ३. प्रतिष्ठित। पूजित (को०)। ४ संतुष्ट। संराधित (को०)। ५. विनयपूर्वक सत्कृत। उ०—किंचित् अनुनीत स्वर में हरिप्रसन्न ने कहा।—सुनीता, पृ० ३२४।

अनुनीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुनय' [को०]।

अनुनीय—वि० [सं०] १. अनुनययोग्य। सराधन के योग्य [को०]।

अनुनेय—वि० [सं०] दे० 'अनुनीय' [को०]।

अनुन्नत—वि० [सं०] जो ऊँचा न हो। जो उभरा न हो (नीचा)। जो ऊपर उठा न गया हो। जिनकी उन्नति न हुई हो [को०]।

अनुन्नतगात्र—वि० [सं०] अविकसित या अल्प विकसित अंगोंवाला। अपुष्ट अंगोंवाला [को०]।

अनुन्नतानत—वि० [स०] समतल [कौ०]।
अनन्मत्त—वि० [स०] जो मतवाला या पागल न हो [कौ०]।
अनुन्मदित—वि० [स०] दे० 'अनुन्मत्त' [कौ०]।
अनुन्माद[1]—सज्ञा पुं० [स०] पागलपन का न होना। उन्माद का अभाव [कौ०]।
अनुन्माद[2]—वि० दे० 'अनुन्मत्त' [कौ०]।
अनुप(पु)—वि० [स० अनुपम] बेजोड। उपमारहित। उ०—सकल सत्त दासी अनुप। नृप इद्रावति अप्पि।—पृ० रा०, ३३।७८।
अनुपकार—सज्ञा पुं० [स०][वि० अनुपकारक, अनुपकारी]१ उपकार का अभाव। २ अपकार। हानि।
अनुपकारी—वि० [सं०] १ उपकार न करनेवाला। अकृतज्ञ। अपकार करनेवाला। हानि पहुँचानेवाला। २ फजूल। निकम्मा।
अनुपकारीमित्र—सज्ञा पु० [स०] शत्रु राजा का मित्र।
अनुपक्षित—वि० [स०] न छीजनेवाला। क्षीण न होनेवाला [कौ०]।
अनुपगत—वि० [स०] दूर का।
अनुपगीत—वि० [सं०] जिसकी प्रशंसा न की गई हो। अप्रशसित [कौ०]।
अनुपजीवनीय—वि० [स०] जिससे जीवननिर्वाह के लिये पर्याप्त प्राप्ति न हो सके। २ जिसके पास जीवननिर्वाह का साधन न हो। साधनहीन [कौ०]।
अनुपतन—सज्ञा पुं० [स०] १. गिरना। क्रमश गिरना। एक के बाद दूसरे का पतन। २ पीछा करना। अनुसरण। ३. निश्चित क्रम मे आगे बढना। ४ अनुपात। ५ गणित का त्रैराशिक नियम [कौ०]।
अनपद[1]—क्रि० वि० [सं०] १ पीछे पीछे। कदम ब कदम। उ०—वधू उर्मिला अनुपद थी, देख गिरा भी गद्‌गद्‌ थी।—साकेत, पृ० ८४। २ अनतर। बाद ही।
अनुपद[2]—वि० पीछे पीछे चलनेवाला। कदम ब कदम पीछे चलनेवाला। पदानुसरण करनेवाला [कौ०]।
अनुपद[3]—सज्ञा १. गीत मे बार बार दोहराया जानेवाला पद। टेक। २ शब्दश व्याख्या [कौ०]।
अनुपदवी—सज्ञा स्त्री० [सं०] पथ। मार्ग। सडक [कौ०]।
अनुपदिक—वि० [सं०] १ पीछे चलनेवाला। पदानुसरण करनेवाला पीछे गया हुआ [कौ०]।
अनुपदी—वि० [पुं० अनुपदिन्] पीछा करनेवाला। खोज करनेवाला। अन्वेषक। पता लगानेवाला [कौ०]।
अनुपदीना—सज्ञा स्त्री० [सं०] जूता। मोजरी। पूरे पैर की लबाई का जूता।
अनुपधा—सज्ञा स्त्री० [स०] वचकता।
अनुपधि—वि०[स०]निश्छल। निष्कपट। धोख। धडो से रहित [कौ०]।
अनुपनीत—वि०[स०] १ अप्राप्त। न लाया हुआ। २ जिसका उपनयन सस्कार न हुआ हो।
अनुपन्यस्त—वि० [सं०] यज्ञ जिसका न्यास या स्थापन विधिपूर्वक न हुआ हो [कौ०]।

अनुपन्यास—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अनुपन्यस्त] १ प्रमाण या निश्चय का अभाव। असमाधान। २ सदेह। अनिश्चय [कौ०]।
अनुपपत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ उपपत्ति का अभाव। २ असमाधान। असगति। ३ असिद्धि। ४ अप्राप्ति। ५ असपन्नता। असमर्थता।
अनुपपन्न—वि० [स०] १ अप्रतिपादित। २ जो साबित न हुआ हो। ३ अयुक्त। ४ असभव (कौ०)। ५ जो सही ढग से समर्थित न हो (कौ०)।
अनुपम—वि० [स०] उपमारहित। बेजोड। जिसकी टक्कर का दूसरा न हो। बेमिसाल। बेनजीर। उ०—अनुपम शोभाधाम आभूषण थे तारका।—कानन०, पृ० ६७।
अनुपमता—सज्ञा स्त्री० [स०] अनुपम होना। उपमा का अभाव। बेजोडपन।
अनुपमर्दन—सज्ञा पुं० [स०] अभियोग या आरोप का खडन न किया जाना [कौ०]।
अनुपमा—सज्ञा स्त्री० [स०] दक्षिण-पश्चिम दिशा के गज। कुमुद की पत्नी [कौ०]।
अनुपमित—वि० [स०] दे० 'अनुपम' [कौ०]।
अनुपमेय—वि० [स०] दे० 'अनुपमा'।
अनुपयुक्त—वि० [स] अयोग्य। बेठीक। बेढब।
अनुपयुक्तता—सज्ञा स्त्री० [स०] अयोग्यता। बेढबपन।
अनुपयोग—सज्ञा पु० [स०] १ व्यवहार का अभाव। काम मे न लाना। २ दुर्व्यवहार।
अपनुपयोगिता—सज्ञा स्त्री० [स०] उपयोगिता का अभाव। निरर्थकता।
अनुपयोगी—वि० [स० अनुपयोगिन्] [सज्ञा अनुपयोगिता] बेकाम। व्यर्थ का। बेमतलब का। बेमसरफ।
अनुपरत—वि० [स०] १ जो मृत न हो। २ बेरोक। अबाधित [कौ०]।
अनुपलभ—सज्ञा पुं० [अनुपलम्भ] ज्ञान का अभाव। जानकारी न होना [कौ०]।
अनुपल—वि० [स०] प्रतिक्षण। हर समय। हर घडी। उ०—वह प्रजा से अनुपल मिलने को सन्नद्ध रहता था।—आदि० भारत, पृ० २५७।
अनुपलब्ध—वि० [स०] १ अप्राप्त। न मिला हुआ। २ अनदेखा। अकल्पित। अज्ञात (कौ०)।
अनुपलब्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अनुपलब्ध] १ अप्राप्ति। न मिलना। २ कल्पना या ज्ञान का अभाव (कौ०)।
अनुपलब्धिसम—सज्ञा पुं० [स०] न्याय मे जाति के चौबीस भेदो मे से एक।

विशेष—यदि वादी किसी बात के न पाए जाने के आधार पर कोई बात सिद्ध करना चाहता है, और उसके उत्तर मे प्रतिवादी किसी और बात के न पाए जाने के आधार पर उसके विपरीत बात सिद्ध करने का प्रयत्न करता है, तो ऐसे उत्तर को अनुपलब्धिसम कहते हैं।

अनुपवीती—वि० [सं० अनुपवीतिन्] यज्ञोपवीत धारण न करने वाला [कौ०]।

अनुपशय—संज्ञा पुं० [सं०] रोगज्ञान के पाँच विधानों में से एक। विशेष—इसमें आहार विहार के बुरे फल को देखकर यह निश्चय किया जाता है कि रोगी को अमुक रोग है। वि० दे० 'उपशय'।

अनुपस्कृत—वि० [सं०] १ अपरिष्कृत। जिसपर पालिश न की गई हो। २ शुद्ध। निष्कलुष। ३ जो पकाया न गया हो। ४ जिसके संबंध में मन में कोई भ्रम न हो [को०]।

अनुपस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] अनुपस्थिति [को०]।

अनुपस्थित—वि० [सं०] जो सामने न हो। जो मौजूद न हो। अविद्यमान। गैरहाजिर।

अनुपस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अविद्यमानता। गैरमौजूदगी। गैर-हाजिरी। उ०—प्रत्युत्तर की अनुपस्थिति में हाम भी पाद-पूर्ति सा होना है दुष्काव्य में।—महाराणा०, पृ० १४।

अनुपहत—वि० [सं०] १ अव्यवहृत। कोरा। नया (वस्त्र)। २ जो टूटा न हो। अक्षत [को०]।

अनुपाख्य—वि० [सं०] जो साफ देखा या जाना न जाय। जिसका केवल अनुमान किया जाय। अनुमेय [को०]।

अनुपात—संज्ञा पुं० [सं०] १ गणित की त्रैराशिक क्रिया। २ दी हुई तीन संख्याओं में चौथी को जानना। २ अनुसरण। पीछा करना (को०)। ३ एक के बाद दूसरे का पतन। लगातार गिरना (को०)।

अनुपातक—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्महत्या के समान पाप जैसे, चोरी, झूठ बोलना, परस्त्रीगमन इत्यादि।

अनुपादक—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार आकाश से भी सूक्ष्म एक तत्व।

अनुपान—संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जो औषध के साथ या उसके ऊपर से खाई जाय।

अनुपानत्क—वि० [सं०] पदत्राण से रहित। नंगे पैर [को०]।

अनुपानीय[1]—वि० [सं०] औषधि के साथ पिया जानेवाला पेय [को०]।

अनुपानीय[2]—संज्ञा पुं० बाद में पी जानेवाली वस्तु [को०]।

अनुपाय—वि० [सं०] निरुपाय। उ०—राज्य सग तुम्हें कहाँ से हाय। दे सकूँगा आर्य को अनुपाय।—साकेत, पृ० १९९।

अनुपायी—वि० [सं० अनुपायिन्] साधन का उपयोग न करनेवाला। उपाय न करनेवाला [को०]।

अनुपार्श्व—वि० [सं०] पार्श्ववर्ती। बगलगीर [को०]।

अनुपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ अश्वादि पशुओं का रक्षक। रखवाला [को०]।

अनुपालक—वि० [सं०] १ रक्षा करनेवाला। २ माननेवाला [को०]।

अनुपालन—संज्ञा पुं० [सं०] १ रक्षण। २ पालन [को०]।

अनुपाश्रयाभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो बसनेवालों के अति-रिक्त और दूसरों को आश्रय देने में असमर्थ हो अर्थात् जिसमें और लोगों के बसने की गुंजाइश न हो।

अनुपासन—संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान का अभाव। उपेक्षा [को०]।

अनुपासित—वि० [सं०] उपेक्षित। जिसपर ध्यान न दिया जाय [को०]।

अनुपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वकथित व्यक्ति। २ अनुगामी। अनुयायी [को०]।

अनुपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की नरकुल [को०]।

अनुपूर्व—वि० [सं०] यथाक्रम। अनुक्रमिक। सिलसिलेवार।

अनुपूर्वकेश—वि० [सं०] सुव्यवस्थित केशोंवाला [को०]।

अनुपूर्वगात्र—वि० [सं०] सुडौल अंगोंवाला [को०]।

अनुपूर्वदंष्ट्र—वि० [सं०] सुंदर दंतपंक्तियोंवाला [को०]।

अनुपूर्वनाभि—वि० [सं०] सुंदर नाभिवाला [को०]।

अनुपूर्वपाणिलेख—वि० [सं०] जिसके हाथ की रेखाएँ सुस्पष्ट तथा व्यवस्थित हों [को०]।

अनुपूर्ववत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नियमित समय पर बच्चा देनेवाली गाय [को०]।

अनुपूर्व्य—वि० [सं०] व्यवस्थित। क्रमबद्ध [को०]।

अनुपेत—वि० [सं०] १ जो शिक्षा या दीक्षा के लिये गुरु के यहाँ भरती न हुआ हो। अदीक्षित। २ जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो। अनुपनीत (को०)।

अनुप्त—वि० [सं०] जो बोया न गया हो। बिना बोया हुआ।

अनुप्रशस्य—वि० [सं०] बिना बोया। परती [को०]।

अनुप्रज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] अन्वेषण करना। पता लगाना। खोज करना [को०]।

अनुप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट। उपहार। दान। २ वृद्धि। बढ़ोतरी [को०]।

अनुप्रवण—वि० [सं०] अनुकूल। भानेवाला। मनपसंद [को०]।

अनुप्रवाद—संज्ञा पुं० [सं०] किंवदंती। अफवाह [को०]।

अनुप्रवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रवेश करना। भीतर जाना। २ अपने अवसर के अनुकूल बनाना। ३ अनुकरण [को०]।

अनुप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] संबंधित प्रश्न। प्रसंगानुकूल जिज्ञासा [को०]।

अनुप्रसक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रगाढ प्रेम। गहरी आसक्ति। २ तर्क शास्त्र के अनुसार शब्दों का निकट संबंध [को०]।

अनुप्रस्थ—वि० [सं०] चौड़ाई के अनुसार [को०]।

अनुप्राणन—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राण संचारण। २ प्रेरणा। स्फुरण [को०]।

अनुप्राणित—वि० [सं०] प्राणवान्। सजीव। प्रेरित। उ०—"भगवद्गीता भी जायसवाल जी के कथनानुसार मनुस्मृतिवाले आदर्शों से ही अनुप्राणित है"।—मा० इ० रू०, पृ० ७२६।

अनुप्राशन—संज्ञा पुं० [सं०] खाना। भक्षण। उ०—कछु दिन पवन कियो अनुप्राशन रोक्यो श्वास वह जानी।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

अनुप्रास—संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्दालंकार जिसमें किसी पद में एक ही अक्षर बार बार आकर उस पद की अधिक शोभा का कारण होता है। वर्णवृत्ति। वर्णसाम्य। वर्णमैत्री। जैसे—काक कहहिं करकंठ कठोरा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इसके पाँच भेद हैं—छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, अंत्यानुप्रास और लाटानुप्रास।

अनुप्रेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नेत्र गड़ाकर देखना। ध्यान से देखना। २ ग्रंथ के अर्थ का मनन अर्थात् मन से अभ्यास। पठित विषय का एकाग्र चित्त से चिंतन।

अनुबंध—संज्ञा पुं० [सं०अनुबन्ध] १ बंधन। लगाव। २ अविच्छिन्न क्रम। आगापीछा। सिलसिला। जैसे—किसी कार्य को करने के पहले उसका आगापीछा सोच लेना चाहिए (शब्द०)। ३ वंशज। अनुवंश (को०)। ४. होनेवाला शुभ या अशुभ परिणाम। फल। ५ उद्देश्य। इरादा। कारण (को०)। ६ गौण वस्तु। पूरक। अप्रधान वस्तु (को०)। ७ वात पित्त और कफ में से जो अप्रधान हो। ८ वादविवाद या विषयवस्तु को जोड़नेवाली कड़ी। वेदांत का एक अनिवार्य तत्व या अधिकरण। ९ अपराध। त्रुटि (को०)। १० पारिवारिक बाधा, भार या स्नेह (को०)।११ पिता या गुरु के पथ का अनुसरण करनेवाला बालक (को०)। १२ आरंभ। श्रीगणेश। १३ मार्ग। उपाय (को०)। १४ तुच्छ या नगण्य वस्तु (को०)। १५ मुख्य रोग के साथ उत्पन्न अन्य विकार (को०)। प्यास। तृषा (को०)। १६ अनुसरण। १७ करार। इकरारनामा। १८ पाणिनीय व्याकरण में धातु, प्रत्यय आदि का लोप होनेवाला वह उत्संजक सांकेतिक वर्ण जो गुण, वृद्धि प्रत्याहार आदि के लिये उपयोगी हो।

अनुबंधक—वि० [सं० अनुबन्धक] संबद्ध। संबंधित। २ अनुबंधकरनेवाला (को०)।

अनुबंधन—संज्ञा पुं० [सं० अनुबन्धन] संबंध। अनुक्रम। सिलसिला। उ०—पूर्वापर प्रसंगों के अनुबंधन में ब्रजविलास की कला द्रुत-विलंबित गति से प्रवाहित होती है।—पोद्दार० अभि०, ग्र०, पृ० ३४९।

अनुबंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुबन्धिका] जोड़ का दर्द (को०)।

अनुबंधी[1]—वि० [सं० अनुबन्धिन्] [वि० स्त्री० अनुबन्धिनी] १ संबंधी। लगाव रखनेवाला। २ फलस्वरूप। परिणामस्वरूप।

अनुबंधी[2]—संज्ञा स्त्री० १ हिचकी। २ प्यास।

अनुबद्ध—वि० [सं०] १ संबद्ध। लगाव रखनेवाला (को०)।

अनुबर्तन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुवर्त्तन'। उ०—प्रगटित पूरब दिसिहि को जहँ अनुबर्तन होत।—मतिराम ग्रं०, पृ० ४२८।

अनुबल—संज्ञा पुं० [सं०] पीछे रहकर रक्षा करनेवाली सेना (को०)।

अनुबाद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुवाद'। उ०—सुनत फिरौं हरि गुन अनुबादा।—मानस, ७।११०। २ जनश्रुति। अफवाह। उ०—ताहि तू बनाई जोई बाँह दै उसीमें सोई ऐसे अनुबादन के अनुबा घनेरे हैं।—गंग०, पृ० २६४।

अनुबोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्मरण या बोध जो पीछे हो। २ किसी वस्तु की हल्की हो गई सुगंध को पुन तीव्र करना। गंधोद्दीपन।

क्रि० प्र०—करना—होना।

अनुबोधन—संज्ञा पुं० [सं०] स्मरण करना या कराना (को०)।

अनुब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्राह्मण के समान ग्रंथ। जैसे,ऐतरेय ब्राह्मण से मिलता जुलता ग्रंथ। २ ब्राह्मण जैसा कार्य(को०)।

अनुभव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुभवी] १. प्रत्यक्ष ज्ञान। वह ज्ञान जो साक्षात् करने से प्राप्त हो। स्मृतिभिन्न ज्ञान। जैसे—सब जीव पीड़ा का अनुभव करते हैं (शब्द०)। २ परीक्षा द्वारा पाया हुआ ज्ञान। उपार्जित ज्ञान। तजरबा। जैसे,—उसे इस कार्य का अनुभव नहीं है (शब्द०)। ३ समझ। मन से प्राप्त ज्ञान (को०)। ४ परिणाम। फल (को०)।

अनभवना(पु)—क्रि० स० [सं० अनुभव से नाम०] अनुभव करना। बोध करना। उ०—पुन्य फल अनुभवत सुतहि बिलोकि कै नंद घरनि।—सूर०, १०।१०६।

अनुभवी—वि० [सं० अनुभविन्] अनुभव रखनेवाला। जिसने देख सुनकर जानकारी प्राप्त की हो। तजरबेकार। जानकार।

अनुभाऊ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुभाव'। उ०—बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ।—मानस, २।२८८।

अनुभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रभाव। महिमा। बड़ाई। २ काव्य में रस के चार अंगों में से एक। वे गुण और क्रियाएँ जिनसे रस का बोध हो। चित्त का भावप्रकाश करनेवाला कटाक्ष, रोमांच आदि चेष्टाएँ।

विशेष—अनुभाव के चार भेद हैं—सात्विक, कायिक, मानसिक और आहार्य। हाव भी इसी के अंतर्गत माना जाता है।

अनुभावक—वि० [सं०] प्रतीति या अनुभूति करानेवाला (को०)।

अनुभावन—संज्ञा पुं० [सं०] चेष्टा या भंगिमा द्वारा मन के भावों को प्रकट करना (को०)।

अनुभावित—वि० [सं०] १ अत्यधिक शक्तिसंपन्न। २ रक्षित। ३ अनुभवसंपन्न। अनुभवी (को०)।

अनुभावी—वि० [सं० अनुभाविन्] [वि० स्त्री० अनुभाविनी] १. जिसे अनुभव या संवेदना हो। साक्षात्कार कारक। २ वह साक्षी जिसने सब बातें खुद देखी सुनी हों। चश्मदीद गवाह। ३ मृतक के वे संबंधी जिन्हें उसके मरने का अशौच लगे या जो आयु आदि में उनके छोटे हों। ४ बाद में आनेवाला। बाद में होनेवाला (को०)। ५ भाव दिखानेवाला (को०)।

अनुभाषक—वि० [सं०] उत्तर में बोलनेवाला (को०)।

अनुभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] १ खंडन करने के लिये किसी स्थापना का पुन कथन। २ कथित वस्तु का पुन कथन। पुराख्यान। आवृत्ति। ३ वार्तालाप। कथोपकथन (को०)।

अनुभास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कौआ (को०)।

अनुभूत—वि० [सं०] १ जिसका अनुभव हुआ हो। जिसका साक्षात् ज्ञान हुआ हो। २ परीक्षित। तजरबा किया हुआ। आजमूदा।

यौ०—अनुभूतार्थ।

अनुभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुभव। परिज्ञान। आधुनिक न्याय के अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमिति उपमिति और शब्दबोध द्वारा प्राप्त ज्ञान। २ इंद्रियज ज्ञान या बोध। प्रत्यक्ष ज्ञान (को०)।

अनुभेद—संज्ञा पुं० [सं०] उपभेद। उ०—कौन बड़ो को छोट भेद अनुभेद न जानैं।—सूर०, १०।५८६।

अनुभोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जमीन जो किसी काम के बदले में माफी दी जाय। माफी। खिदमती। २ उपभोग।

अनुभौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुभव'। उ०—अनुभौ चँवर रैन दिन ढरिया।—केशव० अमी०, पृ० ५०।

अनुभ्राता—संज्ञा पुं० [सं० अनुभ्रातृ] कनिष्ठ भ्राता। छोटा भाई। अनुज [को०]।

अनुमंता—वि० [सं० अनुमन्तृ] अनुमति देनेवाला। स्वीकृति देनेवाला। चलते कार्य को होने देनेवाला [को०]।

अनुमत—वि० [सं] १ अनुज्ञप्त। संमत। स्वीकृत। २ प्रिय। मनपसंद। ३ एकमत। एकराय। ४ प्रेमी [को०]।

अनुमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आज्ञा। अनुज्ञा। हुक्म। २ संमति। इजाजत। ३ वह पूर्णिमा जिसमें चंद्रमा की कला पूरी न हो। चतुर्दशी से युक्त पूर्णिमा।

अनुमतिपत्र—संज्ञा पुं० [सं० अनुमति+पत्र] किसी प्रतिबंधित कार्य के करने के लिये सरकारी आज्ञापत्र। जैसे, एक देश से दूसरे देश में जाने के लिये सरकारी आज्ञापत्र, पासपोर्ट या विसा [को०]।

अनुमत्त—वि० [सं०] आनंद के अतिरेक से उन्मत्त। खुशी के मारे पागल [को०]।

अनुमनन—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वीकृति देना। २ स्वतंत्रता [को०]।

अनुमरण—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चात् मरण। पति के साथ विधवा स्त्री का चितारोहण। सती होना [को०]।

अनुमरु—संज्ञा पुं० [सं०] मरुभूमि के बाद का देश [को०]।

अनुमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुमान। अनुमिति [को०]।

अनुमाता—वि० [सं० अनुमातृ] अनुमान लगानेवाला। निष्कर्ष निकालनेवाला [को०]।

अनुमात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दृढ निश्चय। संकल्प [को०]।

अनुमान—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अनुमानित, अनुमित] १ अटकल अंदाजा २ विचार। भावना। कयास। ३. न्याय के अनुसार प्रमाण के चार भेदों में से एक।

विशेष—इससे प्रत्यक्ष साधन के द्वारा अप्रत्यक्ष साध्य की भावना होती है। इसके तीन भेद हैं—(क) पूर्ववत् या केवलान्वयी जिसमें कारण द्वारा कार्य का ज्ञान हो। जैसे, बादल देखकर यह भावना करना कि पानी बरसेगा। (ख) शेषवत् या व्यतिरेकी, जिसमें कार्य को प्रत्यक्ष देखकर कारण का अनुमान किया जाय। जैसे, नदी की बाढ देखकर अनुमान करना कि उसके चढाव की ओर पानी बरसा है। और (ग) सामान्यतोदृष्ट या अन्वयव्यतिरेकी, जिसमें नित्यप्रति के सामान्य व्यापार को देखकर विशेष व्यापार का अनुमान किया जाता है। जैसे, किसी वस्तु को स्थानांतर में देखकर उसके वहाँ लाए जाने का अनुमान।

अनुमानत—क्रि० वि० [सं०] अटकल या अनुमान से [को०]।

अनुमानना(पु)—क्रि० स० [सं० अनुमान से नाम०] अनुमान करना। सोचना। अंदाजा करना। उ०—समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी।—मानस १।१५८।

अनुमानाश्रित—वि० [सं० अनुमान+आश्रित] जो अनुमान पर आधारित हो। जिसका कोई ठोस आधार न हो।

अनुमानोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तर्क। तर्कना। २ तर्कानुमोदित निष्कर्ष [को०]।

अनुमापक—वि० [सं०] [स्त्री० अनुमापिका] अनुमान में सहायक [को०]।

अनुमास—संज्ञा पुं० [सं०] १ आनेवाला महीना। २ मास प्रति मास [को०]।

अनुमित—वि० [सं०] अनुमान किया हुआ। अंदाजा हुआ।

अनुमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अनुमान। २ नव्य न्याय के अनुसार अनुभूति के चार भेदों में से एक जिसमें किसी वस्तु के व्याप्त गुणों के कारण अन्य वस्तु का अनुमान किया जाय।

अनुमित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्कर्ष या अनुमान निकालने की आकांक्षा [को०]।

अनुमृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो पति के साथ सती हो गई हो [को०]।

अनुमेय—वि० [सं] अनुमान के योग्य।

अनुमोद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुमोदन' [को०]।

अनुमोदक—वि० [सं०] अनुमोदन करनेवाला। समर्थन करनेवाला। उ०—अनुमोदक तो नहीं किंतु निज अग्रज का अनुगत हूँ मैं। —साकेत, पृ० ३९५।

अनुमोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रसन्नता का प्रकाशन। खुश होना। २ समर्थन। ताईद। उ०—कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं।—मानस, ७।१२९।

अनुयाता—संज्ञा पुं० [सं० अनुयातृ] अनुगामी। साथी [को०]।

अनुयात्र—संज्ञा पुं० [सं०] अनुचरों का दल। २ अर्दली में रहना। ३ अनुगमन [को०]।

अनुयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुयात्र' [को०]।

अनुयात्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुयात्रा' [को०]।

अनुयान—संज्ञा पुं० [सं०] अनुगमन। पीछे चलना [को०]।

अनुयायी१—वि० [सं० अनुयायिन्] [वि० स्त्री० अनुयायिनी] १ अनुगामी। पीछे चलनेवाला। २ अनुकरण करनेवाला। शिक्षा या आदर्श पर चलनेवाला। ३ समान। तुल्य (को०)।

अनुयायी२—संज्ञा पुं० अनुचर। सेवक। दास। पैरोकार।

अनुयुक्त—वि० [सं०] १ जिसके संबंध में अनुयोग किया गया हो। जिसके विषय में कुछ प्रश्न किया गया हो। जिज्ञासित। २ निंदित।

अनुयोक्ता१—वि० [सं० अनुयोक्तृ] [वि० स्त्री० अनुयोक्त्री] जिज्ञासा करनेवाला। पूछताछ करनेवाला।

अनुयोक्ता२—संज्ञा पुं० १ परीक्षक। २ भृतकाध्यापक। शुल्क लेकर पढानेवाला अध्यापक [को०]।

अनुयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रश्न। जिज्ञासा। पूछताछ। रोक। बाधा (को०)। ३ उद्यम। श्रम। चेष्टा (को०)। ४ आलोचना। टीका (को०) ५ आध्यात्मिक या यौगिक मनन चिंतन [को०]।

अनुयोजन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुयोजित, अनुयोज्य] पूछने की क्रिया। प्रश्न करना। पूछना।

अनुयोजित—वि० [सं०] जिसके विषय में पूछताछ की गई हो।

अनुयोज्य१—वि० [सं] १ प्रष्टव्य। जिसके विषय में पूछताछ की आवश्यकता हो। २ निंदनीय। बुरा।

अनुयोज्य२—संज्ञा पुं० विश्वस्त सेवक। भृत्य [को०]।

अनुरंजक—वि० [सं० अनुरञ्जक] मन बहलानेवाला। प्रसन्न करनेवाला [को०]।

अनुरंजन—संज्ञा पुं० [सं० अनुरञ्जन] १ अनुराग। आसक्ति। प्रीति। २ दिलबहलाव

अनुरंजित—वि० [सं० अनुरञ्जित] आनंदित। अनुरागयुक्त। उ०—मन को अनुरंजित करना ही यदि कविता का अंतिम लक्ष्य माना जाय तो।—रस०, पृ० २८।

अनुरक्त—वि० [सं०] अनुरागयुक्त। प्रेमयुक्त।—सरिता बनी माया उसे कहती कि तुम अनुरक्त हो।—कानन, पृ० २६। २ आसक्त। लीन। उ०—रहै सदा हरि पद अनुरक्त।—सूर०, ६।५। ३ प्रसन्न। खुश। संतुष्ट (को०)। ४ लालिमायुक्त। रंगीन (को०)। ५ हर प्रकार से अनुकूल। भक्त। निष्ठावान् (को०)।

अनुरक्तप्रकृति—वि० [सं०] (राजा) जिसकी प्रजा उसमें अनुरक्त हो। प्रजाप्रिय।

अनुरक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आसक्ति। अनुराग। प्रीति। भक्ति। उ०—उर में जाने पर भी वन की स्मृति अनुरक्ति रहेगी यह।—पंचवटी पृ० ११।

अनुरणन—संज्ञा पुं० [सं०] १ नूपुर, घंटा आदि की ध्वनि। २ प्रतिध्वनि। गूँज। ३ शब्दव्यंजना [को०]।

अनुरणित—वि० [सं०] झंकृत। ध्वनित [को०]।

अनुरत—वि० [सं०] १ लीन। आसक्त। उ०—चरननि चित्त निरंतर अनुरत रसना चरित रसाल।—सूर०, १।१८६। २ अनुरागी। प्रिय।

अनुरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] लीनता। आसक्ति। अनुराग। प्रीति।

अनुरत्त(पु)—वि० [सं० अनुरक्त, प्रा० अनुरत्त] दे० 'अनुरक्त' उ०—सजे सूर सावंत सब, सुमुख समर अनुरत्त।—हम्मीर, पृ० २३।

अनुरथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] सड़क के दोनों ओर पैदल चलने का मार्ग। सड़क का किनारा। पटरी। [को०]।

अनुरध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनिरुद्ध] दे० 'अनिरुद्ध'। उ०—कृष्ण गेह कै काम। काम अग्रज जनु अनुरध।—पृ० रा०, १।७२७।

अनुरस—संज्ञा पुं० [सं०] १ गौण रस। अप्रधान रस। २ वह स्वाद जो किसी वस्तु में पूर्ण रूप से न हो। ३ दे० 'अनुरसित[1]' [को०]।

अनुरसित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिध्वनि। गूँज [को०]।

अनुरसित[2]—वि० प्रतिध्वनियुक्त [को०]।

अनरहस[1]—वि० [सं०] एकांत। गुप्त। गोपनीय [को०]।

अनरहस[2]—क्रि० वि० गुप्त रूप में। ऐकांतिक [को०]।

अनुराग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुरागी] प्रीति। प्रेम। आसक्ति। प्यार। मुहब्बत। २ भक्ति भाव (को०)। ३ लाल रंग।(को०)।

अनुराग[2]—वि० लालिमायुक्त। लाल किया हुआ [को०]।

अनुरागना[1](पु)—क्रि० स० [सं० अनुराग से हिं० नाम०] प्रीति करना। प्रेम करना। आसक्त होना। उ०—अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे।—मानस, १।२८२।

अनुरागना[2](पु)—क्रि० अ० प्रेमयुक्त होना। आसक्तियुक्त होना। उ०—सुनि प्रभुबचन अधिक अनुरागेउँ।—मानस, ७।८४।

अनुरागी—वि० [सं० अनुरागिन्] [वि० स्त्री० अनुरागिणी] अनुराग रखनेवाला। प्रेमी। उ०—या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।—बिहारी र०, दो० १२१।

अनुरात्र—क्रि० वि० [सं०] प्रतिरात्रि। रात्रि में। एक के बाद दूसरी रात [को०]।

अनुराध[1]—वि० [सं०] १ कल्याण करनेवाला। हितकारक। २ अनुराधा नक्षत्र में उत्पन्न [को०]।

अनुराध[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] विनती। विनय। आराधना। प्रार्थना। याचना। उ०—सूर स्याम मन दोहि न मेरो पुनि कीन्हौ अनुराध।—सूर०, १०।१८८६।

अनराधना(पु)—क्रि० स० [सं० अनुराध से हिं० नाम०] विनय करना। विनती करना। मनाना। प्रार्थना करना। उ०—मैं आजु तुम्है गहि बाँधौं, हा हा करि करि अनुराधौं।—सूर, १०।१८३।

अनुराधग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] अनुराध द्वारा स्थापित लंका की प्राचीन राजधानी जिसका एक नाम अनुराधपुर भी है [को०]।

अनुराधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] २७ नक्षत्रों में १७ वाँ नक्षत्र। उ०—भादौं मुकता छट्ठ को, जो अनुराधा होय। नाता सबन यों जुड़े, भूखा रहै न कोय (शब्द०)।

विशेष—यह सात तारों के मिलने से सर्पाकार दिखाई देता है। यह नक्षत्र बड़ा शुभ और मांगलिक माना जाता है।

अनुरुद्ध—वि० [सं०] १. रोका हुआ। बाधित। जिसका प्रतिवाद किया गया हो। २ तोषित। सराधित [को०]।

अनुरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास [को०]।

अनुरूप—वि० [सं०] [संज्ञा अनुरूपता] १ तुल्य रूप का। सदृश। समान। सरीखा। २ योग्य। अनुकूल। उपयुक्त। उ०—निज अनुरूप सुभग वरु मांगा।—मानस, १।२५८।

अनुरूपक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनु+रूपक] प्रतिमा। प्रतिमूर्ति। उ०—गोभित दंत रुचि सुभ्र उर आनिए। सत्य जनु रूप अनुरूपक बखानिए।—केशव (शब्द०)।

अनुरूपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ समानता। सादृश्य। २ अनुकूलता। उपयुक्तता।

अनुरूपना(पु)—क्रि० स० [सं० अनुरूप से हिं० नाम०] समान या सदृश बनाना।

अनुरूपासिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रों, भाई, बंधुओं आदि को साम, दाम आदि द्वारा अपने पक्ष में करना।

अनुरेवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा [को०]।

अनुरोदन—संज्ञा पुं० [सं०] शोक की अभिव्यक्ति। सहानुभूति [को०]।

अनुरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १ रुकावट। बाधा। उ०—मोहु बिनु अनुरोध ऋतु के बोध विहित उपाउ। करत हैं सोइ समय साधन फलति बनत बनाउ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३७३। २ प्रेरणा। उत्तेजना। जैसे,—सत्य के अनुरोध से मुझे यह कहना ही पड़ता है (शब्द०)। ३ आग्रह। दबाव। विनयपूर्वक किसी बात के लिये हठ। जैसे,—उसका अनुरोध है कि मैं अँगरेजी भी पढ़ूँ (शब्द०)। ४ इच्छापूर्ति करना (को०)। ५. समान [को०]। ६. विचार [को०]।

अनुरोधक--वि० [सं०] अनुरोध करनेवाला [को०]।

अनुरोधन--संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुसरण। परिपालन। आज्ञाकारिता। आदर। इच्छापूर्ति। २ किसी का प्रेम प्राप्त करने का साधन [को०]।

अनुरोधी--वि० [सं० अनुरोधिन्] दे० 'अनुरोधक' [को०]।

अनुर्वर--वि० [सं०][वि० स्त्री० अनुर्वरा] १ जिसमें उपज न हो। जो जरखेज न हो। उ०--इस विकराल, अनुर्वर, ऊसर मरु सा जल प्रांतर में।--ग्राम्या, पृ० १४। २ निष्फल। उ०--अपने में सिमटी हुई मलिन विद्या अनुर्वरा की झाँकी।--सामधेनी, पृ० १७।

अनु ‹ग्न--वि० [सं०] संलग्न। पीछे लगा हुआ। जान बूझकर चिपका हुआ [को०]।

अनुलाप--संज्ञा पुं० [सं०] १ बातचीत। वार्तालाप। उ०--प्राणियों के बीच में होने लगा अनुलाप।--शकु०, पृ० ६। २ पुनरुक्ति। किसी बात को प्रकारांतर से बार बार कहना (को०)।

अनुलालित--वि० [सं०] अनुरंजित। जिसका मनोरंजन किया गया हो [को०]।

अनुलाम--संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर [को०]।

अनुलास्य--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुलास' [को०]।

अनुलिपि--संज्ञा पुं० [सं० अनु + लिपि] प्रतिलिपि। नकल। उ०--अनुलिपि आदि का कुछ कुछ अभ्यास करना प्रारंभ कर देने से लाभ ही होता है। भाषा शि०, पृ० ६८।

अनुलेख--संज्ञा पुं० [सं० अनु + लेख] अनुलिपि। प्रतिलिपि।

अनुलेप--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुलेपन'[1]। उ०--स्मृति के विक्षत पग रे, यह चलती है डगमग रे, अनुलेप सदृश तू लग रे।--लहर, पृ० ५०।

अनुलेपक--वि० [सं०] [स्त्री० अनुलेपिका] जो शरीर पर लेप, उबटन आदि लगाता है [को०]।

अनुलेपन--संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी तरल वस्तु की तह चढ़ाना। लेपन। उ०--अनुलेपन सा मधुर स्पर्श था।--कामायनी, पृ० २१५। २ सुगंधित द्रव्यों या औषधों का मर्दन। उबटन करना। बटना लगाना। ३ लीपना। पोतना।

अनुलेपी--वि० [सं० अनुलेपिन्] दे० 'अनुलेपक' [को०]।

अनुलोम--संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊँचे से नीचे की ओर आने का क्रम। उतार का सिलसिला। २ उत्तम से अधम की ओर आता हुआ श्रेणीक्रम। ३ संगीत में सुरों का उतार। अवरोही। ४ प्रतिलोम का उलटा या विलोम [को०]।

यौ०--अनुलोम विवाह।

अनुलोमज--वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनुलोमजा] वह (संतान) जो अनुलोम विवाह से उत्पन्न हो। अनुलोम संकर।

अनुलोमजन्मा--वि० [सं० अनुलोमजन्मन्] दे० 'अनुलोमज' [को०]।

अनुलोमन--संज्ञा पुं० [सं०] १ वह औषध जो पेट में पड़े हुए कोठों को ढीला करके गिरा दे। कोष्ठबद्धता को दूर करनेवाली रेचक या भेदक औषध। २ स्वाभाविक क्रम। अनुलोम [को०]।

अनुलोम विवाह--संज्ञा पुं० [सं०] उच्च वर्ण के पुरुष का अपने से किसी नीच वर्ण की स्त्री के साथ विवाह।

जैसे--ब्राह्मण का क्षत्रिया, वैश्या या शूद्रा से क्षत्रिय का वैश्या या शूद्रा से और वैश्य का शूद्रा से विवाह। इस प्रकार के संबंध से जो संतति होती है वह अनुलोम संकर कहलाती है।

अनुलोमा--संज्ञा स्त्री० [सं०] पति से नीचे वर्ण की स्त्री [को०]।

अनुलोमा सिद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं०] पौर, जानपद तथा सेनापतियों को दान तथा भेद से अपने अनुकूल करना।

अनुल्बण, अनुल्वण--वि० [सं०] १ जो अधिक न हो। न अधिक न अल्प। २ अस्पष्ट [को०]।

अनुवंश--संज्ञा पुं० [सं०] १ वंशवृक्ष। वंशावली। कुरसीनामा। २ आधुनिक या नई पीढ़ी [को०]।

अनुवंश्य--वि० [सं०] वंशवृक्ष या वंशावली से संबंधित। जो कुरसीनामे में हो [को०]।

अनुवक्ता--संज्ञा पुं० [सं० अनुवक्तृ] उत्तर देनेवाला। प्रतिवक्ता। बाद में बोलनेवाला। पुनः पाठ करनेवाला। दोहरानेवाला [को०]।

अनुवक्र--वि० [सं०] १ अत्यंत कुटिल या टेढ़ा। २ कुछ टेढ़ा या तिरछा [को०]।

अनुवचन--संज्ञा पुं० [सं०] १ आवृत्ति। दोहराना। पठन। २. अध्यापन। शिक्षण। व्याख्यान। भाषण। ३ अध्याय। पाठ। प्रकरण। ४ भिन्न ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट नियमों के अनुसार मंत्रपाठ [को०]।

अनुवत्सर[1]--संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार जो पाँच वर्ष का युग होता है उसका चौथा वर्ष।

अनुवत्सर[2]--क्रि० वि० प्रतिवर्ष। सालाना।

अनुवदना(पु)†--क्रि० स० [सं० अनु + वद्] बात दुहराना। उत्तर प्रत्युत्तर करना। कठहुज्जती करना। उ०--गम नहि अनुवद सुपहु समाज।--विद्यापति, पृ० ३१८।

अनुवर्तन--संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुसरण। अनुगमन। २ अनुकरण। समान आचरण। ३ किसी नियम का कई स्थानों पर बार बार लगना। ४ परिणाम। फल (को०)। ५ कृतज्ञतापालन (को०)।

अनुवर्तिनी[1]--वि० [सं०] अनुगामिनी। अनुसरण करनेवाली।

अनुवर्तिनी[2]--संज्ञा स्त्री० भार्या। पत्नी [को०]।

अनुवर्ती--वि० [सं० अनुवर्तिन्] [स्त्री० अनुवर्तिनी अनुसरण] अनुसरण करनेवाला। अनुसार बरताव करनेवाला। अनुयायी। अनुगामी। पैरवी करनेवाला।

अनुवश[1]--वि० [सं०] अधीन। दूसरे के कहने पर चलनेवाला। वशवर्ती। आज्ञाकारी [को०]।

अनुवश[2]--संज्ञा पुं० आज्ञाकारिता। वशवर्तित्व [को०]।

अनुवसित--वि० [सं०] १ कपड़े से ढँका हुआ। वस्त्र द्वारा आच्छादित। २ बाँधा हुआ। संबद्ध। संलग्न [को०]।

अनुवह--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक का नाम [को०]।

अनुवा१—संज्ञा पुं० [सं० अनूप = जलयुक्त, प्रा० अणूव] १ कुएँ के जगत का वह भाग जहाँ खडे होकर पानी खीचते हैं। २ पानी निकालने के लिये खोदा हुआ गड्ढा। चौडा। चोग्रा। ३ ताल के पास का वह स्थान जहाँ से टोकरी या दौरी के द्वारा खेत सीचने के लिये पानी ऊपर फेंकते हैं। चौना।

अनुवा२—संज्ञा पुं० [देश०] व्यभिचार दोष।

अनुवा३ (पु)—[हिं० आनना] आननेवाला। लानेवाला। उ०—ताहि तू वताड जोई वाँह दै उसीसैं सोई ऐसे अनुवादन के अनुवा घनेरे हैं।—गग०, ग्र० पृ० ७९।

अनुवाक—संज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रथविभाग। ग्र थावयव। ग्रथखड। अध्याय या प्रकरण का एक भाग। २ वेद के अध्याय का एक अश। ३ दुहराना। पुन पढना (को०)।

अनुवाचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञो मे विधि के अनुसार मत्रो का पाठ। २ पढाना। अध्ययन कराना (को०)। ३ स्वय पढना (को०)।

अनुवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुनरुक्ति। पुन कथन। दोहराना। २ भाषातर। उल्था। तर्जुमा। ३ न्याय के अनुसार वाक्य का वह भेद जिसमे कही हुई वात का फिर फिर स्मरण और कथन हो। जैसे—'अन्न पकाओ, पकाओ, पकाओ, शीघ्र पकाओ, हे प्रिय ! पकाओ'।

विशेष—इसके दो भेद हैं—जहाँ विधि का अनुवाद हो वहाँ शब्दानुवाद और जहाँ विहित का हो वहाँ अर्थानुवाद होता है।

४ मीमासा के अनुसार वाक्य के विधिप्राप्त आशय का दूसरे शब्दो मे समर्थन के लिये कथन।

विशेष—यह तीन प्रकार का है—(क) भूतार्थानुवाद, जिसमे आशय की पुष्टि के लिये भूतकाल का उल्लेख किया जाय। जैसे, पहले सत् ही था। (ख) स्तुत्यर्थानुवाद, जैसे वायु ही सवसे वडकर फेंकनेवाला देवता है। (ग) गुणानुवाद, जैसे, दही से हवन करे।

५ खवर। जनश्रुति (को०)। ६ व्याख्यान का आरभ (को०)। ७ विज्ञापन। सूचना [को०]।

अनुवादक—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुवाद करनेवाला। भाषातर करनेवाला। उल्था करनेवाला। २ सदृश। समान (को०)। ३ समर्थन करनेवाला [को०]।

अनुवादित—वि० [सं०] अनुवाद किया हुआ। अनूदित।

अनुवादी१—संज्ञा पुं० [सं० अनुवादिन्] सगीत मे स्वर का एक भेद जि की किसी राग मे आवश्यकता न हो और जिसके लगाने से राग अशुद्ध हो जाय।

अनुवादी२—वि० दे० 'अनुवादक' [को०]।

अनुवाद्य—वि० [सं०] अनुवाद के योग्य। व्याख्या के योग्य [को०]।

अनुवास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुवासन' [को०]।

अनुवासन—संज्ञा पुं० [सं०] १ वस्त्रादि को सुगधित करना। महकाना। २ सुश्रुत के अनुसार पिचकारी के द्वारा तरल औषध शरीर के भीतर पहुँचाना। वस्ति क्रिया। एनिमा।

अनुवासनवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सुगधित करने का यत्र। पिचकारी। २ शरीर के भीतर तरल औपध पहुँचाने की पिचकारी।

अनुवासित—वि० [सं०] १ गध से वसाया हुआ। गधद्रव्य मे सुवासित। २ वस्ति क्रिया द्वारा चिकित्सा किया हुआ। एनिमा दिया हुआ [को०]।

अनुवासी—वि० [सं० अनुवासिन्] पडोस मे रहनेवाला। साथ रहनेवाला [को०]।

अनुवित्त—वि० [सं०] प्राप्त। उपलब्ध [को०]।

अनुवित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राप्ति। उपलब्धि [को०]।

अनुविद्ध—वि० [सं०] १ छेदा हुआ। जिसमें आर पार छेद किया हो। २ खचित। सलग्न। ३ भरा हुआ। परिपूर्ण। ४ मिला हुआ। युक्त। सयुक्त [को०]।

अनुविधान—संज्ञा पुं० [सं०] १ आज्ञापालन। आज्ञाकारिता। २ आदेश या नियम के अनुसार कार्य करना।

अनुविधायी—वि० [सं० अनुविधायिन्] [वि० स्त्री० अनुविधायिनी] १ आज्ञाकारी। विनीत। आदेशानुसारी। २ मिलता जुलता। तद्रूप [को०]।

अनुविनाश—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के साथ लुप्त या नष्ट हो जाना [को०]।

अनुविहित—वि० [सं०] आज्ञाकारी [को०]।

अनुवृत्त१—वि० [सं०] १ अनुसरण करनेवाला। २ आज्ञापालन करनेवाला। ३ लगातार। अविच्छिन्न। ४ उतार चढाव के साथ वर्तुलाकार। सुराहीदार। ५ शीतानुगत। ६ जिसकी आवृत्ति की गई हो [को०]।

अनुवृत्त२—संज्ञा पुं० [सं०] वृतात। वर्णन। विवरण।

अनुवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ किसी पद के पहले अश से कुछ वाक्य उसके पिछले अश मे अर्थ को स्पष्ट करने के लिये लाना जैसे—'राम घर गए हैं और गोविंद भी (घर गए हैं)'। २ स्वीकृति। सपुष्टि (को०)। ३. आज्ञाकारिता (को०)। ४ आवृत्ति (को०)। ५ अनुसरण। अनुकरण (को०)।

अनुवेध—संज्ञा पुं० [सं०] १ छेदन करना। वेधना। २ सपर्क। मिलन। ३ मिश्रण। ४ वाधा [को०]।

अनुवेल्लित१—वि० [सं०] नीचे झुका हुआ [को०]।

अनुवेल्लित२—संज्ञा पुं० १ घाव पर पट्टी वाँधना। २ सुश्रुत के अनुसार घाव वाँधने के लिये १४ प्रकार की पट्टियो मे से एक[को०]।

अनुवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुसरण। वाद मे प्रवेश करना। पीछे पीछे प्रविष्ट होना। २ वडे भाई से पहले छोटे का विवाह [को०]।

अनुवेशन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुवेश' [को०]।

अनुवेश्य१—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह ब्राह्मण जो मगल या शाति कर्म करनेवाले से एक घर के अतर पर रहता हो।

विशेष—मनु ने किसी मगल या शाति कर्म मे ऐसे ब्राह्मण को भोजन कराने का निषेध किया है।

अनुवेश्य२—वि० प्रतिवेशी। पड़ोसी। सटे हुए मकान मे रहनेवाला।

अनुव्याख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ मत्रो तथा सूत्रो की व्याख्या। मत्रविवरण। २ ब्राह्मण ग्र थो का वह भाग जिसमे कठिन सूत्रो तथा मत्रो की व्याख्या हो। मत्रो आदि का अनुरूप अर्थप्रकाशक व्याख्यान [को०]।

अनुव्याध—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुवेध' [को०]

अनुव्याहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ बार बार दोहराना । पुनरुक्ति । २ किसी प्रसग का प्रसगातर सहित उल्लेख । ३ शाप । अनिष्टचिंतन [को०] ।

अनुव्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुव्याहरण' [को०] ।

अनुव्रजन—संज्ञा पुं० [सं०] विदा होते हुए विशिष्ट अतिथि के साथ कुछ दूर पहुँचाने जाना [को०] ।

अनुव्रज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुव्रजन' [को०] ।

अनुव्रत¹—वि० [सं०] १ विश्वासपात्र । कर्तव्यपरायण २ निर्दिष्ट कार्यों को दत्तचित होकर उचित रूप से करनेवाला [को०] ।

अनुव्रत²—संज्ञा पुं० जैन मुनियों का एक वर्ग [को०] ।

अनुव्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सदा पति मे अनुरक्त रहनेवाली स्त्री । पतिव्रता [को०] ।

अनुशतिक—संज्ञा पुं० [सं०] सौ से अधिक सैनिकों का नायक या अफसर ।

विशेष—इसका स्थान शतानीकों के ऊपर होता था जिन्हे यह सैनिक शिक्षा देता था ।

अनुशप—संज्ञा पुं० [सं०] काम से ली हुई छुट्टी । रुखसत ।

विशेष—चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र मे इसके सबध मे बहुत से नियम दिए हैं ।

अनुशय—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वद्वेष । पुराना वैर । अदावत । २ पश्चात्ताप । अनुताप । उ०—लघुता मत देखो वक्ष चीर, जिसमे अनुशय बन घुसा तीर ।—कामायनी, पृ० २५० । ३ झगडा । वादविवाद । कहासुनी । गर्मागर्मी । ४ दान सबधी झगडो का निर्णय, फल या फैसला (अर्थ०) । ५ घृणा (को०) । ६ लगाव । आसक्ति (को०) । ७ बुरे कर्मों का फल या परिणाम । कर्मविपाक (को०) ।

यौ०—क्रीतानुशय=वे नियम जो क्रय विक्रय के झगडे से सबध रखें । नारद स्मृति मे ये बडे विस्तार के साथ कहे गए है ।

अनुशयान—वि० [सं०] पश्चात्ताप करनेवाला । पछतानेवाला [को०] ।

अनुशयाना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ परकीया नायिका का एक भेद । वह नायिका जो अपने प्रिय का मिलने स्थान नष्ट हो जाने से दुखी हो ।

विशेष— यह तीन प्रकार की होती है । (क) सकेतविघट्टना=वर्तमान सकेत नष्ट होने से दुखी । (ख) भाविसकेतनष्टा=भावी सकेत के नष्ट होने की सभावना से सतापित और (ग) रमणगमना=मिलने के स्थान पर प्रिय गया होगा और मैं नही पहुँच सकी, यह सोचकर जो दुखी हो ।

अनुशयी¹—वि० [सं० अनुशयिन्] १. वैरी । द्वेषी । २ झगडालू । ३ पश्चात्तापयुक्त । पछतानेवाला । ४ चरणो पर पडकर प्रणाम करनेवाला । ५. अनुरक्त । लीन । आसक्त । ६. कर्मफल का भोक्ता (को०) ।

अनुशयी²—संज्ञा पुं० वह राजकर्मचारी जो दान संबंधी झगडों का निर्णय करता था (अर्थ०) ।

अनुशयी³—संज्ञा स्त्री० [सं०अनुशय+ई] रोगविशेष । एक प्रकार की फुंसी जो पैर मे होती है।

अनुशर—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्टात्मा राक्षस ।

अनुशासक—संज्ञा पुं० [सं०] १ आज्ञा देनेवाला । आदेश देनेवाला । हुक्म देनेवाला । २ उपदेष्टा । शिक्षक । ३ देश या राज्य का प्रबध करनेवाला । हुकूमत करनेवाला ।

अनुशासन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुशासक, अनुशासनीय, अनुशासित] १ आदेश । आज्ञा । हुक्म । उ०—अनुशासन ही था मुझे अभी तक आता ।—साकेत, पृ० २३५ । २ उपदेश । शिक्षा । ३ व्याख्यान । विवरण । ४. महाभारत का एक पर्व । ५ नियम । व्यवस्था ।

अनुशासनपर—वि० [सं०] आज्ञाकारी [को०] ।

अनुशासनपर्व—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत का १३वाँ पर्व ।

अनुशासनीय—वि० [सं०] १ आज्ञा देने के योग्य । आदेश देने के योग्य । हुक्म देने के लायक । २ उपदेश देने के योग्य । शिक्षा देने के योग्य । ३ प्रबध करने के योग्य । हुकूमत करने के लायक ।

अनुशासित—वि० [सं०] १ जिसको आज्ञा दी गई हो । जिसे आदेश दिया गया हो । २ उपदिष्ट । शिक्षित । ३ जिसका प्रबध किया गया हो । जिसपर हुकूमत की गई हो ।

अनुशासी—संज्ञा पुं० [सं० अनुशासिन्] दे० 'अनुशासक [को०] ।

अनुशास्ता—संज्ञा पुं० [सं० अनुशास्तृ] दे० 'अनुशासक' [को०] ।

अनुशिष्ट—वि० [सं०] १ शिक्षित । २ आदिष्ट । निदेशित । ३. पूछा हुआ ।

अनुशिष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आदेश । शिक्षा । शासन [को०] ।

अनुशीलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुशीलनीय, अनुशीलित] १ चिंतन । मनन । आलोचन । उ०—देवो की सृष्टि विलीन हुई अनुशीलन मे अनुदिन मेरे ।—कामायनी, पृ० ७१ । २ पुन पुन अभ्यास या अध्ययन । आवृत्ति ।

अनुशीलनीय—वि० [सं०] १ चिंतन करने के योग्य । मनन करने के योग्य । विचार या आलोचना करने के योग्य । २ अभ्यास करने के योग्य ।

अनुशीलित—वि० [सं०] बार बार अभ्यस्त । सावधानी से अथवा ध्यानपूर्वक पठित [को०] ।

अनुशोक—संज्ञा पुं० [सं] शोक । पश्चात्ताप । खेद [को०] ।

अनुशोचक—वि० [सं०] १. पश्चात्तापकर । खेदजनक । पछतानेवाला [को०] ।

अनुशोचन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुशोक' [को०] ।

अनुशोचना—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुशोचन] दुख । शोक । खेद । चिंता । उ०—(क) 'क्यो हृदय को दुर्बल बनाकर अनुशोचना बढ़ा रहे हो' ।—राज्यश्री, पृ० ६ ।

अनुशोची—वि० [सं० अनुशोचिन्] दे० 'अनुशोचक' [को०] ।

अनुश्रव—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक या धार्मिक परपरा [को०] ।

अनुश्रविक—वि० [सं०] परंपरा से श्रुति द्वारा परलोक विषयक (ज्ञान), जैसे, स्वर्ग, देवता, अमृत इत्यादि का ।

अनुश्रुत—वि०[सं०] परपरा से सुना गया अथवा प्राप्त (ज्ञान आदि) [को०] ।

अनुश्रुति—सज्ञा स्त्री० [सं०] परंपरया सुनी या प्राप्त कथा, ज्ञान अथवा बात। उ०—अनुश्रुति है कि उनका निर्वाण विक्रम के जन्म से ४७० वर्ष पूर्व हुआ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २२३।

अनुषंग—सज्ञा पुं० [सं० अनुषङ्ग] [वि० अनुषंगी, अनुषंगिक] १ करुणा। दया। २ सबंध। लगाव। साथ। ३ प्रसग से एक वाक्य के आगे और वाक्य लगा देना। जैसे—'राम वन को गए और लक्ष्मण भी'। इस पद मे "भी" के आगे 'वन को गए' वाक्य अनुषंग से समझ लिया जाता है। ४ न्याय मे उपनय के अर्थ को निगमन मे ले जाकर घटाना। किसी वस्तु मे किसी और के तुल्य धर्म का स्थापन करके उसके विषय मे कुछ निश्चय करना। जैसे,—घट आदि उत्पत्ति धर्मवाले हैं (उदाहरण), वैसे ही शब्द उत्पत्ति धर्मवाला है (उपनय), इसलिये शब्द अनित्य है (निगमन)। ५ उत्कट लालसा। तीव्र इच्छा। ६ अर्थपूर्ति के लिये एक या अनेक शब्दो की आवृत्ति (को०)। ७ घालमेल। मिश्रण (को०)। ८ अवश्य होनेवाला फल (को०)। ९ एक शब्द का दूसरे से सबध (को०)।

अनुषंगिक—वि० [सं० अनुषङ्गिक] १ अनिवार्य फलरूप। २ सबध या प्रसगवश प्राप्त। सबद्ध (को०)।

अनुषंगी—वि० [सं० अनुषङ्गिन्] १ सबधी। २ दे० 'अनुषंगिक' [को०]।

अनुषक्त—वि० [सं०] १ घनिष्ठ सबध या लगाववाला। २ सलग्न। सपृक्त [को०]।

अनुषक्ति—वि० [सं०] १ सबद्धता। सलग्नता। २ आसक्ति [को०]।

अनुषिक्त—वि० [सं०] बार बार सिंचित। [को०]।

अनुषेक—सज्ञा पुं० [सं०] बार बार सींचना। फिर फिर पानी डालना या छिडकना [को०]।

अनुषेचन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुषेक' [को०]।

अनुष्टुप्—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अष्टाक्षरपदी छद। बत्तीस अक्षरो का एक वर्णवृत्त।

विशेष—इसमे आठ आठ वर्ण के चार पद या चरण होते हैं, प्रत्येक चरण का पाँचवाँ अक्षर सदा लघु और छठा सदा गुरु होता है तथा दूसरे और चौथे चरणो का सातवाँ अक्षर भी लघु ही होता है। शेष वर्णों के लिये कोई नियम नही है। "छद प्रभाकर" के अनुसार माणवक्रीडा, प्रमाणिका, लक्ष्मी, विपुला, गजगति, विद्युन्माला, मल्लिका, तुग, पद्म, वितान, रामा, नराचिका, चित्रपदा और श्लोक अनुष्टुप् छद हैं। इनके लक्षण और भेद अलग अलग हैं।

२ सरस्वती (को०)। ३ वाणी। वाक् (को०)। ४ आठ की सख्या।

अनुष्ठातव्य—वि० [सं०] अनुष्ठान किए जाने योग्य। अनुष्ठेय।

अनुष्ठाता—वि० [सं० अनुष्ठातृ] कार्य करने या कार्यारम करनेवाला। अनुष्ठानकर्ता (को०)।

अनुष्ठान—सज्ञा पुं० [सं०] १. कार्य का आरभ। किसी काम का शुरू। २ नियमपूर्वक कोई काम करना। ३ शास्त्रविहित कर्म करना। ४ किसी फल के निमित्त किसी देवता की आराधना। प्रयोग। पुरश्चरण।

अनुष्ठानक्रम—सज्ञा पु० [सं०] धर्मकृत्यो का क्रम [को०]।

अनुष्ठानशरीर—सज्ञा पुं० [सं०] साख्य के अनुसार सूक्ष्म और स्थूल शरीर के मध्य की स्थिति जिसे अधिष्ठानशरीर भी कहते हैं [को०]।

अनुष्ठापन—सज्ञा पुं० [सं०] कार्य मे प्रवृत्त करना अथवा कार्य कराना [को०]।

अनुष्ठायी—वि० [सं० अनुष्ठायिन्] अनुष्ठान या कार्य करनेवाला [को०]।

अनुष्ठित—वि० [सं०] सविधि पूरा किया हुआ। सपन्न। पूर्ण। उ०—सुप्रभात किया अनुष्ठित राजसूय सुरीति से।—कानन०, पृ० ११३।

अनुष्ठेय—वि० [सं०] कर्तव्य। करने योग्य अनुष्ठान योग्य [को०]।

अनुष्ण[1]—वि० [सं०] १ जो गर्म न हो। ठढा। २ आलसी। सुस्त (को०)।

अनुष्ण[2]—सज्ञा पुं० नील कमल [को०]।

अनुष्णक—वि० [सं०] 'अनुष्ण' [को०]।

अनुष्णगु—सज्ञा पु० [सं०] शीतल किरणोवाला। चद्रमा [को०]।

अनुष्णवल्लिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] नीली दूब। नील दूर्वा [को०]।

अनुष्यद—सज्ञा पुं० [सं०] गाडी का पिछला चक्का [को०]।

अनुसधान—सज्ञा पुं० [सं० अनुसन्धान] [क्रि० अनुसधानना] पश्चाद्गमन। पीछे लगना। २ अन्वेषण। खोज। ढूँढ। जाँच पडताल। तलाश। तहकीकात। ३ चेष्टा। प्रयत्न। कोशिश। ४ योजना। पूर्वरूप या प्रारूप। खाका (को०)।

अनुसधानकर्ता—वि० [सं० अनुसन्धान+कर्तृ] शोध या खोज का कार्य करनेवाला। उ०—यह सक्षिप्त वर्णन अनुसधानकर्ताओं के सामने एक नए क्षेत्र का जन्मदाता होगा।—प्रा० भा० प०, पृ० १२१।

अनुसधानना(पु)—क्रि० स० [सं० अनुसन्धान से हिं० नाम०] १ खोजना। ढूँढना। २ सोचना। विचारना। उ०—हृदय न कछु फल अनुसधाना। भूप विवेकी परम सुजाना।—मानस, १।१५६।

अनुसधानी—वि० [सं० अनुसन्धानिन्] १ शोध करनेवाला। तलाश मे रहनेवाला। २ योजनापटु। किसी योजना के कार्यान्वयन में दक्ष [को०]।

अनुसधायक—वि० [सं० अनु+सन्धायक] दे० 'अनुसधायी'। उ०—यहाँ तक कि कुछ अनुसधायक परवर्ती अथवा उत्तरार्ध श्रृगार काल को इसी कारण पद्माकर युग तक कहना चाहते हैं।—पद्माकर ग्र० (भू०), पृ० ८।

अनुसंधायी—वि० [सं० अनुसन्धायिन्] दे० 'अनुसधानी' [को०]।

अनुसधि—सज्ञा स्त्री० [सं० अनुसन्धि] १ परामर्श। २ अनुसधान। ३. गुप्त परामर्श। अतरग मत्रणा। भीतरी बातचीत। षड्चक्र। उ०—जिनको कि यह सब गुप्त अनुसधि न मालूम थी, इस बात का निश्चय भी करा दिया।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० १३४।

अनुसंधेय—वि० [सं० अनुसन्धेय] शोध योग्य। खोज के योग्य।

अनुसंधान—सज्ञा पु० [सं० [अनु+सधान] १ साथ चलना। साथ साथ यात्रा करना। २. गमन। यात्रा। दौरा। ३ बदली या परिवर्तन। उ०—अनुसधान का अर्थ विवादग्रस्त है।—भा० इ० रू०, पृ० ४७८।

अनुसंहित—वि० [सं०] १ जिसकी छानबीन या जाँच की गई हो। २ किसी के अनुरूप या सदृश। [को०]।

अनुसमापन—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य की नियमित परिपूर्ति या समाप्ति [को०]।

अनुसयना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुशयाना] दे० 'अनुशयाना'। उ०—नु तीसरी अनुसयना परिमान।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०४।

अनुसयाना(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनुशयाना'। उ०—यही अनुसयाना त्रिविध प्रथम भेद यह जानि।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०४।

अनुसर[1](पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनुसार'।

अनुसर—वि० [सं०] अनुगामी। सहयोगी। अनुचर [को०]।

अनुसरण—संज्ञा पुं० [सं०] [क्रि० अनुसरना, अनुसारना] १ पीछे चलना। साथ साथ चलना। २ अनुकरण। नकल। ३ अनुकूल आचरण।

अनुसरना(पु)—क्रि० स० [सं० अनुसरण से हिं० नाम०] १ पीछे चलना। साथ साथ चलना। उ०—जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं।—मानस, २।१४१। २ अनुकरण करना। नकल करना। उ०—कहहु सो प्रेम प्रकट को करई। केहि छाया कवि मति अनुसरई।—तुलसी (शब्द०)।

अनुसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] १ सर्प जैसा जीव। २ रेंगनेवाला जीव। सरीसृप [को०]।

अनुसर्पिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०[सुख दुःख की स्थिति के तारतम्यानुसार जैन लोग छह काल की जो दो शृंखलाएँ मानते हैं उनमे से एक का नाम। उ०—जैन लोग छह छह कालों की दो महान् शृंखलाएँ मानते हैं-अनुसर्पिणी और अवसर्पिणी।

अनुसाम—वि० [सं०] १ परितोषित। संतुष्ट किया हुआ। अनुकूल। मुआफिक [को०]।

अनुसार[1]—क्रि० वि० [सं०] १ अनुकूल। मुआफिक। उ०—कहउँ तासु यह गात में निज विचार अनुसार।—मानस, १।२३। २ सदृश। समान। मुताबिक। जैसे—मैंने आपकी आज्ञा के अनुसार ही काम किया है (शब्द०)।

विशेष—संस्कृत मे यह शब्द संज्ञा है पर हिंदी में इसका प्रयोग क्रियाविशेषणवत् होता है।

अनुसार[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पीछे पीछे चलना। अनुसरण। २ अनुकूल आचरण। ३ किसी वस्तु की स्वाभाविक प्रकृति या स्थिति। ४ प्रथा। परंपरा। ५ अभ्यास। अनुकूल [को०]।

अनुसार[3]—संज्ञा पुं० [सं० अनुस्वार] दे० 'अनुस्वार'। उ०—अनुसार ने उनकी नीरजन, नीरजन ने उनकी जीव।—रामानंद०, पृ० ३०।

अनुसारक—वि० [सं०] अनुसरणकारी। पीछे चलनेवाला। अनुयायी। २ तुल्य। अनुरूप। ३ खोज करनेवाला। खोजनेवाला [को०]।

अनुसारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीछा करना। अनुगमन करना [को०]।

अनुसारना(पु)—क्रि० स० [सं० अनुसरण] १. अनुसरण करना। अनुकूल आचरण करना। २ आचरण करना। उ०—ऐसे जनम करम के ओछे ओछे ही अनुसारत।—सूर० (शब्द०)। ३. कोई कार्य करना।

विशेष—हिंदी में इसका यौगिक क्रिया के रूप में किसी की संज्ञा शब्द के बाद का प्रयोग होता है। जैसे—(क) तब अपार किरनी अनुसारी।—सूर० (शब्द०)। (ख) ... कहुँ ... अनुसारी।—मानस, २।१६। (ग) ... अस्तुति अनुसारी।—मानस, ६।१०४। (घ) ... नाहिं ... अनुसारि कै। देव (शब्द०)। (ङ) ... पद्माकर ... जो जौं कैसो ... अनुसारै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २६०।

अनुसारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुवर्तिता'।

अनुसारी(पु)—वि० [सं० अनुसारिन्] १. अनुसरण करनेवाला। अनुकरण करनेवाला। उ०—सूरदास प्रभु, ... अनुचर अनुसारी।—सूर०, १०।१३१। २ दे० 'अनुसार'।

अनुसार्यक—संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधित चंदन, अगुरु आदि [को०]।

अनुसाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनु + हिं० √साल] वेदना। पीड़ा। उ०—मधुकैटभ मथन, मुर भौम केसीभिदन, ... अनुसाल हारो।—सूर (शब्द०)।

अनुसासन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुशासन'। उ०—... दुनहिँ निहि ... अनुसासन। तुलसी ग्रं०, पृ० ५८।

अनुसुइया(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनसूया'। उ०—... सब देव बखानहु, अनुसुइया अरु ... जानहु।—ह० रा०, पृ० ३७।

अनुसूचक—वि० [सं०] सूचना करने या देनेवाला [को०]।

अनुसूचन—संज्ञा पुं० [सं०] सूचना देने का कार्य। सूचना देना [को०]।

अनुसूचित—वि० [हिं० अनुसूची] परिगणित। जिसका नाम सूची में दर्ज हो।

अनुसूची—संज्ञा स्त्री० [सं० अनु + सूची] ... सूची।

अनुसृत—वि० [सं०] १ अनुसरण किया हुआ। अनुगमित। २ प्रवाहित होना। बहना। ... ३ ... शरणागत [को०]।

अनुसृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अनुसरण। पीछे जाना। २ ... पैरवी। ३. ... [को०]।

अनुसृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ... २ ... जवाब। ... [को०]।

अनुसेवी—वि० [सं० अनुसेविन्] किसी वस्तु के सेवन का अभ्यासी। आदि। ... [को०]।

अनुसोचना(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनुसोचन'। उ०—... अनुसोचना ... —तुलसी ग्रं०, पृ० १८४।

अनुस्मरण—संज्ञा पुं० [सं०] स्मरण। ... [को०]।

अनुस्मरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ... २ ... जिसका ... किया जाता है [को०]।

अनुस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] ... के अनुसार ... निर्वाचन को प्रारंभ करना।

अनुस्मरण—संज्ञा पुं० [सं०] बार बार स्मरण करना। स्मृति में लाना। उ०—इतिहास में भूतकाल की घटनाओं का उल्लेख और अनुस्मरण रहता है।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १। सोचना [कौ०]।

अनुस्मारक— संज्ञा पुं० [सं० अनु+स्मारक] स्मृति या याद दिलानेवाली वस्तु।

अनुस्मृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ संजोई हुई स्मृति। प्रिय स्मृति। २ अन्य का त्याग करके किसी एक के प्रति किया हुआ चिंतन या स्मरण। एकांत चिंतन [कौ०]।

अनुस्यूत—वि० [सं०] १ सीया हुआ। २ पिरोया हुआ। ३ ग्रथित। गूँथा हुआ। उ०—तीनि अवस्था माहिं है सुंदर साक्षीभूत। सदा एकरस आतमा व्यापक है अनुस्यूत।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७८२। ४ सबद्ध। श्रेणीबद्ध। सिलसिलेवार।

अनुस्वान—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रतिध्वनि। गूँज। २ समध्वनि। समर्थक स्वर। अनुरणन [कौ०]।

अनुस्वार—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वर के बाद उच्चरित होनेवाला एक अनुनासिक वर्ण जिसका चिह्न (ं) है। निःहीन इसे आश्रय स्थानभागी भी कहते हैं क्योंकि जिस स्वर के बाद यह लगेगा उसी का सा उच्चारण इसका होगा। २ स्वर के ऊपर की बिंदी।

अनुहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ नकल। अनुकरण। २ सादृश्य। समता [कौ०]।

अनुहरत—वि० हिं० √अनुहार का कृदंत रूप] १ अनुसार। अनुरूप। समान। उ०—दंभ सहित कलि धरम सब छल समेत व्यवहार। स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत प्रचार।—तुलसी ग्रं० पृ० १५०। २ उपयुक्त। योग्य। अनुकूल। उ०—अब तुम्ह बिनय मोरि सुन लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू।—मानस, २।१७७।

अनुहरना—क्रि० स० [सं० अनुहरण] अनुकरण करना। आदर्श पर चलना। नकल करना। समानता करना। उ०—सहज टेढ़ अनुहरै न तोही। नीचु मीचु सम देख न मोही।—मानस १।२७।

अनुहरिया१—वि० [सं० अनुहार+हिं० इया (प्रत्य०)] समान। तुल्य।

अनुहरिया२—संज्ञा स्त्री० आकृति। मुखाकृति। उ०—नाक निकसर मोहत भौंह कमान। मुख अनुहरिया केवल चंद समान।—तुलसी ग्रं० पृ० १९।

अनुहार१—वि० [सं०] सदृश। तुल्य। समान। एकरूप। उ०—खंजन नैन बीच नासा पुट राजत यह अनुहार। खंजन युग मनो लरत लराई कीर बुझावत रार।—सूर (शब्द०)।

अनुहार२—संज्ञा स्त्री० १ रूप भेद। प्रकार। उ०—मुग्धा मध्या प्रौढ़ गनि, तिनके तीनि विचार। एक एक की जानिए चार चार अनुहार।—केशव (शब्द०)। २ मुखाकृति। आकृति।

अनुहार३—संज्ञा पुं० दे० 'अनुहरण'।

अनुहारक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अनुहारिका] अनुकरण करनेवाला। नकल करनेवाला। सदृश कर्म करनेवाला।

अनुहारना—क्रि० स० [सं० अनुहार से नाम०] तुल्य करना। सदृश करना। समान करना। उ०—देखि री हरि के चंचल तारे। कमल मीन कौ कहाँ इती छवि, खंजन हूँ न जात अनुहारे।—सूर (शब्द०)।

अनुहारि१—वि० स्त्री० [सं० अनुहारिन्] १ समान। सदृश। तुल्य। बराबर। उ०—(क) गिरि समान तन अगम अति, पन्नग की अनुहारि।—सूर० १०।४३१। (ख) चुनरी स्याम सतार नभ, मुख ससि की अनुहारि। नेह दबावत नींद लौं, निरखि निसा सी नारि।—बिहारी (शब्द०)। २ योग्य। उपयुक्त। उ०—बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई।—मानस, १।९२। ३ अनुसार। अनुकूल। मुताबिक। उ०—कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह, बैठारे नर नारि। उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस विशेषण का लिंग भी 'नाईं' के समान है अर्थात् यह शब्द संज्ञा पुं० और संज्ञा स्त्री० दोनों का विशेषण होता है।

अनुहारि२—संज्ञा स्त्री० आकृति। चेहरा। उ०—ज्यों मुख मुकुर बिलोकिए, चित न रहै अनुहारि। त्यों सेवतहु निरापने मातु पिता सुत नारि।—तुलसी (शब्द०)।

अनुहारी१—वि० [सं० अनुहारिन्] [स्त्री० अनुहारिणी] अनुकरण करनेवाला। नकल करनेवाला।

अनुहारी२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनुहारि'२। उ०—(क) देखी सासु आन अनुहारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) भरत रामहीं की अनुहारी।—मानस, १।३११।

अनुहार्य—वि० [सं०] अनुकरण या नकल करने योग्य [कौ०]।

अनुहोड—संज्ञा पुं० [सं०] बैलगाड़ी [कौ०]।

अनूअर—क्रि० वि० [सं० अनवरत] सतत। निरंतर। लगातार।

अनूक—संज्ञा पुं० [सं०] १ गत जन्म। पूर्व जन्म। २ कुल। वंश। खानदान। ३ शील। स्वभाव। ४ पीठ की हड्डी। रीढ़। ५ मेहराब के बीच की ईंट। कीली। ६ यज्ञ की वेदी बनाने के लिये ईंट उठाने की खँचिया या पात्र। ७ जाति या वंशगत विशिष्टता [कौ०]। ८ यज्ञ की वेदी का पृष्ठभाग (कौ०)।

अनूकाश—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रकाश की कौंध या झलक। २ उदाहरण। संदर्भ। हवाला [कौ०]।

अनूक्त—वि० [सं०] १ बाद में कथित। दोहराया गया। २ जिसने वेदाध्ययन किया हो। अधीत [कौ०]।

अनूक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विवरणपूर्वक कही या दोहराई हुई बात। २ वेदाध्ययन [कौ०]।

अनूचान—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो वेद वेदांग में पारंगत होकर गुरुकुल से आया हो। स्नातक। २ विद्यारसिक व्यक्ति। ३. चरित्रवान् पुरुष।

अनूजरा—वि० [हिं० अन+ऊजरा] [स्त्री० अनूजरी] जो उजला या साफ न हो। मैला। उ०—साछय माटी पूतरी अनूजरीऽसह ऊजरी ह्वै देखि रागी त्यागी ललचात जनजात है।—निश्चल (शब्द०)।

अनूठा—वि० [सं० अनुत्थ, पा० अनुट्ठ प्रा० अणुट्ठ=स्थित अथवा देश०] [स्त्री० अनूठी] १. अपूर्व। अनोखा। विचित्र। विलक्षण। अद्भुत। २. सुंदर। अच्छा। बढ़िया।

अनूठापन—संज्ञा पुं० [हिं० **अनूठा+पन** (प्रत्य०)] १ विचित्रता। विलक्षणता। विशेषता। २ सुंदरता। अच्छापन।

अनूढ—वि० [सं० **अनूढ**] १ अजात। अनुत्पन्न। २ जो ले जाया न गया हो। ३ अविवाहित [को०]।

अनूढा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अनूढा**] १ अविवाहिता कन्या। २ बिना व्याही स्त्री जो किसी पुरुष से प्रेम रखती हो। उ०—ताहि अनूढ़ा कहत हैं कवि पंडित परवीन।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ८७।

अनूढागमन—संज्ञा पुं० [सं० **अनूढागमन**] अविवाहिता स्त्री से प्रेम या संसर्ग [को०]।

अनूढाभ्राता—संज्ञा पुं० [सं० **अनूढाभ्रातृ**] १ अविवाहिता स्त्री का भाई। २ राजा की रखेली या उपपत्नी का भाई [को०]।

अनूतर(पु)—वि० [सं० **अनुत्तर**] [वि० स्त्री० **अनूतरी**] १ निरुत्तर। कायल २ चुपचाप बैठनेवाला। मौन धारण करनेवाला। उ०—बैठी फिरि पूतरी अनतरी किरग कैसी, पीठि दै प्रवीनी दृग दृगनि मिलै अनिंद।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०१।

अनूदक—संज्ञा पुं० [सं०] १ जलहीन स्थान। २ सूखा [को०]।

अनूदर्वा—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव। विशेष—यह ४८ हाथ लंबी, २४ हाथ चौड़ी और २४ ही हाथ ऊँची होती थी।

अनूदित—वि० [सं०] १ कहा हुआ। वर्णन किया हुआ। २ अनुवादित। तर्जुमा किया हुआ। भाषांतरित।

अनूद्य—वि० [सं०] १ पीछे चर्चा करने योग्य। १ अनुवाद योग्य [को०]।

अनून—वि० [सं०] १ अखंड। पूर्ण। पूरा। समग्र। २ जिसमें कोई कमी न हो। २ अन्यून। अधिक। ज्यादा। बहुत। ३ पूर्ण अधिकारयुक्त [को०]।

अनूप[1]—वि० [सं०] १ जलप्राय। जहाँ जल अधिक हो। २ दलदली [को०]।

अनूप[2]—संज्ञा पुं० १ जलप्राय देश। वह स्थान जहाँ जल अधिक हो। २ भैंस। ३ ताल या तालाब। ४ दलदल। ५ कछार। ६ मेढक। ७ हाथी। ७ तीतर या चकोर [को०]। उ०—अनूप (जलसमीप) के रहनेवाले जीव हंस चकवा आदि।—माधव, पृ० १८१।

अनूप[3]—[सं० **अनुपम**] १ जिसकी उपमा न हो। अद्वितीय। बेजोड़। उ०—(क) कबीर रामानंद को सतगुरु भए सहाय। जग में जुगुत अनूप है सो सब दई बताय। कबीर (शब्द०)। (ख) जिन्ह वह पाई छाँह अनूपा। फिर नहिं आइ सहै यह धूपा।—जायसी (शब्द०)। (ग) अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा।—मानस, १।३७। २ सुंदर। अच्छा। उ०—जौं घरु बर कुलु होइ अनूपा। करिअ बिवाहु सुता अनुरूपा।—मानस, १।७१।

अनूपग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] नदी के किनारे का गाँव।

विशेष—चंद्रगुप्त कालीन एक राजनियम के अनुसार बरसात के दिनों में ऐसे गाँव के लोगों को नदी का किनारा छोड़कर किसी दूसरे दूरवर्ती स्थान पर बसना पड़ता था।

अनूपनाराच—संज्ञा पुं० [सं० **अनूप+नाराच**] छंद का एक भेद जो पंचचामर के अंतर्गत है और जिसके प्रत्येक चरण में ज, र, ज, र, ज और गुरु होना है।

अनूपम(पु)—वि० दे० 'अनुपम'। उ०—(क) अदभुत एक अनूपम बाग।—सूर०, १०।२११०। (ख) ध्रुव सगुनानि जपेउ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ।—मानस, १।२६।

अनूपान(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अनुपान'। उ०—रघुपति भगति सजीवनि मूरी। अनूपान श्रद्धा मति रूरी।—मानस, ७।१२३।

अनूपी(पु)—वि० स्त्री० दे० 'अनूप'। उ०—धन्य अनुराग धनि भाग धनि सौभाग्य धन्य जोबन रूप अति अनूपी।—सूर०, १०।१७८८।

अनूमान(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अनुमान'। उ०—अनूमान साछी रहित होत नहीं परमान।—स० सप्तक, पृ० ४०।

अनूरत्त(पु)—वि० दे० 'अनुरक्त'। उ०—दिपती सुहाग। अनूरत्त राग।—पृ० रा०, ६२।४१।

अनूरु[1]—वि० [सं० **अनूरु**] उरुहीन। बिना जाँघवाला।

अनूरु[2]—संज्ञा पुं० १ सूर्य का सारथी। अरुण। २ अरुणोदय [को०]।

अनूरुसारथी—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अनूर्जित—वि० [सं०] १ शक्तिहीन। अशक्त। कमजोर। २ अभिमानशून्य [को०]।

अनूर्ध्व—वि० [सं०] ऊँचा नहीं। नीचा [को०]।

अनूर्मि—वि० [सं०] १ तरंगशून्य। अचंचल। २ अनतिक्रम्य [को०]।

अनूषर—वि० [सं०] १ क्षारीय। रेहवाला। २ क्षारहीन। रेहशून्य [को०]।

अनूह—वि० [सं०] १ जिसपर विचार न हो सके। अतर्क्य। २. विचारहीन। लापरवाह (को०)।

अनृजु—वि० [सं०] जो ऋजु अर्थात् सीधा न हो। कुटिल। वक्र। २. दुष्ट। अविश्वस्त। बेईमान [को०]।

अनृण—वि० [सं०] जो ऋणी न हो। जिसे कर्ज न हो। ऋणमुक्त।

अनृणता—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ज से छुटकारा। ऋणमुक्ति [को०]।

अनृणी—वि० [सं० **अनृणिन्**] दे० 'अनृण' [को०]।

अनृत[1]—वि० [सं०] १ मिथ्या। झूठा। २ अन्यथा। विपरीत। उ०—तोहि स्याम हम कहा दिखावें। अमृत कहा अनृत गुण प्रगटै सो हम कहा बतावें।—सूर०, १०।२०६६।

अनृत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मिथ्या। असत्य। झूठ। २ कृषि। खेती [को०]।

अनृतक—वि० [सं०] मिथ्यावादी। झूठ बोलनेवाला [को०]।

अनृतभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] झूठ बोलना। मिथ्या कथन [को०]।

अनृतवादन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनृतभाषण' [को०]।

अनृतवादी—वि० [सं० **अनृतवादिन्**][वि० स्त्री० **अनृतवादिनी**] झूठा। मिथ्यावादी [को०]।

अनृतव्रत—वि० [सं०] अपने वचन या प्रतिज्ञा का पालन कभी न करनेवाला [को०]।

अनृती—वि० [सं० **अनृतिन्**] दे० 'अनृतक' [को०]।

अनृतु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बेमौसम। असमय। २ रजोदर्शन से पूर्व की अवस्था या स्थिति [को०]।

अनृतुकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या जिसे रजोधर्म न हुआ हो [को०]।

अनृतुप्राप्त सैन्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जिसके अनुकूल ऋतु न पड़ती हो।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार ऐसी सेना ऋतु के अनुकूल वस्त्र, अस्त्र, कवच आदि का प्रबंध हो जाने पर युद्ध कर सकती है, पर अभूमिप्राप्त (अनुपयुक्त भूमि में फँसी) सेना कुछ करने में असमर्थ हो जाती है।

अनृशंस—वि० [सं०] क्रूरतारहित। अकठोर। मृदुल [को०]।

अनृशंसता—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रूरता का अभाव। दयालुता [को०]।

अनेऊ(पु)†—वि० [सं० अन्याय, प्रा० > अन्नाय > अन्याय > अनाव > अनेव > अनेऊ] बुरा। खराब।

अनेक—वि० [सं०] एक से अधिक। बहुत। ज्यादा। असंख्य। अनगिनत।

यौ०—अनेकानेक।

अनेककाम—वि० [सं०] एक से अधिक इच्छाओंवाला [को०]।

अनेककालावधि—क्रि० वि० [सं०] बहुत काल से या चिरकाल तक [को०]।

अनेककृत—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अनेकचर—वि० [सं०] समूह या झुंड में रहनेवाला [को०]।

अनेकचित्त—वि० [सं०] १ अनेक वस्तुओं की कामना या ध्यान रखनेवाला। २ चंचल मनवाला। चपलचित्त [को०]।

अनेकज[1]—वि० [सं०] जिसका जन्म एक बार से अधिक हो [को०]।

अनेकज[2]—संज्ञा पुं० पक्षी [को०]।

अनेकजन्मा—वि० [सं०] दे० 'अनेकज' [को०]।

अनेकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनेकत्व'।

अनेकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक से अधिक होने की स्थिति या भाव। बहुत्व। अनेकता [को०]।

अनेकत्र—क्रि० वि० [सं०] कई जगह। कई स्थान [को०]।

अनेकधा—क्रि० वि० [सं०] कई प्रकार से। कई तरह से [को०]।

अनेकप—संज्ञा पुं० [सं०] द्विप। हाथी [को०]।

अनेकभार्य—वि० [सं०] कई पत्नियोंवाला (को०)।

अनेकमुख—वि० [सं०] [स्त्री० अनेकमुखी] १ अनेक चेहरेवाला। अनेक मुखवाला। २ कई दिशाओं में जानेवाला [को०]।

अनेकमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम [को०]।

अनेकरूप[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अनेकरूपा] १ कई रूपोंवाला। २ परिवर्तनशील [को०]।

अनेकरूप[2]—संज्ञा पुं० परमेश्वर [को०]।

अनेकलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्र। २ शिव। ३ विराट्पुरुष। महत्तत्व [को०]।

अनेकवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बहुवचन। २ द्विवचन।

अनेकवर्ण[1]—वि० [सं०] कई रंगोंवाला [को०]।

अनेकवर्ण[2]—संज्ञा पुं० बीजगणित में प्रयुक्त अज्ञात राशियाँ [को०]।

अनेकविध—वि० [सं०] अनेक प्रकार का। विभिन्न कोटि का।

अनेकश—क्रि० वि० [सं०] अनेक बार। बार बार। उ०—मेरी कामना है कि इस दिवस की अनेकश पुनरावृत्ति हो।—शुक्ल० अभि० ग०, पृ० १५।

अनेकशफ—वि० [सं०] फटे खुरोंवाला [को०]।

अनेकशब्द—वि० [सं०] पर्यायवाची [को०]।

अनेकसाधारण—वि० [सं०] अनेक में पाया जानेवाला। बहुतों में पाया जानेवाला [को०]।

अनेकांगी[1]—संज्ञा पुं० [सं० अनेकाङ्गिन्] वह जिसे कई अंग हों। जिसके बहुत हिस्से या भाग हों।

अनेकांगी[2]—वि० अनेक अंग, भाग या हिस्सोंवाला [को०]।

अनेकांत—वि० [सं० अनेकान्त] १ जो एकांत न हो। २ जो स्थिर न हो। चंचल।

अनेकांतवाद—संज्ञा पुं० [सं० अनेकान्तवाद] [वि० अनेकांतवादी] जैन दर्शन। आर्हत दर्शन। स्याद्वाद।

अनेकांतवादी—वि० [सं० अनेकान्तवादिन्] अनेकांतवाद को माननेवाला [को०]।

अनेकाकार—वि० [सं० अनेक + आकार] अनेक आकारवाला। अनेक आकृतियोंवाला [को०]।

अनेकाकी—वि० [सं० अनेकाकिन्] [वि० स्त्री० अनेकाकिनी] अकेला नहीं। कई लोगों के साथ [को०]।

अनेकाक्षर—वि० [सं०] अनेक अक्षरों से युक्त [को०]।

अनेकाग्र—वि० [सं०] १ जो किसी एक विषय पर ध्यानस्थ न हो। कई कामों में लगा हुआ। २ उलझा हुआ। अव्यवस्थित [को०]।

अनेकाच्—वि० [सं०] जिसमें बहुत से 'अच्' या स्वर हों। बहुत से स्वरों से युक्त। (शब्द या वाक्य) जिसमें बहुत से स्वर हों।

अनेकार्थ—वि० [सं०] जिसके बहुत से अर्थ हों। बहुत अर्थोंवाला।

अनेकार्थक—वि० [सं०] दे० 'अनेकार्थ' [को०]।

अनेकाल—वि० [सं०] जिसमें एक से अधिक 'अल्' (स्वर और व्यंजन) वाला।

अनेकाश्रय—वि० [सं०] अनेक या कई पर निर्भर रहनेवाला [को०]।

अनेकाश्रित—वि० [सं०] दे० 'अनेकाश्रय' [को०]।

अनेग(पु)—वि० [सं० अनेक] बहुत अधिक। ज्यादा। उ०—रोकि रहे द्वार नेग माँगन अनेग नेगी, खोलत न खाल ब्याल खोलत खहिनि के।—देव (शब्द०)।

अनेड[1]—वि० [सं०] १ मूर्ख। २ बुरा। खराब [को०]।

अनेड[2](पु)†—वि० [सं० अनृत] दे० 'अनेरा'।

अनेडमूक—वि० [सं०] १ गूँगा बहरा। २ अंधा। ३ बेईमान। कपटी। दुष्ट। बदमाश [को०]।

अनेडा(पु)†—वि० [सं० अ + निकट, प्रा० नियर, नियड] दूर। असमीप। उ०—जागु सबेरा बाट अनेडा फिर नहिं लागै जोर, बटोही का रे सोवै।—संतवाणी० भा० २ पृ० ३०।

अनेता†—संज्ञा पुं० [देश०] माल्ती लता (देहरादून)।

अनेम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनियम'। उ०—अनियम थल नेमहि गहै नियम ठौर जु अनेम।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० २३८।

अनेय(पु)—वि० [सं० अनीति, प्रा० अ + णीइ] अन्याय से होनेवाली। अनीतिजन्य। उ०—तुम सुधरम राजन अनेय लज्जा अधिकारिय।—पृ० रा० ६६।४६६।

अनेरा¹(पु)— वि० [सं० अनृत, प्रा० * अनिर] [वि० स्त्री० अनेरी] १ झूठ । व्यर्थ । निष्प्रयोजन । उ०—मेरी ग्वारि मैं मत ! वचन बोलत जो अनेरो । कब हरि बालक भए, गर्भ कब लियो बसेरो ।—सूर०(शब्द०) । २ झूठा । अन्यायी । दुष्ट । निकम्मा । उ०—तोहि स्याम की सपद जसोदा आइ देखु गृह मेरो । जैसी हाल करी यहि ढोटी छोटो निपट अनेरो ।—तुलसी (शब्द०) । ३ स्वच्छंद । निरंकुश ।

अनेरा²—क्रि० वि० व्यर्थ । झूठमूठ । निष्प्रयोजन । उ०—सुनहु स्याम रघुबीर गोसाई मन अनीति रत मेरो । चरनसरोज बिसारि तुम्हारो निसदिन फिरत अनेरो ।—तुलसी (शब्द०) ।

अनेला—वि० [सं० अ+निकट, प्रा० नियड, हिं० नेर] अपरिचित । अनपहचाना । उ०—आपके भौंमे मे कोई अनेला आए तो आए हमपर चकमा न चलेगा ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५ ।

अनेलापन—संज्ञा पुं० [हिं० अनेला+पन अथवा हिं० अनेरा] १ न पहचानने की स्थिति । अपरिचित होने का भाव । अजानपना। २. स्वच्छंदता । स्वतंत्रता । उ०—अनेलापन उसका मुझे भा गया । कहूँ क्या दिल उसपर मेरा आ गया ।—शौक (फैतन) ।

अनेव¹—क्रि० वि० [सं०] अन्यथा । नही तो [को०] ।

अनेव²(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनेक' । उ०—राजित वज्जि मगल अनेव । मानति उवारि मागुन गेव ।—पृ० रा०, ६१।२५२८ ।

अनेस¹(पु)—वि० [सं० अनिष्ट] बुरा । खराब । अनइस ।

अनेस²—संज्ञा पुं० आशंका । डर । चिंता ।

अनेह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अस्नेह] अप्रेम । अप्रीति । विरक्ति ।

अनेहा—संज्ञा पुं० [सं० अनेहस्] समय । काल । वक्त ।

अनै(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनय' । उ०—नाम प्रताप पतित पावन किए जे न अघाने अघ अनै ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३८९ ।

अनैकांत—वि० [सं० अनैकान्त] दे० 'अनेकांत' [को०] ।

अनैकांतिक—वि० [सं० अनैकान्तिक] दे० 'अनेकांत' [को०] ।

अनैकांतिक हेतु—संज्ञा पुं० [सं० अनैकान्तिकहेतु] न्याय के पाँच हेत्वाभासों में से एक । वह हेतु जो साध्य का एकमात्र साधनभूत न हो । वह बात जिससे किसी वस्तु की एकांतिक सिद्धि न हो । सव्यभिचार हेत्वाभास । जैसे,—कोई कहे कि शब्द नित्य है क्योंकि वह स्पर्शवाला नहीं है । यहाँ घट आदि स्पर्शवाले पदार्थों को अनित्य देखकर अस्पृश्यता को नित्यता का एक हेतु मान लिया गया है । पर परमाणु, जो स्पर्शवाले हैं, नित्य हैं । अतः इस हेतु में व्यभिचार आ गया ।

अनैक्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऐक्य या एकता का अभाव । एका न होना । २ मतभेद । नाइत्तफाकी । फूट ।

अनैच्छिक—वि० [सं०] १ अवांछित । न चाहा हुआ । २ इच्छा के बिना होनेवाला । स्वत उत्पन्न । शरीर की चेष्टाएँ, विकार आदि ।

अनैठ—संज्ञा पुं० [सं० अन्=नहीं+पण्यस्थ, प्रा० पण्णट्ठ, हिं० पैंठ अथवा देश०] वह दिन जिसमें बाजार बंद रहे । 'पैंठ' का उलटा ।

अनैतिक—वि० [सं०] जो नीति के विपरीत हो । अनीतिक [हिं०] ।

अनैतिहासिक—वि० [सं०] १ जो इतिहाससम्मत न हो । २ जैसा भूत मे न हुआ हो । अभूतपूर्व [को०] ।

अनैपुण—संज्ञा पुं० [सं०] अनिपुणता । अदक्षता । अकुशलता [को०] ।

अनैश्वर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऐश्वर्य का अभाव । धन हीन । बड़ाई या संपदा का न होना । २ अनीश्वरता । सिद्धियों की अप्राप्ति ।

अनैस¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्+एष=एषण] [क्रि० अनैसना] बुराई । अहित ।

अनैस²—वि० बुरा । उ०—मोह को यह गर्व सागर भरो आठ अनैस ।—सा० लहरी, पृ० १९ ।

क्रि० प्र०—मानना=बुरा मानना । रूठना ।

अनैसना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अनैस से नाम०] बुरा मानना । रूठना । उ०—श्यामसुंदर वन साँझ समाने मोते रहे अनैसे ।—सूर० (शब्द०) ।

अनैसर्गिक—वि० [सं०] १ जो प्रकृति के विरुद्ध हो । अप्राकृतिक । २. जो स्वभाव के प्रतिकूल हो । अस्वाभाविक [को०] ।

अनैसा(पु)—वि० [हिं० अनैस] [वि० स्त्री० अनैसी] जो इष्ट न हो । अप्रिय । बुरा । खराब । उ०—(क) नाम लिए अपनाइ लियो तुलसी सो कहौं जग कौन अनैसो ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १९८ । (ख) पापिन परम ताडका ऐसी । मायाविनि अति अदय अनैसी ।—पद्माकर (शब्द०) ।

अनैसे—क्रि० वि० [हिं० अनैस] अनिच्छापूर्वक । बुरे भाव से । बुरी तरह से । उ०—(क) कह मुनि राम जाइ रिस कैसे । अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) छोरि छोरि बाँधी पाग आरस सों आरसी लै अनत ही आन भाँति देखत अनैसे हो ।—केशव० ग्रं०, भा० १, पृ० १२५ ।

अनैहा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अनैस] उत्पात । उपद्रव । उ०—जा कारण सुन सुत सुंदर वर कीन्हो इतो अनैहो । सोइ सुधाकर देखि दमोदर या भाजन मे है, हो ।—सूर (शब्द०) ।

अनोअन्त(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनोखा' । उ०—छटा ज्यों बिछुटै सुगेसेत छूटै । लगे अंग तूटै अनोअन्त जूटै ।—पृ० रा० पृ० ८९० ।

अनोकशायी—संज्ञा पुं० [सं० अनोकशायिन्] जो घर में न सोता हो [को०] ।

अनोकह—संज्ञा पुं० [सं०] १ जो अपना स्थान न छोड़े । २ पेड़ । वृक्ष ।

अनोख(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनोखा' । उ०—श्री ठाकुर मुरत उनही कवि गोप प्रवीन घरी चतुराई ।—हरिदास, पृ०२८२ ।

अनोखा—वि० [अ० (उच्चा०)सं० नवक, अथ० अनवम] [वि० स्त्री० अनोखी], [संज्ञा अनोखापन] १ अनूठा । निराला । विलक्षण । विचित्र । अद्भुत । २ नूतन । नया । ३ सुंदर । खूबसूरत । उ०—उस अनोखे अतिथि को आतिथ्य से नृपराज । दे दिया उसने हृदय भी शीघ्र अपने आज ।—साकेत, पृ० ८ ।

अनोखापन—संज्ञा पुं० [हिं० अनोखा+पन(प्रत्य०)] १ अनूठापन । निरालापन विलक्षणता । २ नूतनत्व । नयापन । ३ सुंदरता । खूबसूरती ।

अनोट(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'अनवट'। उ॰—देखि करोट सु ऐंचि अनोट जगाइ लै ओट गए गिरिधारी।—भिखारी॰ ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ १०५।

अनोदन—वि॰ [सं॰] बिना भोजन के। निराहार [को॰]।

अनोदयनाम—संज्ञा पुं॰ [सं॰] जैन मत के अनुसार वह पाप कर्म जिसके उदय से मनुष्य की बात कोई नहीं मानता।

अनोपम(पु)—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'अनुपम'। उ॰—सुंदर भाल बिसाल अलक सम माल अनोपम। हित प्रकाश ऋदुहार अरुण वारिज मुख ओपम।—रा॰ रू॰, पृ॰ २।

अनोसर(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ अन+सं॰अवसर] १ वह समय जब वैष्णव धर्मावलंबी मूर्तियों का शयन कराते हैं। २ एकांत स्थान। सूना स्थान। उ॰—अनोसर करि आप कछुक आरोगे।—दो सौ बावन॰, भा॰ १, पृ॰ २१।

अनौचित्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] उचित बात का अभाव। अनुपयुक्तता।

अनौजस्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पराक्रम या शक्ति का अभाव [को॰]।

अनौट(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'अनवट'। उ॰—बिछिया अनौट बाँक घूघरी जराइ जरी, जेहरी छबीली छुद्रघंटिका की जालिका।—केशव॰ ग्रं॰,।

अनौद्धत्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ उच्छृंखलता या दर्प का न होना। २ नम्रता। ३ शांति। (नदी के जल का) ऊँचा न होना। ऊपर न उठना [को॰]।

अनौधि(पु)—अव्य॰ [सं॰ अनवधि] शीघ्र। जल्दी। तुरत।

अनौपम्य—वि॰ [सं॰] जिसकी उपमा न दी जा सके। बेजोड़ [को॰]।

अनौरस—वि॰ [सं॰] १ जो विवाहिता पत्नी से उत्पन्न न हो। जो औरस संतान न हो, अवैध। २ गोद लिया हुआ (पुत्र) [को॰]।

अन्न भट्ट—संज्ञा पुं॰ [सं॰] तर्कसंग्रह के रचयिता।

अन्न[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ खाद्य पदार्थ। २ अनाज। नाज। धान्य। दाना। गल्ला। ३ पकाया हुआ अन्न। भात।

यौ॰—अन्नकूट। अन्नजल। पक्वान्न। अन्नराशि।

४ वह जो सबका भक्षण या ग्रहण करे। ५ सूर्य। ६ विष्णु। ७ पृथ्वी। ८ प्राण। ९ जल।

मु॰—अन्न मिट्टी होना—खाना पीना हराम होना। उ॰—जेहि दिन गढ़ छेंकै गढ घाटी। होइ अन्न ओही दिन माटी।—जायसी (शब्द॰)।

अन्न[2](पु)—[?] [सं॰ अन्य प्रा॰ अण्ण] दूसरा। विरुद्ध। पर। उ॰—जो विधि लिखा अन्न नहिं होई। कित धावैं किन रोवैं कोई।—जायसी (शब्द॰)।

अन्नकाल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] भोजन करने का समय। अन्न ग्रहण करने का समय [को॰]।

अन्नकिट्ट—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'अन्नमल' [को॰]।

अन्नकूट—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ अन्न का पहाड़ या ढेर। उ॰—गोवर्धन सिर तिलक चढायौ, मेटि इंद्र ठकुराइ। अन्नकूट ऐसो रचि राख्यौ, गिरि की उपमा पाइ।—सूर॰, १०।८३२। २ एक उत्सव जो कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यंत यथारुचि किसी दिन (विशेषत प्रतिपदा को वैष्णवों के यहाँ) होता है। उस दिन नाना प्रकार के भोजनों की ढेरी लगाकर भगवान को भोग लगाते हैं।

अन्नकोष्ठ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ अन्न रखने का स्थान या कोठरी। २ गंज। गोला। बखार।

अन्नकोष्ठक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'अन्नकोष्ठ' [को॰]।

अन्नगंधि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अन्नगन्धि] अतिसार की व्याधि [को॰]।

अन्नगति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] अन्न की प्रणाली या गति [को॰]।

अन्नछेत्र—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'अन्नसत्र'।

अन्नजल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ दाना पानी। खाना पीना। खानपान। जैसे,—तुम्हारे यहाँ हम अन्नजल नहीं ग्रहण करेंगे (शब्द॰)।

क्रि॰ प्र॰—त्यागना या छोड़ना = उपवास करना।

२ आबदाना। जीविका।

क्रि॰ प्र॰—उठना = जीविका छूटना। जैसे,—'अब यहाँ से हमारा अन्न जल उठ गया' (शब्द॰)।

३ संयोग। इत्तफाक। जैसे,—जहाँ का अन्न जल होगा वहाँ चले ही जायँगे (शब्द॰)।

अन्नजा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक प्रकार की हिचकी।

विशेष—'माधवनिदान' के अनुसार अन्न और पानी का बहुत अधिक सेवन करने से वायु अकस्मात् कुपित होकर ऊर्ध्वगामी हो जाती है जिससे यह हिचकी होती है।

अन्नजीवी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्नजीविन्] वह जो केवल अन्न खाकर जीवनयापन करता है। केवल अन्न पर पलनेवाला जीव [को॰]।

अन्नथा(पु)—वि॰ [सं॰ अन्यथा] दे॰ 'अन्यथा'। उ॰—कृत करण अन्नथा करण। सगले ही थोके समरत्थ।—वेलि॰, दू॰, पृ॰ १३७।

अन्नद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ अन्नदा] अन्नदाता। प्रतिपालक। रक्षक। पोषक।

अन्नदा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १ दुर्गा। २ अन्नपूर्णा [को॰]।

अन्नदाता—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्नदातृ] [स्त्री॰ अन्नदात्री] १. अन्न देनेवाला। २ पोषक। प्रतिपालक।

अन्नदास—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह नौकर जो केवल भोजन पर कार्य करता है [को॰]।

अन्नदोष—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ अन्न से उत्पन्न विकार। जैसे, दूषित अन्न खाने से रोग इत्यादि का होना। २ निषिद्ध स्थान या व्यक्ति का अन्न खाने से उत्पन्न दोष या पाप।

अन्नद्रवशूल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पेट का वह दर्द जो सदा बना रहे, चाहे अन्न पचे या न पचे और जो पथ्य करने पर भी शांत न हो। लगातार बनी रहनेवाली पेट की पीड़ा।

अन्नद्वेष—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [वि॰ अन्नद्वेषी] अन्न से रुचि न होना। भोजन में अरुचि। भूख न लगना।

अन्नपति—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ अन्न का स्वामी। २ शिव। ३ अग्नि। ४ सूर्य [को॰]।

अन्नपाक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] अग्नि पर या पेट में अन्न का पाचन [को॰]।

अन्नपाकस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पाकस्थली'।

अन्नपूरना(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अन्नपूर्णा'। उ०—जौलो देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना।—तुलसी ग्रं०, पृ० २३५।

अन्नपूर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न की अधिष्ठात्री देवी। दुर्गा का एक रूप। ये काशी की प्रधान देवी हैं।

अन्नपूर्णेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अन्नपूर्णा। २ तंत्रोक्त एक भैरवी का एक नाम [को०]।

अन्नप्रलय—वि० [सं०] मरणोपरान्त शरीर का अन्न रूप मे परिवर्तित होना [को०]।

अन्नप्राशन—संज्ञा पुं० [सं०] बच्चो को पहले पहल अन्न चटाने का संस्कार। चटावन। पेहनी। पसनी।

विशेष—स्मृति के अनुसार छठे या आठवें महीने बालक को और पाँचवें सातवें महीने बालिका को पहले पहल अन्न चटाना चाहिए।

अन्नप्रासन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्नप्राशन'। उ०—नामकरण सु अन्नप्रासन वेद बाँधी नीति।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४२६।

अन्नमयकोश—संज्ञा पुं० [सं०] वेदांत के अनुसार, पंचकोशो मे से प्रथम। अन्न मे बना हुआ त्वचा से लेकर वीर्य तक का समुदाय। स्थूल शरीर। बौद्धशास्त्रानुसार रूपस्कंद। उ०—अन्नमयकोश सुनौ पिंड है प्रकट यह प्रानमय कोश पंचवायु हू बखानिये।—सुंदर ग्रं०, पृ० ५९८।

अन्नमल—संज्ञा पुं० [सं०] १ यव आदि अन्नो से बनी शराब। २. मल। विष्टा।

अन्नराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न की ढेरी। गंज।

अन्नविकार—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न का परिवर्तित रूप। अन्न पचने से क्रमश बने हुए रस, रक्त, मांस, मज्जा, चरबी, हड्डी और शुक्र आदि।

अन्नव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] पारस्परिक भोजन या खानपान का व्यवहार [को०]।

अन्नशेष—संज्ञा पुं० [सं०] बचा हुआ भोजन। उच्छिष्ट [को०]।

अन्नसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] देवतादि के कार्यों मे अन्न का प्रयोग। देवकार्य मे अन्नोत्सर्ग [को०]।

अन्नसत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ भूखों को भोजन दिया जाता है। अन्नक्षेत्र। लंगर।

अन्ना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० * अग्निक, प्रा० * अग्निअ > अन्ना] १ वह छोटी अँगीठी या बोरसी जिसमे सुनार सोना आदि रखकर भाथी के द्वारा तपाते या गलाते हैं।

अन्ना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बा या अल्ला = माँ अथवा देश०. दाई] धात्री। दूध पिलानेवाली स्त्री।

अन्नाकाल—संज्ञा पुं० [सं०] अनाकाल। दुर्भिक्ष [को०]।

अन्नाद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो सब को ग्रहण करे। ईश्वर। २ विष्णु के सहस्र नामो मे से एक।

अन्नाद[2]—वि० अन्न खानेवाला। अन्नाहारी।

अन्नाम(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनाम'। उ०—इह सु नाम अन्नाम। जेन नामह घर जाइय।—पृ० रा०, ३३।१९।

अन्नि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अन्य'। उ०—अर्हत अन्नि एक पति, उर्द्ध जात तथ्थय।—पृ० रा०, ५८।२४१।

अन्नित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनीति'। उ०—हूँ नीति जानि अन्नित न करि।—पृ० रा०, ३५।३।

अन्य—वि० [सं०] दूसरा। और कोई। भिन्न। गैर। पराया। उ०—असुर सुर नाग नर यक्ष गंधर्व खग रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ये।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४८७।

यौ०—अन्यजात। अन्यमनस्क। अन्यान्य। अन्योन्य।

अन्यक—वि० [सं०] दे० 'अन्य' [को०]।

अन्यकारुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल का कीडा [को०]।

अन्यक्रीत—वि० [सं०] दूसरे का खरीदा हुआ।

अन्यग—वि० [सं०] दूसरे की स्त्री के साथ गमन करनेवाला। व्यभिचारी [को०]।

अन्यगामी—वि० [सं० अन्यगामिन्] दे० 'अन्यग' [को०]।

अन्यचित्त—वि० [सं०] जिसका मन अन्यत्र लगा हो। अन्यमनस्क [को०]।

अन्यच्च—क्रि० वि० [सं०] और भी।

अन्यजात—वि० [सं०] खोई हुई या नष्ट (वस्तु)।

अन्यत्—वि० [सं०] दे० 'अन्य'।

अन्यत—क्रि० वि० [सं० अन्यतस्] १ किसी और से। २ किसी और स्थान से। कही और से।

अन्यतम—वि० [सं०] जिसकी तुलना मे और कोई न हो। सर्वश्रेष्ठ। सबसे बडा [को०]।

अन्यतर—वि० [सं०] दूसरा। भिन्न। दो मे से एक।

अन्यतस्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु। दुश्मन। प्रतिपक्षी [को०]।

अन्यतोपाक—संज्ञा पुं० [सं०] दाढी, कान, भौं इत्यादि मे वायु का प्रवेश होने के कारण आँखो की पीडा।

अन्यत्र—वि० [सं०] और जगह। दूसरी जगह। उ०—ना नृप को परमातमा मित्र। इक छिन रहत न सो अन्यत्र।—सूर० ४।१२।

अन्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] परायापन। भिन्नता।

अन्यत्वभावना—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार जीवात्मा को शरीर से भिन्न समझना।

अन्यथा[2]—वि० [सं०] १ विपरीत। उलटा। विरुद्ध। और का और। २ असत्य। झूठा। उ०—किएँ अन्यथा होइ नहिं विप्र श्राप अति घोर।—मानस, १।१७४।

अन्यथा[1]—अव्य० नही तो। जैसे,—आप समय पर आइए अन्यथा हमसे भेंट न होगी (शब्द०)।

अन्यथाकारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विपरीत या विरुद्ध करने की प्रवृत्ति। उ०—हा! होती है प्रकृति रुचि मे अन्यथाकारिता भी।—प्रिय० प्र०, पृ० २१९।

अन्यथाचार—संज्ञा पुं० [सं०] अनुचित या विपरीत कार्य। विरुद्ध आचरण। उ०—तब उसका परिणाम अन्यथाचार के अतिरिक्त क्या होना है।—प्रेमघन०, भा०२, पृ० ३१६।

अन्यथानुपपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वस्तु के अभाव मे किसी दूसरी वस्तु की उपपत्ति या अस्तित्व की असंभावना।

विशेष—जैसे, मोटा देवदत्त दिन को नहीं खाता, इस कथन से इस बात का अनुमान होता है या प्रमाण मिलता है कि देवदत्त

रात को खाता है क्योंकि बिना खाए मोटा होना असंभव है। न्याय में यह अनुमान के अंतर्गत और मीमांसा में अर्थापत्ति प्रमाण के अंतर्गत है।

अन्यथाभाव—संज्ञा पुं० [सं०] विरोधात्मक भाव या विचार। भिन्न रूप में होना [को०]।

अन्यथावाही—संज्ञा पुं० [सं० अन्यथावाहिन्] अर्थशास्त्रानुसार बिना चुंगी या महसूल दिए ही माल ले जानेवाला।

अन्यथासिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय में एक दोष जिसमें यथार्थ नहीं किंतु और कोई कारण दिखाकर किसी बात की सिद्धि की जाय। असंबद्ध कारण से सिद्धि। जैसे,—कहीं कुम्हार, दंड या गधे को देखकर यह सिद्ध करना कि वहाँ घट है।'

अन्यदा—अव्य० [सं०] १ दूसरे समय। दूसरे अवसर पर। २ एक दिन। एकबार। एक समय। ३ किसी समय' कभी [को०]।

अन्यदीय—वि० [सं०] अन्य का। दूसरे से संबंधित। उ०—अन्यदीय इच्छा के द्वारा उसका संचालन नहीं होता।—संपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० ११८।

अन्यदुर्वह—वि० [सं०] जो दूसरे के वहन करने योग्य न हो। दूसरे के लिये कठिन [को०]।

अन्यदेशीय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अन्यदेशीया] विदेशी। दूसरे देश का परदेशी।

अन्यधी—वि० [सं०] जिसका विचार ईश्वर के पक्ष में न हो। ईश्वर को न माननेवाला [को०]।

अन्यनाभि—वि० [सं०] दूसरे वंशवाला [को०]।

अन्यपर—वि० [सं०] अन्य विषयक। दूसरे के बारे में [को०]।

अन्यपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १ दूसरा आदमी। गैर। २ व्याकरण में पुरुषवाची सर्वनाम का तीसरा भेद। वह पुरुष जिसके संबंध में कुछ कहा जाय। यह दो प्रकार का है—निश्चयात्मक जैसे 'यह', 'वह' और अनिश्चयात्मक जैसे 'कोई'।

अन्यपुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अन्यपुष्टा] वह जिसका पोषण अन्य के द्वारा हो। कोकिल। कोयल। काकपाली।

विशेष—ऐसा कहा जाता है कि कोयल अपने अंडों को सेने के लिये कौओं के घोंसलों में रख आती है।

अन्यपूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो एक को ब्याही जाकर या वाग्दत्ता होकर फिर दूसरे से ब्याही जाय। इसके दो भेद हैं—पुनर्भू और स्वैरिणी।

अन्यबीजज—संज्ञा पुं० [सं०] दत्तक पुत्र [को०]।

अन्यबीजसमुद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्यबीजज' [को०]।

अन्यबीजोत्पन्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्यबीजज' [को०]।

अन्यभृत्[1]—वि० [सं०] दूसरे का पालन करनेवाला [को०]।

अन्यभृत्[2]—संज्ञा पुं० काक। कौआ [को०]।

अन्यभृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोयल [को०]।

अन्यमन—वि० [सं० अन्यमनस्] अनमना। उदास। चिंतित।

अन्यमनस्क—वि० [सं०] जिसका जी कहीं न लगता हो। उदास। चिंतित। अनमना। उ०—किंतु अन्यमनस्क होकर वह टहलने ही लगी।—कानन०, पृ० १८।

अन्यमानस—वि० [सं०] दे० 'अन्यमनस्क' [को०]।

अन्यमातृज—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरी या सौतेली माता से उत्पन्न। सौतेला भाई [को०]।

अन्यमार्गी—वि० [सं० अन्यमार्गिन्] दूसरा मत या धर्म माननेवाला। उ०—अन्यमार्गी को अहसान मोल लियो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३१८।

अन्यर्हि—अव्य० [सं०] किसी अन्य समय (को०)।

अन्यवादी—वि० [सं० अन्यवादिन्] १ झूठी गवाही देनेवाला। २ प्रतिवादी [को०]।

अन्यवाप—संज्ञा पुं० [सं०] कोयल [को०]।

अन्यविवर्धित—वि० [सं०] जिसका पालन दूसरे द्वारा किया गया हो [को०]।

अन्यव्रत—वि० [सं०] अन्यधर्मानुगामी। अनार्य।

विशेष—अनार्यों की अपनी भाषाएँ थीं जो आर्यों को अजीब सी मालूम होती थीं। आर्यों ने उनको अन्यव्रत इत्यादि कहा है जिससे जाहिर होता है कि उनके धर्म, देवता, नियम इत्यादि पृथक् थे।

अन्यशाख—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जिसने अपना धर्म त्याग दिया हो [को०]।

अन्यशाखक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्यशाख' [को०]।

अन्यसंक्रांत—वि० [सं० अन्यसङ्क्रान्त] दूसरी स्त्री से संबंध कर लेनेवाला [को०]।

अन्यसंगम—संज्ञा पुं० [सं० अन्यसङ्गम] अवैध यौनसंबंध [को०]।

अन्यसंभूयक्रय—संज्ञा पुं० [सं० अन्यसम्भूयक्रय] थोक का दूसरा दाम जो पहले दाम पर न बिकने पर लगाया जाय।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय बहुत से पदार्थ ऐसे थे जिन्हें राज्य ही बेचता था।

अन्यसंभोगदुःखिता—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्यसंभोगदुःखिता] वह नायिका जो अन्य स्त्री में नायक के चिह्न देखकर और यह जानकर कि इसने हमारे पति के साथ रमण किया है, दुःखित हो।

अन्यसाधारण—वि० [सं०] बहुतों में पाया जानेवाला [को०]।

अन्यसुरतिदुःखिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अन्यसंभोगदुःखिता'। उ०—अन्यसुरतिदुखिता कहो, करे पेच-रिस-नेह।—मतिराम ग्र०, पृ० २६२।

अन्याइ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—सुनि पावै नौबत कौ राइ। तौ यह होइ बड़ो अन्याइ।—नंद० ग्र०, पृ० २४४।

अन्याई[1](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—सेए नाहिं चरन गिरिधर के बहुत करी अन्याई।—सूर० १।१४५।

अन्याई[2](पु)—वि० [हिं०] दे० 'अन्यायी'। उ०—या ब्रज में लरिका घने हौंही अन्याई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४३०।

अन्याउ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—जे अन्याउ करहिं काहु को ते सिसु मोहिं न भावहिं।—तुलसी ग्र०, पृ० ४३२।

अन्यादृश—वि० [सं०] १ दूसरे प्रकार का। २ परिवर्तित [को०]।

अन्यापदेश—संज्ञा पुं० [सं०] वह कथन जिसका अर्थ साधर्म्य के विचार से कथित वस्तुओं के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओं पर घटाया जाय।

अन्योक्ति। जैसे,— हे पिक पचम नाद को नहि भीलन को ज्ञान। यहै रीभिबो मान तू जो न हनें हिय बान। यहाँ कोकिल और भील की वात कहकर मूर्ख दुर्जनो और गुणियो का स्वभाव दिखाया गया है।

अन्यापेक्षी—वि० [स० अन्यापेक्षिन्] दूसरे का आसरा रखनेवाला। दूसरे का अवलब लेनेवाला। उ०—वह मूलत एक उन्मुख भाव है, अन्यापेक्षी भाव जो दूसरे की उपस्थिति से ही रसावस्था तक पहुँचता है।—नदी०, पृ० २५६।

अन्याय—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अन्यायी] १ न्याय के विरुद्ध आचरण। अनीति। वेइमाफी। २ अधेर। अन्यथाचार। ३ जुलम।

अन्यायी¹—वि० [स० अन्यायिन्] अन्यथाचारी। अनुचित कार्य करनेवाला दुराचारी। जालिम।

अन्यायी²—वि० [सं०] न्याय के प्रतिकूल। अनुचित।

अन्यारा(५)—वि० [स० अ=नहीं+हिं० न्यारा] १ जो पृथक् या जुदा न हो। २ अनोखा। निराला। ३ खूब। बहुत। बढ़ै वस जग माह अन्यारा। छत्र धर्म धुर को रखवारा।—लाल० (शब्द०)।

अन्यारी(५)—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अनियारा'। उ०—काम झूलै उर मे उरोजन मे दाम झूलै, स्याम झूलै प्यारी की अन्यारी अँखियान में।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३२१।

अन्यार्थ—वि० [स०] प्रस्तुत अर्थ से भिन्न अर्थ प्रकट करनेवाला [को०]

अन्याव(५)†—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—देवनि हूँ देव परिहरचो अन्याव न तिनको, हौ अपराधी सब केरो।—तुलसी ग्र०, पृ० ५६३।

अन्याश्रित—वि० [सं०] दूसरे पर निर्भर या अवलबित [को०]।

अन्यास(५)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अनायास'। उ०—दाम मनि काहे को अन्यास दरसावती सयावनी भुअगिनी सी बेनी लौटि लौटि है।—भिखारी० ग्र०, पृ० १७४।

अन्यासाधारण—वि० [स०] असाधारण। असामान्य। विचित्र[को०]

अन्यून—वि० [सं०] जो न्यून न हो। जो कम न हो। काफी। बहुत।

अन्येद्यु—क्रि० वि० [स०] [वि० अन्येद्युष्क] दूसरे दिन।

अन्येद्यु ज्वर—सज्ञा पु० [स०] वह ज्वर जो बीच मे एक एक दिन का अतर देकर चढे। एकतरा ज्वर। अँतरिया बुखार।

अन्येद्युष्क¹—वि० [स०] दूसरे दिन होनेवाला।

अन्येद्युष्क²—सज्ञा पु० दे० 'अन्वेद्युज्वर'।

अन्योका—वि० [सं० अन्योकस्] अपने घर मे न रहनेवाला [को०]।

अन्योक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] वह कथन जिसका अर्थ साधर्म्य के विचार मे कथित वस्तु के अतिरिक्त अन्य वस्तु पर घटाया जाय। अन्यापदेश। जैसे,—केती सोम कला करो, करो सुधा को दान। नही चद्रमणि जो द्रवै, यह तेलिया पखान। यहाँ चद्रमा और तेलिया पत्थर के बहाने गुणी और अगुणग्राही अथवा सज्जन और दुर्जन की बात कही गई है। रुद्रट आदि दो एक आचार्यो ने इसको अलकार माना है।

अन्योदर्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अन्योदर्या] दूसरे के पेट से पैदा। सहोदर का उलटा।

अन्योन्य¹—सर्व० [सं०] परस्पर। आपस मे।

अन्योन्य²—सज्ञा पुं० वह काव्यालकार जिसमे दो वस्तुओ की किसी क्रिया या गुण का एक दूसरे के कारण उत्पन्न होना वर्णन किया जाय। जैसे—सर की शोभा हस है, राजहस की ताल। करत परस्पर हैं सदा गुरुता प्रकट विशाल।

अन्योन्यभेद—सज्ञा पु० [स०] आपसी वैर। शत्रुता [को०]।

अन्योन्यविभाग—सज्ञा पुं० [स०] पैतृक सपत्ति का पारस्परिक बँटवारा [को०]।

अन्योन्यवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] पारस्परिक या आपसी प्रभाव [को०]।

अन्योन्यव्यतिकर—सज्ञा पुं० [स०] कार्य और कारण का पारस्परिक सबध [को०]।

अन्योन्यसश्रय—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अन्योन्यव्यतिकर' [को०]।

अन्योन्याभाव—सज्ञा पुं० [सं०] किसी एक वस्तु का दूसरी वस्तु न होना। जैसे—घट पट नही हो सकता और पट घट नही हो सकता।

अन्योन्याश्रय—सज्ञा पुं० [स०] १ परस्पर का सहारा। एक दूसरे की अपेक्षा। २ न्याय मे एक वस्तु के ज्ञान के लिये दूसरी वस्तु के ज्ञान की अपेक्षा। सापेक्ष ज्ञान। जैसे—सर्दी के ज्ञान के लिये गर्मी के ज्ञान की, और गर्मी के ज्ञान के लिये सर्दी के ज्ञान की आवश्यकता है।

अन्वक्—क्रि० वि० [स०] १ वाद मे। पीछे से। २ मैत्री से। अनुकूलता से [को०]।

अन्वक्ष¹—वि० [स०] १ प्रत्यक्ष। साक्षात्। २ पीछे या बाद का (को०)।

अन्वक्ष²—क्रि० वि० १ सामने। २ पीछे। बाद। उपरात।

अन्वय—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अन्वयी] १ परस्पर। तारतम्य। २ सयोग। मेल। ३ पद के शब्दो को वाक्यरचना के नियमानुसार यथास्थान रखने का कार्य। जैसे—पहले कर्ता फिर कर्म और फिर क्रिया। ४ अवकाश। खाली स्थान। ५ वश। कुल। घराना। खानदान। ६. भिन्न भिन्न वस्तुओ को साधर्म्य के अनुसार एक कोटि मे लाना। जैसे,—चलने फिरनेवाले मनुष्य, बैल, कुत्ता आदि को जगम के अतर्गत मानना। ७. कार्य कारण का सबध। ८ अनुगमन (को०)। ९ आशय (को०)।

अन्वयज्ञ—वि० [सं०] वशपरपरा का ज्ञाता [को०]।

अन्वयव्यतिरेक—सज्ञा पुं० [सं०] १ सहमति और असहमति। सगति और असगति। २ नियम और अपवाद [को०]।

अन्वयव्यतिरेकसबध—सज्ञा पु० [स० अन्वयव्यतिरेकसम्बन्ध] दो वस्तुओ का वह सबध जिसमे एक के होने पर दूसरी का होना तथा दूसरी के न होनेपर पहली का न होना निर्भर करता है। जैसे, दड और चक्र तथा घडे का सबध। 'दड और चक्र के रहने पर ही घडे का बनना', यहाँ दड और चक्र का घडे के बनने से अन्वय सबध है। साथ ही दड और चक्र के अभाव मे घडे का न बनना यहाँ दड और चक्र के अभाव का घडे के न बनने से व्यतिरेक सबध है।

अन्वयव्याप्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] निश्चय या स्वीकारात्मक तर्क [को०]।

अन्वयागत—वि० [स०] जो वशपरपरा से चला आ रहा हो। वशानुगत [को०]।

अन्वयार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] अन्वय से व्यक्त होनेवाला अर्थ (को०)।

अन्वयी—वि० [सं० अन्वयिन्] १ अन्वययुक्त। २ संबद्ध। ३ एक ही वंश का।

अन्वर्थ—वि० [सं०] अर्थ के अनुसार। २ सार्थक। यथागुण।

अन्ववकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] यथा क्रम उचित ढंग से आगे और बिखेरना (को०)।

अन्ववचार—संज्ञा पुं० [सं०] पीछे की ओर जाना तथा अनुसरण करना (को०)।

अन्ववसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १ ढीला करना। २ इच्छानुकूल व्यापार या कामचार की आज्ञा (को०)।

अन्ववसायी—वि० [सं० अन्ववसायिन्] १ संबद्ध रहनेवाला। २ निर्भर। आश्रित (को०)।

अन्ववसित— वि० [सं०] संलग्न। संबद्ध (को०)।

अन्ववाय—संज्ञा पुं० [सं०] जाति। वंश। कुल (को०)।

अन्ववेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विचार। ध्यान। विमर्श (को०)।

अन्वष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों के लिये एक नवमी श्राद्ध जो अष्टका के अनंतर पूस, माघ, फागुन और वैसाख की कृष्ण पक्ष की नवमी को होता है।

अन्वाख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्ववत्‌ की व्याख्या। २ ग्रंथ। अध्याय। पर्व (को०)।

अन्वाचय—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रधान या मुख्य काम करने के साथ साथ किसी अप्रधान काम को भी करने की आज्ञा। जैसे,—भिक्षा के लिये जाओ और यदि रास्ते में गाय मिले तो उसे भी हाँकते लाना। २ उक्त प्रकार का कार्य या विषय (को०)।

अन्वादेश—संज्ञा पुं० [सं०] किसी एक कार्य के लिए आदेश पर पुन दूसरा कार्य करने का आदेश या उपदेश। जैसे,—इसने व्याकरण पढ़ा है अब इसको साहित्य पढ़ाओ।

अन्वाधान—संज्ञा पुं० [सं०] अग्न्याधान के उपरांत अग्नि को बनाए रखने के लिये उसमें ईंधन छोड़ने की क्रिया।

अन्वाधि—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह वस्तु या धरोहर जो किसी के हाथ में इसलिये दिया जाय कि वह उसे अमुक (तीसरे) व्यक्ति को दे दे। २ पश्चात्ताप। ग्लानि। व्यथा।

अन्वाधेय—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के पीछे जो धन स्त्री को उसके पिता या पति के घर से मिले।

अन्वाधेयक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्वाधेय' (को०)।

अन्वाध्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का एक वर्ग (को०)।

अन्वाय—संज्ञा पुं० [सं०] अर्थशास्त्र के अनुसार सेना के किसी एक अंग की अधिकता।

अन्वायन—संज्ञा पुं० [सं०] वह सामान जो वधू अपने पिता के घर से लाई हो।

अन्वारंभ—संज्ञा पुं० [सं० अन्वारम्भ] आशीर्वाद देने के लिये यजमान की पीठ का स्पर्श (को०)।

अन्वारंभण—संज्ञा पुं० [सं० अन्वारम्भण] दे० 'अन्वारंभ'।

अन्वारूढ़—वि० [सं० अन्वारूढ़] पीछे चलनेवाला।

अन्वारोहण—संज्ञा पुं० [सं०] पति के शव के साथ या उसके बाद चिता पर चढ़ना (को०)।

अन्वालभन—संज्ञा पुं० [सं० अन्वालम्भन] छूना। स्पर्श (को०)।

अन्वालंभन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्वालभन' (को०)।

अन्वासन—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेवा। पूजा। आराधना। २. किसी के पास आसन ग्रहण करना। ३ दुःख। [illegible]। ४. [illegible] का स्थान। [illegible] [illegible] (को०)।

अन्वाहार्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुरोहित को [illegible] दक्षिणा या [illegible]। २ दे० 'अन्वाहार्य श्राद्ध' (को०)।

अन्वाहार्यक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्वाहार्य' (को०)।

अन्वाहार्य श्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] मासिक श्राद्ध। [illegible] श्राद्ध जो [illegible] किया जाता है। [illegible]।

अन्वाहित— वि० [सं०] [स्त्री० अन्वाहिता] [illegible]। [illegible] (को०)।

अन्वाहित— वि० [सं०] स्मृति के अनुसार (द्रव्य) जो एक के यहाँ [illegible] [illegible] हो।

अन्वाहित— संज्ञा पुं० [illegible] [illegible] [illegible]।

अन्वित— वि० [सं०] १ युक्त। सहित। मिलित। मिला हुआ। २. [illegible] या [illegible] हुआ। (को०)। ३ [illegible]। [illegible]। [illegible] (को०)। ४ संबद्ध (को०)।

अन्वितार्थ— संज्ञा पुं० [सं०] [illegible]।

अन्वितार्थ — वि० [illegible] (को०)।

अन्विति—संज्ञा स्त्री० [सं०] [illegible] [illegible] [illegible] (Unity) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] २ पृ० ६६।

अन्विष्ट—वि० [सं०] [illegible]। [illegible]। [illegible] (को०)।

अन्वीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ [illegible] से देखना। [illegible]। विचार। २. खोज। [illegible]। [illegible]।

अन्वीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अन्वीक्षण'।

अन्वीत—वि० [सं०] दे० 'अन्वित' (को०)।

अन्वीप—वि० [सं०] १ पानी के समीप का। पानी के पास स्थित। २ संबद्ध (को०)।

अन्वेष—संज्ञा पुं० दे० 'अन्वेषण' (को०)।

अन्वेषक—वि० [सं०] [स्त्री० अन्वेषिका] खोजनेवाला। तलाश करनेवाला। अनुसंधान करनेवाला (को०)।

अन्वेषण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अन्वेषणा, वि० अन्वेषित, अन्वेषी, अन्वेष्टा] अनुसंधान। खोज। ढूँढ़। तलाश।

अन्वेषित—वि० [सं०] खोजा हुआ। ढूँढ़ा हुआ।

अन्वेषी—वि० [सं० अन्वेषिन्] [स्त्री० अन्वेषिणी] ढूँढ़नेवाला। तलाश करनेवाला।

अन्वेष्टव्य—वि० [सं०] दे० 'अन्वेष्य'। (को०)।

अन्वेष्टा—वि० [सं० अन्वेष्टृ] [स्त्री० अन्वेष्ट्री] खोजनेवाला। तलाश करनेवाला।

अन्वेष्य—वि० [सं०] अन्वेषण के योग्य [को०]।

अन्हरा(पु)†—वि० [सं० अंध, प्रा० अधल] अंधा। नेत्रहीन। सूर। उ०—जो कुछ रहा से अन्हरे भाखा, कठवे कहेसि अनूठी। बचा रहा सो जोलहा कहिगा, अब जो कहै सो झूठी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६६।

अन्हवाना(पु)—क्रि० स० [हिं० अन्हाना का प्रे० रूप] स्नान कराना। नहलाना। उ०—(क) वद करत पुजा हरि देखत। घट बजाइ देव अन्हवायौ, दल चदन लै भेटत।—सूर०, १०।२६१। (ख) रामचरित सर बिन अन्हवाएँ।—मानस, १।११।

अन्हवैया(पु)—वि० [हिं० अन्हाना + वैया (प्रत्य०)] स्नान करानेवाला। नहानेवाला। उ०—भरत, राम, रिपुदवन, लखन के चरित सरित अन्हवैया।—तुलसी ग्र०, पृ० २७६।

अन्हान(पु)—सज्ञा पु० [स० स्नान, प्रा० ण्हाण, अण्हान, नहान] दे० 'स्नान'। उ०—कै मज्जन तब किएउ अन्हानू। पहिरे चीर गएउ छपि भानू।—जायसी ग्र०।

अन्हाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अन्हान से नाम०] स्नान करना। नहाना। उ०—हम लकेश दूत प्रतिहारी समुद नीर कौं जात अन्हाए।—सूर०, ६।१२०।

अपंकिल—वि० [स० अपङ्किल] १ पकरहित। सूखा। बिना कीचड का। २ शुद्ध। निर्मल।

अपंग—वि० [स० अपाङ्ग = हीनाङ्ग] १ अगहीन। न्यूनाग। २ लँगडा। लूला। ३ काम करने मे अशक्त। बेबस। असमर्थ। उ०—आपुन लोभ अस्त्र लै धावत, पलक कवच नहि अग-हाव भाव सर लरत कटाच्छनि, भृकुटी धनुप अपंग।—सूर०, १०।२८८।

अपंचीकृत—वि० [स० अपञ्चीकृत] पच महाभूतो का अभिन्न सूक्ष्म रूप जिसका पचीकरण न हुआ हो।

अपंजीकृत—वि० [स० अ = नहीं + पञ्जीकृत] जो सूची, बही, रजिस्टर या खाते मे दर्ज न हो।

अपंडित—वि० [स० अपण्डित] मूर्ख। निरक्षर। ज्ञानहीन।

अपंडी—वि० [स० अ + पिण्डिन्] पिड या शरीर मे रहित (ईश्वर)। उ०—बसै अपडी पड मे ता गति लपै न कोइ।—कबीर ग्र०, पृ० १८।

अपंथ—सज्ञा पु० [स० अ = बुरा + हिं = पथ] दे० 'अपथ'। उ०—कहँ कबीर यह अचरज बाता। उलटी रीति अपथ जग जाता।—कबीर सा०, पृ० ४३१।

अपंपर(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'अपरपार'। उ०—(क) प्रथम सुमर इण विध परमेश्वर। पूरण ब्रह्म प्रताप अपपर।—रा० रू०, पृ० ३। (ख) नमो अविगत नमो आपू नमो पार अपपरम्।—राम० धर्म०, पृ० ५१।

अप प्रवेशन—सज्ञा पु० [स०] कौटिल्य के अनुसार पानी मे डुबाकर मारने का दड जो राजविद्रोही ब्राह्मणो को दिया जाता था।

अप्—सज्ञा पु० [स०] १ जल। पानी। २ वायु। हवा (को०)। ३ चित्रा नक्षत्र [को०]।

अप[1]—उप० [स०] उलटा। विरुद्ध। बुरा। हीन। अधिक।

विशेष—यह उपसर्ग जिस शब्द के पहले आता है, उसके अर्थ मे निम्नलिखित विशेषता उत्पन्न करता है।—१ निषेध। जैसे—अपकार। अपमान। २ अपकृष्ट (दूषण)। जैसे—अपकर्म। अपकीर्ति। ३ विकृति। जैसे—अपकुक्षि। अपाग ४ विशेषता। जैसे—अपकलक। अपहरण।

अप[2]—सर्व० [हिं०] 'आप' का सक्षिप्त रूप जो यौगिक शब्दो मे आता है। जैसे—अपस्वार्थी। अपकाजी। उ०—दृगनि के मग लै मोहन कहियाँ। घरि के अप अपने हिय महियाँ।—नद० ग्र०, पृ० २६५।

यौ०—अपआप = अपने आप। खुद ब खुद। उ०—नाला अपआप सागर हुआ। काहे के कारण रोता है कुवा।—दक्खिनी, पृ० ८१।

अप[3](पु)—सज्ञा पुं० [स० अप्] जल। पानी। उ०—रज अप अनल अनिल नभ जड जानत सब कोइ।—स० सप्तक, पृ० १६।

अपक—सज्ञा पु० [स० अप् + क] पानी। जल। (डिं०)।

अपकरण—सज्ञा पु० [स०] १ अनिष्ट कार्य। २ दुष्टाचार। दुराचार। ३ बुरा बर्ताव।

अपकरुण—वि० [स०] निठुर। निर्दयी। बेरहम। कठोरहृदय।

अपकर्ता—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री० अपकर्त्री] १ हानि पहुँचानेवाला। हानिकारी। २ बुरा काम करनेवाला। पापी। ३ शत्रु [को०]।

अपकर्म—सज्ञा पु० [स०] बुरा काम। खोटा काम। कुकर्म। पाप। उ०—पति को धर्म इहै प्रतिपालै, युवती सेवा ही को धर्म। युवती सेवा तऊ न त्यागै जो पति कोटि करै अपकर्म।—सूर (शब्द०)।

अपकर्मा—वि० [स० अपकर्मन्] दुष्कर्मी भ्रष्टाचारी।

अपकर्ष—सज्ञा पु० [स०] १ उत्कर्ष का विलोम। नीचे की ओर खिचाव। गिराव। २ घटाव। उतार। कमी। ३ किसी वस्तु या व्यक्ति के मूल्य या गुण को कम समझना या बतलाना। बेकदरी। निरादर। अपमान।

अपकर्षक—वि० [स०] अपकर्ष करनेवाला। निरादर करनेवाला। जिससे अपमान होता हो।

अपकर्षण—सज्ञा पु० [स०] १ अपमान। तिरस्कार। बेकदरी। उ०—धन्य वन्य जन भी न सह सके यह अपकर्षण।—साकेत, पृ० ४१६। दे० 'अपकर्ष'।

अपकर्षसम—सज्ञा पुं० [स०] न्याय मे जाति के चौबीस भेदो मे से एक। दृष्टात मे जो न्यूनताएँ हो उनका साध्य मे आरोप करना। जैसे यह कहना—'यदि घट का सादृश्य शब्द मे है तो जिस प्रकार घट का प्रत्यक्ष श्रवणेंद्रिय से नही होता, उसी प्रकार शब्द का भी श्रवणेंद्रिय से प्रत्यक्ष नही होता।'

अपकर्षित—वि० [स०] अपमानित। अपकृष्ट। हटाया गया [को०]।

अपकलंक—सज्ञा पु० [स० अपकलङ्क] अमिट कलक। न मिटनेवाला कलक [को०]।

अपकल्मष—वि [स०] १ निष्पाप। २ निष्कलक [को०]।

अपकषाय—वि० [स०] दे० 'अपकल्मष' [को०]।

अपकाजी(पु) —वि० [हिं० अप + काज] अपस्वार्थी। मतलबी। उ०—श्याम विरह वन माँझ हेरानी। अहकारि लपट अपकाजी सग न रह्यो निदानी।—सूर (शब्द०)।

अपकार—संज्ञा पु० [स०] [वि० अपकारक अपकारी] १ अनिष्टसाधन। द्वेष। द्रोह। बुराई। अनुपकार। हानि। नुकसान। अनभल। अहित। उपकार का विलोम। उ०—मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारि विरह तुम होव दुखारी।—तुलसी (शब्द०)। २ अनादर। अपमान। ३ अत्याचार। असद्व्यवहार।

अपकारक—वि० [स०] १ अपकार करनेवाला। क्षति पहुँचानेवाला। हानिकारी। २ विरोधी। द्वेषी।

अपकारी—वि० [स० अपकारिन्] [स्त्री० अपकारिणी] १ हानिकारक। बुराई करनेवाला। अनिष्टसाधक। उ०—खल बिनु स्वारथ पर अपकारी।—मानस, ७।१२१। २ विरोधी। द्वेषी।

अपकारीचार(पु)—वि०[स० अपकार + आचार]हानि पहुँचानेवाला। हानिकारी। विघ्नकारी। उ०—जे अपकारीचार, तिन्ह कहँ गौरव मान्य बहु। मन क्रम वचन लबार, ते वकता कलिकाल महँ।—तुलसी (शब्द०)।

अपकिरण—संज्ञा पुं० [स०] बिखराना। छितराना [को०]।

अपकीरति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपकीर्ति'। उ०—मैं अपनी अपकीरति को डर बात नहीं सब दैव महावै।—हम्मीर०,पृ०२०।

अपकीर्ण—वि० [स०] बिखेरा या छितराया हुआ।

अपकीर्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] अपयश। अयश। बदनामी। निंदा।

अपकृत[1]—वि० [स०] १ जिसका अपकार किया गया हो। जिसे हानि पहुँची हो। जिसकी बुराई की गई हो। २ अपमानित। बदनाम। ३ जिसका विरोध किया गया हो। उपकृत का उलटा।

अपकृत[2]—संज्ञा पुं० बुराई। हानि। क्षति [को०]।

अपकृति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ अपकार। हानि। बुराई। २ अपमान। निंदा। बदनामी।

अपकृष्ट—वि० [स०] १ गिरा हुआ। पतित। भ्रष्ट। २ अधम। नीच। निंद्य। ३ घृणित। बुरा। खराब।

यौ०—अपकृष्टचेतन = बुरे विचारोंवाला।

अपकृष्टता—संज्ञा स्त्री० [स०] १ अधमता। नीचता। २ बुराई। खराबी।

अपकौशली—संज्ञा स्त्री० [स०] समाचार। सवाद। सूचना [को०]।

अपक्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ कच्चापन। अपरिपक्वता। २ अजीर्ण [को०]।

अपक्रम[1]—संज्ञा पु० [स०] १ व्यतिक्रम। क्रमभंग। अनियम। गडबड। उलट पलट। २ दौड़ना। पीछे हटना [को०]। ३ पीछे हटने का स्थान या सीमा (को०)। ४ (समय) बीतना। व्यतीत होना (को०)।

अपक्रम[2]—वि० अव्यवस्थित। क्रमविहीन [को०]।

अपक्रमण—संज्ञा पु० [स०] दे० 'अपक्रम' [को०]।

अपक्रमी—वि० [स० अपक्रमिन्] १ जानेवाला। हटनेवाला। २. तीव्रता से न जानेवाला [को०]।

अपक्राम—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अपक्रम' [को०]।

अपक्रिया—संज्ञा स्त्री० [स०] १ क्षति। दुष्कर्म। अहित। २ ऋण-परिशोध [को०]।

अपक्रोश—संज्ञा पुं० [स०] गाली देना। निंदा करना। कुवाच्य कहना [को०]।

अपक्व—वि० [स०] १ बिना पका हुआ। कच्चा। उ०—फल अपक्व जो वृक्ष ते तोर लेत नर कोय। फल को रस पावै नही, नास बीज को होय।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २०१। २ अनभ्यस्त। असिद्ध। अनुभवहीन।

यौ०—अपक्वबुद्धि।

अपक्वकलुष—संज्ञा पुं० [स०] शैव दर्शन के अनुसार सकल के दो भेदों मे से एक। बद्धजीव, जो ससार मे बार बार जन्म ग्रहण करता है।

अपक्वज्वर—संज्ञा पु० [स०] वैद्यक मे ज्वर की वह दशा जिसमे लार गिरना, उबकाई आना, अरुचि,आलस्य, देह का जकडना आदि उपद्रव होते है।

अपक्वता—संज्ञा स्त्री० [स०] पका हुआ न होना। कच्चापन। २ अनभ्यस्तता। असिद्धता।

अपक्ष[1]—संज्ञा पु० [स०] १ वह जो राज्य के पक्ष मे न हो। २ जिससे राज्य को कोई लाभ न हो। ३ वह, जिसका किसी से हेलमेल न हो। वह, जो किसी के साथ मिल जुलकर न रह सकता हो। निष्पक्ष। उ०—लक्ष अलक्ष अदक्ष न दक्ष, न पक्ष अपक्ष, न तूल न भारी।—सुदर ग्र०, पृ० ६४८।

विशेष—चाणक्य ने ऐसे मनुष्यों के लिये लिखा है कि उन्हें कहीं अलग अपना उपनिवेश बसाने के लिये भेज देना चाहिए।

अपक्ष[2]—वि० [स०] १ पखहीन। पखरहित। २ निष्पक्ष (को०)।

अपक्षपात[1]—संज्ञा पु० [स०] पक्षपात का अभाव। न्याय। खरापन।

अपक्षपात[2]—पक्षपातविहीन। निष्पक्ष। खरा। उ०—परतु नौशेरवाँ खजाँची के इस अपक्षपात काम से ऐसा प्रसन्न हुआ कि उसे निहाल कर दिया।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २२८।

अपक्षपाती—वि० [स० अपक्षपातिन्] [स्त्री० अपक्षपातिनी] पक्षपात-रहित। न्यायी। खरा।

अपक्षय—संज्ञा पु० [स०] [वि० अपक्षीण] १ छीजना। ह्रास। नाश। २ कृष्णपक्ष [को०]।

अपक्षिप्त—वि०[स०] १ अपक्षेपण की क्रिया द्वारा पलटाया या फेंका हुआ। २ फेंका हुआ। गिराया हुआ। पतित।

अपक्षीण—वि० [स०] नष्ट। छीजा हुआ। विनष्ट [को०]।

अपक्षेप—संज्ञा पु० [स०] दे० 'अपक्षेपण' [को०]।

अपक्षेपण—संज्ञा पु० [स०] [वि० अपक्षिप्त] १ फेंकना। पलटाना। २ गिराना। च्युत करना। ३ पदार्थविज्ञान के अनुसार प्रकाश, तेज और शब्द की गति में किसी पदार्थ से टक्कर खाने से व्यावर्तन होना। प्रकाशादि का किसी पदार्थ से टकराकर पलटना। ४ वैशेषिक शास्त्रानुसार आकुचन, प्रसारण आदि पाँच प्रकार के कर्मो मे से एक।

अपखोरा—संज्ञा पु० [फा० आबखोरा, हिं० अबखोरा] जल पीने का पात्र या बरतन।

अपगंड—वि० [स० अपगण्ड] दे० 'अपोगंड' [को०]।

अपग¹—वि०, [सं०] १ जानेवाला। दूर हटनेवाला [को०]।

अपग²(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अपगा] सरिता। नदी।—अनेकार्थ०, पृ० ४४।

अपगत—वि० [सं०] १ पलायित। भागा हुआ। पलटा हुआ। २ दूरीभूत। हटा हुआ। गत। उ०—अपगत से नोई ध्वनि सो पुनि प्रगट पताल।—स० सप्तक, पृ० १५। ३ मरा हुआ। मृत [को०]।

यौ०—अपगतव्याधि = रोगमुक्त।

अपगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गति। अधोगति। दुर्भाग्य [को०]।

अपगम—संज्ञा पुं० [सं०] १ वियोग। अलग होना। २ दूर होना। भागना। ३ मृत्यु। मरण [को०]।

अपगमन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपगम' [को०]।

अपगर—संज्ञा [सं०] पुं० १ निंदा। २ वह, जो निंदा करे। निंदक [को०]।

अपगर्जित—वि० [सं०] गर्जनशून्य (बादल)। गर्जनारहित [को०]।

अपगल्भ—वि० [सं०] १ भीत। भीरु। घबड़ाया हुआ (को०)। २ पार्श्वीय। बगल का [को०]।

अपगा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आपगा] नदी।

अपगीत—वि० [सं० अप + गीत] बुरा कहा जानेवाला। निंदनीय (को०)। उ०—मैं ही हूँ वह महानिंद्य, अविनीत हा! होगा मुझ सा और कौन अपगीत हा!—शकु०, पृ० ५२।

अपगुण—संज्ञा पुं० [सं०] १ दोष। ऐब [को०]। २ निर्गुण। गुण अवगुण से रहित [को०]।

अपगोपुर—वि० [सं०] द्वारविहीन। द्वाररहित (नगर) [को०]।

अपघन¹—वि० [सं०] मेघरहित। निरभ्र [को०]।

अपघन²—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का अंग (हाथ पैर आदि) [को०]।

अपघात¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ हत्या। हिंसा। २ वंचना। विश्वासघात। धोखा। उ०—जीएँ तुमको जान सहमा तात। कर गया क्या काल यह अपघात।—साकेत, पृ० १७७।

अपघात²—संज्ञा पुं० [हिं० अप + सं० घात] आत्महत्या। आत्मघात। उ०—(क) कहुरे कुँअर मोंसे मत बाता। काहे लागि करसि अपघाता।—जायसी (शब्द०)। (ख)—साजन को मारो राजा चाहे अपघात कियो जियो नहि जात भक्ति लेसहूँ न आयो है।—प्रिया (शब्द०)।

अपघातक—वि० [सं०] १ विनाश करनेवाला। घातक। २ विश्वासघाती। वंचक। धोखा देनेवाला।

अपघाती—वि० [सं० अपघातिन्] [वि० स्त्री० अपघातिनी] १. घातक। विनाशक। २ विश्वासघाती। वंचक।

अपच¹—संज्ञा पुं० [हिं० अ + पच] न पचने का रोग। अजीर्ण। बदहजमी।

अपच²—संज्ञा पुं० [सं] १ पाककार्य में असमर्थ व्यक्ति। वह जिसे अपने लिये पकाना न आता हो। २ बुरा पाचक [को०]।

अपचय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपचयी] १ क्षति। हानि। २ व्यय। कमी। नाश। ४ पूजा। सम्मान।

अपचरित¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ दोषयुक्त आचरण। दुराचार। बुरा कर्म।

अपचरित²—वि० १ गया हुआ। प्रस्थित। २ मृत [को०]।

अपचरितप्रकृति—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जिसकी प्रजा अत्याचार से पीड़ित हो [को०]।

अपचायित—संज्ञा पुं० [सं०] १ रोबीला। जिससे लोग डरें। २. पूजित। सम्मानित। आदृत [को०]।

अपचायी—वि० [सं० अपचायिन्] बड़ों का आदर सम्मान न करनेवाला [को०]।

अपचार—संज्ञा पुं० [सं] [वि० अपचारी] १ अनुचित वर्ताव। बुरा आचरण। कुव्यवहार। उ०—विबुध विमल बानी गगन हेतु प्रजा अपचारु। रामराज परिनाम भल कीजिय वेगि विचारु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ९३१२ अनिष्ट। अहित। बुराई। ३ अनादर। निंदा। अपयश। ४ कुपथ्य। स्वास्थ्यनाशक व्यवहार। ५ अभाव। ६ भूल। भ्रम। दोष। ७ मृत्यु। विनाश(को०)।

अपचारक—वि० [सं०] अपचार करनेवाला [को०]।

अपचारी—वि० [सं० अपचारिन्] [वि० स्त्री० अपचारिणी] विरुद्ध आचरण करनेवाला। दुराचारी। दुष्ट।

अपचाल(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप + हिं० चाल] कुचाल। खोटाई। नटखटी। उ०—वारि कै दाम सँवार करौ अपने अपचाल कुचाल लल् पर।—रसखान (शब्द०)।

अपचित—वि० [सं०] १ पूजित। सम्मानित। आदृत। २ क्षीण। दुर्बल। कमजोर [को०]।

अपचिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हानि। क्षय। ह्रास। नाश। २. व्यय। ३. दंड देना। ४ पृथक्करण। ५ मरीचि की कन्या का नाम। ६ सम्मान करना ७ पूजा [को०]।

अपची—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंडमाला रोग का एक भेद। गंडमाला की वह अवस्था जब गाँठें पुरानी होकर पक जाती हैं और जगह जगह पर फोड़े निकलते और बहने लगते हैं।

अपचेता—वि० [सं० अपचेतस्] कंजूस। सूम। जो धन न स्वयं खर्च करे न करने दे [को०]।

अपच्छत्र—वि० [सं०] छत्रविहीन। छत्ररहित [को०]।

अपच्छाय¹—वि० [सं०] १ छायाविहीन। २ दूषित या बुरी छायावाला। जो चमकदार न हो। धुँधला। कांतिहीन [को०]।

अपच्छाय²—संज्ञा पुं० देवता।

अपच्छाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी छाया। भूत प्रेत की छाया [को०]।

अपच्छी¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + पक्षी = पक्षवाला] विपक्षी। विरोधी। शत्रु। गैर।

अपच्छी²(पु)—बिना पंख का। पंखरहित।

अपच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ काट देना। अलग विलग कर देना। २ हानि। ३ बाधा। ४ वह जो टूट गया हो। भंग [को०]।

अपच्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपच्छेद' [को०]।

अपच्युत—वि० [सं०] निपतित। गिरा हुआ। २ बहा हुआ। द्रवित। ३ विनष्ट [को०]।

अपछरा (पु)—संज्ञा पु० [सं० अप्सरा, प्रा० अच्छरा] १ अप्सरा । उ०—कल हंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा ।—तुलसी (शब्द०) । २ हिंदुस्तान में रंडियों की एक जाति ।

अपजय—संज्ञा स्त्री० [सं०] पराजय । हार ।

अपजस (पु)†—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अपयश' । उ०—चिंता यह मोहिं अपारा । अपजस नहिं होय तुम्हारा ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१६ ।

अपजात—संज्ञा पु० [सं०] माता पिता की अपेक्षा हीनगुण पुत्र । कपूत [को०] ।

अपजोग (पु)—संज्ञा पु० [सं० अप+योग] बुरा योग । बुरा संबंध । बुराई । उ०—सब खोटे मधुबन के लोग । जिनके संग स्यामसुंदर सखि सीखे हैं अपजोग ।—सूर०, स० १०।३५६० ।

अपज्ञान—संज्ञा पु० [सं०] १ अस्वीकार । इनकार । नटना । नहीं करना । २ संगोपन । छिपाव । दुराव ।

अपज्य—वि० [सं० अप+ज्या] शिंजिनीहीन । प्रत्यंचारहित [को०] ।

अपट (पु)—वि० [सं० अपटु] जो चतुर न हो । अपटु । उ०—मेरे हेरन वेस कपट कौ । रहिहै नहिं पूतना अपट कौ ।—नंद० ग्रं०, पृ० २३८ ।

अपटन (पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'उबटन' ।

अपटांतर—वि० [सं० अपटान्तर] १ जो पाट या पर्दे द्वारा विभक्त न हो । २ अलग विलग नहीं । संयुक्त । मिलाजुला [को०] ।

अपटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ परदा । कांडपट । २ कपड़े की दीवार । कनात ३ आवरण । आच्छादन ।

अपटीक—वि० [सं०] १. व्याख्या करने के ज्ञान से रहित । वस्त्ररहित [को०] ।

अपटीक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक में परदा हटाकर पात्रों का रंगभूमि में सहसा प्रवेश ।

अपटु—वि० [सं०] १ जो पटु न हो । कार्य करने में असमर्थ । २ गावदी । सुस्त । आलसी । ३ रोगी । ४ ज्योतिष के अनुसार (ग्रह) जिसका प्रकाश मंद हो जाय ।

अपटुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पटुता का अभाव । अकुशलता । अनाड़ीपन ।

अपठमान (पु)—वि० [सं० अपठ्यमान] १ जो पढ़ा न जाय । न पढ़ने योग्य । उ०—अपठमान पापग्रंथ, पठमान वेद हैं ।—केशव (शब्द०) ।

अपटूडेट—वि० [अं० अप-टु-डेट] रहन सहन या विचार में समय के अत्यंत अनुकूल । उ०—फैशन के संबंध में अपटूडेट खबर रखते थे ।—संन्यासी, पृ० ६२ ।

अपठ—वि० [सं०] १ अपढ़ । जो पढ़ा न हो २ मूर्ख । ३ बुरा पढ़नेवाला । कुपाठक (को०) ।

अपठित—वि० [सं०] १ अपढ़ [को०] । २ जो पढ़ा नहीं गया [को०] ।

अपठ्यमान—वि० [सं०] १ जो पढ़ा न जाय [को०] २ न पढ़ने योग्य [को०] ।

अपडर (पु)—संज्ञा पु० [सं० अप+हिं० डर] भय । शंका । उ०—समुझि सहम मोहि अपडर अपने । सो सुधि कीन्ह राम नहिं सपने ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपडरना (पु)—क्रि० अ० [हिं० अपडर से नाम] भयभीत होना । डरना । शंकित होना । उ०—(क) भागे मदमाद चोर भोर जानि जातुधान काम क्रोध लोभ छोभ निकर अपडरे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपडना (पु)—क्रि० अ० [सं० अ+पत्] पहुँचना । उ०—छोटी वीख न आपड़ाँ, लाँबी लाज मरेहि । सयण वटाऊ बालरे, ल्वउ साद करेहि ।—ढोला०, दू० ३८४ ।

अपडाना (पु)—क्रि० अ० [सं० अपर से नाम०] खींचातानी करना । उ०—मन जो कहो करैं री माई । निलज भई तन सुधि बिसराई गुरुजन करत लराई । इत कुलकानि उतै हरि को रस मन जो अति अपढाई ।—सूर (शब्द०) ।

अपडाव (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अपर, हिं० पराआ=पराया] [क्रि० अपडाना] झगड़ा । रार । तकरार । उ०—(क) हँसत कहत की हौं सतिभाव । यह कहनी औरे जो कोऊ तासों मैं करती अपडाव । सूरदास यह मोहि लगावत सपनेहुँ जासों नहिं दरसाव ।—सूर (शब्द०) । (ख) गोपी इहै करत चवाउ । सूर कान्हहि प्रगट कैहै करन दे अपडाउ ।—सूर (शब्द०) ।

अपढार—वि० [सं० अप+हिं० ढार=ढलना] १ बेढंगे तौर से ढलनेवाला । उ०—अरु जौ अपढार ढरैं न ढरैं, गुन त्यौं नकि लागत दोष महा ।—घनानंद, पृ० १२६ । २ सरलता से ढलनेवाला । उ०—यह रावरीयै रसरीति अजू अपढार ढरौ इत यामो कहौं ।—घनानंद, पृ० १४० । ३ आपसे आप ढलनेवाला । उ०—जमुना जस जैसे मन भायो । जमुना ही अपढार कहायो ।—घनानंद, पृ० १८५ ।

अपढ़—वि० [सं० अपठ] बिना पढ़ा । मूर्ख । अनपढ़ ।

अपण्य—वि० [सं०] न बेचने योग्य । जिसके बेचने का धर्मशास्त्र में निषेध है ।

अपतंत्र—संज्ञा पु० [सं० अपतन्त्र] वायु के प्रकोप से होनेवाला एक रोग ।
विशेष—इस रोग में शरीर टेढ़ा हो जाता है, सिर और कनपटी में पीड़ा होती है, साँस कठिनाई से ली जाती है, गले में घरघराहट का शब्द होता है और आँखें फटी पड़ती हैं ।

अपतंत्रक—संज्ञा पुं० [सं० अपतन्त्रक] दे० 'अपतंत्र' [को०] ।

अपत¹ (पु)—वि० [सं० अ+पत्र प्रा० पत्त, हिं० पत्ता] १. पत्रहीन । बिना पत्तों का । उ०—जिन दिन देखे वे कुसुम गई सो बीति बहार । अब अलि रही गुलाब की अपत कँटीली डार ।—बिहारी (शब्द०) । २ आच्छादनरहित । नग्न ।

अपत² (पु)—वि० [अ सं०=नहीं+हिं० पत=लज्जा] लज्जारहित । निर्लज्ज । उ०—लूटे सीखिन अपत करि सिसिर सुसेज बसन । दै दल सुमन सुफल किए सो भल सुजस लसत ।—दीनदयाल (शब्द०) ।

अपत³ (पु)—वि० [सं० अपात्र, प्रा० अपत्त] अधम । पातकी । नीच । उ०—(क) राम राम राम राम राम जपत । पावन किये रावन रिपु तुलसी हू से अपत ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) प्रभु जू हौं तो महा अधर्मी । अपत, उतार, अभागो, कामी, विषयी, निपट, कुकर्मी ।—सूर०, १।१८६ ।

अपत⁴(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अ=नहीं+पति=प्रतिष्ठा, हिं० पत] अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। दुर्दशा। उ०—जौ मेरे दीनदयाल न होते। तौ मेरी अपत करत कौरवसुत होत पडवनि ओते।—सूर० १।१५६।

अपत⁵(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आपत्] विपत्ति। आपत्ति।

अपतई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अपात्र, पा० अपत्त+हिं० ई(प्रत्य०)] १. निर्लज्जता। बेहयाई। ढिठाई। उत्पात। उ०—नयना लुब्धे रूप के अपने सुख माई। अतिहि करी उन अपतई हरि सों ममताई।—सूर (शब्द०)। २ चचलता। उ०—कान्ह तुम्हारी माय महाबल सब जग अपजस कीन्हो (हो)। सुनि ताकी सब अपतई सुक सनकादिक मोहे (हो)। नेक दृष्टि पथ पडि गए शकर सिर टोना लागे (हो)।—सूर (शब्द०)।

अपतर्पण—संज्ञा पुं० [सं०]१ बीमारी के समय का उपवास। लघन। २ तृप्ति का अभाव (कौ०)।

अपतह(पु)—सर्व० [सं० आत्मत, प्रा० अप्पतह] अपने आप। खुद ब खुद। स्वय। अपने तईं (कौ०)। उ०—हम अपतह अपनी पति खोई, हमरें खोज परहु मति कोई।—कबीर ग्र०, पृ० २८७।

अपतानक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जो स्त्रियों को गर्भपात तथा पुरुषों को विशेष रुधिर निकलने अथवा भारी चोट लगने से होता है। इसमें बार बार मूर्छा आती है, नेत्र फटते हैं तथा कठ में कफ एकत्रित होकर घरघराहट का शब्द करता है।

अपताना(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अप=अपना+ताना] जजाल। प्रपच। उ०—दारागार पुत्र अपताना। तनधन मोह मानि कल्याना।—विश्राम (शब्द०)।

अपति¹(पु)—वि० स्त्री० [<सं० अ=नहीं+पति] १ विना पति या स्वामी की। विधवा। २ अविवाहित। कुमारी (कौ०)।

अपति²—वि०[सं० अ=बुरा+पत्ति=गति] पापी। दुष्ट। दुराचारी। उ०—कहा करौं सखि काम को हिय निर्दयपन आज। तनु जारत पारत निपत अपति उजारत लाज।—पद्माकर(शब्द०)।

अपति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अ=नहीं+पत=प्रतिष्ठा] अप्रतिष्ठा। दुर्गति। दुर्दशा। उ०—(क) पति विनु पतिनी पतित न मग मे। पति विनु अपति नारि की जग मे।—सबल (शब्द०)। (ख) पैये निसि वासर कलकित न अक सम, बरनैं मयक कविताई की अपति होइ।—भिखारी ग्र०, पृ० ६६।

अपतिक—वि० [सं०] १ पतिहीन। २. अविवाहित। कुमारी। ३. मालिक या स्वामीहीन (कौ०)।

अपती—संज्ञा स्त्री० [देश०] प्राय. एक बालिश्त चौडा एक तख्ता जो नाव की लबाई में मरिया के दोनों सिरों पर लगाया जाता है। (मल्लाह)।

अपतोस(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अफसोस'।

अपत्त†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपत ४'।

अपत्नी—वि [सं०] अविवाहिता। कुमारी। जो पत्नी न हो। जिसका पति न हो (कौ०)।

अपत्नीक—वि० [सं०] जिसकी पत्नी न हो। पत्नीविहीन। स्त्रीरहित (कौ०)।

अपत्य—संज्ञा पुं० [सं०] सतान (पुत्र या कन्या)। उ०—मार्ग है शत्रुघ्न दुर्गम सत्य, तुम रहो उनके यथार्थ अपत्य।—साकेत, पृ० १७५।

यौ०—अपत्यकाम। अपत्यजीव। अपत्यदा। अपत्यपथ। अपत्यविक्रयी।

अपत्यकाम—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपत्यकामा] सतानेच्छुक। पुत्र की इच्छा रखनेवाला (कौ०)।

अपत्यजीव—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा जिसे पुत्रजीवी भी कहते हैं (कौ०)।

अपत्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाल्यावस्था। शैशव (कौ०)।

अपत्यद—वि० [सं०] पुत्र देनेवाला (मत्र) (कौ०)।

अपत्यदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भदात्री नाम का पौधा (कौ०)।

अपत्यपथ—संज्ञा पुं० [सं०] योनि (कौ०)।

अपत्यविक्रयी—वि० [सं० अपत्यविक्रयिन्] १. सतान वेचनेवाला। २ रुपए लेकर कन्या को विवाह के लिये वेचनेवाला। बेटी-बेचवा (कौ०)।

अपत्यशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपत्य या सतान जिसका शत्रु हो। केकडा।

विशेष—अडा देने के उपरात केकडी का पेट फट जाता है और वह मर जाती है।

२ अपत्य का शत्रु। वह जो अपने अडे बच्चे को खा जाय। साँप।

अपत्र¹—वि० [सं०] पत्रविहीन। पत्तों से रहित। उ०—बारि बेलि सी फैल अमूल, छा अपत्र सरिता के कूल, विकसा औ सकुचा नवजात बिना नाल के फेनिल फूल।—पल्लव, पृ० ३२। २. पखरहित। पक्षहीन (कौ०)।

अपत्र²—संज्ञा पुं० १ बाँस का कल्ला या पूती। २.वृक्ष जिसके पत्ते गिर गए हों। ३ चिडिया जिसे पख न हों (कौ०)।

अपत्रप—वि० [सं०] निर्लज्ज। ढीठ। धृष्ट (कौ०)।

अपत्रपण—संज्ञा पुं० [सं०] १ लज्जा। संकोच। २ व्याकुलता। आकुलता (कौ०)।

अपत्रपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपत्रपण' (कौ०)।

अपत्रस्त—वि० [सं०] अत्यत भयग्रस्त। भय से घबराया हुआ (कौ०)।

अपत्रिका—वि० [सं०] पत्तों से हीन। पत्रविरहित (कौ०)। उ०—हे विमुख, सदा मैं मुखर पीन। आओ अपत्रिका के मर्मर।—गीतिका (भू०), पृ० १३।

अपथ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह मार्ग जो चलने योग्य न हो। बीहड राह। विकट मार्ग। उ०—माधौ नैकु हटकौ गाइ। भ्रमत निसि बासर अपथ पथ अगह, गहि नहिं जाइ।—सूर १।५४। २.कुपथ। कुमार्ग। उ०—(क) हरि हैं राजनीति पढ़ि आए। ते क्यों नीति करें आपुन जिन और न अपथ छुड़ाए।—सूर (शब्द०)। (ख) गनत न मन पथ अपथ लखि बिथुरे सुथरे बार।—बिहारी (शब्द०)। ३. मार्ग या पथ का अभाव (कौ०)। ४.योनि। अपत्यपथ (कौ०)। ५.किसी प्रचलित मत या सिद्धात का दृढ़तापूर्वक विरोध (कौ०)।

अपथ²—वि० मार्गहीन। पथविहीन (कौ०)।

अपथगामी—वि० [सं० अपथगामिन्] १ कुमार्गगामी। बुरे रास्ते पर जानेवाला। २ चरित्रहीन [को०]।

अपथप्रपन्न—वि० [सं०] १ अनुचित मार्ग पर जानेवाला (व्यक्ति)। २ दुरुपयोग या दुष्कार्य मे लगा हुआ (धन) [को०]।

अपथ्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] व्यवहार जो स्वास्थ्य का हानिकारक हो। रोग बढ़ानेवाला आहार विहार।

अपथ्य²—वि० १ जो पथ्य न हो। स्वास्थ्यनाशक। २ अहितकर। ३ बुरा। खराब। अयुक्त (को०)।

अपथ्यनिमित्त—वि० [सं०] अनुचित खानपान से उत्पन्न [को०]।

अपद¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ विना पैर के रेंगनेवाले जतु। जैसे—साँप, केंचुआ, जोंक आदि। उ०—राजा इक पडित पौरि तुम्हारी। अपद दुपद पसु भाषा बूझत अविगत अल्प अहारी।—सूर० ८।१४। २ गलत या बुरा स्थान (को०)। ३ आकाश। नभोमडल (को०)। ४ व्याकरण मे शब्द जो पदसज्ञक नही है (को०)।

अपद²—वि० १ विना पैर का। पादविहीन। विना किसी पद या ओहदे का।

अपद³ (पु)—क्रि० वि० विना पद या अधिकार के।

अपदम—वि० [सं०] १ आत्मनियत्रणहीन। २ जिसकी स्थिति अस्थिर या परिवर्तनशील हो [को०]।

अपदरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्य वृक्ष के आश्रय में पनपनेवाला पौदा [को०]।

अपदरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपदरहा' [को०]।

अपदव—वि० [सं०] जगल की आग मुक्त। दावाग्निमुक्त [को०]।

अपदस्थ—वि० [सं०] स्थान वा पद से हटाया हुआ। पदच्युत। उ०—इधर मौर्य कारागार मे, वररुचि अपदस्थ, नागरिक लोग नद की उच्छृखलताओ से असंतुष्ट हैं।—चद्र०, पृ० १५७।

अपदांतर¹—वि० [सं० अपदान्तर] १ मिलाजुला। सयुक्त। अव्यवहित। २ समीप। सन्निकट। ३. समान। बराबर।

अपदांतर²—क्रि० वि० शीघ्र। जल्द। तत्क्षण।

अपदाँव (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अप=बुरा+हिं० दाँव] बुरा दाँव। चालबाजी। कुघात (को०)। उ०—दूसरै आइ कै इद्रियनि लै गयौ, ऐसौ अपदाँव सब इनहिं कीन्हे। मैं कह्यौ नैन मोकौं सँग देहिंगे, इनहु लै जाइ हरि हाथ दीन्हे।—सूर०, १०।२२४०।

अपदान—संज्ञा पुं० [सं०] १ परिशुद्ध आचरण। सदाचारी जीवन। २ उत्कृष्ट कार्य। ३ पूर्णत सपन्न कार्य [को०]।

अपदार्थ¹—वि० [सं०] तुच्छ। नाचीज। उ०—अवकाश शून्य फैला है, है शक्ति न और सहारा। अपदार्थ तिरूँगा मैं क्या, हो भी कुछ कूल किनारा।—आँसू, पृ० ४१।

अपदार्थ²—संज्ञा पुं० १ अस्तित्व का अभाव। २ तुच्छता। ३ वाक्य मे प्रयुक्त शब्द के ठीक अर्थ का अभाव या न होना [को०]।

अपदिष्ट—वि० [सं०] तर्कना या बहाने से कथित या प्रयुक्त [को०]।

अपदेखा (पु)—वि० [हिं० अप=अपने को+देखा=देखनेवाला] १ अपने को बडा माननेवाला। आत्मश्लाघी। घमडी। २ स्वार्थी उ०—अपदेखा जे अहहिं तिनहिं हित गुनि मुँह जोहहिं(शब्द०)।

अपदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुष्ट देव। २ दैत्य। राक्षस। असुर। उ०—अरे कोई अपदेवता न हो।—चद्र०, पृ० १७४।

अपदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्याज। मिस। बहाना। २ लक्ष्य। उद्देश्य। ३ अपने स्वरूप को छिपाना। भेष बदलना। ४ छल। धोखा (को०)। ५ अस्वीकार। इनकार (को०)। ६ प्रसिद्धि। ख्याति (को०)। ७ खतरा [को०]। ८ बुरा स्थान। खराब जगह(को०)। ९. निर्देश (को०)। १० वैशेषिक न्याय के अनुसार पाँच अनुमान वाक्यों मे दूसरा। हेतु [को०]।

अपद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ निकृष्ट वस्तु। बुरी चीज। कुद्रव्य। कुवस्तु। २. बुरा धन।

अपद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] छिपा हुआ दरवाजा। चोर दरवाजा। बगली खिडकी।

अपधावन—संज्ञा पुं० [सं०] वाक्छल। सत्य का अपलाप [को०]।

अपधूम—वि० [सं०] धुआँ रहित। धूमविहीन [को०]।

अपध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] निकृष्ट चिंतन। बुरा विचार। अनिष्ट चिंतन। जैन शास्त्रानुसार बुरा ध्यान। यह दो प्रकार का होता है, आर्त और रौद्र।

अपध्वंस—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपध्वंसी, अपध्वस्त] १ अधःपतन। गिराव। २ वेइज्जती। निरादर। अवज्ञा। अपमान। हार। नाश। क्षय।

अपध्वंसज—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी माता का वर्ण या जाति पिता से ऊँची हो। वर्णसंकर [को०]।

अपध्वंसी—वि० [सं० अपध्वंसिन्] [वि० स्त्री० अपध्वंसिनी] १ गिरानेवाला। अपमान करनेवाला। निरादरकारी। अपमानकारी। २ नाश करनेवाला। क्षयकारी। ३ पराजित करनेवाला। विजयी।

अपध्वस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ पराजित। हारा हुआ। परास्त। २ निंदित। अपमानित। वेइज्जत किया हुआ। ३ नष्ट।

अपध्वांत¹—वि० [सं० अपध्वान्त] सदोष स्वर छोडनेवाला। कर्कश स्वरवाला [को०]।

अपध्वांत²—संज्ञा पुं० कर्कश स्वर। गलत स्वर [को०]।

अपन (पु)—सर्व० [सं० आत्मन, प्रा० अप्पणो=अपना] १ दे० 'अपना'। उ०—मद मद हँसि नद महर तब। अपन तात सौं बात कही सब।—नद ग्र०, पृ० १९०। २ हम। (मध्यप्रदेश)।

अपनपो (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपौ'। उ०—हितहि परायो आपनो अहित अपनपो जाय। वन की औषधि प्रिय लगत तन को दुख न सुहाय।—श्रीनिवास ग्र० पृ. २०७।

अपनपौ (पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अपना+पौ वा पा (प्रत्य०)] १. अपनायत। आत्मीयता। सबंध। उ०—भरतहि बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौन। हेतु अपनपौ जानि जिय थकित भए धरि मौन।—तुलसी (शब्द०)। २. आत्मभाव। आत्मस्वरूप। निज स्वरूप। उ०—(क) अपनपौ आपुही बिसरौ—कबीर (शब्द०)। (ख) सब हित तजै अपनपौ चेते।—तुलसी (शब्द०)। ३. सज्ञा। सुध। ज्ञान। उ०—(क) अद्भुत इक चितयो रे सजनी नद महरि के आँगन री। सो मैं निरखि अपनपौ खोयो गई मँथनियाँ माँगन री।—सूर (शब्द०)।

(ख) हरि के ललित बदन निहारि। सुभग उर दवि कुंद सुंदर नहिं अपनपौ वारि। तुलसी (शब्द०)। ४ अहंकार। गर्व। ममता। अभिमान। उ०—सदा अपनपौ रहहिं दुराए। सब विधि कुशल कुवेष बनाए।—तुलसी (शब्द०)। ५ आत्मगौरव। मर्यादा। मान। उ०—जिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे।—तुलसी (शब्द०)।

अपनय—संज्ञा पुं० [सं०] १ दूर करना या हटाना। २ अपकार। ३ अनीति। अन्याय। ४ अर्थशास्त्र के अनुसार संधि आदि उचित रीति पर न करने का व्यवहार जिससे विपत्ति की संभावना हो जाती है [को०]।

अपनयन—संज्ञा पुं० [सं०] १ दूर करना। हटाना। २. स्थानांतरित करना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। ३ पक्षांतर करना। गणित के समीकरण में किसी राशि के एक पक्ष से दूसरे पक्ष में ले जाना।

विशेष—जैसे— क + ५ = क + २५
= २क–क = २५–५
= क = २०

इस क्रिया में पहले पक्ष के पाँच को दूसरे पक्ष में ले गए और दूसरे पक्ष के क को पहले पक्ष में ले आए।

४ खंडन। ५ (रोग आदि) अच्छा करना या दूर करना (को०)। ६. कर्ज अदायगी। ऋणपरिशोधन (को०)। ७ अन्याय।

अपनर्मक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हार।

अपना¹—सर्व० [सं० आत्मन्, प्रा० अप्पणो] [स्त्री० अपनी] [क्रि० अपनाना] १ निज का। उ०—सजन्हीं चीन्ह सुनाएसि सबना। मीतहि मेंड करी हित अपना।—मानस, ५।१०।

विशेष—इसका प्रयोग तीनों पुरुषों में होता है। जैसे—तुम अपना काम करो। मैं अपना काम करूँ। वह अपना काम करे।

मुहा०—अपना उल्लू सीधा करना = किसी को मूर्ख बनाकर अपना कार्य निकालना। स्वार्थ सिद्ध करना। अपना करके छोड़ना = अपना बना लेना। उ०—हरीचंद अपनो करि छाँड़ूँ तब घर जाऊँ रे।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ३६८। अपना करना = अपना बनाना। अपने अनुकूल कर लेना। जैसे,—मनुष्य अपने व्यवहार से हर एक को अपना कर सकता है (शब्द०)। अपना कहा करना = (१) अपनी बात पर दृढ़ रहना। वचन के अनुसार आचरण करना। (२) अपनी जिद पूरी करना। अपना कान देखे बिना कौआ के पीछे दौड़ना = (१) भूठ को सुनकर भटकना। (२) गप पर विश्वास करके बैठना। अपना काम करना = प्रयोजन निकालना। अपना किया पाना = किए को भुगतना। कर्म का फल पाना। अपनापन स्थापित करना = भाईचारा उत्पन्न करना। आत्मीयता बढ़ाना। अपना पराया = शत्रु मित्र। जैसे—तुम्हें अपने पराए की परख नहीं (शब्द०)। अपना पाँव आग में डालना = अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना। अपना पूत पराया धतिंगड़ = एक ही गलती पर अपने पुत्र को प्यार करना और दूसरे के बच्चे को डाँटना। अपना बना लेना = (१) दोस्त बनाना। मित्र बनाना। (२) वश में कर लेना। (३) प्रेमी बना लेना। (४) छीन लेना। अपना बेगाना = दे० 'अपना पराया'। अपना रोना रोना = अपना ही दुखड़ा बयान करना, दूसरे की न सुनना। अपना सा करना = अपने सामर्थ्य या विचार के अनुसार करना। भरसक प्रयत्न करना। उ०—(क) दो बस कहा देनि मोहि सखी सु को बड़ी सुजान। अपनी सी मैं बहुतहि कीन्हीं रहति न मेरी आन।—सूर० (शब्द०)। (ख) तुलसिदास मरम सबको करि गयो सबै गँवाई।—तुलसी (शब्द०)। अपना सा पचना = अपनी सी कर चुकना। उ०—छूटै न सिसु दासी सो पची। कनक सो जनु फिकी नीलमनि खची।—नंद० ग्र०, पृ०२३८। अपना सा मुँह लेकर रह जाना = किसी बात में अकृतकार्य होने पर लज्जित होना। उ०—और सरदार सा मुँह लेकर अपनी कुर्सी पर आनकर डट गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २२। अपनी अकल अपने पास रखना = दूसरे की सलाह की अनावश्यकता। अपनी अपनी कहना = अपना अपना भिन्न विचार प्रकट करना। उ०—अपनी अपनी कहत हैं, का का धरिए ध्यान।—कबीर सा० सं०, पृ० ८६। अपनी अलग खिचड़ी पकाना = सबसे पृथक् कार्य या विचार करना। अपनी अपनी आ पड़ना = अपनी अपनी चिंता में व्यग्र होना। अपना अपना ध्यान होना। उ०—पद्माकर कछु निज कथा, कासों कहौ बखान। जाहि लखो, ता है परी अपनी अपनी आन।—पद्माकर (शब्द०)। अपनी आग में आप जलना = किसी के प्रति ईर्ष्या, द्वेष या क्रोध से प्रभावित होना। अपनी उँगलियों से अपनी आँखें फुड़वाना = अपने पाँव आप कुल्हाड़ी मारना। अपने हाथों अपनी हानि कर लेना।—अपनी उँगलियों से अपनी आँखों को कौन फुड़वालेगा।—चुभते, पृ० ८। अपनी गाना = अपनी ही बात कहना और किसी की न सुनना। अपनी गुड़िया सँवार देना = अपने सामर्थ्य के अनुसार बेटी का ब्याह कर देना। अपनी नींद सोना = अपने इच्छानुसार काम करना। अपनी बात का एक = वादे का पक्का। दृढ़प्रतिज्ञ। अपनी बात पर आना = हठ पकड़ना। जिद पकड़ना। जैसे—अब वह अपनी बात पर आ गया है, नहीं मानेगा (शब्द०)। अपनी जाँघ का सहारा होना = स्वावलंबी होना। अपने बल या पौरुष का भरोसा होना। उ०—वह कमाई पर कभी हारा नहीं। जाँघ का अपनी सहारा है जिसे।—चुभते०, पृ० ८८। अपनी जान हरदम सूली पर होना = संकट की सदा आशंका होना। हरदम खतरा होना। अपनी बीती या पर बीती कहना = अपने या दूसरे पर घटित बात कहना। उ०—अपनी बीती कहूँ कि पर बीती, यह वही मन न हुई।—गोर गु०, पृ० ३३। अपनी मुट्ठी में करना = अपने कब्जे या वश में करना। उ०—उसके मन को अपनी मुट्ठी में कर, मनमानी करा लेना।—रस० क० सू०, पृ० ६। अपनी सी करना = मनमानी करना। उ०—वह अपनी सी करता ही चला जा रहा है।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३१८। अपने घर का रास्ता लेना = चलते बनना। अपने घर जाना। चलता होना। अपने तक रखना = किसी से न कहना। किसी पर प्रकट न करना। भेद छिपाना। जैसे,—फकीर लोग दवा अपने तक रखते हैं। (शब्द०)। अपने धंधे से लगना = अपने काम में लगना। उ०—दिन को अपने अपने धंधे से लोग लगते हैं मगर साढ़े पाँच बजे से फिर किसी इंसान की सूरत न देखने में आएगी।—

सैर कु०, पृ० ३४। **अपनेपन पर आना**=अपने दु स्वभाव के अनुसार कार्य करना। **अपने पांव पर खडा होना**=स्वावलंबी होना। उ०—क्यो न हो पांव पर खडे अपने। और का पांव किसलिये पकडे।—चुभते०, पृ० १०। **अपने भावें**=अपने अनुसार। अपनी जान मे। जैसे,—अपने भावें तो मैंने कोई बात उठा नही रखी (शब्द०)। **अपने मन की करना**=दूसरो की सलाह न मानकर अपनी सोची बात करना। **अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना**=अपनी प्रशंसा आप करना। **अपने लिये बला बनना**=अपनी विपत्ति का स्वय कारण बनना। जान बूझकर संकट बुलाना। उ०—आप अपने लिये बला न बनें। जो न सिर पर पडी बला टाले।—चुभते०, पृ० ५५। **अपने रंग मे मस्त रहना**=दूसरे की चिंता न कर अपने ही कामकाज या आनंद मे पडे रहना। **अपने सिर बला मोल लेना**=अपने लिये झंझट, बाधा या बखेडा खडा करना। स्वय को झगडे मे डालना। **अपने सिर पडना**=अपने पर बीतना। उ०—जौ पहिले अपुने सिर परई। सो का काहु कै धरिहरि करई।—जायसी ग्र० (गुप्त) पृ० २५७। **अपने से बाहर होना**=रुष्ट या क्रोधित होना। बेकाबू होना। **अपने हलुए मांडे से काम होना**—अपने मतलब से सरोकार रखना। **अपने हाथ पाग सँवारना**=अपने हाथो अपना काम पूरा करना। **अपने हिसाब से**=अपने विचार से। अपने विवेक से।

यौ०—अपने आप=(१) स्वत। खुद। उ०—अब कुछ दिन धक्के खाने से उसकी अकल अपने आप ठिकाने हो जाएगी।—श्रीनिवास ग्र० पृ० २४६। (२) आप। निज। जैसे—अपने को। अपने मे। अपने पर।

अपना²—संज्ञा पु० आत्मीय। स्वजन। जैसे—आप लो। तो अपने ही हैं, आपसे छिपाव क्या ?—(शब्द०)। उ०—जब लौ न सुनो अपने जन को। अति आरत शब्द हते तन को।—रामच०, पृ० १७।

अपनाइत(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपनायत'। उ०—अपनाइत हू सो नही अब परतीत बिचारि। मो नैननि मनु मेरेई राख्यौ हरि मे डारि।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १७।

अपनाइयत†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपनायत'।

अपनाना—क्रि० स० [अपना से नाम०] १ अपने अनुकूल करना। अपने वश मे करना। अपनी ओर करना। उ०—(क) रचि प्रपच भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई।—मानस, २।१८। (ख) सूर स्याम बिन देखे सजनी कैसे मन अपनाऊँ।—सूर० (शब्द०)। २ अपना बनाना। अगीकार करना। ग्रहण करना। अपनी शरण मे लेना। उ०—(क) सब बिधि नाथ मोहि अपनाइय। पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइय।—मानस, ६।११६। (ख) ना हमको कछु सुदरताई। भक्त जानि के सब अपनाई।—सूर० (शब्द०)।

अपनापन—संज्ञा पुं० [हिं० अपना+पन (प्रत्य०)] १ अपनायत। आत्मीयता। उ०—अपनापन चेतन का सुखमय, खो गया नहीं आलोक उदय।—कामायनी, पृ० २४१। २ आत्माभिमान। उ०—भूल न जावे कभी न अपनापन, जान दे, पर न मान को दे खो।—चोखे०, पृ० १५।

अपनापा—संज्ञा पुं० [हिं० अपना+पा (प्रत्य०)] अपनापन। अपनत्व।

अपनाम—संज्ञा पु० [सं०] बदनामी। निंदा। शिकायत।

अपनामा—वि० [सं० अपनामन] निंदित। बदनाम [को०]।

अपनायत—संज्ञा स्त्री० [हिं० अपना+यत (प्रत्य०)] १ अपना होने का भाव। अपनापन। आत्मीयता। उ०—(क) देखी सुनी न आजु लौं अपनायत ऐसी। करहिं सबै, सिर मेरे ही गिरि परैं अनैसी।—तुलसी ग्र०, पृ० ५३३। (ख) जो, लोग अपनायत की रीति से कहते हैं।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६६। २ आपसदारी का संबध। बहुत पास या नजदीकी रिश्ता।

अपनाव—संज्ञा पुं० [हिं० अपना+आव (प्रत्य०)] अपना बना लेने की क्रिया। ऐक्य का भाव।

अपनाश(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनास'।

अपनास(पु)—संज्ञा पु० [हिं० अप+नास] अपना नाश। उ०—हाथ चढौं मैं तेहि के प्रथम करौं अपनास।—जायसी ग्र० पृ० १००।

अपनाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० अपना+आहट (प्रत्य०)] अपनापन निजत्व। उ०—खादी की वह मोटी चादर नही चित्त को भाती थी। अनमिल जन की अपनाहट सी रुचि मे मेल न खाती थी।—आर्द्रा, पृ० ६६।

अपनि(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—अपनि प्रतिज्ञा तन किन चहौ। वेद पुराननि मैं जो कहौ।—नंद० ग्र०, पृ० ३०३।

अपनिधि—वि० [सं०] गरीब।

अपनीत¹—वि० [सं०] १ दूर किया हुआ। हटाया हुआ। २ निकाला हुआ। ३ खडित (को०)। ४ जिसका अपनयन किया गया हो।

अपनीत²—संज्ञा पु० १ धोखा। फरेब। २ बुरा आचरण [को०]।

अपनुक‡(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—ए सखि कहब अपनुक दद, सपनहु जनु हो कुसुम सग।—विद्यापति, पृ० ४५३।

अपनुत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपनोदन' [को०]।

अपनोद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपनोदन' [को०]।

अपनोदन—संज्ञा पु० [सं०] १ दूर करना। हटाना। २ खडन। प्रतिवाद। ३ प्रायश्चित्त (को०)। ४ नष्ट करना। खराब करना [को०]।

अपह्नव(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अपह्नव'।

अपह्नुति(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपह्नुति'। उ०—मिसु करि और कथन छविधि, होत अपन्हुति भाइ।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ६०।

अपपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रष्ट या गलत पाठ। अशुद्ध पाठ [को०]।

अपपात्र—वि० [सं०] १ जिसे सब लोगो के व्यवहार का सामान, बरतन या पात्र न दिया जाय। किसी दोष के कारण जातिच्युत। २ हीन जाति का [को०]।

अपपात्रित—वि० [सं०] दे० 'अपपात्र' [को०]।

अपपाद—वि० [सं०] खराब या बुरे पैरोवाला। जिसके पैर विकृत हो [को०]।

अपपादत्र—वि० [सं०] उपानहविहीन। पादत्राणरहित। नगे पैरोंवाला [को०]।

अपपूत—वि० [सं०] १ जिसके नितंबों की रचना विकृत हो [को०]।

अपप्रजाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी स्त्री जिसका गर्भपात हो गया हो [को०]।

अपप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] १ घूस। रिश्वत। उत्कोच। २ अनुचित रूप से दिया धन [को०]।

अपवरग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपवर्ग'। उ०—सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपवरग सकल तनु धारी।—मानस०,१।३१५।

अपवर्ग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपवर्ग'। उ०—सात स्वर्ग अपबग ऊपर ताहि चित्त लगावन—पलटू०, पृ० ६३।

अपबल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अप+बल] आत्मबल। अपनी शक्ति। उ०—इंद्र कह्यो रिसाइ कीन्ही गयो अपबल गाहि। आइ तिनहूँ पाँइ पकरे समुझि कै मन माहि।—सूर०, (प० १।४७)।

अपबस(पु)—वि० [हिं० अप+बस] अपने वश मे। स्ववश। उ०—(क) जौ विधना अपबस करि पाऊँ तौ सखि कह्यौ होइ कछु तेरो अपनी साध पुराऊँ।—सूर०, १०।१०४७।

अपबाहुक—संज्ञा पुं० [सं०] बाहु संबंधी एक वातरोग जिसमे कंधे मे वायु के प्रविष्ट हो जाने से नसें तन जाती हैं। २ सदोष वायु [को०]।

अपभय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ भय का नाश। निर्भयता। २ व्यर्थ भय। अकारण भय। ३ डर। भय। उ०—(क) कबहुँ कृपा करि रघुनाथ मोहूँ चितैहौ। विनय करौं अपभय हुते तुम परम हितैहो। तुलसी (शब्द०)। (ख) अपभय कुटिल महीप डराने।—तुलसी (शब्द०)।

अपभय[2]—वि० [सं०] निर्भय। निडर। जो न डरे।

अपभायो(पु)—वि० [हिं० अप+√भाना=अच्छा लगना] अपने को भाने या अच्छा लगनेवाला। आत्मभावित। अपने भाव का। स्वानुकूल। उ०—काम क्रोध मोह लोभ गर्व ने मन बौराय कियो अपभायो।—चरण० बानी, पृ० ६५।

अपभाषण—संज्ञा पुं०[सं०] १ अशिष्ट भाषण।२ अपमानकर कथन। ३ गाली देना। दुर्वचन कहना [को०]।

अपभुक्त—वि० [सं० अप+भुक्त] अनुचित रूप से व्यवहार मे लाया हुआ (धन या पदार्थ) [को०]।

अपभ्रंश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पतन। गिराव। २ बिगाड। विकृति ३ बिगडा हुआ शब्द। ४ प्राकृत बोलियों (भाषा) का विकृत। स्वरूप [को०]। ५ प्राकृत भाषा के बाद की भाषा [को०]।

अपभ्रंश[2]—वि० [सं०] विकृत। बिगडा हुआ।

अपभ्रंशित—वि० १ गिरा हुआ। २ बिगडा हुआ।

अपभ्रष्ट—वि०[सं०] १ विकृत। बिगडा हुआ। २ गिरा हुआ[को०]।

अपमंगल—संज्ञा पुं० [सं० अप+मङ्गल] अशुभ अकल्याण। अनिष्ट। उ०—अपमंगल जिय जानि सु नैन मुष वही।—पृ० रा० २५।३७५।

अपमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] धूल। गर्द [को०]।

अपमर्दन—संज्ञा पुं०[सं० अप+मर्दन]बुरी तरह रौंदना या कुचलना।

अपमर्श- संज्ञा पुं० [सं०] १ स्पर्श। २ चरना। ३. घर्षण. [को०]।

अपमान—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनादर। अवहेलना। विडंबना। अवज्ञा। २ तिरस्कार। दुतकार। बेइज्जती।

क्रि० प्र०—करना। होना।

अपमानता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप+मान्यता] अपमान या तिरस्कार की स्थिति या क्रिया। उ०—प्रतिग्रह गुरु अपमानता सहि नहिं सके महेस।—मानस, ७।२०६।

अपमानना(पु)—क्रि० स० [सं० अपमान से नाम०] अपमान करना। विडंबना करना। निंदा करना। तिरस्कार करना। उ०—(क) सुनि मुनि वचन लषन मुसुकाने। बोले परसु धरहि अपमाने।—तुलसी (शब्द०)। (ख)हारि जीत नैना नहि मानत। धाए जात तहीं को फिरि फिरि वैं कितनो अपमानत।—सूर (शब्द०)।

अपमानित—वि० [सं०] १ निंदित। अवमानित। २ बेइज्जत।

अपमानी—वि० [सं० अपमानिन्] [वि०स्त्री० अपमानिनी] निरादर करनेवाला। तिरस्कार करनेवाला। उ०—सोचिय सूद्र विप्र अपमानी। - तुलसी (शब्द०)।

अपमान्य—वि० [सं०] अपमान के योग्य। निंद्य।

अपमारग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपमार्ग'। उ०—महामोहिनी मोहि आतमा अपमारगहिं लगावै।—सूर० १।४२।

अपमारगी(पु)—वि०[हिं०] दे० 'अपमार्गी'।—उ०—नैना लोनहरामी ये। चोर, ढूढ बटपार कहावत अपमारगी, अन्यायी वे।—सूर०, १०।२२८५।

अपमार्ग--संज्ञा पुं० [सं०] १ कुमार्ग। असन्मार्ग। कुपथ। २ देह मलना या धोना। अंग का परिमार्जन [को०]।

अपमार्गी--वि० [सं० अपमार्गिन]१ कुमार्गी। कुपथी। अन्यथाचारी। २ दुष्ट। नीच। पापी।

अपमार्जन--संज्ञा पुं० [सं०] १ शुद्धि। सफाई। संस्कार। संशोधन। २ हजामत। क्षौर (को०)। ३ खड। टकडा [को०]।

अपमुख--[सं०] [स्त्री०अपमुखी] जिसका मुँह टेढा हो। विकृतानन टेढमुहाँ [को०]।

अपमृत्यु--संज्ञा पुं० [सं०] १ कुमृत्यु कुसमय मृत्यु जैसे, बिजली के गिरने, विष खाने, साँप आदि के काटने से मरना। २ बहुत बडा रोग या खतरा जिससे व्यक्ति बच गया हो [को०]।

अपमृषित--वि० [सं०] १ समझ मे न आने योग्य। अस्पष्ट। २ असह्य [को०]।

अपयश—संज्ञा पुं० [सं० अपयस्] १ अपकीर्ति। बदनामी। बुराई। उ०—मैं जगत के अपयश को मौत से बढकर मानता हूँ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १११। २ कलंक। लाछन।

अपयशस्क—वि० [सं०] अपकीर्तिकारी। अपयशकारी [को०]।

अपयशस्कर—वि० [सं०] दे० 'अपयशस्क'।

अपयशी—वि० [सं० अप+यश+हिं० ई (प्रत्य०)] कलंकित। निंदित [को०]।

अपयसी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपयशी'। उ०—सूम सर्वभच्छी दववादी जो कुवादी जड, अपयसी ऐसो भूमि भूपति न मोहिए--रामच० पृ० १२५।

अपयान--संज्ञा पुं० [सं०] १ उपेक्षा। उदासीनता। २ पलायन। भागना। हट जाना। निकल जाना [को०]।

अपयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुयोग। बुरा योग। २. कुसमय। कुवेला। ३ कुशकुन। असगुन। ४ नियमित मात्रा से अधिक वा न्यून औषध पदार्थों का योग।

अपरंच—अव्य० [सं० अपरञ्च] १ और भी। २ फिर भी। पुनरपि। पुनः। ३ दूसरा भी [को०]।

अपरंपारⓅ—वि० [सं० अपर=दूसरा+हिं० पार=छोर] जिसका पारावार या ओर छोर न हो। असीम। बेहद। अनंत। उ०—खग खोज पाछै नही तू तत अपरंपार। बिन परचै का जानिऐं सब झूठे अहंकार।—कबीर ग्र०, पृ० २३०।

अपर[१]—वि० [सं०] १ जो पर न हो। पहला। पूर्व का। २. पिछला। जिससे कोई पर न हो ३ अन्य। दूसरा। भिन्न। और। उ०—अपर नाम उडुगण विमल, बसैं भक्त उर व्योम।—भक्तमाल (श्री०) पृ० ४९८। ४ जिससे बढ़कर या बराबर का अन्य न हो (को०)। ५ जो दूसरा या पराया न हो। स्वपक्षीय। अपना। उ०—को गिनै अपर पर को गिनैं। लोह छोह छक्के बरन।—पृ० रा०, ३३।२६। ६ अश्रेष्ठ। जो पर अर्थात् श्रेष्ठ न हो। निकृष्ट। साधारण (को०)। ७ पश्चिमी। पश्चिम दिशा का (को०)। ८ दूर का। दूरवर्ती। जो पास न हो (को०)।

अपर[२]—संज्ञा पुं० १ हाथी का पिछला भाग, जघा, पैर आदि। २ रिपु। शत्रु। ३ न्यायशास्त्र मे सामान्य के दो भेदो मे से एक। ४. भविष्यत् काल या उस काल मे किया जानेवाला कार्य [को०]।

अपरकाय—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का पिछला भाग।

अपरकाल—संज्ञा पुं० [सं०] बाद का समय [को०]।

अपरक्त—वि० [सं०] १ बदले हुए रंग का। रंगहीन। ३ रक्तहीन। पीला। ४ असंतुष्ट [को०]।

अपरक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपरक्त या असंतुष्ट होना।

अपरचैⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपरिचय'। उ०—देखा देखी पाकडै जाइ अपरचै छूटि। बिरला कोई ठाहरै सतगुर सामी मूठि।—कबीर ग्र०, पृ० ५१।

अपरछन[१]Ⓟ—वि० [सं० अप्रच्छन्न वा अपरिछन्न] आवरणरहित। जो ढका न हो। बिना वस्त्र का।

अपरछन[२]Ⓟ—[सं० अप्रच्छन्न] आवृत। छिपा। गुप्त। उ०—बाजी चिहर रचाइ के रहा अपरछन होइ। मायापट परदा दिया ताते लखइ न कोइ।—दादू (शब्द०)।

अपरज[१]—वि० [सं०] बाद मे उत्पन्न [को०]।

अपरज[२]—संज्ञा पुं० विध्वंसक अग्नि। प्रलयाग्नि [को०]।

अपरतंत्र—वि० [सं० अपरतन्त्र] जो परतंत्र या परवश न हो। स्वतंत्र। स्वाधीन। आजाद।

अपरत—वि० [सं०] विरक्त। उदासीन। (को०)।

अपरता[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] परायापन।

अपरता[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० अ=नहीं+परता=परायापन] भेदभाव की शून्यता। अपनापन।

अपरता[३]—वि० [हिं० अप=आप+रत=लगा हुआ] स्वार्थी। मतलबी।

अपरता[४]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दूरी। २ पृथकता। ३ निकटता। समीपता। ४ न्याय मे २४ गुणो में एक [को०]।

अपरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विराग। विच्छेद। २ असंताप [को०]।

अपरतीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० अप=आप+सं० रति=लीनता] स्वार्थ। बेईमानी।

अपरतीतⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्रतीति] विश्वास का अभाव। अविश्वास। उ०—ज्यों अपरतीत के घने बादल। चाँद परतीत को घुमड घेरें।—चोखे०, पृ० १६७।

अपरत्र—क्रि० वि० [सं०] १ दूसरे समय मे। और कभी। २ अन्यत्र [को०]।

अपरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ पिछलापन। अर्वाचीनता। २ परायापन। बेगानगी। ३ न्यायशास्त्रानुसार चौबीस गुणो मे से एक। यह दो प्रकार का है—एक कालभेद से दूसरा देशभेद से। दे० 'अपरता'।

अपरदक्षिण—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण और पश्चिम का कोना। नैर्ऋत्य कोण।

अपरदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पश्चिम।

अपरनाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० अपर्णा] पार्वती का नाम। वि० दे० 'अपर्णा'। उ०—पुनि परिहरेउ सुखानेउ परना। उमा नाम तब भयउ अपरना।—तुलसी (शब्द०)।

अपरनाल—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम।

अपरपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ कृष्ण पक्ष। २ प्रतिवादी। मुद्दालेह। फरीकसानी।

अपरपर—वि० [सं०] एक एव अन्य अनेक। विभिन्न [को०]।

अपरपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] वंशज। वंशागत लोग [को०]।

अपरप्रणेय—वि० [सं०] अन्य से जल्दी प्रभावित होनेवाला [को०]।

अपरबल—वि० [<सं० प्रबल] बलवान्। बली। उद्धत। बेकहा। उ०—चली अपरबल बान अघात। उडे जात कहि बनत न बात।—नंद० ग्रं०, पृ० २०५।

अपरभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्य या भिन्न होने का भाव। अंतर। भेद। २ अविरल [को०]।

अपरमित—वि० [सं० अपरिमित] इयत्ताशून्य। असीम। उ०—ऐसी ऐसी बातो से उसकी अपरमित शक्ति का पूरा प्रमाण मिलता है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १९८।

अपररात्र—संज्ञा पुं० [सं०] रात्रि का अंतिम भाग या प्रहर [को०]।

अपरलोक—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरा लोक। परलोक। स्वर्ग।

अपरव—संज्ञा पुं० [सं०] १ (संगीत संबंधी) झगडा या विवाद। २. कुख्याति [को०]।

अपरवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत जिसके विषम चरण मे दो नगण, एक रगण और लघु गुरु हो तथा समचरण मे एक नगण, दो जगण और रगण हो। यथा—सब तज रसना गहो हरी। दुख सब भागहि पापहू जरी। हरि विमुख मग ना करी। जप दिन रैन हरी हरी (शब्द०)।

अपरवक्त्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपरवक्त्र' [को०]।

अपरवश—वि० [सं०] पराए वश का। परतंत्र।

अपरस¹—वि०[सं० अ=नहीं+स्पर्श, हिं० परस] १ जो छुआ न जाय। जिसे किसी ने छुआ न हो। उ०—ऊधौ तुम हौ अति बड़भागी। अपरस रहत सनेह तगा ते नाहिन मन अनुरागी।—सूर०, १०।३६५८। २ न छूने योग्य। अस्पृश्य। उ०—अपरस ठौर तहाँ सपरस जाइ कैसें, बासना न धोवैं तौ लौ तन के पखारे कहाँ।—घनानद, पृ० १६८।

अपरस²—संज्ञा पुं० एक चर्मरोग जो हथेली और तलवे में होता है। इसमें खुजलाहट होती है और चमड़ा सूख सूखकर गिरा करता है।

अपरस³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आत्म+रस] आत्मानद। आत्मरस। उ०—पाछे श्री गुसाई जी स्नान करि धोती उपरेना पहरि अपरस की गादी पर विराजि कै सख चक्र धरत हते।—दो सौ बावन०, पृ० ६।

अपरस⁴(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अप=बुरा+रस] बुरा रस। विकृत रस। उ०—जनम जनम तें अपावन असाधु महा, अपरस पूति सो न छाड़ै अजौं छूति कौं।—घनानद, पृ० १६८।

अपरस्पर—वि० [सं०] १ निरतर। लगातार। २ अन्योन्य। ३ जो आपस का न हो। जिसमें आपसदारी न हो [को०]।

अपराग—संज्ञा पुं० [सं० अपराङ्ग] गुणीभूत व्यग्य के ८ भेदों में से एक जिसमें व्यग्यार्थ अन्य शब्द के अधीन हो।

अपरात—संज्ञा पुं० [सं० अपरान्त] पश्चिम का देश।

अपरातक—संज्ञा पुं० [सं० अपरान्तक] बृहत्सहिता के अनुसार पश्चिम दिशा में एक पर्वत।

अपरातिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अपरान्तिका] वैताली छद का एक भेद जिसमें वैताली छद के सम चरणों के समान चारों पद हों और चौथी और पाँचवी मात्रा मिलकर एक दीर्घाक्षर हो जाय। जैसे—शभु को भजहु रे सर्वं धरी। तज सर्वं काम रे हिये धरी (शब्द०)।

अपरा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अध्यात्म वा ब्रह्मविद्या के अतिरिक्त अन्य विद्या। लौकिक विद्या। पदार्थ विद्या। २ पश्चिम दिशा। ३ एकादशी जो ज्येष्ठ के कृष्ण पक्ष में होती है।

अपरा²—वि० स्त्री० दूसरी।

अपराग—संज्ञा पुं० [सं०] १ असतोष। २ शत्रुता। ३ अरुचि [को०]।

अपराग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दक्षिण एव गार्हपत्य अग्नि। २ चिता की अग्नि [को०]।

अपराजित¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपराजिता] जो पराजित न हुआ हो। अविजित।

अपराजित²—संज्ञा पुं० १ विष्णु। २ शिव। ३ कृष्ण का एक पुत्र (को०)। ४ एक विषैला कीट (को०)। ५ एकादश रुद्रों में से एक।

अपराजिता¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विष्णुक्राता लता। कोयल लता। २ दुर्गा। उ०—सरन सरन है सदा सुख साजिता। द्रवहि द्रवहि दास को अपराजिता।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० २५४। ३ अयोध्या का एक नाम। ४ चौदह अक्षर का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण, एक रगण, एक सगण तथा एक लघु और एक गुरु होता है। न न र स ल ग—॥ ॥। ऽ।ऽ ।।ऽ । ऽ जैसे—न विरस लग राम की जन को कथा। सुनत बढत प्रेम सिंधु शशी यथा। रघुकुल करि पावनो सुख साजिता। जिन किय थित कीरती अपराजिता (शब्द०)। ५ एक प्रकार का धूप।

अपराजिता²—वि० जिसमें पर को जीता न जा सके। अनिर्णीत।

अपराजेय—वि० [सं०] १ जो जीता न जा सके। उ०—रह गया राम रावण का अपराजेय युद्ध।—अपरा, पृ० ३७।

अपराझी(पु)—वि० [सं० अपराद्ध, प्रा० अवरज्झ+ई (प्रत्य०)] दे० 'अपराधी'। उ०—मानुस जन्म चुकेहु अपराझी। यह तन केर बहुत है साझी।—कबीर बी०।

अपराद्ध¹—वि०[सं०] १ जिसने अपराध किया हो। दोषी। अपराधी। २ चूकनेवाला। ३ अतिक्रांत। अतिक्रमित [को०]।

अपराद्ध²—संज्ञा पुं० १ दोष। अपराध [को०]।

अपराद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गलती। दोष। अपराध। २. पाप [को०]।

अपराध—संज्ञा पुं० [सं०] १ दोष। पाप। २ कसूर। जुर्म। ३. भूल। चूक।

अपराधभजन—संज्ञा पुं०[सं० अपराधभञ्जन]अपराध का नाश करनेवाले शिव [को०]।

अपराधविज्ञान—संज्ञा पुं०[सं०] अपराध के कारण और उसे निवारण करनेवाला विज्ञान [को०]।

अपराधी—वि० पुं० [सं० अपराधिन्] [स्त्री० अपराधिनी] दोषी। पापी। मुलाजिम।

अपराधीसाक्षी—संज्ञा पुं० [सं० अपराधीसाक्षिन्] किसी अपराध के मामले का वह अभियुक्त जो अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और अपने साथी या साथियों के विरुद्ध गवाही देता है। वह अभियुक्त या अपराधी जो सरकारी गवाह हो जाता है। इकबाली गवाह। मुजरिम इकरारी। सरकारी गवाह।

अपरापत(पु)—संज्ञा पुं०[सं० अप्राप्त] भाग्य। किसमत। विधि। उ०—काहू सौं नाहीं मिटै, अपरापत कै अक। ईस के सीस तउ, भयो न पूर्न मयक।—स० सप्तक, पृ० ७१०।

अपरापति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्राप्ति] प्राप्ति का अभाव। अलाभ। अभाग्य। उ०—अपरापति के दिनन में खरच होत अविचार। घर आवतु है पाहुनो, बिन जन लाभ लगार।—स० सप्तक, पृ० ३३१।

अपरापरण—वि० [सं०] सतानहीन। निस्सतति [को०]।

अपरामृष्ट—वि०[सं०]१. अछूता। अस्पष्ट। जिसको किसी ने न छुआ हो। २ अव्यवहृत। कोरा। जिसे व्यवहार में न लाया गया हो।

अपरार्क¹—वि० [सं०] द्वितीय सूर्य जैसा। सूर्य तुल्य तेजस्वी [को०]।

अपरार्क²—संज्ञा पुं० [सं०] याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रसिद्ध प्राचीनतम टीकाकार जिनकी अपरार्कचद्रिका टीका विख्यात है।

अपरार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] द्वितीय आधा भाग। उत्तरार्ध [को०]।

अपरावर्ती—वि० [सं० अपरावर्तिन्] [वि० स्त्री० अपरावर्तिनी] १ जो बिना काम पूरा किए न लौटे। काम करके पलटनेवाला। २ जो पीछे न हटे। जो किसी काम से मुँह न मोड़े। मुस्तैद।

अपरावृत—वि० [सं०] अनिवर्तित । न लौटा हुआ । अपनी जगह न आया हुआ । उ०—जब तक मनस् अपरावृत है तब तक मनस् का आलय विज्ञान ही एकमात्र आलंबन होता है ।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३६६ ।

अपराह्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ दिन का पिछला भाग । दो पहर के पीछे का काल । तीसरा पहर ।

अपराह्णतन—वि० [सं०] १ दिन के पिछले भाग से संबद्ध । २ दिन के अंतिम काल में उत्पन्न [को०] ।

अपराह्णेतन—वि० [सं०] दे० 'अपराह्णतन' ।

अपराह्न—संज्ञा पुं० दे० 'अपराह्ण' ।

अपरिकलित—वि० [सं०] अज्ञात । अदृष्ट । अश्रुत । बे देखा सुना ।

अपरिक्रम—वि० [सं०] १ चल फिर पाने में असमर्थ । २ परिश्रम करने के अयोग्य [को०] ।

अपरिक्लिन्न—वि० [सं०] सूखा । शुष्क ।

अपरिगण्य—वि० [सं०] अनगिनत । बेशुमार [को०] ।

अपरिगत—वि० [सं०] १ अज्ञात । अपरिचित । न पहिचाना हुआ । २ अप्राप्त ।

अपरिगृहीत—वि० [सं०] अस्वीकृत । त्यक्त । छोड़ा हुआ ।

अपरिगृहीतागमन—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार एक प्रकार का अतिचार । कुमारी या विधवा के साथ गमन करना पुरुष के लिये और कुमार या रँडुआ के साथ गमन करना स्त्री के लिये अपरिगृहीतागमन है ।

अपरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १ अस्वीकार । दान का न लेना । दानत्याग । २ देहयात्रा के लिये आवश्यक धन से अधिक का त्याग । विराग । ३ योगशास्त्र में पाँचवाँ यम । सगत्याग । ४ जैन शास्त्रानुसार मोह का त्याग ।

अपरिग्राह्य—वि० [सं०] जो ग्रहण करने या अंगीकार करने योग्य न हो [को०] ।

अपरिचय—संज्ञा पुं० [सं० वि० अपरिचित] परिचय का अभाव । जानपहिचान का न होना ।

अपरिचयिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिचयशून्यता की स्थिति या भाव । [को०] ।

अपरिचयी—वि० [सं० अपरिचयिन्] १ जिसका परिचय न हो । २. जो मिलनसार न हो । असामाजिक [को०] ।

अपरिचित—वि० [सं०] १ जिसे परिचय न हो । जो जानता न हो । अनजान । जैसे—वह इस बात से बिलकुल अपरिचित है (शब्द०) । २ जो जानाबूझा न हो । अज्ञात । जैसे—किसी अपरिचित व्यक्ति का सहसा विश्वास न करना चाहिए(शब्द०)।

अपरिच्छद—वि० [सं०] १ आच्छादनरहित । आवरणशून्य । जो ढका न हो । नंगा । खुला हुआ । २ दरिद्र ।

अपरिच्छन्न—वि० [सं०] १ जो ढका न हो । खुला । नंगा । २ आवरणरहित । ३ सर्वथा व्यापक ।

अपरिच्छादित—वि० [सं०] दे० 'अपरिच्छन्न' [को०] ।

अपरिच्छिन्न—वि० [सं०] १ जिसका विभाग न हो सके । अभेद्य । २. जो अलग न हुआ हो । मिला हुआ । ३. इयत्तारहित । असीम । सीमारहित ।

अपरिच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ विभाग, विभाजन या विलगाव का अभाव । २ न्याय या निर्णय का अभाव । ३. अविच्छिन्नता । नैरंतर्य [को०] ।

अपरिछिन्न(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपरिच्छिन्न' । उ०—जो कहहु कि हम यों करि पाए । अपरिछिन्न नित निगमन गाए ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७१ ।

अपरिणत—वि० [सं०] १ अपरिपक्व । जो पका न हो । कच्चा । २ जिसमें विकार या परिवर्तन न हुआ हो । ज्यों का त्यों । विकारशून्य ।

अपरिणय—संज्ञा पुं० [सं०] विवाहशून्य अवस्था । अपरिणीत स्थिति । कौमार्य । ब्रह्मचर्य ।

अपरिणयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपरिणय' [को०] ।

अपरिणाम—संज्ञा पुं० [सं०] परिणाम या परिवर्तन का अभाव । अपरिवर्तनशीलता [को०] ।

अपरिणामदर्शी—वि० [सं० अपरिणामदर्शिन्] अदूरदर्शी [को०] ।

अपरिणामी—वि० [सं० अपरिणामिन्] [वि० स्त्री० अपरिणामिनी] १ जिसकी दशा में परिवर्तन न हो । परिणामरहित । विकारशून्य । २ जिसका कुछ परिणाम न हो । निष्फल ।

अपरिणीत—वि० [सं०] [वि०स्त्री०अपरिणीता] अविवाहित । क्वाँरा ।

अपरिपक्व—वि० [सं०] १ जो परिपक्व न हो । कच्चा । २ जो भली भाँति पका न हो । अधकच्चा । अधकचरा । अप्रौढ़ । अधूरा । अव्युत्पन्न । ४ जिसने तपश्चर्यादि द्वारा द्वंद्व अर्थात सर्दी, गर्मी भूख, प्यास आदि सहन न की हो ।

यौ०—अपरिपक्व कषाय । अपरिपक्वधी । अपरिपक्वबुद्धि ।

अपरिपणितसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अपरिपणित सन्धि] एक प्रकार की कपट संधि जो केवल धोखे में रखने के लिये की जाय ।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार इसका ढंग यह है कि किसी अभिमानी मूर्ख आलसी या दुर्व्यसनी राजा को नीचा दिखाना हो तो उससे यों ही कहता रहे कि हम तुम तो एक हैं, पर किसी प्रयोजन की बात न करे । इस प्रकार उसे संधि के विश्वास में रखकर उसकी कमजोरियों का पता लगाता रहे और मौका पड़ते ही उसपर आक्रमण कर दे । इस कपटसंधि का उपयोग दो सामंत राजाओं को लड़ाकर उनके राज्य को हरण करने के लिये भी हो सकता है ।

अपरिबाधा—संज्ञा स्त्री० [सं० अ + परिबाधा] कपट, बाधा या आयास का निवारण ।

अपरिम—वि० [सं० अ + परिमा = परिमाण] जिसका परिमाण न हो । अमित । उ०—इस रहस्य अपरिम के आगे आदर से नतमस्तक है कवि ।—इत्य म्, पृ० ९७ ।

अपरिमाण—वि० [सं०] १ परिमाणरहित । बेअंदाज । अकूत ।

अपरिमित—वि० [सं०] १ इयत्ताशून्य । असीम । बेहद । उ०—मानव था साथ उसी के मुख पर था तेज अपरिमित ।—कामायनी, पृ० २७७ । २. असंख्य । अनंत । अगणित । उ०—अपने जान मैं बहुत करी । कृपासिंधु, अपराध अपरिमित छमौ सूर तैं सब बिगरी ।—सूर०, १।११५ ।

अपरिमेय—वि० [स०] १ जिसका परिमाण न पाया जाय। जिसकी नाप न हो सके। बेअंदाज। अकूत। असख्य। अनगिनत।

अपरिम्लान¹—वि० [सं०] न मुरझानेवाला। जिसका अपक्षय न हो [को०]।

अपरिम्लान²—सज्ञा पुं० [सं०] महासहा नाम का एक वृक्ष [को०]।

अपरिवर्त्तनीय—वि० [सं०] १ जो परिवर्तन के योग्य न हो। जो बदल न सके। २ जिसमे फेरफार न हो सके। ३ जो बदले मे न दिया जा सके। ४ सदा एकरस रहने वाला। नित्य।

अपरिवर्त्य—वि० [सं०] दे० 'अपरिवर्त्तनीय'। उ०—जो इस परिवर्तनशील विश्व मे अपरिवर्त्य है।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० २२४।

अपरिवर्तित—वि० [सं०] जिसमे कोई हेरफेर या तबदीली न हुई हो। अविकल। ज्यो का त्यो।

अपरिवाद्य—वि० [सं०] जो निंदायोग्य न हो। अनिंद्य [को०]।

अपरिवृत—वि० [सं०] जो ढका या घिरा न हो। अपरिच्छन्न।

अपरिशेष¹—वि० [सं०] जिसका परिशेष या नाश न हो। पूर्ण। अनत। अविनाशी। नित्य।

अपरिशेष²—सज्ञा पुं० सीमा का अभाव [को०]।

अपरिष्कार—सज्ञा पुं० [सं०] १ सस्कार का अभाव। असशोधन। सफाई या काट छाँट का न होना। २ मैलापन। ३ भद्दापन।

अपरिष्कृत—वि० [सं०] १ जिसका परिष्कार न हुआ हो। जो साफ न किया गया हो। जो काट छाँटकर दुरुस्त न किया गया हो। २ मैलाकुचैला। ३ भद्दा। बेडौल। ४ असस्कृत।

अपरिसर¹—वि० [सं०] १ समीप का नही। दूर का। २ अविस्तीर्ण। अप्रशस्त [को०]।

अपरिसर²—सज्ञा पुं० विस्तार का अभाव [को०]।

अपरिसीम—वि० [सं० अ + परिसीम] १ असीम। २ विस्तीर्ण। उ०—भगवान बादरायण हर हर करती गंगा की अपरिसीम धारा को देखते रहे—वै० न०, पृ० २४८।

अपरिस्कंद—वि० [सं० अपरिस्कन्द] गतिशून्य। जो कूद फाँद न सके [को०]।

अपरिहरणीय—वि० [सं०] १ अनिवार्य। अवश्यभावी। २ अपरित्याज्य। जिसका परिहार न हो सके। ३ अनादर के अयोग्य [को०]।

अपरिहार—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपरिहारित, अपरिहार्य] १ अवर्जन। अनिवारण। २ दूर करने के उपाय का अभाव।

अपरिहारित—वि० [सं०] अपरिवर्जित। अनिवारित। जो दूर न किया गया हो।

अपरिहार्य—वि० [सं०] १ जिसका परिहार न हो सके। अवर्जनीय। अवाच्य। अनिवार्य। जो किसी उपाय से दूर न किया जा सके। २. अत्याज्य। न छोडने योग्य। ३ अनादर के अयोग्य। आदरणीय। ४ न छीनने योग्य।

अपरीक्षणीय—वि० [सं० अ + परीक्षणीय] १. जाँच या परीक्षा के अयोग्य।

अपरीक्षित—वि० [सं०][वि०स्त्री० अपरीक्षिता] जिसकी परीक्षा न हुई हो। जो परखा न गया हो। जिसकी जाँच न हुई हो। जिसके रूप, गुण, परिमाण और वर्ग आदि का अनुसधान न किया गया हो।

अपरुष—सज्ञा पुं० [सं०][वि०स्त्री० अपरुषा] क्रोधविहीन। रोषरहित। कठोरताशून्य [को०]।

अपरूप¹—वि० [सं०] १ कुरूप। बदशकल। भद्दा। बेडौल। २ अद्भुत। अपूर्व। उ०—पर कैसी अपरूप छटा लेकर आए तुम प्यारे।—झरना, पृ० ६३।

अपरूप²—सज्ञा पुं० बेडौलपन। भद्दापन। कुरूपता [को०]।

अपरेटस—सज्ञा पुं० [अ० एपरेटस] वह यत्र जो किसी विशेष कार्य या परीक्षा कार्य के लिये बना हो। यत्र। औजार। परीक्षायत्र।

अपरेशन—सज्ञा पुं० [अं० ऑपरेशन] शल्यचिकित्सा। चीरफाड। शल्यक्रिया।

अपरोक्ष—वि० [सं०] १ जो परोक्ष मे न हो। प्रत्यक्ष। जो देखासुना जा सके। इद्रिय गोचर। २ जो दूर हो [को०]।

अपरोक्षानुभूति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रत्यक्ष ज्ञान। २ वेदात मे निरूपित एक प्रकरण [को०]।

अपरोध—सज्ञा पुं० [सं०] रुकावट। निषेध। वर्जन। मनाही [को०]।

अपरोप—सज्ञा पुं० [सं०] १ निष्कासन। २ राज्यच्युति [को०]।

अपर्ण—वि० [सं०] पत्तो से रहित [को०]।

अपर्णा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पार्वती का एक नाम।

विशेष—पुराणो के अनुसार पार्वती ने शिव को पति के रूप मे प्राप्त करने के लिये तपस्या मे पत्तो तक को खाना छोड दिया था। अत पार्वती का एक नाम अपर्णा प्रसिद्ध हुआ।

२ दुर्गा।

अपर्तु—वि० [सं०] १ बेमौसमी। असामयिक। २ जिसका मासिक धर्म का समय गुजर गया हो। निवृत्तरजस्का [को०]।

अपर्बल(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'अपरबल'। उ०—माया बहुत अपर्बल अलख तुम्हार बनाव।—जग० श०, पृ० ६६।

अपर्यंत—वि० [सं० अपर्यन्त] असीम। अपरिमित [को०]।

अपर्याप्त—वि० [सं०] १ अपूर्ण। २ अयथेष्ट। जो काफी न हो। ३ सीमारहित। असीम (को०)। ४ असमर्थ (को०)।

यौ०—अपर्याप्तकर्म = जैनशास्त्रानुसार वह पाप कर्म जिसके उदय से जीव की पर्याप्ति न हो।

अपर्याप्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपूर्णता। कमी। त्रुटि। २ असामर्थ्य। अयोग्यता। अक्षमता।

अपर्याय¹—वि० [सं०] क्रमविहीन। अव्यवस्थित [को०]।

अपर्याय²—सज्ञा पुं० [सं०] क्रमहीनता [को०]।

अपर्व¹—सज्ञा पुं० [सं० अपर्वन्] वह दिन जो पर्वकाल न हो। अविशिष्ट दिन अर्थात् अमावस्या, पूर्णिमा, अष्टमी और चतुर्दशी से व्यतिरिक्त कोई दिन। २. सधिराहित्य। जोड का अभाव [को०]।

अपर्व²—वि० पर्व या सधि से रहित [को०]।

अपर्वक—वि० [सं०] जिसमे जोड न हो। सधिविहीन [को०]।

अपर्वदंड—सज्ञा पुं० [सं० अपर्वदण्ड] ईख की एक किस्म [को०]।

अपर्वा—वि० [सं०] दे० 'अपर्व' [को०]।

अपल[1]—वि० [सं०] पलशून्य । मांसहीन ।

अपल[2]—वि० [हिं० अपलक] निमेषहीन । अपलक । एकटक ।

यौ०—अपलनयन=बिना पलक गिराए या अनिमिष दृष्टि । उ०—अपल नयन मुस्कान यौवन नव, देख रही तरुणी कोमल-तन ।—गीतिका, पृ० ३५ ।

अपल[3]—संज्ञा पुं० १. पिन । २. अर्गला या कुंडी [को०] ।

अपलक[1]—वि० [सं० अ+हिं० पलक] जिसकी पलकें न गिरें । निर्निमेष । उ०—द्विधारहित अपलक नयनों की भूखभरी दर्शन की प्यास ।—कामायनी, पृ० १२ ।

अपलक[2]—क्रि० वि० बिना पलक गिराये । एकटक । उ०—मैं अपलक इन नयनों से निरखा करता उस छवि को ।—ग्राम्, पृ० १८ ।

अपलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुलक्षण । बुरा चिह्न । दोष । २ दुष्ट लक्षण । वह लक्षण जिसमें अतिव्याप्ति और अव्याप्ति दोष हो ।

अपलट(पु)—वि० [सं० अ+हिं० पलट] १ न मुड़नेवाला । न बदलनेवाला । एकरस रहनेवाला । उ०—अविहड़ अंग बिहड़ै नहीं, अपलट पलटि न जाइ ।—दादू०, पृ० ४६४ ।

अपलाप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपलापित] १ मिथ्यावाद । बकवाद । बात का बतक्कड़ । बाग्जाल । २ बात बनाना । प्रसंग टालने के लिये इधर उधर की बातें कहना । ३. सत्य को छिपाना (को०) । ४ प्यार । आदर (को०) । ५. कंधे और पसलियों का मध्य भाग [को०] ।

अपलापी—वि० [सं० अपलापिन्] अपलाप करनेवाला [को०] ।

अपलाभ—संज्ञा पुं० [सं० अप+लाभ] अनुचित ढंग से किया गया लाभ । बेजा मुनाफा ।

अपलाषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अतिशय लालसा । २ प्रबल तृष्णा या पिपासा [को०] ।

अपलाषी—वि० [सं० अपलाषिन्] १ तृषित । प्यासा । २. जिसे प्यास या लालसा न हो [को०] ।

अपलाषुक—वि० [सं०] दे० 'अपलाषी' [को०] ।

अपलोक[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अप+श्लोक=कीर्ति] १. अपयश । अपकीर्ति । बदनामी । उ०—हाय अपलोक शोक पंथहि गह्यो मैं विरहागिनि दह्यो मैं सोक सिंधुनि बह्योई मैं ।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ३२ । २. अपवाद । मिथ्या दोष । उ०—(क) अब अपलोक सोक सुत तोरा । सहहि निठुर कठोर उर मोरा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) भव अनगन निज निज करतूती । लहत सुजस अपलोक बिभूती ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपलोक[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अप=अपना+लोक] अपना लोक । उ०—भयो लग्न पूरन जब देव गए अपलोक । तब ब्रह्म राजा भए, रैवत बसी अलोक ।—प० रा० मो०, पृ० २२८ ।

अपल्ल(पु)—वि० [सं० अ+पल=पलक] बिना रोक । निर्बाध । उ०—नारंगी बार्गा भरे, आश्या दिए अपल्ल ।—बाँकी ग्रं०, भा० ३, पृ० २ ।

अपवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्वचन । अपशब्द । गाली । २. निंदा [को०] ।

अपवन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कृत्रिम वन । उपवन । बाग ।

अपवन[2]—वि० वायुरहित या वायु से सुरक्षित [को०] ।

अपवरक—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री० अपवरका] १. शयनकक्ष । अंतःपुर । २. गवाक्ष । झरोखा [को०] ।

अपवरग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'अपवर्ग' । उ०—अरथ धरम अपवरग दियण जग च्यार पदारथ ।—रा० रू०, पृ० ३ ।

अपवरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन । आवरण । २ पहनावा । पोशाक [को०] ।

अपवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १ मोक्ष । निर्वाण । मुक्ति । जन्म मरण के बंधन से छुटकारा पाना । उ०-तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला एक अंग ।—मानस, ५-४ । २. त्याग । ३ दान । ४, क्षेपण । (बाण) छोड़ना (को०) । ५. विशेष नियम । अपवाद (को०) । ६. क्रियाप्राप्ति या समाप्ति [को०] ।

अपवर्गी(पु)—वि० [सं० अपवर्ग] अपवर्ग संबंधी । मोक्ष संबंधी ।

अपवर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपवर्जित] १. त्याग । छोड़ना । २. दान । ३. मोक्ष । मुक्ति । निर्वाण । ४. (ऋण आदि) बेबाक करना । चुकता करना । ५ वादा पूरा करना । वचन पालन [को०] ।

अपवर्जित—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोड़ा हुआ । त्यागा हुआ । त्यक्त । २. छुटकारा पाया हुआ । मुक्त ।

अपवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. हटाना । पृथक् करना । २ सामान्य विभाजक [को०] ।

अपवर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सामान्य नाप । २. हार जिसमें कम मोती और सोने की गुरियाँ पिरोई हों [को०] ।

अपवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपवर्तित] १ परिवर्तन । पलटाव । उलटफेर । २ स्थानांतरण (को०) । ३. विभाजन । ४ ऐसा भाग जो विभक्त न हो [को०] ।

अपवर्तित—वि० [सं०] १. बदला हुआ । पलटाया हुआ । लौटाया हुआ । २ स्थानांतरित (को०) । ३. निक्षेप । विभक्त [को०] ।

अपवर्त्य—वि० [सं०] जिसका अपवर्तन हो सके । सामान्य विभाजक से जो पूर्णत विभक्त हो जाय [को०] ।

अपवश(पु)—वि० [हिं० अप=अपना+सं० वश] अपने अधीन । अपने वश का । परवश का उलटा । उ०—भली करी उन श्याम बँधाए । सुर गए हरि रूप चुरावन उन अपवश करि पाए ।—सूर (शब्द०) ।

अपवहित—वि० [सं० अपवाहित] दे० 'अपवाहित' ।

अपवाड़(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अप+वाट, प्रा० वाड] पीछे का द्वार या रास्ता । उ०—दे प्रदक्षणा चढ़े अपवाड़ । रस धूरै तजि बक्री नाड़ि ।—प्राण०, पृ० २३६ ।

अपवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. विरोध । प्रतिवाद । खंडन । उ०—करके जय जयकार राम का धर्म का, करती थीं अपवाद कैकयी कर्म का ।—साकेत, पृ० ११० । २ निंदा । अपकीर्ति । बुराई । प्रवाद । उ०—कैकयी चिल्ला उठी सोन्माद, सब करें मेरा महा अपवाद ।—साकेत, पृ० ७६ । ३ दोष । पाप । कलंक । उ०—राजपद के अपवाद मद । आज तुम्हारा विचार होगा ।—चंद्र०, पृ० १३१ । ४. बाधक शास्त्रविशेष । उत्सर्ग का विरोधी । वह नियमविशेष जो व्यापक नियम से विरुद्ध

हो। मुस्तसना। जैसे, यह नियम है कि सकर्मक सामान्य भूत क्रिया के कर्ता के साथ 'ने' लगता है पर यह नियम 'लाना' क्रिया मे नही लगता। ५ अनुमति। समति। राय। विचार। ६ आदेश। आज्ञा। ७ वेदात शास्त्र के अनुसार अध्यारोप का निराकरण। जैसे—रज्जु मे सर्प का ज्ञान, यह अध्यारोप है और रज्जु के वास्तविक ज्ञान से उसका जो निराकरण हुआ यह अपवाद है। ८ विश्वास (को०)। ९ प्रीति। प्रेम (को०)। १० पारिवारिकता। परिवार जैसा सबध (को०)। ११ मृग को धोखा देकर फँसाने या शिकार करने के लिये शिकारियो द्वारा प्रयुक्त वाद्य [को०]।

अपवादक—वि० [स०] १ निंदक। अपवाद करनेवाला। २ विरोधी। बाधक।

अपवादित—वि० [स०] १ निंदित। २ जिसका विरोध किया गया हो।

अपवादी—वि० [स० अपवादिन्] [वि० स्त्री० अपवादिनी] १. निंदा करनेवाला। बुराई करनेवाला। २ बाधक। विरोधी।

अपवारक—सज्ञा पु० [स०] १ पर्दा। आड या ओट का साधन। २ व्यवधान। घिरा स्थान (को०)।

अपवारण—सज्ञा पुं० [स०] १ व्यवधान। रोक। बीच मे पड कर आघात से बचानेवाली वस्तु। २ हटाने या दूर करने का कार्य। ३ आच्छादन। ओट। छिपाव। ४ अतर्द्धान।

अपवारित—वि० [सं०] १ अतर्हित। तिरोहित। २ दूर किया हुआ। हटाया हुआ। ३ ढका हुआ। छिपा हुआ।

अपवाह—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपवाहन' [को०]।

अपवाहक¹—वि० [स०] स्थानातरित करनेवाला। एक स्थान से किसी पदार्थ को दूसरे स्थान मे ले जानेवाला।

अपवाहक²—सज्ञा पु० एक यत्र जो भारी चीजो को उठाकर दूसरे स्थान पर रख देता है। गृध्र यत्र।

अपवाहन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अपवाहित, अपवाह्य] १ स्थानातरित करना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। २. भिन्न मे घटाना। बाकी (को०)। ३ एक छद (को०)।

अपवाहित—वि० [सं०] एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाया हुआ। स्थानातरित।

अपवाहुक—सज्ञा पुं० [स०] एक रोग जिसमे बाहु की नसें मारी जाती है और बाहु बेकाम हो जाता है। यह रोग वायु के प्रकोप से होता है। भुजस्तभ रोग।

अपविघ्न—वि० [स०] १ निर्बाध। निर्विघ्न। अबाधित। [को०]।

अपवित्र—वि० [स०] जो पवित्र न हो। अशुद्ध। नापाक। दूषित। मैला। मलिन।

अपवित्रता—सज्ञा स्त्री० [स०] अशुद्धि। अशौच। मैलापन। नापाकी।

अपविद्ध—वि० [स०] १ त्यागा हुआ। त्यक्त। छोडा हुआ। २ वेधा हुआ। विद्ध। ३ निकृष्ट। निम्न (को०)।

अपविद्ध पुत्र—सज्ञा पु० [सं०] धर्मशास्त्रानुसार बारह प्रकार के पुत्रो मे वह पुत्र जिसको उसके माता पिता ने त्याग दिया हो और किसी अन्य ने पुत्रवत् पाला हो।

अपविद्धलोक—वि० [सं०] जो इस लोक को छोड चुका हो। परलोकगत [को०]।

अपविद्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ निकृष्ट विद्या। निषिद्ध विद्या। २ अविद्या [को०]।

अपविष—वि० [सं०] निर्विष। विषहीन। जिसमे विष न हो [को०]।

अपविषा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विषमुक्त। २ निर्विष नामक पौधा [को०]।

अपवीण—वि० [स०] १ वीणारहित। २. निकृष्ट या खराब वीणावाला [को०]।

अपवृक्त—वि० [सं०] १ समाप्त हुआ। २ पूर्ण हुआ [को०]।

अपवृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] छेद। सूराख। रध्र [को०]।

अपवृत्त—सज्ञा स्त्री० [स०] १ व्यतिक्रमित। २ उलटा पलटा। ३ औंधा। ४ क्षोभित। ५ समाप्त हुआ [को०]।

अपवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दूषित वृत्ति। २ अत। समाप्ति।

अपवेध—सज्ञा पुं० [स०] रत्न या मोती का त्रुटिपूर्ण छेदन [को०]।

अपवोढा—वि० [स० अपवोढृ] ढोने या हटानेवाला [को०]।

अपव्यय—सज्ञा पु० [सं०] १ अधिक व्यय। अधिक खर्च। निरर्थक व्यय। फजूलखर्ची। २ बुरे काम मे खर्च। उ०—राजन्, सत्ता का अपव्यय मत करो।—विशाख०, पृ० ४०।

अपव्ययी—वि० [स० अपव्ययिन्] १ अधिक खर्च करनेवाला। फजूलखर्च। २ बुरे कामो मे व्यय करनेवाला।

अपव्रत¹—सज्ञा पुं० [स०] १ अविहित व्रत। हीन व्रत।

अपव्रत²—वि० [स०] १ विहित व्रत या कर्म न करनेवाला। अधार्मिक। अपवित्र। २ अविश्वस्त। आज्ञापालन न करनेवाला। ३ पतित। विकृत आचरणवाला।

अपशक—वि० [सं० अपशङ्क] भय, शका या हिचक से रहित। निर्भीक। निडर [को०]।

अपशकुन—सज्ञा पु० [सं०] कुसगुन। असगुन।

अपशद—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अपसद' [को०]।

अपशब्द—सज्ञा पुं० [स०] १ अशुद्ध शब्द। दूषित शब्द। २ असबद्ध प्रलाप। बिना अर्थ का शब्द। ३ गाली। कुवाच्य। ४ पाद। अपान वायु का छूटना। गोज। ५ विगडा हुआ शब्द। सस्कृत भाषा से भिन्न भाषा। ग्राम्य भाषा [को०]।

अपशम—सज्ञा पु० [स०] विराम। अत। समाप्ति [को०]।

अपशु¹—सज्ञा पुं० [स०] १ जो पशु न हो। अर्थात् बलिप्रदान के अयोग्य पशु। २ दुष्ट पशु। कुत्सित पशु। ३ गाय और घोडे से भिन्न पशु [को०]।

अपशु²—वि० १ पशुविहीन। २ गरीब (को०)।

अपशुक¹—सज्ञा पुं० [स० अपशुक्] आत्मा [को०]।

अपशुक²—वि० शोकविहीन [को०]।

अपशोक¹—वि० [स०] शोक या विषादविहीन [को०]।

अपशोक²—सज्ञा पुं० अशोक का वृक्ष [को०]।

अपश्चिम—वि० [स०] १ जिसके पीछे कोई न हो। अंतिम। २. प्रथम। अतिम नही। ३. चरम या पराकाष्ठा [को०]।

अपश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तकिया [को०]।

अपश्री—वि० [सं०] शोभाविहीन। श्रीरहित [को०]।

अपश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं० अप+श्रुति] एक ही धातु या शब्द मे अथवा एक ही प्रत्यय या विभक्ति के योग मे निष्पन्न धातु, शब्द, प्रत्यय या विभक्ति मे निर्दिष्ट क्रमानुसार स्वरध्वनि मे हुए परिवर्तन को अपश्रुति कहते हैं।—जैसे—गान, गीत, गेय आदि।

अपश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] अपानवायु [को०]।

अपष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] अकुश का अग्रभाग या नोक [को०]।

अपष्ठु[1]—वि० [सं०] १ विपरीत। उलटा। २ प्रतिकूल। वाम [को०]।

अपष्ठु[2]—क्रि० वि० १ विपरीत रूप मे। २ गलत ढग से। निर्दोषिता पूर्वक [को०]।

अपष्ठु[3]—संज्ञा पुं० [सं०] समय [को०]।

अपष्ठुर—वि० [सं०] विपरीत। उलटा [को०]।

अपष्ठुल—वि० [सं०] दे० 'अपष्ठुर' [को०]।

अपसचय—संज्ञा पुं० [सं० अपसञ्चय] अनियमित रूप से वस्तु का सग्रह या छिपाकर रखना।

अपस[1](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपशु'। उ०—ऊकरडी डोका चुगइ अपस डँमायड आँगा।—ढोला०, दू०, ३३६।

अपस[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अपस्मार] १ मृगी रोग। २ राजस्थानी कविता मे मान्य एक प्रकार का दोप जिसमे शब्दयोजना निरर्थक हो और अर्थ साफ न हो। उ०—अपस अमूभ्यो अरथ सवद पिरण विरण हित साजै।—रघु० रू०, पृ० १४।

अपसगुन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अपशकुन] असगुन। बुरा सगुन। उ०—अर्जुन दुखित बहुत तब भए। इहाँ अपसगुन होत नित नए। सूर० १।२८६।

अपसद—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो अनुलोम विवाह द्वारा द्विजो से उत्पन्न हो। ब्राह्मण पुरुष और क्षत्रिया, वैश्या वा शूद्रा स्त्री०, अथवा वैश्य पुरुष और शूद्रा स्त्री से उत्पन्न सतान।

अपसमार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अपस्मार] तैंतीस व्यभिचारी या सचारी भावो मे से एक। उ०—अपसमार मो कवि उर धरई।—भिखारी ग्र०, भा०१, पृ० ७२।

अपसना(पु)—क्रि० अ० [सं० अपसरण=खिसकना] १ खिसकना। सरकना। भागना। उ०—राते कवँल करहिं अलि भवाँ। घूमहिं माति चहहिं अपसवाँ।—जायसी ग्र०, पृ० ४२। २ चल देना। चपत होना। उ०—(क) जीव काढि लै तुम अपसई। (ख) लै अपसवा जलधर जोगी।—जायसी (शब्द०)।

अपसवना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अपसना'।

अपसर(पु)—वि० [हिं० अप=अपना+सर (प्रत्य०)।] आप ही आप। मनमाना। अपने मन का। उ०—लोटत पीत पराग कीच महँ नीच न अग सम्हारे। वारबार सरक मदिरा की अपसर रहत उघारे।—सूर (शब्द०)।

अपसर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपसरण। पीछे हटना। २ भागना। ३ दूरी (को०)। ४. उचित कारण। सगत तर्क [को०]।

अपसर[3](पु)—वि० [फा० अफसर] मुखिया। प्रधान। उ०—अपसर गज दलगजन गाऊ। छरि मकुनाइ देहिं तेहि ठाऊ।—चित्रा०, पृ० १८८।

अपसरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ भाग जाना। खिसक जाना। निकल जाना। २ निर्गम। निकास [को०]।

अपसर्जक—वि० [सं०] अपसर्जन करनेवाला [को०]।

अपसर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १ विसर्जन। त्याग। २ दान। ३. मोक्ष [को०]।

अपसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तचर। जासूस। खुफिया। भेदिया।—अनेकार्थ०।

अपसर्पक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपसर्प' [को०]।

अपसर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] वि० १ पीछे सरकना। पीछे हटना। २ जासूसी करना [को०]।

अपसर्पित—वि० [सं०] पीछे हटा हुआ। पीछे खिसका हुआ। पीछे सरका हुआ।

अपसवना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अपसना'।

अपसव्य—वि० [सं०] १ सव्य का उलटा। दाहिना। दक्षिण। २ उलटा। विरुद्ध। ३ जनेऊ दाहिने कधे पर रखे हुए।

यौ०—अपसव्य ग्रहण=जब राहु सूर्य वा चद्र के दाहिने होकर चलता है। अर्थात् ग्रहण दाहिनी ओर से लगता है तब उसे अपसव्य ग्रहण कहते हैं। अपसव्य ग्रहयुद्ध=बृहत्सहिता के अनुसार ग्रहयुद्ध के चार भेदो मे से एक। अपसव्यनीय=पितृतीर्थ।

क्रि० प्र०—होना=बाएँ काँधे से जनेऊ और अँगोछा दाहिने काँधे पर रखना वा बदलना।—करना=किसी के किनारे चारो ओर ऐसी परिक्रमा करना कि वह दाहिनी ओर पड़े। दक्षिणावर्त परिक्रमा करना।

अपसाधारण—वि० [सं० अप+साधारण] साधारण से भिन्न (अच्छे या बुरे भाव मे)।—यदि जयती एक साधारण स्त्री थी तो मैं भी एक अप साधारण पुरुष था।—सन्यासी पृ० ३३८।

अपसार[1]—संज्ञा पुं० [सं० अप=जल+सार] १ अबुकण। पानी का छीटा। उ०—लेत अवनि रवि अमु कहँ, देत अमित अपसार। तुलसी सूछम को सदा रवि रजनीस अधार।—स० सप्तक, पृ० ३६। २ पानी की भाप।

अपसार[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपसरण' [को०]।

अपसारक—वि० [सं०] दूर करनेवाला। हटानेवाला।

अपसारण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अपसारणा] निकाल बाहर करना। हटा देना। दूरी करण। निवारण [को०]।

अपसारित—वि० [सं०] निष्कासित। निकाला हुआ। दूरीकृत। उ०—बाधाएँ अपसारित कर, कहता वर यो वरना।—गीतिका, पृ० १०५।

अपसिद्धात—संज्ञा पुं० [सं० अपसिद्धान्त] १ अयुक्त सिद्धात। वह विचार जो सिद्धात के विरुद्ध हो। २ न्याय मे एक प्रकार का निग्रह स्थान। जहाँ किसी सिद्धात को मानकर उसी के विरुद्ध बात कही जाय वहाँ यह निग्रह स्थान होता है। ३. जैन शास्त्रानुसार उनके विरुद्ध सिद्धात।

अपसूकन(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपशकुन'। उ०—महा अपसूकन होज्यो ए भुवाल।—बी० रासो, पृ० ४६।

अपसृत—वि० [सं०] १ युद्ध से भागा हुआ। भगोड़ा। २ हटाया गया (को०)। ३ नीचे फेंका हुआ या च्युत [को०]।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार अपसृत और अनिक्षिप्त (सेवा से अलग किए हुए या देश से निकाले हुए) सैनिकों में अपसृत अच्छे हैं। उनसे युद्ध में फिर काम लिया जा सकता है।

अपसृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपसरण' [को०]।

अपसोच†—संज्ञा पुं० [सं० अप+शोच] बुरी चिंता। दुश्चिंता। उ०—सुविता मर गया तो सहुआइन गोई तो काफी मगर भीतर भीतर उसे उतना अपसोच नहीं हुआ।—नई०, पृ० ८०।

अपसोस१(पु)—संज्ञा पुं० [फा० अफसोस] चिंता। सोच। दुःख। उ०—(क) तातें अब मरियत अपसोसनि। मथुरा हूँ तें गए सखी री। अब हरि कारे कोसनि।—सूर (शब्द०)। (ख) काहू कौं अपसोस मरति हौं नैन तुम्हारे नाहीं।—सूर०, १०।२२३५।

अपसोसना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अपसोस से नाम०] सोच करना। चिंता करना। अफसोस करना। उ०—कहा कहूँ सुंदर घन तोसों। राधा कान्ह एक संग बिलसत मन ही मन अपसोसों।—सूर (शब्द०)।

अपसौन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अपशकुन] असगुन। बुरा सगुन।

अपसौना(पु)†—क्रि० अ० दे० 'अपसवना'।

अपस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १ पहिए के अलावा गाड़ी का कोई भी हिस्सा। ढाँचा। २ विष्ठा। मल। ३ योनि। ४ गुदा [को०]।

अपस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] घुटने के नीचे का भाग [को०]।

अपस्खल—संज्ञा पुं० [सं०] कूदना। फाँदना [को०]।

अपस्तंब—संज्ञा पुं० [सं० अपस्तम्भ] छाती के भीतर एक ओर स्थित कोश जिसमें प्राणवायु रहता है [को०]।

अपस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० अपस्तम्भ] दे० 'अपस्तंब' [को०]।

अपस्तुति—संज्ञा स्त्री० [सं० अप+स्तुति] दोषवर्णन। निंदा।

अपस्नात—वि० [सं०] प्राणी के मरने पर उदक क्रिया के समय का स्नान किया हुआ।

अपस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपस्नात] १. मृतकस्नान। वह स्नान जो प्राणी के कुटुंबी उसके मरने पर उदक क्रिया के समय करते है। २ किसी के नहाने के बाद बचे हुए जल से नहाना [को०]।

अपस्पर्श—वि० [सं०] संज्ञाहीन। चेतनाशून्य [को०]।

अपस्मार—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोगविशेष। मृगी।

विशेष—इसमें हृदय काँपने लगता है और आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है। रोगी काँपकर पृथ्वी पर मूर्च्छित हो गिर पड़ता है। वैद्यक शास्त्रानुसार इसकी उत्पत्ति चिंता, शोक और भय के कारण कुपित त्रिदोष से मानी गई है। यह चार प्रकार का होता है—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज और (४) सन्निपातज। यह रोग नैमित्तिक है। वातज का दौरा बारहवें दिन, पित्तज का पंद्रहवें दिन और कफज का तीसवें दिन होता है।

पर्या०—अंगविकृति। लालाध। भूतविक्रिया। मृगी रोग।

२. अपस्मृति। भुलक्कड़पन। स्मृतिभ्रंश [को०]।

अपस्मारी—वि० [सं० अपस्मारिन्] जिसे अपस्मार रोग हो। उ०—नेत्र टेढ़े आँके करनेवाला ऐसा अपस्मारी रोगी जीवे नहीं।—माधव०, पृ० १३१।

अपस्मृत—वि० [सं०] भुलक्कड़। खब्तुलहवास [को०]।

अपस्मृति१—वि० [सं०] १ भुलक्कड़। भूल जानेवाला। २. विभ्रमित। घबड़ाया हुआ [को०]।

अपस्मृति—संज्ञा स्त्री० दे० 'अपस्मार१' [को०]।

अपस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कटु स्वर या ध्वनि [को०]।

अपस्वारथ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अप+सं० स्वार्थ] स्वार्थ। अपना मतलब। उ०—(क) ये नैना अपस्वारथ के। और इनहिं पटतर क्यों दीजै जे हैं बस परमारथ के।—सूर०,१०।२२८३। (ख) अपस्वारथ सो बहु बिधि लीन्हा। परमारथ काहु नहि चीन्हा।—कबीर सा०, पृ० ५८१।

अपस्वारथी—वि० [हिं०] दे० 'अपस्वार्थी'। उ०—नैना लुब्धे रूप कौ अपनैं सुख माई। अपराधी अपस्वारथी मोकौं बिसराई।—सूर०, १०।२२५३।

अपस्वार्थी—वि० [हिं० अप=अपना+सं० स्वार्थी]स्वार्थ साधनेवाला। मतलबी। काम निकालनेवाला। खुदगरज।

अपह—वि० [सं०] नाश करनेवाला। विनाशक। उ०—मनोज, वैरि वंदित, अजादि देव सेवित। विशुद्ध बोध विग्रह, समस्त दूषणापह।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यह शब्द समासांत पद के अंत में प्रायः आता है। जैसे—क्लेशापह। तमोपह। दूषणापह।

अपहड(पु)‡—वि० [सं० अ+प्रहत या सं० अपहत] दे० 'अप्रतिहत'। उ०—वड दाता पाता पड़ा, अपहड पूरै आस।—बाँकीदास ग्रं०, भा० १, पृ० ८८।

अपहत—वि० [सं०] १ नष्ट किया हुआ। मारा हुआ। २ दूर किया हुआ। हटाया हुआ।

अपहतपाप्मा—वि० [सं०] सब पापों से विमुक्त। जिसके सब पाप नष्ट हो गए हों। पापशून्य। विगतपाप।

अपहरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपहरणीय, अपहरित, अपहृत, अपहर्ता] १ छीनना। ले लेना। हर लेना। उ०—उसका सर्वस्व अपहरण करके इसे केवल राज्य से बाहर कर दो।—विशाख० पृ० ८३। २ चोरी। लूट। ३ छिपाव। संगोपन। ४ महसूल वाले माल को दूसरी वस्तुओं में छिपाकर महसूल से बचाना [को०]।

अपहरणीय—वि० [सं०] १ न छीनने योग्य। हर लेने योग्य। २ चुराने योग्य। लूटने योग्य। ३ छिपाने योग्य। संगोपन करने योग्य।

अपहरना(पु)—क्रि० स० [सं० अपहरण से नाम०] १ छीनना। ले लेना। २ लूटना। चुराना। उ०—जो नाहिन कर चित अपहरई। बरियाई बिमोह बस करई।—तुलसी (शब्द०)। ३ कम करना। घटाना। क्षय करना। नाश करना। उ०—नंददास निशि शशि अपहरई। सर दरस जिमि दानव डरई।—तुलसी (शब्द०)।

अपहर्ता—संज्ञा पुं० [सं० अपहर्तृ] १ छीननेवाला। हर लेनेवाला। ले लेनेवाला। २ चोर। लूटनेवाला। ३ छिपानेवाला।

अपहसित—संज्ञा पुं० [सं०] बेमतलब की हँसी। निरर्थक हँसी। २ हास का एक भेद या प्रकार (को०)।

अपहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ गर्दनिया देकर बाहर निकालना। गर्दन पकड़कर बाहर करना। गलहस्त। गलहस्त देकर निकाला हुआ व्यक्ति। २ फेंकना। ले जाना। ३ चोरी करना। लूटना [को०]।

अपहस्तित—वि० [सं०] १ गलहस्त देकर निष्कासित। २ परित्यक्त। फेंका हुआ [को०]।

अपहान—संज्ञा पुं० [सं०] छोड़ना। त्यागना [को०]।

अपहानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'अपहान'। २ गायब होना। ३. कम होना [को०]।

अपहार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपहारक, अपहारी, अपहारित, अपहार्य] १ चोरी। लूट। २ छिपाव। सगोपन। ३ ले जाना (को०)। ४ दूसरे की सपत्ति खर्च करना। पराया माल उड़ाना (को०)। ५ हानि। क्षति (को०)। ६ प्राप्त करना। लाना [को०] प्राप्ति [को०]।

अपहारक¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपहारिका] छीननेवाला। बलात् हरनेवाला।

अपहारक²—संज्ञा पुं० डाकू। चोर। लुटेरा।

अपहारित—वि० [सं०] १ छीना हुआ। अपहृत। २ लूटा हुआ। चोरी द्वारा प्राप्त। ३ छिपाया हुआ। सगोपित।

अपहारी¹—वि० [सं० अपहारिन्] [वि० स्त्री० अपहारिणी] १ हरण करनेवाला। २ नाश करनेवाला।

अपहारी²—संज्ञा पुं० चोर। लुटेरा। डाकू।

अपहार्य—वि० [सं०] छीनने योग्य। चोरी करने योग्य।

अपहास—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपहास। उ०—अब कायर अपहास री, रचना रचूँ अमद।—बाँकीदास ग्र०, भा० १ पृ० १६। २ अकारण हँसी।

अपहृत—वि० [सं०] छीना हुआ। चुराया हुआ। लूटा हुआ। उ०—हृदय का राजस्व अपहृत, कर अधम अपराध, दस्यु मुझसे चाहते हैं सुख सदा निर्बाध।—कामायनी, पृ० ८४।

यौ०—अपहृतज्ञान = सुधबुध हीन। बेखबर।

अपहृतश्री—श्रीहीन। छविहीन। उ०—अपहृतश्री सुख स्नेह का सद्म।—तुलसी०, पृ० ३८।

अपहेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिरस्कार। फटकार। झिड़की।

अपह्नव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपह्नुत] १ छिपाव। दुराव। २. मिस। बहाना। टालमटूल। हीला। वाग्जाल से असली बात को छिपाना। ३ प्रेम। प्यार (को०)। ४ तोषण [को०]।

अपह्नुत—वि० [सं०] छिपा हुआ। उ०—विविध द्रव्य हैं छिपे गर्भ में इसके विश्रुत, जो बाधव के अलकार हैं मजु अपह्नुत।—प्रेमांजलि, पृ० ८३।

अपह्नुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुराव। छिपाव। २ बहाना। टालमटूल। हीला हवाला। ३ एक काव्यालकार जिसमें उपमेय का निषेध करके उपमान का स्थापन किया जाय। जैसे,—सुरवा होइ न अलि यहै धुवाँ धरनि चहुँ कोद। जारत आवत जगत को पावस प्रथम पयोद।

विशेष—इसके दो प्रधान भेद है—शब्दापह्नुति और अर्थापह्नुति इसके अतिरिक्त हेत्वपह्नुति, पर्यस्तापह्नुति, भ्रातापह्नुति, छेकापह्नुति, व्यग्यापह्नुति भी इसके भेद है।

अपह्नवान—वि० [सं०] १ छिपाता हुआ। छिपानेवाला। २. नटनेवाला। इनकार करनेवाला।

अपह्नोता—वि० [सं० अपह्नोतृ] १ अस्वीकार करनेवाला। १ सगोप्ता। छिपानेवाला [को०]।

अपाक्त—वि० [अपाङ्क्त] भोजनकाल मे साथ पक्ति मे बैठाने के अयोग्य। पक्ति या जाति से बहिष्कृत। जातिच्युत [को०]।

अपाक्तेय—वि० [सं० अपाङ्क्तेय] दे० 'अपाक्त' [को०]।

अपाक्त्य—वि० [सं० अपाङ्क्त्य] दे० 'अपाक्त' [को०]।

अपाग¹—संज्ञा पुं० [सं० अपाङ्ग] आँख का कोना। आँख की कोर। कटाक्ष। उ०—(क) नेत्रो को अपाग से शृ गारित किया।—वै० न०, पृ० ४४२। (ख) और फिर अरुण अपागो से देखा कुछ हँस पडी।—झरना, पृ० २५।

यौ० अपांग दर्शन = तिरछी चितवन। अपाग दृष्टि = कनखियो से देखना। अपागधारा = कटाक्षगति। कटाक्षप्रवाह। उ०—(क) किंतु हलाहल भरी उसकी अपागधारा। आज भी न जाने क्यो भूलने मे असमर्थ हूँ।—इद्र०, पृ० ४१। कामदेव (१) सप्रदायसूचक तिलक। (२) अत। समाप्ति। (३) अपामार्ग।

अपाग²—वि० अगहीन। अगभग। पगु।

अपागक—संज्ञा पुं०, वि० [सं० अपाङ्गक] दे० 'अपाग' [को०]।

अपानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ सागर। समुद्र। २ वरुण [को०]।

अपानिधि—संज्ञा पुं० [सं० अपाम्निधि] १ समुद्र। २ विष्णु [को०]।

अपापति—संज्ञा पुं० [सं० अपाम्पति] दे० 'अपानाथ' [को०]।

अपापित्त—संज्ञा पुं० [सं० अपाम्पित्त] १ अग्नि। २ चित्रक वृक्ष [को०]।

अपावत्स—संज्ञा पुं० [सं०] एक बड़ा तारा जो चित्रा नक्षत्र से पाँच अश उत्तर विक्षेप मे दिखाई पडता है।

अपाशुला—वि० स्त्री० [सं०] पतिव्रता।

अपा¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० आपा] आत्मभाव। अहकार। गर्व। घमड। उ०—आम्रो छोडि ऊरध को जावे। अपा मेटि कै प्रेम बढावे।—कबीर (शब्द०)। दे० 'आपा'।

अपा²(पु)—सर्व [हिं०] दे० 'अपना'।

यौ०—अपापर = अपना पराया। उ०—अपापर नाहीं चिन्हीला।—दक्खिनी०, पृ० ३४।

अपाइ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अवाय] दे० 'अपाय'।

अपाउ(पु)—संज्ञा पुं०[सं० अपाय, प्रा० अवाय] अनरीति। अन्यथाचार। उपद्रव। उ०—खेलत सग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ। जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०६।

अपाक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अजीर्ण । अपच । २ कच्चापन ।

अपाक[2]—वि० [सं०] अपक्व । अनपका [को०] ।

अपाक[3]Ⓟ—वि० [सं० अ+फा० पाक] अपवित्र । नापाक ।

अपाकज—वि० [सं०] १ जो पका या पकाया न हो । २. जो प्रकृत या मूल रूप में हो । प्राकृतिक ।

अपाकरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपाकृत] १ पृथक्करण । अलग करना । २ हटाना । दूर करना । निराकरण । निरसन । ३ चुकता करना । अदा या बेबाक करना ।

अपाकर्म—संज्ञा पुं० [सं० अपाकर्मन्] भुगतान । अदायगी [को०] ।

अपाकशाक—संज्ञा पुं० [सं०] अदरक । आदी ।

अपाकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपाकरण' [को०] ।

अपाक्ष—वि० [सं०] १ आँखों के सामने । प्रत्यक्ष । उपस्थित । २. दूषित नेत्रवाला । ३ नेत्रहीन [को०] ।

अपाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अपाचीन, अपाच्य] दक्षिण या पश्चिम [को०] ।

अपाचीन—वि० [सं०] १ पिछवाड़े । पीछे की ओर । २. जो दिखाई न दे । ३ दक्षिणी । ४ पश्चिमी । विरुद्ध । विपरीत [को०] ।

अपाच्य—वि० [सं०] १ जो पक न सके । २ जिसका पाचन न हो सके । ३. दक्षिणी या पश्चिमी [को०] ।

अपाटव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पटुता का अभाव । अकुशलता । अनाड़ीपन । २ अचंचलता । सुस्ती । मंदता । ३. कुरूपता । बदसूरती । ४ रोग । बीमारी । ५ मद्य । शराब ।

अपाटव[2]—वि० १ अपटु । अनाड़ी । २ अचंचल । सुस्त । ३ कुरूप । बदसूरत । ४ रोगी । बीमार ।

अपाठ—संज्ञा पुं० [सं० अ+पाठ] अपढ़ । मूर्ख । उ०—पंडित पूत अपाठ असत ह्वै जग में आदर । इय गति होय हठील मोल के मर्म न आदर ।—राम० धर्म०, पृ० १९५ ।

अपाठ्य—वि० [सं०] जो पढ़ा न जा सके । जो पढ़ने के योग्य न हो ।

अपाढ़—वि० [सं० अपार या अवगाह्य] मुश्किल । कठिन । अपार । उ०—उसकी बिना मरजी चला जाऊँ तो घर में रहना अपाढ़ कर दे ।—गोदान, पृ० २३८ ।

अपाण Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० आत्मन्, प्रा० अप्पण, अप्पाण] गर्व । घमंड । उ०—विदेही तणे दिवाण, ईस चाप धरे आण । तोड़वा अनेक ताण, ऊठिया करे अपाण ।—रघु० रू०, पृ० ७६ ।

अपाणि—वि० [सं०] पाणिरहित । हस्तविहीन । बिना हाथ का ।

अपाणिनीय—वि० [सं०] १ पाणिनी व्याकरण के नियमानुसार असाधु प्रयोग या उसमें अनुल्लिखित । २ पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन न करनेवाला [को०] ।

अपातⓅ—वि० [सं० अ+पात] जो च्युत न हो । अच्युत । उ०—सूखमना सुर की सरिता अन ओवहि दीन दयाल हरे । ता तट साखी अपात है ब्रह्म मुचेतन मैं दल सुद्ध सरे ।—दीन० ग्र०, पृ० ७४ ।

अपात्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेकार या अनुपयुक्त वर्तन । २ अयोग्य व्यक्ति । ३ दान, भोज आदि के अयोग्य ब्राह्मण [को०] ।

अपात्र[2]—वि० [सं०] १ अयोग्य । कुपात्र । उ०—नियम पालती एक मात्र तू, सब अपात्र हैं और पात्र तू ।—साकेत, पृ० ३१४ । २ मूर्ख । ३. श्राद्धादि निमंत्रण के अयोग्य (ब्राह्मण) ।

अपात्रकृत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यक्ति या ब्राह्मण को पतित बना देनेवाला कार्य [को०] ।

अपात्रदायी—वि० [सं० अपात्रदायिन्] [वि० स्त्री० अपात्रदायिनी] कुपात्र को दान देनेवाला ।

अपात्रभृत्—वि० [सं०] अयोग्य या खोटे व्यक्तियों का समर्थक [को०] ।

अपात्रीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर्म जिसके करने से ब्राह्मण अपात्र हो जाता है, जैसे—झूठ बोलना, निंदित का दान लेना व्यापार करना, शूद्रों का संपर्क करना आदि ।

अपाद—वि० [सं०] पादरहित । बिना । पैरोंवाला । पंगु [को०] ।

अपादक—वि० [सं०] दे० 'अपाद' [को०] ।

अपादान—संज्ञा पुं० [सं०] १. हटाना । अलगाव । विभाग । २. व्याकरण में पाँचवाँ कारक जिससे एक वस्तु का दूसरी वस्तु से विश्लेषण या अलगाव सूचित हो । इसका चिह्न 'से' है । जैसे—वह घर से आता है । वृक्ष से फल गिरता है ।

अपादान कारक—संज्ञा पुं० [सं० अपादान+कारक] व्याकरण के छह कारकों में से पाँचवाँ कारक ।

अपान[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस या पाँच प्राणों में से एक ।

विशेष—निम्नलिखित तीनों वायुओं में से कोई किसी को और कोई किसी को अपान कहते हैं—१ वह वायु जो नासिका द्वारा बाहर से भीतर की ओर खींची जाती है । २ गुदास्थ वायु जो मल मूत्र को बाहर निकालती है । ३ वह वायु जो तालु से पीठ तक और गुदा से उपस्थ तक व्याप्त है ।

२ वायु जो गुदा से निकले । अधोवायु । गुदस्थ वायु । ३ गुदा ।

अपान[2]—वि० १ सब दुखों को दूर करनेवाला । २ ईश्वर का एक विशेषण ।

अपान[3]Ⓟ—संज्ञा पुं०[प्रा० अप्पाण हिं० अपना] १ आत्मभाव । आत्मतत्व । आत्मज्ञान । उ०—(क) तुलसी मेटी की ब्रँसनि जड़ जनता सनमान । उपजत हिय अपमान भा, खोवत मूढ़ अपान ।—तुलसी ग्र०, पृ० १४५ । (ख) ऋषिराज राजा आज जनक समान को । गाँठि बिनु गुन की कठिन जड़ चेतन की, छोरी अनायास साधु सोधक अपान को ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१५ । २ आपा । आत्मगौरव । भ्रम । उ०—काहे को अनेक देव सेवत, जागैं मसान खोवत अपान, सठ होत हठि प्रेत रे ।—तुलसी ग्र०, पृ० २३८ । ३ सुध । होश हवास । उ०—(क) भए मगन सब देखनहारे । जनक समान अपान बिसारे । —मानस, १।३२५ । (ख) बरबस लिए उठाइ उर, लाए कृपानिधान । भरत राम की मिलन लखि, बिसरा सबहि अपान ।—मानस, पृ० २८५ । ४ अहं । अभिमान ।

अपान[4]Ⓟ—सर्व० [हिं० अपना] निज का । अपना । उ०—पहिचान को केहि जान, सबहि अपान सुधि भोरी भई ।—मानस, पृ० १।३२१ ।

अपान[5] (पु)—वि० [सं० अ+पान] जो पीने के योग्य न हो। अपेय। उ०—माधौ जू मोतें और न पापी। भच्छि अभच्छ अपान पान करि कबहुँ न मनसा धापी।—सूर० १।१४०।

अपानद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] गुदा [को०]।

अपानन—संज्ञा पुं० [सं०] १ श्वसनक्रिया। साँस लेना। २ मलमूत्र का निकलना या बहिर्गमन [को०]।

अपानपवन—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीरस्थ अपान नामक वायु। २. गुदा से निकलनेवाली वायु। पाद [को०]।

अपानवायु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपानपवन'।

अपाना†—सर्व० [हिं०] [स्त्री० अपानी] दे० 'अपना'। उ०—(क) साहब लेई चलो देस अपाना।—धरम०, पृ० २८। (ख) लोग सब गेह के, प्रवीन हैं अपानी घाई देह जुवताई नयो नयो नेह जोरिहै।—दीन ग्र०, पृ० १४०।

अपानृत—वि० [सं०] झूठ से रहित। सत्य [को०]।

अपाप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] जो पाप न हो। पुण्य। सुकृत। उ०—सग नसै जिहि भाँति ज्यो उपजै पाप अपाप। तिनसो लिप्त न होहिं ते ज्यों उपलनि को आप।—केशव (शब्द०)।

अपाप[2]—वि० [स्त्री० अपापा] निष्पाप। पापरहित। उ०—वह पुण्यकृती अपाप थे, पहले ही अवतीर्ण आप थे।—साकेत, पृ० ३३६।

अपामार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] चिचडा। चिचडी। ऊँगा। ऊँगी। अझाझारा। लटजीरा।

अपापी—वि० [सं० अपापिन्] [वि० स्त्री० अपापिनी] निष्पाप। अपाप [को०]।

अपामार्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १ शुद्धि। सफाई। २ (व्याधि या दोष का) निरोध या निवारण [को०]।

अपामृत्यु—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपमृत्यु' [को०]।

अपाय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अपायी] १ विश्लेष। अलगाव। २ अपगमन। पीछे हटना। ३ नाश। उ०—सब अपाय भय खोय सदा सुभ करत जाय है।—बुद्ध च०, पृ० २१६। ४ (पु) अन्यथाचार। अनरीति। उपद्रव। उ०—करिय सभार कोसल राय। अकनि जाके कठिन करतब अमित अनय अपाय।—तुलसी [को०]। ५ खतरा। विघ्न [को०]। ६ हानि। क्षति (को०)। ७ शब्दात। शब्द की समाप्ति। ८ गायब होना। लुप्त होना [को०]।

अपाय[2] (पु)—वि० [सं० अ=नहीं+पाद प्रा० पाय=पैर] १ बिना पैर का। लँगडा। अपाहिज। २ निरुपाय। असमर्थ। उ०—राम नाम के जपे पै जाय जिय की जरनि। कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भए जैसे तम जारिबे को चित्र को तरनि।—तुलसी (शब्द०)।

अपायी—वि० [सं० अपायिन्] [वि० स्त्री० अपायिनी] १ नष्ट होनेवाला। नश्वर। अस्थिर। अनित्य। २ अलग होनेवाला। ३ गायब या लुप्त होनेवाला [को०]।

अपार[1]—वि० [सं०] १ जिसका पार न हो। सीमारहित। असीम। अनत। बेहद। उ०—एक दिन सहसा सिंधु अपार। लगा टकराने नगतल क्षुब्ध।—कामायनी, पृ० ५२। २, असख्य। अधिक। अतिशय। अगणित। बहुत। ३, तटहीन।

अपार[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सांख्य मे वह तुष्टि जो धनोपार्जन के परिश्रम और अपमान से छुटकारा पाने पर होती है। २. समुद्र। सागर। [को०]। ३ नदी का दूसरा किनारा [को०]।

अपारक—वि० [सं०] असमर्थ। अशक्त। अयोग्य। अदक्ष [को०]।

अपारदर्शक—वि० [सं० अ+पारदर्शक] जो पारदर्शक न हो। जिसके पार प्रकाश न जा सके।

विशेष—लोहा, ताँबा, सोना, लकडी, ईंट, पत्थर आदि प्रकाश को रोक लेते हैं। इनमे होकर प्रकाश नही निकल सकता अत इन्हे अपारदर्शक कहते हैं।

अपारदर्शिता—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+पारदर्शिता] वह स्थिति जिसमें प्रकाश पार न जा सके।

अपारदर्शी—वि० [सं० अ+पारदर्शिन्] दे० 'अपारदर्शक'।

अपारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धरित्री। पृथ्वी [को०]।

अपार्ण—वि० [सं०] १ दूरस्थ। २ निकटस्थ [को०]।

अपार्थ[1]—वि० [सं०] १ अर्थहीन। निरर्थक। २ निष्प्रयोजन। व्यर्थ। ३ नष्ट। प्रभावशून्य।

अपार्थ[2]—संज्ञा पुं० १ कविता मे वाक्यार्थ स्पष्ट न होने का दोष। २ दे० 'अपार्थक' [को०]।

अपार्थक—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय मे एक निग्रह स्थान जो ऐसे वाक्यों के प्रयोग से होता है जो पूर्वापर असबद्ध हो।

अपार्थकरण—संज्ञा पुं० [सं०] मुकदमे मे झूठा बयान, दलील या तर्क उपस्थित करना [को०]।

अपार्थिव—वि० [सं०] अभौतिक। जो पृथ्वी या मिट्टी से सबद्ध अथवा उत्पन्न न हो [को०]।

अपालक—संज्ञा पुं० [सं० अपालङ्क] आरग्वध। अमलतास [को०]।

अपाल—वि० [सं०] रक्षाहीन। रक्षकविहीन [को०]।

अपाव—संज्ञा पुं० [सं० अपाय=नाश] अन्यथाचार। अन्याय। उपद्रव

अपावन—वि० पुं० [सं०] [वि० स्त्री० अपावनी] अपवित्र। अशुद्ध। मलिन। उ०—तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।—मानस, पृ० ५२।

अपावरण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अपावृति] १ उघारना। खोलना। २ ढाकना। छिपाना। ३ आवृत करना [को०]।

अपावर्त्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १ पलटाव। वापसी। २ भागना। पीछे हटना। ३ लौटना।

अपावृत—वि० [सं०] १ जो ढका या बद न हो। २ जो ढका, बद या आवृत हो। ३ स्वतत्र। अनियत्रित [को०]।

अपावृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपावरण' [को०]।

अपावृत्त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ लौटना (घोडे का)। २ (युद्ध मे) बगली काटना [को०]।

अपावृत्त[2]—वि० [सं०] १ पछाडा हुआ। भागा या भगाया हुआ। हराया हुआ। २ तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार करनेवाला [को०]

अपाश्रय[1]—वि० [सं०] बेसहारा। निराधार। आश्रयहीन। निरवलब असहाय। दीन [को०]।

अपाश्रय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सिरहाना। बिस्तर का वह भाग जहाँ सिर को आश्रय दिया जाय। २ चँदोवा या शामियाना। ३ आश्रयस्थल [को०]।

अपाश्रित—वि० [सं०] १ एकान्तसेवी। क्षेत्रसन्न्यस्त। २ जिसने ससार के सब कामों से छुटकारा पा लिया हो। विरक्त। त्यागी। ३ अविवमित [को०]। ४ आवद्ध [को०]। ५ अवलंबित [को०]।

अपासग—सज्ञा पुं० [सं० अपासङ्ग] तरकश। तूणीर [को०]।

अपासन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपासित, अपास्त] १ क्षेपण। फेंकना। २ छोड़ना। त्यागना। ३.मारना। वध करना [को०]।

अपासरण—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपासृत] प्रस्थान। निर्गमन। अपसरण [को०]।

अपासु—वि० [सं०] प्राणहीन। मृत [को०]।

अपासृत—वि० [सं०] प्रस्थित। निर्गमित। [को०]।

अपाहज(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपाहिज'। उ०—और दरिद्री, दुखिया, अपाहजों की सहायता करने मे अभिरुचि रखता था। —श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३०८।

अपाहिज—वि० [सं० अपभञ्ज, प्रा० अपहज] १ अग भग। खज। लूला लँगड़ा। २ काम करने के अयोग्य। जो काम न कर सके। ३ आलसी।

अपिंडी—वि० [सं० अपिण्डिन्] पिंडरहित। बिना शरीर का। अशरीरी।

अपि[1]—अव्य [सं०] १ भी। ही। २ निश्चय। ठीक। उ०—रामचद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्वान। ज्ञानवत अपि सोइ नर, पसु बिनु पूँछ, बिखान।—तुलसी ग्र०, पृ० ११४।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समीप, सबध आदि अर्थों मे भी मिलता है, जैसे, अपिकक्ष, अपिकर्ण, आदि। सभावना, प्रश्न, गर्हा, शका, समुच्चय, अयुक्त पदार्थ, कामचार क्रिया, विरोध, वितर्क अर्थ मे भी इसका प्रयोग विहित है।

अपिगीर्ण—वि० [सं०] १ स्तुत। प्रशंसित। २ कथित। वर्णित [को०]।

अपिच—अव्य० [सं०] १ और भी। पुनश्च। २ बल्कि।

अपिच्छिल—वि० [सं०] १ निर्मल। पकहीन। स्वच्छ। २. गभीर। गहरा [को०]।

अपिज[1]—वि० [सं०] पुनर्जन्मा। फिर से उत्पन्न [को०]।

अपिज[2]—सज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठ मास [को०]।

अपितु—अव्य० [सं०] १ किंतु। २ बल्कि। ३ और [को०]। उ०—त्रिविध भाँति को सबद बर बिघट न लट परमान। कारन अविरल अल अपितु तुलसी अविद भुलान।—स० सप्तक,पृ०२६।

अपितृक—वि० [सं०] १ पिताविहीन। २ अपैतृक।

अपित्र्य—वि० [सं०] अपैतृक [को०]।

अपित्व—सज्ञा पुं० [सं०] विभाग। अश। हिस्सा [को०]।

अपित्वी—वि० [सं० अपित्विन्] हिस्सेवाला। अश या भाग रखनेवाला [को०]।

अपिधान—सज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन। आवरण। ढक्कन। पिहान। २. ढकना। आच्छादन करना [को०]। ३. आच्छादन वस्त्र [को०]।

यौ०—अमृतापिधान = भोजन के पीछे का आचमन। भोजन के उपरांत 'अमृतापिधानमसि' कहकर आचमन करते हैं।

अपिनद्ध—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपिनद्धा] बँधा हुआ। जकड़ा हुआ। ढँका हुआ।

अपिव्रत—वि० [सं०] १.अविभक्त धार्मिक कृत्योंवाला। जिनके धार्मिक व्रत, कर्म और कृत्य समान हों। २ रक्त द्वारा सबधित। एक रक्त का [को०]।

अपिहित—वि० [सं०][वि० स्त्री० अपिहिता] १ आच्छादित। ढँका हुआ। आवृत। २.जो आवृत न हो। खुला हुआ। स्पष्ट [को०]।

अपी[1](पु)—सर्व० [हिं० आप] स्वय। खुद। उ०—अपी बैठी सुदर परदे के अदर, बुरा मुल्ला कूँ, अपने घर के भीतर।—दक्खिनी०, पृ० २४६।

अपी[2](पु)—अव्य [हिं० [सं० 'अपि']। उ०—धनवत कुलीन मलीन अपी। द्विज चीन्ह जनेउ उघार तपी।—मानस,७।१०१।

अपीच(पु)—वि० [सं० अपीच्य] सुदर। अच्छा। उ०—(क) बिमल बिछाइत गिलम गलीचा। तखत सिंहासन फरस अपीचा। बाँधहु ध्वज थल थलन अपीचो। नृप मारग चदन जल सीचो।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) फहर गई धौं कर्ब रग के फुहारन मे, केधौं तरातोर भई अतर अपीच मे।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३१६।

अपीच्य—वि० [सं०] १.अति सुदर। अच्छा। खूबसूरत।

यौ०—अपीच्य वेश। अपीच्य दर्शन।

२.गोप्य। छिपा हुआ। अतर्हित।

अपीत[1]—वि० [सं०] १.जिसने मद्य न पी हो। २ जिसे पिया न गया हो। ३.जो पीला न हो [को०]।

अपीत[2]—सज्ञा पुं० पीत से पृथक् वर्ण। पीतेतर वर्ण [को०]।

अपीति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रवेश। २ विलय। मृत्यु। ३ प्रलय। ४. विनाश [को०]।

अपीन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपीन'[1]। उ०—मात कमजा सुग्गला या जुद्धा खग भाल। अजक अपीधा अमल ज्यू विण कीधा रणताल।—रा० रू० पृ० ७४।

अपीनस—सज्ञा पुं० [सं०] १.नासाशोथ। नाक की शुष्कता। २.सर्दी जुकाम [को०]।

अपील[1](पु)—वि० [हिं० अपेल] अटल। अडिग। उ०—गुरु धाम कजा, मनी मैन मजा। धनू तोड भजा, सो लीन अपील।—घट०, पृ० ३८५।

अपील[2]—सज्ञा स्त्री० [अं० एपील] १ निवेदन। विचारार्थ प्रार्थना। २ पुनर्विचारार्थ। प्रार्थना। मातहत अदालत के फैसले के विरुद्ध ऊँची अदालत मे फिर विचार करने के लिये अभियोग उपस्थित करना। ३.वह प्रार्थनापत्र जो किसी अदालत के फैसले को बदलवाने या रद्द कराने के लिये उससे ऊँची अदालत मे दिया जाय।

क्रि० प्र०—करना। होना।

यौ०—अपीलअदालत = जहाँ मुकदमों की निगरानी या पुनर्विचार हो।

अपीलांट—सज्ञा पुं० [अं० एपेलेंट] अपील करनेवाला व्यक्ति।

अपीली—वि० [अं० एपील + हिं० ई (प्रत्य०)] अपील संबंधी।

अपीव(पु)—वि० [स० अपेय] १. पेय जो दुर्लभ हो। अमृत। उ०—उ।टत पवन अलटत बाणी अपीव पीवत जे ब्रह्मज्ञानी।—गोरख०, पृ० ३२। २ न पीने योग्य। अपेय। उ०—ह्वै है अधिक अपीव जीव, कोउ नीर न छ्वैहै।—दीन० ग्र०, पृ० २०२।

अपु(पु)—सर्व० [हिं० आप] १ आप। स्वय। २ आपस मे। उ०—रचि महाभारत कहूँ लरावत अपु मे भैया भैया।—ब्रजमाधुरी०, पृ० ३६६।

अपुच्छ—वि० [स०] पुच्छरहित। बिना पूँछ का [को०]।

अपुच्छा—सज्ञा स्त्री० [स०] शिंशपा वृक्ष। शीशम का पेड [को०]।

अपुट्ठना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अपूठना'।

अपुण्य¹—सज्ञा पुं० [स०] पुण्य का अभाव। पाप [को०]।

अपुण्य²—वि० जो पुण्य या पावन न हो। कलुषित [को०]।

अपुत्र—वि० [स०] जिसके पुत्र न हो। नि सतान। पुत्रहीन। निपूता।

अपुत्रक—वि० [स०] दे० 'अपुत्र' [को०]।

अपुत्रिक—सज्ञा पुं० [स०] ऐसी पुत्रहीना कन्या का पिता जो स्वय पुत्रहीन होते हुए भी कन्या को उत्तराधिकारी नही बना सकता [को०]।

अपुत्रिका—सज्ञा स्त्री० [स०] पुत्रहीन पिता की वह कन्या जो स्वयं भी पुत्रहीना हो [को०]।

अपुत्रीय—वि० [स०] दे० 'अपुत्रक' [को०]।

अपुन(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—जो हरि व्रत निज उर न धरैगो। तो को अस त्राता जो अपुन करि, कर कुठाँव पकरैगो।—सूर०, १।७५।

अपुनपो(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अपनपौ'।

अपुनपौ(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपौ'। उ०—वाकी मारि अपुनपौ राखै, सूर व्रजहिं सों जाइ। सूर०, १०।६०।

अपुनरादान—सज्ञा पु० [स०] वह जो पुन ग्रहण न किया जाय [को०]।

अपुनरावर्तन—सज्ञा पु० [स०] पुनरावर्तन का अभाव। मुक्ति। मोक्ष।

अपुनरावृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पुनरावृत्ति का अभाव। मोक्ष। निर्वाण। २ मृत्यु [को०]।

अपुनर्भव—सज्ञा पु० [स०] १ फिर जन्म न ग्रहण करना। मोक्ष। निर्वाण। उ०—अच्छा होता, यदि यो होता। पर, वह गत तो है अपुनर्भव।—अपलक, पृ० ८। २ (रोगादि का) फिर न होना।

अपुनीत—वि० [स०] १ जो पुनीत न हो। अपवित्र। अशुद्ध। उ०—सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई।—मानस, १।६९। २ दूषित। दोषयुक्त।

अपुव्व(पु)—वि० [स० अपूर्व] अद्भुत। बेजोड। उ०—सुनि सुदरवर वज्जने अई अपुव्व कोइ दिट्ठ।—पृ० रा०, ६१।११४७।

अपुराण—वि० [स०] १ पुराना नही। आधुनिक। नया [को०]।

अपुरुव(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपूर्व' उ०—बहुरि कँवर जो पाछे देखा, अपुरुव रूप चित्र एक पेखा।—चित्रा०, पृ० ३३।

अपुरुष¹—वि० [स०] अमानवीय। अमानुषिक (को०)।

अपुरुष²—सज्ञा पु० नपुंसक। हिजडा [को०]।

अपुष्कल—वि० [स०] १ बहुत नही। थोडा। २. तुच्छ। निम्न। क्षुद्र [को०]।

अपुष्ट—वि० [स०] १ जिसका ठीक ढग से पोषण न हुआ हो। जो हट्टा कट्टा न हो। दुबला पतला। २ दुर्बल। मद। क्षीण। ३ असमर्थ। कमजोर। ४ एक अर्थदोष जिसमे व्यग्य या अर्थ स्पष्ट न हो [को०]।

अपुष्टान्न—सज्ञा पु० [स० अपुष्ट + अन्न] १ वह अन्न या खाद्य जो बलवर्धक न हो।

अपुष्प¹—वि० [स०] पुष्पहीन। न फूलनेवाला [को०]।

अपुष्प²—सज्ञा पु० गूलर का वृक्ष [को०]।

अपुष्पफल¹—वि० [स०] बिना पुष्पित हुए फल देनेवाला। बिना फूल फल का [को०]।

अपुष्पफल²—सज्ञा पुं० १ कटहल। २ गूलर [को०]।

अपुष्पफलद—वि० सज्ञा पु० [स०] दे० 'अपुष्पफल' [को०]।

अपूजक—वि० [स०] पूजन न करनेवाला। भक्तिहीन। अधार्मिक [को०]।

अपूजा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अधार्मिकता। २ अपमान। अनादर।

अपूजित—वि० [स०] जिसकी पूजा अर्चना न की जाती हो [को०]।

अपूज्य—वि० [स०] पूजा या समान के अयोग्य। उ०—ब्रह्महि श्राप दियो तब जानी। होहि अपूज्य कहि वादि भवानी।—कबीर सा० पृ० २२।

अपूठना(पु)—क्रि० स० [स० अ = नहीं + पृष्ठ, प्रा० पुट्ठ = पीठ अथवा देश०] १ विदारण करना। विध्वस करना। नाश करना। २ उलटना पलटना।—जननी हौं रघुनाथ पठायो। रामचद्र आए की तुमको देन बधाई आयो। रावन हति लै चलौं साथ ही लका धरौं अपूठी। यातै जिय सकुचात नाथ की होइ प्रतिज्ञा झूठी।—सूर०, ९।८७।

अपूठा¹(पु)—वि० [स० अपुष्ट प्रा० अपुट्ठ] [स्त्री० अपूठी] अपरिपक्व। अजानकार। अनभिज्ञ। उ०—तुम तो अपने ही मुख झूठे। निर्गुण छवि हरि बिनु को पावै ज्यौं आँगुरी अँगूठे। निकट रहत पुनि दूर बतावत हौ रस माहि अपूठे।—सूर (शब्द०)।

अपूठा²(पु)—[स० अस्फुट, प्रा० अफुट] अविकसित। बेखिला। बँधा। उ०—परमारथ पाको रतन, कबहुँ न दीजै पीठ। स्वारथ सेमल फूल है, कली अपूठी पीठ।—कबीर (शब्द०)।

अपूठा³(पु)—क्रि० वि० [स० आ + पृष्ठ, प्रा० आपुट्ठ, आपिट्ठ] १ पीछे। पीठ की ओर। उलटे। उ०—गग अपूठी क्यु वहई।—वी० रासो, पृ० ६०। २ वापस राजि अपूठा वाहुडउ, मालवणी मूई।—ढोला०, दू० ४०४।

अपूठी(पु)—वि० [स० अपृष्ट प्रा० अपुट्ठि] बिना पूछे। बिना बात के। बिना सवाल किए। उ०—जेठी घी कै गलै छुरी है, वहू अपूठी चाली।—सुदर ग्र०, पृ० ८२९।

अपूत¹—वि० [स०] अपवित्र। अशुद्ध।

अपूत²(पु)—वि० [स० अ = नहीं + पुत्र, प्रा० पुत्त] पुत्रहीन। निपूत।

अपूत³(पु)—सज्ञा पु० [स० अ = बुरा + पुत्र, प्रा० पुत्त] कुपूत। बुरा लडका। उ०—तोसें सपूतहि जाइकै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।—राम च०, पृ० ११४।

अपूता—वि० [हि०] निपूना । पुत्रहीन ।
अपूप—संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ के आटे की लिट्टी जिसे मिट्टी के कपाल या कसोरे मे पका कर यज्ञ मे देवताओ के निमित्त हवन करते थे । २ लिट्टी [को०] । ३ अनरसा [को०] । ४ मालपुआ [को०] । ५ गेहूँ [को०] । ६ शहद का छत्ता [को०] ।
अपूप्य¹—वि० [सं०] अपूप संबंधी या उनके काम की [को०] ।
अपूप्य²—संज्ञा पुं० आटा । पिसान [को०] ।
अपूर¹(पु)—वि० [सं० आपूर, हि० पूरा, पूरा] पूरा । भरपूर । उ०—(क) लवग सुपारी जायफर, सब फर फरे अपूर । (ख) जलथल भरे अपूर सब, धरनि गगन मिल एक ।—जायसी (शब्द०) ।
अपूर²(पु)†—वि० [हि०] १ दे० 'अपूर्ण' । २ पूररहित । प्रवाहरहित बिना बाढ का ।
अपूरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शाल्मली या सेमर का वृक्ष [को०] ।
अपूरना(पु)†—क्रि० स० [सं० आपूर्णन्] १ भरना । २ फूँकना । बजाना । उ०—सुना सख जो विष्णु अपूरा । आगे हनुमत केर लँगूरा ।—जायसी (शब्द०) ।
अपूरब(पु)—वि० [हि०] दे० 'अपूर्व' । उ०—सरित नेह नव नीर नित बरसत सुर अथोर । जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर ।—भारतेंदु ग्रं०, पृ० ५७७ ।
अपूरबता—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अपूर्वता' ।
अपूरबताई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अपूर्वता' । उ०—दई यह कैसी अपूरबताई ।—प्रेमघन ग्रं०, पृ० २१२ ।
अपूरा¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आ + पूर] [स्त्री० अपूरी] भरा हुआ । फैला हुआ । व्याप्त । उ०—चला कटक अस चढा अपूरी । अगलहि पानी पिछलहि धूरी ।—जायसी (शब्द०) ।
अपूरा²(पु)—[सं० अ + पूर] जो पूरा न हो ।
अपूर्ण—वि० [सं०] १ जो पूर्ण न हो । जो भरा न हो । २ अधूरा । असमाप्त । ३ कम । अल्प ।
अपूर्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अधूरापन । उ०—प्राणहीन वह कला नही जिसमे अपूर्णता शोभन ।—युगवाणी, पृ० ३० । २ न्यूनता । कमी । उ०—तुम अति अबोध अपनी अपूर्णता को न स्वयं तुम समझ सके ।—कामायनी पृ० १६३ ।
अपूर्णभूत—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण मे वह क्रिया का भूतकाल जिसमे क्रिया की समाप्ति न पाई जाय । जैसे—वह खाता था । (शब्द०) ।
अपूर्व¹—वि० [सं०] १ जो पहिले न रहा हो । उ०—और शुचिता का अपूर्व सुहाग ।—साकेत, पृ० १६३ । २ अद्भुत । अनोखा । अलौकिक । विचित्र । ३ अनुपम । उत्तम । श्रेष्ठ ।
अपूर्व²—संज्ञा पुं० [सं०] १ परमात्मा । परब्रह्म । २. मीमासा के अनुसार अदृष्ट फल । ३ पाप पुण्य [को०] ।
अपूर्वता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विलक्षणता । अनोखापन । श्रेष्ठता ।
अपूर्वत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपूर्वता' [को०] ।
अपूर्वपति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी । कन्या जिसका विवाह न हुआ हो [को०] ।
अपूर्वरूप—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालकार जिससे पूर्वगुण की प्राप्ति का निषेध हो । यह पूर्वरूप का विपरीत अलकार है । जैसे—'क्षय ह्वै ह्वै करहू शशी, बढत जु बारहि बार । त्यों पुनि यौवन प्राप्ति नहिं, न कर मान निति नार ।' यहाँ पर दिखाया गया है कि जिस प्रकार चद्रमा क्षय के पश्चात् पुन पूर्णता प्राप्त करता है, उस प्रकार यौवन एक बार जाकर फिर नही आता ।
अपूर्ववाद—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म सबधी वादविवाद या परिचर्चा [को०] ।
अपूर्वविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] उस वस्तु को प्राप्त करने की विधि जिसका बोध प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणो द्वारा न हो सके । जैसे, स्वर्ग की कामना हो तो यज्ञ करे । यहाँ पर स्वर्ग, जिसकी प्राप्ति की विधि बताई गई है प्रत्यक्ष और अनुमान आदि द्वारा सिद्ध नही होता ।
विशेष—यह विधि चार प्रकार की है—(क) कर्मविधि—जैसे, अग्निहोत्र करे तो स्वर्ग होगा । (ख) गुणविधि—जिसमे यज्ञ या कर्म के अनुष्ठान की सामग्री और देवता आदि का निर्देश हो । (ग) विनियोग विधि—जैसे, गार्हपत्य मे इद्र की ऋचा का विनियोग करे । (घ) प्रयोग विधि—अर्थात् अमुक कर्म के हो जाने पर अमुक कर्म करने का आदेश, जैसे—गुरुकुल से विद्या पढकर समावर्तन करे ।
अपृक्त¹—वि० [सं०] १ बेमेल । बेजोड । बिना मिलावट का । २ बिना लगाव का । असबद्ध । ३ खालिस अकेला ।
अपृक्त²—संज्ञा पुं० पाणिनी के मतानुसार एक अक्षर का प्रत्यय ।
अपेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपेक्षा' [को०] ।
अपेक्षणीय—वि० [सं०] अपेक्षा करने योग्य । वाछनीय ।
अपेक्षया—क्रि० वि० [सं० अपेक्षया] किसी की तुलना मे अपेक्षाकृत ।
अपेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आकाक्षा । इच्छा । अभिलाषा । चाह । जैसे,—कौन पुरुष है, जिसे धन की अपेक्षा न हो । २ आवश्यकता । जरूरत । जैसे—सन्यासियो को धन की अपेक्षा नही है । ३. आश्रय । भरोसा । आशा । जैसे—पुरुषार्थी पुरुष किसी की अपेक्षा नही करते । ४ कार्य कारण का अन्योन्य सबध । ५ निस्बत । तुलना । मुकाबिला । जैसे—बँगला की अपेक्षा हिंदी सरल है । उ०—बात बनाने मे पुरुषो की अपेक्षा स्त्री स्वभाव से चतुर होती हैं ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ६३ ।
विशेष—इस अर्थ मे यह मात्राभेद दिखाने के लिये व्यवहृत होता है और इसके आगे मे लुप्त रहता है ।
६ प्रतीक्षा । इतजार ।
अपेक्षाकृत—अव्य० [सं०] मुकाबले मे । तुलना मे । निस्बतन् ।
अपेक्षाबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊहापोह की क्षमता या बुद्धि । कार्य-कारण सबध थाहने की प्रतिभा । भेद बुद्धि [को०] ।
अपेक्षित—वि० [सं०] १ जिसकी अपेक्षा हो । जिसकी आवश्यकता हो । आवश्यक । उ०—प्रेम के लिये व्यक्ति की कोई विशेषता अपेक्षित होती है ।—रस०, पृ० ७८ । २ इच्छित । वाछित । उ०—वास्तव मे कला की दृष्टि दोनो ही प्रकार के कथ्यो मे अपेक्षित है ।—रस०, पृ० ५७ ।
अपेक्षी—वि० [सं० अपेक्षिन्] १ आशा लगा रखनेवाला । २ प्रतीक्षा करनेवाला । ३ आकाक्षी ।
विशेष—इसका प्रयोग समासात मे सुख्यत प्राप्त होता है, जैसे,—परबलापेक्षी, विधिबलापेक्षी, परमुखापेक्षी आदि ।

[illegible] [illegible] [illegible] (को०) ।

[illegible] — [illegible] [illegible] अ — देखना] १ [illegible] । जो देखने में न आता [illegible] [illegible] ।

[illegible] [illegible] [स० अपस्ना] [illegible] । [illegible] । [illegible] । उ०— [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करति [illegible] पवेगं ।—ब्रज- [illegible], पृ० [illegible] ।

[illegible] [illegible] [हिं०] [illegible] ।

[illegible] [illegible] [illegible] १. [illegible] । [illegible] । २ मुक्त (को०) । ३ [illegible] ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का पौधा (को०) ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

[illegible] — [illegible] [illegible] अ— नहीं + प्रा० पेम्म हिं० पेम] जो हटे नहीं । [illegible] । [illegible] । उ०—(क) [illegible] [illegible] पुन होइ [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] न [illegible] [illegible] सिद्धांत [illegible] — [illegible], [illegible] ।

[illegible] [illegible] — [illegible] [illेगी] [illegible] [illegible] का यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सीमा के अतर्गत [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] करता है और [illegible] [illegible] [illegible] जुरिसडिक्शन भी कहते हैं ।

[illegible] — [illegible] [illegible] अप्रविष्ट, प्रा० अपविट्ठ प्रा० अपइट्ठ] जहाँ पैठ [illegible] [illegible] । दुर्गम । [illegible] ।

[illegible] — [illegible] [illegible] अ + पैतृक] जो [illegible] [illegible] न हो । जो पैतृक न हो (को०) ।

[illegible] — [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ऊपर की [illegible] ।२ [illegible] । ३ [illegible] । [illegible] (को०) । ४ [illegible] या [illegible] अग- [illegible] । [illegible] (को०) । ५. [illegible] । [illegible] (को०) ।

[illegible] — [illegible] [illegible] अ + [illegible] । [illegible] । [illegible] । उ०— [illegible] विवाद [illegible] [illegible] [illegible] ।— [illegible] ग्र०, १८० ।

[illegible] — [illegible] [illegible] अ + पुष्ट, प्रा० पुट्ठ, पुड्ड, पोड्ड, हिं० अ + पोढ] [illegible] । [illegible] । [illegible] । उ०— [illegible] दै [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] न [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।— [illegible], [illegible] ३८३ ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (को०) ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] । [illegible] या [illegible] का [illegible] (को०) ।

[illegible] — [illegible] [illegible] अपोह] [illegible] [illegible] न हो । बिना जोड़ [illegible] । उ०— [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।— [illegible], पृ० १२० ।

[illegible] — [illegible] [illegible] १ [illegible] । [illegible] । [illegible] । दूर [illegible] [illegible] [illegible] के लिये [illegible] किया [illegible] [illegible] । ३ [illegible] [illegible] का [illegible] (को०) ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (को०) ।

[illegible] [illegible] [illegible] अपौरुष] दे० 'अपौरुष' (को०) ।

[illegible] — [illegible] [illegible] जिसके [illegible] का दुर्गंध न आई हो (को०) ।

अपौरुष[1]—वि० [स०] १ पुंसत्वहीन । पुरुषत्वहीन । २ अपुरुषोचित । कायरतापूर्ण । भीरु । ३ मानवीय या मानवकृत नहीं । दैवी । ईश्वरीय (को०) ।

अपौरुष—संज्ञा पुं० [स०] १ पौरुष का अभाव । २ दैवीशक्ति (को०) ।

अपौरुषेय—वि० संज्ञा पुं० [स०] दे० 'अपौरुष' ।

अप्चर—संज्ञा पुं० [स०] जलजंतु (को०) ।

अप्छर(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सर' उ०—ताहि देखि अप्छरा मन मोहत ।—प० रासो, पृ० २६ ।

अप्छरा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] 'अप्सरा' । उ०—बिरस भए मुनि अप्छरा, मुनिजयत तप व्रत नेम ।—हमीर रा०, पृ० २८ ।

अप्तु—संज्ञा पुं० [स०] १ शरीर । गात्र । अंग । २ सोम । ३. यज्ञीय पशु । बलि पशु (को०) ।

अप्तोर्याम—संज्ञा पुं० [स०] अग्निष्टोम यज्ञ का एक अंग ।

अप्प(पु)—सर्व० [आत्म, प्रा० अप्प] अपना । उ०—भयौ अंधकार महाघोर ऐन । गई बुद्धि गुज्झै नही अप्प नैन ।—हमीर रा० पृ० ३७ ।

अप्पटि(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'अटपटी'[2] । उ०—पर प्रगट परदर्ब पर स्त्री निसु दिन फिरत रहत निजु नत्त । अप्पटि पाप नप्पटि बात निप्पटि अवमि करत निज नत्त ।—अकबरी, पृ० ३२६ ।

अप्पति—संज्ञा पुं० [स०] १ सागर । समुद्र । २. वरुण (को०) ।

अप्पना(पु)†—क्रि० स० [स० अर्पण] अर्पित करना । देना । उ०—(क) केलि कर बाँधि धरि चरण तल अप्पिमा ।—कीर्ति०, पृ० ६६ । (ख) इसी विधि अप्पिय आयसु देव ।—राम० धर्म० पृ० ३४७ ।

अप्परमाण(पु)† —वि० [हिं०] दे० 'अप्रमाण' । उ०—माया अपुराण अप्परमाण किंकर जाण जमराण ।—रा० रू०, पृ० २१६

अप्पित्त—संज्ञा पुं० [स०] १ अग्नि । २ एक प्रकार का पौधा (को०) ।

अप्यय—संज्ञा पुं० [स०] १ बहना (नदी आदि का) । २. लय । नाश । ३. जोड़ । मिलन । संधि (को०) ।

अप्ययन—संज्ञा पुं० [स०] १ मेल । योग । संयोग । २ मैथुन (को०) ।

अप्र पर(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपरंपार' । उ०—पग अधिक गुण बदन अप्रपर अबुज अवनि सार अभिराम ।—रघु० रू०, पृ० २४८ ।

अप्रकंप—वि० [स० अप्रकम्प] १ कंपहीन । स्थिर । २ जिसका उत्तर न दिया जा सके । जिसका खंडन न हो सके (को०) ।

अप्रकट—वि० [स०] जो सामने प्रकट या व्यक्त न हो । प्रच्छन्न ।

अप्रकटित—वि० [स०] दे० 'अप्रकट' । उ०—मानवप्राणित अप्रकटित सत्प्राण विश्व का करता है ।—प्रेम०, पृ० ८६ ।

अप्रकर—वि० [सं०] अच्छी तरह से कार्य न करने वाला (को०) ।

अप्रकरण—संज्ञा पुं० [सं०] जो मुख्य विषय से संबद्ध न हो । प्रासंगिक । अप्रामाणिक विषय (को०) ।

अप्रकल्पक—वि० [सं०] अनिर्दिष्ट । अनिर्धारित । (को०) ।

अप्रकांड[1]—वि० [स० अप्रकाण्ड] १. शाखाविहीन । २. लघु (को०) ।

अप्रकांड[2]—वि० झाड़ी । गुल्म (को०) ।

अप्रकाश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रकाश का अभाव। अंधकार। २.गुप्त बात। रहस्य (को०)।

अप्रकाश[2]—वि० १ प्रकाशहीन। अंधकारपूर्ण। २ अप्रकट। गुह्य। ३ स्वतः प्रकाशित [को०]।

अप्रकाशित—वि० [सं०] १ जिसमे उजाला न किया गया हो। अँधेरा। २ जो प्रकट न हुआ हो। गुप्त। छिपा। ३ जो सर्वसाधारण के सामने न रखा गया हो। जो छापकर प्रचलित न किया गया हो।

अप्रकाश्य—वि [सं०] जो प्रकाश या प्रकट करने योग्य न हो। गोप्य।

अप्रकृत[1]—वि० [सं०]१ अस्वाभाविक। २ बनावटी। कृत्रिम। गढा हुआ। ३ झूठा। ४ गौण। अप्रासंगिक [को०]। ५ आकस्मिक [को०]।

अप्रकृत[2]—संज्ञा पुं० १ उपमान। २ पागल व्यक्ति [को०]।

अप्रकृताश्रितश्लेष—संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष नामक शब्दालंकार का एक भेद जिसमे प्रस्तुत और अप्रस्तुत का श्लेष हो। जैसे—तिय तौ ऐसी चंचलता, जीवन सुखद समच्छ। बसति हृदय घनश्याम के वर मारग सुप्रच्छ।

विशेष—यह दोहा शब्दो को भग अर्थात् अक्षरो को कुछ इधर उधर कर देने से,स्त्री और बिजली दोनों पर घटता है। स्त्रीपक्ष मे अर्थ करने मे सखी नायिका से कहती है कि तेरे समान दूसरी स्त्री जीवनसुखदायिनी और कमलनयनी घनश्याम के हृदय मे बसती है। बिजली पक्ष लेने से यह अर्थ होता है कि हे, स्त्री ! तेरे समान बिजली है जो जीवन अर्थात् जल देनेवाली है, इत्यादि। इन दोनों पक्षो मे दूसरी स्त्री और बिजली दोनों अप्रस्तुत हैं।

अप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्राकृतिक या स्वाभाविक स्थिति का अभाव। विकृति। २ साख्य के अनुसार कार्यकारण से भिन्न आत्मा। पुरुष [को०]।

अप्रकृतिस्थ—वि० [सं०] १ अस्वस्थ। बीमार। रोगादि या अन्य भय से ग्रस्त [को०]।

अप्रकृष्ट[1]—वि० [सं०] क्षुद्र। नीच। बुरा [को०]।

अप्रकृष्ट[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ। वायस [को०]।

अप्रकेत—वि० [सं०] जिसे जाना न जा सके। अविज्ञेय। अप्रतर्क्य। उ०—आदि मे तम से घिरा हुआ तम था, वह अप्रकेत (अप्रज्ञायमान) था, और सलिल (जल) था।—आर्यो०,पृ०१८३।

अप्रखर—वि० [सं०]१ मृदु। कोमल। २ जो तेज न हो। अतीक्ष्ण [को०]। ३ सुस्त [को०]।

अप्रगल्भ—वि० [सं०] १ अप्रौढ। अपरिपक्व। अपरिपुष्ट। २ निरुत्साह। निरुद्यम। ढीला। सुस्त [को०]।

अप्रगुण—वि० [सं०] परेशान। घबड़ाया हुआ [को०]।

अप्रग्राह—वि० [सं०] अनियंत्रित। बेलगाम [को०]।

अप्रचरित—वि० [सं०] जिसका प्रचार न हो। अप्रचलित।

अप्रचलित—वि० [सं०] जो प्रचलित न हो। जिसका चलन न हो। अव्यवहृत। अप्रयुक्त।

अप्रचारित—वि० [सं० अ + प्रचारित] जिसका प्रचार या प्रसार न किया गया हो।

अप्रचोदित—वि० [सं०] अनिर्दिष्ट। अवांछित। अप्रेरित [को०]।

अप्रच्छन्न—वि० [सं०] १. जो प्रच्छन्न न हो। खुला हुआ। अनावृत। २ स्पष्ट। प्रकट।

अप्रच्छिन्न—वि० [सं०] जो पृथक् न हुआ हो। अविभक्त [को०]।

अप्रछन्न(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अप्रच्छन्न'। उ०—इम कहत देवि अप्रच्छन्न हो।—पृ० रा०, ६४।७२।

अप्रज—वि० [सं०][वि० स्त्री० अप्रजा] १ संततिहीन। निस्संतान।२. अजन्मा। ३ जनहीन [को०]।

अप्रजै(पु)—वि० [हिं०]दे० 'अपराजेय'। उ०—भाण माण भुजै ऊठियो अप्रजै।—रा० रू०, पृ० २७०।

अप्रज्ञ[1]—वि० [सं०] मंदबुद्धि। बुद्धिहीन मतिहीन। प्रज्ञाशून्य [को०]।

अप्रज्ञ[2]—संज्ञा पुं० मूर्ख या पुरुष [को०]।

अप्रतर्क्य—वि० [सं०] जिसके विषय मे तर्क वितर्क न हो सके। जो तर्क द्वारा निश्चित न हो सके।

अप्रति—वि० [सं०] १. अप्रतिम। बेजोड़। अद्वितीय। २ जिसका कोई विरोधी, शत्रु या प्रतिद्वंद्वी न हो [को०]।

अप्रतिकर—वि० [सं०] विश्वसनीय। विश्वासपात्र। विश्वस्त [को०]।

अप्रतिकार[1]—संज्ञा पुं० [सं][वि० अप्रतिकारी] १ उपाय का अभाव। तदबीर का न होना। २ बदले का न होना।

अप्रतिकार[2]—वि० १ जिसका उपाय या तदबीर न हो सके। लाइलाज २ जिसका बदला न दिया जा सके।

अप्रतिकारी—वि० [सं० अप्रतिकारिन्] [वि० स्त्री० अप्रतिकारिणी] १ —उपाय या तदबीर न करनेवाला। २ बदला न लेनेवाला। बदला न देनेवाला।

अप्रतिगृह्य—वि० [सं०] जिसका दान या उपहार ग्रहण न किया जा सके [को०]।

अप्रतिगृहीत—वि० [सं०] जिसका प्रतिग्रह न किया गया हो। जो लिया न गया हो।

अप्रतिग्रहण— संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अप्रतिग्राह्य, अप्रतिगृहीत] १ दान न लेना। किसी वस्तु का ग्रहण न करना। २ विवाह न करना। कन्यादान का ग्रहण न करना।

अप्रतिग्राह्य—वि० [सं०] जो प्रतिग्रहण करने योग्य न हो। जो लेने योग्य न हो।

अप्रतिघ—वि० [सं०] १ अदम्य। अजेय। २ जिसे रोका न जा सके। अनिवार्य। ३ क्रोधविहीन। अक्रुद्ध [को०]।

अप्रतिघात—वि० [सं०] १ बिना प्रतिघात का। जिसका कोई प्रतिघात या विरोधी न हो। बेरोक। २ बेठोकर। बेचोट। धक्के से बचा हुआ।

अप्रतिद्वंद्व—वि० [सं० अप्रतिद्वन्द्व] जिसके मुकाबले का कोई न हो। बेजोड़ [को०]।

अप्रतिपक्ष—वि० [सं०] १ जिसका कोई विरोधी या स्पर्धी न हो। विरोधीविहीन। २. बेजोड़। असमान [को०]।

अप्रतिपण्य—वि०[सं०]जिसका विक्रयण या विनिमय न हो सके [को०]।

अप्रतिपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अप्रतिपन्न] १ प्रकृत अर्थ समझने की अयोग्यता। २.कर्तव्यनिश्चय का अभाव। वया

करना चाहिए, इसका बोध न होना। ३ निश्चय का अभाव। ४ स्फूर्ति का अभाव [को०]। ५ असफलता [को०]। ६. जडता [को०]।

अप्रतिपन्न—वि० [स०] १ कर्तव्यज्ञानशून्य। २. अनिश्चत। अज्ञात। ३ जो सपन्न न हुआ हो। असपन्न [को०]।

अप्रतिबध[1]—सज्ञा पु० [स० अप्रतिबन्ध][वि० अप्रतिबद्ध] रुकावट का न होना। स्वच्छदता।

अप्रतिबध[2]—वि० १ प्रतिबधरहित। निर्वाध। २ निर्विवाद प्राप्त। बिना किसी विवाद के सीधे प्राप्त, उत्तराधिकार [को०]।

अप्रतिबद्ध—वि० [स०] १ बेरोक। स्वतत्र। स्वच्छद। २ मनमाना।

अप्रतिबल—वि० [स०] बल या शक्ति मे जिसके जोड का दूसरा न हो। बेजोड ताकतवाला [को०]।

अप्रतिभ—वि० [स०] १ प्रतिभाशून्य। चेष्टाहीन। उदास अप्रगल्भ। २ स्फूर्तिशून्य। सुस्त। मद। उ०—हँसे सुलतान, और अप्रतिभ होती मैं जकडी हुई थी अपनी ही लाजशृ खला मे।—लहर, पृ० ८०। ३ मतिहीन। निर्बुद्धि। ४ लजालू। लजीला।

अप्रतिभट[1]—वि० [स०] वीरता मे जिसका जोड न हो। अप्रतिम। उ०—अप्रतिभट वही एक अर्बुद सम महावीर।—अपरा, पृ० ४५।

अप्रतिभट[2]—सज्ञा पु० [स०] बेजोड वीर या योद्धा [को०]।

अप्रतिभा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रतिभा का अभाव। २. न्याय मे वह निग्रह स्थान जहाँ उत्तर पक्षवाला परपक्ष का खडन न कर सके। ३ दब्बूपन।

अप्रतिम—वि० [स०] जिसके समान कोई दूसरा न हो। असदृश। अद्वितीय। अनुपम। बेजोड। उ०—यह अ थरत्न वस्तुत अपने रग ढग का अप्रतिम ठहरता है।—रस क०, पृ० १३।

अप्रतिमान—वि० [स०] अद्वितीय। बेजोड।

अप्रतियोगी—वि० [स० अप्रतियोगिन्] १ जिसका कोई सामना करनेवाला न हो। जिसका कोई प्रतिस्पर्धी या विरोधी न हो। २. जिसके समान दूसरा हिस्सा या भाग न हो [को०]।

अप्रतिरथ[1]—वि० [स०] जिसका मुकाबला करनेवाला कोई वीर योद्धा न हो [को०]।

अप्रतिरथ[2]—सज्ञा पुं० अप्रतिम योद्धा या वीर [को०]।

अप्रतिरव—वि० [स०] निर्विरोध। निर्विवाद [को०]।

अप्रतिरूप—वि० [स०] १ जिसका कोई प्रतिरूप न हो। अद्वितीय अनुपम। २ जो अनुकूल रूप का या ठीक न हो [को०]।

अप्रतिरोध—सज्ञा पुं० [स] प्रतिरोधरहित। बेरोक। निर्वाध।

अप्रतिरोध्य—वि० [स०] जिसे रोका न जा सके। जिसका प्रतिरोध सभव न हो। उ०—वह अप्रतिरोध्य है, पर अधी है, यह तो मैं नहीं मानूँगा।—त्याग०, पृ० ४८।

अप्रतिवार्य—वि० [स०] अनिवार्य। निश्चित। उ०—अत मे कैलास की प्राप्ति अप्रतिवार्य है।—मृग०, प० ४४२।

अप्रतिवीर्य—वि० [स०] अप्रतिम या बेजोड शक्तिवाला [को०]।

अप्रतिशासन—वि० [स०] १ एकतत्र शासन। २ जिसका कोई विरोधी या प्रतिद्वद्वी शासक न हो [को०]।

अप्रतिषिद्ध[1]—वि० [स०] अनिषिद्ध। समत।

अप्रतिषिद्ध[2]—सज्ञा पु० [स०] वास्तु विद्या मे ६ भागों मे विभक्त स्तभपरिमाण के उस भाग का नाम जो ऊपर से गिनने पर दूसरा पडे।

अप्रतिष्ठ[1]—वि० [स०] १ प्रतिष्ठाहीन। बेइज्जत। २ बेसहारा। तिरस्कृत। फेंका हुआ। ३ अस्थिर। ढुलमुल [को०]। ४ अप्रसिद्ध [को०]।

अप्रतिष्ठ[2]—सज्ञा पुं० एक नरक का नाम [को०]।

अप्रतिष्ठा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रतिष्ठा का उलटा। अनादर। अपमान। २ अयश। अपकीर्ति। ३ अस्थिरता [को०]।

अप्रतिष्ठित—वि० [स०] १ जो प्रतिष्ठित न हो। तिरस्कृत। उ०—लाला व्रजकिशोर कुछ ऐसे अप्रतिष्ठित नही है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३४२। २ जो स्थिर या सुव्यवस्थित न हो [को०]।

अप्रतिसख्य—वि० [स० अप्रतिसङ्ख्य] जो ध्यान, दृष्टि या गणना म न आया हो [को०]।

अप्रतिसबद्धाभूमि—सज्ञा स्त्री० [स० अप्रतिसम्बद्धाभूमि] कौटिल्य के अनुसार वह भूमि जो एक दूसरी से पृथक् हो।

अप्रतिहत[1]—वि० [स०] १ जो प्रतिहत न हो। जिसका विघात न हुआ हो। अटूट। उ०—आज भी यह विचारपरपरा अप्रतिहत है।—रस क०, पृ० ४५। २. अपराजित। ३ बिना रोकटोक का। ४ सपूर्ण। समग्र। अनुसरण (को०)।

अप्रतिहत[2]—सज्ञा पुं० अकुश।

अप्रतिहतगति—वि० [स०] जिसकी गति रोकी न जा सके। निर्वाध गतिवाला। उ०—अप्रतिहतगति सस्थानो से रहता था जो सदा बढा।—कामायनी, पृ० २०६।

अप्रतिहतनेत्र[1]—सज्ञा पु० [सं०] एक बौद्ध देवता [को०]।

अप्रतिहतनेत्र[2]—वि० निर्वाध दृष्टिवाला [को०]।

अप्रतिहतव्यूह—सज्ञा पु० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह असहत व्यूह जिसमे हाथी, घोडे, रथ तथा प्यादे एक दूसरे के पीछे हों।

अप्रतिहार्य—वि० [स०] जिसे रोका न जा सके [को०]।

अप्रतीक—वि० [सं०] १ अग या शरीर से रहित। २ ब्रह्म का विशेषण [को०]।

अप्रतीकार—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अप्रतिकार'।

अप्रतीकारी—वि० [सं० अप्रतीकारिन्] दे० 'अप्रतिकारी'।

अप्रतीघात—वि० [स०] दे० 'अप्रतिघात'।

अप्रतीत—वि० [स०] १ अप्रसन्न। २ अगम्य। ३ निर्विरोध। ४ दुर्बोध्य। एक शब्ददोष [को०]।

अप्रतीतत्व—सज्ञा पुं० [स०] दुरूह पारिभाषिक शब्दों का काव्यगत प्रयोग। एक काव्यदोष। उ०—आचार्यों ने पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग को अप्रतीतत्व दोष माना है।—रस०, पृ० ४८।

अप्रतीति—सज्ञा स्त्री० [स०] अर्थ या रूप आदि का समझ मे न आना या स्पष्ट न होना। २ विश्वास का अभाव। अविश्वास। अनिश्चय। उ०—होई कि नहीं सोच मति आनहि अप्रीति हृदये तें टारि। करि विस्वास प्रतीति आनि उर यह नास्तिक्य बुद्धि निरधारि।—सुदर ग्र० पृ० ३८।

अप्रतीयमान—वि० [सं०] जो प्रतीयमान या निश्चित न हो। अनिश्चित।

अप्रतुल[1]—वि० [सं०] १ जिसकी तुलना या मान न हो सके। बेहद। २ अनुपम। बेजोड़।

अप्रतुल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वजन या भार का अभाव। २ अभाव। आवश्यकता [कौ०]।

अप्रत्त—वि० [सं०] जो प्रदान न किया गया हो। न लौटाया हुआ [कौ०]।

अप्रत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी। कन्या जिसका विवाह न हुआ हो [कौ०]।

अप्रत्यक्ष—वि० [सं०] १ जो प्रत्यक्ष न हो। परोक्ष। २. छिपा। गुप्त। ३ अज्ञात [कौ०]। ४ अनुपस्थित [कौ०]।

अप्रत्यनीक—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें शत्रु के जीतने के सामर्थ्य के कारण उससे संबंध रहनेवाली वस्तुओं का तिरस्कार न किया जाय। जैसे—नृप यह पीड़त है परहि, नहिं पर प्रजा सुरार। राहु शशी को ग्रसत है, नहिं तारन जु निहार (शब्द०)।

अप्रत्यय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अविश्वास। भरोसे का अभाव। २. (व्याकरण में) वह जो प्रत्यय न हो [कौ०]।

अप्रत्यय[2]—वि० १ विश्वासरहित। अविश्वास। २ ज्ञानहीन। बोधरहित। ३ (व्याकरण) प्रत्ययशून्य [कौ०]।

अप्रत्याशित—वि० [सं०] जिसकी आशा न रही हो। असंभावित। अचानक। आकस्मिक। उ०—उसमें क्षिप्रगति के साथ अप्रत्याशित विकास होना चाहिए।—स० शास्त्र, पृ० १८२।

अप्रदुग्ध—वि० पूरी तरह दुही हुई। दुग्धरहित [कौ०]।

अप्रधान[1]—वि० [सं०] जो प्रधान या मुख्य न हो। गौण। साधारण। सामान्य।

अप्रधान[2]—संज्ञा पुं० गौण कार्य [कौ०]।

अप्रधृष्य—वि० [सं०] जिसे दबाया या हटाया न जा सके। अजेय [कौ०]।

अप्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० अप्रबन्ध] प्रबंध का अभाव। अव्यवस्था। कुप्रबंध। उ०—ऐसे अप्रबंध, फूट और स्वेच्छाचार की हवा चली कि लोग आपस में कट मरे।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३३३

अप्रबल[1]—वि० [हिं०] दे० 'अपरबल'। उ०—पाणी माहै प्रजली भई अप्रबल आगि। बहति सलिता रहि गई मछ रहे जल त्यागी। कबीर ग्रं० पृ० १२।

अप्रबल[2]—वि० [सं० अ + प्रबल] जो प्रबल न हो। दुर्बल। कमजोर।

अप्रभ—वि० [सं०] १ कांति या तेजस्विताहीन। हतप्रभ। २ तुच्छ। नीच [कौ०]।

अप्रभु—वि० [सं०] १ अधिकार या प्रभावहीन। २. असमर्थ। अयोग्य [कौ०]।

अप्रभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वल्प प्रयास [कौ०]।

अप्रमत्त—वि० [सं०] प्रमाद या लापरवाही से रहित। सावधान। सतर्क [कौ०]। उ०—आप समझी जाती है अटल, अप्रमत्त और ...।—गुंजन, पृ० ४१।

अप्रमद—वि० [सं०] प्रमादहीन। उपाहरहित। खिन्न। उदास [कौ०]

अप्रमय—वि० [सं०] १. अनश्वर। अक्षीण। अप्रमेय [कौ०]।

अप्रमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रमा का न होना। भ्रांत ज्ञान [कौ०]।

अप्रमाण[1]—वि० [सं०] १ जो प्रमाणस्वरूप न हो। अप्रामाणिक। २ बिना सबूत का। साक्षीरहित। ३. अनधिकृत। अविश्वस्त। ४. असीम। अपरिमित [कौ०]।

अप्रमाण[2]—संज्ञा पुं० १ जो प्रमाण न बन सके। २ अप्रामाणिकता।

अप्रमाद[1]—वि० [सं०] प्रमादरहित। अनवरत। उ०—चलती थी श्यामल घाटी में निर्लिप्त भाव से अप्रमाद।—कामायनी, पृ० १६७।

अप्रमाद[2]—संज्ञा पुं० सावधानता। सतर्कता। जागरूकता [कौ०]।

अप्रमित—वि० [सं०] १ बेनाप। असीमित। २ अधिकारी द्वारा जो प्रमाणित न हो [कौ०]।

अप्रमेय—वि० [सं०] जो नापा न जा सके। अपरिमित। अपार। अनंत। उ०—तू न अच्छय बाण स्वच्छ अभेद लै नभगात जो। आइयो रणभूमि में करि अप्रमेय प्रमान को।—राम च०, पृ० १३३।

अप्रमोद—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रसन्नता का अभाव। २ कष्टनिवारण की अक्षमता [कौ०]।

अप्रयत्न[1]—वि० [सं०] प्रयत्नहीन। उत्साहहीन। उदासीन। [कौ०]।

अप्रयत्न[2]—संज्ञा पुं० [सं०] प्रयत्न का अभाव। काहिलपन। औदासीन्य [कौ०]।

अप्रयुक्त—वि० [सं०] जिसका प्रयोग न हुआ हो। जो काम में न लाया गया हो। अव्यवहृत। उ०—हिंदी में अप्रयुक्त संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी उनकी भाषा की रुखाई को बढ़ाने में ही मदद करता है।—रामच० (भू०), पृ० ३८। २ अप्रचलित। ३ शब्दादि का अन्यथा या गलत प्रयोग। ४ दुर्लभ या विरल प्रयोग [कौ०]।

अप्रयुक्तत्व—संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्द जो कोशगत और शुद्ध होते हुए भी व्यवहृत न हो।

विशेष—इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग साहित्यशास्त्र में दोष माना गया है।

अप्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रयोग का अभाव। २. कुप्रयोग। ३. अव्यवहार [कौ०]।

अप्रलंब—वि० [सं० अप्रलम्ब] फुर्तीला। सन्नद्ध। तत्पर [कौ०]।

अप्रवर्तक—वि० [सं०] १ कार्य के लिये प्रेरणा न देनेवाला। निष्क्रिय। २ अटूट। अविच्छिन्न [कौ०]।

अप्रवर्ती—वि० [सं० अप्रवर्तिन्] दे० 'अप्रवर्तक'।

अप्रवानी—वि० [सं० अ + प्रमाण, प्रा० पमाण, अप० पमाण + ई (प्रत्य०)] अप्रमेय। अज्ञेय। उ०—... समुझानी। जह उपजै बिनसै सदा भजन अप्रवानी।—सुंदर ग्रं०, पृ० २०७।

अप्रवीन—वि० [सं० अप्रवीण] जो प्रवीन न हो। ...। उ०—... प्रीति रहि ... को ... न भयो प्रवीन। ...।—... पृ० ४८६।

अप्रवृत्त—वि० [सं०] १ जो क्रियारत न हो। निष्क्रिय। २ असनद्ध [को०]।

अप्रवृत्तवध—वि० [सं०] कौटिल्य के अनुसार जिसकी ओर से आक्रमण न हुआ हो।

अप्रवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रवृत्ति का अभाव। चित्त का झुकाव न होना। २ किसी सिद्धात वा सूत्र का न लगना। किसी विचार का प्रयुक्त स्थान पर न खपना। ३ अप्रचार। ४ कोष्ठबद्धता [को०]।

अप्रवेश्य—वि० [सं०] प्रवेश न करने योग्य। जिसमे प्रवेश न हो सके। उ०—विदा हाय ! मेरे सुदर, अप्रवेश्य सा अधकारमय हुआ आज यह मेरा घर।—कुणाल, पृ० १४।

अप्रशसनीय—वि० [सं०] निंदनीय। निंदा के योग्य।

अप्रशस्त—वि० [सं०] १ जो प्रशस्त न हो। नीच। कुत्सित। बुरा। २ क्षीण (को०)। ३ अविहित। निषिद्ध [को०]।

अप्रशिक्षित—वि० [सं०] जिसे किसी कार्य की विशेष शिक्षा न मिली हो। जो प्रशिक्षित न हो।

अप्रसंग[1]—संज्ञा पुं० [सं० अप्रसङ्ग] १ आसक्ति, प्रयोजन या सबध का अभाव। २ बेमौका [को०]।

अप्रसग[2]—वि० १ सबधरहित। २ प्रसगहीन। बेमौका।

अप्रसक्त—वि० [सं०] १ जो आशक्त न हो। बेलगाव। २. असबद्ध। ३ निर्बाध। बिना रोक टोक [को०]।

अप्रसक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुराग या प्रवृत्ति का अभाव। आसक्तिहीनता [को०]।

अप्रसन्न[1]—वि० [सं०] जो प्रसन्न न हो। असतुष्ट। नाराज। २ खिन्न। दुखी। उदास। विरक्त। ३ पंकिल। कीचड से युक्त।

अप्रसन्न[2]—संज्ञा पुं० ब्याई हुई गाय का सात दिन के बाद दूध।

अप्रसन्नता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाराजगी। असतोष। २ रोष। कोप। ३ खिन्नता। उदासी।

अप्रसाद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रसन्नता, कृपा या अनुकूलता का अभाव। [को०]।

अप्रसिद्ध—वि० [सं०] १ जो प्रसिद्ध न हो। अविख्यात। जिसको लोग न जानते हो। २ गुप्त। छिपा हुआ। तिरोहित।

अप्रसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ख्याति वा प्रसिद्धि का अभाव। उ०—अप्रसिद्धि मात्र उपमा का कोई दोष नही।—रस०, पृ० ३४६।

अप्रसूत—वि० सततिविहीन। सतानरहित [को०]।

अप्रसूता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री, जिसे बच्चा न हुआ हो। वध्या नारी। बाँझ।

अप्रस्ताविक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अप्रस्ताविकी] जो मूल विषय का या उससे सबद्ध न हो। अप्रास्ताविक [को०]।

अप्रस्तुत—वि० [सं०] १ जो प्रस्तुत वा मौजूद न हो। अनुपस्थित। २. जो प्रसगप्राप्त न हो। अप्रासगिक। जिसकी चर्चा न आई हो। ३ जो तैयार न हो। जो उद्यत न हो। ४ गौण। अप्रधान। उ०—इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अप्रस्तुत (उपमान) भी उसी प्रकार के भाव का उत्तेजक हो।—रस०, पृ० ३४६।

अप्रस्तुतप्रशंसा—संज्ञा [सं०] वह अर्थालंकार जिसमें अप्रस्तुत के कथन द्वारा प्रस्तुत का बोध कराया जाय।

विशेष—इसके पाँच भेद हैं—(क) कारणनिबंधना—जहाँ प्रस्तुत वा इष्ट कार्य का बोध कराने के लिये अप्रस्तुत कारण का कथन किया जाय। जैसे—लीनो राधा मुख रचन, विधि ने सार तमाम। तिहि मग होय अकाश यह शशि में दीखत श्याम।—मतिराम (शब्द०)। (ख) कार्यनिबंधना—जहाँ कारण इष्ट हो और कार्य का कथन किया जाय। जैसे—तुव पद नख की दुति कछुक, गइ धोवन जन माथ। तिहि कन मिलि दधि मथन मे चद्र भयो है नाथ।—मतिराम (शब्द०)। (ग) विशेषनिबंधना—जहाँ सामान्य इष्ट हो और विशेष का कथन किया जाय। जैसे—लालन सुरतरु धनद हू, गनहितकारी होय। तिनहूँ को आदर न ह्वै, यो मानत बुध लोय।—मतिराम (शब्द०)। (घ) सामान्यनिबंधना—जहाँ विशेष कहना इष्ट हो पर सामान्य का कथन किया जाय। जैसे—सीख न मानै गुरन की, अहितहि हित मन मानि। सो पछतावै तासु फल, ललन भए हित हानि।—मतिराम (शब्द०)। (च) सारूप्यनिबंधना—जहाँ अभीष्ट वस्तु का बोध उसके तुल्य वस्तु के कथन द्वारा कराया जाय। जैसे—वक धरि धीरज कपट तजि, जो बनि रहै मराल। उघरै अत गुलाब कवि, अपनी बोलनि चाल।—गुलाब (शब्द०)।

अप्रहत—वि० [सं०] १ कोरा (कपडा)। जो (वस्त्र) पहना न गया हो। २ जो (भूमि) जोती न गई हो। बजर। ३ अक्षत। अछूता (को०)। ४ जो मारा या नष्ट न किया गया हो। यथावत्।

अप्राकरणिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अप्राकरणिका, अप्राकरणिकी] विषय या प्रकरण जिसका लगाव न हो। असगत [को०]।

अप्राकृत—वि० [सं०] १ जो प्राकृत न हो। सस्कृत। २ अस्वाभाविक। ३ असामान्य। असाधारण। ४. जो प्राकृत भाषा का या उससे सबद्ध न हो [को०]।

अप्राकृतिक—वि० [सं०] स्वभाव या प्रकृति के विरुद्ध। अस्वाभाविक। अलौकिक [को०]।

अप्रामुख्य—वि० [सं०] मुख्य नही। गौण। साधारण [को०]।

अप्राचीन—वि० [सं०] १ जो प्राचीन न हो। आधुनिक। २ पौर्वात्य नही। पाश्चात्य [को०]।

अप्राज्ञ—वि० [सं०] अज्ञानी। अशिक्षित। प्रज्ञाहीन [को०]।

अप्राण[1]—वि० [सं०] १. बिना प्राण का। निर्जीव। मृत। २ ईश्वर का एक विशेषण।

अप्राण[2]—संज्ञा पुं० ईश्वर।

अप्राप्त—वि० [सं०] १ जो प्राप्त न हो। जो मिला न हो। अलब्ध। दुर्लभ। अलभ्य। २ जिसे प्राप्त न हुआ हो। जैसे—अप्राप्तवयस्क, अप्राप्तयौवना, अप्राप्तव्यवहार। ३ अप्रत्यक्ष। परोक्ष। अप्रस्तुत। ४ अनागत जो आया न हो। ५ जिसकी उम्र विवाह के योग्य न हो (को०)।

अप्राप्तकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ आनेवाला समय। भविष्य। २ अनवसर। उपयुक्त समय के पहले का समय। ३. न्याय में

तर्क के समय क्षोभ के कारण प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण आदि को यथाक्रम न कहकर अडवड कह जाने का दोष। ४ क्रमसिन [को०]।

अप्राप्तयौवन—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्राप्तयौवना] जिसकी युवावस्था अभी न आई हो। जो जवान न हो। किशोर [को०]।

अप्राप्तवय—वि०[स० अप्राप्तवयस्]१ नाबालिग। १ कानून की दृष्टि से सामाजिक जिम्मेदारी के अयोग्य। १६ वर्ष के पूर्व का।

विशेष—अब उम्र की यह अवधि पुरुषो के लिए १८ और स्त्रियो के लिए १६ वर्ष मानी जाती है केवल मतदान के लिये २१ वर्ष है।

अप्राप्तव्यवहार—वि० [स०] १६ वर्ष के भीतर का बालक जिसे धर्मशास्त्र के अनुसार जायदाद पर स्वत्व न प्राप्त हुआ हो। नाबालिग।

अप्राप्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ उपलब्धि या लाभ का अभाव। २ नियम कानून से असिद्ध। ३ अनहोनी। ४. जो लागू न हो। अनुपपत्ति [को०]।

अप्राप्तिसम—सज्ञा पु० [स०] न्याय मे जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदो मे से एक।

विशेष—यदि किसी के उत्तर मे कहा जाय—'तुम्हारा हेतु और साध्य दोनो एक आधार मे वर्तमान हैं या नही ? यदि वर्तमान हैं तो दोनो बराबर हैं। फिर तुम किसे हेतु कहोगे और किसे साध्य ?' तो इसे प्राप्तिसम कहेंगे। और यदि साथ ही इतना और कहा जाय —'यदि दोनो एक आधार मे नहीं रहते तो तुम्हारा हेतु साध्य का साधन कैसे कर सकता है ?' तो इसे अप्राप्तिसम कहेंगे।

अप्राप्य—वि० [स०] जो प्राप्त न हो सके। जो मिले न। अलभ्य। उ०—जो यो निज प्राप्य छोड देंगे। अप्राप्य अनुग उनके लेंगे।—साकेत, पृ० १४७।

अप्रामाणिक—वि० [स०][वि० स्त्री० अप्रामाणिकी] १ जो प्रमाणसिद्ध न हो। ऊटपटांग। २ जिसपर विश्वास न किया जा सके।

अप्रामाण्य—सज्ञा पु० [स०] प्रमाण या सबूत का अभाव [को०]।

अप्रावृत—वि० [सं०] जो ढँका या परिच्छिन्न न हो। अनावृत। खुला हुआ [को०]।

अप्राशन—सज्ञा पुं० [स०] आहार ग्रहण न करना। अनशन [को०]।

अप्रासगिक—वि० [सं० अप्रासङ्गिक] जो प्रसगप्राप्त न हो। प्रसग-विरुद्ध। जिसकी कोई चर्चा न हो।

अप्रास्तविक—वि० [सं०] दे० 'अप्रस्ताविक' [को०]।

अप्रियवद—वि० [सं०] कटुभाषी। कठोर शब्द कहनेवाला [को०]।

अप्रिय¹—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्रिय] १ जो प्रिय न हो। अरुचि-कर। जो न रुचे। जो पसद न हो। उ०—सत्य कहहु अरु प्रिय कहहु अप्रिय सत्य न भाखा।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १८७। २ जो प्यारा न हो। जिसकी चाह न हो। उ०—मुनि राजा अति अप्रिय बानी।—मानस १।२०८। ३. शत्रुतापूर्ण। अमित्र या शत्रुवत् [को०]।

अप्रिय²—सज्ञा पु० [सं०] १ वैरी। शत्रु। २. बेंत। बेतस। निचुल। यौ०—अप्रियवद। अप्रियकर। अप्रियकारी। अप्रियवादी।

अप्रियकर—वि० [सं०] जो रुचिकर न हो। अहितकर। अमैत्रीपूर्ण [को०]।

अप्रियकारक—वि० [सं०] दे० 'अप्रियकर'।

अप्रियकारी—वि० [स० अप्रियकारिन्] [वि० स्त्री० अप्रियकारिणी] दे० 'अप्रियकर' [को०]।

अप्रियता—सज्ञा स्त्री० [स० अप्रिय + ता (प्रत्य०)] बुराई। उ०—हां आर्ये प्रिय की अप्रियता करने को कहती हो तुम।—साकेत, पृ० ३८४।

अप्रियभागी—वि० [स० अप्रियभागिन्] [वि० स्त्री० अप्रियभागिनी] दुर्भाग्यग्रसित। अभागा।

अप्रियवादी—वि० [स० अप्रियवादिन्] [वि० स्त्री० अप्रियवादिनी] कडवी बात कहनेवाला। कटुवादी। कठोरवक्ता [को०]।

अप्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] शृंगी मत्स्य [को०]।

अप्रीति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ स्नेह वा प्रेम का अभाव। चाह का न होना। २ अरुचि। ३ विरोध। वैर।

अप्रीतिकर—वि० [सं०] वि० स्त्री० अप्रीतिकारी] १ अप्रिय। नापसद। २. कटु। कठोर अननुकूल [को०]।

अप्रेंटिस—सज्ञा पु० [अ० ऐप्रेंटिस] वह पुरुष जो किसी कार्य मे कुशलता प्राप्त करने के लिये किसी कार्यालय मे बिना वेतन लिये वा अल्प वेतन पर काम करे। उम्मेदवार।

अप्रत—वि० [स०] न गया हुआ। अगत। मृत नही [को०]।

अप्रतराक्षसी—सज्ञा स्त्री० [स०] तुलसी का पौधा [को०]।

अप्रैल—सज्ञा पुं० [अ० एप्रिल] एक अगरेजी महीना जो प्राय चैत मे पडता है। यह महीना ३० दिन का होता है।

अप्रैलफूल—सज्ञा पुं० [अ० एप्रिलफूल] जो अप्रैल महीने के पहले दिन हँसी मे बेवकूफ बनाया जाय।

विशेष—इस दिन योरपवाले हँसी दिल्लगी करना उचित मानते हैं।

अप्रोक्ष(पु)—वि० [स० अपरोक्ष] जो परोक्ष न हो। प्रत्यक्ष। दूर न हो। उ०—देहई कों बध मोक्ष देहई अप्रोक्ष प्रोक्ष।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ५९२।

अप्रोषित—वि० [स०] जो चला न गया हो। जो अनुपस्थित न हो। जो उपस्थित हो [को०]।

अप्रौढ—वि० [स० अप्रौढ़] १ जो पुष्ट न हो। कमजोर २. कच्ची उम्र का। नाबालिग। ३. अप्रगल्भ। अनुद्धत [को०]।

अप्रौढा—सज्ञा स्त्री० [स० अप्रौढ़ा] १ कन्या। कुमारी। २. विवाहिता किंतु अरजस्वला कन्या।

अप्लव—वि० [स०] १. जलयानहीन। २. जो तैरता न हो। न तैरनेवाला [को०]।

अप्सरपति—सज्ञा पुं० [स०] अप्सराओं के नाथ। इंद्र [को०]।

अप्सर¹—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सरा'।

अप्सर²—स्त्री० पुं० [सं०] जलजंतु। जलचर [को०]।

अप्सरा—सज्ञा स्त्री० [स० अप्सरस्] १. अंबुकण। वाष्पकण। २. वेश्याओं की एक जाति ३. स्वर्ग की वेश्या। इंद्र की सभा में नाचनेवाली देवांगना। परी।

विशेष—इसलिये अप्सरा कहलाती हैं कि समुद्र मथन के समय उसमे से निकली थी।

अप्सरातीर्थ—सज्ञा पुं० [स०] अप्सराओ के स्नान का पवित्र तालाव या स्थल [को०]।

अप्सरि—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सरा'। उ०—कभी स्वर्ग की थी तुम अप्सरि, अब वसुधा की वाल।—गुजन, पृ० ८७।

अप्सरी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सरा'।

अप्सु—वि० [स०] १ आकार या विग्रहहीन। अरूप। २ कुरूप। असुदर [को०]।

अप्सुक्षित—सज्ञा पु० [स०] स्वर्ग एव पृथ्वी के बीच अतरिक्षनिवासी देवता [को०]।

अप्सुचर—वि० [स०] पानी का जतु। जलचर।

अप्सुप्रवेशन—सज्ञा पु० [स०] कौटिल्य के अनुसार एक प्रकार का दड जिसमें अपराधी जल मे डुवाकर मारा जाता था।

अप्सुयोनि[1]—वि० [स०] जल से उत्पन्न [को०]।

अप्सुयोनि[2]—सज्ञा पु० [स०] १ अश्व। घोडा। २ वेंत या नरकुल [को०]।

अफंड—सज्ञा पु० [स० अ+स्पन्द, अप० फड] १ वखेडा। फरफद। अडगा। उ०—(क) महाजनो ने चैनसुखदास को मिलाकर यह सारी अफड खडा कर दिया।—सुदर ग्र०, पृ० १८६।

अफगन—वि० [फा० अफगन] गिरनेवाला। जैसे शेर अफगन।

अफगान—सज्ञा पु० [फा० अफगान] अफगाननिस्तान का रहनेवाला व्यक्ति। कावुली। पठान।

अफगानिस्तान—स० [फा० अफगानिस्तान] भारत के पश्चिमोत्तर-स्थित एक प्रदेश जिसकी राजधानी कावुल है।

अफगानी—वि० [फा० अफगान+ई (प्रत्य०)] अफगानिस्तान का। अफगानिस्तान से सबद्ध।

अफगार—वि० [फा० अफगार] घायल। जख्मी। उ०—दिल किसके हाथ दीजे, दिल अफगार कहाँ है ?—कवीर ग्र०, पृ० ३२३।

अफजल—वि० [अ० अफजल] १ वहुत वढिया। उत्तमतर। २ वहुत अधिक। वहुत ज्यादा [को०]।

अफजूँ[1]—सज्ञा पु० [फा० अफजूँ] वृद्धि। अधिकता।

अफजूँ[2]—वि० अवशेष। फाजिल। जो आवश्यकता से अधिक हो। उवरा हुआ। खर्च से वचा हुआ।

अफतावा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आफताव'। उ०—(क) भरत जहँ नूर जहूर अममान लौं रूह अफताव गुरु कीन्ह दया।—भीखा ग्र०, पृ० ६३।

अफतावा—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आफताव'।

अफतावी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आफतावी'।

अफतार—सज्ञा पुं० [अ० इफ्तार, फा० अफ्तार] रोजा खोलना। रोजा खोलने के लिये कुछ खाना पीना [को०]।

अफतालो—सज्ञा पु० [फा० अफताल] अगले पडाव पर पहुँचकर ठहरने की व्यवस्था करनेवाले कर्मचारी या सेवक।

अफनाना—क्रि० अ० [स० उत्+स्फार, स्फाल, हिं० उफनाना] उवाल खाना। उत्तेजित होना। घवराना। उ०—द्रौपदी कहति अफनाइ रजपूती सबै, उतरी हमारी सारी माहिं कफनाइगी।—रत्नाकर, भा० २, पृ० ८।

अफयूँ—सज्ञा स्त्री० [अ० अफयून] अफीम। अफयून। उ०—अफ्यूँ मदक चरस के व चडू के वदौलत। प्यारों के सदा रहते हैं रुखसार वसती।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७९२।

अफयून—सज्ञा स्त्री० [अ० अफयून] दे० 'अफीम'।

अफयूनी—वि० [अ० अफयून] दे० 'अफीमची'।

अफरना—सज्ञा स्त्री० [हिं०] अफरना। पेट का फूलना।

अफरना—क्रि० अ० [स० आ+स्फार=प्रचुर] १ पेट भरकर खाना। भोजन से तृप्त होना। अघाना। उ०—प्रगट मिले विनु भावतें कैसे नैन अघात। मूखे अफरत कहु सुने, मुरति मिठाई खात।—रसनिधि (शब्द०)। २ पेट का फूलना। उ० (क) लेइ विचार लागा रहे दादू जरता जाय। कवहूँ पेट न अफरई भावइ तेता खाय।—दादू (शब्द०)। (ख) अफरी वीवी दै मारी (गोटी)। ३ ऊबना। उ०—हम उनकी यह लीला देखते देखते अफर गए (शब्द०)।

अफरा—सज्ञा पुं० [स० आ+स्फार=प्रचुर] १ फूलना। पेट फूलना। २ अजीर्ण या वायु से पेट फूलने का रोग।

अफरा तफरी—सज्ञा स्त्री० [अ० अफरा तफरी] १ उलटफेर। गड-वड। लुटपोट। २ जल्दी। हडवडी। वदहवासी।

अफराना—क्रि० अ० [हिं० अफरना या स० स्फार] पेट भरने से सतुष्ट होना। अघाना। उ०—गदहा थोरे दिन में बूँद खाई इतरात। अफरान्यो मारन करयो एराकी को लात।—गिरिधर (शब्द०)।

अफरावा—सज्ञा पुं० [हिं० अफरना] पेट फूलने की स्थिति, क्रिया या भाव।

अफरीदी—सज्ञा पुं० [फा० अफरीद] पठानो की एक जाति जो पेशावर के उत्तर की पहाडियो मे रहती है।

अफल[1]—वि० [स०] १ जिसमे फल न हो। विना फल का। फलहीन। निष्फल। २ व्यर्थ। निष्प्रयोजन। उ०—परमारथ स्वारथ साधन भय अफल सकल, नाहि सिद्धि सई है।—तुलसी ग्र०, पृ० ५२८। ३ वाँझ। वध्या।

अफल[2]—सज्ञा पु० १ झाऊ का वृक्ष। २ वकरा।

अफला—सज्ञा स्त्री० [स०] १ भूम्यामलकी। भुँइ आँवला। २ घृतकुमारी। घीक्कार।

अफलातून—सज्ञा पु० [फा० अफलातून] १ यूनान का एक प्रसिद्ध विद्वान् और दार्शनिक जो अरस्तू का गुरु और सुकरात का शिष्य था। २. वडप्पन की शेखी करनेवाला व्यक्ति।

मु०—अफलातून के नाती=शेखी करनेवाला। तीसमार वनने वाला। डींग मारनेवाला।

अफलित—वि० [स०] १ जिसमे फल न लगे। फलहीन। २ निष्फल। परिणामरहित।

अफल्गु—वि० [स०] उत्पादक। लाभदायक। जो फल्गु या सारहीन न हो [को०]।

अफवा—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अफवाह'। उ० इसी तरह यह सब बातें अफवा की जहरी हवा मे मिलकर चारो ओर उडने लगी।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६१।

अफवाज—संज्ञा स्त्री० [अ० फौज का बहुव० अफवाज] सेना। फौज। उ०—तूं जूनो परगो नवी, असुरारी अफवाज।—बाँकीदास ग्र०, भा २, पृ० १००।

अफवाह—संज्ञा पुं० [अ० अफवाह] १ उडती खबर। बाजारू खबर। किंवदती। २ मिथ्या समाचार। गप्प।

मु०—अफवाह उडना = निराधार समाचार फैलाना, अफवाह उडाना या फैलाना = १ झूठी बात प्रचारित करना। २, बदनाम करना।

अफशाँ—संज्ञा स्त्री० [फा० अफशाँ] १, बादले के छोटे छोटे टुकड़े अथवा सुनहला या रूपहला चूर्ण जो स्त्रियो के मुख पर शोभा के लिये छिडके जाते हैं। उ०—कलानिधि के अमर ललाट पर अफशाँ।—प्रेमधन, भा० २, पृ० १७।

अफशा—संज्ञा पुं० [फा० अफ़शा] प्रकाश। प्रकट। जाहिर।

यौ०—अफशायराज = गुप्त मत्रणा का प्रकाश। छिपी बात को खोल देना।

अफसतीन—संज्ञा पु० [यू०] औषध के कार्य मे प्रयुक्त एक कडआ और नशीला पौधा।

विशेष—यह पौधा काश्मीर मे ५००० से ७००० फुट की ऊँचाई पर होता है। इससे हरे या पीले रग का तेल निकाला जाता है जो झारदार तथा कडआ होता है। विशेष मात्रा मे प्रयोग करने से यह तेल विषैला हो जाता है। इसकी पत्ती विशेषकर यूनानी दवाओ के काम आती है।

अफसर—संज्ञा पु० [अ० आफिसर] [संज्ञा अफसरी] १. प्रधान। मुखिया। अधिकारी। २, हाकिम। प्रधान कर्मचारी।

यौ०—अफसरे आला = प्रधान अधिकारी। सर्वोच्च अधिकारी।

अफसरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अफसर + ई (प्रत्य०)] १ अधिकार। प्रधानता। २ हुकूमत। शासन।

क्रि० प्र०—करना।—जताना।

अफसाना—संज्ञा पुं० [फा० अफसानह्] किस्सा। कहानी। कथा। आख्यायिका।

क्रि० प्र०—छिडना।—छेडना।—रह जाना।—सुनना —सुनाना

यौ०—अफसानागो = कहानी कहनेवाला।

अफसानानवीस, अफसानानिगार—१ कहानीकार। कथालेखक। २. उपन्यासलेखक।

अफसूँ—संज्ञा पु० [फा० + अफ्सूँ] जादू टोना। अभिचार। मायाकर्म। इद्रजाल [को०]।

अफसोस—संज्ञा स्त्री० [फा० अफसोस] १ शोक। रज। २. पश्चात्ताप। खेद। पछतावा। दुख।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अफीडेविट—संज्ञा स्त्री० [अ० ऐफीडेविट] १ हलफ। शपथ। २ हलफनामा।

अफीम—संज्ञा स्त्री० [यू० ओपियम, अ० अफयून, फा० अफ्यून] औषध और नशे के रूप मे प्रयुक्त होनेवाली पोस्ते की ढेंढ की गोद।

विशेष—यह काछकर इकट्ठी की जाती है। यह कडवी, मादक और स्तभक होती है। इसके खाने से कोष्ठबद्ध होता है और नीद आती है। विशेष मात्रा मे यह विषैली और प्राणघातक हो जाती है। इसके लेप से पीडा दूर होती है और सूजन उतर जाती है। इसका प्रयोग सग्रहणी, अतिसारादि मे होता है। वीर्यस्तभन की औषधियो में भी इसका प्रयोग होता है। इसके खानेवाले झपकी लेते हैं और दूध, मिठाई आदि पर बडी रुचि रखते हैं। यह नजले को दूर करती है। और वृद्धावस्था मे फुर्ती लाती है।

अफीमची—संज्ञा पु० [हिं० अफीम + तु० ची (प्रत्य०)] अफीम खानेवाला। वह पुरुष जिसे अफीम खाने की लत हो।

अफीमी—संज्ञा पु० [हिं० अफीम + ई (प्रत्य०)] अफीम खानेवाला। अफीमची।

अफीर—संज्ञा पुं० [अ० अफीर] प्रतिवेशी। पडोसी। उ०—चले साथ ले मर्दु माने अफीर।—कबीर ग्र०, पृ० १३१।

अफुल्ल—वि० [स०] अविकसित। जो खिला न हो। बेखिला।

अफू—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अफीम'।

अफेन¹—वि० [सं०] जिसमे फेन न हो। फेनरहित। बिना झाग का।

अफेन²(पु)—संज्ञा पुं० [स० अहिफेन] अफीम।

अफोट—वि० [स० आ + स्फोट] विदारित। खंडित। उ०—रम्य अरम्य करी सु धरन्निय। रहे मठ कोट अफोट करन्निय।—पृ० रा०, ११३६०।

अपफना(पु)—क्रि० स० [स० अर्पण पा० अप्पण] दे देना, सौंपना। अर्पित करना। उ०—पुन्नीम पुत्र अपफर्‍डे पहुमि, इमि च्यतनु मन मह करिय।—पृ० पृ० रा० (उद०), पृ० २११।

अपशा—वि० [फा० अफशा] दे० 'अफशा'। उ०—अब जिद करने मे राज अपशा होता है। मगर क्या करें।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६।

अबछी(पु)—वि० [सं० अवाछित] अनचाहा। अनिच्छित। उ०—सुदर तृष्णा कारनै जाइ समुद्रही बीच। फटै जहाज अचानक होइ अबछी मीच।—सुदर ग्र०, पृ० ७१३।

अबड—वि० [स० अवण्ड] जो अगहीन या पगु न हो।

अबध—वि० [स०] १ जो किसी बधन मे न हो। अबद्ध बधनहीन। निरकुश। उ०—विधानो मे अबध विधान विचरते हो सुर माया कर।—गीतिका, पृ० ६०।

अबधन—वि० [स० अबधन] अबध। मुक्त [को०]।

अबधु¹—संज्ञा पु० [स० अबधु] अमित्र। शत्रु। उ०—बधु अबधु हिये मँह जानै। ताकर लोग विचार बखानै।—राम च०, पृ० १५१।

अबधु²—वि० १ मित्रविहीन। एकाकी। अकेला। २ अनाथ। जिसके कोई न हो [को०]। २ बध या सीमाहीन। असीम। अपार। उ०—जिन युवको के मणिवधो मे अबध बल इतना भरा था जो उलटता शतघ्नियो को।—लहर, पृ० ६७।

अबध्य—वि० [स० अबन्ध्य] [स्त्री० अबध्या] १ दे० 'अबध'। २ सफल। अव्यर्थ।

अबध्या—संज्ञा स्त्री० [स० अबन्ध्या] वह जो बाँझ न हो। सतानवाली स्त्री।

अब¹—क्रि० वि० [सं० अय, प्रा० अह, अथवा स० अद्य] इस समय। इस क्षण। इस घडी।

मुहा०—अब का = इस समय का। आधुनिक। **अबकी** = इस बार **अब की बात अब के हाथ** = समय के अनुसार कार्य करना। जो बात बिगडी नहीं है उसे सपन्न करना। **अब के लोग** = आधुनिक जन। **अब जाकर** = इतनी देर पीछे। उ०—महीनो से इम काम मे लगे हैं, अब जाकर खतम हुआ है। **अब तब करना** = हीला हवाली करना। **अब तब लगना या होना** = मरने का समय निकट होना। उ०—जब वैद्य आया तब उसका अब तब लगा था। **अब न तब** = न इस समय न फिर कभी। **अब भी** = (क) इस समय भी। (ख) इतने पर भी। उ०—इतनी हानि उठाई अब भी नहीं चेतते। **अब से** = इस समय से। आगे। भविष्य मे। उ०—अब से मैं ऐसा कार्य भूलकर भी न करूँगा।

अब²—सज्ञा पु० [अ०] बाप। पिता [को०]।

अबक(पु)—सज्ञा पु० [**अ + हिं० बक**] अनुचित बात। अकथ्य। उ०—राखो आगै रसरगै, राघव नाम रसाल। मुख माँझल आँणो मती, गिरैंग अबक ज्यूँ गाल।—बाँकीदास ग्र०, भा० ३, पृ० ७९।

अबका—सज्ञा पुं० [**फिलि० अबुका, स० अबका = सेवार**] एक पौधा जिमकी डठल की छाल रेशेदार होती है।

विशेष—यह पौधा फिलिपाइन देश का है। अब इसकी खेती अडमान टापू और आराकान की पहाडियो मे भी होती है। खेती इस प्रकार की जाती है—इसकी जड से पेड के चारो ओर पौधे भूफोड निकलते हैं। जब वे तीन तीन फुट के हो जाते हैं तब उन्हे उखाडकर खेतो मे ८-९ फुट की दूरी पर लगाते हैं। इसकी फसल तैयार होती है तब इसे एक एक फुट ऊपर से काट लेते हैं। डठलो से इसकी छाल निकाल ली जाती है और साफ करके रस्सी आदि बनाने के काम आती है। इसकी खुँदड का मैनिला पेपर बनता है।

अबक्र—वि० [सं० **अ + वक्र**] टेढा नहीं। सीधा। उ०—पुनि स्वाधिष्ठान सु द्वितीय चक्र। नही षट्दल पट् अक्षर अबक्र।—सुदर ग्र०, पृ० ४६।

अबखरा—सज्ञा पुं० [**अ० अब्खर (बुखार का बहुव०)**] भाप। वाष्प।

क्रि० प्र०—उठना। चढना।

अबखोरा†—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आबखोरा'।

अबगत(पु)—वि० [स० **अविगत**] १ जो जाना न जाय। अज्ञात। २ अनिर्वचनीय। ३ नित्य (ईश्वरबोधक)। उ०—नही बाप ना माता भाए। अबगत से ही हम चल आए—कबीर सा०, पृ० ८२५।

अबगति(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अबगत'।

अबचन(पु)—वि० [स० **अ + वचन**] दुर्वचन। अपशब्द। उ०—वचन अबचन रहित सोई जानिये।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ६२५।

अबजरवेटरी—सज्ञा स्त्री० [**अ० आबजरवेटरी**] वह स्थान जहाँ ग्रहो की गति, ग्रहण, ग्रहयुद्ध, आदि खगोल सबधी घटनाओ का निरीक्षण किया जाता है। वेधालय। वेधशाला। वेधमदिर। मानमंदिर।

अबट(पु)—सज्ञा पु० [स० **अ + वाट**] दुर्गम रास्ता। हीन मार्ग। विपथ। उ०—नर तेथ निमाणा, निलजी नारी, अकबर गाहक बट अबट। वेलि० (मू०), पृ० ३१।

अबटन†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उबटन'।

अबड धबड—वि० [अनु०] बेतरतीब। असगत। जल्दबाजी।

अबतर—वि० [अ० **अब्तर**] [सज्ञा **अबतरी**] १ बुरा। रद। खराब। २ गिरा हुआ। बिगडा हुआ। उ०—अफसोस ऐ सनम तुम ऐसे हुए हो अबतर। मिलते हो गैर मे जा हमसे रुखाइयाँ हैं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६९।

अबतरी—सज्ञा स्त्री० [अ० **अब्तरी**] १ घटाव। बिगाड। क्षय। अवनति। २ बुराई। खराबी।

अबदार(पु)—वि० [फा० **आबदार**] दे० 'आबदार' उ०—पति ची प्रीत धारिया पूरी, हेमराज अबदार हजूरी।—रा० सू०, पृ० ३१६।

अबद्ध¹—वि० [स०] १ जो बँधा न हो। मुक्त। २ स्वच्छद। निरकुश। ३ असबद्ध। निरर्थक।

यौ०—अबद्धवाक्य = वह असबद्ध वाक्य जिसमे अन्वयबोध की योग्यता न हो अर्थात् जिससे कोई अभिप्राय न निकले। जैसे—कोई कहे कि मैं आजन्म मौन हूँ, मेरा बाप ब्रह्मचारी, माता बध्या और पितामह अपुत्र था। अबद्धमुख = जिसके मुख में लगाम न हो। अडबड बोलनेवाला। अबद्धमूल = जिसकी जड पुष्ट न हो।

अबद्ध²—सज्ञा पुं० असभव या असामान्य वस्तु [को०]।

अबद्धक—वि० [सं०] दे० 'अबद्ध' [को०]।

अबध¹(पु)—वि० [स० **अबाध्य**] जो रोका न जा सके। अबाध्य। निर्बाध। उ०—भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम अबध चितवन चितई है।—तुलसी (शब्द०)।

अबध²(पु)—वि० [स० **अवध्य**] जिसे मारना उचित न हो। उ०—तौकों अबध कहत सब कोऊ तातें सहियत बान। बिना प्रयास मारिहौं ताकौं, आजु रैनि कै प्रात।—सूर (शब्द०)।

अबधू¹(पु)—वि० [सं० **अबोध**, पुं० हिं० **अबोधु**] अज्ञानी। अबोध। मूर्ख। उ०—(क) अबधू छोडो मन विस्तारा।—कबीर (शब्द०)। (ख) अबधू कुदरत की गति न्यारी—कबीर (शब्द०)।

अबधू²(पु)—सज्ञा पु० [स० **अवधूत**] त्यागी। सन्यासी। विरागी। अवधूत। सत। साधु। उ०—जिन अबधू गुरु ज्ञान लखाया। ताकर मन तहईं लै धाया।—कबीर (शब्द०)।

अबधूत(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवधूत'।

अबध्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अबध्या**] १. न मारने योग्य। जिसे मारना उचित न हो। २ जिसे मारने का विधान न हो। जिसे शास्त्रानुसार प्राणदड न दिया जा सके। जैसे—स्त्री, ब्राह्मण बालक आदि। ३ जो किसी से न मरे। जिसे कोई मार न सके।

अबनी†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अवनि'। उ०—इहाँ आनि अबनी कौं भोजन करायो।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४८३।

अबर¹(पु)—वि० [स० **अ + बल**] अबल। निबल। उ०—ये अबर कौं पीर जबर सबर बिन मरु।—तुलसी० श०, पृ० ५१।

अवर[2](पु)—वि० [सं० अपर, प्रा० अवर] अन्य । और । दूसरा । उ०—सरिता सिंधु अनेक अवर सखी बिलसत पति सहज सनेह ।—सूर० (राधा०) २७६७ ।

अवर[3](पु)—वि० [सं० अवर] अश्रेष्ठ । अन्यग्य । अधम । उ०—इहाँ उछाह वाक्य तें अवर काव्य होता है ।—भिखारी ग्र० भा० भा० २, पृ० २४४ ।

अवर[4](पु)—संज्ञा पुं० [फा० अब्र, सं० अभ्र] बादल । उ०—अगर यो जान जिंदगानी । अवर ओला घुले पानी ।—तुलसी० श०, पृ० ३१ ।

अवरक—संज्ञा पुं० [सं० अभ्रक] १ एक धातु । अभ्रक । भोडल । भोडर । भुखल ।

विशेष—यह खानों में निकलती है और बड़े बड़े ढोको में तह पर तह जमी हुई पहाड़ो पर मिलती है। साफ करके निकालने पर इसकी तह काँच की तरह निकलती है। अवरक के पत्तर कदील आदि मे लगते हैं तथा विलायत मे भी भेजे जाते हैं। वहाँ ये काँच की टट्टी की जगह किवाड के पल्लो मे लगाने के काम आते हे। यह धातु आग से नहीं जलती और लचीली होती है। वैज्ञानिक यत्रो मे भी इसका प्रयोग होता है। यह दो रग की होती है—सफेद और काली। भारतवर्ष मे बगाल, राजस्थान, मद्रास आदि की पहाड़ियों मे मिलती है। वैद्य लोग इसके भस्म को वृष्य मानते हैं और ओषधियों मे इसका प्रयोग करते हैं। भस्म बनाने मे काले रग का अवरक अच्छा समझा जाता है। निश्चद्र अर्थात् अभारहित हो जाने पर भस्म बनता है।

२ एक प्रकार का पत्थर जो खान से निकलता है।

विशेष—यह पत्थर बर्तन बनाने के काम आता है। यह बहुत चिकना होता है। इसकी बुकनी चीजो को चमकाने के लिये पालिश या रोगन बनाने के काम मे आती है।

अवरख—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवरक'।

अवरखी[1]†—वि० [हिं० अवरक] १ अवरक के रग का। २ अभ्रक का।

अवरखी[2]†—संज्ञा स्त्री० अभ्रक की बुकनी।

अवरन[1](पु)—[सं० अवर्ण्य] जिसका वर्णन न हो सके। अकथनीय। उ०—(क) अवरन कौ का बरनिए मौपे लख्या न जाइ। अपना बाना बाहिया कहि कहि थाके माइ। कबीर० ग्र०, पृ० ६१। (ख) भजि मन नद नदन चरन। सनक सकर ध्यान ध्यावत निगम अवरन बरन।—सूर० (शब्द०)।

अवरन[2](पु)—वि० [सं० अवर्ण] १ बिना रग का। वर्णशून्य। उ०—अलख अरूप अवरन सो करता। वह सब सो, सब वहि सौ बरता।—जायसी (शब्द०)। २ एक रग का नही। भिन्न। उ०—हद छोड बेहद भया अवरन किया मिलान। दास कबीरा मिल रहा सो कहिए रहमान।—कबीर (शब्द०)।

अवरन[3](पु)—संज्ञा पुं० [सं० आवरण] दे० 'आवरण'।

अवरन्य—संज्ञा पुं० [सं० अवर्ण्य] दे० 'अवर्ण्य'। उ०—कहूँ अवरन्यन को कहत भूपन वरनि विवेक।—भूषण ग्र०, पृ० ६१।

अवरस[1]—संज्ञा पुं० [अ० अवरश] १ घोडे का एक रग जो सब्जे से कुछ खुलता हुआ सफेद होता है। २ घोड़ा जिसका सब्जे से कुछ खुलता हुआ सफेद रग हो। उ०—अवलक अवरस लखी सिराजी। चौधर चाल समुद सब ताजी।—जायसी (शब्द०)।

अवरस[2]—वि० सब्जे से कुछ खुलता हुआ सफेद रग का।

अवरा[1]—संज्ञा पुं० [फा० अवरह्] १. अस्तर का उलटा। दोहरे वस्त्र के ऊपर का पल्ला। उपल्ला। उपल्ली।

क्रि०—प्र०।—चढाना।—देना।—लगाना।

२ खुलनेवाली गाँठ। उलझन।

अवरा[2]†—वि० [सं० अबल] बलहीन। कमजोर। निर्बल।

यौ०—अवरा दुवरा = शक्तिहीन। कमजोर। दुबला पतला।

अवरी[1]—संज्ञा स्त्री० [फा० अब्र + ई (प्रत्य०)] १ एक प्रकार का चिकना कागज जिसपर बादल की सी धारियाँ होती हैं। यह पुस्तकों की दफ्ती पर लगाया जाता है और कई रग का होता हैं। २ पीले रग का एक पत्थर, जो पच्चीकारी के काम आता है। यह जैसलमेर मे निकलता है। इसलिये इसको जैसलमेरी भी कहते हैं। ३ एक प्रकार की लाह की रगाई जो रगबिरगे बादलो के छीटों की तरह होती है।

अवरी[2]†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवार] गडढे या नदी के पानी से मिला हुआ किनारा।

अवरू—संज्ञा पुं० [फा०] भौंह। भ्रू। उ०—आगे बढ़ी चढे थे अवरू खमदार।—कुकुर०, पृ० ३६।

मु०—अवरू मे बल पडना = नाराज होना। अवरू पर मैल न आना = विकार न आना।

अवर्ज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवर + ज] अनुज। छोटा भाई।—अनेकार्थ०, पृ० ८७।

अवर्त†—संज्ञा पुं० [सं० आवर्त] पानी का भँवर। चक्कर।

अवर्न(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवर्ण'। उ०—सुदर ब्रह्म अवर्न है व्यापक अगिन अवर्न।—सुदर ग्र०, पृ० ७८१।

अवर्न्य(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवर्ण्य] दे० 'अवर्ण्य[2]'। उ०—आदर घटत अवर्न्य को, जहाँ वर्न्य के जोर।—भूपण ग्र० पृ० २६।

अवल[1]—वि० [सं०] निर्बल। कमजोर। उ०—कैसे निबहै अवल जन करि सबलन सो बैर।—सभावि० (शब्द०)।

अवल[2]—संज्ञा पुं० १ बलहीनता। २ वरुण नामक वृक्ष।

अवल[3](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अवलि] १ पक्ति। समूह। कतार। उ०—अतर नीलवर अवल आभरण अगि अगि, नग नग उदित।—वेलि०, दू० १५६।

अवलक[1]—वि० [अ० अवलक] दे० 'अवलख[1]'। उ०—जो अवलक घोडा अमुके रग को होइ तो तो घोडा उपर चढि कै श्रीनाथजी द्वार जाइए।—दो सौ बावन पृ० १६३।

अवलक[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार के वर्ण का अश्व। अवलख।

अवलख[1]—वि० [अ० अवलक] १ कबरा। दो रगा। सफेद और काला अथवा सफेद और लाल रग का।

अवलख[2]—संज्ञा पुं० १ वह घोडा जिसका रग सफेद और काला हो। उ०—अवलख अवरस लखी सिराजी। चौधर लाल समुद सब ताजी।—जायसी (शब्द०)। २ वह बैल जिसका रग सफेद और काला हो। कबरा बैल।

अवलख[2]—वि० [सं० अवलक्ष] सफेद। श्वेत।

अवलखा—सज्ञा स्त्री० [अ० अवलक] एक पक्षी।

विशेष—इसका शरीर काला होता है, केवल पेट सफेद होता है। इसके पैर सफेदी लिए हुए होते हैं और चोच का रग नारंगी होता है। यह उत्तर प्रदेश बगाल तथा विहार मे होता है और पत्तियो तथा परों का घोसला वनाता है। यह एक वार मे चार पाँच अडे देता है। इसकी लवाई लगभग नौ इच होती है।

अवला—सज्ञा स्त्री० [स०] स्त्री। नारी। उ०—पावस कठिन जु पीर अवला क्यो करि सहि सकै। तेऊ धरत न धीर रक्तवीज सम ऊपजै।—विहारी (शब्द०)।

यौ—अवलासेन=कामदेव।

अवलावल—सज्ञा पुं० [स०] महादेव शिव। [को०]।

अवलि(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अवली'। उ०—नीति प्रीति छवि अवलि ए सब सरि की भाँति।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ५३३।

अवली(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० अवली] १ पक्ति। २ समूह। उ०—वर विहग अवली जहँ भाँति भाँति की आवति।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २।

अवल्य[1]—सज्ञा पु० [सं०] १ दुर्वलता। कमजोरी। २ वीमारी। रुग्णावस्था [को०]।

अवल्य[2]—वि० जो वलकारक न हो।

अववाव—सज्ञा पुं० [अ०] १ वह अधिक कर जो सरकार मालगुजारी पर लगती है। २ वह अधिक कर जो लगान पर जमीदार को असामी से मिलता है। भेंजा। अधिक कर। लगता। ३ वह कर जो गाँव के व्यापारियो तथा लोहार सोनार आदि पेशेवा लो से जमीदार को मिलता है। घरद्वारी। वसौरी। भिटौरी।

अवस[1]—वि० [सं० अवश] दे० 'अवश'। उ०—चदन मे नाग मद भरचो इद्रनाग, विप भरो शेषनाग, कहै उपमा अवस को।—भूपण ग्र०, पृ० ३०।

अवस[2]—वि० [अ०] व्यर्थ। निरर्थक। फजूल। वेकार [को०]।

अवहि(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अभी'। उ०—अवहि उगत ससि तिमिरे तेजव निसि उसरत मदन पासरे।—विद्यापति०, ६८।

अवाँह(पु)—वि० [हिं० अ+वाँह] १ विना वाँह का। जिसे वाँह न हो। अवाहु। असहाय। अनाथ। वेसहारा।

अवा—सज्ञा पुं० [अ०] अगे से मिलता जुलता एक प्रकार का पहिनावा।

विशेष—यह अगे के वरावर या उसमे कुछ अधिक लवा होता है। यह ढीलाढाला होता है और सामने खुला होता है इसमे छह कलियाँ होती है और सामने केवल दो घुडियाँ या तुमके लगते हैं। कोई कोई इसमे गरेवान भी लगाते हैं। यह पहनावा मुसलमानो के समय से चला आता है।

अवाक(पु)—वि० [हिं] दे० 'अवाक्'। उ०—रतन अमो क परखर रहा जाहरी थाक। दरिया तहाँ कीमत नही, उनमन भया अवाक।—दरिया० वानी, पृ० २०।

अवाट—सज्ञा पुं० [हिं०] खराव रास्ता। कुपथ। उ०—मन कर्म मर्म अवाट परिहरि वाट घर को देत है—कवीर सा०, पृ० ४०१।

यौ०—अवाट सवाट=अडवड। गलत सलत।

अवात(पु)—वि०—[स० अवात] [स्त्री० अवाती] १ विना वायु का। २ जिसे वायु न हिलाती हो। ३ भीतर भीतर सुलगनेवाला। उ०—आई तजि हौ तो ताहि तरनितनूजा तीर, ताकि ताकि तारापति तरफति ताती सी। कहै पद्माकर घरीक ही मे घन श्याम काम तौ कतलवाज कुज ह्वै है काती सी। याही छिन वाही सो न मोहन मिलौगे जो पै लगनि लगाई एती अगिनि अवाती सी। राउरी दुहाई तौ बुझाई न बुझैगी फेरि, नेह भरी नागरी की देह दिया वाती सी।—पद्माकर (शब्द०)।

अवाद(पु)—वि० [सं० अवाद] वादशून्य। निर्विवाद। उ०—ब्रह्म विचारे ब्रह्म को पारख गुरु परमाद। रहित रहै पद राखिके जिव से होय अवाद।—कवीर (शब्द०)।

अवादान—वि० [फा० आवादान] वसा हुआ। पूर्ण। भरा पूरा। उ०—यह गाँव अवादान रहे।—(फकीरो की वोली)।

अवादानी—सज्ञा स्त्री० [फा० आवादानी] १ पूर्णता। वस्ती। उ०—भूखे को अन्न पियासे को पानी। जगल जगल अवादानी (शब्द०)। २ शुभचितकता। उ०—जिसका खाए अन्न पानी, उसकी करै अवादानी (शब्द०)। ३ चहल पहल। मनोरजकता। उ०—जहाँ रहैं मियाँ रमजानी, वही होय अवादानी (शब्द०)।

अवाध—वि [सं०] १ वाधारहित। वेरोक। उ०—हँसी का मदविह्वल प्रतिविव मधुरिमा खेला सदृश अवाध।—कामायनी पृ० ४८। २ निर्विघ्न। उ०—राम भगति निरुपम निरुपाधी वसै जासु उर सदा अवाधी।—तुलसी (शब्द०)। ३ असीम। अपरिमित। अपार। वेहद। उ०—अकल अनीह अवाध अभेद नेति नेति कहि गावहि वेद।—सूर० (शब्द०)।

अवाधगति—वि० [स० अवाध+गति] जिसकी गति अवाध या वेरोक हो।

अवाधा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवाध'। उ०—रघुपति महिमा अगुन अवाधा।—तुलसी (शब्द०)।

अवाधित—वि० [स०] १ वाधा रहित। वेरोक। २ स्वच्छद। स्वतत्र। ३ अनिपिद्ध।

अवाध्य—वि० [स०] १ वेरोक। जो रोका न जा सके। २ अनिवार्य ३ जो वश मे न किया जा सके।

अवान(पु)—वि० [स० अ=नहीं+हिं० वाना=चिह्न] शस्त्ररहित। हथियार छोडे हुए। निहत्था। उ०—चढे पिट्ठ दस कोस लो सव अजवीर अवान। फंसे पाय सूरज वली ठाढौ ता मैदान।—सूदन (शब्द०)।

अवावील—सज्ञा स्त्री० [अ०] एक काले रग की चिडिया। कृष्णा। कन्हैया। देववलाई।

विशेष—इसकी छाती का रग खुलता होता है। इसके पैर वहुत छोटे छोटे होते हैं, जिसके कारण यह वैठ नहीं सकती और दिन भर वहुत ऊपर आकाश मे झुड के साथ उडती रहती है। यह पृथ्वी के सभी देशो मे होती है। इसके घोसले पुरानी दीवारों पर मिलते हैं।

अबार—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+वार, प्रा० बार=समय] असमय। अधिक देर। विलंब। बेर। कुबेला। उ०—परसुराम जमदग्नि के गेह लौ नअवतार। माता ताकी जमुनजल लेन गई एक बार। लागी तहाँ अबार सिद्धि ऋषि करि क्रोध अपार। परसुराम को यों कही माँ को वेगि संहार।—सूर (शब्द०)।

क्रि०प्र०—लगना।—होना। उ०—बहुत अबार कतहुँ खेलत भई कहाँ रहे मेरे सारंगपानी।—सूर (शब्द०)।

अबारजा—संज्ञा पुं० [फा० अबारिजह=बही, अवार्जा, अवारिजह (फं०)] १ रोजनामचा। २ जमाखर्च की बही। उ०—करि अवारजा प्रेम प्रीति को असल तहाँ खतियावै। दूजे करज दूरि करि दैयत, नैकु न तापै आवै।—सूर०, १।१४२।

अबाल¹—वि० [सं०] १ जो बालक न हो। जवान। २ अबालकोचित। ३ पूर्ण। पूरा। जैसे, अबालेंदु=पूर्ण चद्रमा।

अबाल²†—संज्ञा पुं० [देश०] वह रस्सी जो चरखे की पँखुड़ियों को बाँध कर तानी जाती है और जिस पर से होकर माला चलती है।

अबाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पक्षी जो उत्तरी भारत और बबई प्रांत तथा आसाम, चीन और स्याम में मिलती है। इसका रंग भूरा और गर्दन कुछ पीली होती है। यह झुंड में रहता है और अपना घोसला घास और पर का बनाता है। बेंगनकुटी।

अबास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आवास] रहने का स्थान। घर। मकान। उ०—(क) ऊँचे अवास बहु ध्वज प्रकास। सोभा विलास, सोभै प्रकास।—केशव (शब्द०)। (ख) कबिरा गर्व न कीजिए, ऊँचा देखि अवास।—कबीर ग्र०, पृ० ६४।

अबाह्य—वि० [सं०] १ बाहरी नहीं। भीतरी। २ पूर्णत परिचित। ३ जिसमें बाहरी स्थिति न हो [को०]।

अबिंगि(पु)—वि० [सं० अव्यङ्ग्य] व्यंग्यरहित। उ०—वचन अबिंगि कहै रस भोय।—नंद० ग्र०, पृ० १४७।

अबिंधन—संज्ञा पुं० [सं० अब्धिन्धन] १ समुद्र। २ बडवानल।

अबिंध्य—संज्ञा पुं० [सं० अविन्ध्य] रावण का एक मंत्री। यह बड़ा विद्वान् शीलवान् और वृद्ध मंत्री था। इसने रावण से सीता को लौटाने के लिये कहा था।

अबिकारी—वि० [सं० अविकारी] दे० 'अविकारी'। उ०—अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी।—मानस, १।२३।

अबिगत(पु)—वि० [सं० अविगत] १ जो विगत न हो। जो जाना न जाय। उ०—अबिगत गति कछु कहत न आवै। ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै।—सूर० १।२।

अबिगति¹(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविगत'। उ०—निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई, अविगति की गति लखी न जाई।—कबीर ग्र०, पृ० १०४।

अबिगति²(पु)—संज्ञा स्त्री० अविगत अवस्था या दशा। उ०—तुलसी राम प्रसाद बिन, अबिगति जानि न जात।—स० सप्तक, पृ० ४५।

अबिचल(पु)—वि० [सं० अविचल] दे० 'अविचल'। उ०—रघुबीर रुचिर पयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी। जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी।—मानस, ५।३५।

अबिछीन(पु)—वि० [सं० अविच्छिन्न] जो विच्छिन्न या टूटा न हो। उ०—औरौ ज्ञान भगति कर, भेद सुनहु सुप्रवीन। जो सुनि होइ राम पद, प्रीति सदा अबिछीन।—मानस, ७।११६।

अबिताली(पु)—संज्ञा पुं० [फा० अफताल, हिं० अफताली] सेना का वह दल जो आगे जाकर पड़ाव आदि की व्यवस्था करता है। उ०—काको अयान निकारन को उर आए हैं जोवन के अबिताली।—केशव ग्र०, पृ० १०।

अबिद(पु)—वि० [सं० अवित्=अज्ञ] ज्ञानशून्य। अविद्वान्। मूर्ख। उ०—त्रिविध भाँति को सबद वर, बिघट न नट परमान। कारन अबिरल अल अपितु, तुलसी अबिद भुलान।—स० सप्तक, पृ० २६।

अबिद्ध—वि० [सं० अविद्ध] अनवेधा। बिना छिदा हुआ। दे० 'अविद्ध'।

अबिद्धकर्णी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अविद्धकर्णी'।

अबिद्या(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अविद्या'।

अबिधि†—वि० [सं० अविधि] जो विधि या नियम के अनुकूल न हो। अव्यवस्थित।

अबिनय(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अविनय'। उ०—स्वामिनि अबिनय छमिबि हमारी।—मानस, २।११६।

अबिनासी(पु)—वि० [हिं०] 'अविनाशी'। उ०—अबिनासी मोहि ते चल्या, पुरई मेरी आस।—कबीर ग्र०, पृ० ७०।

अबिबेक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अविवेक'। उ०—प्रभु अपने अबिबेक तें, बूझौं स्वामी तोहि।—मानस, ७।९३।

अबिबेकी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविवेकी'। उ०—जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि।—मानस, २।१४२।

अबिरल(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविरल'।

अबिरुद्ध(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविरुद्ध'। उ०—नाम सुद्ध, अबिरुद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन।—तुलसी ग्र०, पृ० ३५।

अबिरोध—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अविरोध'। उ०—समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघुवंस पुरोधा।—मानस, २।२९५।

अबिरोधी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविरोधी'। उ०—धर्म विचारे प्रथम पुनि, अर्थ धर्म अबिरोधि। धर्म अर्थ बाधा रहित सेवै काम सुसोधि।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १६१।

अबिर्था(पु)†—वि०[सं० आ=पूरी तरह+व्यर्थ त्रिरथा, बिर्था] बिरथा, दे० 'वृथा'। उ०—माया कारन बिद्या बेचहु जन्म अबिर्था जाई।—कबीर ग्र०, पृ० ३०३।

अबिलंब—क्रि० वि० [सं० अविलम्ब] दे० 'अविलंब'। उ०—जय, जय, जय बलभद्र वीर धीर गंभीर अबिलंब अलबहारी।—घनानंद, पृ० ५५०।

अबिसेक(पु)—वि० [हिं०] दे० अभिषेक। उ०—प्रेमहित करि छीरसागर भई मनसा एक। स्याम मति से अंग चंदन अमी के अबिसेक।—सा० लहरी, पृ० १८५।

अबिहड(पु)—वि०[हिं०] दे० 'अविहड'। उ०—आदि मध्य अरु अंत लौं अबिहड सदा अभंग। कबीर उस करतार की सेवग तजै न संग।—कबीर ग्र०, पृ० ८६।

अविहित—(पु) वि० [सं० अविहित] दे० 'अविहित'। उ०—राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अविहित तव बानी।—मानस, १।११६।

अबी(पु)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अभी'। उ०—जो तूँ कह्या हमारा मानै नाही अबी करो तुम छाई।—प्राण, पृ० १२२।

अबीज[1]—वि [सं०] १ बीजविहीन। २ उत्पादन-क्षमता-रहित। नपुसक। ३ कारणरहित [को०]।

अबीज[2]—संज्ञा पु० वह बीज जिसकी उत्पादनशक्ति नष्ट हो चुकी हो [को०]।

यौ० —अबीजविक्रयी।

अबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अगूर की एक किस्म। बेदाना अगूर। किशमिश।

अबीर—संज्ञा पुं० [अ० अबीर] १ एक रगीन बुकनी जिसे लोग होली के दिनो मे अपने इष्ट मित्रो पर डालते हैं। यह प्राय लाल रग की होती है और सिघाडे के आटे मे हलदी, और चूना मिला कर बनती है। अब अरारोट और अगरेजी बुकनियो से अधिक तैयार की जाती है। गुलाल। उ०—अगर धूप बहु जनु अँधियारी उडै अबीर मनहुँ अरुनारी।—मानस। २ अभ्रक का चूर्ण जिसे होली मे लोग अपने इष्ट मित्रो के मुख पर मलते हैं, कही कही इसे भी अबीर कहते हैं। बुक्का। ३.श्वेत रग की सुगध मिली बुकनी जो वल्लभ कुल के मदिरो मे होली मे उडाई जाती है।

अबीरी[1]—वि० [अ० अबीरी] अबीर के समान या अबीर से बनी। अबीर के रग का। कुछ कुछ स्याही लिए लाल रग का।

अबीरी[2]—संज्ञा पु० अबीरी रग।

अबीह(पु)—वि० [स०अ=नहीं+भीति या भी, प्रा० बीह] भयरहित। निर्भय। निडर। उ०—सांसा सोग सँताप तज, आपा होय अबीह। शून्य सेज मे पाइया हरिया अविनाशीह।—राम० धर्म०, पृ० ७५।

अबुझ(पु)—वि० [हिं०] १ दे० 'अबूझ'। २ न बुझनेवाला।

अबुध—वि० [सं०] १ अबोध। नासमझ। अज्ञानी। मूर्ख। उ०—भानु बस राकेस कलकू। निपट निरकुस अबुध असकू।—तुलसी (शब्द०) २ अनजान। उ०—रह जाता नर लोक अबुध ही ऐसे उन्नत भावो से।—साकेत, पृ० ३७१। ३ बेहोश। मूर्च्छित। बेसुध। उ०—एक पहर यो अबुध ह्वै रही।—नद ग्र०, पृ० १३८।

अबुद्ध—वि० [सं०] दे० 'अबुध' [को०]।

अबुद्धि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विचार या ज्ञान का अभाव। अज्ञान। अविद्या। २ मूर्खता। बदमाशी [को०]।

अबुद्धि[2]—वि० बुद्धिविहीन। मूर्ख। नादान।

अबुहाना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अभुआना'।

अबू—संज्ञा पुं० [अ०] वालिद। पिता। बाप [को०]।

अबूझ—वि० [सं० अबुद्ध, प्रा० अबुज्झ] अबोध। नासमझ। नादान। उ०—(क) कोने परा न छूटिहै सुन रे जीव अबूझ। कबीर माँड मैदान मे करि इद्रिन सो जूझ।—कबीर (शब्द०)। (ख) अजगव खडेउ ऊख जिमि अजहुँ न बूझ अबूझ।—तुलसी (शब्द०)।

अबे—अव्य० [सं० अयि, पु० हिं अबे] अरे। हे। इस सबोधन का प्रयोग बडे लोग अपने बहुत छोटे वा नीच के लिये करते हैं। जैसे—अबे, सुनता नही है, इतनी देर से पुकार रहे हैं। (शब्द०)

मुहा०—अबे तबे करना = निरादर करना। निरादरसूचक वाक्य बोलना। कच्ची पक्की बोलना।

अबेध(पु)—वि० [सं० अविद्ध] जो छिदा न हो। बिना बेधा। अनबिधा। उ०—नौकै रतन अबेध अलौकिक नहिं गाहक नहिं साँई। चिमिकि चिमिकि चमकै दृग दुहुँ दिसि अरब रहा छरि आई।—कबीर (शब्द०)।

अबेर(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवेला] विलब। देर। अतिकाल। उ०—आवत पिय नहिं दीखती भई बहुत अबेर।—सत वाणी, भा० १ पृ० ११३।

अबेव(पु)—वि० [सं० अभेद, प्रा०, अभेव] भेदरहित। समभाव युक्त। उ०—दोऊ मिले अबेव साहिब सेवक एक से।—पलटू०, पृ० २२।

अबेश(पु)—वि० [सं० अ=अति+फा० बेश=अधिक] अधिक। बहुत। उ०—कीर कदव मजुका पूरण सौरभ उडत अबेश। अगर धूप सौरभ नासा मुख बरषत परम सुदेश।—सूर (शब्द०)।

अबै(पु)—क्रि० वि० [हिं० अब ही] अभी। तत्काल। इसी समय।

अबैन(पु)—वि० [हिं० अ+बैन] १ वाणीविहीन। मौन। चुप। २ दूषित वचन। अवाच्य। कुवचन।

अबैर—संज्ञा पुं० [सं० अवैर] अविरोध। अद्वेष। वैर का अभाव। उ०—वैर से नहीं अबैर से हृदय जीतने की विचारपरपरा के माननेवाले। किन्नर०। पृ० १०।

अबोध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञान। मूर्खता।

अबोध[2]—वि० अनजान। नादान। अज्ञानी। मूर्ख। उ०—तुम अति अबोध, अपनी अपूर्णता को न स्वय तुम समझ सके।—कामायनी, पृ० १६३।

यौ०—अबोधगम्य = जो समझ मे न आ सके।

अबोध्य—वि० [सं०] जो समझ मे न आ सके। समझ मे न आने योग्य [को०]।

अबोल[1](पु)—वि० [सं० अ+हिं० बोल] १ मौन। अवाक्। उ०—(क) बोलहिं सुअन ढँक बक लेदी। रही अबोल मीन जलभेदी।—जायसी (शब्द०)। (ख) पीरी पाती पावते पीरी बढी कपोल। कोरे बदन बिलोकि के मुदिता भई अबोल (शब्द०)। २ जिसके विषय मे बोल न सकें। उ० जहाँ बोल अक्षर नहिं आया। जहाँ अक्षर तहँ मनहिं दृढाया। बोल अबोल एक है सोई। जिन या लखा सो बिरला कोई।—कबीर (शब्द०)।

अबोल[2]—संज्ञा पुं० कुबोल। बुरी बोली।

अबोलना—संज्ञा पुं० [स० अ+हिं० बोलना] न बोलने की स्थिति। असंभाषण। उ०—पाट न खोल्या मुखाँ न बोल्या साँज लग परभात। अबोलना मे अवध बीती, काहे की कुसलात।—सत वाणी०, भा० २, पृ० ७०।

अबोला—संज्ञा पुं० [सं० अ+हिं बोलना] रंज से बोलचाल का न होना। उ०—मिलि खेलिय जा सँग बालक तें कहु तासों अबोलो क्यों जान कियो।—केशव (शब्द०)।

अब्ज—संज्ञा पुं० [सं०] १ जल में उत्पन्न वस्तु। २ कमल। पद्म। उ०—अंकुस ऊरध रेख अब्ज अठकोन अमनतर।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७। ३ शख ४ निचुल। इज्जल। हिज्जल। ईजड का पेड़। ५ चद्रमा। ६ धन्वतरि। ७ कपूर। ८ एक सख्या। सौ करोड। अरब। ९ अरब के स्थान पर आनेवाली सख्या १,००,००,००,०००।

यौ०—**अब्जकर्णिका**—कमल का छाता। **अब्जज**=(१) ब्रह्मा। (२) यात्रा मे एक योग।

विशेष—यह तब होता है जब बुध अपनी राशि और अपने अंश का हो और लग्न मे शुक्र या बृहस्पति हो।

अब्जदृक्, अब्जनयन, अब्जनेत्र=कमलनयन। कमल जैसे नेत्रोंवाला। **अब्जबांधव**=सूर्य। **अब्जभव**=ब्रह्मा। **अब्जभू**=ब्रह्मा। **अब्जभोग**=(१) कमल की जड। भँसीड। (२) कौडी। वराटक। **अब्जयोनि**=ब्रह्मा। **अब्जवाहन**=शिव। **अब्जवाहना**=लक्ष्मी। **अब्जस्थित**=ब्रह्मा। **अब्जहस्त**=सूर्य। **अब्जासन**=ब्रह्मा।

अब्जद—संज्ञा पुं० [अ०] १ अरबी फारसी वर्णमाला के अक्षर। २ अरबी अक्षरों का वह क्रम जिसमे प्रति अक्षर का मूल्य सख्या में निर्धारित है।

विशेष—इससे लोगो के मरने या पैदा होने का साल निकाला जाता है। कुछ लोग बच्चों के नाम उसी आधार पर रखते हैं जिससे जन्मवर्ष ज्ञात हो।

अब्जदख्वा—संज्ञा पुं० [अ० अब्जद+फा० ख्वाँ] अरबी फारसी वर्णमाला पढनेवाला विद्यार्थी। नवसिखिया।

अब्जा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी।

अब्जाद—संज्ञा पुं० [सं०] हस [को०]।

अब्जिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कमलवन। पद्मसमूह। २ पद्मलता। पौनार। ३ कमलिनी (को०)। ४ कमल से आपूर्ण स्थान या जलाशय (को०)।

यौ०—**अब्जिनीपति**=सूर्य।

अब्द[1]—संज्ञा पुं० [अ०] दास। सेवक। गुलाम। अनुचर। भक्त [को०]।

अब्द[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वर्ष। साल। २ मेघ। बादल। उ०—मर्कट जुद्धविरुद्ध क्रुद्ध अरि ठट्ट दपट्टहि। अब्द शब्द करि गजि तजि झुकि झपि झपट्टहि।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १८२। ३ एक पर्वत। ४. नागरमोथा। ५ कपूर। ६. आकाश। उ०—जय जय शब्द अब्द अति होई। वर्षत कुसुम पुरंदर सोई।—गोपाल (शब्द०)।

यौ०—**अब्दप**=वर्षाधिप। इद्र। **अब्दज्ञ**=ज्योतिषी। **अब्दवाहन**=इद्र। **अब्दसार**=कपूर।

अब्दकोश—संज्ञा पुं० [सं० अब्द+कोश, अं० इयरबुक] १ वह वार्षिक सग्रहग्रथ जिसमे वर्ष के मुख्य व्यक्तियो, घटनाओं, जानकारियों आदि का विवरण मिले। २. वर्ष वर्ष का विवरणसग्रह।

अब्दाली—वि०, संज्ञा पुं० [फा०] अब्दाल का निवासी (व्यक्ति)।

विशेष—अब्दाल वासी होने से अहमदशाह के नाम के आगे यह शब्द जुडता है इसने नादिरशाह के बाद भारत पर १७६१ ई० मे आक्रमण किया था। इसका युद्ध मराठो मे हुआ था जिसमे मराठो की हार हुई थी। इसकी उपाधि दुर्रए दुर्रानी भी थी।

अब्दि—संज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ [को०]।

अब्दुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वह दुर्ग या किला जो चारो ओर से जल से घिरा हो। वह किला जिसके चारो ओर खाई हो।

अब्धि—संज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। सागर। २ सरोवर। ताल। ३ सात की सख्या। ४ चार की सख्या का द्योतक (को०)।

अब्धिकफ—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन।

अब्धिज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अब्धिजा] १ समुद्र से पैदा हुई वस्तु। २ शख। ३ चद्रमा। ४ अश्विनीकुमार। ५ नमक (को०)।

अब्धिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लक्ष्मी। २ वारुणी। मदिरा [को०]।

अब्धिद्वीपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी। २ समुद्र से घिरा भूखंड। टापू [को०]।

अब्धिनगरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारकापुरी।

अब्धिनवनीतक—संज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा [को०]।

अब्धिफेन—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्री झाग। समुद्रफेन [को०]।

अब्धिमडूकी—संज्ञा स्त्री० [सं० अब्धिमण्डूकी] वह सीप जिसमे मोती रहता है।

अब्धिशय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

अब्धिशयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अब्धिशय' [को०]।

अब्धिसार—संज्ञा पुं० [सं०] रत्न [को०]।

अब्ध्यग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] समुद्र की अग्नि। वडवानल।

अब्बर†—वि० [हिं०] दे० 'अबल'। उ०—बब्बर की धाक औ अकब्बर की साक सब्बै, अब्बर की छाक लौं सनैही मिसि जायगी।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १६८।

अब्बा—संज्ञा पुं० [अ० अब=पिता का संबोधन आबा] पिता। बाप।

अब्बाजान—संज्ञा पुं० [अ० आबा+फा० जान] पिता के लिये आदरसूचक सबोधन।

अब्बास—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० अब्बासी] १ एक पौधा जो दो तीन फुट तक ऊँचा होता है। गुल अब्बास।

विशेष—इसकी पत्तियाँ कुत्ते के कान की तरह नोकीली और लबी होती हैं। कुछ लोग भूल से इसकी मोटी जड को चोबचीनी कहते हैं। इसके फूल प्राय लाल होते हैं, पर पीले और सफेद भी मिलते हैं। फूलो के झड जाने पर उनके स्थान पर काले काले मिर्च के ऐसे बीज पडते हैं।

२ हजरत मुहम्मद साहब के चाचा जो अब्बासी खलीफाओं के पूर्वज थे।

अब्बासी[1]—संज्ञा स्त्री० [अ०] मिस्र देश की एक प्रकार की कपास।

अब्बासी[2]—वि० [अ०] १ गुलअब्बास के फूल के रंग का। २ हजरत अब्बास के वंशज या संबंधी।

अब्बिंदु—संज्ञा पुं० [सं० अब्बिन्दु] १. जलबिंदु। २. आँसू। अश्रुबिंदु [को०]।

अब्बीह—वि० [सं० अभय; प्रा० अब+बीह] निर्भय। निडर। उ०—दिन सौह अब्बीह आपेट खिल्लै।—पृ० रा०, ११३१२।

अब्बू(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्बुद] आबू । अरवली पर्वतशृंखला मे स्थित एक स्थान । उ०—अब्बू वै द्रुग भाग, अब्बु बर्यों जिहि पायन ।—पृ० रा०, १२।३० ।

अब्भ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अभ्र, प्रा० अब्भ] दे० 'अभ्र' । उ०—वज्जत सार गज्जत अब्भ ।—हम्मीर०, पृ० ८२ ।

अब्भक्ष[1]—वि० [सं०] केवल जल पीकर जीनेवाला [को०] ।

अब्भक्ष[2]—संज्ञा पुं० [सं०] पानी मे रहनेवाला साँप । डेडहा साँप ।

अब्भक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमे केवल जल पीते हैं । जल पीकर रहना [को०] ।

अब्भ्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभ्र' [को०] ।

अब्यगि(पु)—वि० दे० 'अव्यग्य' । उ०—प्रीतम कौं जब सागस लहै । व्यगि अव्यगि बचन कछु कहै ।—नंद० ग्र०, पृ० १४७ ।

अब्याई(पु)†—वि० [सं० अ + हिं० ब्याई] जिसने बच्चा न जना हो । जिसे प्रसव न हुआ हो । उ०—जगल मे चरैंछी मो अब्याई झोटी आई ।—शिखर०, पृ० ३ ।

अब्याहत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अव्याहत' । उ०—अब्याहत गति संभु प्रसादा ।—मानस, ७।११० ।

अब्र—संज्ञा पुं० [फा० तुल सं० अभ्र] बादल । उ०—बिना आब जहँ बहु गुल फूले, अब्र बिना जहँ बरसै ।—मलूक०, पृ० ४ ।

अब्रन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवर्ण' । उ०—अब्रन बरण सो भेद निनारा । घट घट बसे लिप्त तन धारा ।—कबीर सा०, पृ० ८७३ ।

अब्राह्मण्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह कर्म जो ब्राह्मणोचित न हो । २ हिंसादि कर्म । ३ नाटकादि मे दिखाए जानेवाले अनुचित कर्म के बोध या ज्ञान के लिये नेपथ्य मे उद्घोषित शब्द । कही कही ब्राह्मण रक्षा या सहायता की दृष्टि से भी अब्रह्मण्यम् शब्द का उच्चारण करता है ।

अब्रह्मण्य[3]—वि० [सं०] १ ब्राह्मण के अयोग्य । २ जिसकी श्रद्धा ब्राह्मण मे न हो । जो ब्राह्मणनिष्ठ न हो । ब्राह्मणविरोधी ।

अब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो ब्राह्मण न हो । ब्राह्मणेतर व्यक्ति । उ०—एक अब्राह्मण इतना विवेकवान नही हो सकता ।—सं० दरिया, पृ० ६० ।

अब्राह्मण्य[2]—वि० [सं०] ब्राह्मणविरहित । ब्राह्मणविहीन ।

अब्राह्मण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्राह्मणोचित कर्तव्यो की अवज्ञा या उल्लघन । २ दे० 'अब्रह्मण्य' ।

अब्रू—संज्ञा स्त्री० [फा०] भौंह । भ्रू । दे० 'अबरू' ।

अब्रेअबर—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'अबर' ।

अभंग[1]—वि० [सं० अभङ्ग] १ अखड । अटूट । पूर्ण । उ०—जनता की सेवा का व्रत मैं लेता अभंग ।—अपरा, पृ० ६४ । २ अनाशवान् । न मिटनेवाला । उ०—आदि, मध्य अरु अंत लौ, अविहड सदा अभंग । कबीर उस करता की सेवग तजै न संग ।—कबीर ग्रं०, पृ० ८६ । ३ जिसका क्रम न टूटे । लगातार । उ०—प्रिये, प्रिये उत्तर दो मैं ही करता नही पुकार अभंग ।—साकेत, पृ० ३८५ । ४ जो भग या नष्ट न किया जा सके । सुदृढ । मजबूत । उ०—निपट अभंग गढ कोट सब हारे तै ।—भूषण ग्र० पृ० ८२ ।

अभंग[2]—संज्ञा पुं० १ संगीत मे एक प्रकार का ताल जिसमे एक लघु, एक गुरु और दो प्लुत मात्राएँ होती हैं । २. एक प्रकार का पद या भजन जिनका व्यवहार मराठी मे होता है । जैसे—तुकाराम के अभंग । ३ एक श्लेष जिसमे शब्द को विभक्त किए बिना ही दूसरा अर्थ प्रकट हो । अर्थश्लेष (को०) । ४ भग या पराजय का अभाव (को०) ।

अभंगपद—संज्ञा पुं० [सं० अभङ्गपद] श्लेष अलकार का एक भेद । वह श्लेष जिसमे अक्षरो को इधर उधर न करना पडे और शब्दों से भिन्न भिन्न अर्थ निकल आवें । उ०—(क) अति अकुलाय शिलीमुखन, वन मे रहत सदाय । तिन कमलन की हरत छवि तेरे नैन सुभाय (शब्द०) । यहाँ 'शिलीमुख', 'वन' और 'कमल' शब्द के दो दो अर्थ बिना शब्दो को तोडे हुए हो जाते हैं । (ख) रावन सिर सरोज वनचारी । चलि रघुवीर सिली मुख धारी ।—मानस, ६।६१ ।

अभंगिनी—वि० स्त्री० [सं० अभङ्ग + इनी (प्रत्य०)] जो विच्छिन्न न हो । उ०—तन से न सही, अभंगिनी, मन से है हम किंतु संगिनी ।—साकेत, पृ० ३६४ ।

अभंगी(पु)—वि० [सं० अभङ्गिनी] १ अभंग । पूर्ण । अखड । २. जिसके किसी अंश का हरण न हो सके । जिसका कोई कुछ न ले सके । उ०—आए माई दुरंग स्याम के संगी । सूधी कहि सबहिनि समुझावत, ते साँचे सरबंगी । औरनि कौं सरबस लै मारत आपुन भए अभंगी ।—सूर०, १०।३५११ ।

अभंगुर—वि० [सं० अभङ्गुर] १ जो टूटनेवाला न हो । दृढ । मजबूत । २ अनाशवान् । न मिटनेवाला ।

अभंजन[1]—वि० [सं० अभञ्जन] जिसका भजन न हो सके । अटूट । अखड ।

अभंजन[2]—संज्ञा पुं० द्रव वा तरल पदार्थ जिनके टुकडे नही हो सकते, जैसे—जल, तेल आदि ।

अभ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्र' । उ०—जिण दिन स्वामी भ्रम न गभ । ये तो जुग सूना गया ।—बी० रासो, पृ० ८२ ।

अभक्त—वि० [सं०] १ जो भक्त न हो । भक्तिशून्य । श्रद्धाहीन । २ भगवद्विमुख । उ०—भक्त अभक्त सबै पुनि खाई । सबको भखै निरंजन राई ।—कबीर सा०, पृ० ५७ । जो बाँटा न गया हो । जो अलग न किया गया हो । जिसके टुकडे न हुए हों । समूचा ।

अभक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन न करना । उपवास [को०] ।

अभक्ष[2]—वि० दे० 'अभक्ष्य' ।

अभक्षण—संज्ञा पुं० दे० 'अभक्ष' ।

अभक्ष्य[1]—वि० [सं०] १ अखाद्य । अभोज्य । जो खाने के योग्य न हो । २ जिसके खाने का धर्मशास्त्र मे निषेध हो ।

अभक्ष्य[2]—संज्ञा पुं० भोजन के लिये निषिद्ध खाद्य पदार्थ [को०] ।

अभख(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभक्ष्य' । उ०—केचित अभख भखत न सकाही । मदिरा पान मास पुनि खाही ।—सुंदर ग्र०, पृ० ८२ ।

अभग—वि० [सं०] अभागा । भाग्यहीन [को०] ।

अभगत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अभक्त' । उ०—तदपि करहिं सम विषम बिहारा । भगत अभगत हृदय अनुसारा ।—मानस, २।२१८ ।

अभग(पु)—वि० [स० अभग्न] जो विभक्त या अलग विलग न हो। जो टूटा या भग्न न हो। उ०—तहँ सु विजय सुरराजपति, जादू कुलह अभग।—पृ० रा०, २०। १।

अभग्न—वि० [स०] अखड। जो खडित न हुआ हो। समूचा। उ०—जगत्तत्व की खोज मे लग्न जहाँ ऋषियो ने अभग्न किया श्रम था।—इतिहास, पृ० ६०६।

अभद्र¹—वि० [स०] १ अमांगलिक। अशुभ। अकल्याणकारी। २ अश्रेष्ठ। असाधु। अशिष्ट। बेहूदा। कमीना।

अभद्र²—सज्ञा पुं० [स०] १ बुराई। पाप। दुष्टता। २ शोक [को०]।

अभद्रता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अमांगलिकता। अशुभ। २. अशिष्टता। असाधुता। बुराई। खोटाई। बेहूदगी।

अभपद(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अभयपद'। उ०—अभपद भुजदड मूल, पीन अस सानुकूल, कनक मेखला दुकूल दामिनी धरखी री।—सूर०, १०।१३८४।

अभयकर—वि० [स० अभयङ्कर] १ जो भयकर न हो। सौम्य। २ अभय करनेवाला [को०]।

अभय¹—वि० [स०] [स्त्री० अभया] निर्भय। निडर। बेखौफ। उ०—जिन्ह कर भुज बल पाइ दसानन। अभय भए बिचरत मुनि कानन।—मानस, ३।१६।

मुहा०—**अभय देना वा अभय बाँह देना**=भय से बचाने का वचन देना। शरण देना। निर्भय करना। उ०—(क) ब्रह्मा रुद्रलोकहूँ गयो। उनहूँ ताहि अभय नहिं दयो।—सूर० (शब्द०)। (ख) लछिमन अभयबाँह तेहि दीन्ही।—मानस ४।८०।

यौ०—**अभयदान। अभयवचन। अभयबाँह।**

अभय²—सज्ञा पुं० [स०] १ उशीर। खस। वीरणमूल। २ निर्भयता। ३ परमात्मा। ४ परमात्मविषयक ज्ञान। ५ भौतिक सपत्ति अभाव। सासारिक सपदाविहीनता। ६ अभयसूचक एक मुद्रा। ७ शिव। ८ भय से प्राप्त त्राण। ९ यात्रा सबधी एक योग [को०]।

अभयचारी—सज्ञा पुं० [स० अभयचारिन्] वे जगली पशु जिनके मारने की आज्ञा न हो।

अभयडिंडिम—सज्ञा पुं० [स० अभयडिण्डिम] १ सुरक्षात्मक भरोसे की घोषणा। एक युद्ध वाद्य [को०]।

अभयद¹—वि० [सं०] दे० 'अभयदाता' [को०]।

अभयद²—सज्ञा पुं० १ विष्णु का एक नाम। २ जैनों के एक अर्हत [को०]।

अभयदक्षिणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] सुरक्षा का वचन, आश्वासन या भरोसा देना। भयभीत को शरण देना। (को०)।

अभयदाता—वि० [स० अभय+दातृ] अभय देनेवाला। उ०—माडवी चित्त चातक नवाबुदवरण सरन तुलसीदास अभय-दाता।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७४।

अभयदान—सज्ञा पुं० [स०] भय से बचाने का वचन देना। निर्भय करना। शरण देना। रक्षा करना। उ०—नरहरि देखि हर्ष मन कीन्हो। अभयदान प्रहलादहि दीन्हो।—सूर० ७।२।

क्रि० प्र०—**देना।**

अभयदानी—वि० [सं० अभयदानिन्] अभय देनेवाला। उ०—गाइ द्विजराज तियकाज न पुकार लागै, भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि।—राम च०, पृ० ९२।

अभयपत्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ सुरक्षा के आश्वासन का लिखित पत्र या अभिलेख [को०]।

अभयपद—सज्ञा पुं० [सं० अभयपद] निर्भय पद। मोक्ष। मुक्ति। उ०—पिता वचन खडै सो पापी, सोइ प्रहलादहिं कीन्हो। निकसे खभ बीच तें नरहरि, ताहि अभयपद दीन्हो।—सूर० १।१०४।

अभयप्रद—वि० [सं०] भय से विमुक्ति का आश्वासन देनेवाला। अभय देनेवाला (को०)।

अभयमुद्रा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक तात्रिक मुद्रा। २ भय से विमुक्ति का भाव व्यक्त करनेवाला हाथ का एक सकेत [को०]।

अभययाचना—सज्ञा स्त्री० [स०] भय से रक्षा करने की प्रार्थना। अभय की भीख [को०]।

अभयवचन—सज्ञा पु० [सं०] भय से बचाने की प्रतिज्ञा। रक्षा का वचन।

क्रि० प्र०—**देना।**

अभयवन—सज्ञा पु० [सं०] वह वन जिसे काटने की आज्ञा न हो। रक्षित वन।

अभयवनपरिग्रह—सज्ञा पु० [स०] रक्षित वन सबधी राजनियम का भग या विघात। जैसे, उसमे घुसना, पेड काटना, लकडी तोडना आदि।

अभया¹—वि० [सं०] निर्भया। बेडर की। निडर।

अभया²—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की हरीतकी या हड जिसमे पाँच रेखाएँ होती हैं। उ०—अभया सोंठ चिरायत कना। सोचर मिर्चहिं चूरन बना।—इद्रा०, पृ० १५१। २ दुर्गा का एक स्वरूप (को०)।

अभर(पु)—वि० [स० अ=अति+भर=भार] दुर्वह। न ढोने योग्य। उ०—भाई रे गैया एक विरचि दियो है भार अभर भो भाई। नौ नारी को पानि पियति है तृषा तऊ न बुताई।—कबीर (शब्द०)।

अभरन¹(पु)—सज्ञा पुं० [सं० आभरण] दे० 'आभरण'। उ०—इतनो सुनत मगन ह्वै रानी बोलि लए नँदराई। सूरदास कचन के अभरन लै भगरिनि पहिराई।—सूर० १०।१६।

अभरन²(पु)—वि० [सं० अ+हिं० भरम=मान प्रतिष्ठा] अपमानित। दुर्दशाग्रस्त। उ०—उस बात की कसक हमारे मन से नही जाती जो बलराम ने तुम्हे अभरन किया था।—लल्लू० (शब्द०)।

अभरम¹(पु)—वि० [सं० अ+भ्रम, हिं० भरम] १ भ्रम न करनेवाला। अभ्रात। अचूक। २ नि शक। निडर। उ०—कृतवर्मा भट चल्यो अभरमा कचन बरमा।—गोपाल० (शब्द०)।

अभरम²—क्रि० वि० नि सदेह। बिना सशय। निश्चय।

अभरी(पु)†—सज्ञा स्त्री० [सं० अ+हिं० भरी] परिपूर्णता। उ०—अभरी थावै आय सु चित सरसावै चाव।—बाँकीदास ग्र०, भा० १, पृ० ५०।

अभर्तृका—वि० स्त्री० [सं०] १ अविवाहिता कुमारी। २ पतिविहीन। विधवा [को०]।

अभर्म(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अभरम'। उ०—राम कह्यो जो तुम चह्यो यह दुर्लभ वर पर्म। पै मेरे सतसग ते होइहि सत्य अभर्म।—गोपाल० (शब्द०)।

अभल(पु)—वि० [सं० अ+हिं० भल=भला] अश्रेष्ठ। बुरा। खराब।

अभव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ न होना अनस्तित्व। २ नाश। प्रलय। ३ निर्वाण। मोक्ष (को०)।

अभव[2]—वि० जो उत्पन्न न हो। अजन्मा [को०]।

अभव्य[1]—वि० [सं०] १ न होने योग्य। २ विलक्षण। अदभुत। अनहोना। ३ अमागलिक। अशुभ। बुरा। अभागा। ४ अशिष्ट। बेहूदा। भद्दा। भोंडा।

अभव्य[2]—संज्ञा पुं० जैन शास्त्रानुसार जीव, जो कभी मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते।

अभाऊ(पु)—वि० [सं० अ+भाव] १ जो न भावे। जो अच्छा न लगे। उ०—भइ अज्ञा को भाँट अभाऊ। बाएँ हाथ देइ बरम्हाऊ।—जायसी ग्रं०, पृ० ११४। २ जो न सोहे। अशोभित। उ०—काढहु मुद्रा फटिक अभाऊ। पहिरहु कुंडल कनक जडाऊ।—जायसी (शब्द०)।

अभाग[1]—वि० [सं०] १ बिना भाग का। बिना हिस्से का। २ अविभक्त।

अभाग[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभाग्य'। उ०—सपनेहु दोस कलेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू।—मानस, २।२६०।

अभागा—वि० [सं० अभाग्य] [स्त्री० अभागिन्, अभागिनी] मदभाग्य। भाग्यहीन। प्रारब्धहीन। बदकिस्मत। उ०—(क) अति खल जे विषई बक कागा। एहि सर निकट न जाइ अभागा।—मानस, १।३८। (ख) कैसे तू अभागा यहाँ पहुँचा है मरने ?—लहर, पृ० ७२।

अभागी—वि०[सं०अभागिन्][वि० स्त्री० अभागिनी] १ जिसे कुछ भाग न मिले। जिसे हिस्सा न मिले। २ भाग्यहीन। बदकिस्मत। उ०—करनु राजु लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी।—मानस, ५।५३।

अभाग्य[1]—वि० [सं०] अभागवाला। भाग्यहीन। अभागा [को०]।

अभाग्य[2]—सं० पु० [सं०] प्रारब्धहीनता। दुर्दैव। बुरा दिन। बदकिस्मती। उ०—मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहि हौं हरि पद कमल बिछोही।—मानस, ६।९८।

अभाजन—संज्ञा पुं० [सं०] अपात्र। कुपात्र। बुरा आदमी।

अभाजै(पु)—वि० [सं० अविभाजित] जो विभक्त न हो। अखडित। समूचा पूर्ण। उ०—अभाजै सी रोटली कागा ले जाइला। पूछौ म्हारा गुरू नै कहाँ बैसि खाइला।—गोरख०, पृ० १२८।

अभाय(पु)—संज्ञा पु० [सं० अभाव] भावशून्यता। अनस्तित्व। असत्ता। उ०—त्यों ही कछु घूमि भूमि बेसुध गए कै हाय, पाय परे उखरि अभाय मुख छायो है।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११६।

अभार(पु)—वि०[हिं०] दे० 'अभर'। उ०—दैव दीन्ह सबु मोहि अभारू। मोरे नीति न धरम विचारू।—मानस, २।२६८।

अभाव[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ असत्ता। अनस्तित्व। नेस्ती। अविद्यमानता। न होना। २ आधुनिक नैयायिकों के मत के अनुसार वैशेषिक शास्त्र में सातवाँ पदार्थ।

विशेष—कणादकृत सूत्रग्रंथ में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय, ये छ पदार्थ ही अभाव' माने गए हैं। अभाव पाँच प्रकार का है, यथा (क) **प्रागभाव**=जो किसी क्रिया और गुण के पहले न हो, जैसे, घडा बनने के पहले न था। (ख) **प्रध्वंसाभाव**=जो एक बार होकर फिर न रहे, जैसे 'घडा बन कर टूट गया। (ग **अन्योन्याभाव**=एक पदार्थ का दूसरा पदार्थ न होना, जैसे, घोडा बैल नहीं है और बैल घोडा नहीं है। (घ) **अत्यंताभाव**=जो न कभी था, न है और न होगा, जैसे, आकाशकुसुम, वंध्या का पुत्र। और (च) ससर्गाभाव=एक वस्तु के सबंध में दूसरे का अभाव, जैसे, घर में घोडा नहीं है।

२ त्रुटि। टोटा। कमी। घाटा। जैसे, राजा के घर में द्रव्य का कौन अभाव है। उ०—अपने अभाव की जडता में वह रह न सकेगा कभी मग्न।—कामायनी, पृ० १५१। ३. नाश। मृत्यु [को०]। लोप। अतरिक्ष। अतर्धान [को०]।

अभाव[2]—वि० भावरहित। स्नेहरहित। लोप। अतरिक्ष। अतर्धान (को०)।

अभाव[3](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ=बुरा+भाव] कुभाव। दुर्भाव। विरोध। उ०—हम तिनकौ बहु भाँति खिझावा। उनके कबहुँ अभाव न आवा।—विश्राम (शब्द०)।

अभावन[1](पु)—वि० [सं० आ+भावन] सुंदर। रुचिर। रुचिकर।

अभावन[2](पु)—वि० [सं० अ=नहीं+भावन] असुंदर। अरुचिकर। अप्रिय।

अभावना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विवेक या निर्णय का अभाव। २ धार्मिक धारणाओं का अभाव (को०)।

अभावनीय—वि० [सं०] १ जो भावना में न आ सके। अचिंतनीय। २ अशोभनीय। उ०—इसी असामजस्य के कारण वह ऐसे ऐसे अभावनीय कार्य कर बैठता है।—मृग० पृ० ५५।

अभावपदार्थ—संज्ञा पु० [सं०] भावशून्य पदार्थ। सत्ताहीन पदार्थ। असत् पदार्थ।

अभावप्रमाण—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में किसी किसी आचार्य के मत से एक प्रमाण जिसमें कारण के न होने से कार्य के न होने का ज्ञान हो। गौतम ने इसको प्रमाण में नहीं लिया है।

अभावित—वि० [सं०] जिसकी भावना न की गई हो।

क्रि० प्र०—रहना।

अभावी—वि०[सं० अभाविन्][वि० स्त्री० अभाविनी] १. जिसकी स्थिति की भावना न हो सके। २ न होनेवाला।

अभाव्य—वि० [सं०] दे० 'अभावी' [को०]।

अभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] भाषण का अभाव। न बोलना। मौन। उ०—मैं नहीं हूँ यों अभाषण योग्य।—साकेत, पृ० १८६।

अभाषित—वि० [सं०] न कहा हुआ। अकथित [को०]।

अभाष्य—वि० [सं०] न बोलने योग्य बात या व्यक्ति। उ०—लोग उन्हें अस्पृश्य और अभाष्य मान उनसे उपेक्षा ही करते रहे। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४२।

यौ०--अभाष्यभाषण = न कहने योग्य बातें कहना या अभाष्य व्यक्ति से बातें करना ।

अभास(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आभास'। उ०--कहु हनुमत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास। तव मूरति विधु उर बसति, सोइ स्यामता अभास ।--मानस, ६।१२।

अभासना(पु)--क्रि० अ० [सं० आभास, हिं० अभास से नाम०] भासना । दिखाई देना । जान पडना । उ०--कंकन, किंकिनि भूषन जिते। मोहि श्रीकृष्ण अभासत तिते ।--नंद ग्रं० पृ० २६६ ।

अभितर(पु)--क्रि० वि० [सं० अभ्यन्तर, प्रा० अब्भितर] दे० 'अभ्यंतर'। उ०--उत्तम पुरुष की दशा ज्यों किसमिस दाख। बाहिज अभितर विरागी मृदु अंग है ।--सुंदर ग्रं०, पृ० १०० ।

अभि--उप० [सं०] एक उपसर्ग जो शब्दों मे लगकर उनमे इन अर्थो की विशेषता उत्पन्न करता है--१ सामने। जैसे, अभ्युत्थान। अभ्यागत । २ बुरा। जैसे, अभियुक्त । ३ अधिक। जैसे, अभिलाषा । ४ समीप। जैसे, अभिसारिका । ५ बारबार, अच्छी तरह। जैसे, अभ्यास । ६ दूर। जैसे, अभिहरण । ७ ऊपर। जैसे, अभ्युदय ।

अभिअंतर(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्यंतर'। उ०--प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई।--मानस, ७।४६ ।

अभिकंपन--संज्ञा पुं० [सं० अभिकम्पन] तीव्र कंपन। बुरी तरह काँपना [को०] ।

अभिक¹--वि० [सं०] कामुक । कामी । विषयी ।

अभिक²--संज्ञा पुं० कामुक व्यक्ति वा प्रेमी जन [को०]।

अभिकरण--संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रभाव। २ आकर्षण । खिंचाव [को०]

अभिकर्षण--संज्ञा पुं० [सं०] कृषि का एक उपकरण। खेती का एक औजार [को०]।

अभिकांक्षा--संज्ञा स्त्री० [सं० अभिकाङ्क्षा] चाह। इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभिकांक्षी--वि० [सं० अभिकाङ्क्षिन्] इच्छुक। अभिलाषी। मनोरथवाला [को०] ।

अभिकाम¹--वि० [सं०] १ इच्छुक। अभिलाषी। २ प्रेमी। ३ कामुक [को०] ।

अभिकाम²--संज्ञा पुं० १ प्रेम। प्यार। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभिकृति--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छंद जिसमे १०० वर्ण या मात्राएँ होती है [को०]।

अभिक्रंद--संज्ञा पुं० [सं० अभिक्रन्द] चिल्लाहट। गर्जन। शोर [को०]

अभिक्रम--संज्ञा पुं० [सं०] १ सुविचारित आक्रमण। धावा। उ०--देखि देखि विक्रम अभिक्रम अकालिनि के कालिनि के बाद साधुवाद बहु दीन्हे हैं।--रत्नाकर, भा० २ पृ० १६२। २ आरोहण (को०)। ३ प्रारंभ। शुरुआत (को०)। प्रयत्न। चेष्टा (को०) ।

अभिक्रमण--संज्ञा पुं० [सं०] १ सेना का शत्रु के सम्मुख जाना। चढाई। धावा। २. दे० 'अभिक्रम'।

अभिक्रांति--संज्ञा स्त्री० [सं० अभिक्रान्ति] दे० 'अभिक्रमण' [को०]।

अभिक्रांती--वि० [सं० अभिक्रान्तिन्] १ जो पहुँच गया हो। २. जिसने आरंभ कर दिया हो। आरंभक [को०]।

अभिक्रोश--संज्ञा पुं० [सं०] १ निंदा करना। कुवाच्य बोलना। २ चिल्लाना।

अभिक्रोशक--संज्ञा पुं० [सं०] १ जोर से चिल्लाने या अपशब्द कहनेवाला व्यक्ति। २ आगे आगे जोर से घोषणा करनेवाला

अभिक्षिप्त--वि० [सं०] फेंका हुआ। तिरस्कृत [को०]।

अभिख्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाम। यश। कीर्ति। २ शोभा। ३ कुख्याति (को०)। ४ महात्म्य। महिमा (को०)। बुद्धि। धी (को०)। ५ नाम (को०)। ६ पुकारना। संबोधन। ७. बताना। कहना (को०)। ८ शब्द। पर्याय (को०)। व्यक्ति [को०]।

अभिख्यात--वि० [सं०] १ कीर्तिशाली। २ विख्यात। मशहूर [को०]।

अभिख्यान--संज्ञा पुं० [सं०] नाम। प्रसिद्धि। यश। कीर्ति [को०]।

अभिगम --संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिगमन' [को०]।

अभिगमन--संज्ञा पुं० [सं०] १ पास जाना। पहुँचना। २ सहवास। संभोग ३ देवताओ के स्थान को झाडू देकर और लीप पोत कर साफ करना। ४ समझना।

अभिगम्य--वि० [सं०] १ अभिगमन के योग्य। २ बोधगम्य [को०]।

अभिगामी--वि० [सं० अभिगामिन्] [स्त्री० अभिगामिनी] १ पास जानेवाला। २ हहवास या संभोग करनेवाला। जैसे--ऋतुकालाभिगामी।

अभिगुंजन--संज्ञा पुं० [सं० अभि + गुञ्जन] मधुर ध्वनि। रसीला स्वर।

अभिगुंजी(पु)--वि० [हिं०] अभिगुंजन करनेवाली। उ०--मधुर अधर अभिगुंजी धरैं। कान्ह मुरलिया सुर संग ररैं।--घनानंद० पृ० १८६ ।

अभिगुप्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ छिपाकर रखना। सँभालकर रखना। २ आत्मसंयमन [को०]।

अभिगूंज--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अभिगुंजन'।

अभिगोप्ता--वि० [सं० अभिगोप्तृ] छिपा रखनेवाला। बचा रखनेवाला। संरक्षणकर्ता [को०]।

अभिग्रस्त--वि० [सं०] शत्रु द्वारा दबाया हुआ। आक्रांत [को०]।

अभिग्रह--संज्ञा पुं० [सं०] १ लेना। आदान। ग्रहण। स्वीकार। २. झगडा। प्रहार। कलह। ३ लूट। डाका। ४ चढाई। धावा। ५ चुनौती (को०)। ६ शिकायत (को०)। ७ अधिकार। शक्ति [को०]।

अभिग्रहण--संज्ञा पुं० [सं०] स्वामी की उपस्थिति मे उसकी वस्तु का अपहरण। राहजनी। लूट (को०)।

अभिघट--संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जो घडे के आकार का होता था और जिसके मुँह पर चमडा मढा रहता था।

अभिघात-- संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिघातक, अभिघाती] १ चोट पहुँचना। प्रहार। मार। ताडना। पुरुष की बाईं ओर और स्त्री की दाईं ओर का मसा।

अभिघातक—वि० [स०] चोट पहुँचानेवाला [को०]।

अभिघातकी—वि० [स० अभिघातकिन्] दे० 'अभिघातक'।

अभिघाती—वि० [स० अभिघातिन्] [वि० स्त्री० अभिघातिनी] दे० 'अभिघातक'।

अभिघार—सज्ञा पु० [स०] १ सीचना। छिडकाव। २ घी की आहुति। ३ घी से छौंकना या बघारना। ४ घी।

अभिचर—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री० अभिचारी] दास। नौकर। सेवक।

अभिचरण—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अभिचार'।

अभिचरणीय—वि० [स०] 'अभिचरण या अभिचार के योग्य [को०]।

अभिचार—सज्ञा पुं० [स०] अथर्ववेदोक्त मत्र यत्र द्वारा मारण और उच्चाटन आदि हिंसा कर्म। पुरश्चरण। २ तत्र के प्रयोग, जो छ प्रकार के होते हैं—मारण, मोहन, स्तभन विद्वेषण, उच्चाटन और वशीकरण। स्मृति मे इन कर्मों का उपपातको मे माना गया है। उ०—उसकी आँखो मे अभिचार का सकेत है, मुस्कुराहट मे विनाश की सूचना है।—स्कद०, पृ० २६।

अभिचारक[1]—सज्ञा पु० [स०] यत्र मत्र आदि द्वारा मारण, उच्चाटन आदि कर्म।

अभिचारक[2]—वि० यत्र मत्र द्वारा उच्चाटन आदि करनेवाला।

अभिचारी—वि० [स० अभिचारिन्] [वि० स्त्री० अभिचारिणी] दे० 'अभिचारक'।

अभिज—वि० [स०] चारो ओर होनेवाला [को०]।

अभिजन—सज्ञा पु० [स०] १ कुल। वश। २ परिवार। ३. जन्मभूमि। वह स्थान जहाँ अपना तथा पिता, पितामह आदि का जन्म हुआ हो। ४ वह जो घर मे सबसे बडा हो। घर का अगुआ। कुल मे श्रेष्ठ व्यक्ति। ५ ख्याति। कीर्ति। ६ परिजन।

अभिजनन—सज्ञा पु० [स० अभि + जनन] प्रादुर्भाव। उत्पत्ति। उ०—विश्व के अधिपति ने अविच्छेद्य समन्वय का अभिजनन किया।—सपूर्णा० अभि ग्र ०, पृ० १११।

अभिजय—सज्ञा स्त्री० [स०] पूर्ण रूप से विजय। पूरी जीत [को०]।

अभिजात[1]—वि० [स०] १ अच्छे कुल मे उत्पन्न। कुलीन। उ०—अत्याचारियो की नृशसता मे यदुकुल के अभिजात वर्ग ने व्रज को सूना कर दिया।—ककाल, पृ० १४८। २ बुद्धिमान्। पडित। ३ योग्य। उपयुक्त। ४ मान्य। पूज्य। ५ सुदर। मनोहर।

अभिजात[2]—सज्ञा पु० १ उच्चवश। कुलीनता। २ जातकर्म [को०]।

अभिजाति—सज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँचे कुल मे जन्म। कुलीनता [को०]।

अभिजित[1]—वि० [स० अभिजित्] १ विजयी। २ अभिजित् नक्षत्र मे उत्पन्न (को०)।

अभिजित[2]—सज्ञा पुं० [स०] १ दिन का आठवाँ मुहूर्त। दोपहर के पौने बारह बजे से लेकर साढे बारह बजे तक का श्राद्ध के लिये उपयुक्त समय। २. एक नक्षत्र जिसमे तीन तारे मिलकर सिंघाडे के आकार के होते हैं। ३ उत्तराषाढ नक्षत्र के अतिम १५ दड तथा श्रवण नक्षत्र के प्रथम चार दड। उ०—नौमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता।—मानस, १।१६१। ४ विष्णु (को०)। ५ एक यज्ञ (को०)। ६ एक लग्न का नाम (को०)।

अभिज्ञ—वि० [सं०] जानकार। परिचित। विज्ञ। २. निपुण कुशल।

अभिज्ञता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ जानकारी। विज्ञता। २ निपुणता। कुशलता।

अभिज्ञा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पहचानना। जानना। २ याद करना। स्मरण आना। ३ अलौकिक क्षमता या शक्ति। इसके पाँच भेद हैं—कोई भी रूप धारण करना, दूर की बात सुनना, दूरदर्शन, अन्य के विचार और स्थिति को जान लेना [को०]।

अभिज्ञात—सज्ञा पु० [स०] १ पुराण के अनुसार शालमली द्वीप के सात वर्षों या खडो मे से एक। २ जाना समझा।

अभिज्ञातार्थ—सज्ञा पु० [स०] न्याय मे एक प्रकार का निग्रह स्थान। विवाद या तर्क मे वह अवस्था जब वादी अप्रसिद्ध या श्लिष्ट अर्थों के शब्दो द्वारा कोई बात प्रकट करने लगे अथवा इतनी जल्दी जल्दी बोलने लगे कि कोई समझ न सके और इस कारण तर्क रुक जाय।

अभिज्ञान—सज्ञा पु० [स०] [वि० अभिज्ञात] १ स्मृति। ख्याल। २ वह चिह्न जिससे कोई वस्तु पहचानी जाय। लक्षण। पहिचान। ३ वह वस्तु जो किसी बात का स्मरण या विश्वास दिलाने के लिये उपस्थित की जाय। निशानी। सहिदानी। परिचायक चिह्न। उ०—सीता को अभिज्ञान रूप से देने के लिये राम ने हनूमान को अपनी अँगूठी दी (शब्द०)। ४ मुद्रा की छाप मुहर।

अभिज्ञानपत्र—सज्ञा पुं० स० परिचयपत्र। सिफारिशी चिट्ठी [को०]।

अभिज्ञान शाकुतल—सज्ञा पुं० [स० अभिज्ञानशाकुन्तल] महाकवि कालिदास कृत सात अको का प्रसिद्ध नाटक।

अभिज्ञापक—वि० [स०] जानकारी या सूचना देनेवाला [को०]।

अभित—अ० [स०] १ सनिकट। २ चारो ओर से। सर्वत। ३ पूर्णत। ४ शीघ्रता से। ५ दोनो ओर से। ६ पहले और बाद मे। ७ आमने सामने से [को०]।

अभितप्त—वि० [स०] १ गर्म। जला हुआ। प्रज्वलित। २ पश्चात्तापयुक्त। अनुतप्त [को०]।

अभिताप—सज्ञा पु० [स०] १ मानसिक या शारीरिक उग्र ताप या दाह। २ प्रबल व्यग्रता, क्षोभ या वेदना [को०]।

अभिद(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अभेद्य'। उ०—अभिद अछेद रूप मम जान। जो सब घट है एक समान।—सूर० ३।१३।

अभिदर्शन—सज्ञा पु० [स०] १ देखना। २ दिखाई देना। ३ व्यक्त या प्रकट होना [को०]।

अभिद्रव—सज्ञा पुं० [स०] आक्रमण। हमला। चढाई [को०]।

अभिद्रवण—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अभिद्रव' [को०]।

अभिद्रुत—वि० [स०] आक्रात। पददलित [को०]।

अभिद्रोह—सज्ञा पुं० [स०] १ हानिकारक विरोध। २ उत्पीडन। ३ निंदा। कुत्सा। ४ क्रूरता। ५ दुख [को०]।

अभिधर्म—सज्ञा पु० [स०] बौद्धो के अनुसार परम सत्य। सर्वोच्च धर्म।

अभिधर्मपिटक—सज्ञा पु० [स०] 'त्रिपिटक'।

अभिघर्षण—सज्ञा पु० [सं०] १ भूत प्रेतो का आवेश। २ उत्पीडन। ३. किसी के विरुद्ध आघात करना [को०]।

अभिधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शब्द की तीन शक्तियों में से एक। शब्द के वाच्यार्थ को व्यक्त करने की शक्ति। शब्दों के उस अभिप्राय को प्रकट करने की शक्ति जिससे यौगिक या व्युत्पत्तिगम्य अर्थ सीधे निकलता हो। मुख्यार्थ। २ शब्द या ध्वनि। ३ नाम (को०)।

अभिधान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिधायक, अभिधेय] १ नाम। लकब। २. कथन। ३ शब्दकोश। ४. गीत। गान (को०)।

अभिधानक—संज्ञा पुं० [सं०] आवाज। शब्द। ध्वनि (को०)।

अभिधानमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] शब्दकोश [को०]।

अभिधायक—वि० [स्त्री० अभिधायिका] १ अभिधेय अर्थ का वाचक (शब्द)। २ नाम रखनेवाला। ३ कहनेवाला। ४ सूचक। परिचायक।

अभिधावक—वि० [सं०] हमला करनेवाला। आक्रमणकारी। आक्रामक [को०]।

अभिधावन—संज्ञा पुं० [सं०] चढ़ाई। आक्रमण [को०]।

अभिधेय[1]—वि० [सं०] १ अभिधा शक्ति से बोध्य (अर्थ)। प्रतिपाद्य। वाच्य। २ जिसका बोध नाम लेने से ही हो जाय। ३ नाम देने योग्य।

अभिधेय[2]—संज्ञा पुं० १ नाम। अभिधा। १ विषयवस्तु (को०)। ३ भावार्थ [को०]।

अभिध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दूसरे की वस्तु या संपत्ति की इच्छा। पराई वस्तु की चाह। २ अभिलाषा। इच्छा। लोभ।

अभिध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ अभिलाषा। इच्छा। २ प्राप्तिकामना। लोभ। ३ निदा। ४ ध्यानमग्नता।

अभिनंदु(पु)—वि० [सं० अभिनन्द्य] अभिनंदन योग्य। उ०—को अभिनंदु रहै रन पग्ग।—पृ० रा०।

अभिनंद[1]—वि० [सं० अभिनन्द] प्रसन्न या आनंदित करनेवाला [को०]।

अभिनंद[2]—संज्ञा पुं० १ आनंद। २ स्तुति। प्रशंसा। ३ बधाई। ४ अभिलाषा। ५ स्वल्प सुख। ६ प्रोत्साहन। बढ़ावा। ७. परमात्मा का नाम [को०]।

अभिनंदन—संज्ञा पुं० [सं० अभिनन्दन] [वि० अभिनंदनीय, अभिनंदित] १ आनंद। २ संतोष ३ उत्तेजना। प्रोत्साहन। ४ आकांक्षा। इच्छा। ५ विनीत प्रार्थना। उ०—गुरु के वचन सचिव अभिनंदन। सुने भरत हिय हित जनु चंदन।—मानस, २।१७६। ६ प्रशंसा। प्रतिष्ठा। आदर। उ०—यह अवसर हमने उनके अभिनंदन के लिये उपयुक्त समझा।—सूर्पूर्ण० अभि० ग्र०, पृ० (ग)।

यौ०—अभिनंदन ग्रंथ = वह ग्रंथ जो किसी व्यक्ति के महत्वपूर्ण कार्यों के प्रति आदर प्रकट करने के लिये उसके जीवन की पचासवीं या साठवीं या किसी भी जन्मतिथि पर दिया जाता है। अभिनंदनपत्र—वह आदर या प्रतिष्ठासूचक पत्र जो किसी महान् पुरुष के आगमन पर हर्ष और संतोष प्रकट करने के लिये सुनाया और अर्पण किया जाता है। (अ०) ऐड्रेस। ७ जैन लोगों के चौथे तीर्थंकर का नाम। ८ आम।

अभिनंदना(पु)—क्रि० [सं० अभिनन्दन से हिं० नाम०] सत्कृत करना। मान देना। सम्मानित करना।

अभिनंदनीय—वि० [सं० अभिनन्दनीय] वंदनीय। प्रशंसा के योग्य। उ०—मेरे हित है हित यही स्पृश्य, अभिनंदनीय।—अपरा, पृ० १८१।

अभिनंदित—वि० [सं० अभिनन्दित] वंदित। प्रशंसित। उ०—लोगों ने साधु साधु कहकर उसे अभिनंदित किया।—इंद्र०, पृ० १२८।

अभिनंदी—वि० [सं० अभिनन्दिन्] सम्मान करनेवाला। अभिनंदनकर्ता [को०]।

अभिनंद्य—वि० [सं० अभिनन्द्य] अभिनंदन के योग्य। अभिनंदनीय [को०]।

अभिन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अभिन्न'। उ०—भिन भिन अभिन वाणि मुख भाखि।—वेलि०, दू० १९८।

अभिनय—संज्ञा पुं० [सं० वि० अभिनीति, अभिनेय] दूसरे व्यक्तियों के भाषण तथा चेष्टा को कुछ काल के लिये धारण करना। नाट्येमुद्रा। कालकृत अवस्थाविशेष का अनुकरण। स्वाँग। नकल। नाटक का खेल।

विशेष—इसके चार विभाग हैं—(क) आंगिक, जिसमें केवल अंगभंगी वा शरीर की चेष्टा दिखाई जाय। (ख) वाचिक, जिसमें केवल वाक्यों द्वारा कार्य किया जाय। (ग) आहार्य, जिसमें केवल वेश या भूषण आदि के धारण की ही आवश्यकता हो, बोलने चालने का प्रयोजन न हो। जैसे, राजा के आम पास पगड़ी आदि बाँध कर चोबदार और मुसाहिबों का चुपचाप खड़ा रहना। (ग) सात्विक, जिसमें, स्तंभ, स्वेद, रोमांच और कंप आदि अवस्थाओं का अनुकरण हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—अभिनय करना = नाचना कूदना।

यौ०—अभिनयाचार्य = नृत्यकला का शिक्षक। नृत्यकलाविद्। अभिनयविद्या = नृत्यकला। नाट्य कला।

अभिनव—वि० [सं०] १ नया। नवीन। उ०—केहरि किशोर से अभिनव अवयव प्रस्फुटित हुए थे।—कामायनी, पृ० २७७। २ ताजा। ३ अनुभवहीन। अतिनूतन [को०]।

अभिनवगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वनिशास्त्र के एक प्रसिद्ध व्याख्याकार। ध्वन्यालोक की टीका लोचन के लेखक।

अभिनहन—संज्ञा पुं० [सं०] एक पट्टी जो आँखों पर बाँधी जाती है। २ अँधौटी। अनवट। ३ अंधा। दृष्टिहीन व्यक्ति [को०]।

अभिनासी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविनाशी'। उ०—हस तो अभिनासी, काल तो हत्याहन, सुन्य तो परम सुन्य।—रामानंद०, पृ० २९।

अभिनिधन[1]—वि० [सं०] मरणासन्न। जिसका अंत निकट हो [को०]।

अभिनिधन[2]—संज्ञा पुं० सामवेद की वे ऋचाएँ जिनका मरणासन्न के निकट गान होता है।

अभिनियोग—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य में मनोयोगपूर्वक लगना। दत्तचित्तता [को०]।

अभिनिर्माण—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रस्थान। कूच। २ आक्रमण। शत्रु के विरुद्ध बढ़ाव या चढ़ाई [को०]।

अभिनिर्वृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्यपूर्ति। कार्यसंपन्नता।

अभिनिविष्ट—वि० [सं०] १ धँसा हुआ । पैठा हुआ । गडा हुआ । २ बैठा हुआ । उपविष्ट । ३ एक ही ओर लगा हुआ । अनन्य मन से अनुरक्त । लिप्त । मग्न ।

अभिनिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिनिविष्ट, अभिनिवेशित] १. प्रवेश । पैठ । गति । २ मनोयोग । किसी विषय मे गति । लीनता । अनुरक्ति । एकाग्रचिंतन । ३ दृढ संकल्प । तत्परता । ४ योगशास्त्र के पाँच क्लेशो मे से अंतिम । मरणभय से । उत्पन्न क्लेश । मृत्युशंका । ५ दर्प । घमड । शान । नाज । [को०] । ६ उत्कट लालसा । तीव्र आकांक्षा [को०] ।

अभिनिवेशित—वि० [सं०] प्रविष्ट ।

अभिनिष्क्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाहर जाना । बहिर्गमन । २ बौद्धो के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहणार्थ गृह का परित्याग ।

अभिनिष्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णता । समाप्ति । अंत । परिपूर्णता निष्पन्नता [को०] ।

अभिनिष्पन्न—वि० [सं०] पूर्ण । समाप्त । सिद्ध [को०] ।

अभिनीत—वि० [सं०] १ निकट लाया हुआ । २ पूर्णता को पहुँचाया हुआ । सुसज्जित । अलंकृत । ३ युक्त । उचित । न्याय्य । ४ अभिनय किया हुआ । खेला हुआ (नाटक) । नकल करके दिखलाया हुआ । ५. विज्ञ । धीर । ६ क्रुद्ध (को०) । ७ दयालु (को०) । ८ स्वीकृत (को०) ।

अभिनेतव्य—वि० [सं०] नाटक द्वारा प्रस्तुत करने योग्य । अभिनय के योग्य [को०] ।

अभिनेता—वि० [सं० अभिनेतृ] अभिनय करनेवाला । स्वाग दिखानेवाला । नाटक का पात्र । (अं०) ऐक्टर ।

अभिनेत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक मे अभिनय करनेवाली स्त्री । नटी । (अं०) ऐक्ट्रेस ।

अभिनेय—वि० [सं०] अभिनय करने योग्य । खेलने योग्य (नाटक) ।

अभिनै(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिनय' । उ०—नटवा निपट निपुन रासमडल मैं अभिनै भेद बतावै, गीत रीति परवान सो ।—घनानद, पृ० ३६८ ।

अभिन्न—वि० [सं०] [संज्ञा अभिन्नता] १ जो भिन्न न हो । अपृथक् । एकमय । २ अप्रभावित (को०) । ३ जो बदला न हो । अपरिवर्तित (को०) । ४ अविभक्त । पूर्ण, जैसे, संख्या (को०) । ५ मिला हुआ । सटा हुआ । लगा हुआ । संबद्ध ।

यौ०—अभिन्नपुट = नया पत्ता । अभिन्नहृदय = घनिष्ठ ।

अभिन्नता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भिन्नता का अभाव । अपृथक्त्व । २ लगावट । संबंध । ३ मेल ।

अभिन्नपद—संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष अलंकार का एक भेद । अभंगपद श्लेष ।

अभिन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] संनिपात का एक भेद जिसमें नीद नही आती, देह काँपती है, चेष्टा बिगड जाती है और इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और सिर के बाल बीच से अलग अलग हो जाते हैं ।

अभिपतन—संज्ञा पुं० [सं०] १ समीप आना । २. आक्रमण । प्रहार । ३. प्रस्थान [को०] ।

अभिपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ समीप आना । २ पूर्ति । ३ रक्षण करना । ४ दे० उपपत्ति [को०] ।

अभिपन्न—वि० [सं०] १ निकट गया या पहुँचा हुआ । २ भगोड़ा । ३ पराभूत या आश्रित । ४ विपत्तिग्रस्त । अभागा । ५ दोषी । ६ स्वीकृत । ७ मृत । ८ रक्षित । ९ दूर किया हुआ [को०] ।

अभिपुष्प¹—वि० [सं०] पुष्प से आवृत । फूलो से ढका, जैसे, वृक्ष ।

अभिपुष्प²—संज्ञा पुं० सुंदर पुष्प । नायाब फूल [को०] ।

अभिप्रणय—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेम । कृपा । अनुग्रह [को०] ।

अभिप्रणयन—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कार । वेदविधि से अग्नि आदि का संस्कार ।

अभिप्रपन्न—वि० [सं०] संप्राप्त । उपनत [को०] ।

अभिप्राणन—संज्ञा पुं० [सं०] साँस बाहर छोड़ना । फूँक मारना [को०] ।

अभिप्राय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिप्रेत] १ आशय । मतलब । अर्थ । तात्पर्य । गरज । प्रयोजन । उ०—उसने सशंक हँसकर कुछ अभिप्राय से पूछा ।—इंद्र०, पृ० १०० । २ अर्थ । माने । मतलब । जैसे, शब्द या वाक्य का (को०) । ३. राय । विचार । सलाह (को०) । ४ संबंध । लगाव (को०) । ५ विष्णु का एक नाम (को०) ।

अभिप्रेत—वि० [सं०] १ इष्ट । अभिलषित । चाहा हुआ । २ प्रिय । ३. स्वीकृत ।

अभिप्रोक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञादि मे प्रयुक्त विभिन्न पात्रो और सामानो का जलादि द्वारा सिंचन [को०] ।

अभिप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपद्रव । उत्पात । फसाद । २ गवामयन यज्ञ मे प्रति मास का १ चमाश जो छ छ दिनो का होता था और जिनमे से प्रत्येक का अलग अलग नाम होता था । ३ स्तोम आदि का पाठ जो एक अभिप्लव मे होता था । ४ उमडकर बहना । बाढ । ५ प्राजापत्य आदित्य ।

अभिप्लुत—वि० [सं०] १ आवृत । आच्छादित । २ युक्त [को०] ।

अभिभव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिभावुक, अभिभावी, अभिभूत] १ पराजय । २ तिरस्कार । अनादर । ३ अनहोनी बात । विलक्षण घटना । ४ प्राबल्य । अधिकता [को०] ।

अभिभाव—वि० [सं०] दे० 'अभिभावक' ।

अभिभावक—वि० [सं०] १ अभिभूत वा पराजित करनेवाला । तिरस्कार करनेवाला । २ जड अर्थात् स्तंभित कर देनेवाला । ३ वशीभूत करनेवाला । दबाव मे लानेवाला । ४ रक्षक । सरपरस्त । उ०—अभिभावक अब नही हमारे रखते स्नेह सहित मुझको ।—प्रेम०, पृ० १६ । ५ आक्रमण करनेवाला (को०) ।

अभिभावन—वि० [सं०] वशीभूत करनेवाला । मातेवाला । रुचिकर । उ०—चले चतुर्दिक् हन अभिभावन ।—आराधना, पृ० २८ ।

अभिभावी—वि० [सं० अभिभाविन्] दे० 'अभिभावक' ।

अभिभावुक—वि० [सं०] दे० 'अभिभावक' ।

अभिभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रवचन । भाषण । २ बोलना । भाषण देना । ३ आयोजन आदि मे सर्वमुख्य भाषण । ४ लिखित भाषण [को०] ।

अभिभूत—वि० [सं०] १ पराजित । हराया हुआ । २ पीडित । उ०—जब चले थे तुम यहाँ से दूत । तब पिता क्या थे अधिक

अभिभूत।—साकेत, पृ० १७१। ३. जिस पर प्रभाव डाला गया हो। जो वश मे किया गया हो। वशीभूत। ४. विचलित। व्याकुल। किंकर्तव्यविमूढ।

अभिभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभिभव। पराजय। हार।

अभिमडन—संज्ञा पुं० [सं० अभिमण्डन] [वि० अभिमडित] १ भूषित करना। सजाना। सँवारना। २ पक्ष का प्रतिपादन या समर्थन।

अभिमता—वि० [सं० अभिमन्तृ] १ डीग हाँकनेवाला आत्मश्लाघी। २ अहमन्य। सर्वज्ञता का दभी (को०)।

अभिमत्रण—संज्ञा पुं० [सं० अभिमन्त्रण] [स्त्री० अभिमत्रणा] १ मत्र-द्वारा सस्कार। २ आवाहन।

अभिमत्रित—वि० [सं० अभिमन्त्रित] १ मत्र द्वारा शुद्ध किया हुआ। २ जिसका आवाहन हुआ हो।

अभिमथ—संज्ञा पुं० [सं० अभिमन्थ] एक नेत्ररोग। अभिमथ (को०)।

अभिमत[१]—वि० [सं०] १ इष्ट। मनोनीत। वांछित। पसंद का। उ०—जो न होहिं मगलमग सुरविधि वाधक। तौ अभिमत फल पावहिं करि स्रमु साधक।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३२। २ समन। राय के मुताबिक।

अभिमत[२]—संज्ञा पुं० १, मत। सम्मति। राय। २. विचार। ३ अभिलषित वस्तु। मनचाही बात। उ०—अभिमत दानि देवतरवर से। सेवत सुलभ सुखद हरिहर से।—तुलसी (शब्द०)। ४ इच्छा। आकाक्षा (को०)।

अभिमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अभिमान। गर्व। अहकार। २. वेदात के अनुसार इस प्रकार की मिथ्या अहकार भावना कि अमुक वस्तु मेरी है। ३ अभिलाषा। इच्छा। चाह। ४ मति। राय। विचार। ५ आदर। समान (को०)।

अभिमन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन के पुत्र का नाम।

विशेष—कृष्ण और बलराम की बहन सुभद्रा इसकी माता थी। महाभारत युद्ध में द्रोणाचार्य के सेनापतित्व मे निर्मित चक्रव्यूह का भेदन करते समय सात महारथियो ने इसे मारा था। छोटी अवस्था से ही अत्यत बली और क्रोधी होने से, इसका नाम अभिमन्यु पड़ा। महाभारत के द्रोण पर्व में इसके जन्म और निधन का सविस्तार वर्णन है।

अभिमर—संज्ञा पुं० [सं०] १ सहार। विनाश। हनन। २ युद्ध। ३ स्वपक्ष के व्यक्ति द्वारा कृत विश्वासघात। ४ कैद। ५ शेर हाथी आदि से भी भिड़ने के लिये सन्नद्ध व्यक्ति।

अभिमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीसना। चूर चूर करना। २ घस्सा। रगड। ३. युद्ध।

अभिमर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्पर्श। सपर्क। २. प्रहार। ३. आक्रमण। ४ संभोग। ५. बलात्कार (को०)।

अभिमर्शक—वि० [सं०] अभिमर्शन करनेवाला (को०)।

अभिमर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्श'।

अभिमर्शी—वि० [सं० अभिमर्शिन्] दे० 'अभिमर्शक'।

अभिमर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्श'।

अभिमर्षक—[सं०] दे० 'अभिमर्शक'।

अभिमर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्शन'।

अभिमर्षी—वि० [सं० अभिमर्षिन्] दे० 'अभिमर्शी'।

अभिमाद—संज्ञा पुं० [सं०] नशा। मद (को०)।

यौ०—अभिमान।

अभिमान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिमानी] १. अहकार। गर्व। दर्प। घमड। २ स्वाभिमान ३ बुद्धि। ज्ञान(को०)। ४ प्रेम। स्नेह (को०)। ५ कामना। इच्छा (को०)। ६ प्रमाण (को०)।

अभिमानित[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जिसमे अभिमान हो। २. प्रेम। स्नेह। ३ सभोग। मैथुन (को०)।

अभिमानित[२]—वि० [सं०] गर्वित। अभिमानयुक्त।

अभिमानी—वि० [सं० अभिमानिन्] [स्त्री० अभिमानिनी] १. अहकारी। घमडी। दर्पी। अपने को कुछ लगानेवाला। २. स्वात्माभिमानी।

अभिमुख[१]—क्रि० वि० [सं०] सामने। समुख। समक्ष।

अभिमुख[२]—वि० [सं०] १ प्रवृत्त। तत्पर। उद्यत। सनद्ध। २. ओर। तरफ। ३ निकट होना। पहुँचने के करीब होना। ४ अनुकूल (को०)।

अभिमृष्ट—वि० [सं०] १ स्पष्ट। छुआ हुआ। थपकाया गया। २ मर्दित। ३. मिश्रित। ४. स्नात। ५ ससृष्ट। आक्रात (को०)।

अभिम्लात—वि० [सं०] मुरझाया या कुम्हलाया हुआ (को०)।

यौ०—अभिम्लातवर्ण—फीके रगवाला।

अभियाचा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभियाच्ञा] दे० 'अभियाचन'।

अभियाचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ माँगना। याचना। २ प्रार्थना करना (को०)।

अभियाचित—वि० [सं०] जिसकी याचना की गई हो।

अभियाता—वि० [सं० अभियातृ] १ निकट जाने या पहुँचनेवाला। २ आक्रामक। अभियान करनेवाला (को०)।

अभियान—संज्ञा पुं० [सं०] १ सामने जाना। २ आक्रमण। चढाई (को०)।

अभियायी—वि० [सं० अभियायिन्] दे० 'अभियाता' (को०)।

अभियुक्त—वि० [सं०] [स्त्री० अभयुक्ता] १ जिसपर अभियोग चलाया गया हो। जो किसी मुकदमे मे फँसा हो। प्रतिवादी। मुलजिम। अभियोक्ता का उलटा। २ लिप्त। संलग्न। उ०—कहाँ आज वह चितवन चेतन, श्याम मोह कज्जल अभियुक्त।—अपरा, पृ० १२०। ३ विद्वान्। विशेषज्ञ। दक्ष (को०)। ४ नियुक्त (को०)। ५ कथित (को०)। ६ उपयुक्त। ठीक (को०)। ७. अध्यवसायी (को०)। ८. आक्रांत (को०)।

अभियुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभियोग (को०)।

अभियोक्ता[१]—वि० [सं० अभियोक्तृ] [स्त्री० अभियोक्त्री] १. अभियोग उपस्थित करनेवाला। वादी। मुद्दई। फरियादी। अभियुक्त का उलटा। आरोपी। २. आक्रामक। आक्रमणकारी (को०)।

अभियोक्ता[२]—संज्ञा पुं० शत्रु। आक्रामक व्यक्ति (को०)।

अभियोग—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभियोगी, अभियुक्त, अभियोक्ता] १. अपराध की योजना। दोषारोप। उ०—काश्यप मुझपर अभियोग लगाते हैं कि मैंने जान बूझकर यह ब्रह्महत्या की।—

जनमेजय०, पृ० ५५। २ किसी के द्वारा किए गए दोष या हानि के विरुद्ध न्यायालय में निवेदन। नालिश। मुकदमा। ३ चढ़ाई। आक्रमण। ४ उद्योग। ५ मनोनिवेश। लगन।

अभियोगी¹—वि० [सं० अभियोगिन्] १ अभियोग चलानेवाला। नालिश करनेवाला। फरियादी। २ आक्रमणकारी (को०)। ३. लगनवाला।

अभियोगी²—संज्ञा पुं० वादी। मुकदमा खड़ा करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अभियोज्य—वि० [सं०] जिसपर दोष या आरोप लग सके [को०]।
यौ०—अभियोज्यदोष=अभियोग चलने योग्य दोष या आरोप।

अभिरंजन—संज्ञा पुं० [सं० अभिरञ्जन] रँगना [को०]।

अभिरंजित—वि० [सं० अभिरञ्जित] रँगा हुआ।

अभिरक्त—वि० [सं०] १ लगा हुआ। संबद्ध। अनुरक्त। २. मधुर। प्रिय [को०]।

अभिरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] पूरी तरह से रक्षा या बचाव [को०]।

अभिरक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिरक्षण'।

अभिरक्षित—वि० [सं०] पूरी तरह से रक्षित या शासित [को०]।

अभिरक्ष्य—वि० [सं०] पूर्णतः रक्षा या बचाव के योग्य [को०]।

अभिरत—वि० [सं०] १ लीन। अनुरक्त। २ लगा हुआ। ३ युक्त। सहित। उ०—किधौं यह राजपुत्री, वरही वरयो है, किधौं उपदि वरयो है यहि सोभा अभिरत हौं।—राम च०, पृ० ५१। ३ प्रसन्न। प्रमुदित (को०)।

अभिरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अनुराग। प्रीति। २. लगन। लगाव। लीनता। ३ संतोष। हर्ष। आनंद। ४ कार्य का अभ्यास या पेशा [को०]।

अभिरना(पु)—क्रि० स० [सं० अभि=संमुख+रण अथवा प्रा० अब्भिडइ=भिड़ना, मिलना] १ भिड़ना। लड़ना। उलझना। उ०—चटपत चटकी डाँड कहूँ कोउ भरत पैंतरे। लरत लराई रोक एक एकन सो अभिरे।—प्रेमघन०, भा० १ पृ० ११। २. टेकना। सहारा लेना। उ०—मुसकाति खरी, खँभिमा अभिरी, घिरी आति लजाति महा मन मे।—बेनी (शब्द०)।

अभिरमण—संज्ञा पुं० [सं०] सम्यक् आनंद लेना या रमण करना [को०]।

अभिराज(पु)—वि० [सं० अभिराज] अत्यंत शोभित। उ०—चौका बना चौगान, जगमग अभिराज हो।—धरम०, पृ० ८।

अभिराद्ध—वि० [सं०] भली भाँति समाराधित, प्रसन्न या पुष्ट किया हुआ [को०]।

अभिराम¹—वि० [सं०] [स्त्री० अभिरामा] आनंददायक। मनोहर। सुखद। सुंदर। प्रिय। रम्य। उ०—और देखा वह सुंदर दृश्य। नयन का इंद्रजाल अभिराम।—कामायनी, पृ० ४६।

अभिराम²—संज्ञा पुं० आनंद। सुख। उ०—(क) तुलसी अद्भुत देवता आसा देवी नाम। सेए सोक समपई, विमुख भए अभिराम।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२८। (ख) तुलसिदास चाँचरि मिसहि, कहे राम गुन ग्राम। गावहि सुनहि नारि नर, पावहि सब अभिराम।—तुलसी (शब्द०)। २. शिव का एक नाम (को०)।

अभिरामिनी—वि० स्त्री० [सं०] मनोहारिणी। सुंदर। उ०—हरित गंभीर वानीर दुहुँ तीर वर, मध्य धारा विशद विश्व अभिरामिनी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६३।

अभिरामी—वि० [सं० अभिरामिन्] [वि० स्त्री० अभिरामिनी] रमण करनेवाला। संचरण करनेवाला। व्याप्त होनेवाला। उ०—अखिल भुवनभर्ता, ब्रह्मरुद्रादि कर्ता, थिरचर अभिरामी, कीय जामातु नामी।—केशव (शब्द०)।

अभिरुचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यंत रुचि। चाह। पसंद। प्रवृत्ति। उ०—संतान स्नेह और आत्मसुख की अभिरुचि संमति देती है कि इस काम से हमको भी सहायता मिलेगी।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १९३। २ प्रसिद्धि की चाह। महत्वाकांक्षा (को०)।

अभिरुत—वि० [सं०] १ ध्वनित। शब्दायमान। २ कूजित। गुंजित [को०]।

अभिरुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में मूर्च्छनाविशेष। इसका सरगम यों है—रे, ग, म, प, ध, नि, स। म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स।

अभिरूप¹—वि० [सं०] [स्त्री० अभिरूपा] १ प्रिय। रमणीय। मनोहर। सुंदर। सुगठित। २ मिलता जुलता। अनुरूप (को०)। ३ चतुर। विद्वान्। प्रबुद्ध (को०)।

अभिरूप²—संज्ञा पुं० १ शिव। २ विष्णु। ३ कामदेव। ४ चंद्रमा। ५ पंडित।

अभिरोग—संज्ञा पुं० [सं०] चौपायों का एक रोग जिसमें जीभ में कीड़े पड़ जाते हैं।

अभिलंघन—संज्ञा पुं० [सं० अभिलङ्घन] १ उछलकर अथवा कूदकर पार करना। २. सीमा, अधिकार या क्षेत्र का अतिक्रमण [को०]।

अभिलक्षित—वि० [सं०] १ चिह्नांकित। चिह्नित। २ चुना हुआ। संकेतित (को०)।

अभिलक्ष्य—वि० [सं०] विशेष लक्ष्य योग्य। ध्यान में लेने योग्य [को०]।

अभिलषण—संज्ञा पुं० [सं०] अभिलाषा करना। चाहना। लालायित होना [को०]।

अभिलषिक रोग—संज्ञा पुं० [सं०] वात व्याधि के चौरासी भेदों में से एक।

अभिलषित¹—वि० [सं०] वांछित। ईप्सित। इष्ट। चाहा हुआ। उ०—अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दुखद खेद।—कामायनी, पृ० १६४।

अभिलषित²—संज्ञा पुं० इच्छा। आकांक्षा। मनोरथ। उ०—अभिलषित अधूरी रह न जाय।—गीतिका।

अभिलाख(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिलाषा'। उ०—अभिलाख यह जिय पूर्ववत, धन धन्य मोहि सबही कहै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५१४।

अभिलाखना(पु)—क्रि० स० [सं० अभिलषण] इच्छा करना। चाहना। उ०—तव सिय देखि भूप अभिलाखे। कूर कपूत मूढ़ मन माखे।—तुलसी (शब्द०)।

अभिलाखा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिलाषा का प्रा० हिं० रूप] दे० 'अभिलाषा'। उ०—सबके हृदय मदन अभिलाखा। लता निहारि नवहिं तरु साखा।—मानस, १।८५।

अभिलाखी॥—वि० [हिं०] दे० 'अभिलाषी'।

अभिलाप—संज्ञा पुं० [सं०] १ शब्द। कथन। वाक्य। २ मन के संकल्प का कथन या उच्चारण। ३ वर्णन। भाषण (को०)।

अभिलाव—संज्ञा पुं० [सं०] सफल काटना। लवना (को०)।

अभिलाष—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अभिलाषक, अभिलाषी, अभिलाषुक, अभिलषित**] १ इच्छा। मनोरथ। कामना। चाह। उ०—भाग छोट अभिलाष बड करौं एक विश्वास। पैहैं सुख सुनि सुजन जन खल करिहैं उपहास।—मानस १।८। २ लोभ। ३ वियोग। शृंगार के अंतर्गत दस दशाओं में से एक। प्रिय से मिलने की इच्छा।

अभिलाषक—वि० [सं०] इच्छा करनेवाला। आकांक्षा करनेवाला।

अभिलाषना—क्रि० स० [सं० **अभिलषण**] इच्छा करना। चाहना। उ०—जब हिरनाच्छ जुद्ध अभिलाष्यौ, मन मैं अति गरवाऊ।—सूर० १०।२२१।

अभिलाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इच्छा। कामना। आकांक्षा। दे० 'अभिलाष'। उ०—भूलता ही जाता दिन रात सजल अभिलाषा कलित अतीत।—कामायनी, पृ० ४६।

अभिलाषी—वि० [सं० **अभिलाषिन्**] [स्त्री० **अभिलाषिनी**] इच्छा करनेवाला। आकांक्षी। इच्छुक।

अभिलाषुक—वि० [सं०] दे० 'अभिलाषक'।

अभिलास॥—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिलाष'।

अभिलासा॥—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अभिलाषा'।

अभिलासी॥—वि० [सं० **अभिलाषिन्**] दे० 'अभिलाषी'। उ०—को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दासी? कैसे बरन, भेष है कैसो, किहिं रस मैं अभिलासी।—सूर०, १०।४२४६।

अभिलिखित[1]—वि० [सं०] लिखा हुआ। खोदा हुआ (को०)।

अभिलिखित[2]—संज्ञा पुं० १ लिखना। लेखन। २ हस्ताक्षर। ३. लिखित मसविदा (को०)।

अभिलीन—वि० [सं०] १ भली भाँति लीन। २ अनुरक्त। आसक्त। ३ आवेष्टित (को०)।

अभिलुलित—वि० [सं०] १ क्षोभित। चंचल। अस्थिर। २. विक्रीडित। क्रीडायुक्त (को०)।

अभिलूता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मकडी का एक भेद (को०)।

अभिलेख—संज्ञा पुं० [सं०] लेख। प्रामाणिक लेख। शिला या धातुपट्ट पर खोदा लेख।

अभिलेखन—संज्ञा पुं० [सं०] १ लिखना। खोदना या उत्कीर्ण करना (को०)।

अभिलेखित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] प्रामाणिक रूप से लिखित पटल या पत्र आदि (को०)।

अभिलेखित[2]—वि० लिखित। लिपिबद्ध (को०)।

अभिवंचन—संज्ञा [सं० **अभिवञ्चन**] ठगना।

अभिवंचित—वि० [सं० **अभिवञ्चित**] ठगा गया। छला गया। धोखा खाया हुआ (को०)।

अभिवंदन—संज्ञा पुं० [सं० **अभिवन्दन**] [वि० **अभिवंदनीय**, अभिवंदित, अभिवंद्य] १ प्रणाम। नमस्कार। सलाम। बंदगी। २ स्तुति।

अभिवंदना—संज्ञा स्त्री० [सं० **अभिवन्दना**] १ नमस्कार। प्रणाम। २ स्तुति। प्रशंसा।

अभिवंदनीय—वि० [सं० **अभिवन्दनीय**] १ प्रणाम करने योग्य। नमस्कार करने योग्य। २ प्रशंसा करने योग्य। स्तुति करने योग्य।

अभिवंदित—वि० [सं० **अभिवन्दित**] प्रणाम किया हुआ। नमस्कार किया हुआ। २ प्रशंसित। स्तुत्य।

अभिवंद्य—वि० [सं० **अभिवन्द्य**] दे० 'अभिवंदनीय'।

अभिवचन—संज्ञा पुं० [सं०] वादा। इकरार। प्रतिज्ञा।

अभिवदन—संज्ञा पुं० [सं०] १ भाषण। कथन। २ नमन। प्रणाम। नमस्कार (को०)।

अभिवद्य—वि० [सं०] कथन या निर्वचन योग्य (को०)।

अभिवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बढना (किसी ओर)। २ हमला करना। आक्रमण। (को०)।

अभिवांछा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अभिवाञ्छा**] अभिलाषा। लालसा। इच्छा (को०)।

अभिवांछित—वि० [सं० **अभिवाञ्छित**] अभिलषित। चाहा हुआ।

अभिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिवादन' (को०)।

अभिवादक—वि० [सं०] [स्त्री० **अभिवादिका**] १ नमस्कार करनेवाला। २ विनीत। आदरान्वित। विनम्र (को०)।

अभिवादन—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रणाम नमस्कार। वंदना। २ स्तुति। ३ अतिरंजना। अतिवाद। डींग (को०)।

अभिवादयिता—वि० [सं० **अभिवादयितृ**] दे० 'अभिवादन'।

अभिवादित—वि० [सं०] वंदित। नमस्कृत।

अभिवादी—वि० [सं० **अभिवादिन्**] [वि० स्त्री० **अभिवादिनी**] दे० 'अभिवादक'।

अभिवाद्य—वि० [सं०] नमस्कार योग्य। अभिवादनीय (को०)।

अभिवास—संज्ञा पुं० [सं०] चादर। आवरण। वस्त्राच्छादन (को०)।

अभिवासन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिवास'।

अभिविनीत—वि० [सं०] १ सुशिक्षित। २ व्यवहारकुशल। शिष्ट। सुशील। ३ शुद्ध। पवित्र (को०)।

अभिविमान—वि० [सं०] दिक्कालातीत। निस्सीम आकार का (परमात्मा की एक उपाधि)।

अभिविश्रुत—वि० [सं०] बडी ख्याति या प्रसिद्धिवाला (को०)।

अभिवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफलता, उन्नति या समृद्धि (को०)। उ०—ज्ञान विज्ञान से मनुष्य की अभिवृद्धि हो सकती है, विकास नहीं हो सकता।—हिं० आ० प्र०, पृ० २०६।

अभिव्यंजक—वि० [सं० **अभिव्यञ्जक**] प्रकट करनेवाला। प्रकाशक। सूचक। बोधक।

अभिव्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० **अभिव्यञ्जन**] [स्त्री० **अभिव्यंजना**] प्राकट्य। अभिव्यक्ति। प्रकाश। विकास।

अभिव्यंजना—संज्ञा स्त्री० [सं० **अभिव्यञ्जना**] मन के भावों का शब्दों में चित्रण या रूपविधान। दे० 'अभिव्यंजन'।

अभिव्यजनावाद—संज्ञा पुं० [सं० अभिव्यञ्जना + वाद, (अं० एक्स-प्रेशनिज्म)] योरप में प्रचलित चित्रकला, साहित्य आदि का वह सिद्धांत जिसमें बाह्य वस्तु या विषय को कला का गौण और अपनी या पात्रों की आतरिक अनुभूतियों के प्रतीकात्मक चित्रण को प्रधान अंग माना जाता है।

विशेष—इसमें अभिव्यजना ही सब कुछ है, जिसकी अभिव्यजना की जाती है वह कुछ नहीं। इस मत का प्रधान प्रवर्तक इटली का क्रोचे है। अभिव्यजनावादियों के अनुसार जिस रूप में अभिव्यजना होती है उससे भिन्न अर्थ आदि का विचार कला में अनावश्यक है। जैसे—वाल्मीकि रामायण की इस उक्ति में 'न स संकुचित पथा येन वाली हतो गत', कवि का कथन यही वाक्य है, न कि यह कि जिस प्रकार वाली मारा गया उसी प्रकार तुम भी मारे जा सकते हो। इसी तरह 'भारत के फूटे भाग्य के टुकड़ो ! जुड़ते क्यों नहीं ?' में इतना ही कहना है कि 'हे फूट से अलग हुए भारतवासियो ! एकता क्यों नहीं रखते ? यदि तुम एक हो जाओ तो भारत का भाग्योदय हो जाय। सारांश यह कि इस मत में ध्वनि या व्यजना की गुंजाइश नहीं है।—चितामणि, भाग २, पृ० ६६।

अभिव्यजनावादी—वि० [सं० अभिव्यञ्जना + वादिन् (अं० एक्सप्रेशनिस्ट)] अभिव्यजनावाद का अनुयायी या समर्थक।

अभिव्यजित—वि० [सं० अभिव्यञ्जित] सुस्पष्ट प्रकटित। व्यक्त। अभिव्यक्त।

अभिव्यक्त—वि० [सं०] प्रकट किया हुआ। स्पष्ट किया हुआ। जाहिर किया हुआ।

अभिव्यक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रकाशन। स्पष्टीकरण। साक्षात्कार। प्रकट होना। २ उस वस्तु का प्रत्यक्ष होना जो पहले किसी कारण से अप्रत्यक्ष हो, जैसे—अँधेरे में रखी चीज का उजाले में साफ साफ दीख पड़ना। ३ न्याय के अनुसार सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष कारण का प्रत्यक्ष कार्य में आविर्भाव, जैसे, बीज से अंकुर का निकलना।

अभिव्यक्तिवाद—संज्ञा पुं० [सं० अभिव्यक्ति + वाद] जगत् को ब्रह्म की अभिव्यक्ति मानने का सिद्धांत।

अभिव्यक्तिवादी—वि० [सं० अभिव्यक्तिवादिन्] अभिव्यक्तिवाद का अनुयायी या समर्थक।

अभिव्यक्तीकरण—संज्ञा पुं० [सं० अभि + व्यक्तीकरण] प्राकट्य। सामने आ जाना। अभिव्यजना।

अभिव्यापक[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अभिव्यापिका] पूर्ण रूप से फैलनेवाला। अच्छी तरह प्रचलित होनेवाला। पूर्ण रूप से व्याप्त रहनेवाला।

अभिव्यापक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।

यौ०—अभिव्यापक आधार = व्याकरण में वह आधार जिसके हर एक अंश में आधेय हो, जैसे 'तिल में तेल'।

अभिव्यापी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० अभिव्यापिन्] दे० 'अभिव्यापक'।

अभिव्याप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सन्निवेश। समावेश। २. सर्वव्यापकता [को०]।

अभिशंका—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिशङ्का] [वि० अभिशंकित] १. आशंका। संदेह। चिंता। २. भय। व्यग्रता [को०]।

अभिशसन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिशस्त] सत्य या झूठ आरोप अथवा दोष लगाना। २ व्यभिचार का मिथ्या दोष लगाना। ३ गाली देना। अपमान करना।

अभिशसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिशसन'।

अभिशपन—संज्ञा पुं० [सं०] १. शाप। २ गंभीर आरोप। ३. मिथ्यारोप [को०]।

यौ०—अभिशपन ज्वर = शापजन्य ज्वर।

अभिशप्त—वि० [सं०] १ शापित। जिसे शाप दिया गया हो। उ०—जो जनपद परस तिरस्कृत अभिशप्त कही जाती है।—आँसू, पृ० ७८। २ जिसपर मिथ्या दोष लगा हो।

अभिशस्त—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अभिशस्ता] १ जिसपर व्यभिचार का मिथ्या दोष लगा हो। २ व्यर्थ कलंकित। लांछित।

अभिशस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अभिशाप। २ निंदा। ३ हिंसा। ४ विपत्ति। ५ प्रार्थना [को०]।

अभिशाप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिशापित, अभिशप्त] १ शाप। बद दुआ। उ०—अभिशाप ताप की ज्वाला से जल रहा आज मन और अंग।—कामायनी, पृ० १६२। २ मिथ्या दोषारोपण। झूठमूठ का अपवाद। ३ बुराई। अहित [को०]।

अभिशापन—संज्ञा पुं० [सं०] शाप देना। बद दुआ देना। कोसना [को०]।

अभिशापित—वि० [सं०] दे० 'अभिशप्त'।

अभिश्लेषण—संज्ञा पुं० [सं०] पट्टी [को०]।

अभिषग—संज्ञा पुं० [सं० अभिषङ्ग] १ पूर्ण सबंध या मिलन (को०)। २ दृढ मिलाप। आलिंगन। ३ सभोग। ४. पराजय। हार। ५ निंदा। आक्रोश। कोसना। ६ शपथ। कसम। ७ मिथ्यापवाद। झूठा दोषारोपण। ८ भूत प्रेत का आवेश। ९ शोक। दुःख।

यौ०—अभिषगज्वर = भूत प्रेत आदि के आवेश या प्रभाव से उत्पन्न ज्वर।

अभिषगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिषङ्गन] वेद की एक ऋचा।

अभिषगी—वि० [सं० अभिषङ्गिन्] अभिषग से युक्त। अभिषगवाला।

अभिषजन—संज्ञा पुं० [सं० अभिषञ्जन] दे० 'अभिषग' [को०]।

अभिषव—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ में स्नान। २ मद्य खींचना। शराब चुवाना। ३. सोमलता को कुचलकर गारना या निचोड़ना। ४ सोमरस पान ५. यज्ञ। ६ कांजी। ७ स्नान। नहाना [को०]। ८. राज्यारोहण। ९ अधिकारप्राप्ति [को०]।

अभिषवण—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्नान। २. सोमरस निकालने या निचोड़ने का साधन [को०]।

अभिषवणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमरस निकालने का साधन या यंत्र [को०]।

अभिषावक—संज्ञा पुं० [सं०] सोमरस निचोड़नेवाला पुरोहित [को०]।

अभिषिंचन—संज्ञा पुं० [सं० अभिषिञ्चन] जल छिड़कना। उ०—अभिषिंचन ब्राह्मण (अध्वर्यु), क्षत्रिय और वैश्य मिलकर करते थे जो कि राष्ट्र की तीन इकाइयाँ थीं।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १०१।

अभिषिक्त—वि० [सं०][वि० स्त्री० अभिषिक्ता]१ जिसका अभिषेक हुआ हो। जिसके ऊपर जल आदि छिड़का गया हो। जो जल आदि से नहलाया गया हो। २ बाधाशांति के लिये जिसपर मत्र पढ़कर दूर्वा और कुश से पानी छिड़का गया हो। ३. जिसपर विधिपूर्वक जल छिड़ककर किसी अधिकार का भार दिया गया हो। राजपद पर निर्वाचित।

अभिषुत—वि० [सं०] १ निचोड़ा हुआ। उ०—यह अतीव मधुर सोम, तुम्हारे लिये अभिषुत हुआ है।—प्रा० भा० प०, पृ० १३३। २ स्नात। जो स्नान कर चुका हो। (को०)।

अभिषेक—संज्ञा पुं० [सं०] १ जल से सिंचन। छिड़काव। २ ऊपर से जल डालकर स्नान। ३ बाधाशांति या मंगल के लिये मत्र पढकर कुश और दूब से जल छिड़कना। मार्जन। ४. विधिपूर्वक मत्र से जल छिड़ककर अधिकारप्रदान। राजपद पर निर्वाचन। ५ यज्ञादि के पीछे शांति के लिये स्नान। ६ शिवलिंग के ऊपर तिपाई के सहारे जल से भरकर एक ऐसा घड़ा रखना जिसके पेंदे मे बारीक छेद, धीरे धीरे पानी टपकने के लिये हो। रुद्राभिषेक।

यौ०—अभिषेकपात्र = अभिषेक का पात्र। अभिषेकाह = अभिषेक का दिन। राज्यारोहण का दिन।

अभिषेकना ⓟ—क्रि० स० [सं० अभिषेक] अभिषेक करना। उ०—आजु अभिषेकत पिय को प्यारी। धरि दृग ध्यान नवल आँसुन के भरि भरि उमगे वारी।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६१८।

अभिषेकशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान या मडप जहाँ अभिषेक हो। राज्याभिषेक मडप [को०]।

अभिषेक्ता—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो अभिषेक करे। अभिषेक करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अभिषेक्य—वि० [सं०] दे० 'अभिषेचनीय' [को०]।

अभिषेचन—संज्ञा पुं० [सं०] विधिपूर्वक मत्र से जल छिड़ककर अधिकारप्रदान। राजपद पर निर्वाचन। उ०—इसके बाद शक्ति, प्रभुता और प्रार्थना के मत्र पढ़ते पढते पुरोहित जलों से अभिषेचन करते थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ११४।

अभिषेचनीय—वि० [सं०] १ अभिषेक योग्य। २ राज्यारोहण योग्य। ३ अभिषेक संबधी [को०]।

अभिषेच्य—वि० [सं०] दे० 'अभिषेचनीय' [को०]।

अभिषेणन—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु के विरुद्ध बढ़ाव या चढाई [को०]।

अभिषोता—संज्ञा पुं० [सं० अभिषोतृ] दे० 'अभिषावक' [को०]।

अभिष्यंद—संज्ञा पुं० [सं० अभिष्यन्द] १ बहाव। स्राव। २ आँख का एक रोग जिसमे सुई के छेदने के समान पीड़ा और किरकिराहट होती है, आँखें लाल हो जाती हैं और उनसे पानी और कीचड़ निकलता है। आँख आना।

अभिष्यंदिरमण—संज्ञा पुं० [सं० अभिष्यन्दिरमण] उपनगर। बड़े नगर से लगा हुआ छोटा नगर। शाखा नगर [को०]।

अभिष्यंदी—वि० [सं० अभिष्यन्दिन्] १ रसने, बहने या चूनेवाला। २ रेचक। दस्तावर। ३ जलापसारक (को०)।

अभिष्वंग—संज्ञा पुं० [सं० अभिष्वङ्ग] घनिष्ठ संबंध। प्रेम। अनुराग। उ०—आत्मस्नेह यह आत्मप्रेम है जो आत्मा मे अभिष्वंग उत्पन्न करता है।—संपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० ३६६।

अभिसंग—संज्ञा पुं० [सं० अभिसङ्ग] दे० 'अभिसंग' [को०]।

अभिसंताप—संज्ञा पुं० [सं० अभिसन्ताप] १ युद्ध। संघर्ष। स्पर्धा। २ पीड़ा [को०]।

अभिसंदेह—संज्ञा पुं० [सं० अभिसन्देह] १ अदला बदली। विनिमय। २ जननेंद्रिय [को०]।

अभिसंदोह—संज्ञा पुं० [सं० अभिसंदोह] दे० 'अभिसंदेह' [को०]।

अभिसंध—संज्ञा पुं० [सं० अभिसन्ध] १ ठग। धोखा देनेवाला। वंचक। २ निंदक [को०]।

अभिसंधक—संज्ञा पुं० [सं० अभिसन्धक] दे० 'अभिसंध' [को०]।

अभिसंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिसन्धा] १ कहना। बतलाना। २ वादा। वचन। ३ बात का पक्का व्यक्ति। ४ धोखा। छल [को०]।

अभिसंधान—संज्ञा पुं० [सं० अभिसन्धान] १ वंचना। प्रतारणा। धोखा। जाल। २ फलोद्देश्य। लक्ष्य। उ०—इस कार्य को करने मे उसका अभिसंधान क्या है यह देखना चाहिए (शब्द०)। ३ इच्छा या रुचि (को०)। ४ स्वार्थ (को०)।

अभिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिसन्धि] १ प्रतारणा। वंचना। धोखा। उ०—भरत मे अभिसंधि क्या हो गया, तो मुझे निज राम की सौगंध।—साकेत, पृ० १८७। २ चुपचाप कोई काम करने की कई आदमियों की सलाह। कुचक्र। षड्यंत्र। उ०—तक्षशिलाधीश की भी उसमे अभिसंधि है।—चंद्र०, पृ० ७५। ३ विशेष समझौता या संधि। ४ लक्ष्य। उद्देश्य। ५ अंतर्गमित या सन्निहित अर्थ। अभिप्राय। राय। ६ जोड़। योग। ७ घोषणा। वादा।

अभिसंधिकृत—क्रि० वि० [सं० अभिसन्धिकृत] जानबूझ कर किया हुआ [को०]।

अभिसंधिता—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिसन्धिता] कलहांतरिता नायिका। स्वयंप्रिय का अपमान कर पश्चात्ताप करनेवाली स्त्री।

अभिसंपात—संज्ञा पुं० [सं० अभिसम्पात] १ सम्मिलन। संगम। २ युद्ध। संघर्ष। ३ बददुआ। शाप। ४ पतन [को०]।

अभिसंबंध—संज्ञा पुं० [सं० अभिसम्बन्ध] १ घनिष्ठ संबंध। २ समागम। संभोग (को०)।

अभिसंयोग—संज्ञा पुं० [सं०] घनिष्ठ संबंध। बहुत नजदीक का संबंध [को०]।

अभिसंश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] शरण। आश्रय। त्राण। पनाह [को०]।

अभिसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूझ। विचार। कल्पना। २ व्यर्थ या निष्फल कार्य। ३ विकास। परिष्कार। उ०—चेतना का स्वभाव चित्त का अभिसंस्कार करना है।—संपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० ३४६।

अभिसंमत—वि० [सं० अभिसम्मत] माननीय। आदरणीय। संमान्य [को०]।

अभिसर—संज्ञा पुं० [सं०] १ संगी। साथी। २ सहायक। मददगार। ३ सेवक। अनुचर [को०]।

अभिसरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ आगे जाना। २ समीप गमन। ३ प्रिय से मिलने के लिये जाना।

अभिसरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अभिशरण] १ शरण। सहाय। सहारा। उ०—सतन को लै अभिसरन, समुझहिं सुगति प्रवीन। करम विपरजय ववहुँ नहिं, सदा राम रस लीन।—तुलसी (शब्द०)। २ दे० 'अभिसरण'।

अभिसरना(पु)—क्रि० अ० [सं० अभिसरण] १ सचरण करना। जाना। २ किसी वाछित स्थान को जाना। ३ नायक या नायिका का अपने प्रिय से मिलने के लिये सकेतस्थल को जाना। उ०—चकित चित्त साहस सहित, नील बसन-युत गात। कुनटा सध्या अभिसरै, उत्सव तम अधिरात।—केशव शब्द०)।

अभिसार--संज्ञा पुं० [सं०][वि० अभिसारिका, अभिसारी] १ साधन। सहाय। सहारा। बल। २ युद्ध। ३ प्रिय से मिलने के लिये नायिका या नायक का सकेतस्थल मे जाना। ४. सकेतस्थल। सहेट [कौ०]। ५ आक्रमण [कौ०]। ६ शक्ति। ताकत (कौ०)। ७ सहयोगी। साथी। अनुगत (कौ०)। ८ औजार। उपकरण। साधन (कौ०)। ९ शुद्ध करने का एक सस्कार (कौ०)।

अभिसारना(पु)—क्रि० अ० [सं० अभिसार से नाम०] १ गमन करना। जाना। घूमना। २ प्रिय से मिलने के लिये नायिका या नायक का सकेत स्थान मे जाना। उ०—समय जोग पट भूषन धारै। पिय अभिसारि गाय अभिसारै।—नद० ग्र०, पृ० १५६।

अभिसारक(पु)--वि० [सं०] अभिसार करनेवाला।

अभिसारिका – संज्ञा स्त्री० [सं०] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदो मे एक। वह स्त्री जो सकेत स्थल मे प्रिय से मिलने के लिये स्वय जाय या प्रिय को बुलाए।

विशेष--यह दो प्रकार की है, शुक्लाभिसारिका (जो चाँदनी रात मे गमन करे) और कृष्णाभिसारिका (जो अँधेरी रात मे मिलने जाय) कोई कोई एक तीसरा भेद दिवाभिसारिका (दिन मे जानेवाली) भी मानते हैं। साहित्य शास्त्र मे अभिसार के आठ स्थान कहे गए हैं---(१) खेत, (२) उपवन या बगीचा (३) भग्नमदिर, (४) दूती या सहेली का निवासस्थान, (५) जगल, (६) तीर्थस्थान, (७) श्मशान। (८) नदीतट या परिसर।

अभिसारिणी—संज्ञा स्त्री०[सं०] १ अभिसारिका। २. त्रिष्टुभ् छद का भेद जो ११ की जगह १२ वर्णों की स्थिति मे जगती छद के सन्निकट जान पडता है [कौ०]।

अभिसारी—वि० [सं० अभिसारिन्] [संज्ञा स्त्री० अभिसारिका] १. साधक। सहायक। २ प्रिया से मिलने के लिये सकेतस्थल मे जानेवाला। उ०--धनि गोपी धनि ग्वाल धन्य सुरभी वनचारी। धनि यह पावन भूमि जहाँ गोविंद अभिसारी।—सूर (शब्द०)। ३ आक्रामक। हमला करनेवाला (कौ०)। ४ आगे जानेवाला। सामने जानेवाला (कौ०)।

अभिसेख(ष)(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिषेक'। उ०—मुनिदेव मिले अभिसेख कीन्ह।—हम्मरी रा०, पृ० १२।

अभिसेचना(पु)--क्रि० स० [सं० अभिषेचन]- सीचना। अभिषिक्त करना। उ०—आजु कछु मगल घन उनए। बरसत बूँदन मनु अभिसेचत मगल कलस लए। चमकि मगलामुखी दामिनी मगल करत नए।—भारतेंदु ग्र०, भा २, पृ० ११४।

अभिस्कंद--संज्ञा पुं० [सं० अभिस्कन्द] १ आक्रमण। धावा। २ शत्रु [कौ०]।

अभिस्नेह—वि० [सं०] घनिष्ठ स्नेह। चाह [कौ०]।

अभिस्मरण--संज्ञा पुं० [सं० अभि+स्मरण] विशेष रूप से की गई याद। ध्यान। स्मृति। उ०--'स्मृति' सस्कृत वस्तु का अभिस्मरण है।--सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० ३४७।

अभिस्यंद—संज्ञा पुं० [सं० अभिस्यन्द] दे० 'अभिष्यद' (कौ०)।

अभिहत—वि० [सं०] १. पीटा हुआ। ताडित। आहत। आक्रात। २ गुणा किया हुआ। गुणित। ३ पराजित। पराभूत। ४. बाधित। निरुद्ध [कौ०]।

अभिहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ निशाना लगाना। चोट करना। पीटना। २ गुणन क्रिया [कौ०]।

अभिहर¹—संज्ञा पुं०[सं०]उठा ले जाना। ले भागना। हटा देना[कौ०]।

अभिहर²—वि० [सं०] उठाईगीर। ले भागनेवाला।[कौ०]।

अभिहरण—संज्ञा पुं० [सं०] छीन ले जाना। लूटना [कौ०]।

अभिहर्ता—संज्ञा पुं० [सं० अभिहर्तृ] १ डाकू। २ अपहरणकर्ता। ले भागनेवाला [कौ०]।

अभिहार--संज्ञा पुं० [सं०] १ आक्रमण। हमला। उ०—कैधौं पाडुपूतनि की कछुक परच्छ यामैं, कोऊ अभिहार कै समा को ज्ञान लूट्यौ है।--रत्नाकर, भा--२, पृ० १११। २ मिश्रण। मिलावट (कौ०)। ३ लूटपाट। चोरी। डाका (कौ०)। ४ प्रयत्न। चेष्टा (कौ०)। ५ शस्त्रसज्ज होना (कौ०)। ६ समीप लाना (कौ०)। ७ मद्यप शराबी (कौ०)।

अभिहारिनि(पु)—वि० स्त्री० [सं० अभिहारिणी] सामने से हरण करनेवाली। उ०—देखी सुनी न्यारिनि कितेक व्रजवारिनि पै राधा सी न और अभिहारिनि लखाई है। हेरन हीं हेरन हरयो तौ है हमारो कछू काहु औ हिरानो पै न परत जनाई है।—रत्नाकर, भा० २, पृ० २२१।

अभिहास—संज्ञा पुं० [सं०]विनोद। हँसी। मजाक। दिल्लगी [कौ०]।

अभिहित—वि० [सं०] १ उक्त। कथित। कहा हुआ। २ सबद्ध। युक्त। बद्ध [कौ०]।

अभिहितसधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिहितसन्धि] कौटिल्य के अनुसार वह सधि जिसकी लिखा पढी न हुई हो।

अभिहितान्वयवाद--संज्ञा पुं० [सं०] कुमारिल भट्ट प्रभृति पुराने नैयायिकों, मीमासकों और आलकारियों या साहित्यिकों का मत कि वाक्य का प्रत्येक पद अलग स्वतत्र और अनन्वित अर्थ रखता है। बाद मे सब अर्थों का समन्वय करने पर समूचे वाक्य का अर्थ निकलता है। अन्विताभिधानवाद का उलटा।

अभिहितान्वयवादी--संज्ञा पुं० [सं० अभिहितान्वयवादिन्] अभिहितान्वयवाद का अनुयायी या समर्थक।

अभिहूति- संज्ञा स्त्री०[सं०]१ आवाहन। २ समाराधन। पूजन [कौ०]।

अभिहोम—संज्ञा पुं० [सं०] घृत की आहुति देना। घी से होम करना [कौ०]।

अभी¹—क्रि वि० [हिं० अब+ही] १ इसी क्षण। इसी समय। इसी वक्त। तुरत। तत्काल। २ अब तक। ३ अभी भी। ४ आजकल। इन दिनो। इस समय।

यौ०—अभी अभी = इसी समय । तुरंत । तत्काल ।

अभी²—वि० [सं०] निर्भय । निडर (को०) ।

अभीक¹—वि० [सं०] १. निर्भय । निडर । २. निष्ठुर । कठोरहृदय । ३. उत्सुक । उत्कंठित । ४. अत्यासक्त (को०) । ५. कामुक । लंपट । ६. प्रतिभूत । प्राप्त (को०) ।

अभीक²—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रेमी । पति । २. स्वामी । मालिक । ३. कवि ।

अभीक्ष्ण—वि० [सं०] १. निरंतर । लगातार । २ अति । ३ जो बार बार दुहराया जाय । प्रावर्तित (को०) ।

अभीघात—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिघात' ।

अभीत—वि० [सं०] निडर । निर्भय । उ०—सून, मानव यदि आदि अभीत, गा उठे जीवन विजय के गीत ।—साकेत, पृ० १९६ ।

अभीता(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अभीत' । उ०—यह सुनु अभ मन्त्रय अभीता ।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ११३ ।

अभीति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ निर्भयता । निडरता । २ आक्रमण । ३ निकटता (को०) ।

अभीति²—वि० [सं०] अभीत । निर्भीत (को०) ।

अभीप्सा—संज्ञा पुं० [सं०] चाहना । इच्छा । अभिलाषा । उ०—कल्पी सहज प्रवेश हृदय में जगा अभीप्सा ।—ग्जन०, पृ० १० ।

अभीप्सित¹—वि०[सं०]अभिलषित । चाहा हुआ । वांछित । इच्छित । उ०—हे भरतभद्र, अब कहो अभीप्सित अपना ।—साकेत, पृ० २७ ।

अभीप्सित²—संज्ञा पुं० इच्छा । कामना । चाह (को०) ।

अभीप्सी—वि० [सं० अभिप्सिन] दे० 'अभीप्सु' (को०) ।

अभीप्सु—वि०[सं०]अभीप्सा करनेवाला । चाहनेवाला । इच्छुक (को०)।

अभीम¹—वि० [सं०] जो भय उत्पन्न करनेवाला न हो (को०) ।

अभीम²—संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम (को०) ।

अभीमान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमान' (को०) ।

अभीमुद—वि० [सं०] अत्यधिक प्रसन्न या आनंदयुक्त (को०) ।

अभीमोद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रसन्नता । खुशी (को०) ।

अभीर—संज्ञा पुं० [सं०] १ गोप । अहीर । २ काव्य में एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ११ मात्राएँ और अंत में जगण (ISI) होता है । उ०—यहि विधि श्री रघुनाथ, गहे भरत का हाथ । पूजत लोग अपार, गए राज दरबार (शब्द०) ।

अभीरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का साँप (को०) ।

अभीराजी—संज्ञा पुं० [सं०] एक विषैला कीड़ा (को०) ।

अभीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभीरों या अहीरों की बोली ।

अभीरु¹—वि० [सं०] १ निर्भय । निडर । २ जो भयानक न हो ।

अभीरु²—संज्ञा पुं० १ शिव । २ भैरव ।

अभीरुता—वि० [सं०] १ निर्भय । २. निर्भीक (को०) ।

अभीरुपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] शतमूली (को०) ।

अभीवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ चढ़ाई । हमला । २ [illegible] (को०) ।

अभीशाप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिशाप' (को०) ।

अभीशु—संज्ञा पुं० [सं०] १ रस्सी । लगाम । २ रश्मि । किरण । ३ बाहु । भुजा । ४ उँगली (को०) ।

अभीषया—क्रि० वि० [सं०] निर्भयतापूर्वक (को०) ।

अभीषु—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभीशु' (को०) ।

अभीष्ट¹—वि० [सं०] १ वांछित । चाहा हुआ । अभिलषित । उ०—जो स्पर्श कर लेता कभी था पुण्य प्रेम अभीष्ट को ।—गाजन०, पृ० २६ । २ मनोनीत । पसंद का । ३ अभिप्रेत । आशय के अनुकूल । ४ प्रिय (को०) । ५ पूजनीय (को०) ।

अभीष्ट²—संज्ञा पुं० १ मनोरथ । मनचाही बात । उ०—'आपका अभीष्ट सिद्ध हो जायगा' (शब्द०) । २ प्रिय व्यक्ति या प्रेमी । ३ प्राचीन आचार्यों के मत से एक अलंकार जिसमें अपने इष्ट की सिद्धि दूसरे के कार्य द्वारा दिखाई जाय । यह यथार्थ में प्रहर्षण अलंकार के अंतर्गत आ जाता है ।

यौ०—अभीष्टलाभ = इच्छित वस्तु की प्राप्ति । अभीष्टसिद्धि = अभिलषित इच्छा का पूर्ण होना ।

अभीष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गृहस्वामिनी । २ प्रमिका । ३ पान (को०) ।

अभीष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभीष्ट वस्तु, इच्छा या आशा (को०) ।

अभुआना(पु)†—क्रि० अ० [सं० आ+भ्रमण] हाथ पैर पटकना और जोर जोर से सिर हिलाना जिससे सिर पर भूत का आना समझा जाता है ।

अभुक्त—वि० [सं०] १ न खाया हुआ । २ न भोग किया हुआ । बिना बर्ता हुआ । अव्यवहृत । अछूता । उ०—नर अभुक्त उपयुक्त पान ताके हित हित हेरत ।—रत्नाकर, भाग १, पृ० १६४ । ३ जिसने भोजन न किया हो (को०) । ४ जिसने भोग न किया हो (को०) ।

अभुक्तपूर्व—वि० [सं०] जिसका पहले कभी भोग या व्यवहार न किया गया हो ।

अभुक्तमूल—संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठा नक्षत्र के अंत की दो घड़ी तथा मूल नक्षत्र के आदि की दो घड़ी । गंडांत ।

अभुग्न—वि० [सं०] १ न झुका हुआ । सीधा । २ स्वस्थ । नीरोग (को०) ।

अभुज—वि० [सं०] बाहुविहीन । बिना भुजा का (को०) ।

अभुत(पु)—वि० [हिं० अद्भुत या अभूत] अद्भुत । अनूठा । विचित्र । अपूर्व । उ०—[illegible] आदि [illegible] [illegible] ।—पृ० रा०, ६१।११५२ ।

अभुआना(पु)²—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अभुआना' । उ०—[illegible] भुआना जाओ, [illegible] अभुआता है ।—[illegible], पृ० [illegible] ।

अभू¹(पु)—वि० [हिं० अब+हू = भी] अब भी ।

अभू²—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु (को०) ।

अभूतान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभुआना' । उ०—[illegible] [illegible] भूमि [illegible] ।—[illegible], पृ० [illegible] ।

अभूत—वि० [सं०] १ जो हुआ न हो। २ वर्तमान। ३ असत्य। मिथ्या (को०)। ४ अपूर्व। विलक्षण। अनोखा। उ०—आँगन खेलत घुटुरुनि धाए। उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत उठाए। नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनु तडित छपाए।—सूर (शब्द०)।

अभूतदोष—वि० [सं०] दोषरहित। निर्दोष [को०]।

अभूतपूर्व—वि० [सं०] १ जो पहले न हुआ हो। २ अपूर्व। अनोखा। विलक्षण।

अभूतशत्रु—वि० [सं०] जिसका कोई शत्रु न हो। अजातशत्रु [को०]।

अभूताहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाटयशास्त्र के अनुसार किसी प्रकार का कपटयुक्त या व्यंग्यपूर्ण वचन कहना। गर्भसंधि के तेरह अंगों में से एक। २ अयथार्थ बात कहना। छलपूर्ण बात कहना। (को०)।

अभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अस्तित्वहीनता। अविद्यमानता। २ अशक्तता। ३ निर्धनता। ४ विपत्ति। बर्बादी। विनाश[को०]।

अभूतोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा के दस भेदों में से एक जिसमें उत्कर्ष के कारण उपमान का कथन न हो सके। उ०—जौं पटतरिअ तीअ सम सीया। जग असि जुवति कहाँ कमनीया।—मानस, १।२४७।

अभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह जो भूमि न हो। भूमि के अतिरिक्त अन्य पदार्थ। २ अनुपयुक्त स्थान। ३ स्थानाभाव। ४ पहुँच से परे का स्थान [को०]।

अभूमिज—वि० [सं०] १ निकृष्ट अथवा अनुपयुक्त स्थान में उत्पन्न। २ जो भूमि में उत्पन्न न हो [को०]।

अभूमिप्राप्तसैन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह सेना जो अनुपयुक्त भूमि में पड गई हो। ऐसी जगह पडी हुई फौज जहाँ से लडना असभव हो।

अभूरि—वि० [सं०] स्वल्प। कुछ। थोडा। कतिपय [को०]।

अभूष—वि० [सं०] अभूषित [को०]।

अभूषन—संज्ञा पुं० [सं० आभूषण] दे० 'आभूषन'। उ०—हीरन के अभूपन पै वारो जग ऐन।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६५।

अभूषित—वि० [सं०] विना आभूषण के। अनलंकृत। विना सजाया हुआ [को०]।

अभृत—वि० [सं०] जिसे पारिश्रमिक न दिया जाता हो [को०]।

अभृतक—वि० [सं०] दे० 'अभृत' (को०)।

अभृतसैन्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जिसे वेतन या भत्ता न मिला हो।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार यह व्याधिज (बीमार) सैन्य से उपयोगी है, क्योंकि वेतन पा जाने पर जी लगाकर लड सकती है।

अभृश—वि० [सं०] थोडा। कुछ। चंद [को०]।

अभेडा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभेरा'।

अभेद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभेदनीय, अभेद्य] १ भेद का अभाव। अभिन्नता। एकत्व। २ एकरूपता। समानता। ३ रूपक अलंकार के दो भेदों में से एक जिसमें उपमेय और उपमान का अभेद बिना निषेध के कथन किया जाय, जैसे—मुखचंद, चरणकमल। उ०—रंभन मंजरि पुच्छ फिरावत मुच्छ उसीरनि की फहरी है। चंदन, कुंद, गुलाबन, आमन मीत सुगंधन की लहरी है। ताल वटे फणि चक्र प्रवीन जू मित वियोगिनि की कहरी है। आनन ज्वाल गुलाल उडावत व्याल बसन्त बडो जहरी है।—बेनी (शब्द०)। इसको कोई कोई पृथक् अलंकार भी मानते हैं।

अभेद[2]—वि० १ भेदशून्य। एकरूप। समान। उ०—ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।—मानस, १।५०।

अभेद[3]—वि० [सं० अभेद्य] जिसका भेदन या छेदन न हो सके। जिसके भीतर कोई वस्तु न घुस सके। जिसका विभाग न हो सके। उ०—कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।—मानस, ६।७६।

अभेदनीय—वि० [सं०] दे० 'अभेद्य'।

अभेदबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेदरहित बुद्धि। एकतापरक बुद्धि। बुद्धि या विचार की वह स्थिति जिसमें भेदभाव नहीं होता।

अभेदवादी—वि० [सं० अभेदवादिन्] [वि० स्त्री० अभेदवादिनी] जीवात्मा और परमात्मा में भेद न माननेवाला। अद्वैतवादी। उ०—तेइ अभेदवादी ज्ञानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर।—मानस, ७।१००।

अभेदाभेद—वि० [सं०] एक। एकाकार। उ०—कहीं नरायण नाभि है कहीं ब्रह्म कहिं वेद। कहिं शंकर गिरजा कहीं, कहीं अभेदाभेद।—भक्ति०, पृ० २८५।

अभेद्य[1]—वि० [सं०] १ जिसका भेदन या छेदन न हो सके। जिसके भीतर कोई चीज घुस न सके। जिसका विभाग न हो सके। २ जो टूट न सके। अखंडनीय। अविभाज्य।

अभेद्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] हीरा। हीरक। वज्र [को०]।

अभेय—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभेव'।

अभेरना—क्रि० स० [सं० अभिद, प्रा० अभिभड] मिलाना। मिश्रित करना। एक में करना। उ०—जपहु बुद्धि कै दुई सन फेरहु। दही चूर अस हिया अभेरहु।—जायसी (शब्द०)।

अभेरा—संज्ञा पुं० [सं० अभि=सामने+रण=लडाई अथवा प्रा० अभिभड] रगडा। झगडा। मुठभेड। टक्कर। मुकाबिला। उ०—(क) उठै आगि दोउ डार अभेरा। कौन साथ तेहि बैरी केरा।—जायसी (शब्द०)। (ख) विषम कहार मार मदमाते चलहिं न पाउँ बटोरा रे। मद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५५३।

अभेव[1]—संज्ञा पुं० [सं० अभेद] अभेद। अभिन्नता। एकता।

अभेव[2]—वि० भेदरहित। अभिन्न। एक। उ०—सिप सुमिरन नाँचा करै हो जाय अलख अभेव।—दरिया० बानी, पृ० ५।

अभै—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभय'। उ०—सदा सुभाव सुलभ सुमिरन बस, भक्तन अभै दियो।—सूर० १।४०।

अभैदिक—वि० [सं०] दे० 'अभेद्य' [को०]।

अभैन—वि० [सं०] दे० 'अभय'। उ०—गर भै अभैन सुय सब्ब रब्बं।—पृ० रा०, १।३१२।

अभैपद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभयपद'। उ०—ध्रुवहिं अभैपद दियौ मुरारी।—सूर०, १।६०।

अभैमंत्र(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अभयमन्त्र] निर्भयता प्रदान करनेवाला मंत्र।

अभैर—संज्ञा पुं० [सं० ?] धरन या लकड़ी जिसमें डोरी बाँधकर करघे की कंघियाँ लटकाई जाती हैं। कलवाँसा। दढेरी।

अभोक्तव्य—वि० [सं०] जो भोगने योग्य न हो। जिसका उपयोग न किया जाय। अनुपयुक्त [को०]।

अभोक्ता—वि० [सं० अभोक्तृ] [वि० स्त्री० अभोक्त्री] १ भोग न करनेवाला। व्यवहार न करनेवाला। २ विरक्त (को०)।

अभोखण(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आभूषण'। उ०—अगि अभोखण अच्छियइ, तन सोवन सगराइ। मारू अवा-मउर जिम, कर लगइ कुँमलाइ।—ढोला०, दू० ४७१।

अभोग¹(पु)—वि० [सं०] जिसका भोग न किया गया हो। अछूता। उ०—बरनि सिंगार न जानेउँ नख सिख जैस अभोग। तस जग किछु न पायउँ उपम देउँ ओहि जोग।—जायसी (शब्द०)।

अभोग²—संज्ञा पुं० भोग का अभाव [को०]।

अभोगी—वि० [सं० अभोगिन्] [स्त्री० अभोगिनी] भोग न करनेवाला। इंद्रियों के सुख से उदासीन। विरक्त। उ०—हमरें जान सदाशिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।—मानस, १।९०।

अभोग्य—वि० [सं०] जो भोग योग्य न हो [को०]।

अभोज(पु)—वि० [सं० अभोज्य] न खाने योग्य। अभक्ष्य। उ०—भोज अभोज न रति विरति, नीरस सरस समान। भोग होइ अभिलाष विनु, महाभोग ता मान। राम च०, पृ० १५२।

अभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] १ भोजन न करना। २ भोजन से परहेज। ३ उपवास। व्रत [को०]।

अभोज्य—वि० [सं०] १ न खाने योग्य। अभक्ष्य। अभोज। २. जिसका खाना वर्जित हो [को०]।

अभोटी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] शूद्र श्रेणी के नौकर। उ०—मंदिर में शूद्र श्रेणी के नौकर अभोटी कहलाते रहे।—पू० म० भा०, पृ० ३२३।

अभोल(पु)—वि० [हिं० भूलना] जो भूला न हो। जो भूलनेवाला न हो। उ०—अमोल अभोल अतोल अमग। अकज अगज अलुज अभग।—पृ० रा०, ६४। ३१७।

अभौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभय'। उ०—नृपति बहुत जाचिय अभौ।—पृ० रा०, ५७। २६७।

अभौतिक—वि० [सं०] १ जो पंचभूत का न बना हो। जो पृथ्वी, जल, अग्नि आदि से उत्पन्न न हो। अपार्थिव। २ अगोचर।

अभौम—वि० [सं०] १. जो भूमि से उत्पन्न न हो। अभूमिज। २. जो खराब या गलत जगह में पैदा हो [को०]।

अभ्भि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्र'। उ०—उडै सार सार असी वक भार। मनो अभ्भि सम वाल वज्ज्यो सवार।—पृ० रा०, ६१।२०२०।

अभ्यंग—संज्ञा पुं० [संज्ञा अभ्यङ्ग] [वि० अभ्यक्त, अभ्यंजनीय] १ लेपन। चारों ओर पोतना। मल मलकर लगाना। २ नवनीत। नैनू (को०)। ३ तैलमर्दन। स्नेहन।

यौ०—तैलाभ्यंग।

अभ्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० अभ्यञ्जन] १ तैल आदि की मालिश। २. आँखों में सुरमा या अंजन लगाना ३ अंगराग। तैल आदि। ४ मक्खन। नवनीत [को०]।

अभ्यंजनीय—वि० [सं० अभ्यञ्जनीय] १ पोतने योग्य। लगाने योग्य। २ तेल या उबटन लगाने योग्य।

अभ्यंत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्यंतर'। उ०—अगम अगोचर रहुचा अभ्यंत।—कबीर ग्रं०, पृ० २६६।

अभ्यंतज—वि० [सं० अभ्यन्तज] भीतरी। अंत तक। अभ्यंतर। उ०—रहै कौन अभ्यंतज बल प्रकार।—पृ० रा०, ५५।६६।

अभ्यंतर¹—संज्ञा पुं० [सं० अभ्यन्तर] १ मध्य। बीच। उ०—निसि लौं रमत कोप अभ्यंतर, जो हित कह्यौ सो थोरी।—सूर०, १०।३८४८। २ हृदय। अंतःकरण।

अभ्यंतर²—क्रि० वि० भीतर। अंदर।

अभ्यंतर³—वि० १ सुपरिचित। अंतरंग। निकटतम। २ घनिष्ठता के साथ संबद्ध। ३ कुशल। ४ भीतर का। अंदर का। भीतरी। उ०—बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५१५।

अभ्यंतरक—संज्ञा पुं० [सं० अभ्यन्तरक] अंतरंग मित्र। घनिष्ठ मित्र [को०]।

अभ्यक्त—वि० [सं०] १ पोते हुए। लगाए हुए। २ तेल या उबटन लगाए हुए। ३. सुसज्ज। सजा हुआ (को०)।

अभ्यग्र—वि० [सं०] १ नजदीक। समीप। नवीन। ताजा [को०]।

अभ्यधीन—वि० [सं०] १. अधीन। जो किसी के अधिकार या नियंत्रण में हो। २ जो किसी नियम से बँधा हुआ हो [को०]।

अभ्यनुज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ स्वीकृति। अनुमति। सम्मति। २. आदेश। ३ पदच्युति या अनुपस्थिति की माफी [को०]।

अभ्यनुज्ञात—वि० १ स्वीकृत। २ समर्थित [को०]।

अभ्यमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ आक्रमण। धावा। २ आघात। ३ रोग [को०]।

अभ्यमित—वि० [सं०] १ रोगी। २ आहत। चोट खाए हुए [को०]।

अभ्यर्चन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभ्यर्चना'।

अभ्यर्चना—संज्ञा स्त्री० [सं०] सम्मान। पूजा। आराधना [को०]।

अभ्यर्ण¹—वि० १ समीप। नजदीक। पास। २ समीप पहुँचा हुआ या आनेवाला [को०]।

अभ्यर्ण²—संज्ञा पुं० सामीप्य। निकटता [को०]।

अभ्यर्थन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभ्यर्थना'।

अभ्यर्थना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सम्मुख प्रार्थना। विनय। दरख्वास्त। २ सम्मान के लिये आगे बढ़कर लेना। अगवानी। उ०—लोग स्टेशन पर उनकी अभ्यर्थना के लिये खड़े थे (शब्द०)।

अभ्यर्थनीय—वि० [सं०] १. प्रार्थना करने योग्य। विनय करने योग्य। २. आगे बढ़कर लेने योग्य।

अभ्यर्थित—वि० [स०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २ जो आगे बढकर लिया गया हो [कौ०]।

अभ्यर्थी—वि० [स० अभ्यर्थिन् [वि० स्त्री० अभ्यर्थिनी] अभ्यर्थना करने वाला। निवेदन करनेवाला [कौ०]।

अभ्यर्थ्य—वि० [सं०] दे० 'अभ्यर्थनीय'।

अभ्यर्दन—सज्ञा पुं० [सं०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीडन। [कौ०]।

अभ्यर्दित—वि० [सं०] जिसे पीडा पहुँचाई गई हो। पीडित [कौ०]।

अभ्यलकार—सज्ञा पुं० [स० अभ्यलङ्कार] आभूषण। मडन [कौ०]।

अभ्यलकृत—वि० [सं०अभ्यलङ्कृत]आभूषित। मडित। सज्जित [कौ०]।

अभ्यर्हणा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पूजा। २ आदर। समान। श्रद्धा [कौ०]।

अभ्यवकर्षण—सज्ञा पुं० [सं०] वहि निष्कासन। बाहर निकालना या खींचना [कौ०]।

अभ्यवस्कद—सज्ञा पुं०[सं० अभ्यवस्कन्द] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये तीव्रता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [कौ०]।

अभ्यवस्कदन—सज्ञा पुं० [स० अभ्यवस्कन्दन] दे० 'अभ्यवस्कद'।

अभ्यवहरण—सज्ञा पुं० [स०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [कौ०]।

अभ्यवहार[1]—वि० [स०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [कौ०]।

अभ्यवहार[2]—सज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [कौ०]।

यौ०—अभ्यवहार मडप = भोजन का स्थान। खाने का मडप।

अभ्यसन—सज्ञा पु० [स०] अनुशीलन। अभ्यास [कौ०]।

अभ्यसनीय—वि० [स०] अभ्यास करने योग्य। जिसपर अभ्यास किया जाय [कौ०]।

अभ्यसित—वि० [स०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।

अभ्यसूय—वि० [स०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [कौ०]।

अभ्यसूया—सज्ञा स्त्री० [स०] १ क्रोध। गुस्सा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [कौ०]।

अभ्यस्त—वि० [सं०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। वार वार किया हुआ। मश्क किया हुआ। जैसे—यह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे—वह इस कार्य मे अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीत [कौ०]। ४ आदत। स्वभाव [कौ०]। ५ पक्का। आदी [कौ०]।

अभ्यस्त—वि० [स०] दे० 'अभ्यसनीय' [कौ०]।

अभ्यात—वि० [स० अभ्यान्त] १ रोगी। आतुर। २.घायल। आहत [कौ०]।

अभ्याकर्ष—सज्ञा पुं०[स०] पहलवानो का एक दूसरे को ललकारने के लिये सीना ठोकना [कौ०]।

अभ्याकाक्षित[1]—वि० [स०अभ्याकाङ्क्षित] चाहा हुआ। अभिलषित [कौ०]।

अभ्याकाक्षित[2]—सज्ञा पु० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश। दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [कौ०]।

अभ्याख्यान—सज्ञा पुं० [सं०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा। नालिश।

अभ्यागत[1]—वि०[सं०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ रूप मे घर आया हुआ।

अभ्यागत[2]—सज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुना, जैसे—अभ्य सेवा गृहस्थो का धर्म है (शब्द०)।

अभ्यागम—सज्ञा पुं० [सं०] १ सामने आना। उपस्थिति। पता। पडोस। ३ सामना। ४ मुकाबिला। मुठभे ५.विरोध। ६ अभ्युत्थान। अगवानी। ७ किसी पहुँचना। ८ आघात। ९.वध (कौ०)। १०—शत्रु

अभ्यागारिक—वि० [सं०] १. कुटुब के पालने मे तत्पर। में फँसा हुआ। घरबारी। २ कुटुंब पालने मे व्यग्र की झझट मे हैरान।

अभ्याघात—सज्ञा पुं०[स०] १ आघात। आक्रमण। २ बा वट। (कौ०)।

अभ्यात्त—वि० [स०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ ब्रह्म का परिव्याप्त [कौ०]।

अभ्याधान—सज्ञा पुं० [स०] प्रारभ। स्थापन [कौ०]।

अभ्यापात—सज्ञा पुं० [स०] विपत्ति। दुर्भाग्य [कौ०]।

अभ्यामर्द—सज्ञा पुं० [स] युद्ध। सघर्ष [कौ०]।

अभ्याश[1]—वि० [सं०] समीपवर्ती। निकट [कौ०]।

अभ्याश[2]—सज्ञा पुं० १ सामीप्य। निकटता। पडोस २ नतीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युदय [कौ०]।

अभ्यास[1]—सज्ञा पुं०[स०]१ बार बार किसी काम को कर प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अव शीलन। साधन। आवृत्ति। मश्क। उ०—(क) अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत पर परत निसान। सभा वि० (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। होना। २. आदत। रब्त। बा जैसे—उन्हे तो गाली देने का अभ्यास पड गया है

क्रि० प्र०—पडना।

३ प्राचीनो के अनुसार एक काव्यालकार जिसमे किसी को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०—हरि सुमि किय, जरयो न अगिन मँझार। गयो गिरायो गि न वांको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन में मान उसे अलकार नही मानते। ४ अनुशासन पडोस (कौ०)। ६ गुणन (कौ०)। ७ सगीत मे की बार बार आवृत्ति। टेक [कौ०]।

अभ्यास[2]Ⓟ—वि० [सं०अभ्याश] समीप। निकट।

अभ्यासकला—सज्ञा पु० [सं०] योग की उन चार कला जो विविध योगांगो के मेल से बनती है। आसन याम का मेल।

अभ्यासयोग—सज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार उप

क्रिया । २. लगातार एक ही विषय का बार बार चिंतन करने से मन या मस्तिष्क की एकाग्रता ।

अभ्यासादन—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना[को०] ।

अभ्यासित—वि० [सं० अभ्यास] दे० 'अभ्यसित' । उ०—रात दिना के मुनै किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन सों कैसे बचौ कहो मन कोटिक करौ उपाव ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५३६ ।

अभ्यासी—वि० [सं० अभ्यासिन्] [स्त्री० अभ्यासिनी] अभ्यास करनेवाला । साधक ।

अभ्याहत—वि० [सं०] १ पीडित । ताडित । २ बाधित । ३ दोषयुक्त [को०] ।

अभ्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ निकट लाना । २. अपहरण । चौर्य [को०] ।

अभ्युक्त—वि० [सं०] किसी संदर्भ में कहा हुआ [को०] ।

अभ्युक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेचन । छिडकाव । सिंचन । २ मार्जन [को०] ।

अभ्युक्षित—वि० [सं०] १ छिडका हुआ । सिंचित । २ जिसपर छिडका गया हो । जिसका सिंचन हुआ हो ।

अभ्युक्ष्य—वि० [सं०] छिडकने योग्य ।

अभ्युचित—वि० [सं०] परचरित । प्रवर्तित । नियमित [को०] ।

अभ्युच्चय—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि । उत्थान । संपन्नता । उत्कर्ष । २ एकत्रीकरण [को०] ।

अभ्युच्छ्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १ चढाव । उठान । २ संगीत में स्वरसाधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा । अवरोही—सा ध, नि प, ध म, प ग, म रे ग स ।

अभ्युच्छ्रित—वि० [सं०] उन्नत । उठा हुआ । उच्च [को०] ।

अभ्युत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना । २ किसी बडे के आने पर उसके आदर के लिये उठकर खडा हो जाना । प्रत्युद्गमन । ३ बढती । समृद्धि । उन्नति । गौरव । ४ उठान । आरंभ । उदय । उत्पत्ति ।

अभ्युत्थायी—वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [स्त्री० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खडा होनेवाला । २ आदर के लिये उठकर खडा होनेवाला । ३ उन्नति करनेवाला । ४ बढनेवाला ।

अभ्युत्थित—वि० [सं०] १ उठा हुआ । २ आदर के लिये उठकर खडा हुआ । ३ उन्नत । बढा हुआ ।

अभ्युत्थेय—वि० [सं०] १ उठने योग्य । २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो । जिसे उठकर आदर देना उचित हो । ३ उन्नति के योग्य ।

अभ्युदय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युदित, आभ्युदयिक] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय । २ प्रादुर्भाव । उत्पत्ति । ३ इष्टलाभ । मनोरथ की सिद्धि । ४ विवाह आदि शुभ अवसर । ५. वृद्धि । बढती । उन्नति । तरक्की । ६ अस्तित्व में आना । आविर्भूत होना [को०] । ७ घर में संतान के जन्म लेने पर किया जानेवाला नांदीमुख श्राद्ध । [को०] ।

अभ्युदाहरण—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण ।

अभ्युदित—वि० [सं०] १ उगा हुआ । निकला हुआ । उ प्रादुर्भूत । २ दिन चढ़े तक सोनेवाला । ३ सूर्योदय के उठकर नित्यकर्म न करनेवाला । ४. समृद्ध । उन्नत उत्सव रूप में मनाया हुआ [को०] ।

अभ्युपगत—वि० [सं०] १ पास गया हुआ । सामने आया प्राप्त । २ स्वीकृत । अंगीकृत । मंजूर किया हुआ । ३ स तुल्य [को०] ।

अभ्युपगम—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युपगत] १ पास जाना । आना या जाना । प्राप्ति । २ स्वीकार । अंगीकार । ३ वादा करना (को०) । ४ न्याय के अनुसार सिद्धांत के च में से एक ।

विशेष—बिना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर खंडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अ सिद्धांत कहते हैं । जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि है । इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोडी लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो ब कि वह नित्य है या अनित्य । इस प्रकार मानना अ सिद्धांत हुआ ।

अभ्युपपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना दया । अनुग्रह । ३ अनुमोदन । स्वीकृति । मंजूर सीखना । ढाँढस । ५ रक्षा । बचाव । ६ वादा [को०]

अभ्युपाय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वादा । २ स्वीकृत । ३ साधन [को०] ।

अभ्युपायन—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट । उपहार । २ रि त

अभ्युपेत—वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ । आया हुआ । २ पा हुआ । स्वीकृत [को०] ।

अभ्युषित[1]—वि० [सं०] साथ या निकट रहनेवाला ।

अभ्युषित[2]—संज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [को०] ।

अभ्यूढ—वि० [सं०] समीप लाया हुआ [को०] ।

अभ्यूष—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी । २ अ हुआ भोजन [को०] ।

अभ्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क । वहस । २ निष्कर्ष । ३ ४ विचार [को०] ।

अभ्रंकष[1]—वि० [सं० अभ्रङ्कष] गगनचुंबी । बहुत ऊँच

अभ्रंकष[2]—संज्ञा पुं० १ वायु । हवा । २ पर्वत [को०] ।

अभ्रंलिह[1]—वि० [सं०] गगनचुंबी [को०] ।

अभ्रंलिह[2]—संज्ञा पुं० [सं०] हवा [को०] ।

अभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ । बादल । २ आकाश । ३ धातु । ४ स्वर्ण । सोना । ५ नागरमोथा । ६ शून्य । ७ कपूर (को०) । ८ बेंत बेत्र (को०) ।

अभ्रक—संज्ञा पुं० [सं०] अबरक । भोडर । दे० 'अबरक' ।

अभ्रकसत्व—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात [को०] ।

अभ्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वताकार बादल की चोटी [को०

अभ्रगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रगङ्गा] आकाशगंगा [को०]

अभ्रनाग—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०] ।

अभ्यर्थित--वि० [सं०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २ जो आगे बढकर लिया गया हो [को०]।
अभ्यर्थी--वि० [सं० अभ्यर्थिन् [वि० स्त्री० अभ्यर्थिनी] अभ्यर्थना करनेवाला। निवेदन करनेवाला [को०]।
अभ्यर्थ्य--वि० [सं०] दे० 'अभ्यर्थनीय'।
अभ्यर्दन--संज्ञा पुं० [सं०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीडन। [को०]।
अभ्यर्दित--वि० [सं०] जिसे पीडा पहुँचाई गई हो। पीडित [को०]।
अभ्यलंकार--संज्ञा पुं० [सं० अभ्यलङ्कार] आभूषण। मंडन [को०]।
अभ्यलंकृत--वि० [सं०अभ्यलङ्कृत] आभूषित। मंडित। सज्जित [को०]।
अभ्यर्हणा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूजा। २ आदर। सम्मान। श्रद्धा [को०]।
अभ्यवकर्षण--संज्ञा पुं० [सं०] बहि निष्कासन। बाहर निकालना या खीचना [को०]।
अभ्यवस्कंद--संज्ञा पुं०[सं० अभ्यवस्कन्द] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये तीव्रता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।
अभ्यवस्कंदन--संज्ञा पुं० [सं० अभ्यवस्कन्दन] दे० 'अभ्यवस्कंद'।
अभ्यवहरण--संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [को०]।
अभ्यवहार[1]--वि० [सं०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।
अभ्यवहार[2]--संज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।
यौ०--अभ्यवहार मंडप = भोजन का स्थान। खाने का मंडप।
अभ्यसन--संज्ञा पुं० [सं०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।
अभ्यसनीय--वि० [सं०] अभ्यास करने योग्य। जिसपर अभ्यास किया जाय [को०]।
अभ्यसित-- वि० [सं०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।
अभ्यसूय--वि० [सं०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।
अभ्यसूया--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्रोध। गुस्सा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।
अभ्यस्त--वि० [सं०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मश्क किया हुआ। जैसे--यह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे--वह इस कार्य मे अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीत [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ पक्का। आदी [को०]।
अभ्यस्त--वि० [सं०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।
अभ्यात--वि० [सं० अभ्यान्त] १ रोगी। आतुर। २ घायल। आहत [को०]।
अभ्याकर्ष--संज्ञा पुं०[सं०] पहलवानो का एक दूसरे को ललकारने के लिये सीना ठोकना [को०]।
अभ्याकांक्षित[1]--वि० [सं०अभ्याकाङ्क्षित] चाहा हुआ। अभिलषित [को०]।
अभ्याकांक्षित[2]--संज्ञा पुं० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश। झूठ दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।
अभ्याख्यान--संज्ञा पुं० [सं०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा। नालिश।
अभ्यागत[1]--वि० [सं०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ अतिथि रूप मे घर आया हुआ।
अभ्यागत[2]--संज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुना, जैसे--अभ्यागत सेवा गृहस्थो का धर्म है (शब्द०)।
अभ्यागम--संज्ञा पुं० [सं०] १ सामने आना। उपस्थिति। २ समीपता। पडोस। ३ सामना। ४ मुकाबिला। मुठभेड। युद्ध ५ विरोध। ६ अभ्युत्थान। अगवानी। ७ किसी निर्णय पर पहुँचना। ८ आघात। ९ वध (को०)। १०--शत्रुता (को०)
अभ्यागारिक--वि० [सं०] १ कुटुंब के पालने मे तत्पर। लडके बाले मे फँसा हुआ। घरबारी। २ कुटुंब पालने मे व्यग्र। गृहस्थी की झंझट से हैरान।
अभ्याघात--संज्ञा पुं०[सं०] १ आघात। आक्रमण। २ बाधा। रुकावट। (को०)।
अभ्यात्त--वि० [सं०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ ब्रह्म का विशेषण। परिव्याप्त [को०]।
अभ्याधान--संज्ञा पुं० [सं०] प्रारंभ। स्थापन [को०]।
अभ्यापात--संज्ञा पुं० [सं०] विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]।
अभ्यामर्द--संज्ञा पुं० [सं] युद्ध। संघर्ष [को०]।
अभ्याश[1]--वि० [सं०] समीपवर्ती। निकट [को०]।
अभ्याश[2]--संज्ञा पुं० १ सामीप्य। निकटता। पडोस २ परिणाम। नतीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युदय [को०]।
अभ्यास[1]--संज्ञा पुं०[सं०]१ बार बार किसी काम को करना। पूर्णता प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अवलंबन। अनुशीलन। साधन। आवृत्ति। मश्क। उ०--(क) करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान। सभा वि० (शब्द०)।
क्रि० प्र०--करना। होना। २. आदत। रब्त। बान। टेव। जैसे--उन्हे तो गाली देने का अभ्यास पड गया है (शब्द०)
क्रि० प्र०--पडना।
३ प्राचीनो के अनुसार एक काव्यालंकार जिसमे किसी दुष्कर व्रत को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०--हरि सुमिरन अह। कियो, जरयो न अगिनि मँझार। गयो गिरायो गिरिहु ते, म न बाँको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन मे चमत्कार मान उसे अलंकार नहीं मानते। ४ अनुशासन (को०)। पडोस (को०)। ६ गुणन (को०)। ७ संगीत मे एक ही की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।
अभ्यास[2] (पु)--वि० [सं०अभ्याश] समीप। निकट।--अनेकार्थ
अभ्यासकला--संज्ञा पुं० [सं०] योग की उन चार कलाओ मे से जो विविध योगागो के मेल से बनती है। आसन और प्राणायाम का मेल।
अभ्यासयोग--संज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार अनुशीलन करने

क्रिया। २ लगातार एक ही विषय का बार बार चिंतन करने से मन या मस्तिष्क की एकाग्रता।

अभ्यासादन—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना [को०]।

अभ्यासित(पु)—वि० [सं० अभ्यास] दे० 'अभ्यसित'। उ०—रात दिना के सुनै किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन सो कैसे बचौ कहो मन कोटिक करो उपाव।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५३६।

अभ्यासी—वि० [सं० अभ्यासिन्] [स्त्री० अभ्यासिनी] अभ्यास करनेवाला। साधक।

अभ्याहत—वि० [सं०] १ पीडित। ताडित। २ बाधित। ३ दोषयुक्त [को०]।

अभ्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ निकट लाना। २ अपहरण। चौर्य [को०]।

अभ्युक्त—वि० [सं०] किसी संदर्भ में कहा हुआ [को०]।

अभ्युक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेचन। छिडकाव। सिंचन। २ मार्जन [को०]।

अभ्युक्षित—वि० [सं०] १ छिडका हुआ। सिंचित। २ जिसपर छिडका गया हो। जिसका सिंचन हुआ हो।

अभ्युक्ष्य—वि० [सं०] छिडकने योग्य।

अभ्युचित—वि० [सं०] परंपरित। प्रचलित। नियमित [को०]।

अभ्युच्चय—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि। उत्थान। संपन्नता। उत्कर्ष। २ एकत्रीकरण [को०]।

अभ्युच्छ्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १ चढाव। उठान। २ संगीत में स्वरसाधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा। अवरोही—सा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग म।

अभ्युच्छ्रित—वि० [सं०] उन्नत। उठा हुआ। उच्च [को०]।

अभ्युत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना। २ किसी बड़े के आने पर उसके आदर के लिये उठकर खडा हो जाना। प्रत्युद्गमन। ३ बढ़ती। समृद्धि। उन्नति। गौरव। ४ उठान। आरंभ। उदय। उत्पत्ति।

अभ्युत्थायी—वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [स्त्री० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खडा होनेवाला। २ आदर के लिये उठकर खडा होनेवाला। ३ उन्नति करनेवाला। ४ बढनेवाला।

अभ्युत्थित—वि० [सं०] १ उठा हुआ। २ आदर के लिये उठकर खडा हुआ। ३ उन्नत। बढा हुआ।

अभ्युत्थेय—वि० [सं०] १ उठने योग्य। २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो। जिसे उठकर आदर देना उचित हो। ३ उन्नति के योग्य।

अभ्युदय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युदित, अभ्युदयिक] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय। २ प्रादुर्भाव। उत्पत्ति। ३ इष्टलाभ। मनोरथ की सिद्धि। ४ विवाह आदि शुभ अवसर। ५. वृद्धि। बढती। उन्नति। तरक्की। ६ अस्तित्व में आना। आविर्भूत होना [को०]। ७ घर में संतान के जन्म लेने पर किया जानेवाला नांदीमुख श्राद्ध। [को०]।

अभ्युदाहरण—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण।

अभ्युदित—वि० [सं०] १ उगा हुआ। निकला हुआ। उत्पन्न। प्रादुर्भूत। २ दिन चढे तक सोनेवाला। ३ सूर्योदय के समय उठकर नित्यकर्म न करनेवाला। ४ समृद्ध। उन्नत। ५ उत्सव रूप में मनाया हुआ [को०]।

अभ्युपगत—वि० [सं०] १ पास गया हुआ। सामने आया हुआ। प्राप्त। २ स्वीकृत। अंगीकृत। मंजूर किया हुआ। ३ समान। तुल्य [को०]।

अभ्युपगम—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युपगत] १ पास जाना। सामने आना या जाना। प्राप्ति। २ स्वीकार। अंगीकार। मंजूरी। ३ वादा करना (को०)। ४ न्याय के अनुसार सिद्धांत के चार भेदों में से एक।

विशेष—बिना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर जिसका खंडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं। जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि शब्द द्रव्य है। इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोडी देर के लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो बतलाओ कि वह नित्य है या अनित्य। इस प्रकार मानना अभ्युपगम सिद्धांत हुआ।

अभ्युपपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना। २ दया। अनुग्रह। ३ अनुमोदन। स्वीकृति। मंजूरी। ४ सीखना। ढाढस। ५ रक्षा। बचाव। ६ वादा [को०]।

अभ्युपाय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वादा। २ स्वीकृत। ३ उपाय। साधन [को०]।

अभ्युपायन—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट। उपहार। २ रिश्वत [को०]

अभ्युपेत—वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ। आया हुआ। २ वादा किया हुआ। स्वीकृत [को०]।

अभ्युषित[1]—वि० [सं०] साथ या निकट रहनेवाला।

अभ्युषित[2]—संज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [को०]।

अभ्यूढ—वि० [सं०] समीप लाया हुआ [को०]।

अभ्यूष—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी। २ आधा पका हुआ भोजन [को०]।

अभ्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क। वहम। २ निष्कर्ष। ३ अनुमान ४ विचार [को०]।

अभ्रंकष[1]—वि० [सं० अभ्रङ्कष] गगनचुंबी। बहुत ऊँचा [को०]

अभ्रंकष[2]—संज्ञा पुं० १ वायु। हवा। २ पर्वत [को०]।

अभ्रंलिह[1]—वि० [सं०] गगनचुंबी [को०]।

अभ्रंलिह[2]—संज्ञा पुं० [सं०] हवा [को०]।

अभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ। बादल। २ आकाश। ३ अभ्रक धातु। ४ स्वर्ण। सोना। ५ नागरमोथा। ६ गणित शून्य। ७ कपूर (को०)। ८ बेत वेत्र (को०)।

अभ्रक—संज्ञा पुं० [सं०] अबरक। भोडर। दे० 'अबरक'।

अभ्रकसत्व—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात [को०]।

अभ्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वताकार बादलों की चोटी [को०]।

अभ्रगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रगङ्गा] आकाशगंगा [को०]।

अभ्रनाग—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०]।

अभ्यर्थित--वि० [सं०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २. जो आगे बढ़कर लिया गया हो [को०]।

अभ्यर्थी--वि० [सं० अभ्यर्थिन्] [वि० स्त्री० अभ्यर्थिनी] अभ्यर्थना करने वाला। निवेदन करनेवाला [को०]।

अभ्यर्थ्य--वि० [सं०] दे० 'अभ्यर्थनीय'।

अभ्यर्दन--संज्ञा पुं० [सं०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीड़न। [को०]।

अभ्यर्दित--वि० [सं०] जिसे पीड़ा पहुँचाई गई हो। पीड़ित [को०]।

अभ्यलंकार--संज्ञा पुं० [सं० अभ्यलङ्कार] आभूषण। मंडन [को०]।

अभ्यलंकृत--वि० [सं०अभ्यलङ्कृत]आभूषित। मंडित। सज्जित [को०]।

अभ्यर्हणा--संज्ञा स्त्री० [सं०]१ पूजा। २ आदर। सम्मान। श्रद्धा [को०]।

अभ्यवकर्षण--संज्ञा पुं० [सं०] बहिर्निष्कासन। बाहर निकालना या खींचना [को०]।

अभ्यवस्कंद--संज्ञा पुं०[सं० अभ्यवस्कन्द] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड़ लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये तीव्रता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।

अभ्यवस्कंदन--संज्ञा पुं० [सं० अभ्यवस्कन्दन] दे० 'अभ्यवस्कंद'।

अभ्यवहरण--संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [को०]।

अभ्यवहार्य[1] --वि० [सं०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।

अभ्यवहार[2]--संज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।

यौ० --अभ्यवहार मंडप = भोजन का स्थान। खाने का मंडप।

अभ्यसन--संज्ञा पुं० [सं०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।

अभ्यसनीय--वि० [सं०] अभ्यास करने योग्य। जिसपर अभ्यास किया जाय [को०]।

अभ्यसित-- वि० [सं०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।

अभ्यसूय--वि० [सं०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।

अभ्यसूया--संज्ञा स्त्री० [सं०]१ क्रोध। गुस्सा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।

अभ्यस्त --वि० [सं०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मश्क किया हुआ। जैसे--यह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे--वह इस कार्य में अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। प्रवीण [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ पक्का। आदी [को०]।

अभ्यस्तं--वि० [सं०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।

अभ्यान्त--वि० [सं० अभ्यान्त] १. रोगी। आतुर। २.घायल। आहत [को०]।

अभ्यारंभ--संज्ञा पुं०[सं०] पहलवानों का एक दूसरे को ललकारने के लिये तीन ठोंकना [को०]।

अभ्याकांक्षित[1]--वि० [सं०अभ्याकाङ्क्षित] चाहा हुआ। अभि-लषित [को०]।

अभ्याकांक्षित[2]--संज्ञा पुं० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश। झूठा दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभ्याख्यान--संज्ञा पुं० [सं०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा। झूठी नालिश।

अभ्यागत[1]--वि०[सं०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ अतिथि रूप में घर आया हुआ।

अभ्यागत[2]--संज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुना, जैसे--अभ्यागत की सेवा गृहस्थों का धर्म है (शब्द०)।

अभ्यागम--संज्ञा पुं० [सं०] १ सामने आना। उपस्थिति। २ समीपता। पड़ोस। ३ सामना। ४.मुकाबिला। मुठभेड़। युद्ध। ५ विरोध। ६.अभ्युत्थान। अगवानी। ७ किसी निर्णय पर पहुँचना। ८ आघात। ९ वध (को०)। १०--शत्रुता (को०)।

अभ्यागारिक--वि० [सं०] १ कुटुंब के पालने में तत्पर। लड़के बालों में फँसा हुआ। घरबारी। २ कुटुंब पालने में व्यग्र। गृहस्थी की झंझट से हैरान।

अभ्याघात--संज्ञा पुं०[सं०] १ आघात। आक्रमण। २ बाधा। रुकावट। (को०)।

अभ्यात्त--वि० [सं०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ ब्रह्म का विशेषण। परिव्याप्त [को०]।

अभ्याधान--संज्ञा पुं० [सं०] प्रारंभ। स्थापन [को०]।

अभ्यापात--संज्ञा पुं० [सं०] विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]।

अभ्यामर्द--संज्ञा पुं० [सं] युद्ध। संघर्ष [को०]।

अभ्याश[1]--वि० [सं०] समीपवर्ती। निकट [को०]।

अभ्याश[2]--संज्ञा पुं० १ सामीप्य। निकटता। पड़ोस २ परिणाम। नतीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युदय [को०]।

अभ्यास[1]--संज्ञा पुं०[सं०]१ बार बार किसी काम को करना। पूर्णता प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अवलंबन। अनुशीलन। साधन। आवृत्ति। मश्क। उ०--(क) करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान। रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान। सभा वि० (शब्द०)।

क्रि० प्र०--करना। होना। २ आदत। रब्त। बान। टेव। जैसे--उन्हें तो गाली देने का अभ्यास पड़ गया है (शब्द०)।

क्रि० प्र०--पड़ना।

३ प्राचीनों के अनुसार एक काव्यालंकार जिसमें किसी दुष्कर बात को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०--हरि सुमिरन प्रह्लाद किय, जरयो न अगिनि मँझार। गयो गिरायो गिरिहु ते, भयो न बाँको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन में चमत्कार न मान उसे अलंकार नहीं मानते। ४ अनुशासन (को०)। ५ पड़ोस (को०)। ६ गुणन (को०)। ७ संगीत में एक ही पद की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।

अभ्यास[2] (पु)--वि० [सं०अभ्याश] समीप। निकट।--अनेकार्थ०।

अभ्यासकला--संज्ञा पुं० [सं०] योग की उन चार कलाओं में से एक जो विविध योगांगों के मेल से बनती है। आसन और प्राणायाम का मेल।

अभ्यासयोग--संज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार अनुशीलन करने की

क्रिया। २ लगातार एक ही विषय का बार बार चिंतन करने में मन या मस्तिष्क की एकाग्रता।

अभ्यासादन—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना [को०]।

अभ्यासित(५)—वि० [सं० अभ्यास] दे० 'अभ्यसित'। उ०—रात दिना के सुने किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन सों कैसे बचौ कहो मन कोटिक करौ उपाव।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५३६।

अभ्यासी—वि० [सं० अभ्यासिन्] [स्त्री० अभ्यासिनी] अभ्यास करनेवाला। साधक।

अभ्याहत—वि० [सं०] १ पीडित। ताडित। २ बाधित। ३ दोषयुक्त [को०]।

अभ्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ निकट लाना। २ अपहरण। चौर्य [को०]।

अभ्युक्त—वि० [सं०] किसी संदर्भ में कहा हुआ [को०]।

अभ्युक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेचन। छिडकाव। सिंचन। २ मार्जन [को०]।

अभ्युक्षित—वि० [सं०] १ छिडका हुआ। सिंचित। २ जिसपर छिडका गया हो। जिसका सिंचन हुआ हो।

अभ्युक्ष्य—वि० [सं०] छिडकने योग्य।

अभ्युचित—वि० [सं०] परंपरित। प्रचलित। नियमित [को०]।

अभ्युच्चय—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि। उत्थान। संपन्नता। उत्कर्ष। २ एकत्रीकरण [को०]।

अभ्युच्छ्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. चढाव। उठान। २ संगीत में स्वर-साधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा। अवरोही—सा ध, नि प, ध म, प ग, म रे ग म।

अभ्युच्छ्रित—वि० [सं०] उन्नत। उठा हुआ। उच्च [को०]।

अभ्युत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना। २ किसी बड़े के आने पर उसके आदर के लिये उठकर खडा हो जाना। प्रत्युद्गमन। ३ बढ़ती। समृद्धि। उन्नति। गौरव। ४ उठान। आरंभ। उदय। उत्पत्ति।

अभ्युत्थायी—वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [स्त्री० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खडा होनेवाला। २ आदर के लिये उठकर खडा होनेवाला। ३ उन्नति करनेवाला। ४ बढनेवाला।

अभ्युत्थित—वि० [सं०] १ उठा हुआ। २ आदर के लिये उठकर खडा हुआ। ३ उन्नत। बढा हुआ।

अभ्युत्थेय—वि० [सं०] १ उठने योग्य। २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो। जिसे उठकर आदर देना उचित हो। ३. उन्नति के योग्य।

अभ्युदय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युदित, आभ्युदयिक] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय। २ प्रादुर्भाव। उत्पत्ति। ३ इष्टलाभ। मनोरथ की सिद्धि। ४ विवाह आदि शुभ अवसर। ५. वृद्धि। बढ़ती। उन्नति। तरक्की। ६ अस्तित्व में आना। आविर्भूत होना [को०]। ७ घर में संतान के जन्म लेने पर किया जानेवाला नांदीमुख श्राद्ध। [को०]।

अभ्युदाहरण—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण।

अभ्युदित—वि० [सं०] १ उगा हुआ। निकला हुआ। उत्पन्न। प्रादुर्भूत। २ दिन चढे तक सोनेवाला। ३ सूर्योदय के समय उठकर नित्यकर्म न करनेवाला। ४. समृद्ध। उन्नत। ५ उत्सव रूप में मनाया हुआ [को०]।

अभ्युपगत—वि० [सं०] १ पास गया हुआ। सामने आया हुआ। प्राप्त। २ स्वीकृत। अंगीकृत। मंजूर किया हुआ। ३. समान। तुल्य [को०]।

अभ्युपगम—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युपगत] १ पास जाना। सामने आना या जाना। प्राप्ति। २ स्वीकार। अंगीकार। मंजूरी। ३ वादा करना (को०)। ४ न्याय के अनुसार सिद्धांत के चार भेदों में से एक।

विशेष—बिना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर जिसका खंडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं। जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि शब्द द्रव्य है। इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोडी देर के लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो बतलाओ कि वह नित्य है या अनित्य। इस प्रकार मानना अभ्युपगम सिद्धांत हुआ।

अभ्युपपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना। २ दया। अनुग्रह। ३ अनुमोदन। स्वीकृति। मंजूरी। ४ सीखना। ढाढस। ५ रक्षा। बचाव। ६ वादा [को०]।

अभ्युपाय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वादा। २ स्वीकृति। ३. उपाय साधन [को०]।

अभ्युपायन—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट। उपहार। २ रिश्वत [को०]।

अभ्युपेत—वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ। आया हुआ। २ वादा किया हुआ। स्वीकृत [को०]।

अभ्युषित[1]—वि० [सं०] साथ या निकट रहनेवाला।

अभ्युषित[2]—संज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [को०]।

अभ्यूढ—वि० [सं०] समीप लाया हुआ [को०]।

अभ्यूष—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी। २ आधा पका हुआ भोजन [को०]।

अभ्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क। वहस। २ निष्कर्ष। ३ अनुमान। ४ विचार [को०]।

अभ्रंकष[1]—वि० [सं० अभ्रङ्कष] गगनचुंबी। बहुत ऊँचा [को०]।

अभ्रंकष[2]—संज्ञा पुं० १. वायु। हवा। २ पर्वत [को०]।

अभ्रंलिह[1]—वि० [सं०] गगनचुंबी [को०]।

अभ्रंलिह[2]—संज्ञा पुं० [सं०] हवा [को०]।

अभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ। बादल। २ आकाश। ३ अभ्रक धातु। ४ स्वर्ण। सोना। ५ नागरमोथा। ६ गणित में शून्य। ७ कपूर (को०)। ८ बेत वेंत (को०)।

अभ्रक—संज्ञा पुं० [सं०] अबरक। भोडर। दे० 'अबरक'।

अभ्रकसत्व—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात [को०]।

अभ्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वताकार बादल की चोटी [को०]।

अभ्रगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रगङ्गा] आकाशगंगा [को०]।

अभ्रनाग—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०]।

अभ्यर्थित--वि० [सं०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २ जो आगे बढकर लिया गया हो [कौ०]।

अभ्यर्थी--वि० [सं० अभ्यर्थिन्] [वि० स्त्री० अभ्यर्थिनी] अभ्यर्थना करने वाला। निवेदन करनेवाला [कौ०]।

अभ्यर्थ्य--वि० [सं०] दे० 'अभ्यर्थनीय'।

अभ्यर्दन--सज्ञा पुं० [सं०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीडन। [कौ०]।

अभ्यर्दित--वि० [स०] जिसे पीडा पहुँचाई गई हो। पीडित [कौ०]।

अभ्यलकार--सज्ञा पु० [स० अभ्यलङ्कार] आभूषण। मडन [कौ०]।

अभ्यलकृत--वि० [सं०अभ्यलङ्कृत]आभूषित। मडित। सज्जित [कौ०]।

अभ्यर्हणा--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूजा। २ आदर। समान। श्रद्धा [कौ०]।

अभ्यवकर्षण--सज्ञा पुं० [स०] वहि निष्कासन। बाहर निकालना या खीचना [कौ०]।

अभ्यवस्कद--सज्ञा पुं०[स० अभ्यवस्कन्द] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये तीव्रता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [कौ०]।

अभ्यवस्कदन--सज्ञा पुं० [स० अभ्यवस्कन्दन] दे० 'अभ्यवस्कद'।

अभ्यवहरण--सज्ञा पु० [स०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [कौ०]।

अभ्यवहार¹--वि० [स०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [कौ०]।

अभ्यवहार²--सज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [कौ०]।

यौ०--अभ्यवहार मडप = भोजन का स्थान। खाने का मडप।

अभ्यसन--सज्ञा पु० [स०] अनुशीलन। अभ्यास [कौ०]।

अभ्यसनीय--वि० [स०] अभ्यास करने योग्य। जिसपर अभ्यास किया जाय [कौ०]।

अभ्यसित-- वि० [स०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।

अभ्यसूय--वि० [स०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [कौ०]।

अभ्यसूया--सज्ञा स्त्री० [स०] १ क्रोध। गुस्सा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [कौ०]।

अभ्यस्त--वि० [सं०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मश्क किया हुआ। जैसे--यह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे--वह इस कार्य मे अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीत [कौ०]। ४ आदत। स्वभाव [कौ०]। ५ पक्का। आदी [कौ०]।

अभ्यस्त--वि० [स०] दे० 'अभ्यसनीय' [कौ०]।

अभ्यात--वि० [स० अभ्यान्त] १ रोगी। आतुर। २ घायल। आहत [कौ०]।

अभ्याकर्ष--सज्ञा पुं०[स०] पहलवानो का एक दूसरे को ललकारने के लिये सीना ठोकना [कौ०]।

अभ्याकाक्षित¹--वि० [स०अभ्याकाङ्क्षित] चाहा हुआ। अभिलषित [कौ०]।

अभ्याकाक्षित²--सज्ञा पु० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश। झूठा दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [कौ०]।

अभ्याख्यान--सज्ञा पुं० [सं०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा। झूठी नालिश।

अभ्यागत¹--वि०[सं०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ अतिथि रूप मे घर आया हुआ।

अभ्यागत²--सज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुना, जैसे--अभ्यागत की सेवा गृहस्थो का धर्म है (शब्द०)।

अभ्यागम--सज्ञा पुं० [सं०] १ सामने आना। उपस्थिति। २ समीपता। पडोस। ३ सामना। ४ मुकाबिला। मुठभेट। युद्ध। ५ विरोध। ६ अभ्युत्थान। अगवानी। ७ किसी निर्णय पर पहुँचना। ८ आघात। ९ वध (कौ०)। १०--शत्रुता (कौ०)।

अभ्यागारिक--वि० [स०] १ कुटुब के पालने मे तत्पर। लडके बालो मे फँसा हुआ। घरबारी। २ कुटुब पालने मे व्यग्र। गृहस्थी की झझट से हैरान।

अभ्याघात--सज्ञा पु०[स०] १ आघात। आक्रमण। २ बाधा। रुकावट। (कौ०)।

अभ्यात्त--वि० [सं०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ ब्रह्म का विशेषण। परिव्याप्त [कौ०]।

अभ्याधान--सज्ञा पुं० [स०] प्रारभ। स्थापन [कौ०]।

अभ्यापात--सज्ञा पुं० [स०] विपत्ति। दुर्भाग्य [कौ०]।

अभ्यामर्द--सज्ञा पुं० [स] युद्ध। सघर्ष [कौ०]।

अभ्याश¹--वि० [सं०] समीपवर्ती। निकट [कौ०]।

अभ्याश²--सज्ञा पु० १ सामीप्य। निकटता। पडोस २ परिणाम। नतीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युदय [कौ०]।

अभ्यास¹--सज्ञा पुं०[सं०]१ बार बार किसी काम को करना। पूर्णता प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अवलबन। अनुशीलन। साधन। आवृत्ति। मश्क। उ०--(क) करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान। सभा वि० (शब्द०)।

क्रि० प्र०--करना। होना। २ आदत। रब्त। बान। टेव। जैसे--उन्हे तो गाली देने का अभ्यास पड गया है (शब्द०)।

क्रि० प्र०--पडना।

३ प्राचीनो के अनुसार एक काव्यालकार जिसमे किसी दुष्कर बात को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०--हरि सुमिरन प्रह्लाद किय, जरयो न अगिनि मँझार। गयो गिरायो गिरिहु ते, भयो न बाँको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन मे चमत्कार न मान उसे अलकार नहीं मानते। ४ अनुशासन (कौ०)। ५ पडोस (कौ०)। ६ गुणन (कौ०)। ७ सगीत मे एक ही पद की बार बार आवृत्ति। टेक [कौ०]।

अभ्यास²(पु)--वि० [सं०अभ्याश] समीप। निकट।--अनेकार्थ०।

अभ्यासकला--सज्ञा पुं० [सं०] योग की उन चार कलाओ मे से एक जो विविध योगागो के मेल से बनती है। आसन और प्राणायाम का मेल।

अभ्यासयोग--सज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार अनुशीलन करने की

क्रिया । २ लगातार एक ही विषय का बार बार चिंतन करने से मन या मस्तिष्क की एकाग्रता ।

अभ्यासादन-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना[कौ०]।

अभ्यासित(पु)--वि० [सं० अभ्यास] दे० 'अभ्यसित' । उ०—रात दिना के सुने किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन सो कैसे बचौ कहो मन कोटिक करौ उपाव ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५३६ ।

अभ्यासी—वि० [सं० अभ्यासिन्] [स्त्री० अभ्यासिनी] अभ्यास करनेवाला । साधक ।

अभ्याहत—वि० [सं०] १ पीडित । ताडित । २ बाधित । ३ दोषयुक्त [कौ०] ।

अभ्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ निकट लाना । २ अपहरण । चौर्य [कौ०] ।

अभ्युक्त—वि० [सं०] किसी संदर्भ मे कहा हुआ [कौ०] ।

अभ्युक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेचन । छिडकाव । सिंचन । २ मार्जन [कौ०] ।

अभ्युक्षित—वि० [सं०] १ छिडका हुआ । सिंचित । २ जिसपर छिडका गया हो । जिसका सिंचन हुआ हो ।

अभ्युक्ष्य—वि० [सं०] छिडकने योग्य ।

अभ्युचित—वि० [सं०] परंपरित । प्रवर्तित । नियमित [कौ०] ।

अभ्युच्चय—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि । उत्थान । संपन्नता । उत्कर्ष । २ एकत्रीकरण [कौ०] ।

अभ्युच्छ्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १ चढाव । उठान । २ संगीत मे स्वरसाधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा । अवरोही—सा ध, नि प, ध म, प ग, म रे ग स ।

अभ्युच्छिन्न--वि० [सं०] उन्नत । उठा हुआ । उच्च [कौ०]।

अभ्युत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना । २ किसी बडे के आने पर उनके आदर के लिये उठकर खडा हो जाना । प्रत्युद्गमन । ३ बढती । समृद्धि । उन्नति । गौरव । ४ उठान । आरंभ । उदय । उत्पत्ति ।

अभ्युत्थायी--वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [स्त्री० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खडा होनेवाला । २ आदर के लिये उठकर खडा होनेवाला । ३ उन्नति करनेवाला । ४ बढनेवाला ।

अभ्युत्थित--वि० [सं०] १ उठा हुआ । २ आदर के लिये उठकर खडा हुआ । ३ उन्नत । बढा हुआ ।

अभ्युत्थेय—वि० [सं०] १ उठने योग्य । २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो । जिसे उठकर आदर देना उचित हो । ३. उन्नति के योग्य ।

अभ्युदय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युदित, आभ्युदयिक] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय । २ प्रादुर्भाव । उत्पत्ति । ३ इष्टलाभ । मनोरथ की सिद्धि । ४ विवाह आदि शुभ अवसर । ५. वृद्धि । बढती । उन्नति । तरक्की । ६ अस्तित्व मे आना । आविर्भूत होना [कौ०] । ७ घर मे संतान के जन्म लेने पर किया जानेवाला नांदीमुख श्राद्ध । [कौ०] ।

अभ्युदाहरण—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण ।

अभ्युदित—वि० [सं०] १ उगा हुआ । निकला हुआ । उत्पन्न । प्रादुर्भूत । २ दिन चढे तक सोनेवाला । ३ सूर्योदय के समय उठकर नित्यकर्म न करनेवाला । ४ समृद्ध । उन्नत । ५. उत्सव रूप मे मनाया हुआ [कौ०] ।

अभ्युपगत—वि० [सं०] १ पास गया हुआ । सामने आया हुआ । प्राप्त । २ स्वीकृत । अंगीकृत । मंजूर किया हुआ । ३ समान । तुल्य [कौ०] ।

अभ्युपगम—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युपगत] १ पास जाना । सामने आना या जाना । प्राप्ति । २ स्वीकार । अंगीकार । मंजूरी । ३ वादा करना (कौ०) । ४ न्याय के अनुसार सिद्धांत के चार भेदो मे से एक ।

विशेष—बिना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर जिसका खंडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं। जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि शब्द द्रव्य है। इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोडी देर के लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो बतलाओ कि वह नित्य है या अनित्य । इस प्रकार मानना अभ्युपगम सिद्धांत हुआ ।

अभ्युपपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना । २ दया । अनुग्रह । ३ अनुमोदन । स्वीकृति । मंजूरी । ४ सीखना । ढाँढस । ५ रक्षा । बचाव । ६ वादा [कौ०] ।

अभ्युपाय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वादा । २ स्वीकृत । ३ उपाय साधन [कौ०] ।

अभ्युपायन—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट । उपहार । २ रिश्वत [कौ०] ।

अभ्युपेत—वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ । आया हुआ । २ वादा किया हुआ । स्वीकृत [कौ०] ।

अभ्युषित[1]—वि० [सं०] साथ या निकट रहनेवाला ।

अभ्युषित[2]—संज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [कौ०] ।

अभ्यूढ—वि० [सं०] समीप लाया हुआ [कौ०] ।

अभ्यूष—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी । २ आधा पका हुआ भोजन [कौ०] ।

अभ्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क । बहस । २ निष्कर्ष । ३ अनुमान । ४ विचार [कौ०] ।

अभ्रंकष[1]—वि० [सं० अभ्रङ्कष] गगनचुंबी । बहुत ऊँचा [कौ०] ।

अभ्रंकष[2]—संज्ञा पुं० १ वायु । हवा । २ पर्वत [कौ०] ।

अभ्रंलिह[1]—वि० [सं०] गगनचुंबी [कौ०] ।

अभ्रंलिह[2]—संज्ञा पुं० [सं०] हवा [कौ०] ।

अभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ । बादल । २ आकाश । ३ अभ्रक धातु । ४ स्वर्ण । सोना । ५ नागरमोथा । ६ गणित में शून्य । ७ कपूर (कौ०) । ८ बेंत वेत्र (कौ०) ।

अभ्रक—संज्ञा पुं० [सं०] अबरक । भोडर । दे० 'अबरक' ।

अभ्रकसत्व—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात [कौ०] ।

अभ्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वताकार बादल की चोटी [कौ०] ।

अभ्रगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रगङ्गा] आकाशगंगा [कौ०] ।

अभ्रनाग—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [कौ०] ।

अभ्रपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ वायुमंडल। २ गुब्बारा [को०]।
अभ्रपिशाच—संज्ञा पुं० [सं०] राहु [को०]।
अभ्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १ बेंत। २ आकाशकुसुम। असंभव बात। पानी [को०]।
अभ्रभेदी—वि० [सं० अभ्रभेदिन्] आकाश को भेदनेवाला। गगनचुंबी [को०]।
अभ्रम¹—वि० [सं०] जिसे भ्रम न हो। भ्रमरहित [को०]।
अभ्रम²—संज्ञा पुं० भ्रम का अभाव। स्थिरता। दृढ़ता [को०]।
अभ्रमासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी [को०]।
अभ्रमातंग—संज्ञा पुं० [सं० अभ्रमातङ्ग] ऐरावत [को०]।
अभ्रमु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्व के दिग्गज की पत्नी। ऐरावत की पत्नी [को०]।
अभ्रमुप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०]।
अभ्ररोह—संज्ञा पुं० [सं०] वैदूर्य मणि। लाजवर्त [को०]।
अभ्रमुवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०]।
अभ्रवाटिक—संज्ञा पुं० [सं०] आम्रातक वृक्ष (को०)।
अभ्रवाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमड़े का वृक्ष [को०]।
अभ्रांत—वि० [सं० अभ्रान्त] १ भ्रांतिशून्य। भ्रमरहित। २ भ्रमशून्य। स्थिर। व्यवस्थित।
यौ०—अभ्रांतबुद्धि=जिसकी बुद्धि स्थिर हो।
अभ्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रान्ति] १ भ्रांति का न होना। स्थिरता। अचंचलता। २ भ्रम का अभाव। भूल चूक का न होना।
अभ्रित¹(पु)—वि० [सं० अ+भृत] जो भरा न जा सके। अपूरणीय उ०—दुज वर वच्च पैठ जेहाँ घर। विल अभ्रित तिहँ थान पडि थिर।—पृ० रा०, १।१४७।
अभ्रित²—वि० [सं०] बादलों से ढँका हुआ [को०]।
अभ्रिय¹—वि० [सं०] १ बादलों से संबधित या बादलों से उत्पन्न [को०]।
अभ्रिय—संज्ञा पुं० बिजली [को०]।
अभ्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ फावड़ा। कुदाल। २ नाव साफ करने के लिये लकड़ी का एक नुकीला औजार [को०]।
अभ्रेष—संज्ञा पुं० [सं०] उपयुक्तता। औचित्य [को०]।
अभ्रोत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र [को०]।
अभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] नंगा रहनेवाला साधु। दिगंबर साधु [को०]।
अम्व¹—वि० [सं०] १ महत्। विशाल। २ शक्तिशाली। ३. भयंकर [को०]।
अम्व²—संज्ञा पुं० १ विशालता। २ भयंकरता। ३. अत्यधिक शक्ति [को०]।
अमख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आमिष] दे० 'आमिष'। उ०—बहरी अमख हित पखवल, गहै कुलक असक गत। रा० रू०, १५३।
अमग—वि० [हिं० मगन] १ न मागनेवाला। अयाचक।
अमंगल¹—वि० [सं० अमङ्गल] १ मंगलशून्य। अशुभ। २ भाग्यहीन। अभागा [को०]।
अमंगल²—संज्ञा पुं० १ अकल्याण। अहित। अशुभ। दुःख। २. दुर्भाग्य (को०)। ३ रेंड़ का पेड़। रेंड। एरंड।
अमगलचार†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ+हिं० मंगलचार] रुदन। विलाप उ०—करहिं अमंगलचार, कहाँ गए राजा हो—पलटू०, भा० ३, पृ० ७४।
अमंगल्य—वि० संज्ञा पुं० [सं० अमङ्गल्य] दे० 'अमंगल' [को०]।
अमंड¹—वि० [सं० अमण्ड] १ मंडनरहित। सज्जाविहीन। अनलंकृत। २ माँड रहित (चावल)।
अमंड²—संज्ञा पुं० रेंड का वृक्ष। एरंड द्रुम [को०]।
अमंडित—वि० [सं० अमण्डित] अनलंकृत। दे० 'अमंड' [को०]।
अमत(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० अमत प्रा० अमत] असम्मत मत। कुमत। अनुचित विचार। उ०—इन आकर्षे कज्ज विन, किनौ अप्प अमत—पृ० रा०, ६।१४३
अमत²—वि० [सं० अमित] अत्यधिक। उ०—राजन रक्खिय सब्ब इह, वाढिय प्रीत अमत।—पृ० रा० (उ०), पृ० २५०।
अमंत्र—वि० [सं० अमन्त्र] १ जो वेदमंत्रों का अधिकारी न हो। जैसे, स्त्री, शूद्र आदि। २ जिसमें वैदिक मंत्रों की आवश्यकता न हो (कर्म)। ३ वेदमंत्रों को न जाननेवाला। अवेदज्ञ। ४ मंत्रविहीन [को०]।
अमंत्रक—वि० [सं० अमन्त्रक] दे० 'अमंत्र' [को०]।
अमंत्रज्ञ—वि० [सं० अमन्त्रज्ञ] वैदिक मंत्रों को न जाननेवाला [को०]।
अमंद¹—वि० [सं० अमन्द] १ जो धीमा न हो। तेज। २. उत्तम। श्रेष्ठ। स्वच्छ। सुंदर। भला। उ०—सूर० १०। २०३। ३ उद्योगी। कार्यकुशल। चलता पुरजा। चतुर। ४. कम नहीं। बहुत। अधिक [को०]।
अमंद²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का वृक्ष [को०]।
अम¹—वि० [सं०] अपक्व। कच्चा [को०]।
अम²—संज्ञा पुं० १ बीमारी का कारण। २ बीमारी। रोग। ३ दाब। भार (को०)। ४ शक्ति। बल (को०)। ५ भय। डर (को०)। ६ सेवक। नौकर। ७ प्राणवायु (को०)। ८ वह स्थिति या अवस्था जो अमित हो (को०)।
अम³(पु)‡—सर्व [सं० अस्मत्, प्रा० अम्ह] दे० 'हम'। उ०—महाराणी जसराज री या बोली तिणवार। प्रथम अमा पत्राहिए खग धाराजल धार। रा० रू०, पृ० ३३।
अम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अंब, अम, (पु)अम]. आम।
विशेष—समस्त पदों में यह प्राय पहले आता है, जैसे, अमचूर, अमरस, अमरसी।
अमका†—सर्व [सं० अमुक] ऐसा ऐसा। अमुक। फलाना।
अमग्ग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमार्ग प्रा० अमग्ग] कुपथ। कुराह। कुमार्ग।
अमचुर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमचूर'।
अमचूर—संज्ञा पुं० [हिं० अम='आम'+चूर] सुखाए हुए कच्चे आम का चूर्ण। पिसी हुई अमहर।
मुहा०—सूखकर अमचूर होना=बहुत दुबला होना। शरीर में हाड़ चाम भर रह जाना।
अमज्जक—वि० [सं०] जिसमें मज्जा न हो। मज्जाविहीन [को०]।
अमड़ा—संज्ञा पुं० [सं० आम्रातक, प्रा० अंबाडय] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ शरीफे की पत्तियों से छोटी और सींकों में लगी हैं। इसमें भी आम की तरह मौर आता है और छोटे छोटे खट्टे फल

लगते हैं जो अचार, चटनी आदि के काम मे आते हैं। उक्त पेड का फल। अमारी।

अमर्णव—वि० [सं०] रत्नविहीन [को०]।

अमत[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ मन का अभाव। असमति। २ रोग। ३ मृत्यु। ४ काल। समय (को०)। रेणु। धूलि (को०)।

अमत[2]—वि० १ जिसका अनुभव न हुआ हो या न हो सके। २ अज्ञात ३ अस्वीकृत [को०]।

अमति[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ समय। २ चद्रमा। ३ आकार। ढाँचा। ४ अभाव। ५ बुरा या निकृष्ट व्यक्ति [को०]।

अमति[2]—संज्ञा स्त्री० १ अज्ञान। अचेतना। २. ज्ञान, लक्ष्य या दूरदर्शिता का अभाव [को०]।

अमति[3]—वि० १ गरीब। दरिद्र। २ दुष्ट। वदमाश [को०]।

अमतपदार्थता—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य मे एक प्रकार का शब्ददोष जहाँ दूसरा अर्थ प्रकृत के विरुद्ध हो।

अमत्त—वि० [सं०] १ मदरहित। २ विना घमड का। ३ शात। जिसका मस्तिष्क ठीक हो।

अमत्ति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+मति] अमति। दुर्मति। कुमति। हीनमति। उ०—अत मत्ति सो गत्ति। अनजा मत्ति अमत्तिय।—पृ० रा०, ३१।१०१।

अमत्सर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मत्सर का न होना। मात्सर्य का अभाव[को०]।

अमत्सर—वि० शत्रुता न रखनेवाला। मात्सर्यहीन [को०]।

अमद[1]—वि० [सं०] १ जिसे मद न हो। मदरहित। अभिमान रहित। २ दुखी। ३ गभीर [को०]।

अमद[2]—संज्ञा पुं० [अ०] विचार। सकल्प [को०]।

अमदन्—क्रि० वि० [अ०] जानवूझकर। इच्छापूर्वक।

अमदान—संज्ञा पु० [सं०]

अमधुर[1]—वि० [सं०] १ जो मधुर न हो कटु। अरुचिकर।

अमधुर[2]—संज्ञा पु० सगीतशास्त्र के अनुसार वाँसुरी के सुर के छह दोषों मे से एक।

अमन[1]—संज्ञा पु० [अ० अम्न] १ शाति। चैन। आराम। इतमीनान। २ रक्षा। बचाव।

यौ०—अमनअमान = शाति। सुरक्षा। सुव्यवस्था। अमन चैन = सुख। आराम। शाति। अमनपसद = आरामपसद। शातिप्रिय।

अमन[2]—संज्ञा पु० [सं० अमनस्] १ अनुभूति का न होना। अनुभूति का अभाव। २ ज्ञानाभाव [को०]।

अमनस्क—वि० [सं०] १ मन या इच्छा से रहित। उदासीन। २ उदास। अनमना। अन्यमनस्क। दे० 'अमना'।

अमना—वि० [सं० अमनस्] १ मन या इच्छारहित। उदासीन। अन्यमनस्क। २ उदास। ३ स्नेहरहित। ४ वेफिक्र। ५ अनमना। ६ मन पर नियत्रण न रखनेवाला। ७ नासमझ मूर्ख। (को०)।

अमना[2]—संज्ञा पुं० परब्रह्म [को०]।

अमनाक्—अव्य० थोडा नही। वहुत। अधिक [को०]।

अमनिया[1]—वि० [सं० अ+मल अथवा कमनीय ?] शुद्ध। पवित्र। अछूता। उ०—कवहिं अमनिया हलुवा खावैं।—पलटू०, पृ० ११०।

अमनिया[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] भोजन बनाने की क्रिया। रसोई पकाना। (साधु की परि०)।

अमनुष्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ जो मनुष्य न हो। अमानव। २ राक्षस। दैत्य [को०]।

अमनुष्य[2]—संज्ञा पुं० १ अमानवीय। २ जहाँ मनुष्य अधिक आता जाता न हो [को०]।

अमनेत(पु)—वि० [अ० अमन+हिं० ऐत (प्रत्य०)] अमन करनेवाला। शासन करनेवाला। उ०—अपैसिंह अमनेत इक खल खडन वलवड। सुजान०, पृ० ५।

अमने(पु)—सर्व० [पु० अस्म, प्रा० हम्म,(पु)अम, गुज० मन्ने = मुझे] १. हमको। मुझको। २ हमने। मैंने। उ०—प्रार अप्रछन्न अमने देखे, आपणपो न दिखाडे रे।—दादू०, पृ० ५३४।

असनैक[1]—संज्ञा पुं० [सं० आम्नायिक = वंश का अथवा सं० आत्मन्, प्रा० अप्पण, गुज० अमे, अने, असो, हिं० अपना, अपनैक] १ अवध मे एक प्रकार के काश्तकार जिन्हें कुलपरपरा के कारण लगान के सवध मे कुछ विशेष अधिकार प्राप्त रहते हैं। २. सरदार। हकदार। दावेदार। अधिकारी व्यक्ति। उ०—जेठे पुत्र सुभट छवि छाए। नाम सार वाहन जे गाए। जानि जुद्ध अमनैक अढाए। खेलहार ता समय पठाए।—लाल० (शब्द०)।

अमनैक[2]—वि० अधिकार जतानेवाला। ढीठ। साहसी। उ०—(क) वौरि दधिदान काज ऐसो अमनैक तहाँ आली वनमाली आइ वहियाँ गहत है।—पद्माकर, (शब्द०)। (ख) जाति हौं गोरस वेचन को व्रज वीथिन धूम मची चहुँधा तें। वाल गोपाल सवै अमनैक हैं फागुन मे वचिहौं री कहाँ तें।—वेनी (शब्द०)।

अमनैकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अमनैक] मनमाना आचरण। ढीठ व्यवहार। अमनैकपन। उ०—चचल चोखे चपल अति नही देत पल चैन। कमनैती सीखी नई अमनैकी इन नैन।—स० सप्तक, पृ० ३५८।

अमनोज्ञ—वि० [सं०] १ असुदर। जो सुंदर न हो। २ अप्रिय। अरुचिकर [को०]।

अमनोनिवेश—संज्ञा पुं० [सं० अ+मनस्+निवेश] 'मनोनिवेश का न होना। असावधानी। उ०—किंतु ऐसा उनके अमनोनिवेश से हुआ है।—ठेठ० (उपो) पृ०६।

अमनोरथ—वि० [सं०] मनोरथशून्य। इच्छारहित। उ०—अव तक मैं उक्त कार्य की पूर्ति से अमनोरथ रहा हूँ।—ठेठ० (उपो०), पृ०१।

अमम[1]—वि० [सं०] १ ममतारहित। अहकारशून्य। २ स्वार्थविहीन। अलिप्त। मोहरहित [को०]।

अमम[2]—संज्ञा पुं० वारहवें भावी जैन तीर्थंकर [को०]।

अमर[1]—वि० [सं०] १ जो मरे नही। चिरजीवी। २ शाश्वत। अविनाशी।

अमर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अमरा, अमरी] १ देवता। २ पारा। ३ हडजोड का पेड। ४ अमरकोश। ५ लिंगानुशासन नामक प्रसिद्ध कोश के कर्ता अमरसिंह जो विक्रमादित्य के नवरत्नो मे से एक थे। ६ मरुद्गणो मे से एक। उनचास पवनो में से

एक । ७ विवाह के पहले वर कन्या के राशिवर्ग के मिलान के लिये नक्षत्रों का एक गण जिसमें ये नक्षत्र होते हैं--अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा और श्रवण। ८ सोना (को०)। ९ तैंतीस (३३) की संख्या (को०)। १० एक प्रकार का देवदार वृक्ष (को०)। ११ अस्थिसमूह (को०)। १२ एक पर्वत (को०)। १३ स्नुही वृक्ष। सेंहुड़(को०)।

अमर³(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अंबर'। उ०--उड्डि रेन अंबर अमर दिष्यौ सेन चहुआन।--पृ० रा० ९।१३१।

अमरकटक--संज्ञा पुं० [सं० अमरकण्टक] विंध्याचल पर्वत पर एक ऊँचा स्थान जहाँ से सोन और नर्मदा नदियाँ निकलती हैं। यह हिंदुओं के तीर्थों में से है। यहाँ प्रतिवर्ष शिवदर्शन के निमित्त धूमधाम से मेला होता है।

अमरकोट--संज्ञा पुं० [सं०] राजपूताने का एक प्रसिद्ध स्थान [को०]।

अमरकोश--संज्ञा पुं० [सं०] अमरसिंह द्वारा निर्मित संस्कृत का प्रसिद्ध कोश।

अमरख(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अमर्ष] १ क्रोध। कोप। गुस्सा। रिस। उ०--बरबस खोज पिता के गयऊ। खोज न पाय अमरख तब भयऊ।--कबीर सा०, पृ० ५९०। २ रस के अंतर्गत ३३ संचारी भावों में से एक। दूसरे का अहंकार न सहकर उसके नष्ट करने की इच्छा।

अमरखी(पु)--वि० [सं० अमर्षिन्] क्रोधी। बुरा माननेवाला। दुखी होनेवाला।

अमरगुरु--संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के गुरु। बृहस्पति [को०]।

अमरज--संज्ञा पुं० [सं] एक प्रकार का खैर का पेड़ [को०]।

अमरण¹--संज्ञा पुं० [सं०] अमरता। मृत्यु का अभाव।

अमरण²--वि० मरणरहित। अमर। चिरजीवी।

अमरतटिनी--संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। देवनदी [को०]।

अमरतरु--संज्ञा पुं० [सं०] देवतरु। कल्पवृक्ष [को०]।

अमरता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मृत्यु का अभाव। चिरजीवन। उ०--सुधा सराहिअ अमरता गरल सराहिअ मीचु।--मानस, १।१५। २ देवत्व। उ०--अरे अमरता के चमकीले पुतलो ! तेरे वे जयनाद।--कामायनी, पृ० ७।

अमरत्व--संज्ञा पुं० [सं०] १ अमरता। २ देवत्व।

अमरदारु--संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु का पेड़।

अमरद्विज--संज्ञा पुं० [सं०] मंदिर का प्रबंधक या पुजारी ब्राह्मण[को०]।

अमरधाम--संज्ञा पुं० [सं० अमरधामन्] स्वर्ग। देवलोक। [को०]।

अमरनाथ--संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्र। २ काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से सात दिन के मार्ग पर हिंदुओं का एक तीर्थ। यहाँ श्रावण की पूर्णिमा को बर्फ के बने हुए शिवलिंग का दर्शन होता है। ३. जैन लोगों के १८वें तीर्थंकर।

अमरपख(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अमरपक्ष] पितृपक्ष। उ०--समय पाइ कै लगन है, नीचहु करत गुमान। पाय अमरपख द्विजन लौं कौंग चहै सनमान।--रसनिधि (शब्द०)।

अमरपति--संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र। उ०--खेलत हरवो अमरपति मान।--घनानंद, पृ० २४८।

अमरपद--संज्ञा पुं० [सं०] देवपद। मोक्ष। मुक्ति। उ०--अठै अमरपद लहिए।--कबीर श०, पृ० २६।

अमरपन(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अमर+हिं० पन] १ अमरता। चिरजीवन। २ देवत्व।

अमरपुर--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अमरपुरी] अमरावती। देवताओं का नगर।

अमरपुष्प--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमरपुष्पक' [को०]।

अमरपुष्पक--संज्ञा पुं० [सं०] १ कल्पवृक्ष। २ वृक्षविशेष। काँस। ३ तालमखाना। ४. गोखरू। ५ केतक (को०)। ६ चूत(को०)

अमरपुष्पिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] अध पुष्पी का क्षुप [को०]।

अमरबेल--संज्ञा पुं० [सं० अ बर+वेल्लि, अम्बरवल्ली]एक पीली लता या बौर जिसमें जड़ और पत्तियाँ नहीं होतीं। आकाशबेल। आकाशवल्ली।

विशेष--यह लता जिस पेड़ पर चढ़ती है उसके रस से अपना परिपोषण करती है और उस वृक्ष को निर्बल कर देती है। इसमें सफेद फूल लगते हैं। वैद्य इसे मधुर, पित्तनाशक और वीर्यवर्धक मानते हैं।

अमरबौर--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमरबेल'। उ०--अमरबौर अर्थात् आकाशबौर ने तो ऐसे बहुतेरे वृक्षों को जकड़ लिया--प्रेमघन०, पृ० १९।

अमरभनित(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अमर+भणिति] अमरवाणी। संस्कृत। उ०--चित चकार भाषा भनी अमरभनित अवगाहि।--घनानंद, पृ० ६०७।

अमरमूरि--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमियमूरि'।

अमररत्न--संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक। बिल्लौर।

अमरराज--संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र। उ०--घनन घनन घटागन बजै। अमरराज गज की छबि लजै।--नंद० ग्रं०, पृ० २८७।

अमरलोक--संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रपुरी। देवलोक। स्वर्ग।

अमरवर--संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं में श्रेष्ठ। इंद्र। उ०--खिलति मिलति तिनको नरपति सों। जिमि वर देत अमरवर रति सों।--गोपाल (शब्द०)।

अमरवल्लरी--संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशबौर। अमरबेल [को०]।

अमरवल्ली--संज्ञा स्त्री० [सं०] अमरबेल।

अमरस¹--संज्ञा पुं० [हिं० अम=आम+रस] निचोड़कर और जमाकर सुखाया हुआ आम का रस। अमावट।

अमरस²(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० अमर्ष] दे० 'अमरख'। उ०--अमरस वे इतबार, निरदयता मन नासमिक। नरसम सार अमार, पैलां घर वाळै पिसण।--बाँकीदास ग्रं०, भा० १, पृ० ६२।

अमरसर(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] अमृतसर। पंजाब का एक नगर जो सिक्खों का तीर्थस्थान है। उ०--जो पंजाब अमरसर गाया। सो बाबे ने नहीं बनाया।--घट०, पृ० ३२८।

अमरसरी†--वि० [हिं० अमरसर] अमृतसर से संबद्ध। अमरसर का।

अमरसहरी†--वि० [हिं०] दे० 'अमरसरी'।

अमरसी--वि० [हिं० आम रस+ई (प्रत्य०)] आम के रस की तरह पीला। सुनहला। यह रंग एक छटाँक हलदी और आठ माशे चूना मिलाकर बनता है।

अमरा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दूब । २ गुर्च । गिलोय । ३ सेंहुड़ । थूहर । ४ नीली कोयल । बड़ा नील का पेड़ । ५ चमड़े की झिल्ली जिसमें गर्भ का बच्चा लिपटा रहता है । आँवर । जटायु । ६ नाभि का नाल जो नवजात बच्चे को लगा रहता है । ७ इंद्रायण । ८ वरियारा । बरगद की एक छोटी जंगली जाति । ६ घीकुआर । १० इंद्रपुरी ।

अमरा(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमड़ा' ।

अमराई—संज्ञा स्त्री०[सं० आम्रराजि]आम का बाग । आम की बारी । २ उपवन । उद्यान । उ०—वह हरी लताओं की सुंदर अमराई ।—कानन०, पृ० ३६ ।

अमराऊ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०]दे० 'अमराव' । उ०—देखा सब राउन अमराऊ ।—जायसी ग्रं०, पृ० ११ ।

अमराचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के आचार्य या गुरु । बृहस्पति [को०] ।

अमराद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का पर्वत । सुमेरु [को०] ।

अमराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र [को०] ।

अमरापगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवनदी । गंगा [को०] ।

अमरापति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमरपति] इंद्र । उ०—अमरापति चरननि तर लोटत ।—सूर०, १०।६५० ।

अमराय(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अमराई । उद्यान । उ०—आस पास अमराव बरारी । जहँ लग फूलं निती फुलवारी ।—नंद० ग्रं० पृ० ११६ ।

अमरारि—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के शत्रु । राक्षस (को०) ।

यौ०—अमरारिगुरु, अमरारिपूज्य=दैत्यगुरु । शुक्र ।

अमरालय—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का स्थान । स्वर्ग । इंद्रलोक ।

अमराव(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० आम्रराजि] दे० 'अमराई' ।

अमरावती—संज्ञा स्त्री०[सं०] देवताओं की पुरी । इंद्रपुरी । सुरपुरी ।

अमरित(पु)—संज्ञा पुं०[हिं०] दे० 'अमृत' । उ०—अमरित पय नित स्रवहिं वच्छ महि थंभन जावहिं ।—अकबरी०, पृ० ७२ ।

अमरी¹—संज्ञा स्त्री०[सं०] १ देवता की स्त्री । देवकन्या । देवपत्नी । २ एक पेड़ जिससे एक प्रकार का चमकीला गोंद निकलता है । सज । सग । आसन । पियासाल ।

विशेष—इस गोंद को सुगंध के लिये जलाते हैं । संथाल लोग इसे खाते भी हैं । इसकी छाल से रंग बनता है चमड़ा सिझाया जाता है । लकड़ी मकान, छकड़े और नाव बनाने तथा जलाने के काम मे आती है । इसकी डालियों से लाही भी निकलती है और पत्तियों पर सिंहभूम आदि स्थानों मे टसर रेशम का कीड़ा भी पाला जाता है ।

अमरी²—संज्ञा स्त्री० हठयोगियों की एक क्रिया । उ०—वजरी करता अमरी राषै अमरी करता वाई । भोग करता जे व्यंद राषै ते गोरष का गुरभाई ।—गोरख०, पृ० ४६ ।

अमरीकन—वि० [हिं०] दे० 'अमेरिकन' ।

अमरीका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमेरिका' ।

अमरीकी—वि० [हिं०] दे० 'अमेरिकन' ।

अमरीष(पु)—संज्ञा पुं०[हिं०] दे० 'अंबरीष' । उ०—दुरवासा अमरीष सतायौ ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २४० ।

अमरु—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा जिसने 'अमरुशतक' नामक शृंगार का ग्रंथ बनाया था ।

अमरू—संज्ञा पुं० [अ० अहमर=लाल?] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो काशी मे बुना जाता है ।

अमरूत—संज्ञा पुं० [फा० अमरूद, तु० मुरूद] एक पेड़ जिसका धड़ और टहनियाँ पतली और पत्तियाँ पाँच या छ अंगुल लंबी होती है ।

विशेष—इसका फल कच्चा रहने पर कसैला और पकने पर मीठा होता है और उसके भीतर छोटे छोटे बीज होते हैं । यह फल रेचक होता है । पत्ती और छाल रँगने तथा चमड़ा सिझाने के काम आती है । मदक पीनेवाले इसकी पत्ती को अफीम मे मिलाकर मदक बनाते हैं । किसी किसी का मत है कि यह पेड़ अमरीका से आया है । पर भारतवर्ष मे कई स्थानों पर यह जंगली होता है । इलाहाबाद और काशी का यह फल प्रसिद्ध है ।

पर्या०—(मध्यभारत, मध्यप्रदेश तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश) जाम । बिही । सफड़ो । (राजस्थान) जायफल । (बंगाल) प्यारा । (दक्षिण) पेरूफल । पेरुक । (नेपाल तराई) रुन्नी । (अवध) मकरी । अमरूद । (तिरहुत) लताम ।

अमरूद—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमरूत' ।

अमरेश—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का राजा । इंद्र ।

अमरेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] अमरेश । इंद्र ।

अमरैया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमराई' ।

अमरौती†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अमरता । अमरत्व । उ०—जनम हुआ है कायर घर तो घर बैठे अमरौती खाय ।—काले०, पृ० २४ ।

अमर्त्य—वि० [सं०] जो मर्त्य न हो । अविनश्वर । अमर [को०] ।

यौ०—अमर्त्यभुवन=देवलोक । अमर्त्यापगा=गंगा ।

अमर्दित—वि० [सं०] १ जिसका मर्दन न हुआ हो । जो मला न गया हो । बिना मला दला । जो गिंजा मिंजा न हो । २ जो दबाया या हराया न गया हो । अपराभूत । अपराजित ।

अमर्याद—वि० [सं०] १ मर्यादाविरुद्ध । अव्यवस्थित । बेकायदा । २ बिना मर्यादा का । अप्रतिष्ठित । ३ सीमारहित । असंगत आचरण करनेवाला (को०) ।

अमर्यादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्रतिष्ठा । बेइज्जती । मर्यादा या सीमा का न होना । असंगत आचरण ।

अमर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अमर्षित, अमर्षी] १ क्रोध । रिस । २. वह द्वेष या दुःख जो ऐसे मनुष्य का कोई अपकार न कर सकने के कारण उत्पन्न होता है जिसने अपने गुणों का तिरस्कार किया हो । ३ असहिष्णुता । अक्षमा । ४ तैंतीस संचारी भावों मे से एक (को०) ।

अमर्षण¹—संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध । रिस । असहिष्णुता ।

अमर्षण²—वि० क्रोधी । असहिष्णु [को०] ।

अमर्षित—वि० [स०] अमर्षी। क्रोधी [को०]।

अमर्षी—वि० [स० अमर्षिन्] [वि० स्त्री० अमर्षिणी] क्रोधी। असहनशील। जल्दी बुरा माननेवाला।

अमल[१]—वि० [स०] १ निर्मल। स्वच्छ। २ निर्दोष। पापशून्य। ३ उज्वल। प्रकाशित। चमकीला (को०)।

अमल[२]—सज्ञा पु० १ अबरक। अभ्रक। २ स्वच्छता। निर्मलता (को०)। ३ परब्रह्म (को०)।

अमल[३]—सज्ञा पु० [अ०] १ व्यवहार। कार्य। आचरण। साधन। क्रि० प्र० करना।—होना।

यौ०—अमलदरामद = कार्रवाई।

२ अधिकार। शासन। हुकूमत। उ०—हम चौधरी डोम सरदार। अमल हमारा दोनो पार।—भारतेंदु ग्र०, प्र० भा०, पृ० २६२।

यौ०—अमलदखल। अमलदरामद = जाब्ते की कार्रवाई। अमलदारी = राज्य। हुकूमत। अधिकार। अमलप = अधिकारपत्र।

३ नशा। उ०—किईं ठाकुर अलगा वहुउ, आवउ अमल करांह।—ढोला०, दू०, ६२८।

यौ०—अमलपानी = नशा वगैरह।

४ आदत। बान। टेव। व्यसन। लत। उ०—आनद कद चद मुख निसि दिन अवलोकत यह अमल परयो।—सूर० (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पडना। उ०—हरिदरसन अमल परयो लाजन लजानी।—सूर० (शब्द०)।

५ प्रभाव। असर। उ०—अभी दवा का अमल नही हुआ है (शब्द०)। ६ भोगकाल। समय। वक्त। उ०—अब चार का अमल है (शब्द०)।

अमलकोची—सज्ञा स्त्री० [देश०] कजे की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जिसकी फलियो से चमडा सिझाया जाता है। वि० दे० 'कुती'।

अमलगुच्छ—सज्ञा पुं० [स०] पद्मकाष्ठ या पद्म नामक वृक्ष। वि० दे० 'पदम'।

अमलता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ निर्मलता। स्वच्छता। २ निर्दोषता।

अमलतास—सज्ञा पुं० [स० अम्ल] एक पेड जिसमे डेढ दो फुट लबी गोल गोल फलियाँ लगती हैं।

पर्या०—आरग्वध। घनवहेडा। किरवरा।

विशेष—इसकी पत्तियाँ सिरिस के समान और फूल सन के समान पीले रग के होते हैं। फलियो के ऊपर का छिलका कडा और भीतर का गूदा अफीम की तरह चिपचिपा, खाने मे कुछ मिठास लिए हुए खट्टा और कडुआ और बहुत दस्तावर होता है। इसके फूलो का गुलकद बनता है जो गुलाब के गुलकद से अधिक रेचक होता है। इसके बीजो से कै कराई जाती है।

अमलतासिया—वि० [हिं० अमलतास + इया (प्रत्य०)] अमलतास के फूल के समान हलके पीले रग का। हलका पीला। गधकी।

अमलदार—सज्ञा पु० [अ० अमल + फा० दार] अधिकारी। शासक। हुकूमत करनेवाला।

अमलदारी—सज्ञा स्त्री० [अ० अमल + फा० दारी] १ अधिकार। दखल। शासन। २ रुहेलखड मे एक प्रकार की काश्तकारी जिसमे असामी को पैदावार के अनुसार लगान देना पडता है। कनकूत।

अमलपट्टा—सज्ञा पु० [अ० अमल + हिं० पट्टा] वह दस्तावेज या अधिकारपत्र जो किसी प्रतिनिधि या कारिंदे को किसी कार्य मे नियुक्त करने के लिये दिया जाय।

अमलपतत्री—सज्ञा पु० [स० अमलपतत्रिन्] जगली हस [को०]।

अमलबेत—सज्ञा पु० [स० अम्लवेतस्] १ एक प्रकार की लता जो पश्चिम के पहाडो मे होती है और जिसकी सूखी हुई टहनियाँ बाजार मे बिकती हैं और दवा मे पडती हैं। २ एक मध्यम आकार का पेड जो बागो लगाया जाता है।

विशेष—इसके फूल सफेद और फल गोल, खरबूजे के समान, पकने पर पीले और चिकने होते हैं। इस फल की खटाई बडी तीक्ष्ण होती है। इसमे सूई गल जाती है। यह अग्निसदीपक और पाचक होता है, इस कारण चूरण मे पडता है। यह एक प्रकार का नीबू है।

अमलबेद—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमलबेत'। उ०—चूरन अमलबेद का भारी। जिसको खाते कृष्णमुरारी।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ६६२।

अमलबेल—सज्ञा स्त्री० [अमल ? + हिं० बेल] एक प्रकार की लता।

विशेष—यह भारत के प्राय सभी गरम प्रदेशो मे पाई जाती है। वर्षा ऋतु मे इसमें नीलापन लिए हुए सफेद रग के सुदर फूल लगते हैं। इसकी पत्तियाँ फोडो पर उन्हें पकाने के लिये बाँधी जाती हैं।

अमलमणि—सज्ञा पु० [स०] स्फटिक। बिल्लौर।

अमलरत्न—सज्ञा पु० [सं०] स्फटिक [को०]।

अमला[१]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ लक्ष्मी। २ सातला वृक्ष। ३ पताल आँवला।

अमला[२]—सज्ञा पु० [स० आमलक] आँवला।

अमला[३]—सज्ञा पुं० [अ० अमलह्] कर्मचारी। कचहरी या दफ्तर मे काम करनेवाला। कार्याधिकारी। उ०—फूलि न जो तू ह्वै गयो राजा बाबू अमला जज्ज।—भारतेंदु ग्र०, १।५५१।

यौ०—अमलाफैला (अमला फैलह्) = कचहरी का कर्मचारी। अमलासाजी = कर्मचारियो को घूस देकर वशीभूत करने की क्रिया।

अमला[४](पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमल'। उ०—आठ पहर अमला रा माता हेलो देता डोलो।—घनानद, पृ० ४४५।

अमलातक—सज्ञा पुं० [स०] अमलबेत [को०]।

अमलानक—सज्ञा पुं० [स०] अमलबेत [को०]।

अमलिन—वि० [स०] १ स्वच्छ। निर्मल। निर्दोष।

अमली[१]—वि० [अ० अमल + फा० ई (प्रत्य०)] १ अमल मे आनेवाला व्यावहारिक। २ अमल करनेवाला। कर्मण्य। ३ नशेबाज।

अमली[२]—सज्ञा स्त्री० [स० अम्लिका] १ इमली। २ एक झाड़ीदार

पेड जो हिमालय के दक्षिण गढवाल से आसाम तक होता है। करमई। गोल्वटी।

अमलीसमली(पु)—वि० [हिं०] उलटी सीधी। उ०—अमली समली आरती। जाई वचेरइ दियो मिलाए।—बी० रासो०, पृ०१२।

अमलुनियाँ†—संज्ञा पुं० [देश०] खर पतवार। एक तरह की घास जो खेतो मे अपने आप उग जाती है।

अमलूक—संज्ञा पुं० [सं० अम्ल] एक प्रकार का मेवा और उसका पेड।

विशेष—यह अफगानिस्तान, बिलूचिस्तान, हजारा, कश्मीर और पंजाब के उत्तर हिमालय की पहाडियो पर होता है। इसमे से बहुत सा रस बहता है जो जमकर गोंद की तरह हो जाता है। इसका फल ताजा और सूखा दोनो खाया जाता है। सूखा फल काबुली लोग लाते हैं। इसे मलूक भी कहते हैं।

अमलोनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्ललोणी] नोनियाँ घास। नोनी।

विशेष—इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी, मोटे दल की और खाने मे खट्टी होती हैं। लोग इसका साग बनाकर खाते हैं जो अग्नि वर्धक होता है। कहते हैं कि इसके रस मे धतूरे का विष उतर जाता है। यह बडी पत्तियो का भी होता है जिसे 'कुलफा' कहते हैं।

अमल्लका†—वि० [अ० मुतलक] बिलकुल। पूरा पूरा। समूचा। ज्यों का त्यों।

अमवा(पु)‡—संज्ञा पु० [देश०] दे० 'आम'। उ०—चढि अमवा की डारि, अकेली धन का रे खडो।—धरम० पृ० ४३।

अमस¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. काल। समय। २ रोग। ३ मुखता[को०]।

अमस²—वि० निर्बोध। अज्ञानी।

अमसूल—संज्ञा पु० [देश०] एक पतला पेड़ जो नीलगिरि पर बहुतायत से होता है।

विशेष—इस वृक्ष की डालियाँ नीचे की ओर झुकी होती हैं। दक्षिण मे कोंकण, कनारा और कुर्ग के जंगलो मे भी यह होता है। इसका फल खाया जाता है और गोवा में बिंदाव के नाम से बिकता है। पर यह वृक्ष उस तेल के कारण अधिक प्रसिद्ध है जो उसके बीज से निकाला जाता है और तेल कोकम् का मक्खन कहलाता है। बाजारो मे यह तेल जमी हुई सफेद लबी बत्तियो या टिकियो के रूप मे मिलता है जो साधारण गर्मी से पिघल जाती हैं। यह वर्धक और सकोचक समझा जाता है तथा सूजन आदि मे इसकी मालिश होती है। इससे मरहम भी बनाया जाता है।

अमसृण—वि० [सं०] जो मसृण न हो। कठोर। कडा [को०]।

अमहर—संज्ञा स्त्री० [हिं० आम = अम + हर (प्रत्य०)] छिले हुए कच्चे आम की सुखाई हुई फाँक। यह दाल और तरकारी मे पडती है। इसे कूटकर अमचूर भी बनाते हैं।

अमहल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + अ० महल] १ बिना घर का। अनिकेत। २ जिसके रहने का कोई एक स्थान न हो। व्यापक। उ०—अंबरीष और याग जनक जड शेष सहस मुख पाना। कहँ लौं गनौं अनंत कोटि लै अमहल महल दिवाना।—कबीर (शब्द०)।

अमांस¹—वि० [सं०] १. मांसहीन। २. दुर्बल। निर्बल।

अमांस²—संज्ञा पुं० वह जो मांस न हो। मांस से इतर पदार्थ [को०]।

अमांसक—वि० [सं०] अमांस [को०]।

अमाँ—अव्य० [हिं० ए + फा० मियाँ] मुसलमानो मे बातचीत मे प्रचलित एक संबोधन। ऐ मियाँ। अरे यार।

अमा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अमावस्या। २ अमावस्या की कला। स्कदपुराण के अनुसार चद्रमा की सोलहवीं कला जिसका क्षय और उदय नहीं होता। ३ घर। ४ मर्त्यलोक। इहलोक। ५ चौपायों की आँख पर की बतौरी जो अशुभ समझी जाती है।

अमा²—वि० मापरहित। अमाप [को०]।

अमाधौना†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन मे तैयार होता है।

अमाजुर—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपने पिता के घर पर ही बडी और बूढ़ी हो जानेवाली अविवाहिता स्त्री [को०]।

अमातना(पु)—क्रि० स० [सं० आमन्त्रण, प्रा० आमत्रण] आमंत्रित करना। निमंत्रण देना। न्योता देना। आह्वान करना। बुलाना। उ०—कह्यौ महरि सो करौ चँडाई हम अपने घर जात। तुमहूँ करौ भोग सामग्री कुलदेवता अमाति।—सूर० (शब्द०)।

अमातृ—वि० [सं०] माताविहीन। बिना माँ का [को०]।

अमात्य—संज्ञा पुं० [सं०] मत्री। वजीर।

अमात्र¹—वि० [सं०] १ मात्रारहित। बेहद। अपरिमित। २ अपूर्ण। असमग्र [को०]। ३ आरभिक [को०]।

अमात्र²—संज्ञा पु० १ माप या इयत्ता का अभाव। वह जो माप नहीं है। २ परब्रह्म [को०]।

अमान¹—वि० [सं०] १ जिसका मान या अदाज न हो। अपरिमित। परिमाणरहित। इयत्ताशून्य। उ०—मायागुन ग्यानातीत अमाना वेद पुरान भनता।—मानस, १।१९२। २ बेहद। बहुत। उ०—आकाश विमान अमान छये। हा हा सब ही यह शब्द रये।—केशव (शब्द०)। ३ गर्वरहित। निरभिमान। सीधासादा। उ०—सदा रामप्रिय होव तुम्ह सुभ गुन भवन अमान। कामरूप इच्छामरन ज्ञान बिराग निधान।—मानस, ७।११३। ४ मानशून्य। अप्रतिष्ठित। अनादृत। आत्माभिमानरहित। उ०—(क) अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनवास।—मानस, ६।३० (क)। (ख) अगुन अमान मातु पितु होना। उदासीन सब ससय छीना।—मानस, १।६७।

अमान²—संज्ञा पुं० [अ०] १ रक्षा। बचाव। २ शरण। पनाह। ३. शांति। उ०—माँगने से अगर मिले हमको क्यों न जी की अमान तो माँगूँ।—चुभते०, पृ० ५४।

अमानत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ अपनी वस्तु को किसी दूसरे के पास एक नियत काल तक के लिये रखना २ वह वस्तु जो दूसरे के पास किसी नियत या अनियत काल तक के लिये रख दी जाय। थाती। धरोहर। उपनिधि। ३. अमीन का काम या पद (को०)। ४. शांति। अमन।

यौ०—अमानतखाना = कोठी, बैंक आदि का वह खाता जिसमें अमानत की रकम जमा की जाती है। अमानतखाना = वह

स्थान जहाँ अमानत मे वस्तुएँ रखी जाती हैं। अमाननामा= अमानत रखते समय प्रमाणस्वरूप लिखा जानेवाला पत्र। अमानत मे खयानत करना या होना=अमानत मे रखी हुई रकम को खा जाना।

अमानतदार—संज्ञा पुं० [अ० अमानत+फा० दार] १ जिसके पास कोई चीज अमानत रखी जाय। धरोहर रखनेवाला। २ अमीन (को०)।

अमानन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमानना' (को०)।

अमानना—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनादर। अवज्ञा। तिरस्कार। अपमान [को०]।

अमानव—वि० [सं०] मानवेतर [को०]।

अमानस्य¹—संज्ञा पु० [सं०] पीडा। दुख [को०]।

अमानस्य²—वि० पीडित। व्यथित। दुखित [को०]।

अमाना¹—क्रि० अ० [स० आ=पूरा पूरा+मान=माप] १ पूरा पूरा भरना। समाना। अँटना। जैसे—इस बरतन मे इतना पानी नही अमा सकता (शब्द०)। उ०—पुनि पुनि मन हनुमान के प्रेम उमँग न अमाइ।—तुलसी ग्र०, पृ० ८३। २ फूलना। उमडना। इतराना। उ०—करि कछु ज्ञान अभिमान जान दै है कैसी मति ठानी। तन, धन जानि जाम जुग छाया भूलति कहा अमानी।—सूर (शब्द०)।

अमाना²†—संज्ञा पु० [स० अयन] बखार का मुँह। अन्न की कोठरी का द्वार। आना।

अमानित—वि० [सं०] १ जिसे माना न गया हो। २ जिसका मान न हुआ हो। असमानित।

अमानितसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जिसकी वीरता के उपलक्ष्य मे उचित आदर मान न किया गया हो और जो इस कारण असतुष्ट हो।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसी सेना को विमानित (जिसकी बेइज्जती की गई हो) सेना से उपयोगी कहा है, क्योंकि उचित मान पाकर यह जी लगाकर लड सकती है।

अमानिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नम्रता। मान का न होना [को०]।

अमानित्व—संज्ञा पुं० [सं०] गर्वराहित्य। अमानिता। [को०]।

अमानिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पटसन।

अमानिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमावस्या की रात्रि। अधकारयुक्त रात [को०]।

अमानी¹—वि० [स०] निरभिमान। घमडरहित। अहकारशून्य। उ०—मोरे प्रौढ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी।—मानस, ३।३७।

अमानी²—संज्ञा स्त्री० [स० आत्मन्] १ वह भूमि जिसकी जमींदार सरकार हो और जिसका प्रबध उसकी ओर से जिले का कलक्टर करे। खास। २ जमीन या कोई कार्य जिसका प्रबध अपने ही हाथ मे हो, ठीके पर न दिया गया हो। ३ लगान की वसूली जिसमे बिगडी हुई फसल का विचार करके कुछ कमी की जाय।

अमानी³—संज्ञा स्त्री० [स० अ+हिं० मानना] मनमानी अंधेरा। अपने मन की कार्रवाई। अधेर।

अमानुष¹—वि० [सं०] १ मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर। अलौकिक। उ०—सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौशिक कृपा सुधारे।—मानस, १।३५०। २ मनुष्यस्वभाव के विरुद्ध। पाशव। पैशाचिक।

अमानुष²—संज्ञा पुं० १ मनुष्य से भिन्न प्राणी। २ देव देवता। ३ राक्षस।

अमानुषिक—वि० [सं०]१ अलौकिक। अमानुषी। पैशाचिक [को०]।

अमानुषी—वि० [सं०]१ मानव स्वभाव के विरुद्ध। पाशव। पैशाचिक। २ मानवी शक्ति से बाहर। अलौकिक।

अमानुषीय—वि० [सं०] दे० 'अमानुषी'।

अमान्य—वि० [सं०] अमाननीय। अस्वीकृत [को०]।

अमान्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] न मानना। अस्वीकृति।

अमाप—वि० [सं०] १ जिसके परिमाण का अंदाजा न हो सके। अपरिमित। उ०—अगर के धूप धूम उठत जहाँ ई तहाँ, उठत बगूरे अब अति ही अमाप है।—भूषण ग्रं०, पृ० २५८। २ बेहद। बहुत। उ०—मारयो नहीं आप दई घाई सबनि ही। या सूरमा अमाप दृगनि देखि वाही हँसी।—हम्मीर रा०, पृ० १५।

अमापनीय—वि० [सं०] जिसकी माप न की जा सके। अमाप [को०]।

अमापित—वि० [सं०] जो मापा न गया हो जिसकी माप न हुई हो [को०]।

अमाप्य—वि० [सं०] अमापनीय [को०]।

अमाम(पु)†—वि० [हिं० अमाप] बहुत। उ०—सिगरे करैं प्रणाम उमगे मना अमाम।—रा० रू०, पृ० ७६।

अमामसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] 'अमावस्या' [को०]।

अमामा—संज्ञा पुं० [अ० इमामह] पगड़ी। वह पगड़ी जिसके अंदर टोपी रहती है। उ०—कोई टोपी टोप बनाता है कोई बाँधे फिरै अमामा है।—राम० धर्म०, पृ० ९२।

अमामसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अमावस्या' [को०]।

अमाय¹(पु)—वि० [सं०] १ दे० 'अमाया'। २ अपरिसीम [को०]।

अमाय²—संज्ञा पुं० परब्रह्म [को०]।

अमाया¹—वि०[सं०]१ मायारहित। निर्लिप्त। २ निस्वार्थ। निष्कपट। निश्छल। उ०—जो मोरे मन बच अरु काया। प्रीति राम पद कमल अमाया।—मानस, ६।१८।

अमाया²—संज्ञा स्त्री०[सं०]निष्कपटता। निश्छलता। ईमानदारी[को०]।

अमायिक—वि०[सं०] १ दोषरहित। २ मायारहित। ३ निश्छल। निष्कपट। ४ सच्चा।

अमायी—[सं० अमायिन्] दे० 'अमायिक' [को०]।

अमार¹†—संज्ञा पुं०[फा० अंबार]१ अन्न रखने का घेरा। अरहर के सूखे डंठलों या सरकंडों की टट्टी गाड़कर बनाया हुआ घेरा जिसे ऊपर से छा देते हैं, और जिसमे ऊपर नीचे भुस देकर बीच मे अनाज रखते हैं। २ राशि। बहुतायत। ढेर। उ०—जर जेवर का अमार लगा रहता होगा उसके यहाँ।—नई०, पृ० ३६।

अमार²—संज्ञा पुं० [अ०] अमरण [को०]।

अमार(पु)³—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमरी'।

अमर⁴(पु)†—पर्व० [हिं०; तुल० बँ० आमार, ने० हाम्रा, हाम्रो,] हमारा। मेरा। उ०—कइवा देवल पुतली। ईंमीय छइ प्रभु जी अमारडी नार।—बी० रासो, पृ० ६०।

अमारग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमार्ग'।

अमारी¹—संज्ञा स्त्री० [अ०] हाथी का छायादार या मंडपयुक्त हौदा।

अमारी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० आमडा या अमडा] अमडा नामक वृक्ष या उसका फल।

अमार्ग¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुमार्ग। कुराह। २ बदचलनी। बुरी चाल। दुराचरण।

अमार्ग²—मार्गरहित। मार्गविहीन। [को०]।

अमार्जित—वि० [सं०] १. जो धोकर शुद्ध न किया गया हो। अस्वच्छ। २. जिसका संस्कार न हुआ हो। बिना शोधा हुआ।

अमार्ज्य—वि० [सं०] १ जिसको स्वच्छ न किया जा सके। २ जिसका संस्कार या शोधन करना संभव न हो।

अमाल(पु)—संज्ञा पुं० [अ० अमल] अमल रखनेवाला। हाकिम। शासक। उ०—पंज प्रतिपाल, भूमिभार को हमाल, चहुँ चक्क को अमाल, भयो दंडक जहान को।—भूषण (शब्द०)।

अमालनामा—संज्ञा पुं० [अ० अमाल + फा० नामह्] १ वह पुस्तक या रजिस्टर जिसमें कर्मचारियों की भली या बुरी कार्रवाइयाँ दर्ज की जाती हैं। २ कर्मपुस्तक। कर्मपत्र। मुसलमानी मत के अनुसार वह पुस्तक जिसमें प्राणियों के शुभ और अशुभ कर्म कयामत में पेश करने के लिये नित्य दर्ज किए जाते हैं।

अमाली(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० अमल] १ जाँच। २. लेखाजोखा। उ०—धरनी साल व माल अमाली, जमा खरच यहि पाई।—धरनी०, पृ० ३।

अमावट¹—संज्ञा पुं० [सं० आम्र हिं० आम + सं० आवर्त, प्रा० आवट्ट] आम के सुखाए हुए रस के पर्त या तह।

विशेष—इसे बनाने के लिये पके आम को निचोडकर उसका रस कपडे या किसी और चीज पर फैलाकर सुखाते हैं। जब रस की तह सूख जाती है तब उसे लपेटकर रख लेते हैं।

अमावट²—संज्ञा स्त्री० [देश०] पहिना जाति की एक मछली।

अमावड†—वि० [सं० अ + प्रा० माव (माप्) + डिं० ड (प्रत्य०)] शक्तिशाली। जोरावर।

अमावना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अमाना'।

अमावस—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमावस्या'। उ०—मौन अमावस मूल बिन रोहिनि बिन अखतीज।—घाघ०, १८१।

अमावसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमावस्या [को०]।

अमावस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कृष्णपक्ष की अंतिम तिथि। वह तिथि जिसमें सूर्य और चंद्रमा एक ही राशि के हों। २ हठयोग की एक क्रिया।

अमावास्य—वि० [सं०] १ जो अमावस्या के दिन हुआ हो।

अमावास्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अमावस्या'।

अमाह—संज्ञा पुं० [सं० अमास] [वि० अमाही] नेत्ररोग विशेष। आँख के डेले में निकला हुआ लाल मांस। नाखूना।

अमाही—वि० [हिं० अमाह] अमाह रोग संबंधी। अमाह रोगवाला।

अमिअ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमृत, प्रा० अमिअ, अप० अमिअ, सं०, (पु) अमिअ] दे० 'अमिय'। उ०—अमिअ मूरि मय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू।—मानस १।१।

अमिञ(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०—करुण समाइअ अमिञ रस बुज्झ कहने कन।—कीर्ति०, पृ० ५६।

अमिख(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आमिष'।

अमिट—वि० [सं० अ + हिं० मिटना, अथवा अ = नहीं + मर्त्य = मरनेवाला] १ जो न मिटे। जो नष्ट न हो। नाशहीन। स्थायी। २ जो न टले। अटल। जो निश्चय हो। अवश्यभावी।

अमित—वि० [सं०] १ जिसका परिमाण न हो। अपरिमित। बेहद। असीम। २ बहुत। अधिक। ३. तिरस्कृत। उपेक्षित (को०)। ४ अज्ञात। अनजाना (को०)। ५ असंस्कृत। संस्कारहीन (को०)। ६ केशव के अनुसार वह अर्थालंकार जिसमें साधन ही साधक की सिद्धि का फल भोगे। जैसे—'दूती नायक के पास नायिका का सँदेसा लेकर जाय, परंतु स्वयं उससे प्रीति कर ले।' उ०—आनन सीकर सीक कहा ? हिय तौ हित ते अति आतुर आई। फीको भयो मुख ही मुख राग क्यों ? तेरे पिया बहु बार बकाई। प्रीतम को पट क्यों पलटयो ? अलि केवल तेरी प्रतीति को ल्याई। केशव नीके ही नायक सों रमि नायिका बातन ही बहराई।—केशव (शब्द०)।

यौ०—अमितक्रतु। अमिताशन। अमिततेजा। अमितोजा। अमितद्युति। अमितविक्रम।

अमितक्रतु—वि० [सं०] असीम बुद्धि या साहसवाला [को०]।

अमितता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमित होना। आधिक्य।

अमिततेजा—वि० [सं० अमिततेजस्] असीम कांतिमान् [को०]।

अमितद्युति—वि० [सं०] अत्यधिक प्रकाशवाला [को०]।

अमितविक्रम—वि०[सं०]१ अत्यंत बलवान्। २ विष्णु का विशेषण [को०]।

अमितवीर्य—वि० [सं०] अत्यंत शक्तिशाली [को०]।

अमिताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अधिकता। असीमता [को०]।

अमिताभ¹—वि० [सं०] अत्यंत तेजस्वी [को०]।

अमिताभ²—संज्ञा पुं० महात्मा बुद्ध का एक नाम।

अमिताशन¹—वि० [सं०] १ जो सब कुछ खाय। सर्वभक्षी। २ जिसके खाने का ठिकाना न हो।

अमिताशन²—संज्ञा पुं० १. अग्नि। आग। २ परमेश्वर विष्णु (को०)।

अमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनंतता। असीमता [को०]।

अमितौजा—वि० [सं० अमितौजस्] अत्यधिक शक्तिशाली। सर्वशक्तिमान [को०]।

अमित्र—वि०[सं०] १ जो मित्र न हो। शत्रु। वैरी। २. बिना मित्र का जिसका कोई दोस्त न हो। अमित्रक। ३ अतुकांत [बंग०]। उ०—अपनी अमित्र कविता की तरह अपने गीतों के लिये भी मैं इधर उधर सुन चुका था।—गीतिका (भू०), पृ० १२।

अमित्रक—वि० [सं०] दे० 'अमित्र'।

अमित्रखाद—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र [को०]।

अमित्रघात--संज्ञा पुं०[सं०]शत्रुओं का नाश करना। शत्रुओं का हनन।
अमित्रघाती--वि० [सं० अमित्रघातिन्] शत्रुओं का नाश करनेवाला।
अमित्रता--संज्ञा स्त्री० [सं०] शत्रुता। विरोध।
अमित्रविषयातिगानौका--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह जहाज जो शत्रु के राष्ट्र में जानेवाला हो।
अमित्रसह--वि० [सं०] शत्रुओं को वशीभूत करनेवाला इंद्र।
अमित्राक्षर--वि० [सं० अमिताक्षर] जिसमें अक्षरों की कोई निश्चित संख्या न हो। जिसमें तुक न हो। गद्यमय। उ०--बहुत पहिले भी अमित्राक्षर कविता लिखी गई है।--करुणा, (प्र०)।
अमित्री--वि० [सं० अमित्रिन्] वैरी। शत्रु [को०]।
अमिथ्या(पु)†--वि० [अ = उच्चा० + मिथ्या] व्यर्थ। बेकार।उ०--सतगुरु भक्तिभेद नहिं पाए, जीव अमिथ्या दीन्हा।--घट०, पृ० २६४।
अमिय(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अमृत, प्रा० अमिअ, अमिय] अमृत। उ०--देखि अमिय रस अन्हधरह भएउ नासिका कीर। पौन वास पहुँचावै, अस रम छांड न तीर।--जायसी ग्रं०, पृ०४३।
अमियमूरि--संज्ञा स्त्री० [अमृत+मूरि] अमरमूर। अमृतबूटी। सजीवनी जड़ी। जिलानेवाली बूटी। उ०--अमिय मूरि मय चूरन चारू। शमन सकल भवरुज परिवारू।--तुलसी (शब्द०)।
अमिया--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्रिका, प्रा० अम्मिअा] कच्चे आम। उ०--बैठी होगी, जामुन अमिया लदी रौंस के पेडों पर।--मिट्टी०, पृ० ६५।
अमिरती†--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'इमरती'।
अमिरथा†--वि० [हिं०] दे० 'अविरथा'। उ०--गया सब जनम अमिरथा मोरा।--चित्रा०, पृ० १३०।
अमिरस(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] १ अमृतरस। २ हठयोग के अनुसार चंद्रमा से द्रवित होनेवाला रस। उ०--पछिम दिसा धुन अनहद गरज अमिरस करै उपजै ब्रह्मग्यान।--रामानंद०, पृ०१२।
अमिरित(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०--औ जो यह अमिरित सो पावे। सोऊ अमर जग भए सभागे।--चित्रा०, पृ० १२।
अमिल(पु)--वि० [सं० अ + हिं० मिलना] १ न मिलने योग्य। अप्राप्य। उ०----निपट अमिल वह, तुम्हैं मिलिबे की जक, कैसे कै मिलाऊँ गति मो पै न विहग की।--केशव (शब्द०)। २ बेमेल। बेजोड़। अनमिल। असबद्ध। ३ भिन्नवर्गीय। जो हिला मिला न हो। जो हिले मिले नहीं। जिमसे मेल जोल न हो। उ०--हरषि न बोली लखि ललन, निरखि अमिल सँग साथ। आँखिन ही में हँसि धरचो, सीस हिए पर हाथ।--बिहारी (शब्द०)। ४ ऊबड़ खाबड़। ऊँचा नीचा। उ०----अमिल सुमिल सीढी मदन सदन की कि जगमगैं पग जुग जेहरि जराय की।--केशव (शब्द०)।
अमिलताई(पु)--संज्ञा स्त्री०[हिं० अमिल + ताई (प्रत्य०)] न मिलने का भाव। कपट। दूर दूर रहना। उ०--मिलत न कहुँ भरे रावरे अमिलताई हिए मै किए बिमान जे बिनोद छन है।----रसखान०, पृ० ६३।
अमिलतासा--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमलतास'।
अमिलपट्टी--संज्ञा स्त्री०[हिं० अमिल + पट्टी = जोड़]सिलाई या तुरपन का एक भेद। चौड़ी तुरपन।
अमिलातक--संज्ञा पुं० [सं०]अमलातक। अमलबेंत [को०]।
अमिलित--वि० [सं०] न मिला हुआ। पृथक्। जुदा।
अमिलियापाट--संज्ञा पुं० [हिं० अमिली = इमली + पाट = रेशम] एक प्रकार का सन या पटसन।
अमिली[1](पु)†--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्लिका] दे० 'इमली'। उ०-आलूचा अमिली अँबहलदी। आल आँवला साल अफलदी।--सुजान०, पृ० १६१।
अमीली[2](पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + मिलना] मेल या अनुकूलता का अभाव। खटाई। कपट। विरोध। मनमुटाव। उ०-जहँ अमिली पाकै हिय माँहाँ। तहँ न भाव नौरँग कै छाहाँ।--जायसी (शब्द०)।
अमिश्र--वि [सं०] जो मिश्रित न हो। मिलावटरहित। शुद्ध। खालिस [को०]।
अमिश्रण--संज्ञा पुं० [सं०] मिलावट का अभाव।
अमिश्रराशि--संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित मे वह राशि जो एक ही इकाई द्वारा प्रकट की जाती है। इकाई।१ मे ९ तक की संख्या।
अमिश्रित--वि० [सं०]१ न मिला हुआ। जो मिलाया न गया हो। २ जिसमें कोई वस्तु मिलाई न गई हो। बे मिलावट। खालिस। शुद्ध। पृथग्भूत।
अमिष[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ छल का अभाव। बहाने के न होने का भाव या स्थिति। २ दे० 'आमिष'। ३ सांसारिक सुख। ऐश आराम (को०)।
अमिष[2]--वि० निश्छल। जो हीलेबाज न हो।
अमी[1](पु)--संज्ञा पुं०[हिं०]दे० 'अमिय'। उ०--'दास' मनभावती न भावती चलन तेरी अधर अमी के अवलोके मोहि रहिए।--भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० १३८।
यौ०--अमीकर। अमीरस।
अमी[2]--वि० [सं० अमिन्] रोगी [को०]।
अमीक--वि० [अ०] गहरा। उ०--या पानी का यों इत चश्मा अमीक।----दक्खिनी०, पृ० ३४५।
अमीकर(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अमृतकर, अमिय + कर] अमृतांशु। चंद्रमा।
अमीकला--संज्ञा पुं० [प्रा० अमी + कला] चंद्रमा। उ०--यद्यपि अमीकला आनँदघन सुजन--जान्ह रसवृष्टि सुहाई।--घनानंद, पृ० ५५८।
अमीच(पु)----क्रि० वि० [सं० अ + मृत्यु प्रा० मिच्चु] मृत्युविहीन। बिना मृत्यु के।
अमीढ--संज्ञा पुं० [हिं०]दे० 'अधौरी'।
अमीत[1](पु)--संज्ञा पुं०[सं० अमित्र, प्रा० अमित्त] १ जो मित्र न हो। शत्रु। वैरी। उ०----पावक तुल्य अमीत न को भयो, मीतन को भयो धाम सुधा को।----भूषण (शब्द०)। २. अलग। विच्छिन्न। उ०--आन देव की पूजा कीन्ही, गुरु मे रहा अमीता रे।----कबीर श०, पृ० ८।
अमीत[2]--वि० [सं०] जिसे क्षति न पहुँची हो। अक्षत [को०]।

अमीन[1]—संज्ञा पुं० [अ०] १ वह व्यक्ति जो अमानत रखता है। २ विश्वसनीय। ३ वह अदालती कर्मचारी जिसके सुपुर्द बाहर का काम हो, जैसे मौके की तहकीकात करना, जमीन नापना, बँटवारा करना, डिगरी का अमलदरामद कराना इत्यादि।

अमीन[2]—संज्ञा पुं० [प०] दे० 'अमी'। उ०—आनँदघन हित पोखि कै पाले प्रान अमीन।—घनानद पृ० १८०।

अमीपत्र—संज्ञा पुं० [हिं० अमी + पत्र = पात्र] अमृतपात्र। अमृतघट।

अमीबा—संज्ञा पुं० [अ०] एक अति सूक्ष्म जीव जिसे सूक्ष्मनिरीक्षक यंत्र से देखा जा सकता है।

अमीमांसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मीमांसा या विवेचना का अभाव [को०]।

अमीर—संज्ञा पुं० [अ०] १ कार्याधिकार रखनेवाला। सरदार। २ धनाढ्य। संपन्न। दौलतमंद। ३ उदार। ४ अफगानिस्तान के राजा की उपाधि।

अमीरजादा—संज्ञा पुं० [अ० अमीर + फा० जादह] [संज्ञा स्त्री० अमीरजादी] अमीर या धनवान का पुत्र। शाहजादा। राजकुमार।

अमीरस—संज्ञा पुं० [हिं०] अमृत। उ०—आदि नाम जो अमीरस चाखे।—कबीर सा०, पृ० ८७०।

अमीराना—वि० [अ० अमीर + फा० आनह (प्रत्य०)] अमीरों के ढंग का। जिससे अमीरी प्रकट हो। धनिकोचित।

अमीरी[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० अमीर + ई (प्रत्य०)] १ धनाढ्यता। दौलतमंदी। उ०—जो सुख पावा नाम भजन में सो सुख नाहिं अमीरी में।—कबीर० श०, पृ० ७०। २ उदारता।

अमीरी[2]—वि० अमीर का सा। अमीरों के योग्य। जैसे, अमीरी ठाठ।

अमीरुलबहर—वि० [अ०] नौबलाध्यक्ष। नौसेनापति [को०]।

अमीव—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। २ दुःख। ३ रोग। ४ दुश्मन (को०)। ५ हानि। क्षति (को०)।

अमुद्ध—वि० [सं० अ + मुग्ध] मुग्ध। मूर्ख। मूढ। उ०—कौन सुजावल जुध्ध करै। सुनि कमधज्ज अमुद्ध।—पृ० रा० २५।७७४

अमुक—वि० [सं०] फलाँ। ऐसा ऐसा।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग किसी नाम के स्थान पर करते हैं। जब किसी वर्ग के किसी एक भी व्यक्ति या वस्तु को निर्दिष्ट किए बिना काम नहीं चल सकता, तब किसी का नाम न लेकर इस शब्द को लाते हैं। जैसे, 'यह नहीं कहना चाहिए कि अमुक व्यक्ति ने ऐसा किया तो हम भी ऐसा करें'।

अमुक्त—वि० [सं०] १ जो मुक्त या बंधनरहित न हो। बद्ध। २ जिसे छुटकारा न मिला हो। जो फँसा हो। ३. जिसका मोक्ष न हुआ हो। ४ शस्त्र (छुरा, कटारी आदि) जो हाथ में पकड़कर चलाया जाय [को०]।

अमुक्तहस्त—वि० [सं०] १ देने में जिसके हाथ दबे हों। कंजूस। कृपण। २ कमखर्च। अल्प व्यय करनेवाला [को०]।

अमुख—वि० [सं०] मुखविहीन। वक्त्रहीन [को०]।

अमुख्य—वि० [सं०] जो मुख्य न हो। अप्रधान। गौण। निम्न।

अमुग्ध—वि० [सं०] १ जो मुग्ध या मोहित न हो। २ जितेंद्रिय। विरक्त। अनासक्त। ३ चतुर।

अमुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह लोक। परलोक। जन्मांतर।

यौ०—इहामुत्र लोक परलोक।

अमुत्रत्य—वि० [सं०] भविष्य जीवन या परलोक संबंधी [को०]।

अमुद्र—वि० [सं०] १ जिसके पास कहीं जाने का परवाना या मुहर न हो। जिसके पास मुद्रा या निशानी न हो (को०)।

अमुना—क्रि०वि० [सं०] ऐसे। इस प्रकार। उ०—अमुना विधि जमुनातट आवति।—नंद० ग्रं०, पृ० २९८।

अमुला—वि० [हिं०] दे० 'अमूल्य'। उ०—नाम तेरो अमुला नाम तेरो चदन घसि जपै नाम उचारै।—संत र०, पृ० १२९।

अमुष्य—वि० [सं०] प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर।

यौ०—अमुष्यपुत्र = प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न। कुलीन।

अमूक—वि० [सं०] १ जो गूँगा न हो। २ बोलनेवाला। वक्ता। ३. चतुर। प्रवीण।

अमूकी†(अमूके†)अमूको†—वि० [सं० अमुक] दे० 'अमुक'। जैसे, अमूकी ठौर, अमूके वैष्णव, अमूको कुम्हार आदि।

अमूझना†—क्रि० अ० [सं० अवरुद्ध, प्रा० अवरुज्झ, *अवउज्झ, *अमउज्झ] १ उलझना। फँसना। उ०—कठिन करम की परत आपसी मनहिं अमूझत है रे।—सुंदर० ग्रं०, पृ० ८४२।

अमूझा†—वि० [हिं० अमूझना या उलझना] अस्पष्ट। जो खुलासा न हो। उ०—प्रथम अमूझो अरथ सबदपिण दिए हित साजै।—रघु० रू०, पृ० १४। २ गर्मी से संतप्त होना।

अमूढ[1]—वि० [सं० अमूढ] १ जो मूर्ख न हो। चतुर। २ विद्वान्। पंडित।

अमूढ[2]—संज्ञा पुं० पंचतन्मात्र में से एक। इनके नाम ये हैं—अविशेष, महाभूत, अशांत, अधीर और अमूढ।

अमूमन्—अव्य० [अ०] अनुमानतः। सामान्यतया। प्रायः।

अमूर—संज्ञा पुं० [अ०] बात। चर्चा। उ०—मेरे खत के दीगर अमूर का जवाब आपने कुछ न दिया।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ६१।

अमूरत—वि० [हिं०] दे० 'अमूर्त'। उ०—अलख अमूरत सिर्जन हारा।—इंद्रा०, पृ० १६७।

अमूरति—वि० [हिं०] दे० 'अमूर्ति'। उ०—चमकत सो निरवान अमूरति छकित भयो मन वेधि उमंग।—जग० श०, भा० २, पृ० ८१।

अमूर्त[1]—वि० [सं०] मूर्तिरहित। निराकार। अवयवशून्य। निरवयव। उ०—कुछ भावों के विषय तो 'अमूर्त' तक होने लगे, जैसे कीर्ति की लालसा।—रस०, पृ० १६५।

अमूर्त[2]—संज्ञा पुं० १ परमेश्वर। २ आत्मा। ३ जीव। ४ काल। ५ दिशा। ६ आकाश। ७ वायु। ८. शिव (को०)।

यौ०—अमूर्तगुण—धर्म अधर्म आदि गुण जो अमूर्त माने जाते हैं।

अमूर्ति[1]—वि० [सं०] मूर्तिरहित। निराकार।

अमूर्ति[2]—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

अमूर्ति[3]—संज्ञा स्त्री० आकारहीनता। निराकारता [को०]।

अमूर्तिमान्[1]—वि० [सं० अमूर्तिमत्] १ निराकार। मूर्तिरहित। २ अप्रत्यक्ष। अगोचर।

अमूर्तिमान्[2]—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

अमूर्तीक—वि० [स०] अमूर्त। निराकार निरवयव। उ०—दूसरा द्रव्य है धर्म जो अमूर्तीक सर्वव्यापी है।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २२७।

अमूल[1]—वि० [स०] १ जिसका मूल न हो। वे जड का। २. निराधार। प्रमाणरहित (को०)। ३ अभौतिक (को०)। ४. चल (को०)।

अमूल[2]—सज्ञा पुं० साख्य के अनुसार प्रकृति।

अमूल[3](पु)—वि० [स० अमूल्य] अनमोल। उ०—(क) जउ भरि वूठउ भाद्रवउ मारू देस अमूल।—ढोला० दू० २५०। (ख) दिव्य वस्त्र काहू करन, नाना बरन अमूल।—पृ० रा० ६।५१।

अमूल[4](पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आमूल'। उ०—नैन चोट आसी लगी गासी ज्यौं भरपूर। मचत चलत क्योहू नही खैंचत काम अमूर।—स० सप्तक, पृ० ३५३।

अमूलक—वि० [स०] १ जिसकी कोई जड न हो। निर्मूल। २. असत्य। मिथ्या। दे० 'अमूल[1]'।

अमूला—सज्ञा स्त्री० [स०] अग्निशिखा नाम का पौधा।

अमूल्य—वि० [स०] १ जिसका मूल्य निर्धारित न हो सके। अनमोल। २. बहुमूल्य। वेशकीमती। ३. जिसके लिये कोई मूल्य न दिया जाय। मुफ्त का।

अमृत[1]—सज्ञा पु० [स०] १ वह वस्तु जिसके पीने से जीव अमर हो जाता है। पुराणानुसार समुद्रमथन से निकले हुए १४ रत्नो मे से एक। सुधा। पीयूष। निर्जर। २ जल। ३ घी। ४ यज्ञ के पीछे की बची हुई सामग्री। ५ अन्न। ६. मुक्ति। ७ दूध। ८ औषधि। ९ विष। १० बछनाग। ११ पारा। १२ घन। १३. सोना। १४ हृद्य पदार्थ। १५ वह वस्तु जो बिना मांगे मिले। १६ सुस्वादु द्रव्य। मीठी या मधुर वस्तु। १७ अमर। देवता (को०)। उ०—राजकुमार, ब्राह्मण ·· स्वराज्य मे विचरता है और अमृत होकर जीता है।—चद्र० पृ० ५६। १८ धन्वतरी (को०)। १९ इद्र (को०)। २० सूर्य (को०)। २१ शिव (को०)। २२ विष्णु (को०)। २३ सोमरस (को०)। २४ पानी (को०)। २५ चार की सख्या (को०)। २६ निर्गुण मतानुसार वह रस जो तालुमूलस्थित चन्द्रमा से स्रवित होता है और जिसे योगी साधना द्वारा जीभ को उलटा करके पीता है। २७ वाराही कद (को०)। २८ परब्रह्म (को०)। २९ भात (को०)।

अमृत[2]—वि० [स०] १ जो मरा न हो। २ जो मरणशील न हो। ३ अमरत्व प्रदान करनेवाला। ४ अविनश्वर। शाश्वत। ५ प्रिय। अभीष्ट। सुदर [को०]।

अमृतकर—सज्ञा पु० [स०] जिसकी किरणो मे अमृत रहता है। चद्रमा।

अमृतकुडली—सज्ञा स्त्री० [स० अमृतकुण्डली] १ एक छद जो प्लवगम या चाद्रायण के अत मे हरिगीतिका के दो पद मिलाने से बन जाता है। २ एक प्रकार का बाजा। उ०—बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृतकुडली यत्र।—सूर (शब्द०)।

अमृतक्षार—सज्ञा पु० [स०] नौसादर [को०]।

अमृतगति—सज्ञा स्त्री० [स०] एक छद।

विशेष—इसके प्रत्येक चरण मे एक नगण एक जगण फिर एक नगण और अत मे गुरु होता है। (।।। ।S। ।।। S) इसको त्वरितगति तथा अमृतगतिका भी कहते हैं। उ०—निज नग खोजत हरजू। पय मित लक्ष्मि बरजू (शब्द०)।

अमृतगर्भ—सज्ञा पुं० [स०] १ ब्रह्म। ईश्वर। २ जीवात्मा (को०)।

अमृतजटा—सज्ञा स्त्री० [स०] जटामासी।

अमृततरगिणी—सज्ञा स्त्री० [स० अमृततरङ्गिणी] चद्रिका। चाँदनी।

अमृतत्व—सज्ञा पु० [स०] १ मरण का अभाव। न मरना। २. मोक्ष। मुक्ति।

अमृतदान—सज्ञा पुं० [स० अमृत + फा० दान, अथवा स० मृद्भाण्] भोजन की चीज रखने का ढकनेदार बर्तन। एक प्रकार का डब्बा।

अमृतदीधिति—सज्ञा पु० [स०] चद्रमा।

अमृतद्युति—सज्ञा पु० [स०] चद्रमा।

अमृतद्रव—सज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा की किरण।

अमृतधारा—सज्ञा स्त्री० [स०] एक वर्णवृत्त जिसके चार चरणो में से प्रथम चरण मे २०, दूसरे मे १२, तीसरे मे १६ और चौथे में ८ अक्षर होते हैं। उ०—सरवस तज मन भज नित प्रभु भवदुखहर्ता। साँची अहहिं प्रभु जगतभर्ता। दनुज-कुल-अरि जगहित धरमधर्ता। रामा असुर सुहर्ता (शब्द०)।

अमृतधुनि(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० दे० 'अमृतध्वनि']।

अमृतध्वनि—सज्ञा स्त्री० [सं० अमृत + ध्वनि] २४ मात्राओ का एक यौगिक छद।

विशेष—इसके आरभ मे एक दोहा रहता है। इसमे दोहे को मिलाकर छह चरण होते हैं और प्रत्येक चरण मे झटके के साथ अर्थात् द्वित्व वर्णो से युक्त तीन यमक रहते हैं। यह छद प्रायः वीररस के लिये व्यवहृत होता है। उ०—प्रतिभट उदभट विकट जहँ लरत लच्छ पर लच्छ। श्री जगदेश नरेश तहँ, अच्छच्छवि परतच्छ। अच्छच्छवि परतच्छच्छटनि विपच्छच्छय करि। स्वच्छच्छिति अति कित्तियिर, सुअग्मित्तिमय हरि। उज्झिझ्झहरि समुज्झिझ्झहरि बिरुज्झिझ्झटपट। कुप्पप्पगट मुरुप्पप्पगनि विलुप्पप्प्रति भट।—सूदन (शब्द०)।

अमृतप[1]—वि० [स०] १ अमृत पान करनेवाला। २ मद्यप। शराबी (को०)।

अमृतप[2]—सज्ञा पु० १ देवता। २ विष्णु।

अमृतफल—सज्ञा पु० [सं०] १ नाशपाती। २ परवल।

अमृतफला—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ आँवला। २. अगूर। दाख। ३ मुनक्का।

अमृतबधु—सज्ञा पुं० [सं० अमृतबन्धु] १ देवता। २. चद्रमा।

अमृतबान—सज्ञा पु० [स० मृद्भाण्ड वा मृद्भान्] रोगनी हाँडी। मिट्टी का रोगनी पात्र। लाह का रोगन किया हुआ मिट्टी का बरतन जिसमे अचार, मुरब्बा, घी आदि रखते हैं। मर्तबान।

अमृतबिंदु—सज्ञा पुं० [स० अमृतबिन्दु] एक उपनिषद् जो अथर्ववेदीय माना जाता है

अमृतभुक्—सज्ञा पु० [स०] १. देवता। २ वह जो अमृत का पान करे [को०]।

अमृतमथन—संज्ञा पुं० [सं० अमृतमन्थन] अमृत के लिये समुद्र का मथन। समुद्रमथन [को०]।

अमृतमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमृतगति छंद [को०]।

अमृतमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

अमृतमूरि—संज्ञा स्त्री० [सं० अमृत+हिं० मूरि] संजीवनी जड़ी। अमरमूर।

अमृतमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

अमृतयोग—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक शुभफलदायक योग।

विशेष—रविवार को हस्त, गुरुवार को पुष्य, बुध को अनुराधा, शनि को रोहिणी, सोमवार को श्रवण, मंगल को रेवती, शुक्र को अश्विनी—ये सब नक्षत्र अमृतयोग में कहे जाते हैं। रवि और मंगलवार को नंदा तिथि अर्थात् परिवा, षष्ठ और एकादशी हो, शुक्र और सोमवार को भद्रा अर्थात् द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी हो, बुधवार को जया अर्थात् तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी, गुरुवार को रिक्ता अर्थात् चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी हो, शनिवार को पूर्णा अर्थात् पंचमी, दशमी और पूर्णिमा हो तो भी अमृतयोग होता है। इस योग के होने से भद्रा और व्यतीपात आदि का अशुभ प्रभाव मिट जाता है।

अमृतरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

अमृतरस—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुधा। अमृत। २ परब्रह्म [को०]।

अमृतरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ काले रंग का अंगूर। २ एक मिठाई। अनरसा [को०]।

अमृतलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुर्च। गिलोय।

अमृतलतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अमृतलता'।

अमृतलोक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग। अमरलोक।

अमृतवपु—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा। २ विष्णु [को०]। शिव [को०]।

अमृतवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञशेष सामग्री का उपयोग करना। उ०—वे तपस्वी ऋत और अमृतवृत्ति से जीवननिर्वाह करते हुए प्रार्थना करते थे।—स्कंद०, पृ० १३२।

अमृतसंजीवनी—वि० [सं० अमृतसञ्जीवनी] दे० 'मृतसंजीवनी'।

अमृतसंभवा—संज्ञा स्त्री० [सं० अमृतसम्भवा] गुर्च। गिलोय।

अमृतसहोदर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमृतसोदर'।

अमृतसार—संज्ञा पुं० [सं०] १ नवनीत। मक्खन। २ घी।

अमृतसारज—संज्ञा पुं० [सं०] गुड़ [को०]।

अमृतसू—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

अमृतसोदर—संज्ञा पुं० [सं०] १ उच्चैःश्रवा नाम का अश्व। २ अश्व। तुरग [को०]।

अमृतस्रवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुदती या रुद्रवंती नाम का पौधा [को०]।

अमृतान्धस्—संज्ञा पुं० [सं० अमृतान्धस्] देवता।

अमृतांशु—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी किरणों में अमृत हो। चंद्रमा।

अमृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गुर्च। उ०—धूप बीच यह समय न जाहू। मेवा साथ अमृता खाहू।—इंद्रा०, पृ० १५४। २ इंद्रायण। ३ मादकिनी। ४ अतीस ५ हड़। ६. लाल निसोथ। ७ आँवला। ८. दूब। ९ तुलसी। १० पीपल। पिप्पली। ११ मदिरा। १२ फिटकरी [को०]। खरबूजा [को०]। १४ शरीर की एक नाड़ी (को०)। १५ सूर्य की एक किरण का नाम [को०]।

अमृताक्षर—वि० [सं०] १ अजर। अमर। अविनश्वर [को०]। उ०—फूटी तर अमृताक्षर निर्झर।—अपरा, पृ० २३०।

अमृताफल—संज्ञा पुं० [सं०] परवर। परोरा। पटोल [को०]।

अमृतासंग—संज्ञा पुं० [सं० अमृतासङ्ग] तूतिया [को०]।

अमृताशी—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २ देवता [को०]।

अमृताशन—संज्ञा पुं० [सं०] देवता [को०]।

अमृताशी—संज्ञा पुं० [सं० अमृताशिन्] देवता [को०]।

अमृताहरण—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

अमृताह्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक फल। नाशपाती [को०]।

अमृतेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता २ शिव [को०]।

अमृतेशय—संज्ञा सं० [सं०] जलशायी विष्णु [को०]।

अमृतेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] अमृतेश [को०]।

अमृतेष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ईंट [को०]।

अमृतोत्पन्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमृतोद्भव'।

अमृतोत्पन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मक्षिका। मक्खी [को०]।

अमृतोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] खर्परी तुत्थ। खपरिया तूतिया [को०]।

अमृत्यु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम [को०]।

अमृत्यु[2]—संज्ञा स्त्री० मृत्यु का अभाव। अमरता [को०]।

अमृत्यु[3]—वि० १ अमर। अमृत बनानेवाला [को०]।

अमृष्ट—वि० [सं०] अमार्जित। जो साफ न हो। गंदा। जो शुद्ध न किया गया हो।

यौ०—अमृष्टभोजी = अपवित्र वा अशुद्ध भोजन करनेवाला। अमृष्टमृज = जिसकी शुद्धता अक्षुण्ण हो।

अमेट†—वि० [हिं०] दे० 'अमिट'। उ—काह कहौं मैं ओहि कहँ जेइ दुख कीन्ह अमेट।—जायसी ग्रं०, पृ० २४२।

अमेजना[1](पु)—क्रि० अ० [फा० आमेज] मिलावट होना। मिलना। उ०—(क) कहै पदमाकर पगी यों रस रंग जामे, खुलिगे सुअंग सब रंगनि अमेजे ते।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ४८। (ख) मोतिन की माल मलमलवारी सारी सजे, झलमल जोति होति चाँदनी अमेजे मैं।—बेनी (शब्द०)।

अमेजना[2](पु)—क्रि० स० मिलाना। मिलावट करना।

अमेठ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+मृष्ट, प्रा० पिट्ठ, (पु) पेठ (पु) अपेठ] पिय। निपट निलज इह जेठ, धाय धाय बधुवनि गहै।—दे० 'ऐंठ'। उ०—रही न ननक अमेठ तुम बिन नंदकुमार नंद० ग्रं०, पृ० १६६।

अमेठना(पु)—क्रि० स० [हिं० अमेठ से नाम०] दे० 'उमेठना'। उ०—पुनि जब भौंह अमेठन लागै। तब ये ग्वाल बाल डरि भागै।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०१।

अमेठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अमेठ+ई] ऐंठ। अकड़। अभिमान। गर्व। उ०—एक आँख शिक्षा की हेठी से देखने लगी उसे अमेठी से।—बेला, पृ० ५३।

अमेत (पु)—वि० [सं० अमित] अगणित। अनेक। अमित। उ०—सुक समीप मन कुँवरि कौ, लग्यौ वचन कै हेत। अति विचित्र पंडित सुआ, कथत जु कथा अमेत।—पृ० रा० २०।१३।

अमेदस्क—वि० [सं०] मेदा रहित। दुबला पतला [को०]।

अमेधा—वि० [सं० अमेधस्] जिसमें मेधा न हो। मूर्ख। बुद्धिहीन [को०]।

अमेध्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपवित्र वस्तु। विष्ठा, मूत्र आदि।
विशेष—स्मृति के अनुसार ये चीजें अमेध्य हैं—मनुष्य की हड्डी, शव, विष्ठा, मूत्र, चरबी, पसीना, आँसू, पीव, कफ, मद्य, वीर्य और रज।
२ एक प्रकार का प्रेत। ३ अपशकुन [को०]।

अमेध्य[2]—वि० १ जो वस्तु यज्ञ में काम न आ सके। जैसे, पशुओं में कुत्ता और अन्नों में मसूर, उर्द आदि। २ जो यज्ञ कराने योग्य न हो। ३ अपवित्र।

अमेय—वि० [सं०] १ अपरिमाण। असीम। इयत्ताशून्य। बेहद। २ जो जाना न जा सके। अज्ञेय। उ०—कथ सुंदर सुंदर नामधेय। नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमेय।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २७६।

अमेयात्मा[1]—संज्ञा पुं० [सं० अमेयात्मन्] विष्णु [को०]।

अमेयात्मा[2]—वि० महान् आत्मावाला। उदारमना। [को०]।

अमेरिकन—वि० [अं०] १ अमेरिका का। २ संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का निवासी। ३ अमेरिका संबंधी।

अमेरिका—संज्ञा पुं० [अं०] पश्चिमी गोलार्ध का एक महादेश। यह दो भागों में बँटा हुआ है—उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका। उ०—तुम नहीं मिले तुमसे हैं मिले हुए नव योरप अमेरिका।—अनामिका, पृ० २१।

अमेरिकी—वि० [हिं०] दे० 'अमेरिकन'।

अमेल—वि० [सं० अ+मेल] जिसका किसी से मेल न बैठता हो। जो किसी से मेल न खाय। अनमेल। असबद्ध।

अमेली (पु)—वि० [हिं० अमेल] अनमिल। असबद्ध। अड बड। उ०—खेलें फाग अति अनुराग सों उमग तें, वे गावैं मन भावैं, तहाँ वचन अमेली के (शब्द०)।

अमेव (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अमेय'।

अमेह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें पेशाब नहीं उतरती या रुक रुककर उतरती है।

अमैंड (पु)—वि० दे० 'अमैंडे'।

अमैंडा (पु)—वि० [हिं० अ+मेड=सीमा] मर्यादा या सीमा न माननेवाला। उ०—कोऊ न देखैं न काहू दिखावन आपनो आनन जान अमैंडे।—घनानंद, पृ० ४६।

अमैठना (पु)—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'अमेठना'।

अमोक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मोक्ष न मिलना। २ बंधन [को०]।

अमोक्ष[2]—वि० १ जिसका मोक्ष न हुआ हो। अमुक्त। २ जिसका मोक्ष न हो सके। ३ बँधा हुआ [को०]।

अमोगा—वि० [सं० अमोघ] अत्यधिक। बहुत (बोल०)।

अमोघ[1]—वि० [सं०] १ निष्फल न होनेवाला। वृथा या अन्यथा न होनेवाला। अव्यर्थ। अचूक। लक्ष्य पर पहुँचनेवाला। खाली न जानेवाला। २ अनिंद्य। अद्वितीय। उ०—सब सामंत समध चढि। बिच सुंदरी अमोघ।—पृ० रा०, २५।७८०।

अमोघ[2]—संज्ञा पुं० १ व्यर्थ न होने का भाव। अव्यर्थ। २. शिव। ३. विष्णु [को०]।

अमोघकिरण—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्योदय और सूर्यास्त के समय की किरण [को०]।

अमोघदंड—संज्ञा पुं० [सं० अमोघदण्ड] वह जो दंड देने में न चूके। शिव [को०]।

अमोघदर्शी—वि० [सं० अमोघदर्शिन्] अचूक दृष्टिवाला [को०]।

अमोघदृष्टि—वि० [सं०] दे० 'अमोघदर्शी'।

अमोघवाक्—वि० [सं०] जिसकी वाणी कभी व्यर्थ न होती हो [को०]।

अमोघविक्रम[1]—वि० [सं०] जिसका पराक्रम कभी विफल न होता हो [को०]।

अमोघविक्रम[2]—संज्ञा पुं० शिव [को०]

अमोघा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कश्यप की एक स्त्री जिनसे पक्षी उत्पन्न हुए थे। २ हड़। ३ वायविडंग। ४ पाढर का पेड़ और फूल। ५ शिव की पत्नी [को०]। ६ एक शस्त्र। शक्ति [को०]।

अमोचन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] छुटकारा न होना। न छूटना।

अमोचन[2] (पु)—वि० न छूटनेवाला। दृढ। उ०—मूँदि रहे प्रिय प्यारी लोचन। अति हित बेनी उर परसाए वेष्टित भुजा अमोचन।—सूर०—(शब्द०)।

अमोचनीय—वि० [सं०] न छूटने योग्य [को०]।

अमोद[1]—वि० [सं०] मोद रहित। आनंदशून्य [को०]।

अमोद[2] (पु)—संज्ञा पुं० [सं० आमोद] सुगंध। आमोद। उ०—नैंचे कमल अमोदहिं पाइ। ठौं ठौं उठत मधुप अकुलाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २५६।

अमोनिया—संज्ञा पुं० [अं० एमोनिया] नौसादर।

अमोर[1] (पु)—वि० [हिं०] न मुड़नेवाला। अडिग। स्थिर। उ०—रज पुत्त पचास भुजभ्भे अमोर। बनै जीत के नह नीसान घोर।—पृ० रा०, २०।६६।

अमोर[2]—वि० [हिं०] दे० 'अमोल'। उ०—सत्यनीक नामो कहैं, भूपन बुद्धि अमोर।—भूषण ग्रं०, पृ० २५८।

अमोरी (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अम+औरी (प्रत्य०)] १ आम का बहुत छोटा कच्चा फल। अँबिया। २ आमड़ा। अम्मारी। उ० —फल को नाम बुझावन लागे हरि कहि दियो अमोरि।—सूर (शब्द०)।

अमोल (पु)—वि० [सं० अमूल्य] [वि० स्त्री० अमोली] १ अमूल्य। अत्यधिक मूल्य का। मूल्यवान्। उ०—रम सिंगार पार के पाओल अमोल मनोभव मिश्र।—विद्यापति, पृ० ३५। २ जिसका मूल्य न लगाया जा सके। तुव नाम अमोल समरथ करहु दाया निर्धन।—कबीर सा०, पृ० ५२२।

अमोलक (पु)—वि० [हिं० अमोल+क (प्रत्य०)] दे० 'अमूल्य'। उ०—छाँडि काकमनि रतन अमोलक काँच की किरच गही।—सूर० (शब्द०)।

अमोला --संज्ञा पुं० [सं० आम्र] आम का नया निकलता हुआ पौधा।

अमोलिक(पु)--वि० [हिं०] दे० अमूल्य'। उ०--पाटंबर पहिराय कं अधिक अमोलिकं। नंदराय देत फूले नंददास बोलिकं।--नंद० ग्रं० पृ० ३३६।

अमोही(पु)--वि० [सं० अमोह +ई (प्रत्य०)] १ विरक्त। २. निर्मोही। निष्ठुर। उ०--मीत सुजान अनीति करौ जिन हा हा न हूजिऐ मोहि अमोही।--घनानद०, पृ०।

अमौआ[1]--संज्ञा पुं० [सं० आम+औआ (प्रत्य०)] १ आम के फल का रंग। यह कई प्रकार का होता है,जैसे, पीला, सुनहरा,मागी, किरमजी, इत्यादि। २ अमौआ रंग का कपडा।

अमौआ[2]--वि० आम के रस के रंग का।

अमौन--संज्ञा पुं० [सं०] १ मौन का अभाव। बोलना। २ आत्मज्ञान। ३ मुनि के कर्तव्यों का अपालन। मुनि न होना [को०]।

अमौलिक--वि० [सं०] १ बिना जड का। निर्मूल। २ बे सिर पैर का। बिना आधार का। जिसका मत्र मूल से न हो। ३ अयथार्थ। मिथ्या। ४ अन्य रचना के आधार पर या अनुवाद के रूप में रचित [को०]।

अम्म--संज्ञा पुं० [अ०] चाचा। उ० --कहे रे अम्मे बुजुर्गवार व मेरे दुनिया होर दीन के आधार मेरे।--दक्खिनी, पृ० २३७।

अम्मय--वि० [सं०] जलमय। जलयुक्त या जलनिर्मित [को०]।

अम्मर(पु)--वि [हिं०] दे० 'अमर'। उ०--भला है अस्थान अम्मर जोति है परगास।--जग० बानी, भा० १, पृ० ४।

अम्मरसरा--संज्ञा पुं० [हिं० अमरसर + आ (प्रत्य०)] अमृतसर का कबूतर। एक कबूतर जिसका सारा शरीर सफेद और कंठ काला होता है।

अम्मल--संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'अमल'। उ०--बाजीगिरी रंग दिखावे ऐसा अम्मल मुझे नहिं भावे।--दक्खिनी०, पृ० १२५।

अम्माँ--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बा] माता। माँ।

अम्मामा--संज्ञा पुं० [अ० अम्मामह] एक प्रकार का साफा जिसे मुसलमान बाँधते हैं।

यौ०--अम्मामेबाज--(१) साफा बाँधे हुए। (२) साफा बाँधनेवाला।

अम्मारी--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमारी'।

अम्याँ--अव्य० [हिं०] दे० 'अमाँ'। जैसे, अम्याँ क्या कहते हो।

अम्र[1]--संज्ञा पुं० [सं०] आम्र [को०]।

अम्र[2]--संज्ञा पुं० [अ०] १ बात। विषय। कार्य। मुआमिला। उ०--अम्र खुदा का लिया वजा तूँ नहीं ते मुनकिर होना।--दक्खिनी पृ० ५५। २. हुक्म। आदेश।

अम्रत(पु)[1]--पुं० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०--चउरास्या सहू वर्णव्या। अम्रत रसायण नरपति व्यास--बी० रासो, पृ० १००

अम्रात--संज्ञा पुं० [सं०] १. अमड़ा का पेड। २. अमडा फल [को०]।

अम्रातक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्रात'।

अम्रत्या(पु)--संज्ञा पुं० [सं० ब० व० अमर्त्याः] देवता। (अनेकार्थ०)।

अम्रित(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०--सत्त नाम रस अम्रित पीवहु, चरन तें लौ लाइ।--जग० बानी, भा० ६, पृ० ३५।

अम्रियमाण--वि० [सं०] जो मरणशील न हो। अमर। उ०--मैं गाता था गाने भूले अम्रियमाण।--अनामिका, पृ० ४५।

अम्ल[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ जिह्वा से अनुभूत होनेवाला छ रसों में से एक। खटाई। २ तेजाब। ३ सिरका [को०]। ४ मट्ठा जिसमें एक चतुर्थांश जल हो [को०]। ४ वमन [को०]।

अम्ल[2] --वि० खट्टा। तुर्श।

यौ०--अम्लपंचक--पाँच प्रकार के प्रमुख खट्टे फल--जंबीरी नीबू, खट्टा अनार, इमली, नारंगी और अमलबेत।

अम्लक--संज्ञा पुं० [सं०] लकुच वृक्ष। बडहार।

अम्लकांड--संज्ञा पुं० [सं० अम्लकाण्ड] एक पौधा। लवणतृण [को०]।

अम्लकेशर--संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू [को०]।

अम्लगोरस--संज्ञा पुं० [सं०] खट्टा दूध [को०]।

अम्लजन--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आक्सिजन'।

अम्लतरु--संज्ञा पुं० [सं०] इमली का वृक्ष [को०]।

अम्लता--संज्ञा स्त्री० [सं०] खट्टापन। खटाई।

अम्लनिशा--संज्ञा पुं० [सं०] शठी नाम का पौधा [को०]।

अम्लनाल--संज्ञा पुं० [सं०] अश्मंतक नाम का पौधा [को०]।

अम्लपत्री--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पलाशी लता। २ क्षुद्राम्लिका [को०]।

अम्लपनस--संज्ञा पुं० [सं०] बडहार [को०]।

अम्लपाद--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लतरु।'

अम्लपित्त--संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष जिसमें जो कुछ भोजन किया जाता है सब पित्त के दोष से खट्टा हो जाता है।

विशेष--यह रोग रूखी, खट्टी, कडवी और गर्म वस्तुओं के खाने से उत्पन्न होता है। इसके लक्षण ये हैं--रंगबिरंग का मल उतरना, दाह, वमन, मूर्छा, हृदय में पीडा, ज्वर, भोजन में अरुचि, खट्टे डकार आना इत्यादि।

अम्लफल--संज्ञा पुं० [सं०] इमली [को०]।

अम्लबीजक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लफल'।

अम्लभेदन--संज्ञा पुं० [सं०] अम्लवेत [को०]।

अम्लमेह--संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रविषयक रोग। एक प्रकार का प्रमेह [को०]।

अम्लरुहा--संज्ञा पुं० [सं०] मालवा में पाया जानेवाला एक प्रकार का पान [को०]।

अम्ललोणिका--संज्ञा पुं० [सं०] अमलोनी। नोनियाँ साग।

अम्ललोणी--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अम्ललोणिका' [को०]।

अम्ललोलिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अमलोनी' [को०]।

अम्लवर्ग--संज्ञा पुं० [सं०] खट्टे फलों या पत्तों का वर्ग जिसमें नीबू, नारंगी अनार, इमली आदि आते हैं [को०]।

अम्लवल्ली--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक कंद। त्रिपर्णिका [को०]।

अम्लवाकट--संज्ञा पुं० [सं०] आमडा फल और वृक्ष [को०]।

अम्लवाटिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पान [को०]।

अम्लवास्तूक--संज्ञा पुं० [सं०] चुक्रक [को०]।

अम्लवृक्ष--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लतरु' [को०]।

अम्लवेत--संज्ञा पुं० [सं० अम्लवेतस्] दे० 'अमलवेत'।

अम्लसार—संज्ञा पुं० [सं०] १ कांजी। २ चूक। ३ अमलबेत। ४ हिंताल। ५ अमलसार गधक। ६ नीबू का फल और वृक्ष [को०]।
अम्लहरिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँबा हल्दी। कपूर कचरी।
अम्लाकुश—संज्ञा पुं० [सं० अम्लाङ्कुश] एक खट्टा साग [को०]।
अम्लाध्युषित (रोग)—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का रोग जो अधिक खटाई खाने से होता है।
विशेष—इस रोग मे आँखें लाल हो जाती हैं कभी कभी पक भी जाती हैं, उनमे पीडा होती है, और पानी बहा करता है।
अम्लान¹—वि० [सं०] १ जो उदास न हो। मलिन न हो। बिना मुरझाया हुआ। २ जो प्रफुल्लित हो। हृष्ट। प्रसन्न। ३ निर्मल। स्वच्छ। साफ।
अम्लान²—संज्ञा पुं०[सं०] १ बाणपुष्प नामक वृक्ष। २ दुपहरिया। कटसरैया।
अम्लानि¹—वि० [सं०] जो मुरझाए नहीं [को०]।
अम्लानि²—संज्ञा स्त्री० १ शक्ति। २ ताजगी। नवता [को०]।
अम्लानी—वि० [सं० अम्लानिन्] साफ। स्वच्छ [को०]।
अम्लिका—संज्ञा स्त्री०[सं०] १ इमली। २ खट्टी डकार। ३ पलाश आदि पौधे [को०]।
अम्लिकावटक—संज्ञा पुं० [सं०] खटाई से युक्त एक प्रकार का बड़ा [को०]।
अम्लिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] खट्टापन [को०]।
अम्लीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] वह क्रिया जिसमे कोई वस्तु खट्टी की जाय।
अम्लीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अम्लिका। इमली [को०]।
अम्लीय—वि० [सं०] अम्ल विषयक। अम्ल से संबंधित [को०]।
अम्लोटक—संज्ञा पुं० [सं०] अश्मंतक पौधा [को०]।
अम्लोद्गार—संज्ञा पुं० [सं०] खट्टी डकार।
अम्ह(पु)—सर्व० [सं० अस्मद्, प्रा० अम्ह] दे० 'हम'। उ०—अम्हाँ मन अचरिज भएउ, सखियाँ आखड एम।—ढोला० दू०, ६।
अम्हौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अभ—जल+हिं० और (प्रत्य०) अथवा सं० ऊष्मा, प्रा० उम्हा, उम्ह, प्रा०*अम्ह+औरी प्रत्य०] बहुत छोटी छोटी फुसियाँ जो गरमी के दिनो मे पसीने के कारण लोगो के शरीर मे निकल आती हैं। अंधौरी।
अय—सर्व० [सं० अयम्] यह। उ०—दुइ दड भरि ब्रह्मांड भीतर काम कृत कौतुक अय।—मानस। १।८५।
अयत्र¹—संज्ञा पुं० [सं० अयन्त्र] १ वह जो वश या नियंत्रण मे न हो। १ यंत्र का अभाव। ३ अनियंत्रण। नियंत्रण का अभाव [को०]।
अयत्र²—वि० अनियंत्रित। अवशीकृत [को०]।
अयंत्रित—वि० [सं० अयन्त्रित] १ जो यंत्रित या वशीकृत न हो, स्वेच्छाचारी।
अय—संज्ञा पुं० [सं०] अयस् (लोहा) का समासगत रूप।
अय पान—संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार एक नरक का नाम।
अय पिंड—संज्ञा पुं० [सं० अय पिण्ड] लोहे का गोला। लौहपिंड [को०]।
अय शकु—संज्ञा पुं० [सं० अयःशङ्कु] १ नेजा। भला। २ लोहे की कील। अँटी [को०]।
अय शय—वि० [सं०] लोहे मे रहनेवाला (अग्नि) [को०]।
अय शूल—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक अस्त्र। तीव्र उपपात। तीक्ष्ण उपाय।
अय शोभी—वि० [अय शोभिन्] सौभाग्य से दीप्त [को०]।
अय¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ गमन। जाना। गति। २ अच्छा भाग्य। शुभविवाह विधि। अभ्युदय। ३ पासा। अक्ष। ४ शुभ कार्य। मगल कृत्य [को०]।
यौ०—अयवान् अयान्वित=भाग्यवान्।
अय²—संज्ञा पुं० [सं० अयस्] १ लोहा। उ०—भुजग सकल मुठि चचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी।—मानस, १।२६८। २ इस्पात। शुद्ध लोहा [को०]। ३ अस्त्र शस्त्र। हथियार। ४ अग्नि। ५, कोई धातु [को०]। ६ स्वर्ण [को०]।
अय³—अव्य [सं० अयि] संबोधन का शब्द। हे।
विशेष—यह अधिकतर 'ऐ' लिखा जाता है।
अयक्ष्म—वि० [सं० अयक्ष्मन्] १ नीरोग। रोगरहित। २, निरुपद्रव। बाधाशून्य।
अयजनीय—वि० [सं०] जो यज्ञ मे पूजा या आदर के अयोग्य हो। अपूज्य। २ निंदित।
अयज्ञ—वि० [सं०] १ यज्ञ न करनेवाला। २ यज्ञ न हो [को०]
अयज्ञक—वि० [सं०] जो यज्ञ के लिये अनुपयुक्त हो [को०]।
अयज्ञिय—वि०[सं०] १ जो यज्ञ के काम मे न लाया जाता हो। २ जो यज्ञ मे न दिया जाता हो। ३ अपवित्र। अशुद्ध। ४ यज्ञ करने के अयोग्य। जो शास्त्र के अनुसार यज्ञ करने का अधिकारी न हो।
अयज्ञीय—वि० [सं०] दे० 'अयज्ञिय' [को०]।
अयत—वि०[सं०] उच्छृखल। स्वेच्छाचारी। जो सयत न हो [को०]।
अयति—वि० [सं०] उद्योगहीन। यत्न न करनेवाला [को०]।
अयती—वि० [सं० अ+यतिन्] जो यती या जितेंद्रिय न हो। इंद्रियों के वश मे रहनेवाला [को०]।
अयतेंद्रिय—वि०[सं० अयतेन्द्रिय]१ जो इंद्रियों का संयम न कर सके। इंद्रियनिग्रह न करनेवाला। २ ब्रह्मचर्यभ्रष्ट। ३ चचलेंद्रिय। इंद्रिय लोलुप।
अयत्न¹—संज्ञा पुं० [सं०] यत्न का अभाव। उद्योगशून्यता।
अयत्न²—वि० यत्नशून्य। उद्योगहीन।
यौ०—अयत्नसिद्ध=अयत्नसाध्य। जो बिना प्रयास हो जाय।
अयत्नकृत्—वि० [सं०] बिना प्रयास के होनेवाला। सरलता से पूर्ण होनेवाला [को०]।
अयत्नज—वि० [सं०] स्वत हो जानेवाला। आसानी से होनेवाला [को०]।
अयत्नलभ्य—वि० [सं०] बिना प्रयास के प्राप्त होने योग्य [को०]।
अयथा¹—वि० [सं०] १ मिथ्याभूत। झूठ। अतथ्य। २ अयोग्य।
अयथा²—अव्य० गलत ढग से। अनुचित रूप से [को०]।
अयथा³—संज्ञा पुं० १. किसी काम को विधि के अनुसार न करना। विधिविरुद्ध कर्म। अनुचित काम।

अयथातथ[1]—वि० [सं०] अयथार्थ। विरुद्ध। विपरीत। यथायोग्य नहीं।

अयथातथ[2]—संज्ञा पुं० विपरीत या अयोग्य कार्य [कौ०]।

अयथातथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] अयोग्यता। अनुपयुक्तता। व्यर्थता अयथार्थता [कौ०]।

अयथाद्योतन—संज्ञा पुं० [सं०] अप्रत्याशित घटना घटित होना [कौ०]।

अयथापूर्व—वि० [सं०] जो पूर्ववत् न हो। जो पहले जैसा न हो।

अयथामुखीन—वि० [सं०] जिसका व्यवहार पहले जैसा न हो। जिसने मुँह फेर लिया हो [कौ०]।

अयथावृत्त—वि० [सं०] अनुचित या गलत ढंग से काम करनेवाला।

अयथास्थित—वि० [सं०] जो बेढंगेपन से रखा गया। अव्यवस्थित [कौ०]।

अयथार्थ—वि० [सं०] १ जो यथार्थ न हो। मिथ्या। असत्य। २ जो ठीक न हो। अनुचित। अनुपयुक्त।

यौ०—**अयथार्थज्ञान** = मिथ्या ज्ञान। झूठा ज्ञान। भ्रम।

अयथावत्—वि० [सं०] अनुचित ढंग या गलत तरीके से [कौ०]।

अयथेष्ट—वि० [सं०] १ जो यथेष्ट या संतोषजनक न हो। २ इच्छा के विपरीत हो [कौ०]।

अयथोचित—वि० [सं०] १ जो समुचित या मुनासिब न हो। २ अयोग्य [कौ०]।

अयन—संज्ञा पुं० [सं०] १ गति। चाल। २ सूर्य या चंद्रमा की दक्षिण से उत्तर या उत्तर से दक्षिण की गति या प्रवृत्ति जिसको उत्तरायण और दक्षिणायन कहते हैं। बारह राशिचक्र का आधा।

विशेष—मकर से मिथुन तक छह राशियों को उत्तरायण कहते हैं। क्योंकि इनमें स्थित सूर्य या चंद्र पूर्व से पश्चिम को जाते हुए भी क्रम से कुछ कुछ उत्तर को झुकते जाते हैं। ऐसे ही कर्क से धनु की संक्राति तक जब सूर्य या चंद्र की गति दक्षिण की ओर झुकी हुई दिखाई देती है तब दक्षिणायन होता है। ३ राशिचक्र की गति।

विशेष—ज्योतिषशास्त्र के अनुसार यह राशिचक्र प्रतिवर्ष ५४ विकला, प्रतिमास ४ विकला, ३० अनुकला और प्रतिदिन ६ अनुकला खिसकता है। ६३ वर्ष ८ महीने में राशिचक्र विषुवत् रेखा पर पूरा एक फेरा लगाता है। यह दो भागों में विभक्त है—प्रागयन और पश्चादयन।

४. ग्रह तारादि की गति का ज्ञान जिस शास्त्र में हो। ज्योतिष शास्त्र। ५ सेना की गति। एक प्रकार का सेनानिवेश (कवायद) जिसके अनुसार व्यूह में प्रवेश करते हैं। ६ मार्ग। राह। ७ आश्रम। ८ स्थान। ९ घर। १० काल। समय। ११ अंश। १२ एक प्रकार का यज्ञ जो अयन के प्रारंभ में होता था। १३ गाय या भैंस के थन के ऊपर का वह भाग जिसमें दूध भरा रहता है। उ०—अंतर अयन अयन भल, थन फल, बच्छ वेद बिस्वासी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६४।

अयनकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह काल जो एक अयन में लगे। २ छह महीने का काल।

अयनभाग—संज्ञा पुं० [सं०] अयन अंश या हिस्सा।

अयनवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य के गमन से बननेवाला वृत्त। २ ग्रहण की रेखा [कौ०]।

अयनसंक्रम—संज्ञा स्त्री० [सं० अयनसङ्क्रम] १ मकर और कर्क की संक्रांति। अयन संक्रांति। २ प्रत्येक संक्रांति से २० दिन पहले का काल।

अयनसंक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० अयनसङ्क्रान्ति] मकर और कर्क की संक्रांति। अयनसंक्रम।

अयनसंपात—संज्ञा पुं० [सं० अयनसम्पात] अयनांशों का योग।

अयनसमांत—संज्ञा पुं० [सं० अयनसमान्त] १ रात और दिन दोनों का बराबर होना। विषुवत् रेखा पर उन दो बिंदुओं में से एक, जिनपर से होकर सूर्य का क्रांतिवृत्त (सूर्य का मार्ग) विषुवत् रेखा को वर्ष में दो बार (छह छह महीने पर) काटता है। जब किसी एक बिंदु पर सूर्य आता है, तब रात और दिन दोनों बराबर होते हैं। इसी को अयनसमांत कहते हैं। २ उक्त दोनों बिंदु।

अयनांत—संज्ञा पुं० [सं० अयनान्त] अयन की समाप्ति। वह नतिक्रांत जहाँ एक अयन समाप्त हो और दूसरा अयन आरंभ।

अयनांश—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य की गतिविशेष के काल का भाग। २ विषुवत् रेखा पर के वे दो बिंदु जिनपर से होकर सूर्य का क्रांतिवृत्त (गमन का मार्ग) वर्ष में दो बार (छह छह महीने पर) काटता है और जिनपर सूर्य के आने पर रात और दिन दोनों बराबर होते हैं।

अयमदिन—संज्ञा पुं० [सं०] ६० घड़ी का वह एक ही रात दिन जिसमें दो तिथियों का अवसान हो जाय।

विशेष—कहा गया है कि ऐसे दिन में स्नान और दानादि के अतिरिक्त और कोई शुभ कर्म नहीं करना चाहिए।

अयमित—वि० [सं०] १ जिसे नियमित न किया जाय। २ जो काट छाँटकर दुरुस्त न किया गया हो। असज्जित [कौ०]।

अयम्—सर्व० [सं०] यह।

अयव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुरीष का एक कीड़ा जो यव से छोटा होता है। कद्दूदाना। २ पितृकर्म, क्योंकि इस कृत्य में यव नहीं काम आता। ३ शत्रु। ४ कृष्ण पक्ष।

अयव[2]—वि० १ जिसमें यव का प्रयोग न हो। २ अभावयुक्त। अपूर्ण [कौ०]।

अयश—संज्ञा पुं० [सं० अयशस्] १ अपयश। अपकीर्ति। २ निंदा।

अयशस्कर—वि० [सं०] अपयश का कारण। जिसके करने से बदनामी हो।

अयशस्य—वि० [सं०] जिनसे बदनामी हो। बदनाम करानेवाला।

अयशस्वी—वि० [सं० अयशस्विन्] १ जिसे यश न मिले। अकीर्तिमान्। बदनाम।

अयशी—वि० [सं० अयशस्वी, हिं० अयशी, अजसी] बदनाम।

अयश्चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का चूरा [कौ०]।

अयस—संज्ञा पुं० [सं० अयस्] लोहा।

विशेष—समासांत में प्रयुक्त, जैसे कृष्णायस, कालायस आदि।

अयस्कंस—संज्ञा पुं० [सं] लोहे का प्यालानुमा पात्र [कौ०]।

अयस्कांड —संज्ञा पुं० [सं० अयस्‌-काण्ड] १ लोहे का तीर । २ लोहे की अधिकता । ३ उत्तम लोहा [कौ०] ।

अयस्कांत —संज्ञा पुं० [सं० अयस्कान्त] चुंबक ।

अयस्कांतमणि—संज्ञा पुं० [सं० अयस्कान्त मणि] चुंबक [कौ०] ।

अयस्कार—संज्ञा पुं०[सं०]१ लोहार । २ जाँघ का ऊपरी भाग (कौ०)।

अयस्कीट—संज्ञा पुं० [सं०] मोरचा । जंग (कौ०) ।

अयस्कुंभ—संज्ञा पुं० [सं० अयस्कुम्भ] [स्त्री० अयस्कुंभी] लोहे का गगरा [कौ०] ।

अयस्कुशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोहे की बनी रस्सी । लोहे के मेल से बनी रस्सी [कौ०] ।

अयस्ताप—वि० [सं०] लोहे को तपानेवाला [कौ०] ।

अयस्थूण१--संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि [कौ०] ।

अयस्थूण२—वि० [सं०] लोहे के स्तंभ से युक्त । जिसमें लोहे के खंभे लगे हों [कौ०] ।

अयाँ—वि० [अ०] १ प्रकट । जाहिर । २ स्पष्ट ।

अयाचक—वि० [सं०] १ नहीं माँगनेवाला । जो माँगे नहीं । २ संतुष्ट । पूर्णकाम ।

अयाचित—वि० [सं०] बिना माँगा हुआ । उ०—इसे अयाचित देते हैं फल प्रेम से ।—कानन०, पृ० १०५ ।

यौ०—अयाचितोपस्थित=बिना माँगे प्राप्त । अयाचितवृत्ति, अयाचित व्रत=बिना माँगे प्राप्त वस्तु से जीविकानिर्वाह करने का नियम ।

अयाची—वि० [सं० अयाचिन्‌] १ अयाचक । न माँगनेवाला । २ अयाच्य । पूर्णकाम । संपन्न । ३ समृद्ध । धनी ।

अयाच्य —वि० [सं०] १ जिसे माँगने की आवश्यकता न हो । पूर्णकाम । भरापूरा । उ०—कुछ को अयाच्य करने से देश की दशा सुधर नहीं सकती ।—प्रेमघन०, पृ० २७६ । २ संतुष्ट । तृप्त । ३ जो माँगे जाने योग्य न हो ।

अयाज्य१--वि० [सं०] १ जो यज्ञ कराने योग्य न हो । जिसको यज्ञ कराने का अधिकार न हो । २ पतित । ३ यज्ञ के अयोग्य [कौ०] ।

अयाज्य२—संज्ञा पुं० [सं०] चांडाल । अंत्यज [कौ०] ।

अयाज्ययाजक—संज्ञा पुं० [सं०] वह याजक जो ऐसे पुरुष को यज्ञ करावे जिसको यज्ञ कराना शास्त्रों में वर्जित है ।

अयाज्ययाजन—संज्ञा पुं० [सं०] अनधिकारी व्यक्ति से यज्ञ कराना [कौ०] ।

विशेष--यह उपपातकों में है । इसे अयाज्यसयाज्य भी कहते हैं ।

अयात—वि० [सं०] जो न गया हो [कौ०] ।

अयातपूर्व—वि० [सं०] १ अनुगत । अनुयायी । २ उत्तराधिकारी । ३ स्थानापन्न [कौ०] ।

अयातयाम--वि० [सं०] १. जिसको एक पहर न बीता हो । २ जो बासी न हो । ताजा । ३ विगतदोष । शुद्ध । ४ जो अतिक्रांत काल का न हो । ठीक समय का ५. जो व्यवहृत होने से नष्ट न हुआ हो [कौ०] ।

अयाथार्थिक—वि० [सं० स्त्री० अयाथार्थिकी] १ जो तत्व न हो । गलत । झूठा । २ अवास्तविक । ३ अनुचित । असंगत [कौ०] ।

अयान१—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वभाव । निसर्ग । २ अचलता । स्थिरता ।

अयान२ वि० [सं०] बिना सवारी का । पैदल ।

अयान३(पु)—वि० [सं० अज्ञान, प्रा० अयाण] १ अज्ञ । मूर्ख । उ०—कहहु सो अधमु अयान असाधू ।—मानस, २।२०६ । २ ज्ञानरहित । नादान । उ०—मुनि हैं कुसल मेरे सुत तेरे । जे अयान अरु वृद्ध घनेरे ।—हम्मीर०, पृ० १३ ।

अयानत—संज्ञा स्त्री० [अ० इआनत] सहायता । मदद ।

अयानता(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं० अयान+ता (प्रत्य०)] ज्ञानहीनता । अज्ञता । मूर्खता ।

अयानप—संज्ञा पुं० [हिं० अयान+प (प्रत्य०)] १ अज्ञानता । अनजानापन । उ०—यहाँ को सयानप अयानप सहस सम, सूधौ सन भाय कहे मिटति मलीनता ।—तुलसी ग्रं०, पृ०, ४२६ । २ भोलापन । सीधापन ।

अयानपन(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० अयान+पन] १ अज्ञानता । २ भोलापन । सीधापन । उ०—तुव अयानपन लखि मदु नदु नए नंदलाल, जब सयानपन सीखिहैं तब धों कहा हवाल ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १२८ ।

अयानय(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] १ अच्छी या बुरी तकदीर । सौभाग्य या दुर्भाग्य २ शतरंज की एक ऐसी जगह जिसे विरोधी खिलाड़ी के मुहरे नहीं अपना सकते [कौ०] ।

अयाना--वि० पुं० [सं० अज्ञान, प्रा० अयाणय] [वि० स्त्री० अयानी] अजान । बुद्धिहीन । अज्ञानी । उ०—(क) जो पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना । तौ कि बराबरि करत अयाना ।—मानस, १।२८६ ।

अयाम - संज्ञा पुं० [सं०] १ समय या काल । समय की कमी । २ दिन का कोई भाग । ३ जो मार्ग या पथ न हो [कौ०] ।

अयाल१—संज्ञा पुं० [तु० याल फा० अयाल] घोड़े और सिंह आदि की गर्दन के बाल । केसर ।

अयाल२—संज्ञा पुं० [अ० इयाल] लड़के बाले । बाल बच्चे ।

अयालदार—संज्ञा पुं० [फा०] १ कंधे पर बालवाला पशु, जैसे घोड़ा, शेर । २ बालबच्चोंवाला गृहस्थ [कौ०] ।

अयावक—वि० [सं०] स्वाभाविक या प्रकृत्या लाल [कौ०] ।

अयावन--संज्ञा पुं० [सं०] सम्मिलित न होने देना [कौ०] ।

अयास—क्रि० वि०[सं०]अ=नहीं+यास=यत्न] बिना प्रयास ।बिना उद्योग के । सहज ही । उ०—वृक्षों से ही बढ़ो अयास ।—युग०, पृ० ७३ ।

अयास्य१—संज्ञा पुं० [सं०] १ शत्रु । विरोधी । २ प्राणवायु । ३. अंगिरा ऋषि ।

अयास्य२—वि० निश्चल । अटल ।

अयि--अव्य [सं०] हे । अरे । अरी । यह संबोधन के लिये प्रयुक्त होता है ।

अयुक—वि० [सं० अयुज्‌] अयुक्त [कौ०] ।

अयुक्छद--संज्ञा पुं० [सं०] १. सप्तपर्ण वृक्ष । छतिवन । सतौना । २. वह वृक्ष या पौधा जिसकी अयुग्म पत्तियाँ हों, जैसे बेल, अरहर आदि ।

अयुक्तनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।
अयुक्पलाश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अयुग्छद'।
अयुक्शक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।
अयुक्शर—संज्ञा पुं० [सं०] पंचशर। कामदेव [को०]।
अयुक्त—वि० [सं०] १ अयोग्य। अनुचित। बेठीक। २ अमिश्रित। असंयुक्त। अलग। ३ आपद्ग्रस्त। ४ जो दूसरे विषय पर आसक्त हो। अनमना। ६ असबद्ध। युक्तिशून्य। ७ अविवाहित (को०)।
यौ०—अयुक्तकृत् = बुरा या गलत काम करनेवाला। अयुक्तवार = जिसने दूतों या जासूसों की नियुक्ति न की हो।
अयुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ युक्ति का अभाव। असंबद्धता। गड़बड़ी। २ अयुक्तता [को०]। योग न देना। अप्रवृत्ति ३ वंशी बजाने में उँगली से उसके छेद को बंद करने की क्रिया।
अयुग—वि० [सं०] १ विषम। ताक। २ अकेला। ३ जो श्लिष्ट या मिला न हो।
अयुगक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। त्रिनयन [को०]।
अयुगपद—अव्य० [सं०] एक साथ नहीं। क्रमश [को०]।
अयुगल—वि० [सं०] दे० 'अयुग' [को०]।
अयुगिषु—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। अयुग्बाण [को०]।
अयुगू¹—वि० [सं०] १ जिसका कोई मित्र या संगी न हो। २ वह लड़की जिसकी कोई बहन न हो [को०]।
अयुगू²—संज्ञा स्त्री० वह स्त्री जिसे जीवन में एक ही संतान उत्पन्न होकर फिर कोई संतान न हो। काकवंध्या [को०]।
अयुग्बाण—संज्ञा पुं० [सं०] विषमबाण। कामदेव [को०]।
अयुग्म—वि० [सं०] १ विषम। ताक। २ अकेला। एकाकी।
यौ०—अयुग्मच्छद। अयुग्मनेत्र। अयुग्मवाह। अयुग्मशर।
अयुग्मच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] १ सप्तपर्ण वृक्ष। छतिवन। सतवन। २ वह वृक्ष या पौधा जिसकी अयुग्म पत्तियाँ हों, जैसे बेल अरहर इत्यादि।
अयुग्मनयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अयुग्मनेत्र' [को०]।
अयुग्मनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अयुग्मनेत्री] शिव। महादेव।
विशेष—शिव की शक्तियों को भी अयुग्मनेत्रा कहते हैं।
अयुग्मबाण—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।
अयुग्मवाद—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।
अयुग्मशर—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। अयुग्मबाण [को०]।
अयुग्मसप्ति—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके रथ में सात घोड़े जुते हों। सूर्य [को०]।
अयुज—वि० [सं०] १ जो जोड़ा न हो। ताक। २ अकेला। संगी-विहीन। ३ अश्लिष्ट [को०]।
अयुत¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ दस हजार संख्या का स्थान। २ उस स्थान की संख्या।
अयुत²—वि० १ असंबद्ध। युक्त न हो। २ अक्षुब्ध [को०]।
अयुतसिद्ध—वि० [सं०] जो पृथक् करने योग्य न हो। परस्पर से युक्त। अविच्छेद्य [को०]।

अयुद्ध¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो युद्ध न करता हो।
अयुध²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयुध'।
अयुध्य—वि० [सं०] जिससे युद्ध न किया जा सके। दुर्धर्ष [को०]।
अयुव—वि० [सं०] १ असंबद्ध। २ शांत [को०]।
अयुष—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० आयुष्'।
अये¹—संज्ञा पुं० [अनु०] स्लोथ की जाति का एक जंतु। यह जंतु अये, अये शब्द करता है। इसीलिये इसको 'अये' कहते हैं।
अये²—अव्य [सं०] १ क्रोध, विषाद, भयादि द्योतक अव्यय। २ संबोधन।
अयोग¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ योग का अभाव। २ अप्रशस्त योगयुक्त काल। वह काल जिसमें फलित ज्योतिष के अनुसार दुष्ट ग्रह नक्षत्रादि का मेल हो। ३ कुसमय। कुकाल। ४. कठिनाई। संकट। ५ वह वाक्य जिसका अर्थ सुगमता से न लगे। कूट। ६ अप्राप्ति। ७. असंभव। ८ अलगाव [को०]। ९ अनुपयुक्तता [को०]। १० तीव्र प्रयत्न। जोरदार कोशिश [को०]। ११. विधुर। १२ हथौड़ा [को०]। १३ किसी वस्तु को न चाहना। तापसदर्गी [को०]।
अयोग²—वि० [सं०] १ अप्रशस्त। बुरा। २ असंबद्ध [को०]। ३ जोरदार कोशिश करनेवाला [को०]।
अयोग³—वि० [सं० अयोग्य] अयोग्य। अनुचित।
अयोगव—संज्ञा पुं० [सं०] वैश्य जाति की स्त्री और शूद्र पुरुष से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति।
अयोगवाह—संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्ण जिनका पाठ अक्षरसमाम्नाय सूत्र में नहीं है।
विशेष—ये किसी किसी के मत से अनुस्वार, विसर्ग, ᳵक और ᳵप चार हैं और किसी किसी के मत से अनुस्वार, विसर्ग ᳵक ᳵख ᳵप और ᳵफ छह हैं। अनुस्वार विसर्ग के अतिरिक्त जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय भी अयोगवाह है।
अयोगी¹—वि० [सं० अयोगिन्] योगशास्त्रानुसार जिसने योगांगों का अनुष्ठान न किया हो। योगांगों के अनुष्ठान में असमर्थ। जो योगी न हो।
अयोगी²(पु)—वि० [सं० अयोग्य] अयोग्य।
अयोगुड—संज्ञा पुं० [सं०] १ लोहे की गोली। लोहे की बनी गेंद। लौह कंदुक। २ एक प्रकार का शस्त्र जिसमें लोहे के गेंद लगे रहते हैं [को०]।
अयोग्य—वि० [सं०] १ जो योग्य न हो। अनुपयुक्त २ अकुशल। नालायक। बेकाम। निकम्मा। अपात्र। ३ अनुचित। नामुनासिब। बेजा।
अयोघन—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का घन या हथौड़ा [को०]।
अयोच्छिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] मोरचा। जंग [को०]।
अयोजाल—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का बना हुआ जाल [को०]।
अयोद्धा—संज्ञा पुं० [सं०] १ निम्न कोटि का सैनिक। २ वह व्यक्ति जो योद्धा या सैनिक नहीं है [को०]।
अयोध्य—वि० [सं०] १ जिससे युद्ध न किया जा सके। अजेय। २ जो युद्ध के लिये असमर्थ हो [को०]।
अयोध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी।

विशेष—वाल्मीकीय रामायण के अनुसार इसे सरयू नदी के किनारे वैवस्त मनु ने बसाया था जो ४८ मील लंबा और १२ मील चौड़ा बड़ा नगर था। इसका एक नाम साकेत भी है। रामचंद्र जी का जन्म यहीं हुआ था। पुराणानुसार यह हिंदुओं की सप्तपुरियों में से है।

अयोध्याकांड—संज्ञा पुं० [सं० अयोध्याकाण्ड] रामायण का द्वितीय कांड।

अयोनि¹—वि०[सं०]१ जो उत्पन्न न हुआ हो। अजन्मा।२ नित्य। ३ अवैध रूप से पैदा [को०]। ४ अज्ञात कुलवाला [को०]।

अयोनि²—संज्ञा पुं० १ योनि से भिन्न। २ ब्रह्मा। ३ शिव। ४ मूसल या लोढ़ा [को०]।

अयोनिज¹—वि०[सं०]१ जो योनि से उत्पन्न न हो। जो प्रजनन की साधारण प्रक्रिया से उत्पन्न न हो। २ स्वयंभू। ३ अदेह।

अयोनिज²—संज्ञा पुं० १ विष्णु। २ ब्रह्मा। ३ शिव। ४ अगस्त्य या कुंभज ऋषि।

अयोनिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता [को०]।

अयोनिसंभवा—संज्ञा स्त्री० [सं० अयोनिसम्भवा] दे० 'अयोनिजा' [को०]।

अयोमय—वि० [सं०] लोहे से रचित। लोहे का [को०]।

अयोमल—संज्ञा पुं० [सं०] मोरचा। जंग [को०]।

अयोमुख—वि० [सं०] जिसका मुख लोहे का हो।

अयोहृदय—वि० [सं०] लोहे जैसा कठोर हृदयवाला। संगदिल। निष्ठुर [को०]।

अयौक्तिक—वि० [सं०] युक्तिहीन। असंगत [को०]।

अयौगिक—वि० [सं०] [वि०स्त्री० अयौगिकी] १ रूढ़। जो (शब्द) व्याकरणविरुद्ध हो। २ जिसका योग या जोड़ से संबंध न हो [को०]।

अरग—संज्ञा पुं० [सं० अर्घ्य = पूजाद्रव्य अथवा सं० आघ्राण, तुल० 'अरघान'] सुगंध। महक। उ०—रूप के तरंगन के अंगन ते सोंधे के अरग लै लै तरल तरंग उठै पौन की।—देव (शब्द०)

अरगम—संज्ञा पुं०[सं० अरङ्गम]१ समीप आगमन या दिखाई पड़ना। २ सहायतार्थ उपस्थित होना [को०]।

अरगर—वि०[सं०] १ तुरंत स्तुति करनेवाला। २ जहर का बना हुआ [को०]।

अरगी—वि० [सं० अरङ्गिन्] रागरहित। रागविहीन [को०]।

अरंड—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एरंड, रेंड'।

अरघन—संज्ञा पुं० [सं० अरन्घन] एक प्रकार का व्रत जो सिंहसंक्रांति और कन्यासंक्रांति के दिन पड़ता है। इस दिन 'आचारमार्तंड' के अनुसार भोजन नहीं पकाया जाता।

अरव्यंद—संज्ञा पुं० दे० 'अरविंद'। उ०—रवी पग दरस अरव्यंद मान।—पृ० रा० ६१।६३९।

अरभ—संज्ञा पुं० दे० 'आरंभ'। उ०—कथा अरंभ करइ सोइ चाहा। तेही समय गयउ खगनाहा।—मानस, ७।६३।

अरभना¹—क्रि० स [सं० आ + रम्भ = शब्द करना] बोलना। नाद करना। उ०—रोवत पंखि विमोहे जस कोकिला अरंभ। जाकरि कनक लता सो बिछुरा पीतम खंभ।—जायसी ग्रं०, पृ० १५८।

अरभना²—क्रि० स० [सं० आरम्भण] आरंभ करना। शुरू करना उ०—सकुर्वाहि भवन विभूषन परसत जा वपु। तेहि सरीर हर हेतु अरंभेउ बड तपु।—तुलसी (शब्द०)।

अरभना—क्रि० अ० आरंभ होना। शुरू होना। उ०—प्रनरयु अवध अरंभेउ जब ते। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें।—मानस २।१५७।

अर¹—संज्ञा पुं० [सं०]१ पहिए की नाभि और नेमि के बीच की आड़ी लकड़ी। आरागज। २ आरी। ३ कोण। कोना। ४ सेवार। ५ पित्तपापड़ा। पर्पट [को०]।

अर²—वि० १ शीघ्र। जल्दी। २ छोटा [को०]।

अर³—संज्ञा पुं० [हिं० अड] १ हठ। अड। जिद। उ०—(क)परि पाकरि विनती घनी नीमरजा ही कीन। अब न नारि अर करि सकै जदुराय परम प्रवीन।—विहारी (शब्द०)।

अरइल¹—वि० [हिं० अरना, अड़ना] जो चलते चलते रुक जाय और आगे न बढ़े। अड़ियल।

अरइल²—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक वृक्ष का नाम। २ प्रयाग में वह स्थान जहाँ गंगा में यमुना मिलती है। अरैल। उ०—की कालिंदी विरह सताई। चलि पयाग अरइल बिच आई। —जायसी ग्रं०, पृ० ४६।

अरई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋ = जाना] बैल हाँकने की छड़ी या पैने के सिरे पर की लोहे की नुकीली कील जिससे बैल को गोदकर हाँकते हैं। प्रतोद।

मुहा०—अरई लगाना = ताकीद करना। प्रेरणा करना।

अरई²—संज्ञा स्त्री० दे० 'अरवी'।

अरक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेवार। २ पहिए का आरा। आरागज [को०]। ३ पित्तपापड़ा [को०]।

अरक²—संज्ञा पुं० [अरक] १ किसी पदार्थ का रस जो भभके में खींचने से निकले। आसव। अर्क।

क्रि० प्र०—उतरना। खींचना। निकालना।

२ रस।

क्रि० प्र०—निचोड़ना।

३ पसीना।

क्रि० प्र०—आना—निकलना।

मुहा०—अरक अरक होना = पसीने से भीग जाना।

अरक³—संज्ञा पुं० [सं० अर्क] १ मदार। आक। उ०—छवि छवि अरकन मे खरि खरकन मे अमि अरकन मे जाइ छमें।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८९। २ सूर्य।

अरकगीर—संज्ञा पुं० [फा०] नमदे का बना हुआ वह टुकड़ा जिसको घोड़े की पीठ पर रखकर जीन या चारजामा खींचते हैं।

अरकटी—संज्ञा पुं० [हिं० आड़ + काटना] वह माँझी जो नाव की पतवार पर रहता और उसे घुमाता है।

अरकना¹—क्रि० अ० [अनु०] अर्राकर गिरना। टकराना। उ०—कढे दंत बिनु अन्न जुध्धि पर जुध्धि अरक्किय।—सूदन (शब्द०)।

अरकना²—क्रि० अ० [हिं० दरकना] फटना। दरकना।
यौ०—अरकना दरकना।

अरकनाना—संज्ञा पुं० [अ०] एक अरक जो पुदीना और सिरका मिलाकर खींचने से निकाला जाता है।

अरकना बकरना(पु)—क्रि० अ० [अनु०] इधर उधर करना। ऐंचातानी करना। उ०—अर के डरि के अरकैबरकै फरकै न रुकै मजिबोई चहै।—केशव (शब्द०)।

अरक बादियान(पु)—संज्ञा पुं० [अ०] सौंफ का अरक।

अरकला(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्गला=अगरी या बेंडा] रोक। मर्यादा। उ०—भाँट अहै ईश्वर की कला। राजा सब राखहिं अरकला।—जायसी (शब्द०)।

अरकसी†—संज्ञा स्त्री० [सं० आलस्य] सुस्ती। प्रमाद।

अरकाट—संज्ञा पुं० दक्षिण भारत का एक स्थान।

अरकाटी—संज्ञा पुं० [हिं० अरकाट] वह व्यक्ति जो कुलियों आदि को चाय के बगीचों में या मारिशस, गिआना आदि टापुओं में काम करने के लिये भरती करके भेजता हो।

अरकान—संज्ञा पुं० [अ० 'रुक्न' का बहुव०] राज्य के प्रधान संचालक। प्रधान राजकर्मचारी। मंत्रिवर्ग। उ०—रावन अहहिं सकल अरकाना। सनहिं लेहु दूर है जाना।—जायसी (शब्द०)।

अरकासर—संज्ञा पुं० [सं० कासार] तालाब। बावली।—डिं०।

अरकोल—संज्ञा पुं० [सं० कौलीरा] एक वृक्ष जो हिमालय पर्वत पर होता है। इसका पेड़ झेलम से आसाम तक २००० से ८००० फुट की ऊँचाई पर मिलता है। इसकी गोंद ककरासिंगी या काकड़सिंगी कहलाती है। लाखर।

अरक्षित—वि० [सं०] १ जिसकी रक्षा न की गई हो। रक्षाहीन। २ जिसका रक्षक न हो।

अरखट(पु)—संज्ञा पुं० [(पु)अखरावट, (पु)अखरौटी, (पु)अखरोट] १. अक्षर २ लिखावट। उ०—लिख लिलाट पट्ट बिधि अरखट मिटही न कोटि जतन धीरे धँए।—अकबरी०, पृ० ३२४।

अरग¹—संज्ञा पुं० [सं०अगरु=एक चंदन] अरगजा। पीले रंग का एक मिश्रित द्रव्य जो सुगंधित होता है। इसे देवताओं को चढ़ाते हैं और माथे में लगाते हैं।

अरग²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्क'। उ०—अरुन बरुन उट्ठायो। अरग उद्दिग उद्दिग जुज।—पृ० रा०, ६१।१६६५।

अरगजा—संज्ञा पुं० [हिं०] एक सुगंधित द्रव्य जो शरीर में लगाया जाता है। यह केशर, चंदन, कपूर, आदि को मिलाने से बनता है। उ०—मैं लै दयौ, लयौ सुकर छुवत छिनकि गौ नीरु। लाल तिहारो अरगजा, उर ह्वै लग्यौ अबीरु।—बिहारी र०, दो० ५३५।

अरगजी¹—संज्ञा पुं० [हिं० अरगजा] एक रंग जो अरगजे का सा होता है।

अरगजी²—वि० १ अरगजी रंग का। २ अरगजा की सुगंध का। उ०—उरधारी लटै छूटी आनन पर भीजी फुलेलन सो आली हरि संग केलि। सोंधे अरगजी अरु सरगजी सारी केसरि खोरि बिराजित कहुँ कहुँ कुचनि पर दरकी अँगिया घन बेलि।—(शब्द०)।

अरगट(पु)—वि० [हिं० अलगंट] पृथक्। अलग। निराला। भिन्न उ०—बाल छबीली तियनु में बैठी आपु छिपाई। अरगट ही फानूस सी परगट होति लखाइ।—बिहारी र०, दो० ६०३।

अरगडा†—संज्ञा पुं० दे० 'अर्गला'।

अरगन—संज्ञा पुं० [अं० आर्गन] एक अँगरेजी बाजा।
विशेष—यह धौंकनी से बजता है। इसमें स्वर निकलने के लिये नलियाँ लगी रहती है। यह बाजा प्रायः गिरजाघरों में रहता है और एक आदमी के बजाने से बजता है।

अरगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अलगनी] बाँस, लकड़ी या रस्सी जो किसी घर में कपड़े आदि रखने के लिये बाँधी या लटकाई जाय। अलगनी।

अरगल—संज्ञा पुं० [सं० अर्गल] १ वह लकड़ी जो किवाड़ बंद करने पर इसलिये आड़ी लगाई जाती है कि किवाड़ बाहर से खुले नहीं। ब्योंडा। गज। उ०—अरि दुर्ग लूटि अरगल अखंड। जनु धरी बडाई बाहु दंड। गोपुर कपाट विस्तार झारि। गहि धर्यो बच्छ थल में सँवारि।—गुमान (शब्द०)।

अरगवान—संज्ञा पुं० [फा०] गहरे लाल रंग का एक फूल तथा उक्त फूल का वृक्ष [को०]।

अरगवानी¹—संज्ञा पुं० [फा०] रक्तवर्ण। लाल रंग।

अरगवानी²—वि० १ गहरे लाल रंग का। लाल। बैंगनी।

अरगा†—संज्ञा [फा० इर्क़ात] घोड़े की एक प्रकार की चाल। कदम चाल जिसमें चारों पैर अलग अलग पड़ते है।
विशेष—इस चाल को चलते समय घोड़ा देह को साधकर चलता है। चारों टाँग अलग अलग पड़ती हैं। इस चाल में सवार घो े की लगाम खिंची हुई रखता है और घोड़े का कल्ला (गर्दन) उठा हुआ और स्थिर रहता है।

अरगाना¹(पु)—क्रि० अ० [हिं० अलगाना] १ अलग होना। पृथक् होना। उ०—(क) लोग भरोसे कौन के जग बैठे अरगाय।—कबीर (शब्द०)। २ सन्नाटा खींचना। चुप्पी साधना। मौन होना। (ख) सुनि लिहचौ उनहीं की कह्यौ। अपनी चाल समुझि मन ही मन गुनि अरगाई रह्यौ।—सूर०, १०।४१२३।
मुहा०—प्राण अरगाना=प्राण सूखना। अकचका जाना। विस्मित होना। उ०—जासौं जैसी भाँति चाहियै ताहि मिले त्यौं धाइ। देस देस के नृपति देखि यह प्रीति रहे अरगाइ।—सूर०, १०।४२८२।

अरगाना²(पु)—क्रि० स० अलग करना। छाँटना। उ०—बरनि न जाइ भक्त की महिमा बारंबार बखानौं। ध्रुव गजपूत बिदुर दासी सुत कौन कौन अरगानौ।—सूर०, १।११।

अरघ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्घ] १. सोलह उपचारों में से एक। वह जल जिसे फूल, अक्षत, दूब आदि के साथ किसी देवता के सामने गिराते हैं। उ०—करि आरती अरघ तिन्ह दीन्हा। राम गमनु मंडप तब कीन्हा।—मानस, १।३१९। २ वह जल

जो हाथ धोने के लिये किसी महापुरुष को उसके आने पर दिया जाय। उ०—आदर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने।—तुलसी (शब्द०)। ३ वह जल जो बरात के आने पर वहाँ भेजा जाता है। उ०—गिरिवर पठए बोलि लगन बेरा भई। मगल अरघ पावडे देत चले लई।—तुलसी ग्र० पृ० ३९। ४ वह जल जो किसी के आने पर दरवाजे पर उसके सामने आनदप्रकाशनार्थ ढरकाया जाता है। ढरकावन। उ०—गजमुकुता हीरामनि चौक पुराइय हो। देइ सु अरघ राम कहु लेइ बैठाइय हो।—तुलसी ग्र०, पृ० ३। ५ जल का छिड़काव। उ०—नाइ सीस पगनि असीस पाइ प्रमुदित पावडे अरघ देत आदर से आने हैं।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। उ०—हरि को मिलन सुदामा आयो। विधि करि अरघ पावडे दीदे अतर प्रेम बढायो।—सूर (शब्द०)। दना। उ०—हृदय ते नहिं टरत उनके श्याम नाम सुहेत। अश्रु सलिल प्रवाह उर मनो अरघ नैनन देत।—सूर (शब्द०)।

अरघटी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह बाल्टी जो रहट मे लगी रहती है। २ गहरा कूप [को०]।

अरघट्ट—सज्ञा पुं० [सं०] रहट। अरहट।

अरघट्टक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरघट्ट'।

अरघनी†—सज्ञा स्त्री० [स० अर्घरणिक] आम का वह पत्ता जिसका प्रयोग देवविशेष को जल देने मे किया जाता है।

विशेष—कभी कभी पडित अपने यजमान के हाथ मे एक आम का पता देते हैं और देवविशेष के लिये जल छुडवाते हैं, तब वह पत्ता अरघनी कहलाता है।

अरघा¹—सज्ञा पुं० [सं० अर्घ]१ एक पात्र जिसमें अरघ का जल रखकर दिया जाता है। यह ताँबे का थूहर के पत्ते के आकार का गावदुम होता है। २ एक पात्र जिसमे शिवलिंग स्थापित किया जाता है। जलधरी। ३ वह पात्र जिसमे अर्घ रखकर दिया जाता।

अरघा²—सज्ञा पुं० [स० अरघट्ट] कुएँ की जगत पर पानी निकलने के लिये बनाया गया रास्ता। चँवना।

अरघान(पु)†—सज्ञा पुं० [स० आघ्राण] गध। महक। आघ्राण। उ०—(क) भौंर केस वह मालति रानी। विसहर लुरे लेहिं अरघानी।—जायसी ग्र०, पृ० ४१। (ख) अरघान की फैन, मैली हुई मालिनी की मृदुल मौन।—आराधना पृ० ७।

अरघानि(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरघान'।

अरचन(पु)—सज्ञा पुं० [सं०अर्चन] पूजा। नव प्रकार की भक्ति मे से एक। उ०—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादरत, अरचन, वदन दास। सख्य और आत्मनिवेदन, प्रेम लक्षणा जास।—सूर (शब्द०)।

अरचना(पु) —क्रि० स० [सं० अर्चन] पूजा करना। उ०—(क) दुख मे आरत अधम जन पाप करैं डर डारि। बलि दै मूतन मारि पशु अरचैं नही मुरारि।—दीनदयाल (शब्द०)।

अरचल†—सज्ञा स्त्री० [हिं० अडचन] अडस। रुकावट। अड़चन। उ०—मैं कैसे चलौं सजनी चलो न जाय। उरझी है मारी रे वैरिया की झारी रे अरचन और परी।—प्रताप (शब्द०)।

अरचा(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अर्चा¹'। उ०—त्यो पदमाकर सालिगराम को कै अरचा चरनोदक चाखै।—पद्माकर ग्र०, पृ० २४४।

अरचि(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्चि] ज्योति। दीप्ति। आभा। प्रकाश। तेज। उ०—भे चलत अकरि करि ममरपन रचि मुखमडल अरचिकर।—गोपाल (शब्द०)।

अरचित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अर्चित'।

अरज¹—सज्ञा स्त्री० [अ० अर्ज़] विनय। निवेदन। विनती। उ०—होत रग संगीत गृह प्रतिध्वनि उठत अपार। अरज करत निकरत हुकुम मनो काम दरबार।—गुमान (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—कहना।

यौ०—अरज गरज।

अरज†²—सज्ञा पुं० [अ० अर्ज़] चौडाई।

अरज³—वि० [सं०] १ जिसमे धूल न लगी हो। स्वच्छ। २ राग आदि से रहित। ३ जिसे मासिक धर्म न हो [को०]।

अरजन(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अर्जन'। उ०—करन लगे जब सो अन्याय सहित धन अरजन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५३।

अरजना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अरज से नाम०] निवेदन या प्रार्थना करना।

अरजम—सज्ञा पुं० [देश०] कुवी नाम का एक बडा वृक्ष जिसकी लकडी से खेती के औजार और गाड़ी के धुरे आदि बनाए जाते हैं। वि० दे० 'कुवी'।

अरजल¹—सज्ञा पुं० [अ० अर्जल] १ वह घोडा जिसके दोनो पिछले पैर और अगला दाहिना पैर सफेद या एक रग का हो। (ऐसा घोडा ऐवी माना जाता है)। उ०—तीन पाँव एक रग हो एक पाँव एक रग। ताको अरजल कहत हैं करत राज मे भग। २ नीच जाति का पुरुष। ३. वर्णसकर।

अरजल²—वि० नीच, जैसे अरजल कौम।

अरजस्क—वि० [सं०] दे० 'अरज³'।

अरजाँ—वि० [फा०] सस्ता। कमकीमत [को०]।

अरजा¹—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ भार्गव ऋषि की पुत्री। २ घीकुआर। घृतकुमारी। ३ वह कन्या जिसे रजोधर्म न हुआ हो [को०]।

अरजा²—वि० [सं०] अरजस्वला [को०]।

अरजी¹†—सज्ञा स्त्री० [अ० अर्जी] १ आवेदनपत्र। निवेदनपत्र। प्रार्थनापत्र। उ०—गरजी ह्वै दियो उन पान हमैं पढि साँवरे रावरे की अरजी।—तोष (शब्द०)। २ दे० 'अर्जी'।

अरजी²(पु)†—[अ० अर्ज+हिं० ई (प्रत्या०)] प्रार्थी। उ०—अरजी पिव पिव रटन परखि तब प्रगटत मरजी।—सुधाकर (शब्द०)।

अरजुन(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्जुन'।

अरज्जु¹—वि० [सं०] बिना रस्सीवाला [को०]।

अरज्जु²—सज्ञा पुं० कारागृह। जेल [को०]।

अरझना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरुझना'।

अरझा¹†—सज्ञा पुं० [दे०] छोटी जाति का सन। सनई।

अरझा²†—सज्ञा पुं० [हिं० अरुझना] १ उलझन। झमेला। २. बखेडा। टटा। झगडा।

अरटु—संज्ञा पुं० [सं०] अरल नाम का वृक्ष [को०] ।

अरडीगा†—वि० [देश०] बलिष्ठ । जोरावर ।—डिं० ।

अरण†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरण्य' । उ०—अरण आज्ञाकारी मूझ नायक अवध अवध वितानै वेग आवी ।—रघु० रू०, पृ० १०४ ।

अरणव(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्णव' । उ०—अरणव साते उदर विरछ रोमाच विचार्लै ।—रघु० रू०, पृ० ४४ ।

अरणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रकार का वृक्ष । गनियार । अँगेयू । २ सूर्य । ३ काठ का बना हुआ एक यंत्र जो यज्ञों मे आग निकालने के काम आता है । अग्निमथ ।

विशेष—इसके दो भाग होते हैं—अरणि या अधरारणि और उत्तरारणि । यह शमीगर्भ अश्वत्थ से बनाया जाता है । अधरारणि नीचे होती है और इसमे एक छेद होता है । इस छेद पर उत्तरारणि खडी करके रस्सो से मथानी के समान मथी जाती है । छेद के नीचे कुश या कपास रख देते है जिसमे आग लग जाती है । इसके मथने के समय वैदिक मंत्र पढते हैं और ऋत्विक् लोग ही इनके मथने आदि का काम करते हैं । यज्ञ मे प्राय अरणि से निकली हुई आग ही काम मे लाई जाती हैं । ४ चीता नामक वृक्ष या उसकी लकडी । ५ स्योनाक । सोना पाढा । ६ अग्नि । ७ चकमक पत्थर ।

अरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अरणि' ।

अरणिकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निमंथ नामक वृक्ष (को०) ।

अरणीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] शुकदेव ।

विशेष—लिखा है कि व्यास जी का वीर्यपात अरणी पर होने से शुकदेव की उत्पत्ति हुई थी ।

अरण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ वन । जंगल । २ कटफल । कायफल । ३ सन्यासियो के दस भेदो मे से एक । ४. रामायण का एक कांड ।

यौ० —अरण्यगान अरण्यरोदन ।

अरण्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १ जगल । २ जगली सभा । ३ एक पौधा [को०] ।

अरण्यकणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जगली जीरा [को०] ।

अरण्यगान—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के अतर्गत एक गान जो जगल मे गाया जाता था ।

अरण्यचद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अरण्यचन्द्रिका] जगल की चाँदनी (ला०) । वह शृंगार जिसका देखनेवाला या प्रशंसा करनेवाला न हो [को०] ।

अरण्यदमन—संज्ञा पुं० [सं०] दौन नामक एक पौधा । दौना [को०] ।

अरण्यनृपति—संज्ञा पुं० [सं०] शेर । सिंह [को०] ।

अरण्यपडित—संज्ञा पुं० [सं० अरण्यपण्डित] मूर्ख व्यक्ति । बुद्धिहीन मनुष्य [को०] ।

अरण्यमक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] डाँस । जगली मक्खी [को०] ।

अरण्ययान—संज्ञा स्त्री० [सं०] वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश करना [को०] ।

अरण्यरोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १ निष्फल रोना । ऐसी पुकार जिसका सुननेवाला कोई न हो । २. ऐसी बात जिसपर कोई ध्यान न दे । वह बात जिसका कोई ग्राहक न हो । जैसे—इस भीडभाड मे कोई बात कहना अरण्यरोदन है ।—(शब्द०) ।

अरण्यवास्तुक—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली बेंत [को०] ।

अरण्यवास्तूक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरण्यवास्तुक' [को०] ।

अरण्यविलाप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरण्यरोदन' [को०] ।

अरण्यव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो मृगशिरा नक्षत्र के बारहवें दिन पडता है [को०] ।

अरण्यश्वान—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेडिया । २ गीदड [को०] ।

अरण्यषष्ठी—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो जेठ महीने के शुक्ल पक्ष मे पडता है ।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ फलाहार करती हैं और देवी की पूजा करती हैं यह व्रत सतानवर्धक माना जाता है । शास्त्रानुसार स्त्रियो को बेना लेकर जगल मे घूमना चाहिए ।

अरण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ओषधि ।

अरण्यानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बीहड जगल या बीरान जगल । २. वन की देवी [को०] ।

अरण्यायन—संज्ञा पुं० [सं०] वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश करना [को०] ।

अरण्यीय—वि० [सं०] १ जगल का । २ जगल के समीप [को०] ।

अरत—वि० [सं०] १ जो अनुरक्त न हो । जो किसी पदार्थ मे आसक्त न हो । २ विरत । विरक्त । उ०—मन गोरख गोविंद मन, मन ही ओषधि सोय । जो मन राखै यतन करि, आपै अरता होय ।—कबीर (शब्द०) । ३ सुस्त । आलसी । ४ असतुष्ट ।

अरति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विराग । चित्त का न लगना । उ०—सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु । रचि प्रपच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु ।—मानस, २।२६४ । २ जैन शास्त्रानुसार एक प्रकार का कर्म जिसके उदय मे चित्त किसी काम मे नही लगता । यह एक प्रकार का मोहनीय कर्म है । अनिष्ठ मे खेद उत्पन्न होने को भी अरति कहते है ३ असतोष [को०] । ४. क्रोध [को०] । ५ चिंता [को०] । ६ उच्चाटन [को०] । ७ उद्वेग [को०] । ८ सुस्ती । प्रमाद [को०] । ९. व्यथा । पीडा [को०] । १०. एक प्रकार पित्तरोग [को०] ।

अरति[2]—वि० १ असतुष्ट । २ शातिरहित । अशात । ३. सुस्त । प्रमादी [को०] ।

अरत्त(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अरत' । उ०—आलिंगन दे हृथ्थ धरि, अरु पुच्छिय इह वत्त । जा जीवन रत्तौ जगत, तू क्यो राज अरत्त ।—पृ० रा०, ११५४८ ।

अरत्नि—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाहु । हाथ । २ कुहनी । ३. मुट्ठी बँधा हाथ । ४ मीमासा शास्त्र के अनुसार एक माप ।

विशेष—इससे प्राचीन काल मे यज्ञ की वेदी आदि मापी जाती थी । यह माप कुहनी से कनिष्ठा के सिरे तक होती है ।

अरथ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्थ' । उ०—भनइ विद्यापति, कहओ बुझाए अरथ असंभव के पतिआए ।—विद्यापति, पृ० २२६ ।

अरथाना(पु)†—क्रि० स० [सं० अर्थ+हिं० आना (प्रत्य०)] १ समझाना । विवरण करना । उ०—पठवो दूत भरत कौं

ल्यावन वचन कह्यौ बिलखाई। दशरथ वचन राम बन गवने यह कहियो अरथाइ।—सूर०, ९।४७। २ व्याख्या करना। बताना। उ०—भा विहान पंडित सब आए। काढि पुरान जनम अरथाए। जायसी ग्रं०, पृ० १९।

अरथी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० रथ] १ लकड़ी की बनी हुई सीढ़ी के आकार का एक ढाँचा जिसपर मुर्दे को रखकर श्मशान ले जाते हैं। टिखटी। विमान।

अरथी[2]—वि० [सं०अ+रथी] १ जो रथी न हो। पैदल। २ जो रथ पर से युद्ध न करे [को०]।

अरथी[3]—वि० [हिं०] दे० 'अर्थी'। उ०—उत्तम मनुहारिन करे मानै मानिनि मक। मध्यम समयी अधम निजु अरथी निलजु निसक।—भिखारी ग्रं० भा० १, पृ० २७।

अरदड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का करील जो गंगा के किनारे होता है।

अरद[1]—वि० [सं०] १ बिना दाँतवाला। २ जिसके सभी दाँत गिर गए हों [को०]।

अरद[2]—संज्ञा पुं० १. दुःख पहुँचाना। २ विनाश [को०]।

अरदन[1]—वि० [सं० अ+रदन] १ बे दाँत का। बे दाँतवाला।

अरदन[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्दन'।

अरदना(पु)†—क्रि० स० [सं० अर्द्दन] १ रौंदना। कुचलना। उ०—जदपि अरदरिपु बधत तदपि रद काति प्रकासत।—गोपाल (शब्द०)। २ वध करना। मार डालना। उ०—जिमि नकुल नाग को मद हरत तिमि अरि अरदत प्रण किए।—गोपाल (शब्द०)।

अरदल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो पश्चिमी घाट और लंका द्वीप में होता है।

विशेष—इससे पीले रंग की गोंद निकलती है जो पानी में नहीं घुलती, शराब में घुलती है। इससे अच्छा पीले रंग का वारनिश बनता है। इसका फल खट्टा होता है और खटाई के काम आता है। इसके बीज से तेल निकलता है जो ओषधि के काम आता है। इसकी लकड़ी भूरे रंग की होती है जिसमें नीली धारियाँ होती हैं। गोरका। ओट। भव्य।

अरदली—संज्ञा पुं० [अं० ऑर्डरली] वह चपरासी या भृत्य जो किसी कर्मचारी या राजपुरुष के साथ कार्यालय में उसके आज्ञापालन के लिये नियुक्त रहता है और लोगों के आने इत्यादि की इत्तला करता है।

अरदावा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अर्दद्, फा० आरद] १ दला हुआ अन्न। कुचला हुआ अन्न। २. भरता। उ०—घीव टाँक महँ सोंध मिरावा। पख बघार कीन्ह अरदावा।—जायसी (शब्द०)।

अरदास(पु)†—संज्ञा स्त्री० [फा० अर्जदाश्त] १ निवेदन के साथ भेंट। नजर। उ० एहि विधि ढील दीन्ह तब ताईं। देहली की अरदासें आईं।—जायसी (शब्द०)। २ शुभ कार्य या यात्रारंभ में किसी देवता की प्रार्थना करके उसके निमित्त कुछ भेंट निकाल रखना। ३ वह ईश्वरप्रार्थना जो नानकपंथी प्रत्येक शुभ कार्य, चढ़ावे आदि के आरंभ में करते हैं। ४ प्रार्थना। विनती।

अरधंग[1](पु)—संज्ञा [सं० अर्द्धाङ्ग] १ आधा अंग। उ०—सिव साहेब अचरज भरो सकल रावरो अंग। क्यों कामहिं जारचो, कियो क्यों कामिनि अरधंग।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १२५। २ शिव। उ०—तजै गौरि अरधंग अचल ध्रुव आसन चल्लै।—हम्मीर०, पृ० १३।

अरधंग[2]—वि० दे० 'अर्धांग'।

अरधंगी[1](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्धांगी'।

अरधंगी[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [अरधंग+ई (प्र०)] स्त्री। पत्नी। उ०—आपु भए पति वह अरधंगी। गोपनि नाउँ धरयो नवरंगी। सूर०, १०।३१४४।

अरधांगी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्द्धांग'।

अरध[1](पु)—वि० [हिं०] दे० 'अर्ध'। उ०—कूट्यो पहार सतखंड ह्वै अरध खंड गढ भरहरघो।—हम्मीर०, पृ० ४३।

अरध[2](पु)—क्रि० वि० [सं० अध०] अंदर। भीतर। उ०—अरध उरध अस है दुइ हीया। परगट गुपुत बरै जस दीया।—जायसी (शब्द०)।

अरधभाषरी(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] अर्ध भाषरी। एक प्रकार का राजस्थानी गीत जो भाषरी का आधा होता है।

अरधसावझड(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार का राजस्थानी गीत।

अरधाई(पु)—वि० [हिं० अरध+आई प्रत्य०] आधा। उ०—तीनि हाथ एक अरधाई।—कबीर ग्रं०, पृ० १३३।

अरध्र—वि० [सं०]१ जो पराजित न हो। अपराजेय।२ समृद्ध [को०]।

अरन[1]—संज्ञा पुं० [हिं० अड़न] एक प्रकार की निहाई जिसके एक या दोनों ओर नोक निकली होती है।

अरन[2]—संज्ञा पुं० [सं० अरण्य, प्रा० अरण्ण] दे० 'अरण्य'।

अरना[1]—संज्ञा पुं० [सं० आरण्यक] जंगली भैंसा।

विशेष—जंगलों में इनके झुंड के झुंड मिलते हैं। यह साधारण भैंसे से बड़ा और मजबूत होता है। इसके सुडौल और दृढ़ अंगों पर बड़े बड़े बाल होते हैं। इसका सींग लंबा, मोटा और पैना होता है और शेर तक का सामना करता है।

अरना[2](पु)—क्रि० अ० [हिं०] शीघ्रता करना। उ०—करौ दया मो सीस दया कर आयौ सार चार गुण अरकर।—रा० रू०, पृ० ६। २ दे० 'अड़ना'।

अरनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अड़न'। उ०—बरषि निझरे मेघ पाइक बहुत कीनो अरनि। सूर सुरपति हारि मानी तब परयो दुहुँ चरनि।—सूर०, १०।९५९।

अरनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अरणी] १ एक छोटा वृक्ष जो हिमालय पर होता है।

विशेष—इसका फल लोग खाते हैं। इसकी गुठली भी काम आती है। काश्मीरी और काबुली अरनी बहुत अच्छी होती है। इसकी लकड़ी से चरखे की चरख और डोई आदि बनती है। यह माघ, फाल्गुन में फूलता है और बरसात में पकता है।

२—यज्ञ का अग्निमंथन काष्ठ जो शमी के पेड़ में लगे हुए पीपल से लिया जाता है। वि० दे० 'अरणि'। उ०—बारबार

बिचार तें उपजै ज्ञान प्रकास। ज्यौं अरनी मथन तें प्रगटै गूढ़ हुतास।—दीन० ग्रं०, पृ० १६६। ३ जलन। दाह।

अरन्य(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरण्य'। उ०—'दास' कहै मृगहू को उदास कै बास दियो है अरन्य गँभीरनि।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० ५०१।

अरपन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्पण'। उ०—बरनै दीनदयाल न देखत रूप कुरूपहि। जो घट अरपन करै ताहि ते ममता कूपहि।—दीन० ग्रं०, पृ० २५६।

अरपना(पु)—क्रि० स० [सं० अर्पण] अर्पण करना। भेंट करना। उ०—(क) पहिले दाता सिख भया तन मन अरपा सीस।—कबीर (शब्द०)। (ख) तोहि आम की मंजरी अरपित हो सिर माय। महाराज कंदर्प के धनुष दियो जिन हाय।—शकुंतला, पृ० १०६।

अरपा—संज्ञा पुं० [देश०] एक ममाला।

अरपित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अर्पित'।

अरब¹—संज्ञा पुं० [सं० अर्बुद] [१ सौ करोड। संख्या में दसवाँ स्थान। २ इस स्थान की संख्या।

अरब²—संज्ञा पुं० [सं० अर्वन्] १ घोडा। २ इंद्र। उ०—सरब गरबन अरब अरब ऐसे अरब के अरब चरब जहराय के।—गोपाल (शब्द०)।

अरब³—संज्ञा पुं० [अ०] १ एक मरु देश जो एशिया खंड के पश्चिम-दक्षिण भाग में और भारतवर्ष से पश्चिम है। यहाँ इस्लाम धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद साहब उत्पन्न हुए थे। यहाँ घोड़े, ऊँट और छुहारे बहुत होते हैं। २ अरब देश का उत्पन्न घोडा। ३ अरब का निवासी।

अरबर(पु)—वि० [अनुध्व०] [स्त्री० अरबरी] १ ऊटपटाँग। असबद्ध। उ०—भक्तनि की सुधि करी खरी अरबरी मति, भावन करत भोग सुखद लगाए हैं।—प्रिया (शब्द०)। २ कठिन। मुश्किल।

अरबराना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अरबर से नाम०] १ घबराना। व्याकुल होना। विचलित होना। (क) ब्याही ही बिमुख घर आयो लेन कहै पर खरी अरबरी कोई चित्त चिंता लागी है।—प्रिया (शब्द०)। (ख) मुनि सोच परेउ हियो खरो अरबरेउ मन गाढो लै कै करेउ बोल्यो हाँ जू सरसाई है।—प्रिया (शब्द०)। २ लटपटाना। अडबडाना। उ०—सिखवति चलन जसोदा मैया। अरबराइ कर पानि गहावत डगमगाइ धरनी धरे पैया।—सूर०, १०।११५।

अरबरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अरबर] घबराहट। हडबडी। उ०—(क) सभा की चाह अवगाह हनूमान की गरे डारि दई सुधि भई अति अरबरी है।—प्रिया (शब्द०)।

अरबिंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अरविन्द] दे० 'अरविंद'। उ०—देखत क्यों न अपूरब इंदु में द्वै अरबिंद रहे गहि लाली।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०६।

अरबिस्तान—संज्ञा पुं० [अ० अरब+फा० स्तान] अरब देश।

अरबी¹—वि० [अ० अरब+फा० ई (प्रत्य०)] अरब देश का।

अरबी²—संज्ञा पुं० १ अरबी घोडा। अरब देश का उत्पन्न या अरबी नस्ल का घोड़ा। ताजी। ऐराकी।

विशेष—यह सब घोडों में अधिक बलवान, मेहनती, सहिष्णु और आज्ञानुवर्ती होता है। इसके नथुने चौडे, गाल और जबडे मोटे, माथा चौडा, आँखें बडी बडी, थुथुने छोटे, पुट्ठा ऊँचा और दुम जरा ऊपर चढकर शुरू होती है। इसके कान छोटे, तथा दुम और अयाल के बाल चमकीले होते हैं।

२ अरबी ऊँट। अरब देश का ऊँट।

विशेष—यह बहुत दृढ और सहिष्णु होता है और बिना दाने पानी के मरुभूमि में चलता रहता है।

३ अरबी बाजा। ताशा।

अरबी³—संज्ञा स्त्री० अरब देश की भाषा।

अरबीला(पु)—वि० [हिं० अरबर] १ भोलाभाला। अडबड। उ०—देखति आरसी मैं मुसुक्याति है छाँडि दई बतियाँ अरबीली।—लाल (शब्द०)। २ लडाका। युद्ध से न भागनेवाला। अडनेवाला।

अरबुद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्बुद'। उ०—बुरे ऋषि वृंद सुअरबुद्द आय। जहाँ ऋषि चाय वसं सत भाय।—हम्मीर रा०, पृ० ८।

अरब्बी¹—वि० [हिं०] दे० 'अरबी'।

अरब्बी²—संज्ञा पुं० [फा० अरबी] १ अरबी बाजा। ताशा।–बाजै अरब्बी उमडिकै गज्जैं मनो घन घुमडि कै–पद्माकर ग्रं०, पृ० ८। २ अरबी घोडा। उ०–अरब्बी फिरैं बेस उब्बीन पै जे। नटो की कला सीकला जान लै जे।–पद्माकर ग्रं०, पृ० २८०।

अरभक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अर्भक'।

अरम—वि० [सं०] क्षुद्र। नीच [को०]।

अरमण—वि० [सं०] १ अरुचिकर। २ खराब। ३ असंतोषदायक। ४ विरामरहित। निरंतर।

अरममाण—वि० [सं०] दे० 'अरमण' [को०]।

अरमनी—संज्ञा पुं० [फा०] आरमेनिया देश का निवासी।

विशेष—आरमेनिया काकेशश पहाड से दक्षिण में है यहाँ के लोग विशेष सुंदर होते हैं।

अरमाँ—संज्ञा पुं० [तु० अर्मान] दे० 'अरमान'। उ०–ऐ फलक क्या क्या हमारे दिल में अरमाँ रह गया।।–भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८४६।

अरमान—संज्ञा पुं० [तु० अर्मान] इच्छा। लालसा। चाह।

मुहा०—**अरमान निकालना**=इच्छा पूरी करना। उ०–बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४७६। **अरमान भरा**=उत्सुक। **अरमान रहना या रह जाना**=इच्छा का पूरा न होना। मन की बात मन ही में रहना।

अरर¹—अव्य० [सं० अरेरे] एक शब्द जो अत्यंत व्यग्रता तथा अचंभे की दशा में मुँह से निकलता है, जैसे—अरर! यह क्या हुआ (शब्द०)।

अरर²—संज्ञा पुं० [सं० अरर] १ किवाड कपाट। २ पिधान। ढक्कन। ३ उल्लूक [को०]। ४ युद्ध [को०]।

अरर³—संज्ञा पुं० [सं० अरर, अरल] मैनफल [को०]।

अररनादररना(पु)—क्रि० स० [अनु०] दरना। पीसना। उ०–चित कप गोहुआँ प्रेम की दररिया समुझि समुझि झिकवा

नावहू रे का अररिदररि जो पीमैं लागी सजनी ह्वै वह पिया की सोहागिनि रे की ।—कबीर (शब्द०) ।

अरराना(पु)—क्रि० अ० [अनुध्व] अरर शब्द करना । अरराना । उ०—अरररात दोउ वृच्छ गिरे धर । अति आघात भयो व्रज भीतर ।—सूर०, १०।३८१ ।

अरराना—क्रि० स० [अनुध्व०] अररर शब्द करना । टूटने या गिरने का शब्द करना । उ०—तरु दोउ धरनि गिरे भहराइ । जर सहित अरराई कै आघात शब्द सुनाइ ।—सूर०, १०।३८१ । २ अररर शब्द करके गिरना । तुमुल शब्द करके गिरना । उ०—अरत वनपात भहरात भहरात अरराता तरु महा धरनी गिरायौ ।—सूर० १०।५९६। ३ भहरा पडना । सहसा गिरना । उ०—(क) खाय दरार परी छतियाँ अब पानी परे अरराय परेंगी (शब्द०) । (ख) सिंहद्वार अरराया जनता भीतर आई ।—कामायनी, पृ० १६८ ।

अरराहट—संज्ञा सज्ञा [हिं० अरर + आहट (प्रत्य०)] अरराने की ध्वनि या आवाज । उ०—यों हो अरराहट अरावन को छायो है ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३२०।

अररि—संज्ञा पुं० [सं०] १ द्वार । २. किवाड [को०] ।

अररी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्वार । २ किवाड [को०] ।

अररु—सज्ञा पुं० [सं०] १ दुश्मन । २ एक हथियार । ३.एक असुर का नाम [को०] ।

अरलु—सज्ञा पुं० [सं०] १ श्योनाक । टेंटू । सोनापाडा । सोनागाछ । २ अलाबु । अलावू । कडुई लौकी ।

अरव—वि० [सं०] शोरगुल रहित । रवरहित । शांत [को०] ।

अरवन—सज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + हिं लवना = खेत की कटाई] १ फसल जो कच्ची काटी जाय । २ वह फसल जो पहले पहल काटी जाय और खलिहान में न ले जाकर घर पर लाई जाय । इसके अन्न से प्राय देवताओं की पूजा होती है और ब्राह्मण आदि खिलाए जाते हैं । अवई । अवनी । अवरी । अवाँसी । कवल । कवारी ।

अरवर—सज्ञा पुं० [देश०] वह भौंरी जो घोडे के कान की जड में गर्दन की ओर होती है । यह यदि दोनों ओर हो तो शुभ और एक ओर ही तो अशुभ समझी जाती है ।

अरवा[1]—सज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + हिं० लावना = जलाना, भूनना] वह चावल जो कच्चे अर्थात् बिना उबाले या भूने धान से निकाला जाय ।

अरवा[2]†—सज्ञा पुं० [सं० आलय = स्थान] आला । ताखा ।

अरवाती(पु)†—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओरवती] छाजन का वह किनारा जहाँ से पानी बरसने पर नीचे गिरता है । ओलती । ओरौनी । उ०—सजनी नैना गए भगाइ । अरवाती कौ नीर बडेरी कैसैं फिरिहैं धाइ ।—सूर० (शब्द०) ।

अरवाह(पु)—सज्ञा पुं० [अ० रुह का बहुव० अवहि] जीवात्मा । उ० - दादू इश्क अल्लाह का, जे कबहूँ प्रगटै आइ । तौ तन मन अरवाह का सब पडदा जलि जाइ ।—दादू बा०, पृ० ६७ ।

अरविंद—संज्ञा पुं० [सं० अरविन्द] १.कमल ।

यौ०—अरविंदनयन । अरविंदनाभ । अरविंदबंधु । अरविंदलोचन अरविंदाक्ष ।

२ सारस । ३ नील या रक्तकमल [को०] । ४ कामदेव के पाँच बाणों में से एक [को०] । ५ ताँबा [को०] ।

अरविंददलप्रभ—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्ददलप्रभ] ताँबा [को०] ।

अरविंदनयन—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दनयन] कमलनयन । विष्णु ।

अरविंदनाभ—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दनाभ] कमलनाभ । विष्णु ।

अरविंदनाभि—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दनाभि] विष्णु [को०] ।

अरविंदबंधु—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दबन्धु] कमलबंधु । सूर्य ।

अरविंदयोनि—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दयोनि] कमलयोनि । ब्रह्मा ।

अरविंदलोचन—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दलोचन] कमलनयन । विष्णु ।

अरविंदसद्—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दसद्] ब्रह्मा [को०] ।

अरविंदाक्ष—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दाक्ष] विष्णु ।

अरविंदिनी—सज्ञा स्त्री० [सं० अरविन्दिनी] १. कमलिनी । २ कमल लता । ३ कमलसमूह । ४ कमल से भरा स्थान [को०] ।

अरवी—सज्ञा पुं० [सं० आलू] एक प्रकार का कंद ।

विशेष—इसके पत्ते पान के पत्तों के आकार के बडे बडे होते हैं । यह दो प्रकार की होती है, एक सफेद डंठी की, दूसरी काली डंठी की । जड या कंद से बराबर पत्तों के लंबे लंबे डंठल निकलते रहते हैं । नीचे नई पत्तियाँ बँधती जाती है । यह छूने में लसदार और खाने में कुछ कनकनाहट लिए हुए स्वादिष्ट होती है । लोग इसके पत्ते का साग इत्यादि बनाकर भी खाते हैं । यह अधिकतर बैसाख जेठ में बोई जाती है और सावन में तैयार हो जाती है । उ०—चूक लाय कै रीधे भाँटा । अरवी कहँ भल अरहन बाँटा ।—जायसी (शब्द०) ।

अरस[1]—वि० [सं०] नीरस । फीका । २ गँवार । अनाडी । ३ कमजोर । निर्बल [को०] ।

अरस[2]—सज्ञा पुं० [सं० अ० अर्श] आलस्य । उ०—नहिन तुरत हरि प्रिय कौ परस । उपजत है मन को अति आनंद, अधरनि रँग, नैननि कौ अरस ।—सूर०, १०।२६५६ ।

अरस(पु)—सज्ञा पुं० [अ० अर्श] १ छत । पाटन । २ धरहरा । महल । उ०—(क) मारु मारु कहि गारि दे, धिक गाइ चरैया । कम पास ह्वै आइए कामरी ओढ़ैया । बहुरि अरस तें आइ कै, तब अवर लीजो ।—सूर०, १०।३०३८ । (ख) अरस नाम है महल को, जहँ राजा बैठे । गारी दै दै सब उठे, भुज निज कर ऐठे ।—सूर० (शब्द०) । ३ आकाश । उ०—चलकर महल निकट गिर पहुँचिय चढ रज अरस फरक धुज चाहि ।—रघु० रू०. पृ० ११६ । ४ मुसलमानों के मतानुसार सबसे ऊपरवाला स्वर्ग जहाँ खुदा रहता है ।

अरसठ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अडसठ' ।

अरसथ—सज्ञा पुं० [देश०] मासिक आयव्यय का लेखा । वही जिसमें प्रति मास के आयव्यय की खतियौनी जाती है ।

अरसनपरसन(पु)—सज्ञा [हिं०] दे० 'अरसपरस' ।

अरसना(पु)—क्रि० अ० [सं० अलस] शिथिल पडना । ढीला पडना । मंद होना । उ०—आवती हो उत ही सों, उनकी विलोकि दसा, बिरह तिहारे अंग अंग अरसे ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

अरसनापरसना—क्रि० स० [सं० स्पर्शन] १ छूना। उ०—अरस परस चुटिया गहै, बरजति है माई।—सूर०, १०।१६२। २ आलिंगन करना। मिलना। भेंटना। उ०—काहू कै मन कछू दुख नाही। अरसि परसि हँसि हँसि लपटाही।—सूर०, १०।६२०।

अरसपरस¹—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श] लड़कों का एक खेल। आँखमिचौनी। छुआछुई। अँखमुनाल। उ०—गुरु बतावै साध को साधु कहै गुरु पूज। अरस परस के खेल मे भई अगम की सूझ—कबीर (शब्द०)।

विशेष—इस खेल में एक लड़के को अलग कर देते हैं। वह लड़का आँख मूँदता है और सब लड़के दूर भाग जाते हैं। जब उससे आँख खोलने को कहते हैं तो वह औरों को छूने के लिये दौड़ता है। जिसे वह छू लेता है वह भी अलग किया जाता है और फिर उसे भी आँख मूँदनी पड़ती है।

अरसपरस²—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन स्पर्शन] देखना। उ०—बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु नाम लिए का होई। धन के कहे धनिक जो हो तो निर्धन रहत न कोई।—कबीर (शब्द०)।

अरसा—संज्ञा पुं० [अ० अर्सह्] १ समय। काल। २ देर। अतिकाल। ३ अंतर। दूरी। फासिला [को०]। ४ क्षेत्र। मैदान [को०]।

अरसाना(पु)—क्रिया अ० [सं० अलस] अलसाना। निद्राग्रस्त होना। उ०—ऐंचति सी चितवन चितै, भई ओट अरसाय। फिर उझकन को मृगनयनि, दृगनि लगनियाँ लाय।—बिहारी (शब्द०)।

अरसात—संज्ञा पुं० [सं० अलस आलस्य] २४ अक्षरों का एक वृत्त जिसमें सात 'भगण' और एक 'रगण' होता है। यह एक प्रकार का सवैया है। यथा—मासत रुद्र जु ध्यानिन मे पुनि सारसुती जस बानिन मानिए। नारद ज्ञानिन पानिन राम सु रानिन मे विक्टोरिया मानिए। दानिन मे जस कर्ण बड़े तस भारत अब खरी उर आनिए। वेटन के दुख छूटन मे कबहूँ अरसात नहीं फुर जानिए। (शब्द०)।

अरसाव(पु)—वि० [सं० आश्रव] बाधा। पाप। उ०—बोलौ गंगा साँचही महादेव कर भाव। जोगिन्ह आनि जेवावहू, जाइ कौल अरसाव।—चित्रा०, पृ० १२५।

अरसाग—संज्ञा पुं० [सं०] रूखा सूखा भोजन। बिना स्वाद का। स्वादरहित [को०]।

अरसिक—वि० [सं०] १ जो रसिक न हो। अरसज्ञ। रूखा। २. कविता के मर्म को न समझनेवाला। ३ बेस्वाद या बिना जायका का [को०]।

अरसी¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अतसी, प्रा० *अडसी] अलसी। तीसी। उ०—जनहुँ सात निसयानी बरसी। अति बिनसर फूले जनु अरसी।—जायसी (शब्द०)।

अरसी²(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरसी'। उ०—तन भुरसी तरसी हियैं परसी बिरह जहर। दृगनि बारि भरसी लगी दरसी अरसी नूर।—स० सप्तक, पृ० ३८६।

अरसीला(पु)—वि० [सं० अलस] [स्त्री० अरसीली] आलस्यपूर्ण। आलस्य से भरा। उ०—आजु कहाँ तजु बैठी है भूषण ऐसे ही अंग कछू अरसीलो।—मतिराम (शब्द०)।

अरसौहाँ(पु)—वि० [सं० आलस्य, हिं० अरस + औहाँ (प्रत्य०)] आलस्यपूर्ण। आलस्यभरा। उ०—(क) नखरेखा सोहैं नई, अरसौहैं सब गात, सौहैं होत न नैन ये तुम सौहैं कत खात—बिहारी (शब्द०)। (ख) सौहे चितै अरसौहैं तिया निरछौहैं हसौहैं सरावति मानहि।—देव (शब्द०)।

अरहंत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्हत्, प्रा० अरहंत] दे० 'अर्हत'। उ०—पियारे दूजो को अरहंत पूजा जोग मानि कै जग मैं जाको पूजैं संत।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० १३३।

अरहट—संज्ञा पुं० [सं० अरघट्ट, प्रा० अरहट्ट] एक यंत्र जिसमें तीन चक्कर या पहिए होते हैं। इन पहियों पर घड़ों की माला लगी होती है जिनसे कुएँ से पानी निकाला जाता है। रहँट। उ०—कबीर माला मन की और संसारी भेष। माला पहरयाँ हरि मिलै, तो अरहट कै गलि देष।—कबीर ग्र०, पृ० ४५।

अरहन—संज्ञा पुं० [सं० रन्धन] वह आटा या बेसन जो तरकारी, साग आदि पकाते समय उसमें मिला दिया जाता है। रेहन। उ०—चूक लाइकै रीधे भाँटा। अरवी कहँ भल अरहन बाटा।—जायसी (शब्द०)।

अरहना¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्हण, प्रा० अरहणा] पूजा आराधना।

अरहना²(पु)—क्रि० स० पूजा करना। आराधना करना।

अरहर—संज्ञा स्त्री० [सं० आढकी प्रा० अड्ढकी] १, एक अनाज जो दो दल के दाने का होता है। रहर। उ०—सन सूख्यो बीत्यो बनौ, ऊखौ लई उखारि। हरी हरी अरहर अजौ, धर धरहर हिय नारि।—बिहारी (शब्द०)। २ अरहर का बीज। तुवरी। तूअर। पर्या०—तुवरी। वीर्या०। करवीरभुजा। वृत्तबीजा। पीतपुष्पा। काशीमृत्स्ना। मृतालका। सुराष्ट्रजा।

विशेष—इसका पौधा चार पाँच हाथ ऊँचा होता है। इसकी एक एक सींके में तीन तीन पत्तियाँ होती हैं जो एक ओर हरी और दूसरी ओर भूरी होती है। इसका स्वाद कसैला होता है। मुँह आने पर लोग इसे चबाते हैं और फोड़े फुंसियों पर भी पीसकर लगाते हैं। अरहर की लकड़ियाँ जलाने और छप्पर छाने के काम आती हैं। इसकी टहनियों और पतले डंठलों से खाँचे और टोकरियाँ बनाई जाती हैं। अरहर बरसात में बोई जाती है और अगहन पूस में फूलती है। इसका फूल पीले रंग का होता है और फूल झड़ जाने पर इसमें डेढ़ दो इंच की फलियाँ लगती हैं जिनमें चार पाँच दाने होते हैं। दानों में दो दालें होती हैं। इसके दो भेद हैं। एक छोटी दूसरी बड़ी। बड़ी को 'अरहरा' कहते हैं और छोटी को 'रयिमुनिया' कहते हैं। छोटी दाल अच्छी होती है। अरहर फागुन में पकती है और चैत में काटी जाती है। पानी पाने से इसका पेड़ कई वर्ष तक हरा रह सकता है। भिन्न भिन्न देशों में इसकी कई जातियाँ होती हैं, जैसे रायपुर में 'हरोना' और 'भिही', बंगाल में 'मघरा' और 'चैती' तथा आसाम में 'गलगा', 'देव' या 'नली'।

अरहेड(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० हेट] चौपायों का झुंड। रेहड़ी।—हिं०।

अरा¹(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरा'। १ नीके अरा लै घरेगनि है उरकोर कटाछन ओर अराए।—दे० (शब्द०)। २ नखरा। झगड़ा।

अरा²†—संज्ञा स्त्री० [सं० आर] पहिए की गडारी और उसके मध्य भाग को मिलाने वाली पतली सलाई। तीली।

अराअरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अड़ना] अड़ाअड़ी। होड़ स्पर्धा। उ०—प्यारी तेरी पूतरी काजर हू ते कारी। मानो द्वै भँवर उड़े बराबरी। चपे की डारि बैठे कुद अलि लागी है जेब अराअरी—हरिदास (शब्द०)।

अराक¹—संज्ञा पुं० [अ०] १ एक देश जो अरब में है। एराक। इराक। २ वहाँ का घोड़ा। उ०—हरतौ हरीफ मान तरतौ समुद्र युद्ध क्रुद्ध ज्वाल जरतौ अराकनि सों अरतौ।—भूषण (शब्द०)।

अराक²(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अड़ाक'।

अराकन—संज्ञा पुं० [सं० अरि = राक्षस + ग्राम, बरमी, कान = देश] बरमा देश के एक प्रांत का नाम। यह बंगाल की खाड़ी के किनारे पर है।

अराकी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इराकी'।

अराग¹—संज्ञा पुं० [सं०] रागाभाव। राग का अभाव। रति का अभाव [को०]।

अराग²—वि० वासनाविहीन। रागविहीन। रतिविहीन [को०]।

अरागी—वि० [सं० अरागिन्] [स्त्री० अरागिणी] रागरहित। वासनाविहीन [को०]।

अराचना(पु)—क्रि० स० [सं० अर्चन] अर्चन करना। आदर देना। उ०—तिय तजि लाज कहत रति जाचन। को नहि धर्म जो पुरुष अराचन।—हम्मीर रा०, पृ० ८०।

अराज¹वि० [सं० अ + राजन्] विना राजा का। उ०—जग अराज ह्वै गयो रिपिन तब अति दुख पायौ। लै पृथ्वी कौ दान ताहि फिरि बनहि पठायौ।—सूर०, ९।१४।

अराज²—संज्ञा पुं० अराजकता। शासन विप्लव। हलचल।

अराजक—वि० [सं०] १ जहाँ राजा न हो। राजहीन। विना राजा का। २ अराजकता फैलानेवाला। विद्रोह या विप्लव करनेवाला।

अराजकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ राजा का न होना। २ शासन का अभाव। ३ अशांति। हलचल। अँधेर।

यौ०—अराजकतावाद = व्यक्तिस्वातंत्र्य का समर्थ न करनेवाला तथा शासन की अनावश्यकता मनानेवाला सिद्धांत या वाद।

अराजन्य—वि० [सं०] क्षत्रियविहीन [को०]।

अराजबीजी—वि० [सं० अराजबीजिन्] अराजकता फैलानेवाला। राजविद्रोह का प्रचार करनेवाला।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसे मनुष्यों को वहाँ भेजने का विधान बताया है जहाँ उपनिवेश बसाने में बहुत कठिनता या खर्च हो।

अराजव्यसन—संज्ञा पुं० [सं०] अराजकता संबंधी संकट।

अराजो—संज्ञा स्त्री० [अ० अर्ज का बहुव०] १ भूमि। धरती। जमीन। २ वह जमीन जो खेती बारी के काम आती है [को०]।

अराड—संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल] १ राशि। ढेर। अंबार। २ टूटी फूटी तथा रद्दी वस्तुओं का अंबार। ३ जलावन की दुकान।

अराडना—क्रि० अ० [१] गर्भपात होना। गर्भ का गिर जाना। बच्चा फेंकना।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः पशुओं ही के लिये होता है।

अरात(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अराति' [को०]।

अराति—संज्ञा पुं० [सं०] १ शत्रु। उ०—कर लिया निश्चित अरिंदम ने निपात अराति का।—कानन०, पृ० ११२। २ फलित ज्योतिष में कुंडली का छठा स्थान। ३ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य जो मनुष्य के आंतरिक शत्रु हैं। ४ छह की संख्या।

अराद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वैमनस्य। २ दुर्भाग्य। ३ दोष। पातक [को०]।

अराधन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आराधन'।

अराधना(पु)—क्रि० स० [सं० आराधन] १ आराधना करना। उपासना करना। उ०—हम अलि गोकुलनाथ अराध्यौ। सूर० १०।३४३०। २ पूजा करना। अर्चना करना। ३. जपना। ४ ध्यान करना।

अराधी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आराधी'।

अराना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अड़ाना'। उ०—भौहैं अरा लै अरेरति है उर कोर कटाक्षन ओर अरारे।—देव (शब्द०)।

अरावा—संज्ञा पुं० [अ०] १ गाड़ी। रथ। उ०—(क) चामिल पार भए सब आछे। तबै अड़ोल अरावे पाछे।—लाल (शब्द०)। (ख) जिती अरावौ नार है सो सब लीनो संग। उतरि पार डेरा दए ठठि पठान सौ जंग।—सुजान०, पृ० ५१। २ वह गाड़ी जिसपर तोप लादी जाय। चरख। उ०—लावदार रक्खो किए सबै अरावो एह। ज्यों हरीफ आवै नजरि तबै धड़ाधड़ देह।—सुजान०, पृ० १५। (ख) दाराघाट धीरपुर बाँध्यौ। रोपि अरावै कलहै काँध्यो। लाल (शब्द०)। ३ जहाज पर तोपों को एक बार एक ओर दागना। सलख।

अराम¹(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० आराम] बाग। उपवन।—ये नहि फूल गुलाब के दाहन हिय जु हमार। विन घनश्याम अराम मे लागी दुसह दवार।

अराम²—संज्ञा पुं० [फा० आराम] दे० 'आराम'¹।

अरारूट—संज्ञा पुं० [अं० एरोरूट] एक पौधा जो अमेरिका से हिंदुस्तान में आया है।

विशेष—गरमी के दिनों में दो दो फुट की दूरी पर इसके कंद गाड़े जाते हैं। इसके लिये अच्छी दोमट और बलुई जमीन चाहिए। यह अगस्त से फूलने लगता है और जनवरी फरवरी में तैयार हो जाता है। जब इसके पत्ते झड़ने लगते हैं तब यह पक्का समझा जाता है और इसकी जड़ खोद ली जाती है। खोदने पर भी इसकी जड़ रह ही जाती है। इससे, जहाँ यह एक बार लगाया गया वहाँ उसका उच्छिन्न करना कठिन होता है। इसकी जड़ को पानी में खूब धोकर कूटते हैं और फिर उसका सत निकालते हैं जो स्वच्छ मैदे की तरह होता है। यह अमेरिका की तीखुर है। इसका रंग देसी तीखुर के रंग से सफेद होता है तथा इसमें गंध और स्वाद नहीं होता।

२ अरारूट का आटा।

अरारोट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरारूट'।

अराल¹—वि० [स०] कुटिल । टेढा । उ०—भाल पर भाग, लाल वेंदी पै सुहाग, देव भृकुटी अराल अनुराग हुलस्यो परै ।—देव (शब्द०) ।

यौ०—अरालकेशी=कुटिल केश या अलकवाली । घुँघराले बालोंवाली ।

अराल²—संज्ञा पुं० १ सर्ज रस । राल । २ मत्त हाथी । ३. टेढा या टूटा हाथ (को०) । ४. एक समुद्र [को०] ।

अराला—संज्ञा स्त्री० [स०] १ अपवित्र नारी । सतीत्वहीन नारी २ अवृष्टा स्त्री० [को०] ।

अरावल—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'हरावल' ।

अरावली—संज्ञा पु० राजस्थान का एक पहाड ।

अराष्ट्र—संज्ञा पुं० [स०] राज्यसत्ता का नाश या अभाव [को०] ।

अरिज—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बबूल । सफेद बबूल ।

विशेष—यह पजाव, राजपूताना, मध्य और दक्षिण भारत तथा बरमा में पाया जाता है । इसका छिलका रेशेदार होता है और इसमे मछली पकडने का जाल बनाया जाता है । इसमें एक प्रकार की गोद भी निकलती है जो पानी मे घोली जाने पर पीला रंग पैदा करती है । यह अमृतसरी गोद कहलाती है । इसे बबूल की गोद के साथ भी मिलाकर बेचते हैं । पेड की छाल को पीसकर गरीब लोग अकाल मे बाजरे के आटे के साथ खाने के लिये मिलाते हैं । इसमे एक प्रकार का नशा भी होता है और यह मद्य मे भी मिलाई जाती है । इसीलिये अरिज को "शराब का कीकर" भी कहते है ।

अरिंद—संज्ञा पुं० [स० अरि+इन्द्र] शत्रु । उ०—तहँ मारि मारि अरिंद बरछी सों गिराए गगन तें ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २० ।

अरिंदम—वि० [स० अरिन्दम] १. शत्रुनाशक । वैरी का दमन करनेवाला । उ०—कर लिया निश्चित अरिंदम ने निपात अराति का ।—कानन०, पृ० ११२ । २. विजयी ।

अरि—संज्ञा पुं० [स०] १ शत्रु । वैरी । २ चक्र । ३ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य । ४ छह की सख्या । ५ ज्योतिष में लग्न से छठा स्थान । ६ विट् खदिर । दुर्गंध खैर । अरिमेद । ७ स्वामी [को०] । ८ रथ का कोई हिस्सा [को०] । ९ वायु [को०] । १०. धार्मिक व्यक्ति [को०] ।

अरिकर्षक—संज्ञा पुं० [स०] शत्रुओं का कर्षण या पराभव करनेवाला [को०] ।

अरिकुल—संज्ञा पुं० [स०] १ शत्रुसमूह । २ शत्रु [को०] ।

अरिकेलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शत्रुक्रीडा । २ वासनात्मक आनद [को०] ।

अरिकेशी—संज्ञा पुं० [सं० अरी+केशी] केशी के शत्रु, कृष्ण ।

अरिक्थभाग—वि० [सं०] जिसे पिता के धन का भाग न मिल सके । पिता का हिस्सा पाने के अयोग्य । अनश ।

अरिघ्न—वि० [स०] शत्रुहता [को०] ।

अरिचिंता—संज्ञा स्त्री० [सं० अरिचिन्ता] शत्रु के विघटन या विनाश के लिए सोचना [को०] ।

अरित्र¹—संज्ञा पुं० [स०] १ बल्ला जिससे नाव खेते हैं । डाँड । २ क्षेपणी । निपातक । ३ जल की थाह लेने की डोरी । ४. लगर ।

अरित्र²—वि० [स०] १ शत्रु से रक्षा करनेवाला । २ आगे बढानेवाला [को०] ।

यौ०—अरित्रगाध=छिछला ।

अरिदमन¹—वि० [स० अरि+दमन=नाश] शत्रु का नाश करनेवाला ।

अरिदमन²—संज्ञा पु० शत्रुघ्न । लक्ष्मण के छोटे भाई का नाम । रिपुदमन ।

अरिनिपात—संज्ञा पु० [सं०] दुश्मन का हमला [को०] ।

अरिनुत—वि० [स०] शत्रु भी जिसकी प्रशसा करें [को०] ।

अरिप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध मे प्रवृत्त राजा के चारो ओर के शत्रुओं की स्थिति ।

अरिभद्र—संज्ञा पु० [स०] अति शक्तिशाली शत्रु [को०] ।

अरिमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] कासमर्द नाम का पौधा [को०] ।

अरिमर्दन¹—वि० [स०] शत्रुओं का नाश करनेवाला । शत्रुसूदन ।

अरिमर्दन²—संज्ञा पु० १ केकयनरेश राजा भानुप्रताप का भाई जो शापवश कुंभकर्ण हुआ था । २. अक्रूर का भाई ।

अरिमेद—संज्ञा पु० [स०] १ विट् खदिर । २ एक बदबूदार कीडा । गंधिया । ३ एक वृक्ष ।

अरिमेदक—संज्ञा पु० [स०] मल मे उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का कीडा [को०] ।

अरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिडिया जो प्राय पानी के किनारे रहती है । इसे ताक या लेदी भी कहते हैं ।

अरियाना—क्रि० स० [स० अरे] अरे कहकर बुलाना । तिरस्कार करना । उ०—अलकली धरे तजें, बरत अनेक भरे, जनपद गहत लहत मत्र मत हैं । ऐसे बल तपै परलोकन तें अरियाते कोमनि अचल तेते केवरो लगत है । —गुमान (शब्द०) ।

अरिल्ल—संज्ञा पुं० [स० अरिल्ला] सोलह मात्राओं का एक छद जिसके अत मे दो लघु अथवा एक यगण होता है, परतु इसमे जगण का निषेध है । भिखारीदास ने इसके अत मे भगण माना है । जैसे,—ले हरिनाम मुकुद मुरारी । नारायण भगवत खरारी (शब्द०) ।

अरिवन—संज्ञा पु० [देश०] रस्सी का फदा जिसमे फँसाकर घडा या गगरा कुएँ मे ढीलते हैं । उबका । उबक । छोर । फँसरी ।

अरिष—संज्ञा पु० [स०] १ लगातार बरसत । २ गुदा का एक रोग [को०] ।

अरिष्ट¹—संज्ञा पुं० [स०] १ क्लेश । पीडा । २ आपत्ति । विपत्ति । ३ दुर्भाग्य । अमगल । ४ अपशकुन । अशुभ लक्षण ५ दुष्ट ग्रहो का योग जिसका फल ज्योतिष शास्त्र के अनुसार अनिष्ट होता है । मरणकारी योग । ६. लहसुन । ७ नीम । निंब । ८ लका के पास एक पर्वत । ९ कौआ । काक । १० कक । गिद्ध । ११ रीठे का पेड । फेनिल । निर्मली । १२ वह अरक जो बहुत सी दवाओं को मीठे मे सडाकर बनाया जाय । एक प्रकार का मद्य जो धूप मे ओषधियों का खमीर उठाकर बनता है । १३. काढा । १४. एक ऋषि । १५. एक राक्षस

का नाम जिसे श्रीकृष्णचंद्र ने मारा था। वृषभासुर। १६ अनिष्टसूचक उत्पात, जैसे भूकप आदि। १७ बलि का पुत्र, एक दैत्य। १८ मट्ठा। तक्र। १९ सौरी। सूतिकागृह। २० कौटिल्य के अनुसार एक प्रकार का असहन व्यूह जिसमे रथ बीच मे, हाथी कक्ष मे और घोडे पृष्ठ भाग मे रहते थे।

अरिष्ट²—वि० १ दृढ। अविनाशी। २ शुभ। ३. बुरा। अशुभ।

अरिष्टक—सज्ञा पुं० [स०] १ रीठा। निर्मली। २ रीठे का वृक्ष।

अरिष्टगृह—सज्ञा पु० [स०] सौरगृह [को०]।

अरिष्टनेमि—सज्ञा पुं० [सं०] १. कश्यप प्रजापति का एक नाम। २ हरिवश के अनुसार कश्यप का एक पुत्र जो विनता से उत्पन्न हुआ था। ३ राजा सगर के श्वशुर का नाम। ४ सोलहवें प्रजापति। ५ जैनियो के बाईसवें तीर्थंकर। ६ हरिवश के अनुसार वृष्णि का एक प्रपौत्र जो चित्रक का पुत्र था।

अरिष्टमथन—सज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २ शिव [को०]।

अरिष्टसूदन—सज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

अरिष्टा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ कश्यप ऋषि की स्त्री और दक्ष प्रजापति की पुत्री जिससे गधर्व उत्पन्न हुए थे। २ कुटकी। ३ पट्टी [को०]।

अरिष्टिका—सज्ञा स्त्री० [स०] १ रीठी। २ कुटकी।

अरिहत(पु)—सज्ञा पुं० [हिं] दे० 'अर्हंत'। उ०—कै पूजै श्रीकत नू, कै पूजै अरिहत।—बाँकीदास ग्र०, भा० २, पृ० ६०।

अरिहन¹—सज्ञा पुं० [सं० अरिघ्न] शत्रुघ्न।

अरिहन²—सज्ञा पु० [सं० अर्हत्] वीतराग। जिन।

अरिहन³—सज्ञा पु० [स० रन्धन] रेहन। अरहन।

अरिहा¹ वि० [सं० अरिहन्] शत्रुघ्न। शत्रु का नाश करनेवाला।

अरिहा²—सज्ञा पुं० लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न। उ०—(क) वीरौं सर्वं रघुवश कुठार की धार मे बारन बाजि सरत्थहिं। बान की वायु उडाय कै लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं।—राम च०, पृ० ३५। (ख) जूझि गिरे जबही अरिहा रन। भाजि गए तबही भट के गन।—राम च०, पृ० १७५।

अरी—अव्य० [स० अयि] सबोधनार्थक अव्यय जिसका प्रयोग स्त्रियों के ही लिये होता है। उ०—अरी, खरी सटपट परी, बिधु आधे मग हेरि। सग लगे मधुपनु लई भागनु गली अँधेरि।—बिहारी र०, दो० ४५९।

अरीझना(पु)—क्रि०अ० [हिं०] बझ जाना। रीझना। दे० 'अरुझना'।

अरीठा—सज्ञा पु० [स० अरिष्टक, प्रा० अरिट्ठा] रीठा।

अरुतुद¹—वि० [स अरुन्तुद] १ मर्मस्थान को तोडनेवाला। मर्मस्पृक्। उ०—अरतुद वाक्य कहतेहो अहो तुम।—साकेत, पृ० ६२।२ दु:खदायी। ३ कठोर बात कहकर चित्त को दुखानेवाले परुषभाषी।

यौ०—अरुतुदवचन।

अरुतुद²—सज्ञा पुं० शत्रु। वैरी।

अरुधती—सज्ञा स्त्री०[स० अरुन्धती]१. वशिष्ठ मुनि की स्त्री। २ दक्ष की एक कन्या जो धर्म से ब्याही गई थी। ३ एक बहुत छोटा तारा जो सप्तर्षि मडलस्थ वशिष्ठ के पास उगता है। विवाह मे इसे वधू को दिखाने का विधान है। सुश्रुत के अनुसार जिसकी मृत्यु समीप होती है वह इस तारे को देख नहीं सकता। ४. तत्र के अनुसार जिह्वा।

यौ०—अरुधतीजानि, अरुंधतीनाथ, अरुधतीपति = वशिष्ठ ऋषि। अरुधती दर्शन न्याय = स्थूल से सूक्ष्म की ओर गमन। वि० दे० 'न्याय'।

अरुपिका—सज्ञा स्त्री० [स०] एक क्षुद्र रोग जिसमे कफ और रक्त के विकार या कृमि के प्रकोप से माथे पर पकने मुँहवाले फोडे हो जाते हैं।

अरु¹—सज्ञा पुं० [स अरुस्] १ सूर्य। २ रक्त खदिर। ३. मदार वृक्ष। ४ मर्मस्थान। ५ घाव। जख्म। ६ नेत्र। आँख [को०]।

अरु²(पु)—सयो० [हिं०] दे० 'और'। उ०—सनकुमार नारद धुनि अरु मीना। गर पुस्तक द्रुड बिप्र प्रवीना।—मानस, १।३०३।

अरुआ—सज्ञा पुं०[स० आलु] एक प्रकार का बहुत बडा जगली वृक्ष।

विशेष—यह बगाल, मध्यभारत तथा दक्षिण भारत में प्राय जगली दशा मे पाया जाता है। तथा उत्तरप्रदेश में लगाया जाता है। इसमे चैत बैशाख मे पीले फल लगते हैं। इसकी छाल और पत्तियाँ ओषधि के रूप मे काम में आती हैं तथा इसकी लकडी से ढोल और तलवार की म्यान या इसी प्रकार की अन्य हलकी चीजें बनाई जाती हैं।

अरुई—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरवी'। उ०—अरुन्हि रमसी दई घटाई जेंवत पटल जाम लगाई।—सूर०, १०।१२१३।

अरुकटि—सज्ञा स्त्री०[देश०]एक नगर जो कर्नाटक की राजधानी है। आर्काट। आरराट।

अरुग्ण—वि० [स०] नीरोग। रोगरहित।

अरुचि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ रुचि का अभाव। अनिच्छा। २ अग्निमाद्य रोग जिसमें भोजन की इच्छा नहीं होती। ३ घृणा। नफरत। ४ सतोष देनेवाली व्याख्या का अभाव [को०]।

अरुचिकर—वि० [स०] जिससे अरुचि हो जाय। जो रुचिकर न हो। जो भला न लगे।

अरुचिर—वि० [स०] १ असुंदर। जो अच्छा न लगे। २ अरुचिकर [को०]।

अरुज्—वि० [स] रोग से मुक्त। नीरोग [को०]।

अरुज¹—वि० [स] नीरोग। रोगरहित। स्वस्थ।

अरुज²—सज्ञा पुं० १ अमलतास। २ केसर। ३ सिंदूर।

अरुझना(पु)—क्रि० अ०[स अवरुन्धन, प्रा० ओरज्झन] १ उलझना। फँसना। उ०—(क) पाखन फिरि फिर परा सो फाँदू। उडि न सकइ अरुझइ भइ बाँदू।—जायसी (शब्द०)। २ अटकना। ठहरना। अडना। उ०—दुख न रहै रघुपतिहि बिलोकत तनु न रहै बिनु देखे। करत न प्रान पयान सुनहु सखि अरुझि परी यहि लेखे।—तुलसी ग्र०, पृ० ३५१। ३ लडना भिडना। सघर्षरत होना।

अरुझाना(पु)¹—क्रि० स० [हिं० अरुझना का प्रे० रू०] उलझाना। फँसाना। उ०—नागरि मन गई अरुझाइ। अति बिरह तनु भई ब्याकुल घरन नेकु सुहाइ।—सूर०, १०।६७८।

अरुझाना[२]--क्रि० अ० लिपटना। उलझना। उ०—विटप विसाल लता अरुझानी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मेरो मन हरि चितवनि अरुझानो।—सूर०, १०।१६६७।

अरुट(पु)—वि० [सं० रुष्ट]। नाराज।

अरुटना(पु)—क्रि० अ० [सं० रुष्ट] रुष्ट होना। क्रुद्ध होना। उ०—तिन पर तुट्टै बीज जौं, जिन पर राज अरुट्ट। राजकाज समुह मिरन, दई न कबहू पुट्ठ।—पृ० रा०, ५।५।

अरुण[१]--वि० पुं० [सं०] [वि० स्त्री० अरुणा] लाल। रक्त।

अरुण[२]—संज्ञा पुं० १ सूर्य। २ सूर्य का सारथी। ३ गुड। ४ ललाई जो संध्या के समय पश्चिम में दिखलाई पड़ती है। ५ एक दानव का नाम। ६ एक प्रकार का कुष्ठ रोग। ७ पुन्नाग वृक्ष। ८ गहरा लाल रंग। ९ कुमकुम। १० सिंदूर। ११ एक देश। १२ बारह सूर्यो में से एक सूर्य। माघ महीने का सूर्य। १३ एक आचार्य का नाम जो उद्दालक ऋषि के पिता थे १४ एक जहरीला क्षुद्र जंतु [को०]। १५ एक झील जो हिमालय के इस पार है। १६ सोना। स्वर्ण [को०]। १७. एक प्रकार का पुच्छल तारा।

विशेष—इनकी चोटियाँ चँवर की सी होती है। ये कृष्ण अरुण वर्ण के होते हैं। इनका फल अनिष्ट है। ये संख्या में ७७ हैं और वायुपुत्र भी कहलाते हैं।

यौ०—अरुणलोचन। अरुणात्मज। अरुणोदय। अरुणोपल।

अरुणकर--संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अरुणकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अरुणचूड--संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुट। मुर्गा। अरुणशिखा।

अरुणज्योति--संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अरुणनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरुणलोचन' [को०]।

अरुणप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अरुणप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अप्सरा। २ छाया और संज्ञा, सूर्य की स्त्रियाँ।

अरुणमल्लार—संज्ञा पुं० [सं०] मलार राग का एक भेद। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

अरुणलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] जिसकी आँखें लाल हों। कबूतर [को०]।

अरुणशिखा--संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुट। मुर्गा।

अरुणसारथि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अरुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मजीठ। २. कोदो। ३. अतिविषा। ४. एक नदी का नाम। ५. मुंडी। ६ निसोथ। त्रिवृता। ७. इंद्रायन। ८ घुँघची। ९. लाल रंग की गाय। १०. उषा। ११. काला अनंतमूल।

अरुणाई—संज्ञा स्त्री० [सं० अरुण + हिं० आई (प्रत्य०)] ललाई। रक्तता। लालिमा।

अरुणाग्रज—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड [को०]।

अरुणाचल--संज्ञा स्त्री० [सं०] पूरब दिशा।

अरुणात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. जटायु। २. यम ३. शनि। ४. सुग्रीव। ५ कर्ण [को०]।

अरुणात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यमुना। २. ताप्ती [को०]।

अरुणानुज--संज्ञा पुं० [सं०] अरुण के लघु भ्राता। गरुड [को०]।

अरुणाभ—वि० [सं०] लालिमायुक्त। रक्ताभ [को०]।

अरुणार(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अरुनार'।

अरुणार्चि--संज्ञा पुं० [सं० अरुणार्चिस] सूर्य [को०]।

अरुणावरज--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरुणानुज'।

अरुणाश्व--संज्ञा पुं० [सं०] मरुत [को०]।

अरुणित—वि० [सं०] लाल किया हुआ।

अरुणिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ललाई। लालिमा। सुर्खी।

अरुणी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अरुण वर्ण की गाय। २ उषा [को०]।

अरुणोद[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ जैन मतानुसार एक समुद्र जो पृथ्वी को आवेष्टित किए है। २ लाल समुद्र। अरुणोदधि। ३ एक झील [को०]।

अरुणोद[२](पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणोदय'। उ०—पहिलौ मुखराग प्रगट थ्यो प्राची, अरुण कि अरुणोद अंबर।—वेलि०, पृ० १६।

अरुणोदधि—संज्ञा पुं० [सं०] एक सागर जो मिस्र और अरब के मध्य में है। पहले यह स्वेज स्थलडमरूमध्य के द्वारा रूम के समुद्र से पृथक् था पर अब इनको अलग कर देने से यह रूम के समुद्र से मिल गया है। इंगलिस्तान को भारत में जहाज इसी मार्ग से होकर जाते हैं। लाल सागर।

अरुणोदय—संज्ञा पुं० [सं०] वह काल जब पूर्व दिशा में निकलते हुए सूर्य की लाली दिखाई पड़ती है। यह काल सूर्योदय से दो मुहूर्त या चार दंड पहले होता है। उषाकाल। ब्राह्ममुहूर्त। तड़का। भोर। उ०—देखा तो सुंदर प्राची में अरुणोदय का रसरंग हुआ।—कामायनी, पृ० ७७।

अरुणोदयसप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ला सप्तमी। इस दिन अरुणोदय में स्नान करना पुण्य माना गया है।

अरुणोपल—संज्ञा पुं० [सं०] पद्मराग मणि। लाल। उ०—जिमि अरुणोपल निकर निहारी।—मानस।

अरुन(पु)—वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुण'। उ०—अरुन अधरनि दसन झाईं कहौ उपमा थोरि।—सूर० १०।२२५।

अरुनई(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरुणाई'।

अरुनचूड(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणचूड'। उ०—प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड़ बर बोलन लागे।—मानस, १।१९७।

अरुनता(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरुणाई'। उ०—रमी मानहु चरनकमलनि अरुनता तजि तरनि।—तुलसी ग्रं०, पृ० २८२।

अरुनशिखा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणशिखा'। उ०—उठे लखन निसि बिगत सुनि अरुनशिखा धुनि कान।—मानस, १।११५।

अरुनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरुणाई'। उ०—अरुन चरन अँगुली मनोहर, नख दुतिवंत कछुक अरुनाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३२५।

अरुनाना[१](पु)--क्रि० अ० [सं० अरुण हिं० 'अरुन' से नाम०] लाल होना। उ०—अँग अँग भूषन और में मागे कहुँ पाए।

देखि थकित रहि रूप कौं लोचन अरुनाए।—सूर०, १०। २५२२।

अरुनाना(पु)—क्रि० स० लाल करना। उ०—जल लेन चाहै प्रान अति रिसाइ दृग अरुनाइ कै।—गोपाल (शब्द०)।

अरुनारा२(पु)—वि० [हिं० अरुन + आरा (प्रत्य०)] [वि०, स्त्री० अरुनारी] लाल रंग का। लाल। उ०—दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे।—मानस, १।१९९।

अरुनोदय(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणोदय'। उ०—अरुनोदय सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन।—मानस, १।२३८।

अरुनोपल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणोपल'।

अरुरना१(पु)—क्रि० अ० [सं० अरुस = घाव] दुखित होना। पीडित होना। उ०—लै भुजवल्लरी पल्लव हाथन चलत मलत मोद विहारैं। प्यारी के अंगनि रंग चढ़ै त्यों अनंग कला करगी नहिं हारैं। ओठन दंत उरोज नखक्षत हू महि जीतैं तिया पिय हारैं। उरू मरोरनि ज्यों मरुरैं उरही अरुरैं अरुरैनि निहारै।—देव (शब्द०)।

अरुरना१(पु)—क्रि० अ० [सं० मरोड] मुडना। सिकुडना। संकुचित होना। उ०—नीको दीठ तूख सी पतूख सी अरुरि अंग ऊख सी मसरि मुख लागति महूख सी।—देव (शब्द०)।

अरुराना(पु)—क्रि० स० [हिं० अरुरना का स० रू०] १ मरोडना। २ सिकोडना।

अरुलित(पु)†—वि० [सं० अरुणित सं० अरुलित] ललाई युक्त। अरुणिमा लिए हुए। उ०—पूर्व दीण अरुनित भेन।—वर्ण०, पृ० १५।

अरुवा१—संज्ञा पुं० [सं० अरु] १ एक लता जिसके पत्ते पान के पत्ते के सदृश होते हैं।

विशेष—इसकी जड मे कंद पडता है और लता की गांठों में भी एक सूत निकलता है जो चार पांच अंगुल बढ़कर मोटा होने लगता है और कंद बन जाता है। इसके कंद की तरकारी बनती है। यह खाने पर कनकनाहट पैदा करता है। बरई लोग इसे पान के भीट पर बोते हैं।

अरुवा२—संज्ञा पुं० [हिं० रुरुआ] उल्लू पक्षी।

अरुष१—वि० [सं०] १ अक्रोधी। २ चमकदार। ३ बिना हानि का। अक्षत। ४ चक्कर काटनेवाला, जैसे घोडा।

अरुष२—संज्ञा पुं० १ अग्नि का लाल रंग का घोडा। २ सूर्य। ३ ज्वाला। ४ रक्त वर्ण के तूफानी बादल [को०]।

अरुषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उषा। २ ज्वाला। ३. और्व की माता जो भृगु की पत्नी थी [को०]।

अरुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] १ भिलावाँ। २. अडूसा।

अरुष्कर१—वि० [सं०] घाव या चोट करनेवाला। क्षतकारक [को०]।

अरुष्कर२—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरुष्क' [को०]।

अरुहा—संज्ञा पुं० [सं०] भूधात्री। भुईं आँवला।

अरू(पु)—संयो० [हिं०] दे० 'अरु'। उ०—और अब दोनो गई तपस्या तो खंडित भई, अरू, उर्वसी हू जात रही।—हम्मीर रा०, पृ० ३९।

अरूक्ष—वि० [सं०] मुलायम। सुकुमार। नाजुक [को०]।

अरूझना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरुझना'। उ०—(क) कहूँ लरत गजराज बाघ हरना कहूँ जूझत। मनमथ कहूँ हौंस मद, वृष, महिष अरूझत।—गुमान (शब्द०)।

अरूट(पु)—वि० [सं० आ + रुष्ट, प्रा० अरुट्ठ हिं० अरूठ] अत्यंत क्रुद्ध। उ०—भए कटकान करार अरूट। नगे जनु सांग सुरज्जन टूट।—पृ० रा०, ६।१५७।

अरूढ१(पु)—वि० [सं० आरूढ] दे० 'आरूढ'

अरूढ२—वि० [सं० अरूढ] जो रूढ़ या प्रचलित न हो। अप्रचलित [को०]।

अरूप१—वि० [सं०] रूपरहित। निराकार। उ०—कोइ अरूप ईसर मन दीन।—कबीर (शब्द०)। (ख) अगुन अरूप अलख अज जोइ।—तुलसी (शब्द०)। २ बदशकल। भद्दा [को०]। ३ असदृश। बेमेल [को०]।

अरूप२—संज्ञा पुं० १ बदसूरत वस्तु। २ सांख्य मे प्रधान और वेदांत मे ब्रह्म [को०]।

अरूपक१—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार योगियों की एक भूमि या अवस्था। निर्बीज समाधि।

विशेष—यह चार प्रकार की होती है—(१) आकाशायतन (२) विज्ञानायतन, (३) अकिंचनायतन, और (४) नैवसंज्ञा संज्ञायतन।

अरूपक२—वि० १ अलंकारविहीन। अभिधात्मक। २ आकृति या आकार से विहीन [को०]।

अरूपहार्य—वि० [सं०] जो सौंदर्य द्वारा आकर्षित या पराजित न हो सके।

अरूपावचर—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार चित्त की वृत्ति का वह भेद जिसमे अरूप लोक का ज्ञान प्राप्त होता है।

विशेष—यह बारह प्रकार की होती है—चार प्रकार की कुशल वृत्ति चार प्रकार की विपाक वृत्ति और चार प्रकार की क्रिया वृत्ति।

अरूपी—वि० [सं० अरूपिन्] बिना रूपवाला। रूप या आकार विहीन [को०]।

अरूरना(पु)—क्रि० अ० [सं० अरुस् = घाव] दुखित होना। पीडित होना।

अरूलना(पु)—क्रि० अ० [अरुस = क्षत, घाव] छिलना। छिदना। चुभना। उ०—छत माजु को देखि कहोगी कहा छतिया नित ऐसे अरूलति है।—देव (शब्द०)।

अरूष—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २. एक प्रकार का साँप [को०]।

अरूसा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अडूसा'।

अरे—अव्य० [सं०] १ एक संबोधनार्थक अव्यय। ए। ओ। जैसे—अरे मिठाईवाले! इधर आ। २ एक आश्चर्यसूचक अव्यय। जैसे—अरे! देखते ही देखते इसे क्या हो गया।

अरेणु१—वि० [सं०] १ धूलविहीन। धूलरहित। २ अपार्थिव [को०]।

अरेणु२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जो धूल न हो। अधूलि। २ देवी देवता [को०]।

अरेप—वि० [सं० अपरेप] १. पाप या कलंकरहित। २ शुद्ध। स्वच्छ। कांतिमान् [को०]।

अरेरना(पु)—क्रि० अ० [सं० ऋ=जाना] रगड़ना। उ०—मौहैं अराल अरेरति है। उरकोर कटाक्षन ओर अराए।—देव (शब्द०)।

अरेरे—अव्य० [सं०] क्रोधोद्गार तथा निम्नता सूचक संबोधन। २. या दुःखसूचक उद्गार। जैसे—अरेरे ! उनका निधन हो गया।

अरेस(पु)†—[हिं०] दे० 'अरेह'। उ०—पिड जुडवा भड पाँव मौ, रहिया अडिग अरेस।—रा० रू०, पृ० ३१।

अरेह(पु)—वि [सं० अरेख=दाग रहित] हार न माननेवाला। उ०—प्राद नाथ लख धीर अरेहा। श्रै मछरीक ढाल दन एहा।—रा० रू०, पृ० ३१४।

अरैल—वि० [हिं० अरना] हठी। जिद्दी। उ०—कोऊ नाहिनै जो बरजै निडर छै न अररानो हौं परत डरत नहि रोकत रहत मग बनि अरैल।—भारतेंदु ग्र०, भा० २ पृ० ३६७।

अरैली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की झाड़ी जिसके डंठलों आदि से नेपाली कागज बनता है। वि दे० 'कचुती'।

अरोक[1]—वि० [सं० अ + हिं० रोक] न रुकनेवाला। अबाध्य। उ०—तीन लोक माहिं देव मुनि थोक माहिं जाय त्रिकम अरोक मोक ओक करि दियो है।—गोपाल (शब्द०)।

अरोक[2]—वि० [सं०] १ प्रभाहीन। बिना कांतिवाला। २ जिसमे छिद्र न हो। अच्छिद्र।

यौ०—अरोकदत, अरोकदत्=(१) जिसके दाँत काले या बदरंग हो। २) घने या निविड दाँतोवाला।

अरोग—वि० [सं०] रोगरहित। नीरोग।

अरोगना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरोगना'। उ०—नद नमन मैं कान्ह अरोगैं। जसुदा ल्यावै पटरस भोगैं।—सूर०, १०। ३९६।

अरोगी—वि० [सं०] जो रोगी न हो। नीरोग। चंगा।

अरोच(पु)—संज्ञा पु० [सं० अरुचि] रुचि का अभाव। अनिच्छा। त्याग। उ०—मोचु पच बान को अरोचु अभिमान को ये सोचु पति प्राण को सकोच सखियान को।—देव (शब्द०)।

अरोचक[1]—संज्ञा पु० [सं०] एक रोग जिसमे अन्न आदि का स्वाद मुँह मे नही मिलता।

विशेष—यह दुर्गंधयुक्त और घिनौनी चीजें खाने और घिनौना रूप देखने तथा त्रिदोष के प्रकोप से उत्पन्न होता है। इसके प्रधान पाँच भेद हैं—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज (४) सन्निपातज और (५) शोकादि से उत्पन्न। २ अरुचि।

अरोचक[2]—वि० जो रुचे नही। अरुचिकर। उ०—मुनि अघाई बतराइ उत सुबासने तिय बैन। हठि कत लाल बोलाइयत मोहि अरोचक ऐन—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ५४।

अरोचकी—वि० [सं० अरोचकिन्] १ मदाग्नि से पीडित। २ सुरुचिसपन्न। परिमार्जित रुचिवाला [को०]।

अरोड—वि० [अरूढ] शूर वीर। वीर।—डिं०।

अरोड़ा—संज्ञा पुं० [सं०आरूढ] [स्त्री० अरोड़ी अरोड़िन] पंजाब की एक जाति जो अपने को खत्रियो के अतर्गत मानती है।

अरोध्य—वि० [सं०] जिसकी चाल रोकी न जा सके। अबाध गति वाला [को०]।

अरोप—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरोप'। उ०—नद्न वाक्यजुग अरथ को करिए एक अरोप।—भूषण ग्र०, पृ० ३०।

अरोर(पु)—वि० [हिं०] रोर रहित। शात [को०]।

अरोष—वि [सं०] रोषरहित। क्रोधविहीन। उ०—प्रभु मरे आदर करै वरै अरोष विधान।—भिखारी ग्र०, भा १, पृ० १०।

अरोहण—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरोहण'।—रिपि कस्यप अरोहण कमठ शृगार रस।—रघु० रू, पृ० ५३।

अरोहन(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आरोहण'।

अरोहना(पु)—क्रि० अ० [सं० आरोहण] चढना। सवार होना।

अरोही[1](पु)—वि० [सं० आरोही] सवार होनेवाला।

अरोही[2](पु)—संज्ञा पुं० आरोही। सवार।

अरौसपरौस(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'अड़ोस पड़ोस'। उ०—गग नहावन को नर नारि, चले है अरौस परौस के सोऊ।—पोद्दार० अभि०, ग्र० पृ० ५७४।

अर्क[1]—संज्ञा पु० [सं०] १ सूर्य। २. इद्र। ३. ताँबा। ४ स्फटिक। ५ विष्णु। ६ पडित। ७ आक। मदार। उ०—अर्क जवास पात बिनु भयेउ।—मानस, ४१५। ८ ज्येष्ठ भाई। ९. आदित्यवार। १०, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र। ११ बारह की सख्या। १२ प्रकाशकिरण [को०]। १३. अग्नि [को०]। १४ एक धार्मिक कृत्य [को०]। १५. स्तुति। स्तोत्र [को०]। १६. भोजन। खाद्य पदार्थ [को०]। १७ सूर्यकातमणि [को०]।

अर्क[2]—वि० पूजनीय। अर्चनीय।

अर्क[3]—संज्ञा पुं० [अ० अरक] किसी चीज का निचोडा हुआ रस। राग। वि० दे० 'अरक'।

यौ०—अर्क बादियान=सौंफ का अर्क।

अर्ककात—संज्ञा पुं० [सं० अर्ककान्त] ११ मजिलो का भवन [को०]।

अर्ककाता—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्ककान्ता] हुरहुर का क्षुप [को०]।

अर्कक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ सिंह राशि। २ उडीसा स्थित एक पवित्र स्थान [को०]।

अर्कगीर—संज्ञा पुं० [अ० अरक + फा० गीर] वह जो इत्र चुआने का काम करता है।

अर्कग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यग्रहण [को०]।

अर्कचदन—संज्ञा पुं० [सं० अर्कचन्दन] रक्त चदन। लाल चदन।

अर्कज—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र—१.यम। २ शनि। ३। अश्विनीकुमार। ४ सुग्रीव। ५ कर्ण।

अर्कजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की कन्या—१ यमुना। ताप्ती।

अर्कतनय—संज्ञा पु० [सं०] सूर्य का पुत्र। कर्ण, यम, शनि, वैवस्वत और सावर्णि मनु आदि [को०]।

अर्कदिन—संज्ञा पुं० [सं०] रविवार [को०]।

अर्कनदन—संज्ञा पुं० [सं० अर्कनन्दन] दे० 'अर्कतनय' [को०]।

अर्कनयन—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य चद्रमा जिसके नेत्र हैं वह—विराट् पुरुष।

अर्कनना—संज्ञा पुं० [अ० अरक नाना] सिरके के साथ भभके मे उतारा हुआ पुदीने का अर्क।

अर्कपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सुनंदा। २ एक लता जो विष की ओषधि है। अर्कमूल।

अर्कपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ मदार का वृक्ष। २ मदार का पत्ता।

अर्कपुष्पी—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यमुखी।

अर्कप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवा। जपा। अडहुल। गुड़हर।

अर्कबंधु—संज्ञा पुं० [सं०] १ गौतम बुद्ध। २ पद्म।

अर्कभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह नक्षत्र जो सूर्य द्वारा आक्रांत हो। जिस नक्षत्र में सूर्य हो वह नक्षत्र। २ सिंह राशि। ३ उत्तरा फाल्गुनी।

अर्कभक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर का पौधा। हुडहुड।

अर्कमूल—संज्ञा पुं० [सं०] इसरमूल लता। रुहिमूल। अहिगंध।

विशेष—इसकी जड़ साँप के काटने में दी जाती है। बिच्छू के डंक मारने में भी उपयोगी होती है। यह पिलाई और ऊपर लगाई जाती है। स्त्रियों के मासिक धर्म को खोलने के लिये भी यह दी जाती है। कालीमिर्च के साथ हैजा अतीसार आदि पेट के रोगों में पिलाई जाती है। पत्ते का रस कुछ मादक होता है। छिलका पेट की बीमारियों में दिया जाता है। रस की मात्रा ३० से १०० बूँद तक है।

अर्कवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सौर वर्ष [को०]।

अर्कवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ बंधुजीव। दुपहरिया। २ कमल [को०]।

अर्कवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बंधुजीव। दुपहरिया। २ कमल [को०]।

अर्कविवाह—संज्ञा पुं० [सं०] मदार के वृक्ष से किया जानेवाला विवाह।

विशेष—तीसरे विवाह के पूर्व मदार के साथ विवाह करने का विधान है। तीसरी पत्नी या तीसरा विवाह शुभ नहीं माना गया है। अतः मदार के साथ विवाह कर के उस विवाह को चौथा मान लिया जाता है।

अर्कवेध—संज्ञा पुं० [सं०] तालीशपत्र।

अर्कव्रत—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक व्रत जो माघ शुक्ला सप्तमी को पड़ता है। २ राजा का प्रजा की वृद्धि के लिये उनसे कर लेना। जैसे सूर्य बारह महीने अपनी किरणों से जल खींचता है और चार महीने उसे प्रजा की वृद्धि के लिये बरसाता है, उसी प्रकार राजा का प्रजा से कर लेकर उनकी वृद्धि में उसे लगाना।

अर्कसुत—संज्ञा पुं० [सं०] यम। उ०—अर्कसुत की त्रास माही कृष्ण रामहिं काम।—ब्रजनिधि ग्रं०, पृ० १६०।

अर्कसोदर—संज्ञा पुं० सूर्य का भाई। ऐरावत [को०]।

अर्काश्मा—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का छोटा नगीना। अरुणोपल। चुन्नी। २ सूर्यकातमणि।

अर्कोपल—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकातमणि। लाल पद्मराग।

अर्गजा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरगजा'।

अर्गल—संज्ञा पुं० [सं०] वह लकड़ी जिसे किवाड़ बंद करके पीछे से आड़ी लगा देते हैं जिससे किवाड़ बाहर से न खुले। अरगल। अगरी। ब्योड़ा। २ किवाड़। ३ अवरोध। ४ कल्लोल। लहर। ५, वे रंगबिरंगे बादल जो सूर्योदय या सूर्यास्त के समय पूर्व या पश्चिम दिशा में दिखाई पड़ते हैं और जिनमें होकर सूर्य का उदय या अस्त होता है। ६ मास। ७ एक नरक [को०]।

अर्गला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अरगल। अगरी। २. ब्योंड़ा। ३. बिल्ली। किल्ली। सिटकिनी। ४ जंजीर जिसमें हाथी बाँधा जाता है। सिकड़। ५ एक स्तोत्र जिसका दुर्गासप्तशती आदि में पाठ करते हैं। मत्स्य सूक्त। ६ अवरोध। ७ बाधक। अवरोधक। रुकावट डालनेवाला।

अर्गलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्गला का छोटा रूप। छोटी अगरी [को०]।

अर्गलित—वि० [सं०] सिटकिनी या अर्गला से बंद किया हुआ [को०]।

अर्गली¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अर्गला' [को०]।

अर्गली²—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़ की एक जाति जो तिब्बत, शाम आदि देशों में होती है।

अर्गवनी—वि० [हिं०] दे० 'अर्गवान'। उ०—उस गहरे अर्गवनी रंग के पर्दे पर ऊँची काली चोटियाँ निश्चल, शांत और गंभीर खड़ी थीं।—किन्नर०, पृ० ६।

अर्गवानी—वि० [फ़ा०] अर्गवान नामक फूल के रंग का। सुर्ख [को०]।

अर्घ—संज्ञा पुं० [सं०] १ षोडशोपचार में से एक। जल, दूध, कुशाग्र, दही, सरसों, तंदुल और जव को मिलाकर देवता को अर्पण करना। २ अर्घ देने का पदार्थ। ३ जलदान। सामने जल गिराना। ४ हाथ धोने के लिये जो जल दिया जाय। ५ हाथ धोने के लिये जल देना। ६. मूल्य। दाम। ७ वह मोती जो एक धरण तौल में २४ चढ़े। ८ भेंट। ९ जल में समानार्थ तौलना। १० मधु। शहद। ११ घोड़ा। अश्व।

क्रि० प्र०—देना। करना।

यौ०—अर्घपाद्य = हाथ पैर धोने के निमित्त दिया जानेवाला जल।

अर्घट—संज्ञा पुं० [सं०] भस्म। राख।

अर्घपतन—संज्ञा पुं० [सं०] भाव का गिरना। माल की कीमत बाजार में कम होना।

अर्घपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबे का एक बर्तन जो नाव के आकार का होता है और जिसमें सूर्य आदि देवताओं को अर्घ दिया जाता है या पितरों का तर्पण किया जाता है। अर्घा।

अर्घबलाबल—संज्ञा पुं० [सं०] १ उचित मूल्य। २ सस्ता या महँगा दाम। कीमतों का चढ़ाव उतार [को०]।

अर्घवर्णांतर—संज्ञा पुं० [सं० अर्घवर्णान्तर] अच्छे माल में घटिया माल मिलाकर अच्छे माल के दाम पर बेचना।

विशेष—ऐसा करनेवाले को चंद्रगुप्त के समय में २०० पण तक जुर्माना होता था।

अर्घवर्धन—संज्ञा पुं० [सं०] कीमत बढ़ाना।

विशेष—कौटिल्य ने इसे अपराध माना है और इस प्रकार दाम बढ़ानेवाले व्यापारी पर २०० पण तक जुर्माना लिखा है।

अर्घवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] माल की दर बढ़ना। बाजार में किसी माल की कीमत चढ़ना।

अर्घसंस्थापन—संज्ञा पुं० [सं०] वस्तुओं का मूल्य निश्चित करना। मूल्यनियमण [को०]।

अर्घा¹—संज्ञा पुं० [सं० अर्घ] १ तांबे या अन्य धातु का बना हुआ थूहर के पत्ते या शख के आकार का एक पात्र जिसमे अर्घ देते हैं। पितरो का तर्पण भी इससे किया जाता है। २ जलधरी।

अर्घा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] २० मोतियों का लच्छा जिसकी तौल ३२ रत्ती हो।

विशेष—वाराहमिहिर के समय मे एक अर्घा १७० कार्षापण मे बिकता था।

अर्घापचय—संज्ञा पुं० [सं०] मूल्य गिरना [को०]।

अर्घीश—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अर्घेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव [को०]।

अर्घ्य¹—वि० [सं०] १ पूजनीय। २ बहुमूल्य। ३ पूजा मे देने योग्य (जल, फूल, मूल आदि)। ४ भेंट देने योग्य।

अर्घ्य²—संज्ञा पुं० [सं०] जिस वन मे जरत्कारु मुनि व्रत करते थे वहाँ का मधु।

अर्चक—वि० [सं०] पूजा करनेवाला। पूजक।

अर्चन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूजा। पूजन। २ आदर। सत्कार।

अर्चन²—संज्ञा पुं० [देश०] घुंडी जिसपर दूर दूर कलाबत्तू लपेटा हो।

अर्चना¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूजा। पूजन।

अर्चना²Ⓤ—क्रि स० [हिं०] दे० 'अरचना'।

अर्चनीय—वि० [सं०] १ पूजनीय। पूजा करने योग्य। २ आदरणीय।

अर्चमान—वि० [सं०] पूजनीय। अर्चनीय। उ०—विचारमान ब्रह्म, देव अर्चमान मानिए।—राम च०, पृ० ,३।

अर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूजा। २ प्रतिमा।

अर्चि—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्चिस्] १ अग्नि आदि की शिखा। उ०—शुष्क डालियों से वृक्षों की अग्नि अर्चियाँ हुई समिद्ध—कामायनी, पृ० । २ दीप्ति। तेज। ३ किरण।

अर्चित¹—वि० [सं०] १ पूजित। २ आदृत। आदरप्राप्त।

अर्चित²—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

अर्चिती—वि० [सं० अर्चितिन्] आराधना करनेवाला [को०]।

अर्चिमान—वि० [सं०] प्रकाशमान। चमकता हुआ।

अर्चिमाल्य—संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि के अनुसार एक बंदर जो महर्षि मरीचि का पुत्र था।

अर्चिरादिमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] देवयान। उत्तर मार्ग।

अर्चिष्मती—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निपुरी। अग्नि लोक।

अर्चिष्मान¹—संज्ञा पुं० [सं० अर्चिष्मत्] [स्त्री० अर्चिष्मती] १ सूर्य। २ अग्नि। ३ देवताओं का एक भेद ४ वाल्मीकि के अनुसार एक बंदर जो महर्षि मरीचि का पुत्र था।

अर्चिष्मान²—वि० दीप्त। प्रकाशमान।

अर्ज—संज्ञा पुं० [अ० अर्ज] १ विनती। विनय।

क्रि० प्र०—करना = प्रार्थना करना। कहना। निवेदन करना।

२ चौड़ाई। आयत।

अर्जंडरसाल—संज्ञा पुं० [फा०] वह पत्र जिसके द्वारा रुपया खजाने मे दाखिल किया जाता है। चलान।

अर्जक¹—संज्ञा पुं० [सं०] बनतुलसी। बबई।

अर्जक²—वि० उपार्जन करनेवाला। पैदा करनेवाला [को०]।

अर्जदाश्त—संज्ञा स्त्री० [फा०] निवेदनपत्र। प्रार्थनापत्र।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—भेजना।

अर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपार्जन। पैदा करना। कमाना। २ संग्रह करना। संग्रह।

क्रि० प्र०—करना।

अर्जनीय—वि० [सं०] १ संग्रह करने योग्य। २ ग्रहण करने योग्य। प्राप्त करने योग्य।

अर्जमाⓊ—संज्ञा पुं० [सं० अर्यमा] दे० 'अर्यमा'।

अर्जस्तⓊ—संज्ञा स्त्री० [फा० अर्जदाश्त] दे० 'अर्जदाश्त'। उ०—पग काज अर्जस्त चलावहु।—प० रासो, पृ० ६७।

अर्जित—वि० [सं०] १ संग्रह किया हुआ। संगृहीत। २ प्राप्त किया हुआ। कमाया हुआ। प्राप्त।

अर्जी—संज्ञा स्त्री० [फा० अर्जी] प्रार्थनापत्र। निवेदनपत्र।

अर्जीदावा—संज्ञा स्त्री० [फा० अर्जीदावा] वह निवेदनपत्र को अदालत दीवानी या माल मे किसी दादरसी के लिए दिया जाय।

अर्जीनवीस—वि० [फा० अर्जीनवीस] प्रार्थनापत्र या निवेदनपत्र लिखनेवाला [को०]।

अर्जीनालिश—संज्ञा पुं० [फा० अर्जीनालिश] दे० 'अर्जीदावा' [को०]।

अर्जीमरम्मत—संज्ञा स्त्री० [फा० अर्जीमरम्मत] वह आवेदनपत्र जो किसी पूर्व आवेदनपत्र मे छूटी हुई बातो को बढ़ाने या अशुद्धि को शोधने आदि के लिये दिया जाय।

अर्जुन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह वृक्ष जो दक्खिन से अवध तक नदियो के किनारे होता है।

विशेष—यह बरमा और लंका मे भी होता है। इसके पत्ते टसर के कीड़ो को खिलाए जाते हैं। छाल, चमड़ा सिझाने, रंग बनाने तथा दवा के काम मे आती है। इससे एक स्वच्छ गोंद निकलती है जो दवा के काम मे आती है। लकड़ी से खेती के औजार तथा नाव और गाड़ी आदि बनती है। इसको जलाने से राख मे चूने का भाग अधिक निकलता है।

पर्या०—शिवमल्ल। शबर। ककुभ। काहू।

२ पाँच पांडवों मे से मँझले का नाम। ये बड़े वीर और धनुर्विद्या मे निपुण थे।

पर्या०—फाल्गुन। जिष्णु। किरीटी। श्वेतवाहन। बृहन्नल। धनंजय। पार्थ। कपिध्वज। सव्यसाची। गांडीवधन्वा। गांडीवी। बीभत्सु। पांडुनंदन। गुडाकेश। मध्यम पांडव। विजय। राधाभेदी ऐंद्रि।

३ हैहयवंशी एक राजा। सहस्रार्जुन। ४ सफेद कनेर। ५ मोर। ६ आँख का एक रोग जिसमे आँख मे सफेद छीटे पड़ जाते हैं। फूली। ७ एकलौता बेटा। ८ अर्जुन (वैदिक)। ९. इंद्र [को०]। १० चाँदी [को०]। ११ सोना [को०]। १२ दूब [को०]। १३ सफेद रंग [को०]।

अर्जुन²—वि० १ उज्वल। सफेद। २ शुभ्र। स्वच्छ।

अर्जुनक—वि० [सं०] १ अर्जुन संबंधी। १. अर्जुन की पूजा करनेवाला [को०]।

अर्जुनच्छवि—वि० [सं०] सफेद। सफेद रंगवाला [को०]।
अर्जुनध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद ध्वजवाला। हनूमान [को०]।
अर्जुनपाकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा तथा उसका फल [को०]।
अर्जुन वदर—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन नामक पौधे का रेशा [को०]।
अर्जुनसखा—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण [को०]।
अर्जुनायन—संज्ञा पुं० [सं०] वराहमिहिर के अनुसार उत्तर का एक देश।
अर्जुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बाहुदा या करतोया नदी जो हिमालय से निकलकर गंगा में मिलती है। २ सफेद रंग की गाय। ३. कुटनी। ४ अनिरुद्ध की पत्नी। उषा का नाम। ५ एक सर्प जाति [को०]।
अर्जुनोपम—संज्ञा पुं० [सं०] सागौन या टीक नामक वृक्ष [को०]।
अर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ वर्ण। अक्षर। जैसे, पंचार्ण=पंचाक्षर। २ जल। पानी।
यौ०—दशार्ण=एक देश। दशार्णा=मालवा की एक नदी। ३ एक दंडक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और आठ रगण होते हैं। यह प्रचित का एक भेद है। ४. सागौन। शाल वृक्ष। ५ रंग [को०]। ६ शोरगुल। युद्धघोष [को०]। ७. जलप्रवाह (को०)।
अर्णव—संज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। २ सूर्य। ३ इंद्र। ४ अंतरिक्ष। ५ दंडक वृत्त का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में २. नगण और ८ रगण होते हैं। यह प्रचित का एक भेद है। ६ चार की संख्या। ७. रत्न। मणि। जवाहिर। ८. प्रवाह। धारा [को०]।
अर्णवज—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन [को०]।
अर्णवनेमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी [को०]।
अर्णवपति—संज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र [को०]।
अर्णवपोत—संज्ञा पुं० [सं०] जलयान। पानी का जहाज [को०]।
अर्णवमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० अर्णवमन्दिर] १ वरुण। २ विष्णु [को०]
अर्णवमल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्णवज' [को०]।
अर्णवयान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्णवपोत' [को०]।
अर्णवोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्निजार नाम का पौधा। चंद्रमा। ३ अमृत [को०]।
अर्णवोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्णव से उत्पन्न—लक्ष्मी [को०]।
अर्णस—वि० [सं०] १ तरंगपूर्ण। २ फेनिल [को०]।
अर्णस्वान्[1]—संज्ञा पुं० [सं० अर्णस्वत्] सागर [को०]।
अर्णस्वान्[2]—वि० अतिशय जलवाला [को०]।
अर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।
अर्णोद—संज्ञा पुं० [सं०] १ बादल। मुस्तक नाम का पौधा। मोथा [को०]।
अर्णोनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र [को०]।
अर्णोरुह—संज्ञा पुं० [सं०] कमल [को०]।
अर्तगल—संज्ञा पुं० [सं०] नीलझिंटी। नीली कटसरैया [को०]।
अर्तन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] निंदा [को०]।
अर्तन[2]—वि० १ निंदा करनेवाला। २ दुःखी। खिन्न [को०]।
अर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अर्तित] १ पीड़ा। व्यथा। २ धनुष की कोटि। धनुष के दोनों छोर।
अर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (नाटक में) बड़ी बहन [को०]।
अर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. शब्द का अभिप्राय। मनुष्य के हृदय का आशय जो शब्द से प्रकट हो। शब्द की शक्ति।
विशेष—साहित्यशास्त्र में अर्थ तीन प्रकार का माना गया है—(क) अभिधा से वाच्यार्थ, (ख) लक्षणा से लक्ष्यार्थ और (ग) व्यंजना से व्यंग्यार्थ।
क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—बैठाना।
२. अभिप्राय। प्रयोजन। मतलब। जैसे—वह किस अर्थ से यहाँ आया है' (शब्द०)। ३. काम। इष्ट। उ०—'यहाँ बैठने से तुम्हारा कुछ अर्थ न निकलेगा'। (शब्द०)।
क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।—सधना। साधना।
४. हेतु। निमित्त। जैसे—'विद्या के अर्थ प्रयत्न करना चाहिए' (शब्द०)। ५. इंद्रियों के विषय। ये पाँच हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। ६ चतुर्वर्ग में से एक। धन। संपत्ति। ७. अर्थशास्त्र के अनुसार मित्र, पशु, भूमि, धन, धान्य आदि की प्राप्ति और वृद्धि। ८ कुंडली में लग्न से दूसरा घर। ९ कारण [को०]। १० वस्तु। पदार्थ [को०]। ११ लाभ। प्राप्ति [को०]। १२. याचना। प्रार्थना [को०]। १३ वास्तविक स्थिति [को०]। १४. तौर तरीका। ढंग [को०]। १५ रोक। रुकावट [को०]। १६ मूल्य [को०] १७ परिणाम। नतीजा [को०]। १८ धर्म का एक पुत्र [को०]। १९. विष्णु २० [को०] पूर्वमीमांसा के अनुसार एक श्रेणी अपूर्व [को०]। २१ शक्ति [को०]। २२ दावा [को०]।
यौ०—अनर्थ। अभ्यर्थना। समर्थ। समर्थन। सार्थक। निरर्थक। अर्थपति। अर्थगौरव। अर्थकृच्छ्र। अर्थकरी। अर्थापत्ति। अर्थांतर। अर्थवान।
अर्थकर—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० अर्थकरी] १ जिससे धन उपार्जन किया जाय। लाभकारी, जैसे—अर्थकरी विद्या।
अर्थकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ मुख्य या प्रधान काम। २ फलदायक कार्य [को०]।
अर्थकाम—वि० [सं०] धन की इच्छा रखनेवाला [को०]।
अर्थकिल्विषी—वि० [सं० अर्थकिल्विषिन्] जो लेनदेन में शुद्ध व्यवहार न रखे। बेईमान।
अर्थकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ धन की कमी। दरिद्रता। २ राज्य की आर्थिक तंगी। राजकार्य में व्यय का बढ़ना।
विशेष—कौटिल्य के अनुसार ऐसी तंगी में चंद्रगुप्त के समय में राज्य जनता से अपूर्ण राजस्व कर एक दम से माँग लेता था।
अर्थकोविद—वि० [सं०] अनुभवी। विशेषज्ञ [को०]।
अर्थगत—वि० [सं०] शब्द के अर्थ पर आश्रित [को०]।
अर्थगर्भ—वि० [सं०] जिसमें अर्थ भरा हो। अर्थयुक्त [को०]।
अर्थगृह—संज्ञा पुं० [सं०] कोष। खजाना। जहाँ रुपया पैसा रखा जाता हो [को०]।

अर्थगौरव—संज्ञा पुं० [सं०] किसी शब्द या वाक्य मे अर्थ की गंभीरता ।

अर्थघ्न—वि० [सं०] अपव्ययी । फजूलखर्च [को०] ।

अर्थचर—संज्ञा पुं० [सं०] सरकारी नौकर ।

अर्थचिंतक—संज्ञा पुं० [सं० अर्थचिन्तक] वह मंत्री जो राज्य के आयव्यय पर ध्यान रखे । अर्थसचिव । मशीरमाल ।

अर्थचिंतन—संज्ञा पुं० [सं० अर्थचिन्तन] १. अर्थ (माने) के लिये चिंतन । २ धन के लिये सोचना [को०] ।

अर्थचिंता—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्थचिन्ता] अर्थ या धन संबंधी चिंता[को०]।

अर्थजात—वि० [सं०] १ अर्थ से भरा हुआ । २. धनी [को०] ।

अर्थज्ञ—वि० [सं०] उद्देश्य या मतलब समझनेवाला [को०] ।

अर्थत—अव्य [सं०] १ वास्तव में । सचमुच । वस्तुत । २ अर्थ की दृष्टि से [को०] ।

अर्थदंड—संज्ञा पुं० [सं० अर्थदण्ड] वह धन जो किसी अपराध के दंड मे अपराधी से लिया जाय । जुर्माना ।

अर्थद[1]—वि० [सं०] [स्त्री० अर्थदा] धन देनेवाला ।

अर्थद[2]—संज्ञा पुं० १. कुबेर । २ दस प्रकार के शिष्यों में से एक । वह जो धन देकर विद्या पढ़े ।

अर्थदर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अर्थसंबंधी मुकदमों पर विचार करता है [को०] ।

अर्थदूषण—संज्ञा पुं० [सं०] १ फिजूल खर्च । अपव्यय । २. अन्याय या धोखे से दूसरे की संपत्ति लेना । ३ अर्थ (माने) मे गलती पाना । ४ दूसरे की संपत्ति को नष्ट भ्रष्ट करना [को०] ।

अर्थदोष—संज्ञा पुं० [सं०] १ अर्थसंबंधी दोष । २ साहित्य मे चार दोषों मे एक [को०] ।

अर्थना[1](पु)—क्रि० स० [सं० अर्थ] माँगना । याचना करना ।

अर्थना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] याचना । निवेदन । प्रार्थना । २ अर्जी-दावा [को०] ।

अर्थन्यायालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह न्यायालय जहाँ अर्थसंबंधी मुकदमों का निर्णय होता है ।

अर्थपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुबेर । २ राजा ।

अर्थपिशाच[1]—वि० [सं०] जो द्रव्य का संग्रह करने में कर्तव्याकर्तव्य पर विचार न करे । धनलोलुप ।

अर्थपिशाच[2]—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो धन का अत्यंत लोभ करता है ।

अर्थप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटकों मे आनेवाली पाँच महत्वपूर्ण स्थितियाँ—१ बीज, २ बिंदु, ३. पताका, ४ प्रकरी और ५ कार्य ।

अर्थबंध—संज्ञा पुं० [सं० अर्थबन्ध] छंद मे शब्द आदि का उचित प्रयोग । पद्यरचना ।

अर्थबुद्धि—वि० [सं०] स्वार्थपरायण [को०] ।

अर्थबोध—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तविक अर्थ का ज्ञान [को०] ।

अर्थभाक्—संज्ञा पुं० [सं० अर्थभाज्] जायदाद मे हिस्सा पानेवाला । हकदार [को०] ।

अर्थभृत—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक तनख्वाह मे नकद रुपया लेकर काम करनेवाला व्यक्ति ।

अर्थभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं०] १ धन संपत्ति का विनाश । २. उद्देश्य पूर्ण न होना [को०] ।

अर्थमंत्री—संज्ञा पुं० [सं० अर्थमन्त्रिण] अर्थ के मामलों से संबद्ध मंत्री ।

अर्थयुक्त—वि० [सं०] अर्थगर्भित । अर्थपूर्ण [को०] ।

अर्थयुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राप्ति । लाभ [को०] ।

अर्थराशि—संज्ञा पुं० [सं०] प्रचुर धन [को०] ।

अर्थलाभ—संज्ञा पुं० [सं०] धन या द्रव्य की प्राप्ति [को०] ।

अर्थलोभ—संज्ञा पुं० [सं०] धन की तृष्णा या लोभ [को०] ।

अर्थवाद—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय के अनुसार तीन प्रकार के वाक्यों मे से एक । वह वाक्य जिससे किसी विधि के करने की उत्तेजना पाई जाय । यह चार प्रकार का है—स्तुति, निंदा, परकृति और पुराकल्प ।

अर्थवादी—वि० [सं० अर्थवादिन्] अर्थवाद को माननेवाला [को०] ।

अर्थवान्—वि० [सं०] १ अर्थ (मतलब) वाला । एक विशेष अर्थ रखने-वाला । २ धनवान । पैसेवाला [को०] ।

अर्थविकरण—संज्ञा पुं० [सं०] तात्पर्य परिवर्तन [को०] ।

अर्थविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अर्थशास्त्र' । २ अर्थ को समझने की ६ प्रक्रियाओं मे से एक । धी गुण । [को०] ।

अर्थविद्—वि० [सं०] अर्थ का ज्ञाता । समझदार [को०] ।

अर्थविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यावहारिक जीवन का ज्ञान या विद्या [को०] ।

अर्थवेद—संज्ञा पुं० [सं०] शिल्पशास्त्र ।

अर्थव्यवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] सार्वजनिक राजस्व और उसके आय-व्यय की पद्धति । फाइनांस ।

अर्थशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमे अर्थ की प्राप्ति, रक्षा और वृद्धि का विधान हो । प्राचीन काल मे इस विषय पर बहुत से आचार्यों के रचे ग्रंथ थे, पर अब केवल कौटिल्य (चाणक्य) का रचा हुआ ग्रंथ मिलता है । अर्थविज्ञान ।

अर्थशौच—संज्ञा पुं० [सं०] लेन देन मे शुद्ध व्यवहार । अर्थव्यवहार की पवित्रता रखना [को०] ।

अर्थसंशयापद—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार ऐसे समानतोऽर्थापद की प्राप्ति जिसमे पार्ष्णिग्राह बाधक हो ।

अर्थसचिव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्थमंत्री' ।

अर्थसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कौटिल्य के अनुसार पार्ष्णिग्राह को मित्र तथा आक्रंद (शत्रु के शत्रु) का सहारा मिलना । २ अभिलषित की प्राप्ति । सफलता [को०] ।

अर्थहर—वि० [सं०] उत्तराधिकार मे धन पानेवाला [को०] ।

अर्थहीन—वि० [सं०] १ निर्धन । २ जिसमे अर्थ न हो । निरर्थक । ३ असफल [को०] ।

अर्थांतर—संज्ञा पुं० [सं० अर्थान्तर] १ भिन्न अर्थ । २ भिन्न कारण । ३. नई परिस्थिति । ४ अर्थ का अंतर [को०] ।

अर्थांतरन्यास—संज्ञा पुं० [अर्थान्तरन्यास] १. वह काव्यालंकार जिसमें सामान्य से विशेष का या विशेष से सामान्य का, साधर्म्य या वैधर्म्य द्वारा, समर्थन किया जाय, जैसे—(क) 'लागत निज मति दोष ते सुंदरहू विपरीत। पित्तरोगवश लखहि नर शशि सित शखहू पीत।' यहाँ पूर्वार्ध के सामान्य कथन का समर्थन उत्तरार्ध के विशेष कथन से साधर्म्य द्वारा किया गया है। (ख) 'हरि प्रताप गोकुल बच्यो का नहिं करहिं महान।' यहाँ 'हरि प्रताप गोकुल बच्यो' इस विशेष वाक्य का समर्थन 'का नहिं करहिं महान' इस सामान्य वाक्य से साधर्म्य द्वारा किया गया है। इसी प्रकार वैधर्म्य का भी उदाहरण समझना चाहिए २ न्याय में एक प्रकार का निग्रह स्थान। जब वादी ऐसी बात कहे जो प्रकृत (असल) विषय या अर्थ से कुछ संबंध न रखती हो, तब वहाँ यह होता है।

अर्थागम—संज्ञा पुं० [सं०] धनलाभ। आमदनी।

अर्थात्—अव्य० [सं०] यानी। तात्पर्य यह कि।

विशेष—इसका प्रयोग विवरण करने में आता है, जैसे—ऐसा कौन होगा जो भले की प्रशंसा नहीं करता अर्थात् सब करते हैं।

अर्थातिक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार हाथ में आई या मिली हुई अच्छी वस्तु को छोड़ देना।

अर्थानर्थसंशय—संज्ञा पुं० [सं०] एक ओर से अर्थ तथा दूसरी ओर से अनर्थ की संभावना।

अर्थानर्थापद—संज्ञा पुं० [सं०] एक ओर से प्राप्ति और दूसरी ओर से राज्य जाने का भय।

अर्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अर्थानुबन्ध] शत्रु को नष्ट कर पार्ष्णिग्राह को अपने वश में करना।

अर्थाधिकारी—संज्ञा पुं० [सं० अर्थाधिकारिन्] कोषाधिकारी। खजांची [को०]।

अर्थाना(पु)—क्रि० स० [सं० अर्थ+हिं० आना (प्रत्य०)] अर्थ लगाना। ब्योरे के साथ समझाकर कहना। अरथाना।

अर्थानुवाद—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायशास्त्रानुसार अनुवाद का एक भेद। विधि से जिसका विधान किया गया हो, उसका अनुवचन या फिर फिर कहना।

अर्थान्वित—वि० [सं०] १ अर्थयुक्त। अर्थगर्भ। २ महत्वपूर्ण। ३ धनवान् [को०]।

अर्थापत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. मीमांसा के अनुसार एक प्रकार का प्रमाण जिसमें एक बात कहने से दूसरी बात की सिद्धि आप से आप हो जाय। नतीजा। निगमन, जैसे—'बादलों के होने से वृष्टि होती है।' इसमें यह सिद्ध हुआ कि बिना बादल के वृष्टि नहीं होती। न्यायशास्त्र में इसे पृथक् प्रमाण न मानकर अनुमान के अंतर्गत माना है। २. एक अर्थालंकार जिसमें एक बात के कथन से दूसरी बात की सिद्धि दिखलाई जाय। इस अलंकार में वास्तव में यह दिखाया जाता है कि जब इतनी बड़ी बात हो गई, तब यह छोटी बात होने में क्या संदेह है, जैसे—(क) मुख जीत्यो वा चंद को कहा कमल की बात। (ख) जिसने शालिग्राम को भूना, उसे बैंगन भूनते क्या लगता है।

अर्थापत्तिसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाती के चौबीस भेदों में से एक। वादी के उत्तर में यह कहना कि यदि तुम मेरा प्रतिपादित अमुक सिद्धांत न मानोगे तो बड़ा दोष पड़ेगा, अर्थापत्तिसम कहलाता है।

अर्थाप्रतिकार—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रबंधकर्ता जो कारखाने नौकरों, तथा अन्य मनुष्यों को, जिन्होंने कच्चा माल आदि दिया हो, धन देता है।

अर्थार्थी—वि० [सं० अर्थार्थिन्] १. धन की कामनावाला। २ धनप्राप्ति के लिये प्रयास करनेवाला। ३ अपना मतलब चाहनेवाला [को०]।

अर्थालंकार—संज्ञा पुं० [सं० अर्थालङ्कार] वह अलंकार जिसमें अर्थ का चमत्कार दिखाया जाय। शब्दालंकार के विरुद्ध अलंकार।

अर्थिक—संज्ञा पुं० [सं०] वे बंदीगण जो राजा को शयन से जगाते हैं। वैतालिक। स्तुतिपाठक। २ पहरुआ। प्रहरी [को०]।

अर्थित¹—वि० [सं०] माँगा हुआ। इच्छित [को०]।

अर्थित²—संज्ञा पुं० कामना। इच्छा [को०]।

अर्थी¹—वि० [सं० अर्थिन्] [वि०स्त्री० अर्थिनी] १ इच्छा रखनेवाला चाह रखनेवाला। २ कार्यार्थी। प्रयोजनवाला। गर्जी। याचक ३. वादी। मुद्दई। ४ सेवक। ५ धनी। ६ दे० 'अरथी'।

अर्थी²—संज्ञा पुं० वह जिसने किसी पर रुपयों का दावा किया हो (स्मृति)।

अर्थ्य¹—वि० [सं०] १. माँगने योग्य। २ उचित। उपयुक्त। अच्छा। ३ धनी। ४ बुद्धिमान्। ५ सत्य। ६ अर्थोपार्जन करने में कुशल [को०]।

अर्थ्य²—संज्ञा पुं० लाल खड़िया या चाक [को०]।

अर्दन¹—संज्ञा पुं० [सं०][स्त्री० अर्दना] १. पीडन। दमन। हिंसा। २ जाना। गमन। ३ याचना। माँगना। ४. शिव का एक नाम [को०]।

अर्दन²—वि० १ पीडक। हिंसक। २ बेचैन या व्यग्र होकर घूमनेवाला [को०]।

अर्दना(पु)—क्रि० स० [सं० अर्दन=पीडन] पीडित करना। उ०—गहि वैष्णव को दंड कर मेघ समान ननदि। मर्दि सुरन रन अर्दि अति जैसे कुपित कपर्दि।—गोपाल (शब्द०)।

अर्दनि—संज्ञा पुं०[सं०]१ प्रार्थना।२. माँगना। भिक्षा। ३ बीमारी रोग। ४ आग [को०]।

अर्दली—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरदली'।

अर्दित¹—वि० [सं०] १ पीडित। दमित। २ गत। ३ याचित।

अर्दित²—संज्ञा पुं० [सं०] एक वातरोग।

विशेष—इसमें वायु के प्रकोप से मुँह और गर्दन टेढ़ी हो जाती है, सिर हिलता है, नेत्र आदि विकृत हो जाते हैं बोला नहीं जाता और गर्दन तथा दाढ़ी में दर्द होता है।

अर्द्धंग(पु)—संज्ञा पुं०[सं० अर्द्धाङ्ग] १ शिव। उ०—भग होत अर्द्धंग धनु जानि लखन तिहि काल। कह्यो लोकपालन मनहि सजग होहु यहि काल।—रघुराज (शब्द०)। २ एक रोग। दे० 'अर्द्धांग'।

अर्द्ध¹—वि० [सं०] किसी वस्तु के दो सम भागों में से एक। आधा

अर्द्ध²—संज्ञा पुं० १ स्थान। क्षेत्र। २ भाग। हिस्सा। ३ आधा हिस्सा। ४ वायु। हवा। ५ वृद्धि। ६ समीप। लगभग [को०]।

विशेष--यह शब्द अर्द्ध और अर्ध इन दोनो रूपों मे संस्कृत है। इससे बननेवाले शब्द भी दोनों रूपों मे प्राप्त होते हैं। उनमे और कोई अंतर नहीं होता।

अर्द्धक¹--संज्ञा पुं० [सं०] चडातक। घुटने तक का लहँगा या पेटीकोट [को०]।

अर्द्धक²--वि० आधा [को०]।

अर्द्धकर्ण--संज्ञा पुं० [सं०] अर्धव्यास त्रिज्या [को०]।

अर्द्धकाल--संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

अर्द्धकूट--संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अर्द्धकेतु--संज्ञा पुं० [सं०] रुद्र [को०]।

अर्द्धगंगा--संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धगङ्गा] कावेरी।

अर्द्धगुच्छ--संज्ञा पुं० [सं० अर्धगुच्छ] वह मोती की माला जिसमे चौबीस लडियाँ हों। वाराहमिहिर के अनुसार इसमे बीस लडियाँ होनी चाहिए।

अर्द्धगोल--संज्ञा पुं० [सं०] गोलार्ध [को०]।

अर्द्धचंद्र--संज्ञा पुं० [सं० अर्द्धचन्द्र] १. आधा चाँद। अष्टमी का चद्रमा। २. चद्रिका। मोरपंख पर की आँख। ३. नखक्षत का एक भेद। ४. एक प्रकार का बाण जिसके अग्रभाग पर अर्धचद्राकार नोक होती है। ५. सानुनासिक का एक चिह्न। चंद्रबिंदु--। ६. एक प्रकार का त्रिपुंड। ७. निकाल बाहर करने के लिये गले मे हाथ लगाने की मुद्रा। गरदनिया।

अर्द्धचंद्रा--संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धचन्द्रा] तिधारा या कर्णस्फोट नाम का पौधा।

अर्द्धचंद्रिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धचद्रिका] कनफोडा नाम की लता।

अर्द्धजल--संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान मे शव को स्नान करा के आधा जल मे और आधा बाहर डाल देने की क्रिया।

अर्द्धज्योतिका--संज्ञा संज्ञा [सं०] ताल का एक भेद।

अर्द्धतिक्त--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की नीम जो नेपाल मे होती है।

अर्द्धतूर--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वाद्य [को०]।

अर्द्धधार--संज्ञा पुं० [सं०] एक ओर धारवाला चाकू। सुश्रुत मे वर्णित २० शल्योपकरणों मे से एक [को०]।

अर्द्धनटेश्वर--संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक रूप [को०]।

अर्द्धनयन--संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की तीसरी आँख जो ललाट मे होती है।

अर्द्धनाराच--संज्ञा पुं० [सं०] १. जैन शास्त्रानुसार वह हड्डी जो मर्कटबंध और कीलक पाशों मे बँधी होती है। २. एक प्रकार का बाण।

अर्द्धनारी--संज्ञा पुं० [सं०] अर्धनारीश्वर। शिव [को०]।

अर्द्धनारीश--संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अर्द्धनारीश्वर--संज्ञा पुं० [सं०] १. तंत्र मे शिव और पार्वती का सम्मिलित रूप। २. आयुर्वेद मे रसांजन जिसे आँख मे लगाने से ज्वर उतर जाता है।

अर्द्धपारावत--संज्ञा पुं० [सं०] तीतर।

अर्द्धपोहल--संज्ञा पुं० [दे०] एक पौधा जिसकी पत्तियाँ मोटी होती हैं।

अर्द्धप्रादेश--संज्ञा पुं० [सं०] वास्तुशास्त्र मे प्रचलित सेतु के मध्य मे आलंबन बिंदु तक का अंतर जहाँ शृंखल बँधे रहते हैं। सेतु के मध्य मे उसके उस स्थान तक का अंतर जहाँ वह खंभे या दीवार पर टिका रहता है।

अर्द्धभागिक--वि० [सं०] आधे का हिस्सेदार [को०]।

अर्द्धभास्कर--संज्ञा पुं० [सं० अर्धभास्कर] दुपहरी। दुपहरिया। मध्याह्न [को०]।

अर्द्धमागधी--संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राकृत का एक भेद। पटना और मथुरा के बीच के देश की पुरानी भाषा।

अर्द्धमाणव--संज्ञा पुं० [सं०] १. कौटिल्य के अनुसार वह शीर्षकहार जिसके बीच मे मणि हो। २. दस मोतियों की माला। ३. बारह लडियोंवाला एक हार [को०]।

अर्द्धमाणवक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्द्धमाणव'।

अर्द्धमात्रा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आधी मात्रा। २. व्यंजन। ३. संगीत शास्त्रानुसार चतुर्दश मात्राओं का एक भेद।

अर्द्धमासभृत--संज्ञा पुं० [सं०] वह मजदूर या नौकर जिसे अर्धमासिक (१५ दिन पर) वेतन मिलता हो।

अर्द्धरथ--संज्ञा पुं० [सं० अर्धरथ] वह रथी जो दूसरे के साथ होकर लडे [को०]।

अर्द्धविसर्ग--संज्ञा पुं० [सं०] क, ख, प, फ, के पहले होनेवाले आधे विसर्ग का उच्चारण। विसर्ग का आधा उच्चारण [को०]।

अर्द्धविसर्जनीय--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्द्धविसर्ग' [को०]।

अर्द्धवीक्षण--संज्ञा पुं० [सं०] कनखी से देखना। तिरछी चितवन।

अर्द्धवृत्त--संज्ञा पुं० [सं०] वृत्त का आधा भाग। वृत्त का वह भाग जो व्यास और परिधि के आधे भाग मे घिरा हो। २. पूरे वृत्त की परिधि का आधा भाग।

अर्द्धवृद्ध--संज्ञा पुं० [सं०] प्रौढ। मध्य आयु का व्यक्ति [को०]।

अर्द्धवृद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं०] किराए या सूद का आधा [को०]।

अर्द्धवैनाशिक--संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार अर्धनाश के पक्षपाती कणाद के अनुयायी जन [को०]।

अर्द्धव्यास--संज्ञा पुं० [सं०] केंद्र से परिधि तक का अंतर। त्रिज्या। रेडियस [को०]।

अर्द्धशफर--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

अर्द्धशब्द--वि० [सं०] धीमी आवाजवाला [को०]।

अर्द्धसम--वि० [सं०] आधे के बराबरवाला। आधा [को०]।

अर्द्धसमवृत्त--संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जिसका पहला चरण तीसरे चरण के बराबर हो; जैसे, दोहा और सोरठा।

अर्द्धसीरी--संज्ञा पुं० [सं० अर्धसीरिन्] अपने पारिश्रमिक के बदले मे आधी फसल लेनेवाला। अधिया पर खेत जोतनेवाला कृषक [को०]।

अर्द्धहार--संज्ञा पुं० [सं०] ६४ मोतियों की माला अथवा ४० लडियोंवाला हार (को०)।

अर्द्धह्रस्व--संज्ञा पुं० [सं०] ह्रस्व स्वर का आधा [को०]।

अर्धांग--संज्ञा पुं० [सं० अर्धाङ्ग] १. आधा अंग। उ०--परम नवीन अर्धांग शैलात्मजा, व्याल नृपाल माला बिराजै।--तुलसी

ग्र० पृ० ४५८। २ एक रोग जिसमे आधा अंग चेष्टाहीन और बेकाम हो जाता है। लकवा। फालिज। पक्षाघात। ३ शिव।

अर्द्धांगिनी—सज्ञा स्त्री० [स० अर्द्धाङ्गिनी] पत्नी। भार्या।

अर्द्धांगी[1]—सज्ञा पुं० [स० अर्धाङ्गिन्] शिव।

अर्द्धांगी[2]—वि० अर्द्धांगरोगग्रस्त।

अर्द्धांशी—वि० [स० अर्धांशिन्] अर्द्धभाग का अधिकारी [को०]।

अर्द्धा—सज्ञा स्त्री० [स०] ऐसे २५ मोतियो का गुच्छा जिसकी तौल ३२ रत्ती हो।

विशेष—वाराहमिहिर के समय एक अर्धा का दाम १३० कर्षापण था। उस समय कर्षापण मे दस मासे चाँदी होती थी और वह सोलह मोटे (गोरखपुरी) पैसो के बराबर होता था।

अर्द्धाली—सज्ञा स्त्री० [स० अर्धालि] वह चौपाई जिसमे दो ही चरण हो। आधी चौपाई, जैसे—राम भजन विनु सुनहु खगेसा। मिटै न जीवन केर कलेसा।

अर्द्धावभेदक—सज्ञा पुं० [स०] १ अधकपारी। आधासीसी। २. अर्धांग [को०]।

अर्द्धाशन—सज्ञा [स०] १ आधा भोजन [को०]।

अर्द्धासन—सज्ञा पुं० [स०] १ आधा आसन। २ अतिशय सम्मान का स्थान। ३ बराबरी की जगह [को०]।

अर्द्धिक[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ अर्धसीरी। २. वैश्य स्त्री और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न संतान जिसका संस्कार हुआ हो।

अर्धिक[2]—वि० अधिया पर काम करनेवाला [को०]।

अर्द्धीकरण—सज्ञा पुं० [स०] १ आधा करना। २ मजूषा काढना बैठाना। जब एक कडो दूसरी कडो पर (होकर) रखी जाती है तब धरातल समान करके ठीक ठीक बैठाने के लिये प्रत्येक सधिस्थल को आधा आधा छील देते है। वास्तुशास्त्र मे यह अर्धीकरण कहलाता है

अर्द्धुक—वि० [स०] उत्कर्षशील। उन्नतिशील [को०]।

अर्द्धेंदु—सज्ञा पुं० [स० अर्द्धेन्दु] १ अर्धचन्द्र। २ अर्धचंद्राकार नखक्षत। दे० 'अर्द्धचंद्र' [को०]।

अर्द्धेंदुमौलि—सज्ञा पुं० [स० अर्द्धेन्दुमौलि] शिव।

अर्द्धोदक—स० पुं० [स०] आधे शरीर तक भिगोता हुआ पानी। २ मृत शरीर को नहलाकर आधा जल मे और आधा बाहर रखने की क्रिया [को०]।

अर्द्धोदय—सज्ञा पुं० [स०] एक पर्व जो उस दिन होता है जिस दिन माघ की अमावस्या रविवार को होती है तथा उसी दिन श्रवण नक्षत्र और व्यतीपात योग पडता है। इस दिन स्नान करने से सूर्यग्रहण मे स्नान करने का फल होता है।

अर्धगा(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्द्धांग'।

अर्धगी[1](पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्द्धांगी'।

अर्धंगी[2](पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] आधे अंगवाली स्त्री। अर्धांगिनी उ०—अर्धंगी पूछति मोहन सों, कैसे हितू तुम्हारे।—सूर०, १०।४२३०।

अर्ध—वि० [स०] दे० 'अर्द्ध'।

अर्न(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अर्ण] जल। पानी। उ०—थभ स्नेह रोमाच स्वरभग कप वैवर्न। सबही के अनुभाव ये सात्त्विक औरो अर्न। भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० २७।

अर्पण—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अर्पित] किसी वस्तु पर से अपना स्वत्व हटाकर दूसरे का स्थापित करना। देना। दान। २. नजर। भेंट।

यौ०—कृष्णार्पण। ब्रह्मार्पण।

३ स्थापन। रखना जैसे, पदार्पण करना। ४ वापस करना। लौटाना [को०]। ५ छेदन [को०]।

अर्पणप्रतिभू—सज्ञा पुं० [सं०] वह प्रतिभू (जामिन) जो किसी की इस प्रकार जमानत करे कि यदि यह ऋण का धन देगा, तो मैं दूँगा।

अर्पतर्प(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उरप तरप'। उ०—गाइन अति भाइत भरति अर्प तर्प की तान। अर्प दर्प कदर्प जनु कीनो सर सधान।—स० सप्तक, पृ० ३८३।

अर्पना(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अर्पण] दे० 'अर्पण'। उ०—सिव सर हमको फल दीन्हो। पुहुप, पान, नाना फल, मेवा, षटरस अर्पन कीन्हों।—सूर०, १०।७६८।

अर्पना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अरपाना'। उ०—पाडे नहिं भोग लगावन पावै। करि करि पाक जबै अर्पत हैं, तबही तब छवै आवै।—सूर०, १०।२४६।

अर्पित—वि० [सं०] अर्पण किया हुआ। उ०—देवो को अर्पित मधुमिश्रित सोम अधर से छूनो।—कामायनी, पृ० १२८। २ उत्कीर्ण [को०]। ३ चित्रित [को०]।

अर्पिस—सज्ञा पुं० [सं०] हृदय। हृदय का मास [को०]।

अर्बदर्ब(पु)—सज्ञा पुं० [स० अर्बुद+द्रव्य] धन। सपत्ति। धनदौलत। उ०—अर्बदर्ब सब देई वहाई। कै सब जाव न जाय पियाई।—जायसी (शब्द०)।

अर्बुद—सज्ञा पुं० [स०] १ गणित मे नवें स्थान की सख्या। दस कोटि। दस करोड। २ एक पर्वत जो राजपूताने की मरुभूमि मे है। अरावली। आबू जो जैनो पवित्र स्थान है। ३ एक असुर का नाम। ४ कद्रू का पुत्र एक सर्प विशेष एक नरक का नाम [को०]। ५ मेघ। बादल। ६ दो मास का गर्भ। एक रोग जिसमे शरीर मे एक प्रकार की गाँठ पड जाती है। बतौरी।

विशेष—इसमे पीडा तो नही होती पर कभी कभी यह पक भी जाती है। इसके कई भेद हैं जिनमे से मुख्य रक्तार्बुद और मासार्बुद हैं।

अर्बुदी—वि० [स० अर्बुदिन्] अर्बुद नामक रोग से ग्रसित [को०]।

अर्भ[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ बालक। २ शिशिर ऋतु। ३ शिष्य। छात्र। ४ सागपात। ५ नेत्रबाला। ६ कुशा।

अर्भ[2]—वि० १ मलिन। धुँधला। २ लघु। छोटा [को०]।

अर्भक[1]—वि० पुं० [स०] १. छोटा। अल्प २ मूर्ख। ३. दुबला। पतला। ४ तुल्य। समान [को०]।

अर्भक[2]—सज्ञा पुं० [स०] १ बालक। लडका। उ०—गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर।—मानस, १।२७२। २. किसी भी

जानवर का बच्चा [को०]। मूर्ख या जड़ व्यक्ति [को०]। ३ नेत्र-वाला। कुश।

अर्म—संज्ञा पुं० १ आँख का एक रोग। टेंटर। ढेंढर। २ पुराना आधा उजडा नगर या गाँव। ३ गतव्य देश वा स्थान [को०]।

अर्मनी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरमानी'।

अर्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अर्या, अर्याणी, अर्यी,] १ स्वामी। २ ईश्वर। ३ वैश्य।

अर्य[2]—वि० १ श्रेष्ठ। उत्तम। २ दयालु। अनुकूल [को०]।

अर्यमा—संज्ञा पुं० [सं० अर्यमन्] १ सूर्य। २ बारह अदितियो मे से एक। ३ पितर के गणो मे से एक जो सबसे श्रेष्ठ कहे जाते हैं। ४. उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र। ५ मदार। ६. अंतरग मित्र लँगोटिया यार [को०]।

अर्रबर्रा—संज्ञा पुं० [हिं०] अडबड बात। बेकार बात। फिजूल चर्चा।

अर्रा—संज्ञा पुं० [देश०] १ जगली पेड जो अर्जुन वृक्ष से मिलता जुलता होता है। इसकी लकडी बडी मजबूत होती है और छत पाटने के काम आती है। २. अरहर।

अर्ल—संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० काँटेस] इगलैंड के सामतो और बडे भूम्यधिकारियो को वशपरपरा के लिये दी जानेवाली एक प्रतिष्ठासूचक उपाधि इसका दर्जा मार्क्विस के नीचे और वाइकौंट के ऊपर है। वि० दे० 'ड्यूक'।

अर्वट—संज्ञा पुं० [सं०] भस्म। राख [को०]।

अर्वती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ घोडी। २. दूती। कुटनी। ३ परी। विद्याधरी [को०]।

अर्वा—संज्ञा पुं० [सं० अर्वन्] १. घोडा। २ घोड़े का सवार। असवार सवार। ३ चद्रमा के दस घोडो मे से एक। ४ इद्र। ५ एक प्रकार की दूरी। ६ जाना। दौडना। घूमना [को०]।

अर्वाक—अव्य० [सं० अर्वाक्] १ पीछे। इधर। २ निकट। समीप। ३ नीचे।

यो०—अर्वाक् कालिक = आधुनिक। अर्वाकस्रोता = जिसका वीर्यपात हुआ हो। उर्द्धरेता का उलटा।

अर्वाग्विल—वि० [सं०] १ अधोमुख। नीचे की तरफ मुँह या छिद्र वाला [को०]।

अर्वाग्वसु[1]—वि० [सं०] धनदाता [को०]।

अर्वाग्वसु[2]—संज्ञा पुं० १ वर्षा। २ बादल [को०]।

अर्वाचीन—वि० [सं०] १ पीछे का। आधुनिक। २ नवीन। नया। ३ उलटा। विपरीत [को०]। ४ नम्र। कृपालु [को०]।

अर्वावसु—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओ का होता [को०]।

अर्वुक—संज्ञा पुं० [सं०] १ महाभारत मे कथित दक्षिण की एक जगली जाति जिसे सहदेव ने विजित किया था।

अर्श[1]—वि० [सं०] १ पापयुक्त। दुर्भाग्य लानेवाला।

अर्श[2]—संज्ञा पुं० [सं० अर्शस्] १ बवासीर। २ क्षति। हानि [को०]।

अर्श[3]—संज्ञा पुं० [अ०] १ आकाश। उ०—अर्श तक जाती थी अब लब तक भी आ सकती नही। रहम आता है 'वर्दा' अब मुझको अपनी आह पर।—शेर०, भा० १. पृ० १७५। २. स्वर्ग। ३. चरखी जिसपर ऊन काता जाता है। ४ छत। पाटन [को०]। ५ सिंहासन। तख्त [को०]। ६. लडाई। झगडा [को०]।

अर्शवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बवासीर जिसमें गुदा के किनारे ककडी के बीज के समान चिकनी और किंचित् पीडा-युक्त फुसियाँ होती हैं।

अर्शस—वि० [सं०] बवासीर का रोगी [को०]।

अर्शसान—संज्ञा पुं० [सं०] १ आग। २ एक राक्षस [को०]।

अर्शहर—संज्ञा पुं० [सं०] सूरन। ओल। जमीकद।

अर्शी—वि० [सं० अर्शिन्] अर्शरोगी [को०]।

अर्शोघोर—वि० [सं०] अर्श नामक रोग का नाशक [को०]।

अर्शोघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूरन। ओल। जमीकद। २ भिलावाँ। ३ सज्जीखार। ४ तेजबल। ५ सफेद सरसो।

अर्शोघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तालमूली। २ भल्लातक [को०]।

अर्शोहर—संज्ञा पुं० दे० 'अर्शोघ्न' [को०]।

अर्शोहित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भल्लातक [को०]।

अर्शोहित[2]—वि० अर्शरोग को ठीक करनेवाला [को०]।

अर्हत—संज्ञा पुं० [सं० अर्हन्त] १ जैनियो के पूज्यदेव। जिन। २ बुद्ध।

अर्ह[1]—वि० [सं०] १ पूज्य। २ योग्य। उपयुक्त। ३ मूल्य के योग्य मूल्यवान् [को०]।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अधिकतर यौगिक शब्द बनाने मे होता है, जैसे—पूजार्ह। मानार्ह। दडार्ह।

अर्ह[2]—संज्ञा पुं० १ ईश्वर। २ इद्र। ३ विष्णु [को०]। ४ मूल्य। दाम [को०]। ५ गति [को०]। ६ उपयुक्तता [को०]।

अर्हण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्हणा'।

अर्हणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अर्हणीय] पूजा। समान।

अर्हणीय—वि० [सं०] पूजनीय। सम्माननीय [को०]।

अर्हत[1]—वि० [सं०] पूजा।

अर्हत[2]—संज्ञा पुं० जिनदेव।

अर्हता—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग्यता। उपयुक्तता [को०]।

अर्हन—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्हत'।

अर्हित—वि० [सं०] पूजित। समानित। आदृत।

अर्ह्य—वि० [सं०] १ पूज्य। मान्य। २ पूजनीय। माननीय। आदरणीय। ३ योग्य। उपयुक्त। अधिकारी [को०]।

अल—अव्य० [सं० अलम्] दे० 'अलम्'।

अलकटकटा—संज्ञा स्त्री० [सं० अलङ्कटङ्कटा] विद्युत्केश नामक राक्षस की पत्नी। सुकेश की माता।

विशेष—वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाड मे इस राक्षसवश का सृष्टि के आदिकाल मे उत्पन्न होना लिखा है।

अलकरण—संज्ञा पुं० [सं० अलङ्करण] १. सजावट। २ शृंगार ३. आभूषण [को०]।

अलकर्ता—वि० [सं० अलङ्कर्तृ] सजावट करनेवाला। अलकृत करनेवाला [को०]।

अलकार—सज्ञा पुं० [सं० अलङ्कार] [वि० अलंकृत] १ आभूषण। गहना। जेवर। २ अर्थ और शब्द की वह युक्ति जिससे काव्य की शोभा हो। वर्णन करने की वह रीति उसमे प्रभाव और रोचकता आ जाय।

विशेष—इसके तीन भेद हैं—(क) शब्दालकार, अर्थात् वह अलकार जिसमे शब्दो का सौंदर्य हो, जैसे अनुप्रास; (ख) अर्थालकार, जिमके अर्थ मे चमत्कार हो, जैसे उपमा और रूपक और किसी किसी आचार्य के मत से (ग) उभयालकार जिसमे शब्द और अर्थ दोनो का चमत्कार हो। आदि मे भरत मुनि ने चार ही अलकार मानें हैं—उपमा, दीपक, रूपक और यमक। उन्होने अलकारो के धर्म को, इन्ही के अतर्गत माना है। अलकार यथार्थ मे वर्णन करने की शैली है, वर्णन का विषय नही। पर पीछे वर्णनीय विषयो को भी अलकार मान लेने से अलकारो की सख्या और भी वढ गई। स्वभावोक्ति और उदात्त आदि अलंकार इमी प्रकार के हैं।

३ वह हाव, भाव या क्रिया आदि जिससे स्त्रियो का सौंदर्य वढ़े। ४ सजावट। मडप[कौ०]। ५ अलकार सवधी शास्त्र [कौ०]।

अलकारक—सज्ञा पुं० [स० अलङ्कारक] आभूपण। अलकार [कौ०]।

अलकारमडप—सज्ञा पुं० [स० अलङ्कारमण्डप] सजावट का स्थान। प्रसाधनकक्ष। ड्रसिंग रूम।

अलकारशास्त्र—सज्ञा पुं० [स० अलङ्कारशास्त्र] वह शास्त्र जिसमे अलकारो का वर्णन और विवेचन हो।

अलकित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलकृत'।

अलकिय(पु)—वि० [स० अलङ्कृत, प्रा० अलंकिय] दे० 'अलकृत'। उ०—नील वरन वमुमतिय। पहिर आभ्रन अलकिय।—पृ० रा०, २५। ३५।

अलकृत—वि० [स० अलङ्कृत] १ विभूषित। गहना पहनाया हुआ। २ सजाया हुआ। संवरा हुआ। ३ काव्यालकारयुक्त।

अलकृति—सज्ञा स्त्री०[स० अलङ्कृति]१ अलकार। आभूषण। २ सजावट। ३ उपमा, रूपक आदि अलकार। उ०—आखर अरथ अलकृति नाना। छद प्रवध अनेक विधान।—मानस, पृ०५।

अलग(पु)—सज्ञा पुं० [स० अल=पूर्ण, बडा+अग=प्रदेश] [हिं० अलगा] ओर। तरफ। दिशा। उ०—(क) उमर अमीर रहे जहँ ताई, सव ही वाँट अलगें पाई।—जायसी (शब्द०)। (ख) लेन आयो कान्ह कोऊ मथुरा अलग तें।—भिखारी ग्र०, भा० २ पृ० १०७।

मुहा०—अलग पर आना या होना=घोड़ी का मस्ताना।

अलघनीय—वि० [स० अलङ्घनीय] १ जो लाँघने योग्य न हो। जिसे फाँद न सके। जिसे पार न कर सके। अलघ्य। १ अटल।

अलघ्य—वि० [स० अलङ्घ्य] १ जो लाँघने योग्य न हो। जिसे फाँद न सकें। २. जिसे टाल न सकें। जिसे मानना ही पड़े; जैसे—राजा की आज्ञा अलघ्य होती है।

यौ०—अलंघ्य शासन।

अलजर—सज्ञा पुं० [स० अलञ्जर] मिट्टी का घडा। झझर [कौ०]।

अलंपट¹—वि०[स० अलम्पट]जो लपट या विषयी न हो। सच्चरित्र।

अलंपट²—सज्ञा पुं० स्त्रियो का कक्ष। अत पुर [कौ०]।

अलव(पु)—सज्ञा पु० [स० आलम्ब] दे० 'आलव'।

अलवुष—सज्ञा पुं० [स० अलम्बुषा] १ वमन। उल्टी। कै। २ कौरवो का सहायक एक राक्षस जिसे भीम के पुत्र घटोत्कच ने मारा था। ३ प्रहस्त नाम का रावण का एक मत्री [कौ०]। ४ हथेली जिसकी अँगलियाँ फैलाई गई हो (कौ०)।

अलबुषा—सज्ञा स्त्री० [स० अलम्बुषा] १ मुडी। गोरखमुडी। २ स्वर्ग की एक अप्सरा। ३ दूसरे का प्रवेश रोकने के लिये खींची हुई रेखा। गडारी। मडल।

विशेष—इसका व्यवहार अधिकतर भोजन को छुवाछूत से बचाने के लिये होता है।

४ लज्जावती। छुई मुई। लजालू पौधा। उ०—नव अलवुषा की व्रीडा सी खुल जाती फिर जा मुदती।—कामायनी, पृ० २६३।

अलभ(पु)—वि० [स० अलभ्य], दे० 'अलभ्य'। उ०—सरग का देवता अलभ चितोड।—वी० रासो, पृ० २४।

अल¹—सज्ञा पुं० [स०] १ विच्छू का डक। २ हरताल। ३ विप। जहर। उ०—अति वल करि करि काली हान्यो। लपटि गयो सव अग अग प्रति, निर्विप कियो सकल अल झान्यो।—सूर (शब्द०)।

अल²—वि० [स०] समर्थ। शक्त। उ०—कारन अविरल अल अपितु तुलसी अविद भुलान।—स० सप्तक, पृ० २६।

अलई—सज्ञा स्त्री० [देश०] ऐल नाम की कँटीली लता जिसकी वाढ प्राय खेतो मे लगाई जाती है। ऊरू।

अलक¹—सज्ञा पुं० [स०] १. मस्तक के इधर उधर लटकते हुए मरोडदार वाल। २ वाल। केश। लट। ३ छल्लेदार वाल। उ०—मुकुट कुडल तिलक, अलक अलिव्रात इव, भृकुटि द्विज अधर वर चारु नासा।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६१। २ हरताल। ३ सफेद आक। श्वेत मदार। ४ शरीर पर लगाया हुआ केसर। अग पर लिप्त केसर [कौ०]। ५ पागल कुत्ता। अलर्क [कौ०]।

अलक(पु)²—सज्ञा पुं० [स० अलक्तक] महावर। अलिता।

अलक(पु)³—सज्ञा पुं० [स० अलका] अलकापुरी। उ०—अलक लोक बज्जत विषम।—पृ० रा० २१०१।

अलकत—सज्ञा पुं० [अ०] १ अवहेलना। २ नष्ट करना। रद्द करना। ३. काट देना [कौ०]।

अलकतरा—सज्ञा पुं० [अ०] पत्थर के कोयले को आग पर गलाकर निकाला हुआ एक गाढा पदार्थ। उ०—छत छतरी वर वद खभ गेरू रँग राखे। अलकतरे रँग कल किवार सित सोहत पाखे।—रत्नाकर १।१०२।

विशेष—कोयले को विना पानी दिए भभके पर चढाकर जब गैस निकाल लेते हैं, तब उसमे दो प्रकार के पदार्थ रह जाते हैं—एक पानी की तरह पतला, दूसरा गाढा। यही गाढा काला पदार्थ अलकतरा है जो रँगने के काम मे आता है। यह कृमिनाशक है अत इसमे रँगी हुई लकडी घुन और दीमक से बहुत दिनो तक वची रहती है। इससे कृमिनाशक ओषधियाँ जैसे—नेप्थलीन कारवोलिक एसिड, फिनाइल आदि—तैयार होती हैं। इससे कई प्रकार के रँग भी बनते हैं।

अलकनंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० अलकनन्दा] १ हिमालय (गढ़वाल) की एक नदी जो गंगोत्री के आगे भागीरथी (गंगा) की धारा से मिल जाती है। २ आठ से दस वर्ष उम्र तक की कन्या [को०]।

अलकप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अलकापुरी। कुबेरपुरी।

अलकप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] पीतसाल नाम का एक पेड़ [को०]।

अलकलड़ैता(पु)—वि० [सं० अलक=बाल+लाड=दुलार या अ० अलक=प्यार+हिं० लाड+ऐता (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० अलकलड़ैती] दुलारा। लाडला। उ०—सूर पथिक मुनि मोहिं रैनि दिन, बढ़यौ रहत उर सोच। मेरो अलकलड़ैतो मोहन ह्वै है करत सँकोच।—सूर०, १०।३७६३।

अलकसहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] घुंघराले बालों की कतार [को०]।

अलकसलोरा(पु)—वि० [सं० अलक=बाल या अ० अलक=प्यार+हिं० सलोना=अच्छा] [स्त्री० अलकसलोरी] लाडला। दुलारा। उ०—हम तुम्हरें नितही प्रति आवति सुनहु राधिका गोरी। ऐसौ आदर कबहुँ न कीन्ही मेरी अलकसलोरी।—सूर०, १०।२८८८।

अलका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुबेर की पुरी। यक्षों की पुरी। उ०—हरका छुटत मोर अलका परत हैं।—गंग०, पृ० १०५। २ आठ से दस वर्ष उम्र तक की लड़की [को०]।

अलकाउरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलकावलि'। उ०—अधर अधर सो भीज तवोरा। अलकाउरि मुरि मुरि गा मोरा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४२।

अलकाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] अलकापुरी के स्वामी। कुबेर [को०]।

अलकापति—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

अलकाब—संज्ञा पुं० [अ० लकब का बहुव०] १ प्रशस्ति। २ उपाधि या खिताब [को०]।

अलकावती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलका'।

अलकावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] केशों का समूह। बालों की लटें। उ०—कोमल नील कुटिल अलकावलि, रेखा राजति भाल।—सूर०, १०।२६५६।

अलकेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अलकेश] कुबेर। उ०—अकबकात अलकेस अखडन।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०।

अलक्त—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अलक्तक'।

अलक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १ लाही जो पेड़ों में लगती है। लाख। चपड़ा। २ लाह का बना हुआ रंग जिसे स्त्रियाँ पैर में लगाती हैं। महावर।

यौ०—अलक्तकरस=महावर। अलक्तक राग=महावर की लाली।

अलक्षण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ चिह्न या संकेत का न होना। २ ठीक ठीक गुण धर्म का अनिर्वाचन। ३ बुरा लक्षण। कुलक्षण। अशुभ चिह्न।

अलक्षण²—वि० जो लक्षणहीन हो। बुरे लक्षणवाला [को०]।

अलक्षित—वि० [सं०] १ अप्रकट। अज्ञात। २ अदृश्य। गायब। ३ अचिह्नित।

अलक्ष्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ धनाभाव। निर्धनता। दरिद्रता। २ बुरा भाग्य। विपरीत भाग्य। ३ अशुभ लक्षणोंवाली स्त्री ४. भाग्य की देवी या दरिद्रता देवी [को०]।

अलक्ष्य—वि० [सं०] १ अदृश्य। जो न देख पड़े। गायब। २ जिसका लक्षण न कहा जा सके। ३ छलविहीन। छलरहित [को०]। ४ अचिह्नित [को०]।

अलक्ष्यगति—वि० अदृश्य रूप से गमन करनेवाला [को०]।

अलक्ष्यजन्मता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अज्ञात जन्म या उत्पत्ति [को०]।

अलक्ष्यलिंग—वि० [सं० अलक्ष्यलिङ्ग] अपने को छिपाए रखनेवाला [को०]।

अलख¹—वि० [सं० अलक्ष्य] १ जो दिखाई न पड़े। जो नजर न आए। अदृश्य। अप्रत्यक्ष। उ०—बुधि, अनुमान, प्रमान स्रुति किएँ नीठि ठहराय। सूछम कटि परब्रह्म की, अलख, लखी नहिं जाय।—बिहारी र०, दो० ६४८। २ अगोचर। इंद्रियातीत। उ०—जे उपमा पटतर लै दीजै ते सब उनहिं न लायक। जो पै अलख रह्यौ चाहत तौ बादि भए ब्रजनायक।—सूर०, २।४६४५। ३ ईश्वर का एक विशेषण। उ०—अलख अरूप अबरन सो करता। वह सबसों सब वहि सों बरता।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—अलख जगाना=(१) पुकारकर परमात्मा का स्मरण करना या कराना। (२) परमात्माके नाम पर भिक्षा माँगना।

यौ०—अलखधारी। अलखनामी। अलखनिरंजन। अलखपुरुष=ईश्वर। अलखमंत्र=निर्गुण संत संप्रदाय में ईश्वरमंत्र।

अलख²—संज्ञा पुं० ब्रह्म। ईश्वर [को०]।

अलखधारी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अलखनामी'।

अलखनामी—संज्ञा पुं० [सं० अलक्ष्यसं०नाम+हिं० ई (प्रत्य०)] एक प्रकार के साधु जो गोरखनाथ के अनुयायियों में से हैं।

विशेष—अलखिया। ये लोग सिर पर जटा रखते हैं, गेरुआ वस्त्र धारण करते हैं, भस्म लगाते हैं और कमर में ऊन की सेली बाँधते हैं जिसमें कभी कभी घुंघरू या घंटी भी बाँध लेते हैं। ये लोग भिक्षा के लिये प्रायः दरियाई नारियल का खप्पर लेकर जोर जोर से 'अलख अलख' पुकारते हैं जिससे उनका अभिप्राय अलक्ष्य परमात्मा का स्मरण करना या कराना होता है। इन लोगों में एक विशेषता यह है कि ये कहीं भिक्षा के लिये अधिक अड़ते नहीं।

अलखित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलक्षित'। उ०—कवि अलखित गति वेपु विरागी।—मानस २। ११०।

अलखिया(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अलखनामी'।

अलग—वि० [सं० अलग्न प्रा० अलग्ग] १. जुदा। पृथक्। न्यारा। भिन्न। अलहदा। उ०—संपति सकल जगत की स्वासा सम नहिं होइ। सो स्वासा तजि राम पद तुलसी अलग न खोइ।—स० सप्तक, पृ० ४।

क्रि० प्र०—करना। रखना।—होना।

मुहा०—अलग करना=(१) जुदा करना। दूर करना। हटाना। खसकाना। जैसे—इसे हमारे सामने से अलग करो। (२) छुड़ाना। बरखास्त करना, जैसे—मैंने उस नौकर को अलग कर दिया। (३) चुनना। छाँटना। (४) बेच डालना, जैसे—उसने उस घोड़े को अलग कर दिया। (५) निपटाना। समाप्त करना, जैसे—थोड़ा सा बचा है, खा पीकर अलग करो।

२ बेलाग। बचा हुआ। रक्षित, जैसे—घबराओ मत, तुम्हारा बच्चा अलग है।

यौ०—**अलग अलग**=दूर दूर। जुदा जुदा।

अलगगीर—संज्ञा पुं० [अ० अरक फा० गीर] कंबल या नमदा जिसे घोडे की पीठ पर रखकर ऊपर से जीन या चारजामा कसते हैं।

अलगनी—संज्ञा स्त्री० [सं० आलग्न] आडी रस्सी या बाँस जो कपडे लटकाने या फैलाने के लिये घर मे बाँधा जाता है। डारा।

अलगरजा—वि० [अ० अल्+गरज] दे० 'अलगरजी'।

अलगरजी[1]—वि० [अ०] बेगरज। बेपरवाह।

अलगरजी[2](पु) संज्ञा स्त्री० बेपरवाही। बेगरजी। उ०—आसिक अरु महबूब विच आप तमासा कीन। त्यों ह्वै अलगरजी करैं ह्वाँ ह्वै होइ अधीन।—स० सप्तक, पृ० १७६।

अलगर्द—संज्ञा पुं० [सं०] एक तरह का जल मे रहनेवाला साँप [को०]।

अलगर्दा—संज्ञा पुं० [सं०] एक तरह की लंबी जहरीली जोंक [को०]।

अलगाऊ—वि० [हिं० अलगाना] अलग करनेवाला। अलग रखनेवाला।

अलगाना[1]—क्रि० स० [हिं० अलग+आना (प्रत्य०)] १ अलग करना। छाँटना। बिलगाना। पृथक् करना। जुदा करना। २ दूर करना। पटाना।

अलगाना[2]—क्रि० अ० अलग होना। पृथक् होना। उ०—बदरिकासरम दोउ मिलि आइ। तीरथ करत दोउ अलगाइ।—सूर०, ३।४।

यौ०—**अलगागुजारी**=अलगाव।

अलगार(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलग'। उ०—चामडराय दिल्ली धरह गढ़पति करि गढमार दिय। अलगार राज प्रथिराज तव पूरब दिसि तव गमन किय।—पृ० रा०, २०।३६।

अलगाव—संज्ञा पुं० [हिं० अलग+आव (प्रत्य०)] पृथक्करण। अलग रहने का भाव। बिलगाव। उ०—होली, सावन, झूले वा झेलुए की गीत आदि का अलगाव या ठहराव हुआ होगा।—प्रेमघन०, भा०, २, पृ० ३५१।

अलगोजा—संज्ञा पुं० [अ० अलगोजह] एक प्रकार की बाँसुरी। उ०—अलगोजे वज्जत छिति पर छज्जत सुनि-धुनि लज्जत कोइ रहैं—पद्माकर ग्र०, पृ० २८५।

विशेष—इसका मुँह कलम की तरह कटा होता है और जिसकी दूसरी छोर पर स्वर निकालने के लिये सात समानांतर छेद होते हैं। इसको मुँह मे सीधा रखकर उँगलियो को छेदो पर रखते और उठाते हुए बजाते हैं।

अलगौझा—संज्ञा पुं० [हिं० अलग+औझा (प्रत्य०)] [स्त्री० अलगौझी] पृथक्करण। अलगाव। बिलगाव।

अलग्ग(पु)—वि० [सं० अलग्न] समीप नहीं। दूर। उ०—ढोलइ चित्त विमासियउ, मारू देस अलग्ग।—ढोला०, दू० ३०७।

अलघु—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अलघ्वी] १ जो लघु न हो। बडा। वजनी। २ गंभीर। ३ जो छोटा न हो। लंबा। ४ उग्र। भयकर [को०]।

अलच्छ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलक्ष्य'। उ०—मग मग धरत अलच्छ जात अधरहिं जनु पच्छी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११२।

अलच्छि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अलक्ष्मी] दरिद्रता। गरीबी। उ०—माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा।—मानस, १।६।

अलज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

अलज[2](पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलज्ज'।

अलजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँखो मे होनेवाली एक प्रकार की लाल या काली फुंसी जो बहुत पीडा देती है।

अलज्ज—वि [सं०] निर्लज्ज। बेहया। उ०—तुम अलज्ज से क्यो यहाँ अडे।—साकेत, पृ० ३९३।

अलटविलट—संज्ञा पुं० [देश०] उलट पुलट। हेर फेर। गडबडी। उ०—बात व्यौहार मे कही कुछ अलटविलट हो तो अपने नौगछिया की जगहँसाई होगी।—नई०, पृ० ३१।

अलटा—संज्ञा पुं० [सं० अलक्तक, प्रा० अलत्तय, राज० अलता] १. वह लाल रंग जो स्त्रियाँ पैरो मे लगाती हैं। २ खमी की मूत्रेंद्रिय, जैसे—अलते की बोटी।

अलत्ता(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अलक्तक, प्रा० अलत्तय] दे० 'अलता'। उ०—सुदरि, सोवन वर्ण तसु अहर अलत्ता रंगि। केसरिलंकी खीण कटि, कोमल नेत्र कुरंगि।—ढोला०, दू० ८७।

अलप(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अल्प'। उ०—तातें अनुमानौं अब जीवन अलप है।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १५८।

अलपाका—संज्ञा पुं० [स्पे० एलपका] १ ऊँट की तरह का एक जानवर जो दक्षिण अमेरिका के पेरू नामक प्रांत मे होता है। इसके बाल लंबे और ऊन की तरह मुलायम होते हैं। २ अलपाका का ऊन। ३ एक पतला कपडा जो रेशम या सूत के साथ अलपाका जंतु के ऊनी बालों को मिलाकर बनाया जाता है। यह कई रंगो का बनता है, पर विशेषकर काला होता है।

अलफ—संज्ञा पुं० [अ० अलिफ] १ घोडे का आगे के दोनो पाँव उठाकर पिछली टाँगो के बल खडा होना।

विशेष—अरबी वर्णमाला का पहला अक्षर अलिफ खडा होता है। इसी से यह शब्द इस अर्थ मे व्यवहृत होने लगा।

२ हरा चारा। हरी घास [को०]।

अलफा—संज्ञा पुं० [अ० अलफा] [स्त्री० अलफी] एक प्रकार का ढीला ढाला बिना बाँह का बहुत लंबा कुरता जिसे अधिकतर मुसलमान फकीर गले मे डाले रहते हैं। उ०—अद्धी की टोपी लगाए सुकेशधारी अलफी पहने लँगडाता हुआ चिल्लाने लगा।—श्यामा०, पृ० १५०।

अलफाज—संज्ञा पुं० [अ० लफ्ज का बहुव० अलफ़ाज] शब्दसमूह। उ०—बिना अरबी के अलफाज मिलाए।—प्राण०, २।५६।

अलबत—अव्य० [हिं०] दे० 'अलबत्ता'। उ०—तथ्यो का आरोप या संभावना अलबत वे कभी कभी किया करते हैं।—रस० क०, पृ० १४।

अलबत्ता—अव्य० [अ० अलबत्तह] १ निस्संदेह। निःसशय। बेशक, जैसे—'अब अलबत्ता यह काम होगा'। २ हाँ। बहुत ठीक। दुरुस्त। जैसे—अलबत्ता, बहादुरी इसका नाम है (शब्द०)। ३ लेकिन। परतु, जैसे—हम रोज नहीं आ सकते, अलबत्ता कहो तो कभी कभी आ जाया करें (शब्द०)।

अलवम—संज्ञा पुं० [अं०, एलबम] तस्वीरें रखने की किताब।

अलवल—वि० [अनु०] अटपट। जल्दी जल्दी। उ०—अपने अपराधन कबहूँ बैठि विचारैं हुव मिलन मनोरथ अल बल बैन उचारैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २९३।

अलवीतलवी—[अ०] अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाएँ अथवा बहुत कठिन उर्दू, जैसे—'आप अपनी अलवी तलवी छोड़कर सीधी तरह से हिंदी मे बातें कीजिए'।

अलबेला¹—वि० [सं० अलभ्य + हिं० ला (प्रत्य०)] [स्त्री० अलबेली] १ बाँका। बना ठना। छैला। २ अनोखा। अनूठा। सुंदर, जैसे—'तुमने तो यह बड़ी अलबेली चीज निकाली।' ३ अल्हड़। बेपरवाह। मनमौजी। जैसे—यह बड़ा अलबेला है।

अलबेला²—संज्ञा पुं० [सं० अलम्य] नारियल का बना हुआ हुक्का। उ०—खायकै पान बिदोरत होठ हैं बैठि सभा में पिएँ अलबेला।—बगगोपाल (शब्द०)।

अलबेलापन—संज्ञा पुं० [हिं० अलबेला + पन (प्रत्य०)] १ बाँकापन। सजधज। छैलापन। २. अनोखापन। अनूठापन। सुंदरता। ३ अल्हड़पन। बेपरवाही।

अलब्ध—वि० [सं०] जिसकी प्राप्ति न हो सकी हो। जो हस्तगत न हुआ हो [को०]।

यौ०—अलब्धनाथ = बिना संरक्षक। स्वामीविहीन। अलब्ध-निद्र = जिसे नींद न आई हो।

अलब्धभूमिकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] समाधि का न जुड़ना। समाधि की अप्राप्ति।

अलब्धव्यायामाभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य के अनुसार ऐसी भूमि जिसमें सैन्यसग्रह न हो सके।

अलभ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलभ्य'।

अलभ्य—वि० [सं०] १ न मिलने योग्य। अप्राप्य। उ०—रस पिया सखि नित्य जहाँ नया अब अलभ्य वहाँ विष हो गया।—साकेत, पृ० ३०७। २ जो कठिनता से मिल सके। दुर्लभ। उ०—मुनिहुँ मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ सुगम सो राम लघु लोगनि को करिगे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३३९। ३ अमूल्य अनमोल। उ०—जीवन सौभाग्य है जीवन अलभ्य है।—लहर, पृ० ७०।

अलम्—अव्य० [सं०] यथेष्ट। पर्याप्त। पूर्ण। काफी। उ०—कृपा कटाक्ष अलम् है केवल, कोरदार या कोमल हो।—झरना, पृ० ८१।

अलम—संज्ञा पुं० [अ०] १ रंज। दुःख। उ०—अलम है दर्द हसरत है फना है आहोजारी है।—शेर०, पृ० ३७७। २ झंडा।

अलमनक—संज्ञा पुं० [अ०] अँगरेजी ढंग की जंत्री या पत्रा।

अलमनाक—वि० [अ०] १ दुःखपूर्ण। २ अतिदुःखदाई [को०]।

अलमबरदार—संज्ञा पुं० [अ०] १ वह जो झंडा उठाता है। २ वह जो आंदोलन आदि में आगे रहता है [को०]।

अलमर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा।

अलमस्त—वि० [फा०] १ मतवाला। बदहोश। बेहोश। २ बेगम। बेफिक्र। निर्द्वंद्व।

अलमारी—संज्ञा स्त्री० [पुर्त० अलमारियो] वह खड़ा सदूक जिसमे चीजें रखने के लिये खाने या दर बने रहते हैं और बंद करने के लिये पल्ले होते हैं। कभी कभी दीवार खोदकर और नीचे ऊपर तख्ते जोड़कर भी अलमारी बना दी जाती है। बड़ी भँडरिया।

अलमास—संज्ञा पुं० [फा०] हीरा।

अलय¹—वि० [सं०] बिना घरवाला। चलता फिरता। जिसका नाश न हो [को०]।

अलय²—संज्ञा पुं० १ लय न होने का भाव। अनित्यता। २ जन्म। उत्पत्ति [को०]।

अलर्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. पागल कुत्ता। २ सफेद आक या मदार। ३ एक प्राचीन राजा जिसने एक अंधे ब्राह्मण के माँगने पर अपनी दोनों आँखें निकालकर दे दी थीं। ४ शूकर जैसा एक आठ पैरोंवाला जंतु [को०]। ५ एक तरह का कीड़ा [को०]।

अलल(पु)†—क्रि० वि० [अ० अलामाला] इधर उधर। उ०—सँभरत घवलमर साहुलि समलि। आलूदा ठाकुर अलल।—वेलि०, दू० ११३।

अललटप्पू—वि० [देश०] अटकलपच्चू। बेठिकाने का। अंडबंड।

अललबछेड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० अल्हड़ + बछेड़ा] १ घोड़े का जवान बच्चा। २ अल्हड़ आदमी। वह व्यक्ति जिसे कुछ अनुभव न हो।

अललहिसाब—क्रि० वि० [अ०] बिना हिसाब किए हुए [को०]।

क्रि० प्र०—देना।

अललाना—क्रि० अ० [सं० अर् = बोलना] तेज चिल्लाना। गला फाड़कर बोलना।

अलल्ल(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अलल्ल'।

अलल्ल(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अलल्लाँ'।

अलल्लाँ—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ा (डिं०)।

अलवाँत—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अलवाँती'।

अलवाँती—वि० स्त्री० [सं० बालवती] (स्त्री) जिसके बच्चा हुआ हो। प्रसूता। जच्चा।

अलवाई—वि० स्त्री० [सं० बालवती, हिं० अलवाँती] (गाय या भैंस) जिसको बच्चा जने एक दो महीने हुए हों। 'बाखरी' का उलटा।

अलवान—संज्ञा पुं० [अ०] पशमीने की चादर। ऊनी चादर।

अलवाल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आलवाल'।

अलविदा¹—अव्य० [अ० अल + विदाअ] विदा होते समय कहा जानेवाला शब्द।

अलविदा²—संज्ञा स्त्री० रमजान के महीने का अंतिम शुक्रवार।

अलस¹(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आलस्य'। उ०—चारि जाम जु निसि उनीदे, अलस बसहि जम्हात।—सूर०, १०।२६७६।

अलस²—वि० [सं०] आलस्ययुक्त। आलसी। सुस्त। मंद। निरुद्योगी। उ०—चंदन मिटाए तन अनिंही अलस मन नागरी की पीक लीक लागी है कपोलों।—सूर०, १०।२५०७।

अलस³—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाँव का एक रोग जिसमे पानी से भीगे रहने या गंदे कीचड मे पडे रहने के कारण उँगलियो के बीच का चमडा सडकर सफेद हो जाता है और उसमे खाज और पीडा होती है। खरवात। कदरी। २ एक जहरीला छोटा जंतु [कौ०]। ३ एक तरह का पौधा [कौ०]।

अलसई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आलस्य] अलसता। उ०—कुभकरन को रन ह्वयो गह्यो अलसई आइ। सिर चढि श्रुति नामा हसत जु न रोक्यो हरिराइ।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ७५।

अलसक—संज्ञा पुं० [सं०] अजीर्ण रोग का एक भेद।

अलसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसपदी लता। लज्जालू। लाल फूल की लज्जावती।

अलसाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अलस] अलसता। सुस्ती। उ०—लटपटी पाग, अलक जो त्रिथुरी, बात कहत आवत अलसाई।—सूर०, १०।२६४०।

अलसान(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलसानि'।

अलसाना—क्रि० अ० [सं० अलस] आलस्य मे पडना। क्लात होना। शिथिलता अनुभव करना। उ०—(क) वन मोहन दोऊ अलसाने।—सूर०, १०।२३०। (ख) कबहुँ नैन अलसात जानि कै, जल लै पुनि पुनि धोवति।—सूर०, १०।२४६८।

अलसानि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आलस्य] आलस। सुस्ती। उ०—(क) आँखिन मे अलसानि, चितौन मे मंजु विलासन की सरसाई।—मतिराम (शब्द०)। उ०—(ख) चिंता जृंभ उनीदता विह्वलता अलसानि। लह्यो अभागिनि हौं अली, तेहूँ गहै सु बानि।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १४।

अलसि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आलस्य'। उ०—वढै अलसि जिय माँहि वैर मैं कहा जु पावो।—हम्मीर रा०, पृ० ५६।

अलसी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अतसी] एक पौधा और उसका फल या बीज। तीसी।

विशेष—यह पौधा प्राय दो ढाई फुट ऊँचा होता है। इसमे डालियाँ बहुत कम होती हैं, केवल दो या तीन लबी, कोमल और सीधी टहनियाँ छोटी छोटी पत्तियो से गुछी हुई निकलती हैं। इसमे नीले और बहुत सुदर फूल निकलते हैं जिनके झडने पर छोटी घुडियाँ बँधती हैं। इन्ही घुडियो मे बीज रहते हैं जिनसे तेल निकलता है। यह तेल प्राय जलाने और रगसाजी तथा शीशों के छापे की स्याही बनाने के काम मे आता है। बहुत से स्थानो पर साग,सब्जी आदि मे भी इसका प्रयोग होता है। छापने की स्याही भी इसकी मिलावट से बनती है। इसको पकाकर गाढा करके एक प्रकार का वारनिश भी बनता है। तेल निकालने के बाद अलसी की जो सीठी बचती है उसे खरी, खली कहते हैं। यह खली गाय को बहुत प्रिय है। अलसी या अलसी की खली को पीसकर उसकी पुलटिस बाँधने से सूजन बैठ जाती है, कच्चा फोडा शीघ्र पककर बह जाता है तथा उसकी पीडा शात हो जाती है।

अलसी²(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आलसी'। उ०—राम सुभाव सुने तुलसी हुलसै अलसी हम से गलगाजे।—तुलसी ग्र०, पृ० १६८।

अलसेट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अलस+हिं० एट (प्रत्य०)] [वि० अलसेटिया] १. ढिलाई। व्यर्थ की देर। २ टालमटूल। भुलावा। चकमा। उ०—महरि गोद लैबे लगी करि बातन अलसेट।—व्यास (शब्द०)। ३. बाधा। अडचन।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

अलसेटिया(पु)—वि० [हिं० अलसेट+इया (प्रत्य०)] १ ढिलाई करनेवाला। व्यर्थ की देर करनेवाला। २ अडचन डालनेवाला। बाधा उपस्थित करनेवाला। टालमटूल करनेवाला।

अलसौंहा(पु)†—वि० [सं० अलस+हिं० औहाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० अलसौंही] आलस्ययुक्त। क्लात। शिथिल। उ०—सही रँगीले रति जगे, जगी पगी सुख चैन। अलसौहैं सौहैं किएँ, कहैं हँसौहैं नैन।—बिहारी र०, दो० ५११।

अलह(पु)¹—संज्ञा पुं० [अ० अल्लाह] अल्लाह। ईश्वर। खुदा। उ०—मुलतान जलाल सिकदर जाया। मुलतान। नाहवदीन अलह उपाया। पृ० रा०, ६६।१४०।

अलह(पु)²—वि० [सं० अ+लभ्] व्यर्थ। वृथा। अलभ्य। उ०—गाजै जलहर गयण मे जाय अलह तै जोह।—बाँकीदास ग्र०, भा० १, पृ० ३०।

अलहदगी—संज्ञा स्त्री० [अ० अलाहदह्+फा० गी (प्रत्य०)] अलग होने का भाव। अलगाव। विलगाव।

अलहदा—वि० [अ० अलाहदह्] जुदा। अलग। पृथक।

अलहदी†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अहदी'। उ०—'कर्मण्यशून्य स्वभाव अलहदी बन गया'। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४१।

अलहन—संज्ञा स्त्री० [सं० अलभन] अभाग्य का उदय। विपत्ति। उ०—एकहि रितु सौं अत दुहुनि की अलहन आई।—रत्नाकर भा० २, पृ० ४८।

अलहना(पु)†—वि० [सं० अ+लभन] न पानेवाला। उ०—जे गुणमना अलहना गौरव नहइ भूजन।—कीर्ति०, पृ० ३४।

अलहनियाँ—संज्ञा पुं० [हिं० अलहन] जो कोई काम न कर सकता हो। अकर्मण्य। अहदी।

मु०—अपने अलहनियाँ आन के गडा पूरे=अपना काम न सँभालकर दूसरे का काम करनेवाला।

अलहा—वि० [सं० अलभ्य] अलभ्य। जो प्राप्त न हो। उ०—अगहा गहणा, अकहा कहणा, अलहा लहणा तहँ मिलि रहणा।—दादू०, पृ० ५१६।

अलहिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० आल्हा] एक रागिनी जिसमे सब कोमल स्वर लगते हैं। हिंडोल राग की स्त्री और दीपक की पुत्रवधू। इसका व्यवहार करुण रस प्रकट करने मे अधिक होता है।

अलहैरी—संज्ञा पुं० [अ०] एक जाति का अरबी ऊँट जिसके एक ही कूबड होता है और जो चलने मे बहुत तेज होता है।

अलाई¹—वि०[सं० अलस] [वि० स्त्री० अलाइन] आलसी। काहिल।

अलाई²—वि० [हिं०] अलाउद्दीन संबंधी। अलाउद्दीन का, जैसे—अलाई दरवाजा, अलाई मोहर (शब्द०)।

अलाई³—संज्ञा पुं० [देश० अलन्न] घोडे की एक जाति।

अलागलाग—संज्ञा पुं० [हिं० लाग=लगाव] नृत्य या नाचने का एक ढग।

अलात—संज्ञा पुं० [सं०] १ अंगार। २ जलती हुई लकडी। लुआठी।

अलातचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ जलती हुई लकडी या लुक को जल्दी जल्दी घुमाने से बना हुआ मडल। उ०—मनु फिर रहे अलात-चक्र से उस घन तम में।—कामायनी, पृ० २००। २ बनैठी। ३ गतिभेदानुसार एक प्रकार का नृत्य या नाच।

अलान—संज्ञा पुं० [सं० आलान] [स्त्री० अलानी] १ हाथी बाँधने का खूँटा। २ हाथी बाँधने का सिक्कड। उ०—नवगयदु रघुबीर मनु राजु अलान समान।—मानस, २।५१। ३. बधन। बेडी। ४. लता या बेल चढाने के लिये गाडी हुई लकडी।

अलाना†—क्रि० अ० [सं०√अर्=बोलना] चिल्लाना। गला फाडकर बोलना। अललाना।

अलानाहक़ा—अव्य [फ़ा० नाहक़] बिना मतलब। बेमतलब।

अलानिया—क्रि० वि० [अ० अलानियह्] उन्मुक्त रूप से। प्रकट रूप से। खुल्लम खुल्ला। सबके सामने [को०]।

अलाप(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आलाप'। उ०—आदर अलाप छाँडि आगे तें अनखि उठी, मेरे मुहँ एक बोल आकरो सो आइगो। गग ग्र०, पृ० ७८।

अलापना—क्रि० अ० [सं० आलापन] १ बोलना। बातचीत करना। २ सुर खींचना। तान लगाना। उ०—अधर अनूप मुरलि सुर पूरत गौरी राग अलापि बजावत।—सूर०, १०।१३६८। ३. गाना।

अलापी(पु)—वि० [सं० आलापिन्] बोलनेवाला। शब्द निकालनेवाला। उ०—नृत्यत कलापी भिल्ली भिक हैं अलापी बिरहीजन बिलापी हैं मिलापी रसरास में।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० २८।

अलाबू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लौकी। कद्दू। २. तूँबा।

अलाभ—संज्ञा पुं० [सं०] लाभ का अभाव। नुकसान। उ०—दुख सुख, लाभ अलाभ समुझि तुम, कतहिं मरत हौ रोइ।—सूर०, १।२६२।

अलाम(पु)—वि० [अ० अल्लामह्=चतुर] जिसकी बात का कोई ठिकाना न हो। बात बनानेवाला। मिथ्यावादी।

अलामत—संज्ञा पुं० [अ०] १ लक्षण। निशान। चिह्न। उ०—बहुत रोने रुसवा कर दिखाया। न चाहत की छुपी हमसे अलामत।—शेर०, भा० १, पृ० ११६। २. पहचान।

अलामत मलामत—संज्ञा स्त्री० [अ० मलामत] डाँट डपट। भर्त्सना। क्रि० प्र०—करना।

अलायक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+अ० लायक] नालायक। अयोग्य। उ०—(क) अगुन अलायकु आलसी जन अधन अनेरो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुर स्वारथी अतीस अलायक निठुर दया चित नाहीं।—तुलसी ग्रं० पृ० ५२३।

अलार¹—संज्ञा पुं० [सं०] कपाट। किवाड।

अलार²(पु)—[सं० अलात] अलाव। आग का ढेर। अँवाँ। भट्ठी। उ०—लाग आगि परी कान वृषभानु नंदिनी के तच्यो उर प्रान पच्यो बिरह अलार है।—रघुनाथ० (शब्द०)।

अलार्म—संज्ञा पुं० [अं० एलार्म] खतरे की सूचना। खतरे का बिगुल [को०]।

मुहा०—अलार्म बजना=खतरे की घंटी या बिगुल बजना।

अलार्म घडी—संज्ञा स्त्री० [अं० एलार्म+सं० घटी] जागरन घडी। जगानेवाली घड़ी।

अलाल(पु)—वि० [सं० अलस] १ आलसी। सुस्त। काहिल। २ अकर्मण्य। निकम्मा। उ०— ऐसे अधम अलाल को कीन्हो आप निहाल।—रघराज (शब्द०)।

अलाव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अलात=अगारं] आग का ढेर। जाडे के दिनो मे घास, फूस, सूखी पत्तियो और कडो से जलाई हुई आग जिसके चारों ओर बैठकर गाँव के लोग तापते हैं। कौडा।

अलावज—संज्ञा पुं० [सं० आलाप+वाद्य] १. एक प्रकार का पुराना बाजा जो चमडा मढकर बनाया जाता था।

अलावनी—संज्ञा स्त्री० [सं० आलापिनी] एक पुराना बाजा जो तार से बनाया जाता था।

अलावलसाही—वि० [हिं० अलावल=अलाउद्दीन+साही] अलाउद्दीन शाह सबधी।

अलावा—क्रि० वि० [अ० अलावह्] सिवाय। अतिरिक्त।

अलास—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमे जीभ के नीचे का भाग सूज कर पक जाता है और दाढ तन जाती है।

अलास्य—वि० [सं०] नृत्य न करनेवाला। सुस्त [को०]।

अलाहदी—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अलहदा'। उ०—कवि ठाकुर देखौ विचार हिये, कुछ ऐसी अलाहदी राह सी है।—ठाकुर०, पृ०१०।

अलिंग¹—वि० [सं० अलिङ्ग] १ लिंगरहित। बिना चिह्न का। जिसका कोई लक्षण न हो। २ जिसका ठीक ठीक लक्षण निर्धारित न हो सके। जिसकी कोई पहचान बतलाई न जा सके। ३. बुरे लक्षण या चिह्नवाला [को०]।

अलिंग²—संज्ञा पुं० १. व्याकरण मे वह शब्द जो दोनो लिंगो मे व्यवहृत हो, जैसे हम, तुम, मैं, वह, मित्र। २ वेदात। ईश्वर। ब्रह्म। ३ चिह्न या लक्षण का अभाव [को०]।

अलिंगन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आलिङ्गन] दे० 'आलिंगन'। उ०—कठ लगाइ लेत पुनि ताही। देत अलिंगन रीभन जाही।—सूर०, १०।११६४।

अलिंगी¹—संज्ञा पुं० [अलिङ्गिन्] लिंग या परिचायक चिह्नो से रहित साधु [को०]।

अलिंगी²—वि० बिना लिंग या पहचान का।

अलिंजर—संज्ञा पुं० [सं० अलिञ्जर] पानी रखने के लिये मिट्टी का बरतन। झझर। घडा।

अलिंद¹—संज्ञा पुं० [सं०अलिन्द] १. मकान के बाहरी द्वार के आगे का चबूतरा या छज्जा। २. एक पुराना जनपद [को०]।

अलिंद(पु)²—संज्ञा पुं० [सं अलीन्द] भौंरा। उ०—कौन जानै कहा भयो सुदर सबल स्याम टूटें गुन धनुष तुनीर तीर झरिगो। ...नीलकंज मुद्रित निहारि विद्यमान भानु सिंधु मकरदहि अलिंद पान करिगो (शब्द०)।

अलिंपक—संज्ञा पुं० [सं० अलिम्पक] १. मेढक। २. कोकिल। ३. भौंरा। ४. मधुमक्खी। ५. महुवे का पेड [को०]।

अलि¹—संज्ञा पुं० [सं] [स्त्री० अलिनी] १. भौंरा। भ्रमर। उ०—रे अलि चपल, मोद रस लपट कतहिं बकत बेकाज।—सूर०

१०।३७४२। २ कोयल। ३. कौआ। ४ विच्छू। ५ वृश्चिक राशि। ६ कुत्ता। ७ मदिरा।

अलि(पु)³—संज्ञा स्त्री० [स० आलि, आली] दे० 'अली'। उ०—कुँवर सो कुसल छेम अलि तेहि पल कुलगुरु कहँ पहुँचाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६२।

अलिक—संज्ञा पुं० [स०] १ ललाट। कपाल। २ दे० 'अलि'। उ०—सुनि लोल लोचनी नवल निधि नेही की अलका की अलिक अलक लटकति है।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० २१०।

अलिखित—वि० [स०] १ जो लिखा न हो। २ मौखिक रूप से परपराप्राप्त।

अलिगर्द—संज्ञा पु० [स०] दे० 'अलिगर्द्ध' [को०]।

अलिगर्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] पानी मे रहनेवाला एक प्रकार का साँप [को०]।

अलिजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [स०] गले की घाँटी। गले के भीतर का कौवा

अलित्त(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलिप्त'। उ०—मराल बाल आसन। अलित्त साय सासन।पृ० रा०, ५७।११६।

अलिदूर्वा—संज्ञा स्त्री० [स०] एक पौधा। मालादूर्वा [को०]।

अलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भ्रमरी। उ०—गिरा अलिनि मुखपकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी।—मानस ५।२५६।

अलिपक—संज्ञा पुं० [स०] १ भौंरा। २ कोयल। ३ कुत्ता।

अलिपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] विछुआ घास।

अलिपर्णी—संज्ञा स्त्री० [स०] अलिपत्रिका। विछुआ घास [को०]।

अलिप्त—वि० [सं०] जो लिप्त न हो। निर्लिप्त। उ०—रहकर भी जल जाल मे तू अलिप्त अरविंद।—साकेत, पृ० २६४।

अलिप्रिय—संज्ञा पु० [स०] अरुणकमल। लाल कमल [को०]।

अलिमक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोयल। २ मेढक। ३ कमल का केसर [को०]।

अलिमोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियारी नामक पौधा [को०]।

अलियल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अलिकुम, प्रा० अलिउल] (अलिसमूह) भ्रमरगण। उ०—अलियल आज करत नह, गयँद कपोलाँ गान।—बाँकीदास ग्र०, भा० १, पृ० ३१।

अलिया†—संज्ञा स्त्री० [स० आलय] १ एक प्रकार की खारी। २ वह गड्ढा जिसमें कोई वस्तु रखकर ढँक दी जाय।

अलिवल्लभ—संज्ञा पुं० [स०] लाल कमल [को०]।

अलिविरुत—संज्ञा पु० [सं०] भौंरो की गूँज [को०]।

अली(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [स० आली] १ सखी। सहचरी। सहेली। उ०—येहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हिय हरषी अली।—मानस, १।२३६। २ श्रेणी। पक्ति। कतार।

अली²—संज्ञा पुं० [सं० अलिन्] [स्त्री० अलिनी] १. भौरा। उ०—अली कली ही सौं बँध्यो, आगे कौन हवाल।—बिहारी र०, दो० ३८। २ विच्छू [को०]।

अलीक¹—वि० [सं०] १ वेसिर पैर का। मिथ्या। झूठा। उ०—(क) सोई रावनु जग विदित प्रतापी। सुनेहि न स्रवनअलीक प्रलापी।—मानस ६।२५। (ख) सनख सरी श्रुति अनिन की वचन अलीक अमान।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ०४८। २ अमान्य। अप्रिय [को०]। ३. अल्प। थोड़ा [को०]।

अलीक²—संज्ञा पुं० १ नापसद या असत्य चीज। २ ललाट। ३ स्वर्ग। आकाश। ४. दुःख [को०]।

अलीक³—संज्ञा पुं० [स० अ = नहीं + हिं० लीक] अप्रतिष्ठा।

अलीक⁴—वि० मर्यादारहित। अप्रतिष्ठित।

अलीकी—वि० [स० अलीकिन्] १ नापसद। अप्रिय। २ असत्य [को०]।

अलीगर्द—संज्ञा पु० [सं०] दे० अलिगर्द्ध' [को०]।

अलीगर्द्ध—संज्ञा पुं० दे० 'अलिगर्द' [को०]।

अलीजा(पु)—वि० [अ० आलीजाह] वहुत सा। अधिक। बुलद। उ०—मोम महावर मूली बीजा। अकरकरा अजमोद अलीजा।—सूदन (शब्द०)। २ दे० 'आलीजाह'।

अलीन¹—संज्ञा पुं० [सं० आलीन = मिला हुआ] १ द्वार के चौखट की खडी लबी लकडी जिसमे पल्ला या किवाड जडा जाता है। साह। बाजू। २ दालान या वरामदे के किनारे का खभा जो दीवार से सटा होता है। इसका घेरा प्राय आधा होता है।

अलीन²—वि० [स० अ = नहीं + लीन = रत] १ अग्राह्य। अनुपयुक्त। उ०—'हे सखा! पुरुवशियो का मन अलीन वस्तु कभी नही जाता'।—शकुतला०, पृ० ३४। २ अनुचित। वेजा। उ०—अरि दलयुक्त आप दलहीना। करि वैठे कछु कर्म अलीना।—सबल (शब्द०)।

अलीपित(पु)—वि० [हिं०] दे०' अलिप्त'।

अलीवद—संज्ञा पुं० [अ० अली + फा० वद] एक प्रकार का आभूषण। एक प्रकार का बाजूबद।

अलील—वि० [अ०] बीमार। रुग्ण।

अलीह(पु)—वि० [स० अलीक] मिथ्या। असत्य। उ०—कान मूदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं झूठ बात अलीहा।—मानस ६।४८।

अलु—संज्ञा पुं० [स०] एक छोटा जलपात्र [को०]।

अलुक्—संज्ञा पुं० [स०] व्याकरण मे समास का एक भेद जिसमे वीच की विभक्ति का लोप नहीं होता। जैसे—सरसिज, मनसिज, युधिष्ठिर, कर्णजय, अगदकर, असूर्यपश्या, विश्वभर।

अलुक्क(पु)—वि० [स० अ = नहीं + प्रा० लुक्क = छिपना] न छिपनेवाला। उ०—अलुक्क लुक्क मान की कला अचुक्क धारही।—पद्माकर ग्र०, पृ० २८३।

अलुज्झना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अलुझना'। उ०—खप्परिन्ह खग अलुज्झि जुज्झहि सुभट भटन ढहावही।—मानस, ६।७८।

अलुझना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरुझना' और 'उलझना'।

अलुटना(पु)—क्रि० अ० [स० √लुठ् = लोटना, लडखड़ाना] लडखडाना। गिरना पडना। उ०—चले जात अलह मग, लागे बाग दीठि पर्यो, करि अनुराग हरि सेवा विस्तारिये। पकि रहे आम माँगे माली पास भोग लिए, कहो लीजै, कही झुकि आई सब डारिये। चल्यौ दौरि राजा जहाँ, जाइकै सुनाई वात,गात भई प्रीति, अलुटत पाँव धारिये।—प्रिया (शब्द०)।

अलुमीनम—संज्ञा पुं० [अ० एलुमीनियम] एक धातु जो कुछ कुछ नीलापन लिए सफेद होती है और अपने हल्केपन के लिये

प्रसिद्ध है। इसके बरतन बनते हैं। इसमे रखने से खट्टी चीजें नहीं बिगड़ती।

अलूक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उलूक'। उ०—सारस्स चिल्ह चाश्रिग अलूक।—पृ० रा०, ६१।१६७।

अलूप(पु)—वि० [सं० लुप=अभाव] लुप्त। गायब। उ०—ससि औ सूर जो नर्मल तेहि ललाट की रूप। निसि दिन चलहिं न सरवरि पावें तपि तपि होहिं अलूप।—जायसी (शब्द०)।

अलूफा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलोप'। उ०—सुखमन के घर तारी लाश्रो अमी अलूफा पाश्रोगा।—गुलाल०, पृ० ५५।

अलूला(पु)—संज्ञा पु० [हिं० बुलबुला बलूला ?] बुलबुला। भभूका। लपट। उद्गार। उ०—वानर वदन रुधिर लपटाने छवि के उठत अलूले। रघुपति रन प्रताप रन सरवर,मनहुँ कमलकुल फूले।—हनुमान (शब्द०)।

अलेख[1]—वि०[सं०] १ जिसके विषय में कोई भावना न हो सके। दुर्बोध। अज्ञेय। उ०—अगुन अलेख अमान एक रस। राम सगुन भए भक्त प्रेम बस।—तुलसी (शब्द०)। २ जिसका लेखा न हो सके। बेहिसाब। बेअंदाज। अनगिनत। बहुत अधिक। उ०—जोग यज्ञ जप ध्यान अलेख। तीरथ फिरे धरे बहु भेख।—कबीर (शब्द०)।

अलेख[2](पु)—वि० [सं० अलक्ष्य] अदृश्य। उ०—सितासित अरुनारे पानिप के राखिबे को, नीरज के पति हैं अलेख लखि हारे हैं।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० ३९।

अलेख[3](पु)—संज्ञा पु० [सं० लेख=देवता] देवता। देव। उ०—सजि निप नरमेपनि सहित अलेखनि करहिं असेपनि गानन को।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २२९।

अलेखा(पु)—वि० [सं० अलेख] १ जो गिना न जा सके। बेहिसाब। २ व्यर्थ। निष्फल। उ०—सूरदास यह मति श्राए बिन सब दिन गए अलेखे। का जानै दिनकर की महिमा अध नैन बिन देखे।—सूर०, २।२५।

अलेखी(पु)[1]—वि० [सं० अलेख] गड़बड़ मचानेवाला। अंधेर करनेवाला। अन्यायी। उ०—बड़े अलेखी लखि परे परिहरे न जाहीं। असमंजस मो मगन हौं लीजै गहि बाहीं।—तुलसी (शब्द०)।

अलेखी[2]—वि० [सं० अ+लेख्य] जो लिखी न गई हो या जिसका लेखा न हो। उ०—लेखी मैं अलेखी मैं नहीं है छवि ऐसी श्री, असमसरी समसरी दीबे कों परैं लियें।—भिखारी० ग्रं० भा० २, पृ० १८९।

अलेपक[1]—वि०[सं०] किसी भी चीज मे लीप्त न होनेवाला। निर्लिप्त निष्कलुष। वेदाग [को०]।

अलेपक[2]—संज्ञा पु० परमात्मा। ब्रह्म।

अलेपा(पु)—वि०[हिं०] दे० 'अलेपक'। उ०—सर्व निवासी सदा अलेपा तोही संग समाई।—संतबाणी०, भा० २, पृ० ४९।

अलेल(पु)—वि० [प्रा० अलिल्लह=अप्रयोज्य अर्थात् प्रयोजन से अधिक] बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—घनआनंद खेल अलेल दसैं बिलसैं, सुलसैं लट भूमि भुलि।—घनआनंद, पृ० १५९।

अलेलह‡—वि० [हिं०] दे० 'अलेल'।

अलेव(पु)—वि० [हिं०] अलेप। अलिप्त। उ०—सुने अजमो सो नरौं सहजो ब्रह्म अलेव।—सहजो०, पृ० ४६।

अलैया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० अलहिया] एक रागिनी। वि० दे० 'अलहिया'।

अलोइ(पु)—वि० [सं० अलौकिक] अलौकिक। इस लोक से भिन्न। उ०—जपि राज दुजराज सम। तुम मति रूप अलोइ।—पृ० रा०, २५।१५३।

अलोक[1]—वि० [सं०] १ जो देखने मे न आए। अदृश्य। २ लोक शून्य। निर्जन। एकात। ३ पुण्यहीन।

अलोक[2]—संज्ञा पु० १ पातालादि लोक। परलोक। २ जैन शास्त्रानुसार वह स्थान जहाँ आकाश के अतिरिक्त धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय आदि कोई द्रव्य न हो और जिसमे मोक्षगामी के सिवा और किसी की गति न हो। (पु) ३ बिना देखी बात। मिथ्यादोष। कलंक। निंदा। उ०—(क) लक्ष्मण सीय तजी जब ते बन। लोक अलोकन पूरि रहे तन।—रामच०, पृ० १८१। (ख) पुत्र होइ कि पुत्रिका यह बात जानि न जाइ। लोक लोकन मैं अलोक न लीजिये रघुराइ।—रामच०, पृ० १६४। ४ संसार का विनाश [को०]।

यौ०—अलोक सामान्य=अद्वितीय। असामान्य।

अलोक[3](पु)—संज्ञा पु० [सं० आलोक] दे० 'आलोक'।

अलोकन—संज्ञा पु० [सं०] अदृश्यता। न दिखाई पड़ना [को०]।

अलोकना(पु)—क्रि० स० [सं० आलोकन] देखना। ताकना। उ०—रचक दीठि को भार लहे बहु बार बिलोकनि ईठि अनैसी। टूटिहै लागिहै लोक अलोकत वै हठ छूटिहै जूटिहै कैसी।—केशव (शब्द०)।

अलोकनीय—वि० [सं०] जो दीख न पड़े। अदृश्य [को०]।

अलोकित—वि० [सं०] अदेखा। बिना देखा हुआ [को०]।

अलोकी(पु)—वि० [हिं० अलोक=निंदा+ई (प्रत्य०)] निंदित। कलंकी। बदनाम। उ०—अमर्म सअमी, यश शोके सशोकी अधर्मै अधर्मी अलोकै अलोकी।—रामच०, पृ० १५८।

अलोक्य—वि० [सं०] १ जो स्वर्ग दिलानेवाला न हो। अस्वर्ग्य। २ बुरे स्वभाववाला। क्रूर प्रकृति का [को०]।

अलोचन—वि० [सं०] १ जिसे आँख न हो। २ बिना खिड़की या झरोखावाला [को०]।

अलोना—वि० [सं० अलवण] [वि० स्त्री० अलोनी] १ बिना नमक का। जिसमे नमक न पड़ा हो। उ०—कीरति कुल करतूति भूति भलि सील सरूप सलोने। तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन साग अलोने।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४६। २ जिसमे नमक न खाया जाय, जैसे—'रविवार को बहुत लोग अलोना व्रत रखते हैं'। ३ फीका। स्वादरहित। बेमजा। उ०—केसोदास बोले बिन, बोलके सुने बिना हू हिलन मिलन बिना मोह क्यों सरतु है। कौ लग अलोनो रूप प्याय प्याय राखौं नैन, नीर बिना मीन कैसे धीरज धरतु है।—केशव (शब्द०)।

अलोप(पु)—वि० [सं० लोप] दे० 'लोप'। उ०—अलोप होत के गौर चाह चोप सो धरै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३८४।

अवकृपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपा का अभाव। नाखुशी। उदासीनता।

अवकृष्ट[1]—वि०[सं०]१ दूर किया हुआ। निकाला हुआ। २ निगलित। नीचे उतारा हुआ। ३. नीच। नीच जाति का।

अवकृष्ट[2]—संज्ञा पुं० घर में झाड़ू लगानेवाला। दास।

अवकेश—वि० [सं०] लटकते हुए बालोंवाला [को०]।

अवकेशी[1]—वि० [सं० अवकेशिन्] १. फल न देनेवाला। २ लघु या अल्प बालोंवाला [को०]।

अवकेशी[2]—संज्ञा पुं० फलहीन वृक्ष [को०]।

अवकोकिल—वि० [सं०] कोयल की आवाज से आकर्षित [को०]।

अवक्खन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवेक्षण] देखना।

अवक्तव्य—वि०[सं०] १ न कहने योग्य। २ निषिद्ध। ३ अश्लील। ४ मिथ्या। झूठ।

अवक्त्र—वि० [सं०] जो खुला न हो। बिना मुँह का—जैसे, बरतन या फोड़ा [को०]।

अवक्रंद—वि० [सं० अवक्रन्द] दे० 'अवक्रंदन'।

अवक्रंदन—संज्ञा पुं० [सं० अवक्रन्दन] ऊँचे स्वर से रोना [को०]।

अवक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १ उतराव। नीचे की ओर उतरना।

अवक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे की तरफ उतरना। २ बौद्ध और जैन धर्म के मतानुसार गर्भ में आना [को०]।

अवक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. बदला। २ मूल्य। दाम। ३. भाड़ा। किराया। ४ कर।

अवक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० अवक्रान्ति] १. अधोगमन। उतार। गिराव। २ झुकाव।

अवक्रीतक[1]—वि० [सं०] माँगकर लिया हुआ। मँगनी लिया हुआ।

विशेष—अवक्रीतक वस्तु न लौटानेवाले के लिये याचितक के समान ही दंडविधान था।

अवक्रीतक[2]—संज्ञा पुं० किराए या भाड़े पर लिया हुआ माल।

अवक्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्कश स्वर। असह्य कड़ी बोली। २ कोसना। गाली। ३. निंदा।

अवक्लिन्न—वि० [सं०] आर्द्र। गीला। तर। भीगा हुआ।

अवक्लेद—संज्ञा पुं० [सं०] जलस्राव [को०]।

अवक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] क्षय। नाश। हानि [को०]।

अवक्षिप्त—वि०[सं०]१ गिरा हुआ। २ जिसकी निंदा की गई हो। जिसपर लांछन लगाया गया हो।

अवक्षुत—वि० [सं०] जिसपर छींक पड़ गई हो।

अवक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १ आपत्ति। २. आरोप [को०]।

अवक्षेपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवक्षिप्त) १ गिराना। अधःपात करना। नीचे फेंकना।

विशेष—वैशेषिक शास्त्र में यह अपक्षेपण, आकुंचन आदि पाँच कर्मों या क्रियाओं में से एक है।

२ आधुनिक विज्ञान के अनुसार प्रकाश, तेज या शब्द की गति में उसके किसी पदार्थ में होकर जाने से वक्रता का होना। ३ निंदा करना(शब्द०)। ४ पराभूत। करना या पछाड़ना [को०]।

अवक्षेपणी—संज्ञा स्त्री० (सं०) बाग। लगाम [को०]।

अवखंडन—संज्ञा पुं० [सं० अवखण्डन] १. नष्ट करना। तोड़ फोड़ करना। २. खंड खंड या अलग अलग तोड़ना [को०]।

अवखात—संज्ञा पुं० [सं०] गहरा गड्ढा।

अवखाद—संज्ञा पुं० [सं०] अपवित्र या खराब भोजन। २ अनुपयुक्त नैवेद्य [को०]।

अवगंड—संज्ञा पुं० [सं० अवगण्ड] चेहरे या गालों पर होनेवाली फुडिया या फुंसी। मुँहासा [को०]।

अवगण—वि०[सं०]१ स्वजनों से अलग रहनेवाला। एकांतवासी [को०]

अवगणन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवगणित] १ निंदा। तिरस्कार। अपमान। २ नीचा देखना। पराभव। पराजय। हार। ३ गिनती।

अवगणना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अवगणन'।

अवगणित—वि० [सं०] १ निंदित। तिरस्कृत। अपमानित। २. नीचा देखा हुआ। पराजित। ३ गिना हुआ।

अवगत—वि० [सं०] १ विदित। ज्ञात। जाना हुआ। उ०—"वह मुझे भली भाँति अवगत है" ।—चंद्र०, पृ० २१५।

क्रि० प्र०—होना = मालूम होना। जान पड़ना।

२ नीचे गया हुआ। गिरा हुआ। ३ वादा किया हुआ [को०]।

अवगतना(पु)—क्रि० स० [सं० अवगत+हिं० ना (प्रत्य०)] [प्रे० रूप, अवगताना] सोचना। समझना। विचारना। उ०—मास मास नहिं करि सकै छठै मास अलबत्ति।—यामें ढील न कीजिये कबीर अवगति।—कबीर (शब्द०)।

अवगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुद्धि। धारणा। समझ। २ कुगति। नीच गति। ३ निश्चयात्मक ज्ञान।

अवगथ—वि० [सं०] प्रातःस्नात। तड़के नहाया हुआ [को०]।

अवगनना(पु)†—क्रि० अ० [सं० अवगणन] १ निंदा करना। तिरस्कार करना। २ तुच्छ समझना। कम या घटिया समझना। ३ कम मूल्य या महत्व आँकना या लगाना।

अवगम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवगमन' [को०]।

अवगमन—संज्ञा पुं० [सं०] देख सुनकर किसी बात का अभिप्राय जान लेना। जानना समझना। २ दे० 'अवगति'।

अवगर(पु)—वि० [सं० अवग्रह = ज्ञान] [वि० स्त्री० अवगरी] ज्ञान या समझबूझवाला।

अवगलित—वि० [सं०] नीचे गिरा हुआ [को०]।

अवगहना—क्रि० स० [सं० अवगाहन] थहाना। थाह लेना।

अवगाढ—वि० [सं० अवगाढ] १ निबिड़। छिपा हुआ। २ प्रविष्ट। धसा हुआ। निमग्न। ३ नीचा। गहरा [को०]। ४ जमता या गाढा होता हुआ— जैसे, खून [को०]।

अवगाद—संज्ञा पुं० [सं०] नाव से पानी उलीचने के लिये काठ का एक छोटा पात्र [को०]।

अवगावना(पु)—क्रि० [हिं०] दे० 'अवगाहना'।

अवगारना(पु)—क्रि० स० [सं० अव+गॄ] समझाना। बुझाना। जताना। उ०—कहा कहत रे मधु मतवारे। हम जान्यो यह श्याम सखा है यह तो और न्यारे। सूर कहा याके मुख लागत कौन याहि अवगारे। —सूर० (शब्द०)।

अवकृपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपा का अभाव। नाखुशी। उदासीनता।

अवकृष्ट¹—वि० [सं०] १ दूर किया हुआ। निकाला हुआ। २ निगलित। नीचे उतारा हुआ। ३ नीच। नीच जाति का।

अवकृष्ट²—संज्ञा पुं० घर मे झाड़ू लगानेवाला। दास।

अवकेश—वि० [सं०] लटकते हुए बालोवाला [को०]।

अवकेशी¹—वि० [सं० अवकेशिन्] १ फल न देनेवाला। २ लघु या अल्प बालोवाला [को०]।

अवकेशी²—संज्ञा पुं० फलहीन वृक्ष [को०]।

अवकोकिल—वि० [सं०] कोयल की आवाज से आकर्षित [को०]।

अवक्खन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवेक्षण] देखना।

अवक्तव्य—वि० [सं०] १ न कहने योग्य। २ निषिद्ध। ३ अश्लील। ४ मिथ्या। झूठ।

अवक्त्र—वि० [सं०] जो खुला न हो। बिना मुँह का—जैसे, बरतन या फोड़ा [को०]।

अवक्रंद—वि० [सं० अवक्रन्द] दे० 'अवक्रंदन'।

अवक्रंदन—संज्ञा पुं० [सं० अवक्रन्दन] ऊँचे स्वर मे रोना [को०]।

अवक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १ उतराव। नीचे की ओर उतरना।

अवक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे की तरफ उतरना। २ बौद्ध और जैन धर्म के मतानुसार गर्भ मे आना [को०]।

अवक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १ बदला। २ मूल्य। दाम। ३ भाड़ा। किराया। ४. कर।

अवक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० अवक्रान्ति] १ अधोगमन। उतार। गिराव। २ झुकाव।

अवक्रीतक¹—वि० [सं०] माँगकर लिया हुआ। मँगनी लिया हुआ।

विशेष—अवक्रीतक वस्तु न लौटानेवाले के लिये याचितक के समान ही दंडविधान था।

अवक्रीतक²—संज्ञा पुं० किराए या भाड़े पर लिया हुआ माल।

अवक्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्कश स्वर। असह्य कड़ी बोली। २ कोसना। गाली। ३ निंदा।

अवक्लिन्न—वि० [सं०] आर्द्र। गीला। तर। भीगा हुआ।

अवक्लेद—संज्ञा पुं० [सं०] जलस्राव [को०]।

अवक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] क्षय। नाश। हानि [को०]।

अवक्षिप्त—वि० [सं०] १ गिरा हुआ। २ जिसकी निंदा की गई हो। जिसपर लांछन लगाया गया हो।

अवक्षुत—वि० [सं०] जिसपर छींक पड़ गई हो।

अवक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १ आपत्ति। २. आरोप [को०]।

अवक्षेपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवक्षिप्त) १. गिराना। अधःपात करना। नीचे फेंकना।

विशेष—वैशेषिक शास्त्र मे यह अपक्षेपण, आकुंचन आदि पाँच कर्मो या क्रियाओं मे से एक है।

२ आधुनिक विज्ञान के अनुसार प्रकाश, तेज या शब्द की गति मे उसके किसी पदार्थ मे होकर जाने से वक्रता का होना। ३ निंदा करना (शब्द०)। ४ पराभूत। करना या पछाड़ना [को०]।

अवक्षेपणी—संज्ञा स्त्री० (सं०) बाग। लगाम [को०]।

अवखंडन—संज्ञा पुं० [सं० अवखण्डन] १ नष्ट करना। तोड़ फोड़ करना। २. खंड खंड या अलग अलग तोड़ना [को०]।

अवखात—संज्ञा पुं० [सं०] गहरा गड्ढा।

अवखाद—संज्ञा पुं० [सं०] अपवित्र या खराब भोजन। २ अनुपयुक्त नैवेद्य [को०]।

अवगंड—संज्ञा पुं० [सं० अवगण्ड] चेहरे या गालो पर होनेवाली फुड़िया या फुंसी। मुँहासा [को०]।

अवगण—वि० [सं०] १ स्वजनों से अलग रहनेवाला। एकांतवासी [को०]

अवगणन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवगणित] १ निंदा। तिरस्कार। अपमान। २ नीचा देखना। पराभव। पराजय। हार। ३ गिनती।

अवगणना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अवगणन'।

अवगणित—वि० [सं०] १ निंदित। तिरस्कृत। अपमानित। २. नीचा देखा हुआ। पराजित। ३ गिना हुआ।

अवगत—वि० [सं०] १ विदित। ज्ञात। जाना हुआ। उ०—"वह मुझे भली भाँति अवगत है"।—चंद्र०, पृ० २१५।

क्रि० प्र०—होना = मालूम होना। जान पड़ना।

२ नीचे गया हुआ। गिरा हुआ। ३. वादा किया हुआ [को०]।

अवगतना(पु)—क्रि० स० [सं० अवगत + हिं० ना (प्रत्य०)] [प्रे० रूप, अवगताना] सोचना। समझना। विचारना। उ०—मास मास नहिं करि सकै छठै मास अलबत्ति।— यामें ढील न कीजिये कबीर अवगति।—कबीर (शब्द०)।

अवगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुद्धि। धारणा। समझ। २ कुगति। नीच गति। ३ निश्चयात्मक ज्ञान।

अवगथ—वि० [सं०] प्रातःस्नात। तड़के नहाया हुआ [को०]।

अवगनना(पु)†—क्रि० अ० [सं० अवगणन] १ निंदा करना। तिरस्कार करना। २ तुच्छ समझना। कम या घटिया समझना। ३ कम मूल्य या महत्व आँकना या लगाना।

अवगम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवगमन' [को०]।

अवगमन—संज्ञा पुं० [सं०] देख सुनकर किसी बात का अभिप्राय जान लेना। जानना समझना। २ दे० 'अवगति'।

अवगर(पु)—वि० [सं० अवग्रह = ज्ञान] [वि० स्त्री० अवगरी] ज्ञान या समझबूझवाला।

अवगलित—वि० [सं०] नीचे गिरा हुआ [को०]।

अवगहना—क्रि० स० [सं० अवगाहन] थहाना। थाह लेना।

अवगाढ—वि० [सं० अवगाढ] १ निबिड। छिपा हुआ। २ प्रविष्ट। घसा हुआ। निमग्न। ३ नीचा। गहरा [को०]। ४. जमता या गाढ़ा होता हुआ—जैसे, खून [को०]।

अवगाद—संज्ञा पुं० [सं०] नाव मे पानी उलीचने के लिये काठ का एक छोटा पात्र [को०]।

अवगाधना(पु)—क्रि० [हिं०] दे० 'अवगाहना'।

अवगारना(पु)—क्रि० स० [सं० अव + गॄ] समझाना। बुझाना। जताना। उ०—कहा कहत रे मधु मतवारे। हम जान्यो यह श्याम सखा है यह तो और न्यारे। सूर कहा याके मुख लागत कौन याहि अवगारे।—सूर० (शब्द०)।

अवगास(पु)—संज्ञा पुं० [स० अवकाश, प्रा० ओगास] जगह । स्थान । मैदान । उ०—भए अवगास कास बन फूले । कंत न फिरे बिदेसहिं भूले ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३५६ ।

अवगाह¹(पु)—वि० [स० अवगाध] १ अथाह । गहरा । अत्यंत गंभीर । उ०—(क) पेम समुद जो अति अवगाहा । जहाँ न वार न पार न थाहा ।—जायसी ग्रं०,पृ० ६० । २ अनहोनी । कठिन । उ०—तोरेहु धनुष ब्याहुअ वगाहा । बिनु तोरे को कुँअरि बिआहा ।—मानस, १।२४५ ।

अवगाह²(पु)—संज्ञा पुं० १ गहरा स्थान । २ सकट का स्थान । ३ कठिनाई । उ०—दस्तगीर गाढ़े कई साथी । जँह अवगाह दीन्ह तहँ हाथी ।—जायसी (शब्द०) ।

अवगाह³—संज्ञा पुं० [सं०] १ भीतर प्रवेश । हलना । २ जल मे हलकर स्नान करना । ३ स्नान करने की जगह [को०] । ४ डोल या बालटी [को०] । ५. भलीभाँति अध्ययन या छानबीन [को०] ।

अवगाहक—वि० [सं०] अवगाहन करनेवाला । उ०—अवगाहक सा उतर अचेतन के निस्तल मे ।—रजत०, पृ० १८ ।

अवगाहन—संज्ञा पुं० [स०] १. पानी मे हलकर स्नान करना । निमज्जन । उ०—शीतल जल मे अवगाहन कर शंकर शिला पर बैठ गया ।—प्रेम०, पृ० ३१ । प्रवेश । पैठ । ३ मथन । विलोडन । ४ थहाना । खोज । छानबीन । जैसे—नगर भर अवगाहन कर डाला, कहीं लडके का पता न लगा । ५ चित्त धँसाना । लीन होकर विचार करना । जैसे—खूब अवगाहन करो, तब इस श्लोक का अर्थ खुलेगा । वि० दे० 'अवगाह' ।

अवगाहना¹—क्रि० अ० [स० अवगाहन] १ हलकर नहाना । निमज्जन करना । उ०—जे सर सरित राम अवगाहहिं । तिन्हहिं देव सर सरित सराहहिं ।—तुलसी (शब्द०) । २. डूबना । पैठना । धँसना । मग्न होना । उ०—भूप रूप गुन सील सराही । रोवहिं सोक सिंधु अवगाही ।—तुलसी (शब्द०) ।

अवगाहना²—क्रि० स० १ थहाना । छानना । छानबीन करना । उ०—अवगाहन, सीतहि चाहन, यूथप यूथ सबै पठाए ।—राम च०, पृ० ६० । (ख) सहज सुगंधि शरीर की, दिसि विदिसन अवगाहि । दूती ज्यो आई लिये, केशव शूर्पनखाहि ।—केशव (शब्द०) । २ विचलित करना । हलचल डालना । मथना । उ०-सुनहु सूत तेहि काल, भरत तनय रिपु मृतक लखि । करि उर कोप कराल, अवगाही सेना सकल ।—केशव (शब्द०) । ३ चलाना । हिलाना । डुलाना । उ०—नद सोक विषाद कुसाग्र ग्रसे करि धीरहि तें अवगाहनो है । हित दीनदयाल महा मृदु है कठिनो अति ग्रत निबाहनो हैं ।—दीन ग्रं० पृ० २५८ । ४ सोचना । विचारना । समझना । उ०—(क) अंगसिगार स्याम हित कीन्हे, वृथा होन ये चाहत । सूर स्याम आपे की नाहिं, मन मन यह अवगाहत ।—सूर०, १० । २०२८ । (ख) पच्छिम मे याही मे बडो है राजहंस एक सदा नीर छीर के विवेक अवगाहे ते ।—दूलह (शब्द०) । ५ धारण करना । गहण करना । उ०—जाही समय जौन ऋतु आवै । तवहीं ताको गुन अवगाहै ।—लाल (शब्द०) ।

अवगाहित—वि० [स०] १ नहाया हुआ । २ जिसमे नहाया गया हो । ३ अच्छी तरह मनन किया गया ।

अवगाही—वि० [स० अवगाहिन्] १ खोजनेवाला । अनुसंधान करनेवाला । २ चिंतन करनेवाला । ३ थाह लगानेवाला । गहरे तक पैठनेवाला । ४ स्नान करनेवाला [को०] ।

अवगाह्य—वि० [स०] स्नान करने योग्य (प्राणी) । २ स्नान के निमित्त उचित (स्थान) । ३ अध्ययन, मनन करने योग्य [को०] ।

अवगीत¹—वि० [सं०] १ जिसकी निंदा की गई हो । निंदित । २ बदमाश । दुष्ट । फिर फिर देखा हुआ । सुपरिचित [को०] ।

अवगीत²—संज्ञा पुं० १ निंदा । २ निंद्य या अभद्र गीत । बेसुरा गीत [को०] ।

अवगुंठन—संज्ञा पु० [स० अवगुण्ठन] [वि० अवगुंठित] १ ढँकना । छिपाना । २ रेखा से घेरना । ३ पर्दा । ४ घूँघट । बुर्का । ५ झाड़ू [को०] । ६ धार्मिक अनुष्ठानों मे प्रयुक्त अँगुलियों की एक मुद्रा [को०] ।

अवगुंठनवती—वि० स्त्री० [सं० अवगुण्ठनवती] घूँघटवाली । उ०—किंतु वह अर्ध अवगुंठनवती कौन ?—इरावती, पृ० १०१ ।

अवगुंठिका—संज्ञा पुं० [सं० अवगुण्ठक] १ घूँघट । २ जवनिका । पर्दा । ३ चिक ।

अवगुंठित—वि० [सं० अवगुण्ठित] ढँका हुआ । छिपा हुआ । २ चूर किया हुआ । चूर्णित [को०] ।

अवगुंडित—वि० [सं० अवगुण्डित] चूर्ण किया हुआ [को०] ।

अवगुंफन—संज्ञा पु० [स० अवगुम्फन] १ गूथना । गुहना । २ ग्रथन । बुनना ।

अवगुंफित—वि० [स० अवगुम्फित] १ गूँथा हुआ । गुहा हुआ । २ बुना हुआ । ग्रथित ।

अवगुण—संज्ञा पुं० [स०] १ दोष । दूषण । ऐब । २ अपराध । बुराई । खोटाई ।

अवगुन(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अवगुण' । उ०—गुन अवगुन जानत सब कोई, जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ।—मानस, १ । ५ ।

अवगुरण—संज्ञा पुं० [स०] धमकाना । क्षति पहुँचाने की धमकी देना [को०] ।

अवगूहन—संज्ञा पुं० [स०] १ छिपाना । २ आलिंगन करना [को०] ।

अवगोरण—संज्ञा पुं० [स०] दे० अवगुरण [को०] ।

अवग्गी —वि० [स०] नियंत्रण मे न रहनेवाला [को०] ।

अवग्या(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अवज्ञा' । उ०—तो कहिं इती अवग्या उन्ह पै, कैसे सही परी ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३३९ ।

अवग्रह—संज्ञा पुं० [स०] १ रुकावट । अटकाव । अड़चन । बाधा । २ वर्षा का अभाव । अनावृष्टि । ३ बाँध । बंद । ४ व्याकरण मे संधिविच्छेद । ५ अनुग्रह का उलटा । ६ गजसमूह । ७ हाथी का ललाट । हाथी का माथा । ८ स्वभाव । प्रकृति । ९ शाप । कोसना । १० लुप्ताकार का चिह्न । खंडाकार(ऽ) [को०] । अंकुश [को०] ।

अवग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनादर। अवमान। अपमान। २ रोक। बाधा [को०]। ३ ज्ञान [को०]।

अवग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] १ सवधविच्छेद। अलगाव। २. बाधा [को०]। ३ कोसना [को०]। दे० 'अवग्रह'।

अवघट(पु)—वि० [सं० अव + घट्ट = घाट] कुघाट। अटपट। अडबड। विकट। दुर्गम। कठिन। दुर्घट। उ०—(क) सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं वर बाटा।—मानस, ३।७ (१क)। (ख) घाट बाट अवघट यमुना तट बातें कहत बनाय। कोऊ ऐसो दान लेत है कौने सिखै पठाय।—सूर (शब्द०)।

अवघट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १ बिल। गुफा। २. पीसने की चक्की। ३ हिलाना [को०]।

अवघट्टन—संज्ञा पुं० [सं०] १ पीसना। मर्दन। २ दो वस्तुओं का परस्पर संपर्क। मिलन [को०]।

अवघर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] घसना। माँजना। रगडना [को०]।

अवघाटक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हार [को०]।

अवघात—संज्ञा पुं० [सं०] १. चोट। ताडन। घन। प्रहार। २. कूटना [को०]। ३. अकाल मृत्यु। अस्वाभाविक मृत्यु [को०]।

अवघाती—वि० [सं० अवघातिन्] अवघात करनेवाला [को०]।

अवघूर्ण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] ववडर [को०]।

अवघूर्ण[2]—वि० क्षुब्ध [को०]।

अवघूर्णन—संज्ञा पुं० [सं०] चक्कर काटना। ववडर [को०]।

अवघोरित—वि० [सं०] चारो ओर से ढँका या मढा हुआ [को०]।

अवघोषक—संज्ञा पुं० [सं०] झूठी खबरें उडानेवाला व्यक्ति।

विशेष—चद्रगुप्त मौर्य के समय मे ऐसे लोगो को फाँसी पर चढाने का दंड दिया जाता था।

अवघोषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोषणा [को०]।

अवच—क्रि० वि० [सं०] नीचे [को०]।

अवचट[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अव = नहीं + हिं० घट = जल्दी अथवा सं० अव = थोडा + हिं० चित] अनजान। अचक्का उ०—पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला।—मानस, १।२४८।

अवचट[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] कठिनाई। अवघट। अडस। चपकुलिस। जैसे—अवचट मे पड़कर मनुष्य क्या नही करता।

अवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ वचन का अभाव। मौन। २ बुरा वचन। निंदा। दुर्वचन।

अवचनीय—वि० [सं०] १. जो कहने योग्य नही। २. अश्लील। फूहड।

अवचय—संज्ञा पुं० [सं०] चुनकर इकट्ठा करना। फूल या फल तोड़कर बटोरना। उ०—नया नया उल्लास कुसुम अवचय का मन मे उठता था।—प्रेम०, पृ० १७।

अवचल(पु)—वि० [सं० अविचल] अचल।—उ०—पुहमी जोड़ अवचल प्रेम।—रघु० रू० पृ० १२४।

अवचस्कर—वि० [सं०] मौन। चुप [को०]।

अवचाय—संज्ञा पुं० [सं०] फूल फल आदि चुनना [को०]।

अवचार[1]—वि० [सं०] नीचे या ऊपर की ओर आता जाता हुआ [को०]।

अवचार[2]—संज्ञा पुं० १ रास्ता। सडक। २ कार्यक्षेत्र [को०]।

अवचित—वि० [सं०] १ चुना हुआ। बटोरा हुआ। २ आबाद [को०]।

अवचूड—संज्ञा पुं० [सं० अवचूड] ध्वजा के अगले भाग मे नीचे झूलता हुआ वस्त्र [को०]।

अवचूडा—संज्ञा स्त्री० [सं० अवचूडा] माला [को०]।

अवचूटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] टिप्पणी। लघु व्याख्या [को०]।

अवचूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अवचूरि] टीका। टिप्पणी।

अवचूर्णित—वि० [सं०] १ विचूर्ण किया हुआ। भलीभाँति पीसा हुआ। २ मिश्रित किया हुआ। मिलाया हुआ [को०]।

अवचूल—संज्ञा पुं० [सं०] अवचूड [को०]।

अवचूलक—संज्ञा पुं० [सं०] चँवरी गाय की पूँछ के बाल या मोरपख का बना हुआ चँवर [को०]।

अवचेतन[1]—वि० [सं०] अवचेतना सबंधी। आंशिक चेतनावाला।

अवचेतन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] मनोविज्ञान के अनुसार मन का वह भाग जो चेतन मन मे न होने पर भी थोडा प्रयास करने मे चेतना मे लाया जा सके। इसका स्थान अह तथा अचेतन के बीच माना गया है।

अवचेतना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अवचेतन'।

अवच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] ढकना। सरपोश।

अवच्छाद—संज्ञा पुं० [सं०] ढकना। अवच्छद [को०]।

अवच्छिन्न—वि० [सं०] १ जिसका किसी अवच्छेदक पदार्थ मे अवच्छेद किया गया हो। अलग किया हुआ। पृथक। २ विशेषणयुक्त। ३ सीमित।

अवच्छुरित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कठोर या कर्कश हास्य [को०]।

अवच्छुरित[2]—वि० मिला जुला। मिश्रित [को०]।

अवच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवच्छेद्य, अवच्छिन्न] १ अलगाव। भेद। २ इयत्ता। हद। सीमा। ३ अवधारण। निश्चय। छानबीन। ४ सगीत मे मृदग के बारह प्रबंधों मे से एक। ५ परिच्छेद। विभाग। ६ किसी वस्तु का वह गुण या धर्म जिसमे अन्य पदार्थ पृथक् प्रतीत हो [को०]। ७ व्याप्ति [को०]।

अवच्छेदक[1]—वि० [सं०] १ छेदक। भेदकारी। अलग करनेवाला। २. इयत्ताकार। हद बाँधनेवाला। ३ अवधारक। निश्चय करनेवाला।

अवच्छेदक[2]—संज्ञा पुं० १ विशेषण। २ सीमा। इयत्ता [को०]।

अवच्छेदकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अवच्छेद करने का भाव। पृथक् करने का धर्म। अलग करने का धर्म। २ हद या सीमा बाँधने का भाव परिमिति।

अवच्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. काटना। विभाजन। खड करना। २. सीमा निर्धारण करना [को०]।

अवच्छेद्य—वि० (सं०) अलगाव के योग्य।

अवच्छेपणी—संज्ञा पुं० (सं० अवक्षेपणी) दहाना। दाँती। लगाम।

अवछंग(पु)—संज्ञा पुं० (सं० उत्सङ्ग) दे० उछंग]।

अवजय—संज्ञा स्त्री० (सं०) हार। पराजय [को०]।

अवजित—वि० [सं०] हारा हुआ। विजित। तिरस्कृत [को०]।
अवज्जि(पु)—संज्ञा पुं०[फा० आवाज] १ पुकार। आवाज। २ शोर-गुल। उ०—सुनी धाह जसवंत नृप, आयो सेन सुमज्जि। ढलकि ढाल बद्दल मिल्लिय, पुव्व झडाउ अवज्जि। पृ० रा०, ४।२५।
अवज्ञा—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवज्ञात, अवज्ञेय] १ अपमान। अनादर। २ आज्ञा का उल्लंघन। आज्ञा न मानना। अवहेला। ३ पराजय। हार। ४ वह काव्यालंकार जिसमें एक वस्तु के गुण या दोष से दूसरी वस्तु का गुण या दोष न प्राप्त करना दिखलाया जाय, जैसे,—करि वेदांत विचार हू शठहिं विराग न होय। रच न मृदु मैनाक भो निशि दिन जल में सोय।—(शब्द०)।
अवज्ञात—वि० [सं०] अपमानित। तिरस्कृत।
अवज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] अनादर। अप्रतिष्ठा [को०]।
अवज्ञेय—वि [सं०] अपमान के योग्य। तिरस्कार के योग्य।
अवझरि(पु)—संज्ञा स्त्री०[प्रा० ओज्झरी] दे० 'ओझरी'। उ०—झारझोरी तोरि अवझरि उजरि। गहि हमेन हम्मीर निय।—पृ० रा०, ६४।३३५।
अवझोरा(पु)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० ओरुज्झ] उलझन। झंझट। गाँठ। उ०—चित्र बचित्र इहै अवझोरा। तजि चित्रै चितु राखि चितेरा।—कबीर ग्र०, पृ० ३१०।
अवट—संज्ञा पुं० [सं०] १ गड्ढा। कुंड। २ हाथियों के फँसाने के लिये गड्ढा जिसे तृणादि से आच्छादित कर देते हैं। खाँडा। माला। ३ गले के नीचे कंधे और काँख आदि का गड्ढा। ४ एक नरक का नाम। ५ दाँत का गड्ढा। दंतकोटर [को०]। ६ बाजीगर। ऐंद्रजालिक [को०]।
यौ०—अवटनिरोधन, अवटविरोधन = नरकविशेष का नाम।
अवटकच्छप—संज्ञा पुं० [सं०] १ गड्ढे के भीतर रहनेवाला कच्छप अर्थात् अज्ञानी मनुष्य [को०]।
अवटना¹(पु)—क्रि० स० [सं० आवर्त्तन, प्रा० आवट्टन, आट्टन] १ मथना। आलोडन करना। २ किसी द्रव पदार्थ को आग पर रखकर चलाकर गाढा करना। उ०—(क) परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई।—मानस, ७।११७। (ख) कान्ह माखन खाहु हम सु देखें। सद्य दधि दूध ल्याई अवटि हम, खाहु तुम सफल करि जनम लेखें।—सूर०, १०।१५६६।
मुहा०—अवटि मरना = भ्रमना। मारे मारे फिरना। चक्कर खाना। दु ख उठाना। उ०—जो आचरन विचारहु मेरो कलप कोटि लगि अवटि मरौं। तुलसिदास प्रभु-कृपा-विलोकनि गोपद ज्यों भवसिंधु तरौं।—तुलसी ग्र०, पृ० ५२६।
अवटना²(पु)—क्रि० अ० [सं० अटन] घूमना फिरना।
अवटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गड्ढा। २ कुआँ। ३ छेद [को०]।
अवटीट—वि० [सं०] चपटी नाकवाला। नकचिपटा।
अवटु—संज्ञा पुं० १ बिल। २ कुआँ। ३ गले का पिछला हिस्सा। ४ शरीर का दबा हुआ भाग। ५ एक प्रकार का वृक्ष।
अवटुज—संज्ञा पुं० [सं०] सिर के पिछले भाग का बाल [को०]।
अवडग—संज्ञा पुं० [सं० अवदङ्ग] हाट। बाजार [को०]।
अवडीन—संज्ञा पुं०[सं०]पक्षी की उडान। पक्षियों का ऊपर से नीचे की तरफ आना [को०]।
अवडेर†—संज्ञा पुं०[सं० अव + हिं० रार आ राट]झमेला। झंझट। वखेडा।
अवडेरना(पु)¹—क्रि० स० [सं० उद्वासन या हिं० अवडेर] १ न बसने देना। न रहने देना। उ०—गोरानाथ थोरे ही सतोष होत थोरे दोष, पोषि तोषि थापि आपने न अवडेरिये।—तुलसी ग्र०, पृ० २५६। २ चक्कर में डालना। फेर में डालना। उ०—(क) पच कहे सिव सती बिबाही। पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही।—मानस, १।७८।
अवडेरा(पु)†—वि० [हिं० अवडेर] १ घुमाव फिरावदार। चक्करदार। २ बेढब। कुढब। उ०—जननि जनक तज्यो जनमि करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे।—तुलसी ग्र०, पृ० ५७२।
अवढर(पु)—वि० [सं० अव + हिं० ढरना] दे० 'औढर'। उ०—(क) आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी।—मानस, २।४४। (ख) लच्छ नीं वहु लच्छ दीन्हो दान अवढर ढरन।—सूर०, १।२०२।
अवतक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] टुकडे में काटी गई कोई वस्तु [को०]।
अवतत—वि० [सं०] १ ढँका हुआ। आवृत। २ फैला हुआ। विस्तृत [को०]।
अवतमस—संज्ञा पुं० [सं०] १ साधारण अंधकार। क्षीण अंधकार। २ अंधकार। ३ अस्पष्टता। गुह्यता [को०]।
अवतरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ उतरना। पार होना। २ उतार। २ शरीर धारण करना। जन्म ग्रहण करना। ३ नकल। प्रतिकृति। ४ किसी पुस्तक या लेख का ज्यों का त्यों उतारा या नकल किया हुआ अंश। उद्धरण। उ०—ऊपर दिए अवतरणों में हम स्पष्ट देखते हैं कि किसी उक्ति की तह में काव्य की सरसता बराबर पाई जायगी।—रस०, पृ० ३६। ५ प्रादुर्भाव। ६ सीढ़ी जिसमें उतरें। घाट की सीढी। ७ घाट। ८ तीर्थ [को०]। ९ परिचय। उपोद्घात। [को०]।
यौ०—अवतरणचिह्न। अवतरणमंगल।
अवतरणचिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] उलटे लगे हुए विराम चिह्न जिनके बीच किसी का कथन उद्धृत किया गया हो, जैसे—' '।
अवतरणमंगल—संज्ञा पुं० [सं० अवतरणमङ्गल] श्रद्धापूर्वक किया गया स्वागत [को०]
अवतरणिका—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ ग्रंथ की प्रस्तावना। उपोद्घात। अवतरणी। २ परिपाटी। रीति।
अवतरना(पु)—क्रि० अ० (सं० अवतरण) प्रकट होना। उपजना। जन्मना। उ०—(क) इच्छा रूप नारि अवतरी। तासु नाम गायत्री धरी।—कबीर (शब्द०)। (ख) बहुरि हिमाचल कैं अवतरी। समय पाइ सिव बहुरौ बरी।—सूर०, ४।५।
अवतरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ग्रंथ की प्रस्तावना के लिये भूमिका जो इस अभिप्राय से लिखी जाती है कि विषय की संगति मिल जाय। उपोद्घात। २. रीति। परिपाटी।

अवतरित—वि० [हिं० अवतरना] १. नीचे आया हुआ। उतरा हुआ। उ०—अवतरित हुआ मैं, आप उच्चफल जैसा।—साकेत, पृ० २१८। २ जन्मा हुआ। शरीर ग्रहण किया हुआ। ३ किसी दूसरे स्थल से लिया हुआ। ४ अवतीर्ण।

अवतर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] शांति प्रदान करनेवाला साधन। अनुकूल उपचार [को०]।

अवताडन—संज्ञा पुं० [सं० अवताडन] १ रौंद देना। कुचल देना। २ आघात करना या चोट देना [को०]।

अवतान—संज्ञा पुं० [सं०] १ आच्छादन। आवरण। २ लटका हुआ चेहरा। ३ धनुष की प्रत्यंचा ढीली करना। ४ तानना। फैलाना। ५ लताओं का फैलाव। ६ आतपत्र। चँदवा [को०]।

अवतापी—वि० [सं० अवतापिन्] १ ताप देनेवाला। तपानेवाला। २ (स्थान) जो अधिक तप्त हो [को०]।

अवतार—संज्ञा पुं० [सं०] १ उतरना। नीचे आना। २ जन्म। शरीरग्रहण। उ०—(क) नव अवतार दीन्ह विधि आजू। रही छार भइ मानुष साजू।—जायसी (शब्द०)। (ख) प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा। सती नाम तव रहा तुम्हारा।—तुलसी (शब्द०)। ३ पुराणों के अनुसार किसी देवता का मनुष्यादि संसारी प्राणियों का शरीर धारण करना। ४ विष्णु का संसार में शरीर धारण करना।

विशेष—पुराणानुसार विष्णु भगवान् के २४ अवतार हैं—ब्रह्मा, वाराह, नारद, नरनारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, वेदव्यास, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, हंस और हयग्रीव, इनमें से १० अर्थात् मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्किप्रधान माने जाते हैं।

५ (पु) सृष्टि। शरीररचना। उ०—कीन्हेसि धरती सरग पतारू। कीन्हेसि वरन वरन अवतारू।—जायसी (शब्द०)। ६ अवतरण भूमि। उतरने का स्थान [को०]। ७ तालाब [को०]। ८ अनुवाद [को०]। ९ विषयप्रवेश। आमुख। भूमिका [को०]। १० तीर्थ [को०]। ११ विशिष्ट व्यक्ति [को०]। १२ उत्पत्ति। विकास [को०]।

मुहा०—**अवतार लेना** = शरीर ग्रहण करना। जन्म लेना। उ०—अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेइहउँ दिनकर बंस-उदारा।—तुलसी (शब्द०)। **अवतार धरना** = जन्म ग्रहण करना। उ०—भुव की रक्षा करन जु कारण धरि वराह अवतार। पीछे कपिल रूप हरि धारयो कीन्हो सांख विचार।—सूर (शब्द०)। (पु) **अवतार करना** (पु) = शरीर धारण करना। उ०—अरुन असित सित वपु उनहार। करत जगत में तुम अवतार।—सूर (शब्द०)।

यौ०—**अवतारकथा**। **अवतारमंत्र** = भगवान् से अवतार ग्रहण करने के लिये की गई प्रार्थना। **अवतारवाद**।

अवतारण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अवतारणा] १ उतारना। नीचे लाना। उ०—क्रूर कर्मों की अवतारणा से भी एक बार सद्धर्म के उठाने की आकांक्षा थी।—स्कंद०, पृ० ८४। २. उतारना। [को०]। ६ पूजा। अर्चा [को०]। ७. पोशाक का छोर या किनारा [को०]।

अवतारना (पु)—क्रि० स० [सं० अवतारण] १ उत्पन्न करना। रचना। उ०—चाँद जैस सग विधि अवतारा। दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा।—जायसी (शब्द०)। २. उतारना। जन्म देना। उ०—(क) सिंघलदीप राजघरबारी। महा स्वरूप दई अवतारी।—जायसी (शब्द०)। (ख) धन्य कोख जिहि तोकौं राख्यो धनि घरि जिहि अवतारी। धन्य पिता माता तेरे छवि निरखति हरि महतारी।—सूर०, १०।७०३।

अवतारवाद—संज्ञा पुं० [सं० अवतार + वाद] भगवान् का मनुष्य आदि का शरीर धारण करने का सिद्धांत।

अवतारी[1]—वि० [सं० अवतारिन्] १ उतरनेवाला। अवतार ग्रहण करनेवाला। उ०—धनि यशुमति जिन वस किये अविनाशी अवतारि। धनि गोपी जिनके सदन माखन खात मुरारि।—सूर (शब्द०)। २. देवांशधारी। अलौकिक। उ०—कहत ग्वाल जसुमति धनि मैया। बडो पूत तैं जायो। यह कोउ आहि पुरुष अवतारी भाग हमारैं आयो।—सूर०, १०।२००६।

अवतारी[2]—संज्ञा पुं० २४ मात्राओं का एक छंद जिसके ७५०२५ प्रस्तार हैं। रोला, दिक्पाल, शोभा और लीला आदि इसके भेद हैं।

अवतीर्ण—वि० [सं०] १ उतरा हुआ। अवतरित। २ अनूदित [को०]। ३ व्यतीत, जैसे रात्रि [को०]। ४ पार किया हुआ [को०]। ५ स्नात [को०]। ६ अवतार ग्रहण किया हुआ [को०]। ७ उदाहृत। उद्धृत।

अवतोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री या गाय जिसका गर्भपात किसी दुर्घटनावश हो गया हो [को०]।

अवथ्थ (पु)—वि० [सं० अवस्तु] निरर्थक। व्यर्थ। अवस्तु। उ०—तुम चित्त छंडि हम घर चलहि। इह अवथ्थ पत्रग।—पृ० रा०, ६६।३५६।

अवदंश—संज्ञा पुं० [सं०] मद्यपान के समय जो कबाब, बडे आदि खाए जाते हैं। गजक। चाट।

अवदस (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवदंश'।

अवदग्ध—वि० [सं०] जला हुआ [को०]।

अवदमन—संज्ञा पुं० [सं० अपदमन] अच्छी तरह दबाना। दमन करना।

अवदरण—संज्ञा पुं० [सं०] तोडना फोडना। अच्छी तरह दरना या पीसना [को०]।

अवदाघ—संज्ञा पुं० [सं०] १ तपन। जलन। २ ग्रीष्म ऋतु [को०]।

अवदात—वि० [सं०] १ शुभ्र। उज्वल। श्वेत। उ०—हँसी रानी सुनकर वह बात, उठी अनुराग आभा अवदात।—साकेत, पृ० २७। २ शुद्ध। स्वच्छ। विमल। निर्मल। उ०—शोच अति पोच उर मोच दुखदानिए मानु यह बात अवदात मम मानिए।—रामच०, पृ० ७४। ३ शुक्ल वर्ण का। गौर। ४ पीत वर्ण का। पीला। ५ खूबसूरत। सुंदर [को०]। ६ उत्तम। पुण्यशील [को०]।

अवदान—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रशस्त कर्म। २ शुद्ध आचरण। अच्छा काम। २ खंडन। तोडना। ३ पराक्रम। शक्ति बल। ४. अतिक्रम। उल्लंघन। ५ शुद्ध करना। पवित्र करना। माफ करना। ६. वीरणमूल। खस। उशीर। गाँडरे की जड़।

अवदान्य—वि० [सं०] १. पराक्रमी। बली। २ अतिक्रमणकारी। सीमा का अतिक्रमण करनेवाला। ३ व्यय न करके धनसंचय करनेवाला। कजूस।

अवदारक१—वि० [सं०] विदारण करनेवाला। विभाग करनेवाला।

अवदारक२—संज्ञा पुं० मिट्टी खोदने के लिये लोहे का एक मोटा डंडा। खंता। रंभा।

अवदारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ विदारण करना। विभाग करना। २ ताडना। फोडना। ३ मिट्टी खोदने का औजार। रंभा। खंता।

अवदारित—वि [सं०] विदारण किया हुआ। विदीर्ण। टूटा फूटा।

अवदाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ अत्यधिक गर्मी। भीषण ताप। २ आग लगाना। जलना। ३ कुश की जड। खस [कौ०]।

अवदीर्ण—वि० [सं०] १ विभक्त। टूटा हुआ। २ घबराया हुआ। उदास। ३ पिघला या घुला हुआ [कौ०]।

अवदोह—संज्ञा पुं० [सं०] १ दूध। दुग्ध। २ दूध दुहना। दोहन।

अवद्य१—वि० [सं०] १ अधम। पापी। २ गर्हित। निंद्य। ३ त्याज्य। ४ कुत्सित। निकृष्ट।

अवद्य२—संज्ञा पुं० १ दोष। २ पाप। ३ निंदा ४ लज्जा [कौ०]।

अवध१—संज्ञा पुं० [सं० अयोध्या] १ कोशल। साकेत एक देश जिसकी प्रधान नगरी अयोध्या थी। २ अयोध्या नगरी।

अवध(पु)२—संज्ञा स्त्री० [सं० अवधि] दे० 'अवधि'।

अवध३—वि० [सं०] अवध्य। न मारने योग्य [कौ०]।

अवधान१—संज्ञा पुं० [सं०] १ मन का योग। चित्त का लगाव। मनोयोग। २ चित की वृत्ति का निरोध करके उसे एक ओर लगाना। समाधि। ३ ध्यान। सावधानी। चौकसी।

अवधान२(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आधान] गर्भ। गर्भाधान। पेट। उ०—जैस अवधान पूर होइ मासू। दिन दिन हिये होइ परगासू।—जायसी ग्र०, पृ० १६।

अवधानी—वि० पुं० [सं० अवधानिन्] ध्यान रखनेवाला। ध्यानी [कौ०]।

अवधार—संज्ञा पुं० [सं०] निश्चय। सीमा [कौ०]।

अवधारक—वि० [सं०] अवधारण करनेवाला। किसी एक विषय पर अपने को केंद्रित करनेवाला [कौ०]

अवधारण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवधारित, अवधारणीय] १ विचारपूर्वक निर्धारण करना। निश्चय। २ शब्दार्थ की इयत्ता स्थिर करना [कौ०]। ३ शब्द आदि पर बल देना [कौ०]। ४ केवल विषय पर ध्यानस्थ होना [कौ०]।

अवधारणीय—वि० [सं०] विचार करने योग्य। निश्चय योग्य।

अवधारना(पु)—क्रि० स० [सं० अवधारण] १ धारण करना। ग्रहण करना। उ०—विप्र असीम विनित अवधारा। सुवा जीव नहिं करौ निरारा। जायसी (शब्द०)। २ निश्चय करना। समझना।

अवधारित—वि० [सं०] निश्चित। निर्धारित।

अवधार्य—वि० [सं०] निश्चय करने योग्य। आवधारण करने योग्य।

अवधावन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीछा करना। २. साफ करना। धोना [कौ०]।

अवधावित—वि० [सं०] १ पीछा किया हुआ। जिसका पीछा किया गया हो। २ साफ किया हुआ [कौ०]।

अवधि१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सीमा। हद। पराकाष्ठा। उ०—जिन्हहिं विरचि बड भयेउ विधाता। महिमा अवधि राम पितु माता।—तुलसी (शब्द०)। २ निर्धारित समय। मीयाद। उ०—रहयौ ऐचि, अनु न लहै अवधि दुसासनि बीरु। आली बाढतु बिरहु ज्यौं पचाली को चीर।—बिहारी र०, दो० ४००। ३ गड्डा। गर्त [कौ०]। ४ प्रमाण [कौ०]। ५ उपजनपद। पडोस [कौ०]। ६ अंत समय। अंतिम काल। उ०—(क) आजु अवधिनगर पहुँचे गए जाउँ मुखरात। वेगि रोहु मोहि मारहु जनि चालहु यह बात।—जायसी। (शब्द०)। (ख) तेरी अवधि कहत सब कोऊ नाते कहियत बात। बिनु विश्वास गारिहै तो को आजु रैन के प्रात।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—अवधि देना=समय निर्धारित करना। अवधि बदना=समय नियत करना। उ०—आज बिनु आनँद के मुख तेरो। निसि बसिबे की अवधि बदी मोहिं, साँझ गए कहि आवन। सूरश्याम अनतहिं कहुँ लुबधे नैन भए दोउ सावन।—सूर (शब्द०)।

अवधि२—अव्य० [सं०] तक। पर्यंत। उ०—तोसों हौं फिर फिर हित प्रिय पुनीत सत्य वचन कहत। विधि लगि लघु कोटि अवधि सुख सुखी दुख दहत।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—अद्यावधि=अब तक। समुद्रावधि=समुद्र तक।

अवधिज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह ज्ञान जिसके द्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, अंधकार और छाया आदि से व्यवहित द्रव्यों का भी प्रत्यक्ष हो और आत्मा का भी ज्ञान हो। अवधिदर्शन।

अवधिदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार पृथ्वी, जल, पवनादि से व्यवहित पदार्थों को यथावत् देखना। अवधिज्ञान।

अवधिमान(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। उ०—प्राची जाय अथवै प्रतीची कै उदित भानु भानुमान सीस चूम लेवै भूमि मित को। लाँघि कै अवधि जो पै उमगै अवधिमान नाँघै यह चाल जो पै कालहू के गत को।—चरण (शब्द०)।

अवधी१—वि० [हिं० अवध+ई (प्रत्य०)] अवध सबधी। अवध का। जैसे—'अवधी बोली' २। . अवध की भाषा।

अवधी(पु)२—संज्ञा स्त्री० दे० 'अवधि१'।

अवधीरण—संज्ञा पुं० [सं०] अवमान या तिरस्कार करना [कौ०]।

अवधीरणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिरस्कार। अवज्ञा।

अवधीरित—वि० [सं०] अपमानित। तिरस्कृत।

अवधू(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवधूत'। उ०—अवधू ऐसा ज्ञान विचारी, ज्यूँ बहुरि न ह्वै संसारी।—कबीर ग्र०, पृ० १५६।

अवधूक—वि० [सं०] बिना पत्नी का [कौ०]।

अवधूत१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अवधूतिन्] १. सन्यासी। साधु। योगी। उ०—(क) धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।—तुलसी ग्र०, पृ० २२३। (ख) यह सूरति यह मुद्रा हम न देख अवधूत। जानैं होहि न योगी कोइ

राजा करपूत ।—जायसी (शब्द०)। २. साधुओं का एक भेद। उ०—सेवरा खेवरा वान पर, सिध साधक अवधूत। आसन मारे बैठ सब जारि आतमा भूत।—जायसी (शब्द०)।

अवधूत[2]—वि० [सं०] १ कंपित। हिला हुआ। २ विनष्ट। नाश किया हुआ। ३ अपमानित। तिरस्कृत [को०]। ४ अस्वीकृत [को०]। ५ बढ़ा हुआ [को०]। ६ आक्रांत [को०]। ७ विरक्त [को०]।

अवधूतवेश—वि० [सं०] बिना वस्त्र का। नग्न। विवस्त्र।

अवधूपित—वि० [सं०] सुगंधित किया हुआ। सुवासित [को०]।

अवधूलन—संज्ञा पुं० [सं०] घाव के ऊपर चूर्ण छिड़कना [को०]।

अवधृत—वि० [सं०] दे० 'अवधारित'।

अवधेय[1]—वि० [सं०] १ ध्यान देने योग्य। विचारणीय। २ अज्ञेय। ३ जानने योग्य। ४ स्थान योग्य। रखने योग्य [को०]।

अवधेय[2]—संज्ञा पुं० १ नाम। २ ध्यान [को०]।

अवध्य—वि० [सं०] वध के अयोग्य। न मारने योग्य। अवध। उ०—यह समझकर की ब्राह्मण अवध्य है, तू मुझे भय दिखलाता है।—चद्र०, पृ० ७७।

अवध्वंस—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवध्वस्त] १ परित्याग। छोड़ना। निंदा। कलंक। ३ चूर चूर करना। चूर्णन। नाश। ४ धूल। चूर्ण [को०]। ५ छिड़काव। छिड़कना। [को०]। ६ गिरकर दूर जा पड़ना [को०]।

अवध्वस्त—वि० [सं०] १ नष्ट। विनिष्ट। २ त्यक्त। ३ निंदित। ४. बिखेरा हुआ। ५ चूर चूर किया हुआ। ६ छिड़का हुआ [को०]।

अवन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रीणन। प्रसन्न करना। २ रक्षण। बचाव। उ०—दूत राम राय को, सपूत पूत पौन को तू अंजनी को नंदन प्रताप भूरि भानु सो। सीय सोच समन दुरित दोष दमन, सरन आए अवन लखन प्रिय प्रान सो।—तुलसी ग्र०, पृ० २४८। ३ प्रीति। ४ इच्छा। कामना [को०]। ५. संतोष [को०]। ६ त्वरा। जल्दबाजी। [को०]।

अवन[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवनि] १ जमीन। भूमि। २ रास्ता। राह। सड़क। उ०—गुरुजन दाहक जदपि पुनि बालक चातुक सैन। कटे बटे न कढ़े तऊ रूप अवन ह्वै नैन।—(शब्द०)।

अवनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तारों का न दीख पड़ना [को०]।

अवनत—वि० [सं०] १ नीचा। झुका हुआ। उ०—वह वो नीन गगन अपार जिसमें अवनत घन सजल भार।—कामायनी, पृ० २३४। २ गिरा हुआ। पतित। अधोगत। ३ कम। ४ अस्त होता हुआ [को०]। ५ विनीत। नम्र [को०]।

अवनति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ घटती। कमी। घाटा। न्यूनता। हानि। २ अधोगति। हीन दशा। तनज्जुली। उ०—पूर्ण प्रकृति की पूर्ण नीति है क्या भली, अवनति को जो सहन करे गंभीर हो।—महा०, पृ० २। ३ झुकाव। झुकना। ४. नम्रता। ५ अस्त होना। डूबना [को०]।

अवनद्ध[1]—वि० [सं०] बना हुआ। निर्मित। २ निश्चित कसा हुआ। बैठा हुआ। ३ आवेष्टित। बँधा हुआ [को०]।

अवनद्ध[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का ढोल [को०]।

अवनमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. झुकने की क्रिया। २ पैर पड़ना। उ०—ज्ञान की खोज में ओज कुल खो दिया, सत्य की नित्य आराधना, अनमन।—आराधना, पृ०, ७१।

अवनम्र—वि० [सं०] झुका हुआ। नमित [को०]।

अवनयन—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे की तरफ ले जाना [को०]।

अवना(पु)—क्रि० अ० [सं० आगमन] आना। उ०—(क) तेहि रे हम चाहहिं गवना। होहु सँजूत बहुरि नहिं अवना।—जायसी ग्र०, पृ० ६२। (ख) अब की के गवना बहुरि नहिं अवना करि ले भेंट अँकवारी।—कबीर श०, पृ०।

अवनाट[1]—वि० [सं०] १. चपटी नाकवाला। नकचिपटा [को०]।

अवनाट[2]—संज्ञा पुं० चपटी नाकवाला व्यक्ति [को०]।

अवनाम—संज्ञा पुं० दे० 'अवनमन' [को०]।

अवनामक—वि० [सं०] पतित करनेवाला। नीचे गिरानेवाला [को०]।

अवनाय—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे फेंकना [को०]।

अवनासिक—वि० [सं०] दे० 'अवनाट' [को०]।

अवनाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाँधना। कसकर बाँधना। २ आवेष्टित करना [को०]।

अवनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी। जमीन। उ०—सुचि अवनि सुहावनि आलवाल, कानन विचित्र बारी बिसाल।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६५।

यौ०—**अवनिध्र** = पर्वत। पहाड़। **अवनिप** = राजा। उ०—अवनिप अकनि राम पगुधारे।—तुलसी (शब्द०)। **अवनिपति** = राजा। **अवनींद्र** = राजा। **अवनिसुता** = जानकी। **अवनितल** पृथ्वी। **अवनीध** = राजा।

२. एक प्रकार की लता। ३ उँगली। ४ नदी का पाट [को०]। ५. नदी [को०]। ६ जगह। स्थान (को०)।

अवनिक्त—वि० [सं०] १ धोया हुआ। धोकर साफ किया हुआ। २. ढूँढ़ा हुआ [को०]।

अवनिज—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह [को०]।

अवनिरुह—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष [को०]।

अवनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अवनि'। उ०—(क) कुटिल अलक वदन की छबि, अवनि परि लोलै।—सूर०, १०।१०१।

अवनीच'—वि० [सं०] इधर उधर घूमनेवाला। घुमक्कड़ [को०]।

अवनीतल—संज्ञा पुं० [सं०] धरती की सतह। धरातल [को०]।

अवनीध्र—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़ [को०]।

अवनीप—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। उ०—दीप दीप हू के अवनीपन के अवनीप, पृथु सम केशोदास द्विज गाय के।—राम च०, पृ० २१।

अवनीपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। उ०—सातहू दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने।—राम च०, पृ० १६।

अवनीरुह—संज्ञा पुं० [सं०] पेड़। वृक्ष [को०]।

अवनीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवनीश' [को०]।

अवनीस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवनीश] उ०—बिचरहिं अवनि अवनीस चरनसरोज मन मधुकर किए।—तुलसी ग्र० पृ० ५२३।

अवनीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवनिज' [को०]।

अवनीसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता। पृथ्वीपुत्री जानकी [को०]।

अवनेजन—संज्ञा पुं० [सं०] १ धोना । प्रक्षालन । २. श्राद्ध मे पिंडदान की वेदी पर बिछाए हुए कुशो पर जल सींचने का संस्कार । ३ भोजन के बाद का आचमन ।

अवपाक[1]—वि० [सं०] १ अच्छी तरह न पकाया हुआ । २ बिना जाल का [को०] ।

अवपाक[2]—संज्ञा पुं० अच्छी तरह भोजन न बनानेवाला रसोईदार । वह व्यक्ति जिसे अच्छी तरह भोजन बनाने न आता हो [को०] ।

अवपाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जो लघुछिद्र योनिवाली और रजस्वलाधर्म रहित स्त्री से मैथुन करने से, हस्तक्रिया से, लिंगेंद्रिय के बंद मुह को बलात् खोलने से अथवा निकलते हुए वीर्य को रोकने से हो जाता है । इस रोग मे लिंग को आच्छादित करनेवाला चमडा प्राय फट जाता है ।

अवपात—संज्ञा पुं० [सं०] १ गिराव । पतन । अध पतन । २ गड्ढा कुंड । ३ हाथियो को फँसाने के लिये एक गढ़ा जिसे तृणादि से अच्छादित कर देते हैं । ३ खाँडा । माला । ४ नाटक मे भयादि से भागना, व्याकुल होना आदि दिखलाकर अंक या गर्भांक की समाप्ति । ५ पक्षियो आदि का ऊपर से नीचे की ओर झपटना [को०] ।

अवपातन—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे उतारना । गिराना ।

अवपात्र—वि० [सं०] (म्लेच्छ) जिसके खाने से पात्र किसी के उपयोग योग्य न हो [को०] ।

अवपाद—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे गिराना [को०] ।

अवबाहुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिससे हाथ की गति रुक जाती है । भुजस्तंभ ।

अवबुद्ध—वि० [सं०] १ जाना हुआ । २ जाननेवाला [को०] ।

अवबोध—संज्ञा पुं० [सं०] १ जगना । जगना । २ ज्ञान । बोध । ३ शिक्षण । सिखाना । [को०] ४ न्याय करना । फैसला [को०] ।

अवबोधक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अवबोधिका] १ वंदी । चारण । २ रात को पहरा देनेवाला पुरुष । चौकीदार । पाहरू । ३ सूर्य । ४ शिक्षक । सिखानेवाला व्यक्ति [को०] । ५ विचार । समझ बूझ [को०] ।

अवबोधक[2]—वि० चेतानेवाला । जाननेवाला ।

अवबोधन—संज्ञा पुं० [सं०] १ चेतावनी । ज्ञापन । २ ज्ञान । इंद्रियज्ञान [को०] ।

अवभंग—संज्ञा पुं० [सं० अवभङ्ग] १ नीचा दिखाना । पराजित करना । २ नथुना फूलना पचकना [को०] ।

अवभास—संज्ञा पुं० [सं०] [वि अवभासक, अवभासित] ज्ञान । प्रकाश । २ मिथ्याज्ञान । ३ चमक [को०] । ४ झलक । आभास [को०] । ५ अवकाश । स्थान [को०] ।

अवभासक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] परब्रह्म [को०] ।

अवभासक[2]—वि० [सं०] बोध करानेवाला । प्रतीत करानेवाला ।

अवभासित—वि० [सं०] लक्षित । प्रतीत ।

अवभासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊपर के चमडे का काम । चमडे की पहली पर्त ।

अवभृथ—संज्ञा [पुं० [सं०] वह शेष कर्म जिसके करने का विधान मुख्य यज्ञ के समाप्त होने पर है । २. वह स्नान जो यज्ञ के अंत मे किया जाय । यज्ञांतस्नान । उ०—पावक सरोवर में अवभृथ स्नान था, आत्मसम्मान यज्ञ की वह पूर्णाहुति ।—लहर, पृ० ६३ ।

अवभ्रट—वि०, पुं० संज्ञा [सं०] दे० 'अवनाट' [को०] ।

अवमता—वि० [सं० अवमन्तृ] अनादर करनेवाला । असमान करनेवाला [को०] ।

अवमथ[1]—संज्ञा पुं० [सं० अवमन्थ] एक रोग जिसमे लिंग मे बडी बडी और घनी फुंसियाँ हो जाती हैं । यह रोग रक्तविकार मे होता है और इसमे पीडा तथा रोमाच होता है ।

अवमंथ[2]—वि० सूजन पैदा करनेवाला [को०] ।

अवम[1]—वि० [सं०] १ अधम । अंतिम । २ रक्षक । रखवाला । ३ नीच । निंदित । ४ घनिष्ठ [को०] । ५ कनिष्ठ [को०] ।

अवम[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पितरो का एक गण । २ मलमास । अधिमास । ३ पाप [को०] । ४ रक्षक व्यक्ति । त्राता [को०] ।

अवमत—वि० [सं०] अवज्ञात । अवमानित । तिरस्कृत । निंदित ।

अवमति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] अवज्ञा । अपमान । तिरस्कार । निंदा ।

अवमति[2]—संज्ञा पुं० स्वामी । मालिक [को०] ।

अवमतिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जिसका क्षय हो गया हो ।

अवमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रहण का एक भेद । वह ग्रहण जिसमे राहु सूर्यमंडल या चद्रमंडल को पूर्णता मे ढँककर अधिक काल तक ग्रसे रहे । २ रौंदना । कुचलना । ३ शत्रु को क्षत विक्षत करना । ४ एक प्रकार का उल्लू [को०] ।

अवमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] १ पीडा देना । दुख देना । दलन । २. मालिश । रगड ना [को०] ।

अवमर्दित—वि० [सं०] १ पीडित । दलित । मालिश किया हुआ [को०] ।

अवमर्श—संज्ञा पुं० [सं०] स्पर्श । संपर्क [को०] ।

अवमर्शसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अवमर्शसन्धि] नाट्यशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार की संधियो मे से एक ।

विशेष—जहाँ क्रोध, व्यसन अथवा विलोभन आदि से फलप्राप्ति के संबंध मे विचार या आशंका की जाय और जहाँ गर्भसंधि से बीजार्थ अधिक स्पष्ट हो वहाँ अवमर्शसंधि होती है । वि० दे० 'विमर्ष' ।

अवमर्शित—वि० [सं०] नष्ट भ्रष्ट [को०] ।

अवमर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ विचार । खोज बीन । २. दे० 'अवमर्श संधि' । ३ आक्रमण [को०] ।

अवमर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ मिटाना । २ हटाना । ३. बरबाद करना । ४ असहनशीलता [को०] ।

अवमान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवमानित] तिरस्कार । अपमान । अनादर । उ०—पूरन राम सुपेम पियूषा । गुर अवमान दोष नहिं दूषा । मानस, २।२०८ ।

अवमानन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अवमानना] दे० 'अवमान' ।

अवमानित—वि० [सं०] तिरस्कृत । उपेक्षित । अपमानित [को०] ।

अवमानी—वि० [सं० अवमानिन्] [वि० स्त्री० अवमानिनी] तिरस्कार करनेवाला । अपमान करनेवाला । उ०—गोबिप्र सुर पित्र अवमानी । मुखरु मानप्रिय ग्यान गुमानी ।—मानस, ३।१७२ ।

अवमूर्धशय—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] सिर नीचे करके लेटनेवाला [को०]।

अवमूल्यन—संज्ञा पुं० [सं०] [अं० डिवैल्युएशन] किसी देश की सरकार द्वारा दूसरे देशों की अपेक्षा अपने देश की मुद्रा का विनिमय मूल्य गिरा देना।

अवमोचन—संज्ञा पुं० [सं०] निर्बंध करना। बंधनविहीन करना। मुक्त करना [को०]।

अवमोदरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अवम+उदरिका] एक वृत्ति जिसमें क्रमश भोजन से निवृत्ति प्राप्त करते हैं।—हिंदु० सभ्यता पृ० २३३।

अवयⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अवयव] दे० 'अवयव'। उ०—देवि कुँवरि अद्भुत अवय। रजित है अति लाज।—पृ० रा०, २५।१७७।

अवयव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंश। भाग। हिस्सा। २ शरीर का एक देश। अंग। ३. न्यायशास्त्रानुसार वाक्य का एक अंश या भेद।

विशेष—ये पाँच हैं—(१) प्रतिज्ञा, (२) हेतु, (३) उदाहरण, (४) उपनय, और (५) निगमन। किसी किसी के मत से यह दस प्रकार का है—(१) प्रतिज्ञा, (२) हेतु, (३) उदाहरण, (४) उपनय, (५) निगमन, (६) जिज्ञासा, (७) संशय (८) शक्यप्राप्ति, (९) प्रयोजन और (१०) संशयव्युदास।

४ उपकरण। साधन [को०]। ५. शरीर [को०]।

यौ०—**अवयवभूत**=अंगभूत। अंशभूत। **अवयवधर्म**। **अवयवरूपक**=रूपक का एक भेद।

अवयवार्थ—संज्ञा पुं०, [सं०] शब्द की प्रकृति और प्रत्यय से निकलनेवाला अर्थ [को०]।

अवयवी[1]—वि०[सं० अवयविन्] १. जिसके और बहुत से अवयव हों। अंगी। २ कुल। संपूर्ण। समष्टि। समूचा।

अवयवी[2]—संज्ञा पुं० १. वह वस्तु जिसके बहुत से अवयव हों। २. देह। शरीर। ३ न्याय में एक तर्क [को०]।

अवयस्क—वि० [सं०] जो वयस्क न हो [को०]।

अवयान—संज्ञा पुं०[सं०]१ विपथगामी होना। पीछे की ओर आना। २ किसी को संतुष्ट करना। ३ प्रायश्चित्त करना [को०]।

अवर[1]—वि० [सं०]Ⓟ १ अन्य। दूसरा। और। उ०—गम दुर्गम गढ देहु छुटाई। अवरो बात सुनो कछु सोई।—कबीर (शब्द०)। २. अश्रेष्ठ। अधम। नीच। ३ पिछला (भाग)। ४ अंतिम (को०)। ५ पश्चिमी (को०)। ६ निकटतम। दूसरा [को०]। ७ अत्यंत श्रेष्ठ [को०]।

अवर[2]—वि० [सं० अ+बल] निर्बल। बलहीन।

अवर[3]—संज्ञा पुं० १ अतीत काल। २ हाथी का पिछला भाग।

अवरक्षक—वि० [सं०] पालक। रक्षक।

अवरज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अवरजा] १. छोटा भाई। २ नीच कुलोत्पन्न। नीच।

अवरणⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] १ दे० 'अवर्ण'। २ दे० 'आवरण'।

अवरत[1]—वि० [सं०]१ जो रत न हो। विरत। निवृत्त। २ ठहरा हुआ। स्थिर। ३ अलग। पृथक्।

अवरत[2]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० आवर्त] दे० 'आवर्त'।

अवरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विराम। २ निवृत्ति। छुटकारा।

अवरवर्णाभिनिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] छोटी जातियों से बसाया हुआ उपनिवेश।

अवरव्रत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २ आक। मदार।

अवरव्रत[2]—वि० हीनव्रत। अधम।

अवरशैल—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिम का पहाड़ जिसके पीछे सूर्य अस्त होता है [को०]।

अवरहस—वि० [सं०] जनशून्य। निर्जन [को०]।

अवरा—संज्ञा स्त्री०[सं०] १ दुर्गा। २. दिशा। ३ हाथी का पिछला भाग [को०]।

अवराधकⓅ—वि० [सं० आराधन] आराधना करनेवाला। पूजनेवाला। सेवक। उ०—ए सब रामभगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक।—मानस, ४।७।

अवराधनⓅ—संज्ञा पुं०[सं० आराधन] आराधना। उपासना। पूजा। सेवा। उ०—प्रबसि होइ सिधि, साहस फलै सुसाधन। कोटि कल्पतरु सरिस संभु अवराधन।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३०।

अवराधनाⓅ—क्रि० स०[सं० आराधना] उपासना करना। पूजना। सेवा करना। उ०—(क) केहि अवराधहु का तुम चहहू। हम सन सत्य मरमु सब कहहू।—मानस, १।७८। (ख) हरि हरि हरि हरि सुमिरन करो। हरि चरणारविंद उर धरो। लै चरणोदक निज व्रत साधो। ऐसी विधि हरि को अवराधो।—सूर (शब्द०)।

अवरावीⓅ—वि० [हिं० अवराधना] आराधना करनेवाला। उपासक। पूजक। उ०—कहाँ बैठि प्रभु साधि समाधी। आजु होव हम हरि अवराधी।—रघुराज (शब्द०)।

अवरार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १ लघुतम भाग। कम से कम। २ उत्तरार्ध। ३ नीचे या पीछे का आधा भाग [को०]।

अवरापतन—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भपतन [को०]।

अवरावर—वि० [सं०] निम्नतम। सबसे निकृष्ट। सबसे बुरा [को०]।

अवरुⓅ—अव्य० [हिं०] दे० 'और'।

अवरुद्ध—वि०[सं०]१. रुँधा हुआ। २ आच्छादित। गुप्त। छिपा।

अवरुद्धा—संज्ञा स्त्री०[सं०] १ अपने वर्ण की वह दासी या स्त्री जिसे कोई अपने घर में डाल ले। रखनी। सुरैतिन। २ वह स्त्री जिसे कोई रख ले। उढरी। रखुई।

अवरूढ—वि० [सं० अवरूढ] १ ऊपर से नीचे आया हुआ। उतरा हुआ। आरूढ का उलटा। २ टूटा हुआ। छिन्नमूल (को०)।

अवरूप—वि० [सं०] १ भद्दी आकृतिवाला। विरूप। २ पतित। जिसका पतन हो गया हो [को०]।

अवरेखनाⓅ—क्रि० स० [सं० अवलेखन, अवरेखन या आलेखन] १ उरेहना। लिखना। चित्रित करना। उ०—(क) स्याम तन देखि री आपु तन देखिए। भीति जौ होइ तौ चित्र अवरेखिए।—सूर०, १०।३०७। (ख) मखि रघुबीर मुख छवि देखु। चित्त भीति सुप्रीति रंग सुरूपता अवरेखु।—तुलसी (शब्द०)। २ देखना। उ०—(क) ऐसे कहत गए अपने पुर सबहिं विलक्षण देख्यो।

मणिमय महल फटिक गोपुर लखि कनक भूमि अवरेख्यो ।—सूर (शब्द०)। (ख) फिरत प्रभु पूछत वन द्रुम वेली। अहो वधू काहू अवरेखी एहि मग वधू अकेली ।—सूर (शब्द०)। ३ अनुमान करना । कल्पना करना । सोचना । उ०—एकै कहै सुखमा लहरैं, मन के चढ़िबे की सिढी एक पेखैं। कान्ह को टोवो कह्यो कछु काम कवीश्वर एक यहै अवरेखैं।—केशव (शब्द०)। ४ मानना । जानना । उ०—पियवा आय दुअरवा उठ किन देखु। दुरलभ पाय विदेसिया मुद अवरेखु ।—रहीम (शब्द०)।

अवरेव(ए)—संज्ञा पुं० [सं० **अव** = विरुद्ध + रेव = गति, फा० उरेब = टेढ़ा] १ वक्र गति। तिरछी चाल। २ कपड़े की तिरछी काट।

यौ०—**अवरेवदार** = तिरछी काट का।

३ पेच। उलझन। उ०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देव। सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेव।—मानस, २।२६८। ४ बिगाड़। खराबी। उ०—रामकृपा अवरेव सुधारी। विबुध धारि भइ गुनद गोहारी।—मानस, २।३१६। ५ झगड़ा। विवाद। खींचातानी। उ०—राक्षस सुत तो यह कही कन्या को हम लेव। विप्र कहै दे मित्र मोहिं परी दुहुन अवरेव।—(शब्द०)। ६ वक्रोक्ति। काकूक्ति। उ०—ध्वुनि अवरेव कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती।—मानस, १।३७।

अवरोक्त—वि० [सं०] बाद में कहा गया। जिसका उल्लेख बाद में हुआ हो [को०]।

अवरोचक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें भूख बहुत कम लगती है या लगती ही नहीं [को०]।

अवरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. रुकावट। अटकाव। अड़चन। रोक। २ छेकना। घेर लेना। मुहासिरा। ३ निरोध। बंद करना। ४ अनुरोध। दबाव। ५ अंतःपुर।—उ० राजकीय अवरोध की ये स्त्रियाँ हैं।—इरा०, पृ० ६६। ६ लेखनी। कलम [को०]। ७ प्रहरी [को०]। ८ खाई। गड्ढा [को०]। ९ पर्त। तह [को०]।

अवरोधक¹—वि० [सं०] १ रोकनेवाला। २ घेरनेवाला [को०]।

अवरोधक²—संज्ञा पुं० १ पहरेदार। २ रोक। बाड़ [को०]

अवरोधन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अवरोधक, अवरोधित, अवरोधी, अवरोध्य, अवरुद्ध**] १ रोकना। छेकना। २ अंतःपुर। जनानखाना। ३ किसी वस्तु का भीतरी भाग [को०]। ४ निजी या व्यक्तिगत स्थान (को०)। ५ अंतःपुरिका। हरम में रहनेवाली स्त्री (को०)।

अवरोधना(ए)—क्रि० स० [सं० **अवरोधन**] रोकना। निषेध करना। उ०—यह विधि विषय भेद अवरोधा। नहिं कछु श्रुति प्रत्यक्ष विरोधा।—श० दि० (शब्द०)।

अवरोधिक¹—वि० [सं०] रोकनेवाला। अवरोध उपस्थित करनेवाला [को०]।

अवरोधिक²—संज्ञा पुं० अंतःपुर का प्रहरी [को०]।

अवरोधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंतःपुर की दासी। अंतःपुर की रखवाली करनेवाली स्त्री या दासी [को०]।

अवरोधित—वि० [सं०] रोका हुआ। रुका। घेरा हुआ।

अवरोधी—वि० [सं० **अवरोधिन्**] [वि० स्त्री० **अवरोधिनी**] अवरोध करनेवाला। रोकनेवाला। दे० 'अवरोधक'।

अवरोपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अवरोपित, अवरोपणीय**] १ उखाड़ना। उत्पाटन। २ पेड़ लगाना [को०]।

अवरोपणीय—वि० [सं०] १ उखाड़ने योग्य।

अवरोपित—वि० [सं०] उखाड़ा हुआ। उन्मूलित।

अवरोह—संज्ञा पुं० [सं०] १ उतार। गिराव। अधःपतन। २ अवनति। अवमर्पण। विवर्त। ३ एक अलंकार जो वर्धमान अलंकार का उलटा है। इसमें किसी वस्तु के रूप तथा गुण का क्रमशः अधःपतन दिखाया जाता है, जैसे–सिंधु सर पल्लव पुष्करणिय। कुंड वापिका कूप जु वरणिय। चुलुक रूप भो जिन्ह कर भीतर। पान करत जय जय वह मुनिवर। ४ बररोह। ५ संगीत में स्वरों का उतार [को०]। ६ आरोहण। चढ़ाव (को०)। ७ वृक्ष में लता का लिपटते हुए चढ़ना या घेर लेना [को०]। ८ स्वर्ग [को०]।

यौ०—**अवरोहशाख, अवरोहशाखी अवरोहशायी** वट = वृक्ष।

अवरोहक¹—वि० [सं०] १ गिरनेवाला। २. अवनति करनेवाला।

अवरोहक²—संज्ञा पुं० [स्त्री० **अवरोहिका**] अश्वगंध।

अवरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अवरोहक, अवरोहित, अवरोही**] १ नीचे की ओर जाना। पतन। गिराव। २ चढ़ना [को०]।

अवरोहना¹(ए)—क्रि० अ० [सं० **अवरोहण**] १ उतरना। नीचे आना। २ चढ़ना। ऊपर जाना। उ०—(क) कहँ सिव चाँप लकरवनि बूझत विहँसि चितै तिरछौहैं। तुलसी गलिन भीर दरसन लगि लोग अटनि अवरोहैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जोवन व्याध नहीं अरु बैननि मोहिनी मंत्र नहीं अवरोह्यो।—देव (शब्द०)।

अवरोहना²(ए)—क्रि० स० [हिं० उरेहना] खींचना। अंकित करना। चित्रित करना। उ०—गोरे गात, पातरी, न लोचन समात मुख उर उरजातन की बात अवरोहिये।—केशव (शब्द०)।

अवरोहना³(ए)—क्रि० स० [सं० **अवरोधन**, प्रा० **अवरोहन**] रोकना। रूँधना। छेंकना। उ०—मत अद्वैत राजपथ सोहा। जहाँ भेद कटक अवरोहा।—श० दि० (शब्द०)।

अवरोहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वगंधा [को०]।

अवरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष के अनुसार एक बुरी दशा, जो नक्षत्रों के खास स्थानों में पहुँचने से उत्पन्न होती है [को०]।

अवरोहित—वि० [सं०] १ गिरनेवाला। २ अवनत। हीन। ३ हल्के लाल रंग का।

अवरोही¹—संज्ञा पुं० [सं० **अवरोहिन्**] १ वह स्वर जिसमें पहले षड्ज का उच्चारण हो, फिर निषाद से षड्ज तक क्रमानुसार उतरते हुए स्वर निकलते जायँ। सा, नि, ध, प, म, ग, रि, सा का क्रम। विलोम। आरोही स्वर का उलटा। २ वटवृक्ष।

अवरोही²—वि० ऊपर से नीचे की तरफ आनेवाला [को०]।

अवर्ग¹—वि० [सं०] जिसका कोई वर्ग या श्रेणी न हो [को०]।

अवर्ग²—संज्ञा पुं० स्वरवर्ण [को०]।

अवर्ण¹—वि० [सं०] १ वर्णरहित। बिना रंग का। २. बदरंग। बुरे रंग का। ३ जो ब्राह्मण आदि के धर्म से शून्य हो। वर्णधर्म-रहित।

अवर्ण²—संज्ञा पुं० [सं०] १ अकार अक्षर। २ निंदा। ३ अपशब्द।

अवर्ण्य¹—वि० [सं०] जो वर्णन के योग्य न हो।

अवर्ण्य²—संज्ञा पुं० [सं० अ+वर्ण्य] जो वर्ण्य या उपमेय न हो। उपमान। उ०—है उपमेय विशेष अरु वर्ण्य। उपमानतु विपरीत अवर्ण्य।—मतिराम (शब्द०)।

अवर्त¹—संज्ञा पुं०[सं०]स्फूर्तिशून्य पदार्थ। वह पदार्थ जिसके आरपार प्रकाश या दृष्टि न जा सके।

अवर्त²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आवर्त्त] १ भँवर। नांद। उ०—कादर भयकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी। दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त्त बहति भयावनी।—मानस, ६।८६। २.(पु) घुमाव। चक्कर। उ०—विषम विपाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा।—मानस, २।२७५।

अवर्तन¹—संज्ञा पुं०[सं०]जीविका का अभाव। जीविका की अनुपलब्धि।

अवर्तन²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवर्तन'।

अवर्तमान—वि०[सं०]१ जो वर्तमान न हो। अनुपस्थित। अप्रस्तुत। २ असत्। अभाव। ३ भूत या भविष्य।

अवर्धमान—वि० [सं०] वर्धमान का विपरीत। न बढनेवाला [को०]।

अवर्प—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवर्षण' [को०]।

अवर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] वृष्टि का अभाव। वर्षा का न होना। अवग्रहण। अनावृष्टि।

अवर्षुक—वि० [सं०] न बरसनेवाला [को०]।

अवलंघन—संज्ञा पुं० [सं० अव+लङ्घन] दे० 'उल्लंघन'।

अवलंघना(पु)—क्रि० स० [सं० अव+लङ्घन] लाँघना। फाँदना। उ०—राम प्रताप, सत्य सीता कौ, यहै नाव-कनधार। तिहिं अधार छन में अवलंघ्यौ आवत भई न बार।—सूर०, ६।८६।

अवलंब—संज्ञा पुं०[सं० अवलम्ब] आश्रय। आधार। सहारा। उ०—सो अवलंब देउ मोहि देई। अवधि पार पावउँ जेहि सेई।—मानस, २।३०६।

अवलंबक—संज्ञा पुं०[सं० अवलम्बक]एक प्रकार का वृत्त या छंद [को०]।

अवलंबन—संज्ञा पुं० [सं० अवलम्बन] [वि० अवलम्बित, अवलम्बी] १ आश्रय। आधार। सहारा। उ०—नहिं कलि करम न भगति विवेकू। राम नाम अवलंबन एकू।—तुलसी (शब्द०)। २. धारण। ग्रहण।

क्रि० प्र०—करना=धारण करना। ग्रहण करना। अनुसरण करना, जैसे,—'यह सुन उसने मौनावलंबन किया' (शब्द०)। ३. छड़ी।

अवलंबना(पु)—क्रि० स०[सं० अवलम्बन] अवलंबन करना। आश्रय लेना। टिकना। उ०—जिन्हे अतन अवलंबई सो आलंबन जानि। निज तें दीपित होति है। ते उद्दीप बखानि।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ३५।

अवलंबित—वि० [सं० अवलम्बित] १. आश्रित। सहारे पर स्थित। टिका हुआ। उ०—चरणकमल अवलंबित राजित अनमान। प्रफुलित ह्वै ह्वै लता मनो चढी तरु तमाल—सूर (शब्द०)। २. मुनहसर। निर्भर, जैसे—इनका पूरा होना द्रव्य पर अवलंबित है। (शब्द०)। उ०—ऐसे और पतित अवलंबित ते छिन माहिं तरे। सूर पतित तुम पतित उधारन बिरद कि लाज धरे।—सूर० १।१६८। ३ लटकाया हुआ [को०]। ४ शीघ्र। सत्वर [को०]।

अवलंबी—वि० पुं० [सं० अवलम्बिन्] [वि० स्त्री० अवलंबिनी] १ अवलंबन करनेवाला। सहारा लेनेवाला। उ०—और भगवान् की करुणा का अवलंबी बन गया था।—इंद्र०, पृ० ८१। २ सहारा देनेवाला। पालनेवाला।

अवल(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अव्वल'। उ०—अवल उकीनतू जी। आदर कुरब दे अवधेस--रघु० रू०, पृ० ८१।

अवलक्ष¹—वि० [सं०] सफेद वर्ण का [को०]।

अवलक्ष²—संज्ञा पुं० सफेद वर्ण [को०]।

अवलग्न¹—वि० [सं०] लगा हुआ। मिला हुआ। संबंध रखनेवाला।

अवलग्न²—संज्ञा पुं० शरीर का मध्य भाग। धड़। माझा।

अवलच्छना(पु)—क्रि० स० [सं० अव+लक्ष्य] लक्ष्य बनाना। देखना। उ०—पच्छ-रहित जीतत उडि पच्छिय। अनरिच्छ गति जिन अवलच्छिय।—पद्माकर, ग्रं०, पृ० ६।

अवलि(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं० आवलि]दे० 'अवली'। उ०—भाल बिसाल तिलक झलकाही। कच विलोकि अलि अवलि लजाही।—मानस, १।२४३।

अवलिप्त—वि०[सं०]। लगा हुआ। पोता हुआ। २ सना हुआ। आसक्त। ३ घमंडी। गर्वित।

अवलिया—संज्ञा पुं०[हिं० औलिया]दे० 'औलिया'। उ०—जहाँ बसे तीरथ देव अवलिया होना।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४६।

अवली(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आवलि] १ पंक्ति। पाँति। उ०—मानों प्रगट कंज पर मंजुल अलि अवली फिरि आई।—सूर०, १०।१०८। २ समूह। झुंड। उ०—मन रंजन खंजन की अवली लित आँगन आय न डोलती है।—केशव (शब्द०)। ३ वह अन्न की डाँठ जो नवान्न करने के लिये खेत से पहले पहल काटी जाती है। ४ रोआँ या ऊन जो गडरिया एक बार भेड पर से काटता है।

अवलीक—वि० [सं० अव्यलीक] अपराधशून्य। पापशून्य। निष्पाप। निष्कलंक। शुद्ध। उ०—जावो वालमीकि घर बडो अवलीक साधु कियो अपराध दियो जो बताइये।—प्रिया (शब्द०)।

अवलीढ—वि० [सं०] १. भक्षित। खाया हुआ। २ चाटा हुआ। ३ स्पृष्ट। संपर्कप्राप्त (को०)।

अवलीन—वि० [सं०] युक्त। भीतर युक्त अंदर की ओर स्थित [को०]।

अवलीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्रीडा। खेल। २. अनादर। अवहेलना [को०]।

अवलुंचन—संज्ञा पुं० [सं० अवलुञ्चन] १ छेदना। काटना। २. उखाडना। नोचना। ३ दूर करना। हटाना। अपनयन। ४. खोलना।

अवलुंचित—वि०[सं० अवलुञ्चित]१. कटा हुआ। छेदित। २. उखाडा हुआ। नोचा हुआ। ३ दूरीकृत। हटाया हुआ। अलग। ४. खुला या खोला हुआ। मुक्त।

अवलुंठन—संज्ञा पुं० [सं० अवलुण्ठन] १ लोटना। लुढ़कना। २ लूटना (को०)।

अवलुंठित—वि० [सं० अवलुण्ठित] १. जो लुढक गया हो। लोटा हुआ। २ लूट लिया गया हो (को०)।

अवलुंपन—संज्ञा पुं० [सं० अवलुम्पन] अचानक लपक पडना। टूट पडना। झपट्टा मारना (को०)।

अवलेख—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोई खरोची हुई या चिह्नित वस्तु। २ खुरचना, चिह्नित करना वा तोडना (को०)।

अवलेखन—संज्ञा पुं०[सं०]१ बुरुश या कघी करना। २ चिह्न करना या लकीर खीचना।

अवलेखना(पु)—क्रि० स०[सं० अवलेखन] १ खोदना। खरचना। २. चिह्न डालना। लकीर खीचना। उ०—गहौ विरद की लाज दीन हित करि सुदृष्टि व्रज देखौ। मोपौं बात कहत किन सन्मुख कहा अवनि अवलेखौ।—सूर०, १०। ४१५४।

अवलेखनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लेखनी। २ बाल झाडने की कघी या ब्रश (को०)।

अवलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ रगडना। २ चित्राकन करना। ३ शृगार करना। सजावट करना (को०)।

अवलेप—संज्ञा पुं० [सं०] १ उबटन। लेप उ०—कुच कुकुम अवलेप तरुनि किये सोभित स्यामल गात। गत पतग, राका ससि बिय सँग, घटा सघन सोभात।—सूर०, १०। २७३४। २ घमड। गर्व। ३ आभूषण (को०)। ४ मलहम (को०)। ५ संग। मिलन (को०)। ६ आक्रमण। हिंसा (को०)। ७ अपमान (को०)।

यौ०—बलावलेप=बल का गर्व।

अवलेपन—संज्ञा पुं० [सं०] १ लगाना। पोतना। छोपना। २ वह वस्तु जो लगाई या छोपी जाय। लेप। उवटन। ३ घमड। अभिमान। अहकार। ४ दूषण। ५ चदन का वृक्ष (को०)।

अवलेह—संज्ञा पुं० [सं०] १ लेई जो न अधिक गाढी और न अधिक पतली हो और चाटी जाय। चटनी। माजून (वैद्यक)। २ औषध जो चाटा जाय। ३ निर्यास। सत्त। अरक—जैसे, सोम (को०)।

अवलेहन—संज्ञा पुं० [सं०] १ जीभ की नोक लगाकर खाना। चाटना। २ चटनी।

अवलेह्य—वि० [सं०] चाटने योग्य।

अवलोक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवलोकन' (को०)।

अवलोकक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देखनेवाला। अवलोकन करनेवाला। १ सोद्देश्य किसी वस्तु को देखनेवाला, जैसे—जासूस (को०)।

अवलोकन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवलोकित, अवलोकनीय] १ देखना। उ०—देव कहैं अपनी अपनी अवलोकन तीरथराज चलो रे।—तुलसी ग्र०, पृ० २३४। २ देख-भाल। जाँच पडताल। निरीक्षण। ३ नेत्र। आँख (को०)।

अवलोकना(पु)—क्रि० स० [सं० अवलोकन] १ देखना। उ०—गिरा अलिनि मुख पकज रोकी। प्रगट न लाज निशा अवलोकी।—मानस, १।२५६। २ जाँचना। अनुसधान करना। उ०—फिरत वृथा भाजन अवलोकत सूने सदन अजान।—सूर०, १।१०३।

अवलोकनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अवलोकन] आँख। दृष्टि। चितवन। उ०—अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास। भायप भलि चहुँ बधु की जलमाधुरी सुवास।—मानस, १।४२।

अवलोकनीय—वि० [सं०] देखने योग्य। दर्शनीय।

अवलोकित—वि० [सं०] देखा हुआ। दृष्ट।

अवलोकितेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

अवलोक्य—वि० [सं०] देखने योग्य। अवलोकनीय (को०)।

अवलोचना(पु)—क्रि० स० [सं० अवलोचन, आलोचन] दूर करना। उ०—मोचै अनागम कारण कत को मोचै उसासनि आँसू मोचै। मोची न हेरि हरा हिय को पदमाकर मोचि सर्क न सँकोचै। कोत की इह चाँदनी चैते अलि, याहि निवाहि विथा अवलोचै। लोचै परी सी परी परजक पै बीती घरी न घरी घरी मोचै।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२१।

अवलोप—संज्ञा पुं० [सं०] १ काटना। काटकर दूर करना। बिगाडना। २ अधर को दाँत से क्षत करना। अधर चूमना (को०)।

अवलोभन—संज्ञा पुं० [सं०] विषयवासना (को०)।

अवलोम—वि० [सं०] १ अपनी तरफदारी करनेवाला। अपना पक्ष लेनेवाला। २ उपयुक्त (को०)।

अवल्गुज१—संज्ञा पुं० [सं०] सोमराजी नामक पौधा (को०)।

अवल्गुज२—वि० जिसका मूल अच्छा न हो (को०)।

अववद—संज्ञा पुं० [सं०] निंदा। अपवाद (को०)।

अववदन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अववद' (को०)।

अववादित—वि० [सं०] सिखलाया हुआ। समझाया हुआ (को०)।

अववादिता—वि० [सं० अववदितृ] निर्णायक ढग से बोलनेवाला (को०)।

अववरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. छेद। २ खिडकी (को०)।

अववाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ निंदा। बुराई। २ विश्वास। ३. अनादर। अवज्ञा। ४. सहारा। भरोसा। ५ आदेश। ६ सूचना (को०)।

अवश—वि० [सं०] १ विवश। परवश। लाचार। २ स्वतत्र। मुक्त (को०)। ३ अनियत्रित (को०) ४ जरूरी। आवश्यक (को०)।

यौ०—अवशग=स्वतत्र। अवशीभूत=अनियत्रित। अवशेंद्रियचित्त=जिसका मन और मस्तिष्क वश मे न किया जा सके।

अवशप्त—वि० [सं०] अभिशप्त (को०)।

अवशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मरकही या बुरी गाय (को०)।

अवशिष्ट—वि० [सं०] बचा हुआ। शेष। बाकी। बचा खुचा। बचा बचाया।

अवशीन—संज्ञा पुं० [सं०] विच्छू (को०)।

अवशीर्ण—वि० [सं०] टूटा फूटा। नष्ट (को०)।

अवशीर्षक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] विरक्त मित्र या राज्यापराध के कारण बहिष्कृत व्यक्ति के साथ फिर सधि करना।

अवशीर्ष१—वि० [सं०] जिसका सिर झुका हो।

[illegible] (१८८०) [illegible]

[illegible] [सं० [illegible]] [illegible]

[illegible] (१८८०) ।

[illegible] [सं० [illegible]] [illegible]

[illegible] वि० [सं०] [illegible]

[illegible] [सं०] दे० '[illegible]' [illegible] ।

[illegible] वि० [सं०] [illegible]

[illegible] [सं०] [illegible]

[illegible]

[illegible] [सं०] १ [illegible] । २ [illegible]

[illegible] [सं०] १ [illegible] । २ [illegible] । ३ [illegible] ।

यौ०—[illegible] ।

[illegible] [सं०] [illegible]

[illegible]

[illegible]

अवसरवादिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मौके से फायदा उठाने की प्रवृत्ति।

अवसरवादी—वि० [सं० अवसरवादिन्] [अं० अपॉरचुनिस्ट] १ [illegible] सिद्धांतों का परिवर्तित करनेवाला। [illegible]। २. अवसरवाद के दार्शनिक [illegible]।

अवसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १ [illegible]। छोड़ देना। २ शिथिल करना। ३. [illegible] [को०]।

अवसर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] छोड़ना। बंधन से मुक्त कर देना [को०]।

अवसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तचर। जासूस [को०]।

अवसर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] अधोगमन। अधःपतन। अवरोहण। [illegible]।

अवसर्पिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार [illegible] का समय [illegible] होता है। इसके छह विभाग [illegible] 'आरा' कहते हैं। अवरोह। विवर्त।

अवसर्पी—वि० [सं० अवसर्पिन्] [वि० स्त्री० अवसर्पिणी] नीचे जाने [illegible]। गिरनेवाला।

अवसवो(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अवश्यमेव'। उ०—अवसवो उद्यम [illegible] सिद्धि।—कीर्ति०, पृ० २६।

अवसन्न—वि० [सं०] [illegible]। [illegible] [को०]।

अवसाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाश। क्षय। २ विषाद। ३ दीनता। ४ [illegible]। ५ कमजोरी। ६ कानून में कारण की सदोषता [illegible] से मुकदमा गिर जाय (को०)।

अवसादक—वि० [सं०] १ अवसाद उत्पन्न करनेवाला। २ सुस्त कर[illegible]। [illegible]। २ क्षीण करनेवाला। ३ समाप्त करनेवाला [को०]।

अवसादन—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाश। क्षय। ध्वंस। २ विनाशन। ३ [illegible]। ४ दीन होना। ५ थकना। ६ वैद्यक में [illegible] का एक [illegible]। मरहम पट्टी। ६ कार्य करने [illegible] [को०]।

अवसादी—वि० [सं० अवसादिन्] अवसादयुक्त [को०]।

अवसान१—संज्ञा पुं० [सं०] १ विराम। ठहराव। समाप्ति। अंत। ३ सीमा। उ०—[illegible] तुम्हारे मान का अवसान है न?'—[illegible]। ४ सायंकाल। ५ मरण। ६ घोड़े से उतरने का स्थान (को०)। ७ छंद की समाप्ति या छंद। ८ रहने का स्थान। निवासस्थान [को०]।

अवसान(पु)२—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'औसान२'।—(क) [illegible] आइ जगायो। [illegible] पूँछ, [illegible]।—सूर०, १०। ५८६। (ख) [illegible] अवसान [illegible]।—[illegible], पृ० [illegible]।

अवसानित—वि० [सं०] [illegible] हुआ। समाप्त किया हुआ [को०]।

अवसार(पु)—वि० [हिं०] दे० 'औसार'। उ०—[illegible]।—[illegible], पृ० ३३३।

अवसाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. निष्कर्ष। निर्णय। समाप्ति। २ [illegible]। ३ [illegible]। ४. निश्चय। ५. [illegible] [को०]।

अवसायक—वि० [सं०] नष्ट भ्रष्ट करनेवाला। विघटित करनेवाला [को०]।

अवसायिता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अवसित=ऋद्ध] ऋद्धि। (डिं०)।

अवसायी—वि० [सं० अवसायिन्] रहनेवाला [को०]।

अवसारण—संज्ञा पुं० [सं०] हटाना [को०]।

अवसि(पु)—क्रि० वि०, दे० 'अवश्य'। उ०—जागि चलिअ वन राम जहँ भरत मनु मत कीन्ह।—मानस, २।१८४।

अवसिक्त—वि० [सं०] सींचा हुआ। सिंचित [को०]।

अवसित१—वि० [सं०]१ समाप्त। २ ऋद्ध। बढ़ा हुआ। ३ परिपक्व। ४ निश्चित। ५ संबद्ध। ६ रहनेवाला। ७ जमा किया हुआ। एकत्र किया हुआ। ८ ज्ञात। जाना हुआ [को०]।

अवसित२—संज्ञा पुं० १ रहने की जगह। २ खलिहान [को०]।

अवसी—संज्ञा स्त्री० [आवसित, प्रा० आवसिअ=पका धान्य] वह धान्य या शस्य जो कच्चा नवान्न आदि के लिये काटा जाय। अवनी। अरवन। गद्दर।

अवसुप्त—वि० [सं०] सोया हुआ (को०)।

अवसृष्ट—वि० [सं०] [स्त्री० अवसृष्टा] १ त्यागा हुआ। त्यक्त। २ निकाला हुआ। ३ दिया हुआ। दत्त।

अवसेक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सिंचन। २ एक प्रकार का नेत्र रोग [को०]।

अवसेख(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवशेष'। उ०—उहाँ राम रजनी अवसेखा। जागे सीय सपन अस देखा।—मानस, २।२२५।

अवसेचन—संज्ञा पुं० [सं०] सींचना। पानी देना। २ पसीजना। पसीना निकलना। ३ वह क्रिया जिसके द्वारा रोगी के शरीर से पसीना निकाला जाय। ४ जोंक, सींगी, तूँबी या फस्द देकर रक्त निकालना। ५ जल जो छिड़का जाय (को०)।

अवसेर—संज्ञा स्त्री० [सं० अवसेर=बाधक]१ अटकाव। उलझन। उ०—नयो नो मन माधव को अवसेर। मौन धरे मुख चितवत ठाढ़ी ज्वाब न आवै फेर। तब अकुलाय चली उठि बन को बोले सुनत न टेर।—सूर(शब्द०)। २ देर। विलंब। उ०—महरि पुकारत कुँअर कन्हाई। माखन धर्यो तिहारे कारन आजु कहाँ अवसेर लगाई।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—लगना।—लगाना।—होना।

३ चिंता। व्यग्रता। उचाट। उ०—(क) भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आजु कौन बन गाइ चरावत, कहँ धौं भई अबेर। बैठे कहँ सुधि लेउँ कौन बिधि ग्वारि करत अवसेर।—सूर०, १०।४७८।

क्रि० प्र०—करना।—उ०—दूती मन अवसेर करै। श्याम मनावन मोहि पठाई यह कतहूँ निरवै न टरै।—सूर(शब्द०)। —लगना। उ०—अब ये नयन गए मोहिं त्यागि। इही गई नयों तन ते मन उनहिं बिना अवसेरी लागि।—सूर(शब्द०)। ४. हैरानी। बेचैनी। उ०—दिन दस घोष चलहु गोपाल। गाइन के अवसेर मिटावहु लेहु आपने ग्वाल।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना=दुःख देना।—मिटाना।—में पड़ना=दुःख

में फँसना।–मे फँसना = दुख मे पडना। अवसेरन मरना = दुख से तंग आना।

अवसेरना(पु)—क्रि० स० [हिं० अवसेर] तग करना। दुख देना। उ०–पिय पागें परोसिन के रस मे बस मे न कहूँ बस मेरे रहै। पदमाकर पाहुनी सी ननदी निस नीद तजे अवसेरे रहै।–पद्माकर (शब्द०)।

अवसेष(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवशेष'।

अवसेषित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवशेषित'।

अवसेस(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवशेष'[1]। उ०–करि भोजन अवसेस जज्ञ को त्रिभुवन भूख हरी।–सूर०, १। १६।

अवस्कद—संज्ञा पु० [स० अवस्कन्द] १. सेना के ठहरने की जगह। शिविर।—डेरा। २ जनवासा। ३ आक्रमण। हमला (कौ०)।

अवस्कदक—संज्ञा पु० [स० अवस्कन्दक] जो रास्ते चलते लोगो को मारे पीटे।

अवस्कदित—वि० [सं० अवस्कन्दित] १ जिसपर आक्रमण किया गया हो। २ नीचे गया हुआ। ३ अशुद्ध गलत। ४ नहाया हुआ। स्नात [कौ०]।

अवस्कदितश्रमी—संज्ञा पु० [सं० अवस्कन्दितश्रमी] मजदूरी या तनखाह लेकर भाग जानेवाला मजदूर।

अवस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १ मलमूत्र। २ मलमूत्रेंद्रिय। ३ कूडा कर्कट। ४ कतवारखाना। जहाँ कूडा कर्कट एकत्र रहता है। चूर।

अवस्करक[1]—वि० [स०] गदगी से उत्पन्न होनेवाला [कौ०]।

अवस्करक[2]—संज्ञा पुं० १ मेहतर। २ गोबरैला। ३ झाड [कौ०]।

अवस्करभ्रम—संज्ञा पु० [स०] वह नल जिसमें पाखाना बह कर बाहर जाता हो।

अवस्कार—संज्ञा पुं०[स०] हाथी के मुख का वह भाग जो दोनो आँखो के ठीक बीच मे है [कौ०]।

अवस्तार—संज्ञा पु० [स०] १ पर्दा। २ खेमे के चारो ओर लगाया गया कपडा। कनात। ३ चटाई [कौ०]।

अवस्तु—वि० [स०] १ जो कोई वस्तु न हो। शून्य। २ तुच्छ। हीन।

अवस्था—संज्ञा स्त्री० [स०] १ दशा। हालत। उ०—सुनता हूँ परम भट्टारक की अवस्था अत्यत शोचनीय है।–स्कद०, पृ० ३२। २ समय। काल। उ०—मरन अवस्था कौं नृप जानै। तौ हू धरै न मन मे ज्ञानै।–सूर०, ४।१२। ३ आयु। उम्र। ४ स्थिति। उ०–'भाव के इस प्रकार प्रकृतिस्थ हो जाने की अवस्था को हम शील दशा कहेंगे'।–रस०, पृ० १८३। ५ वेदात दर्शन के अनुसार मनुष्य की चार अवस्थाएँ–जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। ६ स्मृति के अनुसार मनुष्य जीवन की आठ अवस्थाएँ–कौमार, पौगड, कैशोर, यौवन, बाल, तरुण, वृद्ध और वर्षीयान्। ७ साख्य के अनुसार पदार्थो की तीन अवस्थाएँ–अनागतावस्था, व्यक्ताभिव्यक्तावस्था और तिरोभाव। ८ निरुक्त के अनुसार छह प्रकार की अवस्थाएँ–जन्म, स्थिति, वर्धन, विपरिणमन, अपक्षय और नाश। ९ कामशास्त्रानुसार दस अवस्थाएँ–अभिलाष, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, सलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। १०, जैनशास्त्रानुसार लाभ की प्राप्ति के पूर्व की स्थिति। यह पाँच प्रकार की है—व्यक्त, अव्यक्त, जप, आदान और निष्ठा। ११ योनि। भग (कौ०)। १२. आकृति। रूप [कौ०]।

यौ०—अवस्यातर = एक अवस्था से दूसरी अवस्था को पहुँचना। हालत का बदलना। दशापरिवर्तन। अवस्थाद्वय = सुख और दुख जीवन की दो अवस्थाएँ।

अवस्थान—संज्ञा पुं० [स०] १ स्थिति। सत्ता। २. स्थान। जगह। वास। ३. निवासस्थान [कौ०]। ४ रहना। ठहरना [कौ०]। ५ रुकने या ठहरने का काल [कौ०]।

अवस्थापन—संज्ञा पु०[स०]१ निवेशन। रखना। स्थापन करना। २ निवास (कौ०)।

अवस्थापरिणाम—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'परिणाम' (योग)।

अवस्थित—वि०[स०]१ उपस्थित। विद्यमान। मौजूद। २ निश्चेष्ट (कौ०)। ३ तैयार। तत्पर (कौ०)। ४ अच्छी तरह सयोजित या लग्न (कौ०)। ५ टिका हुआ। निर्भर (कौ०)।

अवस्थिति—संज्ञा स्त्री० [स०] वर्तमानता। स्थिति। सत्ता। अवस्थान।

अवस्नात—वि० [स०] (जल) जिसमे स्नान किया गया हो [कौ०]।

अवस्फूर्ज—संज्ञा पुं० [स०] बादलो की ध्वनि। गर्जन। गड़गड़ाहट [कौ०]।

अवस्यदन—संज्ञा पु० [स० अवस्यन्दन] टपकना। चूना। गिरना।

अवस्य(पु)—क्रि० वि० [स० अवश्य] दे० 'अवश्य'। उ०—और श्रीरनछोर जी तो श्रीआचार्य जी के माने हैं, तातें वहाँ अवस्य जानो।—दो सौ बावन०, पृ० १८।

अवस्यक(पु)—वि० [सं० आवश्यक] दे० 'आवश्यक'। उ०—चतुर नैनपहिं नित न अवस्यक वल दिखरावत।—रत्नाकर, भा० १, पृ० २६।

अवह[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ वह दिशा जिसमे नदी नाले न हों। २ वह वायु जो आकाश के तृतीय स्कध पर है। ईथर।

अवह[2]—वि० १ जो वहन न किया जा सके। जो ढोया न जा सके। २ बिना नदी या सोतेवाला [कौ०]।

अवहनन—संज्ञा पु० [सं०] १ कूटना (जैसे धान)। २. पछोरना। फटकना। ३ धान कूटकर चावल अलग करना। ४ फुफ्फुस। फेफडा [कौ०]।

अवहरण—संज्ञा पु०[सं०] १ चुरा लेना। जबरदस्ती ले लेना। २ अन्यत्र जाना या ले जाना। ३ युद्धक्षेत्र से शिविर को वापस होना [कौ०]।

अवहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ या गदेली का पृष्ठभाग। उलटा हाथ।

अवहार—संज्ञा पु० [स०] १ जलहस्ति। सूँस। २ चोर। तस्कर (कौ०)। ३ आमत्रण। ४ युद्धक्षेत्र से वापस होना (कौ०)। ५ सधि। शस्त्रविराम। (कौ०) ६ धर्मत्याग। ७ समीप लाने के योग्य या अनुकूल (कौ०)। ८. अपहरण (कौ०)। ९ वापस करना (कौ०)।

अवहारक[1]—संज्ञा पु० [स०] सूँस नामक जलजतु (कौ०)।

अवहारक[2]—वि० १ युद्ध रोकनेवाला। २ बचाव करनेवाला। ३ एक स्थान से दूसरी जगह ले जानेवाला [को०]।

अवहार्य—वि० [स०] १ ले जाने योग्य।) २ दंड योग्य या अर्थदंड योग्य। ३ जिसे लौटाने के लिये बाध्य हो। ४. पूर्ण होनेवाला [को०]।

अवहालिका—संज्ञा स्त्री० [स०] दीवार। प्राचीर। घेरा [को०]।

अवहास—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुस्कान। मुस्काहट। २ उपहास। हँसी। मजाक उड़ाना [को०]।

अवहित—वि० [स०] सावधान। एकाग्रचित्त।

अवहित्थ—संज्ञा पु० [स०] अवहित्था [को०]।

अवहित्था—संज्ञा स्त्री०[स०]एक प्रकार का भाव जब कोई भय, गौरव, लज्जादि के कारण हर्षादि को चतुराई से छिपावे। यह संचारी या व्यभिचारी में गिना जाता है। आकारगुप्ति जैसे,—ज्यों ज्यों चवाव चलैं चहुँ ओर, धरैं चित चाव ये त्योंही त्यों चोखे। कोऊ सिखावनहार नहीं बिनु लाज भए।बिगरैल अनोखे। गोकुल गाँव को एती अनीति कहाँ ते दई धौं दई अनजोखे। देखती हौं मोहिं माँझ गली में गही इन आइ धौं कौन के धोखे।—(शब्द०)।

अवही—संज्ञा पु० [स० अवह = बिना पानी का देश] एक प्रकार का बबूल जो काँगड़ा में होता है।

विशेष—इसकी लपेट आठ फुट की होती है। यह मैदानों में पैदा होता और इसकी लकड़ी खेती के औजार बनाने तथा छतों के तख्तों में काम आती है।

अवहृत—वि० [स०] १ आगे या पीछे हटाया हुआ। २ चुराया हुआ। ३ दंडित किया गया [को०]।

अवहेलन—संज्ञा पु० [स०] [स्त्री० अवहेलना] [वि० अवहेलित] १. अवज्ञा। अपमान। २. आज्ञा न मानना।

अवहेलना[1]—संज्ञा स्त्री० [स०] १. अवज्ञा। अपमान। तिरस्कार। उ०—वे ईप नियमों की कभी अवहेलना करते न थे।—भारत०, पृ० ६। २ ध्यान न देना। बेपरवाही।

अवहेलना(पु)[2]—क्रि० स०[स० अवहेलन] तिरस्कार करना। अवज्ञा करना। उ०—इन उतपातन गनिय सुजात न, सब अवहेलिय रन मद झेलिय।—सुजान०, पृ० २२५।

अवहेला—संज्ञा स्त्री०[स०]अवज्ञा। तिरस्कार। अवहेलना। उ०—तब मेरी अवहेला की गई, यह उसी का परिणाम है।—स्कंद०, पृ० १४७।

अवहेलित—वि० [स०] जिसकी अवहेला हुई हो। तिरस्कृत।

अवांछनीय—वि० [स० अवाञ्छनीय] १. जिसे न चाहा जाय। अप्रिय। २. उपेक्षणीय [को०]।

अवांतर[1]—वि०[स० अवान्तर]१. अंतर्गत। २. मध्यवर्ती। बीच का ३ दूसरा। गौण। अन्य [को०]।

अवांतर[2]—संज्ञा पुं० मध्य। भीतर। बीच।

यौ०—अवांतर दिशा=बीच की दिशा। विदिशा। अवांतर देश=दो देशों का मध्यवर्ती स्थान। अवांतर भेद=अंतर्गत भेद। भाग का भाग। अवांतर वाक्य=महावाक्य के मध्य में आनेवाला वाक्य या सार्थक शब्दसमूह।

अवाँ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवाँ'। उ०—चंदन की चोली और कपूर चवाएँ अंग अंग बिरह की आँच त्यों अवाँ ज्यों सिलगा-इगो।—गंग०, पृ० २८३।

अवाँग—वि० [सं० अवाङ्] १ झुका हुआ। नत। २ टेढ़े अंगवाला।

अवाँगना(पु)—क्रि० स० [हिं० अवाँग + ना] नीचे की ओर झुकाना। अवनत करना।

अवाच—वि०[सं० अवाञ्च]१ झुका हुआ। दबा हुआ। २ अधोमुख। ३ नीचे की ओर स्थित [को०]।

अवाच[2]—संज्ञा पुं० १ दक्षिण। २. ब्राह्मण [को०]।

अवाँसना†—क्रि० स० [हिं०] अनवासना। नए बर्तन को पहले पहल काम में लाना।

अवाँसी—संज्ञा स्त्री० [स० अवासित] वह बोझ जो फसल में से पहले पहले काटा जाय। यह नवान्न के लिये काम में आता है। अखान। ददरी। कवल। अन्नी।

अवाई—संज्ञा स्त्री० [स० आयन=आगमन] १ आगमन। उ०—(क) इहाँ राज अस सेन बनाई। उहाँ साह कै भई अवाई।—जायसी ग्र०, पृ० २३०। (ख) लखि यों अवाई वीर की रिपु भीर में खलबल भई।—पद्माकर ग्र०, पृ० १७। २ गहरा जोतना। गहरी जोताई।—'सेव' का उलटा।

अवाक्—वि० [स०] १ चुप। मौन। चुपचाप। २ नीचे मुख किए हुए। अधोमुख। २ स्तब्ध। जड। स्तंभित। चकित। विस्मित। ३ दक्षिण का। दक्षिणी [को०]।

क्रि० प्र०—रहना।—होना।

यौ०—अवाङ् मनसगोचर=जिसका न वर्णन हो सके और न चिंतन। वाणी और मन के परे, जैसे ईश्वर।

अवाक्पुष्पी—संज्ञा स्त्री० [स०] वह पौधा जिसके फूल अधोमुख हों। २ सौंफ। ३. सोया।

अवाक्शाख—संज्ञा पुं० [स०] पीपल [को०]।

अवाक्श्रुति—वि०[स०]बोल न सुन सकनेवाला। गूँगा बहरा[को०]।

अवाक् सदेश—संज्ञा पु० [अं०] एक प्रकार की बँगला मिठाई।

अवाक्ष—वि० [स०] रक्षक। अभिभावक। देखभाल करनेवाला[को०]।

अवागी(पु)—वि० [स० अवाग्मिन्=अपटु] मौन। चुप।

अवाङ्—वि० [स०] नीचे की तरफ झुका हुआ [को०]।

अवाङनरक—संज्ञा पु० [स०] जिह्वा छेदन का दुख। जिह्वा काटने का दड। जबान काटने की सजा।

अवाङ्निरय—संज्ञा पुं० [स०] सबसे नीचे का नरक अर्थात् पृथ्वी [को०]।

अवाङ्मुख[1]—वि० [स०] १ अधोमुख। उलटा। नीचे मुँह का २. लज्जित।

अवाङ्मुख[2]—संज्ञा पु० एक शस्त्र [को०]।

अवाची—संज्ञा स्त्री० [स०] दक्षिण दिशा। उ०—प्राची प्रतीची अवाची विलोकि दसो दिसि होत ही कूच कुकैनी—गंग०, पृ० ३४०।

अवाचीन—वि०[स०]१ अधोमुख। मुँह लटकाए हुए। २ लज्जित ३. दक्षिण सबंधी। दक्षिणी। दक्षिण का [को०]। ४. नीचे गया हुआ [को०]।

अवाच्य¹—वि० [सं०] १ जो कहने योग्य न हो। अनिंदित। विशुद्ध। २ जिसमे बात करना उचित न हो। नीच। निंदित। ३ स्पष्टतारहित। अस्पष्ट [को०]। ४ दक्षिण संबंधी। दक्षिणी [को०]।

अवाच्य²—संज्ञा पुं० कुवाच्य। बुरी बात। गाली।

यौ०—अवाच्यदेश = वह स्थान जिसकी बाबत कुछ कहना ठीक न हो—योनि।

अवाज(पु)†—संज्ञा स्त्री० [फा० आवाज] ध्वनि। शब्द। आवाज। उ०—कहियत पतित बहुत तुम तारे स्रवननि सुनी आवाज। दई न जात खार उतराई चाहत चढ्यौ जहाज।—सूर०, १।१०८।

अवाजी(पु)—वि० [फा० आवाज] शब्द करनेवाला। चिल्लानेवाला। उ०—यदपि आवाजी परम तदपि वाजी सो छाजत।—गोपाल (शब्द०)।

अवाड़ू(पु)—वि० [सं० अपवृत्त अथवा देशी] विपरीत। उलटा। उ०—पाँखड़ियाँ ई किऊँ नहीं, दैव अवाड़ू ज्याँह। चकवीकइ इह पखड़ी, रमणि न मेनउ त्याँह।—ढोला० दू० ७१।

अवात—वि० [सं०] वातशून्य। जहाँ वायु न लगे। निर्वात। २ अवाक्रांत [को०]।

अवादा दे०—वि० पुं० [हिं० वादा] दे० 'वादा'।

अवादी—वि० [सं० अवादिन्] १. न बोलनेवाला। अवक्ता। २. जो कोई वाद उपस्थित नही करता। शांतिप्रिय [को०]।

अवान—वि० [सं०] सूखा हुआ। शुष्क [को०]।

अवापित—वि० [सं०] १ जो बोया न गया हो। रोपा हुआ। २. (केश) जो काटा हुआ न हो [को०]।

अवाप्त—वि० [सं०] प्राप्त। लब्ध।

अवाप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राप्ति। २. (गणित में) उद्धरण। [को०]।

अवाप्य—वि० [सं०] १ प्राप्त करने योग्य। २ (केश) न काटने योग्य [को०]।

अवाम—संज्ञा पुं० [अ० 'आम' का बहुव०] साधारणजन। सर्वसाधारण। आम लोग। उ०—करें तृप्त किमि तुमहि अवाम।—प्रेमघ०, पृ० १४१।

अवाय¹(पु)—वि० [सं० अवर्य] अनिवार्य। उच्छखल। उद्धत। उ०—दीनदयाल पतित पावन प्रभु बिरद भुलावत कैसे। कहा भयो गज गनिका तारी जो जन तारौ ऐसे। अक्रम अबुध अज्ञान अवाया अनमारग अनरीति। जाको नाम लेत अघ उपजै सो मैं करी अनीति।—सूर (शब्द०)।

अवाय²—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ मे पहनने का भूषण। कड़ा।—डिं०।

अवार—संज्ञा पुं० [सं०] नदी के इस पार का किनारा। सामने का किनारा। 'पार' का उलटा। उ०—उठ अवार न पार जाकर मी गई। उर्मि हूँ मैं इस भवार्णव की नई।—साकेत, पृ० ३०३।

अवारजा—संज्ञा पु० [फा०] १. वह वही जिसमे प्रत्येक असामी की जोत आदि लिखी जाती है। २ जमाखर्च की वही। ३ वह वही जिसमे याददाश्त के लिये नोट किया जाय। ४ संक्षिप्त वृत्तांत। गोशवारा। खतियौनी। संक्षिप्त लेखा। उ०—साँचो सो लिखवार कहावै। काया ग्राम मसाहत करिकै जमाबंधि ठहरावै। करि अवारजा प्रेम प्रीति को असल तहाँ खतियावै। दूजी करे दूरि करि दाई तनक न तामे आवै।—सूर (शब्द०)।

अवारण—वि० [सं०] १ जिसका निषेध न हो सके। सुनिश्चित। २. जिसकी रोक न हो सके। बेरोक। अनिवार्य।

अवारणीय¹—वि० [सं०] १. जो रोका न जा सके। बेरोक। अनिवार्य। २ जिसका अवरोध न हो सके। दूर न हो सके। ३ जो आराम न हो। असाध्य।

अवारणीय²—संज्ञा पु० सुश्रुत के अनुसार रोग का वह भेद जो अच्छा न हो। असाध्य रोग।

विशेष—यह आठ प्रकार का है—वात, प्रमेह, कुष्ठ, अर्श, भगदर, अश्मरी, मूढगर्भ और उदररोग।

अवारना(पु)—क्रि० स० [सं० अ + वारण] १ रोकना। मना करना २ वारना। न्योछावर करना।

अवारपार—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

अवारा†—वि० [हिं०] दे० 'आवारा'

अवारा²(पु)—वि० [हिं० आना + वार (प्रत्य०)] आनेवाले। आगनुक। परदेशी। उ०—मिसिर मिरान्यो आम आवनि अवारे की।—प्रेमघन०, पृ० २२९।

अवारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनिया।

अवारिजा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवारजा'।

अवारित—वि० [सं०] जिसपर रोक न हो। रोक या प्रतिबंध-मुक्त [को०]।

यौ०—अवारित द्वार = जिसका द्वार बंद न हो खुला हो।

अवारी¹†—संज्ञा स्त्री० [सं० वारण] बाग। लगाम।

अवारी²—संज्ञा स्त्री० [सं० अवार] १. किनारा। मोड़।

क्रि० प्र०—देना = नाव फेरना।

२ मुखविवर। मुँह का छेद।

अवारीण—वि० [सं०] नदी पार गया हुआ [को०]।

अवारो(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अ = दूषित + प्रा० वार = वे] अबेर। देर। विलंब। अतिकाल। उ०—तब अवारो सो ये मेवा सो पहोंचता।—दो सौ बावन०, पृ० २१०।

अवर्स—वि० [सं०] दे० 'अवार्णीय'। उ०—उस पहले के ही मलबे मे जिसका जलना गिरना अवार्य।—दैनिकी, पृ० २१।

अवावट—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे सवर्ण पति से उत्पन्न पुत्र, जैसे कुंड और गोलक।

अवास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आवास] निवासस्थान। घर। उ०—कबिरा कहा गरबियो ऊँचा देखि अवास। काल्हि परे भुईं लोटना ऊपर जमिहै घास।—कबीर (शब्द०)। (ख) बाजति नंद अवास बधाई। बैठे खेलत द्वार आपने, सात बरस के कुँवर कन्हाई।—सूर०, १०। ८१८।

अविद्धकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाढा नाम की लता।

अविद्य¹(पु)—वि० [सं० अविद्यमान्] नष्ट। नेस्त नाबूद। उ०—विद्या धरनि अविद्य करौं बिन सिद्ध सिद्धि सब।—रामच०, पृ० १२२।

अविद्य²—वि० [सं०] १ अशिक्षित। विद्याविहीन। अपढ। बेवकूफ २ जो शिक्षा संबंधी न हो [को०]।

अविद्यमान—वि० [सं०] १ जो विद्यमान या उपस्थित न हो। अनुपस्थिति। २. जो न हो। असत्। उ०—अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहि जाइ गोसाईं। बिनु बाँधे निज हठ सठ परवस परयो कीर की नाईं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५१७। ३ मिथ्या। असत्य। झूठा।

अविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विरुद्ध ज्ञान। मिथ्या ज्ञान। अज्ञान। मोह। उ०—(क) जिन्हहि सोक ते कहौं बखानी। प्रथम अविद्या निसा नसानी।—मानस, ७।३१ (ख) विषम भई संकल्प जब तदाकार सो रूप। महा अँधेरो काल सो परे अविद्या कूप।—कबीर (शब्द०)। २ माया। उ०—हरि सेवकहि न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापै तेहि विद्या।—तुलसी (शब्द०)। ३ माया का भेद। उ०—तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ।—तुलसी (शब्द०)। ४ कर्मकांड। ५ सांख्यशास्त्रानुसार प्रकृति। अव्यक्त। अचित्। जड। ६ योगशास्त्रानुसार पाँच क्लेशों में पहला। विपरीत ज्ञान। अनित्य में नित्य, अशुचि में शुचि, दुःख में सुख और अनात्मा (जड) में आत्मा (चेतन) का भाव करना। ७ वैशेषिकशास्त्रानुसार इंद्रियों के दोष तथा संस्कार के दोष से उत्पन्न दुष्ट ज्ञान। ८ वेदांतशास्त्रानुसार माया।

यौ०—अविद्याकृत = अविद्या से उत्पन्न। अविद्याजन्य = अविद्या से उत्पन्न। अविद्याच्छन्न = अविद्या या अज्ञान से आवृत्त। अविद्यामार्ग = प्रेम। वह मार्ग जो संसार में मनुष्यों को अनुरक्त करता है। अविद्याश्रव = अज्ञान (बौद्ध)।

अविद्वत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्खता। अज्ञानता।

अविद्वान्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अविदुषी] जो विद्वान् न हो। शास्त्रानभिज्ञ। मूर्ख।

अविद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] विद्वेष का अभाव। अनुराग। प्रेम।

अविधवा—वि० [सं०] सधवा। सौभाग्यवती। सुहागिन।

अविधान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अभिधान] दे० 'अभिधान'। उ०—व्याकरन कथा नाटक्क छंद। अभिधान दास अलंकार बंध।—पृ० रा०, १।७३६।

अविधान¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ विधि के विरुद्ध कार्य करना। २ विधान का अभाव।

अविधान²—वि० विधिविरुद्ध। २ उलटा।

अविधि¹—वि० [सं०] विधिविरुद्ध। नियम के विपरीत।

अविधि²—संज्ञा पुं० १ विधान के विरुद्ध कार्य। अविधान। अनियमितता। उ०—वे हैं अविद्या के पुरोहित अविधि के आचार्य हैं।—भारत०, पृ० १२७। २. अपरिभाषेय। जिसकी परिभाषा न की जा सके [को०]।

अविनय¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. विनय का अभाव। ढिठाई। उद्दंडता। उ०—अविनय विनय जथारुचि बानी। छमहि देव अति आरति जानी।—तुलसी (शब्द०)। २ घमंड। अभिमान [को०]। ३, अपराध। दोष [को०]।

अविनय²—वि० उद्दंड। धृष्ट। अशिष्ट। घमंडी [को०]।

अविनयी—वि० [सं० अविनयिन्] विनयरहित। उद्दंड [को०]।

अविनश्वर—वि० [सं०] जो नष्ट न हो। जो बिगड़े नहीं। चिरस्थायी। शाश्वत। उ०—दर्शन से जीवन पर बरसे अविनश्वर स्वर।—अपरा, पृ० १८६।

अविनाभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ संबंध। २ व्याप्य व्यापक संबंध। जैसे अग्नि और धूम का।

अविनाश—संज्ञा पुं० [सं०] विनाश का अभाव। अक्षय।

अविनाशी—वि० पुं० [सं० अविनाशिन्] [वि० स्त्री० अविनाशिनी] १ जिसका विनाश न हो। अक्षय। अक्षर। २ नित्य। शाश्वत।

अविनासी¹(पु)—वि० [सं० अविनाशी] दे० 'अविनाशी'। उ०—दादू अविहड आप हैं अमर उपजावनहार। अविनासी आपइ रहइ बिनसइ सब संसार।—दादू (शब्द०)।

अविनासी²—संज्ञा पुं० [सं० अविनाशिन्] ईश्वर। ब्रह्म। उ०—(क) राम नाम छाँड़ौं नहीं सतगुरु सीख दई। अविनासी सो परसि के आतमा अमर भई।—कबीर (शब्द०)। (ख) दादू आनंद आतमा अविनासी के साथ। प्राननाथ हिरदै बसइ सकल पदारथ हाथ।—दादू (शब्द०)।

अविनीत—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अविनीता] १ जो विनीत न हो। उद्धत। उ०—जो मेरी है सृष्टि उसी में भीत रहूँ मैं, क्या अधिकार नहीं कि कभी अविनीत रहूँ मैं।—कामायनी, पृ० १६०।

अविनीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा नारी। असती स्त्री। दुराचारिणी या बदचलन स्त्री।

अविनेय—वि० [सं०] अनियंत्रणशील। अवाध्य। बेकहा [को०]।

अविपक्व—वि० [सं०] १ न पका हुआ। अपक्व। २ जिसका ज्ञान प्रौढ न हो [को०]।

अविपट—संज्ञा पुं० [सं०] भेड़ के ऊन का वस्त्र। ऊनी वस्त्र [को०]।

अविपद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] कष्ट, दुःख आदि का अभाव। सुख। समृद्धि [को०]।

अविपन्न—वि० [सं०] १ स्वस्थ। नीरोग। २ जो क्षत न हुआ हो। जिसे आघात या चोट न लगी हो। ३. शुद्ध। पवित्र।

अविपर्यय—संज्ञा पुं० [सं०] विपर्यय या विकार का न होना। क्रम के विरुद्ध न होना।

अविपाक¹—संज्ञा पुं० [सं०] अजीर्ण रोग [को०]।

अविपाक²—वि० अजीर्ण रोग से ग्रस्त। अजीर्ण [को०]।

अविपाल—संज्ञा पुं० [सं०] गड़ेरिया। उ०—पशुओं की रक्षा करने के कारण उसे गोपालक, अजापाल या अविपाल कहते थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २६२।

अविपित्तक—संज्ञा पुं० [सं०] एक चूर्ण जो अम्लपित्त रोग में दिया जाता है।

अविबुध¹ वि० [सं०] १. अज्ञानी। नादान। २. बुद्धिहीन। बेअक्ल।

अविबुध[2]—संज्ञा पुं० असुर। दैत्य। राक्षस।
अविभक्त—वि० [सं०] १ जो अलग न किया गया हो। मिला हुआ। २ जो बाँटा न गया हो। विभागरहित। शामिलाती। ३ अभिन्न। एक। उ०—सुत तुम्हारे भाव ये अविभक्त, मैं स्वयं उन पर करूँगी व्यक्त।—साकेत, पृ० १८६।
अविभाग—वि० [सं०] जिसके टुकड़े न हो। जो अलग अलग न हो। जो एक ही [को०]।
अविभाज्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] गणित मे वह राशि जिसका किसी गुणक के द्वारा भाग न किया जा सके। निश्छेद।
अविभाज्य[2]—वि० जिसका बँटवारा न किया जा सके। जिसके भाग या खड न हो सकें।
अविभावन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **अविभावना**] [वि० **अविभावनीय, अविभाव्य**] १ पहचान का अभाव। २ अदर्शन। लोप [को०]।
अविमान—संज्ञा पुं० [सं०] १ आदर। समान। २ अपमान का अभाव [को०]।
अविमुक्त[1]—वि० [सं०] जो विमुक्त न हो। बद्ध।
अविमुक्त[2]—संज्ञा पुं० १ कनपटी। जाबाल उपनिषद् के अनुसार ब्रह्म का स्थान। २ काशी।
अविमुक्तेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] काशी मे स्थापित एक शिवलिंग [को०]।
अवियुक्त—वि० जो वियुक्त न हो। जो अलग अलग न हो। मिला हुआ [को०]।
अवियोग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वियोग का अभाव। उपस्थित। २ सयोग। मिलाप।
अवियोग[2]—वि० १ वियोगशून्य। जिसका वियोग न हो। २ सयुक्त समिलित। एकीभूत।
यौ०—**अवियोगव्रत** = कल्कि पुराण के अनुसार एक व्रत जो अगहन शुक्ल तृतीया को पड़ता है। इस दिन स्त्रियाँ स्नान कर चंद्र दर्शन करके रात को दूध पीती हैं। यह व्रत सौभाग्यप्रद माना जाता है।
अविरत[1]—वि० [सं०] १ विरामशून्य। निरंतर। २ अनिवृत्त। लगा हुआ।
अविरत[2]—क्रि० वि० १ निरंतर। लगातार। २ सतत। नित्य। हमेशा।
अविरत[3]—संज्ञा पुं० विराम का अभाव। नैरंतर्य।
अविरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निवृत्ति का अभाव। लीनता। २ विषयादि में तृष्णा का होना। विषयाशक्ति। ३ विराम का अभाव। अशांति। ४ जैनशास्त्रानुसार धर्मशास्त्र की मर्यादा से रहित वर्ताव करना।
विशेष—यह बंधन के चार हेतुओं मे से है और बारह प्रकार का है। पाँच प्रकार की इंद्रियाविरत, एक मनोविरति और छह प्रकार की कायाविरति।
अविरथा(पु)—क्रि० वि० [सं० **वृथा**, हिं० **बिरथा**] दे० 'वृथा'।
अविरल—वि० [सं०] १ जो विरल या भिन्न न हो। मिला हुआ। २. घना। अव्यवच्छिन्न। सघन। उ०—अचल अनिकेत अविरल अनामय अनारंभ अंबोदनादघ्न बंधो।—तुलसी ग्र० पृ० ४८३।
यौ०—**अविरलधारासार** = अनवरत होनेवाली मूसलाधार वृष्टि।
अविरहित—वि० [सं०] वियोग न होना। अवियुक्त। अलग न होना [को०]।
अविराम[1]—वि० [सं०] १ बिना विश्राम लिए हुए। अविश्रांत। उ०—चलना है अविराम तुम्हें उद्वेग।—कानन०, पृ० १३।
अविराम[2]—क्रि० वि० लगातार। निरंतर।
अविराम[3]—संज्ञा पुं० विरामाभाव। निरंतरता। नैरंतर्य [को०]।
अविरुद्ध—वि० [सं०] १. जो विरुद्ध न हो। अप्रतिकूल। उ०—स्थायी दशा को विरुद्ध या अविरुद्ध कोई भाव संचारी रूप मे आकर तिरोहित नहीं कर सकता।—रस०, पृ० १८२। २. अनुकूल। मुवाफिक। उ०—प्रजा आज कुछ और सोचती जो अब तक अविरुद्ध रही।—कामायनी, पृ० १७५।
अविरेचन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अविरेचनीय, अविरेच्य**] विरेचन क्रिया मे बाधा उत्पन्न करनेवाली वस्तु। कब्ज करनेवाली वस्तु। [को०]।
अविरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १ साधर्म्य। समानता। २ विरोध का अभाव। अनुकूलता। ३ मेल। सगति। मुवाफिकत। उ०—समय समाज धर्म अविरोधा। बोले तब रघुवंशपुरोधा।—तुलसी (शब्द०)।
अविरोधी—वि० [सं० **अविरोधिन्**] [वि० स्त्री० **अविरोधिनी**] १ जो विरोधी न हो। अनुकूल। २ मित्र। हित।
अविलंघन—संज्ञा पुं० [सं० **अविलङ्घन**] [वि० **अविलंघनीय**] न लाँघना। मर्यादा को न पार करना [को०]।
अविलंब[1]—क्रि० वि० [सं० **अविलम्ब**] बिना विलंब। तुरत। उ०—रथ रुका, उतरे उभय अविलंब।—साकेत, पृ० १७४।
अविलंब[2]—संज्ञा पुं० विलंब का अभाव। शीघ्रता [को०]।
अविलक्ष्य—वि० [सं०] १ बिना लक्ष्यवाला। २, ईमानदार। निर्भीक। ३ असाध्य (रोग या रोगी) जिसकी चिकित्सा कठिन हो। ४ जिसका विरोध कठिन हो [को०]।
अविला—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेड [को०]।
अविलास[1]—वि० [सं०] विलास से मुक्त रहनेवाला। विश्वसनीय। स्थिर [को०]।
अविलास[2]—संज्ञा पुं० विलास का अभाव [को०]।
अविलिख—वि० [सं०] १ न लिखनेवाला अथवा लिखना न जाननेवाला। २. बुरा लिखनेवाला। ३ लिखनेवाले मे भिन्न या व्यतिरिक्त [को०]।
अविलोकन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अवलोकन**] दे० 'अवलोकन'।
अविलोकना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अवलोकना'।
अविलोडित—वि० [सं० **अ = नहीं + विलोडित = मथा हुआ**] न मथा हुआ। अमथित। उ०—अविलोडित था जमा दही।—साकेत, पृ० ३४८।
अविवक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विवक्षा अर्थात् कहने, बोलने आदि की अनिच्छा।
अविवक्षित—वि० [सं०] १ बिना उद्देश्य या अभिप्राय का। २. जिसके विषय मे कहना या बोलना न हो [को०]।
अविवाद[1]—वि० [सं०] विवादरहित। निर्विवाद। उ०—सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद।—युग०, पृ० ४१

अविवाद²—संज्ञा पुं० सहमति। विवाद का न होना [को०]।

अविवादी--वि० [सं० अविवादिन्] विवाद न करनेवाला। शांत [को०]।

अविवाहित—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अविवाहिता] जिसका ब्याह न हुआ हो। बिना ब्याहा। क्वाँरा। उ०--तब मैं इस कुटुंब की कमनीय कल्पना को दूर ही से नमस्कार करता और आजीवन अविवाहित रहता'।—स्कंद०, पृ० ७०।

अविविक्त-- वि०[सं०] १ जिसकी विवेचना न हो। अविवेचित। २ विवेकरहित। अविवेकी। ३ कोई भेद न रखनेवाला। भेदरहित। ४ सर्वसाधारण से संबध रखनेवाला। सार्वजनिक [को०]।

अविवेक—संज्ञा पुं० [सं०] १ विवेक का अभाव। अविचार। २ अज्ञान। नादानी। ३ अन्याय। ४. न्यायदर्शन के अनुसार विशेष ज्ञान का अभाव। ५ सांख्यशास्त्रानुसार मिथ्याज्ञान।

अविवेकता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विचार का अभाव। अज्ञानता। २ विवेक का न होना।

अविवेकी—वि० [सं० अविवेकिन्] १ अज्ञानी। विवेकरहित। जिसे तत्वज्ञान न हो। २ अविचारी। ३ मूढ। मूर्ख। ४ अन्यायी

अविवेचक–वि० [सं०] विवेचना वा स्पष्टीकरण न करनेवाला [को०]।

अविवेचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] विवेचना वा व्याख्यान करने की शक्ति का न होना [को०]।

अविशंक--वि० [सं० अविशङ्क] १ शंका या संदेह न करनेवाला। अशंक। २ न डरनेवाला। निर्भय [को०]।

अविशंका--संज्ञा स्त्री० [सं० अविशङ्का] संदेह या भय का अभाव [को०]।

अविशुद्ध—वि० [सं] १ जो विशुद्ध न हो। मेलमाल का। २ अशुद्ध। मलिन। ३ अपवित्र। नापाक।

अविशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अशुद्धि। मेलमाल। २ मलिनता। अपवित्रता। नापाकी। ३ विकार।

अविशेष¹–[सं०] भेदक धर्मरहित। जिसमे किसी दूसरी वस्तु से कोई विशेषता न हो। तुल्य। समान।

अविशेष²—संज्ञा पुं० १ भेदक धर्म का अभाव। तुल्यत्व। २ एकता [को०]। ३ सांख्य में सातत्व, धीरत्व और मूढ़त्व आदि विशेषताओं से रहित सूक्ष्म भूत।

यौ०अविशेषज्ञ।

अविशेषसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय मे जाति के चौबीस भेदों मे से एक। यदि वादी किसी वस्तु के सादृश्य के आधार पर कोई बात सिद्ध करे—उदाहरणार्थ घट के सादृश्य से शब्द को अनित्य सिद्ध करे और उसके उत्तर मे प्रतिवादी कहे कि यदि प्रयत्न के उत्पन्न होने के कारण ही घट के समान शब्द भी अनित्य हो, तो इतना अल्पसादृश्य तो सभी वस्तुओं मे होता है, और ऐसे सादृश्य के कारण सभी चीजों के धर्म एक मानने पड़ेंगे, तो ऐसा उत्तर अविशेषसम कहा जायगा।

अविश्रंभ—संज्ञा पुं० [सं० अविश्रम्भ] विश्वास का अभाव। अविश्वास [को०]।

अविश्रांत¹–वि० [सं० अविश्रान्त] १ विरामरहित। जो रुके नहीं। २ जो थके नही। ३ जो क्षतियुक्त न हो। अक्षत [को०]।

अविश्रांत²—क्रि० वि० अनवरत। लगातार [को०]।

अविश्वसनीय--वि० [सं०] जो विश्वासयोग्य न हो। जिस पर विश्वास न किया जा सके।

अविश्वस्त—वि०[सं०] संदेहास्पद। अविश्वसनीय।

अविश्वास--संज्ञा पुं० [सं०] १ विश्वास का अभाव। बेएतबारी। उ०—परंतु उस पर प्रकट रूप से अविश्वास का भी समय नहीं रहा।—स्कंद०, पृ; १०८। २ अप्रत्यय। अनिश्चय।

यौ०—अविश्वासपात्र = जिस पर विश्वास न किया जाय। बेएतबारी। झूठा।

अविश्वासी—वि० [सं० अविश्वासिन्] १ जो किसी पर विश्वास न करे। विश्वासहीन। श्रद्धारहित। उ०—सो कैसे होगा अविश्वासी क्षत्रिय। तभी तो म्लेच्छ लोग साम्राज्य बना रहे हैं।—चंद्र०, पृ० १६२। २ जिस पर विश्वास न किया जाय। अविश्वासपात्र।

अविष¹--वि० [सं०] १ जो विषैला न हो। विषहीन। २ विष के अभाव को समाप्त करनेवाला [को०]।

अविष²--संज्ञा पुं० १ समुद्र। २ आकाश। ३ राजा [को०]

अविषय¹—वि० [सं०] १ जो विषय न हो। अगोचर। २ अप्रतिपाद्य। अनिर्वचनीय। ३ जिसमे कोई विषय न हो। विषयशून्य।

अविषय²--संज्ञा पुं० [सं०] १ अभाव। २ लोप। अदर्शन। ३ इंद्रियों के विषय की उपेक्षा [को०]।

अविषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्विषी तृण। एक जड़ी। जदवार।

विशेष—यह मोथे के समान होती है और प्राय हिमालय के पहाड़ों पर मिलती है। इसका कंद अतीस के समान होता है और साँप, बिच्छू आदि के विष को दूर करता है।

अविषी– संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सरिता। नदी। २ पृथ्वी। धरनी। ३ स्वर्ग [को०]।

अविसर्गी–वि० [सं० अविसर्गिन्] न हटनेवाला। हमेशा बना रहनेवाला [को०]।

यौ०—अविसर्गी ज्वर = लगातार बना रहनेवाला ज्वर।

अविसह्य–वि०[सं०] रोग उत्पन्न करनेवाला या गुणरहित (पदार्थ)।

विशेष—कौटिल्यके अनुसार ऐसे पदार्थ बेचनेवाला दंड का भागी होता था।

अविसह्यदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के मतानुसार वह दुर्ग जिसमे शत्रु प्रवेश न कर सकता हो।

अविस्तर–वि०[सं०] कम विस्तार या लबाईवाला। संक्षिप्त [को०]।

अविस्तार–वि० [सं०] विस्तार का अभाव। संक्षिप्तता [को०]।

अविस्तीर्ण–वि० [सं०] जो विस्तीर्ण न हो। कम फैलाववाला [को०]।

अविस्तृत–वि० [सं०] ठसा हुआ। कम स्थान मे फैला हुआ। अविरल। घना [को०]।

अविस्पष्ट—वि० [सं०] जो साफ या स्पष्ट न हो। स्पष्ट रहित। अस्पष्ट [को०]।

अविहड(ए)-वि० [स० अ + विघटच]१. जो विहडे नहीं। जो खडित न हो। अखड। अनश्वर। उ०--(क) अविहड अखडित पीव है ताको निर्मय दास। तीनों गुन के पेलि के चौथे कियो निवास।--कबीर (शब्द०)। (ख) अविहड अंग विहडे नहीं अपलट पलट न जाय। दादू अनवट एक रस सब मे रहा समाय।--दादू (शब्द०)। २ दे० 'वीहट'।

अविहर(ए)—वि० [हिं० अ + विहर = विखरनेवाला] दे० अविहड। उ०—ढढोरज्जहिं ढाल मुरें गौरीदल अविहर।—पृ० रा० १३।६५।

अविहित--वि० [स०] १ जो विहित न हो। विरुद्ध। २ अनुचित। अयोग्य। ३ निकृष्ट। नीच।

अवी- सज्ञा स्त्री० [स०] १ ऋतुमती स्त्री। वनकुलथी।

अवीचि--सज्ञा पु० [स०] पुराणानुसार एक नरक।

अवीचि--वि० लहरविहीन। जिसमे लहर न हो [को०]।

अवीज¹-वि० [स०] १ बीजरहित। २ नपुसक। ३ मुख्य हेतु का अभाव [को०]।

अवीज²—सज्ञा पु० १ मानसिक उत्तेजना पर नियत्रण। २ बीज का अभाव या न होना। ३ बुरा बीज।

अवीजक—वि०, सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अवीज' [को०]।

अवीजा—सज्ञा स्त्री० [सं०] किशमिश।

अवीरा—वि० स्त्री० [स०] १ जिस स्त्री के पुत्र और पति न हों। पुत्र और पतिरहित (स्त्री)। २ स्वतत्र (स्त्री)।

अवोह(ए)—वि० [सं० अवीड?] जो डरे नहीं। अभय। निडर।—(डिं०)।

अवृक्ष--वि० [स०] वृक्षविहीन। पेड पौधों से रहीत [को०]।

अवृत—वि० [सं०] १ जो रोका न गया हो। २ अनिर्वाचित। ३ आवरणरहित। रक्षाविहीन। ४ जो किसी के वश मे या पराभूत न हो।

अवृत्ति¹—सज्ञा सज्ञा [स०] १ जीविका का अभाव। २ स्थिति का अभाव। वेठिकानापन।

अवृत्ति²--वि० १ अस्तित्व या स्थितिरहित। २ जीविकाहीन [को०]

अवृथा—अव्य० [सं०] सफलतासहित। अव्यर्थ [को०]।

अवृद्धिक¹—सज्ञा पुं० [सं०] विना वृद्धि या व्याज का रुपया। मूल धन। असल।

अवृद्धिक²—वि० जिसपर व्याज न लगता हो। जो वढता न हो।

अवष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] वर्षा का अभाव। अवर्षण। सूखा [को०]।

अवेक्षक—वि० [स०] १ देखनेवला। अवलोकन करनेवाला। २. जाँच पडताल करनेवाला। निरीक्षक [को०]।

अवेक्षण--सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवेक्षित अवेक्षणीय]१ अवलोकन। देखना। २ जाँच पडताल। देखभाल। निरीक्षण।

अवेक्षणीय--वि० [स०] १ देखने योग्य। निरीक्षण योग्य। २ जाँच के लायक। परीक्षा के योग्य।

अवेक्षा—सज्ञा स्त्री०[स०] १ अवेक्षण। देखना। २ परवाह। ध्यान। ख्याल।

अवेज(ए)—सज्ञा पुं० [अ० एवज] बदला। प्रतीकार। उ०—मारग मे गज मे चढो जात चलो अँगेरेज। कालीदह बोरचो गगज लिय कपि चना अवेज।—रघुराज (शब्द०)।

अवेणि—वि० [स०] १ वेणी न किया हुआ। २ जिसके बालों की वेणी न बनी हो। ३. जो एक साथ मिलकर न प्रवाहित हो,—जैसे नदी का जल [को०]।

अवेत--वि० [सं०] १ बीता हुआ। २ पाया हुआ। प्राप्त किया हुआ। ३ सयुक्त [को०]।

अवेद—सज्ञा पुं० [स०] वेद से भिन्न। जो वेद न हो [को०]।

यौ०—अवेदविद अवेदविहित।

अवेदि—सज्ञा स्त्री० [स०] मूर्खता। अज्ञान [को०]।

अवेद्य¹--वि० पु० [स०] १ जो जाना न जा सके। अज्ञय। २. अलभ्य।

अवेद्य²—सज्ञा पुं० १ बछडा। २ नादान बच्चा।

अवेद्या--वि० स्त्री० [स०] वह स्त्री जिससे विवाह नहीं कर सकते। अविवाह्य स्त्री।

अवेल¹—वि० [स०] १ जिसकी सीमा न हो। असीमित। २ असामयिक [को०]।

अवेल²—सज्ञा पुं० गोपन छिपाव। दुराव [को०]।

अवेला--सज्ञा स्त्री० [स०] १ बुरा समय। कुसमय। अनुचित समय। प्रतिकूल समय। २ चबाया हुआ पान [को०]।

अवेव(ए)--वि० [स० अ = नहीं + वेग] निर्वेग। उ०—सबनो भूखे सीह ज्यूं असुरा लखे अवेव।—रा० रू०, पृ० २८८।

अवेश¹(ए)—सज्ञा पुं० [स० आवेश] १ किसी विचार मे इस प्रकार तन्मय हो जाना कि अपनी स्थिति भूल जाय। आवेश। जोश। मनोवेग। उ०—मारि मारि करि, कर खडग निकासि लियो दियो घोर सागर मे सो अवेश आयो है।—नाभा (शब्द०)। २ आगम। चेतनता अनुप्रवेश। उ०—शिष्यन सो कह्यो कभू देह मे अवेश जानो तब ही बखानो आनि मुनि कीजै न्यारी है।—प्रिया (शब्द०)। ३ भूतावेश। भूत चढना। किसी भूत का सिर आना। भूत लगना। उ०—कोऊ कहै दोष, कोऊ कहत अवेश तापै करौ दशरथ कियो भाव पूरो परचो है।--नाभा (शब्द०)।

अवेश²—वि० [स०] विना वेशवाला। वेशरहित [को०]।

अवेस्ता—सज्ञा स्त्री० [पहल०] १ ईरान के पूर्वी जनसमूह की एक पुरानी भाषा जो सस्कृत के अति निकट है। २. पारसियों की एक धर्मपुस्तक।

अवैज्ञानिक--वि० [स०] १ जिसका विज्ञान मे कोई सबध न हो। २ जो तर्कसमत न हो [को०]।

अवैतनिक-वि० [स०] जो वैतनिक न हो। जो किसी काम को करने के लिये वेतन न पाए। विना वेतन के काम करनेवाला। आनरेरी।

अवैदिक—वि० [स०] वेदविरुद्ध।

अवैद्य—वि० [स०] १ जो वैद्य न हो। जो वैद्यकशास्त्र को न जानता हो। २ अज्ञ। अनजान।

अवैध--वि० [स०] [वि० स्त्री० अवैधी] १ नियम के विपरीत। गैर कानूनी। अविहित। उ०—यदि वे हमी से अवैध सेवा लेना चाहें ।—स्कद०, पृ० १२१। २ जो शास्त्रानुमोदित न हो।

अवैधानिक—वि० [स०] जो विधान या नियम के विपरीत हो।

अवैमत्य[1]—सज्ञा पु० [स०] मतभेद का अभाव। ऐकमत्य।

अवैमत्य[2]—वि० जिसमे मतभेद न हो। सर्वसमत।

अवोक्षण—सज्ञा पुं० [स०] तिरछा हाथ करके जल गिराना। तिरछा हाथ करके जल छिडकना।

अवोद[1]—वि० [स०] गीला। आर्द्र। नम [को०]।

अवोद[2]—सज्ञा पुं० आर्द्र करना। गीला करना [को०]।

अवोष—सज्ञा पु० [स०] ताजा या गरमागरम भोजन [को०]।

अव्यग--वि० [स० अव्यङ्ग] जो व्यग या टेढा न हो। सीधा।

अव्यंगांग—वि० [वि० अव्यङ्गाङ्ग] [स्त्री० अव्यगागी] जिसका कोई अग टेढा न हो। सुडौल।

अव्यगा—सज्ञा स्त्री० [स० अव्यङ्गा] केवाँच। करैच। कौंच।

अव्यग्य—वि०[स० अव्यङ्ग्य]१ निर्दोष। २ व्यग्यरहित। व्यजन-विहीन [को०]।

विशेष—साहित्य मे अव्यग्य काव्य को अवर अर्थात् अधम कोटि मे माना गया है।

अव्यजन[1]—वि० [सं० अव्यञ्जन] [वि० स्त्री० अव्यजना] १ विना सीग का (पशु)। डूँडा। २ जो सुलक्षण न हो। कुलक्षण। ३ जिसमे (जवानी का) कोई चिह्न न हो। चिह्नशून्य। ४ जो पृथक् या व्यक्त न हो [को०]।

अव्यजन[2]—सज्ञा पुं० १ शृगहीन पशु। डूँडा पशु। २. जो व्यजन न हो अर्थात् स्वर [को०]।

अव्यडा—सज्ञा स्त्री० [सं० अव्यण्डा] १ केवाँच। करैच। कौंच।

अव्यक्त[1]—वि० [स०] १ जो स्पष्ट न हो। अप्रत्यक्ष। अगोचर। उ०—(क) अटल शक्ति अविनाश अधिक वल एक अनादि अनूप। आदि अव्यक्त अविकापूरण अखिल लोक तव रूप।—सूर (शब्द०)। (ख) सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा 'चुप, चुप, चुप'।—अपरा, पृ० १३। २ अज्ञात। अनिर्वचनीय। उ०—प्रथम शब्द है शून्याकार। परा अव्यक्त सो कहै विचार।—कवीर (शब्द०)।

अव्यक्त[2]—सज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २ कामदेव। ३ शिव। ४ प्रधान। प्रकृति (साख्य)। उ०—अव्यक्त मूलमनादि तरुत्वच चारि निगमागम भने।—मानस, ७।१३ ५ वेदात शास्त्रानुसार अज्ञान। सूक्ष्म शरीर और सुषुप्ति अवस्था। ६ ब्रह्म। ईश्वर। ७ बीजगणित के अनुसार वह राशि जिसका मान अनिश्चित हो। अनवगत राशि। ८ मायोपाधिक ब्रह्म (शकर)। ९ जीव।

क्रि० प्र०—होना (१) प्रकृति दशा को प्राप्त होना। कारण मे लय होना। (२) अप्रकट होना। लुप्त होना। निर्वचनीय से अनिर्वचनीय अवस्था को प्राप्त होना।

अव्यक्तक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] बीजगणित की एक क्रिया।

अव्यक्तिगणित—सज्ञा पुं० [स०] बीजगणित।

अव्यक्तगति—वि०[स०] जिसकी गति प्रकट न हो। अप्रत्यक्ष गमन करनेवाला [को०]।

अव्यक्तपद—सज्ञा पुं०[स०]वह पद जिसका तालु आदि स्थानो द्वारा स्पष्ट उच्चारण न हो सके, जैसे चिडियो की बोली।

अव्यक्तमलप्रभव—सज्ञा पु० [स०] ससार। जगत्।

अव्यक्तराग—सज्ञा पुं०[स०]१ हलका लाल। अरुण। २ गौर। श्वेत।

अव्यक्तराशि—सज्ञा स्त्री० [स०] (बीजगणित मे) वह राशि जिसका मान अनिश्चित हो [को०]।

अव्यक्तलक्षण—सज्ञा पुं० [स०] शिव [को०]।

अव्यक्तलिंग—सज्ञा पुं०[स० अव्यक्तलिङ्ग]१ साख्यशास्त्रानुसार महत्तत्वादि। २ सन्यासी। ३ वह रोग जो पहचाना न जाय।

अव्यक्तसाम्य—सज्ञा पुं०[स०] बीजगणित के अनुसार अव्यक्त राशि या वर्ण का समीकरण।

अव्यक्तानुकरण—सज्ञा पुं० [स०] अस्फुट शब्द का अनुकरण। जैसे, मनुष्य मुर्गे की बोली पर उसकी नकल करके 'कुक्कूँकूँ' बोलता है।

अव्यक्तिक—वि० [स०] दे० 'अव्यक्त' [को०]।

अव्यग्र—वि० [स०] १ जो व्यग्र न हो। धीर। २ ध्यानवाला। सतर्क [को०]।

अव्यथ[1]—वि० [स०] १ किसी को दुख न देनेवाला। दयालु। २ वेदना से रहित। दुख से दूर [को०]।

अव्यथ[2]—सज्ञा पुं० साँप [को०]।

अव्यथय—सज्ञा पुं० [सं०] अश्व। घोडा [को०]।

अव्यथा—सज्ञा पुं० [स०] १ हरीतकी। हड। २ सोठ। ३ स्थल-कमल। स्थलपद्म। ४ गोरखमुडी। ५ आँवला। ६. स्थिरता। दृढता [को०]।

अव्यथिष—सज्ञा पुं० [स०] १ सूर्य। २ समुद्र [को०]।

अव्यथिषी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पृथ्वी। २ रात्रि। अर्धरात्रि। निशीथ [को०]।

अव्यथी—वि० [स० अव्यथिन्] १ दुख से मुक्त। २ भय से मुक्त। निर्भय। ३ दुख न देनेवाला [को०]।

अव्यथ्य—वि० [स०] दे० १ जिसे किसी प्रकार क्षुब्ध न किया जा सके। २ दे० 'अव्यथी' [को०]।

अव्यपदेश्य[1]—वि० [स०] १ जो कहा न जा सके। अनिर्वचनीय। २ न्यायानुसार निर्विकल्प। जिसमे विकल्प या उलट फेर न हो। निश्चित। ३ अनिर्देश्य।

अव्यपदेश्य[2]—सज्ञा पुं० १ निर्विकल्प ज्ञान। २ ब्रह्म।

अव्यभिचार—सज्ञा पुं० [स०] १ अविच्छिन्नता। सातत्य। २ वफादारी। ३ नित्यसग या साहचर्य [को०]।

अव्यभिचारी—वि०[स० अव्यभिचारिन्] जो किसी प्रतिकूल कारण से हटे नहीं। अनुकूल। २ जो किसी प्रकार व्यभिचारि न हो। ३ धर्मशील। सच्चरित्र। नैतिक [को०]। ४. नित्य। जो हमेशा बना रहे। एकरस [को०]।

अव्यभिचारी[2]—संज्ञा पुं० न्याय के मत में साध्य-साधक-व्याप्ति-विशिष्ट हेतु।

अव्यय[1]—वि० [सं०] १ जो विकार को प्राप्त न हो। सदा एकरस रहनेवाला। अक्षय। २ नित्य। आदि-अंत-रहित। ३. परिणाम-रहित। विकार-रहित। ४. प्रवाहरूप से सदा रहनेवाला।

अव्यय[2]—संज्ञा पुं० १ व्याकरण मे वह शब्द जिसका सब लिंगो, सब विभक्तियो और सब वचनो मे समान रूप से प्रयोग हो। २ परब्रह्म। ३ शिव। ४ विष्णु। ५ कुशल क्षेम [को०]। ६. समृद्धि [को०]।

अव्ययीभाव—संज्ञा पुं० [सं०] समास का एक भेद जिसमे अव्यय के साथ उत्तरपद समस्त होता है। जैसे, अतिकाल, अनुरूप, प्रतिरूप। यह समास प्राय पूर्वपदप्रधान होता है और या तो विशेषण या क्रियाविशेषण होता है।

अव्ययेत—संज्ञा पुं० [सं०] यमकानुप्रास के दो भेदो मे से एक जिसमे यमकात्मक अक्षरो के बीच कोई और अक्षर या पद न पड़े, जैसे–'अलिनी अलि नीरज बसे प्रति तरुवरनि बहग। त्यो मनमथ मन मथन हरि बसै राधिका सग।' यहाँ 'अलिनी, अलि नी' और 'मनमथ मन मथ के बीच कोई और पद नही है।

अव्यर्थ—वि० [सं०] १ जो व्यर्थ न हो। सफल। २ सार्थक। ३ अमोघ।

अव्यलीक—वि० [सं०] १ झूठ नही। सत्य। २ सहमत होने योग्य। प्रिय [को०]।

अव्यवधान[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यवधान या अंतर का अभाव।२. निकटता। लगाव। रोक का न होना। रुकावट का अभाव। ३ लापरवाही [को०]।

अव्यवधान[2]—वि० १ बिना व्यवधान या रुकावट का। २ प्रकट। खुला हुआ। ३ नग्न। आवरणहीन, जैसे भूमि। ४. लापरवाह [को०]।

अव्यवसाय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यवसाय का अभाव। उद्यम का अभाव। २ निश्चयाभाव। निश्चय का न होना।

अव्यवसाय[2]—वि० उद्यमशून्य। व्यवसायशून्य। आलसी। निकम्मा।

अव्यवसायी—वि० [सं० अव्यवसायिन्] १ उद्यमहीन। निरुद्यमी। २ आलसी। पुरुषार्थहीन।

अव्यवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अव्यवस्थित] १ नियम का न होना। नियमाभाव। बेकायदगी। २ स्थिति का अभाव। मर्यादा का न होना। ३. शास्त्रादिविरुद्ध व्यवस्था। अविधि। ४ बेइंतजामी। गड़बड़।

अव्यवस्थित—वि० [सं०]१ शास्त्रादि-मर्यादा-रहित। बेमर्याद। उ०–'गुप्तकुल का अव्यवस्थित उत्तराधिकार नियम'।–स्कंद०, पृ० १२। २ अनियत रूप। बेठिकाने का। उ०—'सम्राट् की मति एक सी नही रहती, वे अव्यवस्थित और चचल हैं।'–स्कंद०, पृ० २८। ३ चचल। अस्थिर। उ०–मैं इन बातो को नही सुनना चाहती, क्योकि समय ने मुझे अव्यवस्थित बना दिया है।–चद्र०, पृ० १३३।

यौ०—अव्यवस्थितचित्त = जिसका चित्त ठिकाने न हो। चचलचित्त। उ०–वह अव्यवस्थितचित्त का मनुष्य है।–(शब्द०)।

अव्यवहार्य—वि० [सं०] १ जो व्यवहार या काम मे लाने योग्य न हो। जो व्यवहार में न लाया जा सके। २ पतित। पंक्तिच्युत।

अव्यवहित—वि० [सं०] बिना व्यवधान या रुकावट का [को०]।

अव्यवहृत—वि० [सं०] जो व्यवहार मे न आया हो [को०]।

अव्यसन[1]—वि० [सं०] व्यसन मे मुक्त। व्यसन से हीन। दुर्गुण से दूर [को०]।

अव्यसन[2]—संज्ञा पुं० व्यसन या दुर्गुण का अभाव [को०]।

अव्याकृत[1]—वि० [सं०] १ जो व्याकृत न हो। अविश्लिष्ट जो विकार प्राप्त न हो। २ अप्रकट। गुप्त। ३. कारण रूप। कारणस्थ।

अव्याकृत[2]—संज्ञा पुं० १ वेदातशास्त्रानुसार अप्रकट बीजरूप जगत्कारण अज्ञान। २ साख्यशास्त्रानुसार प्रधान प्रकृति।

यौ०—अव्याकृतधर्म।

अव्याकृतधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धशास्त्रानुसार वह स्वभाव जिससे शुभ और अशुभ दोनो प्रकार के कर्म किए जा सकें।

अव्याख्या—संज्ञा पुं० [सं०] स्पष्टीकरण या व्याख्या का अभाव [को०]

अव्याख्यात—वि० [सं०] जिसे स्पष्ट न किया गया हो। व्याख्याहीन [को०]।

अव्याख्येय—वि० [सं०] १ व्याख्या के अयोग्य। २ जिसे व्याख्या की जरूरत न हो। सरल [को०]।

अव्याघात—वि० [सं०] १ व्याघातशून्य। जो रोका न जा सके। बेरोक। २ अटूट। लगातार।

अव्याज[1]—वि० [सं०] १ छलछद्म से रहित। निष्कपट। २. अकृत्रिम। स्वाभाविक। नैसर्गिक (विशेषत समास मे, जैसे अव्याजमनोहर, अव्याजरमणीय [को०]।

अव्याज[2]—संज्ञा पुं० छलछद्म का अभाव। निष्कपटता। ईमानदारी [को०]।

अव्यापन्न—वि० [सं०] जो मरा न हो। जीवित। जिंदा।

अव्यापार[1]—सं० [सं०] व्यापारशून्य। बेकाम।

अव्यापार[2]—संज्ञा पुं० १ उद्यम का अभाव। निठल्ला। २ वह काम जो अपने से संबधित न हो। बिना काम का काम [को०]।

अव्यापारी—वि० [सं० अव्यापारिन्] १ व्यापारशून्य। निरुद्यमी। निठल्लू। २ साख्यशास्त्रानुसार क्रियाशून्य, जिसमे व्यापार अर्थात् क्रिया करने की शक्ति न हो। जो स्वभाव से अकर्ता हो।

अव्यापी—संज्ञा पुं० [सं० अव्यापिन्] [स्त्री० अव्यापिनी] १ जो व्यापी न हो। जो सब जगह न पाया जाय। २ एक प्रकार का उत्तराभास जिसमे कहे हुए देश, स्थान का पता न चले, जैसे–'कोई कहे कि काशी के पूर्व मध्य देश मे मेरा खेत समुद्र ने लिया। यहाँ काशी के पूर्व मध्य देश नहीं, किंतु मगध देश है, अत यह अव्यापी है।

अव्याप्त—वि० [सं०] जो व्याप्त न हो। जो हर जगह न हो। सीमित [को०]।

अव्याप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०][वि० **अव्याप्त**] १ व्याप्ति का अभाव। २ नव्य न्यायशास्त्रानुसार लक्ष्य पर लक्षण के न घटने का दोष, जैसे–'सब फटे खुरवाले पशुओं के सींग होती है। इस कथन में अव्याप्ति दोष है, क्योंकि सूअर के खुर फटे होते हैं, पर उसके सींग नहीं होती।

अव्याप्य—वि० [सं०] व्याप्तिरहित। जो समग्र पर न लागू हो [को०]।

यौ०—**अव्याप्यवृत्ति**=सुख दुःख आदि की क्षणिक वृत्ति।

अव्यावृत—वि० [सं०] १ निरंतर। सतत। लगातार। २ अटूट। ३ बिना लोट पोट का। ज्यों का त्यों।

अव्याहत[1]—वि० [सं०] १ अप्रतिरुद्ध। बेरोक। उ०–सुनत फिरउँ हरि गुन अनुवादा। अव्याहत गति शंभु प्रसादा।–तुलसी (शब्द०)। २ सत्य।

अव्याहत[2]—संज्ञा पुं० सत्य या अखंडनीय वक्तव्य।

अव्युच्छिन्न—वि० [सं०] बेरोक। अव्याहत।

अव्युत्पन्न—वि० [सं०] १ अनभिज्ञ। अनुभवशून्य। अनाड़ी। अकुशल। २ व्याकरणशास्त्रानुसार वह शब्द जिसकी व्युत्पत्ति या सिद्धि न हो सके। ३ व्याकरणज्ञानशून्य।

अव्युष्ट—वि० [सं०] न चमकता हुआ। प्रकाशहीन। उ०–उषा के अव्युष्ट होने का अर्थ है कि अभी अँधेरा है।–आर्यो०, पृ० ११८।

अव्र—संज्ञा पुं० [अ० अब्र, तुल० सं० अभ्र] बादल। मेघ।

अव्रण[1]—वि० [सं०] जो क्षत न हो। बिना घाव का। जो घाव से खराब न हुआ हो [को०]।

अव्रण[2]—संज्ञा पुं० दे० 'अव्रणशुक्र' [को०]।

अव्रणशुक्र—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग जिसमे आँख की पुतली पर सफेद रंग की एक फूली सी पड़ जाती है और उसमे सूई चुभने के समान पीड़ा होती है।

अव्रत[1]—वि० [सं०] १ व्रतहीन। जिसका व्रत नष्ट हो गया हो। २ जिसने व्रतधारण न किया हो। व्रतरहित। ३ नियमरहित। नियमशून्य।

अव्रत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ जैनशास्त्रानुसार व्रत का त्याग।

विशेष—यह पाँच प्रकार का है–प्राणवध, मृषावाद, अदत्तदान, मैथुन या अब्रह्म और परिग्रह।

२ व्रत का अभाव। ३ नियम का न होना।

अव्रत्य—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मानुष्ठान का अभाव [को०]।

अव्वल[1]—वि० [अ०] १ पहला। आदि का। प्रथम। २ उत्तम। श्रेष्ठ।

अव्वल[2]—संज्ञा पुं० आदि। प्रारंभ, जैसे–'अव्वल से आखिर तक'। –(शब्द०)।

मुहा०—**अव्वल आना या रहना**=प्रथम स्थान प्राप्त करना।

अव्वलन्—क्रि० वि० [अ०] प्रथमत। पहले।

अव्वास(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवास'। उ०–ऊँचा महल ही अव्वास। करता नारि नर विल्लास।–राम० धर्म०, पृ० १६८।

अशंक—वि० [सं० अशङ्क] १ निःशंक। बेडर। निर्भय। उ०–देखा भविष्य के प्रति अशंक।–अपरा, पृ० १७४। २ संदेहरहित। निश्चित [को०]।

अशंकित—वि० [सं० अशङ्कित] दे० 'अशंक' [को०]।

अशंभु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+शम्भु=कल्याण] अकल्याण। अमंगल। अशुभ। अहित। उ०–सुनो क्यों न कनकपुरी के राइ। डोलै गगन सहित सुरपति अरु पुहुमि पलट जग जाइ। नसै धर्म मन बचन काय करि शंभु अशंभु कराइ। अचला चलै, चलत पुनि थाकै, चिरजीव सो मरई। श्री रघुनाथ प्रताप पतिव्रत सीता सत नहिं टरई।–सूर (शब्द०)।

अशकुंभी—संज्ञा स्त्री० [सं० असकुम्भी] जल मे होनेवाला एक पौधा। आकाशमूली [को०]।

अशकुन—संज्ञा पुं० [सं०] कोई वस्तु या व्यापार जिससे अमंगल की सूचना समझी जाय। बुरा शकुन। बुरा लक्षण।

विशेष—इस देश मे लोग दिन को गीदड़ का बोलना, कार्यारंभ मे छींक होना आदि अशकुन समझते हैं।

अशक्त—वि० [सं०][संज्ञा **अशक्ति**] १ निर्बल। कमजोर। २. अक्षम। असमर्थ। नाकाबिल। उ०–होकर अशक्त अकाल में ही काल-कवलित हो रहे।–भारत०, पृ० १०१।

अशक्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्तिहीनता। अयोग्यता [को०]।

अशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ निर्बलता। कमजोरी। २ सांख्य में बुद्धि और इंद्रियों का वध या विपर्यय। हाथ पैर आदि इंद्रियों और बुद्धि का बेकाम होना।

विशेष—ये अशक्तियाँ अट्ठाईस हैं। इंद्रियाँ ग्यारह हैं, अत ग्यारह अशक्तियाँ तो उनकी हुईं। इसी प्रकार बुद्धि की दो शक्तियाँ हैं तुष्टि और सिद्धि। तुष्टि नौ हैं और सिद्धि आठ। इन सबके विपर्यय को अशक्ति कहते हैं।

अशक्य—वि० [सं०] १ असाध्य। शक्ति के बाहर। न होने योग्य। २ एक काव्यालंकार जिसमे किसी रुकावट या अड़चन के कारण किसी कार्य के होने की असाध्यता का वर्णन हो, जैसे–काक कला कहुँ कहुँ कपि कलकल। कहुँ झिल्ली रव कंक कहूँ थल। बसी भाग्य बस सो बन ऐसे। करहिं तहाँ ध्वनि कोकिल कैसे।

अशत्रु[1]—वि० [सं०] बिना शत्रुवाला। २ जिससे शत्रु शत्रुता का व्यवहार नहीं रखते [को०]।

अशत्रु[2]—संज्ञा पुं० १ चंद्रमा। २ शत्रु का अभाव [को०]।

अशन—संज्ञा पुं० [सं०][वि० **अशित, अशनीय**] १ भोजन। आहार। अन्न। २ भोजन की क्रिया। भक्षण। खाना। ३ चीता। चित्रक लकड़ी। ४ भिलावाँ। ५ अशन वृक्ष।

अशनपति—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न के स्वामी या देवता [को०]।

अशनपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पटसन [को०]।

अशना—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० **अशनायित**] भोजन की इच्छा। भूख [को०]।

अशनाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भोजन की इच्छा। भूख। उ०–इस प्रवृत्ति का हेतु जो बल होता है उसे श्रुति में अशनाया बल कहा गया है।–पोद्दार अभि०, पृ० ६१७।

अशनि—संज्ञा पुं० [सं०] १. वज्र । बिजली । २ बिजली की चमक [को०] । ३ महास्त्र [को०] । ४ स्वामी । मालिक [को०] । ५. इंद्र [को०] । ६. अग्नि [को०] ।

यौ०—अशनिदंड = वज्र । बिजली । अशनिपात = वज्रपात ।

अशनीय—वि० [सं०] खाने योग्य ।

अशब्द[1]—वि० [सं०] १ जो शब्दों मे प्रकट न किया जाय । २ अव्यक्त । ३ शब्दविहीन । ४ जो वैदिक न हो । अवैदिक [को०] ।

अशब्द[2]—संज्ञा पुं० १ शब्द का अभाव । २ ब्रह्म [को०] ।

अशरण—वि० [सं०] जिसे कहीं शरण न हो । अनाथ । निराश्रय । बेपनाह ।

अशरणशरण[1]—वि० [सं०] अनाथ या निराश्रय को आश्रय देनेवाला [को०] ।

अशरणशरण[2]—संज्ञा पुं० ईश्वर । भगवान् [को०] ।

अशरफ—वि० [अ० अश्रफ] बहुत अधिक शरीफ [को०] ।

अशरफी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ सोने का एक पुराना सिक्का जो सोलह रुपए से लेकर पचीस रुपए तक का होता था । मोहर । २ एक प्रकार का पीले रंग का फूल । गुल अशरफी ।

अशरा—संज्ञा पुं० [अ० अशरह्] १ महीने का दसवाँ दिन । २ मुहर्रम का दसवाँ दिन [को०] ।

अशराफ—वि० [अ० शरीफ का बहु०] भद्र । शरीफ । भलामानुप । उ०—फिरते हैं अशराफ गली मे मारे मारे ।—कविता कौ०, भा० २, पृ० २५५ ।

अशराफत—संज्ञा स्त्री० [अ० अशराफ + त (प्रत्य०)] सज्जनता । शराफत । भद्रता । उ०—'सादगी' और सीधेपन से रहने मे मनुष्य की सच्ची अशराफत मालूम होती है' ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २७७ ।

अशरीर[1]—वि० [सं०] शरीररहित । आकारविहीन [को०] ।

अशरीर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ परमात्मा । ब्रह्म । २ मीमासा के अनुसार कोई भी देवता । ३ काम के देवता । कामदेव । ४. विरक्त । सन्यासी [को०] ।

अशरीरी[1]—वि० [सं० अशरीरिन्] शरीररहित । देहविहीन । उ०—ये अशरीरी रूप, सुमन से केवल वर्ण गंध मे फूले ।—कामायानी, पृ० २६४ ।

अशरीरी[2]—संज्ञा पुं० १ ब्रह्म । २. देवता [को०] ।

अशर्फी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अशरफी' ।

अशर्म[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कष्ट । दुःख । अकल्याण ।

अशर्म[2]—वि० १ दुःखी । बेचैन । २ जिसे घरवार न हो । गृहरहित ।

अशस्त—वि० [सं०] १. अनिर्वचनीय । अकथनीय । २ अप्रतिष्ठित । भाग्यहीन [को०] ।

अशस्त्र[1]—वि० [सं०] बिना शस्त्र का । शस्त्रहीन [को०] ।

अशस्त्र[2]—संज्ञा पुं० जो शस्त्र न हो [को०] ।

अशांत—वि० [सं० अशान्त] जो शांत न हो । अस्थिर । चंचल । डांवाडोल । उ०—यही तो, मैं ज्वलित वाडव वह्नि नित्य अशांत ।—कामायनी, पृ० ८५ । २ अपवित्र । अधार्मिक [को०] । ३ पाँचो तन्मात्राओं मे से एक ।

अशांति—संज्ञा स्त्री० [अशान्ति] [वि० अशांत] १. अस्थिरता । चंचलता । हलचल । खलबली । उ०—जाकर कहाँ हमने जलाई आग युद्ध अशांति की ।—भारत०, पृ० ५१ । २. क्षोभ । असतोष । उ०—जीवन अशांति अपूर्ण नवके दीन हो अथवा धनी ।—भारत०, पृ० १४६ ।

अशाखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे शूलीतृण भी कहते हैं [को०] ।

अशाम्य—वि० [सं०] जिसको शांत न किया जा सके । जिसका शमन असंभव हो [को०] ।

अशालीन—वि० [सं०] धृष्ट । ढीठ । शालीनतारहित ।

अशालीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धृष्टता । ढिठाई ।

अशासन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शासनाभाव । अव्यवस्थित शासन । अराजकता [को०] ।

अशासन[2]—वि० शासन मे न रहनेवाला । शासनहीन [को०] ।

अशातावेदनीय—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार वह कर्म जिसके उदय से दुःख का अनुभव होता है ।

अशास्त्रीय—वि० [सं०] जो शास्त्रसंमत न हो । जो विहित न हो [को०] ।

अशिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिक्षा का अभाव । ज्ञानाभाव । उ०—ये सब अशिक्षा के कुफल हैं वाम है जिनका यहाँ ।—भारत०, पृ० ११५ ।

अशिक्षित—वि० [सं०] जिसने शिक्षा न पाई हो । बेपढा लिखा । अनपढ । उजड्ड । अनाडी । गँवार । उ०—यदि हम अशिक्षित थे, कहे तो, सभ्य वे कैसे हुए ।—भारत०, पृ० ६६ ।

अशित—वि० [सं०] खाया हुआ । भुक्त ।

अशित्र—संज्ञा पुं० [सं०] चोर ।

अशिथिल—वि० [सं०] १ जो ढीला न हो । कसा हुआ । गाढ । २ प्रभावकर । विश्वस्त [को०] ।

अशिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. हीरा । २ अग्नि । ३ राक्षस । ४ सूर्य ५ वायु [को०] ।

अशिव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अमंगल । अकल्याण । अशुभ ।

अशिव[2]—वि० १ दुष्ट । बदमाश । २ भाग्यहीन । ३ जो कृपालु न हो । अमित्र । ४ खतरनाक [को०] ।

अशिशु[1]—वि० [सं०] निःसतान । बिना बाल बच्चेवाला [को०] ।

अशिशु[2]—संज्ञा पुं० १ तरुण । युवा । २ शिशुता का अभाव [को०] ।

अशिश्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बिना बच्चे की स्त्री । संतानहीन स्त्री । २ बिना बछड़े की गाय [को०] ।

अशिश्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अशिश्विका' ।

अशिष्ट—वि० [सं०] असाधु । दुःशील । अविनीत । उजड्ड । बेहूदा । अभद्र । अनैतिक अशान्य ।

अशिष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. असाधुता । दुःशीलता । बेहूदगी । उजड्डपन । अभद्रता । २ ढिठाई ।

अशीत—वि० [सं०] जो ठंढा न हो । गरम [को०] ।

अशीतकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

अशीतल—वि० [सं०] गरम [को०]।

अशीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ८० की संख्या [को०]।

अशीतिक—वि० [सं०] १ अस्सी सालवाला। २ अस्सी का मापक। ३ अस्सी का जिसमें संकेत मिले [को०]।

अशील[1]—वि० [सं०] १ अभद्र। अशिष्ट। उद्दंड। २ उदास [को०]।

अशील[2]—संज्ञा पुं० अभद्र व्यवहार। अशिष्टता। उद्दंडता [को०]।

असीस (पु)—संज्ञा पुं० [सं० आशिष्] आशीर्वाद। असीस। दुआ। उ०—कछू जनि जी दुख पावहु माइ। सो देहु असीस मिलौ फिरि आइ।—रामच०, पृ० ४८।

अशुच—वि० [सं० अशुचि] दे० 'अशुचि'। उ०—अति विलक्षण है तव दुष्क्रिया अशुच मृत्यु अरे अधमाधम।—कविता कौ०, भा० २, पृ० २४७।

अशुचि[1]—वि० [सं०] [संज्ञा अशौच] १ अपवित्र। २ गंदा। मैला। ३ काला [को०]।

अशुचि[2]—संज्ञा स्त्री० १ काला रंग। २ अपवित्रता। ३. अपकर्ष। अधोगमन [को०]।

अशुचिता—वि० [सं०] १ अपवित्रता। २ ग्रीष्माभाव। ज्येष्ठ और आषाढ का महीना [को०]।

अशुद्ध[1]—वि० [सं० संज्ञा अशुद्धता, अशुद्ध] १ अपवित्र। अशौच-युक्त। नापाक। २ बिना साफ किया हुआ। बिना शोधा हुआ। असंस्कृत जैसे, अशुद्ध पारा। ३. बेठीक। गलत।

यौ०—अशुद्ध वासक = संदिग्ध व्यक्ति।

अशुद्ध[2]—संज्ञा पुं० रक्त। खून [को०]।

अशुद्धता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपवित्रता। मैलापन। गंदगी। २. गलती।

अशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपवित्रता। अशौच। गंदगी। २. गलती।

असुन (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्विनी] अश्विनी नक्षत्र। उ०—असुन, भरनि, रेवती भली। मृगसर मोल पुनरबसु वली।—जायसी (शब्द०)।

अशुभ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अमंगल। अकल्याण। अहित। २. पाप। अपराध। ३। दुर्भाग्य [को०]।

अशुभ[2]—वि० जो शुभ न हो। अमंगलकारी। बुरा।

यौ०—अशुभदर्शन = भद्दा। कुरूप। अप्रियदर्शन। अशुभसूचक = अमंगल की सूचना देनेवाला।

अशुश्रूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसकी आज्ञा में रहना चाहिए, उसकी आज्ञा में न रहने का अपराध।

विशेष—स्मृति के अनुसार पारिवारिक व्यवस्था की दृष्टि से इस अपराध का राज्य की ओर से दंड होता था, जैसे—यदि पुत्र पिता की आज्ञा न माने तो वह दंडनीय माना गया है।

अशून्य—वि० [सं०] शून्यरहित। प्रमाणित। अरिक्त। पूर्ण। पूरा। उ०—(क) 'हमने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजा है सो लेना।' भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २०७। (ख) 'यही लेख अशून्य करने का होगी'।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २०८।

अशून्यशयन—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिथि जिस दिन विश्वकर्मा शयन करते हैं [को०]।

यौ०—अशून्यशयन द्वितीया = दे० 'अशून्यशयनव्रत'।

अशून्यशयनव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक व्रत जो श्रावण कृष्ण द्वितीया को होता है।

अशृत—वि० [सं०] बिना पका हुआ। कच्चा। अपरिपक्व [को०]।

अशेव—वि० [सं०] सुखदायक। हर्षदायक [को०]।

अशेष—वि० [सं०] १ शेषरहित। पूरा। समूचा। सब। तमाम। उ०—विषमय यह गोदावरी अमृतन को फल देति। केशव जीवनहार को, दुख अशेष हरि लेति।—रामच०, पृ० ६९।

क्रि० प्र०—करना। होना।

२ समाप्त। खतम। ३ अनंत। अपार। बहुत। अधिक। अगणित। अनेक। उ०—सानंद आशिष अशेष ऋषीश दीन्हो।—रामच०, पृ० ६६। (ख) मिस रोम राजि रेखा सुवेष। विधि गनत मनो गुनगन अशेष।—गुमान (शब्द०)।

अशेषता संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णता। समग्रता [को०]।

अशेषसाम्राज्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अशैक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] अर्हत। उ०—'प्रथम आचार्यों के अनुसार 'अर्हत' से तीन यानों के उन आर्यों से आशय है जिन्होंने अशैक्ष फल का लाभ किया है'।—सपू० अभि० ग्र०, पृ० ३४६।

अशैव—वि० [सं०] अशुभ [को०]।

अशोक[1]—वि० [सं०] शोकरहित। दुखशून्य। उ०—देव अदेव नृदेव अरु, जितने जीव त्रिलोक। मन भायो पायो सबन कीन्हें सबन अशोक।—रामच०, पृ० १९२।

अशोक[2]—संज्ञा पुं० १ एक प्रसिद्ध पेड़।

विशेष—इसकी पत्तियाँ आम की तरह लंबी लंबी और किनारों पर लहरदार होती है। इसमें सफेद मंजरी (मौर) लगती है जिसके झड जाने पर छोटे छोटे गोल फल लगते हैं जो पकने पर लाल होते हैं, पर खाए नहीं जाते। यह पेड़ बड़ा सुंदर और हरा भरा होता है, इससे इसे बगीचों में लगाते हैं। शुभ अवसरों पर इसकी पत्तियों की वंदनवारें बाँधी जाती हैं। यह शीतल, कसैला, कड़ुआ, मल को रोकनेवाला, रक्तदोष को दूर करनेवाला और कृमिनाशक समझा जाता है। इसकी छाल विशेषकर स्त्री रोगों में दी जाती है। इसके दो भेद होते हैं—एक के पत्ते रामफल के समान और फूल कुछ नारंगी रंग के होते हैं। यह फागुन में फूलता है। दूसरे के पत्ते लंबे लंबे और आम के पत्तों के समान होते हैं और इसमें सफेद फूल वसंत ऋतु में लगते हैं।

पर्या०—विशोक। मधुपुष्प। कंकेलि। वेलिक। रक्तपल्लव। रागपल्लव। हेमपुष्प। वंजुल। कर्णपूर। ताम्रपल्लव। वामांघ्रिघातन। राम। रामा। नट। पिंडी। पुष्प। पल्लवद्रुम। दोहलीक। सुभग। रोगितरु।

२ पारा। ३ भारतवर्ष का एक प्राचीन मौर्यवंशीय सम्राट्। ४ विष्णु का एक नाम [को०]। ५ वकुल वृक्ष [को०]। ६. प्रसन्नता। आह्लाद [को०]।

अशोकपुष्पमजरी—सज्ञा स्त्री० [सं० अशोकपुष्पमञ्जरी] दडक वृत्त का एक भेद जिसमे २८ अक्षर होते हैं और लघु गुरु का कोई नियम नहीं होता, जैसे—सत्यधर्म नित्य धारि व्यर्थ काम सर्व डारि भूरि कै करो कदा न निंद्य काम।

अशोकपूर्णिमा—सज्ञा स्त्री० [स०] फाल्गुन की पूर्णिमा [को०]।

अशोकवनिकान्याय—सज्ञा पुं० [स०] किसी कार्य को करने का कारण न बनाया जानेवाला व्यवहार, जैसे—रावण ने सीता जी को अशोक के ही नीचे रहने का क्यो आदेश दिया? इसका कारण नही बताया गया [को०]।

अशोकवाटिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह बगीचा जिसमे अशोक के पेड लगे हो। २ शोक को दूर करने वाला रम्य उद्यान। ३ रावण का वह प्रसिद्ध बगीचा जिसमे उसने सीता जी को ले जाकर रखा।

अशोकषष्ठी—सज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र शुक्ला षष्ठी। इस दिन कामाख्या तत्र के अनुसार पुत्रलाभार्थ षष्ठी देवी की पूजा की जाती है।

अशोका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुटकी। २ अशोक की कली। ३ दे० 'अशोकषष्ठी'।

अशोकारि—सज्ञा स्त्री० [सं०] कदब [को०]।

अशोकाष्टमी—सज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र शुक्ला अष्टमी।

विशेष—इस दिन पानी में अशोक के आठ पल्लव डालकर उसे पीने का विधान है तथा अशोक के फूल विष्णु को चढाते हैं।

अशोच—सज्ञा पुं० [सं०] १ चिता या परवाह का अभाव। २ शाति। ३ विनम्रता [को०]।

अशोच्य—वि० [स०] शोक न करने योग्य। उ०—वे हैं अशोच्य, हां स्मरण योग्य हैं सबके।—साकेत, पृ० २२३।

अशोधित—वि० [स०] बिना शोधन किया हुआ। बिना साफ किया हुआ। सस्काररहित [को०]।

अशोभक—वि० [सं०] माणिक्य का एक दोष [को०]।

अशोभन—वि० [स०] असुदर। अभद्र। सुदर न लगनेवाला।

अशौच—सज्ञा पुं० [सं०] १ अपवित्रता। अशुद्धता। २. हिंदू शास्त्रानुसार अशौच की अवस्था।

विशेष—इन अवस्थाओ मे अशौच माना जाता है—(क) मृतकसस्कार के पश्चात् मृत के परिवार या सपिंडवालो मे वर्णक्रमानुसार १०, १२, १५ और ३० दिन तक। (ख) सतान होने पर भी ऊपर के नियमानुसार। शोक के अशौच को सूतक और सतानोत्पत्ति के अशौच को वृद्धि कहते हैं। (ग) रजस्वला स्त्री को तीन दिन। (घ) मल, मूत्र, चाडाल या मुर्दे आदि का स्पर्श होने पर स्नानपर्यंत। अशौचावस्था मे सध्या तर्पण आदि वैदिक कर्म नहीं किए जाते।

अशौचसकर—सज्ञा पुं० [सं० अशौचसङ्कर] दो या दो से अधिक अशौचो का साथ होना, जैसे किसी परिवार मे मृत्यु का अशौच लगा हो परतु अशौच काल मे ही बालक का जन्म हो जाय तो जन्म अशौच के कारण वही अशौचसकर की स्थिति होगी [को०]।

अश्मंत[1]—सज्ञा पुं० [सं० अश्मन्त] १ चूल्हा। २ अमगल। ३. मरण। ४ खेत। ५ एक मरुत् [को०]।

अश्मंत[2]—वि० १. अशुभ। अभागा। २. असीमित [को०]।

अश्मंतक—सज्ञा पुं० [सं० अश्मन्तक] १ मूँज की तरह एक घास जिससे प्राचीन काल में ब्राह्मण लोग मेखला अर्थात् करधनी बनाते थे। २ आच्छादन। छाजन। ढकना। ३ दीपाधार। दीवट। ४. पाषाणभेद। ५ तिमोढा। ६ कचनार। ७ चूल्हा। भट्ठी [को०]।

अश्क—सज्ञा पुं० [फा०] अश्रु। आँसू। उ०—कल जो टुक रोया किसी की याद मे वह गुलबदन। अश्क ये आँखो मे या मोती कुचलकर भर दिए।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३३२।

अश्म—सज्ञा पुं० [सं० अश्मन्] १ पर्वत। पहाड। २ मेघ। बादल। ३ पत्थर। ४ सोनामक्खी। ५ लोहा।

अश्मक—सज्ञा पुं० [स०] एक प्राचीन देश का नाम जो आजकल ट्रावकोर (त्रिवाकुर) कहलाता है।

अश्मकदली—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का केला जो कडा तथा कम स्वादवाला होता है। काष्ठकदली। कठकेला [को०]।

अश्मकुट्ट—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार के वानप्रस्थ जो सिल, बट्टा या उखली आदि नही रखते थे, केवल पत्थर से अन्न कूटकर पकाते थे।

अश्मगर्भ—सज्ञा पुं० [सं०] पन्ना। मरकत।

अश्मगर्भज—सज्ञा पुं० [सं०] १ शिलाजीत। २ गेरू। ३ लोहा [को०]।

अश्मज—सज्ञा पुं० [सं०] शिलाजतु। शिलाजीत। २ मोमियाई। ३ लोहा।

अश्मभेद—सज्ञा पुं० [सं०] पखानभेद नाम की जडी जो मूत्रकृच्छ्र आदि रोगो मे दी जाती है।

अश्मयोनि—सज्ञा पुं० [सं०] पन्ना [को०]।

अश्मर—वि० [सं०] पथरीला।

अश्मरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] मूत्ररोगविशेष। पथरी।

यौ०—अश्मरीघ्न = वरुण वृक्ष। बरना का पेड।

अश्मसार—सज्ञा पुं० [सं०] लोहा।

अश्मा—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्म' [को०]।

अश्मीर—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्मरी' [को०]।

अश्मोत्थ—सज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत [को०]।

अश्र—सज्ञा पुं० [सं०] १. आँसू। २ रक्त [को०]।

अश्रद्ध—वि० [सं०] श्रद्धा न रखनेवाला। विश्वास न रखनेवाला [को०]।

अश्रद्धा—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अश्रद्धेय] श्रद्धा का अभाव।

अश्रद्धेय—वि० [सं०] अश्रद्धा के योग्य। घृणा के योग्य। बुरा।

अश्रप[1]—सज्ञा पुं० [सं०] राक्षस।

अश्रप[2]—वि० रक्त पीनेवाला। दुष्ट। अत्याचारी [को०]।

अश्रवण[1]—वि० [सं०] १ जो सुनता न हो। बहरा। २ कर्णहीन [को०]।

अश्रवण[2]—सज्ञा पुं० १ साँप। २. श्रवण शक्ति का अभाव। बहरापन [को०]।

अश्रांत—वि० [सं० अश्रान्त] १ श्रमरहित। स्वस्थ। जो थका-माँदा न हो। २. विरामरहित। लगातार। निरतर। उ०—

चद्रमा नभ मे हँसता या बाज रही थी वीणा अश्रांत।—झरना, पृ० ७१।

अश्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० अश्रान्ति] श्रांति या थकावट का अभाव। उ०—ससारयात्रा में स्वपति की वे अटल अश्रांति हैं।—भारत०, पृ० ५६।

अश्राव्य—वि० [सं०] १ न सुनने योग्य। २ न कहने योग्य [को०]।

अश्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ (कोठरी, घर आदि का) कोना। २ अस्त्र शस्त्र की नोक। ३ धार।

अश्री—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ अलक्ष्मी। दरिद्रा। २. दे० 'अश्रि' [को०]।

अश्रीक—वि० [सं०] १.शोभाहीन। जिसमे श्री न हो। २.भाग्यहीन। अभागा [को०]।

अश्रु—संज्ञा पुं०[सं०]मन के किसी प्रकार के आवेग के कारण आँखो मे आनेवाला जल। आँसू। २ काव्य मे अनुभाव के अतर्गत सात्विक के नौ भेदो मे से एक।

अश्रुकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्रुबिंदु [को०]।

अश्रुगैस—संज्ञा स्त्री० [सं० अश्रु+अं० गैस] एक प्रकार की गैस जिसका प्रयोग अनियमित भीड को तितर बितर करने के लिये शासन द्वारा किया जाता है।

अश्रुत—वि०[सं०]१ जो न सुना गया हो। अज्ञात। २ जिसने कुछ देखा सुना न हो। नातजर्बेकार। ३. अशिक्षित। अशास्त्रज्ञ मूर्ख [को०]।

अश्रुतपूर्व—वि० [सं०] १ जो पहले न सुना गया हो। २ अद्भुत। विलक्षण। अनोखा।

अश्रुति[1]—वि० [सं०] १ बिना कानवाला। श्रुति या श्रवणरहित।

अश्रुति[2]—संज्ञा स्त्री० १ न सुनना। अश्रवण। २ विस्मृति [को०]।

अश्रुतिधर—वि० [सं०] १ वेदो को न जाननेवाला। ध्यान मे सुननेवाला। ध्यान न देनेवाला [को०]।

अश्रुपात—संज्ञा पुं० [सं०] आँसू गिराना। रुदन। रोना।

अश्रुमुख[1]—वि० [सं०] १ आँसुओ से भरा हुआ। रोता हुआ। २. रोनी सूरत का। रुआँसा।

अश्रुमुख[2]—संज्ञा पुं० ज्योतिष के अनुसार जिस नक्षत्रपर मगल का उदय होता है, उसके १० वें, ११ वें, या १२ वें नक्षत्रपर यदि उसकी गति वक्र हो तो वह (वक्रगति) अश्रुमुख कहलाती है।

अश्रेय[1]—वि० [सं० अश्रेयस्] १ बुरा। खराब। २. कल्याणकर व्यर्थ। निकम्मा [को०]।

अश्रेय[2]—संज्ञा पुं० १ बुराई। खराबी। २ अकल्याण। ३. दुःख [को०]।

अश्रेष्ठ—वि० [सं०] १ जो श्रेष्ठ या उत्तम न हो। २.बुरा निकृष्ट [को०]।

अश्रौत—वि [सं०] जो श्रुति या वेदसमत न हो [को०]।

अश्लाघ्य—वि०[सं०]१ जो श्लाघ्य न हो। अप्रशसनीय। जो सराहने योग्य न हो। निम्न। निंद्य।

अश्लिष्ट—वि० [सं०] १ श्लेषशून्य। श्लेपरहित। २ असंबद्ध। असगत।

अश्लील[1] –वि० [सं०] १ फूहड। भद्दा। २ लज्जाजनक।

अश्लील[2]—संज्ञा पुं० १ साहित्यशास्त्र के अनुसार काव्यादि मे ऐसे शब्दों का प्रयोग जिनमे व्रीडा जुगुप्सा और अमगल की अभिव्यक्ति होती हो। २ गँवारू भाषा।

अश्लीलता—संज्ञा स्त्री०[सं०]फूहडपन। भद्दापन। गदापन। लज्जा का उल्लघन। निर्लज्जता। उ०—यो भक्ति रस भी सन गया अश्लीलता की कीट मे।—भारत०, पृ० १२३।

विशेष—काव्य में यह दोष माना जाता है।

अश्लेष—वि०[सं०] श्लेषरहित। एकनिष्ठ। उ०—द्विस्वभाव अश्लेष मे ब्राह्मण जाति अजेय।—रामच०, पृ० १६०।

अश्लेषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राशिचक्र के २७ नक्षत्रों मे से नवाँ नक्षत्र।

विशेष—यह नक्षत्र चक्राकार छ नक्षत्रो से मिलकर बना है। इसका देवता सर्प है और यह केतु ग्रह का जन्म नक्षत्र है। २.अलगाव। विच्छेद। विश्लेष [को०]।

अश्लेषाभव—संज्ञा पुं० [सं०] केतु ग्रह।

अश्वत—वि० संज्ञा पुं० [स अश्वन्त] दे० 'अश्मत' [को०]।

अश्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ घोडा। तुरग। २ सात की सख्या [को०]। ३ पुरुष की एक जाति [को०]।

अश्वकदा—संज्ञा स्त्री० [सं०अश्वकन्दा] अश्वगधा [को०]।

अश्वक—संज्ञा पुं० [सं०] १ छोटा घोडा। २ लावारिस घोडा। ३ घोडा। ४ खराब जाति का घोडा।

अश्वकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का शाल वृक्ष। २ लता शाल। ३ घोडे का कान [को०]। ४. चिकित्सा शास्त्र मे वर्णित एक प्रकार का अस्थिभग [को०]।

अश्वकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्विनी नक्षत्र [को०]।

अश्वकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घुडसाल [को०]।

अश्वकुशल—वि०[सं०] घोडा फेरनेवाला सवार। अश्वशिक्षक[को०]।

अश्वकोविद—वि० [सं०] दे० 'अश्वकुशल'।

अश्वक्रंद—संज्ञा पुं० [सं० अश्वक्रन्द] १ एक प्रकार का पक्षी। २ देवसेना का नायक [को०]।

अश्वक्राता—संज्ञा स्त्री० [सं० अश्वक्रान्ता] सगीत मे एक मूर्छना। इसका स्वरग्राम यो है—ग म प ध नि स रे ग म प ध नि।

अश्वखरज—संज्ञा पुं० [सं०] खच्चर [को०]।

अश्वखुर—संज्ञा पुं० [सं०] १ नख नामक सुगधित द्रव्य। २ घोडे का सुम [को०]।

अश्वखुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपराजिता पौधे का नाम [को०]।

अश्वगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० अश्वगन्धा] असगध।

अश्वगति—संज्ञा पुं० [सं०] १ छद.शास्त्र मे नील वृत्त का दूसरा नाम। यह पाँच भगण और एक गुरु का होता है. जैसे—माँ शिव आनन गौरि जबै मन लाय लखी। लै गई ज्यो सुठि भूषण धारि वितान सखी। २, चित्र काव्य म एक चक्र जिसमें ६४ खाने होते हैं। ३. घोडे की चाल [को०]।

अश्वगोयुग--संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की जोड़ी [को०]।
अश्वगोष्ठ--संज्ञा पुं० [सं०] घुड़साल। अस्तबल [को०]।
अश्वग्रीव--संज्ञा पुं० [सं०] कश्यप ऋषि की दनु नाम्नी स्त्री से उत्पन्न पुत्र। हयग्रीव।
अश्वघ्न--संज्ञा पुं० [सं०] कनेर का फूल तथा उसका पेड़ [को०]।
अश्वचक्र--संज्ञा पुं० [सं०] १ घोड़े के चिह्नों से शुभाशुभ का विचार। २ घोड़ों का समूह।
अश्वचिकित्सा--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शास्त्र जिसमें पशुओं के रोगों तथा उनकी चिकित्सा का विवरण होता है [को०]।
अश्वतर--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अश्वतरी] १ एक प्रकार का सर्प। नागराज। २. खच्चर। ३ बछड़ा [को०]। ४ गंधर्वों की एक जाति [को०]।
अश्वत्थ--संज्ञा पुं० [सं०] १. पीपल। २ पीपल का गोदा [को०]। ३ सूर्य का एक नाम [को०]। ४ पीपल में फल आने का काल [को०]। ५. अश्विनी नक्षत्र [को०]।
अश्वत्थक--संज्ञा पुं० [सं०] १ पीपल में फल लगने के समय अदा किया जानेवाला ऋण। २ पीपल वृक्ष।
अश्वत्था--संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन की पूर्णिमा [को०]।
अश्वत्थाम--वि० [सं०] घोड़े के समान शक्तिवाला [को०]।
अश्वत्थामा--संज्ञा पुं० [सं० अश्वत्थामन्] १ द्रोणाचार्य के पुत्र। २ मालवा के राजा इंद्रवर्मा के एक हाथी का नाम जो महाभारत के युद्ध में मारा गया था।
अश्वत्थी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ छोटा पीपल। २ पीपल की तरह लगनेवाला एक छोटा वृक्ष [को०]।
अश्वदंष्ट्रा--संज्ञा स्त्री० [सं०] गोखरू।
अश्वदूत--संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार दूत [को०]।
अश्वनाय--संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े का चरवाहा [को०]।
अश्वनिवंधिक--संज्ञा पुं० [सं० अश्वनिबन्धिक] अश्वपाल। साईस [को०]।
अश्वपति--संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार। २ रिसालदार। ३ घोड़ों का मालिक। ४. भरत जी के मामा। ५ केकय देश के राजकुमारों की उपाधि।
अश्वपाल--संज्ञा पुं० [सं०] साईस।
अश्वपुच्छी--संज्ञा स्त्री० [सं०] माषपर्णी नामक पौधा [को०]।
अश्वबंध--संज्ञा पुं० [सं० अश्वबन्ध] चित्रकाव्य में वह पद्य जो घोड़े के चित्र में इस रीति से लिखा हो कि उसके अक्षरों से अंग प्रत्यंग तथा साजों और आभूषणों के रूप निकल आएँ।
अश्वबला--संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी [को०]।
अश्वबाल--संज्ञा पुं० [सं०] कास का पौधा।
अश्वभा--संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली [को०]।
अश्वमार--संज्ञा पुं० [सं०] कनेर का पेड़।
अश्वमारक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्वमार' [को०]।
अश्वमाल--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप [को०]।
अश्वमुख--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अश्वमुखी] किन्नर।

विशेष--कहते हैं, किन्नरों का मुँह घोड़ों के समान होता है।
अश्वमेद(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अश्वमेध] दे० 'अश्वमेध'। उ०--अश्वमेद राजसू। लंत्र गोपग मेद वर।--पृ० रा०, ५५।४०।
अश्वमेध--संज्ञा पुं० [सं०] १ एक बड़ा यज्ञ।
विशेष--इसमें घोड़े के मस्तक पर जयपत्र बाँधकर उसे भूमंडल में घूमने के लिये छोड़ देते थे। उसकी रक्षा के निमित्त किसी वीर पुरुष को नियुक्त कर देते थे जो सेना लेकर उसके पीछे पीछे चलता था। जिस किसी राजा को अश्वमेध करनेवाले का आधिपत्य स्वीकृत नहीं होता था, वह उस घोड़े को बाँध लेता और सेना से युद्ध करता था। अश्व बाँधनेवाले को पराजित कर तथा घोड़े को छुड़ाकर सेना आगे बढ़ती थी। इस प्रकार वह घोड़ा संपूर्ण भूमंडल में घूमकर लौटता था, तब उसको मारकर उसकी चर्बी से हवन किया जाता था। यह यज्ञ केवल बड़े प्रतापी राजा करते थे। यह यज्ञ साल भर में होता था।
२ एक प्रकार की तान जिसमें षड्ज स्वर को छोड़कर शेष छह स्वर लगते है।
अश्वमेधिक[1]--वि० [सं०] अश्वमेध संबंधी [को०]।
अश्वमेधिक[2]--संज्ञा पुं० १ अश्वमेध के योग्य घोड़ा। २ महाभारत का चौदहवाँ पर्व [को०]।
अश्वमेधीय--वि० [सं०] दे० 'अश्वमेधिक' [को०]।
अश्वयुज[1]--वि० [सं०] १ जिसमें घोड़ा जुता हो। २ जो अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न हो [को०]।
अश्वयुज्[2]--संज्ञा स्त्री० १ अश्विनी नक्षत्र। २ आश्विन महीना। ३ रथ जिसमें घोड़े जुते हों [को०]।
अश्वयूप--संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध के घोड़े को बाँधने का खूँटा [को०]।
अश्वयोग--वि० [सं०] घोड़े की तरह तेजी से पहुँचनेवाला [को०]।
अश्वरक्ष--संज्ञा पुं० [सं०] अश्वपाल [को०]।
अश्वरिपु--संज्ञा पुं० [सं०] भैंस [को०]।
अश्वरोधक--संज्ञा पुं० [सं०] कनेर।

अश्वल--संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रकार ऋषि का नाम।
अश्वलक्षण--संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े के शुभाशुभ लक्षणों का विचार [को०]।
अश्वललित--संज्ञा पुं० [सं०] अद्रितनया नामक वर्णवृत्त।
अश्वलाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का साँप [को०]।
अश्ववक्त्र--संज्ञा पुं० [सं०] किन्नर [को०]।
अश्ववदन--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम।
अश्ववह--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्ववाह' [को०]।
अश्ववार, अश्ववारक--संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार [को०]।
अश्ववाह, अश्ववाहक--संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार [को०]।
अश्वविद्[1]--वि० [सं०] १ घोड़ों का शिक्षक। २ घोड़े के लक्षणों को जाननेवाला [को०]।
अश्वविद्[2]--संज्ञा पुं० १. घुड़सवार। २. राजा नल [को०]।

अश्ववैद्य—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ों का वैद्य [को०]।

अश्वव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें कवचधारी (लोहे की पाखरवाले) घोड़े सामने और साधारण घोड़े पक्ष और कक्ष में हों।

अश्वशंकु—संज्ञा पुं० [सं० अश्वशङ्कु] घोड़ा बाँधने का खूँटा [को०]।

अश्वशक—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की लीद [को०]।

अश्वशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ घोड़े रहें। घुड़साल। अस्तबल। तवेला।

अश्वशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें घोड़ों के शुभाशुभ लक्षणों एवं उनके रोगादि का वर्णन रहता है। शालिहोत्र [को०]।

अश्वसाद—संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार [को०]।

अश्वसादी—संज्ञा पुं० [सं० अश्वसादिन्] दे० 'अश्वसाद' [को०]।

अश्वसूक्त—संज्ञा पुं० [सं०] वेद का एक सूक्त जिसमें घोड़ों का वर्णन है।

अश्वस्तन[1]—वि० [सं०] वर्तमान दिवस संबंधी। केवल आज के दिन से संबंध रखनेवाला।

अश्वस्तन[2]—संज्ञा पुं० [वि० अश्वस्तनिक] वह गृहस्थ जिसे केवल एक दिन के खाने का ठिकाना हो। कल के लिये कुछ न रखनेवाला गृहस्थ।

अश्वस्तनिक—वि० [सं०] १. कल के लिये कुछ न रखनेवाला। २. आगे के लिये संचय न करनेवाला।

विशेष—यह एक प्रकार की ऋषिवृत्ति है।

अश्वस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की पीठ पर रखा जानेवाला कपड़ा [को०]।

अश्वहृदय—संज्ञा पुं० [सं०] १ घोड़े का चिकित्साशास्त्र। शालिहोत्र। घुड़सवार [को०]।

अश्वांतक—संज्ञा पुं० [सं० अश्वान्तक] कनेर [को०]।

अश्वाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवसर्षप नामक पौधा। २ घोड़े की आँख [को०]।

अश्वाजनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाबुक। कशा [को०]।

अश्वाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार सेना का अध्यक्ष या नायक[को०]।

अश्वानीक—संज्ञा स्त्री० [सं०] घुड़सवार सेना। रिसाला [को०]।

अश्वायुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्वशास्त्र' [को०]।

अश्वारि—संज्ञा पुं० [सं०] १ भैंसा। महिष। २ करवीर। कनेर।

अश्वारूढ—वि० [सं० अश्वारूढ] जो घोड़े पर सवार हो [को०]।

अश्वारोह[1]—वि० [सं०] अश्वारूढ [को०]।

अश्वारोह[2]—संज्ञा पुं० १ घुड़सवार। २ घुड़सवारी [को०]।

अश्वारोहक—संज्ञा पुं० [सं०] असगंध नामक पौधा [को०]।

अश्वारोहण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अश्वारोही] घोड़े की सवारी।

अश्वारोही[1]—वि० [सं० अश्वारोहिन्] घोड़े की सवारी करनेवाला।

अश्वारोही[2]—संज्ञा पुं० घुड़सवार।

अश्वावतारी—संज्ञा पुं० [सं० अश्वावतारिन्] ३१ मात्राओं के छंदों की संज्ञा। वीर छंद इसी के अंतर्गत है।

अश्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ घोड़ी। २. २७ नक्षत्रों में से पहला नक्षत्र अश्वयुक्। दाक्षायणी। ३. जटामासी। बालछड़।

विशेष—तीन नक्षत्रों के मिलने से इसका रूप घोड़े के मुख के सदृश होता है।

अश्विनीकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] त्वष्टा की पुत्री प्रभा नाम की स्त्री से उत्पन्न सूर्य के दो पुत्र।

विशेष—एक बार सूर्य के तेज को सहन करने में असमर्थ होकर प्रभा अपनी दो संतति यम और यमुना तथा अपनी छाया छोड़कर चुपके से भाग गई और घोड़ी बनकर तप करने लगी। इस छाया से भी सूर्य को दो संतति हुई। शनि और ताप्ती। जब छाया ने प्रभा की संतति का अनादर आरंभ किया, तब यह बात खुल गई कि प्रभा तो भाग गई है। इसके उपरांत सूर्य घोड़ा बनकर प्रभा के पास, जो अश्विनी के रूप में थी, गए। इस संयोग से दोनों अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई जो देवताओं के वैद्य हैं।

पर्या०—स्वर्वैद्य। दस्र। नासत्य। आश्विनेय। नासिक्य। गदागद। पुष्करस्रज। अश्विनीपुत्र। अश्विनीसुत।

अश्वियुगल—संज्ञा पुं० [सं०] दो कल्पित देवता जो प्रभात के समय घोड़ों या पक्षियों से जुते हुए सोने के रथ पर चढ़कर आकाश में निकलते हैं।

विशेष—कहते हैं कि यह लोगों को सुख सौभाग्य प्रदान करते हैं और उनके दुख तथा दरिद्रता आदि हरते हैं।—कहीं कहीं यही अश्विनीकुमार भी माने गए हैं। कहते हैं कि दधीचि से मधु-विद्या सीखने के लिये इन्होंने उनका सिर काटकर अलग रख दिया था, और उनके धड़पर घोड़े का सिर रख दिया था, और तब उनसे मधुविद्या सीखी थी। वि० दे० 'दधीचि'।

अश्वियुज—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष् में एक युग अर्थात् पाँच वर्ष का काल जिसमें क्रम से पिंगल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र और दुर्मति संवत्सर होते हैं।

अश्वीय[1]—वि० [सं०] अश्वसंबंधी [को०]।

अश्वीय[2]—संज्ञा पुं० घोड़ों का समूह [को०]।

अषडक्षीण[1]—वि० [सं०] जिसे छह आँखों ने न देखा हो अर्थात् दो ही व्यक्तियों को ज्ञात अथवा दृष्ट [को०]।

अषडक्षीण[2]—संज्ञा पुं० रहस्य। राज। [को०]।

अषाढ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अषाढ] वह महीना जिसमें पूर्णिमा पूर्वाषाढ में पड़े। असाढ। अषाढ।

अषाढक—संज्ञा पुं० [सं० अषाढक] अषाढ का महीना [को०]।

अष्टग(पु)—वि० [सं० अष्टङ्ग] दे० 'अष्टांग'। उ०—कहिय नृपति अष्टग सुधि। रजि राज फल गान।—पृ० रा०, २५।१३।

अष्टगी(पु)—वि० [सं० अष्टाङ्गी] दे० 'अष्टांगी'।

अष्ट[1]—वि० [सं० अष्टन्] आठ।

अष्ट[2]—संज्ञा पुं० आठ की संख्या।

अष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आठ वस्तुओं का संग्रह, जैसे—हिंग्वष्टक। २ वह स्तोत्र या काव्य जिसमें आठ श्लोक हों, जैसे—रुद्राष्टक, गंगाष्टक। ३ वह ग्रंथावयव जिसमें आठ अध्याय आदि हों। ४. मनु के अनुसार एक गण जिसमें पैशुन्य, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थदूषण, वाग्दंड और पारुष्य ये आठ अवगुण हैं। ५. पाणिनिकृत व्याकरण। अष्टाध्यायी। ६ आठ ऋषियों का एक गण।

अष्टकमल—संज्ञा पुं० [सं०] हठयोग के अनुसार मूलाधार से ललाट तक के आठ कमल जो भिन्न भिन्न स्थानों मे माने गए हैं—मूलाधार, विशुद्ध, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान, अनाहत (अनहद) आज्ञाचक्र, सहस्रारचक्र और सुरति कमल।

अष्टकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा [को०]।

विशेष—चार मुख होने के कारण ब्रह्मा के आठ कान हैं, अत इन्हे अष्टकर्ण कहा जाता है।

अष्टकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जिसके कान पर आठ की संख्या (८) का चिह्न अंकित हो। उ०—ऋग्वेद मे ऋषि नाभाने दिष्ठ हजार अष्टकर्णी गौएँ दान करने के कारण राजा सावर्णि की स्तुति करता है।—मा० प्रा० लि०, पृ० ११।

अष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अष्टमी। २ अगहन, पूस, माघ और फागुन महीने की कृष्ण अष्टमी। इस दिन श्राद्ध करने से पितरो की तृप्ति होती है। ३ अष्टमी के दिन का कृत्य। अष्टका याम। ४ अष्टका मे कृत्य श्राद्ध।

अष्टकुल—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सर्पो के आठ कुल, यथा—शेष, वासुकि, कबल कर्कोटिक, पद्म, महापद्म, शख और कुलिक। किसी किसी के मत से—तक्षक, महापद्म, शख, कुलिक, कबल, अश्वतर, धृतराष्ट्र और बलाहक हैं।

अष्टकुलाचल—संज्ञा पुं० [सं०] आठ प्रमुख पर्वत—नील, निषध, विंध्याचल, माल्यवान्, मलय, गंधमादन, हेमकूट और हिमालय [को०]।

अष्टकुली—वि० [सं०] साँपो के आठ कुलो मे से किसी मे उत्पन्न।

अष्टकृष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वल्लभ कुल के मतानुसार आठ कृष्ण, यथा—श्रीनाथ, नवनीतप्रिय, मथुरानाथ, विट्ठलनाथ, द्वारकानाथ, गोकुलनाथ, गोकुलचद्रमा और मदनमोहन।

अष्टकोण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह क्षेत्र जिसमे आठ कोण हो। २ तत्र के अनुसार एक यत्र। ३ एक प्रकार का कुडल जिसमे आठ कोण होते हैं।

अष्टकोण[2]—वि० आठ कोनेवाला। जिसमे आठ कोने हो।

अष्टगध—संज्ञा पुं० [सं० अष्टगन्ध] आठ सुगधित द्रव्यो का समाहार। दे० 'गधाष्टक'।

अष्टछाप—संज्ञा पुं० [सं० अष्ट+हिं० छाप] वल्लभ सप्रदाय के प्रसिद्ध अष्ठ कवियो का वर्ग, जिनके नाम हैं—सूरदास, कुभनदास, परमानददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास और नददास।

अष्टताल—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के आठ प्रकार—आड, दोज, ज्योति, चद्रशेखर गजन, पचताल, रूपक और समताल।

अष्टदल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आठ पत्तो का कमल।

अष्टदल[2]—वि० १ आठ दल का। २ आठ कानो का। आठ पहल का।

अष्टद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] आठ द्रव्य जो हवन के काम आते हैं—अश्वत्थ, गूलर, पाकर, वट, तिल, सरसो, पायस और घी।

अष्टधाती—वि० [सं० अष्ट+धातु] १ अष्टधातुओ से बना हुआ। २ दृढ। मजबूत। ३ उत्पाती। उपद्रवी। ४ जिसके मातापिता का ठीक ठिकाना न हो। वर्णसंकर।

अष्टधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] आठ धातुएँ—सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, जस्ता, सीसा, लोहा और पारा।

अष्टनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आठ नायिकाएँ।

विशेष—पुराणानुसार आठ प्रधान शक्तियाँ—उग्रचड, प्रचडा, चडोग्रा, चडनायिका, चामुडा, चडा, अतिचडा और चडवती। कृष्ण की आठ पटरानियाँ—रुक्मिणी, सत्यभामा, जाववती, कालिंदी, मित्रवृदा, नाग्नजिती, भद्रा और लक्ष्मणा। इद्र की आठ नायिकाएँ—उर्वशी, मेनका, रभा, पूर्वचित्ती, स्वयप्रभा, मिश्रकेशी, जनवल्लभा और घृताची (तिलोत्तमा)। साहित्य मे वर्णित आठ नायिकाएँ—वासकसज्जा, विरहोत्कठिता, स्वाधीनभर्तृका, कलहातरिता, खडिता, विप्रलब्धा, प्रोषितभर्तृका और अभिसारिका कही गई हैं।

अष्टपद—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अष्टपाद'।

अष्टपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आठ पदो का एक समूह। एक प्रकार का गीत जिसमे आठ पद होते हैं। २ बेला नाम का फूल या उसका पौधा।

अष्टपाद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरभ। शार्दूल। २ लूता। मकडी। ३. आठ अगोवाला एक जतु। ४ अर्गला। सिटकिनी [को०]। ५ कैलास पर्वत [को०]। ६ सोना। स्वर्ण। ७ कपडे की बनी बिसात [को०]। ८ एक कीट [को०]। ९ जगली चमेली [को०]।

अष्टपाद[2]—वि० आठ पैरोवाला [को०]।

अष्टप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शुक्रनीति के अनुसार राज्य के ये आठ प्रधान कर्मचारी—सुमत्र, पडित, मत्री, प्रधान अमात्य, प्राड्विवाक और प्रतिनिधि।

विशेष—महाभारत, मनुस्मृति आदि मे पहले सात ही अंग कहे गए हैं।

२. राज्य के आठ अग—राजा, राष्ट्र, अमात्य, दुर्ग, सेना, कोष, सामत तथा प्रजा। ३ शरीर की आठ प्रकृति—क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर, मन, बुद्धि, और अहकार।

अष्टप्रधान—संज्ञा पुं० [सं०] राज्य के आठ प्रकार के प्रधान जैसे—वैद्य, उपाध्याय, सचिव, मत्री, प्रतिनिधि, राजाध्यक्ष, प्रधान और अमात्य। शिवाजी के अष्टप्रधान ये थे—प्रधान, अमात्य, सचिव, मत्री, लिपिक या लेखक, न्यायाधीश, सेनापति, और न्यायशास्त्री [को०]।

अष्टभुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

अष्टभुजी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अष्टभुजा'।

अष्टभैरव—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के आठ गण जिनके नाम है, असिताग, सहार, रुरु, काल, क्रोध, ताम्रचूड, चद्रचूड तथा महाभैरव [को०]।

अष्टमगल—संज्ञा पुं० [सं० अष्टमङ्गल] १ आठ मगलद्रव्य या पदार्थ—सिंह, वृष, नाग, कलश, पखा, वैजयती, भेरी और दीपक। किसी किसी के मत से—ब्राह्मण, गो, अग्नि, सुवर्ण, घी, सूर्य, जल और राजा हैं। २ एक घृत जो वच, कुट, ब्राह्मी, सरसो, पीपल, सारिवा, सेंधा नमक और घी इन आठ ओषधियो से बनाया जाता है।

अष्टम—वि० पुं० [सं०] आठवाँ । उ०—सप्तम चेतनता लहै सोइ । अष्टम मास सँपूरन होइ ।—सूर० १।३१४ ।

अष्टमान—संज्ञा पुं० [सं०] आठ मुट्ठी का एक परिमाण अर्थात् एक कुडव ।

अष्टमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आधे पल या दो कर्ष का परिमाण । २ चार तोले का एक परिमाण ।

अष्टमी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शुक्ल और कृष्ण पक्ष के भेद से आठवीं तिथि । आठें । २ क्षीरकाकोली । पयस्वा ।

अष्टमी[2]—वि० स्त्री० [सं०] आठवीं ।

अष्टमुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक माप । कुंचि [को०] ।

अष्टमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव । उ०—गनिये जु जीव आधार पुनि अष्ट (म) मूर्ति इनतें कहत ।—शकुंतला, पृ० ३ । २ शिव की आठ मूर्तियाँ क्षिति, जल, तेज वायु आकाश, जयमान, अर्क और चंद्र, अथवा सर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव ।

अष्टलोह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अष्टधातु' [को०] ।

अष्टवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि, इन आठ ओषधियों का समाहार । २ ज्योतिष का गोचरविशेष । ३ नीतिशास्त्र के अनुसार किसी राज्य के ऋषि, वस्ती (बाजार आदि), दुर्ग, सेतु, हस्तिबंधन, खान, करग्रहण और सैन्यसंस्थापन का समूह ।

अष्टश्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा [को०] ।

अष्टश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० अष्टश्रवस्] दे० 'अष्टश्रवण' [को०] ।

अष्टसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग द्वारा प्राप्त होनेवाली आठ अलौकिक शक्तियाँ जिनके नाम हैं अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व तथा वशित्व [को०] ।

अष्टांग[1]—संज्ञा पुं० [सं० अष्टाङ्ग] [वि० स्त्री० अष्टांगी] १ योग की क्रिया के आठ भेद—यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि । उ०—भक्ति पथ कौं जो अनुसरै । सो अष्टांग जोग कौं करै ।—सूर० १।३६४ । २ आयुर्वेद के आठ विभाग शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या कौमारभृत्य, अगदतंत्र, रसायनतंत्र और वाजीकरण । ३ शरीर के आठ अंग-जानु, पद, हाथ, उर, शिर, वचन, दृष्टि, बुद्धि, जिनसे प्रणाम करने का विधान है । ४ अर्घविशेष जो सूर्य को दिया जाता है । इसमें जल, क्षीर कुशाग्र, घी, मधु, दही, रक्त चंदन और करवीर होते हैं ।

अष्टांग[2]—वि० १ आठ अवयववाला । २ अठपहल ।

अष्टांगमार्ग—संज्ञा पुं० [सं० अष्टाङ्गमार्ग] बुद्ध द्वारा प्रतिपादित दुःख से त्राण दिलानेवाला आठ सूत्रों का मार्ग—सम्यग्दृष्टि सम्यक्संकल्प, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्म, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति, सम्यक्समाधि [को०] ।

अष्टांगयोग—संज्ञा पुं० [सं० अष्टांगयोग] दे० 'अष्टांग[1]' [को०] ।

अष्टांगायुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं० अष्टाङ्गायुर्वेद] दे० 'अष्टांग[2]' [को०] ।

अष्टांगी—वि० [सं० अष्टाङ्गिन्] आठ अंगवाला ।

अष्टाकपाल—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी के आठ बरतनों या खप्परों में पकाया हुआ पुरोडाश । २ वह यज्ञ जिसमें अष्टाकपाल पुरोडाश काम में लाया जाय ।

अष्टाकुल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अष्टकुल' । उ०—पारथ सीस सोधि अष्टाकुल, तव जदुनंदन ल्याये ।—सूर० १।२६ ।

अष्टाक्षर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ आठ अक्षरों का मंत्र । २ विष्णु भगवान् का मंत्र—'ॐ नमो नारायण' । ३ वल्लभ कुल के मतवालों के मत से 'श्रीकृष्ण शरण मम' ।

अष्टाक्षर[2]—वि० आठ अक्षरों का । आठ अक्षरवाला ।

अष्टादस(पु)—वि० [सं० अष्टादश] अठारह । उ०-रोमराजि अष्टादस भारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ।—मानस,६।१५।

अष्टाध्यायी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाणिनीय व्याकरण का प्रधान ग्रंथ जिसमें आठ अध्याय हैं ।

अष्टापद—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोना । २ शरभ । उ० -बर विद्या मी आनंद दानि । युत अष्टापद मनु शिवा मानि ।-राम च० पृ०, १०० । ३ लूता । मकड़ी । ४ कृमि । ५ कैलाश । ६ धतूरा ।

अष्टावक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक ऋषि । २ वह मनुष्य जिसके हाथ पैर आदि कई अंग टेढ़े मेढ़े हों ।

अष्टाश्रि[1]—वि० [सं०] आठ कोनेवाला । अठकोना ।

अष्टाश्रि[2]—संज्ञा पुं० वह घर जिसमें आठ कोन हों ।

अष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सोलह अक्षर की एक वृत्ति जिसके चंचला, चकिता, पंचचामर आदि बहुत भेद हैं । २ सो ह की संख्या । ३ खेलने की बिसात [को०] । ४ बीज [को०] । ५ फल का गूदा । गिरी [को०] ।

अष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीपक राग की एक रागिनी ।

अष्ठि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गुठली । २ बीज [को०] ।

अष्ठीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक रोग जिसमें मूत्राशय में अफरा होने से पेशाब नहीं होता और गाँठ पड़ जाती है जिसमें मलावरोध होता है और वस्ति में पीड़ा होती है । २ पत्थर की गोली । ३ गूदा । गिरी [को०] । ४ बीजान्न [को०] ।

अष्ठीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का घाव । २ पत्थर का टुकड़ा [को०] ।

असक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अशक' । उ०—डहकि डहकि परिचेहु सब काहू । अति असक मन सदा उछाहू ।—मानस, १।१३७ ।

असका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आशङ्का] संदेह । शुबहा । शक । उ०—अस विचारि सब तजहु असका । सबहि ...हिं सकरु अकावा । —मानस १।७२ ।

असंकुल[1]—वि० [सं० असङ्कुल] जहाँ जनसमूह न हो । खुला हुआ । प्रशस्त । चौड़ा [को०] ।

असंकुल[2]—संज्ञा पुं० १ राजमार्ग । चौड़ी सड़क [को०] ।

असंक्रांत[1]—वि० [सं० असङ्क्रान्त] जो स्थानांतरित न हुआ हो । जिसका स्थान बदला न हो [को०] ।

असंक्रांत[2]—संज्ञा पुं० अधिक मास । मलमास [को०] ।

असंक्रांतिमास—संज्ञा पुं० [सं० असङ्क्रान्तिमास] बिना संक्रांति का महीना । अधिकमास । मलमास ।

असंख(पु)—वि० [हिं०] दे० 'असंख्य'। उ०—मधुर उठती है तान असंख।—झरना, पृ० ४४।

असंख्य—वि० [सं० असङ्ख्य] जिसकी गिनती न हो सके। अनगिनत। बेशुमार। बहुत अधिक। उ०—लहरें व्योम चूमती उठती, चपलाएँ असंख्य नचती।—कामायनी, पृ० १६।

असंख्यक—वि० [सं० असङ्ख्यक] दे० 'असंख्य'। उ०—बल से असंख्यक आर्य यों इसलाम में लाये गये।—भारत०, पृ० ७६।

असंख्यात—वि० [सं० असङ्ख्यात] संख्यातीत। जो गिना न जा सके [को०]।

असंख्येय¹—वि० [सं० असङ्ख्येय] संख्यातीत। अनगिनत [को०]।

असंख्येय²—संज्ञा पुं० १ अत्यंत बड़ी संख्या। २ शिव का एक नाम। ३ विष्णु [को०]।

असंग—वि० [सं० असङ्ग] १ बिना साथ का। अकेला। एकाकी। २ किसी से वास्ता न रखनेवाला। न्यारा। निर्लिप्त। मायारहित। उ०—(क) मन मैं यहै बात ठहराई। होइ असंग भजौं जदुराई।—सूर० (शब्द०)। (ख) भस्म अंग मर्दन अनंग, संतत असंग हर। सीस गंग, गिरिजा अधंग, भूषन भुजंगवर।—तुलसी (शब्द०)। ३ जुदा। अलग। पृथक्। उ०—चंद्रकला चर्चे परी, असंग गंग ह्वै परी, भुजंगी भाजि औ गरी, बरगी के बरत ही।—देव (शब्द०)।

असंग²—संज्ञा १.पुं० पुरुष। आत्मा। २.संपर्काभाव। निर्लिप्तता [को०]।

असंगचारी—वि० [सं० असङ्गचारिन्] आजादी से घूमनेवाला [को०]।

असंगत—वि० पुं०[सं० असङ्गत] १ अयुक्त। बेठीक। २ अनुचित। उ०—भ्रम मोयौ मन भयौ पखावज चलत असंगत चाल।—सूर० १। १५३। ३ असमान। बेमेल [को०]। ४. जो प्रसंगविरुद्ध हो। अप्रासंगिक [को०]। ५ असंस्कृत। गँवार। उजड्ड [को०]।

असंगति—संज्ञा स्त्री० [सं० असङ्गति] १. असंबंध। बेसिलसिलापन। २ अनुपयुक्तता। नामुनासिबत। ३.एक काव्यालंकार जिसमें कार्यकारण के बीच देश-काल-संबंधी अन्यथात्व दिखाया जाय, अर्थात् सृष्टिनियम के विरुद्ध कारण कहीं बताया जाय और कार्य कहीं; किसी नियत समय में होनेवाले कार्य का किसी दूसरे समय में होना दिखाया जाय। उ०—'हरत कुसुम छवि कामिनी, निज अंगन सुकुमार। मार करत यह कुसुमसर, युवकन कहा विचार।' यहाँ फूलों की शोभा हरण करने का दोष स्त्रियों ने किया, उसका दंड उनको न देकर कामदेव ने युवा पुरुषों को दिया।

विशेष—कुवलयानंद में और दो प्रकार से असंगति का होना माना गया है। एक तो एक स्थान पर होनेवाले कार्य के दूसरे स्थान पर होने से, जैसे—'तेरे अँग की अंगना, तिलक लगायो पानि'। दूसरे, किसी के उस कार्य के विरुद्ध कार्य करने से जिसके लिये वह उद्यत हुआ हो, जैसे—'मोह मिटावन हेतु प्रभु, लीन्हों तुम अवतार। उलटो मोहन रूप धरि, मोह्यो सब ब्रजनार।'

असंगतिप्रदर्शन—संज्ञा पुं० [सं० असङ्गतिप्रदर्शन] १. तर्क के क्रम में अंत में ऐसी बात कह देना या ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचना जो मूल प्रतिपाद्य का विरोधी हो। २.दोष दिखाना।

असंगम¹—संज्ञा पुं० [सं० असङ्गम] १.संग का अभाव। २ अनासक्ति। ३ बेमेलपन [को०]।

असंगम²—वि० १ अलग। २ बेमेल [को०]।

असंगी—वि० [सं० असङ्गिन्] १ बिना लगाव का। असंबद्ध। २. संसार से विरक्त [को०]।

असंचय¹—संज्ञा पुं० [सं० असञ्चय] एकत्र करने की कमी। संचय का अभाव [को०]।

यौ०—असंचयशील = संचय करने की जिसकी आदत न हो या जो संचय न करता हो।

असंचय²—वि० आवश्यक वस्तुओं से हीन। संभाररहित [को०]।

असंचयिक—वि० [सं० असञ्चयिक] जो संचय न करे [को०]।

असंचयी—वि० [सं० असञ्चयिन्] संचय न करनेवाला [को०]।

असंचर—संज्ञा पुं० [असञ्चर] वह मार्ग जिसपर सब लोग नहीं चलते। सर्वसाधारण के लिये निषिद्ध पथ अथवा स्थान [को०]।

असंजोग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० असंयोग] संबंध या संपर्क का अभाव। असंबंध। उ०—असंजोग ते कहूँ कहूँ एक अर्थ कविराई भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ७।

असंज्ञ—वि० [सं०] संज्ञारहित। चेतनारहित [को०]।

असंज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ संज्ञाहीनता। २ सामंजस्य का अभाव [को०]।

असंज्वर—वि० [सं०] क्रोध, शोक, द्वेष, रोग, आदि विकारों से रहित [को०]।

असंत—वि०[सं० असन्त] बुरा। खल। दुष्ट। उ०—संत—असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई।—मानस, ७।३७।

असंतति—वि० [सं० असन्तति] जिसे संतति या बाल बच्चे न हो। निःसंतान।

असंतान—वि० [सं० असन्तान] संतानविहीन। जिसे पुत्र या पुत्री न हो [को०]।

असंतुष्ट—वि [सं० असन्तुष्ट] १ जो संतुष्ट न हो। २ अतृप्त। जिसका मन न भरा हो। जो अघाया न हो। ३. अप्रसन्न।

असंतुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० असन्तुष्टि] १.संतोष का अभाव। २. अतृप्ति। ३ अप्रसन्नता।

असंतोष—संज्ञा पुं० [सं० असन्तोष] [वि० असंतोषी] १ संतोष का अभाव। अधैर्य। २.अतृप्ति। ३ अप्रसन्नता।

असंतोषी—वि० [सं० असन्तोषिन्] [वि० स्त्री० असन्तोषिणी] जिसे संतोष न हो। जिसका मन न भरे। जो तृप्त न हो।

असंदिग्ध—वि०[सं० असन्दिग्ध]१ संदेह से परे। जिनके विषय में संदेह या आशंका की गुंजाइश न हो। २ निश्चित [को०]।

असंध—वि० [सं० असन्ध] १.जिसमें जोड़ न हो। २.असीमित। ३ जिसके खंड या टुकड़े न हुए हो।

असंधि¹—वि० [सं० असन्धि] १.जिनमें आपस में संधि न हुई हो। संधिहीन (शब्द०)। २. अनमिल। स्वतंत्र [को०]।

असंधि²—संज्ञा स्त्री० १ संधि का अभाव। २. मेल या संबंध का अभाव [को०]।

असंपत्ति¹—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्पत्ति] १. दुर्भाग्य । २. सफलता या संपत्ति का अभाव [को०] ।

असंपत्ति²—वि० अभागा । दरिद्र [को०] ।

असंपर्क—संज्ञा पुं० [सं० असम्पर्क] संपर्क न होना । संबंध का अभाव [को०] ।

असंपर्की—वि० [सं० अ+सम्पर्किन्] संपर्क या संबंध न रखनेवाला ।

असंपूर्ण—वि० [सं० असम्पूर्ण] अपूरा । जो पूरा न हो । अपूर्ण [को०] ।

असंपृक्त—वि० [सं० असम्पृक्त] जो किसी के संपर्क में न हो । तटस्थ ।

असंप्रज्ञात—वि० [सं० असम्प्रज्ञात] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो । अपूरे रूप में जाना हुआ ।

असंप्रज्ञातसमाधि—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्प्रज्ञातसमाधि] योग की दो समाधियों में से एक जिसमें न केवल बाहरी विषयों की वृत्ति ज्ञाता और ज्ञेय की भावना भी लुप्त हो जाय । निर्विकल्प समाधि ।

असंबंध¹—संज्ञा पुं० [सं० असम्बन्ध] संबंधहीनता । संबंध का न होना [को०] ।

असंबंध²—वि० असंबद्ध [को०] ।

असंबद्ध—वि० [सं० असम्बद्ध] १ जो मिला न हो । जो मेल में न हो । २ बिलगाव । पृथक् । अलग । ३ अनमिल । बेमेल । बिना सिर पैर का । अंडबंड ।

यौ०—असंबद्धप्रलाप ।

असंबंधातिशयोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्बन्धातिशयोक्ति] अतिशयोक्ति अलंकार का एक भेद जिसमें प्रस्तुत या वर्णनीय की तुलना में अप्रस्तुत या अवर्णनीय को हीन और अयोग्य सिद्ध किया जाता है । जैसे—अति सुंदर मुख लखि तिय तेरो । आदर हम न करत ससि केरो । पद्माकर ग्रं०, पृ० ४० ।

असंबाध—वि० [सं० असम्बाध] १ बिना बाधा का । अभाव । २ मुक्त । ३ जो सँकरा न हो । चौड़ा । विस्तृत । ४ सन्नाटा । ५ जिसमें कोई दुःख या कष्ट न हो । कष्टहीन [को०] ।

असंबाधा—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्बाध] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में मगण, तगण, नगण, सगण और दो गुरु होते हैं । SSS, SSI, III, IIS, SS जैसे—माता नासो गम कठिन भव की पीरा । जाते ह्वै निःशंक भवति तुमरे नीरा । गाऊँ तेरी ही गुण निन दिन बेबाधा । पाऊँ जाते वेगि सुगगति असंबाधा ।

असंभ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'असंभव' । उ०—मुनि आनंदयो चंद निन, मौन मन आरंभ, जप्प जाप हवि होम सब, लग्यो कज्ज असंभ ।—पृ० रा०, ६ । १४६ ।

असंभव¹—वि० [सं० असम्भव] जो संभव न हो । जो हो न सके । अनहोना । नामुमकिन । उ०— जायें वे इस गेह ही से रूठ, यह असंभव, झूठ, निश्चय झूठ ।—साकेत पृ० १७८ ।

असंभव²—संज्ञा पुं० १ एक काव्यालंकार जिसमें यह दिखाया जाय कि जो बात हो गई है उसका होना असंभव था । उ०—किहि जानी जलनिधि मथनि दुस्तर । पीवहिं घटज, उलघहिं बदर । (शब्द०) । २ असंस्तित्व । न होना [को०] । ३ अनहोनी । असंभवता [को०] ।

असंभाव्य- वि० [सं० असम्भाव्य] १ जिसका होना संभव न हो । २. समझ में न आने योग्य [को०] ।

असंभार(पु)—वि० [सं० अ=नहीं+सम्भार] १ जो सँभालने योग्य न हो । जिसका प्रबंध न हो सके । २ अपार । बहुत बड़ा । उ०—विरहा समुद भरा असँभारा । भौंर मेलि जिउ लहरिन्ह मारा ।—जायसी ग्रं०, पृ० ७४ ।

असंभाव(पु)—वि० [सं० असम्भाव्य, प्रा० असम्भव्य] जो संभव न हो । अनहोना । उ०—असंभाव बोलत आई है ढीठ ग्वालिनी प्रात । ऐसो नाहिं अचगरो मेरो कहा बनावति बात ।—सूर०, १०।२६० ।

असंभावना—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्भावना] [वि० असंभावित, असंभाव्य] संभावना का अभाव । अनहोनापन । अप्रत्याशित्व । उ०—भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती दारुन असंभावना बीती ।—मानस, १ । ११९ ।

असंभावनीय—वि० [सं० असम्भावनीय] दे० 'असंभाव्य' ।

असंभावित—वि० [सं० असम्भावित] जिसकी संभावना न रही हो । जिसके होने का अनुमान न किया गया हो । अनुमान-विरुद्ध ।

असंभावी—वि० [सं० असम्भाविन्] जिसका होना असंभव हो । भविष्य में जिसका होना नामुमकिन हो [को०] ।

असंभाव्य—वि० [सं० असम्भाव्य] १ जिसकी संभावना न हो । अनहोना । उ०—क्या असंभाव्य हो यह राघव के लिये धार्य ।—अपरा, पृ० ४४ । २ जो समय में आने योग्य न हो । दुर्बोध [को०] ।

असंभाष्य¹—वि०[सं० असम्भाष्य]१ न कहे जाने योग्य । न उच्चारण करने योग्य । २ जिससे बातचीत करना उचित न हो । बुरा ।

असंभाष्य²—संज्ञा पुं० बुरा वचन । खराब बात ।

असंभूति—संज्ञा स्त्री० [सं० असम्भूति] १ अस्तित्वहीनता । संभूति का अभाव । २ पुनर्जन्म न होना । ३ असंभवता । ४ अनहोनी घटना । ५ अव्याकृति प्रकृति [को०] ।

असंभृत—वि० [सं० असम्भृत] १. अयत्नसिद्ध । सहज । २ जिसका पोषण सम्यक् रीति से न हुआ हो [को०] ।

असंभोज्य—वि० [सं० असम्भोज्य] जिसके साथ बैठकर खाना वर्जित हो [को०] ।

असंभ्रम¹—संज्ञा पुं०[सं० असम्भ्रम]हड़बड़ी या अधीरता का अभाव । धीरता [को०] ।

असंभ्रम²—वि० धीर । स्वस्थचित्त । अनुद्विग्न [को०] ।

असंयत—वि०[सं०]संयमरहित । जो नियमबद्ध न हो । क्रमशून्य ।

असंयम—संज्ञा पुं० [सं०] संयम का अभाव । इंद्रियों को वश में न रखना ।

असंयमी—वि० [सं० असंयमिन्] जो संयमी न हो ।

असंयुक्त—वि० [सं०] न मिला हुआ । विभक्त । अलग [को०] ।

असंयुत¹—वि० [सं०] दे० 'असंयुक्त' ।

असंयुत²—संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम [को०] ।

असंयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ अवसर या योग का अभाव । २ सम्मिलन का अभाव [को०] ।

असरोध—संज्ञा पुं० [सं०] हानि का न होना। अक्षति [को०]।

असलक्ष्य—वि० [सं०] जिसे लक्षित न किया जा सके। दुर्बोध्य [को०]।

असलक्ष्यक्रमव्यंग्य—संज्ञा पुं० [सं० असलक्ष्यक्रमव्यंग्य] विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि का एक भेद जिसमे रसरूप लक्ष्य तक पहुँचने के क्रम का पता नही चलता, यद्यपि क्रम का निर्वाह वहाँ भी होता है, इसे रसध्वनि भी कहते हैं।

असवर—वि० [सं०] छिपाने के अयोग्य। अनाच्छादित [को०]।

असवृत¹—वि० [सं०] अनाच्छादित। अरक्षित। खुला हुआ [को०]।

असवृत²—संज्ञा पुं० [सं०] नरकविशेष [को०]।

असवैधानिक—वि० [सं०] सविधान के प्रतिकूल।

असव्यवहित—वि० [सं०] (देशकाल के) व्यवधान से रहित [को०]।

असशय¹—वि० [सं०] १ सशयरहित। निर्विवाद। निश्चित। २. यथार्थ। ठीक।

असशय²—क्रि० वि० निसदेह। बेशक।

असश्रव—वि० [सं०] जहाँ साफ साफ सुनाई न दे [को०]।

असश्लिष्ट¹—वि० [सं०] जो मिला हुआ न हो। पृथक्। अलग [को०]।

असश्लिष्ट²—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

असषित्त(पु)—वि० [सं० असक्षिप्त प्रा० असखित्त] विस्तृत। प्रचुर। विपुल। उ०—गज बाज लूटे असषित्त माल। लियौ सग्रहे अस्सपत्ती भुग्राल।—पृ० रा०, ५७।२०६।

असंसक्त—वि० [सं०] १ जो सनक्त न हो। आसक्तिरहित। अनासक्त। २ विभक्त [को०]।

असंसक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लगाव का न होना। निर्लिप्तता। २ विरक्ति। सासारिक विषयवासनाओ का त्याग।

असंसारी—वि० [सं० असंसारिन्] १ ससार से अलग रहनेवाला। विरक्त। २ ससार से परे। अलौकिक।

असंसृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] समृति का अभाव। मुक्ति [को०]।

असंसृष्ट—वि० [सं०] ससृष्टि से रहित। सबधहीन। बेमेल [को०]।

असंसै(पु)—वि० [सं० असशय] दे० 'असशय'। उ०—सकै दिखाय मिर कौं जो तेहि दोष असंसै, औ सहर्ष सगुरु के गुन कौं भाषि प्रसंसै।—रत्नाकर, भा० १-पृ० ४७।

असंस्कृत—वि० [सं०] १ बिना सुधारा हुआ। अपरिमार्जित। २ जिसका सस्कार न हुआ हो। व्रात्य। ३ असभ्य [को०]।

यौ०—असंस्कृतालकी = अस्तव्यस्त केशोवाला।

असंस्तुत—वि० [सं०] १ जो प्रसिद्ध न हो। अज्ञात। २ अपरिचित। ३ अद्भुत। ४ बिना लगाव का। बेमेल [को०]।

असंस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यवस्था का अभाव। अक्रम। २. सबधहीनता। ३ अस्थिरता। ४ त्रुटि या अभाव [को०]।

असंस्थित—वि० [सं०] १ अनवस्थित। २ चल। ३ व्यवस्थारहित। ४. असकलित। असगृहीत [को०]।

असंस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रमहीनता। अव्यवस्था [को०]।

असंहत¹—वि० [सं०] जो सहत या मिला हुआ न हो। बिखरा हुआ। [को०]।

असंहत²—संज्ञा पुं० १ पुरुष। आत्मा (साख्य)। २. असहतव्यूह [को०]।

असंहतव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] सेना को छोटे छोटे समूहो मे अलग-अलग खडा करना।

अस(पु)—वि० [सं० ईदृश अथवा एष = यह] १ इस प्रकार का। ऐसा। उ०—अस विवेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहि मनु राता।—मानस १।७२ तुल्य। समान। उ०—जो सुनि सह अस लाग तुम्हारे। काहे न बोलहु बचनु सँभारे।—मानस २।३०।

असक(पु)—वि० [सं० अशक्त, प्रा० असक्क हिं० असक] शक्तिहीन। दुर्बल। असमर्थ उ०—कसि असक घोर कसि द्रव्य दड।—पृ० रा०, ५७।२६५।

असकत(पु)—वि० [सं० अशक्त] दुर्बल। कमजोर। उ०—उर भरम छेह लैणौं अगम असकत उक्ति उक्कती। कर भाव पार गुण सर करण साची नाम सरस्वती।—रा० रू०, पृ० ६।

असकताना—क्रि० अ० [हिं० आलकस] आलस्य मे पडना। आलस्य अनुभव करना, जैसे—'असकताओ मत अभी उठो और जाओ।' (शब्द०)।

असकति—वि० [सं० अशक्ति] शक्तिरहित। अशक्त। उ०—हौं असकति, ज्यो त्यो इतहि सुमन चुनौगी चाहि। मानि विनै मेरी अली, और ठौर तूँ जाहि।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १६।

असकन्ना—संज्ञा पुं० [सं० असि = तलवार + करण = करना] दो अगुल चौडा और जौ भर मोटा लोहे का एक औजार जो रेती के समान खुरदुरा या दानेदार होता है और जिससे म्यान के भीतर की लकडी साफ की जाती है।

असकल—वि० [सं०] जो पूर्ण या समग्र न हो। असमग्र [को०]।

असक्त¹—वि० [सं० अशक्त] शक्तिहीन। उ०—हा आर्यसतति आज कैसी अध और अशक्त है।—भारत०, पृ० १५१।

असक्त²(पु)—वि० [सं० आसक्त] लिप्त। चिपका या सटा हुआ। उ०—विषय असक्त, अमित अघ व्याकुल तबहूँ कछु न सँभारयो।—सूर० १।१०२।

असक्त³—वि० [सं०] १ जो आसक्त न हो। तटस्थ। उदासीन। २. असलग्न। ३. असयुक्त। ४ सासारिक विषयो से विरक्त [को०]।

असक्तारभ—संज्ञा पुं० [सं० असक्तारम्भ] १ वह भूमि जिसमे बहुत थोडे श्रम से अन्न पैदा हो। २ कम मेहनत और थोडी वर्षा से हो जानेवाली फसल।

असक्थ—वि० [सं०] सक्थिहीन। बिना जाँघवाला। [को०]।

असगध—संज्ञा पुं० [सं० अश्वगधा] एक सीधी झाडी जो गर्म प्रदेशो मे होती है और जिसमे छोटे छोटे गोल फल लगते हैं।

पर्या०—अश्वगधा। हयगधा। वाजिगधा। तुरगगधा। तुरगा। वाजिना। हया। वलदा। वातघ्नी। श्यामला। कामरूपिणी। काला। गंधपत्री। वाराहपत्री। वाराहकर्णी। वनजा। हयप्रिया। पीवरा। पलाशपर्णी। कवुका। कवुकाष्ठा। प्रियकारी। अवरोहा। अश्वारोहिका। कुष्ठगन्धिनी। रमायनी। तिक्ता।

विशेष—इसकी मोटी मोटी जड दवा के काम आती है और बाजारो मे बिकती है। यह वात और कफ

का नाश करनेवाला है। इसके बीज से दूध जम जाता है। इससे कई प्रसिद्ध आयुर्वेदीय औषध बनते हैं, जैसे—अश्वगंधापाक, अश्वगंधारिष्ट आदि।

असगर—वि० [अ० असगर] बहुत छोटा।

असगुन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अशकुन] दे० 'असकुन'। उ०—अति गर्व गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते—मानस, ६।७५।

असगुनिया—संज्ञा पुं० [हिं० असगुन+इया (प्रत्य०)] वह मनुष्य जिसका मुँह देखना लोग अशुभ समझते हों। मनहूस।

असगोत्र—वि० [सं०] [स्त्री० असगोत्रा] जो सगोत्री न हो। भिन्न-गोत्रीय [को०]।

असज्जन१—वि० [सं०] बुरा। खल। दुष्ट। अशिष्ट। नीच। उ०—बंदौं संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।—मानस, १।५।

असज्जन२—संज्ञा पुं० बुरा आदमी।

असडिहा१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'असाढ़ा'। उ०—कहीं डोड़हे आने कहीं असडिह जाते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३।

असढ़िया—संज्ञा पुं० [सं० आषाढ़, असाढ़+इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का बड़ा साँप जिसकी पीठ पर कई प्रकार की चित्तियाँ होती हैं। इसका विष बहुत कम होता है।

असगाउ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आपात] गड्ढा। (डिं०)।

असत्१—वि० [सं०] १ मिथ्या। अस्तित्वविहीन। सत्तारहित। २. बुरा। खराब। ३ खोटा। असाधु। असज्जन।

असत्२—संज्ञा पुं० १ अनस्तित्व। २ असत्यता। मिथ्यात्व। ३. बुराई। अहितत्व [को०]।

असत—वि० [सं० असत्] १ असाधु। असज्जन। खोटा। उ०—औघट असत कुचीलनी सौं मिलि, माया जल में तरनी।—सूर० १।२०३। २ अस्तित्वविहीन। सत्तारहित। मिथ्या। उ०—यह शून्य असत या अंधकार, अवकाश पटल का वार पार।—कामायनी, पृ० २५१।

असताथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्टता, पापजीवन [को०]।

असति(पु)—वि० [सं० असत्य] दे० 'असत्य'। उ०—जन कौं पर निंद्या भावै नहीं, पर असति ना भावै।—कबीर ग्रं०, पृ० २०९।

असती—वि० [सं०] जो सती न हो। कुलटा। पुंश्चली। उ०—असतीन को नित मानि। निय त्यो तजै कुलकानि।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० १६१।

असतीत्व—संज्ञा पुं० [सं०] सतीत्व का अभाव। कुलटापन। स्वैराचार [को०]।

असतीन(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आस्तीन'। उ०—पावति बदन हाँसि कर दामन पर निसार। है न करी असतीन पयो चहौ एकाहि बार।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ३५।

असतुति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तुति] प्रार्थना। स्तुति। उ०—असतुति निंदा आसा छाँड़ै तजै मान अभिमान।—कबीर ग्रं०, पृ० १५०।

असत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० असत्कृत] १ अपमान। निरादर।

असत्कृत—वि० [सं०] अनादृत। अपमानित।

असत्कृत्य१—वि० [सं०] १ संमान न करने योग्य। २ अनुचित काम करनेवाला [को०]।

असत्कृत्य२—संज्ञा पुं० अनुचित कर्म। दुष्कृत्य [को०]।

असत्ख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भ्रमात्मक ज्ञान [को०]।

असत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सत्ता का अभाव। अविद्यमानता। अनस्तित्व। नेस्ती। २ असाधुता। असज्जनता।

असत्त्व१—वि० [सं०] १ सत्वहीन। कमजोर। २. जिसमें अच्छाई न हो। ३ पशुविहीन। प्राणहीन [को०]।

असत्त्व२—संज्ञा पुं० १ अनस्तित्व। असत्ता। २ असत्यता। ३ बुराई। खोटाई। ४ अंधकार। अँधेरा [को०]।

असत्पथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुमार्ग। २ कदाचरण। दुराचरण [को०]।

असत्परिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'असत्प्रतिग्रह' [को०]।

असत्पुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुपुत्र। बुरा लड़का। २ पुत्रहीन व्यक्ति [को०]

असत्प्रतिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० असत्प्रतिग्रही] वह दान जिसके लेने का शास्त्र में निषेध हो, जैसे—उभयमुखी गो, प्रेतान्न, चांडालादि का अन्न।

असत्प्रतिग्रही—वि० [सं० असत्प्रतिग्रहिन्] निषिद्ध दान लेनेवाला।

असत्य१—वि० [सं०] १ मिथ्या। झूठ। २ अवास्तविक [को०]। ३ अनिश्चित फलवाला [को०]।

असत्य२—संज्ञा पुं० १ वह व्यक्ति जो झूठा न बोलता हो। २ झुठाई। असत्यता [को०]।

असत्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिथ्यात्व। झुठाई।

असत्यवाद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० असत्यवादी] मिथ्यावाद। झूठ बोलना।

असत्यवादी—वि० [सं० असत्यवादिन्] झूठ बोलनेवाला। झूठा। मिथ्यावादी।

असत्यशील—वि० [सं०] असत्य बोलने के स्वभाव या प्रवृत्तिवाला [को०]।

असत्यसंध—वि० [सं० असत्यसन्ध] जो वादे का पक्का न हो। झूठा [को०]।

असत्यसंनिभ—वि० [सं० असत्यसन्निभ] झूठ या असत्य तुल्य [को०]।

असथन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अस्थि?] १ जायफल।—डिं०।

असथि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अस्थि]। हड्डी। हाड़। उ०—रविल मुकर मोतिन समुझ मल अरु असथि समेत।—स० सप्तक, पृ० १७।

असथिर(पु)—वि० [सं० अस्थिर] चंचल। चलायमान। उ०—रवि रजनीश धरा तथा यह असथिर असथूल।—स० सप्तक, पृ० ३५।

असथूल(पु)—वि० [सं० स्थूल] भौतिक। उ०—रवि रजनीश धरा। तथा यह असथिर असथूल।—स० सप्तक, पृ० १७।

असदाचार१—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० असदाचारी] बुरा आचार। नियम या धर्मविरुद्ध आचरण। अधर्म [को०]।

असदाचार२—वि० बुरे आचारवाला [को०]।

असदृश—वि० [सं०] [वि० स्त्री० असदृशी] १ असमान। अथवा। २ अनुचित। अयोग्य [को०]।

असद्बुद्धि—वि० [सं०] दुर्बुद्धि। बुद्धिहीन [को०]।

असद्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ नव्य न्याय के अनुसार एक दोष जो तर्क के अवयवों के प्रयोग मे होता है। २ अस्तित्व का अभाव। अविद्यमानता [को०]। ३ अनुचित विचार या भावना [को०]। ४ दुष्ट स्वभाव [को०]।

असद्वाद—संज्ञा पुं० [सं०] वह सिद्धांत जो सत्ता को कोई वस्तु ही न माने।

असद्वृत्ति¹—वि० [सं०] दुर्वृत्त। अनाचारी। दुष्ट [को०]।

असद्वृत्ति²—संज्ञा स्त्री० भ्रष्टचार। दुष्टता [को०]।

असद्व्यय—संज्ञा पुं० [सं०] असत् या बुरे कार्यों मे होनेवाला व्यय। खराब कामो मे खर्च। उ०—हुतौ आढ्य तव कियौ असद्व्यय करी न ब्रज-बन-जात्र।—सूर०। १। २१६।

असन¹—संज्ञा पुं० [सं० अशन] भोजन। अशन। उ०—तहँ न असन नहि विप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा।—मानस १। १७४।

असन²—संज्ञा पुं० [सं०] १ फेंकना। क्षेपण २ पीतसाल वृक्ष [को०]।

असनपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मानल या गोकर्णी नामक वृक्ष [को०]।

असना—संज्ञा पुं० [सं० अशना] पीतशाल वृक्ष।

विशेष—यह वृक्ष शाल की तरह का होता है। इसके हीर की लकडी दृढ होती और मकान बनाने के काम आती है तथा भूरापन लिए हुए काले रंग की होती है। इस पेड की पत्तियाँ माघ फागुन मे झड जाती हैं।

असनान—संज्ञा पुं० [सं० स्नान, पु० हिं० अस्नान] नहाना। स्नान। उ०—नृपति सुरसरी कै तट आइ, कियौ असनान मृत्तिका लाइ।—सूर० १। ३४१।

असनि—संज्ञा पुं० [सं० अशनि] १ वज्र। हीरा। उ०—त्रेनी की कंमनि रही कपनि सु कारो साँप, दमन की लसनि असनि दोहियत है।—गंग०, पृ० २४। २ विद्युत्। उ०—चूक न असनि केतु नहिं राहु।—मानस ६। ३१।

असनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अश्विनी] नक्षत्र विशेष।

असन्नद्ध—वि० [सं०] १ बिना शस्त्र का। २ जो तैयार या मुस्तैद न हो। अतत्पर। ३ अहंकारी। अगडी। ३ विद्वत्ता मे अपने को लगानेवाला। पंडितमानी।

असन्निकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] निकट या पास न होना। २ दूर होना [को०]।

असन्निधान—संज्ञा पुं० [सं०] १ दूरता। २ अनुपस्थिति। अभाव। [को०]।

असन्निधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूरी। असमीपता। २ सन्निकटता का अभाव [को०]।

असन्निहित—वि० [सं०] १ जो निकट न हो। २ अनुचित रीति से रखा हुआ [को०]।

असपती—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'असपत्ति'। उ०—प्रटक हीए असपती पाव छित अवसर पायौ।—रा० रू०, पृ० १६।

असपत्ति, असपत्ती—संज्ञा पुं० [सं० अश्वपति] १ घुडसवारों का प्रधान। २ नरपति। राजा। उ०—असपत्ती अजमेरगढ़ रहियौ पाँच दिवस्स।—रा० रू०, पृ० ५३।

असपत्न—वि० [सं०] [वि० स्त्री० असपत्नी] १ बिना पत्नी का। २ शत्रुरहित। शत्रुविहीन। ३ जो शत्रु न हो। अशत्रु [को०]।

असपिंड—वि० [सं० असपिण्ड] [असपिंडा] जो अपने कुल का न हो। अपने कुल की सात पीढ़ियों मे बाहर का। जिससे परपरागत रक्तसंबंध न हो [को०]।

असप्पति†—[हिं० अश्वपति] दे० असपत्ति।—दोउ मयमत सुजाँण सेज दिसि बाहुडइ। जाँणे वरती काज, असपप्पति आहुडइ।—ढोला० दू० ५६६।

असफल—वि० [सं०] १ जो सफल न हो। नाकामयाब। उ०—आह स्वर्ग के अग्रदूत ! तुम असफल हुए विलीन हुए।—कामायनी, पृ० ७। २ व्यर्थ। निष्फल। उ०—तिरस्कृत कर उसको तुम भूल, बनाते हो असफल भवधाम।—कामायनी, पृ० ५३।

असफलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफलता का अभाव। नाकामयाबी [को०]।

असबर्ग—संज्ञा पुं० [फा०] खुरासान मे होनेवाली एक प्रकार की लंबी घास।

विशेष—इसमे पीले या सुनहले फूल लगते हैं। सुखाए हुए फूलों को अफगान व्यापारी मुलतान मे लाते हैं जहाँ वे अकलबेर के साथ रेशम रँगने के काम मे आते हैं।

असबाब—संज्ञा पुं० [अ० 'सबब' का बहुव०] चीज। वस्तु। सामान। प्रयोजनीय पदार्थ। उ०—सब असबाब डाढो मैं न काढो तैं न काढो, जिय की परी सँभार सहन भंडार को।—तुलसी ग्र०, पृ० १७३। २ कारणसमूह [को०]।

असभई—संज्ञा स्त्री० [सं० असभ्यता] अशिष्टता। बेहूदगी।

असभ्य—वि० [सं०] १ सभा या गोष्ठी मे बैठने के नाकाबिल। २ अशिष्ट। गँवार। उजड्ड। उ०—हम मूर्ख और असभ्य थे, उससे विदित होता यही।—भारत०, पृ० ११६।

असभ्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अशिष्टता। गँवारपन।

असमंजस¹—संज्ञा पुं० [सं० असमञ्जस] १ दुविधा। पसोपेश। आगा-पीछा। फेरफार। उ०—बना आइ असमंजस आजू।—मानस १।१६७। २ अड़चन। अडस। कठिनाई। चपकुल्लिस। उ०—तात तुम्हहि मैं जानउँ नीके। करउँ काह असमंजसु जीके।—मानस, २।२६३।

क्रि० प्र०—मे पडना।—होना।

३ सूर्यवंशी राजा सगर का बड़ा पुत्र जो रानी केशी से उत्पन्न था

असमंजस²—वि० १ जो व्यक्त न हो। अस्पष्ट। २ अनुचित। अनुपयुक्त। ३ मूर्खतापूर्ण। बुद्धिविरहित। ४ अयुक्त। असंगत [को०]।

असमत—संज्ञा पुं० [सं० अश्मन्त] चूल्हा।

असम¹—वि० [सं०] १ जो सम या तुल्य न हो। जो बराबर न हो। असम। उ०—जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।—मानस, ३।२६। २ विषम। ताक। उ०—लोचन असम अंग असम चिता की लाइ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २५६। ३ ऊँचानीचा। ऊबडखाबड।

असम२—संज्ञा पुं० एक काव्यालंकार जिसमे उपमान का मिलना असंभव बतलाया जाय, जैसे—प्रति वन वन खोजत मर जैहो। मालति कुसुम नही तुम पैहो ।

असमग्र—वि० [सं०] अधूरा । अशमात्र [को०]।

असमत†—संज्ञा स्त्री०[अ० इस्मत > अस्मत] १ पातिव्रत्य। सतीत्व। पाकदामनी। २ पवित्रता। निष्कलुषता [को०]।

यौ०—असमतफरोश = सतीत्वहीन। कुलटा। असमतफरोशी = व्यभिचार ।

असमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] असमानता। विषमता। असाम्य [को०]।

असमद—वि० [सं०] १ गर्वरहित। २ विरोधशून्य [को०]।

असमन—वि० [सं०] १ विविध रंगोवाला। २ विभिन्न मतोवाला ३ विषम। समताहीन [को०]।

असमनयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'असमनेत्र' [को०]।

असमनेत्र१—वि० [सं०] जिसके नेत्र सम न हो, विषम (ताक) हो।

असमनेत्र२—संज्ञा पुं० त्रिनेत्र। शिव।

असमबाण—संज्ञा पुं० [सं०] विषमबाण। कामदेव [को०]।

असमय१—संज्ञा पुं० [सं०] विपत्ति का समय। बुरा समय। उ०—समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी—मानस, १।१५८ ।

असमय२—क्रि० वि० कुअवसर। बेमौका। बेवक्त। उ०—मैंने असमय नही अचानक तुम्हे जगाया।— साकेत पृ० ४१५।

असमर्थ—वि० [सं०] १ सामर्थ्यहीन। दुर्बल। निर्बल। अशक्त। २ अयोग्य। नाकाबिल। ३ अपेक्षित शक्ति न रखनेवाला [को०]। ४ अभिप्रेतार्थ को व्यक्त करने मे अक्षम [को०]।

असमर्थता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षमता। अयोग्यता [को०]।

असमर्थपद—संज्ञा पुं० [सं०] वह पद जो वाछित अर्थ को प्रकट करने मे समर्थ या क्षम न हो [को०]।

असमर्थसमास—संज्ञा पुं०[सं०] व्याकरण मे ऐसा समास जो अन्वय-दोष से दूषित हो, जैसे—अश्राद्धभोजी, असूर्यपश्य—इन समस्तपद मे अनञ् समास का यथार्थ संबंध पूर्ववर्ती शब्द श्राद्ध और सूर्य के साथ न होकर भोजी और पश्य के साथ है [को०]।

असमवायिकारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ न्यायदर्शन के अनुसार वह कारण जो द्रव्य न हो, गुण या कर्म हो, जैसे—घडे के बनने मे गले और पेंदे का सयोग अर्थात् आकार आदि की भावना जो कुम्हार के मन मे थी अथवा जोडने की क्रिया जो द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुई। २ वैशेषिक के अनुसार वह कारण जिसका कार्य से नित्य संबंध न हो, आकस्मिक हो, जैसे—हाथ के लगाव से मूसल का किसी वस्तु पर आघात करना। यहाँ हाथ का लगाव ऐसा नही है कि जब हाथ का लगाव हो, तभी मूसल किसी वस्तु पर आघात करे। हवा या और किसी कारण से भी मूसल गिर सकता है।

असमवायी—वि० [सं० असमवायिन्] जो समवाय या नित्य संबंध रखनेवाला न हो। अनित्य। आनुषगिक [को०]।

असमवृत्त—संज्ञा पुं०[सं०]संस्कृत काव्य मे प्रयुक्त वे वर्णवृत्त जिनके चारो चरणो मे समान गण न हो। विषमवृत्त [को०]।

असमशर—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। उ०—रमादिक सुरनारि नवीना। सकल असमसर कला प्रबीना।—तुलसी (शब्द०)।

असमस्त—वि० [सं०] १. अपूर्ण। अधूरा। २ अशत। ३. समास-हीन। जो संक्षिप्त न हो। विस्तृत। ४ जो एकत्र न हो। ५ असबद्ध। अलग [को०]।

असमान१—वि०[सं०] जो समान या तुल्य न हो। उ०—हम लोगो ने साधारण नागरिको मे असमान उत्सव मनाने का निश्चय किया था।—इद्र०, पृ० १३०।

असमान२Ⓟ†—संज्ञा पुं०[फा०, आसमान] दे० 'आसमान'। उ०—अचल अवनि असमान दसो दिसि थर थर करै।—हम्मीर०, पृ० १३।

असमानता—संज्ञा स्त्री० [सं०] समानता का अभाव [को०]।

असमाप्त—वि० [सं०] [संज्ञा असमाप्ति] अपूर्ण। अधूरा।

असमाप्ति—संज्ञा स्त्री०[सं०]अपूर्णता। अधूरापन। समाप्ति का अभाव।

असमावर्तक—वि०[सं०]जिसका समावर्तन संस्कार न हुआ हो[को०]।

असमावृत—वि०[सं०]जिसका समावर्तन संस्कार न हुआ हो। जो बिना समावर्तन सस्कार हुए ही गुरुकुल छोड दे।

असमाहार—वि० संज्ञा पुं०[सं०] १ अलगाव। पृथक्ता। २ असाहित्य[को०]।

असमाहित—वि०[सं०]चित्त की एकाग्रता से रहित। अस्थिर चित्त। चचल।

असमीचीन—वि० [सं०] अनुचित। अयुक्त। बेठीक [को०]।

असमूच—वि० [हिं०] दे० 'असमूचा'। उ०—नाना-नय-मुक्ता, विद्याधर प्रतिबिंबित असमूच। बाँधी कनक पास सुक सुंदर, करकबीज गहि चूँच।—सूर०, २।३०६३।

असमूचाⓅ—वि० [सं० अ + समुच्चय] १ जो पूरा या समूचा न हो। अधूरा। २ कुछ। थोडा।

असमेधⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अश्वमेध, प्रा० अस्समेध] दे० 'अश्वमेध'। उ०—दस असमेध जगत जेइ कीन्हा।—जायसी (शब्द०)।

असम्मत१—वि० [सं०] १ जो राजी न हो। विरुद्ध। २ जिसपर किसी की राय न हो।

असम्मत२—संज्ञा पुं० शत्रु [को०]।

असम्मति—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० असम्मत] १ सम्मति का अभाव। २ विरुद्ध मत या राय। ३ अनादर [को०]।

असम्मरⓅ—संज्ञा पुं० [सं०असि] तलवार।—(डिं०)।

असम्मित - वि०[सं०] १ असदृश। अतुल्य। २ बिना मापा हुआ। ३ अपरिमेय [को०]।

असयानाⓅ—वि० [हिं० अ + सयाना] १ भोलाभाला। सीधा सादा। छल या चतुराई से रहित। उ०—बिबुध सनेह सानी बानी असयानी सुनी हँसे राघो जानकी लषन तन हेरि हेरि। तुलसी ग्र०, १६४। २ अनाडी। मूर्ख।

असर—संज्ञा पुं० [अ०] १ प्रभाव। दबाव। २. चिह्न। निशान [को०]। ३ गुण। तासीर [को०]। ४ दिन का चौथा पहर।

यौ०—असर की नमाज।

असरा—संज्ञा पुं० [हिं० असाढ़] आसाम देश के कछारो में उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का चावल।

असरार[1]ⓤ—क्रि० वि०[हिं० सरसर] निरंतर । लगातार । बराबर । उ०—कहो नद कहाँ छांडे कुमार । करुणा करे यसोदा माता नैनन नीर बहै असरार ।—सूर० (शब्द०) ।

असरार[2]—संज्ञा पुं० [अ० 'सिर' या 'सिर्र' का बहुव०] भेद । राज । मर्म [को०] ।

असरु—संज्ञा पुं० [स०] काकडासिंगी नामक पौधा ।

असल[1]—वि० [अ० अस्ल] १ सच्चा । खरा । २. उच्च । श्रेष्ठ । ३ बिना मिलावट का । शुद्ध । खालिस ।

असल[2]—संज्ञा पुं० १ जड । मूल । बुनियाद । तत्व । २ मूलधन । उ०—साँचो सो लिखवार कहावै । काया ग्राम मसाहत करि कै जमा बाधि ठहरावै ।...करि अवारजा प्रेम प्रीति को असल तहाँ खतिआवै ।— सूर० (शब्द०) ।

असल[3]—संज्ञा पुं० [स०] शहद । मधु [को०] ।

असल[4]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लंबा झाड जो मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, दक्षिणभारत और राजपूताने (राजस्थान) मे पाया जाता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ तीन चार इंच लबी होती हैं और डालियाँ नीचे की ओर झुकी होती हैं । इसकी छाल से चमडा सिझाया जाता है और बीज छाल तथा पत्तियो का औपध मे व्यवहार होता है । अकाल पडने पर इसकी पत्तियाँ खाई भी जाती हैं। इसकी टहनियो की दातून बहुत अच्छी होती है । जब जाडे के दिनो मे यह फूलता है तब बहुत सुदर जान पडता है ।

असल[5]—संज्ञा पुं० [स०] १ लोहा नामक धातु । २ शस्त्र छोडने से पूर्व उसे अभिमंत्रित करने का एक मंत्र । ३ शस्त्र [को०] ।

असलियत—संज्ञा स्त्री० [अ० अस्लियत] १ तथ्य । वास्तविकता । २. जड । मूल । बुनियाद । ३ मूलतत्व । सार ।

असली—वि० [अ० अस्ल फा० ई (प्रत्य०)] १. सच्चा । खरा । २ मूल । प्रधान । ३ बिना मिलावट का । शुद्ध ।

असवर्ण—वि० [स०] भिन्न वर्ण या जाति का, जैसे—असवर्ण विवाह ।

असवर्णता—संज्ञा स्त्री० [स०] समान जाति या वर्ण का न होना । उ०—'फिर भी असवर्णता का सामाजिक दोष उसके हृदय को व्यथित किया करता ।—इद्र०, पृ० ९८ ।

असवर्ण विवाह—संज्ञा पुं० [स०] वह विवाह जिसमे वर और वधू विभिन्न वर्णों के हों [को०] ।

असवार†—संज्ञा पुं० [सं० अश्ववार, प्रा० अस्सवार, असवार] दे० 'सवार' । उ०—कबीर घोडा प्रेम का चेतनि चढि असवार कबीर ग्र०, पृ० ७० ।

असवारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० असवार+ई (प्रत्य०)] दे० 'सवारी' । उ०—आने को निज पुण्य भूमि पर लक्ष्मी की असवारी ।—पथिक, पृ० ५ ।

असह[1]—वि० [सं०] १ न सहने योग्य । असह्य । उ०—सीत असह बिष चिन चढै सुख न चढै परजक । बिन मोहन अगहन इनै ऐहू कैसो इक ।—स० सप्तक, पृ० २४३ । २ अधीर ।

असह[2]—संज्ञा पुं० छाती का मध्य भाग अर्थात् हृदय ।—(डिं०) ।

असहकार—संज्ञा पुं०[स०] असहयोग । सहकार की भावना का अभाव । मेल से काम न करना ।

असहन[1]—वि० [स०] जो सहन न करे । असहिष्णु । ईर्ष्यालु ।

असहन[2]—संज्ञा पुं० १ शत्रु । वैरी । २ अधीरता । असहिष्णुता (को०) । ३ ईर्ष्या [को०] ।

असहनशील—वि० [सं०] १ जिसमें सहन करने की शक्ति न हो । असहिष्णु । २ चिडचिडा । तुनकमिजाज ।

असहनशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सहन करने की शक्ति का अभाव । असहिष्णुता । २ तुनकमिजाजी ।

असहनीय—वि० [सं०] न सहने योग्य । जो बरदाश्त न हो सके । असह्य ।

असहयोग—संज्ञा पुं० [स०] १ साथ मिलकर काम न करने का भाव । २ आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्र मे सरकार के साथ मिलकर काम न करने, उसकी संस्थाओ मे सम्मिलित न होने और उसके पद आदि ग्रहण न करने का सिद्धांत । तर्क-मवालात । नान-कोआपरेशन ।

असहयोगवाद—संज्ञा पुं० [सं० असहयोग+वाद] राजनीतिक क्षेत्र मे सरकार से असहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिलकर काम न करने का सिद्धांत ।

असहयोगवादी—संज्ञा पुं० [स० असहयोग+वादिन्] राजनीतिक क्षेत्र मे सरकार से असहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिलकर काम न करने के सिद्धात को माननेवाला मनुष्य ।

असहाइⓤ असहाईⓤ—वि० [हिं०] दे० 'असहाय' । उ०—एक किन्ह नहि भरत भलाई । निदरे रामु जानि असहाई ।—मानस,२।२२८

असहाय—वि० [सं०] १. जिसे कोई सहारा न हो । निःसहाय ।निर-वलब । निराश्रय । २ अनाथ । लाचार ।

असहिष्णु—वि० [सं०] १ जो सहन न कर सके । असहनशील । २ चिडचिडा । तुनकमिजाज ।

असहिष्णुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहन करने की शक्ति का अभाव । असहनशीलता । २ चिडचिडापन । तुनकमिजाजी ।

असही[1]—वि० [स० असह] दूसरे की बढती न सहनेवाला । दूसरे को देखकर जलनेवाला । ईर्ष्यालु । उ०—असही दुसही मरहु मनहि मन, बैरिन बढहु बिषाद । नृपसुत चारि चारु चिर-जीवहु, सकर गौरि प्रसाद ।—तुलसी ग्र० पृ० २६५ ।

यौ०—असही दुसही ।

असही[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] ककही या कघी नाम का पौधा ।

असह्य—वि० [सं०] न सहन करने योग्य । जो बरदाश्त न हो सके । असहनीय ।

असह्यव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह दडव्यूह जिसके दोनो पक्ष फैला दिए गए हो ।

असाँचⓤ—वि० [सं० असत्य, प्रा० असच्च] असत्य । झूठ । मृषा । उ०—सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा । बिप्र श्राप किमि होइ असाँचा ।—मानस १।१७५ ।

असांद्रⓤ—वि० [सं० असान्द्र] विरल । जो घनीभूत न हो [को०] ।

असांप्रत—वि० [सं० असाम्प्रत] १ जो सांप्रत या उचित न हो। अनुचित। अयोग्य। २ जो वर्तमान या आज का न हो[को०]।

असांप्रदायिक—वि० [सं० असाम्प्रदायिक] १ जिसमें सांप्रदायिकता की भावना न हो। २ जो प्रथा या परंपरा से अनुमोदित न हो [को०]।

असा—संज्ञा पुं० [अ०]१ सोटा। डंडा। २ चाँदी या सोने से मढ़ा हुआ सोटा जिसे राजा महाराजाओं के आगे या बरात इत्यादि के साथ सजावट के लिये आदमी लेकर चलते हैं। दे० 'आसा'।

यौ०—असावरदार = असा लेकर चलनेवाला। असावरदार।

असाई ⓤ—संज्ञा पुं० [सं०अशास्त्रीय]वह जिसे कुछ भी ज्ञान न हो। अज्ञानी। उ०—बोला गंध्रवसेन रिसाई। कस जोगी कस भाट असाई।—जायसी ग्रं०, पृ० ११३।

असाक्षात्—वि० [सं०] जो आँखों के आगे न हो। परोक्षत। दूरत (संबद्ध) [को०]।

असाक्षात्कार—संज्ञा पुं०[सं०] १ अनुपस्थिति। २ परोक्ष। अप्रत्यक्ष [को०]।

असाक्षिक—वि० [सं०]१ जिसका कोई गवाह न हो। अप्रमाणित २ शासकविहीन। जिसकी कोई देखरेख करनेवाला न हो [को०]।

असाक्षी—संज्ञा पुं० [सं० असाक्षिन्] वह जिसकी साक्षी या गवाही धर्मशास्त्र के अनुसार मान्य न हो। साक्षी होने का अनधिकारी।

विशेष—धर्मशास्त्र के अनुसार इन लोगों की साक्षी ग्रहण नहीं करनी चाहिए—चोर, जुआरी, शराबी, पागल, बालक, अति वृद्ध, हत्यारा, चारण, जालसाज, विकलेंद्रिय (बहरे, अंधे लूले, लँगड़े) तथा शत्रु, मित्र इत्यादि।

असाक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] गवाही या साक्ष्य का अभाव [को०]।

असाढ—संज्ञा पुं० [सं० आषाढ] आषाढ का महीना। वर्ष का चौथा महीना।

असाढा¹—संज्ञा पुं० [देश०] महीन बटे हुए रेशम का तागा।

असाढा²—संज्ञा पुं०[सं० आषाढ़]एक प्रकार की खाँड। कच्ची चीनी।

असाढी¹—वि० [सं० आषाढ] आषाढ का।

असाढी²—संज्ञा स्त्री० १ वह फसल जो आषाढ़ में बोई जाय। खरीफ। २ आषाढीय पूर्णिमा।

असाढू—संज्ञा पुं० [देश०] मोटे दल की चट्टान। मोटा पत्थर। भोट। उभवट।

असात्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकृतिविरुद्ध पदार्थ। वह आहार विहार जो दुःखकारक और रोग उत्पन्न करनेवाला हो।

असाध¹ⓤ†—वि० [हिं०] दे० 'असाध्य'।

असाध²—वि० [हिं०] दे० 'असाधु'। उ०—बाहर दीसै साध गति माँहैं महा असाध।—कबीर ग्रं०, पृ० ४६।

असाधन¹—वि० [सं०] साधन या उपकरण से रहित [को०]।

असाधन²—संज्ञा पुं० सिद्धि या पूर्णता का अभाव [को०]।

असाधारण¹—वि० [सं०] १ जो साधारण न हो। असामान्य। २ न्याय में पक्ष या विपक्ष से पृथक्—जैसे हेतु [को०]। ३ जिसका दूसरा दावेदार न हो। निश्चित रूप से एक का—जैसे संपत्ति [को०]।

असाधारण²—संज्ञा पुं० १ न्याय में हेत्वाभास का एक दोष। २. विशिष्ट संपत्ति [को०]।

असाधि ⓤ†—वि [हिं०] दे० असाध्य'। उ०—देखी व्याधि असाधि नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।—मानस, २।३४।

असाधित—वि० [सं०] जो साधा न गया हो। असिद्ध [को०]।

असाधु¹—वि० [सं०][वि० स्त्री० असाध्वी]१ दुष्ट। बुरा। खल। दुर्जन। खोटा। २ अविनीत। अशिष्ट। ३ जो ठीक ढंग से सिद्ध न हो। भ्रष्ट। व्याकरणविरुद्ध [को०]।

यौ०—असाधुवृत्ता = पुंश्चली। स्वैरिणी।

असाधु²—संज्ञा पुं० १ भ्रष्ट या पतित साधु। २ असज्जन।

असाधुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्जनता। अशिष्टता। खलता। खोटाई।

असाध्य—वि० [सं०] १ जिसका साधन न हो सके। न करने योग्य। दुष्कर। कठिन। २ न आरोग्य होने के योग्य। जिसके अच्छे या चंगे होने की संभावना न हो, जैसे—यह रोग असाध्य है (शब्द)।

यौ०—असाध्यसाधन = न हो सकनेवाले काम को कर लेना।

असाध्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यभिचारिणी। कुलटा। असती [को०]।

असानी—संज्ञा पुं० [अ० असाइनी] वह व्यक्ति जो अदालत की ओर से किसी दिवालिए की मालिकियत, जिसके बहुत से महाजन हों, तब तक अपनी निगरानी में रखने के लिये नियुक्त हो, जब तक कोई रिसीवर नियत होकर संपत्ति को अपने हाथ में न ले।

असामयिक—वि० [सं०][वि० स्त्री० असामयिकी]जो समय पर न हो। जो नियत समय से पहले या पीछे हो। बिना समय का। बेवक्त का।

असामर्थ्य—संज्ञा स्त्री० [सं] १ शक्ति का अभाव। अक्षमता। २ निर्बलता। नाताकती।

असामान्य—वि० [सं०] जो साधारण न हो। असाधारण। गैरमामूली।

असामी¹—संज्ञा पुं० [अ० असामी]१ व्यक्ति। प्राणी, जैसे—वह लाखों का असामी है (शब्द)। २ जिससे किसी प्रकार का लेन देन न हो। जैसे, वह बड़ा खरा असामी है, रुपया तुरत देगा (शब्द)। ३ वह जिसने लगान पर जोतने के लिये जमींदार से खेत लिया हो। रैयत। काश्तकार। जोता। ४ मुद्दालेह। देनदार। ५ अपराधी। मुलजिम, जैसे,—असामी हवालात से भाग गया (शब्द)। ६ दोस्त। मित्र। सुहृद। जैसे—चलो तो, वहाँ बहुत असामी मिल जाएँगे (शब्द)। ७ दाँव पर चढ़ाया हुआ आदमी। वह जिससे किसी प्रकार का मतलब गाँठना हो।

यौ०—खरा आदमी = चटपट दाम देनेवाला आदमी। डूबा असामी = गया गुजरा। दिवालिया। मोटा असामी = धनी पुरुष। लीचड असामी = देने में सुस्त। नादिहंद।

मुहा०—असामी बनाना = अपने मतलब पर चढ़ाना। अपनी गौं का बनाना।

असामी²—संज्ञा स्त्री० १ परकीया या वेश्या। रखेली, जैसे,—तुम्हारी असामी को कोई उड़ा ले गया (शब्द०)। २ नौकरी। जगह, जैसे,—कोई असामी खाली हो तो बतलाना (शब्द०)।

असार¹—वि० [सं०] १ सार रहित । तत्वशून्य । नि सार । २ शून्य । खाली । ३ तुच्छ । ४ जो तत्पर न हो । उत्साहहीन [कौ०] । ५ दरिद्र । निर्धन [कौ०] । ६ कमजोर । निर्बल [कौ०] ।

असार²—संज्ञा पुं० १ रेंड का पेड । २. अगरु चदन । ३ सारहीन या निस्तत्व भाग [कौ०] ।

असार³ (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'असवार' ।

असारता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नि सारता । तत्वशून्यता । २. तुच्छता । ३ मिथ्यात्व ।

असारभांड—संज्ञा पुं० [सं० असारभाण्ड] कौटिल्य के अनुसार घटिया माल ।

असालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ कुलीनता । २ सचाई । तत्व ।

असालतन—क्रि० वि० [अ०] स्वत । खुद ।

असाला—संज्ञा स्त्री० [सं० अशालिका] हालो । चसुर ।

असावधान—वि० [सं०][संज्ञा असावधानता] जो सावधान या सतर्क न हो । खबरदार न हो । जो सचेत न हो ।

असावधानता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेपरवाही ।

असावधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेखबरी । बेपरवाही ।

असावरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० आसावरी अथवा आशावरी] छत्तीस रागिनियों मे से एक प्रधान रागिनी । भैरव राग की स्त्री (रागिनी) । यह रागिनी टोडी से मिलती जुलती है और सवेरे सात बजे से नौ बजे तक गाई जाती है ।

असावरी²—संज्ञा स्त्री० [सं० अंशुपट्ट ?] वस्त्रविशेष । उ०—पाँवरी पँन्हि लै प्यारी जराइ की ओढि लै चाँचरि चारु असावरी ।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ५४ ।

असावली—संज्ञा स्त्री०[हिं०]दे० 'असावरी' । उ०—सुदरि क्यो पहिरति नग भूषन असावली । तन की द्युति तेरी सहज ही मसाल-प्रभावली ।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० २७० ।

असासा—संज्ञा पुं० [अ० असासह] १ माल । असबाब । २ संपत्ति । धन-दौलत ।

असासुलबैत—संज्ञा पुं० [अ०] घर का असबाब । घर का अटाला ।

असि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तलवार । खड्ग । वाराणसी के दक्षिण स्थित एक नदी । ३. श्याम [कौ०] ।

असिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ होठ और ठुड्डी के बीच का भाग । २ एक देश का नाम ।

असिक्निका—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवती दासी [कौ०] ।

असिक्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अत पुर मे रहनेवाली वह दासी जो वृद्धा न हो । २ पजाब की एक नदी । चिनाब । ३. वीरण प्रजापति की कन्या जो दक्ष को ब्याही थी । ४. रात्रि [कौ०] ।

असिगंड—संज्ञा पुं० [सं० असिगण्ड] गाल के नीचे रखने की छोटी तकिया [कौ०] ।

असिचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तलवार चलाने का अभ्यास [कौ०] ।

असिजीवी—वि० [सं० असिजीविन्] तलवार के द्वारा जीविका उपार्जित करनेवाला । सैनिक ।

असित¹—वि० [सं०] १. जो सफेद न हो । काला । उ०—असित कुटिल अलकें तेरी । उचित हरति मति है मेरी ।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० १९३ । २. दुष्ट । बुरा । ३. टेढ़ा । कुटिल ।

असित²—संज्ञा पुं० १ एक ऋषि का नाम । २ भरत राजा का पुत्र । ३. शनि । ४ पिंगला नाम की नाडी । ५ धौ का पेड । ६. काला या नीला रग [कौ०] । ७ कृष्णपक्ष [कौ०] । ८. कृष्ण सर्प [कौ०] । ९ कृष्ण का एक नाम [कौ०] ।

असितगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] नीलगिरि नाम का पहाड [कौ०] ।

असितग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि । २ मयूर [कौ०] ।

असितांग¹—वि० [सं० असिताङ्ग] १ काले रग का । २ काले अंगो वाला ।

असितांग²—संज्ञा पुं० १ एक मुनि । २ शिव का एक नाम ।

असिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ यमुना नदी । २ नीली या नील नाम का पौधा । ३ चद्रभागा नदी [कौ०] । ४ दक्षपत्नी का नाम (कौ०) । ५ अत पुर की वह दासी जिसके केश श्वेत न हुए हो (कौ०) । ६ रात्रि (कौ०) ।

असितोत्पल—संज्ञा पुं० [सं० असित+उत्पल] नील कमल [कौ०] ।

असितोपल—संज्ञा पुं० [सं० असित+उपल] नीलम [कौ०] ।

असिदंत—संज्ञा पुं० [सं० असिदन्त] मकर नामक जलजीव । घडियाल [कौ०] ।

पर्या०—असिदंष्ट्र । असिदंष्ट्रक ।

असिद्ध¹—वि० [सं०] १ जो सिद्ध न हो । २ बेपका । कच्चा । ३ अपूर्ण । अधूरा । ४ निष्फल । व्यर्थ । ५. अप्रमाणित । जो साबित न हो ।

असिद्ध²—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का बडा और ऊँचा वृक्ष जिसकी लकडी बहुत मजबूत होती है और प्राय इमारत के काम मे आती है । इसकी छाल से चमडा भी सिझाया जाता है । २. हेत्वाभास का एक भेद [कौ०] ।

असिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अप्राप्ति । अनिष्पत्ति । २ कच्चापन । कचाई । ३ अपूर्णता ।

असिधाराव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] १ असिधारा के समान व्रत । २ पुरानी प्रथा के अनुसार पति और पत्नी का ब्रह्मचर्यव्रत, जिसमे पति और पत्नी सोते समय बीच मे एक नगी तलवार रख लेते थे कि वे एक दूसरे का स्पर्श न कर सकें [कौ०] ।

असिधावक—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार आदि को साफ करनेवाला । सिकलीगर ।

असिधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] छुरी [कौ०] ।

असिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईख । गन्ना । २. कृपाण का कोष [कौ०] ।

असिपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'असिपत्र' [कौ०] ।

असिपत्रवन—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणो के अनुसार एक नरक जिसके विषय मे लिखा है कि वह सहस्र योजन की जलती भूमि है, जिसके बीच मे ऐसे पेडो का एक जगल है जिसके पत्ते तलवार के समान हैं ।

असिपथ—संज्ञा पुं० [सं०] साँस लेने की राह । श्वासमार्ग [कौ०] ।

असिपाणि—वि० [सं०] जिसके हाथ मे तलवार हो । खड्गधारी [कौ०] ।

असिपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १. मगर । २. नकुवी मछली जो पूँछ से मारती है ।

अनिपुन्नाग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निपुन्नाग' [illegible]।
अनिपुनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ [illegible]।
अनिपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० '[illegible]'।
अनिभेद—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible]।
अनिरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] [illegible]।
अनिलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० '[illegible]'।
अनिव(पु)—वि० [सं० अनिव] [illegible] उ०—[illegible]
[illegible]
अनिस्टर—वि० [अ० अनिस्टर] [illegible]।
अनिस्तव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible]।
अनिस्तव[2]—वि० [सं०] [illegible]।
अनिर्हेति—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible]।
अनी[1]—संज्ञा [illegible] [सं० अनि] [illegible]
[illegible]।
अनी[2]—वि० [हिं०] दे० '[illegible]' उ०—[illegible]
[illegible]।
अनीन—संज्ञा पुं० [देश०] [illegible]।
अनीम—वि० [सं०] १ [illegible]
२ [illegible]।
अनीमित—वि० [सं०] १ [illegible]
[illegible]।
अनीर—संज्ञा पुं० [फा०] [illegible]।
अनीरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] [illegible]।
अनील[1]—वि० [हिं०] दे० '[illegible]' उ०—[illegible]
[illegible]
(नंद०)।
अनील[2]—वि० [अ०] १ [illegible]।
[illegible] (फ़ि०)।
अनीस(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अनिश] दे० '[illegible]' उ०—[illegible]
[illegible] ।—[illegible]।
अनीसना—[illegible] [हिं० अनीस + ना (प्रत्य०)] [illegible]
[illegible] उ०—[illegible]
[illegible]
(नंद०)।
अनुंदर[1]—संज्ञा पुं० [सं० अनुन्दर] [illegible]
[illegible]
उ०—[illegible]
[illegible] (नंद०)।
असुंदर[2]—वि० जो सुंदर न हो। कुरूप। भद्दा। बदसूरत।
अंशु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राणवायु। प्राण। उ०—[illegible]
[illegible]।—रामचं०, पृ० १७७।२. किरण। २ जल (फि०)। ४ [illegible]। [illegible] (फि०)।
५ एक पल का छठा भाग (फि०)। ६. [illegible] (फि०)। ७. [illegible]
(फि०)। ८. दुःख। वेदना (फि०)।

[illegible]

[illegible]।
[illegible]—[illegible] [सं० अंशुकांत] [illegible]
[illegible]।
अंशुवर—[illegible]।
अंशुमती—[illegible]।
अंशुमान—[illegible]।
अंशुमाली—[illegible] [सं० अंशुमालिन्] [illegible]
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible]।
[illegible]—[illegible] [सं०] [illegible]
[illegible]।
[illegible]—वि० [सं०] [illegible]।
[illegible]—[illegible] [सं० [illegible] + [illegible]] [illegible]
[illegible]।
अंशुमत्—[illegible] [सं० अंशुमत्] [illegible] (फि०)।
[illegible]—[illegible] [सं० अंशुल] दे० '[illegible]' [illegible]
[illegible]—[illegible]।
अंसभृत—वि० [सं०] [illegible]।
असमात्—वि० [सं० अस्मत्] दे० '[illegible]' (फि०)।
असमदेश—संज्ञा पुं० [सं० असदेश] दे० '[illegible]'।
असुर—संज्ञा पुं० [सं०] १ दैत्य। राक्षस। २. [illegible]। ३ [illegible]
का [illegible]। ४ पृथिवी। ५. सूर्य। ६. [illegible]। ७. [illegible]।
८. [illegible] के अनुसार एक प्रकार का [illegible]।
विशेष—[illegible]
आदि पर [illegible] किया करता है, [illegible]
से नहीं [illegible], [illegible] से उसकी [illegible] नहीं होती और
यह कुमार्ग में प्रवृत्त होता है।

९—समुद्री लवण। १० देवदार। ११. हाथी [को०]। १२. एक लड़ाकू जाति [को०]।

असुरकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार एक त्रिभुवनपति देवता।

असुरगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्राचार्य।

असुरद्रुह्—संज्ञा पुं० [सं० असुरद्रुह्] देव। सुर [को०]।

असुरद्विट्—संज्ञा पुं० [सं० असुरद्विष् (ट्)] विष्णु [को०]।

असुरराज—संज्ञा पुं० [सं०] राजा बलि। दैत्यराज [को०]।

असुररिपु—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

असुरविजयी—संज्ञा पुं० [सं० असुरविजयिन्] वह राजा जो पराजित की भूमि, धन, स्त्री, पुत्र आदि के अतिरिक्त उसकी जाति भी लेना चाहे।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि दुर्बल राजा ऐसे शत्रु को भूमि आदि देकर जहाँ तक दूर रख सके, अच्छा है।

असुरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तुलसी का पौधा [को०]।

असुरसूदन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

असुरसेन—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस। कहते हैं कि इसके शरीर पर गया नामक नगर बसा है। उ०—असुरसेन सम नरक निकंदिनि। साधु विबुध कुलहित गिरिनंदिनि।—मानस, १।३१

असुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात। २ वारांगना। ३. राशि [को०]।

असुराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० असुर+हिं० आई (प्रत्य०)] खोटाई। शरारत। उ०—बात चलत जाकी करै असुराई नेहीन। है कछु अद्भुत मत भरो तेरे दृगन प्रवीन।—स० सप्तक, पृ० १९८।

असुराचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ शुक्र ग्रह। २ शुक्राचार्य। असुर गुरु [को०]।

असुराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. असुरराज। दैत्यों का अधिपति। २ जलधर नामक असुरराज। उ०—परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी।—मानस, १।१२३। ३. राजा बलि [को०]।

असुरारि—संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

असुरारी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० असुरारि] दे० 'असुरारि'। उ०—गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता।—मानस, १।१८६।

असुराह्व—संज्ञा पुं० [सं०] काँसा नामक धातु [को०]।

असुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ राक्षसी। २ राई [को०]।

असुविधा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० असुविधा'।

असुविलास—संज्ञा पुं० [सं०] १ छंदविशेष [को०]।

असुस्थ—वि० [सं०] अनिश्चित। उद्विग्न। बीमार। रुग्ण [को०]।

असुस्थता—संज्ञा स्त्री० [सं०] उद्विग्नता। बीमारी [को०]।

असूक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] अनादर [को०]।

असूझ(पु)†—वि० [सं० अ+हिं० सूझना] १ अँधेरा। अधकारमय। उ०—अगम असूझ देखि डर खाई। परै सो सप्त पतालहि जाई।—जायसी (शब्द)। २ जिसका वार पार न दिखाई पड़े। अपार। बहुत विस्तृत। बहुत अधिक। उ०—(क) कटक असूझ देखि कै राजा गरब करेइ। दैउ क दसा न देखै दुहुँ का कहँ जय देइ।—जायसी ग्रं०, पृ० ११२। ३. जिसके करने का उपाय न सूझे। विकट। कठिन। उ०—दोऊ लड़ै होय समुख लोहँ भयो असूझ। शत्रु जूझ तब न्योरे एक दोऊ महँ जूझ।—जायसी (शब्द०)।

असूत(पु)†—वि० [सं० असूत्र] विरुद्ध। असबद्ध। उ०—पुनि निन प्रश्न कियो निज पूतहि। शास्त्र परम्पर कहत असूतहि।—निश्चल (शब्द०)।

असूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बंध्यात्व। बाँझपन। २ निवारण [को०]।

असूतिका—वि० स्त्री० [सं०] १ जिसका बच्चा न पैदा हुआ हो। २ बंध्या [को०]।

असूयक[1]—वि० [सं०] १ ईर्ष्या करनेवाला। छिद्रान्वेषी २ असतुष्ट। अप्रसन्न [को०]।

असूयक[2]—संज्ञा पुं० निंदा करनेवाला व्यक्ति [को०]।

असूया—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० असूयक] १ पराए गुण मे दोष लगाना। उ०—सदा सत्यमय सत्यव्रत सत्य एक पति इष्ट। विगत असूया सील सौं ज्यों अनसूया सृष्ट।—स० सप्तक, पृ० ३६६। २ रस के अंतर्गत एक संचारी भाव। ३ क्रोध [को०]।

असूयिता—वि० [सं० असूयितृ] दे० 'असूयक' [को०]।

असूयु—वि० [सं०] दे० 'असूयक' [को०]।

असूर्यपश्या[1]—वि० [सं० असूर्यम्पश्या] १ सूर्य को भी न देखनेवाली। राजा के अंतःपुर की स्त्रियों या रानियों के लिये प्रयुक्त जो कठोर पर्दे में रहती थीं। २ जिसको सूर्य भी न देखे। परदे में रहनेवाली, जैसे,—'असूर्यपश्या दमयंती को विपत्ति में वन वन फिरना पड़ा।

असूर्यपश्या[2]—संज्ञा स्त्री० पतिव्रता या साध्वी पत्नी [को०]।

असूल[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० उसूल] दे० 'उसूल'।

असूल—वि० [अ० वसूल] दे० 'वसूल'।

असृक्—संज्ञा पुं० [सं०] १ रक्त। रुधिर। २ मंगल ग्रह [को०]। ३ कुंकुम। केसर [को०]। ४ योग के सत्ताईस भेदों में से एक [को०]।

यौ०—असृक्प, असृक्पा=रक्तपायी। राक्षस। असृक्पात, असृक्स्राव=रक्तपात। खून बहना।

असृक्कर—संज्ञा पुं० [सं०] (शरीर में) रस से रक्त बनने की प्रक्रिया।

असृग्—संज्ञा पुं० [सं० असृक्] दे० 'असृक्' [को०]।

असृग्ग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह [को०]।

असृग्दर—संज्ञा पुं० [सं०] मासिकधर्म का अनियमित या अधिक होना [को०]।

असृग्दोह—संज्ञा पुं० [सं०] रक्तस्राव [को०]।

असृग्धरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़ा। चर्म [को०]।

असृग्धारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चमड़ा २ खून की धारा [को०]।

असृग्वहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नाड़ी जिससे रक्तसंचार होता है। [को०]।

असृग्विमोक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] रक्त निकालना [को०]।

असृष्ट—वि० [सं०] १ जिसकी सृष्टि न हुई हो। अनुत्पन्न। २. जो चल रहा हो। जारी। ३ जो प्रदान न किया गया हो अथवा जिसका वितरण न हुआ हो [को०]

यौ०—असृष्टान्न=जो भोजन का वितरण न करे ।

असेग(पु)—वि० [सं० असह्य] न सहने योग्य । असह्य । कठिन ।

असेचन, असेचनक—वि० [स०] खूबसूरत । जिसे बार बार देखने को जी चाहे [को०] ।

असेत(पु)—वि० [स० अ=नहीं+श्वेत, प्रा० सेअ, अप० सेत्त] अश्वेत । काला । बुरा । उ०—कीन्ही तुम सेत, मैं असेत कृति कीन्ही तुम धर्म अनुराग्यो मैं अधर्म अनुराग्यो है ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २४८ ।

असेवन[1]—[स०] १ सेवा न करनेवाला । २ अनुगमन न करनेवाला [को०] ।

असेवन[2]—संज्ञा पुं० अवज्ञा । ध्यान न देना [को०] ।

असेवा—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'असेवन—२' [को०]

असेवित—वि० [स०] १ परित्यक्त । उपेक्षित । २ अव्यवहृत [को०] ।

असेष(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अशेष' । उ०—रावत न लेस अव विरत असेष को ।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १६५ ।

असेस(पु)—वि० [स० अशेष, प्रा० असेस] अनंत । बहुत । उ०—जात भो रसातलै असेस कउमाल भेदि ।—रामचंद्र०, पृ० १३५

असेसमेंट—संज्ञा पुं० [अं० एसेसमेंट] १ मालगुजारी या लगान लगाने के लिये जमीन का मोल ठहराने का काम । बंदोबस्त । २ कर या टैक्स लगाने के लिये बही खाते की जाँच का काम ।

असेसर—संज्ञा पुं० [अं० एसेसर] १ वह व्यक्ति जो जज को फौजदारी के मुकद्दमे में फैसले के समय राय देने के लिये चुना जाता है । २ वह जो बही खाता जाँच कर महसूल या कर की रकम निश्चित करता है । ३ वह जो जमीन का मोल ठहराकर लगान या मालगुजारी की रकम निश्चित करता है । कर लगानेवाला ।

असैनिक—वि० [स०] १ जो सैनिक न हो । जो सेना से संबंध न रखता हो ।

असैला(पु)—वि० [सं० अ=नहीं+शैली=रीति] [स्त्री० असैली] १ रीति नीति के विरुद्ध कर्म करनेवाला । कुमार्गी । उ०—सभा-सरवर, लोक-कोकनद-कोकगन प्रमुदित मन देखि दिनमनि भोर हैं । अबुध असैले मनमैले महिपाल भए कछुक उलूक कछु कुमुद चकोर हैं । तुलसी ग्र०, पृ० ३०७ । २ शैली के विरुद्ध । अनुचित । रीतिविरुद्ध । उ०—मैं सुनी बातें असैली जे कहि निसिचर नीच । क्यों न मारै गाल बैठो काल डाढनि बीच ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३७४ ।

असों†—क्रि० वि० [स० इह=समय या अस्मिन् समय का संक्षिप्त रूप] इस वर्ष । इस साल ।

असोक[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अशोक] दे० 'अशोक' । उ०—तव असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ ।—मानस, ३। २३ ।

असोक[2](पु)—वि० [स० अशोक] शोकरहित । उ०—जहँ असोक तहँ सोक बस है न सियहिं निज बोध ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ४६ ।

असोकी(पु)—वि० [हिं० असोक+ई (प्रत्य०)] शोकरहित । उ०—प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी । माँगि अगम वर होउँ असोकी ।—मानस, १।१६४ ।

असोच(पु)—वि० [स० अ+शोच] १ शोचरहित । चिंतारहित । उ०—रहै असोच बनै प्रभु पोसे ।—मानस, ४। ३ । २. निश्चिंत । बेफिक्र । उ०—माधौ जू, मन सबही विधि पोच । अति उनमत्त, निरंकुस, मैगल, चितारहित असोच ।—सूर०, १। १०२ ।

असोज(पु)†—संज्ञा पुं० [स० अश्वयुज, प्रा० असोय] आश्विन । क्वार

असोढ—वि० [स०] १ असह्य । २ जो वश में न किया जा सके । उद्धत [को०] ।

असोस(पु)—वि० [अ+शोष] जो सूखे नहीं । न सूखनेवाला । उ०—(क) कबिरा मन का माँहिरा अवगा बहै असोस । देखत ही दह में परै देय किसी को दोस ।—कबीर (शब्द०) । (ख) गोपिन कै अँसुवनु भरी सदा असोस अपार । डगर डगर नै ह्वै रही बगर बगर के बार ।—बिहारी र०, पृ० २६३ ।

असोसिएशन—संज्ञा पुं० [अं० एसोसिएशन] समिति । समाज । संस्था ।

असौंदर्य—संज्ञा पुं० [स० असौन्दर्य] असुंदरता । कुरूपता [को०] ।

असौंध(पु)—संज्ञा पुं० [स० अ=नहीं+हिं० सौंध=सुगंध] दुर्गंध । बदबू । उ०—जहँ आगम पौनहि को सुनिए । नित हानि असौंधहि की गुनिए ।—केशव (शब्द०) ।

असौच(पु)—संज्ञा पुं० [स० अशौच] दे० 'अशौच' । उ०—हौं असौच, अक्रिय अपराधी, सनमुख होत लजाउँ ।—सूर०, १। १२८ ।

असौधा(पु)—वि० [हिं० असौंध] १ दे० 'असौंध' । २ सुगंधविहीन ।

असौम्य—वि० [स०] जो सौम्य न हो । असुंदर । कुरूप [को०] ।

असौष्ठव[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ निकम्मापन । गुणहीनता । २ सुष्ठुता का अभाव । भद्दापन [को०] ।

असौष्ठव[2]—वि० असुंदर । भद्दा । विरूप [को०] ।

अस्कंदित—वि० [स० अस्कन्दित] १ अक्षरित । न बहा हुआ । २ न गया हुआ । ३ अनाक्रांत । ४ अविस्मृत अनुपेक्षित—जैसे समय अथवा प्रतिज्ञा [को०] ।

अस्का—संज्ञा पुं० [देश०] नैनीताल में बुलाक को कहते हैं । यह एक छोटी सी नथुनी और लटकन जिसे स्त्रियाँ नाक में पहनती हैं ।

अस्कन्न—वि० [स०] १ न फटा हुआ । २ न खुला हुआ । ३ टिकाऊ । ४ न उँडेला हुआ [को०] ।

अस्कर—संज्ञा पुं० [अ०] फौज । सेना [को०] ।

अस्करी—संज्ञा पुं० [अ०] सैनिक । योद्धा [को०] ।

अस्खल—संज्ञा पुं० [स०] आग । अग्नि [को०] ।

अस्खलित—वि० [स०] १. च्युत न होनेवाला । अच्युत । २ विचलित न होनेवाला । अडिग । ३ विशुद्ध । ४ शुद्ध उच्चारण करनेवाला [को०] ।

अस्तगत—वि० [स० अस्तङ्गत] १ अस्त को प्राप्त । नष्ट । २ अवनत । हीन ।

अस्त[1]—वि० [स०] १ छिपा हुआ । तिरोहित । २ जो दिखाई न पड़े । अदृश्य । डूबा हुआ, जैसे—'सूर्य अस्त हो गया ।' ३. नष्ट । ध्वस्त, जैसे—'मुगलों का प्रताप औरंगजेब के पीछे अस्त हो गया' (शब्द०) । ४ फेंका हुआ । क्षिप्त [को०] । ५. समाप्त [को०] । ६ भेजा हुआ [को०] ।

अस्त[2]—संज्ञा पुं० [स०] १ तिरोधान । लोप । अदर्शन, जैसे-सूर्यास्त के पहले आ जाना (शब्द०) । २. पश्चिम मेरु (जिसके पीछे सूर्य

डूबता है) [को०] । ३ आवास । घर [को०] । ४ समाप्ति । मृत्यु [को०] ।

यौ०— सूर्यास्त । शुक्रास्त । अस्तंगत ।

विशेष—सब ग्रह अपने उदय के लग्न से सातवें लग्न पर अस्त होते हैं। इसी से कुंडली में सातवें घर की संज्ञा 'अस्त' है। बुध को छोड़कर अन्य ग्रह जब सूर्य के साथ होते हैं, तब अस्त कहे जाते हैं।

अस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मोक्ष । २ घर [को०] ।

अस्तकाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्तसमय' ।

अस्तगमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ डूबना । लोप । २ मृत्यु । जीवन का अंत [को०]

अस्तगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] अस्ताचल । वह पर्वत जिसके पीछे सूर्य अस्त हो जाता है [को०] ।

अस्तन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्तन] दे० 'स्तन' । उ०—कपट करि ब्रजहिं पूतना आई । अति सुरूप, विष अस्तन लाए, राजा कंस पठाई ।—सूर०, । १०।५२ ।

अस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके स्तन बहुत ही छोटे और नहीं के समान हों ।

अस्तप्राय—वि० [सं०] लगभग डूबा हुआ ।

अस्तबल—संज्ञा पुं० [अ०] घुड़साल । तवेला ।

अस्तब्ध—वि० [सं०] १ जो स्तब्ध न हो । अचकित । २ चंचल । ३ विनयी [को०] ।

अस्तभवन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार उदय के लग्न से सप्तम लग्न [को०] ।

अस्तमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सरिवन का पेड़ । सातिवा । शालपर्णी ।

अस्तमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अस्त होना । तिरोधान । २ सूर्यादि ग्रहों का तिरोधान या अस्त होना ।

यौ०—अस्तमनवेला ।

अस्तमननक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जिस नक्षत्र पर कोई ग्रह अस्त हो वह नक्षत्र उस ग्रह का अस्तमन नक्षत्र कहलाता है ।

अस्तमनवेला—संज्ञा स्त्री० [सं० अस्तमनवेला] सायंकाल । संध्या का समय ।

अस्तमित—वि० [सं०] १ तिरोहित । छिपा हुआ २ नष्ट । मृत ।

अस्तर—संज्ञा पुं० [फा०, मि० सं० आ+स्तृ आच्छादन, तह या आस्तर] १ नीचे की तह या पल्ला । भितल्ला । उपल्ले के नीचे का पल्ला । २ दोहरे कपड़े में नीचे का कपड़ा । ३ नीचे ऊपर रखकर सिले हुए दो चमड़ों में से नीचेवाला चमड़ा । ४ वह चंदन का तेल जिसपर भिन्न भिन्न सुगंधों का आरोप करके अतर बनाया जाता है । जमीन । ५ वह कपड़ा जिसे स्त्रियाँ बारीक साड़ी के नीचे लगाकर पहनती हैं । अँतरौटा । अतरपट । ६ नीचे का रंग जिसपर दूसरा रंग चढ़ाया जाता है । ७ खच्चर [को०] ।

अस्तरकारी—संज्ञा स्त्री० [फा] १ चूने की लिपाई । सफेदी । कलई । २ गचकारी । पलस्तर । पन्ना लगाना ।

अस्तरबट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] पत्थर की वह बट्टी जिससे तसवीर की जमीन घोटी जाती है [को०] ।

अस्तरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] नारी । स्त्री । उ०—माया माता पिता, अति माया अस्तरी सुता ।—कबीर ग्रं०, पृ० ११५ ।

अस्तव्यस्त—वि० [सं०] उलटा पुलटा । छिन्न भिन्न । तितर बितर । उ०—अस्तव्यस्त है । वह भी ढक ले कौन सा अंग, न जिसमें कोई दृष्टि लगे उसे ।—झरना, पृ० २२ ।

अस्ताघ—वि० [सं०] अतिशय गंभीर । बहुत गहरा [को०] ।

अस्ताचल—संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्पित पर्वत जिसके संबंध में लोगों का यह विश्वास है कि अस्त होने के समय सूर्य इसी की आड़ में छिप जाता है । पश्चिमाचल । उ०—अस्ताचल जाते ही दिनकर के, सब प्रकट हुए कैसे ।—प्रेम०, पृ० ११ ।

अस्ताद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्ताचल' ।

अस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भाव । सत्ता । २ विद्यमानता । वर्तमानता । ३ जरासंध की एक कन्या जो कंस को ब्याही गई थी ।

अस्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार वे सिद्ध पदार्थ जो प्रदेशों या स्थानों के अनुसार कहे जाते हैं ।

विशेष—ये पाँच हैं—(क) जीवास्तिकाय, (ख) पुद्गलास्तिकाय, (ग) धर्मास्तिकाय, (घ) अधर्मास्तिकाय और (च) आकाशास्तिकाय ।

अस्तिकेतुसंज्ञा—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में वह केतु जिसका उदय पश्चिम भाग में हो और जो उत्तर भाग में फैला हो । इसकी मूर्ति रूक्ष होती है और इसका फल भयप्रद है ।

अस्तित्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ सत्ता का भाव । विद्यमानता । मौजूदगी । उ—सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ, सदा मौन हो प्रवचन करते जिसका वह अस्तित्व कहाँ ।—कामायनी, पृ० २६ । २ सत्ता । भाव । उ०—निज अस्तित्व बना रखने में जीवन आज हुआ था व्यस्त ।—कामायनी, पृ० ३३ ।

अस्तिनास्ति—वि० [सं०] संदेहपूर्ण । हाँ नहीं । कुछ झूठा कुछ सच्चा [को०] ।

अस्तिमान्—वि० [सं० अस्तिमत्] धनवान् । धनाढ्य [को०] ।

अस्तीन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आस्तीन' ।

अस्तु—अव्य० [सं०] १ जो हो । चाहे जो हो । उ —अस्तु, सुव्रते ! कहो कहाँ फिर तुम रहीं, मेरे जाने बाद ।—करुणा०, पृ० ३१ । २ खैर । भला । अच्छा । उ०—अस्तु सभी तुम शक्तिहीन हो गए ।—करुणा० , पृ० ३२ ।

अस्तुति[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं] निंदा । अपकीर्ति ।

अस्तुति[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं स्तुति] दे० 'स्तुति' । उ०—निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज ।—मानस ७।३८ ।

अस्तुरा— संज्ञा पुं० [फा० उस्तुरा, मि० सं० क्षुर] बाल बनाने का छूरा ।

अस्तेय—संज्ञा [सं०] १ चोरी का त्याग । चोरी न करना । २ योग के आठ अंगों में नियम नामक अंग का तीसरा भेद । वह स्तेय अर्थात् बल से या एकांत में पराए धन या अपहरण करने का उलटा या विरोधी । इसका फल योगशास्त्र में सब रत्नों

का उपस्थान या प्राप्ति है। ३ जैनशास्त्रानुसार अदत्तदान का त्याग करना। चोरी न करने का व्रत।

अस्तेयव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी आवश्यकता से अधिक संग्रह का त्याग। वह व्रत जिसमें जरूरत से ज्यादा संपत्ति रखने को चोरी जैसा पाप कर्म समझा जाता है [को०]।

अस्तोदय—संज्ञा पुं० [सं० अस्त+उदय] १ डूबना उगना। २ बिगड़ना बनना [को०]।

अस्त्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ परदोषकथन। निंदा। २ झिड़की। भर्त्सना [को०]।

अस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह हथियार जिसे फेंककर शत्रु पर चलावें, जैसे—बाण। शक्ति। २ वह हथियार जिससे कोई चीज फेंकी जाय, जैसे—धनुष, बंदूक। ३ वह हथियार जिससे शत्रु के चलाए हथियारों की रोक हो, जैसे—ढाल। ४ वह हथियार जो मंत्र द्वारा चलाया जाय, जैसे जृंभास्त्र। ५ वह हथियार जिससे चिकित्सक चीर फाड़ करते हैं। ६ शस्त्र। हथियार।

यौ०—अस्त्रशस्त्र।

अस्त्रकंटक—संज्ञा पुं० [सं० अस्त्रकण्टक] बाण। तीर [को०]।

अस्त्रकार—संज्ञा पुं० [सं०] हथियार बनानेवाला कारीगर।

अस्त्रकारक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्त्रकार' [को०]।

अस्त्रकारी—संज्ञा पुं० [सं० अस्त्रकारिन्] दे० 'अस्त्रकार' [को०]।

अस्त्रघला(पु)† वि० [सं० अस्त्र+घातक] अस्त्र चलानेवाला।

अस्त्रचिकित्सक—संज्ञा पुं० [सं०] चीर फाड़ या जर्राही करनेवाला चिकित्सक। जर्राह [को०]।

अस्त्रचिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वैद्यकशास्त्र का वह अंश जिसमें चीरफाड़ का विधान है। २ चीरफाड़ करना। अस्त्रप्रयोग। जर्राही।

विशेष—इसके आठ भेद हैं। (क) छेदन=नश्तर लगाना। (ख) भेदन=फाड़ना। (ग) लेखन=खरोंचना। (घ) वेधन=सुई की नोक से छेद करना। (च) मेषण=धोना। साफ करना। (छ) आहरण=काटकर अलग करना। (ज) विश्रावण=फस्द खोलना। (झ) सीना=सीना या टाँका लगाना।

अस्त्रजीवी—संज्ञा पुं० [सं० अस्त्रजीविन्] १ पेशेवर सैनिक। २ सैनिक [को०]।

अस्त्रधारी—संज्ञा पुं० [सं० अस्त्रधारिन्] सैनिक [को०]।

अस्त्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० अस्त्रबन्ध] अनवरत बाणवर्षा। [को०]।

अस्त्रमार्जक—संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्रों को माँजकर साफ करनेवाला [को०]।

अस्त्रलाघव—संज्ञा सं० [सं०] अस्त्र कौशल। ठीक ठीक और फुर्ती के साथ लक्ष्यवेध करने की कुशलता [को०]।

अस्त्रविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बाण विद्या। २ अस्त्रचालन की विद्या [को०]।

अस्त्रवेद—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें अस्त्र बनाने और प्रयोग करने का विधान हो। धनुर्वेद।

अस्त्रशस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्र और शस्त्र। हाथ में लिए हुए तथा हाथ से फेंककर प्रहार करने योग्य हथियार [को०]।

अस्त्रशाला—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ अस्त्र शस्त्र रखे जायँ। अस्त्रागार। सिलहखाना।

अस्त्रशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ अस्त्रचालन की शिक्षा देनेवाला शास्त्र या विद्या। २ धनुर्वेद [को०]।

अस्त्रागार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्त्रशाला'।

अस्त्री—संज्ञा पुं० [सं० अस्त्रिन्] [स्त्री० अस्त्रिणी] अस्त्रधारी मनुष्य। हथियारबंद आदमी।

अस्त्रीक—वि० [सं०] १ पत्नीहीन। २ बिना स्त्री का [को०]।

अस्त्रैण—वि० [सं०] १ बिना स्त्री का। जिसमें स्त्री न हो। २ जो स्त्री संबंधी न हो। ३ जो स्त्री का गुलाम न हो। ४ जो स्त्री द्वारा गौरवान्वित न हो [को०]।

अस्थल(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० स्थल] दे० 'स्थल'। उ०—अस्थल लीपि पात्र सब धोए, काज देव के कीन्ह।—सूर० ९। ७८।

अस्थाई(पु)—वि० [सं० स्थायी] दे० 'स्थायी'।

अस्थान¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आस्थान] दे० 'स्थान'। उ०—अति ऊँचे भूधरनि पर भुजगन के अस्थान। तुलसी अति नीचे सुखद ऊख, अन्न अरु पान।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२।

अस्थान²—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुपयुक्त अथवा बुरा स्थान। २ अनवसर [को०]।

अस्थानीय—वि० [सं०] प्रसंग से भिन्न। अनुपयुक्त। उ०—उसने अपना बहुत सुधार किया है कि जिसका आख्यान यहाँ अस्थानीय है'।—प्रेमघन, भा० २, पृ० २६०।

अस्थायी¹—वि० [सं० अस्थायिन्] [वि० स्त्री० अस्थायिनी] जो स्थायी या टिकाऊ न हो। नश्वर। क्षणभंगुर [को०]।

अस्थायी²—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थायिन्] गीत का प्रथम चरण या टेक [को०]।

अस्थावर—संज्ञा पुं० [सं०] १ जो स्थावर या अचल न हो। जंगम। चल। २ कानून में वह संपत्ति जो चल हो—जैसे, मवेशी, जेवर आदि [को०]।

अस्थि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हड्डी। उ०—औरो कथा सबै बिसराई लेत तुम्हारो नाम। सूर स्याम ता दिन तें बिछुरे, अस्थि रहै कै चाम।—सूर०, २।३३०६। २ फल की गुठली या गिरी [को०]।

अस्थिकुंड—संज्ञा पुं० [सं० अस्थिकुण्ड] पुराणों के अनुसार एक नरक जिसमें हड्डियाँ भरी हुई हैं।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त के अनुसार वे पुरुष इस नरक में पड़ते हैं जो गया में विष्णुपद पर पिंडदान नहीं करते।

अस्थिकृत—संज्ञा पुं० [सं०] १ हड्डी के भीतर स्थित स्नेह। मज्जा। २ वज्र [को०]।

अस्थिज—संज्ञा पुं० [सं०] १ मज्जा। २ हड्डी से बना हुआ द्रव्य। ३ वज्र [को०]।

अस्थित¹—वि० [सं०] जो दृढ़ या स्थिर न हो [को०]।

अस्थित²(पु)—वि० [सं० स्थित] उपस्थित। वर्तमान। स्थित। उ०—मेरो बचन सत्य करि मानो, छाँड़ो सबरो मोहु। तब लौ सब पानी की चुपरी जौ लौ अस्थित दोहु।—सूर०, ।३५३६

अस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दृढ़ता या स्थिरता का अभाव। चंचलता। डाँवाडोलपन। २ अच्छे आचार या सनीके की कमी कौ०।
अस्थितुंड—संज्ञा पुं० [सं० अस्थितुण्ड] १ पक्षी। २ हड्डी की तरह कड़ी चोंचवाला पक्षी [कौ०]।
अस्थितेज—संज्ञा पुं० [सं० अस्थितेजस्] मज्जा [कौ०]।
अस्थितैल—संज्ञा पुं० [सं०] हड्डी का तेल [कौ०]
अस्थिधन्वा—संज्ञा पुं० [सं० अस्थिधन्वन्] शिव [कौ०]।
अस्थिपंजर—संज्ञा पुं० [सं० अस्थिपञ्जर] शरीर का ढाँचा। हड्डी पसली। कंकाल। उ०-धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर घर मे। मांस नहीं है, शेष रही बस मांस अस्थिपंजर मे।-पथिक, पृ० ४१।
अस्थिप्रक्षेप - संज्ञा पुं० [सं०] गंगा या अन्य किसी पवित्र नदी या सरोवर में मृत व्यक्ति की अस्थि को प्रवाहित करना। अस्थिविसर्जन [कौ०]।
अस्थिबंधन—संज्ञा पुं० [सं० अस्थिबन्धन] स्नायु [कौ०]।
अस्थिभंग—संज्ञा पुं० [सं० अस्थिभङ्ग] हड्डी टूटना [कौ०]।
अस्थिभक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] हड्डी खानेवाला। कुत्ता [कौ०]।
अस्थिभुक्—संज्ञा पुं० [सं० अस्थिभुज्] दे० 'अस्थिभक्षी' [कौ०]।
अस्थिभेद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्थिभंग' [कौ०]।
अस्थिभेदी—वि० [सं० अस्थिभेदिन्] १ हड्डी काटनेवाला। २. अत्यंत तीक्ष्ण [कौ०]।
अस्थिमाली—संज्ञा पुं० [सं० अस्थिमालिन्] शिव।
अस्थिर¹—वि० [सं०] १ जो स्थिर न हो। चंचल। चलायमान। डाँवाडोल। उ०-दावाग्नि-प्रखर लपटों ने कर दिया सघन वन अस्थिर।-कामायनी, पृ० २८१। २-बे ठौरठिकाने का। जिसका कुछ ठीक न हो। उ०—यों ही लगा बीतने उनका जीवन अस्थिर दिन दिन।—कामायनी, पृ० ३३।
अस्थिर²(पु)—[सं० स्थिर] जो चंचल न हो। स्थिर उ०-भक्तनि हाट बैठि अस्थिर ह्वै, हरि नग निर्मल लेहि काम-क्रोध मद-लोभ-मोह तू सकल दलाली देहि।-सूर०, १। ३१०।
अस्थिरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंचलता, व्यग्रता। व्याकुलता।
अस्थिविग्रह¹—वि० [सं०] दुबला पतला (व्यक्ति या जीव)। जिसका शरीर सूखकर हड्डी का ढाँचा मात्र रह गया हो [कौ०]।
अस्थिविग्रह²—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का भृंगी नामक गण [कौ०]।
अस्थिशेष—वि० [सं०] कंकालशेष। जिसके शरीर मे हड्डियाँ ही रह गई हो [कौ०]।
अस्थिसंचय—संज्ञा पुं०[सं० अस्थिसञ्चय] भस्मात या अंत्येष्टि संस्कार के अनंतर की एक क्रिया या संस्कार जिसमे जलने से बची हुई हड्डियाँ एकत्र की जाती हैं।
अस्थिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अस्थिसन्धि] हड्डियों का जोड।
अस्थिसंभव—संज्ञा पुं० [सं० अस्थिसम्भव] १ मज्जा। २ वज्र [कौ०]।
अस्थिसमर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १ हड्डियों का नदी मे प्रवाह। अस्थिविसर्जन [कौ०]।

अस्थिसार—संज्ञा पुं० [सं०] मज्जा [कौ०]।
अस्थिस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्थिसार' [कौ०]।
अस्थूल¹—वि० [सं०] जो स्थूल न हो। सूक्ष्म।
अस्थूल²(पु)—वि० [सं० स्थूल] दे० 'स्थूल'।
अस्थैर्य—संज्ञा पुं० [सं०] दृढ़ता का अभाव। अस्थिति। डाँवाँडोलपन। उ०— दिया नृप को वशिष्ठ ने धैर्य कहा-यह उचित नहीं अस्थैर्य।-साकेत, पृ० ४२।
अस्नान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्नान] दे० 'स्नान'। करि अस्नान नंद घर आए।-सूर०, १०।२६०।
अस्नाविर – वि० [सं०] जिसे स्नायु न हो। दुबली देह का (व्यक्ति) [कौ०]।
अस्निग्ध—वि० [सं०] १. जो स्निग्ध या चिकना न हो। २ कठोर। निर्दय। हृदयहीन [कौ०]।
अस्निग्धदारु—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु वृक्ष की जाति का एक वृक्ष [कौ०]।
अस्निग्धदारुक—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु की जाति का एक पेड।
अस्नेहन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [कौ०]।
अस्पंज—संज्ञा पुं० [यु० इस्फंज] स्पंज। मुर्दा बादल [कौ०]।
अस्पंद—संज्ञा पुं० [सं० अस्पन्द] जिसमे स्पंदन या कंपन न हो। गतिहीन [कौ०]।
अस्पताल—संज्ञा पुं० [अ० हॉस्पिटल] औषधालय। चिकित्सालय। दवाखाना।
अस्पर्श—वि० [सं०] १ जिसमे स्पर्श न हो। २ जो छूने योग्य न हो [कौ०]।
अस्पर्स(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श] दे० 'स्पर्श'। उ०—भएँ अस्पर्श देखत न परिहै। मेरी कह्यौ नाहिं यह टरिहै।-सूर० ८।२।
अस्पष्ट—वि० [सं०] जो साफ या स्पष्ट न हो। अप्रकट। अस्फुट। उ०-अस्पष्ट एक लिपि ज्योतिमयी, जीवन की आँखों मे भरते।-कामायनी, पृ० ६४।
अस्पृश्य—वि० [सं०] जो छूने योग्य न हो। उ०-गिर जाय कुछ गंगांबु भी अस्पृश्य नाली मे कभी, तो फिर उसे अपवित्र ही बतलायेंगे निश्चय सभी।-भारत, पृ० १२३। —नीच जाति का। अंत्यज।
अस्पृश्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अस्पृश्य होने का भाव या दशा। अछूतपन।
अस्पृष्ट—वि० [सं०] जिसपर हाथ न लगाया गया हो। अछूता [कौ०]।
अस्पृह—वि० [सं०] निस्पृह। निर्लोभ। जिसमे लालच न हो।
अस्फटिक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्फटिक] दे० 'स्फटिक'। उ०-जिनकी बनी अवनी अमल अस्फटिक मनि पटरीन सो।-प्रेमघन०, भा० १, पृ० १२०।
अस्फी—संज्ञा पुं० [फा० अस्प+ई (प्रत्य०)] घुड़सवार। अश्वारोही। उ०-सु अस्फी घने दुंदुभी हैं धुकारे। मनो धर्मराने पर्रै निघु भारे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २७८।

अस्फुट—वि० [सं०] १ जो स्पष्ट न हो। जो साफ न हो। उ०—अस्फुट कोलाहल भरति मर्मरित वन है।—साकेत, पृ० २१७। २. गूढ। जटिल।

अस्म (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्म] पत्थर। उ०—(क) जहँ जहँ जात तही तहीं त्रासत अस्म, लकुट पदत्रान।—सूर० १।१०३। (ख) आपुन तरि तरि औरनि तारत। अस्म अचेत प्रगटपानी मैं वनचर लै लै डारत।—सूर० ६।१२३।

अस्मद्[1]—सर्व० [सं० अस्मत्] मैं।

अस्मद्[2]—संज्ञा पुं० [सं० अस्मत्] जीव। आत्मा [को०]।

अस्मदादि—सर्व० [सं०] हम सब [को०]।

अस्मदादिक—सर्व० [सं०] दे० 'अस्मदादि'। हम सब।

अस्मदीय—वि० [सं०] मेरा [को०]।

अस्मय—वि० [सं० अश्ममय] पत्थर द्वारा निर्मित। उ०—जरासंघ बंदी कहैं नप कुल जस गावैं। अस्मय तन गौतम तिया कौ साप नसावैं।—सूर० १।४।

अस्मार्त—वि० [सं०] जो स्मृतियों का अनुयायी न हो। स्मृतिविरोधी। २ जो स्मृत न हो। स्मरण से परे। ३ परंपराविरुद्ध। अनुचित। ४ स्मार्त मत के विपरीत [को०]।

अस्मिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ योगशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के क्लेशों में से एक। द्रक, द्रष्टा और दर्शन शक्ति को एक मानना या पुरुष (आत्मा) और बुद्धि में अभेद मानना। २ अहंकार। सांख्य में इसको मोह और वेदांत में हृदयग्रंथि कहते हैं।

अस्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोना। २ रुधिर। ३ जल। ४ आँसू। उ०—प्रकृति-रंजन-हीन, दीन अजस्र। प्रकृति विधना थी भरे हिम अस्र।—साकेत, पृ० १६५। ५ केसर। ६ बाल।

अस्र[2]—संज्ञा पुं० [अ०] १ दिन का चतुर्थ प्रहर। २ समय। वक्त। काल [को०]।

अस्रकंठ—संज्ञा पुं० [सं० अस्रकण्ठ] बाण। तीर [को०]।

अस्रखदिर—संज्ञा पुं० [सं०] रक्तखदिर का वृक्ष [को०]।

अस्रज—संज्ञा पुं० [सं०] मांस [को०]।

अस्रप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस। २ मूल नक्षत्र। ३ जोंक जो लहू (अस्र) पीती है।

अस्रप[2]—वि० रक्त पीनेवाला।

अस्रपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जलौका। जोंक। २ डाइन। टोना करनेवाली।

अस्रपित्त—संज्ञा पुं० [सं०] नासिका मुख आदि से रक्तस्राव होना [को०]।

अस्रफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सलाई का पेड़।

अस्रफली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० अस्रफला [को०]।

अस्रमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] देह के भीतर का रस [को०]।

अस्ररोधिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लज्जालु नामक पौधा। छुईमुई [को०]।

अस्रार्ज्जक—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत तुलसी।

अस्रु (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्रु] दे० 'अश्रु'।

अस्ल—वि० [अ०] दे० 'असल'।

अस्ली—[अ०] दे० 'असली'।

अस्वत—संज्ञा पुं० [सं० अस्वन्त] १ मृत्यु। २ खेत। ३ चूल्हा। ४ मरुत् विशेष [को०]।

अस्व (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्व] दे० 'अश्व'। उ०—होइअ नाथ अस्व असवारा।—मानस २। २०२।

अस्वच्छंद—वि० [सं० अस्वच्छन्द] जो आत्मनिर्भर न हो। दूसरे के भरोसे पर रहनेवाला [को०]।

अस्वच्छ—वि० [सं०] जो स्वच्छ न हो। जो स्पष्ट न हो। गंदा [को०]।

अस्वतंत्र—वि० [सं० अस्वतन्त्र] पराधीन। दास। गुलाम [को०]।

अस्वप्न[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। २ अनिद्रा।

अस्वप्न[2]—वि० [सं०] जिसे नींद न आती हो [को०]।

अस्वभाव[1]—वि० [सं०] भिन्न स्वभाववाला [को०]।

अस्वभाव[2]—संज्ञा पुं० [सं०] अस्वाभाविक लक्षण। भिन्न लक्षण [को०]।

अस्वर[1]—वि० [सं०] अस्पष्ट या मंद (स्वर)। बुरे या मंद स्वरवाला [को०]।

अस्वर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] स्वरभिन्न या व्यंजन वर्ण [को०]।

अस्वर्ग्य—वि० [सं०] जो स्वर्गप्राप्ति में बाधक हो [को०]।

अस्वस्थ—वि० [सं०] १ रोगी। बीमार। २ अनमना।

अस्वादुकंटक—संज्ञा पुं० [सं० अस्वादुकण्टक] गोखरू।

अस्वाधीन—वि० [सं०] पराधीन। परतंत्र [को०]।

अस्वाध्याय[1]—वि० [सं०] वेदों की आवृत्ति न करनेवाला। जिसने वेदपाठ न किया हो [को०]।

अस्वाध्याय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] वेद के स्वाध्याय के बीच पड़नेवाली बाधा या मिलनेवाला अवकाश [को०]।

अस्वाभाविक—वि० [सं०] १. जो स्वाभाविक न हो। प्रकृतिविरुद्ध। २ कृत्रिम। बनावटी।

अस्वामिक[1]—वि० [सं०] जिसका कोई स्वामी न हो। लावारिस [को०]।

अस्वामिक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जिसका कोई स्वामी न हो। [को०]।

अस्वामिकद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] पराशरस्मृति के अनुसार वह धन जो किसी की मिलकियत न हो।

अस्वामिविक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १ दूसरे के पदार्थ को उसकी आज्ञा के बिना बेच लेना। २ दूसरे की चीज जबरदस्ती छीनकर या कहीं पड़ी पाकर उसकी इच्छा के विरुद्ध बेच डालना। निक्षिप्त।

अस्वामिविक्रीत—संज्ञा पुं० [सं०] मालिक की चोरी से बेचा हुआ।

विशेष—नारद ने कहा है कि ऐसी वस्तु का पता लगने पर मालिक उसका हकदार होता है। पर मालिक को इस बात की सूचना राज्य को कर देनी चाहिए।

अस्वामिसहत—वि० [सं०] (सेना) जिसका सेनानायक न मारा गया हो।

अस्वामी—वि० [सं० अस्वामिन्] १ जिसका कोई दावेदार या अधिकारी न हो। २ जिसका कोई स्वत्व या अधिकार न हो [को०]।

अस्वार्थ—वि० [सं०] १ स्वार्थहीन । निःस्वार्थ । २. विरक्त । उदासीन । ३ निरर्थक । निकम्मा । बेकार [को०] ।

अस्वास्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] बीमारी । रोग ।

अस्विन्न—वि० [सं०] अच्छी तरह न उबाला हुआ । अपक्व [को०] ।

अस्वीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] अस्वीकृति । स्वीकार न करना ।

अस्वीकार—संज्ञा पुं० [सं०] स्वीकार का उलटा । इन्कार । नामंजूरी । नाहीं ।

क्रि० प्र०—करना ।

अस्वीकृत—वि० [सं०] अस्वीकार किया हुआ । नामंजूर किया हुआ । नामंजूर ।

अस्वीकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नामंजूरी । स्वीकार न करने की क्रिया या भाव । अस्वीकार [को०] ।

अस्स(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्व, प्रा० अस्स] घोड़ा ।

अस्सी—वि० [सं० अशीति, प्रा० असीति] सत्तर और दस की संख्या । दस का अठगुना ।

अस्सु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्रु, प्रा० अस्सु] आँसू ।

अहं[1]—सर्व० [सं० अहम्] मैं ।

अहं[2]—संज्ञा पुं० १ अहंकार । अभिमान । उ०—(क) तुलसी सुखद शांति को सागर । संतन गायो कौन उजागर । तामें तन मन रहै समोई । अहं अगिनि नहिं दाहै कोई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) ज्यों महराज या जलधि तें पार कियो भव जलधि पार त्यों करो स्वामी । अहं ममता हमैं सदा लागी रहै मोह मद क्रोध जुत मद कामी ।—सूर०, (शब्द०) । २ संगीत का एक भेद जिसमें सब शुद्ध स्वरों तथा कोमल गंधार का व्यवहार होता है

अहंकार—संज्ञा पुं० [सं०] १ अभिमान । गर्व । घमंड । २. वेदांत के अनुसार अंतःकरण का एक भेद जिसका विषय गर्व या अहंकार है । "मैं हूँ" या "मैं करता हूँ" इस प्रकार की भावना । ३ सांख्यशास्त्र के अनुसार महत्तत्व से उत्पन्न एक द्रव्य ।

विशेष—यह महत्तत्व का विकार है और इसकी सात्विक अवस्था से पाँच ज्ञानेंद्रियों, पाँच कर्मेंद्रियों तथा मन की उत्पत्ति होती है और तामस अवस्था से पंचतन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है, जिनसे क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति होती है । सांख्य में इसको प्रकृतिविकृति कहते हैं । यह अंतःकरणद्रव्य है ।

४ अंतःकरण की एक वृत्ति । इसे योगशास्त्र में अस्मिता कहते हैं । ५ मैं और मेरा का भाव । ममत्व ।

अहंकारी—वि० [सं० अहङ्कारिन्] [स्त्री० अहंकारिणी] अहंकार करनेवाला । घमंडी । गर्वी ।

अहंकृत—वि० [सं० अहङ्कृत] अहंकार करनेवाला । घमंडी [को०] ।

अहंकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० अहङ्कृति] अहंकार ।

अहंता—संज्ञा स्त्री० [सं० अहन्ता] अहंकार । घमंड । गर्व । उ०—था एक पूजता देह दीन, दूसरा अपूर्ण अहंता में अपने को समझ रहा प्रवीण ।—कामायनी, पृ० १६१ ।

अहंधी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अहंकार' ।

अहंपद—संज्ञा पुं० [सं० अहम्पद] गर्व । अभिमान [को०] ।

अहंपूर्व—संज्ञा पुं० [सं० अहम्पूर्व] लाग डाट में दूसरे से आगे बढ़ जाने की अभिलाषा रखनेवाला [को०] ।

अहंपूर्विका—संज्ञा स्त्री० [सं० अहम्पूर्विका] होड़ । प्रतिस्पर्धा [को०] ।

अहंप्रथमिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अहम्प्रथमिका] दे० 'अहंपूर्विका' [को०] ।

अहंप्रत्यय—संज्ञा पुं० [सं० अहम्प्रत्यय] घमंड । गर्व [को०] ।

अहंभद्र—संज्ञा पुं० [सं० अहम्भद्र] अपना व्यक्तित्व महान् समझना [को०] ।

अहंमति—संज्ञा स्त्री० [सं० अहम्मति] (वेदांत दर्शन में) भ्रमात्मक आध्यात्मिक आत्मज्ञान [को०] ।

अहंवाद—संज्ञा पुं० [सं०] डींग मारना । शेखी हाँकना । उ०—अहंवाद मैं तें नहीं दुष्ट संग नहिं कोइ । दुख ते दुख नहिं ऊपजे सुख से सुख नहिं होइ ।—तुलसी (शब्द०) ।

अहँकार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अहङ्कार] दे० 'अहंकार' । उ०—त्रयनयन, मयन मर्दन महेश । अहँकार निहार उदित दिनेस ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६१ ।

अह[1]—संज्ञा पुं० [सं० अहन्] १ दिन । २ विष्णु । ३ सूर्य । ४ दिन का अभिमानी देवता । ५ आकाश [को०] । ६ एक दिन का काम [को०] । ७ रात्रि [को०] । ८ किसी ग्रंथ का वह अंश जो एक दिन के लिये निश्चित हो [को०] ।

यौ०—अहर्निश = दिन रात । लगातार । अहपति = सूर्य । अहमुर्ख = उषाकाल । अहरहः = दिन दिन ।

अह[2]—अव्य [सं० अहह] एक अव्यय संबोधन । आश्चर्य खेद और क्लेश आदि में इसका प्रयोग होता है, जैसे—अह ! तुमने बड़ी मूर्खता की (शब्द०)

अहक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ईहा] इच्छा । आकांक्षा । लालसा । उ०—अहक मोर बरषा ऋतु देखहु । गुरु चीन्हि कै योग विसेषहु ।—जायसी (शब्द०) ।

अहकना—क्रि० अ० [हिं० अहक] इच्छा करना । लालसा करना ।

अहकाम—संज्ञा पुं० [अ० हुक्म का बहुव०] १ नियम । कायदा । २. हुक्म । आज्ञाएँ ।

अहचरज—संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य] दे० 'आश्चर्य' । उ०—समर जीति जौहर को होन । जो अहचरज भयो यह तौन ।—हम्मीर०, पृ० ६५ ।

अहट—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'आहट' उ०—आह न अहट अघ अरी या अदाई की ।—गंग०, पृ० ८२ ।

अहटाना[1]—क्रि० अ० [हिं० आहट] आहट लगाना । पता चलना । उ०—रहत नयन के कोरवा चितवनि छाय । चलत न पग पैंजनियाँ मग अहटाय ।—रहिमन० (शब्द०) ।

अहटाना[2](पु)—क्रि० स० आहट लगाना । टोह लेना । पता चलाना ।

अहटाना[3](पु)—क्रि० अ० [सं० आहत] दुखना । दर्द करना । उ०—(क) तनिक किरकिटी के परे पल पल में अहटाय । क्यों सोवैं सुख नींद दृग मीत बसैं जब आय ।—रसनिधि० (शब्द०) । (ख) सुनी दूत बानी महामानी ध्यान जदें जबैं, हिये अहटाना है रिसानी देह ता समैं ।—सूदन० (शब्द०) ।

अहटियाना†—क्रि० स०, क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अहटाना'।

अहत[1]—वि० [सं०] १ जो हत न हो। २ अक्षत। ३ अनाहत। ४ जो पीटा या कचारा न गया हो। जैसे—वस्त्र। ५ जो कुंठाग्रस्त या हताश न हो। ६ नया। बिना धोया हुआ। ७ निर्दोष। बेदाग (को०)।

अहत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] बिना धुला नया वस्त्र (को०)।

अहथिर(पु)†—वि० [सं० स्थिर] दे० 'स्थिर'। उ०—सबै नास्ति वह अहथिर ऐस साज जेहि केर।—जायसी (शब्द०)।

अहद[1]—संज्ञा पुं० [अ०] प्रतिज्ञा। वादा। इकरार।

क्रि० प्र०—करना = प्रतिज्ञा करना।—टूटना = प्रतिज्ञा भंग होना।—तोड़ना = प्रतिज्ञा भंग करना। वादा पूरा न करना।

२. संकल्प। इरादा। ३. समय। काल। राजत्वकाल, जैसे—'अकबर के अहद मे प्रजा बड़ी सुखी थी'।

यौ०—अहदनामा। अहदशकिन। अहदशिकनी अहद वो पैमान।

अहद[2]—वि० [सं० अ = नहीं + अ० हद] सीमारहित। असीम। उ०—पलटू दीगर को नेस्त करै, होय खुद अहद इस भाँति जाई।—पलटू०, पृ० ६३।

अहददार—संज्ञा पुं० [फा०] मुसलमानी राज्य के समय का एक अफसर जिसे राज्य की ओर से कर का ठीका दिया जाता था। उसको इस काम के लिये दो या तीन रुपया सैकड़ा बधेज मिलता था और राज्य मे वह सब कर का देनदार ठहरता था। एक प्रकार का ठेकेदार।

अहदनामा—संज्ञा पुं० [फा०] १. एकरारनामा। वह लेख या पत्र जिसके द्वारा दो या दो से अधिक मनुष्य किसी विषय मे कुछ इकरार या प्रतिज्ञा करें। प्रतिज्ञापत्र। २ सुलहनामा। संधिपत्र।

अहदी[1]—वि० पुं० [अ०] १ आलसी। अलहदी। आसकती। २ वह जो कुछ काम न करे। अकर्मण्य। निठल्लू। मठ्टर।

अहदी[2]—संज्ञा पुं० अकबर के समय के एक प्रकार के सिपाही जिनसे बड़ी आवश्यकता के समय काम लिया जाता था, शेष दिन वे बैठे खाते थे। उ०—घेर्यौ आइ कुटुम लसकर मैं, जम अहदी पठयौ। सूर नगर चौरासी भ्रमि भ्रमि, घर घर कौ जु भयौ।—सूर० १।६४।

विशेष—इसी से 'अहदी' शब्द आलसियों के लिये चल गया। ये लोग कभी कभी उन जमींदारों मे मालगुजारी वसूल करने के लिये भी भेजे जाते थे जो देने मे आनाकानी करते थे। ये लोग अड़कर बैठ जाते थे और बिना लिए नहीं उठते थे।

अहदीखाना—संज्ञा पुं० [फा० अहदीखानह्] अहदियों के रहने का स्थान।

अहदेहुकूमत—संज्ञा पुं० [फा०] शासनकाल। राज्य।

अहन्—संज्ञा पुं० [सं०] दिन। दिवस।

अहन—संज्ञा पुं० [सं० अहन्] १ दे० 'अहन्'। २ दिन। उ०—पेट को पढ़त गुन गढ़त, चढ़त गिरि अटत गहन बन अहन अखेटकी।—तुलसी ग्र०, पृ० २२०।

अहना(पु)—क्रि० अ० [सं० अस्ति] वर्तमान रहना। होना। उ०—(क) राजा सेति कुँअर सब कहहीं। अस अस मच्छ समुद महँ अहहीं।—जायसी (शब्द०)। (ख) जब लगि गुरु हौं अहा न चीन्हा। कोटि अंतरपट बीचहिं दीन्हा।—जायसी (शब्द०)।

अहनाथ—संज्ञा पुं० [सं० अहनाथ] दिन के स्वामी। सूर्य। उ०—महि मयक अहनाथ को आदिग्यान भव भेद। ता विधि तेरे जीव कहँ होत समुझ बिनु खेद।—स० सप्तक, पृ० ३८।

अहनिसि(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अहर्निश'। उ०—सुयो सुयो अहनिसि चिल्लाई। ओही रोस नागन्ह धै खाई।—जायसी (शब्द०)।

अहन्पुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] दुपहरिया का फूल। गुलदुपहरिया।

अहमक—वि० [अ०] जड़। बेवकूफ। मूर्ख। नासमझ। उ०—लहुरे थर्क दुहि पीया खीरो, ताका अहमक भकै सरीरो।—कबीर ग्र०, पृ० २३९।

अहमग्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आगे बढने की प्रतिद्वंद्विता। होड़ (को०)।

अहमहमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लागत। डाँट। पहले हम तब दूसरा। हमाहमी। चढा ऊपरी।

अहमिति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अहम्मति] १. अविद्या। अज्ञान। उ०—निसि दिन फिरत रहत मुँह बाए, अहमिति जनम बिगोइसि। गोड़ पसारि परयौ दोउ नीकै, अब कैसी कह रोइसि।—सूर०, १। ३३३। २ अहंकार। उ०—सजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहु जीति जगु ठाढा।—मानस, १। २८३।

अहमेव—संज्ञा पुं० [सं०] अहंकार। गर्व। घमड। उ०—(क) उदित होत सिवराज के, मुदित भए द्विज देव। कलियुग हट्यो मिट्यो सकल, म्लेच्छन को अहमेव।—भूषण (शब्द०)। (ख) सन्यासी माते अहमेव। तपसी माते तप के भेव।—कबीर ग्र०, पृ० ३०२।

अहर—संज्ञा पुं० [देश०] छीपियो के रंग का मिट्टी का बरतन। नँया।

अहरणीय—वि० [सं०] १ न चुराने योग्य। २ (धूर्तता द्वारा) न अपनाने योग्य। ३ दृढ। सुस्थिर (को०)।

अहरन—संज्ञा स्त्री० [सं० आ + धरण = रखना] निहाई। उ०—कबिरा केवल राम की तू मति छाँडै ओट। घन अहरन बिच लोह ज्यों घनी सहैं सिर चोट।—कबीर (शब्द०)।

अहरना†—क्रि० स० [सं० आहरण = निकलना] १ लकड़ी को छीलकर सुडौल करना। २ डोलना।

अहरनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अहरन'।

अहरनिसि(पु)†—क्रि० वि० दे० 'अहर्निश—२'। उ०—अहरनिसि आस लागी रहै सुन्न मे, बिना जल पिए क्या प्यास जाई।—कबीर० रे०, पृ० २९।

अहरा—संज्ञा पुं० [सं० आहरण = इकट्ठा करना] १ कंडे का ढेर जो जलाने के लिये इकट्ठा किया जाय। २ वह आग जो इस प्रकार इकट्ठा किए हुए कंडो से तैयार की जाय। ३. वह स्थान जहाँ लोग ठहरें। ४ प्याऊ। पौशाला।

अहराम—संज्ञा पुं० [अ० हरम = पुरानी इमारत का बहु व०] पुराने भवन। २. मिस्र के स्तूप या पिरामिड।

अहरी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ आहरण = इकट्ठा होना] १ वह स्थान जहाँ पर लोग पानी पिएँ। प्याऊ। २ वह गड्ढा या हौज जो कुएँ के किनारे जानवरों के पानी पीने के लिये बना रहता है। चरही। ३ हौज जिसमें किसी काम के लिये पानी भरा जाय।

अहर्गण- संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ दिनों का समूह। २ ज्योतिष कल्प के आदि से किसी इष्ट या नियत काल तक का समय।

अहर्दल- संज्ञा पु॰ [सं॰] दोपहर मध्यदिवस [को॰]।

अहर्निश—क्रि॰ वि॰ [सं॰] १ रातदिन। २. सदा। नित्य।

अहर्मणि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सूर्य।

अहर्मुख—संज्ञा पुं॰ [सं॰] उष काल। दिनारम। सवेरा।

अहल[1]— वि॰ [सं॰] अकृष्ट। बिना जोता हुआ (खेत) [को॰]।

अहल[2]—वि॰ [अ॰ अहल] लायक। समर्थ। योग्य [को॰]।

अहलकार—संज्ञा पुं॰ [फा॰] १ कर्मचारी। २ कारिंदा।

अहलकारी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] अहलकार का काम। कारिंदागिरी।

अहलना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ अलहनम] हिलना। काँपना। दहलना। उ॰—पहल पहल तन रुइ ज्यो झाँपै। अहल अहर अधिको हिय काँपै।—जायसी (शब्द॰)।

अहलमद- संज्ञा पु॰ [फा॰ अहलमद] अदालत का वह कर्मचारी जो मुकद्दमों की मिसिलो को रजिस्टर मे दर्ज करता और रखता है, अदालत के हुक्म के अनुसार हुक्मनामे जारी करता है तथा किसी मुकद्दमे का फैसला होने पर उसकी मिसिल को तर्तीब देकर मुहाफिजखाने मे दाखिल करता है।

अहला—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] 'अहिला'।

अहलाद—संज्ञा पु॰ [सं॰ आह्लाद] दे॰ 'आह्लाद'। उ॰—(क) ताकौ पुत्र भयौ प्रहलाद। भयौ असुर मन अति अहलाद।—सूर॰, १।४२१। (ख) टूँटा पकरि उठावै पर्वत पगुल करै नृत्य अहलाद। जो कोउ याको अर्थ विचारै सुदर सोई पावै स्वाद।—सुदर ग्र॰, भा॰ २, पृ॰ ५०८।

अहलादी—वि॰ [हिं॰] 'आह्लादी'।

अहलि—वि॰ [सं॰] दे॰ 'अहल' [को॰]।

अहले गहले—क्रि॰ वि॰ [अनु॰] मस्ती के साथ। प्रसन्नतापूर्वक। निश्चित मन से [को॰]।

अहल्या[1]—वि॰ [सं॰] जो (धरती) जोती न जा सके।

अहल्या[2]—संज्ञा स्त्री॰ गौतम ऋषि की पत्नी।

अहवान—संज्ञा पुं॰ [सं॰ आह्वान] बुलाना। आवाहन। उ॰—कियो आपने अयन पयाना। राति सरस्वति किय अहवाना।—रघुराज॰ (शब्द॰)।

अहवाल—संज्ञा॰ पुं॰ [अ॰ 'हाल' का बहु॰] १ समाचार। वृत्तात। उ॰—मरजे मुबारक का मरीज तब क्या अहवाल सुनाऊँ।—प्रेमघन॰, पृ॰ १९२। २ दशा। अवस्था। उ॰—अजब अहवाल देखा हमने कल इस खाने वीराँ का।—कविता कौ॰, भा॰ ४, पृ॰ २३०।

अहश्चर—वि॰ [सं॰] दिन मे चलनेवाला। दिनचारी [को॰]।

अहसान—संज्ञा पुं॰ [अ॰ एहसान] १ किसी के साथ नेकी करना। सलूक। भलाई। उपकार। २. कृपा। अनुग्रह। निहोरा। उ॰—बहु धन लै अहसान कै, पारो देत सराहि। बैद वधू हँसि भेद सौ, रही नाह मुख चाहि।—विहारी (शब्द॰)। ३. कृतज्ञता।

अहसानफरामोश—वि॰ [अ॰ एहसान + फा॰ फरामोश] उपकार को न माननेवाला। कृतघ्न। उ॰—'अच्छा, मैं बेवफा, अहसान फरामोश सही, तुम तो बडे वफादार हो।—श्रीनिवास ग्र॰, पृ॰ १२३।

अहसानफरोश- वि॰ [अ॰ एहसान + फा॰ फरोश] उपकार कर सबसे कहता फिरनेवाला [को॰]।

अहसानमद—वि॰ [अ॰ एहसान + फा॰ मद] कृतज्ञ। किए हुए को माननेवाला [को॰]।

अहसानमंदी-संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ एहसान + फा॰ मंदी] कृतज्ञता। उ॰—'वह मदनमोहन की अहसानमदी के बहाने से हरवक्त वहाँ बना रहता था।—श्रीनिवास ग्र॰, पृ॰ २११।

अहस्कर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ दिनकर। सूर्य। २ मदार [को॰]।

अहस्त—वि॰ [सं॰] बिना हाथवाला। जिसके हाथ कटे हों [को॰]

अहस्पति—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'अहस्कर'।

अहह—अव्य॰ [सं॰] एक अव्यय जिसका प्रयोग आश्चर्य, खेद, क्लेश और शोक सूचित करने के लिये होता है। उ॰—अहह तात दारुन हठ ठानी।—मानस, १।२५८।

अहा—अव्य॰ [सं॰ अहह] इसका प्रयोग प्रसन्नता और प्रशसा की सूचना के लिये होता है, जैसे—अहा! यह कैसा सुदर फूल है।

अहाता—संज्ञा पुं॰ [अ॰] १ घेरा। हाता। २ प्रकार। चारदीवारी।

अहान—संज्ञा पुं॰ [सं॰ आह्वान] पुकार। शोर। चिल्लाहट। उ॰—भइ अहान पदुमावति चली। छत्तिस कुलि भइ गोहन चली।—जायसी (शब्द॰)।

अहार—संज्ञा पु॰ दे॰ 'आहार'। उ॰—करहिं अहार साक फल कदा। सुमिरहि ब्रह्म सच्चिदानदा।—मानस, १।१४४।

अहारना—क्रि॰ सं॰ [सं॰ आहरण = खाना या हिं॰ अहार] १. खाना। भक्षण करना। उ॰—तौ हमरे आश्रम पशु धारौ। निज रुचि के फल विपुल अहारौ।—रघुराज॰ (शब्द॰)। २ चपकाना। लेई लगाकर लसना। ३ कपडे मे माँडी देना। ४ दे॰ 'अहरना'।

अहारी—वि॰ दे॰ 'आहारी'। उ॰—जिमि अरुनोपल निकर निहारी। धावहि सठ खग मास अहारी।—मानस, ६।३९।

अहार्य—वि॰ [सं॰] १ जो धन या घूस के लोभ में न आ सके। २. जो हरण न किया जा सके। जो चुराया न जा सकता हो।

यौ॰—अहार्य शोभा।

अहाहा—अव्य॰ [सं॰ अहह] हर्षसूचक अव्यय।

अहिंसक—वि॰ [सं॰] १ जो हिंसा न करे। जो किसी का घात न करे। २ जो किसी को दुख न दे। जिससे किसी को पीडा न पहुँचे।

अहिंसा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १ साधारण धर्मों मे से एक। किसी को दुख न देना। २. योगशास्त्रानुसार पाँच प्रकार के यमों में पहला। मन, वाणी और कर्म मे किसी प्रकार किसी प्राणी

मे किसी प्राणी को दुःख या पीडा न पहुँचाना। ३ बौद्धशास्त्रानुसार त्रस और स्थावर को दुःख न देना। ४ जैनशास्त्रानुसार प्रमाद से भी त्रस और स्थावर को किसी काल मे किसी प्रकार की हानि न पहुँचाना। धर्मशास्त्रानुसार शास्त्र की विधि के विरुद्ध किसी प्राणी की हिंसा न करना।६ कटकपाली या हैम नाम की घास। ७ सुरक्षा [को०]।

अहिंसावादी – वि० [सं० अहिंसावादिन्] अहिंसा का सिद्धांत माननेवाला [को०]।

अहिंस्र¹—वि० [सं०] जो हिंसा न करे। अहिंसक।

अहिंस्र²—संज्ञा पुं० १ एक प्रकार का पौधा। २ नुकसान न पहुँचानेवाला व्यवहार [को०]।

अहि—संज्ञा पुं० [सं०] १ साँप। २ राहु। ३ वृत्रासुर। ४ खल। वंचक। ५ आश्लेषा नक्षत्र। ६ पृथिवी। ७ सूर्य। ८ पथिक। ९ सीसा। १० मात्रिक गण में ठगण अर्थात् छह मात्राओं के समूह का छठा भेद जिसमें क्रम से लघु गुरु गुरु लघु '।ऽऽ।' मात्राएँ होती हैं, जैसे—दयासिंधु। ११ इक्कीस अक्षरों के वृत्त का एक भेद जिसमें पहले छह मगण और अत में मगण होता है, जैसे—मोर मसय हरि गेंद जो खेलत सग सखा यमुना तीरा। गेंद गिरो यमुना दह में झटि कूदि परे धरि के धीरा। ग्वाल पुकार करी तब नंद यशोमति रोवति ही धाए। दाऊ रहे समुझाय इतै अहि नाथि उतै दह में आए।—(शब्द०)। १२ नाभि [को०]। १३ बादल [को०]। १४ जल [को०]

अहिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ अंधा साँप। २ ध्रुव तारा [को०]।

अहिक²—वि० [सं] स्थित रहनेवाला (यह संख्यावाचक शब्द के अंत मे लगकर उतने दिनों का बोध कराता है) [को०]।

अहिकांत—संज्ञा पुं० [सं० अहिकान्त] पवन। वायु [को०]।

अहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमल का वृक्ष।

अहिकोष—संज्ञा पुं० [सं०] १ निर्मोक। साँप की केंचुल। २ छद्मविशेष [को०]।

अहिक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ दक्षिण पांचाल की राजधानी। २ प्राचीन दक्षिण पांचाल। अहिच्छत्र।

विशेष—यह देश कपिल से चंबल तक था। इसे अर्जुन ने द्रुपद से जीतकर द्रोण को गुरुदक्षिणा में दिया था।

अहिगण—संज्ञा पुं० [सं०] पाँच मात्राओं के गण—ठगण का सातवाँ भेद जिसमें एक गुरु और तीन लघु होते हैं (ऽ।।।), जैसे—पापहर।

अहिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिक चक्रविशेष [को०]।

अहिच्छत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राचीन दक्षिण पांचाल। यह देश अर्जुन ने द्रुपद से जीतकर द्रोण को गुरुदक्षिणा मे दिया था। २ दक्षिण पांचाल की राजधानी। ३ मेढासींगी।

अहिच्छत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] कुकुरमुत्ता [को०]।

अहिच्छत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अहिच्छत्र नामक देश की राजधानी। २ शक्कर। ३ मेषशृंगी। मेढासिंगी [को०]।

अहिजित्—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण [को०]।

अहिजिन- संज्ञा पुं० [सं० अहिजित्] १ इंद्र। २ कृष्ण।

अहिजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागफनी।

अहिटा(पु)†—संज्ञा पुं० [अ० अहदी] वह व्यक्ति जो जमींदार की ओर से उस असामी की फसल काटने से रोकने के लिये बैठाया जाय जिसने लगान या देना न दिया हो। सहना।

अहित¹—वि० [सं०] १ शत्रु। वैरी। विरोधी। २ हानिकारक। अनुपकारी। उ०—और अहित सो कछु कहति न कहा बरनि न जाइ।—सूर० १। ५६।

अहित²—संज्ञा पुं० बुराई। अकल्याण। उ०—दुरजोधन पठयौ पाडव अहित विचारी।—सूर०, १। १२२।

अहितकर—वि० [सं०] अहित करनेवाला। हानिकर [को०]।

अहितकारी—वि० [सं० अहितकारिन्] दे० 'अहितकर'।

अहितुंडिक—संज्ञा पुं० [सं० अहितुण्डिक] १ सँपेरा। साँप को वश में करनेवाला। २ जादूगर [को०]।

अहिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] आश्लेषा नक्षत्र [को०]।

अहिदैवत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अहिदेव'।

अहिद्विट्—संज्ञा पुं० [सं० अहिद्विष्] १ इंद्र। २ नकुल। ३ मयूर। ४ गरुड। ५ कृष्ण [को०]।

अहिनकुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सर्प और नेवले का स्वाभाविक वैर। २ सहज शत्रुता [को०]।

अहिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] सर्पराज। शेषनाग [को०]।

अहिनामभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] बलदेव का एक नाम [को०]।

अहिनाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अहिनाथ, प्रा० अहिनाह] शेषनाग। उ०—प्रभु विवाह जस भयेउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू।—मानस, १।३६१।

अहिनिर्मोक—संज्ञा पुं० [सं०] साँप की केंचुल [को०]।

अहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सर्पिणी। नागिन। उ०—दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।—मानस, ३।११।

अहिप—संज्ञा पुं० [सं०] शेषनाग। उ०—अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई।—मानस, २।२५३।

अहिपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ वासुकि नाग। २ बड़े आकार का सर्प। ३ शेषनाग। उ०—महि सकल नभ चार उदार अहिपति बार बारहि मोहई।—मानस, ५। ३५।

अहिपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सर्पाकृति नौका [को०]

अहिपूतन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अहिपूतना] बच्चों को होनेवाला एक रोग [को०]।

विशेष—इसमें बच्चों को पानी सा दस्त आता है। गुदा से सदा मल बहा करता है। गुदा लाल बनी रहती है। धोने पोछने से खुजली उठती और फोडे निकलने हैं।

अहिफेन—संज्ञा पुं० [सं०] १ सर्प के मुँह की लार या फेन। २. अफीम।

अहिबुध्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ एकादश रुद्रों में से एक। २ शिव। ३ उत्तराभाद्रपद नक्षत्र। ४ एक मरुत् का नाम [को०]।

अहिबेल(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अहिवल्ली, प्रा० अहिवेली] नागबेलि।

पान। उ०—कनक कलित अहिबेलि बटाई। लखि नहिं परै सपरन सहाई।—तुलसी (शब्द०)।

अहिव्रघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अहिर्बुध्न'।

अहिभय—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपने ही पक्ष के विश्वासघात का भय। २ सर्प के काट खाने का भय।

अहिभयदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] साँप को भय देनेवाली। भूम्यामलकी। भुँइआँवला [को०]।

अहिभानु—वि० [सं०] सूर्य की गति का जो कारण हो।—जैसे, वायु। २ वायु का विशेषण। ३ साँप सा चमकनेवाला [को०]।

अहिभुक्—संज्ञा पुं० [सं० अहिभुज्] १ मोर पक्षी। २ नेवला। ३ गरुड़ पक्षी। ४ गधनाकुली नामक पौधा [को०]।

अहिभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] सर्पधारी शिव [को०]।

अहिम—वि० [सं० अ + हिम] जो शीतल न हो। उष्ण [को०]।
यौ०—अहिमकर, अहिमतेजा, अहिमदीधिति, अहिमद्युति, अहिमयूख, अहिमरश्मि, अहिमरुचि, अहिमरोचिष् = सूर्य।

अहिमर्दनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गधनाकुली नामक पौधा [को०]।

अहिमांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

अहिमान—संज्ञा पुं० [सं० अहि = गति + मत् = युक्त अहिमान्] चाक में वह गढ़ा जिसके बल चाक को कील पर रखते हैं।

अहिमाली—संज्ञा पुं० [सं० अहिमालिन्] सर्प की माला धारण करनेवाले शिव।

अहिमेध—संज्ञा पुं० [सं०] सर्पयज्ञ।

अहिर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अहीर'। उ०—अहिर जाति गोधन कौं मानै।—सूर०, १०।१६२५।

अहिराइ—संज्ञा पुं० [सं० अहिराज, प्रा० अहिराइ] सर्पराज। उ०—गर्व वचन कहि कहि मुख भाषत, मोकों नहिं जानत अहिराइ।—सूर०, १०।५५५।

अहिरिन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अहिर] अहिर की स्त्री। उ०—अहिरिनि हाथ दहेंडि सगुन लेइ आवइ हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४।

अहिर्बुध्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ ११ रुद्रों में से एक। २ उत्तराभाद्रपद नक्षत्र, जिसके देवता अहिर्बुध्न हैं।

अहिर्बुध्न्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अहिर्बुध्न'।

अहिलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली। पान।

अहिला†—संज्ञा पुं० [सं० अभिप्लव, प्रा० अहिल्लो, हिं० होल, चहला = कीचड़] १ पानी की बाढ़। बूड़ा। २ गड़बड़। ३ दंगा।

अहिलाद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आह्लाद] दे० 'आह्लाद'। उ०—कामी लज्या नाँ करै मन माँहे अहिलाद। नींद न माँगै साँथरा भूप न माँगे स्वाद।—कबीर ग्रं०, पृ० ४१।

अहिलोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामलकी [को०]।

अहिलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक सर्प [को०]।

अहिल्या—संज्ञा स्त्री० [सं० अहल्या] दे० 'अहल्या'।

अहिवर—संज्ञा पुं० [सं०] दोहे का एक भेद जिसमें पाँच गुरु और ३८ लघु होते हैं, जैसे—कनक वरण तन मृदुल अति कुसुम सरिस दरसात। लखि रुचि दूसरन ठकि रहे बिसराई सब बात।

अहिवल्ली—संज्ञा पुं० [सं०] पान। ताबूल। नागवल्ली।

अहिवात—संज्ञा पुं० [सं० अविधवात्व, प्रा० *अइहात (पु)अहिवात] [वि० अहिवातीन, अहिवाती] सौभाग्य। सोहाग। उ०—(क) राज करौ चितउर गढ़ राखौ पिय अहिवात।—जायसी (शब्द०)। (ख) अचल होउ अहिवात तुम्हारा। जब लगि गग जमुन जलधारा।—तुलसी (शब्द०)।

अहिवातिन—वि० स्त्री० [हिं० अहिवात] सौभाग्यवती। सधवा।

अहिवाती—वि० स्त्री० [हिं० अहिवात] सौभाग्यवती। सोहागिन।

अहिविषापहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गधनाकुली पौधा [को०]।

अहिसाव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अहिशावक] साँप का बच्चा। पोआ। सँपोला।

अही—संज्ञा पुं० [सं०] पृथिवी और आकाश [को०]।

अहीक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रानुसार दस क्लेशों में से एक।

अहीन¹—वि० [सं०] १ जो हीन न हो। भ्रान्तिवश जिसे हीन समझ लिया जाय। २ जो औरों से कम न हो। महान्। ३ दोषरहित। ४ पूरा। संपूर्ण। ५ जो जातिच्युत न हो [को०]।

अहीन²—संज्ञा पुं० [सं०] १ कई दिनों में पूर्ण होनेवाला यज्ञविशेष। २ लंबा साँप। ३ वासुकि [को०]।

अहीनगु—संज्ञा पुं० [सं०] एक सूर्यवंशी राजा। देवानीक का पुत्र।

अहीनवादी—वि० [सं० अहीनवादिन्] जो निरुत्तर न हुआ हो। जो वाद में न हारा हो।

अहीर—संज्ञा पुं० [सं० आभीर] [स्त्री० अहीरिन] एक जाति जिसका काम गाय भैंस रखना और दूध बेचना है। ग्वाला। उ०—तोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा—मानस, ७।११७।

अहीरणि—संज्ञा पुं० [सं०] दो मुँहवाला साँप [को०]।

अहीरी¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

अहीरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० अहीर] ग्वालिन। अहीरिन।

अहीश—संज्ञा पुं० [सं०] १ साँपों का राजा। शेषनाग २ शेष के अवतार लक्ष्मण और बलराम आदि।

अहीस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अहीश] शेषनाग। उ०—दानव देव अहीस महीस महामुनि तापस सिद्ध समाजी।—तुलसी ग्रं० पृ० २२०।

अहुँठ(पु)—वि० [हिं०] साढ़े तीन। तीन और आधा।

अहुजी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] घीए के महीन टुकड़ों को मिलाकर पकाया हुआ चावल।

अहुटना(पु)—क्रि० अ० [सं० अ + हठ, हिं० हटना] हटना। दूर होना। अलग होना। उ०—(क) विरह भयो घर अगन कौने। हम अबला अति दीन हीन मति तुमही हो विधि योग। सूर वदन देखन हौ अहुटै या शरीर को रोग।—सूर (शब्द०)। (ख) दुहुँ देखि दाटत हटत भ्रटत जाइ लपटत धाइ। फिरि फेरि अहुटत चलत, चहुटत दुहुँ पुहटत आइ—सूदन (शब्द०)।

अहुटाना(पु)—क्रि० स० [सं० अ + हठ हिं० हटाना] हटाना। दूर करना। अलग करना। भगाना। उ०—उमडि कितेकनु चोट चलाइ। मुंसिडिनि मारि दए अहुटाइ।—सूदन (शब्द०)।

अहुठ(पु)--वि० [सं० अध्युष्ठ या अर्धचतुर्थ प्रा० *अद्धअउत्थ *अद्धउट्ठ] अध्युट्ठ अद्धुट्ठ] साढे तीन। तीन और आधा। उ०--(क) अहुठ हाथ तन-सरवर हिया कवल तेहि माँह--जायसी ग्रं०, औगाह। पृ० ५०। अहुठ पैर वसुधा सब कीन्ही धाम अवधि विरमावन।--सूर (शब्द०)। (ग) कबहुँक अहुठ परग करि वसुधा कबहुँक देहरि उलँघि न जानी।--सूर (शब्द०)।

अहुत¹--संज्ञा पुं० [सं०] जप। ब्रह्मयज्ञ। वेद-पाठ। यह मनुस्मृति के अनुसार पाँच यज्ञों में से है।

अहुत²--वि० १ विना होम किया हुआ। २ अविहित ढग से हवन किया हुआ। ३ जिसे होम का भाग या आहुति न मिली हो [को०]।

अहुर--संज्ञा पुं० [सं०] जठराग्नि [को०]।

अहुरमज्द--संज्ञा पुं० [पह अहुरमज्द] पारसी धर्मशास्त्र के अनुसार धर्म, ज्ञान और प्रकाश का देवता।

अहुँठा--वि० [हिं०] दे० 'अहुठ'।

अहुरनावहुरना(पु)-- क्रि० अ० [देश०] आना जाना। आने जाने की क्रिया।

अहूठन--संज्ञा पुं० [सं० स्थूण] जमीन में गाडा हुआ काठ का कुदा जिसपर रखकर किसान गँडासे से चारा काटते हैं। ठीहा।

अहृदय--वि० [सं०] १ हृदयहीन। अरसिक। २ खल्वाटहवाम। झक्की [को०]।

अहृद्य वि० [सं०] १ जो हृदयहारी न हो। अरुचिकर। २ जो वलकारक न हो, जैसे--औषध [को०]।

अहे¹--संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड जिसकी भूरी लकडी मकानों में लगती है तथा हल और गाडी आदि बनाने के काम में आती है।

अहे²--अव्य (सं०) १ दे० 'हे'। २ खेद, अलगाव या निंदा का वाचक [को०]।

अहेडमान--वि० [सं०] जो अनचाहा या अनिच्छित न हो [को०]।

अहेतु¹--वि० (सं०) १ विना कारण का। विना सबब का। निमित्त-रहित। २ व्यर्थ। फजूल।

अहेतु²--संज्ञा पुं० एक काव्यालंकार जिसमें कारणों के इकट्ठे रहने पर भी कार्य का न होना दिखलाया जाय, जैसे--है सध्या हूँ रागयुत दिवसहु समुख नित्त। होत समागम तदपि नहिं विधि गति अहो विचित्र।

अहेतुक--वि० [सं०] दे० 'अहेतु'।

अहेतुसम--संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौवीस भेदों में से एक। विशेष--यदि वादी कोई हेतु उपस्थित करे और उसके उत्तर में यह कहा जाय कि तुम्हारा यह हेतु भूत, भविष्य या वर्तमान किसी काल में हेतु नहीं हो सकता, तो ऐसा उत्तर अहेतुसम कहलाएगा।

अहेर--संज्ञा पुं० [सं० आखेट, प्रा० अहेड] [वि० अहेरी] १ शिकार। मृगया। २ वह जतु जिसका शिकार खेला जाय।

अहेरी¹--संज्ञा पुं० [हिं० अहेर+ई (प्रत्य०)] शिकारी। आखेटक। उ०--चित्रकूट मनु अचल अहेरी। मानस, २।१३३।

अहेरी²--वि० शिकार खेलनेवाला। शिकारी। व्याध।

अहेरु--संज्ञा पुं० [सं०] महाशतावरी या शतमूली नामक पौधा [को०]।

अहै--क्रि० अ० [सं० अस्ति, प्रा० अहइ > अहै] है। उ०--अहै कुमार मोर लघु भ्राता।--मानस, ३।११।

अहो--अव्य० [सं०] एक अव्यय जिसका प्रयोग कभी संबोधन की तरह और कभी करुणा, खेद, प्रशसा, हर्ष और विस्मय सूचित करने के लिये होता है, जैसे, (संबोधन) जाहु नहीं, अहो जाहु चले हरि जात चले दिनहीं वनि वागे।--केशव (शब्द०)। (करुणा, खेद) अहो! कैसे दुख का समय है। (प्रशसा) अहो! धन्य तव जनम मुनीसा।--तुलसी (शब्द०)। (हर्ष) अहो भाग्य! आप आए तो। (विस्मय) दूनो दूनो वाढत सुपूनो की निसा में, अहो आनँद अनूप रूप काहू ब्रज वाल को। पद्माकर (शब्द०)। कभी कभी केवल पादपूरणार्थक भी प्रयोग होता है। जैसे, भारत कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो।--भारत०, पृ० ८५।

अहोई¹--संज्ञा स्त्री० [हिं०] सतानप्राप्ति के लिये स्त्रियों द्वारा की जाने वाली वह पूजा जो दीपावली से आठ दिन पहले होती है।

अहोई²--वि० [सं० अभाविन्, प्रा० *अहोई] न होनेवाली [को०]।

अहोनस(पु)--क्रि० वि० [सं० अहर्निश] रात दिन।

अहोरत्न--संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अहोरात्र--संज्ञा पुं० [सं०] दिनरात। दिन और रात्रि का नाम।

अहोरावहोरा¹--संज्ञा पुं० [हिं० अहुरना+वहुरना] विवाह की एक रीति जिसमें दुलहन ससुराल में जाकर उसी दिन अपने पिता के घर लौट जाती है। हेरफेरी।

अहोरावहोरा²--क्रि० वि० वार वार। लौट लौटकर। उ०--शरद चंद महँ खजन जोरी। फिरि फिरि लरहिं अहोर वहोरी।--जायसी (शब्द०)।

अह्द--संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'अहद'।

अह्न--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अह'। (समासांत में) जैसे-मध्याह्न [को०]।

अह्निज--वि० [सं० अह्नि=सप्तमी रूप+ज] दिन में होनेवाला [को०]।

अह्नि--वि० [सं०] १ आरामतलब। स्थूल या मोटा। २ बुद्धिमान्। विद्वान्। कवि [को०]।

अह्रिय--वि० [सं०] धृष्ट। ढीठ। निर्लज्ज। घमंडी [को०]।

अह्री¹--वि० [सं०] निर्लज्ज [को०]।

अह्री²--संज्ञा स्त्री० निर्लज्जता [को०]।

अह्रीक¹--वि० [सं०] निर्लज्ज। वेशर्म, जैसे--भिक्षुक [को०]।

अह्रीक²--संज्ञा पुं० वौद्ध भिक्षु [को०]।

अह्रुत--वि० [सं०] १ जो टेढा न हो। अकुटिल। २ अकंपित [को०]।

अह्ल--वि० [अ०] दे० 'अहल' [को०]।

अह्लखाना--संज्ञा स्त्री० [अ० अह्लखानह्] पत्नी। भार्या। गृहस्वामिनी [को०]।

अह्लेकलम--संज्ञा पुं० [अ०] लेखक। मसिजीवी [को०]।

अह्लेवतन--संज्ञा पुं० [अ०] देशवासी। वतनवाले [को०]।

अह्लिया--संज्ञा स्त्री० [अ० अहलियह] पत्नी। भार्या। जोरू [को०]।

अह्लीयत--संज्ञा स्त्री० [अ०] योग्यता। पात्रता। निपुणता [को०]।

अह्ल--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दृढता। २ भिलावाँ। भल्लातक [को०]।

आ

आ—हिंदी वर्णमाला का दूसरा अक्षर जो 'अ' का दीर्घ रूप है।

आंकिक—संज्ञा पुं० [सं० आङ्किक] संख्याता। गणक। गणना करनेवाला।

आंकुशिक—संज्ञा पुं० [सं० आङ्कुशिक] अंकुश से आघात करनेवाला [को०]।

आंक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० आङ्क्षी] एक प्रकार का वाद्य [को०]।

आंग¹—वि० [सं० आङ्ग][वि० स्त्री० आंगी]१ अंग या शरीरसंबंधी। २ शब्द के आधार या अंग से संबंध रखनेवाला (व्या०)। ३ अंग या अवयवयुक्त या उससे संबंध रखनेवाला। ४ गौण या निम्न पात्रों से संबंध रखनेवाला (नाट्य०)। ५ वेदों के अंग से संबंध रखनेवाला। ६ अंग देश में पैदा किया हुआ या उत्पन्न [को०]।

आंग²—संज्ञा पुं० १ अंग देश का राजकुमार। २ सुकुमार शरीर। ३ अंग। शरीर।

आंगक¹—वि० [सं० आङ्गक][वि० आंगकी]अंग देश में उत्पन्न [को०]

आंगक²—संज्ञा पुं० १ अंग देश का निवासी व्यक्ति। २ अंग देश का शासक [को०]।

आंगदी—संज्ञा स्त्री० [सं०आङ्गदी] राजा अंगद की राजधानी [को०]।

आंगविद्य—वि० [सं० आङ्गविद्य] १. अंगविद्या संबंधी। २.अंगविद्या का जानकार या ज्ञानी [को०]।

आंगार—संज्ञा पुं० [सं० आङ्गार] कोयले का ढेर या समूह [को०]।

आंगारिक-वि०[सं० आङ्गारिक] कोयला सुलगाने या जलानेवाला[को०]।

आंगिक¹-वि० [सं० आङ्गिक] [स्त्री० आंगिकी] १ अंगसंबंधी। अंग का। २ अंग की चेष्टा द्वारा व्यक्त या प्रकट किया हुआ, जैसे आंगिक अभिनय (नाट्य०)।

आंगिक²—संज्ञा पुं० १ चित्त के भाव को प्रकट करनेवाली चेष्टा, जैसे भ्रूविक्षेप, हाव आदि। २ रस में कायिक अनुभाव। ३ नाटक में अभिनय के चार भेदों में से एक।

विशेष—चार भेद ये हैं—(क) आंगिक = शरीर की चेष्टा बनाना, हाथ, पैर हिलाना आदि। (ख) वाचिक = बातचीत आदि की नकल। (ग) आहार्य = वेशभूषा आदि बनाना। (घ) सात्विक = स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य आदि की नकल।

यौ०—आंगिकाभिनय।

४ मृदंग या ढोल का वादक [को०]। ५ बाँहदार या बँहोलीदार पुरुषों का परिधान जो घुटनों के नीचे तक पहुँचता था। अंगा [को०]।

आंगिरस¹-संज्ञा पुं० [सं० आङ्गिरस] [वि०स्त्री० आंगिरसी] १ अंगिरा के पुत्र बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त। २ अंगिरा के गोत्र का पुरुष। ३ अथर्ववेद की चार ऋचाओं का सूक्त जिसके द्रष्टा अंगिरा थे।

आंगिरस²—वि० [सं० आङ्गिरस] १ अंगिरासंबंधी। अंगिरा का। २ अंगिरा से उत्पन्न [को०]।

आंगिरस सत्र—संज्ञा पुं० [सं० आङ्गिरस + सत्र] यज्ञविशेष। बृहस्पतिसत्र [को०]

आंगूष—संज्ञा पुं० [सं० आङ्गूष] स्तुति। ऋचा। स्तोत्र [को०]।

आंग्ल— वि० [अं० ऐंग्लो] अँगरेजों से संबंधित। अँगरेजी।

आंचन—संज्ञा पुं०[सं० आञ्चन] काँटा, वाण या इसी प्रकार की कोई नुकीली चीज शरीर से बाहर निकालना [को०]।

आंचलिक—वि० [सं०अञ्चल] अंचल या स्थानविशेष का।

आंचलिकता-संज्ञा स्त्री० [सं० आञ्चलिक + ता (प्रत्य०)] क्षेत्र विशेष से संबंध रखनेवाली स्थिति।

आंछन-संज्ञा पुं० [सं०आञ्छन] टूटी हुई हड्डी बैठाना। उतरा हुआ पैर या जोड़ ठीक करना [को०]।

आंजन¹-वि०[सं०आञ्जन]१ अंजनसंबंधी या अंजनयुक्त। २ स्थूल। मोटा [को०]।

आंजन²—संज्ञा पुं० १ आँख का अंजन। २ अंजना के पुत्र हनूमान्। मारुति।

आंजनिक्य-संज्ञा पुं०[सं० आञ्जनिक्य]आँख का अंजन बनाने में काम आनेवाली चीज [को०]।

आंजनी-संज्ञा स्त्री० [सं०आञ्जनी] १ आँख का अंजन। २ अंजन की डिबिया [को०]।

आंजनीकारी-संज्ञा स्त्री० [सं०आञ्जनीकारी]अंजन तैयार करनेवाली या लगानेवाली स्त्री [को०]।

आंजनेय—संज्ञा पुं० [सं०आञ्जनेय] अंजना के पुत्र हनूमान्। उ०—आंजनेय को अधिक कृती उन कार्तिकेय से भी लेखो।—साकेत, पृ० ३८२।

आंजलिक-संज्ञा पुं० [सं० आञ्जलिक] एक प्रकार का अर्धचंद्राकार वाण [को०]।

आंजलिक्य—संज्ञा पुं० [सं० आञ्जलिक्य] नम्रता से अंजलि या हाथ जोड़ना [को०]।

आंजल्यक—संज्ञा पुं० [सं० आञ्जल्यक] करबद्ध होना। हाथ जोड़ना [को०]।

आंजस-वि० [सं० आञ्जस] [वि० स्त्री० आंजसी]सद्यस्क। तात्कालिक। क्रमिक [को०]।

आंजिनेय-संज्ञा पुं० [सं० आञ्जिनेय] १ एक प्रकार की छिपकली [को०]।

आंड¹—वि० [सं० आण्ड] अंडे से उत्पन्न [को०]।

आंड²—संज्ञा पुं० १ ब्रह्मा। हिरण्यगर्भ। २ अंडों का ढेर है। ३ अंडकोश [को०]।

आंडज¹—वि० [सं० आण्डज] अंडे से उत्पन्न [को०]।

आंडज²—संज्ञा पुं० १ पक्षी। २ पक्षी का शरीर। ३ सर्प [को०]।

आंडिक,आंडीक—वि० [सं० आण्डिक,आण्डीक] अंडयुक्त [को०]।

आंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० आण्डी] अंडकोष [को०]।

आंडीर—वि० [सं० आण्डीर] १ बहुत अंडोंवाला। २ बलवान। प्रौढ़ (जैसे, बैल) [को०]।

आंत—वि० [सं० आन्त] [वि० स्त्री० आंती] अंतिम [को०]।

आंतर¹—वि० [सं० आन्तर] छिपा हुआ। भीतरी। गुप्त। उ०—इसके बाह्य और आंतर सौंदर्य के भेद करना मेरे विचार से असंगत है।—जय० प्र०, पृ० ३८।

आंतर²—संज्ञा पुं० १ भीतरी स्वभाव। अंत प्रकृति। २ जिगरी दोस्त। ३ हृदय [को०]।

आंत पुरिक¹—वि० [सं० आन्त पुरिक] अंत पुर संबंधी [को०]।

आंत पुरिक²—संज्ञा पुं० अंत पुर की वार्ता या कार्य [को०]।

आंतरज्ञ—वि० [सं० आन्तरज्ञ] आंतरिक या गुह्य तत्व को जाननेवाला [को०]।

आंतरतम्य—संज्ञा पुं० [सं० आन्तरतम्य] घनिष्ठ या निकट संबंध, जैसे दो अक्षरों का [को०]।

आंतर प्रपंच—संज्ञा पुं० [सं० आन्तर+प्रपञ्च] भ्रम के कारण उत्पन्न धारणा [को०]।

आंतरागारिक—वि० [सं० आन्तरागारिक] भांडार या भांडागारिक के कर्तव्यों से संबंध रखनेवाला [को०]।

आंतरायिक—वि० [सं० आन्तरायिक] १ अंतर से उपस्थित होनेवाला। २ समय समय पर उद्धृत [को०]।

आंतराल¹—वि० [सं० आन्तराल] अंतर की प्रकृति की जानकारी रखनेवाला [को०]।

आंतराल²—संज्ञा पुं० [सं० आन्तराल] एक दार्शनिक संप्रदाय।

आंतरिक वि० [सं० आन्तर+इक (प्रत्य०)] १. आंतर या हृदयसंबंधी। उ०—जब एक व्यक्ति अपने आंतर सत्य को प्राप्त करने के लिये अपनी सारी शक्तियों को केंद्रीभूत करता है।—मुंशी अभि० ग्र०, पृ० ४७। २ घरेलू। भीतरी। उ०—नंद आंतरिक विग्रह के कारण जर्जरित हो गया था।—चंद्र०, पृ० ३२।

आंतरिकता—संज्ञा स्त्री० [सं० आंतरिक+ता (प्रत्य०)] घनिष्ठता। आत्मीयता। उ०—वह कुछ सकुचाया और फिर जैसे उसने मुझे सह लिया और आंतरिकता भी बढ़ गई।—भस्मावृत०, पृ० १०।

आंतरिक्ष¹ वि० [सं० आन्तरिक्ष] [वि० स्त्री० आंतरिक्षी] १ अंतरिक्ष संबंधी। २ अंतरिक्ष में उत्पन्न [को०]।

आंतरिक्ष²—संज्ञा पुं० १ पृथ्वी और आकाश के बीच का स्थान। २ वर्षा का जल [को०]।

आंतरीक्ष—वि०, संज्ञा पुं० [सं० आन्तरीक्ष] दे० 'आंतरिक्ष' [को०]।

आंतरीय—वि० [सं० आन्तर+ईय (प्रत्य०)] आंतरिक। भीतरी। हार्दिक। उ०— यदि आंतरीय कष्ट न हो तो भी।—प्रेम घन०, भा० २, पृ० १६०।

आंतर्गेहिक—वि० [सं० आन्तर्गेहिक] [वि० स्त्री० आंतर्गेहिकी] घर के भीतर का। घर के भीतर उत्पन्न [को०]।

आंतर्वेदिक—वि० [सं० आन्तर्वेदिक] वेदिका या वेदी के भीतर का [को०]।

आंतर्वेशिक—संज्ञा पुं० [सं० आन्तर्वेशिक] दे० 'अंतर्वेशिक'। उ०—आंतर्वेशिक से प्रश्न हुआ, कितनी नई दासियाँ अंत पुर में आई हैं।—इरा०, पृ० ४७।

आंतर्वेश्मिक—वि० [सं० आन्तर्वेश्मिक] घर के अंदर या भीतरी भाग से संबंध रखनेवाला [को०]।

आंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० आन्तिका] बड़ी बहन [को०]।

आंत्र¹—वि० [सं० आन्त्र] आँत का। आँत संबंधी [को०]।

आंत्र²—संज्ञा पुं० आँत [को०]।

आंत्रिक—वि० [सं० आन्त्रिक] आँत संबंधी [को०]।

आंदोल—संज्ञा पुं० [सं० आन्दोल] १ हिलना डुलना। झूलना। २ काँपना। कंपन [को०]।

आंदोलक—संज्ञा पुं० [सं० आन्दोलक] झूला।

आंदोलन—संज्ञा पुं० [सं० आन्दोलन] १ बार बार हिलना डुलना। इधर से उधर हिलना। काँपना। झूलना। उ०—आलोक रश्मि से बुने उषा अंचल में आंदोलन अमंद।—कामायनी, पृ० १६८। २ उथल पुथल करनेवाला सामूहिक प्रयत्न। हलचल। धूम, जैसे, शिक्षा के प्रचार के लिये वहाँ खूब आंदोलन हो रहा है। उ०—इसके पीछे तो खड़ी बोली के लिये एक आंदोलन ही खड़ा हुआ।—इतिहास०, पृ० ५०६।

आंदोलित—वि० [सं० आन्दोलित] [वि० स्त्री० आंदोलिता] हिलता डुलता हुआ। झोंके खाता हुआ। उ०—इन कवियों के मन में एक आँधी उठ रही थी जिसमें आंदोलित होते हुए वे उड़े जा रहे थे।—इतिहास०, पृ० ६५०। २. कंपनयुक्त। हलचल से भरा।

आंधस—संज्ञा पुं० [सं० आन्धस] मंड। माँड़ [को०]।

आंधसिक¹—संज्ञा पुं० [सं० आन्धसिक] पाचक। पाककार। रसोइया [को०]।

आंधसिक²—वि० भोजन या खाना बनानेवाला [को०]।

आंध्य—वि० [सं० आन्ध्य] १ अंधता। अंधापन। २ अंधकार [को०]।

आंध्र¹—संज्ञा पुं० [सं० आन्ध्र] १ ताप्ती नदी के किनारे का देश। २. भारत का तेलुगु भाषी प्रदेश या राज्य।

आंध्र²—वि० आंध्र देश का निवासी।

आंब—संज्ञा पुं० [सं० आम्ब] अन्न का एक प्रकार या भेद [को०]।

आंबष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० आम्बष्ठ] अंबष्ठ देश का निवासी व्यक्ति [को०]।

आंबिकेय—संज्ञा पुं० [सं० आम्बिकेय] अंबिका का पुत्र। १ धृतराष्ट्र। २ कार्तिकेय [को०]।

आंबुद—वि० [सं० आम्बुद] अंबुद या बादल संबंधी [को०]।

आंभस—वि० [सं० आम्भस] [वि० स्त्री० आंभसी] १ जल संबंधी। २ द्रव। तरल [को०]।

आंभसिक¹—वि० [सं० आम्भसिक] जल में रहनेवाला। जलचर [को०]।

आंभसिक²—संज्ञा पुं० मछली [को०]।

आंभसी—संज्ञा स्त्री० [सं० आम्भसी] घेरंड संहिता में वर्णित पाँच धारणामुद्राओं में से एक। जलचरी मुद्रा।

आंशिक—वि० [सं०] अंशसंबंधी। अंश विषयक। कुछ। थोड़ा।

आंशुक जल—संज्ञा पुं० [सं०] किरण दिखाया हुआ पानी। वह जल जो एक तांबे के बर्तन में रखकर दिन भर धूप में और रात

भर चाँदनी या ओस में रखकर छान लिया जाय। वैद्यक में इसका बड़ा गुण लिखा है।

आश्य--वि० [सं०] अंश से संबंध रखनेवाला [को०]।

आँ--अव्य० [अनु०] १ विस्मयसूचक शब्द, जैसे,--आँ, क्या कहा ? फिर तो कहो। २ बालक के रोने के शब्द का अनुकरण।

आँक¹--संज्ञा पुं० [सं० अंक] १ अंक। चिह्न। निशान। २ संख्या का चिह्न। अदद। उ०--(क) तुलसी महीस देखे, दिन रजनीस जैसे, सूने पर सून से मनो मिटाए आँक के।--तुलसी ग्रं०, पृ० ३१८। (ख) कहत सबै बेंदी दिये आँक दस गुनो होत।--बिहारी र०, दो० २२७। ३ अक्षर। हरफ। उ०-(क) बिरह तचें उबर्‌यौ सु अब सेंहुड कैसो आँकु।--बिहारी र०, दो० ४५७। (ख) गुण पै अपार साधु, कहैं आँक चारि ही में अर्थ बिस्तारि कविराज टकसार है।--प्रिया० (शब्द०)। ४. गढ़ी हुई बात। ५ दृढ़ निश्चय। निश्चित सिद्धांत। उ०--जाउँ राम पहिं आएसु देहू। एकहिं आँक मोर मन एहू।--मानस, २।१७८। (ख) एकहिं आँक इहइ मन माहीं। प्रात काल चलिहौं प्रभु पाहीं।--मानस, २।१८३। ६ अंश। हिस्सा। उ०--काम-संकल्प डर निरखि बहु बासनहिं आस नहिं एकहू आँक निरवान की।--तुलसी ग्रं०, पृ० ५६३। ७. किसी मनुष्य के नाम पर प्रसिद्ध वंश, जैसे, वे बड़े कुलीन हैं, वे अमुक आँक के हैं। ८ अँकवार। गोद। उ०--पीछे ते गहि लाँकरी, गहीं आँकि री फेरि।--स० सप्तक, पृ० २४३।

मुहा०--आँक भरना=आलिंगन करना। उ०--छीतस्वामी गिरिवरधर मगन भए आँकौं भरत, सुख स्वाद इहै, सबै को कहत न बनि आवै।--छीत०, पृ० ४१।

९ भाग्य। उ०--एक को आँक बनावत मेटत पोथिय काँख लिए दिन जैहैं।--घनानंद (भू०) पृ० ५३। १० शान। उ०--कठिन काठियावाड़ चुटीले के परिपोखे, चंचल चपल चलाँक बाँकपन आँक अनोखे।--रत्नाकर, भा० १, पृ० ११२। ११ अँकुर। उ०--जाम्यो आँक अंकार नेह दिन दिन बढत करम सदेह।--भीखा श०, पृ० ४७। १२ नौ मात्रा के छंदों की संख्या। अंक। १३ छकड़े या बैलगाड़ियों की बल्लियों के नीचे दिया हुआ लकड़ी का मजबूत ढाँचा जिसमें धुरी पहिए में पहनाई जाती है।

आँक²--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आँख'। उ०--जितवा है बिन जिव में सुनता है बिन कान। देखता है बिन आँक में, कादर बिन तन जान।--दक्खिनी०, पृ० ३८५।

आँकड़ा¹--संज्ञा पुं० [सं० अंक, हिं० आँक+डा (प्रत्य०)] १ आँक। अदद। संख्या का चिह्न। उ०--जनसंख्या से संबधित समस्त आँकड़े जनगणना १९५१ पर आधारित है।--शुक्ल अभि० ग्रं०, (विविध) पृ० २।

आँकड़ा²†--संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों की एक बीमारी।

आँकड़ा³†--संज्ञा पुं० [सं० अर्क, हिं० आँक+डा (प्रत्य०)] मदार। आँक।

आँकना†--संज्ञा पुं० [सं० अ+कण=दाना] ज्वार की बाल की खुड़ी जिसमें से दाना निकाल लिया गया हो।

आँकना--क्रि० स० [सं० अंकन] चिह्नित करना। निशान लगाना। दागना। उ०--खिन खिन जीव सँडासन आँका। औ नित डोम छुआवहिं बाँका।--जायसी (शब्द०)। २ कूतना। अंदाज करना। तखमीना करना। मूल्य लगाना। उ०--सन् १९५१ की पशुगणना के अनुसार राज्य में पशुधन से प्राप्त होनेवाले पदार्थों का मूल्य २१ करोड़ रुपए आँका गया है।--शुक्ल अभि० ग्रं०, (विविध), पृ० १७। ३ अनुमान करना। ठहराना। निश्चित करना। उ०--आम को कहत आमली है आमली को आम आक ही अनारन को आँकिबो करति है।--पद्माकर, ग्रं० पृ० २१८।

आँकबाँक--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आक बाक'। उ०--जैसें कछु आँक बाँक बकत हैं। आजु हुति, तैसें जिन नारें मुख काइ को निकसि जाइ।--केशव ग्रं०, पृ० ५३१।

आँकम†--संज्ञा पुं० [सं० अंक] आलिंगन। उ०--बाहु वलय आँकम भरे भाग, आपन आइति नहि आपन आँग।--विद्यापति, पृ० २०७।

आँकर¹--वि० [सं० आकर=खान, जो गहरी होती है] १ गहरा। 'स्याह' या 'सेव' का उलटा।

विशेष--जोताई दो तरह की होती है--एक आँकर अर्थात् खूब गहरी (अँवाय) और दूसरी स्याह या सेव।

२ बहुत अधिक। उ०--मोहमद मार्‌यो रार्‌यो कुमति कुनारि सो बिसारि बेद लोक लाज आँकरो अचेतु है।--तुलसी (शब्द०)।

आँकर²--वि० [सं० अक्रय्य] महँगा।

आँकल(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अंक, हिं० आँक=दाग] दागा हुआ साँड।--(डिं०)।

आँकुड़ा--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँकड़ा'।

आँकुर(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] पुं० 'अंकुर'। उ०--दुहुक आसा दीप मिझाएल, मदन आँकुर भाँगु।--विद्यापति, पृ० ३७।

आँकुस(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश] दे० 'अंकुश'। उ०--जोवन अस मैमंत न कोई, नवै हस्ति जौ आँकुस होई।--जायसी ग्रं०, पृ० ७४।

आँकू--वि० [सं० अंक, हिं० आँक+ऊ (प्रत्य०)] आँकने या कूतनेवाला। तखमीना करनेवाला।

आँख¹--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि, प० अँक्ख] देखने की इंद्रिय। वह इंद्रिय जिससे प्राणियों को रूप अर्थात् वर्ण-विस्तार तथा आकार का ज्ञान होता है।

विशेष--मनुष्य के शरीर में यह एक ऐसी इंद्रिय है, जिसपर आलोक के द्वारा पदार्थों का बिंब खिंच जाता है। जो जीव आरोह नियमानुसार अधिक उन्नत है, उनकी इंद्रियों की बनावट अधिक पेचीली और जटिल होती है पर क्षुद्र जीवों में इनकी बनावट बहुत सादी, कहीं कहीं तो एक बिंदी के रूप में होती है; उनपर रक्षा के लिये पलक और बरौनी इत्यादि बखेड़ा नहीं होता। बहुत क्षुद्र जीवों में चक्षुरिंद्रिय [illegible] संख्या नियत नहीं होती। शरीर के किसी चार, छः बिंदियाँ सी होती हैं जिनसे

मकडियो की आठ आँखें प्रसिद्ध हैं। । रीढवाले जीवों की आँखें खोपडे के नीचे गड्ढो मे बडी रक्षा के साथ बैठाई रहती हैं और उनपर पलक और बरौनी आदि का आवरण रहता है। वैज्ञानिको का कथन है कि सभ्य जातियाँ वर्णभेद अधिक कर सकती हैं और पुराने लोग रंगो मे इतने भेद नही कर सकते थे। आँख बाहर से लबाई लिए हुए गोल तथा दोनो किनारो पर नुकीली दिखाई पडती है। सामने जो सफेद काँच की सी भिल्ली दिखाई पडती है उसके पीछे एक और भिल्ली है जिसके बीचोबीच एक छेद होता है। इसके भीतर उसी से लगा हुआ एक उन्नतोदर काँच के सदृश पदार्थ होता है जो नेत्र द्वारा ज्ञान का मुख्य कारण है, क्योकि इसी के द्वारा प्रकाश भीतर जाकर रेटिना पर के ज्ञानतंतुओ पर रूप का प्रभाव डालता है।

पर्या०—लोचन। नयन। नेत्र। ईक्षण। अक्षि। दृक्। दृष्टि। अवक। विलोचन। वीक्षण। प्रेक्षण। चक्षु।

यौ०— **उनींदी आँख**=नीद से भरी आँख। वह आँख जिसमे नीद आने के लक्षण दिखाई पडते हो। **कजी आँख**=नीली और भूरी आँख। बिल्ली की सी आँख। **कँटीली आँख**=घायल करनेवाली आँख। मोहित करनेवाली आँख। **गिलाफी आँख**=पपोटो से ढकी हुई आँख, जैसे कबूतर की। **चचल आँख**=यौवन के उमग के कारण स्थिर न रहनेवाली आँख। **चरबांक आँख**=चचल आँख। **चिर्यो सी आँख**=बहुत छोटी आँख। **चोर आँख**=(१) वह आँख जिसमे सुरमा या काजल मालूम न हो। (२) वह आँख जो लोगो पर इस तरह पडे कि मालूम न हो। **धँसी आँख**=भीतर की ओर धँसी हुई आँख। **मतवाली आँख**=मद से भरी आँख। **मदभरी आँख, रसभरी आँख**=वह आँख जिसमे मद टपकता हो। **रसीली आँख, शरबती आँख**=गुलाबी आँख।

मुहा०—**आँख**=(१) ध्यान। लक्ष्य। जैसे, उनकी आँख बुराई ही पर रहती है। (२) विचार। विवेक परख। शिनाख्त। जैसे—(क) उसके आँख नही है, वह क्या सौदा लेगा। (ख) राजा के आँख नही कान होता है। (३) कृपादृष्टि। दयाभाव, जैसे,—अब तुम्हारी वह आँख नही रही। (४) सतति। सतान। लडका बाला, जैसे—(क) सोगिन मर गई, आँख छोड गई। (ख) एक आँख फूटती है तो दूसरी पर हाथ रखते हैं। (अर्थात् जब एक लडका मर जाता है तब दूसरे को देखकर धीरज धरते हैं और उसकी रक्षा करते है।) (ग) मेरे लिये तो दोनो आँखें बराबर हैं। **आँख आना**=आँख मे लाली, पीडा और सूजन होना। **आँख उठना**=आँख आना। आँख मे लाली और पीडा होना। **आँख उठाना**=ताकना। देखना। सामने नजर करना। जैसे–आँख उठाई तो चारो ओर मैदान देख पडा। ( ) बुरी नजर से देखना। बुरा बर्ताव करना। हानि पहुँचाने की चेष्टा करना। जैसे—हमारे रहते तुम्हारी ओर कोई आँख उठा सकता है? **आँख उठाकर न देखना**=(१) ध्यान न देना। तिरस्कार करना, जैसे—(क) मैं उनके पास घटो बैठा रहा पर उन्होंने आँख उठाकर भी नही देखा। (ख) ऐसी चीजो को तो हम आँख उठाकर भी नही देखते। (२) सामने न ताकना। लज्जा या सकोच से बराबर दृष्टि न करना, जैसे—वह लडका तो आँख ही ऊपर नही उठाता, हम समझायें क्या। **आँख उलट जाना**=(१) पुतली का ऊपर चढ़ जाना। आँख पथराना (यह मरने के समय होता है), जैसे,—आँखें उलट गई, अब क्या आशा है। (२) घमड से नजर बदल जाना। अभिमान होना, जैसे—इतने ही धन मे तुम्हारी आँख उलट गई है। **आँख ऊँची न होना**=लज्जा से बराबर ताकने का साहस न होना। लज्जा से दृष्टि नीचे रहना, जैसे,—उस दिन से फिर उसकी आँख हमारे सामने ऊँची नही हुई। **आँख ऊपर न उठाना**=(१) लज्जा या भय से नजर ऊपर की ओर न करना। दृष्टि नीची रखना। **आँख ओट, पहाड़ ओट**=(१) निःसंकोच होना। (२) जब आँख के सामने नहीं, तब क्या दूर, क्या नजदीक। **आँख कड आना**=अधिक जागने या जागने से एक प्रकार की पीडा होना। **आँख का अधा, गाँठ का पूरा**=मूर्ख धनवान। अनाडी मालदार। वह धनी जिसे कुछ विचार या परख न हो, जैसे—(क) हे भगवान् भेजो कोई आँख का अधा गाँठ का पूरा। (ख) जो आँख का अधा होगा, वही यह सडा कपडा लेगा। **आँख का काँटा होना**=(१) खटकना। पीडा देना। (कटक होना। बाधक होना। शत्रु होना, जैसे,—उसी के मारे तो हमारी कुछ चलने नही पाती, वही तो हमारी आँख का काँटा हो रहा है। **आँख का काजल चुराना**=सफाई से चोरी करना। बडी सफाई के साथ चोरी करना। **आँख का जाना**=आँख फूटना, जैसे,—उनकी आँख लडकपन मे जाती रही। **आँख का जाला**=आँख की पुतली पर एक सफेद झिल्ली जिसके कारण धुध दिखाई देता है। **आँख का ढेला**=आँख का वट्टा। आँख का वह उभडा हुआ सफेद भाग जिसपर पुतली रहती है। **आँख का तारा**=(१) आँख का तिल। कनीनिका। (२) बहुत प्यारा व्यक्ति। (३) सतति। **आँख का तिल**=आँख की पुतली के बीचोबीच छोटा गोल तिल के बराबर काला धब्बा जिसमे सामने की वस्तु का प्रतिबिंब दिखाई पडता है। यह यथार्थ मे एक छेद है जिसमे आँख के सबसे पिछले परदे का काला रग दिखाई पडता है। आँख का तारा। कनीनिका। **आँख का तेल निकालना**=आँख को कष्ट देना। ऐसा महीन काम करना जिससे आँखों पर बहुत जोर पडे, जैसे सीना पिरोना, लिखना, पढना आदि। उ०–क्यों न फाँ देंगे आँख का तिल वे, आँख का तेल जो निकालेंगे।—चोसे०, पृ० १७। **आँख कान खुला रहना**=सचेत रहना। सावधान होना। होशियार रहना। **आँख का परदा**=आँख के भीतर की भिल्ली जिससे होकर प्रकाश जाता है। **आँख का पर्दा उठना**=ज्ञानचक्षु का खुलना। अज्ञान या भ्रम का दूर होना। चेत होना, जैसे–उसकी आँख का परदा उठ गया है, अब वह ऐसी बातो पर विश्वास न करेगा। **आँख पर पर्दा पडना**=कुछ सुझाई न पडना। मोहग्रस्त होना। **आँख का पानी ढल जाना**=लज्जा छूट जाना। लाज शर्म का जाता रहना, जैसे,—जिसकी आँख का पानी ढल गया है, वह चाहे जो कर डाले। **आँख का पानी मरना**=दे० 'आँख का पानी ढलना'। **आँख की किरकिरी**=आँख का काँटा।

चक्षुशूल। खटकनेवाली वस्तु या व्यक्ति। **आँखों की ठंडक** = अत्यंत प्यारा व्यक्ति या वस्तु। **आँख की पुतली** = आँख के भीतर कार्निया और लेंस के बीच का रंगीन भूरी झिल्ली का वह भाग जो सफेदी पर की गोल काट से होकर दिखाई पड़ता है। इसी के बीच में वह तिल या कृष्णतारा दिखाई पड़ता है जिसमें सामने की वस्तु का प्रतिबिंब झलकता है। इसमें मनुष्य का प्रतिबिंब एक छोटी पुतली के समान दिखाई पड़ता है, इसी से इसे पुतली कहते हैं। (२) प्रिय व्यक्ति। प्यारा मनुष्य। जैसे,—वह हमारी आँख की पुतली है, उसे हम पास से जाने न देंगे। **आँख की पुतली फिरना** = आँख की पुतली का चढ़ जाना। पुतली का स्थान बदलना। आँख का पथराना (यह मरने का पूर्व लक्षण है)। **आँख की बदी भौं के आगे** = किसी के दोष को उसके इष्ट मित्र या भाई बंधु के सामने ही कहना। **आँख की सूइयाँ निकालना** = किसी काम के कठिन और अधिक भाग के अन्य व्यक्ति द्वारा पूरा हो जाने पर उसके शेष अल्प और सरल भाग को पूरा करके सारा फल लेने का उद्योग करना, जैसे,—इतने दिनों तक तो मर मरकर हमने इसको इतना दुरुस्त किया, अब तुम आए हो आँखों की सूइयाँ निकालने।

विशेष—इस मुहाविरे पर एक कहानी है। एक राजकन्या का विवाह वन में एक मृतक से हुआ जिसके सारे शरीर में सूईयाँ चुभी हुई थीं। राजकन्या नित्य बैठकर उन सूइयों को निकाला करती थी। उसकी एक लौंडी भी साथ थी जो यह देखा करती थी। एक दिन राजकन्या कहीं बाहर गई। लौंडी ने देखा कि मृतक के शरीर की सारी सूइयाँ निकल चुकी हैं, केवल आँखों की बाकी हैं। उसने आँखों की सूइयाँ निकाल डालीं और वह मृतक जी उठा। उस लौंडी ने अपने को उसकी विवाहिता बतलाया, और जब वह राजकन्या आई, तब उसे अपनी लौंडी कहा। बहुत दिनों तक वह लौंडी इस प्रकार रानी बनकर रही। पर पीछे से सब बातें खुल गईं और राजकन्या के दिन फिरे।

आँखों के आगे अँधेरा छाना = मस्तिष्क पर आघात लगने या कमजोरी से नजर के सामने थोड़ी देर के लिये कुछ न दिखाई देना। बेहोशी होना। मूर्च्छा आना। **आँखों के आगे अँधेरा होना** = संसार सूना दिखाई देना। विपत्ति या दुःख के समय घोर नैराश्य होना। जैसे,—लड़के के मरते ही उनकी आँखों के आगे अँधेरा हो गया। **आँखों के आगे उजाला होना** = प्रकाश होना। ज्ञान होना। **आँखों में चमक आना** = प्रसन्न होना। **आँखों के आगे चिनगारी छूटना** = आँखों का तिलमिलाना। तिलमिली लगना। मस्तिष्क पर आघात पहुँचने पर चकाचौंध सी लगना। **आँखों के आगे नाचना** = दे० 'आँखों में नाचना'। **आँखों के आगे पलकों की बुराई** = किसी के इष्ट-मित्र के आगे ही उसकी निंदा करना। जैसे—नहीं जानते थे कि आँखों के आगे पलकों की बुराई कर रहे हैं, सब बातें खुल जायँगी? **आँखों के आगे फिरना** = दे० 'आँखों में फिरना'। **आँखों के आगे रखना** = आँखों के सामने रखना। **आँखों के कोए** = आँखों के डेले। **आँखों के डोरे** = आँखों के सफेद डेलों पर लाल रंग की बहुत बारीक नसें। **आँखों के तारे छूटना** = दे० 'आँखों के आगे चिनगारी छूटना'। **आँखों के सामने नाचना** = दे० 'आँखों में नाचना'। आँखों के सामने रखना = निकट रखना। पास से जाने न देना। जैसे,—हम तो लड़के को आँखों के सामने ही रखना चाहते हैं। **आँखों सामने होना** = सम्मुख होना। आगे आना। **आँखों रो बैठना** = आँखों को खो देना। अंधा होना, जैसे, यदि यही रोना धोना रहा तो आँखों को रो बैठोगी (स्त्री०)। **आँख खटकना** = (१) आँख टीसना। आँख किरकिराना उ०—कुमकुम मारो गुलाल, नंद जू के कृष्णलाल, ज कहूँगी कंसराज से आँख खटक मोरी भई है लाल।—हो (शब्द०)। (२) किसी से मनमुटाव होना। **आँख खुलना** (१) पलक खुलना। परस्पर मिली या चिपकी हुई पलकों अलग हो जाना, जैसे,—(क) बच्चे की आँखें धो डालो खुल जायँ।—(ख) बिल्ली के बच्चों ने अभी आँखें न खोलीं। (२) नींद टूटना, जैसे,—तुम्हारी आहट पाते ही मे आँखें खुल गईं। (३) चेत होना। ज्ञान होना। भ्रम दूर होना, जैसे,—पश्चिमीय शिक्षा से भारतवासियों की आ खुल गईं। (४) चित्त स्वस्थ होना। ताजगी आना। हो हवास-दुरुस्त होना। तबियत ठिकाने आना। जैसे,— शरबत के पीते ही आँखें खुल गईं। **आँख खुलवाना** = (आँख बनवाना। (२) मुसलमानों के विवाह की एक रीति। दुलहिन के सामने एक दर्पण रखा जाता है और वे उस एक दूसरे का मुँह देखते हैं। **आँख खोलना** = (१) उठाना। ताकना। (२) आँख बनाना। आँख का जाला माँडा निकालना। आँख को दुरुस्त करना, जैसे,—डाक्टर यहाँ बहुत से अंधों की आँखें खोलीं। (३) चेताना। सावध करना। ज्ञान का संचार करना। वास्तविक बोध करा जैसे—उस महात्मा ने सदुपदेश से हमारी आँखें खो दीं। (४) ज्ञान का अनुभव करना। वाकिफ होना। साव होना। उ०—भाई बंधु और कुटुंब कबीला झूठे मित्र गिनावे आँख खोल जब देख बावरे! सब सपना कर पावे।—कबी (शब्द०)। (५) सुध होना। स्वस्थ होना, जैसे—चार दिन पर आज बच्चे ने आँख खोली है। **आँख गड़ना** (१) आँख किरकिराना। आँख दुखना, जैसे—हमारी आँ कई दिनों से गड़ रही है, आवेंगी क्या? (२) आँख धँसना आँख बैठना, जैसे,—उसकी गड़ी गड़ी आँखें देखकर उसे पहचान लेना। (३) दृष्टि जमना। टकटकी बँधना जैसे,—(क) किस चीज पर तुम्हारी आँखें इतनी देर से गड़ी हुई हैं। (ख) उसकी आँखें तो लिखने में गड़ी हुई हैं, उ इधर उधर की क्या खबर। (४) बड़ी चाह होना। प्राप्ति की उत्कट इच्छा होना, जैसे,—जिस वस्तु पर तुम्हारी आँख गड़ती है, उसे तुम लिए बिना नहीं छोड़ते। **आँख गड़ाना** = (१) टकटकी बाँधना। स्तब्ध दृष्टि से ताकना। (२) नजर रखना। चाहना। प्राप्ति की इच्छा करना। जैसे,—अब तुम इसपर आँख गड़ाए हो, काहे को बचेगी। **आँखें घुलना** = चार आँखें होना। घूर घुरघुरी होना। दृष्टि से दृष्टि मिलना, जैसे, घंटों से घूर आँखें घुल रही है। आँखें

चढ़ना=नशे, नींद या सिर की पीड़ा में पलकों का तन जाना और नियमित रूप से न गिरना। आँखों का लाल होना, जैसे—देखते नहीं उसकी आँखें चढ़ी हुई हैं और मुँह से सीधी बात नहीं निकलती। **आँख चमकाना**=आँखों से तरह तरह के इशारे करना। आँख की पुतली इधर उधर घुमाना। आँख मटकाना। **आँख चरने जाना**=दृष्टि का जाता रहना, जैसे—तुम्हारी आँख क्या चरने गई थीं जो सामने से चीज उठ गई। **आँख चार करना, चार आँखें करना**=देखादेखी करना। सामने आना, जैसे,—जिस दिन से मैंने खरी खरी सुनाई, वे मुझसे चार आँखें नहीं करते। **आँखें चार होना, चार आँखें होना**=(१) देखादेखी करना। सामना होना। एक दूसरे के दर्शन होना, जैसे,—आँखें चार होते ही वे एक दूसरे पर मरने लगे। (२) विद्या का होना, जैसे,—हम तो अपढ़ हैं, पर तुम्हें तो चार आँखें हैं, तुम ऐसी भूल क्यों करते हो। **आँख चीर चीर कर देखना**=दे० 'आँख फाड़ फाड़ कर देखना'। **आँख चुराना**=नजर बचाना। कतराना। सामने न होना। जैसे—उस दिन से रुपया ले गया है, आँख चुराता फिरता है। (२) लज्जा से बराबर न ताकना। दृष्टि नीची करना (३) रुखाई करना। ध्यान न देना, जैसे—अब वे बड़े आदमी हो गए हैं, अपने पुराने मित्रों से आँख चुराते हैं। **आँख चुराकर कुछ करना**=छिपाकर कोई काम करना। **आँख चूकना**=नजर चूकना। दृष्टि हट जाना। असावधानी होना, जैसे,—आँख चूकी कि माल यारों का। **आँख छत से लगना**=(१) आँख ऊपर को चढ़ना। आँख टँगना। स्तब्ध होना। आँख का एकदम खुली रहना। (यह मरने के पूर्व की अवस्था है।) (२) टकटकी बँधना। **आँख छिपाना**=(१) नजर बचाना। कतराना। टालमटूल करना। (२) लज्जा से बराबर न ताकना। दृष्टि नीची करना। (३) रुखाई करना। बेमुरौवती करना। ध्यान न देना। **आँखें जमना**=नजर ठहरना। दृष्टि का स्थिर रहना, जैसे,—पहिया इतनी जल्दी जल्दी घूमता है कि उसपर आँख नहीं जमती। **आँखें झपकना** (१) आँखें बंद होना। पलक गिरना। (२) नींद आना। झपकी लगना, जैसे,—आँखें झपकी ही थीं कि तुमने जगा दिया। **आँखें झपकाना**=आँखें मारना। इशारा करना। **आँखें झेंपना**=दृष्टि नीची होना। लज्जा मालूम होना, जैसे,—सामने आते ही आँखें झेंपती हैं। **आँख टँगना**=(१) आँखें ऊपर को चढ़ जाना। आँखों की पुतली का स्तब्ध होना। आँखों का एकदम खुला रहना (यह मरने का पूर्वलक्षण है)। (२) टकटकी बँधना, जैसे,—तुम्हारे आसरे में हमारी आँखें टँगी रह गईं, पर तुम न आए। **आँख टेढ़ी करना**=(१) भौं टेढ़ी करना। रोष दिखाना। (२) आँखें बदलना। रुखाई करना। बेमुरौवती करना। **आँखें ठंढी होना**=तृप्ति होना। संतोष होना। मन भरना। इच्छी पूरी होना, जैसे,—अब तो उसने मार खाई, तुम्हारी आँखें ठंढी हुईं? **आँखें डबडबाना**= (१) (क्रि० अ०) आँखों में आँसू भर आना। आँखों में आँसू आना, जैसे,—यह सुनते ही उसकी आँखें डबडबा आईं। (२) (क्रि० स०) आँखों में आँसू लाना। आँसू भरना, जैसे,—वह आँखें डबडबाकर बोला। **आँखें डालना**=दृष्टि डालना। देखना। ध्यान देना। चाह करना। इच्छा करना, जैसे—

अच्छे लोग पराई वस्तु पर आँख नहीं डालते। **आँखें ढँकर ढर करना**=पलकों की गति ठीक न रहना। आँखों का तिलमिलाना। जैसे,—इतने दिनों के उपवास से उसकी आँखें ढर ढर कर रही हैं। **आँखें तरसना**=देखने के लिये आकुल होना। दर्शन के लिये दुखी होना, जैसे—तुम्हें देखने के लिये आँखें तरस गईं। **आँखें तरेरना**=क्रोध से आँखें निकाल कर देखना। क्रोध की दृष्टि से देखना। उ०—पुनि लछिमन बिहँसि बहुरि नयन तरेरे राम।—मानस, १।२७०। **आँख तले न आना**=कुछ भी न जँचना। उ०—देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ।—मानस, १।२७८। **आँखों तले न लाना**=कुछ न समझना। तुच्छ समझना, जैसे,—वह किसी को अपनी आँखों तले लाता है जो तुम्हारी बात मानेगा? **आँख दबाना**=पलक गिराना। **आँख मचकाना**; जैसे, (क) वह जरा आँख दबाकर नाचता है। (ख) प्रभु ने आग की ओर आँख दबाकर सैन की वह तुरत बुझ गई। **आँख दिखाना**=क्रोध से आँखें निकालकर देखना। क्रोध की दृष्टि से देखना। गुर्राना। उ०—(क) जानै अहंकार सो निरखर आँखि देखावहि डाटि।—मानस, ७।९९। (ख) मुनि सरोष भृगुनायकु आए। बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए।—मानस, १।२६९। (ग) नाहिं राज कहँ चा-हि रहा दिखा-वत आँखि।—तुलसी ग्रं०, पृ ११४। **आँख दीदे से करना**=दे० 'आँख नाक से करना'। **आँखें दुखना**=आँख में पीड़ा होना। **आँखों देखते**=(१) आँखों के सामने। देखते हुए। जानबूझकर, जैसे,—(क) आँखों देखते तो हम ऐसा अन्याय नहीं होने देंगे।—(ख) आँखों देखते मक्खी नहीं निगली जाती। (२) देखते देखते। थोड़े ही दिनों में, जैसे—आँखों देखते इतना बड़ा घर बिगड़ गया। **आँखों देखा**=आँखों से देखा हुआ। अपना देखा। उ०—जल में उपजै जल में रहै। आँखों देखा मनसों कहै।—(पहेली, काजल।), जैसे,—यह तो हमारी आँखों देखी बात है। **आँखें दौड़ाना**=नजर दौड़ाना। दीठ पसारना। चारों ओर दृष्टि फेरना। इधर उधर देखना, जैसे,—मैंने इधर उधर बहुत आँखें दौड़ाईं पर कहीं कुछ न देख पड़ा। **आँख न उठना**=(१) लज्जा से दृष्टि नीची रहना। (२) एहसान से दबा रहना। (३) दे० 'आँख न आना'। **आँख न उठाना**=(१) नजर न उठाना। सामने न देखना। बराबर न ताकना। (२) लज्जा से दृष्टि नीची किए रहना (३) किसी काम में बराबर लगे रहना, जैसे,—वह सबेरे से जो सीने बैठा तो दिन भर आँख न उठाई। **आँख न खोलना**=(१) आँख बंद रखना। (२) सुस्त पड़ा रहना। बेसुध रहना। गाफिल रहना, जैसे,—आज चार दिन हुए उसने न 'आँख न खोली'। **बादल का आँख न खोलना**=बादल का घिरा रहना। आकाश का बादलों से ढका रहना। **मेह का आँख न खोलना**=पानी का न थमना। वर्षा का न रुकना। **आँख न ठहरना**=चमक या द्रुत गति के कारण दृष्टि न जमना। जैसे,-(क) वह ऐसा भड़कीला कपड़ा है कि आँख नहीं ठहरती। (ख) पहिया इतनी तेजी से घूमता था कि उसपर आँख नहीं ठहरती थी। **आँख न पसीजना**=आँख में आँसू न आना। (एक) **आँख न भाना**=बिलकुल

अच्छा न लगना, जैसे,—ये बातें हमे एक आँख नही भाती । **आँख नाक से डरना**=ईश्वर से डरना जो पापियों को अंधा और नकटा कर देता है। पाप से डरना जिसमे आँख नाक जाती रहती है, जैसे—भाई, मुझ दीन से न डर तो अपनी आँख नाक से तो डर। **आँख निकालना**=आँख दिखाना। क्रोध की दृष्टि से देखना, जैसे,—हम पर क्या आँख निकालते हो, जिसने तुम्हे कुछ कहा हो उसके पास जाओ।—(२) आँख के ढेले को छुरी से काटकर अलग कर देना। आँख फोड़ना, जैसे—उस दुष्ट सरदार ने शाह आलम की आँख निकाल ली। **आँख नीची करना**=दृष्टि नीची करना। सामने न ताकना जैसे—वहाँ आँख नीची किए चला जा रहा था। (२) लज्जा या संकोच से बराबर नजर न करना। दृष्टि न मिलाना। जैसे,—कब तक आँखे नीची किए रहोगे ? जो पूछते हैं, उसका उत्तर दो। **आँख नीची होना**=सिर नीचा होना। लज्जा उत्पन्न होना। अप्रतिष्ठा होना, जैसे,—कोई ऐसा काम न करना चाहिए जिससे हर आदमी के सामने आँख नीची हो। **आँख नीली पीली करना**=बहुत क्रोध करना। तेवर बदलना। आँख दिखाना। **आँख पटपटा जाना**=(१) आँख फूट जाना (स्त्रियाँ गाली देने मे अधिक बोलती हैं)। (२) अत्यधिक भूख या प्यास से व्याकुल होना। **आँख पट्टम होना**=आँख फूट जाना **आँख पड़ना**=(१) दृष्टि पड़ना। नजर पड़ना, जैसे,—संयोग से हमारी आँख उसपर पड गई नहीं तो वह बिल्कुल पास आ जाता। (२) ध्यान जाना। कृपादृष्टि होना, जैसे,—गरीबों पर किसी की आँख नही पडती। (३) चाह की दृष्टि होना। पाने की इच्छा होना, जैसे,—उसकी इस किताब पर बार बार आँख पड रही है। (४) कुदृष्टि पडना। ध्यान जाना, जैसे,—जिस वस्तु पर तुम्हारी आँख पडे, भला वह रह जाय ? **आँख पथराना**=पलक का नियमित गति से न गिरना और पुतली की गति का मारा जाना। नेत्र स्तब्ध होना (यह मरने का पूर्वलक्षण है), जैसे,—(क) अब उनकी आँखे पथरा गई हैं, और बोली भी बद हो गई है।—(ख) तुम्हारी राह देखते देखते आँखे पथरा गईं। **आँखों पर आइए या बैठिए**=आदर के साथ आइए। सादर पधारिए। (जब कोई बहुत प्यारा या बडा आता है या आने के लिये कहता है, तब लोग उसे ऐसा कहते हैं)। **आँखों पर ठिकरी रख लेना**=(१) जान बूझकर अनजान बनना। (२) रुखाई करना। बेमुरौवती करना। शील न करना। (३) गुण न मानना। उपकार न मानना। कृतघ्नता करना। (४) लज्जा खो देना। निर्लज्ज होना। बेहया होना। **आँखों में पट्टी बाँधना**=(१) दोनो आँखो के ऊपर कपडा ले जाकर सिर के पीछे बाँधना जिससे कुछ दिखाई न पडे। आँखो को ढकना। (२) आँख बद करना। ध्यान न देना, जैसे—तुमने खूब आँखो पर पट्टी बाँध ली है कि अपना भला बुरा नही सूझता। **आँखो पर परदा पडना**=अज्ञान का अधकार छाना। प्रमाद होना। भ्रम होना, जैसे,—तुम्हारी आँखो पर परदा पड़ा है, सच्ची बात क्यो मन मे धँसेगी। (२) विचार का जाता रहना। विवेक का दूर होना, जैसे,—क्रोध के समय मनुष्य की आँखो पर परदा पड जाता है। (३) कमजोरी से आँखो के सामने अँधेरा छाना, जैसे—भूख प्यास के मारे हमारी आँखो पर परदा पड गया है। **आँखों पलकों का बोझ नहीं होता**=(१) अपनी चीज का रखना भा नही मालूम होता (२) अपने कुटुबियो को खिलाना पि[ला]ना नही खलता। (३) काम की चीज महँगी नही मालूम होती **आँखों पर बिठाना**=बहुत आदर सत्कार करना। आवभगत प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना, जैसे—वह हमारे घर तो हम उन्हे आँखो पर बिठावेंगे। **आँखो पर रखना**=बहुत [प्रि]य करके रखना। बहुत आराम से रखना, जैसे,—आप निश्चिंत रहिए, मैं उन्हें अपनी आँखो पर रखूँगा। **आँख पसारना फैलाना**=दूर तक दृष्टि बढाकर देखना। नजर दौडाना। **आँ[ख] फटना**=चोट या पीडा से यह मालूम पडना कि आँखे नि[कल] पडती हैं, जैसे,—सिर के दर्द से आँखे फटी पडती हैं। (२) [ब]ड़ी आँखे बढना। आँखो की फाँक का फैलना। उ०—दौरत [ह]ी मे थकिए, थहरैं पग, आवत जौंघ सटी सी। होत घरी [घ]छीन खरी कटि, और है पाव मुवास अटी सी। हे रघुनाथ विलोकिबे को तुम्हे आई न खेलन सोच पटी सी। मैं न जानति हाल कहा यह काहे ते जाति है आँखि फटी सी। रघुनाथ(शब्द०)। **आँख फडकना**=आँख की पलक का बार बार हिलना। वायु के सचार से आँख की पलक का बार बार [फ]डकना। (दाहिनी या बाईं आँख के फडकने से लोग भावी शुभ अशुभ का अनुमान करते हैं)। उ० सुनु मथरा बात फुर तोरी दहिन आँखि नित फरकइ मोरी।—मानस, २।२०। **आँख फाड कर देखना**=खूब आँख खोलकर देखना। उत्सुकता देखना। जैसे उधर क्या है जो आँख फाडफाड कर देख रहे हो **आँखे फिर जाना**=(१) नजर बदल जाना। पहले की कृपा या स्नेह दृष्टि न रहना। बेमुरौवती आ जाना, जैसे जबसे वे हम लोगो के बीच से गए, तबसे तो उनकी आँ[खे] ही फिर गईं।—(२) चित्त मे विरोध उत्पन्न हो जाना। मे बुराई आना। चित्त मे प्रतिकूलता आना, जैसे,—उस आँखें फिर गईं वह बुराई करने से नही चूकेगा। **आँ[ख] फूटना**=(१) आँख का जाता रहना। आँख की ज्योति नष्ट होना। (२) आँख रहते कुछ दिखाई न पडना, जैसे तुम्हारी क्या आँखें फूटी हैं, जो सामने की वस्तु नही दिखाई देती। (आँख एक बहुत प्यारी वस्तु है इसी से स्त्रियाँ प्र[ायः] इस प्रकार की शपथ खाती हैं कि मेरी आँखे फूट जायँ, [य]दि मैंने ऐसा कहा हो) (३) बुरा लगना। कुढ़न होना। उ० (क) उसको देखने से हमारी आँखे फूटती हैं। (ख) किसी सुखी देखकर तुम्हारी आँखें क्यो फटती हैं। **आँख फेर**[ना] (१) निगाह फेरना। नजर बदलना। पहले की सी कृपा स्नेहदृष्टि न रखना। मित्रता तोडना। (२) विरुद्ध होना प्रतिकूल होना। वाम होना। (३) अनुकूल होना। कृ[पा] करना। उ०— फेर दी आँख जी आया जैसे रसाल बौराया —गीतगुज, पृ० ४०। **आँख फैलाना**=आश्चर्य से स्तब्ध हो[ना]। आश्चर्यचकित होना। **आँख फैलाना**=दृष्टि फैलाना। दी[ठ] पसारना। दूर तक देखना। नजर दौडाना। **आँख फोडना** (१) आँखों को नष्ट करना। आँखो की ज्योति का नाश करना (२) कोई काम ऐसा करना जिसमे आँखों पर जोर पडे

कोई ऐसा काम करना, जिसमे देर तक दृष्टि गड़ानी पड़े, जैसे लिखना पढ़ना, सीना, पिरोना, जैसे—(क) घंटो बैठकर आँखें फोड़ी हैं, तब इतना सीया गया है (ख) घंटो चूल्हे के आगे बैठकर आँखें फोड़ी हैं तब रसोई बनी है। **आँख फोरना** = दे० 'आँख फोड़ना'। उ०—सुरपति सुत जानै बल थोरा। राखा जियत आँखि गहि फोरा।—मानस, ३।३५। **आँख बंद करके कोई काम करना, आँख मूँद कर कोई काम करना** = (१) बिना पूछे पाछे कोई काम करना। बिना जाँच परताल किए कोई काम करना। बिना कुछ सोचे विचारे कोई काम करना। बिना आगा पीछा किए कोई काम करना, जैसे—(क) आँख मूँदकर दवा पी जाओ। (ख) जितना रुपया वे माँगते गए हम उनको आँख बंद करके देते गए। (२) दूसरी बातो की ओर ध्यान न देकर अपना काम करना। और बातो की परवाह न करके अपना नियत कर्तव्य करना। किसी के कुछ कहने-सुनने की परवाह न करके अपना काम करना, जैसे,—तुम आँख मूँदकर अपना काम किए चलो, लोगो को बकने दो। **आँख बंद होना** = (१) आँख झपकना। पलक गिरना, जैसे—कहो तो वह पाँच मिनट तक ताकता रह जाय, आँख बंद न करे। (२) मृत्यु होना। मरण होना, जैसे,—जिस दिन इसके बाप की आँखें बंद होगी, यह अन्न को तरसेगा। **आँख बचाकर कोई काम करना** = इस रीति से कोई काम करना कि दूसरे न देख पाएँ। छिपाकर कोई काम करना, जैसे,—बुराई भी करते तो जरा आँख बचाकर। **आँख बचाना** = नजर बचाना। सामना न करना। कतराना, जैसे,—रुपया लेने को ले लिया, अब आँख बचाते फिरते हो। **आँख बचे का चाँटा** = लड़को का एक खेल जिसमे यह बाजी लगती है कि जिसे असावधान देखें, उसे चाँटा लगावें। **आँख बदल जाना** = पहले की सी कृपादृष्टि या स्नेहदृष्टि न रह जाना। पहले का सा व्यवहार न रह जाना। नजर बदल जाना। मिजाज बदल जाना। बर्ताव मे रुखापन आ जाना, जैसे,—(क) अब उनकी आँखें बदल गई है, क्यो हम लोगो की कोई बात सुनेंगे।—(ख) गों निकल गई, आँख बदल गई।—(शब्द०)। (२) आकृति पर क्रोध दिखाई देना। क्रोध की दृष्टि होना। रिस चढ़ना, जैसे,—थोड़े ही मे उनकी आँखें बदल जाती है। **आँख बनवाना** = **आँख का जाला कटवाना** = आँख का माड़ा निकलवाना। आँख की चिकित्सा करना, जैसे,—जरा आँख बनवा आओ तो कपड़ा खरीदना। **आँख बराबर करना** = (१) आँख मिलाना। सामने ताकना, जैसे,—वह चोर लड़का अब मिलने पर आँख बराबर नही करता। (२) मुँह पर बातचीत करना। सामने डटकर बातचीत करना। ढिठाई करना, जैसे,—उसकी क्या हिम्मत है कि आँख बराबर कर सके। **आँख बराबर होना** = दृष्टि सामने होना। नजर से नजर मिलाना, जैसे,—जबसे उसने वह खोटा काम किया तबसे मिलने पर कभी उसकी आँख बराबर नही होती। **आँख बहना** = (१) आँसू बहाना। (२) आँख की बीनाई या रोशनी जाती रहना। **आँख बहाना** = आँसू बहाना। रोना। **आँख बिगड़ना** = (१) दृष्टि कम होना। नेत्र की ज्योति घटना। आँख मे पानी उतरना या जाला इत्यादि पड़ना। (२) आँख उलटना। आँख पथराना, जैसे,—उनकी आँखें बिगड़ गई है और बोली भी बंद हो गई है'। **आँखें बिछना** = सब स्वागत-सत्कार होना। **आँख बिछाना** = प्रेम से स्वागत करना, जैसे,—वे यदि मेरे घर पर उतरे, तो मैं अपनी आँखें बिछाऊँ। (२) प्रेमपूर्वक प्रतीक्षा करना। बाट जोहना। टकटकी बाँधकर राह देखना, जैसे,—हम तो कब से आँख बिछाए बैठे है, वे आवें तो। **आँख बैठना** = (१) आँख का भीतर की ओर धँस जाना। चोट या रोग से आँख का ढेला गड़ जाना (२) आँख फूटना। **आँख भर आना** = आँख मे आँसू आना। **आँख भर देखना** = खूब अच्छी तरह देखना। तृप्त होकर देखना। अघाकर देखना। इच्छा भर देखना। उ०—गाज परै यहि लाज पै री अँखियाँ भरि देखन हू नहि पाई।—(शब्द०), जैसे,—तनिक वे यहाँ आ जाते, हम उन्हे आँख भर देख तो लेते। **आँख भर लाना** = आँसू भर लाना। आँख डबडबाना। रोवाँसा हो जाना। **आँख भौं टेढ़ी करना** = आँख दिखाना। क्रोध की दृष्टि से देखना। तेवर बदलना, जैसे,—हमपर क्या आँख भौं टेढ़ी करते हो, जिसने तुम्हारी चीज ली हो उसके पास जाओ। **आँख मचकाना** = (१) आँख खोलना और फिर बंद करना। पलको को सिकोड़कर गिराना। (२) इशारा करना। सैन मारना, जैसे,—तुमने आँख मचका दी, इसी से वह भड़क गया। **आँख मलना** = सोकर उठने पर आँखो को जल्दी खुलने के लिये हाथ से धीरे धीरे रगड़ना, जैसे,—इतना दिन चढ़ गया, तुम अभी चारपाई पर बैठे आँख मलते हो। **आँख मारना** = (१) इशारा करना। सनकारना। पलक मारना। आँख मटकाना (२) आँख से निषेध करना। इशारे से मना करना, जैसे,—वह तो रुपये दे रहा था, पर उन्होने आँख मार दी। **आँख मिलना** = साक्षात्कार होना। देखा देखी होना। नजर से नजर मिलना। **आँख मिलाना** = (१) आँख सामने करना। बराबर ताकना। नजर मिलाना। (२) सामने आना। सम्मुख होना। मुँह दिखाना, जैसे,—अब इतनी बेईमानी करके वह हमसे क्या आँख मिलावेगा। **आँख मुँदना** = आँख बंद होना। **आँख मूँदना** = (१) आँख बंद करना। पलक गिराना। (२) मरना, जैसे—सब कुछ उनके दम तक है, जिस दिन वे आँख मूँदेंगे, सब जहाँ का तहाँ हो जायगा। (३) ध्यान न देना, जैसे,—उन्हे जो जी मे आवे करने दो, तुम आँख मूँद लो, उ०—मूँदे आँखि कतहुँ कोउ नाही।—मानस, १।२८०। **आँखो मे** = दृष्टि मे। नजर मे। परख मे। अनुमान मे, जैसे,—(क) हमारी आँखो मे तो इसका दाम अधिक है। (ख) हमारी आँखो मे यह जँच गई है। **आँख मे आँख डालना** = (१) आँख मे आँख मिलाना। बराबर ताकना। (२) ढिठाई से ताकना, जैसे,—ढीठ आँख मे आँख डालता है, अपना काम नही देखता। **आँख मे काजल घुलना** = काजल का आँख मे खूब लगना। **आँखो मे खटकना** = नजरो मे बुरा लगना। अच्छा न लगना, जैसे—उनका रहना हमारी आँखो मे खटक रहा है। **आँखो मे खून उतरना** = क्रोध से आँख लाल होना। रिस चढ़ना। **आँख मे गड़ना** = (१) आँख मे खटकना। बुरा लगना। (२) मन

मे बसना। जँचना। पसंद आना। ध्यान पर चढ़ना, जैसे,—वह वस्तु तो तुम्हारी आँख मे गड़ी हुई है। उ०—जादु मले हो, कान्ह, दान अंग अंग को माँगत। हमरो यौवन रूप आँख इनके गडि लागत।—सूर (शब्द०)। किसी की आँखों मे घर करना = (१) आँख मे बसना। हृदय मे समाना। ध्यान पर चढ़ना। (२) किसी को मोहना या मोहित करना, जैसे—पहली ही भेंट मे उसने राजा की आँखो मे घर कर लिया। आँखों मे चढ़ना = नजर मे जँचना। पसंद आना। आँखों मे चरबी छाना = (१) घमंड, बेपरवाही या असावधानी से सामने की चीज न दिखाई देना। प्रमाद से किसी वस्तु की ओर ध्यान न जाना, जैसे,—देखते नहीं वह सामने किताब रखी है, आँखो में चरबी छाई है? (२) मदांध होना। गर्व मे किसी की ओर ध्यान न देना। अभिमान मे चूर होना, जैसे,—आजकल उनकी आँखों मे चरबी छाई है, क्यों किसी को पहचानेंगे। आँख मे चुभना = (१) आँख मे धँसना। (२) आँख मे खटकना। नजरो मे बुरा लगना। (३) दृष्टि मे जँचना। ध्यान पर चढ़ना। पसंद आना, जैसे,—तुम्हारी घडी हमारी आँखों मे चुभी हुई है, हम उसे बिना लिए न छोड़ेगे। आँखो मे चुभना = (१) नजर मे खटकना। बुरा लगना। (२) आँखो मे जँचना। पसंद आना। (३) आँखो पर गहरा प्रभाव डालना, जैसे,—इसके दुपट्टे का रंग तो आँखो मे चुभा जाता है। आँख मे चोब आना = चोट आदि लगने से आँख मे ललाई आना। आँखो मे झाँई पड़ना = आँखो का थक जाना। उ०—आँखड़ियाँ झाँई परी, पथ निहारि निहारि। जीभड़ियाँ छाला पर्यो, राम पुकारि पुकारि।—कबीर (शब्द०)। आँखों मे टेसू फूलना, आँखों मे तीसी फूलना, आँखो मे सरसों फूलना = चारो ओर एक ही रंग दिखाई पड़ना। जो बात जी मे समाई हुई है, उसी का चारो ओर दिखाई पड़ना। जो बात ध्यान मे चढ़ी है, चारो ओर वही सूझना। (२) नशा होना। तरंग उठना, जैसे—भाँग पीते ही आँखों मे सरसों फूलने लगी। (३) घमंड होना। गर्व से किसी को न देखना। आँखों मे तकला या टेकुआ चुभाना = आँख फोड़ना। (स्त्रियाँ जब किसी पर उसकी दृष्टि की वजह से बहुत कुपित होती हैं, तब कहती हैं कि 'जी चाहता है कि इसकी आँखो मे टेकुआ चुभा दूँ')। आँखो मे तरावट आना = आँखों मे ठंढक आना। तबीयत का ताजी होना। आँखो में धूल देना, आँखो मे धूल डालना = सरासर धोखा देना। भ्रम मे डालना, जैसे,—अभी तुम किताब ले गए हो, अब हमारी आँखो मे धूल डालते हो। उ०—(क) हरि की माया कोउ न जानै आँखि धूरि सी दीन्हीं। लाल ढिगनि की सारी ताको पीत उढनियाँ कीनी।—सूर (शब्द०)। (ख) सोइ अब अमृत पिवति है मुरली, सबहिनि के सिर नाँखि। लियो छँड़ाइ सकल सुनि सूरज बेनु धूरि दै आँखि।—सूर (शब्द०)। आँखो मे नाचना = दे० 'आँखों मे फिरना'। आँखो मे नून देना = आँख फोड़ना। आँखों मे नून राई = आँखें फूटें। (स्त्रियाँ उन लोगों के लिये कहती हैं जो उनके बच्चों को नजर लगाते हैं। किसी बच्चे को नजर लगने का संदेह होने पर वे उसका नाम लेकर और बच्चे के चारो ओर राई नमक घुमाकर आग मे छोड़ती हैं)। आँखो में पालना = बड़े सुख चैन मे पालना। बड़े लाड प्यार से पालन पोषण करना, जैसे,—जो लड़के आँखो मे पले गए उनकी यह दशा हो रही है। आँखो मे फिरना = ध्यान पर चढ़ना। स्मृति मे बना रहना, जैसे—उसकी सूरत मेरी आँखो के सामने फिर रही है। आँखो मे बसना = ध्यान पर चढ़ना। हृदय मे समाना। किसी वस्तु का इतना प्रिय लगना कि उसका ध्यान हर समय चित्त मे बना रहे, जैसे,—उसकी मूर्ति तुम्हारी आँखो मे बस गई है। आँखो मे बैठना = (१) नजर मे गड़ना। पसंद आना। (२) आँखो पर गहरा प्रभाव डालना। आँखो मे धँसना (चटकीले रंग के विषय मे प्राय कहते हैं कि 'इस कपड़े का रंग तो आँखो मे बैठा जाता है।')। आँखो मे भंग घुटना = आँखो पर भाँग का खूब नशा छाना। गहागड्ड नशा होना। आँखो मे रखना = (१) लाड प्यार से रखना। प्रेम से रखना। सुख से रखना, जैसे,—आप निश्चित रहिए मैं इस लड़के को आँखो मे रखूँगा। उ०—आँखिन मे सखि राखिबे जोग इन्हें किमि कै बनवास दियो है।—तुलसी ग्र०, पृ० १६६। (२) सावधानी से रखना। यत्न और रक्षापूर्वक रखना। हिफाजत मे रखना। जैसे,—मैं इस चीज को अपनी आँखो मे रखूँगा, कहीं इधर उधर न होने पाएगी। आँखो मे रात कटना = किसी कष्ट, चिंता या व्यग्रता से सारी रात जागते बीतना। सारी रात नींद न पड़ना। वियोग में तड़पना। आँखो मे रात काटना = किसी कष्ट, चिंता या व्यग्रता के कारण जागकर रात बिताना। किसी कष्ट, चिंता या व्यग्रता के कारण रात भर जागना, जैसे,—बच्चे की बीमारी से कल आँखों मे रात काटी। आँखो मे शील होना = चित्त मे कोमलता होना। दिल में मुरौवत होना, जैसे,—उसकी आँखो मे शील नहीं है, जैसे होगा, वैसे अपना रुपया लेगा। आँखो मे समाना = हृदय मे बसना। ध्यान पर चढ़ना। चित्त मे स्मरण बना रहना, जैसे,—दमयंती की आँखों मे तो नल समाए थे, उसने सभा मे और किसी राजा की ओर देखा तक नहीं। आँख मोड़ना = दे० 'आँख फेरना'। आँख रखना = (१) नजर रखना। चौकसी करना, जैसे,—देखना, इस लड़के पर भी आँख रखना कहीं भागने न पावे।—(२) चाह रखना। इच्छा रखना, जैसे,—हम भी उस वस्तु पर आँख रखते हैं। (३) आसरा रखना। भलाई की आशा रखना, जैसे,—उस कठोरहृदय से कोई क्या आँख रखे। आँख लगना = नींद लगना। झपकी आना। सोना। उ०—जब जब वै सुधि कीजियै, तब तब सब सुधि जाँहि। आँखिनु आँखि लगी रहे, आँखैं लागति नाँहि।—बिहारी र०, दो० ६२, जैसे,—आँख लगती ही थी कि तुमने जगा दिया। (२) प्रीति होना। दिल लगना। उ०—(क) धार लगै तरवार लगै पर काहू से काहू की आँख लगै ना।—(शब्द०)। (ख) ना खिन टरत टारे, आँखि न लगत पल, आँखिन लगै री स्यामसुंदर सलोने सो।—देव (शब्द०)। (३) टकटकी लगना। दृष्टि जमना, जैसे,—हमारी

आँखें उसी ओर तो लगी हैं, पर वे कही आते दिखाई नही देते। उ०—पलक आँखा तेहि मारग, लागी दुनहु रहाहि। कोउ न सदेशी आवही, तेहिक सँदेस कहाहि।—जायसी (शब्द०)। **आँखो लगना**=आँखो मे लगना। ऊपर पडना। ऊपर आना। शरीर पर बीतना। उ०—भारज रज लागे मोरी अँखियनि रोग दोष जजाल।—सूर०, १०। १३८। **आँख लगाना**=(१) टकटकी बाँधकर देखना। प्रीति लगाना। नेह जोडना। **आँख लगी**=(१) जिसमे आँख लगी हो। प्रेमिका। (२) सुरैतिन। उढरी। **आँख लडना**=(१)देखा देखी होना। आँख मिलना। घूराघूरी होना। नजरबाजी होना। (२) प्रेम होना। प्रीति होना, जैसे,—अब तो आँखें लड गई हैं, जो होना होगा सो होगा। **आँख लडाना**=आँख मिलाना। घूरना। नजरबाजी करना। (लडको का यह एक खेल भी है जिसमे वे एक दूसरे को टकटकी बाँधकर ताकते हैं। जिसकी पलक गिर जाती है, उसकी हार मानी जाती है)। **आँख ललचाना**=देखने की प्रबल इच्छा होना। **आँख लाल करना**=आँख दिखाना। क्रोध की दृष्टि से देखना। क्रोध करना। **आँख वाला**=(१) जिसे आँख हो। जो देख सकता हो, जैसे,—भाई, हम अबे सही, तुम तो आँखवाले हो देखकर चलो। (२) परखवाला। पहचाननेवाला। जानकार। चतुर, जैसे,—तुम तो आँखवाले हो तुम्हे कोई क्या ठगेगा। **आँख सामने न करना**=सामने न ताकना। नजर न मिलाना। दृष्टि बराबर न करना (लज्जा और भय से प्राय ऐसा होता है।), जैसे—जब से उसने मेरी पुस्तक चुराई कभी आँख सामने न की। (२) सामने ताकने या वाद प्रतिवाद करने का साहस न करना। मुँह पर बातचीत करने की हिम्मत न करना, जैसे,—भला उसकी मजाल है कि आँख सामने कर सके। **आँख सामने न होना**=लज्जा से दृष्टि बराबर न होना। शर्म से नजर न मिलना, जैसे,—उस दिन से फिर उसकी आँख सामने न हुई। **आँखो सुख कलेजे ठढक**=पूरी प्रसन्नता। ऐन खुशी। (जब किसी बात को लोग प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृत करते हैं तब यह वाक्य बोलते हैं)। **आँख सेंकना**=(१) दर्शन का सुख उठाना। नेत्रानद लेना। (२) सुदर रूप देखना। नज्जारा करना। उ०—जरा आँखें सेक आइए, भैरवी उड रही होगी—रसीली नयनोंवालियो ने फदा मारा।—फिसाना०, भा०, १, पृ० ३। **आँख से आँख मिलाना**=(१) सामने ताकना। दृष्टि बराबर करना। (२) नजर लडाना। **आँखो से उतरना**=नजरो से गिरना। दृष्टि मे नीचा ठहरना, जैसे—वह अपनी इन्ही चालो से सबकी आँखो से उतर गया। **आँखो से उतारना या उतार देना**=(१) किसी वस्तु या व्यक्ति को जान बूझकर भुला देना। (२) किसी वस्तु या व्यक्ति का मूल्य कम कर देना। **आँखो से ओझल होना**=नजर से गायब होना। सामने से दूर होना। **आँखों से काम करना**=इशारो से काम निकालना। **आँखो से कोई काम करना**=बहुत प्रेम और भक्ति से कोई काम करना, जैसे,—तुम मुझे कोई काम बतलाओ तो, मैं आँखों से करने के लिये तैयार हूँ। **आँखो से गिरना**=नजरो से गिरना। दृष्टि मे तुच्छ ठहरना, जैसे,—अपनी इसी चाल से तुम सबकी आँखो से गिर गए। **आँख से भी न देखना**=ध्यान भी न देना। तुच्छ समझना, जैसे,—उससे बातचीत करने की कौन कहे मैं तो उसे आँखो से भी न देखूँ। **आँखो से लगाकर रखना**=बहुत प्रिय करके रखना। बहुत आदर-सत्कार से रखना। **आँखों से लगाना**=प्यार करना। प्रेम से लेना, जैसे,—उसने अपनी प्रिया के पत्र को आँखो से लगा लिया। **आँख होना**=परख होना। पहचान होना। शिनाख्त होना। जैसे,—तुम्हे कुछ आँख भी है कि चीजो के दाम ही लगाना जानते हो। (२) नजर गडाना। इच्छा होना। चाह होना, जैसे,—उस तसवीर पर हमारी बहुत दिनो से आँख है। (३) ज्ञान होना। विवेक होना। उ०—देखो राम कैसो कहि कँद किए किए हिये, हूजिये कृपाल हनुमान जू दयाल हौ। ताही समै फैलि गए कोटि कोटि कपि नए लौचें तनु खैंचें चीर भयो यों बिहाल हौं। भई तब आँखो दुख सागर को चाखौं, अब वही हमें राखौं भाखौं वारों धन मान हौ।—प्रिया० (शब्द०)।

आँख²—संज्ञा पुं० [स० अक्षि, प्रा० अक्खि प० अक्ख] आँख के आकार का छेद या चिह्न, जैसे,—(१)आलू के ऊपर के नखक्षत के समान दाग। (२)ईख की गाँठ पर की टोंठी जिनमे से पत्तियाँ निकलती हैं। (३) अनन्नास के ऊपर के चिह्न या दाग। (४) सूई का छेद।

आँखडी—संज्ञा पुं० [हि० आँख+डी (प्रत्य०)] आँख। उ०—(क) आँखडियाँ भाँई परी पथ निहारि निहारि, जीभडियाँ छाला परयो, राम पुकारि पुकारि।—कबीर (शब्द०)। (ख) मुझे पुकारे ताना मारे, भर आएँ आँखडियाँ।—ठडा०, पृ० ३०।

आँखफोडटिड्डा¹—संज्ञा पुं० [स० आक=मदार+हि० फोडना] हरे रग का एक कीड़ा या फतिगा जो प्राय मदार के पेड पर रहता और उसकी पत्तियाँ खाता है। होता तो है यह उँगली के ही बराबर, पर इसकी मूँछे बडी लबी होती हैं।

आँखफोडटिड्डा²—वि० [हि० आँख+फोड़+टिड्डा] कृतघ्न। बेमुरौवत। ईर्ष्यालु।

आँखफोडतोता—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आँखफोड टिड्डा'। उ०—किसलिये आँख यो बचाते हो, मैं नहीं आँखफोड तोता हूँ।—चोखे०, पृ० ५०।

आँखफोरवा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आँखफोड टिड्डा'। उ०—कठफोरवा आँखफोरवा को आँख मूँद निगल जाता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१।

आँखमिचौनी—संज्ञा स्त्री० [हि० आँख+√मीच+औनी(प्रत्य०)] दे० 'आँखमिचौली'। उ०—छाया की आँखमिचौनी मेघो का मतवालापन।—यामा, पृ० १६।

आँखमिचौली—संज्ञा स्त्री० [हि० आँख+√मीच+औली प्रत्य०] लडको का एक खेल। लडको द्वारा आँख मूँदकर छिपने और खोजने का एक खेल।

विशेष—इस खेल मे एक लडका किसी दूसरे लडके की आँख मूँदकर बैठता है। इस बीच और लडके छिप जाते हैं। तब उस लडके की आँखो खोल दी जाती हैं और वह लडको को छूने के लिये ढूँढता फिरता है। जिस लडके को वह छू पाता है, वह चोर हो जाता है। यदि वह किसी लड़के को नही छू

पाता और सब लडके एक नियत स्थान को चूम लेते हैं, तो फिर वही लड़का चोर बनाया जाता है। यदि सात बार वही लडका चोर हुआ तो फिर उसकी टाँगे बाँधी जाती हैं और उसके चारो ओर एक कुडल या गोडले खीच दिया जाता है। लडके बारी बारी से उस गोडले के भीतर पैर रखते हैं और उस लडके को 'बुढिया' 'बुढिया' कहकर चिढाकर भागते हैं। यह चोर या बुढिया बना हुआ लडका मडल के भीतर जिसको छू पाता है, वह चोर हो जाता है।

आँखमिहीचनीⓅ†—सज्ञा स्त्री० [हिं० आँख + मिहीचनी = मीचना] दे० 'आँखमिचौली'। उ०—आँखमिहीचनी खेलत मोहिं दुहू विधि सोध कहूँ नटि जाइ न।—देव ग्र०, पृ० ११।

आँखमीचलीⓅ†—सज्ञा स्त्री० [हिं० आँख + √मीच + ली (प्रत्य०)] दे० 'आँखमिचौली'। उ०—कहूँ खेलत मिलि ग्वाल मडली आँखमीचली खेल। चढीचढा को खेल सखन मे खेलत हैं रस रेल।—सूर (शब्द०)।

आँखमुचाई, आँखमुँदाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० आँख + √मीच + आई (प्रत्य०) तथा आँख + √मूद + आई प्रत्य०] दे० 'आँखमिचौली'।

आँखा—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आखा'।

आँखिⓅ—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आँख'। उ०—सो वह आँखि मीडि मीडि कै फिर फिरि कै देखन लाग्यो।—दो सौ बावन,' भा० २, पृ० ६।

आँखीⓅ†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आँख'। उ०—आँखी मद्धे पाखी चमकै पाँखी मद्धे द्वारा।—कबीर श०, भा०, १, पृ० ५५।

आँगⓅ†—सज्ञा पु० [स० अङ्ग] १ अग। उ०-(क) बानिनि चली सेंदुर दिये माँगा। कयथिनि चली समाइ न आँगा।—जायसी ग्र०, पृ० ८१। (ख) कहि पठई जियभावती, पिय आवन की बात। फूली आँगन मैं फिरै, आँग न आँग समात।—विहारी र०, दो० २५४। २ कुच। स्तन। उ०—कहै पद्माकर क्यों आँग न समात आँगी लागी काह तोहि जागी उर मे उचाई है।—पद्माकर ग्र०, पृ० ८४। ३ चराई जो प्रति चौपाये पर ली जाती है।

आँगन—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गण] घर के भीतर का सहन। घर के भीतर का वह चौखूटा स्थान जिसके चारो ओर कोठरियाँ और बरामदे हो। चौक। अजिर। उ०—आँगन खेलें नद के नदा।—सूर०, १०। ११७।

आँगल†—सज्ञा स्त्री० [स० अर्गल] अगरी। अर्गला। उ०—तब वा बाई ने किवाड दै कै आँगल मारि दई।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३४१।

आँगी¹Ⓟ†—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गिका प्रा० अगिआ] अँगिया। उ०—उठि आपुही आसन दै रसख्याल सो लाल सो आँगी कढावति है।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १७८।

आँगी²—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आँधी'।

आँगुरⓅ-सज्ञा पुं० [हिं०] पुं० 'अगुल'। उ०-द्वादस आँगुर पवन चलतु है नाहि सिमटि घर औना।—जग० बानी, भा० २, पृ० ६५।

आँगुरीⓅ—सज्ञा स्त्री० [स० अङ्गुली] उँगली। उ०—गयी अचानक अगुरी छाती छैलु छुवाइ।—बिहारी र०, दो० ३८६।

मुहा०—**आगुरी फोरना** = उँगलियाँ चटकाना। उ०—विमल अँगोछी पोछि भूपन सुधारि सिर आँगुरिन फोरि त्रिन तोरि तोरि डारती।—भिखारी० ग्र०, भा० २ पृ० १५७।

आँच—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्चि = आग की लपट, पा० अच्चि] १. गरमी। ताप, जैसे,—(क) आग और दूर हटा दो, आँच लगती है। (ख) कोयले की आँच पर भोजन अच्छा पकता है। उ०—धौरी धेनु दुहाइ छानि पय मधुर आँचि मे औटि सिरायौ।—सूर०, १०। १६००।

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।—लगना।

२ आग की लपट। लौ, जैसे,—चूल्हे मे और आँच कर दो, तवे तक तो आँच पहुँचती ही नही।

क्रि० प्र०—करना।—फैलना।—लगना।

३ आग। अग्नि, जैसे—(क) आँच जला दो। (ख) जाओ थोडी सी आँच लाओ।

मुहा०—**आँच खाना**। गरमी पाना। आग पर चढ़ना। जैसे,—यह बरतन आँच खाते ही फूट जायगा। **आँच दिखाना** = आग के सामने रखकर गरम करना, जैसे,—जरा आँच दिखा दो तो बरतन का सब घी निकल आवे।

४ ताव। जैसे,—अभी इस रस मे एक आँच की कसर है। (ख) उसके पास सो आँच का अभ्रक है।

मुहा०—**आँच खाना** = ताव खाना। आवश्यकता से अधिक पकना। जैसे,—दूध आँच खा गया है, इससे कुछ कडुआ मालूम पडता है।

५. तेज। प्रताप। जैसे,—तलवार की आँच। ६ आघात। चोट। ७. हानि। अहित। अनिष्ट। जैसे,—(क) तुम निश्चित रहो, तुमपर किसी प्रकार की आँच न आवेगी।—(ख) साँच को आँच क्या। उ०—निश्चित होइ के हरि भजै मन मे राखै साँच। इन पाँचन को बस करै, ताहि न आवै आँच।—कबीर (शब्द०)

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।

८ विपत्ति। सकट। आफत। सताप। जैसे,—इस आँच से निकल आवें तो कहे। उ०—आए नर चारि पाँच, जानी प्रभु आँच, गडि लियो सो दिखायो आँच, चलै भक्त भाइ कै।—प्रिया० (शब्द०)। ९ प्रेम। मुहब्बत। जैसे,—माता की आँच बडी होती है। १० काम। ताप।

आँचका—सज्ञा पुं० [देश०] वह लटकता हुआ रस्सा जिसके छोर पर के छल्ले मे से होकर वह रस्सा जाता है जिसपर खडे होकर खलासी जहाज का पाल खोलते और लपेटते हैं।

आँचना¹Ⓟ—क्रि० स० [हिं० आँच] जलाना। तापना। उ०—कोप कृसानु गुमान अवाँ घट जो जिनके मन आँच न आँचै।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२६।

आँचना²Ⓟ—क्रि० स० [स० अञ्चन] प्रवृत्त होना। गतिशील होना। उ०—मुद्रा खोनि गोविंद चद जब बाचन आँचे। परम प्रेम रस माँचे अच्छर न परत बाँचे।—नद० ग्र०, पृ० २०४।

आँचना³†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अँचवना'। उ०—नाचो हे रुद्रताल, आँचो जग ऋजु अराल।—आराधना, पृ० ५५।

आँचर⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँचल'। उ०—गौंह ऊँचै, आँचरु उलटि, मोरि, मुँहु मोरि मोरि नीठि नीठि भीतर गई, दीठि दीठि सौं जोरि।—बिहारी र०, दो० २४२।

आँचल—संज्ञा पुं० [सं० अञ्चल] १ धोती, दुपट्टा आदि बिना सिले हुए वस्त्रों के दोनों छोरों पर का भाग। पल्ला। छोर। उ०—पिअर उपरना काखा सोती। दुहूँ आँचरन्हि लगे मनि मोति।—मानस, १।३२६। २ साधुओं का अँचला। ३. स्त्रियों की साड़ी या ओढ़नी का वह छोर या भाग जो सामने छाती पर रहता है। उ०—वह मग में रुक, मानो कुछ झुक आँचल सँभारती फेर नयन।—ग्राम्या, पृ० १७।

मुहा०—आँचल डालना=मुसलमान लोगों में विवाह की एक रीति। (जब दूल्हा दुलहिन के घर जाने लगता है, तब उसकी बहन दरवाजे से उसके सिर पर आँचल डालकर उसे घर में ले जाती है। इसका नेग बहन को मिलता है)। आँचल दबाना=दूध पीना। स्तन मुँह में डालना। जैसे,—बच्चे ने आज दिन भर से आँचल मुँह में नहीं दबाया। आँचल देना=(१) बच्चे को दूध पिलाना (स्त्रि०)। जैसे, बच्चे को किसी के सामने आँचल मत दिया करो।—(२) विवाह की एक रीति। (जब बारात वर के यहाँ से चलने लगती है, तब दूल्हे की माँ उसके ऊपर आँचल डालती है और उसे काजल लगाती है। इस रीति को आँचल देना कहते हैं।) ३. आँचल से हवा करना (स्त्रि०)। जैसे—(क) दीए को आँचल दे दो, व्यर्थ जल रहा है। (ख) थोड़ा आँचल दे दो तो आग सुलग जाय। आँचल पड़ना=आँचल छू जाना। जैसे,—देखो, बच्चे पर आँचल न पड़ जाय। (स्त्रियाँ बच्चे पर आँचल पड़ना बुरा समझती हैं और कहती हैं कि इससे बच्चों की देह फूल जाती है)। आँचल फाड़ना=बच्चे के जीने के लिये टोटका करना। (जिस स्त्री के बच्चे नहीं या बाँझ होती है, वह किसी बच्चेवाली स्त्री का आँचल घात पाकर कतर लेती है और उसे जलाकर खा जाती है। स्त्रियों का विश्वास है कि ऐसा करने से जिसका आँचल कतरा जाता है, उसके बच्चे तो मर जाते हैं और जो आँचल कतरती हैं, उसके बच्चे जीने लगते हैं)। आँचल में बाँधना=(१) हर समय साथ रखना। प्रतिक्षण पास रखना। जैसे,—वह किताब क्या हम आँचल में बाँधे फिरते हैं, जो इस वक्त माँग रहे हो। (२) कपड़े के छोर में इस अभिप्राय से गाँठ देना कि उसे देखने से वक्त पर कोई बात याद आ जाय। जैसे,—तुम बहुत भूलते हो, आँचल में बाँध रखो। आँचल में बात बाँधना=(१) किसी कही हुई बात को अच्छी तरह स्मरण रखना। कभी न भूलना। जैसे,—किसी के झगड़े में पड़ना बुरा है यह बात आँचल में बाँध रखो। (२) दृढ़ निश्चय करना। पूरा विश्वास रखना। जैसे,—इस बात को आँचल में बाँध रखो कि उन लोगों में अवश्य खटपट होगी। आँचल में सात बातें बाँधना=टोटका करना। जादू करना। आँचल लेना=(१) किसी स्त्री का अपने यहाँ आई हुई दूसरी स्त्री का आँचल छूकर सत्कार या अभिवादन करना। (२) किसी स्त्री का अपने से बड़ी स्त्री का आँचल से पैर छूना। पाँव छूना। पाँव पड़ना। जैसे—जीजी, बूआ आई हैं, उठकर आँचल ले। आँचल सँभालना=आँचल ठीक करना। शरीर को अच्छी तरह ढकना। उ०—फुलवा बिनत डार डार गोपिन के संग कुमारि चन्द्रबदन चमकन वृषभानु की लली। हे हे चचन कुमारि अपनो आँचल सँभार आवत बृजराज आज बिनन को कली।—(शब्द०)।

आँचलपल्लू—संज्ञा पुं० [हिं० आँचल+पल्ला] कपड़े के एक छोर पर टँका हुआ चौड़ा ठप्पेदार पट्टा।

आँचू—संज्ञा पुं० [देश०] एक कँटीली झाड़ी जिसमें शरीफे के आकार के छोटे छोटे फल लगते हैं। इन फलों में मीठे रस से भरे दाने रहते हैं।

आँजन—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जन] दे० 'अंजन'।

आँजना—क्रि० स० [सं० अञ्जन] अंजन लगाना। उ०—(क) ललना गन जब जेहि धरहि धाइ। लोचन आँजहि फगुआ मनाइ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) रूप ही अनूप ही जु आँजें माँजे न्हाए झाएँ, भूषन बनाए बीर बीरा खाए जानिबी।—सुंदर ग्रं०, पृ० ३३। २ विलंब करना। जैसे, आँजो मत, काम चटपट कर डालो।

आँट—संज्ञा पुं० [हिं० अंटी] १ हथेली में तर्जनी और अँगूठे के बीच का स्थान।

विशेष—इसमें कभी कभी जुआरी लोग कौड़ी छिपा लेते हैं।

२ दाँव। वश। उ०—न ए बिससियहि लखि नए दुरजन दुसह-सुभाइ। आँटैं परि प्रानन हरत काँटैं लौं लगि पाइ।—बिहारी र०, दो० ३११।

मुहा०—आँट पर चढ़ना=दाँव पर चढ़ना। उ०—जहाँ तक हो आँट पर न चढ़ो।—चोटी०, पृ० १४४।

३ बैर। लागडाँट। ४ गिरह। गाँठ। जैसे—धोती की आँट में रुपया रख लो। ५ पूला। गट्ठा। पेंच।

यौ०—आँट साँट।

आँटना⑤—क्रि० अ० [हिं० अटना] १ समाना। अँटना। अमाना। २. पूरा पड़ना। काफी होना। उ०—अगनहि कह पानी गहि बाँटा। पिछलहि कहँ नहि काँदू आँटा।—जायसी (शब्द०)। ३. आना। मिलना। उ०—(कोइ) फूल पाव, कोई पाती, जेहि के हाथ जो आँट।—जायसी ग्रं०, पृ० ८२। ४ पहुँचना। उ०—मच्छ छुवहिं आवहिं गड़ि काँटी। जहाँ कमल तहँ हाथ न आँटी।—जायसी (शब्द०)।

आँटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्ड] १ लंबे तृणों का छोटा गट्ठा। पूला। २ लड़कों के खेलने की गुल्ली। उ०—दियो जनाय बात सो ह्याँ स्वरूप बालके। गोविंद स्वामी संग आँटि दड खेल हालके।—रघुराज० (शब्द०)। ३ कुश्ती का एक पेंच जिसमें विपक्षी की टाँग में टाँग अड़ाते हैं और उसे कमर पर लादकर गिराते और चित करते हैं।

क्रि० प्र०—मारना।

४. सूत का लच्छा। ५. धोती की गिरह। टेंट। मुर्री। उ०—आपकी आँटी निकसी नाहीं तो करज बहुत सिर लीन्हा।—कबीर ग्रं०, पृ० १०।

क्रि० प्र०—देना। लगाना।

मुहा०—अँटी काटना = गिरह काटना। जेब काटना।

आँटसाँट—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँट+सटना] १. गुप्त अभिसंधि। साजिश। २ मेलजोल।

आँठी—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टि, प्रा अट्ठि] १ दही, मलाई आदि वस्तुओं का लच्छा। थक्का। जैसे–उनके मुँह से कफ की सूखी आँठी गिरती है। २ गिरह। गाँठ। ३ गुठली। बीज। ४. नवोढा के उठते हुए स्तन।

आँड़ा—संज्ञा पुं० [सं० अण्ड] अंडकोश।

आँड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्ड] १ अंटी। गाँठ। कंद। उ०—सेंधा लोन परा सब हांडी। काटी कंद मूर कै आंडी।—जायसी ग्रं०, पृ० २४५। २ कोल्हू की जाट का गोला, सिरा वा मूँड। ३ बैलगाडी के पहिए के छेद के चारो ओर जडी हुई लोहे की मामी। वद।

आँडू—वि० [सं० अण्ड = अण्डकोश] जिस (चौपाए) के अंडकोश न कूचे गए हो। अडकोशयुक्त।

विशेष—यह शब्द विशेष कर बैल के लिये ही प्रयुक्त होता है।

आँडेबाँडे खाना—क्रि० अ० [हिं० अंडबड अथवा डांड = मेंड+बाँध] इधर उधर फिरना। इधर उधर हवा खाना। चक्कर खाना।

विशेष—फूल बुझौअल के खेल मे जब लडको के दल बँध जाते हैं और दोनो दलो के महतो को आपस में किसी फूल को निश्चित करना होता है, तब वे अपने अपने दल के लडको को यह कहकर इधर उधर हटा देते हैं कि 'आँडेबाँडे खाओ'। लडके 'आँडे बाँडे' कहते हुए इधर उधर चले जाते हैं और फिर फूल बूझने के लिये आते हैं।

आँत—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र] प्राणियो के पेट के भीतर वह लंबी नली जो गुदा मार्ग तक रहती है।

विशेष—खाया हुआ पदार्थ पेट मे कुछ पचकर फिर इस नली मे जाता है जहाँ से रस तो अंग प्रत्यंग मे पहुँचाया जाता है और मल या रद्दी पदार्थ बाहर निकाला जाता है। मनुष्य की आँत उसके डील से पाँच या छ गुनी लंबी होती है। मासभक्षी जीवो की आँत शाकाहारियो से छोटी होती है। इसका कारण शायद यह है कि माँस जल्दी पचता है।

मुहा०—**आँत उतरना**—एक रोग जिसमे आँत ढीला होकर नाभि के नीचे उतर आती है और अडकोश मे पीडा उत्पन्न होती है। **आँत का बल खुलना**–पेट भरना। भोजन से तृप्त होना। बहुत देर तक भूखे रहने के उपरात भोजन मिलना। जैसे,—आज कई दिनो के पीछे आँतों का बल खुला है। **आँतो का बल खुलवाना**–पेट भर खिलाना। **आँतें अकुलाना, कुलकुलाना, कुलबुलाना**–भूख के मारे बुरी दशा होना। **आँतें गले मे आना**—नाको दम होना। जजाल मे फँसना। तंग होना। जैसे,—इस काम को अपने ऊपर लेते तो हो, पर आँते गले मे आवेंगी। **आँते मुँह मे आना**—दे० 'आँते गले मे आना'। **आँतों मे बल पडना**—पेट मे बल पड़ना। पेट ऐंठना। जैसे,—हँसते हँसते आतो मे बल पड़ने लगा। **आँतें समेटना**—भूख सहना। जैसे,—रात भर आँतें समेटे बैठे रहे। **आँतें सूखना**=भूख के मारे बुरी दशा होना। जैसे,—कल से कुछ खाया पीया नही है, आँतें सूख रही हैं।

आँतकटटू—संज्ञा पुं० [हिं० आँत+कटना] चौपायो का एक रो[illegible] जिसमे उन्हे दस्त होता है।

आँतरा¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर = भीतर] खेत का उतना [illegible] जितना एक बार जोतने के लिये घेर लिया जाता है।

आँतर²—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर = दो वस्तुओ के बीच का स्थान] १ पान के भीटे के भीतर की क्यारियो के बीच का स्थान ज[illegible] आने जाने के लिये रहता है। पासा। २ ताने मे दोनो [illegible] की खूँटियो के बीच की दो लकडियाँ जो थोडी थोडी दूर [illegible] साँथी अलग करने के लिये गाडी जाती हैं (जुलाहे)। ३ भिन्नता अतर। उ०—जीव ब्रह्म आँतर नहिं कोय। एकै रूप सर्व[illegible] होय।—दरिया० बानी, पृ० १६। ४ दूरी। फासला। उ० आँतर जनु हो तोहार। तेंदुर का उर हार। [illegible] पृ० ३३०।

आँतरा(पु)—संज्ञा पु० [हिं० आँतर] दे० 'अँतर'। उ०—साध स्वाँग आँतरा जैसा दिवस और रात।—दरिया० बानी, पृ० ३५।

आँदू—संज्ञा पुं० [सं० अन्दू = बेडी] १ लोहे का कडा। बेडी। उ० हूलै हलै पर मैन महावत लाज के आँदू परे जऊ पाइन। [illegible] पदमाकर कौन कहाँ गति माते मतगनि की दुखदाइन पद्माकर ग्र०, पृ० १३०। २ बाँधने का सीकड। उ[illegible] आँदू सौं भरे जदपि तुव गज नैन। तदपि चलावत रहत भुकि भुकि चोटैं सैन।—स० सप्तक, पृ० १९३।

आँध¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध] १ अँधेरा। धुंध। २ रतौंधी। ३ आफत। कष्ट। जैसे,—तुम्हे वहाँ जाते क्यो आँध आती है क्रि० प्र०—आना।

आँध²(पु)¹–वि० १ अंधा। नेत्रहीन। २ कामाध। मोहित। उ सकर को मन हरयौ कामिनी, सेज छाडि भू सोयौ। [illegible] मोहिनी आइ आँध कियौ, तब नख तै रोयौ।—सूर०, ९।४३

आँधना(पु)—क्रि० अ० [हिं० आँधी] वेग से धावा करना। टूटना उ०—मुसुडिय और फुन्नडिय साधि। परे दुहुँ ओरन ते [illegible] आँधि।—(शब्द)।

आँधर—वि० [सं० अन्ध, प्रा० अंधल] [स्त्री० आँधरी] अधा। उ सूर कूर, आँधरो, मैं द्वार परचौ गाऊँ। सूर०, ९।१६६।

यौ०—**आँधर अँधुआ** = अंधा। उ०—माया के बँधुआ अँ[illegible] अँधुआ साधु जाने एह जाने एह बातें।–सं० दरिया, पृ० १४१

आँधरा(पु)†–वि० [सं० अन्ध, प्रा० अधरअ] [स्त्री० आँधरी] अधा

आँधारभ(पु)—संज्ञा पु० [हिं० आँधर = अंधा (मूर्ख) जैसा+आरम्भ अँधेरखाता। बिना समझा बूझा आचरण। उ०–करता कीरतन, ऊँचा करि करि दम। जानै बूझै कछु नही, यो [illegible] आँधारभ।—कबीर (शब्द०)।

आँधी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध = अँधेरा, अंधा करनेवाली] बडे वेग [illegible] हवा जिससे इतनी धूल उठे कि चारो ओर अँधेरा छा जाय अंधड़। अंधवाव।

विशेष—भारतवर्ष मे आँधी का समय वसंत और ग्रीष्म है।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।—चलना।

मुहा०—आँधी उठाना = हलचल मचाना। धूम धाम मचाना। आँधी के आम = (१) आँधी मे आप से आप गिरे हुए आम। (२) विना परिश्रम के मिली हुई चीज। बहुत सस्ती चीज। (३) थोडे दिन रहनेवाली चीज।

आँधी[२]—वि० आँधी की तरह तेज। किसी चीज को झटपट करनेवाला। चालाक। चुस्त। जैसे,—काम करने मे तो वह आँधी है।

मुहा०—आँधी होना = बहुत तेज चलना।

आँबपु†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आम'। उ०—फले सोहाए मधुर फल, आँब गए झकझोरि।—भिखारी० ग्र०, पृ० १३६।

आँबाⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] 'आम'। उ०—और यह वैष्णव आँबा लेन कों बजार मे गयो। सो बजार मे कहूँ आँबा न मिले।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ३४।

आँबाहल्दी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आमाहल्दी'।

आँयबाँय—संज्ञा पुं० [अनु०] अनापसनाप। अडबड। व्यर्थ की बात। असबद्ध प्रलाप।

आँव—संज्ञा पुं० [सं० आम = कच्चा] एक प्रकार का चिकना सफेद लस दार विकृत द्रव्य या मल जो अन्न न पचने से होता है।

क्रि० प्र०—गिरना।—पडना।

आँवठ†—संज्ञा पुं० [सं० ओष्ठ हिं० ओठ] १ किनारा। बारी। २ कपड़े का किनारा। बरतन की बारी।

आँवडना—क्रि० अ० [हिं०√उमड] उमडना। उ०—भरे रुचि भार सुकुमार सरसिज सार सोभा रूप सागर अपार रस आँवडे।—देव (शब्द०)।

आँवडा[१]Ⓟ—वि० [हिं० उमडना] गहरा। उ०—जेता मेटा बोलवा, तेता साधु न जान। पहिले थाह दिखाइ के, आँवडे देसी आनि। कबीर (शब्द०)।

आँवडा[२]†—संज्ञा पुं० [सं० आम्रातक प्रा० अवाडय] एक प्रसिद्ध खट्टा फल। अमडा।

आँवन—संज्ञा पुं० [सं० आनन = मुँह] १ लोहे की सामी जो पहिए के उस छेद के मुँह पर लगी रहती है जिसमे होकर धुरी का दड जाता है। मुहँडी। २ वह औजार जिससे लोहे के छेद को लोहार लोग बढाते हैं।

आँवराⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० आमलक, प्र० आमलय] दे० 'आँवला'। उ०—आलूचा अमिली अँबहलदी, आम अँवरा साल अफनदी।—सुजान०, पृ० १६१।

आँवल—संज्ञा पुं० [सं० उल्वम = जरायु। अथवा, अवर = आच्छादन] झिल्ली जिससे गर्भ मे बच्चे लिपटे रहते हैं। यह झिल्ली प्राय बच्चा होने के पीछे गिर जाती है। खेंडी। जेरी। साम।

यौ०—आँवल नाल।

आँवलगट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० आँवला + हिं० गट्टा वा गाँठ] आँवले का सूखा हुआ फल।

विशेष—यह दवा मे तथा सिर मलने के काम आता है।

आँवला—संज्ञा पुं० [सं० आमलक, प्रा० आमलओ] १ एक प्रसिद्ध पेड। २ इस पेड का फल।

विशेष—इसकी पत्तियाँ इमली की तरह महीन महीन होती हैं। इसकी लकड़ी कुछ सफेदी लिए होती है और उसके ऊपर का छिलका प्रति वर्ष उतरा करता है कातिक से माघ तक इसका फल रहता है जो गोल कागजी नीबू के बराबर होता है। इसके ऊपर का छिलका इतना पतला होता है कि उसकी नसे दिखाई देती हैं। यह स्वाद मे कसैलापन लिए हुए होता है। आयुर्वेद म इसे शीतल, हलका तथा दाह पित्त और प्रमेह का नाश करनेवाला बतलाया है। इसके सयोग से त्रिफला, च्यवनप्राश आदि औषध बनते है। आवले का मुरब्बा भी बहुत अच्छा होता है। आँवले की पत्तियो मे चमडा भी सिझाया जाता है। इसकी लकडी पानी मे नहीं सडती। इसी से कूओ के नीमचक आदि इसी से बनते हैं।

३ विपक्षी को नीचे लाने का कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब विपक्षी का हाथ अपनी गरदन पर रहे, तब अपना भी वही हाथ उसकी गरादन पर चढावे और दूसरे से शत्रु के उस हाथ को जो अपनी गरदन पर है झटका देकर हटाते हुए उसको नीचे लावे। इसका तोड विषम पैंतरा करे अथवा शत्रु की गरदन पर का हाथ केहुनी पर से हटाकर पैंतरा बढाते हुए बाहरी टाँग मार गिरावे।

आँवलापत्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँवला + पत्ती] एक प्रकार की सिलाई जिसमे पत्ती की तरह दोनों ओर तिरछे टाँके मारे जाते हैं।

आँवलासारगधक—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँवला + सं० सार + गधक] खूब साफ की हुई गधक जो पारदर्शक होती है, यह खाने मे अधिक खट्टी होती है।

आँवा—संज्ञा पुं० [सं० आपाक—आँवा] वह गड्ढा जिसमे कुम्हार लोग मिट्टी के बरतन पकाते हैं। जैसे,—कुम्हार आँवा लगा रहा है।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—आँवे का आँवा बिगडना = सारे परिवार का बिगड़ना। सारे परिवार का कुत्सित विचार होना। आँवाँ बिगडना = आवें के बरतनो का ठीक ठीक न पकना।

आँस[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० काश—क्षत, हिं० गाँस] सवेदना। दर्द।

आँस[२]Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अंश'। उ०—बिछुरत सुदर अधर तैं, रहत न जिहि घट साँस। मुरली सम पाई न हम प्रेम प्रीति को आँस।—स० सप्तक, पृ० १८७।

आँस[३]Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० अस्र] आँसू। उ०—रूप रस पीवत अघात ना हुते जो तब सोई अब आँस ह्वै उबरि गिरिबो करैं।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १२१।

आँस[४]—संज्ञा स्त्री० [सं० अशु प्रा० असु] १ सुतली। डोरी। २ रेशा।

आँसी—संज्ञा स्त्री० [सं० अश = भाग] १. भाजी। बैना। मिठाई जो इष्ट-मित्रो के यहाँ बाँटी जाती है।—नँद + लन लाल के ढूँही दिना तें परी मन आइ सनेह की फाँसी। काम कलोलनि मे मतिराम लगे मनो बाँटन मोद की आँसी।—मतिराम।—(शब्द०) २ भाग। हिस्सा। उ०—नारि कुलीन कुलीननि लै रमैं मैं उनमैं चहौ एक न आँसी।—भिखारी ग्रं०, भा० पृ० १५६।

आँसुⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँसू'। उ०—माता भरतु गोद बैठारे आँसु पोंछि मृदु वचन उचारे।—मानस, २। १६५।

आँसू--संज्ञा पुं० [सं० अश्रु, पा० प्रा० अस्सु, प्रा अंसु] वह जल जो आँख के भीतर उस स्थान पर जमा रहता है, जहाँ से नाक की ओर नली जाती है। उ०—जो घनीभूत पीडा थी मस्तक मे स्मृति सी छाई, दुर्दिन मे आँसू बनकर वह आज बरसने आई।—आँसू, पृ० १४।

विशेष—यह जल आँख की झिल्लियो को तर रखता है और डेले पर गर्द या तिनके को नही रहने देता, धोकर साफ कर देता है। आँसू भी थूक की तरह पैदा होता रहता है और बाहरी या मानसिक आघात से बढता है। किसी प्रबल मनोवेग के समय, विशेषकर पीडा और शोक मे आँसू निकलते हैं। क्रोध और हर्ष मे भी आँसू निकलते हैं। अधिक होने पर आँसू गालो पर बहने लगता है और कभी कभी भीतरी नली के द्वारा नाक मे भी चला जाता है और नाक से पानी बहने लगता।

क्रि० प्र०--आना।—गिरना।—गिराना।—चलना।—रुकना।—टपकाना।—डालना।—ढालना।—निकालना।—बहना।--बहाना।

यौ०—आँसू की धार। आँसू की लडी।

मुहा०--आँसू गिराना = रोना। जैसे,—क्यो झठ मूठ आँसू गिराते हो। आँसू डबडबाना = आँसू निकलना। रोने की दशा होना। जैसे—यह सुनते ही उसके आँसू डबडबा आए। आँसू ढालना = आँसू गिराना। रोना। जैसे,—परगट ढारि सकै नहि आँसू। घुट घुट माँस गुपुत होय नासू।—जायसी (शब्द०)। आँसू तोड = कुसमय की वर्षा (ठग)। आँसू थमना = आँसू रुकना। रोना बद होना। जैसे,—जब से उन्होने यह समाचार सुना है, तब से उनके आँसू नही थमते है। उ०—थमते थमते थमेगे आँसू। रोना है कुछ हँसी नही है। --मीर (शब्द०)। आँसू पीकर रह जाना = भीतर ही भीतर रोकर रह जाना। अपनी व्यथा को रोकर प्रकट न करना। मन ही मन ममोसकर रह जाना। जैसे,—(क) मेरे देखते उसने बच्चे पर हाथ चलाया था, और मैं आँसू पीकर रह गया। (ख) इतना दु ख उस पर पडा वह आँसू पीकर रह गया। आँसू पुछना = आश्वासन मिलना। ढारस बँधना। जैसे,—उस बेचारे की सारी सपत्ति चली गई पर घर बच जाने से आँसू पुँछ गए।—(शब्द०)। आँसू पोछना = (१) बहते हुए आँसू को कपडे मे सुखाना। (२) ढारस बँधाना। दिलासा देना। तसल्ली देना। आश्वासन देना। जैसे—(क) उसका घर ऐसा सत्यानाश हुआ कि कोई आँसू पोछनेवाला भी न रहा। (ख) हमारा सारा रुपया मारा गया, आँसू पोछने के लिये १००) मिले है।—आँसू भर आना = आँसू निकल पडना। आँसू भर लाना = रोने लगना। जैसे,—यह सुनते ही वह आँसू भर लाया। आँसू का तार बँधना = बराबर आँसू बहना। आँसुओ से मुँह धोना = बहुत आँसू गिराना। बहुत रोना। अत्यत विलाप करना।

आँसूढाल—संज्ञा पुं० [हिं० आँसू + ढालना] घोडो और चौपायो की एक बीमारी जिसमे उनकी आँखो से आँसू बहा करता है।

आँहड--संज्ञा पुं० [सं० आ + भांड] बरतन।

आँहड वीहँड†—वि० [प्रा० आहंड = खोजना, भटकना + विहड = टूटना, बिखरना] तितरबितर। ऊबडखाबड।

आँहाँ—अव्य [हिं० ना + हाँ] नही।

विशेष—यह शब्द किसी प्रश्न के उत्तर मे जीभ हिलाने के श्र से बचने के लिये बोला जाता है स्वर और ऊष्म, विशेषकर 'ह' के उच्चारण में बहुत कम प्रयत्न करना पडता है।

आ¹—अव्य० [सं०] एक अव्यय जिसका प्रयोग सीमा, अभिव्यक्ति, ईषत् और अतिक्रमण के अर्थों मे होता है। जैसे --(क) सीमा—आसमुद्र = समुद्र तक। आमरण = मरण तक। आजानुबाहु = जानु तक लबी बाहुवाला। आजन्म = जन्म से। (ख) अभिव्याप्ति—आपाताल = पाताल के अतर्भाग तक। आजीवन—जीवन भर। (ग) ईषत् (थोडा, कुछ) आपिंगल = कुछ कुछ पीला। आकृष्ण = कुछ काला। (घ) अतिक्रमण—आकालिक = बेमौसम का।

आ²—उप० [सं०] यह प्राय गत्यर्थक धातुओ के पहले लगता है और उनके अर्थों मे कुछ थोडी सी विशेषता कर देता है, जैसे,आ। आघूर्णन, आरोहण, आकपन, आघ्राण। जब यह 'गम (जाना' 'या' (जाना), 'दा' (देना) तथा 'नी' (ले जाना) धातुको पहले लगता है, तब उनके अर्थों को उलट देता है, जैसे 'गमन (जाना) से आगमन (आना), 'नयन' (ले जाना) से 'आनयन (लाना), 'दान' (देना) से 'आदान' (लेना)।

आ³—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा। पितामह।

आइंदा¹—वि० [फा० आइंदह्] आनेवाला। आगतुक। भविष्य जैसे,—आइंदा जमाना।

आइंदा²—संज्ञा पुं० भविष्य काल। आनेवाला समय। जैसे —आइंदा के लिये खबरदार हो रहो।

आइंदा³—क्रि वि० आगे। भविष्य मे। जैसे,—हमने समझा दिया आइंदा वह जाने उसका काम जाने।

यौ०—आइंदे। आइंदे को। आइंदे मे। आइंदे से। ये सबके क्रि० वि० के समान प्रयुक्त होते हैं।

आइ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० आयु] १ आयु। जीवन। उ०—जेहि सुभाय चितवहि हितु जानी। सो जानै जनु आइ खुटानी —मानस, १।२६९।

आइटम—संज्ञा पुं० [अ०] मद। उ०- बजट बनाने लगता है, तो हर एक आइटम मे दो चार लाख ज्यादा लिख देता है।—रगभूमि भा० २, पृ० ६०५।

आइडियल—वि० [अ०] श्रेष्ठ। आदर्श।

आइना†—संज्ञा पु० [फा० आइनह्] दे० 'आईना'। उ०—है निराली प्रभु-कला जिसमे बसी, वह निराला आईना है फूटता।—चोखे० पृ० २३।

आइस(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयसु'।

आइसु(पु)— संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयसु'।

आई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० आयु] १ आयु। जीवन। उ०—सतयुग लक्ष वर्ष की आई, त्रेता दश सहस्र कह गाई।—सूर (शब्द०)। २ मृत्यु। मौत (ला०) भरा कटोरा दूध का, ठढा करके पी। तेरी आई मैं मरूँ, किसी तरह तू जी।—(शब्द०)।

आई²—क्रि० अ० 'आना' का भूतकाल स्त्री०

यौ०—आई गई = आकर गुजरी हुई बात।

मुहा०—आई गई करना = (१) बीती को बिसारना। (२) टाल जाना। उपेक्षा करना। आई गई होना = (१) घटित होकर गुजर जाना। २ अनुपस्थित होना।

आई[3]†—संज्ञा स्त्री० [स० आर्यिका, प्रा० अज्जिआ] १ पितामही। दादी। २ माँ।

आई[4]—प्रत्य० [हिं०] १ एक प्रत्यय जो भाववाचक संज्ञा बनाने के लिये विशेषण शब्दो के अंत मे जोडा जाता है, जैसे, 'कठिन' से 'कठिनाई', बडा' से 'बडाई', 'छोटा' से 'छुटाई', 'मीठा' से 'मिठाई' आदि। २ एक प्रत्यय जो धातुओ में लगकर भाववाचक संज्ञाएँ बनाता है। जैसे, 'पढ' 'पढाई', लिख से ,लिखाई', 'लड से' लडाई 'भिड' से 'भिड़ाई' आदि।

आईन—संज्ञा पुं० [फा०][वि० आईनी] १ नियम। विधि। कायदा। जाब्ता। २ कानून। राजनियम।

यौ०—आईनदाँ—वकील। कानून जाननेवाला।

आईना—संज्ञा पुं० [फा० आईनह्] १ आरसी। दर्पण। शीशा।

यौ०—आईनादार। आईनाबदी। आइनासाज। आइनासाजी।

मुहा०—आईना होना = स्पष्ट होना। जैसे,—यह बात तो आप पर आईना हो गई होगी। आईने मे मुँह देखना—अपनी योग्यता को जाँचना। (यह मुहावरा उस समय बोला जाता है जब कोई व्यक्ति अपनी योग्यता से भी अधिक काम करने की इच्छा प्रकट करता है, जैसे,—पहले आइने मे अपना मुँह तो देख लो, फिर बात करना।

२ किवाडे का दिलहा। वि० दे० 'दिलहा'।

यौ०—आईनेदार = वह किवाडा जिसमे आईना या दिलहा हो।

आईनादार—संज्ञा पुं० [फा०] वह नौकर जो आईना दिखलाने का काम करे। नाई। हज्जाम।

विशेष—दसहरे, दीवाली आदि त्योहारो पर नाई आईना दिखाता है और उसके बदले मे लोगो से कुछ ईनाम पाता है।

आईनाबदी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ कमरे या बैठक मे झाड़ फानूस आदि की सजावट। २ कमरे या घर के फर्श मे पत्थर या ईंट की जुडाई। ३. रोशनी करने के लिये तरतीब से टट्टियाँ खडी करना।

आईनासाज—संज्ञा पुं० [फा० आईनह् + साज] आईना बनानेवाला।

आईनासाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० आईनह् साजी] १ काँच की चद्दर के टुकडे पर कलई करने का काम। २ आइनासाज का पेशा

आइनी—वि० [फा० आईन] कानूनी। राजनियम के अनुकूल।

आउंस—संज्ञा पुं० [अ०] एक अंग्रेजी मान जो दो प्रकार का होता है। एक ठोस वस्तुओ के तौलने मे और दूसरा द्रव पदार्थो के नापने मे काम आता है। तौलने का आउंस हिंदुस्तानी सवा दो तोले के बराबर होता है। ऐसे बारह आउंसो का एक पाउंड होता है। नापने का आउंस सोलह ड्राम का होता है और एक ड्राम साठ बूँदो का होता है।

आउ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० आयु] जीवन। उम्र। उ०—एहि बन रहत गई हम्ह आऊ। तरिवर चलत न देखा काऊ।—जायसी ग्र०, पृ० २७। (ख) सकट मुकुत को सीवा जानि जिय रघुराउ। सहस द्वादस पचमत मे कछुक है अब आउ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४२२।

आउज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आतोद्य प्रा० आओज्ज, आवज्ज] ताशा। उ०—घटा-घटि पखाउज-आउज झाझ बेनु डफ-तार। नूपुर धुनि-मजीर मनोहर कर कंकन-झनकार।—तुलसी ग्र०, २६५।

आउझ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आतोद्य, प्रा० आवज्ज] दे० 'आउज'।

आउट—वि० [अ०] खेल मे हारा हुआ। बहिर्भूत।

विशेष—यह क्रिकेट आदि खेल मे बोला जाता है। जब बल्लेवाले किसी खिलाडी के खेलते समय गेंद विकेट मे लग जाती है या बल्ले से मारी हुई गेंद लोक ली जाती है, तब वह आउट समझा जाता है, और बल्ला रख देता है।

आउबाउ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० वायु > बाउ अनु०] अंड बंड बात। अनर्थक शब्द। असबद्ध प्रलाप।

क्रि० प्र०—बकना। उ०—मानस मलीन करतब कलिमल पीन जीह हू न जपेउ नाम बकेउ आउबाउ मैं।—तुलसी ग्र०, पृ० ५८८।

आउस—संज्ञा पुं० [सं० आशु बँग० आउश] धान का एक भेद जो बंगाल मे मई जून मे बोया जाता है और अगस्त सितंबर मे काटा जाता है। यह दो प्रकार का होता है—एक मोटा, दूसरा महीन या लेपी। भदई। ओसहन।

आऊपा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आयुष्य] उम्र। अवस्था। उ०—उनामिए पुत्री अवतरी। तिन आऊपा पूरी करी।—अर्ध० पृ० ५७।

आकप—संज्ञा पुं० [सं० आकम्प] दे० 'आकपन' [को०]।

आकपन—संज्ञा पुं० [सं० आकम्पन] [वि० आकपित] काँपना। कँपकँपी।

आकपित—वि० [स० आकम्पित] काँपा हुआ। हिला हुआ।

आक[1]—संज्ञा पुं० [स० अर्क, प्रा० अक्क] मदार। अकौआ। अकवन। उ०—(क) पुरवा लागि भूमि जल पूरी। आक जवास भई तस झूरी।—जायसी ग्र०, पृ० १५३। (ख) कबिरा चदन बीरवै, बेधा आक पलाश। आप सरीखा कर लिया, जो होते उन पास।—कबीर (शब्द०)। (ग) देत न अघात रीझि जात पात आक ही के भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत है।—तुलसी ग्र० पृ० २३७।

मुहा०—आक की बुढिया = (१) मदार का घूआ। ( ) बहुत बूढ़ी स्त्री।

आक[2](पु)—वि० [सं० अक = दुःख] दुखी। उ०—आक करम भेषज विदित, लखात नही मति ओर। तुलसी मउ अकरम विहठि दिन दिन दीन मलीन।—स० सप्तक, पृ० ४७।

आकडा—संज्ञा पुं० [सं० अर्क, हिं० आक + डा (प्रत्य०)] मदार। अकौआ। अर्क।

आकना†—संज्ञा पुं० [सं० आकर्ष = खोदना] १ घास फूस, जिसे जोते हुए खेत से निकालकर बाहर फेंकते है। २ जोते हुए खेत से घास फूस निकालने की क्रिया। चिखुरना।

आकबत—संज्ञा स्त्री० [अ० आकबत] मरने के पीछे अवस्था। परलोक। जैसे,—बाबा, दिया लिया ही आकबत मे काम आवेगा।

यौ०—आकबतअंदेश। आकबतअंदेशी।

क्रि० प्र० बिगड़ना = (१) परलोक बिगडना। परलोक नष्ट

होना। (२) अंजाम बिगड़ना। बुरा परिणाम होना।—बिगाड़ना।

मुहा०—आकबत मे दिया दिखाना=परलोक मे काम आना।

आकबतअंदेश—वि० [अ० आक़बत+फा० अंदेश] परिणाम सोचनेवाला। अग्रसोची। दूरदेश। दीर्घदर्शी।

आकबतअंदेशी—संज्ञा स्त्री० [आक़बत+फा० अंदेशी] परिणाम का विचार। परिणामदर्शिता। दीर्घदर्शिता। दूरदेशी।
क्रि० प्र०—करना।

आकबतीलगर—संज्ञा पु० [अ० आक़बत+फा० ई० (प्रत्य०)+हिं० लगर] एक प्रकार का लगर जो जहाज पर अगले मस्तूल की रस्सियो या रिगिन के पास बीच के टूटक मे रहता है और आफत के वक्त डाला जाता है।

आकवाक—संज्ञा पुं० [प्रा० *अक्कइ > √वक मे अनुध्व०] अकबक। अकबड बात। ऊटपटाँगबात। उ०—(क) आकबाक बकति बिथा मैं बूडि बूडि जाति पी की सुधि आएँ जी की सुधि बुधि खोइ देत।—देव (शब्द०)। (ख) आकबाक बकि और की वृथा न छाती छोल।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ७३७।

आकर[1]—संज्ञा पु० [स०] १ खानि। उत्पत्तिस्थान। उ०—सदा-सुमन फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति। प्रगटी सुदर सैल पर, मनि आकर बहु भाँति।—मानस, १।६५। २ खजाना। भडार।

यौ०—गुणाकर। कमलाकर। कुसुमाकर। करुणाकर। रत्नाकर।

३ भेद। किस्म। जाति। उ०—आकर चारि लाख चौरासी जाति जीव जल थल नभ बासी।—मानस, १।८। ४ तलवार के बत्तीस हाथो मे से एक। तलवार चलाने का एक भेद।

आकर[2]—वि० १ श्रेष्ठ। उत्तम। २ अधिक। उ०—चपा प्रीति जो तेल है, दिन दिन आकर बास। गलि गलि आप हेराय जो, मुए न छाँडै पास।—जायसी (शब्द०)। ३ गणित। गुणा। जैसे, पाँच आकर, दस आकर। उ०—अस भा सूर पुरुष निरमरा। सूर जाहि दस आकर करा।—जायसी (शब्द०)। ४ दक्ष। कुशल। व्युत्पन्न।

आकरकढा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आकरकरहा'।

आकरकरहा—संज्ञा पु० [अ०] एक जडी जिसे मुँह मे रखने से जीभ मे चुनचुनाहट होती है और मुँह से पानी निकलता है। यह एक वृक्ष की लकडी है। आकरकढा। दे० 'अकरकरा'।

आकरखना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'आकर्पना'।

आकरिक[1]—वि० [स०] खान खोदनेवाला।

आकरिक[2]—संज्ञा पु० वह मनुष्य जो खान को स्वय खोदे या औरो से खोदावे और उसमे धातु निकाले।

आकरी[1]—वि० [स० आकर=खान (धातु और पत्थर आदि की)] कठोर। उ०—नारी बोलै आकरी तब दुख पावै नाह। सुदर बोलै मधुर मुख तब सुख सीर प्रवाह।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ७०७।

आकरी[2]—संज्ञा स्त्री० [स० आकर+ई० (प्रत्य०)] खान खोदने का काम। उ०—चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख जानत न छर कछु कसब बचार है।—तुलसी ग्र०, पृ० ११२।

आकरी[3]—संज्ञा पु० [स० आकरिन्] दे० 'आकरिक'।

आकर्ण—वि० [स०] कान तक फैला हुआ।

यौ०—आकर्णचक्षु। आकर्णकृष्ट।

आकर्णन—संज्ञा पु० [स०] [वि० आकर्णित] सुनना। कान करना अकनना।

आकर्णित—वि० [स०] सुना हुआ।

आकर्ष—संज्ञा पुं० [स०] १ एक जगह के पदार्थ का बल से दूसरी जगह जाना। खिंचाव। कशिश।

क्रि० प्र०—करना—खीचना। उ०—तैसे ही भुवभार उतारन हित हलधर अवतार। कालिंदी आकर्प कियो हरि मारे असुर अपार।—सूर। (शब्द०)।

२ पासे का खेल। ३ बिसात जिसपर पासा खेला जाय चौपड। ४ इद्रिय। ५ धनुष चलाने का अभ्यास। ६ कसौटी। ७. चुबक।

आकर्षक[1]—वि० [सं०] १ वह जो दूसरे को अपनी ओर खीचे आकर्षण करनेवाला। खीचनेवाला। २. सुदर।

आकर्षक[2]—संज्ञा पुं० चुबक [को०]।

आकर्षण—संज्ञा पुं० [स०] [वि० आकर्षित, आकृष्ट] १ किसी वस्तु का दूसरी वस्तु के पास उसकी शक्ति या प्रेरणा से लाया जाना। २ खिंचाव। ३ तत्रशास्त्र का एक प्रयोग जिसके द्वारा दूर देशस्थ पुरुष या पदार्थ पास मे आ जाता है।

क्रि० प्र०—करना। होना।

यौ०—आकर्षण मंत्र। आकर्षण विद्या। आकर्षण शक्ति।

आकर्षणशक्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] भौतिक पदार्थों की एक शक्ति जिससे वे अन्य पदार्थों को अपनी ओर खीचते हैं।

विशेष—यह शक्ति प्रत्येक परमाणु मे रहती है। क्या कारण, क्या कार्य रूप मे सब परमाणु या उनसे उत्पन्न सब पदार्थों की ओर आकृष्ट होते हैं। इसी से द्वयणु, त्रसरेणु तथा समस्त चराचर जगत् का सगठन होता है। इसी से पाषाणादि के परमाणु आपस मे जुडे रहते हैं। पृथ्वी के ऊपर ककड, पत्थर तथा जीव आदि सब इसी शक्ति के बल से ठहरे रहते हैं। जल के चद्रमा की ओर आकृष्ट होने से समुद्र मे ज्वार भाटा उठता है। बडे बडे पिंड, ग्रहमडल, सूर्य, चद्रादि सब इसी शक्ति से आकाशमडल मे निराधार स्थित हैं और [illegible] से अपनी अपनी कक्षा पर भ्रमण करते हैं। पृथ्वी भी इसी शक्ति से बृहत् वायुमडल को धारण किए हुए है। सूर्य से लेकर परमाणु तक मे यह शक्ति विद्यमान है। यह शक्ति भिन्न भिन्न रूपो से भिन्न भिन्न पदार्थों और दशाओ मे काम करती है मात्रानुसार इसका प्रभाव दूरस्थ और निकटवर्ती सभी पदार्थ पर पडता है। धारण या गुरुत्वाकर्पण, चुबकाकर्पण, सलग्नाकर्षण, केशाकर्षण, रासायनिकाकर्पण आदि इसके [illegible] प्रभेद है।

आकर्पणी—संज्ञा पु० [स०] १ एक लग्गी जिससे फल फूल तोडते हैं अँकुसी। लकसी। २ प्राचीन काल का एक सिक्का। ३ शरीर पर धारण की जानेवाली विशेष प्रकार की मुद्रा या चिह्न (को०,

आकर्षनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० आकर्षण] दे० 'आकर्षण'।

आकर्षनाⓅ—क्रि० स० [सं० आकर्षण से नाम०] खींचना। उ०—आकरष्यो धनु करन लगि, छाँडे सर इकतीस।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कालिंदी को निकट बुलायो जलक्रीडा के काज। लियो आकरषि एक छन मे हलि कति समरथ यदुराज।—सूर (शब्द०)।

आकर्षिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आकर्षिकी] दे० 'आकर्षक' [को०]।

आकर्षित—वि० [सं०] खीचा हुआ।

आकलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आकलनीय, आकलित] १ ग्रहण। लेना। २ सग्रह। बटोरना। सचय। इकट्ठा करना। ३ गिनती करना। ४ अनुष्ठान। सपादन। ५ अनुसधान। जाँच। ६ इच्छा। कामना [को०]। ७ वर्णन करना [को०]।

आकलना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'आकलन'। २ पूजा। भक्ति [को०]

आकलनीय—वि० [सं०] १ ग्रहण करने योग्य। लेने योग्य। २ सग्रह करने योग्य। ३ गिनती करने योग्य। ४ अनुष्ठान करने योग्य। ५ जाँचने योग्य। पता लगाने योग्य।

आकलित—वि० [सं०] १ लिया हुआ। पकडा हुआ। २ ग्रथित। गूँथा हुआ। ३ गिना हुआ। परिगणित। ४ अनुष्ठित। सपादित। कृत। ५ अनुसधान किया हुआ। जाँचा हुआ। परीक्षित।

आकली[1]†—संज्ञा स्त्री० [सं० आकुल+ई (प्रत्य०) या सं० आकल्य= बीमारी] आकुलता। बेचैनी।

आकली[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] चटक पक्षी। गौरैया।

आकल्प[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वेश रचना। सिंगार करना, जैसे, रत्नाकल्प। २ पोशाक। पहनावा [को०]। ३ बीमारी (को०)। ४ जोडना। बढाना [को०]।

आकल्प[2]—क्रि० वि० कल्प पर्यंत।

आकल्य—संज्ञा पुं० [सं०] बीमारी। अस्वस्थता [को०]।

आकष—संज्ञा पुं० [सं०] कसौटी।

आकसमातⓅ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकस्मात'। उ०—पथी माँहि पथ चलि आयौ आकसमात।—सु दर० ग्र०, भा० २, पृ० ७५८।

आकस्मातⓅ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकस्मात'।

आकस्मिक—वि० [सं०] जो बिना किसी कारण के हो। जो अचानक हो। सहसा होनेवाला। जिसके होने का पहले से अनुमान न हो।

यौ०—**आकस्मिक अवकाश, आकस्मिक छुट्टी**=अचानक काम से ली जानेवाली छुट्टी।

आकाक्षक—वि० [सं० आकाङ्क्षक] इच्छा रखनेवाला। अभिलाषा करनेवाला।

आकाक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० आकाङ्क्षा] [वि० आकाक्षक आकांक्षित, आकाक्षी] १ इच्छा। अभिलाषा। वाछा। चाह। २ अपेक्षा। ३ अनुसधान। ४ न्याय के अनुसार वाक्यार्थज्ञान के चार प्रकार के हेतुओ में से एक।

विशेष—वाक्य मे पदो का परस्पर सबध होता है और इसी सबध से वाक्यार्थ का ज्ञान होता है। जब वाक्य मे एक पद का अर्थ दूसरे पद के अर्थज्ञान पर आश्रित रहता है तब यह कहते है कि इस पद के ज्ञान की आकाक्षा है, जैसे,—'देवदत्त आया' इस वाक्य मे आया पद का ज्ञान देवदत्त के ज्ञान के आश्रित है।

५. जैनियो के अनुसार एक अतिचार। जैनियों से अतिरिक्त अन्य मतवालो की विभूति देख उसे ग्रहण करने की इच्छा।

यौ०—**आकांक्षातिचार**।

आकाक्षित—वि० [सं० आकाङ्क्षित] १ इच्छित। अभिलषित। वाछित। २ अपेक्षित।

आकाक्षी—वि० [सं० आकांक्षिन्] [वि० स्त्री० आकांक्षिणी] १ इच्छा रखनेवाली। इच्छुक। चाहनेवाला। २ आशा करनेवाला।

आका[1]†—संज्ञा पुं० [सं० आकाय] १ कोठा। बखार। २ भट्ठी। ३ पजावा। आँवाँ।

आका[2]—संज्ञा पुं० [तु० आका] मालिक। स्वामी।

आकाय—संज्ञा पुं० [सं०] १ चिता की अग्नि। २ चिता। ३ आवास। निवास [को०]।

आकार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वरूप। आकृति। मूर्ति। रूप। सूरत। २ डील डौल। कद ३ बनावट। सघटन। ४ निशान। चिह्न। ५ चेष्टा। ६ 'आ' वर्ण। ७ बुलावा। ८ प्रकार। ढग। उ० सुंदर वर वानक सजीव, अति राजत इहि आकार। जलरुह मनो बैर बिधु सों तजि, मिलत लए उपहार।—सूर०, १०।२८३।

यौ०—**आकारगुप्ति**। **आकारगोपन**=हृदय या मन के भाव को कल्पित चेष्टा से छिपाना।

आकार[2]—वि० रूपवाला। साकार। उ०—कोई आकार कहै कोई निराकार कहै तत्व को छोडि निरतर धाई।—कबीर रे०, पृ० २८।

आकारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ आह्वान। बुलावा। २ चुनौती [को०]।

आकारवान—वि० [सं० आकारवत्] १ आकार या शरीरवाला। २ सुगठित। सु दर [को०]।

आकारात—वि० [सं० आकारान्त] जिसके अत मे 'आ' स्वर हो [को०]।

आकारित—वि० [सं०] १ आहूत। २.स्वीकृत। ३. माँगा या चाहा हुआ [को०]।

आकारीⓅ—वि० [सं० आकरण=आह्वान] [स्त्री० आकारिणी] आह्वान करनेवाला। बुलानेवाला। उ०—गौर मुख हिम किरण की जु किरणावली श्रवत मधुपान हिय पियत रसी। नागरी सकल सकेत आकारिणी गनत गुन गननि मति होति पसी।—नागरी० (शब्द०)।

आकारीठⓅ—संज्ञा पुं० [सं०आकारण=बुलाना]सग्राम। युद्ध। (डिं०)

आकाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. अतरिक्ष। आसमान। गगन। ऊँचाई पर का वह चारो ओर फैला हुआ अपार स्थान जो नीला और शून्य दिखाई देता है। जैसे,—पक्षी आकाश मे उड रहे हैं। २ साधारणत वह स्थान जहाँ वायु के अतिरिक्त और कुछ न हो, जैसे,—वह योगी ऊपर उठा और बडी देर तक आकाश मे ठहरा रहा। ३ शून्य स्थान। वह अनत विस्तृत अवकाश

जिसमें विश्व के छोटे बड़े सब पदार्थ, चंद्र, सूर्य, ग्रह आदि स्थित हैं और जो सब पदार्थों के भीतर व्याप्त है।

विशेष—वैशेषिककार ने आकाश को द्रव्यों में गिना है। उसके अनुयायी भाष्यकार प्रशस्तपाद ने आकाश, काल और दिशा को एक ही माना है। यद्यपि सूत्र के १७ गुणों में शब्द नहीं है, तथापि भाष्यकार ने कुछ और पदार्थों के साथ शब्द को भी ले लिया है। न्याय में भी आकाश को पंचभूतों में माना है और उससे श्रोत्रेंद्रिय की उत्पत्ति मानी है। सांख्यकार ने भी आकाश को प्रकृति का एक विकार और शब्दतन्मात्रा से उत्पन्न माना है और उसका गुण शब्द कहा है। पाश्चात्य दार्शनिकों में से अधिकांश ने आकाश के अनुभव और दूसरे पदार्थों के अनुभव के बीच वही भेद माना है जो वर्तमान प्रत्यक्ष अनुभव और व्यतीत पदार्थों या भविष्य संभावनाओं की स्मृति या चिंतनप्रसूत अनुभव में है। कांट आदि ने आकाश की भावना को अंतःकरण से ही प्राप्त अर्थात् उसी का गुण माना है। उनका कथन है कि जैसे रंगों का अनुभव हमें होता है, पर वास्तव में पदार्थों में उनकी स्थिति नहीं है, केवल हमारे अंतःकरण में है, उसी प्रकार आकाश भी है।

यौ०—आकाशकुसुम। आकाशगंगा। आकाशचारी। आकाशचोटी। आकाशजल। आकाशदीपक। आकाशधुरी। आकाशध्रुव। आकाशनीम। आकाशपुष्प। आकाशभाषित। आकाशफल। आकाशबेल। आकाशमंडल। आकाशमुखी। आकाशमूली। आकाशलोचन। आकाशवल्ली। आकाशवाणी। आकाशवृत्ति। आकाशव्यापी। आकाशास्तिकाय।

पर्या०—द्यौ। द्यु। अभ्र। व्योम। पुष्कर। अंबर। नभ। अंतरिक्ष। गगन। अनंत। सुरवर्त्म। ख। वियत्। विष्णुपद। तारापथ। मेघाध्वा। महाबिल। विहायस। मरुद्वर्त्म। मेघवेश्म। मेघवर्त्म। कुनाभि अक्षर। विविष्टप। नाक। अनग।

मुहा०—आकाश की कोर = क्षितिज। आकाश खुलना = आसमान का साफ होना। बादल का जाना। बादल हटना। जैसे,—दो दिन की बदली के पीछे आज आकाश खुला है। आकाश छूना या चूमना = बहुत ऊँचा होना। जैसे,—काशी के प्रासाद आकाश छूते हैं। आकाश पाताल एक करना = (१) भारी उद्योग करना। जैसे,—जब तक उसने इस काम को पूरा नहीं किया, आकाश पाताल एक किए रहा। (२) आंदोलन करना। हलचल करना। धूम मचाना। जैसे,—वे जरा भी बात के लिये आकाश पाताल एक कर देते हैं। आकाश पाताल का अंतर = बड़ा अंतर। बहुत फर्क। उ०—तो भी इनमें उनमें आकाश और पाताल का अंतर है। प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०३। आकाश बाँधना = अनहोनी बात कहना। असंभव बात कहना। उ०—कहा कहति डरपाइ कछू मेरो घटि जैहै। तुम बाँधति आकाश बात झूठी को सैहै।—सूर (शब्द०)। आकाश से बातें करना = बहुत ऊँचा होना। जैसे,—माधवराव के धरहरे आकाश से बातें करते हैं।

४ अबरक। अभ्रक। ५ छिद्र। विवर [को०]। ६ (गणित में) शून्य [को०]। ७ प्रकाश। स्वच्छता [को०]। ८ ब्रह्म [को०]।

आकाशकक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश में वह मंडल जहाँ तक सूर्य की किरणों का संचार है। सूर्यसिद्धांत के अनुसार इस मंडल की परिधि १८७१२०६९२००००००००योजन है।

आकाशकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म [को०]।

आकाशकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] १ आकाश का फूल। खपुष्प। अनहोनी बात। असंभव बात।

आकाशगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० आकाशगङ्गा] १ बहुत से छोटे छोटे तारों का एक विस्तृत समूह जो आकाश में उत्तर-दक्षिण फैला है।

विशेष—इसमें इतने छोटे छोटे तारे हैं जो दूरबीन के ही सहारे दिखाई पड़ते हैं। खाली आँख से उनका समूह एक सफेद सड़क की तरह बहुत दूर तक दिखाई पड़ता है। इसकी चौड़ाई बराबर नहीं है, कहीं अधिक कहीं बहुत कम है। इसकी कुछ शाखाएँ भी कुछ इधर उधर फैली दिखाई पड़ती हैं। इसी से पुराणों में इसका यह नाम है। देहाती लोग इसे आकाशजनेऊ, हाथी की डहर या केवल डहर अथवा दूधगंगा कहते हैं।

२ पुराणानुसार वह गंगा जो आकाश में है।

पर्या०—मंदाकिनी। वियद्गंगा। स्वर्गंगा। स्वर्णदी। सुरदीर्घिका।

आकाशग[1]—वि० [सं०] आकाशचारी [को०]।

आकाशग[2]—संज्ञा पुं० पक्षी [को०]।

आकाशगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा [को०]।

आकाशचमस—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

आकाशचारी[1]—वि० [सं० आकाशचारिन्] [स्त्री० आकाशचारिणी] आकाश में फिरनेवाला। आकाशगामी।

आकाशचारी[2]—संज्ञा पुं० १ सूर्यादि ग्रह नक्षत्र। २. वायु। ३. पक्षी। ४ देवता। ५. राक्षस।

आकाशचोटी—संज्ञा पुं० [सं० आकाश + हिं० चोटी] शीर्षबिंदु। वह कल्पित बिंदु जो ठीक सिर के ऊपर पड़ता है।

आकाशजननी—वि० आकाशजननिन्] दुर्ग आदि के प्राचीर में बने झरोखे या छिद्र [को०]।

आकाशजल—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जल जो ऊपर से बरसे। मेह का पानी।

विशेष—मघा नक्षत्र में लोग बरसे हुए पानी को बरतनों में भर कर रख लेते हैं। यह औषध के काम आता है। २ ओस।

आकाशदीप—संज्ञा पुं० [सं०] आकाशदीया।

आकाशदीया—संज्ञा पुं० [सं० आकाश + हिं० दीया] वह दीपक जो कार्तिक में हिंदू लोग कंडील में रखकर एक ऊँचे बाँस के सिरे पर बाँधकर जलाते हैं।

विशेष—कार्तिक माहात्म्य के अनुसार २१ हाथ की ऊँचाई पर दिया जलाना उत्तम है, १४ हाथ पर मध्यम और ७ हाथ पर निकृष्ट है।

आकाशधुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० आकाश + हिं० धुरी] खगोल का ध्रुव। आकाशध्रुव।

आकाशध्रुव—संज्ञा पुं० [सं०] आकाशधुरी।

आकाशनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा।

आकाशनिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] खुले हुए मैदान में सोना।

आकाशनीम—संज्ञा स्त्री० [सं० आकाश + हिं० नीम] एक प्रकार का पौधा जो नीम के पेड़ पर होता है। नीम का बाँदा।

आकाशपथिक—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

आकाशपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश का फूल । आकाशकुसुम । खपुष्प ।

विशेष—यह असंभव बातों के उदाहरणों में से है ।

आकाशफल—संज्ञा पुं० [सं०] संतान या लड़का लड़की ।

आकाशवेल, आकाशवेलि—संज्ञा स्त्री० [सं० आकाश+हिं० वेल] अमरवेल ।

आकाशभाषित—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक के अभिनय में एक संकेत। बिना किसी प्रश्नकर्ता के आपसे आप वक्ता ऊपर की ओर देखकर किसी प्रश्न को इस तरह करता है, मानो वह उससे किया जा रहा है और फिर वह उसका उत्तर देता है। इस प्रकार के कहे हुए प्रश्न को 'आकाशभाषित' कहते हैं ।

विशेष—भारतेंदु हरिश्चंद्र के 'विषस्य विषमौषधम्' में इसका प्रयोग बहुत है। उ०—हरिश्चंद्र—अरे सुनो भाई, सेठ, साहूकार, महाजन, दूकानदारो, हम किसी कारण से अपने को हजार मोहर पर बेचते हैं। किसी को लेना हो तो लो। (इधर उधर फिरता है। ऊपर देखकर) क्या कहा? 'क्यों तुम ऐसा दुष्कर्म करते हो?" आर्य, यह मत पूछो, यह सब कर्म की गति है। (ऊपर देखकर) क्या कहा? "तुम क्या कर सकते हो, क्या समझते हो और किस तरह रहोगे?" इसका क्या पूछना है। स्वामी जो कहेगा वह करेंगे, इत्यादि।—सत्य हरिश्चंद्र ।

आकाशमंडल—संज्ञा पुं० [सं० आकाशमंडल] नभमंडल। खगोल ।

आकाशमांसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्र जटामांसी [को०]।

आकाशमुखी—संज्ञा पुं० [सं० आकाश+हिं० मुखी] एक प्रकार के साधु जो आकाश की ओर मुँह करके तप करते हैं। ये लोग अधिकांश शैव होते हैं।

आकाशमूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलकुंभी। पाना ।

आकाशयान—संज्ञा पुं० [सं०]१ वह जो आकाशमार्ग से गमन करे। २ वायुयान। बैलून [को०]।

आकाशयोधी—संज्ञा पुं० [सं० आकाशयोधिन्] वह लोग जो ऊँची जमीन या टीले पर से लड़ाई कर रहे हों। [को०]।

आकाशरक्षी—संज्ञा पुं० [सं० आकाशरक्षिन्] वह जो किले की बाहरी दीवार या बुर्ज पर खड़ा होकर पहरा दे [को०] ।

आकाशलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ से ग्रहों की स्थिति या गति देखी जाती है। मानमंदिर। आबजरवेटरी ।

आकाशवचन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आकाशभाषित' [को०] ।

आकाशवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ वायुमंडल।

आकाशवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमरबेल ।

आकाशवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह शब्द या वाक्य जो आकाश से देवता लोग बोलें। देववाणी। २ बेतार की युक्ति से प्रसारित वाणी या ध्वनि। रेडियो।

आकाशवृत्ति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनिश्चित जीविका। ऐसी आमदनी जो बँधी न हो ।

आकाशवृत्ति[2]—वि० [सं० आकाशवृत्तिक] १ जिसे आकाशवृत्ति का ही सहारा हो। २ (खेत) जिसे आकाश के जल ही का सहारा हो, जो दूसरे प्रकार से न सींचा जा सकता हो ।

आकाशसलिल—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृष्टि। २ ओस [को०] ।

आकाशस्फटिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ ओला। बनौरी। २ सूर्यकांत या चंद्रकांत मणि [को०] ।

आकाशास्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार छह प्रकार के द्रव्यों में से एक। यह एक अरूपी पदार्थ है जो लोक और अलोक दोनों में है और जीव तथा पुद्गल दोनों को स्थान या अवकाश देता है। आकाश।

आकाशी—संज्ञा स्त्री० [सं० आकाश+ई० (प्रत्य०)] वह चाँदनी जो धूप आदि से बचने के लिये तानी जाती है ।

आकाशीय—वि० [सं०] १ आकाशसंबंधी। आकाश का। २ आकाश में रहनेवाले। आकाशस्थ। ३ आकाश में होनेवाला। ४ दैवागत। आकस्मिक ।

आकास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आकाश] दे० 'आकाश'। उ०—लंका राज विभीषन राजै ध्रुव आकास बिराजै,।—सूर०, १। ३६।

आकासबानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आकाशवाणी' उ०—सूर, आकासबानी भई तबै तहँ, यहै बैदेहि है, करु जुहारा।—सूर०, ९। ७६ ।

आकिंचन—संज्ञा पुं० [सं० आकिञ्चन] गरीबी। निर्धनता। अकिंचनता [को०] ।

आकिंचन—वि० दे० 'अकिंचन'। उ०—आकिंचन इंद्रियदमन, रमन राम इकतार। तुलसी ऐसे संत जन, बिरले या संसार।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२ ।

आकिल—वि० [अ० आकिल] बुद्धिमान्। ज्ञानी। अक्लमंद।

आकिलखानी—संज्ञा पुं० [अ० आकिल+फा० खाँ (नाम)] एक प्रकार का रंग जो कालापन लिए लाल होता है। एक प्रकार का खैरा या काकरेजी रंग।

आकीर्ण[1]—वि० [सं०] १ व्याप्त। पूर्ण। भरा हुआ। २ बिखरा या फैला हुआ। [को०]।

यौ०—कटककीर्ण। जनाकीर्ण ।

आकीर्ण[2]—संज्ञा पुं० भीड़ [को०] ।

आकुंचन—संज्ञा पुं० [सं० आकुञ्चन] [वि० आकुंचनीय आकुंचित] १ सिकुड़ना। बटुरना। सिमटना। संकोच। २. वैशेषिक शास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के कर्मों में पदार्थों का सिकुड़ना। ३ ढेर लगाना [को०]। ४ टेढ़ा करना [को०]। ५ सेना का एक विशेष प्रकार का बढ़ाव [को०] ।

आकुंचनीय—वि० [सं० आकुञ्चनीय] सिकुड़ने योग्य। सिमटने योग्य।

आकुंचित—वि० [सं० आकुञ्चित] १ सिकुड़ा हुआ। सिमटा हुआ। २. टेढ़ा। कुटिल। वक्र।

आकुंठन—संज्ञा पुं० [सं० आकुण्ठन] [वि० आकुंठित] १ गुठला होना। कुंद होना। लज्जा। शर्म।

आकुंठित—वि० [सं० आकुण्ठित] १ गुठला। कुंद। २ लज्जित। शर्माया हुआ। ३. स्तब्ध। जड़। जैसे,—उनकी बुद्धि आकुंठित हो गई है।

आकुट्टी हिंसा—संज्ञा स्त्री० [प्रा० आकुट्टी+सं० हिंसा] उत्साहपूर्वक ऐसा निषिद्ध कर्म करना जिससे किसी प्राणी को दुःख हो ।

आकुल१—वि० [सं०] [संज्ञा आकुलता] १ व्यग्र । घबराया हुआ । उ०—भारत अब भी आकुल विपत्ति के घेरे मे ।—दिल्ली०, पृ० २१ । २ व्यस्त । बिखरा हुआ । जैसे,—केश । ३ उद्विग्न । क्षुब्ध । ४. विह्वल । कातर । ५ अस्वस्थ । ६. व्याप्त । संकुल । ७ तारतम्यहीन । जिसका कोई ठीक सिलसिला न हो [को०] । ८. जगली । ऊबड खाबड [को०] ।

आकुल२—संज्ञा पु० [सं०] १ खच्चर । २ आबाद जगह [को०] ।

आकुलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० आकुलित] १ व्याकुलता । घबराहट । उ०—वह आकुलता अब कहाँ रही जिसमे सब कुछ ही जाय भूल ।—कामायनी, पृ० १४५ । २ व्याप्ति ।

आकुलत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आकुलता' [को०] ।

आकुलित—वि०[सं०]१ व्याकुल । घबराया हुआ । उ०—अब साध्य मलय आकुलित दुकूल कलित हो, यो छिपते हो क्यो ।—चंद्र० पृ० ६३ ।

आकूणित—वि० [सं०] ईषत् सकुचित [को०] ।

आकूत—संज्ञा पुं० [सं०] १ आशय । अभिप्राय २ हार्दिक भावना [को०] । ३ कामना इच्छा [को०] ।

आकूति—संज्ञा पु० [सं०] १ अभिप्राय । आशय । मतलब । २. पुराणानुसार मनु की तीन कन्याओ मे से एक जो रुचि प्रजापति को व्याही थी । ३ उत्साह । अध्यवसाय । ४ सदाचार । आप्तरीति । ५ कर्मेंद्रिय[को०] । ६ वायुपुराण के अनुसार एक कल्प का नाम [को०] ।

आकूती—संज्ञा स्त्री० [सं० आकूति] स्वायभुव मनु की तीन कन्याओ मे से एक ।

आकृत१—वि० [सं०] व्यवस्थित । निर्मित । गठित । २ समीप लाया हुआ [को०] ।

आकृत२(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आकृति] मूर्ति । रूप ।

आकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बनावट । गढन । ढाँचा । २ अवयव । विभाग । उ०—जानु सुजघन करभकर आकृति, कटि प्रदेस किंकिनि राजै ।—सूर०, १ । ६६ ।

विशेष—इसका प्रयोग हिंदी मे चेतन के लिये अधिक और जड़ के लिये कम होता है ।

२ मूर्ति । रूप । ३ मुख । चेहरा । जैसे,—उसकी आकृति बडी भयावनी है । ४ मुख का भाव । चेष्टा । जैसे,—मरते समय उस मनुष्य की आकृति बिगड़ गई । ५ २२ अक्षरो का एक वर्णवृत्त । मदिरा । हंसी । मद्रक । मदारमाला इसका भेद है । यह यथार्थ मे एक प्रकार का सवैया है । उ०—भासत गौरि गुसाँइन को वर राम धनू दुइ खंड कियो । मालिनि को जयमाल गुहो हरि के हिय जानकि मेलि दियो । रावन की उतरी मदिरा चुपचाप पयान जो लंक कियो । राम वरी सिय मोदभरी नभ मे सुर जै जैकार कियो ।—(शब्द०) । ६ जातिविशेष [को०] । ७. (गणित मे) २२ की संख्या [को०] ।

यौ०—आकृतिगण । आकृतिच्छत्रा । आकृतियोग ।

आकृष्ट—वि० [सं०] खीचा हुआ । आकर्षित ।

आकृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खिंचाव । २ (ज्योतिष मे) गुरुत्वाकर्षण । ३ धनुष की डोरी का खिंचना । ४ तंत्रोक्त आकर्षणक्रिया [को०] ।

आकेकर—वि० [सं०] अर्धोन्मीलित (नेत्र) [को०] ।

आकोकर—संज्ञा पु० [सं०] मकर राशि [को०] ।

आकोप—संज्ञा पुं० [सं०] ईषत् कोप । जरा सा गुस्सा [को०] ।

आकौशल—संज्ञा पुं० [सं०] कुशलता का अभाव [को०] ।

आक्रंद —संज्ञा पु० [सं० आक्रन्द] १ रोदन । रोना । २ चिल्लाना । चीखना । चिल्लाहट । ३ बुलाना । पुकार । ४ मित्र । भाई । बधु । ५ घोर युद्ध । कड़ी लड़ाई । ६ ध्वनि । आवाज । शब्द । ७ ग्रहयुद्ध मे किसी एक ग्रह के दूसरे ग्रह की अपेक्षा बलवान् या विजयी होने की अवस्था । ८ प्रधान शत्रु के पीछे रहकर सहायता करनेवाला शत्रु राजा या राष्ट्र ।

आक्रंदन—संज्ञा पुं० [सं० आक्रन्दन] १ रोना । २ चिल्लाना ।

आक्रंदिक—वि० [सं० आक्रन्दिक] उस स्थान पर पहुँचनेवाला जहाँ से चिल्लाहट सुनाई दे [को०] ।

आक्रंदित१—वि० [सं० आक्रन्दित] १ जोर जोर से रोने चिल्लानेवाला । २ आहूत (सहायतार्थ) [को०] ।

आक्रंदित२—संज्ञा पु० १ जोर की चिल्लाहट । २ पश्चात्ताप । रोना पीटना [को०] ।

आक्रंदी—वि० [सं० आक्रन्दिन्] रोने चिल्लानेवाला [को०] ।

आक्रम(पु)—संज्ञा पु० [सं० आक्रम = परास्त करना] १ पराक्रम । शूरता । (हिं०) । २ दे० 'आक्रमण' ।

आक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आक्रमणीय, आक्रमित, आक्रांत] १. बलपूर्वक सीमा का उल्लघन करना । हमला । चढाई । धावा । जैसे,—महमूद ने कई बार भारत पर आक्रमण किया । २. आघात पहुँचाने के लिये किसी पर झपटना । हमला । जैसे,—डाकुओ ने पथिको पर आक्रमण किया । ३ घेरना । छेंकना । मुहासिरा । ४ आक्षेप करना । निंदा करना । जैसे,—इस लेख मे लोगो पर व्यर्थ आक्रमण किया गया है । ५ निकट जा पहुँचना [को०] । ६ भोजन [को०] । ७ शक्ति [को०] ।

आक्रमणकारी—वि० [सं० आक्रमणकारिन्] [स्त्री० आक्रमणकारिणी] आक्रमण करनेवाला । आक्रामक ।

आक्रमित—वि०[सं० आक्रमित] जिस पर आक्रमण किया गया हो ।

आक्रमितानायिका—संज्ञा स्त्री०[सं०] वह प्रौढा नायिका जो मनसा, वाचा, कमणा अपने प्रिय को वश मे करे ।

आक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यापारी । २ व्यापार [को०] ।

आक्रांत—वि० [सं० आक्रान्त] १. जिसपर आक्रमण किया गया हो । जिसपर हमला हुआ हो । २ घिरा हुआ । आवृत्त । छिका हुआ । ३ वशीभूत । पराजित । विवश । ४. पीडित । दलित । दबाया हुआ । ५ व्याप्त । आकीर्ण । ६ प्राप्त [को०] । ७. सज्जित [को०] ।

यौ०—आक्रांतनायिका = वह नायिका जिसका प्रेमी या पति जीत लिया गया हो । आक्रांतमति = जिसकी मति मारी गई हो ।

आक्रांति—संज्ञा स्त्री० [आक्रान्ति] १ उथल पुथल । उपद्रव । २. अधिकार करना [को०] । ३ दबाना । चाँपना [को०] । ४. ऊपर चढना [को०] । ५. शक्ति । ताकत [को०] ।

विशेष—भिन्न भिन्न तत्वों के संयोग से भिन्न प्रकार के आक्साइड बनते हैं, जैसे पारे से आक्साइड आफ मर्करी, जस्ते से आक्साइड आफ जिंक, लोहे से आक्साइड आफ आइरन इत्यादि।

आक्सीजन - संज्ञा पुं० [अं०] एक गैस या सूक्ष्म वायु। अम्लज। अम्लजन। प्राणद। प्राणप्रद। ओषजन।

विशेष—यह रूप, रस, गंधरहित पदार्थ है और वायुमंडलगत वायु से कुछ भारी होता है तथा पानी में घुल जाता है। यह जल में ८९ फी सदी होता है। धातु में लगकर यह मोरचा उत्पन्न करता है। प्राणियों के जीवन के लिये यह बहुत आवश्यक है। यह बहुत से पदार्थों में संयुक्त रूप में मिलता है।

आखंडल—संज्ञा पुं० [सं० आखण्डल] इंद्र।

आख—संज्ञा पुं० [सं०] खंता। खती। रंभा।

आखण—वि० [सं०] (खोदने या खनने में) कड़ा। जैसे,—पत्थर [को०]।

आखत(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अक्षत, प्रा० अक्खत] १ अक्षत। उ०—सेवा सुमिरन पूजिवो पात आखत थोरे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४५७। २ चंदन या केसर में रँगा हुआ चावल जो मूर्ति के मस्तक पर स्थापना के समय और दूल्हा दुलहिन के माथेपर विवाह के समय लगाया जाता है। ३ वह अन्न जो गृहस्थ लोग नेगी परजों को विवाहादि अवसरों पर किसी विशेष कृत्य के उपलक्ष में देते हैं।

आखता—वि० [फा० आख्ता] जिसके अंडकोश चीरकर निकाल लिए गए हों। बधिया।

विशेष—यह शब्द प्रायः घोड़े के लिये प्रयुक्त होता है, पर कोई कोई इस शब्द का कुत्ते और बकरे के लिये भी प्रयोग करते हैं।

आखन[1](पु)—क्रि० वि० [सं० आ+क्षण] प्रति क्षण। हर घड़ी।

आखन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आख' [को०]।

आखना[1](पु)—क्रि० स० [सं० आख्यान, प्रा० आक्खान, प०√आखना] उ०—कहना। बोलना। उ०—(क) बार बार का आखिये, मेरे मन की मोय। कलि तो ऊखल होयगी, साईं और न होय।—कबीर (शब्द०)। (ख) सत्यसंध साँचे सदा, जे आखर आखे। प्रनतपाल पाए सही, जे फल अभिलाखे।—तुलसी (शब्द०)।

आखना[2]—क्रि० स० [सं० आकांक्षा] चाहना। इच्छा करना। उ०—तोहि सेवा बिछुरन नहिं आखौं। पीजर हिये घालि कै राखौं।—जायसी ग्रं०, पृ० २२।

आखना[3]—क्रि० स० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि=आँख] देखना। ताकना। उ०—अलक, भुअंगिन अधरहिं आखा। गहै जो नागिन सो रस चाखा।—जायसी।—(शब्द०)। (ख) आतम और विषै को सुख वाच्य पद आनंद को। विषै सुख त्यागि आतम सुख लक्ष्य आखिये।—निश्चल (शब्द०)।

आखना[4]—क्रि० स० [हिं० आखा] मोटे आटे को आखे में डालकर चालना। छानना।

आखनिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ खनक। २ चूहा। ३ शूकर। ४ चोर। ५ कुदाल [को०]।

आखर[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अक्षर, प्रा० अक्खर] अक्षर। उ०—(क) तव चंदन आखर हिय लिखे। सीख लेइ तुइ जोग न सिखे।—जायसी ग्रं०, पृ० ८४। (ख) कविहिं अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा।—मानस, २।२४०।

क्रि० प्र०—देना=बात देना। प्रतिज्ञा करना।

आखर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ फावड़ा। कुदाल। २ खनक। ३ जानवर की माँद। विवर। ४ अग्नि का एक नाम [को०]।

आखा[1]—संज्ञा पुं० [सं० आक्षरण=छानना] झीने कपड़े से मढ़ा हुआ एक मेंहरेदार बरतन जिसमें मोटे आटे को रखकर चालने से मैदा निकलता है। एक प्रकार की चलनी। आँगी।

आखा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] खुरजी। गठिया।

आखा[3]—वि० [सं० अक्षय, प्रा० अक्खय] १ कुल। पूरा। समूचा। समस्त। उ०—कहियै जिय न कछू सक राखो। लाँवी मेलि दई हैं तुमको, बकत रहौ दिन आखो।—सूर०, १।३५४०। जैसे,—उसे आज आखा दिन बिना खाए बीता। २ अनगढ़ा। समूचा। जैसे,—आखा लकड़ी (लश्करी)।

आखातीज —संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षयतृतीया] वैशाख सुदी तीज। अक्षयतृतीया।

विशेष—इस दिन हिंदुओं के यहाँ बट का पूजन होता है और ब्राह्मणों को पखे, सुराहियाँ, ककड़ी, आदि ठंढक पहुँचानेवाली चीजें दी जाती हैं।

आखानवमी—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षयनवमी] कातिक शुक्ला नवमी। दे० 'अक्षय नवमी'।

आखिर[1]— वि० [फा० आखिर] अंतिम। पीछे का। पिछला।

यौ०—आखिर जमाना। आखिर दम।

आखिर[2]— संज्ञा पुं० १ अंत। जैसे,—आखिर को वह ले के टला। २ परिणाम। फल। नतीजा। जैसे,—इस काम का आखिर अच्छा नहीं।

आखिर[3]—वि० समाप्त। खतम। उ०—उपजै औ पालै अनुसरै। बावन अक्षर आखिर करै।—कबीर (शब्द०)।

आखिर[4]—क्रि० वि० १ अंत में। अंत को। जैसे,—(क) आखिर उसे यहाँ से चला ही जाना पड़ा। (ख) वह कितना ही क्यों न बढ़ जाय, आखिर है तो नीच ही। २ हारकर। हार मानकर थककर। लाचार होकर। जैसे,—जब उसने किसी तरह नहीं माना, तब आखिर उसके पैर पड़ना पड़ा। ३ अवश्य। जरूर। जैसे,—आपका काम तो निकल गया, आखिर हमें भी तो कुछ मिलना चाहिए। ४ भला। अच्छा। खैर। तो। जैसे—अच्छा आज बच गए, जाओ, आखिर कभी तो भेंट होगी।

आखिरकार—क्रि० वि० [फा० आखिरकार] अंत में। अंजाम को। अंत को। जैसे—सुनते सुनते आखिरकार उससे नहीं रहा गया और वह बोल उठा।

आखिरत—संज्ञा स्त्री० [अ० आखिरत] १ परलोक। २ अंत। ३ फल। [को०]।

आखिरी-वि० [फा० आखिरी] अंतिम। सबसे पिछला। उ०—केशव को लगना, स्यात्, आखिरी घाव अभी तक बाकी है।—साम० पृ० ३१।

आखु—संज्ञा पुं० [सं०] १ मूसा। चूहा।

यौ०—आखुकर्णपर्णिका, आखुकर्णी, आखुपर्णिका, आखुपर्णी=

मूसाकानी लता। आखुग, आखुपत्र, आखुभुक् = बिलार। आखुरथ = आखुवाहन = गणेश।
२ देवताल। देवहाड। ३. सूअर। शूकर। ४ कुदाल। फावडा [को०]। ५. चोर [को०]। ६ कृपण। कजूस [को०]।

आखुकरीष—सज्ञा पु० [सं०] वाल्मीक [को०]।

आखुघात—सज्ञा पुं० [सं०] मूस पकडने या मारनेवाला। मुसहर [को०]।

आखुपाषाण—सज्ञा पुं० [सं०] १ चुबक पत्थर। २ सखिया नामक विष।

आखवाहन(पु)—सज्ञा पु० [स० आखुवाहन] गणेश। उ०—अभिलाष लाख लाहन समुझि राखु आखुवाहन हृदय।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १।

आखुभुक् सज्ञा पुं० [स०] विडाल। बिलार [को०]।

आखुविषहा—सज्ञा पु० [स०] देवताली लता [को०]।

आखेट—सज्ञा पु० [स०] अहेर। शिकार। मृगया।

आखेटक[1]—सज्ञा पु० [स०] शिकार। अहेर।

आखेटक[2]—वि० [स०] शिकार करनेवाला। शिकारी। अहेरी।

आखेटिक[1]—वि० [स०] १ कुशल शिकार करनेवाला। २ भयानक। डरावना [को०]।

आखेटिक[2]—सज्ञा पुं० १ शिकारी। २ शिकारी कुत्ता [को०]।

आखेटी—वि० [स० आखेटिन][वि० स्त्री० आखेटिन] शिकारी। अहेरी।

आखोट—सज्ञा पु० [स० आक्षोट] अखरोट।

आखोर[1]—सज्ञा पु० [तु० आखोर] १ जानवरो के खाने से बची हुई घास या चारा। पखोर। २ चरनी। ३ जानवरो के पानी पीने का हौद। ४ कूडा करकट। ५. निकम्मी वस्तु। सडी गली चीज।

मुहा०—आखोर की भरती = (१) निकम्मों का समूह। (२) निकम्मी चीजो का अटाला।

आखोर[2]—वि० १ निकम्मा। वेकाम। २. सडा गला। रद्दी। ३. मैला कुचैला।

आख्या—सज्ञा स्त्री० [स०] १ नाम। २ कीर्ति। यश। ३ विवरण। व्याख्या। ४ आकृति। चेहरा [को०]। ५. सौंदर्य। गरिमा [को०]।

आख्यात[1]—सज्ञा पु० [स०] १ तिङन्त क्रिया। २ राजवश के लोगो का वृत्तात। ३ प्रयाणकाल का आनुमानिक सूचन [को०]।

आख्यात[2]—वि० १ प्रसिद्ध। नामवर। विख्यात। २ कहा हुआ। उक्त।

आख्यातव्य—वि० [स०] वर्णन करने योग्य। कहने योग्य। बयान करने लायक।

आख्याता—वि० [स० आख्यात] कहनेवाला। उपदेशक। शिक्षक [को०]।

आख्याति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ नामवरी। ख्याति। शुहरत। २ कथन।

आख्यान—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आख्यात, आख्यातव्य, आख्येय] १. वर्णन। वृत्तात। बयान। २ कथा। कहानी। किस्सा। ३ उपन्यास के नौ भेदो मे से एक। वह कथा जिसे कवि ही कहे, पात्रो से न कहलावे।

विशेष—इसका आरभ कथा के किसी अश मे कर सकते हैं, पर पीछे से पूर्वापर सवध खुल जाना चाहिए। इसमे पात्रो की बातचीत बहुत लबी चौडी नही हुआ करती। चूँकि कथा कहनेवाला कवि ही होता है और वह पूर्वघटना का वर्णन करता है, इससे इसमे अधिकतर भूतकालिक क्रिया का प्रयोग होता है, पर दृश्यो को ठीक ठीक प्रत्यक्ष कराने के लिये कभी कभी वर्तमानकालिक क्रिया का भी प्रयोग होता है। जैसे,—सूर्य डूब रहा है, ठढी हवा चल रही है, इत्यादि। आजकल के नए ढंग के उपन्यास इसी के अतर्गत आ सकते है।

४ जवाब। उत्तर [को०]। ५ भेदक धर्म [को०]। ६ प्रबधक काव्य का अध्याय या सर्ग [को०]। ७ पौराणिक कथा [को०]।

आख्यानक—सज्ञा पुं० [स०] १ वर्णन। वृत्तात। बयान। २ कथा। किस्सा। कहानी। ३ पूर्ववृत्तात। कथानक।

आख्यानकी—सज्ञा स्त्री० [स०] इद्रवज्रा तथा उपेंद्रवज्रा के मेल से निर्मित छदविशेष [को०]।

आख्यानिकी—सज्ञा पुं० [सं०] दडक वृत्त के भेदो मे से एक जिसके विषम चरणो मे त, त, ज, ग, ग, और सम मे ज, त, ज, ग, ग हो। उ०—गोविंद गोविंद सदा रटौ जू। अपार ससार तबै तरौ जू। श्रीकृष्ण राधा भजु नित्य भाई। जु सत्य चाहो अपनी भलाई (शब्द०)।

विशेष—इसके विरुद्ध अर्थात् इसके विषम चरण का लक्षण सम चरण मे आवे और सम चरण का लक्षण विषम चरण मे आवे, तो उस वृत्त को व्यानिकी कहेंगे।

आख्यापक[1]—वि० [स०] [स्त्री० आख्यायिकी] कहनेवाला।

आख्यायक[2]—सज्ञा पुं० दूत।

आख्यापन—सज्ञा पुं० [स०] प्रकट करना। प्रकाश करना। कहना। कथन।

आख्यायक[1]—वि० [सं०] बतानेवाला। सूचना देनेवाला [को०]।

आख्यायक[2]—सज्ञा पुं० १ दूत। २ नेता। प्रवक्ता [को०]।

आख्यायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कथा। कहानी। किस्सा। २ कल्पित कथा जिससे कुछ शिक्षा निकले। ३ एक प्रकार का आख्यान जिसमे पात्र भी अपने अपने चरित्र अपने मुँह से कुछ कुछ कहते हैं।

विशेष—प्राचीनो मे इसके विषय मे मतभेद हैं। अग्निपुराण के अनुसार यह गद्यकाव्य का वह भेद है जिसमे विस्तारपूर्वक कर्ता की वशप्रशंसा, कन्याहरण, सग्राम वियोग और विपत्ति का वर्णन हो, रीति, आचरण और स्वभाव विशेष रूप मे दिखाए गये हो, गद्य सरल हो और कही कही छद हो। इसमे परिच्छेद के स्थान पर उच्छवास होना चाहिए। वाग्भट्ट के मत से वह गद्यकाव्य जिसमे नायिका ने अपना वृत्तात आप कहा हो, भविष्यद्विषयो की पूर्वसूचना हो, कन्या के अपहरण, समागम और अभ्युदय का हाल हो, मित्रादि के मुँह से चरित्र कहलाए गय हो और बीच बीच मे कही कही पद्य भी हो।

आख्येय—वि० [सं०] दे० 'आख्यातव्य'।

आगता—वि० [सं० आगन्तृ] आने की इच्छावाला [को०]।

आगंतु—वि० [सं० आगन्तु] १ आनेवाला। २. बाहर से आनेवाला। ३ पथभ्रष्ट। भटका हुआ। ४ अचानक होनेवाला। दे० 'आगंतुक' [को०]।

आगंतुक[1]—वि० [सं० आगन्तुक] [स्त्री० आगंतुका, आगंतुकी] १ जो आवे। आगमनशील। २ जो इधर उधर से घूमता फिरता आ जाय। उ०—लगा कहने आगंतुक व्यक्ति मिटाता उत्कंठा सविशेष।—कामायनी, पृ० ५०।

आगंतुक[2]—संज्ञा पुं० १ अतिथि। पाहुना। २ वह पशु जिसके स्वामी का पता न हो। २ अचानक होनेवाला रोग। ३ प्रक्षिप्त पाठ (को०)।

यौ०—**आगंतुक ज्वर**=वह ज्वर जो चोट, भूत, प्रेत के भय या अधिक श्रम करने आदि से अचानक हो जाय। **आगंतुक अनिमित्त लिंगनाश**=एक प्रकार का चक्षुरोग जिसमें आँख की ज्योति मारी जाती है। प्राचीनों के अनुसार यह रोग देवता, ऋषि, गंधर्व, बड़े सर्प और सूर्य के देखने से हो जाता है। **आगंतुकव्रण**=वह घाव जो चोट के पकने से हो। **आगंतुक व्याधि**=किसी बिमारी के बीच में होनेवाली बिमारी।

आग[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि] १ तेज और प्रकाश का पुंज जो उष्णता की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई वस्तुओं में देखा जाता है। अग्नि। वैसंदर। २ जलन। ताप। गरमी। जैसे,—वह डाह की आग से भुनसा जाता है। ३ कामाग्नि। काम का वेग। जैसे—तुम्हें ऐसी ही आग है तो उनसे जाकर मिलो न। ४ वात्सल्य प्रेम। जैसे,—जो अपने बच्चे की आग होती है वह दूसरे के बच्चे की नहीं। ५ डाह। ईर्ष्या। जैसे,—जिस दिन से हमें इनाम मिला है, उसी दिन से उसे बड़ी आग है।

आग[2]—वि० जलता हुआ। बहुत गरम। जैसे,—चिलम तो आग हो रही है। २ जो गुण में उष्ण हो। जो गरमी फूँके। जैसे,—अरहर की दाल तो आजकल के लिये आग है।

मुहा०—**आग उगलना**=कड़ुए वचन सुनाना। जली कटी सुनाना। **आग उठाना**=झगड़ा उठाना। कलह या उपद्रव उत्पन्न करना। **आग कँजियाना या झँवाना**=आग का ठंढा होना। दहकते हुए कोयले का ठंढा होकर काला पड़ जाना। **आग करना**=(१) आग जलाना। (२) बहुत गर्म करना। आग की तरह जलता हुआ बनाना। **आग का पतंगा**=चिनगारी। जलता हुआ कोयला। **आग का पुतला**=क्रोधी। चिड़चिड़ा। **आग का बाग**=(१) सुनार का अंगीठा। २ आतिशबाजी। **आग कुरेदना**=(१) गुस्सा भड़काना। क्रुद्ध करना। २ दबे या पुराने गुस्से को उभाड़ना। **आग के मोल**=बहुत महँगा। जैसे,—यहाँ तो चीजें आग के मोल बिकती हैं। **आग खाना, अंगार हगाना**=जैसा करना, वैसा पाना। जैसे—हमें क्या, जो आग खाएगा, वह अँगार हगेगा। **आग गाड़ना**=कंडे को राख में सुरक्षित रखना। **आग जोड़ना**=आग सुलगाना। आग जलाना। **आग झाड़ना**=पत्थर या चकमक से आग बनाना। **आग दिखाना**=(१) आग लगाना। जलाने के लिये आग छुलाना। (२) तोप में बत्ती देना। **आग देना**=(१) चिता में आग लगाना। दाहकर्म करना। (२) आतिश-बाजी में आग लगाना। आग लगाना। फूँकना। उ०—ना[...] कंठ आगि देइ होरी। छार भई जरि अंग न मोरी।—जायस[ी] ग्रं०, पृ० ३००। (३) बरबाद करना। नष्ट करना। जैसे,—उस[के] पास है क्या, उसने तो अपने घर में आग दे दी। (४) तो[प] में बत्ती देना=रंजक पर पलीता छुलाना। **आग धोना**=अंगारों के ऊपर से राख दूर करना। जैसे,—आग धो[कर] चिलम पर रखना। **आग पर आग डालना**=किसी भड़के हु[ए] व्यक्ति को और भड़काना। **आग पर पानी डालना**=झग[ड़ा] शांत करना। **आग पर लोटना**=बेचैन होना। विकल होना। तड़पना। उ०—वह विरह के मारे आग पर लोट रहा है। २ डाह से जलना। ईर्ष्या करना। जैसे,—यह हमें देख[कर] आग पर लोट जाता है। **आग पानी का बैर**=स्वाभावि[क] शत्रुता। जन्म का बैर। **आग फाँकना**=(१) व्यर्थ [...] बकवाद करना। बात बघारना। झूठी शेखी हाँकना। जैसे[,—] उनकी क्या बात है, वे तो यों ही आग फाँका करते हैं। ([२]) असंभव कार्य को संभव करने की चेष्टा। **आग फुँकना**=क्[रोध] उत्पन्न होना। रिस लगना। जैसे,—यह बात सुनते ही [...] तन में आग फुँक गई। **आग फूँक देना**=जलन उत्पन्न कर[ना]। गरमी पैदा करना। जैसे,—इस दवा ने तो और आग फ[ूँक] दी है। **आग फूस का बैर**=स्वाभाविक शत्रुता। जन्म [का] बैर। **आग बनाना**=आग सुलगाना। **आगबबूला (बगू[ला]) होना या बनाना**=क्रोध के आवेश में होना। अत्यंत क्रु[द्ध] होना। जैसे,—इस बात के सुनते ही वह आगबबूला हो गय[ा]। **आग बरसना**=(१) बहुत गरमी पड़ना। (२) लू चलन[ा]। २ गोलियों की बौछार होना। **आग बरसाना**=शत्रु [पर] खूब गोलियाँ चलाना। जैसे,—सिपाहियों ने किले पर आग बरसाई। **आग बुझा लेना**=कसर निकालना। ब[दला] लेना। जैसे,—अच्छा मौका है, तुम भी अपनी आग बुझा [लो]। **आग बोना**=(१) आग लगाना। उ०—योगी आहि विय[ोगी] कोई। तुम्हरे मँडप आगि जिन बोई।—जायसी, (शब्द०)। २ चुगलखोरी करके झगड़ा उत्पात खड़ा करना। जैसे, यह सब आग तुम्हारी ही बोई तो है। **आग भड़कना**=आग का धधकना। २ लड़ाई उठना। उत्पात खड़ा हो[ना]। जैसे,—दोनों दलों के बीच आजकल खूब आग भड़की [है]। ३ उद्वेग होना। जोश होना। क्रोध और शोक आदि म[नोवेगों] का तीव्र और उद्दीप्त होना। जैसे—(क) शत्रु को सा[मने] देखकर उसकी आग और भड़क उठी। (ख) अपने मृ[त पुत्र] की टोपी देखकर माता की आग और भड़क उठी। **आग भड़काना**=(१) आग धधकाना। २ लड़ाई लगाना। ३ [क्रोध] और शोक आदि भावों को उद्दीप्त करना। जोश बढ़ा[ना]। **आग भभूका होना**=क्रोध से लाल होना। **आग में कूद[ना]**=जान बूझकर विपत्ति मोल लेना। **आग में घी डालना**=[(१)] क्रोधित व्यक्ति को और क्रुद्ध करना। (२) आहुति डाल[ना]। होम करना। **आग में मूतना**=अनि[ष्ट] करना। जैसे,—चलो, क्यों आग में मूतते हो। **आग में झोंकना**=(१) अ[ग्नि] में डाल देना। (२) लड़की को ऐसे वर ब्याह देना, जहाँ

हर घडी कष्ट हुआ करे। **आग मे पानी डालना**=झगडा मिटाना। बढते हुए क्रोध को धीमा करना। **आग लगना**= आग से किसी वस्तु का जलना उ०—नयन चुवहिं जस महवट नीरू। तेहि जल आग लाग सिर चीरू।—जायसी (शब्द०)। जैसे—उसके घर मे आग लग गई। (२) क्रोध उत्पन्न होना। कुढन होना। बुरा लगना। मिर्चा लगना। जैसे,—(क) उसकी बडवी बातें सुनकर आग लग गई। (ख) तुम तो मनमाना बके, अब हमारे जरा सी कहने पर आग लगती है। (३) ईर्ष्या होना। डाह होना। जैसे,—किसी को सुख चैन से देखा कि बस आग लगी। (४) लाली फैलना। लाल फूलो का चारो ओर फूलना। उ०—बागन बागन आग लगी है (शब्द०)। (५) महँगी फैलना। गिरानी होना। जैसे,—(क) बाजार मे तो आजकल आग लगी है। (ख) सब चीजो पर तो आग लगी है कोई ले क्या। (६) बदनामी फैलना। जैसे,—देखो चारो ओर आग लगी है, सँभलकर काम करो (७) हटना। दूर होना। जाना। उ०—कभी यहाँ से तुम्हे आग भी लगेगी (स्त्री०)। (८) किसी तीव्र भाव का उदय होना। जैसे,—उसे देखते ही हृदय मे आग लग गई। ९ सत्यानाश होना। नष्ट होना। जैसे,—आग लगे तुम्हारी इस चाल पर (यह मुहाविरा स्त्रियो मे अधिक प्रचलित है। वे इसे अनेक अवसर पर बोला करती हैं, कभी चिढकर, कभी हावभाव प्रकट करने के हेतु और कभी यो ही बोल देती हैं) जैसे,—(क) आग लगे मेरी सुध पर, क्या करने आई थी, क्या करने लगी। (ख) आग लगे, यह छोटा सा लडका कैसा स्वाँग करता है। (ग) आग लगे, कहाँ से मैं इसके पास आई। **आग लगाना**=(१) आग से किसी वस्तु को जलाना। जैसे,—उसने अपने ही घर मे आग लगा दी। (२) गरमी करना। जलन पैदा करना। जैसे,—उस दवा ने तो बदन मे आग लगा दी। (३) उद्वेग बढाना। जोश बढाना। किसी भाव को उद्दीपित करना। भडकाना। ४ ईर्ष्या उत्पन्न करना। ५ क्रोध उत्पन्न करना। ६ चुगली करना। जैसे,—उसी ने तो मेरे भाई से जाकर आग लगाई है। ७ बिगाडना। नष्ट करना। जैसे,—जो चीज उसे बनाने को दी जाती है, उसी मे वह आग लगा देती है। (स्त्री०)। ८ फूँकना। उडाना। बरबाद करना। जैसे,—वह अपनी सारी सपत्ति मे आग लगाकर बैठा है। ९. खूब धूमधाम करना। बडे बडे काम करना। (व्यग्य) जैसे,—तुम्हारे पुरखो ने विवाह में कौन सी आग लगाई थी कि तुम भी लगाओगे। **आग लगाकर पानी को दौडाना**=झगडा उठाकर फिर सबको दिखाकर उसकी शाति का उद्योग करना। **आग भी न लगाना**=बहुत तुच्छ समझना। जैसे,—उससे बोलने की कौन कहे, मैं तो उसको आग भी न लगाऊँ। (स्त्री०)। **आग लगने पर कुआँ खोदना**=(१) कोई कठिनाई कार्य आ पडने पर उसके करने के सीधे उपाय छोड बडी लबी चौडी युक्ति लगाना। (२) ऐन मौके पर कोई कार्य करने लग जाना। **आग लगाकर तमाशा देखना**=झगडा या उपद्रव खडा करके अपना मनोरजन करना। **आग लेने आना**=आकर फिर थोडी देर में लौट जाना। उलटे पाँव लौटना। थोडी देर के लिये आना। जैसे,—(क)जरा बैठो भाई, क्या आग लेने आए हो? (ख) आग लेने आई, घरवाली बन बैठी। **आग से पानी होना या हो जाना**=क्रुद्ध से शात होना। रिस का जाता रहना। जैसे,—उसकी बातें ही ऐसी मीठी होती हैं कि आदमी आग से पानी हो जाय। **आग होना**=(१) गर्म होना। लाल अगार होना। २ क्रुद्ध होना। रोष मे भरना। जैसे,—यह बात सुनते ही वे आग हो गए। **किसी की आग मे कूदना या पडना**=किसी की विपत्ति अपने ऊपर लेना। **तलवों से आग लगाना**—शरीर भर मे क्रोध व्याप्त होना। रिस मे भर उठना। जैसे,=उसकी झूठी बात से और भी तलवो से आग लग गई। **पानी मे आग लगाना**=(१)ऐसी अनहोनी बातें कहना जिनका होना सभव न हो। (२) असभव कार्य करना। (३) जहाँ लडाई की कोई बात न हो वहाँ भी लडाई लगा देना। **पेट की आग**=भूख। जैसे,—कोई दाता ऐसा है जो पेट की आग बुझावे। **पेट मे आग लगना**=भूख लगना। जैसे—इस लडके के पेट मे सवेरे से ही आग लगती है। **मुँह मे आग लगना**=मरना। जैसे,—उसके मुँह मे कब आग लगेगी। (शवदाह के समय मुर्दे के मुँह मे आग लगाई जाती है।) **आग लगे मेह मिलना या पाना**=ताव पर किसी काम का चटपट होना। उ०—याकें तो आजु ही मिलौं कि अरि जाऊँ ऐसें। आगि लागे मेरी माई मेहु पाइयतु है—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ६६। **आग पर आग मेलना**=जले को जलाना। दुख पर दुख देना। उ०—बिरह आगि पर मेलै आगी। बिरह घाव पर घाव बजागी।—जायसी ग्र०, पृ० १०६।

यौ०—**आगजंत्र**=तोप।—(डिं०)। **आगबाण**=अग्निबाण। **आग लगन**=हाथी का एक रोग जिससे उसके सारे शरीर में फफोले पड जाते हैं।

आग[३] (पु)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आगे'। उ०—चित डोलै नहिं खूँटी टरई पल पल पेखि आग अनुसरई।—जायसी (शब्द०)।

आग[४] (पु)—सज्ञा पु० [स० अग्र, प्रा० अग्ग] १ दे० 'आग'। उ०—तू रिसभरी न देखेसि आगू। रिस महँ काकर भयउ सोहागू।—जायसी ग्र०, पृ० ३७। २ ऊख का अगौरा या अगला हिस्सा। उ०—जोरी भली बनी है उनकी, राजहस अरु काग। सूरदास प्रभु ऊख छाँडिकै, चतुर चचोरत आग।—सूर०, १०।३६५२। ३ हल के हरसे की नोक के पास के खड्डे जिनमे रस्सी अटका कर जुआठे से बाँधते हैं।

आगजनी—सज्ञा स्त्री० [हिं० आग+फा० जन+हिं० ई (प्रत्य०)] अग्निकाड। उपद्रविशो द्वारा लगाई जानेवाली आग।

आगडा—सज्ञा पुं० [स० अ=नहीं+हिं० गाढ़=पुष्ट] ज्वार इत्यादि की वह बाल जिसके दाने मारे गए हो।

आगण—सज्ञा पु० [स० अग्रहायण] अगहन। मार्गशीर्ष। (डिं०)।

आगत[१]—वि० [स०] [स्त्री० आगता] आया हुआ। प्राप्त। उपस्थित।

यौ०—अभ्यागत। आगतपतिका। क्रमागत। स्वागत। देशागत। गतागत। तथागत।

आगत[२]—सज्ञा पुं० मेहमान। पाहुना। अतिथि।

आगत[३]—सज्ञा पुं० दे० 'आघात'। जैसे,—आगत कर।

आगतत्व—सज्ञा पु० [स०] उद्गम। मूल। उद्गम (को०)।

आगतपतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदो मे से एक। वह नायिका जिसका पति परदेश से लौटा हो। उ०—आवत बलम विदेस तें हरपित होइ जु बाम। आगतपतिका नाइका ताहि कहत रसधाम।—पद्माकर ग्र०, पृ० १३६।

आगतसाध्वस—वि० [सं०] भयभीत। डरा हुआ [को०]।

आगतस्वागत—संज्ञा पुं० [सं० आगत + स्वागत] आए हुए व्यक्ति का आदर। आदरसत्कार। आवभगत।

आगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आगमन। अवाई। २. प्राप्ति [को०]। ३ वापसी [को०]। ४. मूल। उत्स [को०]। मौका [को०]।

आगपीछ(ु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आगापीछा'।

आगम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अवाई। आगमन। आमद। उ०—श्याम कह्यो सब सखन सो लावहु गोधन फेरि। सध्या को आगम भयो व्रज तन हाँको हेरि।—सूर (शब्द०)। २. भविष्य काल। आनेवाला समय। ३ होनहार। भवितव्यता। संभावना। उ०—आइ बुझाइ दीन्ह पथ तहाँ। मरन खेल कर आगम जहाँ।—जायसी ग्र०, पृ० ६८।

यौ०—आगमजानी। आगमज्ञानी। आगमवक्ता।

क्रि० प्र०—करना = ठिकाना करना। उपक्रम बाँधना। जैसे,—यह नही कहते कि चदा इकट्ठा करके तुम अपना आगम कर रहे हो। उ०—मैं राम के चरनन चित दीनो। मनसा, वाचा और कर्मना बहुरि मिलन को आगम कीनो।—तुलसी (शब्द०)।—जनाना = होनहार की सूचना देना। उ०—कबहुँ ऐसा विरह उपावै रे। प्रिय बिनु देखे जिय जावै रे। तौ मन मेरा धीरज धरई। कोइ आगम आनि जनावै रे।—दादू (शब्द०)।—बाँधना = आनेवाली बात का निश्चय करना। जैसे,—अभी से क्या आगम बाँधते हो, जब वैसा समय आवेगा तब देखा जायगा। ४ समागम। सगम। उ०—अरुण, श्वेत सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाइ। मनु सरस्वती गगा जमुना मिलि आगम कीन्हो आइ।—तुलसी (शब्द०)। ५ आमदनी। आय। जैसे,—इस वर्ष उनका आगम कम और व्यय अधिक रहा।

यौ०—अर्थागम।

६ व्याकरण मे किसी शब्दसाधन मे वह वर्ण जो बाहर से लाया जाय। ७ उत्पत्ति। ८ योगशास्त्रानुसार शब्दप्रमाण। ९ वेद। उ०—आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका।—मानस, ७।४९। १० शास्त्र। ११ तत्र शास्त्र। १२ नीतिशास्त्र। नीति। १३ तत्रशास्त्र का वह अग जिसमे सृष्टि, प्रलय, देवताओं की पूजा, उनका साधन, पुरश्चरण और चार प्रकार का ध्यानयोग होता है। १४ प्रवाह। धारा [को०]। १५ ज्ञान [को०]। १६ सपत्ति की वृद्धि [को०]। १७ सिद्धात [को०]। १८ नदी का मुहाना। १९ (व्याकरण मे) प्रकृति और प्रत्यय [को०]। २० सडक या मार्ग की यात्रा [को०]। २१ लिखित प्रमाणपत्र [को०]।

आगम[2]—वि० [सं०] आनेवाला। आगामी। उ०—दरसन दियो कृपा करि मोहन वेग दियो वरदान। आगम कल्प रमण तुव ह्वै है श्रीमुख कही बखान।—सूर (शब्द०)।

आगमजानी—वि० [सं० आगमज्ञानिन् अथवा हिं० आगम = भविष्य + जानो = ज्ञाता] आगमज्ञानी। होनहार का जाननेवाला।

आगमज्ञानी—वि० [सं० आगमज्ञानिन्] भविष्य का जाननेवाला। आगमजानी।

आगमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अवाई। आना। आमद। उ०—मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गएउ लै विप्र समाजा।—मानस, १।२०७। २ प्राप्ति। आय। लाभ। ३. उत्पत्ति। उद्गम [को०]। ४ सभोगार्थ नारी के पास आना [को०]।

आगमना—संज्ञा पुं० [सं०] १ आगे चलनेवाली सेना। २ पूर्व दिशा।

आगमनिरपेक्ष—वि० [सं०] साक्षिपत्र आदि से मुक्त। साक्षिपत्र आदि की अपेक्षा न रखनेवाला [को०]।

आगमनी—संज्ञा स्त्री० [सं० आगमन + हिं० ई (प्रत्य०)] स्वागत के अवसर पर किया जानेवाला समारोह या उत्सव। उ०—अपनी आगमनी बना रही मैं आप क्रुद्ध हुकारो मे।—चक्र, पृ० ७१।

आगमनीत—वि० [सं०] पठित। परीक्षित। अधीत [को०]।

आगमपतिका—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आगतपतिका'।

आगमरहित—वि० [सं०] १ साक्ष्यरहित। २ शास्त्र से परे [को०]।

आगमवक्ता—वि० [सं०] १ भविष्यवक्ता। ज्योतिषी।

आगमवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भविष्यवाणी।

आगमविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वेदविद्या। २ तत्रविद्या। वैदिकेतर विद्या।

आगमवृद्ध—वि० [सं०] ज्ञानवृद्ध। शास्त्रज्ञ [को०]।

आगमवेदी—वि० [सं० आगमवेदिन्] १. वेदज्ञ। २ शास्त्रज्ञ [को०]।

आगमश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] परपरा। प्रथा [को०]।

आगमसोची—वि० [सं० आगम + हिं० सोच + ई (प्रत्य०)] आगे का भला बुरा सोचनेवाला। अग्रसोची। दूरदर्शी।

आगमापायी—वि० [सं० आगमापायिन्] जिसकी उत्पत्ति और विनाश हो। विनाशधर्मी। अनित्य।

आगमित—वि० [सं०] १ पठित। शिक्षित। २ निश्चित। निर्धारित ३ ले आया हुआ। [को०]।

आगमिष्ट—वि० [सं०] शीघ्रता या प्रसन्नतापूर्वक आनेवाला [को०]।

आगमी[1]—संज्ञा पुं० [सं० आगम = भविष्य] सामुद्रिक विचारनेवाला। ज्योतिषी। अडडपोपो। उ०—प्रवध आजु आगमी एकु आयो। करतल निरखि कहत सब गुनगन बहुतन परिचय पायो।—तुलसी ग्र०, पृ० २७६।

आगमी[2]—वि० भविष्यवक्ता। होनहार कहनेवाला।

आगमी[3]—वि० [सं० आगमिन्] १ भविष्य। २ पहुँचनेवाला। ३ शास्त्रज्ञ।

आगर[1]—संज्ञा पुं० [सं० आकर = खाना] [स्त्री० आगरी] १ खान। आकर। २ समूह। ढेर।

विशेष—यह शब्द प्राय समासात मे आता है। जैसे,—गुण-आगर। बल-आगर।

३ कोष। निधि। खजाना। उ०—अस वह फूल बास का आगर भा नासिका समुद। जेति फूल वह फूलहि ते सब भए सुगद।—जायसी (शब्द०)। ४ वह गड्ढा जिसमें नमक जाता है। ५ नमक का कारखाना।

आगर[2]—संज्ञा पुं० [सं० अर्गल = व्योडा] व्योडा। अगरी। उ० —आगर इक लोह जटित लीन्हो बरिवड। दुहुँ करनि असुर हयो भयो मास पिंड।—सूर० ९।९६।

आगर[3]—संज्ञा पुं० [सं० आगार=घर] १ घर। गृह। २. छाजन का एक भेद जिसमें फूस या खर की जड ओलती की ओर करके छवाई होती है। ३ छाजन। छप्पर। उ०—तृण तृण वरि भा फूकी खरी। भा बरखा आगर सिर परी।—जायसी (शब्द०)।

आगर[4]—वि० [सं० आकर=श्रेष्ठ] [स्त्री० आगरि, आगरी] १. श्रेष्ठ। उत्तम। बढकर। उ०—(क) दई दीन्ह अस जगत अनूपा। एक एक ते आगर रूपा।—जायसी (शब्द०)। (ख) जिनको साँई रँग दिया कबहुँ न होय कुरंग। दिन दिन बानी आगरी चढै सवाया रंग।—कबीर (शब्द०)। २ चतुर। होशियार। दक्ष। कुशल। उ०—जो लाँघै सत योजन सागर। करै सो रामकाज अति आगर।—तुलसी (शब्द०)।

आगर[5]—संज्ञा पुं० [सं०] अमावस्या [को०]।

आगरवध—संज्ञा पुं० [सं० आ+गल+बद्ध] कठमाला (डिं०)।

आगरी—संज्ञा पुं० [हिं० आगर] नमक बनानेवाला पुरुष। लोनिया।

आगल[1]—संज्ञा पुं० [सं० अर्गल] अगरी। ब्योंडा। बेंडा।

आगल[2]—क्रि० वि० [हिं० अगला] सामने। आगे (लश०)।

आगल[3]—वि० अगला। उ०—आगल से पाछल भयो, हरि सो कियो न भेंट। अब पछिताने का भया, चिडिया चुगि गई खेत।—(शब्द०)।

आगला(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगला'।

आगवन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आगमन'। उ०—जिमि तुम्हार आगवन सुनि भए नृपति बलहीन।—मानस, १।२३८।

आगवाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्निवाह=धूम] धूआँ (हिं०)।

आगस्—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। २ अपराध। दोष। ३ दंड सजा [को०]।

आगस्ती—संज्ञा स्त्री० [सं०] अगस्त की दिशा। दक्षिण।

आगस्त्य—वि० [सं०] १ दक्षिण दिशा। २ अगस्त्य सबंधी [को०]।

आगा[1]—संज्ञा पुं० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग] १ किसी चीज के आगे का भाग। अनाडी। २ शरीर का अगला भाग। जैसे,—ऊँचे आगे का हाथी अच्छा होता है। ३ छाती। वक्षस्थल। ४ मुख। मुँह। मुहरा। ५ ललाट। माथा। ६ लिंगेंद्रिय। ७ अँगरखे कुरते आदि की काट में आगे का टुकडा। ८. पगडी का छज्जा। ९. घर के सामने का भाग। मुहरा। १०. सेना या फौज का अगला भाग। सेनामुख। हरावल। ११ नाव का अगला भाग। माँग। गलही। १२ घर के सामने का मैदान। घर के आगे का सहन। १३ पेशखीमा। आगडा। १४ पहिनावे का वह भाग जो आगे रहता है। पल्ला। आँचल। १५ आगे आनेवाला समय। भविष्य। परिणाम। जैसे,—(क) उसका आगा मारा गया है। (ख) उसका आगा अँधेरा है।

मुहा०—**आगा काटना**=यात्रा या कार्य में विघ्न डालना। **आगा तागा लेना**=आवभगत करना आदर सत्कार करना। **आगा भारी होना**=(१) गर्भ रहना। पैर भारी होना। जैसे,—ब्याह होते ही उसका आगा भारी हो गया। (२) कहारों की बोली में राह में ठोकर गड्ढे आदि का होना जिससे गिरने का भय हो। **आगा मारना**=किसी के कार्य में बाधा डालना। किसी की उन्नति में रुकावट डालना। जैसे,—किसी का आगा मारना अच्छा नहीं। **आगा मारा जाना**=भावी उन्नति में विघ्न पडना। आगम मारा जाना। जैसे,—परीक्षा में फेल होने से उसका आगा मारा गया। **आगा रुकना**=भावी उन्नति में बाधा पडना। **आगा रोकना**=(१) आक्रमण रोकना। (२) कोई बडा कार्य आ पडने पर उसे सँभालना। मुँहडा सँभालना। जैसे,—इतनी बडी बारात आवेगी, उसका आगा रोकना भी तो कोई सहज बात नहीं है। (३) किसी के सामने इस तरह खडे होना कि ओट हो जाय। आड करना। जैसे,—आगा मत रोको, जरा किनारे खडे हो।(४)किसी की उन्नति में बाधा डालना। **आगा लेना**=शत्रु के आक्रमण को रोकना। भिडना। **आगा सँभालना**=(१) मुहडा सँभालना। कोई बडा कार्य आ पडने पर उसका प्रबंध करना। (२) किसी खुले गुप्त अंग को ढकना। (३) वार रोकना। भिडना। जैसे,—राजपूताने की लडाइयों में पहले भील ही लोग आगा सँभालते थे।

आगा[2]—संज्ञा पुं० [तु० आगा] १ मालिक। सरदार। २ काबुली। अफगान। ३ ज्येष्ठ भाई [को०]।

आगाज—संज्ञा पुं० [फा० आगाज] प्रारंभ। आदि। शुरू।

आगाता—वि० [सं० आगातृ] गाकर पाने या कमानेवाला [को०]।

आगाध—वि० [सं०] १ अत्यंत गहरा। २ जो कठिनाई से प्राप्त हो [को०]।

आगान[1]—संज्ञा दे० [सं० आ+गान=बान] बात। प्रसंग। आख्यान। वृत्तांत। उ०—और कृष्ण के ब्याह को भूप सुनहु आगान। पापहरण भवनिधि-तरण करन सकल कल्याण।—गोपाल (शब्द०)।

आगान[2]—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो गाना गाकर उपार्जन करे। गायक [को०]।

आगापीछा—संज्ञा पुं० [हिं० आगा+पीछा] १ हिचक। सोच विचार। दुविधा। जैसे,—इस काम के करने में तुम्हें आगा पीछा क्या है?

क्रि० प्र०—करना। जैसे,—अच्छे काम में आगा पीछा करना ठीक नहीं।—(शब्द०)।—होना।

२. परिणाम। नतीजा। पूर्वापर संबंध। जैसे,—कोई काम करने के पहले उसका आगा पीछा सोच लेना चाहिए।

क्रि० प्र०—देखना।—सोचना।

३ शरीर का अगला और पिछला भाग। शरीर के आगे और पीछे के गुप्त अंग। जैसे,—भला इतना कपडा तो दो जिसमें आगा पीछा ढँके। ४ आगे और पीछे की दशा। जैसे,—जरा आगा पीछा चला करो।

आगामि, आगामी—वि० [सं० आगामिन्] [स्त्री० आगामिनी] भविष्य। होनहार। आनेवाला।

आगामिक—वि० [सं०] १ भविष्यकालसबंधी। २. आनेवाला[को०]।

आगामुक—वि० [सं०] १ आनेवाला। २ भावी [को०]।

आगार—संज्ञा पुं० [सं०] १ घर। मंदिर। मकान। २ स्थान। जगह। जैसे,—अग्न्यागार। ३ जैन मतानुसार बाधक नियम और व्रतभंग। ४. खजाना। उ०—खान असी अकबर अली

जानत सब रस पंथ । रच्यो देव आगार गुनि यह सुखसागर ग्रंथ ।—देव (शब्द०) ।

आगारगोधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकिली । गृहगोधा [को०] ।

आगारदाही—वि० [सं० आगारदाहिन्] । घर जलानेवाला ।

आगारधूम—१ गृह मे निकलनेवाला धुआँ । २ एक पौधे का नाम [को०] ।

आगाह¹—वि० [फा०] जानकार । वाकिफ ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

आगाह²(पु)—संज्ञा पु० [हिं० आग+आह (प्रत्य०)] आगम । होनहार । उ०—चाँद गहन आगाह जनावा । राजमूलि गहि शाह चलावा ।—जायसी (शब्द०) ।

आगाही—संज्ञा स्त्री० [फा०] जानकारी । वाकफियत । उ०—यही सबब है कि मुझे इन सब बातो से आगाही हो गई ।—सतति, भा० २१, पृ० १२ ।

आगि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आग' । उ०—दुरदिन परे रहीम कहि दुरथल जैयत भागि । ठाढे हूजा घूर पर जब घर लागत आगि ।—कविता कौ०, भा० १, पृ० १६२ ।

आगिल(पु)—वि० [हिं० आग+इल (प्रत्य०)] १ आगे का । अगला । उ०—पल मे परलय बीतिया लोगन लगी तमारि । आगिल सोच निवारि कै पाछे करो गोहारि ।—कबीर । (शब्द०) । २ भविष्य का । होनेवाला । उ०—आगिल बात समुझि डरु मोही ।—मानस, २ । १८ ।

आगिला(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'अगला' । उ०—आगिला अगनि होइबा अवधू, तौ आपण होइबा पाणी ।—गोरख०, पृ० २३ ।

आगिवर्तक(पु)—संज्ञा पु० [सं० अग्निवर्त्त] पुराणानुसार मेघ का एक भेद । उ०—सुनत मेघवर्तक सजि सैन लै आए । जलवर्त वारिवर्त पवनवर्त बज्रवर्त आगिवर्तक, जलद सँग लाए ।—सूर (शब्द०) ।

आगी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आग' । उ०—जीवन तें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी, तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरि कै ।—तुलसी ग्र०, पृ० १७५ ।

आगुआ—संज्ञा पु० [हिं० आगे] तलवार इत्यादि की मुठिया के नीचे का गोल भाग ।

आगू(पु)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आगे' । उ०—वासर चौथे याम सतानद आगू दिए ।—रामच०, पृ० २५ ।

आगे—क्रि० वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग] १ ओर दूर पर । ओर बढकर । 'पीछे' का उलटा । जैसे—उनका मकान अभी आगे है । २ समक्ष । संमुख । सामने । जैसे,—उसने मेरे आगे यह काम किया है । ३ जीवनकाल मे । जीते जी । जीवन मे । उपस्थिति मे । जैसे—वह अपने आगे ही इसे मालिक बना गए थे ।—४ इसके पीछे । इसके बाद । जैसे,—मैं कह चुका हूँ, आगे तुम जानो तुम्हारा काम जाने ।—५ भविष्य मे । आगे को । जैसे—अब तक जो किया सो किया, आगे ऐसा मत करना । ६ अंतर । बाद । जैसे,—चैत के आगे बैसाख का महीना आता है । ७. पूर्व । पहले । जैसे,—वह आप के आने से आगे हो गया है । ८. अतिरिक्त । अधिक । जैसे,—इससे आगे एक कौडी नही मिलने की । ९ गोद मे । जैसे,—(क) उसके आगे एक लडकी है ।—(ख) गाय के आगे बछवा है या बछिया ?

मुहा०—**आगे आगे** = थोडे दिनो बाद । क्रमश । जैसे—देखो तो आगे आगे क्या होता है । **आगे आना** = (१) सामने आना । जैसे,—नाई ! सिर मे कितने बाल ? अभी आगे आते हैं । २ सामने पडना । मिलना । जैसे,—जो कुछ उसके आगे आता है, वह खा जाता है । ३ संमुख आना । सामना करना । भिडना । जैसे,—अगर कुछ हिम्मत हो तो आगे आओ । ४. फल मिलना । बदला मिलना । उ०—(क) जो जैसा करै सो तैसा पावै । पूत भतार के आगे आवै । (ख) मत कर सास बुराई । तेरी धी के आगे आई । (शब्द०) । ५ घटित होना । घटना । प्रकट होना । जैसे,—देखो जो हम कहते थे, वही आगे आया । **आगे करना** = (१) उपस्थित करना । प्रस्तुत करना । जैसे,—जो कुछ घर मे था, वह आपके आगे किया । (२) अगुआ बनाना । मुखिया बनाना । जैसे,—इस काम मे तो उन्ही को आगे करना चाहिए । उ०—कमल सहाय सूर सँग लीन्हा । राघव चेतन आगे कीन्हा ।—जायसी (शब्द०) । (३) अगुआना । अग्रगता बनाना । उ०—राजै राकम नियर बोलावा । आगे कीन्ह पंथ जनु पावा ।—जायसी ग्र०, पृ० १७४ । (४) आगे बढाना । चलाना । उ०—चक्र सुदर्शन आगे कियो । कोटिक सूर्य प्रकाशित भयो ।—सूर (शब्द०) । (५) किसी आफत मे डालना । जैसे,—जब शेर निकला तो वह मुझे आगे कर आप पेड पर चढ गया । **आगे का उठा** = खाने से बचा हुआ । जूठा । उच्छिष्ट । जैसे,—नीच जाति के लोग बडे आदमियो के आगे का उठा खा लेते हैं । **आगे का उठा खानेवाला** = (१) जूठा खानेवाला । टुकडखोर । (२) दास । (३) नीच । अत्यज । (४) तुच्छ । नाचीज । **आगे का कदम पीछे पड़ना** = (१) घटती होना । ह्रास होना । तनज्जुली होना । अवनति होना । जैसे,—उनका पहले अच्छा जमाना था, पर अब आगे का कदम पीछे पड़ रहा है । (२) भय से आगे न बढा जाना । दहशत छा जाना । जैसे,—शेर को देखते ही उनका आगे का कदम पीछे पडने लगा । **आगे का कपड़ा** = (१) घूँघट । (२) अचल । **आगे का कपड़ा खींचना** = घूँघट काढना । **आग की उखेड** = कुश्ती का एक पेंच । खिलाडी का प्रतिद्वद्वी की पीठ पर जाकर उसकी कमर की लपेट को पकडकर जिधर जोर चले, उधर फेंकना । अग्रोत्तोलन । **आगे को** = आगे । भविष्य मे । फिर । पुन । जैसे,—अब की बार तुम्हे छोड दिया, आगे को ऐसा न करना । **आगे चलकर, आगे जाकर** = भविष्य मे । इसके बाद । जैसे—तुम्हारे किए का फल आगे चलकर मिलेगा । **आगे डालना** = देना । खाने के लिये सामने रखना । जैसे,—(क) कुत्ते के आगे टुकडा डाल दो । (ख) बैल के आगे चारा डालो । (यह अवज्ञासूचक है और प्राय. इसका प्रयोग पशु आदि नीच श्रेणी के प्राणियों के लिये होता है ।) **आगे डोलना** = आगे फिरना । सामने खेलना कूदना । लडको का होना । जैसे,—बाबा, दो चार आगे डोलते होते तो एक तुम्हें भी दे देती । **आगे डोलना** = बच्चा । लडका । जैसे,—उसके आगे डोलता कोई नही है । **आगे देना** = सामने

रखना। उपस्थित करना। जैसे,—चोट [illegible] आगे नहीं, [illegible] सामने रख दो। **आगे दौड़, पीछे चौड़**=(१) किसी काम को जल्दी जल्दी करते जाना और यह न देखना कि किए हुए काम की क्या दशा होती है। (२) आगे बढ़ते जाना और पीछे का भूलते जाना। **आगे धरना**=(१) सामने रखना। जैसे,—किसी सिद्धांत को आगे रखकर काम करना [illegible] होता है। २. प्रस्तुत करना। उपस्थित करना। पेश करना। भेंट करना। भेंट देना। **आगे निकलना**=बढ़ जाना। जैसे,—(क) वह दौड़ में सबसे आगे निकल गया। (ख) [illegible] हो गई। की पढ़ाई में वह सबसे [illegible] में आगे निकल गया। **आगे पीछे**=एक के पीछे एक। जैसे,—(ग) सिपाही आगे पीछे [illegible] कर रहे हैं। (घ) सब लोग साथ ही आना, आगे पीछे आने से ठीक नहीं होगा। (२) अगल बगल। इधर उधर। [illegible] और पीठ पीछे। जैसे,—[illegible] किसी की कभी आगे पीछे बुराई नहीं की है। (३) और पीछे। आस पास। जैसे,—[illegible] आगे पीछे रहना, दर दर पड़ना। (४) [illegible]। जैसे,—आगे पीछे सभी [illegible], यहाँ कोई [illegible] रहता। (५) कुछ काल के अंतर से। [illegible]। जैसे,—[illegible] काम को [illegible] और सब आगे पीछे [illegible] रहता। (६) इधर का उधर। उलट पलट। [illegible]। जैसे,—[illegible] कागजों को आगे पीछे कर दिया। ७. उपस्थिति में। गैरहाजिरी में। जैसे,—मेरे सामने तो किसी ने [illegible] नहीं कहा, आगे पीछे की कौन जाने। **किसी के आगे पीछे होना**=किसी के कुल में किसी प्राणी का होना। जैसे,—उनके आगे पीछे कोई नहीं है, इसलिये [illegible] हैं। **आगे रखना**=(१) अर्पण करना। देना। चढ़ाना। (२) उपस्थित करना। पेश करना। भेंट करना। जैसे,—[illegible] कुछ [illegible] था, [illegible] रखा। **आगे से**=(१) सामने से। जैसे,—अभी वह हमारे आगे से निकल गया। (२) आइंदा से। भविष्य में। जैसे,—जो कुछ किया सो [illegible] किया, आगे ऐसा मत करना। (३) पहले से। पूर्व से। बहुत दिनों से। जैसे,—(क) यह आगे से होता आया है। (ख) हम तो आगे से जानते थे। **आगे ले लेना**=अभ्यर्थना करना। उ०—हरि आगमन जानि के [illegible] आगे लिए सिधाए। सूरदास प्रभु [illegible] नगर लोग सब आए।—सूर०, १०।४१७८। **आगे होना**=(१) आगे बढ़ना। अग्रसर होना। जैसे,—सरदार तो बढ़ आगे हुआ और उसके साथी पीछे रहे। (२) बढ़ जाना। जैसे,—वह पढ़ने में सबसे आगे हो गया। (३) सामने आना। मुकाबिला करना। जैसे,—इतने आदमियों में यही अकेला शेर के आगे आया। (४) मुखिया बनाना। जैसे,—सब काम में व आगे होते हैं, पर उनको पूछता कौन है। (५) परदा करना। ओट करना। जैसे,—बड़े घरों में स्त्रियाँ जेठ के आगे नहीं आती। **आगे होकर लेना**=अभ्यर्थना करना। उ०—आगे ह्वै जेहि सुरपति लेई। अर्धसिंहासन आसन देई।—तुलसी। (शब्द०)।

थी। २ अग्निविस्फोट अस्त्र या वह अस्त्र जो अग्नि उत्पन्न होने या विस्फोट होने से चले। जैसे,–बंदूक, पिस्तौल आदि।

आग्नेयी¹—वि० स्त्री०[सं०] १ अग्नि को दीपन करनेवाली (औषध)। २ पूर्व और दक्षिण के बीच की (दिशा)।

आग्नेयी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अग्नि की पत्नी। स्वाहा। २ अग्नि की पुत्री जो उरु की पत्नी थी [कौ०]। ३ प्रतिपदा तिथि। परिवा [कौ०]।

आग्या(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० आज्ञा] दे० 'आज्ञा'—१। उ०–ज्यौं गुरु आग्या सुनि चटसार। चट पढि उठत एक ही बार।—नंद० ग्रं०, पृ० २८६।

आग्यौ(पु)†—वि० [सं० अग्र] भविष्य। उ०—तौ तुम कोऊ तारचौ नहिं, जौ मोसों पतित न तारयौ। हौं स्रवननि सुनि कहत न एकौ, सूर सुधारि आग्यौ।– सूर०, १।७३।

आग्र जाणिक—संज्ञा पुं० [सं० अग्र+ज्ञानीक] आगे की बात जानने-वाला व्यक्ति। ज्योतिषी।—वर्ण०, पृ० ६।

आग्रभोजनिक - संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो भोजन में अग्रस्थान का अधिकारी हो [कौ०]।

आग्रमास—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रक वृक्ष। चीते का पेड़ [कौ०]।

आग्रयण—संज्ञा पुं० [सं०] १ अहिताग्नियों का नवशस्येष्टि। नवान्न विधान। नए अन्न से यज्ञ या अग्निहोत्र।

विशेष—इसका विधान श्रौतसूत्रानुसार होता है। यह तीन अन्नों में से तीन फसलों में किया जाता है। सावें में वर्षा ऋतु में, व्रीहि या चावल में हेमंत ऋतु में और जौ से वसंत ऋतु में। गृह्यसूत्रानुसार जब इनका अनुष्ठान होता है, तब इन्हें नव-शस्येष्टि कहते हैं।

२ अग्नि का एक भेद [कौ०]। ३ यज्ञ का समय [कौ०]।

आग्रस्त-वि० [सं०] १ बिंधा हुआ। २ छिदा हुआ। छेदयुक्त [कौ०]।

आग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुरोध। हठ। जिद। जैसे,—वह बार बार मुझसे अपने साथ चलने का आग्रह कर रहा है। २ तत्परता। परायणता। दृढ़ निश्चय। उ०—राक्षस बड़े आग्रह और सावधानी से चंद्रगुप्त और चाणक्य के अनिष्ट साधन में प्रवृत्त हुए।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। ३. बल। जोर। आवेश। उ०–और आप अपने मुख से अपने इस वाक्य का आग्रह दिखाते हैं 'सर्व गुह्यतमं भूय शृणु मे परमं वच'। —हरिश्चंद्र (शब्द०)। ४ आक्रमण [कौ०]। ५ हरण। ग्रहण [कौ०]। ६ अनुग्रह। कृपा [कौ०]। ७ धैर्य। नैतिक बल [कौ०]।

आग्रहायण—संज्ञा पुं० [सं०] १ अगहन मास। मार्गशीर्ष मास। २ मृगशिरा नक्षत्र।

आग्रहायणक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आग्रहायण'।

आग्रहायणिक- संज्ञा पुं० [सं०] १. अगहन की पूर्णमासी। २ मृगशिरा नक्षत्र [कौ०]।

आग्रहायणी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अगहन मास। २ मृगशिरा नक्षत्र। ३ पाक यज्ञविशेष [कौ०]।

आग्रहायणी²—वि० [सं०] १ अगहन की पूर्णिमा को दिया जाने वाला। २ अगहन की पूर्णिमा से युक्त [कौ०]।

आग्रहारिक—वि०[सं०]१ दान के रूप में गाँव या भूमि लेनेवाला। उ०—मार्ग में जो अग्रहार गाँव पड़ते थे उनके अनपढ़ आग्रहारिक लोग मगल के लिये ग्राममहत्तरों के हाथ में जलकुंभ उठाए हुए आ रहे थे।—हर्ष०, पृ० १६२। २ अग्रहार का हरण करनेवाला [कौ०]। ३ अग्रहार की देखभाल करनेवाला [कौ०]।

आग्रहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहायता। अनुग्रह [कौ०]।

आग्रही—वि० [सं० आग्रहिन्] हठी। जिद्दी।

आग्रायण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आग्रयण'।

आघ(पु)—संज्ञा पुं०[सं० अर्घ, प्रा० अग्घ=मूल्य] १ मूल्य। कीमत। २ आदर। मान। उ०- बिदर मूँछ जाणे वृथा इधक पटोरो आघ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २ पृ० ८६।

आघट्टक¹—संज्ञा पुं० [सं०] रक्त अपामार्ग। लाल चिचड़ी।

आघट्टक²-वि० [सं०] घर्षण उत्पन्न करनेवाला। रगड़नेवाला[कौ०]

आघट्टन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आघट्टना] १ रगड़। घर्षण। २ संपर्क [कौ०]।

आघट्टित—वि० [सं०] रगड़ा हुआ। मर्दित [कौ०]।

आघण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्रहायण] अगहन उ०—आघण कर दिन छोटा होई।—बीसल० रा०, पृ० ६७।

आघर्ष,आघर्षण—संज्ञा पुं०[सं०] रगड़। घर्षण [कौ०]।

आघर्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घर्षण या रगड़ने में प्रयुक्त होनेवाली कूँची, ब्रश आदि [कौ०]।

आघाट—संज्ञा पुं०[सं०]१ गाँव की सीमा। गाँव की हद। सिवान।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्राचीन शिलालेखों में मिलता है। 'आघाटक' या 'आघाटन' शब्द भी इसी अर्थ में आया है।

२ अपामार्ग। चिचड़ी [कौ०]। ३ एक तरह का बाजा [कौ०]।

आघात—संज्ञा पुं० [सं०] १ धक्का। ठोकर। २ मार। प्रहार। चोट। आक्रमण। जैसे,–निरपराधों पर आघात करना अच्छा नहीं। ३ वधस्थान। बूचड़खाना। ४ प्रतिध्वनि। उ०— लियो तँबोल माथ धरि हनुमत, कियो चतुरगुन गात। चढ़ि गिरि सिखर शब्द इक उच्चरचो, गगन उठचो आघात।—सूर० ६।७४। ५ वध। मारण (कौ०)। ६ वध करनेवा॰ व्यक्ति [कौ०]। ७ विपत्ति। दुर्भाग्य [कौ०]। ८ मूत्राघ रोग [कौ०]।

आघातज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] किसी चोट या आघात से होनेवा॰ ज्वर [कौ०]।

आघातन—संज्ञा पुं० [सं०] वधस्थान। २ वध। हनन [कौ०]।

आघार—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ और होम आदि में वे आहुतियाँ जो आदि में प्रजापति और इंद्र देवता को घी की अविच्छिन्न धार॰ से 'प्रजापतये स्वाहा' और 'इंद्राय स्वाहा' कहकर वायव्य कोण से अग्नि कोण तक और फिर नैऋत्य से ईशान तक दी जाती हैं। ऋग्वेदी इसे मौन होकर करते हैं और यजुर्वेदी जो से मंत्र का उच्चारण करके करते हैं। २ घी [कौ०]। ३ सिंचन। सींचना [कौ०]।

आघी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्घ, प्रा० अग्घ=मूल्य] १ रुपये का व॰ लेन देन जिसमें उधार लेनेवाला महाजन को आनेवाली फसल की उपज में से फी रुपए की दर से अन्न आदि ब्याज

स्थान मे देता हैं। २ वह अन्न जो इस लेन देन मे व्याज के रूप मे दिया जाय।

क्रि० प्र०—पर लेना।—पर देना।—देना।—लेना।

आघु(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आघ'। उ०—गढरचना, बरुनी अलक चितवनि भौंह कमान। आघु बकाई ही चढै, तरनि तुरगम तान।—बिहारी र०, दो० ३१६।

आघूर्ण—वि०[सं०] १ घूमता हुआ। फिरता हुआ। २ हिलता हुआ।

आघूर्णन—संज्ञा पुं० [सं०] १ चक्कर। घुमाव। २ इधर उधर डोलना। दोलन [दे०]।

आघूर्णित—वि० [सं०] इधर उधर फिरता हुआ। भटकता हुआ। चकराया हुआ।

यौ०—आघूर्णित लोचन=जिसकी आँखें चढी हों।

आघृणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

आघोष—संज्ञा पुं० [सं०] चारो ओर प्रचार करने के लिये किसी बात को ऊँचे स्वर से कहना [को०]।

आघोषण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आघोषणा] घोषणा [को०]।

आघोषणापटह—संज्ञा पुं० [सं० आघोषणा+पटह] जनसाधारण को सूचित करने के लिये या उनके आवाहन के लिये प्रयुक्त नगाडा।

आघोषित—वि० [सं०] घोषित।

आघ्राण—संज्ञा पुं० [सं० वि० आघ्रात, आघ्रेय] १ सूँघना। बास लेना। २ अघाना। आसूदगी। तृप्ति।

आघ्रात[1]—वि० [सं०] १ सूँघा हुआ। २ तृप्त। अघाया हुआ। ३. सुगंधित। सुवासित [को०]।

आघ्रात[2]—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण के दस भेदों मे से एक जिसमे चंद्रमंडल या सूर्यमंडल एक ओर मलिन देख पडता है। फलित ज्योतिष के अनुसार ऐसे ग्रहण से अच्छी वर्षा होती है।

आघ्रेय—वि० [सं०] सूँघा जाने योग्य [को०]।

आचंचल—वि० [सं०आ+चञ्चल] अस्थिर। चंचल। उ०—चंद्रोदय आरंभकाल मे आचंचल सागर मे।—पार्वती, पृ० १२३।

आचभ—वि० [हिं०] दे० 'अचंभा'। उ०—आचभ रूप इच्छिनि सुनी जन जन वत्त बखानियाँ।—पृ० रा०, १२।१०।

आच(पु)—संज्ञा पुं० [सं० सच=सवान करना] हाथ। उ०—जिकाँ भलाँ धन जोडियौ, ऊपमियौ निज आच।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ४८। (डिं०)

यौ०—आचप्रभव=क्षत्रिय।

आचमन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आचमनीय, आचमित] १ जल पीना। २ शुद्धि के लिये मुँह मे जल लेना। ३ किसी धर्म संबंधी कर्म के आरंभ मे दाहिने हाथ मे थोडा सा जल लेकर मंत्रपूर्वक पीना यह पूजा के षोडशोपचार मे से एक है। ४ सुगंधवाला। नेत्रवाला।

आचमनक—संज्ञा पुं० [सं०] १ आचमन का पात्र। २ आचमन का जल। ३ पीकदान [को०]।

आचमनी—संज्ञा स्त्री० [सं० आचमनीय] एक छोटा चम्मच जो कलछी के आकार का होता है। इसे पंचपात्र मे रखते हैं और इससे आचमन करते और चरणामृत आदि देते हैं।

आचमनीय, आचमनीयक—वि० [सं०] १ आचमन के योग्य। पीने योग्य। २ कुल्ला करने योग्य।

आचमित—वि० [सं०] पिया हुआ।

आचय—संज्ञा पुं० [सं०] १ चुनने का कार्य। २ राशि या ढेर [को०]।

आचयक—वि० [सं०] १ चयन या एकत्र करनेवाला। २ चयन करने में कुशल। ३ फूल आदि चयन करनेवाला [को०]।

आचर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँचर'। उ०—नागरि नव छवि अनुरागक अंकुर धएल माँगि आचरे गोइ।—विद्यापति, पृ० ७३।

आचरज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य] दे० 'अचरज'। उ०—मुनि मन मोह आचरज भारी।—मानस, १।१२८।

आचरजित(पु)—वि० [सं० आश्चर्यित] आश्चर्यित। चकित। विस्मित।

आचरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आचरणीय, आचरित] १ अनुष्ठान। २ व्यवहार। बर्ताव। चाल चलन। जैसे,—उनका आचरण अच्छा नहीं है। ३ आचारशुद्धि। सफाई। ४ रथ। छकडा। ५ चिह्न। लक्षण। ६ बौद्धों के अनुसार वे १५ आचरण जो सदाचार माने जाते हैं।

विशेष—ये इस प्रकार हैं—(१) शील। (२) इंद्रियसंवर। (३) मात्राशिता। (४) जागरणानुयोग। ५ श्रद्धा। (६) ह्री। (७) बहुश्रुतत्व। (८) उत्ताप, अर्थात् पछतावा। (९) पराक्रम। (१०) स्मृति। (११) मति। (१२) प्रथम ध्यान। (१३) द्वितीय ध्यान। (१४) तृतीय ध्यान। (१५) चतुर्थ ध्यान। ७ करना [को०]। ८ अनुगमन। अनुगमन [को०]।

आचरणीय—वि० [सं०] १ अनुष्ठान करने योग्य। २ व्यवहार करने योग्य। बर्ताव करने योग्य। करने योग्य।

आचरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आचरण] दे० 'आचरण'। उ०—सगुन समय सुमिरत सुखद भरत आचरन चारु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६७।

आचरना(पु)—क्रि० स० [सं० आचरण से नाम०] आचरण करना। व्यवहार करना। उ०—इहै भगति बैराग्य ज्ञान यह हरितोषन यह सुभ व्रत आचरु। तुलसिदास सिवमत मारग यह चलत सदा सपनेहु नाहिन डरु।—तुलसी (शब्द०)।

आचरित[1]—वि० [सं०] १ किया हुआ। अनुष्ठान किया हुआ। २ नित्य का। रोजमर्रा का। नियमित [को०]। ३ व्यवहृत, जैसे—स्थान [को०]।

आचरित[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ धर्मशास्त्र के अनुसार ऋणी से धन लेने के पाँच प्रकार के उपायो मे से एक। ऋणी के स्त्री, पुत्र, पशु आदि को लेकर या उसके द्वार पर धरना देकर ऋण को चुका लेना। २. चरित्र। व्यवहार [को०]।

आचरितदायन—संज्ञा पुं० [सं०] ऋण का वह चुकता जो स्त्री, पुत्र को बाँधने या दरवाजे पर धरना देने से हो।

आचरितव्य—वि० [सं०] आचरण करने योग्य [को०]।

आचर्ज—संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य] दे० 'आश्चर्य' उ०—गगन की टोरि एह सुरति छूटे नही अजर आचर्ज मम दरस बानी।—सं० दरिया, पृ० ८५।

आचार्य—वि० [सं०] [संज्ञा आचर्य] १ आचरण करने योग्य। २ जाने योग्य [को०]।

आचांत—वि०[सं० आचान्त] १ आचमन किया हुआ। २ आचमन करने योग्य [को०]।

आचांति—संज्ञा स्त्री० [सं० आचान्ति] अचान ।
आचान—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आचमन' ।
आचानक—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचानक' ।
आचाम—संज्ञा पुं० [सं०] १. भात । २. माँड । ३ आचमन ।
आचामक—संज्ञा पुं० [सं०] आचमन करनेवाला व्यक्ति [को०] ।
आचार—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यवहार । चलन । रहन सहन । २ चरित्र । चाल ढाल । ३. शील । ४ शुद्धि । सफाई । ५ भोजन । आहार [को०] । ६ आचरण का तरीका [को०]। ७ नित्य नैमित्तिक नियम [को०] ।
यौ०—अनाचार । दुराचार । शिष्टाचार । समाचार । सदाचार । कुलाचार । देशाचार । भ्रष्टाचार ।
आचारज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आचार्य] दे० 'आचार्य' । उ०—आचारज वासिष्ठ भो ऋत्वज वत्स प्रवीन ।—हम्मीर रा०, पृ० ५६ ।
आचारजी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आचार्य] पुरोहिताई । आचार्य होने का भाव । उ०—उनके घर किसकी आचारजी है ?
आचारतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० आचारतन्त्र] बौद्धों के चार तंत्रों में से एक [को०] ।
आचारदीप—संज्ञा पुं० [सं०] आरती आदि पूजनविधियों में प्रयुक्त होनेवाला दीप [को०] ।
आचारपतित—वि० [सं०] आचारभ्रष्ट [को०] ।
आचारपूत—वि० [सं०] शुद्ध आचरण करनेवाला [को०] ।
आचारभेद—संज्ञा पुं० [सं०] आचार या आचरण संबंधी नियमों का अंतर [को०] ।
आचारभ्रष्ट—वि० [सं०] आचार या आचरण की मर्यादा से रहित । पतित [को०] ।
आचारलाज—संज्ञा पुं० [सं०] राजा आदि पर डाला जानेवाला लावा [को०] ।
आचारवर्जित—वि० [सं०] १ आचारविरुद्ध या आचारशून्य । २. जाति से बहिष्कृत । जातिच्युत [को०] ।
आचारवान्—वि० [सं० आचारवत्] [वि० स्त्री० आचारवती] पवित्रता से रहनेवाला । शुद्ध आचार का । उ०—शुचि आचारवती कल्याणी गिरजा जब अभिजाता । सूर्यवदना अरुणाचल पर करती सद्य स्नाता ।—पार्वती, पृ० ६१ ।
आचारविचार—संज्ञा पुं० [सं०] आचार और विचार । पवित्र आचरण ।
विशेष—इस शब्द का प्रयोग अकसर आचार ही के अर्थ में होता है । जैसे,—वह बड़े आचारविचार से रहता है ।
आचारवेदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आचार की वेदी । आर्यावर्त [को०] ।
आचारहीन—वि० [सं०] आचरणभ्रष्ट । जिसमें आचार विचार न हो । पतित [को०] ।
आचारिक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वास्थ्य संहिता । स्वास्थ्य संबंधी नियम [को०] ।
आचारी[1]—वि० [सं० आचारिन्] [वि० स्त्री० आचारिणी] आचारवान् । चरित्रवान् । शुद्ध आचार का । उ०—सोइ सयान जो परधन हारी । जो कर दंभ सो बड़ आचारी ।—मानस, ७ । ९८ ।

आचारी[2]—संज्ञा पुं० [सं०] रामानुज संप्रदाय का वैष्णव । श्रीवैष्णव ।
आचारी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर । हिलमोचिका ।
आचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आचार्या, आचार्याणी] [वि० आचार्यी] १. उपनयन के समय गायत्री मंत्र का उपदेश करनेवाला । गुरु ।
विशेष—पाणिनि ने चार प्रकार के शिक्षकों का उल्लेख किया है । आचार्य, प्रवक्ता, श्रोत्रिय, अध्यापक । इनमें आचार्य का स्थान सर्वोच्च था । शिष्य का उपनयन कराने का अधिकार तो आचार्य को ही था । स्वयं आचार्य का काम करनेवाली स्त्री आचार्या कहलाती है । आचार्य की पत्नी को आचार्यानी कहते हैं ।
२. वेद पढ़ानेवाला । ३ यज्ञ के समय कर्मोपदेशक ४ पूज्य । पुरोहित । ५ अध्यापक । ६ ब्रह्मसूत्र के चार प्रधान भाष्यकार—(क) शंकर, (ख) रामानुज, (ग) मध्व और (घ) वल्लभाचार्य ७ वेद का भाष्यकार । ८. शास्त्रीय व्याख्या करनेवाला । तात्विक दृष्टि से गुण दोष का विवेचन करनेवाला । ९. किसी महाविद्यालय का प्रधान अधिकारी और अध्यापक । प्रिंसिपल । प्राचार्य [को०] । १ किसी शास्त्र या विषय का धुरंधर पंडित या ज्ञाता [को०] ।
यौ०—आचार्यकुल = गुरुकुल । आचार्यवान् = उपनीत ।
आचार्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आचार्योपदेश, शिक्षा, पाठ आदि । २ व्याख्या करने की शक्ति या योग्यता । व्याख्यातृत्व । ३. आचार्य का पद [को०]
आचार्यकरण—संज्ञा पुं० [सं०] माणवक या वटु को उपनीत करने का कार्य [को०] ।
आचार्यदेव—वि० [सं०] आचार्य को देव माननेवाला [को०] ।
आचार्यी—वि० स्त्री० [सं०] आचार्य की । आचार्य संबंधिनी । जैसे-आचार्यी दक्षिणा ।
आचिंत(पु)—वि० [सं० अचिन्त्य] (परमेश्वर) जो चिंतन में नहीं आ सकता । उ०—तेज अंड आचिंत का, दीन्हा सकल पसार । अंड शिखा पर बैठकर, अधर दीप निरधार ।—कबीर (शब्द०)।
आचिंत्य[1]—वि० [सं० अचिन्त्य] सब प्रकार से चिंतन करने योग्य ।
आचिज्ज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य, प्रा० आचिज्ज] दे० 'आश्चर्य' । उ०—एह वत्त आचिज्ज उपजि मो चित्त तु तब्बह ।—पृ० रा०, ३।२० ।
आचित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक मान जो दस भार या २५ मन का होता था । २ गाड़ी भर का बोझ । एक छकड़े का भार ।
आचित[2]—वि० १ व्याप्त । २. एकत्र किया हुआ [को०] । ३ भरा हुआ [को०] । ४ बँधा हुआ [को०] । ५ फैलाया हुआ [को०] ।
आचीर्ण—वि० [सं०] खाया हुआ । आस्वादित [को०] ।
आचूषण—संज्ञा पुं० [सं०] १ चूसना । २ चूसकर बाहर निकालना । रक्त चूसने का यंत्र लगाकर चूसना [को०] ।
आच्छद—संज्ञा पुं० [सं० आच्छद] आवरण । वस्त्र ।
आच्छन्न—वि० [सं०] १ ढका हुआ । आवृत । २ छिपा हुआ । तिरोहित ।

आच्छाक—संज्ञा पुं० [सं०] नील का सा एक पौधा जिससे लाल रंग बनता है। आल।

पर्या०—रंजनद्रुम। पक्षीक। पक्षिक। आच्छुक।

आच्छाद—संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र। परिधान [को०]।

आच्छादक—संज्ञा पुं० [सं०] ढँकनेवाला। जो ढाँके।

आच्छादन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आच्छादित, आच्छन्न] ढकना। आवरण। उ०—धीरे धीरे हिम आच्छादन हटने लगा धरातल से।—कामायनी, पृ० २३। २ वस्त्र। कपड़ा। ३ छाजन। छवाई। ४. छिपाना [को०]। ५ परिधान [को०]। ६ ठाठ। ठाठर [को०]। ७ लोप [को०]।

आच्छादित—वि० [सं०] १ ढँका हुआ। आवृत्त। उ०—फिर देखी भीमा मूर्ति आज रण देखी जो आच्छादित किए हुए संमुख समग्र नभ को।—अनामिका, पृ० १५२। २. छिपा हुआ। तिरोहित।

आच्छादी—वि० [सं० आच्छादिन्] आच्छादन करनेवाला [को०]।

आच्छाद्य—वि० [सं०] १ ढकने योग्य (स्तन)। २ गोप्य। गोपनीय [को०]।

आच्छिन्न—वि० [सं०] १ हटाया हुआ। २ नष्ट किया हुआ [को०]।

आच्छुक—संज्ञा पुं० [सं०] अच्छाक। आक्षिक [को०]।

आच्छुरित[1]—वि० [सं०] १ मिश्रित। मिला हुआ। २ नख से चिह्नित या खँरोचा हुआ। क्षुब्ध [को०]।

आच्छुरित[2]—संज्ञा पुं० १ नखवाद्य। नखों को रगड़कर शब्द करना। २. अट्टहास [को०]।

आच्छुरितक—संज्ञा पुं० [सं०] नखक्षत। २ अट्टहास [को०]।

आच्छेत्ता—वि० [सं० आच्छेत्तृ] छेदन करनेवाला। काटनेवाला [को०]।

आच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ काटना। काट डालना। २ किंचित् या कुछ काटना। ३. अपहरण। बलपूर्वक हरण करना [को०]।

आच्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] आच्छेद।

आच्छेपⓅ—संज्ञा पुं० [सं० आक्षेप] दे० 'आक्षेप'। उ०—पहिले कहिए बात कछु, पुनि ताको प्रतिषेध। ताहि कहत आच्छेप हैं, भूषन सुकवि सुमेध।—भूषण ग्रं०, पृ० ३६।

आच्छोटन—संज्ञा पुं० [सं०] १ चुटकी बजाना। २ उँगली फोड़ना। उँगली चटकाना।

आच्छोदन—संज्ञा पुं० [सं०] अहेर। आखेट। मृगया [को०]।

आछढनाⓅ†—क्रि० अ० [देश०] धक्का देना। उ०—उचित वयस भोर मनमथ चोर ठेलि आछढि आकरए अगोर।—विद्यापति, पृ० ४६२।

आछत†Ⓟ—क्रि० अ० [प्रा० √अच्छ, हिं० आछना का कृदंत रूप, जिसका प्रयोग क्रि० वि० वत् होता है।] होते हुए। रहते हुए। विद्यमानता में। मौजूदगी में। सामने। जैसे,—हमारे आछत उसे और कौन ले जा सकता है।—(शब्द०)। उ०—आँखिन आछत आँधरो जीव करै बहु भाँति। धीर न वीरज विनु करै तृष्णा कृष्णा राति।—केशव (शब्द०)।

आछनाⓅ—क्रि० अ० [सं० अस्=होना अथवा सं० आ+√क्षि, प्रा० √अच्छ] १ होना। २ रहना। विद्यमान होना। उ०—भँवर आइ वनखँड सन, लेइ कमल कै वास। दादुर वास न पावई, भलहि जो आछै पास।—जायसी ग्रं०, पृ० ६।

विशेष—इस क्रिया के और सब रूपों का व्यवहार अब बोलचाल से उठ गया है, केवल आछत, आछते (होते हुए) रह गया है।

आछरिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरा प्रा० अच्छरा] दे० 'अप्सरा'।

आछाⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अच्छा'। उ०—हरि आवत गाइनि के पाछे। मोर मुकुट मकराकृत कुंडल नैन विसाल कमल तैं आछे।—सूर०, १०। ५०७।

आछादितⓅ—वि० [सं० आच्छादित] दे० 'आच्छादित'। उ०—गज चर्म आछादित, भ्रंम नाम, रहै वीर भँगे गन आस पास।—पृ० रा०, १। ३८६।

आछी[1]Ⓟ—वि० स्त्री० [हिं० अच्छा] १ अच्छी। भली। उत्तम। उ०—लै पौढी आँगन ही सुत कौं छिटकि रही आछी उजियरिया।—सूर०, १०। २४६। २ स्वस्थ। नीरोग। ठीक। उ०—तब विट्ठल श्री गुसाँई जी सों विनती करे, जो महाराज! मेरी देह आछी नाहीं।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १४०।

आछी[2]Ⓟ—वि० [सं० अशिन्] खानेवाला। उ०—पान फूल आछी सब कोई। तुम कारन यह कीन रसोई।—जायसी (शब्द०)।

आछी[3]†—संज्ञा स्त्री० [सं० आक्षिक] सुगंधित फूलवाला एक पेड़ जिसकी लकड़ी हल्के पीले रंग की होती है।

आछेⓅ†—क्रि० वि० [सं० अच्छ=स्वच्छ, हिं० अच्छा] अच्छी तरह। उ०—तिनके लच्छन-लच्छ अब आछे कहौं बखानि।—नंद० ग्रं०, पृ० २६४।

आछेⓅ†[2]—वि० [हिं०] दे० 'अच्छा'। उ०—जे परमेश्वर पै चढ़ैं, तेई आछे फूल।—भूषण ग्रं०, पृ० ७१।

आछेपⓅ—संज्ञा पुं० [सं० आक्षेप] आक्षेप नामक अलंकार। उ०—तहाँ कहत आछेप हैं कविजन मत उत्सेध।—मतिराम ग्रं०, पृ० ४००।

आछैⓅ—क्रि० वि० [सं० अक्षय, प्रा० अच्छै] दे० 'अक्षय'। उ०—आछै सगै रहै जु वा। ता कारणि अनंत सिधा जोगेश्वर हूवा।—गोरख०, पृ० २।

आछोⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अच्छा'। उ०—कंचन परत, कमल मुख देखें, भूल्यो काम, धाम आछो बदन निहारि।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५२।

आछोटणⓅ—संज्ञा पुं० [सं० आच्छोदन=मृगया] शिकार। आखेट। अहेर।—(डिं०)।

आछोपⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अछोप'। उ०—जाके भागवतु लेखियै, सतकर्म पेखिवे तास की जाति आछोप छीपा।—संत रवि०, पृ० १३२।

आछौⓅ—वि० [हिं०] दे० 'आच्छा'। उ०—आछौ गात अकारथ गारचौ। करी न प्रीति कमल लोचन सौं जनम जुआ ज्यौं हारचौ।—सूर०, १। १०१। २ मंगल। शुभ। उ०—आछौ दिन सुनि महरि जसोदा, सखिनि बोलि सुभ गान करचौ।—सूर०, १०। ८८।

आज[1]—क्रि० वि० [स० अद्य, पा० अज्ज] १ वर्तमान दिन मे। जो दिन बीत रहा है उसमे। जैसे,—आज किसका मुँह देखा था जो सारा दिन भटकते बीता। २. इन दिनो। वर्तमान समय मे। जैसे,—(क) जो आज उनकी चलती है वह दूसरे की नही।—(ख) आज करे सो कल पावेगा।

आज[2]—सज्ञा पुं० १ वर्तमान दिन। जो दिन बीत रहा है। जैसे,—आज की रात वह इलाहाबाद जायगा। २ इस वक्त। जैसे,—खबरदार आज से ऐसा मत करना।

मुहा०—**आज को**=(१) इस समय। जैसे,—आज को यह बात कही, कल को दूसरी बात कहेगा।—(२) इस अवसर पर। ऐसे समय मे। ऐसे मौके पर। जैसे,—आज को वह न हुए, नही तो बतला देते। **आज तक**=(१) आज के दिन तक। जैसे,—उसे बाहर गए बरसो हुए, पर आज तक उसका कोई खत नही आया।—(२) इस समय तक। इस घडी तक। जैसे,—कल का गया आज तक न पलटा। **आज दिन**= इस समय। वर्तमान समय मे। जैसे,—आज दिन उनकी टक्कर का दूसरा विद्वान् नही। **आज बरसकर फिर बरसेगा**=ऐसा ही फिर होगा। **आज लों**=आज तक। **आज से**=इस समय से। इस वक्त से। अब से। भविष्य मे। जैसे,—अब तक किया सो किया आज से न करना। **आज हो कि कल**=थोडे दिनो मे। दो चार दिन के अंदर ही। जैसे,—उनका अब क्या ठिकाना, आज मरें कि कल।

आज[3]—वि० [स०] [वि० स्त्री० **आजी**] १ बकरासबंधी। २ बकरे से उत्पन्न [को०]।

आज[4]—सज्ञा पुं० १ गृध्र। गिद्ध। २ आज्या घृत। घी। ३. क्षेपण। फेंकना [को०]।

आजक—सज्ञा पु० [स०] बकरो का झुंड [को०]।

आजकल—क्रि० वि० [हिं० **आज+कल**] इन दिनो। इस समय। वर्तमान दिनो में। जैसे,—आजकल उनका मिजाज नही मिलता।

मुहा०—**आजकल मे**=थोडे दिनो मे। शीघ्र। जैसे,—घबराओ मत, आजकल मे देता हूँ। **आजकल करना, आजकल बताना**=टालमटोल करना। हीला हवाला करना। जैसे,—(क) व्यर्थ आजकल क्यो करते हो, देना हो तो दो। (ख) जब मैं माँगने जाता हूँ, तब वह मुझको आजकल बता देता है। **आजकल लगाना**=अब तब लगना। मरने मे दो ही एक दिन की देर होना। मरणकाल निकट आना। जैसे,—उनका तो आजकल लगा है, जा कर देख आओ। **आजकल होना**=(१) टालमटोल होना। हीला हवाला होना। जैसे,—महीनों से तो आजकल हो रहा है, मिले तब जानें।—(२) दे० 'आजकल लगना'। **आज मरे कल दूसरा दिन**=मरने के पीछे जो चाहे सो हो, मरने के बाद कोई चिंता नही रहती।

आजकार—सज्ञा पु० [स०] शिव का बैल। नदी [को०]।

आजगर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **आजगरी**] १. अजगर संबधी। २. अजगर के समान [को०]।

आजगव—सज्ञा पु० [सं०] १ शिवधनुप। महादेव का धनुप। पिनाक। २ शिव के धनुप जैसा दृढ धनुप [को०]।

आजनन[1]—सज्ञा पु० [स०] प्रसिद्ध या ज्ञात कुल। सद्वश [को०]।

आजनन[2]—क्रि० वि० [स०] जन्म से ही [को०]।

आजन्म—क्रि० वि० [स०] १ जन्म से। जन्म से लेकर। उ०—आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अय।—मानस, ६।१३०। २ जीवन भर। जन्म भर। जिंदगी भर। आजीवन। जब तक जिए तब तक।

आजमाइश—सज्ञा स्त्री० [फा० **आजमाइश**] १ परीक्षा। इम्तहान। परख। २ खडी फसल का सरकारी अधिकारी द्वारा मूल्य लगाना या आँकना।

आजमाना—क्रि० स० [फा० **आजमाइश=परीक्षा**] [वि० **आजमूदा**] परीक्षा करना। परखना। जाँच करना। उ०—हम कहाँ किस्मत आजमाने जायँ।—शेर०, पृ० ४९३।

आजमीढ[1]—वि० [स० **आजमीढ**] अजमीढ राजा के वश का।

आजमीढ[2]—सज्ञा पुं० अजमीढ देश का राजा।

आजमूदा—वि० [फा० **आजमूदह्**] आजमाया हुआ। परीक्षित।

आजर्जरित—वि० [स०] फटा हुआ। टुकडे टुकडे। तार तार [को०]।

आजयन—सज्ञा पुं० [सं०] १ विजय। २ युद्ध [को०]।

आजवन—सज्ञा पुं० [सं०] १ त्वरा। वेग। २. युद्ध। ३. आक्रमण [को०]।

आजवह[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **आजवहा**] जिसे बकरी ले जाय या ढोए।

आजवह[2]—सज्ञा पु० हिमालय का पर्वतीय देश जहाँ भोजन आदि की सामग्री बकरियो पर लदकर जाती है।

आजस्रिक—वि० [सं०] अजस्र या प्रतिदिन होनेवाला [को०]।

आजा—सज्ञा पुं० [स० **आर्यक**, प्रा० **अज्जअ**] [स्त्री० **आजी**] पितामह। दादा। बाप का बाप। उ०—आजा को घर अमर है बेटा के सिर भार। तीन लोक नाती ठगा, पडित करौ विचार।—कबीर (शब्द०)।

आजागुरु—सज्ञा पुं० [हिं० **आजा+गुरु**] १ गुरु का गुरु। २ गुरु का आजा या दादा।

आजात—वि० [स०] उच्च या ख्यात कुल मे उत्पन्न [को०]।

आजाति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ जन्म। उत्पत्ति। २. अच्छा वंश[को०]।

आजाद—वि० [फा० **आजाद**] १ जो बद्ध न हो। छूटा हुआ। बरी। जैसे,—राज्याभिषेक के अवसर पर बहुत से कैदी आजाद किए गए। २ बेफिक्र। बेपरवाह। ३ स्वतत्र। जो किसी के अधीन न हो। स्वाधीन। उ०—साहब ने इस गुलाम को आजाद कर दिया। लो बदगी कि बदगी मे छूट गए हम।—शेर०, पृ० ४५९। ४ निडर। निर्भर। अशक। बेधडक। ५ स्पष्टवक्ता। हाजिरजवाब। ६ उद्धत। ७ अकिंचन। निष्परिग्रह। ८ कही एक जगह न रहनेवाला। बेपता। बे-निशान। ९ एक प्रकार के मुसलमान फकीर जो दाढी, मूँछ और भौं आदि मुँडाए रहते हैं और न रोजा रखते हैं और न नमाज पढ़ते हैं। ये सूफी सप्रदाय के अतर्गत हैं और अद्वैतवादी हैं।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

यौ०—आजाद तबीयत, आजाद मिजाज = स्वेच्छाचारी। मनमौजी। आनदी।

आजादगी—सज्ञा स्त्री० [फा० आजादगी] स्वतत्रता।

आजादाना—क्रि० वि० [फा० आजादानह्] आजाद की तरह। स्वतत्रतापूर्वक। स्वच्छदतापूर्वक।

आजादी—सज्ञा स्त्री० [फा० आजादी] १ स्वतंत्रता। स्वाधीनता। २ निरकुशता [कौ०]।

आजान[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ जन्म। जनन। २.उत्पत्ति या जन्म का कारण। ३ जन्मस्थान [कौ०]।

आजान[2]—क्रि० वि० [सं०] सृष्टिकाल से [कौ०]।

आजान[3]ⓤ—वि० [हिं० अजान] अनजान। न जाननेवाला। उ०—करतलह सु कवि कित्तिय सुबर, पथ थक्के आजान जिम।—पृ० रा०, २५। ५६८।

आजानज—वि० [सं०] सृष्टिकाल मे उत्पन्न, जैसे देव आदि [कौ०]।

आजानदेव—सज्ञा पुं० [सं०] वे देवता जो सृष्टि के आदि मे देवता रूप मे ही उत्पन्न हुए थे।

विशेष—देवता दो प्रकार के होते हैं—एक कर्मदेव, जो कर्म से देवता हो जाते हैं और दूसरे आजानदेव जो देवता रूप मे ही उत्पन्न होते है।

आजानि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ जननी। माता। २ जन्म। उत्पत्ति। ३ अच्छा वश [कौ०]।

आजानु—वि० [स०] जांघ तक लवा। घुटने तक लवा।

यौ०—आजानुबाहु। आजानुभुज। आजानुलवी।

आजानुबाहु—वि० [स०] जिसकी बाहु जांघ तक लंबी हो। जिसके हाथ घुटने तक लवे हो।

आजानुभुज —वि० [स०] दे० 'आजानुबाहु'। उ०—आजानुभुज सरचाप धर सग्रामजित खरदूषन।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७८।

आजानुलवी—वि० [स० आजानुलम्बिन्] घुटने तक लवा [कौ०]।

आजानेय[1]—सज्ञा पुं० [स०] घोडे की एक जाति जो उत्तम मानी जाती है।

आजानेय[2]—वि० १ अच्छी नस्ल का (घोडा)। २. उच्चकुल मे उत्पन्न। ३ निर्भय [कौ०]।

आजार—सज्ञा पुं० [फा० आज़ार] १. रोग। वीमारी। व्याधि। उ०—उस मसीहा को दिखा दो तो कुछ आजार नही, अभी हो जाय शिफा।—श्यामा०, पृ० १०१।

क्रि० प्र०—देना।

२ दुख। कष्ट। तकलीफ। उ०—तेरे वीमार सा वीमार न होगा कोई। जिसको जाहिर मे जो देखा तो कुछ आजार नही।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २२६।

क्रि० प्र०—देना।—पहुँचना।—पाना।—लगाना।

आजि—सज्ञा पु० [स०] १ युद्ध। रण। सग्राम। लडाई। उ०—चतुरग सैन भगाइकै, तव जीतियो वह आजि।—रामच०, पृ० १७४। २ दौड [कौ०]। ३ युद्धक्षेत्र या दौड का स्थान [कौ०]। ४. सीमा। घेरा [कौ०]। ५ पथ। मार्ग [कौ०]। ६ क्षण [कौ०]। ७. निंदा [कौ०]।

आजिक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] युद्ध [कौ०]।

आजिगमिषु—वि० [स०] आने की इच्छा रखनेवाला [कौ०]।

आजिगीषु—वि० [स०] जय का इच्छुक [कौ०]।

आजिग्रह—वि० [स०] ग्रहण या हरण करनेवाला [कौ०]।

आजिज—वि० [अ० आजिज] [संज्ञा आजिजी] १ दीन। विनीत। २ हैरान। तग। उ०—इद्रिन न आजिज तुम रहते इद्री मारि गिराओ।—पलटू० बानी, भा० ३, पृ० ५८।

क्रि० प्र०—आना।—होना।

आजिजी—सज्ञा स्त्री० [अ० आजिजी] १ दीनता। विनीत भाव। नम्रता। २ हैरानी। ३. निराशा। ४. कमजोरी।

आजिमुख—संज्ञा पुं० [स०] युद्ध की अग्रपक्ति [कौ०]।

आजी—सज्ञा स्त्री० [स० आर्यिका, प्रा० अज्जिआ अथवा हिं० आजा] दादी। पितामही।

आजीव—सज्ञा पुं० [स०] १ जीविका। धधा। २ जीविका का साधन या उपाय। ३. उचित लाभ या आय। वाजिब आमदनी।

विशेष—जो लोग कारीगरो और श्रमिकों की आमदनी को घटाने का यत्न करते थे, उनके ऊपर चाणक्य ने १००० पण जुरमाना लिखा है।

४ राज्यकर। सरकारी टैक्स या महसूल।

विशेष—यह भिन्न भिन्न पदार्थों पर लगता था।

आजीवक—सज्ञा पुं० [स०] १ गोशाल द्वारा प्रवर्तित धार्मिक सप्रदाय का साधु (जैन)। उ०—इतने मे एक आजीवक उसी स्थान पर आकर चदन से पूछने लगा।—इरा०, पृ० ७२। २. भिखमगा। भिक्षुक [कौ०]।

आजीवन—क्रि० वि० [स०] जीवनपर्यंत। जिदगी भर। जब तक जीए तब तक।

आजीवनिक—वि० [स०] जीविका के लिये प्रयत्न करनेवाला [कौ०]।

आजीवात—क्रि० वि० [सं० आजीवान्त] मरने की घड़ी तक। प्राण निकलने के क्षण तक।

आजीविक—सज्ञा पु० [स०] दे० 'आजीवक' [कौ०]।

आजीविका—सज्ञा स्त्री० [स०] वृत्ति। रोजी। रोजगार। जीवन का सहारा। जीवननिर्वाह का अवलव। उ०—तेरी बहुत अच्छी आजीविका है।—शकुतला, पृ० १०१।

आजीवितात—क्रि० वि० [स० आजीवितान्त] जीवनपर्यंत [कौ०]।

आजीवी—वि० [स० आजीविन्] जीविकायुक्त। २ एक प्रकार के भिक्षुक (एकदडी) [कौ०]।

आजीव्य[1]—वि० [स०] १ जीविका योग्य। जीविका बनाने योग्य। ३ निवास योग्य। ४. उपजाऊ [कौ०]।

आजीव्य[2]—सज्ञा पुं० [स०] जीविका या रोजी का साधन [कौ०]।

आजुⓤ—क्रि० वि०, सज्ञा पुं० [हिं० आजु] दे० 'आज'। उ०—(क) आजु अनरसेहि भोर के, पय पियत न नीके।—तुलसी ग्र०, पृ० २७४। (ख) वहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह विधि बनि भलि भूरी।—मानस, २। १०२।

आजुर्दगी—सज्ञा स्त्री० [फा० आजुर्दगी] रज। खेद। दुःख।

आजुर्दा—वि० [फा० आजुर्दह्] खिन्न। दुखी। उ०—वे लोग कैसे कुछ आजुर्दा खातिर हैं।—प्रेमघन, भा० २, पृ० १०१।

आजू¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ बेगार। २ बिना वृत्ति लिए काम करनेवाला नौकर (कौ०)। ३. नरक निवास या वास (कौ०)।

आजू²(पु)—संज्ञा पुं० [अ० वजूअ] दे० 'वजू'। उ०—ज्ञान का गुसल कर पाक का आजू कर पक तकबीर परतीत पाई—कबीर० रे०, पृ० २४।

आज्ञप्त—वि० [सं०] १ आदेश दिया हुआ। २ सूचित (कौ०)।

आज्ञप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आज्ञा। आदेश। २. सूचना।

यौ०—आज्ञप्तिहर=संदेशवाहक। दूत।

आज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बड़ो का छोटो को किसी काम के लिये कहना। आदेश। हुक्म। जैसे,—राजा ने चोर को पकडने की आज्ञा दी। २. छोटो को उनकी प्रार्थना के अनुसार बडे का उन्हें कोई काम करने के लिये कहना। स्वीकृति। अनुमति। जैसे,—बहुत कहने सुनने पर हाकिम ने लोगो को जुआ खेलने की आज्ञा दी।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—मानना।—लेना।—होना।

यौ०—आज्ञाकारी। आज्ञावर्ती। आज्ञापक। आज्ञापालन। आज्ञाभंग।

आज्ञाकर—वि० [सं०] दास। सेवक (कौ०)।

आज्ञाकारी—वि० [सं० आज्ञाकारिन् [स्त्री० आज्ञाकारिणी] १. आज्ञा माननेवाला। हुक्म माननेवाला। आज्ञापालक। उ०—लोकपाल, जम, काल, पवन, रवि, ससि सब आज्ञाकारी। तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेंत कर धारी।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०८। २. सेवक। दास। टहलुआ।

आज्ञाचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] योग और तंत्र मे माने हुए शरीर के भीतर के छह् चक्रों मे से छठा, जो सुषुम्ना नाडी के बीचोबीच दोनो भौं के बीच दो दल के कमल के आकार का माना गया है।

आज्ञाता—वि० [सं० आज्ञातृ] आज्ञा देने या करनेवाला (कौ०)।

आज्ञादान—संज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा करना या देना (कौ०)।

आज्ञाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गिरवी जो राजा की आज्ञा से रखी या रखाई गई हो।

आज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] अवगम। ज्ञान। बोध (कौ०)।

आज्ञापक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आज्ञापिका] १ आज्ञा देनेवाला। आज्ञा करनेवाला। २ प्रभु। स्वामी।

आज्ञापत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह लेख जिसके अनुसार किसी आज्ञा का प्रचार किया जाय। हुक्मनामा।

आज्ञापन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आज्ञापित] सूचना। जताना।

आज्ञापरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा प्राप्त करना या स्वीकार करना (कौ०)।

आज्ञापालक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आज्ञापालिका] १ आज्ञा पालन करनेवाला। आज्ञाकारी। आज्ञा के अनुसार चलनेवाला। फरमाँबरदार। २ दास। टहलुआ।

आज्ञापालन—संज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा के अनुसार काम करना। फरमाँबरदारी।

आज्ञापित—वि० [सं०] सूचित। जाना हुआ।

आज्ञाप्य—वि० [सं०] आज्ञा या निर्देश के योग्य (कौ०)।

आज्ञाप्रतिघात—संज्ञा पुं० [सं०] १ आज्ञा का उल्लघन। २. विद्रोह (कौ०)।

आज्ञाभंग—संज्ञा पुं० [सं० आज्ञाभङ्ग] आज्ञा न मानना। हुक्म उदूली।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आज्ञायी—वि० [सं० आज्ञायिन्] बोध या ज्ञानवाला। समझनेवाला (कौ०)।

आज्ञाविधेय—वि० [सं०] आज्ञा माननेवाला। आज्ञाकारी (कौ०)।

आज्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ घृत। घी। उ०—नौकरशाही दे चुकी, भारत तुझे स्वराज्य। डाल न आशा आग मे असहयोग का आज्य।—शंकर०, पृ० २०६। २ (व्यापक भाव मे) घृत की जगह तेल, दूध आदि हवनीय पदार्थ (कौ०)। ३ प्रातःकालिक होत्र के मंत्र (कौ०)। ४ वह सूक्त जिसमे उक्त मंत्र है (कौ०)।

यौ०—आज्यग्रह, आज्यधानी=घृतपात्र। आज्यदोह। आज्यप=घृत पीनेवाला। आज्यपा। आज्यभाग। आज्यभुक्। आज्यस्थाली।

आज्यदोह—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद की तीन ऋचाओं का एक सूक्त जिसका जप या पाठ पवित्र करनेवाला होता है।

आज्यधन्वा—संज्ञा पुं० [सं० आज्यधन्वन्] वह जिसके धनुष मे घृत की मालिश की गई हो (कौ०)।

आज्यपा | संज्ञा पुं० [सं०] सात पितरो मे से एक। मनु के अनुसार ये वैश्यो के पितर हैं जो पुलस्त्य ऋषि के लडके थे।

आज्यभाग—संज्ञा पुं० [सं०] घृत की दो आहुतियाँ जो अग्नि और सोमदेवताओं को उत्तर और दक्षिण भागो मे आधार के पीछे दी जाती हैं।

विशेष—इनके अविच्छिन्न होने का नियम नही है। ऋग्वेदी लोग 'अग्नये स्वाहा' से उत्तर ओर और 'सोयाम स्वाहा' से दक्षिण ओर आहुति देते हैं, पर यजुर्वेदी लोग उत्तर और दक्षिण दिशाओं मे भी पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध का विभाग करके उत्तर और दक्षिण दोनो के पूर्वार्द्ध भाग ही मे देते हैं। आधार और आज्यभाग आहुति के बिना हवि से आहुति नही दी जाती।

आज्यभुक्, आज्यभुज—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

आज्यलेप—संज्ञा पुं० [सं०] घी का मलहम (कौ०)।

आज्यवारि—संज्ञा पुं० [सं०] घृतसमुद्र। सात पौराणिक समुद्रो मे से एक (कौ०)।

आज्यविलापिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घृतपात्र (कौ०)।

आज्यस्थाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक यज्ञपात्र जो बटली के आकार का होता है और जिसमे हवन के लिये घी रखा जाता है।

आज्यहोम, आज्याहुति—संज्ञा पुं० [सं०] घी का होम (कौ०)।

आझा—संज्ञा स्त्री० [सं० आकांक्षा] इच्छा। उ०—प्राणहारा जादव खग प्राजा, अमरो खान पूरवण आझा।—रा० रू०, पृ० २६७।

आझाल(ए)†—वि० [स० आ+ज्वाल] तेजस्वी उ०—अखई प्रोहित वम उजाली, आयौ प्रिय दरसण आझोलो।—रा० रू०, पृ० ३००।

आटना—क्रि०अ० [स० अटन=घूमना से प्रेर० रूप आटन=घुमाना, फेरना।] पोतना। दबाना। उ०–(क) घोडो ही की लीद मे मारौ आटि पठान।—सुजान०, पृ० ७०। (ख) क्यो इस वृद्ध पुरुष को अनुग्रह से आटे देते हो।–तोताराम।–(शब्द०)।

आटरूष—सज्ञा पु० [स०] १ पौधा। अडूसा। २ एक वृत्त का नाम। अटरूप [कौ०]।

आटविक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वन मे निवास करनेवाला व्यक्ति। २ छह प्रकार की सेनाओ मे से एक। ३ वन्य जातियो का प्रधान पुरुष या मुखिया [कौ०]।

आटविक[2]—वि० [स०] १ वन का। वन्य। जगली। २ वनवासियो सबधी [कौ०]।

आटा[1]—सज्ञा पुं० [स० आर्द=जोर से दाबना, प्रा० *अट्ट] १ किसी अन्न का चूर्ण। पिसान। चून। २ पिसा हुआ गेहूँ या जौ।

मुहा०—कगाली या गरीबी मे आटा गीला होना=धन की कमी के समय पास से कुछ और जाता रहना। आटा दाल का भाव मालूम होना=ससार के व्यवहार का ज्ञान होना। आटा दाल की फिक्र=जीविका की चिंता। आटे का आपा=भोली स्त्री। अत्यत सीधी सादी स्त्री। आटा माटी होना=नष्ट भ्रष्ट होना। ३ किसी वस्तु का चूर्ण। बुकनी।

आटा[2]—अटना क्रिया का भूतकालिक रूप। उ०—अगिलहिं कहँ पानी लेई बाँटा। पछिलहिं कहँ नहिं काँदौ आटा।—जायसी ग्र०, पृ० ६।

आटि—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक चिडिया का नाम। आडी। आटी। एक प्रकार की मछली [कौ०]।

आटिक,आटिक्य—वि० [स०] [वि० स्त्री० आटिकी] यात्रा के लिये प्रस्तुत। यात्रा के योग्य [कौ०]।

आटिमुख—सज्ञा पुं० [स०] शल्यक्रिया सबधी एक शस्त्र जिसका आकार आडी चिडिया के मुख या चोच का सा होता है। [कौ०]।

आटी[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] डाट। रोक। टेक।

आटी[2]—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक चिडिया का नाम। आडी [कौ०]।

आटीकन—सज्ञा पु० [स०] गाय के बछडे का उछलना कूदना [कौ०]।

आटीकर—सज्ञा पु० [स०] साँड। वृपभ [कौ०]।

आटोक्रैट—सज्ञा पुं० [अ०] १ निरकुश या स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट्। वह राजा या शासक जो दूसरो पर अपनी शक्ति का अबाध प्रयोग या मनमानी करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता हो। २ वह जिसे किसी विषय मे अमर्यादित अधिकार प्राप्त हो या जो किसी विषय मे अपना अमर्यादित अधिकार मानता हो। मनमानी करनेवाला। स्वेच्छाचारी। निरकुश।

आटोक्रैसी—सज्ञा स्त्री०[अ०] १ दूसरो पर अनियत्रित या अमर्यादित अधिकार जो किसी एक ही व्यक्ति को हो। दूसरो पर मनमाना करने का अधिकार। स्वेच्छाचारिता। निरकुशता। २. किसी निरकुश स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट् की शक्ति। एकतत्रता।

आटोप—सज्ञा पु० [सं०] १ आच्छादन। फैलाव। २ आडबर। विभव। ३ पेट की गुडगुडाहट। ४ फूलना। शोथ [कौ०]। ५ भीड [कौ०]। ६ आधिक्य। प्राचुर्य [कौ०]। ७ गर्व। घमड [कौ०]।

यौ०—घटाटोप। उ०—घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। मुखहि निसान बजावहिं भेरी।—मानस ६।३८।

आट्टोप—सज्ञा पु० [सं०] १ एक रोग जिसमे पेट की नसें तन जाती हैं। २ पेट की नसो का तनाव।

आठ—वि० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ] एक सख्या। चार का दूना।

मुहा०—आठ आठ आँसू रोना=बहुत अधिक विलाप करना। आठो गाँठ कुम्मैत=(१) सर्वगुणसपन्न। (२) चतुर। (३) छँटा हुआ। धूर्त। आठो पहर=दिन रात। आठो पहर जामे से बाहर रहना=हर समय क्रुद्ध रहना। बराबर झल्लाए रहना।

आठक(ए)†—वि० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ+हिं० एक] आठ।

आठवाँ—वि० [स० अष्टम, पा० अट्ठवँ, प्रा० अट्ठय, अट्ठवँ] सख्या में आठ के स्थान पर का। अष्टम। जैसे,–इस पुस्तक का आठवाँ प्रकरण अभी पढना है।

आठैं, आठो—सज्ञा स्त्री० [सं० अष्टमी] अष्टमी तिथि। जैसे,—आठो का मेला उ०—सवत सरस विभावन, भादौं आठैं तिथि, बुधवार।–सूर०, १०।८६।

आठौगाँठ—वि० [हिं० आठों+गाँठ] सर्वांग। उ०—स्यामा सुगति सुवस की आठौं गाँठि अनूप। छुटी हाथ तें पातरी प्यारी छरी स्वरूप।—भिखारी० ग्र०, पृ० २७।

आडंबर[1]—सज्ञा पु० [स० आडबर] १ गभीर शब्द। २ तुरही का शब्द। ३. हाथी की चिग्घाड। ४ ऊपरी बनावट। तडक भडक। टीम टाम। झूठा आयोजन। ढोग। कपटवेष जिससे वास्तविक रूप छिप जाय। जैसे,—(क) उसमे विद्या तो ऐसी ही वैसी है, पर वह आडंबर खूब बढाए हुए है।—(ख) आजकल के साधुओ के आडबर ही आडबर देख लो।

क्रि० प्र०—करना।—फैलना।—बढाना।—रचना।

५ आच्छादन।

यौ०—मेघाडबर।

६ तबू। ७ बडा ढोल जो युद्ध मे बजाया जाता है। पटह। ८ कोलाहल करना। जोर जोर से या अधिक बोलना [कौ०]। ९ बादलो का गर्जन। मेघगर्जन [कौ०]। १० युद्धघोषणा या आक्रमण की सूचना देने का पटह या नगाडा [कौ०]। ११ प्रसन्नता। आह्लाद [कौ०]। १२ पलक [कौ०]। १३ अग-सवाहन। मालिश [कौ०]। १४ क्रोध। कोप [कौ०]।

आडबर[2]—वि० अधिक। उच्च। अपार [कौ०]।

आडबराघात—सज्ञा पु० [स० आडम्बराघात] पटह या नगाडा बजानेवाला आदमी [कौ०]।

आडबरी—वि० [स० आडम्बरिन्] आडबर करनेवाला। ऊपरी बनावट करनेवाला २ घमडी। अभिमानी [कौ०]।

आड[1]—सज्ञा स्त्री० [अल=वारण, रोक] १. ओट। परदा। ओझल। जैसे,—(क) वह दीवार की आड मे छिपा बैठा है। (ख) कपड़े से यहाँ आड़ कर दो।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—ग्राड़े देना(पु)=ग्रोट करना । ग्राड़ के लिये सामने रखना । उ०—ग्राडे दै ग्राले वसन, जाडे हूँ की राति । साहसु क[illegible] सनेह वस, सखी सबै ढिग जाति ।—विहारी र०, दो० २[illegible]३ । २ रक्षा । शरण । पनाह । सहारा । ग्राश्रय । जैसे,—(क) ग्रव वे किसकी ग्राड पकडेंगे ? (ख) जव तक उनके [illegible]ता जीते थे, तव तक वडी भारी ग्राड थी ।

[illegible]० प्र०—करना ।—पकडना ।—लेना ।

३ रोक । ग्रडान । ४. ईंट वा पत्थर का टुकडा जिसे गाडी के पहिए के पीछे इसलिये ग्रडाते है जिसमे पहिया पीछे न हट सके । रोडा । ५ सगीत मे ग्रष्टताल का एक भेद । ६ थूनी । टेक । ७ तिल की वोडी जिसमे तिल भरे रहते हैं । ८ एक प्रकार का कलछुला जो चीनी के कारखानो मे काम ग्राता है ।

ग्राड[2]—सज्ञा स्त्री० [स० ग्रल=डंक, पा० ग्रड, प्रा० ग्राड] विच्छू या भिड ग्रादि का डक ।

ग्राड[3]—सज्ञा स्त्री० [स० ग्रालि=रेखा] १ लवी टिकली जिसे स्त्रियाँ माथे पर लगाती हैं । उ०—गोरी गदकारी परै हँसत कपोलनु गाट । कैसी लसति गँवारि यह सुनकिरवा की ग्राड ।—विहारी र०, दो० ७०८ । २ स्त्रियो के मस्तक पर का ग्राडा तिलक । उ०—केसव, छवीलो छत्र सीसफूल सारथी सो केसर की ग्राडि ग्रवि रथिक रची वनाइ ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ६० । (ख) मगल विंदु सुरगु, ससि मुखु केसरि ग्राड गुरु । इक नारी लहि सगु, किय रसमय लोचन जगत ।—विहारी र०, दो० ४२ । ३ माथे पर पहनने का स्त्रियो का एक गहना । टीका ।

ग्राडगीर—सज्ञा पु० [हिं०+ग्राड़ फा० गीर] खेत के किनारे की घास ।

ग्राडण—सज्ञा स्त्री० [हिं० ग्राडना=रोकना] ढाल ।—(हिं०) ।

ग्राडना—क्रि० स० [ग्रल=वारण करना] १. रोकना । छेकना । उ०—ग्रंचवन दियो न ग्राजु ग्रलि हरि छवि-ग्रमी ग्रघाइ । ग्राडयो प्यासे दृगनि को लाज निगोडी ग्राइ ।—भिखारी० ग्र०, पृ० ४५ । २ बाँधना । ३. मना करना । न करने देना । ४. गिरवी रखना । गहने रखना । जैसे,—सौ रुपए की चीज ग्राड करके तो २५) लाया हूँ ।

ग्राडवंद—सज्ञा पुं० [हिं० ग्राड+फा० वंद] १ फकीरो का लँगोट । २ पहलवानो का लँगोट जिसे वे जाँघिए के ऊपर कसते हैं ।

ग्राडवना—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ग्राडवद' ।

ग्राड़ा[1]—सज्ञा पुं० [स० ग्रालि=रेखा प्रा० ग्राल, ग्राड ग्रथवा सं० ग्रराला प्रा० *ग्राल] [स्त्री० ग्राडी] १ एक धारीदार कपडा । २ जहाज का लट्ठा । शहतीर । ३. नाव या जहाज मे लगे हुए वगली तख्ते । ४ जुलाहो का लकडी का वह सामान जिसपर सूत फैलाया जाता है ।

ग्राडा[2]—वि० १ ग्राँखो के समानातर दाहिनी ग्रोर से वाईं ग्रोर को वाईं ग्रोर से दाहिनी ग्रोर को गया हुग्रा । २ वार से पार तक रखा हुग्रा ।

मुहा०—ग्राडे ग्राना=(१) रुकावट डालना । वाधक होना । जैसे,—जो काम हम शुरू करते हैं, उसी मे तुम वेहतर ग्राड़े ग्राते हो । (२) कठिन समय में काम ग्राना । गाढे मे काम ग्राना । सकट मे खडा होना । उ०—कमरी थोडे दाम की ग्रावै वहुतै काम । खासा मलमल वाफता उनकर राखै मान । उनकर राखै मान वुद जहँ ग्राडे ग्रावै । वकुचा वाँधै मोट राति को झारि विछावै ।—गिरधर (शब्द०) । ग्राडा तिरछा होना=विगडना । मिजाज वदलना । जैसे,—ग्राडे तिरछे क्यो होते हो, सीधे सीधे वातें करो । ग्राड़े पडना=वीच मे पडना । रुकावट डालना । उ०—कविरा करनी ग्रापनी कवहुँ न निष्फल जाय । सात समुद ग्राडा परै मिलै ग्रगाऊ ग्राय ।—कवीर (शब्द०) । ग्राड़े हाथो लेना=किसी को व्यंग्योक्ति द्वारा लज्जित करना । जैसे,—वात ही वात मे उन्होने वलदेव को ऐसा ग्राडे हाथो लिया कि वह भी याद करेगा । ग्राडा होना=रुकावट डालना। ग्रागे न वढने देना ।—मैं पीछे मुनि धीय के, चहग्रो चलन करि चाव । मर्यादा ग्राडी भई, ग्रागे दियो न राव ।—लक्ष्मण (शब्द०) ।

ग्राडा[3]—सज्ञा पु० [हिं० ग्रड्डा] दे० 'ग्रड्डा' । उ०—होइ निचित वैठे तेहि ग्राडा । तव जाना खोचा हिय गाडा । —जायसी ग्र०, पृ० २८ ।

ग्राडाखेमटा—सज्ञा पुं० [हिं० ग्राडा+खेमटा] मृदग का साढे तेरह मात्राग्रो का एक ताल ।

विशेष—इसमे तीन ग्राघात ग्रौर एक खाली रहता है । कोई कोई इसमे खाली का व्यवहार नही करते । इस ताल के वोल ये हैं—धा तेरे केटे धेने धागे नागे तेन । ताके तेरे केटे धेन धागे नागे तेन ।

ग्राडाचौताल—सज्ञा पु० [हिं० ग्राडा+चौताल] मृदग का एक ताल । यह ताल सात मात्राग्रो का होता है ।

विशेप—इसमे चार ग्राघात ग्रौर तीन खाली होते हैं । इस ताल के वोल यो हैं—धाग् धागे दिता, केटे धागे दिता गदि धेने धा। मतातर से इसके वोल यो हैं–धागे तेटे केटे ताग तागे तेटे, केटे तागे धेत्ता तेटेकता गदि धेने धा ।

ग्राडाठेका—सज्ञा पु० [हिं० ग्राडा+ठेका] नो मात्राग्रो का एक ताल ।

विशेष—इसमे चार दीर्घ ग्रौर चार ग्रणु मात्राएँ होती है । चार दीर्घ मात्राग्रो की ग्राठ दून मात्राएँ ग्रौर चार ग्रणु मात्राग्रो की एक मात्रा । इस प्रकार सव मिला कर नो मात्राएँ होती हैं । किंतु जव ठेके मे ४ दीर्घ मात्राएँ दी जाती हैं तो उनमे से प्रत्येक के साथ एक एक मात्रा ग्रणु भी लगा दी जाती है । इसके मृदग के वोल ये हैं–धाकेटे नाग धी

\+ ० + १ + +

ऐन धा धा धिन धि ऐन ताकेटे तागधि ऐन धा धा तिऐन धा ।

ग्राडापचताल—सज्ञा पुं० [हिं० ग्राडा+पंच+ताल] पाँच ग्राघात ग्रौर नौ मात्राग्रों का एक ताल ।

\+ १ १

विशेप—इसके वोल ये हैं–धि निर किट, धिना धि धि ना ना तु ना, कुत्ता' धि धि, ना धि धि ना ।

ग्राडालोट—सज्ञा पुं० [हिं० ग्राडा+लोटना] डावाँडोलपन । कप । क्षोभ (लश०) ।

क्रि० प्र०—मारना = जहाज का लहराना। जहाज का डगमगाना।

आडि, आडी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ एक प्रकार की मछली। २ एक जलपक्षी जिसको शरालि भी कहते हैं। यह गिद्ध की तरह होता है।

आडिटर—सज्ञा पुं० [अ०] आय व्यय का चिट्ठा जाँचनेवाला। आय-व्यय परीक्षक।

आडिवी—सज्ञा पुं० [सं० आडीविन्] [स्त्री० आडिविनी] काक। कौआ [को०]।

आडी[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० आडा] १ तबला, मृदंग आदि बजाने का एक ढग जिसमे किसी ताल के पूरे समय के तीसरे छठे या बारहवें भाग ही मे पूरा ताल बजा लिया जाता है। २ चमारो की छुट्टी।

आडी[2]—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरी'।

आडी[3]—वि० [हिं० आड + ई (प्रत्य०)] सहायक। अपने पक्ष का।

विशेप—जब किसी खेल मे लडको के दो दल हो जाते हैं तब एक लडका अपने दल के लडके को आडी कहता।

आडी[4]—वि० स्त्री० पडी। बेंडी।

मुहा०—आडी करना = चाँदी सोने के वर्क पीटनेवालो की बोली मे लबे पीटे हुए वर्क को चौडा पीटना।

आडू—सज्ञा पुं० [सं०] १ चद्रमा [को०]।

आडू—सज्ञा पुं० [स० अंड अथवा आलु] १ एक प्रकार का फल जिसका स्वाद खटमीठा होता है। देहरादून की ओर यह फल बहुत अच्छा होता है। इसे शफतालू भी कहते हैं। यह फल दो प्रकार का होता है—एक चपटा, दूसरा गोल। २ इस फल का वृक्ष।

आढ[1]—सज्ञा पुं० [सं० आढक] चार प्रस्थ अर्थात् चार सेर की एक तौल।

आढ[2]ⓟ—सज्ञा स्त्री० [हिं० आड] १ ओट। पनाह। २ सहारा। ठिकाना। उ०—ज्यों ज्यों जल मलीन त्यों त्यों जगमण मुख मलीन लहै आढ न।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६४। ३ ⓟअतर। बीच। जैसे,—(क) एक दिन आढ देकर आना। (ख) एक कोस-आढ-देकर ठहरेंगे।

मुहा०—आढ़ आढ़ करना = बीच मे अवधि डालना। आजकल करना। टाल मटूल करना। जैसे,—उ०—(क) हरि तेरी माया को न बिगोयो। शकर को चित हरचो कामिनी सेज छाडि भू सोयो। जारि मोहिनी आढ आढ कियो तब नख सिख तें रोयो।—सूर (शब्द०)। (ख) आढ आढ करत असाढ आयो, एरी आली डर से लगत देखि तम के जमाक ते। श्रीपति ये मैन माते मोरन के बैन सुनि परत न चैन बुँदियान के झमाक ते।—श्रीपति। (शब्द०)।

आढ[3]—वि० [स० आढ्य = सपन्न] कुशल। दक्ष। उ०—स्वारथ लागि रहे वे आढा। नाम लेत जस पावक डाढ़ा।—कबीर, (शब्द०)।

आढ़[4]—सज्ञा स्त्री० [स० आढि] एक प्रकार की मछली।

आढ[5]—सज्ञा स्त्री० [हिं० आड़ = टीका] माथे पर पहनने का स्त्रियो का एक आभूपण। टीका।

आढक—सज्ञा पुं० [स०] १ एक तौल जो चार सेर के बराबर होत है। २ अन्न नापने का काठ का बरतन जिसमे अनुमान से चा सेर अन्न आता है। ३ अरहर।

आढकिक—वि० [स०] १ आढकवाला आढकयुक्त। २ एक आढ से बोया हुआ (खेत) [को०]।

आढकी—सज्ञा स्त्री० [स०] १. अरहर नाम का अन्न। २ सौरा मृत्तिका। गोपीचदन।

आढत—सज्ञा स्त्री० [हिं० आडना = जमानत देना] १. किसी अ व्यापारी का माल रखकर कुछ कमीशन लेकर उसकी बि करा देने का व्यवसाय। २ वह स्थान जहाँ आढ़त का रहता हो। ३ वह धन जो बिक्री कराने के बदले मिलत

आढतदार—सज्ञा पुं० [हिं० आढत + फा दार (प्रत्य०)] वह व्यापारियो का माल अपने यहाँ रखकर दूकानदारो के हा बेचता हो। आढत का काम करनेवाला। अढतिया।

आढतिया—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अढतिया'।

आढ्यकर—वि० [सं० आढ्यङ्कर] असपन्न को सपन्न करनेवाला।

आढ्यभविष्णु—वि० [स० आढ्यम्भविष्णु] धनी होनेवाला [को०]।

आढ्य—वि० [स०] १ सपूर्ण। पूर्ण। २ युक्त। विशिष्ट। ३ धनी [को०]।

यौ०—आढ्यकुलीन = धनी कुल मे उत्पन्न। आढ्यचर, आढ्यपूर्व = पहले का धनी। आढ्यरोग = गठिया। वात रोग। गुणाढ्य। धनाढ्य। पुण्याढ्य। सनाढ्य।

आढ्यता—सज्ञा स्त्री० [स०] धन [को०]।

आढ्यरोगी—वि० [सं० आढ्यरोगिन्] गठिया का रोगी [को०]।

आढ्यवात—सज्ञा पु० [सं०] वातरोग जनित पक्षाघात या लकवा [को०]।

आणक[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ एक रुपये का सोलहवाँ भाग। आना। २ एक प्रकार का रतिबध। पार्श्वसभोग [को०]।

आणक[2]—वि० अधम। कुत्सित।

आणव[1]—वि० [सं०] [स्त्री० आणवी] अत्यत सूक्ष्म। अणु। अत्यत छोटा [को०]।

आणव[2]—सज्ञा पुं० अणुता। अत्यत सूक्ष्मता [को०]।

आणविक—वि० [सं०] अणु से सबद्ध। अणु सबधी।

आणवीन—वि० [स०] अणुधान्य (सावाँ आदि) बोने योग्य [को०]।

आतⓟ—सज्ञा पुं० [स० आत्म, हिं० आतम] आत्मा। उ०—प्रागम पथ बाटा चढ़ी सुर्ति घाटा, गगन गैल फाटा सो आत निआत। घट०, पृ० ३८६।

आतक—सज्ञा० पु० [स०] १. रोब। दबदबा। प्रताप। उ०—सहित गुमान गरब आतक, सुनि राजा के बचन निसक। हम्मीर ह०, पृ० १८। २ भय। शका।

क्रि० प्र०—छाना।—जमना।—फैलना।

३ रोग। बीमारी।

यौ०—आतंक-निग्रह।

४ मुरचग की ध्वनि। ५ पीडा। कष्ट उ०—हो निर्भय निर्जेय शक्ति के मद से यदि, पावस के प्रवाह सा फैला भय, आतक, विषाद।—पार्वती पृ० ८९। ६. सदेह [को०]। ७ निश्चय का अभाव [को०]।

आतंकवादी—वि० [स० आतङ्क+वादिन्] जो राजनीतिक लक्ष्य की सिद्धि के लिये बल या अस्त्र शस्त्र मे विश्वास रखता हो। जैसे, आतंकवादी सघटन।

आतंकित—वि० [सं० आतङ्कित] भीत। त्रस्त। डरा हुआ। उ०—पशु फिरते सानद विहगकुल मगल के स्वर गाते। आतंकित थे असुर, मनुज थे उत्सव पर्व मनाते। पार्वती०, पृ० ५४।

आतचन—सज्ञा पु० [स० आतञ्चन] १ दूध को जमाने के लिये डाला जानेवाला जावन। जामन। २ सकुचित या संकीर्ण करनेवाला पदार्थ या व्यक्ति। ३ दही। ४ जमाने का कारण। ५ जमने मे दूध का जलीय अश। ६ प्रेषक। ७ सतोपकारक या तोषकारक। ८ सकट। विपत्ति। ९. वेग। गति। १०. धातुओ के मिश्रण मे सयोजक तत्व। ११.स्थूलकरण। मोटा करना [को०]।

आत—सज्ञा पुं० [स० आतु] शरीफा। सीताफल। उ०—दिखा रहा था तरु वृ द मे खडा स्व आततायीपन, पेड आत का।—प्रिय० प्र० १०५।

आतत—वि० [सं०] १ चढा या चढाया हुआ। खिचा हुआ। फैला हुआ (धनुष या उसकी डोरी) [को०]।

आततज्य—वि० [स०] जिसके ज्या (धनुप की डोरी) आतत (चढी या खिची) हो [को०]।

आतताई(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आततायी'। उ०—वरनि बताई, छिति व्योम की तनाई जेठ आयौ आतताई पुटपाक सौ करत है।—कवित्त०, पृ० ५९।

आततायी—सज्ञा पुं० [स० आततायिन्] [स्त्री० आततायिनी] १. आग लगानेवाला। २ विष देनेवाला। ३ वधोद्यत शस्त्रधारी। ४ जमीन छीन लेनेवाला। ५ धन हरनेवाला। ४ स्त्री हरनेवाला। ७ क्रूर व्यक्ति। अत्याचारी। लोकपीडक। संताप देनेवाला व्यक्ति।

आतन—सज्ञा पुं० [स०] १ तानना। फैलाना। विस्तृत करना। २ दृश्य [को०]

आतप—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आतपी, आतप्त] १ धूप। घाम। उ०—मृदुल मनोहर सुदर गाता। सहत दुसह बन आतप वाता।—मानस, ४। १। २ गर्मी। उष्णता। ३ सूर्य का प्रकाश। ४. ज्वर। बुखार।

यौ०—आतपक्लात।

आतपत्र, आतपत्रक—सज्ञा पु० [स०] छाता। छतरी। उ०—आतपत्र सा रुचिर शीश पर राजित जिनके व्योम वितान।—पार्वती, पृ० ३०।

आतपन—सज्ञा पुं० [स०] शिव [को०]।

आतपलघन—सज्ञा पुं० [स० आतपलङ्घन] सूर्य के ताप में से गुजरना [को०]।

आतपात्यय—सज्ञा पुं० [स०] १ ग्रीष्म का बीतना। २ सूर्यास्त [को०]।

आतपाभाव—सज्ञा पु० [सं०] सूर्य के ताप का अभाव [को०]।

आतपी[1]—सज्ञा पुं० [आतपिन्] सूर्य।

आतपी[2]—वि० धूप का। धूप सबधी।

आतपीय—वि० [सं०] सूर्यताप संबधी। धूपवाला [को०]।

आतपोदक—सज्ञा पुं० [स०] मृगतृष्णा।

आतम[1](पु)—वि० [हिं०] दे० 'आत्म'। उ०—आतम रूप सकल घट दरस्यो, उदय कियो रवि ज्ञान।—सूर०, २।३३।

आतम[2](पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आत्म'। उ०—एकै आतम हम तुम माही।—सूर० ११। ४।

आतमक(पु)—वि० [स० आत्मक] दे० 'आत्मक'। उ०—प्रथम मंगलाचरन को तीनि आतमक जानि। नमस्कार अरु ध्यान पुनि, आसिरवाद बखान।—भिखारी, ग्र०, भा० १, पृ० १।

आतमगामी(पु)—वि० [स० आत्म+गामिन्] आत्मविद्। उ०—ज्ञान आतमानिष्ठ गुनत यो आतमगामी, कृष्ण अनावृत परम ब्रह्म परमातम स्वामी।—नद० ग्र०, पृ० ४१।

आतमज्ञान(पु)—सज्ञा पुं० [स० आत्मज्ञान] आत्मज्ञता। उ०—ताते आतमज्ञान धन पायो नाहिं अजान।—दीन० ग्र०, पृ० १५२।

आतमवादी(पु)—वि० [स० आत्मवादिन्] दे० 'आत्मवादी'। उ०—जे मुनिनायक आतमवादी।—मानस ७। ७०।

आतमहन(पु)—वि० [स० आत्महन्] दे० 'आत्महन्'। उ०—जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृतनिंदक, मदमति आतमहन् गति जाइ।—तुलसी (शब्द०)।

आतमा(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० आत्मा] दे० 'आत्मा'। उ०—समयसिंधु नाम—वोहित भजि निज आतमा न तारचो।—तुलसीग्र०, पृ० ५५९।

आतर—सज्ञा पुं० [स०] नदी पार जाने का महसूल। नाव का भाडा। उतराई।

आतर्द—सज्ञा पु० [स०] छिद्र। सूराख [को०]

आतर्दन—सज्ञा पुं० [स०] १ धक्का देकर खोनने का कार्य। २ छिद्र। छेद। सूराख [को०]।

आतर्पसा—सज्ञा पुं० [स०] मागलिक लेपन। ऐपन।

आतश—सज्ञा स्त्री० [फा०] आग। अग्नि। उ०—आदि अत मन मध्य न होते, आतश पवन न पानी। लख चौरासी जीव जतु नहिं, साखी शब्द न बानी।—कवीर (शब्द०)।

यौ०—आतशखाना। आतशजनी। आतशदान। आतशपरस्त। आतशबाज। आतशबाजी।

आतशक—सज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० आतशकी] फिरग रोग। उपदश। गर्मी।

आतशखाना—सज्ञा पु० [फा० आतशखानह्] १. अग्नि रखने का स्थान। वह स्थान जहाँ कमरा गर्म करने के लिये आग रखते हैं। २ वह स्थान जहाँ पारसियो की अग्नि स्थापित हो।

आतशगाह—सज्ञा पु० [फा०] दे० 'आतशखाना'।

आतशजदगी—सज्ञा स्त्री० [फा० आतशज़दगी] आग लगाने का काम करना [को०]।

आतशजन—वि० [फा० आतशजन] आग लगानेवाला [को०]।

आतशजनी—संज्ञा स्त्री० [फा० आतशज़नी] आग लगाने का काम।

आतशदान—संज्ञा पुं० [फा०] अँगीठी। बोरसी।

आतशपरस्त—सं० पुं० [फा०] १ अग्नि की पूजा करनेवाला मनुष्य। २ अग्निपूजक। पारसी।

आतशफिशाँ¹—वि० [फा आतशफिशाँ] आग उगलनेवाला [को०]।

आतशफिशाँ—संज्ञा पु० अग्निपर्वत। ज्वालामुखी पहाड [को०]।

आतशवाज—संज्ञा पु० [फा० आतशवाज] आतशवाजी बनानेवाला। हवाईगर।

आतशवाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० आतशवाजी] १ बारूद के बने हुए खिलौनो के जलने का दृश्य। २ बारूद के बने हुए खिलौने। जैसे,—अनार, महताबी, छछूँदर, बान, चकरी, बमगोला, फुलझडी, हवाई आदि। ३ अगौनी (बुदेल०)।

आतशमिजाज—वि० [फा० आतश+अ०मिजाज] शीघ्र उत्तेजित या क्रुद्ध होनेवाला। बिगडैल [को०]।

आतशी—वि० [फा०] १ अग्नि सबधी। २ अग्नि उत्पादक। जैसे,—आतशी शीशा जो सूर्यकिरणो की उष्णता एकत्र करके आग पैदा करता है। ३ जो आग मे तपाने से न फूटे, न तडके, जैसे,—आतशी शीशा।

यौ०—आतशी आईना, आतशी शीशा=वह शीशा जिसके नीचे रखी हुई रुई आदि सूर्यताप से जल जाती है।

आतस(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आतश'। उ०—ज्यो छिन एक ही मे छुटि जाति है आतस के लगे आतसवाजी।—पद्माकर ग्र०, पृ० २४६।

आतशवाज(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आतशवाज'। उ०—आतसवाज अनेक मिले बारूद बनावत।—प्रेमघन० भा० १, पृ० ८२०।

आतशवाजी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आतशवाजी'। उ०—ज्यो छिन एक ही मे छुटि जाति है आतस के लगे आतसवाजी।—पद्माकर ग्र, पृ० २४६।

आतापि, आतापी—संज्ञा पुं० [स०] १ एक असुर जिसे अगस्त्य मुनि ने अपने पेट मे पचा लिया था। २ चील पक्षी।

आतायी—संज्ञा पुं० [सं० आतायिन्] चील पक्षी [को०]।

आतार—संज्ञा पु० [स०] दे० 'आतर'।

आतासदेश—संज्ञा पु० [स० आतु+बं० सदेश] एक प्रकार की बँगला मिठाई। इसमे आत (शरीफा) की सी सुगध आती है और कभी कभी शरीफे के आकाराश की भी इसमें थोडी झलक आती है। यह छेने की बनती है।

आति, आती—संज्ञा स्त्री० [स०] एक पक्षी। आडी [को०]।

आतिथेय—संज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० आतिथेयी] १ अतिथि के सत्कार की सामग्री। २ अतिथिसेवा मे कुशल मनुष्य। ३. मेजवान।

आतिथेयी—वि० [स० आतिथेयिन्] अतिथिसेवा करनेवाला [को०]।

आतिथ्य—संज्ञा पुं० [स०] १ अतिथि का सत्कार। पहुनाई। मेहमानदारी। २ अतिथि को देने योग्य वस्तु। ३. मेहमान। अतिथि।

यौ०—आतिथ्यसत्कार, आतिथ्यसत्क्रिया=अतिथि का सम्मान या स्वागत आदि करना।

आतिरश्चीन—वि० [स०] थोडा तिरछा [को०]।

आतिरेक्य, आतिरैक्य—संज्ञा पुं० [स०] अतिरेक होना। आधिक्य [को०]।

आतिवाहिक—संज्ञा पुं० [स०] मरने के पीछे का वह लिगशरीर जिसे धारण करके जीव यमलोकादि मे भ्रमण करता है। यह शरीर वायुमय होता है। इसका दूसरा नाम 'भोगशरीर' भी है।

आतिश—संज्ञा स्त्री० [फा० आतश] दे० 'आतश'।—इश्क पर जोर नही, है यह वो आतिश गालिब। कि लगाए न लगे और बुझाए न बने।—शेर०, पृ० ५३६।

आतिशदान—संज्ञा पुं० [फा० आतशदान] दे० 'आतशदान'। उ०—आतिशदान के कार्निश पर धरे हुए बक्स और बोतल चमक उठे।—आकाश०, पृ० ५०।

आतिशयिक—वि० [स०] अत्यधिक [को०]।

आतिशय्य—संज्ञा पुं० [स०] अतिशय होने का भाव। आधिक्य। बहुतायत। अधिकाई। ज्यादती।

आतीपाती—संज्ञा स्त्री० [हिं० पाती=पत्ता] पद्दआ। पहाडी डिनो। एक खेल।

विशेष—इसमे बहुत से लडके जमा होकर एक लडके को चोर बनाकर उसे किसी पेड की पत्ती लेने भेजते हैं। उसके चले जाने पर सब लडके छिप रहते हैं। पत्ती लेकर लौट आने पर वह लडका जिसको ढूँढकर छू लेता है, फिर वही चोर कहलाता है। उस लडके को भी उसी प्रकार पत्ती लेने जाना पडता है। यह खेल बहुधा चाँदनी रातो मे खेला जाता है।

आतुर¹—वि० [स०] १ व्याकुल। व्यग्र। घबराया हुआ। जैसे,—इतने आतुर क्यो होते हो, तुम्हारा काम सब ठीक कर दिया जायगा। २ अधीर। उद्विग्न। बेचैन।

यौ०—आतुरसन्यास। कामातुर। क्रोधातुर।

३ उत्सुक। दुखी। रोगी।

आतुर²—क्रि० वि० शीघ्र। जल्दी। उ०—सर मज्जन करि आतुर आवहु। दिक्षा देउँ ज्ञान जिहि पावहु।—मानस, ६।५६।

आतुरता—संज्ञा स्त्री० [स०] १ घबराहट। बेचैनी। व्याकुलता। व्यग्रता। उ०—तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चली जल च्वै।—तुलसी ग्र०, पृ० १६४। २ जल्दी। शीघ्रता।

आतुरताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० आतुरता+हिं० आई (प्रत्य०)] उतावलापन। शीघ्रता। जल्दीबाजी। उ०—उठि कह्यो भोर भयो झँगुली दै मुदित महरि लखि आतुरताई। विहँसी ग्वालि जानि तुलसी प्रभु सकुचि चले जननी उर धाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४३५।

आतुरशाला—संज्ञा पुं० [स०] चिकित्सालय। अस्पताल [को०]।

आतुरसन्यास—संज्ञा पुं० [स०] वह सन्यास जो मरने के कुछ पहले त्वरापूर्वक धारण कराया जाता है।

आतुरालय—संज्ञा पुं० [स०] अस्पताल। चिकित्सागृह [को०]।

आतुरिया ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० आतुर + हिं० इया (प्रत्य०)] आविर्भय। उ०—दीपक ज्योति मलीन भई मनि भूषन जोति की आतुरिया है।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १२१।

आतुरी१ ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० आतुर + ई (प्रत्य०)] १ घबराहट। व्याकुलता। २ शीघ्रता। जल्दीबाजी। उतावलापन। बेसब्री।

आतुरी२ ⓟ—क्रि० वि० घबराहट से। आतुरतापूर्वक। उ०—नारि गई फिरि भवन आतुरी। नद घरनि अब भई चातुरी।—सूर०, १०।३९१।

आतुरी३ ⓟ—वि० घबराया हुआ। व्याकुल।

आतुर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ रोग। बीमारी। २ एक प्रकार का ज्वर [को०]।

आतृण्ण१—वि० [सं०] १ विद्ध। विंधा हुआ। २. कटा हुआ। घायल [को०]।

आतृण्ण२—संज्ञा पुं० १ छिद्र। छेद। २ खुला हुआ घाव या जख्म [को०]।

आतृप्य—संज्ञा पुं० [सं०] सीताफल। शरीफा [को०]।

आतोदी—वि० [सं० आतोदिन्] आघात द्वारा बजनेवाले बाजों को बजानेवाला [को०]।

आतोद्य, आतोद्यक—संज्ञा पुं० [सं०] आघात से बजनेवाला बाजा [को०]।

आत्त—वि० [सं०] १ लिया हुआ। प्राप्त। गृहीत। २ निकाला हुआ। ३. पकडा हुआ। हृत। ४ अनुभव किया हुआ। अनुभूत। ५ आरब्ध। प्रारभ किया हुआ [को०]।

आत्तगंध—वि० [सं० आत्तगन्ध] १. सूँघा हुआ। २ तिरस्कृत। अपमानित। ३ पराजित। पराभूत [को०]।

आत्तगर्व—वि० [सं०] गलितगर्व। जिसका गर्व हर लिया गया हो।

आत्तदंड—वि० [सं० आत्तदण्ड] दंडित। सजायाफ्ता [को०]।

आत्तप्रतिदान—संज्ञा पुं० [सं०] पाई हुई वस्तु को लौटाना या फेरना (को०)।

आत्तमनस्क—वि० [सं०] हर्षित। तुष्ट [को०]।

आत्तमना—वि० [सं० आत्तमनस्] प्रसन्न। हृष्ट [को०]।

आत्तलक्ष्मी—वि० [सं०] धन से वंचित [को०]।

आत्तवचस्—वि० [सं०] वाक् या वाणी से रहित [को०]।

आत्मंभरि—संज्ञा पुं० [सं० आत्मम्भरि] १. जो अकेले अपने को पाले। २ जो देवता पितर आदि को बिना अर्पित किए ही भोजन करे। उदरंभरि [को०]।

आत्म—वि० [सं० आत्मन्] अपना। स्वकीय। निज का।

आत्मक—वि० [सं०] [स्त्री० आत्मिका] मय। युक्त।

विशेष—यह शब्द अकेले नहीं आता, केवल यौगिक बनाने के काम में किसी शब्द के अंत में आता है। जैसे—गद्यात्मक = गद्यमय। पद्यात्मक = पद्यमय।

आत्मकथा—संज्ञा स्त्री० [सं० आत्म + कथा] अपने ही मुख से कहा हुआ या अपना लिखा हुआ जीवनवृत्तांत। आत्मचरित। आपबीती। उ०—सुनकर क्या तुम भला करोगे ?—मेरी भोली आत्मकथा ?—लहर, पृ० ११।

आत्मकल्याण—संज्ञा पुं० [सं०] अपना भला। अपनी भलाई।

आत्मकाम—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्मकामा] १ स्वयं से ही प्रेम करनेवाला। गर्विष्ठ। २. आत्मतत्व का प्रेमी [को०]।

आत्मकृत—वि० [सं०] १ अपना किया हुआ। २ अपने विरुद्ध किया हुआ [को०]।

आत्मक्रीडा—संज्ञा स्त्री० [सं० आत्मक्रीडा] आत्मतत्व के साथ क्रीडा [को०]।

आत्मगत१—वि० [सं०] १ अंतरात्मा का। आंतरिक। उ०—बढ़ रहा था तेज तप का हुआ कृशतर गात। खिली मुख पर दीप्ति कोई आत्मगत अज्ञात।—पार्वती, पृ० १४५। २ मानसिक [को०]।

आत्मगत२—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक के पात्र का अपने ही मन में सोचना या विचार करना जिसे श्रोताओं को अवगत कराने के लिये जोर जोर से कहना पडता है। स्वगत।

आत्मगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपनी गति (को०)।

आत्मगत्या—क्रि० वि० [सं०] अपनी ही गति से। अपने ही कार्य से [को०]।

आत्मगुप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केवाँच। २ शतावर।

आत्मगुप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी जानवर के रहने की छिपी जगह। मांद [को०]।

आत्मगौरव—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी बडाई या प्रतिष्ठा का ध्यान। उ०—सती के पवित्र आत्मगौरव की पुण्यगाथा गूँज उठी भारत के कोने कोने जिस दिन।—लहर, पृ० ६३।

आत्मग्राही—वि० [सं० आत्मग्राहिन्] स्वार्थी। खुदगर्ज [को०]।

आत्मघात—संज्ञा पुं० [सं०] अपने हाथों अपने को मार डालने का काम। खुदकुशी। आत्महत्या।

आत्मघातक१—वि० [सं०] अपने हाथों अपने को मार डालनेवाला।

आत्मघाती—वि० [सं० आत्मघातिन्] [वि० स्त्री० आत्मघातिनी] जो अपने हाथों अपने को मार डाले। उ०—आत्मघाती वन प्रकृति के रमण में खो शक्ति सारी।—पार्वती, पृ० २।

आत्मघोष१—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपनी भाषा में अपना ही नाम पुकारनेवाला—कौआ। २ मुर्गा। ३ वह व्यक्ति जो अपनी प्रशंसा आप करे (को०)।

आत्मघोष२—वि० अपने मुँह से अपनी बडाई करनेवाला।

आत्मचिंतन—संज्ञा पुं० [सं० आत्मचिन्तन] आत्म या आत्मा संबंधी चिंतन। उ०—हृदय नहीं है परिचित मन से, मन है विमुख आत्मचिंतन से।—प्रेमांजलि, पृ० ४५।

आत्मचतुर्थ—वि० [सं०] तीन हिस्सेदारों के अतिरिक्त चौथे भाग या हिस्सेवाला। चौथाई का हिस्सेदार [को०]।

आत्मचरित—संज्ञा पुं० [सं०] अपने जीवन का वृत्त या हाल। उ०—पुराने हिंदी साहित्य में यही एक आत्मचरित मिलता है।—इतिहास०, पृ० २२२।

आत्मज१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आत्मजा] १. पुत्र। लडका। २. कामदेव। ३ रक्त। खून।

आत्मज२—वि० [सं०] स्वत उत्पन्न [को०]।

ग्रात्मजन्म--सञ्ज्ञा पुं० [स०] पुत्र का जन्म [को०]।
ग्रात्मजन्मा--सञ्ज्ञा पु० [स०] ग्रात्मजन्मन्] दे० 'ग्रात्मज'[1]।
ग्रात्मजय--सञ्ज्ञा पु० [स०] इद्रियनिग्रह करने का कार्य [को०]।
ग्रात्मजा--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्री। दुहिता [को०]।
ग्रात्मजात--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रात्मज'।
ग्रात्मजिज्ञासा--सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] [वि० ग्रात्मजिज्ञासु] ग्रपने को जानने की इच्छा।
ग्रात्मजिज्ञासु--वि०[स०] ग्रपने को जानने की इच्छा रखनेवाला।
ग्रात्मज्योति--सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] ग्रात्मा की ज्योति। ग्रतरात्मा का प्रकाश [को०]।
ग्रात्मज्ञ--सञ्ज्ञा पुं० [स०] जो ग्रपने को जान गया हो। जिसे निज स्वरूप का ज्ञान हो।
ग्रात्मज्ञान--सञ्ज्ञा पुं० [स०] निजत्व की जानकारी। जीवात्मा ग्रौर परमात्मा के विपय मे जानकारी। २ ब्रह्म का साक्षात्कार।
ग्रात्मज्ञानी--सञ्ज्ञा पुं०[स० ग्रात्मज्ञानिन्] १ जो ग्रात्मतत्व को जान गया हो। ग्रात्मा ग्रौर परमात्मा के सवध मे जानकारी रखनेवाला।
ग्रात्मतत्र[1]--सञ्ज्ञा पुं० [स० ग्रात्मतत्र] ग्रपना ग्राधार [को०]।
ग्रात्मतत्र[2]--वि० १ ग्रपने वश या ग्रधिकार मे किया हुग्रा। २. ग्रपने पर ग्रवलवित। स्वतत्र [को०]।
ग्रात्मतत्व--सञ्ज्ञा पुं० [स०] ग्रात्मा या परमात्मा का तत्व [को०]।
ग्रात्मतत्वज्ञ--वि० [सं०] ग्रात्मा या परमात्मा के तत्व का जानकार [को०]।
ग्रात्मता--सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] सार। प्रकृति [को०]।
ग्रात्मतुष्टि--सञ्ज्ञा स्त्री०[स०]१ ग्रात्मज्ञान से उत्पन्न सतोप या ग्रानद। २ ग्रात्मसतोप।
ग्रात्मतृप्त--सञ्ज्ञा पु० [स०] स्वय में सतुष्ट [को०]।
ग्रात्मत्याग--सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ परोपकार वुद्धि से ग्रपने लाभ की ग्रोर ध्यान न देना। दूसरो के हित के लिये ग्रपना स्वार्थ छोडना। २ ग्रात्मघात। खुदकुशी (को०)।
ग्रात्मत्यागी--वि० [सं० ग्रात्मत्यागिन्] १ ग्रात्मघाती। २ ग्रविश्वासी [को०]।
ग्रात्मद्रोही--वि० [सं० ग्रात्मद्रोहिन्][वि० स्त्री० ग्रात्मद्रोहिणी] ग्रपने को हानि पहुँचानेवाला। ग्रपनी हानि करनेवाला।
ग्रात्मधारणभूमि--सञ्ज्ञा स्त्री०[स०]वह ग्रधीन राज्य या भूमि जिसका शासनप्रवध वहीं की सेना ग्रौर सपत्ति से हो जाय, साम्राज्य को उसके शासन का कोई खर्च न उठाना पडे (को०)।
ग्रात्मन्--सञ्ज्ञा पुं० [स०] निजत्व। ग्रपनापन। ग्रपना स्वरूप।
विशेप--इसका प्रयोग प्राय यौगिक शब्दों मे होता है ग्रौर यह 'निज' या 'ग्रपना' का ग्रर्थ देता है। जैसे,--ग्रात्मकल्याण। ग्रात्मरक्षा। ग्रात्महत्या। ग्रात्मश्लाधा इत्यादि।
ग्रात्मनिवेदन--सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ ग्रपने ग्रापको या ग्रपना सर्वस्व ग्रपने इष्टदेव पर चढा देना। ग्रात्मसमर्पण। २ नवधाभक्ति मे से ग्रतिम भक्ति।
ग्रात्मनिवेदनासक्ति--सञ्ज्ञा पुं० [सं०]ग्रपने सर्वस्व ग्रौर शरीर को ग्रपने इष्ट देव को सौंप देने की प्रवल इच्छा।
ग्रात्मनिष्ठ--वि० [स०] ग्रात्मज्ञान मे रत। ब्रह्मनिष्ठ। मुमुक्षु।
ग्रात्मनिष्ठा--सञ्ज्ञा स्त्री०[स०]१. ग्रात्मज्ञान की रति। २ ग्रपने प्रति निष्ठा। ग्रात्मविश्वास [को०]।
ग्रात्मनीय--सञ्ज्ञा पु० [स०] १. पुत्र। २ साला। ३ विदूषक।
ग्रात्मनेपद--सञ्ज्ञा पुं०[स०]१ सस्कृत व्याकरण मे धातु मे लगनेवाले दो प्रकार के प्रत्ययो मे से एक। २ वह क्रिया जो ग्रात्मनेपद प्रत्यय लगने से वनी हो।
ग्रात्मप्रशसा--सञ्ज्ञा पु० [स०] ग्रपने मुँह से ग्रपनी वडाई।
ग्रात्मप्रसार--सञ्ज्ञा पुं०[स०]ग्रात्मविस्तार। ग्रपना फैलाव। उ०--मनुष्य उस कोटि की पहुँची हुई सत्ता है जो उस ग्रल्पक्षण मे ही ग्रात्मप्रसार को वद्ध रखकर सतुष्ट नही हो सकती।--रस०, पृ० १४८।
ग्रात्मप्रेरणा--सञ्ज्ञा स्त्री० [स०]ग्रपने भीतर से प्राप्त प्रेरणा। ग्रातरिक प्रेरणा। उ०--ग्रात्मप्रेरणा की पीडा से ग्राकुल थे सव प्राणी।--पार्वती, पृ० ५६।
ग्रात्मवोध--सञ्ज्ञा पु०[स०] दे० 'ग्रात्मज्ञान'। उ०--ग्रात्मवोध ग्रौर जगद्वोध के वीच ज्ञानियो ने गहरी खाई खोदी पर हृदय ने कभी उसकी परवा न की।--रस०, पृ० ५५।
ग्रात्मभू[1]--वि० [स०] १ ग्रपने शरीर से उत्पन्न। २ ग्राप ही ग्राप उत्पन्न।
ग्रात्मभू[2]--सञ्ज्ञा पु० १. पुत्र। २. कामदेव। ३ ब्रह्मा। ४ विष्णु। ५. शिव।
ग्रात्मभूत--वि०[स०]ग्रात्ममय। वह जो ग्रपना ग्रग वन गया हो। ग्रपनाया हुग्रा।
ग्रात्मयोनि--सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ ब्रह्मा। २ विष्णु। ३ महेश। ४ कामदेव।
ग्रात्मरक्षक--वि० [स०] [वि० स्त्री० ग्रात्मरक्षिका] ग्रपनी रक्षा करनेवाला।
ग्रात्मरक्षण--सञ्ज्ञा पुं० [स०] ग्रपना वचाव। ग्रपनी हिफ़ाजत।
ग्रात्मरक्षा--सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'ग्रात्मरक्षण'। २ इद्रवारुणी वृक्ष [को०]।
ग्रात्मरत[1]--वि० [स० ग्रात्मरति] १ जिसे ग्रात्मज्ञान हुग्रा हो। ब्रह्मज्ञानप्राप्त। ब्रह्मज्ञानी। २ स्वय को प्रेम करनेवाला।
ग्रात्मरत[2]--सञ्ज्ञा पुं० [स०] महेंद्रवारुणी। वडी इद्रायन।
ग्रात्मरति--सञ्ज्ञा स्त्री०[स०]१ ग्रात्मज्ञान। ब्रह्मज्ञान। २ स्वय से प्रेम करना।।
ग्रात्मवचक--वि० [स० ग्रात्मवञ्चक] ग्रपने को ग्राप ठगनेवाला। ग्रपनी हानि स्वय करनेवाला। ग्रज्ञानी।
ग्रात्मवाद--सञ्ज्ञा पुं० [स०] ग्रहभाव। उ०--प्रथम हम हम करत पहुँच्यो ग्रात्मवाद कठोर।--वुद्ध०, पृ० १४५।
ग्रात्मविक्रय--सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० ग्रात्मविक्रयी] ग्रपने को ग्राप ही वेच डालना।
विशेष--मनु के ग्रनुसार यह कर्म एक उपपातक है।

आत्मविक्रयी—वि० [सं० आत्मविक्रयिन्] अपने को बेचनेवाला।
आत्मविक्रेता—संज्ञा पुं० [सं० आत्मविक्रेतृ] वह दास जो अपने आपको बेचकर दास हुआ हो।
आत्मविचय—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी तलाशी या नगाझोली देना।
आत्मविद्—संज्ञा पुं० [सं०] १ बुद्धिमान व्यक्ति। आत्मज्ञानी। २. अपने तथा अपने कुटुंब परिवार को जाननेवाला व्यक्ति ३. शिव का एक नाम (को०)।
आत्मविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह विद्या जिससे आत्मा और परमात्मा का ज्ञान हो। ब्रह्मविद्या। अध्यात्मविद्या। २. मिस्मेरिज्म।
आत्मविश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी शक्ति पर विश्वास। अपनी योग्यता का भरोसा।
आत्मविस्मृत—वि० [सं०] स्वयं को भूला हुआ।
आत्मविस्मृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपने को भूल जाना। अपना ध्यान न रखना। आत्मविस्मरण।
आत्मशल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] सतावरी।
आत्मशासन—संज्ञा पुं० [सं० आत्म+शासन] दे० 'स्वराज' (क्व०)।
आत्मश्लाघा—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आत्मश्लाघी] अपनी तारीफ।
आत्मश्लाघी—वि० [सं० आत्मश्लाघिन्] अपनी प्रशंसा करनेवाला।
आत्मसंभव¹—वि० [सं० आत्मसम्भव] [वि० स्त्री० आत्मसंभवा] अपने शरीर से उत्पन्न।
आत्मसंभव²—संज्ञा पुं० पुत्र।
आत्मसंमान—संज्ञा पुं० [सं० आत्मसम्मान] आत्मगौरव। अपने गौरव का भाव।
आत्मसंयम—संज्ञा पुं० [सं०] अपने मन को रोकना। इच्छाओं को वश में रखना।
आत्मसंवेदन—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी आत्मा का अनुभव। आत्मबोध।
आत्मसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] अपना सुधार।
आत्मसमुद्भव¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्मसमुद्भवा] १ अपने शरीर से उत्पन्न। २ अपने ही आप उत्पन्न।
आत्मसमुद्भव²—संज्ञा पुं० १ ब्रह्मा। २ विष्णु। ३ शिव। ४ कामदेव।
आत्मसमुद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कन्या। २. बुद्धि।
आत्मसाक्षी—संज्ञा पुं० [सं० आत्मसाक्षिन्] जीवों का द्रष्टा।
आत्मसिद्ध—वि० [सं०] अपने आप होनेवाला। बिना प्रयास ही होनेवाला।
आत्मसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आत्मभाव की प्राप्ति। मुक्ति। मोक्ष।
आत्महत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपने आपको मार डालना। खुदकुशी २ अपने आपको दुःख देना।
आत्महन्—वि० [सं०] १. जो अपने आप को मार डाले। आत्मघाती। २ जो अपनी भलाई के प्रति उदासीन हो या उसकी उपेक्षा करे (को०)। ३ अविश्वासी (को०)। ४. मंदिर आदि में नौकरी करनेवाला (सेवक या पुजारी) (को०)।

आत्महिंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आत्महत्या'।
आत्मा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० आत्मिक, आत्मीय] १ जीव। २ चित्त। ३ बुद्धि। ४ अहंकार। ५. मन। ६. ब्रह्म।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विशेषकर जीव और ब्रह्म के अर्थ में होता है। इसका यौगिक अर्थ 'व्याप्त' है। जीव शरीर के प्रत्येक अंग में व्याप्त है और ब्रह्म संसार के प्रत्येक अणु और अवकाश में। इसीलिये प्राचीनों ने इसका व्यवहार दोनों के लिये किया है। कहीं कहीं 'प्रकृति' को भी शास्त्रों में इस शब्द से निर्दिष्ट किया गया है। साधारणतः जीव, ब्रह्म और प्रकृति तीनों के लिये या यों कहिए, अनिर्वचनीय पदार्थों के लिये इस शब्द का प्रयोग हुआ है। इनमें 'जीव' के अर्थ में इसका प्रयोग मुख्य और 'ब्रह्म' और 'प्रकृति' के अर्थों में क्रमशः गौण है। दार्शनिकों के दो भेद हैं—एक आत्मवादी और दूसरे अनात्मवादी। प्रकृति से पृथक् आत्मा को पदार्थविशेष माननेवाले आत्मवादी कहलाते हैं। आत्मा को प्रकृति-विकार-विशेष मानने वाले अनात्मवादी कहलाते हैं, जिनके मत में प्रकृति के अतिरिक्त आत्मा कुछ है ही नहीं। अनात्मवादी आजकल योरप में बहुत हैं। आत्मा के विषय में इनकी धारणा यह है कि यह प्रकृति के भिन्न भिन्न वैकारिक अंशों के संयोग से उत्पन्न एक विशेष शक्ति है, जो प्राणियों में गर्भावस्था में उत्पन्न होती है और मरणपर्यंत रहती है। पीछे उन तत्वों के विश्लेषण से, जिनसे यह उत्पन्न हुई थी, नष्ट हो जाती है। बहुत दिन हुए भारतवर्ष में यही बात 'बृहस्पति' नामक विद्वान ने कही थी जिसके विचार चार्वाक दर्शन के नाम से प्रख्यात हैं और जिसके मत को चार्वाक मत कहते हैं। इनका कथन है कि 'तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात्'। देह के अतिरिक्त अन्यत्र आत्मा के होने का कोई प्रमाण नहीं है, अतः चैतन्यविशिष्ट देह ही आत्मा है। इस मुख्य मत के पीछे कई भेद हो गए थे और वे क्रमशः शरीर की स्थिति और ज्ञान की प्राप्ति में कारणभूत इंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि और अहंकार को ही आत्मा मानने लगे। कोई इसे विज्ञान मात्र अर्थात् क्षणिक मानते हैं। वैशेषिक दर्शन में आत्मा को एक द्रव्य माना है और लिखा है कि प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मन, गति, इंद्रिय, अंतर्विकार जैसे—भूख, प्यास, ज्वर, पीडादि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न आत्मा के लिंग हैं। अर्थात् जहाँ प्राणादि लिंग वा चिह्न देख पड़ें वहाँ आत्मा रहती है। पर न्यायकार गौतम मुनि के मत से 'इच्छा' द्वेष, प्रयत्न, सुख दुःख और ज्ञान (इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःख-ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्) ही आत्मा के चिह्न हैं। सांख्यशास्त्र के अनुसार आत्मा एक अकर्ता साक्षीभूत प्रसंग और प्रकृति से भिन्न एक अतींद्रिय पदार्थ है। योगशास्त्र के अनुसार यह वह अतींद्रिय पदार्थ है जिसमें क्लेश, कर्मविपाक और आशय हो। ये दोनों (सांख्य और योग) आत्मा के स्थान पर पुरुष शब्द का प्रयोग करते हैं। मीमांसा के अनुसार कर्मों का कर्ता और फलों का भोक्ता एक स्वतंत्र अतींद्रिय पदार्थ है। पर मीमांसकों में प्रभाकर के मत से 'अज्ञान' और कुमारिल भट्ट के मत से 'अज्ञानोपहत चैतन्य' ही आत्मा है। वेदांत के मत से नित्य,

शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव ब्रह्म का अंशविशेष आत्मा है। बुद्धदेव के मत से एक अनिर्वचनीय पदार्थ, जिसकी आदि और अंत अवस्था का ज्ञान नहीं है, आत्मा है। उत्तरीय बौद्धो के मत से यह एक शून्य पदार्थ है। जैनियो के मत से कर्मो का कर्त्ता फलो का भोक्ता और अपने कर्म से मोक्ष और बंधन को प्राप्त होनेवाला एक अरूपी पदार्थ है।

मुहा०—**आत्मा ठंढी होना** =(१) तुष्टि होना। तृप्ति होना। संतोष होना। प्रसन्नता होना। जैसे,—उसको भी दंड मिले तब हमारी आत्मा ठंढी हो। (२) पेट भरना। भूख मिटना। जैसे,—बाबा कुछ खाने को मिले तो आत्मा ठंढी हो। **आत्मा मसोसना** =(१) भूख सहना। भूख दबाना। जैसे,—इतने दिनों तक आत्मा मसोसकर रहो। (२) किसी प्रबल इच्छा को दबाना। किसी आवेग को भीतर ही भीतर सहना।

७ देह। शरीर। ८ सूर्य। ९ अग्नि। १० वायु। ११ स्वभाव। धर्म। १२ पुत्र [को०]।

आत्माधीन[1]—वि० [सं०] अपने वश में।

आत्माधीन[2]—संज्ञा पुं० १ पुत्र। २ विदूषक। ३ साला (को०)।

आत्मानंद—संज्ञा पुं० [सं० आत्मानन्द] आत्मा का ज्ञान। आत्मा में लीन होने का सुख।

आत्मानुभव—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपना अनुभव या तजुरबा। स्वानुभूति। २ आत्मा की अनुभूति।

आत्मानुरूप—संज्ञा पुं० [सं०] जो जाति, वृत्ति और गुण आदि में अपने समान हो। स्वानुरूप।

आत्माभिमान—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी इज्जत या प्रतिष्ठा का खयाल। मान अपमान का ध्यान। स्वाभिमान।

आत्माभिमानी—संज्ञा पुं० [सं० आत्माभिमानिन्] जिसे अपनी इज्जत या प्रतिष्ठा का बड़ा खयाल हो। जिसे मान अपमान का ध्यान हो। स्वाभिमानी।

आत्मामिष संधि—संज्ञा स्त्री० [सं० आत्मामिषसन्धि] कामंदकीय नीति के अनुसार वह संधि जो स्वयं सेना के साथ शत्रु के पास जाकर की जाय।

आत्माराम—संज्ञा पुं० [सं०] १ आत्मज्ञान से तृप्त योगी। २ जीव। ३ ब्रह्म। ४ तोता। सुग्गा।

आत्मावलंबी—संज्ञा पुं० [सं० आत्मावलम्बिन्] जो सब काम अपने बल पर करे। जो किसी कार्य के लिये दूसरे की सहायता का भरोसा न रखे। स्वावलंबी।

आत्मिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्मिका] १ आत्मासंबंधी। २ अपना। ३ मानसिक।

आत्मीकृत—वि० [सं०] अपनाया हुआ। स्वीकृत।

आत्मीय[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्मीया] निज का। अपना। स्वकीय।

आत्मीय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] स्वजन। अपना संबंधी। रिश्तेदार। इष्टमित्र। निकट का व्यक्ति।

आत्मीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपनायत। स्नेहसंबंध। मैत्री।

आत्मोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] परोपकार के लिये अपने को दुःख या विपत्ति में डालना। दूसरे की भलाई के लिये अपने हिताहित का ध्यान छोड़ना। स्वार्थत्याग।

आत्मोद्धार—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी आत्मा को संसार के दुःख से छुड़ाना या ब्रह्म में मिलाना। मोक्ष।

आत्मोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुत्र। २ कामदेव। ३ दुख। पीड़ा [को०]।

आत्मोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कन्या। २ बुद्धि। ३ माषपर्णी [को०]।

आत्मोन्नति—संज्ञा पुं० [सं०] १ आत्मा की उन्नति। २ अपनी तरक्की। स्वविकास।

आत्मोपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० आत्मोपजीविन्] १ अपने श्रम से जीविकोपार्जन करनेवाला। २ रोजही या दैनिक मजदूरी पर काम करनेवाला श्रमिक। ३ अभिनेता [को०]।

आत्मोपम—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र [को०]।

आत्यंतिक—वि० [सं० आत्यन्तिक] [वि० स्त्री० आत्यन्तिकी] १ जो बहुतायत से हो। २ जिसका ओर छोर न हो।

यौ०—**आत्यंतिकदुःखनिवृत्ति** = मोक्ष। **आत्यंतिकप्रलय** = पूर्ण प्रलय।

आत्ययिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्ययिकी] १. विनाशक। २ दुर्भाग्यपूर्ण। ३. आवश्यकीय। ४. देर किया हुआ। विलंबित [को०]।

आत्रेय[1]—वि० [सं० अत्रि] १. अत्रि के गोत्रवाला।

आत्रेय[2]—संज्ञा पुं० १ अत्रि के पुत्र—दत्त, दुर्वासा, चंद्रमा। २ आत्रेयी नदी के तट का प्रदेश जो दीनाजपुर जिले के अंतर्गत है। ३. शिव की एक उपाधि [को०]।

आत्रेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उपनिषद् काल की एक विदुषी तपस्विनी जो वेदांत में बड़ी निष्णात थी। २ पश्चिमी बंगाल की एक नदी का नाम। तिस्ता। ३ रजस्वला स्त्री। ४ अत्रि गोत्र की स्त्री।

आथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्थ] धन। पूँजी। उ०—आथ तेण अभिलाष इम, इण भुजनूँ आवत।—बाँकीदास ग्रं०, भा० ३ पृ० ६।

आथना[1](पु)—क्रि० अ० [सं० अस = होना, सं० अस्ति, प्रा० अत्थि] होना। उ०—(क) कबिरा पढना दूर कर, आथि पड़ा संसार। पीर न उपजै जीव की, क्यों पावै करतार।—कबीर (शब्द०)। (ख) काया माया संग न आथी। जेहि जिउ सौंपा सोई साथी।—जायसी ग्रं०, पृ० ६०।

आथना[2](पु)—क्रि० अ० [सं० अस्त, प्रा० अत्थ] अस्त होना। डूबना। समाप्त होना।

आथर्वण—संज्ञा पुं० [सं०] १ अथर्ववेद का जाननेवाला ब्राह्मण। २. अथर्ववेदविहित कर्म। ३ अथर्वा ऋषि का पुत्र। ४ अथर्वा गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति।

आथी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्यात्, हिं० थाती अथवा सं० आयकी = आर्थिक स्थिति प्रा० * अत्थिई, * आथइ] पूँजी। धन। उ०—साथी आथि निआथि जो सकै साथ निरवाहि।—जायसी (शब्द०)।

आथी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्थ] अर्थसंपन्नता। अमीरी। खुशहाली।

आदंश—संज्ञा पुं० [सं०] १ दाँत से काटना। २ दाँत काटने से बना हुआ घाव। ३ दाँत [को०]।

आदत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ स्वभाव। प्रकृति। २ अभ्यास। टेव। बान। उ०—तू भी मजबूर है जाती नहीं आदत तेरी।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५४५।

क्रि० प्र०—**डालना**।—**पड़ना**।—**लगना**।—**लगाना**।

आदम—संज्ञा पुं० [अ० आदम, तुल० सं० आदिम] १ इबरानी और अरबी लेखकों के अनुसार मनुष्यों का आदि प्रजापति। उ०—आदम आदि सुद्धि नहिं पावा। मामा हौवा कहँते आवा।—कबीर (शब्द०)। २. आदम की संतान। मनुष्य। जैसे,—चलते चलते वह एक ऐसे जंगल मे पहुँचा जहाँ न कोई आदम था न आदमजाद।

यौ०—आदमकद। आदमखोर। आदमचश्म। आदमजाद।

आदमकद—वि० [अ० आदम+कद] आदमी के कद के बराबर। उ०—कमरे मे बडे बडे आदमकद आइने रखे जाते हैं।—गबन, पृ० १०६।

आदमखोर—वि० [अ०आदम+फा० खोर] आदमी को खानेवाला। मानवभक्षी (शब्द०)।

आदमचश्म—संज्ञा पुं० [अ० आदम+फा० चश्म=चक्षु] वह घोडा जिसकी आँख की स्याही मनुष्य की आँख की स्याही के समान हो। ऐसा घोडा बडा नटखट होता है।

आदमजाद—संज्ञा पुं० [अ० आदम+फा० जाद=पैदा] १. आदम की संतान। २ मनु की संतान। मनुष्य।

आदमियत—संज्ञा पुं० [अ०]१ मनुष्यत्व। इंसानियत। २ सभ्यता। क्रि० प्र०—पकडना।—सीखना।

आदमी—संज्ञा पुं० [अ०] आदम की संतान। मनुष्य। मानव जाति।
मुहा०—आदमी बनना = सभ्यता सीखना। अच्छा व्यवहार सीखना। शिष्टता सीखना। आदमी बनाना = शिष्ट और सभ्य करना।
२ नौकर। सेवक। जैसे,—जरा अपने आदमी से मेरी यह चिट्ठी डाकखाने भिजवा दो।

आदमीयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ मनुष्यत्व। इंसानियत। उ०—गर फरिश्तावश हुआ कोई तो क्या। आदमीयत चाहिए इंसान मे।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५५१। २. सभ्यता।

आदर—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आदरणीय आदृत, आदर्य] सम्मान। सत्कार। प्रतिष्ठा। इज्जत। कदर। जैसे,—(क) वे बडे आदर के साथ हमें अपने घर ले गए। (ख) तुलसीदास के रामचरितमानस का समाज मे बडा आदर है।

आदरणीय—वि० [सं०] आदरयोग्य। आदर करने के लायक। सम्माननीय।

आदरना(पु)—क्रि०स०[सं० आदर से नाम०] आदर करना। मानना। उ०—जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कवि करहीं।—मानस, १।१४।

आदरभाव—संज्ञा पुं० [सं० आदर+भा] सत्कार। सम्मान। कदर। प्रतिष्ठा। जैसे,—जहाँ अपना आदर भाव नहीं, वहाँ क्यों जायें? उ०—ऊधौ, चलौ विदुर के जइयें। दुरजोधन के कौन काज जहँ आदर भाव न पइयें।—सूर०, १।२३६।

आदरस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आदर्श] दे० 'आदर्श'। उ०—दरसो सारसरम भरे दृग आदरस मँगाय।—स० सप्तक, पृ० २५८।
यौ०—आदरसमंदिर=शीशमहल। उ०—आछे अवलोकि रही आदरस मंदिर मे इंदीवर सुंदर गुविंद को मुखारविंद।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०१।

आदर्य—वि० [सं०] आदर के योग्य। आदरणीय।

आदर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १ दर्पण। शीशा। आईना। २ वह जिससे ग्रंथ का अभिप्राय झलक जाय। टीका। व्याख्या। ३ वह जिसके रूप और गुण आदि का अनुकरण किया जाय। नमूना। जैसे,—उसका चरित्र हम लोगों के लिये आदर्श है।
यौ०—आदर्शमंडल। आदर्शमंदिर। आदर्शरूप।

आदर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] दर्पण। शीशा [को०]।

आदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रदर्शित करना। दिखलाना। २ शीशा। दर्पण [को०]।

आदर्शबिंब—संज्ञा पुं० [सं० आदर्श बिम्ब] गोला शीशा [को०]।

आदर्शमंडल—संज्ञा पुं० [सं० आदर्श मंडल] १. एक तरह का साँप। २ गोल आईना। ३ दर्पण का तल [को०]।

आदर्शमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० आदर्श मंदिर] शीशमहल।

आदर्शवाद—संज्ञा पुं० [सं० आदर्श+वाद] [अं० आइडियलिज्म] वस्तुओं के ज्यों के त्यों वर्णन को प्रमुखता या महत्व न देकर न करके उनके आदर्शरूप का वर्णन करना। पश्चिम के दर्शन, शिक्षा दर्शन और साहित्यिक वादों आदि मे प्रचलित विशेष विचारधारा।

आदर्शवादी—वि०[सं० आदर्शवादिन्] [अं० आइडियलिस्ट] आदर्शवाद को माननेवाला या उसके अनुसार रचना करनेवाला।

आदर्शात्मक—वि०[सं०] काल्पनिक आदर्श के रूप मे विषयों के चित्रण या निरूपण से युक्त। आदर्शवाद से संबध रखनेवाला। आदर्शपरक।

आदहन—संज्ञा पुं० [सं०]१ ईर्ष्या। जलन। २ श्मशान। चिताभूमि।

आदा†—संज्ञा पुं० [सं० आर्द्रक] अदरक।

आदान—संज्ञा पुं० [सं०] १ लेना। ग्रहण करना। २ अर्जन। ३. रोग का लक्षण। ४ बाँधना। सुनियोजित करना। ५ घोडे को फँसाना या बंधनग्रस्त करना। जकडबंदी। ६ क्रिया या कार्य। ७. पराभूत करना [को०]।

आदानप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] लेना देना।

आदानसमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार आचारनियंत्रण के लिये स्थापित पंचसमिति मे से एक जिससे यह ध्यान रहता है कि किसी जीव को कष्ट न हो [को०]।

आदापन—संज्ञा पुं० [सं०] कोई वस्तु ग्रहण करने के लिये किसी को बुलाना या अभिप्रेरित करना [को०]।

आदाब—संज्ञा पुं० [अ०] १. नियम। कायदा। २ लिहाज। आन। ३ नमस्कार। प्रणाम। सलाम। जोहार।
मुहा०—आदाब अर्ज करना = प्रणाम करना। आदाब बजा लेना=नियमानुसार प्रणाम करना।

आदि¹—वि० [सं०] प्रथम। पहला। शुरू का। आरंभ का। जैसे—वाल्मीकि आदिकवि माने जाते हैं। उ०—गाइ गाउँ के वत्सला मेरे आदि सहाई।—सूर०, १।२३८।

आदि²—संज्ञा पुं० [सं०]१ आरंभ। बुनियाद। मूल कारण। जैसे,—(क) इस झगडे का आदि यही है। (ख) हमने इस पुस्तक को आदि से अंत तक पढ डाला। २ परमात्मा। परमेश्वर। उ०—आदि किएउ आदेश सुन्नहि ते अस्थूल भए।—जायसी ग्रं०, पृ० ३०८।

मुहा०—आदि से अंत तक = आद्योपात। शुरू से आखीर तक। सपूर्ण। समग्र। सब।

आदि२—अव्य० वगैरह। आदिक। उ०—सिंहसावक ज्यो तजै गृह, इद्र आदि डरात।सूर०, १।१०६।

आदिक—अव्य० [स०] आदि। वगैरह। उ०—कौसिल्या आदिक महतारी, आरति करहि बनाइ।—सूर० ९।२९।

आदिकर—वि० [स०] आदि करनेवाला। स्रष्टा [को०]।

आदिकरणी—सज्ञा स्त्री० [स०] एक पौधा [को०]।

आदिकर्ता—वि० [स०] आदिकर। स्रष्टा [को०]।

आदिकर्म—सज्ञा पुं० [स०] कर्म का आदि या आरभ [को०]।

आदिकवि—सज्ञा पु० [स०] वाल्मीकि ऋषि। उ०—जान आदि-कवि नाम प्रभाऊ। भएउ सुद्ध कहि उलटा नाऊँ।—मानस, १।१९। २ शुक्राचार्य।

आदिकाड—सज्ञा पु० [स० आदिकाण्ड] वाल्मीकि रामायण का पहला काड [को०]।

आदिकारण—सज्ञा पुं० [स०] पहला कारण जिससे सृष्टि के सब व्यापार उत्पन्न हुए। मूलकारण।

विशेष—साख्यवाले प्रकृति को आदिकारण मानते हैं। नैयायिक पुरुप या ईश्वर को आदि कारण कहते हैं।

आदिकाल—सज्ञा पु० [स०] प्रारभिक काल या समय [को०]।

आदिकालीन—वि० [स०] प्रारभिक या आदिकाल से सबध रखनेवाला [को०]।

आदिकाव्य—सज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि रामायण।

विशेप—यह महाकाव्य सबसे पुराना या पहला माना जाता है।

आदिकृत्—वि० [सं०] स्रष्टा [को०]।

आदिकेशव—सज्ञा पु० [स०] १ काशी स्थित एक देवविग्रह। २. विष्णु [को०]।

आदिगदाधर—सज्ञा पुं० [स०] विष्णु [को०]।

आदिजिन—सज्ञा पु० [स०] ऋषभदेव (जैन) [को०]।

आदित—क्रि० वि० [सं०] प्रारभ से। आदि से [को०]।

आदित(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आदित्य'। उ०—हरि दरसन सत्राजित आयौ। लोगनि जान्यौ आदित आवत हरि सौं जाइ सुनायौ।—सूर०, १०।४८०८।

आदिताल—सज्ञा पु० [स०] सगीत मे ताल का प्रकारविशेष [को०]।

आदितेय—सज्ञा पुं० [स०] १ अदिति का पुत्र। २. देव। ३. सूर्य [को०]।

आदित्य—सज्ञा पुं० [स०] १ अदिति के पुत्र। २ देवता। ३ सूर्य। ४ इद्र। ५. वामन। ६ वसु। ७ विश्वेदेवा। ८ वारह मात्राओ के छदो की सज्ञा, जैसे—तोमर लीला। ९ मदार मदार का पौधा।

यौ०—आदित्यपुराण = एक उपपुराण। आदित्यपर्णिका, आदित्यपर्णिनी, आदित्यपर्णी, आदित्यवल्लभा = एक जलीय लता। आदित्यसूक्त, आदित्यस्तोत्र, आदित्यहृदय = सूर्य सबधी सूक्त या स्तोत्र।

आदित्यकेतु—सज्ञा पुं० [स० आदित्य + केतु] १ एक राजा जिसके वशजों ने नौ पीढ़ी तक ३७५ वर्प दिल्ली मे राज्य किया था। २ धृतराष्ट्र का एक पुत्र [को०]। ३ सूर्य का सारथि [को०]।

आदित्यगति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सूर्य का मार्ग [को०]।

आदित्यगर्भ—सज्ञा पुं० [स०] एक बोधिसत्व [को०]।

आदित्यज्योति—वि०[स०] जिसमे सूर्य जैसा तेज या ज्योति हो[को०]।

आदित्यदर्शन—सज्ञा पुं० [स०] चार मास के बालक को सूर्यदर्शन कराने का एक सस्कार [को०]।

आदित्यपत्र—सज्ञा पुं० [स०] १ एक पौधा। २ आक का पत्र या पत्ता [को०]।

आदित्यपाक—वि० [स०] सूर्यताप मे पकाया हुआ [को०]।

आदित्यपुष्पिका—सज्ञा स्त्री० [स०] लाल फूल का मदार।

आदित्यभक्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर।

आदित्यमडल—सज्ञा पुं० [स० आदित्यमण्डल] सूर्य के चतुर्दिक् पडनेवाला वलय या घेरा [को०]।

आदित्यलोक—सज्ञा पुं० [स०] सूर्यलोक [को०]।

आदित्यवार—सज्ञा पुं० [स०] एतवार। रविवार।

आदित्यव्रत—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आदित्यव्रतिक] सूर्य का व्रत [को०]

आदित्यशयन—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की निद्रा या शयन [को०]।

आदित्यसंवत्सर—सज्ञा पु० [सं०] सौर वर्प [को०]।

आदित्यसूनु—सज्ञा पुं० [स०] सूर्य का पुत्र—१. शनैश्चर। २ यम। ३ कर्ण। ४ सुग्रीव। ५ मनु [को०]।

आदित्यानुवर्ती—वि० [स० आदित्यानुवर्तिन्] सूर्य का अनुवर्तन या अनुगमन करनेवाला [को०]।

आदित्व—सज्ञा पुं० [स०] पूर्वता। प्राथमिकता [को०]।

आदित्सा—सज्ञा स्त्री० [स०] लेने की इच्छा [को०]।

आदित्सु—वि० [सं०] ग्रहण करने या लेने का इच्छु [को०]।

आदिदीपक—सज्ञा स्त्री० [स०] छद की विशेप व्यवस्था (जिसमे क्रियापद वाक्य के आदि मे आता है) [को०]।

आदिदेव—सज्ञा पु० [स०] १ ब्रह्मा। २ विष्णु। ३ शिव। ४ गणेश। ५ सूर्य [को०]।

आदिदैत्य—सज्ञा पु० [स०] हिरण्यकशिपु [को०]।

आदिनव—सज्ञा पुं० [स०] १. अभाग्य। २ जूए की हार [को०]।

आदिनाथ—सज्ञा पु० [स०] १ आदिबुद्ध। २ एक जैन तीर्थंकर [को०]।

आदिपर्व—सज्ञा पुं० [स० आदिपर्वन्] महाभारत के पहले पर्व का नाम [को०]।

आदिपर्वत—सज्ञा पुं० [स०] मुख्य पर्वत [को०]।

आदिपुराण—सज्ञा पु० [स०] १. ब्रह्मपुराण। २ एक जैन धर्मग्रथ [को०]।

आदिपुरुष, आदिपूरुष—सज्ञा पुं० [स०] १ परमेश्वर। विष्णु। २ हिरण्यकशिपु [को०]।

आदिप्लुत—वि० [स०] (शब्द०) जिसका आदिस्वर प्लुत हो (व्या०) [को०]।

आदिबल—संज्ञा पुं० [सं०] उत्पादक या जनन शक्ति (सुश्रुत) [को०]।

आदिभूत¹—वि० [सं०] आदि में उत्पन्न [को०]।

आदिभूत²—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मा। २ विष्णु [को०]।

आदिम—वि० [सं०] पहले का। पहला। प्रथम। उ०—आखेट के लिये उक्त आदिम नरों का झुंड बीच बीच में मिलता।—इंद्र०, पृ० ८८।

आदिमत्—वि० [सं०] जिसका आरंभ आदि हो [को०]।

आदिमूल—संज्ञा पुं० [सं०] मूल कारण [को०]।

आदियोगाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

आदिरस—संज्ञा पुं० [सं०] शृंगाररस (साहित्य शा०)।

आदिराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ मनु। २ पृथु [को०]।

आदिरूप—संज्ञा पुं० [सं०] प्रथम रूप या लक्षण (रोग का) [को०]।

आदिल—वि० [अ०] न्यायी। न्यायवान्। उ०—नौसेरवाँ जो आदिल कहा। साहि अदल-सरि सोउ न अहा।—जायसी ग्रं०, पृ० ६।

आदिलुप्त—वि० [सं०] (शब्द) जिसका प्रथम अक्षर लुप्त हो [को०]।

आदिवराह—संज्ञा पुं० [सं०] वराहरूप विष्णु। विष्णु [को०]।

आदिवाराह—वि० [सं०] आदि वराह संबंधी [को०]।

आदिविपुला—संज्ञा पुं० [सं०] छंदविशेष। वह आर्या जिसके प्रथम दल के प्रथम तीन गणों में पाद अपूर्ण हो।

आदिविपुलाजघनचपला—संज्ञा पुं० [सं०] छंदविशेष। वह आर्या जिसके प्रथम पाद के गणत्रय में पाद अपूर्ण हो, दूसरे दल में दूसरा और चौथा गण जगण हो।

आदिशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मूल या आदि स्थानीय शक्ति। महामाया। २ दुर्गा [को०]।

आदिशरीर—संज्ञा पुं०[सं०] १ मूल शरीर। २ सूक्ष्म शरीर [को०]।

आदिश्यमान—वि० [सं०] आदेश पाया हुआ। जिसको आज्ञा दी गई हो।

आदिष्ट—वि० [सं०] आदेश पाया हुआ। जिसको आज्ञा दी गई हो। आज्ञप्त। आदेशप्राप्त।

आदिष्टसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० आदिष्टसन्धि] वह संधि जो प्रबल शत्रु को कोई भूमिखंड देने की प्रतिज्ञा करके की जाय। (कामंद०)।

आदिसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] मूल या आदि की सृष्टि [को०]।

आदी¹—वि० [अ०] अभ्यस्त। उ०—अब उतर आए हैं वो तारीफ पर। हम जो आदी हो गए दुश्नाम के।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५५३।

आदी²—संज्ञा स्त्री० [सं० आर्द्रक] अदरक।

आदी³—क्रि० वि० [सं० आदि] बिलकुल। नितांत। जरा भी। उ०—(क) मातु न जानसि बालक आदी। हौं बादला सिंघ रनबादी। जायसी ग्रं०, पृ० २८२।

आदीचक—संज्ञा पुं०[सं० आर्द्रक+चक्र]एक प्रकार की अदरक जिसकी भाजी बनती है। अदरक की एक प्रकार की खट्टी चटनी।

आदीनव—संज्ञा पुं०[सं०]१ दोष। २ क्लेश। विपत्ति। ३.दुख। बेचैनी (को०)।

आदीपक—वि०[सं०]१ आग लगानेवाला। २.दाहक। ३ उत्तेजक [को०]।

आदीपन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आदीपित, आदीप्त, आदीप्य] १. उत्तेजित करना। २.आग लगाना। ३ उत्सव आदि के अवसर पर दीवार, फर्श आदि की सफाई या पुताई करना [को०]।

आदीपित—वि० [सं०] प्रज्वलित। जलता हुआ [को०]।

आदीप्य—वि० [सं०] जलने योग्य [को०]।

आदीर्घ—वि० [सं०] कुछ लंबाई युक्त अंडाकार [को०]।

आदीर्य—वि० [सं०] फटा हुआ। दरका हुआ [को०]।

आदृत—वि० [सं०] आदर किया हुआ। समानित।

आदृत्य—वि० [सं०] आदरणीय [को०]।

आदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दृष्टि। नजर [को०]।

यौ०—आदृष्टिगोचर, आदृष्टिप्रसार=दृष्टि की सीमा के भीतर।

आदेय¹—वि० [सं०] लेने योग्य।

यौ०—उपादेय। अनादेय।

आदेय²—संज्ञा पुं०[सं०]वह लाभ जो सुगमता से प्राप्त हो, सुरक्षित रखा जा सके तथा शत्रु द्वारा न लिया जा सके (को०)।

आदेयकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार वह कर्म जिससे जीव को वाक्‌सिद्धि होती है, अर्थात् वह जो कहे वही होता है।

आदेव¹—संज्ञा पुं० [सं०] देव सहित पूरी सृष्टि [को०]।

आदेव²—वि० [सं०] देवभक्त। देवपूजक [को०]।

आदेवक—वि०[सं०]१ खेल या क्रीडा करनेवाला। २. जुआ खेलनेवाला [को०]।

आदेवन—संज्ञा पुं० [सं०] १ खेल का स्थान। २ खेल का साधन या सामग्री। ३ खेल (जूए) में होनेवाला लाभ [को०]।

आदेश—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आदिष्ट, आदिश्यमान, आदेशक] १. आज्ञा। २ उपदेश। ३ विवरण (को०)। ४. प्रणाम। नमस्कार। उ०—शेख बडो बड सिद्धि बखाना। किय आदेश सिद्धि बड माना।—जायसी (शब्द०)। ५ ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों का फल। ६ भविष्यकथन (को०)। ७ व्याकरण में एक अक्षर के स्थान पर दूसरे अक्षर का आना। अक्षरपरिवर्तन।

आदेशक—वि० [सं०] १ आज्ञा देनेवाला। २ उपदेश देनेवाला।

आदेशकारी—वि०[सं० आदेशकारिन्]आज्ञा पालन करनेवाला [को०]।

आदेशन—संज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा देना। निर्देशन (को०)।

आदेशी—वि [सं० आदेशिन्] १ आदेश देनेवाला। २ भविष्यकथन करनेवाला। ३ (वह वर्ण या अक्षर) जिसके लिये कोई अन्य वर्ण या अक्षर रखा गया हो [को०]।

आदेश्य—वि० [सं०] आदेश के योग्य [को०]।

आदेष्टा—वि० [सं० आदेष्टृ] आदेश देनेवाला [को०]।

आदेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आदेश] दे० 'आदेश'।

आद्यंत—क्रि० वि० [सं० आद्यन्त] आदि से अंत तक। आद्योपांत। शुरू से आखीर तक।

आद्य¹—वि० [सं०] १ पहला। आरंभ का। २ प्रधान। प्रथम। अद्वितीय (को०)।

आद्य²—वि० [सं०√अद्=(खाना)>आद्य] खाने योग्य। जिसके खाने से शारीरिक या आत्मिक बल बढ़े।

आद्यकवि—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मा। २ वाल्मीकि [को०]।

आद्यबीज—संज्ञा पुं०[सं०]जगत् या सृष्टि का मूल कारण। सांख्य के अनुसार प्रधान या प्रकृति [को०]।

आद्यमाषक—संज्ञा पुं० [सं०] एक तौल जो पाँच गुंजा या रत्ती के बराबर होता था [को०]।

आद्यश्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] मृतक के लिये ग्यारहवें दिन जो सोलह श्राद्ध किए जाते हैं उनमें से पहला।

आद्या—संज्ञा पुं०[सं०] १ दुर्गा। प्रधान शक्ति। २ दश महाविद्याओं में से प्रथम देवी।

आद्युदात्त—वि०[सं०][संज्ञा आद्युदात्तत्व] जिसका पहला वर्ण उदात्त हो [को०]।

आद्यून—वि० [सं] १ अध्ययन करनेवाला। पेटू। २ बुभुक्षित। भूखा। ३ लोभी। लालची। ४ आदिरहित [को०]।

आद्योत—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकाश। ज्योति। चमक [को०]।

आद्योपांत—क्रि० वि० [सं० आद्योपान्त] शुरू से आखीर तक [को०]।

आद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० आर्द्रा] १ एक नक्षत्र। २.जब सूर्य इस नक्षत्र का हो। इस नक्षत्र में लोग धान बोना अच्छा मानते हैं। उ०—(क) चित्रा गेहूँ आद्रा धान। न उनके गेरुई न उनके घाम। (ख) आद्रा धाम पुनर्वसु पइया। गा किसान जब बोवा चिरइया। (शब्द०)।

आद्रिसार—वि० [सं०] लौहनिर्मित। लोहे से बना हुआ [को०]।

आध—वि० [सं० अर्द्ध प्रा० अद्ध हिं० आधा] किसी वस्तु के दो बराबर भागों में से एक। आधा। निस्फ। उ०—जै जै कार भयो भुव मापत तीनि पैंड भइ सारी। आधा पैंड वसुधा दै राजा नातरु चलि सत हारी।—सूर०, ८।१४।

विशेष—यह वास्तव में आधा का अल्पार्थक रूप है और यौगिक शब्दों एवं प्राय तौल और नाप के सूचक शब्दों के साथ व्यवहृत होता है। जैसे,—आध सेर आध पाव, आध छटाँक, आध गज।

यौ०—एक आध=कुछ थोड़े से। चंद। जैसे,—एक आध आदमियों के विरोध करने से क्या होता है। (शब्द)

आधमन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा [को०]।

आधमर्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऋणग्रस्त होना [को०]।

आधर्मिक—वि० [सं०] धर्महीन। अधर्मी [को०]।

आधवन—संज्ञा पुं० [सं०] कंपित करना। हिलाना डुलाना [को०]।

आधा—वि० [सं० अर्द्ध, या अद्धो, प्रा० अद्ध] [स्त्री० आधी] किसी वस्तु के दो बराबर हिस्सों में से एक।

यौ०—आधा साझा। आधा सीसी।

मुहा०—आधो आध=दो बराबर भागों में। जैसे—इन केलों को आधो आध बाँट लो। [यह क्रि० वि० की तरह आता है, जैसे, बीचो बीच] आधा तीतर आधा बटेर=कुछ एक तरह का और कुछ दूसरी तरह का। बेजोड़। बेमेल। अटबट। क्रमविहीन। आधा होना=दुबला होना। जैसे,—वह सोच के मारे आधा हो गया। आधे आध=दो बराबर हिस्सों में बँटा हुआ। उ०—लागे जब रंग गुन मेर सोंग धरयो रग आधे आध पाव चले नूपुर बजाइ के।—प्रिया० (शब्द०)। आधे कान सुनना=यों ही या ऊपर से सुन लेना। उ०—फैले बरसाने में न रावरी कहानी यह बानी कहूँ राधे आधे कान सुनि पावे ना।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १४७। आधी बात=जरा सी भी अपमानसूचक बात। जैसे,—हमने किसी की आधी बात भी नहीं सुनी। आधे पेट खाना=भरपेट न खाना। पूरा भोजन न करना। आधे पेट रहना=तृप्त होकर न खाना। आधी बात कहना या मुँह से निकालना=जरा सी अपमानसूचक बात कहना। जैसे,—मेरे रहते तुम्हें कोई आधी बात नहीं कह सकता। आधी बात न पूछना=कुछ ध्यान न देना। कदर न करना। जैसे,—अब वे जहाँ जाते हैं, कोई आधी बात भी नहीं पूछता।

आधाझारा—संज्ञा पुं० [सं० आघाट] अपामार्ग। ओंगा। चिचड़ा। चिचड़ी।

आधाता—संज्ञा पुं० [सं० आधातृ] गिरवी रखनेवाला। बंधक रखनेवाला।

आधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थापन। रखना।

यौ०—अग्न्याधान। गर्भाधान।

२ गर्भ। ३ गिरवी या बंधक रखना। (को०) ४ अग्न्याधान (को०)। ५ प्रयत्न। चेष्टा (को०)। ६ वह स्थान जहाँ कोई वस्तु रखी जाय (को०)। ७ निश्चयात्मकता। ८ द्रवित करना (को०)। ९ सामीप्य। सन्निधि (को०)। १० मैथुन (को०)।

आधानवती—वि० स्त्री० [सं०] गर्भवती।

आधार—संज्ञा पुं० [सं०] १ आश्रय। सहारा। अवलंब। जैसे,—(क) यह छत चार खंभों के आधार पर है। (ख) वह चार दिन फलों के ही आधार पर रह गया। २ व्याकरण में अधिकरण कारक। ३ थाला। आलवाल। ४ पात्र (नाटक)। ५ नींव। बुनियाद। मूल। ६ योगशास्त्र में एक चक्र का नाम।

विशेष—इसे मूलाधार भी कहते हैं। इसमें चार दल हैं। रंग लाल है। स्थान इसका गुदा है और गणेश इसके देवता हैं।

७ बंधा। बाँध (को०)। ८ नहर। प्रणाली (को०)। ९ संबंध। लगाव (को०) १० किरण (को०)। ११ बरतन। पात्र (को०)। १२ आश्रय देनेवाला। पालन करनेवाला। जैसे,—इस दशा में ही वे हमारे आधार हो रहे हैं।

यौ०—आधाराधेय=आधार और आधेय का संबंध, जैसे,—पात्र और उसमें रखे हुए घी या टेबुल और उसपर रखी हुई किताब का संबंध। प्राणाधार जिसके आधार पर प्राण हो। परमप्रिय।

मुहा०—आधार होना = कुछ पेट भर जाना। कुछ भूख मिट जाना। जैसे,—इतनी मिठाई से क्या होता है, पर कुछ आधार हो जायगा।

आधारित—वि० [स० आधार] दे० 'आधृत'।

आधारी—वि० [स० आधारिन्] [स्त्री० आधारिणी] १ सहारा रखनेवाला। सहारे पर रहनेवाला। जैसे,—दुग्धाधारी। २ साधुओं की टेवकी या अड्डे के आकार की लकड़ी जिसका सहारा लेकर वे बैठते है। उ०—(क) मुद्रा श्रवण नहीं थिर जीऊ। तन त्रिसूल आधारी पीऊ।—जायसी (शब्द०)। (ख) परम तत आधारी मेरे, सिव नगरी घर मेरा।—कबीर ग्र०, पृ० १५४।

आधासीसी—सज्ञा स्त्री० [स० अर्द्ध + शीर्ष] अधकपारी। आधे सिर की पीड़ा।

आधि—सज्ञा स्त्री० [स०] १. मानसिक व्यथा। चिंता। फिक्र। शोच। सोच। उ०—आधि अगाधा व्याधि हरि, हरि राधा जप सोइ।—स० सप्तक, पृ० ३४३। २ गिरो। गिरवी। बधक। रेहन। ३ स्थान। आवास [को०]। ४ पास पड़ोस (को०)। ५ विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]। ६ धर्म या कर्तव्य की चिंता (को०)। ७ परिभाषा। लक्षण [को०]। ८ आशा [को०]। ९ दड (को०)। १० परिवार या कुटुंब की चिंता [को०]।

आधिक[1](पु)—वि० [हि० आधा + एक] आधा। आधे के लगभग। उ०—(क) आधिक दूर लौं जाय चितै पुनि प्राय गरैं लपटाय कै रोई।—मुबारक (शब्द०)। (ख) आधिक रात उठे रघुबीर कह्यो सुनु वीर प्रजा सब सोई।—हनुमान० (शब्द०)।

आधिक[2]—क्रि० वि० आधे के समीप। आधे के लगभग। थोड़ा। उ०—लखि लखि अँखियनु अधखुलिनु, आँगु मोरि अँगराइ। आधिक उठि, लेटति लटकि, आलस भरी जँभाइ।—बिहारी र०, दो० ६३०।

आधिकरणिक—सज्ञा पु० [स०] १ न्यायाधीश। २ सरकारी अधिकारी [को०]।

आधिकारिक[1]—सज्ञा पु० [स०] दृश्यकाव्य की वस्तु के दो भेदो मे एक। मूल कथावस्तु। वि० दे० 'वस्तु'।

आधिकारिक[2]—वि० १ मुख्य या प्रधान। उ०—एक दल मनुष्य मनुष्य के बीच भ्रातृप्रेम को ही काव्यभूमि का एकमात्र आधिकारिक भाव मानता है।—रस०, पृ० ७७। २ अधिकार या अधिकारी से सबद्ध। अधिकारयुक्त। साधिकार।

आधिक्य—सज्ञा पुं० [स०] बहुतायत। अधिकता। ज्यादती।

आधिदैविक—वि० [स०] देवताओ द्वारा प्रेरित। यक्ष, देवता, भूत, प्रेत आदि द्वारा होनेवाला। देवताकृत।

विशेष—सुश्रुत मे सात प्रकार के दु:ख गिनाए गए हैं, उनमे से तीन अर्थात् कालबलकृत (वर्फ इत्यादि पडना, वर्षा अधिक होना इत्यादि), देवबलकृत (बिजली पडना, पिशाचादि लगना), स्वभावबलकृत (भूख प्यास का लगना) आधिदैविक कहलाते हैं।

आधिधर्ता—सज्ञा पु० [स०] जिसके पास कोई वस्तु गिरवी या रेहन रखी जाय [को०]।

आधिपत्य—सज्ञा पुं० [स०] प्रभुत्व। स्वामित्व। अधिकार।

आधिपाल—सज्ञा पु० [स०] वह राजकर्मचारी जो जमा की हुई धरोहर की रक्षा का प्रबंध करता हो।

आधिभोग—सज्ञा पुं० [स०] धरोहर की वस्तु का उपयोग या उपभोग [को०]।

आधिभौतिक—वि०[स०] व्याघ्र, सर्पादि जीवों द्वारा कृत। जीव या शरीरधारियों द्वारा प्राप्त।

विशेष—सुश्रुत में रक्त और शुक्रदोष तथा मिथ्या आहार विहार से उत्पन्न व्याधियो को आधिभौतिक के अतर्गत ही माना है।

आधिमन्यु—सज्ञा पु० [स०] ज्वर की जलन। बुखार की गर्मी [को०]।

आधिमोचन—सज्ञा पुं० [स०] गिरवी या बधक छुड़ाना।

आधिवेदनिक—सज्ञा पुं० [स०] वह धन जो पुरुष दूसरा विवाह करने के पूर्व अपनी पहली स्त्री को उसके सतोष के लिये दे। यह स्त्रीधन समझा जाता है।

आधिस्तेन—सज्ञा पु० [स०] वह व्यक्ति जो धनाधिकारी की आज्ञा विना जमा किए हुए धन का उपभोग करता है [को०]।

आधी—वि० स्त्री० [स० अर्द्ध, प्रा० अद्ध] आधा का स्त्रीलिंग रूप। उ०—आधी छोड सारी को धावै। आधी रहै न सारी पावै।—लोक०।

आधीन(पु)—वि०[स० अधीन] दे० 'अधीन'। उ०—करौं धरी आधीन मैं करौं हरी आधीन।—भिखारी ग्र०, भा०, १, पृ० १८।

आधीनता(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० अधीनता] दे० 'अधीनता'।

आधीरात—सज्ञा स्त्री० [स० अर्धरात्रि] वह समय जब रात का आधा भाग बीत चुका हो।

आधुनिक—वि०[स०] वर्तमान समय का। हाल का। आजकल का। वर्तमान काल का। साप्रतिक। नवीन।

आधुनिकतम—वि० [स०] अद्यतन। नवीनतम।

आधूत—वि० [स०] १ कपित। काँपता हुआ। २ पागल। ३. व्याकुल।

आधूपन—सज्ञा पुं० [स०] धुँए या कुहरे से आवृत [को०]।

आधूम्र—वि० [स०] धुँए की तरह काले रंगवाला [को०]।

आधृत—वि० [स०] किसी आधार पर टिका हुआ। आधार पाया हुआ [को०]।

आधेक—वि०, क्रि० वि० [हि०] दे० 'आधिक'। उ०—राधिका आधेक नैननि मूँदि हिए ही हिए हरि की छवि हेरति।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १५८।

आधेय—सज्ञा पुं०[स०] १ आधार पर स्थित वस्तु। जो वस्तु किसी के आधार पर रहे। किसी सहारे पर टिकी हुई चीज। २ स्थापनीय। ठहराने योग्य। रखने योग्य। ३ गिरो रखने योग्य।

आधोरण—सज्ञा पुं० [स०] हाथीवान। महावत। फीलवान।

आध्मात[1]—वि० [स०] १ फूला हुआ। २ गर्व से भरा हुआ। ३. जला हुआ। ४. शब्दयुक्त। ध्वनिवाला। ज्वर वायु से ग्रस्त [को०]।

आध्मात[2]—सज्ञा पुं० १ उदर मे होनेवाला वायु रोग । २ युद्ध [को०] ।

आध्मान—सज्ञा पु० [सं०] एक वातव्याधि । पेट का फूलना । अफरा

आध्मानी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ नलिका नामक गधद्रव्य । २ फुँकनी । वह धातु या बाँस की नली जिससे हवा फूँकी जाय [को०] ।

आध्यात्मिक—वि० [स०] [स्त्री० आध्यात्मिकी] १ आत्म सबधी । २ मन सबधी । ३ अध्यात्म से सबध रखनेवाला [को०] ।

यौ०—आध्यात्मिक ताप = वह दुःख जो मन आत्मा और देश इत्यादि को पीडा दे, जैसे,—शोक, मोह, ज्वर आदि ।

आध्यापक—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अध्यापक' [को०] ।

आध्यायिक—वि० [सं०] [स्त्री० आध्यायिकी] वेदो के अध्ययन मे सलग्न रहनेवाला [को०] ।

आध्यासिक—वि० [स०] वेदातदर्शन मे भ्रमात्मक (ज्ञान) [को०] ।

आनतर्य—सज्ञा पुं० [स० आनन्तर्य] १ अचानक होनेवाली सफलता । २ तात्कालिक अनुमान ।

आनंत्य—सज्ञा पु० [सं० आनन्त्य] १ अत या समाप्ति का अभाव । अनतता । २ स्वर्ग । ३ अविनश्वरता ।

आनद[1]—सज्ञा पुं० [सं० आनन्द] [वि० आनदित, आनदी] १ हर्ष । प्रसन्नता । खुशी । सुख । मोद । आह्लाद ।

क्रि० प्र०—आना ।—करना ।—देना ।—पाना ।—भोगना । मनाना ।—मिलना ।—रहना ।—लेना । जैसे,—(क) कल हमको सैर मे बडा आनद आया । (ख) यहाँ हवा मे बैठे खूब आनद ले रहे हो । (ग) मूर्खो की सगति मे कुछ भी आनद नही मिलता ।

यौ०—आनदमगल ।

मुहा०—आनंद के तार या ढोल बजाना = आनद के गीत गाना । उत्सव मनाना ।

२ प्रसन्नता या खुशी की चरम अवस्था जो ब्रह्म की तीन प्रधान विभूतियो मे से एक है । उ०—सत्, चित और आनद, ब्रह्म के इन तीन स्वरूपो मे से काव्य और भक्तिमार्ग 'आनद' स्वरूप को लेकर चले ।—रस०, पृ० ५५ । ३ मद्य । शराब । ४ शिव (को०) । ५ विष्णु (को०) । ६ बुद्ध के एक प्रधान शिष्य (को०) । ७ दडक छद का एक भेद (को०) । ८. ४८ वें सवत्सर का नाम (को०) ।

आनद[2]—वि० सानद । आनदमय । प्रसन्न । जैसे,—आनद रहो ।

विशेष—यह विशेषणवत् प्रयोग ऐसे ही दो एक नियत वाक्यो मे होता है । पर ऐसे स्थानो मे भी यदि आनद को विशेषण न मानना चाहे, तो उसके आगे 'से' लुप्त मान सकते हैं ।

आनंदक—वि० [सं० आनन्दक] आनद प्रदान करनेवाला [को०] ।

आनदकर—सज्ञा पु० [स० आनन्दकर] चद्रमा [को०] ।

आनंदकला—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दकला] ब्रह्म की आनदमयी सत्ता । ईश्वर का आनदमय स्वरूप । उ०—भगवान् की आनदकला के विकास की ओर बढती हुई गति है ।—रस०, पृ० ६० ।

आनदकानन—सज्ञा पुं० [स० आनन्दकानन] दे० 'आनदवन' ।

आनदघन[1]—वि० [स० आनन्द+घन] आनद से भरा हुआ ।

आनंदघन[2]—सज्ञा पुं० १ श्रीकृष्ण भगवान् । २ हिंदी के एक कवि का नाम ।

आनदज—वि० [सं० आनन्दज] हर्ष के कारण उत्पन्न, जैसे,—अश्रु [को०] ।

आनदना(पु)—क्रि० अ० [सं० आनन्द से नाम०] प्रसन्न होना । आनंदयुक्त होना । उ०—ज्यो चकई प्रतिबिंब देखिकै, आनदै पिय जानि । सूर पवन मिलि निठुर बिधाता, चपल कियौ जल आनि ।—सूर०, १०।३२६८ ।

आनदपट—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दपट] वैवाहिक वस्त्र । जोडाजामा [को०] ।

आनंदपूर्ण—वि० [सं० आनन्दपूर्ण] अत्यधिक प्रसन्न [को०] ।

आनदप्रभव—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दप्रभव] वीर्य । शुक्र [को०] ।

आनदबधाई—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्द+हिं० बधाई] १ मगल-उत्सव । २ मगल अवसर । ३ मगल की बधाई ।

आनदवन—सज्ञा पु० [सं० आनन्दवन] काशी । वाराणसी । अविमुक्त क्षेत्र । बनारस । सप्तपुरियों मे से चौथी ।

आनदभैरव—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दभैरव] १. शिव का एक नाम (को०) । २ वैद्यक मे एक रस का नाम जो प्राय ज्वरादि की चिकित्सा मे काम आता है ।

विशेष—इसके बनाने की यह रीति है—शुद्ध पारा और शुद्ध गधक की कजली, शुद्ध सिगी मुहरा, सिगरफ, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, भूना सुहागा, इन सबका चूर्ण कर भँगरैया के रस मे तीन दिन खरल कर आध आध रत्ती की गोलियाँ बनावे । एक गोली नित्य दस दिन पर्यंत खिलाने से खाँसी, क्षय, सग्रहणी, सनिपात और मृगी के सब रोग नष्ट हो जाते हैं ।

आनदभैरवी—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दभैरवी] भैरव राग की रागिनी जिसमे सब कोमल स्वर लगते हैं । इसके गाने का समय प्रात काल १ दड से ५ दड तक है ।

आनदमंगल—सज्ञा पुं० [सं० आनन्द+मङ्गल] सुख चैन ।

आनदमत्ता—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दमत्ता] प्रौढा नायिका का एक भेद । आनद से उन्मत्त प्रौढा । दे० 'आनदसमोहिता' ।

आनदमय[1]—वि० [सं० आनन्दमय] आनदपूर्ण । प्रसन्नता से युक्त [को०] ।

यौ०—आनंदमयकोष = आत्मा के पचकोषो मे से एक (वेदांत) ।

आनंदमय[2]—सज्ञा पुं० ब्रह्म [को०] ।

आनदमया—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दमया] दुर्गा का एक रूप [को०] ।

आनंदलहरी—सज्ञा स्त्री० [स० आनन्दलहरी] शकराचार्य विरचित एक ग्रंथ जिसमे पार्वती जी की स्तुति है [को०] ।

विशेष—इसे सौदर्यलहरी भी कहते हैं ।

आनंदवाद—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दवाद] आनद को ही मानव जीवन का मूल लक्ष्य माननेवाली विचारधारा या सिद्धात ।

आनदसमोहिता—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दसम्मोहिता] वह नायिका जो रति के आनद मे अत्यत निमग्न होने के कारण मुग्ध हो रही हो । यह प्रौढ़ा नायिका का एक भेद है ।

आनदा—सज्ञा स्त्री० [स० आनन्दा] भाँग [को०] ।

आनंदित—वि० [सं० आनन्दित] हर्षित। मुदित। प्रमुदित। सुखी। उ०—आनंदित गोपी ग्वाल, नाचैं कर दै दै ताल, अति अह्लाद भयो जसुमति माइ कै।—सूर०, १०। ३१।

आनदी—वि० [सं० आनन्दिन्] हर्षित। प्रसन्न। सुखी। खुश।

आन[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० आणि = मर्यादा, सीमा] १ मर्यादा। २ शपथ। सौगंध। कसम। उ०—मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहौ।—मानस, २।१००। ३. विजय-घोषणा। दुहाई।

क्रि० प्र०—फिरना। उ०—वार वार यों कहत सकात न, तोहि हति लैहैं प्रान। मेरे जान, कनकपुरी फिरिहैं रामचद्र की आन।—सूर०, ६। १२१।

४. ढग। तर्ज। अदा। छवि। जैसे,—उस मौके पर बडौदा नरेश का इस सादगी से निकल जाना एक नई आन थी। ५ अकड। ऐंठ। दिखाव। ठसक। जैसे,—आज तो उनकी और ही आन थी। ६. अदब। लिहाज। दबाव। लज्जा। शर्म। हया। शका। डर। भय। जैसे,—कुछ बडो की आन तो माना करो। ७ प्रतिज्ञा। प्रण। हठ। टेक। जैसे,—वह अपनी आन न छोडेगा।

आन[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] क्षण। अल्पकाल। लमहा। जैसे,—एक ही आन मे कुछ का कुछ हो गया है।

मुहा०—आन की आन मे = शीघ्र ही। अत्यल्प काल मे। जैसे,—आन की आन मे सिपाहियों ने पूरा का पूरा शहर घेर लिया।

आन[3] ⓤ—वि० [सं० अन्य] दूसरा। और। उ०—मुख कह आन, पेट बस आना। तेहि औगुन दस हाट बिकाना।—जायसी ग्र०, पृ० ३५।

आन[4]—क्रि० वि० [हिं० आना] आकर। उपस्थित होकर। जैसे,—पत्ता पेड से आन गिरा।

आनक—संज्ञा पुं० [सं०] १ डका। दुदुभी। भेरी। ढक्का। बडा ढोल। मृदग। नगाडा। उ०—गोमुख आनक ढोल नफीरी मिलि कै साजै।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६४३। २. गरजता हुआ बादल।

यौ०—आनकदुदुभी।

आनकदुंदुभ—संज्ञा पुं० [सं० आनकदुंदुभि] १. बडा नगाडा। २. कृष्ण के पिता वसुदेव।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि जब वसुदेव जी उत्पन्न हुए थे, तब देवताओ ने नगाडे बजाए थे।

आनडुह—वि० [सं०] बैल या साँड से सबद्ध [कौ०]।

आनत—वि० [सं०] अत्यत झुका हुआ। अतिनम्र। उ०—पत्रों के आनत अधरो पर, सो गया निखिल वन का मर्मर।—गुंजन, पृ० ७६। २ कल्पभव के अतर्गत वैमानि नामक जैन देवताओ मे से एक देवता।

आनतान[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० आन = दूसरा + तान = गीत] अंड बंड बात। ऊटपटाँग बात। बेसिर पैर की बात।

आनतान[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० आन + खितान = चाव] १. मर्यादा। ठसक। २. टेक। अड़।

आनति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नत होना। झुकना। झुकाव। २ प्रणाम करना। प्रणति। ३ सत्कार करना [कौ०]।

आनतिकर—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपहार। पुरस्कार [कौ०]।

आनद्ध[1]—वि० [सं०] १ बँधा हुआ। कसा हुआ। २ मढा हुआ।

आनद्ध[2]—संज्ञा पुं० १ वह बाजा जो चमडे से मढा हो, जैसे—ढोल मृदग आदि। २. सज्जित होना। कपड़े आभूषण आदि पहनना [कौ०]।

आनद्धवस्तिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेशाब या पाखाने का रुकना[कौ०]।

आनन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुख। मुँह। उ०—आनन रहित सकल रस भोगी।—मानस, १।११८। २ चेहरा। उ०—आनन है अरविंद न फूल्यो आलीगन भूल्यो कहा मँडरात हो।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ६१।

यौ०—वक्रानन। गजानन। चतुरानन। पचानन। षडानन।

आननफानन—क्रि० वि० [अ० आनन फ़ानन] अतिशीघ्र। फौरन झटपट। बहुत जल्द।

आनना ⓤ—क्रि० स० [सं० आ + √नी = ले जाना या लाना] लाना। उ०—आनहु रामहि बेगि बोलाई।—मानस, २।३६।

आनबान—संज्ञा स्त्री० [हिं० आन + बान] १ सजधज। ठाट बाट तडक भडक। बनावट। उ०—जुही आनबान भरी, चमेली जवान परी।—आराधना, पृ० २३।

आनमन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आनति' [कौ०]।

आनयन ⓤ—संज्ञा पुं० [सं०] १ लाना। २ उपनयन संस्कार।

आनर—संज्ञा पुं० [अं०] १. संमान। प्रतिष्ठा। इज्जत। सत्कार। २ समानचिह्न। उपाधि।

आनरेबुल—वि० [अं०] प्रतिष्ठित। माननीय।

विशेष—अँगरेजी शासन में जो गवर्नर जनरल, गवर्नर, बडे ला या छोटे लाट की कौंसिल के सभासद् होते थे, उन्हे तथा हा कोर्ट के जजो और कुछ चुने अधिकारियों को यह पदवी मिल थी। अब केवल हाइकोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट के जजों को इ नाम से पुकारा जाता है।

आनरेरी—वि० [अं०] १. अवैतनीक। कुछ वेतन न लेकर प्रतिष्ठा के हेतु काम करनेवाला।

यौ०—आनरेरी मजिस्ट्रेट। आनरेरी सेक्रेटरी।

२ बिना वेतन लेकर किया जानेवाला। जैसे,—यह काम हमा आनरेरी है।

आनर्त—संज्ञा पुं० [सं०][वि० आनर्तक] १ देशविशेष। द्वारक २. आनर्त देश का निवासी। ३ राजा शर्याति के तीन पुत्रो से एक। ४ नृत्यशाला। नाचघर। ५ युद्ध। ६ जल। नृत्य [कौ०]।

आनर्तक—वि० [सं०] नाचनेवाला।

आनव[1]—वि० [सं०] १ मनुष्य की तरह शक्तिवाला। २. मनुष्य दया करनेवाला [कौ०]।

आनव[2]—संज्ञा पुं० १ मनुष्य। मानव। २. विदेशीजन [कौ०]।

आना[1]—संज्ञा पुं० [सं० आणक] १. रुपए का १६वाँ भाग। २ f. वस्तु का १६वाँ अंश। जैसे,—(क) प्लेग के कारण शहर

अब चार आने लोग रह गए हैं। (ख) इस गाँव मे चार आना उनका है।

आना[२]—क्रि० अ० [सं० **आगमन,** पुं० हिं० **आगवन, आवना,** जैसे द्विगुण से दूना। अथवा सं० **आयण हिं० आवना**] १ वक्ता के स्थान की ओर चलना या उसपर प्राप्त होना। जिस स्थान पर कहनेवाला है, था या रहेगा उसकी ओर बराबर बढना या वहाँ पहुँचना। जैसे,—(क) वे कानपुर से हमारे पास आ रहे है। (ख) जब हम बनारस मे थे, तब आप हमारे पास आए थे। (ग) हमारे साथ साथ तुम भी आओ। २ जाकर वापस आना। जाकर लौटना। जैसे —तुम यही खडे रहो, मैं अभी आता हूँ। ३ प्रारभ होना। जैसे,—बरसात आते ही मेढ़क बोलने लगते हैं। ४ फलना। फूलना। जैसे,—(क) इस साल आम खूब आए हैं। (ख) पानी देने से इस पेड मे अच्छे फूल आवेंगे। ५ किसी भाव का उत्पन्न होना। जैसे,—आनद आना, क्रोध आना, दया आना, करुणा आना, लज्जा आना, शर्म आना।

विशेष—इस अर्थ मे 'मैं' के स्थान पर 'को' लगता है। जैसे,—उनको यह बात सुनते ही बडा क्रोध आया।

६ आँच पर चढे हुए किसी भोज्य पदार्थ का पकना या सिद्ध होना। जैसे,—(क) चावल आ गए, अब उतार लो। (ख) देखो, चाशनी आ गई या नही। ७ स्खलित होना। जैसे—जो यह दवा खाता है, वह बडी देर से आता है।

मुहा०—**आई**=(१) आई हुई मृत्यु। जैसे,—आई कही टलती है। (२) आई हुई विपत्ति। **आए दिन**=प्रतिदिन। रोज रोज। जैसे,—यह आए दिन का झगडा अच्छा नही। **आए गए होना**=खो जाना। नष्ट होना। फजूल खर्च होना। जैसे,—वे रुपए तो आए गए हो गए। **आओ या आइए**=जिस काम को हम करने जाते हैं, उसमें योग दो। जैसे,—आओ, चलें घूम आवें। (ख) आइए, देखें तो इस किताब मे क्या लिखा है। **आ जाना**=पड जाना। स्थित होना। जैसे,—उनका पैर पहिए के नीचे आ गया। **आता जाता**=आने जानेवाला। पथिक। बटोही। जैसे,—किसी आते जाते के हाथ रुपया भेज देना। **आना जाना**=(१) आवागमन। जैसे,—उनका बराबर आना जाना लगा रहता है। (२) सहवास करना। सभोग करना। जैसे,—कोई आता जाता न होता तो यह लडका कहाँ से होता? **आ धमकना**=एकबारगी आ पहुँचना। अचानक आ पहुँचना। जैसे,—बागी इधर उधर भागने की फिक्र कर ही रहे थे कि सरकारी फौज आ धमकी। **आ निकलना**=एकाएक पहुँच जाना। अनायास आ जाना। जैसे,—(क) कभी कभी जब वे आ निकलते हैं, तब मुलाकात हो जाती है। (ख) मालूम नही हम लोग कहाँ आ निकले। **आ पडना**=(१) सहसा गिरना। एकबारगी गिरना। जैसे,—धरन एकदम नीचे आ पडी। (२) आक्रमण करना जैसे,—उसपर एक साथ ही बीस आदमी आ पडे। (३) अनिष्ट घटना का घटित होना। जैसे,—बेचारे पर बैठे बिठाए यह आफत आ पडी। (४) सकट, कठिनाई या दु ख का उपस्थित होना। जैसे,—(क) तुमपर क्या आ पडी है जो उनके पीछे दौडते फिरो। (ख) जब आ पडती है तब कुछ नही सूझता। (५) उपस्थित होना। एकबारगी आना। जैसे,—(क) जब काम आ पडता है, तब वह खिसक जाता है। (ख) उनपर गृहस्थी का सारा बोझ आ पडा। (शब्द०) (ग) कल हमारे यहाँ दस मेहमान आ पडे। (शब्द०)। (६) डेरा जमाना। टिकना। विश्राम करना। जैसे,—क्यों इधर उधर भटकते हो, चार दिन यहीं आ पडो। **आया गया**=अतिथि। अभ्यागत। जैसे,—आए गए का अच्छी तरह सत्कार करना चाहिए। **आ रहना**=गिर पडना। जैसे,—(क) पानी बरसते ही दीवार आ रही। (ख) वह चबूतरे पर से नीचे आ रहा। **आ लगना**=(१) किसी ठिकाने पर पहुँचना। जैसे,—(क) बात की बात मे किश्ती किनारे आ लगी। (ख) रेलगाडी प्लेटफार्म पर आ लगी। (इस क्रियापद का प्रयोग जड पदार्थो के लिये होता है, चेतन के लिये नही। (२) आरभ होना। जैसे,—अगहन का महीना आ लगा है। (३) पीछे लगना। साथ होना। जैसे,—बाजार मे जाते ही दलाल आ लगते हैं। **आ लेना**=पास पहुँच जाना। पकड लेना। जैसे,—डाकू भागे पर गवारों ने आ लिया। (२) आक्रमण करना। टूट पडना। जैसे —हिरन चुपचाप पानी पी रहा था कि बाघ ने आ लिया। **किसी का किसी पर कुछ रुपया आना**=किसी के जिम्मे किसी का कुछ रुपया निकलना। जैसे,—क्या तुम पर उनका कुछ आता है? हाँ, बीस रुपये। **किसी की आ बनना**=किसी को लाभ उठाने का अच्छा अवसर हाथ आना। स्वार्थसाधन का मौका मिलना। जैसे,—कोई देखने भालने वाला है नही, नौकरों की खूब आ बनी है। **किसी को कुछ आना**=किसी को कुछ बोध होना। किसी को कुछ ज्ञान होना। जैसे,—(क) उसे तो बोलना ही नहीं आता। (ख) उसे चार महीने मे हिंदी आ जायगी। **किसी को कुछ आना जाना**=किसी को कुछ बोध या ज्ञान होना। जैसे,—उनको कुछ आता जाता नही। **किसी पर आ बनना**=किसी पर विपत्ति पडना। जैसे,—(क) आजकल तो हमपर चारो ओर से आ बनी है। (ख) मेरी जान पर आ बनी है। उ०—आन बनी सिर आपने छोड पराई आस (शब्द०) **(किसी वस्तु) मे आना**=(१) ऊपर से ठीक बैठना। ऊपर से जमकर बैठना। चपकना। ढीला या तग न होना। जैसे,—(क) देखो तो तुम्हारे पैर मे यह जूता आता है। (ख) यह सामी इस छडी मे नही आवेगी। (२) भीतर अटना। समाना। जैसे,—इस बरतन मे दस सेर घी आता है। (३) अतर्गत होना। अतर्भूत होना। जैसे,—ये सब विषय विज्ञान ही मे आ गए। **किसी वस्तु से (धन या आय) आना**=किसी वस्तु से आमदनी होना। जैसे,—(क) इस गाँव से तुम्हें कितना रुपया आता है? (ख) इस घर से कितना किराया आता है? (जहाँ पर आय के किसी विशेष भेद का प्रयोग होता है, जैसे,—भाडा, किराया, लगान, मालगुजारी आदि वहाँ चाहे 'का' का व्यवहार करें चाहे 'से' का। जैसे,—(क) इस घर का कितना किराया आता है। (ख) इस घर से कितना किराया आता है। (पर जहाँ 'रुपया' या 'धन' आदि शब्दो का

प्रयोग होता है, वहाँ केवल 'से' आता है।) **कोई काम करने पर आना** = कोई काम करने के लिये उद्यत होना। कोई काम करने के लिये उतारू होना। जैसे,—जब वह पढ़ने पर आता है तो रात दिन कुछ नहीं समझता। **जूतों या लात घूसों आदि से आना** = जूतों या लात घूसों से आक्रमण करना। जूते या लात घूँसे लगाना। जैसे,—अब तक तो मैं चुप रहा, अब जूतों से आऊँगा। **(पौधे का) आना** = (पौधे का) बढ़ना। जैसे,—खेत में गेहूँ कमर बराबर आए हैं। **(मूल्य) को या में आना** = दामों में मिलना। मूल्य पर मिलना। मोल मिलना। जैसे,—यह किताब कितने को आती है। (ख) यह किताब कितने में आती है। (ग) यह किताब चार रुपए को आती है। (घ) यह किताब चार रुपए में आती है। (इस) मुहाविरे तृतीया के स्थान पर 'को' या 'में' का प्रयोग होता है।)

विशेष—'आना' क्रिया के अपूर्णभूत रूप के साथ अधिकरण में भी 'को' विभक्ति लगती है, जैसे,—'वह घर को आ रहा था'। इस क्रिया को आगे पीछे लगा कर संयुक्त क्रियाएँ भी बनती हैं। नियमानुसार प्रायः संयुक्त क्रियाओं में अर्थ के विचार से पद प्रधान रहता है और गौण क्रिया के अर्थ की हानि हो जाती है, जैसे, दे डालना, गिर पड़ना आदि। पर 'आना' और 'जाना' क्रियाएँ पीछे लगकर अपना अर्थ बनाए रखती है, जैसे,—'इस चीज को उन्हें देते आओ।' इस उदाहरण में देकर फिर आने का भाव बना हुआ है। यहाँ तक कि जहाँ दोनों क्रियाएँ गत्यर्थक होती हैं वहाँ 'आना' का व्यापार प्रधान दिखाई देता है, जैसे,—चले आओ। बढ़े आओ। कहीं कहीं आना का संयोग किसी और क्रिया का चिर काल से निरंतर संपादन सूचित करने के लिये होता है, जैसे,—(क) इस कार्य को हम महीनों से करते आ रहे हैं। (ख) हम आज तक आप-के कहे अनुसार काम करते आए हैं। गतिसूचक क्रियाओं में 'आना' क्रिया धातुरूप में पहले लगती है और दूसरी क्रिया के अर्थ में विशेषता करती है, जैसे,—आ खपना, आ गिरना, आ घेरना, आ झपटना, आ टूटना, आ ठहरना, आ धमकना, आ निकलना, आ पड़ना, आ पहुँचना, आ फँसना, आ रहना। पर 'आ जाना' क्रिया में 'जाना' क्रिया का अर्थ कुछ भी नहीं है। इससे संदेह होता है कि कदाचित् यह 'आ' उपसर्ग न हो, जैसे,—आयात, आगमन, आनयन, आपतन।

आनाकानी—संज्ञा स्त्री० [सं० अनाकर्णन] १ सुनी अनसुनी करने का कार्य। न ध्यान देने का कार्य। उ०—आनाकानी आरसी निहारिबो करौगे कौ लौं ?—इतिहास, पृ० ३४१। २. टाल-मटूल। हीला हवाला। जैसे,—माल तो ले आए, अब रुपया देने में आनाकानी क्यों करते हो ?

क्रि० प्र०—करना।—देना।

३ कानाफूसी। धीमी बातचीत। इशारों की बात। उ०—आनाकानी कंठ हँसी मुहाचाही होन लगी देखि दसा कहत विदेह बिलखाय कै।—तुलसी (शब्द०)।

आनाथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] असहाय या अनाथ होने की अवस्था या भाव [को०]।

आनाय—संज्ञा पुं० [सं०] जाल। फंदा [को०]।

आनाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक उदरव्याधि। मलावरोध से पेट का फूलना। मलमूत्र रुकने से पेट फूलना। २ बाँधना [को०]। ३ लंबाई (कपड़े आदि की) [को०]। ४ विस्तार [को०]।

आनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आन'।

आनिल[१]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आनिली] वायु से संबंधित या उत्पन्न [को०]।

आनिल[२] **आनिलि**—संज्ञा पुं० [सं०] १ हनुमान। २ भीम। ३ स्वाती नक्षत्र [को०]।

आनिला—संज्ञा पुं० [अ०] जहाज के लंगर की कुंडी।

आनीजानी—वि० [हिं० आना+जाना] अस्थिर। क्षणभंगुर। उ०—दुनिया भी अजब सराय फानी देखी। हर चीज यहाँ की आनी जानी देखी। जो आके न जाए वह बुढ़ापा देखा। जो जाके न आए वह जवानी देखी।—अनीस (शब्द०)।

आनीत—वि० [सं०] लाया हुआ [को०]।

आनील[१]—वि० [सं०] हरे रंग का। हल्का नीला [को०]।

आनील[२]—संज्ञा पुं० काला घोड़ा [को०]।

आनुकूलिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आनुकूलिकी] अनुकूल [को०]।

आनुकूल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुकूलता की स्थिति या भाव। २. कृपालुता। दयालुता [को०]।

आनुक्रमिक—वि० [सं०] क्रमानुसार [को०]।

आनुगतिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आनुगतिकी] अनुगत या अनुगति से संबंध रखनेवाला [को०]।

आनुगत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुगत होने की क्रिया। २ अनुकरण। ३ परिचय। घनिष्ठता। उ०—पा लिया है सत्य-शिव-सुंदर-सा पूर्ण लक्ष्य इष्ट हय सबको इसी का आनुगत्य है।—साकेत पृ० २०१।

आनुग्रहिककरनीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] राज्य की वह नीति जिसके अनुसार कुछ विशेष मालों पर रियायत की जाती है।

आनुग्रहिक द्वारोदय शुल्क—संज्ञा पुं० [सं०] वह चुंगी जो कुछ खास खास पदार्थों पर कम ली जाय। (अर्थशास्त्र, पृ० ११३ में यह द्वारादेय शुल्क या आनुग्रहिक कहा गया है।)।

आनुग्रामिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आनुग्रामिकी] ग्रामसंबंधी। ग्रामीण [को०]।

आनुपदिक—वि० [सं०] [स्त्री० आनुपादिकी] १ पीछा करनेवाला। २ अनुकरण करनेवाला [को०]।

आनुपातिक—वि० [सं०] अनुपात संबंधी [को०]।

आनुपूर्वी—वि० [सं० अनुपूर्व्य] क्रमानुसार। एक के बाद दूसरा।

आनुमानिक—वि० [सं०] अनुमान संबंधी। खयाली।

आनुयात्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवक। नौकर। अनुचर [को०]।

आनुरक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुरक्ति' [को०]।

आनुलोमिक—वि० [सं०] १ नियमित। क्रमित। २ अनुकूल। उपयुक्त [को०]।

आनुवंशिक—वि० [सं०] वंशपरंपरा से आया हुआ। वंशा-नुक्रमिक [को०]।

आनुवेश्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ पड़ोसी। प्रतिवेशी। २ वह पड़ोसी जिसका घर अपने मकान से दाहिने या बाएँ हो। प्रतिवेश्य का उलटा [को०]।

आनुश्राविक¹—वि० [सं०] जिनको परंपरा से सुनते चले आए हों।

आनुश्राविक²—संज्ञा पुं० वो प्रकार के विषयों में से एक, जिसे परंपरा से सुनते आए हों। जैसे,—स्वर्ग, अप्सरा।

आनुषंगिक—वि० [सं०] जिसका साधन किसी दूसरे प्रधान कार्य को करते समय बहुत थोड़े प्रयास से हो जाय। बड़े काम के प्रसंग में हो जानेवाला। जिसकी बहुत कुछ पूर्ति किसी दूसरे कार्य के संपादन द्वारा हो जाय और शेष अंश के संपादन में बहुत ही थोड़े प्रयास की आवश्यकता रहे। साथ साथ होनेवाला। गौण। अप्रधान। प्रसंगात होनेवाला या हो जानेवाला अथवा किया जानेवाला। प्रासंगिक। जैसे,—भिक्षा माँगने जाओ, उधर से आते समय साग भी लेते आना। उ०—चलो सखी तहँ जाइए जहाँ बसत ब्रजराज। गोरस बेचत हरि मिलन एक पंथ द्वै काज (शब्द०)।

आनूप—वि० [सं०] १ दलदलवाला। २ दलदली भूमि में उत्पन्न [को०]।

आनृत—वि० [सं०] [स्त्री० आनृती] हमेशा झूठ बोलनेवाला [को०]।

आनृशंस¹—वि०[सं०] कोमल स्वभाववाला। दयालु [को०]।

आनृशंस²—संज्ञा पुं० १ दयालुता। २ दयालुता। ३ मृदुता। ४. रक्षकता। रक्षक स्वभाव [को०]।

आनृशंस्य—वि० संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आनृशंस' [को०]।

आनेता—वि० [स० आनेतृ] लानेवाला [को०]।

आनैपुण,आनैपुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] अकुशलता। भद्दापन [को०]।

आनैश्वर्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऐश्वर्य का अभाव। अनैश्वर्य [को०]।

आन्न—वि०[सं०][स्त्री० आन्नी]१ अन्नवाला। २ अन्न से संबंधित [को०]।

आन्वयिक—वि०[सं०]१ कुलीन। २ सुव्यवस्थित। व्यवस्थित [को०]।

आन्वष्टक्य—वि०[सं०]हेमंत और शिशिर के चारों महीनों, अगहन पूस, माघ और फागुन में कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि को होनेवाला (श्राद्ध)।

आन्वीक्षिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आत्मविद्या। २ तर्कविद्या। न्याय।

आप¹—सर्व० [सं० आत्मन्, प्रा० अत्त अप्प, अप्पण, (पु) आपनो] १. स्वयं। खुद।

विशेष—इसका प्रयोग तीनों पुरुषों के लिये होता है। जैसे, उत्तम पुरुष—मैं आप जाता हूँ, तुम्हें जाने की आवश्यकता नहीं। मध्य पुरुष—तुम आप अपना काम क्यों नहीं करते, दूसरों का मुँह क्यों ताका करते हो। अन्य पुरुष—तुम मत हाथ लगाओ, वह आप अपना काम कर लेगा। २ 'तुम' और 'वे' के स्थान पर आदरार्थक प्रयोग। जैसे,—(क) कहिए बहुत दिन पर आप आए हैं, इतने दिन कहाँ थे ? (ख) ईश्वरचंद्र विद्यासागर पुराने ढंग के पंडित थे। आपने समाज संशोधन के लिये बहुत कुछ उद्योग किया। (ग) आप बड़ी देर से खड़े हैं, ले जाकर बैठाते क्यों नहीं ? ३ ईश्वर। भगवान्। उ०—(क) जहाँ [illegible] है, तहाँ [illegible]। जहाँ [illegible] कार है, जहाँ [illegible]—कबीर ([illegible])।

यौ०—आपकाज = अपना काम। [illegible] (शब्द०)। [illegible] आपकाज [illegible]।—[illegible] पृ० [illegible]। आपकाजी = स्वार्थी। मतलबी। आपबीती = [illegible]। आपरूप = स्वयं। [illegible]। उ०—[illegible] आपरूप [illegible]।—[illegible] भा० १, पृ० [illegible]। आपस्वार्थी = मतलबी।

मुहा०—आप आप करना = खुशामद करना। [illegible] आप आप करते हुए [illegible] और [illegible] नहीं मिलता। आप आपकी पड़ना = [illegible]। अपनी अपनी [illegible]। जैसे,—[illegible] उस समय सबको अपनी अपनी पड़ी थी, कोई किसी का पूछता नहीं था। आप आपको = [illegible]। जैसे,—(क) [illegible]। (ख) [illegible] आप आपको [illegible]। आप आपसे = [illegible]। जैसे,—[illegible]। आपको भूलना = (१) अपने [illegible] किसी [illegible]। जैसे,—(क) [illegible]। (ख) [illegible]। (२) मदमत्त होना। [illegible]। जैसे,—[illegible] आपको भूल [illegible] है। आपसे = स्वयं। खुद। जैसे,—उसने आपसे [illegible] नहीं गया था। उ०—[illegible]।—[illegible] भा० १, पृ० १८१। आपसे आप = स्वयं। खुद। खुद। जैसे,—(क) आप [illegible]। (ख) [illegible]। आप ही = स्वयं। [illegible] जैसे,—[illegible] पर लेंगे। उ०—[illegible] दशा [illegible] भाव। [illegible] नयन दीन [illegible] भोरी।—जायसी ([illegible])। आप ही आप = (१) बिना किसी और की [illegible]। [illegible] जैसे,—उसने आप ही आप [illegible] गया था। (२) मन ही मन में। जैसे,—[illegible] कहता जा रहा था। (३) किसी को संबोधन करके नहीं। (नाटक में उस 'वाक्य' को सूचित करने का संकेत जिसे अभिनयकर्ता किसी पात्र को संबोधन करके नहीं कहता, परंतु इस प्रकार मुँह फेर कर कहता है मानो अपने मन में कह रहा है। पात्रों पर उसके कहने का कोई प्रभाव नहीं दिखाया जाता। इसे 'स्वगत' भी कहते हैं।)

आप²—संज्ञा पुं० [सं० आप = जल] १ जल। पानी। उ०—विमल जटा कपाल भाल पै पुनीत आप पावन गंगा राजत अंग पर बरत है।—तुलसी ग्रं०, पृ० २३७।

यौ०—आपधर=बादल। उ०—कर लिए चाप परतापधर। तीन लोक में थापधर। नृप गरज्यो जैसे आपधर। मांधधरत सम दापधर।—गोपाल (शब्द०)। आपनिधि=समुद्र। उ०—ज्ञानगिरि फोरि, तोरि लाज तरु जाइ मिलीं, आप ही तें आपगा ज्यों आपनिधि प्रीतमैं।—केशव ग्र०, पृ० १२७।

२ आठ वसुओं में से एक का नाम (कौ०)। ३ जलप्लावन। बाढ़ (कौ०)। ४ जल का सोता या प्रवाह (कौ०)। ५ आकाश (कौ०)।

आपक—वि० [सं०] प्रापक। प्राप्त करनेवाला (कौ०)।

आपकर—वि० [सं०][वि० स्त्री० आपकरी] १ बिना मैत्री का। अमैत्री-पूर्ण। २ बुराई या निंदा करनेवाला। ३. अनिष्टकारी (कौ०)।

आपक्व—वि० [सं०] जो अच्छी तरह न पका हो। कम पका हुआ (कौ०)।

आपगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नदी। २ एक नदी का नाम (कौ०)।

आपगेय—संज्ञा पुं० [सं०] भीष्म पितामह (कौ०)।

आपचार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] मनमानी।

आपचारना(पु)—क्रि० अ० [हिं० आपचार+ना (प्रत्य०)] उ०—विष लै बिमारची तन, कै बिमासी आपचारचौ, जान्यौ हुतौ मन ? तें सनेह कछु मेल सों।—घनानंद, पृ० ६३।

आपण—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाट। बाजार। २ किराया या महसूल जो बाजार में मिले। तहबजारी।

आपत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] 'आपद' का समासगत रूप (कौ०)।

आपत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आपद] दे० 'आपद्'।

आपत्कल्प—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आपद्धर्म' (कौ०)।

आपत्काल—संज्ञा पुं० [सं०][वि० आपत्कालिक] १ विपत्ति। दुर्दिन। २ दुष्काल। कुसमय।

आपत्कृतऋण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो कोई आपत्ति पड़ने पर लिया जाय।

आपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुःख। क्लेश। विघ्न। २ विपत्ति। संकट। आफत। ३ कष्ट का समय। ४ जीविकाकष्ट। ५ दोषारोपण। ६ उज्र। एतराज। जैसे,—हमको आपकी बात मानने में कोई आपत्ति नहीं है। ७ प्राप्ति (कौ०)।

आपद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विपत्ति। आपत्ति। २ दुःख। कष्ट। विघ्न।

यौ०—आपद्गत, आपद्ग्रस्त, आपद्प्राप्त=(१) आफत में पड़ा हुआ। (२) अभागा। आपद्धर्म। आपद्विनीत=कष्ट या विपत्ति में नम्र होनेवाला।

आपद—संज्ञा स्त्री० [सं० आपद्] दे० 'आपद्'।

आपदर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वह धन या संपत्ति जिसके प्राप्त करने पर आगे चलकर अपना अनिष्ट हो।

विशेष—जिस संपत्ति के लेने पर शत्रुओं की संख्या बढ़े, व्यय या क्षय बढ़े अथवा दूसरों को बहुत कुछ देना पड़े, वह आपदर्थ है। कौटिल्य ने आपदर्थ के अनेक दृष्टांत दिए हैं, जैसे,—वह संपत्ति जो कुछ दिनों पीछे मिलनेवाली हो, जिसे पीछे से कुपित होकर पार्ष्णिग्राह छीन ले, जो मित्र के नाश या संधिभंग द्वारा हो, जिसके ग्रहण के विरुद्ध सारा मंडल हो, इत्यादि। (कौ०)।

आपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुःख। क्लेश। विघ्न। २ विपत्ति। आफत। संकट। ३ संकट का समय। जीविका का कष्ट।

आपद्धर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह धर्म जिसका विधान केवल आपत्काल के लिये हो।

विशेष—जीविका के संकोच की दशा में जीवनरक्षा के लिये शास्त्रों में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के लिये बहुत से ऐसे व्यापारों से निर्वाह करने का विधान है, जिनका करना उनके लिये सुकाल में वर्जित है, जैसे,—ब्राह्मण के लिये शस्त्रधारण, खेती और वाणिज्य आदि का करना मना है, पर आपत्काल में इन व्यापारों द्वारा उनके लिये जीविका निर्वाह करने का विधान है।

आपधाप—संज्ञा स्त्री० [हिं० आप+धाप] अपनी अपनी चिंता। अपने अपने काम का ध्यान। दे० 'आपाधापी'।

आपन(पु)†, आपनि(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—(क) आपन मोर नीक जो चहहू।—मानस, २।६१। (ख) आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ।—मानस, २।१८२।

आपनपो(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपो'।

आपनपौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपौ'। उ०—तहँ साँच चलै तजि आपनपौ, झिझकै कपटी जो निसाँक नहीं।—इतिहास, पृ० ३४३।

आपना(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—भजि रघुपति करु हित आपना। छाड़हु नाथ मृषा जल्पना।—मानस, ६।५५।

आपनिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुमूल्य हरा पत्थर। पन्ना। २ जंगली जाति। किरात (कौ०)।

आपनिधि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आपोनिधि] जलनिधि। समुद्र। उ०—आपहि ते आप गाज्यो आपनिधि प्रीति में।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १२७।

आपनो(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—केहि अब अवगुन आपनो कर डारि दिया रे।—तुलसी ग्र० पृ० ४७१।

आपन्न—वि० [सं०] १ आपद्ग्रस्त। दुःखी। २ प्राप्त।

यौ०—आपन्नसत्व=गर्भिणी। संकटापन्न।

आपपति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आप+पति] समुद्र। उ०—काँपि उठ्यो आपपति तपनहिं ताप चढ़ी, सीरी यो सरीर गति भई रजनीस की।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १२८।

आपमित्यक—वि० [सं०] विनिमय अथवा अदल बदल द्वारा प्राप्त (संपत्ति) (कौ०)।

आपया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आपगा] नदी।

आपराह्णिक—वि० [सं०] अपराह्ण या तीसरे पहर होनेवाला (कौ०)।

आपरूप[1]—वि० [हिं० आप+सं० रूप] अपने रूप से युक्त। मूर्तिमान्। साक्षात् (महापुरुषों के लिये)। जैसे,—इतने ही में आपरूप भगवान प्रकट हुए।

आपरूप[2]—सर्व० साक्षात् आप। आप महापुरुष। ये महापुरुष। खुद बदौलत। हजरत (व्यंग्य)। जैसे,—(क) यह सब आपरूप ही की करतूत है। (ख) यह देखिए अब आपरूप आए हैं।

आपरेशन—संज्ञा पुं० [अं० ऑपरेशन] शल्यचिकित्सा।

आपर्तुक—वि० [सं०] किसी विशेष समय या ऋतु से संबंध रखनेवाला [को०]।

आपवर्ग्य—वि० [सं०] अपवर्ग या मोक्ष से संबंध रखनेवाला [को०]।

आपस—संज्ञा स्त्री० [हिं० आप] [वि० आपसी] १. संबंध। नाता। भाईचारा। जैसे,—आपसवालों से धोखा न होगा। २. एक दूसरे का साथ। एक दूसरे का संबंध।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल 'षष्ठी' और सप्तमी' में होता है। नियमानुसार षष्ठी में यह विशेषण की तरह आता है। जैसे,—(क) यह तो आपस की बात है। (ख) वे आपस में लड़ रहे हैं।

मुहा०—आपस का=(१) एक दूसरे से समान संबंध रखनेवाला। अपने भाई बंधु के बीच का। जैसे,—आपस का मामला। आपस की बात। आपस की फूट। जैसे—कहो न, यहाँ तो सब आपस ही के लोग बैठे हैं। (२) पारस्परिक। परस्पर का। जैसे,—जरा सी बात पर उन्होंने आपस का नाता अलग कर दिया। आपस में=परस्पर। एक दूसरे के साथ। एक दूसरे के बीच। उ०—(क) हिंदू मुसलमान... आपस में ... ।—कबीर (शब्द०)। (ख) ... पाइहै कान सुने बतियाँ कल आपुस में कछु पै कहिहै।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६७।

यौ०—आपसदारी=परस्पर का व्यवहार। भाईचारा। आपसस्वरूप =आत्मस्वरूप।

आपस्तंब—संज्ञा पुं० [सं० आपस्तम्ब] [वि० आपस्तंबीय] १. एक ऋषि जो कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा के प्रवर्तक थे। यह शाखा उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। २. आपस्तंब शाखा के कल्प सूत्रकार जिनके बनाए तीन सूत्र ग्रंथ हैं, कल्प, गृह्य और धर्म। ३. एक स्मृतिकार जिनकी स्मृति उनके नाम से प्रसिद्ध है।

आपस्तंबीय—वि० [सं० आपस्तम्बीय] आपस्तंब संबंधी।

आपा¹—संज्ञा पुं० [हिं० आप] १. अपनी सत्ता। अपना अस्तित्व। जैसे,—अपने आपे को समझो, तब ब्रह्मज्ञान होगा। २. अपनी असलियत। जैसे,—अपने आपको देखो तब बढ़ बढ़कर बातें करना। ३. अहंकार। घमंड। गर्व। उ०—(क) जग में बैरी कोइ नहीं जामे शीतल होय। या आपा को डारि दे दया करै सब कोय।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—खोना।—छोड़ना।—जाना।—मिटना।

४. होश हवास। सुध बुध। जैसे,—यह दशा देख लोग अपना आपा भूल गए।

मुहा०—आपा खोना=(१) अहंकार त्यागना। नम्र होना। निरभिमान होना। उ०—ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय। औरन को शीतल करै आपुहि शीतल होय।—कबीर (शब्द०)। (२) अपने को बरबाद करना। अपने को मिटाना। अपनी सत्ता को भूलना। खाक में मिलाना। उ०—रगहि पान मिले जस होई। आपहि खोय रहा होय सोई।—जायसी (शब्द०)। (३)हस्ती बिगाड़ना। प्राण तजना। मरना। जैसे,—उसने जरा सी बात पर अपना आपा खो दिया। आपा डालना =अहंकार का त्याग करना। नम्र होना। उ०—[illegible] आपा [illegible] कबीर (शब्द०)। आपा तजना=[illegible] अपनी सत्ता को [illegible] [illegible]। उ०—[illegible] कबीर (शब्द०)। [illegible] कबीर (शब्द०)। [illegible] आपा दिखलाना=[illegible]। उ०—[illegible] कबीर (शब्द०)। आपा बिसरना=(१) [illegible] कबीर (श०)। (२) [illegible] आपा बिसराना=(१) [illegible] (२) [illegible] आपे में आना=[illegible] जैसे,—[illegible] आपे में न रहना=(१) [illegible] होना। जैसे [illegible] (२) [illegible] अपना [illegible] उ०—[illegible] (शब्द०)। आपा मेटना=अहंकार छोड़ना। [illegible] उ०—[illegible] —कबीर (श०)। आपा सँभालना =(१) [illegible] जैसे,—[illegible] आपा सँभालो, [illegible] (२) शरीर सँभालना। [illegible] जैसे,—[illegible] अपना आपा तो सँभालो, फिर औरों को [illegible] (३) [illegible] (४) [illegible] होना। [illegible] होना। जैसे,—[illegible] वर्तमान नौकरी को [illegible] आपे से निकलना=आपे से बाहर होना। [illegible] सुध बुध खोना। जैसे,—[illegible] सी बात पर आपे से निकले जाते हैं। (क्रि०) आपे से बाहर होना=(१) वश में न रहना। [illegible] होना। [illegible] के आवेश में सुध बुध खोना। [illegible] होना। उ०—(क) एक ऐसी [illegible] आपे से बाहर होना।—प्रेमघन० (शब्द०) (ख) [illegible] पर आपे से बाहर हो गया और [illegible] को मारने दौड़ा। (२) घबराना। उद्विग्न होना। जैसे,—धीरज धरो, आपे से बाहर होने से काम नहीं चलता।

आपा[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० आप] बड़ी बहिन (मुसलमानी)।

आपा[3]—संज्ञा पुं० बड़ा भाई (महाराष्ट्र)।

आपाक—संज्ञा पुं० [सं०] १ आँवा। २ भट्ठी [को०]।

आपात—संज्ञा पुं० [सं०] १ गिराव। पतन। २ किसी घटना का अचानक हो जाना। ३. आरंभ। ४ अंत। ५ पहली झलक। प्रथम दर्शन (को०)। ६ गिराना। अधःपतित करना (को०)। ७ हाथी पकड़ने के लिये उसे गड्ढे में गिराना (को०)। ८ नरक [को०]।

आपाततः—क्रि०वि० [सं०] १ अकस्मात्। अचानक। २ अंत को। आखिरकार। ३ ऊपर ऊपर से। उ०—सहानुभूति और उदारता आदि—आपाततः आभासित होते हैं।—शैली, पृ० ११६।

आपातलिका—संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जो वैताली छंद के विषम चरणों में ६ और सम चरणों में ८ मात्राओं के उपरांत एक भगण और दो गुरु रखने से बनता है। उ०—हर हर भज रात दिना रे, जजालहि तज या जग माहीं। तन, मन, धन सो जपिहौ जो, हरधाम मिलब संशय नाहीं।

आपाद[1]—अव्य० [सं०] पैर तक [को०]।

यौ०—आपादमस्तक = सिर से पैर तक।

आपाद[2]—संज्ञा पुं० १ प्राप्ति। २ पुरस्कार। इनाम। ३ पारिश्रमिक [को०]।

आपाधापी—संज्ञा स्त्री० [हिं० आप + धाप] १ अपनी अपनी चिंता। अपने अपने काम का ध्यान। अपनी अपनी धुन। जैसे,—आज सब लोग आपाधापी में हैं, कोई किसी की सुनता ही नहीं।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

२ खींचतान। लागडाँट। जैसे,—उन लोगों में खूब आपाधापी है।

आपान, आपानक—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह गोष्ठी जिसमें शराब पी जाय। शराबियों की गोष्ठी। उ०—रिक्त चषक सा चंद्र लुढ़ककर है गिरा, रजनी के आपानक का अब अंत है।—झरना, पृ० २५। २ शराब पीने का स्थान।

यौ०—आपानोत्सव, आपानकोत्सव = शराब पीने का समारोह।

आपापथी—वि० [हिं० आप + सं० पन्थिन्] मनमाने मार्ग पर चलनेवाला। कुमार्गी। कुपथी।

आपायत(पु)—वि० [सं० आप्यायित = वर्धित] प्रबल। जोरावर।—(डिं०)।

आपालि—संज्ञा पुं० [सं०] जूँ। किलनी [को०]।

आपिंजर[1]—वि० [सं० आपिञ्जर] कुछ लाल रंग का [को०]।

आपिंजर[2]—संज्ञा पुं० स्वर्ण। सोना [को०]।

आपी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आप्य] वह नक्षत्र जिसका देवता जल है पूर्वाषाढ़ नक्षत्र।

आपीड़[1]—संज्ञा पुं० [सं० आपीड] १ सिर पर पहनने की चीज, जैसे,—पगड़ी, सिरगह, सिरपेच, बेनी इत्यादि। २ घर के बाहर पाख से निकले हुए बँडेरे का भाग। मँगरोरी। मँगीरी। ३ एक प्रकार का विषम वृत्त जिसके प्रथम चरण में ८, दूसरे में १२, तीसरे में १६ और चौथे में २० अक्षर होते हैं। इसमें समस्त चरणों के समस्त वर्ण लघु होते हैं, केवल अंत के दो वर्ण गुरु होते हैं।

आपीड[2]—वि० १ कष्ट देनेवाला। पीडक। २ दबानेवाला [को०]।

आपीडन—संज्ञा पुं० [सं० आपीडन] १ दबाना या मलना। २. दुःख देना। कष्ट देना [को०]।

आपीत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सोनामाखी।

आपीत[2]—वि० [सं०] सोनामाखी के रंग का। कुछ पीला।

आपीन[1]—वि० [सं०] १ मोटा। २ मजबूत। बलवान् [को०]।

आपीन[2]—संज्ञा पुं० १ थन या छीमी। २ कुआँ। कूप [को०]।

आपु(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'आप'। उ०—आपु गए अरु तिन्हहूँ घालहिं जे कहुँ सन्मारग प्रतिपालहिं।—मानस, ७।१००।

आपुन[1]—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'।

आपुन[2]—सर्व० [सं० आत्मन्, प्रा० अप्पण, हिं० आप] खुद। स्वयं। उ०—आपुन चढे कदम पर धाई। बदन सकोरि भौंह मोरत हैं, हाँक देत करि मद दुहाई।—सूर०, १०।१४१८।

आपुनो(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'।

आपुस(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आपस'। उ०—देखि हमैं सब आपुस में जो कछू मन भावै सोई कहती हैं।—इतिहास, पृ० २६३।

आपूपिक—वि० [सं०] १ बढ़िया पुआ बनानेवाला। २ पुआ खाने में अभ्यस्त। पुआ खाने का शौकीन। ३ पुआ बेचनेवाला।

आपूप्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. आटा। २ बेसन। ३ मैदा। ४. सत्तू [को०]।

आपूर—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आपूरित, आपूर्ण] १ बाढ़। बाढ़ का वेग। बहाव। २. जो भरा हो [को०]।

आपूरण—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्ण होना। पूरी तरह भर जाना [को०]।

आपूरना(पु)—क्रि० अ० [सं० आपूरण] भरना।

आपूरित, आपूर्ण—वि० [सं०] पूरी तरह भरा हुआ [को०]।

आपूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भरना। भरण। २ संतुष्टि। पूर्ति [को०]।

आपूष—संज्ञा पुं० [सं०] १ राँगा। २ सीसा।

आपृच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिज्ञासा। औत्सुक्य। २ वार्तालाप। बातचीत [को०]।

आपेक्षिक—वि० [सं०] १ सापेक्ष। अपेक्षा रखनेवाला। २ अवलंबन पर रहनेवाला। निर्भर रहनेवाला।

आपोक्लिम—संज्ञा पुं० [सं०] [यू० एपोक्लिमा] जन्मकुंडली का तीसरा छठा, नवाँ और बारहवाँ स्थान।

आपोजीशन—संज्ञा पुं० [अं० अपोजीशन] पार्लमेंट (संसद) या व्यवस्थापिका सभाओं (विधानपरिषद) के सदस्यों का वह समूह या दल जो मंत्रिमंडल या शासन का विरोधी हो। जैसे,—पार्लमेंट की कामंस सभा में आपोजीशन के लीडर ने होम मेंबर पर वोट आफ सेंसर या निंदात्मक प्रस्ताव उपस्थित किया।

आप्त[1]—वि० [सं०] १ प्राप्त। प्रामाण्य रूप में लब्ध। उ०—इसका आधार 'प्रत्यक्ष' अनुभव नहीं रह गया, 'आप्त' शब्द हुआ।—रस०, पृ० १२६।

विशेष—इसका प्रयोग इस अर्थ में प्रायः समस्त पदों में मिलता है, जैसे,—आप्तकाम। आप्तगर्भा। आप्तकाल।

२ कुशल। दक्ष। ३ विषय को ठीक तौर से जाननेवाला। साक्षात्कृतधर्मा।

आप्त²—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऋषि। २ यथार्थ का वक्ता। प्रामाणिक कथन का कहनेवाला। ३ योगशास्त्र के अनुसार यथार्थवक्ता।

विशेष—पतंजलि के अनुसार आप्त वह है जो वस्तु तत्व का यथार्थता के साथ जाननेवाला या द्रष्टा या ज्ञाता हो तथा रागादि के वश में पड़कर भी कभी अन्यथा न कहे।

यौ०—आप्तप्रमाण। आप्तवाक्य। आप्तवचन। आप्तागम। आप्तोक्ति।

३ भाग का लब्ध।

आप्तकाम—वि० [सं०] जिसकी सब कामनाएँ पूरी हो गई हों। पूर्णकाम।

आप्तकारी¹—वि० [सं० आप्तकारिन्] उचित या युक्त रूप से कार्य करनेवाला [को०]।

आप्तकारी²—संज्ञा पुं० १ विश्वस्त अनुचर। २ गुप्तचर [को०]।

आप्तगर्भा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री [को०]।

आप्तवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] स्वजन समूह [को०]।

आप्तवाक्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आप्तोक्ति'। उ०—हम तो तेरे आप्त वाक्य अवश्य मानते हैं।—[illegible], पृ० ८०।

आप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटा [को०]।

आप्तागम—संज्ञा पुं० [सं०] १ विश्वसनीय बात जो परंपरा से चली आती हो। २ वेद, शास्त्र, स्मृतियाँ आदि [को०]।

आप्ताधीन—वि० [सं०] विश्वस्त जनों पर निर्भर। विश्वस्त व्यक्ति के अधीन रहनेवाला [को०]।

आप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्राप्ति। लाभ। २ पूर्णता [को०]। ३ पहुँचना [को०]। ४ संयोग। संबंध [को०]। ५ अधिकार [को०]।

आप्तोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उक्ति जिसे विश्वास रूप में ग्रहण किया जाय। परंपरा से प्रामाणिक रूप में मानी जानेवाली बात [को०]।

आप्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वाषाढ़ नक्षत्र। २ जलीय तत्व आदि [को०]।

आप्य²—वि० १ प्राप्तियोग्य। प्राप्य। २ जल से संबंधित [को०]।

आप्यायन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आप्यायित] १ तुष्टि। वर्धन। २ तृप्ति। तर्पण। ३ एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होना। एक रूप से दूसरे रूप में जाना, जैसे—दूध से खट्टा पदार्थ पड़ने से दही जमना। ४ मृत धातु को शहद, सुहागा, घी आदि के संयोग से जगाना या जीवित करना।

- क्रि० प्र०—करना।—होना।

आप्यायित—वि० [सं०] १ तृप्त। संतुष्ट। २ आर्द्र। तर। ३ परिवर्धित। बढ़ा हुआ। ४ अवस्थांतरप्राप्त। दूसरे रूप में परिवर्तित।

आप्रच्छन—संज्ञा पुं० [सं०] १ विदा करना या स्वागत करना। २ मिलने के समय का कुशलप्रश्न [को०]।

आप्रच्छन्न—वि० [सं०] रहस्य। गुप्त। छिपा हुआ [को०]।

आप्रपद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आप्रपदीन] पैरों तक पहुँचनेवाला वस्त्र [को०]।

आप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्नान। २ पानी से तर करना या सींचना [को०]।

[illegible]

आफत—[illegible]

क्रि० प्र०—[illegible]

[illegible] आफत का मारा = [illegible] (१) [illegible] (२) [illegible] आफत तोड़ना = [illegible] आफत उठाना = (१) [illegible] आफत ढाना = [illegible] आफत तोड़ना = आफत मचाना। [illegible] आफत मचाना = (१) [illegible] जैसे,—इन लोगों ने सड़क पर आफत मचा रखी है। (२) शोर मचाना। गुल गपाड़ा करना। जैसे,—[illegible] दिन रात आफत मचाए रहता है। (३) जल्दी मचाना। उतावली करना। जैसे—[illegible] है। आफत मोल लेना = दे० 'आफत सिर पर लेना'। आफत सिर पर लाना या लेना = (१) झगड़ा मोल लेना। झंझट में पड़ना। जैसे,—

तू इसे व्यर्थ छेड़कर अपने सिर आफत लाया। (२) मकट मे पडना। दुःख को बुलाना। अपने को झझट मे डालना। जैसे—तुम तो रोज रोज अपने सिर पर एक न इक आफत लाया करते हो।

आफताब—संज्ञा पुं० [फा० आफताब] [वि० आफताबी] १ सूर्य। उ०—जाहि कै प्रताप सो मलीन आफताब होत, ताप तजि दुजन करत बहु ख्याल को।—भूषण ग्र०, पृ० १०८। २ धूप। घाम [को०]।

आफताबा—संज्ञा पुं० [फा० आफताबह्] एक प्रकार का गडुआ जिसके पीछे दस्ती और मुँह पर सरपोश या ढक्कन लगा रहता है। यह हाथ मुँह धुलाने के काम आता है।

आफताबी¹—संज्ञा स्त्री० [फा० आफ़ताबी] पान के आकार का या गोल जरदोजी का बना पखा जिसपर सूर्य का चिह्न बना रहता है। यह लकडी के डडे के सिरे पर लगाया जाता है और राजाओ के साथ या बरात और अन्य यात्राओ मे झडे के साथ चलता है। २ एक प्रकार की आतशबाजी जिसके छूटने से दिन की तरह प्रकाश हो जाता है। ३ किसी दरवाजे या खिडकी के सामने का छोटा सायबान या ओसारी जो धूप के बचाव के लिये लगाई जाय।

आफताबी²—वि० १ गोल। २ सूर्यसबधी।

यौ०—आफताबी गुलकद = वह गुलकद जो धूप मे तैयार की जाय।

आफर—संज्ञा पुं० [स० आफर] प्रदान करना। प्रस्तुत करना। सामने रखना। उ०—पर जब कभी कोई आफर करता तो दो एक दम लगा लेता था।—सन्यासी, पृ० ५१।

आफरी—अव्य० [फा० आफ़्रीं] शाबाश ! वाह वाह ! उ०—कीन्हे तै आफताब खलक आफरी। कलमा बिन पढन कहैं कुफर काफरी।—घट०, पृ० २०६।

आफरीनिश—संज्ञा स्त्री० [फा० आफ़्रीनिश] उत्पत्ति। सृष्टि [को०]।

आफियत—संज्ञा स्त्री० [अ० आफ़ियत] कुशल। क्षेम।

आफिस—संज्ञा पुं० [अ० ऑफ़िस] दफ्तर। कार्यालय।

आफू—संज्ञा स्त्री० [हिं० अफीम, तुल० मरा० अफू] अफीम। उ०—मीठी कोऊ वस्तु नहिं मीठी जाकी चाह। अमली मिसरी छाँडि कै आफू खातु सराहि।—स० सप्तक, पृ० ३२२।

आफूक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आफू' [को०]।

आबंध—संज्ञा पुं० [स० आबन्ध] १ बधन। बाँधना। २ गाँठ। ३ प्रेमबधन। प्रेम। ४ हल के जुए का बधन (नाधा)। ५ अलकार की सजावट। अलकरण [को०]।

आबधन—संज्ञा पुं० [स० आबन्धन] दे० 'आबध' [को०]।

आब¹—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ चमक। तडक भडक। आभा। छटा। द्युति। काति। झलक। पानी। उ०—(क) साधू ऐसा चाहिए ज्यो मोती की आब।—कबीर (शब्द०)। (ख) चहचही चहल चहूँघा चारु चदन की चद्रक चुनीन चौक चौकन चढी है आब।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२५। २ प्रतिष्ठा। महिमा। गुण। उत्कर्ष। उ०—गँवई गाहक कौन केवरा अरु गुलाब को। हिना पानड़ी बेल कौन बूझिहै आब को।—व्यास (शब्द०)। ३ शोभा। रौनक। छवि। उ०—वे न इहाँ नागर बढ़ी जिन आदर तो आब। फूल्यो अनफूल्यो भयो गवँई गाँव गुलाब।—बिहारी र०, दो० ४३८।

क्रि० प्र०—उतरना। —जाना। —बिगडना। —बढना। ——चढ़ाना। —देना।

आब²—संज्ञा पुं० १ पानी। जल। २. मदिरा [को०]। ३ किसी वस्तु का अर्क [को०]। ४ प्रस्वेद। पसीना [को०]। ५. अश्रु। आँसू [को०]। ६ मवाद। पीप [को०]। ७ फूल का रस [को०]।

मुहा०—आब आब करना = पानी माँगना। उ०—काबुल गए मुगल हो आए, बोलें बोल पठानी। आब आब करि पूता मर गए धरा सिरहाने पानी।—(शब्द०)।

यौ०—आब व हवा = जलवायु। सरदी गरमी के विचार मे देश की प्राकृतिक स्थिति।

आबकार—संज्ञा पुं० [फा०] मद्य बनाने या बेचनेवाला। कलवार। कलाल।

आबकारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ वह स्थान जहाँ शराब चुआई जाती हो। हौली। शराबखाना। कलवरिया। भट्टी। २.मादक वस्तुओ से सबध रखनेवाला सरकारी मुहकमा।

यौ०—आबकारी कानून। आबकारी मुहकमा = एक सरकारी विभाग विशेष जिसे अग्रेजी मे 'एक्साइज' विभाग कहते हैं।

आबखुर्द—संज्ञा पुं० [फा० आबखुर्द] १ भाग्य। किस्मत। २ भाग। हिस्सा। ३ पेय जल का तालाब [को०]।

आबखोरा—संज्ञा पुं० [फा० आबखोरह्] १ पानी पीने का बरतन। गिलास। २. प्याला। कटोरा।

आबगीना—संज्ञा पुं० [फा० आबगीनह] १ शीशे का गिलास। २. आईना। ३ हीरा।

आबगीर—संज्ञा पुं० [फा०] जुलाहो की कूँची। । कूँचा।

आबजोश—संज्ञा पुं० [फा०] गरम पानी के साथ उबाला हुआ मुनक्का। लाल मुनक्का। दे० 'अगूर'।

आबड—संज्ञा स्त्री० [देश०] आवरण। घेरा।

आबताब—संज्ञा स्त्री० [फा०] तडक भडक। चमक दमक। द्युति। काति। शोभा।

आबदस्त—संज्ञा पुं० [फा०] १ मलत्याग के पीछे गुदेंद्रिय को धोना। सौंचना। पानी छूना। २ मलत्याग के अनतर मल धोने का जल। हाथपानी।

क्रि० प्र०—लेना।

आबदाना—संज्ञा पुं० [फा०] १ अन्नपानी। दानापानी। अन्नजल। २ जीविका। जैसे,—आबदाना जहाँ जहाँ ले जायगा, वहाँ वहाँ जायँगे।

मुहा०—आबदाना उठाना = जीविका न रहना। रहायश न होना। सयोग टलना। जैसे,—जब यहाँ से हमारा आबदाना उठ जायगा, तब अपना रास्ता लेंगे।

आबदार¹—वि० [फा०] चमकीला। कातिमान्। द्युतिमान्। भडकीला।

आबदार²—संज्ञा पुं० वह आदमी जो तोप मे सुबा और पानी का पुचारा देता है। उ०—केतेक जानदार आबदार लाबदार हौ।—सूदन (शब्द०)।

विशेष—पुरानी चाल की तोपो मे जव एक बार गोला छूट जाता था, तव नल को ठढा करने के लिये एक छड मे लपेटे हुए चीथडो को भिगोकर उसपर पुचारा दिया जाता था, जिसमे नल के गरम होने के कारण वह गोला आप ही आप न छूट जाय।

आवदारी—सज्ञा स्त्री० [फा०] चमक। जिला। ओप। काति। उ०—आवदारी से है हर मिसरए तर आवेहयात।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६३।

आवदीदा—वि० [फा० आवदीदह्] अश्रुयुक्त। रोता हुआ [को०]।

आवदोज—सज्ञा पुं० [फा० आवदोज] पानी के भीतर चलनेवाली नाव या जहाज [को०]। पनडुब्बी।

आवद्ध¹—वि० [स०] १ वँधा हुआ। २ कैद।

आवद्ध²—सज्ञा पु० १ अलकार। २ यून। जुआ। ३ दृढ या कठोर वधन [को०]।

आबनजूल—संज्ञा पुं० [फा० आब+अ० नुजूल] फोते मे पानी उतरने का रोग। अडवृद्धि।

आबनूस—सज्ञा पु० [फा०] [वि० आबनूसी] एक पेड जिसे तेंदू कहते हैं और जो जगलो मे होता है।

विशेष—यह पेड जब बहुत पुराना हो जाता है, तव इसकी लकडी का हीर बहुत काला हो जाता है। यही काली लकडी आवनूस के नाम से विकती है और बहुत वजनी होती है। आवनूस की वहुत सी नुमाइशी चीजें बनती हैं,—जैसे—छडी, कलमदान, रूल, छोटे वक्स इत्यादि। नगीने मे आवनूस का काम अच्छा होता है।

यौ०—आवनूस का कुदा=अत्यंत काले रग का मनुष्य।

आवनूसी—वि० [फा०] आवनूस सा काला। अत्यत श्याम। गहरा काला। २ आवनूस का। आवनूस का बना हुआ।

आवपाशी—सज्ञा स्त्री० [फा०] सिंचाई।

आवरवाँ—सज्ञा पुं० [फा०] १ एक प्रकार का वारीक कपडा। बहुत महीन मलमल। २ बहता हुआ पानी।

आवरू—सज्ञा स्त्री० [फा०] इज्जत। प्रतिष्ठा। वडप्पन। मान।

क्रि० प्र०—उतरना। —उतारना। —खोना। —गँवाना। —जाना।—देना।—पर पानी फिरना। —विगडना।—मे वट्टा लगना। —रखना। —रहना। —लेना। —होना। दे० 'इज्जत'।

आवरूह(ए)†—सज्ञा स्त्री० [फा० आवरू+हिं० ह (प्रत्य०)] दे० 'आवरू'। उ०—हमरे सवद विवेक लगहिं चूतर मे सोटा। आवरूह लै भागु, पकरि के, फटिहैं झोटा।—पलटू०, भा० ३, पृ० ८६।

आवला—सज्ञा पुं० [फा०] छाला। फफोला। फुटका।

क्रि० प्र०—पडना।

आवलोच(ए)—सज्ञा पुं० [फा० आव+हिं० लोच] सुंदरता का रस। उ०—हम गुलाव मे आवलोच घोल्या है।—दक्खिनी०, पृ० ४०५।

आवल्य—संज्ञा पुं० [स०] अवलता। निर्वलता। वलहीनता [को०]।

आवशिनास—सज्ञा पुं० [फा० आवशनास] जहाज का वह कार्यकर्ता जिसका काम गहराई जाँचकर राह बतलाना होता है।

आवहवा—सज्ञा स्त्री० [फा०] सरदी गरमी आदि के विचार से किसी देश की प्राकृतिक स्थिति। जलवायु।

आवाद—वि० [फा०] १ बसा हुआ। २ प्रसन्न। कुशलपूर्वक। जैसे,—आवाद रहो बाबा आवाद रहो। ३ उपजाऊ। जोतने बोने योग्य (जमीन)। जैसे,—ऊसर जमीन को आवाद करने मे बहुत खर्च पड़ता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—रहना।

यौ०—आवादकार।

आवादकार—सज्ञा पुं० [फा०] १ एक प्रकार के काश्तकार जो जगल काटकर आवाद हुए है। २ एक प्रकार के जमीदार जिनकी मालगुजारी उन्हीं से वसूल की जाती है, नवरदार के द्वारा नही।

आवादानी—सज्ञा स्त्री० दे० 'अवादानी'।

आवादी—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ बस्ती। २ जनसख्या। मर्दुमशुमारी। ३ वह भूमि जिसपर खेती होती हो।

आवाधा—सज्ञा स्त्री० [स०] १. पीडा। मानसिक पीडा। चिंता [को०]।

आवाल¹—अव्य० [स०] बालको से लेकर। लडको से लेकर। जैसे, आवालवृद्ध।

आवाल(ए)²—सज्ञा स्त्री० युवती। नायिका। उ०—लगन दसा आवाल तन उजियारी किमि होति। विना नेह नहिं वढत है तिय-तन दीपनि जोति।—स० सप्तक, पृ० ३४६।

आविल—वि० [स०] १ पकिल। गदा। २ तोडनेवाला। भग करनेवाला। ३ साफ करनेवाला [को०]।

आवी¹—वि० [फा०] १ पानीसबधी। पानी का। २ पानी मे रहनेवाला। ३ रग मे हलका। फीका। उ०—दृग बने गुलावी मद भरे लखि अरिमुख आवी करत।—गोपाल (शब्द०)। ४ पानी के रग का। हलका नीला या आस्मानी। ५ जलतटनिवासी।

आवी²—सज्ञा पुं० १. खारी नमक जो सूर्य के ताप से पानी उडाकर बनता है। लवण। साँभर नमक। २ जल के किनारे रहनेवाली एक चिडिया जिसकी चोंच और पैर हरे होते हैं और ऊपर के पर भूरे और नीचे के सफेद होते हैं। ३ एक प्रकार का अगूर।

आवी³—सज्ञा स्त्री० वह भूमि जिसमे किसी प्रकार की आवपाशी होती हो। (खाकी के विरुद्ध)।

यौ०—आवी रोटी=रोटी जिसका आटा केवल पानी से सना हो। आवी शोरा।

मुहा०—आवी करना=दूध, पानी और लाजवर्द से बने हुए रग से किसी कपडे के थान को तर करके उसपर चमक लाना।

आवू—सज्ञा पुं० [स० अर्बुद] अरावली पर्वत पर का एक स्थान।

आवेरवाँ—सज्ञा पु० [फा०] बहता हुआ पानी या आँसू। उ०—देख तव सरवर मजलूम वेकस। वहा अँखियाँ सेती आवेरवाँ को असबस।—दक्खिनी०, पृ० १६१।

आवेस(ु)—संज्ञा पु० [सं० आवेश] दे० 'आवेश'। उ०—आसा के आवेस अगोचर अब कौ लौं भटकैहो।—घनानद, पृ० ५२३।

आवेहयात—संज्ञा पुं० [फा० आब+अ० हयात] जीवनजाल। अमृत। सुधा। उ०—आबेहयात जाके किसू ने पिया तो क्या। मानिंद खिजर जग में अकेला जिया तो क्या।—कविता कौ० भा० ४, पृ० ४१।

आब्द - वि० [सं०] बादल से उत्पन्न या सबद्ध [कौ०]।

आब्दिक—वि० [सं०] वार्षिक। सालाना। सावत्सरिक।

आब्रत(ु)—संज्ञा पु० [सं० आवर्त] दे० 'आवर्त'। उ०—बिसरैं सुधि उनमद गति फिरैं। लीलानिधि आब्रत मन घिरैं।—घनानद पृ० २६१।

आभ[१](ु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आभा] शोभा। काति। आभा। द्युति।

आभ[२](ु)—संज्ञा पुं० [फा० आब वा सं० अम्भ प्र० अम्भ] पानी। जल। उ०—जिन्ह हरि जैसा जाणियां तिनकूँ तैसा लाभ। ओसों प्यास न भाजई जब लग धँसै न आभ।- कबीर ग्र० पृ० ६।

आभ[३]—संज्ञा पु० [सं० अभ्र] आकाश। (डिं०)।

आभय--संज्ञा पु० [सं०] १ काला अगर। २ कुट नाम की ओषधि।

आभरण--संज्ञा पु० [सं०] गहना। भूषण। आभूषण। जेवर। अलकार।

विशेष—इनकी गणना १२ है—(१) नूपुर। (२) किंकिणी। (३) चूड़ी। (४) अँगूठी। (५) कंकण। (६) बिजायठ। (७) हार। (८) कठश्री। (९) बेसर। (१०) बिरिया। (११) टीका। (१२) सीस फूल। आभरण के चार भेद हैं--(१) आवेध्य अर्थात् जो छिद्र द्वारा पहने जायँ, जैसे,—कर्णफूल, बाली इत्यदि। (२) बधनीय अर्थात् जो बाँधकर पहनी जायँ, जैसे—बाजूबद, पहुँची, सीसफूल, पुष्पादि। (३) क्षेप्य अर्थात् जिसमे अग डालकर पहनें, जैसे—कड़ा, छड़ा, चूड़ी, मुँदरी इत्यादि। (४) आरोप्य अर्थात् जो किसी अग मे लटकाकर पहने जायँ, जैसे—हार, कठश्री, चपाकली, सिकरी आदि। २ पोषण। परवरिश।

आभरन(ु)—संज्ञा पुं० [सं० आभरण] दे० 'आभरण'। उ०—जटिल जवाहिर आभरन छवि के उठत तरग।—स० सप्तक, पृ० ३७३।

आभरित—वि०[सं०]१ सजाया हुआ आभूषित। अलकृत। २ पोषित।

आभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चमक। दमक। काति। उ०—थी अग सुरभि के सग तरगित आभा।—साकेत, पृ० २०४। २ दीप्ति। द्युति। प्रभा। उ०—उस धुंधले गृह मे आभा से तामस को छलती थी। कामायनी, पृ० ११८।३ झलक। प्रतिबिंब। छाया। ४ बबूल का पेड़।

आभाणक--संज्ञा पुं०[सं०]१ एक प्रकार के नास्तिक। २ कहावत। मसल। अहाना।

आभात—वि०[सं०]१ चमकता हुआ। २ कातिपूर्ण। ३ दृश्य [कौ०]।

आभार—संज्ञा पुं० [सं०] १ बोझ। २ गृहस्थी का बोझ। गृहप्रबंध की देखभाल की जिम्मेदारी। उ०—चलत देत आभारु सुनि, उही परोसिहिं नाह। लसी तमासे की दृगनु हाँसी आँसुनु माँह।—बिहारी र०, दो० ५५१। ३ एक वर्णवृत्त जो आठ तगण का होता है, जैसे,—बोल्यो तबै शिष्य आभार तेरो गुरु जी न भूलो जपौं आठहूँ जाम। हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम। (शब्द०)। ४. एहसान। उपकार। निहोर।

आभारी—वि० [सं० आभारिन्] एहसान माननेवाला। उपकार माननेवाला। उपकृत। उ०—कितना आभारी हूँ, इतना सवेदनमय हृदय हुआ।—कामायिनी, पृ० २२६।

आभाष—संज्ञा पुं० [सं०]१ संबोधित करना। २ परिचय। भूमिका। ३ भाषण। कथन [कौ०]।

आभाषण--संज्ञा पु० [सं०] सभाषण। बातचीत करना। २. सबोधन [कौ०]।

आभास—संज्ञा पु० [सं०] १ प्रतिबिंब। छाया। झलक। जैसे,—हिंदू समाज में वैदिक धर्म का आभास मात्र रह गया है। २ पता। सकेत। जैसे,—उनकी बातो मे कुछ आभास मिलेगा कि वे किसको चाहते हैं।

क्रि० प्र० देना।—पाना।—मिलना।

३ मिथ्या ज्ञान। जैसे,—सर्प मे रस्सी का आभास।

यौ०—प्रमाणाभाष। विरोधाभाष। रसाभास। हेत्वाभास।

आभासन--संज्ञा पुं० [सं०] स्पष्ट करना। आभासित करना। प्रकाशित करना [कौ०]।

आभास्वर—वि० [सं०] पूर्णरूप से भासित होनेवाला। चमकीला। तेजोमय। उ०--हम आभास्वर देवताओ की तरह प्रीति का भोजन करने हैं। भस्मावृत० पृ० १०५।

आभिचारिक[१]—वि० [सं०] १ अभिचार सबधी। टोना या जादू सबधी [कौ०]।

आभिचारिक[२]—संज्ञा पु० अभिचार सबधी मत्र [कौ०]।

आभिजन—संज्ञा पु० [सं०] कुलीनता [कौ०]।

आभिजात्य—संज्ञा पु० [सं०] १ उच्च कुल मे पैदा होने का भाव। कुलीनता। २ श्रेणी। ३ विद्वत्ता। ४ सौंदर्य [कौ०]।

आभिजित—वि० [सं०] अभिजित मुहूर्त या नक्षत्र मे पैदा होनेवाला [कौ०]।

आभिधा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ध्वनि। शब्द। २ नाम। ३ व्याख्या। उल्लेख [कौ०]।

आभिधानिक[१]--वि० [सं०] कोश सबधी या कोश मे प्रयुक्त होनेवाला [कौ०]।

आभिधानिक[२]—संज्ञा पु० कोशकार [कौ०]।

आभिप्रायिक—वि० [सं०] अभिप्राय सबधी। ऐच्छिक [कौ०]।

आभिमुख्य—संज्ञा पु० [सं०] १ आमने सामने होने की अवस्था या भाव। २ अनुकूल होना [कौ०]।

आभिरामिक—वि० [सं०] सुदर। अच्छा [कौ०]।

आभिरूपक, आभिरूप्य--संज्ञा पु० [सं०] सुदरता। सौंदर्य [कौ०]।

आभिषेचनिक—वि० [सं०] अभिषेचन सबधी। राजतिलक सबधी [कौ०]।

आभिहारिक[१]--वि० [सं०] १ उपहार मे दिया हुआ। २. छल या बलपूर्वक लिया हुआ [कौ०]।

आभिहारिक[२]—संज्ञा पुं० १ उपहार। भेंट। २. कमरा [कौ०]।

आभीर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आभीरी] १ अहीर। ग्वाल। गोप। उ०—आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघ रूप जे।—मानस, ७।१३०।

विशेष—ऐतिहासिकों के अनुसार भारत की एक वीर और प्रसिद्ध जाति जो कुछ लोगों के मत से बाहर से आई थी। इस जातिवालों का विशेष ऐतिहासिक महत्व माना जाता है। कहा जाता है कि उनकी संस्कृति का प्रभाव भी भारतीय संस्कृति पर पड़ा। वे आगे चलकर आर्यों में घुलमिल गए। इनके नाम पर आभीरी नाम की एक अपभ्रंश (प्राकृत) भाषा भी थी।

यौ०—आभीरपल्ली = अहीरों का गाँव। ग्वालों की बस्ती।

२ एक देश का नाम। ३ एक छंद जिसमें ११ मात्राएँ होती हैं और अंत में जगण होता है। जैसे,—यहि विधि श्री रघुनाथ। गहे भरत के हाथ। पूजत लोग अपार। गए राज दरबार। ४ एक राग जो भैरव राग का पुत्र कहा जाता है।

आभीरक१—वि० [सं०] आभीर या अहीर संबंधी [को०]।

आभीरक२—संज्ञा पुं० १ आभीर या अहीर जाति। २ आभीर या अहीर जाति का कोई सदस्य [को०]।

आभीरनट—संज्ञा पुं०[सं०]एक संकर राग जो नट और आभीर से मिलकर बनता है।

आभीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक संकर रागिनी जो देशकार, कल्याण, श्याम और गुर्जरी को मिलाकर बनाई गई है। अबीरी। २ भारतवर्ष की एक प्राचीन भाषा जो ईसवी दूसरी या तीसरी शताब्दी में पंजाब में बोली जाती थी। आगे चलकर ईसवी छठी शताब्दी में यह भाषा अपभ्रंश के नाम से प्रसिद्ध हुई थी। उस समय इस भाषा में साहित्य का भी निर्माण होने लगा था।

आभील—संज्ञा पुं० [सं०] दुख। कष्ट।

आभूत—वि० [सं०] उत्पन्न। अस्तित्ववाला [को०]।

आभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आभूषित] गहना। जेवर। आभरण। अलंकार। उ०—उधर धातु गलते, बनते हैं आभूषण औ अस्त्र नए।—कामायनी, पृ० १८१।

आभूषन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आभूषण] दे० 'आभूषण'।

आभृत—वि० [संज्ञा] १ अच्छी तरह से भरा हुआ। २ बँधा हुआ। ३ उत्पादित [को०]।

आभेरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी [को०]।

आभोग—संज्ञा [सं०] १ रूप की पूर्णता। रूप में कोई कसर न रहना। किसी वस्तु को लक्षित करनेवाली सब बातों की विद्यमानता। जैसे—यहाँ आभोग से वस्ती का पास होना जाना जाता है। २ किसी पद्य के बीच में कवि के नाम का उल्लेख। ३ वरुण का छत्र। ४. सुख आदि का पूरा अनुभव।

आभोजी—वि० [सं० आभोजिन्] खानेवाला [को०]।

आभ्यंतर—वि० [सं० आभ्यंतर] भीतरी। अंतर का। उ०—काव्य का आभ्यंतर स्वरूप या आत्मा भाव या रस है।—रस०, पृ० १०५।

यौ०—आभ्यंतर तप = भीतरी तपस्या। यह तपस्या छह प्रकार की होती है—(१) प्रायश्चित्त, (२) वैयावृत्ति, (३) स्वाध्याय, (४) विनय, (५) व्युत्सर्ग और (६) शुभ ध्यान।

आभ्यंतर आतिथ्य—संज्ञा पुं० [सं० आभ्यन्तर आतिथ्य] देश के भीतर आया हुआ विदेशी माल।

आभ्यंतरकोप—संज्ञा पुं०[सं० आभ्यन्तरकोप] मंत्री, पुरोहित, सेनापति युवराज आदि का विद्रोह (को०)।

आभ्यंतरिक—वि० [सं० आभ्यन्तरिक] अंतरंग। भीतरी।

आभ्युदयिक१—वि०[सं०]अभ्युदय संबंधी। मंगल या कल्याण संबंधी।

आभ्युदयिक२—संज्ञा पुं०[सं०]एक श्राद्ध जिसे नांदीमुख भी कहते हैं।

विशेष—इस श्राद्ध में दही, बेर और चावल को मिलाकर पिंड देते हैं और इसमें माता, दादी और परदादी को पहले तीन पिंड देकर तब बाप, दादा, परदादा, मातामह और वृद्ध प्रमातामह आदि को पिंड देते हैं। इनके अतिरिक्त तीनों पक्षों के नीस विश्वेदेवा होते हैं। उन्हें भी पिंड दिया जाता है। यह श्राद्ध पुत्रजन्म, जनेऊ और विवाह आदि शुभ अवसरों पर होता है। इसमें यज्ञकरनेवाले को अपसव्य नहीं होना पड़ता।

आमंजु—वि० [सं० आमञ्जु] अच्छा। मनोरम [को०]।

आमंत्रण—संज्ञा पुं० [सं० आमन्त्रण] [आमंत्रित] १ संबोधन। बुलाना। पुकारना। आह्वान। २ निमंत्रण। न्योता। बुलावा। उ०—खुले मसृण भुजमूलों से वह आमंत्रण था मिलता।—कामायनी, पृ० १२५।

आमंत्रयिता—संज्ञा पुं० [सं० आमन्त्रयितृ] वह जो निमंत्रण देता है [को०]।

आमंत्रित—वि०[सं०आमन्त्रित]१ बुलाया हुआ। पुकारा हुआ। २. निमंत्रित। न्योता हुआ। उ०—विस्तृत वसुधा की विभुता कल्याणसघ की जन्मभूमि आमंत्रित करती आई थी।—लहर, पृ० ३३।

क्रि० प्र०—करना। –होना।

आमंद्र१—वि० [सं० आमन्द्र] थोड़ा गंभीर स्वरवाला [को०]।

आमंद्र—संज्ञा पुं० थोड़ा गंभीर स्वर [को०]।

आम्—अव्य०[सं०] अंगीकार, स्वीकृति और निश्चयसूचक शब्द। हाँ। इसका प्रयोग नाटकों की बोलचाल में अधिक है।

आम१—संज्ञा पुं० [सं० आम्र] एक बड़ा पेड़ और उसका फल। रसाल।

विशेष—यह वृक्ष उत्तर पश्चिम प्रांत को छोड़ और सारे भारत वर्ष में होता है। हिमालय पर भूटान से कुमाऊँ तक इसके जंगली पेड़ मिलते हैं। इसकी पत्तियाँ लंबी लंबी गहरे हरे रंग की होती हैं। फागुन के महीने में इसके पेड़ मंजरियों या मौरों से लद जाते हैं, जिनकी मीठी गंध से दिशाएँ भर जाती हैं। चैत के आरंभ में मौर झड़ने लग जाते हैं और 'सरसई' (सरसों के बराबर फल) बैठने लगते हैं। जब बच्चे फल बेर के बराबर हो जाते हैं, तब वे 'टिकोरे' कहलाते हैं। जब वे पूरे बढ़ जाते हैं और उनमें जाली पड़ने लगती है, तब उन्हें 'अँबियाँ' कहते हैं। फल के भीतर एक बहुत कड़ी गुठली होती है जिसके ऊपर कुछ रेशेदार गूदा चढ़ा रहता है। कच्चे फल का गूदा सफेद और कड़ा होता है और पक्के फल का पीला और पीला। किसी किसी में तो बिलकुल पतला रस निकलता है। अच्छी

जाति के कलमी ग्रामों की गुठली बहुत पतली होती है और उनका गूदा बँधा हुग्रा, गाढा तथा बिना रेशे का होता है। ग्राम का फल खाने मे बहुत मीठा होता है। पक्के ग्राम ग्राषाढ से भादो तक बहुतायत मे मिलते हैं।

केवल बीज से जो ग्राम पैदा किए जाते हैं उन्हे 'बीजू' कहते हैं। ये उतने ग्रच्छे नही होते। इसी से ग्रच्छे ग्राम कलम ग्रौर पैवंद लगाकर उत्पन्न किए जाते हैं, जो 'कलमी' कहलाते हैं। पैवद लगाने की यह रीति है कि पहले एक गमले मे बीज रखकर पौधा उत्पन्न करते हैं। फिर उस पौधे को किसी ग्रच्छे पेड के पास ले जाते है ग्रौर उसकी डाल उस ग्रच्छे पेड की डाल से बाँध देते हैं। जब दोनों की डाल बिलकुल एक होकर मिल जाती है, तब गमले के पौधे को ग्रलग कर लेते हैं। इस प्रक्रिया से गमलेवाले पौधे मे उस ग्रच्छे पौधे के गुण ग्रा जाते हैं। दूसरी युक्ति यह है कि ग्रच्छे ग्राम की डाल को काटकर किसी बीजू पौधे के ठूँठे मे ले जाकर मिट्टी के साथ बाँध देते हैं। ग्राम के लिये हड्डी की खाद बहुत उपकारी होती है।

ग्राम के बहुत भेद हैं, जैसे, मालदह, बबइया, दशहरी सफेदा, चौसा, ग्रल्फान्सो लँगडा, सफेदा, कृष्णभोग, रामकेला इत्यादि। भारतवर्ष मे दो स्थान ग्रामों के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं—मालदह (बगाल मे) ग्रौर मभगाँव (बबई मे)। मालदह ग्राम देखने मे बहुत बडा होता है, पर स्वाद मे फीका होता है। बबइया ग्राम मालदह से छोटा होता है, पर खाने मे बहुत मीठा होता है। लँगडा ग्राम देखने मे लबा सा होता है ग्रौर सबसे मीठा होता है। बनारस का लँगडा प्रसिद्ध है। लखनऊ का सफेदा भी मिठास मे ग्रपने ढग का एक है। इसका छिलका सफेदी लिए होता है, इसी से इसे सफेदा कहते हैं। जितने कलमी ग्रौर ग्रच्छे ग्राम हैं, वे सब छुरी से काटकर खाए जाते है।

ग्राम के रस को रोटी की तरह जमाकर ग्रवँसठ या ग्रमावट बनाते हैं। कच्चे ग्राम का पन्ना लू लगने की ग्रच्छी दवा है। कच्चे ग्रामों की चटनी बनती है तथा ग्रचार ग्रौर मुरब्बा भी पडता है। ग्राम की फाँकों को खटाई के लिये सुखाकर रखते हैं जो ग्रमहर के नाम से बिकती है। इसी ग्रमहर के चूर को ग्रमचूर कहते हैं।

ग्राम की लकडी के तख्ते, किवाड़, चौखट ग्रादि भी बनते हैं, पर उतने मजबूत नहीं होते। इसकी छाल ग्रौर पत्तियों से एक प्रकार का पीला रग निकलता है। चौपायों को ग्राम की पत्ती खिलाकर फिर उनके मूत्र को इकट्ठा करके प्योरी रग बनाते है।

पर्या०—चूत। रसाल। ग्रतिसौरभ। सहकार। माकंद।

यौ०—ग्रमचूर। ग्रमहर।

मुहा०—ग्राम के ग्राम, गुठली के दाम=दोहरा लाभ उठाना। ग्राम खाने से काम या पेड गिनने से=इस वस्तु से ग्रपना काम निकालो उसके विषय मे निरर्थक प्रश्न करने से क्या प्रयोजन। बारी मे बारह ग्राम सट्टी मे ग्रट्ठारह ग्राम=जहाँ चीज महँगी मिलनी चाहिए, वहाँ उस स्थान से भी सस्ती मिलना जहाँ साधारणत वह चीज सस्ती बिकती है। (यह ऐसे ग्रवसर पर कहा जाता है जब कोई किसी वस्तु का इतना कम दाम लगाता है जितने पर वह वस्तु जहाँ पैदा होती है, वहाँ भी नही मिल सकती।)

ग्राम²—वि०[सं०] कच्चा। ग्रपक्व। ग्रसिद्ध। उ०—विगरत मन सन्यास लेत जल नावत ग्राम घरो सो।—तुलसी ग्र०, पृ० ५४५।

ग्राम³—सज्ञा पुं० [सं०] १ खाए हुए ग्रन्न का कच्चा, न पचा हुग्रा मल जो सफेद ग्रौर लसीला होता है।

यौ०—ग्रामातिसार।

२ वह रोग जिसमे ग्राँव गिरती है।

यौ०—**ग्रामज्वर**। **ग्रामवात**।

ग्राम⁴—वि० [ग्र०] १ साधारण। सामान्य। मामूली। जैसे,—ग्राम ग्रादमियों को वहाँ जाने की ग्रादत नही है। उ०—ग्राम लोग उनकी सोहबत को ग्रच्छा न समझते थे।—प्रताप० ग्र०, पृ० २७५।

यौ०—**ग्रामखास**=महलों के भीतर का वह भाग जहाँ राजा या बादशाह बैठते हैं। **दरबार ग्राम**=वह राजसभा जिसमे सब लोग जा सकें। **ग्रामफहम**=जो सर्वसाधारण की समझ मे ग्रावे। उ०—इबारत वही ग्रच्छी कही जायगी जो ग्रामफहम ग्रौर खासपसद हो।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०९।

२ प्रसिद्ध। विख्यात। जैसे,—यह बात ग्रब ग्राम हो गई है, छिपाने से नही छिपती।

विशेष—इस ग्रर्थ मे इस शब्द का प्रयोग वस्तु के लिये होता है, व्यक्ति के लिये नही।

ग्रामगंधि—सज्ञा स्त्री०[सं० **ग्रामगन्धि**] बिसायँध गध, जैसे,—चिता के धूएँ या कच्चे मास या मछली की।

ग्रामग(पु)—सज्ञा पु० [सं० **ग्रमार्ग**] कुमार्ग। कुराह। उ०—वह पडित ग्रौ चतुर परेवा। ग्रामग न चलै जानि पति सेवा।—चित्रा०, पृ० १९२।

ग्रामगर्भ—सज्ञा पु० [सं०] भ्रूण [को०]।

ग्रामचुर—सज्ञा पुं० [सं० **ग्राम्रचूर्ण**, हिं० **ग्रमचूर**, **ग्रामचुर**] दे० 'ग्रमचुर'। उ०—खडै कीन्ह ग्रामचुर परा। लौग लायची सौं खँडवरा।—जायसी ग्र०, पृ० २४७।

ग्रामज्वर—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह ज्वर जो ग्राँव के कारण हो।
२ वह ज्वर जिसमे ग्राँव गिरे।

ग्रामडा—सज्ञा पुं० [सं० **ग्राम्रात**] एक बडा पेड जिसके फल ग्राम की तरह खट्टे ग्रौर बडे बेर के बराबर होते हैं, फलों का ग्राचार पडता है। इसकी पत्तियाँ शरीफे की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं।

ग्रामणदूमणा—वि० [सं० उन्मन+दुर्मन, प्रा० उम्मण दुमन, राज० **ग्रामण दूमणो**] उदास। खिन्न। उद्विग्नमन। उ०—साहिब हूँमउ न बोलिया, मुझसूँ रीस ज ग्राज। ग्रतरि ग्रामण दूमणा, किसउज इवडउ काज—ढोला०, दू० २१८।

ग्रामद—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ ग्रवाई। ग्रागमन। ग्राना।

यौ०—**ग्रामदरफ्त**=ग्राना जाना। ग्रावागमन।

मुहा०—आमद आमद होना=(१) आने के समय अत्यंत निकट होना। (२) आने की खबर फैलना या धूम होना।

२ आय। आमदनी। उ०—इन्ने थोडी आमद मे अपने घर का प्रबंध बहुत अच्छा बाँध रक्खा है। —श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३०४।

आमदनी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ आय। प्राप्ति। आनेवाला धन। उ०—इनकी आमदनी मामूली नही है, तथापि जितनी आमदनी आती है उससे खर्च कम किया जाता है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३०४। २ व्यापार की वस्तु जो और देशो से अपने देश मे आवे। रफ्तनी का उलटा।

आमन—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ वह भूमि जिसमे साल भर मे केवल एक ही फसल उत्पन्न हो। २ बंगाल के धान की जाडे की फसल।

आमनघूमनाⓅ—वि० [हिं०] दे० 'आमण दूमण'। उ०—यहु मन आमनघूमना, मेरो तन छीजत नित जाई।—कबीर ग्र०, पृ० १६०।

आमनस्य—संज्ञा पु० [सं०] अनमनापन। दु ख। रंज।

आमनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० आवना] दे० 'आना'।

आमनाय—संज्ञा पुं० [पु० आम्नाय] दे० 'आम्नाय'।

आमनासामना—संज्ञा पु० [आमना=सामना का अनु०+हिं० सामना]मुकाबला। भेंट। जैसे,—इस तरह झगडा न मिटेगा। तुम्हारा उनका आमना सामना हो जाय।

आमनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ वह भूमि जिसमे जाडे का धान बोया जाता है। २ जाडे मे बोए जानेवाले धान की खेती।

आमनेसामने—क्रि० वि० [आमने=सामने का अनु०+हिं० सामने] एक दूसरे के समक्ष। एक दूसरे के मुकाबिले। इस प्रकार जिसमें एक का प्रमुख या अग्रभाग दूसरे के मुख या अग्रभाग की ओर हो। इस प्रकार जिसमे एक वस्तु के अग्रभाग से खीची हुई सीधी रेखा पहले पहल दूसरी वस्तु के अग्रभाग ही को स्पर्श करे। जैसे,—सभा के बीच वे दोनो प्रतिद्वंद्वी आमने सामने बैठे। (ख) वे दोनो मकान आमने सामने हैं, सिर्फ एक सडक बीच मे पडती है।

आमय—संज्ञा पुं० [सं०] रोग। व्याधि। बीमारी। आरजा।

आमयावी—वि० [सं० आमयाविन्] १ रोगी। २ मदाग्नि रोग से पीडित [को०]।

आमरक्तातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] आँव और लहू के साथ दस्त होने का रोग।

आमरखⓅ—संज्ञा पुं० [सं० आमर्ष] दे० 'आमर्ष'।

आमरखनाⓅ—क्रि० अ० [सं० आमर्ष=क्रोध, हिं० आमरख+ना (प्रत्य०)] क्रुद्ध होना। दु खपूर्वक क्रोध करना। उ०—(क) सुनि आमरखि उठे अवनीपति लगे वचन जनु तीर।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तब विदेह पन बदिन प्रगट सुनायो। उठे भूप आमरखि सगुन नहिं पायो।—तुलसी (शब्द०)।

आमरण—क्रि० वि० [सं०] मरणकाल तक। जीवन की अवधि तक। मृत्यु पर्यंत।

आमरस—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमरस'।

आमर्दकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आमलकी। आमला। आँवला। २. फाल्गुन शुक्ला एकादशी का नाम।

आमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आमर्दित] १. जोर से मलना। २ खूब पीसना या रगडना।

आमर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्रोध। कोप। गुस्सा। उ०—आमर्ष को जगानेवाली शिखा नई दे।—माम० पृ० ५७। २. असहनशीलता। ३ रस मे एक संचारी भाव। दूसरे का अहंकार न सहकर उसको नष्ट करने की इच्छा।

आमलक—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० अल्पा० आमलकी] आमला। आँवला। धात्रीफल। उ०—जानहिं नीति काल निज जाना। करतलगत आमलक समाना।—मानस, ११३०।

आमलकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ छोटी जाति का आँवला। आँवली। २ फागुन सुदी एकादशी।

आमला†—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आँवला'।

आमलेट—संज्ञा पु० [अ०] अडे का बना नमकीन पदार्थ। उ०—चाय आमलेट उडाने मे ही कितने रुपए खर्च कर देते हैं।—सन्यासी, पृ० १७४।

आमवात—संज्ञा पु० [सं०] एक रोग जिसमे आँव गिरती है और जोडों मे पीडा तथा हाथ पैर मे सूजन हो जाती है मुँह भी सूज जाता है और शरीर पीला पड जाता है। यह रोग मदाग्निवाले को अजीर्ण मे भोजन करने से होता है।

आमशूल—संज्ञा पु० [सं०] आँव मुडेरे का रोग। आँव के कारण पेट मे मरोड होने का रोग।

आमश्राद्ध—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का श्राद्ध जिसमे पिंडदान के बदले मे ब्राह्मणो को कच्चा अन्न दिया जाता है।

आमाँ—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आवाँ'।

आमाजीर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] आँव का अजीर्ण। कच्चा अनपच। तुख्मा। इस रोग मे खाया हुआ अन्न ज्यों का त्यों गिरता है।

आमातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] आँव के कारण अधिक दस्तो का होना। आँव मुरेडे के दस्त।

आमात्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमात्य'।

आमादगी—संज्ञा स्त्री०[फा०] तैयारी। मुस्तैदी। मौजूदगी। तत्परता।

आमादा—वि० [फा० आमादह्] उद्यत। तत्पर। उतारू। तैयार। सनद्ध। उ०—आज खुदकुशी करने पर आमादा है आकाश।—ठडा०, पृ० ६३।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आमानाह—संज्ञा पु० [सं०] आँव के कारण पेट का फूलना। आँव का अफरा।

आमान्न—संज्ञा पुं० [सं०] कच्चा अन्न। बिना पका अनाज। कोरा अन्न। सूखा अनाज।

आमाल—संज्ञा पु० [अ०] कर्म। करनी। करतूत।

यौ०—आमालनामा।

आमालक—संज्ञा पुं०[सं० आ+माल या देश०]पहाड के पास की भूमि।

आमालनामा—संज्ञा पुं० [अ० आमाल+फा० नामा] वह रजिस्टर जिसमे नौकरो की चालचलन और कार्य करने की योग्यता आदि का विवरण रहता है।

ग्रामावास्य—वि० [स०] ग्रमावस्या से सबधित [को०]।

ग्रामाशय—सज्ञा पुं० [स०] पेट के भीतर की वह थैली जिसमे भोजन किए हुए पदार्थ इकट्ठे होते और पचते हैं।

विशेष—सुश्रुत मे इसका स्थान नाभि ग्रौर छाती के बीच मे लिखा है, पर वास्तव मे इस थैली का चौडा हिस्सा छाती के नीचे बाईं ग्रोर होता है ग्रौर क्रमश पतला होता हुग्रा दाहिनी ग्रोर को घुमाव के साथ यकृत के नीचे तक जाता है। यह थैली झिल्ली ग्रौर मास की होती है। इसके ऊपर बहुत से छोटे छोटे बारीक गड्ढे $\frac{1}{100}$ इच से $\frac{1}{200}$ इच तक के व्यास के होते हैं, जिनमे पाचन रस भरा रहता है। इस थैली म पहुँच कर भोजन बराबर इधर उधर लुढका करता है जिसमे उसके हर एक ग्रश मे पाचन रस लगता है। इसी पाचन रस ग्रौर पित्त ग्रादि की क्रिया से खाए हुए पदार्थ का रूपातर होता है, जैसे पित्त मे मिलकर दूध पेट मे जाते ही दही की तरह जम जाता है।

ग्रामाहल्दी—सज्ञा स्त्री० [स० ग्रामहरिद्रा] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड रग मे हल्दी की तरह ग्रौर गध मे कचूर की तरह होती है। यह बंगाल के जगलो मे बहुत जगह ग्रापसे ग्राप होती है। यह चोट पर बहुत फायदा करती है।

ग्रामिक्षा—सज्ञा स्त्री० [स०] फटा हुग्रा दूध। छेना। पनीर।

ग्रामिख—सज्ञा पु० [स० ग्रामिष] दे० 'ग्रामिष'।

ग्रामिन—सज्ञा स्त्री० [हिं० ग्राम] ग्रवध मे ग्राम की एक जाति जिसके फल सफेदे की तरह मीठे पर बहुत छोटे होते हैं।

ग्रामिर(पु)—सज्ञा पुं० [ग्र०] हाकिम। ग्रधिकारी। उ०—नव नागरितन मुलुकु लहि जोवन ग्रामिर जोर। घटि वढि तें वढि घटि रकम करी ग्रौर की ग्रौर।—विहारी र०, दो० २२०।

ग्रामिल[1]—सज्ञा पु० [ग्र०] १. काम करनेवाला। ग्रनुष्ठान करने वाला। २. कर्तव्यपरायण। ३. ग्रमला। कर्मचारी। ४. हाकिम। ग्रधिकारी। उ०—लिये सकल सुख छीन, बिरहा ग्रामिल ग्राइके।—नट०, पृ० १०१। ५. ग्रोझा। सयाना। ६. पहुँचा हुग्रा फकीर। सिद्ध।

ग्रामिल[2](पु)—वि० [स० ग्रम्ल] खट्टा। ग्रम्ल। उ०—ग्रहै सो कडुग्रा ग्रहै सो मीठा। ग्रहै सो ग्रामिल ग्रहै सो सीठा।—जायसी (शब्द०)।

ग्रामिश्रा—सज्ञा स्त्री० [स०] वह भूमि या राज्य जिसमे राजभक्त ग्रौर राजद्रोही समान रूप से हों।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि राजभक्त जनता के सहारे ही ग्रामिश्रा भूमि पर शासन किया जाय।

ग्रामिष—सज्ञा पुं० [स०] १ मास। गोश्त। उ०—उनकी ग्रामिष-भोगी रसना ग्रांखो से कुछ कहती।—कामायनी, पृ० १११।

यौ०—ग्रामिषप्रिय। ग्रामिषाशी। ग्रामिषाहारी। निरामिष।

२ भोग्य वस्तु। ३ लोभ। लालच। ४ वह वस्तु जिससे लोभ उत्पन्न हो। ५ जॅबीरी नीबू।

ग्रामिषप्रिय[1]—वि० [स०] जिसे मास प्यारा हो।

ग्रामिषप्रिय[2]—सज्ञा पुं० गिद्ध, चील ग्रौर बाज ग्रादि पक्षी जो मांस पर टूटते हैं।

ग्रामिषभोगी—वि० [स० ग्रामिष+भोगी] मासभक्षी। उ०—केते न रक्त प्रसूननि देख फिरे खग ग्रामिषभोगी भुलाने।—भिखारी ग्र०, भा० (?) पृ० ८०।

ग्रामिषाशी—वि० [स० ग्रामिषाशिन्] [वि० स्त्री० ग्रामिषाशिनी] मांस भक्षक। मास खानेवाला।

ग्रामिषी—सज्ञा स्त्री० [सं०] जटामांसी। बालछड।

ग्रामी—ग्रव्य० [इब०] एवमस्तु। ऐसा ही हो।

मुहा०—ग्रामी ग्रामी करनेवाले = हां मे हां मिलानेवाले। खुशामदी।

ग्रामी[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० ग्राम] १ छोटा ग्राम। ग्रॅबिया। उ०—ग्राई उघरि प्रीति कलई सी जैसी खाटी ग्रामी। सूर इते पर ग्रनखनि मरियत ऊधो पीवत मामी।—सूर०, १०।४२४७। २ एक पेड जो कद मे बहुत छोटा होता है। तुगा। भान।

विशेष—हर साल शिशिर ऋतु मे इसके पत्ते झड जाते हैं। इसके हीर की लकडी स्याही लिए हुए पीली तथा बडी मजबूत ग्रौर कडी होती है। इसमे सजावट की ग्रनेक चीजें बनाई जाती हैं। हिमालय के पहाडी लोग इसकी पतली टहनियो की टोकरियां बनाते हैं। शिमला, हजारा तथा कुमाऊँ के पहाडो मे यह वृक्ष ग्रधिकतर पाया जाता है।

ग्रामी[2]—सज्ञा स्त्री० [स० ग्राम = कच्चा] जौ ग्रौर गेहूँ की भूनी हुई बाल।

यौ०—ग्रामी होरा।

ग्रामीलन—सज्ञा पु० [स०] १ ग्रांखें बद करना। २ बंद करना [को०]।

ग्रामुक्त—वि० [स०] १ मुक्त किया हुग्रा। छुटकारा पाया हुग्रा। २ फेंका हुग्रा या त्यागा हुग्रा। ३ स्वीकार किया हुग्रा। ग्रपनाया हुग्रा [को०]।

ग्रामुख—सज्ञा पुं० [स०] नाटक का एक ग्रग। प्रस्तावना।

ग्रामुखता—सज्ञा पुं० [फा० ग्रामोख्तह्] दे० 'ग्रामोख्ता'। उ०—(क) कुछ दिन कही जाकर ग्रामुखता सुनाइए, तब कही ग्राकर बातें बनाइए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २९९। (ख) कोउ ग्रामुखता पढत जोर सौं सोर मचावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २०।

ग्रामुचे(पु)†—सर्व० [मरा० ग्रामूचा = हमारा] हमारे। उ०—तुम्ही ग्रामुचे देव, तुम्ही ग्रामुचे ध्यान।—दादू० बा०, पृ० १७४।

ग्रामुष्मिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ग्रामुष्मिकी] पारलौकिक। परलोक सबधी।

ग्रामूल—क्रि० वि० [स०] ग्रारभ मे ग्रत तक। ग्राद्यंत। उ०—देखा विवाह ग्रामूल नवल। तुझ पर शुभ पटा कलश का जल।—ग्रनामिका, पृ० ३२।

ग्रामेज—वि० [फा० ग्रामेज] मिला हुग्रा। मिश्रित।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्राय यौगिक शब्द बनाने के लिये होता है, जैसे,—दर्दग्रामेज। पनियामेज (दही वा ग्रफीम)।

ग्रामेजना—क्रि० स० [फा० ग्रामेज + हिं० ना (प्रत्य०)] मिलाना। सानना। उ०—मीजी ग्ररगजे मे भई ना मरगजे सजी ग्रामेजे सुगध सेजैं तजी शुभ्र शीत रे।—देव (शब्द०)।

आमेजिश—संज्ञा स्त्री० [फा० आमेजिश] मिलावट। मिश्रण। मेल

आमेर—संज्ञा पुं० [स० अम्बर] राजपूताने का एक नगर जो जयपुर के पास है और जहाँ पहले राजधानी थी।

आमोख्ता—संज्ञा पुं० [फा० आमोख्तह] पढे हुए को अभ्यास के लिये फिर पढना। उद्धरणी।

क्रि० प्र०—करना।—पढना।—फेरना। सुनाना।

आमोचन—संज्ञा पुं० [स०] बधनहीन करना। मुक्त करना [को०]।

आमोद—संज्ञा पुं० [स०][वि० आमोदित, आमोदी] १ आनद। हर्ष। खुशी। प्रसन्नता। उ०—हाँ झूमता है चित्त के आमोद के आवेग मे।—कानन०, पृ० ५३। २ दिलबहलाव। तफरीह। ३. दूर से आनेवाली महक। सुगध। उ०—कमल तजि तन रुचत नाही आक कौं आमोद।—सूर०, १०।४५३५। ४ शतावर।

यौ०—आमोदप्रमोद। आमोदयात्रा = मन बहलाने की दृष्टि से यात्रा।

आमोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुगधित करना। वासना। २ दे० 'आमोद' [को०]।

आमोदप्रमोद—संज्ञा पुं० [सं०] भोगविलास। सुख चैन। हँसी खुशी।

आमोदित—वि० [स०] १ प्रसन्न। खुश। हर्षित। २ दिल लगा हुआ। जी बहला हुआ। ३ सुगंधित। उ०—और चदन कर्पूरादि की सुगध से घ्राणेंद्रिय तथा मस्तिष्क आमोदित हो जाता है।—प्रताप ग्र०, पृ० ५१५।

आमोदी—वि० [स० आमोदिन्] प्रसन्न रहनेवाला। खुश रहनेवाला।

आमोष—संज्ञा पुं० [स०] [वि० आमोषी] चुराना। अपहरण। छीनना [को०]।

आमोषी—संज्ञा पुं० [सं० आमोषिन्] तस्कर। चोर [को०]।

आम्नात[1]—वि०[स०] विचारा हुआ। कहा हुआ। २ दुहराया हुआ। पढा हुआ। ३ याद किया हुआ। स्मरण किया हुआ। ४ ग्रथोक्त। शास्त्रोक्त। ५ पवित्र ग्रथादि के रूप मे परपरागत [को०]।

आम्नात[2]—संज्ञा पुं० [स०] अध्ययन [को०]।

आम्नाय—संज्ञा पुं० [स०] १ अभ्यास।

यौ०—अक्षराम्नाय = वर्णमाला। कुलाम्नाय = कुलपरपरा। कुल की रीति।

२ वेद आदि का पाठ और अभ्यास। ३. वेद।

आम्म—संज्ञा पुं० [देश०] नेवले के प्रकार का एक जतु।

आम्र—संज्ञा पुं० [स०] १ आम का पेड। २ आम का फल।

यौ०—आम्रवन = आम का वन।

आम्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत जिसे अमरकटक कहते हैं।

आम्रगधक—संज्ञा पुं० [स० आम्रगन्धक] एक पौधा। समष्ठिल [को०]।

आम्रात्, आम्रातक—संज्ञा पुं० [स०] आमडे का पेड और फल।

आम्ल[1]—वि० [स०] अम्लसबधी [को०]।

आम्ल[2]—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री० आम्ला] १ खट्टापन। २ इमली [को०]।

आम्लवेतस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लवेतस'।

आम्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

आयँतीपायँती—संज्ञा स्त्री० [फा० पायताना अथवा स० आदि + पादत] सिरहाना पायताना। उ०—आयँनी की छडियाँ पायँती और पायँनी की आयँनी।—(शब्द०)।

आयद—वि०, क्रि० वि० दे० 'आइंदा'। उ०—इनके दिन पर पूरा असर न हुआ तो, आयद बडी खराबी की सूरत पैदा होगी।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३१।

आयंदा—वि०, क्रि० वि० दे० 'आइदा'।

आय[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आमदनी। आमद। लाभ। प्राप्ति। धनागम।

यौ०—आयव्यय।

२ जन्मकुडली मे ११ वाँ स्थान। ३ आगमन। आना (को०)

४ अत पुररक्षक (को०)।

आय[2] ⓟ—संज्ञा स्त्री० [स० आयु] दे० 'आयु'। उ०—ग्रन्थ ने जे मीन से अवधि अबु आय है।—तुलसी ग्र०, पृ० ३३७।

आय[3]—क्रि० अ० [स० अस् = होना] पुरानी हिंदी के 'आसना' या 'आहना' (होना) क्रिया का वर्तमानकालिक रूप। (शुद्ध शब्द 'आहि' है)।

आयत[1]—वि० [स०] विस्तृत। लबा चौडा। दीर्घ। विशाल। उ०—सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उर भूषन राजे।—मानस, १।३२७।

आयत[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] इजील का वाक्य। कुरान का वाक्य। उ०—पुनि उसमान मडित बड गुनी। लिखा पुरान जो आयत सुनी।—जायसी ग्र०, पृ० ५।

आयतच्छदा—संज्ञा स्त्री० [स०] कदली। केला [को०]।

आयतन—संज्ञा पुं० [स०] १ मकान। घर। मदिर। २ विश्रामस्थान। ठहरने का जगह। ३ देवताओं की वदना की जगह।

यौ०—रामपचायतन = जानकी सहित राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की मूर्ति।

४ ज्ञान के सचार का स्थान। वे स्थान जिनमे किसी काल तक ज्ञान की स्थिति रहती है, जैसे,—इंद्रियाँ और उनके विषय।

विशेष—बौद्धमतानुसार उनके १२ आयतन हैं—(१) चक्षुरायतन, (२) श्रोत्रायतन, (३) घ्राणायतन, (४) जिह्वायतन, (५) कायायतन, (६) मनसायतन, (७) रूपायतन, (८) शब्दायतन, (९) गधायतन, (१०) रसनायतन, (११) श्रोतव्यायतन और (१२) धर्मायतन।

आयतनेत्र—वि० [स०] विशाल नेत्रोवाला। बडी बडी आँखोवाला [को०]।

आयतलोचन—वि० [स०] दे० 'आयतनेत्र' [को०]।

आयति—संज्ञा स्त्री० [स०] भावी आय। आगे होनेवाली आमदनी [को०]।

आयत्त—वि० [स०] [संज्ञा आयत्ति] अधीन। वशीभूत।

आयत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधीनता। परवशता।

आयद—वि० [अ०] आरोपित। लगाया हुआ। जैसे,—तुम पर कई जुर्म आयद होते हैं।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आयमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ लंबाई। विस्तार। २ नियमन। ३. तानने या खींचने की क्रिया (जैसे धनुप को)। [को०]

आयमा—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह भूमि जो इमाम या मुल्ला को बिना लगान या थोड़े लगान पर दी जाय।

आयवस—संज्ञा पुं० [सं०] १ पशुओं के चरने के लिये घास का मैदान। २ पशुओं को खिलाने का स्थान [को०]।

आयव्यय—संज्ञा पुं० [सं०] जमाखर्च। आमदनी और खर्च। (को०)

आयस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आयसी] लोहा। १ लोहा २ लोहे का कवच। ३ अगर नाम की लकड़ी। ४ रत्न। मणि।

आयस[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आयसु] १ आदेश। हुक्म। आज्ञा। २ विवाह के अवसर की एक रीति।

आयसी[1]—वि० [सं० आयसीय] लोहे का। आहनी। उ०—मजूषा आयसी कठोरा। बढ़ि सृंखला लगी चहुँ ओरा।—रघुराज (शब्द०)।

आयसी[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कवच। जिरहवख्तर।

आयसीय—वि० [सं०] लोहे का। लौह का बना हुआ [को०]।

आयसु(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] आज्ञा। हुक्म। उ०—प्रभु अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे।—तुलसी ग्र०, पृ० ३५६।

आया[1]—क्रि० अ० [हिं० आना] आना क्रिया का भूतकालिक रूप।

आया[2]—संज्ञा स्त्री० [पुर्त०] अँगरेजों के बच्चों को दूध पिलाने और उनकी रक्षा करनेवाली स्त्री। धाय। धात्री।

आया[3]—अव्य० [फ़ा०] क्या। जैसे— आया तुमने यह काम किया है या नहीं।

आयात—संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु या माल जो व्यापार के लिये विदेश से अपने देश मे लाया या मँगाया गया हो। आगत। जैसे,—आयात व्यापार।

यौ०—आयातकर=आयात वस्तुओं पर लगानेवाला महसूल।

आयाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आगमन। २. पास आना [को०]।

आयान—संज्ञा पुं० [सं०] १ आना। २ प्रकृति। स्वभाव। आदत [को०]।

आयाम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ लंबाई। विस्तार। २ नियमित करने की क्रिया। नियमन।

यौ०—प्राणायाम=प्राणवायु को नियमित करने की क्रिया।

आयाम[2]—क्रि० वि० एक पहर तक।

आयास—संज्ञा पुं० [सं०] परिश्रम। मेहनत।

यौ०—अनायास।

आयासक—वि० [सं०] १ परिश्रम करानेवाला। थकानेवाला २. कष्टकारक [को०]।

आयासी—वि० [सं० आयासिन्] १ जिसने परिश्रम किया हो। थका हुआ। २ प्रयास मे लगा हुआ। परिश्रमी [को०]।

आयुःशेष—संज्ञा पुं० [सं० आयुस्+शेष] आयु का शेष भाग [को०]।

आयुष्टोम—संज्ञा पुं० [सं० आयुस्+स्टोम] दीर्घजीवन की प्राप्ति के लिये किया जानेवाला यज्ञविशेष [को०]।

आयु—संज्ञा स्त्री० [सं०] वय। उम्र। जिंदगी। जीवनकाल।

क्रि० प्र०—क्षीण होना।—घटना।—पूरी होना।—बढ़ना।

मुहा०—आयु खुटाना=आयु कम होना। उ०—जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी। सो जानै जनु आयु खुटानी।—तुलसी (शब्द०)। आयु सिराना=आयु का अंत होना। उ०—जो तैं कही सो सब हम जानी। पुंडरीक की आयु सिरानी।—गोपाल (शब्द०)।

आयुक्त[1]—वि० [सं०] १ नियुक्त। २ अधिकारप्राप्त। ३ संयुक्त। समिलित। ४ प्राप्त [को०]।

आयुक्त[2]—संज्ञा पुं० १ सचिव। मंत्री। २ कारिंदा। ३ कोषाधिकारी। ४. कमिश्नर। [को०]।

यौ०—उच्चायुक्त=हाई कमिश्नर।

आयुक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] अधिकारीविशेष [को०]।

आयुत[1]—वि० [सं०] १ मिश्रित। २ द्रवित। पिघला हुआ [को०]।

आयुत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] आधा पिघला हुआ नवनीत या मक्खन [को०]।

आयुतिक—संज्ञा पुं० [सं०] दस हजार सिपाहियों का अध्यक्ष।

आयुध—संज्ञा पुं० [सं०] हथियार। शस्त्र। उ०—तिन्हके आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर।—मानस, ३।१३।

यौ०—आयुधागार=सिलहखाना। आयुधन्यास।

आयुधजीवी[1]—वि० [सं० आयुधजीविन्] शस्त्र या हथियार की बदौलत जीविका उपार्जित करनेवाला [को०]।

आयुधजीवी[2]—संज्ञा पुं० सैनिक। सिपाही [को०]।

आयुधवर्मिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जयंती वृक्ष [को०]।

आयुधन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों में पूजन के पहले बाह्यशुद्धि का विधान। इसमे चक्र, गदा आदि आयुधों का नाम ले लेकर एक एक अंग का स्पर्श करते हैं।

आयुधपाल—संज्ञा पुं० [सं०] शस्त्रागार या सिलहखाने का अधिकारी [को०]।

आयुधभृत्—वि० [सं०] शस्त्रधारी। हथियारबंद [को०]।

आयुधशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आयुधागार' [को०]।

आयुधसहाय—वि० [सं०] जिसका सहायक आयुध या हथियार हो। हथियारबंद [को०]।

आयुधागार—संज्ञा पुं० [सं०] शस्त्रागार। सिलहखाना [को०]।

आयुधिक[1]—वि० [सं०] शस्त्र से संबध रखनेवाला [को०]।

आयुधिक[2]—संज्ञा पुं० सैनिक। सिपाही [को०]।

आयुधी—वि० [सं० आयुधिन्] दे० 'आयुधीय' [को०]।

आयुधीय—संज्ञा पुं० [सं०] १. फौजी सिपाही। २ सैनिक या रँगरूट देनेवाला गाँव [को०]।

आयुधीकाय—संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र जिसमे फौज मे काम करनेवाले सिपाहियों की संख्या अधिक हो। (को०)।

आयुर्दाय—संज्ञा पुं० [सं०] १ फलित ज्योतिष मे ग्रहों के बलाबल के अनुसार आयु का निर्णय। जैसे अष्टम स्थान मे बृहस्पति आयु बढ़ाता है और तीसरे, छठे और ११वें स्थान मे राहु, मंगल और शनि आदि पापग्रह आयु बढ़ाते है। लग्न या चंद्रमा को यदि मारकेश वा अष्टमेश देखता हो, तो आयु क्षीण होती है। २. आयु। जीवनकाल।

आयुर्द्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ घृत। घी। २ दवा। औषधि [को०]।

आयुर्बल—संज्ञा पुं० [सं०] आयुष्य। उम्र।

आयुर्योग—संज्ञा पुं० [सं०] वह ग्रहयोग जिसके अनुसार ज्योतिषी किसी व्यक्ति के विषय में भविष्यकथन करते हैं [को०]।

आयुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आयुर्वेदीय] आयु संबंधी शास्त्र। चिकित्साशास्त्र। वैद्य विद्या।

विशेष—इस शास्त्र के आदि आचार्य अश्विनीकुमार माने जाते हैं जिन्होंने दक्ष प्रजापति के धड़ में बकरे का सिर जोड़ा था। अश्विनीकुमारों से इंद्र ने यह विद्या प्राप्त की। इंद्र ने धन्वंतरि को सिखाया। काशी के राजा दिवोदास धन्वंतरि के अवतार कहे गए हैं। उनसे जाकर सुश्रुत ने आयुर्वेद पढ़ा। अत्रि और भरद्वाज भी इस शास्त्र के प्रवर्तक माने जाते हैं। चरक की संहिता भी प्रसिद्ध है। आयुर्वेद अथर्ववेद का उपांग माना जाता है। इसके आठ अंग हैं। (१) शल्य (चीरफाड़), (२) शालाक्य (सलाई), (३) कायचिकित्सा (ज्वर, अतिसार आदि की चिकित्सा), (४) भूत विद्या (झाड़-फूँक), (५) कौमारतंत्र (बालचिकित्सा), (६) अगदतंत्र (बिच्छू, साँप आदि के काटने की दवा), (७) रसायन और (८) वाजीकरण। आयुर्वेद शरीर में वात, पित्त, कफ मानकर चलता है। इसी से उसका निदानखंड कुछ संकुचित सा हो गया है। आयुर्वेद के आचार्य ये हैं—अश्विनीकुमार, धन्वंतरि, दिवोदास (काशिराज), नकुल, सहदेव, अर्कि, च्यवन, जनक, बुध, जावाल, जाजलि, पैल, करथ, अगस्त, अत्रि तथा उनके छ शिष्य (अग्निवेश, भेड, जातूकर्ण, पराशर, क्षीरपाणि हारीत), सुश्रुत और चरक।

आयुर्वेदिक—वि० [सं०] १ आयुर्वेद संबंधी। २ आयुर्वेद में होने वाला [को०]।

आयुर्वेदी[1]—संज्ञा पुं० [सं० आयुर्वेदिन्] वैद्य। आयुर्वेदानुसार चिकित्सा करनेवाला व्यक्ति [को०]।

आयुर्वेदी[2]—वि० आयुर्वेद संबंधी [को०]।

आयुर्वृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आयु की वृद्धि। उम्र बढ़ना [को०]।

आयुष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आयुष्] आयु। उ०—तौ अत्रु नामदेव आयुष तें होइ तुम्हहि प्रभु दाता।—भक्तमाला, (श्री०)। पृ० ४८५।

आयुषमान(पु)—वि० [सं०आयुष्मान्] दे० 'आयुष्मान'। उ०—ताते सरजा विरद सो सोभित सिंह प्रमान। रन-भूसिला सुभौंसिला, आयुषमान खुमान।—भूषण ग्रं०, पृ० ७।

आयुष्कर—वि० [सं०] आयुवर्धक। उम्र बढ़ानेवाला [को०]।

आयुष्काम—वि०[सं०]लंबी उम्र की कामना रखनेवाला [को०]।

आयुष्कौमारभृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] बच्चों के रोगों का इलाज। बीमार बच्चों की दवा [को०]।

आयुष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो आयु की वृद्धि के लिये किया जाता है।

आयुष्मन्—संज्ञा पुं० [सं०] आयुष्मान् का संबोधन रूप। उ०—कल्याण हो आयुष्मन्, तुम्हारे युवराज अपने अधिकारों से उदासीन हैं।—स्कंद० पृ० ६।

आयुष्मान—वि० [सं० आयुष्मत्, आयुष्मान्] [स्त्री० आयुष्मति] १ दीर्घजीवी। चिरजीवी। २ नाटकों में सूत रथी को आयुष्मान कह कर संबोधन करते हैं। राजकुमारों को भी इसी शब्द से संबोधन करते हैं। ३ फलित ज्योतिष के विष्कुंभ आदि २७ भेदों में से एक।

आयुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] आयु। उम्र।

आयुस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आयुस्] आयु। उ०—आयुस किंकर गण तब पावैं।—कबीर सा०, पृ० ४६२।

आयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ साहित्य में विप्रलंभ के दो पक्षों में से प्रथम जिसमें अविवाहित अवस्था में प्रेम हो जाने पर मिलन न होने से विरह दुःख उठाना पड़ता है। पूर्वराग की अवस्था। २ हल या बैलगाड़ी का जुआ। ३ पुष्पादि भेंट करने की क्रिया। ४ किनारा। तट। ५ नियुक्ति। ६ कार्यविशेष को पूर्ण करना। ७. ताल्लुक। संबंध। ८. कमीशन [को०]।

आयोगव—संज्ञा पुं० [सं०] वैश्य स्त्री और शूद्र पुरुष से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति जिसका काम विशेषकर काठ की कारीगरी है। बढ़ई।

आयोजक—वि० आयोजन या व्यवस्था करनेवाला। तैयारी करनेवाला। प्रबंधक [को०]।

आयोजन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आयोजना] [वि० आयोजित] १ किसी कार्य में लगाना। नियुक्ति। २. प्रबंध। इंतजाम। सामग्रीसंपादन। ठीक ठाक। तैयारी। उ०—राका रजनी आयोजनरत लोकोत्तर छविशाली।—पारिजात, पृ० १०। ३ उद्योग। ४ सामग्री। सामान।

आयोजित—वि० [सं०] ठीक किया हुआ। तैयार।

आयोधन—संज्ञा पुं० [सं०] १ युद्ध। लड़ाई। २ रणभूमि। लड़ाई का मैदान।

आरंजित—वि० [सं० आरञ्जित] सम्यक् रूप से रंजित। अच्छी तरह रँगा हुआ। उ०—नव नव उषा राग आरंजित मनरंजन वनमाली।—पारिजात, पृ० १०।

आरंभ—संज्ञा पुं० [सं० आरम्भ] किसी कार्य की प्रथमावस्था का संपादन। अनुष्ठान। उत्थान। शुरू। समाप्ति का उलटा। उ०—प्रारंभ और परिणामों के संबंधसूत्र से बुनते हैं।—कामायनी, पृ० ७५।

क्रि० प्र०—करना। जैसे,—उसने कल से पढ़ना आरंभ किया। —होना। जैसे,—अभी काम आरंभ हुए कै दिन हुए हैं?।

२ किसी वस्तु का आदि। उत्थान। शुरू का हिस्सा। जैसे,—हमने यह पुस्तक आरंभ से अंत तक पढ़ी है। ३. उत्पत्ति। आदि। ४ वध (को०)। ५ गर्व (को०)।

आरंभक—वि० [सं० आरम्भक] आरंभ करनेवाला। श्रीगणेश करनेवाला [को०]।

आरंभण—संज्ञा पुं० [आरम्भण] १ आरंभ करने की क्रिया। आरंभ होने की क्रिया या भाव। २ अधिकार में करना। ३. मूठ (हैंडिल) [को०]।

आरंभतः—अव्य० [सं० आरम्भतस्] आरंभ से। मूल से। मूलतः। नए सिरे से [को०]।

आरंभना[1]—क्रि० अ० [सं० आरम्भण] शुरू होना।

आरभना[2]--क्रि० स० प्रारंभ या शुरू करना।

आरभनिष्पत्ति--सज्ञा स्त्री० [स०] १ उपलब्धि। माल की माँग पूरी करना। २. माल पैदा करने या बनाने की लागत। [को०]।

आरंभवाद--सज्ञा पु०[स० आरम्भवाद] न्यायशास्त्र का वह सिद्धांत जिसके अनुसार विश्वसृष्टि परमाणुओं के योग से परमात्मा के इच्छानुसार हुई [को०]।

आरभशूर--वि० [सं० आरम्भशूर] किसी काम को ठान देने में आगे रहनेवाला। उ०--अपने सहयोगियों में हास्यास्पद बन जाएँगे, आरभशूर कहवाय लेंगे।--प्रताप ग्र०, पृ० ७१२।

आरंभिक--वि० [सं० आरम्भिक] आरंभ से संबंध रखनेवाला। शुरू का [को०]।

आरंभी--वि० [स० आरम्भिन्] १ आरंभ करनेवाला। २ नए और कठिन काम को करने के लिये सर्वप्रथम बढनेवाला।

आर[1]--सज्ञा पु० [सं०, तुल० अ० 'ओर'] १ वह लोहा जो खान से निकाला गया हो, पर साफ न किया गया हो। एक प्रकार का निकृष्ट लोहा। २ पीतल। ३ किनारा। ४ कोना।

यौ०--द्वादशार चक्र। षोडसार चक्र।

विशेष--इस प्रकार के द्वादश कोण और षोडश कोण के चक्र बनाकर तांत्रिक लोग पूजन करते हैं।

५ पहिए का आरा। ६ हरताल।

आर[2]--सज्ञा स्त्री० [स० अल=डक] १ लोहे की पतली कील जो साँटे या पैने में लगी रहती है। अनी। पैनी। २ नर मुर्गे के पंजे का काँटा जिससे लड़ते समय वे एक दूसरे को घायल करते हैं। ३ बिच्छू, भिड और मधुमक्खी आदि का डक। उ०--बीछी आर सरिस टेई मूछें सबही की।--प्रेमघन, भा० १, पृ० ८०।

आर[3]--सज्ञा स्त्री०[स० आरा]चमडा छेदने का सूआ या टेकुआ। सुतारी।

आर[4]--सज्ञा पु० [देश०] १ ईख का रस निकालने का कलछा। पल्ली। ताँबी। २ वर्तन बनाने के साँचे में भीतरी भाग के ऊपर मुँह पर रखा हुआ मिट्टी का लोंदा जिसे इस तरह बढाते हैं कि वह अँवठ के चारों ओर बढ आता है।

आर[5]†--सज्ञा पुं० [हिं० अड़] अड। जिद। हठ। उ०--(क) अँखियाँ करत हैं अति आर। सुंदर श्याम पाहुने के मिस मिलि न जाहु दिन चार (शब्द०)।

क्रि० प्र०--करना--जिद करना। उ०--कबहुँक आर करत माखन की कबहुँक मेख दिखाइ बिनानी।--सूर (शब्द०)। --ठानना। उ०--हरीचंद बलिहारी आर नहिं ठानो।--भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४६८।

आर[6]--सज्ञा स्त्री० [अ०] १ तिरस्कार। घृणा।

क्रि० प्र०--करना। जैसे, भले लोग बदचलनों से आर करते हैं।

२ अदावत। वैर जैसे,--न जाने वे हमसे क्यों आर रखते हैं। ३. शर्म। हया। लज्जा। उ०--कुछ तुम्हीं मिलने से बेजार हो मेरे, वर्ना, दोस्ती नग नही, ऐब नही, आर नही।--शेर०, भा० १, पृ० ११२।

क्रि० प्र०--आना। जैसे,--इतने पर भी उसे आर नहीं आती।

आरक्त[1]--वि० [सं०] १. ललाई लिए हुए। कुछ लाल। २ लाल।

आरक्त[2]--संज्ञा पु० [सं०] लाल चदन।

आरक्तिम--वि० [सं०] थोडा लाल। हलकी लाली लिए हुए [को०]।

आरक्ष[1]--सज्ञा पुं० [स०] १ रक्षा। २ सैन्य। फौज। ३ हाथी के कुंभ का सधिस्थल [को०]।

आरक्ष[2]--वि० सुरक्षित। सँभालकर रखा हुआ [को०]।

आरक्षक--सज्ञा पुं० [स०] १ पहरेदार। रक्षक। २ सिपाही [को०]।

आरक्षण--सज्ञा पुं० [स०] निर्धारित करना। निश्चित करना। अं० रिजर्वेशन।

आरक्षिक, आरक्षी--सज्ञा पु० [स०] दे० 'आरक्षक' [को०]।

आरग्वध--सज्ञा पुं० [स०] अमिलतास।

आरचित--वि० [स०] पूर्ण रूप से सज्जित। अच्छी तरह बनाया हुआ [को०]।

आरचेस्ट्रा--सज्ञा पु० [अं० आरकेस्ट्रा] १ थियेटर आदि में सामने बैठकर बाजा बजानेवालों का दल। २ थियेटर में वह स्थान जहाँ बाजा बजानेवाले एक साथ बैठकर बाजा बजाते हैं। ३ थियेटर में सबसे आगे की सीटें या आसन।

आरज(पु)--वि० [सं० आर्य] दे० 'आर्य'। उ०--फूटहि सो जयचद बुलायो जवनन भारत धाम। जाको फल अब लौं भोगत सब आरज होन गुलाम।--भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २३६।

आरजपथ--सज्ञा पु० [स० आर्य+पथ] आर्यमार्ग। सदाचार का मार्ग। उ०--आरजपथ भूली भलै बिसम परी हितकंद।--घनानंद, पृ० २३८।

आरजा--सज्ञा पुं० [अ० आरिजह] रोग। बीमारी।

आरजू--सज्ञा स्त्री० [फा०] इच्छा। वाछा। जैसे,--(क) मुझे बहुत दिनों से उनके मिलने की आरजू है। (ख) बहुत दिनों के बाद मेरी आरजू पूरी हुई।

यौ०--आरजूमंद।

मुहा०--आरजू बर आना=इच्छा पूरी होना। आशा पूरना। जैसे,--बहुत दिनों से आशा थी, आज मेरी आरज बर आई। आरजू मिटाना=इच्छा पूरी करना। जैसे,--तुम भी अपनी आरजू मिटा लो।

२ अनुनय। विनय। विनती।

आरजूमद--वि० [फा०] इच्छुक। अभिलाषी।

आरट[1]--वि० [सं०] बार बार रट लगानेवाला। शोर करने वाला [को०]।

आरट[2]--सज्ञा पु० विदूषक [को०]।

आरट्ट--सज्ञा पुं० [सं०] १ पजाब के उत्तर पूर्व का एक भूभाग। २ आरट्ट के निवासी। ३ आरट्ट जनपद का घोडा [को०]।

आरण(पु)--सज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अहरन'। उ०--जिव आरण लोहा पाहीजै तर्प भखै भाखाय।--प्राण०, पृ० २११।

आरणि--सज्ञा पु० [सं०] जलावर्त। भँवर [को०]।

आरणेय[1]--सज्ञा पुं० [स०] शुकदेव मुनि [को०]।

आरणेय[2]--वि० [स०] १ अरणि नामक यंत्र से उत्पन्न या सबद्ध [को०]।

आरण्य[1]--वि० [सं०] १ जगली। बनैला। २ जगल का। बन का।

यौ०--आरण्य कुक्कुट। आरण्य गान। आरण्य पशु।

आरण्य²—संज्ञा पुं० १ दे० 'अरण्य'। २ जगली पशु। ३ गोमय। गोवर। ४ मेष, वृष सिंह राशियाँ (ज्योतिष)। ५ बिना वोए उत्पन्न होनेवाला एक अन्न [को०]।

यौ०—**आरण्यकाड** = रामायण का तृतीय काड। **आरण्य कुक्कुट** = बनमुर्गा। **आरण्य गान** = सामवाद के चार गानो मे एक **आरण्यपर्व** = महाभारत का एक पर्व। **आरण्यपशु** = जगली पशु। **आरण्यमुग्दा** = एक प्रकार की मूंग [को०]। **आरण्य राशि** = (१) ज्योतिष मे सिंह आदि राशियाँ। (२) कर्कराशि का पूर्वार्ध भाग।

आरण्यक¹—वि० [सं०] [स्त्री० **आरण्यकी**] १ जगल का। वन का। जगली। बनैला।

आरण्यक²—संज्ञा पुं० वेदो की शाखा का वह भाग जिसमे वानप्रस्थो के कृत्य का विवरण और उनके लिये उपयोगी आदेश है।

विशेष—वैदिक वाङ्मय मे सहिताओ के अनतर के ब्राह्मण ग्रथो का उत्तरवर्ती वाङ्मय भाग जो उपनिषदो का पूर्ववर्ती है।

यौ०—**आरण्यक संवाद** = आरण्यक ग्रथो मे प्रतिपादित सिद्धात। उ०—सुनाने आरण्यक सवाद तथागत आया तेरे द्वार। —लहर, पृ० १२।

आरत(पु)—वि० [स० **आर्त**] दे० 'आर्त'। उ०—गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुल तिलक नारि-पहिचानी।—मानस, ३।२३।

आरतहर(पु)—वि० [सं० **आर्तिहर**] दु ख दूर करनेवाला। कष्टहारी। उ०—नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो। मो समान आरत नहि आरतहर तोसो। तुलसी ग्र ०, पृ० ५००।

आरति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विरक्ति। विराग। स्थगन। रोक। २ दे० '**आर्ति**'। ३ हठ। जिद। उ०—साँझहि ते अति ही विरुझान्यौ चंदहि देखि करी अति आरति।—सूर०,१०।२००। ४ अनीति। उ०—नदवरनि ब्रजनारि विचारति। ब्रजहि बसत सब जनम सिरानौ ऐसी करि न आरति।—सूर०, १०।४२६।

आरति²(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० **आर्ति**] मनोरथ। इच्छा। उ०—मोको आत्मनिवेदन करवाइए और मेरी आरति पूरन करिए। —दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १६।

आरती—संज्ञा स्त्री० [स० **आरात्रिक**] १ किसी मूर्ति के ऊपर दीपक को घुमाना। नीराजन। दीप। उ०—चढी अटारिन्ह देखहिं नारी। लिए आरती मगल थारी।—मानस, १।३०१।

विशेष—इसका विधान यह है कि चार वार चरण, दो वार नाभि, एक वार मुँह के पास तथा सात वार सर्वांग के ऊपर घुमाते हैं। यह दीपक या तो घी से अथवा कपूर रखकर जलाया जाता है। बत्तियो की सख्या एक से कई सौ तक की होती है। विवाह मे वर और पूजा मे आचार्य आदि की भी आरती की जाती है।

क्रि० प्र०—**उतारना**।—**करना**।

मुहा०—**आरती लेना** = देवता की आरती हो चुकने पर उपस्थित लोगो का उस दीपक पर हाथ फेरकर माथे लगाना।

२ वह पात्र जिसमे घी की बत्ती रखकर आरती की जाती है।

३ वह स्तोत्र जो आरती के समय गाया या पढा जाता है।

आरत्ति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **आर्ति**] दे० 'आर्त्ति'। उ०—श्री कँधाई जी का स्मरन करि कै वोहोत आरत्ति सो विनती करी।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० १०७।

आरथ—संज्ञा पुं० [सं०] एक बैल या एक घोडे से चलनेवाला रथ [को०]।

आरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अरण्य**] जगल। वन। उ०—कीन्हेसि साउज आरन रहई। कीन्हेसि पखि उडसि जहँ चहई।—जायसी ग्रं०, पृ० १।

आरनाल, आरनालक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कच्चे गेहूँ का खींचा हुआ अर्क। २ काँजी।

आरपार¹—संज्ञा पुं० [सं० **आर** = किनारा + **पार** = दूसरा किनारा] यह किनारा और वह किनारा। यह छोर और वह छोर। अधिक। जैसे,—नाव से उसी नदी का आरपार नही दिखाई देता।

विशेष—यह शब्द समाहार द्वंद्व समास है, उसमे इसके साथ एक वचन क्रिया का ही प्रयोग होता है।

आरपार²—क्रि० वि० [सं०] एक छोर से दूसरे छोर तक। एक किनारे से दूसरे किनारे तक। जैसे,—(क) इन दीवार मे आरपार छेद हो गया है। (ख) आरपार जाने मे कितनी देर लगेगी?

आरफनेज—संज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ अनाथ बच्चों की रक्षा या पालन होता है। अनाथालय। यतीमखाना। जैसे,—हिंदू आरफनेज।

आरबल(पु)†, **आरबला**(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयुर्बल'।

आरब्ध—वि० [सं०] आरभ किया हुआ।

आरब्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुरुआत। आरभ [को०]।

आरभट—संज्ञा पुं० [सं०] १ साहसी व्यक्ति। २ साहस। बहादुरी। ३ विश्वास [को०]।

आरभटी—संज्ञा स्त्री० [स०] १ क्रोधादिक उग्र भावो की चेष्टा। उ०—झूठी मन झूठी सब काया, झूठी आरभटी। अरु झूठन को वदन निहारत मारत फिरत नटी।—सूर (शब्द०)। २ एक प्रकार की नृत्यशैली [को०]। ३ नाटक मे एक वृत्ति का नाम

विशेष—इस वृत्ति मे यमक का प्रयोग अधिक होता है। इसके द्वारा माया, इद्रजाल, संग्राम, क्रोध, आघात प्रतिघात और बधनादि विविध रौद्र, भयानक और वीभत्स रस दिखाए जाते हैं। इसके चार भेद हैं—वस्तूत्थापन, सफेट, सक्षिप्ति और अवपातन (१) वस्तूत्थापन = ऐसी वस्तुओ का प्रदर्शन या वर्णन जिसमे रौद्रादि रसो की सूचना हो। जैसे,—सियारो का बोलना और श्मशान आदि। (२) सफेट = दो आदमियो का झटपट आकर भिड जाना। (३) सक्षिप्ति = क्रोधादि उग्र भावों की निवृत्ति। जैसे,—रामचद्र जी की बातो को सुनकर परशुराम के क्रोध की निवृत्ति। (४) अवपातन = प्रवेश से निष्क्रमण तक रौद्रादि भावो का अविच्छिन्न प्रदर्शन।

आरमण—संज्ञा पुं० [सं०] १ हर्ष या आनद मनाना। २ हर्ष। खुशी। ३ यौनसुख। ४ विश्रामस्थल। विराम [को०]।

आरव—संज्ञा पुं० [सं०] १ शब्द। आवाज। २ आहट। उ०—घुरघुरात हय आरव पाए। चकित विलोकन कान उठाए।—तुलसी (शब्द०)।

आरषी(पु)—वि० [स० **आर्ष**] आर्ष। ऋषियों को। उ०—भले भूप कहत भले भदेस भूपन सो लोक लखि बोलिए पुनीत रीति आरषी।—तुलसी (शब्द०)।

आरस[1]ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० आलस] दे० 'आलस्य'। उ०—भोर खरी सारसमुखी आरस भरी जँभाय।—स० सप्तक, पृ० २५३।

आरस[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरसी'।

आरसा—संज्ञा पुं० [हिं० रस्सा] १ रस्सा। जैसे,—बोए का आरसा = वह रस्सा जिसमे लगड का बोझा बँधा रहता है। २ रस्से की मुद्धी जिसमे कोई चीज बाँधकर लटकाई या उठाई जाय। गाँठ।

आरसी—संज्ञा स्त्री० [सं० आदर्श] १ शीशा। आईना। दर्पण। उ०—(क) कहा कुमुम, कह कौमुदी, कितक आरसी जोति। जाकी उजराई लखे, आँखि ऊजरी होति।—बिहारी र०, दो० ५१२। २ एक गहना जिसे स्त्रियाँ दाहिने हाथ के अँगूठे मे पहनती हैं। यह एक प्रकार का छल्ला है जिसके ऊपर एक कटोरी होती है जिसमे शीशा जडा होता है। उ०—कर मुँदरी की आरसी, प्रतिबिंबित प्यौ पाइ। पीठि दिये निधरक लखै, इकटक डीठि लगाइ।—बिहारी र०, दो० ६११।

आरस्य—संज्ञा पुं० [स०] रसहीनता। अरसता। शुष्कता [को०]।

आरा[1]—संज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अल्पा० आरी] १ एक लोहे की दाँतीदार पटरी जिससे रेत कर लकडी चीरी जाती है। इसके दोनो ओर लकडी के दस्ते लगे रहते है। उ०—यह मन वाको दीजिए जो साँचा सेवक होय। सिर ऊपर आरा सहै, तवहुँ न दूजा सोय।—कबीर (शब्द०)। २ चमडा सीने का टेकुआ या सूजा। सुतारी।

यौ०—आराकश।

आरा[2]—संज्ञा पुं० [स० आर] लकडी की चौडी पटरी जो पहिए की गडारी और पुट्ठी के बीच जडी रहती है। एक पहिए मे ऐसी दो पटरियाँ होती हैं, बाकी और जो पतली पतली चार पटरियाँ जडी जाती हैं, उन्हे गज कहते हैं।

आरा[3]—संज्ञा पुं० [हिं० आडा] लकडी या पत्थर की पटरी जिसे दीवार पर रखकर उसके ऊपर घोडिया या टोटा बैठाते हैं। यह इसलिये रखा जाता है कि घोडिया आदि एक सीध मे रहे ऊपर नीचे न हो। दीवारदासा। दासा।

आरा[4]†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आला'।

आराइश—संज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० आरास्ता] १ सजावट। २. कागज के फूल पत्ते जो बरात मे द्वारपूजा के समय साथ ले जाते हैं। फुलवाडी।

आराइशी—वि० [फा०] आराइश या साज सज्जा के काम आनेवाला [को०]।

आराकश—संज्ञा पुं० [हिं० आरा + फा० कश] आरा चलानेवाला आदमी।

आराज—संज्ञा पुं० [सं०] अराजकता। शासक के अभाव मे होनेवाली अशांति [को०]।

आराजी—संज्ञा स्त्री० [अ० आराजी] १ भूमि। जमीन। २. खेत।

आराण—संज्ञा पुं० [स० रण] युद्ध। सग्राम।—(डिं०) [को०]।

आरातⓤ—अव्य० [सं०] १ निकट। पास।

आराति—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु। वैरी। उ०—सावधान होइ धाए जानि सकल आराति। लागे वरषन राम पर अस्त्र शस्त्र बहु भाँति।—मानस, ३।१३।

आरातीⓤ—संज्ञा पुं० [सं० आराति] शत्रु। आराति। उ०—पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरै न कीस चरन एहि भाँती।—मानस, ६।३३।

आरात्—क्रि० वि० [स०] १ पास। आसपास। २ दूर। दूरस्थ स्थान पर। ३ तुरंत। चटपट [को०]।

आराधक—वि० [स०] [स्त्री० आराधिका] उपासक। पूजा करनेवाला।

आराधन—संज्ञा पुं० [स०] [वि० आराधक, आराधनीय, आराधित] १ सेवा। पूजा। उपासना। उ०—प्राराधन का दृढ आराधन से दो उत्तर।—अनामिका, पृ० १५६। २ तोषण। तर्पण। प्रसन्न करना। ३ पकाना। राँधना (को०)। ४ अर्जन [को०]।

आराधना[1]—संज्ञा स्त्री० [स०] पूजा। उपासना।

आराधना[2]ⓤ—क्रि० स० [स० आराध = आ + √राध् + हिं० ना (प्रत्य०)] १ उपासना करना। पूजना। उ०—केहि आराधहु का तुम चहहू। हम सन सत्य मर्म सब कहहू।—तुलसी (शब्द०)। २ सतुष्ट करना। प्रसन्न करना। उ०—इच्छित फल बिनु शिव आराधे। लहइ न कोटि योग जप साधे।—तुलसी (शब्द०)।

आराधनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपासना। सेवा। पूजा। [को०]।

आराधनीय—वि० [स०] आराधना के योग्य। पूजनीय।

आराधयिता—वि० [स० आराधयितृ] आराधना करनेवाला [को०]

आराधित—वि० [सं०] जिसकी उपासना हुई हो। पूजित।

आराध्य—वि० [स०] पूज्य। पूजनीय।

आराम[1]—संज्ञा पुं० [स०] बाग। उपवन। फुलवारी। उ०—परम रम्य आराम यह जो रामहिं सुख देत।—तुलसी (शब्द०)।

आराम[2]—संज्ञा पुं० [फा०] १ चैन। सुख। जैसे,—ससार मे कौन नही आराम चाहता।

क्रि० प्र०—करना।—चाहना।—देना।—पहुँचना।—पाना।—लेना।—मिलना।

२. चगापन। सेहत। स्वास्थ्य। जैसे,—जब से यह दवा दी गई हैं, तब से कुछ आराम है।

क्रि० प्र०—करना।—चाहना।—देना।—पाना।—होना।

३ विश्राम। थकावट मिटाना। दम लेना। जैसे,—बहुत चले, जरा आराम तो लेने दो।

क्रि० प्र०—करना।—पाना।—लेना।

यौ०—आरामगाह। आरामतलब। आरामदान। आरामपाई।

मुहा०—आराम करना = सोना। जैसे,—उन्हे आराम करने दो, बहुत जागे हैं। आराम मे होना = सोना। जैसे,—प्रभी आराम मे हैं, इस वक्त जगाना अच्छा नहीं। आराम लेना = विश्राम करना। आराम से = फुरसत मे। धीरे धीरे। बेखटके। जैसे,—(क) कोई जल्दी पडी है, ठहरो आराम से लिखा जायगा। (ख) इस वक्त रखो, घर पर आराम से बैठकर देखेंगे। आराम से गुजरना = चैन से दिन कटना।

आराम²—वि० [फा०] चंगा । तंदुरुस्त । जैसे,—उस वैद्य ने उसे बात की बात में आराम कर दिया ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

आरामकुरसी—संज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार की लंबी कुरसी जिसमें पीछे की ओर कुछ लंबोतरा ढालना होता है और दोनों ओर हाथ या पैर रखने के लिये लंबी पटरियाँ लगी होती हैं । इस पर आदमी बैठा हुआ आराम से लेट भी सकता है ।

आरामगाह—संज्ञा स्त्री० [फा०] सोने की जगह । शयनागार ।

आरामतलब—वि० [फा०] [संज्ञा आरामतलबी] १ सुख चाहनेवाला । सुकुमार । जैसे,—काम न करने से अमीर लोग आरामतलब हो जाते हैं । २ सुस्त । आलसी । निकम्मा । जैसे,—वह इतना आरामतलब हो गया है कि कहीं जाता आता भी नहीं ।

आरामदान—संज्ञा पुं० [फा० आराम + दान] १ पानदान । २ सिंगारदान ।

आरामपाई—संज्ञा स्त्री० [फा० आराम + हिं० पाय] एक प्रकार की जूती जिसे पहलेपहल लखनऊवालों ने बनाया था ।

आरामशीतला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आनंदी । गंधाढ्या । महानंदा । रामशीतला ।

विशेष—यह उपवन में रहने के कारण शीतल होती है । राजनिघंटु में इसे तिक्त, शीतल, पित्तहारिणी, दाह और शोथ को दूर करनेवाली कहा गया है ।

आरामाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] बगीचों का अधिकारी ।

विशेष—शुक्रनीति के अनुसार आरामाधिपति को फल फूल के पौधे बोने में निपुण, खाद तथा पानी देने का समय जाननेवाला, जड़ी बूटियों को पहचाननेवाला होना चाहिए ।

आरामिक—संज्ञा पुं० [सं०] माली [को०] ।

आरालिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आरालिका] रसोईदार । पाचक ।

आराव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आरव' [को०] ।

आरास्ता—वि० [फा० आरस्तह] सजा हुआ । सुसज्जित । उ०—चमत्कृत चीजों से वह आरास्ता और पैवस्ता है । प्रेमघन, भा० २, पृ० २३४ ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

आराही(पु)—वि० [सं० आराधक, प्रा० आराहग, अप० आराही] उपासक । आराधना करनेवाला । उ०—सुर जाको पार न पावें कोटि मुनी जन ध्याई । दादू रे तन ताको है रे जाको सकल लोक आराही ।—दादू० बा०, पृ० ५७३ ।

आरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अड़] हठ । टेक । जिद । उ०—(क) द्वार हौं भोर ही को आजु । रटत रिरिहा, आरि और न, कौर ही ते काजु ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६८ । (ख) तब सकोप भगवान हरि लीन्हन चक्र प्रहारि । धर ते सीस धरा, धरा, करि लीन्ही श्रुति आरि ।—गोपाल (शब्द०) ।

आरिज¹—संज्ञा पुं० [अ० आरिज़] कपोल । गाल । उ०—लगा दे मोहए आरिज से गर वह आग गुलशन में ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४० ।

आरिज²—वि० [अ०] १ अड़चन डालनेवाला । बाधक । २ होने या लग जानेवाला (रोग आदि), [को०] ।

आरिजा¹—संज्ञा पुं० [अ० आरिजह्] १ रोग । बीमारी । २. कष्ट [को०] ।

आरिजी—वि० [अ० आरिजी] १. क्षणस्थायी । नश्वर । २ आकस्मिक । उ०—उसके रुखसार देख जीता हूँ । आरिजी मेरी जिंदगानी है ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २६ ।

आरित्रिक—वि० [सं०] अरित्र से संबंधित । नाव के डाँड से संबद्ध [को०]

आरिफ—संज्ञा पुं० [अ० आरिफ़] साधु । ज्ञानी । उ०—आरिफ जो हैं उनके हैं बस रज व राहत एक 'रसा' । जैसे वह गुजरी है यह भी किसी तरह निभ जाएगी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८५६ ।

आरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० आरुक = ककड़ी] एक फल जो ककड़ी के समान होता है । यह भादों क्वार के महीने में होती है और बहुत ठंढी होती है । यह एक बित्ता लंबी और अँगूठे के बराबर मोटी होती है ।

आरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० आरा का अल्पा०] १ लकड़ी चीरने का बढ़ई का एक औजार ।

विशेष—यह लोहे की एक दाँतीदार पटरी होती है जिसमें एक ओर काठ का दस्ता या मूठ लगी रहती है । मूँठ की ओर यह पटरी चौड़ी और आगे की ओर पतली होती जाती है । इससे रेतकर लकड़ी चीरते हैं । हाथीदाँत आदि चीरने के लिये जो आरी होती है वह बहुत छोटी होती है ।

२ लोहे की एक कील जो बैल हाँकने के पैने की नोक में लगी रहती है । ३. जूता सीने का सूजा । सुतारी ।

आरी²(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आर = किनारा] ओर । तरफ । उ०—बिछवाए पौरि लौं बिछौना जरीबाफन के, खिंचवाए, चाँदनी सुगंध सब आरी में ।—रघुनाथ (शब्द०) । २. कोर । अवँठ । बारी ।

आरी³—वि० [अ०] तंग । हैरान । आजिज । जैसे,—हम तो तुम्हारी चाल से आरी आ गए हैं ।

क्रि० प्र०—आना ।

आरी⁴—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ बबूल की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसे जालबर्बुरक या स्थूलकंटक भी कहते हैं । २ दुर्गंधखैर । बबुरी ।

आरु¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्कट । केकड़ा । २ शूकर । ३ वृक्ष विशेष । ४ मेढक [को०] ।

आरु²—संज्ञा स्त्री० घड़ा । जलपात्र [को०] ।

आरुक¹—संज्ञा पुं० [सं०] औषध के काम आनेवाला एक प्रकार का पौधा जो हिमालय पर होता है । यह शीतलता प्रदान करता है [को०] ।

आरुक²—वि० हानिकारक [को०] ।

आरुण—वि० [सं०] अरुण से संबंध रखनेवाला [को०] ।

आरुणि—संज्ञा पुं० [सं०] १ अरुण के पुत्र । २. सूर्य के पुत्र यम, शनैश्चर आदि । ३ उद्दालक ऋषि [को०] ।

आरुणेय—संज्ञा पुं० [सं०] आरुणि ऋषि के पुत्र । श्वेतकेतु [को०]

आरुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] अरुणता। ललाई [को०]।

आरुष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] फलविशेष। भल्लातक [को०]।

आरु¹—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल वर्ण। पीला रंग [को०]।

आरु²—वि० पिंगल वर्णवाला। भूरे और लाल रंग से मिश्रित [को०]।

आरुक-संज्ञा पुं० [सं०] १ एक जड़ी जो हिमालय पर से आती है। आड़। २ आलूबुखारा।

आरूढ—वि० [सं० आरूढ] १ चढा हुआ। सवार। उ०—खर आरूढ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।—मानस, ५।११। २. दृढ। स्थिर। जैसे,—हम तो अपनी बात पर आरूढ हैं।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—आरूढयौवना। अश्वारूढ। गजारूढ। सिंहासनारूढ।

आरूढयौवना—संज्ञा स्त्री० [सं० आरूढयौवना] मध्या नायिका के चार भेदों मे से एक। वह स्त्री जिसे रतिप्रसंग अच्छा लगे।

आरूढि—संज्ञा स्त्री० [सं० आरूढि] १. कढाव। चढाई। २. आरूढ होने का भाव। ३ तत्परता [को०]।

आरेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. घटाना। २ खाली करना। ३ संदेह। ४ आधिक्य [को०]।

आरेचन—संज्ञा पुं०[सं०]१ संकोचन। २ खाली करना या कराना। ३ बहिष्करण। बाहर करना या निकालना [को०]।

आरेचित—वि० [सं०] १ संकुचित। २. रिक्त। ३ घटाया हुआ [को०]।

आरेवत—संज्ञा पुं० [सं०] अमिलतास। आरग्वध।

आरेस(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] डाह। ईर्ष्या। उ०—कबहुँ न किएउ सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सब देसू।—मानस, २।४६।

आरो(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरव'।

आरोग¹—वि० [सं० आरोग्य] दे० 'आरोग्य'।

आरोगना(पु)—क्रि० स० [सं० आ+रोग (√रुज्=हिंसा)] खाना। उ०—(क) शबरी परम भक्त रघुबर की चरण कमल की दासी। ताके फल आरोगे रघुपति पूरण भक्ति प्रकासी।—सूर (शब्द०)। (ख) आरोगत हैं श्रीगोपाल। षटरस सौंज बनाइ जसोदा, रचिकै कंचन थाल।—सूर०, १०।१०१।

आरोगाना(पु)—क्रि० स०[हिं० आरोगना का प्रे० रूप] भोजन कराना। जिमाना। उ०—ताते आजु जो ए अपने घर भेंसि लैके आवेंगे तो मैं एक दिन को माखन आरोगाउँगी।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ३।

आरोग्य—वि० [सं०] नीरोग। रोगरहित। स्वस्थ। तंदुरुस्त।

आरोग्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वास्थ्य। तंदुरुस्ती।

आरोग्यप्रतिपद्व्रत—संज्ञा पुं० [सं०] स्वास्थ्यलाभ के निमित्त किया जानेवाला एक व्रत [को०]।

आरोग्यशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिकित्सा। अस्पताल [को०]।

आरोग्यस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] बीमारी दूर हो जाने के बाद पहले पहल किया जानेवाला स्नान [को०]।

आरोचक—वि० [सं०] चमकीला। प्रकाशवान् [को०]।

आरोचन—वि०[सं०]दे०'आरोचक'। उ०-मोह पटल मोचन आरोचन, जीवन कभी नहीं जनशोचन।—अर्चना, पृ० २।

आरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १ अवरोध। बाधा। घेरा। २ कँटीली झाड़ी की बाड़ [को०]।

आरोधना(पु)—क्रि० स० [सं० आरोध] रोकना। छेंकना। आड़ना। उ०—देखन दे पिय मदनगोपालहिं। अति आतुर आरोधि अधिक दुख तेहिं कहँ टरति न ओ यम कालहिं। मन तो पिय पहिले ही पहुँच्यो प्राण तहीं चाहत चित चालहिं।—सूर० (शब्द०)।

आरोप-संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थापित करना। लगाना। मढना। उ०—कवियों को उनपर अपने भावों के आरोपण की आवश्यकता नहीं होती।—रस०, पृ० १४। २ एक पेड को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाना। रोपना। बैठाना। ३ मिथ्याध्यास। झूठी कल्पना। ४. एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ के धर्म की कल्पना। जैसे,—अमग जीवात्मा मे कर्तृत्व धर्म का आरोप। ५ एक पदार्थ मे दूसरे पदार्थ के आरोप से उत्पन्न मिथ्या ज्ञान। ६ (साहित्य मे) एक वस्तु मे दूसरी वस्तु के धर्म की कल्पना।

विशेष—यह आरोप दो प्रकार का माना गया है। एक आहार्य और दूसरा अनाहार्य। आहार्य वह है जहाँ इस बात को जानते हुए भी कि पदार्थों की प्रत्यक्षता से भ्रम की निवृत्ति हो सकती है, कहनेवाला अपनी इच्छा के अनुसार उसका प्रयोग करता है। जैसे 'मुखचंद्र'। यहाँ 'मुख' और 'चंद्र' दोनों के धर्म के साक्षात् द्वारा भ्रम की निवृत्ति हो सकती है। दूसरा 'अनाहार्य' है जिसमे ऐसे दो पदार्थों के बीच आरोप हो जिनमे एक या दोनों परोक्ष हों।

आरोपक—वि० [सं०] दोष या अपराध लगानेवाला।

आरोपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आरोपित, आरोप्य] १ लगाना। स्थापित करना। मढना। २ पौधे को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाना। रोपना। बैठाना। ३. किसी वस्तु मे स्थित गुण को दूसरी वस्तु में मानना। ४ मिथ्याज्ञान। भ्रम।

आरोपना(पु)—क्रि० स० [सं० आरोपण] १ लगाना। उ०—भानु देखि दल चूरन कोप्यो। तजि अनिलास्त्र अनिल आरोप्यो।—गोपाल० (शब्द)। २ स्थापित करना। उ०—सो सुनि नंद सदन दै थोपी। शिशुहिं सप्यार अंक आरोपी।—गोपाल (शब्द०)।

आरोपित—वि० [सं०] १ लगाया हुआ। स्थापित किया हुआ। मढा हुआ। उ०—जहाँ तथ्य केवल आरोपित या संभावित रहते हैं वहाँ वे अलंकार रूप मे ही रहते हैं।—रस०, पृ० १४। २. रोपा हुआ। बैठाया हुआ।

आरोप्य—वि० [सं०] १ लगाने योग्य। स्थापित करने योग्य। २. रोपने योग्य। बैठाने योग्य।

आरोप्यमाण—संज्ञा पुं० [सं०] १ वस्तु जिसपर किसी अन्य वस्तु का आरोप किया जाय। २ साहित्य में उपमान या अप्रस्तुत [को०]।

आरोह—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आरोही] १. ऊपर की ओर गमन। चढ़ाव। २. आक्रमण। चढ़ाई। ३. घोड़े, हाथी आदि पर

चढ़ना। सवारी। ४. वेदांत मे क्रमानुसार जीवात्मा की ऊर्ध्वगति या क्रमश उत्तमोत्तम योनियों की प्राप्त होना। ५. कारण से कार्य का प्रादुर्भाव या पदार्थों की एक अवस्था से दूसरी अवस्था की प्राप्ति। जैसे,—बीज से अकुर, अकुर से वृक्ष, या अडे से बच्चे का निकलना। ६ क्षुद्र और अल्प चेतनावाले जीवों से क्रमानुसार उन्नत प्राणियों की उत्पत्ति। आविर्भाव। विकास।

विशेष—आधुनिक सृष्टितत्वविदो की धारणा है कि मनुष्य आदि सब प्राणियों की उत्पत्ति आदि मे एक या कई साधारण अवयवियों से हुई है जिनमे चेतना बहुत सूक्ष्म थी। यह सिद्धात इस सिद्धात का विरोधी है कि ससार के सब जीव जिस रूप मे आजकल हैं उसी रूप मे उत्पन्न किए गए। निरवयव जड तत्व क्रमश कई सावयव रूपों मे सामने आया, जिनमे, भिन्न भिन्न मात्राओ की चेतनता आती गई। इस प्रकार अत्यत सामान्य अवयवियों से जटिल अवयववाले उन्नत जीव उत्पन्न हुए। योरप मे इस सिद्धात के बनानेवाले डार्विन साहब हैं जिनके अनुसार आरोह की निम्नलिखित विधि है—(क) देश काल के अनुसार परिवर्तित होते रहने की इच्छा। (ख) जीवनसग्राम मे उपयोगी अगो की रक्षा और उनकी परिपूर्णता। (ग) सुदृढाग जीवो की स्थिति और दुर्बलागो का विनाश। (घ) प्राकृतिक प्रतिग्रह या सवरण जिसमे दपतिप्रतिग्रह प्रधान समझा जाता है। (च) यह साधारण नियम कि किसी प्राणी का वर्तमान रूप उपर्युक्त शक्तियो का, जो समान आकृति उत्पादन की पैतृक प्रवृत्ति के विरुद्ध कार्य करती है, परिणाम है।

७ सगीत मे स्वरो का चढाव या नीचे स्वर से क्रमश ऊँचा स्वर निकालना। जैसे,—सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा। ८ कूतड। नितव। ९. ग्रहण के दस भेदो मे से एक।

विशेष—इस ग्रहण मे ग्रस्त ग्रह को आवृत करनेवाला ग्रह (राहु) वर्तुलाकार ग्रहमडल को आवृत करके पुन दिखाई पडता है। फलित ज्योतिष के अनुसार इस प्रकार के ग्रहण के फलस्वरूप राजाओ मे परस्पर सदेह और विरोध उत्पन्न होता है।

आरोहक१—वि० [स०] १ चढनेवाला। आरोही। २ ऊपर उठनेवाला [को०]।

आरोहक२—सज्ञा पुं० [सं०] १ सारथी। २ सवार। ३ वृक्ष [को०]।

आरोहण—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आरोहित] १ चढना। सवार होना। उ०—उन्नति का आरोहण, महिमा शैल शृग सी श्राति नही।—कामायनी, पृ० १८१। २ अँखुआना। अकुर निकलना। ३. सीढी। ४ नृत्यमच [को०]। ५ ऊपर उठना (को०)।

आरोहन(पु)—सज्ञा पुं० [सं० आरोहण] दे० 'आरोहण'। उ०—आरोहन अवरोहन के मैं के फल सोहैं।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४१७।

आरोहना(पु)—क्रि० अ० [स० आरोह] चढना। तुलसी गनिन भौर दरसन नगि लोग अटनि आरोहैं।—तुलसी ग्र०, पृ० ३००।

आरोहित—वि० [सं०] १ चढा हुआ। २ निकला हुआ। ३ अँखुआया हुआ।

आरोही१—वि० [सं० आरोहिन्] [स्त्री० आरोहिणी] १ चढ़नेवाला। ऊपर जानेवाला। २ उन्नतिशील।

आरोही२—सज्ञा पुं० १ सगीत शास्त्रानुसार वह स्वर जो षडज से लेकर निषाद तक उत्तरोत्तर चढता जाय। जैसे,—सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा। २ सवार।

आरौ—सज्ञा पुं० [सं० आरव] १ शब्द। ध्वनि। २ आहट। उ०—घुरघुरात हय आरौ पाएँ। चकित विलोकत कान उठाएँ।—मानस, १। १५६।

आर्क—वि० [स०] अर्क अर्थात् (सूर्य या मदार) से सबध रखनेवाला। [को०]।

आर्कि—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र १ शनि। २ यम। ३. वैवस्वत मनु। ४ कर्ण [को०]।

आर्केस्ट्रा—सज्ञा पुं० [अ०] दे० 'आरचेस्ट्रा'।

आर्गल—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अर्गल' [को०]।

आर्घा—सज्ञा स्त्री० [सं०] पीले रग की एक प्रकार की मधुमक्खी जिसका सिर बडा होता है। सारग मक्खी।

आर्घ्य—सज्ञा पुं० [स०] १ आर्घा नाम की मक्खियो का मधु। सारग मधु।

विशेष—यह कफ, पित्त नाशक और आँखो को लाभकारी है। यह पकाने से कुछ कड़ुआ और कसैला हो जाता है।

२ एक प्रकार का महुआ जिसकी सफेद गोद मालवा देश से आती है।

आर्ज(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आर्य'। उ०—जय मुनि मडन धरमधर पर उपकारक आर्ज।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४९१।

आर्जव—सज्ञा पु० [स०] १ सीधापन। टेढ़ापन' का उलटा। २ सरलता। सुगमता। ३ व्यवहार की सरलता। कुटिलता का अभाव।

आर्जुनि—सज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन का पुत्र। अभिमन्यु [को०]।

आर्ट—सज्ञा पुं० [अं०] १ कौशल। कृतित्व। कारीगरी। शिल्पविद्या। दस्तकारी। २ कला। विद्या। शिल्प। हुनर। जैसे,—चित्रकारी। ३ चित्रकार या भास्कर का काम या व्यवसाय। ४ विश्वविद्यालय का वह विभाग जिसमे चिकित्साविज्ञान और व्यवहारशास्त्र (वकालत) तथा अन्य सब विषयो, विद्याओ और भाषाओ की उच्च शिक्षा दी जाती है। जैसे,—आर्ट्स कालेज।

यौ०—आर्ट पेपर = चित्र आदि छापने के लिये एक प्रकार का चमकीला और चिकना कागज। आर्टस्कूल = वह पाठशाला जहाँ शिल्प और कलाकौशल की शिक्षा दी जाती हो।

आर्टिकिल—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ लेख। निबध। २ चीज। वस्तु।

आर्टिकिल्स ऑव् एसोसिएशन—सज्ञा पुं० [अ०] किसी सस्था या ज्वाइंट स्टाक कपनी या समिन्वित पूँजी से खुलनेवाली कपनी की नियमावली।

आर्टिक्यूलेटा—सज्ञा पुं० [अ०] बिना रीढ़वाले ऐसे जतुओ का एक

भेद जिनके शरीर संकुचित रहते हैं, पर चलने की दशा मे फैल जाते हैं, जैसे,— जोंक ।

आर्टिलरी—संज्ञा स्त्री॰ [अं॰] तोपखाना ।

आर्टिस्ट—संज्ञा पुं॰ [अं॰] वह जो किसी कला मे, विशेषकर ललित कला (चित्रकारी, तक्षणकला, संगीत, नृत्य आदि) मे कुशल हो ।

आर्डर—संज्ञा पुं॰ (अं॰ ऑर्डर] १. आज्ञा । हुक्म । २ कोई वस्तु भेजने पहुँचाने या मुहैया करने के लिये मौखिक या लिखित आदेश । माँग । जैसे,—(क) वे बादामी कागज की एक गाँठ का आर्डर दे गए हैं ।—(ख) आजकल बाहर से बहुत कम आर्डर आते हैं।

क्रि॰ प्र॰—आना ।—देना ।—मिलना ।

यौ॰—आर्डरबुक=वह वही जिसमे आदेश या माँग लिखी जाय । आर्डर सप्लाई । आर्डर सप्लायर ।

३ स्थिरता । शांति । जैसे,—सभा मे बडा हल्ला मचा, लोग 'आर्डर', 'आर्डर', कहने लगे । ४ क्रम । सिलसिला ।

आर्डरी—वि॰ [अं॰ आर्डर+हिं॰ ई (प्रत्य॰)] आर्डरसंबंधी । आर्डर का ।

आर्डिनरी—वि॰ [अं॰ ऑर्डिनरी] १ साधारण । सामान्य । मामूली । जैसे,—आर्डिनरी मेंबर । आर्डिनरी शेयर । २ प्रसिद्ध । प्रधान ।

यौ॰—आर्डिनरी स्टाक=कंपनी का प्रधान या असली धन ।

आर्डिनेंस—संज्ञा पुं॰ [अं॰ ऑर्डिनेन्स] वह आदेश या हुक्म जो किसी देश के अधिकारी (भारत मे वाइसराय, अब राष्ट्रपति) विशेष अवसरो पर जारी करते हैं और कुछ काल के लिये कानून माना जाता है । अस्थायी व्यवस्था या कानून । जैसे,—नए आर्डिनेंस के अनुसार बंगाल मे कितने ही युवक गिरफ्तार किए गए ।

विशेष—भारत मे वाइसराय अपने अधिकार से, बिना कौंसिल की सम्मति लिए आर्डिनेंस जारी कर सकते थे । ऐसे आर्डिनेंस का काल छह महीने होता है पर आवश्यकता पडने पर बढाया भी जा सकता है । स्वतंत्र भारत मे यह अधिकार राष्ट्रपति को है।

आर्णव—वि॰ [सं॰] अर्णव या समुद्र संबंधी [को॰]।

आर्त, आर्त्त—वि॰ [सं॰] [संज्ञा आर्ति] १ पीडित । चोट खाया हुआ । २. दुखित । दुखी । कातर । ३ अस्वस्थ । ४ नश्वर [को॰] ।

आर्तगल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] नीली कटसरैया ।

आर्तता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. पीडा । दर्द । २. दुख । क्लेश ।

आर्तध्यान—संज्ञा पुं॰ [सं॰] जैनियो के मतानुसार वह ध्यान जिससे दुःख हो ।

विशेष—यह चार प्रकार का है—(१) अनिष्टार्त संयोगार्त ध्यान । (२) इष्टार्थ वियोगार्त ध्यान । (३) रोग निदानार्त ध्यान और (४) आग्रशोचनमार्त ध्यान ।

आर्तध्वनि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दुखभरी पुकार । दर्दभरी आवाज [को॰]

आर्तनाद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह शब्द जिससे सुननेवाले को यह बोध हो कि उसका उच्चारण करनेवाला दुख मे है। दुःखसूचक शब्द ।

आर्तबंधु—संज्ञा पुं॰ [सं॰ आर्तबन्धु] १ दुखियो का सहायक । दीनबंधु । भगवान् । परमात्मा [को॰] ।

आर्तव¹—वि॰ [सं॰] [स्त्री॰ आर्तवी] ऋतु मे उत्पन्न । मौसमी । सामयिक । २ ऋतु संबंधी । ३ मासिक स्राव संबंधी [को॰]।

आर्तव²—वह रज जो स्त्रियो की योनि से प्रति मास निकलता है । पुष्प । रज ।

यौ॰—आर्तव रोग=स्त्रियो के मासिक धर्म का समयानुसार न होना । यह दो प्रकार का होता है—(१) रजस्राव=जब रजोधर्म चार से अधिक दिन तक रहे अथवा महीने मे एक से अधिक बार हो । (२) रजस्तंभ=जब रजोधर्म एक मास से अधिक काल पर हो या कई महीने का अंतर देकर हो ।

आर्तवाणी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दुखसूचक शब्द । आर्तस्वर । उ॰—वृद्धो की आर्तवाणी, क्रंदन रमणियो का भैरव संगीत बना ।—लहर, पृ॰ ६५ ।

आर्तवेयी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] रजस्वला स्त्री । ऋतुमति नारी [को॰] ।

आर्तसाधु—वि॰ [सं॰] दे॰ 'आर्तबंधु' [को॰] ।

आर्तस्वर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दुखसूचक शब्द ।

आर्ति¹—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १ पीडा । दर्द । २. दुख । क्लेश । ३. व्याधि । रोग [को॰] । ४ विनाश । बर्बादी (को॰) । ५ बुराई । निंदा [को॰] । ६ धनुष की कोर (को॰) ।

आर्ति(पु)²†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'आरती' । उ॰—फेरि रसोई मे जाइ मर्म भए भोग सराइ श्री ठाकुर जी की मंगला आर्ति करि, सिंगार धरते ।—दो सौ॰ बावन, भा॰ १, पृ॰ १०१ ।

आर्त्विज—वि॰ [सं॰] [स्त्री॰ आर्त्विजा] ऋत्विजासंबंधी ।

यौ॰—आर्त्विजी दक्षिणा=ऋत्विज की दक्षिणा ।

आर्थिक—वि॰ [सं॰] १ धनसंबंधी । द्रव्यसंबंधी । रुपये पैसे का । माली । जैसे,—आर्थिक दशा । आर्थिक सहायता । उ॰—लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर, हारता रहा मैं स्वार्थ समर ।—अपरा॰, पृ॰ १६६ । २. महत्वपूर्ण । महत्व का [को॰] । ३. धनयुक्त । धनी [को॰] । ४ चतुर । कुशल [को॰] । ५ स्वाभाविक । नैसर्गिक [को॰] । ६ किसी शब्द के अर्थ से निःसृत [को॰] ।

आर्थी—संज्ञा स्त्री॰ दे॰ 'कैतवापह्नुति' ।

आर्थोडाक्स—वि॰ [अं॰ ऑर्थोडॉक्स] जो अपने धार्मिक मत या सिद्धांत पर अटल हो । अपने धार्मिक मत या सिद्धांत से टस से मस न होनेवाला । कट्टर सनातनी । जैसे,—परिषद के आर्थोडाक्स हिंदू मेंबरों ने शारदा विवाह बिल का घोर विरोध किया ।

आर्द्ध—वि॰ [सं॰] आधा । जैसे,—आर्द्धमासिक [को॰] ।

आर्द्धिक—वि॰ सं॰ दे॰ 'आर्धिक' [को॰] ।

आर्द्र—वि॰ [सं॰] [संज्ञा आर्द्रता] १ गीला । ओदा । तर । २. सना । लथपथ ।

यौ॰—आर्द्रवीर । आर्द्राग्नि ।

आर्द्रक¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] अदरक । आदी ।

आर्द्रक²—वि॰ १ आर्द्रा नक्षत्रसंबंधी वा आर्द्रा मे उत्पन्न । २. गीला । तर [को॰] ।

आर्द्रता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] गीलापन। शीतलता। ठढक।

आर्द्रपत्रक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वंश। बाँस [को॰]।

आर्द्रमाषा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] माषपर्णी। वनमाष। मसवन।

आर्द्रशाक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] हरी अदरक। हरी आदी [को॰]।

आर्द्रा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १ सत्ताईस नक्षत्रों मे छठा नक्षत्र।
विशेष—ज्योतिषियों ने इसे पद्माकार लिखा है, पर कोई कोई इसे मणि के आकार का भी मानते हैं। इस नक्षत्र मे केवल एक ही उज्वल तारा है।
२ वह समय जब सूर्य आर्द्रा नक्षत्र का होता है। प्राय आषाढ के आरभ में यह नक्षत्र उगता है। इसी नक्षत्र से वर्षा का आरंभ होता है। किसान इस नक्षत्र मे धान वोते हैं। उनका विश्वास है कि इस नक्षत्र का धान अच्छा होता है। उ॰—आर्द्रा धान पुनर्वसु पैया। गा किसान जब वोया चिरैया (शब्द॰)। ३. ११ अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसके पहले और चौथे चरण मे जगण, तगण, जगण और दो गुरु (ज त ज ग ग) दूसरे और तीसरे चरण मे दो तगण, जगण और दो गुरु (त त ज ग ग) होते है। वृत्ति उपजाति के अतर्गत है। उ॰—साधो भलो योगन पै बढाओ। खडे रहो क्यो न स्वर्चे पचाओ। टीके सु छापे बहुतै लगाओ। वृथा सबै जो हरि को न गाओ (शब्द॰)।
यौ॰—आर्द्रालुब्धक = केतु।
४ अदरक। आदी। ५ अतीस।

आर्द्रावीर—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वाममार्गी।

आर्द्राशनि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. विद्युत्। बिजली। २. एक अस्त्र।

आर्धिक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ खेत की आधी उपज लेने की शर्त पर खेत जोतने बोनेवाला। २ पाराशर स्मृति के अनुसार वेश्या माता और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न एक सकर जाति।
विशेष—ये लोग ब्राह्मणों की पक्ति मे भोजन कर सकते है। मनु के अनुसार यह वर्ण शूद्र माना गया है और भोज्यान्न है।

आर्नव(पु)—वि॰ [सं॰ आर्णव] आर्णव या समुद्रसबधी। उ॰—आर्नव नाव विहग जिमि, फिरि आवै तिहि ठौर।—नद ग्र॰, पृ॰ १३२।

आर्म—संज्ञा पुं॰ [अ॰] हथियार। अस्त्र शस्त्र। जैसे,—आर्म्स ऐक्ट।

आर्मपुलिस—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ आर्म्ड पोलिस] हथियारबद पुलिस। सशस्त्र पुलिस।

आर्मर्डकार—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰] एक प्रकार की गाड़ी जिसपर गोलियो से बचाव के लिये लोहा मढा रहता है। बख्तरदार गाडी।
विशेष—ऐसी गाडियाँ सेना के साथ रहती हैं।

आर्मी—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰] सेना। फौज। जैसे,—इडियन आर्मी।
विशेष—आर्मी शब्द॰ देश की समूची स्थल सेना का बोधक है।

आर्य[1]—वि॰ [सं॰] [स्त्री॰ आर्या] १ श्रेष्ठ। उत्तम। २ बडा। पूज्य। ३. श्रेष्ठ कुल मे उत्पन्न। मान्य। ४ आर्य जाति सबंधी। आर्य जाति का।

आर्य[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. श्रेष्ठ पुरुष। श्रेष्ठ कुल मे उत्पन्न।
विशेष—स्वामी, गुरु और सुहृद् आदि को सबोधन करने मे इस शब्द का व्यवहार करते है। छोटे लोग बडे को जैसे,—स्त्री पति को, छोटा भाई बडे भाई को, शिष्य गुरु को आर्य या आर्यपुत्र कहकर संबोधित करते है। नाटकों मे नटी भी सूत्रधार को आर्य या आर्यपुत्र कहती है।
२ मनुष्यों की एक जाति जिसने ससार मे बहुत पहले सभ्यता प्राप्त की थी।
विशेष—ये लोग गोरे, सुविभक्ताग और डील के लबे होते हैं। इनका माथा ऊँचा, बाल घन, नाक उठी और नुकीली होती है। प्राचीन काल मे इनका विस्तार मध्य एशिया तथा कैस्पियन सागर से लेकर गगा यमुना के किनारों तक था। इनका आदिस्थान कोई मध्य एशिया, कोई स्कांडिनेविया और कोई उत्तरीय ध्रुव बतलाते है। ये लोग खेती करते थे, पशु पालते थे, धातु के हथियार बनाते थे, कपडा बुनते थे और रथ आदि पर चलते थे।
३. सावर्णि मनु का एक पुत्र [को॰]। ४ बौद्ध धर्म का पालन करनेवाला व्यक्ति [को॰]।
यौ॰—आर्य अष्टागमार्ग = बौद्ध दर्शन के अनुसार वह मार्ग जिससे निर्वाण या मोक्ष मिलता है। ये आठ हैं-(१) सम्यग्दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्पना, (३) सम्यक् वाचा, (४) सम्यक् कर्मणा, (५) सम्यगाजीव, (६) सम्यग्व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक् समाधि।
यौ॰—आर्यक्षेत्र। आर्यपुत्र। आर्यभूमि।

आर्यक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ आदरणीय जन। पूज्य व्यक्ति। २. पितामह। ३ एक श्राद्ध जो पितरों के सम्मानार्थ किया जाता है [को॰]।

आर्यका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १ श्रेष्ठ एव आदरणीय महिला। २. एक नक्षत्र का नाम [को॰]।

आर्यकाव्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] आर्यजातीय काव्य। भारतीय आर्यों का काव्य। उ॰—वाल्मीकीय रामायण को मैं आर्यकाव्य का आदर्श मानता हूँ।—रस॰, पृ॰ ११०।

आर्यदेश—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह देश जिसमे आर्यों का निवास हो [को॰]।

आर्यधर्म—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सदाचार। उ॰—वह आर्यधर्म, वह शिरोधार्य वैदिक समता।—प्रणिमा, पृ॰ ३५।

आर्यपुत्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] आदरसूचक शब्द॰। दे॰ 'आर्य'।

आर्यभट्ट—संज्ञा पुं॰ [सं॰] ज्योतिष शास्त्र के एक प्राचीन विद्वान् का नाम, जिन्होंने भारत मे सर्व प्रथम बीजगणित का आविष्कार किया था। ये ईसा की पाँचवी शताब्दी मे हुए थे [को॰]।

आर्यभाव—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सदाचार। शिष्टाचार [को॰]।

आर्यमिश्र[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ संस्कृत नाटकों मे गौरवान्वित या पूज्य पुरुष के लिये इस शब्द का प्रयोग करते हैं।

आर्यमिश्र[2]—वि॰ [सं॰] पूज्य। गौरवान्वित [को॰]।

आर्यरूप—वि॰ [सं॰] ढोंगी। पाखडी [को॰]।

आर्यलिंगी—वि॰ [सं॰ आर्यलिङ्गिन्] दे॰ 'आर्यरूप' [को॰]।

आर्यवृत्त—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ उत्तम आचार। सदाचार। २. न्यायोचित व्यवहार [को॰]।

आर्यवाक्—वि० [सं०] आर्यभाषा या संस्कृत बोलनेवाला [को०]।

आर्यवृत्त—वि० [सं०] धार्मिक। सदाचारी [को०]।

आर्यवेश—वि०[सं०] १ आर्यो का सा सभ्य वेश धारण करनेवाला। २ पाखंडी। ढोंगी [को०]।

आर्यशील—वि० [सं०] पुण्यचरित्। धर्मात्मा [को०]।

आर्यश्वेत—वि० [सं०] सम्माननीय। आदरणीय [को०]।

आर्यसत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ महान् सत्य। २ बौद्धधर्म के चार सिद्धांत जो उसके आधारभूत स्तंभ माने जाते है। वे हैं (१) जीवन दु खमय है, (२) जीवनेच्छा दु ख का कारण है, (३) इच्छा की निवृत्ति दु ख की निवृत्ति है, (४) अष्टमार्ग निर्वाण की ओर ले जाते हैं [को०]।

आर्यसमाज—संज्ञा पुं० [सं०] एक धार्मिक समाज या समिति जिसके संस्थापक स्वामी दयानंद थे।

विशेष—इस समाज के प्रधान दस नियम है। इस मत के लोग वेदो के संहिता भाग को अपौरुषेय और स्वत प्रमाण मानते है। मूर्तिपूजा, श्राद्ध, तर्पण नही करते। गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार वर्ण मानते हैं।

आर्यसमाजी—संज्ञा पुं० [सं० आर्यसमाजिन्] आर्यसमाज का अनुयायी। आर्यसमाज के सिद्धांतो को माननेवाला [को०]।

आर्यसिद्धांत—संज्ञा पुं० [सं० आर्यसिद्धान्त] आर्यभट्ट की कृति का नाम [को०]।

आर्यहृद्य—वि० [सं०] सज्जनो को प्रिय लगनेवाला [को०]।

आर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पार्वती। २ सास। ३ दादी। पितामही।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार पद मे श्रेष्ठ या बडी बूढी स्त्रियो के लिये होता है।

४ अर्धमात्रिक छंद का नाम। इसके पहले और तीसरे चरण मे बारह बारह तथा दूसरे और चौथे चरण मे १५ मात्राएँ होती हैं।

विशेष—इस छद मे चार मात्राओ के गण को समूह कहते हैं। इसके पहले, तीसरे, पाँचवें और सातवें चरण मे जगण का निषेध है। छठे गण मे जगण होना चाहिए। जैसे,—रामा, रामा, रामा, आठौ यामा, जपौ यही नामा। त्यागो सारे कामा, पैहौ बैकुंठ विश्रामा। आर्या के मुख्य पाँच भेद हैं—(१) आर्या या गाहा, (२) गीति या उग्गाहा (३) उपगीति या गाहू, (४) उद्गीति या विग्गाहा और (५) आर्यागीति या स्कंधक या खंधा।

यौ०—**आर्यासप्तशती** = गोवर्धनाचार्य का आर्या छद मे निबद्ध लगभग ७०० छंदो का संस्कृत मुक्तक काव्य।

आर्यागीत, आर्यागीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आर्या छद का एक भेद जिसके विषम चरण मे १२ और सम चरणों मे २० मात्राएँ होती हैं। विषम गणों मे जगण नही होता तथा अंत मे गुरु होता है। जैसे,—रामा, रामा, रामा, आठोयामा। जपो यही नामा को। त्यागो सारे कामा, पैहो सोनी सुनो हरि धामा को।

आर्यावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तरी भारत जिसके उत्तर मे हिमालय, दक्षिण मे विंध्याचल, पूर्व मे बंगाल की खाडी और पश्चिम मे अरब सागर है। मनु ने इस देश को पवित्र कहा है।

आर्यावर्तीय—वि० [सं०] १. आर्यावर्त का रहनेवाला। २ आर्यावर्त संबधी।

आर्यिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुलीना और सदाचारिणी स्त्री। २ एक नक्षत्र का नाम। ३. भागवत पुराण मे वर्णित एक नदी का नाम [को०]।

आरलौⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० अड] १ अड। हठ। २. निवेदन। अनुरोध। उ०—वृषभानु की घरनि जसोमति पुकारयौ। पठै सुत काज क्यो कहति हौ लाज तजि, पाइ परिकै महरि करनि आरयौ।—सूर०, १०। १३९६।

आर्ष—वि० [सं०] १ ऋषिसबंधी। २ ऋषिप्रणीत। ऋषिकृत। ३ वैदिक। ४ ऋषिसेवित।

यौ०—**आर्षक्रम**। **आर्षग्रंथ**। **आर्षपद्धति**। **आर्षप्रयोग**। **आर्षविवाह**।

आर्षक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] ऋषियो की प्रथा। ऋषियो की प्राचीन परिपाटी।

आर्षग्रंथ—संज्ञा पुं० [सं० आर्षग्रन्थ] ऋषियो द्वारा प्रणीत या रचित धर्मग्रंथ। वेद। शास्त्र। रामायण। पुराण [को०]।

आर्षप्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ शब्दो का वह व्यवहार जो व्याकरण के नियम के विरुद्ध हो।

विशेष—प्राचीन संस्कृत ग्रंथो मे प्राय व्याकरणविरुद्ध प्रयोग मिलते हैं। ऐसे प्रयोगो को व्याकरण की रीति से अशुद्ध न कहकर आर्ष कहते है।

२ छद मे कवियो का किया हुआ व्याकरणविरुद्ध प्रयोग।

आर्षभ—वि० [सं०] १. साँड से उत्पन्न। २ ऋषभगोत्र। ऋषभ गोत्र मे उत्पन्न।

आर्षभि—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऋषभ का वशज। २ भारत के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् भरत का एक नाम [को०]।

आर्षभी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिकच्छु। केवाँच।

आर्षविवाह—संज्ञा पुं० [सं०] आठ प्रकार के विवाहो मे तीसरा जिसमे वर से कन्या का पिता दो बैल शुल्क मे लेकर कन्या देता था।

आर्षेय—संज्ञा पुं० [सं०]१ ऋषियो का गोत्र और प्रवर। २ मंत्रद्रष्टा ऋषि। ३. पठन पाठन, यजन याजन, अध्ययन अध्यापन आदि ऋषि कर्म।

आर्हत—वि० [सं०] अर्हत या जैन सिद्धांत को माननेवाला व्यक्ति। उससे संबंध रखनेवाला [को०]।

आलंकारिक—वि० [सं० आलङ्कारिक] १ अलंकारसंबंधी। २ अलंकारयुक्त। ३ अलंकार जाननेवाला।

आलंग[1]—वि० [सं० आलङ्ग] आसक्त। लग्न। लगा हुआ [को०]।

आलंग[2]—संज्ञा पुं० [देश०] घोडियो की मस्ती।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विशेषकर घोडियो के संबंध मे होता है।

क्रि० प्र०—पर होना।—पर आना।

आलंब—संज्ञा पुं० [सं० आलम्ब] १ अवलंब। आश्रय। सहारा। २.

गति। शरण। ३ अधिष्ठान [को०]। ४ लटकी हुई वस्तु या पदार्थ [को०]।

आलंबन—संज्ञा पुं० [सं० आलम्बन] [वि० आलंबित] १ सहारा। आश्रय। अवलंबन। २ रस में एक विभाग जिसके अवलंब से रस की उत्पत्ति होती है। जैसे,— (क) शृंगार रस में नायक और नायिका, (ख) रौद्र रस में शत्रु, (ग) हास्य रस में विलक्षण रूप या शब्द, (घ) करुण रस में शोचनीय वस्तु या व्यक्ति, (च) वीर रस में शत्रु या शत्रु की प्रिय वस्तु, (छ) भयानक रस में भयंकर रूप, (ज) वीभत्स रस में घृणित पदार्थ, पीव, लोहू, मांस आदि (झ) अद्भुत रस में अलौकिक वस्तु, (ट) शांत रस में अनित्य वस्तु, (ठ) वात्सल्य रस में पुत्रादि। ३ बौद्ध मत में किसी वस्तु का ध्यानजनित ज्ञान। यह छह प्रकार का है— रूप, रस गंध, स्पर्श शब्द और धर्म। ४ साधन। कारण। ५ आधार [को०]। ६ योगियों द्वारा कृत मानसिक ध्यान [को०]। ७ सहारा लेना। आश्रय लेना [को०]।

आलंबनता—संज्ञा स्त्री० [सं० आलंबन + ता (प्रत्य०)] आलंबन का गुण, स्वभाव या धर्म। उ०—उसकी आलंबनता स्त्री जाति और पुरुष जाति के बीच नैसर्गिक आकर्षण की बड़ी चौड़ी नींव पर ठहरी है।—चिंतामणि, भा० २ पृ० ६०।

आलंबित—वि० [सं० आलम्बित] आश्रित। अवलंबित।

आलंबितबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० आलम्बित बिन्दु] प्रलंबित पुल के आर पार के वे स्थान जहाँ जंजीरों के छोर खंभों से लगे रहते हैं।

आलंबी—वि० [सं० आलम्बिन्] झूलने या लटकनेवाला। उ०—सब पर सोहत गुंजमाल वनमाल सहित आलंबी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४१२।

आलंभ—संज्ञा पुं० [सं० आलम्भ] १ छूना। मिलना। पकड़ना। २ उत्पाटन। उखाड़ना [को०]। मरण। वध। हिंसा।

यौ०—अश्वालंभ। गवालंभ।

आलंभन—संज्ञा पुं० [सं० आलम्भन] दे० 'आलंभ।'

आलंभी—वि० [सं० आलम्भिन्] १ छूनेवाला। २ पकड़नेवाला [को०]।

आल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

आल[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अल = भूषित करना] १ एक पौधा जिसकी खेती पहले रंग के लिये बहुत होती थी।

विशेष—यह पौधा प्रत्येक दूसरे वर्ष बोया जाता है और दो फुट ऊँचा होता है। इसका मूल रूप ३०-४० फुट का पूरा पेड़ होता है। इसके दो भेद हैं—एक मोटी आल और दूसरी छोटी आल। छोटी आल फसल के बीच से बोई जाती है और मोटी आल बड़े पेड़ों के बीज से आषाढ़ में बोई जाती है। इसकी छाल और जड़ गड़ाँसे से काटकर हौज में सड़ने के लिये डाल दी जाती है और कई दिनों में रंग तैयार होता है। कहते हैं, इससे रँगे हुए कपड़े में दीमक नहीं लगती।

२ इस पौधे से बना हुआ रंग।

आल[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ एक कीड़ा जो सरसों की फसल को हानि पहुँचाता है। माहो। २ प्याज का हरा डंठल। ३ कद्दू। लौकी।

आल[4]—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] झंझट। बखेड़ा। उ०— (क) आठ पहर गया, यों ही माया मोह के आल। राम नाम हिरदय नहीं, जीत लिया जमजाल।—कबीर (शब्द०)।

यौ०—आल जजाल, आल जंजाल, = झंझट। बखेड़ा। उ०—कंचन केवल हरिभजन, दूजा काच कथीर। झूठा आल जंजाल तजि, पकड़ा साँच कबीर।—कबीर (शब्द०)। आलजाल = (१) बे सिर पैर की बात। इधर उधर की बात (२) अंड बंड या इधर उधर की वस्तु।

आल[5]—संज्ञा पुं० [सं० ओल या आर्द्र] १ गीलापन। तरी। जैसे,— ऐसा बरसा कि आल से आल मिल गई। २ आँसू। उ०— मिसक्यो जल छिन लेत दृग, भर पलकन मैं आल। बिचलत खँचत लाज कौ मचलत लखि नँदलाल।—स० सप्तक, पृ० १९२।

आल[6]—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ बेटी की संतति।

यौ०—आल औलाद = बाल बच्चे।

२ वंश। कुल। खानदान।

आला[7]—संज्ञा पुं० [देश०] गाँव का एक भाग।

आल[8]—वि० [सं० ओल या आर्द्र] गीला। कच्चा। हरा। उ०— आलहि बाँस कटाइन डँडिया फदाइन हो साथो।—पलटू०, भा० ३, पृ० १२।

आल[9]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कँटीला पौधा। स्याह काँटा किंगरई। वि० दे० 'किंगरई'।

आलकस—संज्ञा पुं० [सं० आलस्य] [वि० आलकसी, क्रि० अ० अलकसाना] आलस्य।

आलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ परीक्षण। २ निरीक्षण। देखना। समझना [को०]।

आलक्षण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुर्भाग्य। २ अपराध [को०]।

आलक्षि—वि० [सं०] निरीक्षक। लक्षित करने या समझनेवाला [को०]।

आलक्षित—वि० [सं०] १ भली भाँति देखा और समझा हुआ। २. अनुभव किया हुआ [को०]।

आलक्ष्य—वि० [सं०] १ दिखाई पड़ने लायक। प्रकट। २ जो कुछ कुछ दिखाई पड़े। पूरी तौर से न दिखाई पड़नेवाला [को०]।

आलड्वाल—संज्ञा पुं० [अनु०] आडंबर। साज सज्जा।

आलगर्द—संज्ञा पुं० [सं०] जल में रहनेवाला एक साँप [को०]।

आलथीपालथी—संज्ञा स्त्री० [हिं० पालथी] बैठने का एक आसन जिसमें दाहिनी एँड़ी बाएँ जंघे पर और बाईं एड़ी दाहिने जंघे पर रखते हैं।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

आलन—संज्ञा पुं० [देश०] १ घास भूसा आदि जो दीवार पर लगाई जानेवाली मिट्टी में मिलाया जाता है। २ खर पात जो चूल्हा बनाने की मिट्टी या कंडे पाथने के गोबर में मिलाया जाता है। ३ बेसन या आटा जो साग बनाने के समय मिलाया जाता है।

आलना—संज्ञा पुं० [सं० आलय, फा० लाना] घोसना।

आलपाका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अलपाका'।

आलपीन--संज्ञा स्त्री० [पुर्त० आलफिनेत] एक घुंडीदार छोटी सूई। जिसे अँगरेजी मे पिन कहते हैं।

आलविल(पु)--संज्ञा पुं० [सं० ऐलविल] कुबेर।--नद ग्र०, पृ० २१।

आलम¹--संज्ञा पुं० [अ०] १ दुनिया। ससार। जगत्। जहान। उ०--कई आलम किए है कत्ल उनने। करे क्या एकला हातिम विचारा।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४०। २ अवस्था। दशा। जैसे,--वे बेहोशी के आलम मे है। ३ जनसमूह। बड़ी जमात। ४ हिंदी के एक रीतिकालीन कवि का नाम।

आलम²--संज्ञा पुं० १ एक प्रकार का नृत्य। उ०--उलथा टेंकी आलम सदिड। पद पलटि हूरमयी निशक चिड।--केशव (शब्द०)।

आलमन--संज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रहण। पकड़ना। २ छूना। स्पर्शन। ३ मारना। हिंसन। वध करना [को०]।

आलमनक--संज्ञा पुं० [पुर्त०] तिथिपत्र। पचाग। जत्री।

आलमारी--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलमारी'।

आलय--संज्ञा पुं० [सं०] १ घर। गृह। मकान। २ स्थान।

यौ०--अनाथालय। देवालय। विद्यालय। शिवालय।

आलयविज्ञान--संज्ञा पुं० [सं०] अहकार का आधार (बौद्ध)।

आलर्क--वि० [सं०] १ अलर्क से संबंधित। अलर्क का। २ पागल कुत्ते का (जहर) [को०]।

आलवण्य--संज्ञा पुं० [सं०] १ लावण्यहीनता। असुदरता। २ स्वादविहीनता [को०]।

आलवाल--संज्ञा पुं० [सं०] थाला। अवाल।

आलस¹--वि० [सं०] आलसी। सुस्त। काहिल।

आलस²(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आलस्य] [वि० आलसी] आलस्य। सुस्ती। उ०--तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाही।--मानस, १।८१।

आलसी--वि० [हिं० आलस + ई (प्रत्य०)] सुस्त। काहिल। धीमा। अकर्मण्य। उ०--आलसी अभागे मोसे तैं कृपालु पाले पोसे राजा मेरे राजाराम, अवध सहरु।--तुलसी ग्र०, पृ० ५८१।

आलस्य--संज्ञा पुं० [सं०] कार्य करने मे अनुत्साह। सुस्ती। काहिली।

आला¹--संज्ञा पुं० [सं० आलय] ताक। ताखा। अखा।

आला²--वि० [अ० आलह्] १ अौवल दर्जे का। सबसे बढ़िया। श्रेष्ठ। उ०--कूँडा आला चाम का, भीतर भरा कपूर। दरिया बासन क्या करै, वस्तु दिखावै नूर।--दरिया० बानी, पृ० ३६। २ सितार के उतरे और मुलायम स्वर।

आला³--संज्ञा पुं० [अ०] १ औजार। हथियार। २ उपकरण। यत्र। साधन [को०]।

आला⁴--संज्ञा पुं० [सं० अलात] कुम्हार का आँवा। पजावा।

आला⁵(पु)†--वि० [सं० आर्द्र, प्रा० अल्ल] १ गीला। ओदा। नम। भीगा। उ०--आडे दै आले बसन जाडे हूँ की राति। साहसु ककै सनेह बस सखी सबै ढिग जाति।--बिहारी र०, दो० २८३। २ हरा। टटका। ताजा।

आलाइश--संज्ञा स्त्री० [फा०] १ गदी वस्तु। मल। गलीज। २ घाव का गदा खून, पीब वगैरह। ३. पेट के भीतर की अँतडी आदि।

आलाटाली--संज्ञा पुं० [आला = अनु० + हिं० टालना + ई (प्रत्य०)] टालमटोल। उ०--ये इनकी आलाटाली है पर अपनी बात का प्रमाण देने के लिये मैं इनमे कोई चीज ले लूँ।--श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६।

आलात¹--संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी जिसका एक छोर जलता हुआ हो। जलती लुआठी। लुक।

यौ०--आलातक्रीडा। आलातचक्र।

आलात²--संज्ञा पुं० [अ०] औजार।

यौ०--आलात काश्तकारी = खेती मे काम आनेवाले हल, पहटा आदि यत्र।

आलात³--संज्ञा पुं० [देश०] जहाज का रस्सा।

यौ०--आलातखाना = जहाज मे रस्से वगैरह रखने की कोठरी।

आलातचक्र--संज्ञा पुं० [सं०] वह मडल जो जलते हुए लुक को वेग के साथ घुमाने मे दिखाई पडता है।

आलान--संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथी बाँधने का खभा या खूँटा। २ हाथी बाँधने का रस्सा या जजीर। ३ बधन। रस्सी।

आलाप--संज्ञा पुं० [सं०] १ कथोपकथन। भाषण। बातचीत।

यौ०--वार्तालाप।

२ संगीत के सात स्वरो का साधन। तान।

क्रि० प्र०--करना।--लेना।

३ प्रश्न। जिज्ञासा [को०]। ४ संगीत मे सात स्वर [को०]।

आलापक--वि० [सं०] १ बातचीत करनेवाला। २ गानेवाला।

आलापचारी--संज्ञा स्त्री० [सं० आलाप + चारी] स्वरो को साधने की क्रिया। तान लडाने की क्रिया। जैसे,--वहाँ तो खूब आलापचारी हो रही है।

आलापन--संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वस्तिवाचन। स्वस्तिपाठ। २. बातें करना। ३ संगीत मे आलाप लेने की क्रिया [को०]।

आलापना--क्रि० स० [सं० आलापन या आलाप + हिं० ना (प्रत्य०)] गाना। सुर खीचना। तान लडाना।

आलापित--वि० [सं०] १ कथित। संभाषित। २ गाया हुआ।

आलापिनी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बाँसुरी। बसी। २ तुमडी।

आलापी--वि० [सं० आलापिन्] [वि० स्त्री० आलापिनी] १ बोलनेवाला। उ०--माधौ जू, मो तैं और न पापी। मन क्रम बचन दुसह सबहिन सौं कटुक बचन अवलापी।--सूर० १।१४०। २ आलाप लेनेवाला। तान लगानेवाला। गानेवाला।

आलाबु, आलाबू--संज्ञा पुं० [सं०] अलाबु। लौकी [को०]।

आलारामी--वि० [सं० आलस्य ?] १ बेपरवाह। निर्द्वंद्व। २ जहाँ किसी बात की पूछताछ न हो। बेपरवाही का।

यौ०--आलारामी कारखाना = अंधेरखाता।

आलावर्त--संज्ञा पुं० [सं०] कपड़े का पंखा।

आलास्य--संज्ञा पुं० [सं०] मगर नामक जानवर [को०]।

आलिंग—संज्ञा पुं० [सं० आलिङ्गन] दे० 'आलिंगन'। उ०—बिन देखे मन होत वाहि कैसे करि देखें। देखे ते चित होत अग आलिंग विसेखें।—ब्रज ग्रं०, पृ० ६०।

आलिंगन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आलिंगित, आलिंगी, आलिंग्य] गले से लगाना। हृदय से लगाना। परिरंभण। उ०—अजहूँ न लक्ष्मी चद्रगुप्तहि गाढ आलिंगन करै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १।

विशेष—यह सात प्रकार की बहिर्रतियो मे गिना गया है, जैसे—आलिंगन, चुंबन, परस, मर्दन, नख-रद-दान। अधर-पान सो जाहिए, बहिरति सात सुजान।—केशव ग्रं० भा० १, पृ० १४।

आलिंगना(पु)—क्रि० स० [सं० आलिङ्गन] अँकवार भरना। भेंटना। लपटाना। हृदय से लगाना। गले लगाना। उ०—पिय चूम्यो मुँह चूमि होत रोमाचित सगवग। आलिंगत मदमाति पीय अगनि मेले अग।—व्यास (शब्द०)।

आलिंगित—वि० [सं० आलिङ्गित] गले लगाया हुआ। हृदय से लगाया हुआ। परिरभित। उ०-प्रतिजन प्रतिमन आलिंगित तुमसे हुई सभ्यता यह नूतन।—अनामिका, पृ० २१।

आलिंगी—वि० [सं० आलिङ्गिन्] आलिंगन करनेवाला।

आलिंग्य[1]—वि० [सं० आलिङ्‌ग्य] गले लगाने योग्य। हृदय से लगाने योग्य। परिरंभण करने योग्य।

आलिंग्य[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का मृदग।

आलिंजर—संज्ञा पुं० [सं०] बडा घडा या झंझर [को०]।

आलिंद, आलिंदक—संज्ञा पुं० [सं० आलिन्द, आलिन्दक] दे० 'अलिंद' [को०]।

आलिंपन—संज्ञा पुं०[सं० आलिम्पन]।१. दीवार, फर्श आदि की सफेदी या लिपाई पुताई काम। २ लीपना। पोतना [को०]।

आलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सखी। सहेली। वयस्या। २ विच्छू। ३ भ्रमरी। ४ पक्ति। अवली। ५ सेतु। बाँध। ६. रेखा।

आलिखित—वि० [सं०] १ चारो ओर रेखाकित। २ चित्रित। ३ लिखित। लिखा हुआ [को०]।

आलिप्त—वि०[सं० आलिप्त] अलेप। निर्लेप। उ०—लिप्त नाहि आलिप्त रहत है ज्यो रवि जोति समावै।—जग० बानी पृ० ११६।

आलिम—वि० [अ०] विद्वान्। पंडित। जानकार।

आली[1]—वि० [सं०] सखी। सहेली। गोइयाँ। उ०—एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आए काली।—मानस, १।२२६।

आली[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] चार बिस्वे के बराबर का एक मान।

विशेष—यह शब्द गढवाल और कुमाऊँ मे बोला जाता है।

आली[3](पु)†—वि० स्त्री० [सं० आर्द्र] भीगी हुई। गीली। तर।

आली[4]—वि० [अ०] बडा। उच्च। श्रेष्ठ। माननीय।

यौ०—आलीशान। आलीजाह। जनाब आली।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्राय यौगिक शब्दो के साथ होता है।

आली[5]—[हिं० आल] आल के रंग का। जैसे,—आली रग।

आली[6]—संज्ञा स्त्री० [सं० आलि] पक्ति। अवली। उ०—बरनै दीन-दयाल बैठि हसन की आली, मद मद पग देत अहो यह छल की चाली।—दीन० ग्रं०, पृ० २०६।

आलीजा(पु)—वि० [अ० आलीजाह] दे० 'आलीजाह'। उ०—आलीजा इक बार, हम सरनी नै साथ मैं। जगत हरनि सिरदार, मेलो ये अरजै करै। हम्मीर०, पृ० २।

आलीजाह—वि० [अ०] ऊँचे दर्जे का। उच्चपदस्थ। श्रीमान्।

आलीढ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दाहिनी जाँघ को फैलाकर और बाई जाँघ को मोडकर बाण चलाने की मुद्रा [को०]।

आलीढ[2]—वि० १ खाया हुआ। भुक्त। २ चाटा हुआ। ३. घायल। चोट खाया हुआ [को०]।

आलीढक—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ के ब्याए हुए बछडे की उछल कूद [को०]।

आलीन[1]—वि० [सं०] १ परिरंभित। आलिंगित। २ चिपटा हुआ। श्लिष्ट। ३. द्रवित। पिघला हुआ [को०]।

आलीन—संज्ञा पुं० १ टीन। २. सीसा। ३. नपरक [को०]।

आलीनक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आलीन' [को०]।

आलीशान—वि० [अ०] भव्य। भडकीला। शानदार। विशाल।

आलुंचन—संज्ञा पुं०[सं० आलुञ्चन] फाडना। चीरना। छेदना [को०]।

आलुंठन—संज्ञा पुं०[सं० आलुण्ठन] चोरी करना। छीनना। अपहरण करना। लूटना [को०]।

आलु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का मूल। २ आबनूस। ३ नाव या बेडा। ४ पेचक। उल्लू [को०]।

आलु[2]—संज्ञा स्त्री० पानी रखने की झारी। मटकी [को०]।

आलुक—संज्ञा पुं० [सं०] १ आलूकद। २. शेषनाग।

आलुल—वि० [सं०] कपित। हिलता हुआ [को०]।

आलुलायित—वि० [सं० आलुलित > आलुलायित = हिलता हुआ। कपित। उ०—बजी निशा के बीच आलुलायित केशों के तम में।—नील०, पृ० १०।

आलुलित—वि० [सं०] १ विचलित। २ क्षुब्ध [को०]।

आलू—संज्ञा पुं० [सं० आलु] एक प्रकार प्रसिद्ध कद।

विशेष—क्वार कातिक मे क्यारियो के बीच मेड बनाकर आलू बोए जाते हैं जो पूस मे तैयार हो जाते हैं। एक पौधे की जड मे पाव भर के लगभग आलू निकलता है। भारतवर्ष मे अब आलू की खेती चारो ओर होने लगी है, पर पटना, नैनीताल और चीरापूँजी इसके लिये प्रसिद्ध स्थान हैं। नैनीताल के पहाडी आलू बहुत बडे बडे होते हैं। आलू दो तरह के होते हैं लाल और सफेद। यह पौधा वास्तव मे अमेरिका का है। वहाँ से सन् १५८० ई० में यह यूरोप मे गया। भारतवर्ष मे इसका उल्लेख सबसे पहले उस भोज के विवरण मे आता है जो सन् १६१५ ई० मे सर टामस रो को आसफ खाँ की ओर से अजमेर मे दिया गया था। जब पहले पहल आलू भारतवर्ष मे आया या तब हिंदू लोग उसे नही खाते थे,

केवल मुसलमान और अंगरेज ही खाते थे। पर धीरे धीरे इसका खूब प्रचार हुआ और अब हिंदू व्रत के दिनों में भी इसे खाते हैं। 'आलू' शब्द पहले कई प्रकार के कंदों के लिये व्यवहृत होता था, विशेषकर 'अरुआ' के लिये। फारसी में कुछ गोल फलों के लिये भी आलू शब्द का व्यवहार होता है, जैसे,—आलूबुखारा, शफतालू आलूचा।

यौ०—रतालू। शफतालू।

आलू[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० आलु] छोटा जलपात्र। झारी। लुटिया। वटी।

आलूचा—संज्ञा पुं० [फा० आलूचह्] १ एक पेड।

विशेष—यह पेड पश्चिमी हिमालय पर गढवाल से कश्मीर तक होता है। इसका फल गोल गोल होता है और पंजाब इत्यादि में बहुत खाया जाता है। फल पकने पर पीला और स्वाद में खटमीठा होता है। अफगानिस्तान में आलूचे की एक जाति होती है, जिसके सूखे हुए फल आलूबुखारा के नाम से भारतवर्ष में आते हैं। आलूचे के पेड से एक प्रकार का पीला गोंद निकलता है। फल की गुठलियों से तेल निकाला जाता है, जो कहीं कहीं जलाने के काम आता है। इसकी लकडी बहुत मुलायम होती है। इससे काश्मीर में रंगीन और नक्काशीदार संदूक बनाते हैं।

पर्या०—भोटिया बदाम। गर्दालू।

आलूचाप—संज्ञा पुं० [हिं० आलू + अं० चॉप] आलू का पकवान जो उबाले हुए आलू को पीसकर और गोल या चिपटी टिकियों की तरह बनाकर घी या तेल में तलकर बनाया जाता है। उ०—अंत में मैंने 'विशुद्ध' आलूचाप का प्रस्ताव कैलास के सामने रखा।—सन्यासी, पृ० ३४०।

आलूदम—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दमआलू'।

आलूदा—वि० [फा० आलूदह्] लथपथ। लिथडा हुआ। लथापथ। सना हुआ। उ०—अश्क खूँ आलूदा मेरे इस कदर जारी है आज।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४०।

आलून—वि० [सं०] काटा हुआ। काटकर अलग किया हुआ [को०]।

आलूवालू—संज्ञा पुं० [सं० आलू + वालू (अनु०)] आलूचे की तरह का एक पेड जो पश्चिमी हिमालय पर होता है। इससे एक प्रकार का गोंद निकलता है। योरप में इसके फलों का अचार और मुरब्बा डालते हैं, बीज से शराब को स्वादिष्ट करते हैं और लकडी से बीन और बाँसुरी आदि बाजे बनाते हैं।

पर्या०—गिलास। ओलची।

आलूबुखारा—संज्ञा पुं० [फा० आलू बुखारह्] आलूचा नामक वृक्ष का सुखाया हुआ फल।

विशेष—यह फल पश्चिमी हिमालय में भी होता है, परंतु बुखारा प्रदेश का उत्तम समझा जाता है। इसी से इसका यह नाम प्रसिद्ध है। यह आँवले के बराबर और आडू के आकार का होता है और स्वाद में खटमीठा होता है। हिंदुस्तान में आलूबुखारा अफगानिस्तान से आता है। यह दस्तावर है और ज्वर को शांत करता है। इसी से रोगियों को इसकी चटनी खिलाते हैं।

आलूशफतालू—संज्ञा पुं० [हिं० आलू + फा० शफतालू] (निरर्थक)] लडकों का एक खेल जो पश्चिम में दिल्ली, मेरठ आदि स्थानों में खेला जाता है।

विशेष—इसमें एक लडका दूसरे को घोडा बनाकर उसकी पीठ पर सवार होता है और उसकी आँखें अपने हाथों से बंद कर लेता है। तब एक तीसरा लडका उसके पीछे खडा होकर उँगलियाँ बुझाता है। यदि घोडा बना हुआ लडका उँगलियों की संख्या ठीक ठीक बतला देता है, तो वह छुटा हो जाता है और उस उँगली बुझानेवाले लडके को घोडा बनाकर उस पर सवार होता है।

आलेख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ लिखावट। लिपि। लिखाई। २ लिखित वस्तु। लिखित सामग्री (प्रमाण आदि के लिये उपयोगी)।

आलेख[2](पु)—वि० [सं० अलक्ष्य, प्रा० अलक्ख] जो लक्ष्य में न आए। अलक्ष्य। उ०—अवह आलेख को देखिया केसो भयो ब्रह्मरागी।—केशव० अमी०, पृ० १०।

आलेखन—संज्ञा पुं० [सं०] १ चित्र। तस्वीर। उ०—चतुर शिल्पी या चितेरे की भाँति अनेक सुंदर रूप या आलेखन उपस्थित किए।—पोद्दार अभि ग्रं०, पृ० ६५३। २. लिखने का कार्य। लिखना। उ०—इस ग्रंथ के आलेखन या संपादन में संपादन समिति के मित्रों के साथ विविध समिति के संयोजकों तथा अन्य मित्रों का सहयोग रहा है।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० २।

आलेख्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] चित्र। तसवीर।

आलेख्य[2]—वि० लिखने योग्य।

यौ०—आलेख्य विद्या = मुसव्वरी। चित्रकारी।

आलेपन—संज्ञा पुं० [सं०] १ लेप। २ उपलेप। पलस्तर।

आलेपन—संज्ञा पुं० [सं०] लेप करने का कार्य।

आलै(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आलय] घर। निवास। भवन। उ०—जो पै प्रभु करुना के आलै। तौ कत कठिन कठोर होत मन, मोहिं बहुत दुख सालै।—सूर०, १०। ४७७२।

आलोक—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आलोक्य] १. प्रकाश। चाँदनी। उजाला। रोशनी। २. चमक।

यौ०—आलोकवायक। आलोकमाला।

३ दर्शन। दीदार।

आलोकन—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शन। अवलोकन।

आलोकनीय—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शनीय। देखने योग्य।

आलोकित—वि० [सं०] १ देखा हुआ। २ प्रकाशित। उद्भासित।

आलोच(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आ + लुञ्चन] खेतों में गिरा हुआ अन्न बीनना। सीला। (डिं०)।

आलोचक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आलोचिका] १ देखनेवाला। २ जो किसी वस्तु के गुण दोष की विवेचना करे। जो आलोचना करे। जाँचनेवाला।

आलोचण(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० आलोच] दे० 'आलोच'।

आलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ दर्शन। २ गुण दोष का विचार। विवेचन। जाँच। ३ जैनमतानुसार पाप का प्रकाशन।

आलोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वस्तु के गुण दोष का विचार। गुण-दोष-निरूपण।

आलोचित--वि० [सं०] जिसके गुण दोष का निरूपण किया गया हो। विचार किया हुआ।

आलोडन--संज्ञा पुं० [सं० आलोडन] १ मथना। हिलोरना। २. विचार। सोच विचार।

अलोडना(पु)--क्रि० स० [सं० आलोडन] १ मथना। २ हिलोरना। ३ खूब सोचना विचारना। ऊहापोह करना।

आलोडित--वि० [सं० आलोडित] १ मथा हुआ। २ हिलोरा हुआ। ३ सुविचित। सोचा हुआ।

आलोप--संज्ञा पुं० [सं०] १ लुप्त करना। २ पहले का निश्चय रद्द करना [को०]।

आलोल--वि० [सं०] १ कुछ कुछ हिलता हुआ। तनिक चचल। २ क्षुब्ध। अस्तव्यस्त। जैसे,--केश [को०]।

आलोलित--वि० [सं०] क्षुब्ध किया हुआ। आदोलित [को०]।

आल्टरनेटिव--संज्ञा पुं० [अ०] १ चारा। दूसरा उपाय। उ०--इनमे से किसी को एप्रूवर बनाना होगा, और कोई आल्टरनेटिव नही है।--गबन, पृ० २८२।

आल्वार--संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण भारतीय भागवत धर्म के मत उपदेशको की श्रेणी।

आल्हा--संज्ञा पुं० [देश०] १ ३१ मात्राओं के एक छद का नाम जिसे वीर छद भी कहते हैं। इसमे १६ मात्राओ पर विराम होता है। जैसे,--सुमिरि भवानी जगदवा को श्री सारद के चरन मनाय। आदि सरस्वति तुमका ध्यावो माता कठ विराजो आय। २ महोबे के एक पुरुष का नाम जो पृथ्वीराज के समय मे था। ३ बहुत लबा चौडा वर्णन।

मुहा०--आल्हा गाना = अपना वृत्तात सुनाना। आपबीती सुनाना।

यौ०--आल्हा का पँवरा = व्यर्थ का लबा चौडा वर्णन। वितडावाद।

आवतक--सं० [सं० आवन्तक] अवती से सबधित [को०]।

आवतिक--वि० [सं० आवन्तिक] दे० 'आवतक'।

आवती संज्ञा स्त्री० [सं० आवन्ती] अवति और उसके आस पास बोली जानेवाली प्राचीन भाषा।

आवत्य--वि० [सं० आवन्त्य] १ अवति देश का। २ आवति देश का निवासी।

आवदन--संज्ञा पुं० [सं० आवन्दन] नमस्कार। प्रणाम। [को०]।

आवँ(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँवा'।

आव(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आयु] आयु। जिदगी। उ०--मोहन दृग इन दृगन से, जा दिन लख्यो न नेक। मति लेखो वह आव मे, विधि लेखनि नै छेंक।--रसनिधि (शब्द०)।

आवआदर†--संज्ञा पुं० [हिं० आना + सं० आदर] आवभगत। आदर-सत्कार।

आवक- संज्ञा पुं० [हिं० आवना + क (प्रत्य०)] आमद। पहुँच।

यौ०--आवकजावक = आनाजाना।

आवज(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आतोद्य, प्रा० आओज्ज, आवज्ज] एक पुराना बाजा जो ताशे के ढग का होता है। उ०--उद्धत सुजान सुत बुद्धिवलवान सुनि, दिल्ली के दरनि बाजै आवज उछाही के।--सुजान०, पृ० १०१।

आवझ(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० आवज] दे० 'आवज'। उ०--पटह पखाउज आवझ सोहैं। मिलि सहनाइन सो मन मोहैं।--रामच०, पृ० ४४।

आवटना[१](पु)--संज्ञा पुं० [सं० आवर्त्त, पा० आवट्ट] १ हलचल। उथल पुथल। डावाँडोलपन। अस्थिरता। २ सकल्प विकल्प। ऊहापोह। उ०--जा घट जान विनान है, तिस घट आवटना घना। विन खाँडे सग्राम है नित उठि मन सो जूझना।--कबीर (शब्द०)।

आवटना[२](पु)--क्रि० स० गरम करना। औटाना। खौलाना।

आवटना[३](पु)--क्रि० अ० गरम होना। औटना। खौलना। उबलना। उ०--जिहि निदाघ दुपहर रहै भई माघ की राति। तिहि उसीर की रावटी खरी आवटी जाति।--बिहारी र० दो० २४४।

आवट्ट(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आवर्त, प्रा० आवट्ट] दे० 'आवर्त'। उ०--ऐसो जु जुद्ध करिहै न कोउ। नय लष्प मान आवट्ट सोउ।--पृ० रा०, ६१। १०००।

आवडना(पु)--क्रि० अ० [सं० आतुष्ट, प्रा० आउट्ठ, गु० आवडनु] समझना। पसद आना। उ०--घडी एक नहिं आवडे, तुम दरसन विन मोय। तुम ही मेरे प्राण जी, का सूँ जीवन होय।--सत बानी०, भा० २, पृ० ७०।

आवध(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० आयुध] दे० 'आयुध'। उ०--(क) दादू सोधी नही सरीर की कहै अगम की बात। जान कहावैं बापुडे, आवधनी लिये हाथ।--दादू० बानी, पृ० २२। (ख) मनो आवध वज्जि जो वज्र वद्दर।--पृ० रा०, २। १०१।

आवन(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आगमन, पुं० हिं० आगवन] आगमन। आना। उ०--(क) द्वारे ठाढे हैं द्विज बावन। चारो वेद पढत मुख आगर अति सुकठ सुर गावन। बानी सुनि बलि पूछन लागे इहाँ विप्र कित आवन।--सूर०, ८।४४०।

आवना[१](पु)--संज्ञा पुं० [हिं० आवन] दे० 'आवन'। उ०--बहुर नहिं आवना या देस।--कबीर श०, पृ० ५।

आवना[२](पु)--क्रि० अ० [हिं० आना] दे० 'आना'।

यौ०--आवना जावना = आना जाना। उ०--वार पार की हद्द पर हर वक्त मे भी, बीच आवना जावना लेखा है--कबीर रे०, पृ० ३५।

आवनि(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं० आवन] दे० 'आवन'।

आवनेय--संज्ञा पुं० [सं०] अवनि या पृथ्वी का पुत्र, मगल।

आवपन--संज्ञा पुं० [सं०] १ बोआई। २ पेड का लगाना। ३ थाला। ४ सारे सिर का मुडन।

यौ०--केशावपन।

आवभगत--संज्ञा पुं० [हिं० आवना + भक्ति] आदर सत्कार। खातिर तवाजा।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

आवभाव†--संज्ञा पुं० [सं० भाव] आदर सत्कार। खातिर तवाजा। उ०--आवभाव कै डोलिया पालकी सत्त नाम कै बाँस लगायो।--धरम० (शब्द०)।

आवय--संज्ञा पुं० [सं०] १ आगमन । २ आगंतुक । आनेवाला [को०] ।

आवर(पु)--अव्य० [सं० अपर] और । उ०—सखी सिखाइ कँदला गई । आवर मंदिर ठाढ़ी भई ।—माधवा०, पृ० १६७ ।

आवरक¹--वि० [सं०] छिपानेवाला । आवरण डालनेवाला [को०] ।

आवरक²--संज्ञा पुं० [सं०] परदा । चिक [को०] ।

आवरखावो--संज्ञा पुं० [बँ० आवर = और + बँ० खावो = खाऊँगा] एक प्रकार की बँगला मिठाई ।

आवरण--संज्ञा पुं० [सं०] १ आच्छादन । ढकना । २ वह कपड़ा जो किसी वस्तु के ऊपर लपेटा हो । वेठन । ३. परदा । उ०—सब कहते हैं खोलो खोलो छवि देखूँगा जीवनधन की, आवरण स्वयं बनते जाते हैं भीड़ लग रही दर्शन की ।—कामायनी, पृ० ६८ । ४. ढाल । ५. दीवार इत्यादि का घेरा । ६ अज्ञान । ७ चलाए हुए अस्त्र शस्त्र को निष्फल करनेवाला अस्त्र ।

आवरणपत्र--संज्ञा पुं० [सं०] वह कागज जो किसी पुस्तक के ऊपर उसकी रक्षा के लिये लगा रहता है और जिसपर पुस्तक और पुस्तककर्ता के नाम इत्यादि भी रहते हैं । कवर ।

आवरणशक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदांत में आत्मा या चैतन्य की दृष्टि पर परदा डालनेवाली शक्ति ।

आवरिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्र आपण । छोटी दुकान [को०] ।

आवरित--वि० [सं०] ढका हुआ आवृत [को०] ।

आवरिता--वि० [सं० आवरितृ] ढकने या आच्छादित करनेवाला [को०]

आवरी--वि० [सं० आवरीतृ > आवरीता] ढकी हुई । आच्छादित । उ०—मोह मैं आवरी ह्वै बुधि बावरी सीख सुनै न दसा दुख छीजै ।—घनानंद, पृ० १४ ।

आवर्जक--वि० [सं०] आकर्षक [को०] ।

आवर्जन--संज्ञा पुं० [सं०] १ आकृष्ट करना । २ संतुष्ट करना । ३ नीचा दिखाना । ४ दान की क्रिया [को०] ।

आवर्जना--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आकर्षण । २ तिरस्कार । अवमानना । उ०—मैं देव सृष्टि की रति रानी निज पंचबाण से वंचित हो, बन आवर्जना मूर्ति दीना अपनी अतृप्ति सी संचित हो । —कामायनी पृ० १०२ ।

आवर्जित¹--वि० [सं०] १ त्याग किया हुआ । जिसे छोड़ दिया गया हो । छोड़ा हुआ । पराभूत । परास्त ।

आवर्जित²--संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा की स्थिति विशेष [को०] ।

आवर्त¹--वि० [सं०] १. पानी का भँवर । २ चार मेघाधिपों में से एक । ३ वह बादल जिससे पानी न बरसे । ४. एक प्रकार का रत्न । राजवर्त । लाजवर्द । ५ सोनामाखी । ६ गोएँ की भँवरी । ७ सोच विचार । चिंता । ८ संसार ।

आवर्त²--वि० घूमा हुआ । मुड़ा हुआ ।

यौ०--दक्षिणावर्त शंख = वह शंख जिसकी भौंरी दाहिनी तरफ गई हो । यह शंख बहुत मंगलप्रद समझा जाता है ।

आवर्तक--संज्ञा पुं० [सं०] योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नों में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग । मार्कंडेय पुराण के अनुसार इस विघ्न के द्वारा ज्ञान आकुल हो जाता है और उनका चित्त नष्ट हो जाता है ।

आवर्तकी--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसे चर्मरंगा और भगवद्वल्ली भी कहते हैं ।

आवर्तन--संज्ञा पुं० [सं० आवर्त्तन] १ चक्कर देना । घुमाव । फिराव । उ०—वह अनंग पीड़ा अनुभव-सा अंगभंगियों का नर्तन, मधुकर के मरंद उत्सव सा मदिर भाव से आवर्तन । —कामायनी, पृ० ११ । २ विलोड़न । मथन । हिलाना । उ०—सौर चक्र में आवर्तन था प्रलय निशा का होता प्रात । —कामायनी, पृ० २० । ३ धातु इत्यादि का गलाना । ४. दोपहर के पीछे पदार्थों की छाया का पश्चिम से पूर्व की ओर पड़ना । ५ तीसरा पहर । पराह्ण ।

आवर्तनी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह कुल्हिया या घड़िया जिसमें धातु गलाई जाती है । २ कलछी । चमच । चमचा [को०] ।

आवर्तनीय--वि० [सं०] १ घुमाने योग्य । २ मथने योग्य ।

आवर्तमणि--संज्ञा पुं० [सं०] राजावर्त मणि । लाजवर्द पत्थर ।

आवर्तित--वि० [सं०] १ घुमाया हुआ । २. मथा हुआ ।

आवर्तिनी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भँवर । जलावर्त । भौंरी । २ अज-शृंगी नाम का पौधा [को०] ।

आवर्ती--वि० [सं० आवर्तिन्] १ चक्कर काटनेवाला । घूमने या फेरा लगानेवाला । २ पिघलनेवाला । ३ घुलमिल जानेवाला [को०] ।

आवर्दा --वि० [फ़ा०] १ लाया हुआ । २ कृपापात्र ।

आवर्दा²‡--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आयुर्दाय' ।

आवर्ष--संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा । बरसात । वृष्टि [को०] ।

आवलि--संज्ञा स्त्री० [सं०] पंक्ति । पाँत । अनुक्रमिकता । श्रेणी । कतार । उ०—वन उपवन खिल आईं कलियाँ, रवि छवि दर्शन की आवलियाँ ।—आराधना, पृ० ३ ।

आवलित--वि० [सं०] बल खाया हुआ । कुछ मुड़ा या झुका [को०] ।

आवली--संज्ञा स्त्री० [सं०] पंक्ति । श्रेणी । कतार । २ वह युक्ति या विधि जिसके द्वारा बिस्वे की उपज का अंदाज होता है । जैसे, बिस्वे की उपज के सेर का आधा करने से बीघे की उपज का मन निकलता है ।

आवल्गित--वि० [सं०] धीरे धीरे हिलता हुआ । ईषत्कंपित [को०] ।

आवल्गी--वि० [सं० आवल्गिन्] नाचनेवाला [को०] ।

आवश्य--संज्ञा पुं० [सं०] १ जरूरत । आवश्यकता । २ अनिवार्य काम या परिणाम [को०] ।

आवश्यक--वि० [सं०] १. जिसे अवश्य होना चाहिए । जरूरी । सापेक्ष्य । जैसे,—(क) आज मुझे एक आवश्यक कार्य है । (ख) तुम्हारा वहाँ जाना आवश्यक नहीं । २ प्रयोजनीय । काम का । जिसके बिना काम न चले । जैसे,—पहले आवश्यक वस्तुओं का इकट्ठा कर लो ।

आवश्यकता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जरूरत । अपेक्षा । २ प्रयोजन । मतलब । उ०—अपनी आवश्यकता का अनुचर बन गया, रे मनुष्य तू कितना नीचे गिर गया ।—करुणा०, पृ० २६ ।

आवश्यकीय--वि० [सं०] प्रयोजनीय । जरूरी ।

आवसति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात । निशा । २. रात में रहने के लिये विश्रामस्थान [को०] ।

आवसथ—पु० [सं०] १ रहने की जगह। गृह। २ बस्ती। गाँव। ३ आश्रम। ४ व्रतविशेष।

आवसथ्य¹—वि० [सं०] घर का। खानगी।

आवसथ्य²—संज्ञा स्त्री० पाँच प्रकार की अग्नियों में से एक। वह अग्नि जो भोजन पकाने आदि के काम में आती है। लौकिकाग्नि।

आवसान—वि० [सं०] ग्राम के अवसान या छोर का निवासी (जैसे चांडाल आदि) [को०]।

आवसित—वि० [सं०] १ पूर्ण। पूरा किया हुआ। २ निश्चित किया हुआ। एकत्र किया हुआ (धान्य आदि)। ४ पका हुआ। पूर्ण विकसित।

आवस्थिक—वि० [सं०] अवस्था के अनुकूल [को०]।

आवस्सिक(पु)—वि० [सं० आवश्यक] दे० 'आवश्यक'। उ०—कालि उहाँ भोजन करौ आवस्सिक यह बात।—अर्ध०, पृ० ३२।

आवह—संज्ञा पु० [सं०] वायु के सात स्कंधों में पहले स्कंध की वायु। भूर्लोक और स्वर्लोक के बीच की वायु। भूवायु।

विशेष—सिद्धांतशिरोमणि में इस वायु को १२ योजन ऊपर माना है और इसी से बिजली, ओले आदि की उत्पत्ति बतलाई है।

२ अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक।

आवहन—संज्ञा पु० [सं०] ढोकर पास ले जाना। समीप लाना [को०]।

आवाँ¹—संज्ञा पुं० [हिं० आना, आवना] १ लोहा जब खूब लाल हो जाता है तो उसे पीटने के लिये दूसरे लोहार को बुलाते हैं। इस बुलावे को 'आवाँ' कहते हैं।

आवाँ², आवा(पु)—संज्ञा पु० [सं० आपाक] दे० 'आँवाँ'। उ०—जान प्यारे जौव कहूँ दीजिए सनेसौ तौव आवा सम कीजिऐ जु कान तिहि काल हैं।—रसखान, पृ० ५०।

आवागमन—संज्ञा पु० [हिं० आवा = आना + सं० गमन] १ आना जाना। अवाई जवाई। आमदरफ्त। २ बार बार मरना और जन्म लेना। जन्म और मरण।

यौ०—आवागमन (से) रहित = मुक्त। मोक्षपदप्राप्त। जैसे,—पूर्ण ज्ञान के उदय से मनुष्य आवागमन से रहित हो सकता है।

आवागवन(पु)‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवागमन'। उ०—छुटावैं मोह को विपति अति आवागमन सो। शकुंतला, पृ० १५४।

आवागौन(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आवागमन'।

आवाज—संज्ञा पु० [फा० आवाज, सं० आवाज्, पा० आवाज] १ शब्द। ध्वनि। नाद।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—देना।—लगाना।

२ बोली। वाणी। स्वर। जैसे,—वे गाते तो हैं, पर उनकी आवाज अच्छी नहीं है। ३ फकीरों या सौदा बेचनेवालों की पुकार। ४ हल्ला गुल्ला। शोर।

मुहा०—आवाज उठाना = (१) गाने में स्वर ऊँचा करना। (२) किसी बात के समर्थन या विरोध में कहना। आवाज कसना = (१) जोर से खींचकर शब्द निकालना। (२) दे० 'आवाज कसना'। उ०—अभी तो आप हमपर आवाज कस रहे थे।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५। आवाज खुलना = (१) बैठी हुई आवाज का साफ निकलना। जैसे,—तुम्हारा गला बैठ गया है, इस दवा से आवाज खुल जायगी। (२) अधोवायु का निकलना। आवाज गिरना = स्वर का मंद पड़ना। आवाज देना = जोर से पुकारना। जैसे,—हमने आवाज दी, पर कोई नहीं बोला। आवाज निकालना = (१) बोलना। (२) चूँ करना। जबान खोलना। जैसे—जो कहते हैं चुपचाप किए चलो, आवाज न निकालना। आवाज पड़ना = आवाज बैठना। आवाज पर लगना = आवाज पहचान कर चलना। आवाज देने पर कोई काम करना। जैसे,—तीतर अपने पालनेवालों की आवाज पर लग जाते हैं। आवाज पर कान रखना = (१) सुनना। ध्यान देना। आवाज फटना = आवाज भर्राना। आवाज लड़ना = (१) एक के सुर का दूसरे के सुर से मेल खाना। (२) एक की आवाज दूसरे तक पहुँचाना। आवाज बैठना = कफ के कारण स्वर का साफ न निकलना। गला बैठना। जैसे,—उनकी आवाज बैठ गई है, वे गावेंगे क्या? आवाज भर्राना = दे० 'आवाज भारी होना।' आवाज भारी होना = कफ के कारण कंठ का स्वर विकृत होना। आवाज मारना = जोर से पुकारना। आवाज मारी जाना = स्वर सुरीला न रहना। स्वर का कर्कश होना। जैसे,—अवस्था बढ़ जाने पर आवाज भी मारी जाती है। आवाज में आवाज मिलाना = (१) स्वर मिलाना। (२) हाँ में हाँ मिलाना। दूसरा जो कह रहा है, वही कहना। आवाज लगाना = दे० 'आवाज देना'।

आवाजा—संज्ञा पु० [फा० आवाज] बोली ठोली। ताना। व्यंग्य।

क्रि० प्र०—कसना।—फेंकना।—मारना।—सुनाना = व्यंग्य वचन बोलना।

यौ०—आवाजाकशी = किसी दूसरे के माध्यम से की जानेवाली व्यंग्योक्ति। बोली बोलना।

आवाजानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० आना + जाना] आवागमन। जन्म और मृत्यु का चक्र। उ०—धर्मदास कबीर पिय पाए मिट गइ आवाजानी।—धरम० शब्द०, पृ० ३।

आवाजाही‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० आना + जाना] आनाजाना।

आवादानी—संज्ञा स्त्री० [फा आवादानी] दे० 'अवादानी'।

आवाप—संज्ञा पुं० [सं०] वि० [आवापिक] १ बीज बोना। २ आलवाल। थाला। ३ कंगन या कंकण। ४ फेंकना। छितराना। ५ मिलाना। मिश्रण करना। ६ अन्न पात्र। ७ शत्रुतापूर्ण उद्देश्य। ८ पात्रों को व्यवस्थित ढंग से रखना। ९ असमतल भूमि। १० एक प्रकार का पेय [को०]।

आवापक—संज्ञा पु० [सं०] सोने का कंकण। कंगन [को०]।

आवापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. करघा। २ धागा लपेटने की गोल लकड़ी। ३. बाल बनाना [को०]।

आवापिक—वि० [सं०] १ बोने या क्षौर कर्म के लिये उत्तम। २. अतिरिक्त। सहायक। पूरक [को०]।

आवाय—संज्ञा पु० [सं०] १ थाला। २ धान आदि का खेत में रोपना। रोपाई। ३. हाथ का कड़ा। कंकण। ४ वह सेना जो व्यूह बाँधने से बची हुई हो।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि परवा तथा प्रत्यावाय से जो सेना तीन गुनी से आठ गुनी तक हो, उसका आवाय बना देना चाहिए।

आवार—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षण। बचाव। शरण [को०]।

आवारगी—संज्ञा स्त्री० [फा०] आवारापन। शोहदापन।

आवारजा—संज्ञा पुं० [फा० आवारजह्] जमाखर्च की किताब। वि० दे० 'अवारजा'।

आवारा—वि० [फा० आवारह्] [संज्ञा आवारगी] १ व्यर्थ इधर उधर फिरनेवाला। निकम्मा। २ बेठौर ठिकाने का। उठल्लू।
क्रि० प्र०—घूमना।—फिरना।—होना।
३ बदमाश। लुच्चा। ४ कुमार्गी। शुहदा।

आवारागर्द—वि० [फा०] व्यर्थ इधर उधर घूमनेवाला। उठल्लू। निकम्मा।

आवारागर्दी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ व्यर्थ इधर उधर घूमना। २ बदमाशी। लुच्चापन। शुहदापन।

आवाल—संज्ञा पुं० [सं०] थाला।

आवास—संज्ञा पुं० [सं०] १ रहने की जगह। निवासस्थान। २ मकान। घर।

आवासी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओसना] अन्न का हरा दाना, विशेषत जौ का दाना।

आवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ परिणयसंस्कार। विवाह। २ आमंत्रण [को०]।

आवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १ मंत्र द्वारा किसी देवता को बुलाने का कार्य। २ निमंत्रित करना। बुलाना।
क्रि० प्र०—करना।

आवाहना(पु)—क्रि० स० [सं० आवाहन] बुलाना। आमंत्रित करना [को०]।

आवाहनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता के आवाहन के अवसर पर की जानेवाली एक मुद्रा [को०]।

आविक¹—संज्ञा पुं० [सं०] कंबल या ऊनी कपड़ा। भेड़ के रोएँ का वस्त्र।

आविक²—वि० [सं०] १ ऊन का। ऊनी। २. भेड़ से संबंधित [को०]।
यौ०—आविकसौत्रिक = ऊनी तागे से निर्मित [को०]।

आविग्न—वि० [सं०] उद्विग्न। व्याकुल [को०]।

आविद्ध¹—वि० [सं०] १ छिदा हुआ। भेदा हुआ। २ फेंका हुआ। ३ कुटिल। वक्र। [को०]। ४ मूर्ख। जड़ [को०]। ५ निराश। हताश [को०]। ६ असत्य। झूठा [को०]।
यौ०—आविद्धकर्ण = जिसका कान छिदा हुआ हो। आविद्धकर्णिका, आविद्धकर्णी = एकलता पाढा या पाठा।

आविद्ध²—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक, जिसमें तलवार को अपने चारों ओर घुमाकर दूसरे के चलाए हुए वार को व्यर्थ या खाली करते हैं।

आविध—संज्ञा पुं० [सं०] बढ़इयों का औजार। बरमा [को०]।

आविर्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आविर्भूत] १ प्रकाश। प्राकट्य। २. उत्पत्ति। जैसे,—रामानुज का आविर्भाव दक्षिण में हुआ था। ३ आवेश। जैसे,—महात्माओं में क्रोध का आविर्भाव नहीं होता।

आविर्भूत—वि० [सं०] १ प्रकाशित। प्रकटित। २ उत्पन्न।

आविर्मुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चक्षु। आँख [को०]।

आविर्मूल—वि० [सं०] (वृक्ष) जिसकी जड़ या मूल खुदा हो [को०]।

आविर्हित—वि० [सं०] प्रत्यक्षीकृत। देखा हुआ [को०]।

आविर्होत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

आविल—वि० [सं०] १ कलुषित। मैला। पंकिल। २ मिला हुआ। मिश्रित। उ०—दुख में आविल सुख में पंकिल।—नीरजा, पृ० १।

आविष्कर्ता¹—वि० [सं०] आविष्कार करनेवाला। आविष्कारक [को०]

आविष्कर्ता²—संज्ञा पुं० आविष्कार करनेवाला व्यक्ति।

आविष्कार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आविष्कर्त्ता, आविष्कृत] १. प्राकट्य। प्रकाश। २ कोई ऐसी वस्तु तैयार करना जिसके बनाने की युक्ति पहले किसी को न मालूम रही हो। ईजाद। जैसे,—रेल का आविष्कार इंगलैंड देश में हुआ। ३ किसी तत्व का पहले पहल ज्ञान प्राप्त करना। किसी बात का पहले पहल पता लगाना। साक्षात्करण। जैसे,—उस विद्वान् ने विज्ञान में बहुत से आविष्कार किए।

आविष्कारक—वि० [सं०] दे० 'आविष्कर्ता'।

आविष्कृत—वि० [सं०] प्रकाशित। प्रकटित। २ पता लगाया हुआ। जाना हुआ। ३ ईजाद किया हुआ। निकाला हुआ।

आविष्क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आविष्कार'।

आविष्ट—वि० [सं०] १ आवेश में आया हुआ। २ भूतप्रेतादिग्रस्त। ३ तत्पर। सनद्ध। ४ अभिभूत। आक्रांत। ५ प्रवेश किया हुआ। प्रविष्ट [को०]।

आवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रसवकालीन पीड़ा। २ अंतस्सत्वा। गर्भवती। ३ रजस्वला स्त्री [को०]।

आवीत—वि० [सं०] पहना हुआ। धारित। २ गया हुआ। गत [को०]। ३ उपनीत [को०]।

आवीती—वि० [सं० आवीतिन्] दाहिने कंधे पर जनेऊ रखे हुए। जनेऊ उलटा रखे हुए। अपसव्य।

आवुस—संज्ञा पुं० [सं० आयुष्मन्, पालि-प्रा० आवुस] हे आयुष्मन्। प्रिय। उ०—पंचवर्गीय साधुओं ने कहा—'आवुस गौतम हम जानते हैं'।—बौ० न०, पृ० ५०।

आवृत—वि० [सं०] १ छिपा हुआ। ढका हुआ। उ०—था प्रेमलता में आवृत वृष धवल धर्म का प्रतिनिधि।—कामायनी, पृ० २७५। २ लपेटा हुआ। आच्छादित। उ०—अपने को आवृत किए रहो, दिखलाओ निज कृत्रिम स्वरूप।—कामायनी, पृ० १६६। ३ घिरा हुआ। छेंका हुआ। उ०—उस शक्ति की विफलता की विषादमयी छाया से लोक को फिर आवृत दिखा कर छोड़ दिया।—रस०, पृ० ६१।

आवृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ढक्कन। आवरण [को०]।

आवृत्त—वि० [सं०] १ दुहराया हुआ। आवृत्ति किया हुआ। २ लौटाया या फिराया हुआ। ३ पढ़ा हुआ [को०]।

आवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बार बार किसी बात का अभ्यास। एक ही काम को बार बार करना। जैसे,—पाठ की आवृत्ति

कर जाओ। २ पाठ करना। पढना। ३ घूमना। लौटना [को०]। ४ पलायन [को०]। ५ संसृति। ससार [को०]। ६ किसी पुस्तक आदि का पुनर्मुद्रण। सस्करण।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आवृत्तिदीपक-सज्ञा पुं० [स०] दीपक अलकार का एक प्रकार जिसमे क्रियापदो की अनेक बार आवृत्ति होती है [को०]।

आवृष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] वृष्टि। वर्षा [को०]।

आवेग—सज्ञा पु० [सं०] १ चित्त की प्रबल वृत्ति। मन की झोक। जोर। जोश। जैसे,—क्रोध के आवेग मे हमने तुम्हे वे बातें कही थी। २ रस के सचारी भावो मे से एक। अकस्मात् इष्ट या अनिष्ट के प्राप्त होने से चित्त की आतुरता।

आवेजा—सज्ञा पुं० [फा० आवेजह्] १ लटकनेवाली वस्तु। २ किसी गहने मे शोभा के लिये लटकती हुई वस्तु। जैसे,—लटकन। झुलनी इत्यादि।

आवेदक—वि० [स०] निवेदन करनेवाला। प्रार्थी।

आवेदन—सज्ञा पु० [स०] [वि० आवेदक, आवेदनीय, आवेदित, आवेदी, आवेद्य] अपनी दशा को सूचित करना। निवेदन। अर्जी।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—आवेदनपत्र।

आवेदनपत्र- सज्ञा पुं० [स०] वह पत्र या कागज जिसपर सुधार की आशा से कोई अपनी दशा लिखकर सूचित करे।

आवेदनीय— वि० [सं०] निवेदन करने योग्य।

आवेदित—वि० [स०] निवेदन किया हुआ। सूचित किया हुआ।

आवेदी—वि० [स० आवेदिन्] निवेदन या सूचित करनेवाला।

आवेद्य—वि० [स०] दे० 'आवेदनीय'।

आवेलतेल—सज्ञा पु० [देश०] १ नारियल का वह तेल जो ताजी गरी से निकाला गया हो। २ वह तेल जो सूखी गरी से निकाला जाता है। 'मुठेल' का उलटा।

आवेश—सज्ञा पु० [स०] १ व्याप्ति। सचार। दौरा। २. प्रवेश। ३. चित्त की प्रेरणा। झोक। वेग। आतुरता। जोश। उ०—क्रोध के आवेश मे मनुष्य क्या नही कर डालता।—(शब्द०)। ४ भूत प्रेत की बाधा। ५ अपस्मार। मृगी रोग। ६. सकल्प। अभिनिवेश। आग्रह [को०]। ७ गर्व। मद [को०]।

आवेशन—सज्ञा पु० [स०] १ चद्र या सूर्य की परिधि वा परिवेश। २ प्रवेश। ३ कोप। क्रोध। ४ शिल्पशाला। शिल्पकेंद्र। ५. भूत प्रेतादि का आवेश [को०]।

आवेशनिक—सज्ञा पुं० [सं०]मित्रो को दिया जानेवाला भोज। [को०]।

आवेशिक[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ राजशेखर के मतानुसार कवियो की एक श्रेणी। मंत्र आदि के बल से प्राप्त सिद्धि द्वारा आवेश की स्थिति मे कविता करनेवाला कवि। २ अतिथि। अभ्यागत [को०]। ३ अतिथिसत्कार। आतिथ्य [को०]। ४. भीतर जाना। प्रवेश करना। घुसना [को०]।

आवेशिक[2]—वि० १ असामान्य। असाधारण। २ व्यक्तिगत। स्वगत। निजी। ३ अतर्निहित [को०]।

आवेष्टक—सज्ञा पु० [स०] १ घेरा। २ जाल [को०]।

आवेष्टन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आवेष्टित] १. छिपाने या ढँकने का कार्य। २ छिपाने या ढँकने की वस्तु। ३. वह वस्तु जिसमे कुछ लपेटा हो। वेठन। ४ चहारदीवारी।

आवेष्टित— वि० [स०] १ छिपा हुआ। ढँका हुआ। २ आवेष्टनयुक्त।

आवेस(पु)—सज्ञा पु० [स० आवेश, प्रा० आवेस] दे० 'आवेश'। उ०—वाकौ सेवा के आवेस मे खाइवे की सुधि हू न रहती।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २११।

आव्रन(पु)—सज्ञा पु० [स० आवरण] आच्छादन। घेरा। उ०—दह कोह सा स्वामि आराम छुट्टी। पछे पग रा सेन आव्रन्न उट्टी।—पृ० रा०, ६१। २२३७।

आशकनीय— वि० [स० आशङ्कनीय] आशकायोग्य। सदेहास्पद [को०]।

आशका—सज्ञा स्त्री० [स० आशङ्का] [वि० आशकित आशंकनीय] १ डर। भय। खौफ। उ०—उसे अपने गिर जाने की आशका थी।—ककाल, पृ० ६४। २ शक। शुबहा। सदेह। ३. अनिष्ट की भावना।

आशकित[1]—वि० [स० आशङ्कित] १ डरा हुआ। भयभीत। २ सदेहात्मक। सदेहयुक्त।

आशकित—वि० १. सदेह। शक। २ भय। डर [को०]।

आशसन—सज्ञा पु० [स०] १ आशा करना। इच्छा करना। २ कहना। घोषित करना [को०]।

आशंसा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ इच्छा। २ आशा। ३ संकेत। ४. भाषण। कथन। ५ कल्पना [को०]।

आशसित—वि० [स०] १ इच्छित। २ परिकल्पित। ३ कथित। ४ सोचा हुआ [को०]।

आशसिता—वि० [स० आशसितृ] १. आशा या इच्छा करनेवाला। २ वक्ता। कथन करनेवाला [को०]।

आशसी—वि० [स० आशसिन्] दे० 'आशसिता' [को०]।

आशसु—वि० [स०] दे० 'आशसिता' [को०]।

आश—सज्ञा पु० [स०] आहार। भोजन (समास मे प्रयुक्त) [को०]।

आशक—वि० [स०] खानेवाला। भोजन करनेवाला [को०]।

आशकार—सज्ञा पु० [स० आविष्कार, फा० आशकार, आशकारा, आशकारह] प्रकट। खुला हुआ। स्पष्ट। उ०—जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है। उसी का सब है जलवा जो जहाँ मे आशकारा है।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८५१।

आशना—सज्ञा उभ० [फा०] १ जिसमे जान पहचान हो। २ चाहनेवाला। प्रेमी। ३. प्रेमपात्र। जैसे,—(क) वह औरत उसकी आशना है। (ख) वह उस औरत का आशना है।

आशनाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ जान पहचान। २. प्रेम। प्रीति। दोस्ती। ३ अनुचित सबध।

आशफल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष जो मद्रास, बिहार और बंगाल में बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और सजावट के असबाब बनाने के काम में आती है।

आशय—संज्ञा पुं० [सं०] १ अभिप्राय। मतलब। २ वासना। इच्छा। जैसे,—ईश्वर क्लेश, कर्मविपाक और आशय से रहित है।

यौ०—उच्चाशय। नीचाशय। महाशय।

३. स्थान। आधार। जैसे,—आमाशय, गर्भाशय। जलाशय। पक्वाशय। ४. गड्ढा। खात। ५ कटहल। पनस। ६ अभ्युदय। उन्नति [को०]। ७ धन। संपत्ति (को०)। ८ कजूस। कृपण [को०]। ९. अन्नागार। बखार (को०)। १० भाग्य। लिखन [को०]। ११ विश्रामस्थान (को०)। १२. घर। गृह। (को०)। १३. जंगली जानवरों को फँसाने का गड्ढा। अवट [को०]।

आशर—संज्ञा पुं० [सं०] १ राक्षस। उ०—काहू कहूँ शर आशर मारिय। आरत शब्द अकाश पुकारिय।—केशव (शब्द०) २. अग्नि।

आशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अप्राप्त के पाने की इच्छा और थोड़ा बहुत निश्चय। जैसे,—(क) आशा लगाए बैठे हैं, देखें कब उनकी कृपा होती है। (ख) आशा मरे, निराशा जीए। २ अभिलषित वस्तु की प्राप्ति के थोड़े बहुत निश्चय से संतोष। जैसे,—आशा है, कल रुपया मिल जायगा।

क्रि० प्र०—करना।—तोड़ना।—लगाना।—रखना।

मुहा०—आशा टूटना = आशा न रहना। आशा भंग होना। जैसे,—तुम्हारे नहीं कर देने से हमारी इतने दिनों की आशा टूट गई। आशा तोड़ना = किसी को निराश करना। जैसे,—इस तरह किसी की आशा तोड़ना ठीक नहीं। आशा देना = किसी को उम्मेद बँधाना। किसी को उसके अनुकूल कार्य करने का वचन देना। जैसे,—किसी को आशा देकर धोखा देना ठीक नहीं है। आशा पूजना = आशा पूरी होना। आशा पूरी होना = इच्छा और संभावना के अनुसार किसी कार्य या घटना का होना। जैसे,—बहुत दिनों पर हमारी आशा पूरी हुई। आशा पूरी करना = किसी की इच्छा और निश्चय के अनुसार कार्य करना। आशा बँधना = आशा उत्पन्न होना। जैसे,—रोग कमी पर है, इसी से कुछ आशा बँधती है। आशा-बाँधना = आशा करना।

यौ०—आशातीत। आशापाश। आशाबद्ध। आशाभंग। आशा-रहित। आशावान्। निराश। हताश।

३. दिशा।

यौ०—आशागज = दिग्गज। आशापाल = दिक्पाल। आशावसन = दिगंबर। उ०—आशावसन व्यसन यह तिनहीं। रघुपति चरित होहिं तहँ सुनहीं।—तुलसी (शब्द०)।

४ दक्ष प्रजापति की एक कन्या। ५. संगीत में एक राग जो भैरव राग का पुत्र कहा जाता है।

आशाढ—संज्ञा पुं० [सं० आशाढ] आषाढ।

आशातीत—वि० [सं०] आशा से बहुत अधिक। आशा से परे [को०]।

आशानिर्वेदिसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] विजय से हताश सेना।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि आशानिर्वेदि तथा परिसृप्त (भगोड़े) सेना में आशानिर्वेदि उत्तम है, क्योंकि वह अपना स्वार्थ देखकर युद्ध के लिये तैयार हो जाती है।

आशापाश—संज्ञा पुं० [सं०] आशाओं का फंदा, जाल या बंधन।

आशाबंध—संज्ञा पुं० [सं० आशाबन्ध] आशापूर्ति का विश्वास या बंधन [को०]।

आशाबद्ध—वि० [सं०] तरह तरह की आशाओं में पड़ा या लटका हुआ।

आशाभंग—संज्ञा पुं० [सं० आशाभङ्ग] आशा टूटना। आशा का न रह जाना [को०]।

आशार—संज्ञा पुं० [सं०] आश्रयस्थान। सुरक्षा की जगह [को०]।

आशालुब्ध(पु)-वि० [सं० आशालुब्ध, प्रा० आसालुद्ध] आशा के कारण लोभ में पड़ी हुई। आशालुब्ध। उ०—आसालुब्धी हूँ न मुइय सज्जन जजालेइ। ढोला०, दू० २०६।

आशावसन—संज्ञा पुं० [सं० आशा + वसन] दिशाएँ जिनके वस्त्र रूप में हैं अर्थात् १ शिव। २ शुक। ३ सनत्कुमार आदि। ४. दिगंबर साधु।

आशावह—संज्ञा पुं० [सं०] १. आदित्य। सूर्य। २ वृष्णि [को०]।

आशासन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु की आकांक्षा करना या तदर्थ निवेदन [को०]।

आशासनीय[1]—वि० [सं०] आकांक्षनीय। अभिलषणीय [को०]।

आशासनीय[2]—संज्ञा पुं० १ आशीर्वचन। २ आकांक्षा। स्पृहा [को०]।

आशास्य—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आशासनीय' [को०]।

आशिंजन—संज्ञा पुं० [सं० आशिञ्जन] आभूषणों की झंकृति [को०]।

आशिंजित—वि० [सं० आशिञ्जित] झंकृत। झंकार करता हुआ [को०]।

आशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भोजन। खाना। भक्षण [को०]।

आशिक[1]—संज्ञा पुं० [अ० आशिक़] प्रेम करनेवाला मनुष्य। चित से चाहनेवाला मनुष्य। अनुरक्त पुरुष।

आशिक[2]—वि० प्रेमी। आसक्त। चाहनेवाला। मोहित।

क्रि० प्र०—होना।

यौ०—आशिकतन। आशिकजार = अनुरक्त प्रेमी। उ०—बेकरार आशिकजार भाँति भाँति की बोलियाँ बोल रहे हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११८। आशिकनवाज = प्रेमियों पर दयालु। आशिक माशूक = प्रेमी और प्रेमिका या प्रेमपात्र। आशिक-मिजाज = (१) आशिकाना मिजाज का। प्रेमी हृदय का। (२) दिलफेंक (व्यंग्य)।

आशिकाना—वि० [अ० आशिक़ानह्] आशिकों की तरह का। आशिकों का सा। आशिकों के ढंग का।

आशिकी—संज्ञा स्त्री० [अ० आशिक़ + फा० ई (प्रत्य०)] प्रेम। मुहब्बत।

आशित—वि० [सं०] १. अशित। खाया हुआ। २. खा करके तृप्त। ३. अधिक भोजन करनेवाला [को०]।

आशिता—वि० [स० आशितृ] अधिक भोजन करनेवाला व्यक्ति । पेटू [को०] ।

आशिमा—सज्ञा स्त्री० [स० आशिमन्] त्वरा । तेजी । वेग [को०] ।

आशियाँ—सज्ञा पु० [फ़ा०] १. चिड़ियो का बसेरा । पक्षियो के रहने का स्थान । घोसला । उ०—गिरी है जिस पे कल बिजली वोह मेरा आशियाँ क्यो हो ।—शेर ०, पृ० ५२४ । २ छोटा सा घर । झोपडा । उ०— क्या करे जाके गुलसिताँ मे हम, आग रख आए आशियाँ मे हम ।—शेर०, पृ० २०३ ।

आशियाना—सज्ञा पु० [फा० आशियानह्] दे० 'आशियाँ' ।

आशिष—सज्ञा स्त्री० [सं० आशिष्, आशिस्] १ आशीर्वाद । असीस । दुआ । उ०—गुरुजन की आशिष सीस धरो,—आराधना०, पृ० ५१ । २ एक अलकार जिसमे अप्राप्त वस्तु के लिये प्रार्थना होती है । उ०—सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली, उर माल । इहि बानक मो मन सदा, बसौ बिहारीलाल ।—बिहारीर०, दो० ३०१ । ३ दे० 'आशी' [को०] ।

आशिषाक्षेप—सज्ञा पु० [स०] वह काव्यालकार जिसमे दूसरो का हित दिखलाते हुए ऐसी बातो को करने की शिक्षा दी जाय जिनसे वास्तव मे अपने ही दु ख की निवृत्ति हो । उ०—मत्री मित्र पुत्र जन केशव कलत्र गन सोदर सुजन जन भट सुख साज सो । एतो सब होतँ जात जो पै है कुशल गात, अबही चलौ कै प्रात, सगुन समाज सो । कीन्हो जु पयान बाघ छमिऐ सु अपराध, रहिऐ न पल आध, बँधिऐ न लाज सो । हौं न कहौ, कहत निगम सब अब तब, राजन परम हित आपने ही काज सो ।—केशव ग्र ०, भा० १, पृ० १५६ ।

आशी[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सर्प का विषैला दाँत । २ वृद्धि नाम की जडी जो दवा के काम मे आती है । ३. सर्प का विष (को०) ।

आशी[2]—वि० [स० आशिन्] [वि०स्त्री०आशिनी] खानेवाला । भक्षक ।

यौ०—वाताशी । फलाशी ।

विशेष—इसका प्रयोग समास के अत ही मे होता है ।

आशीर्वचन—सज्ञा पु० [सं०] आशीर्वाद । असीस । दुआ ।

आशीर्वाद—सज्ञा पुं० [स०] किसी के कल्याण की कामना प्रकट करना । मगलकामनासूचक वाक्य । आशिष । दुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—मिलना ।—लेना ।

यौ०— आशीर्वादात्मक ।

आशीविष—सज्ञा पु० [स०] १ वह जिसके दाँतो मे विष हो (को०) । २ सर्प । साँप ।

आशीष—सज्ञा स्त्री० [स०आशिष्] दे० 'आशिष' । उ०- देते आकर आशीष हमे मुनिवर हैं ।—साकेत, पृ० २०४ ।

आशु[1]—सज्ञा पु० [स०] बरसात मे होनेवाला एक धान । सावन भादो मे होनेवाला । व्रीहि । पाटल । आउस । साठी ।

आशु[2]—वि० तीव्र । तेज । त्वरित [को०] ।

आशु[3]— क्रि० वि० शीघ्र । जल्द । तुरत ।

विशेष—गद्य मे इसका प्रयोग यौगिक शब्दों के साथ ही होता है ।

यौ०—आशुकवि । आशुतोष । आशुव्रीहि । आशुमत ।

आशुकवि—सज्ञा पु० [स०] वह कवि जो तत्क्षण कविता कर सके ।

आशुकोपी—वि० [स० आशुकोपिन्] शीघ्र ही क्रुद्ध हो जानेवाला । झगडालू । चिड़चिड़ा [को०] ।

आशुग[1]—वि० [स०] जल्दी चलनेवाला । शीघ्रगामी ।

आशुग[2]—सज्ञा पुं० १. वायु । २. बाण । तीर । ३ रवि (को०) ।

आशुगामी[1]—वि० [स० आशुगामिन्] १ तेज चलनेवाला । तीव्रगामी । २. त्वरान्वित [को०] ।

आशुगामी[2]—सज्ञा पुं० सूर्य [को०] ।

आशुतोष[1]—वि० [स०] शीघ्र सतुष्ट होनेवाला । जल्दी प्रसन्न होनेवाला ।

आशुतोष[2]—सज्ञा पुं० शिव । महादेव ।

आशुशुक्षणि—सज्ञा पु० [सं०] १ अग्नि । २. वायु ।

आशुव्रीहि—सज्ञा पुं० [स०] एक धान्य । आउस । साठी [को०] ।

आशोब—सज्ञा पु० [फा०] १ आँख की पीडा । २ भय । डर । खौफ [को०] । ३ झगडा फसाद । शोरगुल [को०] ।

क्रि० प्र०—उठना । होना ।

आशोषण—सज्ञा पुं० [स०] पूरी तरह सोख लेने का काम [को०] ।

आशौच—सज्ञा पु० [स०] अशुद्धि । अशौच का भाव [को०] ।

आशौची—वि० [स० आशौचिन्] अपवित्र । अशौच । अशुद्ध [को०] ।

आश्चर्य[1]—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आश्चर्यित] १ वह मनोविकार जो किसी नई, अभूतपूर्व, असाधारण, बहुत बड़ी अथवा समझ मे न आनेवाली बात के देखने, सुनने या ध्यान मे न आने से उत्पन्न होती है । अचभा । विस्मय । तअज्जुब ।

क्रि प्र०—करना ।—मानना ।—होना ।

यौ०—आश्चर्यकारक । आश्चर्यजनक ।

२ रस के नौ स्थायी भावो मे से एक ।

आश्चर्य[2]—वि० आश्चर्ययुक्त । अद्‌भुत । विस्मयपूर्ण [को०] ।

आश्चर्यित—वि० [स०] विस्मित । चकित ।

आश्च्योतनकर्म—वि० [स०] आँख मे दिन के समय किसी औषध की आठ बूँद डालना ।

आश्म[1]—वि० [स०] अश्मरचित । पत्थर का बना हुआ [को०] ।

आश्म[2]—सज्ञा पु० पत्थर की बनी वस्तु [को०] ।

आश्मन[1]— वि० [सं०] दे० 'आश्म' ।

आश्मन[2]— सज्ञा पुं० [स०] गरुडाग्रज अरुण जो सूर्य का सारथी है [को०] ।

आश्मरिक—वि० [स०] अश्मरी-रोग-ग्रस्त । पथरी का रोगी [को०] ।

आश्मिक—वि० [सं०] १ पत्थर ढोनेवाला । २ प्रस्तर निर्मित [को०] ।

आश्यान—वि० [स०] जमकर कुछ सुखने या ठोस होनेवाला [को०] ।

आश्र—सज्ञा पु० [सं०] अश्रु । आँसू [को०] ।

आश्रपण—सज्ञा पुं० [स०] पाचन क्रिया । पाक क्रिया [को०] ।

आश्रम—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आश्रमी] ऋषियो और मुनियो का निवासस्थान । तपोवन । २ साधु सत के रहने की जगह ।

जैसे,—कुटी या मठ। ३. विश्रामस्थान। ठहरने की जगह। उ०—आश्रय दो आश्रमवासिनि, मेरी हो तुम्हीं सहारा।—गीतिका, पृ० ६३। ४ विष्णु [को०]। ५ गुरुकुल [को०]। ६. स्मृति में कही हुई हिंदुओं के जीवन की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ। ये अवस्थाएँ चार हैं ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास। उ०—(क) देहि असीस भूमिसुर प्रमुदित प्रजा प्रमोद बढाए। आश्रम धर्म विभाग वेद पथ पावन लोग चलाए। (शब्द०)।

यौ०—**आश्रमगुरु। आश्रमधर्म। आश्रमपद, आश्रममंडल** = तपोवन। **आश्रमवास। गृहस्थाश्रम। वर्णाश्रम।**

आश्रमी—वि० [सं० **आश्रमिन्**] १. आश्रमसंबंधी। २ आश्रम मे रहनेवाला। ३. ब्रह्मचर्यादि चार आश्रमों मे से किसी को धारण करनेवाला।

आश्रय—संज्ञा पुं० [स०] [वि० **आश्रयी, आश्रित**] १ आधार। सहारा। अवलंब। जैसे,—छत खंभों के आश्रय पर है।

यौ०—**आश्रयाश।**

२ आधार वस्तु। वह वस्तु जिसके सहारे पर कोई वस्तु हो। ३. शरण। पनाह। ठिकाना। जैसे,—(क) वह चारो ओर मारा मारा फिरता है, उसे कही आश्रय नही मिलता। (ख) राजा ने उसको अपने यहाँ आश्रय दिया।

क्रि० प्र०—**चाहना।**—**ढूँढ़ना।**—**देना।**—**पाना।**—**मिलना।**—**लेना।**

४ जीवन निर्वाह का हेतु। भरोसा। सहारा। जैसे,—हमे तुम्हारा ही आश्रय है कि और किसी का। ५ राजाओं के छह गुणों में से एक। ६. घर। मकान ७. तरकस। भाथी। तूणीर [को०]। ८. अभ्यास [को०]। ९ व्याकरण मे उद्देश्य। १० बौद्ध मत से मन और पंच ज्ञानेंद्रिय (को०)। ११ सामीप्य। सन्निकटता। संनिधि [को०]।

आश्रयण—संज्ञा पुं० [स०] सहारा लेने का कार्य।

आश्रयणीय—वि० [सं०] अवलंबन के योग्य। सहारा लेने योग्य।

आश्रयभुक्—संज्ञा पुं० [सं० **आश्रयभुज्**] १ दे० 'आश्रयाश'। २ कृत्तिका नाम का नक्षत्र [को०]।

आश्रयाश—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

आश्रयासिद्ध—वि० [सं०] १ न्यायशास्त्र के अनुसार वह तर्क जिसका आधार असत्य हो। एक हेत्वाभास। २. असत्य या मिथ्या। ३ असामान्य [को०]।

आश्रयी—वि० [सं० **आश्रयिन्**] आश्रय लेनेवाला। आश्रय पानेवाला। सहारा लेनेवाला। सहारा पानेवाला।

आश्रव—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी के कहे पर चलना। वचन। स्थिति। २ अंगीकार। ३. क्लेश। ४ जैनमत के अनुसार मन, वाणी और शरीर से किए हुए कर्म का संस्कार जिसे जीव ग्रहण करके बद्ध होता है। यह दो प्रकार का है—पुण्याश्रव और पापाश्रव। ५. बौद्ध दर्शन के अनुसार विषय जिसमे प्रवृत्त होकर मनुष्य बंधन मे पडता है। यह चार प्रकार का है—कामाश्रव, भावाश्रव, दृष्टाश्रव और अविद्याश्रव। ६. अग्नि पर पकते हुए चावल के बुद्बुद या फेन (को०)। ७. सरिता। नदी (को०)। ८. प्रवाह। धारा (को०)।

आश्रि—संज्ञा स्त्री० [स०] असिधारा। तलवार की धार [को०]।

आश्रित[1]—वि० [सं०] १ सहारे पर टिका हुआ। ठहरा हुआ। उ०—यहि विधि जग हरि आश्रित रहई।—तुलसी (शब्द०)। २. भरोसे पर रहनेवाला। दूसरे का सहारा लेनेवाला। अधीन। शरणागत। जैसे,—वह तो आपका आश्रित ही है, जैसे चाहिए, उसको रखिए। ३ सेवक। दास।

आश्रित[2]—संज्ञा पुं० न्याय मत मे आकाश और परमाणु नित्य द्रव्यो को छोड दूसरे अनित्य द्रव्यो का किसी न किसी अंश मे एक दूसरे से साधर्म्य। आश्रितत्व। साधर्म्य।

विशेष—भिन्न भिन्न नित्य द्रव्य परमाणुओं ही से बने हैं अत रूपांतर होने पर भी उनमे किसी न किसी अंश मे समानता रहेगी। पर नित्य द्रव्य पृथक् हैं इसमे उनमे एक दूसरे से साधर्म्य नही।

आश्रितत्व—संज्ञा पुं० [सं०] आश्रित रहने या होने का भाव।

आश्रुत—वि०[सं०]१. गृहीत। अंगीकृत। स्वीकृत। २ आकर्णित। श्रुत। सुना हुआ [को०]।

आश्रुति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ स्वीकृति। वचनदान। २ आकर्णन। श्रवण [को०]।

आश्लिष्ट—वि० [स०] १ आलिंगित। हृदय से लगा हुआ। २. लगा हुआ। चिपका हुआ। सटा हुआ। मिला हुआ।

आश्लेष—संज्ञा पुं० [सं०] १ आलिंगन। २ लगाव।

आश्लेषण—संज्ञा पुं० [स०] मिलावट। मेल।

यौ०—**आश्लेषण विश्लेषण** = कई दवाओं को एक साथ मिलाना और मिली हुई दवाओं को अलग अलग करना।

२ आश्लेषा। नवें नक्षत्र का नाम।

आश्लेषा—संज्ञा स्त्री० [स०] नवें नक्षत्र का नाम।

आश्लेषित—वि० [स०] लगा हुआ। चिपका हुआ। आलिंगित।

आश्व—संज्ञा पुं० [स०] १. घोडों का झुंड। २ घोडे की स्थिति या दशा। ३ वह रथ जिसे घोडे खींचते हैं।

आश्वत्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थ या पीपल का फल [को०]।

आश्वत्थ[2]—वि० [स०] १ अश्वत्थ या पीपल संबंधी। २ पीपल मे फल आने के समय से संबद्ध [को०]।

आश्वत्था—संज्ञा स्त्री० [स०] अश्विनी नक्षत्र की रात्रि [को०]।

आश्वमेधिक—वि० [सं०] अश्वमेध यज्ञ या अश्वमेध संबंधी [को०]।

आश्वयुज—संज्ञा पुं० [स०] वह महीना जिसकी पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्र युक्त हो। आश्विन। क्वार।

आश्वलक्षणिक—संज्ञा पुं० [सं०] घोडों के भले बुरे लक्षण पहचाननेवाला। शालिहोत्री [को०]।

आश्वलायन—संज्ञा पुं० [स०] आश्वलायन गृह्यसूत्रों और श्रौतसूत्रो के रचयिता ऋषि का नाम [को०]।

आश्वस्त— वि० [सं०] १ निर्भय। उ०—आर्य सभ्यता हुई प्रतिष्ठित आर्य धर्म आश्वस्त हुआ।—साकेत, पृ० ३७९। २ उत्साहयुक्त [को०]।

आश्वास— संज्ञा पु० [स०][वि० आश्वासक] १. सात्वना। दिलासा। तसल्ली। आशाप्रदान। २ किसी कथा का एक भाग। ३ विराम [को०]। ४ पूरी तरह खुलकर सांस लेना [को०]।

आश्वासक[1]— वि० [स०] दिलासा देनेवाला। भरोसा देनेवाला।

आश्वासक[2]— संज्ञा पुं० कपडा। वस्त्र [को०]।

आश्वासन—संज्ञा पु० [स०] [वि० आश्वासनीय, आश्वासित, आश्वास्य] दिलासा। तसल्ली। सात्वना। आशाप्रदान। उ०— व्याकुल को आश्वासन सा देती हुई।—महा०, पृ० ४।

आश्वासनीय—वि० [स०] दिलासा देने योग्य। तसल्ली देने योग्य। प्रोत्साहन के योग्य।

आश्वासित—वि० [स०] दिलासा दिया हुआ। दिलासा पाया हुआ।

आश्वासी—वि० [स० आश्वासिन्] १ आश्वासन देनेवाला। दिलासा या ढाढस वँधानेवाला। २ आत्मविश्वासी। ३ प्रफुल्लचित्त [को०]।

आश्वास्य—वि० [स०] दे० 'आश्वासनीय'।

आश्विक[1]—वि० [स०] १ घोडो से सबध रखनेवाला। अश्वारोही घोडे से खीचा जानेवाला [को०]।

आश्विक[2]— संज्ञा पु० घुडसवार सैनिक [को०]।

आश्विन— संज्ञा पु० [स०] १ वह महीना जिसकी पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्र मे पडे। क्वार का महीना। २ अश्विनीकुमार। ३ एक यज्ञ [को०]।

आश्विनेय—संज्ञा पुं० [स०] १ अश्विनीकुमार। २ नकुल और सहदेव।

आष(पु)— स्त्री० पुं० [स० आखु] दे० 'आखु'। उ०— आष इष्षि चष अग्ग। घात मजार न मड्डै।— पृ० रा०, ६३।१६०।

आषाढ—संज्ञा पु० [स० आषाढ] वह चाद्रमास जिसकी पूर्णिमा को पूर्वाषाढ़ नक्षत्र हो। जेष्ठ मास के पश्चात् और श्रावण के पूर्व का महीना। असाढ। २ ब्रह्मचारी का दड। ३ पलाश। ढाक।

आषाढक[1]—वि० [स० आषाढक] आषाढ मास मे होनेवाला। आषाढ़ सबधी [को०]।

आषाढक[2]—संज्ञा पु० आषाढ मास [को०]।

आषाढा—संज्ञा पुं० [स० आषाढा] पूर्वाषाढा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र।

आषाढाभव, आषाढाभू—संज्ञा पुं० [स० आषाढाभव-भू] मगल ग्रह।

आषाढी[1]—संज्ञा स्त्री० [स० आषाढी] १ आषाढ मास की पूर्णिमा।

विशेष—इस दिन गुरुपूजा या व्यास पूजा होती है। वृष्टि आदि का आगम निश्चय करने के लिये वायुपरीक्षा भी इसी दिन की जाती है।

२ इस पूर्णिमा के दिन होनेवाले कृत्य।

आषाढी[2]—वि० [स० आषाढिन्] पलाशदड धारण करनेवाला [को०]।

आषाढीय—वि० [स० आषाढीय] आषाढा नक्षत्र मे उत्पन्न [को०]।

आषाढी योग—संज्ञा पुं० [सं० आषाढी योग] आषाढ शुक्ला पूर्णिमा को अन्न की तौल से सुवृष्टि आदि का निश्चय।

विशेष—इस दिन लोग थोडा सा अन्न तौलकर हवा मे रख देते हैं। यदि वहाँ की सील से अन्न की तौल कुछ बढ गई तो समझते है कि वृष्टि होगी और सुकाल रहेगा।

आसग[1]—संज्ञा पु० [स० आसङ्ग] १ साथ। सग। २ लगाव। सबध। ३ आसक्ति। अनुरक्ति। लिप्तता। ४ मुलतानी मिट्टी जिसे सिर मे मलकर लोग स्नान करते हैं।

आसग[2]—क्रि० वि० सतत। निरतर। लगातार।

आसगत्य—संज्ञा पुं० [स० आसङ्गत्य] १ असगति का भाव या अवस्था। पार्थक्य। अलगाव। २ वियोग [को०]।

आसगिनी—संज्ञा स्त्री० [स० आसङ्गिनी] ववंडर। वात्याचक्र [को०]।

आसगी—वि० [स० आसङ्गिन्] १ सपर्की। मेलजोल रखनेवाला। २. आसक्त [को०]।

आसजन—संज्ञा पु० [स० आसञ्जन] १ बाँधना या जोडना। २ पहनना या धारण करना। ३. अनुराग। ४ भक्ति। ५ मूठ [को०]।

आसद—संज्ञा पुं० [स० आसन्द] वासुदेव या विष्णु [को०]।

आसदिका—संज्ञा स्त्री० [आसन्दिका] १ मचिया। २ आसनी [को०]।

आसदी—संज्ञा स्त्री० [स०] १ मचिया। मोढा। कुरसी। २ खटोला।

आसबाध— वि० [सं० आसम्बाध] १ अवरुद्ध। घेरे मे पडा हुआ। २ फैला हुआ [को०]।

आससार—वि० [स०] विकारी। प्रगतिशील। परिवर्तनशील [को०]।

आससृति—वि० [सं०] दे० 'आससार'।

आस[1]—संज्ञा स्त्री० [स० आशा] १ आशा। उम्मेद। उ०—साथि चले सँग बीछुरा, भए बिच समुद पहार। आस निरासा हौं फिरौं, तू बिधि देहि अधार।—जायसी ग्र०, पृ० ३०। २ लालसा। कामना। उ०—तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू।—मानस, १।२५२। ३ सहारा। आधार। भरोसा। जैसे,—हमे किसी दूसरे की आस नही।

मुहा०— **आस करना** = (१) आशा करना। (२) आसरा करना। मुँह ताकना। जैसे,—चलते पौरुष किसी की आस करना ठीक नही। **आस छोड़ना** = आशा परित्याग करना। उम्मेद न रखना। **आस टूटना** = निराश होना। जैसे,—जब आस टूट जाती है, तब कुछ करते धरते नही बनता। **आस तकना** = (१) आसरा देखना। इतजार करना। जैसे,—तुम्हारी आस तकते तकते दोपहर हो गए। (२) सहायता की अपेक्षा रखना। मुँह जोहना। जैसे,—ईश्वर न करे किसी की आस तकनी पडे। **आस तजना** = आशा छोडना। **आस तोडना** = किसी की आशा के विरुद्ध कार्य करना। किसी को निराश करना। जैसे,—किसी की आशा तोडना ठीक नही। **आस देना** = (१) उम्मेद बँधाना। किसी को उसके इच्छानुकुल कार्य करने का वचन देना। जैसे,—किसी को आस देकर तोडना ठीक नही। (२) संगीत मे किसी बाजे या स्वर से सहायता देना। **आस पुराना** = आशा पूरी करना। **आस पूजना** = आशा पूरी होना।

इच्छानुकूल फल मिलना। उ०—एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी।—मानस, २।१६। **आस पूरना**=दे० 'आस पूजना'। **आस बँधना**=आशा उत्पन्न होना। जैसे,—रोगी की अवस्था कुछ सुधरी है, इसी से आस बँधती है। **आस लगना**=आशा उत्पन्न होना। **आस लगाना**=आशा बाँधना। **आस होना**=(१) आशा होना। (२) सहारा होना। आश्रय होना। (३) गर्भ होना। गर्भ रहना। जैसे,—तुम्हारी बहू को कुछ आस है।

यौ०—आस औलाद।

आस[2]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० **आशा**] दिशा। उ०—जैसे तैसे बीतिगे कलपत द्वादश मास। आई बहुरि बसंत ऋतु विमल भई दस आस।—रघुराज (शब्द०)।

आस[3]—संज्ञा पुं० [सं०] १ धनुष। कमान। २ चूतड़। ३ आसन (को०)। ४ उपवेशन। बैठना (को०)। ५ सन्निधि। सामीप्य (को०)।

यौ०—कप्यास।

आसकत†—संज्ञा पुं०[सं० **अशक्ति**] [वि० **आसकती**, क्रि० **असकताना**] सुस्ती। आलस्य।

आसकती†—वि० [हिं० **आसकत**+ई (प्रत्य०)] आलसी।

आसक्त—वि० [सं०] १ अनुरक्त। लीन। लिप्त। जैसे,-इंद्रियों में आसक्त रहना ज्ञानियों का काम नहीं। २. आशिक। मोहित। लुब्ध। मुग्ध। जैसे—वह उस स्त्री पर आसक्त है। ३ विश्वास माननेवाला (को०)।

आसक्ति—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ अनुरक्ति। लिप्तता। २. लगन। चाह।

आसतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आसक्ति'। उ०—आसति कहूँ न देखिहूँ, बिन नाँव तुम्हारे।—कबीर ग्र०, पृ० १५२।

आसतीन—संज्ञा स्त्री० [फा० **आस्तीन**] दे० 'आस्तीन'।

आसते[1]Ⓟ—क्रि० वि० [फा० **आहिस्तह्**] १ धीरे धीरे। उ०—पौन करि आसतें न जाऊँ उठी बासतें, अरी गुलाबपास तें, उठाउ आसपास तें।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२२। २. होते हुए।

आसते[2]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'आसना'।

आसतोषⓅ—वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आशुतोष'। उ०—समरथ दूलनदास के आसतोष तुम राम।—संतबानी०, भा० १, पृ० १३७।

आसत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सामीप्य। निकटता। २ अर्थबोध के लिये बिना व्यवधान के एक दूसरे से संबंध रखनेवाले पदों या शब्दों का पास पास रहना। जैसे,—यदि कहा जाय कि 'वह खाता था पुस्तक और पढ़ता था दाल चावल' तो कुछ बोध नहीं होता, क्योंकि आसत्ति नहीं है। पर यदि कहें कि 'वह दाल चावल खाता था और पुस्तक पढ़ता था' तो तात्पर्य खुल जाता है। पदों का अन्वय आसत्ति के अनुसार होता है। ३ प्राप्ति। पाना। लाभ। (को०)। मेल। संगति (को०)।

आसथाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० आस्था] अंगीकार।—(हिं०)।

आसथानⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आस्थान**] दे० 'आस्थान'।

आसदन—संज्ञा पुं०[सं०]१. लाभ। मुनाफा। २ संबंध। नर्क। ३ निकटता। समीपता। ४ बैठने की क्रिया। बैठना। ५. आसन [को०]।

आसन[1]—संज्ञा पुं०[सं०]१ स्थिति। बैठने की विधि। बैठक। जैसे,—ठीक आसन से बैठो।

विशेष—यह अष्टांग योग का तीसरा अंग है और पाँच प्रकार का होता है-पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन और वीरासन। कामशास्त्र या कोकशास्त्र में भी रतिप्रसंग के ८४ आसन हैं।

यौ०—पद्मासन। सिद्धासन। गरुडासन। कमलासन। मयूरासन।

मुहा०—**आसन उखड़ना**=(१) अपनी जगह से हिल जाना।(२) घोड़े की पीठ पर रान न जमना। जैसे,—वह अच्छा सवार नहीं है, उसका आसन उखड़ जाता है। **आसन उठना**=स्थान छूटना। प्रस्थान होना। जानना। जैसे,—तुम्हारा आसन यहाँ से कब उठेगा? **आसन करना**=(१) योग के अनुसार अंगों को तोड़ मरोड़कर बैठना। (२) बैठना। टिकना। ठहरना। जैसे,— उन महात्मा ने वहाँ आसन किया है। **आसन कसना**=अंगों को तोड़ मरोड़कर बैठना। **आसन छोड़ना**=उठ जाना। चला जाना। **आसन जमना**=(१) जिस स्थान पर जिस रीति से बैठे, उसी स्थान पर उसी रीति से स्थिर रहना। जैसे,—अभी घोड़े की पीठ पर उनका आसन नहीं जमता है। (२) बैठने में स्थिर भाव आना। जैसे,—अब तो वहाँ आसन जम गया, अब जल्दी नहीं उठते। **आसन जमाना**=स्थिर भाव से बैठना। जैसे,—वह एक घड़ी भी कहीं आसन जमाकर स्थिर भाव से नहीं बैठता। **आसन जोड़ना**=दे० 'आसन जमाना'। **आसन डिगना**=(१) बैठने में स्थिर भाव न रहना। (२) चित्त चलायमान होना। मन डोलना। इच्छा और प्रवृत्ति होना। (जिसमें जिस बात की आशा न हो वह यदि उस बात को करने पर राजी या उतारू हो तो उसके विषय में यह कहा जाता है।) जैसे,—(क) जब रुपया दिखाया गया, तब तो उसका भी आसन डिग गया। (ख) उस सुंदरी कन्या को देख नारद का आसन डिग गया। **आसन डिगाना**=(१) जगह से विचलित करना। (२) चित्त को चलायमान करना। लोभ या इच्छा उत्पन्न करना। **आसन डोलना**=(१) चित्त चलायमान होना। लोगों के विश्वास के विरुद्ध किसी की किसी वस्तु की ओर इच्छा या प्रवृत्ति होना। जैसे—मेनका के रूप को देख विश्वामित्र का भी आसन डोल गया। (ख) रुपए का लालच ऐसा है कि बड़े बड़े महात्माओं का भी आसन डोल जाता है। (२) चित्त क्षुब्ध होना। हृदय पर प्रभाव पड़ना। हृदय में भय और करुणा का संचार होना। जैसे,—(क) विश्वामित्र के घोर तप को देख इंद्र का आसन डोल उठा। (ख) जब प्रजा पर बहुत अत्याचार होता है, तब भगवान् का आसन डोल उठता है। **आसन डोल**=कहारों की बोली। जब पालकी का सवार बीच से खिसककर एक ओर होता है और पालकी उस ओर झुक जाती है तब कहार लोग यह वाक्य बोलते हैं। **आसन तले आना**=वश में आना। अधीन होना। **आसन देना**=सत्कारार्थ बैठने के लिये कोई वस्तु रख देना या

बतला देना। बैठाना। **आसन पहचानना**=बैठने के ढंग से घोड़े का सवार को पहचानना। जैसे,—घोड़ा सवार को पहचानता है, देखो मालिक के चढ़ने से कुछ इधर उधर नहीं करता। **आसन पाटी**=खाट खटोला। ओढ़ने बिछाने की वस्तु। **आसन पाटी लेकर पड़ना**=अटवाटी खटवाटी लेकर पड़ना। दुख और कोप प्रकट करने के लिये ओढ़ना ओढ़कर या बिछौना बिछाकर खूब आडंबर के साथ सोना। **आसन बाँधना**=दोनों रानों के बीच दबाना। जाँघों से जकड़ना। **आसन मारना**=(१) जमकर बैठना। (२) पालथी लगा कर बैठना। उ०—मठ मंडप चहुँ पास सँवारे। जपा तपा सब आसन मारे।—जायसी (शब्द०)। **आसन लगाना**=(१) आसन मारना। जम कर बैठना। (२) टिकना। ठहरना। जैसे,—बाबा जी, आज तो यहीं आसन लगाइए। (३) किसी कार्य के साधन के लिये गड़कर बैठना। जैसे,—यदि आज न दोगे तो यहीं आसन लगावेगा। (४) बैठने की वस्तु फैलाना। बिछौना बिछाना। जैसे,—बाबा जी के लिये यहीं आसन लगा दो। **आसन होना**=रतिप्रसंग के लिये उद्यत होना। **२** बैठने के लिये कोई वस्तु। वह वस्तु जिसपर बैठें।

विशेष—बाजार में ऊन, मूँज या कुश के बने हुए चौखूँटे आसन मिलते हैं। लोग इनपर बैठकर अधिकतर पूजन या भोजन करते हैं।

३ टिकान या निवास। (साधुओं की बोली)। ४. साधुओं का डेरा या निवास स्थान।

क्रि० प्र०—करना=टिकना। डेरा डालना।—देना=टिकाना। ठहराना। डेरा देना।

५ चूतड़। ६ हाथी का कंधा जिसपर महावत बैठता है। ७ सेना का शत्रु के सामने डटे रहना। ८. उपेक्षा की नीति से काम करना। यह प्रकट करना कि हमें कुछ परवाह नहीं है।

विशेष—इस नीति के अनुसार शत्रु के चढ़ आने या घेरने पर भी राजा लोग नाचरंग का सामान करते हैं।

९ कौटिल्य के अनुसार उदासीन या तटस्थ रहने की नीति। आक्रमण के रोके रहने की नीति। १० एक दूसरे की शक्ति नष्ट करने में असमर्थ होकर राजाओं का संधि करके चुपचाप रह जाना।

विशेष—यह पाँच प्रकार का कहा गया है—विगृह्यासन, संधानासन, संभूयासन, प्रसंगासन और उपेक्षासन।

आसन[३]—संज्ञा पुं० [सं०] १ जीवक नाम का अष्टवर्गीय ओषधि। २ जीरक। जीरा।

आसना[१](पु)—क्रि० अ० [सं० **अस्**=होना] होना। उ०—(क) है नाहीं कोइ ताकर रूपा। ना ओहि सन कोइ आहि अनूपा।—जायसी ग्र०, पृ० ३। (ख) मरी डरी कि टरी बिथा, कहा खरी, चलि चाहि। रही कराहि कराहि अति अब मुँह आहि न आहि।—बिहारी र०, दो० ५६।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग वर्तमान काल में ही मिलता है और इसका रूप 'आहि' या आहि का ही कोई विकारी रूप होता है।

आसना[२]—संज्ञा पुं०[सं०] १ जीव। २ वृक्ष।

आसनी—संज्ञा स्त्री० [सं० आसन का हिं० अल्पा०] छोटा आसन। छोटा बिछौना।

आसन्न—वि० [सं०] निकट आया हुआ। समीपस्थ। प्राप्त।

यौ०—आसन्नकाल=(१) प्राप्तकाल। आया हुआ समय। (२) मृत्युकाल। (३) जिसका समय आ गया हो। (४) जिसका मृत्युकाल निकट हो। आसन्नप्रसवा=जिसे शीघ्र बच्चा होनेवाला हो।

आसन्नता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नैकट्य। सामीप्य।

आसन्नपरिचारक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सदा मालिक के पास रहनेवाला नौकर। निकटवर्ती सेवक। २ अंगरक्षक [को०]।

आसन्नभूत—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह भूतकाल जो वर्तमान में मिला हुआ हो, अर्थात् जिसे बीते थोड़ा ही काल हुआ हो। २. भूतकालिक क्रिया का वह रूप जिससे क्रिया की पूर्णता और वर्तमान से उसकी समीपता पाई जाय। जैसे,—मैं जा रहा हूँ। मैं आया हूँ। उसने खाया है। मैंने देखा है।

विशेष—सामान्य भूत की अकर्मक क्रिया के आगे कर्ता के वचन और पुरुष के अनुसार हूँ, है, हैं, हो लगाने से आसन्नभूत क्रिया बनती है। पर सकर्मक क्रिया के आगे केवल कर्म के वचन के अनुसार 'है' या 'हैं' तीनों पुरुषों में लगता है।

आसन्नमरण—वि० [सं०] जो कुछ ही देर में मरनेवाला हो [को०]।

आसन्नमृत्यु—वि० [सं०] दे० 'आसन्नमरण'।

आसपास—क्रि० वि० [सं० **आस=सामीप्य अथवा अनुध्व० आस+सं० पार्श्व**] चारों ओर। निकट। करीब। इर्द गिर्द। इधर उधर। अगल बगल। उ०—तब सरस्वती सी फेंक साँस, श्रद्धा ने देखा आसपास।—कामायनी, पृ० २४७।

आसबद—संज्ञा पुं० [सं० आश्रय+बद] एक तागा, जो पटवों के पैर के अँगूठे में बँधा रहता है। इसी तागे में जेवर को अटकाकर गूँथते हैं।

आसमाँ—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'आसमान'।

आसमान—संज्ञा पुं० [फा०, मि० वै० सं० **अश्मन्=आकाश**] १ आकाश। गगन। २ स्वर्ग। देवलोक। उ०—चहूँ ओर सब नगर के लसत दिवालैं चारु। आसमान तजि जनु रह्यो गीरवान परिवारु।—गुमान (शब्द०)।

मुहा०—**आसमान के तारे तोड़ना**=कोई कठिन या असंभव कार्य करना। जैसे,—कहो तो मैं तुम्हारे लिये आसमान के तारे तोड़ लाऊँ। **आसमान जमीन के कुलाबे मिलाना**=(१) खूब लंबी चौड़ी हाँकना। खूब बढ़ चढ़कर बातें करना। (२) गहरा जोड़ तोड़ लगाना। विकट कार्य करना। **आसमान झाँकना या ताकना**=(१) घमंड से सिर ऊपर उठाना। तनना। (२) मुर्गेबाजों की बोली में मुर्ग का मस्त होकर लड़ने के लिये तैयार होना। झड़प चाहना। (जब मुर्ग जोश में भरता है तब आसमान की ओर देखकर नाचता है। इसी से यह मुहाविरा बना है)। जैसे,—अब तो मुर्गा आसमान झाँकने लगा। **आसमान टूट पड़ना**=किसी विपत्ति का अचानक आ पड़ना। वज्रपात होना। गजब पड़ना। जैसे,—क्यों इतना झूठ बोलते हो,

आसमान टूट पडेगा। आसमान दिखाना=(१) कुश्ती मे पछाड़कर चित्त करना। (२) पराजित करना। प्रतिपक्षी को हराना। आसमान पर उड़ना=(१) इतराना। गरूर करना। (२) बहुत ऊँचे ऊँचे सकल्प बाँधना। ऐसा कार्य करने का विचार प्रकट करना जो सामर्थ्य से बाहर हो। बहुत बढ़ बढ़कर बातें करना। डींग हाँकना। आसमान पर चढ़ना=गरूर करना। घमड दिखाना। शेखी मारना। सिट्टू मारना। जैसे,—(क) कौन सा ऐसा काम कर दिखाया है जो आसमान पर चढे जाते हो। (ख) उनका मिजाज आजकल आसमान पर चढा है। आसमान पर चढाना=(१) अत्यत प्रशसा करना। जैसे,—आप जिसपर कृपा करने लगते हैं उसे आसमान पर चढा देते हैं। (२) अत्यत प्रशसा करके किसी को फुला देना। तारीफ करके मिजाज बिगाड देना। जैसे,—तुमने तो और उसको आसमान पर चढा रखा है, जिसके कारण वह किसी को कुछ समझता ही नही। आसमान पर थूकना=किसी महात्मा के ऊपर लाछन लगाने के कारण स्वयं निंदित होना। किसी सज्जन के अपमानित करने के कारण उलटे आप तिरस्कृत होना। आसमान फट पडना=दे० 'आसमान टूट पडना'। उ०—फिक्र यह है कि दुनियाँ क्यों कर कायम है, आसमान फट क्यों नही पडता।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६४। आसमान मे थिगली लगाना=विकट कार्य करना। जहाँ किसी की गति न हो वहाँ पहुँचना। जैसे,—कुटनियाँ आसमान मे थिगली लगाती हैं। आसमान मे छेद करना=दे० 'आसमान मे थिगली लगाना'। आसमान सिर पर उठाना=(१) ऊधम मचाना। उपद्रव मचाना। (२) हलचल मचाना। खूब आदोलन करना। धूम मचाना। आसमान सिर पर टूट पडना=दे० 'आसमान टूट पडना'। आसमान से गिरना=(१) अकारण प्रकट होना। आप से आप आ जाना। जैसे,—अगर यह पुस्तक तुमने यहाँ नही रखी तो क्या आसमान से गिरी है? (२) अनायास प्राप्त होना। बिना परिश्रम मिलना। जैसे,—कुछ काम धाम करते नही, रुपया क्या आसमान से गिरेगा? आसमान से बातें करना=आसमान छूना। आसमान तक पहुँचना। बहुत ऊँचा होना। जैसे,—माधवराय के दोनो धरहरे आसमान से बातें करते हैं। (हाल ही मे एक धरहरा कमजोर होने से गिर गया। अब एक ही है)। दिमाग आसमान पर होना=बहुत अभिमान होना।

आसमानखोंचा—संज्ञा पुं० [फा० आसमान+हिं० खोंचा] १ लबा लग्गा या धरहरा जो ऊपर तक गया हो। २ बहुत लबा आदमी। ३. एक तरह का हुक्का जिसकी नैचो इतनी लबी होती है कि हुक्का नीचे रहता है और पीनेवाला कोठे पर।

आसमानी[1]—वि० [फा०] १ आकाश सबधी। आकाशीय। आसमान का। २. आकाश के रग का। हलका नीला। ३ दैवी। ईश्वरीय। जैसे,—उनके ऊपर आसमानी गजब पडा।

आसमानी[2]—संज्ञा स्त्री० १ ताड के पेड से निकला हुआ मद्य। ताडी। २ किसी प्रकार का नशा, जैसे,—भाँग, शराब। ३ मिस्र देश की एक कपास। ४. पालकी के कहारो की एक बोली। (जब कोई पेड की डाल आदि आगे आ जाती है जिसका ऊपर से पालकी मे धक्का लगने का डर रहता है, तब आगेवाले कहार पीछेवालो को 'आसमानी, आसमानी' कहकर सचेत करते हैं।

आसमुद्र—क्रि० वि० [सं०] समुद्र पर्यंत। समुद्र के तट तक। उ०—आसमुद्र के छितीस और जाति को गनै। राजभोग भोज को सबै जने गए बनै।—केशव (शब्द०)।

आसय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आशय] दे० 'आशय'। उ०—वैष्णवन के मत को आसय जानि गए।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० ३११।

आसर[1]—संज्ञा पुं० [सं० आशर] दे० 'आशर'।

आसर[2]—संज्ञा पुं० [अं० अशर] दस रुपए (दलालो की बोली)।

आसरना(पु)—क्रि० स० [सं० आश्रयण] आश्रय लेना। सहारा लेना। उ०—नर तनु भक्ति तुम्हारी होय। तामे जीव आसरै सोय (शब्द०)।

आसरम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आश्रम] दे० 'आश्रम'। उ०—चार विचार आसरम धरम।—पलटू०, पृ० ५५।

आसरा—संज्ञा पुं० [सं० आश्रय प्रा० *आसरअ] १ सहारा। आधार। अवलब। जैसे—(क) यह छत खभो के आसरे पर है। (ख) बुड्ढे लोग लाठी के आसरे पर चलते हैं। २ भरण पोषण की आशा। भरोसा। आस। ३ किसी से सहायता पाने का निश्चय। जैसे,—हमे आप ही का आसरा है दूसरा हमारा कौन है।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—होना।

मुहा०—आसरा टूटना=भरोसा न रहना। नैराश्य होना। आसरा देना=वचन देना। किसी बात का विश्वास दिलाना।

४. जीवन या कार्य निर्वाह का हेतु। आश्रयदाता। सहायक। जैसे,—हम तो अपना आसरा आपको ही समझते हैं। ५ शरण। पनाह। जैसे,—जिसने तुम्हें आश्रय दिया उसी के साथ ऐसा करते हो।

क्रि० प्र०—ढूँढ़ना।—पकडना।—देना।—लेना।

६ प्रतीक्षा। प्रत्याशा। इतजार।

क्रि० प्र०—तकना।—देखना।—मे रहना।

७. आशा। जैसे,—अब उसका क्या आसरा है, चार दिनो का मेहमान है।

आसरैत—वि० [स० आश्रित या हिं० आसरा+ऐत (प्रत्य०)।] १ आश्रित। किसी के सहारे रहनेवाला। २ सेवक।

आसव—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह मद्य जो भभके से न चुआई जाय केवल फलो के खमीर को निचोडकर बनाई जाय। उ०—ढुला डालती थी वह आसव जिसकी बुझती प्यास नही।—कामायनी, पृ० १८३। २ औषध का एक भेद। कई द्रव्यो को पानी मे मिलाकर भूमि मे ३० ४० या ६० दिन तक गाड रखते हैं फिर उस खमीर को निकालकर छान लेते हैं। इसी को आसव कहते हैं। ३ अर्क। ४. वह पात्र जिसमें मद्य रखा जाय। ५ उत्तेजन। ६ मकरद। पुष्परस (को०)। ७. अधर रस (को०)।

आसवद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १ तालवृक्ष। ताड का पेड। २ खजूर (को०)।

आसवन—संज्ञा पुं० [सं०] आसव बनाने की क्रिया (को०)।

आसवी--वि० [सं० आसविन्] शराबी। मद्यप। मद्यपान करनेवाला। उ०—वे नैनन से आसवी मैं न लखेघनस्याम। छकि छकि मतवारे रहैं, तव छवि मद वसु जाम।—स० सप्तक, पृ० २७२।

आसहर(पु)—वि० [सं० आशा+हर] निराश। उ०—सबै आसहर तकर आसा। वह न काहु के आस निरासा।—जायसी ग्र०, पृ० २।

आसा¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आशा] दे० 'आशा'।

आसा²—संज्ञा पुं० [अ० असा] सोने चाँदी का डंडा जिसे केवल सजावट के लिये राजा महाराजो अथवा बरात और जुलूस के आगे चोबदार लेकर चलते हैं।

यौ०—आसावल्लम। आसासोंटा। आसावरदार।

आसाइश—संज्ञा पुं० [फा०] आराम। सुख। चैन।

आसाढ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आषाढ'।

आसादन—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राप्त करना। २ रखना। ३ झपटकर पकड लेना। ४ आक्रमण करना [को०]।

आसादित—वि० [सं०] १ प्राप्त। उपलब्ध। २ पहुँचा हुआ। ३ बिखेरा हुआ। ४ पूर्ण किया हुआ। ५. आक्रांत [को०]।

आसान—वि० [फा०] सहज। सरल। सीधा। सहल।

आसानी—संज्ञा स्त्री० [फा०] सरलता। सुगमता। सुवीता।

आसापाल—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड का नाम।

आसाम—संज्ञा पुं० [देश०] भारत का एक प्रांत या राज्य जो बंगाल के उत्तर पूर्व मे है।

विशेष—इसको प्राचीन काल में 'कामरूप' देश कहते थे। इस देश मे हाथी अच्छे होते हैं। यहाँ पहले 'आहूम' वंशी क्षत्रियो का राज्य था। इसी से इस देश का नाम 'आहूम' या 'आसाम' पड गया है। मनीपुर के राजा लोग अपने को इसी वंश का बतलाते हैं।

आसामी¹—संज्ञा पुं०, स्त्री० [हिं०] दे० 'असामी'।

आसामी²—वि० [हिं० आसाम] आसाम देश का। आसाम देश संबंधी।

आसामी³—संज्ञा पुं० आसाम देश का निवासी।

आसामी⁴—संज्ञा स्त्री० आसाम देश की भाषा।

आसामुखी(पु)—वि० [सं० आशा+मुख+हिं० ई (प्रत्य०)] किसी के मुख का आसरा देखनेवाला। मुखापेक्षी। उ०—(क) जो जाकर अस आसामुखी। दुख महँ ऐस न मारै दुखी।—जायसी ग्र०, पृ० ६७। (ख) पाहन कूँ का पूजिए जे जनम न देई जाव। आधा नर आसामुखी, यौं ही खोवै आव।—कबीर ग्र० पृ० ४४।

आसार¹—संज्ञा पुं० [अ०] १ चिह्न। लक्षण। निशान। उ०—बारिश के आसार पाए जाते हैं।—श्रीनिवा सग्र०, पृ० । २ चौडाई। ३ नीव। बुनियाद [को०]। ४ खंडहर [को०]।

आसार²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ धारा। संपात। मूसलाधार वृष्टि। २ कौटिल्य के अनुसार लडाई मे मित्र आदि से मिलनेवाली सहायता। ३ मेघमाला।—(डिं०) ४ हमला। हल्ला आक्रमण (को०)। ५ शत्रु की सेना को घेरने की क्रिया [को०]।

आसारित—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक गीत।

आसाव—वि० [सं०] प्रशसक। स्तुतिकारक [को०]।

आसावरी—संज्ञा पुं० [हिं० ?] १. श्रीराग की एक रागिनी। इसका स्वर ध, नि, स, म, प, ध है और गाने का समय प्रातःकाल १ दंड से ५ दंड तक। दे० 'असावरी'। २. एक प्रकार का कबूतर। ३ एक प्रकार का सूती कपडा।

आसिक¹—वि० [सं०] तलवार चलानेवाला। असिकला मे प्रवीण।

आसिक²(पु)—वि० [अ० आशिक] प्रेम करनेवाला [को०]।

आसिक्त—वि० [सं०] अभिसिंचित। सींचा हुआ। भीगा हुआ [को०]।

आसिख, आसिखा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आशिष'।

आसित¹—वि० [सं०] १ बैठा हुआ। २ सुखासीन [को०]।

आसित²—संज्ञा पुं० १ असित मुनि का पुत्र। २ शाडिल्य गोत्र का एक प्रवर विशेष। ३ बैठने का तरीका (को०)। ४ बैठने की वस्तु। आसन (को०)।

आसिद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] राजाज्ञा के अनुसार मुद्दई के द्वारा हिरासत में किया हुआ मुद्दालैह, (प्रतिवादी)।

आसिन—संज्ञा पुं० [सं० आश्विन] क्वार का महीना।

आसिया—संज्ञा स्त्री० [फा०] चक्की। जाता। पेषणी [को०]।

आसिरबचन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आशीर्वचन] आशीर्वाद। आसीस उ०—बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिरबचन लहे प्रिय जी के।—मानस, २।२४५।

आसिरबाद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आशीर्वाद] दे० 'आशीर्वाद'।

आसिरा(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'आसरा'। उ०—दादू मैं ही मेरे आसिरे, मैं मेरे आधार।—दादू० बानी, पृ० ।

आसिषा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० आशिष। उ०—औरो एक आसिषा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी।—मानस, ५।१०६।

आसिस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आशिष'। उ०—दछिना देत नंद पग लागत आसिस देत गरग सब द्विज वर।—नंद ग्र०, पृ० ५७१।

आसी(पु)—वि० [सं० आशी] दे० 'आशी'।

आसीन—वि० [सं०] बैठा हुआ। विराजमान।

आसीनपाठ्य—संज्ञा पुं० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार लास्य के दस अंगो मे से एक। शोक और चिंता से युक्त किसी आभूषिताँगी नायिका का बिना किसी बाजे या साज के यो ही गाना।

आसीर्वाद—संज्ञा पुं० [सं० आशीर्वाद] दे० 'आशीर्वाद'। उ०—कोऊ वैष्णव को आसीर्वाद तो नहिं भयो ?—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ४६।

आसीवन—संज्ञा पुं० [सं०] सीने की क्रिया। तागे डालना। टाँके लगाना [को०]।

आसीस¹—संज्ञा पुं० [सं० आ+शीर्ष] तकिया। उसीसा। उ०—तिसपर फेन से बिछौने फूलो से सँवारे विशाल गड्डवा और आसीसे समेत सुगंध से महक रहे थे।—लल्लू (शब्द०)।

आसीस²—संज्ञा पुं० [सं० आशिष] दे० 'आशिष'।

आसु¹(पु)—सर्व [सं० अस्य, प्रा० अस्स, आसु जैसे 'यस्य से जासु तस्य' से तासु] इसका। उ०—जानि पुछार जो भय बनबासू। रोवँ रोवँ परि फाँद न आसू।—जायसी (शब्द०)।

आसु[2] (पु)—क्रि० वि० [स० आशु] दे० 'आशु'। उ०—आनि कै पाँ परी देस लै, कोस लै आसु ही ईस सीता चलै श्रोक को।—रामच०, पृ० ११३।

आसुग (पु)—वि० सज्ञा पुं० [स० आशुग] दे० 'आशुग'।

आसुति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रस्रवण। चुवाना। २ चुआकर बनाई जानेवाली ओषधिविशेष। ३ प्रसव। ४ स्थिरता [कौ०]।

आसुतीवल—सज्ञा पुं० [स०] १. कन्यापालक। बालिका का अभिभावक। २. पुरोहित। ३. शराब चुवानेवाला कलाल। ४. बलि देनेवाला व्यक्ति [कौ०]।

आसुतोष[1] (पु)—सज्ञा पुं० वि० [स० आशुतोष] दे० 'आशुतोष'।

आसुर[1]—वि० [स०] १ असुरसबधी।

यौ०—आसुर विवाह = वह विवाह जो कन्या के मातापिता को द्रव्य देकर हो। आसुरावेश = भूत लगना।

२ दैवी (कौ०)। ३. यज्ञादि न करनेवाला (कौ०)।

आसुर[2]—सज्ञा पु० १. राक्षस। असुर। २. विरिया। सोंचर नमक। कटीला। विड् लवण। ३. रुधिर (कौ०)।

आसुरि—सज्ञा पुं० [स०] एक मुनि जो साख्य योग के आचार्य कपिल मुनि के शिष्य थे।

आसुरी[1]—सज्ञा पु० [स०] दे० 'आसुरि'।

आसुरी[2]—वि० स्त्री० [स०] असुर सबधी। असुरों का। राक्षसी।

यौ०—आसुरी चिकित्सा = शस्त्रचिकित्सा। चीरफाड। आसुरी माया = चक्कर मे डालनेवाली राक्षसों की चाल। आसुरी सपत्। आसुरी सृष्टि।

आसुरी[3]—सज्ञा स्त्री० १. राक्षस की स्त्री। उ०—कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं। सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं।—रामच०, पृ० ६५। २ वैदिक छंदों का एक भेद। ३. राजिका। राई। ४ सरसों। ५. शस्त्रचिकित्सा। चीरफाड (कौ०)।

आसुरीसपत्—सज्ञा स्त्री० [स० आसुरीसम्पत्] १ राक्षसी वृत्ति। बुरे कर्मों का सचय। २ कुमार्ग से आई हुई सपत्ति। बुरी कमाई का धन।

आसुरीसृष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] दैवी आपत्ति। जैसे,—आग लगना, पानी की बाढ, दुर्भिक्ष आदि।

आसूत्रित—वि० [स०] १ माल बनानेवाला। मालाकार। २. माला पहननेवाला। २ गुँथा हुआ [कौ०]।

आसूदगी—सज्ञा स्त्री० [फा०] तृप्ति। सतोष।

आसूदा—वि० [फा० आसूदह्] १ सतुष्ट। तृप्त। २ सपन्न। भरापूरा।

यौ०—आसूदा हाल = खाने पीने से खुश।

आसेक—सज्ञा पु० [स०] १. भिगोना। अच्छी तरह भिगोना। २ सींचना। आसेचन। जलसिक्त करना। अच्छी तरह सींचना। [कौ०]।

आसेक्य—वि० [स०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का नपुंसक।

आसेचन[1]—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'आसेक'।

आसेचन[2]—वि० [स०] सु दर। लुभावना [कौ०]।

आसेचनी[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] लघु पात्र [कौ०]।

आसेद्धा—सज्ञा पु० [स० आसेद्ध] बंदी बनानेवाला व्यक्ति। हिरासत मे लेनेवाला [कौ०]।

आसेध—सज्ञा पुं० [स०] राजा की आज्ञा से वादी (मुद्दई) का प्रतिवादी (मुद्दालेह्) को हिरासत मे रखना।

आसेधक—वि० [सं०] दे० 'आसेद्धा' [कौ०]।

आसेब—सज्ञा पुं० [फा०] [वि० आसेबी] १. भूत प्रेत की बाधा। क्रि० प्र०—उतरना।—उतारना।—लगना।—होना। २. कष्ट। दुख [कौ०]। ३ आघात। चोट [कौ०]। ४. रोक। बाधा [कौ०]।

आसेवन—सज्ञा पु० [सं०] १ निरतर सेवन करना। २ मेलजोल। बराबर होने का भाव [कौ०]।

आसेवा—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'आसेवन' [कौ०]।

आसेवित—वि० [सं०] सतत किया हुआ। बहुत दिनों तक व्यवहृत [कौ०]।

आसेवी—वि० [सं० आसेविन्] निरतर सेवन करनेवाला। अभ्यासी [कौ०]।

आसेव्य—वि० [स०] १ निरंतर सेवा के योग्य। २ देखने योग्य [कौ०]।

आसेर (पु)—सज्ञा पुं० [सं० आश्रय] किला।—(डिं०)।

आसोज†, आसोजा†—सज्ञा पुं० [स० अश्वयुज्] आश्विन मास। क्वार का महीना। उ०—आस रही आसोज आइहैं पीव री।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ३६८।

आसौं (पु)—क्रि० वि० [स० अस्मिन् प्रा० असिंस = इस + स० सम = वर्ष] इस वर्ष। इस साल।

आस्कंद—सज्ञा पुं० [सं० आस्कन्द] १ नाश। २. शोषण। ३. आक्रमण। ४ आरोहण। ५ युद्ध। ६ घोड़े की एक चाल। ७ अपशब्द। तिरस्कार या अपमान ८. आक्रमण करनेवाला व्यक्ति [कौ०]

आस्कंदन—सज्ञा पुं० [स० आस्कन्दन] दे० 'आस्कंद'।

आस्कंदित[1]—वि० [सं० आस्कन्दित] १. आक्रान्त। २. कुचला गया [कौ०]।

आस्कंदित[2]—सज्ञा पुं० घोड़े की तेज सरपट चाल [कौ०]।

आस्कंदी—वि० [सं० आस्कन्दिन्] १ आक्रमणकारी। आक्राता। २. खर्च करनेवाला। ३ अपहर्ता [कौ०]।

आस्तर—सज्ञा पु० [सं०] १ बिछौना। बिछावन। २ हाथी की झूल। ३ बिछाना। फैलाना [कौ०]।

आस्तरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञवेदी पर बिछाए कुश। २ दरी। बिछौना। ३ झूल। ४. फैलाना। बिछाना [कौ०]।

आस्तरणिक—वि० [सं०] १ बिस्तरे पर सोनेवाला। २ फैलाया या बिछाया जानेवाला [कौ०]।

आस्तार—सज्ञा पुं० [सं०] छितराना या बिखेरना [कौ०]।

आस्तारपंक्ति—सज्ञा पु० [सं० आस्तार पङ्क्ति] एक वैदिक छद का नाम जिसके पहले और चौथे चरण मे १२ वर्ण और दूसरे तथा तीसरे चरण मे आठ वर्ण होते हैं। यह सब मिलाकर ४० वर्णों का छद है।

आस्ताव—सज्ञा पुं० [सं०] १ स्तुतिपाठ। स्तवन। २ यज्ञ मे वह स्थान जहाँ से स्तुतिपाठ किया जाता है [कौ०]।

आस्तिक[1]—वि० [सं०] १ वेद, ईश्वर और परलोक इत्यादि पर विश्वास करनेवाला। २. ईश्वर के अस्तित्व को माननेवाला।

आस्तिक[2]—संज्ञा पुं० वेद, ईश्वर और परलोक को माननेवाला पुरुष।

आस्तिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेद, ईश्वर और परलोक मे विश्वास।

आस्तिकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आस्तिकता' [को०]।

आस्तिकपन—संज्ञा पु० [सं० आस्तिक + हिं०पन] आस्तिकता।

आस्तिक्य—संज्ञा पुं० [स०] ईश्वर वेद और परलोक पर विश्वास। २ जैन शास्त्रानुसार जिनप्रणीत सब भावो के अस्तित्व पर विश्वास।

आस्तीक—संज्ञा पु० [स०] एक ऋषि का नाम जिन्होने जनमेजय के सर्पसत्र मे तक्षक के प्राण बचाए थे। ये जरत्कारु ऋषि और वासुकि नाग की कन्या से उत्पन्न हुए थे।

आस्तीन—संज्ञा स्त्री० [फा०] पहनने के कपडे का वह भाग जो बाँह को ढँकता है। बाही।

मुहा०—**आस्तीन का साँप** = वह व्यक्ति जो मित्र होकर शत्रुता करे। ऐसा सगी जो प्रकट मे हिला मिला हो और हृदय से शत्रु हो। **आस्तीन चढाना** = (१) कोई काम करने के लिये मुस्तैद होना। (२) लडने के लिये तैयार होना। **आस्तीन मे साँप पालना** = शत्रु या अशुभचितक को अपने पास रखकर उसका पोषण करना।

आस्ते—अव्य० [अ० आहिस्तह्, हिं० आसते] धीरे।

आस्त्र—वि० [स०] हथियार या आयुधसबधी [को०]।

आस्था—संज्ञा स्त्री० [स०] १ पूज्य बुद्धि। श्रद्धा।

क्रि० प्र०—रखना।—होना।

२ सभा। बैठक। ३ आलबन। अपेक्षा। ३ प्रयत्न। चेष्टा (को०)। ४ निवास का साधन या स्थान (को०)। ५ वादा। प्रतिज्ञा (को०)। ६ आशा (को०)।

आस्थाता—वि० [स० आस्थातृ] १ चढनेवाला। आरोही। २ खडा होनेवाला [को०]।

आस्थान—संज्ञा पु० [स०] १ बैठने की जगह। बैठक। २ सभा। दरबार।

यौ०—**आस्थानगृह, आस्थाननिकेतन, आस्थानमंडप**।

आस्थानिका—संज्ञा स्त्री० [स०] बैठने की कोई वस्तु। कुर्सी। मचिया [को०]।

आस्थानी—संज्ञा स्त्री० [स०] सभाकक्ष। सभागृह [को०]।

आस्थापन—संज्ञा पुं० [स०] १. स्थापित करना। खडा करना। २ एक बलवर्धक ओषधि। ३ घी या तेल की वस्ति [को०]।

आस्थापित—वि० [सं०] १ खडा किया हुआ। २ सस्थापित। दृढीकृत [को०]।

आस्थायिका—संज्ञा स्त्री० [स०] १ श्रोताओं का समाज। २ दरबार [को०]।

आस्थित—वि० [स०] १ रहा हुआ। बसा हुआ। २ यत्न करता हुआ। ३ घेरा हुआ। ४. प्राप्त किया हुआ। पहुँचा हुआ। ५ व्याप्त। फैला हुआ [को०]।

आस्थिति—संज्ञा स्त्री० [स०] अवस्था। दशा [को०]।

आस्थेय—वि०[सं०]१ जिसके पास पास पहुँचा जाय। २ गृहीत। ३.आदृत [को०]।

आस्नान—संज्ञा पुं०[सं०]१ पवित्रता। २ धोने या नहाने का पानी [को०]।

आस्नेय[1]—वि० [सं०] रक्तरजित [को०]।

आस्नेय[2]—वि० मुख सबधी [को०]।

आस्पद—संज्ञा पुं० [स०] १ स्थान। उ०—कोटि बार आश्चर्य का आस्पद है।—श्यामा०, पृ० ७१। २. कार्य। कृत्य। ३ पद। प्रतिष्ठा। ४ अल्ल। वश। कुल। जाति। जैसे,—आप कौन आस्पद हैं। ५. कुडली मे दसवाँ स्थान।

आस्पर्धा—संज्ञा स्त्री० [स०] होडाहोडी। प्रतिस्पर्धा। लागडाट [को०]।

आस्पर्धी—वि० [स० आस्पर्धिन्] होड लेनेवाला प्रतिस्पर्धी [को०]।

आस्फाल—संज्ञा पु० [स०] १ धक्का देना। २ रगडना। ३ धीरे धीरे हिलाना। ४ हाथी का कान फडफडाना [को०]।

आस्फालन—संज्ञा पुं० [स] झटका। धक्का देना। झटकना। उ०—अपूर्व आस्फालन साथ श्याम ने। अतीव लबी वह यष्टि छीन ली।—प्रिय० प्र०, पृ० १८४।

आस्फुजित्—संज्ञा पुं० [स०] शुक्र नामक ग्रह [को०]।

आस्फोट—संज्ञा पु० [स०] १ ठोकर या रगड से उत्पन्न शब्द। २ ताल ठोकने का शब्द। ३ मदार।

आस्फोटक[1]—संज्ञा पुं० [स०] अखरोट।

आस्फोटक[2]—वि० ताल ठोकनेवाला [को०]।

आस्फोटन—संज्ञा पु० [स०] १ ताल ठोकना। २ फटकना। ३ हिलाना। कँपाना। ४. सकुचन। ५ ताली बजाना। ६ उद्घाटित करना। प्रकट करना। ७ माँडना [को०]।

आस्फोटनी—संज्ञा स्त्री० [स०] बरमी नामक बढई का औजार जिससे लकडी मे छेद किया जाता है [को०]।

आस्फोटा—संज्ञा स्त्री० [स०] नवमल्लिका। चमेली।

आस्फोत—संज्ञा पुं० [स०] १ मदार। अर्क। २ कोविदार। ३ भूपलाश [को०]।

आस्फोतक—संज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० आस्फोतका] दे० 'आस्फोत', 'आस्फोता' [को०]।

आस्फोता—संज्ञा स्त्री० [स०] १ मल्लिका। २ अपराजिता। ३ सारिवा [को०]।

आस्यंदन—संज्ञा पु० [स० आस्यन्दन] प्रस्रवण। बहना। [को०]।

आस्यग्घय—संज्ञा पु० [स० आस्यन्धय] चुबन करना [को०]।

आस्य—संज्ञा पुं० [स०] मुख। मुँह। मुँखमडल। चेहरा। उ०—वेश भाषा भगियो पर हास्य, कर रहे थे सरस सबके आस्य।—साकेत, पृ० १७०।

आस्यपत्र—संज्ञा पु० [स०] कमल।

आस्यलागल—संज्ञा पु०[स० आस्यलाङ्गल]१ कुत्ता। २. सूअर [को०]।

आस्यलोम—संज्ञा पु० [सं० आस्यालोमन्] दाढी [को०]।

आस्या[1]—संज्ञा स्त्री० [स०] १ विश्राम की अवस्था। २ बैठना। ३ रहना। ४ वासस्थान [को०]।

आस्या[2]—संज्ञा स्त्री० लार। राल।

आस्यासव—संज्ञा पुं० [सं०] लाला। लार [को०]।

आस्युत—वि० [स०] एक मे सिला हुआ [को०]।

आस्र—संज्ञा पु० [स०] रक्त। खून [को०]।

आस्रप¹—वि० [सं०] रक्तपायी। खून चूसने या पीनेवाला [को०]।

आस्रप²—सज्ञा पुं० १. राक्षस। २ मूल नक्षत्र [को०]।

आस्रम(पु)—सज्ञा पुं० [सं० आश्रम] दे० 'आश्रम'। उ०—तुम्हरे आस्रम अबहिं ईस तप साधहिं।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१।

आस्रव—सज्ञा पुं० [सं०] १ उबलते हुए चावल का फेन। २ पनाला। ३ इंद्रियद्वार। उ०—आस्रव इंद्रिय द्वार कहावै। जीवहिं विषयन ओर बहावै।—(शब्द०)। ४ क्लेश। कष्ट। ५ जैनमतानुसार औदरिक और कामादि द्वारा आत्मा की गति जो दो प्रकार की है—शुभ और अशुभ।

आस्राव—सज्ञा पुं० [सं०] १ बहाव। २ घाव। ३ पीडा। ४ एक रोग। ५ थूक [को०]।

आस्वनित—वि० [सं०] पूर्णतया ध्वनि करता हुआ। आशब्दित [को०]।

आस्वात—वि० [सं० आस्वान्त] दे० 'आस्वनित'।

आस्वाद—सज्ञा पुं० [सं०] रस। स्वाद। जायका। मजा। उ०—सस्कार से मुक्त सहृदय पुरुष रस का आस्वाद लेते हैं।—रस क०, पृ० १८।

आस्वादन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आस्वादनीय आस्वादित] चखना। स्वाद लेना। रस लेना। मजा लेना।

आस्वादनीय—वि० [सं०] चखने योग्य। स्वाद लेने योग्य। रस लेने योग्य। मजा लेने योग्य।

आस्वादित—वि० [सं०] चखा हुआ। स्वाद लिया हुआ। रस लिया हुआ। मजा लिया हुआ।

आस्वाद्य—वि० [सं०] आस्वादन करने योग्य। जायकेदार। खाने मे मधुर। मीठा [को०]।

आह¹—अव्य० [सं० अहह] पीडा, शोक, दुःख, खेद और ग्लानिसूचक अव्यय। उ०—पीडा—आह! बडा भारी काँटा पैर मे धँसा। दुःख शोक—आह! अन्न के बिना उसकी क्या दशा हो रही है। थोडा क्रोध और खेद—आह! तुमने तो हमे हैरान कर डाला।

आह²—सज्ञा स्त्री० कराहना। दुःख या क्लेशसूचक शब्द। ठढी साँस। उसास। उ०—तुलसी आह गरीब की, हरि सो सही न जाय। मुई खाल की फूँक सो, लोह भसम होइ जाय।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—**आह करना**=हाय करना। कलपना। ठढी साँस लेना। उ०—(क) आह करो तो जग जले, जगल भी जल जाय। पापी जियरा ना जले, जिसमे आह समाय। (शब्द०)। (ख) भरथरि बिछुरी पिंगला आह करत जिउ दीन्ह।—जायसी ग्र०, पृ० २७२। **आह खींचना**=ठढी साँस भरना। उसास खींचना। जैसे,—उसने तो आह खीचकर कहा कि तेरे जी मे जो आवे, सो कर। **आह पडना**=शाप पडना। किसी को दुःख पहुँचाने का फल मिलना। जैसे,—तुम पर उसी दुखिया की आह पडी है। **आह भरना**=ठढी साँस खीचना। उ०—चितहिं जो चित्र कीन्ह, धन रो रो अग समीप। सहा साल दुख आह भर, मुरछ परी कामीप।—जायसी (शब्द०)। **आह मारना**=ठढी साँस खीचना। उ०—आह जो मारी बिरह की, आग उठि तेहि लाग। हस जो रहा शरीर महँ पख जरे तब भाग।—जायसी (शब्द०)। **आह लेना**=सताना। दुःख देकर कलपाना। किसी को सताने का फल अपने ऊपर लेना। जैसे,—नाहक किसी की आह क्या लेते हो।

आह³(पु)—सज्ञा पुं० [राज० आहस=बल] साहस। हियाव। बल। उ०—जड के निकट प्रवीन की, नही चलै कछु आह। चतुराई ढिग अध के, करै चितेरी चाह।—दीनदयाल (शब्द०)।

आहक—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक रोग जो नाक मे होता है। २. गीर्वाण [को०]।

आहचर्ज(पु)—सज्ञा पुं० [देश०] दे० 'आश्चर्य'। उ०—सदा समीपिनि सखिहुँ लखति अति आहचर्ज सौं।—रत्नाकर, पृ० ६।

आहट—सज्ञा स्त्री० [हिं० आ=आना+हट (प्रत्य०), जैसे—बुलाहट घबराहट] १ शब्द जो चलने मे पैर तथा और दूसरे अगो से होता है। आने का शब्द। पाँव की चाप। खटका। जैसे,—(क) किसी के आने की आहट मिल रही है। उ०—होत न आहट भो पग धारे। बिनु घटन ज्यो गज मतवारे।—लाल (शब्द०)। (ग) आहट पाय गोपाल की ग्वालि गयी महँ जाय के धाय लियो है। (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।—लेना।

२. आवाज जिससे किसी के रहने का अनुमान हो। जैसे,—कोठरी मे किसी आदमी की आहट मिल रही है।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।—लेना।

३ पता। सुराग। टोह। निशान।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

आहत¹—वि० [सं०] [सज्ञा आहति] १. जिसपर आघात हुआ हो। चोट खाया हुआ। घायल। जख्मी। जैसे,—उस युद्ध मे ४०० सिपाही आहत हुए। २. जिस सख्या को गुणित करें। गुण्य। ३. व्याघात दोष से युक्त (वाक्य)। परस्पर विरुद्ध (वाक्य)। असभव (वाक्य)। ४ तुरन्त धोया हुआ (वस्त्र)। (वस्त्र) जो अभी धुलकर आया हो। ५. पुराना। जीर्ण। गया हुआ। ६ चलित। कपित। दर्राना हुआ। हिलता हुआ। ७. हत। मृत [को०]। ८ आघात किया हुआ। बजाया हुआ [को०]। कुचला या रौंदा हुआ [को०]।

यौ०—हताहत=मारे हुए और जख्मी।

आहत²—सज्ञा पुं० [सं०] १ ढोल। २. नया अथवा पुराना वस्त्र [को०]।

आहति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. चोट। मार। २ गुणन। गुणना। ३ मार डालना। वध [को०]।

आहन—सज्ञा पुं० [फा०] लोहा।

आहनन—सज्ञा पुं० [सं०] १ यष्टि। डडा। २ मारना। पीटना [को०]।

आहनी—वि० [फा०] लोहे का।

आहर¹(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अह] समय। काल। दिन। उ०—तिन तप कीन्ह छाँडि कै राजू। आहर गयो न भा सिध काजू।—जायसी (शब्द०)।

आहर²—सज्ञा पुं० [सं० आहरण] युद्ध। लडाई।

आहर³—सज्ञा पुं० [सं० आहार] [प्रा० आहर] वह ताल जो पोखरे से छोटा हो, पर तलैया और गड्ढे से बडा हो।

आहर⁴—सज्ञा पुं० [सं०] १ स्वीकार। ग्रहण। लेना। २ बलिप्रदान करना। ३. वह वायु जो श्वास से फेफडे में खींची जाती है [को०]।

आहरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आहरणीय, कर्तृ० आहर्ता] १ छीनना। हर लेना। २ किसी पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। स्थानान्तरित करना। ३ ग्रहण। लेना। ४ विवाह के अवसर पर वधू को उपहाररूप में देय धन [को०]।

आहरणीय- वि० [सं०] छीनने योग्य। हर लेने योग्य।

आहरन—संज्ञा पुं० [सं० आहनन = जिसपर आघात किया जाय, अथवा सं० आघटन = जिसपर वस्तु को पीटकर उसकी घटना अर्थात् रचना की जाय, वस्तु को गढा जाय।] लोहारों और सुनारों की निहाई।

आहरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० आहर का अल्पा०] १. छोटा हौज या गड्ढा। अहरी। २ थाला। ३ कुएँ के पास का हौज या गड्ढा जो पशुओं के पानी पीने के लिये बनाया जाता है।

आहर्ता—वि० [सं० आहर्तृ] [वि० स्त्री० आहर्त्री] १ हरण करनेवाला छीननेवाला। लेनेवाला। ले जानेवाला। २ अनुष्ठान करनेवाला। अनुष्ठाता।

आहला†—संज्ञा पुं० [सं० आ + हला = जल] जल की बाढ़।

आहव—संज्ञा पुं० [सं०] १ युद्ध। लडाई। २ यज्ञ। ३. पुकारना। आह्वान [को०]।

आहवन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आहवनी] १ यज्ञ करना। होम करना। २ यज्ञीय हवि (को०)।

आहवनी—वि० [सं०] यज्ञ करने योग्य। होम करने योग्य।

आहवनीय (अग्नि)—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्मकाड में तीन प्रकार की अग्नियों में तीसरी। यह गार्हपत्य अग्नि से निकालकर अभिमंत्रित करके यज्ञ के लिये मडप में पूर्व ओर स्थापित की जाती है।

आहाँ[1]—संज्ञा पुं० [सं० आह्वान] १ हाँक। दुहाई। उ०—परर जो कीन्ह उमर की नाद। भइ आहा नगरी दुनियाई।—जायसी (शब्द०)। २. पुकार। बुलावा। उ०—भइ आहाँ पदुमावति चली। छत्तिस कुरि भइ गोहन भली।—जायसी (शब्द०)

आहाँ[2]†—अव्य० [अ = नहीं + हाँ] अस्वीकार का शब्द। जैसे,—प्रश्न —तुम कुछ और लोगे? उत्तर—आहाँ।

आहा—अव्य० [सं० अहह] आश्चर्य और हर्षसूचक अव्यय। जैसे,— आश्चर्य—आहा! आप ही थे, जो दीवार की आड में बोल रहे थे। हर्ष—आहा! क्या सुदर चित्र है।

आहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ भोजन। खाना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—निराहार। फलाहार।

२ खाने की वस्तु, जैसे,—बहुत दिनों से उसे ठीक आहार नहीं मिला है। ३ ले लेना। ग्रहण। स्वीकार (को०)।

आहारक—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार एक प्रकार की उपलब्धि जिसके द्वारा चतुर्दश पूर्वाधारी मुनिराज अपनी शका के समाधान के लिये हस्त मात्र शरीर धारण कर तीर्थंकारों के पास उपस्थित होते हैं।

आहारपाक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पेट में खाए हुए पदार्थ का पचना। २ पकाने की क्रिया [को०]।

आहारविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] पाकविद्या। खाद्य वस्तुओं के गुण-दोष आदि को प्रस्तुत करनेवाला विज्ञान [को०]।

आहारविहार—संज्ञा पुं० [सं०] खाना, पीना, सोना आदि [illegible] व्यवहार। [illegible]।

यौ०—मिथ्या आहारविहार = [illegible] व्यवहार। [illegible] पीने आदि का [illegible]।

आहारसंभव—संज्ञा पुं० [सं० आहारसम्भव] [illegible] द्वारा [illegible] [को०]।

आहारिक—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] मे से एक [को०]।

आहारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] [illegible]।

आहारी—वि० [सं० आहारिन्] [वि० स्त्री० आहारिणी] १ [illegible]। २ स्वीकार [illegible] (को०)। ३. [illegible] करनेवाला। [illegible] (को०)।

आहार्य[1]—वि० [सं०] १ [illegible]। २ कृत्रिम। बनावटी। ३ [illegible]। ४ [illegible] (को०)।

आहार्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ चार प्रकार के [illegible] नायक और नायिका [illegible] करना। उ०—[illegible] —[illegible] (शब्द०) २ [illegible] करना।

आहार्याभिनय—संज्ञा पुं० [सं] बिना कुछ [illegible] वेश द्वारा ही नाटक [illegible], जैसे चोबदार का [illegible]।

आहार्योदककेतु—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] खोदकर पानी लाया गया हो। [illegible]।

आहाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ [illegible]। २ अग्नि। ३. युद्ध। ४ कुएँ के पास [illegible] जिसमें पशु पक्षी आकर पानी पीते है। [को०]।

आहिंडिक—संज्ञा पुं० [सं० आहिण्डिक] [स्त्री० आहिंडिकी] वह [illegible] जो निषाद जाति के पुरुष और वैदेह जाति [illegible] के संयोग से उत्पन्न हो। यह धर्मशास्त्र में [illegible] गया है।

आहि—क्रि० अ० [हिं०] 'आसना' का वर्तमानकालिक रूप है।

आहिक-संज्ञा पुं०[सं०] १ केतु। २ पुच्छल तारा। पाणिनि मुनि।

आहित[1]—वि० [सं०] १. रखा हुआ। स्थापित। २ धरोहर रखा हुआ। गिरो रखा हुआ। रेहन रखा हुआ।

आहित[2]—संज्ञा पुं० पद्रह प्रकार के दासों में से एक, जो अपने स्वामी से इकट्ठा धन लेकर उसकी सेवा में रहकर उसे पटाता हो।

आहितक—संज्ञा पुं० [सं०] गिरवी या बधक रखा हुआ माल।

आहितक्लम—वि० [सं०] थका हुआ। श्रांत [को०]।

आहितदास—संज्ञा पुं० [सं०] ऋण के बदले में अपने को गिरवी रखकर बना हुआ दास। कर्जा पटाने के लिये बना हुआ गुलाम।

आहितलक्षण—वि० [सं०] जो किसी विशेष चिह्न से पहचाना जाय [को०]।

आहितस्वन—वि० [सं०] शोरगुल मचानेवाला [को०]।

आहितांक—वि० [सं० आहिताङ्क] चिह्नवाला। चिह्नित [को०]।

आहिताग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्री।

आहिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थापन। रखना [को०]।

आहिस्ता—क्रि० वि० [फा० आहिस्तह्] धीरे से। धीरे धीरे। शनैः शनैः। धीमे से।

यौ०—आहिस्ता आहिस्ता।

आहु—संज्ञा पुं० [सं० आहव=ललकार, युद्ध, प्रा० आह=बुलाना] ललकार। युद्ध के लिये किसी को प्रचारना। उ०—भाल लाल बेंदी छए छुटे बार छवि देत। गह्यौ राहु अति आहु करि, मनु ससि सूर समेत।—बिहारी र०, दो० ३५५।

आहुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक यादव का नाम।

आहुड—संज्ञा पुं० [सं० आहव+हिं० (प्रत्य०)] युद्ध। लड़ाई।

आहुत¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ अतिथियज्ञ। नृयज्ञ। मनुष्ययज्ञ। अतिथिसत्कार। २ भूतयज्ञ। बलिवैश्वदेव।

आहुत²—वि० हवन किया हुआ। हुत [को०]।

आहुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मंत्र पढकर देवता के लिये द्रव्य को अग्नि मे डालना। होम। हवन। उ०—शिव आहुति बेरा जब आई। विप्रनि दच्छहिं पूछयौ जाई।—सूर०, ४।५। २ हवन मे डालने की सामग्री। ३ होमद्रव्य की वह मात्रा जो एक बार मे यज्ञकुंड मे डाली जाय। उ०—आहुति जज्ञकुंड मे डारी। कढ्यौ, पुरुष उपज्यौ बल भारी।—सूर०, ४।३९९।

क्रि० प्र०—करना।—छोडना।—डालना।—देना।—होना।

यौ०—आज्याहुति। पूर्णाहुति।

आहुती(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आहुति'।

आहुल्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा या क्षुप [को०]।

आहू—संज्ञा पुं० [फा०] हिरन। मृग।

आहूत—वि० [सं०] बुलाया हुआ। आह्वान किया हुआ। निमंत्रित।

यौ०—अनाहूत।

आहूतसंप्लव—संज्ञा पुं० [सं० आहूतसम्प्लव] प्रलयकाल। प्रलयकालीन जलप्लावन।

आहूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आह्वान। पुकार [को०]।

आहृत—वि० [सं०] १ जो हरण किया हो। जो लिया गया हो। २ जो लाया गया हो। आनीत। लाया हुआ।

आहेय—वि० [सं०] अहि या सर्पसबंधी [को०]।

आहै(पु)—क्रि० अ० [हिं०] 'आसना' क्रिया का वर्तमानकालिक रूप।

आह्न—वि० [सं०] दिनसबंधी। दैनिक [को०]।

आह्निक¹—वि० [सं०] दिन का। दैनिक। रोजाना। जैसे,—आह्निक कर्म। आह्निक कृत्य।

आह्निक²—संज्ञा पुं० १ एक दिन का काम। २ सूत्रात्मक शास्त्र के भाष्य का एक अंश जो एक दिन मे पढा जाय। ३. अध्यापक। ४ रोजाना मजदूरी। ५ एक दिन की मजदूरी।

आह्लाद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आह्लादित] आनंद। खुशी। हर्ष। उ०—जब उमडना चाहिए आह्लाद, हो रहा है क्यों मुझे अवसाद।—साकेत, पृ० १६७।

यौ०—आह्लादप्रद=आनंददायक।

आह्लादक—वि० [सं०] [स्त्री० आह्लादिका] आनंददायक। खुशी देनेवाला।

आह्लादन¹—संज्ञा पुं० [सं०] हर्ष। आह्लाद [को०]।

आह्लादन²—वि० आनंददायी। हर्ष प्रदान करनेवाला [को०]।

आह्लादित—वि० [सं०] आनंदित। हर्षित। प्रसन्न। खुश।

आह्लादी—वि० [सं० आह्लादिन्] १ प्रसन्न। हर्षयुक्त। २ हर्षप्रद। आनंद देनेवाला [को०]।

आह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाम। संज्ञा।

यौ०—गजाह्वय। नागाह्वय। शताह्वय।

२ तीतर, बटेर, मेढ़े आदि जीवो की लडाई की बाजी। प्राणिद्यूत।

विशेष—मनु के धर्मशास्त्र मे इसका बहुत निषेध है।

आह्वयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाम का उच्चारण। २ नाम [को०]।

आह्वान—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुलाना। बुलावा। पुकार। उ०—अंतर का आह्वान वेग से बाहर आया।—साकेत, पृ० ४१०। २ राजा की ओर से बुलावे का पत्र। समन। तलबनामा। ३ यज्ञ मे मंत्र द्वारा देवताओं को बुलाना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आह्वाय—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाम। २ समन। तलबनामा [को०]।

आह्वायक¹—वि० [सं०] आह्वान करनेवाला। पुकारनेवाला [को०]।

आह्वायक²—संज्ञा पुं० संदेशहर। संदेश ले जानेवाला। दूत [को०]।

इ

इ—देवनागरी वर्णमाला मे स्वर के अंतर्गत तीसरा वर्ण। इसका उच्चारणस्थान तालु और प्रयत्न विवृत है। ई इसका दीर्घ रूप है।

इंक—संज्ञा स्त्री० [अं०] स्याही। मसी। रोशनाई।

विशेष—यह मुख्यत दो प्रकार की होती है—लिखने की और छापने की। लिखने की स्याही कसीस, हड, माजू आदि को औटाकर बनती है और छापने की स्याही राल, तेल काजल इत्यादि को घोटकर बनाई जाती है।

यौ०—इंक पाट=स्याही रखने का बर्तन। मसीपात्र। दावात। इंक पैड=स्याही लगी एक छोटी सी गद्दी जिसमे रबर की मुहर आदि पर स्याही लगाई जाती है।

इंकटेबल—संज्ञा पुं० [अं०] छापेखाने मे स्याही देने की चौकी।

विशेष—यह दो प्रकार की होती है—(१) सिपुल (सादी)=यह सिर्फ एक चिकनी और साफ लोहे की ढली हुई चौकी होती है। (२) सिलिंड्रिकल (वेलनदार)=लोहे की एक साफ और चिकनी चौकी होती है जिसके एक ओर लोहे का एक वेलन लगा होता है। वेलन के पीछे एक प्रकार की नाली सी बनी रहती है जिसमे कुछ पेंच लगे होते हैं और स्याही भरी रहती है। उन पेंचो को कसने और ढीला करने मे स्याही आवश्यकतानुसार कम वा अधिक आती है और पिसकर बराबर हो जाती है। वेलनवाली चौकी मे स्याही देनेवाले को अधिक मलने का परिश्रम नहीं करना पडता।

इकमैन—संज्ञा पु० [अं०] छापेखाने मे मशीनपर स्याही देनेवाला मनुष्य। स्याहीवान।

इकरोलर—संज्ञा पु० [अ०] छापेखाने मे स्याही देने का वेलन।

विशेष—यह तीन प्रकार का होता है—(१) लकडी का मोटा वेलन जिसपर कवल, बनात वगैरह लपेटकर ऊपर से चमडा मढते हैं। यह वेलन पत्थर के छापे मे काम देता है। (२) लकडी का वेलन जिसपर रबड ढालकर चढाते हैं। यह बहुत कम काम मे आता है। (३) तीसरे प्रकार का वेलन गराडीदार लकडी पर गला हुआ गुड और सरेस चढाकर बनाते हैं। यही अधिक काम मे आता है।

इग[1]—संज्ञा पुं० [सं० इङ्ग=इशारा, चिह्न] १ चलना। हिलना। डुलना। २ इशारा। ३ निशान। चिह्न। ४ हाथी का दाँत। उ०—वक लगे कुच बीच नखक्षत देखि भई दृग दूनी लजारी। मानो वियोग वराह हन्यो युग शैल की सधिनि इंगवै डारी।—केशव (शब्द०)। अग द्वारा भावो की अभिव्यक्ति। भावो की आगिक अभिव्यक्ति (को०)। ६ ज्ञान (को०)। ७ पृथिवी। भूमि (को०)।

इग[2]—वि० १ गतिशील। हिलता हुआ। चल। २ विस्मयकारक। आश्चर्यजनक [को०]।

इंगन—संज्ञा पुं० [स० इङ्गन] [वि० इगित] चलना। काँपना। २. हिलना। डोलना। ३ इशारा। सकेत। ४ ज्ञान। जानकारी (को०)। ५ चलाना (को०)। ६. हिलाना डुलाना (को०)।

इगनी—संज्ञा स्त्री० [अ० मैंगनीज] एक प्रकार का मोर्चा जो धातुओं मे आक्सीजन के मिलने से पैदा होता है।

विशेष—इगनी भारतवर्ष मे राजस्थान, मैसूर, मध्यप्रात और मद्रास की खानो से निकलती है। यह काँच के हरेपन को दूर करने और काँच का लुक करने के काम आती है। यह अब एक प्रकार का सफेद लोहा बनाने के काम मे भी आती है जिसे अँगरेजी में 'फेरो मैंगनीज' कहते हैं।

इगल(पु), इगला(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इडा] हठयोग के अनुसार इडा नाम की एक नाडी। उ०—तीर चलै जो इगल माँही। उत्तिम समत जो चलि जाही।—स० दरिया, पृ० २७। (ख) इगला पिंगला नाता कर ले सुषमन के घर मेला।—रामानद०, पृ० ३६। (ग) इगला पिंगला सुखमन नारी। शून्य सहज मे बसहिं मुरारी।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह नाडी बाईं ओर होती है। इसका काम बाईं नाक के नथने से श्वास निकालना और बाहर करना है। यह शब्द इस नाडी के साथ की ही दूसरी नाडी 'पिंगला' की समद्वन्यात्मकता पर बना है। इस नाडी को 'चद्र नाडी' कहते हैं। हठयोग के स्वरोदय मे इसका विवरण है।

इगलिश[1]—वि० [अ०] १ इगलैंड देश सबधी। अँगरेजी। २ पेंशन (सिपाहियो की भाषा)।

इगलिश[2]—संज्ञा स्त्री० अँगरेजी भाषा।

इंगलिशमैन—संज्ञा पुं० [अ०] इगलैंड निवासी व्यक्ति। अँगरेज।

इगलिस्तान—संज्ञा पुं० [अ० इगलिश + फा० स्तन = जगह, तुल० स० स्थान] अँगरेजो का देश। इगलैंड।

इगलिस्तानी—वि० [अं० इगलिश + फा० स्तानी] अँगरेजी। इंगलैंड देश का। उ०—इगलिस्तानी और दरियाई कच्छी औलदेजी। औरहु विविध जाति के बाजी नकत पवन की तेजी।—रघुराज० (शब्द०)।

इगलैंड—संज्ञा पु० [अ०] अँगरजो का देश। इगलिस्तान।

इगार(पु)—संज्ञा पु० [स० इङ्गाल] दे० 'अगार'। उ०—देही कण इगार जू तपै, राजर माय भयउ उगतउ भाण।—बी० रासो, पृ० २१।

इगालकर्म—संज्ञा पु० [स० अङ्गारकर्म] जैनमतानुसार वह व्यापार जो अग्नि से हो। जैसे,—लोहारी, सोनारी, ईंट बनाना, कोयला बनाना।

इगित[1]—संज्ञा पुं० [स० इङ्गित] १ हृदय के अभिप्राय को व्यक्त करनेवाली आगिक चेष्टा। २ सकेतचिह्न। इशारा। उ०—तरुगण अपनी शाखाओ मे इगित करके उसे दिखाते मार्ग।—कानन०, पृ० ५७। ३ अभिप्राय। मन का विचार या भाव (को०)। ४. हिलना डोलना। चलन (को०)।

इगित[2]—वि० १. हिलता हुआ। २ चलित। कपित।

इगितकोविद—वि० [स० इङ्गितकोविद] आगिक चेष्टा द्वारा आतरिक भावो को जानने मे उनकी अभिव्यक्ति मे कुशल [को०]।

इगितज्ञ—वि० [स० इङ्गितज्ञ] दे० 'इगित कोविद' [को०]।

इगु—संज्ञा पु० [स० इङ्गु] एक रोग [को०]।

इगुद—संज्ञा पुं० [स० इङ्गुद] दे० 'इंगुदी'।

इगुदी—संज्ञा स्त्री० [स० इङ्गुदी] १ हिंगोट का पेड। उ०—विलसत निव विशाल इगुदी अरु आमलकी।—श्यामा, पृ० ३६। २. ज्योतिष्मती वृक्ष। मालकँगनी। ३ हिंगोट की गरी (को०)।

इंगुर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ईंगुर'।

इगुरौटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ईंगुर + औटी (प्रत्य०)] वह डिबिया या पात्र जिसमे सौभाग्यवती स्त्रियाँ ईंगुर रखती हैं। सिंधोरा।

इगुल—संज्ञा पुं० [सं० इङ्गुल] दे० 'इगुदी' [को०]।

इंच—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ एक फुट का बारहवाँ हिस्सा। तीन आडे जव की लबाई। तस्सू। २ अत्यल्प। बहुत थोडा। उ०—इन महात्माओ के ध्यान मे यह बात नही आती कि ऐसी दलीलो से उनकी अप्रातिशीलता एक इच भी कम नहीं होती।—सरस्वती (शब्द०)।

इंचाक—संज्ञा पुं० [सं० इञ्चाक] एक प्रकार का मत्स्य। जल-
वृश्चिक [को०]।

इंचार्ज—वि०[अं०]किसी कार्य या विभाग की देखभाल करनेवाला।
किसी कार्य या विभाग की जिम्मेदारी वहन करनेवाला [को०]।

इंच्छया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] दे० 'इच्छा'। उ०—न तहाँ
इच्छ्या श्रो श्रकार। न तहाँ नाभि न नालि तार।
—रामानंद०, पृ० ८।

इंछ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] श्राकांक्षा। इच्छा।

इंछना(पु)—क्रि० स० [हिं० इंछ+ना (प्रत्य०)] दे० 'इच्छना'।
उ०—पुनि तिनकी पद पंकज रज ब्रज ब्रजहूँ इंछै। उद्धौ बुद्धि
विशुद्धनु सौं पुनि मो रह इछै।—नंद० ग्रं०, पृ० ४१।

इंछा(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'इच्छा'। उ०—बर संजोग मोहि मेरवहु कलस
जाति हौं मानि। जेहि दिन इंछा पूजै वेगि चढ़ावौं आनि।
—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५०।

इंजन—संज्ञा पुं० [अं० एंजिन] १ कल पेंच। २ भाप या बिजली
से चलनेवाला यंत्र। ३. रेलवे ट्रेन में वह गाडी जो सबसे
आगे रहती है और सब गाड़ियों को खींचती है। उ०—
इच्छा कर्म संयोगी इंजन गारड आप अकेला है।—प्रेमघन०,
भा० २, पृ० ४०३।

यौ०—इंजनड्राइवर = इंजन को चलानेवाला व्यक्ति।

इंजर(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'समुदरफल'।

इंजीनियर—संज्ञा पुं०[अं० एंजीनियर]१ यंत्र की विद्या जाननेवाला।
कलों का बनाने या चलानेवाला। २ शिल्प विद्या में निपुण।
विश्वकर्मा। ३ वह अफसर जिसके निरीक्षण में सरकारी
सडकें, इमारतें और पुल इत्यादि बनते हैं।

इंजीनियरिंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] १ इंजीनियर का कार्य। यंत्रादि
के निर्माण का काम। २ लोहे के कल पुर्जे आदि बनाने का
काम [को०]।

इंजील—संज्ञा स्त्री० [यू०] १. सुसमाचार। २ ईसाइयों की धर्म-
पुस्तक। बाइबिल।

इंजेक्शन—संज्ञा पुं०[अं०]वह द्रव्य औषध जो सूई के द्वारा शरीर में
प्रविष्ट कराया जाय। उ०—डाक्टरों ने इंजेक्शन लेने के लिये
कहा।—संन्यासी, पृ० १६६।

क्रि० प्र०—चढाना।—देना।—लेना।

इंट्रेंस—संज्ञा पुं०[अं० एंट्रेंस] १ द्वार। दरवाजा। फाटक। २ अंग्रेजी
पाठशालाओं की एक श्रेणी।

इंड(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अंड]दे० 'अंड'। उ०—ध्यावैं इंड करै चौंचदा।
आपु देखि ओर सहज अनंदा।—कबीर सा०, पृ० ६०६।

इंडज(पु)—वि० [सं० अंडज] अंडा। अंडे के आकार का। उ०—
तिहि रानी पूरब क्रम गत्तिय। इंडज आकृति हद्दु प्रसूतिय।—
पृ० रा०, ५७। १६६।

इंडस्ट्रियल—वि० [अं०] उद्योग धंधा संबंधी। शिल्प संबंधी।
औद्योगिक। जैसे,—इंडस्ट्रियल कानफरेंस।

इंडस्ट्री—संज्ञा स्त्री० [अं०] उद्योगधंधा। शिल्प।

इंडियन—वि०, पुं० [अं०] हिंदुस्तान निवासी। भारतीय [को०]।

इंडिया—संज्ञा पुं० [यू०, अ०] हिंदुस्तान। भारतवर्ष।

इंडियाआफिस—संज्ञा पुं०[अं० इंडिया ऑफ़िस] ब्रिटिश शासनकाल
में भारत संबंधी कार्य या व्यवस्था के लिये स्थापित लंदन
स्थित एक कार्यालय। भारत और पाकिस्तान के स्वतंत्र होने
पर इस कार्यालय की सभी महत्वपूर्ण सामग्री यथाप्राप्य दोनों
देशों में बाँट दी गई।

इंडीक—संज्ञा पुं० [सं०] कलमतराश चाकू [को०]।

इंडेक्स—संज्ञा पुं० [अं०] (पुस्तक के) विषयों की अक्षरक्रम से बनी
हुई सूची। विषयानुक्रमणिका। अनुक्रमणिका।

इंडेंट—संज्ञा पुं० [अं०] माल मँगाने के समय भेजी जानेवाली माल
की वही सूची जो किसी व्यापारी के पास माल की माँग के
साथ भेजी जाती है।

इंडोर्स—क्रि० स०[अं० एंडोर्स] चेक या हुंडी आदि पर रुपए देने या
पाने के संबंध में हस्ताक्षर करना।

इंडोली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक औषध का नाम।

इंड्व—संज्ञा पुं०[सं०]हाथ की सुरक्षा के लिये मूँज का दस्ताना [को०]।

इंतकाम—संज्ञा पुं०[अ० इंतकाम]अपकार का बदला। बदला [को०]।

इंतकाल—संज्ञा पुं० [अ० इंतकाल] १. मृत्यु। मौत। परलोकवास।
२ एक जगह से दूसरी जगह जाना। ३. किसी जायदाद या
संपत्ति का एक के अधिकार से दूसरे के अधिकार में जाना।

यौ०—इंतकाल जायदाद = रेहन, बय आदि के कारण संपत्ति का
दूसरे के हाथ जाना।

इंतखाब—संज्ञा पुं० [अ० इंतखाब] १. दफ्तर या खतौनी आदि के
किसी लेख की बाजाब्ते कराई हुई नकल। २. चुनना या
छाँटना। ३. चुनाव [को०]।

इंतजाम—संज्ञा पुं० [अ० इंतजाम] प्रबंध। बंदोबस्त। व्यवस्था।

इंतजार—संज्ञा पुं० [अ० इंतजार] प्रतीक्षा। बाट जोहना। रास्ता
देखना। अगोरना।

क्रि०प्र०—करना।—होना।

इंतशार—संज्ञा पुं० [अ०] १ चिंता। परेशानी। उद्विग्नता। २.
बिखरने की स्थिति। बिखराव [को०]।

इंतहा—संज्ञा पुं० [अ०] १ समाप्ति। अंत। उ०—इब्तिदा में ही
मर गए सब यार। इश्क की कौन इंतहा लाया।—कविता
कौ०, भा० ४, पृ० १३३। २ हद। पराकाष्ठा।

मुहा०—इंतहा करना = हद कर देना। अति कर देना।

यौ०—इंतहापसंद = अति को पसंद करनेवाला। अतिवादी।

इंतहाई—वि० [अ०] अत्यधिक। हद दर्जे का। उ०—इंतहाई इश्त-
आल पैदा करनेवाले हालत का सिलसिला वे दलील में खोजने
लगे।—अस्मावृत० पृ० ३६।

इंथिहा—संज्ञा पुं०[सं०]ज्योतिष का एक पारिभाषिक शब्द। मुदा।
मुथहा [को०]।

इंदंबर—संज्ञा पुं० [सं०] नीला कमल। इंदीवर [को०]।

इंद¹(पु)—संज्ञा पुं०[सं० इंद्र, प्रा० इंद]दे० 'इंद्र'। उ०—बावरो हुनो
रहो यह मद। बलि बलि तुम कहँ करिहै इंद।—नंद ग्रं०,
पृ० ३१३।

इंद²—क्रि॰ वि॰ [अ॰] १ समीप। नजदीक। २ पर। किंतु [को॰]।

इदउँ—सज्ञा पु॰ [देश॰] दे॰ 'इंदुर'। उ॰—प्रेम खटोलना कसि कसि बाँध्यो विरह बान तिहि लागू हो। तिहि चढि इदउँ करत गँवमियाँ अनरि जमवा जागी हो।—कबीर ग्र॰, पृ॰ ११२।

इदका—सज्ञा पुं॰ [सं॰ इन्दका] मृगशिरा नक्षत्र के ऊपर रहनेवाला नक्षत्रेश [को॰]।

इदर(पु)—सज्ञा दे॰ [सं॰ इन्द्र] दे॰ 'इंद्र'। उ॰—मुनि जन इदर झलि सब, झूले गौरि गनेस—मतवानी, भा॰ १, पृ॰ ११८।

यौ॰—इदर का अखाडा=अप्सराओं, परियों का जमावडा। उ॰—हमको 'नासिख' राजा इदर का अखाडा चाहिए।—कविता कौ॰, भा॰ ४, पृ॰ ३५४।

इदराज—सज्ञा पुं॰ [इंदिराज॰] वहीखाता। लेखाजोखा या पंजिका मे लिखा जाना [को॰]।

इदव¹—सज्ञा पुं॰ [सं॰ एन्द्रव] १ एक छद का नाम। इसके प्रत्येक चरण मे आठ भगण और दो गुरु होते हैं। इसे मत्तगयंद और मालती भी कहते है।

इदव²—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्दु] चद्रमा।

इदवभाल(पु)—सज्ञा पुं॰ [हिं॰ इदव+भाल] चद्रभाल शिव। उ॰—हरि न बनायो सुरसरी कीजो इदवभाल।—रहीम॰, पृ॰ १।

इदवान(पु)—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्द्र+बाण=आयुध] शक्र का धनुष। इंद्र धनुष। उ॰—उर गजिय व्योम रजि इदवान। गहि काम चाप जनु दिय निसान।—पृ॰ रा॰, ५७।६५।

इंदिदिर—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्दिन्दिर] भ्रमर। भौंरा [को॰]।

इंदिय(पु)—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इन्द्रिय, प्रा॰ इंदिय] दे॰ 'इंद्रिय'। उ॰—इदिअ दारुन जतहिं हटिय ततहि ततहि धावे।—विद्यापति, पृ॰ ३७२।

इंदिया—सज्ञा पुं॰ [अ॰] १. समति। राय। विचार। मशा। २. आकाक्षा। इच्छा [को॰]।

इंदिरा—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इन्दिरा] १. लक्ष्मी। विष्णुपत्नी। उ॰—सती विधात्री इंदिरा देखी अमित अनूप।—मानस १।५५। २. कुआर के कृष्ण पक्ष की एकादशी। ३. शोभा। काति। उ॰—शरद इदिरा के मदिर की मानो कोई गैल रही।—कामायनी, पृ॰ ९८।

यौ॰—इंदिरामदिर=(१) विष्णु। (२) इंदीवर। नील कमल। इंदिरारमण=लक्ष्मीरमण। विष्णु [को॰]।

इंदिरालय—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्दिरालय] नीलकमल [को॰]।

इंदिवर, इंदीवर—सज्ञा पुं॰ [सं॰ इन्दिवर, इन्दीवर] १ नील कमल। नीलोत्पल। उ॰—स्वर्गंगा मे इंदीवर की, या एक पक्ति कर रही हास। कामायनी, पृ॰ १५२। २ कमल।

इंदीवरिणी—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इन्दीवरिणी] कमलिनी [को॰]।

इंदीवरी—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इन्दीवरी] शतमूली [को॰]।

इंदीवार—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्दवार] दे॰ 'इंदीवर' [को॰]।

इंदु—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्दु] १ चद्रमा। २ कपूर। ३. एक प्रकार की सख्या। ४ मृगशिरा नक्षत्र। इस नक्षत्र का देवता चंद्र है।

यौ॰—इंदुकमल=श्वेतकमल। इंदुकिरीट, इंदुभूषण=शिव। इंदुनदन, इंदुपुत्र=चद्रमा। इंदुलोक=चद्रलोक। इंदुवासर=सोमवार।

इंदुक—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्दुक] अश्मतक का वृक्ष [को॰]।

इंदुकर—सज्ञा पुं॰ [सं॰ इन्दुकर] चद्रमा की किरण। उ॰—जलविहार विचार कर विद्याधरो की बालिका, आ गई हैं क्या, कि ये हैं इंदुकर की जालिका।—कानन॰, पृ॰ ४२।

इंदुकला—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इन्दुकला] १ चंद्रमा की कला। २ चद्रमा की किरन। उ॰—भाल लाल बेंदी ललन, आखत रहे बिराजि। इंदुकला कुज मे बसी, मनो राहु भय भाजि।—बिहारी र॰, दो॰ ६९०। ३ अमृत। पीयूष (को॰)। ४. सोमलता। सोम (को॰)। ५ गुडूची गुरुच (को॰)।

इंदुकलिका—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्दुकलिका] १ चद्रमा की कला या चद्रमा की किरण। २ केतकी का पौधा [को॰]।

इंदुकात—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्दुकान्त] चद्रकात नामक मणि [को॰]।

इंदुकाता—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इन्दुकान्ता] केतकी। इंदुकलिका। २ निशा। रात्रि [को॰]।

इंदुक्षय—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्दुक्षय] १ चद्रमा का क्षीण होना या न दिखाई देना। २ नए चाँद का दिन [को॰]।

इंदुज—सज्ञा पुं॰ [सं॰ इन्दुज] चद्रमा का पुत्र। बुध [को॰]।

इंदुजनक—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्दुजनक] १ चद्रमा का पिता समुद्र। अत्रि नामक ऋषि [को॰]।

इंदुजा—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इन्दुजा] सोमोद्भवा। नर्मदा नदी।

इंदुपर्णी—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इन्दुपर्णी] पँजीरी नाम का पौधा [को॰]।

इंदुपुष्पिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इन्दुपुष्पिका] कलियारी या जागली नाम का पौधा [को॰]।

इंदुवधू(पु)—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इन्द्रवधू] दे॰ 'इंद्रवधू'। उ॰—ज्यो ज्यो परसे लाल तन त्यो त्यो राखति गोइ। नवल वधू लाजन ललित इंदुवधू सी होइ।—मतिराम ग्र॰, पृ॰ ४४६।

इंदुभ—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्दुभ] १ कर्कराशि। २ मृगशिरा नक्षत्र [को॰]।

इंदुभा—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इन्दुभा] जलकमलिनी की एक जाति [को॰]।

इंदुभृत्—सज्ञा पुं॰ [सं॰ इन्दुभृत्] शिव [को॰]।

इंदुमडल—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्दुमण्डल] चद्रमा का घेरा या परिधि [को॰]।

इंदुमणि—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्दुमणि] १. चद्रकात मणि। २ मोती [को॰]।

इंदुमती—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इन्दुमती] १ पूर्णिमा। २ राजा अज की पत्नी जो विदर्भ देश के राजा की बहिन थी। ३ राजा चद्रविजय की पत्नी। उ॰—चद्रविजय नृप रह्यो तहाँ ही। रानी इंदुमती रति छाहीं। (शब्द॰)।

इंदुमान्—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्दुमत्] अग्नि [को॰]।

इंदुमुखी—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इन्दुमुखी] एक लता [को॰]।

इंदुमौलि—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्दुमौलि] शिव। इंदुभूषण [को॰]।

इंदुर—सज्ञा पु॰ [सं॰ इन्दुर] चूहा। मूसा।

इंदुरत्न—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुरत्न] मुक्ता। मोती।

इंदुरेखा, इंदुलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुरेखा,-लेखा] १ चंद्रमा की कला। इंदुकला। २. सोमलता। ३. अमृता। ४ गुडूची[को०]।

इंदुलतलब—क्रि० वि० [अ०] माँगने पर या जरूरत पड़ने पर [को०]।

इंदुलोहक, इंदुलौह—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुलोहक,-लौह] चाँदी रजत [को०]।

इंदुवदना—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुवदना] एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भ ज स न ग ग (ऽ।।।ऽ।।।ऽ।।।ऽऽ) होता है। उ०—इंदुवदना वदत जाउँ बनिहारी। जान मोहि दे घरहिं मत्वर बिहारी।-(शब्द०)। २ इंदुतुल्य मुखवाली स्त्री [को०]।

इंदुवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुवधू] इंद्रवधू।

इंदुवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुवल्ली] सोमलता [को०]।

इंदुवार-संज्ञा पुं०[सं० इन्दुवार] १ वर्ष कुंडली के सोलह योगों में से एक। जब तीसरे, छठे, नवें और बारहवें घर में क्रूर ग्रह हों, तब यह योग होता है। यह शुभ नहीं है। २ सोमवार का दिन [को०]।

इंदुव्रत—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुव्रत] चांद्रायण नाम का एक व्रत।

इंदूर—संज्ञा पुं० [सं० इन्दूर] चूहा। मूसा।

इंद्र¹—वि० [सं०] १ ऐश्वर्यवान्। विभूतिसंपन्न २. श्रेष्ठ। बड़ा।

यौ०—देवेंद्र। नरेंद्र। यादवेंद्र। योगींद्र। दानवेंद्र। सुरेंद्र।

इंद्र²—संज्ञा पुं० १ एक सर्वप्रमुख वैदिक देवता जिसका स्थान अंतरिक्ष है जो और पानी बरसाता है। यह देवताओं का राजा माना गया है। शौर्य, युद्ध और वैभव का वह सर्वश्रेष्ठ वैदिक देव है। ऋग्वेद में सबसे अधिक सूक्तों द्वारा इंद्र के शौर्य, वीर्य, पराक्रम और सोमपान आदि का वर्णन किया गया है। ऋग्वेदयुगीन वैदिक यज्ञों में भी उसका अत्यंत प्रमुख स्थान है।

विशेष—इसका वाहन ऐरावत और अस्त्र वज्र है। इसकी स्त्री का नाम शचि और सभा का नाम सुधर्मा है, जिसमें देव, गंधर्व और अप्सराएँ रहती हैं। इसकी नगरी अमरावती और वन नंदन है। उच्चैःश्रवा इसका घोड़ा और मातलि सारथी हैं। वृत्र, त्वष्टा, नमुचि, शंबर, पण, बलि और विरोचन इसके शत्रु हैं। जयंत इसका पुत्र है। यह ज्येष्ठा नक्षत्र और पूर्व दिशा का स्वामी है। पुराण के अनुसार एक मन्वंतर में क्रमशः चौदह इंद्र भोग करते हैं जिनके नाम ये हैं—इंद्र। विश्वभुक्। विपश्चित्। विभु। प्रभु। शिखि। मनोजव। तेजस्वी। बलि। अद्भुत। त्रिदिव। सुशांति। सुकीर्ति। ऋतधामा। दिवस्पति। वर्तमान काल में तेजस्वी इंद्र भोग कर रहे हैं।

पर्या०—मरुत्वान्। मघवा। बिडौजा। पाकशासन। वृद्धश्रवा। शुनासीर। पुरहूत पुरंदर। जिष्णु। लेखर्षभ। शक्र। शतमन्यु। दिवस्पति। सुत्रामा। गोत्रभिद्। वज्री। वासव। वृत्रहा। वृषा। वास्तोष्पति। सुरपति। बलाराति। शचीपति। जंभभेदी। हरिहय। स्वराट्। नमुचिसूदन। संक्रंदन। दुश्च्यवन। तुराषाह। मेघवाहन। आखंडल। सहस्राक्ष। ऋभुक्ष। महेंद्र। कौशिक। पूतक्रतु। विश्वंभर। हरि। पुरंदंशा। शतधृति। पूतनापाड्। अहिद्विप। वज्रपाणि। देवराज। पर्वतारि। पर्यण्य। देवाधिप। नाकनाथ। पूर्वदिक्-पति। पुलोमारि। अर्ह प्रचीन। वर्हि। तपस्तक्ष।

यौ०—इंद्र का अखाड़ा=(१) इंद्र की सभा जिसमें अप्सराएँ नाचती हैं। (२) बहुत सजी हुई सभा जिसमें खूब नाच रंग होता हो। इंद्र की परी=(१) अप्सरा। (२) बहुत सुंदरी स्त्री। इंद्रसभा=इंद्र का अखाड़ा। उ०—इंद्रसभा जनु परिगै डीठी।—जायसी ग्रं०, पृ० १८।

२ बारह आदित्यों में से एक। सूर्य। ३. बिजली। ४ राजा। मालिक। स्वामी। ५ ज्येष्ठा नक्षत्र। ६ चौदह की संख्या। ७ ज्योतिष में विष्कुंभादिक २७ योगों में से २६वाँ। ८ कुटज वृक्ष। ९. रात। १० छप्पय छंद के भेदों में से एक। ११ दाहिनी आँख की पुतली। १२ व्याकरण आदि के आचार्य का नाम। १३ जीव। प्राण। १४ श्रेष्ठ या प्रधान व्यक्ति [को०]। १५ मेघ। बादल (को०)। १६ भारतवर्ष का एक भाग (को०)। १७ परमेश्वर (को०)। १८ वनस्पतिजन्य एक प्रकार का जहर [को०]।

इंद्रक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रक] गोष्ठी का स्थान। सभागृह [को०]।

इंद्रकर्मा—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकर्मन्] विष्णु [को०]।

इंद्रकात—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकात] चौमंजिले भवन की एक मंजिल या मरातिब [को०]।

इंद्रकार्मुक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकार्मुक] इंद्रायुध। इंद्रधनुष [को०]।

इंद्रकील—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकील] १ मंदराचल का एक नाम। २ चट्टान [को०]। ३ इंद्र की ध्वजा [को०]। ४ कँटिया। किल्ली [को०]।

इंद्रकुंजर—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकुञ्जर] इंद्र का हाथी। ऐरावत[को०]।

इंद्रकूट—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकूट] एक पर्वत का नाम [को०]।

इंद्रकृष्ट¹—वि० [सं० इन्द्रकृष्ट] वर्षा से अपने आप उत्पन्न होनेवाला [को०]।

इंद्रकृष्ट²—संज्ञा पुं० वर्षा के जल से अपने आप पैदा होनेवाली फसल [को०]।

इंद्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकेतु] इंद्र की ध्वजा [को०]।

इंद्रकोश, इंद्रकोष—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकोश,—कोष] १ मचान। २ चारपाई। ३ बालाखाना। छज्जा। ४ नागदंत। खूँटी [को०]।

इंद्रकोष्ठ—संज्ञा पुं० दे० 'इंद्रकोश'।

इंद्रगिरि—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगिरि] महेंद्र नाम का पर्वत [को०]।

इंद्रगुरु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगुरु] देवगुरु बृहस्पति [को०]।

इंद्रगोप—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगोप] बीरबहूटी नाम का कीड़ा।

इंद्रगोपक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगोपक] दे० 'इंद्रगोप'।

इंद्रचंदन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रचन्दन] श्वेतचंदन। हरिचंदन [को०]।

इंद्रचाप—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रचाप] दे० 'इंद्रधनुष'।

इंद्रचिर्भिटी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रचिर्भिटी] इंद्रायण। एक लता-विशेष [को०]।

इंद्रच्छद—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रच्छन्द] एक हजार आठ मोतियों की माला जो चार हाथ लंबी होती थी।

विशेष—इसका एक नाम 'इंद्रच्छंद' भी है।

इंद्रज—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रज] बालि नामक वानर जो इंद्र का पुत्र था [को०]।

इंद्रजतु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रजतु] शिलाजीत [को०]।

इद्रजव—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रयव] कुडा। कौरैया का वृक्ष।

विशेष—ये बीज लवे-लवे जव के आकार के होते हैं और दवा के काम मे आते हैं। एक एक सीके मे हाथ हाथ भर की लवी दो दो फलियाँ लगती है, जिनके दोनो छोर आपस मे जुडे रहते हैं। फलियो के अदर रुई या घूवा होता है जिसमे बीज रहते हैं। इसके पेड मे काँटे भी होते हैं। यह मलरोधक, पाचक और गरम है तथा सग्रहणी और खूनी बवासीर मे फायदा करता है। त्वचा के रोगो पर भी यह चलता है।

इंद्रजाल—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रजाल] १ मायाकर्म। जादूगरी। तिलस्म। उ०—सो नर इद्रजाल नहिं भूला।—मानस, ३।३३।

विशेष—यह तत्र का भी अग है।

२ एक प्रकार का रणचातुर्य। ३ अर्जुन का एक शस्त्र (को०)।

इद्रजालिक—वि० [सं० इन्द्रजालिक] इद्रजाल करनेवाला। जादूगर।

इद्रजाली—वि० [सं० इन्द्रजालिन्] [वि० स्त्री० इंद्रजालिनी] इद्रजाल करनेवाला। मायावी। जादूगर। उ०—यौ न कहो कटि नाहि तौ कुच हैं किहि आधार। परम इद्रजाली मदन विधि को चरित अपार।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १६१।

इद्रजित्¹—वि० [सं० इन्द्रजित्] इद्र को जीतनेवाला।

इद्रजित्²—संज्ञा पुं० रावण का पुत्र, मेघनाद।

इद्रजीत(५)—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रजित्] दे० 'इद्रजित्'। उ०—इद्रजीत आदिक बलवाना।—मानस, ६।३३।

इद्रजौ(५)—संज्ञा पुं० [हिं० इन्द्रजव] दे० 'इद्रजव'।

इद्रतरु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रतरु] १ अर्जुन नाम का वृक्ष। २ कुटज का पौधा [को०]।

इद्रतापन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रतापन] १. मेघगर्जन। बादलो का गरजना। २. एक दानव का नाम [को०]।

इंद्रतूल, इद्रतूलक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रतूल, –तूलक] वह सूत जो वायु मे उड जाय। २. रुई की ढेरी या समूह [को०]।

इद्रदमन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रदमन] १ बाढ के समय नदी के जल का किसी निश्चित कुड, ताल अथवा वट या पीपल के वृक्ष तक पहुँचना। यह एक पर्व समझा जाता है। २ बाणासुर का एक पुत्र। ३ मेघनाद का एक नाम।

इद्रदारु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रदारु] देवदारु।

इद्रद्युति—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रद्युति] श्वेतचदन [को०]।

इद्रद्रुम—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रुम] १ अर्जुन वृक्ष। २ कुटज [को०]।

इद्रद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रद्वीप] भारतवर्ष के नौ खडो मे एक का नाम [को०]।

इंद्रधनु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रधनुष, प्रा० इंद्रधणु] दे० 'इद्रधनुष'। उ०—भरी धमनियाँ सरिताओ सी, रोष इद्रधनु उदय हुआ।—नागयज्ञ, पृ० ६५।

इद्रधनुष—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रधनुष] १. सात रगो का बना हुआ एक अर्धवृत्त जो वर्षाकाल मे सूर्य के विरुद्ध दिशा में आकाश मे देख पडता है। जब सूर्य की किरणें बरसते हुए जल से पार होती हैं, तब उनकी प्रतिच्छाया से इद्रधनुष बनता है।

इद्रध्वज—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रध्वज] १ इद्र की पताका। २ भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को वर्षा और खेती की वृद्धि के लिये होनेवाला एक पूजन जिसमे राजा लोग इद्र की ध्वजा चढ़ाते और उत्सव करते हैं। ३ प्राचीन भारत मे प्रचलित एक उत्सव जिसमे वैदिक देव इंद्र की आराधना होती थी।

इद्रनील—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रनील] नीलमणि। नीलम। उ०—इद्रनील मणि महाचषक था सोमरहित उलटा लटका।—कामायनी पृ० २४।

इद्रनेत्र—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रनेत्र] १ १००० की संख्या। २ इद्र की आँख [को०]।

इद्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रपर्णी] दे० 'इद्रपुष्पा' [को०]।

इद्रपर्वत—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रपर्वत] १ महेंद्र पर्वत। २ एक काला पहाड (को०)।

इद्रपुरोहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रपुरोहिता] पुष्य नक्षत्र।

इद्रपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रपुष्पा] करियारी। कलिहारी।

इद्रप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रप्रस्थ] एक नगर जिसे पाडवो ने खाडव वन जलाकर बसाया था। यह आधुनिक दिल्ली के निकट है।

इद्रप्रहरण—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रप्रहरण] वज्र (को०)।

इद्रफल—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रफल] इद्रजव।

इद्रभगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रभगिनी] पार्वती [को०]।

इद्रभाप—संज्ञा पुं०[सं० इन्द्रभाप]सगीत मे इद्रताल के छ भेदो मे से एक।

इद्रभेषज—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रभेषज] सोठ [को०]।

इंद्रमंडल—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रमण्डल] अभिजित से अनुराधा तक के सात नक्षत्रो का समूह।

इंद्रमख—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रमख] इद्र की प्रसन्नता के निमित्त किया जानेवाला एक यज्ञ [को०]।

इद्रमद—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रमद] पहली वर्षा के जल से उत्पन्न विष जिसके कारण जोक और मछलियाँ मर जाती हैं।

इद्रमह—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रमह] १ दे० 'इद्रमख'। २. वर्षा ऋतु।

यौ०—इद्रमहकामुक = श्वान। कुत्ता।

इद्रलुप्त—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रलुप्त] खल्वाट होने का रोग। गाज रोग।

इद्रलुप्तक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रलुप्तक] दे० 'इद्रलुप्त'।

इद्रलोक—संज्ञा पुं० [सं० इंद्रलोक] स्वर्ग। उ०—चढे अस्त्र लै कृष्ण मुरारी। इद्रलोक सब लाग गोहारी।—जायसी ग्र०, पृ०११३।

इद्रवशा—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवंशा] १२ वर्णों का एक वृत्त जिसमे दो तगण, एक जगण और एक रगण होते हैं। उ०—ताता जरा देखु विचारि कै मनै। को मार को देत सुखै दुखै जनै। सग्राम भारी करु आज बान सो। रे इद्रवशा! लर कौरवान सो।—छद०, पृ० १७२।

इद्रवज्रा—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवज्रा] एक वर्णवृत्त का नाम जिसमे दो तगण, एक जगण और गुरु होते हैं। उ०—ताता जगो गोकुल

नाथ गावो। भारी सर्वे पापन को नसावो। साँची प्रभू काटहि जन्मवेरी। हैं इंद्रवज्रा यह सीख मेरी। छद०, पृ० १५७।

इंद्रवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवधू] वीरवहूटी नाम का कीड़ा।

इंद्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवल्ली] इंद्रायन।

इंद्रवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवस्ति] जाँघ की हड्डी।

इंद्रवारु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवारुणी] इंद्रायन। इंद्रायन।

इंद्रवारुणी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवारुणी] इंद्रायन।

इंद्रवृद्ध—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवृद्ध] [स्त्री० इन्द्रवृद्धा] एक प्रकार की फुंसी।

इंद्रव्रत—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रव्रत] वह राजा जो अपनी प्रजा को उसी तरह भरा पूरा रखे जैसे इंद्र पानी बरसाकर जीवों को प्रसन्न करता है।

इंद्रशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रशक्ति] शची। इंद्राणी [को०]।

इंद्रशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रशत्रु] १ वृत्रासुर। २. प्रह्लाद [को०]।

इंद्रसारथि—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसारथि] १. मातलि। २ वायु। पवन [को०]।

इंद्रसावर्णी—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसावर्णी] चौदहवें मनु का नाम।

इंद्रसुत—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसुत] इंद्र के पुत्र (१) जयंत। (२) वालि। (३) अर्जुन वृक्ष (को०)।

इंद्रसुरस—संज्ञा पुं०[सं० इन्द्रसुरस]निर्गुंडी या सिंदुवार का पौधा।[को०]।

इंद्रसेन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसेन] राजा बलि का एक नाम।

इंद्रसेनानी—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसेनानी] कार्तिकेय [को०]।

इंद्रस्तोम—संज्ञा पुं०[सं० इन्द्रस्तोम]१ इंद्र की प्रसन्नता के निमित्त यज्ञ। २ इंद्र की प्रार्थना [को०]।

इंद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रा] तुषार। हिम [को०]।

इंद्राग्निधूम—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्राग्निधूम] तुषार। हिम [को०]।

इंद्राणिका—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राणिका] निर्गुंडी [को०]।

इंद्राणी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राणी] १ इंद्र की पत्नी, शची। २ बड़ी इलायची। ३ इंद्रायन। ४. दुर्गा देवी। ५ बाईं आँख की पुतली। ६ सिंदुवार वृक्ष। सभालू। निर्गुंडी।

इंद्रानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राणी] दे० 'इंद्राणी'।

इंद्रानुज—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रानुज] विष्णु, जिन्होंने वामन अवतार लिया था। उपेंद्र।

इंद्रायण—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इंद्रायन'। उ०—कटु इंद्रायण मे मृदर फल, मधुर ईख मे एक नहीं।—कविता कौ०, भा०, २, पृ० १५१।

इंद्रायन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्राणी] एक लता जो बिलकुल तरबूज की लता की तरह होती है। इनारू। उ०—इंद्रायन दाड़िम विषम जहाँ न नेकु विवेक।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६६६।

विशेष—सिंध, डेरा इस्माईलखाँ, मुलतान, बहावलपुर तथा दक्षिण और मध्य भारत में यह आपसे आप उपजती है। इसका फल नारंगी के बराबर होता है जिसमें खरबूजे की तरह फाँके कटी होती हैं। पकने पर इसका रंग पीला हो जाता है। लाल रंग का भी इंद्रायन होता है। यह फल विषैला और रेचक होता है। अँगरेजी और हिंदुस्तानी दोनों दवाओं में इसका मंत काम आता है। यह फल देखने में बड़ा सुंदर पर अपने कड़ुए-पन के लिये प्रसिद्ध है।

मुहा०—इंद्रायन का फल = देखने में अच्छा पर वास्तव में बुरा। सूरतहराम। खोटा।

इंद्रायुध—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रायुध] १ वज्र। २. इंद्रधनुष। उ०—कादंबरी में वर्णित इंद्रायुध से क्या डीलडौल में कम था?—किन्नर०, पृ० ३४।

इंद्रावरज—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रावरज] विष्णु। उपेंद्र [को०]।

इंद्रावसान—संज्ञा स्त्री०[सं० इन्द्रावसान]रेगिस्तान। मरुभूमि [को०]।

इंद्राशन—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राशन] १. भाँग। सिद्धि। विजया। २. गुंजा। घुघची। चिरमिटी।

इंद्रासन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रासन] १ इंद्र का सिंहासन। इंद्रपद। २ राजसिंहासन। उ०—माँझ ऊँच इंद्रासन साजा। गंध्रबसेन बैठ तहँ राजा। जायसी ग्र०, पृ० १८। ३ पिंगल में ठगण के पहले भेद की संज्ञा, जिसमें पाँच मात्राएँ इस क्रम से होती हैं—एक लघु और दो गुरु, जैसे,—'पुजारी'।

इंद्रिजित(पु)—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियजित्] दे० 'इंद्रियजित्'। उ०—देखि कै उमा कौं रुद्र लज्जित भए मैं कौन यह काम कीनौ। इंद्रि-जित हौं कहावत हुतौ आपु कौं समुझि मन माँहि ह्वै रह्यौ खीनौ।—सूर० ८।१०।

इंद्रिय—संज्ञा स्त्री०[सं० इन्द्रिय] १. वह शक्ति जिससे बाहरी विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। वह शक्ति जिससे बाहरी वस्तुओं के भिन्न भिन्न रूपों का भिन्न भिन्न रूपों में अनुभव होता है।२. शरीर के वे अवयव जिनके द्वारा यह शक्ति विषयों का ज्ञान प्राप्त करती है।

विशेष—सांख्य ने कर्म करनेवाले अवयवों को इंद्रिय मानकर इंद्रियों के दो विभाग किए हैं—ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय। ज्ञानेंद्रिय वे हैं जिनसे केवल विषयों के गुणों का अनुभव होता है। ये पाँच हैं चक्षु (जिससे रूप का ज्ञान होता है), श्रोत्र (जिससे शब्द का ज्ञान होता है।), नासिका (जिससे गंध का ज्ञान होता है), रसना (जिससे स्वाद का ज्ञान होता है) और त्वचा (जिससे स्पर्श द्वारा कड़े और नरम आदि का ज्ञान होता है)। इसी प्रकार कर्मेंद्रियाँ भी, जिनके द्वारा विविध कर्म किए जाते हैं, पाँच हैं—वाणी(बोलने के लिये), हाथ (पकड़ने के लिये) पैर (चलने के लिये), गुदा (मलत्याग करने के लिये), उपस्थ (मूत्रत्याग करने के लिये)। इनके अतिरिक्त उभयात्मक अंतरेंद्रिय 'मन' भी माना गया है जिसके मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त चार विभाग करके वेदांतियों ने कुल १४ इंद्रियाँ मानी हैं। इनके पृथक् पृथक् देवता कल्पित किए हैं, जैसे, कान के देवता दिशा, त्वचा के वायु, चक्षु के सूर्य, जिह्वा के प्रचेता, नासिका के अश्विनीकुमार, वाणी के अग्नि, पैर के विष्णु, हाथ के इंद्र, गुदा के मित्र, उपस्थ के प्रजापति, मन के चंद्रमा, बुद्धि के ब्रह्मा, चित्त के अच्युत, अहंकार के शंकर। न्याय के मत से पृथ्वी का अनुभव घ्राण से, जल का जिह्वा से, तेज का चक्षु से, वायु का त्वचा से और आकाश का कान से होता है।

यौ०--इंद्रियघात। इंद्रियजन्य। इंद्रियजित्। इंद्रियदमन। इंद्रियनिग्रह। इंद्रियसयम। इंद्रियार्थ। इंद्रियासक्त।
३ लिंगेंद्रिय। ४ पाँच की सख्या। ५ वीर्य। ६ कुश्ती के एक पेंच का नाम।

इंद्रियगोचर[1]--वि० [सं० इन्द्रियगोचर] इंद्रियो के ग्रहण के योग्य या ज्ञेय। इंद्रियो का विषय होने योग्य।

इंद्रियगोचर[2]--सज्ञा पु० इंद्रियो का विषय [को०]।

इंद्रियग्राम--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियग्राम] इंद्रियो का समूह [को०]।

इंद्रियज--वि० [सं० इन्द्रियज] इंद्रियो के सयोग से होनेवाला। इंद्रियजन्य। उ०--आरभ मे मनुष्य की चेतनसत्ता अधिकतर इंद्रियज ज्ञान की समष्टि के रूप मे रही।--रस०, पृ० २०।

इंद्रियजित्--वि० [सं० इन्द्रियजित्] जिसने इंद्रियो को जीत लिया हो। जो इंद्रियो को वश मे किए हो। जो विषयासक्त न हो। उ०--नीतिनिपुण मत्रणाकुशल ये वे रहस्यरक्षक इंद्रियजित्।--स्वप्न, पृ० ३६।

इंद्रियनिग्रह--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियनिग्रह] इंद्रियो को दबाना। इंद्रियो के वेग को रोकने का नियम।

इंद्रियबोधन--वि० [सं० इन्द्रियबोधन] इंद्रिय को जाग्रत या क्रियाशील करनेवाला [को०]।

इंद्रियलोलुप--वि० [सं० इन्द्रियलोलुप] इंद्रिय की तुष्टि के लिये व्याकुल [को०]।

इंद्रियवज्री--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रिय+वज्र] वाजीकरण क्रिया का एक भेद।

इंद्रियवध--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियवध] इंद्रियो का अपने अपने विषय मे आसक्त न होना [को०]।

इंद्रियवृत्ति--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रियवृत्ति] इंद्रियो का कार्य [को०]।

इंद्रियसंनिकर्ष--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियसन्निकर्ष] ज्ञानेंद्रियो का अपने अपने विषयो या मन से सपर्क।

इंद्रियसुख--सज्ञा पु० [सं० इन्द्रियसुख] विषयानद। विषयसुख [को०]।

इंद्रियस्वाप--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियस्वाप] इंद्रियो को अपने विषयो का ज्ञान न होना। २ जडता। ३ प्रलय [को०]।

इंद्रियागोचर--वि० [सं० इन्द्रियागोचर] इंद्रियो द्वारा अग्राह्य या इंद्रियो का अविषय। अज्ञेय [को०]।

इंद्रियातीत--वि० [सं० इन्द्रियातीत] १ इंद्रियो से परे। इंद्रियागोचर। अज्ञेय [को०]।

इंद्रियायतन--सज्ञा पु० [सं० इन्द्रियायतन] इंद्रियो का आयतन या निवास। शरीर। देह। २ आत्मा [को०]।

इंद्रियाराम--वि० [सं० इन्द्रियाराम] इंद्रियलोलुप। विषयासक्त [को०]।

इंद्रियार्थ--सज्ञा पु० [सं० इन्द्रियार्थ] इंद्रियो का विषय। वे विषय जिनका ज्ञान इंद्रियों द्वारा होता है, जैसे--रूप।

इंद्रियार्थवाद--सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रियार्थ+वाद] वह मत जिसके अनुसार बुद्धि-व्यापार-वर्जित इंद्रियज सुख ही सब कुछ है और उसी की निष्पत्ति काव्य का प्रधान गुण है। उ०--कीट्स की कल्पना बहुत ही तत्पर थी वे अपने इंद्रियार्थवाद के लिये प्रसिद्ध हैं।--चिंतामणि, भा० २, पृ० १३८।

इंद्रियासग--सज्ञा पु० [सं० इन्द्रियासङ्ग] इंद्रियो और उनके विषयो के प्रति आसक्ति का अभाव। अनासक्ति। सन्यास। वैराग्य [को०]।

इंद्रियासक्त--वि० [सं० इन्द्रियासक्त] इंद्रियाराम। इंद्रियलोलुप [को०]।

इंद्री(पु)--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रिय] दे० 'इंद्रिय'। उ०--इद्री सब न्यारी परी, मुख लूटति आँखि। सुरदास जे सग रहैं, तेऊ मरैं झाँखि।--सूर०, १०।२४०७।

इंद्रीजीत(पु)--वि० [सं० इन्द्रियजित्] दे० 'इंद्रियजित्'। उ०--अति अनन्य गति इंद्रीजीता। जाको हरि बिनु कतहुँ न चीता।--तुलसी ग्र०, पृ० १०।

इंद्रीजुलाब--सज्ञा पु० [सं० इन्द्रिय+फा० जुलाब] वे ओषधियाँ जिनसे पेशाब अधिक आता है। इसके लिये पानी मिला हुआ दूध, शोरा, मिलखडी आदि वस्तुएँ दी जाती हैं।

इंद्रया(पु)--सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रिय] दे० 'इंद्रिय'।

इंद्रेज्य--सज्ञा पु० [सं० इन्द्रेज्य] देवगुरु बृहस्पति [को०]।

इंध[1]--वि० [सं० इन्ध] प्रकाशक। दीपक।

इंध[2]--सज्ञा पु० १. जलावन। ईंधन। २ परमात्मा [को०]।

इंधन--सज्ञा पुं० [सं० इन्धन] १ जलाने की लकडी। जलावन। उ०--पान क सए सोना क टका, चंदन क मूल इंधन बिका।--कीर्ति०, पृ० ६८। २ वासना (को०)।

इंशा--सज्ञा स्त्री० [अ० इंशा] १. इबारत। बयान। २. पत्र लिखने की कला सिखानेवाली पुस्तक। चिट्ठियों की किताब [को०]।

इंसाफ--सज्ञा पु० [अ० इन्साफ] [वि० मुंसिफ] १ न्याय। अदल।
यौ०--इंसाफपसद--न्याय चाहनेवाला।
क्रि० प्र०--करना।--होना।
२ फैसला। निर्णय।

इंस्टिट्यूट--सज्ञा स्त्री० [अ० इन्स्टिटयूट] सस्था। सभा। समाज।

इंस्ट्रूमेंट--सज्ञा पु० [अ० इन्स्ट्रूमेन्ट] १ औजार। यत्र। २ साधन।

इंस्पेक्टर--सज्ञा पु० [अ० इन्स्पेक्टर] १ देखभाल करनेवाला। निरीक्षक।

इँगरेज(पु)--सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अँगरेज'। उ०--आयो अँगरेज मुलक रै ऊपर।--बाँकी० ग्र० भा०, ३, पृ० १०४।

इँगरेजी--सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अँगरेजी'। उ०--फारसी की छार सी उडाय इँगरेजी पढ मानो देवनागरी का नाम ही मिटावेंगे।--कविता कौ०, भा० २, पृ० १०३।

इँगुरौटी--सज्ञा स्त्री० [हिं० इंगुर+औटा (प्रत्य०)] वह डिबिया जिसमे सौभाग्यवती स्त्रियाँ ईंगुर या सिंदूर रखती हैं। सिधोरा।

इँगुवा--सज्ञा पु० [सं० इङ्गुद] हिंगोट का पेड और फल। गोंदी।

इँचना(पु)--क्रि० अ० [हिं० खिंचना] किसी ओर आकर्षित होना खिंचना। उ०--(क) भौंहनु त्रासति मुँह नटति आँखिनु सौं लपटातु। ऐंचि छुडावति कर इँची आगें आवति जाति।--बिहारी र०, दो० ६८३। (ख) आवति आँख इंची खिंची भौंह भयो भ्रम आवतु है मति यापै।--रघुनाथ (शब्द०)।

इँटकोहरा--सज्ञा पुं० [हिं० ईंट+ओहरा (प्रत्य०)] ईंट का फूटा टुकडा। ईंट की गिट्टी।

ईंटाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं ईंट] एक प्रकार का पड़ुक। पेंडुकी।

ईंडहर—संज्ञा पुं० [सं० पिष्ट+हिं० हर (प्रत्य०)] उर्द की दाल से बना हुआ एक सालन। उ०—अमृत ईंडहर है रस सागर। वेसन सालन अधिको नागर।—सूर०, १०। १२१३।

विशेष—यह इस रीति से बनता है उर्द और चने की दाल एक साथ भिगो देते हैं, फिर दोनो की पीठी पीसते हैं। पीठी में मसाला देकर उसके लंबे लंबे टुकड़े बनाते हैं। इन टुकड़ो को पहले अदहन मे पकाते हैं, फिर निकालकर उनके और छोटे छोटे टुकड़े करते हैं। अत मे इन टुकड़ो को घी मे तलते हैं और रसा लगाकर पकाते हैं।

ईंडुआ(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'ईंडुवा'।

ईंडुरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] गुंडरी। विड़ई। विड़वा। गेंडुरी।

ईंडुआ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] कपड़े की बनी हुई छोटी गोल गद्दी जिसे बोझ उठाते समय सिर के ऊपर रख लेते हैं। गेंडुरी।

ईंणि(पु)—सर्व० [देश०] दे० 'इन'। उ०—साईं दे दे सज्जना, रातड ईंणि परि रूंन।—ढोला० दू० ३७७।

इंदारा†—संज्ञा पुं० [सं० अन्दु, या सं० ईंद=जल+धर=धारण करने वाला] कूआँ। कूप।

ईंदारुन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवारुणी] इंद्रायन। माहुर।

इंदुआ—संज्ञा पुं० [देश०] ईंडुरी। गेंडुरी। वेंडुरी।

ईंदोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवारुणी] दे० 'ईंदाऊन'। उ०—बहुत जतन भेख रचो बनाय बिन हरि भजन ईंदोयन पाय।—गुलाल०, पृ० ५।

ईंधरौड़ा—संज्ञा पुं० [सं० इन्धन+हिं० औंड़ा < सं० आलय] ईंधन रखने की कोठरी। इंधनगृह। गोठीला।

ईंनारुन(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ईंदारुन',। उ०—बिनु हरि भजन ईंनारुन के फल तजत नहीं करुआई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४६।

इ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. १०० की संख्या [को०]।

इ[2]—अव्य० क्रोध, तिरस्कार, सहानुभूति, संबोधन, आश्चर्य दु ख आदि का व्यंजक अव्यय [को०]।

इकक(पु)—क्रि० वि० [सं० एक, प्रा० इक्क+सं० अक] निश्चय। अवश्य। उ०—राम तिहारे सुजस जग, कीन्हो सेत इकक।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ५७।

इकग[1](पु)—वि० [सं० एकाङ्ग] एकतरफा। एक ओर का। उ०—दुखी इकगी प्रीति सों, चातक, मीन, पतग। घन जल दीप न जानहीं, उनके हिय को अंग।—रसनिधि (शब्द०)।

इकग[2](पु)—संज्ञा पुं० शिव। महादेव। अर्धनारीश्वर।

इकग[3](पु)—क्रि० वि० मिश्रित। एक मे मिला। उ०—गरल अमृत इकग करि राखै। भिन्न भिन्न कै विरलै चाखै।—नद ग्रं०, पृ० ११८।

इकत(पु)—वि० [सं० एकान्त] दे० 'एकांत'।

इक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'एक'। उ०—इक करहिं दाप न चाप सज्जन बचन जिमि टारैं टरैं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५३।

इकआंक(पु)—क्रि० वि० [सं० एक, प्रा० इक्क+हिं० आंक] निश्चय। निश्चय करके। अवश्य। उ०—जे तव होत दिखादिखी, भई अमी एक आंक। दगै तिरीछी दीठि अव ह्वै बीछी को डांक।—बिहारी र०, दो० ६१५। (ख) यदपि लौंग ललितौं तऊ तू न पहिरि इक आंक। सदा सांक बढ़ियै रहै रहै चढ़ी सी नांक।—बिहारी र०, दो० ६८५।

इकइस(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इक्कीस'।

इकचोबिया†—संज्ञा पुं० [हिं० इक+चोब] एक चोब अर्थात् वल्लीवाला तंबू या डेरा। वह तबू जिसमे एक ही चोब लगती हो (बोल०)।

इकछत(पु)—वि० [सं० एकच्छत्र] दे० 'एकछत्र' उ०—जो नर इकछत भूप कहावैं। सिंहासन ऊपर बैठे जतही चँवर ढुरावैं।—चरण० बानी, पृ० ६४।

इकजोर(पु)—क्रि० वि० [सं० एक+हिं० जोरना=जोड़ना] इकट्ठा। एक साथ। उ०—देखु सखि चारु चद्र इकजोर। निरखति बैठि नितबिनि पिय सँग सार सुता की ओर।—सूर (शब्द०)।

इकट—संज्ञा पुं० [सं०] सरकंडे का गोफा या कोंपल [को०]।

इकटक—क्रि० वि० [हिं० एकटक] एक दृष्टि से। लगातार। बिना दृष्टि हटाए। उ०—इकटक प्रतिबिंब निरखि पुलकत हरि हरषि हरषि, लै उछग जननी रसमग जिय विचारी।—तुलसी ग्रं०, पृ० २८१।

इकटग(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'इकटक'। उ०—इकटग ध्यान रहै त्यौं लागैं छाकि परे हरि रस पीवैं।—दादू० बानी, पृ० ५६६।

इकट्ठा—वि० [सं० एकस्थ प्रा० इकट्ठ] एकत्र। जमा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

इकठा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इकट्ठा'। उ०—तौ ये नाना कर्म विचित्र। इकठे रहन न पावैं मित्र।—नंद० ग्रं०, पृ० २३६।

इकठाई(पु)†—वि० [एक+ठाई=स्थान] एक स्थान पर या एकत्र। उ०—जब सब गाइ भई इकठाई।—सूर०, १०। ६१४।

इकठैन†—वि० [हिं० इकठा] इकट्ठा। एकत्र। उ०—सुनत ही सब हाँकि ल्याए गाइ करि इकठैन।—सूर०, १०। ४२७।

इकठौर—वि० [हिं० इक+ठौर=स्थान] एक स्थान पर। एकत्र। उ०—(क) जेंवत कान्ह नद इकठौरे।—सूर०, १०। २२४ (ख) जब पाँडे इत उत कहुँ गए। बालक सब इकठौरे भए।—सूर०, ७। २।

इकडाल(पु)—संज्ञा पुं०, वि० [हिं०] दे० 'एकडाल'।

इकतन(पु)†—क्रि० वि० [हिं० इक+तन=ओर, तरफ] एक तरफ। एक ओर। उ०—इकतन नर एकतन भई नारी। खेल मच्यौ ब्रज के बिच भारी।—सूर०, १०।२६०१।

इकतर(पु)—वि० [हिं०] दे० 'एकत्र'। उ०—(क) मन औ पवन होत जब इकतर नाही बीच बराब।—जग० बानी, पृ० ७५। (ख) दई बड़ाई ताहि पच यह सिगरे जानी। दे कोल्हू मे पेरि, करी हैं इकतर घानी।—गिरिधर (शब्द०)। (ग) प्रथमहिं पत्र चमेली आनै। ताको कूटि लेइ रस छानै। कूट सोहागा मनसिल लीजै। मीठे तेल मे इकतर कीजै।—(शब्द०)।

इकतरा(पु)†—संज्ञा पुं० [स० एकान्तर] वह ज्वर जो जाड़ा देकर एक दिन छोड़ दूसरे दिन आता है। अँतरिया। उ०—वड दुख होइ इकतरो आवै। तीन उपास न वल तन खावै।—जाल (शब्द०)।

इकता(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'एकता'। उ०—इकता कारज हेतु की हेतु कहत सु कविंद। परम पदारथ चारहू श्री राधा गोविंद।—पद्माकर ग्र०, पृ० ६६।

इकताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० एकता या फा० यकता+हिं० ई (प्रत्य०)] १ एक होने का भाव। एकत्व। सिखे आपनै दृगनसे इकताई की वात। जूरी डीठ इक सँग रहै, जदृपि जुदे दिखात।—स० सप्तक, पृ० २१६। २ अकेले रहने की इच्छा, स्वभाव या वान। एकातसेविता।—अली गई अव गरवई इकताई मुकुताई। भली भई ही अमलई जौं पी दई दिखाइ।—स० सप्तक, पृ० २८४।

इकताना(पु)—वि० [सं० एकतान या हिं० एक+तान=खिंचाव] एक रस। एक सा। स्थिर। अनन्य। उ०—ऐसे ही देखत रहौं, जन्म सफल करि मानो। प्यारे की भावती, भावती के प्यारे जुगल किसोर जानो। पलौ न टरौं छिन इत उत न होउँ रहौं इकतानो।—हरिदास (शब्द०)।

इकतार[1](पु)†—वि० [हिं० एक+तार] वरावर। एकरस। समान। उ०—हरि के केसन सो सटी लखत खौर इकतार। मानहुँ रवि की किरन कछु छीन लई अँधियार।—व्यास (शब्द०)।

इकतार[2]—क्रि० वि० लगातार। उ०—आकिंचन इंद्रियदमन रमन राम इकतार। तुलसी ऐसे सत जन विरले या ससार।—तुलसी ग्र०, पृ०, १२।

इकतारा—संज्ञा पुं० [हिं० एक+तार] १ एक वाजा। एक प्रकार का तानपूरा या तवूरा।

विशेष—इसकी वनावट इस प्रकार होती है चमड़े से मढ़ा हुआ एक तूँवा वाँस के एक छोर पर लगा रहता है। तुवे के नीचे जो थोड़ा सा वाँस निकला रहता है उसमे एक तार तुवे के चमड़े पर की घोड़ियाँ या ठिकरी पर से होता हुआ वाँस के दूसरे छोर पर एक खूँटी मे वँधा रहता है। इस खूँटी को ऐंठकर तार को ढीला करते और कसते हैं। वजानेवाला इस तार को तर्जनी से हिला हिलाकर वजाता है। प्राय साधु इसे वजा वजाकर भीख माँगते हैं।

२ एक प्रकार का हाथ से बुना जानेवाला कपड़ा।

विशेष—इसके प्रत्येक वर्ग इंच मे २४ ताने के और आठ वाने के तागे होते हैं। बुन जाने पर कपड़ा धोया जाता है और उसपर कुंदी की जाती है। इसका थान ६ गज लवा और ११ इंच चौड़ा होता है।

इकताला[1](पु)—[हिं० एकताला] प्रथम ताल अर्थात् प्रथम दिवस। उ०—इकताला रै चैत सुद। आद उदे नवरात।—रा० रू०, पृ० २७६।

इकताला[2]—संज्ञा पुं० दे० 'एकताला'।

इकतीयार(पु)—संज्ञा पुं० [अ० इख्तियार] अधिकार। अख्तियार। उ०—वदे वदगी इकतीयार। साहिव रोष धरौ कि पियार।—कबीर ग्र०, पृ० ३०७।

इकतीस[1]—वि० [स० एकत्रिंशत्, पा० एकतीस] तीस और एक।

इकतीस[2]—संज्ञा पु० तीस और एक की संख्या। इकतीस का अक।

इकतृत(पु)†—संज्ञा स्त्री० [स० एकत्रिति] इकट्ठे रहने की स्थिति। जमाव। उ०—भाँति भाँति के मनुजन की नित रहति इकतृत।—प्रेमघन, भा० १, पृ० ११।

इकत्र(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'एकत्र'। उ०—मनहुँ सिंगार इकत्र ह्वै वँध्यौ वार के वेस।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३८८।

इकदाम—संज्ञा पु० [अ० इक्दाम] १. किसी अपराध के करने की तैयारी या चेष्टा। २ सकल्प। इरादा। ३ कदम वढ़ाना (को०)। ४ आगे वढ़ना (को०)।

यौ०—इकदाम ए जुर्म=अपराध करने की चेष्टा या कोशिश।

इकन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'एकन्नी'।

इकपेचा—संज्ञा पुं० [हिं० एक+फा० पेचह] एक प्रकार की पगड़ी जिसकी चाल दिल्ली आगरे मे बहुत है।

इकवारगी—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'एकबारगी'। उ०—बहुत भए इकवारगी, तिनको गुफ जु होय। ताहि समुच्चय कहत हैं, कवि कोविद सव कोय।—मतिराम ग्र०, पृ० ४१८।

इकवाल—संज्ञा पु० [अ० इक़्वाल] दे० 'एकवाल'। उ०—राजाओं की रक्षा उनका इकवाल है।—कायाο, पृ० १८६।

इकवाल दावा—संज्ञा पु० [अ० इकवालदावा] मुद्दई के दावे का स्वीकरण। मुद्दई के दावे को अगीकार करना।

इकवालमद—वि० [अ० इकवाल+फा०+मन्द] प्रतापशाली। भाग्यवान् (को०)।

इकवाली गवाह—संज्ञा पुं० [अ० इक़्वाल+फा० ई (प्रत्य०)+गवाह] किए हुए अपराध को स्वीकार करनेवाला। जुर्म मजूर करनेवाला।

इकवाली वयान—संज्ञा पु० [हिं० इकवाली+फा० वयान] वह साक्षी या गवाही जिसमे अपराध स्वीकार किया जाय।

इकवीस†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एकइस'। उ०—इकवीसे वार नछत्रौ अवनी कीन्ही पोइस धार कहर।—रघु० रू०, पृ० २५८।

इकरग(पु)—वि० [हिं०] दे० 'एकरग'। उ०—छिरकि छिरकि घनस्याम सव इकरग कियो है।—नद ग्र०, पृ० ३८६।

इकरदन(पु)—संज्ञा पुं० [स० एक, प्रा० इक्क+स० रदन] दे० 'एकरदन'।

इकरस(पु)—वि० [स० एक+रस] एकरग। समान। वरावर। उ०—जो कदु अव का प्रीति न हममे। रहत न कोउ इकरस हर दम मे।—विश्राम (शब्द०)।

इकराजी(पु)—वि० [स० एक+राजा+हिं० ई (प्रत्य०)] एक शासक वाला। एक राजा से युक्त। उ०—दादू नगरी चैन तव जव इकराजी होइ।—दादू० वानी, पृ० १२४।

इकराम—संज्ञा पुं० [अ० इकराम] १ दान। पारितोषिक। २ इज्जत। माहात्म्य। आदर। प्रतिष्ठा। ३ अनुग्रह। कृपा (को०)।

यौ०—इनाम इकराम। इज्जत इकराम।

इकरार—संज्ञा पुं० [अ० इक़रार] १. प्रतिज्ञा। वादा। २ कोई काम करने की स्वीकृति।

इकरारनामा—संज्ञा पु० [अ० इकरार+फ़ा० नामह] स्वीकृतिपत्र। प्रतिज्ञापत्र।

इकलस(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इकरस'। उ०—'खड खड निज ना भया, इकलस एकै नूर।—दादू० वानी, पृ० १०३।

इकला(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अकेला'।

इकलाई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+लाई या लोई=पर्त] एक पाट का महीना दुपट्टा या चद्दर। उ०—(क) आसपास आनन के फवन फवी है कैसी कुंचित कुसुंभी कोरदार इकलाई की।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३१४। (ख) दुपट्टा दुताई चादरैं इकलाई कटिवद वर। कचुकी कुलहिया ओढनी अगवस्त्र धोती अवर।—सूदन (शब्द०)।

इकलाई²—संज्ञा पु० [हिं० इकला+ई (प्रत्य०)] अकेलापन।

इकलीम—संज्ञा पुं० [अ० इकलीम] १ पृथिवी। भूखड। २ राज्य। ३ ससार की आवाद भूमि का सातवाँ हिस्सा [को०]।

इकले(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकेले'। उ०—इकले प्रान पियारे पाए। देखि हरष भरे नयन सिराए।—नद ग्र० पृ० १७२।

यौ०—इकले दुकले=अकेले दुकेले।

इकलो†—वि० [हिं०] दे० 'इकला' या 'अकेला'। उ०—तब याको पिता मरयो। तब यह घर में इकलो रहे।—दो सौ बावन, पृ० १६।

इकलोईकड़ाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+लोई] वह कडाही जो एक ही लोई या तवे की बनी हो, अर्थात् जिसके पेंदे मे जोडन हो।

इकलौता—संज्ञा पु० [हिं० इकला+स० पुत्र, प्रा० ऊत] [स्त्री० इकलौती] १. वह लडका जो अपने माँ बाप का अकेला हो। वह लडका जिसके और भाई बहिन न हो। २. एकमात्र। अकेला। उ०—तो इन्हें इकलौता बुद्धिमान मान लेना पडता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८०।

इकल्ला(पु)†—वि०[स० एकल=एकाकी, प्रा० एगल्ल, एकल्ल, इक्कल] १ अकेला। एकाकी। उ०—रणधीर इकल्ला है और अपने पास इतनी सेना है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १०७।

इकवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+वाह] १ एक प्रकार की निहाई जो सदान या अरन के आकार की होती है। भेद इतना ही होता है कि सदान मे दोनो ओर हाथे या कोर निकले रहते हैं और इसमें एक ही ओर। भारतवालो की इकवाई की एक कोर लवी नोक होती है और दूसरी कोर सपाट चौडी होती है जिसके किनारे तीखे होते हैं। २ जो सख्या मे तीन हो। तीन (दलाल)।

इकस(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अकस'।

इकसठ¹—वि० [स० एकषष्ठि, पा० एकसट्ठि] साठ और एक।

इकसठ²—संज्ञा पुं० वह अक जिसमे साठ और एक कावोध हो। ६१।

इकसर(पु)—वि० [हिं० एक+सर (प्रत्य०)] अकेला। एकाकी।

इकसार†(पु)—वि०[स० एक, हिं० इक+स०सदृश, प्रा० सरिस, सारिस] एक सा। समान। बरावर। उ०—उनयौ मेघ घटा चहूँ दिश तें वर्षन लगौ अखडित धार। वूडी मेरु नदी सब सूकी भर लागौ निसदिन इकसार।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ५३१।

इकसीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'अकसीर'।

इकसूत(पु)—वि० [स० एकश्रुत (=लगातार) या एकसूत्रित] १ एक साथ। इकट्ठा। एकत्र। उ०—देखि के निकसे दोऊ ओर जे सखियाँ हुती। ते सबै तुरतै दौरी वाहरी ह्वै इकसूती।—गुमान (शब्द०)।

इकहरा—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० इकहरी] दे० 'एकहरा'।

इकहाइ(पु), इकहाई(पु)—क्रि० वि० [हिं० एक+हाइ (प्रत्य०)] १ एक साथ। फौरन। उ०—(क) यह सुनि रानिन के वदन भे प्रसन्न हरखाइ। ज्यों सूरज के उदय ते खिलत कमल इकहाइ।—(शब्द०)। (क) सीत भीत हरषादि तें उठै रोम इकहाइ। ताहि कहत रोमाच है सुकविन के समुदाइ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १६८। २ एकदम। अचानक।

इकहाऊ(पु)—क्रि० वि० [हिं० एक+हाऊ (प्रत्य०)] दे० 'इकहाइ'। उ०—त्यो पदमाकर भोरी भमाइ सु दौरी सबै हरि पै इकहाऊ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १५५।

इकात(पु)—वि० [स० एकान्त] दे० 'एकात'।

इकाई—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'एकाई'।

इकार—संज्ञा पुं० [स०] स्वर वर्ण 'इ'।

इकारात—संज्ञा पुं० [स० इकारान्त] वह शब्द जिसके अंत मे इकार हो। वह शब्द जिसका अत 'इ' से हो।

इकोस(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इक्कीस'। उ०—तुलसी तेहि अवसर लावनिता दस, चारि नौ, तीनि, इकीस सबै।—तुलसी ग्र०, पृ० १५६।

इकेला(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अकेला।'। उ०—देहरी बैठी मेहरी रोवै द्वारे लौ सग माइ। मरहट लगि सब लोग कुटुंब मिलि हस इकेला जाइ।—कवीर ग्र०, पृ० २८५।

इकेले(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकेले'। उ०—भोजन करि कै इकेले ही गादि तकियान के ऊपर विराजे हते।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १५।

इकैठ(पु)—वि० [स० एकस्थ, प्रा० इकट्ठा] इकट्ठा। एकत्र।

इकोतर(पु)—वि० [हिं०] दे० एकोत्तर'। उ०—और इकोतर नामहि पावै। तुम कहँ जीत हस घर आवै।—कवीर सा०, पृ० १६।

इकोतरसै(पु)—वि० [हिं०] दे० 'एकोतर सौ'। उ०—इकोतर सै पुरिपा नरकहि जाई। सति सति भाषत श्री गोरखराई।—गोरख० पृ० ५६।

इकौज—संज्ञा पुं० [स० एक+वन्ध्या, प्रा० वज्झा, हिं० वांझ, या स० एक+जा, या सं० काकवन्ध्या>काकवज्झा>कक्कोज्झा> इकौंजा] वह स्त्री जिसको एक ही पुत्र या एक ही कन्या उत्पन्न हुई हो। वह स्त्री जो एक वार जनकर वाँझ हो जाय। काकवंध्या।

इकौना†—संज्ञा पु० [हिं० एक+वना] विना छाँटा हुआ अन्न। विना चुना हुआ अनाज।

इकौसी(पु)—वि० स्त्री० [स० एक+वासी] [वि० पुं० इकौसा] एकात मे रहनेवाली। अकेली। उ०—अलबेली सुजान के कौतुक पै अति रीझि इकौसी ह्वै लाज थकै।—घनानद, पृ० ३३।

इकौसे(पु)—क्रि० वि० [हिं०] पृथक्। जुदा। अलग।

इकौसो(पु)†—वि० [सं० एक+आवास या अवकाश (=स्थान), अप० ओसाम] एकांत। निराला। उ०—मेरो है इकौसो वास जातैं हरि दास, लेवो सुखरासि, करो चीठी दीजै जाय कै।—प्रिया (शब्द०)।

इक्क(पु)—वि० [अप०] दे० 'एक'। उ०—इक्क मथ्यो विना धाइ हृत्यौं करैं।—सुजान०, पृ० २०।

इक्कट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सरकंडा जिसकी चटाइयाँ बनती हैं [को०]।

इक्कबाल—संज्ञा पुं० [अ० इकबाल] १ ताजक ज्योतिष के मत से एक ग्रहयोग।

विशेष—जब किसी के जन्म के समय ग्रह कटक (१,४,७,१०) या पनकर (२,५,८,११) मे हो, अर्थात् ३, ६, ९ और १२ मे कोई ग्रह न हो तब यह राज्य और सुख को बढानेवाला योग होता है।

२ अभ्युदय। बढती।

इक्का¹-वि० [सं० एक] १ एकाकी। अकेला। २.अनुपम। बेजोड।

इक्का²-संज्ञा पुं० १ एक प्रकार की कान की बाली जिसमे एक मोती होता है। २ वह योद्धा जो लडाई मे अकेला लडे। उ०—कूदि परे लंका बीच इक्का रघुबर के।—मानकवि (शब्द०)। ३ वह पशु जो अपना झुंड छोडकर अलग हो जाय। ४ एक प्रकार की दो पहिए की घोडा गाडी जिसमे एक ही घोडा जोता जाता है। ५ तास का वह पत्ता जिसमे किसी रंग की एक ही बूटी हो। यह पत्ता और सब पत्तो को मार देता है। जैसे,—पान का इक्का। ईंट का इक्का।

इक्कादुक्का-वि० [हिं० इक्का+दुक्का] अकेला दुकेला। जैसे,—'कोई इक्का दुक्का आदमी मिले तो बैठा लेना'।

इक्कावन†—वि० [हिं०] दे० 'इक्यावन'।

इक्कावान†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एक्कावान'।

इक्कासी†—वि० [हिं०] दे० इक्यासी'।

इक्की†—संज्ञा स्त्री० [सं० एक+ई (प्रत्य०)]ताश का वह पत्ता जिसमे एक बूटी हो। एक्का।

इक्कीस¹—वि० [सं० एकविंश, प्रा० एक्कवीस, अप० इक्कवीस] बीस और एक।

इक्कीस²—संज्ञा पुं० बीस और एक की संख्या या अंक जो इस तरह लिखी जाती है—२१।

इक्यावन¹—वि० [सं० एकपंचाशत्, प्रा० एक्कावन्न]पचास और एक।

इक्यावन²—संज्ञा पुं० पचास और एक की संख्या जो इस तरह से लिखी जाती है—५१।

इक्यासी¹—वि० [सं० एकाशीति, प्रा० एक्कासि] अस्सी और एक।

इक्यासी²—संज्ञा पुं० अस्सी और एक की संख्या या अंक जो इस तरह लिखी जाती है—८१।

इक्षना(पु)—क्रि० स० [हिं० इच्छना] दे० 'इच्छना'। उ०—लप्पन उद्दल, मुमट वर, ते इक्षत घमसान।—प० रा०, पृ० १३४।

इक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईख। गन्ना। दे० 'ईख'। २ कोकिला नाम का एक वृक्ष (को०)। ३ मनोरथ। इच्छा (को०)।

यौ०—इक्षुकाड। इक्षुगंधा। इक्षुतुल्या। इक्षुदंड। इक्षुपत्रा। इक्षुप्रमेह। इक्षुमती। इक्षुमेह। इक्षुरस। इक्षुविहारी। इक्षुविकार।

इक्षुकंद—संज्ञा पुं० [सं० इक्षुकन्द] कूष्मांड। कुम्हडा [को०]।

इक्षुक—संज्ञा पुं० [सं०] ईख [को०]।

इक्षुकांड—संज्ञा पुं० [सं० इक्षुकाण्ड] १ ईख का डंठल। २. काँस। ३ मूँज। ४ रामसर।

इक्षुकांत—संज्ञा [सं० इक्षुकांत] छमंजिली इमारत का एक भेद या श्रेणी [को०]।

इक्षुकीय—वि० [सं०] [स्त्री० इक्षुकीया] जहाँ ईख अधिक पैदा होती हो [को०]।

इक्षुकुट्टक—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो इकट्ठा करता हो। गन्ना एकत्र करनेवाला व्यक्ति [को०]।

इक्षुगंध—संज्ञा पुं० [सं० इक्षुगंध] १. छोटा गोखरू। २ काँस।

इक्षुगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० इक्षुगन्धा] १ गोखरू। २ कोकिलाक्ष। तालमखाना। ३. काँस। ४ सफेद बिदारी कंद।

इक्षुगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० इक्षुगन्धिका] भूमिकूष्मांड [को०]।

इक्षुज¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जो ईख के रस से बने।

विशेष—प्राचीनो के अनुसार इसके छह भेद हैं—फाणित (जूसी या शीरा), मत्स्यंडी (राब), गुड, खंड (खाँड), सिता (चीनी) और सितोपल (मिस्री)।

इक्षुज²—वि० ईख के रस से बना हुआ [को०]।

इक्षुतुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वार या बाजरे के प्रकार का एक पौधा जिसका रस मीठा होता है। काँस।

इक्षुदंड - संज्ञा पुं० [सं० इक्षुदंड] ईख का डंठल। ईख।

इक्षुदर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० इक्षुदर्भा] एक प्रकार का तृण।

इक्षुनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईख का एक भेद। ईख की गाँठों पर होनेवाला आँख का आकार [को०]।

इक्षुपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० इक्षुपत्रा] १ ज्वार। मक्का। २ बाजरा।

इक्षुपाक—संज्ञा पुं० [सं०] गुड या राब [को०]।

इक्षुप्र—संज्ञा पुं० [सं०] रामशर। शर।

इक्षुप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह। इक्षुमेह। मधुमेह।

विशेष—इस रोग मे मूत्र के साथ मधु या शक्कर जाती है। इसके रोगी के मूत्र पर चीटियाँ और मक्खियाँ बहुत बैठती हैं। मूत्र के अंशो को रासायनिक क्रिया द्वारा अलग करने पर उसमे चीनी का अंश मिलता है।

इक्षुबालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] काम या मूँज [को०]।

इक्षुभक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईख पेरने की मशीन, कल या यंत्र [को०]।

इक्षुमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका कुरुक्षेत्र मे होना लिखा है।

इक्षुमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जो इंद्र पर्वत से निकलती है।

इक्षुमूल—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की ईख। बाँसी। २. ईख की जड या मूल [को०]।

इक्षुमेह—संज्ञा पुं० [सं०] इक्षुप्रमेह। मधुप्रमेह। मधुमेह।

इक्षुमेही—वि० [सं० इक्षुमेहिन्] मधुमेह का रोगी [को०]।

इक्षुयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० इक्षुयंत्र] ईख पेरने की मशीन। कोल्हू [को०]।

इक्षुयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईख [को०]।

इक्षुर—संज्ञा पुं० [सं०] १ गोखरू। २. तालमखाना। ३. गन्ना [को०]।

इक्षुरस—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईख का रस। २. कास। ३ राव [को०]।

इक्षुरसवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरविदारी। दूधविदारी। महाश्वेता।

इक्षुरसोद—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों मे से एक जो ईख के रस का है।

इक्षुवण—संज्ञा पुं० [सं०] ईख का डंठल [को०]।

इक्षुवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पीले रंग की ईख। २. क्षीरकंद। क्षीरविदारी [को०]।

इक्षुवाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ईख की एक जाति। पुंड्रक। पौंढा। २ ईख का खेत या फारम [को०]।

इक्षुविकार—संज्ञा पुं० [सं०] गुड़, राब आदि ईख के रस के छह रूप। २. कोई भी मीठा पदार्थ [को०]।

इक्षुविदारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विदारीकंद।

इक्षुवेष्टन—संज्ञा पुं० [सं०] गन्ने की एक किस्म [को०]।

इक्षुशर—संज्ञा पुं०[सं०] एक प्रकार का कास और उसका जंगल [को०]।

इक्षुशाकट—संज्ञा पुं० [सं०] गन्ना बोने लायक खेत [को०]।

इक्षुसमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणोक्त सात महासमुद्रों मे एक नाम [को०]।

इक्षुसार—संज्ञा पुं० [सं०] इक्षुविकार। गुड़ आदि [को०]।

इक्ष्वाकु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्यवंश का एक प्रधान राजा। यह पुराणों मे वैवस्वत मनु का पुत्र कहा गया है। रामचंद्र इसी के वंश के थे। २ इक्ष्वाकु के वंश का व्यक्ति (को०)।

यौ०—इक्ष्वाकुनंदन, इक्ष्वाकुवंशी = इक्ष्वाकु के पुत्र।

इक्ष्वाकु[2]—संज्ञा स्त्री० कड़वी लौकी। तितलौकी।

इक्ष्वारि—संज्ञा पुं० [सं०] ईख का दुश्मन—कास [को०]।

इक्ष्वालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नरकट। नरकुल। २ सरपत। मूंज। ३ काम।

इखद(पु)—वि० [सं० ईषत्] दे० 'ईषत्'।

इखफाय—संज्ञा पुं० [अ० इख्फाय] प्रकट न करना। गोपन। छिपाव [को०]।

यौ०—इखफाये जुर्म, इखफाये वारदात = कानून मे किसी पुरुष का किसी ऐसी घटना को छिपाना जिसका प्रकट करना नियमानुसार उसका कर्तव्य हो।

इखरना†—क्रि० अ० [हिं० बिखरना का अनु०] बिखरना। इधर उधर गिरना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'बिखरना' शब्द के साथ होता है।

यौ०—इखरना बिखरना = इधर उधर हो जाना। किसी भी वस्तु का इतस्तत. हो जाना (बोल०)।

इखराज—संज्ञा पुं० [अ०] १. निकास। खर्च। २ बहिष्कार [को०]।

इखलाक—संज्ञा पुं० [अ० अख़लाक़] व्यवहार। आचरण। उ०—उनका जितना सदाचार और इखलाक है, सब मर्दों का बनाया हुआ।—ज्ञानदान, पृ० ११७।

इखलाकी—वि० [हिं० इखलाक] आचरण या व्यवहार संबंधी। व्यावहारिक। उ०—'मसायब का इखलाकी पहलू भी होता है।'—गोदान, पृ० ३९।

इखलास—संज्ञा पुं० [अ० इख़्लास] १ मेलमिलाप। मित्रता। उ०—तू जा सुजानहि पास। हमसौं करै इखलास।—सूदन (शब्द०)। २ प्रेम। भक्ति। प्रीति। उ०—कुल आलम इके दीदम अरवाहे इखलास। बद अमल बदकार दुई पाक यार पास।—दादू (शब्द०)। ३. संबंध। साबिका।

क्रि० प्र०—जोड़ना। = बढ़ाना।

इखु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० इषु] 'इषु'। उ०—अमर अधिप बारन बरन दूसर अंत अगार। तुलसी इखु सह रागधर तारन तरन अधार।—स० सप्तक, पृ० १९।

इख्तियार—संज्ञा पुं० [अ० इख्तियार] १ अधिकार। २ आधिकारक्षेत्र। ३. सामर्थ्य। काबू। जैसे,—यह बात हमारे इख्तियार के बाहर की है। ४ प्रभुत्व। स्वत्व। जैसे,—इस चीज पर तुम्हारा कुछ इख्तियार नहीं है। ५ स्वीकार। ग्रहण। मंजूर। उ०—सख्त काफिर था जिसने पहले मीर, मजहबे इश्क इख्तियार किया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १३१।

क्रि० प्र०—करना = स्वीकार करना। अपनाना। ग्रहण करना। उ०—और पेशा भी दूसरे का इख्तियार नहीं कर सकता है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २४९।

यौ०—इख्तियारे समाअत = विचार करने का अधिकार।

इख्तिलाफ—संज्ञा पुं० [अ० इख्तिलाफ] १. विरोध। विभेद। विभिन्नता। अंतर। फर्क। २. अनबन। बिगाड़।

यौ०—इख्तिलाफे राय = विचारवैमत्य। मतभेद।

इगारह(पु)—वि० [हिं०] दे० 'ग्यारह'। उ०—सत जो धरै सो खेलन हारा। ठारि इगारह जाइ न मारा।—जायसी ग्र०,पृ० १३७।

इगारहों—वि० [हिं० इगारह] एकादश की संख्यावाला। दस और एक की संख्यावाला। उ०—सभा समासद निरखि पद पकरि उठायो हाथ। तुलसी कियो इगारहों बसनबेष जदुनाथ।—तुलसी ग्र०, पृ० ११७।

इग्यारस(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० एकादश] दे० 'एकादशी'। उ०—ब्राह्मण बरत इग्यारस पारस सामँत कुसुम कज सामीर।—रघु० रू०, पृ० २५५।

इग्यारह(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'ग्यारह'।

इग्यारी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अग्यारी'।

इचकना†—क्रि० अ० [देश०] क्रोध से दाँत या खीस निकालना।

इचन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० इचना] खिंचाव। तनाव। ऐंचन। उ०—नीकी नासापुट ही की इचनि अचभे भरी, मुरिकै इचनि मो न क्यों हू मन तें मुरै।—घनानंद, पृ० ३२।

इचना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ऐंचना'। उ०—डीठि मिचि जात

मिचि इचत ना ऐंचि खेंची खिचत न तसवीर तसवीरगर पैं।—पजनेस०, पृ० ७।

इचरज(पु)-संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'आश्चर्य'। उ०—शिवसूँ उमग पूछै मगत, इचरज अत आवत यहै।—रघु० रू०, पृ० ४५।

इचिकिल—संज्ञा पुं० [सं०] १ कीचड़। २ तालाव या बावडी। ३. दलदल [को०]

इच्छक¹—वि० [सं०] कामना या इच्छा करनेवाला।

इच्छक²—संज्ञा पुं० १ नारगी का वृक्ष। २ गरिणत मे जोडी हुई राशि या सख्या। जोड [को०]।

इच्छना(पु)—क्रि०स० [स० इच्छन] इच्छा करना। चाहना। उ०—इच्छ इच्छ विनती जस जानी। पुनि कर जोरि ठाढ भइ रानी।—जायसी (शब्द)।

इच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक मनोवृत्ति जो किसी ऐसी वस्तु की प्राप्ति की ओर ध्यान ले जाती है जिससे किसी प्रकार के सुख की सभावना होती है। कामना। लालसा। अभिलाषा। चाह। ख्वाहिश।

विशेष—वेदात और साख्य मे इच्छा को मन का धर्म माना है। पर न्याय और वैशेषिक मे इसे आत्मा (गुरण) धर्म या व्यापार माना गया है।

पर्या०—आकाक्षा। वांछा। दोहद। स्पृहा। ईहा। लिप्सा। तृष्णा। रुचि। मनोरथ। कामना। अभिलाषा। इषा। छद।

यौ०—इच्छाघात। इच्छाचार। इच्छाचारी। इच्छानुकूल। इच्छानुसार। इच्छापूर्वक। इच्छाबोधक। इच्छाभेदी। इच्छाभोजन। इच्छावान्। इच्छावाधक। इच्छावसु। स्वेच्छा। ईश्वरेच्छा।

२. माल की माँग।

विशेष—आधुनिक अर्थशास्त्र मे माँग या 'डिमाड' शब्द का व्यवहार जिस अर्थ मे होता है, उसी अर्थ मे कौटिल्य ने 'इच्छा' का प्रयोग किया है। उसने 'आयुधागाराध्यक्ष' अधिकरण में लिखा है कि आयुधेश्वर अस्त्रो की इच्छा और वनाने के व्यय को सदा समझता रहे।

३. गरिणत मे त्रैराशिक की दूसरी शक्ति। ४. तितिक्षा या इच्छा शक्ति के प्रकट होने की पूर्वावस्था। उ०—वह एक वृत्ति चक्र है जिसके अतर्गत प्रत्यय, अनुभूति, इच्छा, गति या प्रवृत्ति, शरीरधर्म सवका योग रहता है।—चितामरिण, भा०, २, पृ० ८८।

इच्छाकृत—वि० [स०] अपनी इच्छा के अनुसार किया हुआ [को०]।

इच्छाचारी—वि० [स० इच्छा+चारिन्] [वि० स्त्री० इच्छाचारिणी] अपनी इच्छा के अनुकूल गति या गमन करनेवाला। उ०—चले गगन महि इच्छाचारी।—मानस, ५।३५।

इच्छादान—संज्ञा पु० [स०] किसी याचक की आकाक्षा परिपूर्ण करना [को०]।

इच्छानिवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] भोग-तृष्णा से विरक्ति। विराग [को०]।

इच्छानुसारिणीक्रियाशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार योग द्वारा प्राप्त एक शक्ति जिससे योगियो के इच्छानुसार कारण के विना कार्य की सिद्धि हो जाती है। जैसे,—मिट्टी के विना घट या बीज के विना वृक्ष इत्यादि का योगियो की इच्छा से उत्पन्न होना।

इच्छान्वित—वि० [सं०] लिप्सायुक्त [को०]।

इच्छाफल—संज्ञा पु० [सं०] किसी प्रश्न या समस्या का इच्छानुकूल समाधान [को०]।

इच्छाभेदी—वि० [स०] इच्छानुसार विरेचन करानेवाला (औषध)। प्रक्रिया भेद से जिसके खाने से उतने ही दस्त आएँ जितने की इच्छा हो।

यौ०—इच्छाभेदी वटिका, इच्छाभेदी रस = दे० 'इच्छाभेदी'।

इच्छाभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] १ जिन जिन वस्तुओ की इच्छा हो, उनको खाना। रुचि के अनुसार भोजन। जैसे, आज हमें इच्छाभोजन कराओ। १ भोजन की वह सामग्री जिसे खाने की इच्छा हो। रुचि के अनुसार खाद्य पदार्थ जैसे, इतने दिनो पर आज हमे इच्छाभोजन मिला है।

इच्छामय—वि० [स०] रुचि के अनुकूल। जैसा चाहे वैसा। उ०—इच्छामय नरवेष सँवारे।—मानस, १।१५२।

इच्छामरन—वि० [सं० इच्छा + मरण] अपनी इच्छा के अनुकूल जब चाहे तब मृत्यु प्राप्त करनेवाला। उ०—कामरूप इच्छा मरन ज्ञान विराग निधान।—मानस, ७।११३।

इच्छारूप—वि० [सं०] अपनी इच्छा के अनुकूल जैसा चाहे रूप धारण करनेवाला। कामरूप। उ०—चेहरे वदलने के कारण ही समवत इन्हें इच्छारूप और कामचारी कहा गया है।—प्रा० भा० प०, पृ० ६।

इच्छावसु¹—संज्ञा पुं० [स०] कुबेर।

इच्छावसु²—वि० अपनी आकाक्षा के अनुकूल जब चाहे जितना धन प्राप्त करनेवाला [को०]।

इच्छित—वि० [सं०] चाहा हुआ। वाछित। अभिप्रेत। अभीष्ट। उ० इच्छित फल की चाह दिलाती वल तुम्हे।—करुरणा, पृ० १४।

इच्छु¹(पु)—संज्ञा पुं० [स० इक्षु] ईख। उ०—इच्छु रसहू ते है सरस चरनामृत औ लवण समुद्र है लोनाई निरवधि कैं।—चरण (शब्द०)।

इच्छु²—वि० [स०] चाहनेवाला।

विशेष—इसका प्रयोग यौगिक शब्द वनाने मे ही होता है, जैसे-शुभेच्छु, हितेच्छु।

इच्छुक—वि० [स०] चाहनेवाला। अभिलाषी। आकाक्षायुक्त।

इछना(पु)—क्रि०स० [हिं०] दे० 'इच्छना'। उ०—छैल इछहि छोडह मोर भीर।—विद्यापति, पृ० २०२।

इछा(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'इच्छा'। उ०—शीतल जल के इछा भूमि (क) कक्कंशवा।—वर्ण०, पृ० १६।

इछु—वि० [स० इच्छु] दे० 'इच्छुक'। उ०—धर्म तप्पनह पार। न कोऊ दास रहै इछु।—पृ० रा०, २५।१७३।

इजति(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० इज्जत] दे० 'इज्जत'। उ०—पति पातसाह की इजति उमरावन की राखी रैया राव भावसिंह की रहति है।—मतिराम ग्र०, पृ० ३८६।

इजतिराव--संज्ञा स्त्री० [अ० इज्तिराब] व्यग्रता। व्याकुलता। बेचैनी। उ०--मरना बेहतर इस इजतिराव के बदले।--भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०३।

इजमत(पु)--संज्ञा स्त्री० [अ० अजमत] दे० 'अजमत'। उ०--पसू ज्ञान इजमत कूँ देखो अनमुस एकै ठानैं।--चरण० बानी, भा० २, पृ० १८३।

इजमाल--संज्ञा पुं० [अ०] [वि० इजमाली] १ कुल। समष्टि। २ किसी वस्तु पर कुछ लोगों का संयुक्त स्वत्व। इस्तराक। साझा। शिरकत। ३ एकत्र करना। इकट्ठा करना (को०)। ४ संक्षेप कथन [को०]।

इजमाली--वि० [अ०] शिरकत का। मुश्तरका। संयुक्त। साझे का।

इजरा[1]--संज्ञा स्त्री० [सं० नि (= नितरां) + जरा (जीर्ण) अथवा हिं० इ + जरा = जीर्णता] वह भूमि जो बहुत दिनों तक जोतने से कमजोर हो गई हो और फिर उपजाऊ होने के लिये परती छोड़ दी जाय।

इजरा[2]--संज्ञा पुं० [अ० इजराय] दे० 'इजराय'।

क्रि० प्र०--इजरा कराना = किसी भी निर्णय या आदेश को प्रचलित और कार्यान्वित कराना।

इजराय--संज्ञा पुं० [अ०] १ जारी करना। प्रचार करना। २ काम में लाना। व्यवहार। अमल।

यौ०--इजराय डिगरी = डिगरी का अमलदरामद होना। डिगरी को कार्यान्वित करना।

इजलास--संज्ञा पुं० [अ०] १ बैठक। २. वह जगह जहाँ हाकिम बैठकर मुकदमे का फैसला करता है। कचहरी। विचारालय। न्यायालय। अदालत।

यौ०--इजलासकामिल = न्यायालय की वह बैठक जिसमें सब जज एक साथ बैठ कर फैसला करें।

इजहार--संज्ञा पुं० [अ०] जाहिर करना। प्रकट करना। प्रकाशन। उ०--धर्म का यह इजहार। खुदा है खुदा, न वह तिथि वार।--मधुज्वाल, पृ० ६।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

२ अदालत के सामने बयान। गवाही। साक्षी। साखी। उ०--एक दूसरे कैदी के इजहार से स्पष्ट ज्ञात होता है।--भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० १०१।

क्रि० प्र०--देना।--लेना।--होना।

यौ०--इजहारतहरीरी = लिखी हुई गवाही। लिखित बयान [को०]।

इजाजत--संज्ञा स्त्री० [अ० इजाजत] १ आज्ञा। हुक्म। २. परवानगी। मंजूरी। स्वीकृति।

इजाफत--संज्ञा स्त्री० [अ० इजाफत] संबंध। साविका। २ फारसी व्याकरण में छठे कारक का चिह्न [को०]।

इजाफा--संज्ञा पुं० [अ० इजाफ़ह्] १ बढ़ती। बेशी। वृद्धि। बढ़ोतरी। उ०--अपने अँग के जानि कै, जोवन नृपति प्रवीन। स्तन, मन, नैन, नितंब को, बड़ो इजाफा कीन।--बिहारी र०, दो० २। २. बचा हुआ धन। बचत।

यौ०--इजाफालगान = लगान का अधिक होना। कर या लगान की बढ़ती।

इजावत--संज्ञा स्त्री० [अ०] १ कबूलियत। स्वीकृति। स्वीकार या मंजूर करना। २ शौच। दस्त। निस्तार [को०]।

इजार--स्त्री० [अ०] पायजामा। सूथन। सुथना। उ०--तसन गूजरी ऊजरी बिनसत लाल इजार। हिए हजारनि के हरैं बैठी आल बजार।--मतिराम ग्रं०, पृ० २९२।

क्रि० प्र०--उतारना = नंगा होना। प्रतिष्ठा खोना। इज्जत उतारना। उ०--और आदमी ही डालते है अपनी इजार उतार।--कविता को०, भा० ४, पृ० ३१७।

यौ०--इजारबंद।

इजारदार--वि० [अ० इजारा + फा० दार (प्रत्य)] [वि० स्त्री० इजारदारिन] किसी पदार्थ को इजारे या ठेके पर लेनेवाला। ठेकेदार। अधिकारी। उ०--कहा तुमही हौ ब्रज के इजारदार।--गीत (शब्द०)

इजारबंद--संज्ञा पुं० [अ० इजार + फ़ा० बंद] सूत या रेशम का बना हुआ जालीदार बँधना जो पायजामे या लहँगे के नेफे में उसे कमर से बाँधने के लिये पड़ा रहता है। नारा। कमरबंद।

इजारा--संज्ञा पुं० [अ० इजारह्] १ किसी पदार्थ को उजरत या किराए पर देना। २ ठेका। ३. अधिकार। इख्तियार। स्वत्व। जैसे,--तुम्हारा कुछ इजारा है ?

क्रि० प्र०--करना = जिम्मेदारी स्वीकारना। जिम्मेदार होना। उ०--करमैंधा चालो मत करो, करो इजारो आय।--रा० रू०, पृ० ३१७।--देना।--लेना।

यौ०--इजारदार। इजारेदार।

इजारादारी--संज्ञा स्त्री० [अ० इजारह् + फा० दारी प्रत्य०] ठेकेदारी स्वत्व। कब्जे में होने की स्थिति। उ०--इसे ही इजारादारी एकाधिपत्य या साम्राज्यवाद कहते हैं।--मान०, भा० ? पृ० २१२।

इजारेदार--वि० [अ० इजारह + फा० दार (प्रत्य०)] दे० 'इजारदार'।

इजाला--संज्ञा पुं० [अ० इजालह] दूर करना। निवारण करना [को०]।

इजाला हैसियत उर्फी--संज्ञा स्त्री० [अ० इजालह हैसियत उर्फी] कोई ऐसा काम करना जिससे दूसरे की इज्जत या आबरू में धब्बा लगे या उसकी बदनामी हो। हतकइज्जती। मानहानि।

इज्जत--संज्ञा स्त्री० [अ० इज्ज़त] मान। मर्यादा। प्रतिष्ठा। आदर। उ०--समझते हैं इज्जत को दौलत से बेहतर।--कविता को०, भा० ४, पृ० ५९३।

मुहा०--इज्जत उतारना = मर्यादा नष्ट करना। जैसे,--जरा सी बात के लिये वह इज्जत उतारने पर तैयार हो जाता है।

क्रि० प्र०--करना = प्रतिष्ठा या सम्मान करना।--खोना = अपनी मर्यादा नष्ट करना। जैसे,--तुमने अपने हाथों अपनी इज्जत खोई है।--गँवाना = दे० 'इज्जत खोना'।--जाना। जैसे,--पैदल चलने से क्या तुम्हारी इज्जत चली जायेगी।--देना = (१) मर्यादा खोना। जैसे,--क्या रुपए के बदले में हम अपनी इज्जत देंगे ? (२) सम्मानित करना। महत्व बढ़ाना। जैसे,--बरात में गरीब होकर आपने हम बड़ा इज्जत दी।--पाना = प्रतिष्ठा प्राप्त करना। जैसे,--उन्होंने इस दर्बार में बड़ी इज्जत पाई।--बिगाड़ना = प्रतिष्ठा नष्ट करना। जैसे,--बदमाश भले आदमियों की राह चलते इज्जत

बिगाड देते हैं।—रखना = मर्यादा स्थिर रखना। बेइज्जती न होने देना। जैसे,—इस समय १००) देकर आपने हमारी इज्जत रख ली।—लेना = इज्जत बिगाडना।—होना = आदर होना। जैसे,—उनकी चारो तरफ इज्जत होती है।

यौ०—इज्जतदार।

इज्जतदार—वि० [अ० इज्जत+फा० दार (प्रत्य०)] प्रतिष्ठित। माननीय।

इज्जल—सज्ञा पु० [स०] हिज्जल नामक वृक्ष जो जलाशय के समीप अधिक होता है [को०]।

इज्तिराव—सज्ञा स्त्री० [अ० इज्तिराव] दे० 'इजतिराव' [को०]।

इज्या—सज्ञा स्त्री० [स०] १. यज्ञ। २ देवपूजा।

इट—सज्ञा पु० [स०] १ बेंत। २, तृण। ३ तृण या बेंत का बना आस्तरण। चटाई [को०]।

इटली—सज्ञा पुं० [अ०] यूरोप के दक्षिण का एक देश।

इटसून—सज्ञा पु० [स०] चटाई। आस्तरण [को०]।

इटालिक—सज्ञा पु० [अं०] दे० 'इटैलिक'।

इटालियन—सज्ञा पु० [अ०] १ एक प्रकार का कपडा।

विशेष—यह पहले पहल इटली से आया था। यह किसी वृक्ष की छाल से बनता है और बहुत चमकीला होता है। इसका रग प्राय काला होता है।

२ इटली देशवासी व्यक्ति।

इटैलिक—सज्ञा पु० [अ०] एक प्रकार का छापा या टाइप जिसमे अक्षर तिरछे होते हैं।

इट्चर—सज्ञा पुं० [स०] निर्द्वंद्व घूमनेवाला सांड या बैल [को०]।

इठलाना—क्रि० अ० [देश०] १ इतराना। ठसक दिखाना। गर्वसूचक चेष्टा करना। जैसे,—क्षुद्र मनुष्य थोडे में ही इठलाने लगते हैं। २ मटकना। नखरा करना। उ०—पाइहै पकरि तब पाइ है न कैसे हूँ, तू थोर इठलात वे तो अति इठलात हैं।—केशव (शब्द०) ३. छकाने के लिये जान बूझकर अनजान बनना। छकाने के लिये जान बूझकर किसी काम को देर मे करना। जैसे,—(क) इठलाओ मत, बताओ किताब कहाँ छिपाई है। (ख) इठलाओ मत जैसा कहते हैं, वैसा करो।

इठलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० इठलाना] इठलाने का भाव। ठसक।

इठलाहटी—वि० [हिं० इठलाहट+ई (प्रत्य०)] इठलानेवाली। ठसक वाली। उ०—खरै अदब इठलाहटी, उर उपजावति त्रासु। दुसह सक विस को करै जैसे सोठि मिठासु।—बिहारी र०, दो० ३६०।

इठाई(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० इष्ट, पा०इट्ठ+हिं० आई(प्रत्य०)] १ रुचि। चाह। प्रीति। उ०—खारिक खात न दारौ उदाखन माखन हूँ सह मेटि इठाई।—केशव (शब्द०)। २ मित्रता। प्रेम।

इठाना(पु)—क्रि० स० [स० एषण या इषणि] भेजना। पठाना। उ०—चाह जीयँ मिलन की सो तौ कहा जात रही, ग्यान ही इठावत है लायौ तू धिगानौ रे।—ब्रज० ग्र०, पृ० १३२।

इठिमिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] यजुर्वेद से सबद्ध काठक का एक विभाग या अश [को०]।

इठौं—क्रि० वि० [स० इध, प्रा० *इढ, इत्र] यहाँ। इस ओर। इधर। उ०—सरधे इठे इठे।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५५।

इड—सज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

इडरहर†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इडहर'। उ०—बने अनेक अन्न पकवाना। बरिन इडरहर स्वादु महाना।—रघुराज (शब्द०)।

इडविडा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की बकरी। २ बकरी की तरह मेमियाने की क्रिया [को०]।

इडा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पृथिवी। भूमि। २. गाय। ३. वाणी। ४ अनवरत प्रार्थना। स्तुति। ५. एक यज्ञपात्र। ६. आहुति, जो प्रयाजा और अनुयाजा के बीच दी जाती है। ७ एक प्रकार का अप्रिय देवता जो अमोमपा है। ८ अन्न। हवि। ९ नमदेवता। १० दुर्गा। अविका। ११ पार्वती। १२ कश्यप ऋषि की एक पत्नी जो दक्ष की पुत्री थी। १३ वसुदेव की एक स्त्री। १४ मनु या इक्ष्वाकु की पुत्री, जो बुध की स्त्री थी, जिससे पुरुरवा उत्पन्न हुआ था। इसे मैत्रावरुणी भी कहा जाता है। १५ ऋतध्वज रुद्र की स्त्री। १६ स्वर्ग। १७. एक नाडी जो बाईं ओर है।

विशेष—यह नाड़ी पीठ की रीढ से होकर नाक तक है। बाईं साँस इसी से होकर आती जाती है। स्वरोदय मे चद्रमा इसका प्रधान देवता माना गया है। प्राचीनो के अनुसार यह प्रधान नाडी है।

इडाचिका—सज्ञा स्त्री० [स०] बर्रे। भिड [को०]।

इडाजात—सज्ञा पुं० [सं०] एक सुगधित द्रव [को०]।

इडावान—सज्ञा पु० [स०] १ यज्ञान्न को खाने का अधिकारी। २ उपाहार। जलपान [को०]।

इडिका—सज्ञा स्त्री० [स०] पृथिवी। धरती [को०]।

इडिक्क—सज्ञा पुं० [सं०] जगली बकरा [को०]।

इडुर—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'इट्चर' [को०]।

इडहर—सज्ञा पु० [देश०] दे० 'इंडहर'।

इडा—सज्ञा स्त्री० [सं० इडा] दे० 'इडा'।

इण(पु)—सर्व० [स० एनत, प्रा० एण, इण] दे० इस'। उ०—(क) इण रुति साहिब ना चलइ, चालइ तिके गिमार।—ढोला०, दू० २४९। (ख) आवै इण भाषा अमल, वयण सगाई वेस।—रघु० रू०, पृ० १२।

इत—क्रि० वि०[स०] १ अत। इसलिये। २. यहाँ। ३ इस स्थान से। यहाँ से। ४ इधर। इस ओर। ५ इस समय से। अब से [को०]।

इत पर—क्रि० वि० [स०] १ इसके उपरात। इसके बाद। २ इतने पर। इस पर।

इत¹(पु)†—क्रि० वि० [सं० इत] इधर। यहाँ। उ०—इततें उत औ उततें इत रहु यम की साँट सँवारी।—कबीर (शब्द०)।

यौ०—इत उत = इधर उधर। उ०—भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।—मानस १।२०३। (ख) इत उत चितै धँस्यो मदिर मैं हरि कौ दरसन पायौ।—सूर०, १०।४८२७।

इत²†(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० ईति] दे० 'ईति'। उ०—सातू इत री नह सोक लगर, सुखी सगला लोक।—रघु० रू०, पृ० १२३।

इतकाद—संज्ञा पुं० [अ० एतकाद] दे० 'एतकाद'। उ०—तुम करो तयारी मव इमवारी, मैं दिल यह इतकाद करयो।—सुजान०, पृ० १४।

इतनक ७—वि० [हिं० इतना+क (प्रत्य०)] इतना। थोड़ा। उ०—(क) जानैं कटा कटाच्छ तिहारे कमलैन मेरो इतनक सो री। सूर०, १०।३०५। (ख) सुदर विरहिन दुखित पीव नहीं पावरी। (परि हां) इतनक विष अब बाँटि सखी मुहि पावरी।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० ३४१।

इतना—वि० [सं० इयान् इयत्, पा० इयन्त प्रा० इयतन अथवा हिं० ई० यह+तना (प्रत्य०)] [स्त्री० इतनी] इस मात्रा का। इस कदर। उ०-(क) इतनासुख जो न समाता अतरिक्ष मे, जल थल मे।—आँसू, पृ० ४६। (ख) जनु इतनी विरंचि करतूती। —तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—इतने मे=इसी बीच मे। इसी समय। उ०—इतने में रन ठौर रुधिर नदी प्रगटत भई। गज हय सुभट करारे छिन्न अंग ह्वै ह्वै गिरे।—(शब्द०)।

इतनो ७†—वि० [हिं०] दे० 'इतना'। उ०—सब को न कहै, तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फलु है।—तुलसी० ग्र०, पृ० २०६।

इतफाक—संज्ञा पुं० [अ० इत्तफ़ाक़] दे० 'इत्तफाक'। उ०—काट जिका कुल ऊबटैं, आठवाट इतफाक।—बाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० ६४।

इतवार—संज्ञा पुं० [अ० एतवार] विश्वास। प्रतीति। उ०—(क) सार शब्द से बाँचियो मानो इतवार।—कवीर श०, भा० १, पृ० ५०। (ख) ऐसे घर मे जो बसै वाको क्या इतवार।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३५।

इतवारी—वि० [हिं० इतवार+ई (प्रत्य०)] एतवार के योग्य। विश्वासपात्र। उ०—गोरि न रख्यो पोरिया जे इतवारी धाम।—पृ० रा०, ६३। २०४।

इतमाम—संज्ञा पुं० [अ० इहतिमाम=प्रबंध] इनजाम। बदोबस्त। प्रबंध। उ०—ताहि तखत बैठारि धारि सिर छत्र जटित जर चँवर मोरछल ढारि कियो इतमाम आम घर।—सूदन (शब्द०)।

इतमीनान—संज्ञा पुं० [अ०] विश्वास। दिलजमई। संतोष। उ०—दिल के लेने को जमानत चाहिए, और इतमीनान जामिन के लिये। कविता कौ०, भा० ४ पृ० ५५६।

क्रि० प्र०—करना। जैसे—तुम अपना हर तरह से इतमीनान कर लो, तब मकान खरीदो (शब्द०)।—कराना।—देना।—होना। जैसे—'अब तुम्हारी बातों से हमें इतमीनान हो गया (शब्द०)।

यौ०—इतमीनाने कल्ब=हृदय का विश्वास या संतोष।

इतमीनानी—वि० [अ० इतमीनान+ फा० ई (प्रत्य०)] विश्वासपात्र। विश्वासनीय।

इतर¹—वि० [सं०] १ दूसरा। ऊपर। और। अन्य। उ०—बेटा इतर पदार्थों की क्या गणना है, मेरे शरीर का अब रक्त भी शेष नही। भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५१०। २. नीच। पामर। साधारण। उ०—महि परत सुमन रस फल पराग। जनु देत इतर नृप कर विभाग।—तुलसी ग्र०, पृ० ३४९।

इतर²—संज्ञा पुं० [अ० इत्र] दे० 'अतर'।

यौ०—इतरदान=इत्र रखने का पात्र। इतरफरोश=इत्रविक्रेता।

इतरत., इतरत्र—क्रि० वि० [सं०] १ अन्यथा। व्यतिरिक्त। २. दूसरी जगह पर। अन्य स्थान पर [को०]।

इतरथा—क्रि० वि० [सं०] अन्यथा [को०]।

इतराज ७—संज्ञा पुं० [अ० एतराज] दे० 'एतराज'।

इतराजी ७—संज्ञा स्त्री० [हिं० इतराज+ई (प्रत्य०)] विरोध। बिगाड। नाराजी। उ०—बडी मीत तुव मिलन की, चित राजी की चाव। इतराजी मत कर अरे, इत राजी है आव।—स० सप्तक, पृ० २१६।

इतराना—क्रि० अ० [सं० इतर अथवा सं० उत्तरण, हिं० उतराना या देश०] १. सफलता पर फूल उठना। घमड करना। मदांध होना। उ०—(क) बडो बडाई नहिं तजै, छोटो बहु इतराय। ज्यो प्यादा फरजी भयो, टेढो टेढो जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) जस थोरेहु धन खल इतराई।—मानस, ४।१४। २ रूप और यौवन का घमड दिखाना। ठसक दिखाना। ऐंठ दिखाना। इठलाना। उ०—अब काहू के जाउ कही जनि आवति हैं युवती इतरात। सूर —(शब्द०)।

इतराहट ७—संज्ञा स्त्री० [हिं० इतराना] इतराने का भाव। दर्प। घमड। गर्व। उ०—जीवन के इतराहट सौ अठिलाट अछो टटि ऐंठनि ऐंठि।—देव (शब्द०)।

इतरेतर—क्रि० वि० [सं०] परस्पर। आपस मे।

इतरेतरयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. परस्पर संबंध। २ एक प्रकार का द्वंद्वसमास जिसमे दो जाति के केवल एक एक व्यक्ति का समावेश होता है। हिंदी मे समास का यह भेद नही है।

इतरेतराभाव—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायशास्त्र मे एक के गुणों का दूसरे मे न होना। अन्योन्याभाव। जैसे,—गाय घोडा नही, क्योंकि गाय के धर्म घोडे मे नही हैं।

इतरेतराश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तर्क मे एक प्रकार का दोष।

विशेष—जब एक वस्तु की सिद्धि दूसरी वस्तु की सिद्धि पर निर्भर हो और दूसरी वस्तु की सिद्धि भी पहली वस्तु की सिद्धि पर निर्भर हो, तब वहाँ पर इतरेतराश्रय दोष होता है। जैसे—परलोक की सिद्धि के लिये शरीर से पृथक् असिद्ध जीवात्मा को प्रमाण मे लाना या जीवात्मा को शरीरातिरिक्त सिद्ध करने के लिये असिद्ध परलोक को प्रमाण मे लाना।

इतरेद्यु—क्रि० वि० [सं०] दूसरे दिन। अन्येद्यु [को०]।

इतरै ७—क्रि० वि० [सं० इत. पर] इतने में। इसके उपरात। उ०—इतरै एक आली ले आवी आनन आगलि आदरस।—वेलि०, दू० ८३।

इतरौहाँ—वि० [हिं० इतराना+औहाँ (प्रत्य०)] जिससे इतराने का भाव प्रकट हो। इतराना सूचित करनेवाला। उ०—रहे परम पद साधत बीचै परी चाह चकचौंह। रतन खोइ कै कौडी पाई चाल चलै इतरौंह।—देवस्वामी (शब्द०)।

इतलाक—संज्ञा पुं० [अ० इतलाक़] १. जारी करना। इजराय। २. बधनमुक्त करना। खोलना। ३. बोलना। कथन। ४. वह

दफ्तर या वही जिसमे दस्तक और समनें आदि के जारी होने और उनके तलवाने के आयव्यय का लेखा लिखा जाता है।

यौ०—इतलाकनवीस=वह कर्मचारी जो इतलाक में काम करे या इतलाक का हिसाब रखे।

इतवत—क्रि० वि० [स० इतस्तत, प्रा० *इतवतः हिं० इतउत] इधर उधर। उ०—उझकत इतवत देखि चलत ठठकत छवि पावत।—ब्रज० ग्र०, पृ० ६२।

इतवरी- सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'इत्वरी'।

इतवार—सज्ञा पुं० [स० आदित्यवार, प्रा० आइत्तवार=ऐतवार] शनि और सोमवार के बीच का दिन। रविवार।

इतस्तत —क्रि० वि० [स०] इधर उधर। यहाँ वहाँ।

इता(पु)—वि० [स० इयत् पा० इयन्त, प्रा० *इग्रतन, हिं० इतन, इतना] इतना। इस मात्रा का। उ०—(क) वड्डा जु वोल मुख नन्हिया, इता वोल सिर पर धरै।—पृ० रा०, ६४।१२१। (ख) साचा मुँह मोडै नही अर्थ इता ही वूझ।—दादू०, पृ० ३८५।

इताअत—सज्ञा स्त्री० [अ०] आज्ञापालन। तावेदारी। उ०—'इनकी वैसे ही इज्जत और इताअत करते हैं'। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६२।

क्रि० प्र० —करना।—मानना।

इताति—सज्ञा स्त्री० [अ० इताअत] दे० 'इताअत'। उ०—को है जागजाल जो न मानत इताति है।—तुलसी ग्र०, पृ० २५५।

क्रि० प्र०—मानना=आज्ञा या हुक्म मानना। उ०—निसि वासर ताकहँ भलो, मानै राम इताति।—ग्र०, पृ० ५१५।

इताव—सज्ञा पुं० [अ०] क्रोध। कोप। गुस्सा [को०]।

यौ०—इतावनामा=कोध, नाराजी या विरोध व्यक्त करनेवाला पत्र।

इति[1]—अव्य [स०] समाप्तिसूचक अव्यय।

इति[2]—सज्ञा स्त्री० [सं०] समाप्ति। पूर्णता। जैसे,—अब तुम्हारी पढाई की इति हो गई। २. गति। गमन। ३ ज्ञान (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—इतिकर्तव्यता। इतिवृत्त। इतिहास। इतिश्री।

इति[3]—क्रि० वि० इस प्रकार। ऐसा। उ०—(क) अचर-चर-रूप हरि सर्वगत सर्वदा वसत, इति वासना धूप दीजै।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७६। (ख) इति वदत तुलसीदास।—तुलसी ग्र०, पृ० ७८।

इतिक[1]—वि० [सं०] चलता हुआ। गतिशील [को०]।

इतिक[2](पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतेक'। उ०—पन किती कहहिं कप्पन्न होइ। इतिक विदा सजि चद को।—पृ० रा०, ६१। ८८६।

इतिकथ—वि० [सं०] १ अविश्वसनीय। २ नष्ट। अश्रद्धेय [को०]।

इतिकथा—सज्ञा स्त्री० [स०] अविश्वसनीय एव निरर्थक बात [को०]।

इतिकरणीय—वि० [स०] दे० 'इतिकर्तव्य' [को०]।

इतिकर्तव्य—वि० [सं०] जिसका करना आवश्यक और उचित हो। उ०—केवल प्रचलित प्रणाली का निर्वाह करना मात्र अपना इतिकर्तव्य मानते हैं। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५१।

इतिकर्तव्यता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी काम के करने की विधि। परिपाटी। २. कर्म की पराकाष्ठा। कर्तव्य की समाप्ति या पूर्णता। उ०—अंग्रेज कागजी घुड़दौड़ मे है आज इतिकर्तव्यता।—भारत०, पृ० १२५। ३. मीमासा या कर्मकांड मे वह अर्थवाद वोधित वाक्य जिसमे किसी कर्म की प्रशसा और उसके करने के विधान का वोध हो।

इतिमात्र—वि० [स०] इतना ही। इस प्रकार का ही [को०]।

इतिय(पु)—वि० [देश०] दे० 'इतना'। उ०—यो वज्जि मार आतुर इतिय ज्यो इद्दरिय वूँद धर।—पृ० रा०, १३।११६।

इतिवत्—क्रि० वि० [स०] इस प्रकार। इस ढग से [को०]।

इतिवृत्त—सज्ञा पु० [स०] १. पुरावृत्त। पुरानी कथा। २ कहानी। किस्सा।

इतिश्री—सज्ञा स्त्री० [स०] समाप्ति। अंत। जैसे,—औरगजेब से ही मुगलो के राज्य की इतिश्री हुई। उ०—कब से इतिश्री हो चुकी इसके अखिल उत्कर्ष की।—भारत०, पृ० २।

इतिह—क्रि० वि० [स०] इस प्रकार निश्चय ही [को०]।

इतिहास—सज्ञा पु० [स०] १ वीती हुई प्रसिद्ध घटनाओं और उनसे सबध रखनेवाले पुरुषो का कालक्रम से वर्णन। तवारीख। उ०—यद्यपि हमे इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं।—भारत०, पृ० ४। २ वह पुस्तक जिसमे बीती हुई प्रसिद्ध घटनाओ और भूत पुरुषो का वर्णन हो। उ०—अब भी 'लिखित मुनि' का चरित वह लिखित है इतिहास मे।—भारत०, पृ० १०। ३ किसी विषय मे सबधित तथ्यो का आदिकाल से वर्तमान समय तक का क्रमबद्ध वर्णन। जैसे—किसी शास्त्र, कला, संस्कृति का इतिहास। ४. कथा। वृत्त। उ०—इस अनत काले शासन का, वह जब उच्छृंखल इतिहास।—कामायनी, पृ० ३८।

यौ०—इतिहासकार=इतिहास लिखनेवाला। इतिवृत्त लेखक। इतिहासज्ञ=इतिहास का जानकार। इतिहासवेत्ता=इतिहासज्ञ।

इते(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतो'। उ०—इत घटे घटिहै कहा जो न घटै हरि नेह।—तुलसी ग्र०, पृ० १५१।

इतेक—वि० [हिं० इत+एक] इतना एक। इतना।

इतै—क्रि० वि० [स० इत] इधर। इस तरफ। इस ओर। उ०—मोहन मानि मनायो मेरो। हौं बलिहारी नद नंदन की, नेकु इतै हँसि हेरो।—सूर०, १०। २१६।

मुहा०—इतै उत=दे० 'इतउत'। उ०—उमडे जवै मुँडदंडै उछालै। तवै तोरि तारै इतैउत्त घालै। पद्माकर ग्र०, पृ० २७६।

इतो(पु), इतौ(पु)—वि० [सं० इयत्=इतना] [स्त्री० इती] इतना। इस मात्रा का। निर्दिष्ट मात्रा का। उ०—(क) कुटिल अलक छुटि परत मुख, वढिगो इतो उदोत। वक विकारी देत ज्यो दाम रुपैया होत।—विहारी (शब्द०)। (ख) मेरे जान इन्हे वोलिवे कारन चतुर जनक ठयो ठाठ इतो री।—तुलसी ग्र०, पृ० ३०८। (ग) लै लै मोहन, चदा लै। सूरदास प्रभु इती वात को कत मेरे लाल हठै।—सूर०, १०। १६५।

इतौत(पु)—क्रि० वि० [हिं० इत+उत] इधर उधर। उ०—चद उदौत इतौत चितौत चकी सवकी चख चाह चकोरी।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १५०।

इत्कट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष या घास [को०]।

इत्किला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक सुगंध द्रव्य। गोरोचन [को०]।

इत्त (पु)—क्रि०वि० [हिं०] दे० 'इत'। उ०—जा को रहना उत्त घर सो क्यों लोड़ै इत्त। जैसे पर घर पाहुना रहै उठाए चित्त।—कबीर सा० स०, पृ० ७७।

इत्तन (पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतना'। उ०—इत्तन वचन कह्यौ चर आइय।—पृ० रा०, पृ० १२०।

इत्तफाक—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इत्तिफ़ाक़] [वि० इत्तफाकिया, क्रि० वि० इत्तफाकन] १ मेल। मिलाप। एका। २ सहमति।

मुहा०—इत्तफाक करना = सहमत होना। जैसे,—मैं आपकी राय से इत्तफाक नहीं करता।

३ संयोग। मौका। अवसर। जैसे,—इत्तफाक की बात है, नहीं तो आप भी कभी यहाँ आते हैं?

मुहा०—इत्तफाक पड़ना = संयोग उपस्थित होना। मौका पड़ना। अवसर आना। जैसे,—मुझे अकेले सफर करने का इत्तफाक कभी नहीं पड़ा। इत्तफाक से = संयोगवश। अचानक। अकस्मात्। जैसे,—'मैं स्टेशन जा रहा था, इत्तफाक से वे भी रास्ते में मिल गए'।

इत्तफाकन्—क्रि०वि० [अ० इत्तिफ़ाक़न्] संयोगवश। अचानक। एकाएक।

इत्तफाकिया—वि० [अ० इत्तिफाकियह] आकस्मिक।

इत्तफाकी—वि० [अ० इत्तिफ़ाक़] दे० 'इत्तफाकिया'।

इत्तला—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० इत्तलाअ] सूचना। खबर। उ०—वहरे खुदा जनाव दें हमको ये इत्तला। साहब का क्या जवाब था बावू ने क्या कहा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६२६।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

मुहा०—इत्तला लिखना = राजकर्मचारियों का किसी बात की सूचना लिखना।

यौ०—इत्तलानामा।

इत्तलानामा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इत्तला अ + फ़ा० नामह] किसी बात की खबर देनेवाला पत्रक। सूचनापत्र।

इत्तहाद—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इत्तिहाद] मेल मिलाप। एकता। उ०—खुदा गवाह है, मैंने हमेशा इत्तहाद की कोशिश की।—काया०, पृ० ३३४।

इत्ता†—वि० [हिं० इतना] इतना। उ०—कड़ेल जवान न होगा तो भला शेरों से इत्ता ठेंगा मुकाबिला कर सकेगा।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२।

इत्तिफाक—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इत्तिफ़ाक़] संयोग। मौका। उ०—'यह तो कई बार इत्तिफाक हुआ है कि हम पहाड़ की ऊँची चोटी पर हैं'।—मैर कु०, पृ० ६२।

इत्तिहाम—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] दोष। तुहमत।

क्रि० प्र०—देना।

इत्तो (पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतो'।

इत्थ—क्रि० वि० [सं० इत्थम्] इस प्रकार से। ऐसे। यों।

इत्थकार—क्रि० वि० [सं० इत्थङ्कारम्] इस प्रकार। इस ढंग से [को०]।

इत्थंभूत—वि० [सं० इत्थम्भूत] इस प्रकार का। ऐसा। २ सत्य। विश्वसनीय (कथा)।

इत्थविध—वि० [सं०] १ इस प्रकार का। ऐसा। २. इस प्रकार की विशेषता या गुणों से युक्त [को०]।

इत्थमेव[1]—वि० [सं०] ऐसा ही।

इत्थमेव[2]—क्रि० वि० इसी प्रकार से।

इत्थशाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०; मि०, अ० इत्तिसाल] दे० 'इत्थसाल' [को०]।

इत्थसाल—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इत्तिसाल] ताजक ज्योतिष के अनुसार कुंडली में १६ योगों में से तीसरा योग जहाँ वेगगामी ग्रह मंदगामी ग्रह से एक अंश में कम हो और वे परस्पर एक दूसरे को देखते हों या संबंध करते हों वहाँ इत्थसाल योग होता है।

इत्याँ (पु)†, इत्यूँ (पु)† इत्ये (पु)†—क्रि० वि० [सं० इत] यहाँ। इस स्थान पर।

इत्यादि—अव्य० [सं०] इसी प्रकार के अन्य। और। इसी तरह। और दूसरे। वगैरह। उ०—वेटा हमारा धन, आभूषन, वसन इत्यादि सब लुटेरे बलात्कार हर ले गए'।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०८।

विशेष—जहाँ किसी प्रसंग से समान संबंध रखनेवाली बहुत सी वस्तुओं को गिनाने की आवश्यकता होती है, वहाँ लाघव के लिये केवल दो तीन वस्तुओं को गिनाकर 'इत्यादि' लिख देते हैं जिससे और वस्तुओं का आभास मिल जाता है।

इत्यादिक—वि० [सं०] इसी प्रकार के अन्य और। ऐसे ही और दूसरे जैसे—राम कृष्ण इत्यादिकों ने भी ऐसा ही किया है।

विशेष—इस शब्द के आगे 'लोग' या इसी प्रकार के और विशेष शब्द प्राय लुप्त रहते हैं।

इत्र—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ अतर। पुष्पसार। इतर। उ०—न दी बू एक ने ऐ गुलवदन तेरे पसीनों की, हजारों इत्र खिंचकर तवल ए अत्तार में आए। कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३७७।

२. सुगंध। खुशबू। ३. सार। सत्त।

इत्रदान—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इत्र + फा० दान] दे० 'अतरदान'।

इत्रफरोश—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इत्र + फा० फरोश] अतर बेचनेवाला। गंधी। अत्तार।

इत्रसाज—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इत्र + फा० साज़] इत्र बनानेवाला। गंधी [को०]।

इत्रीफल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० त्रिफला] एक हकीमी दवा। हड़, बहेड़े और आँवले का चूर्ण तिगुने शहद में मिलाकर चालीस दिन तक रखा जाता है और फिर व्यवहार में आता है।

इत्वर[1]—वि० [सं०] १ क्रूरकर्मा। क्रूर। २ निम्न। नीच। ३ यात्री। पथिक [को०]। ४ निर्धन। धनहीन [को०]।

इत्वर[2]—सञ्ज्ञा पुं० १. षंढ। नपुंसक। २ उत्सर्ग किया हुआ वृष या छुट्टा पशु। खुला हुआ जानवर [को०]।

इत्वरी—वि० स्त्री० [सं०] १ छिनाल। कुलटा। २ अभिसारिका [को०]।

इथ (पु)—अव्य० [सं० अत्र, प्रा० इत्थ] यहाँ। अत्र। उ०—तै इथ नैं सतारि दै जो चाहहि सो लेहि।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १६७।

इथ्यह (पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'इथ'। उ०—तव लग्ग मेछ इथ्यह प्रवेस।—पृ० रा०, ६१।५६२।

इदंतन—वि० [सं० इदन्तन] १ इस समय का। वर्तमान। २ क्षण-स्थायी। क्षणिक [को०]।

इदंता—संज्ञा स्त्री० [सं० इदन्ता] सादृश्य। एकरूपता। समरूपता [को०]।

इदंद्र—संज्ञा पुं० [सं० इदन्द्र] वह जो (इस) इदं (= जगत्) को देखता है। परमात्मा [को०]।

इदंवर—संज्ञा पुं० [सं० इदम्वर] नीला कमल। इंदीवर [को०]।

इदम्—सर्व० [सं०] यह।

इदमित्थ—पद० [सं० इदमित्थम्] यह ऐसा है। ऐसा ही है। ठीक है। उ०—हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थ कहि जाइ न सोई।—मानस, १।१२१।

इदराक—संज्ञा पुं० [अ० इद्राक] ज्ञान। बोध। समझबूझ। उ०—गफलत कि यह जागे नहीं यहाँ चाहिये इदराक रहे।—राम० धर्म०, पृ० ८६।

इदानीतन—वि० [सं० इदानीन्तन] १ इस समय का। आधुनिक। २ नवीन। नया।

इदावत्सर—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति की गति के अनुसार प्रत्येक ६० वर्ष में १२ युग होता है और प्रत्येक युग में पाँच पाँच वर्ष होते हैं। प्रत्येक युग के तीसरे वर्ष को इदावत्सर कहते हैं।

विशेष—इनके नाम ये हैं—शुक्ल, भाव, प्रमाथी, तारण, विरोधी, जय, विकारी, क्रोधी, सौम्य, आनंद, सिद्धार्थ और रक्ता इनमें अन्न और वस्त्र के दान का बड़ा माहात्म्य है।

इद्दत—संज्ञा स्त्री० [अ०] पति के मरने के बाद का ४० दिन का अशौच जो मुसलमान विधवाओं को होता है और जिसके बीच वे अन्य पुरुष से विवाह नहीं कर सकती।

विशेष—कहते हैं कि यह इसलिये रखा गया है जिससे यदि गर्भ हो तो उसका पता चल जाय। यह अवधि तलाक की स्थिति में तीन महीने, पति की मृत्यु पर चार महीने दस दिन और गर्भवती के लिये संतान होने तक भी है।

इद्ध¹—वि० [सं०] १ प्रकाशित। ज्योतित। २ प्रकाशमान। चमकीला। ३ आश्चर्यकारक। विस्मयजनक। ४ पालन किया जानेवाला (आदेश)। ५ दीप्त। ६ दग्ध। ७ स्वच्छ। निर्मल [को०]।

इद्ध²—संज्ञा पुं० १ आतप। घाम। २ दीप्ति। कांति। ३ आश्चर्य। अचंभा [को०]।

इद्धदीधिति—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग [को०]।

इद्धमन्यु—वि० [सं०] भयंकर क्रोधी। अत्यधिक क्रोधयुक्त [को०]।

इद्धाग्नि—वि० [सं०] जिसकी अग्नि निरतर प्रदीप्त रहती हो [को०]।

इद्वत्सर—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति की गति के अनुसार ६० वर्ष मे १२ युग होते हैं और प्रत्येक युग मे पाँच पाँच वत्सर होते हैं। प्रत्येक युग के पाँचवें व अंतिम वर्ष को इद्वत्सर कहते हैं।

विशेष—इनके नाम ये हैं—प्रजाति, धाता, वृष, व्यय, खर, दुर्मुख, प्लव, पराभव, रोधकृत्, अनल, दुर्मति और क्षय।

इधक(पु)†—वि० [सं० अधिक] दे० 'अधिक'। उ०—इधक अनुरागकर पुरप निरजुर अही।—रघु० रू०, पृ० ५७।

इधकार(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अधिकार] दे० 'अधिकार'। उ०—जगत नाम इधकार जग सार भार्टी पग्गो।—रघु० रू०, पृ० २८।

इधर—क्रि० वि० [सं० इतस या इह] १. इस ओर। यहाँ। इस तरफ। उ०—इधर कोई है अभी न और कुछ पता नहीं है अनुमान।—[illegible], पृ० ५२।

मुहा०—इधर उधर = (१) यहाँ वहाँ। इतस्ततः। अनिश्चित स्थान में। जैसे,—लोग दिनभर इधर उधर मारे मारे फिरते थे। (२) आसपास। इर्द गिर्द। अगल बगल में। जैसे,—तुम्हारे घर के इधर उधर कोई नाई हो तो भेज देना। (३) चारो ओर। सब ओर। जैसे,—देखो न इधर उधर देखो, पुस्तक यहीं कहीं होगी। इधर उधर करना = (१) टालमटूल करना। हीला हवाला करना। जैसे,—जब हम उससे रुपया माँगते हैं, तब वह इधर उधर करने लगता है। (२) उलट-पलट करना। उलट पुलट करना। क्रम भंग करना। जैसे,—बच्चों ने सब कागजपत्र इधर उधर कर दिए। (३) तितर बितर करना। भगाना। जैसे,—पुलिस ने बहुत से लोगों को मारकर इधर उधर कर दिया। (४) हटाना। भिन्न भिन्न स्थानों पर कर देना। जैसे,—अफसरों ने दफ्तर के लोगों का माल इधर उधर कर दिया। इधर उधर की बात = (१) वाहियात बात। बकवाद। [illegible]। जैसे,—हम ऐसी इधर उधर की बातों पर विश्वास नहीं करते। (२) किसी की बात। [illegible]। जैसे,—तुम कोई काम नहीं करते, बस इधर उधर की बातें किया करते हो। इधर की उधर करना या लगाना = चुगलखोरी करना। लगाव करना। एक पक्ष के लोगों की बात दूसरे पक्ष के लोगों से कहना। झगड़ा लगाना। इधर की दुनिया उधर होना = अनहोनी बात का होना। असंभव का संभव होना। जैसे,—चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय, पर हम ऐसा कभी नहीं करेंगे। इधर उधर की हाँकना = अटसट बकना। व्यर्थ समय खोना। जैसे,—तुम इधर उधर में समय काटते हो, कोई काम तो करते नहीं। इधर उधर में = (१) अनिर्दिष्ट स्थान में। अनिश्चित जगह में। जैसे,—यह पुस्तक कहीं इधर उधर में अटक गई हो। (२) धोखे में। बहाने में। जैसे—(क) जब तक इधर उधर में काम चले, तब तक पैसा क्यों खोएँ। (ख) उसे इधर उधर में भोजन मिल ही जाता है, वह रसोई क्यों बनावे। इधर का उधर होना = (१) उलट पुलट होना। अंड बंड होना। बिगड़ना। जैसे,—हवा से सब कागज-पत्र इधर उधर हो गए। (२) टालमटूल होना। हीलाहवाला होना। जैसे,—महीनों से इधर उधर हो रहा है, देखें रुपया कब मिलता है। (३) भाग जाना। तितर बितर होना। जैसे,—शेर के आते ही सब लोग इधर उधर हो गए। इधर का उधर करना = उलट पलट देना। अस्तव्यस्त करना। क्रम बिगाड़ना। इधर का उधर होना = उलट जाना। विपरीत होना। विपरीत होना। जैसे,—देखते देखते सारा मामला इधर का उधर हो गया। इधर या उधर होना = परस्पर विरुद्ध दो संभावित घटनाओं में से (जैसे—जीना या मरना, हारना या जीतना) किसी एक का होना। जैसे,—जज के यहाँ

मुकदमा हो रहा है, दो चार दिन मे इधर या उधर हो जायगा। इधर से उधर फिरना = चारो ओर फिरना। जैसे,—तुम व्यर्थ इधर से उधर फिरा करते हो। न इधर का होना न उधर का = (१) किसी ओर का न रहना। किसी पक्ष मे न रहना। जैसे,—वे हमारी शिकायत उनसे और उनकी शिकायत हमसे किया करते थे, अत मे न इधर के हुए न उधर के। (२) किसी काम का न रहना। जैसे,—वे इतना पढ लिखकर भी न इधर के हुए न उधर के। (३) दो परस्पर विरुद्ध उद्देश्यो में से किसी एक का भी पूरा न होना। जैसे,—वे नौकरी के साथ साथ रोजगार भी करना चाहते थे, पर अत मे न इधर के हुए न उधर के।

इध्म—सज्ञा पु० [स०] १ काठ। लकडी। २. यज्ञ की समिधा जो प्राय पलाश या आम की होती है।

यौ०—इध्मजिह्व = अग्नि। इध्मवाह = अगस्त्य ऋषि का एक पुत्र जो लोपामुद्रा से उत्पन्न हुआ था।

इध्मपरिवासन—सज्ञा पुं० [सं०] लकडी की चैली या टुकडा [कौ०]।

इध्मप्रवश्चन—सज्ञा पु० [स०] कुल्हाडी। टाँगी [कौ०]।

इध्मभृति—वि० [स०] ईंधन या लकडी लानेवाला [कौ०]।

इन[1]—सर्व० [हिं०] 'इस' का बहुवचन।

इन[2]—सज्ञा पुं० [स०] १ सूर्य। २ प्रभु। स्वामी। ३ राजा। नरेश (कौ०)। ४ हस्त नाम का नक्षत्र [कौ०]।

इन[3]—वि० १ योग्य। शक्त। क्षम। २ बहादुर। ताकतवर। दृढ। ३. गौरवपूर्ण [कौ०]।

इनग्राम—सज्ञा पु० [अ० इन आम] दे० 'इनाम'। उ०—इन लोगो को एक एक जोडा दुशाला इनआम दो।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५४२।

इनकम—सज्ञा स्त्री० [अ०] आय। आमदनी। अर्थागम।

यौ०—इनकम टैक्स।

इनकमटैक्स—सज्ञा पु० [अ०] आदमी पर महसूल। आय पर कर। आयकर।

इनकलाब—सज्ञा पु० [अ० इनकलाब] परिवर्तन। उलटफेर। उ०—सुना न कानो से या जो हमने वो आँख से इनकलाब देखा।—शेर०, भा० १, पृ० ६६२। २. क्राति। राज्यपरिवर्तन।

यौ०—इनकलाब जिंदाबाद = क्राति चिरजीवी हो। इनकलाब हुकूमत = राज्यक्राति। राज्य सबधी परिवर्तन।

इनकलाबी—वि० [अ० इनकलाबी] क्राति या परिवर्तन लानेवाला।

इनकात—सज्ञा पु० [स० इनकान्त] सूर्यकात मणि [कौ०]।

इनकार—सज्ञा पुं० [अ०] अस्वीकार। नकारना। नामजूरी। नही करना। 'इकरार' का उलटा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

इनकारी[1]—वि० [अ०] इनकार करनेवाला। अस्वीकृतिसूचक [कौ०]।

इनकारी[2]—सज्ञा स्त्री० इनकार या अस्वीकार की स्थिति।

इनकिशाफ—सज्ञा पुं० [अ० इनकिशाफ़] १ गवेषणा। अनुसधान। २. व्यक्त होना। प्रकट होना। जाहिर होना [कौ०]।

इनकिसार—सज्ञा पु० [अ०] खाकसारी। नम्रता। विनय [कौ०]।

इनफार्मर—सज्ञा पुं० [अ० इनफार्मर] वह जो गुप्त रूप से किसी बात का भेद लगाकर पुलिस को बताता है। गोइदा। भेदिया। जैसे,—वह पुलिस का इनफार्मर है।

इनफिकाक—सज्ञा पु० [अ० इनफिकाक] १. रेहन का छुड़ाना। बधक छुडाना। २ मुक्त होना। छूटना (कौ०)। ३ अलग अलग होना (कौ०)।

यौ०—इनफिकाक रेहन।

इनफिसाल—सज्ञा पुं० [अ० इनफिसाल] १. वाद का निर्णय होना। फैसला होना। २. फैसला। निर्णय [कौ०]।

इनफ्लुएजा—सज्ञा पुं० [अ० इनफ्लुएजा] सरदी का बुखार जिसमे सिर भारी रहता है, नाक बहा करनी है और हरारत रहती है।

इनसभ—सज्ञा पुं० [स०] राजसभा। शाही दरबार [कौ०]।

इनसान—सज्ञा पुं० [अ०] १ मनुष्य। आदमी। २ सभ्य। सज्जन [कौ०]।

इनसानियत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ मनुष्यत्व। आदमीयत। २ बुद्धिमानी। बुद्धि। शऊर। ३ भलमनसी। सज्जनता। मुरव्वत।

इनसानी—वि० [अ० इनसान + फा० (प्रत्य०)] १ मानवीय। मानव सबधी। २ सज्जनोचित [कौ०]।

इनसानीयत—सज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'इनसानियत' [कौ०]।

इनसाफ—सज्ञा पुं० [अ० इन्साफ] दे० 'इसाफ'। उ०—मो और भाई मालिक से इनसाफ चाहने के लिये विलायत पहुँचे।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३४६।

इनसालवट, इनसालवेंट—वि० [अ०] वह व्यापारी जो व्यापार मे घाटा आने के कारण अपना ऋण चुकाने में असमर्थ हो। दिवालिया। उ०—तो क्या इनसालवेंट होने की दरख्वास्त देनी पडेगी।—श्री निवास ग्र०, पृ० ३८१।

इनसिदाद—सज्ञा पुं० [अ०] १. बंद होना। रुक जाना। २. निवारण।

यौ०—इनसिदादे जुर्म = अपराधो का रुकना। अपराधो का निवारण। खात्मा [कौ०]।

इनस्टिटयूशन—सज्ञा पुं० [अ० इन्स्टिटयूशन] सस्था। समाज। मडल।

इनहिदाम—सज्ञा पुं० [अ०] १ ढहना। गिरना। २. ध्वस [कौ०]।

इनहिसार—सज्ञा पुं० [अ०] निर्भरता। दारोमदार [कौ०]।

इनान—सज्ञा पुं० [अ०] बल्गा। बाग। लगाम [कौ०]।

यौ०—इनाने हुकूमत = शासन की बागडोर। शासनसूत्र।

इनानी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृक्ष। वटपत्री [कौ०]।

इनाम—सज्ञा पुं० [अ० इनआम] १ पुरस्कार। बखशिश। उपहार। २ माफी जमीन।

यौ०—इनाम इकराम = इनाम जो कृपापूर्वक या सेवा से प्रसन्न होकर दिया जाय। इनामदार = इनाम प्राप्त करनेवाला।

इनायत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ कृपा। दया। अनुग्रह। मेहरबानी। उ०—इनायत है तुम पे यह सर्कार की। तुम्हे दूसरी उसने पोशाक दी।—कविता कौ०, भा० ३, पृ० २१३। २. एहसान।

क्रि० प्र०—करना।—फरमाना।—रखना।

मुहा०—इनायत करना = (१) कृपा करके देना। जैसे,—जरा कलम तो इनायत कीजिए। २ रहने देना। बाज रखना। वंचित रखना (व्यंग्य)। जैसे,—इनायत कीजिए, मैं आपकी चीज नहीं लेता।

इनारा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इँदारा'।

इनारुन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इँदारुन'।

इनारू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इँदारुन'। उ० -मीठा जिसमे जानते थे वह इनारू का फल था।—भारतेंदु ग्र ०, भा० २, पृ० २०५।

इनेगिने— वि० [हिं० इने=गिने की अनुध्व० + गिनना] १. कतिपय। कुछ। चंद। थोड़े से। २ चुने चुनाए। गिने गिनाए। जैसे,—इस विद्या के जाननेवाले अब इने गिने लोग हैं।

इनोदय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्योदय [को०]।

इन्‌जिन—संज्ञा पुं० [हिं० इंजन] दे० 'इंजन'। उ०—इच्छा कर्म सजोगी इन्‌जिन गारड आप अकेला है।—श्यामा०, पृ० ११४।

इन्टरनैशनल—वि० [अं०] दे० 'अंतर्राष्ट्रीय'। जैसे,—इन्टरनैशनल एग्जिबिशन।

इंटरमीडिएट—वि० [अ०] बीच का। मध्य का। मध्यम। जैसे,—इन्टरमीडिएट क्लास उच्चतर माध्यमिक कक्षा।

इन्टरव्यू—संज्ञा पुं० [अ०] १ व्यक्तियों का आपस में मिलना। एक दूसरे का मिलाप। भेंट। मुलाकात। साक्षात् वार्तालाप या प्रश्नोत्तर जैसे,—प्रयाग के एक संवाददाता ने उस दिन स्वराज्य पार्टी की स्थिति जानने के लिये उसके नेता प०मोतीलाल नेहरू का इंटरव्यू किया था। २ परीक्षा अथवा नियुक्ति के लिये किसी समिति के समुख साक्षात्कार के लिये उपस्थित होना।

क्रि० प्र०—करना।—लेना।

३ आपस में विचारों का आदान प्रदान। वार्तालाप। जैसे,—समाचार पत्रों में एक संवाददाता और मालवीयजी का जो इन्टरव्यू छपा है, उसमें मालवीय जी ने देश की वर्तमान राजनीतिक स्थिति पर अपने विचार प्रकट किए हैं।

इन्नर†—संज्ञा पुं० [सं० अनीर = बिना जल का] पेउस (१० दिन के भीतर ब्याई हुई गाय का दूध) में गुड़, सोंठ, चिरौंजी और कच्चा दूध मिलाकर पकाने से वह जम जाता है। इसी जमे हुए दूध को इन्नर कहते हैं।

इन्याम(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इनाम'। उ०—राजमती इन्याम दी। मढी है थानीक चापानेर।—बी० रासो, पृ० ६५।

इन्वका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इल्वला नाम का पाँच तारों का समूह जो मृगशिरा नक्षत्र के ऊपर रहता है।

इन्वायस—संज्ञा पुं० [अ०] १ व्यापारी द्वारा भेजे हुए माल की सूची जिसमें उस माल के दाम आदि का ब्योरा रहता है। बीजक। रवन्ना। २ चालान का कागज।

इन्श्योरेंस—संज्ञा पुं० [अ० इन्श्योरेंस] दे० 'बीमा'। जैसे—लाइफ इन्श्योरेंस, जीवनबीमा।

इन्स—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'इनसान'। उ०—बजुज खालिक जिन, इन्स व बशर, उनकी होनहारी की नईं किस खबर।—दक्खिनी०, पृ० ३७४।

इन्साइक्लोपीडिया—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'विश्वकोश'।

इन्साइक्लोपीडियाब्रिटानिका—संज्ञा पुं० [अ०] अंग्रेजी का एक प्रसिद्ध विश्वकोश। उ०—न एतबार हो तो इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका खोलकर देख लीजिए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४१४।

इन्सोलिन—संज्ञा स्त्री० [अ०] मधुमेह रोकने की दवा। उ०—सिर्फ एक बार शिमला मे इन्सोलिन की सुई लगाई थी।—किन्नर०, पृ० १५।

इन्ह(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'इन'। उ०—इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी।—मानस, १।८५।

इन्हन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० इन्धन] दे० 'इंधन'। उ०—ज्ञान अगिन तामे दियो विषय इन्हन जरि जाय।—भीखा श०, पृ० १००।

इफतरा—संज्ञा पुं० [अ० इफ्तिरह्] १ मिथ्या आरोप। तोहमत। २ व्यर्थ की बात। उ०—बेद कितेब इफतरा भाई दिल का फिकिर न जाई।—कबीर ग्र ०, पृ० १६७।

यौ०—इफतरा परदाज=कलंक लगानेवाला। तोहमत लगानेवाला।

इफतार—संज्ञा पुं० [अ० इफ्तार] रोजा खोलना [को०]।

इफतारी—संज्ञा स्त्री० [अ० इफ्तारी] वह वस्तु जिसे खाकर रोजा खोला जाता है [को०]।

इफरात—संज्ञा स्त्री० [अ० इफरात] अधिकता। ज्यादती। अधिकाई। कसरत। बहुतायत।

इफलास—संज्ञा पुं० [अ० इफ्लास] मुफलिसी। तंगदस्ती। गरीबी। दरिद्रता। आवश्यकता। उ०—वह इफलास अपना छिपाते हैं गोया। जो दौलत से करते हैं नफरत जियादा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६००।

इफलासी— संज्ञा स्त्री० [अ० इफ्लासी] दे० 'इफलास'।

इफाकत—संज्ञा पुं० [अ० इफाकत] १. रोगमुक्ति। २ रोग में सुधार होना। स्वास्थ्यलाभ करना [को०]।

इब(पु)—अव्य [हिं०] दे० 'अब'। उ०—इब तो मोहि लागी बाई उन निहचल चित लियो चुराई।—दादू० पृ० ४७०।

इबतदा—संज्ञा स्त्री० [अ० इब्तिदह्] दे० 'इब्तिदा'। उ०—जो औव्वल मे पैदायश इबतदा, परम आतमा से हुई यह सदा।—कबीर म०, पृ० ३८६।

इबन—संज्ञा पुं० [अ० इब्न] पुत्र। उ० - तेहि के कोख कीन्ह अवतरा। यूसुफ इबन अमीन हुई बारा। - हिंदी प्रेमा०, पृ० २३४।

इबरत-संज्ञा स्त्री० [अ० इब्रत] १ विचित्रता। अद्भुत कार्य। २ चेतावनी। शिक्षा। नसीहत [को०]।

यौ०—इबरतअंगेज = चेतावनी देनेवाला। शिक्षाप्रद। इबरत आमेज=अद्भुत। अद्वितीय। अनोखा।

इबरानी[1]—संज्ञा पुं० [अ०इब्रानी] इब्राहीम नामक पैगंबर के वंशज। यहूदी।

इबरानी[2]—संज्ञा स्त्री० पैलिस्तान देश की प्राचीन भाषा।

इबरानी[3]— वि० यहूद या फिलस्तीन देश का। उस देश से संबंधित।

इबरायनामा—संज्ञा पुं० [फा०] वह पत्र जिसके द्वारा कोई मनुष्य अपने स्वत्व या हक से दस्तबरदार हो। त्यागपत्र।

इबराहीम—संज्ञा पुं० [अ० इब्राहीम] यहूदी जाति के आदि पुरुष जो इस्लाम धर्म के अनुसार एक पैगंबर माने जाते हैं।—उ०—नूह की दसवी पीढी मे इबराहीम उत्पन्न हुआ।—कबीर म०, पृ० ५२।

इबरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० इब्रानी का संक्षिप्त रूप] दे० 'इबरानी'। उ०—इबरी औ अरबी सुर वानी। पारस औ तुरकी मिसरानी।—हिंदी प्रेमा०, पृ० २३३।

इबलीस—संज्ञा पुं० [अ० इब्लीस] शैतान। उ०—खडग दीन्ह उन्ह जाइ कहँ देखि डरै इबलीस।—जायसी ग्रं०, पृ० ३२२।

इबा—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ एक तरह का कंबल। २ बड़ा चोगा [को०]।

इबादत—संज्ञा स्त्री० [अ०] पूजा। आराधना। उ०—उन्हे शौके इबादत भी है और गाने की आदत भी, निकलती हैं दुआएँ उनके मुँह से ठुमरियाँ होकर।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६२२।

यौ०—**इबादतखाना**।

इबादतखाना—संज्ञा पुं० [अ० इबादत + फ़ा० खानह] पूजा करने का स्थान। पूजा गृह। उपासना गृह।

इबारत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ लेख। मजमून। उ०—उसके आसपास फारसी मे बहुत सी इबारत लिखी थी।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १३०। २. लेखशैली। वाक्यरचना। उ०—बस इबारत हो चुकी मतलब प आया चाहिए।—कविता कौ०,भा० ४,पृ०००।

यौ०—**इबारत आराई** = आलंकारिक शैली।

इबारती—वि० [अ० इबारत फ़ा० ई (प्रत्य०)] जो इबारत मे हो। इबारतसबधी।

यौ०—**इबारती सवाल** = वह हिसाब जिसमे राशीकृत अंकों के सबंध मे कुछ पूछा जाय।

इब्तदा—संज्ञा स्त्री० [अ० इब्तिदह्] आरंभ। शुरूआत। उ०—सच य है इन्सान को यूरुप ने हलका कर दिया। इब्तदा डाढ़ी से की औ इंतहा मे मूँछ की।—कविता कौ०, भा० ४, पृ०६२४।

इब्तदाई—वि० [अ० इब्तिदह् + फ़ा० ई (प्रत्य०)] आरंभिक।

इब्तिदा—संज्ञा स्त्री० [अ० इब्तिदह्] १. आरंभ। आदि। शुरू। उ०—इब्तिदा ही मे मर गए सब यार। इश्क की कौन इंतहा लाया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १३३। २ जन्म। पैदाइश। ३ निकास। उठान।

इब्न—संज्ञा पुं० [अ०] पुत्र। बेटा। लडका। उ०—ये फरजंद दो उमर इब्न खत्ताब।—दक्खिनी०, पृ० ३५७।

इब्राहीम—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'इबराहीम'।

इब्राहीमी—संज्ञा पुं० [अ०] एक सिक्का जो इब्राहीम लोदी के वक्त मे जारी हुआ था।

इभ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **अभी या इभ्या**] हाथी। उ०—राघे तेरे रूप की अधिकाइ। इभ टूटत अरु अरुन पगु भए विधना आन बनाइ।—सूर०, १०। २७७६।

इभ[2]—क्रि० वि० [सं० इव] इस प्रकार। ऐसे (डिं०)।

यौ०—**इभ आनन**, इभानन = गणेश। **इभकेशर** = नागकेशर। **इभगंधा** = विषैले फलवाला एक पौधा। **इभदंता** = एक प्रकार का पौधा। **इभपोटा** = अल्पवयस्का हथिनी। **इभपोत** = कम वय का हाथी। **इभभर**—हाथियों का झुंड। **इभयुवति** = मादा हाथी। हथिनी।

इभकणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली। गजपीपल।

इभकुंभ—संज्ञा पुं० [सं० इभकुम्भ] हाथी का मस्तक।

इभनिमीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०]१ विदग्धता। चातुर्य। बुद्धिमत्ता। २. भाँग [को०]।

इभपालक—संज्ञा पुं० [सं०] १ महावत। २ हाथी रखनेवाला व्यक्ति [को०]।

इभमाचल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह [को०]।

इभया—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्णक्षीरी का वृक्ष [को०]।

इभाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेशर का पौधा [को०]।

इभी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी [को०]।

इभोषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली का पौधा [को०]।

इभ्य[1]—वि० [सं०] १. जिसके पास हाथी हो। २ धनवान्। धनी।

यौ०—**इभ्यपुत्र** = धनीपुत्र। रईसजादा।

इभ्य[2]—संज्ञा पुं० १. राजा। २ हाथीवान। महावत। ३ शत्रु।

इभ्यक—वि० [सं०] संपत्तिशाली। धनी [को०]।

इभ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हथिनी। सलई का पेड।

इम(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'इमि'। उ०—(क) निघरक भई कहृति इम लहिए। सा परिकिया लच्छिता कहिए।—नंददास ग्रं०, पृ० १४६। (ख) करत मगलाचार इम नाशत विघ्न अनंत।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४।

इमकान—संज्ञा पुं० [अ० इम्कान] १ संभावना। २ ताकत। मकदूर। बस। काबू। जैसे,—हमने अपने इमकान भर कोशिश कर दी।

इमकानात—संज्ञा पुं० [अ० इम्कान का बहु० व०] संभावनाएँ। उ०—मेरे दिमाग के उड़ने के ज्यादा इमकानात हैं।—दक्खिनी०, पृ० ४६१। ताकत। शक्ति (को०)।

इमकानी—वि० [अ० इम्कानी] संभावित [को०]।

इमकोस—संज्ञा पुं० [सं० कोश] तलवार का म्यान।—(डिं०)।

इमचार—संज्ञा पुं० [सं० चर १] गुप्तचर। गुप्त दूत।—(डिं०)।

इमदाद—संज्ञा स्त्री० [अ० मदद का बहु व०] मदद। सहायता। उ०—दाग कोताही न कर यह वक्त है इमदाद का—शेर०, भा० १, पृ० ६६६।

इमदादी—वि० [अ० इमदाद] १ मदद पानेवाला। जैसे,—इमदादी मदरसा = वह मदरसा जिसे सरकार से कुछ द्रव्य की सहायता मिलती हो। २ इमदाद या सहायता के रूप मे प्राप्त होनेवाला।

इमन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ईमन'। उ०—मीड़ मधुरतम विधुर इमन की।—गीतगुंज, पृ० ६२।

इमरती—संज्ञा स्त्री० [सं० अमृत] एक मिठाई।

विशेष—उर्द की फेंटी हुई महीन पीठी और चौरेठे को तीन चार तह कपडे मे, जिसके बीच एक छोटा सा छेद रहता है, रखकर खौलते हुए घी की तई मे घुमा घुमाकर टपकाते हैं, जिससे कंगन के आकार की बत्तियाँ बनती जाती हैं। घी मे तल लेने पर इनको चीनी के शीरे मे डुबाते हैं।

इमरतीदार--वि० [हिं० इमरती + फा० दार (प्रत्य०)] जिसमे इमरती की भाँति गोल गोल घेरे या वल पडे हो। जैसे,--इमरतीदार कगन।

इमरित(पु)--सज्ञा पुं० [स० अमृत दे० 'अमृत']। उ०--लडिका वाका महा हरामी इमरित मे विष घोरै।--पलटू०, भा० ३,पृ०५४।

इमला--सज्ञा पुं० [अ० इमलाह्] १ वर्तनी। शुद्ध लिखावट। २ वताई हुई इवारत को सही लिखना [को०]।

यौ०--इमलानवीस = वर्तनी के अनुसार या शुद्ध लिखनेवाला।

इमलाक--सज्ञा स्त्री० [अ० मुल्क का वहु० व०] सपत्ति। जायदाद [को०]।

इमली--सज्ञा स्त्री० [स० अम्ल + हिं० ई (प्रत्य०)] १. एक वडा पेड जिसकी पत्तियाँ वहुत छोटी छोटी होती हैं और सदा हरी रहती हैं। इसमे लवी लवी फलियाँ लगती हैं जिनके ऊपर पतला पर कडा छिलका होता है। छिलके के भीतर खट्टा गूदा होता है जो पकने पर लाल और कुछ मीठा हो जाता है। २ इस पेड़ की फली।

मुहा०--इमली घोंटना = विवाह के समय लडके या लडकी का मामा उसको आम्रपल्लव दांत से खोटाता है और यथाशक्ति कुछ दक्षिणा भी वाँटता है। इसी रीति को 'इमली घोटना' कहते हैं।

इमसाक--सज्ञा पुं० [अ० इम्साक] १ रुकावट। २. आकर्षण। खिचाव। ३. कजूसी [को०]।

इमसाल--सज्ञा पुं० [फा० इम्साल] इस वर्ष [को०]।

इमाम--सज्ञा पुं० [अ०] [वि० इमामी] १ अगुआ। २. पुरोहित। मुसलमानो के धार्मिक कृत्य करानेवाला मनुष्य। ३ अली के वेटो की उपाधि। ४ मुसलमानो की तसवीह या माला का सुमेर।

इमामजिस्ता--सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इमामदस्ता'। उ०--यह तन कीजै इमामजिस्ता खमीर सवै करि डारिया रे।--स० दरिया०, पृ० ६६।

इमामत--सज्ञा स्त्री० [अ०] इमाम का पद। पेशवाई [को०]।

इमामदस्ता--सज्ञा पुं० [फ़ा० हावन + दस्तह्] एक प्रकार का लोहे या पीतल का खल वट्टा।

इमामा--सज्ञा पुं० [अ० अम्मामह्] एक प्रकार की वडी पगडी। अमामा।

इमामवाडा--सज्ञा पुं० [अ० इमाम + फा० वारह, हिं० वाडा] वह हाता जिसमे शीया लोग ताजिया रखते और उसे दफन करते है।

इमारत--सज्ञा स्त्री० [अ०] १ वडा और पक्का मकान। २ वैभव। शानशौकत। उ०--आप मे हिंदोस्तानी इमारत पूरे तौर पर मौजूद है।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६१।

इमारती--वि० [फा०] मकान का। मकान से सवधित। जैसे,--इमारती सामान।

इमि(पु)--क्रि० वि० [स० एवम्] इस प्रकार। इस तरह। ऐसे। उ०--होहिं प्रेम वस लोग इमि राम जहाँ जहँ जाहिं।--मानस, २। १२१।

इमोशन--संज्ञा पुं० [अ०] १. संवेग (मनोवै०)। २ भाव। मनोविकार। उ०--अँगरेजी मे भाव को इमोशन और फारसी मे जजवा कहते हैं।--रस क०, पृ० ३६।

इम्तहान--सज्ञा पुं० [अ०] परीक्षा। जाँच। 'इम्तिहान'। उ०--साफ कव इम्तहान लेते हैं। वह तो दम दे के जान लेते हैं।--शेर०, भा० १, पृ० ६७२।

इम्तिनाई--वि० [अ०] रोक लगानेवाला [को०]।

इम्तिनाय--सज्ञा पुं० [अ०] निषेध। रोग मनाही [को०]।

इम्तियाज--सज्ञा पुं० [अ० इम्तियाज़] १. भेद। अतर। २ विवेक। गुण दोष की पहचान। उ०--देख इकवार चश्म अपना करके वाज। गर तुजे किस वात का है इम्तियाज।--दक्खिनी०, पृ० २०४।

इम्तिहान--सज्ञा पुं० [अ०] १ दे० 'इम्तहान'। २ परख (को०)।

इम्पीरियल--वि० [अ०] साम्राज्य या सम्राट् सवंधी। राजकीय। शाही। जैसे,--इम्पीरियल सर्विस = राजकीय नौकरी।

इम्पीरियलगवर्नमेंट--सज्ञा स्त्री० [अ०] साम्राज्य सरकार। वडी सरकार। जैसे,--भारत में अग्रेजी सरकार को भी इपीरियल गवर्नमेंट अर्थात् वडी सरकार कहते थे।

इम्पीरियलप्रेफरेन्स--सज्ञा पुं० [अ० इम्पीरिल प्रेफरेंस] साम्राज्य की वस्तुओ पर उसके अधीनस्थ देश मे इस प्रकार आयात निर्यातकर वैठाने की नीति जिससे वह दूसरे देशो के मुकावले मे सस्ता माल वेच सके। साम्राज्य की वनी वस्तुओ को प्रशस्तता देना।

इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स--सज्ञा स्त्री० [अ०] अग्रेजी शासनकाल मे वह सेना जो भारत के देशी रजवाड़े भारत सरकार के सहायतार्थ अपने यहाँ रखते थे और जिसकी देखभाल व्रिटिश अफसर करते थे। आपत्काल में सरकार इस सेना से काम लेती थी।

इम्पोर्ट--सज्ञा पुं० [अ०] पुं० 'आयात'। जैसे,--इम्पोर्ट ड्यूटी = आयातकर।

इम्रित(पु)--सज्ञा पुं० [स० अमृत] दे० 'अमृत'।

इयत्--वि० [स०] इतने विस्तारवाला। इतना वडा [को०]।

इयत्ता--सज्ञा स्त्री० [सं०] सीमा। हद। परिमिति। उ०--तूने अपने ज्ञान की इयत्ता का खूव अच्छा प्रमाण दिया।--कालिदास, पृ० ६७।

इयार(पु)†--सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यार'। उ०--जग मे जीवन थोरा थोरा वो इयार जी।--स० दरिया, पृ० १६८।

इरखा(पु)†--सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईर्षा'। उ०--सौतिन्ह कर इरखा नहिं करना। साईं सग सदा जिय डरना।--चित्रा०, पृ० २२४।

इरखाना(पु)--क्रि० अ० [स० ईर्ष्या] ईर्ष्या करना। डाह करना। उ०--उनीदति अलसाति सोवत सधीर चौंकि चाहि चित अमित सगर्व इरखानि है।--भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १४१।

इरण--सज्ञा पुं० [स०] मरुभूमि। मरुस्थल [को०]।

इरम्मद[1]--वि० [स०] १ पीने मे रुचि रखनेवाला। २ अग्नि का विशेषण [को०]।

इरम्मद[2]--सज्ञा पुं० १. मेघज्योति। विद्युत। २. वडवाग्नि [को०]।

इरशाद--सज्ञा पुं० [अ० इर्शाद] दे० 'इर्शाद'। उ०--देखते ही मुझे महफ़िल

मे यह इरशाद हुआ, कौन बैठा है उमे लोग उठाते भी नहीं।—शेर०, भा० १, पृ० ६७७ ।

इरषा(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० ईर्ष्या] दे० 'ईर्ष्या' । उ०—इद्र देखि इरषा मन लायो । करि कै क्रोध न जल बरसायो।—सूर०,५ २।

इरषित(पु)—वि० [स० ईर्षित] दे० 'ईर्षित' ।

इरसाल—संज्ञा पुं० [अ० इर्साल] १ प्रेषण। २. उपहार। भेंट।

इरसी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पहिए की धुरी ।

इरा—संज्ञा स्त्री० [स०] १ कश्यप की वह स्त्री जिससे वृहस्पति या उद्‌भिज उत्पन्न हुए। २ भूमि। पृथ्वी। ३. वाणी। वाचा। ४ जल। ५ अन्न। ६ मदिरा। शराब ।

यौ०—इराक्षीर=क्षीरसागर। इराचर= (१) ओला। करक। (२) जलचर। (३) भूमि मे उत्पन्न ।

इराज—संज्ञा पु० [सं०] कामदेव [को०]।

इराक—संज्ञा पु० [अ०] पश्चिम एशिया का एक देश ।

इराकी[1]—वि० [अ०] इराक देश का ।

इराकी[2]—संज्ञा पुं० १ घोडो की एक जाति। उ०—सुमडे घुमडे उमडे इराकी।—पद्माकर ग्र०, पृ० २८० । २. इराक देश का निवासी ।

इरादतन—अ० [अ०] इरादा करके। विचारपूर्वक। जानबूझकर [को०]।

इरादा—संज्ञा पुं० [अ० इरादह्] विचार। सकल्प। उ०—वदली जो उनकी आँखें, इरादा वदल गया।—बेला, पृ०, ८३ ।

इरावत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक पर्वत का नाम। २ एक सर्प का नाम। ३ अर्जुन का एक पुत्र जो नागकन्या उलूपी से उत्पन्न हुआ था। इसका नाम वभ्रुवाहन था। ४. समुद्र। ५. मेघ।

इरावत्[2]—वि० तृप्तिदायक। सुखद [को०]।

इरावती—संज्ञा स्त्री० [स०] १ कश्यप ऋषि की भद्रमदा नाम की पत्नी से उत्पन्न कन्या, जिसका पुत्र ऐरावत नामक महागज हुआ। २ ब्रह्म देश की एक नदी। ३ पटपत्री। पथरचट।

इरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [को०]।

इरिण—संज्ञा स्त्री० [स०] ऊसर। ईरिण [को०]।

इरिमेद—संज्ञा पुं० [सं०] अरिमेदे। विट्खदिर [को०]।

इरिविल्ला, इरिवेल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सनिपात से उत्पन्न सिर की फुसी ।

इरिषा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईर्ष्या' । उ०—जहँ प्रीतम को करत है कपट अनादर वाल। कछु इरिषा कछु मद लिए सो विव्वोक रसाल।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १४८।

इरेश—संज्ञा पुं० [स०] १. विष्णु। २ गणेश। ३. वरुण। ४. ब्राह्मण। ५. सम्राट् [को०]।

इर्गइ—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० इर्गला] दे० 'अर्गल' ।

इर्तकाव—संज्ञा पुं० [अ० इर्तिकाब] १ पार करना। २. कोई अपराध करना ।

यौ०—इर्तकावेजुर्म=अपराध करना ।

इर्द गिर्द—क्रि० वि० [अनु० इर्द+फ़ा० गिर्द] १. चारो ओर। चारो तरफ। २. आसपास। इधर उधर। अगल बगल ।

इर्वारु, इर्वालु[1]—वि० [स०] हिंसक [को०]।

इर्वारु, इर्वालु[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार की ककडी [को०]।

यौ०—इर्वारुशुक्तिका=एक प्रकार का खरबूजा ।

इर्वाएक—संज्ञा पुं० [स०] माँद के अतर्गत रहनेवाला जानवर [को०]।

इर्शाद—संज्ञा पुं० [अ०] १. आज्ञा। हुक्म। उ०—यूँ आँख उनकी फर्के इशारा पलट गई। गोया कि लव से होके कुछ इर्शाद रह गया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ०, ५४८। २ पथप्रदर्शन।

इर्षना(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० एषणा] प्रवल इच्छा। उ०—छूटी त्रिविध इर्षना गाढी। एक लालसा उर अति बाढी।—तुलसी (शब्द०)।

इल[1]—संज्ञा पुं०[स०] कर्दम प्रजापति के एक पुत्र का नाम जो वाह्लीक देश का राजा था ।

इल[2]—संज्ञा स्त्री० [स० इला] पृथिवी। धरती। उ०—राक्षस हनि दाढे इल गह काढे सो थिर माडे निज सेनम्।—राम० धर्म०, पृ० १७६ ।

इलजाम—संज्ञा पुं० [अ० इल्जाम] १. दोष। कलक। अपराध। उ०—मैं इलजाम उनको देता था कुसूर अपना निकल आया।—शेर०, भा० १, पृ० ४७७। २ अभियोग। दोषारोपण। उ०—चुप रहेंगे हया से वे कब तक, गुस्सा इलजाम से तो आएगा।—शेर०, भा० १, पृ० ६६०।

क्रि० प्र०—लगाना।—देना।

इलता—संज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का बाँस जो दक्षिण भारत के मैदानो और पहाडो मे होता है। उसमे बहुत बडे बडे फूल और फल लगते है। इसके छोटे छोटे कल्लो से बहुत अच्छा कागज बनता है ।

इलम(पु)—संज्ञा पु० [अ० इल्म] दे० 'इल्म'। उ०—दादू अलिफ एक अल्ला का जे पढि जाणै कोई। कुरान कतेबाँ इलम सब पढि करि पूरा होई।—दादू०, पृ० ४७ ।

इलमास—संज्ञा पुं० [अ०] १ हीरा। २ शीशा [को०]।

इलय—वि० [स०] गतिविहीन [को०]।

इलव—संज्ञा पुं० [स०] १ हलवाहा। २. गरीब आदमी। ३ किसान। कर्षक ।

इलविला—संज्ञा स्त्री० [स०] १. विश्रवा की स्त्री, तृणबिंदु की कन्या और कुबेर की माता का नाम। २ पुलस्त्य की स्त्री ।

इलहाक—संज्ञा पुं० [अ० इल्हाक़] १ संबंध। मिलना। संयोजन। २ किसी वस्तु को किसी दूसरी वस्तु के साथ मिला देने का कार्य ।

इलहाकदार—संज्ञा पु० [अ० इल्हाक़+फा० दार] वह मनुष्य जिसके साथ बदोवस्त के वक्त मालगुजारी अदा करने का इकरारनामा हो। नबरदार या लबरदार ।

इलहाम—संज्ञा पुं० [अ० इल्हाम] ईश्वर का शब्द। देववाणी। ईश्वरीय प्रेरणा। आत्मा की आवाज। आत्मिक दृष्टि।

इलहामी—वि० [अ० इल्हामी] जिसको इलहाम हुआ हो। ईश्वर द्वारा प्रेरित। अतरात्मा मे स्फुरित ज्ञान से सबद्ध। [को०]।

यौ०—इलहामी किताब=ईश्वरीय प्रेरणा से रचित पुस्तक। धर्मग्रंथ ।

इला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी। २ पार्वती। ३ सरस्वती। वाणी। ४. बुद्धिमती स्त्री। ५ गौ। धेनु। ६ वैवस्वत मनु की कन्या जो बुध को ब्याही थी और जिससे पुरूरवा उत्पन्न हुआ था। इडा। ७ राजा इक्ष्वाकु की एक कन्या का नाम। ८ कर्दम प्रजापति का एक पुत्र जो पार्वती के शाप से स्त्री हो गया था। ९. एक की सख्या।

इलाका—संज्ञा पुं० [अ० इलाकः] १ सबध। लगाव। उ०—कैंधौ कछू राखै राकापति सों इलाका भारी भूमि की सलाका कै पताका पुन्यगान की।—पद्माकर ग्र०, पृ० २६२। २ एक से अधिक मौजे की जमींदारी। राज्य। रियासत। उ०—यह दानपत्र युधिष्ठिर के सवत् १११ का है जो इलाका मैसूर मे मिला है।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० १३५।
यौ०—इलाकेदार।

इलाचा—संज्ञा पुं० [देश०] एक कपडा जो रेशम और सूत मिलाकर बुना जाता है।

इलाज—संज्ञा पुं० [अ०] १ दवा। औषध। २. चिकित्सा। ३ निवारण का उपाय, युक्ति या तदबीर। उ०—उदर भरन के कारनै प्रानी करत इलाज।—प० सप्तक, पृ० ३३०।

इलादा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलहदा'। उ० शब्द पढ क्या सुनाता है भेद सबसे इलादा है। सत तुलसी०, पृ० ३६।

इलापत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम।

इलाम(पु)—संज्ञा पुं० [अ० ऐलान] १ इत्तलानामा। २. हुक्म। आज्ञा। उ०—ठान्यो न सलाम, मान्यो साहि को इलाम, धूमधाम कै न मान्यो रामसिंह हू को बरजा।—भूषण ग्र०, पृ० ५८।

इलायची—संज्ञा स्त्री० [स० एला + ची, फा० 'च' (प्रत्य०)] एक सदाबहार पेड जिसकी शाखाएँ खडी और चार से आठ फुट तक ऊँची होती हैं। यह दक्षिण मे कनारा, मैसूर, कुर्ग तिरुवाकुर और मदुरा आदि स्थानो के पहाडो जगलो मे आप से आप होता है। यह दक्षिण मे लगाया भी बहुत जाता है।
विशेष—इलायची के दो भेद होते हैं, सफेद (छोटी) और काली (बडी)। सफेद इलायची दक्षिण मे होती है और काली इलायची या बडी इलायची नैपाल मे होती है, जिसे बँगला इलायची भी कहते हैं। बडी इलायची तरकारी आदि तथा नमकीन भोजनो के मसालो मे दी जाती है। छोटी इलायची मीठी चीजो मे पडती है और पान के साथ खाई जाती है। सफेद या छोटी इलायची के भी दो भेद होते हैं—मलाबार की छोटी और मैसूर की बडी। मलाबारी इलायची की पत्तियाँ मैसूर इलायची से छोटी होती हैं और उनकी दूसरी ओर सफेद सफेद बारीक रोईं होती है। इसका फल गोलाई लिये होता है। मैसूर इलायची की पत्तियाँ मलाबारी से बडी होती हैं और उनमे रोईं नहीं होती। इसके लिये तर और छायादार जमीन चाहिए, जहाँ से पानी बहुत दूर न हो। यह कुहरा और समुद्र की ठढी हवा पाकर खूब बढ़ती है। इसे धूप और पानी दोनो से बचाना पडता है। क्वार कार्तिक में यह बोई जाती है अर्थात् इसकी बेहन डाली जाती है। १७-१८ महीने मे जब पौधे चार फुट के हो जाते हैं, तब उन्हें खोदकर सुपारी के पेडो के नीचे लगा देते हैं और पत्तों की खाद देते रहते हैं। लगाने के एक ही वर्ष के भीतर यह चैत बैसाख में फूलने लगता है और असाढ सावन तक उसमें ढोंढी लगती है। क्वार कार्तिक मे फल तैयार हो जाता है और इसके गुच्छे या घौद तोड लिए जाते हैं और दो तीन दिन सुखाकर फलो को मलकर अलग कर लेते हैं। एक पेड मे पाव भर लगभग इलायची निकलती है। इसका पेड १० या १२ वर्ष तक रहता है। कुर्ग से इलायची गुजरात होकर और प्रातो मे जाती थी, इसी से इसे गुजराती इलायची भी कहते हैं।
यौ०—इलायची डोरा = इलायची की ढोंढी।

इलायचीदाना—संज्ञा पुं० [हिं० इलायची + फा० दाना] १. इलायची का बीया या दाना। २ एक प्रकार का मिठाई। चीनी पागा हुआ इलायची या पोस्ते का दाना।

इलायची पंडू—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जगली फल।

इलावर्त(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'इलावृत्त'।

इलावृत, इलावृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] जबू द्वीप के नौ खडो मे से एक
विशेष—भागवत के अनुसार यह सुमेरु पर्वत को घेरे हुए है। इसके उत्तर मे नील, दक्षिण मे निषध पश्चिम मे माल्यवान् और पूर्व मे गधमादन पर्वत है।

इलाही¹—संज्ञा पुं० [अ०] ईश्वर। परमेश्वर। परमात्मा। भगवान्। खुदा। उ०—यह रग कौन रगे तेरे सिवा इलाही।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३१३।

इलाही²—वि० ईश्वरसबधी। ईश्वरीय। जैसे,—कजाए इलाही। उ०—कौन को कलेऊ धौं करैया भयो काल अरु का पै धौं परैया भयो गजब इलाही है।—पद्माकर ग्र०, पृ० २२८।

इलाहीखर्च—संज्ञा पुं० [अ० इलाही + फा० खर्च] फजूल खर्च। अधिक खर्च। बेहिसाब खर्च। अपव्यय।

इलाहीगज—संज्ञा पुं० [अ० इलाही + फा० गज] अकबर का चलाया हुआ एक प्रकार का गज जो ४१ अगुल (३३¼ इच) का होता है और जो अब तक इमारत आदि नापने के काम मे आता है।

इलाहीमुहर¹—वि० [अ० इलाही + फा० मुहर] ज्यों का त्यों। अछूता। खालिस।

इलाहीमुहर²—संज्ञा स्त्री० अमानत। धरोहर। न्यास।

इलाहीरात—संज्ञा स्त्री० [अ०] रतजगे की रात।

इलाहीसन्—संज्ञा पुं० [अ० इलाही + हिं० रात] अकबर बादशाह का चलाया एक सन् या सवत्।

इलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी [को०]।

इली—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी तलवार। कटार [को०]।

इलीश, इलीष—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिलसा मछली।

इलेक्ट्रिक—वि० [अ०] बिजली सबधी। बिजली का।
यौ०—इलेक्ट्रिक पावर = बिजली की शक्ति। इलेक्ट्रिक लाइट = बिजली की रोशनी।

इलेक्ट्रिकल—वि० [अ०] बिजली सबधी [को०]।

इलेक्ट्रीसिटी—संज्ञा स्त्री० [अ०] बिजली। विद्युत् [को०]।

इलेक्ट्रो¹—संज्ञा पुं० [अ०] बिजली द्वारा तैयार किया हुआ। इलेक्ट्रिक का। जैसे,—इलेक्ट्रो टाइप, इलेक्ट्रो प्रेस।

इलेक्ट्रो[2]—संज्ञा पुं० तसवीर आदि का वह ठप्पा या ब्लाक जो बिजली की सहायता से तैयार किया गया हो।

यौ०—**इलेक्ट्रो टाइप** = बिजली द्वारा किया जानेवाला अंकन या खुदाई का कार्य। **इलेक्ट्रोपैथी** = बिजली के तरंगसंचार द्वारा किसी रोग की चिकित्सा करने की प्रक्रिया।

इलेक्ट्रोन—संज्ञा पुं० [अं०] परमाणु (ऐटम) का अवयव जो उसके नाभिक (न्यूक्लियस) का चक्कर लगाता रहता है और जिसमें विद्युत् का ऋणावेश होता है।

इल्जाम—संज्ञा पुं० [अ० इल्ज़ाम] आरोप। दोषारोपण। उ०—इल्जाम यह रखा है खिलवत में कहा होता।—शेर०, भा० १, पृ० ६६५।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

इल्तजा—संज्ञा स्त्री० [अ० इल्तिजह्] दे० 'इल्तिजा'। उ०—कहीं वह आके मिटा दें न इन्तजार का लुत्फ। कहीं कबूल न हो जाय इल्तजा मेरी।—शेर०, भा० १, पृ० ५४५।

इल्तमास—संज्ञा स्त्री० [अ० इल्तिमास] अनुरोध। प्रार्थना। उ०—(क) सुबह तक शमा सर को धुनती रही। क्या पतंगे ने इल्तमास किया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १७२। (ख) मेरी आप से यही इल्तमास है कि आप उसकी वजारत कबूल करें।—मान०, भा० १, पृ० १८७।

इल्तिजा—संज्ञा स्त्री० [अ० इल्तिजह्] १ निवेदन। प्रार्थना। २ मिन्नत। खुशामद।

क्रि० प्र०—करना।

इल्तिफात—संज्ञा स्त्री० [अ० इल्तिफात] १ कृपा। दया। २ ध्यान देना [को०]।

इल्तिबास—संज्ञा पुं० [अ०] समानता। सादृश्य [को०]।

इल्तिवा—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० मुल्तवी] किसी कार्य के लिये स्थिर समय का टल जाना। तारीख टलना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अदालती कार्रवाइयों में अधिक होता है।

इल्म—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० इल्मी] विद्या। ज्ञान। जानकारी। उ०—इल्म और दौलत जहाँ से मिले हासिल करनी चाहिए।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १२४।

यौ०—**इल्मेअदब** = साहित्यशास्त्र। **इल्मेइलाही** = ब्रह्मविद्या, अध्यात्म। **इल्मेगैब** = परोक्षविज्ञान। **इल्मेनुजूम** = ज्योतिष विज्ञान।

इल्लत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ रोग। बीमारी। २ बाधा। झंझट। जैसे,—बुरी इल्लत पीछे लगी। ३ लत। व्यसन। उ०—पापों के बढ़ते दिल टूटें इल्लत की सहज लतें छूटें।—बेला, पृ० ७९। ४ दोष। अपराध। जैसे,—वह किस इल्लत में गिरफ्तार हुआ था।

मुहा०—**इल्लत पालना** = बुरी आदत डाल लेना।

यौ०—**इल्लत आफताब** = कमल रोग। **इल्लत फाइली** = निमित्त कारण। **इल्लत माद्दी** = उपादान कारण।

इल्लल—संज्ञा पुं० [सं०] एक पक्षी [को०]।

इल्ला[1]—संज्ञा पुं० [सं० कील] छोटी कड़ी फुंसी जो चमड़े के ऊपर निकलती है। यह मसे के समान होती है।

इल्ला[2]—अव्य० [अ० इल्लह्] किंतु। लेकिन। पर। उ०—इल्ला, अब जब कि हम दोनों एक तीसरे की रिआया हैं"'। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६।

इल्लिश, इल्लिस—संज्ञा पुं० [सं०] इलीश। हिलसा मछली [को०]।

इल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० इल्लिका] चींटी आदि के बच्चों का वह पहला रूप जो अंडे में निकलने के उपरांत तुरत होता है।

इल्वल—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक दैत्य या असुर का नाम।

विशेष—इसका एक नाम आतापि भी था। यह अपने छोटे भाई वातापि को भेड़ा बनाकर ब्राह्मणों को खिला देता और फिर उसका नाम लेकर बुलाता था। तब वह ब्राह्मण का पेट फाड़कर निकल आता था। इन दोनों को अगस्त्य मुनि खाकर पचा गए थे।

२ ईल या बाम मछली।

इल्वला—संज्ञा पुं० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र के सिर पर रहनेवाले पाँच तारों का समूह।

इव—अव्य० [सं०] उपमावाचक शब्द। समान। नाईं। तरह। सदृश। तुल्य। जैसे। उ०—निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपै अवा इव उर अधिकाई।—मानस १। ५८।

इवापोरेशन—संज्ञा पुं० [अं० इवैपोरेशन] गरमी पाकर किसी पदार्थ का भाप के रूप में परिवर्तित होना। भाप बनकर उड़ना। वाष्पन। वाष्पीभवन। वाष्पीकरण। उच्छोषण।

इशरत—संज्ञा स्त्री० [अ०] सुख। चैन। आराम। भोग विलास। उ०—फिर वह चर्चे हों फिर वही बातें। दिन हों इशरत के, ऐश की रातें।—शेर०, भा० १ पृ० ३७७।

यौ०—ऐश व इशरत।

इशरती—वि० [अ० इशरत + ई (प्रत्य०)] आरामतलब। विलासी। उ०—इशरती घर की मुहब्बत का मजा भूल गए।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६३३।

इशा—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ संध्या। २ रात। ३ रात की नमाज [को०]।

इशारत—संज्ञा स्त्री० [अ०] इशारा। संकेत। उ०—न मुझसे बोला न की इशारत न दी तसल्ली न कुछ सँभाला।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३२५।

इशारा—संज्ञा पुं० [अ० इशारह्] १ सैन। संकेत। चेष्टा। उ०—यूँ आँख उनकी करके इशारा पलट गई। गोया कि लब से होके कुछ इर्शाद रह गया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५४८। २, संक्षिप्त कथन। उ०—जो इशारे में काम हो सकता तो मुझको इतने बढ़ाकर कहने में क्या लाभ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २७२। ३ बारीक सहारा। सूक्ष्म आधार। जैसे,—एक लकड़ी के इशारे पर यह संदूक ऊपर टिका है। ४ गुप्त प्रेरणा। जैसे,—इन्हीं के इशारे से उसने यह काम किया।

यौ०—**इशारेबाजी** = इशारा करना।

इशारात—संज्ञा पुं० इशारा का बहुवचन दे० 'इशारा'। उ०—क्या बात कोई उस बुते ऐयार की समझे। बोले है जो हमसे तो इशारात कहीं और।—कविता कौ० भा० ४, पृ० २२३।

इशिका, इशीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'इषीका'।

इश्क—संज्ञा पुं० [अ० इश्क़] [वि० आशिक़, माशूक़] मुहब्बत। चाह।

प्रेम। लगन। अनुराग। आसक्ति। उ०—गम बहुत दुनिया मे है पर इश्क का गम और है। है इसी आलम मे लेकिन उनका आलम और है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २२८।

यौ०—इश्कमजाजी = लौकिक प्रेम। वासनायुक्त प्रेम। इश्कहकीकी = आध्यात्मिक प्रेम। ईश्वर के प्रति प्रेम।

इश्कबाज—वि० [फा० इश्कबाज़] इश्क करनेवाला। प्रेमी। [कौ०]।

इश्कबाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० इश्क़+फा० बाजी] प्रेम के चक्कर मे पड़ना। उ०—इश्कबाजी बाजिए शतरंज है। चाल नादाँ रह गया दाना चला।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५१४।

इश्कपेचाँ—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार की बेल जिसकी पत्तियाँ सूत की तरह बारीक होती हैं और जिसमे लाल फूल लगते हैं। उ०—(क) दरख्तों को सुखाता है लपटना इश्कपेचाँ का।—कविता कौ०,भा० ४,पृ० ३६४। (ख) अंत मे जब वो इश्कपेचे की बेल पर जाकर बैठा तब मुझे उसके पकडने का समय मिला।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३६२।

इश्किया—वि० [अ० इश्क़ियह्] प्रेमसबंधी। शृंगारिक।

इश्तहार—संज्ञा पुं० [अ०] विज्ञापन। नोटिस। जाहिरात। एलान। उ०—शहरों शहरों मुल्कों मुल्कों मे उन्हीं का इश्तहार।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १४१।

इश्तहारी—वि० [अ०] विज्ञापित। जिसके लिये नोटिस या सूचना निकाली गई हो [कौ०]।

इश्तियाक—संज्ञा पुं० [अ० इश्तियाक़] १ शौक। २. इच्छा। अभिलाषा [कौ०]।

इश्तियाल—संज्ञा पुं० [अ०] १ दे० 'इश्तियालक'। २ भडकाना। उत्तेजित करना। ३ लौ। लपट [कौ०]।

इश्तियालक—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ वह सीक जो बत्ती बढाने के लिये दीपक मे पडी रहती है। टहलवी। २ बढ़ावा उत्तेजना।

क्रि० प्र०—देना।

इश्तिराक—संज्ञा पुं० [अ०] शिरकत। साझेदारी [कौ०]।

इश्तिहा—संज्ञा स्त्री० [अ० इश्तिहह] १. चाह। अभिलाषा। २ बुभुक्षा। भूख [कौ०]।

इष—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्वार का महीना। आश्विन। २ बलवान् व्यक्ति।

इषण, इषणा(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं० एषणा] प्रबल इच्छा। कामना। ख्वाहिश। वासना।

इषणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भेजना। २ अभिलाषा [कौ०]।

इषराया—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्कट अभिलाषा। प्रबल इच्छा [कौ०]।

इषना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इषणा] दे० 'इषणा'।

इषव्य—वि० [सं०] बाणविद्या मे निपुण [कौ०]।

इषित—वि० [सं०] १ चलाया हुआ। २. प्रेषित। ३ उत्तेजित। प्रेरित। ४ तीव्र। प्रचंड [कौ०]।

इषीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गाँडर या मूँज के बीच की सीक जिसके ऊपर जीरा या भूआ होता है। २ बाण। तीर। ३. हाथी की आँख का ढेला।

इषु—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाण। तीर। २. क्षेत्रगणित मे वृत्त के अतर्गत जीवा के मध्यबिंदु से परिधि तक खीची हुई सीधी रेखा। दे० 'शर'। ३ पाँच की संख्या।

इषुकार—संज्ञा पुं० [सं०] बाण बनाने का काम करनेवाला हो [कौ०]।

इषुधर—संज्ञा पुं० [सं०] बाण चलानेवाला व्यक्ति। धनुर्धर [कौ०]।

इषुधि—संज्ञा पुं० [सं०] तूण। तूणीर। तरकश।

इषुधी—संज्ञा पुं० [सं० इषुधि] दे० 'इषुधि'। उ०—नेकु जही दुचितो चित कीन्हो। शूर बडी इषुधी धनु दीन्हो।—केशव (शब्द०)।

इषुध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गिडगिडाना। निवेदन करना [कौ०]।

इषुपथ—संज्ञा पुं० [सं०] बाण की मार। बाण की पहुँच [कौ०]।

इषुपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [कौ०]।

इषुमात्र—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष के बराबर लंबा एक माप जो लगभग तीन फुट का होता है।

इषुमान[1]—वि० [सं० इषुमत <इषुमान्] बाण चलानेवाला। तीरदाज। उ०—तब इषुमान प्रधान चलेउ इषुमान ज्ञानधर। देवश्रवा सतान समर पर सान मान हर।—गोपाल (शब्द०)।

इषुमान[2]—संज्ञा पुं० वसुदेव का भाई। देवश्रवा का पुत्र।

इषूपल—संज्ञा पुं० [सं०] किले के फाटक पर रखी जानेवाली एक प्रकार की तोप जिसमे कंकड पत्थर डालकर छोडे जाते थे।

इष्ट[1]—वि० [सं०] १ अभिलषित। चाहा हुआ। वाछित। जैसे,—(क) परिश्रम से इष्ट फल की प्राप्ति होती है। (ख) हमे वहाँ जाना इष्ट नही है। २ अभिप्रेत। जैसे,—ग्रथकार का इष्ट यह नही है। ३ पूजित। ४ अनुकूल। ५ प्रिय।

यौ०—इष्टदेव।

इष्ट[2]—संज्ञा पुं० १. अग्निहोत्रादि शुभ कर्म। इष्टापूर्त। धर्मकार्य। २. वह देवता जिसकी पूजा से कामना सिद्ध होती है। इष्टदेव। कुलदेव। ३ अधिकार। वश। जैसे,—उसको देवी का इष्ट है। ४. मित्र। दोस्त।

यौ०—इष्टमित्र।

५. पति। ६ रेंड का पेड। ७ ईंट।

इष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ईंट। यज्ञकुंड बनाने की ईंट।

इष्टकाचित—वि० [सं०] ईंटो द्वारा निर्मित [कौ०]।

इष्टकाचिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईंटो की पक्तिबद्ध जोडाई। उ०—इस स्तूप की इष्टकाचिति अपने ढग की अनूठी है।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ३०६।

इष्टकान्यास—संज्ञा पुं० [सं०] शिलान्यास। नींव रखना [कौ०]।

इष्टकापथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुगधित घास की जड। २ ईंट द्वारा निर्मित मार्ग [कौ०]।

इष्टकाल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष मे किसी घटना के घटित होने का ठीक समय।

इष्टगध—संज्ञा पुं० [सं० इष्टगन्ध] १ सुगधित वस्तु। २. सिकता। बालू [कौ०]।

इष्टजन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रिय व्यक्ति [कौ०]।

इष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मित्रता। मिताई। दोस्ती।

इष्टदेव—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राराध्यदेव। पूज्यदेवता। वह देवता जिनको पूजा से कामना सिद्ध होती हो। कुलदेवता। उ०—लहै बडाई देवता इष्टदेव जब होइ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२६।

इष्टदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'इष्टदेव'।

इष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रिया। प्रेमिका [को०]।

इष्टापत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वादी के कथन मे प्रतिवादी की दिखाई हुई ऐसी ग्रापत्ति जो उक्त कथन में किसी प्रकार का व्याघात या अंतर न डाल सके और जिसे अनुकूल होने से वादी स्वीकार कर ले। जैसे, वादी ने कहा—जीव ब्रह्म है। प्रतिवादी ने कहा—तो ब्रह्म भी जगत की झूठी कल्पना करके फँसा हुआ। वादी—हाँ, इससे क्या हानि।

इष्टापूर्त्त—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्र करना, कुग्राँ, तालाब खुदाना, बगीचा लगवाना आदि शुभ कर्म।

विशेष—वेद का पठनपाठन, अतिथिसत्कार और अग्निहोत्र इष्ट कहलाते हैं, और कुआँ, तालाब खुदाना, देवमंदिर बनवाना, बगीचा लगाना आदि कर्म इष्टापूर्त कहलाते हैं। बडे बडे यज्ञों के बंद होने पर इष्टापूर्त का प्रचार अधिकता से हुआ है।

इष्टापूर्त्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १ 'इष्टापूर्त'। २ काम्य या वांछित की सिद्धि या उपलब्धि।

इष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ इच्छा। अभिलाषा। २ व्याकरण मे भाष्यकार की वह सम्मति जिसके विषय मे सूत्रकार ने कुछ न लिखा हो। व्याकरण का वह नियम जो सूत्र और वार्तिक में न हो। ३ यज्ञ। ४ हवि। ५ प्राप्ति तथा सिद्धि के निमित्त होनेवाला प्रयत्न। ६ निवेदन। ७ निमंत्रण (को०)।

इष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'इष्टका' [को०]।

इष्टिपच—संज्ञा पुं० [सं०] १ कृपण। कंजूस। २ असुर [को०]।

इष्टिपशु—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में बलि दिया जानेवाला पशु [को०]।

इष्टी(पु)—वि० [सं० इष्टिन्] इष्टसिद्धि करनेवाला। उ०—इष्टी स्वाँगी बहु मिले हिरनी मिले अनंत।—संतवाणी०, भा० १, पृ० १२८।

इष्टु—संज्ञा स्त्री० [सं०] इच्छा। अभिलाषा [को०]।

इष्म[1]—वि० [सं०] इच्छुक [को०]।

इष्म[2]—संज्ञा पुं० १. कामदेव। २ वसंत ऋतु। ३ गमन [को०]।

इष्य—संज्ञा पुं० [सं०] वसंत ऋतु।

इष्व—संज्ञा पुं० [सं०] अध्यात्म की शिक्षा देनेवाला गुरु [को०]।

इष्वनीक—संज्ञा पुं० [सं०] बाण की अनी। तीर की नोक [को०]।

इष्वसन—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष [को०]।

इष्वस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'इष्वसन' [को०]।

इष्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाण चलाना। २ धनुष। ३ धनुर्धर। ४ योद्धा [को०]।

इस—सर्व० [सं० एष] सर्वनाम 'यह' शब्द का विभक्ति के पहले आदिष्ट रूप जो समय, स्थान आदि के अनुसार समीपस्थ, प्रसंग के अनुसार प्रस्तुत और उल्लेख के अनुसार कुछ ही पहले प्रयुक्त होता है।

विशेष—जब 'यह' शब्द मे विभक्ति लगानी होती है, तब उसे 'इस' कर देते है। जैसे,—इसने, इसको, इससे, इसमे।

इसकंदर—संज्ञा पुं० [यू० इस्कंदर] सिकंदर बादशाह। अलेक्जेंडर। उ०—नग अमोल अस पाँचो मान समुँद वह दीन्ह। इसकंदर नहिं पाई जोरे समुँद जस लीन।—जायसी (शब्द०)।

इसक(पु)—संज्ञा पुं० [अ० इश्क] दे० 'इश्क'। उ०—याकी करि करि जतन अति अतन तपन अति ताप। गजब हियैं समझ्यो न तब अजब इसक संताप।—स० सप्तक, पृ० ३७७।

इसतरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री, हिं० इस्त्री] दे० 'स्त्री'। उ०—नारि पुरुष की इसतरी पुरुष नारि का पूत।—संतवाणी०, भा० १, पृ० ५६।

इसनान(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० स्नान, हिं० असनान] दे० 'स्नान'। उ०—बार बार स्वान जेऊ गंगा इसनान करैं न कुदेव देव होन न अज्ञान है।—सुंदर ग्रं० (जी०) भा० १, पृ० १०८।

इसपंज—संज्ञा पुं० [अ० स्पंज] समुद्र मे एक प्रकार के अत्यंत छोटे कीडो के योग मे बना हुआ मुलायम रुई की तरह का सजीव पिंड जिसमे बहुत से छेद होते हैं, जिनमे से होकर पानी आता है। मुर्दा बादल। अब्रे मुर्दा।

विशेष—इसपंज भिन्न भिन्न आकार के होते हैं। इनकी सृष्टि दो प्रकार से होती है—एक तो संविभाग द्वारा और दूसरे रजकीट और वीर्यकीट के संयोग से। इसकी बादामी रंग की, रुई के समान मुलायम ठठरी जिसमे बहुत से छेद होते हैं, बाजारो में इसपंज के नाम से बिकती है। इसमे पानी सोखने की बडी शक्ति होती है, इसी से लडके इसमे स्लेट पोछते और डाक्टर लोग घाव पर का खून आदि सुखाते हैं। पानी सोखने पर यह खूब मुलायम होकर फूल जाता है।

इसपात—संज्ञा पुं० [सं० अयस्पत्र अथवा पुर्त० स्पेडा] एक प्रकार का कार्बन मिश्रित कडा लोहा। फौलाद।

इसपिरिट—संज्ञा स्त्री० [अ० स्पिरिट] १ किसी प्रकार का सत। २. एक प्रकार का खालिस शराब।

इसपेशल[1]—वि० [अ० स्पेशल] विशेष। खास।

इसपेशल[2]—स्त्री० नियत समयो पर चलनेवाली सवारी गाडी (रेल, मोटर आदि) के अतिरिक्त विशेष गाडी जो किसी विशेष अवसर पर या किसी विशेष व्यक्ति की यात्रा के लिये छोडी जाती है।

इसबगोल—संज्ञा पुं० [फा० इस्पग़ोल, इस्पगोल] चिकित्सा कार्य मे प्रयुक्त एक झाडी या पौधा।

विशेष—यह फारस मे बहुत होता है। पंजाब और सिंध में भी इसकी झाडियाँ लगाई जाती हैं। इसमे तिल के आकार के बीज लगते हैं जो भूरे और लुआबी होते हैं। यूनानी चिकित्सा मे इसका व्यवहार अधिक है। यह शीतल, बलकारक और रक्तातिसारनाशक है। यह बवासीर, नकसीर आदि रक्तस्राव की बीमारियो मे बहुत फायदा करता है। अतिसार और नुकाक मे भी दिया जाता है।

इसम(पु)—संज्ञा पुं० [अ० इस्म] दे० 'इस्म'। उ०—पुर्अजब इसम अँगाली हमेशा।—दक्खिनी०, पृ० ११८।

इसमाईल—संज्ञा पुं० [इब०] १. इब्राहीम का बेटा जो हाजिरा

नाम्नी दासी से उत्पन्न हुआ था। २ सावर तंत्र मे एक योगी का नाम जिसकी आन प्राय मंत्रो मे दी जाती है।

इसमाईली—संज्ञा पुं०[इब०] शीया मुसलमानो की एक शाखा [को०]।

इसर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ईश्वर'।

इसराईल—संज्ञा पुं० [इब०] याकूब। पैगंबर का नाम। २ यहूदी। ३ एक देश का नाम।

इसराईली[1]—संज्ञा पुं० [इब०] याकूब के वंशज। यहूदी [को०]।

इसराईली[2]—संज्ञा स्त्री० इसरायल की भाषा।

इसराईली[3]—वि० इसरायल देश संबंधी।

इसराज—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का सारंगी की तरह का बाजा। उ०—इधर परदादी चंपाकली ने इसराज सँभालकर पीलू का रियाज करना आरंभ किया।—शरावी, पृ० १७।

इसराफ—संज्ञा पुं० [अ० इसराफ] फजूलखर्ची। अपव्यय [को०]।

इसरफील—संज्ञा पुं० [इब० इसराफील] उस फरिश्ते का नाम जो कयामत के दिन दो बार सुर फूँकेगा। पहली बार जीवित प्राणी मृत हो जायँगे और दूसरी बार सभी मृत जीवित हो जायँगे [को०]।

इसरार—संज्ञा पुं० [अ०] १ हठ। जिद। आग्रह। अनुरोध। उ०—तब वह इनकार और इसरार के लिए क्या बाकी छोड़ती है।—प्रेमघन, भा० २, पृ० २६२। २ सारंगी की तरह का एक बाजा।

इसरी(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'ईश्वरीय'।

इसलाम—संज्ञा पुं० [अ० इस्लाम] [वि० इसलामिया] मुसलमानी धर्म। मुहम्मद साहब का चलाया हुआ धर्म।

क्रि० प्र०—(कबूल) करना।

इसलामी—वि० [अ०] इसलामसंबंधी।

इसलाह—संज्ञा पुं० [अ० इस्लाह] संशोधन। दुरुस्त करना।

इसवर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ईश्वर] दे० 'ईश्वर'। उ०—इसवर सीय सेस चढे रथ ऊपर।—रघु०, पृ० १०६।

इसहाक—संज्ञा पुं० [अ० इस्हाक] इसलाम धर्म के एक पैगंबर।

इसा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'ऐसा'। उ०—अडिग इसा है मेरु ज्यों डोलै न डुलाया।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ५१२।

इसाई—वि० [हिं०] दे० 'ईसाई'।

इसान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ईशान] दे० 'ईशान'। उ०—हिमवान कहेउ इसान महिमा अगम निगम न जानई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३६।

इसारत(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० इशारत] संकेत। इशारा। उ०—मुख सों न कह्यो कछू हाथ की इसारत सों गारी दै दै आपसों किंवारी दोऊ दै गई।—रघुनाथ (शब्द०)।

इसिम—संज्ञा पुं० [अ० इस्म] दे० 'इस्म'। उ०—सत सिपाहिक पूत इसिम मे दाग न लागै।—पलटू०, पृ० ३४।

इसी—सर्व० [हिं० इस+ही वा ई (प्रत्य०)] 'इस' शब्द पर जोर देने के लिये यह रूप बनाता है।

इसीका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इषीका] दे० इषीका'।

इसे—सर्व० [सं० एष] 'यह' का कर्मकारक और संप्रदानकारक रूप।

इसै(पु)—वि० [सं० ईदृश] इस प्रकार। ऐसा।

इसौ(पु)—वि० [हिं० ऐसा]। ऐसा। इस प्रकार।

इस्क—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इश्क'। उ०—तब इनको राग रंग को इस्क लग्यो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २८८।

इस्कात—संज्ञा पुं० [अ० इस्कात] गिरना। पतन। २ गर्भपात। हमल गिरना।

इस्कूल(पु)†—संज्ञा पुं० [अं० स्कूल] दे० 'स्कूल'। उ०—कथा कहानी सिखन हित इस्कूलन मे जाहि।—प्रेमघन०, भा० १ पृ० १२०।

इस्ट[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० इष्ट] दे० 'इष्ट'। उ०—प्राय घरै घर औरही बरण इस्ट दे बीन।—बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ५७।

इस्ट[2]—संज्ञा पुं० [अ०] पूर्व दिशा।

इस्टाम†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'स्टांप'। उ०—या मेरे अल्लाह, अब मैं क्या कर कहूँ। इस्टाम के कागज पर लिख दूँ, मुहर कर दूँ?—सैर०, पृ० ३०।

इस्टेशन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'स्टेशन' उ०—इस्टेशन से केवल द्वै ही कोस दूर पर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ८।

इस्तगी—संज्ञा स्त्री० [अं० स्ट्रिंग] जहाजो मे वह रस्सी जो खिड़की में लगी होती है और जिससे पाल के किनारे आदि ताने और खींचे जाते हैं।

क्रि० प्र०—चाँपना।

इस्तकबाल—संज्ञा पुं० [अ० इस्तिकबाल] स्वागत। अगवानी। उ०—चमन मे सुन खबर आने की इस्तकबाल को चलियाँ।—कविता० कौ०, भा० ४, पृ० ४३।

इस्तखारा—संज्ञा पुं० [अ० इस्तिखारह्] दैवी सहायता चाहना। ईश्वर से मंगलकामना करना। उ०—यहाँ नालो से मिलता है पियारा। अबस देखै है जाहिद इस्तखारा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३६।

इस्तमरारी—वि० [अ० इस्तिमरारी] सब दिन रहनेवाला। जिसमे कुछ अदल बदल न हो। नित्य। अविच्छिन्न।

यौ०—इस्तमरारी बंदोबस्त=जमीन का वह बंदोबस्त जिसमे मालगुजारी सदा के लिये मुकर्रर कर दी जाती है। यह बंदोबस्त लार्ड कार्नवालिस ने उत्तर प्रदेश के कुछ भागो मे किया था।

इस्तरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'स्त्री'। उ०—देखो हम दो टोगी दिए। मर्द इस्तरी उनमे जिए।—कविता कौ०, भा४,पृ० ६५।

इस्तिंजा—संज्ञा पुं० [अ० इस्तिंजह] पेशाब करने के बाद मिट्टी के ढेले मे इंद्रिय मे लगी हुई पेशाब की बूँदो को सुखाने की क्रिया जो मुसलमानो में प्रचलित है। उ०—खडे होकर इस्तिंजा मत करो।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ६१।

मुहा०—इस्तिंजे का ढेला=अनाहूत व्यक्ति। तुच्छ मनुष्य। इस्तिंजा लड़ना=अत्यंत मित्रता होना। दाँतकाटी रोटी होना। इस्तिंजा लड़ाना=अत्यंत मित्रता करना।

इस्तिकलाल संज्ञा पुं० [अ०इस्तिकलाल] दृढ़ता। मजबूती। संकल्प की दृढता [को०]।

इस्तिगासा—संज्ञा पुं० [इस्तिगासह्] न्याय के निमित्त किया गया निवेदन। नालिश। फौजदारी का दावा [को०]।

इस्तिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तरी (=तह करनेवाली) स्तृ] धोबी का

वह औजार जिससे वह धोने और सुखाने के बाद कपड़े की तह को जमाकर उसकी शिकन मिटाता है। इसके नीचे का भाग जो कपड़े पर रगड़ा जाता है, पीतल या लोहे का होता है। उसके ऊपर एक खोखला (हवादार) स्थान होता है, जिसमें कोयले के अगारे भरे जाते हैं।

इस्तिलाह—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ परस्पर सधि करना। २ परिभाषा सिद्ध अर्थ। परिभाषिक शब्दावली [को०]।

इस्तिस्नाय—सज्ञा पु० [अ०] १ पृथक् करना। अलग रखना। २ अपवाद होना [को०]।

इस्तिहकाम—सज्ञा पु० [अ०] दृढता। स्थिरता। पायदारी [को०]।

इस्तीफा—सज्ञा पु० [अ० इस्तीफ़ा] नौकरी छोडने की दरख्वास्त। काम छोड़ने का प्रार्थनापत्र। त्यागपत्र।

क्रि० प्र०—देना।

इस्तेदाद—सज्ञा स्त्री० [अ०] विद्या की योग्यता। लियाकत। विद्वत्ता।

इस्तेमाल—सज्ञा पुं० [अ०] प्रयोग। उपयोग। व्यवहार।

क्रि० प्र० – करना। —मे आना।—मे लाना।—होना।

इस्त्रि, इस्त्री(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'स्त्री'। उ०—(क) बार बरग जो लिंग के भाषा मे नही होइ। स्त्री पुस नपुसकहि इस्त्रि नपुसक जोइ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ५४४। (ख) बर वृक्ष को इस्त्री भांवरि देति है।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १५७।

इस्त्री—सज्ञा स्त्री० [स० स्तरी, हिं० इस्तिरी] दे० 'इस्तरी'।

इस्त्रीजित(पु)—वि० [स० स्त्रीजित्] स्त्रियो का गुलाम। स्त्रीभक्त। उ०—कोउ कहै ये परम धर्म इस्त्रीजित पूरे। लछ लाघव सधान धरें आयुध के सूरे।—नद० ग्र०, पृ० १८१।

इस्थिर(पु)—वि० [स० स्थिर] दे० 'स्थिर'। उ०—(क) कहै कबीर सुनो भाई साधो करो इस्थिर मन ध्यान।—कबीर श०, भा० ३, पृ० २०। (ख) बूढा बारा ज्वान नही है कोई इस्थिर।—पलटू०, भा० १, पृ० ५४।

इस्नान(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'स्नान'। उ०—क्या जप क्या तप सयमो क्या व्रत क्या इस्नान।—कबीर ग्र०, पृ० ३२६।

इस्पज—सज्ञा पुं० [हिं० इसपंज] दे० 'इसपज'।

इस्पंद—सज्ञा पुं० [फ़ा०] राई।

मुहा०—इस्पंद करना = बुरी नजर दूर करने के लिये राई जलाना।

इस्पीच—सज्ञा स्त्री० [अ० स्पीच] वक्तृता। भाषण। लेक्चर। उ०—करनी कछु नहि देत जग सिच्छा की इस्पीच।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६१।

इस्म—सज्ञा पु० [अ०] नाम। सज्ञा।

यौ०—इस्मनवीसी = (१) गवाहों की सूची। (२) किसी गवाही, नौकरी या जगह के लिये नामजद करने का कार्य। ३ पटवारी की जगह के लिये जमीदार का किसी व्यक्ति का नाम चुनना।

इस्लाम—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'इसलाम'। उ०—बुतपरस्ती को तो इस्लाम नहीं कहते हैं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १२८।

इस्लोक—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'श्लोक'। उ०—कथा औ कवित इस्लोक रसरी बटै बकै बहु बाय मुख मूढ मारी।—कबीर रे०, भा० २, पृ० ५।

इस्सर(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ईश्वर'। उ०—(क) आइ परा गुरुनाथ गोसाई। पंथ बीच इस्सर की नाई।—इद्रा०, पृ० १५५। (ख) इस्सर पैठें दरिद्दर निकसै।—(लोक०)।

इह[1]—क्रि० वि० [सं०] इस जगह। इस लोक मे। इस काल मे। यहाँ।

इह[2]—सज्ञा पुं० यह ससार। यह लोक। उ०—हृदय के जगते उ निवेदित इह के निवासी।—हरी घास०, पृ० १६।

यौ०—इहामुत्र।

इह[3]—सर्व० [हिं०] दे० 'यह'। उ०—ते नर छांडत अवनत माँही। पुरुषराव इह पौरुष नाही।—नद ग्र०, पृ० १३५।

इहइ—सर्व० [हिं० यह + ही] दे० 'यही'।

इहकाल—सज्ञा पुं० [स०] इस लोक का जीवन। लौकिक जीवन [को०]।

इहतिमाम—सज्ञा पु० [अ०] दे० 'एहतमाम' [को०]।

इहतिमाल—सज्ञा पु० [अ०] [वि० इहतिमाली] १ सभावना। २. सदेह [को०]।

इहतियाज—सज्ञा पुं० [अ०] १ अभाव। आवश्यकता। २ अवसर।

इहतियात—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ सावधानी। खबरदारी। उ०—दिल के तई गिरह से कभी खोलती नही। है जुल्फ को भी अपने परेशाँ की इहतियात।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १६१। २. रक्षा। बचाव। उ०—दागो की अपने क्यो न करे 'दर्द' परवरिश। हर बागबाँ करे है गुलिस्ताँ की इहतियात।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १६१।

यौ०—इहतियाती कार्रवाई = अनिष्ट को रोकने के लिये किया जानेवाला प्रयास।

इहतियातन्—क्रि० वि० [अ०] सावधानीपूर्वक [को०]।

इहतिलाम—सज्ञा पुं० [अ०] स्वप्नदोष [को०]।

इहलीला—सज्ञा स्त्री० [सं०] इस लोक का जीवन तथा उससे सबद्ध समस्त क्रियाकलाप [को०]।

इहलोक—संज्ञा पु० [सं०] यह ससार। जगत्। दुनिया। उ०—किंतु वह शीघ्र ही इहलोक मे आने के लिये विवश हुआ।—रग-भूमि, पृ० ४७३।

इहलौकिक—वि० [स०] इहलोकसबधी। इस लोक का। ससारिक। २ इस लोक मे सुख देनेवाला।

इहवाँ‡—क्रि० वि० [स० इह] इस जगह। यहाँ।

इहवै‡—क्रि० वि० [स० इह] यही। इसी स्थान पर।

इहसान†—सज्ञा पुं० [अ०] दे० 'एहसान'।

इहाँ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'यहाँ'। उ०—कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया।—मानस, २। ३३।

इहामुत्र—सज्ञा पु० [स०] यह लोक और परलोक। उ०- स्वर्गादिक की करिय न इच्छा इहामुत्र त्यागै सुख दोइ।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० ४०।

इहामृग—सज्ञा पु० [स० ईहामृग] दे० 'ईहामृग'।

इहि(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'यह'। उ०—कहन लगे इहि भवन कौन के।—नद० ग्र०, पृ० २१४। २ दे० 'इस'। उ०—तिहुँ काल मैं प्रगट प्रभु प्रगट न इहि कलिकाल।—नद० ग्र०, पृ० १४३।

इहै(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'यही'। उ०-धरनी धन धाम सरीर भलो सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै।—तुलसी ग्र०, पृ० २०७।

क्रि० प्र०—लगाना।

ईंदर‡—संज्ञा पुं० [देश०] आठ दस दिन की व्याई हुई गाय के दूध को औटाकर बनाई हुई एक प्रकार की मिठाई। प्योसी। ईन्नर।

ईंधन—संज्ञा पुं० [सं० इन्धन] १. जलाने की लकडी, कोयला, कडा आदि। जलावन। जरवनी। उ०—विथ न ईंधन पाइए सायर जुरे न नीर। परे उपास कुबेर घर जो विपच्छ रघुबीर।—तुलसी (शब्द०)। २ किसी यंत्र को गतिशील करने के लिये उसमें दी जानेवाली सामग्री या पदार्थ, जैसे—तेल, पेट्रोल, कोयला आदि। ३ ऐसी बात जो क्रुद्ध व्यक्ति को और अधिक उत्तेजित करने में सहायक हो।

ई¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी।

ई²(पु)—सर्व० [सं० ई = निकट का संकेत] यह। उ०—(क) कहहि कबीर पुकारि कै ई लेऊ व्यवहार। एक राम नाम जाने बिना भव बूडि मुआ संसार।—कबीर (शब्द०)। (ख) बिरल रसिक जन ई रस जान।—विद्यापति०, पृ० ३०८।

ई³—अव्य० [सं० हि०] जोर देने का शब्द। ही। उ०—पद्म ही तिथि पाइए वा घर के चहुँ पास। नित प्रति पून्यो ई रहै आनन ओप उजास।—बिहारी (शब्द०)।

ई⁴—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव [को०]।

ईकार—संज्ञा पुं० [सं०] 'ई' स्वर अथवा दीर्घ ई का सूचक वर्ण [को०]।

ईकारांत—वि० [सं० ईकारान्त] (शब्द०) जिसके अंत में 'ई' हो। वह शब्द जिसके अंत मे ईकार हो।

ईख(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इक्षु] दे० 'ईख'। उ०—मयों सरकरा ईख रस व्यापि मिठाई माहिं। सुंदर ब्रह्म सु जगत है, जगत ब्रह्म ह्वै नाहिं।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८०२।

ईक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] १ देखनेवाला। दर्शक। २ विचार या विमर्श करनेवाला [को०]।

ईक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ईक्षणीय, ईक्षित, ईक्ष्य] १ दर्शन। देखना। २ आँख। उ०—पंकज के ईक्षण शरद हँसी।—बेला, पृ० २२। ३ दो (२) की संख्या का सूचक शब्द (को०)। ४. विवेचन। विचार। जाँच।

विशेष—इसमें अनु, नि, परि, प्रति, अभि, अप, उप, या सम् उपसर्ग लगाकर अन्वीक्षण, निरीक्षण, परीक्षण, प्रतीक्षण, अभीक्षण, अपेक्षण, उपेक्षण, समीक्षण आदि शब्द बनाए जाते हैं।

ईक्षणिक, ईक्षणीक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ईक्षणिका] १ दैवज्ञ। ज्योतिषी। २. सामुद्रिक जाननेवाला।

ईक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दृष्टि। दर्शन। २. विवेचन। ३. आत्मज्ञान [को०]।

विशेष—इसमें परि, अप, सम्, उप, प्र, वि आदि लगाकर परीक्षा, समीक्षा, अपेक्षा, उपेक्षा, वीक्षा आदि शब्द बनाए जाते हैं।

ईक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] देखने की इंद्रिय। आँख। दृष्टि [को०]।

ईक्षित—वि० [सं०] १ दृष्ट। देखा हुआ। २. विवेचित [को०]।

ईक्षिता—वि० [ईक्षितृ] देखनेवाला [को०]।

ईख—संज्ञा स्त्री० [सं० इक्षु, प्रा० इक्खु] शर जाति का एक प्रकार जिसके डंठल में मीठा रस भरा रहता है। इसके रस से गुड़ चीनी और मिस्री आदि बनती है। डंठल मे ६-६ या ७-७ अंगुल पर गाँठें होती हैं और सिरे पर बहुत लंबी लंबी पत्तियाँ होती हैं, जिन्हें गेंड़ा कहते हैं।

विशेष—भारतवर्ष मे इसकी बुआई चैत वैसाख मे होती है कार्तिक तक यह पक जाती है, अर्थात् इसका रस मीठा हो जाता है और कटने लगती है। डंठलों को कोल्हू मे पेरकर रस निकालते हैं। रस को छानकर कडाहे मे औटाते हैं। जब रस पककर सूख जाता है तब गुड कहलाता है। यदि राब बनाना हुआ तो औटाते समय कडाहे मे रेंडी की गूदी का पुट देते हैं जिससे रस फट जाता है और ठंढा होने पर उसमे कलमे या रवे पड जाते हैं। इसी राब से जूसी या चोटा दूर करके खाँड बनाते हैं। खाँड और गुड गला कर चीनी बनाते हैं।

ईख के तीन प्रधान भेद माने गए हैं। ऊख, गन्ना और पौंढा। (क) ऊख—इसका डंठल पतला, छोटा और कडा होता है। इसका कडा छिलका कुछ हरापन लिये हुए पीला होता है और जल्दी छीला नहीं जा सकता। इसकी पत्तियाँ पतली, छोटी, नरम और गहरे हरे रंग की होती है। इसकी गाँठों मे उतनी जटाएँ नहीं होतीं, केवल नीचे दो तीन गाँठों तक होती हैं। इसकी आँखें, जिनसे पत्तियाँ निकलती हैं, दबी हुई होती हैं। इसके प्रधान भेद धौल, मतना, कुसवार, लखडा, सरौती आदि हैं। गुड चीनी आदि बनाने के लिये अधिकतर इसी की खेती होती है। (ख) गन्ना—यह ऊख से मोटा और लंबा होता है। इसकी पत्तियाँ ऊख से कुछ अधिक लंबी और चौडी होती हैं। इसका छिलका कडा होता है, पर छीलने से जल्दी उतर जाता है। इसकी गाँठो मे जटाएँ अधिक होती हैं। इसके कई भेद हैं, जैसे,—अगौल, दिकचन, पसाही, काला गन्ना, केतारा, बडौखा, तंका, गोडारा। इससे जो चीनी बनती है उसका रंग साफ नहीं होता। (ग) पौंढा—यह विदेशी है। चीन, मारिशस (मिरच का टापू), सिंगापुर इत्यादि से इसकी भिन्न भिन्न जातियाँ आई हैं इसका डंठल मोटा और गूदा नरम होता है। छिलका कडा होता है और छीलने से बहुत जल्दी उतर जाता है। यह यहाँ अधिकतर रस चूसने के काम मे आता है। इसके मुख्य भेद थून, काला गन्ना और पौंढा है। राजनिघंटु मे ईख के इतने भेद लिखे हैं—पौंड्रक (पौंढा) भीरुक, वंशक (बडौखा), शतपोरक (मरौती), कांतार (केतारा), तापसेक्षु, काष्ठेक्षु (लखडा), सूचिपत्रक, नैपाल, दीर्घपत्र, नीलपोर (काला गेंडा), कोशकृत (कुशवार या कुसियार)।

ईखत(पु)—वि० [सं० ईषत्] दे० 'ईषत्'।—नंद० ग्रं०, पृ० १००।

ईखना(पु)—क्रि० स० [सं० ईक्षण प्रा० इक्खण] देखना। अवलोकना।—(डिं०)।

ईखराज—संज्ञा पुं० [हिं० ईख + राज] ईख बोने का प्रथम दिन।

ईच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] दे० 'इच्छा'। उ०—जो प्रभुन की ईच्छा भई सो सही।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २२९।

ईछन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ईक्षण = आँख, प्रा० *ईच्छन] आँख। उ०—दृगनु लगत बेधत हियहिं, विकल करत अँग आन। ये तेरे सबतें विषम ईछन तीछन बान।—बिहारी र०, दो० ३४९।

ईछना(पु)—क्रि० स० [सं० इच्छा] इच्छा करना। चाहना। उ०—बाहिर भीतर भीतर बाहिर ज्यों कोउ जानें त्यों ही करि ईछो। जैसो ही आपुनो भाव है सुंदर तैसोहि है दृग खालि कै बीछो।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५७७।

ईछा(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'इच्छा'। उ॰—बिसरी सबहि जुद्ध कै ईछा।—मानस, ६।४६।

ईछी(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'इच्छा'। उ॰—नेप भये विष, भावै न भूषण भोजन को कुछ हूँ नहिं ईछी।—देव (शब्द॰)।

ईजति(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ इज्जत] दे॰ 'इज्जत'। उ॰—हिंदुवान द्रुपदी की ईजति बचैबे काज झपटि बिराटपुर बाहर प्रमान कै।—भूषण ग्रं॰, पृ॰ ६६।

ईजा—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ इजह्] दुःख। तकलीफ। पीड़ा। कष्ट। उ॰—जस मनसा तस आगे आवै, कहै कबीर ईजा नहिं पावै।—कबीर सा॰, पृ॰ ४४४।

क्रि॰ प्र॰—देना।—पहुँचना।—पहुँचाना।

ईजाद—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰] किसी नई चीज का बनाना। नया निर्माण। आविष्कार।

क्रि॰ प्र॰—करना।—होना।

ईजान—वि॰ [सं॰] १ यज्ञ करनेवाला। यजमान। २ यज्ञ करानेवाला [को॰]।

ईठ(पु)—वि॰, संज्ञा पुं॰ [सं॰ इष्ट, प्रा॰ इट्ठ] १ जिसे चाहें। प्रिय। मित्र। सखा। उ॰—(क) यार दोस्त बोले जा ईठ।—खुसरो (शब्द॰)। (ख) ज्यौं क्यो हूँ न मिलै कहूँ केशव दोऊ ईठ।—केशव (शब्द॰)। (ग) करै निरादर ईठ को निज गुमान गहि बाम।—पद्माकर ग्रं॰ पृ॰ १७७। २ चेष्टा। यत्न। उ॰—केशव कैसहुँ ईठन दीठि ह्वै दीठ परे रति ईठ कन्हाई।—केशव ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ४६।

ईठना(पु)—क्रि॰ अ॰ [सं॰ इष्ट + हिं॰ ना (प्रत्य॰)] चाह करना। इच्छा करना।

ईठा(पु)—वि॰ [सं॰ इष्ट] अभिलषित। उ॰—नानक वारवाँ हाटु अनत सुख ईठा।—प्राण॰, पृ॰ १४५।

ईठि(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इष्टि, प्रा॰ इट्ठि] १ मित्रता। दोस्ती, प्रीति। उ॰—नहि सुनें घर कर गहत दिठादिठी की ईठि। गडी सु चित नाही करति करि ललचौंही दीठि।—बिहारी र॰, दो॰ ५८२। २ चेष्टा। यत्न। उ॰—सखियाँ कहैं सु साँच है लगत कान्ह की डीठि। कालि जु मो तन तकि रह्यो उमरयो आजु सो ईठि।—भिखारी॰ ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ७। ३ सखी। उ॰—लोनें मुहुँ दीठि न लगै, यौं कहि दीनो ईठि। दूनी ह्वै लागन लगी, दिएँ दिठौना दीठि।—बिहारी र॰, दो॰ २७।

ईठी[1]—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] १ भाला। बरछा। २. दंड।

ईठी[2]—वि॰ [सं॰ इष्ट] प्यारी।

ईठी(पु)[3]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इष्टि] प्रीति। उ॰—लागै न बार मृनाल के तार ज्यो टूटैगी लाल हमैं तुम्हैं ईठी।—केशव ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ २५।

ईठोदाडू(पु)†—सं॰ पुं॰ [हिं॰ ईठी + दंड] चौगान खेलने का डंडा।

ईडन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्रशंसा करना। प्रशंसना [को॰]।

ईड़ा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ ईडा = स्तुति] [वि॰ ईडित, ईड्यत] स्तुति। प्रशंसा। उ॰—(क) कीन्हि बिडौजा ईडि जिमि बार बार सिर नाय। कहूँ अभय वर दीन्ह हरि पठयो त्यहि समुझाय।—लल्लू (शब्द॰)। (ख) रति माँगी तुमते करि ईडा। पारथ करहु संग मम क्रीडा।—सबल (शब्द॰)।

ईडित—वि॰ [सं॰ ईडित] जिसकी स्तुति की गई हो। प्रशंसित। उ॰—तीन्हे ग्रंथ अनेक हाथ गिरजा, लीन्हे महा ईडितै।—भिखारी॰ ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ २६२।

ईडुरी(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ईडुरी'।

ईड्य—वि॰ [सं॰] पूज्य। स्तुति के योग्य।—प्रशंसित। उ॰—अहो ईड्य नव घन तन स्याम। तडिदिव पीत वसन अभिराम।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ २६८।

ईढ(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इष्ट प्रा॰ इट्ट अथवा सं॰ हठ > प्रा॰ *पढ, *प्रढ *ईढ] [वि॰ ईढ़ी] जिद। हठ। उ॰—बोलिये न झूठ ईढ मूढ पै न कीजई। दीजयै जो बित्ताहाथ भूलिहूँ न लीजई।—केशव (शब्द॰)।

ईत(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ ईति] दे॰ 'ईति'। उ॰—ईत तणो नह भीत अगजी मान दुजा मन मेर।—रघु॰ रू॰, पृ॰ ६२।

ईतर[1](पु)—वि॰ [हिं॰ इतराना] इतरानेवाला। ढीठ। शोख। गुस्ताख। उ॰—गई नद घर कों सबै, जसुमति तहँ भीतर। देखि महरि कौं कहि उठी सुत कीन्हो ईतर।—सूर॰, १।१२१०४।

ईतर[2]—वि॰ [सं॰ इतर] निम्न श्रेणी का। साधारण। नीच। उ॰—कोटि बिलास कटाच्छ कलोल बढ़ावै हुलासन प्रीतम हीतर। यो मनि यामैं अनूपम रूप जो मैनका मैन वधू कही ईतर। सूर॰, १०।१४८६।

ईतरता(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ इतरता] भेदभाव। अन्यत्व। परायापन। भिन्नता। उ॰—ईहा और ईरषा भानौं। ईतरता कबहूँ नहिं आनौं।—सुदर॰ ग्रं॰ भा॰ १, पृ॰ २१६।

ईति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. खेती को हानि पहुँचानेवाले उपद्रव। ये छह प्रकार के हैं—(क) अतिवृष्टि। (ख) अनावृष्टि। (ग) टिड्डी पड़ना। (घ) चूहे लगना। (च) पक्षियों की अधिकता। (छ) दूसरे राजा की चढाई। उ॰—दसरथ राज न ईति भय नहिं दुख दुरित दुकाल। प्रमुदित प्रजा प्रसन्न सब सब सुख सदा सुकाल।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ ६८। २ बाधा। उ॰—अब राखे नाहिनै ब्रजनीति। सखि बिनु मिलै तो ना बनि ऐहै कठिन कुराज राज की ईति।—सूर (शब्द॰)। ३. पीड़ा। दुख। उ॰—वारुनी ओर की वायु बहै यह सीत की ईति है बीस बिसा मैं। राति बड़ी जुग सी न सिराति रह्यो हिम पूरि दिसा बिदिसा मैं।—गोकुल (शब्द॰)।

ईतिभय—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ईति + भय] ईति नामक विपत्ति की आशंका।

ईथर—संज्ञा पुं॰ [अ॰] १ एक प्रकार का अति सूक्ष्म और लचीला द्रव्य या पदार्थ जो समस्त शून्य स्थल मे व्याप्त है। यह अत्यंत घन पदार्थों के परमाणु के बीच मे भी व्याप्त रहता है। उष्णता और प्रकाश का संचार इसी के द्वारा होता है। २. एक रासायनिक द्रव पदार्थ जो अलकोहल और गंधक के तेजाब से बनता है।

विशेष—बोतल मे अलकोहल और गंधक का तेजाब बराबर मात्रा में मिलाकर भरते हैं। फिर आँच द्वारा उसे दूसरी बोतल में

टपका लेते हैं, जो ईथर कहलाता है। यह बहुत शीघ्र जलने-वाला पदार्थ है। खुला रखा रहने से यह बहुत जल्द उड जाता है और बहुत शीत पैदा करता है, इसलिये बरफ जमाने मे काम आता है। रासायनिक क्रियाओ मे इससे बडे बडे कार्य होते हैं। सूँघने से यह थोडी बेहोशी पैदा करता है तथा क्लोरोफार्म की जगह भी काम मे लाया जाता है। यह जरमनी में बहुत ज्यादा बनता है।

ईद¹— सञ्ञा स्त्री॰ [अ॰] मुसलमानो का एक त्योहार। रमजान महीने मे तीस दिन रोजा (व्रत) रखने के बाद जिस दिन दूज का चाँद दिखाई पडता है, उसके दूसरे दिन यह त्योहार मनाया जाता है। उ॰ - ईद और नौरोज है सब दल के साथ। दिल नहीं हाजिरा तो दुनियाँ है उजाड। -शेर॰, भा॰ १, पृ॰७३१।
मुहा॰–**ईद का चाँद**=दुर्लभ। कम दृष्टिगोचर वस्तु या व्यक्ति। **ईद का चाँद होना**=बहुत कम दीख पडना। **ईद मनाना**=प्रसन्नता व्यक्त करना।

ईद²(पु)—सञ्ञा पु॰ [स॰ ईन्दु] चद्रमा। इदु। उ॰—हौं दरोग जो कहौं ईद उगमे कुहू निसि।—पृ॰ रा॰, ६४। २०४४।

ईदगा(पु)—सञ्ञा स्त्री॰ [फा॰ ईदगाह] दे॰ 'ईदगाह'। उ॰—बडी मसीत ईदगावाली।—रा॰ रू॰, पृ॰ २८४।

ईदगाह सञ्ञा स्त्री॰ [अ॰ ईद+फा॰ गाह] वह स्थान जहाँ मुसलमान ईद के दिन इकट्ठे होकर नमाज पढते हैं।

ईदिया—सञ्ञा पु॰ [अ॰ ईदियह्] दे॰ 'ईदी' [को॰]।

ईदी – सञ्ञा स्त्री॰ [अ॰] १ त्योहार के दिन दी हुई सौगात या तोहफा। २ किसी त्योहार की प्रशंसा से बनाई हुई कविता जो मौलवी लोग उस त्योहार के दिन अपने शिष्यो को देते हैं। ३ वह वेलबूटेदार कागज जिसपर यह कविता लिखकर दी जाती है। ४ वह दक्षिणा जो इस कविता के उपलक्ष्य मे मौलवियो को शिष्य देते हैं। ५ नौकरो या लडको को त्योहार के खर्च के लिये दिया हुआ रुपया पैसा। (मुसलमान)।

ईदुज्जुहा—सञ्ञा स्त्री॰ [अ॰ ईदुज्जुहह्] मुसलमानो का एक मुख्य त्योहार जिसमे मेंड, बकरी आदि की कुर्बानी होती है। बकरीद [को॰]।

ईदुलफितर—सञ्ञा स्त्री॰ [अ॰ ईदुलफित्र] दे॰ 'ईद'।

ईदृश¹— क्रि॰ वि॰ [स॰] [स्त्री॰ ईदृशी] इस प्रकार। इस तरह। इस भाँति। ऐसे।

ईदृश²—वि॰ इस प्रकार का। ऐसा।

ईद्रीजीत(पु)—वि॰ [हिं॰ इंद्रीजीत] दे॰ 'इद्रियजित्'। उ॰—मुज को आडवे दवजर कोपिन। ईस विध जोगी ईद्रीजीत।—रामानद॰, पृ॰ ४६।

ईप्सन—सञ्ञा पुं॰ [स॰] प्राप्त करने की अभिलाषा करना [को॰]।

ईप्सा–सञ्ञा स्त्री॰ [स॰] [वि॰ ईप्सित, ईप्सु] १ इच्छा। वाछा। अभिलाषा। उ॰–मान कर भी, सभी ईप्सा, सभी काक्षा, जगत् की उपलब्धियाँ सब है लुभानी भ्राति।—हरीघास॰, पृ॰ १३। २ प्राप्ति की इच्छा।

ईप्सित— वि॰ [स॰] चाहा हुआ। अभिलषित। उ॰—(क) अब अपनी नौका ईप्सित घाट पर आई।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ ११८। (ख) सारे श्रम उसको फूलों के हार से लगते हैं जो पाता ईप्सित वस्तु को।—करुणा॰, पृ॰ १४।

ईप्सु—वि॰ [स॰] चाहनेवाला। वाछा करनेवाला।

ईफाय–सञ्ञा पुं॰ [अ॰ ईफाय] वचनपालन। वचन पूरा करना [को॰]।

ईफायडिगरी—सञ्ञा स्त्री॰ [अ॰ ईफाय+अ॰ डिगरी] डिगरी रुपया अदा कर देना। जर डिगरी बेबाक कर देना।

ईफायवादा–सञ्ञा पुं॰ [अ॰ईफाय+फा॰ए–अ॰ वादह्] [illegible] वादे को निभाना [को॰]।

ईबीसीबी(पु)—सञ्ञा स्त्री॰ [अनुध्व॰] सिसकारी का शब्द। 'सी' शब्द जो संभोग के अत्यत आनद के समय मुँह मे निकलता उ॰—गूजरी बजावै रव रसना सजावै कर चूरी छमकावै गहति गहकि कै। मुख मोरि त्योरी तोरि मौंहैं नासिका [illegible] देव ईबीसीबी बोल बोलति पहकि कै।—देव (शब्द॰)।

ईमन—सञ्ञा पु॰ [फा॰ यमन]सतूर्ण जाति की एक रागिनी। ऐ उ॰–आसा करि लागि पिय सो रटपवम सुर गा ईमन।—भारतेंदु ग्र॰, भा॰ २, २८८।

ईमनकल्यान –सञ्ञा पु॰ [हिं॰ ईमन+सं॰कल्याण] एक मिश्र राग का नाम।

ईमाँ—सञ्ञा पुं॰ [अ॰ ईमान] दे॰ 'ईमान'। उ॰—ईमाँ की [illegible] दुश्मने जानी है हमारा।—भारतेंदु ग्र॰, भा॰ १, पृ॰ ५.

ईमा–सञ्ञा पु॰[अ॰]१ इशारा। सकेत। आदेश। हुक्म। २ [illegible] तात्पर्य [को॰]।

ईमान—सञ्ञा पुं॰ [अ॰] १ विश्वास। आस्था। आस्तिक्य बु[illegible] उ॰–दादू दिल अरवाह का सो अपना ईमान। सोई सा[illegible] राखिए जहँ देखइ रहिमान।—दादू (शब्द॰)।
क्रि॰ प्र॰—**लाना**=विश्वास या आस्था रखना। जैसे—ई[illegible] कहते हैं कि ईसा पर ईमान लाओ।
२. चित्त की सद्वृत्ति। अच्छी नीयत। धर्म। सत्य। जैसे (क) ईमान से कहना, झूठ मत बोलना। (ख) ईमान ही कुछ है, उसे चार पैसे के लिये मत छोडो। (ग) यह तो ईमा[illegible] की बात नहीं है।
क्रि॰ प्र॰—**खोना**। —**छोडना**। —**डिगना**। —**डिगा**[illegible] —**डोलना**। —**डोलाना**।
मुहा॰—**ईमान की कहना**=सच कहना। न्याय की बात [illegible] **ईमान जाना**=नीयत बिगडना। उ॰–उधर है जेल की जह[illegible] इधर है कौम की लानत। उधर आराम जाता है इधर ई[illegible] जाता है।—कविता कौ॰, भा॰ ४, पृ॰ ६५५। **ईमान** [illegible] **न होना**=धर्मभाव दृढ न रहना। **ईमान देना**=सत्य छोडना धर्म विरुद्ध कार्य करना। **ईमान मे फर्क आना**=धर्म भाव ह्रास होना। नीयत बिगडना। **ईमान लाना**=दृढ विश्वास करना। **ईमान से कहना**=सच सच कहना।

ईमानदार—वि॰ [अ॰ ईमान+फा॰ दार] १. विश्वास करनेवाला २ विश्वासपात्र। जैसे—ईमानदार नौकर। ३ सच्चा। दियानतदार। जो लेनदेन या व्यवहार में सच्चा हो। ५ [illegible] का पक्षपाती।

ईमानदारी—सञ्ञा स्त्री॰ [अ॰ ईमान+फा॰ दारी] १ ईमान स्थिति। ईमानदार होने का भाव। २ सत्यनिष्ठा। दिय[illegible] दारी [को॰]।

ईर¹—सञ्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ईड़'।

ईर²--संज्ञा पुं० [सं०] वायु [को०]।
ईरखा(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० ईर्षा] दे० 'ईर्षा'। उ०--करै ईरखा। सो जु तिय मनभावन सो मान।--मतिराम ग्रं०, पृ० २६४।
ईरज--संज्ञा पुं० [सं०] वायुपुत्र हनूमान् [को०]।
ईरण¹--वि० [सं०] विक्षुब्ध करनेवाला। उत्तेजित करनेवाला [को०]।
ईरण²--संज्ञा पुं० १ हवा। पवन। २ जाना। गमन। ३ भेजना। प्रेषित करना। प्रेषण। ४ कष्ट से मल का निकलना। ५ कहना। कथन [को०]।
ईरपाद--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प [को०]।
ईरपुत्र--संज्ञा पुं० [सं०] हनूमान् [को०]।
ईरमद(पु)--संज्ञा पुं० [सं० इरम्मद] दे० 'इरम्मद'।
ईरान--संज्ञा पुं० [फा०] [वि० ईरानी] फारस देश।
ईरानी¹--वि० [फा०] ईरान से संबंधित। ईरान का [को०]।
ईरानी²--संज्ञा पुं० ईरान का निवासी [को०]।
ईरानी³--संज्ञा स्त्री० ईरान देश की भाषा [को०]।
ईरिण¹--संज्ञा पुं० [सं०] बलुआ मैदान। ऊसर जमीन।
ईरिण²--वि० [सं०] ऊसर [को०]।
ईरित(पु)--वि० [सं०] प्रेषित। प्रेरित। उ०--ऊधो विधि ईरित भई है भाग कीरति, लही रति जसोदा सुत पायनि परस की।--घनानंद, पृ० २०२। २ कहा हुआ (को०)। ३ काँपता हुआ। हिलता डुलता हुआ [को०]। ४ गया हुआ। गत [को०]।
ईर्म¹--वि० [सं०] १ क्षुब्ध। २ निरंतर गतिशील। ३ उत्तेजित करनेवाला [को०]।
ईर्म²--संज्ञा पुं० १ बाहु। २ व्रण। फोडा [को०]।
ईर्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] यतियों की भाँति भ्रमण करना [को०]।
ईर्यासमिति--संज्ञा पुं० [सं०] जैनमतानुसार साढ़े तीन हाथ तक आगे देखकर चलने का नियम। यह नियम इस कारण रखा गया है कि जिससे आगे पडनेवाले कीडे फतिंगे दिखाई पडें।
ईर्वारु--संज्ञा पुं० [सं०] ककडी [को०]।
ईर्षणा(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० ईर्ष्यण] ईर्ष्या। हसद। डाह। उ०--पर की पुण्य अधिक लखि सोई। तबै ईर्षणा मन में होई।--विश्राम (शब्द०)।
ईर्षा--संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० ईर्षालु, ईर्षित, ईर्षु] दूसरे की बढती देखकर होनेवाली जलन। डाह। हसद। उ०--तजि द्वेष ईर्षा द्रोह निंदा देश उन्नति सब चहैं।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५१४।
ईर्षारति--संज्ञा पुं० [सं०] अर्धनपुंसक व्यक्ति [को०]।
ईर्षालु--वि० [सं०] ईर्षा करनेवाला। दूसरे की बढती देखकर जलनेवाला। दूसरे के उत्कर्ष से दुःखी होनेवाला।
ईर्षापंड--संज्ञा पुं० [सं० ईर्षाषण्ड] एक प्रकार का अर्धनपुंसक व्यक्ति। हिरसी टट्टू।
ईर्षित- वि० [सं०] जिससे ईर्षा की गई हो।
ईर्षु--वि० [सं०] डाह करनेवाला। ईर्षालु।
ईर्ष्य--वि० [सं०] ईर्षालु [को०]।
ईर्ष्यक¹--संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार के नपुंसक जिन्हें उस समय कामोत्तेजना होती है जिस समय वे किसी दूसरे को मैथुन करते हुए देखते हैं।
ईर्ष्यक--वि० ईर्षालु। डाह करनेवाला [को०]।
ईर्ष्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईर्षा'। उ०--ईर्ष्या हमारे चित से क्षण मात्र भी हटती नहीं।--भारत०, पृ० १८६।
ईर्ष्यालु--वि० [सं०] दे० 'ईर्षालु' [को०]।
ईर्ष्य--वि० [सं०] दे० 'ईर्ष्य' [को०]।
ईल¹--संज्ञा पुं० [देश०] एक बनैला जंतु।
ईल²--संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की मछली। बाँग।
ईलि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ यष्टि। लाठी। लगुड। २ एक शस्त्र। छोटी असि या कटार [को०]।
ईली--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईलि' [को०]।
ईश¹--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ईशा, ईशी] १ स्वामी। मालिक। उ०--जो सबते हित मोकहँ कीजत, ईश दया करिकै वह दीजत।--रामचं०, पृ० १६१। २. राजा। ३ ईश्वर। परमेश्वर। ४ महादेव। शिव। रुद्र। उ०--चद्रहि बदत हैं सब केशव ईश ते वंदनता अति पाई।--रामचं०, पृ० १६१

यौ०--ईशकोण।

५ ग्यारह की संख्या। ६ आर्द्रा नक्षत्र। ७ एक उपनिषद् जो शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि शाखा के अंतर्गत है। इसका पहला मंत्र 'ईश' शब्द से प्रारंभ होता है। ईशावास्य उपनिषद्।

यौ०--देवेश। नरेश। वागीश। सुरेश।

८ पारद। पारा।

ईश²--वि० १ ऐश्वर्यशाली। २ सामर्थ्यवान् [को०]।
ईशकोण--संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर और पूर्व का कोना [को०]।
ईशता--संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वामित्व। प्रभुत्व।
ईशत्व--संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वरत्व। स्वामित्व। प्रभुत्व। उ०--उस सृष्टिकर्ता ईश का ईशत्व क्या हममें नहीं।--भारत०, पृ० १५५।
ईशनगरी--संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी [को०]।
ईशपुरी--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईशनगरी' [को०]।
ईशबल--संज्ञा पुं० [सं०] पाशुपत नामक अस्त्र [को०]।
ईशसख--संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर [को०]।
ईशा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऐश्वर्य। २ ऐश्वर्यसंपन्न स्त्री। ३ दुर्गा।
ईशान¹--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ईशानी] १ स्वामी। अधिपति। प्रभु। २ शिव। महादेव। रुद्र। ३ ग्यारह की संख्या। ४. ग्यारह रुद्रों में से एक। ५ शिव की आठ मूर्तियों में से एक। सूर्य। ६ पूरब और उत्तर के बीच का कोना। ७ आर्द्रा नक्षत्र (को०)। ८ प्रकाश। ज्योति (को०)। ९ शमी वृक्ष (को०)।
ईशान²--वि० १ शास्ता। शासक। २ ऐश्वर्यशाली। ३. संपन्न [को०]।
ईशानी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गा। २ सेमल का वृक्ष [को०]।

ईशिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आठ प्रकार की सिद्धियों में से एक जिससे साधक सब पर शासन कर सकता है। २. ईश्वरत्व। ३. प्राधान्य।

ईशित्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ईशिता'।

ईशी[1]—वि० [सं० ईशिन्] १. शासन रखनेवाला।२. प्रधानता रखनेवाला [को०]।

ईशी[2]—संज्ञा पुं० १ देवता। २ पति। ३ मालिक। स्वामी [को०]।

ईश्वर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ईश्वरी] १. मालिक। स्वामी। प्रभु। २. योगशास्त्र के अनुसार क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से पृथक् पुरुषविशेष। परमेश्वर। भगवान्।
यौ०—ईश्वरप्रणिधान। ईश्वराधिष्ठान। ईश्वराधिष्ठित। ईश्वराधीन।
३. महादेव। शिव। ४. रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक जो संसार का कर्ता, उपादान, अंतर्यामी और ऐश्वर्य तथा वीर्य आदि से संपन्न माना जाता है। (शेष दो पदार्थ चित् और अचित् हैं)। ५. राजा। ६. यति। ७. पारद। पारा। ८. पीतल। ९ कामदेव। पुनर्नवा (को०)। १० एक संवत्सर [को०]।

ईश्वर[2]—वि० समर्थ। शक्तिमान्। संपन्न।

ईश्वरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वर की भावना। ईश्वर भाव। उ०—(क) नाहिं ईश्वरता अटकी वेद में।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १३४। (ख) यदि जग में है ईश्वरता तो है मनुष्यता में ही।—सागरिका, पृ० ८०।

ईश्वरनिषेध—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर में अविश्वास। नास्तिकता [को०]।

ईश्वरनिष्ठ—वि०[सं०] ईश्वर में विश्वास या निष्ठा रखनेवाला [को०]।

ईश्वरपूजक—वि० [सं०] १. ईश्वर की उपासना करनेवाला। २. पवित्र [को०]।

ईश्वरप्रणिधान—संज्ञा पुं० [सं०] योगशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के नियमों में से अंतिम एकाग्रध्यानात्मक। ईश्वर में अत्यंत श्रद्धा और भक्ति रखना तथा अपने सब कर्मों के फलों को उसे अर्पित करना।

ईश्वरप्रसाद—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् की कृपा [को०]।

ईश्वरभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राधान्य। २ ऐश्वर्य। ३ सामर्थ्य [को०]।

ईश्वरवाद—संज्ञा पुं० [सं० ईश्वर + वाद] ईश्वर को जगत् का कर्ता माननेवाला मत जिसमें भगवान् के दया दाक्षिण्य की झलक जगत् के नाना रूपों और व्यापारों में रहस्य की दृष्टि से देखी जाती है। उ०—ईसाइयों में जो रहस्यभावना प्रचलित थी वह ईश्वरवाद के भीतर थी।—चिंतामणि, भा० २, पृ० १४०।

ईश्वरवादी—वि० [सं० ईश्वर + वादिन्] ईश्वरवाद का अनुयायी।

ईश्वरविभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] परमात्मा के विभिन्न स्वरूप (को०)।

ईश्वरसख—संज्ञा पुं० [सं०] शिवजी के सखा, कुबेर।

ईश्वरसद्म—संज्ञा पुं० [सं०] देवालय। मंदिर [को०]।

ईश्वरसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] परमात्मा का पूजन अर्चन [को०]।

ईश्वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २ लक्ष्मी। ३. शक्ति [को०]।

ईश्वराधीन—वि० [सं०] ईश्वर के इच्छानुसार होनेवाला [को०]।

ईश्वरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'ईश्वरा'। २ नाकुली, क्षुद्रजटा, वंध्या कर्कटी, लिंगिनी आदि पौधे [को०]।

ईश्वरी[2]—वि०, दे० 'ईश्वरीय' [को०]।

ईश्वरीय—वि० [सं०] १.ईश्वर संबंधी। उ०—है सात सबके आननों पर ईश्वरीय प्रसाद के।—भारत०, पृ० ६५।

ईश्वरोपासना—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वरसेवा। ईश्वर की पूजा [को०]

ईष—संज्ञा पुं० [सं०] १ आश्विन मास। कुआर। २. शिव का एक गण। तृतीय मनु के एक पुत्र का नाम [को०]।

ईषण—वि० [सं०] शीघ्रता या जल्दी करनेवाला [को०]।

ईषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शीघ्रता। तेजी। २ तेज गति [को०]।

ईषत्[1]—वि० [सं०] थोड़ा। कुछ। कम। अल्प।
यौ०—ईषद् उष्ण। ईषद् हास्य।

ईषत्[2]—क्रि० वि० कुछ कुछ। अल्प रूप में। आंशिक रूप में [को०]।

ईषत्कर—वि० [सं०] १. आंशिक रूप में करनेवाला। कम करनेवाला। २ आसान [को०]।

ईषत्कार्य—वि० [सं०] १. अत्यंत आसान। २ अल्पप्रभावयुक्त [को०]।

ईषत्पुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] क्षुद्र व्यक्ति [को०]।

ईषत्स्पृष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वर्ण के उच्चारण में एक प्रकार का आभ्यंतर प्रयत्न जिसमें जिह्वा, तालु, मूर्धा और दंत को तथा दाँत, ओष्ठ को कम स्पर्श करता है। 'य', 'र', 'ल', 'व' ईषत्स्पृष्ट वर्ण हैं।

ईषद्—वि० [सं०] दे० 'ईषत्'।

ईषद—वि० [सं० ईषद्, हिं० ईषद] दे० 'ईषद्'।

ईषदहास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ईषद्हास] हलकी हँसी। मुस्कराहट। उ०—ईषदहास दंत दुति विगसित मानिक मोती धरे जनु पोई।—सूर०, १०।२१०।

ईषदुष्ण—वि० [सं०] कुनकुना। कुछ कुछ गरम [को०]।

ईषद्दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. साधारण दृष्टि। स्वल्प दृक्पात। २ चितवन [को०]।

ईषद्धास संज्ञा पुं० [सं० ईषद् + हास्य] हलकी मुसकान। मुस्कराहट [को०]।

ईषना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० एषणा] प्रबल इच्छा। उ०—सुत वित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी।—मानस, ७।७१।

ईषल्लभ—वि० [सं०] अल्प मूल्य में उपलब्ध [को०]।

ईषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाड़ी या हल में वह लंबी लकड़ी जिसके सिरे पर जुआ बाँध कर बैल को जोतते हैं। हरसा। हरिस।

ईषादंड—संज्ञा पुं० [सं० ईषादण्ड] हल की मूठ [को०]।

ईषादंत[1]—संज्ञा पुं० [सं० ईषादन्त] १. लंबे दाँत का हाथी। २. हल की मूठ। ३. हाथी के दाँत [को०]।

ईषादंत[2]—वि० लंबे दाँतोंवाला [को०]।

ईषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हाथी की आँख का खोडरा या गोलक। २ चित्रकारी में रंग भरने की कलम। कूँची। ३. बाण। ४. सिरकी। सींक।

ईपिर—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि । आग [को०] ।
ईपीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईपिका' [को०] ।
ईप्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. वसंत ऋतु । २. कामदेव । मदन [को०] ।
ईप्व—संज्ञा पुं० [सं०] अध्यात्म की शिक्षा देनेवाले गुरु [को०] ।
ईस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ईश, प्रा० ईस] दे० 'ईश' । उ०—तेहि द्विज बटु आज्ञा करत अहह कठिन अति ईस ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३०७ ।
ईसन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ईशान] ईशान कोण । पूरब और उत्तर के बीच का कोना । उ०—सतमी पूनिउँ पायव आछी । अठइँ अमावस ईसन लाछी ।—जायसी (शब्द०) ।
ईसबगोल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इसबगोल' ।
ईसर¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ऐश्वर्य] धनसंपत्ति । ऐश्वर्य । वैभव । उ०—कहेन्हि न रोव बहुत तैं रोवा । अब ईसर भा दारिद खोवा ।—जायसी (शब्द०) ।
ईसर²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ईश्वर प्रा० इस्सर, ईसर] दे० 'ईश्वर' । उ०—ईसर केर घंट रन बाजा ।—जायसी ग्र०, पृ० ११७ ।
ईसरगोल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इसबगोल' ।
ईसरी(पु)—[सं० ईश्वरीय] दे० 'ईश्वरीय' ।
ईसवी—वि० [अ०] ईसा से संबंध रखनेवाला ।
यौ०—ईसवी सन्=ईसा मसीह के जन्मकाल से चला हुआ संवत् ।
विशेष—यह संवत् पहली जनवरी से आरंभ होता है और इसमें प्राय ३६५ दिन होते हैं । ठीक ठीक सौ वर्ष का हिसाब पूरा करने के लिये प्रति चौथे वर्ष जब सन् की संख्या चार से पूरी विभक्त हो जाती है, तब फरवरी में एक दिन बढ़ा दिया जाता है और वह वर्ष, ३६६ दिन का हो जाता है । इसमें और विक्रमीय संवत् में ५७ वर्ष का अंतर है ।
ईसा—संज्ञा पुं० [अ०] ईसाई धर्म के प्रवर्तक या आचार्य ।
यौ०—ईसामसीह=ईसा जिनका धर्माभिसिंचन किया गया था ।
ईसाई—वि० [फा०] ईसा को माननेवाला । ईसा के बनाए धर्म पर चलनेवाला । क्रिश्चियन । उ०—मैं इससे घृणा करता हूँ क्योंकि यह ईसाई है ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५६४ ।
ईसान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ईशान] दे० 'ईशान' ।
ईसानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ईशानी] दे० 'ईशानी' ।
ईसार—संज्ञा पुं० [अ०] दूसरे के लिये अपने स्वार्थ का त्याग करना [को०] ।
ईसारपेशा—वि० [अ० ईसार+फा० पेशह्] परोपकारी । अपना स्वार्थत्याग करके दूसरों का हित करनेवाला [को०] ।
ईसुर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० ईस्वर] दे० 'ईश्वर' । उ०—जौं ईसुर हो तो कहूँ सुनतो करुना बैन ।—श्यामा०, पृ० १६६ ।
ईसुरी¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ईश्वरी] दुर्गा । पार्वती । उ०—इनके नमक तें ईसुरी हमको करै रन में अदा ।—पद्माकर ग्रं०, पृ०१८ ।
ईसुरी²—वि० [सं० ईश्वरीय] दे० 'ईश्वरीय' । उ०—दस औतार ईसुरी माया करता करि जिन्ह पूजा । कहै कबीर सुनो हो साधो उपजै खपै सो दूजा ।—घट०, पृ० २६४ ।
ईस्ट—संज्ञा पुं० [अ०] पूरब । पूर्व दिशा ।
ईस्वर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] 'ईस्वर' । उ०—ऐसैं सुजस सुपंथ मैं ईस्वर सबकौं देत ।—हम्मीर०, पृ० ४१ ।
ईस्वरता(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईश्वरता' । उ०—श्री गुसाईं जी वाकों समुझावत में अपनी ईस्वरता जताए ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १५६ ।
ईहग—संज्ञा पुं० [सं० ईहा=इच्छा+ग=गमन करनेवाला] कवि । चारण ।—(डिं०) ।
ईहाँ(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'यहाँ' । उ०—इह न कहइ अस ईहाँ ऐसे । जैसिन वस्तु प्रकासक तैसे ।—नंद० ग्रं०, पृ० ११७ ।
ईहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० ईहित] १. चेष्टा । उ०—सूछम समुझि परासयहि ईहा साभिप्राय । कर जोरत लखि हरिहि तिय लिय कज्जल दृग लाय ।—पदमाकर ग्र०, पृ० ६३ । २. उद्योग । ३. इच्छा । वांछा । ४. लोभ ।—(डिं०)
ईहाम—संज्ञा पुं० [अ०] भ्रांति । भ्रम । वहम [को०] ।
ईहामृग—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाटक का एक भेद जिसमें चार अंक होते हैं । इसका नायक ईश्वर या किसी देवता का अवतार और नायिका दिव्य स्त्री होती है जिसके कारण युद्ध होता है । इसकी कथा प्रसिद्ध और कुछ कल्पित होती है । कुछ लोग इसमें एक ही अंक मानते हैं । मृग के तुल्य अलभ्य कामिनी की नायक इसमें ईहा करता है । अतः इसे ईहामृग कहते हैं । २ भेड़िया ।
ईहार्थी—वि० [सं० ईहार्थिन्][वि०स्त्री० ईहार्थिनी] धनलाभ या उद्देश्यपूर्ति के लिये यत्नशील [को०] ।
ईहावृक—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़बग्घा ।
ईहित—वि० [सं०] इच्छित । ईप्सित । चाहा हुआ । वांछित ।